Ho

निवेदन

जीवन को सुख और शान्तिपूर्वक व्यतीत करने में सफल होना ही मानवजीवन का लक्ष्य है। इसी के लिये सभी बुद्धिमान् व्यक्ति प्रयत्नशील हैं। इसकी सफलता के जितने भी साधन हैं वे सब स्वस्थ शरीर से ही संभव हैं। कहा भी है—'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलसाधनम्'। शरीर को स्वस्थ रखने के दो मार्ग हैं। पहिला--रोगप्रतिबन्धक उपाय अर्थात् 'स्वास्थ्य-रक्षक नियमों का पालन करना। दूसरा--रोगनाशक उपाय अर्थात् चिकित्सा। पहिले मार्ग को समुचित रूप से ग्रहण करने से मनुष्य कभी बीमार नहीं होता है अतः यही श्रेयस्कर भी है "Prevention is better than cure" किन्तु मनुष्य असावधानी और प्रमाद के कारण स्वास्थ्यरक्षक नियमों के विपरीत आचरण करता ही है, इससे वह अस्वस्थ हो जाता है, अतएव चिकित्सा की आवश्यकता अनिवार्य रूप से होती है।

संसार में जितनी भी चिकित्सा-प्रणालियाँ हैं, उन सबकी उत्पत्ति आयुर्वेद से ही हुई है, आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त ही विकसित रूप से सभी चिकित्सा-प्रणालियों में पाए जाते हैं। यद्यपि चिकित्सा विज्ञान अनुभव और प्रयोगजन्य शास्त्र है अतः इसमें समयानुस परिवर्तन और परिवर्द्धन होना स्वाभाविक ही है। किन्तु त्रिकालदर्शी ऋषियों ने, जो चिकित्स विज्ञान के आचार्य थे, आयुर्वेद का आधार ऐसे दृढ़ और स्थिर सिद्धान्तों को बनाया है अ अब तक अबाधित रूप से चल रहे हैं। यह चिकित्सा-शास्त्र आयुर्वेद भारतवर्ष में पूर्णरू से सफल हुआ है, इसमें किसी को मतभेद नहीं है।

चिकित्सा के दो अंग हैं, निदान और उपचार। उपचार में अनुभवों का महत्त्व ही अधिक है। चिकित्सा में प्रयोग दो प्रकार के हैं--एक काष्ठौषधों से निर्मित, दूसरे खनिज औषधों से निर्मित जो रस कहलाते हैं। काष्ठौषधों से निर्मित प्रयोगों का प्रचार अधिक प्राचीन है, किन्तु उपयोगिता में रसौषधों का मूल्य अधिक है।

आयुर्वेद में अनेक चिकित्सा ग्रन्थ भिन्न-भिन्न विद्वानों के प्रणीत हैं जिनमें उनके अनुभूत औषध प्रयोगों का वर्णन है। काष्ठौषध और रसौषध दोनों प्रकार के प्रयोगों के पृथक्-पृथक् ग्रन्थ मिलते हैं। अनेक ग्रन्थ ऐसे भी हैं जिनमें भिन्न भिन्न विद्वानों के परीक्षित प्रयोगों का संग्रह है, ऐसे ग्रन्थ तीन प्रकार के हैं। १ केवल काष्ठौषध प्रयोगों का संग्रह, २ रस प्रयोगों का संग्रह, ३ दोनों प्रकार के प्रयोगों का संग्रह।

इस प्रकार के संग्रहग्रन्थों में प्रस्तुत ग्रन्थ भैषज्यरत्नावली प्रमुख ग्रन्थ है। इसके प्रणेता महामहोपाध्याय श्रीगोविन्ददासजी सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में बंगाल में प्रसिद्ध हुए हैं। उनने अपने सफलतादायक अनुभूत प्रयोगों का संग्रह इस ग्रन्थ में किया है। उनके मौलिक संग्रह के बाद भी विद्वान् वैद्यों ने अपने अनुभूत और विशेष प्रचलित प्रयोगों को और बढ़ा दिया है, इस प्रकार नए संस्करणों में प्रयोगों की वृद्धि होती ही

गई। प्रस्तुत संस्करण में प्राचीन प्रयोगों के अतिरिक्त उन प्रयोगों का भी समावेश कर दिया गया है जिनको भारतवर्ष के सभी वैद्य अधिकता से व्यवहार में लाते हैं। इससे इस ग्रन्थ की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। साथ ही उन नवीन रोगों का, जिनका प्राचीन साहित्य में उल्लेख नहीं मिलता है, निदान भी अन्य से उद्धृत कर दिया है। इस ग्रन्थ के काष्ठौषध और रसौषध दोनों प्रकार के प्रयोग सबके सब बहुत ही उपादेय और चमत्कृत हैं। आशा है, वैद्य और सद्गृहस्थ सभी के लिये यह समान रूप से लाभदायक होगा।

अन्त में द्वितीय परिशिष्ट (केवल भाषा में) लगा देने से इस ग्रन्थ में वर्णित सभी प्रयोगों का बनाना बहुत सरल हो गया है। वैद्य ही नहीं, कोई भी विचारवान् व्यक्ति इसमें बताये हुए प्रकार से प्रयोग बनाकर लाभ उठा सकता है।

द्वितीय संस्करण का सम्पादन विद्वान् और सफलचिकित्सक श्री कौशिकजी ने करके इसे अधिक उपयोगी बनाया। अब तृतीय संस्करण में उन्होंने ही अन्य आवश्यक विषय पथ्यापथ्य आदि तथा भिन्न २ प्रान्तों के वैद्यों के अनुभूत सफल प्रयोगों का और अधिक मात्रा में समावेश करके इसको और भी अधिक उपयोगी बना दिया है। आशा है प्रस्तुत ग्रन्थ अब तक के सभी उपलब्ध संस्करणों से अधिक पूर्ण और लाभदायक सिद्ध होगा।

प्रकाशक

भैषज्यरत्नावली सटीक

की

विषयानुक्रमणिका



भैषज्यरत्नावली

रत्नप्रभाव्याख्यासहिता।



मङ्गलाचरणम्

भक्त्या नमस्त्रिदशराजकिरीटकोटिरत्नावलीकिरणराजिविराजमानम्।
श्रीमत्करीन्द्रवदनस्यपदारविन्दद्वन्द्वंसदाजयतिसिद्धिकरंक्रियाणाम् ॥ १ ॥

ध्यात्वा गुरूणां चरणारविन्दं नत्वा स्वकीयं पितरं च भक्त्या।
भैषज्यरत्नावलि-समाह्वस्य[1] रत्नप्रभाख्यां रचयामि टीकाम् ॥

भक्तिपूर्वक झुकते हुए देवताओं के राजा इन्द्र के मुकुट में शोभित रत्नों से निकली हुई किरणों द्वारा शोभायमान श्रीगणेशजी महाराज के चरण जो संसार के समस्त कार्यों को सिद्ध करनेवाले हैं ऐसे उन युगलचरणों की सदा जय हो ॥ १ ॥

आयुर्वेदागमनं क्रमेण येनाऽभवद्भूमौ। प्रथमं लिखामि तमहं नानातन्त्राणि संदृश्य ॥ २ ॥

वैद्यक शास्त्र का पृथ्वी पर जिस प्रकार आगमन हुआ, मैं पहिले अनेक शास्त्रों का अवलोकन कर उसको लिखता हूँ ॥ २ ॥

आयुर्वेदोत्पत्तिक्रम।

ब्रह्मा स्मृत्वाऽऽयुषो वेदं प्रजापतिमजिग्रहत्। स दस्रौ तौ सहस्राक्षं सोऽत्रिजं समुपादिशत् ॥ ३ ॥ सोऽग्निवेशं च भेडञ्च जातूकर्णं पराशरम्। क्षारपाणिञ्च हारीतमायुर्वेदमपाठयत् ॥ ४ ॥ ब्रह्मप्रजापतिर्दस्रौ देवराडत्रिजस्तथा। स्वनाम्ना संहितां चक्रे पृथक् कल्याणहेतवे ॥ ५ ॥ तन्त्रस्य कर्ता प्रथममग्निवेशोऽभवत् पुरा। ततो भेडादयः सर्वे पृथक् तन्त्राणि तेनिरे ॥ ६ ॥

पहिले ब्रह्माजी ने स्मरण कर दक्षप्रजापति को आयुर्वेद का उपदेश किया। इसके बाद दक्षप्रजापति ने अश्विनीकुमारों को, कुमारों ने इन्द्र को और इन्द्र ने आत्रेय मुनि को पढ़ाया। पश्चात् भगवान् आत्रेयजी ने अग्निवेश, भेड, जातुकर्ण,

[1] कृदिकारादक्तिन इति वैकल्पिकङीपो विधानात् ह्रस्वान्तोऽप्यावलिशब्दः ॥

अथविषरसायनाधिकार ९२२

पराशर, क्षारपाणि और हारीत मुनि को वैद्यकशास्त्र का उपदेश किया। इसके बाद ब्रह्मा, प्रजापति, दोनों अश्विनीकुमार, इन्द्र और आत्रेय इन लोगों ने सब के हित के लिए अपने-अपने नाम से अलग-अलग संहिता बनाई। जैसे ब्रह्मसंहिता, प्रजापतिसंहिता और अश्विनीकुमारसंहिता आदि। प्रथम तन्त्रकर्ता[१] अग्निवेशजी हुए। तदनन्तर भेड़ आदि सब ऋषियों ने (अपने २ नाम से) अलग-अलग तन्त्रों का निर्माण किया॥ ३—६॥

आरोग्यप्रशंसा।

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्। रोगास्तस्याऽपहर्तारः श्रेयसोजीवितस्य च॥ ७॥

शरीर की आरोग्यता ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों पदार्थों का प्रधान साधन है। व्याधियाँ आरोग्यता, सुख और दीर्घजीवन को नष्ट कर देती हैं॥ ७॥

व्याधिभेद।

व्याधयो द्विविधाः प्रोक्ताः शारीरा मानसास्तथा। शारीरा ज्वरकुष्ठाद्या उन्मादाद्या मनोभवाः॥ ८॥

शारीरिक और मानसिक भेद से व्याधियाँ दो प्रकार की हैं। ज्वर और कुष्ठ आदि शारीरिक, तथा उन्माद आदि मानसिक व्याधि कहे जाते हैं॥ ८॥

आरोग्य और रोग के लक्षण।

दोषाणां साम्यमारोग्यं वैषम्यं व्याधिरुच्यते। सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च॥ ९॥

[१] अग्निवेश आदि ऋषियों ने वैद्यकशास्त्र में जिन-जिन ग्रन्थों का निर्माण किया है उनको 'तन्त्र' कहते हैं

दोषों की समान[१] अवस्था को आरोग्य और असमान अवस्था को रोग कहते हैं। आरोग्य ही को दूसरे शब्द में सुख और व्याधि को दुःख कहते हैं॥ ९॥

व्याधि के साध्य आदि भेद।

साध्योऽसाध्य इति व्याधिर्द्विधाऽतोऽपि पुनर्द्विधा। सुखसाध्यः कृच्छ्रसाध्यो याप्यो यश्चाऽप्रतिक्रियः॥ १०॥

साध्य और असाध्य इन भेदों से रोग दो प्रकार के हैं। ये साध्य और असाध्य भी दो-दो प्रकार के हैं। सुखसाध्य और कृच्छ्रसाध्य; ये दोनों प्रकार के रोग साध्य, और जो रोग याप्य[२] तथा औषधादि द्वारा अच्छे नहीं हो सकते हैं वे दोनों प्रकार के रोग असाध्य कहे जाते हैं॥ १०॥

तत्रैकः पापजो व्याधिरपरः कर्मजो मतः। पापजः प्रशमं याति भैषज्यसेवनादिना॥११॥ यथाशास्त्रविनिर्णीतो यथा व्याधिचिकित्सितः। न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयः कर्मजो बुधैः॥ १२॥

व्याधियाँ दो प्रकार की होती हैं, पापज और कर्मज। पापज अर्थात् इसी जन्म में मिथ्याहार-विहार से पैदा होनेवाली, और इन्हीं को दोषज (वात, पित्त, कफजन्य) व्याधियाँ, पापज व्याधियाँ कहते हैं। दूसरी व्याधियाँ कर्मज होती

[१] यह समानता इस प्रकार की नहीं है कि वे परस्पर समान हों अर्थात् जितना पित्त का परिमाण हो, उतना ही कफ का; किन्तु पृथक् पृथक् दोषों का वह परिमाण (तोल) जिससे शरीर स्वस्थ रहे। दोषों का परिमाण इस प्रकार से भी नियत नहीं किया गया है कि इतना वायु, इतना पित्त और इतना कफ शरीर में होने चाहियें। किन्तु दोषादिकों के जितने परिमाण से शारीरिक क्रियायें भलीभाँति सम्पन्न होवें वही उनका समान परिमाण है। देखिये—सुश्रुतसंहिता सूत्रस्थान अ० १५ श्लोक ४३, ४४ और ४५॥

[२] जो रोग औषधों का सेवन करने से दबा रहता है और औषधों का सेवन करना छोड़ देने पर फिर प्रकट हो जाता है उसको याप्य कहते हैं।

हैं । इनमें से पापज व्याधियाँ ओषधियों के सेवन आदि से शान्त हो जाती हैं और यदि शास्त्र के निदानानुसार व्याधिसात्म्य चिकित्सा करने पर भी जो व्याधि शान्त नहीं होती, उसको कर्मज व्याधि जानना चाहिए ॥ ११-१२ ॥

न जन्तुः कश्चिदमरः पृथिव्यामेव जायते । अतो मृत्युरवार्यः स्यात्किन्तु रोगो निवार्यते ॥ १३ ॥

चूँकि इस लोक में कोई व्यक्ति अमर नहीं है अतः मृत्यु अनिवार्य है, किन्तु रोग हटाया जा सकता है ॥ १३ ॥

रोग की उपेक्षा का फल ।

याप्यत्वं याति साध्यस्तु याप्यो गच्छत्यसाध्यताम् । जीवितं हन्त्यसाध्यस्तु नरस्याप्रतिकारिणः ॥ १४ ॥

जो मनुष्य रोग की उपेक्षा करता है उसका साध्य रोग भी याप्य और याप्य रोग असाध्य हो जाता है । यदि असाध्य रोग की उपेक्षा की जाय तो वह रोगी को मार डालता है ॥ १४ ॥

याप्यत्वमसाध्यत्वञ्च द्विधा ज्ञेयं प्रकृतित उपेक्षणाच्च ॥

तथा च सारचन्द्रिकायाम्—

याप्याः केचित् प्रकृत्यैव केचिद् याप्या उपेक्षया । प्रकृत्या व्याधयोऽसाध्याः केचित् केचिदुपेक्षया ॥ १५ ॥

पूर्वोक्त याप्य और असाध्य रोग दो ही प्रकार से उत्पन्न होते हैं । जैसे—कुछ रोग स्वभाव ही से याप्य और असाध्य होते हैं और कुछ रोग उपेक्षित होने (सावधानीपूर्वक चिकित्सा न करने) से याप्य अथवा असाध्य हो जाते हैं । यह बात सारचन्द्रिका में लिखी है ॥ १५ ॥

मृत्यु के भेद

एकोत्तरं मृत्युशतमस्मिन् देहे प्रतिष्ठितम् । तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषास्त्वागन्तवः स्मृताः ॥ १६ ॥

इस शरीर में एक अधिक सौ (एक सौ एक १०१) प्रकार की मृत्यु स्थित हैं । उनमें एक मृत्यु कालसंयुक्त[1] है, और शेष सौ मृत्यु आगन्तुक अर्थात् तात्कालिक कारणवश उत्पन्न होनेवाली हैं ॥ १६ ॥

कालमृत्यु की प्रबलता ।

ये त्विहागन्तवः प्रोक्तास्ते प्रशाम्यन्ति भेषजैः । जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्न शाम्यति ॥१७॥ पीडितं रोगसर्पाद्यैरपि धन्वन्तरिः स्वयम् । सुस्थीकर्तुं न शक्नोति कालप्राप्तं हि देहिनम् ॥ १८ ॥

आगन्तुक मृत्यु औषध, जप, होम और दानादि द्वारा शान्त हो जाती है, किन्तु कालमृत्यु किसी प्रकार निवारित नहीं हो सकती । कोई प्राप्तकाल व्यक्ति (जिसका मृत्यु समय ही है) रोगाक्रान्त अथवा सर्प आदि से दष्ट हुआ (डँसा गया) हो तो स्वयं धन्वन्तरिजी भी उसको स्वस्थ करने में समर्थ नहीं हो सकते ॥ १७ १८ ॥

तथा च ज्योतिस्तत्त्वे—

आयुष्ये कर्मणि क्षीणे लोकोऽयं दूयते मया । नौषधानि न मन्त्राश्च न होमा न पुनर्जपा ॥ त्रायन्ते मृत्युनोपेतं जरया चापि मानवम् ॥ १९ ॥

तत्रैव—

वर्त्याधारस्नेहयोगाद् यथा दीपस्य संस्थितिः । विक्रियाऽपि च दृष्टैवमकाले प्राणसंक्षयः ॥ २० ॥

ज्योतिस्तत्त्व में लिखा है कि आयु के बढ़ानेवाले कर्मों का क्षय होने पर मैं (यम) कुल प्राणियों को पीडित करता हूँ, उस समय औषध, मन्त्र, होम और जप ये कोई भी

[1] काले आयुषोऽन्ते शरीरिणामवश्यंसंहर्ता, यद्वा कालेन यमेन संयुक्त संहाराय नियुक्त इति तदर्थ इति भावमिश्रः । अर्थात्—आयु के अन्त में प्राणियों का अवश्य संहार करनेवाली, अथवा प्राणियों का संहार करने के लिये यमराजसे नियुक्त । 'कालसंयुक्त' शब्द के ये दो अर्थ भावमिश्र ने किये हैं ।

बुढ़ापा और मृत्यु से ग्रसित मनुष्य को नहीं बचा सकते। जैसे दीपक में बत्ती और तेल के रहते हुये भी कदाचित् दीपक बुझ जाता है। वैसे ही आयु के रहते हुये भी रोगादि कारणों से असमय में मनुष्य की मृत्यु हो जाती है ॥ १९-२० ॥

वैद्य का कर्तव्य।

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः । एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ २१ ॥

व्याधि के तत्त्व अर्थात् स्वरूप और निदान को यथार्थ रीति से जानना और रोगी की पीड़ा का निवारण करना यही वैद्य का कर्तव्य है। वैद्य आयु का प्रभु अर्थात् परमायुःप्रदाता नहीं है[१] ॥ २१ ॥

अचिकित्स्य रोगी।

यादृच्छिको मुमूर्षुश्च विहीनः करणैश्च यः । वैरी च वैद्यविद्वेषी श्रद्धाहीनः सशङ्कितः ॥ २२ ॥ भिषजामविधेयश्च नोपक्रम्यो भिषग्विदा। एतानुपाचरन्वैद्यो बहून् दोषानवाप्नुयात् ॥ २३ ॥

स्वेच्छाचारी (मनमाना आचरण करने वाला), आसन्नमृत्यु (जिसकी मृत्यु निकट हो), इन्द्रियशक्तिविहीन (जिसकी इन्द्रियां पूरी तरह से काम न करती हों), वैरी, वैद्यद्वेषी (वैद्यों से वैर रखता हो), श्रद्धाहीन, औषधों से सशङ्क रहनेवाले (औषध कहीं रोग न बढ़ा दे ऐसी शंका करनेवाले) और वैद्यों की आज्ञा न माननेवाले रोगियों की चिकित्सा सद्वैद्य को न करनी चाहिये। इनकी चिकित्सा करने से वैद्य बहुत दोषों (अपवादों) का प्राप्त होता है ॥ २२-२३ ॥

[१] कोई २ इसकी इस प्रकार व्याख्या करते हैं, कि व्याधि के स्वरूप को यथार्थ रीति से जानना और रोगी की पीड़ा का निवारण करना यही वैद्य का कर्तव्य नहीं है किन्तु वैद्य, प्राणियों के आयु का भी प्रभु है। कारण यह कि वह १०० भी प्रकार मृत्युओं का निवारण करता है।

चिकित्साकाल

यावत्कण्ठगताः प्राणा यावन्नास्तिनिरिन्द्रियः।तावच्चिकित्साकर्तव्याकालस्य कुटिला गतिः ॥ २४ ॥

जब तक कण्ठ में प्राण हों और जबतक इन्द्रियों की शक्ति नष्ट न हो, तब तक रोगी की चिकित्सा करनी चाहिये, क्योंकि काल की गति कुटिल है (*अर्थात् कभी बिलकुल मरणासन्नरोगी भी बच जाता है*)॥ २४ ॥

जातमात्रश्चिकित्स्यस्तु नोपेक्ष्योऽल्पतया गदः । वह्निशस्त्रविषैस्तुल्यः स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥ २५ ॥ यथा स्वल्पेन यत्नेन छिद्यते तरुणस्तरुः । स एवाऽतिप्रवृद्धस्तु छिद्यतेऽपि प्रयत्नतः ॥ २६ ॥

रोग के उत्पन्न होते ही चिकित्सा करनी चाहिये। रोग को सामान्य कहकर उपेक्षा करना उचित नहीं। कारण यह कि सामान्य रोग भी अग्नि, शस्त्र और विष के समान स्वल्प परिमाण में होने पर भी महान् विकार उत्पन्न करता है। *जिस प्रकार छोटा पौधा थोड़े ही यत्न से काटा जाता है किन्तु जब वही बहुत बड़ा हो जाता है तब उसके काटने के लिये बहुत यत्न करने पड़ते हैं।* यही रीति व्याधियों की भी है ॥ २५-२६ ॥

ग्रहशान्तिपूर्वक चिकित्सा।

ग्रहेषु प्रतिकूलेषु नानुकूलं हि भेषजम् । ते भेषजानां वीर्याणि हरन्ति बलवन्त्यपि ॥ प्रतिकृत्य ग्रहानादौ पश्चात्कुर्याच्चिकित्सितम् ॥ २७ ॥

सूर्यादि ग्रहों के प्रतिकूल होने पर औषध लाभदायक नहीं होती, क्योंकि ये ग्रह औषधियों की अत्यन्त बलवती शक्ति को हर लेते हैं। अतः पहिले ग्रहों की शान्ति कराके पीछे चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २७ ॥

चिकित्सा के भेद।

आसुरी मानुषी दैवी चिकित्सा त्रिविधा

मता । शस्त्रैः कषायैर्होमाद्यैः क्रमेणान्त्याः सुपूजिताः ॥ २८ ॥

आसुरी, मानुषी और दैवी इन भेदों से चिकित्सा तीन प्रकार की है। जो चिकित्सा शस्त्र से की जाती है उसे आसुरी, जो काढ़ा आदि से की जाती है उसे मानुषी और जो होम आदि से की जाती है उसे दैवी कहते हैं, इनमें दैवी चिकित्सा सबसे श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥

टिप्पणी—दैवी चिकित्सा में यन्त्र, मन्त्र तन्त्र, जप, होम, अनुष्ठान आदि सम्मिलित हैं। मानुषी चिकित्सा औषधोपचार मात्र को बतलाती है।

चिकित्सा का लक्षण।

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः। सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां मतम् ॥ २९ ॥

जिन क्रियाओं के द्वारा शरीर के धातु अर्थात् रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र साम्यभाव को प्राप्त हों, उन्हीं क्रियाओं को रोगों की चिकित्सा कहते हैं और चिकित्सा ही वैद्यों का कार्य है ॥ २९ ॥

चिकित्सा की सफलता।

क्वचिद्धर्मः क्वचिन्मैत्री क्वचिदर्थः क्वचिद्यशः। कर्माऽभ्यासः क्वचिच्चापि चिकित्सा नास्ति निष्फला ॥ ३० ॥

चिकित्सा द्वारा कहीं धर्म, कहीं मित्रता, कहीं धनप्राप्ति, कहीं यशोलाभ और कहीं चिकित्सा कर्म का अभ्यास होता है। अतः चिकित्सा कहीं भी निष्फल नहीं होती ॥ ३० ॥

अन्यजातिकृतः पाको ह्यस्पृश्यः सर्वजातिभिः। इति विज्ञाय मतिमान् वैद्यं पाके नियोजयेत् ॥ ३१ ॥

वैद्य के अतिरिक्त किसी और की बनाई हुई औषध किसी को भी सेवन नहीं करनी चाहिए क्योंकि दूसरे मनुष्यों के इस विषय में अनभिज्ञ होने के कारण वह औषध हानिप्रद होती है इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि औषध आदि के निर्माण के लिए किसी अच्छे वैद्य की सहायता ले ॥ ३१ ॥

विद्यासमाप्तौ भिषजां द्वितीया जातिरुच्यते। न वैद्यो वैद्यशब्दं हि लभते पूर्वजन्मना ॥ ३२ ॥

जो मनुष्य इस विद्या में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करते हैं वे ही चिकित्सक कहलाते हैं, वैद्य की संतान होने पर उन्हें वैद्य नहीं कहा जा सकता ॥ ३२ ॥

विद्यासमाप्तावार्षं वा ब्राह्मं वा भिषजं ध्रुवम्। सत्त्वमाविशति ज्ञानात्तेन वैद्यो द्विजः स्मृतः ॥ ३३ ॥

विद्या की समाप्ति पर और ज्ञान में पूर्ण होने पर वैद्य के अन्दर आर्ष अथवा ब्राह्मण या बुद्धि प्रवेश करते हैं इसलिए भी वैद्य को द्विज कहा जा सकता है ॥ ३३ ॥

रोगशान्ति के साधन।

भिषग्द्रव्यमुपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम्। गुणवत्कारणं ज्ञेयं विकारस्योपशान्तये ॥ ३४ ॥

वैद्य, औषध, परिचारक और रोगी ये चिकित्सा के चार पाद (अङ्ग) हैं। यदि ये चारों अङ्ग आगे कहे जानेवाले गुणों से युक्त हों तो इन्हें रोग के शान्ति का कारण जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

वैद्य के गुण।

श्रुते पर्यवदातत्वं बहुशो दृष्टकर्मता। दाक्ष्यं शौचमिति ज्ञेयं वैद्ये गुणचतुष्टयम् ॥ ३५ ॥

आयुर्वेद में प्रवीणता, चिकित्सा आदि कर्मों में बहुदर्शिता (अनुभव और ज्ञान सदा हो), क्रियानैपुण्य और शौच अर्थात् शरीर, मन और वाणी की पवित्रता ये चार गुण वैद्य में होने चाहिए ॥ ३५ ॥

प्रशस्त औषध।

प्रशस्तदेशसम्भूतं प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम्। अल्पमात्रं महावीर्यं गन्धवर्णरसान्वितम् ॥ ३६ ॥ उद्भिज्जमपरिक्लिष्टं शुद्धं धात्वादिकं तथा। समीक्ष्य काले दत्तं च प्राहुः परममौषधम् ॥ ३७ ॥

श्रेष्ठ देशों में उत्पन्न, शुभ दिन में उद्धृत (उखाड़ी), थोड़ी मात्रा में भी अधिक शक्तियुक्त, गन्ध, वर्ण और रस से युक्त तथा कीटादि से अक्षुण्ण (अविकृत) उद्भिज्ज[1] तथा शोधित धातु आदि विचार कर यथासमय प्रयुक्त होने पर उत्तम औषध कही जाती है ॥ ३६-३७ ॥

परिचारक के गुण।

उपचारज्ञता दाक्ष्यमनुरागश्च भर्तरि। शौचञ्चेति चतुर्थोऽयं गुणःपरिचरेजने ३८॥

शुश्रूषाविषयक ज्ञान, कार्यकौशल, स्वामी में अनुराग और शौच अर्थात् पवित्रता ये चार गुण परिचारक के हैं ॥ ३८ ॥

रोगी के गुण।

स्मृतिर्निर्देशकारित्वमभीरुत्वमथाऽपि च। ज्ञापकत्वं च रोगाणामातुरस्य गुणाः मताः ॥ ३९ ॥

जो रोगी (वैद्य को) अपनी पीड़ा का यथार्थ वृत्तान्त स्मरण करा सकता है, तथा वर्तमान अवस्था की विशेष परिस्थिति को बतला सकता है और भयरहित है उसको चिकित्सा करने से लाभ होता है ॥ ३९ ॥

चिकित्सक की प्रधानता।

मृद्दण्डचक्रसूत्राद्या कुम्भकारादृते यथा। न वहन्ति गुणं वैद्यादृते पादत्रयं तथा ॥ ४० ॥

जैसे मिट्टी, दण्ड, चक्र और सूत्र आदि कुल उपादान कारण कुम्भकार के बिना घड़ा आदि के निर्माण में उपयोगी नहीं हो सकते, वैसे ही चिकित्सक के बिना पूर्वोक्त पादत्रय (औषध, परिचारक और रोगी) के होते हुये ही प्रकृत चिकित्साकार्य का कोई उपयोग नहीं हो सकता। (अर्थात् रोग अच्छा नहीं हो सकता है।) अतएव चिकित्साकार्य में चिकित्सक का प्राधान्य है॥४०॥

वैद्यों के भेद।

यस्तु रोगमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक्। अप्यौषधविधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया ॥४१॥ यस्तु रोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः। साध्याऽसाध्यविधानज्ञस्तस्य सिद्धिः करे स्थिता ॥४२॥ दृष्टकर्मा च शास्त्रज्ञो वैद्य स्यात् सिद्धिभाग्भुवि। एकाङ्गहीनो न श्लाघ्य एक पक्ष इव द्विजः ॥ ४३ ॥ शास्त्रं गुरुमुखोद्गीर्णमादायोपास्य चाऽसकृत्। यः कर्म कुरुते वैद्यः स वैद्योऽन्ये तु तस्कराः ॥ ४४ ॥ नाऽभिज्ञाय तु शास्त्राणि भेषजं कुरुते भिषक्। यम एव स विज्ञेयो मर्त्यानां मर्त्यरूपधृक् ॥ ४५ ॥ कुचैलः कर्कशः स्तब्धः कुग्रामी स्वयमागतः। पञ्च वैद्या न पूज्यन्ते धन्वन्तरिसमा यदि ॥ ४६ ॥ नाडी जिह्वाऽक्षिमूत्राणां रोगादीनाञ्च

[1] उद्भिज्ज चार प्रकार के होते हैं। जैसे—वनस्पति, वानस्पत्य, वीरुध् और ओषधि।

(क) जिनमें बिना पुष्प के ही फल लगते हैं। उनको वनस्पति कहते हैं। जैसे बड़, पीपल और गूलर आदि।

(ख) जिनमें पुष्प और फल दोनों लगते हैं, उनको वानस्पत्य कहते हैं। जैसे आम, जामुन और नीम आदि।

(ग) वृक्ष आदि पर फैलनेवाली लता (बेल) को वीरुध् कहते हैं।

(घ) जो अपने फल पकने पर सूख जाते हैं, उन्हें ओषधि कहते हैं। जैसे जौ, गेहूँ और धान आदि।

सर्वथा। परीक्षां यो न जानाति स वैद्यो यम एव हि ॥ ४७ ॥

जो वैद्य औषधों का प्रयोग करना जानता है और रोगों का भलीभाँति निर्णय करके चिकित्सा करना प्रारम्भ करता है, उसको अनायास ही सिद्धि प्राप्त होती है। जो चिकित्सक रोगतत्त्व औषध-तत्त्व और रोगों के साध्य असाध्य लक्षण यथार्थ रूप से जानता है उसको अनायास ही सिद्धि लब्ध होती है। जो वैद्य, शास्त्रज्ञ और दृष्टकर्मा (अनुभवी) है उसी को सिद्धि प्राप्त होती है। इन में से एकाङ्गरहित वैद्य, एक पङ्खवाले पक्षी के समान अकर्मण्य होने से प्रशंसनीय नहीं होता। जो वैद्य गुरु के समीप आयुर्वेद का अध्ययन और बार बार अभ्यास करके चिकित्सा कर्म में प्रवृत्त होता है, वही यथार्थ वैद्य है। इससे अतिरिक्त वैद्य वास्तव वैद्य नहीं तस्कर है। जो वैद्य, बिना शास्त्राऽध्ययन किये ही चिकित्सा कर्म में प्रवृत्त हो जाता है, उसको मनुष्यों के मध्य में मानव-रूपधारी यमराज ही समझना चाहिये। कुत्सित (मैले या अशिष्ट) वस्त्रधारी, अप्रियभाषी, अभिमानी, कुग्रामनिवासी, ऐसे स्थान पर रहनेवाला जहाँ आने जाने की सुविधा न हो और बिना बुलाये रोगी के गृह में स्वयं आया हुआ ये पाँच प्रकार के वैद्य, चिकित्सा कर्म में धन्वन्तरि के समान होने पर भी कहीं प्रशंसा और सम्मान के पात्र नहीं हैं। जो वैद्य नाड़ी, जीभ मुख, मूत्र और कोष्ठ आदि की परीक्षा करना विशेषरूप से नहीं जानता वह यम के समान ही भयङ्कर है ॥४१—४७॥

चिकित्सा का फल।

अप्येकं नीरुजं कृत्वा जन्तुं यादृशतादृशम्। आयुर्वेदप्रसादेन किं न दत्तं भवेद्भुवि ॥ ४८ ॥ कपिला कोटिदानाद्धि यत्फलं परिकीर्तितम्। फलं तत्कोटिगुणितमेकातुरचिकित्सया ॥ ४९ ॥

तथा च नन्दिपुराणे—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं कारणं यत। तस्मादारोग्यदानेन नरो भवति सर्वदं ॥ ५० ॥ अप्येकं नीरुजीकृत्य व्याधितं भेषजैर्नरः। प्रयातिब्रह्मसदनं कुलसप्तकसंयुत ॥ ५१ ॥

जिस वैद्य ने आयुर्वेद की कृपा से जिस किसी प्रकार के एक रोगी को भी नीरोग करके प्राण-दान दिया है उसको पृथ्वी में कौन सा दान करना शेष रहा है? (अर्थात् सब कर चुका है।) कोटि (करोड़) कपिला के दान से जो फल कहा गया है, उससे करोड़ गुना अधिक फल एक रोगी को रोगमुक्त करने से प्राप्त होता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्ग का कारण शरीर की आरोग्यता है, अतएव आरोग्यदान से समस्त दानों का फल प्राप्त हो जाता है। वैद्य, औषध द्वारा केवल एक रोगी को रोग मुक्त करने से सात कुल के साथ ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है ॥५०-५१॥

अपि मूलेन केनापि मर्दनाद्यैरथापि वा। सुस्थीकृते लभेन्मर्त्य पूर्वोक्तं लोकमुत्तमम् ॥ ५२ ॥

एक साधारण मनुष्य भी किसी अनिरिक्त औषध अथवा बाह्य औषधि द्वारा रोगी को आराम करने पर मोक्ष का प्राप्त कर सकता है ॥५२॥

चिकित्सित देहनिष्क्रय।

चिकित्सितशरीरं यो न निष्क्रीणाति दुर्मति। स यत्करोति सुकृतं तत्सर्वं भिषगश्नुते ॥ ५३ ॥

जो दुर्बुद्धि मनुष्य, अपने चिकित्सित शरीर का निष्क्रय (पारितोषिक आदि) वैद्य को नहीं देता है, वह मनुष्य जो कुछ धर्म करता है उसका सम्पूर्ण फल वैद्य को प्राप्त होता है ॥५३॥

रोगपरीक्षा के उपाय।

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैर्व्याधेर्ज्ञानं त्रिधामतम्।' दर्शनान्मूत्रजिह्वाद्यैः स्पर्शनान्नाडिकादिभि ॥ प्रश्नैर्दूताद्दिवचनादिति त्रेधा समुच्यते ॥ ५४ ॥

दर्शन, स्पर्श और प्रश्न; इन तीन उपायों से व्याधि का परिज्ञान होता है। अर्थात् मूत्र और जिह्वा आदि के दर्शन, नाडी और त्वक् आदि के स्पर्श और दूत आदि से रोग के विषय में प्रश्न, रोग विज्ञान के लिये तीन ही प्रकार के उपाय हैं ॥ ५४ ॥

टिप्पणी—आधुनिक रोगविज्ञानसम्मत जितने परीक्षा के साधन हैं वह सभी इन्हीं तीन उपायों के अन्तर्गत हैं।

चिकित्सा का प्रकार।

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्। ततः कर्म भिषक् पश्चात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥ ५५ ॥

वैद्य पहले रोगपरीक्षा करे तदनन्तर औषध-परीक्षा करे अर्थात् औषध-व्यवस्था करे। पश्चात् ज्ञानपूर्वक चिकित्सा-कार्य प्रारम्भ करना चाहिये ॥ ५५ ॥

अपरीक्षित औषध से हानि।

यथा विषं यथा शस्त्रं यथाग्निरशनिर्यथा। तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतं यथा ॥ ५६ ॥

जिस औषध का गुण ज्ञात नहीं है वह विष, शस्त्र, अग्नि और वज्र के समान हानिकारक होता है; किन्तु जिस औषधि का गुण ज्ञात है वह अमृत के समान लाभदायक होता है ॥ ५६ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाख्यायां व्याख्यायां मिश्रवर्गः समाप्तः।

अथ परिभाषाप्रकरणम्।

मानपरिभाषा।

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित्। अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यतेऽधुना ॥ १ ॥

परिमाण (तोल) का यथार्थ ज्ञान न होने से औषधों का बनाना और उनका प्रयोग करना नहीं हो सकता। इस कारण प्रयोगों के कार्य-निर्वाह के लिये यहां पारिभाषिक परिमाण (तोल) कहे जाते हैं ॥ १ ॥

यव से मासापर्यन्त।

षट्सर्षपैर्यवस्त्वेको गुञ्जैका तु यवैस्त्रिभिः। माषस्तु पञ्चभिः षड्भिस्तथा सप्तभिरष्टभिः॥ दशभिर्द्वादशभिश्च रक्तिभिः षड्विधो मतः ॥ २ ॥

६ सरसों का एक यव, ३ यवों की एक गुञ्जा (रत्ती), किसी[1] के मत में ५, किसी के मत में ६, किसी के मत में ७, किसी के मत में ८, किसी के मत[2] में १० और किसी के मत में १२ रत्तियों का एक मासा होता है। अतः मतभेद से मासे ६ प्रकार के माने गये हैं ॥ २ ॥

मासा के विषय में चरक और सुश्रुत।

चरकस्य तु माषस्तु दश गुञ्जाभिरेव च। चरकस्य तु चार्द्धेन सुश्रुतस्य तु माषकः ॥ ३ ॥

चरक के मत में १० रत्तियों का और सुश्रुत के मत में ५ रत्तियों का एक मासा होता है ॥ ३ ॥

शाण और कोल।

माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते। टङ्कः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते। क्षुद्रको वटकश्चैव द्रङ्क्षणः स निगद्यते ॥ ४ ॥

४ मासे का एक शाण होता है, शाण ही को धरण और टङ्क कहते हैं। २ शाणों का एक कोल होता है। क्षुद्रक, वटक और द्रङ्क्षण, ये कोल के ही पर्याय हैं ॥ ४ ॥

कर्ष का परिमाण।

कोलद्वयं च कर्षः स्यात् स प्रोक्तः पाणिमानिकः। अक्षं पिचुः पाणितलं किञ्चित् पाणिश्च तिन्दुकम् ॥ ५ ॥ बिडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता। कर-

---

[1] सुश्रुत के मत में। [2] चरक के मत में।

मध्यो हंसपदं सुवर्णं कवलग्रहः। उदुम्बरश्च पर्याये कर्ष एव निगद्यते ॥ ६ ॥

२ कोल का एक कर्ष (१ तोला) होता है। पाणिमानिक, अक्ष, पिचु, पाणितल, किञ्चित्पाणि, तिन्दुक, विडालपदक, षोडशिका, करमध्य, हंसपद, सुवर्ण, कवलग्रह और उदुम्बर ये सब कर्ष के ही पर्याय हैं ॥ ५–६ ॥

अर्धपल और पल।

स्यात्कर्षाभ्यामर्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा। शुक्तिभ्याञ्च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका। प्रकुञ्चः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥ ७ ॥

२ कर्षों का एक अर्धपल (२ तोले) होता है। शुक्ति और अष्टमिका ये अर्धपल ही के पर्याय हैं। २ शुक्तियों का एक पल (१ छटाक) होता है। मुष्टि, आम्र, चतुर्थिका, प्रकुञ्च, षोडशी और बिल्व ये पल के ही नामान्तर हैं ॥ ७ ॥

प्रसृति से माणिका पर्यन्त की परिभाषा।

पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते। प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात् कुडवोऽर्धशरावकः ॥ ८ ॥ अष्टमानं च स ज्ञेयः कुडवाभ्याञ्च माणिका। शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥ ९ ॥

२ पलों की एक प्रसृति होती है, प्रसृत भी उसी का पर्याय है। २ प्रसृतियों की एक अञ्जलि (१ पौआ) होती है। कुडव, अर्धशराव और अष्टमान ये भी अञ्जलि के ही पर्याय हैं। २ कुडवों की एक माणिका होती है। शराव और अष्टपल ये भी माणिका के ही नामान्तर हैं। ऐसा विद्वानों को जानना चाहिये ॥ ८–९ ॥

प्रस्थ और आढक।

शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुः प्रस्थैस्तथाढकम्। भाजनं कंसपात्रे च चतुःषष्टिपलं च तत् ॥ १० ॥

२ शरावों का एक प्रस्थ (१ सेर) और ४ प्रस्थों का एक आढक होता है। भाजन, कंस, पात्र और चतुःषष्टिपल[1] ये आढक के ही नाम हैं ॥ १० ॥

द्रोण कुम्भ और द्रोणी

चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोऽर्मणः। उन्मानं च घटो राशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञकाः ॥ ११ ॥ द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिशरावकः। शूर्पाभ्यां च भवेद्द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता ॥१२॥

४ आढकों का एक द्रोण होता है। कलश, नल्वण, अर्मण, उन्मान, घट और राशि ये द्रोण के पर्यायवाचक शब्द हैं। २ द्रोणों का एक शूर्प होता है, उसी को कुम्भ और चतुःषष्टि शरावक[2] भी कहते हैं। २ शूर्पों की एक द्रोणी होती है, वाह और गोणी ये उसी के पर्याय हैं ॥११–१२॥

खारी

द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः। चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा ॥ १३ ॥

४ द्रोणी की एक खारी होती है, और उस एक खारी में ४०९६ पल होते हैं ॥ १३ ॥

भार और तुला।

पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्तितः। तुलापलशतं ज्ञेयं सर्वत्रैष विनिश्चय ॥ १४ ॥

२००० पल का एक भार कहा गया है। १०० पल की एक तुला जाननी चाहिये। परिमाणों के विषय में सर्वत्र यही निर्णय है ॥ १४ ॥

मान परिभाषा में यद्यपि किसी के मत में ५, किसी के मत में ६, किसी के मत में ७, किसी

[1] आढक को चतुःषष्टिपल इस कारण कहते हैं कि वह चौंसठ पल का होता है। [2] चतुःषष्टि शरावक शूर्प का पर्याय इस कारण है कि ६४ शराव (सकोरे) का एक शूर्प होता है।

के मत में ८, किसी के मत में १० और किसी के मत में १२ रत्तियों का मासा माना गया है। किन्तु मैंने अपने इस ग्रन्थ के अनुवाद में सर्वत्र ६ रत्तियों के एक मासावाले पक्ष का अनुसरण किया है। अतएव परिमाणों के संक्षिप्तविवरण में मैंने उसी का उल्लेख भी किया है।

इस पक्ष में ९६ रत्तियों का १ कर्ष अर्थात् १ तोला होता है, क्योंकि ६ रत्तियों का एक मासा और १६ मासे का एक कर्ष (१ तोला) माना गया है। आजकल व्यवहार में भी ९६ रत्तियों का तोला प्रचलित है।

पाँच, सात अथवा आठ रत्तियों का १ मासा और १६ मासे का कर्ष (१ तोला) माना जाय तो १ तोला में रत्तियाँ ९६ से न्यून अथवा अधिक होती हैं, अतः आजकल के व्यावहारिक तोला से बहुत अन्तर पड़ जाता है।

परिमाणों का संक्षिप्त विवरण।

६ सरसोंका	१ यव	+ + +
३ यव	१ गुञ्जा	१ रत्ती
६ रत्ती	१ मासा	एक आना भर
४ मासा	१ शाण	२४ रत्तियां (४ आने भर)
२ शाण	१ कोल	आधा तोला (४८ रत्ती)
२ कोल	१ कर्ष	एक तोला (९६ रत्तियां)
२ कर्ष	१ शुक्ति	२ तोले
२ शुक्ति	१ पल	४ तोले (१ छटाँक)
२ पल	१ प्रसृति	८ तोले (आधपाव)
२ प्रसृति	१ कुडव	१६ तोले (१ पाव)
२ कुडव	१ शराव	३२ तोले (आधसेर)
२ शराव	१ प्रस्थ	१ सेर (६४ तोले)
४ प्रस्थ	१ आढक	३ सेर (१६ तोला)
४ आढक	१ द्रोण	१२ सेर (६४ तोला)
२ द्रोण	१ शूर्प या कुम्भ।	२५ सेर (४८ तोला)
२ शूर्प	१ द्रोणी या गोणी	।)।। तो० १६
४ गोणी	१ खारी	२)७ तोला ६४
१०० पल	१ तुला	५ सेर
२००० पल	१ भार	२०) मन

यदि १० रत्तियों का एक मासा और कोल का अर्थ १ तोला मानें तो ८० रत्तियों का १ तोला होता है, अतः इस पक्ष में भी व्यावहारिक तोला से १६ रत्तियों का अन्तर पड़ता है।

यदि १२ रत्तियों का एक मासा और कोल का अर्थ १ तोला मानें तो कोई हानि नहीं, क्योंकि इस प्रकार से भी ९६ रत्तियों का १ तोला होता है। परंतु इस पक्ष में कर्ष आदि शब्दों को तोलकद्वयाद्यर्थक मानना पड़ेगा। बङ्गदेशीय वैद्य महोदयों ने तो परिमाणवाची कोल शब्द को तोलार्थक ही माना है। अतएव कविराज उमेशचन्द्र गुप्त कविरत्नकृत वैद्यकशब्दसिंधु में "कोल (क) म्। क्ली० । तोलक माने १ तोला" ऐसा ही उल्लेख है।

किन्तु अन्य प्रान्तीय वैद्यसमाज में कोल शब्द अर्धतोलार्थक, कर्षशब्द एक तोलार्थक और पल शब्द तोलाचतुष्टयार्थक ही प्रायः माने गये हैं। वाग्भट, चरक भावप्रकाश, शार्ङ्गधर और अमरकोष आदि के हिन्दी अनुवाद में भी कोलादि शब्द के अर्थ तोलादिरूप ही अर्थ देखे गये हैं। लीलावती में भी ८० रत्तियों के ही कर्ष का उल्लेख है, इससे भी सिद्ध होता है कि कर्ष का दो तोलारूप अर्थ नहीं है।

अतः ६ रत्तियों का १ मासा और १६ मासे का १ कर्ष (१ तोला) आदि जोकि पीछे परिमाणों के संक्षिप्तविवरण में लिखा जा चुका है, वही पक्ष उत्तम प्रतीत होता है।

गुञ्जादिमानमारभ्य यावत्स्यात् कुडव-स्थितिः। द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥ १५ ॥ प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः। मानं तथा तुला-यास्तु द्विगुणं न क्वचित् स्मृतम् ॥ १६ ॥

अन्यच्च

कुडवे मानिकायाञ्च तुलामाने तथैव च। पलोल्लेखागते माने न द्वैगुण्य-मिहेष्यते ॥ १७ ॥

अन्यच्च

कुडवेऽपि क्वचिद्‌द्वित्वं यथा दन्ती घृते स्मृतम्। सर्पिः खण्डजलक्षौद्रतैलक्षीरासवादिषु॥ अष्टौ पलानि कुडवो नारिकेले च शस्यते॥ १८॥

अर्थ—गुञ्जा से आरम्भ कर कुडव पर्यंत जितने परिमाणबोधक शब्द हैं, उनमें द्रव्यभेद से अर्थभेद नहीं होता किन्तु द्रव, आर्द्र और शुष्क इन सकल द्रव्यों में वे समानार्थक ही रहते हैं। जैसे—एक मापपरिमित तैल और एक माप-परिमित देवदारु यहाँ दोनों द्रव्यों में 'माप' शब्द समानार्थक है अर्थात् द्रव और शुष्क होने पर भी दोनों ही छः छः रत्ती तोल में लिये जाते हैं। प्रस्थ आदि सकल परिमाणबोधक शब्द द्रव और आर्द्र द्रव्यों के विषय में कही हुई तोल से दूने के बोधक होते हैं जैसे—एक प्रस्थ देवदारु कहने पर १ सेर देवदारु समझा जायगा किन्तु एक प्रस्थ घृत कहने पर २ सेर घृत समझा जायगा, कारण यह कि घृत द्रव पदार्थ है। परन्तु यह ध्यान रहे कि तुला शब्द कहीं भी द्विगुण परिमाण बोधक नहीं होता है। शास्त्रान्तर में लिखा है कि कुडव, माणिका, तुला और पलशब्द का प्रयोग करके द्रव्यों के परिमाण का उल्लेख रहने पर द्विगुण ग्रहण करना इष्ट नहीं है। जैसे—'१ माणिका तैल' कहने पर आध सेर तैल समझा जाता है वैसे ही 'एक माणिका देवदारु' कहने पर भी आध सेर देवदारु समझा जाता है। 'एक तुला मिरिच' कहने पर ५ सेर मिरिच समझी जाती है, वैसे ही १ तुला घृत कहने पर भी ५ सेर घृत समझा जाता है। इसी प्रकार १ पलशुण्ठी-चूर्ण और १ पल घृत कहने पर दोनों ही समान अर्थात् ४ तोला ही लिये जाते हैं। लेकिन कुडव शब्द कहीं-कहीं द्रव और आर्द्र द्रव्यों के विषय में द्विगुण (८ पल) का बोधक होता है जैसे—दन्ती घृत में १ कुडव घृत कहने पर ८ पल घृत लिया जाता है। घृत, खाँड, जल, मधु, तैल, दुग्ध, आसव और नारिकेल आदि में भी १ कुडव कहने पर आठ पल समझा जाता है॥ १५–१८॥

शुष्कद्रव्यस्य या मात्रा आर्द्रस्य द्विगुणा हि सा। शुष्कस्य गुरुतीक्ष्णत्वात् तस्मादर्द्धं प्रयोजयेत्॥ १९॥

अर्थ—शुष्क द्रव्य के अभाव में यदि आर्द्र द्रव्य का व्यवहार करना हो तो वहां शुष्क द्रव्य की जितनी मात्रा कही हो उससे दूना आर्द्र द्रव्य लेना चाहिये। मान लो—५ द्रव्यों से कोई एक औषध प्रस्तुत होती है, वहाँ चार में एक द्रव्य शुष्क ढूँढा गया न मिला तो आर्द्र ही ग्रहण किया जाता है, ऐसे स्थल में उस द्रव्य का जितना परिमाण ग्रन्थ में लिखित हो उससे दूना ग्रहण करना चाहिये। अतएव शुष्क द्रव्य को आर्द्र द्रव्य की अपेक्षा आधी तोल में प्रयुक्त करना चाहिये। कारण यह कि शुष्क द्रव्य जलीय अंश का अभाव होने से गुरु और तीक्ष्ण होते हैं॥१९॥

अस्याऽपवादः।

वासानिम्बपटोलकेतकिबला कूष्माण्ड-केन्दीवरी वर्षाभूकुटजाऽश्वगन्धसहितास्ताः पूतिगन्धाऽमृताः। मांसीनागबला-सहाचरपुरो हिंग्वार्द्रके नित्यशो ग्राह्यास्तत्क्षणमेव न द्विगुणिता ये चेक्षुजाता घनाः॥ २०॥

अरूसा, नीम, परवल, केतकी (केवड़ा), खरैटी, पेठा, शतावरि, पुनर्नवा (गदहपुरैना), कुड़ा, असगन्ध, गन्धप्रसारणी, गिलोय, जटामांसी, गुलशकरी, नील और पीत पुष्पवाला पियावासा (झिण्टी), गूगुल, हींग, अदरख और ईख के रस से बने हुये घनपदार्थ अर्थात् गुड़ आदि ये सब औषध नवीन (ताजे) ही ग्राह्य होते हैं किन्तु इनकी तोल दूनी नहीं की जाती है॥ २०॥

अथ गणाः।

त्रिफला।

पथ्या विभीतकं धात्री त्रिफला महती स्मृता। स्वल्पाकारमर्य्यखर्जूरपरूषकफलैर्भवेत् ॥ २१ ॥

हर्रे, बहेड़ा और आँवला मिले हुये इन तीनों द्रव्यों को महात्रिफला[1] कहते हैं। खम्भारी, खजूर और फालसा इन तीन द्रव्यों के समुदाय को स्वल्प त्रिफला कहते हैं ॥ २१ ॥

त्रिमद।

विडङ्गमुस्तचित्रश्च त्रिमदः संप्रकीर्तितः ॥ २२ ॥

वायविडङ्ग, नागरमोथा और चीता ये तीनों द्रव्य समान परिमाण में मिश्रित होने पर त्रिमद कहे जाते हैं ॥ २२ ॥

त्र्यूषणादि।

पिप्पली मरिचं शुण्ठी त्रयमेतद्विमिश्रितम्। त्रिकटुत्र्यूषणं व्योषं कटुत्रिकमथोच्यते ॥ २३ ॥

ग्रन्थिकाऽनलचव्यैस्तु चतुः पञ्च षडूषणम्। चविका चित्रको नागपिप्पली त्र्यूषणं मतम् ॥ २४ ॥

पीपरि, मिरिच और सोंठ ये तीनों द्रव्य समान परिमाण में एकत्र मिश्रित होने पर त्रिकटु, त्र्यूषण, व्योष और कटुत्रिक कहे जाते हैं॥

त्रिकटु पिपरामूल से संयुक्त होने पर चतुरूषण कहा जाता है।

चीतायुक्त चतुरूषण को पञ्चोषण कहते हैं। इसी प्रकार पञ्चोषण के साथ चव्य को शामिल करने से षडूषण कहा जाता है।

चव्य, चीता और गजपीपरि इन तीनों द्रव्यों के समुदाय को भी त्र्यूषण कहते हैं ॥ २३--२४॥

टिप्पणी—सामान्यतया त्र्यूषण से त्रिकुटा का ही ग्रहण किया जाता है।

चतुर्जात और त्रिजात

चतुर्जातं समाख्यातं त्वगेलापत्रकेशरैः। तदेव त्रिसुगन्धिस्यात् त्रिजातकमकेशरम् ॥ २५ ॥

दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेसर इन चार द्रव्यों को चतुर्जात कहते हैं। नागकेसर रहित चतुर्जात ही को त्रिजातक और त्रिसुगन्धि कहते हैं ॥ २५ ॥

सर्वगन्ध।

चतुर्जातककर्पूरकक्कोलाऽगुरुसिह्लकम्। लवंगसहितं चैव सर्वगन्धं विनिर्दिशेत् २६॥

चतुर्जात, कपूर, कंकोल, अगर, शिलारस और लवंग इनको सर्वगन्ध कहते हैं ॥ २६ ॥

चातुर्भद्रक।

नागरातिविषा मुस्ता त्रयमेतद्विमिश्रितम्। गुडूची संयुतं तच्च चातुर्भद्रकमुच्यते ॥ २७ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, गिलोय मिले हुये इन चारों द्रव्यों को चातुर्भद्रक कहते हैं ॥ २७ ॥

पञ्चकोल।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम्। पञ्चकोलमिदं प्राहुः पञ्चोषणमथापरे ॥ २८ ॥

पीपर, पिपरामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनको पञ्चकोल कहते हैं। और अन्य विद्वान् इनको पञ्चोषण कहते हैं ॥ २८ ॥

षडुषण और उसकी निरुक्ति।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकना-

[1] यद्यपि त्रिफला दो प्रकार की है तथापि इस ग्रन्थ के अनुवाद में जहाँ त्रिफला शब्द आये वहाँ समान भाग हर्रे, बहेड़ा और आँवला इन तीन द्रव्यों का समुदाय समझना चाहिये। ग्रन्थान्तरे—"एका हरीतकी योज्या द्वौ तु योज्यौ विभीतकौ। चत्वार्यामलकान्येव त्रिफलैषा प्रकीर्तिता ॥"

गरम् । पञ्चभिः कोलमात्रं यत् पञ्चकोलं तदुच्यते ॥ २९ ॥

पीपर, पिपरामूल, चव्य, चीता और सोंठ इन पांचों को मिलाकर केवल एक कोल (चौर मासे) की इस की मात्रा होती है अतः इस को पञ्चकोल कहते हैं ॥ २९ ॥

टिप्पणी।

आजकल ६ मा० के बजाय ३ मा० की मात्रा देनी चाहिए।

क्षीरिवृक्ष।

उदुम्बरो वटोऽश्वत्थो वेतसः प्लक्ष एव च । पञ्चैते क्षीरिणां वृक्षाः संज्ञया समुदाहृताः ॥ ३० ॥

गूलर, वड, पीपल, वेतस (बेत) और पाकड़ इन पांचों को क्षीरिवृक्ष कहते हैं ॥ ३० ॥

चतुरम्ल और पञ्चाम्ल।

कोलदाडिमवृक्षाम्लैरम्लवेतससंयुतैः । चतुरम्लं तु पञ्चाम्लं मातुलुङ्गसमन्वितम् ॥ ३१ ॥

बेर, अनार, इमली और अमलबेत इन चार अम्ल (खट्टे) पदार्थों को चतुराम्ल और इनके साथ जम्भीरी नींबू मिलाने से पञ्चाम्ल कहते हैं ॥ ३१ ॥

पञ्चगव्य।

पञ्चगव्यं दधिक्षीरघृतगोमूत्रगोमयैः ३२

दही, दूध, घी, गोमूत्र और गोमय (गाय का गोबर) इन पांच विकारों को पञ्चगव्य कहते हैं ॥ ३२ ॥

लवणवर्ग।

सिन्धु सौवर्चलं चैव विडं सामुद्रमौद्भिदम् । एकद्वित्रिचतुःपञ्च लवणानि क्रमादिह ॥ ३३ ॥

एक लवण का उल्लेख हो तो सैंधव, द्विलवण शब्द जहाँ हो वहाँ सैंधव और सौवर्चल[१], त्रिलवण में सैंधव, सौवर्चल और विरियासचरनोन। चतुर्लवण, में सैंधव, सौवर्चल, विरियासंचर और समुद्रनोन। पञ्चलवण में सैंधव, सौवर्चल, विरियासंचर, समुद्रनोन और औद्भिद ये पाँच प्रकार के लवण लिये जाते हैं। जहाँ लवणवर्ग का उल्लेख हो वहाँ इन पाँचों नमकों को लेना चाहिये ॥ ३३ ॥

[१] काला नोन

बृहत्पञ्चमूल।

बिल्वश्योनाकगाम्भारी पाटला गणिकारिकाः । एतन्महत्पञ्चमूलं संज्ञया समुदाहृतम् ॥ ३४ ॥

बेल, श्योनाक, गंभारी, पाढर और अरनी इन पाँचों को बृहत्पञ्चमूल कहते हैं ॥ ३४ ॥

स्वल्पपञ्चमूल।

शालपर्णी पृष्ठपर्णी बृहती द्वयगोक्षरम् । कनीयः पञ्चमूलं स्यादुभयं दशमूलकम् ॥ ३५ ॥

सरिवन, पिठवन, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी और गोखुरू इन पाँचों को स्वल्प पञ्चमूल कहते हैं। दोनों पञ्चमूलों को मिलाने से दशमूल होता है ॥ ३५ ॥

तृणपञ्चमूल।

कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चैव तृणोद्भवम् । पञ्चतृणमिदं ख्यातं तृणजं पञ्चमूलकम् ॥ ३६ ॥

कुश, काश, शरपत, डाभ और ईख इन पाँचों के मूल को तृणपञ्चमूल कहते हैं ॥ ३६ ॥

जीवनीयगण (मधुरगण)।

जीवकर्षभकौ मेदे काकोल्यौ मधुकं तथा । माषपर्णी मुद्गपर्णी जीवन्ती मधुरो गणः ॥ ३७ ॥

जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुलेठी, वनउर्द (मषवन), वनमूँग (मुगवन) और जीवन्ती इन दश औषधों को जीवनीय अर्थात् आयुवर्द्धक कहते हैं। इसका दूसरा नाम मधुरगण है ॥ ३७ ॥

अष्टवर्ग।

द्वे मेदे चापि काकोल्यौ जीवकर्षभकौ तथा। ऋद्धिवृद्धियुतैः सर्वैरष्टवर्ग उदाहृतः॥ ३८॥

मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि और वृद्धि इन आठ ओषधियों के मिलने से अष्टवर्ग होता है॥ ३८॥

अथ द्रव्यप्रतिनिधि परिभाषा।

कदाचिद्द्रव्यमेकं वा योगे यत्र न लभ्यते। तत्तद्गुणयुतं द्रव्यं परिवर्त्तेन गृह्यते॥ १॥

जिस योग में कदाचित् कोई एक द्रव्य नहीं मिलता तो उस योग में उस द्रव्य के बदले में उसी द्रव्य के समान गुणवाला अन्य द्रव्य ग्रहण किया जाता है॥ १॥

मध्वभावे गुडो जीर्णः शाल्यभावे च षष्टिका। नतं तगरमूलं[1] स्यादभावे शिह्लीजटा॥ २॥

शहद के अभाव में पुराना गुड़, शालीधान के अभाव में साठी चावल और तगर के मूल को नत कहते हैं। इसके अभाव में सिह्लली का मूल लेना चाहिये॥ २॥

वृक्षाम्लं दाडिमाभावे सितायाः खण्डमिष्यते। चविकागजपिप्पल्यौ पिप्पलीमूलवत्स्मृते॥ ३॥

अनार के अभाव में इमली, मिश्री के अभाव में खाँड़, चव्य और गजपीपर के अभाव में पिपरामूल लेना चाहिये॥ ३॥

सौराष्ट्रमृदभावे[1] च ग्राह्या पङ्कस्य पर्पटी। रसाञ्जनापरिभाषौ दार्वीक्वाथः प्रशस्यते॥ ४॥

सौराष्ट्रमृत्तिका के अभाव में पङ्कपर्पटी (कीचड़ के सूख जाने पर जो पपड़ी पड़ जाती है), रसौत के अभाव में दारुहलदी का काढ़ा लेना चाहिये॥ ४॥

लौहाऽभावे तु मण्डूरं दार्व्यभावे मता निशा। सुवर्णरूप्ययोगस्याभावे लौहं प्रयोजयेत्॥ ५॥

लोहभस्म के अभाव में मण्डूर, दारुहलदी के अभाव में हलदी, सोना और चाँदी के भस्म के अभाव में लोह भस्म का प्रयोग करना चाहिये॥ ५॥

नित्यं मुञ्जातकाभावे तालमस्तकमिष्यते। वाराहीकन्दभावे तु चर्मकारालुकं मतम्॥ ६॥

मुञ्जातक[2] के अभाव में तालमस्तक (कटुम्बरण) और वाराहीकन्द के अभाव में चर्मकारालुक अर्थात् अन्य प्रकार का वाराहीकन्द ही लेना चाहिये॥ ६॥

अभावात् पौष्करं मूले कुष्ठं सर्वत्र गृह्यते। सामुद्रं सैन्धवाऽभावे विडं वा गृह्यते बुधैः॥ ७॥

पुष्करमूल के अभाव में कूठ और सेंधा नोन (लाहौरी नोन) के अभाव में समुद्रनोन अथवा बिरियासंचरनोन लेना चाहिये॥ ७॥

कुस्तुम्बुरुर्न विद्येत यत्र तत्र च धान्य-

---

[1] "तगरस्याप्यभावे तु कुष्ठं दद्याद्भिषग्वरः" कहीं कहीं ऐसा पाठ है। अर्थ—वैद्यवर, तगर के अभाव में कूठ देवें॥

[1] अन्यत्र लिखा है कि 'सौराष्ट्र्यभावतो देया स्फटिका तद्गुणा बुधैः' अर्थात् सौराष्ट्र मृत्तिका (सोरठी मिट्टी) के अभाव में फिटकिरी लेनी चाहिये।

[2] मुञ्जातक—स्वनामख्यात वृक्षविशेष। इसका गुण (च० सू० २७ अ०) में लिखा है कि "बल्यः शीतो गुरुः स्निग्धस्तर्पणो बृंहणात्मकः। वातपित्तहरः स्वादु वृष्यो मुञ्जातकः परम्॥"

कम् । पुष्पाभावे फलं चामं विड्भेदे बिल्वतः फलम् ॥ ८ ॥

जहाँ कुस्तुम्बुरु न मिले वहाँ धनियाँ अर्थात् जहाँ हरी धनियाँ न मिले वहाँ सूखी धनियाँ लेनी चाहिये। फूल के अभाव में नरम कच्चा फल, मलभेद में बेल का फल लेना चाहिये ॥ ८ ॥

भल्लातकाऽसहत्वे तु रक्तचन्दनमिष्यते। सिद्धार्थकस्य चाऽभावे सामान्यः सर्पपो मतः ॥ ९ ॥

यदि भिलावाँ असह्य हो तो उसके बदले लाल चंदन लेना। सफेद सरसों के अभाव में सामान्य सरसों लेना चाहिये ॥ ९ ॥

मेदाऽभावेऽश्वगन्धा स्यात् महामेदे तु सारिवा। जीवकर्षभकाभावे गुडूचीवंशलोचना ॥ १० ॥

मेदा के अभाव[1] में असगन्ध, महामेदा[2] के अभाव में अनन्तमूल, जीवक के अभाव में गुरुच, ऋषभक[3] के अभाव में वंशलोचन लेना चाहिये ॥ १० ॥

ऋद्ध्यभावे बला ग्राह्या वृद्ध्यभावे महाबला। काकोली युगलाभावे निक्षिपेच्च शतावरीम् ॥ ११ ॥

ऋद्धि के अभाव में खरैटी, वृद्धि के अभाव में सहदेई, काकोली और क्षीरकाकोली इन दोनों के अभाव में शतावरि लेनी चाहिये ॥ ११ ॥

यत्र यद्‌द्रव्यमप्राप्तं भेषजे परपूर्वतः। ग्राह्यं तद्‌गुणसाम्यात्तु न तत्र काऽपि दूषणम् ॥ १२ ॥

जिस योग में जो द्रव्य प्राप्त न हो, उस योग में उस द्रव्य के समान गुणवाले पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती किसी एक द्रव्य के ग्रहण कर लेने में कोई हानि नहीं है ॥ १२ ॥

[1] एक मत से मेदा के अभाव में शितावर ग्राह्य है।
[2] महामेदा का प्रतिनिधि विदारीकन्द भी होता है।
[3] ऋषभक का प्रतिनिधि मतान्तर में विदारीकन्द है।

रसवीर्यविपाकाद्यैः समं द्रव्यं विचिन्त्य च। युञ्ज्यात्तद्विधमन्यच्च द्रव्याणां च रसादिकम् ॥ १३ ॥ अभावे रसभूत्याश्च सिन्दूरं रसपूर्वकम्। कान्ताभावे तीक्ष्णलोहं योजयेद्वैद्यसत्तमः ॥ १४ ॥ वैदूर्यादीनि रत्नानि न लभ्यन्तेऽत्र धीमता। तत्र मुक्तादिभूतिं च योजयेत्तु भिषग्वरः ॥ १५ ॥ कुडेरिकायाश्चाभावे तुलसीं तत्र योजयेत्। पुनर्नवायाश्चाभावे रक्ता सा च प्रकीर्तिता। रसाञ्जनस्य चाभावे दार्वीक्वाथं प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥ नीलोत्पलस्याभावे तु कुमुदं तत्र दीयते। सिद्धार्थकस्य भावे तु सामान्यः सर्पपो मतः ॥ १७ ॥ गोक्षीराभावतश्छागं पयः सर्वत्र दीयते। गोघृतस्याप्यभावे तु चाजं सर्वत्र दीयते ॥ १८ ॥ अलाभे यच्च तद् द्रव्यं प्रत्याम्नायेन योजयेत्। योगे यदप्रधानं स्यात्तस्य प्रतिनिधिर्मतः ॥ यत्तु प्रधानं तस्यापि सदृशं नैव गृह्यते ॥ १९ ॥

रस-वीर्य-विपाक के अनुसार एक द्रव्य के अभाव में दूसरा द्रव्य जो रस-वीर्य-विपाक में उसी के समान हो प्रयुक्त करना चाहिये। यथा पारदभस्म के अभाव में रससिन्दूर, कान्तलोह के अभाव में तीक्ष्णलोह (फौलाद), वैदूर्य आदि रत्नों के अभाव में मुक्ता को लेना चाहिये। कुडेरिका के अभाव में तुलसी, श्वेतपुनर्नवा के अभाव में रक्तपुनर्नवा, रसौत के अभाव में दारुहलदी का क्वाथ, नीलकमल के अभाव में कुमुद, सफ़ेद सरसों के अभाव में साधारण सरसों, गो-दूध के अभाव में बकरी का दूध, गो-घृत के अभाव में बकरी का घृत प्रयुक्त करना चाहिये।

इनमें जो द्रव्य अभाव में दिये गये हैं उनके अभाव में मूल द्रव्य ही लेने चाहिये। अभाव में उसके समान दूसरे द्रव्य को ग्रहण करने का

नियम योग में कहे हुए गौण द्रव्यों के विषय में ही समझना चाहिये । प्रधान द्रव्यों का प्रतिनिधि नहीं लिया जाता है । वहाँ वही द्रव्य डालना चाहिये ॥ १३--१६ ॥

अथ भेषजग्रहणसंकेतः ।

उक्ते चन्दनशब्दे तु गृह्यते रक्तचन्दनम् । लवणे सैन्धवं विद्यात् मूत्रे गोमूत्रमुच्यते ॥ १ ॥

जहाँ विशेष उल्लेख न हो केवल चन्दन शब्द लिखा हो वहाँ लाल चन्दन, लवण कहने से सेंधा (लाहौरी) नमक और मूत्र कहने से गोमूत्र जानना चाहिये ॥ १ ॥

टिप्पणी-- आजकल मिलनेवाला लाल चन्दन सुगन्धरहित होने से असली नहीं है इसलिये सुगन्धित सफेद चन्दन ही डालना चाहिये ।

शकृद्रसपयः सर्पिः प्रयोगे गव्यमिष्यते । विशेषो यत्र नोक्तः स्यादेष एव विधिः स्मृतः ॥ २ ॥

जहाँ किसी पशुविशेष का नाम न लेकर विष्ठा का रस लिखा हो वहाँ गाय के गोबर का रस, दूध अथवा घी लिखा हो तो गाय का दूध और गाय का घी लेना चाहिए ॥ २ ॥

सारः स्यात् खदिरादीनां निम्बादीनां त्वचस्तथा । फलं तु दाडिमादीनां पटोलादेश्छदस्तथा ॥ ३ ॥

खदिर (खैर) आदि वृक्ष के सार, नीम आदि की छाल, अनार आदि वृक्ष के फल और परवल आदि के पत्र (पत्ते) ग्राह्य हैं ॥ ३ ॥

फलप्रधानवृक्षाणां फलं सर्वत्र गृह्यते । रक्तचित्रकमूलं तु सर्वत्रैव प्रयोजयेत् ॥ मांसलत्वात् सुतीक्ष्णत्वादभावादन्यचित्रकम् ॥ ४ ॥

जो वृक्ष फल के लिये प्रसिद्ध हैं उनका फल ही ग्राह्य है । चित्रक शब्द का उल्लेख रहने पर लाल रंग के चीते का मूल लेना चाहिये क्योंकि वह मांसल और तीक्ष्ण होता है । उस चित्रक के अभाव में अन्य चित्रक के मूल का भी उपयोग कर सकते हैं ॥ ४ ॥

महान्ति यानि मूलानि काष्ठगर्भाणि यानि च । तेषां तु वल्कलं ग्राह्यं ह्रस्वमूलानि कृत्स्नशः ॥ ५ ॥

वृक्षों के मूल लेने के समय जो मूल बहुत मोटे हों और जिनके मध्य में काष्ठ हो उनका काष्ठभाग छोड़कर छाल लेना और जो मूल छोटे तथा पतले हों उनको काष्ठभाग समेत ग्रहण करना चाहिये ॥ ५ ॥

अङ्गेऽनुक्ते जटा ग्राह्या भागेऽनुक्तेऽखिलं समम् । पात्रेऽनुक्ते मृदः पात्रं कालेऽनुक्ते त्वहर्मुखम् ॥ ६ ॥ द्रवेऽनुक्ते जलं देयमेष सर्वत्र निश्चयः ॥ ७ ॥

औषधियों का अङ्गविशेष न कहा हो तो मूल ग्रहण करना चाहिये । यदि द्रव्यों का भाग अर्थात् तौल न कही हो तो कुल द्रव्य को समान भाग अर्थात् समान परिमाण लेना चाहिए । पात्र न बताया गया हो तो मिट्टी का पात्र समझना चाहिये । औषध सेवन का समय न कहा हो तो प्रातःकाल औषध सेवन करना चाहिये । द्रवपदार्थ न कहा हो तो जल लेना चाहिये—यही सर्वत्र निर्णय है ॥ ६-७ ॥

द्रव्याण्यभिनवान्येव प्रशस्तानि क्रियाविधौ । ऋते गुडघृतक्षौद्रधान्यकृष्णाविडंगतः ॥ ८ ॥

गुड, घृत, मधु, चावल, पीपर और वायविडङ्ग ये सब द्रव्य पुराने होने पर लाभदायक होते हैं । अन्यान्य द्रव्य चिकित्साकर्म में नवीन ही प्रशस्त होते हैं ॥ ८ ॥

टिप्पणी—सभी द्रव्यों के पुराने होने का समय निश्चित है । उसी समय के पुराने द्रव्य ग्रहण

करने चाहिये। इतने पुराने ग्रहण नहीं करने चाहिये जिनके गुण वीर्य नष्ट हो गये हों।

द्रवेऽनुक्ते जलं ग्राह्यं भागेऽनुक्तेऽखिलं समम्। उक्ते च कालसामान्ये ज्ञेयं तत्र त्वहमुखम्॥ ९॥

जब किसी विशिष्ट पतले पदार्थ का उल्लेख न हो तो वहाँ जल का ग्रहण करना चाहिये किसी योग में यदि उपादानों के भाग न बतलाये गये हों वहाँ सब समान भाग लेना चाहिये। साधारण समय के लिये प्रातःकाल (बिना कुछ खाये पिये) समझना चाहिये॥ ९॥

मूलानि शिशिरे ग्रीष्मे पत्रं वर्षाव सन्तयोः। कन्दानि शरदि क्षीरं यथर्तुकुसुमं फलम्॥ हेमन्ते सारमोषध्या गृह्णीयात् कुशलो भिषक्॥ १०॥

जिस औषध की जड़ ग्रहण करनी हो वह शिशिर ऋतु में ग्रहण करे। पत्ते ग्रहण करने हों तो ग्रीष्म ऋतु में ग्रहण करे। कन्द को वर्षा तथा वसन्त ऋतु में ग्रहण करना चाहिये। दूध को शरद् ऋतु में ग्रहण करना चाहिये। फूल और फल उसी ऋतु में ग्रहण करना चाहिये जिस ऋतु में कि फूल और फल आते हैं। सार भाग (मध्यकाष्ठ) हेमन्त ऋतु में ग्रहण करना चाहिये॥ १०॥

आवश्यक संकेत।

इस ग्रन्थ की 'रसप्रभा' व्याख्या में जहाँ-जहाँ सामान्यतः 'विष' यह शब्द लिखा गया हो, वहाँ शुद्ध किया हुआ मीठा विष अर्थात् वत्स-नाभ का ग्रहण करना चाहिये।

जिन जिन योगों में पारा और गन्धक का डालना लिखा गया हो वहाँ पारा और गन्धक दोनों शोधित होने चाहिये। तथा पहिले पारा और गन्धक इन दोनों को एकत्र कर यत्नपूर्वक खरल करके उत्तम कज्जली बनावे। पश्चात् उस कज्जली को अन्य औषधों में मिलावे। बिना कज्जली बनाये पृथक्-पृथक् पारा और गन्धक को किसी भी योग में न डालना चाहिये।

सोना, चाँदी, ताँबा, नाग, वंग, जस्ता, लोह और अभ्रक ये समस्त द्रव्य शोधित और मारित होने चाहिये।

मुक्ता, शङ्ख, कौड़ी और सीपी आदि के भस्म ही का प्रयोग करना चाहिये।

भावनाविधि।

दिवा दिवातपे शुष्कं रात्रौ रात्रौ निवा-सयेत्। श्लक्ष्णं चूर्णीकृतं द्रव्यं सप्ताहं भावनाविधिः॥ १॥

भावना की विधि यह है कि शुष्क चूर्ण द्रव्य को किसी द्रवपदार्थ[1] में भिगो कर दिन को घाम में और रात को ओस में रखना चाहिये, विशेष उल्लेख न होने पर इस प्रकार एक सप्ताह करना चाहिये॥ १॥

भावनार्थ द्रवपरिमाण।

द्रवेण यावता द्रव्यमेकीभूयार्द्रतां व्रजेत्। तावत्प्रमाणं कर्तव्यं भिषग्भिर्भा-वनाविधौ॥ २॥

जितने द्रवपदार्थ में चूर्ण आदि द्रव्य मिलाने पर गीले हो जायँ, भावना देने के लिये उतनेही द्रवपदार्थ लेने के लिये वैद्यों ने कहा है॥ २॥

भावनार्थ क्वाथविधि।

भाव्यद्रव्यसमं क्वाथ्यं क्वाथ्यादष्टगुणं जलम्। अष्टांशशेषितः क्वाथो भाव्यानां तेन भावना॥ ३॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां परिभाषाप्रकरणम्॥

यदि किसी औषध के क्वाथ की भावना देनी

---

[1] द्रवपदार्थ=गीली वस्तु, जैसे—जल, अर्क और क्वाथ आदि।

हो तो चूर्ण आदि भाव्य[1] पदार्थ के बराबर क्वाथ्य[2] द्रव्य लेकर उसको (क्वाथ्य द्रव्य से) अष्टगुण जल में पकावे। अष्टमांश जल शेष रहने पर छानकर उसी क्वाथ की भावना देवे ॥ ३ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाभिधायांव्याख्यायां परिभाषाप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ ज्वराधिकारः ।

यतः समस्तरोगाणां ज्वरो राजेति विश्रुतः । अतो ज्वराधिकारोऽत्र प्रथमं लिख्यते मया ॥ १ ॥

ज्वर संपूर्ण रोगों का राजा कहा गया है, इस कारण मैं सबसे पहिले यहाँ ज्वराधिकार लिखता हूँ ॥ १ ॥

ज्वर के पूर्वरूप में विधि ।

पूर्वरूपे प्रभुञ्जीत ज्वरस्य लघुभोजनम् । लङ्घनं च यथादोषं विरेकं वातिके पुनः ॥ २ ॥ पाययेत् सर्पिरेवाच्छं पैत्तिके तु विरेचनम् । मृदु प्रच्छर्दनं तद्वत् कफजे तु विधीयते ॥ ३ ॥ द्वन्द्वजेषु द्वयंकुर्याद्बुद्ध्या सर्वन्तु सर्वजे ॥ ४ ॥

ज्वर के पूर्वरूप में दोषों की स्वल्पता अथवा प्रबलता के अनुसार स्वल्प भोजन किंवा उपवास अथवा विरेचन कराना चाहिये । वातज्वर के पूर्वरूप में साफ घी पिलाना, पित्तज्वर के पूर्वरूप में विरेचन (दस्त) कराना और कफज्वर के पूर्वरूप में हलका वमन कराना चाहिये। द्वन्द्वज ज्वर के पूर्वरूप में पीछे बताई गई चिकित्साओं में से दो प्रकार की चिकित्सा और त्रिदोषजन्य ज्वर के पूर्वरूप में विचारकर त्रिविध चिकित्साओं को करना चाहिये ॥ २–४ ॥

नवीन ज्वर में त्याज्य ।

नवज्वरे दिवास्वप्नस्नानाभ्यङ्गान्नमैथुनम् । क्रोधप्रवातव्यायामकषायांश्च विवर्जयेत् ॥ ५ ॥

नये ज्वर में दिन का सोना, स्नान करना, अभ्यङ्ग[1] अर्थात् देह में तेल की मालिश कराना, गुरु अन्न भोजन, मैथुन, क्रोध, प्रचण्ड शीतल वायु का सेवन, व्यायाम और कषाय[2] (काढ़ा) सेवन इन सबको त्याग देना चाहिये ॥ ५ ॥

तरुणज्वर में क्वाथपान का निषेध ।

कषायं यः प्रयुञ्जीत नराणां तरुणज्वरे । ससुप्तं कृष्णसर्पन्तु कराग्रेण परामृशेत् ॥ ६ ॥

---

[1] भाव्य=भावना देने योग्य ।

[2] क्वाथ्य=जिस औषध का क्वाथ बनाना हो उसे क्वाथ्य कहते हैं ।

[1] यहाँ नवीन ज्वर में अभ्यङ्ग का निषेध बताया गया है, वह वातज्वर के लिये नहीं है, क्योंकि चरक में वातज्वर के लिये अभ्यङ्ग लाभदायक कहा गया है—'ज्वरे मारुतजे त्वादावनपेक्ष्यापि हि क्रमम् । कुर्यान्निरनुबन्धानामभ्यङ्गादीनुपक्रमात्' अर्थात्—वातज्वर में यदि कफ अथवा पित्त का संबन्ध न हो तो पहिले ही से लंघन आदि क्रम की उपेक्षा करके अभ्यङ्ग आदि (मालिश आदि) चिकित्सा का अवलम्बन करे ।

[2] नवीन ज्वर में जो कषाय (काढ़ा) का निषेध है उसका केवल कषाय रसवाले क्वाथ के निषेध में तात्पर्य है ।

'न तु कल्पनमुद्दिश्य कषायः प्रतिषिध्यते । यः कषायः कषायः स्यात् स वर्ज्यस्तरुणज्वरे ॥' अर्थात् तरुणज्वर में कषायमात्र (क्वाथमात्र) का निषेध नहीं है, किन्तु जो कषाय (क्वाथ) कसैले रस का है उसी का निषेध है । इस चरक की उक्ति से भी सिद्ध हुआ कि तरुणज्वर में आरग्वधादि पाचन क्वाथों का निषेध नहीं है ।

न कषायं प्रयुञ्जीत नराणां तरुणे ज्वरे। कषायेणाकुलीभूता दोषा जेतुं सुदुष्कराः ७

जो वैद्य रोगियों को तरुणज्वर में काथ देता है, वह ज्वर को इस प्रकार कुपित कर देता है जैसे कोई सोते हुये काले साँप को हाथ से स्पर्श करे। इसलिये रोगियों को तरुणज्वर में क्वाथ न देना चाहिये, क्योंकि क्वाथ से कुपित हुये दोषों का जीतना बहुत कठिन होता है॥ ६--७॥

तरुणज्वर में कषैले क्वाथ का निषेध।

चतुर्भागावशिष्टस्तु यः षोडशगुणाम्भसा। स कषायः कषायः स्यात् स वर्ज्यस्तरुणज्वरे॥ ८॥

एक भाग औषधि लेकर उसमें सोलहगुना जल डालकर पकावे, जब चौथाई भाग जल शेष रहे तो क्वाथ को तैयार जानना, किन्तु यह क्वाथ कषाय रसवाला (कसैला) होता है, इसलिये इसका तरुणज्वर में निषेध है॥ ८॥

फाण्ट आदि का निषेधाभाव।

फाण्टादीनां प्रयोगस्तु न निषिद्धः कदाचन॥ ६॥

तरुणज्वर में फाण्ट आदि देने का निषेध नहीं है॥ ६॥

तरुणज्वरवाले रोगी के नियम।

न द्विरद्यान्न पूर्वाह्णे नाभिष्यन्दि कदाचन। न नक्तं न गुरुप्रायं भुञ्जीत तरुणज्वरी॥ १०॥ परिषेकान्प्रदेहांश्चस्नेहान् संशोधनानि च। दिवास्वप्नं व्यवायं च व्यायामं शिशिरं जलम्॥ ११॥ क्रोधप्रवातभोज्यानि वर्जयेत् तरुणज्वरी॥१२॥

तरुणज्वरवाला रोगी सायंकाल और प्रातःकाल दोनों बार और पूर्वाह्ण में भोजन न करे। कफकारी पदार्थ न खावे, रात्रि में भोजन न करे और भारी और गरिष्ठ भोजन न करे। चन्दन आदि का लेप और तैल आदि का मर्दन, संशोधन अर्थात् वमन, विरेचन, वस्ति और शिरोविरेचनरूप सम्यक शोधन, दिन में सोना, मैथुन, श्रमजनक कार्य, ठंढा जल, क्रोध, अधिक वायु का सेवन और भोजन इन सबको नवीन ज्वरवाला रोगी त्याग देवे॥ १०--१२॥

त्याज्य के सेवन से हानि।

शोषच्छर्दिमदं मूर्च्छाभ्रमतृष्णाधरोचकान्। प्राप्नोत्युपद्रवानेतान् परिषेकादिसेवनात्॥ १३॥

नवीन ज्वर में पूर्वोक्त स्नान आदि निषिद्ध क्रियाओं का त्याग न करने से मुखशोष, वमन, मद, मूर्च्छा, भ्रम, तृषा और अरुचि इत्यादि उपद्रव उत्पन्न होते हैं॥ १३॥

ज्वरविशेष में लङ्घननिषेध।

ज्वरे लङ्घनमेवादावुपदिष्टमृते ज्वरात्। क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् १४

क्षयज्वर, वातज्वर तथा भय, क्रोध, काम, शोक और परिश्रम से उत्पन्न ज्वर से अतिरिक्त समस्त ज्वरों में पहिले लंघन ही लाभदायक होता है॥ १४॥

लङ्घनलक्षणम्।

शरीरलाघवकरं यद्द्रव्यं कर्म वा पुनः। तल्लङ्घनमितिज्ञेयं बृंहणन्तु पृथग्विधम् १५

जिन द्रव्यों से अथवा कर्मों से शरीर कृश हो जाता है ऐसे द्रव्यों को लङ्घन द्रव्य और कर्मों को लङ्घन कर्म कहते हैं एवं शरीर को पोषण करनेवाले द्रव्य और कर्म को बृंहण द्रव्य या बृंहण कर्म कहते हैं, इसलिए यहां लङ्घन शब्द से उपवास कर्म तथा लघु भोजन न ग्रहण करने चाहिए॥ १५॥

लङ्घन कराने का हेतु।

आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान् पिधापयन्। विदधाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लङ्घनमाचरेत्॥ १६॥

आमाशयस्थ दोष, अपने प्रकोप कारणों से कुपित होकर आमदोष से युक्त हो अग्नि को नष्ट करके (अर्थात् मन्द करके) रसमार्ग को

अवरुद्ध करता हुआ ज्वर उत्पन्न करता है, अतः ज्वर में लंघन करना चाहिये ॥ १६ ॥

लङ्घन का फल ।

अनवस्थितदोषाग्नेर्लङ्घनं दोषपाचनम् । ज्वरघ्नं दीपनं कांक्षा रुचिलाघवकारकम् ॥ १७ ॥

जिसके वातादि दोष और अग्नि अपने स्थान और परिमाण में स्थित न हों ऐसे ज्वर के रोगी को लङ्घन कराना चाहिये। क्योंकि लङ्घन से दोषों का पाचन, ज्वर की शान्ति, अग्नि की दीप्ति, अन्न की अभिलाषा और रुचि तथा शरीर की लघुता ये सब कार्य प्रकट होते हैं ॥ १७ ॥

बलानुकूल लंघनविधि ।

प्राणाविरोधिना चैनं लङ्घनेनोपपादयेत् । बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रमः ॥ १८ ॥

रोगी का बल विचार कर लङ्घन कराना चाहिये, कारण यह कि जिस आरोग्यता के लिए चिकित्सा की जाती है वह आरोग्यता बलाधीन है । बलप्राप्ति के बिना आरोग्य लाभ होना सम्भव नहीं ॥ १८ ॥

लङ्घन के अयोग्य ।

तत्तु मारुतक्षुत्तृष्णामुखशोषभ्रमान्विते। कार्य्यं न बाले नो वृद्धे न गर्भिण्यां न दुर्बले ॥ १९ ॥

वातप्रधान रोगी, क्षुधा, तृष्णा, मुखशोष और क्लान्तियुक्त रोगी, बालक, वृद्ध, गर्भिणी तथा दुर्बल व्यक्ति को लङ्घन न कराना चाहिए ॥ १९ ॥

उत्तम लङ्घन के लक्षण ।

वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गे गात्रलाघवे । हृदयोद्गारकण्ठास्यशुद्धौ तन्द्राक्लमेगते२० स्वेदे जाते रुचौ चापि क्षुत्पिपासासहोदये । कृतं लङ्घनमादेश्यं निर्व्यथे चान्तरात्मनि ॥ २१ ॥

अधोवायु, मल और मूत्र का शुद्ध रीति से निकलना, शरीर में हलकापन, हृदय की शुद्धि, शुद्ध डकार का आना, कण्ठ और मुख की विरसता का दूर होना, तन्द्रा और ग्लानि नष्ट होना, पसीना निकलना, रुचि का उत्पन्न होना, भूख और प्यास का एक साथ प्रगट होना और चित्त का प्रसन्न होना ये सब लक्षण हों तो उत्तम लङ्घन हुआ जानकर रोगी के आहारादि की व्यवस्था करनी चाहिये ॥ २०—२१ ॥

अतिलंघन के लक्षण ।

पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्च कासः शोषो मुखस्य च । क्षुत्प्रणाशोऽरुचिस्तृष्णा दौर्बल्यं श्रोत्रनेत्रयोः ॥ २२ ॥ मनसः सम्भ्रमोऽभीक्ष्णमूर्द्ध्वगातस्तमो हृदि । देहाग्निर्बलहानिश्च लङ्घनेऽतिकृते भवेत् ॥ २३ ॥

सन्धियों में टूटने के समान पीड़ा का होना, शरीर में पीड़ा, कास, मुखशोष, क्षुधा का नाश, अरुचि, तृष्णा, कर्ण और नेत्र की दुर्बलता अर्थात् कम सुनना और कम देखना, चित्त की अस्थिरता (बेचैनी मन न लगना), निरन्तर वायु का ऊर्ध्वगमन करना अर्थात् अधिक डकार का आना, मोह होना (अन्धकार में प्रविष्ट होने के समान ज्ञान होना), देहाग्नि[1] (जठराग्नि) और बल की हानि का होना यह सब लक्षण अत्यन्त लङ्घन में होते हैं ॥ २२—२३ ॥

हीनलङ्घन के लक्षण ।

कफोत्क्लेशः[2] सहृल्लासः[3] ष्ठीवनं[4] च मुहुर्मुहुः। कण्ठास्यहृदाशुद्धिस्तन्द्रा स्याद्धीनलंघने ॥ २४ ॥

[1] देहाग्निर्बलहानिश्च—का कोई-कोई ऐसा भी अर्थ करते हैं कि देह, अग्नि और बलकी हानि होती है ।

[2] कफोत्क्लेश =कफस्य वमनायोपस्थिति (कफ का वमन के समान निकलने को तत्पर होना)

[3] हृल्लास =हृल्लासो हृदयादीषद्द्रव्य पद्धतु-निर्गम (नमकीन पानी आना) उबकाई

[4] ष्ठीवनम्=हृदयात् कफनिर्गम (हृदयसे कफ निकलना) । थूकना

वमनार्थ कफ की उपस्थिति, नमकीन पानी आना, बार-बार थूकना, कण्ठ, मुख और हृदय की अशुद्धि, तन्द्रा का होना ये सब लक्षण हीनलंघन में होते हैं ॥ २४ ॥

वमनप्राशस्त्य।

सद्यो भुक्तस्य वा जाते ज्वरे सन्तर्पणोत्थिते। वमनं वमनार्हस्य शस्तमित्याह वाग्भटः ॥ २५ ॥ कफप्रधानानुत्क्लिष्टान् दोषानामाशयस्थितान्। बुद्ध्वा ज्वरकरान् काले वम्यानां वमनैर्हरेत् ॥ २६ ॥

तत्काल भोजन किये हुये मनुष्य को अथवा अत्यन्त तृप्ति[1] के कारण उत्पन्न हुये ज्वर में यदि वह वमन कराने के योग्य[2] हो तो वमन कराना चाहिये यह वाग्भट का मत है। वमन[3] के योग्य रोगियों के आमाशय में स्थित, कफप्रधान और निकलने के उन्मुख (तैयार) दोषों को ज्वर उत्पन्न करनेवाले जानकर यथासमय वमन द्वारा निकालना चाहिये ॥ २५—२६ ॥

वमन से हानि।

अनुपस्थितदोषाणां वमनं तरुणज्वरे। हृद्रोगं श्वासमानाहं मोहञ्च कुरुते भृशम् ॥ २७ ॥

यदि आमाशय में कफ संचित न हो तो तरुणज्वर में वमन न कराना चाहिये, क्योंकि ऐसी दशा में वमन कराने से हृदय-रोग, श्वास, मलमूत्रादि रोध (पेट फूलना) और मोह (बेहोशी) ये सब रोग उपस्थित होते हैं ॥ २७ ॥

शृतशीतजलपानविधि।

तृष्यते सलिलं चोष्णं दद्यात् वातकफज्वरे। मद्योत्थे पैत्तिके वाथ शीतलं तिक्तकैः शृतम् ॥ २८ ॥ दीपनं पाचनञ्चैव ज्वरघ्नमुभयञ्च तत्। स्रोतसां शोधनं बल्यं रुचिस्वेदप्रदं शिवम् ॥ २९ ॥

वातज्वर, कफज्वर और वातकफज्वर में तृषानिवारण के लिये रोगी को उष्ण[1] (गरम) जल ठंढा करके पिलाना चाहिये। तत्काल आये हुए ज्वर में और पित्तज्वर में तिक्तद्रव्य[2] के साथ जल को औटाकर ठंढा करके रोगी को देना चाहिये ॥ २८ ॥ ये दोनों प्रकार के जल अर्थात् उष्ण जल और तिक्तद्रव्य के साथ पकाकर शीतल किया हुआ जल अग्निदीपक, पाचक, ज्वरनाशक, शरीर के सम्पूर्ण स्रोतों को शुद्ध करनेवाले बलवर्धक, अन्न में रुचि उत्पन्न करनेवाले और स्वेदप्रद (पसीना देनेवाले) होने से अत्यन्त लाभदायक हैं ॥ २९ ॥

षडङ्गपानीय।

मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः। शृतशीतं जलं देयं पिपासाज्वरशांतये ॥ ३० ॥

नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, लालचन्दन, सुगन्धवाला और सोंठ ये सब मिलाकर २ तोला हों इनको ८ सेर जल में पकावे। जब २ सेर जल अवशिष्ट रह जाय तब कपड़ा से छानकर ठंढा होने पर रोगी को पीने के लिये देना चाहिये। इससे तृषा और ज्वर दोनों नष्ट होते हैं ॥ ३० ॥

नवज्वर में पेयादि-सेवनविधि।

मुख्य[3]भेषजसम्बन्धो निषिद्धस्तरुणे

---

[1] सन्तर्पणम्=शारीरिकव्यापाररहितस्य दिवास्वप्न सनादिप्रवृत्तिमात्रं प्रवृत्तस्य गुरुस्निग्धमधुरनवमद्यादि सेवनम्।

[2] 'वमनकराने के योग्य हो' ऐसा कहने का तात्पर्य यह है कि गर्भिणी स्त्री, बालक, वृद्ध, दुर्बल और भयभीत आदि को वमन न कराना चाहिये।

[3] नवामयेत्तैमिरिकोर्ध्ववातागुल्मोदरप्लीहकृमिश्रमार्तान्। स्थूलक्षतक्षीणकृशातिवृद्धमूत्रातुरान् केवलवातरोगान् ॥ स्वरोपघाताध्ययनप्रसक्तदुश्छर्दिदुःकोष्ठा-तृडार्तबालान्। ऊर्ध्वास्रपित्तक्षुधितातिरूक्षगर्भिण्युदावर्तनिरूहितांश्च ॥ सुश्रुत ॥

[1] क्वाथ्यमानं तु यत्तोयं निष्फेनं निर्मलीकृतम्। अर्धावशिष्टं च तदुष्णोदकमुच्यते।

[2] तिक्तद्रव्य आगे बताये जायँगे।

[3] तरुणज्वरे, मुख्य (प्रधान) भेषजसम्बन्धः निषिद्धः। मुस्तादिसंस्कारैः सिद्धं तोयपेयादिभेषजम् अप्रधानं, तेन निर्दोषमित्यर्थः।

ज्वरे। तोयपेयादिसंस्कारे निर्दोषं तेन भेषजम् ॥ ३१ ॥

पीछे कहा गया है कि ज्वर में एक सप्ताह व्यतीत होने पर औषध सेवन करना चाहिये, किन्तु 'षडङ्गादिपानीय' सप्ताह के मध्य में भी व्यवहार किया जाता है। इसका कारण पिछले श्लोक में प्रदर्शित हो चुका है। इसका तात्पर्य यह है कि तरुणज्वर में मुख्य औषध अर्थात् दशमूलादि के क्वाथ आदि औषध न देने चाहिये किन्तु नागरमोथा इत्यादि से सिद्ध किया हुआ षडङ्गादि अप्रधान पेया आदि देने का निषेध नहीं है ॥३१॥

षडङ्गादिसाधन।

यदप्सु शृतशीतासु षडङ्गादि प्रयुज्यते। कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत् प्रास्थिकेऽम्भसि ॥ अर्द्धशृतं प्रयोक्तव्यं पाने पेयादिसंविधौ ॥ ३२ ॥

पकाकर ठंढा करके सेवन करने के लिये 'षडङ्गादिपानीय' बनाने का नियम यह है कि नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, लाल चन्दन, सुगन्धवाला और सोंठ ये कुल द्रव्य मिलाकर १ तोला हों, इनको १ सेर जल में पकावे, जब आधा रह जाय तो छानकर ठंढा होने पर सेवन करावे। तथा यही विधि पेया बनाकर खाने की है ॥ ३२ ॥

लाजपेया-सेवनकाल।

लाजपेयां सुखजरां पिप्पलीनागरैः शृताम्। पिबेत् ज्वरी ज्वरहरां क्षुद्वानल्पाग्निरार्दितः ॥ ३३ ॥

ज्वररोगी की पाचनशक्ति बहुत न्यून हो जाती है। अतः जब कुछ भूख लगे तो पहिले उसको छोटी पीपरि और सोंठ के साथ पकाई हुई लाजपेया अर्थात् धान के खील की पेया पान करने को दिया जाय। कारण यह कि 'लाजपेया' अनायास ही पच जाती है ॥ ३३ ॥

रक्तशालिपेया-सेवनकाल।

पेयां वा रक्तशालीनां पार्श्वबस्तिशिरोरुजि। श्वदंष्ट्राकण्टकारीभ्यां सिद्धां ज्वरहरीं पिबेत् ॥ ३४ ॥

दोनों पसलियों में बस्ति (मूत्राशय) में और शिर में यदि पीड़ा हो तो गोखुरू और कटेरी (भटकटैया) इनके साथ सिद्ध की गई रक्तशालिपेया अर्थात् लाल शालीधान की पेया पीने को देनी चाहिये। यह ज्वरनाशक भी होती है ॥ ३४ ॥

पेयानिर्माणविधि।

षडङ्गपरिभाषैव प्रायः पेयादि सम्मता ३५

षडङ्गपानीय बनाने का जो नियम पीछे लिखा जा चुका है, पेया बनाने की भी वही रीति है ॥ ३५ ॥

यवागू का लक्षण।

यवागूमुचिताद्भक्ताच्चतुर्भागकृतां वदेत् ॥ ३६ ॥

रोगी जितने चावल का भात खा सकता है, उसके चतुर्थांश चावल की यवागू बनाकर उसको देना चाहिये ॥ ३६ ॥

मण्डादि के लक्षण।

सिक्थकै रहितो मण्डः पेया सिक्थसमन्विता। यवागूर्बहुसिक्था स्याद्विलेपी विरलद्रवा ॥ ३७ ॥

जो सिट्ठी से रहित हो उसको मण्ड (माँड) कहते हैं, तात्पर्य यह कि जब अन्न बिलकुल गलकर तरल (पतला) हो जाता है तो उसको मण्ड कहते हैं।

जिसमें सिक्थक (सिट्ठी कन) अल्प परिमाण में हो और द्रव (जल) भाग अधिक हो उसको पेया कहते हैं। जिसमें द्रव भाग अल्प और सिक्थक अधिक परिमाण में हो उसको यवागू कहते हैं। इसी प्रकार जिसमें अतिस्वल्प द्रव भाग और अधिक सिक्थक हो उसको विलेपी कहते हैं ॥ ३७ ॥

अन्नादिसाधन।

अन्नं पञ्चगुणे साध्यं विलेपी च नतु-

गुणे। मण्डश्चतुर्दशगुणे यवागूः षड्गुणेऽम्भसि ॥ अष्टादशगुणे तोये यूषः शार्ङ्गधरेरितः ॥ ३८ ॥

जितना चावल हो उससे पञ्चगुण जल में अन्न (भात) पकाना चाहिये। इसी प्रकार चावल से चतुर्गुण जल में विलेपी, चावल से चौदहगुना अधिक जल मे मण्ड, छः गुना अधिक जल में यवागू और अठारह गुना पानी में यूष पकाना चाहिये, ऐसा शार्ङ्गधरजी ने कहा है ॥ ३८ ॥

ज्वरविशेष में पथ्य।

श्रमोपवासानिलजे हितो नित्यं रसौदनः। मुद्गयूषोदनश्चापि देयः कफसमन्विते ॥ ३९ ॥ स एव सितया युक्तः शीतः पित्तज्वरे हितः। रक्तशाल्यादयः शस्ताः पुराणाः षष्टिकैः सह ॥ ४० ॥ यवाग्वोदनलाजार्थं ज्वरितानां ज्वरापहाः। मुद्गान्मसूरांश्चणकान् कुलत्थान् समकुष्ठकान् ॥ ४१ ॥ आहारकाले यूषार्थं ज्वरिताय प्रदापयेत् ॥ पटोलपत्रं वार्त्ताकुं कुलकं कारवेल्लकम् ॥ ४२ ॥ कर्कोटकं पर्पटकं गोजिह्वाबालमूलकम्। पत्रं गुडूच्याः शाकार्थे ज्वरिताय प्रदापयेत् ॥ ४३ ॥

परिश्रम, उपवास और वातजन्य ज्वर में मांसरस के साथ भात खाना लाभदायक होता है। कफजन्य ज्वर में मूँग के यूष (जूस) के साथ भात देना चाहिये। पित्तज्वर में उसी यूष (जूस) को ठंढा करके उसमें शकर मिलाकर पान करने को देवे। पुराने लाल शाली और साठी आदि धान की यवागू, भात और खील (लावा) बनाकर ज्वररोगी को भोजन के लिये देवे, क्योंकि ये कुल धान ज्वरनाशक हैं। यूष के लिये मूँग, मसूर, चना, कुलथी और मोठ और वनमूँग इनका उपयोग ज्वरी के लिये आहार के समय में करना चाहिये। शाकों में परवल के पत्ते, बैंगन, परवल, करेला, ककसा, ककोड़ा, पित्तपापड़ा, गोजिया, कोमलमूली और गिलोय के पत्ते ये सब शाक ज्वररोगी के लिये लाभदायक हैं ॥ ३९--४३ ॥

ज्वररोगी का भोजनकाल।

ज्वरितो हितमश्नीयाद् यद्यप्यस्यारुचिर्भवेत्। अन्नकाले ह्यभुञ्जानः क्षीयते म्रियतेऽपि वा ॥ ४४ ॥ सातत्यात् स्वाद्वभावाद्वा पथ्यं द्वेष्यत्वमागतम्। कल्पना विधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत् पुनः॥४५॥

ज्वर का रोगी, रुचि न रहने पर भी पथ्य पदार्थ का भोजन करे, क्योंकि आहार काल में भोजन न करने से रोगी क्षीण (कमजोर) हो जाता है अथवा उसकी मृत्यु हो जाती है। निरन्तर एक ही प्रकार के पदार्थ का भोजन करने से अथवा स्वादु (प्रिय) रस के अभाव होने से यदि पथ्य पदार्थ में अरुचि उत्पन्न हो गई हो तो पाकशास्त्रोक्त प्रणाली के अनुसार अनेक प्रकार के पाक बनाकर उसी पथ्य द्रव्य में फिर रोगी की रुचि उत्पन्न करानी चाहिये ॥ ४४--४५ ॥

टिप्पणी—यहाँ भोजन की आज्ञा ज्वर उतर जाने पर है ज्वर चढ़े हुए भोजन नहीं करना चाहिए।

ज्वरित और ज्वरमुक्त का भोजनकाल।

ज्वरितं ज्वरमुक्तं वा दिनान्ते भोजयेल्लघु। श्लेष्मक्षये विवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा ॥ ४६ ॥

ज्वररोगी अथवा ज्वरमुक्त व्यक्ति को अपराह्न (तीन बजे बाद शाम को) में लघु भोजन कराना चाहिये, कारण यह कि उस समय कफ क्षीण हो जाने से जठराग्नि की ऊष्मा (गरमी) और बल बढ़ जाता है ॥ ४६ ॥

टिप्पणी—शाम को भोजन करने की आज्ञा इसलिए दी है कि यदि दिन में ज्वर नहीं आता है तो इस समय भोजन करना आवश्यक ही है और यदि दिन में ज्वर आता है तो उसके रोकने की क्रिया लंघन हो ही गया।

ज्वररोगी के लिये निषिद्ध।

गुर्वभिष्यन्द्यकाले च ज्वरी नाद्यात् कथञ्चन। न हि तस्याहितं भुक्तमायुषे वा सुखाय वा॥ ४७॥

ज्वररोगी, कदापि मालपूआ आदि गुरु पदार्थ और दधि आदि कफकारक द्रव्य का भोजन एवं असमय में भोजन न करे। कारण यह कि अहित भोजन से परमायु का नाश और रोगों की वृद्धि होती है॥ ४७॥

आमदोष के पाचन।

लंघनं स्वेदनं कालो यवागूस्तिक्तको रसः। पाचनान्यविपक्कानां दोषाणां तरुणे ज्वरे॥ ४८॥

लंघन, स्वेदन, काल अर्थात् आठ दिन तक यवागू और तिक्तरस ये सब तरुण ज्वर में आमदोषों के पाचन हैं। तात्पर्य यह कि उपवासादि द्वारा सात दिन व्यतीत होने पर दोषों का पाचन होता है॥ ४८॥

टिप्पणी—नवीन ज्वर लंघन, स्वेदन, कार्य तथा यवागू और तिक्तरस (कड़वे पदार्थों का) सेवन से सात दिन में पच जाता है।

ज्वर के तरुणादि लक्षण।

आसप्तरात्रं तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः। मध्यं द्वादशरात्रन्तु पुराणमत उत्तरम्॥ ४९

ज्वर के उत्पत्ति के दिन से सातदिनपर्यंत तरुणज्वर, बारह दिन तक मध्यज्वर, इसके बाद पुराण अर्थात् पुराना ज्वर कहा जाता है॥ ४९॥

जीर्णज्वर का लक्षण।

त्रिसप्ताहव्यतीतस्तु ज्वरो यस्तनुतां गतः। प्लीहाग्निसादं कुरुते स जीर्णज्वर उच्यते॥ ५०॥

तीन सप्ताह व्यतीत होने पर जो ज्वर मन्दवेग हो जाता है एवं प्लीहा और अग्नि की मन्दता उत्पन्न करता है उसको जीर्णज्वर कहते हैं॥ ५०॥

ज्वर में कषाय प्रयोग।

ज्वरितं षडहेऽतीते लघ्वन्नप्रतिभोजितम्। पाचनं शमनीयं वा कषायं पाययेत्तु तम्॥ ५१॥ सप्ताहात् परतोऽस्तब्ध सामे स्यात् पाचनं ज्वरे। निरामे शमनं स्तब्धे सामे नौषधमाचरेत्॥ ५२॥

षडहेऽतीते इति ज्वरोत्पाददिनमारभ्य षडहेऽतिक्रान्ते सप्तमेऽहनि लघ्वन्नप्रतिभोजितम् अर्थादष्टमेऽहनि। पाचनं शमनीयं वा इति विकल्पद्वयं योग्यतया यथाक्रमं आमदोषपक्वदोषविषयं ज्ञेयम्। पाचनं शमनीयं वा कषायं पाययेदिति योजना, यत उपवासपरदिने भेषजनिषेधः। यदुक्तं "पीताम्बुर्लंघित इत्यादिना"। अन्ये पुनरमुमेवार्थं प्रकारान्तरेणोच्छन्ति षडहेऽतीते इति ज्वरोत्पाददिनं परित्यज्य गणना कार्य्येति। आरम्भदिनपरिहारेण परिहारकालगणनावत्। तेन षडहेऽतीते इत्यस्य सप्तमेऽतीते इत्यर्थो भवति।

इदानीं सप्ताहानन्तरमपि यस्यामवस्थायां पाचनं शमनञ्च देयं यस्याञ्च न देयं तदाह—सप्ताहात् परत इत्यादिना। सामे ज्वरे सप्ताहोपरि पाचनं किम्भूते अस्तब्धे प्रवर्त्तमानमूत्रपुरीषे, निरामे शमनं शमनयोग्यं, स्तब्धे सामे नौषधमाचरेदिति न सर्वथैव औषधं पिबेदित्यर्थः।

ननु सप्ताहानन्तरं ज्वरस्य निरामत्वात् किमर्थं पाचनं? यदुक्तं "अष्टाहो निरामज्वरलक्षणमिति"। उच्यते द्विधा हि सामता एका दोषसामता, प्रथमा दोषदुष्टिरूपा "प्रथमां दोषदुष्टिञ्च केचिदामं प्रचक्षते"। सा सप्ताहेनापैति। सप्ताहेनैव पच्यन्ते सप्तधातुगता मलाः। निरामश्चा-

प्यतः प्रोक्तो ज्वरः प्रायोऽष्टमेऽहनि ॥ इति चरकः ॥ तस्यां दोषसामतायां पाचन निषेधः। अपरा रससामता सप्ताहात् परतोऽप्यनुवर्त्तते, तस्याममवलायां पाचनं देयं सुश्रुतसंवादात्। तेन सप्ताहादर्वाक् तरुणे, सप्ताहानन्तरमपि स्तब्धे सामे प्रबलरससामतायां मुख्यभेषजं न देयमिति पर्यवसितोऽर्थः। पाचनमामपाचनं, शमनं दोषशमनमिति।

ज्वर के उत्पत्ति के दिन से आरम्भ करके छ दिवस बीतने पर सातवें दिन लघु (हल्का) भोजन कराना चाहिये और उस रोगी को पाचन अथवा शमनीय काढ़ा पिलाना चाहिये। २१।

यहाँ यथायोग्य आमदोष के लिये पाचन कषाय और पक्वदोष के लिये शमनीय कषाय पिलाया जाता है ऐसा जानना चाहिये। सातवें दिन पाचन कषाय का प्रयोग इसलिये कहते हैं कि 'पीताम्बुर्लङ्घित' इत्यादि श्लोक से उपवास के अगले दिन शोधन आदि औषध देने का निषेध किया गया है। और कुछ वैद्य 'षडहेऽतीते' इसका अर्थ करने में ज्वर के उत्पत्ति के दिन को छोड़कर छ दिन की गणना करनी चाहिये, ऐसा कहते हैं। उनके मत से छ दिन व्यतीत होने पर सातवें दिन अर्थात् ज्वर के उत्पत्ति के दिन से आठवें दिन लघु भोजन कराना चाहिये यह सिद्ध हुआ।

अब एक सप्ताह के अनन्तर भी किस अवस्था में पाचन और किस अवस्था में शमन औषधों का प्रयोग करना चाहिये, यह 'सप्ताहात्परतः' इत्यादि श्लोक से बताते हैं—एक सप्ताह के पीछे यदि दोषों का परिपाक न हुआ हो किन्तु मल मूत्रादि उचित रीति से निकलते हों तो ऐसी अवस्था में पाचन औषध की व्यवस्था करनी चाहिये। यदि दोषों का परिपाक हो गया हो और मल मूत्रादि की प्रवृत्ति भी उचित रीति से होती हो तो शमन औषध का प्रयोग करना चाहिये। यदि मल-मूत्रादि की प्रवृत्ति और दोषों का परिपाक न हुआ हो तो ज्वरनाशक औषधि का प्रयोग कदापि न करना चाहिये ॥ २२ ॥

अब यहाँ शङ्का होती है कि जब एक सप्ताह के अनन्तर दोष निराम हो ही जाते हैं तब एक सप्ताह व्यतीत होने पर पाचन औषध का प्रयोग क्यों बतलाया गया ? लिखा भी है कि 'आठवें दिन ज्वर निराम हो जाता है'।

अब इसका समाधान बतलाता हूँ—सामता दो प्रकार की होती है एक दोष सामता, दूसरी रस सामता। उनमें दोष सामता तो एक ही सप्ताह में नष्ट हो जाती है। चरक में लिखा भी है कि—'सप्तधातुगत दोष एक ही सप्ताह में परिपक्व हो जाते हैं इसलिये प्राय आठवें दिन ज्वर निराम हो जाता है' उस दोष सामता में पाचन औषध देने का निषेध है।

दूसरी रस सामता सप्ताह के अनन्तर भी रहती है। यह यदि अप्रबल हो तो उसमें पाचन औषध देना चाहिये ऐसा सुश्रुतजी ने कहा है।

तात्पर्य यह है कि सप्ताह से पूर्व तरुणज्वर में और सप्ताह के अनन्तर भी यदि भलीभाँति मल-मूत्रादि की प्रवृत्ति न होती हो और रसों का परिपाक न हुआ हो तो प्रबल रस सामता में मुख्य औषध न देना चाहिये किन्तु ऐसी अवस्था में पाचन औषध का ही प्रयोग करना लाभदायक है। यहाँ पाचन का अर्थ है आम को पचानेवाला और शमन का अर्थ है दोषों को शान्त करनेवाला। २२।

टिप्पणी—जो ज्वर सतत चढ़े रहते हैं उनके लिए ही यह विचार है चढ़ने उतरने वाले ज्वरों के लिए यहाँ औषध योजना ज्वर का रूप निश्चय करके कर देनी चाहिए।

सर्वत्र ८ तो० की मात्रा लिखी है किन्तु रोगी के बल को देखते हुए आजकल ४ तो० की मात्रा ही काफी रहती है।

आमज्वर का लक्षण।

लालाप्रसेको हृल्लासहृदयाशुद्ध्यरोचकाः। तन्द्रालस्याविपाकास्यवैरस्यं गुरुगात्रता ॥ २३ ॥ क्षुन्नाशो बहुमूत्रत्वं स्त-

ब्धता बलवान् ज्वरः। आमज्वरस्य लिङ्गानि न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो ज्वलयति ज्वरम् ॥ ५४ ॥

मुख से लार टपकना, वमन का वेग, हृदय की अशुद्धि, अरुचि, तन्द्रा, आलस्य, खाये हुये अन्न का अपरिपाक, मुख की विरसता (फीकापन), शरीर का भारीपन, भूख का न लगना, अधिक लघुशंका का होना, शरीर में पीड़ा का होना और प्रबल ज्वर ये ही सब आमज्वर के लक्षण हैं। इस अवस्था में औषध देने का निषेध है। कारण यह कि आमावस्था में औषध प्रयोग करने से ज्वर अत्यन्त प्रबल हो उठता है ॥ ५३–५४ ॥

दोषपरिपाक का लक्षण।

मृदौ ज्वरे लघौ देहे प्रचलेषु मलेषु च। पक्वं दोषं विजानीयाज्ज्वरे देयं तदौषधम् ॥ ५५ ॥

ज्वर का वेग मन्द और शरीर हलका हो जाय, वायु आदि समस्त दोष अपने-अपने स्थान में संचरित होने लगें और पहिले के समान मलमूत्र आदि निर्गत होने (निकलने) लगें तब समझना चाहिये कि दोष परिपक्व हो गये। ऐसी अवस्था में तत्काल औषध प्रयोग करना चाहिये ॥ ५५ ॥

कषाय सेवनकाल।

पीताम्बुर्लङ्घितः क्षीणोऽजीर्णी भुक्तः पिपासितः। न पिबेदौषधं जन्तुः संशोधनमथेतरत् ॥ ५६ ॥

जलपान के अन्त में उपवास के अगले दिन, क्षीणावस्था में अथवा ज्वररोगी को अजीर्ण होने पर, भोजन करने के पीछे और प्यास लगने पर संशोधन अथवा शमन कषाय (काढ़ा) का सेवन न करना चाहिये ॥ ५६ ॥

अभुक्तावस्था में औषध सेवन के गुण।

वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं हन्यात्तदामयमसंशयमाशु चैव। तद्बालवृद्धयुवती मृदुभिश्च पीतं ग्लानिं परां नयति चाशु बलक्षयञ्च ॥ ५७ ॥

अन्नहीन अर्थात् बिना भोजन किये सेवित औषध अधिक वीर्यवाला होता है और उसके द्वारा निस्संदेह शीघ्र रोग नष्ट हो जाते हैं। किन्तु बालक, वृद्ध, युवती और मृदु प्रकृति व्यक्तियों को अभुक्तावस्था (खाली पेट) में औषध सेवन न कराना चाहिये। कारण यह कि बिना अन्न खाये औषध खाने से उनको अत्यन्त ग्लानि और बलक्षय उत्पन्न होता है ॥ ५७ ॥

जीर्ण औषध के लक्षण।

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णा सुमनस्कता। लघुत्वमिन्द्रियोद्गारशुद्धिर्जीर्णौषधाकृतिः ॥ ५८ ॥

–वायु का अनुलोम होना अर्थात् अपान वायु का भलीभाँति निकलना, सुस्थता (विकाररहित शरीर का सामान्य दशा में स्थिर होना), भूख और प्यास का लगना, चित्त की प्रसन्नता शरीर का भारबोध दूर होना, इन्द्रियशुद्धि और शुद्ध डकार का आना ये ही सब औषध के जीर्ण (परिपाक) होने के लक्षण हैं ॥ ५८ ॥

अजीर्ण में औषध सेवन से हानि।

औषधशेषे भुक्तं पीतं तदौषधं सशेषेऽन्ने। न करोति गदोपशमं प्रकोपयत्यन्यरोगांश्च ॥ ५९ ॥

औषध का भलीभाँति परिपाक न होने पर भोजन करने से अथवा भोजन किये हुये पदार्थ के अच्छी तरह परिपाक होने से पूर्व औषध सेवन करने से रोग का नाश तो नहीं ही होता है किन्तु अन्यान्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ५९ ॥

औषध के अल्प परिपाक के लक्षण।

क्लमो दाहोऽङ्गसदनं भ्रमो मूर्च्छा शिरोरुजा। अरतिर्बलहानिश्च सावशेषौषधाकृतिः ॥ ६० ॥

खाया हुआ औषध जब भलीभाँति परिपक्व नहीं होता किन्तु परिपाक होने से कुछ अवशिष्ट रह जाता है तब शरीर में खेद, दाह, देह में पीड़ा, भ्रम, मूर्च्छा, शिर में पीड़ा, बेचैनी और

बल का नाश ये सब लक्षण प्रकाशित होते हैं ॥ ६० ॥

अन्नावृत औषध के लक्षण।

शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हिंस्याद-न्नावृतं न च मुहुर्वदनान्निरेति। प्राग्भुक्त-सेवितमथौषधमेतदेव दद्याच्च वृद्धशिशुभी-रुवराङ्गनाभ्यः ॥ ६१ ॥

औषध सेवन करके शीघ्र ही भोजन करने से औषध अन्न में लिपट जाता है। अतः वह शीघ्र पच जाता है और इससे बल की हानि नहीं होती तथा औषध अन्नावृत होने से बार-बार मुख द्वारा नहीं निकल सकता। इसलिये वृद्ध, बालक, डरपोक (जिन्हें औषध सेवन में भय लगता है) और सुकुमारी रमणियों को इसी रीति से औषध सेवन कराना चाहिये ॥ ६१ ॥

ज्वरे समासेन कर्मनिर्देशः।

ज्वरादौ लंघनं सामे ज्वरमध्ये तु पाच-नम्। निरामे शमनं कुर्याज्ज्वरान्ते च विरेचनम् ॥ ६२ ॥

ज्वर के आदि में जबकि समावस्था अधिक बली हो तो ऐसी अवस्था में बलानुसार उपवास या लघु भोजन कराये और ज्वर की मध्यावस्था में पाचन औषध दे। यदि दोष (वात, पित्त, कफादि) तथा रस पक्व हों तो शमन करनेवाली औषध दे। ज्वर के अन्त में कोष्ठ (आमाशय, पक्वाशय) की शुद्धि के लिए विरेचन औषध दे ॥ ६२ ॥

मात्रानिरूपण।

मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमग्निं बलं वयः। व्याधिं द्रव्यञ्च कोष्ठञ्च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥ ६३ ॥

मात्रा का कोई निश्चित (कहा हुआ) नियम नहीं है। दोष, अग्नि, बल, आयु की मर्यादा, व्याधि, औषध, द्रव्य और कोष्ठ का विचार करके मात्रा स्थिर करनी चाहिये ॥ ६३ ॥

सर्वज्वर में साधारण धान्यपटोल क्वाथ।

दीपनं कफविच्छेदि वातपित्तानुलोम-नम्। ज्वरघ्नं पाचनं भेदि शृतं धान्यपटो-लयोः ॥ ६४ ॥

धनिया १ तोला, परवल के पत्ते १ तोला इनको कूटकर १६ तोले जल में सिद्ध करे। ४ तोले जल अवशिष्ट रहने पर सेवन करना चाहिये। इसका सेवन करने से अग्नि दीपन होती है। कफ का नाश होता है। वायु और पित्त का अनुलोमन होता है एवं आम दोषों का परिपाक मलभेद और सब प्रकार के ज्वरों का नाश होता है ॥ ६४ ॥

टिप्पणी—आजकल ४ तोला ही पीना काफी होगा।

वातिक ज्वर पर किराताादि क्वाथ।

किराताब्दामृतोदीच्यबृहतीद्वयगोक्षुरैः। सस्थिराकलशीविश्वैः क्वाथो वातज्वरा-पहः ॥ ६५ ॥

चिरायता, नागरमोथा, गुर्च, सुगन्धबाला, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखुरू, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी और सोंठ ये कुल द्रव्य मिलकर दो तोले हों। इनको ३२ तोले जल में सिद्ध करे। ८ तोले जल शेष रहने पर छानकर सेवन करना चाहिये। इस क्वाथ का सेवन करने से वातिक ज्वर नष्ट होता है ॥ ६५ ॥

पिप्पल्यादि क्वाथ।

पिप्पली सारिवाद्राक्षा शतपुष्पाहरे-णुभिः। कृतः कषायः सगुडो हन्याच्छ्व-सनजं ज्वरम् ॥ ६६ ॥

पीपल, अनन्तमूल, मुनक्का, दाख, सोवे, रेणुका सब द्रव्य बराबर बराबर लेकर जिस प्रकार से क्वाथ निर्माण विधि है उसी प्रकार क्वाथ तैयार कर (अर्थात् ४ तोला शेष रहने पर ½ तोला

गुडूच्यादि काथ।

गुडूची सारिवाद्राक्षा शतपुष्पा पुनर्नवा। सगुडोऽयं कषायः स्याद्वातज्वरविनाशन॥ ६७॥

गिलोय, अनन्तमूल, मुनक्का, दाख, सोये, पुनर्नवा इनको लेकर क्वाथ निर्माणविधि से काथ सिद्ध करके (अर्थात् ४ तोला काथ में ½ तोला गुड़ मिलाकर) सेवन करने से वातज्वर शान्त होता है॥ ६७॥

द्राक्षादि काथ।

द्राक्षा गुडूची काश्मर्यत्रायमाणासमारिवाः। निष्काथ्य सगुडं क्वाथं पिबेद्वातज्वरापहम्॥ ६८॥

मुनक्का, दाख, गिलोय, गम्भारी के जड़ की छाल, त्रायमाणा, अनन्तमूल इनके क्वाथ में गुड़ मिलाकर पीने से वातज्वर दूर होता है॥ ६८॥

पञ्चमूली काथ।

पञ्चमूली कषायन्तु पाचनं वातिके ज्वरे॥ ६९॥

बिल्व, अरणी, श्योनाक (सोनपाठा), गाम्भारी, पादल इनकी जड़ की छालों को बृहत्पञ्चमूल कहते हैं। इन सबके जड़ की छालों का क्वाथ प्रयोग करने से वातज्वर दूर हो जाता है॥ ६९॥

रास्नादि काथ।

रास्नावृक्षादनी दारु सरलं सैलवालकम्। सोष्णं सगुडसर्पिष्कं पिबेद्वातज्वरापहम्॥ ७०॥

रास्ना, बन्दाक, देवदारु, सरल (चीड़), एलवालुक इनका काथ बनाकर एक खुराक में ½ तोला गुड़ और ½ तोला गाय का घी मिश्रित कर पान करने से वातज्वर शान्त हो जाता है॥ ७०॥

बिल्वादि काथ।

बिल्वादि पञ्चमूली च गुडूच्यामलके तथा। कुस्तुम्बुरुसमो ह्येष कषायो वातिके ज्वरे॥ ७१॥

बिल्व, अरणी, गाम्भारी, श्योनाक (सोनपाठा) और पादल इनके जड़ की छाल, धनियाँ, गिलोय, आँवला उपर्युक्त सब औषध बराबर-बराबर लेकर इनके क्वाथ को सेवन कराने से वातज्वर शान्त होता है॥ ७१॥

विश्वादि काथ।

विश्वामृता ग्रन्थिकसिद्धतोयं मरुज्ज्वरः स्यात् पिबतः कुतोऽयम्। क्वाथोऽथ कुस्तुम्बुरुदेवदारुक्षुद्रौषधैः पाचनमत्र चारु॥ ७२॥

सोंठ, गिलोय, पीपलीमूल अथवा धनिया, देवदारु, छोटी कटेरी, सोंठ उपर्युक्त दोनों में से किसी एक का क्वाथ सेवन करने से वातज्वर नष्ट हो जाता है॥ ७२॥

गुडूच्यादि स्वरस।

गुडूच्याः स्वरसो ग्राह्यः शतावर्याश्च तत्समः। गुडप्रगाढं शमयेत्सद्योऽनिलकृतं ज्वरम्॥ शृतशीतं कषायं वा गुडूच्याः पेयमेव तु॥ ७३॥

गिलोय का स्वरस ½।१ तोला, शतावर का स्वरस ½।१ तोला। दोनों के स्वरसों को मिलाकर और गुड़ डालकर पीने से या गिलोय का क्वाथ बनाकर और उसे ठण्डा कर पीने से वातज्वर शीघ्र ही दूर हो जाता है॥ ७३॥

पित्तज्वरचिकित्सा।

यवपटोल काथ।

पटोलयवनिःक्वाथो मधुना मधुरीकृतः। तीव्रपित्तज्वरामर्दी पानात्तृड्दाहनाशनः॥ ७४

(यावता तत्र माधुर्यं मधु तावत् प्रदीयते)

परवल के पत्ते १ तोला, यव का यवाग्र[1]

1 जौ को कूटकर उसकी भूसी निकाल दी जाय तो उसी को यव का यवाग्र कहते हैं।

१ तोला, इनको ३२ तोले जल में सिद्ध करे। जब ८ तोले जल अवशिष्ट रहे तो छानकर उसमें शहद मिलाकर सेवन करना चाहिये। इसका सेवन करने से शीघ्र ही तीव्र पित्तज्वर, तृषा और दाह नष्ट होता है ॥ ७४ ॥

जितने प्रमाण में मधु डालने से इस क्वाथ में माधुर्य (मिठास) आ जावे उतना ही मधु छोड़ना चाहिये ॥

पर्पटक्वाथ।

एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः। किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोदीच्यनागरैः ७५

पित्तपापड़ा २ तोले, पाकार्थ जल ३२ तोले, शेष ८ तोले यह क्वाथ पित्तज्वर का अत्युत्तम पाचन है। यदि रक्तचंदन, सुगंधवाला और सोंठसहित पित्तपापड़ा का क्वाथ बनाकर सेवन किया जाय तो बहुत अधिक लाभ होता है ॥७५॥

टिप्पणी—मात्रा ४ तो० ही काफी है।

धान्यशर्करा।

व्युषितं धान्याकजलं प्रातः पीतं सशर्करं पुंसाम्। अन्तर्दाहं शमयत्यचिराद्दूरमरूढमपि ॥ ७६ ॥

रात में २ तोले कुटी हुई धनिया, १२ तोले जल में भिगो रक्खे, प्रातःकाल वस्त्र से उस जल को छानकर उसमें चीनी मिलाकर सेवन करने से अत्यन्त अन्तर्दाह (भीतरी जलन) युक्त पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ७६ ॥

तिक्तादि क्वाथ।

सक्षौद्रंपाचनं पैत्ते तिक्ताब्देन्द्रयवैः कृतम् ॥ ७७ ॥

कटुकी, मोथा, इन्द्रजौ, इनके क्वाथ में शहद मिलाकर सेवन करने से पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ७७ ॥

लोध्रादि क्वाथ।

लोध्रोत्पलामृतापद्मसारिवाणां सशर्करः। क्वाथः पित्तज्वरं हन्यादथवा पर्पटोद्भवः ॥ ७८ ॥

लोध्र, नीलकमल, गिलोय, कमल, अनन्तमूल इनके क्वाथ में खाँड मिश्रित कर पीने से पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ७८ ॥

दुरालभादि क्वाथ।

दुरालभापर्पटकप्रियङ्गु भूनिम्बवासाकटुरोहिणीनाम्। जलं पिबेच्छर्करयावगाढं तृष्णास्रपित्तज्वरदाहयुक्तः ॥ ७९ ॥

दुरालभा (धमासा), पित्तपापड़ा, प्रियगू, चिरायता, वासा, कटुकी इनके क्वाथ में खाँड मिश्रण कर पीने से रक्तपित्त, दाह तथा अत्यन्त पिपासायुक्त पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ७९ ॥

विश्वादि क्वाथ।

विश्वाम्बुपर्पटोशीरघनचन्दनसाधितम्। दद्यात् सुशीतलं वारि तृट्छर्दिज्वरदाहनुत् ॥ ८० ॥

सोंठ, गन्धवाला, पित्तपापड़ा, खस, मोथा, लाल चन्दन इनके ठण्डे क्वाथ को प्रयोग करने से तृषा, वमन, दाहयुक्त पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ८० ॥

द्राक्षादि क्वाथ।

द्राक्षाभयापर्पटकाब्दतिक्ताक्वाथं सशम्याकफलं विदध्यात्। प्रलापमूर्च्छाभ्रमदाहशोषतृष्णान्विते पित्तभवे ज्वरे च ॥ ८१ ॥

मुनक्का, दाख, बड़ी हर्र, पित्तपापड़ा, मोथा, कटुकी इनका क्वाथ तैयार करके उसमें अमलतास का गूदा मसलकर छान ले, इस क्वाथ को प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, मुख सूखना और अत्यन्त पिपासायुक्त पित्तज्वर में देना हितकर है ॥ ८१ ॥

त्रायमाणादि क्वाथ।

त्रायमाणा च मधुकं पिप्पलीमूलमेव च। किराततिक्तकं मुस्तं मधूकं सविभीत-

गुडूच्यादि क्वाथ।

गुडूची सारिवाद्राक्षा शतपुष्पा पुनर्नवा। सगुडोऽयं कषायः स्याद्वातज्वरविनाशन ॥ ६७॥

गिलोय, अनन्तमूल, मुनक्का, दाख, सोये, पुनर्नवा इनको लेकर क्वाथ निर्माणविधि से क्वाथ सिद्ध करके (अर्थात् ४ तोला क्वाथ में ½ तोला गुड़ मिलाकर) सेवन करने से वातज्वर शान्त होता है ॥ ६७ ॥

द्राक्षादि क्वाथ।

द्राक्षा गुडूची काश्मर्यत्रायमाणाससारिवाः। निष्काथ्य सगुडं क्वाथं पिबेद्वातज्वरापहम् ॥ ६८ ॥

मुनक्का, दाख, गिलोय, गम्भारी के जड़ की छाल, त्रायमाणा, अनन्तमूल इनके क्वाथ में गुड़ मिलाकर पीने से वातज्वर दूर होता है ॥ ६८ ॥

पञ्चमूली क्वाथ।

पञ्चमूली कषायन्तु पाचनं वातिके ज्वरे ॥ ६९ ॥

बिल्व, अरणी, श्योनाक (सोनपाठा), गाम्भारी, पाढ़ल इनकी जड़ की छालों को बृहत्पञ्चमूल कहते हैं। इन सबके जड़ की छालों का क्वाथ प्रयोग करने से वातज्वर दूर हो जाता है ॥ ६९ ॥

रास्नादि क्वाथ।

रास्नावृक्षादनी दारु सरलं सैलवालकम्। सोष्णं सगुडसर्पिष्कं पिबेद्वातज्वरापहम् ॥ ७० ॥

रास्ना, बन्दाक, देवदारु, सरल (चीड़), एलवालुक इनका क्वाथ बनाकर एक खुराक में ½ तोला गुड़ और ½ तोला गाय का घी मिश्रित कर पान करने से वातज्वर शान्त हो जाता है॥७०॥

बिल्वादि क्वाथ।

बिल्वादि पञ्चमूली च गुडूच्यामलके तथा। कुस्तुम्बुरुसमो ह्येष कषायो वातिके ज्वरे ॥ ७१ ॥

बिल्व, अरणी, गाम्भारी, श्योनाक (सोनपाठा) और पाढ़ल इनके जड़ की छाल, धनियाँ, गिलोय, आँवला उपर्युक्त सब औषध बराबर-बराबर लेकर इनके क्वाथ को सेवन कराने से वातज्वर शान्त होता है ॥ ७१ ॥

विश्वादि क्वाथ।

विश्वामृता ग्रन्थिकसिद्धतोयं मरुज्ज्वरः स्यात् पिबत कुतोऽयम्। क्वाथोऽथ कुस्तुम्बुरुदेवदारुक्षुद्रौषधैः पाचनमत्र चारु ॥ ७२ ॥

सोंठ, गिलोय, पीपलीमूल अथवा धनियाँ, देवदारु, छोटी कटेरी, सोंठ उपर्युक्त दोनों में से किसी एक का क्वाथ सेवन करने से वातज्वर नष्ट हो जाता है ॥ ७२ ॥

गुडूच्यादि स्वरस।

गुडूच्याः स्वरसो ग्राह्यः शतावर्याश्च तत्समः। गुडमगाढं शमयेत्सद्योऽनिलकृतं ज्वरम् ॥ शृतशीतं कषायं वा गुडूच्याः पेयमेव तु ॥ ७३ ॥

गिलोय का स्वरस ½॥ तोला, शतावर का स्वरस ½॥ तोला। दोनों के स्वरसों को मिलाकर और गुड़ डालकर पीने से या गिलोय का क्वाथ बनाकर और उसे ठण्डा कर पीने से वातज्वर शीघ्र ही दूर हो जाता है ॥ ७३ ॥

पित्तज्वरचिकित्सा।

यवपटोल क्वाथ।

पटोलयवनिःक्वाथो मधुना मधुरीकृतः। तीव्रपित्तज्वरामर्दी पानात्तृड्दाहनाशनः ॥ ७४ ॥
(यावता तत्र माधुर्यं मधु तावत् प्रदीयते)

परवल के पत्ते १ तोला, यव का वाथ[1]

---

1 जौ को कूटकर उसकी भूसी निकाल दी जाय तो उसी को यव का वाथ कहते हैं।

१ तोला, इनको ३२ तोले जल में सिद्ध करे। जब ८ तोले जल अवशिष्ट रहे तो छानकर उसमें शहद मिलाकर सेवन करना चाहिये। इसका सेवन करने से शीघ्र ही तीव्र पित्तज्वर, तृषा और दाह नष्ट होता है ॥ ७४ ॥

जितने प्रमाण में मधु डालने से इस क्वाथ में माधुर्य (मिठास) आ जावे उतना ही मधु छोड़ना चाहिये ॥

पर्पटक्वाथ।

एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः। किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोदीच्यनागरैः ॥ ७५ ॥

पित्तपापड़ा २ तोले, पाकार्थ जल ३२ तोले, शेष ८ तोले यह क्वाथ पित्तज्वर का अत्युत्तम पाचन है। यदि रक्तचंदन, सुगन्धबाला और सोंठसहित पित्तपापड़ा का क्वाथ बनाकर सेवन किया जाय तो बहुत अधिक लाभ होता है ॥७५॥

टिप्पणी—मात्रा ४ तो० ही काफी है।

धान्यशर्करा।

व्युषितं धान्याकजलं प्रातः पीतं सशर्करं पुंसाम्। अन्तर्दाहं शमयत्यचिराद्‌दूरमरूढमपि ॥ ७६ ॥

रात में २ तोले कुटी हुई धनिया, १२ तोले जल में भिगो रक्खे, प्रातःकाल वस्त्र से उस जल को छानकर उसमें चीनी मिलाकर सेवन करने से अत्यन्त अन्तर्दाह (भीतरी जलन) युक्त पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ७६ ॥

तिक्तादि क्वाथ।

सक्षौद्रंपाचनं पैत्ते तिक्ताब्देन्द्रयवैः कृतम् ॥ ७७ ॥

कुटकी, मोथा, इन्द्रजौ, इनके क्वाथ में शहद मिलाकर सेवन करने से पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ७७ ॥

लोध्रादि क्वाथ।

लोध्रोत्पलामृतापद्मसारिवाणां सशर्करः। क्वाथः पित्तज्वरं हन्यादथवा पर्पटोद्भवः ॥ ७८ ॥

लोध, नीलकमल, गिलोय, कमल, अनन्तमूल इनके क्वाथ में खाँड मिश्रित कर पीने से पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ७८ ॥

दुरालभादि क्वाथ।

दुरालभापर्पटकप्रियङ्गुभूनिम्बवासाकटुरोहिणीनाम्। जलं पिबेच्छर्करयावगाढं तृष्णास्रपित्तज्वरदाहयुक्तः ॥ ७९ ॥

दुरालभा (धमासा), पित्तपापड़ा, प्रियंगु, चिरायता, वासा, कुटकी इनके क्वाथ में खाँड मिश्रण कर पीने से रक्तपित्त, दाह तथा अत्यन्त पिपासायुक्त पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ७९ ॥

विश्वादि क्वाथ।

विश्वाम्बुपर्पटोशीरघनचन्दनसाधितम्। दद्यात् सुशीतलं वारि तृटछर्दिज्वरदाहनुत् ॥ ८० ॥

सोंठ, गन्धबाला, पित्तपापड़ा, खस, मोथा, लाल चन्दन इनके ठण्डे क्वाथ को प्रयोग करने से तृषा, वमन, दाहयुक्त पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ८० ॥

द्राक्षादि क्वाथ।

द्राक्षाभयापर्पटकाब्दतिक्ताक्वाथं सशम्याकफलं विदध्यात्। प्रलापमूर्च्छाभ्रमदाहशोषतृष्णान्विते पित्तभवे ज्वरे च ॥ ८१ ॥

मुनक्का, दाख, बड़ी हर्रे, पित्तपापड़ा, मोथा, कुटकी इनका क्वाथ तैयार करके उसमें अमलतास का गूदा मसलकर छान ले, इस क्वाथ को प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, मुख सूखना और अत्यन्त पिपासायुक्त पित्तज्वर में देना हितकर है ॥ ८१ ॥

त्रायमाणादि क्वाथ।

त्रायमाणा च मधुकं पिप्पलीमूलमेव च। किराततिक्तकं मुस्तं मधुकं सबिभीत-

कम् ॥ सशर्करं पीतमेतत् पित्तज्वरविनाशनम् ॥ ८२ ॥

त्रायमाण, मुलहठी, पिप्पलीमूल, चिरायता, मोथा, महुए के फूल, बहेड़ा इनके क्वाथ में खाँड़ मिश्रित कर सेवन करना चाहिए ॥ ८२ ॥

तिक्तादि क्वाथ।

तिक्तामुस्तायवैःपाठाकट्फलाभ्यां सहोदकम्। पक्वं सशर्करं पीतं पाचनं पैत्तिके ज्वरे ॥ ८३ ॥

कटुकी, मोथा, इन्द्रजौ, पाठा, कायफल, गन्धबाला इनका खाँड़ मिश्रित क्वाथ पीने से पित्तज्वर शान्त होता है ॥ ८३ ॥

श्रीपर्ण्यादि क्वाथ।

श्रीपर्णी चन्दनोशीरपरूषकमधूकजः। शर्करामधुरो हन्ति कषायः पैत्तिकं ज्वरम् ॥ ८४ ॥

गम्भारी, लाल चन्दन, खस, फालसा, मधूकपुष्प (महुए के फूल) इनका क्वाथ तैयार कर उसमें खाँड़ या मिश्री इतनी डालनी चाहिये कि क्वाथ मीठा हो जावे। फिर इस क्वाथ के सेवन करने से पित्तज्वर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ ८४ ॥

शीतोपचारविधि।

पित्तज्वरेण तप्तस्य क्रियां शीतां समाचरेत् ॥ ८५ ॥

पित्तज्वर से संतप्त मनुष्य के लिये शीत उपचार विशेष लाभदायक होता है ॥ ८५ ॥

टिप्पणी—ताप अधिक बढ़ जाने पर ये प्रयोग लाभदायक होते हैं तापमान (टेम्प्रेचर) तुरन्त कम हो जाता है तब बन्द कर दे।

दाहनाशक योग।

उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्रकांस्यादिपात्रं विनिधाय नाभौ। तत्राम्बुधारा बहुला पतन्ती निहन्ति दाहं त्वरितं सुशीता ॥ ८६ ॥

पित्तज्वरवाले रोगी को उत्तान (चित्त) सुलाकर उसकी नाभि के ऊपर ताँबा या कांस्य आदि का गहिरा पात्र रखकर उसमें ऊपर से धीरे-धीरे शीतल जल की धारा कुछ देर गिरावे, इस प्रकार करने से शीघ्र ही पित्तज्वरजन्य दाह निवृत्त हो जाता है। परन्तु जल की धारा गिराने में यह ध्यान रखना चाहिये कि कहीं रोगी के शरीर पर जल की छर्णें न पड़ जायँ; क्योंकि वे रोगी के लिये बहुत हानिकर हैं ॥ ८६ ॥

पलाशपत्रादि प्रलेप।

अम्लपिष्टैः सुशीतैर्वा पलाशतरुजैर्दिहेत्। बदरीपल्लवोत्थेन फेनेनारिष्टकस्य वा ॥ ८७ ॥

पलाश (ढाक) के हरे पत्ते काँजी में पीस कर रोगी के शरीर में लेप करे। अथवा बेर के या नीम के हरे हरे पत्ते काँजी में पीसकर मथानी से मंथन करे; उससे उत्पन्न हुए फेन को लेकर रोगी के शरीर में मर्दन करने से शीघ्र पित्तज्वरजन्य दाह शान्त होता है ॥ ८७ ॥

विदार्यादि प्रदेह।

विदारी दाडिमं लोध्रं दधित्थं बीजपूरकम्। एभिः प्रदिह्यान्मूर्धानं तृड्दाहार्तस्य देहिनः ॥ ८८ ॥

विदारीकन्द, अनारदाना, लोध तथा बिजौरा, इन सबको एक साथ पीसकर माथे पर लेप करे, इससे दाह तथा प्यास शान्त होते हैं ॥ ८८ ॥

कफज्वरचिकित्सा।

निम्बादिक्वाथ।

निम्बविश्वामृतादारुशटीभूनिम्बपौष्करम्। पिप्पल्यौ बृहती चेति क्वाथो हन्ति कफज्वरम् ॥ ८९ ॥

नीम की अन्तरछाल, सोंठ, गिलोय, देवदारु, कचूर, कचरी, चिरायता, पुहकरमूल, छोटी पीपर,

गजपीपर, बड़ी कटेरी की जड़ ये सब द्रव्य मिलाकर, २ तोला क्वाथ पकाने के लिये जल ३२ तोला, शेष ८ तोले रहने पर सेवनकर। इस क्वाथ के पीने से कफजन्य ज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥ ८९ ॥

टिप्पणी—१६ तो० जल का ४ तो० रखकर दे।

पिप्पल्यादिगणक्वाथ।

पिप्पल्यादि कषायं तु पाचने कफजे ज्वरे ॥ ९० ॥

सुश्रुत में जो पिप्पल्यादि द्रव्यों का वर्णन है इन्हीं का क्वाथ प्रयोग करने से कफज्वर का नाश होता है। इस क्वाथ में एक या दो रत्ती हींग का प्रक्षेप देना चाहिये। यह ध्यान रहे कि क्वाथ-द्रव्यों में हींग का मिश्रण न करना चाहिए ॥ ९० ॥

त्रिफलादि क्वाथ।

त्रिफला पटोलवासाछिन्नरुहा तिक्तरोहिणी च षड्ग्रन्था। मधुना श्लेष्मसमुत्थे दशमूलीवासकस्य वा क्वाथः ॥ ९१ ॥

त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला), परवलपत्र, बाँसा, गिलोय, कुटकी, पिप्पलीमूल ये सब वस्तुएँ मिलाकर दो तोले होनी चाहिए, फिर इनका यथाविधि क्वाथ बनाकर और आधा तोला शहद मिलाकर सेवन करना चाहिए अथवा बिल्व, अरणी, गाम्भारी, सोनापाठा, पाढल, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, गोखरू, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी तथा बाँसा, इनके क्वाथ में शहद मिलाकर प्रयोग करना कफज्वर में हितकर है ॥ ९१ ॥

कुष्ठादि क्वाथ।

कुष्ठमिन्द्रयवं मूर्वा पटोलं चापि साधितम्। पिबेन्मरिचसंयुक्तं सक्षौद्रं श्लेष्मके ज्वरे ॥ ९२ ॥

कूट, इन्द्रजौ, मूर्वामूल (चूर्णहार की जड़), पटोलपत्र ये सब द्रव्य तोल में २ तोले होनी चाहिए फिर इनका यथाविधि क्वाथ बनाकर छान ले, उसमें छः रत्ती काली मिर्च का चूर्ण और दो मासे शहद मिलाकर प्रयोग करे। ये कफज्वर में लाभकारी हैं ॥ ९२ ॥

आमलक्यादि क्वाथ।

आमलक्यभया कृष्णा चित्रकश्चेत्ययं गणः। सर्वज्वरकफातङ्कभेदी दीपनपाचनः ॥ ९३ ॥

आँवला, हरड़, पिप्पली, चित्रक (चीता) इन चारों द्रव्यों का क्वाथ प्रयोग करने से समस्त ज्वर तथा कफरोग नाश होते हैं। यह क्वाथ जठराग्नि को प्रदीप्त करता है तथा पाचन है ॥ ९३ ॥

सप्तच्छदादि क्वाथ।

सप्तच्छदं गुडूचीश्च निम्बस्फूर्जकमेव च। क्वाथयित्वा पिबेत्क्वाथं सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ॥ ९४ ॥

छतिवन या सतौना की छाल, गिलोय, नीम की छाल, तेंदू की छाल इनका विधि पूर्वक क्वाथ मधुयुक्त सेवन करने से कफज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥ ९४ ॥

सिन्धुवार क्वाथ।

सिन्धुवारदलक्वाथं शोषणं कफजे ज्वरे। जङ्घायाश्च बले क्षीणे कर्णे वा पिहिते पिबेत् ॥ ९५ ॥

सम्हालू के पत्ता के क्वाथ में काली मिरिच का चूर्ण मिलाकर पीने से प्रबल कफज्वर शीघ्र नष्ट होता है।

विशेष करके कफज्वर में जंघा दुर्बल होने पर अथवा श्रवणशक्ति के अल्प होने पर इस क्वाथ का सेवन करना चाहिये ॥ ९५ ॥

चातुर्भद्रावलेहिका।

कट्फलं पौष्करं भृङ्गी कृष्णा च मधुना सह। श्वासकासज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफान्तकृत् ॥ ९६ ॥

कायफल, पुहकरमूल, काकड़ासिंगी और छोटी पीपर प्रत्येक द्रव्य के समभाग चूर्ण को

एकत्रित करके, कुल चूर्ण का दूना मधु मिलाकर अवलेह (चटनी) तैयार करना चाहिये। इसकी मात्रा २ माशा की है। इस अवलेह का सेवन करने से खांसी, श्वास, ज्वर और कफ नष्ट होता है ॥ ९६ ॥

अवलेह के सेवन का काल।

ऊर्ध्वजत्रुजरोगघ्नी सायं स्यादवलेहिका। अधोरोगहरी या तु सा पूर्वं भोजनात् मता ॥ ९७ ॥

जिस अवलेह का ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों के नाश के लिये प्रयोग किया जाता है उसका सायंकाल में सेवन करना चाहिये और जिस अवलेह का जत्रु के अधोगत रोगनाशार्थ प्रयोग किया जाता है उसका भोजन से पूर्व सेवन करना चाहिये ॥९७॥

मधुपिप्पली।

क्षौद्रोपकुल्यासंयोगः श्वासकासज्वरापहः। प्लीहानं हन्ति हिक्काञ्च बालानाञ्चापि शस्यते ॥ ९८ ॥

छोटी पीपर का चूर्ण ३ मासे और मधु १ तोला इनको मिश्रित करके अवलेह बना लेना चाहिये। इसका सेवन करने से श्वास, कास, ज्वर, प्लीहा और हिचकी ये सब रोग नष्ट होते हैं। यह अवलेह बालकों के लिये भी विशेष लाभदायक है ॥ ९८ ॥

वातपित्तज्वरचिकित्सा।

नवाङ्ग क्वाथ।

विश्वामृताब्दभूनिम्बैः पञ्चमूलीसमन्वितैः। कृतः कषायो हन्त्याशु वातपित्तोद्भवं ज्वरम् ॥ ९९ ॥

सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, चिरायता, सरिवन, पिठवन, छोटी कटेरी, बनभंटा (बड़ी कटेरी) गोखुरू ये ९ द्रव्य एकत्रित कर दो तोले हों, १६ तोले जल में पकाकर ४ तोले शेष रहने पर सेवन करना चाहिये। इस क्वाथ का सेवन करने से वात-पित्त से उत्पन्न हुआ ज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥ ९९ ॥

गुडूच्यादि रस।

गुडूची पर्पटं भेकपर्णी च हिलमोचिका[1]। पटोलं पुटपाकेन रसमेषां मधुप्लुतम् ॥ वातपित्तज्वरं[2] हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम् ॥ १०० ॥

गुरुच, पित्तपापड़ा, ब्राह्मी, हुरहुर और परवल के पत्ते इनका रस पुटपाक की रीति से निकाल कर मधुसहित २ तोले परिमित सेवन करने से दीर्घकाल से उत्पन्न हुआ दारुण वातपित्तज्वर समूल नष्ट होता है ॥ १०० ॥

बृहद्गुडूच्यादि क्वाथ।

गुडूची चन्दनं पद्मनागरेन्द्रयवासकम्। अभयारग्वधोदीच्यपाठा धान्याब्दरोहिणी ॥१०१॥ कषायं पाययेदेतं पिप्पलीचूर्णसंयुतम्। कासश्वासज्वरान् हन्ति पिपासादाहनाशनः। विण्मूत्रानिलविष्टम्भे त्रिदोषप्रभवेऽपि च ॥ १०२ ॥

गिलोय, लालचन्दन, पद्माख, सोंठ, इन्द्रजौ, जवासा, हरीतकी, अमलतास, सुगन्धवाला, पाढ़ा, धनिया, नागरमोथा और कुटकी इन सब द्रव्यों के क्वाथ में ३ मासे छोटी पीपर का चूर्ण मिलाकर पान कराना चाहिये। इस क्वाथ का सेवन करने से कास, श्वास, ज्वर, तृषा और दाह नष्ट होता है।

यदि मल, मूत्र और वायु न निकलते हों तो इस क्वाथ का सेवन अवश्य करे। इस क्वाथ से वात-पित्तज्वर तो नष्ट होता ही है; किन्तु

१ हिलमोचिका=हिलसा, हरहंची, हुरहुर यह एक प्रकार का शाक है, बथुआ का भी नाम है।

२ इसको वातपित्तज्वराधिकार में लिखना चाहिये था।

यह त्रिदोषजन्य ज्वर में भी विशेष लाभदायक होता है ॥ १००-१०१ ॥

घनचन्दनादि ।

घनचन्दनपर्पटकं कटुकं समृणाल-पटोलदलं सजलम् । भृतशीतसितायुत-पित्तहरं ज्वरच्छर्दितृषारुचिदाहहरम् १०२

नागरमोथा, लालचन्दन, पित्तपापड़ा, कुटकी, खस, परवल के पत्ते और सुगन्धवाला इनके क्वाथ को ठंढा कर चीनी मिलाकर पान करने से पित्तज्वर, वमन, तृषा, अरुचि और दाह नष्ट होता है ॥ १०२ ॥

पञ्चभद्र क्वाथ ।

गुडूची पर्पटो मुस्तं किरातो विश्वभेषजम् । वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभद्रमिदं शमम् ॥ १०३ ॥

गिलोय, पित्तपापड़ा, मोथा, चिरायता, सोंठ ये पाँचों द्रव्य मिलकर पञ्चभद्र भी कहलाते हैं, इनका यथाविधि बनाया हुआ काढ़ा वातपित्त-ज्वर में हितकर है ॥ १०३ ॥

त्रिफलादि क्वाथ ।

त्रिफला शाल्मली रास्ना राजवृक्षाट-रूषकैः । शृतमम्बु हरत्याशु वातपित्तोद्भवं ज्वरम् ॥ १०४ ॥

हरड़, बहेड़ा, आवला, शाल्मली (सेमल की जड़), रास्ना, वासा इनका काढ़ा करके उसमें अमलतास का गूदा मसलकर मिला दे। मिलाने के पश्चात् सेवन करावे, यह वात-पित्त-ज्वर को शीघ्र शान्त करता है ॥ १०४ ॥

भार्ग्यादि क्वाथ ।

भार्गी गुडूची घनदारु सिंही शुण्ठी कणा पुष्करजः कषायः । ज्वरं निहन्ति श्वसनं क्षिणोति क्षुधां करोतीति रुचिं तनोति ॥ १०५ ॥

भारंगी के जड़ की छाल, गिलोय, मोथा, देवदारु, बड़ी कटेरी, सोंठ, पिपली, पुष्करमूल इनका काढ़ा श्वास (दमा) तथा ज्वर में लाभदायक है। भूख तथा रुचि को बढ़ानेवाला है ॥१०५॥

मधुकादिशीतकाथ ।

मधुकं सारिवे द्राक्षा मधूकं चन्दनोत्पलम् । काश्मीरी पद्मकं लोध्रं त्रिफला पद्मकेशरम् ॥ १०६ ॥ परूषकं मृणालं च न्यसेदुत्तमवारिणी । मधुलाजसितायुक्तं तत्पीतमुषितं निशि ॥ १०७ ॥ वातपित्तज्वरं दाहं तृष्णामूर्च्छावमिभ्रमान् । संहरेद्रक्तपित्तञ्च जीमूतानिव मारुतः ॥ १०८ ॥

मुलहठी, अनन्तमूल (गौरीसर), श्यामालता (कालीसर), दाख, महुए के फूल, लालचन्दन, नीलोत्पल (नीलोफर), गम्भारी, पद्माख, लोध, हरड़, बहेड़ा, आँवला, पद्मकेसर, परूपक फल (फालसे), खस ये सब द्रव्य मिलाकर वजन में दो तोला लेना चाहिए। सबसे पहले इन सबको अच्छी तरह से बीनकर साफ कर ले, फिर जौकुट करके बारह तोले तंडुलोदक (चावल का धोवन) में रात्रि भर भीगा रहने दे, सुबह छानकर मधु तथा खाँड मिलाकर प्रयोग करे। इसके सेवन करने से वात-पित्तज्वर, दाह, प्यास, मूर्च्छा, कै, भ्रम और रक्त-पित्त बहुत शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ १०६-१०८ ॥

तण्डुलोदक बनाने की विधि—बारह तोले साफ पानी में तीन तोले चावल कूटकर आठ पहर तक भीगे रहने दे या उपर्युक्त दोनों चीजों को कहे हुए तोल से लेकर चावलों को हाथ से मलकर छान ले। और मतों के अनुसार ऐसा भी है कि चौंसठ तोले पानी में आठ तोले कुट्टित चावलों को भिगोकर छान लेवे।

अथ पित्तश्लेष्मज्वरचिकित्सा ।

अमृताष्टक ।

अमृतेन्द्रयवारिष्टपटोलं कटुरोहिणी । नागरं चन्दनं मुस्तं पिप्पलीचूर्णसंयु-

तम् ॥ १०९ ॥ अमृताष्टक इत्येष पित्तश्लेष्मज्वरापहः। हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनः ॥ ११० ॥

गिलोय, इन्द्रयव, नीम की छाल, परवल के पत्ते, कुटकी, सोंठ, लालचन्दन और नागरमोथा इनके क्वाथ में ३ मासे छोटी पीपर का चूर्ण मिलाकर पान करने से उबकाई आना, अरुचि, वमन, तृषा, दाह और पित्तकफज्वर नष्ट होते हैं ॥ १०९-११० ॥

कण्टकार्य्यादि क्वाथ।

कण्टकार्य्यमृता भार्गी नागरेन्द्रयवासकम्। भूनिम्बं चन्दनं मुस्तं पटोलं कटुरोहिणी। कषायं पाययेदेतं पित्तश्लेष्मज्वरापहम्। दाहतृष्णारुचिच्छर्दिकासहृत् पार्श्वशूलनुत् ॥ १११ ॥

कटेरी, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्रजौ, जवासा, चिरायता, लालचन्दन, नागरमोथा, परवल के पत्ते और कुटकी ये सब मिलित २ तोले, पकाने के लिये जल १६ तोले, शेष ४ तोले। इस क्वाथ के सेवन करने से पित्तश्लेष्मज्वर, दाह, तृषा, अरुचि, वमन, कास (खाँसी) और पसलियों की पीड़ा ये सब नष्ट होते हैं ॥ १११ ॥

पटोलादि क्वाथ।

पटोलं चन्दनं मूर्वा पाठा तिक्तामृतागणः। पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहकण्डूविषापहः ॥ ११२ ॥

पटोलपत्र, लाल चन्दन, मूर्वामूल, पाठा (पाढ़), कुटकी, गिलोय इनका यथाविधि बनाया हुआ काढ़ा सेवन करने से पित्तकफज्वर, वमन, दाह, खुजली और विषदोष दूर होते हैं ॥ ११२ ॥

पञ्चतिक्त क्वाथ।

क्षुद्रामृताभ्यां सह नागरेण सपौष्करञ्चैव किराततिक्तम्। पिबेत् कषायन्त्विह पञ्चतिक्तं ज्वरं निहन्त्यष्टविधं सभागम् ११३

छोटी कटेरी, गिलोय, सोंठ, पुष्करमूल, चिरायता इन पाँचों से जो काढ़ा तैयार होता है उसे पञ्चतिक्तक्वाथ कहते हैं। इस काढ़े का प्रयोग करने से, एक दोष के, दो दोष के और तीनों दोषयुक्त (सन्निपात) ज्वर शीघ्र दूर हो जाते हैं ॥ ११३ ॥

कटुरोहिणी चूर्ण।

सशर्करान्तु कर्षार्द्धां कटुकामुष्णवारिणा। पीत्वा ज्वरं जयेज्जन्तुः कफपित्तसमुद्भवम् ॥ ११४ ॥

कुटकी ½ तोला, खाँड ½ तोला दोनों को मिलाकर १ तोला चूर्ण पानी के साथ ले, इस प्रकार लेने से कफपित्तज्वर शीघ्र शान्त हो जाता है ॥ ११४ ॥

वासा स्वरस।

सपत्रपुष्पवासायाः रसः क्षौद्रसितायुतः। कफपित्तज्वरं हन्ति सासृक्पित्तं सकामलम् ॥ ११५ ॥

प्रथम वासा को फूल और पत्तोंसहित कूटकर उसमें से दो तोले स्वरस निचोड़ ले, फिर उसमें शहद या खाँड मिलाकर प्रयोग में लावे। ये कफपित्तज्वर, रक्तपित्त तथा कामला आदि रोगों को नाश करता है ॥ ११५ ॥

अथ वातश्लेष्मज्वरचिकित्सा।

वातश्लेष्मज्वर में स्वेदविधि।

कफवातज्वरे स्वेदान् कारयेद् रूक्षनिर्मितान्। स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वा पावकमाशयम् ॥ हत्वा वातकफस्तम्भं स्वेदो ज्वरमपोहति ॥ ११६ ॥

वातश्लेष्मज्वर में बालू, कंडा आदि रूक्ष पदार्थ की पोटली बनाकर गरम करके उसकी

भाप से रोगी को बारबार पसीना निकाले। यह स्वेद्, शरीर के समस्त स्रोतों (नाड़ियों) को मृदु (कोमल) बनाकर अग्नि को उसके स्थान में गमन कराता है, तथा वात और कफ की स्तम्भता दूर करके ज्वर को नष्ट करता है ॥ ११६ ॥

वालुका स्वेद।

खर्परभृष्टस्थितकाञ्जिकसिक्तो हि वालुकास्वेदः। शमयति वातकफामयमस्तकशूलाङ्गभङ्गादीन् ॥ ११७ ॥ वीक्ष्य स्वेदविधिं कुर्यात् स्वेदनं वालुकादिभिः। सर्वाङ्गे यदि वा यत्र वेदना सम्प्रजायते ॥ ११८ ॥

वालू को खपड़े में गरम करके कपड़े में बाँधकर इसकी पोटली बनाकर काँजी में उसको भिगाकर बारबार सेंके। इससे वात कफ के रोग, शिर की पीड़ा और शरीर की स्तम्भता (जकड़ना) आदि शान्त होते हैं। सर्वाङ्ग में पीड़ा हो तो सर्वाङ्ग में स्वेदन करना, यदि किसी विशेष स्थान में पीड़ा हो तो उसी पीड़ा के स्थान में वालुकास्वेद स्वेदविधि को देखकर करना चाहिये॥ ११७-११८॥

उत्तम स्वेद का लक्षण।

शीतशूलव्युपरमे स्तम्भगौरवनिग्रहे। सञ्जातमार्दवे स्वेदे स्वेदनाद् विरतिर्मता ॥ ११९ ॥

शीत, शूल, शरीर का जकड़ना और शरीर का भारीपन सब दूर हो जाने पर और मृदुता होने पर स्वेदन करना समाप्त कर ॥ ११९ ॥

आमज्वरादि में स्वेद।

आमज्वरे वातबलासजे वा कफोत्थिते मारुतसम्भवे वा। त्रिदोषजे स्वेदमुदाहरन्ति स्तम्भप्रमोहाङ्गरुजाप्रशान्त्यै॥१२०॥

आमज्वर, वात-कफज्वर, कफज्वर, वातज्वर और त्रिदोषजन्य ज्वर में स्तम्भता, मूर्च्छा और देह की पीड़ा को दूर करने के लिये स्वेदन करना चाहिये ॥ १२० ॥

पञ्चकोल।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः। दीपनीयः स्मृतो वर्गः कफानिलगदापहः ॥ १२१ ॥

छोटी पीपर, पिपरामूल, चव्य, चीता और सोंठ ये सब मिलाकर २ तोले, पाकार्थ जल १६ तोले, शेष ४ तोले। यह क्वाथ वातश्लेष्मज्वर को नष्ट और अग्नि को दीप्त करता है ॥ १२१ ॥

रास्नादि क्वाथ।

रास्ना द्राक्षा वचा पथ्या यमानी मधुयष्टिका। मधूरिकेन्द्रबीजञ्च तिक्ता विश्वं गुडूचिका ॥ १२२ ॥ द्विमाषमेषां प्रत्येकं ग्राहयेत् कुशलो भिषक्। पचेदष्टपले तोये ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ १२३ ॥ शीते च मधुनाक्षस्य पलार्द्धं प्रक्षिपेत् सुधीः। मुहुर्दण्डान्तरैः पानात् ज्वरो याति न संशयः ॥ १२४ ॥

रास्ना, मुनक्का, वच, हरड़, अजवायन, मुलहठी, सौंफ अथवा मूर्वामूल, इन्द्रजौ, कुटकी, सोंठ, गिलोय इनके दो-दो मासे लेकर आधे प्रस्थ (३२ तोला) पानी में क्वाथ विधि से काढ़ा तैयार करे पानी जब चौथाई शेष रहे तो उसे उतारकर ठण्ढा कर ले फिर उसे छानकर उसमें चार तोले शहद मिला ले यह दो खुराक है। इसका साठ पल (एक गुरु अक्षर उच्चारण के समय को एक पल कहते हैं।) रुके रहने के बाद दो बार में पी ले। इसके सेवन करने से ज्वर शीघ्र शान्त हो जाता है ॥ १२२-१२४ ॥

आरग्वधादि।

आरग्वधग्रन्थिकमुस्ततिक्ताहरीतकीभिः क्वथितः कषायः। सामे सशूले कफवातयुक्ते ज्वरे हितो दीपनपाचनश्च॥१२५॥

अमिलतास का गूदा, पिपरामूल, नागरमोथा कुटकी और हरड़ ये सब मिलकर २ तोले, पाकार्थ जल १६ तोले शेष ४ तोले। यहाँ इस बात का

ध्यान रखना चाहिये कि अमिलतास का गूदा पहिले न डाले, किन्तु अन्य औषधों को जल में डालकर क्वाथ तैयार करे, पश्चात् उसमें अमिलतास के गूदा का चूर्ण डालकर पान करे। यह क्वाथ अग्निदीपक और आमदोषों का पाचन है अतः आमदोष और शूलयुक्त वातश्लेष्म ज्वर में लाभदायक होता है ॥ १२५ ॥

क्षुद्रादि।

क्षुद्रामृतानागरपुष्कराह्वयैः कृतः कषायः कफमारुतोत्तरे। सश्वासकासारुचिपार्श्वरुग्ज्वरे ज्वरे त्रिदोषप्रभवेऽपि शस्यते १२६

छोटी कटेरी, गिलोय, सोंठ और पुहकरमूल ये सब मिलकर २ तोले हों। १६ तोले जल में पकाकर ४ तोले शेष रहने पर पान करना चाहिये। वातश्लेष्मज्वर में, श्वास, कास, अरुचि, पसलियों में पीड़ा रहने पर और सान्निपातिक ज्वर में यह क्वाथ लाभदायक है ॥ १२६ ॥

दशमूली क्वाथ।

दशमूलीरसः पेयः कणायुक्तः कफानिले। अविपाकेऽतितन्द्रायां पार्श्वरुक्श्वासकासके ॥ १२७ ॥

बेल[1] की छाल, स्योनाक की छाल, खंभारी की छाल, पाढरि की छाल, अरनी की छाल, सरिवन, पिठवन, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी और गोखुरू ये कुल मिलकर २ तोले हों, ३२ तोले जल में पकाकर ८ तोले जल शेष रहने पर उसमें ३ मासे छोटी पीपर का चूर्ण डालकर पान करना चाहिये।

इससे वातश्लेष्मज्वर, अपाचन, अतितन्द्रा, पार्श्वशूल, श्वास और कास ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ १२७ ॥

मुस्तादि क्वाथ।

मुस्तपर्पटदुःस्पर्शागुडूचीविश्वभेषजम् ॥ कफवातारुचिच्छर्दिदाहशोषज्वरापहम् ॥१२८॥

[1] दशमूल में सब चीजों की विशेषतया बड़े वृक्षों के मूल की छाल लेनी चाहिये।

मोथा, पित्तपापड़ा, दुरालभा, गिलोय, सोंठ इनका काढ़ा वात-कफज्वर, अरुचि, कै, दाह तथा शोष को शीघ्र नाश करता है ॥ १२८ ॥

अथ सन्निपातज्वरचिकित्सा।

सन्निपातज्वर में प्रथम कर्तव्य।

लंघनं वालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा। अवलेहोऽञ्जनं चैव प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥ १२९ ॥

त्रिदोषज अर्थात् सान्निपातिक ज्वर में पहले लंघन, बालुकास्वेद, नस्य, निष्ठीवन, अवलेह और अञ्जन का प्रयोग करना चाहिये।

ये सब विषय आगे विस्तृतरूप में बतलाये जायँगे ॥ १२९ ॥

सन्निपातज्वर में विधि।

सन्निपातज्वरे पूर्वं कुर्यादामकफापहम्। पश्चात् श्लेष्मणि संक्षीणे शमयेत् पित्तमारुतौ ॥ १३० ॥

सन्निपातज्वर में पहले अपरिपक्व अन्नरस और कफ को दूर करके पश्चात् पित्त और वात की शान्ति करनी चाहिये ॥ १३० ॥

लंघन।

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि वा। लंघनं सन्निपातेषु कुर्य्यादारोग्यदर्शनात् ॥१३१॥ दोषाणामेव सा शक्तिर्लंघने या सहिष्णुता। न हि दोषक्षये कश्चित् सहते लंघनादिकम् ॥ १३२ ॥

सन्निपातज्वर में तीन दिन, पाँच दिन अथवा दस दिन पर्यन्त उपवास करना चाहिये। तात्पर्य यह कि जब तक आरोग्य न हो तब तक उपवास आवश्यक है। जब तक उपवास सहन हो तभी तक दोषों की शक्ति जाननी चाहिये। दोषों के नष्ट होने पर कोई उपवास आदि सहन नहीं कर सकता ॥ १३१-१३२ ॥

स्वेद।

न स्वेदव्यतिरेकेण सन्निपातः प्रशाम्यति। तस्मान्मुहुर्मुहुः कार्य्यं स्वेदनं सन्निपातिनाम् ॥१३३॥ सन्निपाते जलमयो नराणांविग्रहो भवेत्। विना वह्न्युपचारेण कस्तं शोषयितुं समः ॥ १३४ ॥ प्रयोगा बहवः सन्ति सविषा निर्विषा अपि। वह्न्युष्माणं विना प्रायो न वीर्य्यं दर्शयन्ति ते ॥ १३५ ॥ प्रतिक्रियाविधावेवं यस्य संज्ञा न जायते। पादतले ललाटे वा दहेल्लोहशलाकया ॥ १३६ ॥

स्वेदक्रिया के बिना सन्निपात शान्त नहीं होता, अतः सन्निपातरोगी को ज्वर में बारंबार स्वेदन कराना चाहिये। सन्निपात में मनुष्यों का शरीर जलमय हो जाता है; अतः अग्निक्रिया के अतिरिक्त कौन उसका शोषण कर सकता है? विषयुक्त तथा विषरहित बहुत प्रकार के प्रयोग (नुसखे) हैं, किन्तु, अग्निताप के बिना उनकी शक्ति प्रायः सफल नहीं होती। नाना प्रकार के उपाय करने पर भी जो चैतन्य न हो (होश में न आवे) उसके पैर के तलभाग (तलवा) में अथवा ललाट में आग में सुर्ख लोह की शलाका से जला देना चाहिये ॥ १३३-१३६ ॥

स्वेदनिषिद्ध काल।

लौहित्ये नेत्रयोर्वान्तौ प्रलापे मूर्द्धचालने। न स्वेद शुभदो ज्ञेयस्तत्र शीतक्रिया हिता ॥ १३७ ॥

नेत्रों में लालिमा, वमन, प्रलाप और शिर का संचालन (इधर उधर पटकना) ये सब लक्षण उपस्थित होने पर स्वेदक्रिया करना उचित नहीं। ऐसी अवस्था में शीतल उपचार करना लाभदायक है ॥ १३७ ॥

टिप्पणी—स्वेदन का विधान बलवान रोगी के लिए है। जिसे ज्वर अधिक न वात कफ प्रबल और पित्तक्षीण हो अन्य रोगी को आजकल स्वेदन कर्म हानिकर रहता है।

अथ नस्यम्।

सैंधवादि नस्य।

सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपं कुष्ठमेव च। बस्तमूत्रेण सम्पिष्य नस्यं तन्द्राविनाशनम् ॥ १३८ ॥

सेंधानोन (लाहौरी नोन), सफेद मिर्च, पीली सरसों और कूट इन सब औषधों को समभाग लेकर बकरा के मूत्र में पीस कर नस्य देने से सन्निपातरोगी की तन्द्रा नष्ट होती है ॥ १३८ ॥

टिप्पणी—नस्य कर्म भी बलवान कफ प्रधान रोगी को करना चाहिए। बेहोशी तन्द्रा की स्थिति में नस्य करना लाभदायक हो सकता है सदैव नहीं करना चाहिए।

मधूकसारादि नस्य।

मधूकसारसिन्धूत्थवचोपणकणाः समाः। श्लक्ष्णं पिष्ट्वाम्भसा नस्यं कुर्यात् संज्ञाप्रबोधनम् ॥ १३९ ॥

महुआ के फूल की केसर, सैंधवलवण, घुड़बच, मरिच और छोटी पीपर इनको समभाग लेकर पानी के साथ महीन पीसकर नस्य देने से रोगी को चैतन्यलाभ होता है ॥ १३९ ॥

षड्ग्रन्थ्यादि नस्य।

षड्ग्रन्थिसैन्धवकणाः समधूकसाराः पिष्टाः समेन मरिचेन जलैः कदुष्णैः। नस्यं निवारयति शीघ्रमचेतनत्वं तन्द्राप्रलापसहितं शिरसो गुरुत्वम् ॥ १४० ॥

पिपरामूल, सेंधवलवण, छोटी पीपर और महुआ के फूल की केसर ये सब समभाग हों तथा इन सबके समान काली मिरिच लेकर सबको एकत्रित करके जल के साथ पीसकर किंचित उष्ण करके नस्य देने से रोगी को शीघ्र चैतन्यता प्राप्त होती है; तथा तन्द्रा, प्रलाप और मस्तक का भारीपन ये सब दूर हो जाते हैं ॥ १४० ॥

लशुनादि नस्य।

लशुनं मरिचं पिष्टं नस्यं स्यात् श्लेष्मनाशनम् ॥ १४१ ॥

समभाग लहसुन और कालीमिरिच को पीसकर नस्य देने से कफ का नाश होता है ॥ १४१ ॥

काली मुर्गी के अण्डे के जल से नस्य आदि।

शितिकुक्कुटिकाण्डजजलं पानात् नस्यादप्यञ्जनाच्च। दुःसाधनसन्निपातः प्रबलोऽप्याश्वेव शममेति ॥ १४२ ॥

काली मुर्गी के अण्डे के जल का अर्थात् अण्डा के भीतर के गीले अंश का पान नस्य और अञ्जन करने से प्रबल, दुःसाध्य सन्निपात भी शीघ्र शान्त हो जाता है ॥ १४२ ॥

अथ निष्ठीवनम्।

आर्द्रकादि निष्ठीवन।

आर्द्रकस्वरसोपेतं सैन्धवं सकटुत्रयम्। आकण्ठं धारयेदास्ये निष्ठीवेच्च पुनः पुनः ॥ १४३ ॥ तेनास्य हृदयाच्छ्लेष्मामन्यापार्श्वशिरोगलात्। लीनोप्याकृष्यते शुष्को लाघवञ्चास्य जायते ॥ १४४ ॥ पर्वभेदो ज्वरो मूर्च्छा निद्राकासगलामयः। मुखाक्षिगौरवं जाड्यमुत्क्लेदश्चोपशाम्यति ॥ १४५ ॥ सकृद्द्वित्रिचतुः कुर्याद् दृष्ट्वा दोषबलाबलम्। एतद्धि परमं प्राहुर्भेषजं सन्निपातिनाम् ॥ १४६ ॥

सेंधानोन, सोंठ, पीपर और काली मिरिच इनका समभाग चूर्ण लेकर अदरख के रस में मिलाकर गले तक करके मुख में धारण करे और कुछ देर पश्चात् थूक देवे; इसी प्रकार बारंबार धारण करे और थूके। इस क्रिया से हृदय, मन्या, पसली, मस्तक और गला इनमें सटा हुआ अत्यन्त गाढ़ा और शुष्क कफ निकल आता है, इससे रोगी का शरीर हलका हो जाता है, और पसलियों की पीड़ा, ज्वर, मूर्च्छा, निद्रा, कास, गले के रोग, मुख और नेत्रों का भारीपन, जड़ता, उबकाई, आना ये समस्त विकार अच्छे हो जाते हैं। दोषों का बलाबल देखकर एक बार, दो बार, तीन बार अथवा चार बार इस निष्ठीवन (थूकने की) क्रिया को करना चाहिये। यह सन्निपात रोगियों के लिये महौषध है ॥ १४३-१४६ ॥

टिप्पणी—बलवान को दें मूर्च्छित रोगी को न दें।

अथावलेह

अष्टाङ्गावलेहिका।

कट्फलं पौष्करं शृङ्गी व्योषं यासश्च कारवी। श्लक्ष्णचूर्णीकृतं चैतत् मधुना सह लेहयेत् ॥ १४७ ॥ एषावलेहिका हन्ति सन्निपातं सुदारुणम्। हिक्कां श्वासं च कासं च कण्ठरोधं नियच्छति ॥१४८॥ ऊर्ध्वगश्लेष्महरणे उष्णे स्वेदादिकर्म्मणि। विरोध्युष्णे मधु त्यक्त्वा कार्यमार्द्रकजै रसैः ॥ १४९ ॥

कायफल, पुहकरमूल, काकड़ासिंगी, सोंठ, पीपर, मिरिच, जवासा और काला जीरा इनका महीन चूर्ण बनाकर मधु के साथ चाटने से घोर सन्निपात, हिचकी, श्वास, कास और कण्ठरोग अच्छा होता है। ऊर्ध्व स्थान में अर्थात् छाती और गले आदि में प्राप्त हुये कफ को निकालने के लिये उष्ण स्वेदनादि क्रिया करनी हो तो मधु न डालकर उसके स्थान में अदरख का रस डालकर इस अवलेह को बनाना चाहिये। कारण यह कि मधु उष्ण क्रिया का विरोधी है ॥ १४७-१४९ ॥

अथ अञ्जनम्।

शिरीषादि अञ्जन।

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः

अञ्जन स्यात् प्रबोधाय सरसोनशिला-वचैः ॥ १५० ॥

सिरस के बीज, छोटी पीपर, कालीमिरिच, सेंधानोन, लहसुन, मैनसिल और बच इनको गोमूत्र में महीन पीसकर आँखों में अञ्जन (आजन) करने से सन्निपात का रोगी होश में आ जाता है ॥ १५० ॥

विडञ्जन ।

असुराह्वपतङ्गस्य विट्चूर्णं मधुसंयुतम् । अञ्जनाद् बोधयेन्मुग्धं तन्द्रितं सन्निपातिनम् ॥ १५१ ॥

तेलनी कीड़ा के विष्ठा का चूर्ण मधु में मिलाकर मोह और तन्द्रा से युक्त सन्निपात के रोगी को अञ्जन करना चाहिये ॥ १५१ ॥

दशमूल क्वाथ ।

बिल्वश्योणाकगाम्भारी पाटला गणिकारिका । दीपनं कफवातघ्नं पञ्चमूलमिदं महत् ॥ १५२ ॥ शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरम् । वातपित्तापहं वृष्यं कनीयः पञ्चमूलकम् ॥ १५३ ॥ उभयं दशमूलं हि सन्निपातज्वरापहम् । कासे श्वासे च तन्द्रायां पार्श्वशूले च शस्यते । पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं कण्ठहृद्ग्रहनाशनम् ॥ १५४ ॥

बिल्व, अरलू, खमारी, पाढल और अरनी मूल की छाल को एकत्रित करने से बृहत्पञ्चमूल कहा जाता है। यह कफ और वात का नाशक तथा अग्नि का दीपक है । सरिवन, पिठवन, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और गोखुरू ये स्वल्प पञ्चमूल हैं । ये वातपित्तनाशक और वीर्यवर्धक होते हैं। दोनों प्रकार के पञ्चमूल एकत्रित होने पर दशमूल कहे जाते हैं ।

२ तोले दशमूल को १६ तोले जल में पकाकर ४ तोले शेष रहने पर उसमें ३/४ मासे छोटी पीपर का चूर्ण मिलाकर पान करने से सन्निपातज्वर, कास, श्वास, तन्द्रा, पसलियों की पीड़ा तथा कण्ठ और हृदय की वेदना ये सब कष्ट दूर हो जाते हैं ॥ १५२-१५४ ॥

चतुर्दशाङ्गक्वाथ ।

चिरज्वरे वातकफोल्बणे वा त्रिदोषजे वा दशमूलमिश्रः । किराततिक्तादिगणः प्रयोज्यः शुद्ध्यर्थिने वा त्रिवृतादिमिश्रः १५५

दशमूल, चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ ये १४ द्रव्य एकत्रित कर २ तोले वजन में लेकर ३२ तोले जल में पकाकर ८ तोले जल शेष रहने पर पान करे। इससे पुराना ज्वर, वातश्लेष्मप्रधान ज्वर और सान्निपातिक ज्वर शान्त होते हैं ।

यदि मल के शोधन करने की इच्छा हो तो इसी क्वाथ में ३ या ४ मासे निसोथ का चूर्ण मिलाकर पान करना चाहिये ॥ १५५ ॥

भूनिम्बाद्यष्टादशाङ्ग क्वाथ ।

भूनिम्बदारुदशमूलमहौषधाब्दतिक्तेन्द्रबीजधनिकेभकणाकषाय । तन्द्राप्रलापकसनारुचिदाहमोहश्वासादियुक्तमखिलं ज्वरमाशु हन्ति ॥ १५६ ॥

चिरायता, देवदारु, दशमूल, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, धनिया और गजपीपर ये सब मिलकर २ तोले, जल ३२ तोले, शेष ८ तोले । इस क्वाथ का पान करने से तन्द्रा, प्रलाप, कास, अरुचि, दाह, मोह और श्वास आदि समस्त उपद्रवों सहित प्रत्येक प्रकार का ज्वर शीघ्र अच्छा हो जाता है ॥ १५६ ॥

बृहत्यादि गण ।

बृहत्यौ पौष्करं भार्गी शटी शृङ्गी दुरालभा । कनकस्य च बीजानि पटोलं कटुरोहिणी ॥ १५७ ॥ बृहत्यादिगणः प्रोक्तः सन्निपातज्वरापहः । कासादिषु च सर्वेषु हितः सोपद्रवेषु च ॥ १५८ ॥

छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, पुष्करमूल, भारंगी, शटी, काकड़ासिंगी, दुरालभा, निर्मली के बीज,

इन्द्रजौ, पटोलपत्र, कटुकी, इनका काढा खासी, श्वास लक्षणों के सहित सन्निपातज्वर पर परम हितकर है ॥ १५७-१५८ ॥

शठ्यादि वर्ग।

शटी पुष्करमूलञ्च व्याघ्री शृङ्गी दुरालभा। गुडूची नागरं पाठा किरातं कटुरोहिणी ॥ १५९ ॥ एष शठ्यादिको वर्गः सन्निपातज्वरापहः। कासहृद्ग्रहपार्श्वार्त्तिश्वासे तन्द्र्यां च शस्यते ॥ १६० ॥

शटी, पुष्करमूल, छोटी कटेरी, काकडासिंगी, दुरालभा, गिलोय, सोंठ, पाढ़ा, चिरायता, कुटकी यह काढ़ा सन्निपातज्वर, खाँसी, पाँचों मे दर्द, श्वास, तन्द्रा (बेहोशी), हृद्ग्रह आदि रोगों में लाभकारी है ॥ १५९-१६० ॥

मुस्ताद्यष्टादशाङ्ग क्वाथ।

मुस्तापर्पटकोशीरदेवदारुमहौषधम्। त्रिफला धन्वयासश्च नीली कम्पिल्लकं त्रिवृत् ॥ १६१ ॥ किराततिक्तकं पाठा दला कटुकरोहिणी। मधुकं पिप्पलीमूलं मुस्ताद्यो गण उच्यते ॥ १६२ ॥ अष्टादशाङ्गमदितमेतद्वा सन्निपातनुत्। पित्तोत्तरे सन्निपाते हितं चोक्तं मनीषिभिः। मन्यास्तम्भ उरोघात उरःपार्श्वशिरोग्रहे ॥ १६३ ॥

मोथा, पित्तपापड़ा, खस, देवदारु, सोंठ, हरड़, बहेड़ा, आँवला, दुरालभा, नीली, कमीला, निशोथ, चिरायता, पाढा, बलामूल, कुटकी, मुलहठी, पिप्पलीमूल। इस काढ़े का नाम मुस्तादिगण क्वाथ है, यह पित्तप्रधान सन्निपातज्वर को शीघ्र नष्ट करता है और शिरोग्रह (सिरदर्द) पार्श्वग्रह (पसलियों में शूल), उरोग्रह (हृदयशूल), उरोघात, मन्यास्तम्भ आदि में भी सेवन किया जा सकता है ॥ १६१-१६३ ॥

वातश्लेष्महरोऽष्टादशाङ्ग क्वाथ।

दशमूली शटी शृङ्गी पौष्करं सदुरालभम्। भार्गी कुटजबीजञ्च पटोलं कटुरोहिणी ॥ १६४ ॥ अष्टादशाङ्ग इत्येष सन्निपातज्वरापहः। कासहृद्ग्रहपार्श्वार्त्तिश्वासहिक्कावमीहरः ॥ १६५ ॥

दशमूल, शटी, काकडासिंगी, पुष्करमूल, दुरालभा, भारंगी, इन्द्रजौ, पटोलपत्र, कटुकी, इनका यथाविधि बनाया हुआ काढा सन्निपातज्वर, खाँसी, पार्श्वशूल (पसलियों में दर्द), हृद्ग्रह, श्वास, हिक्का, वमन आदि को दूर करता है ॥ १६४-१६५ ॥

सन्निपात में पथ्य।

पञ्चमुष्टिकयूषेण त्रिकण्टककृतेन वा। आटोपशमनात्पथ्यं त्रिकण्टेनैव साधयेत् ॥ १६६ ॥

पञ्चमुष्टिक का यूष अथवा छोटी कटेरी, दुरालभा तथा गोखुरू इन तीनों से बनाया हुआ यूष या इन तीनों से पृथक् पृथक् सन्निपातज्वर में दोषों को कम करने के लिए पथ्य का आयोजन करे ॥ १६६ ॥

पञ्चमुष्टिक यूष।

यवकोलकुलत्थानां मुद्गमूलकशुण्ठयोः। एकैकमुष्टिमाहृत्य पचेदष्टगुणे जले ॥ १६७ ॥ पञ्चमुष्टिक इत्येष वातपित्तकफापह शस्यते गुल्मशूले च श्वासे कासे च शस्यते ॥ १६८ ॥

जौ, बेर (बदर) कुलथी, मूँग, आँवला, इन सबको अलग-अलग एक-एक पल लेकर अठगुने पानी में पाक के लिये चढ़ा दे। जब आधा पानी जल जावे तो उतार ले। यह यूष त्रिदोषनाशक है और शूल, श्वास, खाँसी तथा गुल्म में भी हितकारी है। अन्य मतों के आधार पर मुष्टिशब्द का अर्थ मुट्ठी भर है ॥ १६७-१६८ ॥

चातुर्भद्रक पञ्चमूल।

पञ्चमूली किरातादिर्गणो योज्यास्त्रिदो-

पजे। पित्तोत्कटे च मधुना कणया च कफोत्कटे ॥ १६६ ॥

छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, शालपर्णी पृष्ठपर्णी और गोखरू इसे स्वल्प पञ्चमूल कहते हैं। इसे पित्तप्रधान सन्निपातज्वर में द और यदि कफप्रधान हो तो वृहत्पञ्चमूल अर्थात् बिल्व अरणी, सोनापाठा, पाढल, गम्भारी के साथ मोथा, सौंठ, चिरायता तथा गिलोय मिश्रणकर इनका काढा पिलावे हुए पैत्तिक सन्निपात में शहद के साथ और भयकर श्लैष्मिक सन्निपात में पीपल के साथ प्रयोग करे ॥ १६६ ॥

अभिन्यास का लक्षण।

निद्रोपेतमभिन्यासत्क्षीणं विद्याद्धतौजसम्। सन्निपाते प्रकम्पन्तं प्रलपन्त न बृंहयेत् ॥ तृष्णादाहाभिभूतेषु न दद्याच्छीतलं जलम् ॥ १७० ॥

सन्निपातज्वर में कम्प, प्रलाप, अधिक नींद का आना और ओजोनाश होने पर रोगी को अभिन्यासज्वर प्राप्त हुआ है ऐसा जानना। ऐसी अवस्था में दुग्ध आदि बृंहण पदार्थ आहार के लिये न देना चाहिये। तृष्णा और दाह आदि से पीड़ित अभिन्यास रोगी को शीतल जल देना हानिकारक है ॥ १७० ॥ [1]

कारव्यादि क्वाथ।

कारवीपुष्करैरण्डत्रायन्तीनागरामृताः। दशमूली शटी शृङ्गी यासभार्गी पुनर्नवा ॥ १७१ ॥ तुल्या मूत्रेण निःक्वाथ्य पीताः स्रोतोविशोधनाः। अभिन्यासज्वरं घोरमाशु घ्नन्ति समुद्धतम् ॥ १७२ ॥

कलौंजी, कूठ, एरण्ड का मूल, त्रायमाण, सोंठ, गुरच, दशमूल, कचूर, काकड़ासिंगी, जवासा, भारंगी और गदहपुरैना, ये सब मिल कर २ तोले हों इनको ३२ तोले गोमूत्र में पकाकर ८ तोले शेष रहने पर पान करना चाहिये। इस क्वाथ के पान करने से कुल नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं और अत्यन्त घोर अभिन्यास ज्वर नष्ट होता है ॥ १७१-१७२ ॥

वातपित्ताधिक्य में पुरातन घृताभ्यङ्ग।

वातपित्तोल्बणे चैव घृतं योज्यं पुरातनम्। अभ्यङ्गात् शमयत्याशु सन्निपातं सुदारुणम् ॥ १७३ ॥

वातपित्तप्रधान् सन्निपातज्वर में पुराने घृत से अभ्यङ्ग (मालिश) कराना चाहिये। इससे अत्यन्त तीव्र सन्निपातज्वर शीघ्र शान्त होता है ॥ १७३ ॥

स्वेदोद्गम में विधि।

स्वेदोद्गमे ज्वरे देयश्चूर्णो भृष्टकुलत्थजः ॥ १७४ ॥

सन्निपातज्वर में यदि बहुत अधिक पसीना आवे तो भुनी हुई कुलथी के चूर्ण का सर्वाङ्ग में मर्दन करे ॥ १७४ ॥

सन्निपात में कर्णमूलशोथ।

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूलेसुदारुणः। शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥ १७५ ॥

सन्निपातज्वर के अन्त में कर्ण (कान) की जड़ में अत्यन्त भयङ्कर सूजन शोथ उत्पन्न

[1] यद्यपि अभिन्यास और हतौजस ये दो रोग हैं अतएव अधिक नींद आने पर अभिन्यास और ओजोनाश होने पर हतौजस जानना इस प्रकार अर्थ करना चाहिये। तथापि जितनी पुस्तकें उपलब्ध होती हैं उनमें 'अभिन्यासक्षीण' इस समस्त पाठका होना और हतौजस की चिकित्सा न लिखकर केवल अभिन्यास ही की चिकित्सा लिखना इन दोनों बातों से प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार ने हतौजस को भी अभिन्यास ही में गतार्थ मानकर 'हतौजसम्' को अभिन्यासक्षीण का विशेषण माना है। नहीं तो केवल इस चिकित्साप्रधान ग्रन्थ में किसी रोग का विशेषरूप से लक्षण लिखकर उसकी विशेषतया चिकित्सा न लिखना असंगत होता, अतएव मैंने ऐसी ही व्याख्या की है। कविराज विनोदलाल सेन ने भी ऐसी ही व्याख्या की है।

होती है, उससे कदाचित् कोई ही मनुष्य बचता है ॥ १७५ ॥

कर्णमूल शोथ की साध्यता आदि ।

ज्वरादितो वा ज्वरमध्यतो वा ज्वरान्ततो वा श्रुतिमूलशोथः । क्रमेण साध्यः खलु कृच्छ्रसाध्यस्ततस्त्वसाध्यः कथितो भिषग्भिः ॥ १७६ ॥

ज्वर के प्रारम्भ काल ही से यदि कर्णमूलशोथ हो तो साध्य, ज्वर के मध्यकाल में उत्पन्न हुआ हो तो कृच्छ्रसाध्य और ज्वर के अन्त में उत्पन्न हुआ हो तो असाध्य जानना ॥ १७६ ॥

कर्णमूलशोथ-चिकित्सा ।

रक्तावसेचनैः पूर्वं सर्पिष्पानैश्च तं जयेत् । प्रदेहैः कफवातघ्नैर्वमनैः कवलग्रहैः ॥ १७७ ॥

कर्णमूलशोथ होने पर पहिले जोंक लगाकर वहाँ का रक्त निकलवाना चाहिये । पश्चात् पञ्चतिक्त घृत अथवा त्रिफलाघृत आदि पान कराने चाहिये । तथा वातकफनाशक लेप, वमन और कवलग्रह का प्रयोग करना चाहिये ॥ १७७ ॥

कुलत्थादि प्रलेप ।

कुलत्थकट्फले शुण्ठी कारवी च समांशिकैः । सुखोष्णलेपनं दद्यात् कर्णमूले मुहुर्मुहुः ॥ १७८ ॥

कुलथी, कायफल, सोंठ, कलौंजी इनको पानी में पीसकर थोड़ा उष्ण करके कर्णमूल के शोथ पर बारबार लेप करे ॥ १७८ ॥

गैरिकादि प्रलेप ।

गैरिकं पांशुजं शुण्ठी वचा कट्फल काञ्जिकैः । कर्णशोथहरो लेपः सन्निपातज्वरे नृणाम् ॥ १७९ ॥

गेरू, सज्जी (सोरा), सोंठ, वच और कायफल इनको काँजी में पीसकर लेप करने से सन्निपातज्वर का कर्णमूलशोथ शान्त होता है ॥१७९ ॥

दशमूल प्रलेप ।

सुखोष्णदशमूलेन प्रलेपोऽपि महाफलः ॥ १८० ॥

दशमूल को पानी में पीसकर सुखोष्ण अर्थात् सहन करने के योग्य उष्ण करके लेप करना कर्णमूलशोथ में अत्यन्त लाभदायक होता है ॥ १८० ॥

बीजपूरादि प्रलेप

बीजपूरकमूलानि अग्निमन्थं तथैव च । सनागरं देवदारुचव्यचित्रकपेषितम् ॥ प्रलेपनमिदं श्रेष्ठं गले श्वयथुनाशनम् ॥ १८१ ॥

बिजौरे नींबू का मूल, अरनी, सोंठ, देवदारु, चव्य और चीता इनको पानी में पीसकर किंचित् उष्ण करके लेप करने से गले का शोथ (सूजन) नष्ट होता है ॥ १८१ ॥

अथ जीर्णज्वरचिकित्सा ।

निदिग्धिकादि क्वाथ ।

निदिग्धिकानागरकामृतानां क्वाथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम् । जीर्णज्वरारोचककासशूलश्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसेषु १८२ हन्त्यूर्ध्वगामयं प्रायः सायं तेनोपयुज्यते ॥ १८३ ॥ एतद्रात्रिज्वरे सायमन्यत्र प्रातरिष्यते । पित्तानुबन्धे सन्त्यज्य पिप्पलीं प्रक्षिपेन्मधु ॥ १८४ ॥

छोटी कटेरी, सोंठ और गिलोय कुल मिलकर २ तोले, पाकार्थ जल ३२ तोले, शेष ८ तोले रहने पर उसमें २ मासे पीपर का चूर्ण मिलाकर पान करने से जीर्णज्वर, अरुचि, कास, शूल, श्वास, अग्निमान्द्य, अर्दित और पीनस रोग शान्त होते हैं । इस क्वाथ को ऊर्ध्वगत रोग निवारण के लिये सायंकाल में सेवन करना चाहिये ।

रात्रिज्वर में इस क्वाथ का सायंकाल में सेवन और दिन के ज्वर में प्रातःकाल सेवन करना चाहिये । पित्तसम्बन्धी ज्वर में पीपर के चूर्ण के स्थान में मधु मिलाकर पान करना चाहिये ॥ १८२-१८४ ।

मुष्टियोग ।

पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः क्वाथश्छिन्नरुहोद्भवः । जीर्णज्वरकफध्वंसी पञ्चमूलीकृतोऽथवा ॥ १८५ ॥ पिप्पलीमधुसंमिश्रं गुडूचीस्वरसं पिबेत् । जीर्णज्वरकफप्लीहकासारोचकनाशनम् ॥ १८६ ॥

गिलोय २ तोले, पाकार्थ जल ३२ तोले शेष ८ तोले, इसमें २ मासे छोटी पीपर का चूर्ण डालकर पीना चाहिये । इससे जीर्णज्वर नष्ट होता है ।

बेल, अरलू, गंभारी, पाढ़र और अरनी इनकी सब छाल मिलाकर २ तोले, जल ३२ तोले, शेष ८ तोले, उसमें २ मासे छोटी पीपर का चूर्ण मिलाकर पान करने से जीर्णज्वर और कफ नष्ट होता है ।

गिलोय का स्वरस, पीपर का चूर्ण और मधु इन तीनों को एकत्रित कर सेवन करने से जीर्णज्वर, कफ, प्लीहा, कास और अरुचि ये कुल उपद्रव दूर होते हैं ॥ १८५-१८६ ॥

अथ प्लीहज्वर में निदिग्धिकादि क्वाथ ।

निदिग्धिकागणः पथ्यः तथा रोहितकत्वचः । क्वाथं कृत्वा क्षिपेत्तत्र यवक्षारे कणायुतम् ॥ एतस्य पानमात्रेण प्लीहज्वरविनाशनम् । निदिग्धिकागणः स्वल्पपञ्चमूलं निगद्यते ॥ १८७ ॥

शालपर्णी, पृष्टपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी गोखुरू, हर्र, रोहेड़ा की छाल ये सब मिलकर २ तोले, जल १६ तोले, शेष ४ तोले उसमें २ मासे यवक्षार (जवाखार) और २ मासे छोटी पीपर का चूर्ण मिलाकर पान करना चाहिये । इस क्वाथ के पीने से प्लीहा और ज्वर नष्ट होते हैं । स्वल्प पञ्चमूल को ही निदिग्धिकागण कहते हैं ॥ १८८ ॥

चिरज्वरादिकों में योग ।

अस्थिकर्कटपञ्चाङ्गं शुण्ठ्या चिरज्वरप्रणुत् ॥ १८९ ॥

अस्थिकर्कटस्य हाड़कांकड़ा इति ख्यातस्य मूलत्वक्दलपत्रपुष्पफलं मृत्सु पोटलीं बद्ध्वा दग्ध्वा तोलकद्वयमितं रसं गृहीत्वा स्वल्पया शुण्ठ्या पेयम् ॥

हाड़कांकड़ा का पञ्चाङ्ग अर्थात् मूल, छाल, पत्र, पुष्प और फल को कूटकर पोटली बाँध कर जला लेवे, उससे निकला हुआ रस २ तोले उसमें १॥ मासे सोंठ मिलाकर पान करने से बहुत काल का पुराना ज्वर शांत हो जाता है ॥ १८९ ॥

विषमज्वरचिकित्सा ।

मधुना सर्वज्वरणुत् शेफालीदलजो रसः ॥ १९० ॥

निर्गुण्डी की पत्तियों के २ तोले रस में ३ मासे मधु मिलाकर पीने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥ १९० ॥

अजाजी गुडसंयुक्ता विषमज्वरनाशिनी । अग्निसादं जयेत् सम्यक् वातरोगांश्च नाशयेत् ॥ १९१ ॥

स्याह जीरा का चूर्ण ३ मासे उसमें ६ मासे पुराना गुड़ मिलाकर सेवन करने से विषमज्वर अग्निमान्द्य और वातरोग शान्त होते हैं ॥१९१॥

रसोनकल्कं तिलतैलमिश्रं
योऽश्नाति नित्यं विषमज्वरार्त्तः ।
विमुच्यते सोऽप्यचिरात् ज्वरेण
वातामयैश्चापि सुघोररूपैः ॥१९२॥

लहसुन को पीसकर तिल के तैल में भूनकर १ तोला परिमित प्रतिदिन सेवन करने से शीघ्र

विषमज्वर और अतिघोर वातरोग शान्त होते हैं ॥ १९२ ॥

गुडप्रगाढां त्रिफलां पिबेद्वा विषमार्दितः ॥ १९३ ॥

आँवला, हर्र और बहेड़ा इनका छिलका कुल मिलाकर २ तोले लेवे, १६ तोले जल में पकावे, ४ तोला जल शेष रहने पर ६ मासे पुराना गुड़ छोड़कर पान करे । इससे विषमज्वर शान्त होता है ॥१९३॥

कषायपञ्चकम् ।

कलिङ्गका पटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी। पटोलं सारिवा मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी ॥ १९४ ॥ निम्बं पटोलं मृद्वीका त्रिफलां मुस्तवत्सकौ । किराततिक्तममृता चन्दनं विश्वभेषजम् १९५ गुडूच्यामलकं मुस्तमर्द्धश्लोकसमापनः । कषायाः शमयन्त्याशु पञ्च पञ्चविधं ज्वरम् १९६

(१) इन्द्रजौ, पटोलपत्र, कुटकी इनको दो तोले लेकर सोलह तोले जल में पकावे, शेष चार तोले रहे ।

(२) पटोलपत्र, अनन्तमूल, मोथा, पाठा, कुटकी, वजन दो तोला, बत्तीस तोले जल में पकावें, शेष आठ तोले रहे ।

(३) नीम की छाल, पटोलपत्र, मुनक्का, दाख, हरड़, बहेड़ा, आँवला, मोथा, इन्द्रजौ वजन दो तोला, १६ तोले जल में पकावे, शेष ४ तोले रहें ।

(४) चिरायता, गिलोय, लालचन्दन, सोंठ वजन दो तोला, १६ तोले जल में पकावे, शेष ४ तोले रहें ।

(५) गिलोय, आँवला, मोथा, वजन दो तोला, १६ तोले जल में पकावे, शेष ४ तोले रहें ।

उपर्युक्त पाँचों क्वाथ, सतत, सन्तत, अन्येद्युष्क तृतीयक और चतुर्थक इन पाँचों तरह के विषमज्वरों को नष्ट करते हैं ॥ १९४-१९६ ॥

दीर्घपत्रस्तरुर्गाम्यं नेत्रं खदिरसंयुतम् । ताम्बूलैस्तद्दिने भुक्तं प्रातर्विषमनाशनम् ॥ १९७ ॥

कर्ण वृक्ष जो शुष्क स्थान पर पैदा होता है और जिसके पत्ते बड़े-बड़े होते हैं उसकी जड़ के चूर्ण को कत्थे के साथ पान में सुबह के समय खाने से विषमज्वर को हरण करता है ॥ १९७ ॥

महौषधादि क्वाथ ।

महौषधामृतामुस्तचन्दनोशीरधान्यकैः । क्वाथस्तृतीयकं हन्ति शर्करामधुयोजितः १९८

तृतीयके अत्यन्तसिद्धफलः ।

सोंठ, गुरुच, नागरमोथा, लाल चन्दन, खस और धनियां, सब मिलित २ तोले, पाकार्थ जल १६ तोले, शेष ४ तोले, उसमें १ मासे चीनी और दो मासे मधु मिलाकर पान करे। इससे तृतीयकज्वर नष्ट होता है। यह क्वाथ तृतीयकज्वर के लिये अत्यन्त अनुभूत है ॥ १९८ ॥

उशीरादि क्वाथ ।

उशीरं चन्दनं मुस्तं गुडूचीधान्यनागरम् । अम्भसा क्वथितं पेयं शर्करामधुयोजितम् ॥ ज्वरे तृतीयके देयं तृष्णादाहसमन्विते ॥ १९९ ॥

खस, लाल चन्दन, नागरमोथा, गुरुच, धनियाँ और सोंठ, सब मिलाकर २ तोले, पाकार्थ जल १६ तोले, शेष ४ तोले रहने पर २ मासे शक्कर और २ मासे मधु मिलाकर पान करे । इससे तृषा और दाहसमेत तृतीयकज्वर शान्त होता है ॥ १९९ ॥

ऐकाहिक ज्वर में पटोलादि क्वाथ ।

पटोलारिष्टमृद्वीका श्यामाकं त्रिफला वृषम् । क्वाथ ऐकाहिकं हन्ति शर्करामधुयोजितः ॥ २०० ॥

परवल के पत्ते, नीम की छाल, मुनक्का, श्यामालता, हर्र, आँवला, बहेड़ा और अड़ूसे के वृक्ष की छाल ये सब मिलकर २ तोले, पाकार्थ जल १६ तोले, शेष ४ तोले इसमें शक्कर २

मासे, मधु २ मासे मिलाकर पान करे। इस क्वाथ का सेवन करने मे ऐकाहिक ज्वर नष्ट होता है ॥ २०० ॥

चातुर्थिकज्वर में वासादि क्वाथ।

वासा धात्री स्थिरा दारुपथ्यानागरसाधितः। सितामधुयुतः क्वाथश्चतुर्थकविनाशनः ॥ २०१ ॥

अड़ूसा का मूल, आमला, शालपर्णी, देवदारु, हर्रे, सोंठ, कुल मिलकर २ तोले, जल १६ तोले, शेष ४ तोले, उसमें २ मासे शक्कर और २ मासे मधु मिलाकर पीने से चातुर्थिक ज्वर नष्ट होता है ॥ २०१ ॥

महाबलादि क्वाथ।

महाबलामूलमहौषधीभ्यां क्वाथो निहन्याद्विषमज्वरश्च। शीतं सकम्पं परिदाहयुक्तं विनाशयेद् द्वित्रिदिनप्रयुक्तः ॥ २०२ ॥

सहदेई का मूल १ तोला और सोंठ १ तोला इनको १६ तोले जल में पकाकर ४ तोले शेष रहने पर पान करे। इसका दो या तीन दिन सेवन करने से शीत, कम्प और दाहयुक्त विषमज्वर नष्ट होता है ॥ २०२ ॥

रात्रिज्वर में गुडूच्यादि क्वाथ।

गुडूची मुस्तभूनिम्बं धात्री क्षुद्रा च नागरम्। बिल्वादिपञ्चमूलश्च कटुकेन्द्रयवासकम् ॥ २०३ ॥ निशाभवं ज्वरं वातकफपित्तसमुद्भवम्। चिरोत्थं द्वन्द्वजं हन्ति सकणं मधुसंयुतम् ॥ २०४ ॥

गुरुच, नागरमोथा, चिरायता, आंवला, कटेरी, सोंठ, बेल की छाल, अरलू की छाल, गंभारी की छाल, पाढ़रि की छाल, अरनी की छाल, कुटकी, इन्द्रजौ और जवासा ये मिलित २ तोले, जल १६ तोले, शेष ४ तोले, इसमें १ मासे छोटी पीपर का चूर्ण और २ मासे मधु मिलाकर पान करे। इस क्वाथ का सेवन करने से वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर द्वन्द्वज ज्वर और बहुत पुराना रात्रिज्वर (रात मे आनेवाला ज्वर) नष्ट होता है ॥ २०३-२०४ ॥

मुस्तादि क्वाथ।

मुस्तामलकगुडूची विश्वौषधकण्टकारिकाक्वाथः। पीतः सकणाचूर्णः समधुर्विषमज्वरं हन्ति ॥ २०५ ॥

नागरमोथा, आँवला, गुरुच, सोंठ और कटेरी कुल मिलाकर २ तोले, पाकार्थ जल ३२ तोले शेष ८ तोले, इसमें २ मासे छोटी पीपर का चूर्ण और २ मासे मधु मिलाकर सेवन करने से विषमज्वर नष्ट होता है ॥ २०५ ॥

बृहद्भार्ग्यादि क्वाथ।

भार्गी पथ्या कटुः कुष्ठं पर्पटं मुस्तकं कणा। अमृता दशमूलं च नागरं क्वाथयेद्भिषक् ॥ २०६ ॥ हन्ति धातुगतं सर्वं बहिःस्थं शीतसंयुतम्। सततायं ज्वरं घोरं मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ २०७ ॥ प्लीहानं यकृतं गुल्मं श्वयथुञ्च विनाशयेत्। एष भार्ग्यादिको नाम सर्वज्वरहरः परः ॥ २०८ ॥

भारंगी, हर्रे, कुटकी, कूट, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, पीपर, गिलोय, सोनापाठा, बेल, गंभारी, पाढरि, अरनी, सरिवन, पिठवन, छोटी कटेरी, गोखुरू, सोंठ ये सब मिलाकर २ तोले, पकाने के लिये जल ३२ तोले, शेष ८ तोले। इस भार्ग्यादि क्वाथ के पान करने से धातुगत सततादि दारुणज्वर, बहिर्वेग और शीतयुक्त ज्वर और आनुषंगिक ज्वर के उपद्रव, मन्दाग्नि, अरुचि, प्लीहा, यकृत, गुल्म और शोथ नष्ट होते हैं ॥ २०६-२०८ ॥

दार्व्यादि क्वाथ।

दार्वीदारुकलिङ्गलोहितलताश्यामाकपाठाशटीशुण्ठ्यागौरकिरातकुञ्जरकणात्रायन्तिकापद्मकैः। वत्सोधान्यकनागराब्दसरलैः शिग्रुम्बुसिंहीशिवाभ्याभीपर्पटदर्भमूलकटुकानन्तामृतापुष्करैः ॥ २०९ ॥

धातुस्थं विषमं त्रिदोषजनितं चैकाहिकं द्व्याहिकं कामैः शोकसमुद्भवं च विविधं यं छर्दियुक्तं नृणाम्। पीतो हन्ति क्षयोद्भवं सततकं चातुर्थकं भूतजं योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितो जीर्णज्वरे दुस्तरे ॥२१०॥

करमैला, पियाबासा, देवदारु, इन्द्रजौ, मजीठ, काली निशोथ, पाढ़ी, कचूर, मोंठ, खस, चिरायता, गजपीपर, आमलासा, पद्माख, सेंहुड, धनिया, सौंठ, नागरमोथा, धूपसरल, सँजना की छाल, सुगन्धवाला, बड़ी कटेरी, हरं, छोटी कटेरी पित्तपापड़ा, कुश की जड़, कुटकी, जवासा, गिलोय और कूट, कुल मिलकर २ तोले, पकाने के लिये जल १६ तोले, शेष ४ तोले। इस क्वाथ का सेवन करने से धातुस्थ विषमज्वर, त्रिदोषज्वर, ऐकाहिकज्वर (प्रतिदिनवाला) द्व्याहिक, कामज और शोकज्वर, वमनसहितज्वर क्षयजन्य-ज्वर, सततज्वर, चातुर्थक, भूतजन्यज्वर तथा दुस्तर जीर्णज्वर ये सब नष्ट होते हैं ॥२०६-२१०

मधुकादि क्वाथ।

मधुकं गुडूची तिक्ता एलापर्पटकं तथा। प्रत्येकं शाणमानेन तिक्ताया-अर्धशाणकम् ॥ २११॥ सार्धतोलकमेवञ्च स्वर्णपत्र्याश्च ग्राहयेत्। मत्स्यण्डिकाया-स्तोलञ्च प्रक्षिप्य पाययेद्भिषक् ॥ २१२॥ वातपित्तज्वरं घोरं नाशयेन्नात्र संशयः। रसायनकृते चापि ज्वरो यश्च न हीयते ॥ २१३ ॥ तं ज्वरं नाशयेदेतद्वृक्ष-मिन्द्राशनिर्यथा ॥ २१४ ॥

मुलहठी, गिलोय, छोटी इलायची, पित्तपापड़ा, हर एक द्रव्य चार मासे, कुटकी २ मासे, सनाय डेढ़ तोले, इनका काढ़ा बनाकर एक तोला खांड डालकर प्रयोग करने से अत्यन्त प्रबल वातपित्तज्वर नाश होता है। जो ज्वर रसायनादि सेवन करने पर नहीं हटता वह इस काढ़े के प्रयोग करने से शीघ्र शान्त हो जाता है जैसे कि इन्द्र के वज्र से वृक्ष नाश हो जाते हैं ॥ २११-२१४ ॥

धान्यकादि क्वाथ।

धान्यकं मधुकं रास्ना पथ्या द्राक्षा मधूरिका। गुडूची पर्पटञ्चैव समभागाश्चकारयेत ॥ २१५ ॥ स्वर्णपत्री सर्वतुल्या ग्राह्या वैद्येन धीमता। पचेदष्टपले तोये पलशेषेऽवतारयेत् ॥ २१६ ॥ मत्स्यण्डिकायास्तोलञ्च प्रक्षिप्य पाययेत्सुधीः। वातपित्तज्वरं घोरं नाशयेन्नात्र संशयः ॥२१७॥

धनिया, मुलहठी, रास्ना, हरड़, द्राक्षा, सौंफ, गिलोय, पित्तपापड़ा सबको मिलाकर वजन एक तोला ले, इनका काढ़ा करके आधा तोला खांड ऊपर से मिलाना चाहिए, इसको सेवन करने से भयंकर वातपित्तज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥ २१५-२१७ ॥

मूलधारणादि प्रयोग।

काकजङ्घा बला श्यामा ब्रह्मदण्डी कृताञ्जलिः। पृश्निपर्ण्यपामार्गस्तथा-भृङ्गराजोऽष्टमः ॥ २१८ ॥ एषामन्यतमं मूलं पुष्येणोद्धृत्य यत्नतः। रक्तसूत्रेण संवेष्ट्य बद्धमैकाहिकं जयेत् ॥ २१९ ॥

काकजंघा, खरैटी, श्यामलता (सारिवा), भारंगी, लज्जावती (छुईमुई), पिठवन, लटजीरा (चिरचिटा) और भृंगराज अर्थात् भँगरैया इनमें से किसी एक वृक्ष का मूल पुष्य नक्षत्र में लाकर लाल सूत में वेष्टित (लपेट) करके हाथ में बांधने से एकाहिक ज्वर शान्त होता है ॥ २१८-२१९ ॥

अपामार्गजटाधारण।

अपामार्गजटा कट्यां लोहितैः सप्ततन्तुभिः। बद्ध्वा वारे रवेस्तूर्णं ज्वरं हन्ति तृतीयकम् ॥ २२० ॥

अपामार्ग अर्थात् लटजीरा (चिरचिटा) के

मूल को सात रञ्ज सूत्र मे लपेटकर रविवार को कटि में बाँधने से तृतीयकज्वर शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ २२० ॥

उलूकपक्षधारण ।

उलूकदक्षिणं पक्षं सितसूत्रेण वेष्टयेत् । बध्नीयाद्वामकर्णे तु हरत्यैकाहिकं ज्वरम् ॥ २२१ ॥

उलूक (उल्लूक, ऊद) चिड़िया का दाहिना पंख श्वेत सूत्र से लपेट कर बायें कान में बाँधने से ऐकाहिक ज्वर नष्ट होता है ॥ २२१ ॥

ऐकाहिक ज्वर में तिलक ।

कर्कटस्य बिलोद्भूतमृदा तत्तिलकं कृतम् । ऐकाहिकं ज्वरं हन्ति नात्र कार्य्या विचारणा ॥ २२२ ॥

केकड़ा के बिल की मिट्टी का शिर में तिलक करने से ऐकाहिक ज्वर शान्त होता है ॥ २२२ ॥

द्व्याहिक ज्वर में अञ्जन ।

कर्णस्य मलजालेन वर्ति कृत्वा प्रयत्नतः । ज्वालयेत्तिलतैलेन कज्जलं ग्राहयेच्छनैः ॥ अञ्जयेन्नेत्रयुगलं द्व्याहिकज्वरशान्तये ॥ २२३ ॥

कान के मलसमूह की वत्ती बनाकर तिल के तेल मे जलावे और उससे काजल पार के नेत्रों में लगावे तो तृतीयकज्वर की शान्ति होती है ॥ २२३ ॥

तर्पण ।

गङ्गाया उत्तरे तीरे अपुत्रस्तापसो मृतः। तस्मै तिलोदकं दद्यान्मुञ्चत्यैकाहिको ज्वरः ॥ २२४ ॥

एतन्मन्त्रेण अश्वत्थपत्रहस्तः प्रतर्पयेत् ।

पीपर का पत्ता हाथ मे लेकर (गङ्गायाः यहाँ से ज्वरः पर्यन्त) ऊपर लिखे मन्त्र को पढ़कर तिलाञ्जलि देने से ऐकाहिक ज्वर शान्त होता है ॥ २२४ ॥

यन्त्र धारण ।

ॐ बाणयुद्धे महाघोरे द्वादशार्कसमप्रभे । जातोऽसौ सुमहावीर्यो मुञ्चत्वैकाहिको ज्वरः । लिखित्वाश्वत्थपत्रे तु बाहौ मन्त्रं प्रधारयेत् ॥ २२५ ॥

पीपर के पत्ता पर (ॐ बाणयुद्धे से ज्वरः पर्यन्त) इस मन्त्र को लिखकर हाथ में बाँधने से ऐकाहिक ज्वर शान्त होता है ॥ २२५ ॥

मन्त्रदर्शन ।

समुद्रस्योत्तरे तीरे द्विविदो नाम वानरः। ऐकाहिकं ज्वरं हन्ति लिखितं यस्तु पश्यति ॥ २२६ ॥

पीपर के पत्ता पर इस मन्त्र को लिखकर दिखाने से ऐकाहिक ज्वर नष्ट होता है ॥ २२६ ॥

चातुर्थिकज्वर में तन्त्रोक्त औषध ।

श्वेतार्ककरवीरस्याश्विन्यां मूलमुद्धरेत् । तण्डुलोदकपानेन पृथक् चातुर्थनाशनम् ॥ २२७ ॥

सफेद आक या सफेद कनेर के मूल को अश्विनी नक्षत्र में उखाड़कर १ रत्ती की मात्रा में लेकर चावल के धोवन में पीसकर पिलाने से चातुर्थिकज्वर शान्त होता है ॥ २२७ ॥

चातुर्थिक में हरिताल ।

शैलूषमण्डलरजः पुरुषानुरूपं शुक्लाङ्गवत्ससुरभीपयसा निपीतम् । आदित्यवारभवपालिदिने नराणां चातुर्थकं हरति कष्टमपि क्षणेन ॥ २२८ ॥

रविवार को पुरुष की शक्ति के अनुसार एक रत्ती से २ रत्ती पर्यन्त शुद्ध हरिताल का चूर्ण श्वेत बछड़ावाली गाय के दूध के साथ पिलाने से चातुर्थिकज्वर तत्काल नष्ट हो जाता है ॥ २२८ ॥

चातुर्थिक में धूप ।

कृष्णाम्बरे दृढबद्धो गुग्गुलुलूक-

पुच्छजः। धूपश्चातुर्थकं हन्ति तमः सूर्य्य इवोदितः ॥ २२९ ॥ कृष्णाम्बरं भृङ्गराजादिकृष्णीकृतवस्त्रम्।

भाँगरा के रस से रँगे हुये वस्त्र मे गूगुल और उल्लू चिड़िया के पङ्ख को बाँधकर रविवार के दिन इसका धूप रोगी को देने से चातुर्थिकज्वर इस प्रकार नष्ट होता है जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार नष्ट हो ॥ ॥ २२९ ॥

चातुर्थिक में नस्य।

शिरीषपुष्पस्वरसो रजनीद्वयसयुतः। नस्यं सर्पिः समायोगाज्ज्वरं चातुर्थिकं जयेत् ॥ २३० ॥

सिरीस के फूल के रस में हलदी का चूर्ण, दारुहलदी का चूर्ण और घृत मिलाकर नस्य देने से चातुर्थिकज्वर नष्ट होता है ॥ २३० ॥

चातुर्थिक में नस्य।

नस्यं चातुर्थिकं हन्ति रसो वागस्त्यपत्रजः ॥ २३१ ॥

अगस्त्य के पत्तों के रस का नस्य देने से भी चातुर्थिकज्वर नष्ट होता है ॥ २३१ ॥

चातुर्थिक में पेया

अम्लोटजसहस्रेण दलेन सुकृतां पिबेत्। पेयां घृतप्लुतां जन्तुश्चातुर्थकहरीं त्र्यहम् ॥ २३२ ॥

चौराई की हजार पत्तियों का दूने चावल के साथ सिद्ध की हुई पेया में घृत मिलाकर तीन दिन पीने से चातुर्थिकज्वर नष्ट होता है ॥ २३२ ॥

आगन्तुक ज्वरचिकित्सा।

कर्म्म साधारणं जह्यात्तृतीयकचतुर्थकौ। आगन्तुरनुबन्धो हि प्रायशो विषमज्वरे ॥ २३४ ॥

भूतानुबन्धिनोस्तृतीयकचतुर्थकयोश्चिकित्सामाह कर्मेत्यादि दैवव्यपाश्रयं बलिमङ्गलहोमादि। युक्तिव्यपाश्रय कषायादि। एतदुभयमपि चिकित्सितं साधारणशब्देनोच्यते। जह्यादिति अन्तर्भूतण्यर्थमिदम् तेन साधारणं कर्म्म चिकित्सितं कर्तृ। तृतीयकचतुर्थकौ कर्म्मरूपौ जह्यात् त्यजयेत् निराकुर्य्यादित्यर्थः। कथमित्याह आगन्तुर्भूतादिः। अत्र विषमज्वरशब्देन तृतीयकचतुर्थकावेव अभिमतौ तृतीयकचतुर्थकशब्देनात्र तद्विपर्ययस्यापि ग्रहणम्। अन्ये तु आगन्तुरनुबन्धोहीत्यादि वचनाद् विषमज्वरमात्र एव दैवव्यपाश्रयं कर्म्म कर्त्तव्यमित्याहुस्तथापि तृतीयकचतुर्थकाविति यदुक्तं तद्विशेषार्थं तेन तृतीयकचतुर्थकयोः प्रायेण भूतानुबन्ध जन्यत्वात् तयोरेव विशेषेण दैवव्यपाश्रयं कर्त्तव्यमिति शिवदासः। तृतीयकचतुर्थकौ प्रायोभूताभिषङ्गजौ भवतस्तस्मात् साधारणं दैवयुक्तिव्यपाश्रयं कर्म्म कर्तृभूतं द्वौ ज्वरौ जह्यात् हन्यादित्यर्थः। दैवं बलिमङ्गलहोमादि। युक्तिः कषायादिः। इति गोपालदासः।

भूतों के आवेश होने से जो तृतीयक और चतुर्थकज्वर आते हैं उनकी चिकित्सा लिखते हैं--

साधारण कर्म अर्थात् बलि, मङ्गल, होमादिरूप दैवी चिकित्सा और कषायादि (क्वाथादि) पानरूप यौक्तिक चिकित्सा द्वारा तृतीयक और चतुर्थकज्वर नष्ट होते हैं। क्योंकि प्रायः विषमज्वर की उत्पत्ति में भूतप्रेतों का सम्बन्ध ही कारण होता है।

इस श्लोक में विषमज्वर शब्द केवल तृतीयक, चतुर्थक और उनके विपर्ययों का ही बोधक है।

शिवदासजी ने इस श्लोक की व्याख्या करने में कहा है कि 'आगन्तुरनुबन्धो हि' इत्यादि उत्तरार्ध में सामान्यतया उल्लेख होने से विषम-

ज्वर प्राय मे बलि, मङ्गल, होम आदि दैवी चिकित्सा करनी चाहिये । पूर्वार्ध मे जो 'तृतीयकचतुर्थकौ' लिखा है उसका तात्पर्य यह है कि तृतीयक और चतुर्थक प्राय भूतादि के सम्बन्ध ही से उत्पन्न होते हैं अत उनमें बलि, मङ्गल, होम आदि दैवी चिकित्सायें विशेषरूप से करनी चाहिये। ऐसा अन्य वैद्यो का मत है। गोपालदासजी कहते हैं कि तृतीयक और चतुर्थक ये दोनों ज्वर प्राय भूत आदि के सबध से ही उत्पन्न होते हैं अतः बलि, मङ्गल, होम आदि दैवी चिकित्सा और कषायादि पानरूप यौक्तिक चिकित्सा, इन दोनों ज्वरों को नष्ट करती है ॥ २३४ ॥

टिप्पणी—विषम ज्वर के तृतीयक चतुर्थक ज्वरो का कारण भूत (प्रेतादि नहीं) रोगोत्पादक-कीटाणु हैं इसलिये इनके उपचार के लिये उन-कीटाणुओं का नाशक तिक्त रसप्रधान औषध ही उत्तम है कहीं २ टोटके भी लाभदायक हो जाते हैं।

सर्वज्वरनाशक योग ।

मूलं जयन्त्याः शिरसि धृतं सर्व्वज्वरापहम् ॥ २३५ ॥

जयन्ती के मूल को शिर में धारण करने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥ २३५ ॥

सर्वज्वरनाशक द्वितीय योग ।

मूलकङ्कशराजस्य कृत्वा तत्सप्तखण्डकम् । आर्द्रकस्य भुञ्जीत सर्वज्वरविनाशनम् ॥ २३६ ॥

भाँगरे के एक मूल के सात टुकड़ करके उसमें से एक टुकड़ा अदरख के रस में पीसकर-पान करने से सब प्रकार के ज्वर शान्त होते हैं ॥ २३६ ॥

रात्रिज्वरनाशक योग ।

काकमाचीभवं मूलं कर्णे बद्धं निशाज्वरम् । निहन्ति नात्र सन्देहो यथा सूर्य्योदये तमः ॥ २३७ ॥

मकोय के मूल को कान में बाँधने से रात्रि-ज्वर निःसंदेह नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से अन्धकार नष्ट होता है ॥ २३७ ॥

सर्वज्वरहर मन्त्र धारण ।

ॐ नमो भगवते छिन्धि छिन्धि अमुकस्य ज्वरस्य शिरः प्रज्वलितपरशुपाणये पुरुषाय फट् । एतन्मन्त्रस्य धारणाज्ज्वरस्सर्वो विनश्यति ॥ २३८ ॥

इस मन्त्र को (ॐ नमो भगवते से पुरुषाय-फट् पर्यन्त) भोजपत्र पर लिखकर धारण करने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥ २३८ ॥

सर्वज्वरहर समन्त्र ताम्बूल ।

ॐ विद्युदानन हं फट् स्वाहा । एतन्मन्त्रं ताम्बूलीपत्रे चूर्णलिप्ते लिखित्वा तत्पत्रं सम्भक्ष्य भक्षयित्वा दिनत्रयाभ्यन्तरे ज्वरशान्तिर्भवति ॥ २३९ ॥

पान के पत्ते पर चूना पोतकर उस पर "ॐ विद्युदानन हुं फट् स्वाहा" इस मन्त्र को-लिखकर उस पान को खावे। ऐसा तीन दिन करने से सब प्रकार के ज्वर शान्त होते हैं ॥ २३९ ॥

सब प्रकार के ज्वर में पूजा ।

सोमं सानुचरन्देवं समातृगणमीश्वरम् । पूजयन् प्रयतश्शीघ्रं मुच्यते विषमज्वरात् ॥ २४० ॥

अनुचरों के सहित सोमदेव और मातृगण-सहित शिव की पूजा करने से सब प्रकार के ज्वर शीघ्र विनष्ट होते हैं ॥ २४० ॥

सब ज्वरों में विष्णुसहस्रनाम ।

विष्णुं सहस्रमूर्द्धानं चराचरपतिं विभुम् । स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान्सर्वान् व्यपोहति ॥ २४१ ॥

सहस्र[1] शिरवाले, चराचर के स्वामी, सर्व-व्यापक विष्णु भगवान् की सहस्र नाम से स्तुति करने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥ २४१ ॥

सर्वज्वरों में देवता और गुरु आदि की पूजा।

ब्रह्माणमश्विनाविन्द्रं हुतभक्षं हिमाचलम् । गङ्गां मरुद्गणांश्चेष्टान् पूजयञ्जयति ज्वरम् ॥ २४२ ॥ भक्त्या मातुः पितुश्चैव गुरूणां पूजनेन च ॥ २४३ ॥

ब्रह्मा, अश्विनीकुमार, इन्द्र, अग्नि, हिमाचल, गंगा, देवगण, इष्टदेव, माता, पिता और गुरुजन की भक्तिपूर्वक पूजा करने से सब प्रकार के ज्वर शान्त होते हैं ॥ २४२-२४३ ॥

सब ज्वरों में नियम ।

ब्रह्मचर्येण तपसा पुराणश्रवणेन च । जपहोमप्रदानेन सत्येन नियमेन च ॥ ज्वराद्विमुच्यते शीघ्रं साधूनान्दर्शनेन च ॥ २४४ ॥

ब्रह्मचर्य का पालन करने से, तपस्या करने से, पुराण सुनने से, जप, होम और दान करने से, सत्य बोलने से, नियमपूर्वक रहने से और साधुओं का दर्शन करने से मनुष्य शीघ्र ज्वर-मुक्त हो जाता है ॥ २४४ ॥

अष्टांग धूप ।

पलङ्कषा निम्बपत्रं वचा कुष्ठं हरीतकी । सयवाः सर्षपाः सर्पिर्धूपनं ज्वरनाशनम् ॥ २४५ ॥

गूगुल, नीम के पत्ते, वच, कूट, हर्र, जौ, सरसों और घृत इनका धूप देने से ज्वर नष्ट होता है ॥ २४५ ॥

अपराजित धूप ।

पुरध्यामवचासर्जनिम्बार्कागुरुदारुभिः। सर्वज्वरहरो धूपः कार्य्योऽयमपराजितः ॥ २४६ ॥

गूगुल, गन्धतृण, बच, राल, नीम के पत्ते, आक के पत्त, अगर और देवदारु इनका धूप देने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥ २४६ ॥

माहेश्वर धूप ।

हिंगुलं देवकाष्ठं च श्रीवेष्टं घृतमेव च । गव्यास्थीनि तथाध्यामं निम्मील्यं कटुरोहिणी ॥ २४७ ॥ सर्षपं निम्बपत्राणि पिच्छाहिकञ्चुकं तथा । मार्जारविष्ठा गोशृङ्गं मदनस्य फलानि च ॥ २४८ ॥ द्वे बृहत्यौ वचा चैव कार्पासास्थितुषास्तथा । छागगोमायुविट् चैव हस्तिदन्तस्तथैव च ॥ २४९ ॥ एतत् सर्वं समाहृत्य छागमूत्रेण भावयेत् । उलूखले तु संकुट्य स्थापयेन्मृण्मये शुभे ॥ २५० ॥ घ्राणमात्रेण धूपोऽयं दीयते यत्र वेश्मनि । न तत्र सर्पास्तिष्ठन्ति न पिशाचा न राक्षसाः२५१ एष माहेश्वरो धूपः सर्वज्वरविनाशनः । ऐकाहिकं द्व्याहिकं च त्र्याहिकं च चतुर्थकम् ॥ एवमादीञ्ज्वरान् सर्वान् नाशयेन्नात्र संशयः ॥ २५२ ॥

ॐ नमो भगवते रुद्राय उमापतये सम्पन्नाय । नन्दिकेश्वराय इति मन्त्रेणाभिमन्त्रयेत् ॥

हिंगुल, देवदारु, सरल का गोंद, घृत, गाय की हड्डी, गन्धतृण, बिल्वपत्र, कुटकी, सरसों, नीम के पत्ते, मयूर का पंख, सांप की कांचली, बिल्ली की विष्ठा, गाय की सींग, मैनफल, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, बच, बिनौले, धान की भूसी, बकरी और सियार का विष्ठा और हाथी का दांत इन सब वस्तुओं को एकत्र करके ओखली में कूटकर बकरी के मूत्र की भावना देकर मिट्टी के पात्र में रख लेवे । यह धूप जिस घर में दिया जाता है उस घर से धूप का गन्ध पाते ही साँप पिशाच, और राक्षस भाग जाते हैं । यह माहेश्वर

1 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' इति यजुर्वेदप्रोक्तमात् ।

धूप ऐकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक और चातुर्थिक आदि सब प्रकार के ज्वरों को निःसंदेह नष्ट करता है। 'ॐ नमो भगवते रुद्राय उमापतये सप्रनाय नन्दिकेश्वराय' इस मन्त्र को पढ़कर इस धूप को देना चाहिये ॥ २४१ २५२ ॥

टिप्पणी—यह धूप रोगोत्पादक कीटाणु नाशक वायु शोधक है।

ज्वर में घृतपान व्यवस्था।

ज्वरः कषायैर्वमनैर्लङ्घनैर्लघुभोजनैः। रूक्षस्य येन शाम्यन्ति सर्पिस्तेषां भिषग्जितम् ॥ २५३ ॥

क्वाथ, वमन, उपवास और लघुभोजन इनसे यदि ज्वर शान्त न हो और शरीर में रूक्षता हो तो रोगी के लिये घृतपान की व्यवस्था करे ॥२५३॥

टिप्पणी—घृतपान बलवान रोगी के लिए है सबको नहीं और घृतशुद्ध विश्वास करा लेना चाहिए आजकल शुद्ध घी मिलना कठिन हो रहा है।

घृतपान के लिये निषिद्धकाल।

निर्दशाहमपि ज्ञात्वा कफोत्तरमलङ्घितम्। न सर्पिः पाययेत्प्राज्ञः शमनैस्तमपाचरेत् ॥ २५४ ॥ यावल्लघुत्वमशनं दद्यान्मांसरसेन तु। बलं ह्यलं निग्रहाय दोषाणां बलकृच्च तत् ॥ २५५ ॥

चरक में यद्यपि दस दिन के पश्चात् ज्वर में घृतपान की व्यवस्था की है तथापि यदि दस दिन के पश्चात् भी कफ की प्रबलता हो और यथोचित लङ्घन भी न हुआ हो तो चतुर वैद्य उस रोगी को घृत न पिलावे, किन्तु शमन-औषधियों से उसकी चिकित्सा करे। ज्वर की लघुतापर्यन्त (ज्वर के हलके होने पर) मांसरस के साथ भोजन देवे। कारण यह कि मांस रसयुक्त बलवर्धक होता है। बलवृद्धि से ही दुष्ट वातादि दोषों का निग्रह होता है ॥२५४-२५५॥

ज्वर में पथ्य मांस।

मांसार्थमेणलावादीन् युक्त्या दद्याद्विचक्षणः। कुक्कुटांश्च मयूरांश्च तित्तिरिक्रौञ्चवर्त्तकान् ॥ २५६ ॥ गुरूष्णत्वान्न शंसन्ति ज्वरे केचिच्चिकित्सकाः। लङ्घनेनानिलबलं ज्वरे यद्यधिकम्भवेत् ॥ भिषङ्मात्राविकल्पज्ञो दद्यात्तानपि कालवित् ॥ २५७ ॥

एण अर्थात् मृगविशेष और लावा आदि पक्षियों का मांस विचार कर ज्वर में देवे। मुर्गा, मयूर, तित्तिर, बक और बटेर का मांस गुरुपाक और उष्ण होता है अतः कोई कोई वैद्य ज्वर में इनके मांस की अनुमति नहीं देते परन्तु यदि लङ्घन द्वारा ज्वर में वायु का बल अधिक हो गया हो तो मात्रा की कल्पना में चतुर चिकित्सक को समय का विचार करके इन सबके मांस की भी व्यवस्था करनी चाहिये ॥ २५६-२५७ ॥

अथ स्नेहपाकस्य साधारणो विधिः।

स्नेहपाक विधि।

प्रथमे मूर्च्छनं स्नेहे क्वाथो देयो द्वितीयके। कल्कद्रव्यं तृतीये च गन्धद्रव्यं तथापरे ॥ २५८ ॥ क्रमेण विधिवत् पाच्यं मन्दमन्दाग्निना भिषक्। निर्मलं निर्जलं तैलं तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ २५९ ॥

स्नेह (घी, तेल आदि) के पाक करने में सबसे पहले इनको मूर्च्छन (औटाकर शुद्ध) करना चाहिए। ऐसा करने से इनका आमदोष दूर हो जाता है और स्वच्छ तथा सुगन्ध युक्त हो जाता है। इसके पश्चात् क्वाथ आदि द्रव्यों से पकाना चाहिए। इसके बाद कल्क द्रव्यों को उसमें डाल देना चाहिए। अन्त में गन्धपाक करना चाहिए। मन्द-मन्द अग्नि से स्नेहपाक करना चाहिए। पकाते-पकाते जब तेल में से पानी जल जाये और वह निर्मल हो जाय उस समय पाकविधि पूरी हुई जानिये ॥ २५८-२५९ ॥

क्वाथ्यादि द्रव्यों का परिमाण।

अनिर्दिष्टप्रमाणानां स्नेहानां प्रस्थ इष्यते। अनुक्ते क्वाथ्यमाने तु पात्रमेकं प्रशस्यते॥ २६०॥ क्वाथ्याच्चतुर्गुणं वारि पादस्थं स्याच्चतुर्गुणम्। स्नेहात् स्नेहसमं क्षीरं कल्कस्तु स्नेहपादिकः। चतुर्गुणं त्वष्टगुणं द्रव्यद्वैगुण्यतो भवेत्॥ २६१॥ पञ्चप्रभृति यत्र स्युर्द्रवाणि स्नेहसंविधौ। तत्र स्नेहसमान्याहुरर्वाक् च स्याच्चतुर्गुणम्। २६२॥

जहाँ स्नेह अर्थात् घृत या तेल का परिमाण निर्दिष्ट न हो वहां स्नेह एक प्रस्थ (१२८ तोला) लेना चाहिए। क्वाथद्रव्यों का परिमाण निर्दिष्ट न हो तो एकपात्र (३ सेर १६ तोला) लेवे। क्वाथद्रव्यों को चतुर्गुण जल में पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर उतार कर छान लेवे। यह क्वाथ जितना हो उसका चतुर्थांश स्नेह (घृत या तैल) होना चाहिये। दुग्ध स्नेह के बराबर और कल्क स्नेह का चतुर्थांश होना चाहिए। कोमल और कठिन भेद से द्रव्य दो प्रकार के होते हैं। अतएव कोमल द्रव्यों को चतुर्गुण जल में, कठिन द्रव्यों को अष्टगुण जल में और अत्यन्त कठिन द्रव्यों को षोडश गुण जल में पकाकर चतुर्थांश अवशिष्ट रक्खे। जिस स्नेह पाक में द्रव पदार्थ पांच या पाँच से अधिक हों वहाँ कुल द्रवपदार्थों के परिमाण स्नेह के समान होते हैं। और जिस स्नेहपाक में द्रवपदार्थ पांच से न्यून हों उसमें प्रत्येक द्रवपदार्थ को स्नेह से चौगुना लेना चाहिये [1]॥ २६०-२६२॥

स्नेहादिपाक का काल।

घृततैलगुडादींश्च नैकाहादवतारयेत्। व्युषितास्तु प्रकुर्वन्ति विशेषेण गुणान् यतः॥ २६३॥

घृत, तैल और गुड आदि का पाक एक ही दिन में समाप्त करे। कारण यह कि अधिक दिनों में सिद्ध किये हुये घृत तैलादि विशेष गुण करते हैं॥ २६३॥

पाक की सिद्धि का लक्षण।

स्नेहकल्को यदाङ्गुल्या वर्तितो वर्तिवद्भवेत्। वह्नौ क्षिप्ते च नो शब्दस्तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत्॥ २६४॥ शब्दव्युपरमे जाते फेनस्योपरमे तथा। गन्धवर्णरसादीनां सम्पत्तौ सिद्धिमादिशेत्॥२६५॥

स्नेहपक्व कल्क यदि अँगुली से वटने पर बत्ती के समान हो जावे और आग में डालने पर शब्द न करे तो जान लेना कि पाक सिद्ध हो गया। शब्द का होना और फेन का निकलना बन्द हो जावे। तथा गन्ध, वर्ण और रस उत्तम हो जाय तो जानना चाहिये कि पाक सिद्ध हो गया॥ २६४ २६५॥

तिलतैल मूर्च्छा।

कृत्वा तैलं कटाहे दृढतरविमले मन्दमन्दानलैस्तत् तैलं निष्फेनभावं गतमिहहि यदा शैत्यभावं समेत्य। मंजिष्ठारात्रिलोध्रैर्जलधरनलिकैः सामलैः साक्षपथ्यैः सूचीपुष्पाङ्घ्रिनीरैरुपहितमथितैर्गन्धयोगं जहाति॥ २६६॥ तैलस्येन्दुकलांशिकेन नितरां ग्राह्या तु मूर्च्छाविधौ ये चान्ये त्रिफलापयोदरजनीह्रीबेरलोध्रान्विता। सूचीपुष्पवटावरोहनलिकास्तत्स्याथ पादांशिका दुर्गन्धं विनिहन्ति तैलमरुणं सौरभ्यमाकुर्वते॥ २६७॥

तिल के तेल को दृढ कड़ाह में मन्द-मन्द आँच से पकावे। जब तेल फेनरहित हो जाय, तब उतारे। कुछ ठंढा हो जाने पर पिसी हुई

[1] क्वाथ और दुग्ध आदि प्रत्येक द्रव्य के साथ स्नेह का अलग अलग पाक करना चाहिए। पश्चात् कल्क के साथ पाक करे। कल्क के साथ पाक करने के समय स्नेह से चतुर्गुण जल डाले। अन्त में गन्धपाक करे। गन्धपाक के समय भी स्नेह से चतुर्गुण जल डालना चाहिये।

हल्दी को जल में घोलकर तैल मे मिलावे। फिर पिसी मजीठ को भी जल में घोलकर तैल में मिलावे। पश्चात् लोध, नागरमोथा, नाडीशाक (करेम), आँवला, बहेडा, हरड़, केवड़ा का फूल, बरोह और सुगन्धवाला के चूर्ण को पानी मे घोलकर तेल मे मिलावे। तैल से चतुर्गुण जल मिलाकर फिर पकावे, कुछ जल शेष रहते ही उतार ले और कुछ दिनों तक वैसे रक्खा रहने दे। मूर्च्छा के लिये जो मजीठ, त्रिफला, नागरमोथा, हल्दी, सुगन्धवाला, लोध, केवड़ा का फूल, बराह और नाडीशाक आदि कहे गये हैं, इनका परिमाण यह है कि तैल का षोडशांश मजीठ और मजीठ का चतुर्थांश शेष द्रव्यों को डाले। इस प्रकार मूर्च्छा करने से तैल की दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है। सुगन्ध तथा सुन्दरता आ जाती हैं और तैल रङ्गवर्ण हो जाता है[1] ॥ २६६-२६७ ॥

कटुतैल मूर्च्छा ।

वयःस्था रजनी मुस्ता बिल्वदाडिमकेशरैः। कृष्णजीरकह्रीवेरनलिकै सबिभीतकैः ॥ २६८ ॥ एतैस्समांशैः प्रस्थे च कर्षमात्रं प्रयोजयेत्। अरुणाद्विपलं तत्र तोयं चाढकसम्मितम्। कटुतैलं पचेत्तेन आमदोपहरं परम् ॥ २६९ ॥

आँवला, हल्दी, नागरमोथा, बेलगिरी, अनार नागकेसर, कालाजीरा, सुगन्धवाला, नाडीशाक और बहेडा ये मूर्च्छा के द्रव्य हैं। १२८ तोला कडुए तैल में पहिले दो पल (८ तोले) मजीठ देना। पश्चात् पूर्वोक्त मूर्च्छाद्रव्य एक एक तोला डालना। आठ सेर जल डालकर पकावे। यह तैल आमदोषों को नष्ट करता है ॥ २६८-२६९ ॥

एरण्डतैल मूर्च्छा ।

विकसामुस्तकं धान्यं त्रिफला वैजयन्तिका। ह्रीवेरनलखर्जूरवटशुंगा निशायुगम् ॥ २७० ॥ नलिकाभेषजं देयं केतकी च समं समम्। प्रस्थे देयं शाणमित मूर्च्छने दधिकाञ्जिकम् ॥ २७१ ॥

मजीठ नागरमोथा, धनिया, हर्रे, बहेडा, आँवला, जयन्तीपत्र, सुगन्धवाला, बनखजूर, बरोह, हल्दी, दारुहल्दी नाडीशाक सोंठ, केवड़ा का फूल, दही और काजी ये मूर्च्छाद्रव्य हैं। १२८ तोले एरण्ड के तेल में चार चार मासे प्रत्येक मूर्च्छाद्रव्य डालकर पूर्ववत् मूर्च्छित करे ॥ २७०-२७१ ॥

अथ घृत मूर्च्छा ।

पथ्याधात्रीबिभीतैर्जलधररजनीमातुलुङ्गद्रवैश्च द्रव्यैरेतैः समस्तैः पलकपरिमितैर्मन्दमन्दानलेन। आज्यप्रस्थं विफेनं परिचपलगतं मूर्छयेद्वैद्यराजस्तस्मादामोपदोषं हरति च सकलं वीर्यवत्सौख्यदायि ॥ २७२ ॥

हरड, आँवला, बहेडा, नागरमोथा, हल्दी और बड़े नींबू का रस ये घृत के मूर्च्छाद्रव्य हैं। पहिले घृत को आग पर गरम करे, जब वह फेनरहित हो जाय तब आँच से उतारकर शीतल करे। तदनन्तर पहिले हल्दी फिर नींबू का रस तत्पश्चात् अन्य सब मूर्च्छाद्रव्यों को डाले। १२८ तोला घृत मे प्रत्येक मूर्च्छाद्रव्य ४ तोले डाले। आठ सेर जल डालकर मन्द २ आँच से फिर पकावे। इस प्रकार मूर्च्छित किया हुआ घृत सब प्रकार के आम दोषों का नाशक, बलवर्धक और सुखदायक होता है ॥ २७२ ॥

पिप्पल्याद्यघृत ।

पिप्पल्यश्चन्दनं मुस्तमुशीरं कटुरोहिणी। कलिङ्गकास्तामलकीशारिवातिविषा स्थिरा ॥ २७३ ॥ द्राक्षामलकबिल्वानि त्रायमाणा निदिग्धिका सिद्धमेतद्घृतं सद्यो ज्वरं जीर्णमपोहति ॥ २७४॥

---

[1] मूर्च्छा के पश्चात् जब क्वाथादि के साथ तैल पाक करना हो तो मूर्च्छा के द्रव्यों को छान कर अलग कर दे।

क्षयं श्वासं च हिक्कां च शिरःशूलमरोचकम्। अङ्गाभितापमग्निं च विषमं सन्नियच्छति ॥ २७५ ॥ पिप्पल्याद्यमिदं क्वापि तन्त्रे क्षीरेण पच्यते। यत्राधिकरणे नोक्तिर्गणे स्यात्स्नेहसंविधौ ॥ २७६ ॥ तत्रैव कल्कनिर्यूहाविष्येते स्नेहवेदिना। एतद्वाक्यबलेनैव कल्कसाध्यपरं घृतम्२७७

पीपरि, रक्तचन्दन, नागरमोथा, खस, कुटकी, इन्द्रजौ, भूँई आँवला, अनन्तमूल, अतीस, शालपर्णी, मुनक्का, आँवला, बेल की छाल, त्रायमाण और कटेरी दो दो तोले, गौ का घृत १२८ तोले, पाक के लिये जल ६ सेर ३२ तोला, दूध ६ सेर ३२ तोला इन सबको एकत्र कर यथाविधि पाक करे। पीपरि आदि ऊपर लिखे द्रव्यों का कल्क बनाकर डालना चाहिये। इस प्रकार सिद्ध हुआ घृत जीर्णज्वर को तत्काल नष्ट करता है। क्षय, श्वास, हिचकी, शिरःशूल, अरोचक, अङ्गाभिताप और अग्निवैषम्य को भी नष्ट करता है। किसी तन्त्र में पिप्पल्याद्य घृत सिद्ध करने में दुग्ध देने का भी विधान है। जहाँ स्नेहपाक में विशेषतया उल्लेख न हो वहाँ कहे हुए द्रव्यों का कल्क या क्वाथ डालना इष्ट है। अतः इस घृत में निर्दिष्ट द्रव्यों का कल्क छोड़ना चाहिये ॥ २७३-२७७ ॥

जल आदि का प्रमाण।

जलस्नेहौषधानां च प्रमाणं यत्र नेरितम्। तत्र स्यादौषधात् स्नेहः स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम् ॥ २७८ ॥

जल, स्नेह[1] और औषधियों का जहाँ प्रमाण उल्लिखित न हो वहाँ औषधियों की समष्टि (सब औषध मिलाकर) से स्नेह चतुर्गुण और स्नेह से जल चतुर्गुण लेवे ॥ २७८ ॥

स्वरसक्षीरमाद्यन्यैः पाको यत्रेरितः क्वचित्। जलं चतुर्गुणं तत्र वीर्याधानार्थमावपेत् ॥ २७९ ॥ न मुञ्चति रसं द्रव्यं क्षीरादिभिरुपस्कृतम्। सम्यक् पाको न जायेत तस्मात्तोयं चतुर्गुणम् ॥ २८० ॥

स्वरस, दूध अथवा दही आदि से स्नेह (घी तेल आदि) पकाना हो तो उसमें चौगुना पानी डाल देना चाहिये, क्योंकि दूध दही आदि के गाढ़ा होने से पाक अच्छा नहीं होता है ॥ २७९-२८० ॥

द्रवकार्येऽप्यनुक्ते च सर्वत्र सलिलं मतम् ॥ २८१ ॥

जहाँ द्रव द्रव्यों का उल्लेख न हो वहाँ सर्वत्र जल लेना चाहिये ॥२८१ ॥

स्नेहपाक में कालनिर्णय।

क्षीरे द्विरात्रं स्वरसे त्रिरात्रं तक्रारनालादिषु पञ्चरात्रम्। स्नेहंपचेद्वैद्यवरः प्रयत्नादित्याहुरेके भिषजः प्रवीणाः ॥२८३॥ द्वादशाहन्तु मूलानां वल्लीनां क्रममेव च। एकाहं व्रीहिमांसानां पाकं कुर्याद्विचक्षणः ॥ २८४ ॥

घी, तैल तथा गुड़ आदिकों को बहुत दिन तक पाक करने से अधिक गुण सम्पन्न होते हैं। एक दिन में ये सिद्ध नहीं होते, दूध में दो दिन, स्वरस में तीन दिन, मट्ठा तथा कांजी आदि से पांच दिन, जड़, छाल तथा लता आदि के काढ़े से बारह दिन, व्रीहि आदि धान्य तथा मांस के काढ़े में उसी दिन पाक करना चाहिए ॥२८३-२८४॥

पाकपरीक्षा।

स्नेहकल्को यदाङ्गुल्या वर्तितो वर्तिवद्भवेत्। वह्नौ क्षिप्ते च नो शब्दस्तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ २८५ ॥ शब्दस्योपशमे प्राप्ते फेनस्योपशमे तथा। गन्धवर्णरसादीनां निष्पत्तौ सिद्धिमादिशेत् ॥ फेनोऽतिमात्रं तैलस्य शेषंघृतस्यादिशेत् ॥ २८६ ॥

स्नेहसिद्ध कल्क जब अँगुलियों से बत्ती के समान हो जाय, आग में डालने से कोई

1 घृत या तैल।

शब्द न हो तथा पकते हुए घृत में भी शब्द न हो, झाग न उठे तथा विशिष्ट प्रकार गन्धवर्ण एवम् रससे युक्त प्रतीत हो तब समझना चाहिये कि घृत सिद्ध हो गया है किन्तु तैल में सिद्ध होते समय अत्यन्त फेन उठता है, शेष चिह्न घृत के समान हैं ॥ २८५-२८६ ॥

क्षीरषट्पलक घृत।

पञ्चकोलैः ससिन्धूत्थैः पलिकैः पयसा समम्। सर्पिःप्रस्थंभृतलप्लीहविषमज्वरगुल्मनुत् ॥ २८७ ॥ अत्र द्रवान्तरेऽनुक्ते क्षीरमेव चतुर्गुणम्। द्रवान्तरेण योगे हि क्षीरं स्नेहसमं भवेत् ॥ २८८ ॥

मूर्च्छित गोघृत १२८ तोले, दूध ६ सेर ३२ तोला, जल २४ सेर ४८ तोला, कल्क के लिये द्रव्य-पीपरि, पीपरामूल, चव्य, चीता का मूल, सोंठ और सेंधा नमक प्रत्येक ४ तोले, पाकार्थ जल १ सेर ३२ तोला यथाविधि पाक करे। मात्रा आधा तोला से १ तोला पर्यन्त। इस घृत का सेवन करने से प्लीहा, विषमज्वर और गुल्म रोग नष्ट होते हैं ॥ २८७-२८८ ॥

दशमूलषट्पलक घृत।

दशमूलीरसे सर्पिः सक्षीरे पञ्चकोलकैः। सक्षारैर्हन्ति तत् सिद्धं ज्वरकासाग्निमन्दताः। वातपित्तकफव्याधीन् प्लीहानञ्चापि पाण्डुताम् ॥ २८९ ॥

दशमूल ३ सेर १६ तोला लेकर २४ सेर जल में पकाना, ६ सेर ३२ तोला शेष रहने पर उतारकर छान लेना और पश्चात् उस क्वाथ के साथ १२८ तोले मूर्च्छित घृत का पाक करना चाहिये, तत्पश्चात् १२८ तोला दूध के साथ घृत का पाक करना, तदनन्तर नीचे लिखे औषधों के कल्क के साथ पाक करे, कल्क के सम्यक् परिपाक होने के लिये ६ सेर ३२ तोला जल छोड़ना चाहिये। कल्कद्रव्य जैसे—पीपर, पिपरामूल, चव्य, चीता, सोंठ और यवक्षार इनमें प्रत्येक द्रव्य चार-चार तोले लेकर कल्क बनाना चाहिये। इस घृत की मात्रा आधा तोला से १ तोला तक है। इसका सेवन करने से ज्वर, कास, अग्निमान्द्य, वात, पित्त और कफ के रोग, प्लीहा और पाण्डु रोग नष्ट होते हैं ॥ २८९ ॥

स्नेहसाधन में क्वाथादिकों का परिमाण।

क्वाथ्याच्चतुर्गुणं वारि पादस्थं स्याच्चतुर्गुणम्। स्नेहात्स्नेहसमं क्षीरं कल्कस्तु स्नेहपादिकः ॥ चतुर्गुणं त्वष्टगुणं द्रवं चैगुण्यतो भवेत् ॥ २९० ॥

स्नेह सिद्ध करने के लिये क्वाथ करने के द्रव्य में उनसे अठगुना जल डालकर चौगुना रह जाय तब तक उबाले। यह क्वाथ से चौगुना स्नेह के बराबर दूध तथा स्नेह का चौथाई भाग कल्क द्रव्य डालना चाहिये ॥ २९० ॥

पञ्चप्रभृति यत्र स्युर्द्रवाणि स्नेहसंविधौ। तत्र स्नेहसमान्याहुरर्वाक् च स्याच्चतुर्गुणम् ॥ २९१ ॥

स्नेहपाक में जब पाँच या पाँच से अधिक पतले पदार्थ हों तो वह प्रत्येक पतला पदार्थ स्नेह के बराबर लेना चाहिये। और यदि पतले पदार्थ पाँच से कम हों तो मिले हुए पतले पदार्थ स्नेह से चौगुने लेने चाहिये। अर्थात् सब पतली चीजें मिलकर स्नेह से चौगुनी हों ॥ २९१ ॥

अथ तैलप्रकरणम्।

अभ्यङ्गांश्च प्रदेहांश्च सस्नेहान् सावगाहनान्। विभज्य शीतोष्णकृतान् दद्याज्जीर्णज्वरे भिषक् ॥ २९२ ॥ तैराशु प्रशमं याति बहिर्मार्गगतो ज्वरः। लभन्ते सुखमङ्गानि बलं वर्णश्च जायते ॥ २९३ ॥

जीर्णज्वर में तैलादि मर्दन, प्रलेप, स्नेहपान और स्नानादि के लिये अवस्थाविशेष का विचार करके उष्ण अथवा शीतल जलादि की व्यवस्था करनी चाहिये। अभ्यङ्गादि करने से बाहरी मार्ग में स्थित हुआ ज्वर शीघ्र नष्ट होता है। शरीर

में सुख बल और कान्ति की प्राप्ति होती है ॥ २६२-२६३ ॥

महा अङ्गारक तैल।

शुष्कमूलक वर्षा भूदारु रास्नामहौषधैः मूर्वा लाक्षा हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा सेन्द्रवारुणी। बृहती सैन्धवं कुष्ठं रास्ना मांसी शतावरी ॥ २६४ ॥ आरनालाढकेनैव तैलप्रस्थं विपाचयेत्। तैलमंगारकं नाम सर्वज्वरविनाशनम् ॥ २६५ ॥

सूखी मूली, सोंठी, देवदारु, रास्ना, सोंठ, मूर्वा (मरोरफली), लाख, हल्दी, दारुहल्दी, मजीठ, इन्द्रायण का मूल, कटेरी, सेंधानोन, कूट, रास्ना, जटामासी, शतावरि इन कुल द्रव्यों का कल्क ३२ तोला, कांजी ६ सेर ३२ तोला, मूर्छित काले तिल का तैल १२८ तोला, कल्क-परिपाक के लिये जल ६ सेर ३२ तोला इन सबको एकत्रित करके पाक करना चाहिये। पाक सिद्ध हो जाने पर तैल छानकर उसमें १ तोला कपूर, १ तोला शिलारस, १ तोला नखी मिलाकर रखना। इस तैल के मर्दन से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥ २६४-२६५ ॥

महालाक्षादि तैल।

लाक्षारसाढके प्रस्थं तैलस्य विपचेद्भिषक्। मस्त्वाढकसमायुक्तं पिष्ट्वा चात्र समावपेत् ॥ २६६ ॥ शतपुष्पां हरिद्राश्च मूर्वां कुष्ठं हरेणुकम्। कटुकां मधुकं रास्नामश्वगन्धाश्च दारु च ॥ २६७ ॥ मुस्तकं चन्दनञ्चैव पृथगक्षसमानकैः। द्रव्यैरेतैस्तु नस्सिद्धमभ्यङ्गान्मारुतापहम् ॥ २६८ ॥ विषमाख्यान ज्वरान् सर्वान् आश्वेव प्रशमं नयेत्। कास श्वासं प्रतिश्यायं कण्डूदौर्गन्ध्यगौरवम् ॥२६९॥ त्रिकपृष्ठकटीशूलं गात्राणां स्फुटनं तथा। पापालक्ष्मीप्रशमनं सर्वग्रहविनाशनम् ॥ ३०० ॥ अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं तैलं लाक्षादिकं महत्। लाक्षायाः षड्गुणं तोयं दत्त्वैकविंशवारकम् ॥ परिस्राव्य जलं ग्राह्यं किंवा क्वाथं यथोदितम् ॥ ३०१ ॥

"शुष्कद्रव्यमुपादाय स्वरसानामसम्भवे। वारिण्यष्टगुणे साध्यं ग्राह्यं पादावशेषितम्" ॥ इति वचनात् ॥

मूर्छित काले तिल का तैल १२८ तोला, पीपर की लाख का क्वाथ ६ सेर ३२ तोला, दही का पानी ६ सेर ३२ तोला, कल्क के लिये सोवा, हल्दी, मूर्वा का मूल, कूट, रेणुका (सम्हालू के बीज), कुटकी, मुलेठी, रास्ना, असगन्ध, देवदारु, नागरमोथा और लालचंदन प्रत्येक १ तोला लेना। सबको एकत्रित करके यथाविधि पाक करना। पाक सिद्ध होने पर छानकर उसमें कपूर २ तोला, छड़ीला २ तोले और नखी २ तोले मिलाकर बोतल आदि किसी पात्र में रखकर पात्र का मुख बंद रक्खे। इस तैल का मर्दन करने से वात रोग, सब प्रकार के विषमज्वर, कास, श्वास, प्रतिश्याय (जुखाम), खुजली, स्वेद (पसीना) की दुर्गन्धि, शरीर का भार बोध, त्रिक, पृष्ठ और कटि की वेदना, शरीर का टूटना, पाप, कान्तिक्षीणता आदि नाना प्रकार के रोग नष्ट होते हैं। इस महालाक्षादि तैल का अश्विनीकुमारों ने आविष्कार किया था। लाख को कूटकर छगुने पानी में इक्कीस बार शीलायन्त्र में गिरावे तदनन्तर उसी जल को लाख के स्थान में तैल पाक के लिये ग्रहण करना चाहिये और बचे हुये लाख को त्याग दे अथवा लाख को अठगुने पानी में पकाकर चतुर्थांश शेष क्वाथ का तैलपाक के लिये उपयोग करना चाहिये ॥ २६६-३०१ ॥

बृहत्कट्वर तैल।

शुक्तारनालदधिमस्तुतक्रैः
फलाम्बुभागेन समं हि तैलम्।

कृष्णादिकल्कैर्मृदुर्वाह्निसिद्ध-
मभ्यञ्जनं वातकफज्वराणाम् ॥३०२॥
ऐकाहिकद्वित्रिचतुर्थकानां
मासार्द्धमासद्वयमासिकानाम् ।
निवारणं तद्विषमज्वराणां
तैलन्तु षड्कट्वरकंमहत् स्यात् ॥३०३॥

कृष्णादिगणो यथा ।

कृष्णा चित्रकषड्ग्रन्था वासकं विकसा धनम् । ग्रन्थिकैले चातिविषा रेणुकञ्च कटुत्रयम् ॥ ३०४ ॥ यमानी गोस्तनी व्याघ्री भूनिम्बबिल्वचन्दनम् । भार्गी श्यामा शिवा धात्री स्थिरा मूर्वा सजीरका ॥ ३०५ ॥ सर्षपं हिंगु कटुकी विडङ्गञ्च समांशकम् । एष कृष्णादिको नाम गणो ज्वरविनाशनः ॥ ३०६ ॥

मूर्च्छित तिल तैल २ सेर, शुक्त २ सेर, काँजी २ सेर दही का पानी २ सेर, तक्र[1] २ सेर, बिजौरे नींबू का रस २ सेर, कल्क के लिये कृष्णादिगण । जैसे—छोटी पीपर, चीता की जड़, वच, अरूसे का मूल, मजीठ, नागरमोथा, पिपरामूल, छोटी इलायची, अतीस, सम्हालू के बीज, सोंठ, पीपरि, कालीमिरच, अजवाइन, मुनक्का, कटेरी, चिरायता, बेल की छाल, लाल चन्दन, भारंगी, अनन्तमूल, हर्रा, आमला, शालपर्णी (सरिवन), मुर्वामूल, जीरा, सरसों, हींग, कुटकी और वायबिडंग ये कुल मिलकर आध सेर । सबको एकत्रित करके मन्द-मन्द आँच पर यथाविधि पाक करना । पाक सिद्ध हो जाने पर छानकर तैल में छड़ीला, कपूर और नखी एक-एक तोला मिलाकर रखना ।

इस तैल के मर्दन करने से ऐकाहिक, द्व्याहिक, तृतीयक, चातुर्थिक, अर्धमासिक, मासिक, द्विमासिक आदि सब प्रकार के विषमज्वर नष्ट होते हैं ॥ ३०४-३०६ ॥

बृहत्पिप्पल्याद्य तैल ।

पिप्पलीमुस्तकं धान्यं सैन्धवं त्रिफला वचा । यमानी चाजमोदा च चन्दनं पुष्कराह्वयम् ॥ ३०७ ॥ शटी द्राक्षा गवाक्षी च शालपर्णी त्रिकण्टकम् । भूनिम्बारिष्टपत्राणि महानिम्बं निदिग्धिका ॥ ३०८ ॥ गुडूची पृश्निपर्णी च बृहतीदन्तिचित्रकौ । दार्वी हरिद्रा वृक्षाम्लं पर्पटं गजपिप्पली ॥ ३०९ ॥ एतेषां कार्षिकैः कल्कैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् । दधिकाञ्जिकतक्रैश्च मातुलुङ्गरसैस्तथा ॥ ३१० ॥ स्नेहमात्रासमैरेभिः शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । सिद्धमेतत् प्रयोक्तव्यं जीर्णज्वरमपोहति ॥ ३११ ॥ एकजं द्वन्द्वजं चैव दोषत्रयसमुद्भवम् । सन्ततं सततान्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकान् ॥ ३१२ ॥ मासजंपक्षजं चैव चिरकालानुबन्धिनम् । सर्वांस्तान् नाशयत्याशु पिप्पल्याद्यमिदं शुभम् ॥ ३१३ ॥

मूर्च्छित काले तिल का तैल १२८ तोला, दही का पानी १२८ तोला, काँजी १२८ तोला, तक्र १२८ तोला, बिजौरे नींबू का रस १२८ तोला । कल्क के लिये छोटी पीपर, नागरमोथा, धनिया, सेंधानोन, हर्र, आँवला, बहेड़ा, वच, अजवाइन, अजमोद, लाल चन्दन, कूट, कचूर, मुनक्का, इन्द्रायण, सरिवन, गोखुरू, चिरायता, नीम के पत्ते, बकायन की छाल, कटेरी, गिलोय, पिठवन, बड़ी कटेरी, दन्ती का मूल, चीता का मूल, दारुहल्दी, हल्दी, वृक्षाम्ल (कोकम), पित्तपापड़ा और गजपीपर यह प्रत्येक द्रव्य एक एक तोला । इन सबको एकत्रित कर पाक करना, पाक सिद्ध होने पर छानकर तैल में कपूर, छड़ीला और नखी एक-एक तोला मिलाकर रख देना । इस तैल का मर्दन करने से सब प्रकार के जीर्णज्वर और विषमज्वर शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ३०७-३१३ ॥

[1] मलाईयुक्त दही में चतुर्थांश जल डालकर तैयार किया हुआ तक्र लेना चाहिये ।

महद्भूनिम्बाद्य तैल।

जलद्रोणे तु भूनिम्बं तुलामानं पचेद्भिषक्। पादार्धं कटुतैलं स्याद्युक्त्या तेनैव पाचयेत् ॥ ३१४ ॥ लाक्षामोरटयोः क्वाथौ काञ्जिकं दधिमस्तु च। आदाय तैलतुल्यानि कल्कैरेतैर्विपाचयेत् ॥ ३१५ ॥ किरातं शुषहाकुष्ठं लाक्षैन्द्रीगजशिरास्तथा। विकसा द्वे निशे मूर्वा मधुयष्ट्याब्दके तथा ॥ ३१६ ॥ पुनर्नवा विडं मांसी बृहती सैन्धवं तथा। वालकं चन्दनं कट्वी तथा मोक्षा शतावरी ॥ ३१७ ॥ शतपुष्पा चाश्वगन्धा हरेणुर्देवदारु च। पद्मकोशीरधान्यानि षड्ग्रन्था च कणा शटी ॥ ३१८ ॥ यमानीयुक्तं त्रिफला गोक्षुरं शृङ्ग एव च। पर्णीयुग्मं दन्तिमूलं जन्तुघ्नं जीरकद्वयम् ॥ ३१९ ॥ महानिम्बं च हबुषा शुण्ठी क्षारो यवोद्भवः। दत्त्वा कर्षद्वयं चैषां साधयेन्मृदुनाग्निना ॥ ३२० ॥ सिद्धतैलमिदं हन्यात्समस्तान् विषमाज्ज्वरान्। प्लीहोत्थान् श्वयथुयुक्ताज्ज्वरं मेहोद्भवं तथा ॥ ३२१ ॥ अग्निदीप्तिकरं चैव बलवर्णकरं तथा। पाण्ड्वादीन् हन्ति रोगान्वै अभ्यङ्गान्नात्र संशयः ॥ ३२२ ॥

कडुवा तैल १ आढक (३ सेर १६ तोला), चिरायते का क्वाथ आधा द्रोण (६ सेर ३२ तोला, १० सेर चिरायता २५ सेर ४८ तोला जल में औटाकर ६ सेर ३२ तोला रहने पर छान लिया जाय), मूर्वा की जड़ का क्वाथ १ आढक (३ सेर १६ तोला), लाक्षा क्वाथ १ आढक (३ सेर १६ तोला), कांजी १ आढक (३ सेर १६ तोला), दही का पानी १ आढक (३ सेर १६ तोला) कल्क के द्रव्य—चिरायता, रास्ना, कूट, लाख, इन्द्रायण की जड़, गजपीपल, मंजीठ, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा की जड़, मुलहठी, मोथा, पुनर्नवा, विडनमक, जटामांसी, बड़ी कटेरी, सेंधानमक, गन्धबाला, लालचन्दन, कटुकी, शतावर, सोया, असगन्ध, रेणुका, देवदारु, पद्माख, खस, धनिया, बच, पिप्पली, कचूर, अजवायन, अजमोद, त्रिफला, गोखरू, काकड़ासिंगी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, दन्तीमूल, वायविडंग, सफेद जीरा, काला जीरा, बकायन की छाल, हाऊबेर, सोंठ, यवक्षार प्रत्येक २ कर्ष (२ तोले)। विधिपूर्वक तैल सिद्ध करके बाह्यप्रयोग (अभ्यंग वस्तिकर्म आदि) करावे। इसकी मालिश से सन्तत सतत आदि सम्पूर्ण विषमज्वर एवम् प्लीहाश्रित अथवा सूजनयुक्त विषमज्वर, प्रमेहोत्थ-ज्वर तथा पाण्डु आदि रोग नष्ट होते हैं। दूसरे ग्रन्थों में इसका नाम बृहत्किराताद्य तैल कहा है ॥ ३१४-३२२ ॥

महाज्वरभैरव तैल।

अमृतारिष्टको वासा मौर्वी श्रीखण्डमेव च। भूनिम्बश्च महातिक्ता निर्गुण्ड्याश्च दलानि च ॥ ३२३ ॥ शतं पलानि सर्वेषां द्रोणे नीरे विपाचयेत्। पादावशिष्टकैः क्वाथस्तैलं प्रस्थयुगं पचेत् ॥ ३२४ ॥ अमृतातिविषा देवदारुराव्यौ सुपर्णिका। कणा च ग्रन्थिकं लाक्षा शिग्रुबीजं शिलाजतु ॥ ३२५ ॥ पटोलधान्यकुष्ठानि भूनिम्बं स्वर्णपुष्पकः। मूर्वा जटाश्वगन्धा च पीतद्रु कण्टकारिका ॥ ३२६ ॥ एतैः साधपलैः कल्कैः बुधस्तैलं विपाचयेत्। पाकार्थञ्च पयस्तत्र देयं प्रस्थचतुर्मितम् ॥ ३२७ ॥ सिद्धं तैलं ज्वरहरं पाण्डु शोथं च कामलाम्। ज्वरभैरवनामेदमभ्यङ्गाद्धन्ति निश्चयम् ॥ ३२८ ॥

तिल का तैल २ प्रस्थ (१२८ तोला), क्वाथ-द्रव्य-गिलोय ५ सेर (जल २५ सेर ४८ तोला, उबालने से बचा क्वाथ ६ सेर ३२ तोला)। नीम की छाल ५ सेर (जल २५ सेर ४८ तोला,

बचा हुआ क्वाथ ६ सेर ३२ तोला)। अडूसा-की जड़ ५ सेर (जल २५ सेर ४८ तोला, बचा-हुआ क्वाथ ६ सेर ३२ तोला)। मूर्वा की जड़ ५ सेर (जल २५ सेर ४८ तोला, बचा हुआ क्वाथ ६ सेर ३२ तोला)। सफेद चन्दन ५ सेर (जल २५ सेर ४८ तोला, बचा हुआ क्वाथ ६ सेर ३२ तोला)। कालमेघ ५ सेर (जल २५ सेर ४८ तोला, बचा हुआ कालमेघ का क्वाथ ६ सेर ३२ तोला)। संभालू के पत्ते ५ सेर(जल २५ सेर ४८ तोला, बचा हुआ संभालू का क्वाथ ६ सेर ३२ तोला)। दूध ४ प्रस्थ (३ सेर १६ तोला) कल्क के द्रव्य—गिलोय, अतीस, देवदारु, हल्दी दारहल्दी, कालीजीरी, पिप्पली, पीपलामूल, लाख, सहजने के बीज, शालपर्णी, शिलाजीत, पटोलपत्र, धनियाँ, कूट, चिरायता, स्वर्णपुष्पक (अमलतास की छाल या नागकेसर), मूर्वा की जड़, असगन्ध, चीड़ की लकड़ी और छोटी कटेरी प्रत्येक १॥ पल (६ तोला)। इन सबको विधिपूर्वक पकावे, छानकर तैल को ग्रहण करे। इस तैल की मालिश से ज्वर, पांडु, शोथ, कामला इत्यादि रोग नष्ट होते हैं ॥ ३२३-३२८ ॥

ज्वर में शिरोवेदनानाशक योग।

रक्तकरवीरपुष्पं धात्रीफलं सधान्याम्लम्। कल्कः सुखोष्णलेपाज्ज्वरेषु शिरसो रुजं जयति ॥ ३२९ ॥

लाल कनेर का फूल और आँवला को काँजी के साथ पीसकर थोड़ा उष्ण करके लेप करने से सब प्रकार के ज्वर में शिर की पीड़ा शान्त होती है ॥ ३२९ ॥

आगन्तु ज्वरचिकित्सा।

अभिघातज्वरो नश्येत् पानाभ्यङ्गेन सर्पिषः। क्षतानां व्रणितानां च क्षतव्रण-चिकित्सया ॥ ३३० ॥ औषधीगन्ध-विषजौ विषपित्तप्रसाधनैः। जयेत् कषायै-र्मतिमान् सर्वगन्धकृतैस्तथा ॥ ३३१ ॥

अभिघातज ज्वर घृतपान और घृत की मालिश से अच्छा हो जाता है। क्षत और व्रण से उत्पन्न होनेवाले ज्वर को क्षत और व्रण की चिकित्सा करके अच्छा करना चाहिये। तीव्र औषध की गन्ध से अथवा विष से पैदा होने-वाले ज्वर में विषघ्न तथा पित्तघ्न सर्वगन्ध[1] आदि के क्वाथों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३३०-३३१ ॥

अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिना जयेत्। दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पात-ग्रहपीडजौ ॥ ३३२ ॥

श्येनयागादि क्रियाओं द्वारा तथा शाप से उत्पन्न होने वाले ज्वर को होम, प्रायश्चित्त तथा मङ्गलक्रिया द्वारा अच्छा करे। एवम् उत्पात तथा ग्रहपीडाओं से उत्पन्न होनेवाले ज्वर को दान, आशीर्वाद तथा अतिथिपूजा आदि कर्मों द्वारा अच्छा करना चाहिये ॥ ३३२ ॥

क्रोधजे पित्तजित्काम्या अर्थाः सद्वाक्य-मेव च। आश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रश-मनेन च ॥ ३३३ ॥ हर्षणैश्च शमं यान्ति कामशोकभयज्वराः। कामात् क्रोधज्वरो नाशं क्रोधात् कामसमुद्भवः। यातितावुभा-भ्यांतु भयशोकसमुद्भवः ॥ ३३४ ॥

क्रोधजन्य ज्वर में पित्तनाशक क्रिया, इच्छित वस्तु की प्राप्ति तथा साधु वचनों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये। कामजन्य, शोकजन्य, भयजन्य ज्वर सान्त्वना, इष्ट वस्तु की प्राप्ति, प्रसन्नता तथा वायुसंशमन औषधों द्वारा शान्त हो जाते हैं। एवम् इनके प्रतिद्वन्द्वी कर्म से अर्थात् काम से क्रोधजन्य ज्वर, क्रोध से कामजन्य

---

१. सर्वगन्ध—सुश्रुतोक्त एलादिगण ही ग्रहण करना चाहिये।

एलातगर कुष्ठमांसीध्यामकत्वक्पत्रनागपुष्पप्रियङ्गु-हरेणुकाव्याघ्रनखशुक्तिचण्डास्थौणेयकश्रीवेष्टकचो-चचोरकवालुकगुग्गुलुसर्जरसतुरुष्ककुन्दुरुकास्पृक्-उशीरभद्रदारुकुङ्कुमानि पुन्नागकेशरं चेति।

—एलादिगण

ज्वर तथा क्रोध से और काम से भयजन्य एवम् शोकजन्य ज्वर शान्त होते हैं॥३३३-३३४॥

भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धावेशनताडनैः। जयेद् भूताभिषङ्गोत्थं मनःसान्त्वैश्च मानसम्॥३३५॥

भूताभिषङ्गजन्य ज्वर में भूतविद्या के कहे हुये बन्धन आवेश तथा ताडन आदि क्रियाओं का प्रयोग करना चाहिये। मानसज्वर में मन को सांत्वना देनी चाहिये॥३३५॥

ज्वरमुक्ति में निषिद्ध।

व्यायामञ्च व्यवायञ्च स्नानं चङ्क्रमणानि च। ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्न बलवान् भवेत्॥३३६॥

ज्वर अच्छा हो जाने पर भी जब तक रोगी बलवान् न हो जाय व्यायाम, मैथुन, स्नान (अधिक) भ्रमण आदि कार्य नहीं करने चाहिये॥३३६॥

विगत ज्वर के लक्षण।

देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहतापः पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम्। स्वेदः क्षवः प्रकृतिगामिमनोऽन्नलिप्सा कण्डूश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि॥३३७॥

ज्वर शान्त हो जाने पर नीचे लिखे लक्षण होते हैं—

शरीर में हलकापन, क्लान्ति (थकावट भी), मोह और सन्ताप का न होना, मुखपाक, इन्द्रियों को अपने-अपने विषय का ठीक-ठीक ज्ञान होना, पीड़ा का अभाव, पसीना और छींक का आना, मन का स्वाभाविक अवस्था में आ जाना, आहार की इच्छा तथा शिर पर खुजली होना॥३३७॥

जीर्णज्वर में पेया आदि।

ज्वरे पेयाः कषायाश्च सर्पिः क्षीरं विरेचनम्। षडहे षडहे देयं कालं वीक्ष्यामयस्य च॥३३८॥

जीर्णज्वर में पेया, कषाय (काढ़ा), घृत, दुग्ध सेवन और विरेचन करना चाहिये। यह रोग की अवस्था विचार कर छः-छः दिन का अन्तर देकर कराना चाहिये॥३३८॥

ज्वर में संशोधन।

ज्वरिभ्यो बहुदोषेभ्य ऊर्ध्वञ्चाधश्च बुद्धिमान्। दद्यात् संशोधनं काले कल्पे यदुपदेक्ष्यते॥३३९॥

बहुत दोषों से उत्पन्न हुये ज्वर में ऊर्ध्व और अधः संशोधन अर्थात् वमन और विरेचन कराना चाहिये। इस संशोधन के विषय में सुश्रुत के कल्प स्थान में लिखे के अनुसार समय पर कार्य करना चाहिये॥३३९॥

ज्वर में वमन।

मदनं पिप्पलीभिर्वा कलिङ्गैर्मधुकेन वा। युक्तमुष्णाम्बुना पेयं वमनं ज्वरशान्तये॥३४०॥

ज्वर की शान्ति के लिये पीपरि, इन्द्रजौ, अथवा मुलेठी सहित मैनफल को उष्ण जल के साथ पीसकर पिलावे। कफ की अधिकता में पीपरि के साथ, पित्त और कफ की अधिकता में इन्द्रजौ के साथ, यदि दाह हो तो मुलेठी के साथ मैनफल का प्रयोग करे। इससे वमन होकर ज्वर शान्त हो जाता है॥३४०॥

ज्वर में विरेचन।

आरग्वधं वा पयसा मृद्वीकानां रसेन वा। त्रिवृतां त्रायमाणां वा पयसा ज्वरितः पिबेत्॥३४१॥

ज्वर में विरेचन के लिये जल में अमिलतास का चूर्ण मिलाकर पीना, अथवा मुनक्के को पानी में पीसकर वस्त्र से छान लेना। उसी मुनक्का के रस में अमिलतास का चूर्ण मिलाकर पीना। अथवा निशोथ या त्रायमाणा को जल में पीसकर पीना चाहिये॥३४१॥

ज्वरक्षीण के लिये विधि ।

ज्वरक्षीणस्य न हितं वमनं न विरेचनम् । कामन्तु पयसा तस्य निरूहैर्वा हरेन्मलान् ॥ ३४२ ॥ प्रयोजयेत् ज्वरहरान् निरूहान् सानुवासनान् । पक्वाशयगते दोषे वक्ष्यन्ते ये च सिद्धिषु ॥ ३४३ ॥

ज्वर से निर्बल हुये मनुष्य के लिये वमन या विरेचन लाभदायक नहीं है । किन्तु क्षीणावस्था में निरूहण अथवा अनुवासन क्रिया द्वारा मल निकालना चाहिये । निरूहण अथवा अनुवासन से पक्वाशयगत मल निवृत्त हो जाते हैं ॥ ३४२-३४३ ॥

ज्वर में शिरोविरेचन ।

गौरवे शिरसः शूले विबद्धेष्विन्द्रियेषु च । जीर्णज्वरे रुचिकरं दद्याच्छीर्षविरेचनम् ॥ ३४४ ॥

मस्तक में भारबोध और पीड़ा तथा इन्द्रियों में जड़ता होने पर जीर्णज्वर में शिरोविरेचन (विरेचन नस्य) देना लाभदायक होता है ॥ ३४४ ॥

अथ दुग्धप्रकरण ।

जीर्णज्वर में दुग्धप्रयोग ।

जीर्णज्वरे कफे क्षीणे क्षीरं स्यादमृतोपमम् । तदेव तरुणे पीतं विषवद्धन्ति मानवम् ॥ ३४५ ॥ चतुर्गुणेनाम्भसा च शृतं ज्वरहरं पयः । धारोष्णं वा पयः शीतं पीतं सद्यो ज्वरं जयेत् ॥ ३४६ ॥

जीर्णज्वर में जिसका कफ क्षीण हो गया हो उसके लिये दुग्ध अमृत के समान हितकर होता है । लेकिन तरुण-ज्वर में पान किया गया दुग्ध विष के समान प्राणघातक होता है । चतुर्गुण जल में दुग्ध पकावे, जब दुग्धमात्र शेष रह जाय तब पान करने से शीघ्र ज्वर नष्ट होता है । धारोष्ण या शीतल दुग्ध पान करने से शीघ्र ज्वर शान्त होता है ॥ ३४५-३४६ ॥

भेषजसिद्ध दुग्ध के गुण ।

जीर्णज्वराणां सर्वेषां पयः प्रशमनं परम् । पेयं तदुष्णंशीतं वा यथास्वमौषधैः शृतम् ॥ ३४७ ॥

दोष के अनुसार औषधों के साथ पकाये हुये दुग्ध का पान करने से सब प्रकार के जीर्णज्वर शान्त होते हैं । औषधपक्व दुग्ध को पैत्तिक और वात-पैत्तिक ज्वर में शीतल करके, वातिक और वातश्लैष्मिक ज्वर में कुछ उष्ण रहते ही पान करना चाहिये ॥ ३४७ ॥

पञ्चमूलीशृत दुग्ध ।

कासात् श्वासात् शिरःशूलात् पार्श्वशूलाच्चिरज्वरात् । मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पञ्चमूलीशृतं पयः ॥ ३४८ ॥

सोलह तोले दुग्ध में २ तोले लघुपंचमूल की ढीली पोटली बनाकर डालना, उसमें ६४ तोले पानी डालकर धीमी आँच से पकाना दुग्धमात्र शेष रहने पर उतार लेना । इस दुग्ध का सेवन करने से कास, श्वास, शिर की पीड़ा, पसलियों की पीड़ा और पुराना ज्वर ये सब उपद्रव नष्ट होते हैं ॥ ३४८ ॥

क्षीरपाकविधि ।

द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम् । क्षीरावशेषः कर्त्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥ ३४९ ॥

क्षीरपाक करने की विधि यह है कि जिस द्रव्य के साथ दुग्ध पाक करना हो उस द्रव्य का आठगुना दुग्ध और दुग्ध का चौगुना पानी डालकर धीमी आँच से पकावे । दुग्धमात्र शेष रहने पर पाक सिद्ध हुआ समझना चाहिये[1] ॥ ३४९ ॥

---

[1] क्षीरपाक करने में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जिस द्रव्य के साथ क्षीरपाक करना हो उसको थोड़ा कूटकर कोमल बना लेवे और उसकी श्लथ (ढीली) पोटली बाँधकर दुग्ध में डाले ॥

गोक्षुरादि दुग्ध।

त्रिकण्टकबला व्याघ्री गुडनागरसाधितम्। वर्चोमूत्रविबन्धघ्नं शोथज्वरहरं पयः॥ ३५०॥

गोखुरू, खरेटी, छोटी कटेरी और सोंठ ये कुल मिलाकर २ तोले, दुग्ध १६ तोले, जल ६४ तोले सब एकत्रित कर पाक करना, पाक सिद्ध होने पर ६ मासे पुराना गुड डालकर पान करना चाहिये। इसका सेवन करने से कोष्ठबद्धता, मूत्रावरोध, (लघुशंका का न होना), शोथ और ज्वर नष्ट होते हैं॥ ३५०॥

पुनर्नवादि दुग्ध।

वृश्चीरनिलनवर्षाभूपयश्चोदकमेव च। पचेत् क्षीरावशिष्टं तु तद्धि सर्वज्वरापहम्॥ ३५१॥

श्वेत पुनर्नवा, बेलगिरी और रक्तपुनर्नवा कुल मिलित २ तोले, दुग्ध १६ तोले, जल ६४ तोले। पूर्वोक्त विधि से पाक कर सेवन करना चाहिये। इससे सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं॥ ३५१॥

शीत या उष्ण दुग्ध पीने की व्यवस्था।

शीतं वोष्णं ज्वरे क्षीरं यथास्वमौषधैः शृतम्॥ ३५२॥

युक्ति युक्त औषधों के साथ सिद्ध किये हुये दुग्ध को पैत्तिक और वातपैत्तिक ज्वर में शीतल करके, वातिक और वातश्लैष्मिक ज्वर में कुछ उष्ण रहते ही पान करना चाहिये॥ ३५२॥

एरण्डमूलसिद्ध दुग्ध।

एरण्डमूलसिद्धं वा ज्वरे सपरिकर्त्तिके॥ ३५३॥

ज्वर में परिकर्तिका अर्थात् गुदा में कैंची से काटने के समान पीड़ा होती हो तो एरण्ड के मूल के साथ सिद्ध किया हुआ दुग्ध अत्यन्त लाभदायक होता है॥ ३५३॥

अथ चूर्णप्रकरणम्।

सुदर्शनचूर्ण।

कालीयकन्तु रजनी देवदारु वचा घनम्। अभया धन्वयासश्च शृङ्गी क्षुद्रा महौषधम्॥ ३५४॥ त्रायन्ती पर्पटं निम्बं ग्रन्थिकं वालकं शटी। पौष्करं मागधी मूर्वा कुटजं मधुयष्टिका॥ ३५५॥ शिग्रूत्पलं सेन्द्रयवं वरी दार्वी कुचन्दनम्। पद्मकं सरलोशीरं त्वचं सौराष्ट्रिका स्थिरा॥ ३५६॥ यमान्यतिविषा बिल्वं मरिचं गन्धपत्रकम्। धात्री गुडूची कटुकं सचित्रकपटोलकम्॥ ३५७॥ कलसी चैव सर्वाणि समभागानि कारयेत्। सर्वद्रव्यस्य चार्द्धं तु कैरातं सम्प्रकल्पयेत्॥ ३५८॥ पृथग्दोषांश्च विविधान् समस्तान् विषमज्वरान्। प्राकृतं वैकृतं चापि सौम्यं तीक्ष्णमथापि वा॥ ३५९॥ अन्तर्गतं बहिःस्थञ्च निरामं साममेव च। ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा॥ ३६०॥ नानादेशोद्भवं चैव वारिदोषभवं तथा। विरुद्धभेषजभवं ज्वरमाशु व्यपोहति। प्लीहानं यकृतं गुल्मं हन्त्यवश्यं न संशयः॥ ३६१॥ यथा सुदर्शनं चक्रं दानवानां निषूदनम्। तथा ज्वराणां सर्वेषामिदमेव निगद्यते॥ ३६२॥

काली अगर[1], हल्दी, देवदारु, बच, नागरमोथा, हर्र, धमासा, काकड़ासिंगी, छोटी कटेरी, सोंठ, त्रायमाणा, पित्तपापड़ा, नीम की छाल, पिपरामूल, सुगन्धबाला, कचूर, कूठ, पीपरि, मूर्वामूल कुड़े की छाल, मुलेठी, सैंजन का बीज, कमल इन्द्रजौ, शतावरि, दारुहल्दी, लालचन्दन,

1 काली अगर के अभाव में अगर।

पद्माख, धूपसरल, खस, दालचीनी, सौराष्ट्र-[1] मृत्तिका, शालपर्णी, अजवाइन, अतीस, बेल की छाल, कालीमिर्च, गन्धपत्र, आँवला, गिलोय, कुटकी, चीते की जड़, परवल के पत्ते और पृष्ठपर्णी इन कुल औषधों का समभाग चूर्ण एकत्रित करके उसमें कुल चूर्ण का आधा चिरायते का चूर्ण मिलावे। इसका नाम सुदर्शन चूर्ण है। इसकी मात्रा १ मासा से ४ मासे तक होती है। यह सब प्रकार के ज्वरों की सर्वोत्तम महौषध है। इसका सेवन करने से प्रकृत विकृत सौम्य, तीक्ष्ण, अंतर्वेग, बहिर्वेग, आमरहित, आमसहित साध्य, असाध्य आठ प्रकार के ज्वर एवम् अनेक दोषों में जल के दोष से उत्पन्न ज्वर, विपरीत औषध के सेवन से उत्पन्न ज्वर नष्ट होते हैं तथा ज्वरजन्य प्लीहा, यकृत् और गुल्म रोग अवश्य नष्ट होते हैं। जैसे सुदर्शनचक्र दानवों को नष्ट करने में विलम्ब नहीं करता, इसी प्रकार यह 'सुदर्शन चूर्ण' हर प्रकार के ज्वरों को तत्काल नष्ट करता है ॥ ३५४-३६२ ॥

आमलक्यादि चूर्ण

आमलं चित्रकं पथ्या पिप्पली सैन्धवस्तथा। चूर्णितोऽयं गणो ज्ञेयः सर्व ज्वरविनाशनः ॥ भेदी रुचिकरः श्लेष्मजेता दीपन पाचनः ॥ ३६३ ॥

आँवला, चीत की जड़, हरड़, पीपल और सेंधा नमक इन औषधियों को समान भाग लेकर चूर्ण बना लेवे। यह आमलकादि गण सब प्रकार के ज्वरों का नाशक दस्त साफ लाने वाला, रुचि बढ़ाने वाला, कफ नाशक दीपन, और पाचन होता है, चूर्ण खाकर ऊपर से ताजा जल पीना चाहिये। ॥ ३६३ ॥

ज्वरभैरव चूर्ण।

नागरं त्रायमाणा च पिचुमर्दो दुरालभा। पथ्या मुस्तं वचा दारु व्याघ्री भृङ्गी शतावरी ॥ ३६४ ॥ पर्पटं पिप्पलीमूलं विशाला पुष्करं शटी। मूर्वा कृष्णाहरिद्रे द्वे लोध्रं चन्दनमुत्पलम् ॥ ३६५ ॥ कुटजस्य फलं वल्कं यष्टीमधुकचित्रकम्। शोभाञ्जनं बला चातिविषा च कटुरोहिणी ॥ ३६६ ॥ मुसली पद्मकाष्ठं च यमानी शालपर्णिका। मरिचं चामृता बिल्वं बालं सौराष्ट्रमृत्तिका ॥ ३६७ ॥ तेजपत्रं त्वचं धातृ पृश्निपर्णी पटोलकम्। गन्धकं पारदं लोहमभ्रकञ्च मनःशिला ॥ ३६८ ॥ एतेषां समभागेन चूर्णमेव विनिर्दिशेत्। तदर्द्धं प्रक्षिपेत्तत्र चूर्णं भूनिम्बसम्भवम् ॥ ३६९ ॥ मात्रामस्य प्रयुञ्जीत दृष्ट्वा दोषबलाबलम्। चूर्णं भैरवसंज्ञन्तु ज्वरान् हन्ति न संशयः॥३७०॥ पृथग्दोषांश्च विविधान् समस्तान् विषमज्वरान्। द्वन्द्वजान् सन्निपातोत्थान् मानसानपि नाशयेत् ॥ ३७१ ॥ प्राकृतं वैकृतञ्चैव सौम्यं तीक्ष्णमथापि वा। अन्तर्गतं बहिःस्थञ्च निरामं साममेव च ॥ ३७२॥ ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः। नानादेशोद्भवञ्चैव वारिदोषभवं तथा ॥ ३७३ ॥ विरुद्धभेषजभवं ज्वरमाशु व्यपोहति। अग्निमान्द्यं यकृत्प्लीहपाण्डुरोगमरोचकम् ॥ ३७४ ॥ उदरामयन्त्रवृद्धिञ्च रक्तपित्तं त्वगामयम्। श्वयथुं च शिरःशूलं वातामयरुजापहम्। ज्वरभैरवसंज्ञन्तु भैरवेण कृतं शुभम् ॥ ३७५ ॥

सोंठ, त्रायमाणा, नीम की छाल, धमासा, हरीतकी, नागरमोथा, बच, देवदारु, छोटी कटेरी, काकड़ासिंगी, शतावरि, पित्तपापड़ा, पिपरामूल, इन्द्रायण की जड़, कूठ, कचूर, मूर्वामूल, पीपरि, हल्दी, दारुहल्दी, लोध, लालचन्दन, कमल, इन्द्रजौ, कुड़े की छाल, मुलेठी, चीत की जड़,

[1] प्रभाव में भूनी फिटकरी।

संजन का बीज, खरैटी की जड़, अतीस, कुटकी, मूसली सफेद पदमकाठ, अजवाइन, शरिवन, कालीमिरच, गिलोय, बेल की छाल, सुगन्धबाला, पद्मपर्पटी, तेजपात, दालचीनी, आँवला, पृष्ठपर्णी, परवल के पत्ते, शुद्धगन्धक, पारा,[१] लोहभस्म, अभ्रकभस्म और शुद्ध मैनसिल, इन सब द्रव्यों का चूर्ण सम भाग लेवे और इन कुल द्रव्यों का चूर्ण मिलकर जितना हो उसका आधा उसमें चिरायते का चूर्ण मिलावे। रोगी का बलाबल विचार कर मात्रा की व्यवस्था करनी चाहिये। यह चूर्ण भी सुदर्शनचूर्ण के समान सब प्रकार के विषमज्वर तथा अन्यान्य ज्वरों का अति उत्कृष्ट औषध है। इससे अग्निमान्द्य, यकृत, प्लीहा, पाण्डुरोग, अरुचि, उदररोग, अन्त्रवृद्धि, रक्तपित्त, चर्मरोग, शोथ, शिर की पीड़ा और वातरोग दूर होते हैं। इस चूर्ण का आविष्कार भैरवजी ने किया था, अतः इसका नाम 'ज्वरभैरव-चूर्ण' है ॥ ३६४-३७५ ॥

ज्वरनागमयूर चूर्ण ।

लौहाभ्रटङ्कन ताम्रं तालकं वङ्गमेव च। शुद्धसूतं गन्धकं च शिग्रु बीजं फलत्रिकम् ॥ ३७६ ॥ चन्दनातिविषा पाठा वचा च रजनीद्वयम् । उशीरं चित्रकं देवकाष्ठञ्च सपटोलकम् ॥ ३७७ ॥ जीवकर्षभकाजाज्यस्तालीशं वंशलोचना। कण्टकार्य्याः फलं मूलं शठीपत्रं कटुत्रयम् ॥ ३७८ ॥ गुडूचीसत्त्वं धन्याकं कटुकीत्रेपर्पटी। मुस्तकं बालकं बिल्वं यष्टीमधु समं समम् ॥ ३७९ ॥ भागाचतुर्गुणं देयं कृष्णजीरस्य चूर्णकम् । तत्समं तालपुष्पं च चूर्णं दण्डोत्पलाभवम् ॥ ३८० ॥ किरातं तत्समं देयं तत्समं चपलाभवम् । एतच्चूर्णं समाख्यातं ज्वरनागमयूरकम् ॥ ३८१ ॥ प्रतिमापमितं खाद्यं युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम् । सन्तताढिज्वरं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः ॥ ३८२ ॥ क्षयोद्भवं च धातुस्थं कामशोकोद्भवं ज्वरम् । भूतावेशज्वरं चैवमभिचारसमुद्भवम् ॥ ३८३ ॥ दाहशीतज्वरं घोरं चातुर्थादिविपर्ययम् । जीर्णञ्च विषमं सर्वं प्लीहानमुदरं तथा ॥ ३८४ ॥ कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं हन्ति न संशयः। भ्रमं तृष्णां च कासं च शूलानाहौ क्षयं तथा ॥ यकृतं गुल्मशूलं च आमवातं निहन्ति च ॥ ३८५ ॥ त्रिकपृष्ठकटीजानुपार्श्वानां शूलनाशनम् । अनुपानं शीतजलं न देयमुष्णवारिणा ॥ ३८६ ॥

लोहभस्म, अभ्रकभस्म, सोहागा भुना हुआ, ताम्रभस्म, हरतालभस्म, बङ्गभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सहजन के बीज, आँवला, हर्र, बहेड़ा, लालचन्दन, अतीस, पाढ़ी, बच, हल्दी, दारुहल्दी, खस, चीते की जड़, देवदारु, परवल के पत्ते, जीवक, ऋषभक, कालाजीरा, तालीशपत्र, वंशलोचन, छोटी कटेरी का फल और मूल, कचूर, तेजपात, सोंठ, मिर्च, पीपरि, गिलोय का सत, धनिया, कुटकी, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, सुगन्धबाला, बेल की छाल, और मुलेठी ये सब प्रत्येक औषध एक एक भाग, काला जीरा का चूर्ण चार भाग, ताड़ के पुष्प का चूर्ण[१] ४ भाग, कमलनाल का चूर्ण ४ भाग, चिरायते का चूर्ण ४ भाग और छोटी पीपरि का चूर्ण ४ भाग। इन सब चूर्णों को एकत्र मिलाकर रख लेवे। इसको 'ज्वर-नाग-मयूरचूर्ण' कहते हैं। इसकी मात्रा बुद्धि से १ माशा से ? माशे पर्यन्त और इसका अनुपान

१ पारा और गन्धक की कज्जली बनाकर छोड़ना चाहिये।

१ कोई कोई वैद्य तालपुष्पक्षार अथवा तालजटाक्षार डालते हैं। मेरे विचार में तालपुष्प की अपेक्षा उसके क्षार का प्रक्षेप करना अधिक अच्छा है।

शीतल जल है। इस चूर्ण को उष्ण जल के साथ न देना चाहिये। यह सब प्रकार के साध्यासाध्य विषमज्वर, क्षयज्वर, धातुगत, कामज, शोकज, भूतावेशज, अभिचारज तथा जीर्णज्वर की अति उत्तम महौषधि है। इससे प्लीहा, उदर, कामला, पाण्डुरोग, शोथ, भ्रम, तृष्णा, कास, शूल, आनाह, क्षय, यकृत्, गुल्मजशूल, आमवात, त्रिकपृष्ठ, कटी, जानु और पसलियों की पीड़ा आदि उपद्रव भी निस्सन्देह निवृत्त होते हैं। निम्बादिचूर्ण भावप्रकाशोक्त है ॥३७६-३८६॥

अथ नवज्वरादौ रसप्रयोगः।

रस चिकित्सा में सौकर्य।

न दोषाणां न रोगाणां न पुंसाञ्च परीक्षणम्। न देशस्य न कालस्य कार्य्यं रसचिकित्सिते ॥ ३८७ ॥

रसचिकित्सा में वात, पित्त और कफ तीन प्रकार के दोष, ज्वर आदि रोग स्थूल या कृश व्यक्ति तथा देश और काल आदि की परीक्षा करने की आवश्यकता नहीं। तात्पर्य यह कि रसचिकित्सा हरएक व्यक्ति को हरएक अवस्था में लाभदायक होती है। कारण यह कि रस पारे को कहते हैं, उसीके संयोग से अन्य योग भी रस कहे जाते हैं। रसचिकित्सा के आदि आविष्कर्ता व्याडि, वशिष्ठादिकों ने अपने ग्रन्थों में कहा है कि— पारदमेव सर्वरोगपारदम्' अर्थात् एक पारद (पारा) ही मनुष्य को सब रोगोंसे पार (मुक्ति) देनेवाला है। जब ऐसा है तो रसचिकित्सा में दोष और रोग आदि के परीक्षा की आवश्यकता ही क्या है, कोई भी दोष या रोग हो यथाविधि सेवित पारद उसे अवश्य ही शान्त करेगा ॥३८७॥

टिप्पणी—रसों की बहुत प्रशंसा की है वे चमत्कृत सद्य गुणदायक और लघु मात्रा के कारण सेवन में सुविधाजनक भी हैं किन्तु काल, बल, प्रकृति और रोग के बलावल के निश्चय की बिलकुल आवश्यकता नहीं है ऐसा नहीं समझना चाहिए प्रत्येक स्थिति में एक ही रस उपयोगी हो ऐसा नहीं इसलिए रोग के लक्षण दोष प्रधानता के साथ औषध (रस) के उपादान और उनकी शक्ति तथा गुणों का विचार करके फिर प्रयोग करना चाहिए।

रसानभिज्ञ वैद्य की निन्दा।

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो न जानाति रसं यदा। सर्वं नस्योपहासाय धर्म्महीनो यथा बुधः ॥ ३८८ ॥

जो वैद्य सकल आयुर्वेद का ज्ञाता होकर भी रसक्रिया में निपुण नहीं है वह धर्महीन पंडित के समान उपहासास्पद होता है ॥३८८॥

धातु आदि का शोधन विधान।

संशोध्य विधिना धातूनुपधातून् विषाण्यपि। योजयेत् कर्मणि प्राज्ञो दोषः सञ्जायतेऽन्यथा ॥ ३८९ ॥

(शोधनोक्त्या यथायथं धात्वादीनां मारणस्यापि प्रतीतिः। रसोपरसानां धातूपधातुषु अन्तर्भावः। अपि शब्देन जयपालादीनां प्राप्तिः।)

धातु, उपधातु, रस, उपरस और विष इन सबका तथा जमालगोटा आदि का यथाविधि शोधनादि करके कार्य में उपयोग करना चाहिये, नहीं तो नाना प्रकार के अनिष्ट उत्पन्न होते हैं ॥ ३९० ॥

हिङ्गुलेश्वर रस।

तुल्यांशं मर्द्दयेत् खल्ले पिप्पली हिंगुलं विषम्। गुञ्जार्द्धं मधुना देयं वातज्वरनिवृत्तये ॥ ३९१ ॥

समभाग पीपरि, हिंगुल और विष इन तीन द्रव्यों को लेकर जल के साथ खरल में घोटकर आधी-आधी रत्ती की वटी बनावे। इसको नूतन वातज्वर में मधु के साथ देना चाहिये ॥ ३९१ ॥

रस का अनुपान।

अनुपानै रसा योज्या देशकालानुसा-

रिभिः। दोषघ्नैर्मधुना वापि केवलेन जलेन वा॥ ३९२॥

अनुपानैरित्यत्र रसा इत्युपलक्षणम्। अन्यान्यपि भेषजानि योग्यानुपानैर्देयानि।

हिंगुलेश्वर, शीतभञ्जी आदि रसयुक्त समस्त औषधों का तथा रसरहित अन्यान्य औषधों का भी देशकालानुकूल (जैसे जलवायुवाले प्रान्त में रहता हो और जैसी ऋतु हो उसके अनुसार) दोषनाशक अनुपान के साथ अथवा मधु या केवल जल के साथ प्रयोग करना चाहिये॥ ३९२॥

शीतभञ्जी रस।

रसहिङ्गुलगन्धञ्च जैपालञ्च समंसमम्। दन्तीक्वाथेन संमर्द्य रसो ज्वरहरः परः॥ ३९३॥ आर्द्रकस्वरसेनाथ दापयेद्रक्तिकाद्वयम्। नवज्वरं महाघोरं नाशयेद्यामभात्रतः॥ ३९४॥ शीततोयं पिबेच्चानु इक्षुर्मुद्गरसो हितः। शीतभञ्जिरसो नाम्ना सर्वज्वरकुलान्तकृत्॥ ३९५॥

पारा १ भाग, हिंगुल १ भाग, गन्धक १ भाग और जयपाल के बीज (जमालगोटा) १ भाग एकत्र कर दन्ती (जमालगोटा की जड़) के क्वाथ के साथ मर्दन करके दो रत्ती की वटी बनावे। इसका अदरख के रस के साथ प्रयोग करने से महाभयङ्कर नवीन ज्वर ३ घंटे में नष्ट होता है। इस रस का प्रयोग करने के पश्चात् यदि आवश्यकता हो तो शीतल जल, ईख का रस, मूँग का जूस सेवन करना चाहिये। यह शीतभञ्जी रस सब ज्वरसमूह का नाशक है॥ ३९३-३९५॥

तरुणज्वरादि रस।

जैपालगन्धं विषपारदन्तु तुल्यं कुमारीस्वरसेन मर्द्यम्। अस्य द्विगुञ्जा हि सितोदकेन ख्यातो रसोऽयं तरुणज्वरारिः॥ ३९६॥ दातव्य एषोऽह्नि पञ्चमे वा षष्ठेऽथवा सप्तम एव वापि। जाते विरेके विगतज्वरः स्यात् पटोलमुद्गान्ननिषेवणेन॥ ३९७॥

जमालगोटा, गन्धक, विष और पारद प्रत्येक समभाग एकत्रित कर घीकुआर के रस में मर्दन करके दो रत्ती की वटी बनावे। चीनी के शर्बत के साथ इस औषध को ज्वरारम्भ से पाँचवें, छठे व सातवें दिन देना चाहिये। इसके सेवन से विरेचन हो जाने पर ज्वर नष्ट हो जाता है। रोगी को भोजन के लिये, परवल की तरकारी मूँग की दाल और भात देना चाहिये॥ ३९६-३९७॥

नवज्वरेभसिंह।

शुद्धसूतं तथा गन्धं लौहं ताम्रं च सीसकम्। मरिचं पिप्पली विश्वं समभागानि कारयेत्॥ ३९८॥ अर्द्धभागं विषं दत्त्वा मर्दयेद् वासरद्वयम्। शृंगवेराम्बुपानेन दद्यात् गुञ्जाद्वयं भिषक्॥ ३९९॥ नवज्वरे महाघोरे धातुस्थे ग्रहणीगदे। नवज्वरेभसिंहोऽयं सर्वज्वरकुलान्तकृत्॥ ४००॥

शुद्ध पारा, गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, सीसे का भस्म, मरिच, पीपर और सोंठ प्रत्येक समभाग और विष अर्धभाग [1] एकत्र कर जल के साथ मर्दन करके दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। इस नवज्वरेभसिंह रस का अदरख के अर्क के साथ सेवन करने के साथ धातुगत अतिघोर नवज्वर आदि सब प्रकार के ज्वर और ग्रहणी रोग नष्ट होते हैं॥ ३९८-४००॥

त्रिपुरभैरव रस।

विषटङ्कणलिम्लेच्छदन्तिबीजं क्रमात् बहु। दन्त्यम्बुमर्दितं यामं रसस्त्रिपुर-

[1] कोई-कोई वैद्य कुल औषधों का अर्धभाग विष छोड़ते हैं, किन्तु व्यवहारतत्त्व और अनुमान एक ही औषध का अर्धभाग विष लेने के पक्ष में है।

भैरवः ॥ ४०१ ॥ गुञ्जाव्योपेण चार्द्रस्य रसेन सितयाऽथवा। दत्तो नवज्वरं हन्ति मान्द्यामानिलशोथहा ॥ ४०२ ॥ हन्ति शूलं सविष्टम्भमर्शांसि कृमिजान् गदान्। पथ्यं तक्रेण भोक्तव्यं रसेऽस्मिन् रोगहारिणि ॥ ४०३ ॥

विष २ भाग, सोहागा की खील २ भाग, गंधक ३ भाग ताम्रभस्म ४ भाग, जमालगोटा ४ भाग। इन सब औषधों को दन्ती (जमालगोटा की जड़) के क्वाथ में एक प्रहर तक मर्दन करके दो-दो रत्ती की वटी बनावे। इस त्रिपुरभैरव रस को अदरखके रस के साथ अथवा सोंठ, मिर्च, पीपर के क्वाथ के साथ या मिश्री के साथ देना चाहिये।

इसका सेवन करने से नवज्वर, अग्निमान्द्य, आमवात, शोथ, शूल, मलबद्धता, बवासीर और कृमिरोग नष्ट होते हैं। रोगी को तक्र के साथ भोजन कराना चाहिये ॥ ४०१-४०३ ॥

ज्वरधूमकेतु रस।

भवेत् समं सूतसमुद्रफेनहिंगूलगन्धं परिमर्द्य यत्नात्। नवज्वरे वल्लमितं त्रिरस्रमार्द्राम्बुनाऽयं ज्वरधूमकेतुः ॥४०४॥

पारा, समुद्रफेन, हिंगुल और गंधक इन सब द्रव्यों को सम भाग लेकर अदरख के रस के साथ तीन दिन तक घोटकर दो दो रत्ती की वटिका बनावे। इस ज्वर धूमकेतु रस से नवज्वर में बहुत लाभ होता है ॥ ४०५ ॥

दुर्जलजेता रस।

विषं भागद्वयं दग्धकपर्दः पञ्चभागिकः मरिचं नवभागञ्च चूर्णं वस्त्रेणशोधयेत् ४०६ आर्द्रकस्य रसेनास्य कुर्यान्मुद्गनिभां वटीम्। वारिणा वटिका युग्मं प्रातः सायं च भक्षयेत् ॥ ४०७ ॥ अयं रसो ज्वरे योज्यस्तारभिन्दुर्जलेऽपि च। अजीर्णाध्मान विष्टम्भशूलेषु श्वास कासयोः ॥४०८॥ भोजनादौ नरैर्भुक्तं शुण्ठीराज्य भयोत्थितम्। कल्कं तुसहते नित्यं नाना देशोद्भवं जलम् ॥ ४०९ ॥ महार्द्रक यवक्षारौ पीत्वा चोष्णेन वारिणा। नाना देशसमुद्भूतं वारि दोषमपोहति ॥४१०॥

शुद्ध बच्छनाग (मीठा तेलिया) २ भाग, कौड़ी भस्म ५ भाग और कालीमिर्च का चूर्ण ६ भाग लेकर सबको अत्यन्त महीन घोटकर कपड़े में छान अदरख के रस में घोट मूँग के समान गोलियाँ बनावे। इनमें से दो-दो गोली सुबह शाम पानी के साथ सेवन करने से खराब पानी से पैदा हुआ ज्वर अफारा, कब्ज, दर्द, श्वास, खाँसी आदि रोग मिट जाते हैं।

खाना खाने से पहिले सोंठ, राई, हर्र की चटनी खाने से अथवा बनअद्रक और यवाक्षार का चूर्ण गर्म पानी के साथ खाने से भिन्न देशों के पानी का असर नहीं होता अर्थात् परदेश का पानी नहीं लगता ॥ ४०६-४१० ॥

श्रीमृत्युञ्जय रस।

विषस्यैकस्तथा भागो मरिचं पिप्पलीकणः। गन्धकस्य तथा भागो भागः स्यात् टङ्कनस्य वै ॥ ४११ ॥ सर्वत्र समभागः स्यात् द्विभागं हिंगुलं भवेत्। जम्बीरस्य रसेनात्र भाव्यं हिंगुलशोधितम् ॥ ४१२ ॥ रसश्चेत् समभागः स्यात् हिंगुलं नेष्यते सदा। गोमूत्रशोधितश्चात्र विषं सौरविशोषितम् ॥ ४१३ ॥ चूर्णयेत् खल्लमध्ये तु मुद्गमात्रां वटीं चरेत्। मधुना लेहनं भोक्तं सर्वज्वरनिवृत्तये ॥ ४१४ ॥ दध्युदकानुपानेन वातज्वरनिर्हरण। आर्द्रकस्य रसै पानं दारुणे सन्निपातिके ॥ ४१५ ॥ जम्बीररसयोगेन अजीर्णज्वरनाशनः। अजाजीगुडसंयुक्तो विषमज्वरनाशनः ॥ ४१६ ॥

जीर्णज्वरे महाघोरे पुरुषे यौवनान्विते। पूर्णा मात्रा प्रदातव्या पूर्णे वटिचतुष्टयम् ॥ ४१७ ॥ अतिक्षीणेऽतिवृद्धे च शिशौ चाल्पवयस्यपि। तुर्य्यमात्रा प्रदातव्या व्यवस्थासारनिश्चिता ॥ ४१८ ॥ नवज्वरे प्रदाने च यामैकान्नाशयेत् ज्वरम्। अक्षीणे च कफाभावे दाहे च वातपैत्तिके ॥ ४१९ ॥ सिता दद्यात् प्रयत्नेन नारिकेलाम्बु निर्भयम्। अयं मृत्युञ्जयो नाम रसः सर्वज्वरापहः। अनुपानप्रभेदेन निहन्ति सकलान् गदान् ॥ ४२० ॥

विष (शुद्ध वत्सनाग) १ भाग, मरिच १ भाग, छोटी पीपर १ भाग, गन्धक १ भाग सोहागा फूला हुआ १ भाग, हिंगुल २ भाग (जंभीरी नींबू के रस की भावना देकर शुद्ध किया हुआ हिंगुल लेना चाहिये, यदि इस औषध में १ भाग पारा मिलाया जाय तो हिंगुल डालने की कोई आवश्यकता नहीं) एकत्र कर अदरख के रस में घोटकर मूँग के बराबर गोलियाँ बनावे। इसका साधारण तौर से सब प्रकार के ज्वर में मधु के साथ सेवन कर सकते हैं। विशेषतः वातज्वर में दही के पानी के साथ, सन्निपातज्वर में अदरख के रस के साथ, जीर्णज्वर मे जंभीरी नींबू के रस के साथ, जीरा और पुराने गुड़ के साथ, विषमज्वर में इस रस का सेवन करना चाहिए। इसकी मात्रा युवा पुरुष के लिये ४ बटी, अतिक्षीण, अतिवृद्ध, और बहुत थोड़ी अवस्था के बालक के लिये १ बटी देनी चाहिये। नवज्वर में इसका सेवन करने से पहर भर में ज्वर शान्त होता है। रोगी यदि क्षीण न हो और कफ की अधिकता भी न हो तो मिश्री और नारियल के पानी के साथ इस ज्वर में दाह शान्त हो जाता है। यह मृत्युञ्जय रस को देने से वातपैत्तिक इस अनुपान भेद से इन रोगों को नष्ट करता है ॥ ४११-४२० ॥

श्रीराम रस।

गन्धकं पारदं तुल्यं मरिचञ्च त्रिभिः समम्। बीजं नैकुम्भकं मर्द्यं दन्तिकाथेन यामकम्। द्विगुञ्जः शूलविष्टम्भानिलमामं ज्वरं जयेत् ॥ ४२१ ॥

गन्धक १ भाग, पारा १ भाग, मरिच १ भाग, जमालगोटा ३ भाग एकत्र कर दन्ती के क्वाथ में एक प्रहर मर्दन करके दो दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। इस श्रीरामरस से शूल, मलबद्धता, वात और आमज्वर निवृत्त होते हैं ॥ ४२१ ॥

नवज्वरांकुश।

क्रमेण वृद्धान् रसगन्धहिंगुलान् नैकुम्भबीजान्यथ दन्तिवारिणा। पिष्ट्वास्य गुञ्जा हि नवज्वरापहा जलेन चाह्ना सितया प्रयोजिता ॥ ४२२ ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, हिंगुल ३ भाग जमालगोटा ४ भाग एकत्र कर दन्ती के क्वाथ में मर्दन करके एक-एक रत्ती की वटी बनावे। इस नवज्वरांकुश रस का चीनी के शर्बत के साथ सेवन करने से नवीन ज्वर एक दिन में शान्त हो जाता है ॥ ४२२ ॥

प्रचण्ड रस।

अमृतं पारदं गन्धं मर्द्दयेत् प्रहरद्वयम्। सिन्धुवाररसैः पश्चात् भावयेदेकविंशतिम् ॥ ४२३ ॥ तिलप्रमाणं दातव्यं नवज्वरविनाशनम्। उद्वेगे मस्तके तैलं तक्रञ्चापि प्रदापयेत्। अनुपानमार्द्ररसः प्रचण्डरससंज्ञकः ॥ ४२४ ॥

विष (शुद्ध वत्सनाग), पारा गन्धक इन तीन औषधों को समभाग लेकर दो प्रहर घोटकर पश्चात् सँभालू के रस की इक्कीस भावना देकर तिल के समान छोटी-छोटी वटी बनावे। इस प्रचण्ड रस का अनुपान अदरख का रस है। यदि औषध का सेवन करने के पीछे उद्वेग (घबराहट) उत्पन्न हो तो मस्तक में तैल लगावे और तक्रपान करे ॥ ४२३-४२४ ॥

वैद्यनाथवटी ।

शाणं गन्धमथो रसस्य च तथा कृत्वा द्वयोः कज्जलीं तिक्ताचूर्णमथात्तमेव सकलं रौद्रे त्रिधा भावयेत् । पश्चात् तत् सुपवीरसेन न तु वा क्वाथेऽमले त्रैफले संशोष्या गुटिका कलायसदृशी कार्य्या बुधैर्यत्नतः ॥ ४२५ ॥ ज्ञात्वा दोषबलं रसेन सुपवीपत्रस्य पर्णस्य वा एकद्वित्रिचतुः क्रमेण वटिकां दद्यात् कदुष्णाम्बुना॥४२६॥ हन्ति शूलनिचयं नवज्वरं पाण्डुतामरुचि-शोथसञ्चयम् । रेचने च दधिभक्तभोजनं वैद्यनाथसुकुमाररेचनम् ॥ ४२७ ॥

गन्धक ३ माशा, पारा ३ माशा इनको एकत्र घोटकर उत्तम कज्जली बनाकर उसमें १ तोला कुटकी का चूर्ण मिलाकर बाद में करेला की पत्तियों रस की अथवा त्रिफला के क्वाथ की तीन भावनायें देकर धूप में सुखाकर मटर के समान गोलियाँ बनावे । अनुपान करेला की पत्तियों का रस अथवा पान का रस या किञ्चित् उष्ण जल । दोषों का बलाबल विचारकर एक गोली से चार गोली पर्यन्त इसकी मात्रा हो सकती है । इस वैद्यनाथवटी का सेवन करने से शूल नवीन ज्वर, पाण्डु, अरुचि शोथ ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं । यह औषध मृदुविरेचन है । पथ्य दही-भात ॥ ४२५–४२७ ॥

रामबाण रस

पारदाऽमृतलवङ्ग गन्धकं भाग युग्म-मरिचेनमिश्रितम् । जातिकाफलमथाऽर्द्ध भागिकं, तिन्तिडी फल रसेनमर्दितम् ॥४२८॥ मर्दयेत्सकले मातले खरे बीजपूर भवनांगरङ्गजैः । दाडिमोद्भवसदा कुसुमजैः, शृङ्गवेरकरसैश्च मर्दितम ॥४२९॥ नूतनञ्चयदि वा पुरातनं, सन्निपातमपि-पातकोद्भवम् । सेव्यतां सकल रोग नाशनं, रामबाणममृतं रसायनम्॥४३०॥ श्लेष्मा-चाऽऽर्द्रकवारिणाऽथ, पवनो निर्गुण्डि कायाद्रवैः । पित्तं धान्यजलैस्तथा, त्रिकुट-कैर्वासोद्भवैः श्वासजाः ॥४३१॥ शुण्ठी-सिन्धुहरीतकी भिरुदरं क्वाथैश्च पौनर्नवैः । शोथा पाण्डुगदाः प्रयान्ति सकला मूत्रेण मापोन्मितः ॥४३२॥ कोपोत्थैश्च फलत्रि-के क्षयमथोत्तौद्रेण संसेवितः । वातार्तिः सकलास्तथैव विषमा वातारितैलै-र्युतः ॥४३३॥

शुद्ध पारा, विष, लौंग, गन्धक १–१ भाग मिर्च २ भाग, जायफल ½ भाग लेकर महीन पीस कज्जली में मिलाकर इमली के पके फल, बिजोरा नारङ्गी, अनार, आक के फूल, अदरख इन सबके रसों में १–१ रोज घोट कर १-१ माशे की गोलियाँ बना लेवे । इनमें से १-१ गोली रोगानुसार अनुपान के साथ देने से नवीन ज्वर जीर्ण ज्वर, सन्निपात और पापज्वर, दूर होते हैं । अदरख के रस से कफ, निर्गुण्डी के रस से वायु, धनिये के पानी से पित्त, त्रिकुट और वासा के रस से श्वास, सौंठ सैन्धव और हर्रे से पेट के रोग, पुनर्नवा के काढ़े से शोथ, गोमूत्र अथवा त्रिकुट और त्रिफला के क्वाथ से पाण्डुरोग, मधु से क्षय, एरण्ड तैल के साथ देने से विषम अथवा सब प्रकार की वात व्याधियाँ मिट जाती हैं । मात्रा २ रत्ती ॥ ४२८–४३३ ॥

अग्निकुमार रस ।

मरिचोग्राकुष्ठमुस्तैः सर्वैरेव समं विषम् । पिष्ट्वा चार्द्ररसेनैव रक्तिकार्द्धा मिता वटी ॥ ४३४ ॥ आमज्वरे प्रथमतः शुण्ठ्याच मधुपिष्टया । आर्द्रकस्य रसेनापि निर्गुण्ड्याश्च कफज्वरे ॥ ४३५ ॥ पीनसे च प्रतिश्याय आर्द्रकस्य च वारिणा । अग्निमांद्ये लवङ्गेन शोथे सदशमू-लकः ॥ ४३६ ॥ ग्रहण्यां सह शुंठ्या

च मुस्तकेनातिसारके । सामे च धान्यशुण्ठीभ्यां पक्के च कुटजं मधु ॥ ४३७ ॥ सन्निपातज्वरारम्भे पिप्पल्यार्द्रकवारिणा । कण्टकार्य्या रसैः कासे श्वासे तैलगुडान्वितम् ॥ ४३८ ॥ पीत्वा वटीद्वयं रोगी स्वास्थ्यं समुपगच्छति । सर्वेषामेव रोगाणामामदोषप्रशान्तये । अग्निवृद्धिकरो नाम्ना विख्यातोऽग्निकुमारकः ॥४३९॥

मरिच, वच, कूट, नागरमोथा समभाग हों। ये चार औषध मिलकर जितने हों उतना ही वत्सनाभ विष मिलाकर अदरख के रस में भली-भाँति घोट कर एक एक रत्ती की वटी बनावे। अनुपान आमज्वर की प्रथमावस्था में सोंठ का चूर्ण और मधु, कफज्वर में अदरख का रस और सँभालू की पत्तियों का रस, पीनस और प्रति-श्याय में अदरख का रस, मंदाग्नि में लवंग का क्वाथ, शोथ में दशमूल का काढ़ा, अतिसार में नागरमोथे का क्वाथ, आमातिसार में धनिया और सोंठ का क्वाथ, पक्वातिसार में कुड़ा की छाल का क्वाथ और मधु, सन्निपातज्वर की प्रथमावस्था में छोटी पीपर का चूर्ण और अदरख का रस, कास में कटेरी का रस तथा श्वास में सरसों का तेल और पुराने गुड़ के साथ देना चाहिये। इसकी मात्रा २ वटी की है। हर एक रोग में आम दोष की शान्ति और अग्नि के दीपन के लिये इस रस का प्रयोग करना चाहिये। यह औषध अग्नि का दीपक है इसलिये इसको अग्निकुमार कहते हैं ॥४३४-४३९॥

रत्नगिरि रस

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतताम्राभ्रहाटकम् । प्रत्येकं सूततुल्यं स्यात् सूतार्द्धं मृदलोहकम् ॥ ४४० ॥ लोहार्द्धं मृतवैक्रान्तं मर्दयेद् भृङ्गजद्रवैः । पर्पटीरसवत् पाच्यं चूर्णितं भावयेत् पृथक् ॥ ४४१ ॥ शिग्रु-
...निर्गुण्डीवह्निमद्गुरिएडकैः । क्षुद्रा मृताजयन्तीभिर्मुनिब्राह्मीसुतिक्तकैः ॥ ४४२ ॥ कन्यायाश्च द्रवैर्भाव्यं प्रतिवारं त्रिधा त्रिधा । रुद्ध्वा लघुपुटे पाच्यं वालुकायन्त्रमध्यगम् ॥ ४४३ ॥ यन्त्रं निरुध्य यत्नेन स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् । चूर्णं नवज्वरे देयं रक्तिमात्रं रसस्य वै ॥ ४४४ ॥ कृष्णाधान्यसमायुक्तं मुहूर्त्तात् नाशयेज्ज्वरम् । अयं रत्नगिरिर्नाम रसो योगस्य वाहकः ॥ ४४५ ॥

पारा एक भाग, गन्धक १ भाग, ताम्रभस्म १ भाग, अभ्रकभस्म १ भाग, स्वर्ण १ भाग, लोहभस्म आधाभाग, लोहभस्म का आधा वैक्रान्त भस्म (चौथाई भाग) इन सब द्रव्यों को भृङ्गराज (भँगरैया) के रस में घोटकर पर्पटी के समान पाक करे, तत्पश्चात् चूर्ण करके क्रम से सैंजना, अरूसा, संभालू, वच, चीते का मूल, भाँगरा, गोरखमुंडी, कटेरी, गिलोय, अरणी, अगथैया के फूल, ब्राह्मी, चिरायता और घीकुआर इन औषधों में प्रत्येक के रस की तीन भावनायें देवे। तदनन्तर मूषा में बन्द करके वालुकायन्त्र में स्थापित कर लघुपुट में पाक करना चाहिये। स्वांग शीतल होने पर मूषा से औषध निकालना चाहिये। इसके सेवन करने से नवज्वर शीघ्र शान्त होता है। अनुपान छोटी पीपर और धनिया का क्वाथ। इसकी मात्रा १ रत्ती की है। यह रत्नगिरिरस योगवाही है ॥ ४४०-४४५ ॥

चण्डेश्वर रस ।

रसं गन्धं विषं ताम्रं मर्दयेदेकयामकम् । आर्द्रकस्वरसेनैव मर्दयेत् सप्तवारकम् ॥ ४४६ ॥ निर्गुण्ड्याः स्वरसेन पश्चात् मर्दयेत् सप्तवारकम् । गुञ्जार्द्रकरसेनैव दत्तो हन्ति ज्वरं क्षणात् ॥ ४४७ ॥ वातजं पित्तजं श्लेष्मद्विदोषजमपि क्षणात् । सुशीतलजले स्नानं उपायं क्षीरभोज-

नम् ॥ ४४८ ॥ आम्रश्च पनसश्चैव चन्दनागुरुलेपनम् । एतत्समो रसो नास्ति वैद्यानां हृदयङ्गमः। एष चण्डेश्वरो नाम सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥ ४४९ ॥

पारा, गन्धक, विष और ताम्रभस्म इन सब द्रव्यों को समभाग लेकर एक प्रहर तक घोटना चाहिये। इसके बाद अदरख के रस की सात बार और सात बार संभालू के रस की भावना दे देकर घोटना चाहिये। भलीभाँति घोटने के पश्चात् एक एक रत्ती की वटी बनावे। अदरख के रस के साथ इस रस का सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर शान्त हो जाते हैं। इस रस का सेवन करके शीतल जल से स्नान और तृषा की अधिकता हो तो दुग्ध के साथ भोजन करना चाहिये। आम की छाल, कटहल की छाल, चन्दन और अगर इनको जल में पीस कर लेप करना चाहिये। सब प्रकार के ज्वरों को नष्ट करने के लिये इस चण्डेश्वर रस के समान अन्य कोई रस वैद्यों के ध्यान में नहीं है ॥ ४४६-४४९ ॥

उदकमञ्जरी रस।

सूतो गन्धष्टङ्कनः सोषणः स्यादेतैस्तुल्या शर्करा मत्स्यपित्तैः। भूयो भूयो भावयेच्च त्रिरात्रं वल्लो देयः शृङ्गवेरस्य वारा ॥ ४५० ॥ सम्यक् तापे वारिभक्तं सतक्रं वृन्ताकाढ्यं पथ्यमत्र प्रदिष्टम्। अह्नायोग्रं हन्ति सामं प्रभावात् पित्ताधिक्ये मूर्ध्नि वारिप्रयोगः ॥ ४५१ ॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, सोहागा फूला हुआ १ तोला, मिरिच १ तोला, मिश्री ४ तोले इन सब द्रव्यों को एकत्र कर तीन दिन तक रोहित मछली के पित्त की भावना दे देकर घोटना चाहिये। तदनंतर दो-दो रत्ती की वटी बनानी चाहिये। अनुपान—अदरख का रस, यदि इसके सेवन से अधिक उष्णता प्रतीत हो तो शीतल जल, भात, तक्र और बैंगन की तरकारी पथ्य में देवे। पित्त की अधिकता हो तो शिर पर शीतल जल डालना चाहिये। इस औषध से आमदोषयुक्त ज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥ ४५०-४५१ ॥

अचिन्त्यशक्तिरस।

रसगन्धकयोर्ग्राह्यं प्रत्येकं माषकद्वयम्। भृङ्गकेशाख्यनिर्गुण्डी मण्डूकीपत्रसुन्दरः[1] ॥ ४५२ ॥ श्वेतापराजितामूलं शालिञ्चकाण्डमारिषम्[2]। सूर्यावर्त्तः सितश्चैषां चतुर्माषकसंमितैः ॥ ४५३ ॥ प्रत्येकं स्वरसैः खल्लशिलायामवधानतः। स्वर्णमाक्षिकमाषञ्च दत्त्वा मरिचमाषकम्॥४५४॥ नैपालताम्रदण्डेन दृष्ट्वा तत् कज्जलद्युतिः। वटी मुद्गोपमा कार्य्या छायाशुष्का तु रक्षिता ॥ ४५५ ॥ प्रथमे वटिकास्तिस्रः कृत्वा नवशरावके। ततः खसर्पणं सूर्य्यं पूजयित्वा प्रणम्य च ॥ ४५६ ॥ वारिणा गोलयित्वा तु पातुं देयश्च रोगिणे। स्वेदोपवासरचिते क्लान्ते चात्ययले तथा॥४५७॥ द्वितीयेऽह्नि वटीयुग्मं वटीमेकां तृतीयके। यावन्तो वटिका देयास्तावज्जलशरावकम् ॥ ४५८ ॥ तृष्णायाश्च रसं दद्याज्जाङ्गलानां जलं तृपि। लुलायदधिसंयुक्तं भक्तं भोज्यं यथेप्सितम् ॥ ४५९ ॥ लावपक्षिरसो देयः संस्कृत. सैन्धवादिभिः।पथ्यमग्निबलं वीक्ष्य वारि भक्तरसं तथा। शिरश्चलनशूलादौ तैलं नारायणादि च ॥ ४६० ॥

---

[1] पत्रसुन्दर=हिं० ग्रीष्मसुन्दर, बं० गीमाशाक यह एक प्रकार का शाक है, इसकी पत्तियां सूक्ष्म होती हैं, यह ग्रीष्म ऋतु में अधिक होता है।

[2] शालिञ्च=स्वनामख्यातशाकविशेषे। तत्पर्यायः पत्तूरः, पत्रक', शालञ्चिः, शालाञ्चिः, पत्रकेष्ट', स्रोदआरकः, सितसारः।

पारा २ मासे, गन्धक २ मासे एकत्र कर कज्जली बनावे तदनंतर भँगरैया, सँभालु, ग्रीष्मसुन्दर, श्वेत कोयल का मूल, शालिञ्च शाक, मरसा, श्वेत हुलहुल इनमें प्रत्येक का चार-चार मासे स्वरस लेकर कज्जली में मिलावे, पश्चात् उसमें स्वर्णमाक्षिक १ मासा, काली मिरिच १ मासा मिलाकर नैपाली ताँबा के पात्र में नैपाली ताँबा के ही दस्ते से घोटे, जब घोटते-घोटते काजल के समान हो जावे तो मूँग के बराबर की गोलियाँ बनाकर छाया में सुखाकर रख लेवे। तदनंतर आकाशचारी सूर्य की पूजा और प्रणाम करके स्वेद तथा लंघन से थके हुए अत्यन्त निर्बल रोगी को पहिले दिन ३ गोलियाँ, दूसरे दिन २ गोलियाँ, तीसरे दिन १ गोली शीतल जल के साथ सेवन करावे। जितनी गोलियाँ खाने को देवे उतने ही शराव (३२ तोला) जल भी उसके साथ देना चाहिये। पीछे प्यास लगने पर पीने के लिये शीतल जल, जंगली पशुओं के मांस का रस देना चाहिये। पथ्य—अग्नि का बल देखकर भैंस के दही के साथ भात, सेंधानोन आदि से युक्त लावा पक्षी के मांस का रस आदि देना चाहिये। यदि शिर में कम्पन या शूल हो तो शिर में नारायण आदि तैल की मालिश करानी चाहिये ॥ ४५२-४६० ॥

नवज्वरेभाङ्कुश।

सगन्धटंगं रसतालकञ्च विमर्दयेद्भावयेन्मीनपित्तैः। दिनद्वयं गुञ्जमितं प्रदद्यात् वृन्ताकतक्रोदनमेव पथ्यम्॥ नवज्वरेभाङ्कुशनामधेयः क्षणेन घर्मोद्गममातनोति ॥ ४६१ ॥

गन्धक, सुहागा, पारद, हरिताल इन सबको बराबर-बराबर लेना चाहिए और रोहित मत्स्य-पित्त की दो भावना देकर काम में लाना चाहिए—मात्रा १ रत्ती। बैंगन, मठा तथा भात पथ्य है। इससे रोगी को पसीना आकर ज्वर शीघ्र दूर हो जाता है ॥ ४६१ ॥

विश्वतापहरण।

पथ्या कणार्क विषतिन्दु कदन्तिबीज। तिक्तात्रिवृद्रसबलीन सदृशान्विमर्द्य ॥ ४६२ ॥ धूर्ताम्बुना सकल वासरमेष सूतः स्याद्विश्वताप हरणोऽभिनवज्वरघ्नः ॥ ४६३ ॥

हर्रें, पीपल, ताम्रभस्म शुद्ध कुचिला और जमालगोटा, कुटकी, निसोत, शुद्ध पारा और गन्धक सब समान भाग लेकर महीन पीसकर कज्जली में मिलाय धतूरे के रस से १ दिन-रात घोटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनाकर रख लेवे। इनमें से १ से ४ गोली तक रोग और रोगी के बलानुसार समय और रोगानुसार अनुपान के साथ देने से नये ज्वर को फौरन मिटा देता है ॥ ४६२-४६३ ॥

महाज्वराङ्कुश।

सूतं गंधं विषं तुल्यं धूर्तबीजं त्रिभिः समम्। चतुर्णां द्विगुणं व्योषचूर्णं गुञ्जाद्वयं हितम् ॥ ४६४ ॥ जम्बीररस्य च मज्जाभिरार्द्रकस्य रसैर्युतम्। महाज्वराङ्कुशो नाम ज्वराष्टकनिषूदनः॥ ४६५ ॥ एकाहिकं द्व्याहिकं वा त्र्याहिकञ्च चतुर्थकम्। विषमञ्च त्रिदोषोत्थं हन्ति सर्वं न संशयः ॥ ४६६ ॥

पारद १ तोला, गन्धक १ तोला, विष १ तोला, काले धतूरे के बीज ३ तोले, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च पीपल) मिलित १२ तोला। इन कुल द्रव्यों को जम्भीरी के रस से या अदरख के रस में पीसकर दो रत्ती प्रमाण की गोली बना ले। इन गोलियों के सेवन करने से आठ प्रकार का ज्वर नष्ट होता है ॥ ४६४-४६६ ॥

ज्वरकेशरिका।

शुद्धसूतं विषं व्योषं गन्धं त्रिफलमेव च। जयपालं समं कुर्याद्भृङ्गतोयेन मर्द-

येत् ॥ ४६७ ॥ वटिकां गुञ्जमात्रान्तु कृत्वा वैद्यः प्रयत्नतः । प्रमाणं सर्षपाकारं बालानाञ्च प्रशस्यते ॥ ४६८ ॥ नारकेलाम्बुना वापि सर्वज्वरविनाशिनी । मरिचेन च पीता स सन्निपातज्वरं जयेत् ॥ ४६९ ॥ पिप्पलीजीरकाभ्यान्तुदाहज्वरविनाशिनी विषमज्वरं च भूतोत्थं ज्वरं प्लीहानमेव च ॥ ४७० ॥ अग्निमांद्यमजीर्णञ्च श्वयथुञ्च सुदारुणम् । शूलाजीर्णं तथा गुल्मं कुष्ठं द्वादश पित्तजान् ॥ ज्वरकेशरिका ख्याता तरुणज्वरनाशिनी ॥ ४७१ ॥

पारद, मीठा विष, सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली गन्धक, हरड़, बहेड़ा, आँवला, जयपाल, हरएक द्रव्य बराबर-बराबर लेकर भाँगरा (भृङ्गराज) के रस में घोटकर १ रत्ती प्रमाण की गोली बना लेनी चाहिए। अनुपान नारियल का पानी, ये गोलियाँ हरएक ज्वर को दूर करती हैं। सन्निपातज्वर में इसका अनुपान मरिचचूर्ण है । दाहज्वर में पिप्पली तथा सफेद जीरे के चूर्ण के साथ देना चाहिए। यह रस मलावरोधयुक्त पुराने बुखार, भूतज्वर, प्लीहा, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, सूजन, शूल, गुल्म, कुष्ठ एवं पित्त से होनेवाले रोगों को नाश करता है। बच्चों के लिये एक सरसों भर की मात्रा है ॥४६७-४७१ ॥

सान्निपातिक ज्वर आदि पर ।

मोहान्धसूर्य रस ।

गन्धेशौ लशुनाम्भोभिर्मर्दयेद् याममात्रकम् । तस्योदकेन संयुक्तं नस्यं तत्प्रतिबोधयेत् ॥ मरिचेन समायुक्तं हन्ति तन्द्राप्रलापकम् ॥ ४७२ ॥

पारा और गन्धक सम भाग लेकर लहसुन के अर्क के साथ एक प्रहर तक मर्दन करके उसी रस के द्वारा नस्य देने से रोगी को चेतना प्राप्त होती है। इसी औषध में मरिच मिला कर नस्य देने से तन्द्रा और प्रलाप नष्ट होते हैं ॥ ४७२ ॥

कुलवधू रस ।

शुद्धसूतं मृतं नागं मृतं ताम्रं मनःशिला । तुत्थकं तुल्यतुल्यांशं दिनमेकं विमर्दयेत् ॥ ४७३ ॥ रसैश्चोत्तरवारुण्याश्चणमात्रा वटीकृता । सन्निपातं निहन्त्याशु नस्यमात्रेण दारुणम् । एषा कुलवधूर्नाम जलैर्घृष्ट्वा प्रदापयेत् ॥ ४७४ ॥

शुद्ध पारा, शीशा की भस्म, ताम्रभस्म, मैनशिल और तूतिया इनमें प्रत्येक द्रव्य को समभाग लेकर इन्द्रायण के रस में घोटकर चना के बराबर की वटी बनावे । इस वटी को जल में घिसकर केवल नस्य देने से दारुण सन्निपातज्वर निवृत्त होता है । इस रस का 'कुलवधू' नाम है ॥ ४७३-४७४ ॥

सौभाग्यवटी ।

सौभाग्यामृतजीरपञ्चलवणव्योषाभयामलाः निश्चन्द्राभ्रकशुद्धगन्धकरसानेकीकृतान् भावयेत् । निर्गुण्डीयुगभृङ्गराजकटुपाऽपामार्गपत्रोल्लसत् प्रत्येकस्वरसेन सिद्धवटिका हन्ति त्रिदोषोदयम् ४७५ येषां शीतमतीव दाहमखिलं स्वेदप्रगाढ़ीकृतं निद्रां घोरतरां समस्तकरणव्यामोहमूढं मनः । शूलश्वासबलासकाससहितं मूर्च्छारुचिं तृड्ज्वरंनेषां वै परिहृत्य जीवितमसौ गृह्णाति मृत्योर्मुखात्॥४७६॥

सोहागा की खील, विष, जीरा, पाँचों नमक, सोंठ, मिरिच, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक और पारा इन कुल द्रव्यों को समभाग लेकर मर्दन करे, तदनन्तर श्वेत पुष्पवाली और नीलपुष्पवाली दोनों प्रकार की मेउढी (सम्भालू) भँगरैया, अड़ूसा और चिरचिटा इनमें से प्रत्येक के स्वरस में घोटकर दो-दो रत्ती की

गोलियाँ बनावे। इस सौभाग्यवटी का सेवन करने से अत्यन्त शीत का लगना, दाह होना, सर्वाङ्ग में अधिक पसीना आना, घोरतर निद्रा का आना, समस्त इन्द्रियों का व्यामोह, शूल, श्वास, कफ, कास, मूर्च्छा, अरुचि और तृषा आदि उपद्रवों से युक्त सान्निपातिक ज्वर नष्ट होता है ॥ ४७१-४७६ ॥

श्रीवेताल रस।

रसं गन्धं विषञ्चैव मरिचालं समांशिकम्। मर्दयेच्छिलया तावद् यावज्जायेत कज्जलम् ॥ ४७७ ॥ गुञ्जामात्रप्रमाणेन हरेद्द्वादशसंज्ञकम्। साध्यासाध्यं निहन्त्याशु सन्निपातं सुदारुणम् ॥४७८॥ म्लानेषु लिप्तदेहेषु मोहग्रस्तेषु देहिषु। दातुमर्हति वेतालोयमदूतनिवारकः ॥४७९॥

पारा, गन्धक, विष, मिरिच और हरताल इन सब द्रव्यों को समभाग लेकर जल डालकर पत्थर की लोढ़िया से उत्तम रीति से घोटकर कज्जल के समान बनावे। तदनन्तर एक-एक रत्ती की वटी बनाकर सेवन करने से यह वेतालरस मूर्च्छा और घूर्म आदि उपद्रवों से युक्तसाध्य, असाध्य बारह प्रकार के सन्निपातज्वर को नष्ट करता है ॥ ४७१-४७६ ॥

(२) चक्री रस।

शम्भोः कण्ठविभूषणं समरिचं तालं तथा पारदं, देवीबीजयुतं सुशोधितमितं जैपालबीजोत्तमम्। दन्तीमूलयुतं समागधिफलं सर्वं समांशं नयेत्, तत् सर्वं परिमर्द्यचार्द्रकरसैर्गुञ्जाप्रमाणं रसम् ॥ दद्याद् घोरतरे त्रयोदशविधे दोषे च चक्राह्वयं, तन्द्रादाहसमन्विते च तृषया सम्पीडिते मानवे ॥ ४८० ॥

विष, काली मिरिच, शुद्ध हरताल, पारा, शुद्ध गन्धक, जयपालबीज, दन्तीमूल और छोटी पीपर इन कुल द्रव्यों को समभाग लाकर अदरख के अर्क में घोटकर एक-एक रत्ती की वटी बनावे। इस चक्री रस का सेवन करने से तन्द्रा, दाह और तृषा आदि उपद्रवों से युक्त अति घोर तेरह प्रकार के सन्निपातज्वर निवृत्त होते हैं ॥ ४८० ॥

ब्रह्मरन्ध्र रस।

रसाभ्रगन्धकं तालं हिंगुलं मरिचं तथा। टङ्कनं सैन्धवोपेतं सर्वांशममृतं तथा ॥ ४८१ ॥ सर्वपादसमोपेतं महिषीपित्तमर्दितम्। ब्रह्मरन्ध्रे प्रयोक्तव्यं संन्यासज्ञानसङ्क्रमे ॥ ४८२ ॥ सहस्रकलशैः स्नानं लेपनं चन्दनादिभिः। इक्षुमुद्गरसं भोज्यं तक्रभक्तं यथेप्सितम् ॥ ४८३ ॥

पारा, अभ्रकभस्म, गन्धक, शुद्ध हरताल, हिंगुल, मरिच, सोहागा की खील और सेंधानोन ये सब समभाग हों और ये कुल द्रव्य मिलकर जितने हों उतना ही विष, तथा कुल योग (मुसब्बा) का चतुर्थांश भैंस का पित्त मिलाकर उत्तम रीति से घोटकर रख लेवे।

छुरा (उस्तुरा से ब्रह्मरन्ध्र) से थोड़ा-सा क्षत (घाव) करके इस ब्रह्मरन्ध्ररस को लगाने से सन्निपातजन्य अज्ञान (बेहोशी) दूर होता है। इस औषध को लगाने के पश्चात् शिर पर सहस्र घट से शीतल जल देना, चन्दन का लेप करना आदि शीतक्रिया लाभदायक है। पथ्य ईख का रस, मूँग का जूस, माठा-भात आदि इच्छानुसार भोजन करना चाहिये ॥ ४८१-४८३ ॥

आनन्दभैरवी वटी।

विषं त्रिकटुकं गन्धं टङ्कनं मृतशुल्वकम्। धुस्तूरस्य च बीजानि हिंगुलं नवमं स्मृतम् ॥ ४८४ ॥ एतानि समभागानि दिनैकं विजयारसैः। मर्दयेद्गुणकामा तु वटिकानन्दभैरवी ॥४८५॥ भक्षयित्वा पिबेच्चानु-

रविमूलकषायकम् । सव्योषं हन्ति नो चित्रं सन्निपातं सुदारुणम् ॥ ४८६ ॥

विष सोंठ, मिरिच, पीपरि, गन्धक, सोहागा की खील, ताम्रभस्म, शुद्ध धतूरबीज और हिंगुल समभाग इन सब द्रव्यों को ग्रहण कर एक दिन भाँग के अर्क में घोटकर चना के बर बर वटी बनावे। इसको आनन्दभैरव कहते हैं। इस वटी को खाकर मदार के मूल के काथ में सोंठ, मिरिच, पीपर का चूर्ण मिलाकर पान करने से निःसन्देह दारुण सन्निपात नष्ट होता है॥ ४८४-४८६ ॥

मृतोत्थापन रस।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं शिला च विष-हिंगुलम् । मृतकान्ताभ्रताम्रायस्तालकं माक्षिकं समम् ॥४८७॥ अम्लवेतसजम्बीर-चाङ्गेरीणां रसेन च । निर्गुण्डीहस्तिशुण्ड्योश्च द्रवैर्मर्द्य दिनत्रयम् ॥ ४८८ ॥ रुद्ध्वा तु भूधरे पाच्यं दिनान्ते तत् समुद्धरेत् । चित्रकस्य कषायेण मर्दयेत् प्रहरद्वयम् ॥ ४८९ ॥ माषमात्रं प्रदातव्यं हिंगुव्योषार्द्रकद्रवैः । सकर्पूरानुपानं स्यान्मृतस्योत्थापने रसे ॥ ४९० ॥ पीडितं सन्निपातेन गतं वापि यमालयम् । तत् क्षणाज्जीवयत्येष पथ्यं क्षीरं प्रयोजयेत् ॥ ४९१ ॥

कान्तमिति अभ्रस्य विशेषणम् ।

शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, मैनशिल १ भाग, विष १ भाग, हिंगुल १ भाग, अभ्रकभस्म १ भाग, ताम्रभस्म १ भाग, लोहभस्म १ भाग, हरताल १ भाग और स्वर्णमाक्षिक १ भाग इन कुल द्रव्यों को एकत्र कर अमलवेत, जंभीरी नींबू, अमलोनिया, निर्गुण्डी और हाथीशुंडा इनके अर्क में तीन दिन पर्यन्त मर्दन करके भूधरयन्त्र में एक दिन पकावे। तदनन्तर निकालकर चीता के काथ में दो पहर पर्यन्त मर्दन कर मासा प्रमाण इस मृतोत्थापन रस को भुनी हींग, सोंठ, मिरिच, पीपल और कपूर संयुक्त अदरख के अर्क के साथ सेवन करने से मृतप्राय सन्निपातरोगी जी उठता है। इसको पथ्य दूध के साथ देना चाहिये॥ ४८७-४९१ ॥

मृतसञ्जीवन रस।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं खल्ले तत् कज्जलीकृतम् । अभ्रलोहकयोर्भस्म ताम्रभस्म समं समम् ॥ ४९२ ॥ विषतालवराटी च शिला हिंगुलचित्रकम् । हस्तिशुण्डी चातिविषा त्र्यूषणं हेममाक्षिकम् ॥ ४९३ ॥ चूर्णं विमर्दयेद्द्रावैरार्द्रकस्य दिनत्रयम् । निर्गुण्डीविजयाद्रावैस्त्रिदिनं मर्दयेत् पुनः ॥ ४९४ ॥ काचकूप्यां निवेश्याथ वालुकायन्त्रके पचेत् । द्वियामान्ते समुद्धृत्य मर्दयेदार्द्रकद्रवैः ॥ ४९५ ॥ मृतसञ्जीवनो नाम रसोऽयं शङ्करोदितः । मृतोऽपि सन्निपातार्त्तो जीवत्येव न संशयः । नातः परतरः कश्चित् सन्निपातहरो रसः ॥ ४९६ ॥

अघोरमन्त्रेण रसरत्नं पूजां च कृत्वा प्रहरद्वय ज्वाला देया अपरदिने शीतलीभूतमाकृष्य पुनरार्द्रकद्रवेण संमर्द्य शोषयित्वा गुञ्जाद्वयं गुञ्जात्रयं वा आर्द्रकरसेन देयं रसं लग्नं ज्ञात्वा अन्यरसवत् शीतोपचारं कुर्य्यात् । अघोरमन्त्रो यथा 'ओं अघोरेभ्योथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यश्च सर्वतः सर्वेभ्यो नमोऽस्तु रुद्ररूपेभ्य' इति मन्त्रेण रसस्य पूजनं कर्त्तव्यम् अघोर मन्त्रेण अन्यत्रापि रसकार्य्ये कर्त्तव्यमन्यथा दोषोऽस्ति।

शुद्ध पारा १ तोला, गन्धक २ तोला इन की कजली बनाकर, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, ताम्रभस्म, विष, हरिताल, कौड़ीभस्म, मैनशिल, हिंगुल, चीता, हाथीशुंडा, अतीस, सोंठ, मिरिच

पीपर और स्वर्णमाक्षिकभस्म इनमें से प्रत्येक औषध को एक एक तोला लेकर चूर्णित कर पूर्वोक्त कज्जली में मिलावे तदनन्तर तीन दिन अदरख के अर्क में, तीन दिन निर्गुण्डी के अर्क में और तीन दिन भाँग की पत्तियों की अर्क में घोटकर आतसीशीशी में रखकर बालुका यन्त्र में दो प्रहर पर्यन्त पाक करे। इसका पाक करने के समय 'ओ३म् अघोरेभ्योथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यश्च सर्वतः सर्वेभ्यो नमोऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः' इस मन्त्र से रस की रक्षा और पूजा करके दो प्रहर पर्यन्त क्रम से मन्द, मध्य, तीव्र ज्वाला देकर पाक करना चाहिये। दूसरे दिन स्वाङ्ग शीतल होने पर शीशी से औषध को निकालकर फिर अदरख के अर्क में घोट कर शुष्क करके रख लेवे। यह शकरोक्त 'मृतसंजीवन' रस है। इसका सेवन करने से मृतप्राय भी सन्निपातरोगी जीवित हो उठता है। इससे उत्तम सन्निपातनाशक अन्य कोई रस नहीं है। इस रस के सेवन से यदि कुछ उष्णता प्रतीत हो तो अन्य रस के समान इसमें भी शीतल उपचार करना चाहिये। इस रस की मात्रा २ रत्ती से ३ रत्ती पर्यन्त है ॥४९२-४९६॥

सन्निपातभैरव रस।

हिंगुलस्य विशुद्धस्य सार्द्धतोलचतुष्टयम्। गन्धकस्य विषस्यापि प्रत्येकं तोलकद्वयम् ॥ ४९७ ॥ समासकद्वयं चैव कनकाचोलकत्रयम्। माषैकाधिकतोलैकं टङ्कनस्य तथैव च ॥ ४९८ ॥ संमर्द्य जम्बीररसैर्वटीश्छायाविशोषिताः। गुञ्जैकपरिमाणास्तु कारयेत् कुशलो भिषक् ॥ ४९९ ॥ पक्वां तु भक्षयेत्तस्य गोलयित्वार्द्रकद्रवैः। घोरे त्रिदोषे दातव्यः सन्निपातज्वरापहः ॥५००॥

शुद्ध हिंगुल ४॥ तोले, गन्धक २ तोले और २ मासे, विष २ तोले और २ मासे, धतूरे के बीज ३ तोले, एक तोला और एक मासा सोहागा की खील। इन सब द्रव्यों को जमीरी नींबू के अर्क में घोटकर, एक एक रत्ती की वटी बनाकर छाया में सुखावे। घोर त्रिदोष में सन्निपातभैरव रस की एक वटी अदरख के अर्क के साथ देना चाहिये ॥ ४९७-५०० ॥

(१) सूचिकाभरण रस।

अमृतं गरलं दारु सर्वतुल्यं च हिंगुलम्। पञ्चपित्तेन संमर्द्य सर्षपाभां वटीं चरेत् ॥ ५०१ ॥ वटिका सूचिकाग्रेण सन्निपातकुलान्तकृत्। तिलञ्च तिलतैलञ्च भोजनं दधिभक्तकम् ॥ ५०२ ॥

सहस्रशो दृष्टफलेयं वटिका।

शुद्ध बच्छनाग, काले साँप का विष और दारुमुंज विष (संखिया) प्रत्येक १ तोला, हिंगुल ३ तोला। इन सब द्रव्यों को पञ्चपित्त के साथ मर्दन करके सरसों समान छोटी-छोटी गोलियाँ बनावे। सुई की नोक के बराबर मात्रा में अदरख के रस के साथ इसका सेवन करने से हर प्रकार का सन्निपात नष्ट होता है। औषध का सेवन कराने के पश्चात् रोगी के देह में तिल के तैल का मर्दन कराना चाहिये। खाने के लिये तिल, दही-भात देना तथा अन्यान्य शीत उपचार करना आवश्यक है। यह वटिका हजारों बार अनुभूत हो चुकी है ॥ ५०१-५०२ ॥

(२) बृहत्सूचिकाभरण रस।

रसगन्धकनागाभ्रं विषं स्थावरजङ्गमम्। मात्स्यमाहिषमायूरच्छागपित्तैर्विभावयेत् ॥ ५०३ ॥ सूचिकाभरणो नाम भैरवेण प्रकीर्त्तितः। दातव्यः सूचिकाग्रेण पयः पेटीजलेन च ॥ ५०४ ॥ त्रयोदशसन्निपाते विसूच्यामतिसारके। त्रिदोषजे तथा कासे दापयेत् कुशलो भिषक् ॥ ५०५ ॥ पयःपेटीगतं दद्यात् भोजनं दधिभक्तकम्। तथा सुमर्जितं मांसं लेपनं तिलचन्दनैः ॥ रोगिणो यत् प्रियं द्रव्यं तस्मै तत् प्रदापयेत् ॥ ५०६ ॥

पारा, गन्धक, नागभस्म, अभ्रकभस्म, बच्छनाग और काले साँप का विष इन सब द्रव्यों को समभाग लेकर रोहित मछली, महिष, मयूर और बकरा इनके पित्त की भावना देकर रख लेवे। नारियल के जल के साथ सुई की नोक के समान स्वल्पमात्रा में इस रस का सेवन करने से १३ प्रकार के सन्निपात, विसूचिका, अतिसार और कास नष्ट होते हैं। रोगी को पीने के लिये नारियल का यथेच्छ जल, खाने के लिये दही भात और उत्तम रीति से भुना हुआ मांस देना चाहिये। रोगी के देह में तिल चन्दन का लेप आदि विविध प्रकार की शीतल क्रिया करनी चाहिये। रोगी को जो पदार्थ प्रिय हो वह देना चाहिये॥ ५०३-५०४॥

पानीयवटिका।

रसमापकचत्वारि इष्टकागुण्डके ग्रहम्। शोषयित्वा तत शोध्य तीक्ष्णपर्णे तथा द्रके॥ ५०७॥ स्वर्णधुस्तूरसत्वे च वृद्धदारद्रवे तथा। कन्यकानिजसत्वे च रसशोधनमुत्तमम्॥ ५०८॥ गन्धकं रसतुल्यन्तु मत्तात्य तण्डुलाम्बुना। कृत्वा तैलसमं दर्व्यां निर्वाप्य चित्रकद्रवे॥५०९॥ द्वाभ्यां कज्जलिकां कृत्वा लौहचूर्णस्य मापकम्। सुवर्णमाक्षिकमपि तत्र लौहसमं ददेत्॥ ५१०॥ कृत्वा कण्टकवेध्यन्तु ताम्रं कज्जललेपितम्। मुहूर्त्तमध्यतस्ताम्रं द्रुतं चूर्णत्वमाप्नुयात्॥ ५११॥ एकीकृत्य तु सत्सर्वं तत प्रस्तरभाजने। मर्दयेत्ताम्रदण्डेन दत्त्वा चैषां निजद्रवम् ५१२ प्रथमे केशराजश्च द्वितीये ग्रीष्मसुन्दर। तृतीये भृङ्गराजश्च चतुर्थे भेकपर्णिका ५१३ पञ्चमे च सिन्धुवार[1] षष्ठे च रसपूतिका। सप्तमे पारिभद्रश्च अष्टमे रक्तचित्रक ५१४ शक्राशनश्च नवमे दशमे काकमाचिका। एकादशे तथा नीला द्वादशे हस्तिशुण्डिका॥ ५१५॥ अमीषामोषधीनाञ्च प्रत्येकन्तु पलद्रवम्। मर्दयेत्तु प्रयत्नेन द्वादशाहेन साधक॥५१६॥ तत पारदमानन्तु दत्त्वा त्रिकटुगुण्डकम्। वटिकां राजिकातुल्यां छायाशुष्कां समाचरेत्५१७ ततः शम्बुकजे पात्रे कर्त्तव्या वटिका त्वियम्। शरावे शङ्खपात्रे वा कृत्वा सलिलगोलितम्॥ ५१८॥ अत्यन्तदोषदुष्टाय ज्ञानशून्याय रोगिणे। ऊर्ध्वयोनिं समभ्यर्च्य प्रदद्याद्वटिकाद्वयम्॥ ५१९॥ ढक्येत् तं ततः पश्चान्नरं स्थूलपटादिभिः। मलमूत्रागमात् सद्यः स साध्यो भवति द्रुतम्॥ ५२०॥ दध्यन्नन्तु ततो दद्यात् पिबेद्वारि यथेच्छयः। दद्याद् वातहरं तैलमभ्यङ्गाय सदैव हि॥ ५२१॥ चिरज्वरे पिबेद्वारि पञ्चमूलीप्रसाधितम्। ग्रहण्यां रक्तपाते च पिबेदतिविषां गदी॥ ५२२॥ पिबेत् पर्पटजं वारि घोरे कम्पज्वरे तथा। तथा ज्वरातिसारे च जीरकस्य जलं पिबेत्॥ ५२३॥ मन्दाग्नौ कामलायाञ्च संग्रहग्रहणीगदे। कासे श्वासे सदा कार्य्या पानीयवटिका त्वियम्॥ ५२४॥

४ मासे पारा लेकर उसमें लाल ईंट का चूर्ण डालकर उत्तम रीति से घोटे, तत्पश्चात् धोकर ईंट के कुल चूर्ण को निकालकर स्वच्छ करके कमरख अदरख, कनक (धतूर), विधारा और घृतकुमारी (घीकुवार) इनमें से प्रत्येक के रस में पृथक् पृथक् घोटकर पारा को शुद्ध कर लेवे। तदनन्तर ४ मासे गन्धक लेकर चावलों के जल में धोकर, तैलयुक्त लोहे के चमचा अथवा कड़ाही में डालकर आँच देवे। जब गन्धक द्रुत हो (गल) जाय तो उसको चीते के क्वाथ में बुझा देवे[1]।

[1] इस रीति से गन्धक का शोधन होता है।

तदनन्तर क्वाथ से गन्धक को निकालकर पूर्वोक्त शुद्ध पारा में मिलाकर कज्जली बनावे। इस कज्जली का शुद्ध, सूक्ष्म, ताम्रपत्र पर लेप करके उस ताम्रपत्र को ताम्र की कड़ाही में रखकर आँच देवे, इस रीति से वह ताँबा मुहूर्तमात्र ही में भस्म हो जाता है। इस प्रकार ताम्रभस्म करने के पश्चात् लोहचूर्ण १ मासा, स्वर्णमाक्षिक १ मासा, पूर्वोक्त ताम्रभस्म ४ मासे इन सबको एकत्र घोटकर पश्चात् केशराज, ग्रीष्मसुन्दर शाक के पत्ते, भृंगराज, मण्डूकपर्णी, सँभालू, मालकाँगुनी, नीम, लालचीता, भाँग, मकोय, नीलवृक्ष और हाथीशुंडा क्रम से प्रत्येक औषध के चार-चार तोले रस में एक-एक दिन ताँबे के दण्ड से पत्थर के खरल में मर्दन करे। तात्पर्य यह कि एक औषध के रस में एक दिन घोटकर शुष्क करके दूसरे औषध के रस में दूसरे दिन घोटे, इस प्रकार १२ औषधों के रस में १२ दिन घोटकर शुष्क करके उसमें ४ मासे त्रिकटु (सोंठ मिर्च, पीपर) का चूर्ण मिलाकर जल में घोटे। पश्चात् बनारसी राई के समान छोटी छोटी गोलियाँ बनाकर छाया में शुष्क कर लेवे।

सान्निपातिक ज्वर में असाध्यावस्थाप्राप्त रोगी को २ गोलियाँ शीघ्र, शङ्ख अथवा मिट्टी के सकोरा में रखकर जल में घोलकर परमेश्वर का पूजन कर पिलावे। तदनन्तर उसको मोटा वस्त्र ओढ़ा देवे। इस प्रकार औषध का सेवन कराने से शीघ्र ही मल-मूत्र की प्रवृत्ति होने से रोगी शीघ्र ही स्वस्थ हो जाता है। रोगी को भोजन के लिये दही-भात, पीने के लिये शीतल जल और शरीर में अभ्यङ्ग के लिये वातनाशक तैल देना चाहिये।

पुराने ज्वर में स्वल्प पञ्चमूल के क्वाथ के साथ ग्रहणी में और रक्तातिसार में खसीस के क्वाथ के साथ, घोर कम्पज्वर में पित्तपापड़ा के क्वाथ के साथ, ज्वरातिसार में जीरा के क्वाथ के साथ, तथा मन्दाग्नि, कामला, संग्रहणी, कास, श्वास आदि रोगों में योग्य अनुपान के साथ इस पानीयवटिका का सेवन करना चाहिये॥ ५०७-५२४॥

टिप्पणी—ताम्रभस्म निरुत्थ हो गई है यह निश्चय करके काम में लें अन्यथा फिर पुट दे।

सिद्धफला पानीयवटिका की विधि।

अनाथनाथो जगदेकनाथः श्रीलोकनाथः प्रथमः प्रसन्नः। जगाद पानीयवटीं सुपर्द्धीं तामेव वक्ष्यामि गुरुप्रसादात् ५२५
जयार्कस्वरसञ्चैव निर्गुण्डी वासकं तथा। वात्यालकं करञ्जञ्च सूर्य्यावर्त्तकचित्रकौ ॥ ५२६ ॥ ब्राह्मीं वनसर्षपञ्च भृङ्गराजं विनिक्षिपेत्। दन्ती च त्रिवृता चैव तथाश्वत्थपत्रकम्॥ ५२७॥ सहदेवामरं भण्डी तथा त्रिपुरभण्डिका। मण्डूकपर्णीपिप्पल्यौ द्रोणपुष्पकवायसी॥ ५२८॥ गुञ्जाकिनी केशराजस्तथा योजनमल्लिका। आसारणेति विख्यातो धुस्तूरः कनकस्तथा॥ ५२९॥ त्रैलोक्यविजया चैव तथा श्वेतापराजिता। प्रत्येकं कार्षिकं चैव रसमाकृष्य भाजने ॥ ५३०॥ एकैकं च रसं दत्त्वा मर्दयेल्लौहदण्डतः। चण्डातपे च संशोष्य क्षीरं तत्र पुनः क्षिपेत्॥ ५३१॥ स्नुहीक्षीरश्चार्कदुग्धं वटदुग्धं तथैव च। प्रत्येकं कार्षिकं दत्त्वा मर्दयेच्च पुनः पुनः ॥५३२॥ सुमर्दितञ्चतंज्ञात्वा यदा पिण्डत्वमागतम्। द्रव्याण्येतानि संचूर्ण्य वस्त्रे पूतानि कारयेत् ॥ ५३३॥ दग्धक्षीरश्चातिविषां कोचिलामभ्रकं तथा। पारदं शोधितं चैव गन्धकं विषमाधुरम्॥ ५३४॥ हरितालं विषञ्चैव माक्षिकञ्च मनःशिला। प्रत्येकञ्च चतुर्माषं सर्वं चूर्णीकृतं च तत् ॥ ५३५॥ प्रक्षिप्य मर्दयेत् सर्वं शोषयित्वा पुनः पुनः। सुमर्दितञ्च तं दृष्ट्वा चाङ्गेरीस्वरसेन तु॥ ५३६॥ उत्थाप्य भेषजं दृष्ट्वा यदा पिण्डत्वमागतम्। निम्नमार्गा

गुटिकाः कारयेन्मतिमान् भिषक् ॥५३७॥ त्रिदोषजनितो वैद्यमुक्तोऽपि बहुसम्मतः। लङ्घनैर्वालुकास्वेदैः प्रक्रान्तोदीनदर्शनः ॥ ५३८ ॥ सम्पूज्य करुणाधारं प्रणम्य च खसर्पणम्। पलेन वारिणा घृष्ट्वा चतस्रो वटिकाः पिबेत् ॥ ५३९ ॥ पीतं तद्भेषजं पश्चाद् वस्त्रैराच्छादयेन्नरम्। रसलग्नं वपुर्ज्ञात्वा दद्याद्वारिसुशीतलम् ॥ ५४० ॥ शरावप्रमितं वारि पातव्यञ्च पुनः पुनः। सन्निपातज्वरञ्चैव दाहञ्चैव सुदारुणम् ॥ ५४१ ॥ कासं श्वासं च हिक्कां च विड्ग्रहञ्चाश्मरीं जयेत्। मूत्ररोगविबन्धे तु दातव्यं क्षीरसंयुतम् ॥५४२॥ पञ्चतृणकृतक्वाथं दातव्यञ्च पुनः पुनः। पानीयवटिका ह्येषा लोकनाथेन निर्मिता। लोकानामुपकाराय सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥ ५४३ ॥

जयन्त्यादीनां श्वेतापराजितापर्य्यन्तानां स्वरसः प्रत्येकं कर्षमितः। प्रस्तर भाजने लौहदण्डेन एकैकां विमर्द्य तदनु शोषयेत्। तदनु स्नुहीक्षीरमर्कक्षीरं प्रत्येकं कर्षं दत्त्वा पुनर्मर्दयेत्। पिण्डत्वे सति दग्धहीरकादीनां प्रत्येकम्माषचतुष्टयम्।

कज्जलीपूर्वकं सर्वमेकीकृत्य चाङ्गेरीरसेन मर्दयित्वा उत्थाप्य पिण्डीकृत्य तिलप्रमाणा वटिकाः कार्य्याः। अस्य वटिकाचतस्रो वृद्धवैद्योपदेशात् आर्द्रकजलेन वारिणा वा गोलयित्वा शराविकया पाययेत्। मूत्रकृच्छ्रे सति पञ्चतृणसाधितं क्षीरं पाययेत्।

जयन्ती, आक, निर्गुण्डी, अरूसा, सहदेई, कंजा (करंज), सूर्यमुखी, चीता, ब्राह्मी, जंगली, सरसों, भँगरैया, दन्ती, निशोथ, अमिलतास की पत्तियाँ, सहदेना (दण्डोत्पल), अमरकन्द, मजीठ, रुद्रजटा, मण्डूकपर्णी, पीपरि, गजपीपरि, गूमा, मकोय, घुँघुची, भृङ्गराज, योजनमल्लिका (हाफरमाली), आसारणवृक्ष, कनक (धतूरा), भाँग और श्वेत कोयल इनमें प्रत्येक औषध का एक एक तोला स्वरस लेकर पत्थर के खरल में क्रमशः एक एक स्वरस डालकर मर्दन करे और उसको तीव्र घाम में शुष्क कर लेवे। तदनन्तर उसमें थूहर का दूध १ तोला, मदार का दूध १ तोला, और बट का दूध १ तोला क्रमशः डालकर मर्दन करके पिण्ड (गोला) के समान बनावे। पश्चात् पारा चार मासे, गन्धक चार मासे की कज्जली बनाकर, इस कज्जली को पूर्वोक्त पिण्ड के साथ मर्दन करे। तदनन्तर वैक्रान्तमणि, अतीस, कुचिला, अभ्रकभस्म, शृङ्गीविष (सींगिया), हरिताल, गरल (सर्पविष), स्वर्णमाक्षिक भस्म और मैनशिल, इनमें प्रत्येक द्रव्य चार चार मासे लेकर, पूर्वोक्त औषधों में मिलाकर, चौपतिया शाक के रस के साथ घोटकर तिल के समान छोटी छोटी गोलियाँ बनावे।

सन्निपात की ऐसी अवस्था में जब कि वैद्यगण ने रोगी को त्याग किया हो—लङ्घन वालुका स्वेद कराने के पश्चात्—परमेश्वर का पूजन कर इनमें से ४ गोलियाँ चार तोला जल में या अदरख के रस में अथवा जल में घोल कर पिलावे। औषध पिलाने पश्चात् रोगी को वस्त्र से ढक रखे। इसका सेवन कराने से दारुण सन्निपात, दाह, कास, श्वास, हिचकी, मलबद्धता और पथरी आदि रोग निवृत्त होते हैं।

मूत्रकृच्छ्र होने पर पञ्चतृण मूल के क्वाथ में सिद्ध किये हुये दुग्ध का सेवन करना चाहिये। लोकनाथजी ने लोक के उपकार के लिये इस पानीयवटिका का आविष्कार किया था ॥ ५२१-५४३ ॥

सूचिकाभरण रस।

विषं पलमितं सूतः शाणकरचूर्णयेद्-द्वयम्। तच्चूर्णं सम्पुटे कृत्वा काचलिप्त-

शरावयोः ॥ ५४४ ॥ मुद्रां कृत्वाथ संशोष्य ततश्चुल्ल्यां निवेशयेत् । वह्निं शनैः शनैः कुर्यात् प्रहरद्वयसंख्यया ॥५४५॥ तत उद्घाट्य तन्मुद्रामुपरिस्थशरावकात् । संलग्नो यो भवेद्धूमः तं गृह्णीयाच्छनैः शनैः ॥ ५४६ ॥ वायुस्पर्शो यथा न स्यात्ततः कूप्यां निवेशयेत् । यावत् सूच्या मुखे लग्न कूप्या निर्याति भेषजम् ॥५४७॥ तावन्मात्रोरसो देयो मूर्च्छिते सन्निपातिनि । क्षुरेण प्रच्छिते मूर्ध्नि तत्राङ्गुल्याच घर्षयेत् ॥ ५४८ ॥ रक्तभेषजसम्पर्कान्मूर्च्छितोऽपि हि जीवति । तथैव सर्पदष्टोऽपिमृतावस्थोपि जीवति । यदा तापो भवेत्तस्य मधुरं तत्र दीयते ॥ ५४९ ॥

मीठा विष आठ तोले, पारद ४ मासे इन दोनों को मिलाकर खूब घोटना चाहिये । यहाँ तक घोटे कि पारा निश्चन्द्र हो जाय । इसके पश्चात् काँचलिप्त शरावसम्पुट में रखकर कपरमिट्टी करके सुखा ले, फिर नीचे आग जलाकर छः घटे तक नीचे से धीरे-धीरे आँच दे, इसके पश्चात् यन्त्र को खोलकर ऊपर के पात्र में जो धुआँ सा लगा मिले उसे खुरच ले, प्राप्त औषधि को एक डाटदार शीशी में रख दे ताकि उसमें हवा प्रवेश न कर सके । सुई के नोक पर जितनी औषधी लगे उतनी ही इसकी मात्रा है । इतनी ही मात्रा रोगी को देनी चाहिये । उस्तरे आदि से रोगी के मस्तक पर क्षत (घाव) करके उस स्थान पर अँगुली से घिसे, ऐसा करने से औषधि अपने प्रभाव को शीघ्र दिखायेगी और अचेतन अवस्था में अथवा सन्निपात से पीड़ित या साँप से डसा हुआ रोगी शीघ्र ही चैतन्य हो जायगा । यदि इसके सेवन कराने से शरीर में गर्मी बढ़ती है तो ऐसी अवस्था में रोगी को मधुर वस्तुओं का सेवन कराना चाहिए ॥ ५४४-५४९ ॥

चिन्तामणि रस ।

सूतं गन्धकमभ्रकं समनरं सूतार्द्धभागं विषं तत् त्र्यंशं जयपालमम्लमृदितं तद्गोलकं वेष्टितम् ॥ पत्रैर्मञ्जुभुजङ्गवल्लिजनितैर्निक्षिप्य खाते पुटं दत्वा कुक्कुटसंज्ञकं सह दलैः संचूर्ण्य तत्र क्षिपेत् ॥ ५५० ॥ भागार्द्धं जयपालबीजममृतं तत्तुल्यमेकीकृतं गुञ्जात्र्यूषणसिन्धुचित्रकयुतः सर्वान् ज्वरान् नाशयेत् । शूलं संग्रहणीगदं सजठरं दध्यन्नसंसेविनां तापे सेचनकारिणां गदवतां सूतस्य चिन्तामणेः ॥ ५५१ ॥ अयमेव रसो देयो मृतकल्पे गदातुरे ॥५५२॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, विष ८ मासे, १॥ तोला जमालगोटा इन सब द्रव्यों को एकत्र कर जंभीरीनींबू के रस में घोटकर गोला बना लेवे । उस गोले के ऊपर कोमल पान के पत्ते लपेटकर सूत से बाँध देवे । उसके ऊपर रुई मिलाकर कुटी हुई मिट्टी का दो अंगुल ऊँचा लेप कर, शुष्क कर लेने के पश्चात् कुक्कुटपुट में पकावे । स्वाङ्ग शीतल होने पर निकालकर गोला की मिट्टी और पत्तियों को अलग करके औषधों के गोला को पान की पत्तियों के साथ घोटकर सूक्ष्म चूर्ण बनाना चाहिये । तदनन्तर फिर उसमें जमालगोटा आधा तोला और विष आधा तोला मिलाकर अदरख के रस के साथ घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे । अनुपान—त्रिकटु चूर्ण, सेंधा नमक, चीता की पत्तियों का स्वरस । इसका सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर, शूल, संग्रहणी और उदर रोग नष्ट होते हैं । पथ्य—दही-भात । रससेवन से यदि उष्णता प्रतीत हो तो रोगी के सिर पर जल का सेचन करना चाहिये । विधिपूर्वक इस चिन्तामणि रस का सेवन करने से मृतप्राय रोगी भी जी उठता है ॥ ५५०-५५२ ॥

ज्वरराजेन्द्र ।

मृतस्य शुद्धस्य पलं पलं ताम्रमया रजः । अभ्रं नागं पलं षड्ं पलं गन्धकनाल-

कम् ॥ ५५७ ॥ पलं शुद्धविषं चूर्ण सर्वमेकत्र कारयेत् । मर्दयेत् काकमाच्याश्च तत्र साररसेन च ॥ ५५८ ॥ मात्स्यवाराहमायूरच्छागमाहिषपित्तकैः । मर्दयेद्भिन्नभिन्नं च त्रिकटोरम्बुभिस्तथा ॥५५९ ॥ आर्द्रकस्वरसैः पश्चात् शतवारान् मुहुर्मुहुः । सिद्धोऽयं रसराजेन्द्रो धन्वन्तरिप्रकाशितः ॥ ५६० ॥ गुञ्जामात्रं रसं दद्यात् सुरसारससंयुतम् । मेघधाराप्रवाहेण धारितं वारि मस्तके ॥ ५६१ ॥ अनिवारो यदा दाहस्तदा देया च शर्करा । भोजनं दधिसयुक्तं वारमेकन्तु दापयेत् ॥ ॥ ५६२ ॥ ईश्वरेण हतः कामः केशवेन च दानवाः । पावकेन हतं शीतं सन्निपाते रसस्तथा ॥ ५६३ ॥

शुद्ध पारा ४ तोले, ताम्रभस्म ४ तोले, लोहभस्म ४ तोले, अभ्रकभस्म ४ तोले, नागभस्म ४ तोले, वङ्गभस्म ४ तोले, गन्धक ४ तोले, हरताल ४ तोले और शुद्ध विष ४ तोले, इन सब द्रव्यों को एकत्र चूर्णित कर मकोय के रस के साथ घोटे। पश्चात् रोहित मछली, शूकर, मयूर, बकरा और भैंसा इनमें से प्रत्येक के पित्त के साथ क्रमशः मर्दन करके त्रिकटु के क्वाथ में मर्दन करे। तदनन्तर १०० सौ बार अदरख के रस के साथ मर्दन करके एक एक रत्ती की वटी बनावे। अनुपान—तुलसी की पत्तियों का रस। औषध सेवन कराने के पश्चात् शिर पर जल की धारा देवे। यदि बहुत अधिक दाह प्रतीत हो तो बीच बीच में मिश्री का शर्बत पिलावे और एक बार दही के साथ भात खिलावे। जैसे शिव ने काम को, कृष्ण ने दानवों को और अग्नि ने शीत को नष्ट किया है; उसी प्रकार इस रसराजेन्द्र के सेवन करने से सान्निपातिक ज्वर नष्ट होते हैं ॥५५७-५६३॥

समीर पन्नग रस ।

पारदं गन्धकं मल्लं हरितालं तथैव च । एतच्चतुष्टयं सर्वं तुलसीरस मर्दितम् ॥५६४॥ वटीं कृत्वाऽभ्रकेणैव वेष्टयेद्गोलकन्तु तत् । शराव युगले क्षिप्त्वा वालुका यन्त्रगं पचेत् ॥ ५६५ ॥ दीपिकामिमितं वह्निं दत्त्वा यामचतुष्टयम् । स्वाङ्गं शीतं समुद्धृत्य नाम्नाऽसौ वातपन्नगः ॥ ५६६ ॥ सन्निपाते तथोन्मादे सन्धि बन्धे कफामये । नागवल्ल्या दलेनैव भक्षयेद्गुञ्जिका द्वयम् ॥ ५६७ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, सोमल और हरिताल समान भाग लेकर कज्जली कर तुलसी के रस से १-२ दिन तक घोटकर गोला बनाकर सफेद अभ्रक के पत्रों से लपेट कर शराव सम्पुट में बन्द कर २-३ कपड़ मिट्टी देकर वालुका यन्त्र में रखकर मन्दाग्नि से ४ पहर की अग्नि दे। ठंढा होने पर निकाल कर रख दे, इनमें से २ २ रत्ती पान के साथ देने से सन्निपात, उन्माद, सन्धिक सन्निपात और कफरोग नष्ट हो जाते हैं, विशेष अनुभूत है ॥ ५६४-५६७ ॥

सुवर्ण भूपति रस ।

शुद्धं सूतं समं गन्धं मृतं शुल्वतयोः समम्, अभ्रक लोहकयोर्भस्म कान्तभस्म सुवर्णजम ॥ ५६८ ॥ रजतञ्च विषं सम्यक् पृथक् सूतसमं भवेत् । हंसपादी रसैर्मर्द्य दिनमेकं वटीकृतम् ॥ ५६९ ॥ काचकूप्यां विनिक्षिप्य मृदा संलेपयेद्बहि । शुष्कां तां वालुका यन्त्रे शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । चतुर्गुञ्जामितं देयं पिप्पल्यार्द्रद्रवेण तु ॥ ५७० ॥ जयं त्रिदोषजं हन्ति सन्निपातास्त्रयोदश ॥ ५७१ ॥ आमवातं धनुर्वातं शृङ्खलावातमेव च । आढ्यवातं पङ्गुवातं कफवाताग्नि मान्द्ययुत ॥ ५७२ ॥ कटीवातं सर्वशूलं नाशये-

न्नात्र संशयः । गुल्मशूल मुदावर्त्त ग्रहणीमति दुस्तराम् ॥ ५७३ ॥ प्रमेहमुदरं सर्वामश्मरीं मूत्रविड्ग्रहम् । भगन्दरं सर्वं कुष्ठं विद्रधिं महतीं तथा ॥ ५७४ ॥ श्वासं कासमजीर्णञ्च ज्वरमष्टविधन्तथा । कामलां पाण्डुरोगञ्च शिरोरोगञ्च नाशयेत् ॥५७५॥ अनुपान विशेषेण सर्वरोगान्विनाशयेत् । तथा सूर्योदये नश्येत्तमः सर्वगतन्तथा ॥ ५७६ ॥ सर्वरोग विनाशाय सर्वेषां स्वर्ण भूपतिः ॥

शुद्धपारा और गन्धक १-१ भाग, ताम्र भस्म ३ भाग, अभ्रक, लोह, कान्त लोह, सुवर्ण, रजत इनकी भस्में और शुद्ध विष १-१ भाग लेकर कज्जली कर सब चीजें मिला हंसराज के रस से १ दिन घोटकर कज्जली बना ६-७ कपड मिट्टी दी हुई आतशी शीशी में बन्दकर बालुका यन्त्र में रस १ दिन की मन्दाग्नि से पकावे शीतल होने पर निकाल कर रख देवे । इसमें से ४-४ रत्ती पीपल और अदरख के साथ देने से त्रिदोषजक्षय और १३ सन्निपातों को मिटाता है। रोगानुसार अनुपान के साथ देने से आमवात, धनुर्वात, श्रृङ्खलावात उरुस्तम्भ, पङ्गुवात, कम्पवात, मन्दाग्नि, कटिवात सब प्रकार के शूल गुल्म उदावर्त भयङ्कर ग्रहणी, प्रमेह, उदर रोग सब प्रकार की पथरी, मलमूत्र विबन्ध, भगन्दर सब प्रकार के कुष्ठ बड़ा हुआ जहर बाद श्वासकास अजीर्ण ८ प्रकार का ज्वर कामलापाण्डुशिरोरोग इन सबको नाश करता है ॥ ५६८-५७६ ॥

पित्तयुक्त रस के उपचार ।

ये रसाः पित्तसंयुक्ताः प्रोक्ताः सर्वत्र शम्भुना । जलसेकावगाहाद्यैर्बलिनस्ते तु नान्यथा ॥ ५७७ ॥

पित्त की भावना देकर प्रस्तुत किये जानेवाले जितने रस शिवजी ने कहे हैं वे सब जल का सेचन और स्नान आदि शीतल उपचार से अधिक लाभप्रद होते हैं, अन्यथा नहीं ॥५७७॥

रसजनित दाह के उपचार ।

रसजनितविदाहे शीततोयाभिषेको मलयजघनसारालेपनं मन्दवातः । तरुणदधिसिताढ्यं नारिकेलीफलाम्भो मधुरशिशिरपानं शीतमन्यच्च शस्तम् ॥५७८॥

रससेवन से दाह होने पर शीतल जल का सेचन, चन्दन और कपूर का लेप, मन्दवायु का सेवन, शर्करायुक्त दधि का भोजन, नारियल का जल पीना, मधुर और शीतल जल आदि द्रव पदार्थ का पान करना तथा अन्यान्य शीतल उपचार लाभदायक होते हैं ॥ ५७८ ॥

स्वेदशैत्यारिरस ।

ताम्रशुण्ठ्यर्कमूलानि द्विनिष्काणि पृथक् पृथक् । ऐक्यतः पञ्चलवणात् पलं पिष्ट्वा पुटं ददेत् ॥ ५७९ ॥ गन्धेशशङ्खभस्मानि वेदनिष्कमितानि च । देवदालीरसैः पिष्ट्वा त्रिदिनं केकिपित्ततः ॥५८०॥ स्वेदशैत्यापनुत्यर्थं वल्लमात्रं प्रयोजयेत् । दध्ना सम्मर्दयेत् पात्रे जलयोगं समाचरेत् ॥ पथ्यं घृतंसिन्धुमुद्ग इक्षुखर्जूरगोस्तनी५८१

ताँबे की भस्म एक तोला, शुण्ठी एक तोला, अर्कमूल एक तोला, पाँचों नमक (सेंधा, विड, रोमक, सौवर्चल, सामुद्र) ८ तोला, इन सबको इकट्ठा कर पीस डाले और लघु पुट दे । इसके बाद में गन्धक २ तोला, पारा २ तोला, शंखभस्म २ तोला मिश्रण कर देवदाली के रस से पीसना चाहिए, फिर मोर के पित्ते के साथ तीन भावना (घोटकर) देकर दो रत्ती प्रमाण गोली तैयार कर ले । इनको शीतस्वेद (ठण्डे पसीना) के समय प्रयोग में लाना चाहिए । इनके सेवन से शीतस्वेद नहीं होता है । अनुपान—मठा (तक्र) पथ्य—घी, सैन्धव, मूँग की दाल, गन्ना, खजूर, मुनक्का और अंगूर ॥ ५७९-५८१ ॥

पञ्चवक्त्र रस ।

गन्धेशटङ्कमरिचं विषं धुस्तूरजैर्द्रवैः ।

दिनं विमर्दितं शुष्कं पञ्चवक्त्रो भवेद्रसः। द्विगुञ्जं आर्द्रनीरेण त्रिदोषज्वरहृत परः॥ ५८२॥

गन्धक, पारा, सोहागा भुना हुआ, मिरिच और विष समभाग इन कुल द्रव्यों को एकत्र कर धतूर की पत्तियों के रस में एक दिन घोटकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। अदरख के रस के साथ इस पञ्चवक्त्र रस का सेवन करने से सान्निपातिकज्वर नष्ट होता है॥ ५८२॥

कालकूट रस।

रुद्र शङ्ख विषं चैव त्रिभागः सूत एवं च। गन्धक पञ्चभाग स्याच्छिला स्याद्तु भागिका ५८३ ताम्रभस्म चतुर्भागमृतुभागश्च टङ्कणम्। तालकं रसंसंख्याकं वह्निमूलं तथैव च॥ ५८४॥ त्रिकटो द्वादश ज्ञेय त्रिफला दश भागिका। हिङ्गुलश्चन्द्रभागःस्याद्वचायाश्च तथैव च ५८५ एवं खल्वे च संस्थाप्यमार्दिकं वह्निमूलकम्। जम्बीरं लशुनश्चैव शाङ्गैस्ताकंस्य मूलकम् ५८६ लाङ्गली स्वर्णमूलञ्च सिन्धुनागदलं तथा अङ्कोल शिग्रुमूलानिप्रत्येकं याममात्रकम् ५८७ पञ्चकोल कषायेण पञ्चमूलेन मर्दयेत्। गुञ्जामात्रप्रमाणेन वटिकान् कारयेत्ततः ५८८ वटीमेकांप्रयुञ्जीत शृङ्गबेराम्भसायुताम्। सर्वज्वरहरोयोगः सन्निपातकुलान्तकः ५८९ स्नानं कुर्यात्प्रयत्नेन श्री खण्डालेपमाचरेत्। दध्यन्नं दापयेत्पथ्यं खर्जूरादिफलान्यपि ५९० ताम्बूल चर्वणं कुर्यात्क्रमादेव समाचरेत् कालकूट रसो नाम महेशेन प्रकाशितः॥ ५९१॥

शुद्ध विष १ भाग, शुद्ध पारा ३ भाग, शुद्ध गन्धक ५ भाग, शुद्ध मैनशिल ६ भाग, ताम्रभस्म ४ भाग, सुहागा ६ भाग, हरिताल ६ भाग, चित्रक ६ भाग, त्रिकुट १२ भाग, त्रिफला १० भाग, हींग और बच १-१ भाग इन सब को कपड़ छान चूर्ण बना खरल में डाल, अदरख चित्रकमूल जम्मीरी, लहसुन, काक जङ्घा, आकड़े की जड़, कलिहारी, धतूरे की जड़ मद्रासी पान, अकोल की जड़ सहिजन की जड़ पञ्चकोल और पञ्चमूल इन प्रत्येक के अङ्ग स्वरस अथवा क्वाथ से १ पहर घोंटकर १ १ रत्ती की गोली बना ले, इसकी १ गोली अदरख के साथ देने से सब तरह के ज्वर सांनिपात को समूल नष्ट कर देता है। इस गोली के देने के बाद रोगी को स्नान करावे और अङ्ग में चन्दन का लेप करे—पथ्य में दही चावल खजूर आदि देवे विशेष अनुभूत॥ ५८३-५९१॥

सन्निपातसूर्य्य रस।

हिंगुलं गन्धकं ताम्रं मरिचं पिप्पली विषम्। शुण्ठीकनकबीजञ्च श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्॥ ५९२॥ विजयापत्रतोयेन त्रिदिनं भावयेत्सुधीः। द्विगुञ्जं पर्णखण्डेन चार्ककाथं पिबेदनु॥ ५९३॥ निहन्ति सन्निपातोत्थान् गदान् घोरान् सुदारुणान् वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकञ्च विशेषत॥ ५९४॥

हिंगुल, गन्धक, ताम्रभस्म, मिरिच, पीपरि, विष, सोंठ और धतूरे के बीज समभाग इन द्रव्यों को एकत्र चूर्णित कर भाँग की पत्तियों के रस की तीन दिन पर्यन्त भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। पान के पत्ते में रखकर सेवन करना चाहिये। औषध सेवन करने के पीछे आक के मूल का क्वाथ पान करे। इस सन्निपातसूर्य्यरस का सेवन करनेसे वातप्रधान, पित्तप्रधान और कफप्रधान हर प्रकार के सान्निपातिक ज्वर निवृत्त होते हैं॥ ५९२-५९४॥

अघोरनृसिंह रस।

भागैकं मृतताम्रस्य द्विभाग मृतलौहकम्। त्रिभागं मृतवङ्गञ्च चतुर्भागं मृताभ्रकम्॥ ५९६॥ माक्षिकं रसगन्धौ च तथा शुद्धा मनःशिला। चत्वार्य्येतानि

ताम्रस्य प्रत्येकं तुल्यमेव च ॥ ५९६ ॥ गरलं चाभ्रतुल्यं स्यात् त्रिकटुश्चाभ्रतुल्यकः। एतत् सर्वसमं देयं विषमाख्यं तथैव च ॥ ५९७ ॥ एतत् सर्वस्य द्रव्यस्य द्विगुणं कालकूटकम्। मात्स्यमाहिषमायूर घृष्टिपित्तैर्विभावयेत् ॥ ५९८ ॥ चित्रकस्य द्रवेणैव प्रत्येकं याममात्रकम्। सर्षपाभा वटी कार्य्या शोषयेदातपे ततः ॥ ५९९ ॥ दापयेद् वटिकामेकां पयःपेटीरसेन च। त्रयोदशसन्निपाते विसूच्यामतिसारके६०० त्रिदोषजे तथा कासे दापयेत् कुशलो भिषक्। पयः पेटीशतं दद्यात् भोजनं दधिभक्तकम्। अघोरनृसिंहनामा रसानामुत्तमो रसः ॥ ६०१ ॥

ताम्रभस्म १ भाग, लोहभस्म २ भाग, वङ्गभस्म ३ भाग, अभ्रकभस्म ४ भाग, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ भाग, पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, शुद्ध मैनशिल १ भाग, गरल (काले साँप का विष) ४ भाग, त्रिकटु ४ भाग, कुचिला २२ भाग और ४४ भाग कालकूट विष (कन्दविष), इन कुल द्रव्यों को एकत्र चूर्णित कर, रोहित मछली, भैंसा, मयूर और सुअर इनके पित्त की और चीता के क्वाथ की क्रमश भावना देकर एक-एक प्रहर मर्दन करे। अर्थात् एक के पित्ते की भावना देकर एक प्रहर मर्दन करे पश्चात् दूसरे की भावना देवे, इस प्रकार प्रत्येक की भावना देकर मर्दन करे। पश्चात् सरसों के समान छोटी-छोटी गोलियाँ बनाकर धूप में शुष्क कर लेवे। नारियल के जल के साथ इसकी गोली सेवन करानी चाहिये। इस अघोरनृसिंह रस का सेवन करने से १३ प्रकार के सन्निपात, विसूचिका, अतिसार और त्रिदोषजन्य कास के रोग नष्ट होते हैं। रोगी को पीने के लिये नारियल का जल और भोजन के लिये दही-भात देना चाहिये ॥ ५९६-६०१ ॥

प्रतापतपन रस।

गन्धकं हिंगुलं तालं सूतकं लोहटङ्कणम्। खर्परं सर्जिकाक्षारं माञ्जिष्ठं हिंगुलं समम् ॥ ६०२ ॥ रसेन मर्दितं पिण्डं निर्गुण्डीहस्तिशुण्डयोः। अष्टयामं पचेत् कूप्यां निरुध्य सिकताह्वये॥ ६०३ ॥ ततः सिद्धं समादाय रक्तिकामार्द्रकेण च। सन्निपातविनाशाय प्रतापतपनो रसः। दधिभक्तं तथा दुग्धं छागमांसञ्च भोजयेत् ॥ ६०४॥

गन्धक, हिंगुल, हरिताल, पारा, लोह, सोहागा भुना हुआ, खपरिया, सज्जीखार, मजीठ, का चूर्ण और हिंगुल समभाग इन सब द्रव्यों को सँभालू और हाथीशुंडा के रस में मर्दन कर गोला बना लेवे। पश्चात् काँच की कूपी (आतशी शीशी) में रखकर, बालुकायन्त्र में आठ प्रहर पर्यन्त पाक करे। सिद्ध होने पर अदरख के रस के साथ १ रत्ती प्रमाण प्रयोग करे। इस प्रतापतपन रस से सान्निपातिक ज्वर नष्ट होता है। रोगी को भोजन के लिये दही भात, दूध, बकरी का मांस देने चाहिये ॥ ६०२-६०४ ॥

प्राणेश्वर रस।

शुद्धसूतं तथा गन्धं मृताभ्रं विषसंयुतम्। रसं संमर्दितं तालमूलीनीरैस्त्र्यहं बुधः ॥ ६०५ ॥ पूरयेत् कूपिकान्ते च मुद्रयित्वा च शोषयेत्। सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रैर्वेष्टयित्वा चशोषयेत् ॥ ६०७ ॥ पुटेत् कुण्डप्रमाणेन स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्। गृहीत्वा कूपिकामध्यान्मर्दयेच्च दिनं ततः ॥ ६०८ ॥ अजाजी जीरकं हिंगु सर्जिका टङ्कनं जगत्। गुग्गुलुः पञ्चलवणं यवक्षारो यमानिका ॥ ६०९ ॥ मरिचं पिप्पली चैव प्रत्येक रसमानतः। एषां कषायेण पुनर्भावयेत् सप्तधातपे ॥ ६१० ॥ नागवल्लीदलयुतं द्विगुञ्जं च रसेश्वरम्। दद्यात्तत्र ज्वरे तीव्रे सोष्णं वारि पिबेदनु ॥ ६११ ॥ प्राणेश्वरो

रसो नाम सन्निपातप्रकोपणुत्। शीतज्वरे दाहपूर्वे गुल्मशूले त्रिदोपजे॥ ६१२॥ वाञ्छितं भोजनं दद्यात् कुर्य्याच्चन्दनलेपनम्। तापोद्रेकस्य शमनं बलाधिष्ठानकारकम्॥ भवेच्च नात्र सन्देहः स्वास्थ्यञ्च लभते नरः॥ ६१३॥

पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म और विष समभाग इन चारों द्रव्यों को तालमूली के रस में तीन दिन मर्दन करके कूपी में रखकर कूपी का मुख मुद्रित कर शुष्क कर लेवे। पश्चात् शीशी के ऊपर सात कपड़मिट्टी करके शुष्क कर लेवे। पश्चात् इस कूपिका को कुण्ड में रखकर पुट देवे। स्वाङ्ग शीत होने पर कूपी से औषध को निकालकर एक दिन मर्दन करे। तदनन्तर कालाजीरा, श्वेतजीरा, हींग, सज्जीखार, सोहागा भुना हुआ, सौराष्ट्रमृत्तिका, गूगुल, पाँचों नमक, यवक्षार, अजवाइन, मिरिच और पीपरि इन कुल द्रव्यों को पारा के समान परिमाण में लेकर, इनके क्वाथ की सात भावनायें देकर, धूप मे शुष्क कर लेवे। तीव्र नवज्वर में २ रत्ती इस रस को पान के साथ खिलाकर पीछे उष्ण जल पिलावे। यह प्राणेश्वर रस सन्निपातनाशक है। जिस ज्वर में पहिले दाह होकर पश्चात् शीत होवे ऐसे ज्वर में इस रस का प्रयोग करना चाहिये। यह रस गुल्मजन्य शूल और ताप को निवृत्त कर बल को बढ़ाता है। अतः इससे रोगी को स्वास्थ्य लाभ होने में किसी प्रकार का संदेह न करना चाहिये। इस औषध का सेवन कराकर रोगी को वाञ्छित भोजन देवे और उसके शरीर में चन्दन का लेप करे॥ ६०६-६१३॥

उन्मत्त रस।

रसं गन्धञ्च तुल्यांशं धुस्तूरफलजैर्द्रवैः। मर्दयेद्दिनमेकन्तु तुल्यं त्रिकटुकं क्षिपेत् ६१४॥ उन्मत्ताख्यो रसो नाम नस्ये स्यात्सन्निपातजित्। भुक्तो नानाविधान्हन्यात्सन्निपातसमुद्भवान्॥ ६१५॥

शुद्ध पारा, गन्धक बराबर भाग लेकर धतूरे के फल के रस में १ दिन घोटकर उसके समान ही त्रिकुटा का चूर्ण मिलाकर बना लेवे। इसका नस्य देने से सन्निपात में लाभ होता है। इसकी तीन २ रत्ती की मात्रा पान के रस के साथ या अदरख के रस के साथ या अष्टादशाङ्ग क्वाथ के साथ पी जाय तो सन्निपात को बहुत शीघ्र फायदा पहुंचाती है। सन्धि वात में रास्नादि क्वाथ के साथ देने से अच्छा लाभ होता है। विशेष अनुभूत॥ ६१४-६१५॥

द्वितीय सन्निपातभैरव।

पारदं गन्धकं तालं वत्सनाभं त्रिभिः समम्। दारुमूषश्च गरलं सर्वस्य समहिंगुलम्॥ ६१६॥ मुद्गप्रमाणां वटिकां कारयेत् कुशलो भिषक्। सन्निपाते वटीमेकामार्द्रद्रावैः प्रदापयेत्॥ रसो महाप्रभावोऽयं सन्निपातस्य भैरवः॥ ६१७॥

पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, हरिताल १ भाग, विष ३ भाग, दार्मूल विष १ भाग, काले साँप का विष १ भाग और हिंगुल ८ भाग इन कुल द्रव्यों को एकत्र पीसकर मूँग के समान गोलियाँ बनावे। सन्निपात में अदरख के साथ इस सन्निपातभैरव रस की १ वटी सेवन करनी चाहिये॥ ६१६-६१७॥

तृतीय सन्निपातभैरव।

रसं विषं गन्धकञ्च हरितालं फलत्रयम्। जयपालं त्रिवृत् स्वर्णं ताम्रसीसाभ्रलौहकम्॥ ६१८॥ अर्कक्षीरं लाङ्गलीं च स्वर्णमाक्षिकमेव च। समं कृत्वा रसैनैषां त्रिंशद्वारञ्च मर्दयेत्॥ ६१९॥ अर्कश्वेतालम्बुषा च सूर्य्यावर्त्तश्च कारवी। काकजङ्घा शोणकश्च कुष्ठं व्योषं विकङ्कतम्॥ ६२०॥ सूर्य्यमणिश्चन्द्रकान्तौ निर्गुण्डीशजटाऽपि च। धुस्तूरदन्तीपिप्पल्यौ दशाष्टाङ्गमिदं शुभम्॥ ६२१॥ रसतुल्यं प्रदातव्यं दत्त्वा तोयं चतुर्गुणम्।

शिष्टैकगुणतोयेन भावना निधिरिष्यते ॥ ६२२ ॥ भावनायां भावनायां शोपणं मुहुरिष्यते । ततश्च वटिकां कृत्वा भैरवाय बलिं ददेत् ॥ ६२३ ॥ रसोऽयं श्रीसन्निपातभैरवो ज्वरनाशनः । सर्वोपद्रवसंयुक्तं ज्वरं हन्ति न संशयः ॥ ६२४ ॥ सन्निपातज्वरं हंति जीर्णञ्च विपमं तथा। ऐकाहिकं द्व्याहिकश्च चातुर्थकमपि ध्रुवम्। ६२५ ॥ ज्वरश्च जलदोपोत्थं सर्वदोपसमाकुलम् । भैरवस्य प्रसादेन जगादानन्दकन्थजी ॥ ६२६ ॥

सर्वं चूर्णं समं कृत्वा अर्कमूलादिपिप्पलीमूलान्तानामष्टानां मिलितपारसादिसामग्रीतुल्यानां चतुर्गुणजलैकगुणशिष्टक्काथेन त्रिंशद्वारानातपे भावनीयम् । प्रतिवारं यत्नेन शोपयित्वा गुंजाप्रमाणा वटिकाः कृत्वा व्याध्यनुरूपमार्द्रकरसेन ज्वरिणे दद्यात् । विरेकादनन्तरं शुण्ठीजीरकतोयप्रक्षालितान्नं दद्यात् । अजाते विरेचने पुनरपि रसं दद्यात् । व्याधिनिवृत्तौ कदाचित् वातपीडायां वातचिकित्सा कार्य्या । अत्र भैरवं रुधिरवर्णं ध्यायेत् ।

पारा, विप, गन्धक, हरिताल, त्रिफला, जमालगोटा, निसोथ, धतूरे का बीज, तांबा, शीसा, अभ्रक, लोह, मदार का दूध, कलिहारी (विप) और सोनामाखी भस्म समान भाग इन कुल द्रव्यों को लेकर नीचे लिखे द्रव्यों के साथ की ३० भावनायें देवे और प्रतिभावना में उत्तम रीति से मर्दन करके धूप में शुष्क कर लेवे। भावना के द्रव्य जैसे—आक की मूल, श्वेत कोयल, मुंडी, मूषंमुषी, कलौंजी, काकजंघा, सोनापाठा, थूहर, त्रिकटु, पँदुवी, सूर्यकान्तमणि, अग्निकान्तमणि, संभालू, रुद्रजटा, धाए, जमालगोटा का मूल और पिपरामूल इन १८ अट्ठारह द्रव्यों के समुदाय को पूर्वोक्त पारा आदि द्रव्यों के समुदाय के समान परिमाण में लेकर चतुर्गुण जल में पकावे, जब एक भाग जल शेप रह जावे, तो उतारकर वस्त्र से छान लेवे। इसी काथ की पूर्वोक्त रीति से ३० भावना देवे। अर्थात् प्रतिभावना मे उत्तम रीति से मर्दन करके धूप में शुष्क करे। तदनन्तर मटर के समान गोलियां बनाकर अदरख के अर्क के साथ सन्निपातज्वर में प्रयोग करे। इस रस से उपद्रवयुक्त सान्निपातिक, ऐकाहिक, द्व्याहिक, चातुर्थिक, जीर्ण और विपम आदि अनेक प्रकार के ज्वर निवृत्त होते हैं। इस सन्निपात भैरव रस के सेवन से विरेचन हो जाने पर सोंठ और जीरायुक्त जल से धोया हुआ भात भोजन के लिये देवे। विरेचन न होने पर इस रस की फिर एक मात्रा देवे। इस औषध के सेवन से ज्वर निवृत्त होने पर कभी कभी वातरोग उत्पन्न हो जाता है, यदि ऐसा हो तो वातरोगोक्त चिकित्सा करनी चाहिये। इस औषध का सेवन करने के समय रक्तवर्ण भैरवजी का ध्यान करना चाहिये ॥ ६१८-६२६ ॥

गदमुरारि रस ।

रस बलि शिललोह व्योम ताम्रेण तुल्यान्यथ रस दल भागो वत्सनाभः प्रदिष्टः । भवति गदमुरारिश्चास्य गुञ्जार्द्धमात्रा क्षपयति दिवसेन प्रौढमाम ज्वराख्यम् ॥ ६२७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनसिल, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्रभस्म प्रत्येक एक २ तोला शुद्ध बच्छनाग चौथाई तोला सबको अदरख के रस के साथ घोटकर गोली बना ले। मात्रा ½ से १ रत्ती तक दिनमें २ बार। अनुपान—अदरख का रस, तुलसी का रस, जल रोगानुसार। गुण—आमप्रधान पुराने सभी प्रकार के ज्वरों को लाभ करता है, शोथनाशक भी है ॥ ६२७ ॥

पाशुपत रस ।

पटुना पूरयेत् स्थालीं तन्मध्ये पटुमूषिका। तन्मध्ये रामठीमध्ये तन्मध्ये पारदं क्षिपेत् ॥

६२८ ॥ विषं विघृष्य सूतांशं वारिणया-लोड्य सप्तभिः। कृते त्रिभिः सङ्गुणिते तेन चैवं दुहेच्छनैः ॥ ६२९ ॥ वह्निं प्रज्वाल-येच्चुल्यां हठात् यामचतुष्टयम्। तद्रसम तिलमात्रन्तु दद्यात् सर्वेषु पाप्मसु ॥ ६३०॥ ग्रहण्यां जठरे शूलं मन्देऽग्नौ परिणामजे। युक्तमेतान्निहन्त्याशु कुर्याद्बहुतरां क्षुधाम्। तापे शीतक्रियां कुर्यात् वाडवाख्यो महा-रसः ॥ ६३१ ॥

एक मूस लवण (नोन की बनावे और एक हिंगु की फिर पारद १ भाग, मीठा विष १ भाग, इन दोनों को २१ गुने जल में अच्छी तरह आलो-डन करके सुखा ले, सूख जाने पर हिंगु मूसा में रख दे, लवणमूस ढक दे, फिर इनको एक लवण से भरी हुई हाँडी में रखकर बारह घंटे धीमी-धीमी अग्नि से पाक करे। इस प्रकार पारद की भस्म तैयार मिलेगी। यह तिलमात्र सर्वरोगों में प्रयोग की जाती है। ग्रहणी, पेट के विकार, शूल, मन्दाग्नि, परिणामशूल में लाभदायक है और क्षुधावर्धक है। यदि इससे दाह हो तो शीतल वस्तुओं का उपयोग करना चाहिए। ॥ ६२८-६३१ ॥

आर्द्रकवटी।

मनःशिला रसो गन्धः साम्लक्षारा-मृतश्च वै। आर्द्रकस्वरसेनैव मर्दयेद्यत्नतो भिषक् ॥ ६३२ ॥ भावयेत् सप्तवारश्च सप्तमाने दिने सुधीः। वटिका सर्षपमिता कार्या वैद्येन धीमता ॥ ६३३ ॥ आर्द्रक-स्वरसेनापि भक्षयेज्ज्वरशान्तये। स्वेदार्थं शाययेद्रौद्रे गात्रे दत्त्वा सुचैलकम् ॥६३४॥ घर्मं दृष्ट्वा च तं वस्त्रं त्यजेत्स्वेदश्च मत्स्यकम्। स्विन्नमुद्गांस्तथा चेक्षुरसं दधि च शीतलम्। तत्परेऽहनि च स्नानं कुर्यान्निर्भय एव च ॥ ६३५ ॥

मैनसिल, पारद, गन्धक, संखिया, मीठा विष, इन सबको बराबर लेकर अदरख के रस से सात भावना देकर सात दिन घोटे और फिर छोटी सरसों के बराबर गोली बना ले। अनुपान अदरख का रस। ज्वर में पसीना लाने के लिए इस रस का प्रयोग कराना चाहिए। रोगी को कम्बल आदि मोटे वस्त्र उढ़ाकर धूप में लिटा दे। पसीना आने पर उसको पोंछकर, उन वस्त्रों को हटा दे, ज्वर उतरने पर फिर रोगी को भोजन के लिए मछली, मूँग, गन्ने का रस, दही तथा अन्य ठण्डी वस्तुओं का आयोजन करे और वैद्य रोगी को अगले दिन उसकी अवस्था को देखकर स्नान की भी आज्ञा दे सकता है ६३२-६३५

दाडिमपत्रौषधि।

साम्लक्षारं गृहीत्वा च दाडिमच्छदशो-धितम्। रस गन्धं मर्दयेच्च आर्द्रकस्वरसेन च ॥ ६३६ ॥ भावयेत् सप्तवारन्तु एक-स्मिन दिवसे सुधीः। अनुपानं प्रदातव्यं दाडिमच्छदजंरसम् ॥ तथा मधु च दातव्यं ज्वराणां कुलशान्तये ॥ ६३७ ॥

अनार के पत्तों के स्वरस से सुधा हुआ संखिया १ भाग लेकर पारद १ भाग, गन्धक १ भाग, दोनों को काजल के समान करके उसमें मिश्रण कर दे, इसके बाद अदरख के रस से सात भावनाएँ दे और रत्ती के चालीसवें हिस्से से बीसवें हिस्से तक गोली बना ले, अनुपान, अनार के पत्तों का स्वरस और शहद ॥ ६३६-६३७ ॥

मृत्युञ्जय रस।

सूतं गन्धकटङ्कनं शुभविषं धुस्तूरबीजं कटु नीत्वा भागमथोत्तरद्विगुणितं चोन्म-त्तमूलाम्बुना ॥ कुर्यान्माषवटीं सुखाति-सुखदां सर्वाञ्ज्वरान्नाशयेदेष श्रीगिरि-शासनात् प्रजनिनः सूतश्च मृत्युञ्जयः ॥ ६३८ ॥ नारिकेलसितायुक्तं वातपित्तज्वरं जयेत। मधुना श्लेष्मपित्तोत्थं ज्वरं

संनाशयेद्ध्रुवम् ॥ सन्निपातज्वरं घोरं नाशयेदाद्रेनीरतः ॥ ६३६ ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, सोहागा की खील ४ भाग, विष ८ भाग, धतूरे के बीज १६ भाग, और त्रिकटु ३२ भाग। इन कुल द्रव्यों को एकत्र कर धतूर के मूल के रस में अथवा क्राथ में पीसकर उर्द के समान छोटी-छोटी गोलियाँ बना लेवे। इस मृत्युञ्जय रस का सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं। अनुपान—वातपित्त-ज्वर में मिश्री मिला नारियल का जल, कफपित्त-ज्वर में मधु और सान्निपातिक ज्वर में अदरख का अर्क ॥ ६३८-६३६ ॥

संजीवनी गुटिका।

विडङ्गं नागरं कृष्णा पथ्यामलविभीतकौ। वचा गुडूची भल्लातं सद्विषं चात्र योजयेत् ॥ ६४० ॥ एतानि समभागानि गोमूत्रेणैव वेपयेत्। गुञ्जाभा गुटिका कार्या दद्यादार्दकजैरसैः ॥ ६४१ ॥ एकामजीर्ण-गुल्मेषु द्वे विषूच्यां प्रदापयेत्। तिस्रश्च सर्पदष्टे चतस्रः सन्निपातके । वटी संजीवनी नाम्ना सञ्जीवयति मानवम् ॥ ६४३ ॥

वायविडंग, सोंठ, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, वच, गिलोय, शुद्ध भिलावाँ और शुद्ध मीठियाँ विष इन सब औषधियों को समान भाग लेकर गोमूत्र की भावना देकर रत्ती के समान गोलियाँ बना लेवे अदरख के रस के संग इसका सेवन करने से अजीर्ण १ गोली में मिट जाती है। हैजा २ गोली में शान्त हो जाता है साँप काटने पर ३ गोली देने से सारा विष उतर जाता है। यह वटी मनुष्य को पुनर्जीवन देने वाली है। विशेष अनुभूत है ॥ ६४०-६४३ ॥

सन्निपातमृत्युञ्जय रस।

विषं सूतकगन्धौ च पित्तं मत्स्यवराहयोः। आजमायूरपित्ते च महिष्याश्चापि योजयेत् ॥ ६४४ ॥ हरितालश्च सव्योषं वानरीबीजसंयुतम्। अपामार्गं चित्रमूलं जयपालश्च कल्कयेत् ॥ ६४५ ॥ एतत् सर्वं समांशेन अजामूत्रेण मर्दयेत्। माषेण सदृशी कार्य्या वटिका सन्निपज्वरैः॥६४६॥ महाज्वरे महाशीते महाशीतज्वरेऽपि च। मज्जागते सन्निपाते विसूच्यां विषमज्वरे ॥ ६४७ ॥ असाध्येमानवे युंज्यादेकाहाज्ज्वरनाशिनी। जलोदरे शिथिलाङ्गे नासास्रावे च पीनसे ॥ ६४८ ॥ अजीर्णे मूर्च्छनाभावे श्लेष्मभावेऽतिदुर्जये। शोथकामलपाण्ड्वादिसर्वरोगापहारकः ॥ ६४९ ॥ मृत्युञ्जयो सन्निपातज्ञानज्योतिः प्रकाशितः। भृङ्गराजरसेनायं रसराजः प्रदीयते ॥ ६५० ॥ निर्वाते निर्जनस्थाने बहुवस्त्रसमावृते। प्रस्वेदः क्षणमात्रेण जायते चिह्नमीदृशम् ॥ ६५१ ॥ मूर्च्छितः पतितो भूमौ दह्यमानः पुनः पुनः। एवं चिह्नं समालोक्य वदेन्नैरुज्यमातुरे ॥ ६५२ ॥ पथ्यं यद् याचते रोगी तद्दातव्यं प्रयत्नतः। दध्योदनं शीतजलं दातव्यं तद् विचक्षणैः॥ ६५३ ॥ एष महारसः श्रेष्ठः शम्भुना प्रेरितो भुवि। कृपया सर्वभूतानां ज्ञानज्योतिः प्रकाशितः ॥ ६५४ ॥

विष, पारा, गन्धक, रोहितमत्स्य का पित्त, शूकर का पित्त, बकरा का पित्त, मोर का पित्त, महिषी (भैंस) का पित्त, हरिताल, त्रिकटु, कौंच का बीज, चिरचिरा का मूल, चीते का मूल और जमालगोटा का बीज समभाग, इन सब द्रव्यों को लेकर बकरी के मूत्र में पीसकर उर्द के समान गोलियाँ बनावे । इसका सेवन करने से अत्यन्त शीतयुक्त सान्निपातिकज्वर,

मज्जागतज्वर, विसूचिका, विषम ज्वर आदि नाना प्रकार के रोग नष्ट होते हैं।

अनुपान—भाँगरे का रस। औषध सेवन कराने के पश्चात् रोगी को मोटा वस्त्र ओढ़ा देवे। ऐसा करने से क्षणमात्र में पसीना आने लगता है। जब रोगी मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़े और दाह से पीड़ित हो तो समझना चाहिये कि यह रोगी रोग से छुटकारा पा गया। इस अवस्था में रोगी भोजन के लिये जो कुछ माँगे, उसको वही वस्तु तत्काल देवे। विशेषकर भोजन के लिये दही-भात और पीने के लिये शीतल जल देना चाहिये। कुल प्राणियों पर कृपा करके शिवजी ने अपने ज्ञानज्योति से प्रकाशित कर इस महारस सन्निपातमृत्युञ्जय का पृथिवी में प्रचार किया था॥ ६४४-६५४॥

मृतप्राणदायी रस।

रसं गन्धकं टङ्कणं वत्स नाभं
समंमर्दयेद्धूर्त बीजेन यामम्॥
ततो वत्सनाभेन हेमैश्चबीजै।
रसै भावयेच त्रिवारं त्रिवारम्॥६५५॥
कटुत्र्यादिजैः पञ्चवारं तत स्या-
दयं सूतराजो मृतप्राणदायी।
ज्वरेसन्निपाते ज्वरे नूतने वा।
महाश्लेष्मरोगे च गुञ्जा प्रमाणम्॥६५६॥
पयः पायसं दाधिकं तक्र भक्तं।
सिता वानवे हिज्वरे चाऽऽर्द्रनीरैः॥
ज्वरे चाऽतिसारे घनद्राव युक्ते।
ग्रहण्यर्शसां क्षौद्रयुक्तंसिताऽऽढ्यम् ६५७॥
चले स्नायुगे त्रिकटाग्नि पीतं।
प्रकम्पेऽपबाहुक एकाङ्गवाते।
अपस्मारमुन्माद वातं निहन्ति।
प्रयुक्तः सितापञ्चभिर्धूर्त बीजे॥६५८॥

शुद्ध पारा, गन्धक, सुहागा और बच्छनाग समान भाग धतूरे के बीज, सबको बराबर सबकी कज्जली कर बच्छनाग और धतूरे के रसों से ३-३ दिन घोटकर त्रिकुट के रस में पाँच रोज और घोटे, फिर इसे १-१ रत्ती की मात्रा में रोगानुसार अनुपान के साथ लेने से ज्वर, सन्निपात, नवीन ज्वर, महाश्लेष्मरोग नष्ट होते हैं। दूध, खीर, दही के पदार्थ, छाछ, चावल ये सब वस्तुएँ पथ्य में देवे। नवीन ज्वर में अदरख के रस के साथ देवे, ज्वर और अतिसार में नागरमोथे के काढ़े से, ग्रहणी और बवासीर में मधु व शक्कर के साथ दे। वातज्वर में त्रिकुट और चित्रक के साथ देवे। प्रकम्प, अपबाहुक, एकाङ्गवात, अपस्मार, उन्माद इनमें शक्कर और ५ नग धतूरे के बीज के साथ देने से सबका विनाश करता है॥ ६५५-६५८॥

टिप्पणी—धतूरे के बीज दो ही से ५ अधिक हैं।

कालाग्निभैरव रस।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मर्दयेद् गोक्षुर-द्रवैः। भावितश्च विशोष्याथ चूर्णयेदति-चिक्कणम्॥ ६५९॥ चूर्णतुल्यं मृतं ताम्रं ताम्राद्दशांशिकं विषम्। हिंगुलं रसभागं च द्वौ भागौ कनकस्य च॥ ६६०॥ बाण-भागोऽत्र गोदन्त काणभागा मनः शिला। टङ्कनं नेत्रभागं च ऋतुभागं च खर्परम्॥ ॥ ६६१॥ व्रह्मभागं च शैवालं नेत्रभागं हलाहलम्। माक्षिकं चाग्निभागं च लौहं वङ्गं च भागकम्॥६६२॥ सर्वाम् खल्लो-दरे क्षिप्त्वा क्षीरेणार्कस्य मर्दयेत्। दशमूल-कषायेण मर्दयेद् याममात्रकम्॥ ६६३॥ पञ्चमूलकषायेण तथैव च विमर्दयेत्। गुञ्जामात्रां वटीं कृत्वा बलं ज्ञात्वा प्रयोज-येत्॥ ६६४॥ ज्वरं त्रिदोषजं हन्ति सन्निपातं सुदारुणम्। पूर्ववद्दापयेत् पथ्यं जलयोगं च कारयेत्॥ ६६५॥ पथ्यं शाल्यौदनं ज्ञेयं दधिभक्तसमन्वितम्।

कालाग्निभैरवो नाम रसोऽयं भूरिपूजितः ॥ ६६६ ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग इनकी कज्जली बनाकर गोखुरू के स्वरस की भावना देवे। सूख जाने पर चूर्ण करके, उस चूर्ण में चूर्ण के समान ताम्रभस्म, ताम्रभस्म का अष्टमांश विष, हिंगुल १ भाग, धतूरे के बीज २ भाग, गोदन्ती हरिताल ४ भाग, मैनशिल ३ भाग, सोहागा की खील ३ भाग, खपरिया ६ भाग, जमालगोटे के बीज १ भाग, काले साँप का विष ३ भाग, स्वर्णमाक्षिक ३ भाग, लोह भस्म १ भाग और वङ्गभस्म १ भाग इन सब औषधों को एकत्र कर खरल में आक के दूध के साथ मर्दन करके दशमूल के क्वाथ की भावना देकर एक प्रहर पर्यन्त मर्दन करे। तदनन्तर स्वल्प पञ्चमूल के क्वाथ के साथ साथ मर्दन करके चना के समान वटी बनावे। रोगी का बलाबल देखकर इस कालभैरव औषध का प्रयोग करना चाहिये। इस रस के सेवन करने से दारुण सन्निपात नष्ट होते हैं। औषध सेवन कराने के पश्चात् रोगी को पूर्ववत् भोजन के लिये दही-भात देवे, और शिर पर जल सेचन आदि शीत उपचार करना चाहिए ॥ ६५६-६६६ ॥

त्रैलोक्यचिन्तामणि रस ।

रसभस्मत्रयो भागा द्विभागं च भुजङ्गमम् । कालकूटं च षड्भागं भागैकं तालकं तथा ॥ ६६७ ॥ गोदन्त गगनं तुत्थं शिलागन्धकटङ्कणम् । जयपालोन्मत्तदन्ती करवीरं च लाङ्गली ॥ ६६८ ॥ पलाशीमूलजैर्नीरैः सप्तधा भावितं दृढम् । चित्रमूलकषायेण चार्द्रकस्य च वारिणा ॥ ॥६६९ ॥ मात्स्यमहिषमायूरच्छागवाराहडुण्डुभम् । प्रत्येकं दशधा मर्द्य शिलाखल्ले च संतयात् ॥ ६७० ॥ वटीं च सर्षपमितां शुद्धवस्त्रेण धारयेत् । दातव्यं चानुपानेन नारिकेलोदकेन च ॥ ६७१ ॥ ताम्बूलं च ततो दद्याद् भक्ष्यं शीतोपचारकम् । तिलतैले सदा स्नानं घृतमत्स्यादिभोजनम् । शीताम्लं दधिसंयुक्तं पुराणान्नं च भक्षयेत् ॥ ६७२ ॥

रससिंदूर ३ भाग, सर्पविष २ भाग, कालकूट विष ६ भाग, हरिताल २ भाग, गोदन्ती हरिताल १ भाग, अभ्रकभस्म १ भाग, तूतिया १ भाग, मैनशिल १ भाग, गन्धक १ भाग, सोहागा फुलाया हुआ १ भाग, जयपाल (जमालगोटा) १ भाग, धतूरे के बीज १ भाग, जमालगोटा की जड़ १ भाग, कनैल का मूल १ भाग, कलिहारी एक भाग, इन कुल द्रव्यों को पलाश मूल के क्वाथ की ७ भावनायें देवे और प्रति भावना में उत्तम रीति से मर्दन कर घाम में शुष्क कर लेवे। पश्चात् चीते के मूल का क्वाथ, अदरख का रस रोहितमत्स्य का पित्त, महिष का पित्त, मयूर का पित्त, छाग का पित्त, शूकर का पित्त और डोड़हा साँप का विष इनमें प्रत्येक की दश-दश भावना देकर मर्दन करे। तदनन्तर सरसों के बराबर-बराबर मोटी गोलियाँ बनावे। अनुपान—नारियल का जल। औषध सेवन कराकर पान खिलावे और शीतल उपचार करे। शरीर में तिल के तेल का मर्दन कराकर स्नान कराना चाहिये। भोजन के लिये घी, मछली, पुराने चावल का भात, दही और शीतल और अम्ल पदार्थ देना चाहिये ॥ ६६७-६७२ ॥

मल्ल सिन्दूर रस ।

नवकर्षमितः सूतो रस चन्द्रश्च तत्समः । चतुः कर्ष मितो मल्लः सार्द्धपञ्चात्र सम्मितः ॥ गन्धकञ्चेति तत्सर्वं काच कूप्यां निधापयेत् । क्रमवृद्धाग्निना सम्यग्वालुका यन्त्रगं पचेत ॥ वह्निं षोडशयामञ्च दत्त्वा शीतं समुद्धरेत् । रसोऽयं मल्लसिन्दूरः सर्व वात विकारनुत् ॥ गुञ्जानुपानतो हन्यात्सन्निपातादिकान्गदान् ।

शुद्धपारा, रस कपूर ६-६ तोला, सफेद सोमल

४ तोला, शुद्ध गन्धक २॥ तोला लेकर सबकी कज्जली बना ७-७ कपड़ा मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भरकर बालुकायन्त्र में मन्द मध्य और खर इस प्रकार से ६ प्रहर अग्नि देवे। ठंडी होने पर मध्य नली में लगे हुए मल्लसिन्दूर को निकाल कर रख छोड़े, इसमें से १,१ रत्ती रोगानुसार अनुपान के साथ देने से सन्निपात श्वास कास और तमाम वात व्याधियाँ नष्ट होती है ॥

त्रिभुवन कीर्तिरस।

हिङ्गुलं चविषं व्योपंटङ्कणं मागधी शिफाम्। सञ्चूर्ण्य भावयेत्त्रेधा सुरसाऽऽर्द्रककर्दमभिः ॥ ६७३ ॥ रसस्त्रिभुवने कीर्तिर्गुञ्जैकाऽऽर्द्ररसेन यं। विनाशयेज्ज्वरान् सर्वान् सन्निपातांस्त्रयोदशः ॥ ६७४ ॥

शुद्ध हिंगरक विष, शुण्ठ्यादि सुहागा, पीपल, पीपलामूल, सब बराबर २ लेकर कूट पीस कपड़े में छान कर अदरक तुलसी धतूरे के रस में ३-३ दफे घोट कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावे। १-१ गोली समयानुसार अनुपान के साथ देने से या अदरक के रस के साथ देने से १३ सन्निपात और सब ज्वरों का नाश हो जाता है। मियादी बुखार में विशेष अनुभूत है ॥ ६७३-६७४ ॥

रसेश्वर।

रसेन गन्धं द्विगुणं गृहीत्वा तत्पादगन्धं रविनालहेम। भस्मीकृतं योजय मर्दयेत्तु दिनत्रयं वह्निरसेन घर्मे ॥ ६७५॥ विषं च दत्त्वात्र कलाप्रमाणमजादिपित्तैः परिभावयेच्च। रक्तिद्वयं चास्य ददीत वह्निकटुत्रयेणार्द्ररसप्रयुक्तम् ॥ ६७६ ॥ तैलेन चाभ्यक्तवपुश्च कुर्यात् स्नानं जलेनैव सुशीतलेन। यावद्भवेद् दुःसहमस्य शीतं मूत्रं पुरीषं च शरीरकम्पः ॥६७७ ॥ पथ्ये यदीच्छा परिजायतेऽस्य मरीचखण्डं दधि भक्तकं च। अल्पं ददीतार्द्रकमत्र शाकं दिनाष्टकं स्नानमिदं च पथ्यम् ॥ ६७८ ॥

पारा ४ तोले, गन्धक पारे का दूना (८ तोले), ताम्रभस्म १ तोले, हरिताल १ तोले, स्वर्णभस्म १ तोले इन शुद्ध द्रव्यों को तीन दिन पर्यन्त चीता के रस की भावना देकर और मर्दन करके घाम में शुष्क कर लेवे। इसमें षोडशांश विष मिलाकर छाग आदि के पित्त में भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। अनुपान अदरख का रस, चीता और त्रिकटु का चूर्ण। औषध सेवन कराकर रोगी के शरीर में तैल मर्दन कराकर शीतल जल से तब तक स्नान कराता रहे जब तक उसको शीत असह्य, शरीर में कम्प और मल-मूत्र की प्रवृत्ति न हो जावे। इस प्रकार ८ दिन पर्यन्त स्नान कराना लाभदायक होता है। रोगी को भोजन की इच्छा होने पर मरिच, खाँड, दही-भात, थोड़ी अदरख और शाक देने चाहिये ॥ ६७५-६७८ ॥

वड़वानल रस।

कान्तं च सूतं हरितालगन्धं
समुद्रफेनं लवणानि पञ्च।
नीलाञ्जनं तुत्थकमेरु रूप्यं
भस्मप्रवालानि वराटकाश्च ॥ ६७९ ॥
वैक्रान्तशम्बूकसमुद्रशुक्ति
सर्वाणि चैतानि समानि कुर्यात्।
सूतं भवेद् द्वादशभागकं च
स्नुह्यर्कदुग्धेन विमर्दयेच्च ॥ ६८० ॥
दिनत्रयं वह्निरसैस्ततश्च
निवेशयेत्ताम्रजसम्पुटे तत्।
मृदा च संलिप्य रसं पुटेत्तद्
रसस्ततः स्याद्वडवानलाख्यः ॥६८१॥
तत्पादभागेन विषं नियोज्य
कृशानुतोयेन पचेत् क्षणं तत्।
वातप्रधाने च कफप्रधाने
नियोजयेत्त्र्यूषणचित्रयुक्तम् ॥६८२॥
दोषत्रयोत्थेऽपि च सन्निपाते
वाताधिकत्वादिह सूतकोक्तः ॥ ६८३ ॥

कान्तलोह की भस्म, पारा, हरिताल, गन्धक, समुद्रफेन, पाँचों नमक, काला सुरमा, तूतिया, रूपे की भस्म, प्रवालभस्म, कौड़ी-भस्म, वैक्रान्तभस्म, शङ्खभस्म और समुद्र की सीपी की भस्म, समान भाग इन सब द्रव्यों को लेवे। परन्तु पारा १२ भाग लेकर इन सबको थूहर और आक के दूध में मर्दन करे। पश्चात् तीन दिन पर्यन्त चीता के क्वाथ में मर्दन करके, ताँबा के सपुट में रखकर, ऊपर मिट्टी का लेप करके पुटपाक करे। शीतल होने पर कुल योग का चतुर्थांश विष मिलाकर चीता के क्वाथ में मर्दन करके क्षणमात्र पुनः पाक करके आधी आधी रत्ती की गोली बना लेवे। अनुपान-चीता का स्वरस अथवा क्वाथ और त्रिकटु का चूर्ण। इस बड़वानल रस का सेवन करने से वातोल्बण, कफोल्बण और सान्निपातिक ज्वर निवृत्त होता है॥ ६७६-६८३॥

अर्कमूर्ति रस और त्रिदोषदावानल रस।

लौहाष्टकं मारितमर्कभागं
सूतं द्विभागं द्विगुणं च गन्धम्।
विमर्दयेद् वह्निरसेन तापे
दिनत्रयं चात्र विषं कलांशम्॥६८४॥
विक्षिप्य पित्तैः परिभावितोऽयं
रसोऽर्कमूर्त्तिर्भवति त्रिदोषे।
ताम्रस्य पात्रे तु दिनैकमात्रं
निम्बूरसेनापि च पित्तवर्गैः॥६८५॥
क्षुद्रार्द्रकोत्थेन रसेन सूत-
स्त्रिदोषदावानल एष सिद्धः।
गुञ्जाद्वयं त्र्यूषणयुक्तमस्य
ददीत चित्रार्द्ररसेन वापि॥ ६८६॥
नासापुटे चापि नियोजनीया
गुञ्जास्य शुण्ठीमरिचेन युक्ता॥६८७॥
यदि ताम्रपात्रजम्बीरादिरसैः पुनरपि
भावयेत् तदा त्रिदोषदावानलो भवति।

लोहभस्म १ भाग, ताम्रभस्म ८ भाग, पारा २ भाग, द्विगुण गन्धक और षोडशांश विष, इन कुल द्रव्यों को चीता के क्वाथ में तीन दिन मर्दन करके पञ्चपित्त की भावना देवे। इसका नाम "अर्कमूर्ति रस" है। इसका सेवन करने से त्रिदोष निवृत्त होता है।

यदि इस अर्कमूर्ति रस को ताम्रपात्र में रख कर फिर नींबू का रस, पञ्चपित्त, कटेरी का रस और अदरख का रस इन कुल द्रव्यों की भावना दी जाय तो त्रिदोषदावानल रस बन जाता है।

इसकी मात्रा २ रत्ती। अनुपान त्रिकटु चूर्ण, चीता का क्वाथ और अदरख का अर्क। इस रस में सोंठ, मिरिच मिलाकर नस्य भी देना चाहिये॥ ६८४-६८७॥

त्रिदोषदावानलकालमेघ रस।

तालेन वङ्गं शिलया च नागं
रसैः सुवर्णं रवितारपत्रम्।
गन्धेन लौहं दरदेन सर्वं
पुटे मृतं योजय तुल्यभागम्॥६८८॥
तत्तुल्यसूतं द्विगुणं च गन्धं
तुत्थं च गन्धेन समानभागम्।
निम्बूत्थतोयेन विमर्द्य सर्वं
गोलं प्रकृत्याथ मृदा विलिप्य॥६८९॥
पुटं च दत्त्वाथ निमर्दयेनं
गन्धेन तुल्येन कृशानुनीरैः।
विषं च दत्त्वाथ कलाप्रमाण-
मीषत्कृशानूत्थरसैः पचेत्तत्॥६९०॥
पित्तैस्तथा भावित एष सूत-
स्त्रिदोषदावानलकालमेघः।
वल्लं ददीतास्य च पूर्वयुक्त्या
दाहोत्तरे तं मधुपिप्पलीभिः॥६९१॥
मुद्गश्च शाल्यन्नमिह प्रशस्तं
पथ्यं भवेत्कोष्णमिदं दिवान्ते॥६९२॥
रसेश्वरादिकालमेघान्ता रसा वातो-

लपणे सन्निपाते प्रयोज्या इति सारकौमुद्यां माधवः।

हरिताल के साथ वङ्ग, मैनशिल के साथ शीशा, पारा के साथ स्वर्ण, ताम्र, चाँदी का पत्र और गन्धक के साथ लोह का जारण करके, पश्चात् इन कुल द्रव्यों को हिंगुल के साथ फिर गजपुट में पकावे। तदनन्तर ये कुल पूर्वोक्त औषध समभाग, जितने अन्य द्रव्य हों उतना ही पारा, पारा से दूना गन्धक और गन्धक के समान तूतिया इन कुल द्रव्यों को एकत्र कर नींबू के रस के साथ गोला बनावे। उस गोला के ऊपर मिट्टी का लेप कर पुटपाक की रीति से पकावें। पश्चात् उसमें समान भाग गन्धक डालकर चीता के स्वरस अथवा क्वाथ से मर्दन करके पुटपाक की रीति से पाक करे। तदनन्तर उसमें षोडशांश विष मिलाकर चीता के स्वरस अथवा क्वाथ में मर्दन कर पूर्वोक्त रीति से किञ्चित् पाक करे। पीछे मत्स्य आदि के पित्त में मर्दन करके दो रत्ती प्रमाण वटी बनावे। इसको "त्रिदोषदावानलकालमेघ रस" कहते हैं।

दाहप्रधान ज्वर में मधु और पीपरि के साथ सेवन करना चाहिये। सायंकाल में रोगी को मूँग की दाल, शाली के चावल का कुछ उष्णभात भोजन के लिये देना चाहिये॥ ६८८ ६९२॥

रसेश्वर से आरम्भ कर कालमेघ रस पर्यन्त जितने रस पीछे लिखे गये हैं उनका वातोल्बण सन्निपात में प्रयोग करना चाहिये ऐसा रसकौमुदी में माधवकर ने लिखा है।

श्रीप्रतापलङ्केश्वर रस।

अपामार्गस्य मूलानां चूर्णं चित्रकमूलजैः। वल्कलैर्मर्दयित्वाथ रसं वस्त्रेण गालयेत्॥ ६९३॥ तेन सूतसमं गन्धमभ्रकं पारदं विषम्। टङ्कनं तालकञ्चैव मर्दयेद्दिनसप्तकम्॥ ६९४॥ त्रिदिनं मूषलीकन्दैर्भावयेद् घर्म्मरक्षितम्। मूषां च गोस्तनाकारामापूर्य्योपरि ढक्कयेत्॥६९५॥ सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रैर्वेष्टयित्वा पुटेल्लघु। रसतुल्यं लौहभस्म मृतवङ्गमहिस्तथा॥६९६॥ मधूकसारं जलदं रेणुकं गुग्गुलं शिलाम्। चाम्पेयं च समांशं स्याद्भागार्द्धं शोधितं विषम्॥ ६९७॥ तत्सर्वं मर्दयेत् खल्ले भावयेद् विपनीरतः। आतपे सप्तधा तीव्रे मर्दयेद् घटिकाद्वयम्॥ ६९८॥ कटुत्रयकषायेण कनकस्य रसेन च। फलत्रयकषायेण मुनिपुष्परसेन च॥ ६९९॥ समुद्रफेननीरेण विजयापत्रवारिणा। चित्रकस्य कषायेण ज्वालामुख्या रसेन च॥७००॥ प्रत्येकं सप्तधा भाव्य तद्वत्पित्तैश्च पञ्चभिः। सर्वस्य समभागेन विषेण परिधूपयत्७०१ विमर्द्य भक्षयित्वा च रक्षयेत् कूपिकोदरे। गुञ्जैकं वह्निनीरेण भृङ्गवेररसेन वा॥७०२॥ दद्याच्च रोगिणे तीव्रमौढ्यविस्मृतिशान्तये। क्षुरेण तालुमाहत्य घर्षयेदार्द्रनीरत॥७०३॥ नोद्घटन्ते यदा दन्तास्तदा कुर्य्यादमुं विधिम्। सेचयेन्मन्त्रविद्वैद्यो वारां कुम्भशतैर्नरम्॥ ७०४॥ भोजनेच्छा यदा तस्य जायते रोगिणः परा। दद्ध्योदनं सितायुक्तं दद्याच्चक्रं सजीरकम्॥ ७०५॥ पाने पानं सिताजातं यदिच्छेद्दादढीत् तत्। एवं कृतेन शान्तिः स्यात् तापस्य च रुजस्य च॥ ७०६॥ सचन्द्र चन्दनरसालेपनं कुरु शीतलम्। यूथिकामल्लिकाजातीपुन्नागबकुलान्वितम्॥ ७०७॥ विधाय शय्यां तत्रस्थलेपनैश्चन्दनैर्मुहुः। हावभावविलासोक्तैः कटाक्षचञ्चलेक्षणैः॥ ७०८॥ पीनोत्तुङ्गकुचापीडैः कामिनीपरिरम्भणैः। रम्यवीणानिनादोक्तैर्गायनैः श्रवणामृतैः॥ ७०९॥ पुण्यश्लोक-

कथाद्यैश्च सन्तापहरणं कुरु। दद्यात् वातेषु सर्वेषु सिन्धुजैः सह वह्निभिः॥ ७१०॥ दद्यात् कणामाक्षिकाभ्यां कामलाद्यपाण्डुषु। तत्तद्रोगानुपानेन सर्वरोगेषु योजयेत्। अयं प्रतापलङ्केशः सन्निपातहरः परः॥ ७११॥

चिरचिरा के मूल और चीते के मूल को एकत्र जल में पीसकर कल्क बनावे, उस कल्क को वस्त्र में रखकर हाथ से दबाकर रस निकाल लेवे। तदनन्तर इस रस के समान परिमाण में पारा, गन्धक, अभ्रक, विष, सोहागा फूला हुआ, हरिताल लेकर, रस में सात दिन पर्यन्त मर्दन करे। पश्चात् तीन दिन पर्यन्त काली मुसली के रस में मर्दन करके घाम में शुष्क कर लेवे। तदनन्तर गौ के स्तन के समान आकृतिवाले मूषा में भरकर, एक सकोरा से मूषा का मुख ढँककर मिट्टी से संधिस्थान बन्द करके ऊपर से सात परत कपड़मिट्टी करके लघुपुट में पाक करे। पश्चात् लोहभस्म, वङ्गभस्म, अहिफेन (अफ्यून), महुआ का सार, नागरमोथा, सँभालू के बीज, गुग्गुल, मैनशिल और नागकेशर इनमें से प्रत्येक द्रव्य पारे के समान, तथा शुद्ध विष पारे का आधा भाग लेकर एकत्र खरल में मर्दन करे। तदनन्तर सींगिया विष के क्वाथ की तीव्र घाम में सात भावना देकर प्रतिभावना में दो-दो घड़ी (४८ मिनट) मर्दन करे। पश्चात् त्रिकटु का क्वाथ, धतूरे का स्वरस, त्रिफला का क्वाथ, अगस्ति के फूल का रस, समुद्रफेन मिला जल, भाँग की पत्तियों का रस, चीता के मूल का क्वाथ और ज्वालामुखी (कलिहारी) का स्वरस और पञ्चपित्त इनमें से प्रत्येक की सात सात भावना देकर मर्दन करे।

तदनन्तर मूल द्रव्य मिलकर जितने हों उतना ही उसमें विष मिलाकर मर्दन करके सुखा लेवे। इस रस को शीशी में रखकर डाट लगा देवे।

चीते के क्वाथ अथवा अदरख के रस के साथ एक रत्ती प्रमाण इस औषध का सेवन करने से सन्निपातजन्य तीव्र मोह और विस्मृति आदि उपद्रव शान्त होते हैं।

रोगी के मस्तक में तालु के बालों को छुरा (उस्तुरा) से साफ करके वहाँ का चमड़ा थोड़ा छीलकर उस स्थान पर इस औषध को अदरख के रस में मिश्रित कर मर्दन करे। इस क्रिया के करने से रोगी की अज्ञानता और दाँतों का लग जाना आदि उपद्रव दूर होते हैं। रोगी के मस्तक पर सैकड़ों घड़े जल डालना चाहिये।

रोगी का भोजन के लिये मिश्रीयुक्त दही के साथ भात और जीरा मिश्रित तक्र देवे। पीने को मिश्री का शर्बत यथेच्छ देना चाहिये। ऐसा करने से ताप तथा रोग की शान्ति होती है। रोगी के शरीर में घिसे चन्दन में कपूर मिलाकर लेप आदि शीतल उपचार तथा रोगी के लिये प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाली जुही, मालती, चमेली, नागकेसर, मौलश्री आदि के फूलों से युक्त शय्या, हावभावविलासयुक्त स्त्रियों की बातें और शीतल कटाक्ष, पुष्ट ऊँचे कुच की स्त्री से आलिंगन, रमणीय वीणा के गीत, मधुर श्लोक एवं कथा आदि श्रवण द्वारा दाहनाशक क्रियाएँ करनी चाहिये।

इस रस को सब प्रकार के वातरोग में सैन्धव और चीता के क्वाथ के साथ, कामला और पाण्डुरोगों में पीपर का चूर्ण और मधु के साथ सेवन करे। तत्तद्रोगनाशक अनुपानों के साथ सब रोगों में इस रस का प्रयोग करना चाहिये। यह प्रतापलङ्केश रस सन्निपात नाशन में श्रेष्ठ है॥ ६९३-७११॥

द्वितीय कफकेतु।

दग्धशङ्खं त्रिकटुं टङ्कनं समभागिकम्। विषं च पञ्चमिस्तुल्यमार्द्रतोयेण मर्दयेत्॥ ७१२॥ वारत्रयं रक्तिपादां वटीं कुर्याद्विचक्षणः। प्रातः सायं च वटिकाद्वयमार्द्रकवारिणा॥ ७१३॥ कफकेतुः कण्ठरोगं शिरोरोगं च नाशयेत्।

पीनसं कफसङ्घातं सन्निपातं सुदारुणम् ॥ ७१४ ॥

शंखभस्म १ तोला, सोंठ १ तोला, मरिच १ तोला, पीपरि १ तोला, सोहागा की खील १ तोला, विष ५ तोले इन सब द्रव्यों को एकत्र अदरख के रस में ३ भावना देकर मर्दन करे। तदनन्तर एक-एक रत्ती की गोली बनाकर सायं प्रातः अदरख के अर्क के साथ दो गोली प्रयोग करनी चाहिये। इस कफकेतु रस के सेवन करने से कण्ठरोग, सिर के रोग, पीनस और कफोल्वण दारुण सन्निपातज्वर निवृत्त होते हैं ॥७१२-७१४॥

महामृत्युञ्जय ।

त्रिकटु त्रिफला सूत गन्धकौ टङ्कणं विषम् । यष्टी निशा कुबेराक्षो दन्ति बीजमथाऽपि च ॥७१५॥ एतानि समभागानि खल्वमध्ये विनिःक्षिपेत् । भृङ्गराज रसेनैव मर्दयेत्त्रिदिनं भिषक् ॥ ७१६ ॥ गुटिका माष मात्रास्तु छाया शुष्कांश्च कारयेत् । अनुपान विशेषेण सर्वरोगेषु योजयेत् ॥७१७॥ मृत्युञ्जयो रसोनाम सर्वरोग विदारणः७१८

त्रिकुट, त्रिफला शुद्धपारा, गन्धक, टंकण, और वत्सनाग, मुलहठी, हल्दी, करंज के बीज, शुद्ध जमालगोटा ये सब समान भाग लेकर महीन चूर्ण कर पारे गन्धक की कज्जली मिलाकर भंगरे के रस में ३ रोज घोटकर उड़द के बराबर गोलियाँ बनाकर छाया में सुखाकर रख दे। इनमें से १-१ गोली रोगानुसार अनुपान के साथ देने से सब रोगों को नष्ट करता है ॥७१५-७१८॥

श्लेष्मकालानल रस ।

हिंगूलसम्भवं सूतं गन्धकं मृतताम्रकम् । तुत्थं मनोह्वा तालं च कट्फलं धूर्त्तबीजकम् ॥ ७१९ ॥ हिंगु समाक्षिकं कुष्ठं त्रिवृद्दन्ती कटुत्रिकम् । व्याधिघातफलं वङ्गं टङ्कनं समभागिकम् ॥७२०॥ स्नुहीक्षीरेण वटिकाः कारयेत् कुशलो भिषक् । विज्ञाय कोष्ठं कालं च योजयेद्रक्तिकाक्रमात् ॥७२१॥ वातश्लेष्मणि मन्देऽग्नौ पित्तश्लेष्माधिकेऽपि च । जीर्णज्वरे च श्वयथौ सन्निपाते कफोल्वणे ॥ ७२२ ॥ बलासप्रबलं त्यक्त्वा धातुं वातात्मकं नयेत् । सेवनात् सर्वरोगघ्नः श्लेष्मकालानलो रसः॥७२३॥

हिंगुलोत्थपारद, गन्धक, ताम्रभस्म, तूतिया मैनशिल, हरिताल, कायफल, धतूरे के बीज, हींग, सोनामाखी, कूट, निसोथ, जमालगोटा का मूल, सोंठ, मरिच, पीपरि, अमलतास, वङ्गभस्म, सोहागा की खील सम भाग; इन सब द्रव्यों को एकत्र कर थूहर के दुग्ध में मर्दन करके एक-एक रत्ती प्रमाण वटी बनावे। इस श्लेष्मकालानल रस का सेवन करने से वातकफोल्वण, पित्तकफोल्वण तथा कफोल्वण सान्निपातिक ज्वर निवृत्त होता है और मन्दाग्नि, जीर्णज्वर तथा शोथ का नाश होता है। यह सर्वरोगनाशक है ॥ ७१९-७२३ ॥

वृहत्कस्तूरीभैरव रस ।

मृगमदशशिसूर्य्यौ धातकी शूकशिम्बी रजतकनकमुक्ताविद्रुमं लौहपाठाः। क्रिमिरिपुघनविश्वा वारितालाभ्रधात्रीरविदलरसपिष्टं कस्तूरीभैरवोऽयम् ॥७२४॥ कस्तूरीभैरवः ख्यातः सर्वज्वरविनाशनः । आर्द्रकस्य रसैः पेयो विषमज्वरनाशनः ॥७२५॥ द्वन्द्वजान् भौतिकान् वापि ज्वरान् कामादिसम्भवान् । अभिचारकृतांश्चैव तथा शत्रुकृतान् पुनः ॥ ७२६ ॥ निहन्याद् भक्षणादेव डाकिन्यादियुतांस्तथा । बिल्वचूर्णजीरकाभ्यां मधुना सह पानतः ॥ ७२७ ॥ आमातीसारं ग्रहणीं ज्वरातीसारमेव च । अग्निदीप्तिकरः शान्तः कासरोगनिकृन्तनः ॥ ७२८ ॥ क्षपयेद्

भक्षणादेव मेहरोगं हलीमकम्। जीर्णज्वरं नूतनं वा द्विकालीनं च सन्ततम् ॥७२९॥ भक्षिप्तं भौतिकं वापि हन्ति सर्वान् विशेषतः। ऐकाहिकं द्व्याहिकं वा त्र्याहिकं चातुराहिकम् ॥ ७३० ॥ पाञ्चाहिकं षष्ठसंस्थं पाक्षिकं मासिकं तथा। सर्वान् ज्वरान्निहन्त्याशु भक्षणादार्द्रकद्रवैः ७३१

कस्तूरी, कपूर, ताम्रभस्म, धाय के फूल, कौंच के बीज, चाँदी की भस्म, स्वर्णभस्म, मुक्ताभस्म, प्रवालभस्म, लोहभस्म, पाढ़ी, वायविडङ्ग, नागरमोथा, सोंठ, सुगन्धबाला, हरिताल, अभ्रकभस्म और आँवला समभाग, इन सब द्रव्यों को चूर्णकर आक की पत्तियों के रस में घोटकर एक-एक रत्ती प्रमाण गोलियाँ बना लेवे। अनुपान—अदरख का रस। इसका सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर तथा बिल्वचूर्ण, जीरा और शहद के साथ लेने से आमातीसार, ज्वरातीसार और ग्रहणीरोगातीसार नष्ट होते हैं। मन्दाग्नि, कास, प्रमेह, हलीमक आदि का भी यह कस्तूरी भैरवनाशक है ॥७२४-७३१॥

श्रीकालानल रस।

रसं गन्धं मृताभ्रं च टङ्कनं च मनःशिलां। हिंगुलं गरलं दारु विषं ताम्रं च तत्समम् ॥ ७३२ ॥ विडालपदमात्रन्तु सर्वं शुद्धं विचूर्णयेत्। भावनाय च दातव्यं लाङ्गलीमलकं तथा ॥ ७३३ ॥ घोषामूलं तथा देयं मूलं लोहितचित्रकम्। अपुष्पफल भूधात्रीमूलं भ्रमररुद्रकम् ॥ ७३४ ॥ छागवराहमयूरा महिषो मत्स्य एव च। ऐतेषां च ददेत् पित्तमार्द्रकस्य रसेन च। प्रत्येकं मर्दितं शुष्कं कणामात्राममागतः ॥ ७३५ ॥

पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म, सोहागा पुत्राया हुआ, मैनसिल, हिंगुल, काले साँप का विष, दारु (दारुंज) विष और ताम्रभस्म यह प्रत्येक द्रव्य २ तोले, एकत्र चूर्ण करके, कलिहारी का मूल, कडुई तरोई की जड़, लाल चीते की जड़, गूलर की जड़, भुईं आँवला का मूल, भारंगी और आक का मूल इनके रस की भावना देकर मर्दन करे। पश्चात् छाग, शूकर, मयूर, महिष और रोहितमत्स्य के पित्त की क्रमशः भावना देवे और मर्दन करे। तदनन्तर अदरख के रस में मर्दन करके अत्यन्त छोटी-छोटी गोलियाँ बनाकर शुष्क कर लेवे। इसका सन्निपात ज्वर में प्रयोग करना चाहिये ॥ ७३२-७३५ ॥

मृतसञ्जीवनी सुरा।।

गुडं द्रोणसमं ग्राह्यं वर्षादूर्ध्वं पुरातनम्। वावरीत्वचमादाय दापयेत् पलविंशतिम् ॥ ७३६ ॥ दाडिमी द्रुपमोचं च वराक्रान्ताऽरुणा तथा। अश्वगन्धादेवदारुबिल्वश्योनाकपाऽटलाः ॥ ७३७ ॥ शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरम्। बदरीन्द्रवारुणी चित्रं स्वयंगुप्ता पुनर्नवा ॥ ७३८ ॥ एषां दशपलान् भागान् कुट्टयित्वा उदूखले। सुगभीरे च मृद्भाण्डे तोयमष्टगुणं क्षिपेत् ॥ ७३९ ॥ गुडसङ्कोलनं कृत्वा एतैःसंपूरयेद्बुधः। मुखे शरावकं दत्त्वा रक्षयेद्दिनविंशतिम् ॥ ७४० ॥ षोडशादिवसादूर्ध्वं द्रव्याणीमानि दापयेत्। पूगमस्थद्वयं चात्रकुट्टयित्वा विनिक्षिपेत्। धुस्तूरं देवपुष्पं च पद्मकोशीरचन्दनम् ॥ ७४१ ॥ शतपुष्पा यमानी च मरीचं जीरकद्वयम्। शटी मांसी त्वगेला च सजातीफलमुस्तकम् ॥ ७४२ ॥ ग्रन्थिपर्णी तथा शुण्ठी मेथी मेषी च चन्दनम्। ऐषां द्विपलिकान् भागान् कुट्टयित्वा विनिक्षिपेत् ॥ ७४३ ॥ मृण्मये मोचिकायन्त्रे मयूराख्येऽपि यन्त्रके। यथाविधिप्रकारेण

चालनं दापयेद् बुधः ॥ ७४४ ॥ बुद्धिमान् सौजलं कृत्वा उद्धरेद् विधिवत् सुराम । एतन्मद्यं पिबेन्नित्यं यथा धातुवयः क्रमम् ॥ ७४५ ॥ देहदार्ढ्यकरं पुष्टिबलवर्णाग्निवर्द्धनम् । सन्निपातज्वरे घोरे विसूच्यां च मुहुर्मुहुः । शीने देहे प्रयोज्येयं मृतसञ्जीवनी सुरा ॥ ७४६ ॥

एक वर्ष से भी अधिक पुराना गुड़ १२ सेर ६४ तोला, कुटी हुई बबूल की छाल ८० तोले, अनार की छाल, अडूसा की छाल, मोचरस, सहैजना, अतीस, असगन्ध, देवदारु, बेल की छाल; स्योनाक की छाल, पाढ़र की छाल, सरिवन, पिठवन, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखुरू, बेर, इन्द्रायण की जड़, चीता, कौंच और गदहपुरैना (सांठी) कुटे हुये ये कुल औषध ४० तोले, इन सबको अठगुने जल में डालकर मिट्टी के बड़े पात्र में रखकर सकोरा से मुख बन्द कर देवे । १६ दिन के पश्चात् इसमें कुटी हुई सुपारी २ सेर, धतूरे का मूल, पद्माख, खस, लाल चन्दन, सोया, अजवाइन, कालीमिरिच, जीरा, कालाजीरा, कपूर, जटामांसी, दालचीनी, छोटी इलायची, जायफल, नागरमोथा, गठिवन, सोंठ, मेथी, मेषशृङ्गी और चन्दन इनमें से प्रत्येक औषध को दो-दो पल (८ तोला) लेकर कूटकर मिलावे तथा मुख पर सकोरा रखकर फिर मुख बन्द कर देवे । चार दिन के पश्चात् मिट्टी के पात्र के बने हुये मोचिका यन्त्र अथवा मयूराख्य यन्त्र से चुआकर सुरा बनावे । बल, अग्नि और अवस्था के अनुसार इसकी मात्रा स्थिर करे ।

इसका सेवन करने से देह की दृढ़ता तथा बल, वर्ण और अग्नि की वृद्धि होती है । घोर सन्निपातज्वर में विसूचिका में जब अङ्ग शीतल हो जावे उस समय बार-बार इस "मृतसञ्जीवनी सुरा" का प्रयोग करना चाहिये ॥ ७३६-७४६ ॥

मृगमदासव ।

मृतसञ्जीवनी ग्राह्या पञ्चशतपलसंमिता । तदर्द्धं मधु संग्राह्यं तोयं मधुसमं तथा ॥ ७४७ ॥ कस्तूरीकुडवं तत्र मरिचं देवपुष्पकम् । जातीफलं पिप्पलीत्वग् भागान् द्विपलिकान् क्षिपेत् ॥ ७४८ ॥ भाण्डे संस्थाप्य रुध्वा च निदध्यात् मासमात्रकम् । विसूचिकायां हिक्कायां त्रिदोषप्रभवे ज्वरे । वीक्ष्य कोष्ठं बलं चैव भिषङ्मात्रां प्रयोजयेत् ॥ ७४९ ॥

पूर्वोक्त मृतसंजीवनी सुरा ५० पल (२॥ सेर) मधु २५ पल (१। सेर), जल २५ पल (१। सेर), कस्तूरी १६ तोले, मरिच, लवङ्ग, जायफल, पीपरि और दालचीनी प्रत्येक २ पल(८ तोला), इन सब द्रव्यों को एकत्र कर मिट्टी के पात्र में रखकर पात्र के मुख को भलीभांति बन्द करके एक मासपर्यन्त रख छोड़े, पश्चात् छानकर रख लेवे, रोगी का कोष्ठ और बलाबल देखकर इसकी मात्रा स्थिर करे । इसका सेवन करने से विसूचिका, हिचकी और सान्निपातिक ज्वर निवृत्त होते हैं ॥ ७४७-७४९ ॥

अथ मध्यज्वरादौ ।

ज्वरमातङ्गकेसरी रस ।

पारदं गन्धकञ्चैव हरितालं समाक्षिकम् । कटुत्रयं तथा पथ्या क्षारौ द्वौ सैन्धवं तथा ॥ ७५० ॥ निम्बस्य विषमुष्टेश्च बीजं चित्रकमेव च । एषां मापमितं भागं ग्राह्यं प्रतिसुसंस्कृतम् ॥ ७५१ ॥ द्विमापङ्कानकफलं विषं चापि द्विमाषिकम् । निर्गुण्डीस्वरसेनैव शोषयेत्तत् प्रयत्नतः ॥ ७५२ ॥ सार्द्धरक्तिप्रमाणेन वटी कार्य्या सुशोभना । सर्वज्वरहरी चैषा भेदिनी दोषनाशिनी ॥ ७५३ ॥ आमाजीर्णप्रशमनी कामलापाण्डुरोगहा । वह्नि-

दीप्तिकरी चैषा जठरामयनाशिनी ॥७५४॥ उष्णोदकानुपानेन दातव्या हितकारिणी। भाषितो लोकनाथेन ज्वरमातङ्गकेसरी ॥ ७५५ ॥

पारा, गन्धक, हरिताल, सोनामाखी, सोंठ, मरिच, पीपरि, हर्रे, यवखार, सज्जीखार, लाहौरी नोन, नीम के बीज, कुचिला और चीता इनमें से प्रत्येक द्रव्य १ माशा, जमालगोटे के बीज २ माशे और विष २ माशे, इन सब द्रव्यों को निर्गुण्डी के पत्ते के रस में घोटकर डेढ़-डेढ़ रत्ती की वटी बनावे। अनुपान उष्ण जल। इसका सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर, आमाजीर्ण, कामला, पाण्डुरोग और उदररोग नष्ट होते हैं, तथा अग्नि का दीपन और मल का भेदन होता है ॥ ७५०-७५५ ॥

रसमङ्गलोक्त ज्वरमुरारि रस।

शुद्धसूतं शुद्धगन्धं विषं च दरदं पृथक्। कर्षप्रमाणं कर्षार्द्धं लवङ्गं मरिचं पलम् ॥ ७५६ ॥ शुद्धं कनकबीजं च पलद्वयमितं तथा। त्रिवृताकर्षमेकं तु भावयेद्दन्तिकाद्रवैः ॥ ७५७ ॥ सप्तधा च ततः कार्य्या गुटी गुञ्जामिता शुभा। ज्वरमुरारिनामायं रसो ज्वरकुलान्तकः ॥ ७५८ ॥ अत्यन्ताजीर्णपूर्णे च ज्वरे विष्टम्भसंयुते। सर्वाङ्गग्रहणीगुल्मे चामवातेऽम्लपित्तके॥७५९॥ कासश्वासे यक्ष्मरोगेऽप्युदरे सर्वसम्भवे। गृध्रस्यां सन्धिमज्जस्थे वाते शोथे च दुस्तरे ॥ ७६० ॥ यकृतिप्लीहरोगे च वातरोगे चिरोत्थिते। अष्टादशकुष्ठरोगे सिद्धो गहननिर्मितः ॥ ७६१ ॥

पारा, गन्धक, विष और हिंगुल प्रत्येक १ तोला, लवङ्ग ६ माशे, कालीमरिच ४ तोले, धतूरे के बीज ८ तोले, निसोथ १ तोला, इन सब द्रव्यों को चूर्ण कर दन्ती के क्वाथ की सात भावना देकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। इस ज्वरमुरारि-नामक रस का सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर, अजीर्ण, आमवात, अम्लपित्त, कास, श्वास, राजयक्ष्मा, उदररोग, गृध्रसी, वातरोग, शोथ, यकृत, प्लीहा और १८ प्रकार के कुष्ठरोग निवृत्त होते हैं ॥ ७५६-७६१ ॥

पञ्चानन रस।

शम्भोः कण्ठविभूषणं समरिचं दैत्येन्द्ररक्तं रविः पक्षौ सागर लोचनं शशियुगं भागोऽर्कसंख्यान्वितः। खल्ले तत्परिमर्दितं रविजलैर्गुञ्जैकमात्रं ददेत् सिंहोऽयं ज्वरदन्तिदर्पदलनः पञ्चाननाख्यो रसः ॥७६२॥ पथ्यञ्च देयं दधिभक्तकञ्च सिन्धूत्थपथ्या मधुना समेतम्। गन्धानुलेपो हिमतोयपानं दुग्धञ्च देयं शुभदाडिमञ्च ॥ ७६३ ॥

विष २ तोले, मरिच ४ तोले, गन्धक ३ तोले, हिंगुल १ तोला और ताम्रभस्म २ तोले, इन कुल द्रव्यों का समुदाय १२ तोला परिमित हो, इनको मदार (आक) के मूल के क्वाथ में मर्दन करके एक रत्ती प्रमाण वटी बनावे। इस पञ्चानन रस का सेवन करने से प्रबल ज्वर निवृत्त होता है। इस रस का सेवन कराकर शीतक्रिया करनी चाहिये। अनुपान—सेंधा नोन, हर्रे का चूर्ण और मधु।

पथ्य—दही-भात, सुगन्धित द्रव्य का शरीर में लेप, शीतल जल का पान, दूध और अनार के दाने ॥ ७६२-७६३ ॥

चन्द्रशेखर रस।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मरिचं टङ्कनं तथा। चतुस्तुल्या सिता योज्या मत्स्यपित्तेन भावयेत् ॥ ७६४ ॥ त्रिदिनं मर्दयेत्तेन रसोऽयं चन्द्रशेखरः। द्विगुञ्जामार्द्रकद्रावैर्देयं शीतोदकं ययु ॥ ७६५ ॥ तक्र-

भक्तश्च वृन्ताकं पथ्यं तत्र प्रदापयेत् । त्रिदिनात् श्लेष्मपित्तोत्थमत्युग्रं नाशयेज्ज्वरम् ॥ ७६६ ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, मरिच २ भाग, सुहागा फूला हुआ २ भाग, मिर्थी ७ भाग, इन सब द्रव्यों को रोहित मत्स्य के पित्त की तीन दिन भावना देकर, उत्तम रीति से मर्दन करके, दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। अनुपान—अदरख का रस । चन्द्रशेखर रस का सेवन कराकर शीतल जल पान करावे । पथ्य—तक्र, भात, बैंगन की तरकारी । इस औषध का सेवन करने से ३ दिन में अत्यन्त घोर ज्वर शान्त हो जाता है ॥ ७६४-७६६ ॥

अर्द्धनारीश्वर रस ।

रसगन्धामृतं चैव समं शुद्धश्च टङ्कनम् । मर्दयेत् खल्लमध्ये तु यावत् स्यात् कज्जलप्रभम् ॥ ७६७ ॥ नकुलारिमुखे क्षिप्त्वा मृदा संवेष्टयेद्‌बहिः । स्थापयेत् मृण्मये पात्रे उर्ध्वाधो लवणं क्षिपेत् ॥ ७६८ ॥ भाण्डवक्त्रं निरुध्याथ चतुर्यामं हठाग्निना। स्वाङ्गशैत्यं समुद्धृत्य खल्ले कृत्वा तु कज्जलीम् ॥ ७६९ ॥ गुञ्जामात्रं प्रदातव्यं नस्यकर्मणि योजयेत् । वामभागेज्वरंहन्ति तत्क्षणाल्लोककौतुकम् ॥ ७७० ॥ कुर्य्याद्दक्षिणभागेन चारोग्यं निश्चितं भवेत् । गोप्याद्गोप्यतमं प्रोक्तं गोपनीयं प्रयत्नतः । अर्द्धनारीश्वरो नाम रसोऽयं कथितो भुवि ॥ ७७१ ॥

पारा, गन्धक, विष, सोहागा फूला हुआ इनको खरल में मर्दन करके कज्जल के समान बना लेवे । पश्चात् इस कज्जली को काले साँप के मुख में रखकर ऊपर एक अंगुल मोटा मिट्टी का लेप करके मिट्टी के पात्र में रख देवे । पात्र में रक्खे हुये गोला के नीचे और ऊपर नमक रखकर पात्र का मुख सकोरा से बन्द करके सन्धिस्थान में मिट्टी लगा देवे । तदनन्तर चुल्हा पर रख ४ प्रहरपर्यन्त तीव्र आँच देकर पाक करे , स्वाङ्गशीतल होने पर पात्र से गोला निकालकर मिट्टी अलग करके औषध को खरल में घोटकर कज्जली के समान बनाकर रख लेवे । एक रत्ती इस औषध को नस्य के लिये देना चाहिये । इस औषध के प्रयोग से तत्काल वाम अङ्ग में ज्वर निवृत्त हो जाता है, इसमें लोगों को बड़ा आश्चर्य होता है, तदनन्तर दक्षिण अङ्ग का भी ज्वर नष्ट हो जाता है । यह अर्धनारीश्वर नामक रस अत्यन्त गोपनीय है ॥ ७६७-७७१ ॥

श्रीरसराज ।

भागैकं रसराजस्य भागश्च हेममाक्षिकात् । भागद्वयं शिलायाश्च गन्धकस्य त्रयो मताः ॥ ७७२ ॥ तालकाष्टादशभागाः शुल्वं स्याद्भागपञ्चकम् भल्लातकात् त्रयो भागाः सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥७७३॥ वज्रीक्षीरप्लुतं कृत्वा दृढे मृण्मयभाजने । विधाय सुदृढां मुद्रां पचेद् यामचतुष्टयम् ॥ ७७४ ॥ स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य खल्लयेत् सुदृढं पुनः । गुञ्जाद्वयमिति चास्यं पर्णखण्डेन दापयेत् ॥ रसराजः प्रसिद्धोऽयं ज्वरमष्टाविधं जयेत् ॥ ७७५ ॥

पारा १ भाग, स्वर्णमाक्षिक १ भाग, मैनशिल २ भाग, गन्धक ३ भाग, हरिताल १८ भाग, ताम्रभस्म ५ भाग और भिलावाँ ३ भाग इन सब द्रव्यों को चूर्ण करके मिट्टी के पात्र में रखकर, उसमें थूहर का दूध इतना डाले जिससे चूर्ण डूब जावे । तदनन्तर पात्र के मुख पर दृढ मुद्रा देकर, चार प्रहर पर्यन्त पाक करे । शीतल होने पर मर्दन करके रख लेवे । दो रत्ती इस श्रीरसराज रस को पान के साथ खाने को देवे । इसका सेवन करने से आठ प्रकार के ज्वर निवृत्त होवे हैं ॥ ७७२-७७५ ॥

मुद्राघोटक रस।

पारदो गन्धकश्चैव त्रिक्षारं लवणत्रयम्। गुग्गुलुर्वत्सनाभश्च प्रत्येकन्तु द्विमाषिकम् ॥७७६॥ कृष्णोन्मत्तजटानीरैर्भावयेत् सप्तवारकम्। गोक्षुरेन्द्रकमारीषकरञ्जचित्रतेजिका ॥ ७७७ ॥ भूकुरुवकलताभिश्च त्रिफलाबृहतीरसैः। मर्दिता वटिका कार्य्या कृष्णलाफलसन्निभा ॥७७८॥ तत एकां वटीं दत्त्वा वस्त्रैः पाव्यादिभिर्वृतः। रसः सर्वज्वरं हन्ति क्षणमात्रान्न संशयः ॥ ७७९ ॥

पारा, गन्धक, यवक्षार, सज्जीखार, सोहागा, सेंधानोन, कालानोन, विरियासंचरनोन, गुग्गुल और विष प्रत्येक २ मासे लेकर एकत्र मर्दन करे। पश्चात् काले धतूरे के मूल के रस की सात भावना देवे। तदनन्तर गोखरू, इन्द्रजौ, मरसा, कंजा, चीता, तेजबल, लाल फूलवाला पीयावांसा, त्रिफला और बड़ी कटेरी इनके क्वाथ में मर्दन करके गुञ्जाफल के समान अर्थात् एक एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। १ वटी सेवन करावे। औषध सेवन कराकर, रोगी का शरीर वस्त्र आदि से ढँक देवे। इसका सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ ७७६-७७९ ॥

शीतारि रस।

पारदं गन्धकं टङ्कं शुल्वं चूर्णं समं समम्। पारदाद् द्विगुणं देयं जैपालं तुषवर्जितम् ॥ ७८० ॥ सैन्धवं मरिचं चिञ्चात्वग्भस्म शर्कराऽपि च। प्रत्येकं सूततुल्यं स्याज्जम्बीरैर्मर्दयेद्दिनम् ॥ ७८१ ॥ गुञ्जां तप्ततोयेन वातश्लेष्मज्वरापहः। रसः शीतारिनामायं शीतज्वरहरः परः ॥७८२॥

पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, सोहागा की खील १ भाग, ताम्रभस्म १ भाग, जमालगोटा के बीज २ भाग, सेंधानोन १ भाग, मरिच १ भाग, इमली की छाल की भस्म १ भाग और मिश्री १ भाग. इन कुल द्रव्यों को एकत्र कर जँभीरी नींबू के रस में १ दिन मर्दन करके एक रत्ती प्रमाण वटी बनावे। अनुपान उष्ण जल। इस शीतारिरस का सेवन करने से वातश्लेष्मज्वर और शीतज्वर निवृत्त होते हैं ॥ ७८०-७८२ ॥

पर्णखण्डेश्वर।

समांशं मर्दयेत् खल्ले रसं गन्धं शिलां विषम्। निर्गुण्डीस्वरसैर्भाव्यं त्रिवारं चार्द्रकद्रवैः ॥ गुञ्जापादस्थितं पर्णे ज्वरं हन्ति महाद्भुतम् ॥ ७८३ ॥

पारा, गन्धक, मैनशिल और विष प्रत्येक सम भाग लेकर एकत्र मर्दन करके सँभालू की पत्तियों के रस की ३ भावना देवे, तदनन्तर अदरख के रस की ३ भावना देकर गोली बनावे, ¼ रत्ती पान के पत्ता में रखकर सेवन करने से बड़ी अद्भुत रीति से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ७८३ ॥

शीतभञ्जी रस।

पारदं रसकं तालं तुत्थं टङ्कनगन्धकम्। सर्वमेतत् समं शुद्धं कारवेल्या रसैर्दिनम् ॥७८४॥ मर्दयेत्तेन कल्केन ताम्रपात्रोदरं लिपेत्। अङ्गुल्यार्द्धार्द्धमानेन तं पचेत् सिकतालये ॥ ७८५ ॥ यन्त्रे यावत् स्फुटन्त्येव व्रीहयस्तस्य पृष्ठतः। ताम्रपात्रं समुद्धृत्य चूर्णयेन्मरिचैः समम् ॥७८६॥ शीतभञ्जीरसो नाम द्विगुञ्जो वातिके ज्वरे। दातव्यः पर्णखण्डेन मुहूर्त्तान्नाशयेज्ज्वरम् ॥ ७८७ ॥

अत्र रसकं खर्परम्। शुद्धताम्रं षट्तोलकं तेन निर्मितं ताम्रपात्रं प्रत्येकं तोलकमितेन पारदादिषड्द्रव्येण लिप्तम् अधोमुखं कृत्वा स्थाल्यां संस्थाप्य पात्रा-

न्तरेणाच्छाद्य उपरि वालुकाभिः स्थालीं परिपूर्य्य तदुपरि व्रीहीन् दत्त्वा चुल्ल्यां निवेश्य तावदग्निज्वाला दातव्या यावद् व्रीहयो न स्फुटन्ति स्फुटितेषु तेषु व्रीहिषु रसः सिद्धो भवति पश्चान्मरिचचूर्णं षट् तोलकम् अन्यत् सर्वमेकीकृत्य चूर्णयित्वा अस्य द्विगुञ्जं पर्णखण्डेन सह भक्षयेदित्युपदेशः ।

६ तोला परिमित शुद्ध ताम्र का एक खल बनवावे। पश्चात् पारा, खपरिया, हरिताल, तूतिया, सोहागा की खील और गन्धक इन ६ द्रव्यों में से प्रत्येक द्रव्य को एक एक तोला लेकर करेले की पत्तियों के रस में घोटकर, इस घुटी हुई औषध से पूर्वोक्त खरल के भीतरी भाग में लेप करे। तदनन्तर इस खरल को एक हाँडी में अधोमुख रखकर, उस खरल को किसी अन्य पात्र से ढाँककर हाँडी के शेष भाग को बालू से पूर्ण करके ऊपर कुछ धान्य रख देवे। पश्चात् उसको चूल्हे पर चढ़ाकर, तब तक आँच देता रहे जब तक बालू के ऊपर रक्खे हुए धान्य फूटने न लगें। धान्यों के फूटने पर चूल्हे से उतारकर, शीतल होने पर हाँडी से ताम्र के पात्र को निकालकर, उसमें ६ तोले मरिच का चूर्ण मिलाकर, उत्तम रीति से घोटकर रख लेवे। २ रत्ती प्रमाण इस रस को पान के पत्ता में रखकर सेवन करने से मुहूर्तमात्र में वातज्वर नष्ट होता है ॥ ७८४-७८७ ॥

टिप्पणी—ताम्रभस्म निरुत्थ हो गई हो तो ले अन्यथा नहीं ले।

स्वल्पज्वराङ्कुश रस ।

शुद्धसूतं विषं गन्धं धूर्त्तबीजं त्रिभिः समम् । चतुर्णां द्विगुणं व्योषं चूर्णं गुञ्जाद्वयं हितम् ॥ ७८८ ॥ जम्बीरस्य च मज्जाभिरार्द्रकस्य रसैर्युतम् । ज्वरांकुशो रसो नाम्ना ज्वरान् सर्वान् विनाशयेत् ॥ ॥ ७८९ ॥ व्योषं मिलित्वा द्विगुणम् ।

पारा १ तोला, विष १ तोला, गन्धक १ तोला, धतूरे के बीज ३ तोले, त्रिकटु के तीनों द्रव्य मिलकर १२ तोले, इन कुल द्रव्यों को एकत्र घोटकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। अदरख के रस तथा जँभीरी नींबू के बीज के साथ इस स्वल्पज्वराङ्कुश रस का सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं। मात्रा १ रत्ती ॥ ७८८-७८९ ॥

ज्वराङ्कुश ।

मरिचं टङ्कणं शङ्खं चूर्णं पारदगन्धकम् । शोधितं ब्रह्मपुत्रश्च भागमेकं विनिक्षिपेत् ॥ ७९० ॥ गुञ्जार्द्धश्च प्रदातव्यं नागवल्लीदलैः सह । ज्वराङ्कुशो रसो ह्येष ज्वरमष्टविधं जयेत् ॥ ७९१ ॥

कालीमिर्च, सुहागा, शंखभस्म, पारद, गन्धक, ब्रह्मपुत्र विष (इसके न मिलने पर मीठा विष काम में आना चाहिए) इनको बराबर बराबर लेकर यथाविधि आधी रत्ती की गोलियाँ बना ले।। इन गोलियों को पान के साथ प्रयोग में लाना चाहिए। ये आठ प्रकार के ज्वरों को हरण करती हैं ॥ ७९०-७९१ ॥

सर्वज्वराङ्कुशवटी ।

शुद्धसूतं तथा गन्धं मरिचं नागरं कणा । त्वच जैपालकं कुष्ठं भूनिम्बं मुस्तकं पृथक् ॥ ७९२ ॥ चूर्णयित्वा समांशान्तु कज्जल्या सह मेलयेत् । निर्गुण्ड्याः स्वरसे चापि आर्द्रकस्य रसे तथा ॥ ७९३ ॥ भावनां कारयित्वा तु वटिकां कारयेद्भिषक् । वटिकां भक्षयित्वा तु वस्त्रेणैश्च कारयेत् ॥ ७९४ ॥ एषा ज्वराङ्कुशवटी सर्वज्वरविनाशिनी । पृथग्दोषांश्च विविधान् समस्तान् विषमज्वरान् ॥ ७९५ ॥ मारुतं वैकृतं वापि वातश्लेष्मकृतश्च यत् । अन्तर्गतं बहिःस्थञ्च निरामं साममेव वा

ज्वरमष्टविधं हन्ति वृत्तमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ७९६ ॥

पारा और गन्धक समभाग लेकर कज्जली बना लेवे। पश्चात् मिरिच, सोंठ, पीपरि, दालचीनी, जमालगोटा के बीज, कूठ, चिरायता और नागरमोथा इनमें से प्रत्येक द्रव्य को पारा के समान परिमाण में लेकर कज्जली में मिलाकर सँभालू की पत्तियों के रस की भावना देकर मर्दन करे। तदनन्तर अदरख के रस में घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। इस औषध का सेवन कराकर रोगी का शरीर वस्त्र से ढाँक देवे। इस सर्वज्वरांकुशवटी रस का सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर निवृत्त होते हैं ॥ ७९०-७९६ ॥

बृहज्ज्वराङ्कुश।

पारदं गन्धकं ताम्रं हिंगुलं तालमेव च। लौहं वङ्गं माक्षिकञ्च खर्परञ्च मनःशिला ॥ ७९७ । स्वर्णमभ्रं गैरिकञ्च टङ्कन रूप्यमेव च। सर्वाण्येतानि तुल्यानि चूर्णयित्वा विभावयेत् ॥ ७९८ ॥ जम्बीरतुलसीचित्रविजयातिन्तिडीरसैः। एभिर्दिनत्रयं रौद्रे निर्जने खल्लगह्वरे ॥ ७९९ ॥ चणमात्रां वटीं कृत्वा छायाशुष्कान्तु कारयेत्। महाग्निजननी चैषा सर्वज्वरनिनाशिनी ॥ ८०० ॥ एकजं द्वन्द्वजं चैव चिरकालसमुद्भवम्। ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च त्रिदोषप्रभवं ज्वरम् ॥८०१॥ चतुर्थकं तथात्युग्रं जलदोषसमुद्भवम्। सर्वान् ज्वरान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ८०२ ॥ नातः परतरं किञ्चिज्ज्वरनाशाय भेषजम्। महाज्वरांकुशो नाम रसोऽयं मुनिभाषितः ॥ ८०३ ॥

पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, हिंगुल, हरिताल, लौहभस्म, वङ्गभस्म, स्वर्णमाक्षिक, खपरिया, मैनशिल, स्वर्णभस्म, अभ्रकभस्म, गेरू, सोहागा भुना हुआ और चाँदीभस्म, समभाग, इन कुल द्रव्यों को एकत्र कर मर्दन करे। पश्चात् जँभीरी नींबू का रस, तुलसी की पत्तियों का रस, चीता की पत्तियों का रस, भाँग की पत्तियों का रस, इमली की पत्तियों का रस, इन समस्त रसों की सात दिन पर्यन्त भावना देकर छाया में शुष्क कर लेवे। तदनन्तर चना के समान गोलियाँ बना लेवे। इस महाज्वरांकुश रस का सेवन करने से सब प्रकार के ज्वरों का नाश और अग्नि की वृद्धि होती है ॥ ७९७-८०३ ॥

ज्वराङ्कुश।

शुद्धसूतं तथा गन्धं बीजं कनकसम्भवम्। महौषधं टङ्कनञ्च हरितालं तथा विषम् ॥ ८०४ ॥ भृङ्गराजाम्भसा सर्वं मर्दयित्वा वटीञ्चरेत्। गुञ्जाप्रमाणां खादेत् तां तथा दोषानुपानतः ॥ ८०५ ॥ एष ज्वरांकुशो नाम्ना विषमज्वरनाशनः। ज्वरातिसारं मन्दाग्निं नाशयेदविकल्पतः ॥ ८०६ ॥

पारा, गन्धक, धतूरे के बीज, सोंठ, सोहागा की खील, हरिताल और विष इन कुल द्रव्यों को समभाग लेकर भँगरा के रस में घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। दोषानुकूल अनुपान के साथ इस ज्वरांकुश रस का सेवन करने से सब प्रकार के विषमज्वर, ज्वरातिसार अग्निमान्द्य नष्ट होते हैं ॥ ८०४-८०६ ॥

चिन्तामणि रस।

रसं गन्धं मृतं ताम्रं मृतमभ्रं फलत्रिकम्। त्र्यूषणं दन्तिबीजञ्च समं खल्ले विमर्दयेत् ॥ ८०७ ॥ द्रोणपुष्पीरसैर्भाव्यं शुष्कं तदुपपालितम्। चिन्तामणिरसो ह्येष त्वजीर्णे शस्यते सदा ॥ ८०८ ॥ ज्वरमष्टविधं हन्ति सर्वं शूलनिसूदनः। गुञ्जैका वा द्विगुञ्जं वाद्र्यमार्द्रकवारिणा ॥ ८०९ ॥

पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, आँवला हर्र, बहेड़ा, सोंठ, मिरिच, पीपरि और जमालगोटा के बीज इन सब द्रव्यों को समान भाग, लेकर खरल कर लेवे । तदनन्तर गूमा के रस में भावना देकर ; एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनाकर छाया में शुष्क कर लेवे । इसका सेवन करने से अजीर्ण, शूल और आठ प्रकार के ज्वर विशेषत: वातज्वर नष्ट होते हैं । अनुपान अदरख के रस के साथ एक या दो गोली देनी चाहिये ८०७-८०८

त्रिलोचनवटी ।

वारिणा मर्दयेत्तालं सीसकं मरिचं विषम् । मुद्गमाना वटी कार्य्या जलेन सितया सह ॥ ८१० ॥ द्विमुहूर्त्तान्तरं दद्यात् क्रमेण वटिकात्रयम् । त्रिलोचनवटी ह्येपा पर्यायज्वरनाशिनी॥८११॥वातिकं पैत्तिकं चापि श्लेष्मिकं सान्निपातिकम् । सर्वान् ज्वरान् निहन्त्याशु प्रयुक्ता ज्वरमार्दवे८१२

हरताल शुद्ध की हुई, सीसकभस्म, काली मिरिच, मीठा विष उपर्युक्त सब द्रव्यों को बराबर ले और मिश्रित कर जल से घोटे और मूँग के बराबर गोली बना ले । इन गोलियों को उस अवस्था में प्रयोग में लाना चाहिए जब कि ज्वर न हो या बहुत कम हो । ये वातिक, पैत्तिक, कफ से आनेवाले तथा सान्निपातिक सपूर्ण ज्वरों को नष्ट करती हैं—इन गोलियों को दो मुहूर्त (लगभग १॥ घंटा) के अन्तर से देना चाहिए । ज्वर चढ़ने के समय तक दो मुहूर्त के अन्तर से तीन गोलियाँ दे देने से ज्वर रुक जाता है । अनुपान—गोली को पीसकर उसमें उतनी ही खांड मिलाकर पानी के साथ प्रयोग करे ॥ ८१०-८१२ ॥

वातश्लेष्मान्तक रस ।

पञ्चकोल मृणालञ्च पारदश्चाभ्रकं तथा । आर्द्रकस्वरसेनैव मर्दयेदतियत्नतः॥८१३॥ गुञ्जाद्वयं प्रदातव्यं नागवल्लीरसैर्युतम् । वातश्लेष्मज्वरहरो वातश्लेष्मान्तको रसः ॥ ८१४ ॥ वातजं पित्तजं श्लेष्मद्विदोषजमपि क्षणात् । सर्वान् ज्वरान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥८१५॥

पीपरि, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, प्रवालभस्म, रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को बराबर-बराबर एकत्र करके अदरख के रस से अच्छी तरह घोटकर दो रत्ती प्रमाण की गोली बना ले । अनुपान पान का रस । इससे वातश्लेष्मज्वर, वातज, पित्तज, कफज, दो दोषों से उत्पन्न होनेवाला ज्वर तथा सम्पूर्ण ज्वर शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ८१३-८१५ ॥

ऐकाहिकारि रस ।

रसगन्धशिला तालं सर्वैरतिविषासमा। रसस्य द्विगुणं लौहं रौप्यं लौहाङ्घ्रिसम्मितम् ॥ ८१६ ॥ पिचुमर्दरसेनापि विष्णुक्रान्तारसेन च । सर्वं संमर्द्य वटिकाः कुर्य्याद् गुञ्जात्रयोन्मिताः ॥ ८१७ ॥ हन्यादतिविषाक्वाथसंयुतोऽयं रसोत्तमः । ऐकाहिकादीन् ज्वरान् सर्वान् रक्षांसीव रघूद्वहः ॥ ८१८ ॥

पारा, गन्धक, मैनशिल, हरिताल प्रत्येक १ भाग, अतीस ४ भाग, लोहभस्म २ भाग, और चाँदी आधा भाग इन कुल द्रव्यों को नीम की छाल के रस में और विष्णुक्रान्ता (कोयल) के रस में घोटकर तीन तीन रत्ती की गोलियाँ बना लेवे । अतीस के काढ़ा के साथ इस ऐकाहिकारि रस का सेवन करने से तृतीयक आदि सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ८१६-८१८ ॥

चातुर्थकारि रस ।

रसगन्धकलौहाभ्रहरितालं समांशिकम्। रसार्द्धभमितं हेम सर्वं खल्लोदरे क्षिपेत् ॥ ॥ ८१९ ॥ कृष्णधुस्तूरपयसा मुनिपुष्परसेन च । मर्दयित्वा वटी कार्य्या द्विगुञ्जाफलमानत ॥ ८२० ॥ चम्पकत्वग्योगेन

सेवितोऽयं रसेश्वरः । चातुर्थकादीन् निखिलान् निहन्त्याह्निकमज्वरान्॥८२१॥ त्र्याह्निकारिश्चातुर्थकारिश्च रसो ज्वरविरतौ प्रयोज्य इति वृद्धवैद्याः।

पारा, गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और हरिताल प्रत्येक १ भाग, सोना पारे का आधा भाग; इनको खरल करके, काले धतूरे की पत्तियों के रस में और अगस्त्य के फूल के रस में भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। चम्पा की छाल के अर्क के साथ इस रस का सेवन करने से चातुर्थिक आदि सब प्रकार के विषमज्वर नष्ट होते हैं। मात्रा १ रत्ती।

त्र्याहिकारि और चातुर्थकारि इन दोनों रसों को ज्वर उतरने पर देना चाहिये ऐसा वृद्ध वैद्यों का उपदेश है ॥८१६-८२१॥

विश्वेश्वर रस।

पारदं रसकं गन्धं तुल्यांशं मर्दयेद्रसे। अश्वत्थजे त्र्यहं पश्चाद्रसे कोलकमूलजे ॥८२२॥ निदिग्धिकारसे काकमाचिकाया रसे तथा। द्विगुञ्जां वा त्रिगुञ्जां वा गोक्षीरेण प्रदापयेत्। रात्रिज्वरं निहन्त्याशु नाम्ना विश्वेश्वरो रसः ॥८२३॥
(रात्रिज्वरे प्रशस्तोऽयं रसः।)

पारा, खपरिया और गन्धक सम भाग इन द्रव्यों को लेकर पीपल के मूल की छाल के रस में, बेर की मूल की छाल के रस में छोटी कटेरी के रस में और मकोय के रस में तीन-तीन दिन भावना देकर, दो दो रत्ती की अथवा तीन-तीन रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। गाय के दूध के साथ इस रस का सेवन करने से रात्रि-ज्वर शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥८२२-८२३॥

विक्रमकेसरी रस।

शुल्वमेकं द्विधातारं मर्दयेद्विधिवद्भिषक्। पश्चाद् विषं रसं गन्धं मेलयित्वा तु भावयेत् ॥८२४॥ एकविंशतिवारांश्च लिम्पाकवल्कलद्रवैः। रसः सिद्धः प्रदातव्यो गुञ्जामात्रो ज्वरान्तकृत्। सर्वज्वरहरः ख्यातो रसो विक्रमकेसरी ॥८२५॥

ताम्रभस्म १ तोला, चाँदी २ तोले इनको विधिपूर्वक खरल करे। पश्चात् उसमें विष, पारा और गन्धक प्रत्येक एक तोला मिलाकर फिर खरल करे। तदनन्तर नींबू के मूल की छाल के रस में २१ बार भावना देकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। इस रस का सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥८२४-८२५॥

ज्वरकालकेतु रस।

रसं विषं गन्धकताम्रकञ्चमनः शिलारूप्यतालकञ्च। विमर्द्य वज्रीपयसा समांशं गजाह्वयं तत्र पुटं विदध्यात् ॥८२६॥ गुञ्जार्द्धमस्यैव मधुप्रयुक्तं ज्वरं निहन्त्यष्टविधं महोग्रम्। पुरा भवान्यै कथितो भवेन नृणां हिताय ज्वरकालकेतुः ॥८२७॥

पारा, विष, गन्धक, ताम्र, मैनशिल, भिलावाँ और हरिताल इन कुल द्रव्यों को सम भाग लेकर थूहर के दूध में घोटकर गजपुट में फूँक देवे। मधु के साथ ½ रत्ती की मात्रा में इस रस का सेवन करना चाहिये। इसका सेवन करने से आठ प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥८२६-८२७॥

त्रिपुरारि रस।

हुताशमुखसंशुद्धं रसं ताम्रञ्च गन्धकम्। लौहमभ्रं विषञ्चैव सर्वं कुर्यात् समांशकम् ॥८२८॥ रसार्द्धं मृतरूप्यञ्च भृङ्गवेराम्बुमर्दितम्। गुञ्जैकं मधुना देयं सितयार्द्ररसेन वा ॥८२९॥ ज्वरमष्टविधं हन्ति वारिदोषभवं तथा। प्लीहानमुदरं शोथमतीसारं विनाशयेत्। रोगानेतान्निहन्त्याशु शङ्करस्त्रिपुरं यथा ॥८३०॥

हिंगुल से निकाला हुआ पारा, ताम्रभस्म,

गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और विष ये कुल द्रव्य समभाग, पारे का आधा भाग चांदी की भस्म; इन कुल द्रव्यों को एकत्र कर अदरख के रस में घोटकर १ रत्ती प्रमाण वटी बनावे। अनुपान मधु, पिप्पली अथवा अदरख का रस। इसका सेवन करने से आठ प्रकार के ज्वर, पारिशेषजन्य (अन्न की खराबी से उत्पन्न) ज्वर, प्लीहा, उदररोग, शोथ और अतिसार ये रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ८२८-८३० ॥

मेघनाद रस।

तारं कांस्यं मृतं ताम्रं त्रिभिस्तुल्यश्च गन्धकम्। क्वाथेन मेघनादस्य पिष्ट्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥ ८३१ ॥ षड्भिः पुटैर्भवेत् सिद्धो मेघनादो ज्वरापह। भक्षयेत् पर्णखण्डेन विषमज्वरनाशनम् ॥ ८३२ ॥ अस्य मात्रा द्विगुञ्जा स्यात् पथ्यं दुग्धौदनं हितम्। नागरातिविषामुस्तभूनिम्बामृतवत्सकैः ॥८३३॥ सर्वज्वरातिसारघ्नं क्वाथमस्यानुपाययेत्। तरुणं वा ज्वरं जीर्णं तृष्णा दाहं च नाशयेत् ॥ ८३४ ॥

चाँदी, कासा और ताम्रभस्म प्रत्येक १ तोला, गन्धक ३ तोले। इन सबको चौराई के क्वाथ के साथ पीसकर ६ बार गजपुट में पाक करे। दो रत्ती इस रस को पान के पत्ते में रखकर सेवन करना चाहिये। इसका सेवन करने से विषमज्वर नष्ट होता है। पथ्य दूध-भात।

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, चिरायता, गुरुच और कुड़ा की छाल प्रत्येक चार-चार मासे। इनको आध सेर जल में पकावे। एक छटाँक जल शेष रहने पर छानकर इसी क्वाथ के साथ मेघनाद-रस का सेवन करने से सब प्रकार के ज्वरातिसार तरुणज्वर, जीर्णज्वर, तृष्णा और दाह निवृत्त होते हैं ॥ ८३१-८३४ ॥

शीतारिरस।

तालकं दरदोद्भूतः पारदो गन्धकः शिला। क्रमाद्भागार्द्धरहितं कारवेल्लाम्बुमर्दितम् ॥ ८३५ ॥ इदमस्य प्रमागेन ताम्रपात्रीं प्रलेपयेत्। अधोमुखीं दृढे भाण्डे तां निरुध्याथ पूरयेत् ॥ ८३६ ॥ चुल्ल्यां वालुकया यामैकं प्रज्वलयेद् दृढम्। शीते संचूर्ण्य गुञ्जास्य नागवल्लीदले स्थिता ॥ ८३७ ॥ भक्षिता मरिचैः सार्द्धं समस्तान् विषमज्वरान्। दाहशीतादिकं हन्यात् पथ्यं शाल्योदनं पयः ॥ ८३८ ॥

हरताल ४ तोले, हिंगुल से निकाला पारा २ तोले, गन्धक १ तोला, मैनशिल ६ मासे; इन सब द्रव्यों को करेला की पत्तियों के रस में घोट लेवे। पश्चात् ७॥ तोले शुद्ध तांबे की कटोरी बनवाकर उस कटोरी के भीतरी भाग में पूर्वोक्त घोटे हुये औषध का लेप करके उस कटोरी को किसी हांडी में अधोमुख रखकर, उस कटोरी को किसी अन्य पात्र से ढँककर हांडी के शेष भाग को बालू से भर देवे। तदनन्तर उस हांडी को चूल्हे पर चढ़ाकर एक दिन तीव्र आँच देवे। स्वाङ्ग शीतल होने पर ताम्रपात्री को निकालकर उत्तम रीति से चूर्ण करके रख लेवे। १ रत्ती इस रस को ६ रत्ती मिरिच चूर्ण में मिलाकर पान के पत्ता में रखकर खिला देवे। इस शीतारि का सेवन करने से दाहपूर्वक अथवा शीतपूर्वक सब प्रकार के विषमज्वर नष्ट होते हैं। पथ्य—शालीधान के चावलों का भात और दुग्ध ॥ ८३५-८३८ ॥

टिप्पणी—ताम्रभस्म निरुत्थ हो गई हो तो ही काम में ले अन्यथा और पुट देकर निरुत्थ कर ले।

स्वच्छन्दभैरव रस।

समभागांश्च संगृह्य पारदामृतगन्धकान्। जातीफलस्य भागार्द्धं दत्त्वा कुर्याच्च कज्जलीम् ॥ ८३९ ॥ सर्वार्द्धं पिप्पलीचूर्णं खल्लयित्वा निधापयेत्। गुञ्जार्द्ध-

प्रमितं चैव नागवल्लीदलैः सह ॥ ८४० ॥ आर्द्रकस्य रसेनापि द्रोणपुष्पीरसेन वा। शीतज्वरे सन्निपाते विसूच्यां विषमज्वरे ॥ ८४१ ॥ पीनसे च प्रतिश्याये ज्वरेऽजीर्णे तथैव च। मन्देऽग्नौ वमने चैव शिरोरोगे च दारुणे ॥ ८४२ ॥ प्रयोज्यो भिषजा सम्यग् रसः स्वच्छन्दभैरवः। पथ्यं दद्ध्योदनं दद्याद्वीक्ष्य दोषबलाबलम् ॥ ८४३ ॥

पारा ४ तोले, विष ४ तोले, गन्धक ४ तोले, जायफल २ तोले ; इन सबको घोटकर कज्जली के समान करके, पश्चात् उसमें ७ तोले छोटी पीपरि का चूर्ण मिलाकर खरल करके रख लेवे। इसकी मात्रा आधी रत्ती। अनुपान पान का रस, अदरख का रस अथवा गूमा का रस। इस 'स्वच्छन्दभैरव रस' का सेवन करने से शीतज्वर, सन्निपातज्वर, विसूचिका, विषमज्वर, पीनस, प्रतिश्याय, अजीर्ण, अग्निमान्द्य, वमन और दारुण शिरोरोग निवृत्त होते हैं। दोषों का बलाबल देखकर दही-भात आदि पथ्य देने चाहिए ॥ ८३९-४३ ॥

ज्वरारिरस।

दरदबलिरसानां शुल्बनागाभ्रकाणां शुभगविटशिलानां सर्वमेकत्र योज्यम्। विपिननृपदलोत्थैर्भावितं शोषयेत्तं दिवसद्विशसमाप्तौ रक्तिकार्द्धाश्च कुर्य्यात् ॥ ८४४॥ एकैकां भक्षयेदस्य चार्द्रकस्य रसैर्युताम्। दत्तमात्रं ज्वरं हन्ति ज्वरारिः स निगद्यते। सर्वशूलविनाशी च कफपित्तविनाशनः ॥ ८४५ ॥

सर्वमारग्वधपत्ररसेन दशदिनं भावयित्वा गुञ्जार्धप्रमाणमार्द्रकरसेन देयम्।

हिंगुल, गन्धक, पारा, ताम्रभस्म, सीसकभस्म, अभ्रकभस्म, सोहागा, विडनमक, मैनशिल समभाग इन सब औषधों को अमिलतास की पत्तियों के रस में १० दिन पर्यन्त घोटकर आधी २ रत्ती की गोलियाँ बनावे, अनुपान अदरख का रस। इस ज्वरारि रस का सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर, शूल और कफ, वातरोग नष्ट होते हैं ॥ ८४४-८४५ ॥

दूसरा ज्वरारि रस।

रसगन्धककाशीशत्र्यूषणातिविषाभयाः। चम्पकत्वक् च सर्वाणि यवतिक्तारसैर्दिनम् ॥ ८४६ ॥ मर्दयित्वा वटी कार्या रक्तिकाद्वयसम्मिता। आर्द्रकस्वरसेनाथ दापयेज्ज्वरशान्तये ॥ ८४७ ॥ रसैर्वा बहुमञ्जर्य्याः केवलेन जलेन वा। नवज्वरं महाघोरं वातपित्तकफोद्भवम् ॥ ८४८ ॥ सोपद्रवं त्रिदोषोत्थं जीर्णञ्च विषमज्वरम्। ज्वरारिरसनामासौ नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ८४९ ॥

पारद, गन्धक, कसीस, त्रिकटु, अतीस, हरड, चम्पा की छाल, इनको बराबर-बराबर लेकर और मिलाकर कालमेघ (यवतिक्ता) के रस में अच्छी तरह घोटकर २ रत्ती प्रमाण की गोली बना ले। अनुपान अदरख का रस। यह रस ज्वर को शीघ्र हरण करता है, इसलिए इसका नाम ज्वरारि रस है। यह दर्द (शूल) तथा बढ़े हुए कफ व पित्त दोषों को शीघ्र शान्त करता है ॥ ८४६-८४९ ॥

ज्वराशनिरस।

रसं गन्धं सैन्धवं च विषं ताम्रं समं भवेत्। सर्वचूर्णसमं लौहं तत्समं चूर्णमभ्रकम् ॥ ८५० ॥ लौहे च लौहदण्डे च निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च। मर्दयेद्यत्नतः पश्चान्मरिचं सूततुल्यकम् ॥ ८५१ ॥ पर्णेन सह दातव्यो रसो रक्तिकसम्मितः। कासश्वास महाघोरं विषमाख्यं ज्वरं वमिम् ॥ ८५२ ॥

धातुस्थं प्रबलं दाहं ज्वरदोषं चिरोद्भवम्। यकृद्गुल्मोदरप्लीहश्वयथुं च विनाशयेत् ॥ ८५३ ॥

पारा, गन्धक, सेंधानोन, विष और ताम्रभस्म प्रत्येक १ तोला, लोहभस्म ४ तोले, अभ्रकभस्म ४ तोले इन सब द्रव्यों को लोह के खरल में लोह के दण्ड से सँभालू के स्वरस के साथ उत्तम रीति से खरल कर लेवे। पश्चात् उसमें १ तोला कालीमिरिच मिलाकर भलीभाँति खरल करके एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। पान के पत्ते में रखकर इसका सेवन करना चाहिये। इस रस का सेवन करने से काम, श्वास, अतिघोर धातुस्थ विषमज्वर, प्रबल दाह, यकृत्, गुल्म, उदर, प्लीहा और शोथ नष्ट होते हैं ॥ ८४०-८५३ ॥

ज्वरान्तक रस।

भास्करो गन्धकः सर्पो देवीविहङ्गतीक्ष्णकम्। शोणितं गगनं चैव पुष्पकञ्च महेश्वरम् ॥ ८५४ ॥ भूनिम्बादिगणेर्भाव्य मधुना गुडिका दृढा। चातुर्थकं तृतीयञ्च ज्वरं सन्ततकं तथा। आमज्वरं भूतकृतं सर्वज्वरमपोहति ॥ ८५५ ॥

अत्र सर्पो रसः। देवी सौराष्ट्रमृत्तिका। विहङ्गं स्वर्णमाक्षिकम्। शोणितं हिंगुलम्। पुष्पकंरसाञ्जनम्। महेश्वरं सुवर्णम्। अन्यत् सुगमम्। ताम्रादीनां समभागचूर्णं भूनिम्बादिकाथेन भावयेत्। भूनिम्बाद्यष्टादश द्रव्याणि सर्वद्रव्यतुल्यानि अष्टावशिष्टं क्वाथं कृत्वा दिनत्रय विभाव्य विशोष्य मधुना विमर्द्य अनुरूपं लिहेत्।

ताम्रभस्म, गन्धक पारा, सौराष्ट्रमृत्तिका, स्वर्णमाक्षिक, लोहभस्म, हिंगुल, अभ्रकभस्म, रसौत और सोना, इन सब द्रव्यों को समभाग लेकर एकत्र कर खरल करे। पश्चात् भूनिम्बादि द्रव्यों के क्वाथ में तीन दिन पर्यन्त भावना देकर घाम में सुखाकर एक एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। भूनिम्बादि[१] १८ द्रव्यों को ताम्र आदि पूर्वोक्त १० द्रव्यों के समुदाय के समान परिमाण में लेकर, अठगुने जल में पकावे, जब केवल आठवाँ भाग जल शेष रह जाय तो उतारकर वस्त्र से छानकर इसी क्वाथ में भावना देवे। अनुपान मधु। इसका सेवन करने से चातुर्थकज्वर, तृतीयकज्वर, आमज्वर, भूतकृतज्वर तथा अन्यान्य विविध प्रकार के विषमज्वर निवृत्त होते हैं ॥ ८५४-८५५ ॥

श्रीजयमङ्गल रस।

हिङ्गुलसम्भवं सूतं गन्धकं टङ्कनं तथा। ताम्रं वङ्गं माक्षिकञ्च सैन्धवं मरिचं तथा ॥ ८५६ ॥ समं सर्वं समाहृत्य द्विगुणं स्वर्णभस्मकम्। तदर्द्धं कान्तलौहञ्च रूप्यभस्मापि तत्समम् ॥ ८५७ ॥ एतत्सर्वं विचूर्ण्याथ भावयेत कनकद्रवैः। शेफालीदलजैश्चापि दशमूलरसेन च ॥ ८५८ ॥ किराततिक्तकाथैस्त्रिवारं भावयेत् सुधीः। भावयित्वा ततः कार्य्या गुञ्जाद्वयमिता वटी ॥ ८५९ ॥ अनुपानं प्रयोक्तव्यं जीरकं मधुसंयुतम्। जीर्णज्वरं महाघोरं चिरकालसमुद्भवम् ॥ ८६० ॥ ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा। पृथग्दोषांश्च विविधान् समस्तान् विषमज्वरान् ॥ ८६१ ॥ मेदोगतं मांसगतमस्थिमज्जगतं तथा। अन्तर्गतं महाघोरं बहिःस्थञ्च विशेषतः ॥ ८६२ ॥ नानादोषोद्भवञ्चैव ज्वरं शुक्रगतं तथा। निखिलं ज्वर-

[१] चिरायता, देवदारु, दशमूल, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, धनिया और गजपीपरि इन १८ द्रव्यों को 'भूनिम्बादि' गण कहते हैं।

नामानं हन्ति श्रीशिवशासनात् ॥ ८६३ ॥ जयमङ्गलनामायं रसः श्रीशिवनिर्मितः। बलपुष्टिकरश्चैव सर्वरोगनिबर्हणः॥८६४॥

हिंगुल से निकाला पारा, गन्धक, सोहागा की खील, ताम्रभस्म, वंगभस्म, स्वर्णमाक्षिक, सेंधानमक और मिरच प्रत्येक एक तोला, स्वर्णभस्म २ तोले, कान्तलोहभस्म १ तोला, चांदी की भस्म १ तोला; इनको एकत्र खरल करके, धतूरे की पत्तियों के रस में, सँभालू की पत्तियों के रस में, दशमूल के क्वाथ में और चिरायता के क्वाथ में क्रम से क्रम तीन-तीन बार भावना देकर दो रत्ती प्रमाण गोलियाँ बनावे। अनुपान जीरा का चूर्ण और मधु। इस जयमंगल रस का सेवन करने से बहुत दिन से उत्पन्न अति कठिन जीर्णज्वर, साध्य-असाध्य आठ प्रकार के ज्वर, पृथक्-पृथक् दोषों से उत्पन्न ज्वर, विषमज्वर, मेदोगत, मांसगत, अस्थिगत, मज्जागत ज्वर अन्तर्वेगज्वर, बहिर्वेगज्वर, अनेक प्रकार के दोषों से उत्पन्न ज्वर, शुक्रगत ज्वर सभी श्रीशिवजी के प्रताप से नष्ट होते हैं। श्रीशिवजी द्वारा बनाया हुआ यह जयमङ्गल नामक रस बल और पुष्टिकारक एवं सब रोगनाशक है ॥ ८६१-८६४ ॥

ज्वरकुञ्जरपारीन्द्ररस।

मूर्च्छितं रसकर्षैकं तदर्द्धं जारिताभ्रकम्। तारं ताप्यञ्च रसजं रसकं ताम्रकं तथा ॥ ८६५ ॥ मौक्तिकं विद्रुमं लौहं गिरिजं गैरिकं शिला। गन्धकं हेमसारञ्च पलार्द्धञ्च पृथक् पृथक् ॥ ८६६ ॥ क्षीरावी सुरवल्लीच शोथघ्नी गणिकारिका। झाटामला ज्योत्स्निका च सतिक्ता तु सुदर्शना ॥ ८६७ ॥ अग्निजिह्वा पूतितैला शूर्पपर्णी प्रसारिणी। प्रत्येकस्वरसं दत्त्वा मर्दयेत् त्रिदिनावधि ॥ ८६८ ॥ भक्षयेत् पर्णखण्डेन चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः। महाग्निकारको रोगसङ्करघ्नः प्रयोगराट् ॥८६९॥ सन्ततं सततान्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकान्। ज्वरान् सर्वान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ८७० ॥ कासं श्वासं प्रमेहञ्च सशोथां पाण्डुकामलाम्। ग्रहणीं क्षयरोगञ्चसर्वोपद्रवसंयुतम्॥ज्वरकुञ्जरपारीन्द्रः प्रथितः पृथिवीतले ॥ ८७१ ॥

मूर्च्छित पारा १ तोला, अभ्रकभस्म ६ मासे, स्वर्णमाक्षिक भस्म, रसौत, खपरिया, ताम्रभस्म, मुक्ताभस्म, प्रवालभस्म, लोहभस्म, शिलाजीत, सोनागेरू, मैनशिल, गन्धक और स्वर्णभस्म इनमें से प्रत्येक २ तोले; इनको एकत्र खरल करे। पश्चात् दुद्धी, तुलसी, गदहपुरैना, अरनी, भुइँआमला, कडुई तरोई, चिरायता, मुखशोना, कलिहारी, मालकाँगनी, वनमूँग और गन्ध प्रसारणी; इनमें से प्रत्येक के स्वरस में तीन-तीन दिन घोटकर चार चार रत्ती की गोलियाँ बनावे। अनुपान पान का अर्क।

यह ज्वरकुञ्जरपारीन्द्ररस अत्यन्त अग्निवर्द्धक, ज्वरसङ्करनाशक और हर प्रकार के विषमज्वर की महौषध है। इससे कास, श्वास, प्रमेह, शोथयुत पाण्डुरोग, कामला, ग्रहणी और उपद्रवयुक्त क्षयरोग भी नष्ट होता है ॥ ८६५-८७१ ॥

विद्यावल्लभ रस।

रसम्लेच्छशिलातालाश्चन्द्रद्व्यग्न्यर्कभागिकाः। पिष्ट्वा तान् सुपर्णीतोयैस्ताम्रपात्रोदरे क्षिपेत् ॥ ८७२ ॥ न्यस्तं शरावे संरुध्य वालुकायन्त्रगं पचेत्। स्फुटन्ति व्रीहयो यावत्तच्छिरस्था शनैः शनैः ८७३ संचूर्ण्य शर्करायुक्तं गुञ्जार्द्धं भक्षयेत्ततः। विषमाख्यान् ज्वरान् हन्ति तैलाम्लादि विवर्जयेत् ॥ ८७४ ॥

पारा १ भाग, ताम्रभस्म २ भाग, मैनशिल ३ भाग, हरताल १२ भाग; इनको छोटी करेली की पत्तियों के अर्क में पीसकर ताम्रपत्र के मध्य भाग में लेप करके वालुकायन्त्र में

पाक करे। जब वालुकायन्त्र के ऊपर रक्खे हुये धान्य फूटने लगें तब औषध को सिद्ध हुआ जानकर उतार लेवे। स्वाङ्ग शीतल होने पर औषध निकालकर रख लेवे। इसकी मात्रा आधी रत्ती। अनुपान मिश्री। इसका सेवन करने से सब प्रकार के विषमज्वर नष्ट होते हैं। औषध का सेवन करनेवाले रोगी को तेल और खटाई आदि का खाना वर्जित है॥ ८७२-८७४॥

ज्वरशूलहर रस।

रसगन्धकयोः कृत्वा कज्जलीं भाण्डमध्यगाम्। तत्राधोवदनां ताम्रपात्रीं सरुध्य शोषयेत्॥ ८७५॥ पादाङ्गुष्ठप्रमाणेन चुल्ल्यां ज्वालेन तां दहेत्। यामद्वयं ततस्तत्स्थं रसपात्रं समाहरेत्॥ ८७६॥ चूर्णयेद्गुञ्जपादं वा गुञ्जार्द्धं वा विचक्षणः। ताम्बूलीदलयोगेन दद्यात् सर्वज्वरेष्वमुम्॥ ८७७॥ जीरसैन्धवसंलिप्तवक्त्राय ज्वरिणे हितम्। स्वेदोद्गमो भवत्येन देवि सर्वेषु पाप्मसु॥ ८७८॥ चातुर्थकादीन् विषमान् नवमागामिनं ज्वरम्। साधारणं सन्निपातं जयत्येष न संशयः॥ ८७९॥

समान भाग पारा और गन्धक लेकर कज्जली बनावे। उस कज्जली को एक पात्र में रखकर, उसके ऊपर एक तांबे की कटोरी औंधी रखकर ढँक देवे। सन्धिस्थान में मिट्टी का लेप करके चूल्हा पर चढ़ाकर दो पहर पाक करे। स्वाङ्गशीतल होने पर खरल करके शीशी में रख लेवे। इसकी मात्रा चौथाई रत्ती से आधी रत्ती तक है। पहिले सेंधानोन मिलाकर जीरे का चूर्ण खाकर पश्चात् पान के रस में इसका सेवन करना चाहिये। इसका सेवन करने से पसीना आ जाता है, और चतुर्थक आदि सब प्रकार के विषमज्वर, नवज्वर, आगन्तुकज्वर और साधारण सन्निपातज्वर निःसन्देह निवृत्त होते हैं॥ ८७५-८७९॥

षडानन रस।

आरंकांस्यं मृतं ताम्रं दरदं पिप्पलीविषम्। तुल्यांशं मर्दयेत् खल्वे यामञ्च गुडुचीरसैः॥ ८८०॥ गुञ्जामात्रं रसं देयं गुञ्जामात्रं लिहेत् सदा। ज्वरे मन्दानले चैव वातपित्तज्वरेषु च॥ ८८१॥ ज्वरे वैषम्यतरुणे ज्वरे जीर्णे विशेषतः। मुद्गान्नं मुद्गयूषं वा तक्रभक्तञ्च केवलम्॥ ८८२॥ नारिकेलोदकं देयं मुद्गपथ्यं विशेषतः। षडाननो रसो नाम सर्वज्वरकुलान्तकृत्॥ ८८३॥

पीतलभस्म, काँसाभस्म, ताम्रभस्म, हिंगुल, पीपरि और विष, समान भाग इन सब द्रव्यों को लेकर गिलोय के रस में एक प्रहर पर्यन्त घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। अनुपान मधु। इस षडाननरस का सेवन करने से वातपित्तज्वर विषमज्वर, तरुणज्वर, जीर्णज्वर और अग्निमान्द्य आदि रोग नष्ट होते हैं। पथ्य मूँग का जूस, तक्र, भात, नारियल का पानी॥ ८८०-८८३॥

कल्पतरु रस

रसं गन्धं विषं ताम्रं समभागं प्रचूर्णयेत्। भावयेत् पञ्चभिः पित्तैः क्रमशः पञ्चवासरान्॥ ८८४॥ निर्गुण्डीस्वरसेनैव मर्दयेत् सप्तयामरान्। आर्द्रकस्य रसेनैव भावयेच्च त्रिधा पुनः॥ ८८५॥ सर्षपाभा वटी कार्य्या छायया परिशोषिता। ततः सप्तवटीर्योज्यायावत्त्रिगुणाभवेत्॥८८६॥ वयोऽग्निदोषकं बुद्ध्वा प्रयोज्या भिषजां वरैः। अनुपानं चोष्णजलं कज्जली पिप्पलीयुतम्॥ ८८७॥ पानावशेषे प्रस्वाप्य वस्त्रैराच्छादयेन्नरम्। घर्माभ्यागमनं यावत्तो रोगात् प्रमुच्यते॥ ८८८॥ रोगिणं

स्नापयित्वा तु भोजयेत् ससितं दधि॥ एष कल्पतरुर्नाम रसः परमदुर्लभः ॥८८९॥ असाध्यं चिरकालोत्थं जीर्णञ्च विषमं ज्वरम्। हन्ति ज्वरातिसारं च ग्रहणीं पाण्डुकामलाम् ॥ ८९० ॥ न देयः श्वासकासे च शूलयुक्ते नरे तथा। गोपनीयः प्रयत्नेन न देयो यस्य कस्यचित्॥ ८९१ ॥

पारा, गन्धक, विष और ताम्रभस्म; इन चार द्रव्यों को समान परिमाण में लेकर खरल करे। पश्चात् क्रमशः पञ्च पित्त में ५ पांच दिन, सँभालू की पत्तियों के रस में ७ सात दिन और अदरख के रस में ३ तीन दिन पर्यन्त भावना देकर तथा मर्दन करके सरसों के समान छोटी-छोटी गोलियाँ बनाकर छाया में शुष्क कर लेवे। प्रतिदिन एक एक गोली सेवन करे। इस प्रकार २१ दिन पर्यन्त इस औषध का सेवन करना चाहिये। अनुपान पीपल का चूर्ण तथा कज्जली दोनों मिलाकर २ रत्ती और उष्ण जल। औषध सेवन कराने के अनन्तर रोगी को शयन कराकर वस्त्र ओढ़ा देवे। पसीना आ जाने पर रोगी स्वस्थ हो जाता है। रोगी को स्नान कराकर मिश्रीयुक्त दही और भात भोजन करने के लिये देवे। इसका सेवन करने से असाध्य और पुराना जीर्णज्वर, विषमज्वर, ज्वरातिसार, ग्रहणी, पाण्डुरोग और कामलारोग नष्ट होते हैं। यदि रोगी को श्वास, कास और शूल हो तो इस औषध का प्रयोग न करना चाहिये। यह 'कल्पतररस' अत्यन्त गोपनीय है ॥८८४-८९१॥

तालाङ्क रस।

तालकस्य च भागौ द्वौ भागं तुत्थस्य शुक्तिका। चूर्णकानां चतुर्भागं मर्दयेत् कन्यकाद्रवैः ॥ ८९२ ॥ यामैकेन ततः पश्चात् रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्। अस्य गुञ्जार्द्धकं हन्ति वातिकं पैत्तिकं तथा। शीतज्वरं विशेषेण तृतीयकचतुर्थकौ ॥ ८९३ ॥

हरिताल २ तोले, तूतिया १ तोला और सीप का चूर्ण ४ तोले; इन सबको एकत्र कर घीकुआर के रस में एक प्रहर पर्यन्त खरल करके, शरावसंपुट में रखकर गजपुट में पाक करे। इसकी मात्रा ½ रत्ती की है। इस तालाङ्क रस का सेवन करने से वातिकज्वर, पैत्तिकज्वर, शीतज्वर, विशेष करके तृतीयक और चातुर्थक ज्वर शीघ्र निवृत्त होते हैं ॥ ८९२-८९३ ॥

ज्वरार्य्यभ्र।

अभ्रं ताम्रं रसं गन्धं विषञ्चेति समं समम्। द्विगुणं धूर्त्तबीजञ्च व्योषं पञ्चगुणं मतम्। आर्द्रकस्य रसेनैव वटी कार्य्या द्विगुंजिका ॥ ८९४॥ जलेन वटिकां कुर्य्याद् यथा दोषानुपानतः। अभ्रं ज्वरारिनामेदं सर्वज्वरविनाशनम् ॥ ८९५ ॥ वातिकान् पैत्तिकांश्चैव श्लैष्मिकान् सान्निपातिकान्। विषमाख्यान् द्वन्द्वजांश्च धातुस्थान् विषमज्वरान् ॥ ८९६ ॥ नाशयेन्नात्र सन्देहो वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा। प्लीहानञ्च यकृत् गुल्ममग्निमांद्यं सशोथकम् ॥ कासंश्वासं तृषां कम्पं दाहं शीतं वमिं भ्रमिम्॥ ८९७॥

अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, पारा, गन्धक और विष प्रत्येक १ एक तोला, धतूरे के बीज २ तोले, सोंठ, मिरिच और पीपरि यह तीनों मिलाकर ५ तोले; इन सबको अदरखके जल में पीसकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। दोषानुसार अनुपान के साथ इस ज्वरार्य्यभ्र औषध का सेवन करने से वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, द्वन्द्वज और सान्निपातिकज्वर, विषमज्वर, धातुगत विषमज्वर, प्लीहा, यकृत्, गुल्म, अग्निमान्द्य, शोथ, कास, श्वास, तृषा, कम्प, दाह, शीत, वमन और भ्रम, यह सब रोग इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे विद्युत्पात से वृक्ष नष्ट होवे ॥ ८९४-८९७ ॥

ज्वरविद्रावण रस।

कणा अतिविषा तिक्तारिष्टपत्रैः सुचू-

र्णितैः। सिन्दूररससंयुक्तं रसः सर्वज्वरान्तकृत ॥ ८९८ ॥

पीपल, चतीस, कुटकी, नीम के पत्ते, रससिन्दूर सबका चूर्ण अलग-अलग लेकर मिला ले। मात्रा २ रत्ती यह रस सब ज्वरों को शीघ्र हरण करता है ॥ ८९६-८९८ ॥

विषमज्वरान्तक लौह।

पारदं गन्धकं तुल्यं सूतार्द्धं जीर्णताम्रकम्। ताम्रतुल्यं माक्षिकञ्च लौहं सर्वसमं नयेत् ॥ ८९९ ॥ जयन्त्याः स्वरसेनैव कोकिलाक्षरसेन च। वासकार्द्रपर्णरसैः पञ्चधा च विमर्दयेत् ॥ ९०० ॥ पृथक् कलायमानान्तु वटिकां कारयेद्भिषक्। विषमज्वरान्तनामायं विषमज्वरनाशनः ॥ ९०१ ॥ वह्निदीप्तकरो हृद्यः प्लीहगुल्मविनाशनः। चक्षुष्यो बृंहणो वृष्यः श्रेष्ठः सर्वरुजापहः ॥ ९०२ ॥

पारा २ तोले, गन्धक २ तोले, ताँबा की भस्म १ तोला, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ तोला, लोहभस्म ६ तोले, इनको अडूसे के पत्ते के रस (वासकपत्रस्वरस), जयन्तीपत्र रस, कोकिलाक्ष रस से पाँच बार मर्दन करके अथवा इन रसों में घोटकर मटर के समान ? रत्ती की गोली बनाकर प्रयोग में लाना चाहिये। यह गोलियाँ विषमज्वर को शीघ्र नष्ट करती हैं। अग्निवर्धक, बृंहण, (रसरक्तादि धातुवर्द्धक) नेत्रों को हितकारी, वृष्य (वीर्यवर्द्धक) तथा तिल्ली, गुल्म आदि रोगों को दूर करती हैं ॥ ८९९-९०२ ॥

पुटपाक विषमज्वरान्तक लौह।

हिंगूलसम्भवं सूतं गन्धकेन सुकज्जलीम्। पर्पटीरसवत्पाच्यं सूताद्द्विहेमभस्मकम् ॥ ९०३ ॥ लौहं ताम्रमभ्रकञ्च रसस्य द्विगुणं तथा। वङ्गकं गैरिकञ्चैव प्रवालञ्च रसार्द्धकम् ॥ ९०४ ॥ मुक्ताशङ्खं शुक्तिभस्म प्रदेयं रसपादिकम्। मुक्ता शुक्तेच संस्थाप्य पुटपाकेन साधयेत् ९०५ ॥ भक्षयेत्प्रातरुत्थाय द्विगुञ्जाफलमानतः। अनुपानं प्रयोक्तव्यं कणा हिङ्गुससैन्धवम् ॥९०६॥ ज्वरमष्टविधं हन्ति वातपित्तकफोद्भवम्। प्लीहानं यकृतं गुल्मं साध्यासाध्यमथापिवा ॥ ९०७ ॥ सन्ततं सतताख्यञ्च विषमज्वरनाशनम्। कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं मेहमरोचकम् ॥ ९०८ ॥ ग्रहणीमामदोषञ्च कासं श्वासं च तत्र तत्। मूत्रकृच्छ्रातिसारञ्च नाशयेदविकल्पतः ॥ ९०९ ॥ अग्निञ्च कुरुते दीप्तं बलवर्णप्रसादनम्। विषमज्वरान्तकं नाम्ना धन्वन्तरिप्रकाशितम् ॥ ९१० ॥

हिंगुलोत्थ (हिंगुल से निकाला) पारद १ तोला, गन्धक १ तोला इन दोनों को काजल के समान करके पर्पटी के समान पाक कर ले'। इसके पश्चात् सोने की भस्म ३ मासे, लोहभस्म २ तोला, ताम्रभस्म २ तोला, अभ्रकभस्म २ तोला, वङ्गभस्म ६ मासे, स्वर्णगैरिक ६ मासे, मूँगाभस्म (प्रवालभस्म) ६ मासे, मोतीभस्म ३ मासे, शङ्खभस्म ३ मासे, शुक्तिभस्म ३ मासे, इन सब द्रव्यों को मिश्रित कर एक साथ पीसकर उपर्युक्त कज्जली पाक के साथ जल के सहारे एक गोल पिण्डाकार बना ले, फिर इसे सीप में रखकर दूसरी सीप से ढँक दे और लेपन द्वारा सन्धि को भी बन्द कर दे। इसके बाद कपोत पुट दे जब गन्धक की गन्ध आने लगे तो निकाल ले। मात्रा १ रत्ती से दो रत्ती तक। अनुपान-पीपल का चूर्ण, हींग तथा सेंधा नमक। यह रस आठ प्रकार के ज्वरों को, प्लीहा (तिल्ली) यकृत् (जिगर), गुल्म सन्तत व सततज्वर, विषमज्वर, कामला, पाण्डु (पीलिया), शोथ (सूजन) मेह, अरुचि, ग्रहणी, आमदोष, कास

(खांसी) श्वास, मूत्रकृच्छ्र, अतिसार (दस्त) आदि रोगों को शीघ्र हरण करता है। यह अग्निदीपन रस है तथा शारीरिक शक्ति और वर्ण (रंग) को बढ़ाता है। विषमज्वर के लिये तो यह रस अनुभूत प्रयोग है ॥ ६०३-६१० ॥

जीवनानन्दाभ्र।

यत्नाभ्रं मारितं कृत्वा कर्षयुग्मं विचूर्णितम्। जीरं कनकबीजञ्च कर्षं वासारसेन च ॥ ६११ ॥ कण्टकारीरसेनैव धात्रीमुस्तरसेन च। गुडूच्याः स्वरसेनैव पलांशेन पृथक् पृथक् ॥ ६१२ ॥ मर्दयित्वा वटी कार्य्या गुञ्जामात्रा प्रयोजिता। विषमाख्यान् ज्वरान् सर्वान् प्लीहानञ्च यकृद् वमिम् ॥ ६१३ ॥ रक्तपित्तं वातरक्तं ग्रहणी श्वासकासकौ। अरुचिं शूलहृल्लासावर्शांसि च विनाशयेत् ॥ ६१४ ॥ जीवनानन्दनामेदमभ्रं वृष्यं बलप्रदम्। रसायनमिदं श्रेष्ठं मग्निसन्दीपनं परम् ॥ ६१५ ॥

अभ्रकभस्म २ तोले, जीरा १ तोला, धतूरे के बीज १ तोला; इनको एकत्र खरल करके रूसा, कटेरी, आंवला, नागरमोथा और गिलोय इनमें से प्रत्येक के एक-एक पल रस में अलग-अलग खरल करके एक-एक रत्ती की गोलियां बना लेवे। इस औषध का सेवन करने से सब प्रकार के विषमज्वर, प्लीहा, यकृत्, वमन, रक्तपित्त, वातरक्त, ग्रहणी, श्वास, कास, अरुचि, शूल, उबकाई और बवासीर; यह सब रोग नष्ट होते हैं। यह 'जीवनानन्द' नामक अभ्रक वाजीकर, बलवर्धक, अग्निसदीपन और श्रेष्ठ रसायन है ॥ ६११-६१५ ॥

रत्नप्रभावटी।

हेमायस्कान्तवैक्रान्तखर्परायांसि विद्रुमम्। मुक्ताञ्च कत्रसम्मर्द्य दार्वीकाथेन सप्तधा ॥ ६१६ ॥ भावयित्वा वटीं कुर्याद्रक्तिकाप्रमितां भिषक्। एषा रत्नप्रभानाम वटी सततकं हरेत् ॥ ६१७ ॥ प्लीहानं वह्निमान्द्यञ्च कामलां यकृदामयम्। स्नायुशूलं महाघोरं केसरी करिणं यथा ॥ ६१८ ॥

सोने की भस्म, अयस्कान्त (चुम्बक लोह-भस्म), वैक्रान्तभस्म, खर्परभस्म, लोहभस्म, प्रवालभस्म, मुक्ताभस्म, इन सब द्रव्यों को बराबर बराबर इकट्ठा करके दारुहल्दी के काढ़े से सात बार घोट घोटकर गोली बना ले। मात्रा १॥ रत्ती से १ रत्ती तक। यह गोलियां सततज्वर, प्लीहा (तिल्ली), मन्दाग्नि, कामला, जिगर तथा भयंकर स्नायुशूल को हरण करती हैं ॥ ६१६-६१८ ॥

चन्दनादिलौह।

रक्तचन्दनह्रीबेरपाठोशीरकणाशिवा। नागरोत्पलधात्रीभिस्त्रिमदेन समन्वितः। लौहो निहन्ति विविधान् समस्तान् विषमज्वरान् ॥ ६१९ ॥

त्रिमदं मुस्तकचित्रकविडङ्गम्। सर्वसमं लौहम्। ओं अमृतोद्भवाय स्वाहा इति मन्त्रेण मर्दनम्। ओं अमृते हुम् इति मन्त्रेण भक्षणम् ॥ द्वादशद्रव्यसमं लौहम्। रक्तिद्वयं मधुना लिहेत्। पश्चात् मुस्तकानुचर्वणं कर्त्तव्य वृद्धोपदेशात्।

लालचन्दन, सुगन्धबाला, पाढ़, खस, पीपरि, हर्र, सोंठ, नीलकमल, आँवला, वायबिडङ्ग, नागरमोथा और चीता; इनमें से प्रत्येक १ तोला, लोहभस्म १२ तोले; इनको एकत्र जल में खरल करके २ रत्ती प्रमाण गोलियाँ बनावे। अनुपान मधु। इस चन्दनादि लौह का सेवन करने से सब प्रकार के विषमज्वर नष्ट होते हैं। इस औषध का सेवन करने के पश्चात् थोड़ा-सा नागरमोथा चबा लेवे, ऐसा वृद्ध वैद्यों का उपदेश है। "ॐ अमृतोद्भवाय स्वाहा" इस मन्त्र से इस औषध को खरल करे। "ॐ अमृते

हुम्" इस मन्त्र को पढ़कर इस औषध का सेवन करना चाहिये ॥ ९१९ ॥

वसन्तमालती रस ।

स्वर्णं मुक्तादरदमरिचं भागवृद्ध्या प्रदिष्टं खर्परार्द्धं प्रथममखिलं मर्दयेत् मृदुन्तणेन । यावत् स्नेहो व्रजति विलयं निम्बुनीरेण तावद् गुञ्जाद्वन्द्वं मधुचपलया मालतीमाग्वसन्तः ॥ ९२० ॥ सेवितोऽयं हरेत्तूर्णं जीर्णञ्च विषमज्वरम् । व्याधीनन्यांश्च कामादीन् प्रदीप्तं कुरुतेऽनलम् ॥ ९२१ ॥

सोना १ भाग, मोती २ भाग, हिंगुल ३ भाग, मरिच ४ भाग, खपरिया ८ भाग; इन सब द्रव्यों को एकत्रकर पहिले थोड़े से मक्खन के साथ खरल करे पश्चात् नींबू के रस के साथ तब तक घोटता रहे, जब तक मक्खन का स्नेहांश (चिकनाहट) निवृत्त न हो जाय। इसकी मात्रा ½ रत्ती की है। अनुपान-मधु और पीपरि का चूर्ण। इसका सेवन करने से जीर्णज्वर, विषमज्वर, अग्निमान्द्य और कास आदि अनेक रोग शीघ्र निवृत्त होते हैं ॥ ९२०-९२१ ॥

मधु मालिनी वसन्त

दरदखाँदें भावयेत्सप्तवारं । लकुचफलभवाम्भिश्छायया शोषयेद्वै ॥ तदनु मृदुकृशानौ धारयेल्लोह पात्रे । दरदपिचुक तुल्यैस्ताम्र चूडोत्थगोलैः ॥ ९२२ ॥ जनित सकल तोयं ढालयेत्तस्य चोर्ध्वं ॥ असकृदय दर्व्या घर्षयेत्सावकाशम् ॥ गुलिकगमनमात्रं शुष्कताञ्च प्रयातम् । भवति तु यत्प्रमाणं कर्चुरं स्याचदर्धम्- ॥ ९२३ ॥ मरिचनिभमथैव गौरवल्लीज चूर्णं । लकुचजनिततोयैर्भावयेत्सप्त वारम् ॥ कृतमरिच समानं दापयेदाज्यखण्डै हरति शिशिरतापं जीर्णजूर्ति समीरम् ॥ ९२४ ॥ मधुमालिनिनामाऽयं वसन्तो वैद्यपुजितः । अनुपान विशेषेण वलं पुष्टि प्रदायकः ॥ गर्भवृद्धि करश्चाऽसौ गर्भिणीनां सुखावहः ॥ रोग नाशात्परं दद्याद्बलं कृद्वह्निवर्धनम् ॥ ९२५ ॥

शिगरफ और खपरिया को बड़हर के रस की ७-७ भावना देकर छाया में सुखा लेवे, बेर की लकड़ी के कोयलों पर लोहे की कड़ाही में रख जितने तोले शिगरफ उतने ही मुर्गी के अण्डे लेकर उनकी सफेदी और जर्दी धीरे-धीरे डाल कर सुखावे और लोहे की कलछी से बार-बार चलाता जाय जब गोलियाँ फूट जायँ और सूख जायं तब सब से आधे कपूर के मिर्च बराबर टुकड़े करके डाले और उतना ही सफेद मिर्च का चूर्ण डाल कर सबको बड़हर के रस में ७ बार घोट कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना कर रख देवे। इनमें से १-१ गोली घी और शक्कर के साथ देने से शीत तथा जीर्ण ज्वर और वायु को नष्ट करता है। रोगानुसार अनुपान के साथ बलपुष्टि गर्भवृद्धि अग्नि इन सबको बढ़ाता है ॥ ९२२-९२५ ॥

श्लेष्मशैलेन्द्र रस ।

गन्धकं पारदं चाभ्रं त्र्यूषणं जीरकद्वयम् । शटी भृङ्गी यमानी च पुष्करं रामठं तथा ॥ ९२६ ॥ सैन्धवं यावशूकश्च टङ्कनं गजपिप्पली । जातीकोषाजमोदा च लौहं वासलवङ्गकम् ॥ ९२७ ॥ धुस्तूरबीजं जैपालं कट्फलंचित्रकं तथा । प्रत्येकं कार्पिकं चैषां श्लक्ष्णचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ९२८ ॥ पाषाणे विमले पात्रे घृष्टं पाषाणमुद्गरैः । बिल्वमूलरसं दत्त्वा चार्कचित्रकदन्तिकाः ॥ ९२९ ॥ शिखरी काञ्जिका वासा निर्गुण्डीगणिकारिका । धुस्तूरं कृष्णजीरञ्च पारिभद्रकपिप्पली ॥ ९३० ॥ कण्ट-

कार्य्यार्द्रयोश्चैव मूलान्येतानि दापयेत्। एषां मूलरसं दत्त्वा घृष्टमातपशोषितम् ॥ ॥ ६३१ ॥ गुञ्जाप्रमाणा वटिकां कारयेत् कुशलो भिषक्। चतुर्विधवटीं खादेन्नित्यमार्द्रकवारिणा ॥ ६३२ ॥ उष्णतोयानुपानेन श्लेष्मव्याधिं व्यपोहति। विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव शिरोरोगांश्च दारुणान् ॥ ६३३ ॥ प्रमेहान् विंशतिञ्चैव पञ्चगुल्मनिसूदनम्। उदराण्यन्त्रवृद्धिं चाप्यामवातविनाशनम् ॥ ६३४ ॥ पञ्चपाण्ड्वामयान् हन्ति कृमिस्थौल्यामयापहम्। सोदावर्त्तज्वरं कुष्ठगात्रकण्ड्वामयापहम् ६३५ यथा शुष्केन्धने वह्निस्तथा वह्निविवर्द्धनः। श्लेष्मामयि कृपाहेतोरसेन्द्रो मुनिभाषितः॥ श्लेष्मशैलेन्द्रको नाम रसेन्द्रगुडिका स्मृता ॥ ६३६ ॥

गन्धक, पारा, अभ्रकभस्म, त्रिकुटु, जीरा, कालाजीरा, कपूर, काकडाश्रृङ्गी, अजवाइन, कूट, भूनी हींग, सेंधानमक, यवक्षार, सोहागा भुना हुआ, गजपीपरि, जावित्री, अजमोद, लोहभस्म, जवासा, लवङ्ग, धतूरे के बीज,जमालगोटा के बीज, कायफल और चीता इनमें से प्रत्येक औषध को एक-एक तोला लेकर अतिसूक्ष्म (महीन) चूर्ण बनावे। पश्चात् पत्थर के खरल में पत्थर की लोढ़ी से बेल के मूल के क्वाथ में, मँदार के मूल के क्वाथ में, चीता के क्वाथ में, दन्ती के क्वाथ में, लटजीरा के क्वाथ में, जीवन्ती के रस में, सँभालू, रूसा के मूल के रस या क्वाथ में, निर्गुण्डी के मूल के रस में, अरनी की छाल के क्वाथ में, धतूरे के मूल के रस में, काला जीरा के क्वाथ में, नीम के मूल के क्वाथ में, पीपरि के क्वाथ में, कटेरी के मूल के क्वाथ में और अदरख के रस में भावना देकर और घोटकर, धूप में सुखाकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। अनुपान—अदरख का रस अथवा उष्ण जल। इस श्लेष्मशैलेन्द्र रस का सेवन करने से २० प्रकार के कफरोग, दारुण शिरोरोग, २० प्रकार के प्रमेह, ५ प्रकार के गुल्मरोग, उदररोग, अन्त्रवृद्धि, आमवात, ५ प्रकार के पाण्डुरोग, कृमिरोग, स्थौल्यरोग, उदावर्तरोग, सब प्रकार के ज्वर, कुष्ठरोग और कण्डु (खुजली) यह सब रोग निःसंदेह निवृत्त होते हैं ॥६२६-६३६॥

महाराज वटी।

रसगन्धकमभ्रञ्च प्रत्येकं कर्षसम्मितम्। वृद्धदारकवङ्गञ्च लौहं कर्षार्द्धकं क्षिपेत् ॥ ६३७ ॥ स्वर्णकर्पूरताम्रञ्च प्रत्येकं कर्षपादिकम् ॥ शक्राशनं वरी चैव श्वेतसर्जलवङ्गकम् ॥ ६३८ ॥ कोकिलाक्षं विदारी च मूषली शूकशिम्बिकम्। जातीफलं तथा कोषं बला नागबला तथा ॥ ६३९ ॥ माषद्वयं मितं भागं तालमूल्या रसेन च। पिष्ट्वाचवटिका कार्या चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः ॥ ६४० ॥ मधुना भक्षयेत्प्रातर्विषमज्वरशान्तये। धातुस्थांश्च ज्वरान् सर्वान् हन्यादेव न संशयः ॥ ६४१ ॥ वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं साम्निपातिकम्। ज्वरं नानाविधं हन्ति कासं श्वासं क्षयन्तथा ॥ ६४२ ॥ बलपुष्टिकरं नित्यं कामिनी रमयेत्सदा। न च शुक्रं क्षयं याति न बलं ह्रासतां व्रजेत् ॥ ६४३ ॥ ऊर्ध्वगं श्लेष्मजं हन्ति सन्निपातं सुदारुणम्। कामलां पाण्डुरोगञ्च प्रमेहं रक्तपित्तकम् ॥ महाराजवटी ख्याता राजयोग्या च सर्वदा ॥ ६४४ ॥

पारद २ तोले, गन्धक २ तोले, अभ्रकभस्म २ तोले, विधारा के बीज १ तोला, वङ्गभस्म १ तोला, लोहभस्म १ तोला स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म, कपूर, हरएक आधा-आधा

तोला—भाँग के बीज, शतावरी, सफेद राल (श्वेतमर्ज), लौंग, तालमखाना, (कोकिलाक्ष बीज), विदारीकन्द, मुसली, कौंछ के बीज, जायफल, जावित्री, बला, नागबला, हरएक द्रव्य २ मासे ($\frac{1}{6}$ तोला) इनको मूसली के रस से घोटकर चार-चार रत्ती प्रमाण की गोली बना ले। अनुपान-शहद। इन गोलियों के सेवन से अनेक प्रकार का ज्वर, खाँसी, श्वास, राजयक्ष्मा, कामला, पाण्डुरोग (पीलिया), प्रमेह, रक्तपित्त आदि रोग नाश होते हैं। यह बल को बढ़ानेवाला, पौष्टिक तथा वीर्यवर्धक रस है ॥ ६३७-६४४ ॥

लक्ष्मीविलास रस।

पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य तदर्द्धौ रसगन्धकौ। तदर्द्धं चन्द्रसंज्ञस्य जातीकोषफले तथा ॥ ६४५ ॥ वृद्धदारकबीजञ्च बीजं धुस्तूरकस्य च। त्रैलोक्यविजयाबीजं विदारीमूलमेव च ॥ ६४६ ॥ नारायणी तथा नागबला चातिबला तथा। बीजं गोक्षुरकस्यापि नैचुलं बीजमेव च ॥६४७॥ एतेषां कार्षिकं चूर्णं पर्णपत्ररसैः पुनः। निष्पिष्य वटिका कार्य्या त्रिगुञ्जाफलमानतः ॥ ६४८ ॥ निहन्ति सन्निपातोत्थान् गदान् घोरांश्चतुर्विधान्। वातोत्थान् पैत्तिकांश्चैव नास्त्यत्र नियमः क्वचित् ॥ ६४९॥ कुष्ठमष्टादशविधं प्रमेहान् विंशतिं तथा। नाडीव्रणं व्रणं घोरं गुदामयभगन्दरम् ॥ ६५० ॥ श्लीपदं कफवातोत्थं रक्तमांसाश्रितञ्च यत्। मेदोगतं धातुगतं चिरजं कुलसम्भवम् ॥ ६५१ ॥ गलशोथमन्त्रवृद्धिमतीसारं सुदारुणम्। आमवातं सर्वरूपं जिह्वास्तम्भं गलग्रहम् ॥ ६५२ ॥ उदरं कर्णनासाक्षिमुखवैकृतमेव च। कासपीनसयक्ष्मार्शः स्थौल्यदौर्गन्ध्यनाशनः ॥ ६५३ ॥ सर्वशूलं शिरःशूलं स्त्रीणां गदनिषूदनम्। वटिकां प्रातरेकैकां खादेन्नित्यं यथाबलम् ॥ ६५४ ॥ अनुपानमिह प्रोक्तं मांसपिष्टं पयो दधि। वारिभक्तसुरासीधुसेवनात् कामरूपधृक् ॥ ६५५ ॥ वृद्धोऽपि तरुणस्पर्द्धी न च शुक्रस्य संक्षयः। न च लिङ्गस्य शैथिल्यं न केशा यान्ति पक्वताम् ॥ ६५६ ॥ नित्यं स्त्रीणां शतं गच्छन्मत्तवारणविक्रमः। द्विलक्षयोजनी दृष्टिर्जायते पौष्टिकः परः ॥ ६५७ ॥ प्रोक्तः प्रयोगराजोऽयं नारदेन महात्मना। रसो लक्ष्मीविलासस्तु वासुदेवे जगत्पतौ। अभ्यासाद् यस्य भगवान् लक्षनारीषु वल्लभः ॥६५८॥

रसगन्धककर्पूरजातीकोषजातीफलानां पञ्चानां प्रत्येकं पलार्द्धं वृद्धदारकबीजादीनां नवद्रव्याणां प्रत्येकं कर्षं इति भट्टादिव्यवहारः। राढीयास्तु रसगन्धकयोर्मिलित्वा पलार्द्धं कर्पूरस्य रसगन्धकार्द्धं कर्षः जातीकोषफलयोर्मिलित्वा कर्षः वृद्धदारकबीजादिनवद्रव्याणां मिलित्वा कर्षं इत्याहुः।

अभ्रकभस्म ४ तोले, पारा, गन्धक, कपूर, जावित्री और जायफल प्रत्येक २ तोले, विधारा के बीज, धतूर के बीज, भाँग के बीज, विदारीकन्द, शतावरि, गंगेरन, कंघी, गोखुरू के बीज और समुद्रफल के बीज प्रत्येक १ तोला; इनको पान के रस में घोटकर तीन-तीन रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। अनुपान-दूध, दही, मांस, काँजी आदि। प्रातःकाल इस लक्ष्मीविलास रस की एक-एक गोली सेवन करने से अनेक प्रकार के रोग, सन्निपातजन्य चार प्रकार के महान् रोग नष्ट होते हैं, इसमें वातपित्त, कफ का कोई नियम नहीं है (सबको लाभदायक है)। अठारह प्रकार के कुष्ठ, बीस प्रकार के प्रमेह, नासूर, कठिन घाव, गुदा के रोग (बवासीर), भगन्दर, श्ली-

पद, कफ, वातजन्य, रक्तमांश के आश्रित मेदोगत, वीर्यगत, पुराने वंशज, गलशोथ, अन्त्रवृद्धि, घोर अतिसार, सब प्रकार की आमवात, जिह्वास्तंभ, गलग्रह, उदर, कान और नाक और मुख के विकार, खाँसी, पीनस, क्षय, बवासीर, मोटापन, दद्रु, सब प्रकार के शूल, शिरशूल, स्त्रीरोग को नष्ट करता है। प्रातः एक वटी नित्य खानी चाहिये। इसके अनुपान में मांस, पिष्टी (पिट्ठी के पदार्थ), दूध, दही हैं। शराब के साथ सेवन करने से कामदेव के समान रूप हो जाता है। वृद्ध भी जवान के समान हो जाता है, शिश्नेन्द्रिय शिथिल नहीं होती, बाल नहीं पकते, सौ स्त्रियों को रमण करने की शक्ति और हाथी के समान पराक्रम हो जाता है, दो लाख योजन की दृष्टि (दृष्टि तीव्र) हो जाती है। इससे अधिक कोई पौष्टिक नहीं है। यह प्रयोग नारद ऋषि ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा है। जिसके प्रयोग से भगवान् लाख स्त्रियों के प्रिय हुए थे।

इस रस में पारा, गन्धक, कपूर, जावित्री और जायफल; इन ५ द्रव्यों में से प्रत्येक २ तोले और विधारा के बीज आदि ६ द्रव्यों में से प्रत्येक द्रव्य एक-एक तोला ग्रहण करना चाहिये ऐसा भट्ट आदि कहते हैं। राढ़ीय तो "पारा और गन्धक दोनों मिलकर अर्द्धपल अर्थात् २ तोले हों, पारा और गन्धक का अर्द्ध भाग अर्थात् १ तोला कपूर लेवे, जावित्री और जायफल; यह दोनों मिलकर १ तोला हों और विधारा के बीज आदि ६ द्रव्य मिलकर केवल १ तोला परिमित हों" ऐसा कहते हैं[१] ९४९-९५८

वृहत्सर्वज्वरहरलौह ।

द्विपलं जारितं लौहं रसं गन्धं द्वितोलकम् । तोलकं त्रिफला व्योष विडङ्ग मुस्तक तथा ॥ ९५९ ॥ श्रेयसी पिप्पलीमूलं हरिद्रे द्वे च चित्रकम् । आर्द्रकस्य रसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ९६० ॥ गुञ्जाद्वयं वटीं कृत्वा भक्षयेदार्द्रकद्रवैः । सर्वज्वरहरं लौहं सर्वज्वरविनाशनम् ॥ ९६१ ॥ वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् । विषमज्वरभूतोत्थज्वरं प्लीहानमेव च ॥ ९६२ ॥ मासजं पक्षजञ्चैव तथा संवत्सरोत्थितम् । सर्वान् ज्वरान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ९६३ ॥

लोहभस्म २ पल, पारा २ तोले, गन्धक २ तोले, त्रिफला, त्रिकटु, वायविडङ्ग, नागरमोथा, गजपीपरि, पिपरामूल, हरदी, दारुहरदी और चीता प्रत्येक १ तोला; इन कुल द्रव्यों को एकत्र अदरख के रस में घोटकर दो दो रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। अनुपान-अदरख का रस। इस सर्वज्वरहरलौह का सेवन करने से सब प्रकार के विषम ज्वर और प्लीहा आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ९५९-९६३ ॥

वृहत्सर्वज्वरहरलौह ।

पारदं गन्धकं शुद्धं ताम्रमभ्रञ्च माक्षिकम् । हिरण्यं तारतालञ्च कर्षमेकं पृथक् पृथक् ॥ ९६४ ॥ मृतं कान्तं पलं देयं सर्वमेकीकृतं शुभम् । वक्ष्यमाणौषधैर्भाव्यं प्रत्येकं दिनसप्तकम् ॥ ९६५ ॥ कारयेल्लरसेनापि दशमूलरसेन च । पर्पटस्य कषायेण काथेन त्रैफलेन च ॥ ९६६ ॥ गुडूच्याः स्वरसेनापि नागवल्लीरसेन च । काकमाचीरसेनैव निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च ॥ ९६७ ॥ पुनर्नवार्द्रकाम्भोभिर्भावनां परिकल्प्य च । रक्तिकाद्विक्रमेणैव वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ९६८ ॥ पिप्पलीगुडसंयुक्ता वटिका वीर्य्यवर्द्धिनी । ज्वरमष्टविधं हन्ति चिरकालसमुद्भवम् ॥ ९६९ ॥

[१] इस योग में वृद्ध वैद्यगण, भट्टादिमत ही का अनुसरण करते हैं अतः मैंने भी इस योग को लिखते हुए भट्टादिव्यवहार ही का ग्रहण किया है।

विविधं धारिदोपोत्थं नानादोपोद्भवं तथा। सततादिज्वरं हन्ति साध्यासाध्यमथाऽपि वा ॥ ९७० ॥ क्षयोद्भवञ्च धातुस्थं कामशोकभवं तथा। भूतावेशज्वरञ्चैव अन्तदोषभवं तथा ॥ ९७१ ॥ अभिघातज्वरञ्चैवमभिचारसमुद्भवम्। अभिन्यासं महाघोरं विषमञ्च त्रिदोपजम् ॥ ९७२ ॥ शीतपूर्वं दाहपूर्वं विषमं शीतलं ज्वरम्। प्रलेपकज्वरं घोरमर्द्धनारीश्वरं तथा ९७३ प्लीहज्वरं तथा कासं चातुर्थकविपर्य्ययम्। पाण्डुरोगगणान् सर्वानग्निमान्द्यं महागदम् ॥ ९७४ ॥ एतान् सर्वान्निहन्त्याशु पक्षार्द्धेनात्र संशयः। शाल्यन्नं तक्रसहितं भोजयेद्द्विजसंयुतम् ॥ ९७५ ॥ ककारपूर्वकं सर्वं वर्जनीयं विशेषतः। मैथुनं वर्जयेत्तावद्यावन्न बलवान् भवेत् ॥ सर्वज्वरहरं श्रेष्ठमनुपानं प्रकल्पयेत् ॥ ९७६ ॥

पारा, गन्धक, ताम्र, अभ्रक, स्वर्णमाक्षिक, सोना, चाँदी भस्म और शुद्धहरिताल प्रत्येक १ तोला, कान्तलोहभस्म ४ तोले; इन सब औषधों को एकत्र कर करेला की पत्तियों का रस, दशमूल का काथ, पित्तपापड़ा का काथ, त्रिफला का काथ, गुरच का स्वरस, पान का रस, मकोय का रस, संभालू की पत्तियों का रस, गदहपुरैना का रस और अदरख का रस; इन सब स्वरस और काढ़ों की सात सात बार भावना देकर २ रत्ती प्रमाण गोली बनावे। पीपरि का चूर्ण और पुराने गुड़ के साथ इस महौषध का सेवन करने से ज्वर चाहे कैसा ही क्यों न हो सात दिन में अवश्य नष्ट होता है। रोगी को भोजन के लिये भात, तक्र और पक्षियों के मांस का रस देना चाहिये। इसके सेवन में काँजी, करेला आदिक ककरादि वस्तु वर्जित हैं। जब तक बलवान् न हो जाय तबतक मैथुन करना वर्जित है और वैद्य को अपनी बुद्धि से श्रेष्ठ अनुपान की कल्पना करनी चाहिये ॥ ९६४-९७६ ॥

गन्धककज्जली विधि।

कण्टकारीसिन्धुवारस्तथा पूतिकरञ्जकम्। एतेषां रसमादाय कृत्वा खर्परखण्डके ॥ ९७७ ॥ प्रक्षेप्यं गन्धकं तत्र ज्वाला मृद्वग्निना ददेत्। गन्धके स्नेहतापन्ने तत्समं पारदं क्षिपेत् ॥ ९७८ ॥ मिश्रीकृत्य ततो द्वाभ्यां द्रुतं तमवतारयेत्। आमर्दयेत्तथा तत्तु यथा स्यात् कज्जलप्रभम् ॥ ९७९ ॥ ततस्तु रक्तिकामस्य मापकं जीरकस्य च। मापकं लवणस्यापि पर्णे कृत्वा निधापयेत् ॥ ९८० ॥ज्वरे त्रिदोषजे घोरे जलमुष्णं पिबेदनु। छर्द्यां शर्करया दद्यात्सामे दद्यात्तथा गुडम् ॥ ९८१ ॥ क्षये छागभवं क्षीरं प्रदद्यादनुपानकम्। रक्तातिसारे कुटजमूलवल्कलजं रसम् ॥ ९८२ ॥ रक्तवान्तौ तथा दद्यादुदुम्बरभवं जलम्। सर्वव्याधिहरश्चायं गन्धकः कज्जलीकृतः ॥ आयुर्वृद्धिकरश्चैव मृतश्चापि प्रबोधयेत् ॥९८३ ॥

कण्टकारीरसं सिन्धुवाररसं नाटाकरञ्जरसं खर्परे कृत्वा गन्धकं तत्र निक्षिप्य मृदुज्वालां दद्यात् गन्धके द्रवीभूते तत्तुल्यं शोधितरसं दत्वा द्वयं मिश्रीभूतमालोक्य शीघ्रमवतारयेत्। ततो लौहदण्डेन मर्दयित्वा कज्जलप्रभं कृत्वा ऊर्ध्वयोनिं संपूज्य बलिं दत्वा पर्णखण्डैः रक्तिकां जीरकचूर्णमापकं सैन्धवमापकमेकीकृत्य भक्षयित्वा ज्वरे उष्णजलम्, छर्द्यां शर्कराजलम्, सामे पुरातनगुडकर्षं जलपलम्, क्षये छागदुग्धं, रक्तातिसारे कुटजक्वाथपलम्। रक्तवान्तौ पक्वोडुम्बररसपलम्, अनुपिबेत्।

कटेरी, सँभालू और नाटाकरञ्ज (काँटेदार कँजा); इन सबका रस किसी मिट्टी के पात्र में रखकर, उसमें गन्धक डाले। तदनन्तर उस पात्र को चूल्हे पर चढ़ाकर धीमी-धीमी आँच देवे। गन्धक के गल जाने पर, उसमें गन्धक के बराबर शुद्ध पारा डाल देवे। दोनों के मिश्रित हो जाने पर चलाकर उतार लेवे। पश्चात् लोहे के दण्ड से भली भांति मर्दन करके कज्जल के समान बना लेवे। ऊर्ध्वयोनि को पूजनपूर्वक बलिप्रदान करके यह कज्जली १ रत्ती, जीरे का चूर्ण १ मासा, लाहौरी नमक १ मासा, इन सबको एकत्र कर पान के पत्ते में रखकर सेवन करना चाहिये। इस प्रकार औषध सेवन करने के पश्चात् ज्वर में उष्ण जल, वमन में मिश्री का शरबत, आम में १ तोले पुराने गुड़ का ४ तोले जल में बनाया हुआ शरबत, क्षय रोग में बकरी का दूध, रक्तातिसार में कूडे की छाल का ४ तोले काढ़ा और रक्तवमन में पकी हुई गूलर का रस ४ तोले पिलावे। यह कज्जली सब प्रकार के रोगों को नष्ट करनेवाली, आयुवर्धक और मृतप्राय रोगी को जिलानेवाली है ॥ १७७-१८३ ॥

नासाज्वरग्राहकारि रस।

त्रुटिः हरीतकी कृष्णा व्योमायारसकानि च। तुल्यांशानि समादाय द्विभागं सूतकं क्षिपेत् ॥ १८४ ॥ कुरम्बिकारसैस्तत्र सर्वं सम्मर्दयेद्भिषक्। गुञ्जार्द्धं प्रदातव्यं वर्षाभूरससंयुतम् ॥ १८५ ॥ प्लीहानं यकृतं शोथं वह्निसादमरोचकम्। विषमाख्यं ज्वरं हन्ति विशेषान्नासिकाज्वरम्। ग्राहकारिरसो ह्येष न चैवात्र विकल्पना ॥ १८६ ॥

छोटी इलाइची, हरड़, पिप्पली, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, खर्परभस्म, अलग अलग एक भाग, रससिन्दूर २ भाग, इन सबको एकत्र करके द्रोणपुष्पी के रस से घोटकर १ रत्ती से २ रत्ती प्रमाण तक की गोली बना ले। अनुपान पुनर्नवा का रस। इसके सेवन करने से प्लीहारोग (तिल्ली), जिगर, शोथ (सूजन), मन्दाग्नि, अरुचि, विषमज्वर आदि रोग शीघ्र नष्ट होते हैं तथा नासिका[1] ज्वर की विशेष औषधि है ॥ १८४-१८६ ॥

मकरध्वज।

स्वर्णादलं पलञ्चैव रसेन्द्रश्च पलाष्टकम्। रसस्य द्विगुणं गन्धं तेनैव कज्जलीकृतम् ॥ १८७ ॥ कुमारिकारसैर्भाव्यं काचपात्रे निधापयेत्। वालुयन्त्रे च संस्थाप्य क्रमादिनत्रयं पचेत् ॥ १८८ ॥ स्वाङ्गशीतं समादाय पुष्पारुणरजः समम्। यवमात्रं प्रदातव्यमहिवल्लीदलेन च ॥ ॥ १८९ ॥ एतदभ्यासतश्चैव जरामरणनाशनम्। अनुपानविशेषेण करोतिविविधान् गुणान् ॥ १९० ॥ ज्वरं त्रिदोषजं घोरं मन्दाग्निस्त्वमरोचकम्। अन्यांश्च विविधान् रोगान्नाशयेन्नात्र संशय ॥ १९१ ॥

अतिसूक्ष्म कण्टकवेधी स्वर्णपत्र ४ तोले, पारा ३२ तोले, शुद्धगन्धक ६४ तोले; इनमें से पहिले पारा और स्वर्णपत्र को एकत्र कर खरल करे। पश्चात् उसमें गन्धक मिलाकर उत्तम रीति से खरल करके कज्जली बनावे। तदनन्तर उस कज्जली में घीकुआर का रस मिलाकर खरल कर लेवे पश्चात् काच की शीशी (आतशी शीशी) लेकर उस पर तीन बार कपड़मिट्टी करके सुखा लेवे। बोतल या आतशी शीशी दोनों ही इस कार्य में उपयुक्त होते हैं। पश्चात् उस बोतल में कज्जली रखकर बोतल को एक ऐसी हांडी में रक्खे जिसकी पेंदी में कनी अंगुली जाने के लायक छिद्र हो, उस छिद्र के ऊपर एक अभ्रक का टुकड़ा रखवा

---

१ नासाज्वर (ग्राहकज्वर) के लक्षण-तनुना रक्तशोथेन युक्तो नासा पुटान्तरे। गात्रशूलज्वरकरः श्लेष्मणा ग्राहकज्वरः ॥

गया हो। तदनन्तर उस हांडी में बोतल के गले तक बालू भर देवे। पीछे उस बालूभरी बोतलवाली हांडी को चूल्हे पर चढ़ाकर तीन दिन पर्यन्त क्रम से मन्द, मध्य और तीक्ष्ण आंच देकर पाक करे। तदनन्तर स्वाङ्गशीतल होने पर बोतल को तोड़कर बोतल के ऊर्ध्व भाग में लगे हुये लालरङ्ग के पदार्थ को निकाल लेवे इसी को मकरध्वज कहते हैं। मकरध्वज की पूरी मात्रा १ यव की है। अनुपान पान का रस आदि। यह जरा मृत्युनाशक और कामोद्दीपक है। अनुपानविशेष के साथ इसका सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर, घोर सन्निपात, अग्निमान्द्य, अरुचि तथा अन्यान्य विविध प्रकार के रोग निःसन्देह नष्ट होते हैं ॥ ६८७-६६१ ॥

लौहासव।

लौहचूर्णं त्रिकटुकंत्रिफलञ्चयमानिका। विडङ्गं मुस्तकं चित्रं चतुःसंख्यपलं क्षिपेत् ॥ ६६२ ॥ चूर्णीकृत्य ततः क्षौद्रं चतुःषष्टिपलं पृथक्। दद्याद् गुडतुलां तत्र जलद्रोणद्वयं तथा ॥ ६६३ ॥ घृतभाण्डे विनिःक्षिप्य निदध्यान्मासमात्रकम्। लौहासवममुं मर्त्यः पिबेद्वह्निकरं परम् ॥ ६६४ ॥ पाण्डुश्वयथुगुल्मानि जठराण्यर्शसां रुजम्। प्लीहामयं ज्वरं जीर्णं कासं श्वासं भगन्दरम्। अरोचकञ्च ग्रहणीं हृद्रोगञ्च विनाशयेत् ॥ ६६५ ॥

लोहचूर्ण, भस्म को त्रिफला के जल में हल करके त्रिकटु, त्रिफला, अजवाइन, वायविडङ्ग, नागरमोथा और चीता; इन में से प्रत्येक के चूर्ण १६ तोले, मधु ३। सेर, गुड ५ सेर और जल २५। सेर; इन सबको एकत्र मिश्रित करके घी के घड़ा में रखकर घड़ा का मुख बन्द करके एक मास पर्यन्त रक्खा रहने देवे। ऐसा करने से एक मास में आसव प्रस्तुत हो जाता है। इसको वस्त्र से छानकर रख लेवे। इसका सेवन करने से अग्नि की वृद्धि होती है। तथा पाण्डुरोग, शोथ, गुल्म, उदररोग, बवासीर, प्लीहा, जीर्णज्वर, कास, श्वास, भगन्दर, अरुचि, ग्रहणी और हृद्रोग ये सब नष्ट होते हैं ॥ ६६२-६६५ ॥

मात्रा—२।-२॥ तोला सम गरम जल के साथ।

अमृतारिष्ट।

अमृतायाः पलशतं दशमूलीशतं यथा। चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा कुर्य्यात्पादावशेषितम् ॥ ६६६ ॥ शीते तस्मिन् रसे पूते गुडस्य त्रितुलाः क्षिपेत्। अजाजीषोडशपलं पर्पटस्य पलद्वयम् ॥ ६६७ ॥ सप्तपर्णं त्रिकटुकं मुस्तकं नागकेशरम्। कटुकातिविषे चेन्द्रयवञ्च पलसम्मितम् ॥ ६६८ ॥ एकीकृत्य क्षिपेद्भाण्डे निदध्यान्मासमात्रकम्। अमृतारिष्ट इत्येष सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥ ६६६ ॥

गुरच ५ पाँच सेर, दशमूल ५ पाँच सेर, इस १० दश सेर द्रव्य को एक मन ११ सेर १६ तो० जल में पकावे। चौथाई जल शेष रहने पर उतार कर शीतल होने पर छान लेवे। पश्चात् इस क्वाथ में १५ सेर गुड़ मिलावे तदनन्तर उसमें जीरा ६४ तोले, पित्तपापड़ा ८ तोले, सतौना की छाल ४ तोले, त्रिकटु ४ तोले, नागरमोथा ४ तोले, नागकेशर ४ तोले, कुटकी ४ तोले, अतीस ४ तोले और इन्द्रजौ ४ तोले; इन सब द्रव्यों को चूर्ण कर मिश्रित करके पात्र का मुख मुद्रित कर रख देवे। एक मास में यह अरिष्ट प्रस्तुत (तैयार) हो जाता है। इस अरिष्ट का सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं। मात्रा—२।-२॥ तोला सम गरम जल के साथ ॥ ६६६-६६६ ।

बृहत्किरातादि तैल।

कैरातस्य तुलामानं जलद्रोणे विपाचयेत्। कटुतैलस्य पात्रार्द्धं तेनैव साधयेद्भिषक् ॥ १००० ॥ मूर्वा लाक्षा द्वयोः

क्काथौ काञ्जिकं दधि मस्तु च । एतानि तैलतुल्यानि कल्कानेतांश्च संपचेत् ॥ १००१ ॥ भूनिम्बः श्रेयसी रास्ना कुष्ठं लाक्षेन्द्रवारुणी । मंजिष्ठा च हरिद्रे द्वे मूर्वा मधुकमुस्तकम् ॥ १००२ ॥ वर्षाभू- सैन्धवं मांसी बृहती च तथा विडम् । ह्रीबेरं शतमूली च चन्दनं कटुरोहिणी ॥१००३॥ हयगन्धा शताह्वा च रेणुका सुरदारु च । उशीरं पद्मकं धान्यं पिप्पली च वचा शठी ॥ १००४ ॥ फलत्रिकं यमान्यौ द्वे शृङ्गी गोक्षुर एव च । पर्ण्यौ द्वे तरुणीमूलं विडङ्गं जीरकद्वयम् ॥ १००५ ॥ महानिम्बश्च ह्वुषा यव क्षारो महौषधम् । एषां कर्षद्वयं क्षिप्त्वा साधयेन्मृदुवह्निना १००६ यथाहिवर्गं विनिहन्ति तार्क्ष्यो यथा च भास्वांस्तिमिरस्य संघम् । तथैव सर्वं ज्वर- वर्गमेतदभ्यङ्गमात्रेण निहन्ति तैलम् ॥ १००७ सन्ततं सततादींश्च निखिलान् विषमज्वरान् । प्लीहाश्रितान् सशोथान् वा प्रमेहज्वरमेव च ॥ १००८ ॥ अग्निञ्च कुरुते दीप्तं बलवर्णकरं परम् । पाण्ड्वादीन् हन्ति रोगांश्च किराताद्यमिदं बृहत् ॥ १००९ ॥

कड़ुआ तेल ३ सेर १६ तोला, क्वाथ के लिये चिरायता ४ सेर, जल २५ सेर ४८ तोला, मूर्वा का क्वाथ ३ सेर १६ तोला, लाख का क्वाथ ३ सेर १६ तोला, काँजी ३ सेर १६ तोला, दही का पानी ३ सेर १६ तोला, कल्क के लिये चिरायता, गजपीपरि, रास्ना, कूठ, लाख, इन्द्रायण की जड़, मजीठ, हरदी, दारुहरदी, मूर्वा, मुलेठी, नागरमोथा, सोंठ की जड़, लाहौरीनमक, जटामासी, बड़ी कटेरी, विडनोन, सुगन्धवाला, शतावरि, लालचन्दन, कुटकी, असगन्ध, सोया, रेणुकाबीज, देवदारु, खस, पद्माख, धनियाँ, पीपरि, वच, कचूर, त्रिफला, अजवाइन, अजमोद, काकड़ाश्रृङ्गी, गोखुरू, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, दन्ती (जमालगोटा) की जड़, वायविडंग, जीरा, कालाजीरा, बकायन की छाल, हाऊबेर, यवक्षार और सोंठ प्रत्येक २ तोले । इन सब द्रव्यों को एकत्र करे । तैलपाक-विधि के अनुसार धीमी आँच से पकाकर तैल प्रस्तुत कर लेये । इस तैल का मर्दन करने से विविध प्रकार के ज्वर शांत होते हैं । यह तैल विषमज्वर की महौषध है और बल तथा वर्ण को करता है और पाण्डु आदि रोगों को नष्ट करता है ॥ १०००-१००९ ॥

अथ ज्वरबलि ।

ज्वरामयगृहीतस्य मुष्टिभिर्नवभिः कृतम् । तण्डुलैरोदनं तेन कुर्य्यात् पुत्तलकं शुभम् ॥ १०१० ॥ तं हरिद्रावलिप्ताङ्गं चतुः पीतध्वजान्वितम् । हरिद्रारसपूर्णाभिः पुटिकाभिश्चतसृभिः ॥१०११ ॥ मण्डितं गन्धपुष्पाद्यैरवकीर्य्य विसर्जयेत् ॥ एवं दिनत्रयं कुर्य्याज्ज्वररोगोपशान्तये१०१२

ओदनेनपुत्तलं निर्माय वीरणचाचिकायां संस्थाप्य हरिद्राभिरवलिप्य चतुःपीतपताकाभिरलङ्कृत्य गन्धपुष्पाद्यैरवकीर्य्य हरिद्रारसपूर्णाश्चतस्रः पुटिकाश्चतुः कोणे संस्थाप्य पुटिकाश्वत्थपत्ररचिता ठोङ्गा । विष्णुर्नमोऽद्येत्यादिना सङ्कल्प्य ज्वरं ध्यात्वा समावाह्य नवकपर्दकाक्रीड-गन्धपुष्पधूपदीपादिभिः सम्पूज्य सन्ध्यासमये ज्वरितं निर्मञ्छ्य मन्त्रमिमं पठित्वा दिनत्रयं बलिं दद्यात् । मन्त्रो यथा—ओं नमो भगवते गरुडासनाय त्र्यम्बकाय स्वस्त्यस्तु वस्तुतः स्वाहा ओं कं टं पं शं वैनतेयाय नमः, ओं ह्रीं ह्रः क्षेत्रपालाय

नमः, ओं ह्रीं ठठ भोभो ज्वर शृणु शृणु हल हल गर्ज गर्ज ऐकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं चातुर्थिकं साप्ताहिकं अर्द्धमासिकं मासिकं नैमेपिकं मौहूर्तिकं फट् फट् हूं फट् फट् हल हल हलं मुञ्च मुञ्च भूम्यां गच्छ स्वाहा इति पठित्वा एकवृत्ते श्मशाने चतुष्पथे वा विसर्जयेत् । एतत् कर्म वास्तुदेवस्य शुचि दक्षिणप्रदेशे कुर्यात् ।

ज्वररोगी की मुट्ठी से ९ मुट्ठी चावल लेकर उसका भात बनावे । उस भात का पुतल बनाकर, उस को आसनी पर स्थापित करे। तदनन्तर पुतला के अङ्ग में हरदी का लेप करे। उसके चारों कोण में पीत पताका स्थापित करे। चारों कोणों में गन्धपुष्प आदि रखकर हरदी के जल से परिपूर्ण एक-एक दोना रख देवे। दोना पीपर की पत्तियों के बने होने चाहिये। पश्चात् संकल्प करके पुतला में ज्वर का आवाहन गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदि द्वारा पूजन करके संध्याकाल में "ॐ नमो भगवते" आदि मूलोक्त मन्त्र पढ़कर बलि दे पश्चात् उपर्युक्त मन्त्र (ॐ ह्रीं ठठ) पढ़कर वृक्ष पर श्मशान अथवा चौराहे पर पुतला को रख आवे। इस कृत्य को रोगी के गृह से दक्षिण दिशा में करना चाहिये ॥ १०१०-१०१२ ॥

नक्षत्रविशेष में रोगोत्पत्ति का फल

कृत्तिकायां यदा व्याधिरुत्पन्नो भवति स्वयम् । नवरात्रं भवेत् पीड़ा त्रिरात्रं रोहिणीषु च ॥ १०१३ । मृगशीर्षे सप्तरात्रमार्द्रायां मुच्यतेऽसुभिः । पुनर्वसौ तथा पुष्ये सप्तरात्रेण मोक्षणम् ॥ १०१४ ॥ नवरात्रं तथा श्लेषे श्मशानान्तं मघासु च । द्वौ मासौ पूर्वफाल्गुन्यामुत्तरासु त्रिपञ्चकम् ॥ १०१५ ॥ हस्ते च सप्तमे मोक्षश्चित्रायामर्द्धमासकम् । मासद्वयं तथा स्वात्यां विशाखे दिनविंशतिः ॥ १०१६ ॥ मैत्रे चैव दशाहानि ज्येष्ठायामर्द्धमासकम् । मूले न जायते मोक्षः पूर्वाषाढे त्रिपञ्चकम् ॥ १०१७ ॥ उत्तरे दिनविंशत्या द्वौ मासौ श्रवणे तथा । धनिष्ठायामर्द्धमासो वारुणे च दशाहकम् । ॥ १०१८ ॥ पूर्वभाद्रपदे देवि ऊनविंशतिवासरम् । त्रिपक्षश्चाहिर्बुध्न्ये च रेवत्यां दशरात्रकम् ॥ १०१९ ॥ अहोरात्रं तथाश्विन्यां भरण्यान्तु गतायुषः । एवं क्रमेण जानीयान्नक्षत्रेषु यथोचितम् ॥ १०२० ॥

इति गौरीकञ्चुलिकायाम् ।

नक्षत्रविशेष में उत्पन्न हुये रोगों का भोगकाल तथा उनसे होनेवाली मृत्यु का निर्देश ऊपर ८ श्लोकों में किया गया है। उस विषय को आगे लिखे चक्र में स्पष्टरूप से समझ लीजिये ॥ १०१३-१०२० ॥

नक्षत्रविशेष में रोगोत्पत्ति का फलबोधक चक्र ।

कृत्तिका	९ दिन	मघा	मृत्यु	अनुराधा	१० दिन	शतभिष	१० दिन
रोहिणी	३ दिन	पूर्वा फाल्गुनी	२ मास	ज्येष्ठा	१५ दिन	पूर्वभाद्रपद	११ दिन
मृगशिरा	७ दिन	उत्तरा फाल्गुनी	१५ दिन	मूल	मृत्यु	उत्तर भाद्रपद	३ पक्ष
आर्द्रा	मृत्यु	हस्त	७ दिन	पूर्वाषाढ	१५ दिन	रेवती	१० रात्रि
पुनर्वसु	७ दिन	चित्रा	१५ दिन	उत्तराषाढ	२० दिन	अश्विनी	१ अहोरात्रि
पुष्य	७ दिन	स्वाती	२ मास	श्रवण	२ मास	भरणी	मृत्यु
आश्लेषा	९ दिन	विशाखा	२० दिन	धनिष्ठा	१५ दिन	— —	— —

अथ सूर्य्यार्घ्यदानविधि।

हंसो भानुः सहस्रांशुस्तपनस्तापनोरविः विकर्त्तनो विवस्वांश्च विश्वकर्मा विभावसुः ॥१०२१॥ विश्वरूपो विश्वकर्मा मार्त्तण्डो मिहिरोंऽशुमान्। आदित्यश्चोष्णगुः सूर्य्योऽर्य्यमा ब्रध्नो दिवाकरः ॥ १०२२॥ द्वादशात्मा सप्तहयो भास्करोऽहस्करः खगः। सूरः प्रभाकरः श्रीमान् लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः ॥ ॥१०२३॥ लोकेशो लोकसाक्षी च तमोऽरिः शाश्वतः शुचिः। गभस्तिहस्तस्तीव्रांशुस्तरणिः सुमहोरणिः ॥ १०२४ ॥ द्युमणिर्हरिदश्वोऽर्को भानुमान् भयनाशनः। छन्दोऽश्वो वेदवेद्यश्च भास्वान् पूषा वृषाकपिः ॥ १०२५ ॥ एकचक्ररथो मित्रो मन्देहारिस्तमिस्रहा। दैत्यहा पापहर्त्ता च धर्मोऽधर्मप्रकाशकः ॥ १०२६ ॥ हेलिकश्चित्र भानुश्च कलिघ्नस्तार्क्ष्यवाहनः। दिक्पतिः पद्मिनीनाथः कुशेशयकरो हरिः ॥ १०२७॥ घर्मरश्मिर्दुर्निरीक्ष्यश्चण्डांशुः कश्यपात्मजः। एभिः सप्ततिसङ्ख्याकैः पुण्यैः सूर्यस्य नामभिः ॥ १०२८ ॥ प्रणवादिचतुर्थ्यन्तैर्नमस्कारसमायुतैः। प्रत्येकमुच्चरन्नाम दृष्ट्वा दृष्ट्वा दिवाकरम् ॥ १०२९ ॥ विगृह्य पाणियुग्मेन ताम्रपात्रं सुनिर्मलम्। जानुभ्यामवनीं गत्वा परिपूर्य्य जलेन च ॥ १०३० ॥ करवीरादिकुसुमै रक्तचन्दनमिश्रितैः। दूर्वाङ्कुरैरक्षतैश्च निक्षिप्तैः पात्रमध्यतः ॥ १०३१ ॥ दद्यादर्घ्यमनर्घाय सवित्रे ध्यानपूर्वकम्। उपमौलि समानीय तत्पात्रं नान्यदिङ्मनाः १०३२ प्रतिमन्त्रं नमस्कुर्य्यादुदयास्तमिनेरवौ। अनया नामसप्तत्या महामन्त्ररहस्यया ॥ १०३३ ॥ एवं कुर्वन् नरो याति न दारिद्र्यं न शोकभाक्। व्याधिभिर्मुच्यते घोरैरपि जन्मान्तरार्जितैः १०३४ विनौषधैर्विना वैद्यैर्विना पथ्यपरिग्रहैः। कालेन निधनं प्राप्य सूर्य्यलोके महीयते ॥ १०३५ ॥

अथ प्रयोगः। अद्येत्यादिवाक्यान्ते अमुकस्य झटिति ज्वरादिरोगप्रशमनकामनया हंसादिसप्ततिनामभिः श्रीसूर्य्याय-सप्तत्यर्घ्यदानमहं करिष्यामि इति सङ्कल्प्य भूतशुद्धिमङ्गन्यासादिकं कृत्वा सामान्यार्घ्यं कल्पयित्वा ध्यात्वा समावाह्य पाद्यादिभिः सम्पूज्य प्रणमेत्। ततो यथोक्तविधिना प्रत्येकनाम्ना अर्घ्यं दद्यात् शालग्रामे घटे जले वा। इति सूर्य्यार्घ्यदानविधिः।

ऊपर ८ श्लोकों में से हंस आदि ७० नाम सूर्य के बताये गये हैं। प्रत्येक नाम को चतुर्थ्यन्त बनाकर नाम के आदि में "ॐ" और अन्त में "नमः" यह शब्द लगाने से ७० नाममन्त्र बन जाते हैं। इन्हीं नाममन्त्रों से सूर्य को अर्घ्य दिया जाता है। अर्घ्य देने की विधि यह है कि ऊपर लिखी रीति से सङ्कल्प और अङ्गन्यास आदि करने के पश्चात् सूर्य को सामान्य अर्घ्य देकर ध्यान तथा पाद्यादि से पूजन करके, पृथिवी में दोनों जानुओं को झुकाकर हाथों में जलपूर्ण निर्मल ताम्रपात्र लेकर उसमें कनेर आदि के पुष्प, रक्तचन्दन, दूब और अक्षत डालकर सूर्य का ध्यान करते हुये प्रत्येक नाममन्त्र से सूर्य को देखता हुआ अर्घ्य देवे। एवं प्रत्येक नाममन्त्र से सायंकाल और प्रातःकाल सूर्य को नमस्कार करे। ऐसा करने से मनुष्य बिना औषध सेवन किये ही विविध प्रकार के घोर रोगों से मुक्त होता है ॥ १०२१-१०३५ ॥

माहेश्वर कवच।

ओं नमो भगवते रुद्राय ॥ रामोवाच ॥

अङ्गन्यासं यदुक्तं भो ! महेशाक्षरसंयुतम् । विधानं कीदृशं तस्य कर्त्तव्यं केन हेतुना ॥ १०३६ ॥ तद्वदस्व महाभाग ! विस्तरेण ममाग्रतः । तपोधन इति पाठान्तरम् ॥ भृगुरुवाच ॥ कवचं माहेश्वरं राजन् ! देवैरपि सुदुर्लभम् ॥ १०३७ ॥ य करोति स्वगात्रेषु पूतात्मा स भवेन्नरः । कृत्वा न्यासमिमं यस्तु संग्रामं प्रविशेन्नरः ॥ १०३८ ॥ न शरास्तोमरास्तस्य खड्गशक्तिपरश्वधाः । प्रभवन्ति रिपोः कापि भवेच्छिन्नपराक्रमः ॥ १०३९ ॥ व्याधिग्रस्तस्तु यः कश्चित् कारयेच्चैव मार्जनम् । एकादशकुशैः साग्रैर्मुक्तो भवति नान्यथा ॥१०४०॥ न भूता न पिशाचाश्च कृष्माण्डा न विनायकाः । शिवस्मरणमात्रेण न विशन्ति कलेवरे ॥ १०४१ ॥

ॐ नम पञ्चवक्त्रायशशिसोमार्कनेत्राय भयार्त्तानामभयाय मम सर्वगात्ररक्षार्थे विनियोगः । ओं ह्रीं ह्रां हं । मन्त्रेणानेन वृषगोमयभस्मना मन्त्रय ललाटे तिलकमादाय पठेत् । ओं त्राहि मा देवदुष्प्रेक्ष शत्रूणां भयवर्द्धन । ओं स्वच्छन्दभैरव प्राच्यामाग्नेय्यां शिखिलोचन ॥१०४२॥ भूतेशो दक्षिणे भागे नैऋत्यां भीमदर्शन । वारुणे वृषकेतुश्च वायौ रक्षतु शङ्करः १०४३ दिग्वासा सौम्यतो नित्यमैशान्यां मदनान्तकः । वामदेव ऊर्ध्वतो रक्षेदधोरक्षेत् त्रिलोचनः ॥ १०४४ ॥ पुरारिः पुरतः पातु कपर्दी पातु पृष्ठतः । विश्वेशो दक्षिणे भागे वामे कालीपतिः सदा ॥ १०४५ ॥ महेश्वरः शिरोभागे भवो भाले सदैव तु। भ्रुवोर्मध्ये महातेजास्त्रिनेत्रो नेत्रयोर्द्वयोः ॥ १०४५ ॥ पिनाकी नासिकादेशे कर्णयोर्गिरिजापतिः । उग्रः कपोलतो रक्षेन्मुखदेशे महाभुजः १०४७ जिह्वायामन्धकध्वंसी दन्तान् रक्षतु मृत्युजित् । नीलकण्ठः सदा कण्ठे पृष्ठे कामाङ्गनाशनः ॥ १०४८ ॥ त्रिपुरारिः स्कन्धदेशे बाह्वोश्च चन्द्रशेखरः । हस्तिचर्म्मधरो हस्ते नखांगुलिषु शूलभृत् ॥ १०४९ ॥ भवानीश पातु हृदयं पातूदरं कपर्दिकः । गुदे लिङ्गे च मेढ्रे च नाभौ च प्रमथाधिपः ॥ १०५० ॥ जङ्घोरुचरणे भीमः सर्वाङ्गे केशवप्रियः । रोमकूपे विरूपाक्षः शब्दस्पर्शे च योगवित् ॥ १०५१ ॥ रक्तमज्जावसामांसशुक्रे वसुगणार्चित । प्राणापानसमानेषूदानव्यानेषु धूर्ज्जटिः ॥ १०५२ ॥ रक्षाहीनन्तु यत् स्थानं वर्जितं कवचेन यत् । तत् सर्व रक्ष मे देव ! व्याधिदुर्गज्वरादितः ॥ १०५३ ॥ कार्य्य कर्म त्रिदं माङ्गैर्दीपं प्रज्वाल्य सर्पिषा । निवेद्य शिखिनेत्राय कारयेच्चोत्तरं मुखम् ॥ १०५४ ॥ ज्वरदाहपरिक्रान्तं तथान्यव्याधिसंयुतम् । कुशैः संमार्ज्य संमार्ज्य क्षिपेद्दीपशिखे ज्वरम् ॥ १०५५ ॥ ऐकाहिकं द्व्याहिकं वा तृतीयकचतुर्थकम् । वातपित्त कफोद्भूतं सन्निपातोग्रतेजसम् ॥१०५६॥ अन्यं दुःखदुराधर्ष कर्मजश्चाभिचारिकम् । धातुस्थं कफसंमिश्रं विषमं कामसम्भवम् ॥ १०५७ ॥ भूताभिषङ्गसंसर्गं भूतचेष्टादिसंस्थितम् । शिवाज्ञां घोरमन्त्रेण पूर्ववृत्तं स्वयं स्मर ॥ १०५८ ॥ जहि देहं मनुष्यस्य द्वीपङ्गच्छ महाज्वर । कृत्वा तु कवचं दिव्यं सर्वव्याधिभयार्दनम् ॥ १०५९ ॥ नवाधन्ते

व्याधयस्तं बालग्रहभयाश्च ये। लूता-विस्फोटकं घोरं शिरोऽर्त्तिच्छर्दिविग्रहम् ॥ १०६० ॥ कामलां क्षयकासञ्च गुल्माश्मरिभगन्दरान्। शूलोन्मादञ्च हृद्रोगं यकृच्च पाण्डुविद्रधिम् ॥ १०६१ ॥ अतीसारादिरोगांश्च डाकिनीग्रहपीडितान्। पामाग्निचर्चिकादद्रुकुष्ठव्याधिविपार्दनम् ॥ १०६२ ॥ स्मरणान्नाशयत्याशु कवचं शूलपाणिनः। यस्तु स्मरति नित्यं वै यस्तु धारयते नरः ॥ १०६३ ॥ स मुक्तः सर्वपापेभ्यो वसेच्छिवपुरे चिरम्। सङ्ख्या व्रतस्य दानस्य यज्ञस्यास्तीह शाश्वतः ॥ १०६४ ॥ न सङ्ख्या विद्यते शम्भोः कवचस्मरणाद्यतः। तस्मात् सम्यगिदं सर्वः सर्वकामफलप्रदम् ॥ १०६५ ॥ श्रोतव्यं सततं भक्त्याकवचं सर्वकामिकम्। लिखितं तिष्ठते यस्य गृहे सम्यगनुत्तमम् ॥ १०५५ ॥ न तत्र कलहोद्वेगो नाकालमरणं भवेत्। नाल्पप्रजाः स्त्रियस्तत्र न दौर्भाग्यसमाश्रिताः ॥ १०६७ ॥ तस्मान्माहेश्वरं नाम कवचं सुरगणार्चितम्। श्रोतव्यं पठितव्यञ्च मन्तव्यं भावुकप्रदम् ॥ १०६८ ॥ इति श्रीमाहेश्वरकवचं सर्वव्याधिनिषूदनम्। यः पठेत् प्रयतो नित्यं स व्रजेच्छाङ्करं पुरम् ॥ १०६९ ॥ इति श्रीमाहेश्वरकवचं समाप्तम् ॥ ओं तत्सत् ॥

ॐ नमः पञ्चवक्त्राय आदि विनियोग कर "ॐ ह्रीं ह्रां हं" इस मन्त्र से रोगी के ललाट में भस्म लगाकर शिवजी का पूजन करके यव-युक्त ११ कुशों से माहेश्वर कवच पढ़ते हुये स्वयं मार्जन करे अथवा ब्राह्मण द्वारा मार्जन करावे। अथवा प्रतिदिन शिवपूजन करके माहेश्वर कवच का पाठ या श्रवण करे। ऐसा करने से रोगी सब प्रकार के रोगों से निःसंदेह मुक्त होता है ॥ १०३९-१०६९ ॥

ज्वरमुक्त का लक्षण।

स्वेदो लघुत्वं शिरसः कण्डूः पाको मुखस्य च। क्षवथुश्चान्नलिप्सा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥ १०७० ॥ देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहतापः पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम्। स्वेदःक्षवः प्रकृतिगामिमनोऽन्नलिप्सा कण्डुश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि ॥ १०७१ ॥

पसीना निकलना, शरीर की लघुता (हलकापन), शिर में कण्डू (चुनचुनाहट), मुख का पकना, छींक आना, भोजन की इच्छा होना, शरीर में हलकापन, क्लान्ति (खेद) का दूर होना, मोह और ताप की निवृत्ति, इन्द्रियों का सौष्ठव, व्यथा का न होना और चित्त की प्रसन्नता ये सब ज्वर निवृत्त होने के लक्षण हैं ॥ १०७०-१०७१ ॥

ज्वरमुक्त को त्याज्य।

व्यायामञ्च व्यवायञ्च स्नानञ्चङ्क्रमणानि च। ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्न बलवान् भवेत् ॥ १०७२ ॥

ज्वर छूटने के अनन्तर जब तक पूर्ण बल न आ जावे, तब तक परिश्रम, स्त्रीप्रसङ्ग, स्नान और अधिक भ्रमण न करने चाहिये ॥ १०७२ ॥

आरोग्यस्नानविधि।

धनिष्ठा श्रवणा स्वाती ज्येष्ठा शतभिषा तथा। रविमन्दभौमवाराश्चन्द्रोऽथ शुभवर्जितः ॥ १०७३ ॥ केन्द्रस्थाश्चाशुभाः शस्ता व्यतीपातादिवासराः। तिथिर्न शस्ता प्रतिपत्तृतीया नवमी तथा ॥ १०७४ ॥ स्नानाय रोगमुक्तानां दशमी च त्रयोदशी। बुधेन्दुगुरुशुक्राणां वाराःस्नाने न शोभनाः॥

रोगान्मुक्तस्य नाश्लेषा रोहिणी भद्रदायिनी ॥ १०७५ ॥

धनिष्ठा, श्रवण, स्वाती, ज्येष्ठा और शतभिषा, इनमें से कोई नक्षत्र हो, रवि, शनि और भौम इनमें से कोई वार हो। चन्द्रमा पापग्रह से रहित हो, और पापग्रह केन्द्र में स्थित हों और व्यतीपातादि योग हो ऐसे समय में रोगविनिमुक्त पुरुष का स्नान करना शुभ है। प्रतिपत्, तृतीया, नवमी, दशमी और त्रयोदशी ये तिथियाँ; बुध, चन्द्र, बृहस्पति और शुक्र ये वार; तथा आश्लेषा और रोहिणी ये नक्षत्र रोगविनिमुक्त व्यक्ति के स्नान के लिये अशुभ हैं ॥ १०७३-१०७५ ॥

तरुण ज्वर में पथ्य।

स्नानं विरेकं सुरतं कषायं व्यायाममभ्यङ्गनमह्नि निद्राम्। दुग्धं घृतं वैदलमामिषंच तक्रं सुरास्वादु गुरुद्रवंच अन्नंप्रवातं भ्रमणंक्रुधां चत्यजेत्मयत्नातरुणं ज्वरार्त्तः॥ १०७६ ॥

तरुण ज्वर से पीड़ित रोगी को स्नान, विरेचन मैथुन, क्वाथ, व्यायाम, तेल की मालिश, दिन में सोना, दूध, दाल मांस छाछ, मदिरा मीठे पतले खाद्य अन्न, हवाखाना, घूमना, क्रोध को त्याग देना चाहिये ॥ १०७६ ॥

मध्यज्वर में पथ्य।

पुरातनाः षष्टिक शालयश्च वार्त्ताकुशोभाजनकारवेल्लम्। वेत्राग्रमाषाढफलं पटोलं कर्कोटकं मूलकदूतिके च॥१०७७॥ मुद्गैर्मसूरैश्चणकैः कुलत्थैर्मकुष्टकैर्वा विहितश्चयूषः पाठाऽमृता वास्तक तण्डुलीय जीवंतिशाकानि च काकमाची॥१०७७॥ द्राक्षा कपित्थानिचदाडिमानि वैकङ्क तान्येवपचेलिमानि। लघूनि सात्म्यानिच भेषजानि पथ्यानि मध्यज्वरिणाममूनि॥ १०७६ ॥

पुरानेसाठी के चावल, पुराने शालि चावल, बैंगन, सहजना, करेला, बेंतकी कोंपल, अषाढ़ फल, परवल, ककोड़ा, मूली, पोईसाग, मसूर, चना, कुलथ की मोंठ इनमें से किसी वस्तु का जूस, पाढर, गिलोय, बथुआ, चौलाई, जीवती के साग मकोय, दाख, कैथा, अनार, कण्ठाई के पके फल, हलकी हितकारी औषधियाँ मध्य ज्वर में पथ्य हैं ॥ १०७७-१०७६ ॥

पुराने ज्वर में पथ्य।

विरेचनं छर्दनमञ्जनं च नस्यं च धूमोऽप्यनुवासनंच। शिरोऽव्यधः संशमनं प्रदेहोऽभ्यङ्गो वगाहः शिशिरोपचारः॥ १०८० ॥ एणः कुलिङ्गोहरिणो मयूरो लावःशशस्तैत्तिरकुक्कुटौच। क्रौञ्चः कुरङ्ग पृषतश्चकोरः कपिञ्जलो वर्तककालपुच्छौ॥ १०८१ ॥ गवामजायाश्च पयोघृतं च हरीतकी पर्वत निर्झरांभः एरंएड तैलं सितचन्दनं च द्रव्याणि सर्वाणि प्ररेरितानि॥ १०८२ ॥ ज्योत्स्नाप्रियालिङ्गनमव्ययं स्याद्गणः पुराण ज्वरिणोहिताय॥ १०८३ ॥

विरेचन, वमन, अंजन, नस्य धूम्रपान अनुवासन फालखुलवाना संशमन औषधों का प्रयोग प्रलेप मालिश, स्नान, शीतलपदार्थों का सेवन, एण हरिनभेद चिरौटा, हिरन, मोर, लवा, खरगोश तीतर, मुर्ग, क्रौंच पक्षी, कुरंग, पृषत (हरिनभेद) वतक कालपुच्छ का मांस गौ बकरी का दूध घी, हरड़, पहाड़ी झरनों का जल, अंडी का तेल, सफेद चन्दन, चन्द्रमा की किरणें, अपनी प्रिया का आलिंगन ये सब वस्तुएँ पुराने ज्वर के रोगियों के लिए लाभदायक हैं ॥ १०८०-१०८३ ॥

ज्वर में अपथ्य।

अधिवासन कर्माणि रक्तस्रग्वस्त्र धारणम्। वमिवेगं दन्तकाष्ठं असात्म्यमति भोजनम्॥ १०८४ ॥ विरुद्धान्यन्नपानानि

विदाहीनि गुरूणि च। दुष्टाम्बु सारमम्लानि पत्रशाकं विरूढकम् ॥ १०८५ ॥ नलदाम्बु च ताम्बूलं कालिन्दं वैकुचं फलम्। ओडीमत्स्यं च दिव्याकं छत्रकं पिष्टवैकृतम् ॥ १०८६॥ अभिष्यन्दीनि चैतानि ज्वरितः परिवर्जयेत् ॥ १०८७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां ज्वरचिकित्सा समाप्ता ॥

अधिवासन (वसित कर्म) लाल फूलों की माला, लाल कपड़े पहनना, वमन वेग रोकना, आत्मा के विपरीत भोजन करना परस्पर विरुद्ध अन्नों को मिलाकर खाना, जल पैदा करनेवाले नरम् भारी पदार्थों का सेवन, बिगड़े जल, क्षारपदार्थ, खटाई, पत्ताके शाक, अंकुर उगे अन्नों का भोजन, खस का जल, पान, तरबूज, बदहल, ओडी, मछली, तिलकी पिट्ठी, छतौना, पिट्ठी के बने पदार्थ, घी, कचौरी आदि अभिष्यन्दी पदार्थ दही आदि का सेवन ज्वर रोगी को त्याग देना चाहिए ॥ १०८४-१०८७ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिकृतायां भैषज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाख्यायां व्याख्यायां ज्वराधिकारः समाप्तः ॥

ज्वरातीसाराधिकारः।

पित्तज्वरे पित्तभवोऽतिसारस्तथातिसारे यदि वा ज्वरः स्यात्। दोषस्य दूष्यस्य समानभावज्ज्वरातिसारः कथितो भिषग्भिः ॥ १ ॥ ज्वरातिसारयोरुक्तमन्योन्यं भेषजं पृथक्। न तन्मिलितयोः कुर्यादन्योन्यं वर्द्धयेद्यतः ॥ २ ॥ प्रायो ज्वरहरं भेदिस्तम्भनन्त्वतिसारनुत्। अतोऽन्योन्यविरुद्धत्वाद्वर्द्धनं तत्परस्परम् ॥ ३ ॥ ज्वरातीसारिणामादौ कुर्याल्लङ्घनपाचने। प्रायस्तावामसम्बन्धं विना न भवतो यतः ॥ ४ ॥ ज्वरातिसारे पेयादिक्रमः स्याल्लङ्घनेहितः। ज्वरातिसारी पेयां वा पिबेत्साम्लां शृतां नरः ॥ ५ ॥

यदि पित्तज्वर में पित्तजन्य अतिसार अथवा अतिसाररोग में ज्वर उत्पन्न होवे, तो वहाँ दोष और दूष्य की समानता होने पर इस मिलित रोग को ज्वरातिसार कहते हैं। केवल ज्वर अथवा केवल अतिसार में जो-जो औषध निर्दिष्ट हैं ज्वरातिसार में उन्हीं औषधों को प्रयोग करना उचित नहीं। कारण यह कि ज्वरनाशक औषध प्रायः भेदी तथा अतिसारनाशक औषध धारक होते हैं। अतः ज्वरनाशक औषध सेवन से अतिसार की वृद्धि और अतिसारनाशक औषध सेवन से ज्वर की वृद्धि होती है। ज्वरातिसार रोगी को पहिले लंघन कराकर पाचक औषध देना चाहिये। कारण यह कि आम रस का बिना सम्बन्ध हुये ज्वर अथवा अतिसाररोग प्रायः उत्पन्न नहीं होते। लंघन और पाचन द्वारा रस का परिपाक होने से रोग का बल क्षीण हो जाता है। ज्वर में पहिले लंघन कराना आवश्यक है। लंघन के अनन्तर खट्टे पदार्थ मिलाकर बनाई हुई पेया मण्ड और यवागू आदि पथ्य देने चाहिये ॥ १-५ ॥

ह्रीबेरादि।

ह्रीबेरातिविषामुस्तबिल्वनागरधान्यकैः। पिबेत् पिच्छाविबन्धघ्नं शूलदोषामपाचनम् ॥ सरक्तं हन्त्यतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम् ॥ ६ ॥

सुगन्धवाला, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, सोंठ और धनिया ये कुल मिलकर २ तोले हों, ३२ तोले जल में पकाकर ८ तोले जल शेष रहने पर छानकर पिलाना चाहिये। इस क्वाथ का पान करने से मल की पिच्छलता, आमदोष, रुक रुक कर थोड़ा-थोड़ा मल का निकलना और शूल नष्ट होते हैं। इस क्वाथ से रक्तयुक्त अथवा

ज्वररहित तथा रक्तयुक्त अतिसाररोग शीघ्र शान्त होता है ॥ ६ ॥

उशीरादि ।

उशीरं वालकं मुस्तं धन्याकं विश्वभेषजम् । समङ्गा धातकी लोध्रं बिल्वं दीपनपाचनम् ॥ ७ ॥ हन्त्यरोचकपिच्छामविबन्धं सातिवेदनम् । सशोणितमतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम् ॥ ८ ॥

खस, सुगन्धवाला, नागरमोथा, धनिया, सोंठ, लजालू, धाय के फूल, लोध और बेलगिरी ये कुल द्रव्य मिलकर २ तोले हों । इनको ३२ तोले जल में सिद्ध करे, चार तोले शेष रहने पर छानकर पान करे । इस क्वाथ का सेवन करने से ज्वरयुक्त अथवा ज्वररहित रक्तातिसार, और उदर की पीड़ा, मल की चिकनाहट, आम और विबन्ध नष्ट होते हैं । यह दीपन और पाचन है ॥ ७ ८ ॥

गुडूच्यादि ।

गुडूच्यतिविषा धान्यशुण्ठीबिल्वाब्दवालकैः । पाठाभूनिम्बकुटजचन्दनोशीरपद्मकैः॥ ९ ॥ कषायः शीतलः पेयो ज्वरातीसारशान्तये । हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहशान्तिकृत् ॥ १० ॥

गिलोय, अतीस, धनियाँ, सोंठ, बेलगिरी, नागरमोथा, सुगन्धवाला, पाढल, चिरायता, कुड़े की छाल, लाल चन्दन, खस और पद्माख ये कुल मिलकर २ तोले जल ३२ तोले, शेष ४ तोले । इस क्वाथ का सेवन करने से ज्वरातिसार, उबकाई आना, अरुचि, वमन, प्यास लगना और दाह ये सब नष्ट होते हैं ॥ ९-१० ॥

पञ्चमूल्यादि ।

पञ्चमूली बलाबिल्वगुडूचीमुस्तनागरैः । पाठाभूनिम्बह्रीवेरकुटजत्वक्फलैः शृतम् ॥ ॥ ११ ॥ हन्ति सर्वानतीसारान् ज्वरदोषं वमिं तथा । सशूलोपद्रवं कासं श्वासं हन्यात् सुदारुणम् ॥ १२ ॥

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखुरू, खरेंटी, बेल की छाल, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ, पाढ़ी, चिरायता, सुगन्धवाला, कुड़े की छाल और इन्द्रजौ ये कुल मिलकर २ तोले, जल ३२ तोले, शेष ४ तोले । इस क्वाथ का सेवन करने से सब प्रकार के अतिसार और ज्वर निवृत्त होते हैं । तथा वमन, शूल, कास, दारुण श्वास आदि उपद्रव दूर होते हैं ॥ ११ १२ ॥

पञ्चमूलद्वय की दोषभेद से ग्रहणविधि

पञ्चमूली तु सामान्याद् योज्या पैत्ते कनीयसी । महती पञ्चमूली तु वातश्लेष्मातुरे हिता ॥ १३ ॥

जब सामान्य 'पञ्चमूल' शब्द पड़ा हो, तब पित्तविकार में स्वल्प पञ्चमूल और वातश्लेष्मविकार में बृहत्पञ्चमूल का ग्रहण करना चाहिये ॥ १३ ॥

बृहत्पञ्चमूल्यादि ।

पञ्चमूली शृङ्गवेरशृङ्गाटकञ्च टङ्कनम् । जम्बूदाडिमपत्रञ्च बला बालं गुडूचिका ॥ १४ ॥ पाठा बिल्वं समङ्गा च कुटजत्वक् फलं तथा । धान्यकं धातकीक्वाथ विषाजीरकसंयुतम् ॥ १५ ॥ पिबेत् ज्वरातिसारे च सरक्ते वाप्यरक्तके । अपि योगशतैस्त्यक्ते चासाध्ये सर्वरूपके ॥१६॥

बेलगिरी, सोनापाठा, खम्भारी, अरनी, पाढल, सोंठ, सिंघाड़ा, जलपीपल, नागरमोथा, जामुन के पत्ते, अनार के पत्ते, खरेंटी, सुगन्धवाला, गिलोय, पाढ़ी, बेलगिरी, लजालू, कुड़े की छाल, इन्द्रजौ और धनियाँ, धाई के फूल ये कुल मिलकर २ तोले हों, ३२ तोले जल में पकाकर ४ तोले जल शेष रहने पर छानकर उसमें २ माशे अतीस का चूर्ण और २ माशे जीरा का चूर्ण मिलाकर पान करने से सब प्रकार के रक्तसहित और रक्तरहित असाध्य अतिसाररोग नष्ट होते हैं ॥१४-१६॥

शुण्ठीदशमूल।

दशमूलीकषायेण माषैकं नागरं पिवेत्। ज्वरे चैवातिसारे च सशोथे ग्रहणीगदे॥१७॥

जिस ग्रहणीरोग में शोथ (सूजन) हो तथा ज्वरातिसार हो उसमें दशमूल के काढ़े में एक माशे सोंठ पीसकर ऊपर से मिलाकर (प्रक्षेप देकर) सेवन कराना चाहिए॥ १७॥

धान्यशुण्ठी।

धन्याकं विश्वसंयुक्तमामघ्नं वह्निदीपनम्। वातश्लेष्मज्वरहरं शूलातीसारनाशनम्॥ १८॥

ज्वरातीसारे प्रथमतो धान्यशुण्ठीं देया।

एक-एक तोला धनियाँ और सोंठ लेकर आध सेर जल में पकावें, एक छटाक जलशेष रहने पर छानकर रोगी को पिलाना चाहिये। इसका सेवन करने से वातकफज्वर और शूलयुक्त अतिसार नष्ट होता है॥ १८॥

बिल्वपञ्चक क्वाथ।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बला बिल्वं सदाडिमम्। बिल्वपञ्चकमित्येतत् क्वाथं कृत्वा प्रदापयेत्॥ अतीसारे ज्वरे छर्द्यां शस्यते बिल्वपञ्चकम्॥ १९॥

शालिवन, पिठवन, खरेटी, बेलगिरी, अनार के फल का छिलका इन सब औषधों का क्वाथ पीने से अतिसार, ज्वर और वमन की शान्ति होती है॥ १९॥

ज्वरातिसार में सिद्धयोगद्वय।

वत्सकस्य फलं दारु रोहिणी गजपिप्पली। श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं बिल्वं पाठा यमानिका॥ २०॥ द्वावप्येतौ सिद्धयोगौ श्लोकार्धेनाभिभाषितौ। ज्वरातिसारशमनो विशेषाद्दाहनाशनौ॥ २१॥

इन्द्रजौ, देवदारु, कुटकी, गजपीपल और गोखरू, पिप्पली, धनियाँ, बिल्व, पाठा, अजवायन, ये दोनों ही योग ज्वरातिसार तथा दाह को नष्ट करनेवाले हैं॥ २०-२१॥

पाठादिक्वाथ।

पाठेन्द्रयवभूनिम्बमुस्तापर्पटिकामृताः। जयन्त्याममतीसारं ज्वरं च समहौषधाः॥ २२॥

पाठा, इन्द्रजौ, चिरायता, मोथा, पित्तपापड़ा, गिलोय उपर्युक्त द्रव्यों के काढ़े में सोंठ के चूर्ण को ऊपर से मिलाकर देने से आमज्वरातिसार दूर होता है॥ २२॥

कलिङ्गादिगुटिका।

कलिङ्गबिल्वनिम्बाम्रकपित्थं सरसाञ्जनम्। लाक्षां हरिद्रे ह्रीवेरं कट्फलं शुकनासिकाम्॥ २३॥ लोध्रं मोचरसं शङ्खं धातकीं वटशुङ्गकम्। पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन वटिका माषसम्मिताः॥ २४॥ छायाशुष्कान् पिवेत् क्षिप्रं ज्वरातीसारशान्तये। रक्तप्रसाधना ह्येते शूलातीसारनाशनाः॥२५॥

इन्द्रजौ, बेलगिरी, नीम की छाल, आम की छाल, कैथ की छाल, रसौत, लाख, हरदी, दारुहरदी, सुगन्धबाला, कायफल, सोनापाठा की छाल, लोध, मोचरस, शङ्खभस्म, धाय के फूल और बड़ के अंकुर; इन सब द्रव्यों को समभाग लेकर चावल के धोवन के साथ पीसकर, एक-एक तोला की वटी बनाकर छाया में शुष्क कर लेवे। इसका सेवन करने से ज्वरातिसार, रक्तातिसार और शूलयुक्त अतिसार निवृत्त होते हैं। मात्रा २ माशा॥ २३-२५॥

व्योषादिचूर्ण।

व्योषं वत्सकबीजञ्च निम्बभूनिम्बमार्कवम्। चित्रकं रोहिणीं पाठां दार्वीमतिविषां समाम्॥ २६॥ श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वं तत्तुल्या वत्सकत्वचः। सर्वमेकत्र

संयोज्य पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ २७ ॥ मध्वाद्रं वा लिहेदेतत्पाचनं ग्राहि भेषजम्। तृष्णारुचिप्रशमनं ज्वरातीसारनाशनम् २८ प्रमेहं ग्रहणीदोषं गुल्मं प्लीहानमेव च। कामलां पाण्डुरोगञ्च श्वयथुञ्च विनाशयेत् ॥ २९ ॥

सर्वचूर्णसमं कुटजमूलवल्कलचूर्णं मिलितचूर्णमनुरूपं चतुर्गुणेन तण्डुलजलेन पिबेत्। अथवा द्विगुणेन मधुना लिहेत्।

सोंठ, मिरिच, पीपर, इन्द्रजौ, नीम की छाल, चिरायता, भाँगरा, चीता कुटकी, पाढ़, दारुहल्दी और अतीस प्रत्येक एक तोला, कुड़े की छाल ११ तोले; इन सब औषधों को एकत्र कूट पीसकर चूर्ण बनावे। इसकी मात्रा १ मासा से ६ मासे तक चौगुने चावल के धोवन के साथ अथवा दूने शहद के साथ सेवन करना चाहिये। यह पाचक और ग्राही है। इसका सेवन करने से ज्वरातिसार, प्रमेह, ग्रहणी, गुल्म, प्लीहा, कामला, पाण्डुरोग और शोथ ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ २६-२९ ॥

बृहत्कुटजावलेह

कुटजत्वक्पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत्। तेन पादावशेषेण शर्करापलत्रिंशतिम्॥३०॥ दत्त्वा पक्त्वा लेहपाके चूर्णानीमानि निक्षिपेत्। पाठा समङ्गा बिल्वञ्च धातकी-मुस्तकं तथा ॥ ३१ ॥ दाडिमातिविषां लोध्रं शाल्मलीवेष्टसर्जकम्। रसाञ्जनं धान्यकञ्च उशीरं बालकं तथा॥ ३२॥ प्रत्येकमेषां कर्षांशं निक्षिपेत् पाकविद्भिषक्। शीते च मधुनस्तत्र कुडवार्द्धं विनिक्षिपेत् ॥३३॥ सर्वरूपमतीसारं ग्रहणीं सर्वरूपिणीम्। रक्तस्रुतिं ज्वरं शोथं वमिमर्शोगदं तृषाम्। अम्लपित्तं तथा शूलमग्निमान्द्यं नियच्छति ॥ ३४ ॥

अतीसारे ग्रहण्याञ्च दृष्टफलोऽयम्।

कुड़े की छाल ५ सेर लेकर २५ सेर ४८ तोला जल में पकावे। ६ सेर ३२ तोला, जल शेष रहने पर छानकर, उसमें १ सेर कच्ची खाँड़ मिलाकर पकावे। पककर अवलेह के समान गाढ़ा होने पर उसमें नीचे लिखी औषधों का चूर्ण मिलाकर उतार लेवे। प्रक्षेप के द्रव्य-पाढ़, लजालू, बेलगिरी, धाय के फूल, नागरमोथा, अनार के फल का छिलका, अतीस, लोध, मोचरस, राल, रसौत, धनियाँ, खस और सुगन्धबाला प्रत्येक एक तोला। पाक के शीतल होने पर ८ तोले मधु मिलाकर घी के चिकने पात्र में रख देवे। इसका सेवन करने से सब प्रकार के अतिसार, ग्रहणी, रक्तस्राव, ज्वर, शोथ, वमन, बवासीर, तृषा, अम्लपित्त, शूल और अग्निमान्द्य ये सब रोग नष्ट होते हैं। मात्रा—६ मासे से १ तोला। अनुपान—चावल का धोवन अथवा बकरी का दुग्ध ॥ ३०-३४ ॥

अतिसार और ग्रहणी रोग के लिये यह अनुभूत औषध है।

तंत्रान्तरोक्त बृहत्कुटजावलेह।

कुटजत्वक पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत्। तेन पादावशेषेण शर्करामस्थकं-पचेत् ॥ ३५ ॥ ततो लेहे घनीभूते चूर्णानीमानि दापयेत्। लवङ्गं जीरकं मुस्तं धातकी बिल्वबालकम् ॥ ३६ ॥ एला पाठा त्वचं भृङ्गी जातीफलमर्धूरका। शक्रकातिविषा तारं काकोली च रसाञ्जनम्। ३८ ॥ शाल्मलीवेष्टकं यष्टी समङ्गा रक्त-चन्दनम्। वटशुङ्गं खादिरञ्च जम्ब्वाम्रपल्लवं तथा ॥ ३८ ॥ एषामक्षसमं चूर्णं प्रक्षिपेत् पाकविद्भिषक। सिद्धेऽवतारिते शीते मधुनः कुडवं न्यसेत् ॥ ३९ ॥ तोल-

कार्द्धं लिहेत्तु चानुपानविधिं शृणु। अनुपानं प्रदातव्यं दधिमस्तु त्वजापयः ४० चम्पककदलीमूलस्वरसं कर्षमानतः। भक्षयेत् प्रातरुत्थाय संग्रहग्रहणीं जयेत् ॥४१॥ रोगं रक्तातिसारञ्च चिरकालसमुद्भवम्। पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम्॥ शोथातीसारसहितं ज्वरमाशु व्यपोहति४२

अन्यत्रायं ग्रहणीगजेन्द्रावलेहः। आमरक्तातिसारे केवले वातिसारे ग्रहण्याञ्चदृष्टफलोऽयम्।

कुड़े की छाल १ सेर लेकर २४ सेर ४८ तोला जल में पकावे। ६ सेर ३२ तोला जल शेष रहने पर छानकर उसमें ६४ तोला शक्कर डालकर पकावे। तदनन्तर अवलेह के समान गाढ़ा होने पर नीचे लिखी औषधों का चूर्ण मिलाकर उतार लेवे। शीतल होने पर १६ तोले मधु मिलाकर रख देना चाहिये। प्रक्षेप के द्रव्य जैसे लवङ्ग, जीरा, नागरमोथा, धाय के फूल, बेलगिरी, सुगन्धवाला, छोटी इलायची के दाने, पाढ़, दालचीनी, काकड़ाश्रृङ्गी, जायफल, सोंठ, इन्द्रजौ, अतीस, यवक्षार, काकोली, रसौत, मोचरस, मुलेठी, लजालू, लालचन्दन, बड़ के अंकुर, खैर, जामुन की पत्तियाँ और आम की पत्तियाँ प्रत्येक एक तोला। इसकी मात्रा ६ मासा। अनुपान दही का पानी, बकरी का दूध, चम्पा के मूल का स्वरस तथा केला के मूल का जल। इसका प्रातःकाल सेवन करना चाहिए। इसका सेवन करने से संग्रहणी, चिरकाल का रक्तातिसार, पक्व अथवा अपक्व, शूलयुक्त अनेक वर्ण के अतिसार, शोथ और अतिसार से युक्त ज्वर ये सब रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। मात्रा ६ मासा से १ तोला तक ॥ ३९-४२ ॥

अन्य ग्रन्थ में इस (वृहत्कुटजावलेह) को ग्रहणीगजेन्द्रावलेह कहते हैं ॥ आम रक्तातिसार में, ग्रहणी में और केवल अतिसार में भी अनुभूत किया हुआ है॥

अथ रसप्रयोगः।

सिद्धप्राणेश्वर रस।

गन्धेशाभ्रं पृथग्वेदभागमन्यच्च भागिकम्। सर्जिटङ्कयवक्षाराः पञ्चैव लवणानि च ॥ ४३ ॥ वराव्योपेन्द्रबीजानि द्विजीराग्नियमानिकः। सहिङ्गुबीजसारश्च शतपुष्पा सुचूर्णिता ॥ ४४ ॥ सिद्धप्राणेश्वरः सूतः प्राणिनां प्राणदायकः। वल्लकं भक्षयेदस्य नागवल्लीदलैर्युतम् ॥ ४५ ॥ उष्णोदकानुपानञ्च दद्यात्तत्र पलत्रयम्। ज्वरातिसारेऽतिसृतौ केवले वा ज्वरेऽपि च ॥४६॥ घोरे त्रिदोषजे रोगे ग्रहण्यामस्रगामये। वातरोगे च शूले च शूले च परिणामजे ॥ ४७ ॥

गन्धक, पारा और अभ्रक ४ मासे, सज्जीखार, सोहागा की खील, यवक्षार, पाँचों नमक, त्रिफला, त्रिकटु, इन्द्रजौ, सफेद जीरा, काला जीरा, चीता, अजवाइन, हींग, वायविडंग और सोआ प्रत्येक एक मासा; इनको एकत्र जल के साथ खरल करके २ रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। अनुपान पान का रस। इस औषध का सेवन करके १२ तोला उष्ण जल पीना चाहिये। इस औषध के सेवन करने से ज्वरातिसार, अतीसार, ज्वर, रक्तविकार, वातव्याधि, शूल, परिणामशूल और ग्रहणीरोग शान्त होते हैं ॥ ४३-४७ ॥

कनकसुन्दर रस

हिंगुलं मरिचं गन्धं पिप्पली टङ्कनं विषम्। कनकस्य च बीजानि समांशं विजयाद्रवैः ॥ ४८ ॥ मर्दयेत् याममात्रन्तु गुञ्जामात्रा वटीकृता। भक्षणाद् ग्रहणीं हन्ति रसः कनकसुन्दरः ॥ ४९ ॥ अग्निमान्द्यं ज्वरं तीव्रमतीसारञ्च नाशयेत्। पथ्यं दध्योदनं दद्याद्वा तक्रौदनं चरेत् ॥५०॥

हिंगुल, मरिच, गन्धक, छोटी पीपरि, सोहागा फूला हुआ। विष और धतूरे के बीज समभाग इन सब औषधों को एकत्र कर भांग की पत्तियों के रस में एक पहर पर्यन्त मर्दन करके एक एक रत्ती की गोलियां बना लेवे। इसका सेवन करने से ग्रहणी, अग्निमान्द्य और घोर अतिसार रोग नष्ट होते हैं। पथ्य दही भात अथवा तक्र और भात देना चाहिये ॥ ४८-५१ ॥

गगनसुन्दर रस।

टङ्कनं दरदं गन्धमभ्रकञ्च समं समम्। दुग्धिकाया रसेनैव भावयेत् दिनत्रयम् ॥ ५१ ॥ द्विगुञ्जं मधुना देयं श्वेतमजस्य पत्रकम्। त्रिविधनाशयेद् रक्तं ज्वरातीसार-मुल्बणम् ॥ ५२ ॥ पथ्यं तक्रं पयश्छाग-मामशूलं विनाशयेत्। अग्निवृद्धिकरोप्येष रसो गगनसुन्दरः ॥ ५३ ॥

सोहागा की खील, हिंगुल, गन्धक और अभ्रकभस्म; इन सब द्रव्यों को समान परिमाण में लेकर दूधिया के स्वरस में ३ दिन पर्यन्त मर्दन करके दो दो रत्ती की गोलियां बनावे। १ रत्ती सफेद राल का चूर्ण और मधु के साथ इस रस का सेवन करने से त्रिविध प्रकार के ज्वरातीसार और रक्तातीसार नष्ट होते हैं। यह अग्निवर्धक तथा आमशूलनाशक है। रोगी को भोजन के लिये तक्र अथवा बकरी का दूध देना चाहिये ॥ ५१-५३ ॥

कनकप्रभा वटी।

सुवर्णबीजं मरिचं मरालपादं कणा-टङ्कनकं विषञ्च। गन्धं जयाद्भिर्दिवसं विमर्द्य गुञ्जाप्रमाणां वटिकां विदध्यात् ॥ ५४ ॥ घोरातिसारं ग्रहणीं ज्वराग्निमान्द्यं निहन्यात् कनकप्रभेयम्। दध्योदनं पथ्यमनुष्णवारि मांसं भजेत्तित्तिरिलावकानाम् ॥ ५५ ॥

काले धतूरे के बीज, मरिच, हंसपदी (हंसराज), पीपरि, सोहागा फूला हुआ, विष और गन्धक समभाग इन सब औषधों को लेकर भांग की पत्तियों के अर्क में मर्दन करके एक एक रत्ती की गोलियां बना लेवे। इस कनकप्रभा वटी का सेवन करने से घोर अतिसार, ग्रहणी, ज्वर और अग्निमान्द्य नष्ट होता है। पथ्य दही-भात, शीतल जल और तीतर तथा लवा का मांस ॥ ५४-५५ ॥

मृतसञ्जीवन रस।

रसगन्धौ समौ ग्राह्यौ मृतपादं विषं क्षिपेत्। सर्वतुल्यं मृतञ्चाभ्रं मर्द्यं धुस्तूरजैर्द्रवैः ॥ ५६ ॥ सर्पाक्ष्याश्च द्रवैर्यामं रूपायेणाथ भावयेत्। धातक्यातिविषा मुस्तं शुण्ठीजीरकवालकम् ॥ ५७ ॥ यमानी धान्यकं बिल्वं पाठा पथ्या कणा-न्वितम्। कुटजस्य त्वचं बीजं कपित्थं बालदाडिमम् ॥ ५८ ॥ प्रत्येकं कर्षमात्रं स्यात् कुट्टितं क्वाथयेज्जलैः। चतुर्गुणं जलं दत्त्वा यावत्पादावशेषितम् ॥ ५९ ॥ अनेन त्रिदिनं भाव्यं पूर्वोक्तं मर्दितं रसम्। रुद्ध्वा तद्वालुकायन्त्रे क्षणं मृद्वग्निना पचेत् ॥ ६० ॥ मृतसञ्जीवनो नाम द्विगुञ्जाप्रमितो रसः ॥ दातव्यस्त्वनुपानेन चासाध्यमपि साधयेत् ॥ ६१ ॥ षट्प्रकारमतीसारं साध्यासाध्यं जयेद्ध्रुवम्। नागरातिविषा मुस्तं देवदारुकणा वचा ॥ ६२ ॥ यमानी बालकं धान्यं कुटजत्वक् हरीतकी। धातकीन्द्रयवा बिल्वं पाठा मोचरसं समम्। चूर्णितं मधुना लेह्यमनुपानं सुखावहम् ॥ ६३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां ज्वरातीसाराधिकारः।

पारद ४ तोले, गन्धक ४ तोले, मीठा विष १ तोला, अभ्रक भस्म ६ तोला, प्रथम उपर्युक्त

द्रव्यों को धतूरे के रस से खूब घोटे तत्पश्चात् रास्नाक्वाथ की सात भावना दे। धाय के फूल, अतीस, मोथा, सोंठ, जीरा, गन्धवाला, अजवायन, धनियाँ, बिल्वफल की गिरी, पाठा, हरड़, पीपल, कुटज की छाल, इन्द्रजौ, कैथ, कच्चा अनार, प्रत्येक द्रव्य दो तोले, चौगुने पानी के साथ पकावे। जब चौथाई शेष रह जावे तब पूर्वोक्त रस की तीन दिन तक भावना दे, इसके बाद बालुका-यन्त्र में कुछ देर पकावे। मात्रा २ रत्ती, ज्वार-तिसार का नाश करनेवाला यह रस है। सोंठ, अतीस, मोथा, देवदारु, पिप्पली, वच, अजवाइन गन्धवाला, धनियाँ, कुटज की छाल, हरड़, धाय के फूल, इन्द्रजौ, बिल्व, पाठा, मोचरस इनको बराबर-बराबर लेकर चूर्ण बना ले और शहद के साथ १ मासा भर बतौर अनुपान के सेवन करे॥ ५६-६३॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-
रत्नावल्यां रत्नप्रभाख्यायां व्याख्यायां
ज्वरातीसाराधिकारः।

अथ प्लीहयकृदधिकारः।

यमानिकादि चूर्ण।

यमानिकाचित्रकयावशूकपड्ग्रन्थिदन्तीमगधोद्भवानाम्। प्लीहानमेतद्विनिहन्ति चूर्णमुष्णाम्बुना मस्तुसुरासवैर्वा॥ १॥

अजवाइन, चीता, यवक्षार, पिपरामूल, दन्ती की जड़ और छोटी पीपरि इन औषधों को समभाग लेकर चूर्ण बनावे। इसकी मात्रा १ मासे से ३ मासे तक। अनुपान—उष्णजल, दही का पानी, सुरा अथवा आसव। इस चूर्ण का सेवन करने से प्लीहारोग नष्ट होता है॥ १॥

प्लीहनाशक मुष्टियोग।

तालपुष्पोद्भवः क्षारः सगुडः प्लीहनाशनः॥ २॥ चित्रस्य मूलकं पिष्ट्वा कृत्वा तु वटिकात्रयम्। कदलीपक्वमध्येन भक्षणात् प्लीहनाशनम्॥ ३॥ गुडैश्चित्रकमूलं वा रजन्यर्कदलं तथा॥ धातकीपुष्पचूर्णं वा प्रत्येकं प्लीहनाशनम्॥ ४॥ रसेन जम्बीरफलस्य शङ्खनाभीरजः पीतमशेषमेव। गुञ्जाद्वयं संशमयेत्सशूलं प्लीहामयं कूर्मसमानमाशु॥ ५॥

ताल के पुष्प का अन्तर्धूम भस्म करके इसके क्षार को गुड़ के साथ सेवन करे। इससे प्लीहा नष्ट होती है।

चीता के मूल को जल में पीसकर एक एक रत्ती की गोलियाँ बनावे: इनमें से ३ गोलियाँ पके हुये केला के फल के मध्य में रखकर सेवन करने से प्लीहा नष्ट होती है।

चीते का मूल, हल्दी, आक की पत्ती और धाय के फूल; इनमें से प्रत्येक औषध का चूर्ण पुराने गुड़ के साथ सेवन करने से प्लीहा को नष्ट करता है।

शङ्ख की नाभि का भस्म २ रत्ती, जम्भीरी नींबू के रस के साथ पीने से कूर्म (कछुआ) के समान कठोर प्लीहा शीघ्र शान्त होती है॥ २-५॥

पिप्पली किंशुकक्षारभाविता सम्प्रयोजयेत्। गुल्मप्लीहापहं वह्निदीपनीश्च रसायनीम्॥ ६॥

पीपल को पलाशक्षार से भावना देकर यथायोग्य मात्रा में प्रयोग में लाने से गुल्म, प्लीहा (तिल्ली) प्रभृति रोग दूर होते हैं। यह रसायन है और अग्नि को दीपन करता है। मात्रा ४-६ रत्ती॥ ६॥

पातव्यो युक्तितः क्षारः क्षीरेणोदधिशुक्तिजः। पयसा वा प्रयोक्तव्याः पिप्पल्यः प्लीहशान्तये॥ ७॥

दूध के साथ मुक्ताशुक्ति भस्म २ रत्ती प्रमाण सेवन करने से या पीपल दूध के साथ सेवन करने से प्लीहा रोग नष्ट होता है॥ ७॥

मुष्टियोग ।

रोहीतकाभयकाथः कणाक्षारसमन्वितः ॥ ८ ॥

रोहेड़ा की छाल या हरड़ के काढ़े में पीपल का चूर्ण या जवाखार ऊपर से मिलाकर पीने से प्लीहारोग शान्त होता है ॥ ८ ॥

शोभाञ्जनकनिर्यूहं सैन्धवाग्निकणान्वितम् । पलाशक्षारयुक्तं वा यवक्षारं प्रयोजयेत् ॥ ९ ॥

सहजने की छाल के काढ़े में सेंधा नमक, चित्रक तथा पीपल का प्रक्षेप (ऊपर से मिलाना) देकर सेवन करने से प्लीहा (तिल्ली) रोग शान्त होता है । इसी तरह पलाशक्षार और यवक्षार को बराबर-बराबर मिलाकर ४-६ रत्ती प्रमाण से प्रयोग में लाने से बढ़ी हुई तिल्ली भी शान्त होती है ॥ ९ ॥

अर्कलवण ।

अर्कपत्रं सलवणमन्तर्धूमं दहेन्नरः । मस्तुना तत् पिबेत् क्षारं प्लीहगुल्मोदरापहम् ॥ १० ॥

आक की पत्तियाँ और सेंधानमक एकत्र कर, अन्तर्धूम भस्म करके ४-६ रत्ती दही के पानी के साथ सेवन करने से प्लीहा, गुल्म और उदररोग शीघ्र नष्ट होते हैं । मात्रा १ मासा ॥ १० ॥

विडङ्गादि योग ।

विडङ्गाज्याग्निसिन्धूत्थशक्तून् दग्ध्वा वचान्वितान् । पिबेत् क्षीरेण संचूर्ण्य गुल्मप्लीहोदरापहान् ॥ ११ ॥

वायविडङ्ग, घी, चित्रक, सेंधानमक, जौ का सत्तू, वच इन कुल द्रव्यों को इकट्ठा कर और मिलाकर अन्तर्धूम भस्म करके दूध के साथ २ मासा प्रमाण सेवन करने से गुल्म, प्लीहा (तिल्ली) उदर रोग आदि शान्त होते हैं ॥११॥

भल्लातकादि मोदक ।

भल्लातकाभयाजाजी गुडेन सह मोदकः । सप्तरात्रान्निहन्त्याशु प्लीहानमतिदारुणम् ॥ १२ ॥

शुद्ध किया हुआ भिलावा, हरड़, जीरा, इनमें विधि के अनुसार गुड़ मिलाकर लड्डू बनावे। रोगी को लगातार एक सप्ताह तक सेवन कराने से अत्यन्त कष्टदायक प्लीहा (तिल्ली) भी शान्त होती है और इसे दूध के साथ भी सेवन कराना चाहिए । मात्रा १ मासा ॥ १२ ॥

यकृत्नाशक योग ।

प्लीहोदिष्टां क्रियां सर्वां यकृन्नाशाय योजयेत् । दध्ना भुक्तवतो वामबाहुमध्ये शिरां भिषक् ॥ १३ ॥ विध्येत् प्लीहविनाशाय यकृन्नाशाय दक्षिणे । प्लीहानंमर्दयेद्गाढं दुष्टरक्तं प्रवर्त्तयेत् ॥ १४ ॥

दध्ना भुक्तवतो वामबाहोः कूर्परसन्धौ अभ्यन्तरतः शिरां विध्येत् ।

लशुनं पिप्पलीमूलमभयाञ्चैव भक्षयेत् । पिबेद्गोमूत्रगण्डूषं प्लीहरोगनिवृत्तये ॥१५॥ प्लीहानं यकृतं वृद्धं मूत्रस्वेदैरुपाचरेत् । प्लीहजित् शरपुङ्खायाः कल्कस्तक्रेण सेवितः ॥ १६ ॥

यकृत्रोग की प्लीहा में कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये । प्लीहारोग में रोगी को दही के साथ भोजन कराकर बायें हाथ की कफोणिसन्धि (केहुनी) की भीतरी शिरा को विद्ध कर रक्तमोक्षण (फसद खोलकर) करना चाहिये । यकृत्रोग में दाहिने हाथ की केहुनी की भीतरी शिरा को विद्ध कर रक्तमोक्षण करावे (रुधिर निकाल दे) । प्लीहा को भली भाँति मलकर वहाँ से दूषित रक्त निकाल देने से प्लीहा नष्ट होती है ।

लहसुन, पिपरामूल और हर्र इनका चूर्ण बनाकर चुल्लू भर गोमूत्र के साथ सेवन करने से प्लीहारोग नष्ट होता है । बढ़ी हुई प्लीहा और यकृत् में गोमूत्र का स्वेद देने से अत्यन्त

लाभ होता है । शरफोंका को पीसकर तक्र[1] के साथ पीने से प्लीहारोग नष्ट होता है । चूर्ण की मात्रा ३ मासा ॥ १३-१६ ॥

माणकादि गुटिका ।

माणमार्गामृता वासा स्थिरासैन्धवचित्रकम् । नागरं तालपुष्पञ्च प्रत्येकञ्च त्रिकार्षिकम् ॥ १७ ॥ ॥ विटसौवर्चलक्षारपिप्पल्यश्चापि कार्षिकः । एतच्चूर्णीकृतं सर्वं गोमूत्रस्याढकेपचेत् ॥ १८ ॥ सान्द्रीभूते गुटीं कुर्य्याद्दत्त्वा त्रिपलंमाक्षिकम् । यकृत्प्लीहोदरहरो गुल्मार्शोग्रहणीहरः । योग परिकरो नाम्ना ह्यग्निसन्दीपनः परः ॥ १९ ॥

एतत्सर्वचूर्णं मक्षिप्य गोमूत्राढके पचेत् । ततो गुडवत् पाके शीते च मधु प्रक्षिप्य गुटिका कार्य्या । परिकरो विरेकस्तत्कारकत्वात् परिकरः विरेककारीत्यर्थः । उक्तं हि "भवेत् परिकरः सङ्घे समारम्भविरेकयो" इति ।

पुराना मानकन्द, अपामार्ग (चिरचिरा क मूल की भस्मजन्य क्षार), गुरच, अडूसा की जड़, शालपर्णी, सेंधानमक, चीता, सोंठ ताड़ का फूल प्रत्येक ३ तोले, बिड़नोन, सौवर्चलनमक, यवक्षार और पीपरि प्रत्येक एक तोला, इन सब औषधों का एकत्र चूर्ण बनाकर ६ सेर ३२ तोला गोमूत्र में घोलकर पाक करे । जब पककर गाढ़ा हो जावे तब १२ तोले मधु मिलाकर तीन २ मासे की गोलियाँ बनावे । इसका सेवन करने से विरेचन होकर यकृत्, प्लीहा, उदर, गुल्म, बवासीर और ग्रहणीरोग नष्ट होते हैं यह परिकर नामक योग अग्निवर्द्धक है ॥ १७ १९ ॥

[1] मलाईसहित दही को मथकर तक्र बनाना चाहिये।

वृहन्माणकादि गुटिका ।

माणमार्गस्थिरावह्निस्नुहीनागरसैन्धवम् । तालरण्डं कृमिघ्नञ्च हवुषञ्चविका वचा ॥ २० ॥ विटसौवर्चलक्षारपिप्पलीशरपुङ्खकम् । जीरकं पारिभद्रञ्च प्रत्येकं कर्षकद्वयम् ॥ २१ ॥ सार्द्धाढके गवां मूत्रे पचेत् सर्वं सुचूर्णितम् । सान्द्रीभूते क्षिपेद्देषां चूर्णकं कर्षसम्मितम् ॥२२॥ अजाजीत्र्यूषणं हिङ्गु यमानी पुष्करं शटी । त्रिवृद्दन्ती विशाला च दत्त्वा त्रिपलमाक्षिकम् ॥ २३ ॥ खादेदग्निबलापेक्षी बुद्ध्वा चानुपिवेन्नरः । यकृत्प्लीहोदरानाहं गुल्मं पाण्डुं सकामलम् ॥ २४ ॥ कुक्षिशूलञ्च हृच्छूलं पार्श्वशूलमरोचकम् । शोथञ्च श्लीपदं हन्ति जीर्णञ्च विषमज्वरम् ॥ २५ ॥

पुराना मानकन्द, चिरचिरा, सालपर्णी, चीता, थूहर, सोंठ, सेंधानमक, ताड़ के फूल का अन्तर्धूमभस्मजन्य क्षार, वायविडङ्ग, हाऊबेर, चव्य, वच, बिड़नोन, सौवर्चलनमक, यवक्षार, पीपरि, शरफोंका, जीरा और फरहद की जड़ की छाल प्रत्येक २ तोले, गोमूत्र ६ सेर ४८ तोला इन सब द्रव्यों को एकत्र कर पाक करे । पाक के गाढ़े होने पर उसमें नीचे लिखे औषधों का चूर्ण मिलाकर उतार लेने । वे यह हैं--जीरा, सोंठ, मिर्च, पीपल, हींग, अजवायन, पुष्करमूल, नरकचूर, निसोथ, जमालगोटे की जड़ और इन्द्रायन प्रत्येक का चूर्ण एक २ तोला । शीतल होने पर १२ तोले मधु मिश्रित कर गोलियाँ बना लेवे । रोगी के दोष और बलाबल का विचार कर मात्रा तथा अनुपान स्थिर करे । इसका सेवन करने से यकृत्, प्लीहा, उदर, आनाह, गुल्म, पाण्डुरोग, कामला, कुक्षिशूल, हृदयशूल पसलियों की पीड़ा, अरोच, शोथ, श्लीपद,

जीर्णज्वर और विषमज्वर नष्ट होते हैं। मात्रा ३ मासा ॥२०-२५॥

चित्रकादि लौह।

चित्रकं नागरं वासा गुडूची शालपर्णिका। तालपुष्पमपामार्गो माणकं कार्षिकत्रयम् ॥ २६ ॥ लौहमभ्रं कणाताम्रं क्षारकौ लवणानि च पृथक्कर्षांशमेतेषां चूर्णमेकत्र चिक्कणम् ॥ २७ ॥ चतुः प्रस्थे गवां मूत्रे पचेन्मन्देन वह्निना। सिद्धशीतं समुद्धृत्य माक्षिकं द्विपलं क्षिपेत् ॥२८॥ चित्रकादिरयं लौहो गुल्मप्लीहोदरामयान्। यकृतं ग्रहणीं हन्ति शोथं मन्दानलं ज्वरम्। कामलां पाण्डुरोगञ्च गुदभ्रंशं प्रवाहिकाम् ॥ २९ ॥

चीता, सोंठ, अरूसा की जड़, गिलोय, सरिवन, ताल के फूल का अन्तर्धूमभस्म-जन्य क्षार, चिरचिरा और मानकन्द प्रत्येक ३ तोले, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, पीपरि, यवक्षार और पाँचों नमक प्रत्येक एक-एक तोला। इन सब द्रव्यों का एकत्र चूर्ण बनाकर, ६ सेर ३२ तोले गोमूत्र में मिश्रित कर धीमी आँच से पकावे। गोमूत्र जल जाने पर उतार लेवे। शीतल होने पर उसमें ८ तोले मधु मिला कर रख ले। इसको 'चित्रकादिलौह' कहते हैं। इस लौह का सेवन करने से गुल्म, प्लीहा, उदररोग, यकृत्, ग्रहणी, शोथ, अग्निमान्द्य, ज्वर, कामला, पाण्डुरोग, गुदभ्रंश और प्रवाहिका ये सब रोग नष्ट होते हैं। मात्रा १-१॥ मासा ॥ २६-२९ ॥

अभया लवण।

पारिभद्रपलाशार्कस्नुह्यपामार्गचित्रकान्। वरुणाग्निमन्थवसुकश्वदंष्ट्राबृहतीद्वयम् ॥ ३० ॥ पूतिकारस्फोतकुटजकोपातक्यः पुनर्नवा। समूलपत्रशाखाश्च क्षोदयित्वा उलूखले ॥ ३१ ॥ तिलनालमदीप्ताग्निमुदग्धं भस्मशीतलम्। क्षारप्रस्थं गृहीत्वा तु न्यसेत् पात्रे दृढे नवे ॥ ३२ ॥ जलद्रोणे विपक्तव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम्। पूर्ववत् क्षारकल्केन साधयीत विचक्षणः ॥ ३३ ॥ प्रस्थमेकञ्च लवणं तदर्द्धाञ्च हरीतकीम्। तुल्यांशुभागं गोमूत्रं साधयेन्मृदुनाग्निना ॥ ३४ ॥ किञ्चित् सवाष्पसान्द्रे च सम्यक्सिद्धेऽवतारिते। अजाजी त्र्यूषणं हिङ्गु यमानी पौष्करं शटी ॥ ३५ ॥ एतैरर्द्धपलैर्भागैश्चूर्णं कृत्वा प्रदापयेत्। अभयालवणं नाम भक्षयेच्च यथाबलम् ॥ ३६ ॥ व्याधिञ्च वीक्ष्य मतिमान् अनुपानं यथाहितम्। ये च कोष्ठगता रोगास्तान्निहन्ति न संशयः ॥ ॥३७॥ यकृत्प्लीहोदरानाहगुल्माष्ठीलाग्निसादजित्। हन्याच्छिरोऽर्त्तिहृद्रोगं शर्कराश्मरिनाशनम् ॥ ३८ ॥

फरहद, ढाक की छाल, आक का मूल, थूहर, चिरचिरा, चीता, बरना, अरनी, अगस्ति वृक्ष की छाल, गोखुरू, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, बकुची, अनन्तमूल, कुड़े की छाल, कडुई तरोई, पुनर्नवा का पञ्चाङ्ग, इन सबको एकत्र उलूखल (ओखरी) में कूटकर, एक हाँडी में रक्खे। हाँडी का मुख बन्द करके, चूल्हे पर चढ़ाकर नीचे तिल की लकड़ी की आँच देवे। हाँडी की औषधों के भस्म हो जाने पर उतारकर शीतल कर लेवें। तदनन्तर १ सेर इस भस्म को २५ सेर ४८ तोला जल में पकावे। ६ सेर ३२ तोले जल अवशिष्ट रहने पर उतार कर छान लेवे। पश्चात् उस जल में ६४ तोले सेंधानमक, ३२ तोला हरीतकी ६ सेर ३६ तोला गोमूत्र मिलाकर फिर चूल्हे पर चढ़ाकर धीमी आँच से पकावे। कुछ भाप निकलते हुए गाढ़ा हो जाने पर उतार कर, उसमें

जीरा, सोंठ, मिरिच, पीपरि, भूनी हींग, अजवाइन, कूठ, कचूर प्रत्येक का दो दो तोला चूर्ण मिला देवे । इसका नाम अभयालवण है । इसकी मात्रा २ मासे । अनुपान उष्ण जल । इसके अतिरिक्त रोगी का बलाबल तथा दोष आदि देखकर मात्रा और अनुपान स्थिर करना चाहिये । यह लवण कोष्ठगत हर प्रकार के रोग को नष्ट करता है । इसका सेवन करने से यकृत्, प्लीहा, उदर, आनाह, गुल्म, अष्ठीला, अग्निमान्द्य, मस्तकपीड़ा, हृदयरोग, शर्करा और अश्मरी ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ३०-३८ ॥

गुड पिप्पली ।

विडङ्गं त्र्यूषणं कुष्ठं हिङ्गुर्लवणपञ्चकम् । त्रिक्षारं फेनकं वह्निः श्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥ ३९ ॥ तालपुष्पोद्भवं क्षारं नाड्याः कूष्माण्डकस्य च । अपामार्गस्य चिञ्चायाश्चूर्णानि चिक्कणानि च ॥ ४० ॥ सर्वचूर्णसमं देयं चूर्णमत्र कणोद्भवम् । एतस्माद् द्विगुणाच्चूर्णात् पुराणो द्विगुणो गुडः ॥ ४१ ॥ मर्दयित्वा दृढे पात्रे मोदकानुपकल्पयेत् । भक्षयेदुष्णतोयेन प्लीहानं हन्ति दुस्तरम् ॥ ४२ ॥ यकृतं पञ्चगुल्मञ्च उदरं सर्वरूपकम । जीर्णज्वरं तथा शोथं कासं पञ्चविधं तथा । अश्विभ्यां निर्मिता श्रेष्ठा बालानां गुडपिप्पली ॥ ४३ ॥

वायविडङ्ग, त्रिकटु, कूठ, भूनी हींग, पाँचों नमक, यवक्षार, सज्जीक्षार, सोहागा फूला हुआ, समुद्रफेन, चीता, गजपीपरि, कलौंजी, ताल के फूल की अन्तर्धूमभस्मजन्य क्षार, पेठा की डंडी की भस्म, चिरचिरा की भस्म और इमली की छाल की भस्म प्रत्येक समभाग, उसमें कुल चूर्ण का समान भाग छोटी पीपर का चूर्ण मिलावे । तदनन्तर इस कुल योग (नुसखा) का दूना पुराना गुड़ मिलाकर खरल में भली भाँति मर्दन करके तीन-तीन मासे के लड्डू बना लेवे । उष्ण जल के साथ इसका सेवन करने से घोर प्लीहा, यकृत्, पांच प्रकार के गुल्म, हर प्रकार के उदररोग, जीर्णज्वर, शोथ और पांच प्रकार के कास ये सब रोग नष्ट होते हैं । यह औषध बालकों के लिये विशेष उपयोगी है ॥ ३९-४३ ॥

लवणत्रितयादिचूर्ण ।

लवणत्रितयं क्षारो शत पुष्पा द्वयं वचा अजमोदाऽजगन्धा चहवुषा जीरकद्वयम ॥ ४४ ॥ मरिचं पिप्पली मूलं पिप्पली-गजपिप्पली ॥ ४५ ॥ हिङ्गुश्च हिङ्गुपत्री च शठा पाठोपकुञ्चिका शुण्ठी चित्रक चव्यानि विडङ्गं चाम्लवेतसम् दाडिमं तिन्तिडीकंचा त्रिवृन्दन्ति शतावरी ॥४६॥ इन्द्रवारुणिका भार्ङ्गी देव दारु यवानिका कुस्तुम्बुरु स्तुम्बुरुणि पौष्करं बदराणि च ॥ ४७ ॥ शिवा चेति समांशानि चूर्णमेकत्र कारयेत् भावयेदार्द्रकरसैर्बीजपूर रसैस्तथा ॥ ४८ ॥ तत्पिबेत्सर्पिषा जीर्णमद्येनोष्णोदकेनवा कोलाम्भसा वा तक्रेण दुग्धेनौष्ट्रेणमस्तुना ॥ ४९ ॥ यकृत्पृष्ठ कटी शूलगुद कुक्षि हृदामयम् अर्शोविष्टम्भ मन्दाग्नि गुल्माष्ठीलोदराणि च ॥ ५० ॥ हिक्काध्मानश्वास कासञ्जयेदेतान्न संशयः एतैरियौषधैः सम्यग्घृतं वासाधयेद्विपक् ॥ ५१ ॥

सेंधानमक काला विडनमक, जवाखार, सज्जीखार, सौंफ सोयाके बीज, बच, अजमोद, वनतुलसी (बबई) हाऊबेर, जीरा, कालाजीरा, कालीमिर्च पिपलामूल पीपरि, गज पीपरि, भुनी हींग हिंगुपत्री, कचूर, पाढ, कलौंजी, सोंठ, चीतों की जड़, शतावरी, इन्द्रायण की जड़

चव्य बाय विडंग, अमलबेत, अनार दाना, तिन्तिडीक, निसोथ, दन्तीकी जड़, भारंगी देवदारु, अजवायन, धनियाँ, तुम्बुरफल, नेपाली धनियाँ, पोहकरमूल बेर और छोटी हरड इन सब औषधियों को समान भाग ले चूर्ण बनावे। चूर्ण को अदरख और बिजौरे के रस से ७-७ बार घोट सुखावे। रोगानुसार घृत, पुरानी शराब, गरम पानी, बेर का काढ़ा, छाछ, ऊँटनी के दूध, और दही के जल (तोड़) के साथ इस चूर्ण को खाने से यकृत (जिगर) रोग पीठ का दर्द, कमर का दर्द, गुद पीड़ा, कोख के रोग, हृदय की पीड़ा, बवासीर, मल की रुकावट, मन्दाग्नि गोला, अष्ठीला, पेट के रोग हिचकी अफरा, श्वास, और खाँसी ये रोग अवश्य नष्ट होते हैं। ऊपर कही हुई औषधियों के कल्क से अच्छी तरह घी सिद्ध कर सेवन करने से भी ये रोग दूर हो जाते हैं॥ ४४-५१॥

गुडूच्यादि चूर्ण।

गुडूच्यतिविषाशुण्ठी भूनिम्बो यवतिक्तकम्। मुस्तं कणा यवक्षारः कासीसं भ्रमरातिथिः॥ ५१॥ एतेषां समभागेन चूर्णमेव विनिर्दिशेत्। यकृत्प्लीहापाण्डुरोगमग्निमान्द्यमरोचकम्॥ ५२॥ ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा। नानादेशोद्भवश्चैव वारिदोषभवं तथा। विरुद्धभेषजभवं ज्वरमाशु व्यपोहति॥ ५३॥

गिलोय, अतीस, सोंठ चिरायता, यवतिक्ता (कालमेघ), नागरमोथा, पीपरि, यवक्षार, हीरा-कसीस और चंपा की छाल, इन सब वस्तुओं को समभाग लेकर चूर्ण बना लेवे। इसका सेवन करने से यकृत्, प्लीहा, पाण्डुरोग, अग्निमान्द्य, अरुचि और आठ प्रकार के साध्य-असाध्य ज्वर तथा अनेक देशों में रहने से उत्पन्न जलदोषजन्य ज्वर तथा विरुद्ध औषधजन्य ज्वर शीघ्र नष्ट करता है॥ ५१-५३॥

प्लीहारिवटिका।

सहासाराभ्रकासीसलशुनानि समानि च। द्रोणीपुष्पीरसेनैव मर्दयेत्प्रहरत्रयम्॥ ५४॥ वल्लद्वयं प्रदातव्यं प्रदोषे सलिलं ह्यनु। प्लीहानं यकृतं गुल्ममग्निमान्द्यं सशोथकम्॥ ५५॥ कासं श्वासं तृषां कम्पं दाहं शीतं वमिभ्रमिम्। प्लीहारिवटिका ह्येषा नाशयेन्नात्र संशयः॥ ५६॥

अभ्रकभस्म, कसीस, लहसुन, नुसादर इन कुल द्रव्यों को बराबर लेकर और मिलाकर गोमा के रस से ३ पहर घोटकर गोलियाँ बना ले। मात्रा २ रत्ती से ४ रत्ती तक। इसे सायंकाल पानी के साथ सेवन कराने से प्लीहारोग (तिल्ली), यकृत् (जिगर), गुल्म, मन्दाग्नि, शोथ (सूजन), कास, श्वास, प्यास, कम्प (काँपना), दाह, शीत, वमि (कै), भ्रम (चक्कर आना) आदि रोग निःसन्देह दूर होते हैं॥ ५४-५६॥

यकृत्शूलविनाशिनी वटिका।

नरसारं कर्षमात्रं सैन्धवञ्च द्विकर्षकम्। कोकिलाक्षोद्भवं बीजं त्वचं रोहीतकस्य च॥ ५७॥ यमानी चित्रकश्चापि दशकर्षप्रमाणकम्। सम्मर्द्य बदरास्थ्याभां वटिकां पूतिकाम्बुना॥ ५८॥ कृत्वा तां योजयेद्धीमान् कारवेल्लाम्भसा समम्। हन्त्येषा यकृतो व्याधीन् गुल्मप्लीहोदराणि च॥ ५९॥

नौसादर २ तोले, सेंधानमक २ तोले, तालमखाने के बीज, रोहेड़ा की छाल, अजवायन, चित्रकी, हरएक १० तोले। इन्हें इकट्ठा करके करंजा के पत्तों के रस से घोटे और जब अच्छी तरह घुट जावे तो छोटे बेर की गुठली के बराबर गोली बना ले। अनुपान-करेले का रस। यह वटी यकृद्रोग (जिगर), गुल्म, प्लीहा, उदर रोग प्रभृति रोगों को नष्ट करती है॥ ५७-५९॥

महाघृत।

शुण्ठी व्याघ्री कणाहिङ्गु काल-

शाकं शिलाजतु। गुञ्जा सपञ्चलवणा पचेदेतैश्च कार्षिकैः ॥ ६०॥ गव्यस्य सर्पिषः प्रस्थं गव्यमूत्रे चतुर्गुणे। क्षीरे च द्विगुणे वैद्यो ब्रह्मजुष्टमिदं घृतम्। पीतं प्लीहोदरं हन्ति दूष्योदरमपि ध्रुवम् ॥ ६१॥

गाय का घी १२८ तोला, गोमूत्र ६ सेर ३२ तोला, दूध ३ सेर १६ तोला, कल्क के लिए सोंठ २ तोला, छोटी कटेरी २ तोला, पीपल १ तोला, हींग १ तोला, शरपुंखा १ तोला, शिलाजतु १ तोला, घुँघुची की जड़ १ तोला, पांचों नमक १ तोला, । विधि के अनुसार घृत सिद्ध करके प्रयोग में लाना चाहिये। इसके सेवन करने से प्लीहा, उदर रोग आदि दूर होते हैं। मात्रा ३ मासे से ६ मासे तक ॥६०-६१॥

वर्द्धमानपिप्पली।

क्रमवृद्ध्या दशाहानि दशपिप्पलिकं दिनम्। वर्द्धयेत् पयसा सार्द्धं तथैवापनयेत् पुनः ॥ ६२॥ जीर्णेऽजीर्णे च भुञ्जीत षष्टिकं क्षीरसर्पिषा। पिप्पलीनां सहस्रस्य प्रयोगोऽयं रसायनः ॥ ६३॥ दशपैप्पलिकः श्रेष्ठो मध्यमः षट् प्रकीर्त्तितः। यस्त्रिपिप्पलिपर्य्यन्तः प्रयोगः सोऽवरः स्मृतः ॥ ६४॥ बृंहणं वृष्यमायुष्यं प्लीहोदरविनाशनम्। वयसः स्थापनं मेध्यं पिप्पलीनां रसायनम् ॥ ६५॥ पञ्चपिप्पलिकश्चापि दृश्यते वर्द्धमानकः। पिष्टा च बलिभिः पेया शृता मध्यबलैर्नरैः। शीतीकृत्य ह्रस्वबलैर्हृदोषामयान् प्रति ॥ ६६॥

पहिले दिन दश पीपरि, दूसरे दिन बीस, तीसरे दिन तीस, चौथे दिन चालीस, पांचवें दिन पचास, छठे दिन साठ, सातवें दिन सत्तर, आठवें दिन अस्सी, नवें दिन नब्बे और दसवें दिन सौ पीपर दूध के साथ सेवन करे। तदनन्तर दश दिन पर्यन्त प्रतिदिन दश पीपर घटावे। दश दिन के अनन्तर फिर प्रतिदिन दश पीपरि की वृद्धि करे। दश दिन पूर्ण होने पर फिर पूर्ववत् ह्रास और फिर पूर्ववत् वृद्धि इस क्रम से दूध के साथ सहस्र पिप्पली सेवन करे। पथ्य साठी के चावल का भात, घी और दूध। दश दिन पर्यन्त प्रतिदिन १० पीपरि की वृद्धि और दश दिन के पश्चात् प्रतिदिन १० पीपरि का ह्रास करना यह उत्तम प्रयोग है। दश दिन पर्यन्त प्रतिदिन ६ पीपरि की वृद्धि और दश दिन के अनन्तर प्रतिदिन ६ पीपरि का ह्रास करना यह मध्यम प्रयोग है। पहिले दिन ३ पीपरि का सेवन करना और तदनन्तर दश दिन पर्यन्त प्रतिदिन ३ पीपरि की वृद्धि और दश दिन के अनन्तर प्रतिदिन ३ पीपरि का ह्रास करना यह अधम प्रयोग है।

दश दिन पर्यन्त प्रतिदिन ५ पीपरि की वृद्धि और दश दिन के अनन्तर प्रतिदिन ५ पीपरि के [1] ह्रास का नियम भी दृष्ट है।

इस प्रकार पिप्पली का सेवन करने से प्लीहा, उदररोग का नाश, बल, वीर्य और आयु की वृद्धि होती है।

बलवान् मनुष्य इन पिप्पलियों को जल में पीसकर पान करे। मध्यम (औसत दर्जे के) बलवाले मनुष्य क्वाथ बनाकर कुछ उष्ण रहते ही छानकर पीवे। अल्प बलवाले मनुष्य क्वाथ को शीतल कर पान करें यह धातुवर्धक, पुरुषार्थवर्धक, आयु के लिये हित, प्लीहनाशक, वय को स्थिर रखनेवाला और धारणाशक्ति को बढ़ानेवाला योग है ॥ ६२-६६॥

[1] इस समय प्रतिदिन एक एक पिप्पली की वृद्धि और ह्रास करना यही अच्छा है। कारण यह कि आजकल के मनुष्यों में प्राचीन काल के मनुष्यों के समान बल न होने से एक साथ अधिक मात्रा में पिप्पली का प्रयोग करने से भयङ्कर विकार होने की संभावना है। क्योंकि पिप्पली में भी कुछ विष का अंश है।

महारोहीतक घृत।

रोहीतकात् पलशतं क्षोदयेद्बदराढकम्। साधयित्वा जलद्रोणे चतुर्भागावशेषितम् ॥ ६७ ॥ घृतप्रस्थं समावाप्य छागक्षीरं चतुर्गुणम्। तस्मिन् दद्यादिमान् कल्कान् सर्वास्तानक्षसम्मितान् ॥ ६८ ॥ व्योषं फलत्रिकं हिङ्गुर्यमानी तुम्बुरुं विडम्। अजाजी कृष्णलवणं दाडिमं देवदारु च ॥ ६९ ॥ पुनर्नवा विशाला च यवक्षारं सपौष्करम्। विडङ्गं चित्रकञ्चैव हवुषा चविका वचा ॥ ७० ॥ एभिर्घृतं विपक्वन्तु स्थापयेद्भाजने शुभे। द्वितोलकमितां मात्रां व्याधिं बलमवेक्ष्य च ॥७१॥ रसकेनाथ यूषेण पयसा वापि भोजयेत्। उपयुक्तघृतं ह्यस्मिन् व्याधीन्हन्यादिमान् बहून् ॥ ७२ ॥ यकृत्प्लीहोदरञ्चैव प्लीहशूलं यकृत्तथा। कुक्षिशूलञ्च हृच्छूलं पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ७३ ॥ विबद्धशूलं शमयेत् पाण्डुरोगं सकामलम्। छर्द्यतीसारशूलघ्नं तन्द्राज्वरविनाशनम्। महारोहीतकं नाम प्लीहानं हन्ति दारुणम् ॥७४॥

अत्र बदराढकं त्यक्त्वा जलद्रोणे इति ज्ञेयं तेन जलद्रोणद्वयेन रोहीतकपलशतस्य बदरचूर्णाढकस्य च क्वाथो युक्तः। अन्यथा जलस्य अल्पत्वात्तथाविधः पाको न स्यात्। केचिदिह गृह्णन्ति तन्त्रांतरसंवादात् क्षारद्वयं पञ्चलवणञ्च। रोहीतबदराभ्यां मिलित्वा क्वाथः कर्त्तव्य इति वृद्धाः।

रोहिड़ा की कुटी हुई छाल ५ सेर, बैर का चूर्ण ३ सेर १६ तोला, इन दोनों द्रव्यों को एकत्र २१ सेर ४८ तोला जल में धीमी आँच से पकावे। ५ सेर ३२ तोला जल शेष रहने पर छान क्वाथ को रख लेवे। उस क्वाथ में घृत १२८ तोला, और बकरी का दूध ६ सेर ३२ तोला मिलावे। तदनन्तर त्रिकटु, त्रिफला, भूनी हींग, अजवाइन, धनिया, बिड़नमक, जीरा, कालानमक, अनार के बीज, देवदारु, गदापुरैना (सांठी), इन्द्रायण की जड़, यवक्षार, कूठ, बायबिडङ्ग, चीता, हाऊबेर, चव्य और बच प्रत्येक एक तोला, इन सब औषधों का कल्क बनाकर पूर्वोक्त क्वाथ आदि मिश्रित करके धीमी आँच में घृत सिद्ध करे। रोगी के बल और रोग का विचार करके २ तोले की मात्रा में इस घृत का सेवन करना चाहिये। अनुपान मांसरस, दाल का जूस और दुग्ध आदि। इस घृत का सेवन करने से यकृत्, प्लीहा, उदररोग, प्लीहाजन्य शूल, यकृत्-जन्य शूल, हृदय का शूल, पसलियों की पीड़ा, अरुचि, विबद्धशूल, पाण्डुरोग, कामला, छर्दि, अतिसार, तन्द्रा और ज्वर ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ६७-७४ ॥

प्लीहारि रस।

पारदं गन्धकं टङ्कं विषं व्योषं फलत्रिकम्। तोलकस्य समोपेतं जैपालञ्च तदर्द्धकम् ॥ ७५ ॥ किंशुकस्य रसेनैव याममात्रन्तु मर्दयेत्। गुञ्जामात्रां वटीं कृत्वा छायायां शोषयेत्ततः ॥ ७६ ॥ वटिकैका प्रदातव्या शृङ्गबेररसेन च। गुदाङ्कुरे गुल्मशूले प्लीहशोथे कफात्मके ॥ ७७ ॥ उदावर्त्ते वातशूले श्वासकासज्वरेषु च। रसः प्लीहारिनामायं कोष्ठामयविनाशनः। आमवातगदच्छेदी श्लेष्मामयविनाशनः ॥ ७८ ॥ अत्र सर्वेषामर्द्ध जयपालम्।

पारा, गन्धक, सोहागा फूला हुआ, विष, सोंठ, मिरिच, पीपरि, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, प्रत्येक १ तोला, जमालगोटा के बीज ५ तोले इन सब द्रव्यों को चूर्णित करके पलाश (टेस)

के फूलों के रस में एक प्रहर पर्यन्त खरल करके एक रत्ती प्रमाण गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा लेवे । अनुपान अदरख का रस । इस औषध का सेवन करने से बवासीर, गुल्मजन्य शूल, प्लीहा, शोथ, उदावर्त, वातशूल, श्वास, कास, ज्वर, हर प्रकार के कोष्ठगत रोग, आमवात और कफरोग नष्ट होते हैं ॥ ७२-७६ ॥

वासुकिभूषण रस ।

सूतेन वङ्गन्तु समं नियोज्य तत्तुल्यशुल्वेन च गन्धकेन । विमर्दयेदर्करसेन यामं मृदा च संलिप्य पुटं ददीत ॥ ७७॥ वासारसैस्तं परिभावयेच्च रसो भवेद्वासुकि भूषणोऽयम् । प्लीहस्य गुल्मस्य च शान्तयेऽस्य गुञ्जाञ्च दद्याद्वसुचूर्णयुक्तम् ॥ ७८ ॥

पारा, गन्धक, वङ्गभस्म, और ताम्रभस्म समभाग, इन सब द्रव्यों को लेकर मदार की पत्तियों के रस में एक प्रहर पर्यन्त खरल करके गोला बनावे । उस गोले को आक की पत्तियों से ढक कर ऊपर से मिट्टी का लेप करके पुटपाक करे । तदनन्तर मिट्टी आदि अलग कर उस गोले को अरूसा की पत्तियों के रस में खरल करके एक रत्ती प्रमाण गोलियाँ बनावे । सेंधानमक के साथ इस वासुकिभूषण रस का सेवन करने से प्लीहा और गुल्मरोग नष्ट होते हैं ॥ ७७-७८ ॥

वसुसैन्धव । विद्याधर रस ।

गन्धकं तालकं ताप्यं मृतं ताम्रं मनःशिला । शुद्धसूतञ्च तुल्यांशं मर्दयेद्यामयेद्दिनम् ॥ ७९ ॥ पिप्पल्यांश्च कषायेण वज्रीक्षीरेण भावयेत् । गुञ्जार्द्धं सेवितं क्षौद्रैर्गुल्मप्लीहादिकं जयेत् । रसो विद्याधरो नाम गोदुग्धञ्च पिबेदनु ॥ ८० ॥

गन्धक, हरिताल, स्वर्णमाक्षिक, ताम्रभस्म, मैनसिल और पारा समभाग; इन सब द्रव्यों को छोटी पीपरि के काढ़े में और थूहर के दूध में एक एक दिन खरलकरके ½ रत्ती प्रमाण गोलियाँ बनावे । अनुपान गाय का दूध और शहद । इस रस का सेवन करने से प्लीहा और गुल्म आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ७९-८० ॥

रसराज ।

गन्धकेन मृतं ताम्रं शुद्धगन्धकतुल्यकम् । द्वयो पादं शुद्धरसं मर्दयेच्छूरणद्रवैः ॥ ८१ ॥ पुटेद्गजपुटे विद्वान् स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् । गुञ्जार्द्धं विलिहेत् क्षौद्रैः प्लीहगुल्मविनाशनम् ॥ ८२ ॥ यकृच्छूलं ज्वरं हन्ति कान्तिपुष्टिविवर्द्धनः । रसराज इति ख्यातो रोगवारणकेशरी ॥ ८३ ॥

गन्धक के संयोग से बनाया हुआ ताम्रभस्म १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, शुद्ध पारा ६ मासे; इन सब द्रव्यों को एकत्र सूरन (जिमीकन्द) के रस में खरल करके गजपुट में पाक करे । स्वाङ्गशीतल होने पर औषध को निकाल लेवे । मात्रा ½ रत्ती । अनुपान मधु । इस रसराज का सेवन करने से यकृत, प्लीहा और गुल्मरोग नष्ट होते हैं और कान्ति तथा पुष्टि की वृद्धि होती है ॥ ८१-८३ ॥

प्लीहान्तक रस ।

मृतशुल्वञ्च तारञ्च गगनायसमौक्तिकाः । दरदं पुष्पकं सूतं गन्धकं नवमं तथा ॥ ८४ ॥ गुग्गुलुः त्रिकटु रास्ना तथा जैपालवीजकम् । त्रिफला कटुका दन्ती देवदाली तु सैन्धवम् ॥ ८५ ॥ त्रिवृता तु यवक्षारं वातारितैलमर्दितम् । अष्टोदराणि पाण्डुत्वमानाहं विषमज्वरम् ॥ ८६ ॥ अजीर्णमामञ्च कफं क्षयञ्च सर्वशूलकम् । कासं श्वासञ्च शोथञ्च सर्वमाशु व्यपोहति । प्लीहान्तको रसो नाम प्लीहोदरविनाशनः ॥ ८७ ॥

ताम्रभस्म' चाँदी की भस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, मुक्ताभस्म, हिंगुल, रसौत, पारा, गन्धक, गूगुल, त्रिकटु, रासना, जमालगोटा, त्रिफला, कुटकी, जमालगोटा का मूल, घघरबेल का मूल, सेंधानमक, निशोथ और यवक्षार; इन सब द्रव्यों को समान परिमाण में लेकर अरण्ड के तेल में खरल करके १ रत्ती प्रमाण गोलियाँ बना लेवे। इसका सेवन करने से आठ प्रकार के उदररोग, पाण्डुरोग, आनाह, विषमज्वर, अजीर्ण, आमदोष, कफ, क्षय, सब प्रकार के शूल, कास, श्वास, शोथ, प्लीहा और प्लीहोदर ये सब रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ८४-८७ ॥

प्रसिद्ध लोकनाथ रस।

पारदं गन्धकञ्चैव समभागं विमर्दयेत् मृताभ्रं रसतुल्यञ्च पुनस्तत्रैव मर्दयेत् ॥ ८८ ॥ रसद्विगुणलौहञ्च लौहतुल्यञ्च ताम्रकम्। वराटिकाया भस्माथ पारदत्रिगुणं कुरु ॥ ८९ ॥ नागवल्लीरसेनैव मर्दयेत् यत्नतो भिषक्। पुटेल्लघुपुटे विद्वान् स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ ९० ॥ मधुना पिप्पलीचूर्णं सगुडां वा हरीतकीम्। अजाजीं वा गुडेनैव भक्षयेदनुपानतः। यकृद्गुल्मोदरहरः प्लीहश्वयथुनाशनः॥ ९१ ॥ जीर्णज्वरं तथा पाण्डुं कामलाञ्च विनाशयेत्। अग्निमान्द्यञ्च शमयेल्लोकनाथो रसोत्तमः ॥ ९२ ॥

पारा, गन्धक, और अभ्रकभस्म प्रत्येक १ तोला, लोहभस्म, ताम्रभस्म, प्रत्येक दो-दो तोला और कौडी की भस्म ३ तोले, इन सब द्रव्यों को पान के रस में खरल करके लघुपुट में पाक करे। स्वाङ्गशीतल होने पर औषध को निकाल लेवे। अनुपान मधु और पीपरि का चूर्ण, पुराना गुड़ और हरीतकी अथवा जीरा और पुराना गुड। इनका सेवन करने से यकृत, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, शोथ, जीर्णज्वर, पाण्डुरोग, कामला और अग्निमान्द्य ये सब रोग शान्त होते हैं। मात्रा आधी रत्ती से दो रत्ती ॥ ८८-९२ ॥

वृहल्लोकनाथ रस।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं खल्ले कुर्याच्च कज्जलम्। सूततुल्यं जारिताभ्रं मर्दयेत्कन्यकाम्बुना ॥ ९३ ॥ ततो द्विगुणितं दद्यात्ताम्रं लौहं प्रयत्नतः। सूतान्नवगुणं देयं वराटी सम्भवं रजः॥ ९४ ॥ काकमाचीरसेनैव सर्वं तद्गोलकीकृतम्। ततो पचेद् गजपुटे स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ ९५ ॥ शिवं सम्पूज्य यत्नेन द्विजातीन परितोष्य च। भक्षयेदस्य चूर्णस्य द्विगुञ्जं मधुना सह ॥ ९६ ॥ प्लीहानमग्रमांसञ्च यकृतं सर्वरूपिणम्। जीर्णज्वरं तथा गुल्मं कामलां हन्ति दारुणाम् ॥ ९७ ॥

पारा १ तोला, गन्धक २ तोला; इन दोनों को खरल करके कजली बना लेवे। पश्चात् उसमें अभ्रकभस्म १ तोला मिलाकर ग्वारपाठे के रस में खरल करे। तदनन्तर ताम्रभस्म २ तोले, लोहभस्म २ तोले और कौड़ी की भस्म ९ तोले मिश्रित कर मकोय की पत्तियों के रस में खरल करके एक गोला बना लेवें। उस गोला को मिट्टी के सकोरा में रखकर ऊपर दूसरे सकोरा से ढककर कपड़मिट्टी करके गजपुट में पाक करे। स्वाङ्गशीतल होने पर औषध को निकाले। मात्रा २ रत्ती। अनुपान मधु इसका सेवन करने से प्लीहा, यकृत्, अग्रमांस, जीर्णज्वर, गुल्म और कामला ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ९३-९७ ॥

रोहीतक लौह।

रोहीतकसमायुक्तं त्रिकत्रययुतन्त्वयः। प्लीहानमग्रमांसञ्च शोथं हन्ति न संशयः ॥ ९८ ॥

रोहिड़ा की छाल, सोंठ, मिरिच, पीपरि, आँवला, हर्र बहेड़ा, बायविडङ्ग, नागरमोथा और चीता का मूल प्रत्येक औषध को समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करे। उसमें कुल चूर्ण के समान लोहभस्म मिलाकर खरल करे। इसका सेवन करने से प्लीहा, अग्रमांस और शोथ नष्ट होते हैं। मात्रा २ रत्ती ॥ ६८ ॥

यकृत्प्लीहारि लौह।

हिंगुलसम्भवं सूतं गन्धकं लौहमभ्रकम्। तुल्यं द्विगुणताम्रन्तु शिला च रजनी तथा ॥ ९९ ॥ जयपालं टङ्कनञ्च शिलाजतु समं रसात्। एतत्सर्वं समाहृत्य चूर्णीकृत्य विमिश्रयेत् ॥ १०० ॥ दन्ती त्रिवृच्चित्रकञ्च निर्गुण्डीत्र्यूषणं तथा। आर्द्रकं भृङ्गराजश्च रसैरेषां पृथक् पृथक् ॥ १०१॥ भावयित्वा वटीं कुर्य्याद्बदरास्थिमितां भिषक्। प्लीहानं यकृतञ्चैव चिरकालानुबन्धिनम् ॥ १०२ ॥ एकजं द्वन्द्वजञ्चैव सर्वदोषभवं तथा। हन्यादष्टोदराणीह ज्वरं पाण्डुञ्च कामलाम् ॥ १०३ ॥ शोथं हलीमकं हन्ति मन्दाग्नित्वमरोचकम्। यकृत् प्लीहारिनामेदं लौहं जगति दुर्लभम् ॥ १०४ ॥

हिंगुल से निकाला पारा, गन्धक, लोहभस्म और अभ्रकभस्म प्रत्येक १ तोला, ताम्रभस्म २ तोले, मैनशिल, हरदी, जमालगोटा, सोहागा फूला हुआ और शिलाजीत प्रत्येक १ तोला, इन सब द्रव्यों को एकत्र खरल करके पश्चात् जमालगोटा की मूल, निशोथ, चीता, सँभालू त्रिकटु, अदरख और भृङ्गराज; इनमें से प्रत्येक के रस अथवा क्वाथ में एक-एक बार भावना देकर बेर की गुठली के समान गोलियाँ बनावे इसका सेवन करने से यकृत, प्लीहा, आठ प्रकार के उदर, कामला, हलीमक, शोथ, मन्दाग्नि, अरुचि और सब प्रकार के ज्वार शान्त होते हैं। इसको यकृत्प्लीहारिलौह कहते हैं। यह जगत् में दुर्लभ है, मात्रा २ रत्ती ॥ ९९-१०४ ॥

यकृदरि लौह।

द्विकर्षं लोहचूर्णस्य गगनस्य पलार्द्धकम्। कर्षं शुद्धं मृतं ताम्रं लिम्पाकांघ्रित्वचः पलम् ॥ १०५ ॥ मृगाजिनभस्मपलं सर्वमेकत्र कारयेत्। चतुर्गुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ १०६ ॥ यकृत्प्लीहोदरञ्चैव कामलाञ्च हलीमकम्। कासं श्वासं ज्वरं हन्ति बलवर्णाग्निवर्द्धनम्। यकृदरिनाम लौहं सर्वव्याधिनिषूदनम् ॥ १०७ ॥

लोहभस्म २ तोले, अभ्रकभस्म २ तोले, ताम्रभस्म १ तोला, लिम्पाक का नींबू जँभीरी नींबू के जड़ की छाल ४ तोले और कृष्णसार मृग के चर्म का अन्तर्धूम भस्म ४ तोले; इन सब द्रव्यों को एकत्र जल में खरल करके ४ रत्ती प्रमाण बटी बनावे। इस यकृदरि लौह के सेवन करने से यकृत, प्लीहा, उदर, कामला, हलीमक, कास, श्वास और ज्वर नष्ट होते हैं और बल, वर्ण तथा अग्नि की वृद्धि होती है। मात्रा २ से ४ रत्ती ॥ १०५-१०७ ॥

बृहद्यकृदरि लौह।

पारदं गन्धकञ्चाभ्रं त्र्यूषणं कटुकी तथा। त्रायमाणां विषापाठां पिचुमर्दहरीतकीम् ॥ १०८ ॥ चित्रकं पर्पटं मुस्तं सममागं प्रकल्पयेत्। सर्वार्द्धं जारितं लौहं गुडूचीस्वरसैर्दिनम् ॥ १०९ ॥ निष्पिष्य वटिका कार्य्या त्रिगुञ्जाफलमानतः। प्लीहोदरयकृद्गुल्मान् सर्वोपद्रवसंयुतान् ॥ ११० ॥ एकाहिकं द्व्याहिकं वा त्र्याहिकं चातुराहिकम्। सर्वान् ज्वारान्निहन्त्याशु भक्षणादार्द्रकद्रवैः ॥ १११ ॥

पारा, गन्धक, अभ्रक, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि), कुटकी, त्रायमाणा, अतीस, पाढ़, नीम की छाल, दरद, चित्रक, पित्तपापड़ा, मोथा, इन्हें बराबर २ लेकर मिला लें और चूर्ण कर ले। इस चूर्ण से आधा लोहभस्म मिश्रित कर गिलोय के रस के साथ घोटे और तीन रत्ती प्रमाण की गोली बना ले। इसके प्रयोग से सर्व उपद्रवसहित प्लीहोदर (तिल्ली), यकृद्रोग, गुल्म, एकाहिक (इकतरा) द्व्याहिक, त्र्याहिक (तिजारी) चातुराहिक (चौथय्या) ज्वरादि दूर होते हैं। अनुपान—अदरख का रस ॥ १०८-१११ ॥

महामृत्युञ्जय लौह।

शुद्धसूतं समं गन्धं जारिताभ्रं समं तथा। गन्धस्य द्विगुणं लौहं मृतताम्रं चतुर्गुणम् ॥ ११२ ॥ द्विक्षारं सैन्धवं बीडं वराटीभस्मशङ्खकम्। चित्रकं कुनटी-तालं रामठं कटुका तथा ॥ ११३ ॥ रोहितं त्रिवृता चिञ्चा विशाला धवलङ्कटः। अपामार्गं तालरण्डमल्लिका च निशाद्वयम् ॥ ११४ ॥ प्रियङ्ग्विन्द्रयवं पथ्या अजमोदा यमानिका। तुत्थकं शरपुङ्खा च यकृन्मर्दो रसाञ्जनम् ॥ ११५ ॥ प्रत्येकं शाणमानेन भावयेदार्द्रकद्रवैः। गुडूच्याः स्वरसेनापि मधुना कुडवार्द्धकम् ॥ ११६ ॥ वटिकां कारयेद्वैद्यो गुञ्जाद्वयमितां पुनः। अनुपानं प्रदातव्यं बुद्ध्वा दोषानुसारतः ११७ भक्षयेत् प्रातरुत्थाय सर्वरोगकुलान्तकम्। प्लीहानं ज्वरमुग्रञ्च कासञ्च विषमज्वरम् ॥ ११८ ॥ आमवातं यकृच्छूलं श्वासमर्शः शिरोरुजम्। गुल्मशोथोदरानाहमग्रमांसं यकृत् क्षयम् ॥ ११९ ॥ सकामलं पाण्डुरोगमुदरञ्च सुदारुणम्। रोगानीकविनाशाय केसरी करिणं यथा ॥ १२० ॥ महामृत्युञ्जयो लौहः प्लीहगुल्मविनाशनः। प्राणिनान्तु हितार्थाय शम्भुना परिकीर्त्तितः ॥ १२१ ॥

पारा, गन्धक और अभ्रकभस्म प्रत्येक ६ माशे, लोहभस्म १ तोला, ताम्रभस्म २ तोले, यवक्षार, सज्जीखार, सेंधानमक, बिड्नमक, कौड़ीभस्म, शङ्खभस्म, चीते की मूल, मैनशिल, हरताल, भूनी हींग, कुटकी, रोहिड़ा की छाल, निशोथ, इमली की छाल की भस्म, इन्द्रायण की मूल, सफेद आक की मूल, चिड़चिड़ा (लटजीरा) की भस्म, ताल के फूल का अन्तर्धूम भस्म, अमलवेत, हल्दी, दारुहल्दी, फूलप्रियङ्गु, इन्द्रजौ, हरीतकी, अजमोद, अजवाइन, तूतिया, शरफोंका, रोहिड़ा की छाल और रसौत प्रत्येक एक शाण अर्थात् ३ माशे (२४ रत्ती), इन सब द्रव्यों को एकत्र अदरख के रस में और गिलोय के रस में खरल करे। तदनन्तर ८ तोले मधु में खरल करके २ रत्ती प्रमाण गोलियाँ बनावे। दोषानुसार अनुपान के साथ प्रातःकाल सेवन करना चाहिए। इसका सेवन करने से प्लीहा, यकृत्, उग्रज्वर, कास विषमज्वर, आमवात, यकृत्जन्य शूल, श्वास, बवासीर, मस्तकपीड़ा, गुल्म, शोथ, उदररोग, आनाह, अग्रमांस, यकृत्क्षय, क्षयरोग (Cirrhosis of the Liver), कामला और पाण्डुरोग आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं, यह महामृत्युञ्जय लौह हाथी को मारने के लिये सिंह के समान रोगसमूह नष्ट करने के लिये शिवजी से कहा गया है ॥ ११२-१२१ ॥

सर्वेश्वर लौह।

शुद्धसूतं पलं गन्धं द्विगुणन्तु मृताभ्रकम्। त्रिपलं कृतताम्रञ्च पलार्द्धं स्वर्णमाक्षिकम् ॥ १२२ ॥ जैपालं चित्रकं माणं शूरणं घण्टकर्णकम्। ग्रन्थिकं त्रिफला व्योषं त्रिवृता खरमञ्जरी ॥ १२३ ॥ दण्डोत्पला वृश्चिकाली कुलिशं नागद-

न्तिका । सूर्य्यावर्त्तश्च संचूर्ण्य कर्षमात्रं विमर्दयेत् ॥ १२४ ॥ आर्द्रकस्य रसेनैव चूर्णयित्वा पुनःक्षिपेत् । त्रिपलं लौहचूर्णस्य ततः खादेत् शुभेऽहनि ॥ १२५ ॥ सम्पूज्य भास्करं विष्णु गणनाथं द्विजोत्तमम् । गुञ्जाद्वयं च मधुना भुक्त्वा शीतजलं पिबेत् ॥ १२६ ॥ चूर्णं सर्वेश्वरं नाम सर्वरोगहरं भवेत् । कठोरप्लीहनाशाय गुल्मोदरहरं तथा ॥ १२७ ॥ कामलां पाण्डुमानाहं यकृत्कृमिकृतामयान् । विचर्चीमम्लपित्तश्च कण्डूं कुष्ठं विनाशयेत् ॥१२८॥ प्लीहानमस्रपित्तश्चाप्यग्निमान्द्यं सुदुस्तरम् । श्रीकरं कान्तिजननं शुक्रायुर्बलवर्द्धनम् ॥ १२९ ॥

पारा १ पल (४ तोला), गन्धक १ पल (४ तोला), अभ्रकभस्म २ पल (८ तोला), ताम्रभस्म ३ पल (१२ तोला), स्वर्णमाक्षिक २ तोले, जमालगोटा, चीता का मूल, पुराना मानकन्द, जिमीकन्द, मोरवा, पिपरामूल, त्रिफला, त्रिकटु, निशोथ, चिरचिरा, दग्धोत्पला, विदारी की मूल, हड़जोड़, हाथीशुण्डा और सूर्यावर्त (हुलहुल) प्रत्येक का चूर्ण १ तोला; इन कुल औषधों का अदरख के रस में खरल करे। पश्चात् इसमें १२ तोले लोहभस्म मिलाकर खरल करके रख लेवे। इस 'सर्वेश्वरलौह की २ रत्ती की मात्रा मधु के साथ सेवन करके शीतल जल पीना चाहिये। इसका सेवन करने से कठोर प्लीहा, गुल्म, यकृत, उदर, कामला, पांडु, आनाह, कृमिरोग, विचर्चिका, अम्लपित्त, कण्डू, कुष्ठ, रक्तपित्त तथा मन्दाग्नि का नाश होता है और कान्ति, वीर्य, आयु तथा बल की वृद्धि होती है ॥ १२२-१२९ ॥

यकृत्प्लीहारि लौह ।

लौहार्द्धमभ्रकं शुद्धं सूतमप्यर्द्धभागिकम् । द्विगुणमयसश्चूर्णात् त्रिफलां सामुद्रकात्तथा ॥ १३० ॥ द्विरष्टौ वारिणो भागमष्टशिष्टन्तु कारयेत् । तेन चाष्टावशिष्टेन समेनाज्येन यत्नतः ॥ १३१ ॥ रसेन बहुपुत्राया द्विगुणक्षीरसंयुतम् । लौहपात्रे पचेद्दर्व्या लौहमय्या विधानतः १३२॥ अभ्रकं निहतं शुद्धं पारदश्च सुमूर्च्छितम् । अयसोऽर्द्धमितं चूर्णमादौ पाके विनिक्षिपेत् ॥ १३३ ॥ कंदं कापालिका चव्यं विडङ्गं सबृहद्दलम् । शरपुङ्खा च पाठा च चित्रकं समहौषधम् ॥ १३४ ॥ लवणानि च सर्वाणि सक्षारं वृद्धदारकम् । दीप्यकश्च तथा सीधुं लौहाभ्रकसमं क्षिपेत् ॥१३५॥ प्लीहोदरयकृद्गुल्मान् हन्ति शस्त्राग्निभिर्विना । प्रयोज्योऽयं महावीर्य्यो लौहो लौहविदांवरैः ॥१३६॥ प्लीहोदरविनाशाय दद्याद् द्वे द्वे पुटे पृथक् । माणेन घण्टकर्णेन शूरणेन पृथक् पृथक् ॥१३७॥

लौहभस्म ४ तोला, अभ्रकभस्म ४ तोला। रससिन्दूर ४ तोला। त्रिफला प्रत्येक १६-१६ तोला, समुद्र नमक ८ तोले इन सबका १६ गुने जल में किया हुआ अष्टमांश बचा क्वाथ के समान भाग घृत तथा शतावरी का रस, उसमें दूना दूध मिलाकर एक कड़ाई में परिपाक करे, जब यथावत् पाक हो जाय (गाढ़ा होने पर आवे) तब लौहभस्म ४ तोला, शूरणकन्द, कापालिका (गुड़कामाई, बंग भाषा में, किसी के मत से रास्ना), चव्य, वायविडंग, पठानीलोध, शरपुंखा, पाठा, चित्रक, सोंठ पाँचों नमक, जवाखार, विधाराबीज, अजवाइन, सेहुंड की जड़ प्रत्येक १२ तोले चूर्ण कर डाल दे और लोहे की कलछी से चलाता रहे। यह प्लीहोदर, यकृद्रोग तथा गुल्म को विनाशक और अग्निप्रयोग के नष्ट करता है। इस प्रयोग में जो लोहभस्म प्रयुक्त किया जाय उसमें प्लीहोदर नष्ट करने के लिये मानकन्द, घण्टा-

कर्ण (मोरवा) और शूरणकन्द के पृथक्-पृथक् दो दो पुट और दे देने चाहिये। मात्रा १ माशा से २ माशा तक ॥ १३०-१३७ ॥

सीदारि रस।

कर्षकं तालचूर्णस्य तत्पादांशं सुवर्णकम् । पलार्द्धमृतताम्रञ्च तत्समं शुद्धमभ्रकम् ॥ १३८ ॥ मृगाजिनस्य भस्मापि कर्षमात्रं प्रदापयेत् । जम्बीरमूलत्वचस्तद्वत्सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ १३९ ॥ गुञ्जाद्वयप्रमाणेन वटिकां कारयेत्ततः । मधुना वह्निचूर्णेन खादेन्नित्यं यथाबलम् ॥१४०॥ असाध्यमपि प्लीहानं हन्त्यवश्यं न संशयः । यकृतं पाण्डुरोगञ्च गुल्मादिकभगन्दरान् ॥ १४१ ॥

शुद्ध हरिताल १ तोले, स्वर्णभस्म ¼ तोला, ताम्रभस्म २ तोला, अभ्रकभस्म २ तोला, मृगचर्मभस्म १ तोला, नीबू की जड़ की छाल १ तोला, इन कुल द्रव्यों को इकट्ठा कर मिला ले। मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक। अनुपान—मधु या चित्रक चूर्ण। इस रस के सेवन से यकृद्रोग (जिगर), पाण्डुरोग (पीलिया), गुल्म, भगंदर प्रभृति रोग दूर होते हैं ॥१३८-१४१ ॥

प्लीहार्णवरस।

हिंगुलं गन्धकं टङ्कमभ्रकं विषमेव च । प्रत्येकं पलिकं भागं चूर्णयेदतिचिक्कणम् ॥ ॥ १४२ ॥ पिप्पली मरिचञ्चैव प्रत्येकञ्च पलार्द्धकम् । मर्दयित्वा वटीं कुर्याद्वल्लमात्रां प्रयत्नतः ॥ १४३ ॥ सेव्या शेफालिदलजैर्वटी माक्षिकसंयुता । प्लीहानं पञ्चप्रकारञ्च हन्ति शीघ्रं न संशयः ॥१४४॥ ज्वरं मन्दानलञ्चैव कासं श्वासवमिभ्रमिम् । प्लीहार्णव इतिख्यातो गहनानन्दभाषितः ॥ १४५ ॥

(अत्र जम्बीरस्वरसपरिशोधितं हिंगुलं, गोमूत्रविशोधितञ्च विषं ग्राह्यम्)

जम्बीर रस से शुधा हुआ हिंगुल, गन्धक, सुहागा, अभ्रकभस्म, गोमूत्र से शुधा हुआ विष, प्रत्येक द्रव्य ४ तोले। पीपल, कालीमिर्च हरएक २ तोले, इन सबको इकट्ठा कर और अच्छी प्रकार मिलाकर पानी के साथ १ रत्ती से २ रत्ती प्रमाण की गोली बना लेवे। अनुपान-हारसिंगार पत्तों का रस तथा मधु। इसके प्रयोग से हर प्रकार का प्लीहा (तिल्ली), मन्दाग्नि, कास (खाँसी), श्वास, वमि (कै), चक्कर आना, आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १४२-१४५ ॥

लौहमृत्युञ्जय रस।

रसगन्धकलौहाभ्रं कुनटीमृतताम्रकम् । विषमुष्टिवराटञ्च तुत्थं शंखरसाञ्जनम् ॥ १४६ ॥ जातीफलञ्च कटुकी द्विक्षारं कानकं तथा। व्योषं हिंगु सैन्धवञ्च प्रत्येकं सूततुल्यकम् ॥ १४७ ॥ श्लक्ष्ण चूर्णीकृतं सर्वमेकत्र भावयेत्ततः । सूर्यावर्त्तरसेनैव बिल्वपत्ररसेन च ॥ १४८ ॥ सूर्यावर्त्तेन मतिमान् वटिकां कारयेत्ततः । प्लीहानं यकृतं गुल्ममष्ठीलाञ्च विनाशयेत् ॥ १४९ ॥ अग्रमांसं तथा शोथं तथा सर्वोदराणि च । वातरक्तं च जठरं चान्तर्विद्रधिमेव च ॥ १५० ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, मैनसिल, ताम्रभस्म, शुद्ध कुचला, कौड़ीभस्म, तूतिया, शंखभस्म, रसौत, जायफल, कटुकी, यवक्षार, सज्जिक्षार, शुद्ध जैपाल, त्रिकटु (सोंठ मिर्च पीपर) हींग, सेंधा नमक, उपर्युक्त कुल द्रव्यों को बराबर-बराबर लेकर यथाविधि चूर्ण बना ले। फिर चूर्ण को सूरजमुखी तथा बिल्व के पत्तों के रस से भावना दे। फिर सूरजमुखी के पत्तों के रस से घोटकर १ रत्ती से २ रत्ती

प्रमाण की गोली बना ले। इस गोली के व्यवहार से प्लीहा (तिल्ली), उदररोग, यकृत् (जिगर), गुल्म, अष्ठीला, अग्रमांस, शोथ (सूजन), वातरक्त तथा अन्तर्विद्रधि प्रभृति आदि रोग नाश को प्राप्त होते हैं॥ १४६-१५०॥

प्लीहाशार्दूल रस।

सूतकं गन्धकं व्योषं समभागं पृथक् पृथक्। एभिः समं ताम्रभस्म योजयेद्वैद्यसत्तमः॥ १५१॥ मनःशिला वराटश्च तुत्थं रामठलौहकम्। जयन्ती रोहितश्चैव क्षारटङ्कणसैन्धवम्॥ १५२॥ विडं चित्रं कानकञ्च रसतुल्यं पृथक् पृथक्। भावयेत्त्रिदिनं यावत् त्रिवृच्चित्रकआर्द्रकैः॥ १५३॥ गुञ्जामात्रां वटीं खादेत्सद्यः प्लीहाविनाशिनीम्। मधुपिप्पलिसंयुक्तां द्विगुञ्जां वा प्रयोजयेत्॥ १५४॥ प्लीहानमग्रमांसञ्च यकृद्गुल्मं सुदुस्तरम्। आमाशयेषु सर्वेषु चोदरे शोथविद्रधौ॥ १५५॥ अग्निमान्द्ये ज्वरे चैव प्लीह्नि सर्वज्वरेषु च। श्रीमद्गहननाथेन भाषितः प्लीहशार्दूलः॥ १५६॥

पारद, गन्धक, त्रिकुटा प्रत्येक एक तोला, ताँबे की भस्म ५ तोला, मैनसिल, कौड़ीभस्म, शुद्ध तूतिया, हींग, लोहभस्म, जयन्ती, रूसर, यवक्षार, सोहागा, सेंधा नमक, विड नमक, चित्रक, शुद्ध जैपाल, प्रत्येक द्रव्य पृथक्-पृथक् एक-एक तोला, इनको निसोत, चित्रक तथा अदरख के रस से अलग अलग तीन तीन दिन भावना देकर १ रत्ती से २ रत्ती प्रमाण की गोली बना लेवे। इसके व्यवहार से तुरन्त ही प्लीहा (तिल्ली) रोग नष्ट होता है और दूसरे रोग जैसे प्लीहा, अग्रमांस, यकृद्रोग, गुल्मरोग, आमाशय के रोग, उदररोग, शोथ (सूजन), विद्रधि, मन्दाग्नि, ज्वर प्रभृति आदि रोग दूर होते हैं। अनुपान—पीपल का चूर्ण आधी रत्ती और शहद॥ १५१-१५६॥

यकृत्प्लीहोदरारि लौह।

स्वर्णरौप्यं तथा ताम्रं वङ्गश्चाभ्रं समाक्षिकम्। सर्वार्द्धं जरितं लौहं कल्पयेत्कुशलो भिषक्॥ १५७॥ शृङ्गवेररसेनापि शेफालीदलजैः रसैः। स्वरसैर्बिल्वपत्राणां क्वाथैश्च कटुतिक्तजैः॥ १५८॥ रसेन बहुमञ्जर्या भावयेच्च त्रिधा त्रिधा। वल्लमात्रं प्रदातव्यं पर्पटक्वाथसंयुतम्॥ १५९॥ प्लीहानं यकृतं श्वासं कासञ्च विषमज्वरम्। गुल्मशोथोदरानाहमग्रमांसमरोचकम्॥ १६०॥ कामलां पाण्डुरोगञ्च चिरकालानुबन्धिनम्। सर्वान् रोगान्निहन्त्याशु वातपित्तकफोद्भवान्॥ १६१॥

स्वर्णभस्म, चाँदीभस्म, ताम्रभस्म, वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, अलग अलग १ तोला, लौहभस्म ३ तोला, इनको इकट्ठा करके अदरख के रस से, हारश्रृंगार के रस तथा बिल्वपत्र इनके रस से या चिरायता के काढ़े से या तुलसी के रस से अलग अलग तीन-तीन भावना देकर गोली बना लेवे। मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक। अनुपान—चिरायता का काढ़ा। इन गोलियों के व्यवहार से प्लीहा (तिल्ली), यकृत् (जिगर) श्वास, कास, विषमज्वर, गुल्म, शोथ, उदररोग, आनाह, अग्रमांस, अरुचि कामला, तथा पुराना पीलिया प्रभृति और वात, पित्त, कफ से उत्पन्न होनेवाले रोग शान्त होते हैं॥ १५७-१६१॥

रोहीतकाद्य चूर्ण।

रोहीतकं यवक्षारो भूनिम्बः कटुरोहिणी। मुस्तकं नरसारञ्च वीरा विश्वं सुचूर्णितम्॥ १६२॥ माषमात्रं ततः खादेच्छीततोयानुपानतः। यकृद्रोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा॥ १६३॥

रोहिड़ा की छाल यवक्षार, चिरायता, कुटकी,

नागरमोथा, नौसादर, चतीस और सोंठ, इन कुल औषधों को समभाग लेकर एकत्र कूट पीसकर चूर्ण बना लेवे। मात्रा—१ माशा। अनुपान—शीतल जल। इसका सेवन करने से यकृत् और प्लीहा रोग इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार नष्ट हो जाता है ॥१६०-१६३॥

शंखद्रावक रस।

योगिनीभैरवाभ्याञ्च बलिमादौ प्रदापयेत्। पश्चात् यन्त्रञ्च कर्त्तव्यमेवमाह महेश्वरी ॥१६४॥ रसः शंखद्रवो नाम शम्भुदेवेन भाषितः। गुह्याद् गुह्यतमं गुह्यमिदानीं कथ्यते मया ॥१६५॥ शंखचूर्णं यवक्षारं सर्जिक्षारं सटङ्कनम्। समं च पंचलवणं स्फटिकारिनृसादरः ॥१६६॥ काचकूप्यां ततः क्षिप्त्वा वारुणीयन्त्रमुद्धरेत्। यामार्द्धं द्रावयत्येष शंखशुक्तिवराटकान् ॥१६७॥ अर्शांसि नाशयेत् षट् च मूत्रकृच्छ्राश्मरीस्तथा। उदराण्यष्टविधं हन्ति गुल्मप्लीहोदराणि च ॥१६८॥ अजीर्णं नाशयेच्छीघ्रं ग्रहणीञ्च विसूचिकाम्। भुक्तशेषे च भोक्तव्यो बिन्दुमात्रो रसोत्तमः ॥१६९॥ क्षणमात्राद्भवेद्भस्म पुनर्भोजनमिच्छति प्रत्यहं भोजनान्ते च संसेव्योऽयं रसोत्तमः ॥१७०॥ न रुजायां भयं क्वापि सत्यं सत्यं वदाम्यहम्। न देयं यस्य कस्यापि सदा गोप्यञ्च कारयेत्। रसः शंखद्रवो नाम वैद्यानामुपकारकः ॥१७१॥

पहिले योगिनी और भैरव के लिये बलिप्रदान कराकर पश्चात् शंखद्राव नामक रस के निर्माण के लिये वारुणी यन्त्र की रचना करनी चाहिये। शिवजी के कहे हुये अत्यन्त गोपनीय इस शंखद्राव नामक रस को अब मैं बताता हूँ। शंख का चूर्ण, जवाखार, सज्जीखार, सोहागा, पाँचो नमक, फिटकरी और नौसादर समभाग। प्रत्येक द्रव्य को लेकर बोतल में स्थापित कर वारुणी यन्त्र द्वारा चुआ लेने से शंखद्रावक रस तैयार होता है। यह अर्धप्रहर में ही शंख, शुक्ति और कौड़ी आदि को गला देता है। एक बूँद इस शंखद्राव को आठ गुने जल में मिलाकर भोजन के अन्त में सेवन करना चाहिये। इसका सेवन करने से ६ प्रकार के बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, ८ प्रकार के उदर रोग, गुल्म, प्लीहा, अजीर्ण, ग्रहणी और विसूचिका आदि अनेक रोग शीघ्र नष्ट होते हैं तथा क्षणमात्र में ही भोजन का परिपाक हो जाने से पुनः भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है। मैं सच कहता हूँ, इसका सेवन करने से किसी प्रकार के रोग का भय नहीं रहता। हरएक को इसका उपदेश न करना चाहिये, यह सर्वदा गोपनीय और वैद्यों का उपकारक है ॥ १६४-१७१ ॥

महाद्रावक रस।

शुद्धं काञ्चनमाक्षिकं मृदुतरं कांस्याभिधं तत्तथा। सिन्धूत्थं विमलं रसाञ्जनवरं फेनः स्रवन्तीपतेः॥ क्षारौ सर्जिकसाम्भलौ सुविमलौ भागास्त्वमीषां समाः। सप्तानां सदशन्तु टङ्कनमिहास्याद्धौ नृसारः सितः॥ १७२॥ तत्तुल्या स्फटिकारिका त्रिसदृशः शुक्लो यवस्याग्रजः। कासीसं त्रितयं यवाग्रजसमं संचूर्ण्य सर्वं न्यसेत्॥ पात्रे काचमये मृदम्बरवृते यन्त्रे बकाख्ये भिषक्। ज्वालेन क्रमवर्द्धिनात्यवहितोऽमीषां रसं पातयेत् ॥ १७३ ॥ यो द्राग्भस्मवराटिकां प्रकुरुते सोऽयं महाद्रावकः। को वक्तुं प्रभवेद्गुण्य नितरां सम्यग्गुणान् भूतले॥ एतद्वल्लचतुष्टयं सह गिलेत् शुण्ठ्या लवङ्गेन वा। तत्पश्चात् परिवासित बहुगुणं ताम्बूलकं भक्षयेत् ॥ १४१ ॥ मासद्वयात् कथयामि तान् शृणु गुणान् अस्यैव का-

शिचत् परान्। नि शेषं विनिहन्त्यसौ चिरभवान्यष्टोदराणि ध्रुवम्॥ गुल्मं पाण्डुहलीमकं सुकठिनामष्ठीलिकां कामलां। मन्दाग्निं विषमाग्नितां बहुविधान् शोथांश्च शूलानपि ॥ १७५॥ सर्वार्शांसि भगन्दरान् कृमिगदान् पञ्चैव कासांस्तथा। हिक्काश्लीपदकोषवृद्धिमरुचिं व्याधिं महादारुणम्॥ नव्यं वा चिरजं ज्वरं बहुविधं छर्दिकृमीन् विंशतिं। यक्ष्माणं चिरजामवातपिडिकां वीसर्पविस्फोटकम् ॥१७६॥ उन्मादं स्वरभेदमर्बुदमपि स्वेदञ्चहृत्पाणिजं। जिह्वास्तम्भगलग्रहं चिरभवं ग्रीवारुजामुल्वणाम् ॥ नासाकर्णशिरोऽक्षिवक्त्रजगदान् क्षुद्रामयांश्चापरान्। हन्यादेव चिरोत्थितान् बहुविधानन्यांश्च रोगानपि ॥ १७७॥ एकः स्यादपरो हि टङ्कणमुखैर्द्रव्यैः परैः सप्तकैः। अन्यस्तु स्फटिकारिटङ्कनयवक्षारप्रकासीसकैः ॥ जानीयाद् गुरुतो विभागमनयोर्यन्त्रादिकं चापरं। निर्दिष्टास्त्रय एव भेषजवराः स्वल्पो महान्मध्यमः ॥ १७८॥

टङ्कनादिकासीसान्तैः सप्तद्रव्यैर्मध्यमः। स्फटिकारिकासीसान्तचतुर्द्रव्यैः स्वल्पः। स्वर्णमाक्षिकादिकासीसत्रितयान्तैर्महान्।

शुद्ध स्वर्णमाक्षिक, शुद्ध ताम्रमाक्षिक, सैंधव लवण, रसौत, समुद्रफेन, सज्जीक्षार और सांभरनोन प्रत्येक १ तोला, सोहागा ७ तोले, श्वेत नौसादर ३॥ तोले, फिटकरी ३॥ तोले, यवक्षार १४ तोले, धातुकासीस, पुष्पकासीस और कासीस (हीराकसीस) तीनों मिलकर १४ तोले (यदि तीनों प्रकार के कासीस न मिलें तो केवल हीरा कासीस ही को १४ तोले लेवे); इन सब द्रव्यों को एकत्र कूट पीस कर चूर्ण बना लेवे। तदनन्तर उत्तम रीति से कपड़मिट्टी किये हुए काँच के पात्र में रख कर वकयन्त्र द्वारा, क्रमशः मृदु, मध्य और तीव्र आँच देकर अत्यन्त सावधानी से इनका रस चुआवे। इसी रस को महाद्रावक कहते हैं। यह वही महाद्रावक है जो कौड़ी को तत्काल भस्म कर देता है, फिर पृथिवी में इसके निःशेष गुणों का वर्णन कौन कर सकता है। सोंठ अथवा लौंग के चूर्ण के साथ ३ रत्ती (७ या ८ बूँद) परिमित महाद्रावक रस का सेवन करना चाहिये। तदनन्तर लौंग इलायची आदि सुगन्धित और गुणद पदार्थों से युक्त पान का बीड़ा खावे।

इसका सेवन करने से ८ प्रकार के उदररोग, गुल्म, पाण्डुरोग, हलीमक, अतिकठिन अष्ठीला, कामला, अग्निमान्द्य, विषमाग्निता, हर प्रकार के शोथरोग, शूल, सब प्रकार के बवासीर, भगन्दर, कृमिरोग, ५ प्रकार के कास, हिचकी, श्लीपद, कोषवृद्धि, अरुचि, नया अथवा पुराना महादारुण ज्वर, हर प्रकार के वमन, २० प्रकार के कृमि, राजयक्ष्मा पुरानी आमवातजन्य पिडिका, वीसर्प नामक फोड़ा, उन्माद, स्वरभेद, अर्बुद, हृदय और हाथ में होनेवाला स्वेद (पसीना), जिह्वास्तम्भ, गलग्रह, पुरानी और उग्र ग्रीवा की पीड़ा, नासिकारोग, कर्णरोग, मस्तक रोग, नेत्ररोग और मुखरोग आदि अनेक प्रकार के रोग नष्ट होते हैं॥

द्रावक रस अल्प, मध्य और महत् इन भेदों से ३ प्रकार का है। फिटकरी, सोहागा, यवक्षार और हीराकासीस इन चारों द्रव्यों के समान चूर्ण एकत्रित कर जो चुआया जाता है, उसको अल्प द्रावक कहते हैं। इसी प्रकार सोहागा, नौसादर, फिटकरी, यवक्षार धातुकसीस, पुष्पकासीस और हीराकासीस इन सात द्रव्यों के समान भाग चूर्ण मिश्रित कर जो अर्क निकाला जाता है उसको मध्यम द्रावक कहते हैं। तथा मूलोक्त कुल द्रव्यों को यथाभाग एकत्रित कर जो रस चुआया जाता है उसको महाद्रावक कहते हैं।

इनके (अल्प और मध्यमद्रावक के) बनाने के नियम और यन्त्र आदि का ज्ञान गुरु से प्राप्त

करना चाहिये। इस रस की व्यावहारिक मात्रा १ बूँद है ॥ १७२-१७८ ॥

महाशंखद्रावक।

चिञ्चाश्वत्थः स्नुही ह्यर्कोऽपामार्गश्च हि पञ्चम । पृथग्भस्मजलं कृत्वा तूद्धृत्य लवणानि च ॥ १७६ ॥ टङ्कनञ्च यवक्षारं स्वर्जं लवणपञ्चकम्। रामठं तालकञ्चैव लवङ्गं नरसादरम् ॥ १८० ॥ जातीफलञ्च गोदन्तं ताप्यं गन्धरसं तथा। विषं समुद्रफेनञ्च सोरकास्फटिकारिका ॥ १८१ ॥ शंखचूर्णं शंखनाभिचूर्णं पाषाणसम्भवम्। मनःशिला च कासीसं समभागञ्च कारयेत् ॥ १८२ ॥ भाव्यास्ते वेतसरसैः काचकूप्यां क्षिपेत्ततः । अत्र द्रव्यञ्च तद्दत्त्वा उष्णस्थाने च धारयेत् ॥ १८३ ॥ वस्त्रेणाच्छादितस्तावद्यावत् स्यात् सप्तवासरम् । पश्चान्मन्दाग्निना देयं वारुणीयन्त्रमुद्धरेत् ॥ १८४ ॥ काचकूप्यां जलं धार्य्यं रक्षयेद्यत्नतः सुधीः । गुञ्जैकं पर्णखण्डेन प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ १८५ ॥ कासं श्वासं क्षयं प्लीहामजीर्णं ग्रहणीगदम्। रक्तपित्तं क्षतं गुल्ममर्शांसि च विनाशयेत् ॥ १८६ ॥ अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च शूलमष्टविधं तथा। आमवातं वातरक्तं खञ्जवातं धनुस्तथा ॥ १८७ ॥ उदरामयमामञ्च स्थूलतां कृमिकोष्ठताम्। वातपित्तकफान् सर्वान्नाशयेन्नात्र संशयः ॥ १८८ ॥ भुक्त्वा च कण्ठपर्य्यन्तं गुञ्जैकञ्च रसं लिहेत्। तत्क्षणात् कारयेद्भस्म तृणराशिमिवानलः ॥ १८६ ॥ यामार्द्धं द्रावयेत्सर्वं शङ्खशुक्तिवराटकम् । पूर्वोक्तविधिना तत्र दद्यान्निशिचतुष्पथे ॥ १६० ॥ योगिनीभैरवाभ्याञ्च बलिं मापातिलान्वितम् । महाशंखद्रवो नाम्ना शम्भुदेवेन भाषितः ॥ १६१ ॥ गुह्याद्गुह्यतमं गोप्यं पुत्रस्यापि न कथ्यते। लोकानां कौतुकान् कर्त्ता प्रकाश्यो राजसन्निधौ ॥ १६२ ॥

इमली की छाल, पीपल की छाल, थूहर, आक के जड़ की छाल और लटजीरा, इनमें से प्रत्येक के भस्म अलग अलग जल में घोल देवे। जब भस्म नीचे बैठ जाने से पानी साफ़ निर्मल हो जाय तब युक्तिपूर्वक उस निर्मल जल को दूसरे पात्र में निकाल लेवे। तदनन्तर उस पानी को साफ़ कड़ाही में रखकर धीमी आँच से जलाकर लवण बनावे। इसी प्रकार पाँचों के भस्म के क्षार जल का अलग-अलग लवण तैयार कर लेवे; तदनन्तर सोहागा, यवक्षार, सज्जीखार, पाँचों नमक, हींग, हरिताल, लौंग, नौसादार, जायफल, गोदन्ती हरिताल, स्वर्णमाक्षिक, बोल विष, समुद्रफेन, कलमीशोरा, फिटकरी शङ्खचूर्ण, शङ्खनाभिचूर्ण, पत्थर का चूर्ण, मैनशिल और हीराकसीस सम भाग; इन सब द्रव्यों को एकत्र चूर्णित करके बेंत के रस में घोटकर बोतल में रक्खे। तदनन्तर उस बोतल को कपड़े से ढक करके उष्ण स्थान में ७ दिन पर्यन्त रख छोड़े। पश्चात् मन्द मन्द आँच से वारुणीयन्त्र में पकाकर थोड़े जल से युक्त किसी काँच के पात्र में अर्क चुआ लेवे। प्रतिदिन १ रत्ती इस महाशङ्खद्राव को पान की पत्ती पर चुपड़ कर खाना चाहिये। इसका सेवन करने से कास, श्वास, क्षय, प्लीहा, अजीर्ण, ग्रहणी, रक्तपित्त क्षत, गुल्म, बवासीर, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, आठ प्रकार के शूल, आमवात, वातरक्त, खञ्जवात, धनुर्वात, उदररोग, स्थूलता, कृमिकोष्ठता, वातरोग, पित्तरोग और कफरोग ये सब निःसंदेह नष्ट हो जाते हैं। कण्ठपर्यन्त भोजन करके एक रत्ती इस महाशङ्खद्राव रस को यदि (पान की पत्ती पर रखकर) खा लेवे तो उस कुल भुक्तपदार्थों को क्षणमात्र में इस प्रकार

भस्म कर देता है जैसे अग्नि तृणों की राशि को भस्म करे। पहिले रात्रि के समय किसी चौराहे पर पूर्वोक्त विधि से योगिनी और भैरव के लिये तिल और उरद की बलि देकर, पश्चात् इस महाशङ्खद्राव को बनाना चाहिये। शिवजी के कहे हुये अत्यन्त गोपनीय इस महाशङ्खद्राव को अपने पुत्र से भी न कहे, किन्तु लोगों को आश्चर्यान्वित करने के लिये राजसभा में इस को प्रकाशित करना चाहिये। यह आधे पहर में शङ्ख, सीपी और कौड़ी को गला देता है ॥१७६-१६२॥

रोहीतकारिष्ट।

रोहीतकतुलामेकां चतुर्द्रोणे जले पचेत्। पादशेषे रसे पूते शीते पलशतद्वयम् ॥ २१८ ॥ दद्याद्गुडस्य धातक्याः पलषोडशिका मता। पञ्चकोलं त्रिजातञ्च त्रिफलाञ्च विनिक्षिपेत् ॥ २१६ ॥ चूर्णयित्वा पलांशेन ततो भाण्डे निधापयेत् मासादूर्ध्वञ्च पिबतां सर्वोदररुजां जयेत् ॥ २२० ॥ प्लीहगुल्मोदराष्ठीलाग्रहण्यर्शांसि कामलाम्। कुष्ठशोफारुचिहरो रोहीतारिष्ट संज्ञितः ॥ २२१ ॥

रोहिड़ा की छाल ५ सेर लेकर एक मन ग्यारह सेर सोलह तोला जल में पकावे, १२ सेर ६४ तोला जल शेष रहने पर उतारकर छान लेवे। क्वाथ को शीतल होने पर उसमें १० सेर गुड़ मिलावें। तदनन्तर ६४ तोला धाय के फूल, पीपर, पिपरामूल, चव्य, चीता, सोंठ, दालचीनी, इलायची, तेजपात, आँवला, हर्र और बहेड़ा इनमें से प्रत्येक का चूर्ण ४ तोले मिलाकर किसी मिट्टी के पात्र में रखकर पात्र का मुख मुद्रित करके रख छोड़े। एक मास के अनन्तर छान कर काम में लावे। इसका नाम रोहितकारिष्ट है। इसकी मात्रा आधी छटाँक है सम भाग जल मिला। दिन में ३ बार इसका सेवन करना चाहिये। इसका सेवन करने से सब प्रकार के उदररोग, प्लीहा, गुल्म, अष्ठीला, ग्रहणी, बवासीर, कामला, कुष्ठ, शोथ और अरुचि ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ २१८-२२१ ॥

यकृत प्लीहारोग में पथ्यापथ्य।

यत्पथ्यं यदपथ्यं चोदरे प्रोक्तंभिषग्वरैः तदेवयकृतिप्लीहो गदे ज्ञेयं विनिश्चितम् ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां प्लीहयकृद-धिकारः समाप्तः ॥

वैद्यों ने उदररोग में जो पथ्य और अपथ्य कहा है वही निश्चित रूप से प्लीहा यकृत्रोग में भी पथ्य अपथ्य समझना चाहिए।

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिकृतायां भैषज्य-रत्नावल्यां रत्नप्रभाख्यायां व्याख्यायां प्लीहयकृदधिकार समाप्तः ॥

अथ पाण्डुकामलाहलीमकाधिकारः।

साध्यन्तु पाण्डवामयिनं समीक्ष्य स्निग्धं घृतेनोर्ध्वमधश्च शुद्धम्। सम्पादयेत् क्षौद्रघृतप्रगाढैर्हरीतकीचूर्णमयैः प्रयोगैः ॥ १ ॥

साध्य पाण्डुरोग में पहिले रोगी को घृत (पञ्चतिक्तादिक घृत) का सेवन कराकर स्निग्ध करना चाहिये। तदनन्तर वमन और विरेचन द्वारा शुद्ध करके पश्चात् घृत और मधु से युक्त हरीतकीचूर्ण आदि प्रयोगों का सेवन करावे ॥१॥

पाण्डुरोगनाशक योग।

पिबेद्घृतं वा रजनीविपक्वं यत्त्रैफलं तैन्दुकमेव वापि। विरेचनद्रव्यकृतं पिबेद्वा योगांश्च वैरेचनिकान् घृतेन ॥ २ ॥

पाण्डुरोग में हल्दी के क्वाथ और कल्क के साथ सिद्ध घृत, त्रिफला के क्वाथ और कल्क

के साथ सिद्ध घृत, वाताधिकारोक्त तैन्दुकघृत अथवा विरेचन द्रव्यों के साथ और कल्क के साथ सिद्ध घृत का पान करे। अथवा विरेचक (दस्तावर) औषधों का घृत के साथ सेवन करे ॥ २ ॥

विधिः स्निग्धस्तु वातोत्थे तिक्तशीतस्तु पैत्तिके। श्लैष्मिके कटुरूक्षोष्णः कार्यो मिश्रस्तु मिश्रके ॥ ३ ॥

वातजन्य पाण्डुरोग में स्निग्ध प्रयोग, पित्तजन्य पाण्डुरोग में तिक्त और शीत प्रयोग, कफजन्य पाण्डुरोग में कटु, रूक्ष और उष्ण प्रयोग और द्वन्द्वज आदि में मिश्रप्रयोगों का सेवन कराना चाहिये ॥ ३ ॥

पाण्डुरोगे सदा सेव्या सगुडा च हरीतकी ॥ ४ ॥

पाण्डुरोग में सदा गुड और हर्रे का सेवन करना चाहिए ॥ ४ ॥

सप्तरात्रं गवां मूत्रे भावितं वाप्ययोरजः। पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थं पयसाथ पिबेन्नरः ॥ ५ ॥

पाण्डुरोग की शान्ति के लिये सात दिवस पर्यन्त गोमूत्र की भावना देकर दूध के साथ लोहचूर्ण का सेवन करना चाहिये ॥ ५ ॥

अयोमलन्तु सन्तप्तं भूयो गोमूत्रशोधितम्। मधुसर्पिर्युतं चूर्णं सहभक्तेन योजयेत्। दीपनं चाग्निजननं शोथपाण्ड्वामयापहम् ॥ ६ ॥

मण्डूर को अग्निपर तपाकर सातबार गोमूत्र में बुझाकर शुद्ध कर लेवे। तदनन्तर उसका महीन चूर्ण करके घी और शहद में मिश्रितकर भात के साथ खिलावे। इससे अग्नि की वृद्धि, तथा शोथ और पाण्डुरोग का नाश होता है ॥ ६ ॥

रेचनं कामलार्तस्य स्निग्धस्यादौ प्रयोजयेत्। ततः प्रशमनी कार्य्या क्रिया वैद्येन जानता ॥ ७ ॥

कामला रोगी को पहिले स्नेहपान कराकर पश्चात् रेचन (दस्तावर) औषध देना चाहिये। तदनन्तर प्रशमन औषध का प्रयोग करना चाहिये ॥ ७ ॥

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निम्बस्य वा रसः। प्रातर्माक्षिकसंयुक्तः शीलितः कामलापहः ॥ ८ ॥

त्रिफला, गिलोय, दारुहल्दी और नीम की छाल इनमें से किसी एक के रस को मधुसंयुक्त प्रातःकाल सेवन करने से कामला रोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

सशर्करा कामलिनां त्रिभण्डी हिता गवाक्षी[1] सगुडा च शुण्ठी ॥ ९ ॥

चीनी के साथ निसोथ और इन्द्रायण का चूर्ण अथवा गुड के साथ सोंठ का चूर्ण सेवन करने से कामला रोग में लाभ होता है ॥ ९ ॥

दग्ध्वाक्षकाष्ठैर्मलमायसन्तु गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान्। विचूर्ण्य लीढं मधुना चिरेण कुम्भाह्वयं पाण्डुगदं निहन्ति १०

बहेड़ा की लकड़ी की आग पर मण्डूर तपा-तपाकर आठ बार गोमूत्र में बुझावे। तदनन्तर उस मण्डूर का महीन चूर्ण बनाकर मधु के साथ सेवन करने से कुम्भकामला रोग अति शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ १० ॥

लौहपात्रे शृतं क्षीरं सप्ताहं पथ्यभोजनः। पिबेत् पाण्ड्वामयी शोषी ग्रहणीदोषपीडितः ॥ ११ ॥

पाण्डुरोगी, शोषरोगी और ग्रहणीरोगपीड़ित मनुष्य एक सप्ताह पर्यन्त पथ्य भोजन करें और लोह के पात्र में पकाये हुये दुग्ध का पान करें तो उनके पाण्डु आदि रोग शान्त हो जाते हैं ॥ ११ ॥

[1] गवाक्षी=इन्द्रायण।

कामलानाशक अञ्जन।

अञ्जनं कामलार्त्तस्य द्रोणपुष्पीरसः स्मृतः। निशागैरिकधात्रीणां चूर्णं वा संप्रकल्पयेत् ॥ १२ ॥

गूमा के रस को आंख में छोडने से अथवा हलदी, गेरू और आँवला के चूर्ण को शहद में मिलाकर आँखों में अंजन करने से कामलाजन्य आँखों का पीलापन नष्ट हो जाता है ॥ १२ ॥

पाण्डुनाशक नस्य।

नस्यं कर्कोटमूलं वा घ्रेयं वा जालिनीफलम् ॥ १३ ॥

ककोड़े की जड़ के रस का अथवा घोषालता के फल के रस (अभाव में चूर्ण) का नस्य कामला और पाण्डुरोग में लाभदायक होता है ॥ १३ ॥

फलत्रिकादि क्वाथ।

फलत्रिकामृता वासा तिक्ता भूनिम्बनिम्बजः। क्वाथः क्षौद्रयुतो हन्यात्पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ १४ ॥

त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आमला), गिलोय, वासा, कटुकी, चिरायता नीम की छाल, उपर्युक्त कुल द्रव्य मिलाकर २ तोले ले और इनको ३२ तोले पानी में डालकर पकावे, जब आठ तोले काढा शेष रहे तो तैयार समझे। इस काढ़े में ऊपर से शहद मिलाकर प्रयोग में लाने से पाण्डु रोग नाश को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

विशालादि चूर्ण।

विशाला कटुका मुस्तकुष्ठदारुकलिङ्गकाः। कर्षांशा द्विपिचुर्मूर्वा कर्षार्द्धा च घुणप्रिया ॥ १५ ॥ पीत्वा तच्चूर्णमम्भोभिः सुखं लिह्याच्चतो मधु। पाण्डुरोगं ज्वरं दाहं कासं श्वासमरोचकम् ॥ गुल्मानाहामवातांश्च रक्तपित्तञ्च तज्जयेत् ॥ १६ ॥

इन्द्रायण, कटुकी, मोथा, कुष्ठ, देवदारु, इन्द्रजौ, हरएक द्रव्य दो तोले, मूर्वामूल ४ तोले, अतीस १ तोला, इनका पृथक्-पृथक् चूर्ण कर मिला ले। मात्रा—२ मासे। अनुपान जल। विधि-२ मासा चूर्ण जल के साथ फाँकने के पश्चात् ऊपर से शहद चाटे। इस चूर्ण के प्रयोग से पाण्डुरोग (पीलिया) ज्वर, दाह, कास, श्वास, अरुचि, गुल्म, आनाह, आमवात एवं रक्तपित्त नष्ट होता है ॥ १५-१६ ॥

धात्रीलोह।

धात्रीलोहरजोव्योषनिशाक्षौद्राज्यशर्करा। लेहो निवारयत्याशु कामलामुद्धतामपि ॥ १७ ॥

आँवला, लोहभस्म, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि), हलदी, मधु, घी तथा खाँड को मिलाकर चाटने से कामला रोग नष्ट होता है। मात्रा-२ रत्ती ॥ १७ ॥

अयस्तिलादि मोदक

अयस्तिलत्र्यूषणकोलभागैः सर्वैः समं माक्षिकधातुचूर्णम्। तैर्मोदकः क्षौद्रयुतोऽनुतक्रः पाण्ड्वामये दूरगतेऽपि शस्तः १८

लोहभस्म, तिल, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि), बेर हरएक १ भाग, सोनामक्खी की भस्म ५ भाग इन्हें इकट्ठे मिलाकर शहद के साथ लड्डू बना ले। मात्रा २ रत्ती से ४ रत्ती तक। अनुपान मठा। ये मोदक पाण्डु रोग में अत्यन्त लाभदायक हैं ॥ १८ ॥

दार्व्यादि लेह।

दार्वी सत्रिफला व्योषविडङ्गान्ययसो रजः। मधुसर्पिर्युतं लिह्यात् कामलापाण्डुरोगवान् ॥ १९ ॥

दारुहल्दी, त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आमला), त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि), वायबिड़ङ्ग, लोहभस्म, इन द्रव्यों को बराबर-बराबर मिला-

कर ४ रत्ती मधु या घी के साथ पाण्डु रोगी को सेवन करना चाहिए ॥ १६ ॥

तुल्या चायोरजः पथ्या हरिद्राक्षौद्रसर्पिषा । चूर्णिता कामली लिह्यात् गुडक्षौद्रेण वाभयाम् ॥ २० ॥

लोहभस्म, हरड़, हलदी, इनको इकट्ठा कर मिलाकर घी या शहद के साथ या इकले हरड़ को ही गुड़ और शहद के साथ कामलारोगी को चाटना चाहिए ॥ १० ॥

मृद्विरेचनम् ।

इन्द्रलोचन नेत्राणि शिखि भागोञ्च योजयेत् । त्रुटि गन्धक मृद्दारशतपुष्पा विचूर्णितम् ॥ २१ ॥

माषद्वय गवां दुग्धैः सेवयेद्दिनपञ्चकम् । रेचयेन्मृत्तिकां शुद्धां शिशूनां हितमौषधम् ॥ २२ ॥

इलायची १ भाग, गन्धक ३ भाग, मुर्दासङ्ग ३ भाग, सौंफ ३ भाग लेकर महीन चूर्ण कर रख ले । इसमें से २।२ माशे गौ दूध के साथ देने से ५ दिन में बच्चों की खाई हुई मिट्टी दस्त द्वारा निकल जाती है । विशेष अनुभूत है ॥ २१-२२ ॥

निशालौह ।

लोहचूर्णं निशायुग्मत्रिफलारोहिणीयुतम् । प्रलिह्यान्मधुसर्पिर्भ्यां कामलापाण्डुशान्तये ॥ २३ ॥

हलदी, दारुहलदी, त्रिफला (हर्ड़, बहेड़ा, आँवला), कुटकी हरएक एक एक तोला, लोहभस्म ६ तोला, इन्हें मिलाकर सेवन करने से कामला तथा पाण्डुरोग शान्त होता है । मात्रा-२-३ रत्ती, अनुपान-शहद तथा घृत ॥ २३ ॥

विडङ्गाद्य लौह ।

विडङ्गमुस्तत्रिफलादेवदारुषडूषणैः । तुल्यमात्रमयश्चूर्णं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ॥ २४ ॥ गुञ्जाद्वयमितां कृत्वा वटीं खादेत् दिनेदिने । कामलापाण्डुरोगार्त्तः सुखमाप्यतेऽचिरात् ॥ २५ ॥

वायविडङ्ग, मोथा, त्रिफला, (हर्ड़, बहेड़ा, आँवला), देवदारु, पीपरि, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, काली मिर्च, प्रत्येक द्रव्य १ भाग, लोहभस्म सबके बराबर, इस मिले हुए चूर्ण से आठगुना गोमूत्र मिट्टी के बर्तन में चूर्णसहित डालकर पका ले । जब गोली बनाने योग्य गाढ़ा हो जावे तब उतार ले और २।२ रत्ती प्रमाण की गोली बना ले । इनका लगातार सेवन करने से कामला तथा पाण्डुरोग नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य आरोग्य हो जाता है ॥ २४-२५ ॥

अष्टादशाङ्ग लौह ।

किराततिक्ता चसुदारु दार्वीमुस्तागुडूची कटुकापटोलम् । दुरालभा पर्पटकं सनिम्बं कटुत्रिकं वह्निफलत्रिकञ्च ॥ २६ ॥ फलं विडङ्गस्य समांशिकान्ते सर्वैः समं चूर्णमथायसञ्च । सर्पिर्मधुभ्यां वटिका विधेया तक्रानुपाना भिषजप्रयोज्या ॥ २७ ॥ निहन्ति पाण्डुञ्च हलीमकञ्च शोथं प्रमेहं ग्रहणीरुजञ्च । श्वासञ्च कासञ्च सरक्तपित्तमर्शांस्यथो वातग्रहमामवातम् । व्रणांश्च गुल्मान् कफविद्रधींश्च रिनश्ञ्च कुष्ठञ्च ततः प्रयोगात् ॥ २८ ॥

चिरायता, देवदारु, दारुहलदी, मोथा, गिलोय कुटकी, पटोलपत्र, दुरालभा, पित्तपापड़ा, नीम, त्रिकटु, (सोंठ, मिर्च, पीपरि,), चित्रक, त्रिफला, (हर्ड़, बहेड़ा, आँवला), वायविडङ्ग, हर एक द्रव्य १ तोला, लोहभस्म १८ तोले, इन्हें मिलाकर घी या शहद के साथ गोली बना, ले । मात्रा २।३ रत्ती । अनुपान मठा । इनके व्यवहार से पाण्डु, हलीमक, शोथ (सूजन) प्रमेह, ग्रहणी, श्वास, कास, रक्तपित्त, अर्श, वातग्रह, आमवात, व्रण, (फोड़ा), गुल्म,

विद्रधि, श्वित्र तथा कुष्ठ नाश को प्राप्त होते हैं ॥ २६-२८ ॥

कामलान्तक लौह ।

द्विपलं जारितं लौहं लौहार्द्धं जारिताभ्रकम् । मण्डूरश्च तदर्धश्च तदर्धं मृतवङ्गकम् ॥ २९ ॥ वङ्गार्धं मागधं शुण्ठी पिप्पलीगजपिप्पली । ग्रन्थिकं गन्धपत्रश्च दार्वी चव्यं यमानिका ॥ ३० ॥ चित्रकं कट्फलं रास्ना देवदारु फलत्रिकम् । रसाञ्जनं चातिविषा समभागान् विचूर्णयेत् ॥ ३१ ॥ केशराजस्य भृङ्गस्य सोमराजरसस्य च । मण्डूकपर्ण्याः स्वरसैर्भावयेच्च दिनत्रयम् ॥ ३२ ॥ भक्षयेन्मधुना युक्तं सर्वमेहकुलान्तकः । कामला पाण्डुरोगञ्च हलीमकमथारुचिम् ॥ ३३ ॥ कासं श्वासं, शिरःशूलं प्लीहानमग्रमांसकम् । जीर्णज्वरं तथा शोथमङ्गग्रहनिपीडितम् ॥ ३४ ॥ गुल्मं शूलञ्च कुरुते दीप्तं ज्वरं जीर्णं व्यपोहति ॥ कामलान्तकनामायं लौहः कामलरोगनुत् ॥ ३५ ॥

लोहभस्म १६ तोले, अभ्रकभस्म ८ तोले, मण्डूर ४ तोले, वङ्गभस्म २ तोले, मागध (जीरा), सोंठ, पीपल, गजपीपल, पिप्पलीमूल, तेजपत्र, दारुहलदी, चव्य, अजवाइन, चित्रक, कट्फल, रास्ना, देवदारु, त्रिफला, (हर्र, बहेड़ा, आँवला), रसौत, अतीस, हरएक द्रव्य १ तोला; इन्हें केशराज, भृङ्गराज (सफेद काले दोनों भाँगरे), सोमराज (कालीजीरी) तथा मण्डूकपर्णी के रस से अलग-अलग तीन दिन भावना दे, मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती, अनुपान—शहद। इसके सेवन करने से प्रमेह, कामला, पाण्डु, हलीमक, अरुचि, कास, श्वास, शिरोवेदना, (सिरदर्द), प्लीहा, अग्रमांस, जीर्णज्वर, शोथ (सूजन), अंगग्रह, गुल्म, शूल, हृद्रोग तथा संग्रहणी आदि रोग दूर होते हैं और यह अग्निदीपन है ॥ २९-३५ ॥

हलीमकचिकित्सा ।

पाण्डुरोगक्रियां सर्वां योजयेच्च हलीमके । कामलायाञ्च या दिष्टा सापि कार्या भिषग्वरैः ॥ ३६ ॥

पाण्डुरोग और कामला में जो-जो चिकित्साएँ कही गई हैं, वैद्यवर हलीमक में भी उन्हीं सब चिकित्साओं का प्रयोग करें ॥ ३६ ॥

नवायसलौह

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चित्रकं समम् । नवायोरजसो भागास्तच्चूर्णं मधुसर्पिषा । भक्षयेत् पाण्डुहृद्रोगकुष्ठार्शः-कामलापहम् ॥ ३७ ॥

सोंठ, मिरिच, पीपरि, आँवला, हर्र बहेड़ा, नागरमोथा, वायविडङ्ग और चीता प्रत्येक एक-एक तोला, लोहभस्म ९ तोले; इन सब द्रव्यों को जल में घोटकर वटी बना लेवे । मात्रा—१ रत्ती से क्रमशः बढ़ाकर ४ रत्ती पर्यन्त । अनुपान—घृत और मधु । इसका सेवन करने से पाण्डुरोग, हृद्रोग, कुष्ठ, बवासीर और कामला रोग नष्ट होते हैं ॥ ३७ ॥

त्रिकत्रयाद्यलौह ।

पलं लौहस्य किट्टस्य पलं गव्यस्य सर्पिषः । शितायाश्च पलञ्चैकं मधुनश्चं पलं तथा ॥ ३८ ॥ तोलैकं कान्तलौहस्य त्रिकत्रयसमन्वितम् । ततः पात्रे विधातव्यं लौहे वा मृण्मये तथा ॥ ३९ ॥ भावितं मधुसर्पिभ्यां रौद्रे शिशिर एव च । भोजनादौ तथा मध्ये चान्ते चैव प्रयोजयेत् । अनुपानं प्रदातव्यं बुद्ध्वा दोषगतिं भिषक् ॥ ४० ॥ कामलां पाण्डुरोगञ्च हलीमकमथापि च । अम्लपित्तं तथा शूलं

शूलञ्च परिणामजम् ॥ ४१ ॥ कासं पञ्चविधञ्चैव प्लीहश्वासज्वरानपि । अपस्मारं तथोन्मादमुदरं गुल्ममेव च ॥ ४२ ॥ अग्निमान्द्यमजीर्णञ्च श्वयथुञ्चसुदारुणम् । निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥४३॥ त्रिकत्रयादिरित्येष वाग्भटेन प्रकाशितः ।

मण्डूर ४ तोले, गोघृत ८ तोले, चीनी ४ तोले, मधु ४ तोले कान्तलोह १ तोला, सोंठ मिरिच, पीपरि, आँवला, हर्र, बहेड़ा, वायविडङ्ग, नागरमोथा और चीता प्रत्येक १ तोला। इन सब औषधों को एकत्रकर लोह के पात्र में, लोहदण्ड से घोटकर दिन भर घाम में और रात को ओस में रख छोड़े। यह औषध मिट्टी के पात्र में भी बन सकती है। इसकी मात्रा ४ रत्ती। भोजन के आदि में पहिले ग्रास के साथ, भोजन के मध्य में ग्रास के साथ और भोजन के अन्त में अन्तिम ग्रास के साथ इस त्रिकत्रयाद्यलोह का सेवन करना चाहिए। इसका सेवन करने से कामला, पाण्डुरोग, हलीमक, अम्लपित्त, शूल, परिणामजन्य शूल, ५ प्रकार के कास, प्लीहा, श्वास, ज्वर, अपस्मार, उन्माद, उदररोग, गुल्म, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, दारुणशोथ ये सब रोग इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार नष्ट हो। इसमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं ॥ ३७-४२ ॥

योगराजलोह ।

त्रिफलायास्त्रयो भागास्त्रयस्त्रिकटुकस्य च। भागाश्चित्रकमूलस्य विडङ्गानांतथैव च ॥ ४३ ॥ पञ्चाऽश्म जतुनोभागास्तथारूप्य मलस्य च। माक्षिकस्य च शुद्धस्य लौहस्य रजस्तथा ॥ ४४ ॥ अष्टौभागा सितायाश्च तत्सर्वं सूक्ष्मचूर्णितम् । माक्षिकेणाऽऽप्लुतं स्थाप्य मायसेभाजने शुभे ॥४५॥ उदुम्बरसमां मात्रां ततः खादेद्यथाऽग्निना । दिनेदिने प्रयुञ्जीत जीर्णभोज्यं यदीप्सितम् ॥ ४६ ॥ वर्जयित्वा कुलत्थानि काकमाची कपोतकम् । योगराज इतिख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ ४७ ॥ रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोग हरं शिवम् । पाण्डुरोगं विषं कासं शोषं श्वासमरोचकम् ॥ ४८ ॥ विशेषाद्धन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानि च ॥ ४९ ॥

त्रिफला, त्रिकुटा, चित्रक, विडङ्ग ३-३ भाग शुद्ध शिलाजीत रूपामाखी, सोनामाखी, लोहभस्म ५-५ भाग शक्कर ८ भाग लेकर सबका महीन चूर्ण कर शहद में मिलाकर लोहे के पात्र में रख ६-७ रोज चावल के ढेर में रखा रहने देवे, फिर निकाल कर रख लेवे। २ माशे से १ तोले तक बलानुसार नित्यप्रति सेवन करने से, पाण्डु विषय का राज्यक्ष्मा विषम ज्वर, कुष्ठ, अजीर्ण, प्रमेह, शोथ, श्वास, अरुचि, कामला बवासीर इनको यह दूर करता है, विशेष कर अपस्मार को नष्ट करता है। जीर्ण ज्वर में कुलथी मकोय कबूतर को त्याग इच्छानुसार भोजन करे। मात्रा ३-४ रत्ती ॥ ४३-४९ ॥

वज्रवटकमण्डूर ।

पंचकोलं समरिचं देवदारुफलत्रिकम् । विडङ्गमुस्त युक्ताश्च भागास्त्रिपलसम्मिताः॥ ५० ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि मण्डूरं द्विगुणं ततः । पक्त्वा चाष्टगुणे मूत्रे घनीभूते तदुद्धरेत् ॥ ५१ ॥ ततो माषार्द्धमितं पिबेत्तक्रेण तक्रभुक् । पाण्डुरोगं जयत्येष मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ ५२ ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषमूरुस्तम्भमथापि च । कृमिं प्लीहानमुदरं गलरोगञ्च नाशयेत् ॥५३॥ मण्डूरो वज्रनामायं रोगानीकविनाशनः निर्वाप्य बहुशो मूत्रे मण्डूरं ग्राह्यमिष्यते॥

-५४ ॥ ग्राहयन्त्यष्टगुणितं मूत्रं मण्डूर-चूर्णतः ॥ ५५ ॥

गोमूत्र में शुद्ध किया हुआ मण्डूर का चूर्ण २४ तोले लेकर २ सेर ३२ तोले गोमूत्र में पकावे, गाढ़ा हो जाने पर उसमें पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चीतामूल, सोंठ, मिरिच, देवदार, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, वायविडङ्ग और नागरमोथा इन सबका चूर्ण १२ तोले मिलाकर चार-चार रत्ती की बटी बना लेवे। अनुपान—तक्र। भोजन भी तक्र के साथ करना चाहिये। इस वज्रवटकमण्डूर का सेवन करने से पाण्डुरोग, अग्निमान्द्य, अरुचि, बवासीर, ग्रहणी, उरुस्तम्भ, कृमिरोग, प्लीहा, उदररोग और गलरोग आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं ॥ ५०-५५ ॥

पुनर्नवादिमण्डूर।

पुनर्नवा त्रिवृच्छुण्ठी पिप्पली मरिचानि च। विडङ्गं देवकाष्ठञ्च चित्रकं पुष्कराह्वयम् ॥ ५६ ॥ त्रिफला द्वे हरिद्रे च दन्ती च चविका तथा। कुटजस्य फलं तिक्ता पिप्पलीमूलमुस्तकम् ॥ ५७ ॥ एतानि समभागानि मण्डूरं द्विगुणं ततः। गोमूत्रेऽष्टगुणे पक्त्वा स्थापयेत् स्निग्धभाजने। पाण्डुशोथोदरानाहशूलार्शः कृमिगुल्मनुत् ॥ ५८ ॥

शुद्ध मण्डूर का चूर्ण ४० तोले लेकर आठ गुने (४ सेर) गोमूत्र में पकावे। जब गाढ़ा हो जावे, तब उसमें साँठी की जड़, निसोथ, सोंठ, पीपरि, मिरिच, वायविडङ्ग, देवदार, चीता, कूठ, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, हरदी, दारुहरदी, दन्ती की जड़, चव्य, इन्द्रजौ, कुटकी, पिपरामूल और नागरमोथा इनमें से प्रत्येक का चूर्ण १ तोला मिलाकर उतार लेवे। तदनन्तर शीतल होने पर घी के चिकने पात्र में रख देवे। इसकी मात्रा ३ रत्ती से १ मासे पर्यन्त। इसका सेवन करने से पाण्डुरोग, शोथ, उदररोग, आनाह, शूल, बवासीर, कृमिरोग और गुल्मरोग ये सब नष्ट होते हैं ॥ ५६-५८ ॥

पञ्चामृतलौहमण्डूर।

लौहं ताम्रं गन्धमभ्रं पारदञ्च समांशिकम्। त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चित्रकं तथा ॥ ५९ ॥ किरातं देवकाष्ठञ्च हरिद्राद्वयपुष्करम्। यमानी जीरयुग्मञ्च शटी धान्यकचव्यकम् ॥ ६० ॥ प्रत्येकं लौहभागञ्च श्लक्ष्णं चूर्णन्तु कारयेत्। सर्वचूर्णस्य चार्द्धांशं सुशुद्धं लौहकिट्टकम् ॥ ६१ ॥ गोमूत्रे पाचयेद्वैद्यो लौहकिट्टं चतुर्गुणे। पुनर्नवाष्टगुणितं क्वाथं तत्र प्रदापयेत् ॥ ६२ ॥ सिद्धेऽवतारिते चूर्णं मधुनः पलमात्रकम्। भक्षयेत् प्रातरुत्थाय कोकिलाक्षानुपानतः ॥ ६३ ॥ ग्रहणीं चिरजां हन्ति सशोथां पाण्डुकामलाम्। अग्निञ्च कुरुते दीप्तं ज्वरं जीर्णं व्यपोहति ॥ ६४ ॥ प्लीहानं यकृतं गुल्ममुदरञ्च विशेषतः। कासं श्वासं प्रतिश्यायं कान्तिपुष्टिविवर्द्धनम् ॥ ६५ ॥

अत्र सर्वचूर्णसमांशं मण्डूरचूर्णमिति वृद्धाः। गोमूत्रपुनर्नवाक्वाथमण्डूराणां पाकः चूर्णानां प्रक्षेपः शीते च मधुनः।

लौहभस्म, ताम्रभस्म, गन्धक, अभ्रकभस्म, पारद, सोंठ, मिरिच, पीपरि, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, नागरमोथा, वायविडङ्ग, चीता, चिरायता देवदारु, हरदी, दारुहरदी, कूठ, अजवाइन, स्याह जीरा, सफेद जीरा, कचूर, धनिया और चव्य, प्रत्येक का चूर्ण १ तोला और कुल मिलाकर जितने हों उसका आधा शुद्ध मण्डूर, किन्तु वृद्ध वैद्यों के मतानुसार कुल चूर्ण का समान भाग मण्डूर भस्म होनी चाहिये। मण्डूर

की अपेक्षा चौगुना गोमूत्र और अठगुना पुनर्नवा का क्वाथ होना चाहिये। गोमूत्र, पुनर्नवा का क्वाथ और मण्डूर इन तीनों को एकत्र पकावे जब गाढ़ा हो जावे तब उसमें पूर्वोक्त लोहभस्म आदि औषधों को डाले और उत्तम रूप से मिलाकर उतार लेवे। शीतल होने पर उसमें १ पल (४ तोला) मधु मिलाकर रख देवे। तालमखाना के पञ्चाङ्ग के क्वाथ अथवा स्वरस के साथ उपयुक्त मात्रा में प्रातःकाल सेवन करना चाहिये। इसका सेवन करने से पुरानी ग्रहणी, शोथयुक्त पाण्डुरोग और कामला, प्लीहा, यकृत्, गुल्म, उदररोग, कास श्वास और प्रतिश्याय ये सब रोग नष्ट होते हैं। तथा अग्नि की दीप्ति, कान्ति और पुष्टि की वृद्धि होती है। मात्रा—२-४ रत्ती ॥ ५६-६५ ॥

त्र्यूषणादिमण्डूर।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकौ। दार्वी त्वङ्माक्षिको धातुर्ग्रन्थिकं देवदारु च ॥ ६६ ॥ एषां द्विपलिकान् भागांश्चूर्णं कृत्वा पृथक् पृथक्। मण्डूरं द्विगुणं चूर्णाच्छुद्धमञ्जनसन्निभम् ॥ ६७ ॥ मूत्रे चाष्टगुणे पक्त्वा तस्मिंस्तु प्रक्षिपेत्ततः। रक्तित्रयमितान् कृत्वा वटकांस्तान् यथाग्नि तु ॥ ६८ ॥ उपयुञ्जीत तक्रेण सात्म्यं जीर्णे च भोजनम्। मण्डूरवटकाह्येते प्राणदाः पाण्डुरोगिणाम्॥६९॥ कुष्ठान्यरोचकं शोथमूरुस्तम्भं कफामयान्। अर्शांसि कामलां मेहान् प्लीहानं शमयन्ति च ॥ ७० ॥ निर्वाप्य बहुशो मूत्रे मण्डूरं ग्राह्यमिष्यते। ग्राहयन्त्यष्टगुणितं मूत्रं मण्डूरचूर्णत ॥ ७१ ॥

त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, वायविडङ्ग, चव्य, चीता, दारुहल्दी, दारचीनी, सोनामाखी की भस्म, पिप्पलीमूल, देवदारु, हर एक द्रव्य १६ तोले, शुद्ध मण्डूर भस्म ४२ पल, गाय का मूत्र ३३६ पल इनको विधि अनुसार पकाकर ३ रत्ती प्रमाण की गोली बनावे। अनुपान—मठा (तक्र)। ये गोलियाँ पाण्डुरोगी को प्राणदायिनी हैं। इनके व्यवहार से कुष्ठ, अरुचि, शोथ (सूजन), ऊरुस्तम्भ, कफरोग, अर्श, कामला, प्रमेह, प्लीहा आदि रोग नाश को प्राप्त होते हैं। इस क्रिया में पहले मण्डूर को कई बार गोमूत्र में बुझा लेना चाहिए ॥ ६६-७१ ॥

चन्द्रसूर्यात्मक रस।

सूतकं गन्धकं लोहमभ्रकञ्च पलं पलम्। शंखटङ्कणराटञ्च प्रत्येकार्द्धपलं हरेत् ॥ ७२ ॥ गोक्षुरबीजचूर्णञ्च पलैकं तत्र दीयते। सर्वमेकीकृतं चूर्णं वाष्पयन्त्रे विभावयेत् ॥ ७३ ॥ पटोलं पर्पटं भार्गी विदारी शतपुष्पिका। कुण्डली दण्डिनी वासा काकमाचीन्द्रवारुणी ॥ ७४ ॥ वर्षाभूः केशराजश्च शालिञ्चो द्रोणपुष्पिका। प्रत्येकार्द्धपलैर्द्रवैर्भावयित्वा वटीं कुरु ॥ ७५ ॥ चतुर्गुञ्जामितां खादेच्छागीदुग्धानुपानतः। गहनानन्दनाथोक्तश्चन्द्रसूर्यात्मको रसः ॥ ७६ ॥ हलीमकं निहन्त्याशु पाण्डुरोगञ्च कामलाम्। जीर्णज्वरं सविषमं रक्तपित्तमरोचकम् ॥ ७७ ॥ शूलं प्लीहोदरानाहमष्ठीलागुल्मविद्रधीन्। शोथं मन्दानलं कासं श्वासं हिक्कां वमिं भ्रमिम् ॥ ७८ ॥ भगन्दरोपदंशौ च दद्रुकण्डू व्रणापचीः। दाहं तृष्णामूरुस्तम्भमामवातं कटीग्रहम् ॥ ७९ ॥ युक्त्या मद्येन मण्डेन मुद्गयूषेण वारिणा। गुडूचीत्रिफलारास्नाक्वाथनीरेण वा क्वचित् ॥ ८० ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म और अभ्रकभस्म प्रत्येक ४ तोले, शंखभस्म, सोहागा की खील, कौड़ीभस्म, प्रत्येक २ तोले, गोखरू के बीजों का

चूर्ण ४ तोले इन कुल औषधों को एकत्रित कर परवल के पत्ते, पित्तपापड़ा, भारंगी, विदारीकन्द, सौंफ, गिलोय, दुग्धोत्पल,- अरूसा, मकोय, इन्द्रायण की जड़, साँठी, भाँगरा, शालिञ्चशाक और गूमा इनमें से प्रत्येक औषध के दो दो तोले रसों से वाष्पयन्त्र में भावना देकर एक २ रत्ती की वटी बनावे। १४ दिन पर्यन्त प्रतिदिन एक-एक वटी बकरी के दूध के साथ खाना चाहिये। इसका आविष्कार गहनानन्दजी ने किया था। इस चन्द्रसूर्यात्मक रस के सेवन करने से हलीमक, पाण्डुरोग, कामला, जीर्णज्वर, विषमज्वर, रक्तपित्त, अरोचक, शूल, प्लीहा, उदररोग, आनाह, अष्ठीला, गुल्म, विद्रधि, शोथ, अग्निमान्द्य, कास, श्वास, हिचकी, वमन, भ्रमरोग, भगन्दर, उपदंश, दद्रु, कण्डू, व्रण, अपची, दाह, तृष्णा, उरुस्तम्भ, आमवात और कटीशूल आदि नाना रोग नष्ट होते हैं। प्रत्येक रोग में दोष आदि विचारकर मद्य, मण्ड (माड), मूँग का जूस, जल, गिलोय का क्वाथ, त्रिफला का क्वाथ और रास्ना का क्वाथ इनमें से किसी एक के साथ सेवन कराना चाहिये ॥ ७२-८० ॥

प्राणवल्लभ रस ।

हिंगुलसम्भवं सूतं गन्धं काश्मीरसम्भवम् । लौहं ताम्रं वराटीश्च तुत्थं हिंगुफलत्रयम् ॥ ८१ ॥ स्नुहीमूलं यवक्षारं जैपालं टङ्कनं त्रिवृत् । प्रत्येकन्तु समं भागं छागीदुग्धेन भावयेत् ॥ ८२ ॥ गुञ्जैकां च वटीं खादेद्वारिणा मधुना सह। प्राणवल्लभनामायं गहनानन्दभाषितः ॥ ८३ ॥ श्लेष्मदोषञ्च संवीक्ष्य युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम् । निहन्ति कामलां पाण्डुमानाहं श्लीपदं तथा ॥ ८४ ॥ गलगण्डं गण्डमालां कृच्छ्राणि च हलीमकम् । शोथं शूलमुरुस्तम्भं संग्रहग्रहणीं तथा ॥ ८५ ॥ हन्ति मूर्च्छां वमिं हिक्कां कासं श्वासं गलग्रहम् । असाध्यं सन्निपातञ्च जीर्णज्वरमोचकम् ॥ ८६ ॥ जलदोषभवं शोथं महोग्रञ्च जलोदरम् । नातः परतरः श्रेष्ठः कामलार्त्तिरुजापहः ॥ ८७ ॥

हिंगुल का निकाला पारा, आँवलासार गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, कौडीभस्म, तूतिया, हींग, आँवला, हर्र, बहेड़ा, थूहर की जड़, यवक्षार, जमालगोटा, सोहागा की खील और निसोथ इन सब औषधों को एकत्र कर बकरी के दूध की भावना देकर घोटना चाहिये। तदनन्तर एक एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे अनुपान—मधु और जल। यह गहनानन्दजी का कहा हुआ प्राणवल्लभ नामक रस है। यदि रोगी को कफ अधिक हो तो विचार कर क्रमशः मात्रा बढ़ा देवे। इसका सेवन करने से कामलापाण्डुरोग, आनाह, श्लीपद, गलगण्ड, गण्डमाला, मूत्रकृच्छ्र, हलीमक, शोथ, शूल, उरुस्तम्भ, संग्रहग्रहणी, मूर्च्छा, वमन, हिचकी, कास, श्वास, गलग्रह, असाध्य सन्निपात, जीर्णज्वर, अरुचि, जलदोषजन्य शोथ, महान् उग्र जलोदर आदि रोग नष्ट होते हैं। कामला नष्ट करने के लिये इससे उत्तम और कोई औषध ही नहीं है ॥ ८१-८७ ॥

पञ्चानना वटी ।

शुद्धसूतं समंगन्धं मृतताम्राभ्रगुग्गुलु । जैपालबीजतुल्यञ्च घृतेन गुटिकीकृतम् ॥ ८८ ॥ भक्षयेदर्धगुञ्जाभं शोथपाण्डुप्रशान्तये । पञ्चाननवटी ख्याता पाण्डुरोगकुलान्तिका ॥ ८९ ॥

अत्र सर्वसमं जैपालम् । घृतेन प्रहरं सम्मर्द्य स्निग्धभाण्डे संस्थाप्य बदराण्डप्रमाणं भक्षयेत् । द्रोणपुष्पीरसमनुपिबेत् ।

शुद्ध पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म और गूगुल इन कुल औषधों को सम भाग लेवे और कुल औषधों के समुदाय के बराबर जमालगोटा लेकर घृत के साथ एक प्रहर पर्यन्त घोटकर आधी रत्ती के बराबर गोलियाँ बनाकर घृत के

चिकने बासन में रख छोड़े। गूमा के रस के साथ इस प्रसिद्ध पञ्चानना वटी का सेवन करने से पाण्डुरोग और शोथ रोग नष्ट होते हैं ॥ ८१-८२ ॥

पाण्डुसूदन रस।

रसगन्धं मृतं ताम्रंजयपालञ्चगुग्गुलु। समांशमाज्यसंयुक्तं गुडिकां कारयेद्भिषक् ॥ ९० ॥ एकैकां खादयेद्वैद्यः पाण्डुशोथापनुत्तये। शीतलञ्च जलञ्चाम्लं वर्जयेत्पाण्डुसूदने ॥ ९१ ॥

पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, जमालगोटा और गूगुल समभाग इन कुल औषधों को लेकर घृत के साथ घोटकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। इसका सेवन करने से पाण्डु और शोथ रोग नष्ट होते हैं। इस रस का सेवन करनेवाले रोगी को शीतल जल और खट्टे पदार्थ सेवन न करने चाहिये ॥ ९०-९१ ॥

पाण्डुपञ्चानन रस।

लोहमभ्रञ्च ताम्रञ्च प्रत्येकं पलसम्मितम्। त्रिकटु त्रिफला दन्ती चविकं कृष्णाजीरकम् ॥ ९२ ॥ चित्रकञ्च निशे द्वे च त्रिवृता माणमूलकम्। कुटजस्य फलं तिक्ता देवदारु वचा घनम् ॥ ९३ ॥ प्रत्येकमेषां कर्षन्तु निक्षिपेत्पाकविद्भिषक्। सर्वस्य द्विगुणं देयं शुद्धमण्डूरचूर्णकम् ॥ ९४ ॥ गोमूत्रेऽष्टगुणे पक्त्वा सिद्धे शीततां गते। भक्षयेत् प्रातरुत्थाय उष्णतोयानुपानतः ॥ ९५ ॥ हलीमकं शोथपाण्डुमूरुस्तम्भञ्च नाशयेत्। रसायनवरश्चैष बलवर्णाग्निकारकः। यकृतं प्लीहगुल्मञ्च सर्वरोगहरः परः ॥ ९६ ॥

लोहभस्म, अभ्रकभस्म और ताम्रभस्म प्रत्येक ४ तोले, त्रिकटु (सोंठ, मिरिच और पीपरि) त्रिफला, जमालगोटा की जड़, चव्य, कालाजीरा, चीता का मूल, हलदी, दारुहलदी, निशोथ, मानकन्द का मूल, इन्द्रजौ, कुटकी, देवदारु, वच और नागरमोथा प्रत्येक १ तोला, कुल औषधों से दूना शुद्ध मण्डूर, भस्म मण्डूर से आठ गुना गोमूत्र लेवे। पहिले मण्डूर को गोमूत्र में पकावे, पाक सिद्ध होने पर उसमें पूर्वोक्त लोहभस्म और अभ्रक आदि औषधों को मिला देवे। इसको पाण्डुपञ्चानन रस कहते हैं। प्रातःकाल उष्ण जल के साथ इसका सेवन करना चाहिये। इसका सेवन करने से हलीमक, शोथ, पाण्डु, उरुस्तम्भ, यकृत्, प्लीहा और गुल्म आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं। तथा बल, वर्ण और अग्नि की वृद्धि होती है, यह श्रेष्ठ रसायन है। मात्रा—१ रत्ती ॥ ९२-९६ ॥

आनन्दोदय रस।

पारदं गन्धकं लोहमभ्रकं विषमेन च। समांशं मरिचं चाष्टगुणं टङ्कं चतुर्गुणम् ॥ ९७ ॥ भृङ्गराजरसैः सप्त भावनाश्चाम्लदाडिमैः। गुञ्जाद्वयं पर्णखण्डे खादेत् सायं निहन्ति च ॥ ९८ ॥ वातश्लेष्मभवान् रोगान् मन्दाग्निं ग्रहणीं ज्वरान्। अरुचिं पाण्डुताञ्चैव जयेदचिरसेवनात् ॥ ९९ ॥ नष्टमग्निं करोत्येष कालभास्करतेजसम्। पार्वतोऽपि हि जीर्य्येत प्राशनादस्य देहिनः। गुर्वन्नमम्लमापञ्च भक्षणादेव जीर्य्यति ॥ १०० ॥

पारा, गन्धक, लोह अभ्रक और विष प्रत्येक एक तोला, कालीमिरिच ८ तोले और सोहागा फूला हुआ ४ तोले, इनको एकत्र घोटकर भँगरैया के रस में और खट्टे अनार के रस में सात-सात भावना देकर दो-दो रत्ती की

"पार्वतोऽपि हि जीर्य्येत" यह उल्लेख कैमुतिकन्याय को सूचित करने के लिये किया गया है इससे यह तात्पर्य नहीं है कि इस रस का सेवन करने से पत्थर पच जाता है।

गोलियाँ बनावे । पान के पत्ता में रखकर २ रत्ती की मात्रा में इस रस को सायकाल सेवन करना चाहिये । यह रस सेवन करने से सब प्रकार के वात-कफजन्य रोग, अग्निमान्ध, ग्रहणी, ज्वर, अरुचि और पाण्डुरोग शीघ्र नष्ट करता है तथा नष्ट अग्नि को प्रलयकाल के सूर्य के समान दीप्त करता है । इस रस का सेवन करने से पर्वत का पत्थर भी पच सकता है, फिर गुरुपाक अन्न, खट्टे पदार्थ और उर्द आदि तो भोजन करते ही पच जाते हैं, इसमें संदेह ही क्या है ॥ ६१-१०० ॥

पुनर्नवा तैल ।

पुनर्नवापलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् । तेन पादावशेषेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १०१ ॥ त्रिकटु त्रिफला भृङ्गी धन्याकं कट्फलं तथा । शटी दारु प्रियङ्गुश्च देवदारुहरेणुभिः॥ १०२ ॥ कुष्ठं पुनर्नवामूलं यमानी कारवी तथा । एलात्वचं पद्मकञ्च पत्रं नागरकेशरम् ॥ १०३ ॥ एषाञ्च कार्षिकं कल्कं पेषयित्वा विनिक्षिपेत् । कामलां पाण्डुरोगञ्च हलीमकमथापि वा ॥ १०४ ॥ रक्तपित्तं प्रमेहाश्च कासं श्वासं भगन्दरम् । प्लीहानमुदरञ्चैव ज्वरं जीर्णं व्यपोहति॥ १०५ ॥ कुरुते च परां कान्तिं प्रदीपयति चानलम् । तैलं पौनर्नवं नाम मलव्याधीन् नियच्छति ॥ १०६ ॥

५ सेर पुनर्नवा को २५ सेर ४८ तोला जल में पकावे । ६ सेर ३२ तोला जल शेष रहने पर उसमें १२८ तोला तिल का तेल मिलावे, तदनन्तर त्रिकटु, त्रिफला, काकड़ासिंगी, धनिया, कायफल, कचूर, दारुहल्दी, फूलप्रियंगु, देवदारु, सँभालू के बीज, कूठ, पुनर्नवा की जड़, अजवाइन, कलौंजी, इलाइची, दालचीनी, पदुमकाठ, तेजपात और नागकेसर इनमें से प्रत्येक द्रव्य को एक एक तोले लेकर कल्क बनावे, इस कल्क को भी क्वाथ में मिलाकर यथाविधि पाक करे, तैलमात्र शेष रहने पर छानकर रख लेवे । इस पौनर्नवतैल का मर्दन करने से पाण्डुरोग, हलीमक, रक्तपित्त, प्रमेह, कास, श्वास, भगन्दर, प्लीहा, उदररोग, जीर्णज्वर और हर प्रकार के मलजन्य रोग नष्ट होते हैं, तथा कान्ति की वृद्धि और अग्नि का दीपन होता है ॥ १०१-१०६ ॥

मूर्वाद्य घृत ।

मूर्वातिक्तानिशायासकृष्णाचन्दनपर्पटैः। त्रायन्तीवत्सभूनिम्बपटोलाम्बुददारुभिः ॥ १०७ ॥ अक्षमात्रैर्घृतप्रस्थं सिद्धं क्षीरचतुर्गुणम् । पाण्डुताज्वरविस्फोटशोथार्शोरक्तपित्तनुत् ॥ १०८ ॥

घी दो सेर, दूध ६ सेर ३२ तोला, जल २५ सेर ४८ तोला, मूर्वा, कटुकी, हल्दी, जवासा, पीपरि, लालचन्दन, पित्तपापड़ा, त्रायमाणा, कुड़ा की छाल, चिरायता, परवल के पत्ते नागरमोथा और देवदारु; इनमें से प्रत्येक औषध को एक एक तोला लेकर कल्क बनावे । तदनन्तर घी, दूध, जल और कल्क इनको एकत्रित कर यथाविधि पाक करे । मात्रा ६ माशे से १ तोला तक । इस घृत का सेवन करने से पाण्डु रोग, ज्वर, विस्फोट, शोथ, बवासीर, और रक्तपित्त ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ १०७ १०८ ॥

व्योषाद्य घृत ।

व्योषं विल्वं द्विरजनी त्रिफला द्विपुनर्नवम् । मुस्तान्ययोरजः पाठा विडङ्गं देवदारु च ॥ १०९ ॥ वृश्चिकाली च भार्गी च सक्षीरैस्तैः शृतं घृतम् । सर्वान् प्रशमयत्येतद्विकारान् मृत्तिकाकृतान् ॥ ११० ॥

घृत २ सेर, दूध ८ सेर, कल्क के लिये सोंठ,

मिर्च, पीपरि, बेल की छाल, हरदी, दारुहलदी, त्रिफला, श्वेत पुनर्नवा, रक्त पुनर्नवा, नागरमोथा, लोहभस्म, पाढ़ी, वायविडङ्ग, देवदारु, बिछुआ घास और भारङ्गी ये कुल द्रव्य मिलकर १ सेर तथा पाकार्थ जल ३२ सेर, घृत, दूध, कल्क और जल इनको एकत्रित कर यथाविधि पाक करे। मात्रा ½।१ तोला। इसका सेवन करने से मृत्तिकाभक्षणजन्य सब प्रकार के रोग नष्ट होते हैं॥ १०६-११०॥

योगराज।

त्रिफलायास्त्रयो भागास्त्रयस्त्रिकटुकस्य च। भागाश्चित्रकमूलस्य विडङ्गानां तथैव च॥ १११॥ पञ्चाश्मजतुनो भागास्तथा रूप्यमलस्य च। माक्षिकस्य विशुद्धस्य लौहस्य रजसस्तथा॥ ११२॥ अष्टौ भागाः सितायाश्च तत्सर्वं श्लक्ष्णचूर्णितम्। माक्षिकेणाप्लुतं स्थाप्यमायसे भाजने शुभे॥ ११३। चतुर्गुञ्जामितां मात्रां ततः खादेद् यथाग्निना। दिने दिने प्रयोगेण जीर्णे भोज्यं यथेप्सितम्॥ ११४॥ वर्जयित्वा कुलत्थांश्च काकमाचीकपोतकान्। योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः॥ ११५॥ रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं परम्। पाण्डुरोगं विषं कासं यक्ष्माणं विषमज्वरम्॥ ११६॥ कुष्ठान्यजरकं मेहं श्वासं हिक्कामरोचकम्। विशेषाद्धन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानि च ११७

त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला,) मिला हुआ ३ भाग, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि) मिला हुआ ३ भाग, चित्रकमूल १ भाग, वायविडङ्ग १ भाग, शिलाजीत ५ भाग, रूपा मक्खी की भस्म ५ भाग लौह ८ भाग, इन्हें अतिसूक्ष्म चूर्ण कर शहद मिलाकर लोहे के बासन में रक्खे। मात्रा—४ रत्ती। ओषधि के सेवनकाल में कुलथ, मकोय तथा कबूतर का मांस इत्यादि त्याज्य है। यह रसायन अमृत के समान गुण करनेवाला है। इसको प्रयोग में लाने से पाण्डु, विष, कास, राजयक्ष्मा, पुराना बुखार, कुष्ठ, अजीर्ण, प्रमेह, श्वास, हिक्का (हिचकी), अरुचि, अपस्मार, कामला तथा अर्श (बवासीर) आदि रोग नष्ट होते हैं॥ १११-११७॥

आमलक्यवलेह।

रसामलकानान्तु संशुद्धं यन्त्रपीडितम्। द्रोणं पचेच्च मृद्वग्नौ तत्र चेमानि दापयेत्॥ ११८॥ चूर्णितं पिप्पलीप्रस्थं मधुकं द्विपलं तथा। प्रस्थं गोस्तनिकायाश्च द्राक्षायाः किल पेषितम्॥ ११९॥ शृङ्गबेरपले द्वे तु तुगाक्षीर्याः पलद्वयम्। तुलार्द्धं शर्करायाश्च घनीभूतं समुद्धरेत्॥ १२०॥ मधु प्रस्थसमायुक्तं लेहयेत् पलसम्मितम्। हलीमकं कामलाञ्च पाण्डुत्वञ्चापकर्षति॥ १२१॥

आँवले के २५ सेर ४८ तोले का रस मंद अग्नि से पकाकर, उसमें पीपल का चूर्ण ६४ तोला, मुलहठी का चूर्ण ८ तोला, दाख ६४ तोला, सोंठ ८ तोला, वंशलोचन ८ तोला, खाँड २॥ सेर, इनके चूर्ण को उपर्युक्त पाक में ऊपर से मिलावे अर्थात् प्रक्षेप दे। गाढ़ा होने पर उतार ले और ठण्डा होने पर ६४ तोला शहद मिलाकर रोगी को सेवन करावे। मात्रा ½ तोले से १ तोले तक। इसके सेवन करने से हलीमक, कामला तथा पाण्डु आदि रोग शान्त होते हैं॥ ११८-१२१॥

धात्र्यरिष्ट

धात्रीफलसहस्रे द्वे पीडयित्वा रसं भिषक्। क्षौद्राष्टभागं पिप्पल्याश्चचूर्णार्द्धकुडवान्वितम्॥ १२२॥ शर्करार्द्धतुलोन्मिश्रं पक्वं स्निग्धघटे स्थितम्। प्रापयेत् पाण्डुरोगार्त्तो जीर्णे हितमिताशनः॥

१२३ ॥ कामलापांडुहृद्रोगवातासृग्विषमज्वरान्। कासहिक्कारुचिश्वासानेषोरिष्टः प्रणाशयेत् ॥ १२४ ॥

२००० आँवले का रस निचोड़कर निकाले। इस रस में पीपल १६ तोले, और खाँड २॥ सेर मिलाकर पकावे। खाँड के घुल जाने पर उसे नीचे उतार ले और ठण्डा होने पर चिकने मिट्टी के बर्तन में मुख बंद करके रख दे। जब अरिष्ट तैयार हो जावे तब निकालकर काम में लावे। इस अरिष्ट के व्यवहार करने से पाण्डु, हृद्रोग, वातरक्त, विषमज्वर, खाँसी, हिक्का, हिचकी, अरुचि, श्वास आदि रोग नाश को प्राप्त होते हैं। मात्रा १½ तोले से २½ तोले तक ॥१२२-१२४॥

पर्पटाद्यरिष्ट।

रक्तपुष्पतुलामेकां चतुर्द्रोणाम्भसा पचेत्। चतुर्भागावशिष्टेऽस्मिन् क्वाथे शीते तुलाद्वयम् ॥ १२५ ॥ दद्याद् गुडस्य धातक्याः पलान् षोडशसम्मितान्। अब्दामृतादारुनिशाः दारुव्याघ्रीयवासकाः ॥ १२६ ॥ चविका वह्निमूलञ्च विडङ्गव्योषमेव च। सर्वाण्येतानि संचूर्ण्य पलभागैस्तु निक्षिपेत् ॥ १२७ ॥ विश्राम्य च ततो भाण्डे मासादूर्ध्वं पिबेदमुम्। कामलामुदराष्ठीलाः गुल्मं पाण्डुहलीमकम् ॥ १२८ ॥ प्लीहयकृच्छोथरक्तविकारान् विषमज्वरान्। एषोऽरिष्टो निहन्त्याशु वृत्तमिन्द्राशनिर्यथा ॥ १२९ ॥

पित्तपापड़ा ५ सेर, पानी ८ द्रोण (२ मन २२ सेर ३२ तोला), यथाविधि काढ़ा बनावे। जब २ द्रोण (२५ सेर ४८ तोला) शेष रहे तब उतारकर ठण्डा कर ले, फिर छानकर उसमें गुड़ २ तुला १० सेर, धाय के फूल १६ पल (६४ तोला), मोथा, गिलोय, दारुहल्दी, देवदार, छोटी कटेरी, दुरालभा, चव्य, चित्रकमूल, वायविडङ्ग, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि), इनको चार चार तोला ले और चूर्ण कर उपर्युक्त काढ़े में प्रक्षेप देकर एक मिट्टी के बर्तन में मुख बंद करके रख दे। एक महीना बाद निकालकर काम में लावे। इसके सेवन से कामला, उदररोग, अष्ठीला, गुल्म, पाण्डु, हलीमक, प्लीहा, यकृत्, (जिगर), शोथ (सूजन), रक्तविकार तथा विषमज्वर आदि अल्पकाल में दूर होते हैं। मात्रा १½ तोले से २½ तोले तक ॥ १२५-१२९ ॥

पाण्डुरोग में पथ्य।

छर्दिर्विरेचनं जीर्णा यवगोधूमशालयः। मुद्गाढकीमसूराणां यूषा जाङ्गलजा रसाः ॥ १३० ॥ पटोलं वृद्धकूष्माण्डं तरुणं कदलीफलम्। जीवन्ती क्षुद्रमत्स्याक्षी गुडूची तण्डुलीयकम् ॥ १३१ ॥ पुनर्नवा द्रोणपुष्पी वार्ताकुं लशुनद्वयम्। पक्वाम्रमभया बिम्बी शृङ्गी मत्स्या गवां जलम् ॥ १३२ ॥ धात्री तक्रं घृतं तैलं सौवीरकतुपोदके। नवनीतं गन्धसारो हरिद्रा नागकेशरम् ॥ १३३ ॥ यवक्षारो लोहभस्म कषायाणि च कुङ्कुमम्। दाहश्चरणयोः सन्धौ नाभेश्च द्व्यंगुलादधः ॥ १३४ ॥ मस्तके हस्तयोर्मूले मध्ये च स्तनकक्षयोः। यथादोषमिदं पथ्यं पाण्डुरोगवतां भवेत् ॥ १३५ ॥

वमन, विरेचन, पुराने जौ, गेहूँ, शालि चावल, मूँग, अरहर, मसूर का पानी, जङ्गली पक्षियों के मांस का रस, परवल, पका पेठा कच्चा केला, जीवन्तीशाक, तालमखाना, मछेछी, गिलोय, चौलाई, पुनर्नवा, गोमा, बैंगन, दोनों तरह का लहसन, पका आम, हरड़, बिम्बी, काकड़ासिंगी, मछली, गोमूत्र, आँवला, मठा, घी, तेल, सौवीर, तुषोदक, मक्खन, चन्दन, हल्दी, नागकेशर, यवक्षार, लोहभस्म, क्वाथ, केशर, पैरों में, जोड़ों पर, नाभि से दो अंगुल

नीचे, माथे पर, हाथों की जड़ में, स्तन और कमर के मध्यप्रदेश में दाह करना उपयुक्त है ये ही पथ्य हैं ॥ १३०-१३५ ॥

अपथ्य ।

रक्तस्रुतिं धूमपानं वमिवेगविधारणम् । स्वेदनं मैथुनं शिम्बी पत्रशाकानि रामठम् ॥ १३६ ॥ माषोऽम्बुपानं पिण्याकस्ताम्बूलं सर्षपाः सुरा । मृद्भक्षणं दिवास्वप्नं तीक्ष्णानि लवणानि च ॥१३७॥ सह्यविन्ध्याद्रिजातानां नदीनां सलिलानि च । सर्वाण्यम्लानि दुष्टाम्बुविरुद्धान्यशनानि च ॥ १३८ ॥ गुर्वन्नञ्च विदाहीनि पाण्डुरोगवतां विषम् । वह्निमातपमायासमन्नपानञ्च पित्तलम् । मैथुनं क्रोधमध्वानं पाण्डुरोगी सदा त्यजेत् १३९

इति भैषज्यरत्नावल्यां पाण्डुकामलाहलीमकाधिकार समाप्तः ।

रक्त मोक्षण, धूमपान, के रोकना, पसीना, मैथुन, मटर आदि शिम्बीधान्य, सरसों, आदि पत्तों के शाक, हींग, उड़द, बहुत पानी पीना, तिलखल, सरसों, मदिरा, पान, मिट्टी खाना, दिन में सोना, तीक्ष्ण पदार्थ लाल मिर्च आदि अम्ल, दुष्ट पानी, विरुद्ध भोजन, भारी अन्न, दाहयुक्त वस्तुएँ, उपर्युक्त सम्पूर्ण बातें पाण्डुरोगी को विषतुल्य हैं। अग्नि तापना, धूप में भ्रमण करना, क्रोध, मैथुन, पैत्तिक अन्नपान, पाण्डुरोगी को सदैव इनका त्याग रखना चाहिए ॥ १३६-१३९ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिकृतायां भैषज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाऽभिधायां व्याख्यायां पाण्डुकामला-हलीमकाधिकार समाप्त ॥

अथ शोथाधिकारः ।

शोथचिकित्सा ।

लङ्घनं पाचनं शोथे शिरः कायविरेचनम् । वमनञ्च यथासत्वं यथादोषं प्रकल्पयेत् ॥ १ ॥

शोथरोग में दोष तथा सत्व विचारकर लङ्घन, पाचन, नस्य, विरेचन और वमन कराना चाहिये ॥ १ ॥

स्नेहोऽथ वातिके शोथे बद्धविट्के निरूहणम् । पयोघृतं पैत्तिके तु कफजे रूक्षणक्रमः ॥ २ ॥

वातजन्य शोथरोग में स्नेहनक्रिया, मलबद्धता रहने पर निरूहण, अर्थात् पिचकारी देकर कोष्ठ को स्वच्छ करना, पैत्तिक शोथ में दुग्ध और घृत पिलाना तथा कफजन्य शोथरोग में रूक्षक्रिया करनी चाहिये ॥ २ ॥

शोथ में लङ्घन आदि ।

अथामजं लङ्घनपाचनक्रमैर्विशोधनैरुल्वणदोषमादितः । शिरोगतं शीर्षविरेचनैरधोविरेचनैरूर्ध्वहरैस्तथोर्ध्वगम् ॥ ३ ॥ उपाचरेत्स्नेहभवं विरूक्षणैः प्रकल्पयेत् स्नेहविधिञ्च रूक्षजे ॥ ४ ॥

आमजन्य शोथरोग में लंघन और पाचनक्रिया, शोथरोग में यदि दोष अत्यन्त उल्बण हों तो शोधनक्रिया, मस्तकगत शोथरोग में नस्य, देह के अधोभाग में शोथ हो तो विरेचन और शरीर के ऊर्ध्वभाग में शोथ हो तो वमनकारक औषधों का प्रयोग करना चाहिये। इसी प्रकार घृत और तैल आदि स्निग्ध पदार्थों के सेवन करने से उत्पन्न हुये शोथरोग में रूक्षक्रिया और साँवाँ, कोदों आदि रूक्ष पदार्थों के सेवन से उत्पन्न हुये शोथ में स्नेहनक्रिया लाभदायक होती है ॥ ३-४ ॥

शोथरोग में मुष्टियोग ।

दशमूलं सदा शस्तं वातशोथे विशेषतः । वातजे तैलमैरण्डं विड्ग्रहे पयसा पिबेत् ॥ ५ ॥

वातजन्य शोथरोग में दशमूल का क्वाथ लाभदायक होता है । यदि वातज शोथरोग में मलबद्धता हो तो दूध के साथ एरण्ड का तैल पिलाना चाहिये ॥ ५ ॥

गोमूत्रस्य प्रयोगो वा शीघ्रं श्वयथुनाशनः । यवागूर्माणकन्दस्य प्रायशश्चातिशोथजित् ॥ ६ ॥

गोमूत्र अथवा पुराने मानकन्द की यवागू पीने से शीघ्र शोथ नष्ट होता है ॥ ६ ॥

सिंहास्यादि क्वाथ ।

सिंहास्यामृतभण्टाकी क्वाथं कृत्वा समाक्षिकम् । पीत्वा शोथं जयेज्जन्तुः श्वासं कासं ज्वरं वमिम् ॥ ७ ॥

अरूसा की छाल, गिलोय और कटेरी इनके क्वाथ में मधु मिलाकर पीने से शोथ, श्वास, कास, ज्वर और वमन ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

पुनर्नवाष्टक क्वाथ ।

पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठीतिक्तामृतादार्व्यभयाकषायः । सर्वाङ्गशोथोदरपार्श्वशूलश्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति ॥८॥

साँठी, नीम की छाल, परवल के पत्ते, सोंठ, कुटकी, गुरुच, दारुहलदी और हर्र ; इन कुल द्रव्यों का क्वाथ सेवन करने से सर्वाङ्ग का शोथ, उदर और पसलियों की पीडा और श्वाससहित पाण्डुरोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

पुनर्नवादि ।

पुनर्नवाविश्व त्रिवृद्गुडूचीशम्पाकपथ्यामरदारुकल्कम् । शोथे कफोत्थे महिषाक्षयुक्तं मूत्रं पिबेद्वासलिलं तथैषाम् ॥९॥

पुनर्नवा, सोंठ, निशोत, गिलोय, अमलतास का गूदा, हरड, देवदारु, इन सबको इकट्ठा पीसकर गोमूत्र और गुग्गुल के साथ पीना चाहिए या उपर्युक्त द्रव्यों के काढे में गुग्गुल और गोमूत्र को ऊपर से मिलाकर (प्रक्षेप देकर) पीना कफ से उत्पन्न शोथ में लाभदायक है ॥ ९ ॥

शोथरोग पर मुष्टियोग ।

निम्बपत्ररसं पीतं शोषणं श्वयथौ त्रिजे । विट्सङ्गे चैव दुर्नाम्नि विदध्यात् कामलासु च ॥ १० ॥

त्रिदोषजन्य शोथरोग में [मलबद्धता, बवासीर और कामलारोग हों तो कालीमिर्च के साथ नीम की पत्तियों का रस पीने से विशेष लाभ होता है ॥ १० ॥

भूनिम्बदारुकल्कं जग्ध्वा पेयः पुनर्नवाक्वाथः । अपहरति नियतमाशु शोथं सार्वाङ्गिकं नृणाम् ॥ ११ ॥

चिरायता और देवदारु का चूर्ण २ माशे फाँककर साँठी का क्वाथ पीने से सार्वाङ्गिक शोथ अवश्य नष्ट होता है ॥ ११ ॥

शोथनुत् कोकिलाक्षस्य भस्ममूत्रेण वाम्भसा ॥ १२ ॥

तालमखाना के पञ्चाङ्ग के भस्म का कफजन्य शोथ में गोमूत्र के साथ और पैत्तिक शोथ में जल के साथ सेवन करने से लाभ होता है ॥ १२ ॥

स्थलपद्ममयं कल्कं पयसालोड्य पाययेत् । प्लीहामयहरश्चैव सर्वाङ्गैकाङ्गशोथजित् ॥ १३ ॥

स्थलकमल को दुग्ध में पीसकर पिलाने से प्लीहा और सार्वाङ्गिक तथा एकाङ्गिक शोथ नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

माणमण्ड ।

पुराणं माणकं पिष्ट्वा द्विगुणीकृत-

[1] 'विल्व' इति पाठान्तरम् ।

तण्डुलम्। साधितं क्षीरतोयाभ्यामभ्यसेत् पायसन्तु तत्॥ १४॥ हन्ति वातोदरं शोथं ग्रहणीं पाण्डुतामपि। सिद्धो भिषग्भिराख्यातः प्रयोगोऽयं निरत्ययः १५

पुराने मानकन्द का चूर्ण १ भाग, चावल २ भाग, गाय का दुग्ध २१ भाग, जल २१ भाग; इनको एकत्र पकाकर पायस (खीर) तैयार करे। इसका प्रतिदिन पान करने से वातजन्य उदररोग, शोथ, ग्रहणी,और पाण्डुरोग नष्ट होते हैं। वैद्यों का कहना है कि पूर्वोक्त रोगों को नष्ट करने के लिये यह योग सदा अव्यर्थ सिद्ध हुआ है॥ १४-१५॥

पुनर्नवादिपुट स्वेद।

पुनर्नवानिम्बपत्रनिष्पावपारिभद्रके। एतैश्च पुटसंस्वेदःशोथं हन्तिसुदारुणम् १६

गदहपुर्ना, नीम के पत्ते, सेम के पत्ते और श्वेत मन्दार के पत्ते; इनको कूटकर, वस्त्र में बाँधकर पोटली बना लेवे। तदनन्तर पोटली बार-बार गरम करके सूजन की जगह को स्वेदन (सेंक) करने से दारुण शोथ नष्ट होता है॥ १६॥

अपामार्गादिपुट स्वेद।

अपामार्गः कोकिलाक्षो निर्गुण्डी विजया तथा। एतैरपि पुटस्वेदः शोथं हन्ति सुदारुणम्॥ १७॥

चिरचिरा, तालमखाना निर्गुण्डी और जयन्ती; इनको पोटबद्ध करके स्वेद देने से प्रबल शोथरोग दूर होता है॥ १७॥

पुनर्नवादिचूर्ण।

पुर्ननवा दार्व्यभया पाठा विल्वं श्वदंष्ट्रिका। बृहत्यौ द्वे रजन्यौ द्वे पिप्पल्यौ चित्रकं वृषः॥ १८॥ सममागानि सञ्चूर्ण्य गवां मूत्रेण वा पिबेत्। बहुप्रकारं श्वयथुं सर्वगात्रविसारिणम्। हन्ति शोथोदराण्यष्टौव्रणांश्चैवोद्धतानपि १९॥ (अथ विल्वं विल्वस्य मूलम्)

गदहपुर्ना, देवदारु, हर्र, पाढ़ी, बेल के मूल की छाल, गोखुरू, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, हलदी, दारुहलदी, पीपरि, गजपीपरि, चीता और अरूसे की छाल; समभाग इन सब द्रव्यों को लेकर कूट पीसकर महीन चूर्ण बना लेवे। मात्रा २ मासे। अनुपान-गोमूत्र। इसका सेवन करने से सब प्रकार के सार्वाङ्गिक शोथ, शोथयुक्त ८ प्रकार के उदररोग और प्रबल व्रणरोग शीघ्र नष्ट होते हैं॥ १८-१९॥

शोथारिचूर्ण।

शुष्कमूलमपामार्गस्त्रिकटु त्रिफला तथा। दन्ती च क्रिमिदश्चैव प्रत्येकश्च समं समम् २० भक्षयेत् प्रातरुत्थाय विल्वपत्ररसेन च। पाण्डुरोगं निहन्त्याशु शोथश्चैव सुदारुणम्॥ २१॥

सूखी मूली, चिरचिरा, सोंठ, मिर्च, पीपरि, आँवला, हर्र, बहेड़ा, दन्ती की जड़, वायविडङ्ग, चीता और नागरमोथा; इन कुल द्रव्यों को समभाग लेकर चूर्ण करे। मात्रा १ मासे से २ मासे तक। अनुपान-बेल की पत्तियों का रस। इस चूर्ण का प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करने से पाण्डुरोग और दारुणशोथ रोग शीघ्र नष्ट होते हैं॥ २०-२१॥

शोथोदर में पुनर्नवादि गुग्गुलु।

पुनर्नवादार्व्यभयागुडूचीं पिबेत् समूत्रां महिषाक्षयुक्ताम्। त्वग्दोषशोथोदरपाण्डुरोगस्थौल्यप्रसेकोर्ध्वकफामयेषु २२॥ सर्वं चूर्णसमगुग्गुलुं एरण्डतैलेनपिष्ट्वा एकीकृत्य भाण्डे स्थाप्यम्। यथापथ्यं गोमूत्रेण पेयम्।

सोंठी, दारुहलदी, हरीतकी, गिलोय, प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, एरण्ड के तेल में पिसा हुआ शुद्ध भैंसा गूगुल ४ तोले; इनको एकत्र मिश्रित कर किसी पात्र में रख देवे। गोमूत्र के साथ इस चूर्ण का सेवन करने से चर्म-

शोथरोग में मुष्टियोग।

दशमूलं सदा शस्तं वातशोथे विशेषतः। वातजे तैलमैरण्डं विड्ग्रहे पयसा पिबेत् ॥ ५ ॥

वातजन्य शोथरोग में दशमूल का क्वाथ लाभदायक होता है। यदि वातज शोथरोग में मलबद्धता हो तो दूध के साथ एरण्ड का तैल पिलाना चाहिये ॥ ५ ॥

गोमूत्रस्य प्रयोगो वा शीघ्रं श्वयथुनाशनः। यवागूर्माणकन्दस्य मायशश्चातिशोथजित् ॥ ६ ॥

गोमूत्र अथवा पुराने मानकन्द की यवागू पीने से शीघ्र शोथ नष्ट होता है ॥ ६ ॥

सिंहास्यादि क्वाथ।

सिंहास्यामृतभण्टाकी क्वाथं कृत्वा समाक्षिकम्। पीत्वा शोथं जयेज्जन्तुः श्वासं कासं ज्वरं वमिम् ॥ ७ ॥

अरूसा की छाल, गिलोय और कटेरी इनके क्वाथ में मधु मिलाकर पीने से शोथ, श्वास, कास, ज्वर और वमन ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

पुनर्नवाष्टक क्वाथ।

पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठीतिक्तामृतादार्व्यभयाकषायः। सर्वाङ्गशोथोदरपार्श्वशूलश्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति ॥८॥

सोंठी, नीम की छाल, परवल के पत्ते, सोंठ, कुटकी, गुरुच, दारुहलदी और हर्र; इन कुल द्रव्यों का क्वाथ सेवन करने से सर्वाङ्ग का शोथ, उदर और पसलियों की पीड़ा और श्वाससहित पाण्डुरोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

पुनर्नवादि।

पुनर्नवाविश्व त्रिवृद्गुडूचीशम्पाकपथ्यामरदारुकल्कम्। शोथे कफोत्थे महिषाक्षयुक्तं मूत्रं पिबेद्वा सलिलं तथैषाम् ॥९॥

पुनर्नवा, सोंठ, निशोत, गिलोय, अमलतास का गूदा, हरड़, देवदारु, इन सबको इकट्ठा पीसकर गोमूत्र और गुग्गुल के साथ पीना चाहिए या उपर्युक्त द्रव्यों के काढ़े में गुग्गुल और गोमूत्र को ऊपर से मिलाकर (प्रक्षेप देकर) पीना कफ से उत्पन्न शोथ में लाभदायक है ॥ ९ ॥

शोथरोग पर मुष्टियोग।

निम्बपत्ररसं पीतं शोषणं श्वयथौ त्रिजे। विट्सङ्गे चैव दुर्नाम्नि विदध्यात् कामलासु च ॥ १० ॥

त्रिदोषजन्य शोथरोग में मलबद्धता, बवासीर और कामलारोग हो तो कालीमिर्च के साथ नीम की पत्तियों का रस पीने से विशेष लाभ होता है ॥ १० ॥

भूनिम्बदारुकल्कं जग्ध्वा पेयः पुनर्नवाक्वाथः। अपहरति नियतमाशु शोथं सार्वाङ्गिकं नृणाम् ॥ ११ ॥

चिरायता और देवदारु का चूर्ण २ माशे फाँककर सोंठी का क्वाथ पीने से सार्वाङ्गिक शोथ अवश्य नष्ट होता है ॥ ११ ॥

शोथनुत् कोकिलाक्षस्य भस्ममूत्रेण वाम्भसा ॥ १२ ॥

तालमखाना के पञ्चाङ्ग के भस्म का कफजन्य शोथ में गोमूत्र के साथ और पैत्तिक शोथ में जल के साथ सेवन करने से लाभ होता है ॥ १२ ॥

स्थलपद्ममयं कल्कं पयसालोड्य पाययेत्। प्लीहामयहरश्चैव सर्वाङ्गैकाङ्गशोथजित् ॥ १३ ॥

स्थलकमल को दुग्ध में पीसकर पिलाने से प्लीहा और सार्वाङ्गिक तथा एकाङ्गिक शोथ नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

माणमण्ड।

पुराणं माणकं पिष्ट्वा द्विगुणीकृत-

१ 'विश्व' इति पाठान्तरम्।

तण्डुलम् । साधितं क्षीरतोयाभ्यामभ्यसेत् पायसन्तु तत् ॥ १४ ॥ हन्ति वातोदरं शोथं ग्रहणीं पाण्डुतामपि । सिद्धो भिषग्भिराख्यातः प्रयोगोऽयं निरत्ययः १५

पुराने मानकन्द का चूर्ण १ भाग, चावल २ भाग, गाय का दुग्ध २१ भाग, जल २१ भाग ; इनको एकत्र पकाकर पायस (खीर) तैयार करे । इसका प्रतिदिन पान करने से वातजन्य उदररोग, शोथ, ग्रहणी,और पाण्डुरोग नष्ट होते हैं । वैद्यों का कहना है कि पूर्वोक्त रोगों को नष्ट करने के लिये यह योग सदा अव्यर्थ सिद्ध हुआ है ॥ १४-१५ ॥

पुनर्नवादिपुट स्वेद ।

पुनर्नवानिम्बपत्रनिष्पावपारिभद्रके । एतैश्च पुटसंस्वेदःशोथंहन्तिसुदारुणम् १६

गदहपुरैना, नीम के पत्ते, सेम के पत्ते और श्वेत मन्दार के पत्ते ; इनको कूटकर, वस्त्र में बाँधकर पोटली बना लेवे । तदनन्तर पोटली बार-बार गरम करके सूजन की जगह को स्वेदन (सेंक) करने से दारुण शोथ नष्ट होता है ॥ १६ ॥

अपामार्गादिपुट स्वेद ।

अपामार्गः कोकिलाक्षो निर्गुण्डी विजया तथा । एतैरपि पुटस्वेदः शोथं हन्ति सुदारुणम् ॥ १७ ॥

चिरचिरा, तालमखाना निर्गुण्डी और जयन्ती; इनको पोटबद्ध करके स्वेद देने से प्रबल शोथरोग दूर होता है ॥ १७ ॥

पुनर्नवादिचूर्ण ।

पुनर्नवा दार्व्यभया पाठा बिल्वं श्वदंष्ट्रिका । बृहत्यौ द्वे रजन्यौ द्वे पिप्पल्यौ चित्रकं वृषः ॥ १८ ॥ समभागानि सञ्चूर्ण्य गवां मूत्रेण वा पिबेत् । बहुप्रकारं श्वयथुं सर्वगात्रविसारिणम् । हन्ति शोथोदराण्यष्टौव्रणाश्चैवोद्धतानपि १६॥

(अथ बिल्वं बिल्वस्य मूलम्)

गदहपुरैना, देवदारु, हर्रे, पाढ़ी, बेल के मूल की छाल, गोखुरू, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, हलदी, दारुहलदी, पीपरि, गजपीपरि, चीता और अरूसे की छाल; समभाग इन सब द्रव्यों को लेकर कूट पीसकर महीन चूर्ण बना लेवे । मात्रा २ मासे । अनुपान-गोमूत्र । इसका सेवन करने से सब प्रकार के सार्वाङ्गिक शोथ, शोथयुक्त ८ प्रकार के उदररोग और प्रबल व्रणरोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १८-१६ ॥

शोथारिचूर्ण ।

शुष्कमूलमपामार्गस्त्रिकटु त्रिफला तथा । दन्ती च त्रिमदश्चैव प्रत्येकञ्च समं समम् २० भक्षयेत् प्रातरुत्थाय बिल्वपत्ररसेन च । पाण्डुरोगं निहन्त्याशु शोथश्चैव सुदारुणम् ॥ २१ ॥

सूखी मूली, चिरचिरा, सोंठ, मिर्च, पीपरि, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, दन्ती की जड़, वायविडङ्ग, चीता और नागरमोथा; इन कुल द्रव्यों को समभाग लेकर चूर्ण करे । मात्रा १ मासे से ३ मासे तक । अनुपान-बेल की पत्तियों का रस । इस चूर्ण का प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करने से पाण्डुरोग और दारुणशोथ रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ २०-२१ ॥

शोथोदर में पुनर्नवादि गुग्गुलु ।

पुनर्नवादार्व्यभयागुडूचीं पिबेत् समूत्रां महिषाक्षयुक्ताम् । त्वग्दोषशोथोदरपाण्डुरोगस्थौल्यप्रसेकोर्ध्वकफामयेषु २२॥

सर्वं चूर्णसमगुग्गुलुं एरण्डतैलेनपिष्ट्वा एकीकृत्य भाण्डे स्थाप्यम् । यथापथ्यं गोमूत्रेण पेयम् ।

सोंठी, दारुहल्दी, हरीतकी, गिलोय, प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, एरण्ड के तेल में पिसा हुआ शुद्ध भैंसा गूगुल ४ तोले; इनको एकत्र मिश्रित कर किसी पात्र में रख देवे । गोमूत्र के साथ इस चूर्ण का सेवन करने से चर्म-

रोग, शोथ, उदररोग, पाण्डुरोग, स्थूलता, लार टपकना और ऊर्ध्व कफरोग नष्ट होते हैं। मात्रा-१ मासा ॥ २२ ॥

पुनर्नवादिलेह।

पुनर्नवामृता दारु दशमूलरसाढके। आर्द्रकस्वरसप्रस्थे गुडस्य च तुलां पचेत् ॥ २३ ॥ तत्सिद्धं व्योषत्रैलात्वक्चव्यैः कार्षिकैः पृथक्। चूर्णीकृतैः क्षिपेत् शीते मधुनः कुडवं लिहेत् ॥ २४ ॥ लेहः पौनर्नवो नाम शोथशूलनिषूदनः। कासश्वासारुचिहरो बलवर्णाग्निवर्द्धनः॥२५॥

गदहपुरेना, गुरुच, देवदारु और दशमूल इनका क्वाथ ६ सेर ३२ तोला, अदरख का रस १२८ तोला इन दोनों रसों को एकत्रकर उसमें पाँच सेर पुराना गुड़ मिलाकर वस्त्र से छान लेवे। तदनन्तर धीमी आँचपर रखकर पाक करे। जब पककर गाढ़ा हो जावे तब उसमें त्रिकटु, तेजपात, इलायची दालचीनी और चव्य प्रत्येक का एक एक तोला चूर्ण डालकर उतार लेवे। शीतल होने पर १६ तोलाभर मधु मिलाकर किसी पात्र में रख लेवे। यह अवलेह सेवित होने पर शोथ, शूल, कास, श्वास और अरुचि को नष्ट कर बल, वर्ण और अग्नि को बढ़ाता है। मात्रा ३ मासा से ६ मासा तक ॥ २३-२५ ॥

शोथारिमण्डूर।

गोमूत्रशुद्धमण्डूरं निर्गुण्डीरसभावितम्। माणकार्द्रककन्दानां रसेष्वपि च भावयेत् ॥ २६ ॥ त्रिफलाव्योषचव्यानां चूर्णं कर्षद्वयं पृथक्। चूर्णाद्द्विगुणमण्डूरं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ॥ २७ ॥ सिद्धे चूर्णं क्षिपेत् शीतेमधुनश्च पलद्वयम्। निहन्ति सर्वजं शोथं सर्वाङ्गोत्थं न संशयः ॥ २८ ॥

सात बार गोमूत्र में शुद्ध किया हुआ मण्डूर २८ तोला लेकर सँभालू, मानकन्द, अदरख और जिमीकन्द, इनमें से प्रत्येक के रस में सात बार भावना देकर, २ सेर ६४ तोला गोमूत्र में पकावे। गाढ़ा हो जाने पर, उसमें आँवला, हर्र, बहेड़ा, सोंठ, कालीमिरिच, पीपरि और चव्य इनमें से प्रत्येक के चूर्ण दो दो तोले डालकर उतार लेवे। शीतल होने पर आठ तोले मधु मिलाकर मिट्टी के चिकने पात्र में रख देवे। इस मण्डूर का सेवन करने से त्रिदोष से उत्पन्न सब शरीर की सूजन अवश्य नष्ट होती हैं। मात्रा ४-८ रत्ती ॥२६-२८॥

अग्निमुखमण्डूर।

पलद्वादशमण्डूरं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत्। पञ्चकोलं देवदारु मुस्तं व्योषं फलत्रयम् ॥ २९ ॥ विडङ्गं पलमात्रन्तु पाकान्ते चूर्णितं क्षिपेत्। गुञ्जापञ्चकमात्रं तु तक्रेण सहयोजयेत् ॥ ३० ॥ असाध्यं श्वयथुं हन्ति पाण्डुरोगं चिरोद्भवम्। स्वयमग्निमुखं नाम सर्पिःक्षौद्रेण मर्दयेत् ॥ ३१ ॥

शुद्ध मण्डूर ४८ तोला लेकर ४ सेर ६४ तोला गोमूत्र में पकावे। जब कलछी में लिप्त होने लगे, तब उसमें पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चीता, सोंठ, देवदारु, नागरमोथा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपरि आँवला, हर्र, बहेड़ा और बायविडङ्ग, इनमें से प्रत्येक का एक एक पल चूर्ण मिलाकर उतार लेवे। तदनन्तर घृत और मधु मिलाकर मर्दन करके रख लेवे। पाँच रत्ती मात्रा में अग्निमुख मण्डूर को तक्र के साथ पिलाने से असाध्य शोथ रोग और बहुत पुराना पाण्डुरोग नष्ट होते हैं ॥ २९-३१ ॥

रसाभ्रमण्डूर।

गन्धकाभ्रकसूतानां प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम्। संशोध्य चूर्णितं कृत्वा मण्डूरं मुष्टिकद्वयम् ॥ ३२ ॥ प्रसृतञ्च हरीतक्याः पाषाणजतुनः पिचुम्। तोलकं कान्तलौहस्य सर्वं रौद्रे विभावयेत्॥ ३३॥ भृङ्गराजरसप्रस्थे केशराजरसे तथा। निर्गु-

एडीमाणकन्दानामार्द्रकस्य रसेष्वपि॥३४॥ त्रिकटुत्रिफलाचव्यमुस्तकानां पृथक् पृथक् कर्षं कर्षं क्षिपेच्चूर्णं मर्दयेन्मधुसर्पिषा॥ ३५॥ भक्षयेत् प्रातरुत्थाय मात्रया युक्तितः पुमान्। निहन्ति सर्वजं शोथं सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रयम्॥ ३६॥ कासश्वासतृपादाहमोहच्छर्दियुतं तथा। अम्लपित्तं निहन्त्येव शूलमष्टविधं जयेत्॥ ३७॥ अग्निवृद्धिकरं वृष्यं हृद्यं वातानुलोमनम्। कामलां पाण्डुरोगञ्च श्लेष्मकुष्ठारुचिज्वरम्॥ प्लीहगुल्मोदरं हन्ति ग्रहणीं सप्रवाहिकाम्॥ ३८॥

निर्गुण्ड्यादीनां रसैः प्रत्येकमार्द्रीकरणसमैर्भावयित्वा किञ्चिदार्द्रतायां त्रिकट्वादीनां चूर्णं प्रत्येकमेकतोलकं दत्त्वा पुनः पिष्ट्वा कोलप्रमाणा वटिकाः कृत्वा एकैकां घृतमधुभ्यां मर्दयित्वा भक्षयेत् पुनर्नवा काथं प्रक्षिप्तयवक्षारमनु पिबेत्।

गन्धक, अभ्रकभस्म और पारा प्रत्येक दो दो तोले, शुद्ध किये हुये मण्डूर का चूर्ण ८ तोले, हर्रे का चूर्ण ८ तोला, शिलाजीत १ तोला और कान्तलौह का भस्म १ तोला, इन कुल द्रव्यों को एकत्र खरल करे। पश्चात् भँगरैया का रस १२८ तोला और केशराज का रस १२८ तोला, सँभालू, मानकन्द, सूरन और अदरख इनमें से प्रत्येक का रस इतना हो जिस से पूर्वोक्त चूर्ण गीला हो सके, इन सब रसों में भावना देकर धूप में सुखावे। थोड़ा गीलापन रहते ही उसमें सोंठ, मिर्च, पीपरि, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, चव्य और नागरमोथा, इनमें से प्रत्येक का चूर्ण एक एक तोला मिलाकर भली भाँति खरल करके दो दो एक एक मासे की वटिकायें बनावे। प्रतिदिन प्रातःकाल मधु और घृत के साथ एक एक वटिका खावे। तदनन्तर जवाखार मिलाकर साँठी का क्वाथ पीवे। यह मण्डूर सेवित होने पर त्रिदोषजन्य एकाङ्गिक अथवा सर्वाङ्गिक शोथ, कास, श्वास, तृषा, दाह, मोह, वमन, अम्लपित्त, आठ प्रकार के शूल, कामला, पाण्डुरोग, कफ, कुष्ट, अरुचि, ज्वर, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, ग्रहणी और प्रवाहिका इन सब रोगों को नष्ट करके अग्नि और बल की वृद्धि तथा वायु का अनुलोमन करता है। एवं हृदय के लिये भी लाभदायक है॥ ३२-३८॥

पुनर्नवादिलेप।

पुनर्नवादारुशुण्ठीशिग्रु सिद्धार्थकस्तथा। अम्लपिष्टैः सुखोष्णोऽयं प्रलेपः सर्वशोथहृत्॥ ३९॥

पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, सहजने की छाल, सफेद सरसों, इन्हें इकट्ठा करके काँजी के साथ पीस डाले और थोड़ा गरम करके लगाने से सर्वप्रकार के शोथ दूर होते हैं॥ ३९॥

कृष्णादि प्रलेप।

कफे तु कृष्णासिकतापुराणपिण्याकशिग्रुत्वगुमाप्रलेपः। कुलत्थशुण्ठीजलमूत्रसेकश्चण्डागुरुभ्यामनुलेपनञ्च॥४०॥

पीपल, बालू, पुराने तिल की खल, सहजने की छाल, अलसी, इन्हें इकट्ठी करके जल या गोमूत्र से पीसकर लेप करने से कफज शोथ में हित करता है और सोंठ, कुल्थी का काढ़ा या इनसे सिद्ध गोमूत्र के परिषेक से या चोरपुष्पी और अगर के अनुलेपन से कफ से उत्पन्न शोथ दूर होता है॥ ४०॥

आगन्तुज शोथचिकित्सा।

शोथे त्वागन्तुजे कुर्यात् सेकलेपादि शीतलम्। भल्लातकं हरेच्छोथं सतिला कृष्णमृत्तिका॥ महिषीक्षीरसम्पिष्टा नवनीतसमन्विता॥ ४१॥

ठण्डा लेप एवं परिषेक आगन्तुज शोथ में हितकर है। भिलावे से पैदा हुआ शोथ काली मिट्टी और तिल को भैंस के दूध या मक्खन में मिलाकर लगाने से दूर होता है॥ ४१॥

तिलैर्लिप्तः शमं याति शोथो भल्लात-कोत्थितः । यष्टिदुग्धतिलैर्लेपो नवनीतेन संयुतः ॥ शोथमारुष्करं हन्ति चूर्णैः शालदलस्य च ॥ ४२ ॥

मुलहठी, दूध, तिलकल्क और मक्खन इन्हें एकत्र पीस लेप करने से भल्लातज शोथ दूर होता है । या तिलकल्क के लेप से या सहजने के पत्तों का चूर्ण रगड़ना भी भिलांव के शोथ पर हितकर है ॥ ४२ ॥

पथ्यादिकाथ ।

पथ्यानिशाभार्ग्यमृताग्निदार्वीपुनर्नवादारुमहौषधानाम् । क्वाथः ससूत्रो-दरपाणिपादमुखाश्रितं हन्त्यचिरेण शोथम् ॥ ४३ ॥

हरड़, हल्दी, भारंगी, गिलोय, चित्रक, दारुहल्दी, पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ ये सब द्रव्य मिलाकर २ तोला । इनको ३२ तोले पानी में पकावे जब ४ तोला शेष रह जावे तब उतार ले । यह काढ़ा हाथ, पैर, मुँह, पेट पर आई सूजन को शीघ्र ही दूर करता है ॥ ४३ ॥

त्रिफलादि काथ ।

फलत्रिकोद्भवं क्वाथं गोमूत्रेणैव साधितम् । वातश्लेष्मोद्भवं शोथं हन्यात् व्रणसम्भवम् ॥४४॥

त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आँवला) का काढ़ा, गोमूत्र से सिद्ध किया हुआ सेवन करने से वात-कफज शोथ दूर होता है ॥ ४४ ॥

बृहत् शुष्कमूलाद्य तैल ।

मलकं दशमलञ्च कणामूलं पुनर्नवा । प्रत्येकं प्रस्थमाहृत्य वारिण्यष्टगुणे पचेत् ॥ ४५ ॥ तेन पादावशेषेण तैलस्याढाढकं पचेत् । दापयेत्तैलतुल्यञ्च गोमूत्रं कुशलो भिषक् ॥ ४६ ॥ मूलकं चामृता शुण्ठी पटोलं चपला बला । पाठा पुनर्नवा मूलं बालोशीरञ्च शिग्रुजम् ॥ ४७ ॥ निर्गुण्डीन्द्राशनं श्यामा करञ्जं वासकं तथा । कणा हरीतकीचैव वचा पुष्करमूलकम् ॥ ४८ ॥ रास्ना विडङ्गं चव्यञ्च द्वे हरिद्रे च धान्यकम् । द्विक्षारं सैन्धवञ्चैव देवदारु सपद्मकम् ॥ ४९ ॥ शटी करि-कणा बिल्वं मञ्जिष्ठां च ततः क्रमात् । प्रत्येकार्द्धपलञ्चैषां पेषयित्वा विनिक्षिपेत् ॥ ५० ॥ अभ्यङ्गेनास्य तैलस्य ये गुणास्तांस्ततः शृणु । नानाशोथा विनश्यन्ति वातपित्तकफोद्भवाः ॥ ५१॥ मलोद्भवाश्च ये केचिद्विशेषेण जलाश्रयाः । अवश्यं निर्जरा देहा भविष्यन्ति न संशयः॥५२॥

सूखी मूली ६४ तोला, दशमूल के कुल औषध मिलाकर ६४ तोला, पिपरामूल ६४ तोला, गदहपुरैना ६४ तोला, इनको ३२ सेर ४८ तोला जल में पकावे । आठ सेर जल शेष रहने पर उतार कर छान लेवे । उसमें ३ सेर १६ तोला कडुआ तेल और ३ सेर १६ तोला गोमूत्र मिलावे । पश्चात् सूखी मूली, गिलोय, सोंठ परवल की पत्तियाँ, पिपरामूल, खरैटी, पाढ़ी, साँठी की जड़, सुगन्धबाला, खस, सैंजने के बीज, निर्गुण्डी, भाँग, अनन्तमूल, कंजा के बीज, अडूसे की छाल, पीपरि, हर्र, बच, पुहकर-मूल, रास्ना, वायविडङ्ग, चव्य, हरदी, दारुहरदी, धनिया, जवाखार, सज्जीखार, सेंधानमक, देव-दारु, कमलगट्टा, कचूर, गजपीपरि, बेल की छाल और मजीठ, इनमें से प्रत्येक द्रव्य को दो दो तोले लेकर कल्क बनाकर पूर्वोक्त क्वाथ में मिला देवे । धीमी आँच से पकावे । तैलमात्र शेष रहने पर छान कर रख लेवे । इस तैल का मर्दन करने से वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, मलजन्य और जलजन्य आदि अनेक प्रकार के शोथ रोग अवश्य नष्ट होते हैं । तथा शरीर जरारहित हो जाता है ॥ ४५-५२ ॥

परमेश्वररचितकृत सारसंग्रह से उद्धृत

५८२ शुष्कमूलाद्य तैल।

शुष्कमूलरसमस्थं शिग्रु धुस्तूरयोस्तथा। सिन्धुवाररसमस्थं दशमूलरसं तथा ॥५३॥ पारिभद्ररसमस्थं वर्षाभूमस्थमेव च। करञ्जस्य रसमस्थं मस्थं वरुणकस्य च ॥५४॥ तैलमस्थं समादाय भिषक् यत्नाद्विपाचयेत्। कल्कैरर्द्धपलैरेतैः शुण्ठीमरिचसैन्धवैः ॥ ५५ ॥ पुनर्नवा काकमाची शैलुत्वकपिप्पलीयुगैः। कट्फलं पौष्करं मृङ्गी रास्ना यासश्च कारवी ॥ ५६ ॥ हरिद्राद्वयपूतीकद्वयानन्तायुगैः पृथक्। तत्साधुसिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत् ॥५७॥ वातश्लेष्मकृतं दोषं सन्निपातभवं तथा। निहन्ति सर्वजं शोथमुदरश्वासनाशनम् ॥५८॥ विरुद्धभेषजभवं शोथमाशु व्यपोहति। व्रणशोथास्त्रिशूलघ्नं कामलापाण्डुनाशनम् ॥ ५६ ॥ ये चान्ये व्याधयः सन्ति श्लेष्मजा सन्निपातजा। तान् सर्वान्नाशयत्याशु सूर्य्यस्तम इवोदित॰ ॥ ६० ॥

कटु तैल १२८ तोला, सूखी मूली का क्वाथ १२८ तोला, सैंजन का रस १२८ तोला, धतूर की पत्तियों का रस १२८ तोला, निर्गुण्डी का रस १२८ तोला, दशमूल का क्वाथ १२८ तोला, नीम की छाल का रस १२८ तोला, साँठी का रस १२८ तोला, कञ्जा का रस १२८ तोला और वरुण वृक्ष की छाल का रस १२८ तोला। कल्क के लिये सोंठ, कालीमिरिच, लाहौरी नमक, साँठी, मकोय, लिसोड़ा की छाल, पीपरि, गज पीपरि, कायफल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी, रास्ना, जवासा, कालाजीरा, हरदी, दारुहरदी, करञ्ज, नाटाकरञ्ज, श्यामालता और अनन्तमूल इनमें से प्रत्येक द्रव्य दो दो तोले लेवे। तदनन्तर तैल, क्वाथ, रस और कल्क, इन सब पदार्थों को एकत्रित कर विधिपूर्वक पकावे। उत्तम तैल सिद्ध होने पर छान कर किसी उत्तम पात्र में रख लेवे। इस तैल का मर्दन करने से वातिक, श्लैष्मिक तथा त्रिदोषजन्य शोथ उदररोग, श्वास, विरुद्ध औषध के सेवन से उत्पन्न शोथ, व्रणशोथ, त्रिशूल, कामला और पाण्डुरोग तथा अन्यान्य वातजन्य, कफज-एवं सन्निपातजन्य विकार इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार नष्ट होता है ॥ ५३-६० ॥

शोथशार्दूल तैल।

धुस्तूरा दशमूलञ्च सिन्धुवारं जयन्तिका। पुनर्नवा करञ्जश्च पट्पलानि मृथक् च ॥ ६१ ॥ जलद्रोणे विपक्तव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम्। मस्थञ्च कटुतैलस्य कल्कान्येतानि दापयेत् ॥ ६२ ॥ रास्ना पुनर्नवा दारु मूलकं नागरं कणा। सिद्धं तैलवरं तन्नाशयत्यस्य सेवनात् ॥६३॥ शोथं सुदारुणं घोरं वातपित्तकफोद्भवम्। असाध्यं सर्वदेहस्थं सन्निपातसमुद्भवम् ॥ ॥६४॥ श्लीपदञ्च ज्वरं पाण्डुं कृमिदोषं विनाशयेत्। क्लिन्नव्रणप्रशमनं नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ शोथशार्दूलकं तैलं बलवर्णप्रसादनम् ॥ ६५ ॥

धतूर, दशमूल, निर्गुण्डी, जयन्ती, साँठी, और कञ्जा प्रत्येक २४ तोला लेकर २५ सेर ४८ तोला जल में पकावे। ६ सेर ३२ तोला जल शेष रहने पर उतार कर छान लेवे। तदनन्तर उसमें १२८ तोला कडुआ तेल मिलावे। पश्चात् रास्ना, साँठी, देवदारु, सूखी मूली, सोंठ और पीपरि ये सब मिलकर ३२ तोला हों, इनका कल्क मिलाकर विधिपूर्वक पकावे। यह शोथशार्दूल तैल मर्दन करने से वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, असाध्य और त्रिदोषजन्य दारुण शोथरोग, श्लीपद, ज्वर, पाण्डुरोग,

कृमिरोग, क्लिन्नव्रण (सड़ा हुआ घाव) और दुष्ट नाड़ीव्रण को नष्ट कर बल तथा कान्ति को बढ़ाता है ॥ ६१-६५ ॥

पुनर्नवादि तैल।

पुनर्नवा पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत्। तेन पादावशेषेण तैलप्रस्थं पचेद्भिषक् ॥ ६६ ॥ त्रिकटु त्रिफला शृङ्गी धान्यकं कट्फलं तथा। शटी दार्वी प्रियङ्गुश्च पद्मकाष्ठं हरेणुकम् ॥६७॥ कुष्ठं पुनर्नवा चैव यमानी कारवी तथा। एलात्वचं सलोध्रश्च पत्रकं नागकेशरम् ॥६८॥ वचा ग्रन्थिकमूलश्च चव्यं चित्रकमूलकम्। शतपुष्पाम्बुमञ्जिष्ठा रास्ना यासस्तथैव च ॥ ६६ ॥ एतेषां कार्षिकैर्भागैः पेषयित्वा विनिक्षिपेत्। कामलां पाण्डुरोगञ्च हलीमकमथारुचिम् ॥ ७० ॥ रक्तपित्तं महाशोथं कासं श्वासं भगन्दरम्। प्लीहानमुदरञ्चैव जीर्णज्वरमपोहति ॥ ७१ ॥ कुरुते परमां कान्तिं प्रदीप्तं जठरानलम्। तैलं पुनर्नवाख्यातं सर्वान् व्याधीन् व्यपोहति ॥ ७२ ॥

मूर्च्छित तैल ११८ तोला, क्वाथ के लिये गदहपुर्ना ५ सेर, उसके पकाने के लिये जल २५ सेर ४८ तोला, शेष ६ सेर ३२ तोला। कल्क के लिये सोंठ, कालीमिरिच, पीपरि, आँवला, हर्र, बहेड़ा, काकड़ासिंगी, धनियाँ, कायफल, कचुर, दारुहरदी, फूलप्रियंगु, पदमाख, मँभालू के बीज, कूठ, सोंठी, अजवाइन, काला जीरा, इलायची, दालचीनी, लोध, तेजपात, नागकेशर, बच, पिपरामूल, चव्य, चीता, सोया, सुगन्धवाला, मजीठ, रास्ना और जवासा इन में से प्रत्येक द्रव्य एक एक तोला लेवे। तदनन्तर तैल, क्वाथ और कल्क इन तीनों को एकत्रित कर पकावे। सिद्ध होने पर छानकर रख लेवे। यह पुनर्नवादि तैल मर्दन करने से कामला, पाण्डुरोग, हलीमक, अरुचि, रक्तपित्त, अति कठिन सूजन, कास, श्वास, भगन्दर, प्लीहा, उदररोग, जीर्णज्वर तथा अन्यान्य अनेक रोगों को नष्ट कर अग्नि को दीप्त और कान्ति की वृद्धि करता है ॥ ६६-७२ ॥

पुनर्नवाद्य घृत।

पुनर्नवातुलां गृह्य जलद्रोणे विपाचयेत्। चतुर्भागावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७३ ॥ भूनिम्बं विजया शुण्ठी शोथघ्न्यमरदारु च। कासं श्वासं ज्वरं हन्ति शोथञ्चापि सुदारुणम् ॥ ७४ ॥

गदहपुर्ना ५ सेर लेकर २५ सेर ४८ तोला जल में पकावे। ६ सेर ३२ तोला जल शेष रहने पर उतारकर छान लेवे। तदनन्तर उसमें १२८ तोला घृत मिलावे। पश्चात् चिरायता भाँग, सोंठ, पुनर्नवा और देवदारु, ये कुल मिलकर ३२ तोले हों, इनका कल्क बनाकर मिला देवे। तदनन्तर धीमी आँचपर पकाकर घृतसिद्ध करे। इस घृत का सेवन करने से कास, श्वास, ज्वर और दारुण शोथ रोग नष्ट होते हैं। मात्रा-६ माशा ॥ ७३-७४ ॥

माणकघृत।

माणककाथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत्। एकजं द्वन्द्वजं शोथं त्रिदोषजमपोहति ॥ ७५ ॥

चार सेर मानकन्द को भली भाँति कूटकर ३२ सेर जल में पकावे। आठ सेर जल शेष रहने पर उतार कर छान लेवे। तदनन्तर उसमें २ सेर घृत मिलावे। पश्चात् आधसेर मानकन्द का कल्क मिलाकर पकावे। सिद्ध होने पर इस घृत का सेवन करने से एक दोषजन्य, द्वन्द्वजन्य और त्रिदोषजन्य दारुण शोथरोग नष्ट होता है। मात्रा ६ माशा ॥ ७५ ॥

समुद्रशोषण तैल।

निर्गुण्डी दशमूली च धुस्तूरक-

करञ्जकौ । शुष्कमूलजयाविश्वरास्ना-दारुपुनर्नवा ॥ ७६ ॥ ऐषाञ्च प्रकृते क्वाथे क्वाथे शाखोटजे तथा । कटुतैलं पचेत्प्रस्थं सैन्धवं कल्कपादिकम् ॥ ७७ ॥ सन्निपातोद्भवा शोथा ये चान्ये श्लेष्मपित्तजा । शिरःकर्णगता ये च श्लीपदानि तथैव च ॥ ७८ ॥ गलगण्डं ब्रध्नवृद्धि शोथं सर्वाङ्गसम्भवम् । कर्णशोथं दन्तशोथं हनुमूलाक्षिसम्भवम् ॥ ७९ ॥ एतान् सर्वान्निहन्त्याशु वाडवाग्निरिवाम्बुदम् । समुद्रशोषणं नाम तैलं परमशोभनम् ॥ ८० ॥

कड़वा तेल २ प्रस्थ (१२८ तोला), काढ़े के लिए द्रव्य—सँभालू, दशमूल मिला हुआ), धतूरा, करञ्ज, शुष्कमूली, जयन्तीपत्र, सोंठ, रास्ना, देवदारु, पुनर्नवा, यह कुल मिश्रित द्रव्य ६ सेर १६ तोला, जल २ द्रोण (२५ सेर ४८ तोला), इनका यथाविधि काढ़ा बनावे जब ८ प्रस्थ (६ सेर ३२ तोला) जल रह जावे तो उतार ले। इसी प्रकार सहोरा का काढ़ा ८ प्रस्थ (६ सेर ३२ तोला) तैयार कर ले। कल्क सेंधा नमक ६४ तोला। विधि-अनुसार तेल पकाकर तैयार कर ले। इस तेल के लगाने से द्विदोषज जैसे कफ-पित्तज व सन्निपातज शोथ व शिरोरोग, कर्णरोग, श्लीपद, गलगण्ड, ब्रध्न, कोषवृद्धि, सम्पूर्ण अङ्ग का शोथ, कान का शोथ, दाँत तथा हनुमूल शोथ एवं आँखों की सूजन आदि शीघ्र दूर होती हैं ॥ ७६-८० ॥

त्रिनेत्राख्य ।

टङ्कनं शोधितं गन्धं मृतशुल्वायसं रसम् । दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्य लघुपुटे पचेत् ॥ ८१ ॥ त्रिनेत्राख्यो रसो नाम चासाध्यं श्वयथुं जयेत् । गुञ्जामात्रं पिबेच्चानु एरण्डचिरबिल्वरसम् ॥ ८२ ॥

पारा, गन्धक सोहागा फूला हुआ ताम्रभस्म और लोहभस्म इन कुल द्रव्यों को अदरख के रस में एक दिन घोटकर लघुपुट में पकावे। मात्रा-आधी रत्ती से एक रत्ती तक। अनुपान-एरण्ड की जड़ और चिरबिल्व का क्वाथ। इस रस का सेवन करने से असाध्य शोथरोग नष्ट होता है ॥ ८१-८२ ॥

त्रिकट्वादिलौह ।

त्रिकटु त्रिफला दन्ती विडङ्गं कटुका तथा । चित्रको देवकाष्ठञ्च त्रिवृद्वारणपिप्पली ॥ ८३ ॥ चूर्णान्येतानि तुल्यानि द्विगुणं स्यादयोरजः । क्षीरेण पीतं शीतेन परं श्वयथुनाशनम् ॥ ८४ ॥

सोंठ, कालीमिरिच, पीपरि, आँवला, हर्रे, बहेरा, दन्ती (जमालगोटा की जड़), वायविडङ्ग, कुटकी चीता, देवदारु, निसोथ, गजपीपल प्रत्येक औषध को समभाग लेकर चूर्ण बनावे। कुल चूर्ण से दूना लोहभस्म मिलाकर खरल करके रख लेवे। मात्रा २ रत्ती से ४ रत्ती तक। इस रस को गोदुग्ध के साथ सेवन करने से शोथरोग अवश्य नष्ट होता है ॥८३-८४॥

शोथारिलौह ।

आयोरजस्त्र्यूषणयावशूकं चूर्णञ्च पीतं त्रिफलारसेन । शोथं निहन्यात् सहसा नरस्य यथाशनिर्वृक्षमुदग्रवेगः ॥ ८५ ॥ सर्वसमं लौहम् ।

सोंठ, कालीमिरिच, पीपरि और जवाखार प्रत्येक १ तोला, लोहभस्म ४ तोले, इन सबको एकत्र खरल करके रख लेवे। त्रिफला के क्वाथ के साथ इसका सेवन करने से शोथ रोग शीघ्र नष्ट होता है। जैसे वज्र से वृक्ष। मात्रा २-४ रत्ती ॥ ८५ ॥

शोथभस्मलौह ।

त्रिकटु त्रिफला द्राक्षा पौष्करं सजलं शटी। लौहं वचा लवङ्गञ्च भृङ्गीत्वक्

शतपुष्पिका ॥ ८६ ॥ विभीतकं विडङ्गञ्च धातकीपुष्पमेव च । एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ८७ ॥ सर्वद्रव्यसमश्चात्र सुमृतं लौहकिट्टकम् । कुटजस्य रसेनापि भ्रक्षयेत् परियत्नतः॥८८॥ वेष्टितं जम्बुपत्रेण पङ्केन परिलेपयेत् । ततो लघुपुटे पक्त्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥८९॥ प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा सेवितं गुञ्जकद्वयम् । निहन्ति सर्वजं शोथं ग्रहणीञ्च विशेषतः॥ ९० ॥ उदरेषु च सर्वेषु शोथेषु च विधानतः । विविधा व्याधयश्चान्ये सेविता यान्ति साध्यताम् ॥ ९१ ॥

सोंठ, कालीमिरिच, पीपरि, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, मुनक्का, पुहकरमूल, सुगन्धबाला, कचूर, लोहभस्म, बच, लौंग, काकड़ासिंगी, दालचीनी, सोया, बहेड़ा, वायविडङ्ग और धाय के फूल, समभाग इन सब द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे। कुल चूर्ण के समान शुद्ध मण्डूर मिलावे। तदनन्तर कुड़ा के छाल के क्वाथ में घोटकर एक गोला बना लेवे। उस गोले के ऊपर जामुन की पत्तियाँ लपेट कर उसके ऊपर मिट्टी का लेप करके धूप में सुखा लेवे। पश्चात् गजपुट में पका लेवे। स्वाङ्गशीतल होने पर मिट्टी आदि अलग करके उस गोला को घोटकर रख लेवे। मात्रा दो रत्ती। इसका सेवन करने से सब प्रकार के शोथ, ग्रहणी और उदररोग आदि अनेक व्याधियाँ नष्ट होती हैं ॥ ८६-९१ ॥

कट्वाद्य लौह ।

कटुकं त्र्यूषणं दन्ती विडङ्गं त्रिफला तथा । चित्रको देवदारुश्च त्रिवृद्वारणपिप्पली ॥ ९२ ॥ चूर्णान्येतानि तुल्यानि द्विगुणं स्यादयोरजः । क्षीरेण तुल्यमेतच्च श्रेष्ठं श्वयथुनाशनम् ॥ ९३ ॥

कटुकी, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपर), दन्तीमूल, वायविडङ्ग, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला), चित्रक, देवदारु, त्रिवृत् (निसोत), गजपीपल, इन सबको बराबर लेकर चूर्ण कर ले और इस चूर्ण से दूनी लोहभस्म लेकर मिला ले। मात्रा २।४ रत्ती। दूध के साथ लेना चाहिए। यह चूर्ण शोथ में हितकर है ॥९२-९३॥

सुवर्च्चलाद्य लौह ।

सुवर्च्चला व्याघ्रनखं चित्रकः कटुरोहिणी । वच्यञ्च देवकाष्ठञ्च दीप्यकं लौहमेव च ॥ शोथं पाण्डु तथा कासमुदराणि निहन्ति च ॥ ९४ ॥

हुलहुल (सुवर्चला) नखी, चित्रक कटुकी, वच, देवदारु, अजवाइन, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को बराबर बराबर लेकर चूर्ण बना ले और इस चूर्ण के बराबर लोहभस्म मिश्रित कर ले। मात्रा—२।४ रत्ती। इसचूर्ण को व्यवहार में लाने से शोथ, पाण्डु, कास (खाँसी) तथा उदररोग शीघ्र ही दूर होते हैं ॥ ९४ ॥

शोथकालानल रस ।

चित्रं कुटजबीजञ्च श्रेयसी सैन्धवं तथा । पिप्पली देवपुष्पञ्च सजातीफलटङ्कनम् ॥ ९५ ॥ लौहमभ्रं तथा गन्धं पारदेनैव मिश्रितम् । एतेषां कर्षमात्रेण वटीं गुञ्जामितां शुभाम् ॥ ९६ ॥ भक्षयेत् प्रातरुत्थाय कोकिलाक्षरसेन तु । ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥ ९७ ॥ कासं श्वासं तथा शोथं प्लीहानं हन्ति दुस्तरम् । मेहं मन्दानलं शूलं संग्रहग्रहणीं तथा ॥ ९८ ॥ अवश्यं नाशयेच्छोथं कर्दमं भास्करो यथा । शोथकालानलो नाम रोगानीकविनाशनः ॥ ९९ ॥

चीता, इन्द्रजौ, गजपीपरि, लाहौरी नमक, पीपरि, लौंग, जायफल, सोहागा की खील,

लोहभस्म, अभ्रकभस्म, गन्धक, और पारा; इनमें से प्रत्येक द्रव्य एक एक तोला लेकर, जल में घोटकर एक एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे तालमखाना के क्वाथ के साथ सेवन करना चाहिये। इसके सेवन से आठ प्रकार के साध्य और असाध्य दोनों ज्वर, खाँसी, श्वास, शोथ, दारुण प्लीहा, अग्निमान्द्य, शूल और संग्रहणी आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं। शोथ का तो यह इस प्रकार शोषण करता है, जैसे भगवान् भास्कर कीचड़ को सुखाते। मात्रा २-३ रत्ती है॥ ९९ ९९॥

शोथांकुश रस।

रसेन्द्रगन्धं मृतलौहताम्रं नागं तथाभ्रं समसंख्यकञ्च। निर्गुण्डिकारस्फोतकपित्थचिञ्चा पुनर्नवा श्रीफलकेशराजम्॥१००॥ एषां रसैर्भावितमेकशश्च गुञ्जाप्रमाणा वटिका विधेया। शोथज्वरारोचकपाण्डुरोगं सर्वाङ्गशोथं विनिवारयेच्च॥१०१॥ पित्तान्वितान् वातभवान् कफोत्थान् शोथांकुशो नाम निहन्ति रोगान्॥१०२॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, नागभस्म और अभ्रकभस्म प्रत्येक समभाग लेकर खरल कर लेवे। तदनन्तर सँभालू, अनन्तमूल, कैथ की छाल, इमली की छाल, साँठी, बेल की छाल और भँगरैया; इनमें से प्रत्येक के रस अथवा क्वाथ में भावना देकर एक एक रत्ती की वटी बनावे। इस शोथांकुशरस का सेवन करने से शोथ, ज्वर, अरोचक, पाण्डुरोग, सार्वाङ्गिक शोथ तथा वातज, पित्तज और कफजन्य अनेक रोग नष्ट होते हैं। मात्रा २।३ रत्ती॥ १००-१०२॥

पञ्चामृतरस।

शुद्धसूतं समादाय गन्धकं भागतः समम्। त्रिभागं टङ्कनं देयं विषभागत्रयं तथा॥ १०३॥ भागत्रयं तथा देयं मरिचस्य प्रयत्नतः। चूर्णीकृतं जलेनापि पिष्ट्वा रक्तिमितां वटीम्॥ १०४॥ मृङ्गवेररसेनैव भक्षयेद्वटिकामिमाम्। जलदोषोद्भवे शोथे घोरेऽत्युग्रे जलोदरे॥१०५॥ सन्निपातेषु घोरेषु विंशतिश्लैष्मिके गदे। ज्वरातिसारसंयुक्ते शोथे चैव जलोदरे।१०६। शिरःशूलगदे घोरे नासारोगे सपीनसे। पञ्चामृतरसो ह्येष सर्वरोगोपशान्तिकृत्॥ १०७॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, सोहागा फूला हुआ ३ तोले, विष ३ तोले, काली मिरिच ३ तोले; इन सबको एकत्र जल में पीसकर एक एक रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—अदरख का रस। इस पञ्चामृतरस का सेवन करने से दूषित जल के विकार से उत्पन्न भयानक उग्र जलोदररोग, दारुण सन्निपात, २० प्रकार के श्लैष्मिकरोग, ज्वरातिसारयुक्त शोथ, गलग्रह, मस्तकपीड़ा और पीनसयुक्त कठिन नासिकारोग आदि अनेक व्याधियाँ नष्ट होती हैं। मात्रा—२।३ रत्ती॥ १०३-१०७॥

शोथारि रस।

श्वेतदूर्वारसैर्भाव्य हिङ्गुलोत्थो रसो बुधैः। तं रसं मूषिकायान्तु कृत्वा तस्योपरि क्षिपेत्॥ १०८॥ श्वेतदूर्वायमान्योश्च चूर्णं पूर्णाशयं पुनः। पिधानिकां ततो दत्त्वा नीरन्ध्रां मूषिकां कुरु॥ १०९॥ ततो लघुपुटे पाकं विधानेन प्रदापयेत्। पुनस्तन्तुरसं नीत्वा गन्धकेन समेन च॥ ११०॥ कज्जलीं कारयेद्धीर पुनस्तां मिश्रयेत्समाम्। चतुःसमं तथा कुर्यादेभिर्द्रव्यैः सुशोधितैः॥ १११॥ विषताम्रकरङ्कैश्च तच्चूर्णं स्थापयेत्पुनः। खटिकाग्रेण्गृहीतं तच्चूर्णं जिह्वोपरि क्षिपेत्॥ ११२॥ गिलनार्थे चतुष्कर्षप्रमाणायाः

प्रपानकम् । शर्करायाः पिबेच्चानु सर्वशोथे महौषधम् ॥ ११३ ॥ भूरि प्रसुत्य प्रसुत्य महाशोथाद्विमुच्यते ॥ ११४ ॥

सफेद दूब के रस से हिंगुलोत्थ पारद को भावना देकर एक मूस में रक्खे। इसके बाद उस मूस को अजवाइन के चूर्ण और सफेद दूब से ऊपर तक भर दे, फिर ढकने से मूस का मुँह बंद कर मिट्टी द्वारा इसकी संधियों को बंद कर दे और फिर कपरमिट्टी करे, फिर गजपुट में यथाविधि पाक करे, फिर पारे को निकाल कर उसी के बराबर गन्धक मिलाकर कज्जली कर ले। यह कज्जली १ भाग मीठा विष १ भाग, ताँबे की भस्म १ भाग, बङ्गभस्म १ भाग, इन सबको एकत्रित कर ले। मात्रा—½ रत्ती। अनुपान—शरबत। आधी रत्ती औषध सेवन के पश्चात् ८ तोले खाँड का शर्बत पीना चाहिए। यह रस हर प्रकार के शोथ की परमौषधि है। इस रस के प्रयोग से शोथरोगी तुरन्त ही रोगमुक्त हो जाता है। आरोग्यदर्पण ॥ १०८-११४ ॥

एकादशायस गुटिका।

मृतायः पुरुषः शुल्वं खगो दरदगन्धकौ। गगनं पुष्परागश्च शैलेयमीश्वरोरगौ॥ ११५ ॥ विडङ्गं त्रिफला हिंगु यमानी जीरकद्वयम्। सर्जरसं वचा शृङ्गी मरिचं पिप्पलीद्वयम् ॥ ११६ ॥ चवी दुरालभा वह्निः शुण्ठ्याः क्वाथेन मर्दयेत्। अण्डवातान्त्रवृद्धिश्च कृच्छ्रमूत्रगदापहम् ॥ ११७ ॥ सर्वदोषभवं शोथं सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ ये चैवाण्डगता रोगास्तान् सर्वानपकर्षति ॥ ११८ ॥

पुरुषो रसः खगः स्वर्णमाक्षिकः ईश्वरः पित्तलः उरगः सीसकम्।

लौहभस्म, पारा, ताँबे की भस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, हिंगुल, गन्धक, अभ्रकभस्म, पुखराजभस्म, शिलाजीत, पित्तल भस्म। सीसकभस्म, वायविडङ्ग, त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आँवला), हींग, अजवाइन, सफेद जीरा, राल, वच, काकड़ासिंगी, कालीमिर्च, पीपल, गजपीपल, चव्य, दुरालभा, चित्रक, इन कुल द्रव्यों को बराबर-बराबर लेकर मिला ले और सोंठ के काढ़े से घोटकर २ रत्ती से ४ रत्ती प्रमाण की गोली बना लेवे। इसके सेवन करने से अण्डवात, अंत्रवृद्धि, मूत्रकृच्छ्र, ऊरुस्तम्भ, त्रिदोषज शोथ आदि रोग दूर होते हैं ॥ ११५-११८ ॥

दुग्धवटी।

अमृतं सूर्य्यगुञ्जं स्यादहिफेनं तथैव च। पञ्चरक्तिकलौहञ्च षष्टिरत्तिकमभ्रकम्॥ ११९ ॥ दुग्धे गुञ्जाप्रमाणा हि वटी कार्य्या भिषग्विदा। दुग्धानुपानं दुग्धैश्च भोजनं सर्वथा हितम् ॥ १२० ॥ शोथं नानाविधं हन्तिग्रहणीं विषमज्वरम्। मन्दाग्निं पाण्डुरोगं च नाम्ना दुग्धवटी परा। वर्जयेल्लवणं वारि व्याधिनिःशेषतावधि ॥ १२१ ॥

विष १२ रत्ती, अफीम १२ रत्ती, लोहभस्म ५ रत्ती और अभ्रकभस्म ६० रत्ती; इन कुल द्रव्यों को गौ के दुग्ध में घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। इसका सेवन दुग्ध के साथ करना चाहिये। भोजन भी दुग्ध ही के साथ करना हितकर है। इसका सेवन करने से सब प्रकार के शोथ, ग्रहणी, विषमज्वर, अग्निमान्द्य और पाण्डुरोग नष्ट होते हैं। जब तक रोग निवृत न हो तब तक जल और नमक का सेवन न करना चाहिये ॥११९-१२१॥

अपरा दुग्धवटी।

अमृतं धूर्त्तबीजञ्च हिंगुलञ्च समं समम्। धूर्त्तपत्ररसेनैव मर्दयेद् यममात्रकम् १२२॥ मुद्गोपमां वटीं कृत्वा दुग्धेन सह पाययेत्। दुग्धेन भोजयेदत्रं वर्जयेल्लवणं जलम् ॥ १२३ ॥ शोथं नानाविधं हन्ति पाण्डुरोगं

सकामलम्। सेयं दुग्धवटीनाम्ना गोपनीया प्रयत्नतः ॥ १२४ ॥

विष, धतूरे के बीज, हिंगुल; इन तीनों द्रव्यों को समभाग लेकर खरल करे, तदनन्तर धतूरे की पत्तियों के रस में प्रहर पर्यन्त घोटकर मूँग के समान गोलियाँ बनाये। चौथाई रत्ती से आधी रत्ती तक दूध के साथ सेवन करना चाहिये। भोजन के लिये दूध और भात देवे। नमक और जल का सेवन वर्जित है। इसका सेवन करने से अनेक प्रकार का शोथ, पाण्डुरोग और कामला-रोग नष्ट होते हैं ॥ १२३-१२४ ॥

ग्रहणीयुक्तशोथे।

कल्पलतावटी।

अमृतं हिंगुलं धूर्त्तबीजं द्वादशरक्तिकम्। प्रत्येकमहिफेनञ्च षट्त्रिंशद्रक्तिकं नयेत् ॥ १२५ ॥ पिष्ट्वा दुग्धेन गुञ्जैकां वटीं दुग्धेन पाययेत्। दुग्धं पाने भोजने च देयं न लवणं जलम् ॥ १२६ ॥ ग्रहणी चिरकालीनां हन्ति शोथं सुदुर्जयम्। चिरज्वरं पाण्डुरोगं नाम्ना कल्पलतावटी १२७

विष, हिंगुल और धतूरे के बीज प्रत्येक १२ रत्ती, अफीम ३६ रत्ती; इन सब औषधों को दूध के साथ पीसकर एक एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। अनुपान-दुग्ध। रोगी को प्यास लगने पर दूध ही और भूख लगने पर भी दूध ही देवे। नमक और जल का सेवन करना वर्जित है। इसका सेवन करने से बहुत पुरानी ग्रहणी से युक्त दारुण शोथरोग, चिरकाल का ज्वर और पाण्डुरोग नष्ट होते हैं। इसका नाम है कल्पलतावटी। मात्रा—आधी रत्ती से एक रत्ती तक ॥ १२५-१२७ ॥

क्षेत्रपालरस।

हिंगुलञ्च विषं ताम्रं लौहं तालकटङ्कनम्। जीरमाहेयफेनञ्च समभागं विमर्दयेत् ॥ १२८ ॥ यवार्द्धा वटिका कार्य्या पथ्यं दुग्धौदनं हितम्। अलवणं वारिहीनञ्च दातव्यं भिषजां वरैः ॥१२९॥ गुरुशोथमग्निमान्द्यं ग्रहणीमतिदुस्तराम्। ज्वरञ्चविषमं जीर्णंनाशयेन्नात्र संशय-१३०

दुग्धवटी इति पाके।

हिंगुल, विष, ताम्रभस्म, लोहभस्म शुद्ध हरिताल, सोहागा की खील, जीरा और अफीम, समभाग इन सब औषधों को एकत्र घोटकर आधे जौ की बराबर गोलियाँ बनाये। अनुपान-दुग्ध। भोजन के लिये दूध और भात देना चाहिये। नमक और जल का सेवन करना वर्जित है। इस क्षेत्रपालरस का सेवन करने से भारी शोथरोग, अग्निमान्द्य, दारुण ग्रहणीरोग, जीर्णज्वर और विषमज्वर निःसंदेह नष्ट होते हैं ॥ १२८-१३० ॥

वैद्यनाथवटी।

दधिवटी।

पक्वेष्टका हरिद्राभ्यामागारधूमकेन च। शोधितं सूतकं ग्राह्यं तोलकं तुलया घृतम्॥ १३१ ॥ भृङ्गराजरसैः शुद्धं गन्धकं सूततुल्यकम्। हरितालं विषं तुत्थमेलवालुकताम्रकम् ॥ १३२ ॥ खर्परं माक्षिकं कान्तं सर्वमेकत्र कारयेत्। सर्वार्द्धा कज्जली ग्राह्या भावयेच्च पुनः पुनः ॥ १३३ ॥ सिन्धुवाररसे चैव ज्योतिष्मत्या रसे तथा। रसेऽपराजितायाश्च जयन्त्याः स्वरसे तथा ॥ १३४ ॥ रक्तचित्रकमूलोत्थे रसे च परिभावयेत्। वटिकां सर्षपाकारां योजयेत् कुशलो भिषक् ॥ १३५ ॥ ततः सप्तवटीर्दद्यादुग्धेन वारिणा सह। अनुपानञ्च कर्त्तव्यं कज्जल्या कणया सह ॥ १३६ ॥ सन्निपातज्वरे चैव सशोथे ग्रहणीगदे। पाण्डु-

रोगेऽग्निमांद्ये च विविधे विषमज्वरे ॥ १३७ ॥ शुक्रमज्जगते दद्यान्न तु कासे कदाचन । नित्यं दध्ना च भोक्तव्यं सिता नित्य तथैव च ॥ १३८ ॥ स्नातव्यं ह्यभयान्नित्यं वयोदोषानुसारत । लवणं वारिहीनं च दधि पथ्यं सदा भवेत् १३९ वैद्यनाथटी नाम्ना वैद्यनाथेन निर्मिता ॥ १४० ॥

इयं ग्रहण्यां शोथे च प्रयुज्यते ।

पकी ईंट का चूर्ण, हरदी और गृहधूम (धुआँ का कजल) द्वारा शोधित पारा १ तोला, भँगरैया के रस में शुद्ध किया हुआ गन्धक १ तोला, इन दोनों की उत्तम कज्जली बनावे। हरिताल ६ माशे, विष ६ माशे, तूतिया ६ माशे, पलुआ ६ माशे, ताम्रभस्म ६ माशे, खपरिया ६ माशे, सोनामाखी ६ माशे और कान्तलोह का भस्म ६ माशे, इन सब द्रव्यों को कज्जली में मिलाकर सँभालू, मालकाँगुनी, कोयल जयन्ती और लाल चीता की जड़ इनम से प्रत्येक के रस में पृथक् २ भावना देकर घोटे । तदनन्तर सरसों के समान छोटी छोटी गोलियाँ बनावे। सात ७ गोलियाँ, (१ जौभर) कजली और (१ जौभर) पीपर का चूर्ण मिश्रित कर उष्ण जल के साथ सेवन करना चाहिये । इस औषध को सन्निपातज्वर, ग्रहणीयुत शोथ, पाण्डुरोग, अग्निमान्द्य और शुक्र तथा मज्जागत विविध प्रकार के ज्वर में दवे । परन्तु यदि कास हो तो इस औषध का प्रयोग कदापि न करे। भोजन क लिये दही और मिश्री देवे । रोगी की अवस्था और दोषों की अवस्था का विचार करके निर्भयता के साथ स्नान की आज्ञा दे। नमक और जल का सेवन वर्जित है ॥१३१-१४०॥

यह श्रीवैद्यनाथ द्वारा बनाई वैद्यनाथवटी ग्रहणी और शोथ दोनों के लिये अनुभूत प्रयोग है ।

अथ सुधानिधि ।

धान्यकं वालकं मुस्तं विश्वं सिन्धु समांशकम् । मण्डूरं द्विगुणं दत्त्वा भावयेत् तु चतुर्दश ॥ १४१ ॥ गोमूत्रे केशराजश्च शोथघ्नी भृङ्गराजकः । निर्गुण्डी भेकपर्णी च रसैरेषां विभाव्य च ॥१४२॥ द्विगुञ्जं च प्रयुञ्जीत तक्रेण सह बुद्धिमान् । केशराजरसैर्वापि भोजनं लवणं विना ॥ १४३ ॥ तक्रेण भोजयेदन्नं पाने तक्रञ्च दापयेत्। कामलाज्वरशोथघ्नो वह्निसन्दीपनः परः । ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नः सर्वव्याधिविनाशनः ॥ १४४ ॥

धनिया, सुगन्धबाला, नागरमोथा, सोंठ और सेंधानमक प्रत्येक एक तोला, शुद्ध मण्डूर भस्म १० तोले, इन सब औषधों को एकत्र मर्दनकर गोमूत्र, केशराज, पुनर्नवा, भँगरैया, निर्गुण्डी और मण्डूकपर्णी, इनमें से प्रत्येक के रस में चौदह-चौदह बार भावना देवे । मात्रा २-३ रत्ती । अनुपान—तक्र अथवा भाँगरा का रस । भोजन के लिये तक्र के साथ भात देना चाहिये । जब तक औषध सेवन करे नमक का सेवन न करना चाहिये । प्यास लगने पर जल के बदले तक्र पीना चाहिये । इस औषध का सेवन करन से *कामला, ज्वर, शोथ, अग्निमान्द्य, ग्रहणी* और पाण्डु आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं ॥१४१-१४४॥

पाण्डुशोथ में तक्रमण्डूर ।

गोमूत्रशुद्धमण्डूरचूर्णं पलचतुष्टयम् । त्रिफलापञ्च भृङ्गराजद्वयञ्च गणिकारिका ॥ १४५ ॥ शोथघ्नी कोकिलाक्षश्च रसैरेषां पृथक्पृथक् । गोमूत्राष्टपलैश्चैव भावयेद् यत्नतस्त्रिधा ॥ १४६ ॥ दशगुञ्जानिभां खादेत्तक्रेण वर्जयेज्जलम् । तक्रेण भोजयेदन्नं पाने तक्रञ्च दापयेत् ॥ पाण्डुशोथ हरेच्चूर्णं भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १४७ ॥

सप्तधा गोमूत्रशुद्ध श्लक्ष्णमण्डूरचूर्ण

पलं ४ भावनार्थं गोमूत्रपलं ८ विल्वपत्ररसः गणिकारीपत्ररसः पुनर्नवारसः कोकिलाक्षरसः केशराजरसः भृङ्गराजरसश्चएभिः प्रत्येकं वारत्रयं भावयेत्। अस्यदशार्षकं तक्रेण पिबेत् । तक्रेण भोजनं तक्रपानं च कर्त्तव्यम् लवणं जलं च वर्जयेत् ।

सात बार गोमूत्र में शुद्ध किया हुआ महीन मण्डूर का भस्म ४ पल लेवे । इसको आठपल गोमूत्र में तथा बिल्वपत्र, केशराज, भँगरैया, अरनी, पुनर्नवा और कोकिलाक्ष इनमें से प्रत्येक के रस में क्रमशः तीन-तीन बार भावना देवें । मात्रा—४-१० रत्ती । अनुपान—तक्र । भोजन के लिये तक्र के साथ भात देना चाहिये । प्यास लगने पर जल के बदले में तक्र पीने के लिये देना चाहिये । जब तक इस मण्डूर का सेवन करे तब तक जल और नमक का सेवन न करे । इस तक्र मण्डूर का सेवन करने से पाण्डुरोग और शोथ इस प्रकार शीघ्रता से नष्ट होता है जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार निवृत्त होवे । मात्रा—२ रत्ती की होनी चाहिये ॥ १४६-१४७ ॥

तक्रवटी ।

रसस्य माषकं ग्राह्यं गन्धकस्य च माषकम् । द्विमाषकं विषस्यापि ताम्रं माषचतुष्टयम् ॥ १४८ ॥ तोलकं पिप्पलीचूर्णं मण्डूरस्य च तोलकम् । क्वाथेन कृष्णजीरस्य भावयेत् सप्तवासरम् ॥१४९॥ वल्लभमात्रां वटिकां तक्रेण सह पाययेत् । तक्रेण भोजनं पानं लवणाम्भोविवर्जितम् ॥ १५० ॥ निहन्ति शोथं ग्रहणीं मन्दाग्निं पाण्डुनामपि ॥ १५१ ॥

पारा १ मासा, गन्धक १ माशा, विष २ माशा, ताम्रभस्म ४ माशे, पीपरि का चूर्ण १ तोला, और मण्डूर की भस्म १ तोला, इनको काले जीरे के क्वाथ में सात दिन पर्यन्त भावित करके एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे । अनुपान—तक्र । पथ्य—तक्र और भात । प्यास लगने पर जल के बदले तक्र पीवे । जब तक इस तक्रवटी का सेवन करे जल और नमक का परहेज रखना चाहिये । इसका सेवन करने से शोथ, ग्रहणी, अग्निमान्द्य और पांडुरोग नष्ट होते हैं । मात्रा—१-२ रत्ती ॥ १४८-१५१ ॥

कटुकाद्य लौह ।

कटुकं त्र्यूषणं दन्ती विडङ्गं त्रिफला तथा । चित्रको देवदारुश्च त्रिवृद्वारणपिप्पली ॥ १५२ ॥ चूर्णान्येतानि तुल्यानि द्विगुणं स्यादयोरजः । क्षीरेण तुल्यमेतच्च श्रेष्ठं श्वयथुनाशनम् ॥ १५३ ॥

(सर्वचूर्णाद् द्विगुणं लोहम् ।)

कुटकी, सोंठ, मिरिच, पीपरि, दन्ती की जड़, वायविडङ्ग, आँवला, हरड़, बहेड़ा, चीता का मूल, देवदारु, निशोथ और गजपीपरि प्रत्येक का समभाग चूर्ण लेवे । उसमें कुल चूर्ण का दूना लोहभस्म मिलाकर रख लेवे । दुग्ध के साथ इस लौह का सेवन करने से हर प्रकार का शोथ नष्ट होता है । मात्रा—३ रत्ती ॥ १५२-१५३ ॥

कंसहरीतकी ।

द्विपञ्चमूलस्य पचेत् कषाये कंसेऽभयानाञ्च शतं गुडाच्च । लेहे सुशीते च विनीय चूर्णं व्योषं त्रिसौगन्ध्यमुपारिथते च १५४ किञ्चिच्च चूर्णादपि यावशूकात् प्रस्थार्द्धमानं मधुनश्च दद्यात् । एकाभयां प्राश्य ततश्च लेहात् शुक्तिं निहन्ति श्वयथुं प्रवृद्धम् ॥ १५५ ॥ श्वासज्वरारोचकमेहगुल्मप्लीहत्रिदोषोदरपाण्डुरोगान् । कार्श्यामवातावसृगम्लपित्तं वैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान् ॥ १५६ ॥

(कंसे आढकमिते)

मिश्रित दशमूल २ सेर १६ तोला लेकर

उसमें जल २५ सेर ४८ तोला और ढीली पोटली में बँधी हुई हरीतकी १०० सौ डालकर धीमी आँच पर पकावे। जब ६ सेर ३२ तोला जल शेष रह जावे तब छान लेवे। इस क्वाथ में ५ सेर गुड़ मिलाकर फिर छान लेवे। तदनन्तर इसमें पूर्वोक्त उबाली हुई १०० हरीतकी को मिलाकर पकावे। पाक सिद्ध होने पर सोंठ, मिरिच, पीपरि, दालचीनी, तेजपात, इलायची के दाने और जवाखार प्रत्येक १ तोला मिलावे। शीतल होने पर मधु ३२ तोला मिलाकर रख लेवे। प्रतिदिन इसमें से १ हरीतकी खाकर २ तोले इस अवलेह को चाट लिया करें। इसका सेवन करने से अत्यन्त बढ़ा हुआ शोथ, श्वास, ज्वर, अरोचक, प्रमेह, गुल्म, प्लीहा, त्रिदोष, उदररोग, पाण्डुरोग, कार्श्य, आमवात, रक्तविकार, अम्लपित्त, विवर्णता तथा मूत्र, वायु और शुक्र के दोष ये सब नष्ट होते हैं॥ १५४-१५६॥

क्षीरवटिका।

गृहीत्वा दरदात् कर्षं तदर्द्धं देवपुष्पकम्। फणिफेनं विषं जातीफलं धुस्तूरबीजकम्॥ १५७॥ संमर्द्य विजयाद्रावैर्मुद्गमात्रां वटीं चरेत्। अनुपानं प्रदातव्यं शोथे क्षीरं भिषग्वरैः॥ १५८॥ ग्रहण्यां विजयाक्वाथः पथ्यं दुग्धान्नमेव हि। जलञ्च लवणञ्चापि वर्जनीयं विशेषतः॥ १५९॥ प्रबलायामुदन्यायां सलिलं नारिकेलजम्। पातव्यं वटिका चैषा शोथं हन्ति न संशयः। ग्रहणीमतिसारञ्च ज्वरं जीर्णं निहन्ति च॥ १६०॥

हिंगुल १ तोला, लौंग, अफीम, विष, जायफल और धतूरे के बीज प्रत्येक आधा तोला, इनको भांग की पत्तियों के रस में घोटकर मूँग के बराबर गोलियां बनावे। शोथरोग में दूध के साथ और ग्रहणी रोग में भांग के क्वाथ के साथ इस औषधी का सेवन करना चाहिये। इसका सेवन करने से शोथ, ग्रहणी, अतिसार और जीर्णज्वर शान्त होते हैं। भोजन के लिये दूध-भात देवे। नमक और जल का सेवन न करना चाहिये। तेज प्यास लगने पर नारियल का जल पान करना चाहिये॥ १५७-१६०॥

शोथशार्दूल चूर्ण।

सोरकं पञ्चलवणं सर्जिकाक्षारमेव च। सिन्दूरं च यवक्षारं सर्वं दद्यात् समं समम्॥ १६१॥ रक्तित्रयमितान् खादेद्यावद्वै माषकोन्मितम्। चूर्णमेतद्धरेच्छोथं नानोपद्रवसंयुतम्॥ १६२॥ तृणपञ्चमूलकार्थैर्मूत्रकृच्छ्रहरं परम्। पुनर्नवाष्टकक्वाथैर्योजितं चोदरं हरेत्॥ १६३॥

कलमी शोरा, पाँचों नमक अलग-अलग, सज्जीखार, रससिन्दूर, यवक्षार, उपर्युक्त सम्पूर्ण द्रव्यों को बराबर-बराबर लेकर मिला ले। मात्रा ३ रत्ती से १ माशे तक। यह चूर्ण अनेक प्रकार के उपद्रवों सहित शोथ को तुरन्त ही दूर करता है। पञ्चतृण मूल काढ़े के साथ इस चूर्ण को सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र तथा पुनर्नवाष्टक क्वाथ से उदररोग दूर होते हैं॥ १६१-१६३॥

दशमूलहरीतकी।

दशमूलकषायस्य कंसे पथ्याशतं पचेत्। तुलां चात्र गुडं दद्याद् व्योषक्षारं चतुःपलम्॥ १६४॥ त्रिसुगन्धं सुवर्णांशं प्रस्थार्द्धं मधुने हिमे। दशमूलहरीतक्यः शोथान् हन्युः सुदुर्जयान्॥ १६५॥ ज्वरारोचकगुल्मार्शोमेहपाण्डूदरामयान्। प्रत्येकमेषां कर्षांशं त्रिसुगन्धिमिता भवेत्॥ १६६॥ कंसहरीतकी चैषा चरके पठ्यतेऽन्यथा। एतन्मानेन तुल्यत्वं तेन तत्रापि वर्ण्यते॥ १६७॥

मिश्रित दशमूल ४ प्रस्थ (३ सेर १६ तोला) १०० हरें पोटली में बँधी हुई। क्वाथ के लिए पानी ३२ प्रस्थ (२५ सेर ४८ तोला) जब

औटते-औटते ८ प्रस्थ (६ सेर ३२ तोला) जल रह जावे तो उतार कर छान ले। इसमें ५ सेर गुड़ घोल दे जब गुड़ घुल जावे तो पोटली की बँधी हुई १०० हरों को अलग कर इसमें डाल दे, इसके बाद पकावे। इसके पश्चात् त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि,) यवक्षार मिला हुआ ४ पल (१६ तोला), दालचीनी, तेजपत्र, छोटी इलाइची, हरएक २ तोला, जब उपर्युक्त पाक सिद्ध होवे तो इन द्रव्यों का प्रक्षेप देकर अच्छी प्रकार मिलावे। ठण्डा होने पर ६४ तोला मधु मिला दे और एक मिट्टी के बर्तन में रख दे। मात्रा–२ तोला। लेह और १ हरड़ इनके सेवन करने से अति कठिन शोथ, अरुचि, गुल्म, बवासीर, प्रमेह, पीलिया तथा उदररोग नष्ट होते हैं। इसका पर्यायवाची शब्द कंसहरीतकी है। चरकसंहिता में इसका पाठ दूसरा है ॥ १६४-१६७ ॥

पुनर्नवाद्यरिष्ट।

पुनर्नवे द्वे च बले सपाठे वासा गुडूची सह चित्रकेण। निदिग्धिका च त्रिपलानि पक्त्वा द्रोणार्द्धशेषे सलिले ततस्तु ॥ १६८ ॥ पूत्वा रसं द्वे च गुडात्पुराणात् तुले मधु प्रस्थयुतं सुशीतम्। मासं निदध्याद् घृतभाजनस्थं पर्णे यवानां परतश्च मासात् ॥ १६९ ॥ चूर्णीकृतैरर्द्धपलांशिकैस्तं हेमत्वगेलामरिचाम्बुपत्रैः। गन्धान्वितं क्षौद्रघृतप्रदिग्धं जीर्णे पिबेद्व्याधिबलं समीक्ष्य ॥ १७० ॥ हृत्पाण्डुरोगं श्वयथुं प्रवृद्धं प्लीहभ्रमारोचकमेहगुल्मान्। भगन्दरं षडजठराणि कासं श्वासं ग्रहण्यामयकुष्ठकण्डूः ॥१७१॥ शाखानिलं बद्धपुरीषताञ्च हिक्कां किलासञ्च हलीमकञ्च। क्षिप्रं जयेद् वर्णबलायुरोजस्तेजोऽन्वितो मांसरसान्नभोजी॥१७२॥

सफेद पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, बला, अतिबला, पाढ़, अडूसा की छाल गिलोय, चित्रक, छोटी कटेरी, प्रत्येक द्रव्य ३ पल (१२ तोला), पकाने के लिए जल १ मन ११ सेर १६ तोला। जब पकते-पकते जल २५ सेर ४८ तोला रह जावे तो उतार ले फिर इसको कपड़े से छानकर १० सेर गुड़ घोल दे। जब ठण्डा हो जावे तब १२८ तोला शहद मिलाकर घी से चिकने हुए मिट्टी के बर्तन में मुँह बंद कर जौ के पत्तों में रख दे। एक महीने बाद वहाँ से निकालकर ४ तोले नागकेसर ४ तोले दालचीनी, ४ तोले छोटी इलाइची, ४ तोले कालीमिर्च, ४ तोले गन्धबाला, ४ तोले तेजपत्र। सम्पूर्ण द्रव्यों को उसमें डाल दे। एक सप्ताह पश्चात् फिर छान ले। मात्रा–१½ तोले से २½ तोले तक। किन्तु बलाबलानुसार देनी चाहिए। इस अरिष्ट के सेवन करने से हृद्रोग, पीलिया, शोथ (सूजन), प्लीहा (तिल्ली) भ्रम, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, भगंदर, उदररोग, कास, श्वास, ग्रहणी, कुष्ठ, कण्डू (खुजली) मलकाठिन्य, हिक्का (हिचकी), हलीमक, सम्पूर्ण रोग नाश को प्राप्त होते हैं। यह अरिष्ट बल, वर्ण, आयु, तेज का बढ़ानेवाला है। पथ्य–ओदन मांस रस ॥ १६८-१७२ ॥

पुनर्नवासव।

त्रिकटु त्रिफला दार्वी श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम्। वासामेरण्डमूलञ्च कटुकीं गजपिप्पलीम् ॥१७३॥ शोथघ्नी पिचुमर्दञ्च गुडूची शुष्कमूलकम्। दुरालभां पटोलञ्च पलांशेन विचूर्णयेत् ॥ १७४ ॥ धातकीं षोडशपलां द्राक्षायाः पलविंशतिम्। तुलामानां सितां दत्वा माक्षिकार्द्धतुलां तथा ॥ १७५ ॥ जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा मासं भाण्डे निधापयेत्। पुनर्नवासवो ह्येष शोथोदरविनाशनः ॥ १७६ ॥ प्लीहानमम्लपित्तञ्च यकृद्गुल्मज्वरादिकान्। कृच्छ्रसाध्यामयान् सर्वान् नाशयेन्नात्र संशयः ॥ १७७ ॥

१८ त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि) त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आँवला), दारुहल्दी, गोखुरू, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, अडूसा, एरण्ड की जड़, कुटकी, गजपीपल, पुनर्नवा, नीम की छाल, गिलोय, शुष्कमूली, दुरालभा, पटोलपत्र उपर्युक्त सम्पूर्ण द्रव्यों का चूर्ण पृथक्-पृथक् एक-एक पल (चार-चार तोले) ले, १६ पल (६४ तोला) धाय के फूल, १ सेर द्राक्षा (मुनक्का), ५ सेर खाँड, २॥ सेर शहद इन सबको एक मिट्टी के बर्तन में २ द्रोण (२२ सेर ४८ तोला) जल के साथ डाल दे और मुँह बन्द करके एक मास तक एकान्त में पड़ा रहने दे, फिर काम में लाये। इस आसव के सेवन करने से शोथ, उदररोग, तिल्ली, अम्लपित्त, यकृद्रोग (जिगर), गुल्म, ज्वर, सम्पूर्ण कष्टसाध्य रोग तुरन्त ही नष्ट होते हैं। मात्रा २ तोला ॥ १७३-१७७ ॥

शोथ में पथ्य।

पुराणयवशाल्यन्नं दशमूलोपसाधितम्। अल्पमल्पं कटुस्नेहं भोजने शोथिनां हितम् ॥ १७८ ॥

दशमूल (क्वाथ) द्वारा सिद्ध किये हुए पुराने जौ एवम् शाली चावल तथा थोड़ी मात्रा में सरसों का तेल शोथरोगियों के भोजन में हितकर है ॥ १७८ ॥

अन्यच्च—

संशोधनं लंघनमस्रमोक्षः स्वेदः प्रलेपः परिषेचनं च। पुरातनाः शालियवाः कुलत्था मुद्गाश्च गोधा ह्यपि शल्लकोऽपि ॥ १७९ ॥ भुजंगभुक्तित्तिरताम्रचूडलावादयो जांगलविष्किराश्च। कूर्मोऽपि भृङ्गी प्रपुराणसर्पिस्तक्रं सुरा माक्षिकमासवं च। १८० ॥ निष्पावकाविल्लककर्कशिग्रुरसोनकर्कोटकनालमूलं। सुवर्चलाशृंजनकं पटोलं वेत्राग्रधात्रीफलमूलकानि ॥१८१॥ पुनर्नवाचित्रकपारिभद्रश्रीपर्णिनिम्बेत्तुर-पल्लवानि एरंडतैलं कटुका हरिद्रा हरीतकी चारनिषेवणं च ॥ १८२ ॥ मूत्राणि गोजामहिषीनवानि कस्तूरिका चापि शिलाजतूनि। यत्पांडुरोगेष्वपि वह्निकर्म पुरा प्रदिष्टं हि तदेव चापि ॥ १८३॥ यथामलं पथ्यमिदं प्रयुक्तं शोथामयान्सत्वरमुच्छिनत्ति ॥ १८४ ॥

शोधन, लंघन, रुधिर निकालना, पसीना निकालना, लेप, परिषेचन (तरडे देना), पुराने चावल, जौ, कुलथी, मूँग, गोह, साही, मोर, तीतर, मुर्गा, लवा आदि जंगली जीवों का मांस, तथा विष्किर जीव (कुरेदकर खानेवाले कबूतर आदि), कछवा, शृंगी मछली, पुराना घी, छाछ, सुरा, शहद, आसव (द्राक्षासव आदि), चौंरा करेले, लाल सहजना, लहसन, ककोड़ा, नई पतली मूली, हुलहुल, गाजर, परवल, बेत की कोपल, आमले, जड़वाले पदार्थ, पुनर्नवा, चित्रकी, फरहद, सँभारी, नीम, तालमखाने के पत्ते, अंडी का तेल, कुटकी, हल्दी, हर, जवाखार आदि (भिलावे, गुग्गुल, लोह, कड़वे, तीक्ष्ण, दीपन पदार्थ) का सेवन। गौ, बकरी, भैंस का नवीन मूत्र, कस्तूरी, शिलाजीत एवम् पाण्डुरोग में कथित पथ्य, दागना ये सब पथ्य हैं[1] ॥ १७९-१८४ ॥

शोथ में अपथ्य।

पिष्टान्नमुष्णं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमजाङ्गलञ्च। पयो गुडं तैलमथो गुरूणि शोथं जिघांसुः परिवर्जयेच्च ॥ १८५ ॥

पिट्ठी के बने खाने के पदार्थ, गरम भोजन, नमक, शराब, मिट्टी, दिन में सोना, जाङ्गल मांस के सिवाय आनूप आदि मांस, अति मात्रा में जल, गुड़, तेल, भारी पदार्थ ये सब त्याग देने चाहियें ॥ १८५ ॥

अन्यच्च—

[1] सुरा औषधविशेष से निर्मित ही पथ्य है। साधारण सुरा नहीं, चौरा बाह्य प्रयोग में पथ्य है।

पवनं सलिलं वेगरोधं च विषमाशनम्। विरुद्धपानमशनं मृत्तिकायाश्च भक्षणम् ॥ १८६ ॥ ग्राम्यानूपं पिशितलवणं शुष्कशाकं नवान्नं गौडं पिष्टं दधि सकृशरं निर्जलं मद्यमम्लम् ॥ धानावल्लूरमशनमथो गुर्व्यसात्म्यं विदाहि, स्वप्नं दिने श्वयथुगदवान् वर्जयेन्मैथुनं च ॥ १८७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शोथाधिकारः समाप्तः।

हवा खाना, अति जल पीना, मल-मूत्रादि वेगों को रोकना, विरुद्ध अन्न जल का सेवन, मिट्टी खाना, ग्राम और जल के किनारे रहनेवाले जीवों का मांस, नमक, सूखे शाक, नया अन्न, गुड़ के पदार्थ, पिसे पदार्थ, दही, खिचड़ी जलरहित शराब, खटाई, चिरवा आदि भुने अन्न, सूखा मांस, भारी पदार्थ, असात्म्य भोजन, दाहकर्ता पदार्थ, दिन में सोना और मैथुन ये सब अपथ्य हैं ॥ १८६-१८७ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाख्यायां व्याख्यायां शोथाधिकारः समाप्तः।

अथ उदराधिकारः।

उदरचिकित्सा।

सर्वमेवोदरं प्रायो दोषसङ्घातजं यतः। अतो वातादिशमनी क्रिया सर्वत्रशस्यते १

सभी उदररोग प्रायः त्रिदोषजन्य होते हैं। अतः वायु आदि तीनों दोषों को शान्त करनेवाली ही चिकित्सा सब प्रकार के उदररोग में करनी चाहिये ॥ १ ॥

उदररोग में पथ्य-व्यवस्था।

उदरे दोषसम्पूर्णे कुक्षौ मन्दो यतोऽनलः। तस्माद्भोज्यानि योज्यानि दीपनानि लघूनि च ॥ २ ॥ रक्तशालीन्यवान्मुद्गान् जाङ्गलान् मृगपक्षिणः। पयो मूत्रासवारिष्टं मधु शीधु च शीलयेत् ॥ ३ ॥

उदर के दोषपूर्ण होने पर अग्नि मन्द पड़ जाती है। अतः इस रोग में दीपन और लघु भोजन देना चाहिये। इस रोग में रक्तशाली धान का भात, जौ की रोटी, मूँग की दाल, जङ्गली मृग और पक्षियों का मांसरस, दुग्ध, गोमूत्र, आसव, अरिष्ट, मधु और शीधु इनका बार-बार सेवन करना चाहिये ॥ २-३ ॥

उदर में विरेचन विधि।

दोषातिमात्रोपचयात् स्रोतोमार्गनिरोधनात्। सम्भवत्युदरं तस्मान्नित्यमेनं विरेचयेत् ॥ ४ ॥

दोषों के अत्यन्त सञ्चय और समस्त शारीरिक स्रोतों के रुक जाने से उदररोग उत्पन्न होता है, अतः उदररोगी को सर्वदा विरेचन कराना चाहिये ॥ ४ ॥

उदरनाशक योग।

पाययेत् तैलमैरण्डं समूत्रं सपयोऽपि वा ॥ ५ ॥

गोमूत्र के साथ अथवा उष्ण दुग्ध के साथ एरण्ड का तैल पिलाने से उदररोग शान्त होता है ॥ ५ ॥

वातोदर-चिकित्सा।

वातोदरं बलवतः स्नेहस्वेदैरुपाचरेत्। स्निग्धाय स्वेदिताङ्गाय दद्यात् स्निग्धं विरेचनम् ॥ ६ ॥ हृते दोषे परिम्लानं वेष्टयेद्वाससोदरम्। यथास्यानवकाशत्वाद्वायुर्नाध्मापयेत् पुनः ॥ ७ ॥
(परिम्लानं विरेचनेन नम्रीकृतम्।)

वातोदर का रोगी यदि बलवान् हो तो स्नेहन और स्वेदन द्वारा पहिले शरीर को स्निग्ध तथा स्विन्न करे। पश्चात् स्निग्ध विरेचन देवे। विरेचन द्वारा दोषों के निकल जाने से उदर

" त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि) त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आँवला), दारुहल्दी, गोखुरू, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, अडूसा, एरण्ड की जड़, कुटकी, गजपीपल, पुनर्नवा, नीम की छाल, गिलोय, शुष्कमूली, दुरालभा, पटोलपत्र उपर्युक्त सम्पूर्ण द्रव्यों का चूर्ण पृथक्-पृथक् एक-एक पल (चार-चार तोले) ले, १६ पल (६४ तोला) धाय के फूल, १ सेर द्राक्षा (मुनक्का), ५ सेर खाँड, २॥ सेर शहद इन सबको एक मिट्टी के बर्तन में २ द्रोण (२५ सेर ४८ तोला) जल के साथ डाल दे और मुँह बन्द करके एक मास तक एकान्त में पड़ा रहने दे, फिर काम में लावे। इस आसव के सेवन करने से शोथ, उदर-रोग, तिल्ली, अम्लपित्त, यकृद्रोग (जिगर), गुल्म, ज्वर, सम्पूर्ण कष्टसाध्य रोग तुरन्त ही नष्ट होते हैं। मात्रा २ तोला ॥ १७३-१७७ ॥

शोथ में पथ्य।

पुराणयवशाल्यन्नं दशमूलोपसाधितम्। अल्पमल्पं कटुस्नेहं भोजने शोथिनां हितम् ॥ १७८ ॥

दशमूल (क्वाथ) द्वारा सिद्ध किये हुए पुराने जौ एवम् शाली चावल तथा थोड़ी मात्रा में सरसों का तेल शोथरोगियों के भोजन में हितकर है ॥ १७८ ॥

अन्यच्च—

संशोधनं लंघनमस्रमोक्षः स्वेदः प्रलेपः परिषेचनं च। पुरातनाः शालियवाः कुलत्था मुद्गाश्च गोधा ह्यपि शल्लकोऽपि ॥ १७९ ॥ भुजंगभुक्तित्तिरताम्रचूडलावादयो जांगलविष्किराश्च। कूर्मोऽपि मृङ्गी मपुराणसर्पिस्तक्रं सुरा माक्षिकमासवं च। १८० ॥ निष्पावकाठिल्लकरक्रशिग्रुरसोनकर्कोटकबालमूलं। सुवर्चलाग्रं जनकं पटोलं वेत्राग्रधात्रीफलमूलकानि ॥१८१॥ पुनर्नवाचित्रकपारिभद्रश्रीपर्णिनिम्बेतुर पल्लवानि एरंडतैलं कटुका हरिद्रा हरीतकी क्षारनिषेवणं च ॥ १८२ ॥ मूत्राणि गोजामहिषीनवानि कस्तूरिका चापि शिलाजतूनि। यत्पांडुरोगेष्वपि वह्निकर्म पुरा प्रदिष्टं हि तदेव चापि ॥ १८३॥ यथामलं पथ्यमिदं प्रयुक्तं शोथामयान्सत्वरमुच्छिनत्ति ॥ १८४ ॥

शोधन, लंघन, रुधिर निकालना, पसीना निकालना, लेप, परिषेचन (तरड़े देना), पुराने चावल, जौ, कुलथी, मूँग, गोह, साही, मोर, तीतर, मुर्गा, लवा आदि जंगली जीवों का मांस, तथा विष्किर जीव (कुरेदकर खानेवाले कबूतर आदि), कछवा, शृंगी मछली, पुराना घी, छाछ, सुरा, शहद, आसव (द्राक्षासव आदि), चौंरा करेले, लाल सहजना, लहसन, ककोड़ा, नई पतली मूली, हुलहुल, गाजर, परवल, बेत की कोपल, आमले, जड़वाले पदार्थ, पुनर्नवा, चित्रकी, फरहद, खँभारी, नीम, तालमखाने के पत्ते, अंडी का तेल, कुटकी, हल्दी, हर, जवाखार आदि (भिलावे, गुग्गुल, लोह, कड़वे, तीक्ष्ण, दीपन पदार्थ) का सेवन। गौ, बकरी, भैंस का नवीन मूत्र, कस्तूरी, शिलाजीत एवम् पाण्डुरोग में कथित पथ्य, दागना ये सब पथ्य हैं[१] ॥ १७९-१८४ ॥

शोथ में अपथ्य।

पिष्टान्नमुष्णं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमजाङ्गलञ्च। पयो गुडं तैलमथो गुरूणि शोथं जिघांसुः परिवर्जयेच्च ॥ १८५ ॥

पिट्ठी के बने खाने के पदार्थ, गरम भोजन, नमक, शराब, मिट्टी, दिन में सोना, जाङ्गल मांस के सिवाय आनूप आदि मांस, अति मात्रा में जल, गुड़, तेल, भारी पदार्थ ये सब त्याग देने चाहिये ॥ १८५ ॥

अन्यच्च—

[१] सुरा औषधविशेष से निर्मित ही पथ्य है। साधारण सुरा नहीं, चौंरा बाह्य प्रयोग में ग्राह्य है।

पवनं सलिलं वेगरोधं च विषमाशनम्। विरुद्धपानमशनं मृत्तिकायाश्च भक्षणम् ॥ १८६ ॥ ग्राम्यानूपं पिशितलवणं शुष्कशाकं नवान्नं गौडं पिष्टं दधि सकृशरं निर्जलं मद्यमम्लम् ॥ धानावल्लूरमशनमथो गुर्व्यसात्म्यं विदाहि, स्वप्नं दैनं श्वयथुगदवान् वर्जयेन्मैथुनं च ॥ १८७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शोथाधिकारः समाप्तः।

हवा खाना, अति जल पीना, मल-मूत्रादि वेगों को रोकना, विरुद्ध अन्न जल का सेवन, मिट्टी खाना, ग्राम और जल के किनारे रहनेवाले जीवों का मांस, नमक, सूखे शाक, नया अन्न, गुड़ के पदार्थ, पिसे पदार्थ, दही, खिचड़ी जलरहित शराब, खटाई, चिरवा आदि भुने अन्न, सूखा मांस, भारी पदार्थ, असात्म्य भोजन, दाहकर्ता पदार्थ, दिन में सोना और मैथुन ये सब अपथ्य है ॥ १८६-१८७ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाख्यायां व्याख्यायां शोथाधिकारः समाप्तः।

अथ उदराधिकारः।

उदरचिकित्सा।

सर्वमेवोदरं प्रायो दोषसङ्घातजं यतः। अतो वातादिशमनी क्रिया सर्वत्रशस्यते १

सभी उदररोग प्रायः त्रिदोषजन्य होते हैं। अतः वायु आदि तीनों दोषों को शान्त करनेवाली ही चिकित्सा सब प्रकार के उदररोग में करनी चाहिये ॥ १ ॥

उदररोग में पथ्य-व्यवस्था।

उदरे दोषसम्पूर्णे कुक्षौ मन्दो यतोऽनलः। तस्माद्भोज्यानि योज्यानि दीपनानि लघूनि च ॥ २ ॥ रक्तशालीन्यवान्मुद्गान् जाङ्गलान्-मृगपक्षिणः। पयो मूत्रासवारिष्टं मधु शीधु च शीलयेत् ॥ ३ ॥

उदर के दोषपूर्ण होने पर अग्नि मन्द पड़ जाती है। अतः इस रोग में दीपन और लघु भोजन देना चाहिये। इस रोग में रक्तशाली धान का भात, जौ की रोटी, मूँग की दाल, जङ्गली मृग और पक्षियों का मांसरस, दुग्ध, गोमूत्र, आसव, अरिष्ट, मधु और शीधु इनका बार-बार सेवन करना चाहिये ॥ २-३ ॥

उदर में विरेचन विधि।

दोषातिमात्रोपचयात् स्रोतोमार्गनिरोधनात्। सम्भवत्युदरं तस्मान्नित्यमेनं विरेचयेत् ॥ ४ ॥

दोषों के अत्यन्त सञ्चय और समस्त शारीरिक स्रोतों के रुक जाने से उदररोग उत्पन्न होता है, अतः उदररोगी को सर्वदा विरेचन कराना चाहिये ॥ ४ ॥

उदरनाशक योग।

पाययेत् तैलमेरण्डं समूत्रं सपयोऽपि वा ॥ ५ ॥

गोमूत्र के साथ अथवा उष्ण दुग्ध के साथ एरण्ड का तैल पिलाने से उदररोग शान्त होता है ॥ ५ ॥

वातोदर-चिकित्सा।

वातोदरं बलवतः स्नेहस्वेदैरुपाचरेत्। स्निग्धाय स्वेदिताङ्गाय दद्यात् स्निग्धं विरेचनम् ॥ ६ ॥ हृते दोषे परिम्लानं वेष्टयेद्वाससोदरम्। यथास्यानवकाशत्वाद्वायुर्नाध्मापयेत् पुनः ॥ ७ ॥

(परिम्लानं विरेचनेन नम्रीकृतम्।)

वातोदर का रोगी यदि बलवान् हो तो स्नेहन और स्वेदन द्वारा पहिले शरीर को स्निग्ध तथा स्विन्न करे। पश्चात् स्निग्ध विरेचन देवे। विरेचन द्वारा दोषों के निकल जाने से उदर

के कोमल हो जाने पर वस्त्र से कसकर बाँध देवे, जिससे कि अवकाश न मिलने के कारण वायु उदर को फिर न फुला सके ॥ ६-७ ॥

उदर में पेयाविधि।

विरिक्ते च यथा दोषहरैः पेया भृता हिता ॥ ८ ॥

विरेचन के पश्चात् जो दोष उपस्थित हो उसी दोष को नष्ट करनेवाले औषधों द्वारा पेया बनाकर सेवन कराना लाभदायक होता है ॥ ८ ॥

उदररोग में तक्रपानव्यवस्था।

वातोदरी पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वितम्। शर्करामरिचोपेतं स्वादुपित्तोदरी पिबेत् ॥९॥ यमानी सैन्धवाजाजी व्योषयुक्तं कफोदरी। त्र्यूषणक्षारलवणैर्युक्तं त्रैदोषिकोदरी। गौरवारोचकार्त्तानाममृतत्वाय कल्पते ॥ १० ॥

वातोदर में पीपरि और सेंधानोन मिलाकर, पित्तोदर में मिश्री और काली मिरिच मिलाकर, कफोदर में अजवाइन सेंधा नमक, जीरा, सोंठ, मिरिच और पीपरि मिलाकर तथा त्रिदोषजन्य उदररोग में सोंठ, मिरिच, पीपरि, जवाखार और सेंधानोन मिलाकर तक्र पान करे। इससे शरीर की गुरुता और अरुचि का नाश होता है ॥ ९-१० ॥

मधुतैलवचाशुण्ठीशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः। युक्तं प्लीहोदरीजातं सेव्योपन्तु दकोदरी ॥ ११ ॥ बद्धोदरी तु हवुषादीप्यकाजाजिसैन्धवैः।पिबेच्छिद्रोदरीतक्रं पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् ॥ १२ ॥ त्र्यूषणक्षारलवणैर्युक्तन्तु निचयोदरी। गौरवारोचकार्त्तानां समन्दाग्न्यतिसारिणाम् ॥ १३ ॥ तक्रं वातकफार्त्तानाममृतत्वाय कल्पते ॥ १४ ॥

प्लीहोदर में शहद, तैल, बच, सोंठ, सोवा, कूठ तथा सेंधा नमक के साथ, जलोदर में त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपर) के साथ, बद्धोदर में हवुषा, अजवायन, जीरा तथा सेंधा नमक के साथ, छिद्रोदर में पीपल तथा मधु के साथ, त्रिदोषज उदरमें त्रिकटु (सोंठ,मिर्च, पीपर), यवक्षार तथा सेंधा नमक के साथ मठा का सेवन अत्यन्त हितकर है—वात कफ से उत्पन्न रोग, शरीर भारी रहना, अरुचि, मन्दाग्नि तथा अतिसार में मठा अमृत के समान गुणकारी है ॥ ११—१४ ॥

वातोदर में दुग्धादि व्यवस्था।

वातोदरे पयोऽभ्यासो निरूहो दशमूलिकः ॥ १५ ॥

वातोदर में दुग्धपान और दशमूल के क्वाथ की निरूहवस्ति अर्थात् पिचकारी देना लाभदायक है ॥ १५ ॥

सामुद्राद्य चूर्ण।

सामुद्रसौवर्चलसैन्धवानि क्षारं यमानीमजमोदकञ्च। सपिप्पली चित्रकशृङ्गवेरं हिंगुंविडञ्चेति समानि कुर्यात् ॥ १६॥ एतानि चूर्णानि घृतप्लुतानि भुञ्जीत पूर्वं कवलं प्रशस्तम्। वातोदरं गुल्ममजीर्णभक्तं वातास्रकोपं ग्रहणीं प्रदुष्टाम् ॥ १७॥ अर्शांसि दुष्टानि च पाण्डुरोगं भगन्दरं चापि निहन्ति सद्यः ॥ १८ ॥

सामुद्रनोन, सौवर्चलनोन, जवाखार, सेंधा नोन अजवाइन, अजमोद, पीपरि, चीता, सोंठ, हींग और बिड़नोन समभाग, इन सब द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे उस चूर्ण को घी में मिलाकर भोजन के प्रथम ग्रास के साथ खावे। इसका सेवन करने से वातोदर, गुल्म अजीर्ण, वातरक्त, दूषित ग्रहणी, बवासीर, पाण्डुरोग और भगन्दर ये सब रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १६-१८ ॥

कुष्ठादि चूर्ण।

कुष्ठं दन्ती यवक्षारो व्योष त्रिलवणं वचा। अजाजी दीप्यकं हिङ्गुस्वर्जिरा-

चव्यचित्रकम् ॥ १९ ॥ शुण्ठी चोष्णाम्भसा पीतं चूर्णं वातोदरं जयेत् ॥ २० ॥

कूठ, दन्तीमूल, यवक्षार, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपर), सेंधा नमक, काला नमक, बिड लवण, वच, जीरा, अजवाइन, हींग, सर्जिक्षार, चव्य, चित्रक तथा सोंठ इन्हें बराबर बराबर लेकर चूर्ण कर उष्ण जल के साथ लेना चाहिए। मात्रा- १ माशे से २ माशे तक। इस चूर्ण को सेवन करने से वात से उत्पन्न उदररोग दूर होता है ॥ १६-२० ॥

पित्तोदर में क्रिया।

पित्तोदरेषु बलिनं पूर्वमेव विरेचयेत्। अनुवास्याबलं क्षीरं बस्तिशुद्धं विरेचयेत् ॥ २१ ॥ पयसा सत्रिवृत्कल्केनोरुबकभृतेन वा। शातलात्रायमाणाभ्यां भृतमारग्वधेन वा ॥ २२ ॥

पित्त से उत्पन्न उदररोग में यदि रोगी बलवान् है तो सबसे पहले उसे विरेचन करवाना चाहिए और यदि निर्बल है तो अनुवासन तथा दूध से बस्ति द्वारा रोगी को प्रथम शुद्ध कर विरेचन कराना चाहिए। विरेचन के लिए निसोतचूर्ण डालकर दूध या अरण्डी के बीज, चर्मकषा, त्रायमाण अथवा अमलतास का गूदा इनमें से किसी एक औषधि से दूध को सिद्ध कर रोगी को देना चाहिए ॥ २१ २२ ॥

कफोदरचिकित्सा।

कफादुदरिणं शुद्धं कटुक्षाराम्नभोजितम्। मूत्रारिष्टायस्कृतिभिर्योजयेच्च कफापहैः ॥ २३ ॥

जिस उदररोग में कफ प्रबल हो उसमें प्रथम विरेचन तथा बस्ति द्वारा रोगी को शुद्ध कर कड़वे पदार्थ, क्षारयुक्त अन्न, गोमूत्र अरिष्ट आदि कफ के नाश करनेवाले भोजन तथा औषध सेवन कराना चाहिए ॥ २३ ॥

त्रिदोषजोदरचिकित्सा।

सान्निपातोदरे सर्वा यथोक्ताः कारयेत्क्रियाः ॥ २४ ॥

त्रिदोषज (वात, पित्त, कफ) उदररोग म वात, पित्त, कफ आदि कही उदररोग की चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २४ ॥

प्लीहोदरचिकित्सा।

प्लीहोदरे प्लीहहरं कर्मोदरहरं तथा २५

प्लीहोदर में बढ़ी हुई तिल्ली को नष्ट करनेवाली तथा उदररोग को नष्ट करनेवाली औषधियों का प्रयोग करना चाहिए ॥ २५ ॥

बद्धोदरचिकित्सा।

स्विन्नाय बद्धोदरिणे मूत्रतीक्ष्णौषधान्वितम्। सतैललवणं दद्यान्निरूहं सानुवासनम् ॥ परिस्रंसीनि चान्नानि तीक्ष्णञ्चैव विरेचनम् ॥ २६ ॥

बद्धोदर में पेट पर स्वेदन क्रिया करनी चाहिए तत्पश्चात् तीक्ष्णवीर्य औषधि, तैल तथा सेंधा नमक आदि पदार्थों को मिलाकर बस्तिकर्म तथा अनुवासन करना चाहिए और भेदक भोजन तथा तीक्ष्ण विरेचन देना चाहिए।२६।

छिद्रोदर में क्रिया का निर्देश।

छिद्रोदरमृते स्वेदात्श्लेष्मोदरवदाचरेत् ॥ २७ ॥

छिद्रोदर में स्वेदन क्रिया के अतिरिक्त कफोदर में कही चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २७ ॥

जलोदर में शस्त्रकर्म।

जातं जातं जलं स्राव्य शास्त्रोक्तं शस्त्रकर्म च। जलोदरे विशेषेण द्रवसेवां विवर्जयेत् ॥ २८ ॥

जलोदर में सुश्रुत आदि ग्रन्थों में कही हुई विधि के अनुसार शस्त्र (औजार) द्वारा पेट में इकट्ठे हुए जल को निकाल देना चाहिए। इसमें पतला भोजन देना निषेध है ॥ २८ ॥

उदरहर यूष।

स्नुक्पयसा परिभाविततण्डुलचूर्णैर्विनिर्मितः पूपः। उदरमुदारं हिंस्याद्योगोऽयं सप्तरात्रेण ॥ २९ ॥

थूहर के दूध से चावल भिगोवे, फूल जाने पर पीसकर उसका पूआ बनावे। उस पूआ को खाने से सात रात में उदररोग अवश्य नष्ट होता है॥ २९॥

उदरहर मूत्र।

सक्षीरं माहिषं मूत्रं निराहारः पिबेन्नरः। शाम्यत्यनेन जठरं सप्ताहादिति निश्चयः॥ ३०॥

निराहार मनुष्य गाय का दूध मिलाकर भैंस का मूत्र पान करे। अन्य कोई वस्तु न खावे और न पीवे ऐसा करने से सात दिन में उदररोग अवश्य नष्ट होता है॥ ३०॥

दन्त्यादि चूर्ण।

दन्ती वचा गवाक्षी च शङ्खिनी तिल्वकं त्रिवृत्। गोमूत्रेण पिबेतदेत्कल्कं ह्युदरनाशनम्॥ ३१॥

दन्तीमूल, वच, इन्द्रायण की जड़, शङ्खिनी (ससला), तिल्वक (शावरलोध) और निसोत इन्हें इकट्ठा करके पीसकर गोमूत्र के साथ पीने से उदररोग नष्ट होता है। मात्रा ४ रत्ती से ८ रत्ती तक॥ ३१॥

उदर में प्रदेह।

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिग्रुकैः। साश्वगन्धैः सगोमूत्रैः प्रदह्यादुदरं शनैः॥ ३२॥ मूत्राण्यष्टावुदरिणां सेके पाने च शस्यते॥ ३३॥

देवदार, ढाक की कली, मदार के पत्ते, गजपीपल, सहिजने की छाल, असगन्ध, इन्हें इकट्ठा करके गोमूत्र के साथ पीसकर पेट पर लेप करने से उदररोग में लाभ होता है। आठों प्रकार के मूत्रों से उदररोगों को परिषेक तथा पान कराने से लाभ होता है॥ ३२-३३॥

देवद्रुमादियोग।

देवद्रुमं शिग्रु मयूरकञ्च गोमूत्रपिष्टामथवाश्वगन्धाम्। पीत्वाशु हन्यादुदरं प्रवृद्धं कृमीन् सशोथानुदरं च दूष्यम्॥ ३४॥

देवदारु, सहिजने की छाल, अपामार्ग, इन्हें इकट्ठा कर मिश्रण कर अथवा अकेले असगंध को गोमूत्र से पीसकर पीने से बढ़ा हुआ उदररोग, कृमि तथा सूजनसहित दूष्योदर नाश होता है॥ ३४॥

दशमूलादि क्वाथ।

दशमूलदारुनागरच्छिन्नरुहापुनर्नवाभयाक्काथः। जयति जलोदरशोथश्लीपदगलगण्डवातरोगांश्च॥ ३५॥

दशमूल, देवदारु, सोंठ, गिलोय, पुनर्नवा, हरड़ ये कुल द्रव्य मिलाकर २ तोला लेना चाहिए। तत्पश्चात् इनको ३२ तोला जल में पकाना चाहिए, जब शेष ८ तोला रह जावे तो उतार ले। इस काढ़े को सेवन करने से जलोदर, शोथ (सूजन), श्लीपद, गलगण्ड तथा वातरोग आदि सम्पूर्ण दूर होते हैं॥ ३५॥

हरीतक्यादि क्वाथ।

हरीतकीनागरदेवदारुपुनर्नवाच्छिन्नरुहाकषायः। सुगुग्गुलुर्मूत्रयुतन्तु पेयः शोथोदराणां प्रवरः प्रयोगः॥ ३६॥

हरड़, सोंठ, देवदारु, पुनर्नवा, गिलोय ये सम्पूर्ण मिश्रित द्रव्य २ तोला लेना चाहिए। तत्पश्चात् इनको ३२ तोला जल में पकाना चाहिए। जब शेष ८ तोला रह जाये तो उतार ले फिर इस काढ़े में किञ्चित् गुग्गुल और गोमूत्र डालकर पीने से उदररोग और शोथ शान्त होते हैं॥ ३६॥

पुनर्नवादि क्वाथ।

पुनर्नवा दारु निशा सतिक्ता पटोलपथ्या पिचुमर्दमुस्ता। सनागरच्छिन्नरुहेति सर्वैः कृतः कषायो विधिना विधिज्ञैः॥ ३७॥ गोमूत्रयुग्गुग्गुलुना च युक्तः

पीतः प्रभाते नियतं नराणाम्। सर्वाङ्गशोथोदरकासशूलश्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति ॥ ३८ ॥

पुनर्नवा, देवदारु, हल्दी, कुटकी, पटोलपत्र, हरड़, नीम, मोथा, सोंठ, गिलोय ये सम्पूर्ण मिश्रित द्रव्य २ तोला लेकर ३२ तोले जल में पकावे। जब शेष ८ तोला रह जावे तो उतार ले। इस काढ़े में गुग्गुल और गोमूत्र ऊपर से मिलाकर (प्रक्षेप देकर) पीने से सम्पूर्ण अङ्गों के शोथ, उदररोग कास, शूल (दर्द), पीलिया, श्वासादि रोग नाश को प्राप्त होते हैं ॥ ३७-३८ ॥

नारायण चूर्ण।

यमानी हवुषा धान्यं त्रिफला सोपकुञ्चिका। कारवी पिप्पलीमूलमजगन्धा शटी वचा ॥ ३९ ॥ शताह्वा जीरकं व्योषं स्वर्णक्षीरी सचित्रका। द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम् ॥ ४० ॥ विडङ्गञ्च समांशानि दन्त्या भागत्रयं तथा। त्रिवृद्विशाले द्विगुणे सातला स्याच्चतुर्गुणा ॥ ४१ ॥ एष नारायणो नाम चूर्णो रोगगणापहः। नैनं प्राप्याभिवर्द्धन्ते रोगा विष्णुमिवासुराः ॥ ४२ ॥ तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्बदराम्बुना। आनद्धवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया ॥ ४३ ॥ दधिमण्डेन विट्सङ्गे दाडिमाम्बुभिरर्शसैः। परिकर्त्ते च वृक्षाम्लैरुष्णाम्बुभिरजीर्णके ॥ ४४ ॥ भगन्दरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे। हृद्रोगे ग्रहणीदोषे कुष्ठे मन्दानले ज्वरे ॥ ४५ ॥ दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमेविषे। यथार्हं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ ४६ ॥

अजवायन, हाऊबेर, धनियाँ, त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आँवला), कालाजीरा, कारवी (सोये) पिप्पली मूल, अजमोदा, कचूर, बच, सोये, जीरा, त्रिकटु, (सोंठ, मिर्च, पीपल), सत्यानासी, चित्रक, यवक्षार, सर्जिक्षार, पोहकर मूल, कूठ, पाँचों नमक, वायविडंग हरएक द्रव्य १ भाग, दन्ती ३ भाग, निसोत २ भाग, इन्द्रायण की जड़ २ भाग, सातला (चर्मकषा) ४ भाग। इन सम्पूर्ण औषधियों को एकत्र कर यथाविधि चूर्ण कर ले। मात्रा-१ माशा से २ माशे तक। इस चूर्ण के सेवन करने से अनेक प्रकार के रोग नष्ट होते हैं। अनुपान—इस चूर्ण को उदररोग में मठा के साथ, गुल्म रोग में बेर के काढ़े के साथ, बद्धवात में मदिरा के साथ, वातरोग में प्रसन्ना के साथ, मलबन्ध में दही के पानी के साथ, अर्श (बवासीर) रोग में अनार के रस के साथ, परिकर्त्तिका में वृक्षाम्ल के साथ, अजीर्ण में उष्ण जल के साथ, भगन्दर, पीलिया, खाँसी श्वास गलग्रह, हृद्रोग, संग्रहणी, कुष्ठ, मंदाग्नि, ज्वर, दंष्ट्राविष, कृत्रिम विष, इन रोगों में यह चूर्ण विरेचन के लिए देना चाहिए। यदि रोगी स्निग्ध कोष्ठ हो ॥ ३९-४६ ॥

पटोलाद्य चूर्ण।

पटोलमूलं रजनी विडङ्गं त्रिफलात्वचम्। कंपिल्लकं नीलनीञ्च त्रिवृताञ्चेति चूर्णयेत् ॥ ४७ ॥ षडाद्यान् कार्षिकानन्त्यांस्त्रींश्च द्वित्रिचतुर्गुणान्। कृत्वा चूर्णं ततो माषं गवां मूत्रेण सम्पिबेत् ॥ ॥ ४८ ॥ विरक्तो जाङ्गलरसैर्भुञ्जीत मृदु ओदनम्। मण्डं पेयां च पीत्वा तु सव्योषं षडहं पयः ॥ ४९ ॥ सृतं पिबेत्तु तच्चूर्णं पिबेदेवं पुनःपुनः। हन्ति सर्वोदराण्येतच्चूर्णं जातोदकान्यपि। कामलां पाण्डुरोगञ्चश्वयथुञ्चापकर्षति ॥ ५० ॥

परवल की जड़, हल्दी, वायविडङ्ग, त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आँवला) प्रत्येक द्रव्य दो-दो तोला लेना चाहिए। ४ तोला कमीला, ६

तोला नीलनी मूल, ८ तोला निसोत, ऊपर्युक्त सम्पूर्ण द्रव्यों को मिलाकर यथाविधि चूर्ण बना ले और उचित मात्रा में प्रयोग में लावे। मात्रा—१ माशे से २ माशे तक। अनुपान—गोमूत्र। जिस समय इस चूर्ण के देने से विरेचन हो जावे तब रोगी को जङ्गली पशुपक्षियों के मांस के यूप से चावल देना चाहिए या पेया अथवा मण्ड को देना चाहिए। इसके पश्चात् ६ दिन तक त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि) डालकर औटाया दूध पिलाना चाहिए। इस दूध का सेवन उस समय तक रखना चाहिए जब तक रोग पूरी तरह से अच्छा न हो जावे। इस प्रकार औषध सेवन कराने से सब प्रकार के उदररोग, जलोदर, कामला, पीलिया तथा शोथरोग (सूजन) नाश को प्राप्त होते हैं ॥४७-५०॥

महाबिन्दुघृत।

स्नुहीक्षीरपले कल्के प्रस्थार्द्धञ्चैव सर्पिषः। कम्पिल्लकं पलञ्चैकं पलार्द्धं सैन्धवस्य च ॥ ५१ ॥ त्रिवृतायाः पलञ्चैकं कुडवं धात्रिकारसात्। तोयप्रस्थेन विपचेत् शनैर्मृद्वग्निना भिषक् ॥ ५२ ॥ शाणप्रमाणं दातव्यं जठरे प्लीहगुल्मयोः। तथा कच्छपरोगेषु युञ्जीत मतिमान् भिषक् ॥ ५३ ॥ एतद्गुल्मान् सनिचयान् सशूलान् सपरिग्रहान्। निहन्त्येष प्रयोगो हि वायुर्जलधरानिव ॥ ५४ ॥ पञ्चगुल्मवधार्थाय वज्रो मुक्तः स्वयम्भुवा। महाबिन्दुघृतं नाम सिद्धं सिद्धैश्च पूजितम् ॥ ५५ ॥

घृत ६४ तोला लेकर उसमें थूहर का दूध २पल (८तोला) मिलावे। तदनन्तर कबीला ४ तोला, लाहौरी नमक २ तोले और निसोथ ४ तोला लेकर इनका कल्क बनावे। आँवले का रस १६ तोला और पाकार्थ जल १२८ तोला लेवे। इन सब द्रव्यों को एकत्र मिलाकर धीमी आँच पर पकावे। उदर, प्लीहा और गुल्मरोग में ३ माशा की मात्रा में सेवन करना चाहिये। कच्छप रोग में भी बुद्धिमान् वैद्य इसका प्रयोग करें। इसका सेवन करने से शूलयुक्त तथा उपद्रवयुक्त पञ्चविध गुल्मरोग इस प्रकार नष्ट होते हैं, जैसे प्रचण्ड वायु के चलने से बादलों के समूह विनष्ट होवे। पाँच प्रकार के गुल्मरोग को नष्ट करने के लिये साक्षात् स्वयम्भू ने अनुभूत और सिद्धनिषेवित 'महाबिन्दुघृत' नामक वज्र छोड़ा है ॥५१-५५॥

बृहन्नाराचघृत।

लोध्रचित्रकचव्यानि विडङ्गं त्रिफला त्रिवृत्। शङ्खिन्यतिविषा व्योषमजमोदा निशाद्वयम् ॥ ५६ ॥ दन्ती च कार्षिकं सर्वं गोमूत्रस्य पलाष्टकम्। चतुःपलं स्नहीक्षीरं राजवृक्षफलं तथा ॥ ५७ ॥ एतैश्चतुर्गुणे तोये घृतप्रस्थं विपाचयेत्। उदरञ्चामवातञ्च गुल्मप्लीहभगन्दरान् ॥ ॥ ५८ ॥ निहन्त्यचिरयोगेन गृध्रसीं स्तम्भमूरुजम्। बृहन्नाराचकं नाम घृतमेतद् यथामृतम् ॥ ५९ ॥

घृत १२८ तोला लेवे, उसमें थूहर का दूध १६ तोला मिलावे। तदनन्तर उसमें लोध, चीता की जड़, चव्य, वायविडङ्ग, आँवला, हरड़, बहेड़ा, निसोथ, शंखिनी, अतीस, सोंठ, मिरिच, पीपरि, अजमोद, हरदी, दारुहरदी और दन्ती जमालगोटा की जड़ प्रत्येक एक-एक तोला, अमिलतास के फल का गूदा १६ तोला सबका कल्क बनाकर मिलावे। पश्चात् ३२ तोला गोमूत्र और ६ सेर ३२ तोला जल मिलाकर धीमी आँच से पकावे। इस घृत का सेवन करने से उदररोग, आमवात, गुल्म, प्लीहा, भगन्दर, गृध्रसी और ऊरुस्तम्भ ये सब रोग नष्ट होते हैं। यह बृहन्नाराच नामक घृत अमृत के समान है ॥ ५६—५९ ॥

रसोनतैल।

लशुनस्य तुलामेकां जलद्रोणे विपा-

चयेत् । त्रिकटु त्रिफला दन्ती हिङ्गुसैन्धवचित्रकम् ॥ ६० ॥ देवदारु वचा कुष्ठं मधुशिग्रुपुनर्नवा । सौवर्चलं विडङ्गानि दीप्यकोगजपिप्पली ॥ ६१ ॥ एतेषां पलिकान् भागान् त्रिवृतः षट्पलानि च । पिष्ट्वा कषायेणानेन तैलंमृद्वग्निना पचेत् ॥ ६२ ॥ तत्पिबेत्प्रातरुत्थाय यथाग्निबलमात्रया । निहन्ति सकलान् रोगानुदराणि विशेषतः ॥ ६३ ॥ मूत्रकृच्छ्रमुदावर्त्तमन्त्रवृद्धिं गुदकृमीन् । पार्श्वकुक्षिभवं शूलमामशूलमरोचकम् ॥ ६४ ॥ यकृदष्ठीलिकानाहान् प्लीहनाश्चाङ्गवेदनाम् । मासमात्रेण नश्यन्ति अशीतिर्वातजा गदाः ॥ ६५ ॥

तिल का तेल २ प्रस्थ (१२८ तोला), लहसन की मिंगी ५ सेर, जल २ द्रोण (२५ सेर ४८ तोला), पक चुकने पर काढ़ा आधा द्रोण ८ प्रस्थ (६ सेर ३२ तोला), कल्क के लिए—त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपर), त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला), दन्तीमूल, हींग, सहिंजन, सेंधा नमक, चित्रक, देवदारु, बच, कुष्ठ, मधु, की छाल, पुनर्नवा, काला नमक, वायविडङ्ग, अजवायन, गजपीपल, हरएक द्रव्य १ पल (४ तोला), निसोत ६ पल (२४ तोला) इनको धीमी-धीमी अग्नि से पकावे । रोगी के बलानुसार प्रातः समय सेवन करावे । इसके व्यवहार से मूत्रकृच्छ्, उदावर्त, अन्त्रवृद्धि, गुदाकृमि, बगलों में शूल, कुक्षिशूल, आमशूल तथा अरुचि, जिगर, अष्ठीलिका, आनाह, तिल्ली, अङ्गशूल और सब प्रकार के उदररोग नाश को प्राप्त होते हैं और इसके १ महीने तक लगातार सेवन करने से वात रोग शान्त होते हैं ॥६०-६५॥

श्रीवैद्यनाथादेशवटिका ।

त्रिकटुकपारदपथ्यासमभागं कानकफलं द्विगुणम् । वटिकागुञ्जार्द्धमिता कार्या स्वरसेनाम्ललोणिकायाः ॥ ६६ ॥ प्रबलजलोदरगुल्मज्वरपाण्डवामयनाशिनी प्रोक्ता । तिमिराग्नि पटलविद्रधिप्रबलोदावर्त्तशूलहरी ॥ ६७ ॥ कृमिकोठकुष्ठकण्डूपिडकाश्च निहन्ति रोगचयम् । सिद्धगुडी प्रथिता भुवने श्रीवैद्यनाथपादाज्ञा ॥ ६८ ॥

अतिसरणे सति हस्तपादप्रक्षालनपूर्वकं दधिभक्तेन भोजयेत् । पथ्यं स्वल्पं देयम् ।

त्रिकटु, रससिन्दूर (केवल पारद लेना ठीक नहीं है) और हरड़ प्रत्येक समभाग, सबसे दूने जमालगोटा के बीज ; इन सब द्रव्यों को चौपतिया के रस में घोटकर आधी-आधी रत्ती की गोलियाँ बनावे । इसका सेवन करने से प्रबल जलोदर, गुल्म, ज्वर, पाण्डुरोग, तिमिर रोग, पटल (नेत्ररोग), विद्रधि, प्रबल उदावर्त, शूल, कृमि, कोठ (चकत्ता), कुष्ठ, कण्डू और पिडिका आदि अनेक रोगसमूह नष्ट होते हैं । वैद्यनाथजी ने इस सिद्धवटी का आविष्कार किया था । इस औषध का सेवन करने से यदि आवश्यकता से अधिक विरेचन हो जावे तो उसका प्रतिकार यह है कि हाथ और पैर धुलाकर दही और भात थोड़ी मात्रा में खिलाना चाहिये । मात्रा—१ गोली से २ गोली तक ॥ ६६-६८ ॥

इच्छाभेदीरस ।

शुण्ठी मरिचसंयुक्तं रसगन्धकटङ्कनम् । जैपालास्त्रिगुणाः प्रोक्ताः सर्वमेकत्र पेषयेत् ॥ ६९ ॥ इच्छाभेदी द्विगुञ्जः स्यात् सितया सह पाययेत् । यावन्तश्चुल्लुका पीता तावद्वेगाद्विरेचयेत् ॥ तक्रोदनञ्च दातव्यमिच्छाभेदी यथेच्छया ॥ ७० ॥

चुल्लकं सितोदकगण्डूषम् ।

सोंठ, मिरिच, पारा, गन्धक और सोहागा प्रत्येक एक तोला, जमालगोटा २ तोले ; इन सब औषधों को एकत्र जल में पीसकर

रत्ती की गोलियाँ बनावे। अनुपान—मिश्री का शरबत। इस इच्छाभेदी रस को खाकर जितने बार चुल्लू-चुल्लू शरबत पीते हैं, उतने ही बार विरेचन (दस्त) होता है। भली भाँति विरेचन होने के पश्चात् तक्र के साथ भात खावे। मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक ॥ ६६-७० ॥

अभयावटी।

अभया मरिचं कृष्णा टङ्कनञ्च समांशिकम्। सर्वचूर्णसमं भागं दद्यात् कानककं फलम् ॥ ७१ ॥ स्नुहीक्षीरेण संकुर्याद्गुञ्जापादमितां वटीम् । वटीद्वयं शिवामेकां पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ॥७२॥ उष्णाद्विरेचयेदेषा शीते स्वास्थ्यमुपैति च। जीर्णज्वरं प्लीहरोगं हन्त्यष्टावुदराणि च ॥ ७३ ॥ वातोदरे प्रशस्तोऽयं सर्वाजीर्णं व्यपोहति। कामलां पाण्डुरोगञ्च तथैव कुम्भकामलाम् ॥ ७४ ॥

हरड़, मिरिच, पीपरि और सोहागा फुला हुआ प्रत्येक एक तोला, जमालगोटा ४ तोले ; इन सब औषधों को एकत्र थूहर के दूध में घोटकर चौथाई रत्ती की मात्रा में गोलियाँ बना लेवे। इसके सेवन की विधि यह है कि चावलों के पानी में एक हरड़ पीस लेवे उसी के साथ एक ही बार दो गोलियाँ खावे। इस औषध के सेवन करने के पश्चात् जब तक उष्ण जल पीता रहे तब तक विरेचन होता रहता है, शीतल जल पीने पर विरेचन होना बन्द हो जाता है। इसका सेवन करने से जीर्णज्वर, प्लीहा, आठ प्रकार के उदररोग, सब प्रकार के अजीर्ण, कामला, पाण्डुरोग और कुम्भकामला ये सब रोग नष्ट होते हैं। वातोदर के लिये यह विशेष लाभदायक है तीक्ष्णरेचक ॥ ७१-७४ ॥

नाराचरस।

सूतं टङ्कनतुल्यांशं मरिचं सूततुल्यकम्। गन्धकं पिप्पली शुण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत् ॥ ७५ ॥ सर्वतुल्यं क्षिपेद्दन्तीबीजं निस्तुषमेव च । गुञ्जैको रेचने सिद्धो नाराचोऽयं महारसः। गुल्मप्लीहोदरं हन्ति पिबेत्तमुष्णवारिणा॥७६॥

पारा, सोहागा फूला हुआ और मिरिच प्रत्येक एक तोला, गन्धक, पीपरि और सोंठ प्रत्येक दो-दो तोले, छिले हुए जमालगोटा के बीज ६ तोले ; इन सब औषधों को पानी में पीसकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। यह अत्युग्र विरेचन है । इसका सेवन करने से गुल्म, प्लीहा और उदररोग नष्ट होते हैं। अनुपान—गर्म जल। तीक्ष्णरेचक है ॥ ७५ ७६ ॥

चूलिकावटी।

रसो गन्धो विषं तालं त्रिकटु त्रिफला तथा ॥ टङ्कनं समभागञ्च जयपालं चतुर्गुणम् ॥ ७७ ॥ भृङ्गराजरसेनाथ केशराजरसेन वा। मधुना वटिका कार्य्या गुञ्जापादमिता शुभा ॥ ७८ ॥ चूलिकाख्या वटी ख्याता शोथोदरविनाशिनी। कामलां पाण्डुरोगञ्च आमवातं हलीमकम् ॥ हन्याद्भगन्दरं कुष्ठं प्लीहानं गुल्ममेव च ॥ ७६ ॥

पारा, गन्धक, विष, शुद्ध हरिताल, सोंठ, मिरिच, पीपरि, आँवला, हरड़, बहेड़ा, और सोहागा फूला हुआ प्रत्येक सम भाग लेवे। इसमें कुल औषधों का चौगुना जमालगोटा मिलाकर भाँगरा अथवा केशराज के अर्क की भावना देवे। पश्चात् मधुसहित घोटकर पाव-पाव रत्ती की गोलियाँ बनावे। इस चूलिकावटी का सेवन करने से शोथ, उदर, कामला, पाण्डुरोग, आमवात, हलीमक, भगन्दर, कुष्ठ, प्लीहा, ये सब रोग नष्ट होते हैं। तीक्ष्णरेचक है ॥ ७७-७६ ॥

भेदनीवटी।

त्रिकण्टकस्नुक् पयसा पिप्पल्या वटिका कृता। भेदनीयंसिद्धमता महागदनिषूदनी ॥ ८० ॥

गोखुरू, थूहर का दूध और पीपरि इनको घोटकर गोलियाँ बनावे। इसका सेवन करने से विरेचन हो जाता है, अतः अनेक प्रबलरोग शान्त होते हैं ॥ ८० ॥

प्रवालपञ्चामृत।

प्रवाल मुक्ता फल शङ्ख शुक्ति कपर्दिकानाञ्च समांश भागम ॥ ८१ ॥ प्रवालमात्रं द्विगुणं प्रयोज्य सर्वैः समांशं रवि दुग्धमेव ॥ ८२ ॥ एकीकृतं तत्खलु भाण्डमध्ये। क्षिप्त्वा मुखे वन्धन मत्रयोज्यम् ॥ ८३ ॥ पुटं विदध्यादति शीतले च। उद्धृत्य तद्रस्म भरेत्करण्डे ॥ ८४ ॥ नित्यं द्विवारं प्रतिरोगयोगैः वल्लप्रमाणेन प्रयोज्यमेव ॥ ८५ ॥ गुल्मोदर प्लीहविवद्धकास श्वासाऽग्नि मान्द्यान्कफमारुत्तोत्थान ॥ ८४ ॥ अजीर्णमुद्गारहृदामयघ्नं वालग्रहार्तौं परमं प्रशस्तम् ॥ ८७ ॥ मेहामयं मूत्ररोगं मूत्रकृच्छ्रं तथाऽश्मरीम् नाशयेन्नाऽत्र सन्देहः सत्यंगुरुवचो यथा ॥ ८८ ॥ पथ्याश्रितं भोजनमादरेण समाचरेन्निर्मल चित्त वृत्त्या ॥ ८९ ॥ प्रवालपञ्चामृतनामधेयो। योगोत्तमः सर्व गदाऽपहारी ॥ ९० ॥

मूँगा २ भाग, मोती शङ्ख, मोती की सीप, पीली कौड़ी इनकी भस्में १-१ भाग लेकर सबके समान आक का दूध डालकर मिट्टी के बर्तन में और मुँह बन्द करके गजपुट की आँच दे ठण्डा होने पर निकाल शीशी में भर दे, इनमें से २-२ रत्ती सुबह शाम मधु आदि रोगानुसार अनुपान के साथ देने से गुल्म, उदर, प्लीहा, वद्धोदर, कास, श्वास, मन्दाग्नि, कफ, वातरोग, अजीर्ण उद्गार, हृद्रोग, ग्रहोपद्रव, प्रमेह, मूत्ररोग, मूत्रकृच्छ्र पथरी इन सब रोगों का विनाश करता है। पथ्य रोगानुसार देना चाहिये। इसको रोगानुसार अनुपान के साथ देने से सब रोगों को नष्ट करता है ॥ ८१-९० ॥

शोथोदरारिलौह।

पुनर्नवाऽमृतावह्नि गवाक्षीमानशिग्रवः। सूर्य्यावर्त्तार्कमूलञ्च पृथगष्टपलं जले ॥९१॥ पादशेषे श्रृतं द्रोणे सुपूते वस्त्रगालिते। लौह भस्माष्टपलकं पचेदाज्यसमं भिषक् ॥ ९२ ॥ अर्कस्य द्विपलं क्षीरं स्नुहीक्षीरं चतुःपलम्। पलद्वयं कौशिकस्य गन्धकस्य पलं तथा ॥ ९३ ॥ पलार्द्धं पारदं सिद्धे वक्ष्यमाणन्तु निक्षिपेत्। जयपालं ताम्रमभ्रं शुद्धमत्र प्रदापयेत् ॥ ९४ ॥ कङ्कुष्ठवह्निकन्दानां शराख्याद् घण्ट कर्णकात्। पलाशस्य च बीजानि कञ्चुकी तालमूलिका ॥ ९५ ॥ त्रिफलायाः क्रिमिरिपोस्त्रिवृद्दन्तीभवं तथा। सूर्य्यावर्त्तगवाक्ष्यौश्च वर्षा भूर्य्यवल्लिका ॥ ९६ ॥ एषां लौहसमां मात्रां स्निग्धभाण्डे निधापयेत्। अतोऽस्य भक्षयेन्मात्रामनुपानञ्च युक्तितः॥ ९७ ॥ हन्ति सर्वोदरं शीघ्रं नात्र कार्य्या विचारणा। ये च शोथाः सुदुर्वाराश्चिरकालानुबन्धिनः ॥ ९८ ॥ ते सर्वे नाशमायान्ति तमः सूर्य्योदये यथा। नातःपरतरं किञ्चित् शोथोदरविनाशनम् ॥ ९९ ॥ उदराणि पाण्डुरोगं कामलाञ्च हलीमकम्। अर्शो भगन्दरं कुष्ठं ज्वरं गुल्मञ्च नाशयेत् ॥ १०० ॥

साँठी, गिलोय, चीता, इन्द्रायण, मानकन्द, सहिंजन की छाल हुलहुल और आक की जड़ प्रत्येक ८ पल ३२ तोला लें। इनको एकत्र कर २१ सेर ४८ तोला जल में पकावे, जब ६ सेर ३२ तोला जल शेष रहे तब छानकर, दम हाथ

में लोहभस्म ३२ तोला, घृत ३२ तोला, आक का दूध २ पल ७ तोला, थूहर का दूध ४ पल १६ तोला गूगुल २ पल ७ तोला, गन्धक १ पल ४ तोला, पारा २ तोले मिलाकर पकावे। मिलाने के समय पारा और गन्धक की कज्जली कर लेवें। पाक शेष होने पर जमालगोटा, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, कंकुष्ठ (उसारेरेवन्द), चीता की जड़, सूरन, सरफोंका, घण्टकर्ण (मोरवा), ढाक के बीज, कंचुकशाक, मुसली, आँवला, हरड़ बहेड़ा, वायविडङ्ग, निशोथ, दन्ती (जमालगोटा की जड़), हुलहुल, इन्द्रायण की जड़, सोंठी और हड़जोड़ ये सब मिलकर ३२ तोला हों, इनको मिलाकर उतार लेवें। शीतल होने पर घी के चिकने पात्र में रख देवें। इसकी मात्रा और अनुपान की व्यवस्था रोगी की अवस्था और बल के अनुसार निश्चित करे। यह शोथो-दरारि लौह सब प्रकार के उदररोग और चिर-कालोत्पन्न, दुर्निवार शोथरोग को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार नष्ट हो। शोथ और उदररोग की इससे बढ़कर और कोई औषध है ही नहीं। इसका सेवन करने से उदररोग, पाण्डुरोग, कामला हलीमक, बवासीर, भगन्दर, कुष्ठ, ज्वर और गुल्मरोग भी नष्ट होते हैं मात्रा २ रत्ती से ४ रत्ती तक ॥ ९१-१०० ॥

त्रैलोक्य सुन्दर रस।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं ताम्राभ्रं सैन्धवं विषम्। कृष्णजीरं विडङ्गञ्च गुडूचीसत्त्व-चित्रकम् ॥ १०१ ॥ उग्रगन्धा यवक्षारं प्रत्येकं कर्षमात्रकम्। निर्गुण्डिकाद्रवैरग्नि-बीजपूरद्रवैर्दिनम् ॥ १०२ ॥ मर्दयेच्छोप-येत्सोऽयं रसस्त्रैलोक्यसुन्दरः। गुञ्जाद्वयं घृतैर्लेह्यं वातोदरकुलान्तकम् ॥ १०३ ॥ वह्निचूर्णं यवक्षारं प्रत्येकञ्च पलद्वयम्। घृतप्रस्थं विपक्तव्यं गोमूत्रैश्च चतुर्गुणैः। घृतावशेषं कर्त्तव्यं द्विमाषञ्च पिबे-दनु ॥ १०४ ॥

शुद्ध पारा १ तोला, गन्धक २ तोला, ताम्र-भस्म, अभ्रकभस्म, सेंधा नमक, शुद्ध मीठा विष, काला जीरा, वायविडङ्ग, सतगिलोय, चित्रक, वच, यवक्षार प्रत्येक द्रव्य १ तोला लेकर इनको एकत्र मिश्रित कर १ दिन सँभालू के रस से, दूसरे दिन चित्रक के रस से और तीसरे दिन बिजौरा के रस से घोटे और धूप में सुखा ले। मात्रा--२ रत्ती। अनुपान घी। इस अनुपान घृत को इस प्रकार तैयार करना चाहिए कि गाय का घी १ प्रस्थ (६४ तोला), गोमूत्र ४ प्रस्थ (३ सेर १६ तोला), चित्रक चूर्ण ८ तोला, यवक्षार ८ तोला, इनसे विधि के अनुसार घी पाककर २ माशे तोल में अनुपान में प्रयोग करावे। इस रस के सेवन करने से वातोदर नाश होता है ॥ १०१-१०४ ॥

जलोदरारि रस।

पिप्पली मरिचं ताम्रं रजनीचूर्णसंयु-तम्। स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्यं तुल्यं जैपाल-बीजकम् ॥ १०५ ॥ गुञ्जार्द्धेन विरेकः स्यात् सद्यो हन्ति जलोदरम्। रेचनानाञ्च सर्वेषां दध्यम्लं स्तम्भने हितम् ॥ दिनान्ते च प्रदातव्यमन्नं वा मुद्गयूषकम् ॥१०६॥

पीपल, कालीमिर्च ताम्रभस्म, हलदी-चूर्ण, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को सेहुण्ड के दूध से घोटकर इसको तोल लें और इसके बराबर शुद्ध जैपालबीज मिला ले। मात्रा ½ रत्ती। इस रस के व्यवहार से प्रथम रोगी को विरेचन होता है और तत्पश्चात् जलोदर नष्ट होता है। विरेचन रोकने के लिए रोगी को दही और खट्टे पदार्थों का सेवन कराना चाहिए। रोगी को भोजन के लिए सायंकाल के समय चावल और मूँग का यूष देना चाहिये ॥ १०५-१०६ ॥

वह्नि रस।

सूतस्य गन्धकस्याष्टौ रजनीत्रिफला-शिलाः। प्रत्येकञ्च द्विभागं स्यात् त्रिवृज्जै-पालचित्रकम् ॥ १०७ ॥ प्रत्येकं स्यात्त्रि-

भागश्च व्योषं दन्तिकजीरकम् । प्रत्येकं सप्तभागं स्यादेकीकृत्य विचूर्णयेत् ॥१०८॥ जयन्तीस्नुक्पयोभृङ्गवह्निवातारितैलकैः । प्रत्येकेण क्रमाद् भाव्यं सप्तवारं पृथक् पृथक् ॥ १०९ ॥ महावह्निरसो नाम्ना गुञ्जापुष्णजलैः पिबेत् । विरेचनं भवेत्तेन तक्रभक्तं ससैन्धवम् ११० ॥ दिनान्ते दापयेत्पथ्यं वर्जयेच्छीतलंजलम् । सर्वोदरहरः प्रोक्तः श्लेष्मवातहरः परः१११

पारा ८ भाग, गन्धक ८ भाग, हलदी २ भाग, त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आँवला) २ भाग, मैनशिल, २ भाग, निसोत ३ भाग, जयपाल ३ भाग, चित्रक ३ भाग, त्रिकटु (सोंठ,मिर्च, पीपर) ७ भाग, दन्तीमूल ७ भाग, जीरा ७ भाग, इन सबको इकट्ठा कर जयन्तीपत्र, सेहुण्ड का दूध, भाँगरा, चित्रक तथा एरण्ड तेल से अलग अलग सात-सात भावना दे । मात्रा--३ रत्ती। अनुपान-उष्ण जल। इस रस के सेवन कराने से विरेचन होता है। रोगी को पथ्य सायंकाल को देना चाहिए। पथ्य-सेंधा नमक, चावल, मठा। इस औषध के सेवन काल में ठण्डा पानी प्रयोग में न लाना चाहिए। यह रस हर प्रकार के उदररोग तथा कफ वात को दूर करता है ॥ १०७-१११ ॥

पिप्पल्याद्यलौह ।

पिप्पलीमूलचित्राभ्रत्रिकत्रितयसैन्धवम् । सर्वचूर्णसमं लोहं हन्ति सर्वोदरामयम् ॥ ११२ ॥

पिप्पलीमूल, चित्रक, अभ्रकभस्म, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपर), त्रिफला (हर्र, बहेड़ा. आँवला), त्रिजात, सेंधा नमक, सम्पूर्ण द्रव्यों को बराबर-बराबर लेकर सबके बराबर लोह-भस्म मिश्रण करे। इसके सेवन करने से हर प्रकार का उदररोग दूर होता है। मात्रा २-३ रत्ती है ॥ ११२ ॥

उदरारि रस ।

पारदं शुक्तितुत्थञ्च जैपालं पिप्पली समम् । आरग्वधफलान्मज्जा वज्रीक्षीरेण मर्दयेत् ॥ ११३ ॥ गुञ्जाभात्रां वटीं खादेत् स्त्रीणां जलोदरं जयेत् । चिञ्चाफलरसश्चानु पथ्यं दध्योदनं हितम् ॥ ११४ ॥ दकोदरं हरश्चैव तीव्रेण रेचनेन च ॥ ११५ ॥

रससिन्दूर, शुक्तिभस्म, शुद्ध तूतियाभस्म, शुद्ध जैपाल, पीपल, अमलतास का गूदा, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को एकत्र कर सेहुण्ड के दूध से घोटकर आधी रत्ती से १ रत्ती प्रमाण की गोली बना ले। इसके सेवन करने से स्त्रियों का जलोदर नाश होता है। अनुपान-इमली का रस। पथ्य-दही चावल । इस रस से प्रथम रेचन होता है फिर जलोदर नष्ट होता है ॥११३-११५ ॥

वारिशोषण रस ।

चतुर्विंशतिभागाः स्युर्गन्धाद् वङ्गं तदर्द्धकम् । वङ्गभागाद्भवेदर्द्धः पारदः कृष्णमभ्रकम् ॥ ११६ ॥ चतुर्दशविभागं स्यात् मृतं तद्दीयते पुनः । मृतलौहमष्टभागं मृतताम्रं नवात्र तत् ॥ ११७ ॥ मृतहेमद्वयं तेषां मृतरूप्यश्च सप्तकम् । अतिशुद्धमतिस्थूलं मृतं हीरं त्रयोदश ॥११८॥ भागा ग्राह्या माक्षिकस्य विशुद्धस्यात्र षोडश । अष्टादशमितं ग्राह्यं नयकाशीशकं पुनः ॥ ११९ ॥ तुत्थकञ्च षडेवात्र नवीनं ग्राह्यमेव च । तालकञ्च चतुर्भागं शिला योज्यास्त्रयो बुधैः ॥१२०॥ शैलेयं पञ्च दातव्यं सर्वमेकत्र नूतनम् । मृतमौक्तिकभागैकं सौभाग्यं द्वयमेव च ॥१२१॥ कुट्टयित्वा विचूर्ण्याथ जम्बीरस्य रसेनवै । भावयेत्सप्तधा गाढं गुटिकां तस्य कारयेत्

॥१२२॥ पानकद्वितये कृत्वा मुद्रयेत्पानकद्वयम् । घटमध्ये निवेश्याथ दत्त्वा पूर्वञ्च वालुकाम् ॥ १२३ ॥ ऊर्ध्वञ्च तां पुनर्दत्त्वा वालुकां मुद्रयेत् मुखम् । अहोरात्रं दहेदग्नौ स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥१२४॥ बकुलस्य च बीजेन कण्टकारीद्वयेन च । गुडूची त्रिफला धारा भावयेत्सप्त सप्तधा ॥१२५ ॥ वृद्धदाररसेनापि तथा देयास्तु भावनाः । गिरिकन्यारसेनापि रोहितः मत्स्यपित्तसः ॥ १२६ ॥ एवं सिद्धो भवेत्सम्यक् रसोऽसौ वारिशोषणः । देवान् गुरुन् समभ्यर्च्य पितृन् साधूँस्तथा मुनीन् ॥ १२७ ॥ रक्तिकाद्वितयं देयं सन्निपाते समुच्छ्रये । मरिचेन समं देयं तेन जागर्ति मानवः ॥ १२८॥ श्लैष्मिके च गदे देयं ग्रहण्यामग्निमान्द्यके । प्लीह्नि पाण्डौ प्रयोक्तव्यं त्रिकटुत्रिफलाम्भसा ॥ १२९ ॥ शूलरोगे प्रयोक्तव्यमुदरे च विशेषतः । कुष्ठे सुदुष्टे देयोऽयं काकोदुम्बरिकाम्भसा ॥ १३० अति वह्निकरः श्रीदो बलवर्णाग्निवर्द्धनः । धन्वन्तरिकृत सद्यो रसः परम दुर्लभः ॥ सर्वरोगे प्रयोक्तव्यो निःसन्देहं भिषग्वरैः ॥ १३१ ॥

गन्धक २४ भाग, वङ्गभस्म १२ भाग, पारा ६ भाग, अभ्रकभस्म १४ भाग, लौहभस्म ८ भाग, ताम्रभस्म ६ भाग, स्वर्णभस्म २ भाग, रजतभस्म ७ भाग, हीरकभस्म १३ भाग, स्वर्णमाक्षिक भस्म १६ भाग, कासीश १८ भाग, शुद्ध तूतिया ६ भाग, हरताल ४ भाग, मैनशिल ३ भाग, शिलाजीत ५ भाग, मुक्ताभस्म १ भाग, सुहागा २ भाग उपर्युक्त सम्पूर्ण द्रव्यों को एकत्र कर जम्बीरी के रस से ७ बार भावना देकर गोली बनावे। इसके बाद इस गोली को मूस में रखकर बालुकायन्त्र द्वारा २४ घंटे तक पाक करे। स्वाङ्ग शीतल होने पर निकाल ले। फिर मौलसरी के बीज, छोटी बड़ी कटेरी, गिलोय, त्रिफला, विधारा, विष्णुकान्त रोहू मछली का पित्त हरएक से सात-सात बार भावना देकर २ रत्ती प्रमाण की गोली बनावे। अनुपान—मरिच-चूर्ण। इस रस के सेवन करने से सन्निपात का रोगी शीघ्र होश में आ जाता है। कफजरोग, ग्रहणी, अग्निमान्द्य, प्लीहा, पीलिया शूलरोग, उदररोग। ऐसे रोगों में त्रिकटु तथा त्रिफला के काढ़े के अनुपान से देना चाहिए और दुष्ट-कुष्ठ रोग में काठगूलरिया [illegible] रस के साथ सेवन कराना चाहिए। इस रस के व्यवहार से बल तथा अग्नि बढ़ती है और रंग निखरता है। इस रस के प्रारम्भ से पूर्व देवता, गुरु, पितर साधु मुनियों का पूजन करना परमावश्यकीय है ॥ ११९—१३१ ॥

उदररोग में पथ्य।

विरेचनं लंघनमब्दसंभवाः कुलत्थमुद्गारुणशालयो यवाः । मृगद्विजा जांगलसंज्ञयान्विताः सितासुरामाक्षिकसीधुमाध्विकाः ॥ १३२ ॥ तक्रं रसोनोरुबुतैलमार्द्रकंशालिंच शाकं कुलकं कठिल्लकम् । पुनर्नवाशिग्रु फलं हरीतकी ताम्बूलमेलायवशूकमायसम् ॥ १३३ ॥ अजागवोष्ट्रीमहिषीपयो जलं लघूनि तीक्ष्णानि च दीपनानि । वस्त्रेण संवेष्टनमग्निकर्मविपर्ययो गोऽत्रयुतो यथायथम् ॥ १३४ ॥ विशेषतः प्लीहसमुद्भवे गदे वामेप्रबाहौ धमनीत्यधः परम् । बद्धोदरे चोदरजे क्षतोत्थिते नाभेरधः शास्त्रविधिर्यथाविधिः ॥ १३५ ॥ समारणोत्थं घृतपानमादितः साम्यंजनं चाप्यनुवासनं तथा । यथामलं पथ्यगणोऽयमाश्रितो सखा नृणां स्यादुदरामये सति ॥ १३६ ॥

विरेचन, लघन, वर्ष दिन के पुराने कुलथी, मूँग, लाल चावल, जौ, मृग, पक्षी, जगली जीवों का मास, खिश्री। खाँड, शराब, शहद, सीधु, माध्वीक, द्राक्षा, लहसन, अण्डी का तेल, अदरख शालिच शाक, परवल, करेला, साँठी, सहजने की फली, हरड, पान, इलायची, जौ, लौह, बकरी, गौ, भैंस, ऊँटनी का दूध और मूत्र, हलके पदार्थ, चरपरे दीपनकारी पदार्थ, कपड़े से लपेटना, दागना और विष प्रयोग यथानुकूल करना चाहिये। विशेषतः प्लीहोदर में बाँई भुजा के अग्रभाग में धमनी की फस्त खोले, यद्धोदर और क्षतोदर में नाभि के नीचे यथाविधि शस्त्रकर्म (चीरा) करना चाहिये। वायुजन्य उदररोग में प्रथम घी पिलाना चाहिये। उबटना, अनुवासन बस्ति सब दोषों के अनुसार करना चाहिये। ये सब उदररोग में हितकारक हैं॥ १३२—१३६॥

उदररोग में अपथ्य।

संस्नेहनं धूमपानं जलपानं शिराव्यधम्। छर्दियानं दिवास्वप्नं व्यायामं पिष्टवैकृतम्॥ १३७॥ औदकानूपमांसानि पत्रशाकस्तिलान्यपि। उष्णानि च विदाहीनि लवणान्यशनानि च॥ १३८॥ महेन्द्रगिरिजातानां सरितासलिलानि च। शिम्बीधान्यं विरुद्धान्नं दुष्टनीरं गुरूणि च॥ १३९॥ विष्टम्भीनि विशेषात्तु स्वेदं विष्टम्भ संभवे। वर्जयेदुदरव्याधौ वैद्यो रक्षन्निजं यशः॥ १४०॥ अम्बुपानं दिवास्वप्नं गुर्वभिष्यन्दिभोजनम्। व्यायामं चाध्वयानञ्च जठरी परिवर्जयेत्॥ १४१॥

स्नेहनकर्म, धूम्रपान, जलपान, फस्त खोलना, वमन, मार्ग चलना, दिन में सोना, व्यायाम, पिसे अन्न के पदार्थ, जल और जल के किनारे रहनेवाले जीवों का मास, पत्ते के शाक, तिल, गरम और दाहकारक नमकीन पदार्थ, महेन्द्र पर्वत से निकली हुई नदियों का जल, फली के धान्य, उड़द, मूँग, चना आदि विरुद्ध पदार्थ, दुष्ट जल, भारी पदार्थ, विष्टम्भकारी पदार्थ, विष्टम्भजन्य उदररोग में पसीना निकालना ये सब कर्म वैद्य को अपने यश की रक्षा के लिये (अर्थात् रोगी को अच्छा करने के लिये) त्याग देने चाहिये। उदर रोगी को चाहिए कि वह निम्नांकित बातों को छोड दे—जैसे बहुत पानी पीना, दिन में सोना भारी तथा लसदार वस्तुओं का भोजन, कसरत अधिक चलना तथा सवारी करना ये बातें उदररोगी को त्याज्य हैं॥१३७-१४१॥

जलोदरारिरस

पिप्पलीमरिचं ताम्रं रजनी चूर्ण संयुतम्। स्नुहीक्षीरैर्दिनंमर्द्यं तुल्यं जैपालबीजकम्॥१४२॥ वल्लं खादेद्विरेकः स्यात्सद्यो हन्तिजलोदरम्। रेचनानाञ्च सर्वेषां दध्यन्नं स्तम्भनेहितम्॥ १४३॥ दिनांते च प्रदातव्यमन्नंवा मुद्गयूषकम्॥ १४४॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामुदराधिकारः समाप्तः।

पीपल, मरिच ताम्रभस्म, हल्दी ये सब समान भाग लेकर सबको महीन चूर्ण कर थूहर के दूध में १ रोज घोट कर इन सब के समान भाग शुद्ध जमालगोटा मिलाकर धर दे (इसमें से १ मासे की मात्रा में ठण्डे पानी के साथ देवे जिस जलोदर में विष्टम्भ हो उसमें विशेष फायदा करता है) और अन्य स्थान पर ३ रत्ती का प्रयोग करना चाहिये, इससे सारा मल निकल कर जलोदर मिट जाता है। अधिक मात्रा में लेने से अगर अधिक दस्त आने लगें तो दही भात खाने से बन्द हो जाते हैं। साधारणतः खिचड़ी और मूँग का यूष देना चाहिये॥ १४२-१४४॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाख्यायां व्याख्यायामुदररोगाऽधिकारः समाप्तः।

क्लोमरोगाधिकारः

क्लोम का कार्य और स्थान।

प्लीहक्षुद्रान्त्रयोर्मध्यमन्नपाकादिकर्म्मणि। सहायभूतमध्यास्ते क्लोम तच्च तिलाभिधम् ॥ १ ॥ अधस्तु दक्षिणे भागे हृदयात् क्लोम तिष्ठति। जलवाहि सिरामूलं तृष्णाच्छादनकृन्मतम् ॥ २ ॥

प्लीहा और क्षुद्र आँतों के मध्य में क्लोम[1] (पिपासा स्थान) है, इसका दूसरा नाम तिल अथवा तिलक है। यह अन्न के पाचनादि क्रिया में सहायक होता है। हृदय के दाहिने भाग में क्लोम की स्थिति है यह जल को वहन करनेवाली सिराओं का मूल और पिपासा स्थान है ॥ १-२ ॥

क्लोमरोगनिदान।

तत्रातिस्निग्धगुरुभिः भोज्यैरत्यर्थ शीलितैः। अभिघातादिभिश्चापि याति वृद्धिश्च मार्दवम् ॥ ३॥ तथा शोणितसङ्घातो विद्रधिश्चापि जायते। अन्ये च दारुणा रोगा जायन्तेऽस्मिन्च जायते ॥ ४ ॥

अधिक मात्रा में अधिक चिकना एवम् भारी आहार सेवन करने से तथा चोट लगना आदि कारणों से यह ग्रन्थि बढ़ जाती है और मृदु हो जाती है। इसमें रुधिर इकट्ठा होने लगता है कभी कभी विद्रधि भी हो जाती है, इस ग्रन्थि के विकृत हो जाने पर मधुमेह आदि अन्य कठिन रोग भी हो जाते हैं ॥ ३ ४ ॥

क्लोमविकृति के चिह्न।

उत्क्लेशो वमथुर्वह्नेः सादः कार्श्यञ्च पाण्डुता। श्रमः सादश्च काठिन्यमौष्ण्यमूर्ध्वोदरे तथा ॥ ५ ॥ विद्रधेर्विकृतौ तत्र शूलाध्मानौ तृषाधिका। अश्मरीवच्छिला घोरा सुकृष्टा तत्र जायते ॥ ६ ॥

जी मिचलाना, वमन, अग्निमान्द्य, कृशता, पाण्डु, थकावट शिथिलता, पेट पर कड़ापन तथा उष्णता आदि लक्षण होते हैं। ग्रन्थि में विद्रधि हो जाने पर शूल, आध्मान तथा अति प्यास आदि के लक्षण होते हैं। इस ग्रन्थि में अश्मरीरोग के समान घोर एवं अत्यन्त कष्टदायक पथरी भी उत्पन्न हो जाती है ॥ ५ ६ ॥

क्लोमरोग की चिकित्सा।

यद्वह्नेर्दीपनं यच्च मारुतस्यानुलोमनम्। अन्नपानौषधं तत्तद्धितं क्लोमगदातुरे ॥७॥

जो-जो अग्नि के दीपन और वायु के अनुलोमन करनेवाले अन्न, पान और औषध हैं वे सब क्लोमरोग में लाभदायक होते हैं ॥ ७ ॥

अभयादिक्वाथ।

अभयामलकं दारु धन्यार्कं विश्वभेषजम्। द्राक्षा च शारिवेत्येषां क्वाथः क्लोमगदापहः ॥ ८ ॥

हरड़, आँवला, देवदारु, धनिया, सोंठ, मुनक्का और अनन्तमूल; इन औषधों का क्वाथ पिलाने से क्लोमरोग शान्त होता है। विधि—मिले हुए सब द्रव्य २ तोले, जल ३२ तोले, क्वाथ के लिये जल ३२ तोले, बचा हुआ ८ तोले ॥ ८ ॥

---

१ 'क्लोम' के विषय में मतभेद है किन्तु यहाँ पर Pancreas नामक ग्रन्थि का ग्रहण है।

२ क्लोम शब्द का अर्थ क्या किया जाय इसके विषय में मतभेद ही है। कविराज गणनाथसेनमहामहोपाध्याय Trachea (कण्ठ नाड़ी) पं० हरिप्रपन्नजी पित्ताशय(Gall Bladder),कुछ विद्वान् Pharynx और कुछ विद्वान् Pancreas मानते हैं। यहां Pancreas नामक ग्रन्थि का ही ग्रहण है। यह ग्रन्थि वामपार्श्व में आमाशय के नीचे होती है और एक नली द्वारा अपने रस को अन्त्रप्रणाली (पक्वाशय आदि) में भेजकर आहार को पचाती है। इसके विकार से प्यास अधिक लगती है एवम् मधुमेह उत्पन्न हो जाता है।

सुरेन्द्रमोदकः ।

देवपुष्पारुणा श्यामा शतपुत्री कुशेशयम् । यमानीं मागधीं शृङ्गीं द्राक्षां मधुरिकाभये ॥ ९ ॥ सम्मर्द्य मधुना विद्वान् मोदकं परिकल्पयेत् । तं यथाग्निबलं खादेत् क्लोमरोगनिवृत्तये ॥ १० ॥ मोदकोऽयं सुरेन्द्राख्यः पुष्टिकृद्बलवर्द्धनः । वह्निसन्दीपनो हृद्यो रसायनवरः स्मृतः ११

लौंग, मजीठ, श्यामालता, शतावरि, कमल की जड़, अजवायन, पीपरि, काकड़ासिंगी, मुनक्का, सौंफ और हरड़; इन सब द्रव्यों को समान भाग लेकर चूर्ण बनाये, तदनन्तर मधु मिलाकर खरल करके लड्डू बनाये । रोगी के बल और अग्नि के अनुसार २ मासे से ४ मासे तक की मात्रा में सेवन करना चाहिये । इसका सेवन करने से क्लोमरोग की निवृत्ति, शरीर की पुष्टि, बल की वृद्धि और अग्नि की दीप्ति होती है । यह मोदक हृदय के लिये हितकारक और श्रेष्ठ रसायन है ॥ ९-११ ॥

शशिशेखर रस ।

रसगन्धाभ्रहेमानि मौक्तिकं विद्रुमं तथा । कन्याद्भिर्मर्दयेद् घस्रं ततः सिद्धो भवेद्रसः ॥ १२ ॥ सर्वान् क्लोमगदान् हन्ति ह्यशीतिं मारुतोद्भवान् । पैत्तिकांश्चाखिलांश्चापि श्लैष्मिकांनप्ययं ध्रुवम् १३॥

पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म, स्वर्णभस्म, मौक्तिक और प्रवालभस्म; इन सब द्रव्यों को समान भाग लेकर घीकुआर के रस में एक दिन घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे । इसका सेवन करने से हर प्रकार के क्लोमरोग, ८० प्रकार के वातरोग तथा सब प्रकार के पैत्तिक और श्लैष्मिक रोग निःसंदेह नष्ट होते हैं ॥ १२-१३ ॥

सुरेन्द्राभ्रवटी ।

अभ्रं सहस्रशो दग्धं रसं दरदसम्भवम् । केशराजरसैः शुद्धं गन्धकं हीरकं तथा ॥ १४ ॥ विद्रुमं मौक्तिकं हेम रौप्यं माक्षिकमेव च । कान्तलौहञ्च सम्मर्द्य विधिना वह्निवारिणा ॥ १५ ॥ वट्यो गुञ्जार्धप्रमिताः कुर्याच्छायाविशोषिताः । एकैकां योजयेत् मात्रो यथादोषानुपानतः ॥ १६ ॥ क्लोमरोगविनाशाय वह्नेः सन्धुक्षणाय च । अम्लपित्तं यकृच्छोथं प्लीहां पाण्डुजलोदरम् ॥ १७ ॥ गुल्मरोगं प्रमेहञ्च दारुणं विषमज्वरम् । कुष्ठं सुदारुणं चैव निहन्ति नात्र संशयम् ॥ १८ ॥ न सोऽस्ति रोगो लोकेऽस्मिन् यमियं न विनाशयेत् ॥१९॥

सहस्र पुटित अभ्रकभस्म, हिंगुलोत्थ पारद, केशराज (भँगरैया) के रस में शुद्ध किया हुआ गन्धक, हीरा, मूँगा, मुक्ता, स्वर्ण, चाँदी, सोनामाखी और कान्तलोह की भस्म सम्भाग इन सब द्रव्यों को लेकर चीता के रस में घोटकर आधी-आधी रत्ती की गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा लेवे । दोषानुसार उपयुक्त अनुपान के साथ एक-एक गोली सेवन कराये । यह सुरेन्द्राभ्रवटी सेवित होने पर क्लोमरोग और अग्निमान्द्य को नष्ट करती है तथा अम्लपित्त, यकृत्शोथ, तिल्ली, पाण्डु, जलोदर, गुल्म, प्रमेह, भयानक विषमज्वर एवम् कुष्ठरोग निःसंदेह अच्छे हो जाते हैं । संसार में प्रायः ऐसा कोई रोग है ही नहीं; जिसको नष्ट न कर सके ॥१४-१९॥

क्लोमरोग की चिकित्साविधि ।

यो यः समाश्रयेद्व्याधिः क्लोम्नि तं समवेक्ष्य च । क्रियां संसाधयेद्वैद्यो यथादोषं यथाबलम् ॥ २० ॥

क्लोम में जो-जो रोग उत्पन्न हो वैद्य का उसकी भली भाँति परीक्षा करके दोष और बल के अनुसार उचित चिकित्सा करनी चाहिये ॥२०॥

क्लोमरोग में पथ्यापथ्य ।

अनुग्राण्यन्नपानानि क्लोमामयनिपी-

डितः। सेवेतोग्राणि सर्वाणि यत्नतः परिवर्जयेत् ॥ २१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां क्लोमरोगचिकित्सा समाप्तः ॥

क्लोमरोगी को चाहिये कि सौम्य अन्न पान का सेवन करे और जितने उग्र अन्न और पान हैं उनको सावधानी से त्याग दे ॥ २१ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाख्यायां व्याख्यायां क्लोमरोगचिकित्सा समाप्त।

मेदरोगाधिकारः (स्थौल्य)

स्थौल्यहर विहाराहार।

श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः। हन्त्यवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनैः ॥ १ ॥

परिश्रम, चिन्ता, मैथुन, मार्ग चलना, मधु (शहद) पीना, रात में जागरण करना, जौ और साँवाँ का भोजन करना, इन सब उपचारों के सेवन करने से मेदा की वृद्धि के कारण उत्पन्न हुआ शरीर का अधिक मोटापन अवश्य नष्ट होता है ॥ १ ॥

स्थौल्यनाशक उपाय।

अस्वप्नश्च व्यवायश्च व्यायामं चिन्तनानि च। स्थौल्यमिच्छन् परित्यक्तुं क्रमेणातिप्रवर्द्धयेत् ॥ २ ॥

स्थूलता के त्याग की इच्छा रखनेवाले मनुष्य को रात्रि जागरण, मैथुन, व्यायाम और चिन्ता, इन सब कार्यों को क्रम से बढ़ा देना चाहिए ॥ २ ॥

स्थौल्यनाशक योग।

प्रातर्मधुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाशनम्। उष्णमन्नस्य मण्डं वा पिबन् कृशतनुर्भवेत् ॥ ३ ॥

प्रातःकाल मधुमिश्रित जल पीने से स्थूलता नष्ट होती है। उष्ण भात का माँड पीने से शरीर कृश हो जाता है ॥ ३ ॥

चव्यादिशक्तुप्रयोग।

सचव्यजीरकव्योषहिङ्गुसौवर्चलानलः। मस्तुना शक्तवः पीता मेदोघ्ना वह्निदीपनाः ॥ ४ ॥

(समभागेन समुदितचूर्णात् षोडशगुणाः शक्तवः।)

चव्य, जीरा, सोंठ, मिरिच, पीपरि, हींग, कालानमक और चीता की जड़ समभाग लिये हुए इन कुल औषधों का चूर्ण १ मासा, सत्तू (सतुआ) १६ तोले इन सबको एकत्र मिश्रित कर दही के पानी के साथ सेवन करना चाहिये। परन्तु यह ध्यान रहे कि उस दिन अन्य पदार्थ का भोजन न करे। इस सत्तू को पीने से मेदा का नाश और अग्नि का दीपन होता है ॥ ४ ॥

विडङ्गादि चूर्ण।

विडङ्गनागरक्षारकान्तलौहरजोमधु। यवामलकचूर्णन्तु प्रयोगः स्थौल्यनाशनः ॥ ५ ॥

वायविडङ्ग, सोंठ, जवाखार, कान्तलोह का भस्म, मधु, जौ और आँवले समभाग इन सब द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे। इस चूर्ण का सेवन करने से स्थूलता नष्ट होती है। मात्रा ६ रत्ती ॥ ५ ॥

व्योषाद्यशक्तुप्रयोग।

व्योषं विडङ्गशिग्रूणि त्रिफला कटुरोहिणीम्। बृहत्यौ द्वे हरिद्रे द्वे पाठामतिविषां स्थिराम् ॥ ६ ॥ हिंगुकेबुकमूलानि यमानी धान्यचित्रकम्। सौवर्चलमजाजीञ्च

हवुषाञ्चेति चूर्णयेत् ॥ ७ ॥ चूर्णतैलघृतक्षौद्रभागाः स्युर्मानतः समाः । शक्तूनां षोडशगुणो भागः सन्तर्पणं पिबेत् ॥ ८ ॥ प्रयोगात्तस्य शाम्यन्ति रोगाः सन्तर्पणोत्थिताः । प्रमेहामूढवातश्च कुष्ठान्यर्शांसि कामला ॥ ९ ॥ प्लीहापाण्ड्वामयः शोथो मूत्रकृच्छ्रमरोचकः । हृद्रोगो राजयक्ष्मा च कासः श्वासो गलग्रहः ॥ १० ॥ कृमयो ग्रहणीदोषाः श्वैत्यं स्थौल्यमतीव च । नराणां दीप्यते चाग्निः स्मृतिर्बुद्धिश्च वर्द्धते ॥ ११ ॥

सोंठ, मिरिच, पीपरि, वायविडङ्ग, सैंजन के मूल की छाल, आँवला, हरड, बहेडा, कुटुकी, छोटी कटेरी, बडी कटेरी, हलदी, दारुहलदी, पाढ, अतीस, शालपर्णी, हींग, केमुवा (केऊ) की जड, अजवाइन, धनिया, चीता का मूल, काला नमक, जीरा और हाऊवेर प्रत्येक औषध को समभाग लेकर एकत्रित कर चूर्ण बनावे। तदनन्तर तिल का तेल, घृत और मधु -इन तीनों में से प्रत्येक को कुल चूर्ण के समान परिमाण में लेकर मिलावे । सत्तू (सतुवा) चूर्ण में सोलह गुना हो ; इसको भी उसी चूर्ण में मिश्रित कर किसी शीतल अनुपान के साथ सेवन करे। इसका सेवन करने से हर प्रकार कि अधिक तृप्ति से उत्पन्न रोग, प्रमेह,मूढवात, कुष्ठ, बवासीर, कामला, प्लीहा, पाण्डुरोग, शोथ, मूत्रकृच्छ्र, अरोचक, हृद्रोग, राजयक्ष्मा, कास, श्वास, गलग्रह, कृमिरोग, ग्रहणी, शीतलता और अति स्थूलता ये सब रोग नष्ट होते हैं तथा अग्नि की दीप्ति, स्मरणशक्ति और धारणाशक्ति की वृद्धि होती है । चूर्ण की मात्रा ४ माशा ॥ ६-११ ॥

स्थौल्याऽपनोदिनी पेया।

बदरीपत्रकल्केन पेया काञ्जिकसाधिता ॥ १२ ॥

बेर की पत्तियाँ लेकर पीस लेवे, उसमें थोडा सा चावल मिलाकर, काँजी के साथ पकाकर पेया बना लेवे । इस पेया का सेवन करने से स्थूलता नष्ट होती है ॥ १२ ॥

शिलाजतु प्रयोग ।

स्थौल्यनुत् स्यात् साग्निमन्थरसं वापि शिलाजतु ॥ १३ ॥

अरनी के रस अथवा क्वाथ में थोडा सा शिलाजीत मिलाकर सेवन करे। इससे स्थूलता नष्ट होती है ॥ १३ ॥

अमृताद्य गुग्गुलु ।

अमृतात्रुटिवेल्लवत्सकं कलिङ्गपथ्यामलकानि गुग्गुलुम् । क्रमवृद्धमिदं मधुप्लुतं पिडकास्थौल्यभगन्दरं जयेत् ॥ १४ ॥

त्रुटिः सूक्ष्मैला वेल्लो विडंग। अत्र केचिच्छन्दो भङ्गभिया कलिपाठं कुर्वन्ति तन्मते कलिर्बिभीतकः। किन्तु महेश्वरपत्रिकायामपि इन्द्रयवः इति व्याख्यातः । तस्मादनन्तत्वाच्छन्दोमार्गाणामत्र छन्दोभङ्गदोषो नाशङ्कनीय इति शिवदासः ।

गिलोय १ भाग, छोटी इलाइची २ भाग, वायविडङ्ग ३ भाग, कुडा की छाल ४ भाग, इन्द्रजौ ५ भाग, हरड ६ भाग, आँवले ७ भाग और गूगुल ८भाग ; इन सब औषधों का एकत्र चूर्ण बनाकर मधु के साथ सेवन करने से पिडिका (फुंसी), स्थूलता और भगन्दर रोग नष्ट होते हैं। मात्रा—१ मासा ॥ १४ ॥

नवक गुग्गुलु ।

व्योषाग्नित्रिफलामुस्तविडङ्गैर्गुग्गुलुं समम् । खादन् सर्वान् जयेत् व्याधीन् मेदःश्लेष्मामवातजान् ॥ १५ ॥

त्रिकटु, चीता, त्रिफला, नागरमोथा और वायविडङ्ग ; इन ९ द्रव्यों में से प्रत्येक द्रव्य को समभाग लेवे । उसमें ९ भाग गूगुल मिलाकर

एकत्र कूट पीसकर सेवन करे। इससे मेदा, कफ आमवातजन्य कुल रोग शान्त होते हैं। मात्रा—४ रत्ती ॥ १५ ॥

लौहरसायन।

गुग्गुलुस्तालमूली च त्रिफला खादिरं वृषम्। त्रिवृतालम्बुषा चैव निर्गुण्डी चित्रकं स्नुही ॥ १६ ॥ एषां दशपलान् भागान् तोये पश्चाढके पचेत्। पादशेषं ततः कृत्वा कषायमवतारयेत् ॥ १७ ॥ पलद्वादशकं देयं तीक्ष्णलौहस्य चूर्णितम्। पुराणसर्पिषः प्रस्थं शर्कराष्टपलानि च ॥ १८ ॥ पचेत्ताम्रमये पात्रे सुशीते चावतारिते। प्रस्थार्द्धं माक्षिकं देयं शिलाजतु पलद्वयम् ॥ १९ ॥ एलात्वचोः पलार्द्धञ्च विडङ्गानि पलद्वयम्। मरिचं चाञ्जनं कृष्णा द्विपलं त्रिफलान्वितम् ॥ २० ॥ पलद्वयन्तु कासीसं श्लक्ष्णचूर्णीकृतं बुधैः। चूर्णं दत्वाथ मथितं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ २१ ॥ ततः संशुद्धदेहस्तु भक्षयेन्माषमात्रकम्। अनुपानं पिबेत् क्षीरं जाङ्गलानां रसस्तथा ॥ २२ ॥ वातश्लेष्महरं श्रेष्ठं कुष्ठमेहज्वरापहम्। कामलां पाण्डुरोगञ्च श्वयथुं सभगन्दरम् ॥ २३ ॥ मूर्च्छामोहविषोन्मादं गराणि विविधानि च। स्थूलानां कर्षणं श्रेष्ठं मेदुरे परमौषधम् ॥ २४ ॥ कर्षयेचातिमात्रेण कुक्षिं पातालसन्निभम्। बल्यं रसायनं मेध्यं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ २५ ॥ श्रीकरं पुत्रजननं वलीपलितनाशनम्। नाश्नीयात् कदलीकन्दं काञ्जिकं करमर्दकम् ॥ करीरं कारवेल्लञ्च पट्ककारादि वर्जयेत् ॥२६॥

ढीली पोटली में बधा हुआ गूगुल, तालमूली, त्रिफला, खैर की लकड़ी, अरूसा की छाल, निसोथ, भूँईकदम्ब, निर्गुण्डी, चीता की जड़ और थूहर, प्रत्येक आध सेर लेवे। इनको ३२ सेर जल में पकावे, ८ सेर जल शेष रहने पर उतारकर वस्त्र से छान लेवे। तदनन्तर उस गूगुलमिश्रित क्वाथ में तीक्ष्ण लोह की भस्म १२ पल (४८ तोला), पुराना घृत १२८ तोला और शक्कर ८ पल (३२ तोला) मिलावे। पश्चात् धीमी आँच पर ताँबा के पात्र में पकावे। पाक शेष होने पर उसमें शिलाजीत ८ तोला, छोटी इलायची के दाने २ तोले, दालचीनी २ तोले, वायविडङ्ग ८ तोला, कालीमिरिच, रसौत, पीपरि और त्रिफला प्रत्येक ८ तोला और हीराकसीस ८ तोला इनका महीन चूर्ण मिलाकर उतार लेवे। शीतल हो जाने पर उसमें ३२ तोला शहद मिलाकर घी के चिकने पात्र में रख लेवे। विरेचनादि द्वारा रोगी के शरीर को शुद्ध कराकर, प्रतिदिन १ माशा की मात्रा में लौहरसायन का सेवन करावे। अनुपान दुग्ध अथवा जङ्गली पशुओं का मांस रस देवे। इसका सेवन करने से वातश्लैष्मिक रोग, कुष्ठ, प्रमेह, ज्वर, कामला, पाण्डुरोग, शोथ, भगन्दर, मूर्च्छा, मोह, विष, उन्माद, गरदोष और स्थूलता आदि अनेक रोग शान्त होते हैं। स्थूलता को दूर करने की यह महौषध है। बढ़े हुए पेट को पाताल के समान नीचा कर देता है। यह बलवर्धक, रसायन, मेधाजनक, श्रेष्ठ वाजीकरण, कान्तिवर्धक, पुत्रोत्पादिनी शक्ति का वर्धक, वली (झुर्रियाँ पड़ना) और पलित (बाल पकना) नाशक है। इस लौहरसायन का सेवन करनेवाले रोगी के लिये केले का कन्द, काँजी, करौंदा, करील और करैला ये ६ ककारादि पदार्थों का का सेवन नहीं करना चाहिये ॥ १६-२६ ॥

त्रिफलाद्य तैल।

त्रिफलातिविषामूर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः। निम्बारग्वधषड्ग्रन्था सप्तपर्णनिशाद्वयैः ॥ २७ ॥ गुडूचीन्द्रसुरी कृष्णा कुष्ठसर्षपनागरैः। तैलमेभिः समैः पक्वं सुरसादिरसाप्लुतम् ॥ २८ ॥ पानाभ्यञ्जनगण्डूष-

नस्यवस्तिपु योजितम् । स्थूलतादींश्च कण्ड्वादीञ्जयेत् कफकृतान् गदान्॥ २९ ॥

तिल का तेल १२८ तोला लेवें उसमें तुलसी और काली तुलसी का रस ६ सेर ३२ तोला मिलाये । तदनन्तर त्रिफला, अतीस, मूर्वा निसोथ, चीता का मूल, अरूसा की छाल, नीम की छाल, अमिलतास का गूदा, बच, सहौना की छाल, हरदी, दारुहरदी, गिलोय, सँभालू, पीपरि, कूठ, सरसों और सोंठ सम भाग इन सब द्रव्यों को लेकर कुल ३२ तोला कल्क बनाकर पूर्वोक्त तैल में मिलाकर धीमी आँच पर पकावे। सिद्ध होने पर छान कर रख लवे। इस तैल का उपयोग पीने में, मालिस करने में, गण्डूष (कुल्ला) धारण में और वस्तिकर्म में होता है। यह तैल स्थौल्य रोग, कण्डू आदि चर्मरोग तथा अन्यान्य अनेक कफजन्य रोगों को नष्ट करता है॥ २७-२९ ॥

दौर्गन्ध्यहर प्रदेह।

शिरीषलामज्जकहेमलोध्रैस्त्वग्दोषसस्वेदहरः प्रघर्षः । पत्राम्बुलोहाभयचन्दनानि शरीरदौर्गन्ध्यहरः प्रदेहः ॥३० ॥

सिरस की छाल, लामज्जक (खसभेद), नागकेशर और लोध, इनके चूर्ण का देह म घिसन (मलने) से चमड़ा के विकार और पसीना का अधिक आना दूर होते हैं। इसी प्रकार तेजपात, सुगन्धवाला, अगर, खस और चन्दन, इनको पानी में पीसकर लेप करने से शरीर की दुर्गन्धि दूर होती है॥ ३० ॥

दौर्गन्ध्यहर लेप।

वासादलरसो लेपात् शंखचूर्णेन सं युतः। बिल्वपत्ररसो वापि गात्रदौर्गन्ध्य नाशनः॥ ३१ ॥

अरूसा की पत्तियों के रस म अथवा बिल्व पत्र के रस में शंख का चूर्ण मिलाकर लेप करने से शरीर की दुर्गन्धता नष्ट होती है॥ ३१ ॥

जंघाकषाय।

हरीतकी लोध्रमरिष्टपत्रं चूतत्वचो दाडिमवल्कलञ्च। एषोऽङ्गरागः कथितोऽङ्गनानां जंघाकषायश्च नराधिपानाम् ३२

जंघोद्वर्त्तनार्थकल्कः प्रायेण हि राजादीनां गजवाहनात् जंघा विवर्णता भवति तत्सवर्णकरणार्थं जंघासवर्ण कषाय-विधि ।

हरीतकी, लोध, नीम की पत्तियाँ, आम की छाल और अनार की छाल, इन सब औषधों को एकत्र पानी के साथ पीस लेवे। यह कल्क स्त्रियों के लिये अङ्गरागरूप है। हाथी आदि की सवारी करने से राजा आदि धनिक पुरुषों की जाघों में जो विवर्णता उत्पन्न हो जाती है, उसको दूर करने के लिये इस कल्क का मर्दन करना चाहिये॥ ३२ ॥

हरितालयोग।

गोमूत्रपिष्टं विनिहन्ति कुष्ठं गर्णोज्ज्वलं गोपयसा च युक्तम्। कक्षादिदौर्गन्ध्यहरं पयोभिः शस्तं वशीकृत् रजनीद्वयेन ३३ ॥

हरिताल को गोमूत्र में पीसकर लेप करने से कुष्ठ रोग नष्ट होता है, दुग्ध में पीसकर लेप करने से काख आदि की दुर्गन्ध दूर होती है और गोदुग्ध में पीसकर उसमें हलदी तथा दारुहलदी मिलाकर सेवन करन से वशीकरण होता है॥ ३३ ॥

दुग्धहरिद्रा।

चिञ्चापत्रस्वरसम्रक्षितं कक्षादियोजितं जयति। दुग्धहरिद्रोद्वर्त्तनमरिचादि देहस्य दौर्गन्ध्यम्॥ ३४ ॥

चिञ्चापत्रेस्वरसेनादौ म्रक्षणं कार्य्यं तदनन्तरं दुग्धहरिद्रां पिष्ट्वा उद्वर्त्तनं कार्य्यम्।

पहिले इमली की पत्तियों के रस को शरीर में मालिस करके पश्चात् दूध में पिसी हुई

हरदी की मालिश करने से देह की दुर्गन्ध दूर हो जाती है ॥ ३४ ॥

दुर्गन्धहर लेप और चूर्ण।

दलजललघुमलयाभयविलेपो हरति देहदौर्गन्ध्यम्। विमलारनालसहितं पीतमिवालम्बुपाचूर्णम् ॥ ३५ ॥

तेजपात, सुगन्धवाला, अगर श्वेत चन्दन और खस, इनको पानी के साथ पीस कर लेप करने से शरीर की दुर्गन्ध दूर होती है। गोरखमुण्डी के चूर्ण को फाँक कर निर्मल कांजी पीने से भी शरीर की दुर्गन्ध दूर होती है ॥ ३५ ॥

स्थौल्य में उद्वर्तन।

शैलेयकुष्ठागुरुदेवदारुकौन्तीसमुस्तान्यथ पञ्चपत्रैः। श्रीवासपृक्काखरपुष्पदेवपुष्पं तथा सर्वमिदं प्रपिष्य ॥ धुस्तूरपत्रस्य रसेन गाढमुद्वर्त्तनं स्थौल्यहरम् प्रदिष्टम् ॥ ३६ ॥

छरीला, कूठ, अगर, देवदारु, रेणुका, मोथा, पञ्चपत्र (आम, जामुन, कैथ, मातुलुङ्ग, बिल्व) इनके पत्ते, चीढ, पृक्का, तुलसी, लौंग, इन्हें इकट्ठा कर धतूरे के रस में पीसकर उबटना करने से मेदरोग दूर होता है ॥ ३६ ॥

त्र्यूषणाद्य लौह।

त्र्यूषणं विजया चव्यचित्रकं विडमौद्भिदम्। वागुजीसैंधवश्चैव सौवर्चलसमन्वितम् ॥ ३७ ॥ अयश्चूर्णेन संयुक्तं भक्षयेन्मधुसर्पिषा। स्थौल्यापकर्षणं श्रेष्ठं बलवर्णाग्निवर्द्धनम्। मेहघ्नं कुष्ठ शमनं सर्वव्याधिहरं परम् ॥ ३८ ॥

त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि), भाँग, चव्य, चित्रक, बिटलवण, उद्भिदनमक, कालीजीरी, सेंधानमक, कालानमक, इनको द्रव्य बराबर-बराबर लेकर और इन सम्पूर्ण के बराबर लौह भस्म मिलाकर अच्छी तरह मिश्रित कर रख ले। इसको मधु तथा घृत के साथ सेवन करने से कुष्ठ, प्रमेह, तथा स्थूलता नाश होकर बल और जठराग्नि बढ़ती है। रंग निखर आता है। मात्रा २।४ रत्ती ॥ ३७-३८ ॥

विडङ्गाद्य लौह।

विडङ्गत्रिफलामुस्तैः कणा नागरकेण च। बिल्वचन्दनहीवेरं पाठोशीरं तथा बला ॥ ३९ ॥ एषां सर्वसमं लौहं जलेन वटिकां कुरु। घृतयोगेन कर्त्तव्या चतुर्गुञ्जा मिता वटी ॥ ४० ॥ अनुपानं प्रयोक्तव्यं लौहादष्टगुणं पयः। सर्वमेहहरं बल्यं कान्त्यायुर्बलवर्द्धनम् ॥ ४० ॥ अग्निसन्दीपनकरं वाजीकरणमुत्तमम्। सोमरोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ४२ ॥ विडङ्गाद्यमिदं लौहं सर्वरोगनिसूदनम् ॥ ४३ ॥

वायविडङ्ग, त्रिफला, (हर्र, बहेड़ा, आँवला), मोथा, पिप्पली, सोंठ, बेलफल का गूदा, लाल चन्दन, गन्धवाला, पाढ़, खस, बलामूल, ये सम्पूर्ण द्रव्य एक-एक हिस्सा, लोहभस्म १३ हिस्सा इन सबको इकट्ठा कर जल से घोटकर घी से गोली बनावे। मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक। अनुपान दूध। इस औषध के सेवन करने से प्रमेह तथा सोमरोग दूर होता है। यह लौह अग्नि को बढ़ानेवाला तथा वाजीकरण है। बल, आयु तथा कान्तिवर्धक है ॥ ३९-४२ ॥

वड्वाग्नि लौह।

सूतभस्मसतालञ्च लौहं ताम्रं समं समम्। मर्दयेत्सूर्यपत्रेण चास्य वल्लं प्रयोजयेत् ॥ ४४ ॥ मधुना स्थूलरोगे च शोथे शूले तथैव च। मध्वाज्यमनुपानञ्च देयं वापि कफोल्बणे ॥ ४५ ॥

रससिन्दूर, हरताल, लौहभस्म, ताम्रभस्म, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को बराबर लेकर मिला के

और मदार के पत्तों के रस से घोटकर गोली बना ले, मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक, अनुपान शहद मेदरोग में कफज शोथ तथा शूल में शहद व घी के साथ॥ ४४-४५॥

वड़वाग्नि रस।

शुद्धसूतं समं गन्धं ताम्रं तालं समं समम्। अर्कक्षीरैर्दिनं मर्द्य क्षौद्रैर्लेह्यं द्विगुञ्जकम्॥ ४६॥ वडवाग्निरसो नाम्ना स्थौल्यमाशु नियच्छति॥ ४७॥

पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, हरिताल, इन्हें बराबर बराबर मिलाकर मदार के दूध से गोली बना ले। मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक। अनुपान, शहद। ये गोलियाँ स्थूलतानाशक हैं॥ ४६-४७॥

महासुगन्धित तैल।

चन्दनं कुङ्कुमोशीरप्रियङ्गुत्रुटिरोचनाः। तुरुष्कागुरुकस्तूरी कर्पूरं जातिपत्रिका॥ ४८॥ जातिककोलपूगानां लवङ्गस्य फलानि च। नलिका नलदं कुष्ठं हरेणुतगरं समम्॥ ४९॥ नखं व्याघ्रनखंस्पृक्का चोलं दमनकम्मुरा। स्थौणेयकं चोरकञ्च शैलेयं शैलवालुकम्॥ ५०॥ सरलं सप्तपर्णश्च लाक्षातामलकौ तथा। लाजमकं पद्मकञ्च धातक्याः कुसुमानि च॥ ५१॥ सपौण्डरीकं कर्चूरं समांशैः शाणमात्रकैः। महासुगन्धमित्येतत् तैलं प्रस्थेन साधयेत्॥ ५२॥ प्रस्वेदमलदौर्गन्धकण्डूकुष्ठ हरं परम्। अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धः सप्ततिकोऽपि वा॥ ५३॥ युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः। सुभगो दर्शनीयश्च गच्छेच्च प्रमदाशतम्॥ ५४॥ वन्ध्यापि लभते गर्भं पण्ढोऽपि पुरुषायते। अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम्॥ ५५॥

तिल का तेल २ प्रस्थ (१२८ तोला) कल्क के लिए लाल चन्दन, केसर, खस, प्रियगु, छोटी इलाइची, गोरोचन, शिलारस, अगर, कस्तूरी, कर्पूर, जावित्री, जायफल, सुदंबीनी, सुपारी, लौंग, नलिका, जटामासी कूठ, रेणुका, तगर, केचनी, मोथा, नखी, व्याघ्रनखी, स्पृक्का, चोल, दमनक, मुरामांसी, स्थौणेयक, (थुनेर), चोरक, शैलछरीला, एलवालुक, चीड़, कीम्द, धाय के फूल, पुण्डरीक काष्ठ, कचूर, सप्तपर्ण, को छाल, लाक्षा, आँवला, उशीरभेद, पद्माख, उपरोक्त सम्पूर्ण द्रव्यों को बराबर बराबर एक-एक शाण (४ मासे) लेना चाहिए और इनसे विधि के अनुसार तैल सिद्ध करे। इस महासुगन्धित तैल के प्रयोग से पसीना, मलिनता, दुर्गन्धि, खुजली एवं कुष्ठ आदि रोग दूर होते हैं। इस तैल के अभ्यग से वृद्ध पुरुष भी तरुणता को प्राप्त करता है। पुरुष वीर्यवान् होकर स्त्रियों का प्रिय बन जाता है तथा भाग्यवान् और सुन्दर रूपवाला बन जाता है। सौ स्त्रियों से भोग करने की शक्ति उत्पन्न होती है। इस तैल के सेवन करने से वाँझ स्त्रियाँ गर्भवती होती हैं। नपुंसक पुरुषत्व को प्राप्त करता है। पुत्रहीन पुत्र पाता है और १०० वर्ष की दीर्घ आयु प्राप्त करता है॥ ४८-५५॥

स्थौल्य में पथ्य।

पुराणशालयो मुद्गकुलत्थयवकोद्रवाः। लेखना बस्तयश्चैव सेव्या मेदस्विना सदा॥ ५६॥

स्थौल्यरोगवाले पुरुष को चाहिए कि पुराने शालि चावल, मूँग, कुलथी जौ तथा कोदों आदि का आहार रक्खे तथा लेखनवस्तियों का हमेशा उपयोग करता रहे॥ ५६॥

अन्यच—

चिन्ताश्रमोजागरणं व्यवायं मोद्वर्तनं

लंघनमातपश्च । हस्त्यश्वयानं भ्रमणं विरेकः प्रच्छर्दनं चाप्यथ तर्पणं च ॥ ५७ पुरातना वैणवकोरदूषश्यामाकनीवारप्रियंगुजूर्णाः । यवाः कुलत्थाश्चणकामसूरा मुद्गास्तुवर्यश्च मधूनि लाजाः ॥ ५८ ॥ कटूनि तिक्तानि कषायकानि तक्रं सुराचिंगलमत्स्य एव । दग्धानि वार्ताकफलानि चापि फलत्रयं गुग्गुलुरायसं च ॥ ५९ ॥ शिरीषलोध्रद्रहरीतकीनां चूर्णेन गात्रस्य विलेपनं च । कटुत्रयं सर्षपतैलमेलारुक्षाणि सर्वाणि च मुख्यतैले ॥ ६० ॥ पत्रोत्थशाकागुरुलेपनानि प्रतप्तनीराणि शिलाजतूनि।एतानि सर्वाणि निषेवितानि मेदोगदं सत्वरमुत्क्षिपन्ति ॥ ६१ ॥

चिन्ता, परिश्रम, जागना, मैथुन, उपटना, लंघन, धूप में घूमना, हाथी घोड़े की सवारी, घूमना (मार्ग चलना), वमन, विरेचन, अपतर्पण, पुराने बाँस के चावल, कोदों, समा, पसाई, नीवार, प्रियगु, ज्वार, जौ, कुलथी, चना, मसूर, मूँग, अरहर की दाल, शहद, खील, कड़वे, चरपरे, कषैले पदार्थ, छाछ, मद्य, चिंगल जाति की मछली, बैंगन का भुरता, हरड़, बहेड़ा, आँवला, गूगल, लोहभस्म और सिरस, लोध, हरड़ के चूर्ण की मालिश, सोंठ, मिर्च, पीपल, सरसों का तैल (मालिश), इलायची, सम्पूर्ण रूखे पदार्थ, तिल का तेल (मालिश), पत्तों के साग, अगर का लेप, गरम जल, शिलाजीत इन सम्पूर्ण पदार्थों का सेवन स्थूलतानाशक है ॥ ५७-६१ ॥

अपथ्यानि ।

स्नानं रसायनं शालीन् गोधूमान् सुखशीलताम् । क्षीरेक्षुविकृतीर्माषान् सौहित्यं स्नेहनानि च ॥ ६२ ॥ मत्स्यं मांस दिवा निद्रां स्रगन्धान् मधुराणि च । समभावत्वमन्विच्छन् मेदस्वी परिवर्जयेत् ॥ ६३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मेदरोगाधिकारः समाप्तः ॥

स्थूल पुरुष को रोग के, निवारणार्थ निम्नांकित बातों को त्यागना चाहिए। जैसे, ठण्डे पानी से स्नान, रसायन, नया चावल, गेहूँ, दिन भर पड़े रहना, दूध, मछली, मांस, दिन में सोना, मालादि पहरना, इत्रादि वस्तुओं का लगाना, मीठा आदि वस्तुओं को छोड़ दे ॥ ६२-६३ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाख्यायां व्याख्यायां मेदरोगचिकित्सा समाप्तः ॥

आमाशयरोगाधिकारः ।

आमाशयिक रोगों के लक्षण ।

आमाशये बहुविधा हेतुभिर्बहुभिर्नृणाम् । बहुलक्षणसम्पन्ना जायन्ते बहवो गदाः ॥ १ ॥ सामान्यं लक्षणं तेषां वह्नेर्बलपरिक्षयः । प्रायश्चोत्क्लेशवमने दौर्बल्यं सदनं भ्रमः ॥ २ ॥ शूलदाहौ विवर्णत्वं कृशत्वञ्च ज्वरोऽरुचिः । इन्द्रियाणाञ्च शैथिल्यं भवेन्मूर्च्छा च दारुणा ३

आमाशय में अनेक कारणों से भिन्न-भिन्न लक्षणवाले बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं। आमाशय के हर प्रकार के रोगों में अग्नि मन्द पड़ जाती है। इसी प्रकार प्रायः उबकाई का आना, वमन होना, दुर्बलता, देह में पीड़ा, भ्रम, शूल, दाह, विवर्णता, कृशता, ज्वर, अरुचि, इन्द्रियों की शिथिलता और दारुण मूर्च्छा ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं ॥ १-३ ॥

उनकी चिकित्सा ।

आमाशयिकरोगेषु हेतुदोषानुसारतः । निदानाद्दीपनं वह्नेः पाचनं चानुलोमनम् ४

आमाशय के रोगों में निदान और दोषों का विचार करके अग्नि को दीप्त करनेवाले, पाचक और वायु के अनुलोमन करनेवाले औषधों का प्रयोग करना चाहिये ॥ ४ ॥

पिप्पल्यादिक्वाथ ।

पिप्पली शारिवा श्यामा अभयामलकं शटी । क्वाथमेषां पिबेत् प्रातः सक्षौद्रञ्च सशर्करम् ॥ ५ ॥ आमाशयभवान् रोगा-नग्नेर्मान्द्यं बलक्षयम् । शूलारोचकहृल्लासान् क्षपयत्येष निश्चितम् ॥ ६ ॥

पीपरि, अनन्तमूल, श्यामालता, हरीतकी, आँवला और कचूर; इनके क्वाथ में मधु और चीनी मिलाकर पीने से सब प्रकार के आमाशय के रोग, अग्निमान्द्य, दुर्बलता, शूल, अरुचि और वमनवेग आदि निःसंदेह नष्ट हो जाते हैं ॥ ५-६ ॥

अमृतार्णव

अमृतं रसगन्धौ च लोहमभ्रं समांशकम् । भावयेद् वह्निनीरेण सप्तकृत्वः पृथक् पृथक् ॥ ७ ॥ गुञ्जैकप्रमितं खादेद् यथा दोषानुपानतः । (आमाशयिकरोगेषु ज्वरेषु विषमेषु च) ॥ ८ ॥

विष पारा, गन्धक, लोहभस्म, और अभ्रकभस्म; इन सब औषधों को समभाग लेकर चीता के रस में ७ बार भावना देकर खरल करके एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे । दोषानुकूल अनुपान के साथ सेवन करने से आमाशय के रोग और सब प्रकार के विषमज्वर नष्ट होते हैं ॥ ७-८ ॥

त्रिपुरसुन्दर रस ।

सिन्दूरमभ्रं स्वर्णमाक्षिकं मुक्ताफलं हेम च तुल्यभागिकम् । कन्याम्बुना मर्दय सप्तवासरं गुंजाप्रमाणां वटिकां विधेहि च ॥ ९ ॥ रसोत्तमस्यास्य निषेवणान्नर आमाशयोत्थामयरोगसंगतः । गत्वा विमुक्तिं बलवीर्य्यसंयुतो मेधान्वितः सौम्य-वपुश्च जायते ॥ १० ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिक, मुक्ता और स्वर्ण प्रत्येक द्रव्य को सम भाग लेकर घृतकुमारी के रस में ७ दिन पर्यन्त घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे । इसका सेवन करने से मनुष्य आमाशयोत्पन्न सब प्रकार के रोगों से मुक्त होकर, बल वीर्यसम्पन्न, मेधावी और कान्तिमान् होता है ॥ ९-१० ॥

आमाशयिकरोग में पथ्यापथ्य ।

अन्नपानादिकं सर्वं सुपचं यच्च पोषणम् । आमाशयगदे सेव्यं दुर्जरञ्च विवर्जयेत् ॥ ११ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामामाशयरोगा-धिकारः समाप्तः ॥

आमाशय के रोगों में उन्हीं सब अन्न पानादिकों का सेवन करना चाहिये, जो सुपाच्य और पुष्टिकारक हों । तथा गुरुपाक अन्नपानादि सर्वदा त्याग देने चाहिये ॥ ११ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाख्यायां व्याख्यायामामाशय-रोगाधिकार समाप्तः ॥

छर्दिरोगाधिकारः

वमन की सामान्य चिकित्सा ।

आमाशयोत्क्लेशभवाहि सर्वाश्छर्दयो मतालङ्घनमेव तस्मात् । प्राक् कारयेद् मारुतजां विमुच्य संशोधनं वा कफपित्त-हारि ॥ १ ॥

अत्र लङ्घनमल्पदोषविषयं संशोधनं बहुदोषविषयमिति व्यवस्था। संशोधनमत्र विरेचनम्।

आमाशय की विकृति क्षुब्ध से ही सब प्रकार के वमन रोग उत्पन्न होते हैं, अतएव यदि दोषों की प्रबलता न हो तो वमनरोग में पहिले लङ्घन कराना चाहिये। दोषों की प्रबलता हो तो पहिले कफपित्तनाशक विरेचन का प्रयोग करे। किन्तु वातजन्य वमनरोग में विरेचन तथा लङ्घन कराना निषिद्ध है[१] ॥ १ ॥

छर्दिनाशकमुष्टियोग।

चन्दनेनाक्षमात्रेण संयोज्यामलकीरसम्। पिवेत् माक्षिकसयुक्तं छर्दिस्तेन निवर्त्तते ॥ २ ॥

चन्दनमत्र श्वेतमिति भानुदास। चन्दनकर्षाच्चतुर्गुणामामलकीरसम्।

श्वेत चन्दन १ तोला और आँवला का रस १ तोला; इनको एकत्र मिलाकर, उसमें थोड़ा शहद मिलाकर सेवन करने से वमनरोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

क्वाथः पर्पटजः पीतः सक्षौद्रश्छर्दिनाशनः ॥ ३ ॥

पित्तपापड़ा के क्वाथ में थोड़ा शहद मिलाकर पीने से वमनरोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

हरीतकीनां चूर्णन्तु लिह्यान्माक्षिकसंयुतम्। अधोभागीकृते दोषे छर्दिः क्षिप्रं निवर्त्तते ॥ ४ ॥

मधु के साथ हरीतकी के चूर्ण का सेवन करने से दोष के अधोगत हो जाने पर वमनरोग नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

१ यह मत भी है कि पित्तहारी संशोधन (विरेचन) कफहारी संशोधन अर्थात् वमन कराना चाहिये। सुश्रुत में कहा है 'छर्दिषु बहुदोषासु वमनं हितमुच्यते' अर्थात् बहुदोष प्रधान वमन में दोषविपरीतकारी वमन ही हितकारक है।

छर्दिहर कषाय।

कषायो भृष्टमुद्गस्य सलाजमधुशर्करः। छर्द्यतीसारतृड्दाहज्वरघ्नः संप्रकाशित ॥ ५ ॥

भुनी हुई मूँग जल में पकाकर उसमें धान के लावा का चूर्ण मिलावे। तदनन्तर थोड़ा शहद और थोड़ी मिश्री मिलाकर पान करे। इससे वमन, अतिसार, प्यास, दाह और ज्वररोग नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

जातीधात्री।

जातीरसः कपित्थस्य पिप्पलीमरिचान्वितः। क्षौद्रेण युक्तः शमयेल्लेहोऽयं छर्दिमुल्बणाम् ॥ ६ ॥

अत्र जाती आमलकी।

आँवले का रस १ तोला और कैथ का रस १ तोला, थोड़ा थोड़ा पीपरि का चूर्ण, मिरिच का चूर्ण और शहद मिलाकर सेवन करने से तीव्र वमनरोग शान्त होता है ॥ ६ ॥

अवलेहत्रय।

लाजाकपित्थमधुमागधिकोषणानां क्षौद्राभयात्रिकटुधान्यकजीरकाणाम्। पथ्यामृतामरिचमाक्षिकपिप्पलीनां लेहास्त्रयः सकलवम्यरुचिप्रशान्त्यै ॥ ७ ॥

धान की खील, कैथ, मधु, पीपरि और मरिच। मधु हरीतकी, सोंठ मिरिच, पीपरि, धनिया और जीरा। हरीतकी, गिलोय, मरिच मधु और पीपरि इन तीन प्रकार के अवलेहों का सेवन करने से सब प्रकार के वमन और अरोचकरोग शान्त होते हैं ॥ ७ ॥

एलादिचूर्ण।

एलालवङ्गगजकेशरकोलमज्जलाजप्रियङ्गुघनचन्दनपिप्पलीनाम्। चूर्णानि माक्षिकसितासहितानि लीढ्वा छर्दिं निहन्ति कफमारुतपित्तजाताम् ॥ ८ ॥

छोटी इलायची, लौंग, नागकेशर, बेर की गुठली, धान की खील, प्रियगु, नागरमोथा, लालचन्दन और पीपरि, सम भाग इन सब द्रव्यों को लेकर चूर्ण बना लेवे। इस चूर्ण को मधु और चीनी में मिलाकर चाटने से कफज वातज और पित्तज वमनरोग नष्ट होता है॥ ८॥

अश्वत्थवल्कलं शुष्कं दग्ध्वा निर्वापितं जले। तज्जलं पानमात्रेण छर्दिमाशु व्यपोहति॥ ९॥

अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष की सूखी छाल को जलाकर किसी पात्र में रक्खे हुए जल में बुझाकर बुझा देवे। तदनन्तर उस जल को छानकर पीने से शीघ्र ही वमन रोग शान्त हो जाता है॥ ९॥

वान्तिहृद्रस।

अयः शङ्खवलीसूतं खल्वेतुल्यं विमर्दितम। कन्या कनक चाङ्गेरी रसैर्गोलं विधीयताम्॥ १०॥ सप्त मृत्कर्पटैर्लिप्त्वा पुटितो वान्तिहृद्रसः। द्विवल्लः कृमि रोगेऽपि साजमोदः सवेल्लकः॥ ११॥ वांति हारेण मुनिना मोक्तोऽयमधुनायुतः पिप्पलक्षार पानीयं पाययेद्वान्ति हृद्रसः॥ १२॥

लोह और शङ्खभस्म, शुद्धगन्धक और पारा समान भाग लेकर कज्जली कर घीकुमार, धतूरा और अम्लोनियाँ के रसों से १ १ दिन घोटकर गोला बनाकर शराव सम्पुट में बन्द कर ६ ७ कपड़ मिट्टी देकर सूखने पर लघुपुट की आँच दे ठंढा होने पर निकाल कर रख देवें, इसमें से ६ ६ रत्ती की मात्रा अजमोद और विडङ्ग के साथ मिलाकर मधु के साथ चाटने से सब तरह की उल्टी मिट जाती है। तृषा लगने पर पीपल की राख का पानी पिलावे। २ ३ रत्ती पर्याप्त है॥ १०-१२॥

रसेन्द्र।

अजाजीधान्यकृष्णाभिः सक्षौद्राभिः कटुत्रिकैः। एभिः सार्द्धं भस्मसूतः सेव्यो वान्तिप्रशान्तये॥ १३॥

जीरा, धनिया, पीपरि मधु त्रिकटु और रससिन्दूर सम भाग इन सब औषधों को लेकर खरल करके रख लेवे। इसका सेवन करने से वमनरोग शान्त होता है। मात्रा-१रत्ती से ४ रत्ती तक॥ १३॥

वृषध्वज रस।

शुद्धं रसं गन्धकञ्च लौहमेन समांशिकम्। मधुकं चन्दनं धात्री सूक्ष्मैला सलवङ्गकम्॥ १४॥ टङ्कणं पिप्पली मांसी तुल्यं पारदसम्मितम्। विदारीतुरसाभ्याञ्च भावयेद्दिनसप्तकम्॥ १५॥ संशोष्य मर्दयेच्चामं छागीदुग्धेन यत्नतः। द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं विदारीरससंयुतम्॥ १६॥ वातात्मिका पित्तयुतां छर्दिं हन्ति सशोणिताम्। वृषध्वजरसो नाम वृषध्वजेन निर्मितः॥ १७॥

पारा, गन्धक, लौहभस्म, मुलहठी, लाल चन्दन आँवला, छोटी इलाइची, लौंग, सुहागा, पीपल, जटामासी, प्रत्येक बराबर लेकर इन्हें इकट्ठा कर विदारीकन्द के रस तथा इक्षुरस से अलग अलग सातरोज भावना देकर सुखा ले। इसके बाद बकरी के दूध से ३ घण्टे तक घोटे और २ रत्ती प्रमाण की गोली बना ले। अनुपान विदारीकन्द का रस (विदारीकन्द का अर्थ यहाँ पर शालिपर्णी लगाते हैं)। इस रस के सेवन करने से वातज, पित्तज तथा खूनवाली छर्दि दूर होती है॥ १४-१७॥

छर्दिरोग में पथ्य।

विरेचनच्छर्दनलङ्घनानि स्नानं मृगालाजकृतश्च मण्डः। पुरातना षष्टिक-

शालिमुद्गकलायगोधूमयवा मधूनि ॥ १८ ॥ शशाहिभुक्तित्तिरिलावकाद्या मृगद्विजा जाङ्गलसंज्ञिताश्च । मनोज्ञनानारसगन्धरूपा रसाश्च यूषा अपि पाडवाश्च ॥ १९ ॥ हरीतकीदाडिमबीजपूरं जातीफलं बालकनिम्बवासा । सिता शताह्वा करिकेशराणि गव्या मनःप्रीतकरा हिताश्च ॥ २० ॥ रागाः खडाः काम्बलिकाः सुरा च वेताग्रकुस्तुम्बुरुनारिकेलम् । जम्बीरधात्रीसहकारकोलद्राक्षाकपित्थानि पचेलिमानि ॥ २१ ॥ भुक्तस्य वक्त्रे शिशिराम्बुसेकः कस्तूरिका चन्दनमिन्दुपादाः । मनोज्ञगन्धान्यनुलेपनानि पुष्पाणि पत्राणि फलानि चापि ॥ २२॥ रूपाणि शब्दाश्च रसाश्च गन्धाः स्पर्शाश्च ये यस्य मनोऽनुकूलाः । दाहश्च नाभेस्त्रियवोपरिष्टादिदं हि पथ्यं वमनातुरेषु ॥ २३ ॥

विरेचन, वमन, लङ्घन, स्नान, शरीरशुद्धि, लाजमण्ड, पुराने साँठी के चावल, शालि, मूँग, मटर, गेहूँ, जौ, शहद, शशक, मोर, तीतर, लाव आदि जङ्गली पशु-पक्षियों के मांस, मन को लुभानेवाले अनेक प्रकार के रस, गन्ध एवं रूप, मांसरस, मुद्ग आदि के यूष, षाडव, हरड़, अनार, बिजौरा, जायफल, बाला, नीम, अडूसा, खांड, सोया, नागकेशर, तथा अन्य स्वादिष्ट तथा हित करनेवाले पदार्थ, राग-खड, काम्बलिक, (कस तिलचूर्ण खट्टा संधान द्रव्य) सुरा, बेत्राग्र, धनियाँ, नारियल, जम्बीर, आँवला, आम, बेर, अंगूर, कैथ, आप, भोजन के बाद शीतल जल से मुँह धोना, कस्तूरी, चन्दन, चाँदनी, सुन्दर सुगन्ध, अनुलेपन, पुष्प, पत्र, फल, प्रियरूप, शब्द, रस, गन्ध स्पर्श तथा नाभि से तीन जौ ऊपर दाह।

उपर्युक्त सम्पूर्ण बातें वमनरोगियों के लिए पथ्य हैं॥ १८-२३ ॥

अपथ्य ।

नस्यं वस्ति स्वेदनं स्नेहपानं रक्तस्रावं दन्तकाष्ठं द्रवान्नम् । बीभत्सेक्षां भीतमुद्वेगमुष्णं स्निग्धासात्म्यहृद्यवैरोधिकान्नम् ॥ २४ ॥ शिम्बी बिम्बी कोषवत्यो मधूकं चित्रामेलां सर्षपान् देवदालीम् । व्यायामञ्च छत्रिकामञ्जनञ्च छर्द्यां सत्यां वर्जयेदप्रमत्तः ॥ २५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां छर्दिरोगाधिकारः समाप्तः ॥

नस्य, वस्ति, स्वेद, स्नेहपान, रक्तस्राव, दातून, करना, पतले भोजन, डरावनी चीजों का देखना अथवा डर, उद्वेग, गरम भोजन, गर्मी, अत्यन्त चिकने, नामाफिक, अप्रिय तथा विरोधी भोजन, कुम्राक आदि खाना, सुरमा आदि लगाना इनका वमनरोग में त्याग करना चाहिए ॥ २४-२५ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाख्यायां व्याख्यायां छर्दिरोगाधिकारः समाप्तः ॥

दाहरोगाधिकारः ।

दाह की सामान्य चिकित्सा ।

यत् पित्तज्वरदाहोक्तं दाहे तत् सर्वमिष्यते ॥ १ ॥

पित्तज्वरजन्य दाह में जो-जो चिकित्साएँ कही गई हैं, साधारण दाहरोग में उन्हीं सब चिकित्साओं का प्रयोग करना चाहिए ॥ १ ॥

दाहरोग में उपचार ।

चंदनाम्बुकणस्यन्दितालवृन्तोपवीजितः । सुप्याद्दाहार्दितोऽम्भोजकदलीदलसंस्तरे २

चन्दन घिसकर जल में घोल देवे, तदनन्तर उसी जल से ताड़ की पङ्खी को भिगो करके हवा करे। तथा कमल अथवा केला की पत्तियों पर शयन करावे। इन क्रियाओं से दाहरोग में शान्ति होती है ॥ २ ॥

शिशिरजल।

परिषेकावगाहेषु व्यजनानाञ्च सेवने। शस्यते शिशिरं तोयं तृष्णादाहोपशान्तये ॥ ३ ॥

शरीर पर छिड़कने (अथवा मुख और हाथ आदि धोने) के लिये, स्नान करने के लिये और पंखी को गीला करने के लिये शीतल जल का उपयोग करने से तृष्णा और दाह की शान्ति होती है ॥ ३ ॥

फलिन्यादि प्रलेप।

फलिनीलोध्रसेव्याम्बुहेमपत्रकुटन्नटम्। कालीयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम् ॥ ४ ॥

प्रियंगु, लोध, खस, सुगन्धवाला, नागकेसर तेजपात और नागरमोथा; इनको महीन पीसकर कालीयक (चन्दन विशेष) के क्वाथ में मिलाकर लेप करने से दाहरोग शात होता है ॥ ४ ॥

नान्दीस्नान।

ह्रीबेरपद्मकोशीरचन्दनक्षोदवारिणा। सम्पूर्णामवगाहेत द्रोणीं दाहार्दितोनरः ॥५॥

सुगन्धवाला, पद्माख, खस और चन्दन के चूर्ण से युक्त जल को एक नाँद (टब) में भर देवे। तदनन्तर उसमें स्नान कराने से दाहरोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

छादयेत्तस्य सर्वाङ्गमारनालार्द्रवाससा। लामज्जकेन शुक्लेन चन्दनेनानुलेपयेत् ॥ सर्पिषा शतधौतेन लेपाद्दाहः प्रशाम्यति ॥ ६ ॥

काँजी से भीगे हुए वस्त्र द्वारा रोगी के शरीर को ढकने से दाहरोग शान्त होता है या सौ बार के धोये हुए घी का लेप करने से दाह शान्त होता है। अथवा खस तथा चन्दन को शुक्र में मिलाकर लेप करने से दाहरोग शान्त होता है ॥ ६ ॥

चन्दनादि क्वाथ।

पटीरपर्पटोशीरनीरनीरदनीरजैः। मृणालमिसधन्याकपद्मकामलकैः कृतः ॥ ७ ॥ अर्धशिष्टः श्रृतः शीतः पीतः क्षौद्रसमन्वित। क्वाथो व्यपोहयेद्दाहं तृष्णाञ्च परमोल्वणम् ॥ ८ ॥

चन्दन, पित्तपापड़ा, खस, गन्धबाला, मोथा, कमल की जड़, कमल की डण्डी, सौंफ, धनियाँ, पद्माख, आँवला सम्पूर्ण मिलाकर २ तोला लेना चाहिए। इसके बाद इनको ३२ तोले जल में पकाना चाहिये। जब १६ तोले शेष रह जाये तो उतार ले। इस काढ़े में शहद मिलाकर पीने से दाहरोग शान्त होता है ॥ ७ ८ ॥

दाहान्तक रस।

सूतात् पञ्च क्रितश्चैकं कृत्वा पिण्डं सुशोभनम्। जम्बीररसरसैर्मर्द्य सूततुल्यञ्च गन्धकम् ॥ ९ ॥ नागवल्लीदलैः पिष्ट्वा ताम्रपत्रं प्रलेपयेत्। प्रपुटेद् भूधरे यन्त्रे यावद् भस्मत्वमाप्नुयात् ॥ १० ॥ गुञ्जार्धमार्द्रकद्रावैस्त्र्यूषणेन च योजयेत्। निहन्ति दाहसन्तापं मूर्च्छां पित्तसमुद्भवाम् ॥ ११ ॥

पारा ५ भाग, ताँबा १ भाग, शुद्ध पारा तथा गंधक की कजली करके जम्बीरी के रस या पान के रस से घोटकर ताम्रभस्म पर प्रलेप करे। तत्पश्चात् भूधरयन्त्र द्वारा जब तक पाक करे कि सम्पूर्ण भस्म हो जावे। मात्रा ½ रत्ती से १ रत्ती तक। अनुपान—अदरख का रस तथा त्रिकटु का चूर्ण। यह रस पित्त से उत्पन्न मूर्च्छा तथा दाह को शान्त करनेवाला है। ताम्रभस्म की परीक्षा कर ले कि निरुत्थ हो गई है अन्यथा काम ...

सुधाकर रस।

सिन्दूराभ्रहेमानि मौक्तिकं त्रिफलाम्भसा। शतपुत्रीरसेनापि मर्दयेत् सप्तसप्तधा ॥ १२ ॥ ततो रक्तिमितां कुर्याद् वटीं छायाप्रशोषिताम्। एकैकां योजयेत्तान्तु यथा दोषानुपानतः ॥ १३ ॥ रससुधाकरः सोऽयं हन्ति दाहं महाबलम्। प्रमेहानपि वातास्रं बलशुक्रकरः परः ॥ १४ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, सुवर्णभस्म, मुक्ताभस्म, इनको त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आँवला) तथा शतावर के रस से अलग अलग सात बार भावना देकर ½ रत्ती से १ रत्ती प्रमाण की गोली बना ले। इसमें दोषानुसार अनुपान की व्यवस्था करनी चाहिए। इस रस के सेवन करने से दाह, प्रमेह, वातरक्त आदि रोगों को शान्त करता है तथा बल वीर्य्यवर्धक है ॥ १२-१४ ॥

दाह में पथ्य।

शालयः षष्टिका मुद्गा मसूराश्चणका यवाः। धन्वमांसरसा लाजमण्डस्तत्सक्तवः सिता ॥ १५ ॥ शतधौतं घृतं दुग्धं नवनीतं पयोभवम्। कूष्माण्डं कर्कटीं मोचं पनसं स्वादुदाडिमम् ॥ १६ ॥ धारावेश्म तथा सुशीतलशशीज्योत्स्ना तु पानानि च वातः शीतलचन्दनं च कमलं प्रेमानुबन्धस्तथा। रामागूहनमर्दनं स्तनयुगं शुक्लार्द्रवस्त्राणि च। क्षीरं शर्करशंखलोहरजतं दाहप्रशान्त्यै हितम् ॥ १७ ॥

शालि, षष्टिक, मूँग, मसूर, चने, जौ, जंगली पशु, पक्षियों के मांस का रस, लाजमण्ड, लाजा के सत्तू, खांड, शतधौत घृत, दूध, दूध से निकला मक्खन, पेठा, ककड़ी, केला, कटहल, मीठा अनार, धारागृह, चाँद की शीतल चाँदनी, शीतल वायु, चन्दन का लेपन, कमल, प्रेम, प्रियालिङ्गन, प्रियास्तनमर्दन, गीले वस्त्र, दूध, खांड, शंखभस्म, लोहभस्म, चाँदीभस्म। ये सम्पूर्ण उपर्युक्त द्रव्य दाह शान्ति के लिए लाभकारी हैं ॥ १५-१७ ॥

अपथ्य।

विरुद्धान्यन्नपानानि क्रोधं वेगाभिधारणम्। गजाश्वयानमध्वानं क्षारं पित्तकराणि च ॥ १८ ॥ व्यायाममातपं तक्रं ताम्बूलं मधु रामठम्। व्यवायं कटुतीक्ष्णोष्णं दाहवान् परिवर्जयेत् ॥ १९ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां दाहरोगाधिकारः समाप्तः ॥

विरुद्ध भोजन, क्रोध, मल-मूत्रादि वेगों का रोकना, हाथी घोड़े की सवारी, अधिक चलना, क्षार पित्त के बढ़ानेवाले आहार, विहार, व्यायाम, धूप में घूमना, मठा पीना, शहद, हींग, मैथुन, कडुए, तीखे, गरम भोजन, इन सबका त्याग करना दाहरोगी को हितकर है ॥ १८-१९ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाख्यायां व्याख्यायां दाहरोगाधिकार समाप्त।

तृष्णारोगाधिकारः

वातिक तृष्णा की चिकित्सा।

तृष्णायां पवनोत्थायां सगुडं दधि शस्यते। रसाश्च बृंहणाः शीता गुडूच्या रस एव वा ॥ १ ॥

वातज तृष्णारोग में गुड़युक्त दही पुष्टिकारक तथा शीतल रस और गिलोय का स्वरस; इनमें से किसी का प्रयोग करना लाभदायक होता है ॥ १ ॥

पित्तज तृष्णा की चिकित्सा।

पित्तजायान्तु तृष्णायां पक्वोदुम्बरजो

रसः। तत् क्वाथो वा हिमस्तद्वच्छारिवादिगणाम्बु वा ॥ २ ॥

पित्तजन्य तृष्णारोग में पकी हुई गूलर के रस अथवा क्वाथ का सेवन कराना, अथवा शारिवादिगण का क्वाथ पिलाना चाहिए ॥ २ ॥

लाजोदकं मधुयुतं शीतं गुडविमर्दितम्। काश्मरीशर्करायुक्तं पिबेत् तृष्णार्दितो नरः ॥ ३ ॥

आध पाव धान के लावा (खील) को १ सेर उष्ण जल में रात को भिगो देवे, प्रातःकाल छानकर उसमें शहद ८ मासे, गुड़ ८ मासे, खंभारी के फल का चूर्ण ८ मासे और मिश्री ८ मासे इनको मिलाकर पान करे। इससे तृष्णारोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

कफज तृष्णा की चिकित्सा।

बिल्वाढकीधातकिपञ्चकोलदर्भेषु सिद्धं कफजां निहन्ति। हितं भवेच्छर्दनमेव चात्र तप्तेन निम्बप्रसवोदकेन ॥ ४ ॥

बेलगिरी, अरहर की जड़ (अभाव में पत्ते), धाय के फूल, पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चीता, सोंठ और कुश की जड़, इन औषधों का क्वाथ पिलाने से कफजन्य पिपासा दूर होती है। कफजन्य पिपासारोग में नीम की पत्तियों का उष्ण क्वाथ पिलाकर वमन कराना भी लाभदायक होता है ॥ ४ ॥

क्षतजन्य और क्षयजन्य तृष्णा की चिकित्सा।

क्षतोत्थितां रुग्विनिवारणेन जयेद्रसानामसृजश्च पानैः। क्षयोत्थितां क्षीरजलं निहन्यात् मांसोदकं वाथ मधूदकं वा ॥ ५ ॥

क्षत (जख्म) जन्य तृष्णारोग में क्षतनाशक औषधों का प्रयोग, मांस रस अथवा रुधिर का पान करना लाभदायक होता है। क्षयरोगजन्य तृष्णा में दुग्धमिश्रित जल, मांसरस अथवा मधुमिश्रित जल पिलाना चाहिये ॥ ५ ॥

गुर्वन्नजा तृष्णा की चिकित्सा।

गुर्वन्नजामुल्लिखनैर्जयेत्तु क्षयादृते सर्वकृताश्च तृष्णाम् ॥ ६ ॥

गुरुपाक पदार्थों के भोजन करने से उत्पन्न तृष्णा में और क्षयजन्य तृष्णा के सिवाय हर प्रकार की तृष्णा में वमन कराना लाभदायक होता है, अर्थात् क्षयजन्य तृष्णा को छोड़कर सब तृष्णा में वमन कराना लाभदायक है ॥ ६ ॥

रौक्ष्यदौर्बल्यनाशिका तृष्णाचिकित्सा।

अतिरूक्षदुर्बलानां तर्षं शमयेन्नृणामिहाशु पयः। छागो वा घृतभृष्टः शीतो मधुरो रसो हृद्यः ॥ ७ ॥

अत्यन्त रूक्ष शरीरवाले और दुर्बल मनुष्यों को होनेवाली तृष्णा में दूध पिलाना अथवा घृत में भूनकर पकाये हुए बकरा के मांस का मधुर शीतल रस पिलाना शरीर की रूक्षता, दुर्बलता और तृष्णा को दूर करके हृदय के लिये भी लाभदायक होता है ॥ ७ ॥

नासिकापेय तृष्णाहरयोग।

गोस्तनेक्षुरसक्षीरयष्टीमधुमधूत्पलैः। नियतं नस्ततः पीतैस्तृष्णा शाम्यति दारुणा ॥ ८ ॥

मुनक्का दाख का रस, ईख का रस, दूध, मुलेठी का क्वाथ, शहद अथवा कमल के फूल का रस, इनको नासिका (नाक) द्वारा पीने से भयङ्कर तृष्णारोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

तालुशोषहर गण्डूषधारण।

क्षीरेक्षुरसमाध्वीकक्षौद्रशीधुगुडोदकैः। वृक्षाम्लाम्लैश्च गण्डूषास्तालुशोषनिवारणः ॥ ९ ॥

दूध, ईख का रस, महुआ के फूलों की मद्य, मधु, शीधु, गुड़मिश्रित जल, इमली का रस, तथा अन्यान्य अम्ल द्रव्यों के रस का गण्डूष (कुल्ला) धारण करने से तालुशोषरोग दूर होता है ॥ ९ ॥

आम्रादि कषाय।

आम्रजम्बूकषायं वा पिबेन्माक्षिकसंयुतम्। छर्दिं सर्वां प्रणुदति तृष्णाञ्चैवापकर्षति ॥ १० ॥

आम और जामुन की कोमल पत्तियों के क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से सब प्रकार के वमन और तृष्णारोग दूर होते हैं ॥ १० ॥

वटशुङ्गादि प्रयोग।

वटशुङ्गसितालोध्रदाडिमं मधुकं मधु। पिबेत्तण्डुलतोयेन छर्दितृष्णानिवारणम् ॥ ११ ॥

बड़ के अंकुर, मिश्री, लोध, अनार, मुलेठी, और मधु, इनको चावल के धोवन के साथ पीस कर पीने से वमन और पिपासा की निवृत्ति होती है ॥ ११ ॥

तृष्णादिनाशक ग्रास और गण्डूष।

केशरं मातुलुङ्गस्य सक्षौद्रं दाडिमीयुतम्। ग्रासमानेन दुर्वारां तृष्णां कवलतो जयेत्। दाहतृष्णाप्रशमनं मधुगण्डूषधारणम् ॥ १२ ॥

बिजौरा नींबू के फूलों की केशर, अनार, और मधु इनको एकत्र पीस कर मुख में धारण करने से कठिनता से शान्त होनेवाली प्यास ग्रासमात्र में नष्ट होती है। इसी प्रकार मधु का गण्डूष (कुरला) धारण करने से दाह और तृष्णा की शान्ति होती है ॥ १२ ॥

कवल और गण्डूष की मात्रा।

असञ्चार्य्या तु या मात्रा गण्डूषे सा प्रकीर्तिता। सुखं सञ्चार्य्यते या तु सा मात्रा कवले हिता ॥ १३ ॥

जिस परिमाण में औषध को मुख में रखने पर, मुख का संचालन न किया जा सके उस परिमाण में औषध का मुख में रखना गण्डूष धारण में उचित है। और जिस परिमाण में औषधों को मुख में रखने पर मुख का संचालन किया जा सकता है, उस परिमाण में औषध का मुख में धारण करना कवलधारण में उचित है। तात्पर्य यह कि गण्डूषधारण में मुख को भलीभाँति परिपूर्ण करना होता है, और कवल धारण में मुख कुछ खाली रक्खा जाता है ॥ १३ ॥

वटशुङ्गादि वटी।

वटशुङ्गाभयक्षौद्रलाजनीलोत्पलैर्दृढा। गुटिका वदनन्यस्ता क्षिप्रं तृष्णामुदस्यति ॥ १४ ॥

बड़ के अंकुर, कूट, मधु, धान की खील और नील कमल, इनको एकत्र पीसकर दृढ़ गोलियाँ बना लेवे। इन गोलियों को मुख में रखने से शीघ्र तृष्णा दूर होती है ॥ १४ ॥

तृष्णादिरोग में पथ्य।

ओदनं रक्तशालीनां शीतमाक्षिकसंयुतम्। भोजयेत्तेन शाम्येत छर्दिस्तृष्णाचिरोत्थिता ॥ १५ ॥

रक्त शालीधान के चावलों के भात को शीतल करके मधु मिलाकर खिलाने से चिरकालोत्पन्न वमन और तृष्णारोग नष्ट होते हैं ॥ १५ ॥

मधुवारिप्रयोग।

वारि शीतं मधुयुतमाकण्ठाद्वा पिपासितम्। पाययेद्वामयेच्चापि तेन तृष्णा प्रशाम्यति ॥ १६ ॥

तृष्णारोग में प्यास लगने पर रोगी को कण्ठपर्यन्त मधुमिश्रित शीतल जल पिलावे और वमन करावे। इससे तृष्णारोग निवृत्त होता है ॥ १६ ॥

शीतल जल पीने की व्यवस्था।

मूर्च्छाछर्दितृषादाहस्त्रीमद्यभृशकर्षिताः। पिबेयुः शीतलं तोयं रक्तपित्तमदात्यये ॥ १७ ॥

मूर्च्छा, वमन, तृषा, दाह, स्त्रीप्रसङ्ग और मद्यपान से अत्यन्त क्षीण मनुष्य को शीतल जल

पीना चाहिये । रक्तपित्त और मदात्यय रोग में भी शीतल ही जल पीना चाहिये ॥ १७ ॥

तृष्णार्दित को जल न देने से अनिष्ट ।

पूर्वामयातुरः सन् दीनस्तृष्णार्दितो जल याचन् । लभते न चेत् तदायं मरण माप्नोति दीर्घवेगं वा ॥ १८ ॥

यदि मूर्च्छारोगजन्य तृष्णा से पीड़ित मनुष्य, दीनता के साथ जल की प्रार्थना करे, किन्तु उसी समय उसको जल न मिले तो उसकी मूर्च्छा का का वेग बहुत विलम्ब तक रहता है अथवा वह मर ही जाता है ॥ १८ ॥

तृषितो मोहमायाति मोहात् प्राणान् विमुञ्चति तस्मात् सर्वास्ववस्थासु न क्वचित् वारि वार्य्यते ॥ १९ ॥

अधिक प्यास से मनुष्य मूर्च्छित हो जाता है। मूर्च्छा से मृत्यु तक होती है। अतः किसी भी अवस्था में जल देना वर्जित नहीं है ॥ १९ ॥

अन्नेनापि विना जन्तुः प्राणान् धारयते चिरम् । तोयाभावे पिपासार्त्तः क्षणात् प्राणैर्विमुच्यते ॥ २० ॥

अन्न न भी मिले तो मनुष्य बहुत समय तक प्राण रख सकता है, किन्तु जल के बिना तो क्षण भर भी कोई प्राण नहीं रख सकता ॥ २० ॥

जलपानविषयक विशेष विधि ।

अत्यम्बुपानात् प्रभवन्ति रोगा निरम्बुपानाच्च स एव दोषः । तस्माद् बुधः प्राणविवर्द्धनार्थं मुहुर्मुहुर्वारि पिबेद्भूरि ॥२१ ॥

अधिक परिमाण में जल पीने से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं और जल न पीने से भी वही दशा होती है। अतः बार बार थोड़ा थोड़ा जल पीना रहे ॥ २१ ॥

तृष्णाहर रससिन्दूरादि प्रयोग ।

सक्षौद्रमाम्रजम्बूत्थं पिबेत् क्वाथ रसान्वितम् । सतृष्णो मधुना कुर्या गण्डूषाञ्छीतले स्थित ॥ २२ ॥

आम और जामुन की छाल के क्वाथ में मधु और पारदभस्म मिलाकर पीने से, शीतल स्थान में बैठकर मधु का गण्डूष धारण करने से तृष्णा रोग नष्ट होता है ॥ २२ ॥

महोदधि रस ।

ताम्रभ्र वङ्गकञ्चैव सूतं तालं सतुत्थकम् । वटांकुररसैर्भाव्यं तृष्णाहृद्रविपादप ॥ २३ ॥

ताँबे की भस्म, वङ्गभस्म, पारा, हरताल, तुत्थ (नीला थोथा), इन सम्पूर्ण द्रव्यों को वटाङ्कुर के रस से घोटकर गोलियाँ बनावे। मात्रा ¼ रत्ती से ½ रत्ती तक । इसके सेवन करने से तृष्णा (प्यास) रोग दूर होता है ॥ २३ ॥

कुमुदेश्वर रस ।

मृतताम्रस्य भागौ द्वौ भागैकं वङ्गभस्मकम् । यष्टीमधुरसैर्भाव्यं गुञ्जापादांशकं शुभम् ॥ २४ ॥ सेव्यञ्चैवानुपानेन वक्ष्यमाणेन धीमता । चन्दनं शारिवा मुस्तं क्षुद्रैला नागकेशरम् ॥ २५ ॥ सर्वतुल्यां तथा लाजां पचेच्छोडशिकैर्जलैः । अर्धशेषं हरेत् क्वाथ सितात्तौद्रयुतन्तु तत् ॥ २६ ॥ छर्दिं तृष्णां निहन्त्याशु रसोऽयं कुमुदेश्वरः ॥ २७ ॥

ताँबे की भस्म २ भाग, वङ्गभस्म १ भाग इनको मुलहठी के काढ़े से सात दफे भावना देकर सुखा ले। मात्रा ¼ रत्ती। अनुपान लाल चन्दन, अनन्तमूल, मोथा, छोटी इलाइची, नागकेसर इन सम्पूर्ण द्रव्यों को मिलाकर १ तोला लेना चाहिए, फिर इनको ३२ तोला जल में पकाना चाहिए। जब पकते-पकते १६ तोले रह जावे तो उतार लो। इस काढ़े में शक्कर या

खाँड मिलाकर अनुपान के रूप में देना चाहिए। इस रस के सेवन करने से वमि (कै), तृष्णा (प्यास) दूर होते हैं॥ २४-२७॥

तृष्णारोग में पथ्य।

शोधनं शमनं निद्रां स्नानं कवलधारणम्। जिह्वाधःशिरसोर्दाहो दीपदग्धहरिद्रया॥ २८॥ कोद्रवाः शालयः पेया विलेपी लाजसक्तवः। अन्नमण्डो धन्वरसाः शर्करारागपाडवौ॥ २९॥ एला जातिफलं पथ्या कुस्तुम्बुरु च टङ्कणम्। घनसारो गन्धसारः कौमुदी शिशिरानिलाः॥ ३०॥ तालतालाम्बुशीताम्बु पयपेटी प्रपानकम्। माक्षिकं सरसं तोयं शताह्वा नागकेशरम्॥ ३१॥ चन्दनार्द्रप्रियाश्लेषो रत्नाभरणधारणम्। हिमानुलेपनञ्च स्यात् पथ्यमेतत्तृषातुरे॥ ३२॥

शोधन एवं शमनकारी क्रियाएँ, निद्रा, स्नान, कवल धारण, दीये पर जलाई हुई हल्दी से जीभ के नीचे दो शिराओं का दाह, कोदों, शालि, पेया, विलेपी, लाजा का सत्तू, चावलों की माँड, जङ्गली पशुपक्षियों के मांस का रस, शरबत रागषाडव (मुरब्बे, चटनी इत्यादि), इलाइची, जायफल, हरड़, धनियाँ, सुहागा, कपूर, चन्दन, चाँदनी, शीतल हवा, कच्चे ताड़ का पानी, शीतल जल, नारियल, शर्करा, शहद सुस्वादु जल, सोये, नागकेसर, अङ्ग में चन्दन लगाने के पश्चात् प्रिया का आलिङ्गन, रत्न एवं आभूषणों का पहरना, बर्फ तथा शीतल लेपन, अनुलेपन, तृष्णा (प्यास) रोग में लाभकारी हैं॥ २८-३२॥

तृष्णा रोग में अपथ्य।

स्नेहाञ्जनस्वेदनधूमपानव्यायामनस्यातपदन्तकाष्ठम्। गुर्वन्नमम्लं लवणं कषायं कटु स्त्रियं दुष्टजलानि तीक्ष्णम्॥ ३३॥ एतानि सर्वाणि हिताभिलाषी तृषातुरो नैव भजेत्कदाचित्॥ ३४॥

स्नेहन, सुरमा आदि लगाना, पसीना आदि लेना, सिगरेट आदि पीना, कसरत, हुलास आदि सूँघना, धूप में पेट को सेकना, भारी भोजन, खटाई, अत्यन्त नोन की वस्तु खाना, कसैली, कड़वी, मैथुन, खराब पानी, तीक्ष्ण पदार्थ, जिस मनुष्य को प्यास (तृष्णा) रोग हो उसको चाहिए कि उपर्युक्त अपथ्यों का त्याग कर दे॥ ३३-३४॥

आवश्यक सूचना।

यत्र केवल एव रसस्तत्र भस्मसूतो बोध्यः।

इति भैषज्यरत्नावल्यां तृष्णाधिकारः समाप्तः॥

जिस योग में गन्धक न लिखा हो किन्तु रस (पारा) का उल्लेख हो तो उस योग में पारदभस्म डालना चाहिये।[१]

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाख्याया तृष्णारोगाधिकारः समाप्तः।

रक्तपित्ताधिकारः।

रक्तपित्त की असमाह्यता।

नोद्रिक्तमादौ संग्राह्यं बलिनोऽप्यश्नतश्च यत्। हृत्पाण्डुग्रहणीरोगप्लीहगुल्मज्वरादिकृत्॥ १॥

रोगी बलवान् और भोजन करने में समर्थ हो तो प्रबल रक्तपित्त के रोकने की चेष्टा कदापि न करे, कारण यह कि दूषित रक्तपित्त शरीर में अवरुद्ध हो जाने पर हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी-

[१] पारदभस्म के स्थान पर रससिन्दूर।

रोग, प्लीहा, गुल्म और ज्वर आदि अनेक रोग उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

रक्तपित्त में अपतर्पण।

ऊर्ध्वं प्रवृद्धदोषस्य पूर्वं लोहितपित्तिनः। अक्षीणबलमांसाग्नेः कर्त्तव्यमपतर्पणम् ॥ २ ॥

रोगी के बल और मांस क्षीण न हों, अग्नि भी प्रबल हो तो, रक्तपित्त के ऊर्ध्वमार्गगामी होने पर पहिले लङ्घनादि क्रिया करानी चाहिये ॥ २ ॥

रक्तपित्त में तर्पण विरेचनादि।

ऊर्ध्वगे तर्पणं पूर्वं कर्त्तव्यञ्च विरेचनम्। प्रागधोगमने पेया वमनञ्च यथाबलम् ॥ ३ ॥

ऊर्ध्वग अक्षीणबलमांसेन तर्पणं प्रथमतः कार्य्यम्। अतिप्रवृत्ते ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते विपुलबलमांसे न विरेचनमित्याशयः।

ऊपर के मार्गों (मुख, नाक, कान, आँख) से रक्तपित्त निकलता हो, किन्तु रोगी के बल और मांस क्षीण हों तो सन्तर्पण (तृप्ति करनेवाला) उपचार करना चाहिये। ऊर्ध्वगामी (ऊपर के मार्गों से निकलनेवाला) रक्तपित्त यदि अत्यन्त प्रबल हो, अर्थात् अधिक परिमाण में निकलता हो, किन्तु रोगी के बल और मांस क्षीण न हुये हों तो विरेचन कराना चाहिये। अधोमार्ग (नीचे के मार्ग गुदा, लिंग, योनि) से निकलनेवाले रक्तपित्त में पहिले पेया आदि खिलाना चाहिये और रोगी के बल का विचार करके वमन करानी चाहिये [१] ॥ ३ ॥

क्षीणमांसबलं वृद्धं बालं शोषानुबन्धिनम्। अवम्यमविरेच्यञ्च स्तम्भनैः समुपाचरेत् ॥ ४ ॥

[१] दुर्बल और अशक्त रोगी को वमन नहीं करानी चाहिये।

क्षीण मांस क्षीण बल, वृद्ध, बालक और क्षयरोगयुक्त, रक्तपित्त रोगी को और वमन अथवा विरेचन के अयोग्य रक्तपित्तवाले रोगी की स्तम्भन औषधों से चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४ ॥

रक्तपित्त में पथ्य।

शालिषष्टिकनीवारकोरदूषप्रसातिकाः। श्यामाकश्च प्रियङ्गुश्च भोजनं रक्तपित्तिनाम् ॥ ५ ॥

शालीधान (जड़हन), साँठी, तिन्नी, कोदों, रक्तचर्वो की तिन्नी, सावा और प्रियगु ये सब अन्न रक्तपित्तरोगी के लिये पथ्य हैं ॥ ५ ॥

सूपयूषार्थ पथ्य।

मसूरमुद्गचणकाः समकुष्ठाढकीफलाः। प्रशस्ताः सूपयूषार्थं कल्पिता रक्तपित्तिनाम् ॥ ६ ॥

मसूर, मूँग, चना वनमूँग और अरहर, इन सब अन्नों की दाल और जूस रक्तपित्तरोगी के लिये पथ्य हैं ॥ ६ ॥

पथ्य शाक और मांस

शाकं पटोलवेत्राग्रतण्डुलीयादिकं हितम्। मांसं लावकपोतादिशशैणहरिणादिकम् ॥ ७ ॥

रक्तपित्तरोग में परवल की पत्तियों के, बेंत की कोपलों के और चौराई आदि के शाक तथा लावा और कबूतर आदि चिड़ियों के और खरगोस, एण हरिन आदि पशुओं के मांस लाभदायक होते हैं ॥ ७ ॥

रक्तपित्तनाशक योग।

वृषपत्राणि निष्पीड्य रसं समधुशर्करम्। पिबेत् तेन शमं याति रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ ८ ॥

वृषपत्राणि वासकपत्राणि पुटेन पक्त्वा रसो ग्राह्य इति वृद्धोपदेशः।

अरूसा की पत्तियों का पुटपाक करके रस निकाले, उसमें शहद और मिश्री मिलाकर पान करे। इससे भयानक रक्तपित्तरोग शान्त होता है ॥ ८ ॥

समाक्षिकः फल्गुफलोद्भवो वा पीतो रसः शोणितमाशु हन्ति ॥ ९ ॥

कठगूलर के फल के रस में मधु मिलाकर पीने से शीघ्र रक्तपित्तरोग नष्ट होता है ॥ ९ ॥

हरीतकीप्रयोग ।

अभया मधुसंयुक्ता पाचनी दीपनी मता । श्लेष्माणं रक्तपित्तञ्च हन्ति शूलातिसारनुत् ॥ १० ॥

हरीतकी के चूर्ण में शहद मिलाकर चाटने से दोषों का पाचन और अग्नि की दीप्ति होती है तथा कफ, रक्तपित्त, शूल और अतिसार ये सब रोग भी नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

हरीतक्यादि प्रयोग ।

वासकस्वरसे पथ्या सप्तधा परिभाविता । कृष्णा वा मधुना लीढा रक्तपित्तं द्रुतं जयेत् ॥ ११ ॥

हरीतकी (हर्रे) के चूर्ण को अरूसा की पत्तियों के रस में ७ बार भिगोकर सुखावे, तदनन्तर उसका मधु के साथ सेवन करने से अथवा मधु के साथ पूर्वोक्त रीति से भावना दिया हुआ पीपरि के चूर्ण का सेवन करने से रक्तपित्तरोग शीघ्र नष्ट होता है । मात्रा १।७ माशा ॥ ११ ॥

पक्वोदुम्बरादि प्रयोग ।

पक्वोदुम्बरकाश्मर्य्यपथ्याखर्जूरगोस्तनाः । मधुना घ्नन्ति संलीढा रक्तपित्तं पृथक् पृथक् ॥ १२ ॥

उदुम्बरादीनां पक्वानि फलानि यतः शुष्काणि ततस्तेषां श्लक्ष्णचूर्णानां मधुना लेहः । अत्र पथ्याचूर्णं मधुना लीढमतीव फलप्रदमिति भानुः ।

पकीगूलर, कुम्भेर, हरीतकी, खजूर और मुनक्का, इनमें किसी एक के पके हुये फलों को सुखाकर चूर्ण बनावे। उसको मधु के साथ चाटने से रक्तपित्तरोग नष्ट होता है। 'भानु' का कहना है कि इनमें से हरीतकी का चूर्ण मधु के साथ चाटने से अत्यन्त लाभ प्रद होता है। मात्रा ३।७ माशा ॥ १२ ॥

कुसुमचूर्ण ।

खदिरस्य प्रियंगूनां कोविदारस्य शाल्मलेः । पुष्पचूर्णन्तु मधुना लिहन्नारोग्यमश्नुते ॥ १३ ॥

खैर, प्रियङ्गु, लाल कचनार और सेमर; इनके फूलों का चूर्ण बनाकर शहद के साथ चाटने से रक्तपित्तरोगी को स्वास्थ्य लाभ होता है ॥ १३ ॥

लाक्षाचूर्ण ।

लाक्षाचूर्णं सुकृतं क्षौद्राज्यसमन्वितं सकृल्लीढम् । शमयति सोद्धतवमनं सरक्तपित्तस्य सिद्धमिदम् ॥ १४ ॥

लाख के कपड़छान किये चूर्ण को घी और मधु के साथ चाटने से रक्तपित्त का प्रबल वमन एक ही बार में शान्त होता है। रक्तपित्त के लिये यह अनुभूत प्रयोग है। मात्रा १½।१ माशा ॥ १४ ॥

धान्यकादि हिम ।

धान्याकधात्रीवासानां द्राक्षापर्पटयोर्हिमः । रक्तपित्तं ज्वरं दाहं तृष्णां शोषञ्च नाशयेत् ॥ १५ ॥

धनियाँ, आँवला, अडूसा, द्राक्षा तथा पित्तपापड़ा इनका विधि के अनुसार शीत कषाय बनाकर रोगी को देने से रक्तपित्त, ज्वर, दाह, प्यास और शोष (सूजन) आदि दूर होते हैं। मात्रा ४।५ तोला ॥ १५ ॥

ह्रीवेरादि क्वाथ ।

ह्रीवेरमुत्पलं धान्यं चन्दनं मधुका-

मृता । उशीरञ्च त्रिवृच्चैषां क्वाथं समधुशर्करम् ॥ १६ ॥ पाययेत्तेन सद्यो हि रक्तपित्तं प्रणश्यति । रक्तपित्तं जयत्युग्रं तृष्णां दाहं ज्वरं तथा ॥ १७ ॥

गन्धबाला, नीलोत्पल, धनियाँ, लालचन्दन, मुलहठी, गिलोय, खस, निसोत, ये सम्पूर्ण द्रव्य मिश्रित कर २ तोला लेना चाहिये । तत्पश्चात् इनको ३२ तोले जल में पकावे जब ८ तोला रह जावे तो उतार ले। इस काढ़े में खाँड या शहद मिलाकर पीने से शीघ्र ही रक्तपित्त शान्त होता है। यह काढ़ा प्यास, दाह, ज्वर को भी दूर करता है । मात्रा १ तोला ॥ १६ १७ ॥

आटरूपकादि क्वाथ ।

आटरूपकमृद्वीकापथ्याक्वाथः सशर्करः । क्षौद्राढ्यः कसनश्वासरक्तपित्तनिवर्हणः ॥ १८ ॥

अडूसे की जड़ का छिलका, किशमिश, हरड़ इनके काढ़े को खाँड या शहद मिलाकर पीने से श्वास, खाँसी तथा रक्तपित्त दूर होता है । मात्रा ४ तोला ॥ १८ ॥

दाहतृष्णादि में उशीरादि चूर्ण ।

उशीरं तगरं शुण्ठी कक्कोलं चन्दनद्वयम् । लवङ्गं पिप्पलीमूलं कृष्णैलानागकेशरम् ॥ १९ ॥ मुस्तामधुककर्पूरं तुगाक्षीरी च पत्रकम् ॥ कृष्णागुरुसमं चूर्णं सिता चाष्टगुणा तथा । रक्तवान्तिश्च तापञ्च नाशयेन्नात्र संशयः ॥ पिबेदौदुम्बरं पश्चाद्रसं कर्षचतुष्टयम् ॥ २० ॥

तगरंतगरपादिकं,तुगाक्षीवंशलोचना।

खस, तगर, सोंठ ककोल, रक्तचन्दन श्वेतचन्दन, लौंग, पिपरामूल, पीपरि, छोटी इलायची, नागकेशर, नागरमोथा, मुलेठी, कपूर, वंशलोचन और तेजपात सममाग इन सब औषधों को लेकर चूर्ण बनावे । कुल चूर्ण जितना हो उतना ही काली अगर का चूर्ण मिलावे । तदनन्तर मिश्रित कुल चूर्ण जितना हो उससे आठगुना मिश्री मिलाकर रख लेवे । प्रतिदिन आधा तोला परिमित इस चूर्ण को खाकर ४ तोले गूलर के फल का रस पीवे । इससे रक्त के वमन और दाह निःसंदेह नष्ट होते हैं । मात्रा ३।६ मासा ॥ १९—२० ॥

एलादि गुटिका ।

एलापत्रं त्वचोऽर्द्धाक्षाः पिप्पल्यर्द्धपलं तथा । सितामधुकखर्जूरमृद्वीकाश्च पलोन्मिताः ॥ २१ ॥ संचूर्ण्य मधुना युक्ता गुटिकाः कारयेद् भिषक् । तोलकार्द्धां ततश्चैकां भक्षयेच्च दिने दिने ॥ २२ ॥ श्वासं कासं ज्वरं हिक्कां छर्दिं मूर्च्छां मदं भ्रमम् । रक्तनिष्ठीवनं तृष्णां पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ २३ ॥ शोषप्लीहामवातांश्च स्वरभेदं क्षतक्षयम् । गुटिका तर्पणी वृष्या रक्तपित्तं विनाशयेत् ॥ २४ ॥

छोटी इलायची के दाने आधा तोला, तेजपात आधा तोला, पीपरि २ तोला, मिश्री, मुलेठी, खजूर और मुनक्का प्रत्येक ४ तोले। इनका चूर्ण बनाकर मधुमिश्रित करके छ छ माशे की बटी बनावे । एक बटी प्रतिदिन सेवन करने से श्वास, कास, ज्वर, हिक्का, वमन, मूर्च्छा, मद, भ्रम, रक्त का वमन, तृष्णा, पार्श्वशूल, अरोचक, शोष, प्लीहा, आमवात, स्वरभेद, क्षतजन्य क्षयरोग और रक्तपित्तरोग नष्ट होते हैं तथा ये गुटिकायें तृप्ति और बल की वृद्धि करती हैं । मात्रा १।३ मा० ॥ २१-२४॥

घ्राणप्रवृत्त रक्त की चिकित्सा ।।

घ्राणप्रवृत्ते जलमाशु देयं सशर्करं नासिकया पयो वा । द्राक्षारसं क्षीरघृतं पिबेद् वा सशर्करञ्चेक्षुरसं हितं वा ॥२५॥

घ्राण (नाक) से रक्त निकलता हो तो जल का अथवा मिश्री मिले हुये दूध का नस्य देना

और मुनक्के का रस, घृत और मिश्री मिला दूध, अथवा ईख का रस इनमें प्रत्येक का पानी लाभदायक होता है॥ २५॥

नस्यं दाडिमपुष्पोत्थो रसो दूर्वाभवोऽथवा। आम्रास्थिजः पलाण्डोर्वा नासिकास्रुतरक्तजित्॥ २६॥

अनार का फूल, दूब, आम की गुठली की मींगी और प्याज इनमें से किसी एक के रस का नस्य लेने से नासिका द्वारा रक्त का निकलना शीघ्र बन्द होता है॥ २६॥

रसो दाडिमपुष्पस्य दूर्वारससमन्वितः। अलक्तकरसोपेतः पथ्यया वा समन्वितः॥ योजितो नस्यतः क्षिप्रं त्रिदोषमपि देहिनाम्। नासाप्रवृत्तं रक्तन्तु हन्यादेव न संशयः॥ २८॥

अनार के फूल का रस और दूब का रस इनको एकत्र मिलाकर, उसमें लाख का जल अथवा हरीतकी का जल मिश्रितकर नस्य देने से नासिका द्वारा होनेवाला त्रिदोषजन्य भी रक्तस्राव निःसंदेह नष्ट होता है॥ २७-२८॥

नासाप्रवृत्तरुधिरं घृतभृष्टं श्लक्ष्णपिष्टमामलकम्। सेतुरिव तोयवेगं रुणद्धि मूर्ध्नि प्रलेपेन॥ २९॥

आमलकं घृते भृष्ट्वा काञ्जिकेन पिष्ट्वा मूर्ध्नि लेप इति नीलकण्ठ।

आँवले को घी में भूनकर काँजी के साथ महीन पीसकर शिर में लेप करे। इस प्रयोग से नासिका द्वारा निकलनेवाला रक्त इस प्रकार रुक जाता है जैसे सेतु के बाँधने से जल का वेग रुक जाता है॥ २९॥

मेढ्रप्रवृत्त रक्त की चिकित्सा।

मेढ्रेऽतिप्रवृत्ते तु वस्तिरुत्तरसंज्ञितः। शृतं क्षीरं पिबेद्वापि पञ्चमूल्या तृणाह्वया॥ ३०॥

यदि लिङ्ग के द्वारा अधिक रक्त निकलता हो तो उत्तरवस्ति क्रिया करनी चाहिये। अथवा दो तोले तृणपञ्चमूल, सोलह तोले बकरी का दूध और चौंसठ तोले जल, इनको एकत्र मिलाकर पकावे, जब दुग्धमात्र शेष रह जावे तब छानकर पीना चाहिये॥ ३०॥

यूषस्य स्वरसं कृत्वा द्रवैरेभिः प्रयोजयेत्। प्रियङ्गुस्फटिकीलोध्रमञ्जनं चेति चूर्णयेत्॥ ३१॥ एतच्चूर्णं पाययेत्तद्रसैः क्षौद्रसमन्वितः। नासिकामुखपायुभ्यो योनिमेढ्राच्च वेगितम्॥ ३२॥ रक्तपित्तं स्रवन्ति सिद्ध एष प्रयोगराट्। यत्र शस्त्रक्षते नैव रक्तं तिष्ठति वेगितम्॥ ३३॥ तदप्यनेन चूर्णेन तिष्ठत्येवावचूर्णितम्॥ ३४॥

प्रियंगु, फिटकरी, लोध्र तथा रसाञ्जन, इनका पृथक् पृथक् चूर्ण बनाकर मिला ले। मात्रा ४ रत्ती। अनुपान-शहद या अडूसे का रस। इसके ४ रत्ती चूर्ण को कहे हुए अनुपान के साथ लेने से नासिका, मुख, गुदा, योनि तथा अन्य सूक्ष्म मार्गों द्वारा निकलता हुआ रक्तपित्त शान्त होता है। यदि किसी शस्त्र द्वारा घाव हो और उसमें से अधिक रक्त निकलता हो तो इस चूर्ण के बुरकने से रक्त शीघ्र ही रुक जाता है॥ ३१-३४॥

कूष्माण्ड खण्ड।

कूष्माण्डकात् पलशतं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम्। पचेत् तप्ते घृतप्रस्थे शनैस्ताम्रमये दृढे॥ ३५॥ यदा मधुनिभः पाकस्तदा पलशतं न्यसेत्। पिप्पलीशृङ्गवेराभ्यां द्वे पले जीरकस्य च॥ ३६॥ त्वगेलापत्रमरिचधान्यकानां पलार्द्धकम्। न्यसेत् चूर्णीकृतं तत्रदार्व्या

१ कुश, काश, शरपत, डाभी और ईख, इन पाँचों के मूल को 'तृणपञ्चमूल' कहते हैं।

सङ्घट्टयेत् पुनः ॥ ३७ ॥ तत् पक्वं स्थापयेत् भाण्डे दत्त्वा क्षौद्रं घृतार्द्धकम् । तद् यथाग्निबलं खादेद्रक्तपित्ती क्षतक्षयी ॥ ३८ ॥ कासश्वासतमश्छर्दितृष्णाज्वरनिपीडितः । वृष्यं पुनर्नवकरं बलवर्णप्रसादनम् ॥ ३९ ॥ उरःसन्धानकरणं बृंहणं स्वरवर्द्धनम् । अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं कूष्माण्डकरसायनम् ॥ ४० ॥ खण्डामलकमानानुसारात् कूष्माण्डकद्रवात् । पात्रं पाकाय दातव्यं यावानत्र रसो भवेत् ॥ ४१ ॥

छिलका और बीज से रहित तथा थोड़ी देर तक धूप में सुखाया हुआ पुराना पेठा ५ सेर लेवे, इसको १२८ तोले घी में ताम्बे की कढ़ाही (कलई की हुई) में धीमी आँच पर तब तक भूनता रहे, जब तक उसका मधु के समान वर्ण न हो जावे । पश्चात् इसमें ५ सेर खाँड़ और पेठे का जल जितना उसमें से निचोड़कर निकाला हो डालकर पकावे । पाक सिद्ध होने पर उसमें छोटी पीपरि, सोंठ और जीरा प्रत्येक के चूर्ण ८ तोला, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने, तेजपात, मिरिच और धनिया प्रत्येक के चूर्ण दो दो तोले डालकर करछी से भली भाँति मिलाकर उतार लेवे । शीतल होने पर ६४ तोला मधु मिलाकर किसी घृत के चिकने पात्र में रख देवे । रोगी के बल और अग्नि के अनुसार (आधा तोला से २ तोले पर्यन्त) मात्रा की कल्पना करे । इसका सेवन करने से रक्तपित्त, क्षतजन्य क्षय, कास, श्वास, नेत्र के सामने अँधेरा सा ज्ञात होना, वमन, तृष्णा और ज्वर ये सब रोग नष्ट होते हैं । यह अवलेह वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, बलप्रद, कान्तिवर्धक, उर क्षतनाशक, बृंहण और स्वर शोधक होने से शरीर को फिर नूतन बना देता है । इस कूष्माण्डरसायन का आविष्कार अश्विनीकुमारों ने किया था । मात्रा-६ माशा २ तोला ॥ ३५-४१ ॥

वासाकूष्माण्डखण्ड ।

पञ्चाशच्च पलं ग्राह्यं कूष्माण्डात् प्रस्थमाज्यतः । ग्राह्यं पलशतं खण्डं वासाक्वाथाढके पचेत् ॥ ४२ ॥ मुस्ता धात्री शुभा भार्गी त्रिसुगन्धैश्च कार्षिकैः । ऐलेयविश्वधन्याकमरिचैश्चपलांशिकैः ॥ ४३ ॥ पिप्पलीकुडवश्चैव मधुमानीं प्रदापयेत् । कासं श्वासं क्षयं हिक्कां रक्तपित्तं हलीमकम् । हृद्रोगमम्लपित्तञ्च पीनसञ्च व्यपोहति ॥ ४४ ॥

२॥ सेर पेठे को (पहिले प्रयोग में लिखी) विधि के अनुसार १६ तोला घी में भूनकर ५ सेर खाँड़, ५ सेर ३२ तोला अडूसे का क्वाथ डालकर पाक करे । पाक समाप्त होने से पहिले नागरमोथा, आँवला, वंशलोचन, भारंगी, दालचीनी, इलायची और तेजपात इनमें से प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, एलुआ (एलवालुक सुगन्ध द्रव्य), सोंठ, धनिया और मिरिच प्रत्येक का चूर्ण ४ तोले और पीपरि का चूर्ण १ कुडव (१६ तोला) डालकर उत्तम रीति से चलाकर उतार लेवे । शीतल होने पर ३२ तोला मधुमिश्रित करके रख लेवे । इसका सेवन करने से कास, श्वास, क्षय, हिचकी, रक्तपित्त, हलीमक, हृद्रोग, अम्लपित्त और पीनस ये सब रोग नष्ट होते हैं । ६ माशा–२ तोला ॥ ४२-४४ ॥

वासाखण्ड ।

तुलामादाय वासायाः पचेदष्टगुणे जले । तेन पादावशेषेण पाचयेदाढकं भिषक् ॥ ४५ ॥ चूर्णानामभयानाञ्च खण्डाच्छुद्धशतं न्यसेत् । द्विपलं पिप्पलीचूर्णात् सिद्धे शीते च माक्षिकात् ॥ ४६ ॥ कुडवं पलमानन्तु चातुर्जातं सुचूर्णितम् । क्षिप्त्वा विलोडितं खादेद्रक्तपित्ती क्षतक्षयी । कासश्वासपरीतश्च यक्ष्मणा च प्रपीडितः ॥ ४७ ॥

वासकमूलस्य शतपलमार्द्रमेव ग्राह्यं जलं शराव १००, शेषः शराव २५, हरीतकीचूर्णं पलं ६४, शर्करा पलं १००, पिप्पलीचूर्णं पलं २, मधुनः कुडवमष्टपलं द्वैगुण्यादिति भानुदासः, चातुर्जातस्य प्रत्येकं पलम् । वासाक्वाथे शर्करा पलशतं गोलयित्वा दार्व्यालोडयेत् आसन्नपाके पिप्पलीचूर्णं चातुर्जातचूर्णञ्च प्रक्षेप्यशीतीभूते मधुक्षेपणीयम् ।

रूसे की गीली जड़ १०० पल (५ सेर) लेकर ४० सेर जल में पकावे, १० सेर जल शेष रहने पर उतारकर छान लेवे । तदनन्तर उस क्वाथ में ३ सेर १६ तोला हरड़ का चूर्ण और १०० पल (५ सेर) खाँड़ मिलाकर पकावे । पाक सिद्ध होने पर पीपरि का चूर्ण ८ तोला, दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर इनमें से प्रत्येक का चूर्ण ४ तोला डालकर, भली भांति मिलाकर उतार लेवे । शीतल होने पर मधु ३२ तोला मिलाकर रख लेवे । इसका सेवन करने से रक्तपित्त, क्षतजन्य क्षय, कास, श्वास और राजयक्ष्मारोग नष्ट होते हैं । मात्रा आधा तोला से दो तोला पर्यन्त । अनुपान—बकरी का दुग्ध ॥ ४५-४७ ॥

वासाघृत ।

वासां सशाखां सपलाशमूलां कृत्वा कषायं कुसुमानि चास्याः । प्रदाय कल्कं विपचेद् घृतञ्च सौद्रेण पानाद्धिनिहन्ति रक्तम् ॥ ४८ ॥

अड़ूसा की शाखा (डाली), पत्तियां और मूल फूल मिले हुये ४ सेर लेवे, उसको ३२ सेर जल में पकावे, जब ८ सेर जल शेष रहे तब छानकर रख लेवे । तदनन्तर उस क्वाथ में पाव भर अड़ूसा के फूल का कल्क और २ सेर घृत मिलाकर धीमी आंच से यथाविधि घृत सिद्ध करे । इस घृत में थोड़ा शहद मिलाकर पीने से रक्तपित्त रोग नष्ट होता है ॥ ४८ ॥

शणस्य कोविदारस्य वृषस्य ककुभस्य च । कल्काढ्यत्वात् पुष्पकल्कं प्रस्थे पलचतुष्टयम् ॥ ४९ ॥

सन, कचनार, अड़ूसा और अर्जुन वृक्ष ये कल्कप्रधान हैं अतः एक प्रस्थ घृत में ४ पल इनके पुष्पों का कल्क मिलाना चाहिये ॥ ४९ ॥

दूर्वाद्यघृत ।

दूर्वा सोत्पलकिञ्जल्का मञ्जिष्ठा शैलवालुका । सितासितमुशीरञ्च मुस्तं चन्दनपद्मके ॥ ५० ॥ विपचेत् कार्षिकैरेतैः सर्पिराजं सुखाग्निना । तण्डुलाम्बु त्वजाक्षीरं दत्त्वा चैव चतुर्गुणम् ॥ ५१ ॥ तत् पानं वमतो रक्तं नावनं नासिकागते । कर्णाभ्यां यस्य गच्छेत्तु तस्य कर्णौ प्रपूरयेत् ॥ ५२ ॥ चक्षुःस्राविणि रक्ते च पूरयेत्तेन चक्षुषी । मेढ्रपायुप्रवृत्ते तु वस्तिकर्म्मसु तद्धितम् । रोमकूपप्रवृत्ते तु तदभ्यङ्गः प्रशस्यते ॥ ५३ ॥

तण्डुलोदकछागदुग्धयोः प्रत्येकं चातुर्गुण्यं रक्तशालितण्डुलं शरावं ४ जलशरावं १६ संमर्द्य वस्त्रपूतं ग्राह्यम् ।

रक्तशालीधान के २ सेर चावल को आठ सेर जल में मलकर छान लेवे । तदनन्तर वह जल ८ सेर, बकरी का दूध ८ सेर और बकरी का घृत २ सेर इन तीनों द्रव्यों को एकत्र मिश्रित करें । तत्पश्चात् दूब, कमल, कमल की केसर, मजीठ, एलवालुक (सुगन्ध द्रव्य), मिश्री, श्वेत चन्दन, खस, नागरमोथा, रक्तचन्दन और पद्माख इनमें से प्रत्येक औषधि का एक-एक तोला कल्क मिलाकर धीमी आंच से यथाविधि पकावे । रक्त का वमन होता हो तो इस घृत का पान करे, नाक से रक्त गिरता हो तो इस घृत का नस्य लेवे, कानों से रक्त गिरता हो तो घृत से कानों को परिपूर्ण करे, नेत्रों से रक्तस्राव होता हो तो इस घृत से नेत्रों में आंजन करे, लिङ्ग अथवा

गुदा से रक्तस्राव होता हो तो इस घृत की पिचकारी देवे और रोमकूपों द्वारा रक्तस्राव होता तो इस घृत का शरीर में मर्दन करना चाहिये ॥ ५०-५३ ॥

सप्तप्रस्थघृत।

शतावरी पयोद्राक्षा विदारीक्षुरसामलै रसैः। सर्पिषा सह संयुक्तैः सप्त प्रस्थं पचेद् घृतम् ॥ ५४ ॥ शर्करापादसयुक्तं रक्तपित्तं हर पिवेत्। उरःक्षते पित्तशूले चोष्णवातेऽप्यसृग्दरे ॥ बलयमोजस्करं वृष्यं क्षयहृद्रोगनाशनम् ॥ ५५ ॥

शतावरी गन्धकशाला द्राक्षा, विदारीकन्द, ईख (गन्ना), आंवला इनमें से हरएक का अलग अलग रस १ प्रस्थ (६४ तोला) लेना चाहिये। घी १ प्रस्थ (६४ तोला), इनका विधि के अनुसार पाक करके रखना चाहिए। इस घृत के प्रयोग के समय घी से चौथाई खांड मिलाकर लेना चाहिए। इसके सेवन से रक्तपित्त, उर क्षत, पित्तशूल उष्णवात, रक्तप्रदर, क्षय तथा हृद्रोग आदि दूर होते हैं। यह घृत बल, वीर्य्य तथा ओज को बढ़ानेवाला है। मात्रा ½ तोला से १ तोला तक ॥ ५४-५५ ॥

सप्तशर्करलौह।

लौहाच्चतुर्गुणं क्षीरमाज्यं द्विगुणमुत्तमम्। चूर्णं पादन्तु वैडङ्गं दद्यात् मधुसिते समे ॥५६॥ ताम्रपात्रे शुभे पक्त्वा स्थापयेद् घृतभाजने। गुञ्जाष्टकप्रमाणेन भक्षयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ५७ ॥ अनुपानं प्रयुञ्जीत नारिकेलजलादिकम्। रक्तपित्तं जयेत् तीव्रमम्लपित्तं क्षतक्षयम्। पुष्टिदं कान्तिजननमायुष्यं वृष्यमुत्तमम् ॥ ५८ ॥

मधुसिते प्रत्येकं लौहसमे मुद्रया पाके जाते लौहात् पादिकं विडङ्गचूर्णं प्रक्षेप्यं शीते च मधु देयम्।

लोहभस्म १ तोला, बकरी का दूध ४ तोला, घृत २ तोला, मिश्री १ तोला; सब द्रव्यों को एकत्र ताम्र के पात्र (कलई किये हुए) में पकाकर, उसमें ३ मासे बायविडङ्ग का चूर्ण मिलावे। शीतल होने पर एक तोला मधु मिलाकर घृत के पात्र में रख लेवे। इसकी मात्रा—८ रत्ती। अनुपान—नारियल का जल आदि। इसका सेवन करने से रक्तपित्त, तीव्र अम्लपित्त क्षत और क्षय रोग नष्ट होते हैं तथा पुष्टि, वीर्य, कान्ति और आयु की वृद्धि होती है ॥ ५६–५८ ॥

शतमूल्यादिलौह।

शतमूली सिता धान्यनागकेशरचन्दनैः। त्रिकत्रयतिलैर्युक्तं लौहं सर्वगदापहम्। तृष्णादाहज्वरच्छर्दिरक्तपित्तहरं परम् ॥ ५९ ॥

शतावरि, चीनी, धनिया, नागकेशर, रक्तचन्दन, सोंठ, मिरिच, पीपरि, आँवला, हर्रं, बहेड़ा, बायविडङ्ग, नागरमोथा, चीता और काले तिल ये सब एक एक भाग, मिले हुये कुल औषधों के सम न लोहभस्म, इन कुल औषधों को एकत्र खरल करके रख लेवे। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—मधु। इसका सेवन करने से तृष्णा, दाह, ज्वर, वमन और रक्तपित्त आदि विविध रोग नष्ट होते हैं ॥ ५९ ॥

खण्डकाद्य लौह।

शतावरी छिन्नरुहा वृषमुण्डितिकाबलाः। तालमूली च गायत्री त्रिफलायास्त्वचस्तथा ॥ ६० ॥ भार्गी पुष्करमूलञ्च पृथक् पञ्च पलानि च। जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम् ॥ ६१ ॥ पलद्वादशकं देयं कान्तलौहस्य चूर्णितम्। दिव्यौषधिहितस्यापि माक्षिकेण हतस्य वा ॥ ६२ ॥ खण्डतुल्यं घृतं देयं पलषोडशिकं बुधैः। पचेत् ताम्रमये पात्रे

गुडपाको मतो यथा ॥ ६३ ॥ प्रस्थार्द्धं मधुनो देयं शुभारमजतुकं त्वचम्। भृङ्गी विडङ्गं कृष्णा च शुण्ठी जातीफलं पलम्॥ ६४ ॥ त्रिफला धान्यकं पत्रं द्व्यक्षं मरिचकेशरम्। चूर्णं दत्वा सुमथितं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ ६५ ॥ यथाकालं प्रयुञ्जीत चतुर्गुञ्जामितं ततः। गव्यक्षीरानुपानञ्च सेव्यो मांसरसः पयः ॥ ६६ ॥ गुरुवृष्यानुपानानि स्निग्धमांसादिबृंहणम् रक्तपित्तं क्षयं कासं पक्तिशूलं विशेषतः ॥ ६७ ॥ वातरक्तं प्रमेहञ्च शीतपित्तं वमिं क्लमम् श्वयथुं पाण्डुरोगञ्च कुष्ठं प्लीहोदरं तथा ॥ ६८ ॥ आनाहं शोणितस्रावमम्लपित्तं निहन्ति च। चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं माङ्गल्यं प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ६९ ॥ आरोग्यपुत्रदं श्रेष्ठं कायाग्निबलवर्द्धनम्। श्रीकरं लाघवकरं खण्डकाद्यं प्रकीर्त्तितम् ॥ ७० ॥

पूर्वोक्तलौहान्तरवत् पथ्यापथ्यनिरूपणीयम्। केचिदत्र रसगन्धकमत्तेपे वदन्ति शुण्ठीजातीफलं पलमित्यत्र शुण्ठ्याजाजी पलं पलमिति केचित्।

शतावरि, गिलोय, अरूसा की छाल, गोरख मुण्डी, खरेटी, काली मुसली, खैर, आँवला, हर्र, बहेड़ा, भारङ्गी और पुष्करमूल प्रत्येक २० तोला इनको २५ सेर ४८ तोला जल में पकावे। ३ सेर १६ तोला जल शेष रहने पर छानकर रख लेवे। तदनन्तर मैनशिल और स्वर्णमाक्षिक के सयोग से भस्म किया हुआ कान्तलोह ४८ तोला घृत ६४ तोला और खाँड ४८ तोला, लेकर पूर्वोक्त क्वाथ में मिलाकर ताम्रपात्र (कलई किये हुए) में गुड़पाक की रीति से पकावे। जब गाढ़ा हो जावे तब वंशलोचन, शिलाजीत, दालचीनी, काकड़ासिंगी, वायविडङ्ग, पीपरि, सोंठ और जायफल प्रत्येक का चूर्ण ४ तोला, आँवला, हरड़, बहेड़ा, धनिया, तेजपात, मिरिच और नागकेशर प्रत्येक का चूर्ण २ तोले मिलाकर उतार लेवे। शीतल होने पर मधु ६४ तोला मिलाकर किसी घी के चिकने पात्र में रख देवे। मात्रा ४ रत्ती, अनुपान—गाय का दूध और मांसरस आदि पौष्टिक द्रव्य। यथासमय इस औषध का सेवन करने से रक्तपित्त, क्षय, कास, पक्तिशूल, वातरक्त, प्रमेह, शीतपित्त, वमन, क्लान्ति, शोथ, पाण्डुरोग, कुष्ठ, प्लीहा, उदर, आनाह, रक्तस्राव और अम्लपित्त ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं। यह लौह चक्षु के लिये लाभदायक, बलवीर्यवर्धक, माङ्गल्य, प्रीतिवर्धक, आरोग्यतादायक, पुत्रदायक, अग्नि का दीपन और कान्तिवर्धक है ॥ ६०—७० ॥

सुधानिधिरस।

सूतं गन्धं माक्षिकं लौहचूर्णं सर्वं घृष्टं त्रैफलेनोदकेन। मूषामध्ये भूधरे तत्पुटित्वा दद्याद् गुञ्जां त्रैफलेनोदकेन ॥ ७१ ॥ लौहे पात्रे गोपयः पाचयित्वा रात्रौ दद्याद्रक्तपित्तप्रशान्त्यै ॥ ७२ ॥

पारा, गन्धक, स्वर्णमाक्षिक और लोहभस्म समभाग इन सब औषधों को लेकर त्रिफला के क्वाथ में घोटकर भूधरयन्त्र में फूँक देवे। स्वाङ्गशीतल होने पर त्रिफला के क्वाथ में घोटकर एक एक रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—त्रिफला का क्वाथ और लोहे के पात्र में पकाया हुआ दूध। रात में इसका सेवन करना चाहिये। यह रक्तपित्तनाशक है ॥ ७१-७२ ॥

ह्रीवेराद्य तैल।

ह्रीवेरं नलदं लोध्रं पद्मकोशीरपत्रकम्। नागपुष्पञ्च चित्रञ्च भद्रमुस्ता तथा शटी॥ ७३ ॥ चन्दनञ्चैव पाठा च कुटजस्य फलत्वचम्। त्रिफलाभृङ्गराजश्च मतवासत्वचस्तथा ॥ ७४ ॥ आम्रास्थिजम्बुसारास्थिमूलं रक्तोत्पलस्य च। एतेषां कार्षिकै-

भार्गैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७५ ॥ लाक्षारसाढकञ्चैव क्षीरं स्नेहसमं भवेत् ॥ रक्तपित्तञ्च त्रिविधं नाशयेदविकल्पतः ॥ ७६ ॥ कासं पञ्चविधं हन्ति तथा श्वास-मुरःक्षतम् । ह्रीवेराद्यमिदं तैलं बलवर्णा-ग्निवर्द्धनम् ॥ श्रीमद्गहननाथेन निर्मितं विश्वमङ्गलम् ॥ ७७ ॥

तिल का तैल १२८ तोला, पीपल की लाख का क्वाथ ६ सेर ३२ तोला, दूध १२८ तोला, इन सब द्रव्यों को एकत्र मिलाकर, नीचे लिखे औषधों के कल्क के साथ पकाकर तैल सिद्ध करे। कल्कार्थ औषध—सुगन्धवाला, खस, लोध, पद्माख, खस, तेजपात, नागकेशर, बेलगिरी, नागरमोथा, कपूर, रक्तचन्दन, पाढ़ी, इन्द्रजौ, कुडा की छाल, आँवला, हरड़, बहेड़ा, सोंठ, बहेड़ा की छाल, आम की गुठली की मींगी, जामुन की गुठली की मींगी और रक्त कमल की जड़ प्रत्येक एक एक तोला। इस तैल के मर्दन करने से तीन प्रकार के रक्तपित्त, पाँच प्रकार के कास-श्वास तथा उरःक्षत इन रोगों की शान्ति और बल, वर्ण और अग्नि की वृद्धि होती है। इस तैल का आविष्कार गहननाथजी ने किया है ॥ ७५-७७ ॥

अर्केश्वर रस।

मृतार्कं मृतवङ्गञ्च मृताभ्रञ्च समाक्षि-कम् । अमृतास्वरसैर्भाव्यं त्रिसप्तकपुटे पचेत् ॥ ७८ ॥ वासाक्षीरविदारीभ्यो गुञ्जाद्वयप्रमाणतः । भक्षणाद्विनिहन्त्याशु रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ ७९ ॥

ताँबे की भस्म, वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, इन सबको एकत्रकर गिलोय के रस से २१ बार भावना देकर पुट दें। मात्रा- २ रत्ती, अनुपान—वासा तथा विदारीकंद का रस, इस रस के व्यवहार से भयंकर रक्तपित्त दूर होता है ॥ ७८-७९ ॥

रक्तपित्तान्तक रस।

मृताभ्रं मुण्डतीक्ष्णञ्च माक्षिकं रस-तालकम् । गन्धकञ्च भवेत्तुल्यं यष्टिद्राक्षा-मृताद्रवैः ॥ ८० ॥ दिनैकं मर्दयेत्खल्ले सिताक्षौद्रसमन्वितम् । गुञ्जाद्वयं निह-न्त्याशु रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ ८१ ॥ ज्वरं दाहं क्षतक्षीणं तृष्णां शोषमरोचकम् ८२ ॥

अभ्रकभस्म, मुण्डलौहभस्म, तीक्ष्णलौह भस्म, सोनामक्खी की भस्म, पारा, हरिताल, गन्धक, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को बराबर लेकर एक एक दिन अलग-अलग घोटकर रख ले। यह रस २ रत्ती प्रमाण में खाँड़ या शहद के साथ लेने से दाह, प्यास, सूजन, अरुचि आदि रोगों में सेवन करने से हित करता है। इस रस को पुराने रक्तपित्तवाले रोगी को, जिसे ज्वर आता हो तथा वह क्षीण हो गया हो, देना चाहिए ॥ ८०-८२ ॥

रक्तपित्तकुलकुठार रस।

शुद्धपारदबलिप्रबालकं हेममाक्षिक-भुजङ्गरङ्गकम् । मारितं सकलमेतदुत्तमं भावयेत्पृथक् पृथक् द्रवैस्त्रिशः ॥ ८३ ॥ चन्दनस्य कमलस्य मालतीकोरकस्य वृष-पल्लवस्य च । धान्यवारणकणा शतावरी शाल्मली वटजटामृतस्य च ॥ ८४ ॥ रक्त-पित्तकुलकण्डनाभिधो जायते रसवरोऽस्र-पित्तिनाम् । प्राणदो मधुवृषद्रवैरयं सेवतस्तु गुञ्जकृष्णलैर्मितः ॥ ८५ ॥ नास्त्यनेन सममत्र भूतले भेषजं किमपि रक्तपित्ति-नाम् ॥ ८६ ॥

पारा, गन्धक, मूँगाभस्म, सोनामक्खी की भस्म, सीसकभस्म, वङ्गभस्म इन सम्पूर्ण द्रव्यों को अलग-अलग, चन्दन का काढ़ा, कमल, मालती के फूल, वासापत्र, धनियाँ, गज-पीपल, शतावरी, सेमल की जड़, वटजटा, गिलोय,

इनके रस से तीन—तीन भावना देना चाहिए। मात्रा—२ रत्ती, अनुपान शहद या वासा रस। यह रस रक्तपित्त के रोगियों के लिए अमृत के समान है। इसकी समानता का रक्त पित्त के लिये कोई दूसरा रस नहीं है ॥ ८३ ८६ ॥

रक्तपित्तान्तक रस।

जाती कोपफले मांसी कुष्ठं तालीशपत्रकम्। माक्षिकं मृतलौहञ्च अभ्रं द्रव्यं समांशकम् ॥ ८७ ॥ सर्वतुल्यं मृतं तारं समं निष्पिष्य वारिणा। द्विगुञ्जाभा वटी कार्या पित्तरोगविनाशिनी ॥ ८८ ॥ कोष्ठाश्रितञ्च यत्पित्तं शाखाश्रितमथापि वा। शूलञ्चैवाम्लपित्तञ्च पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥ ८९ ॥ दुर्नामं भ्रान्तिवान्तिञ्च क्षिप्रमेव विनाशयेत्। रक्तपित्तान्तको ह्येषः काशिराजेन भाषितः ॥ ९० ॥

जावित्री, जायफल, जटामासी, कुष्ठ, तालीसपत्र, सोनामक्खी की भस्म, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, हरएक द्रव्य बराबर-बराबर एक एक भाग, चाँदी की भस्म ८ भाग, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को इकट्ठा कर पानी के साथ घोंटकर २ रत्ती प्रमाण की गोली बना लेना चाहिए। यह रस पित्त से उत्पन्न रोगों को शान्त करता है। कोठे में गया हुआ पित्त, शाखाश्रित पित्त, शूल, अम्लपित्त, पीलिया, हलीमक, बवासीर, सिर में चक्कर आना, इन सम्पूर्ण रोगों को यह रस तुरन्त ही हरण करता है ॥ ८७ ९० ॥

त्रिवृतादिमोदक।

त्रिवृता त्रिफला श्यामा पिप्पली शर्करा मधु। मोदकं सन्निपातोर्ध्वरक्तपित्तज्वरापहम् ॥ ९१ ॥

निसोत, त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आँवला), श्यामा लता, पीपल हर एक द्रव्य बराबर-बराबर लेकर और इन सबके तोल से दूनी खाँड लेकर विधि के अनुसार पाक कर ले। जब तैयार हो जावे इसको कर थोड़ा शहद मिलाकर ३ मासे के लड्डू बना लेवे। ये मोदक सेवन कराने से सन्निपातज्वर, ऊर्ध्वग रक्तपित्त, ज्वरादि अनेक रोग दूर होते हैं ॥ ९१ ॥

तीक्ष्णादि वटिका।

खर्पराभ्ररसास्तुल्यास्तीक्ष्णञ्च द्विगुणं मतम्। तीक्ष्णपादसमं स्वर्णं जतुक्वाथेन सप्तधा ॥ ९२ ॥ भावयित्वा ततः कार्या द्विगुञ्जा प्रमिता वटी। पलङ्कषाकषायेण रसेनोदुम्बरस्य वा ॥ ९३ ॥ प्रयोज्या वटिका ह्येषा शुभा तीक्ष्णादिनामिका। रक्तपित्तं क्षयं कासं यक्ष्माणं श्वसनं ज्वरम् ॥ ९४ ॥ निहन्यात् सकलान् रोगान् केशरी करिणं यथा ॥ ९५ ॥

खर्परभस्म, अभ्रकभस्म, रससिन्दूर, हर एक बराबर बराबर १ भाग, तीक्ष्ण लोहभस्म २ भाग, स्वर्णभस्म ½ भाग, इन सबको इकट्ठा कर लाख के काढ़े से सात भावनाएँ देकर २ रत्ती प्रमाण की गोली बना लेवे। अनुपान—गुग्गुल का काढ़ा या गूलर का रस। इन गोलियों के व्यवहार से रक्तपित्त, क्षय, खाँसी, यक्ष्मा, श्वासक ज्वर इत्यादि अनेक रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार सिंह हाथियों को ९२-९५ ॥

उशीरासव।

उशीरं वालकं पद्मं काश्मीरं नीलमुत्पलम्। प्रियङ्गुपद्मकं लोध्रं मञ्जिष्ठा धन्वयासकम् ॥ ९६ ॥ पाठां किराततिक्तञ्च न्यग्रोधोदुम्बरं शटीम्। पर्पटं पुण्डरीकञ्च पटोलं काञ्चनारकम् ॥ ९७ ॥ जम्बुशाल्मलिनिर्यासं प्रत्येकं पलसम्मितम्। सर्वं सुचूर्णितं कृत्वा द्राक्षायाः पलविंशतिम् ॥ ९८ ॥ धातकीं षोडशपलां जलद्रोणद्वये क्षिपेत्। शर्करायास्तुलां दत्त्वा क्षौद्रस्यार्द्धतुलान्तथा ॥ ९९ ॥ मासं संस्थापये-

भाण्डे मांसीमरिचधूपिते । उशीरासव इत्येष रक्तपित्तविनाशनः । पाण्डुकुष्ठ-प्रमेहार्शः कृमिशोथहरस्तथा ॥ १०० ॥

खस, सुगन्धबाला, कमल, गम्भारी, नील कमल, फूलप्रियगु, पद्माख, लोध, मजीठ, जवासा, पाढ़ी, चिरायता, बड़ की छाल, गूलर की छाल, कचूर, पित्तपापड़ा, कूठ, परवल की पत्तियाँ, कचनार की छाल, जामुन की छाल और सेमर का गोंद प्रत्येक का चूर्ण ४ तोले, मुनक्का १ सेर, धाय के फूल ६४ तोले, चीनी ४ सेर, मधु २॥ सेर और जल २५ सेर ४८ तोला, इन सबको एकत्र मिलाकर किसी मिट्टी के बड़े पात्र में रख देवे, उस पात्र के मुख पर बड़ा शकोरा रखकर मिट्टी से सन्धिस्थान को मुद्रित कर देवे। परन्तु उस पात्र को पहिले ही जटा मांसी और मिरिच से धूपित कर देवे। इन औषधों को एक मासपर्यन्त बन्द रहने देवें। तदनन्तर निकाल के वस्त्र से छानकर बोतलों में अथवा मिट्टी ही के पात्र में भरकर रख लेवें। इसका नाम उशीरासव है। इसका सेवन करने से रक्तपित्त, पाण्डु, कुष्ठ, प्रमेह, बवासीर, कृमिरोग और शोथरोग नष्ट होते हैं ॥ ६६ १०० ॥

रक्तपित्त में अपथ्य।

अधोगतेच्छर्दनं मूर्ध्वनिर्गमे विरेचनं स्यादुभयत्र लङ्घनम् । पुरातनाः षष्टिक शालिकोद्रवप्रियंगु नीवारामव प्रशातिका ॥ १०१ ॥ मुद्गामसूराश्चणका चणकास्तुवर्यो मुकुष्ट काश्चिद्गट वर्मिमत्स्याः शशककपोतो हरिणैणलावः शरारिपारावत वर्त्तकाश्च ॥ १०२ ॥ वकाउरभ्राश्च सकालपुच्छाः कपिञ्जलाश्चापिकषायवर्गः । गवामजायाश्चपयोघृतंचघृतं महिष्याः पनसं पियालम् ॥१०३॥ रम्भाफलंकच्चट तुण्डुलीयं पटोल वेत्राग्र महार्द्रकाणि । पुराण कूष्माण्ड फलं चपक्वं तालानि तद्वीज जलानि वासा ॥ १०४ ॥ स्वादूनि बिम्बानि च दाडिमानि खर्जूरधात्रीमिशि नारिकेलम् । कशेरु शृङ्गाटमरुष्करणि कपित्थ शालूक परूषकाणि ॥१०५॥ भूनिम्बशाकं पिचुमर्द पत्रं तुम्बीकलिङ्गानि चलाजशक्तुः । द्राक्षासितामाक्षिकमैदयवश्च शीतोदकं चौद्भिद वारिचापि ॥ १०६ ॥ सेकोऽवगाहः शतधौतसर्पिः रभ्यङ्ग योगः शिशिरः प्रदेहः । हिमानिलश्चंदनमिन्दु पादाः कथाविचित्राश्चमनोनुकूलाः ॥ १०७ ॥ धाराग्रहंभूमिग्रहंसुशीतं वैदूर्य मुक्तामणि धारणं च । रक्तोत्पलाम्भोरुहपत्र शय्या क्षामाम्बरं चोपवनमसुशीतम् ॥ १०८ ॥ प्रियङ्गु युक चन्दन रूपितानामालिङ्गनं चापि वराङ्गनानाम् पद्माकराणां सरितां-ह्रदानां चन्द्रोदयानां हिमवद्दरीणाम् १०९ सुशीतलानां गिरिनिर्झराणां श्रुति-प्रशस्तानिच कीर्तितानि । मकुष्टनीरं हिमवालुका च मित्रंनृणां शोणित पित्त-रोगं ॥ ११० ॥

अधोगामी रक्तपित्त में वमन ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त में विरेचन और उभय गामी में लघन करना चाहिये। पुराना साठी चावल, अगहनी धान का चावल, कोदों, काँगनी, नीवार जौ, तीनी चावल, मूँग, मसूर, चना, अरहर, मोठ, अन्न, चिगट वर्मी दोनों प्रकार की मछली, खरगोश, कपोत (एक प्रकारका कबूतर) हिरन ऐन (मृगभेद) लवा, सेह कबूतर, बत्तख, बगला, मेढ़ा, दुग्धा, सफेद तीतर, कसैली औषधियाँ, गौतम बकरी का घी-दूध भैंस का घी, कटहल, चिरौंजी, केला, केचट (चौलाई भेद) चौलाई, परवल, बेत की कोपल अदरख पुरानापेठा, पके हुए ताड़ का फल और उसके बीजों का रस जल अडूसा, मीठा कदूरी का फल, मीठा अनार, खजूर, आँवला, सौंफ, नारियल,

कसेरू, सिंघाड़ा, भिलावा, कैथ, कमलकंद, फालसा चिरायता का शाक, नीम की पत्ती, तुम्बी, मतीरा, धान की खील के सत्तू, मुनक्का, मिश्री, शहद, ईख का रस, शीतल जल, औद्भिद जल से परिषेक (सींचना) डुबकी लगाकर स्नान, सौ बार धोया घी लगाना, तैल की मालिश, शीतल लेप, शीतल वायु, चन्दन का लेप, चाँदनी सेवन, मनोरंजक कथावार्ता, विनोद, फुहारेयुक्त घर में रहना, शीतल तहखाने में निवास, वैदूर्य तथा मोती आदि मणि धारण, केले, कमल आदि के पत्तों पर सोना, पतले बारीक कपड़े पहनना, गहरी छाँहदार फूल बगिया में रहना, फूलप्रिय प्रेम सहित चन्दन लेप किए सुन्दरी स्त्रियों का आलिंगन, कमल खिले नदी तालाब में विहार, चाँदनी में बर्फीले गुफामें रहना, झरनों युक्त शीतल पर्वतों पर विहार, शीतल जल और शीतल वायु, रक्तपित्त रोग में मित्र के समान लाभदायक है ॥ १०१-११० ॥

रक्तपित्त में अपथ्य।

व्यायामाध्वनिषेवणं रविकरस्तीक्ष्णानि कर्माणि च। क्षोभो वेगविधारणं चपलता हस्त्यश्वयानानि च ॥ १११ ॥ स्वेदास्रस्रुतिधूमपान सुरत क्रोधाः कुलत्थो गुडा। वार्ताकुस्तिलमाष सर्षपदधित्ती राशि कौपे पयः ॥ ११२ ॥ ताम्बूलं नवदाम्बु मद्यलशुनं शिम्बी विरुद्धाशनं कट्वाम्लं लवणं विदाहि च गणस्त्याज्योऽस्रपित्ते नृणाम् ॥ ११३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां रक्तपित्ता-धिकारः समाप्तः ॥

शारीरिक परिश्रम, पैदल मार्ग चलना, धूप, परिश्रम और क्रूरतापूर्ण काम करना, क्षोभ करना, मलमूत्र आदि के वेगों को रोकना, चंचलता (बार २ इधर-उधर घूमना उठना-बैठना) हाथी घोड़ा आदि की धक्के चलने वाली सवारी, स्वेदन, रक्त निकलवाना, धूम्रपान, मैथुन, क्रोध कुलथी, गुड़, बैंगन (ताजा जल) तिल, उरद, सरसों दही, क्षारीय पदार्थ कुएँ का जल पान, खस, की शराब, लहसुन, सेम; विरुद्ध अन्न चरपरे खट्टे नमकीन, जलन, उत्पन्न करने वाले पदार्थों का सेवन, रक्तपित्त के रोगी के लिए हानिकारक है ॥ १११-११३॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-रत्नावल्या रत्नप्रभाऽभिधायां व्याख्यायां रक्तपित्ताऽधिकारः समाप्तः ॥

अग्निमान्द्याधिकारः।

पाचकाग्नि की सर्वथा रक्षणीयता

सारमेतच्चिकित्सायाः परमग्नेश्च पालनम्। तस्माद् यत्नेन कर्त्तव्यं वह्नेस्तु प्रतिपालनम् ॥ १ ॥ अस्तु दोषशतं क्रुद्धं सन्तु व्याधिशतानि च। कायाग्निमेव मतिमान् रक्षन् रक्षति जीवितम् ॥२॥ समस्य रक्षणं कार्य्यं विषमे वातनिग्रहः। तीक्ष्णे पित्त-प्रतीकारो मन्दे श्लेष्मविशोधनम्[1] ॥३॥

पाचकाग्नि की यत्नपूर्वक रक्षा करना यही चिकित्सा का तत्त्व है, इससे यत्नपूर्वक अग्नि की रक्षा करनी चाहिये। सैकड़ों दोष कुपित हुये हों, सैकड़ों रोग उत्पन्न हुये हों, तथापि पहिले अग्नि की ही रक्षा करने से रोगी के जीवन की रक्षा हो सकती है। यदि अग्नि सम हो तो उसको उसी रूप में रक्षित रखना, विषमाग्नि हो तो वायु का शमन करना, तीक्ष्णाग्नि हो तो पित्त का शमन करना और यदि मन्दाग्नि हो तो कफ का शोधन करना चाहिये ॥ १-३ ॥

अग्निमान्द्य।

हरीतकी तथा शुण्ठी भक्ष्यमाणा गुडेन

[1] 'विशोषणं' इति पाठान्तरम्-कफ को सुखाना चाहिये यह भी अर्थ होता है।

च। सैन्धवेन युता वापि सातत्येनाग्निदीपनी ॥ ४ ॥

हरड़ और सोंठ को गुड़ या सेंधे नमक के साथ खाने से अग्नि बढ़ती है, अर्थात् यह योग अग्निदीपन है ॥ ४ ॥

सैन्धवादिचूर्ण।

सैन्धवं चित्रकं पथ्या लवङ्गं मरिचं कणा। टङ्कनं नागरं चव्यं यमानी मधुरी वचा ॥ ५ ॥ द्रव्याणि द्वादशैतानि समभागानि चूर्णयेत्। भावयेन्निम्बुकद्रावैस्त्रिसप्ताहं प्रयत्नतः ॥ ६ ॥ ततो माषद्वयं चूर्णं वारिणोष्णेन पाययेत्। सैन्धवेन सतक्रेण मस्तुना काञ्जिकेन वा। सैन्धवाद्यमिदं चूर्णं सद्यो वह्निं प्रदीपयेत् ॥ ७ ॥

सेंधानमक, चीता का मूल, हरड़, लौंग, मिरिच, पीपरि, सोहागा फूला हुआ, सोंठ, चव्य, अजवाइन, सौंफ और वच, इन १२ औषधों का समभाग चूर्ण एकत्रित कर २१ दिन पर्यन्त नींबू के रस में भावना देकर सुखा लेवे। इसकी मात्रा २ मासा। उष्ण जल, सेंधानोन मिला तक्र, दही का पानी अथवा कानी, इनमें से किसी एक के साथ सेवन करना चाहिये। सेवन करने से शीघ्र ही अग्नि दीप्ति होती है ॥ ५-७ ॥

हिङ्ग्वष्टक चूर्ण

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे समधरणधृतानामष्टमो हिङ्गुभागः। प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषा चूर्णमेतत् जनयति जठराग्निं वातरोगांश्च हन्ति ॥ ८ ॥

अजमोदात्र यमानी अग्नेरत्यन्तदीपनत्वादिति भानुदासगोपालदासौ। चूर्णं भक्तोपरि दत्त्वा घृतेन सन्धीय ग्रासत्रयं भोजनीयमिति भानुदासः।

सोंठ, मिरिच, पीपरि, अजवाइन, सेंधा नमक, स्याह जीरा और सफेद जीरा ये सब औषध समभाग हों तथा हींग सब औषध का अष्टमांश हो, इनको कूट पीसकर चूर्ण[1] बना लेवे। भोजन करने के समय पहले ग्रास के साथ घृत में मिलाकर इस चूर्ण का सेवन करने से अग्नि की दीप्ति और वातजन्यरोगों का नाश होता है ॥ ६ ॥ भानुदास कहते हैं कि भात में इस चूर्ण को मिश्रितकर घी में सान कर पहिले तीन ग्रास भोजन करना चाहिये। मात्रा—१ माशा ॥ ८ ॥

बृहदग्निमुख चूर्ण

द्वौ क्षारौ चित्रकं पाठा करञ्जं लवणानि च। सूक्ष्मैलापत्रकं भार्गी क्रिमिघ्नं हिङ्गुपुष्करम् ॥ ९ ॥ शटी दार्वी त्रिवृन्मुस्तं वचा चेन्द्रयवस्तथा। धात्रीजीरकवृक्षाम्लं श्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥१०॥ अम्लवेतसमम्लीका यमानी सुरदारु च। अभयातिविषा श्यामा हवुषारग्वधं समम्। ११ ॥ तिलमुष्ककशिग्रूणां कोकिलाक्षपलाशयोः। क्षाराणि लौहकिट्टञ्च तप्तं गोमूत्रसेचितम् ॥ १२ ॥ समभागानि सर्वाणि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्। मातुलुङ्गरसेनैव भावयेच्च दिनत्रयम् ॥ १३ ॥ दिनत्रयन्तु शुक्तेन आर्द्रकस्य रसेन च। अत्यग्निकारकं चूर्णं प्रदीप्ताग्निसमप्रभम्। १४ ॥ उपयुक्ताविधानेन नाशयत्यचिराद्गदान् ॥ अजीर्णकमथो गुल्मान् प्लीहानं गुदजानि च ॥१५॥ उदराण्यन्त्रवृद्धिञ्च अष्ठीलांवातशोणितम् । प्रणुदत्युल्बणान् रोगान् नष्टमग्निं प्रदीपयेत्॥ १६ ॥

[1] चूर्ण बनाने से पहिले हींग और दोनों जीराओं को भून लेना चाहिये।

समस्तव्यञ्जनोपेतं भक्तं कृत्वा सुभाजने । दापयेदस्य चूर्णस्य माषद्वयमितं शुभम् । गोदोहमात्रात्तत् सर्वं द्रवीभवति सोष्मकम् ॥ १७ ॥

जवाखार, सज्जीखार, चीता, पाढ़ी कजा के मूल की छाल, पाँचों नमक, छोटी इलायची के दाने, तेजपात, भारङ्गी, वायविडङ्ग, हींग, पुहकरमूल, कचूर, दारुहलदी, निशोथ, नागरमोथा, बच, इन्द्रजौ, आँवला, जीरा, अमलोनिया (विषांबिल या कोकम), गजपीपरि, कलौंजी अमलवेत, इमली, अजवाइन, देवदारु, हरीतकी, अतीस, अनन्तमूल, हाऊबेर, अमिलतास की फली का गूदा, तिल की लकड़ी का क्षार, मोखा का क्षार, सहिजन की छाल का क्षार, ताल मखाना के पञ्चाङ्ग का क्षार, पलाश का क्षार, तपाकर गोमूत्र में बुझाया हुआ मण्डूर, इन सब औषधों को समान परिमाण में लेकर महीन चूर्ण बनावे । उस चूर्ण को तीन दिन तक बिजौरा नींबू के रस में, तीन दिन शुक्र में और तीन दिन पर्यन्त अदरख के रस में खरल करके सुखा देवे । विधि से सेवन करने पर यह चूर्ण अजीर्ण, गुल्म, प्लीहा बवासीर, उदर, अन्त्रवृद्धि, अष्ठीला और वातरक्त आदि अनेक उल्वण रोगों को शीघ्र नष्ट कर शीघ्र अन्नों का परिपाचन और अग्नि का दीपन करता है । यह प्रज्वलित अग्नि के समान है । थाली में भात, दाल, तरकारी, शाक और घृत आदि भोज्य पदार्थों को परोसकर, उनमें २ मासा वृहदग्निमुख चूर्ण मिलाकर थोड़ी देर रख देवे, इससे वह अन्न गल जायगा और उसमें से धुवाँ सा निकलने लगेगा। मात्रा--१ मासा से २ मासा तक ॥ ११-१७ ॥

वडवानलचूर्ण ।

सैन्धवं पिप्पलीमूलं पिप्पली चव्यचित्रकम् । शुण्ठी हरीतकी चेति क्रमवृद्धानि चूर्णयेत् ॥ १८ ॥ वडवानलनामैतच्चूर्णं स्यादग्निदीपनम् ॥ १९ ॥

सेंधा नमक १ भाग, पिप्पलीमूल २ भाग, पीपल ३ भाग, चव्य ४ भाग, चित्रक ५ भाग, सोंठ ६ भाग, हरड़ ७ भाग, इन सम्पूर्ण द्रव्यों का पृथक्-पृथक् चूर्ण कर मिला ले । इस चूर्ण से अग्नि प्रदीप्त होती है ॥ १८-१९ ॥

वडवामुखचूर्ण ।

पथ्यानागरकृष्णाकरञ्जबिल्वाग्निभिः सितातुल्यैः । वडवामुखं विजयते गुरुतरमपि भोजनं चूर्णम् ॥ २० ॥

हरड़, सोंठ, पीपल, करञ्ज की छाल, बिल्व फलमज्जा, चित्रक, हर एक द्रव्य बराबर लेकर चूर्ण कर ले । इस सम्पूर्ण चूर्ण के बराबर खाँड मिश्रण करे मात्रा--२ मासा । इस चूर्ण के सेवन करने से भारी से भारी भोजन पच जाता है ॥ २० ॥

भास्करलवण ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं धान्यकं कृष्णजीरकम् । सैन्धवञ्च विडञ्चैव पत्रं तालीशकेशरम् ॥ २१ ॥ एषां द्विपलिकानि भागान् पञ्च सौवर्चलस्य च । मरिचाजाजीशुण्ठीनामेकैकस्य पलं पलम् ॥ २२ ॥ त्वगेला चार्द्धभागेन सामुद्रात् कुडवद्वयम् । दाडिमात् कुडवञ्चैव द्वे पले चाम्लवेतसात् । ॥ २३ ॥ एतच्चूर्णीकृतं श्लक्ष्णं गन्धाढ्यममृतोपमम् । लवणं भास्करं नाम भास्करेण विनिर्मितम् ॥ २४ ॥ जगतस्तु हितार्थाय वातश्लेष्मामयापहम् । वातगुल्मं निहन्त्याशु वातशूलानि यानि च ॥ २५ ॥ तक्रमस्तुसुराशीधुशुक्तकाञ्जिकयोजितम् । जाङ्गलानां च मांसेन रसेन विविधेन च ॥ २६ ॥ मन्दाग्नेरश्नतो नित्यं भवेदाग्नेय पावकः । अर्शांसि ग्रहणीदोषं कुष्ठामयभगन्दरान् । २७ ॥ हृद्रोगमामदोषञ्च विबद्धानुदरे स्थितान् । प्लीहानमश्मरीञ्चैव श्वासका-

सोदरक्रमीन् ॥ २८ ॥ विशेषतः शर्करादीन् रोगान् नानाविधांस्तथा । पाण्डुरोगांश्च विविधान् नाशयत्यर्शनिर्यथा ॥ २९ ॥

पत्रतालीशादियोगादेव गन्धाढ्यं न पुनरपरचातुर्जातादिप्रक्षेपात् ।

पीपरि, पिपरामूल, धनिया, कालाजीरा, सेंधानमक, विड्नोन, तेजपात, तालीसपत्र और नागकेशर प्रत्येक ८ तोला, कालानमक २० तोला, मिरिच, जीरा और सोंठ प्रत्येक ४ तोला, दालचीनी और छोटी इलाइची के दाने प्रत्येक २ तोले, सामुद्रनोन ३२ तोला, अनार के दाने १६ तोला और अमलबेत ८ तोला; इनको भलीभाँति कूट पीस कपड़छान करके रख लेवे। सुगन्धित और अमृत के समान लाभदायक इस भास्करलवण का भगवान् भास्करजी ने संसार के हित के लिये आविष्कार किया था । मठा (छाछ), दही का पानी, सुरा, सीधु (ईख के रस का सिरका), काँजी, जङ्गली पशुओं का मांसरस आदि विविध अनुपानों के साथ इसका सेवन किया जाता है। इन अनुपानों के साथ सेवन करने पर यह लवण वातश्लैष्मिकरोग, वातगुल्म, वातिकशूल, अग्निमान्द्य, बवासीर, ग्रहणीविकार, कुष्ठ, भगन्दर, हृद्रोग, आमदोष, मलबद्धता, प्लीहा, अश्मरी (पथरी), श्वास, कास, उदररोग, अनेक प्रकार के शर्करा रोग पाण्डुरोग आदि अनेक प्रकार के रोगों को नष्ट करता है । अग्नि के दीपन के लिये यह महौषध है। इस लवण को सुगन्धित बनाने के अभिप्राय से इसमें किसी चातुर्जातादि सुगन्धित पदार्थों का प्रक्षेप नहीं किया गया है, किन्तु तालीसपत्र और तेजपात आदि औषध ही ऐसे हैं जिनके, योग से यह सुगन्धित हो जाता है॥ २१-२९ ॥

अग्निमान्द्यहर योग।

भोजनाग्रे सदा पथ्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम् । अग्निसन्दीपनं हृद्यं लवणार्द्रकम् भक्षणम्॥ ३० ॥

भोजन से पहिले सेंधानोन मिलाकर थोड़ा अदरख खाना चाहिये । इससे जिह्वा और कण्ठ की शुद्धि तथा अग्नि की दीप्ति होती है। यह हृदय के लिये लाभप्रद और सर्वदा पथ्य है ॥ ३० ॥

आमजीर्णचिकित्सा।

वचालवणतोयेन वान्तिरामे प्रशस्यते ॥ ३१ ॥

बच को पानी में पीसकर सेंधानमक के साथ सेवन करने से वमन हो जाता है, इससे आमदोष की शान्ति होती है ॥ ३१ ॥

धान्यनागरसिद्धं च तोयं दद्याद्विचक्षणः । आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं वस्तिशोधनम् ॥ ३२ ॥

धनियाँ तथा सोंठ के काढ़े को आमाजीर्ण में सेवन कराना चाहिए, इसके प्रयोग से शूल का शमन होता है तथा मूत्राशय साफ होता है ॥ ३२ ॥

विदग्धाजीर्ण की चिकित्सा।

अन्नं विदग्धं हि नरस्य शीघ्रं शीताम्बुना वै परिपाकमेति । तद्धस्य शैत्येन निहन्ति पित्तमाक्लेदिभावाच्च नयत्यधस्तात् ॥ ३३ ॥

विदग्धाजीर्ण में शीतल जल पीने से अन्न का शीघ्र ही परिपाक हो जाता है। तथा उस जल की ठंडक और द्रवत्व से दूषित पित्त नष्ट होकर अन्न अधोमार्ग से निकल जाता है ॥ ३३ ॥

हरीतकीधान्यतुषोदसिद्धा सपिप्पली सैन्धवसंप्रयुक्ता । सोद्गारधूमं भृशमप्यजीर्णं विजित्य सद्यो जनयेत् क्षुधाञ्च ॥ ३४ ॥

हरीतकी और पीपरि, इन दोनों को काँजी में पकाकर सेंधानमक के साथ सेवन करने से धूमयुक्त डकार का आना और अजीर्ण,

इनकी निवृत्ति होने से शीघ्र ही भूख लगती है ॥ ३४ ॥

विष्टब्धाजीर्णचिकित्सा।

विष्टब्धे स्वेदनं पथ्यं पेयञ्च लवणोदकम्। रसशेषे दिवास्वप्नं लङ्घनं वातवर्जनम्। ३५ ॥

विष्टब्धाजीर्ण में स्वेदन करना और नमक मिलाकर पानी पीना चाहिये। रसशेषाजीर्ण में दिन में शयन करना, उपवास करना और वायु से बचना लाभदायक होता है ॥ ३५ ॥

व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतः क्लान्तानतीसारिणः शूलश्वासवतस्तृषापरिगतान् हिक्कामरुत्पीडितान्। क्षीणान् क्षीणकफान् शिशून् मदहतान् वृद्धान् रसाजीर्णिनो रात्रौ जागरितान्नरान्निरशनान् कामं दिवा स्वापयेत् ॥ ३६ ॥

जो लोग सर्वदा व्यायाम, स्त्रीसङ्ग, रास्ता चलना और घोड़ा आदि की सवारी करके श्रमण किया करते हैं, इनके लिये तथा क्लान्त (थके हुए), अतिसाररोगी, शूलरोगी, श्वासरोगी, तृष्णारोगी, हिचकी और वायु से पीड़ित, क्षीणधातु, क्षीणकफ, शिशु, मदात्ययादि रोगी, वृद्ध, रसशेषाजीर्ण रोगी, रात में जागे हुये और निराहार मनुष्यों के लिये दिन में यथेष्ट शयन करना लाभदायक होता है ॥ ३६ ॥

सर्वाजीर्णनाशक विधि।

आलिप्य जठरं प्राज्ञो हिंगुत्र्यूषणसैन्धवैः। दिवास्वप्नं प्रकुर्वीत सर्वाजीर्णविनाशनम् ॥ ३७ ॥

हींग, सोंठ, मिरिच, पीपरि और सेंधा नमक, इनको पानी में पीसकर पेट पर लेप करके दिन में शयन करने से सब प्रकार के अजीर्णरोग नष्ट होते हैं ॥ ३७ ॥

अजीर्णहर योग।

पथ्यापिप्पलिसंयुक्तं चूर्णं सौवर्चलं पिबेत्। मस्तुनोष्णोदकेनाथ बुद्ध्वा दोषगतिं भिषक् ॥ ३८ ॥ चतुर्विधमजीर्णञ्च मन्दानलमरोचकम्। आध्मानं वातगुल्मञ्च शूलञ्चाशु नियच्छति ॥ ३९ ॥

हरड़, पीपरि और कालानमक, इन तीनों को सम भाग लेकर चूर्ण बनावे। दोषानुसार दही के पानी अथवा उष्णजल के साथ इस चूर्ण का सेवन करने से चार प्रकार के अजीर्ण, अग्निमान्द्य, अरोचक, आध्मान, वातगुल्म और शूलरोग नष्ट होते हैं ॥ ३८-३९ ॥

विसूचिकाचिकित्सा।

विसूचिकायां वमितं विरिक्तं सलङ्घितं वा मनुजं विदित्वा। पेयादिभिर्दीपनपाचनैश्च सम्यक् क्षुधार्त्तं समुपक्रमेत् ॥ ४० ॥

विसूचिकारोग में वमन, विरेचन और लङ्घन कराने के पश्चात् रोगी को भली भाँति भूख लगने पर दीपन और पाचन पेया आदि आहार के लिये देना चाहिये ॥ ४० ॥

जलपीतमपामार्गमूलं हन्ति विसूचिकाम ॥ ४१ ॥

चिरचिरा की जड़ को पानी में पीस कर पीने से विसूचिकारोग नष्ट होता है ॥ ४१ ॥

बालमूलस्य तु क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः। विसूचीनाशनः श्रेष्ठो जठराग्निविवर्धनः ॥ ४२ ॥

छोटी मूली के काढ़े मे पीपल का चूर्ण ऊपर से मिलाकर पिलाने से विसूचिका (हैज़ा) नाश को प्राप्त होता है तथा यह अग्निप्रदीपक है ॥ ४२ ॥

बिल्वनागरनिःक्वाथो हन्याच्छर्दि विसूचिकाम्। सतैलं कारवेल्लाम्बु नाशयेद्धि विसूचिकाम् ॥ ४३ ॥

बिल्व और सोंठ के काढ़े से कै तथा विसूचिका (हैज़ा) नष्ट होता है और तेलयुक्त करेले या रस भी विसूचिका को नाश करता है ॥ ४३ ॥

कुष्ठसैन्धवयो कल्कं चुक्रतैलसमन्वितम्। विसूच्यां मर्दनं कोष्णं खल्लीशूलनिवारणम् ॥ ४४ ॥

चूक (अभाव में काँजी) और तिल के तेल के साथ कूठ और लाहौरी नमक पीसकर गरम करके मर्दन (मालिश) करने से हाथ, पैर आदि का खल्लीशूल निवृत्त होता है ॥ ४४ ॥

व्योषं करञ्जस्य फलं हरिद्रां मूलं समावाप्य च मातुलुङ्गयाः। छायाविशुष्का गुटिकाः कृतास्ता हन्युर्विसूचीं नयनाञ्जनेन ॥ ४५ ॥

सोंठ, मिरिच, पीपरि, हरड, करञ्ज का फल, हलदी और बिजौरा का मूल, इनको पानी में पीसकर गोलियाँ बना लेवे। इन गोलियों को छाया में सुखाकर रख लेवे। पानी में घिसकर इसको आँखों में अञ्जन करने से विसूचिका नष्ट होती है ॥ ४५ ॥

गुडपुष्पशिखरीतण्डुलगिरिकर्णिकाहरिद्राभिः। अञ्जनगुटिका विलयति विसूचिकां त्रिकटुसंयुक्ता ॥ ४६ ॥

महुआ का फूल, चिरचिरा के बीज का चावल, सफेद कोयल की जड़, हल्दी और त्रिकटु इनको एकत्र पानी में पीसकर गोलियाँ बना लेवे। इस अञ्जन गुटिका को पानी में घिसकर आँखों में अञ्जन करने से विसूचिका रोग नष्ट होता है ॥ ४६ ॥

त्वक्पत्ररास्नाऽगुरुशिग्रु कुष्ठैरम्लप्रपिष्टैः सवचाशताह्वैः। उद्वर्त्तनं खल्लिविसूचिकाघ्नं तैलं विपक्वञ्च तदर्थकारि ॥ ४७ ॥

दालचीनी, तेजपात, रास्ना, अगर, सहिजने की छाल, कूठ, बच और सोया, इन कुल औषधों को एकत्र काँजी में पीसकर मर्दन करने से अथवा इन औषधों के कल्क और काँजी के साथ पकाकर सिद्ध किये हुये तैल का मर्दन करने से विसूचिका और विसूचिकाजन्य हाथ पैर आदि का सिकुड़ना, ऐंठना आदि नष्ट होते हैं ॥ ४७ ॥

अलसकचिकित्सा।

वमनं त्वलसे पूर्वं लवणेनोष्णवारिणा। स्वेदो वर्त्तिर्लङ्घनञ्च क्रमश्चातोऽग्निवर्द्धनः ॥ सेवयेदौषधं पश्चात् मूत्रकृद्वायुनाशनम् ॥ ४८ ॥

अलसकरोग में पहिले लवण मिला उष्ण[1] जल पिलाकर वमन करावे। पश्चात् स्वेद, [2]वर्ति, उपवास और अग्निवर्धक क्रियाओं को करे। तदनन्तर मूत्रजनक (जिससे पेशाब उतरे) और वायुनाशक औषधों का सेवन कराना चाहिये ॥ ४८ ॥

उदरवेदनाचिकित्सा।

सरुक् चानद्धमुदरमम्लपिष्टैः प्रलेपयेत्। दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिंगुसैन्धवैः ॥ ४९ ॥

उदर में पीड़ा होती हो और तना हो तो देवदारु, बच, कूठ, सोया, हींग और लाहौरी नमक, इनको काँजी में पीसकर लेप करना चाहिये ॥ ४९ ॥

तक्रेण युक्तं यवचूर्णमुष्णं सक्षारमर्त्तिं जठरे निहन्यात्। स्वेदो घटैर्वा बहुवाष्पपूर्णैः कोष्णैस्तथान्यैरपि पाणितापैः ॥ ५० ॥

तक्रेण सन्धाय यवचूर्णं सयवक्षारं चूर्णं खोलके तप्तं कृत्वा उदरे स्वेदो

1—दो तोले मैनफल भी मिला लवे तो और अच्छा है।

2—मकुल के बीज को पीसकर बत्ती बनावे उस बत्ती को गुदा में रखना चाहिये।

दातव्यः लेपो वा इति भानुः । अम्ल-घोलांश[1] ४ चतुष्पलानि यवचूर्णं पलद्वयं यवक्षारमेकपलञ्च सर्वं स्थाल्यां पक्त्वयम् । अतितप्ते सति अपरघटिकायां किञ्चिद्दत्वा तां घटीमुदरे भ्रामयेदिति त्रिपुरारिः ।

जौ का आटा और जवाखार का चूर्ण, इनको माठा में मिलाकर आग पर उष्ण करके उससे उदर पर स्वेद (सेंक) देवे अथवा लेप कर देवे, यह तो भानुजी का मत है । त्रिपुरारिजी कहते हैं कि—'खट्टा घोल १६ तोला, जौ का चूर्ण ८ तोला और जवाखार ४ तोला, इन सब द्रव्यों को मिश्रित कर बटली में पकावे, जब अत्यन्त तप्त हो जावे, तब किसी दूसरे घड़ा में डालकर उस घड़े की पेंदी उदर पर घुमावे ।' बहुत भाप से भरे हुए घड़ों से स्वेदन करना अथवा हाथ गरम करके उससे उदर को सेंकना आदि क्रियाओं से उदर की पीड़ा दूर होती है ॥ ५० ॥

तीव्रार्त्तिरपि नाजीर्णी पिबेच्छूलघ्नमौषधम् । दोषच्छन्नोऽनलो नालं पक्तुं दोषौषधाशनम् ॥ ५१ ॥

उदर में अत्यन्त पीड़ा होने पर भी अजीर्ण रोगी शूलनाशक औषध का सेवन न करे । कारण यह कि जठराग्नि जब वात आदि दोषों से ढँकी रहती है, तब दोष, औषध और किसी भी खाये हुए द्रव्य का परिपाक नहीं कर सकती है ॥ ५१ ॥

लवङ्गाद्य मोदक ।

लवङ्गं पिप्पली शुण्ठी मरिचं जीरकद्वयम् । केशरं तगरञ्चैव एला जातीफलं तुगा ॥ ५२ ॥ कट्फलं तेजपत्रञ्च पद्मबीजं सचन्दनम् । कंकोलमगुरुश्चैव उशीरमभ्रकं तथा ॥ ५३ ॥ कर्पूरं जातिकोषं च मुस्तं मांसी यवस्तथा । धान्यकं शतपुष्पा च लवङ्गं सर्वतुल्यकम् ॥ ५४ ॥ सर्वचूर्णद्विगुणितां शर्करां विनियोजयेत् । सर्वरोग निहन्त्याशु अम्लपित्तं सुदारुणम् ॥५५॥ अग्निमान्द्यमजीर्णञ्च कामलापाण्डुरोगनुत् । बलपुष्टिकरञ्चैव विशेषात् शुक्रवर्द्धनम् ॥ ५६ ॥ ग्रहणीं सर्वरूपाञ्च अतीसारं सुदुर्जयम् । अश्विभ्यां निर्मितं हन्ति लवङ्गाद्यमिदं शुभम् ॥ ५७ ॥

लौंग, पीपरि, सोंठ, मिरिच, सफेद जीरा, स्याह जीरा, नागकेशर, तगर, इलायची, जायफल, वंशलोचन, कायफल, तेजपात, कमलगट्टा, रक्तचन्दन, शीतलचीनी, अगर, खस, अभ्रकभस्म, कपूर, जावित्री, नागरमोथा, जटामासी, जौ, धनिया और सोया प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, लौंग, का चूर्ण २१ तोले, इनको एकत्र मिला लेवे । तदनन्तर १०४ तोले मिश्री लेकर उसकी चाशनी बनावे, उस चाशनी को पूर्वोक्त चूर्ण में मिलाकर लड्डू बना लेवे । इसका सेवन करने से अम्लपित्त, दारुण, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, कामला, पाण्डुरोग और सब प्रकार की ग्रहणी, दुर्जय अतिसार आदि अनेक रोग शीघ्र ही नष्ट होते हैं तथा बल वीर्य की वृद्धि होती है । इस लवङ्गादि मोदक का आविष्कार अश्विनीकुमारों ने किया था ॥ ५२-५७ ॥

वाताजीर्ण में सुकुमारमोदक ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं नागरं मरिचं शिवा । धात्री चित्रकमभ्रञ्च गुडूची कटुरोहिणी ॥ ५८ ॥ प्रत्येकमेषां कर्षांशं चूर्णं दन्त्यास्त्रिकार्षिकम् । द्विपलं त्रिवृताचूर्णं शर्करायाः पलत्रयम् ॥ ५९ ॥ मधुना मोदकं कार्य्यं सुकुमारकमोदकम् । वाताजी-

[1] घोलम्, वली । 'ससनेहजलमथिते दध्नि' । अर्थात् मलाईयुक्त दही में चौथाई पानी डालकर मथानी से मथकर जो माठा तैयार किया जाता है, उसको घोल कहते हैं ।

गुल्मशमनं विष्टम्भे परमौषधम्। उदावर्त्ता-नाहहरं सर्वाजीर्णविनाशनम् ॥ ६० ॥

पीपरि, पिपरामूल, सोंठ, मिरिच, हरड, आंवला, चीता, अभ्रकभस्म गिलोय और कुटकी, प्रत्येक का १ तोला चूर्ण, दन्ती (जमालगोटे की जड़) का चूर्ण ३ तोले, निसोथ का चूर्ण ८ तोले और चीनी १२ तोले, इन सब द्रव्यों को एकत्र कर मधु मिलाकर लड्डू बना लेवे। इसका नाम सुकुमारमोदक। इसका सेवन करने से वाताजीर्ण, विष्टम्भ, उदावर्त, आनाह और सब प्रकार के अजीर्ण रोग आराम होते हैं ॥ ५८-६० ॥

वाताजीर्ण में हरीतकी प्रयोग।

हरीतक्याः शतं ग्राह्यं तक्रैः स्विन्नञ्च कारयेत्। यत्नाद्बीजं समुद्धृत्य चूर्णानीमानि पूरयेत् ॥ ६१ ॥ षड्‌षणं पञ्चपटु यमानीद्वयमेव च। त्रिक्षारं हिङ्गुदिव्यञ्च कर्षद्वयमितं पृथक् ॥ ६२ ॥ श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वं चुक्राम्लेनापि भावयेत्। लिम्पाकस्वरसेनापि भावयेच्च दिनत्रयम् ॥ ६३ ॥ खादयेदभयामेकां सर्वाजीर्णविनाशिनीम्। चतुर्विधमजीर्णञ्च वह्निमान्द्यं विसूचिकाम्। गुल्मशूलादिरोगांश्च नाशयेदविकल्पतः ॥ ६४ ॥

एक सौ १०० हरड़ लेकर मठा में उबाल लेवे। तदनन्तर उन हरड़ों के बीज निकाल डाले, किन्तु बीज निकालने में ऐसी सावधानी रखनी चाहिये कि छिलकों के टुकड़े अलग अलग न हो जावें, नहीं तो उसमें चूर्ण भरने की सुविधा न होगी। पश्चात् पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चीता, सोंठ, मिरिच, पाँचो नमक, अजवाइन, अजमोद, जवाखार, सज्जीखार और सोहागा की खील प्रत्येक २ तोले, इनका चूर्ण बनाकर पूर्वोक्त हरीतकी के छिलकों के भीतर भरकर सूत से बाँध देवे। तदनन्तर चूक के रस में और नीबू के रस में तीन तीन दिन भावना देकर रख लेवे। प्रतिदिन एक-एक हरड़ खाने से ४ प्रकार के अजीर्ण, अग्निमान्द्य, विसूचिका, गुल्म और शूल आदि रोग निःसंदेह नष्ट होते हैं ॥ ६१-६४ ॥

विष्टंभ में त्रिवृतादिमोदक।

त्रिवृद्दन्तीकणामूलं कणा वह्नि पलं पलम्। सर्वतुल्यामृता शुण्ठी गुडेन सह मोदकम्। कर्षार्द्धं भक्षयेन्नित्यं दीप्ताग्निं कुरुते क्षणात् ॥ ६५ ॥

निशोथ का मूल, दन्ती (जमालगोटे की जड़) का मूल, पिपरामूल, पीपरि और चीता की जड़ प्रत्येक ४ तोला, गिलोय १० तोला, सोंठ १० तोला इनका चूर्ण बनाकर एकत्र मिला लेवे। तदनन्तर १ सेर गुड़ लेकर चाशनी बनावे, उस चाशनी को चूर्ण में मिलाकर छ-छः माशे के लड्डू बाँध लेवे। एक लड्डू का प्रतिदिन सेवन करने से शीघ्र ही अग्नि प्रदीप्त होती है ॥ ६५ ॥

अग्निमुखलवण।

चित्रकं त्रिफला दन्ती त्रिवृता पुष्करं समम्। यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रन्तु सैन्धवम् ॥ ६६ ॥ भावयित्वा स्नुहीक्षीरैस्तत् काण्डे निःक्षिपेत् ततः। मृदुपङ्केनानुलिप्तं प्रक्षिपेज्जातवेदसि ॥ ६७ ॥ सुदग्धं तु समुद्धृत्य संचूर्ण्योष्णाम्बुना पिबेत्। एतदग्निमुखं नाम लवणं वह्निकृत् परम्। यकृत्प्लीहोदरानाहगुल्मार्शःपार्श्वशूलनुत् ॥ ६८ ॥

(सर्वं चूर्णमेकीकृत्य पञ्चरक्तिकमुष्णजलेन पिबेत्।)

चीता, त्रिफला, दन्ती (जमालगोटा) का मूल, निसोथ, पुहकरमूल प्रत्येक समभाग, मिले हुए कुल औषधों के समान सेंधानोन, इन कुल औषधों का एकत्र चूर्ण बनावे। तदनन्तर उस

चूर्ण में पहिले थूहर के दूध की भावना देकर सुखा लेवे। पश्चात् थूहर की मोटी लकड़ी के मध्य में पोपला बनाकर उसमें चूर्ण को भर देवे, लकड़ी के मुख को उसी के (थूहर के) दूसरे टुकड़े से मुद्रित कर, ऊपर चिकनी मिट्टी का लेप करके सुखा लेवे। तदनन्तर कण्डों की आग में डाल देवे, भलीभाँति जल जाने पर निकाल कर मिट्टी को अलग करके चूर्ण बना कर रख लेवे। इसकी मात्रा ४ रत्ती। अनुपान-उष्ण जल। इसका सेवन करने से अग्नि अत्यन्त दीप्त होती है, तथा यकृत, प्लीहा, उदर, आनाह, गुल्म, बवासीर और पार्श्वशूल रोग नष्ट होते हैं ॥ ६६-६८ ॥

विष्टम्भ में शार्दूलकाञ्जिक।

पिप्पली शृङ्गबेरञ्च देवदारुसचित्रकम्। चविकां बिल्वपेशीश्च अजमोदां हरीतकीम् ॥ ६९ ॥ महौषधं यमानीञ्च धन्याकं मरिचं तथा। जीरकञ्चापि हिङ्गुञ्च काञ्जिकं साधयेद्भिषक् ॥७०॥ एष शार्दूलको नाम काञ्जिकोऽग्निबलप्रदः। सिद्धार्थतैलसंभृष्टो दशरोगान् व्यपोहति ७१ ॥ कासं श्वासमतीसारं पाण्डुरोगं सकामलम्। आमञ्च गुल्मरोगञ्च वातशूलं सवेदनम् ॥ ७२ ॥ अर्शांसि श्वयथुञ्चैव भुक्ते पीते च साम्पतः। क्षीरपाकविधानेन काञ्जिकस्यापि साधनम् ॥ ७३ ॥

(सर्वचूर्णापेक्षया अष्टगुणं काञ्जिकं चतुर्गुणजलेन पक्त्वा काञ्जिकशेषमवतारयेत्। वह्निबलानुसारिण्या मात्रया दद्यात्।)

पीपरि, अदरख, देवदारु, चीता की जड़, चव्य, बेलगिरी, अजमोद, हरीतकी, सोंठ, अजवाइन, धनिया, मिरिच, जीरा और हींग प्रत्येक का चूर्ण समभाग, कुल मिश्रित चूर्ण से आठगुनी काजी और काजी से चौगुना जल डाल कर पकावे। जब जल नि शेष हो जावे, तब उतार लेवे। इसका नाम शार्दूल काञ्जिक है। अग्नि और बल का वर्धक है। इसको सरसों के तेल में छौंककर अग्नि और बल के अनुसार योग्य मात्रा में देना चाहिये। इसका सेवन करने से कास, श्वास, अतीसार, पाण्डुरोग, कामला, आमदोष, गुल्मरोग, वेदनायुक्त, वातशूल, बवासीर और शोथरोग नष्ट होते हैं। क्षीरपाक की रीति से (जिस रीति के अनुसार ऊपर बताने की विधि लिखी है उसी रीति से) इस काञ्जिक को सिद्ध करना चाहिये ॥ ६९-७३ ॥

मुस्तकारिष्ट।

मुस्तकस्य तुलाद्वन्द्वं चतुर्द्रोणेऽम्बुनः पचेत्। पादशेषे रसे तस्मिन् क्षिपेद् गुडतुलात्रयम् ॥ ७४ ॥ धातकीं षोडशपलां यमानीविश्वभेषजम्। मरिचं देवपुष्पञ्च मेथीं वह्निञ्च जीरकम् ॥ ७५ ॥ पलयुग्ममितं क्षिप्त्वा रुद्धभाण्डे निधापयेत्। संस्थाप्य मासमात्रन्तु ततः संस्रावयेद्भिषक् ॥ ७६ ॥ अजीर्णमग्निमान्द्यञ्च विसूचीमपि दारुणम्। ग्रहणीं विविधां हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ ७७ ॥

मोथा दस सेर। पाक करने के लिए जल ८ द्रोण (१ मन २२ सेर ३२ तोला), जब पकते-पकते २ द्रोण जल (२१ सेर ४८ तोला), रह जावे तो उसमें गुड़ १५ सेर, धाय के फूल १६ पल (६४ तोला), अजवायन, सोंठ, कालीमिर्च लौंग, मेथी के बीज, चित्रक, जीरा, प्रत्येक ८ तोले, चूर्ण मिलाकर एक महीने तक मिट्टी के घड़े में बन्द कर रख दे. इसके बाद छान कर काम में लावे। इसके सेवन से अजीर्ण, मन्दाग्नि, विसूचिका (हैजा) तथा ग्रहणी आदि रोग नाश को प्राप्त होते हैं ॥ ७४-७७ ॥

अथ रसप्रयोगः

श्रीरामबाण रस।

पारदामृतलवङ्गगन्धकं भागयुग्मम-

रिचेन मिश्रितम्। जातिकोषफलमर्द्धभागिकं तिन्तिडीफलरसेन मर्दितम् ॥७८॥ माषमात्रमनुपानयोगतः सद्य एव जठराग्निदीपनः। संग्रहग्रहणिकुम्भकर्णकं सामवातखरदूषणं जयेत् ॥ ७९ ॥ अग्निमान्द्यदशवक्त्रनाशनो रामबाण इव विश्रुतो रसः ॥ ८० ॥

पारा, मीठा विष लौंग और गन्धक प्रत्येक एक तोला, काली मिरिच २ तोले, जायफल आधा तोला, इन औषधों को एकत्र कर इमिली के फल के रस में घोटकर उर्द के समान गोलियाँ बना लेवे। यह रामबाण रस दोषानुसार अनुपान के साथ प्रयुक्त होने पर संग्रहणीरूपी कुम्भकर्ण को, आमवातरूपी खरदूषण को और अग्निमान्द्यरूपी रावण को नष्ट करके शीघ्र ही अग्नि को दीपन करता है ॥ ७८-८० ॥

अग्नितुण्डी वटी।

शुद्धसूतं विषं गन्धमजमोदाफलत्रयम्। सर्जिक्षारं यवक्षारं वह्निसैन्धवजीरकम् ॥ ८१ ॥ सौवर्चलविडङ्गानि सामुद्रं टङ्कनं समम्। विषमुष्टिं सर्वतुल्यं जम्बीराम्लेन मर्दयेत्। मरिचाभां वटीं खादेदग्निमान्द्यप्रशान्तये ॥ ८२ ॥

पारा, विष, गन्धक, अजवाइन, आँवला, हरड़, बहेड़ा, सज्जीखार, जवाखार, चीता का मूल, सेंधा नमक, जीरा, कालानमक, बायविडङ्ग, समुद्रनोन और सोहागा फूला हुआ, प्रत्येक समभाग और सबके बराबर कुचिला, इन सब औषधों को एकत्र कर नींबू के रस में खरल करके कालीमिर्च बराबर गोली बनावे। इसका सेवन करने से अग्निमान्द्य रोग दूर होता है ॥ ८१-८२ ॥

टिप्पणी—इसे लगातार १२ दिन तक सेवन न करना चाहिए।

अग्निरस।

मरिचाब्दवचा कुष्ठं समांशं विषमेन च। आर्द्रकस्य रसैः पिष्ट्वा मुद्गमात्रान्तु कारयेत्। अयमग्निरसो नाम सर्वाजीर्णप्रशान्तये ॥ ८३ ॥

(सर्व समं विषम्)

मिरिच, नागरमोथा, बच और कूठ, प्रत्येक समभाग और सबके बराबर विष, इन कुल औषधों को एकत्र अदरख के रस में खरल करके मूँग के बराबर गोलियाँ बनावे। इसका नाम है अग्निरस। इसका सेवन करने से सब प्रकार के अजीर्णरोग शान्त होते हैं ॥ ८३ ॥

अमृतवटी।

अमृतवराटकमरिचैर्द्विपञ्चनवभागिकैः क्रमशः। वटिका मुद्गसमाना कफपित्ताग्निमान्द्यहारिणी ॥ ८४ ॥

इयमग्नितुण्डी नाम्ना च ख्याता।

विष २ भाग, वराटिका (कौड़ी) की भस्म ५ भाग, और कालीमिरिच ९ भाग, इनको जल में पीसकर मूँग के समान गोलियाँ बना लेवे। इसका सेवन करने से कफ, पित्त और अग्निमान्द्यरोग निवृत्त होते हैं। इसका नाम है अमृतवटी, किन्तु 'अग्नितुण्डी' नाम से भी प्रसिद्ध है ॥ ८४ ॥

सुधासागर रस।

त्रिकटु त्रिफला चैव तथा लवणपञ्चकम्। क्षारत्रयं रसं गन्धं भागैकं पूर्ववद्विषम् ॥ ८५ ॥ गुञ्जामात्रां वटीं कुर्याल्लवङ्गैः पञ्चभिः सह। सुधासागरनामायं रसः सूर्य्येण निर्मितः ॥ ८६ ॥

पूर्ववद्विषमित्यमृतवटीक्रमभागवत् तेनात्र विषस्य भागद्वयम्।

त्रिकटु, त्रिफला, पाँचोनमक, जवाखार, सज्जीखार, सोहागा फूला हुआ, पारा और गन्धक प्रत्येक १ भाग तथा विष २ भाग, इनको एकत्र जल में पीसकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना

लेवे। एक गोली को पाँच लौंगों के चूर्ण के साथ शहद मिलाकर चाटे। इसका सेवन करने से भूख लगती है। इस सुधासागर नमक रस का सूर्य ने आविष्कार किया था ॥ ८१-८६ ॥

टङ्कनादि वटी।

टङ्कननागरगन्धकपारदगरलं मरिचं समभागयुतम्। लकुचस्वरसेश्चणकमितिमा गुटिका जनयत्यचिरादनलम् ॥८७॥

सोहागा फूला हुआ, सोंठ, गन्धक, पारा, विष और मिरिच प्रत्येक सम भाग, इनको एकत्र बड़हल के फल के रस में घोटकर चना के समान गोलियाँ बना लेवे। इसका सेवन करने से शीघ्र ही अग्नि दीप्त होती है ॥ ८७ ॥

अजीर्णकण्टक रस।

शुद्धसूतं विषं गन्धं समं सर्वं विचूर्णयेत। मरिचं सर्वतुल्यं स्यात् कण्टकार्य्याः फलद्रवैः ॥ ८८ ॥ मर्दयेत् भावयेत् सर्वमेकविंशतिवारकम्। गुञ्जामात्रां वटीं खादेत् सर्वाजीर्णप्रशान्तये। अजीर्णकण्टकः सोऽयं रसो हन्ति विसूचिकाम् ॥८९॥

पारा, विष और गन्धक प्रत्येक समभाग, सबके बराबर काली मिरिच मिलाकर चूर्ण बनाये। तदनन्तर छोटी कटेरी के फल के रस में २१ बार भावना देकर भलीभांति खरल करके एक एक रत्ती की गोलियाँ बनाये। इसका नाम अजीर्णकण्टक रस है। इसका सेवन करने से सब प्रकार के अजीर्ण और विसूचिका रोग नष्ट होते हैं ॥ ८८-८९ ॥मात्रा— ३।४ रत्ती।

महोदधि रस।

एकैकं विषसूतौ च जाती टङ्कं द्विकं द्विकम्। कृष्णात्रयं विश्वषट्कं तथा दग्धं कपर्दकम् ॥ ९० ॥ देवपुष्पं चाणमितं सर्वं सम्मर्द्य यत्नतः। महोदधिवटी नाम्ना नष्टमग्निं प्रदीपयेत् ॥ ९१ ॥

विष १ तोला, पारा १ तोला, जायफल २ तोला, सोहागा की खील २ तोला पीपरि ३ तोले, सोंठ ६ तोले, कौडी की भस्म ६ तोले और लौंग ५ तोले, इन सब औषधों को एकत्र जल में घोटकर २ रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। इसका सेवन करने से नष्ट अग्नि का फिर दीपन हो जाता है ॥ ९०-९१ ॥

अग्निकुमार रस।

रसेन्द्रगन्धौ सह टङ्कनेन समं विषं योज्यमिह त्रिभागम्। कपर्दशङ्खाविह नेत्रभागौ मरीचमत्राष्टगुणं प्रदेयम् ॥ ९२ ॥ सुपक्वजम्बीररसेन घृष्टः सिद्धो भवेदग्निकुमार एषः। विसूचिकाजीर्णसमीरणार्त्ते दद्याच्च गुञ्जां ग्रहणीगदे च ॥ ९३ ॥

अत्र सर्वमेकभागापेक्षया वचनान्तरसंवादात्।

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, सोहागे की खील १ तोला, विष ३ तोले, कौडीभस्म ३ तोले, शङ्खभस्म ३ तोले और मिरिच ८ तोले इन औषधों को एकत्र कर पके जँभीरी नीबू के रस में घोटकर एक एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। इस अग्निकुमार रस का सेवन करने से विसूचिका (हैजा), अजीर्ण, वातरोग और ग्रहणी आदि रोग नष्ट होते हैं। मात्रा २।३ रत्ती ॥ ९२-९३ ॥

अग्नि मुख रस।

सूतं गन्धं विषं तुल्यं मर्दयेदार्द्रकद्रवैः। अश्वत्थचिञ्चापामार्गं क्षारः क्षारो च टंकणम् ॥ ९४ ॥ जातीफलं लवङ्गं च त्रिकटु त्रिफला समम्। शङ्ख भस्म पञ्चपटुं हिङ्गु जीरं द्विमार्गकम् ॥ ९५ ॥ मर्दयेदम्लयोगेन गुञ्जा मात्रा वटी शुभा। पाचनी दीपनी सद्योऽजीर्णं शूल विसूचिकाः ॥ ९६ ॥ हिक्कां गुल्मं चोदरं च नाशयेन्मात्र

संशयः। रसेन्द्रसंहितायां च नाम्नाऽग्निमुखो रसः॥ ९७॥

पारा, गन्धक, विष सबको समान भाग लेकर अदरख के रस में घोटे फिर पीपल, इमली चिरचिटा इनके क्षार यवाक्षार, सज्जी और सुहागा, जायफल, लौंग, त्रिकुटा, त्रिफला समान भाग ले और शङ्खभस्म पाँचो नमक, हींग, जीरा पारे से दुगने डालकर नींबू आदि खट्टे रसों में घोटकर २ रत्ती की गोलिया बना ले। यह अग्निदीपन पाचन है। अजीर्ण, दर्द, हैजा, हिचकी गुल्म आदि पेट के रोगों को नाश करती है। इसको रसेन्द्र संहिता में अग्नि मुख रस कहा है। विशेष अनुभूत है॥ ९४-९७॥

हुताशन रस।

गन्धेशटङ्कनैकैकं विषमत्र त्रिभागिकम्। अष्टभागन्तु मरिचं जम्भाम्भोमर्दितं दिनम्॥ ९८॥ तद्वटीं मुद्गमानेन कृत्वाऽऽर्द्रेण प्रयोजयेत्। शूलारोचकगुल्मेषु विसूच्यामग्निमान्द्यके। अजीर्णसन्निपातादौ शैत्ये जाड्ये शिरोगदे॥ ९९॥

गन्धक १ भाग, पारा १ भाग, सोहागा फूला हुआ १ भाग, विष ३ भाग और मिरिच ८ भाग; इनको एकत्र नींबू के रस में १ दिन भर घोटे। तदनन्तर मूँग के बराबर गोलियां बना लेवे। अदरख के रस के साथ इसका सेवन करना चाहिये। इसका सेवन करने से शूल, अरोचक, गुल्म, विसूचिका, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, सन्निपात, सर्दी, जड़ता और शिरोरोग दूर होते हैं। मात्रा २।३ रत्ती॥ ९८-९९॥

भास्कर रस।

विषं सूतं फलं गन्धं त्र्यूषणं टङ्कजीरकम्। एकैकं द्विगुणं लौहं शङ्खमभ्रवराटकम्॥ १००॥ सर्वतुल्यं लवङ्गञ्च जम्भीरैर्भावयेद्भिषक्। सप्तवासरपर्यन्तं ततः स्याद्भास्करो रसः॥ १०१॥ गुञ्जाद्वयप्रमाणेन वटीं कुर्याद्विचक्षणः। ताम्बूलीदलयोगेन वटीं सम्भक्ष्य भक्षयेत्॥ १०२॥ शूलरोगेषु सर्वेषु विसूच्यामग्निमान्द्यके। सद्यो वह्निकरो ह्येष तन्त्रनाथेन भाषितः॥ १०३॥

विष, पारा, त्रिफला, गन्धक, त्रिकटु, सोहागा फूला हुआ और जीरा प्रत्येक एक-एक भाग, लोहभस्म, शङ्खभस्म और कौड़ी-भस्म प्रत्येक दो-दो भाग और सबके बराबर लौंग लेवे। इनको एकत्र जँभीरी नींबू के रस में ७ दिन पर्यन्त घोटकर २ रत्ती की गोलियां बनावे। पान के पत्ता में रखकर इस वटी को खाना चाहिये। यह वटी सब प्रकार के शूल-रोग, विसूचिका और अग्निमान्द्य को नष्ट कर शीघ्र ही अग्नि को दीप्त करती है। इसके आविष्कर्ता तन्त्रनाथजी हैं। मात्रा ३-४ रत्ती॥ १००-१०३॥

अग्निसन्दीपन रस।

षड्षणं पञ्चपटु त्रिक्षारं जीरकद्वयम्। वह्निदर्भोग्रगन्धे च मधुरी हिङ्गुचित्रकम्॥ १०४॥ जातीफलं तथा कुष्ठ जातीकोषं त्रिजातकम्। चिञ्चाशेखरिकाक्षारममृतं रसगन्धकौ॥ १०५॥ लौहमभ्रञ्च वङ्गञ्च लवङ्गञ्च हरीतकी। समभागानि सर्वाणि भागौ द्वावम्लवेतसात्॥ १०६॥ शङ्खस्य भागाश्चत्वारः सर्वमेकत्र भावयेत्। क्वाथेन पञ्चकोलस्य चित्रापामार्गयोस्तथा॥ १०७॥ अम्ललोणीरसेनैव प्रत्येकं भावयेत् त्रिधा। त्रिसप्तकृत्वो लिम्पाकरसैः पश्चाद्विभावयेत्॥ १०८॥ बदरामा वटी कार्य्या योजव्या सन्ध्ययोर्द्वयोः। अनुपानं प्रदातव्यं बुद्ध्वा दोषानुसारतः॥ १०९॥ अग्निसन्दीपनो नाम रसोऽयं भुवि दुर्लभः। दीपयत्याशु मन्दा-

ग्निमजीर्णञ्च विनाशयेत् । अम्लपित्तं तथा शूलं गुल्ममाशु व्यपोहति ॥ ११० ॥

पीपरि, मिरिच, सोंठ, चव्य, चीता, पिपरामूल, पाँचो नमक, सज्जीखार, जवाखार, सोहागा फूला हुआ, सफेद जीरा, काला जीरा, अजवाइन, बच, सौंफ, हींग, चीता का मूल, जायफल, कूट, जावित्री, दालचीनी, इलायची, तेजपात, इमिली के छाल की भस्म, चिरचिरा की भस्म, मीठा विष, पारा, गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, वङ्ग, लौंग और हरड़, इनमें से प्रत्येक एक-एक भाग, अमिलवेंत २ भाग और शङ्खभस्म ४ भाग ; इन सब औषधों को एकत्र कर पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चीता और सोंठ के क्वाथ में, चीता और चिरचिरा के क्वाथ में तथा चौपतिया के रस में तीन-तीन बार भावना देवे । तदनन्तर नींबू के रस में २१ बार भावना देकर पांच-पांच रत्ती की गोलियाँ बना लेवे । दोषानुसार अनुपान के साथ सायं प्रातः इस वटी का सेवन करना चाहिये । यह अग्निसंदीपन नामक रस शीघ्र अग्नि का दीपन करके अजीर्ण, अम्लपित्त, गुल्म और शूल आदि रोगों को नष्ट करता है । मात्रा-२।४ रत्ती ॥ १०४-११० ॥

अजीर्णबलकालानल रस ।

द्विपलं शुद्धसूतञ्च गन्धकञ्च समं समम् । लौहं ताम्रं हरीतालं विषं तुत्थं सवङ्गकम् ॥ १११ ॥ पलप्रमाणञ्च पृथक् लवङ्गं टङ्कणं तथा । दन्तीमूलं त्रिवृच्चूर्णमेकैकं पलसम्मितम् ॥११२॥ अजमोदां यमानी च द्विक्षारलवणानि च । पृथगर्द्धपलं ग्राह्यमेकीकृत्य च भावयेत् ॥ ११३ ॥ आर्द्रकस्वरसेनैकविंशतिः पञ्च कोलजैः । दशधा भावयेत्तोयैर्गुडूचीनां रसैर्दश ॥ ११४॥ सर्वार्द्धं मरिचं दत्त्वा काचकूप्याञ्च धारयेत् । गुञ्जामात्रा वटीं कृत्वा छायायां परिशोषयेत् ॥ ११५ ॥ रसोऽजीर्णबलकालानल एष प्रकीर्त्तितः । अनेककालनष्टाग्नेर्दीपनः परमः स्मृतः ॥ ११६ ॥ आमवातकुलध्वंसी प्लीहपाण्डुगदापहः । प्रमेहानाहविष्टम्भसूतिकाग्रहणीहरः ॥ ११७ ॥ श्वासकासप्रतिश्याययक्ष्मक्षयविनाशनः । अम्लपित्तञ्च शूलञ्च भगन्दरगुदोद्भवौ ॥ ११८ ॥ अष्टोदराणि प्लीहानं यकृतं हन्ति दारुणम् । आकण्ठं भोजयित्वा तु स्वादयेच्च रसोत्तमम् ॥ ११९ ॥ अर्द्धयामेन तत्सर्वं भस्मीभवति निश्चितम् । चतुर्विधरसोपेतं महाभोजनमिच्छतः ॥१२० भोजस्य नृपतेः काङ्क्षा भोजनात् कृपया कृतः । गहनानन्दनाथेन सर्वलोकहितैषिणा ॥ १२१ ॥

पारा ८ तोला, गन्धक ८ तोला, लोहभस्म ४ तोला, ताम्रभस्म ४ तोला, हरताल ४ तोला, मीठा विष ४ तोला, तूतिया (शुद्ध) ४ तोला, वङ्गभस्म ४ तोला, लौंग ४ तोला, सुहागा ४ तोला, दन्तीमूल ४ तोला, निसोत ४ तोला, अजमोद २ तोला, अजवाइन २ तोला, यवक्षार २ तोला, सर्जिक्षार २ तोला, पाँचों नमक २ तोला, इसमें सम्पूर्ण चूर्ण से आधा भाग कालीमिर्च का चूर्ण मिश्रित करे । इसके बाद अदरख के रस से २१ बार भावना देकर व पञ्चकोल के काढ़े से और गिलोय के रस से १० बार भावना देकर २ रत्ती प्रमाण की गोलियां बना ले और छाया में सुखा ले । इन गोलियों के सेवन करने से मन्द हुई अग्नि दीप्त होती है तथा आमवात, तिल्ली, पीलिया, प्रमेह, आनाह, विष्टम्भ (एक प्रकार का अजीर्ण), सूतिकारोग, ग्रहणी, श्वास, खाँसी, प्रतिश्याय (जुकाम), यक्ष्मा, अम्लपित्त, शूल, भगन्दर, बवासीर, जिगर आदि रोग मात्र को नाश होते हैं । यह रस कण्ठ तक किये हुए भोजन को शीघ्र पचानेवाला है ॥ १११-१२१ ॥ मात्रा १-४ रत्ती ।

(१-२) शंखवटी और महाशंखवटी ।

दग्धशङ्खस्य चूर्णं हि तथा लवणपञ्चकम् । चिञ्चिकाक्षारकश्चैव कटुकत्रयमेव च ॥ १२२ ॥ तथैव हिङ्गुकं ग्राह्यं विषगन्धकपारदम् । अपामार्गस्य वह्नेश्च क्वाथैर्लिम्पाकजै रसैः ॥ १२३ ॥ भावयेत् सर्वचूर्णं तदम्लवर्गैर्विशेषतः । यावत्तदम्लतां याति गुटिकामृतरूपिणी ॥ १२४॥ सद्यो वह्निकरी चैव भस्मकञ्च नियच्छति । भुक्त्वाकण्ठन्तु तस्यान्ते खादेच्च गुटिकामिमाम् ॥ १२५ ॥ तत्क्षणाज्जारयत्याशु सर्वाजीर्णविनाशिनी । ज्वरं गुल्मं पाण्डुरोगं कुष्ठं शूलं प्रमेहकम् ॥ १२६ ॥ वातरक्तं महाशोथं वातपित्तकफानपि । दुर्नामारिरयश्चाशु दृष्टो वारसहस्रशः ॥ १२७॥ निर्मूलं दहते शीघ्रं तूलकं वह्निना यथा । लौहवङ्गयुता सेयं महाशङ्खवटी स्मृता ॥ १२८ ॥ प्रभाते कोष्णतोयानुपानमेव प्रशस्यते ॥ १२९ ॥

शङ्खभस्म, पाँचों नमक, इमली की छाल का क्षार, सोंठ, मिरिच, पीपरि, हींग, विष, गन्धक और पारा, इन सब औषधों को समभाग लेकर मिश्रित करके खरल कर लेवे। तदनन्तर चिरचिरा और चीता के क्वाथ में भावना देने के पश्चात् नींबू के रस में और अम्लवर्ग में इस प्रकार भावना देवे, जिससे कि वह कुल चूर्ण अम्ल (खट्टा) हो जावे। तदनन्तर दो २ रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। इसका नाम शङ्खवटी है। इसी में लौहभस्म और वङ्गभस्म मिला देने से महाशङ्खवटी कही जाती है। प्रात काल उष्ण जल के साथ सेवन करना चाहिये। ये वटियाँ अमृत के समान लाभदायक हैं। इनका सेवन करने से अग्निमान्द्य, भस्मक, सब प्रकार के अजीर्ण, ज्वर, गुल्म, पाण्डुरोग, कुष्ठ, शूल, प्रमेह, वातरक्त, महाशोथ और बवासीर आदि रोग, वात, पित्त और कफ शीघ्र नष्ट होते हैं। कण्ठपर्यन्त भोजन करके भी यदि इस शङ्खवटी अथवा महाशङ्खवटी का सेवन किया जाय तो क्षणमात्र में ही सब खाये हुये पदार्थों को हज्म कर देती है। ये हजारों बार अनुभूत हो चुकी हैं ॥ १२२-१२९ ॥ मात्रा ३।४ रत्ती।

अग्नीसूनरस ।

भागो दग्धकपर्दकस्य च तथा, शङ्खस्य भागद्वयं । भागो गन्धकसूतयो मिलितयोः पिष्टा मरीचादपि ॥ १३० ॥ भागस्य-त्रितयं नियोज्य सकलं निम्बूरसैर्मर्दितं । नाम्ना वह्नि सुतो रसोऽयमचिरान्मान्द्यं जयेद्दारुणम् ॥ १३१ ॥ घृतेन खण्डैः सह-भक्षितोऽसौ क्षीणान् नरान् हस्ति समान करोति ॥ समागधी चूर्णं घृतेन लीढ्वा मुक्तोभवेत्संग्रहणी विकारान् ॥ १३२ ॥ शोफ ज्वरारोचकशूल गुल्मान् पाण्डूदरार्शो ग्रहणी विकारान् । तक्रानुपानो जयति प्रमेहान् युक्त्या प्रयुक्तोऽग्निसुतो रसेन्द्रः ॥ १३३ ॥

कौड़ी भस्म १भाग, शङ्ख भस्म २ भाग, गन्धक ½ भाग और कालीमिर्च ३ भाग इन सबको मिलाकर नींबू के रस की भावना देकर २ रत्ती की गोलियाँ बना ले। इसके खाने से कठिन से कठिन मन्दाग्नि भी शीघ्र नष्ट हो जाती है। शोथ, ज्वर, अरुचि, शूल, गुल्म, पाण्डुरोग, उदर शूल, अर्श, संग्रहणी आदि रोगों को दूर करता है, प्रमेह में छाछ के साथ देना चाहिये, संग्रहणी में पीपल के चूर्ण और घी के साथ देने से लाभ होता है ॥ १३०-१३३ ॥

अम्लवर्ग ।

जम्बीरं बीजपूरञ्च मातुलुङ्गकचुक्रकम् । चाङ्गेरी तिन्तिडी चैव बदरी करमर्द-

कम् । अष्टावम्लस्य वर्गोऽयं कथितो मुनिसत्तमैः ॥ १३४ ॥

अमीरी नीबू, शर्बती नींबू, बिजौरा नींबू, खट्टी पालक, चौपतिया, इमली, देग और करौंदा, इन आठों के समूह को मुनियों ने अम्ल वर्ग कहा है ॥ १३४ ॥

(६) महाशंखवटी ।

कणामूलं वह्निदन्ती पारदं गन्धकं कणा । त्रिक्षारं पञ्चलवणं मरिचं नागरं विषम् ॥ १३५ ॥ अजमोदामृता हिङ्गु क्षारं तिन्तिडिकाभवम् । सञ्चूर्ण्य समभागन्तु द्विगुणं शङ्खभस्मकम् ॥ १३६ ॥ अम्लद्रवेण सम्भाव्य वटी गुञ्जाद्वयोन्मिता। अम्लदाडिमतोयेन लिम्पाकस्वरसेन च ॥ १३७ ॥ भक्षयेत् प्रातरुत्थाय नाम्ना शङ्खवटी शुभा । तक्रमस्तुसुराशीधुकाञ्जिकोष्णोदकेन वा ॥ १३८ ॥ शशैणादिरसेनैव रसेन विविधेन च । मन्दाग्निं दीपयत्याशु वडवाग्निसमप्रभम् ॥ १३९ ॥ अर्शांसि ग्रहणीरोगं कुष्ठमेदोभगन्दरान् । प्लीहानमश्मरीं श्वासं कासं मेदोदरक्रमीन् ॥१४०॥ हृद्रोगं पाण्डुरोगञ्च विबन्धानुदरे स्थितान् । तान् सर्वान् नाशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥१४१॥

पिपरामूल, चीतामूल, जमालगोटे की जड़, पारा, गन्धक, पीपरि, सज्जीखार, जवाखार, सोहागा भुना हुआ, पांचो नमक, मिरिच, सोंठ, विष, अजमोद, गिलोय, हींग और इमिली का खार, प्रत्येक १ तोला, शंखभस्म २ तोले, इन सब औषधों को पूर्वोक्त अम्लवर्ग के रस में घोटकर झरबेरी के बेर की गुठली के बराबर गोलियां बना लेवे । खट्टे अनार का रस, नींबू का रस, तक्र, तोड़, सुरा, शीधु, कांजी और उष्णजल इनमें से किसी एक के साथ तथा खरगोश और एणमृग आदि जङ्गली पशुओं के मांसरस के साथ, अथवा दोषानुसार अन्यान्य अनेक प्रकार के रसों के साथ सेवन करना चाहिये । इससे अग्निमान्द्य, बवासीर, ग्रहणी, कुष्ठ, मेद, प्रमेह, भगन्दर, प्लीहा, पथरी, श्वास, कास, उदर-कृमि, हृदयरोग, पाण्डुरोग और मलबद्धता आदि विविध प्रकार के रोग ऐसे नष्ट होते हैं जैसे सूर्य के प्रकाश से अंधकार नष्ट हो जाता है ॥ १३५-१४१ ॥

क्रव्याद रस ।

पलं रसस्य द्विपलं बलेः स्याच्छुल्वायसी चार्द्धपलप्रमाणे । विचूर्ण्य सर्वं द्रुतमग्नियोगादेरण्डपत्रेऽथ निवेशनीयम् ॥ १४२ ॥ कृत्वाथ तां पर्पटिकां विदध्याल्लोहस्य पात्रेवरपूतमस्मिन् । जम्बीरजं पञ्चरसं पलानि शतं नियोज्याग्निमहाल्पमात्राम् ॥१४३॥ जीर्णेरसे भावितमेतदेतैः सुपञ्चकोलोद्भववारिपूरैः । सेतसाम्लैः शतमत्र देयं समं रजष्टङ्कनजं सुभृष्टम् ॥ १४४ ॥ विडं तदर्द्धं मरिचं समञ्च तत् सप्तधार्द्राचणकाम्लवारा । क्रव्यादनामा भवति प्रसिद्धो रसस्तु मन्थानकभैरवोक्तः । रक्तद्वयं सैन्धवतक्रपीतमेतस्य धन्यैः खलु भोजनान्ते ॥ १४५ ॥ गुरूणि मांसानि पयांसि पिष्टिघृतानि सेव्यानि फलानि चैव । मात्रातिरिक्तान्यपि मेलितानि यामद्वयाज्जारयति प्रसिद्धः ॥ १३६ ॥ कार्श्यस्थौल्यनिवर्हणो गरहरः सामातिनिर्नाशनो, गुल्मप्लीहजलोदरादिशमनः शूलार्तिमूलापहः ॥ वातश्लेष्मनिवर्हणोग्रहणिकातीसारविध्वंसनो,वातग्रन्थिमहोदरापहरणः क्रव्यादनामा रसः ॥ १४७ ॥

रसः १ पलं, गन्धकं २ पलमितं, ताम्रं २ तोलकमितं, लौहं २ तोलकमितं सर्वं चूर्णयित्वा लौहपात्रे मृदुवह्निना पर्पटीवत् कार्यम् ततो जम्बीररसपलशतेन शनैः शनैः पक्तव्यम् रसे शुष्के पुनर्भावना दातव्या पञ्चकोलक्वाथेन ५० पलमितेन, अम्लवेतसक्वाथेन ५० पलमितेन। ततः सर्वद्रव्यसमं भृष्टटङ्कनचूर्णं ४ पलमितं, तस्यार्द्धं विटलवणं २ पलमितं, सर्वद्रव्यसमं मरिचचूर्णं १० पलमितं, ततश्चणकशिशिरेण सप्त भावना दातव्या इति कविचन्द्रप्रभृतयः।

पारा ४ तोले, गन्धक ८ तोले, ताम्रभस्म २ तोले, लोहभस्म २ तोले लेवे। इन सबको एकत्र कर अग्नि के योग से पिघलाकर एरण्ड के पत्ते पर डालकर पर्पटी बना लेवे। तदनन्तर उसका चूर्ण करके लोहे के पात्र में डालकर उसमें जँभीरी नींबू का रस ४०० तोले देकर मंद-मंद आंच पर पकावे। जब पकते पकते रस शुष्क हो जावे, तब उसको उतारकर चूर्ण कर लेवे। पीछे पीपरि पीपरामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनके क्वाथ की भावना देवे तत्पश्चात् अम्लवेत के क्वाथ की भावना देकर उसमें भुना हुआ सुहागा १६ तोले, विडनमक ८ तोले और कालीमिर्च का चूर्ण ४० तोले मिलाकर चनों के खार की सात भावना देवे। यह भय्यानक भैरवजी का कहा हुआ प्रसिद्ध क्रव्याद रस है। इस रस को भोजन के बाद दो माशे खावे और ऊपर से सेंधा नमक तथा माठा पीवे तो मास, पिट्ठी आदि के गरिष्ठ भोजन तथा सब प्रकार के मात्रा से अधिक खाये हुए फल, दो पहर में पच जाते हैं। यह क्रव्याद रस कृशता (दुबलापन), स्थूलता (मोटापन), विष के रोग, आमातीसार, गुल्म, तिल्ली, जलोदर, शूलरोग, श्वास कफ के रोग संग्रहणी, अतीसार, वातग्रन्थि (गठियावाय) और उदर के रोगों को नाश करता है। मात्रा-१।८ रत्ती ॥ १४२ १४७ ॥

अजीर्णारि रस।

शुद्धं सूतं गन्धकं चापलमानं पृथक् पृथक्। हरीतकी च द्विपला नागरं त्रिपलं स्मृतम् ॥ १४८ ॥ कृष्णा च मरिचं तद्वत् सिन्धूत्थं त्रिपलं पृथक्। चतुष्पला च विजया मर्दयेन्निम्बुकद्रवैः ॥ १४९ ॥ भावनं सप्तधा कार्यं घर्ममध्ये पुनः पुनः। अजीर्णारिरयं प्रोक्तः सद्यो दीपनपाचनः ॥ १५० ॥ भक्षयेद् द्विगुणं भक्ष्यं पाचयेद्रेचयेदपि ॥ १५१ ॥

४ तोला पारा, ४ तोला गन्धक, ८ तोला हरड़, १२ तोले सोंठ, १२ तोले पीपल, १२ तोले कालीमिर्च, १२, तोले सेंधा नमक, १६ तोले भाँग का चूर्ण, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को इकट्ठा कर मिला ले। फिर नींबू के रस से ७ भावनाएँ देकर रख ले। मात्रा-३ रत्ती से ४ रत्ती तक। यह अजीर्णारि रस दीपन तथा पाचन है। इसके सेवन से क्षुधा द्विगुण हो जाती है। यह रस पाचक तथा मलबद्धता को नष्ट करता है ॥ १४८ १५१ ॥

आदित्य रस।

दरदञ्च विषं गंधं त्रिकटुत्रिफलासमम्। जातीफलं लवङ्गञ्च लवणानि च पञ्च वै ॥ १५२ ॥ सर्वमेतत्कृतं चूर्णमम्लयोगेन सप्तधा। भावयित्वा वटी कार्या गुञ्जार्धमिता बुधैः ॥ १५३ ॥ रसो ह्यादित्यसंज्ञोऽयमजीर्णक्षयकारकः। भुक्तमात्रं पाचयतिजठरानलदीपनः ॥ १५४ ॥

हिंगुल, मीठा विष, गन्धक, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि), त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आँवला), जायफल, लौंग, पाँचों नमक, हर एक को बराबर लेकर और मिलाकर नींबू के रस से सात

बार भावना देकर ½ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बना ले। इस रस के सेवन करने से अजीर्ण नष्ट होता है तथा जठराग्नि दीप्त होती है॥ १५२-१५४॥

वड़वानल रस।

शुद्धसूतस्य कर्षकं गन्धकं तत्समं मतम्। पिप्पली पञ्चलवणं मरिचञ्च फलत्रयम्॥ १५५॥ क्षारत्रयं समं सर्वं चूर्णं कृत्वा प्रयत्नतः। निर्गुण्ड्याश्च द्रवेणैव भावयेद्दिनमेकतः॥ १५६॥ वडवानलनामायं मन्दाग्निञ्च विनाशयेत्॥ १५७॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, पीपल, पाँचों नमक, कालीमिर्च, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला), यवक्षार, सर्जिक्षार, सुहागा हरएक द्रव्य एक-एक तोला। इन सम्पूर्ण द्रव्यों को इकट्ठा कर और मिलाकर सम्हालू के रस से एक दिन भावना देकर गोली बना ले। मात्रा—४ रत्ती से ६ रत्ती तक। यह रस मन्दाग्नि को नष्ट करता है॥ १५५-१५७॥

बृहद्हुताशन रस।

एकद्विकद्वादशभागयुक्तं योज्यं विषं टङ्कणमूषणञ्च। हुताशनो नामहुताशनस्य करोति वृद्धिं कफजिन्नराणाम्॥ १५७॥

मीठा विष १ भाग, सुहागा २ भाग, कालीमिर्च १२ भाग, इन्हें इकट्ठा कर यथाविधि चूर्ण कर ले और पानी के साथ २ रत्ती प्रमाण की गोली बना ले। इन गोलियों के सेवन करने से कफ का नाश होता है तथा अग्नि की वृद्धि होती है॥ १२७॥

बृहदग्निकुमार रस।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं गन्धतुल्यञ्च टङ्कणम्। फलत्रयं यवक्षारं व्योषं पञ्च पटूनि च॥ १५८॥ द्वादशैतानि सर्वाणि रसतुल्यानि योजयेत्। संमर्द्य सप्तधा सर्वं भावयेदार्द्रकद्रवैः॥ १५९॥ संशोष्य चूर्णयित्वा तु भक्षयेदार्द्रकाम्बुना। माषमात्रं वयो वीक्ष्य नानाजीर्णप्रशान्तये॥ १६०॥ रसश्चाग्निकुमारोऽयं महेशेनप्रकाशितः। महाग्निकारकश्चैव कालभास्करतेजसाम्॥ १६१॥ अग्निमान्द्यभवान् रोगान् शोथं पाण्ड्वामयं जयेत्। दुर्नामग्रहणीसामरोगान् हन्ति न संशयः॥ १६२॥ यथेष्टाहारचेष्टस्य नास्त्यत्र नियमः क्वचित्॥ १६३॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, सुहागा २ भाग, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला), जवाखार, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि), पाँचों नमक, हरएक द्रव्य १ भाग, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को मिलाकर अदरख के रस से सात भावना देकर सुखा ले। मात्रा—१ माशा, अनुपान-अदरख का रस। इसके सेवन करने से सूजन, पीलिया, बवासीर (अर्श), ग्रहणी आदि रोग दूर होते हैं तथा अग्निमान्द्यनाशक है और अग्नि की वृद्धि करता है॥ १५८-१६३॥

अमृतकल्पवटी।

शुद्धौ पारदगन्धौ च समानौ कज्जलीकृतौ। तयोरर्द्धं विषं शुद्धं तत्समं टङ्कणं भवेत्॥ १६४॥ भृङ्गराजद्रवैर्भाव्यं त्रिदिनं यत्नतः पुनः। मुद्गप्रमाणा वटिका कर्तव्या भिषजां वरैः॥ १६५॥ वटीद्वयं हरेच्छूलमग्निमान्द्यं सुदारुणम्। अजीर्णं जरयत्याशु धातुपुष्टिं करोति च॥ १६६॥ नानाव्याधिहरा चेयं वटी गुरुवचो यथा। अनुपानविशेषेण सम्यग् गुणकरी भवेत्॥ १६७॥

पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, इनको कज्जल के समान महीनकर १ भाग मीठा विष, १ भाग सुहागा मिलावे और भाँगरे के रस से ३ दि

घोटकर आधी रत्ती या मूँग के बराबर गोली बना लेवे यह अनुपानभेद से बहुत से रोगों पर प्रयोग की जा सकती है। ये गोलियाँ धातु पुष्ट करती हैं। शूल, मन्दाग्नि, अजीर्णादि रोग दो गोलियों के सेवन से ही नष्ट हो जाते हैं॥ १६४-१६७॥

पाशुपत रस।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं त्रिभागं तीक्ष्णभस्मकम्। त्रिभिः समं विषं देयं चित्रकक्राथभावितम्॥ १६८॥ धूर्त्तबीजस्य भस्मापि द्वात्रिंशद्भागसंयुतम्। कटुत्रयं त्रिभागं स्यात् लवङ्गैला च तत्समम् १६९ जातीफलं तथा कोषमर्द्धभागं नियोजयेत्। तथार्द्धलवणं पञ्च स्नुह्यर्कैरण्डतिन्तिडी॥ १७० अपामार्गाश्वथजञ्च क्षारं दद्याद्विचक्षणः। हरीतकी यवक्षारं सर्जिकां हिङ्गुजीरकम्॥ १७१॥ टङ्कणञ्च सूततुल्यं चाम्लयोगेन मर्द्दयेत्। भोजनान्ते प्रयोक्तव्यो गुञ्जाफलप्रमाणतः॥ १७२॥ रसः पाशुपतो नाम सद्यः प्रत्ययकारकः। दीपनः पाचनो हृद्यः सद्यो हन्ति विसूचिकाम्॥ १७३॥ तालमलीरसेनैव उदरामयनाशन। मोचरसेनातिसारं ग्रहणीं तक्रसैन्धवैः॥ १७४॥ सौवर्चलकणाशुण्ठीयुतः शूलं विनाशयेत्। अर्शो हन्ति च तक्रेण पिप्पल्या राजयक्ष्मकम्॥ १७५॥ वातरोगं निहन्त्याशु शुण्ठी सौवर्चलान्वितः। शर्कराधान्ययोगेन पित्तरोगं निहन्त्ययम्॥ १७६॥ पिप्पलीक्षौद्रयोगेन श्लेष्मरोगञ्च तत्क्षणात्। अतः परतरो नास्ति धन्वन्तरिमतो रसः॥ १७७॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, लोहभस्म ३ भाग मीठा विष ६ भाग इनको चित्रक के काढ़े से भावना दे, इसके पश्चात् धतूरे के बीज की भस्म ३२ भाग, सोंठ ३ भाग, मिर्च ३ भाग पीपल ३ भाग, लौंग ३ भाग छोटी इलाइची ३ भाग, जायफल ½ भाग, जावित्री ½ भाग, पाचों नमक हर एक ½ भाग, स्नुहीक्षार १ भाग, एरण्डक्षार १ भाग, इमलीक्षार १ भाग, अपामार्ग क्षार १ भाग, पीपल का क्षार १ भाग, हरड़ १ भाग, जवाखार १ भाग, सर्जिक्षार १ भाग, हींग १ भाग, जीरा १ भाग, सुहागा १ भाग उपर्युक्त सम्पूर्ण द्रव्यों को अम्लवर्ग से घोटकर १ रत्ती प्रमाण की गोलियां बनावे, यह रस विसूचिका नाशक है और दीपन तथा पाचन है। अनुपान— उदररोग में मूसली के रस में, अतिसार में मोचरस में, संग्रहणी में नमकीन मठा में, शूल में सोंचकर नोन, पीपल तथा सोंठ में, अर्श रोग में मठा के साथ, राजयक्ष्मा में पीपलचूर्ण के साथ पृथक् पृथक् प्रयोग में लाना चाहिए। इस रस को वातरोग में सोंठ तथा सोंचल नमक के साथ, पित्तरोग में खांड तथा धनिया के साथ और कफरोग में पीपलचूर्ण तथा शहद के साथ सेवन करना चाहिये॥ १६८-१७७॥

विश्वोद्दीपकाभ्र।

अभ्रं निर्मलमारितं पलमितं चूर्णीकृतं यत्नतश्चव्यं चित्रकमिन्द्रसूरकनक मालूरपत्रार्द्रकम्। मूलं पिप्पलिसम्भवं मधुरिका नीपोऽर्कमूलं पृथक् चैषां सत्त्वपलैर्विमर्दितमिदं कर्षं क्षिपेद्ब्राह्मणम्॥ १७८॥ गुञ्जासम्मितमेतदेव वलितं तत्पारिभद्रद्रवैर्मन्दाग्निं चिरजातगुल्मनिचयं शूलाम्लपित्तं ज्वरम्। छर्दिं दुष्टमसूरिकामलसकं श्वासञ्च कासं तृषां प्लीहानं यकृतं क्षयं स्वरहतिं कुष्ठं महारोचकम्॥ १७९॥ दाहं मोहमशेषदोषजनितं कृच्छ्रञ्च दुर्नामकम्, चामं वातविमिश्रितं नयनजं रोगं समुन्मूलयेत्। विश्वोद्दीपकनामरोगहरणे प्रोक्तं पुरा शम्भुना, सर्वेषां हितकारकं गदवतां सर्वा-

मयध्वंसनम् ॥ १८० ॥ पापाणं यदि भक्षितं तदपि तत् कुर्यात् सुजीर्णं पुनर्बल्यं वृष्यतरं रसायनवरं मेधाकरं कान्तिदम् ॥ १८१ ॥

अभ्रकभस्म ४ तोला और गन्धक का चूर्ण ४ तोला, इन दोनों को एकत्र कर चीता, निर्गुण्डी (सँभालू), धतूर और बेल की पत्तियों के चार चार तोला रस में और अदरख के ४ तोला रस में अच्छी रीति से घोटे । तदनन्तर पिपरामूल, सौंफ, कदम्ब और आक की जड़, चार चार तोला क्वाथ में घोटकर एक तोला सोहागा फूला हुआ मिलाकर फिर खरल करे । पीछे एक एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे । फरहद के स्वरस के साथ इसका सेवन करना चाहिये । इससे अग्निमान्द्य, पुराना गुल्म, शूल, अम्लपित्त, ज्वर, वमन, दुष्ट मसूरिका, अलसक, श्वास, कास, तृषा, प्लीहा, यकृत्, क्षय, स्वरभङ्ग, कुष्ठ, दाह, मोह, मूत्रकृच्छ्र, बवासीर और आमवात, नेत्रविकार आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं । इस विश्वोद्दीपक नामक अभ्रक का उपदेश शिवजीने किया था । यह सब प्रकार के रोगों का नाशक होने से हर एक रोगी के लिये लाभदायक होता है । पाचन के लिये तो यह महौषध है । यहाँ तक कि इसका सेवन करने से पत्थर भी जीर्ण (हजम) हो जाता है । यह अभ्रक बल, वीर्य, मेधा और कान्ति का वर्धक तथा श्रेष्ठ रसायन है ॥ १७८-१८१ ॥

वीरभद्राभ्रक ।

अभ्रकं पुटसहस्रमारितं कर्षयुग्ममतिनिर्मलीकृतम् । वासराणि नवतिं विमर्दितं चित्रकस्वरसमाद्युसिक्तकम् ॥ १८२ ॥ आर्द्रकेरसमर्दितानटी कारिता सकलरोगनाशिनी । भक्षिता भुजगवल्लिपत्रकैः शृङ्गवेरशकलेन वा पुनः ॥ १८३ ॥ वह्निमान्द्यमभिनाश्य सत्वरं कारयेत् प्रखरपावकोत्करम् । श्वासकासवमिशोथकामलाप्लीहगुल्मजठरारुचिभ्रमान् ॥ १८४ ॥ रक्तपित्तयकृदम्लपित्तकं शूलकोष्ठजगदान् विसूचिकाम् । आमवातवहुवातशोणितं दाहशीतबलहासकार्श्यकम् ॥ १८५ ॥ विद्रधिं ज्वरगरं शिरोगदं नेत्ररोगमखिलं हलीमकम् । हन्तिवृष्यतममेतदभ्रकं वीरभद्रमतिवल्यमुत्तमम् ॥ १८६ ॥ भक्षितं त्रिविधभक्ष्यमागलं काष्ठसन्निभमपि भस्मतां नयेत् ॥ १८७ ॥

सहस्रपुटित अभ्रकभस्म २ तोला लेकर, ४० दिन तक चीता के स्वरस में मर्दन करे । तदनन्तर अदरख के रस में घोटकर आधी आधी रत्ती की गोलियाँ बनावे पान की पत्ती के साथ अथवा अदरख के रस के साथ सेवन करना चाहिये । इसके सेवन करने से अग्निमान्द्य, श्वास, कास, वमन, शोथ, कामला, प्लीहा, गुल्म, जठर, अरुचि, भ्रम, रक्तपित्त, यकृत्, अम्लपित्त, शूल, कोष्ठजन्य रोग, विसूचिका, आमवात, वातरक्त, दाह, शीत, निर्बलता, कृशता, विद्रधि, ज्वर, विषजन्यरोग, शिरोरोग, हर प्रकार के नेत्ररोग और हलीमकको नष्ट करता है और बलवीर्य की वृद्धि करता है । एवं गले तक भोजन किया हुआ काष्ठ के समान कठोर पदार्थ भी पच जाता है ॥ १८२-१८७ ॥

रसराक्षस ।

ताम्रं पारदगन्धकं त्रिकटुकं तीक्ष्णञ्च सौवर्चलम् । खल्ले मर्द्य दिनं निधाय सिकताकुम्भेषु यामन्ततः ॥ १८८ ॥ स्विन्नं नेऽत्रपि रक्तशार्क्किनिभरं क्षारं समं भावयेत् । एकीकृत्य च मातुलुङ्गकजलैर्नाम्ना रसो राक्षसः ॥ १८९ ॥

ताँबे की भस्म, पारा, गन्धक, त्रिकटु, (सोंठ, मिर्च, पीपल), लोहभस्म, साचर नमक, इनमें

से प्रत्येक द्रव्य को बराबर-बराबर लेकर मिला ले और घोट डाले – इसके पश्चात् बालुकायन्त्र में ३ घंटे तक पाक करे, इसके बाद लाल पुनर्नवा के क्षार को भी बराबर लेकर मिला ले और मातुलुङ्ग के रस से भावना देकर रख ले। इस रस को अजीर्ण में सेवन कराना चाहिए। मात्रा-१ रत्ती ॥ १८८-१८९ ॥

वृहल्लवङ्गादि वटी ।

लवङ्गजातीफलधान्यकुष्ठं जीरद्वयं त्र्यूषणत्रैफलञ्च । एलात्वचं टङ्कवराटमुस्तं वचाजमोदा विडसैन्धवञ्च ॥ १९० ॥ तदर्द्धकं पारदगन्धकाभ्रं लौहञ्च तुल्यं सुविचूर्ण्य सर्वम् । तन्नागवल्लीदलतोयपिष्टं वल्लप्रमाणा वटिकाश्च कृत्वा ॥ १९१ ॥ प्रातर्विदध्यादपि चोष्णतोयैरियं निहन्याद्ग्रहणीविकारम् । आमानुबन्धं सरुजं प्रवाहं ज्वरं तथा श्लेष्मभवं सशूलम् ॥ १९२ ॥ कुष्ठाम्लपित्तं प्रबलं समीरं मन्दानलं कोष्ठगतं च वातम् । वटीलवङ्गादिवसुप्रणीता तथा सवातं विनिहन्ति शीघ्रम् ॥ १९३ ॥

लौंग, जायफल, धनिया, कुष्ठ, जीरा, काला जीरा, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपर), त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आँवला), छोटी इलायची, दारचीनी, सुहागा, वराटभस्म, मोथा, वच, अजमोदा, विड्लवण, सेंधा नमक, हरएक द्रव्य बराबर-बराबर लेना चाहिए। पारा ½ भाग, गन्धक ½ भाग, अभ्रकभस्म ½ भाग, लोहभस्म १ भाग, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को अच्छी तरह चूर्ण कर पान के पत्तों के रस के साथ घोटकर दो रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बना ले। अनुपान—गरम जल। इनको सुबह के समय सेवन कराना चाहिए। इसके सेवन करने से ग्रहणी, आमातिसार, प्रवाहिका, कफज्वर, शूल, कुष्ठ, अम्लपित्त, वातव्याधि, मन्दाग्नि, कोठे में गई हुई वायु आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १९०-१९३ ॥

ज्वालानल रस ।

क्षारद्वयं सूतगन्धौ पञ्चकोलमितं समम् । सर्वतुल्या जया देया तदर्धं शिग्रुवल्कलम् ॥ १९४ ॥ एतत्सर्वं जयाशिग्रुवह्निमार्कवजै रसैः । भावयेत्त्रिदिनं घर्मे ततो लघुपुटे पचेत् ॥ १९५ ॥ भावयेत्सप्तधा चार्द्रद्रावैर्ज्वालानलो भवेत् । पाचनो दीपनो हृद्यश्चोदरामयनाशनः ॥ १९६ ॥

यवक्षार, सज्जिखार, पारा, गन्धक, पीपल, पिप्लीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ हरएक द्रव्य २ तोला लेना चाहिए और भाँग १८ तोला, सहिजने की छाल ९ तोला, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को इकट्ठा कर मिलाकर इसको भाँग के रस से, सहिजने के रस से, चित्रक तथा भाँगरे के रस से अलग-अलग तीन दिन घोटकर लघुपुट से पाक करे। जब स्वाङ्गशीतल हो जावे तो निकालकर अदरख के रस से सात बार भावना दे। मात्रा—४ रत्ती। यह रस पाचन, दीपन तथा उदररोगों को नष्ट करता है ॥ १९४-१९६ ॥

भक्तविपाक वटी ।

माक्षिकं रसगन्धौ च हरितालं मनःशिला । त्रिवृद्दन्ती वारिवाहं चित्रकञ्च महौषधम् ॥१९७॥ पिप्पली मरिचं पथ्या यमानी कृष्णजीरकम् । रामठं कटुका पाणिसैन्धवं साजमोदकम् ॥ १९८ ॥ जातीफलं यवक्षारं समभागं विचूर्णयेत् । आर्द्रकस्य रसेनैव निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च ॥ १९९ ॥ सूर्यावर्त्तरसेनैव तुलस्याः स्वरसेन च । आतपे भावयेद्वैद्यः खल्लपात्रे च निर्मले । पेषयित्वा वटीं खादेत् गुञ्जाफल सममभाम् ॥ २०० ॥ भक्तोत्तरीये बहुभोजनान्ते मुहुर्मुहुर्वाञ्छति भोज-

नानि। आमानुबन्धे च चिराग्निमान्द्ये विड्विग्रहे पित्तकफानुबन्धे ॥ २०१ ॥ शोथोदरे चार्शगदेऽप्यजीर्णे शूले त्रिदोषप्रभवे ज्वरे च । शस्ता वटी भक्तविपाकसंज्ञा सुखं विपाच्याशु नरस्य कोष्ठम् २०२

सोनामक्खी की भस्म, पारा, गन्धक, हरिताल, मन.शिला, निसोत, दन्तीमूल, मोथा, चित्रक, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, हरड़, अजवाइन, काला जीरा, हींग, कुटकी, सालमखाना, सेंधानमक, अजमोदा, जायफल, जवाखार, हरएक द्रव्य बराबर-बराबर लेकर इसे अदरख के रस, सँभालू के रस, हुलहुल तथा तुलसी के रस से पृथक्-पृथक् भावना, देकर १ रत्ती की गोली बनावे और धूप में सुखा ले । इन गोलियों को भोजन के बाद खाने से बार-बार भोजन करने की इच्छा होती है । ये गोलियाँ सुस्वादु तथा अग्निवर्धक हैं । आमयुक्त मन्दाग्नि, मलबद्धता, सूजन, उदररोग, अजीर्ण, शूल, बवासीर तथा सान्निपातिक ज्वर आदि रोगों में लाभदायक हैं । मात्रा ३-४ रत्ती ॥ १९७-२०२ ॥

पञ्चामृत वटी ।

अभ्रकं पारदं ताम्रं गन्धकं मरिचानि च। समभागमिदं चूर्णं चाङ्गेरीरसमर्दितम् ॥२०३॥ मर्दिते हि रसे भूयो जयन्ती सिन्धुवारयोः । भावनापि च दातव्या गुञ्जा परिमिता वटी ॥ २०४ ॥ तप्तोदकानुपानेन चतस्रस्तिस्र एव वा वह्निमान्द्ये प्रदातव्या वट्यः पञ्चामृतास्तथा ॥ २०५ ॥

अभ्रकभस्म, पारा, ताँबे की भस्म, गन्धक, कालीमिर्च, इनके पृथक्-पृथक् चूर्ण को बराबर-बराबर मिलाकर चाङ्गेरी के रस से घोट डाले और जयन्ती तथा सँभालू के पत्तों के रस से भावना देकर १ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बना लेवे । ये गोलियाँ मन्दाग्नि दूर करने के लिए तीन या चार बार प्रयोग करनी चाहिए अनुपान—उष्णोदक ॥ २०२-२०५ ॥

विसूचीविध्वंस रस ।

टङ्कणं माक्षिकं शुण्ठी पारदं गन्धकं विषम् । गरलं समभागेन सर्वेषां हिङ्गुलं समम् ॥ २०६ ॥ मर्दयेज्जम्बीरद्रावैर्वटी कार्या प्रयत्नतः । श्वेतसर्षपतुल्या च मृतसञ्जीवनी तथा ॥ २०७ ॥ विसूचीं नाशयत्याशु दध्यन्नं पथ्यमाचरेत् । त्रिदोषोत्थमतीसारं सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ २०८ ॥

सुहागा सोनामक्खी की भस्म, सोंठ, पारा, गन्धक, मीठा विष, काले साँप का विष, इनमें से हर एक द्रव्य १ भाग ले, और हिंगुल ७ भाग ले, इनको जम्बीर के रस से घोटकर सरसों के बराबर गोलियाँ बना लेवे । मृतसञ्जीवनी सुरा और यह रस दोनों ही विसूचिकानाशक हैं और तीनों दोषों से उत्पन्न अतिसार को नष्ट करते हैं । मात्रा—१ रत्ती ॥ २०६-२०८ ॥

सारसंग्रह में सारामृतमोदक ।

शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं हरीतक्यास्तथैव च । लवङ्गं जीरकं व्योषं चातुर्जातञ्च मुस्तकम् ॥ २०९ ॥ कर्पूरं जातिकोषञ्च जातीफलसमन्वितम् । एषां द्विकार्षिकान् भागान् परं तु सार्द्धकार्षिकम् ॥ २१० ॥ यमानी सैन्धवं कुष्ठं वनिता जारितं त्वयः । कार्षिकं ग्रन्थिकं चव्यं मूर्वा च चित्रकं शटी ॥ २११ ॥ अजाजी रेणुकं मांसी मेथिका वङ्गमभ्रकम् । रसाञ्जनं मोचरसं द्राक्षा यष्टी च धान्यकम् ॥ २१२ ॥ सर्वं चूर्णीकृतं यत्नाच्छर्करा द्विगुणा मता । ततश्च पाकविद्वैद्यो मोदकं परिकल्पयेत् ॥ २१३ ॥ भूयस्त्रिजातचूर्णेन कर्पूरेणाधिवासयेत् । भक्षयेत् प्रातरुत्थाय बुद्ध्वा दोष-

बलाबलम् ॥ २१४ ॥ कौलैकं वार्द्धकोलं वा दुग्धानुपानमत्र च। पथ्यापथ्यविहीनश्च भक्षयेद्रोगवानपि ॥ २१५ ॥ ग्रहण्यादि गदं हन्यात् मन्दाग्निञ्च विशेषतः। वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातकम् ॥ २१६ ॥ आमशूलं यकृच्छूलं हृच्छूलं पार्श्वशूलकम्। कामलां पाण्डुरोगञ्च हलीमकभगन्दरम् ॥ २१७ ॥ ग्रहणीं चिरजां सूतिं क्रिमिं कोष्ठगदन्तथा। गदस्योच्छेदको ह्येष तुष्टिपुष्टिकरस्तथा ॥ २१८ ॥ दीपनः पाचनो ह्येष बलवर्णाग्निवर्द्धनः। रसायनवरश्चायं वाजीकरण उत्तमः। सर्वाजीर्णप्रशमने ब्रह्मणा परिकल्पितः ॥ २१९ ॥

सोंठ का चूर्ण १६ तोले, हरड़ १६ तोले, लौंग २ तोले, जीरा २ तोले, त्रिकटु, (सोंठ, मिर्च, पीपल) २ तोले, दारचीनी २ तोले, तेजपत्र २ तोले, छोटी इलाइची २ तोले, नागकेसर २ तोले, मोथा २ तोले, काफूर २ तोले, जावित्री २ तोले, जायफल २ तोले, अजवायन १॥ तोले, सैंधव लवण १॥ तोले, कुष्ठ १॥ तोले, प्रियगु १॥ तोले, लोहभस्म १॥ तोले, पिप्पली मूल १ तोला, चव्य १ तोला, मूर्वामूल १ तोला, चित्रक १ तोला, कपूर १ तोला, कालाजीरा १ तोला, रेणुका १ तोला, जटामांसी १ तोला, मेथीबीज १ तोला, वङ्गभस्म १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, रसौत १ तोला, मोचरस १ तोला, द्राक्षा १ तोला, मुलहठी १ तोला, धनियाँ १ तोला, सबसे द्विगुणी खाँड, विधि अनुसार पाक बनाकर थोड़ा त्रिजात चूर्ण तथा कपूर मिलाकर ½ तोला से १ तोला प्रमाण तक लड्डू बना ले। अनुपान—दूध। दोषों की ताकत देखकर सुबह के समय उपयुक्त मात्रा में सेवन करावे। यह मोदक ग्रहणी, मन्दाग्नि, आमशूल, यकृच्छूल, हृच्छूल, पार्श्वशूल, कामला, पीलिया, हलीमक, भगन्दर, सूतिका रोग, क्रिमि, कोष्ठरोग तथा और अनेक प्रकार के वात पित्त कफ से उत्पन्न होनेवाले तथा त्रिदोषज रोगों को नष्ट करते हैं। ये पौष्टिक, दीपन पाचन तथा वाजीकरण हैं। यह रसायन बल, वर्ण अग्नि को बढ़ानेवाला है। ब्रह्माजी द्वारा बनाया हुआ यह रसायन सम्पूर्ण अजीर्णनाशक है ॥ २०४-२१९ ॥

कर्पूरासव।

तुलां प्रसन्नां परिगृह्य शुद्धां पलाष्टकं चोडुपतेः क्षिपेच्च। एला च सूक्ष्मा घनशृङ्गवेरे यमानिका वेल्लजमत्र सर्वम् ॥ २२० ॥ पलप्रमाणं पिहिते च भाण्डे मासं निदध्याद् भिषगत्र यत्नात्। विसूचिकायाः परमौषधं तन्निहन्ति चान्यान् विविधान् विकारान् ॥ २२१ ॥

शुद्ध सुरा (शराब) ५ सेर, कपूर ३२ तोले, छोटी इलायची ४ तोले, मोथा ४ तोले, सोंठ ४ तोले, अजवाइन ४ तोले, कालीमिरच ४ तोले, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को एक बर्तन में मुख बन्द करके १ महीने के लिए रख दे। इसके बाद छानकर काम में लावे। यह आसव विसूचिका के लिये अत्यन्त लाभकारी है। इसके सेवन से अन्य अनेक प्रकार की व्याधियाँ (रोग) दूर होते हैं। मात्रा ५।६ बूँद आवश्यकतानुसार ॥ २२०-२२१ ॥

मुस्ताद्य वटी।

अब्दात् पलद्वयं क्षारणं कणाकर्पूरहिङ्गुतः। पलं पलं गृहीत्वा तु सम्यगेकत्र मिश्रयेत् ॥ २२२ ॥ हिमांशोरम्बुभिः कुर्याद्वटिका वल्लसम्मिताः। अतीसारमजीर्णञ्च विषूचीमुग्ररूपिणीम् ॥ २२३ ॥ अरोचकं वह्निमान्द्यं ग्रहणीमपि दारुणाम्। कासं पञ्चविधं चैव नाशयेदविकल्पतः ॥ २२४ ॥

मोथा ८ तोला, पीपल ४ तोला, कपूर ४ तोला, हींग ४ तोला, इनको पृथक-पृथक

चूर्ण कर मिला ले। इसके पश्चात् कर्पूरोदक से घोटकर २ रत्ती प्रमाण की गोली बना लेवे। इन गोलियों के सेवन करने से अतिसार, अजीर्ण, भयकर विसूचिका, अरुचि, अग्निमान्द्य, भयंकर ग्रहणी तथा पाँचों प्रकार की खाँसी दूर होती हैं ॥ २२१-२२४ ॥

मन्दाग्नि में पथ्य

नानाप्रकारो व्यायामो दीपनानि लघूनि च। बहुकालसमुत्पन्ना सूक्ष्मा लोहितशालयः ॥ २२५ ॥ विलेपी लाजमण्डश्च मण्डो मुद्गरसः सुरा। एणो बर्ही शशो लावः क्षुद्रमत्स्याश्च सर्वशः ॥ २२६ ॥ शालिञ्चशाकं वेत्राग्रं वास्तूकं बालमूलकम्। लशुनं वृद्धकूष्माण्डं नवीनकदलीफलम् ॥ २२७ ॥ शोभाञ्जनं पटोलञ्च वार्ताकुनलदम्बु च। कर्कोटकं कारवेल्लं बर्हिःतच महार्द्रकम् ॥ २२८ ॥ प्रसारिणी मेषशृङ्गं चाङ्गेरी सुनिषण्णकम्। धात्रीफलं नागरङ्गं दाडिमं निम्बुकं तथा ॥२२९॥ अम्लवेतसजम्बीरमातुलुङ्गानि माक्षिकम्। नवनीतं घृतं तक्रं सौवीरकतुषोदके ॥ २३० ॥ धान्याम्लं कटुतैलञ्च रामठं लवणार्द्रकम्। यमानी मरिचं मेथी धान्यकं जीरकं दधि ॥ २३१ ॥ ताम्बूलं तप्तसलिलं कटुतिक्तौ रसावपि। मन्दानलेप्यजीर्णेऽपि पथ्यमेतन्नृणां भवेत् ॥ २३२ ॥

अजीर्ण तथा मन्दाग्नि में अनेक प्रकार के व्यायाम (कसरत), अग्नि को दीपन करनेवाले तथा हलके पदार्थ, पुराने लाल पतले शालिचावल, यवागू, लाजा से प्रस्तुत मण्ड, मूंग का पानी, मदिरा, हिरन, मोर, शशक, लावा, छोटी मछलियाँ, हरे साग, बेत की फुनगी, बथुआ, कच्ची मूली, लहसन, पुराना पेठा पका हुआ, कच्चा केला, सहिजन, परवल, बैंगन, नीम के पत्तों का शाक, ककोड़े, करेला, बृहतीफल, महाद्रक, प्रसारणी, मेषश्रृङ्गी, चाङ्गेरी, चौपतिया, आँवला, नारंगी, अनार, नींबू, अम्लवेतस, जम्बीर, बिजौरा, मधु, मक्खन, घी, मठा, सौवीर, तुषोदक, काञ्जी, सरसों का तेल हींग, नमक, अदरख, अजवाइन, कालीमिर्च, मेथी, धनियाँ, जीरा, दही, पान, गरम पानी, कड़वे एवं तीखे रसवाले पतले पदार्थ अग्निमान्द्य रोगी को पथ्य हैं ॥ २२५-२३२ ॥

मन्दाग्नि में अपथ्य।

विरेचनानि विण्मूत्रवायुवेगविधारणम्। अध्यशनं समशनं जागरं विषमाशनम ॥ २३३ ॥ रक्तस्रुतिं शमीधान्यं मत्स्यं मांसमुपोदिकाम्। जलपानं पिष्टकञ्च जाम्बवं सर्वमालुकम् ॥ २३४ ॥ कूर्चिकां मोरटं क्षीरं किलाटञ्च प्रपानकम्। तालास्थिसस्यं तद्वालं स्नेहनं दुष्टवारि च ॥ २३५ ॥ विरुद्धासात्म्यपान्नानं विष्टम्भीनि गुरूणि च। अग्निमान्द्येऽप्यजीर्णे च सर्वाणि परिवर्जयेत् ॥ २३६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामग्निमान्द्याधिकारः समाप्तः ॥

तेज विरेचन, दस्त, मूत्र, वायु आदि के वेगों को रोकना, जितनी भूख हो उससे अधिक भोजन करना, अनमल भोजन करना, रात को जागना, कभी ज्यादा कभी कम और कभी कुसमय पर भोजन करना, रक्त का निकलवाना, सेम मटर आदि खाना, नये चावल, मछली, मांस, पोई का साग, अधिक जल पीना, पिट्ठी से बनी चीजें, जामुन, आलू, कूर्चीक, मोरट (प्रसव के सात दिन के बाद का दूध), फटे हुए दूध के खोया से बने पदार्थ, शरबत, ताड़ के बीच का भाग, कच्चे ताड़ का फल, घी, तेल, इत्यादि से बने हुए पदार्थ, खराब पानी, नामाफिक भोजन, एक दूसरे से विरुद्ध भोजन (दूध, मछली आदि),

भारी पदार्थ, ये सब अजीर्ण व अग्निमान्द्य में रोगी को अपने हित के लिए छोड़ देना चाहिए ॥ २३३-२३६ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायामग्निमान्द्याधिकार समाप्त ।

अरोचकाधिकारः ।

अरोचक में शोधन ।

वस्तिं समीरणे पित्ते विरेकं वमनं कफे। कुर्याद् हृद्यानुकूलानि हर्षणञ्च मनोऽग्निजे ॥ १ ॥

वातजन्य अरोचक में बस्तिक्रिया, पित्तजन्य अरोचक में विरेचन और कफजन्य अरोचक में वमन करे । मनोविघातजन्य अरोचक में हृदय के लिये हितकारी अनुकूल और चित्त को सन्तुष्ट करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

कवल-धारण ।

कुष्ठसौवर्चलाजाजी शर्करा मरिचं बिडम् । धात्र्येलापद्मकोशीरपिप्पल्युत्पलचन्दनोत्पलम् ॥ २ ॥ लोध्रं तेजोवती पथ्या त्र्यूषणं सयवाग्रजम् । आर्द्रदाडिमनिर्यासश्चाजाजीशर्करायुत ॥ ३ ॥ सतैलमाक्षिकास्त्वेते चत्वारः[1] कवलग्रहः । चतुरोऽरोचकान् हन्युर्वातायेकजसर्वजान् ॥ ४ ॥

कूट, कालानोन, जीरा, मिश्री, मिरिच और बिड़नमक, आँवला, इलायची, पद्माख, खस, पीपरि, लाल चन्दन और कमल । लोध, चव्य, हरड़, सोंठ, मिरिच, पीपरि और जवाखार । कच्चे अनार के फल के बीजों का रस, जीरा और मिश्री । इन चारों योगों में से किसी एक के चूर्ण को तैल और मधु में मिश्रित कर कवल धारण करना चाहिये । यह योग क्रमशः वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक अरोचक रोग को नष्ट करते हैं[1] ॥ २-४ ॥

मुखशोधन योग ।

त्वङ्मुस्तमेलाधान्यानि मुस्तमामलकं त्वचः । त्वक् च दार्वी यमान्यश्च तेजोवत्यपि पिप्पली ॥५॥ यमानी तिन्तिडीकञ्च पञ्चैते मुखशोधनः । श्लोकपादैरभिहितः सर्वारोचकनाशनाः ॥ ६ ॥

दालचीनी, नागरमोथा, इलायची और धनियाँ का चूर्ण । नागरमोथा, आँवला और दालचीनी का चूर्ण । दालचीनी, दारुहलदी और अजवाइन का चूर्ण । चव्य और पीपरि का चूर्ण । अजवाइन और इमिली का चूर्ण । श्लोक के एक-एक पाद से कहे हुये यह पाँच योग मुखशोधन और सब प्रकार की अरुचि के नाशक हैं ॥ ५-६ ॥

भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रकभक्षणम् । रोचनं दीपनं वह्नेर्जिह्वाकण्ठविशोधनम् ॥ ७ ॥

भोजन से पहले नमक और अदरख खाने से भोजन में रुचि होती है, अग्नि बढ़ती है तथा जीभ और कण्ठ साफ होते हैं ॥ ७ ॥

अभक्तच्छन्दनाशककवलधारण ।

अम्लिका गुडतोयञ्च त्वगेला मरिचान्वितम् । अभक्तच्छन्दरोगेषु शस्तं कवलधारणम् ॥ ८ ॥

इमिली और गुड़ को जल में घोलकर उसमें दालचीनी, इलायची और मिरिच का चूर्ण मिलाकर मुख में धारण करने से हर प्रकार के अभक्तच्छन्द (अन्न में रुचि न होना) रोग नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

---

[1] जिनको तेल रुचिकर नहीं है, वह अकेले ही या घृत मिलाकर प्रयोग कर सकते हैं ।

कारव्यादिकवलधारण।

कारव्यजाजी मरिचं द्राक्षा वृक्षाम्ल-दाडिमम्। सौवर्चलं गुडः क्षौद्रं सर्वा-रोचकनाशनम्॥ ९॥

कलौंजी, जीरा, मरिच, मुनक्का, इमिली, अनार, काला नमक और गुड़; इन औषधों का कवल धारण करने से सब प्रकार की अरुचि नष्ट होती है॥ ९॥

विड्चूर्णादिकवल।

विड्चूर्णमधुसंयुक्तो रसो दाडिम-सम्भवः। असाध्यामपि संहन्यादरुचिं वक्त्रधारितः॥ १०॥

अनार के रस में शहद और विड़नमक मिलाकर मुख में रखने से असाध्य भी अरुचि नष्ट होती है॥ १०॥

त्रीण्यूषणानि त्रिफला रजनीद्वयञ्च चूर्णीकृतानि यवशूकविमिश्रितानि। क्षौद्रान्वितानि वितरेन्मुखधारणार्थमन्यानि तिक्तकटुकानि च भेषजानि॥ ११॥

सोंठ, मिर्च, पीपर (त्रिकटु), हर्र, बहेड़ा, आँवला (त्रिफला), हलदी दारूहलदी, यवक्षार तथा दूसरी कडुवी, तीखी औषधियों को शहद मिलाकर मुँह में रखने से अरुचि नाश को प्राप्त होती है॥ ११॥

राजिकाजीरकौ भृष्टौ भृष्टं हिङ्गु सनागरम्। सैन्धवं दधि गोः सर्वं वस्त्रपूतं प्रकल्पयेत्॥ १२॥ तावन्मात्रं क्षिपेत्तक्रं यथा स्याद्रुचिरुत्तमा। तक्रमेतद्धरेत् सद्यो रोचनं वह्निवर्धनम्॥ १३॥

भुनी हुई राई, भुनी हुई हींग, भुना हुआ जीरा, सोंठ और सेंधा नमक हरएक द्रव्य १ भाग लेकर चूर्ण कर ले और सबके बराबर परिमाणयुक्त दही लेकर उसमें मथ डाले और कपड़े में छानकर सबके बराबर मठा मिला ले। इसके पान करने से रुचि बढ़ती है और अग्नि की वृद्धि होती है॥ १२-१३॥

द्वे पले दाडिमाम्लस्य खण्डं दद्यात् पलत्रयम्। त्रिसुगन्धिपलञ्चैकं चूर्णमेकत्र कारयेत्॥ १४॥ तच्चूर्णं मात्रया भुक्तमरोचकहरं परम्। दीपनं पाचनं च स्यात् पीनसज्वरकासजित्॥ १५॥

२ पल (८ तोला) अनारदाना, ३ पल (१२ तोला) खाँड, १ पल (४ तोला) छोटी इलाइची ४ तोला दालचीनी, १ पल (४ तोला) तेजपत्र, इन सबको इकट्ठा कर यथाविधि चूर्ण बना ले। इस चूर्ण के सेवन करने से अरुचि, पीनस, ज्वर तथा खाँसी नाश को प्राप्त होते हैं। यह चूर्ण दीपन-पाचन है॥ १४-१५॥

महाखाडवचूर्ण।

मरिचं नागपुष्पाणि तालीसं लवणानि च। प्रत्येकमेक भागाः स्युः पिप्पलीमूल चित्रकैः॥ १६॥ त्वकणा तिन्तिडीकं च जीरकं च द्विभागिकम् धन्याम्लवेतसौ विश्वं भद्रैला बदराणि च॥ १७॥ अजमोदा जलधरः प्रत्येकं स्युस्त्रिभागिकाः। सर्वौषधि चतुर्थांशदाडिमस्य फलंभवेत्॥ १८॥ द्रव्येभ्यो निखिलेभ्यश्च सितादेयाऽर्धमात्रयः। महाखाण्डव संज्ञस्याच्चूर्णमेतत्सुरोचनम्॥ १९॥ अग्नि दीप्तिकरं हृद्यं कासातीसारनाशनम् हृद्रोग कण्ठ जठर मुखरोग प्रणाशनम्॥ २०॥ विषूचिकां तथाध्यानमर्शो गुल्म क्रमीनपि। छर्दि पञ्चविधांश्वासंचूर्णमेतद्व्यपोहति॥ २१॥

कालीमिर्च, नागकेशर, तालीस पत्र, पाँचो नमक प्रत्येक औषधियाँ १-१ तोला, पिपलामूल-

चीता की जड़, दालचीनी, पीपरि, तिन्तिडीक (इमलियाचूक) जीरा प्रत्येक औषधियां २-२ तोला। धनियां, अमलबेत, सोंठ, बड़ी इलायची, बेर, अजवायन और नागरमोथा प्रत्येक औषधियां ३-३ तोले। सब औषधियों का चतुर्थांश (सवा दश तोले) अनार दाना और सब औषधियों की अर्ध भाग २२॥ तोले खाँड़ (या मिश्री) मिलावे। यह चूर्ण रुचि बढ़ाने वाला जठराग्नि को बढ़ानेवाला और हृदय को हितकारी है। यह चूर्ण खांसी, हृदय करोग, अतिसार कण्ठरोग, उदररोग, मुँह के रोग, हैजा, अफरा, बवासीर, गुल्म, पेट के कृमि, पाँचो तरह की ढलनी और श्वास को नष्ट करता है ॥ १६-२१ ॥

महौषधादि चूर्ण और गुटिका।

महौषध शिवाजीरं शतपुष्पावचात्वचम्। त्रुटी मधुरिका हिङ्गु देवपुष्पहविर्भुजाम् ॥ २२ ॥ यमान्याश्च लवणयोः पयोधरमरीचयोः। पिप्पलीटङ्कयो श्लक्ष्णचूर्णानि समभागतः ॥ २३ ॥ सम्मिश्रय मर्दयेत् खल्ले माषमात्रन्तु सेवयेत्। महौषधादिकं चूर्णमिदं हन्यादरोचकम् ॥ २४ ॥ अग्निमान्द्यमतीसारमम्लपित्त विसूचिकाम्। ग्रहणीं शूलगुल्मांश्च सूतिकाञ्च विलम्बिकाम् ॥ २५ ॥ यकृत्प्लीहज्वरं जीर्णं रक्तबीजं यथार्भिका ॥ २६ ॥ चतुर्गुणेन लिम्पाकरसेन वारसप्तकम्। तदेव भावितं चूर्णं यदिष्टर्द्धश्चिकित्सकैः ॥ गुणैर्वरा तदाख्याता तदाख्या गुडिका भवेत् ॥ २७ ॥

सोंठ, हरड़, सफेद जीरा, सोया, बच, दारचीनी, छोटी इलाइची, सौंफ, हींग, लौंग, चित्रक अजवाइन, सेंधा नमक, बिड नमक, मोथा, कालीमिर्च पीपल सुहागा इनको पृथक् पृथक् चूर्ण कर बराबर बराबर मिलाकर घोटे। मात्रा—१ माशा। इस महौषध आदि चूर्ण के सेवन करने से अरुचि, मन्दाग्नि, अतिसार (दस्त), अम्लपित्त, विसूचिका (हैजा), ग्रहणी, शूल (दर्द), गुल्म, सूतिकारोग, विलम्बिका, तिल्ली, जिगर से उत्पन्न पुराना ज्वर आदि रोग नाश को प्राप्त होते हैं। अगर इस चूर्ण में चार गुन नींबू के रस की भावनाएँ देकर गोलियाँ बना ले तो यह गोलियाँ दूसरे चूर्णों की अपेक्षा अधिक गुणकारी होंगी ॥ २२-२७ ॥

यमानीषाडव।

यमानी तिन्तिडीकञ्च नागरञ्चाम्लवेतसम्। दाडिम बदरञ्चाम्लं कार्षिकाण्युपकल्पयेत् ॥ २८ ॥ धान्यसौवर्चलाजाजी वराङ्गञ्चार्द्धकार्षिकम्। पिप्पलीनां शतञ्चैव द्वे शते मरिचस्य च ॥ २९ ॥ शर्करायाश्च चत्वारि पलान्येकत्र चूर्णयेत्। जिह्वाविशोधनं हृद्यं तच्चूर्णं भक्तरोचनम् ॥ ३० ॥ हृत्पीडापार्श्वशूलघ्नं विबन्धानाहनाशनम्। कासश्वासहरं ग्राहि ग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥ ३१ ॥

अजवाइन, इमिली, सोंठ अमलबेत, अनार के दाने और खट्टा बेर एक एक तोला, धनियाँ, कालानोन, जीरा और दालचीनी आधा आधा तोला, पीपरि १००, मरिच दो सौ और चीनी १६ तोला, इन औषधों को कूट-पीसकर चूर्ण बना लेवे। इस चूर्ण को कुछ देर तक मुख में धारण करके पीछे धीरे धीरे निगल जाना चाहिये। यह चूर्ण जिह्वाशोधक हृदय को हित कारक और रुचिवर्धक है। तथा हृदय की पीड़ा, पसलियों की पीड़ा, मलबद्धता, आनाह, कास, श्वास, ग्रहणी और बवासीर को नष्ट करता है एवं ग्राही है ॥२८-३०॥

कलहंस।

शिग्रु फलान्यष्टादशादिङ्मरिचानि विंशतिः पिप्पल्यः। आर्द्रकपल गुडपल प्रस्थद्वयमारनालस्य ॥ ३१ ॥ एतद्विड्लवणसहितं खजाहतं सुरभिगन्धाढ्यम्।

व्यञ्जनसहस्रधाति श्रेयं कलहंसकं नाम ॥ ३३ ॥

खजाहतं मन्थानदण्डमथितम्। सुरभिगन्धाढ्यं चातुर्जातचूर्णेन सुगन्धीकृतं चातुर्जातं मिलित्वा पलं, प्रत्येकमिति केचित्। कलहंसवत् स्वरकर्तृत्वादस्य कलहंससंज्ञा।

सहिंजन के फल १८, मिरिच १० दाने, पीपरि २०, अदरख ४ तोले, गुड़ ४ तोले, काँजी १२८ तोले, सेंधनमक ४ तोले; इन सब वस्तुओं को एकत्रित कर अच्छी तरह चूर्ण करके चतुर्जातक (दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेसर) का ४ तोले चूर्ण मिलाकर सुगन्धित करे। किसी वैद्य का मत है कि चतुर्जातक के दालचीनी आदि जो चार औषध हैं, इनमें से प्रत्येक का चार-चार तोले चूर्ण मिलावे। यह औषध अत्यन्त सुस्वादु होने से हजारों प्रकार के व्यञ्जनों को तिरस्कृत करता है। इसका सेवन करने से कलहंस के समान अत्यन्त सुमधुर स्वर होता है, अग्नि की वृद्धि होती है और सब प्रकार की अरुचि नष्ट होती है। कलहंस के समान स्वर करने ही से इसका नाम कलहंस रक्खा गया है ॥ ३२-३३ ॥

तिन्तिडीपानक।

भागास्तु पञ्च चिञ्चायाः खण्डस्यापि चतुर्गुणाः। धान्यकार्द्रकयोर्भागं चातुर्जातार्द्धभागिकम् ॥ ३४ ॥ द्विगुणं जलमेतेषामेकपात्रे विलोडितम्। पीडितं तप्तदुग्धेन ततो वस्त्रपरिप्लुतम् ॥ ३५ ॥ विधिना धूपिते पात्रे कृत्वा कर्पूरवासितम्। नृपयोग्यमिदं पानं भवेद् युक्त्या सुयोजितम् ३०॥

बीजादि-रहित परिपक्व इमिली ५ तोले, खाँड २० तोले, धनियाँ का चूर्ण आधा तोला, अदरख आधा तोला, दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेसर का चूर्ण आधा तोला और जल ५२ तोले, इन सब औषधों को पात्र में मलकर मिश्रित कर देवे। पश्चात् थोड़ा-सा उष्ण दुग्ध मिलाकर वस्त्र से ढँक देवे। पीछे अगर आदि द्वारा धूपित पात्र में रखकर कर्पूर से सुवासित कर देवे। तत्पश्चात् सेवन करने के योग्य हो जाता है। यह तिन्तिडीपानक युक्तिपूर्वक प्रयोग करने से राजाओं के योग्य होता है ॥ ३४-३६ ॥

रसाला।

अर्द्धाढकं सुचिरपर्य्युषितस्य दध्नः खण्डस्य षोडशपलानि शशिप्रभस्य। सर्पिः पलं मधुपलं मरिचद्विकर्षं शुण्ठ्याः पलार्द्धमपि चार्द्धपलं चतुर्णाम् ॥ ३७ ॥ शुक्लोपले ललनया मृदुपाणिघृष्टा कर्पूरचूर्णसुरभीमयभाण्डसंस्था। एषा वृकोदरकृता सुरसा रसाला याऽऽस्वादिता भगवता मधुसूदनेन ॥ ३८ ॥ रसाला बृंहणी वृष्या स्निग्धा बल्ला रुचिप्रदा ॥ ३९ ॥

अत्र दध्नो न द्वैगुण्यमिति केचित्।

खट्टा दही ३ सेर १६ तोला, मिश्री ६४ तोला, घृत ४ तोला, मधु ४ तोला, मरिच का चूर्ण २ तोले, सोंठ का चूर्ण २ तोले, दालचीनी इलाइची, तेजपात और नागकेसर प्रत्येक का चूर्ण आधा तोला। इन औषधों को श्वेत पत्थर के पात्र में कोई सुन्दरी रमणी अपने कोमल हाथों से मसल कर कर्पूर के चूर्ण से सुगन्धित किये हुए पात्र में रख देवे। इस सुमधुर रसाला को भीमसेनजी ने बनाया था और भगवान् मधुसूदन ने इसका आस्वादन किया था। यह रसाला बृंहण, वृष्य, स्निग्ध, बलप्रद और रुचिवर्धक है ॥ ३७-३९ ॥

किसी वैद्य का मत है कि दधि द्रव पदार्थ होने पर भी इस योग में द्विगुण नहीं लिया जाता है, अतः उनके मत के अनुसार दही १२८ तोला लेना चाहिये।

रसकेशरी ।

रसगन्धौ समौ शुद्धौ दन्तीकाथेन मर्दयेत् । देवपुष्पं चाणमितं रसपादं तथामृतम् । ॥ ४० ॥ माषमात्रञ्च तत् सेव्यं नागरेण गुडेन वा । सर्वारोचकशूलार्त्तिमामवातं विनाशयेत् ॥ ४१ ॥ विसूचीमग्निमान्द्यञ्च भक्तद्वेषं सुदारुणम् । रसो निवारयत्येष केशरी करिणं यथा ॥ ४२ ॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, लौंग २ तोले, विष और पारा चतुर्थांश अर्थात् तीन-तीन मासे; इन औषधों को दन्ती के क्वाथ में घोटकर उर्द के बराबर गोली बनावे । सोंठ अथवा गुड़ के साथ इसका सेवन करना चाहिये । यह रस सब प्रकार के अरोचक, शूल और आमवात को नष्ट करता है । जिस प्रकार सिंह हाथी को भगाता है वैसे ही यह रसकेसरी विसूचिका, अग्निमान्द्य और घोर अरुचि (भोजन के नाम से भी घृणा हो) को दूर करता है ॥ ४०-४२ ॥

अरोचक में पथ्य।

गोधूममुद्गारुणशालिषष्टिका मांसं वराहाजशशैणसम्भवम् । चेङ्गो झषाण्डं मधुरालिकेल्लिशः प्रोष्ठी खलीशः कवयी च रोहितः ॥ ४३ ॥ कर्कारुवैत्राग्रनवीनमूलकं वार्ताकुशोभाञ्जनमोचदाडिमम् । भव्यं पटोलं रुचकं घृतं पयो थालानि तालानि रसोनशूरणम् ॥ ४४ ॥ द्राक्षा रसालं नलदाम्बु काञ्जिकं मद्यं रसाला दधि तक्रमार्द्रकम । कर्कोलखर्जूरपियालतिन्दुकं पक्वं कपित्थं बदरं विकङ्कतम् ॥ ४५ ॥ तालास्थिमज्जा हिमवालुका सिता पथ्या यवानी मरिचानि रामठम् । स्वाद्वम्लतिक्तानिच देहमार्जना वर्गोऽप्ययुक्तोऽरुचिरोगिणे हितः ॥ ४६ ॥

गेहूँ, मूँग, लाल शालि, साठी के चावल, सूअर, बकरा, हिरन, शशक आदि के मांस, चेङ्ग मछली, मगर के अण्डे, मधुरालिका, इल्लिश, प्रोष्ठी, खलीश, कवयी, रोहित आदि मछलियाँ, ककड़ी, बेत की फुनगी, कच्ची मूली, बैंगन, सहिंजन, केला, अनार, कमरख, परवल, कालानमक, घी, दूध, कच्चे ताल फल, लहसन, जिमीकंद, अंगूर, आम, खस का पानी, काँजी, शराब, रसाला, दही, मठा, अदरख, शीतलचीनी, खजूर, पियाल, तिन्दुक, पका हुआ कैथ, बेर, विकङ्कत, ताल की गुठली की मज्जा, कपूर, मिश्री, हरड़, अजवाइन, कालीमिर्च, हींग, खट्टे तथा तीखे सुस्वादु पदार्थ, उबटना, नहाना, शरीर को शुद्ध रखना उपर्युक्त सब बातें अरोचक रोगी के लिए पथ्य हैं ॥ ४३-४६ ॥

अरोचक में अपथ्य ।

कासोद्गारक्षुधानेत्रवारिवेगविधारणम् । अहृद्यान्नमसृङ्मोक्षं क्रोधं लोभं भयं शुचम् ॥ ४७ ॥ दुर्गन्धारूपसेवाञ्च न कुर्यादरुचौ नरः ॥ ४८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामरोचकाधिकारः समाप्तः ।

खाँसी, डकार, भूख, आँसू, इनके वेगों का अवरोध करना, जो अन्न प्रिय न हों उनका भक्षण करना, रक्त निकलवाना, क्रोध, लोभ करना, भय, शोक आदि, दुर्गन्ध, कुरूप ये सम्पूर्ण बातें अरोचक रोगी के लिये अपथ्य हैं ॥ ४७-४८ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाऽभिधायां व्याख्यायां अरोचकाधिकारः समाप्तः ॥

अथातीसाराधिकारः।

आमपक्वज्ञान का प्रयोजन।

आमपक्वक्रमं[1] हित्वा नातिसारे क्रिया यतः। अतः सर्वातिसारेषु ज्ञेयं पक्वामलक्षणम् ॥ १ ॥

अतीसार रोग में आम और पक्व अवस्था को बिना जाने हुए, चिकित्सा नहीं की जा सकती है। प्रयोजन यह कि यदि आमातीसार में पक्वातीसार की क्रिया की जाय, अर्थात् ग्राहक ओषधियों का प्रयोग किया जाय, अथवा पक्वातीसार में आमातीसार की क्रिया, अर्थात् लंघन आदि की व्यवस्थाएँ की जायँ, तो महान् अनिष्ट हो सकता है। अत. सब प्रकार के अतीसारों में पहले आम और पक्व के लक्षणों को अच्छी तरह समझकर चिकित्सा आरम्भ करनी चाहिए ॥१॥

आम और पक्व के लक्षण।

मज्जत्यामो गुरुत्वाद्विट् पक्वस्तूत्प्लवते जले। विनातिद्रवसंघातं शैत्यश्लेष्ममदूषणात् ॥ २ ॥

आमातीसार में विष्ठा जल में डूब जाती है, और पक्वातीसार में नहीं डूबती। परन्तु अत्यंत द्रुत (पतला) अत्यन्त सहत (कड़ा), अत्यन्त शीतल अथवा कफदूषित होने पर पक्व मल भी जल में डालने से डूब जाता है ॥ २ ॥

आम और पक्व के लक्षणान्तर।

शकृद्दुर्गन्धि साटोपविष्टम्भार्त्तिप्रसेकिनः। विपरीतं निरामन्तु कफात् पक्वञ्च मज्जति ॥ ३ ॥

आमातीसार में मल में दुर्गन्ध आना, पेट का गुड़गुड़ाना, थोड़ा थोड़ा मल निकलना, पीड़ा होना और मुख में लार का अधिक आना ये सब लक्षण होते हैं। पर पक्वातीसार में उक्त लक्षणों की अपेक्षा विपरीत लक्षण उपस्थित होते हैं। श्लैष्मिक अतीसार में कफ की गुरुता के कारण, पक्वावस्था में भी मल जल में डूब जाता है ॥३॥

1—क्वचित् आमावक्रेति पाठान्तरम्।

अतीसारचिकित्सा।

आमे विलङ्घनं शस्तमादौ पाचनमेव वा। कार्य्यञ्चानशनस्यान्ते प्रद्रवं लघु भोजनम् ॥४॥ लङ्घनमेकं त्यक्त्वा नान्यदस्तीह भेषजं बलिनः। समुदीर्ण दोषचयं शमयति तत् पाचयत्यपि च ॥ ५ ॥

प्रद्रवं मकुष्ठद्रवं तच्च लघु एतेन मण्डपेयायवाग्वादिकं सूचितम्। वर्ज्जयेद् द्विदलं शूली कुष्ठी मांसं क्षयी स्त्रियम्। द्रवमम्लमतीसारी सर्वञ्च तरुणज्वरी इत्यत्र द्रवनिषेधोऽविहितदुग्धादिद्रवनिषेधार्थ इति न विरोधः।

आमातीसार में पहले लंघन और पाचन की व्यवस्था करे। लंघन करने के बाद भोजन के लिये अत्यंत पतली हलकी वस्तु अर्थात् माँड, पेया और यवागू आदि की व्यवस्था करनी चाहिये। बलवान् मनुष्य के लिये लंघन के समान कोई अन्य औषध नहीं है, क्योंकि लंघन द्वारा दोषों की शान्ति और उनका परिपाक हो जाता है।

प्रश्न—शूल रोग में दाल, कुष्ठ रोग में मांस क्षय रोग में स्त्री, अतीसार में द्रव पदार्थ और अम्लपदार्थ तथा तरुण ज्वर में ये सब पदार्थ त्याज्य हैं, ऐसा अन्यत्र लिखा है। फिर यहां अतीसार में द्रव का विधान क्यों किया ?

उत्तर—उक्त निषेध उन्हीं दुग्ध आदि द्रव पदार्थों के विषय में है, जिनका अतीसार में विधान नहीं है किन्तु मण्ड पेया और यवागू आदि का निषेध नहीं है ॥ ४ ५ ॥

नागरादि क्वाथ।

नागरातिविषामुस्तैरथवा धान्यनागरैः। तृष्णाशूलातिसारघ्नं पाचनं दीपनं लघु ६॥ शालिपर्णी पृश्निपर्णी बृहती कण्टका-

रिका। बलाश्वदंष्ट्राबिल्वानि पाठानागरधान्यकम् ॥ ७ ॥ एतदाहारसंयोगे हितं सर्वातिसारिणाम्। शालिपर्णीबलाबिल्वैः पृथक्पर्ण्या च साधिता ॥८॥ दाडिमाम्ला हिता पेयापित्तश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ ९ ॥

सोंठ, अतीस, मोथा मिलाकर २ तोला अथवा धनियां तथा सोंठ मिलाकर २ तोला, इनका विधि से क्वाथ करके तृष्णा, शूल तथा अतीसार अच्छा करने के लिये इस पाचन, दीपन तथा लघु क्वाथ को सेवन कराना चाहिये, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू, बेल के फल की गिरी, पाठा, धनिया इनके साथ आहार बनाकर अतीसार से पीड़ित रोगियों को भोजन कराना चाहिये। शालिपर्णी, खरेटी, बेल, पृश्निपर्णी से सिद्ध तथा अनार का रस डालकर जरा खट्टी की हुई पेया, पित्त, कफजन्य अतिसार में प्रयोग कराना चाहिये ॥६-८॥

धान्यपञ्चकसिद्धो वा धान्यविश्वकृतोऽथवा। आहारो भिषजा योज्या वातश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ १० ॥

वात-कफजन्य अतिसार में धान्यपञ्चक से सिद्ध अथवा धनियाँ और सोंठ से सिद्ध किये हुए आहार का प्रयोग करना चाहिये ॥ १० ॥

लघुना पञ्चमूलेन वातपित्ते प्रशस्यते। ह्रीबेरशृङ्गबेराभ्यां मुस्तपर्पटकेन वा ॥ आभ्यामेव सपाठाभ्यां सिद्धमाहारमाचरेत् ॥ ११ ॥

लघुपञ्चमूल से सिद्ध आहार वातपित्तातिसार में श्रेष्ठ है। सुगन्धवाला तथा सोंठ से अथवा मोथे तथा पित्तपापड़े से सिद्ध किया हुआ अथवा सुगन्धवाला, सोंठ, मोथा, पित्तपापड़ा तथा पाठा से सिद्ध क्वाथ को अतीसार में प्रयोग करना चाहिये ॥ ११ ॥

ह्रीबेरादि क्वाथ।

ह्रीबेरशृङ्गबेराभ्यां मुस्तपर्पटकेन वा। मुस्तोदीच्यशृतं तोयं देयं वापि पिपासवे १२

सुगन्धवाला और सोंठ अथवा नागरमोथा और पित्तपापड़ा अथवा नागरमोथा और सुगन्धवाला, इन तीन योगों में से किसी एक योग का क्वाथ पिलाने से अतीसार के रोगी की पिपासा शान्त होती है ॥ १२ ॥

युक्तेऽन्नकाले क्षुत्क्षामं लघून्यन्नानि भोजयेत् ॥१३॥ औषधसिद्धापेयालाजानां शक्तवोऽप्यतिसारहिताः । वस्त्रप्रस्रुतमण्डः पेया च मसूरयूषश्च ॥ १४ ॥

नियमित रूप से लंघन करने के बाद भूख से मुर्झाए हुए रोगी को उचित भोजन के समय में लघु अन्न खिलावे। धान्यपञ्चक अथवा पञ्चकोल आदि औषधों से सिद्ध की हुई पेया, धान की खील के सत्तू, वस्त्र से छाना हुआ माड़, पेया और मसूर का यूष, ये सब पदार्थ अतीसार में पथ्य हैं ॥ १३-१४ ॥

न तु संग्रहणं दद्यात् पूर्वमामातिसारिणे। दोषा ह्यादौ रुध्यमाना जनयन्त्यामयान् बहून् ॥ १५ ॥ शोथपाण्डामयप्लीहकुष्ठगुल्मोदरज्वरान्। दण्डकालसकाध्मानग्रहण्यर्शोगदांस्तथा ॥ १६ ॥

आमातीसार में पहले संग्राही (धारक) औषधियाँ न देवे। प्रयोजन यह कि संग्राही औषधों द्वारा रुके हुए दोष—शोथ, पाण्डु, प्लीहा, कुष्ठ, गुल्म, उदर, ज्वर, दण्डक, अलसक, आध्मान, ग्रहणी और बवासीर आदि बहुत रोगों को उत्पन्न कर देते हैं ॥ १५-१६ ॥

क्षीणधातुबलार्त्तस्य बहुदोषोऽतिनिःसृतः। आमोऽपि स्तम्भनीयः स्यात् पाचनान्मरणं भवेत् ॥ १७ ॥

जो रोगी धातु और बल के क्षीण हो जाने से दुःखित है, उसके अनेक दोष-पुञ्ज एवं अत्यधिक मल निकल चुके हों, तो आमावस्था में भी स्तम्भन औषधि का प्रयोग करना चाहिए। कारण यह है कि ऐसी अवस्था में पाचन औषध

द्वारा और भी अधिक मल निकलने से रोगी के मरण की संभावना है ॥ १७ ॥

स्तोकं स्तोकं विबद्धं वा सशूलं योऽतिसार्य्यते। अभयापिप्पलीकल्कैः सुखोष्णैस्तं विपाचयेत् ॥ १८ ॥

अतीसार में थोड़ा-थोड़ा बँधा मल निकलता हो और पेट में पीड़ा भी होती हो, तो हड़ और पीपल को पानी में चटनी के समान पीसकर थोड़ा गरम करके सेवन कराना चाहिये। इसके द्वारा दोषों का परिपाक हो जाता है मात्रा ४-६ माशा ॥ १८ ॥

धान्यपञ्चक और धान्यचतुष्क।

धान्यकं नागरं मुस्तं बालकं बिल्वमेव च। आमशूलातिसारघ्नं पाचनं वह्नि-दीपनम् ॥ १९ ॥ इदंधान्यचतुष्कंस्यात् पैत्ते शुण्ठीं विना पुनः ॥ २० ॥

धनियाँ, सोंठ, नागरमोथा, सुगन्धबाला और बेलगिरी; इन औषधियों का क्वाथ[1] पीने से आमशूल और अतिसार का नाश, दोषों का पाचन और अग्नि का दीपन होता है। पैत्तिक अतिसार में उक्त धान्यपञ्चक में से सोंठ को निकालकर शेष चार औषधों का क्वाथ पिलाना चाहिये। इसको धान्यचतुष्क कहते हैं। मात्रा ४ तोला ॥ १९-२० ॥

नागरातिविषामुस्तैरथवा धान्यनागरैः। तृष्णाशूलातिसारघ्नं पाचनं दीपनं लघु२१

सोंठ, अतीस और नागरमोथा; इन तीन औषधों का अथवा धनियाँ और सोंठ, इन दो औषधों का क्वाथ तृष्णा, शूल और अतीसार का नाशक, दोषों का पाचक, अग्नि का दीपक और हलका है। मात्रा-४ तोला ॥ २१ ॥

पक्वोऽसकृदतीसारो ग्रहणीमार्दवात् यदा। प्रवर्त्तते तदा कार्य्यः क्षिप्रं सांग्राहिको विधिः ॥ २२ ॥

ग्रहणी की (अन्नधिष्ठान-नाड़ी-विशेष की) मृदुता के कारण जब पक्वातीसार में निरंतर मल निकलने लगे, तब तत्काल संग्राही (धारक) औषध की व्यवस्था करनी चाहिए ॥ २२ ॥

कञ्चटादि कषाय।

कञ्चटदाडिमजम्बुशृङ्गाटकपत्रह्रीवेरम्। जलधरनागरसहितं गङ्गामपि वेगिनीं रुन्ध्यात् ॥ २३ ॥

जलचौराई की पत्तियाँ, अनार की पत्तियाँ, जामुन की पत्तियाँ, सिंघाड़ा की पत्तियाँ, सुगंधबाला, नागरमोथा और सोंठ, इन औषधों का क्वाथ बनाकर पीने से गङ्गा के समान प्रबल वेगवाला भी अतीसार बंद हो जाता है ॥ २३ ॥

कुटजादि कषाय।

कुटजं दाडिमं मुस्तं धातकी बिल्व-बालकम्। लोध्रचन्दनपाठाश्च कषायं मधुना पिबेत् ॥ २४ ॥ सामे शूले च रक्ते च पिच्छास्रावे च शस्यते। कुटजादिरिति ख्यातः सर्वातीसारनाशनः ॥ २५ ॥

अतिसारे दृष्टफलोऽयं योगः।

कुड़े की छाल, अनार का छिलका, नागरमोथा, धाय के फूल, बेलगिरी, सुगन्धबाला, पठानी लोध, लालचंदन और पाढ़, इन औषधों का क्वाथ बनाकर, उसमें आधा तोला मधु मिलाकर पीना चाहिये। यह क्वाथ आम-शूल, रक्तस्राव और मल की पिच्छिलता (मल में चिकने छिछड़े आना) को नष्ट करता है। यह कुटजादि क्वाथ नाम से प्रसिद्ध है और सब प्रकार के अतीसारों को नष्ट करता है ॥ २४-२५ ॥

ग्रन्थकार ने इस योग को अत्यन्त लाभप्रद तथा अनुभूत लिखा है।

वत्सकादि कषाय।

सवत्सकः सातिविषः सबिल्वः सोदीच्य-मुस्तश्च कृतः कषायः। सामे सशूले

[1]—धान्य-पञ्चक और धान्य-चतुष्क के क्वाथ में आधा तोला मधु मिलाने से विशेष लाभ होता है।

सहशोणिते च चिरप्रवृत्तेऽपि हितोऽतिसारे ॥ २६ ॥

कुडे की छाल, अतीस, बेलगिरी, सुगंधबाला और नागरमोथा, इन औषधों का क्वाथ आमशूल, रक्तस्राव और अधिक दिनों के अतीसार में लाभदायक होता है । मात्रा- ४-५ तोला ॥ २६ ॥

पथ्यादि क्वाथ ।

पथ्यादारुवचामुस्तैर्नागराातिविषान्वितैः । आमातीसारनाशाय क्वाथमेभिः पिबेन्नरः ॥ २७ ॥

हरड़, देवदारु, बच, मोथा, सोंठ, अतीस, इनके क्वाथ को आमातीसार की शान्ति के लिये प्रयोग कराना चाहिए । मात्रा-४।५ तोला ॥ २७ ॥

व्यूषणादि चूर्ण ।

व्यूषणातिविषाहिङ्गुवचासौवर्चलाभयाः । पीत्वोष्णेनाम्बुना जह्यादामातीसारमुद्धतम् ॥ २८ ॥

मिरच, पीपल, सोंठ, अतीस, हींग, बच, सौंचर नमक, हरड़, इनका चूर्ण बढ़े हुए अतिसार को नष्ट करता है । मात्रा-२।३ माशा । अनुपान-गरम जल ॥ २८ ॥

कुटजादि क्वाथ ।

कुटजत्वक्फलं मुस्तं क्वाथयित्वा पिबेज्जलम् । अतीसारं जयेदाशु शर्करामधुयोजितम् ॥ २९ ॥

कुड़ा की छाल, इन्द्रजौ, मोथा इनके क्वाथ में मिश्री तथा शहद डालकर सेवन कराने से अतिसार शीघ्र ही नष्ट हो जाता है । मात्रा-४।५ तोला ॥ २९ ॥

कुटजादि क्वाथ ।

कुटजातिविषा मुस्तं हरिद्रा पर्णिनीद्वयम् । सक्षौद्रशर्करं शस्तं पित्तश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ ३० ॥

कुड़ा की छाल, अतीस, मोथा, हल्दी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, इनके क्वाथ में शहद, शक्कर डालकर पित्त-कफजन्य अतिसार में सेवन कराना चाहिये । मात्रा ४।५ तोला ॥ ३० ॥

किराततिक्तादि क्वाथ ।

किराततिक्तकं मुस्तं वत्सकं सरसाञ्जनम् । पित्तातिसाररोगघ्नं सक्षौद्रं वेदनापहम् ॥ ३१ ॥

चिरायता, मोथा, इन्द्रजौ, रसौत, मिलाकर २ तोले, पाक के लिये जल ३२ तोले, शेष, ४ तोले, इस क्वाथ में शहद डालकर पीना कष्ट सहित पित्तातिसार में लाभदायक है ॥ ३१ ॥

पथ्यादि क्वाथ ।

पथ्या दारु वचा शुण्ठी मुस्ता चातिविषामृता । क्वाथ एषां हरेत्पीतो वातातीसारमुल्बणम् ॥ ३२ ॥

हरड़, देवदारु, बच, सोंठ, मोथा, अतीस तथा गिलोय का क्वाथ बहुत बढ़े हुए वातातीसार को नष्ट करता है । मात्रा-४ तोला ॥ ३२ ॥

अथ नाभिप्रलेपाः ।

आमलकालवाल ।

कृत्वालवालं सुदृढं पिष्टैरामलकैर्भिषक् । आर्द्रकस्वरसेनाथ पूरयेन्नाभिमण्डलम् ॥ नदीवेगोपमं घोरमतीसारं निवारयेत् ॥ ३३ ॥

आँवले को जल में पीस कर रोगी की नाभि के चारों ओर थामला (घेरा) सा बना देवे फिर उसमें अदरख का रस भर देवे तो नदी के वेग के समान घोर अतीसार रुक जाता है ॥ ३३ ॥

जातीफलप्रलेप ।

तथा जातीफलं पिष्ट्वा नाभौ दद्यात्

प्रलेपनम्। दुर्निवारमतीसारं वारयत्यनिवारितम्॥ ३५॥

जायफल को पीसकर नाभि पर लेप कर देवें। यह लेप कठिन और अत्यन्त बढ़े हुये अतीसार को दूर करता है॥ ३५॥

आम्रकल्कप्रलेप।

आम्रस्य वल्कलं पिष्टं काञ्जिकेन मयमत॥ ३५॥ नाभिं संलेपयेत्तेन कल्केन मतिमान् भिषक्। नदीवेगोपमं घोरमतीसारं निवारयेत्॥ ३६॥

आम की छाल को काँजी में पीसकर नाभि पर प्रलेप करे तो नदी के वेग के समान घोर अतीसार नष्ट होता है॥ ३५-३६॥

अथ सामान्यातीसारचिकित्सा।

बिल्वादि क्वाथ।

बिल्वचूतास्थिनिर्यूहः पीतः सक्षौद्रशर्करः। निहन्याच्छर्द्यतीसारं वैश्वानर इवाहुतिम्॥ ३७॥

बेलगिरी और आम की गुठली की गिरी, इन दोनों औषधों का क्वाथ बनाकर उसमें शहद और मधु मिलाकर पिलावें। जैसे अग्नि आहुति को नष्ट करता है, वैसे ही यह क्वाथ वमन और अतीसार को तत्काल नष्ट करता है। मात्रा ४ तोला॥ ३७॥

पटोलादि क्वाथ।

पटोलयवधन्याककाथः पेयः सुशीतलः। शर्करामधुसंयुक्तश्छर्द्यतीसारनाशनः॥ ३८॥

परवल, इन्द्रयव और धनियाँ, इन तीनों औषधों के क्वाथ को शीतल करके शक्कर और मधु के साथ पिलावे। यह क्वाथ वमन और अतीसार को नष्ट करता है मात्रा ४ तोला॥ ३८॥

अतीसार में शाखोटकप्रयोग।

ऊर्ध्वाधोवदनेन वल्कलयुगं शाखोटकस्यादरादादायाशु यथाक्रमं कटितटे मौलेन बद्धं गले। हन्त्येतद्युगपत्प्रमूतवमनोत्क्लेशातिसारामयान् योगोऽयं परमेश्वरस्य न कदाप्युल्लङ्घनीयो बुधैः॥ ३९॥

शाखोटक वृक्ष से दो छाल उतार कर उनको ऊपर नीचे मुख करके कटिप्रदेश एवं गले में, बाँधने से वमन, जी मचलाना तथा अतीसार एक साथ बन्द हो जाते हैं॥ ३९॥

लवङ्गचतुःसम।

जातीफलं त्रिदशपुष्पसमन्वितञ्च जीरञ्च टङ्कनयुतं मुनिभिः प्रणीतम्। एतानि माक्षिकसितासहितानि लीढ्वा आमातिसारमखिलं गुरुमाशु हन्ति॥४०॥

जायफल, लौंग, जीरा और सोहागा फूला हुआ इनका चूर्ण बनाकर उसमें मधु और चीनी मिलाकर चाटने से प्रबल आमातीसार तत्काल नष्ट होता है॥ ४०॥

अहिफेनप्रयोग।

गुञ्जामितमहिफेनं छागदुग्धेन योजितम्। बहुवेगमतीसारं धारयत्याशु निश्चितम्॥ ४१॥ अहिफेनातियोगेन नातिसारो निवर्त्तते। किन्त्वस्य बहुभिर्योगैर्मा मृतोऽमृत[1] एव स॥ ४२॥

एक रत्ती अफीम को बकरी के दूध में घोलकर पिलाने से बहुत वेगवाला अतीसार तत्काल दूर हो जाता है। अफीम का एक ही बार, अधिक मात्रा में प्रयोग करने से लाभ नहीं होता, प्रत्युत हानि होती है। किंतु अत्यन्त अल्प मात्रा में बार-बार प्रयोग करने से अमृत के समान लाभदायक होती है॥ ४१-४२॥

१ रतिसारो न तिष्ठतीति पाठान्तरम्।

अथ रक्तातीसारचिकित्सा ।

कुटज-दाडिम कषाय ।

कषायो मधुना पीतस्त्वचो दाडिमवत्सकात् । सद्यो जयेदतीसारं सरक्तं दुर्निवारकम् ॥ ४३ ॥

अनार का छिलका और कुड़े की छाल, इन दो औषधों का क्वाथ बनाकर, उसमें मधु मिलाकर पीने से कठिन रक्तातीसार तत्काल नष्ट होता है । मात्रा—४ तोला ॥ ४३ ॥

गुड़बिल्व ।

गुडेन खादितं बिल्वं रक्तातीसारनाशनम् । आमशूलविबन्धघ्नं कुक्षिरोगविनाशनम् ॥ ४४ ॥

भुने हुए बेल के गूदे में गुड़ मिलाकर सेवन करने से रक्तातीसार, आम-शूल, विबन्ध और कुक्षि-रोग नष्ट होता है मात्रा—२॥ तोला ॥४४॥

शल्लक्यादिप्रयोग ।

शल्लकीवदरीजम्बूपियालाम्रार्जुनत्वचः । पीताः क्षीरेण मध्वाढ्याः पृथक् शोणितनाशनाः ॥ ४५ ॥

सलई (साल वृक्ष का भेद), बेर, जामुन, पियाल (चिरौंजी का वृक्ष), आम या अर्जुन, इनमें से किसी एक की छाल को बकरी के दूध में पीस और शहद मिलाकर पीने से रक्तातीसार नष्ट हो जाता है । मात्रा ६ मासा ॥ ४५ ॥

जम्ब्वादिस्वरसप्रयोग ।

जम्ब्वाम्रामलकानान्तु पल्लवानथ कुट्टयेत् । संगृह्य स्वरसं तेषामजाक्षीरेण योजयेत् ॥ ४६ ॥ तं पिबेन्मधुना युक्तं रक्तातीसारनाशनम् ॥ ४७ ॥

जामुन, आम और आंवला की पत्तियों को कूटकर स्वरस निकाले और उस स्वरस में बकरी का दूध तथा मधु मिलाकर पीवे, तो रक्तातीसार नष्ट हो जाता है । मात्रा२॥ तोला ॥ ४६-४७ ॥

बिल्वसिद्धदुग्धप्रयोग ।

बिल्वं छागपयः सिद्धं सितामोचरसान्वितम् । कलिङ्गचूर्णसंयुक्तं रक्तातीसारनाशनम् ॥ ४८ ॥

बेलगिरी २ तोले, बकरी का दूध १६ तोले और जल ६४ तोले इन सबको मिलाकर पकावे । दुग्ध-मात्र शेष रहने पर चीनी तथा मोचरस और इन्द्रजव का चूर्ण मिलाकर पान करे तो रक्तातीसार नष्ट होता है ॥ ४८ ॥

"वृद्ध वैद्यों का मत है कि बेलगिरी १ माशे, सिता १ माशे तथा मोचरस और इन्द्रजव का चूर्ण १ मासा लेना चाहिए" ॥

तण्डुलीयादि प्रयोग ।

ज्येष्ठाम्बुना तण्डुलीयं पीतञ्च ससितं मधु ॥ ४९ ॥ पीत्वा शतावरीकल्कं पयसा क्षीरभुग् जयेत् । रक्तातिसारं पीत्वा वा तया सिद्धं घृतं नरः ॥ ५० ॥

चावलों के जल के साथ चौराई के मूल को पीसकर, उसमें मधु और चीनी मिलाकर, उसके पीने से रक्तातीसार नष्ट होता है । शतावरि के कल्क को दूध के साथ सेवन करे अथवा शतावरि के कल्क के साथ सिद्ध किये हुए घृत का सेवन करे और भूख लगने पर दुग्ध-पान करे, तो रक्तातीसार निवृत्त हो जाता है ॥ ४९-५० ॥

रक्तातिसार पर सर्वोत्तमप्रयोग ।

कुटजस्य पलं ग्राह्यमष्टभागजले शृतम् । तत्रैव विपचेद्भूयो दाडिमोदकसंयुतम् ५१ यावच्चैव लसीकाभं शृतं तदुपकल्पयेत् । तस्यार्द्धकर्षं तक्रेण पिबेद्रक्तातिसारवान् । अवश्यमरणीयोऽपि मृत्योर्याति न गोचरम् ॥ ५२ ॥

(क्वाथदाडिमाम्बुभागाः समाः भागेऽप्यनुक्ते समता विधेया।)

चार तोले कुड़े की छाल को ३२ तोला जल में पकावे। आठ तोला शेष रहने पर, इसी क्वाथ में अनार के फल का रस अथवा छाल व पत्तियों का ८ तोला क्वाथ मिश्रित करके आँचपर रखकर पकावे। 'लसदार' के समान गाढ़ा हो जाने पर उतार कर रख लेवें। आधा तोला इस औषध को तक्र के साथ खावे। इसका सेवन करने से कठिन रक्तातीसार नष्ट हो जाता है। एवं मरणासन्न रोगी भी काल के गाल से बच जाता है मात्रा ॥ तोला ॥ ४१-५२ ॥

तिलकल्क।

कल्कस्तिलानां कृष्णानां शर्कराभागसंयुतः। आजेन पयसा पीतः सद्यो रक्तं नियच्छति ॥ ५३ ॥

काले तिलों को जल में पीसकर, उसमें शक्कर मिलाकर, बकरी के दूध के साथ सेवन करे, तो रक्तातीसार तत्काल नष्ट हो जाता है मात्रा-१॥ तोला ॥ ५३ ॥

बिल्वादिकल्क।

बिल्वाब्दधातकीपाठाःशुण्ठीमोचरसाः समाः। पीता रुन्धन्त्यतीसारं गुडतक्रेण दुर्जयम् ॥ ५४ ॥

गुडेन मधुरीकृतं तक्रं गुडतक्रम्। कल्केन योग इति गोपालदासः।

बेलगिरी, नागरमोथा, धाय के फूल, पाढ़, सोंठ और मोचरस, इन सब औषधों का कल्क बनाकर गुड़ और तक्र के साथ सेवन करे, तो दुर्जय रक्तातीसार नष्ट हो जाता है। मात्रा-६ माशा १ तोला ॥ ५४ ॥

रसाञ्जनादि चूर्ण।

रसाञ्जनं सातिविषं कुटजस्य फलं त्वचम्। धातकी शृङ्गवेरं च पिबेत् तण्डुलवारिणा। क्षौद्रयुक्तं प्रणुदति रक्तातीसारमुल्बणम् ॥ ५५ ॥

रसौत, अतीस, इन्द्रजव, कुड़े की छाल, धाय के फूल और सोंठ, इनका चूर्ण खाकर शहद मिले हुए चावलों के धोवन के साथ पीने से घोर रक्तातीसार नष्ट हो जाता है ॥ ५५ ॥

कुटजक्षीर।

निष्क्वाथ्य मूलममलं गिरिमल्लिकायाः सम्यक् पलद्वितयमम्बुचतुःशरावे। तत्पादशेषसलिलं खलु शोषणीयं क्षीरे पलद्वयमिते कुशलैरजायाः ॥ ५६ ॥ प्रक्षिप्य माषकानष्टौ मधुनस्तत्र शीतले। रक्तातिसारी तं लीढ्वा नैरुज्यमधिगच्छति ॥ ५७ ॥

आठ तोले कुड़े के मूल की छाल को १२८ तोला जल में पकावे, ३२ तोला जल शेष रहने पर इसी क्वाथ में ८ तोला बकरी का दूध मिलाकर फिर पकावे। दुग्ध-मात्र शेष रहने पर उतार लेवें। शीतल होने पर आठ माशे मधु मिलाकर पीने से रक्तातीसार निवृत्त हो जाता है ॥ ५६-५७ ॥

चन्दनकल्क।

पीत्वा सशर्करं क्षौद्रं चन्दनं तण्डुलाम्बुना। दाहं तृष्णां प्रमेहञ्च सद्यो रक्तं नियच्छति ॥ ५८ ॥

सफेद चंदन को घिसकर, चीनी और मधु मिलाकर चावलों के धोवन के जल के साथ पीने से दाह, तृष्णा, प्रमेह और रक्तातीसार तत्काल नष्ट हो जाता है। मात्रा-३॥ माशा ॥ ५८ ॥

नवनीतावलेह।

नवनीतं मधुयुतं लिहेद्वा सितया सह। नागकेशरसंयुक्तं रक्तसंग्रहणं परम्। मधुपादं सिताद्धांशं नवनीतं चतुर्गुणम् ॥५९॥

शहद ४ माशे, चीनी ८ माशे, नागकेसर का चूर्ण ४ माशे और मक्खन २ तोला

मिलाकर सेवन करने से रक्तातीसार निवृत्त हो जाता है। यहाँ मक्खन और शहद को नागकेशर के साथ मिलाकर चाटने से अथवा मक्खन, मिश्री और नागकेसर मिलाकर चाटने से रक्तातीसार नष्ट होता है ॥ ५९ ॥

गुददाहपाकप्रतीकार।

गुददाहे प्रपाके वा पटोलमधुकाम्बुना। सेकादिकं प्रशंसन्ति छागेन पयसाथवा ॥ गुदभ्रंशे तु कर्त्तव्या चिकित्सा तत्प्रकीर्तिता ॥ ६० ॥

मुलेठी और परवल की पत्तियों के क्वाथ से कई बार गुदा के धो डालने से गुदा का दाह एवं उसका पक जाना दोनों ही निवृत्त हो जाते हैं। इसी प्रकार बकरी के दूध[1] से गुदा के सेचन और प्रक्षालन करने से दाह और पाक की शान्ति हो जाती है। परन्तु गुद-भ्रंश रोग के उत्पन्न होने पर गुदभ्रंशाधिकारोक्त चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ६० ॥

फलवर्ति।

पिष्ट्वा कनकमूलञ्च शक्रजं फणिफेनकम्। वल्लमाना कृता वर्त्तिर्मधूच्छिष्टघृतयोगतः ॥ ६१ ॥ हन्याद्गुदगतां क्षिप्रं दाहपाकावसंशयम्। फलवर्त्तिरियं कृत्स्नगुदरोगनिषूदनी ॥ ६२ ॥

धतूरे की जड़, भाँग के बीज और अफीम प्रत्येक को तीन तीन रत्ती महीन पीसकर और उसमें मोम और घृत डालकर सरल करके बत्ती बनावे। इस फलवर्त्ती को गुदा में रखने से दाह और पाक आदि समस्त गुदरोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ६१-६२ ॥

१—अन्य ग्रन्थों में बकरी के दूध में शक्कर और शहद का मिलाना भी लिखा है—
'दाहे पाके हितं छागीदुग्धं सक्षौद्रशर्करम्। गुदस्य क्षालने सेके युक्तं पाने च भोजने ॥'

नारायणचूर्ण।

गुडूची वृद्धदारश्च कुटजस्य फलं तथा। बिल्वञ्चातिविषा चैव भृङ्गराजश्च नागरम् ॥ ६३ ॥ शक्राशनस्य चूर्णञ्च सर्वमेकत्र मेलयेत् ॥ चूर्णमेतत् समं ग्राह्यं कुटजस्य त्वचोऽपि च ॥ ६४ ॥ गुडेन मधुना वापि लेहयेद्द्विजं वरः। शोथं रक्तमतीसारं चिरजं दुर्जयं तथा ॥ ६५ ॥ ज्वरं तृष्णाञ्च कासञ्च पाण्डुरोगं हलीमकम्। मन्दानलं प्रमेहञ्च गुदजञ्च विनाशयेत् ॥ एतन्नारायणं चूर्णं श्रीनारायणभाषितम् ॥ ६६ ॥

गिलोय, विधारा, इन्द्रजव, बेलगिरी, अतीस, भाँगरा, सोंठ और भाँग प्रत्येक का चूर्ण समभाग और सबके बराबर कुड़े की छाल का चूर्ण एकत्रित करके मधु अथवा गुड़ के साथ इस चूर्ण का सेवन करना चाहिये। यह श्रीनारायण भगवान का कहा 'नारायणचूर्ण' शोथ, रक्तातीसार, ज्वर, तृष्णा, कास, पाण्डुरोग, हलीमक, अग्नि-मान्द्य, प्रमेह और बवासीर को नष्ट करता है। मात्रा १।२ मासा ॥ ६३-६६ ॥

पुटपाकचिकित्सा।

अवेदनं सुसम्पक्वं दीप्ताग्नेः सुचिरोत्थितम्। नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरुपाचरेत् ॥ ६७ ॥

तथा अग्नि दीप्त करनेवाले रोगी के वेदनारहित, परिपक्व, अति प्राचीन और अनेक वर्णोंवाले अतीसार की, पुटपाक से बनी हुई औषधियों से चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ६७ ॥

कुटज पुटपाक।

स्निग्धं घनं कुटजवल्कमजन्तु जग्धमादाय तत्क्षणमतीव च पोथयित्वा। जम्बूपलाशपुटतण्डुलतोयसिक्तं बद्धं कुशेन च बहिर्घनपङ्कलिप्तम् ॥ ६८ ॥ सुस्विन्नमेतदवपीड्य रसं गृहीत्वा क्षौद्रेण युक्तमति-

सारवते भद्यात् । कृष्णात्रिपुत्रमतपूजित् एष योगः सर्वातिसारहरणे स्वयमेव राजा ॥ ६९ ॥ स्वरसस्य गुरुत्वेन पुटपाके पलं पिबेत् । पुटपाकस्य पाकोऽयं बहिरारुणवर्णता ॥ ७० ॥

कीड़ा (और कीड़ों के भक्षण) आदि से रहित मोटी और चिकने कुड़े की ताजी छाल को कूट और चावलों के धोवन-जल में भिगोकर गोल पिण्ड बना लेवे । उसके ऊपर जामुन की पत्तियाँ लपेटे और कुशों से बाँधकर मिट्टी का स्थूल लेप करके पुटपाक करे । पुटपाक को सुपक्व तब माने, जब पुट-पाक का गोला अग्नि में ही बाहर से लाल हो जावे । तदनन्तर उसको आग से निकालकर मिट्टी आदि को अलग करके औषध के रस को निचोड़ लेवे । अतीसार-रोग में थोड़ा मधु मिलाकर १ तोला रस पिलावे । इसकी यह मात्रा—पुटपाक में स्वरस के गुरु होने से कही गई है । इसके सेवन करने से सब प्रकार के अतीसार-रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ६८-७० ॥

श्योनाकपुटपाक ।

त्वक्पिण्डं दीर्घवृन्तस्य काश्मरीपत्रवेष्टितम् । मृदावलिप्तं सुकृतमङ्गारेष्ववकूलयेत् ॥ ७१ ॥ स्विन्नमुद्धृत्य निष्पीड्य रसमादाय यत्नतः । शीतीकृतं मधुयुतं पाययेदुदरामये ॥ ७२ ॥

श्योनाक की नरम छाल को पीसकर पिण्डाकार बना लेवे और उस पिण्ड के ऊपर खम्भारी के पत्ते लपेट और कुश से बाँधकर, उसके ऊपर मिट्टी का स्थूल लेप करके पुटपाक करे । उत्तम रीति से सिद्ध होने पर रस निकालकर शहद के साथ पिलावे । इसका सेवन करने से सब प्रकार के प्रबल अतीसार और उदररोग शान्त हो जाते हैं ॥ ७१-७२ ॥

दाड़िमपुटपाक ।

दाडिमस्य फलं पिष्ट्वा पचेत् पुटविधानतः । तद्रसं मधुसम्मिश्रं पिबेत् सर्वातिसारजित् ॥ ७३ ॥

अनार के फल को पीसकर गोलाकार बनावे और उसके ऊपर जामुन की पत्तियाँ लपेट, और कुश से बाँधकर मिट्टी का मोटा लेप करके पुट पाक करे । उत्तम रूप से सिद्ध होने पर रस निकाल करके मधु मिलाकर पान करे, तो सब प्रकार के अतीसार रोग शान्त होते हैं ॥ ७३ ॥

कुटजलेह ।

शतं कुटजमूलस्य क्षुण्णं तोयार्मणे पचेत् । क्वाथे पादावशेषेऽस्मिन् लेहं पूते पुनः पचेत् ॥ ७४ ॥ सौवर्चलयवक्षारविडसैन्धवपिप्पली । धातकीन्द्रयवाजाजीचूर्णं दत्त्वा पलद्वयम् ॥ ७५ ॥ लिह्याच्छाणैकमात्रन्तु शीतं क्षौद्रेण संयुतम् । पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥ दुर्वारं ग्रहणीरोगं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् ॥ ७६ ॥

चूर्णं मिलित्वा पलद्वयं ग्राह्यं क्वाथे घनीभूते प्रक्षेपः कार्य्यः ।

कुड़े की ५ सेर छाल को कूटकर २५ सेर ४८ तोला जल में पकावे । ६ सेर १६ तोला जल शेष रहने पर छान करके क्वाथ को फिर पकावे । गाढ़ा हो जाने पर काला नमक, जवाखार, विड़नमक, लाहौरी नमक, पीपल, धाय के फूल, इन्द्रजव और जीरा, इन सब औषधों का चूर्ण ८ तोले, अर्थात् प्रत्येक का एक,एक तोला चूर्ण डालकर भलीभाँति मिश्रित करके तीन,तीन मासे की मात्रा में प्रतिदिन मधु के साथ खाना चाहिये । यह कुटज अवलेह पक्वाऽपक्व तथा नाना वर्णों के अतीसार, कठिन ग्रहणी-रोग और प्रवाहिका-रोग को नष्ट करता है ॥ ७४-७६ ॥

कुटजाष्टक।

तुलामथार्द्रां गिरिमल्लिकायाः संक्षुद्य पक्त्वा रसमाददीत्। तस्मिन् सुपूते पलसंमितानि श्लक्ष्णानि पिष्ट्वा सह शाल्मलेन ॥ ७७॥ पाठां समङ्गातिविषां सुमुस्तां बिल्वञ्च पुष्पाणि च धातकीनाम्। प्रक्षिप्य भूयो विपचेत्तु तावद् दार्वीप्रलेपः स्वरसस्तु यावत् ॥ ७८ ॥ पीतस्त्वसौ कालविदा जलेन मण्डेन वाजापयसाथवापि ! निहन्ति सर्वन्त्वतिसारमुग्रं कृष्णं सितं लोहितपीतकं वा ॥७६॥ दोषं ग्रहण्या विविधं च रक्तं पित्तं तथार्शांसि सशोणितानि। असृग्दरञ्चैवमसाध्यरूपं निहन्त्यवश्यं कुटजाष्टकोऽयम् ॥ ८० ॥ तुलाद्रव्ये जलद्रोणो द्रोणे द्रव्यतुला मता ॥ ८१ ॥

मनाक्दार्वीप्रलेपावस्थायां शाल्मलादिचूर्णं प्रक्षेप्यं शाल्मलादीनां प्रत्येकं पलमानम्। शाल्मलं शाल्मलिनिर्यासः अग्निमान्द्ये कोष्णजलेन मृतशीतेन वा इत्यन्ये, वस्तिदुष्टो अन्नमण्डेन, रक्ते छागदुग्धेन इति भानुदासः ॥

५ सेर कुड़े की छाल को कूट करके २५ सेर ४८ तोले जल में पकावे। ६ सेर १६ तोला जल शेष रहने पर छान करके क्वाथ को फिर पकावे। गाढ़ा हो जाने पर मोचरस, पाढ़ी, छुईमुई, अतीश, नागरमोथा, बेलगिरी और धाय के फूल इनमें से प्रत्येक के चार-चार तोले चूर्ण को मिलाकर उतार लेवे। इसका सेवन करने से सब प्रकार के अतीसार, विविध प्रकार के ग्रहणी-रोग, रक्त-पित्त, खूनी बवासीर, रक्त-प्रदर और अन्यान्य अनेक रोग नष्ट होते हैं। अग्निमान्द्य में किञ्चित् उष्ण अथवा गरम करके ठंडे किये हुए गुनगुने जल के साथ, वस्ति-दोष में भात के मांड के साथ, रक्तस्राव में बकरी के दूध के साथ, इस अवलेह का सेवन करना चाहिये—यह भानुदासजी का मत है। एक तुला अर्थात् ५ सेर द्रव्य में २५ सेर ४८ तोला जल, इसी प्रकार २५ सेर ४८ तोला जल में ५ सेर द्रव्य क्वाथ के लिये डालना चाहिए ॥ ७७-८१ ॥

जीर्णातिसार में बकरी के दुग्ध का प्रयोग।

जीर्णेऽमृतोपमं क्षीरमतीसारे विशेषतः। छागं तद्भेषजैः सिद्धं पेयं वा वारिसाधितम् ॥ ८२ ॥

जीर्णरोग में बकरी का दूध अमृत के समान है और जीर्ण अतीसार में तो विशेष-रूप से लाभदायक है। अतः उपयुक्त औषध अथवा जल के साथ सिद्ध करके इसका सेवन कराना चाहिये ॥ ८२ ॥

अथ प्रवाहिका चिकित्सा।

बिल्वाद्यवलेह।

बालं बिल्वं गुडं तैलं पिप्पलीविश्वभेषजम्। लिह्याद्वाते प्रतिहते सशूलः सप्रवाहिकः ॥ ८३ ॥

कच्चे बेल की गिरी, गुड़, तिलों का तैल, पीपल और सोंठ का कल्क चाटे, तो वायु के अवरोध और शूल से युक्त प्रवाहिका रोग नष्ट होता है ॥ ८३ ॥

टिप्पणी—जिसको तिल के तैल का अभ्यास है, वही लें।

पिप्पलीकल्क और मरिचकल्क।

पयसा पिप्पलीकल्कः पीतो वा मरिचोद्भवः। त्र्यहात् प्रवाहिकां हन्ति चिरकालानुबन्धनीम् ॥ ८४ ॥

दो माशे पीपल अथवा दो माशे मिर्च को पीसकर, चार तोले, बकरी के दूध के साथ सेवन करने से बहुत दिनों का पुराना प्रवाहिका रोग नष्ट हो जाता है ॥ ८४ ॥

बालबिल्वादि।

कल्कः स्याद् बालबिल्वानां तिलकल्कश्च तत्समः। दध्नः सरोऽम्लः स्नेहाढ्यः खंडो[1] हन्यात् प्रवाहिकाम् ॥ ८५ ॥ दध्ना ससारेण समाक्षिकेण भुञ्जीतनिश्चारकपीडितस्तु। सुतप्तकुप्यकथितेन वापि चीरेण शीतेन मधुप्लुतेन ॥ ८६ ॥

कच्चे बेल की गिरी का कल्क, तिलों का कल्क, खट्टे दही की मलाई और तिलों का तैल, इनमें से हरएक को दो-दो मासे लेकर सेवन करने से प्रवाहिका-रोग नष्ट होता है, और यह योग 'खड' नाम से प्रसिद्ध है।

मलाई-सहित दही और मधु अथवा कलई किये हुए ताम्रपात्र में अच्छी तरह पकाकर शीतल किए हुए दूध और मधु के साथ इस बिल्वादि अवलेह को सेवन करने से प्रवाहिका रोग नष्ट होता है ॥ ८५-८६ ॥

टिप्पणी—जिनको तैल सेवन का अभ्यास है वही लेवें।

निश्चारक प्रवाहिका।

बिल्वपेशीं गुडं लोध्रं तैलं मरिचयोजितम्। लीढ्वा प्रवाहिकां हन्तिक्षिप्रं सुखमवाप्नुयात् ॥ ८७ ॥

बेल के फल की गिरी, गुड, लोध, तिलतैल, कालीमिर्च, इन सबको बराबर मात्रा में लेकर चाटने से जल्दी ही प्रवाहिका नष्ट हो जाती है ॥ ८७ ॥ तैल आधी रत्ती ही लें।

धातकी बदरीपत्रकपित्थरससमाक्षिकम्। सरोध्रमेकतो दध्ना पिबेन्निर्वाहिकार्दितः ॥ ८८ ॥

धाय के फूल, बेरी के कोमल पत्ते, कैथ का रस, शहद तथा लोध को बराबर मात्रा में मिलाकर प्रवाहिका में दही के साथ सेवन कराना चाहिये ॥ ८८ ॥ मात्रा ३।४ माशा।

लघु गंगाधर चूर्ण।

मुस्तमिन्द्रयवं बिल्वं लोध्रं मोचरसं तथा। धातकी चूर्णयेत्तक्र गुडाभ्यां पाययेत्सुधीः ॥ ८९ ॥ सर्वातीसार शमनं निरुणद्धि प्रवाहिकाम्। लघु गङ्गाधरं नाम चूर्णं संग्राहकं परम् ॥ ९० ॥

नागरमोथा, इन्द्रजौ, बेलगिरी, पठानीलोध, मोचरस और धाय के फूल इनका चूर्ण बनाकर मट्ठा और गुड के साथ पीने से सब प्रकार के अतिसार शान्त होते हैं और पेचिश रुक जाती है। यह चूर्ण मल को रोकने वाला है। मट्ठा चूर्ण से चौगुना और गुड समान भाग लेना चाहिये। यह विशेष अनुभूत है ॥ ८९-९० ॥

वृद्ध गंगाधर चूर्ण।

मुस्तारलुक शुण्ठीभिर्धातकी लोध्र वालकैः। बिल्वमोचरसाभ्यां च पाठेन्द्रयववत्सकैः ॥ ९१ ॥ आम्रं बीजं अतिविषा लज्जालुरितिचूर्णितम्। क्षौद्रतण्डुल पानीयैः पीतैर्याति प्रवाहिका ॥ ९२ ॥ सर्वातिसार ग्रहणी प्रशमंयाति वेगतः। वृद्धगङ्गाधरं चूर्णं सरिद्वेग निबन्धकम् ॥ ९३ ॥

नागरमोथा, अरलू (टेंटू), धाय के फूल, सोंठ, पठानी लोध, सुगन्धबाला, बेलगिरी, मोचरस, पाठा, इन्द्रजौ, कुडा की छाल, आम की गुठली की गिरी, अतीस और छुई मुई इनके चूर्ण में शहद मिलाकर चावलों के धोवन के साथ पीने से प्रवाहिका (पेचिश) सब तरह के अतिसार संग्रहणी आदि रोगों का शीघ्र ही शमन होता है। अतिसार में यह बहुत अच्छा काम करती है। विशेष अनुभूत है ॥ ९१-९३ ॥

अजमोदा चूर्ण।

अजमोदा मोचरसं सशृङ्गवेरं सधातका

[1] 'षट् च हन्यात् प्रवाहिकाः' इति ग्रन्थान्तरे पाठः।

कुसुमम् गोदधिमथितयुतं गंगामपि वाहिनीं रुन्ध्यात् ॥ ९४ ॥

अजमोद मोचरस, सोंठ और धाय के चूर्ण मथे हुए गाय के दही के साथ पीने से गंगा के समान भी प्रवाहिका के वेग को रोक देता है ॥ ९४ ॥

लवङ्गाभ्रयोग।

कुटजं दाडिमश्चैव कदलीमोचमेव च। कच्चटं तालमूली च त्वचा जम्ब्वाम्रयोः सह ॥ ९५ ॥ शृङ्गाटकं वटशुङ्गाः सर्जवल्कलमेव च। एषां दशपलान् भागान् संगृह्य च पृथक् पृथक् ॥ ९६ ॥ जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम्। तद्रसं पुनरेवाधः पक्त्वा दर्वीप्रलेपनम् ॥ ९७ ॥ तत्र प्रक्षेपणार्थाय द्रव्यमेतत्सुचूर्णितम्। लवङ्गं जीरकं जातीफलञ्चातिविषा समम्॥ ९८ ॥ एला मधुरिका चैव खदिरं भृङ्गमेव च। शाल्मली मोचकं बिल्वं सर्जस्य रसमेव च ॥ ९९ ॥ एतेषां पलमानेन चाभ्रकं पलमेव च। सर्वञ्च तत्र निक्षिप्य गुटिकां कारयेद्भिषक् ॥ १०० ॥ लवङ्गाभ्रकयोगोऽयं रक्तातीसारनाशनः। शोथातीसारशमनः सर्वशूलनिषूदनः ॥ १०१ ॥

कुड़ा की छाल, अनार की छाल, कच्चा केला, चौराई के पत्ते, मूसली, जामुन की छाल, आम की छाल, सिंघाड़ा, बड़ के अंकुर, सर्जवृक्ष की छाल प्रत्येक ४० तोला, इनको २५ सेर ४८ तोले पानी में पकाकर जब चौथाई भाग बच जाय तब छानकर पुनः क्वाथ को पकाकर कलछी से चिपटे ऐसा गाढ़ा कर ले, पश्चात् लौंग, जीरा, जायफल, अतीस, इलायची, सौंफ, कत्था, भांगरा, मोचरस, बेल के फल की गिरी, राल, प्रत्येक ४ तोले, अभ्रकभस्म ४ तोला इनको मिलाकर ३ माशे से ६ माशे तक की गोली बना ले। इसके सेवन से रक्तातीसार, सूजन अतीसार तथा सम्पूर्ण शूल नष्ट होते हैं ॥ ९५-१०१ ॥

लवङ्गद्रावक।

लवङ्गातिविषा मुस्तं पाठा बिल्वं सधान्यकम्। धातकी मोचकं जीरं लोध्रमिन्द्रयवं तथा ॥ १०२ ॥ वालकं सर्जकं शृङ्गी सैन्धवं नागरं कणा। वाव्यालकं यवक्षारमहिफेनरसाञ्जनम् ॥१०३॥ एतेषां तुल्यभागानि लवङ्गानि प्रदापयेत्। खारसीस्वरसेनैव भावयेत्सप्तवारकम् ॥ १०४ ॥ लवङ्गद्रावको नाम सर्वरोगेषु योजितः। ग्रहणीं चिरजां हन्ति सशोथां पाण्डुकामलाम् ॥१०५॥ अतीसारं निहन्त्याशु सामं नानाविधं तथा। मन्दाग्निं नाशयेच्छीघ्रमम्लपित्तं सुदारुणम् ॥१०६॥ नराणाञ्च हितार्थाय विश्वामित्रेण निर्मितः ॥ १०७ ॥

लौंग, अतीस, मोथा, पाठा, बेल, धनियाँ, धाय के फूल, मोचरस, जीरा, लोध, इन्द्रजौ, सुगन्धवाला, राल, काकड़ासिंगी, सेंधानमक, सोंठ, पीपल, खरेंटी, जवाखार, अफीम, रसौत, सब समभाग, सब के बराबर लौंग का चूर्ण मिलावे इन्हें पोस्त के रस से सात बार भावना दे। मात्रा २ या ४ रत्ती। यह बहुत पुरानी संग्रहणी, शोथयुक्त पाण्डु, कामला, अतीसार, मन्दाग्नि, अम्लपित्त आदि रोगों को बहुत जल्दी आराम पहुँचाता है ॥ १०२-१०७ ॥

घृत।

वत्सकस्य च बीजानि दार्व्याश्च त्वच उत्तमाः। पिप्पली शृङ्गवेरञ्च लाक्षा कटुकरोहिणी ॥ १०८ ॥ षड्भिरेतैर्घृतं सिद्धं पेयामण्डावचारितम्। अतीसारं जयेच्छीघ्रं त्रिदोषमपि दारुणम् ॥ १०९ ॥

इन्द्रजौ, दारुहल्दी की छाल, पीपल, सोंठ, लाख, कुटकी इन ६ वस्तुओं से विधिपूर्वक सिद्ध घृत को योग्य मात्रा में पेया एवं मण्डादि के साथ सेवन करने से त्रिदोषज्ञ अतीसार बहुत जल्दी दूर होता है। मात्रा आधा तोला ॥ १०८-१०९ ॥

अथ रसप्रयोगः।

भुवनेश्वर रस।

सैन्धवं त्रिफलाञ्चैव यमानीं बिल्व-पेशिकाम्। गृहधूमं गृहीत्वा च प्रत्येकं समभागिकम् ॥ ११० ॥ जलेन मर्द-यित्वा तु माषमात्रां वटीं चरेत्। खादेत्तो-यानुपानेन सर्वातीसारशान्तये ॥ १११ ॥

सेंधा नमक, हरड, बहेडा, आँवला, अजवाइन, बेल के फल की गिरी, घर का धूँआ; इन सब को बराबर मात्रा में लेकर जल से घोटकर एक एक माशे की गोली बनावे। अनुपान—जल। इसके सेवन से सब प्रकार का अतीसार अच्छा हो जाता है ॥ ११०-१११ ॥

अहिफेन वटिका।

अहिफेनं सखर्जूरं घृष्ट्वा गुञ्जैकमात्र-कम्। रक्तस्रावमतीसारमतिवृद्धं विनाश-येत् ॥ ११२ ॥

पिण्डखजूर १ भाग, अफीम १ भाग इन्हें घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे इसके सेवन से बहुत बढ़ा हुआ अतिसार तथा रक्तस्राव रुक जाता है। मात्रा—१।२ रत्ती ॥ ११२ ॥

कारुण्यसागर रस।

भस्मभूताद् द्विधा गन्धं तथा द्वित्वं मृताभ्रकम्। दिनं सार्षपतैलेन पिष्ट्वा यामं विपाचयेत् ॥ ११३ ॥ रसैर्मार्कवमूलोत्थैः पिष्ट्वा यामं विपाचयेत्। त्रिक्षारपञ्चलवणं विषव्योषाग्निजीरकैः॥ ११४ ॥ सविडङ्गै-स्तुल्यभागैरयं कारुण्यसागरः। गुञ्जाद्वयं ददीतास्य भिषक् सर्वातिसारके ॥ ११५ ॥ सज्वरे विज्वरे वापि सशूले शोणितोद्भवे। निरामे शोथयुक्ते वा ग्रहण्यां सान्नि-पातिके ॥ अनुपानं विनाप्येष कार्यसिद्धिं करिष्यति ॥ ११६ ॥

रस सिन्दूर १ भाग, गन्धक २ भाग, अभ्रकभस्म २ भाग इन्हें इकट्ठा कर सरसों के तेल से घोटकर एक प्रहर वालुकायन्त्र में पकावे, पीछे भाँगरे की जड़ के रस से घोटकर पहिले की भाँति एक प्रहर पाक करे तत्पश्चात् इसमें जवाखार, सज्जी, सुहागा, सामुद्रनमक, साँभर नमक, सेंधा नमक, विड़नमक, सोंचलनमक, बछनाग, पीपल, कालीमिर्च, सोंठ, चित्रक, जीरा, वायविडङ्ग, हर एक को बराबर मात्रा में मिलावे। मात्रा २ रत्ती। ज्वरयुक्त या ज्वररहित शूल, रक्त तथा सूजनसहित, सान्निपातिक, ग्रहणी की निरामावस्था में यह रस हितकर है। अनुपान के विना भी यह रस अत्यन्त लाभ-दायक है ॥ ११३-११६ ॥

अतीसारवारण रस।

दरदं कृतकर्पूरं मुस्तेन्द्रयवसंयुतम्। सर्वातीसारशमनं खाखसीक्षीरभावि-तम् ॥ ११७ ॥

हिंगुल, शुद्धकपूर, मोथा, इन्द्रजौ हरएक को १ तोला लेकर ३ माशे अफीम को जल से घोटकर दो रत्ती की गोली बनावे। यह रस अति-सार को सब भाँति अच्छा करता है। मात्रा—१।२ रत्ती ॥ ११७ ॥

पूर्णचन्द्रोदय रस।

शुद्धञ्च तालकं लौहं गगनञ्च फलं पलम्। कर्पूरं पारदं गन्धं प्रत्येकं वटको-न्मितम् ॥ ११८ ॥ जातीकोषमुरापत्रं शठीतालीशकेशरम्। व्योषं चोचं कणा-मूलं लवङ्गं पिचुसम्मितम् ॥ ११९ ॥

भक्षयेत् प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चकः । नानारूपमतीसारं ग्रहणीं सर्वरूपिणीम् ॥ १२० ॥ अम्लपित्तं तथा शूलं शूलञ्च परिणामजम् । रसायनवरश्चायं वाजीकरण उत्तमः ॥ १२१ ॥

शुद्ध हरिताल, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, हरएक ४ तोले, कपूर, पारा, गन्धक प्रत्येक ६ माशे, जायफल, जटामांसी, तेजपात, कचूर, तालीसपत्र, नागकेशर, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, मुलहठी, पीपलामूल, लौंग हरएक एक-एक तोला इनको घोटकर प्रातःकाल २ रत्ती से ३ रत्ती की मात्रा में सेवन करें। यह रस हर तरह की अतीसार, ग्रहणी, अम्लपित्त, सूजन तथा परिणामशूल में हितकर होता है। यह रस रसायन तथा वाजीकरण है ॥ ११८-१२१ ॥

बृहत्कनकसुन्दर रस।

शुद्धसूतं समं गन्धं मरिचं टङ्कणं तथा। स्वर्णबीजं समं मर्द्यं भार्गीद्रावैर्दिनार्द्धकम् ॥ १२२ ॥ सूततुल्यं मृतञ्चाभ्रं रसः कनकसुन्दरः । अस्य गुञ्जाद्वयं हन्ति पित्तातीसारमुग्रकम् ॥ १२३ ॥

पारा, गन्धक, कालीमिर्च, सुहागा, धतूरे के बीज, हर एक वस्तु बराबर मात्रा में लेकर भारंगी स्वरस दो पहर तक घोटें। पश्चात् पारे में समान अभ्रकभस्म मिलाकर इस रस को २ रत्ती की मात्रा में पित्तातिसार में प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १२२-१२३ ॥

कणाद्य लौह।

कणानागरपाठाभिस्त्रिवर्गत्रितयेन च। बिल्वचन्दनह्रीबेरैः सर्वानीसारजिद्भवेत् ॥ १२४ ॥ सर्वोपद्रवसंयुक्तामपि हन्ति प्रवाहिकाम् । नानेन सदृशं लौहं विद्यते ग्रहणीहरम् ॥ १२५ ॥

पीपल, सोंठ, पाठा, त्रिकटु, त्रिफला, त्रिमद अर्थात मोथा, चित्रक, वायविडङ्ग एवं बेल, लालचन्दन, गन्धबाला पृथक् पृथक् एक भाग। सबके बराबर लौहभस्म मिलाकर अतीसार में २ रत्ती या ३ रत्ती की मात्रा में प्रयोग करना चाहिये। यह रस प्रवाहिका में बहुत ही चमत्कारपूर्ण गुणकारी है ॥ १२४-१२५ ॥

बृहद्गगनसुन्दर।

पारदं गन्धकञ्चाभ्रं लौहञ्चापि वराटकम् । रौप्यं चातिविषं कर्षं समभागं प्रकल्पयेत् ॥ १२६ ॥ धान्यशुण्ठीकृतक्वाथैर्भावयेच्च पृथक् पृथक् । गुञ्जाप्रमाणा वटिकां कारयेत्कुशलो भिषक् ॥ १२७ ॥ भक्षयेत्प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चकः । दुग्धमिश्रं गुडेनैव कुर्यात्तदनुपानकम् ॥ १२८ ॥ अजादुग्धेन वा पेयं जम्बूत्वक्साधितं रसम् । अतीसारे ज्वरे घोरे ग्रहण्यामरुचौ तथा ॥ १२९ ॥ शामे सशूले रक्ते च पिच्छास्रावे भ्रमे तथा। शोथे रक्तातीसारे संग्रहग्रहणीषु च ॥ १३० ॥

पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, वराटभस्म (कौड़ीभस्म), चाँदीभस्म, अतीस प्रत्येक एक-एक तोला ले। इन्हें इकट्ठाकर धनियाँ और सोंठ के क्वाथ से अलग-अलग भावना देकर एक एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। भुने बेलफल के गूदे तथा गुड़ के अनुपान से अथवा बकरी के दूध में जामुन की छाल को सिद्ध करके उस दूध के साथ अतीसार में प्रयोग कराना चाहिये। यह रस अतीसार, ज्वर, ग्रहणी, अरुचि, आम, रक्त तथा सूजनसहित प्रवाहिका, भ्रम, सूजन, रक्तातीसार, संग्रहणी आदि में आराम पहुँचानेवाला है॥ मात्रा १।२ रत्ती ॥१२६-१३०॥

लोकनाथ रस।

भस्मसूतस्य भागैकं चत्वारः शुद्धगन्धकात् । क्षिप्त्वा वराटिकागर्भे टङ्कणेन

निरुध्य च ॥ १३१ ॥ भाण्डे रुद्ध्वा पुटे पाच्य स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्। लोकनाथरसो नाम क्षौद्रैर्गुञ्जाद्वयं मितम् ॥१३२॥ नागरातिविषा मुस्तं देवदारु वचान्वितम्। कषायमनुपानन्तु सर्वातीसारनाशनः १३३

रससिन्दूर १ भाग, गन्धक ४ भाग इन्हें कौड़ी में डालकर उसके मुँह को सुहागे से बन्द कर दें पश्चात् इस कौड़ी को दो छोटे-छोटे मिट्टी के बर्तन में बन्दकर कपोतपुट दें, जब स्वांग शीतल हो जाय तब उसे पीस लें। मात्रा २ रत्ती। अनुपान-सोंठ, अतीस, मोथा, देवदारु, वच मिलाकर २ तोला, पाक के लिये जल ३२ तोले, शेष ८ तोले। यह रस सम्पूर्ण अतिसार को नष्ट करता है ॥ १३१-१३३ ॥

चिन्तामणि रस।

शुद्धसूतं मृतं ताम्रं गन्धकं प्रतिकार्षिकम्। चूर्णयेद्विषकर्पार्द्धं विषार्द्धं तिन्तिडीफलम् ॥ १३४ ॥ मर्दयेत् खल्लमध्ये तु चाम्लेन गोलकीकृतम्। गर्त्तं षडङ्गुलं कुर्यात् सर्वतो वर्तुलं शुभम् ॥ १३५ ॥ नागवल्ल्याः क्षिपेत्पत्रमादौ पत्रे च गोलकम्। आच्छाद्य तत्पत्रेण रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ॥ १३६ ॥ स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य सपत्रञ्च विशेषत। कर्पार्द्धं मरिचं दत्त्वा कर्पार्द्धं तिन्तिडीफलम् ॥ १३७ ॥ गुञ्जामितं वटीं कुर्याच्चिन्तामणिरसो महान्। अतिसारे त्रिदोषोत्थे संग्रहग्रहणीगदे।अनुपानं विधातव्यं यथादोषानुसारतः॥१३८॥

पारा १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, गन्धक १ तोला, वछनाग आधा तोला, तिन्तिडीक ३ माशे ले। इनको किसी खटाई से घोटकर पिण्डाकार बनावे और पान के पत्ते से लपेटकर ६ अंगुल गहरे गड्ढे में रखकर ऊपर पान के पत्ते रख गजपुट दे, पश्चात् स्वाङ्गशीतल हो जाने पर पत्तासहित पीस ले। इसमें ½ तोला कालीमिर्च, ½ तोला विषांबिल मिलाकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। इसके सेवन से अतीसार, संग्रहणी आदि रोग नष्ट होते हैं। दोषों के अनुसार अनुपान के साथ देना चाहिये ॥ १३४-१३८ ॥

सिद्धगान्धार रस।

मुस्तं मोचरसं लोध्रं कुटजस्य फलानि च। बिल्वास्थि धातकीपुष्पमहिफेनञ्च गन्धकम् ॥ १३९ ॥ शुद्धं हि पारदञ्चैव सर्वमेकत्र चूर्णयेत्। रसोऽयं सिद्धगान्धारो वल्लमात्रं प्रयोजितः ॥१४०॥ सितोदकानुपानेन तक्रेण दध्नाथवा। सर्वातिसारं ग्रहणीं प्रशमं नयति क्षणात्। सरिद्वेगप्रवाहघ्नः पथ्यं तक्रोदनं तथा ॥ १४१ ॥

मोथा, मोचरस, लोध, इन्द्रजौ, बेलगिरी, धाय के फूल, अफीम, गन्धक, शुद्ध पारा, इन्हें विधिपूर्वक मिलाकर जल से घोटकर दो रत्ती की गोली बनावे। अनुपान-शरबत, छाछ, अथवा दही। इसके सेवन से सम्पूर्ण अतिसार तथा ग्रहणी शीघ्र ही नष्ट होती है। यह अत्यन्त बहते हुए अतिसार को नष्ट करता है। पथ्य—छाछ तथा भात ॥ १३९-१४१ ॥

सिद्धयोग।

भृष्टं पूगीफलं बिल्वमज्जा सर्जरसस्तथा। खाखसस्य फलं मोचरसो लोध्रं तथैव च ॥ १४२ ॥ शतपुष्पा रसालास्थि धातक्याः कुसुमानि च। सर्वं सञ्चूर्ण्य यत्नेन पृथङ्माषत्रयोन्मितम ॥ १४३ ॥ माषत्रयमितं दद्यात् तक्रेणाथ जलेन वा। प्रवाहिकातिसारेषु रक्तसम्मिश्रितेषु च। पथ्यैस्तक्रौदनैर्युक्तैर्दृष्टः श्रेष्ठफलप्रदः १४४॥

भुनी हुई सुपारी (अथवा सुपारी को आटे से लपेटकर अंगारों में रख दे, जब किंचित् भुन जाय तब निकाल ले), बेलगिरी, सफेद राल,

पोस्त के डोडे, मोचरस, लोध, सौंफ, आम की गुठली, धाय के फूल, हर एक के चूर्ण को ३ माशे लेकर मिला ले। मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक। अनुपान—छाछ अथवा शीतल जल। यह योग रक्तातिसार या रक्तमिश्रित प्रवाहिका में अत्यन्त लाभदायक है। पथ्य—छाछ और भात ॥ १४२-१४४ ॥

अमृतार्णवरस।

हिङ्गुलोत्थो रसो लौहं गन्धकं टङ्कनं शटी। धान्यकं नालकं मुस्तं पाठा जीरं गुणप्रिया ॥ १४५ ॥ प्रत्येकं तोलकं चूर्णं छागीक्षीरेण पेषितम्। चतुर्गुञ्जामितः कार्यो रसोऽयममृतार्णवः॥ १४६ ॥ मात्रया भक्षयेत् प्रातर्गहनानन्दभाषितम्। धान्यजीरकचूर्णेन विजयाशालबीजतः[२]॥ १४७॥ मधुना छागदुग्धेन मण्डेनशीतवारिणा। कदलीमोचकरसैः कण्टकारीद्रवेण वा॥ १४८ ॥ अतीसारं जयेदुग्रमेकजं द्वन्द्वजं तथा। दोषत्रयसमुद्भूतमुपसर्गसमन्वितम ॥ १४९ ॥ शूलघ्नो वह्निजननो ग्रहण्यर्शोविकारनुत्। अम्लपित्तप्रशमनः कासघ्नो गुल्मनाशनः ॥ ५० ॥

हिंगुलोत्थपारद, लोहभस्म, गंधक, सोहागा फूला हुआ, कचूर, धनियाँ, सुगन्धबाला, नागरमोथा, पाढी, जीरा और अतीस, प्रत्येक का एक एक तोला चूर्ण लेकर बकरी के दूध में पीसकर, चार चार रत्ती की गोलियाँ बनावे। इसको 'अमृतार्णव रस' कहते हैं। धनियाँ, जीरा, भाँग और शालबीज के चूर्ण, मधु, बकरी का दूध, माँड, शीतल जल, केला के पुष्प का रस, और मोचक(सहजन) का रस इनमें से किसी एक के साथ अथवा भटकटैया के क्वाथ के साथ सेवन करे, तो गहनानन्दजी की कही हुई यह 'अमृतार्णववटी' वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक तथा उपद्रवयुक्त सब प्रकार के अतीसार को तथा शूलरोग को नष्ट और अग्नि को तीव्र करती है। तथा ग्रहणी, बवासीर, अम्लपित्त, कास और गुल्म इन रोगों को नष्ट करती है ॥ १४५-१५० ॥

१—'यूषेण' इति ग्रन्थान्तरे पाठः।

२—'विजयाशाल्मलीबीजतः' इति पाठान्तरम्।

जातीफलरस।

पारदाभ्रकसिन्दूरं गन्धं जातीफलं समम्। कुटजस्य फलञ्चैव धूर्त्तबीजानि टङ्कणम् ॥ १५१ ॥ व्योषं मुस्ताभया चैव चूतबीजं तथैव च। बिल्वकं सर्जबीजञ्च दाडिमीवल्कजीरकम्[१] ॥ १५२ ॥ एतानि समभागानि निःक्षिपेत् खल्लमध्यतः। विजयास्वरसेनैव मर्दयेत् श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ १५३ ॥ गुञ्जाफलप्रमाणान्तु वटिकां कारयेद्भिषक्। एकां कुटजमूलत्वक् कषायेण प्रयोजयेत् ॥ १५४ ॥ आमातिसारं हरति कुरुते वह्निदीपनम्। मधुना बिल्वशुण्ठेन रक्तग्रहणिकां जयेत् ॥ १५५ ॥ शुण्ठीधान्यकयोगेन चातिसारं निहन्त्यसौ। जातीफलरसोह्येष ग्रहणीगदहारकः॥१५६॥

पारा, अभ्रक भस्म, रससिंदूर, गंधक, जायफल, इन्द्रजव, धतूरे के बीज, सोहागा फूला हुआ, सौंठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा, हरड़, आम के बीज की गिरी, बेल की गिरी, शालबीज अनार के फल का छिलका और जीरा, इन सबको समभाग लेकर भांग की पत्तियों के रस में खरल करके, एक एक रत्ती की गोलिया बनावे, कुड़े के मूल की छाल के क्वाथ के साथ सेवन करने से आमातिसार को नष्ट और अग्नि को दीप्त करता है। मधु और बेलगिरी के साथ सेवन करने से रक्तग्रहणी को तथा धनिया और सौंठ के क्वाथ के साथ सेवन करने से अतीसार को नष्ट करता है। यह जातीफलरस ग्रहणी रोग का नाशक है ॥ १५१-१५६ ॥

१—'दाडिमीफलवल्कल' इति पाठान्तरम्।

अभयनृसिंह रस।

दरदञ्च विषं व्योषं जीरकं टङ्कनं समम्। गन्धकञ्चाभ्रकञ्चैव भागैकं शुद्धसूतकम्॥ १५७॥ आफूकसर्वतुल्यं स्यान्मर्दयेन्निम्बुकद्रवैः। एकैकं भक्षयेच्चानु जीरकं मधुना सह॥ १५८॥ त्रिदोषोत्थमतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम्। सर्वरूपमतीसारं संग्रहग्रहणीं जयेत्। रसोऽभयनृसिंहोऽयमतीसारे सुपूजितः॥ १५९॥

हिंगुल, विष, त्रिकटु, जीरा, सोहागा फूला हुआ, गंधक, अभ्रक-भस्म और शुद्ध पारा, इनको सम भाग ले, और सब औषधों के बराबर अफीम मिलाकर नींबू के रस में खरल करके एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। जीरे के चूर्ण और मधु के साथ सेवन करने से ज्वर-सहित अथवा ज्वर-रहित त्रिदोष-जन्य अतीसार को तथा अन्यान्य सब प्रकार के अतीसार और संग्रहणी-रोग नष्ट हो जाते हैं। यह 'अभयनृसिंह-रस' अतीसार-रोग के लिये श्रेष्ठ औषधि कही गई है॥ १५७-१५९॥

आनन्दभैरव रस।

दरदं मरिचं टङ्कममृतं मागधीसमम्। श्लक्ष्णपिष्टन्तु गुञ्जैकं रसमानन्दभैरवम्॥ ॥ १६०॥ लेहयेत् मधुना चानु कुटजस्य फलत्वचोः। चूर्णितं माषमात्रन्तु त्रिदोषोत्थातिसारजित्॥ १६१॥ दध्यन्नं दापयेत् पथ्यं दध्याजं तक्रमेव वा। पिपासायां जलं देयं विजया च हिता निशि॥ १६२॥

हिंगुल, कालीमिर्च, सोहागा फूला हुआ, विष और पीपल सम भाग इन सब औषधों को एकत्रित करके महीन चूर्ण बनाकर रख लेवे। इसको आनन्दभैरव-रस कहते हैं। मात्रा—१ रत्ती। मधु के साथ चाट लेने के बाद कुड़े की छाल और इन्द्रजव का चूर्ण एक माशा सेवन करे तो त्रिदोष-जन्य अतीसार नष्ट हो जाता है। पथ्य—बकरी के दही अथवा तक्र के साथ भात देवे। प्यास लगने पर जल देना चाहिये तथा रात में भाँग का सेवन कराना चाहिये॥ १६०-१६२॥

तन्त्रान्तरोक्त आनन्दभैरव रस।

हिङ्गुलञ्च विषं व्योषं टङ्कनं गन्धकं समम्। जम्बीररससंयुक्तं मर्दयेद् याममात्रकम्॥ १६३॥ कासश्वासातिसारेषु ग्रहण्यां च हलीमके। अपस्मारेऽनिले मेहेऽप्यजीर्णे वह्निमान्द्यके॥ गुञ्जामात्रः प्रदातव्यो रस आनन्दभैरवः॥ १६४॥

यथाव्याध्यनुपानं देयम्।

हिंगुल, विष, त्रिकटु, सुहागा और गन्धक को समभाग लेकर निम्बू के रस में एक प्रहर तक खरल करके एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। इन तन्त्रान्तरोक्त आनन्दभैरव रस की गोलियों को कास, श्वास, अतीसार, ग्रहणी, हलीमक, अपस्मार, वात-व्याधि, प्रमेह, अजीर्ण और अग्निमान्द्य में देना चाहिये। व्याधि के अनुकूल अनुपान की व्यवस्था करनी चाहिये॥ १६३-१६४॥

कर्पूररस।

हिङ्गुलमहिफेनञ्च मुस्तकेन्द्रयवं तथा। जातीफलञ्च कर्पूरं सर्वं संमर्द्य यत्नतः॥ १६५॥ जलेन वटिका कार्या द्विगुञ्जापरिमाणतः। ज्वरातीसारिणे चैव तथातीसाररोगिणे॥ ग्रहणीषट्प्रकारे च रक्तातीसार उल्बणे॥ १६६॥

अत्र केचित् टङ्कनमप्येकभागमिच्छन्ति॥

हिंगुल, अफीम, नागरमोथा, इन्द्रजव, जायफल और कपूर को जल के साथ खरल करके दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। इसमें कोई-वैद्य एक भाग सोहागा फूला हुआ भी डालते हैं। ज्वरातीसार, अतीसार, छः प्रकार के ग्रहणी-रोग और तीव्र रक्तातीसार में कपूररस देना चाहिये मात्रा २-२ रत्ती॥ १६५-१६६॥

कुटजारिष्ट।

तुलां कुटजमूलस्य मृद्वीकार्द्धतुलां तथा। मधूकपुष्पकाश्मर्य्योर्भागान् दशपलोन्मितान्॥ १६६॥ चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणञ्चैवावशेषितम्। धातक्या विंशतिपलं गुडस्य च तुलां क्षिपेत्॥१६७॥ मासमात्रं स्थितो भाण्डे कुटजारिष्टसंज्ञितः। ज्वरान् प्रशमयेत् सर्वान् कुर्य्यात् तीक्ष्णं धनञ्जयम्। दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति रक्तातीसारमुल्वणम्॥ १६८॥

कुड़े की जड़ ५ सेर, दाख २॥ सेर, महुए के फूल और खम्भारी की जड़ आधा सेर लेवे। इन सब औषधों को कूट करके १ मन ११ सेर १६ तोला जल में औटावे। १२ सेर ४८ तोला जल शेष रहने पर कपड़े से छान लेवे। उस जल में धाय के फूलों का १ सेर चूर्ण देवे। तथा ५ सेर गुड़ डाल करके सबको मिलाकर, चिकने पात्र में रख करके उसका मुख बन्द कर देवे और एक महीने तक रक्खा रहने दे। इस प्रकार यह 'कुटजारिष्ट' तैयार हो जायगा। यह अरिष्ट सब प्रकार के ज्वर, ग्रहणी रोग और रक्तातीसार को दूर करके अग्नि को दीप्त करता है। मात्रा—१½ तोला से २॥ तोला तक॥ १६६-१६८॥

अहिफेनासव।

तुलां मधूकमद्यस्य शुभे भाण्डे परिक्षिपेत्। फणिफेनस्य कुडवं मुस्तकं पलसंमितम्॥ १६९॥ जातीफलञ्चेन्द्रयवं तथैलां तत्र दापयेत्। रुध्वा भाण्डं मासमात्रं यत्नतः परिरक्षयेत्॥ हन्त्यतीसारमत्युग्रं विसूचीमपि दारुणाम्॥ १७०॥

महुए के फूलों की मदिरा ५ सेर, अफीम १६ तोला, नागरमोथा, जायफल, इन्द्रजव और इलायची के बीज चार-चार तोले लेवे। इन सब औषधों को एक चिकने पात्र में उसका मुख बन्द करके एक महीने तक रक्खा रहने देवे। तदनन्तर दवांश को छानकर रख लेवे। इसको 'अहिफेनासव' कहते हैं। मात्रा—१० बूँद। इसके सेवन करने से प्रबल अतीसार और दारुण विसूचिका-रोग, दोनों नष्ट होते हैं॥१६९-१७०॥

बब्बूल्याद्यरिष्ट।

तुलाद्वयं तु बब्बूल्याश्चतुर्द्रोणे जले पचेत्। द्रोणशेषे रसे शीते गुडस्य त्रितुलाः क्षिपेत्॥ १७१॥ धातकीं षोडशपलां कृष्णाञ्च द्विपलांशिकाम्। जातीफलानि कक्कोलं त्वगेलापत्रकेशरम्॥ १७२॥ लवङ्गं मरिचञ्चैव पलिकान्युपकल्पयेत्। मासं भाण्डे स्थितस्त्वेष बब्बूलारिष्टको जयेत्॥ क्षयं कुष्ठमती ।रं प्रमेहश्वासकासकान्॥ १७३॥

बबूल की १० सेर छाल को जौकुट करके १ मन १२ सेर १६ तोला पानी में पकावे। १२ सेर ६४ तोला जल शेष रहने पर छान लेवे। शीतल हो जाने पर उस क्वाथ में १८ सेर गुड़ मिलावे। धाय के फूल ६४ तोला, पीपल ८ तोला, जायफल, कक्कोल, दालचीनी, इलायची के बीज तेजपात, नागकेशर, लौंग और कालीमिर्च, प्रत्येक चार चार तोले लेवे। सबका चूर्ण कर लेवें और उस काढ़े में डाल करके, उसको घी के चिकने पात्र में भरकर, मुख बन्द करके एक महीने तक रक्खा रहने देवे। उसके बाद छानकर रस को रख लेवे। इसको 'बब्बूलारिष्ट' कहते हैं। इसको पीवे, तो क्षय, कुष्ठ, अतीसार, प्रमेह, कास और श्वास दूर हो। मात्रा—१ तोला से २॥ तोला तक॥ १७१-१७३॥

ग्रहण्यां ये रसाः प्रोक्तास्तेऽतिसारे नियोजिताः। हन्युः सर्वमतीसारं शिवस्याज्ञा विशेषतः॥ १७४॥

ग्रहणी रोग में जो जो रस कहे गये हैं, वे अतीसार-रोग में प्रयुक्त होने पर सब प्रकार के अतीसार को नष्ट करते हैं॥१७४॥

अतिसार में त्याज्य।

स्नानाभ्यङ्गावगाहांश्च गुरुस्निग्धातिभोजनम्। व्यायाममग्निसन्तापमतीसारी विवर्जयेत्॥ १७५॥

स्नान, तैल-मर्दन, जल में तैरना और स्निग्ध पदार्थों का भोजन, अधिक भोजन, व्यायाम और आग का तापना, यह सब अतीसार-रोग में त्याज्य है॥ १७५॥

अतिसार में पथ्य अपथ्य।

ग्रहण्याधिकारे वर्णितौ पथ्यापथ्यौ अतिसारेऽपिसंग्राह्य।

ग्रहणी अधिकार में वर्णन किया हुआ पथ्य और अपथ्य अतिसार में भी समझना चाहिये।

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायामतीसाराधिकारः समाप्तः॥

अथ ग्रहण्यधिकारः।

ग्रहणीरोग की सामान्य चिकित्सा।

ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत्। अतीसारोक्तविधिना तस्यामञ्च विपाचयेत्॥ १॥

ग्रहणी (अग्न्यधिष्ठान) में कुपित हुए दोष की अजीर्ण के समान चिकित्सा करे। अतिसारोक्त नियमानुसार लंघन और पाचन आदि के ग्रहणी में स्थित आमदोष का पाचन करना चाहिये॥१॥

शरीरानुगते सामे रसे लंघनपाचने। विशुद्धामाशयायास्मै पञ्चकोलादिभिर्युतम्। दद्यात् पेयादिलघ्वन्नं पुनर्योगांश्च दीपनान्॥ २॥

शरीर में यदि आमरस सञ्चित हो तो लंघन और पाचन की व्यवस्था करनी चाहिये और इनके द्वारा आमाशय के शुद्ध होने पर ग्रहणी के रोगी को पञ्चकोलादियुक्त पेया, लघुपाक अन्न और दीपन औषध देनी चाहिये॥ २॥

कपित्थबिल्वचांगेरीतक्रदाडिमसाधिता। पाचिनी ग्राहिणी पेया सवातं पाञ्चमूलिकी॥ ३॥

कैथ, बेल, चांगेरी, अनारदाना सब मिलाकर ८ तोला और मठा इनसे सिद्ध की हुई पेया वातकफप्रधान ग्रहणी में सेवन करने योग्य है; यह पाचक और ग्राही है॥ ३॥

तक्रपान विधि।

ग्रहणीदोषिणां तक्रं दीपनं ग्राहि लाघवात्। पथ्यं मधुरपाकित्वान्न च पित्तप्रकोपणम्॥ ४॥ कषायोष्णविकाशित्वाद् रौक्ष्याच्चैव कफे हितम्। वाते स्वाद्वम्लसान्द्रत्वात् सद्यस्कमविदाहि तत्॥ ५॥

जिनकी ग्रहणी दूषित है उनके लिये तो लघु होने से दीपन, ग्राही (धारक) और पथ्य है। पाक में मधुर होने से पित्त को कुपित नहीं करती। कषाय, उष्ण, विकाशि (स्रोतावृत स्रोतों को शुद्ध करनेवाला) और रूक्ष होने से कफ में लाभदायक है। स्वादु, अम्ल और घन होने से वातनाशक है। ताजा तक्र विदाही नहीं होता। तात्पर्य यह कि ताजा तक्र वातिक पैत्तिक और श्लैष्मिक ग्रहणीरोग में लाभदायक है। बासी तक्र विदाही और पित्तवर्धक होता है॥ ४-५॥

चित्रकगुटिका।

चित्रकं पिप्पलीमूलं द्वौ क्षारौ लवणानि च। व्योषं हिंग्वजमोदाञ्च चव्यञ्चैकत्र चूर्णयेत्॥ ६॥ गुटिका मातुलुङ्गस्य दाडिमस्य रसेन वा। कृता विपाचयत्यामं दीपयत्याशु चानलम्॥ ७॥ सौवर्चलं सैन्धवञ्च विडमौद्भिदमेव च। सामुद्रेण समं पञ्च लवणान्यत्र योजयेत्॥ ८॥

चीता, पिपरामूल, जवाखार, सज्जीखार, पाँचों नमक, सोंठ, मिरिच, पीपरि, हींग, अजमोद और चव्य; इन द्रव्यों का चूर्ण बनाकर बिजौरा नींबू के रस में अथवा अनारदाने के रस में घोटकर आधा-आधा माशा की गोलियाँ बना लेवे। यह चित्रकगुटिका आमदोष को पचाती और अग्नि को तत्काल दीप्त करती है। काला नमक, लाहौरी नमक, विरिया संचर नमक, खारी नमक और समुद्र लवण; इन पाँच प्रकार के नमकों को इस योग में मिलाना चाहिये ॥६-८॥

यमानिकादि क्वाथ।

यमानीनागरोशीरधनकातिविषाघनैः। बलाबिल्वद्विपर्णीभिर्दीपनं पाचनं स्मृतम् ६

अजवाइन, सोंठ, खस, धनियाँ, अतीस, मोथा, खरेटी, बेल, शालिपर्णी, पृष्ठिपर्णी, मिलाकर २ तोले, पाक के लिए जल ३२ तोले बाकी ८ तोले, यह क्वाथ दीपन तथा पाचन है ॥६॥

धान्यकादि क्वाथ।

धान्यकातिविषोदीच्ययमानीमुस्तनागरम्। बला द्विपर्णी बिल्वञ्च दद्याद्दीपनपाचनम् ॥ १० ॥

धनियाँ, अतीस, गन्धबाला, अजवाइन, मोथा, सोंठ, खरेटी, शालिपर्णी, पृष्ठिपर्णी मिलाकर २ तोले, इनका विधिवत् क्वाथ करके अग्निदीपन तथा पाचन के लिये प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १० ॥

पुनर्नवादि कषाय।

पुनर्नवामरिचशरपुंखविश्वाग्निपथ्याचिरिबिल्वबिल्वैः। कृतः कषाय शमयेदशेषान् दुर्नामगुल्मग्रहणीविकारान् ॥११॥

साँठी, कालीमिर्च, सरफोंका, सोंठ, चित्रक, हरड़, कंजा की छाल, बेल मिलाकर २ तोले, इनका क्वाथ अर्श, गुल्म तथा संग्रहणी में हितकर है ॥ ११ ॥

शालिपर्ण्यादि क्वाथ।

शालिपर्णीबलाबिल्वधान्यशुण्ठीकृतः शृतः। आध्मानशूल संयुक्तां वातजां ग्रहणीं जयेत् ॥ १२ ॥

शालिपर्णी, खरेटी, बेल, धनियाँ, सोंठ इनका क्वाथ आध्मान तथा शूलसयुक्त वातज ग्रहणी में लाभदायक है ॥ १२ ॥

शुण्ठ्यादि क्वाथ।

शुण्ठीं समुस्तातिविषां गुडूचीं पिबेज्जलेन क्वथितां समांशाम्। मन्दानलत्वे सततामतोयामामानुबन्धे ग्रहणीगदे च १३

सोंठ, मोथा, अतीस, गिलोय इनका क्वाथ पान करने से मन्दाग्नि और आमसंयुक्त ग्रहणी अच्छी हो जाती है ॥ १३ ॥

नागरादि क्वाथ।

नागरातिविषामुस्ताक्वाथः स्यादामपाचनः। चूर्णं हिङ्ग्वष्टकं वापि वातिकेऽष्टपलं घृतम् ॥ १४ ॥

सोंठ, अतीस, मोथा; इनका क्वाथ सेवन करने से आम का पाचन करता है। हिङ्ग्वष्टक चूर्ण और अष्टपल घृत भी वातिक ग्रहणी में प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १४ ॥

तिक्तादि कषाय।

तिक्तामहौषध रसाञ्जनधातकीभिः पथ्येन्द्रबीजघनकौटजभद्गुराभिः। काथो हरेद्बहुविधं ग्रहणीविकारं पित्तोद्भवं सगुदशूलमतिप्रवृद्धम् ॥ १५ ॥

कटुकी, सोंठ, रसौत, धाय क फूल, बड़ी हरड़, इन्द्रजौ, मोथा, कुड़ा की छाल मिलाकर २ तोले, इनका क्वाथ गुदशूलसहित अनेक प्रकार की पैत्तिक संग्रहणी को नष्ट करता है ॥ १५ ॥

चातुर्भद्र कषाय।

गुडूच्यतिविषाशुण्ठीमुस्तैः क्वाथः

कृतो जयेत्। आमानुपक्वां ग्रहणीं ग्राही दीपनपाचनः॥ १६॥

लोध, अतीस, सोंठ, मोथा; इन चारों का क्वाथ आमसहित ग्रहणी को नष्ट करता है। यह प्रयोग ग्राही, दीपन तथा पाचन है॥ १६॥

रसाञ्जनादि चूर्ण।

रसाञ्जनं चातिविषा वत्सकस्य फलत्वचौ। नागरं धातकी चैतत्सचौद्रं तण्डुलाम्बुना॥ पित्तग्रहणीदोषार्शोरक्तपित्तातिसारनुत्॥ १७॥

रसौत, अतीस, कुड़े की छाल, इन्द्रजौ, सोंठ, धाय के फूल; इनके चूर्ण को बराबर मात्रा में मिलाकर शहद तथा तण्डुलोदक से सेवन करना चाहिये। मात्रा—१॥ माशा। इस चूर्ण के सेवन से पैत्तिक ग्रहणी, अर्श, रक्तपित्त, अतिसार आदि रोग नष्ट होते हैं॥ १७॥

शुंठ्यादि चूर्ण।

शटी व्योषाभया क्षारौ ग्रन्थिकं बीजपूरकम्। लवणाम्लाम्बुना पेयं श्लैष्मिके ग्रहणीगदे॥ १८॥

कचूर, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हर्रे, जवाखार, सज्जीखार, पीपलामूल, बिजौरा; इनके चूर्ण को नमक तथा खटाई के साथ सेवन करने से श्लैष्मिक ग्रहणीरोग नष्ट होता है। मात्रा—२ माशे॥ १८॥

कर्पूरादि चूर्ण।

कर्पूरस्त्र्यूषणं रास्ना लवणानि हरीतकी। सर्जिक्षारं यवक्षारं मातुलुङ्गं समं समम्॥ १९॥ चूर्णमुष्णाम्बुना पेयं बलवर्णाग्निवर्द्धनम्। श्लैष्मिकं ग्रहणीदोषं सवातञ्च विनाशयेत्॥ २०॥

कपूर, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, रास्ना, पाँचों नमक, हरड़, सज्जीखार, जवाखार, बिजौरा इनके चूर्ण को अलग-अलग बराबर-बराबर मिलाकर गरम जल से सेवन करना चाहिये। यह रस बल वर्ण तथा पाचक अग्नि को बढ़ाता और वातश्लैष्मिक ग्रहणी को शान्त करता है। मात्रा—१ माशा॥ १९-२०॥

मलकाठिन्यविष्टम्भयोः उपचारः—

कृच्छ्रेण कठिनत्वेन यः पुरीषं विमुञ्चति। सघृतं लवणं तस्य पाययेत् क्लेशशान्तये॥ बिडं यमानीं विष्टम्भे पिबेदुष्णेन वारिणा॥ २१॥

यदि मल कठिन होने के कारण दुःख से बाहर निकलता हो तो सेंधा नमक के साथ गाय का घृत पिलाना चाहिये। यदि कब्ज हो तो विड नमक तथा अजवाइन को गरम पानी से सेवन कराना चाहिये॥ २१॥

मुषल्यादि योग।

मुषलीं पेषयेत्तक्रेऽथवा तण्डुलोदकैः। माषैकं योजयेच्चानु पथ्यं तक्रौदनं हितम्॥ २२

मुषली २ तोले को तक्र से अथवा तण्डुलोदक से पीसकर ग्रहणीरोग में सेवन कराना चाहिये। छाछ और भात का पथ्य देना चाहिये॥ २२॥

पञ्चपल्लव।

जम्बूदाडिमशृङ्गाटपाठाकञ्चटपल्लवैः। पक्वं पर्युषितं बालबिल्वं सगुडनागरम्॥ हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीमतिदुस्तराम्॥ २३॥

जामुन, अनार, सिंघाड़ा, पाठा, कञ्चट, (जल चौलाई) इनके पत्तों में एक कच्चे बेलफल को लपेटकर उपर्युक्त जल से सिद्ध कर एक रात भर पड़ा रहने दे। अगले दिन बेलफल के साथ थोड़ा सा शुण्ठीचूर्ण और गुड़ मिलाकर सेवन करावे। इससे अति कष्टसाध्य ग्रहणी तथा संपूर्ण अतिसार नष्ट होते हैं। मात्रा—३ माशे॥ २३॥

नागराद्य चूर्ण।

नागरातिविषा मुस्तं धातकी च रसा-

ञ्जनम् । वत्सकत्वक् फलं पाठा बिल्वं कटुकरोहिणी ॥ २४ ॥ पिबेत् समांशं तच्चूर्णं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना । पैत्तिके ग्रहणीदोषे रक्तं यश्चोपवेश्यते । नागराद्यमिदं चूर्णं कृष्णात्रेयेण पूजितम् ॥ २५ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, धाय के फूल, रसौत, कुड़े की छाल, इन्द्र जौ, पाढ़ी, बेलगिरी और कुटकी ; इन औषधों के चूर्ण को शहद और चावलों के धोवन में मिश्रित कर पीवे । इस चूर्ण के सेवन करने से पैत्तिक ग्रहणीरोग नष्ट होता है, और जिनके मल के साथ रक्त गिरता हो उसके लिए भी यह चूर्ण लाभदायक है । इस नागराद्य चूर्ण की प्रशंसा कृष्णात्रेयजी ने की है । मात्रा—१—१॥ माशा ॥ २४-२५ ॥

तण्डुलोदकविधि ।

शीतकषायमानेन तण्डुलोदककल्पना । केऽप्यष्टगुणतोयेन प्राहुस्तण्डुलभावनाम् ॥ २६ ॥

हिमकषाय के प्रमाणानुसार षड्गुण (छः गुने) पानी में चावलों को रात में भिगो देवे, प्रातःकाल छानकर जल का सेवन करे । कोई आचार्य कहते हैं, अष्टगुण (आठगुने) पानी में चावलों को भिगोना चाहिये । इसी जल को चावलों का धोवन भी कहते हैं ॥ २६ ॥

श्रीफलशलाटुकल्क ।

श्रीफलशलाटुकल्को नागरचूर्णेन मिश्रितः सगुडः । ग्रहणीगदमत्युग्रंतक्रभुजा शीलितो जयति ॥ २७ ॥

बेलफल की गिरी के कल्क को थोड़े से सोंठ के चूर्ण तथा गुड़ के साथ सेवन करने से ग्रहणीरोग जल्दी नष्ट हो जाता है । मात्रा-३ माशे, पथ्य में माठा देना चाहिये ॥ २८ ॥

पाठाद्य चूर्ण ।

पाठाबिल्वानलव्योषजम्बदाडिमधातकी । कटुकातिविषामुस्तादार्वी भूनिम्बवत्सकैः ॥ २८ ॥ सर्वैरेभिः समं चूर्णं कौटजं तण्डुलाम्बुना । सक्षौद्रेण पिबेच्छर्दिज्वरातीसारशूलवान् । हृद्रोगग्रहणीदोषारोचकानलसादजित् ॥ २९ ॥

पाढ़, बेलगिरी, चीता, त्रिकुटु, जामुन की छाल, अनार के बीज, धाय के फूल, कुटकी, अतीस, नागरमोथा, दारुहल्दी, चिरायता और इन्द्रजौ, प्रत्येक समभाग और सबके बराबर कुड़े की छाल ; इन औषधों को कूट-पीसकर चूर्ण बनाना चाहिये । अनुपान-चावलों का धोवन और शहद । इस चूर्ण का सेवन करने से वमन, ज्वरातिसार, शूल, हृद्रोग, ग्रहणीरोग, अरोचक और अग्निमान्द्यरोग नष्ट होते हैं । मात्रा १॥-३ माशा ॥ २८-२९ ॥

भूनिम्बादि चूर्ण ।

भूनिम्बकटुकाव्योषमुस्तकेन्द्रयवान् समान् । द्वौ चित्रकात् वत्सकत्वग्भागान् षोडश चूर्णयेत् ॥ ३० ॥ गुडशीताम्बुभिः पीतं ग्रहणीदोषगुल्मनुत् । कामलाज्वरपाण्डुत्वमेहारुच्यतिसारनुत् ॥ गुडयोगाद्गुडाम्बु स्याद्गुडवर्णरसान्वितम् ॥३१॥

चिरायता, कुटकी, त्रिकुटा, मोथा, इन्द्रजौ हरएक १ भाग, चित्रक २ भाग, कुड़ा की छाल १६ भाग, इन्हें मिलाकर गुड़ के ठण्डे शरबत के साथ सेवन करना चाहिये । इसके सेवन से संग्रहणी, गुल्म, कामला, ज्वर पाण्डु, प्रमेह, अरुचि, अतीसार आदि रोग नष्ट होते हैं । मात्रा ॥ माशे से ३ माशे तक ॥ ३०-३१ ॥

कपित्थाष्टक चूर्ण ।

यमानीपिप्पलीमूलचातुर्जातकनागरैः । मरीचाग्निजलाजाजीधान्यसौवर्चलैः समैः ॥ ३२ ॥ वृक्षाम्लधातकीकृष्णाबिल्वदाडिमतिन्दुकैः । त्रिगुणैः षड्गुण-

सितैः कपित्थाष्टगुणैः कृतः ॥ ३३ ॥ चूर्णोतिसारग्रहणीक्षयगुल्मगलामयान् । कासं श्वासारुचिं हिक्कां कपित्थाष्टमिदं जयेत् ॥ ३४ ॥

अजवाइन, पीपलामूल, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, सोंठ, कालीमिर्च, चित्रक, गन्धबाला, काला जीरा, धनियाँ, सोंचर नमक प्रत्येक १ भाग, अमलबेत, धाय के फूल, पीपल, बेल, अनारदाना, तेन्दुक हरएक ३ भाग, खाँड ६ भाग, कैथ ८ भाग इनके मिले चूर्ण को अतिसार, ग्रहणी, क्षय, गुल्म, गलरोग, कास, श्वास, अरुचि, हिचकी आदि रोगों में प्रयुक्त कराना चाहिये। मात्रा ३ माशे से ६ माशे तक ॥ ३३-३४ ॥

दाडिमाष्टक चूर्ण।

कर्षोन्मिता तुगाक्षीरी चातुर्जातं द्विकार्षिकम् । यमानीधान्यकाजाजीग्रन्थिव्योषं पलांशकम् ॥ ३५ ॥ पलानि दाडिमादष्टौ सितायाश्चैकतः कृतम् । गुणैः कपित्थाष्टकवच्चूर्णमेतन्न संशयः ॥ ३६ ॥

वंशलोचन १ तोला, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेसर हरएक २ तोले, अजवाइन, धनियाँ, काला जीरा, पिप्पलीमूल, मिरच काली, पीपल, सोंठ प्रत्येक ४ तोला, अनारदाना ३२ तोले, खाँड ३२ तोले यह चूर्ण भी उपर्युक्त रोगों में प्रयुक्त होता है। मात्रा-३ माशे से ६ माशे तक ॥ ३५-३६ ॥

तालीशादि वटी।

तालीशपत्रचविकामरिचानां पलं पलम् । कृष्णा तन्मूलयोर्द्वे द्वे पले शुण्ठीपलं त्रयम् ॥ ३७ ॥ चातुर्जातमुशीरञ्च कर्षांशं सूक्ष्मचूर्णितम् । चूर्णस्य त्रिगुणेनैव गुडेन वटिकां कुरु ॥ ३८ ॥ भक्षयेत्तां तु कोलार्द्धां वातश्लेष्मोत्थिते गदे । उत्कटां ग्रहणीं छर्दिं कासं श्वासं ज्वरारुची । शोथगुल्मोदरं पाण्डुं तालीशाद्येन नाशयेत् ॥ ३९ ॥

तालीशपत्र, चव्य, कालीमिर्च हरएक ४ तोले, पीपल, पीपलामूल, हरएक ८ तोले, सोंठ १२ तोले, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, खस प्रत्येक १ तोला, सब मिलाकर चूर्ण से तिगुना गुड़ मिलाकर गोली बनावे। मात्रा-आधा तोला, वात-श्लेष्मजन्य ग्रहणी, उलटी, खाँसी, श्वास, ज्वर, अरुचि, सूजन, गुल्म, पेट के रोग, पाण्डु आदि रोगों में इसका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३७-३९ ॥

मुण्ड्यादि गुटिका।

मुण्डी शतावरी मुस्ता वानरी दुग्धिकामृता । यष्टिकं सैन्धवं तुल्यं सूक्ष्मचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ४० ॥ चूर्णस्य द्विगुणा योज्या विजया मृद्भर्जिता । घृतस्निग्धे पचेद्भाण्डे दुग्धं दशगुणं गवाम् ॥ ४१ ॥ यावत्पिण्डत्वमापन्ना तावन्मृद्वग्निना पचेत् । एतन्मधुयुतं हन्याद्ग्रहणीं वातपित्तजाम् ॥ ४२ ॥

गोरखमुण्डी, शतावरी, मोथा, कौंच के बीज, दूधी, गिलोय, मुलहठी, सेंधानमक, हरएक के चूर्ण को बराबर-बराबर भाग में मिलाकर चूर्ण से दुगुना घी में भुनी हुई भाँग की पत्ती के चूर्ण को मिलाकर दसगुने गौ के दूध में घी से चिकने पात्र से मन्दी आग से पकावे। जब पकते-पकते गोला सा बन जावे तब उतार ले। इसे शहद के साथ वातपित्तप्रधान संग्रहणी में सेवन कराना चाहिये मात्रा-१½ माशे से ३ माशे तक ॥ ४०-४२ ॥

वार्त्ताकु गुटिका।

चतुःपलं स्नुहीकाण्डात् त्रिपलं लवणत्रयात् । वार्त्ताकुकुडवश्चार्कादष्टौ द्वे चित्रकात् पले ॥ ४३ ॥ दग्धानि

वार्त्ताकुरसे गुटिका भोजनोत्तराः भक्तं भुक्तं पचन्त्याशु कासश्वासार्शसां हिताः । विसूचिकाप्रतिश्यायहृद्रोगघ्नाश्च ता मताः ॥ ४४ ॥

भूहर की छाल १६ तोला, सेंधानमक, काला नमक और विड्लवण प्रत्येक ४ तोला, बैंगन १६ तोले, मदार की छाल ८० तोले, और चीतामूल २ पल; इन सब औषधों का एक हांडी में भरकर, हांडी का मुख मुद्रित करके गजपुट में जला लेवे। स्वाङ्गशीत होने पर जले हुये इन औषधों के भस्म को निकालकर बैंगन के रस में घोटकर गोलियां बना लेवे। भोजनान्त में इसका सेवन करे। यह गुटिका खाये हुए अन्न का शीघ्र परिपाक करती है। कास, श्वास और बवासीर के लिये लाभदायक है। विसूचिका, प्रतिश्याय और हृद्रोग को भी नष्ट करती है। मात्रा १ माशा ॥ ४३-४४ ॥

स्वल्पगङ्गाधर चूर्ण ।

मुस्तसैन्धवशुण्ठीभिर्धातकीलोध्रवत्सकैः। बिल्वमोचरसाभ्याञ्च पाठेन्द्रयववालकैः ॥ ४५ ॥ आम्रबीजमतिविषा लज्जा चेति सुचूर्णितम् । क्षौद्रतण्डुलतोयाभ्यां जयेत् पीतश्च प्रवाहिकाम् ॥ ४६ ॥ सर्वातिसार-शमनं सर्वशूलनिषूदनम् । संग्रहग्रहणीं हन्ति सूचिकातङ्कमेव च । एतद्गङ्गाधरं चूर्णं सरिद्वेगावरोधनम् ॥ ४७ ॥

नागरमोथा, सेंधानोन, सोंठ, धाय के फूल, लोध, कुड़े की छाल, बेलगिरी, मोचरस, पाढ़ी, इन्द्रजौ, सुगन्धबाला, आम की गुठली की गिरी, अतीस और छुई-मुई, इन औषधों को समभाग लेकर चूर्ण बनावे। शहद मिलाकर चावलों के धोवन के साथ सेवन करना चाहिये। यह चूर्ण प्रवाहिका (पेचिश), सब प्रकार के अतिसार, हर प्रकार के शूलरोग, संग्रहणी और सूतिकारोग, को नष्ट करता है। अधिक क्या यह गङ्गाधर चूर्ण नदी के वेग को रोक सकता है। मात्रा १-२ माशा ॥ ४५-४७ ॥

मध्यमगङ्गाधर चूर्ण

बिल्वं शृङ्गाटकदलं दाडिम्बदलमेव च । समुस्तातिविषा चैव सर्जं श्वेतश्च धातकी ॥ ४८ ॥ मरिचं पिप्पली शुण्ठी दार्वीभूनिम्बनिम्बकम् । जम्बुरसाञ्जनञ्चैव कुटजस्य फलं तथा ॥ ४९ ॥ पाठा समङ्गा ह्रीबेरं शाल्मलीवेष्टमेव च । शक्राशनं भृङ्गराजचूर्णं देयं समं समम् ॥ ५० ॥ कुटजस्य त्वचश्चूर्णं सर्वचूर्णसमं मतम् । एतद्गङ्गाधरंनाम मध्य चूर्णं महागुणम् ५१ नानावर्णमतीसारं चिरजं बहुरूपिणम् । दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति तृष्णां कासञ्च दुर्जयम् ॥ ५२ ॥ ज्वरञ्च विविधं हन्ति शोथ-ञ्चैव सुदारुणम् । अरुचिं पाण्डुरोगञ्च हन्यादेव न संशयः । छागीदुग्धेन मण्डेन मधुना वाथ लेहयेत् ॥ ५३ ॥

बेलगिरी, सिंघाड़ा की पत्तियाँ, अनार की पत्तियाँ, नागरमोथा, अतीस, सफेद राल, धाय के फूल, कालीमिरिच, पीपरि, सोंठ, दारुहल्दी, चिरायता, नीम की छाल, जामुन की छाल, रसौत, इन्द्रजौ, पाढ़ी, छुई-मुई, सुगन्धबाला, मोचरस, भाँग और भाँगरा, समभाग इन सब औषधों को लेकर कूट-पीसकर चूर्ण बनावे। चूर्ण के बराबर कुड़ा की छाल का चूर्ण मिलाकर रख लेवे। बकरी के दूध के साथ, मांड़ के साथ अथवा मधु के साथ सेवन करे। यह मध्य-मगङ्गाधर चूर्ण अत्यन्त गुणप्रद है। अनेक वर्णवाले, बहुत पुराने अनेक प्रकार के अती-सार, दुःसाध्य ग्रहणीरोग, तृष्णा, कास, अनेक प्रकार के ज्वर, दारुण शोथ, अरुचि और पाण्डुरोग को निःसंदेह नष्ट करता है। मात्रा-१।२ माशा ॥ ४८-५३ ॥

वृहद्गङ्गाधर चूर्ण।

बिल्वं मोचरसं पाठा धातकी धान्यमेव च। ह्रीवेरं नागरं मुस्तं तथैवातिविषा समम् ॥५४॥ अहिफेनं लोध्रकञ्च दाडिमं कुटजं तथा। पारदं गन्धकञ्चैव समभाग विचूर्णयेत् ॥ ५५ ॥ तक्रेण खादयेत् प्रातश्चूर्णं गङ्गाधरं महत्। ज्वरमष्टविधं हन्यादतीसारं सुदुस्तरम्। ग्रहणीं विविधाञ्चैव कोष्ठव्याधिहरं परम् ॥ ५६ ॥

बेलगिरी, मोचरस, पाढी, धाय के फूल, धनियाँ, सुगन्धबाला, सोंठ, नागरमोथा, अतीस, अफीम, लोध, अनार के फल की छाल, कुडा की छाल, पारा और गन्धक, समान भाग (कज्जली करके) इन औषधों को लेकर चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को तक्र के साथ प्रातःकाल सेवन करना चाहिये। यह वृहद्गङ्गाधर चूर्ण आठ प्रकार के ज्वर, दुःसाध्य अतीसार, विविध प्रकार के ग्रहणीरोग और कोष्ठव्याधि को नष्ट करता है। मात्रा-२ रत्ती से ४ रत्ती ॥५४-५६॥

स्वल्पलवङ्गाद्य चूर्ण।

लवङ्गातिविषा मुस्तं बिल्वं पाठा च शाल्मली। जीरकं धातकीपुष्पं लोध्रेन्द्रयवबालकम् ॥ ५७ ॥ धान्यं सर्जरसं शृङ्गी पिप्पली विश्वभेषजम्। समङ्गा यावशूकञ्च सैन्धवं सरसाञ्जनम् ॥ ५८ ॥ एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्। शमयेदग्निमांद्यञ्च संग्रहग्रहणीं जयेत् ॥ ५९ ॥ नानावर्णमतीसारं सशोथां पाण्डुकामलाम्। इदमष्ठीलिकां हन्ति कासं श्वासं ज्वरं वमिम् ॥ ६० ॥ हृल्लासमम्लपित्तञ्च सशूलं सान्निपातिकम्। सर्वरोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥६१॥

लौंग, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, पाढी, सेमर की छाल, जीरा, धाय के फूल, लोध, इन्द्रजौ, सुगन्धबाला, धनियाँ, सफेद राल, काकड़ासिंगी, पीपरि, सोंठ, छुई-मुई, यवक्षार, सेंधानमक और रसौत सममाग, इन सब औषधों को लेकर महीन चूर्ण बना लेवे। यह चूर्ण अग्निमान्द्य, संग्रहग्रहणी, अनेक वर्ण का अतीसार, शोथ, पाण्डुरोग, कामला, अष्ठीला, कास, श्वास, ज्वर, वमन हृल्लास (उबकाई आना), अम्लपित्त, शूल और सब प्रकार के सान्निपातिक रोगों को ऐसी शीघ्रता से नष्ट करता है जैसे सूर्य भगवान् अन्धकार को नष्ट करते हैं ॥ ५७-६१ ॥

वृहल्लवङ्गाद्य चूर्ण।

लवङ्गातिविषा मुस्तं पिप्पली मरिचानि च। सैन्धवं हपुषा धान्यं कटफलं पुष्करं तथा ॥६२॥ जातिकोषफलाजाजी सौवर्चलरसाञ्जनम्। धातकी मोचकं पाठा पत्रं तालीशकेशरम् ॥ ६३ ॥ चित्रकं च हिङ्गश्चैव तुम्बुरुर्बिल्वमेव च। त्वगेलापिप्पलीमूलमजमोदा यमानिका ॥ ६४ ॥ समङ्गा वत्सकं शुण्ठी दाडिमं यावशूकजम्। निम्बं सर्जरसं क्षारं साम्बुं द्रवं तथा ॥ ६५ ॥ ह्रीवेरं कुटजञ्चैव जम्ब्वाम्रं कटुरोहिणी। अभ्रकं पुटितं लौहं शुद्धगन्धकपारदम् ॥६६॥ एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्। मधुना वा लिहेच्चूर्णं पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ ६७ ॥ सर्वदोषहरञ्चैव ग्रहणीं हन्ति दुस्तराम्। वातिकीं पैत्तिकीं चैव श्लैष्मिकीं सान्निपातिकीम् ॥ ६८ ॥ पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम्। कृष्णारुणञ्च पीतञ्च मांसधावनसन्निभम् ॥ ६९ ॥ ज्वरारोचकमन्दाग्नि कासं श्वासं वमिं तथा। अम्लपित्तं तथा हिक्का प्रमेहञ्च हलीमकम् ॥

७० ॥ पाण्डुरोगश्च विष्टम्भमर्शांसि विविधानि च। प्लीहगुल्मोदरानाहशोथातीसारपीनसान् ॥ ७१ ॥ आमवातं तथाजीर्णं संग्रहग्रहणीं जयेत्। उदरं प्रदरञ्चैव लवङ्गाद्यमिदं शुभम् ॥ ७२ ॥

लौंग, अतीस, नागरमोथा पीपरि, कालीमिरिच, सेंधा नमक, हाऊबेर, धनियाँ, कायफल, पुष्करमूल, जावित्री, जायफल, जीरा, काला नमक, रसौत, धाय के फूल, मोचरस पाढ़ी, तेजपात, तालीशपत्र, नागकेसर, चीता, बिड़नोन, कुस्तुम्बरू (धनियाँ) के बीज, बेलगिरी, दालचीनी, इलायची, पिपरामूल, अजमोद, अजवाइन, छुईमुई, इन्द्रजौ, सोंठ अनार के फल की छाल, यवक्षार, नीम की अन्तरछाल, श्वेत राल, यवक्षार, सामुद्रलवण (मतान्तर में समुद्रफेन), सोहागा की खील, सुगन्धबाला, कुड़े की छाल, जामुन की छाल, आम की छाल, कुटकी, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, गन्धक और पारा ; इन सब द्रव्यों को समभाग लेकर महीन चूर्ण बनावे। अनुपान—मधु अथवा तण्डुल-जल (चावलों का धोवन) यह चूर्ण त्रिदोषनाशक है। वातिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक दुःसाध्य ग्रहणीरोग को नष्ट करता है। काला, लाल, पीला अथवा मांस के धोवन के समान जिसमें मल गिरता है, ऐसे पक्व अथवा अपक्व नाना वर्णवाले वेदनायुक्त अतीसार रोग को, एवं ज्वर, अरोचक, अग्निमान्द्य, कास, श्वास, वमन, अम्लपित्त, हिचकी, प्रमेह, हलीमक, पाण्डुरोग, मलबद्धता, विविध प्रकार के बवासीर, प्लीहा, गुल्म, पेट फूलना, शोथ, पीनस, आमवात, पुरानी संग्रहणी, उदर और प्रदर रोगों को नष्ट करता है ॥ ६२-७२ ॥

तन्त्रान्तरोक्त वृहल्लवङ्गाद्य चूर्ण।

लवङ्गं जीरकं कौन्ती सैन्धवं त्रिसुगन्धकम्। अजमोदा यमानी च मुस्तकं सकटुत्रयम् ॥ ७३ ॥ त्रिफला शतपुष्पा च पाठा भनिम्बगोक्षुरम्। जातीकोषफले दार्वी नलदं चन्दनं मुरा ॥ ७४ ॥ शटी मधुरिका मेथी टङ्कनं कृष्णजीरकम्। क्षारद्वयं बालकञ्च बिल्वं पौष्करकं तथा ॥७५॥ चित्रकं पिप्पलीमूलं विडङ्गं सधनीयकम्। रसाभ्रगन्धकं लौहं समं सर्वं विचूर्णितम् ॥ ७६ ॥ उष्णोदकानुपानेन मन्दाग्नेर्दीपनं परम्। शीततोयानुपानैर्वा बुद्ध्वा दोषगतिं भिषक् ॥ ७७ ॥ आमातिसारं ग्रहणीं चिरकालोत्थितामपि। शूलं विष्टम्भमानाहं विसूचीं शोथकामले ॥ ७८ ॥ हलीमकं पाण्डुरोगं हन्ति कासं विशेषतः। लवङ्गाद्यं महच्चूर्णं शर्करासहितं पिबेत् ॥ ७९ ॥ आध्मानं शमयेच्छीघ्रं लवङ्गस्यानुपानतः। अश्विभ्यां निर्मितं ह्येतल्लोकानुग्रहहेतवे ॥ ८० ॥

लौंग, जीरा, सँभालू के बीज, सेंधा नमक, दालचीनी, इलायची, तेजपात, अजमोद, अजवाइन, नागरमोथा, सोंठ, मिरिच, पीपरि, आँवला, हरड़, बहेड़ा, सौंफ, पाढ़ी, चिरायता, गोखुरू, जावित्री, जायफल, दारुहल्दी, खस (मतान्तर में जटामासी), रक्तचन्दन, मुरामांसी, कचूर, मेथी, सोहागा फुला हुआ, कालाजीरा, जवाखार, सज्जीखार, सुगन्धबाला, बेलगिरी, कूट, चीता, पिपरामूल, वायबिडङ्ग, धनियाँ, पारा, अभ्रकभस्म, गन्धक और लोहभस्म, सम भाग इन सब औषधों को लेकर चूर्ण के बराबर शक्कर मिलाकर रख लेवे। दोषों की गति के अनुसार उष्ण जल के साथ अथवा शीतल जल के साथ सेवन करे। यह चूर्ण अत्यन्त अग्निदीपक है। इसका सेवन करने से आमातिसार, चिरकालिक ग्रहणी, शूल, मलबद्धता, आनाह, विसूचिका, शोथ, कामला, हलीमक, पाण्डुरोग और कास रोग नष्ट होते हैं। लौंग के क्वाथ के साथ सेवन करने से आध्मानरोग शीघ्र शान्त होता है। लोकोपकार के लिये अश्विनीकुमारों ने इस चूर्ण को बनाया था। मात्रा ३।६ रत्ती ॥ ७३-८० ॥

स्वल्पनायिका चूर्ण ।

त्रिशाणं पञ्चलवणं प्रत्येकं त्र्यूषणं पिचु । गन्धकान् मापकानष्टौ चत्वारो मापका रसात् ॥ ८१ ॥ इन्द्राशनात् पलं शाणत्रितयाधिकमिष्यते । खादेत् मिश्रीकृतान्मापमनुपेयश्च काञ्जिकम् ॥८२॥ मापकादिक्रमेणैव मनुयोऽयं रसायनम् । अत्यन्ताग्निकरश्चैतद्भोजनं सर्वकामिकम् ॥८४॥ प्रसिद्धा योगिनी नारी तया प्रोक्तं रसायनम् । ग्रहणीनाशनं ह्येतदग्नि-सन्दीपनं परम् ॥ ८३ ॥

पाँचों नमकों में से प्रत्येक ३ माशे, सोंठ, मिरिच, पीपरि प्रत्येक छः-छः माशे, गन्धक ८ माशे, पारा ४ माशे, भाँग ४ तोले ३ माशे इन सब औषधों को एकत्र घोटकर चूर्ण कर लेवे। मात्रा—१ माशा से आरम्भ करके २ माशे पर्यन्त है। अनुपान कांजी है। इस औषध का सेवन करनेवाला रोगी अपनी इच्छानुसार सब पदार्थों को खा सकता है। एक प्रसिद्ध योगिनी स्त्री ने इस रसायन को बताया था। यह ग्रहणी रोगनाशक और अत्यन्त अग्निवर्धक है ॥८१-८३॥

वृहन्नायिका चूर्ण ।

चित्रक त्रिफला व्योष विडङ्गं रजनी-द्वयम् । भल्लातकं यमानी च हिङ्गुलवणपञ्चकम् ॥ ८४ ॥ गृहधूमो वचा कुष्ठं घनमभ्रञ्च गन्धकम् । क्षारत्रयं चाजमोदा पारदो गजपिप्पली ॥ ८५ ॥ अमीषां चूर्णकं यावत्तावच्छक्राशनस्य च । अभ्यर्च्य नायिकां प्रातर्योगिनीं कामरूपिणीम् ॥ ८६ ॥ गुञ्जाष्टप्रमितं चापि भक्षयेदस्य गुण्डकम् । मन्दाग्निकासदुर्नामप्लीहपाण्डुचिरज्वरान् ॥ ८७ ॥ प्रमेहशोथविष्टम्भं संग्रहग्रहणीं जयेत् । सर्वातीसारहरणं सर्वशूलनिषूदनम् ॥ ८८ ॥ आमवातगदोच्छेदी सूतिकातङ्कनाशनः । न च ते व्याधयः सन्ति वातपित्तकफोद्भवाः ॥८९॥ यान् हन्यादसौ सिद्धो गुण्डकं नायिकाकृतम् । वार्ष्यन्नमापमभ्यङ्गस्नानं पिशितभोजनम् ॥ ९० ॥ काञ्जिकाम्लं सदा पथ्यं दग्धमीनस्तथा दधि । काष्ठमप्युदरे यस्य भक्षणाद् याति जीर्णताम् ॥ ९१ ॥

('कलिङ्गातिविषा धान्यं चव्यं जातीफलं समम्' इत्याधिकः पाठ क्वचित्)।

चीता, आंवला, हरड़, बहेड़ा, सोंठ, मिरिच, पीपरि, वायविडङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी, भिलावा, अजवाइन, हींग, पञ्च लवण, घर के धुआँ का जाला, बच, कूठ, नागरमोथा, अभ्रकभस्म, गन्धक, जवाखार, सज्जीखार, सोहागा की खील, अजमोद, पारा और गजपीपरि, समभाग इन सब औषधों को लेकर चूर्ण बनावे। इन औषधों का चूर्ण जितना हो, उतना ही भाँग का चूर्ण मिलाकर रख लेवे। प्रातःकाल कामरूपधारिणी योगिनी नायिका की पूजा करके रोगी का बलाबल देखकर १ माशा की मात्रा में इस चूर्ण को खिलावे। यह चूर्ण अग्निमान्द्य, कास, बवासीर, प्लीहा, पाण्डुरोग चिरकालिक ज्वर, प्रमेह, शोथ, विष्टम्भ और संग्रहणी रोगों को जीतता है। सब प्रकार के अतिसार, शूल, आमवात और सूतिका रोगों का नाशक है। इस चूर्ण के सेवन करनेवाले को वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक रोग नहीं होते हैं। अग्निमान्द्य को नष्ट करने के लिये यह नायिकाकृत चूर्ण सिद्ध प्रयोग है। उर्द, तैलाभ्यङ्ग, स्नान और मांसभोजन इनका परहेज न करे। कांजी, भुनी हुई मछली और दही ये सब सदा पथ्य हैं। इस औषध के प्रभाव से जिनके उदर में काष्ठ भी हो वह भी तत्काल ही पच जाता है तो अन्य भोज्य पदार्थों को पचा लेवे इसमें आश्चर्य ही क्या है ॥ ८४-९१ ॥

इस बृहन्नायिका चूर्ण में कुड़े की छाल, अतीस, धनियाँ, चव्य और जायफल, इन औषधों के भी

सम भाग चूर्ण का मिलाना कहीं लिखा है।

ग्रहणीशार्दूल चूर्ण।

रसगन्धकलौहाभ्रंहिङ्गुर्लवणपञ्चकम्। हरिद्रे कुष्ठकञ्चैव वचा मुस्तं विडङ्गकम् ॥ ९२ ॥ त्रिकटु त्रिफलाचित्रमजमोदा यमानिका। गजोपकुल्या क्षाराणि तथैव गृहधूमकम् ॥ ९३ ॥ एतेषां कार्षिकं चूर्णं विजयाचूर्णकं समम्। माषकप्रमितं चूर्णं शालितण्डुलवारिणा ॥ ९४ ॥ भक्षयेत् प्रातरुत्थाय ग्रहणीगदनाशनम्। अग्निञ्च कुरुते दीप्तं वडवानलसन्निभम् ॥ ९५ ॥ सर्वातीसारशमनं तृष्णाज्वरविनाशनम्। पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥ ९६ ॥ आमातिसारमखिलं विशेषाच्छ्वयथुं जयेत्। असाध्यां ग्रहणीं हन्ति पाण्डुप्लीहचिरज्वरान् ॥ ग्रहणीशार्दूलचूर्णं सर्वरोगकुलान्तकम् ॥ ९७ ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, हींग, पाँचों नमक, हरदी, दारहरदी, कूट, बच, नागरमोथा, वायविडङ्ग सोंठ, मिरिच, पीपरि, आँवला, हरड़, बहेड़ा, चीता, अजमोद, अजवाइन, गजपीपरि, यवक्षार, सज्जीक्षार, सोहागा फूला हुआ और गृहधूम (धुआँ का जाला) प्रत्येक का चूर्ण एक तोला, कुल चूर्ण मिलाकर जितना हो, उतना ही भाँग का चूर्ण मिलाकर रख लेवे। चावलों के धोवन के साथ १ माशा चूर्ण प्रातःकाल सेवन करना चाहिये। यह ग्रहणीशार्दूल चूर्ण ग्रहणीरोग का नाशक है। अग्नि को दीप्त कर वड़वानल के समान बनाता है। सब प्रकार के साम और निराम अतीसार, तृष्णा, ज्वर, शोथ, असाध्य ग्रहणीरोग, पाण्डु, प्लीहा, और पुराना ज्वर आदि विविध प्रकार के रोगों को नष्ट करता है ॥ ९२-९७ ॥

जातीफलादि चूर्ण।

जातीफलं विडङ्गानि चित्रकं तगरं तथा। तालीशं चन्दनं शुण्ठी लवङ्गं चोपकुञ्चिका ॥ ९८ ॥ कर्पूरञ्चाभया धात्री मरिच पिप्पली तुगा। एषामक्षसमान् भागान् चातुर्जातकसंहितान् ॥ ९९ ॥ पलानि सप्त भङ्गस्य सिता सर्वसमा तथा। एतच्चूर्णं जयेत् कासं क्षयं श्वासमरोचकम् ॥१००॥ ग्रहणीमतिसारञ्च अग्निमांद्यं सपीनसम्। वातश्लेष्मभवान् रोगान् प्रतिश्यायांश्च दुःसहान् ॥ १०१ ॥

जायफल, वायविडङ्ग, चीता, तगर, तालीशपत्र, सफेद चन्दन, सोंठ, लौंग, काला जीरा, कपूर, हरड़, आँवला, मिरिच, पीपरि, वंशलोचन, दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेसर, प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, भाँग का चूर्ण २८ तोले; इन सब चूर्णों को एकत्र मिलाकर खरल में घोट लेवे। कुल चूर्ण के बराबर शक्कर मिलाकर रख लेवे। इसका सेवन करने से कास, श्वास, क्षय, अरोचक, ग्रहणी, अतीसार, अग्निमान्द्य, पीनस, वातश्लैष्मिक रोग और दुःसह प्रतिश्याय; ये सब रोग नष्ट होते हैं। मात्रा—१ माशा ॥ ९८-१०१ ॥

जीरकाद्य चूर्ण।

जीरकं टङ्कनं मुस्तं पाठा बिल्वं सधान्यकम्। बालकं शतपुष्पा च दाडिमं कुटजं तथा ॥ १०२ ॥ समङ्गा धातकीपुष्पं व्योषञ्चैव त्रिजातकम्। मोचरसः कलिङ्गञ्च व्योमगन्धकपारदौ ॥ १०३ ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि तावज्जातीफलानि च। एतत् प्राशितमात्रेण ग्रहणीं दुस्तरां जयेत् ॥ १०४ ॥ अतीसारं निहन्त्याशु सामं नानाविधं तथा। कामलां पाण्डुरोगञ्च मन्दाग्निञ्च विशेषतः। जीरकाद्यमिदं चूर्णमगस्त्येन प्रकाशितम् ॥ १०५ ॥

स्वल्पनायिका चूर्ण।

त्रिशाणं पञ्चलवणं प्रत्येकं त्र्यूषणं पिचु। गन्धकान् माषकानष्टौ चत्वारो माषका रसात् ॥ ८१ ॥ इन्द्राशनात् पलं शाणत्रितयाधिकमिष्यते । खादेत् मिश्रीकृतान्माषमनुपेयश्च काञ्जिकम् ॥८२॥ माषकादिक्रमेणैव मनुयोऽयं रसायनम्। अत्यन्ताग्निकरश्चैतद्भोजनं सर्वकामिकम् ॥८४॥ प्रसिद्धा योगिनी नारी तया प्रोक्तं रसायनम्। ग्रहणीनाशनं ह्येतदग्निसन्दीपनं परम् ॥ ८३ ॥

पाँचों नमकों में से प्रत्येक ६ माशे, सोंठ, मिरिच, पीपरि प्रत्येक छ:-छः माशे, गन्धक ६ माशे, पारा ३ माशे, भाँग ४ तोले ६ माशे इन सब औषधों को एकत्र घोटकर चूर्ण कर लेवे। मात्रा—१ माशा से आरम्भ करके ३ माशे पर्यन्त है। अनुपान काञ्जी है। इस औषध का सेवन करनेवाला रोगी अपनी इच्छानुसार सब पदार्थों को खा सकता है। एक प्रसिद्ध योगिनी स्त्री ने इस रसायन को बताया था। यह ग्रहणी-रोगनाशक और अत्यन्त अग्निवर्धक है ॥८१-८३॥

बृहन्नायिका चूर्ण।

चित्रक त्रिफला व्योषं विडङ्गं रजनीद्वयम्। भल्लातकं यमानी च हिङ्गुर्लवणपञ्चकम् ॥ ८४ ॥ गृहधमो वचा कुष्ठं घनमभ्रञ्च गन्धकम्। क्षारत्रयं चाजमोदा पारदो गजपिप्पली ॥ ८५ ॥ अमीषां चूर्णकं यावत्तावच्छक्राशनस्य च । अभ्यर्च्य नायिकां मातर्योगिनीं कामरूपिणीम् ॥ ८६ ॥गुञ्जाष्टप्रमितं चापि भक्षयेदस्य गुण्डकम्। मन्दाग्निकासदुर्नामप्लीहपाण्डुचिरज्वरान् ॥ ८७ ॥ प्रमेहशोथ विष्टम्भं संग्रहग्रहणीं जयेत्। सर्वातीसारहरणं सर्वशूलनिषूदनम् ॥ ८८ ॥ आमवातगदोच्छेदी सूतिकातङ्कनाशनः। न च ते व्याधयः सन्ति वातपित्तकफोद्भवाः ॥८९॥ यान्न हन्यादसौ सिद्धो गुण्डकं नायिकाकृतम्। वार्य्यन्नमाषमभ्यङ्गस्नानं पिशितभोजनम् ॥ ९० ॥ काञ्जिकाम्लं सदा पथ्यं दग्धमीनस्तथा दधि। काष्ठमप्युदरे यस्य भक्षणाद् याति जीर्णताम् ॥ ९१ ॥

('कलिङ्गातिविषा धान्यं चव्यं जातीफलं समम्' इत्याधिकः पाठः क्वचित्)।

चीता, आँवला, हरड़, बहेड़ा, सोंठ, मिरिच, पीपरि, वायविडङ्ग, हरदी, दारुहरदी, भिलावा, अजवाइन, हींग, पञ्च लवण, घर के धुएँ का जाला, बच, कूठ, नागरमोथा, अभ्रकभस्म, गन्धक, जवाखार, सज्जीखार, सोहागा की खील, अजमोद, पारा और गजपीपरि, समभाग इन सब औषधों को लेकर चूर्ण बनावे। इन औषधों का चूर्ण जितना हो, उतना ही भाँग का चूर्ण मिलाकर रख लेवे। प्रातःकाल कामरूपधारिणी योगिनी नायिका की पूजा करके रोगी का बलाबल देखकर १ माशा की मात्रा में इस चूर्ण को खिलावे। यह चूर्ण अग्निमान्द्य, कास, बवासीर, प्लीहा, पाण्डुरोग, चिरकालिक ज्वर, प्रमेह, शोथ, विष्टम्भ और संग्रहणी रोगों को जीतता है। सब प्रकार के अतिसार, शूल, आमवात और सूतिका रोगों का नाशक है। इस चूर्ण के सेवन करनेवाले को वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक रोग नहीं होते हैं। अग्निमान्द्य को नष्ट करने के लिये यह नायिकाकृत चूर्ण सिद्ध प्रयोग है। उर्द, तैलाभ्यङ्ग, स्नान और मांसभोजन इनका परहेज न करे। काँजी, भुनी हुई मछली और दही ये सब सदा पथ्य हैं। इस औषध के प्रभाव से जिसके उदर में काष्ठ भी हो वह भी तत्काल ही पच जाता है, तो अन्य भोज्य पदार्थों को पचा लेवे इसमें आश्चर्य ही क्या है ॥ ८४-९१ ॥

इस बृहन्नायिका चूर्ण में कुड़े की छाल, अतीस, धनियाँ, चव्य और जायफल, इन औषधों के भी

सम भाग चूर्ण का मिलाना कहीं लिखा है।

ग्रहणीशार्दूल चूर्ण ।

रसगन्धकलौहाभ्रंहिङ्गुर्लवणपञ्चकम्। हरिद्रे कुष्ठकञ्चैव वचा मुस्तं विडङ्गकम् ॥ ९२ ॥ त्रिकटु त्रिफलाचित्रमजमोदा यमानिका । गजोपकुल्या क्षाराणि तथैव गृहधूमकम् ॥ ९३ ॥ एतेषां कार्षिकं चूर्णं विजयाचूर्णकं समम् । माषकप्रमितं चूर्णं शालितण्डुलवारिणा ॥ ९४ ॥ भक्षयेत् प्रातरुत्थाय ग्रहणीगदनाशनम् । अग्निञ्च कुरुते दीप्तं वडवानलसन्निभम् ॥ ९५ ॥ सर्वातीसारशमनं तृष्णाज्वरविनाशनम् । पक्कापक्कमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥ ९६ ॥ आमातिसारमखिलं विशेषाच्छ्वयथुं जयेत् । असाध्यां ग्रहणीं हन्ति पाण्डुप्लीहचिरज्वरान् ॥ ग्रहणीशार्दूलचूर्णं सर्वरोगकुलान्तकम् ॥ ९७ ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, हींग, पाँचों नमक, हरदी, दारुहरदी, कूट, वच, नागरमोथा, वायविडङ्ग सोंठ, मिरिच, पीपरि, आँवला, हरड़, बहेड़ा, चीता, अजमोद, अजवाइन, गजपीपरि, यवक्षार, सज्जीखार, सोहागा फूला हुआ और गृहधूम (धुआँ का जाला) प्रत्येक का चूर्ण एक तोला, कुल चूर्ण मिलाकर जितना हो, उतना ही भाँग का चूर्ण मिलाकर रख लेवे। चावलों के धोवन के साथ १ माशा चूर्ण प्रातःकाल सेवन करना चाहिये । यह ग्रहणीशार्दूल चूर्ण ग्रहणीरोग का नाशक है। अग्नि को दीप्त कर वड़वानल के समान बनाता है। सब प्रकार के साम और निराम अतीसार, तृष्णा, ज्वर, शोथ, असाध्य - ग्रहणीरोग, पाण्डु, प्लीहा, और पुराना ज्वर आदि विविध प्रकार के रोगों को नष्ट करता है ॥ ९२-९७ ॥

जातीफलादि चूर्ण ।

जातीफलं विडङ्गानि चित्रकं तगरं तथा । तालीशं चन्दनं शुण्ठी लवङ्गं चोपकुञ्चिका ॥ ९८ ॥ कर्पूरञ्चाभया धात्री मरिचं पिप्पली तुगा । एषामक्षसमान् भागान् चातुर्जातकसंहितान् ॥ ९९ ॥ पलानि सप्त भङ्गस्य सिता सर्वसमा तथा। एतच्चूर्णं जयेत् कासं क्षयं श्वासमरोचकम् ॥१००॥ ग्रहणीमतिसारञ्च अग्निमांद्यं सपीनसम् । वातश्लेष्मभवान् रोगान् प्रतिश्यायांश्च दुःसहान् ॥ १०१ ॥

जायफल, वायविडङ्ग, चीता, तगर, तालीशपत्र, सफेद चन्दन, सोंठ, लौंग, काला जीरा, कपूर, हरड़, आँवला, मिरिच, पीपरि, वंशलोचन, दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेसर, प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, भाँग का चूर्ण २८ तोले ; इन सब चूर्णों को एकत्र मिलाकर खरल में घोट लेवे । कुल चूर्ण के बराबर शक्कर मिलाकर रख लेवे । इसका सेवन करने से कास, श्वास, क्षय, अरोचक, ग्रहणी, अतीसार, अग्निमान्द्य, पीनस, वातश्लैष्मिक रोग और दुःसह प्रतिश्याय ; ये सब रोग नष्ट होते हैं । मात्रा–१ माशा ॥ ९८-१०१ ॥

जीरकाद्य चूर्ण ।

जीरकं टङ्कनं मुस्तं पाठा विल्वं सधान्यकम् । वालकं शतपुष्पा च दाडिमं कुटजं तथा ॥ १०२ ॥ समङ्गा धातकीपुष्पं व्योषञ्चैव त्रिजातकम् । मोचरसः कलिङ्गञ्च व्योमगन्धकपारदौ ॥ १०३ ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि तावज्जातीफलानि च । एतत् प्राशितमात्रेण ग्रहणीं दुस्तरां जयेत् ॥ १०४ ॥ अतीसारं निहन्त्याशु सामं नानाविधं तथा । कामलां पाण्डुरोगञ्च मन्दाग्निञ्च विशेषतः । जीरकाद्यमिदं चूर्णमगस्त्येन प्रकाशितम् ॥ १०५ ॥

जीरा, सोहागा फूला हुआ, नागरमोथा, पाढ़ी, बेलगिरी, धनियाँ, सुगन्धवाला, सौंफ, अनार के फल का छिलका, कुबे की छाल, छुई-मुई, धाय के फूल, सोंठ, मिरिच, पीपरि, दालचीनी, इलायची, तेजपात, मोचरस, इन्द्रजौ, अभ्रक-भस्म, गन्धक और पारा प्रत्येक का चूर्ण समभाग, चूर्ण के बराबर जायफल का चूर्ण ; इन सब चूर्णों को एकत्र मिलाकर रख लेवे। इस चूर्ण के सेवन करते ही दुःसाध्य ग्रहणीरोग, अनेक प्रकार का आमातिसार, कामला, पाण्डुरोग और अग्निमान्द्य रोग नष्ट होते हैं। इस जीरकादि चूर्ण को अगस्त्यजी ने प्रकाशित किया था। मात्रा-१ माशा ॥ ६६२-१०५ ॥

कुटजावलेह ।

प्रस्थे पचेत् कुटजतालमूल्योःसितार्द्धप्रस्थं भृतपादशेषे । ततोऽक्षमात्राणि समानि दद्याच्चूर्णानि धीरो विधिवत्तदेषाम् ॥ १०६ ॥ समङ्गा धातकी पाठा बिल्वं मुस्ताथ पिप्पली । शक्रकातिविषाक्षारसौवर्चलरसाञ्जनम् ॥ १०७ ॥ शाल्मलीवेष्टकञ्चैव सर्वं सिद्धे निधापयेत् । शीते च मधुनश्चात्र कुडवार्द्धं विनिक्षिपेत् ॥ १०८ ॥ अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत यथाकालं प्रमाणतः । सर्वातिसारं शमयेत् संग्रहग्रहणीं तथा ॥ १०९ ॥ अम्लपित्तकृतं दोषमुदरं सर्वरूपिणम् । विकारान् कोष्ठजान् हन्ति शूलारोचकमेव च ॥ ११० ॥

(कुटजतालमूल्योः प्रत्येकमष्टपलानि, जलं षोडशपलं, अवशिष्टं चतुःपलं। सिताष्टपलं दत्त्वा पक्तवा च समंगादिचूर्णप्रक्षेपः कार्यः । शीते च मधु पलचतुष्टयमिति गोपालदासः, मधुनः पलद्वयमित्यन्ये ।)

कुटज (जल की चौराई) ३२ तोला और तालमूली (स्याहमुसली) ३२ तोला; इन दोनों को ६ सेर ३२ तोला पानी में पकावे। १२८ तोला पानी शेष रहने पर उसी क्वाथ में आध सेर शक्कर मिलाकर चाशनी बनावे। तदनन्तर उसमें छुई-मुई, धाय के फूल, पाढ़ी, बेलगिरी, नागरमोथा, छोटी पीपरि, भाँग, अतीस, जवाखार, काला नमक, रसौत और मोचरस इनका दो-दो तोले चूर्ण मिलाकर उतार लेवे। शीतल होने पर ८ तोले मधु मिलाकर रख लेवे। दोष, बलाबल और काल का अनुसन्धान करके इसकी मात्रा की व्यवस्था करनी चाहिये। यह अवलेह सब प्रकार के अतिसार और संग्रहणीरोग को शान्त करता है। अम्लपित्त, सब प्रकार के उदररोग, कोष्ठजविकार, शूल और अरोचक; इन रोगों को भी नष्ट करता है ॥ १०६-११० ॥

दशमूलगुड़ ।

दशमूलीपलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् । तेन पादावशेषेण पचेद्गुडतुलां भिषक् ॥ १११ ॥ आर्द्रकस्वरसप्रस्थं दत्त्वा मृद्वग्निना ततः । लेही भूते प्रदातव्यं चूर्णमेषां पलं पलम् ॥ ११२ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् । हिंगु भल्लातकञ्चैव विडंगमजमोदकम् ॥११३॥ द्वौ क्षारौ चित्रकं चव्यं पञ्चैव लवणानि च । दत्त्वा सुमथितं कृत्वा स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ ११४ ॥ मापत्रयं ततः खादेत् प्रातः प्रातर्विचक्षणः। हन्ति मन्दानलं शोथमामजां ग्रहणीमपि ॥ ११५ ॥ आमं सर्वभवं शूलं प्लीहानमुदरं तथा । मन्दानलभवं रोगं विष्टंभं गुदजानि च । ज्वरं चिरन्तनं हन्ति तमिस्रं भानुमानिव ॥ ११६ ॥

दशमूल की दश औषधों को मिलाकर पाँच

सेर लेवे। उसको २५ सेर ४८ तोला पानी में पकावे, चौथाई शेष रहने पर उसी क्वाथ में पाँच सेर पुराना गुड़ और १२८ तोला अदरख का रस मिलाकर धीमी आँच पर पकावे। चटनी के समान गाढ़ा होने पर पीपरि, पिपरामूल, मिरिच, सोंठ, हींग, भिलावा, वायविडङ्ग, अजमोद, जवाखार, सज्जीखार, चीता की जड़ चव्य और पांचों नमक, इनका चार चार तोले चूर्ण मिलाकर मिट्टी के चिकने पात्र में रख लेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल २ माशा २ रत्ती सेवन करे। यह अवलेह अग्निमान्द्य, शोथ आमजन्य ग्रहणी, आम, त्रिदोषजन्य शूल, प्लीहा, उदर, अग्निमान्द्यजन्य रोग, विष्टम्भ, बवासीर और प्राचीन ज्वर, इन रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्यदेव अन्धकार को नष्ट करते हैं ॥ ११३-११६ ॥

कल्याणगुड़।

प्रस्थत्रयेणामलकीरसस्य शुद्धस्य दत्त्वार्द्धतुलां गुडस्य। चूर्णीकृतैर्ग्रन्थिकजीरचव्यव्योषेभकृष्णाहपुषाजमोदैः ॥ ११७ ॥ विडंगसिन्धुत्रिफलायमानीपाठाग्निधान्यैश्च पलप्रमाणैः। दत्त्वात्रिवृच्चूर्णपलानिचाष्टावष्टौ च तैलस्य पचेद्यथावत् ॥ ११८ ॥ तं भक्षयेत्कोलफलप्रमाणं यथेष्टचेष्टं त्रिसुगन्धियुक्तम्। अनेन सर्वे ग्रहणी विकाराः सश्वासकासस्वरभेदशोथाः ॥ ११९ ॥ शाम्यन्ति चायं चिरमन्तराग्नेर्हतस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतुः। स्त्रीणां च वन्ध्यामयनाशनोऽयं कल्याणको नाम गुडः प्रदिष्टः ॥ १२० ॥ त्रिवृतां भर्जयन्त्यत्र मनाक्तैले चिकित्सकाः। तत्रोक्तमानसाधर्म्यात् त्रिसुगन्धिपलं पृथक् ॥ १२१ ॥

वस्त्र से छान कर शुद्ध किया हुआ आंवले का रस ४ सेर १४ तोला, गुड़ २०० तोले, इनको एकत्र पकावे। पाकशेष होने पर पिपरामूल, जीरा, चव्य, सोंठ, मिरिच, पीपरि, गजपीपरि, हाऊबेर, अजमोद, वायविडङ्ग, सेंधा नमक, आंवला, हरड़, बहेड़ा, अजवाइन, पाढ़ी, चीता और धनियां प्रत्येक का चार-चार तोले चूर्ण मिलावे। ३२ तोले निसोत के चूर्ण को तैल में थोड़ा सा भूनकर मिलावे। तिल का तैल ३२ तोले; दालचीनी, छोटी इलायची के दाने और तेजपात प्रत्येक चार-चार तोले मिलाकर रख लेवे। इस गुड़ को प्रतिदिन एक तोले की मात्रा में गोली बनाकर खाना चाहिये। इसका सेवन करने से सब प्रकार के ग्रहणीरोग, श्वास, कास, स्वरभेद, शोथ और अग्निमान्द्य रोग की शान्ति तथा पुरुषत्व की वृद्धि होती है। यह स्त्रियों के वन्ध्यता रोग का भी नाशक है। इसका कल्याण गुड़ नाम है ११७-१२१

कूष्माण्डकल्याणगुड़।

कूष्माण्डकानां रूढानां सुस्विन्नं निष्कुलत्वचाम्। सर्पिःप्रस्थे पलशतं ताम्रपात्रे शनैः पचेत् ॥ १२२ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली। धान्यकानि विडङ्गानि यमानी मरिचानि च ॥ १२३ ॥ त्रिफला चाजमोदा च कलिङ्गाजाजिसैन्धवम्। एकैकस्य पलञ्चैव त्रिवृदष्टपलं भवेत् ॥ १२४ ॥ तैलस्य च पलान्यष्टौ गुडपञ्चाशदेव तु। प्रस्थैस्त्रिभिः समेतन्तु रसस्यामलकस्य च ॥ १२५ ॥ यदा दार्वीप्रलेपस्तु तदेनमवतारयेत्। यथाशक्ति गुडीं कुर्यात् कर्षकर्षार्द्धमानतः॥१२६॥ अनेन विधिना चैव प्रयुक्तस्तु जयेदिमान्। दुर्वारान् ग्रहणीरोगान् कुष्ठान्यर्शोभगन्दरान् ॥ १२७ ॥ ज्वरमानाहहृद्रोगगुल्मोदरविसूचिकाः। कामलां पाण्डुरोगांश्च प्रमेहांश्चैव विंशतिम् ॥ १२८ ॥ प्लीहानं वातरक्तञ्च दद्रु चर्मदलीमकान्। कफपि-

चानिलान् सर्वान् प्ररूढांश्च व्यपोहति ॥ १२९ ॥ व्याधिक्षीणा वयःक्षीणाः स्त्री क्षीणाश्च ये नराः। तेषां पुष्यश्च बल्यश्च वयः स्थापन एव च। गुडकूष्माण्डको नाम वन्ध्यानां गर्भदः परः ॥ १३० ॥

सुपक्व कुम्हड़ा (पुराना पेठा) लेकर फिर छीलकर टुकड़े करके ४ सेर लेवे। उसको उबालकर १२८ तोले घी में ताँबे के पात्र में धीमी आँच से पकावे। पश्चात् पीपरि, पिपरामूल, चीता, गजपीपरि, धनियाँ, वायविडङ्ग, अजवाइन, मिरिच, आँवला, हरड़, बहेड़ा, अजमोद, इन्द्र जौ, जीरा और सेंधा नमक प्रत्येक का चूर्ण चार-चार तोले, निसोत का चूर्ण ३२ तोले, तिल तैल ३२ तोले, गुड़ ढाई सेर और आँवले का स्वरस ४ सेर ६४ तोला लेवे। सबको मिलाकर यथाविधि पकावे। जब करछी में चिपकने लगे, तब उतार लेवे। रोगी का बलाबल देखकर आधा तोला से एक तोला पर्यन्त मात्रा प्रयुक्त करनी चाहिये। यह कूष्माण्डकल्याणगुड़ दुर्वार ग्रहणीरोग, कुष्ठ, बवासीर, भगन्दर, ज्वर, अफरा, हृद्रोग, गुल्म, उदर, विसूचिका, कामला, पाण्डुरोग, बीस प्रकार के प्रमेह, प्लीहा, वातरक्त, दद्रु, चर्मरोग और हलीमक को तथा वात, पित्त और कफ के समस्त रोगों को नष्ट करता है। जो मनुष्य रोगों से क्षीण हो गये हैं, जो वृद्धावस्था से क्षीण हो गये हैं और जो अत्यन्त स्त्रीप्रसंग करने से क्षीण हो गये हैं उनके लिये यह गुड़ क्रम से वीर्यवर्धक, बलवर्धक और वयःस्थापक है एवं वन्ध्या स्त्रियों के लिये गर्भ देनेवाला है ॥ १२२-१३० ॥

टिप्पणी—ताँबे के पात्र पर अच्छी कलई होनी चाहिए अन्यथा ताम्र पात्र में पकाना विष समान हानिकारक है।

श्रीकामेश्वरमोदक

सम्यङ्मारितमभ्रकं कट्फलं कुष्ठाश्वगन्धामृता,मेथीमोचरसो विदारिमुषलीगोक्षूरकश्चेक्षुरः। रम्भाकन्दशतावरी त्वजमुदा माषस्तिला धान्यकं, हैमी नागबलाकचूरमदनं जातीफलं सैन्धवम् ॥ १३१ ॥ भार्गीकर्कटशृङ्गकं त्रिकटुकं जीरद्वयं चित्रकं चातुर्जातपुनर्नवागजकणा द्राक्षाशटीबालकम्। शाल्मल्यङ्घ्रिफलत्रिकं कपिभवं बीजं समं चूर्णयेत् चूर्णांशा विजया सिता द्विगुणिता मध्वाज्ययोः पिण्डितम् ॥१३२॥ माषैका गुडिकाद्विमाषमथवा सेव्या सदा कामिभिः, सेव्यं क्षीरसितं सुवीर्यकरणं स्तम्भेऽप्ययं कामिनाम्।वामावश्यकरः सुखातिसुखदो यद्वङ्गनाद्रावणः क्षीणे पुष्टिकरः क्षतक्षयहरो हन्याच्च सर्वामयान् ॥ १३३ ॥ कासश्वासमहातिसारशमनः कामाग्निसन्दीपनो, दुर्नामग्रहणीप्रमेहनिवहश्लेष्मातिरेकप्रणुत्। नित्यानन्दकरो विशेषकविता वाचां विलासोद्भवं, धत्तेसर्वगुणं महास्थिरमतिर्योलोनितान्तोत्तमः ॥ १३४ ॥ अभ्यासेन निहन्ति मृत्युपलितं कामेश्वरो वत्सरात्, सर्वेषां हितकारिणा निगदितः श्रीनित्यनाथेन सः। वृद्धानां मदनस्य वर्द्धनकरः प्रौढाङ्गनासङ्गमे, सिंहोऽयं समदृष्टिप्रत्ययकरो भूपैः सदा सेव्यताम् ॥ १३५ ॥

(तन्त्रान्तरेऽस्य महाकामेश्वर संज्ञा)

अभ्रकभस्म, कायफल, कूट, असगन्ध, गिलोय, मेथी, मोचरस, विदारीकन्द, मुसली, गोखुरू, तालमखाना, केला की जड़, शतावरि, अजमोद, जटामांसी, तिल, धनियाँ, बच, गुलसकरी, कचूर, मैनफल, जायफल, सेंधा नमक, भारंगी, काकड़ासिंगी, सोंठ, मिरिच, पीपरि, स्याह जीरा, सफेद जीरा, चीता की जड़,

दालचीनी, छोटी इलायची के बीज, तेजपात, नागकेसर, सोंठी, गजपीपरि, मुनक्का, कचूर, सुगन्धवाला, सेमर की जड़, त्रिफला और कौंच के बीज प्रत्येक का चूर्ण समभाग। चूर्ण के बराबर भाँग का चूर्ण और भाँग के चूर्ण के मिलाने पर चूर्ण जितना हो उसकी दूनी शक्कर मिलावे । तदनन्तर घी और मधु मिलाकर लड्डू बाँध लेवे। रोगी का बलाबल देखकर एक मासा से दो मासा तक की मात्रा में सेवन करना चाहिये। इस मोदक को खाकर शक्कर मिला दुग्ध पीना चाहिये। यह मोदक वीर्य-वर्धक, कामियों के लिये स्तम्भक, स्त्री को वश में करनेवाला, अत्यन्त सुखप्रद और अनेक रमणियों को प्रसन्न करने की शक्ति देनेवाला है। वीर्य को पुष्ट करता है। क्षत और क्षय आदि सब प्रकार के रोगों को नष्ट करता है। कास, श्वास और प्रबल अतिसार की शान्ति तथा कामाग्नि की वृद्धि करता है। बवासीर, ग्रहणी, प्रमेह और कफातिरेक को नष्ट करता है। कवित्वशक्ति, वाक्चातुर्य और बुद्धि को बढ़ाता है। यह मोदक बालकों के लिये भी अत्यन्त लाभदायक है। एक वर्षपर्यन्त सेवन करने से मृत्यु और पलित को नष्ट करता है। सब प्राणियों के हितचिन्तक श्रीयुत नित्यनाथजी ने इस मोदक का आविष्कार किया था। इसका सेवन करने से प्रौढ़ स्त्रियों के समागम में वृद्धों को भी कामदेव की वृद्धि होती है। यह मोदक सिंह के समान बलवर्धक, नेत्रों के लिये लाभदायक और सदा राजाओं के सेवन करने योग्य है।

तन्त्रान्तर में इसका नाम महाकामेश्वर-मोदक है ॥ १२१-१३५ ॥

कामेश्वरमोदक

धात्री सैन्धवकुष्ठकट्फलकणाशुण्ठी यमानीद्वयं, यष्टी जीरकयुग्मधान्यकशटी भृङ्गीवचाकेशरम्। तालीशं त्रिसुगन्धिकं समरिचं पथ्याक्षमेभिः समं, चूर्णीकृत्य मनाक्स्वबीजसहितं भृष्टा तु शक्राशनम् ॥ १३६ ॥ सर्वेषां द्विगुणां सितां सुविमलां यत्नाद्विपक्वं निक्षिपेत्, क्षौद्रश्चापि घृतं प्रशस्तदिवसे कुर्याच्छुभान्मोदकान् । कर्पूरैरवचूर्णितानपि हितान् दद्या तिलान् भर्जितान्, गोप्योऽयं क्षितिमण्डले मितधियां पाखण्डिनामग्रतः ॥१३७॥ आधिव्याधिहरः क्षतक्षयहरः कुष्ठापहो बृंहणः, स्त्रीणां तोषकरो मुखद्युतिकरः शुक्राग्निवृद्धिप्रदः । कासश्वासबलासरोगनिचयप्रध्वंसनः प्राणिनां, प्रोक्तो ब्रह्मसुतेन सर्वसुखदः कामेश्वरो मोदक ॥ १३८ ॥ ग्रहगणपरिहीनः सर्वशास्त्रप्रवीणः वलितविमलकीर्तिः प्राप्तकन्दर्पमूर्तिः । विगतसकलभीतिर्गीतगाथप्रनीतिर्भवति भुवि स देवो येन भुक्तः प्रयत्नात् ॥ १३९ ॥ रहसि युवतिखेलासम्पुटाकर्षहर्षाद् गमयति युवतीनां केलिकौतूहलेन । यदि कथमपि भुक्तो भोजनादावथान्ते सुरतरभसमुच्चैर्नष्टकामं प्रकामम् ॥ १४० ॥ यस्माञ्चव्यबृहस्पतिस्तनुधिया यस्मात् सदा वीर्यवान्, यस्मादुन्मददाक्षिणात्ययुवती सम्भोगकौतूहली । यस्मात् काव्यकुतूहलं सुकविता संजायते लीलया श्रीमद्भिः प्रतिवासरं क्षितितले संसेव्यतां मोदकः ॥ १४१ ॥

एष मोदक ग्रहण्यामपि शस्तः ।

आँवला, सेंधा नमक, कूट, कायफल, पीपरि, सोंठ, अजवाइन, अजमोद, मुलेठी, स्याह जीरा, सफेद जीरा, धनिया, कचूर, काकड़ासिंगी, बच नागकेसर, तालीसपत्र, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, मिरिच, हरड़, और बहेड़ा; प्रत्येक का चूर्ण समभाग। सबके बराबर घी में थोड़ी भुनी सबीज भांग का चूर्ण और [illegible] की दूनी

कपूर से अधिवासित करके भूने और छिलके उतरे हुए तिलों को मिलाकर, शुभ दिन में लड्डू बनावे। अल्पबुद्धिवाले पापात्मियों के सामने इसको प्रकाशित न करना चाहिये। यह मोदक सब प्रकार की आधि और व्याधियों को तथा क्षय और कुष्ठरोगों को नष्ट करता है। वृंहण और स्त्रियों को संतोषजनक है। मुख की कान्ति, शुक्र और अग्नि को बढ़ाता है। कास, श्वास और सब प्रकार के श्लैष्मिक रोगों को नष्ट करता है। समस्त प्राणियों को सुख देनेवाले इस कामेश्वरमोदक को ब्रह्माजी के पुत्र ने बताया था। जो मनुष्य यत्नपूर्वक इस मोदक का सेवन करता है, वह महजनित बाधाओं से रहित, समस्त शास्त्रों में प्रवीण, यशस्वी, कामदेव के समान रूपवान्, निर्भय और गीत, वाद्य आदि कलाओं में निपुण होकर पृथिवी में देवता के समान हो जाता है। भोजन के आदि में अथवा अन्त में किसी प्रकार से इस मोदक का सेवन करने से जिसका कामदेव नष्ट हो गया हो उसकी भी अत्यन्त रति-शक्ति बढ़ती है और वह क्रीडा-कौतूहल से युवतियों को प्रसन्न करता है। जिसका सेवन करने से मनुष्य नवीन बृहस्पति के समान बुद्धिमान् और सर्वदा धीर्यशाली होता है। जिसके सेवन से उन्मत्त दाक्षिणात्य रमणियों के साथ सम्भोग करने को इच्छुक होता है, और जिसके सेवन से काव्यकुतूहल तथा अनायास ही कवित्वशक्ति उत्पन्न होती है। पृथिवीतल में श्रीमान् लोगों को इस कामेश्वरमोदक का प्रतिदिन सेवन करना चाहिये मात्रा १ से २ तोला ॥ १३६-१४१ ॥

मदनमोदक।

त्रैलोक्यविजयापत्रं सबीजं घृतभर्जितम्। सने शिलातले पश्चाच्चूर्णयेदतिचिक्कणम् ॥ १४२ ॥ त्रिकटु त्रिफला शृङ्गी कुष्ठधान्यकसैन्धवम्। शटी तालीशपत्रं च कट्फलं नागकेशरम् ॥ १४३ ॥ अजमोदा यमानी च यष्टीमधुकमेव च। मेथी जीरकयुग्मञ्च गृहीत्वा श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ १४४ ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि तावदेव तदौषधम्। तावदेव सिता देया यावदायाति बन्धनम् ॥ १४५ ॥ घृतेन मधुना मिश्रं मोदकं परिकल्पयेत्। त्रिसुगन्धिसमायुक्तं कर्पूरेणाधिवासयेत् ॥ १४६ ॥ स्थापयेद् घृतभाण्डे च श्रीमन्मदनमोदकम्। भक्षयेत् प्रातरुत्थाय वातश्लेष्मविनाशनम् ॥ १४७ ॥ कासघ्नं सर्वशूलघ्नमामवातविनाशनम्। सर्वरोगहरो ह्येष संग्रहग्रहणीहरः ॥ १४८ ॥ एतस्य सतताभ्यासाद्वृद्धोऽपि तरुणायते। ब्रह्मणः प्रमुखाच्छ्रुत्वा वासुदेवे जगत्पतौ ॥१४९ ॥ एष कामविवृद्ध्यर्थं नारदैः प्रतिपादितः। तेन लक्षं वरस्त्रीणां रेमे स यदुनन्दनः ॥१५०॥

थोड़े घी में भुनी हुई बीजसमेत भांग २० तोले, सोंठ, मिरिच, पीपरि, आंवला, हड़ बहेड़ा, काकड़ासिंगी, कूट, धनियां, सेंधानमक, कचूर, तालीशपत्र, कायफल, नागकेशर, अजमोद, अजवाइन, मुलेठी, मेथी, स्याहजीरा और सफेद जीरा, प्रत्येक एक तोला अर्थात् सब मिलकर भांग के बराबर २० तोले हों। इन औषधों का महीन चूर्ण करके चीनी ४० तोले (की चाशनी लड्डू बाँधने योग्य करके), दालचीनी, छोटी, इलायची और तेजपात को मिलाकर तथा कपूर के चूर्ण से अधिवासित (सुगन्धित) करके मोदक बँधने योग्य घृत और मधु मिलाकर, लड्डू बाँधकर घी के चिकने पात्र में रख देवे। प्रातःकाल इसका सेवन करना चाहिये। यह वात कफ, कास, सब प्रकार के शूल, आमवात और संग्रहणी तथा अन्यान्य सब रोगों को नष्ट करता है। इस मोदक का निरन्तर सेवन करने से वृद्ध भी तरुण के समान हो जाता है। नारदजी ने ब्रह्मा के मुखारविन्द से इस मोदक की प्रशंसा सुनकर कामदेव की वृद्धि के लिये जगदीश्वर वासुदेवजी से कहा। उन्होंने

(वासुदेव ने) इसका सेवन करने से लाख स्त्रियों के साथ रमण किया । मात्रा १-२ तोला ॥ १४२-१५० ॥

बृहन्मेथीमोदक ।

त्रिफला धान्यकं मुस्तं शुण्ठी मरिचपिप्पली । कट्फलं सैन्धवं भृङ्गी जीरकद्वयपुष्करम् ॥ १५१ ॥ यमानी केशरं पत्रं तालीशं विडमेव च । जातीफलं त्वगेला च जयित्रीन्दुलवङ्गकम् ॥ १५२ ॥ शतपुष्पा मुरा मांसी यष्टीमधुकपद्मकम् । चव्यं मधुरिका दारु सर्वमेतत् समं भवेत् ॥ १५३॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रा तु मेथिका । सितया मोदकं कार्यं घृतमाध्वीकसंयुतम् ॥ ॥ १५४ ॥ भक्षयेत् मातरुत्थाय यथा दोषानुपानतः । हन्ति मन्दानलान् सर्वानामदोषं विशेषतः ॥ १५५ ॥ महाग्निजननं वृष्यमामवातनिषूदनम् । ग्रहण्यर्शोविकारघ्नं प्लीहपाण्डुगदापहम् ॥ १५६ ॥ प्रमेहान् विंशतिं हन्ति कासं श्वासञ्च दारुणम् । छर्द्यतीसारशमनं सर्वारोचविनाशनम् । मेथीमोदकनामाऽयं पतञ्जलिविनिर्मितः ॥ १५७ ॥

आँवला, हरड़ बहेड़ा, धनियाँ, नागरमोथा, सौंठ, मिरिच, पीपरि, कायफल सेंधानमक काकड़ासिंगी, सफेदजीरा, स्याहजीरा, पुहकरमूल, अजवाइन, नागकेसर, तेजपात, तालीसपत्र, विडनमक, जायफल, दालचीनी, छोटी इलायची, जावित्री, कपूर, लौंग, सोया, (मूर्वा) मुरनहार, जटामांसी, मुलेठी, पद्माख चव्य, सौंफ और देवदारु प्रत्येक का समभाग चूर्ण और चूर्ण के बराबर मेथी का चूर्ण इन सबको एकत्र मिश्रित करे । मिला हुआ चूर्ण जितना हो, उससे दूनी शक्कर लेवे । मोदक बँधने-योग्य घी और शहद मिलाकर लड्डू बाँध लेवे । दोषानुकूल अनुपान के साथ प्रातःकाल सेवन करे । यह मोदक सब प्रकार के अग्निमान्द्य विशेषतया आमदोष को नष्ट करता है । अग्नि का दीपक वीर्यवर्धक और आमवातनाशक है । ग्रहणी, बवासीर, प्लीहा, पाण्डुरोग, बीस प्रकार के प्रमेह, कास, दारुण श्वास, वमन, अतीसार और सब प्रकार के अरोचक को नष्ट करता है । इस मेथी मोदक को पतञ्जलि मुनि ने बनाया था । मात्रा—१।२ तोला ॥ १५१-१५७ ॥

बृहज्जीरकादिमोदक ।

जीरकं कृष्णजीरञ्च कुष्ठं शुण्ठी च पिप्पली । मरिचं त्रिफलात्वक् च पत्रमेला च केशरम् ॥ १५८ ॥ शुभा लवंगं शैलेयं चन्दनं श्वेतचन्दनम् । काकोली क्षीरकाकोली जातीकोषफले तथा ॥ १५९ ॥ यष्टी मधुरिका मांसी मुस्तं सचलाकं शटी । धान्यकं देवताडञ्च[1] मुरा द्राक्षा नखी तथा ॥ १६० ॥ शतपुष्पा पद्मकञ्च मेथी च सुरदारु च । सजलं वालुका चैव सैन्धवं गजपिप्पली ॥ १६१ ॥ कर्पूरं वनिता चैव कुन्दखोटीसमांशकम्[2] । लौहमभ्रकवङ्गानां द्विभागं तत्र दापयेत् ॥ १६२ ॥ एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । सर्वचूर्णसमं देयं भृष्टजीरकचूर्णकम् ॥ १६२ ॥ सिता द्विगुणिता देया मोदकं परिकल्पयेत् । घृतेन मधुना मिश्रं मोदकञ्च भिषग्वरः ॥ १६४ ॥ भक्षयेत् मातरुत्थाय यथादोषं यथाबलम् । गव्यं सशर्करञ्चैव अनुपानं प्रयोजयेत् १६५

१ देवताडम्=मूत्रकोषिपानदेवदालीत्यपराभिधे । यस्या गन्धमयम् पत्रपुष्परन्ध्राणि, फलं च कर्कोटकीवत् । हि० घघरबेल, सनैया ।

२ कुन्दखोटी=गंधाबिरोजा ।

अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान्। सर्वांस्तान्नाशयत्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ १६६ ॥ नानावर्णमतीसारं विशेषादामसम्भवम्। शूलमष्टविधं हन्ति अर्शोरोगं चिरोद्भवम् ॥ १६७ ॥ जीर्णज्वरञ्च सततं विषमज्वरमेव च। स्त्रीणाञ्चैवानपत्यानां दुर्बलानाञ्च देहिनाम् ॥ १६८ ॥ पुष्पकृत् पुत्रकृच्चैव बलवर्णकरं परम्। सूतिकारोगमत्युग्रं नाशयन्नात्र संशयः ॥ १६९ ॥ प्रदरं नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः। दाहं सर्वाङ्गिकञ्चैव वातपित्तोत्थितञ्च यत्। अयं सर्वगदोच्छेदी जीरकाद्यो हि मोदकः ॥१७०॥

जीरा, कालाजीरा, कूट, सोंठ, पीपरि, मिरिच, आँवला, हरड़, बहेड़ा, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची के बीज, नागकेसर, वंशलोचन, लौंग, छरीला, लालचन्दन, श्वेतचन्दन, काकोली, क्षीरकाकोली, जावित्री, जायफल, मुलेठी, सौंफ, जटामासी, नागरमोथा, कालानमक, कचूर, धनियाँ, देवदारु, खुरासानी, मुनक्का, नखी, सोया, पदमाख, मेथी, देवदारु, सुगन्धवाला, नालुका, लाहौरीनमक, गजपीपरि, कपूर, प्रियंगु और गंधाविरोजा प्रत्येक समभाग, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और बङ्गभस्म प्रत्येक दो भाग। इन औषधों को एकत्रकर महीन चूर्ण बनावे। चूर्ण के बराबर भुने हुये जीरे का चूर्ण मिलावे। इस सबसे दूनी खांड देकर चाशनी करे, तदनंतर मोदक बँधने योग्य मधु और घृत मिलाकर मोदक बनावे। गोदुग्ध के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करे। यह मोदक ८० प्रकार के वातरोगों को और ४० प्रकार के पैत्तिकरोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे बिजली वृक्ष को नष्ट करे। अनेक वर्णवाले विशेषकर आमजन्य अतीसार, आठ प्रकार के शूल, पुराना बवासीर, जीर्णज्वर, सततज्वर और अन्यान्य विषमज्वर को नष्ट करता है। जिन स्त्रियों के सन्तान नहीं होती, उनके इस मोदक के सेवन से पुष्पोद्गम (मासिक धर्म की प्रवृत्ति) और पुत्रोत्पत्ति होती है। सेवित होने पर दुर्बल प्राणियों के बल और कान्ति को बढ़ाता है। जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार नष्ट होता है वैसे ही उग्र सूतिकारोग और प्रदर को तत्काल नष्ट करता है। यह जीरकाद्य मोदक सर्वाङ्गिक दाह और वातिक, पैत्तिक आदि सब प्रकार के रोगों को नष्ट करता है। मात्रा ११२ तोला ॥ १५८-१७० ॥

अग्निकुमारमोदक।

उशीरं बालकं मुस्तं त्वक्पत्रं नागकेशरम्। जीरद्वयञ्च शृंगी च कट्फलं पुष्करं शटी। १७१ ॥ त्रिकटुर्बिल्वकं धान्यं जातीफललवंगकम्। कर्पूरं कान्तलौहञ्च शैलजं वंशलोचना ॥ १७२ ॥ एलाबीजं जटामांसी रास्ना तगरपादुकम्। समङ्गातिबला चाभ्रं पुरावङ्गं तथैव च ॥ १७३ ॥ अस्य चूर्णसमा मेथी चूर्णार्द्धं विजयारजः। शर्करामधुसंयुक्तं मोदकं परिकल्पयेत् ॥ १७४ ॥ माषत्रयप्रमाणन्तु भक्षयेत् प्रातरुत्थितः। शीततोयानुपानेन आजेन पयसाथवा ॥ १७५ ॥ ग्रहणीं दुस्तरां हन्ति श्वासं कासमतीव च। आमवातमग्निमान्द्यं जीर्णञ्च विषमं ज्वरम् ॥ १७६ ॥ विबन्धानाहशूलञ्च यकृत्प्लीहोदराणि च। हन्त्यष्टादश कुष्ठानि ग्रहणीदोषनाशनम्। उदावर्तगुल्मरोगोदरामयविनाशनम् ॥ १७७ ॥

खस, सुगन्धबाला, नागरमोथा, दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, स्याह जीरा, सफेद जीरा, काकड़ासिंगी, कायफल, पुष्करमूल, कचूर, सोंठ, मिर्च, पीपल, बेलगिरी, धनियाँ, जायफल, लौंग, कपूर, कान्तिसार, छरीला, वंशलोचन, छोटी इलायची के बीज, जटामांसी, रास्ना,

सगर, मजीठ, छुई-मुई, कंघी, अभ्रकभस्म, घुरमहार और वङ्गभस्म प्रत्येक समभाग; इन द्रव्यों के समान मेथी का चूर्ण, समस्त चूर्ण का अर्ध भाग भाँग की पत्तियों का चूर्ण और भाँगसमेत चूर्ण की दूनी चीनी और उपयुक्त मधु मिलाकर लड्डू बाँध लेवे। शीतल जल अथवा बकरी के दूध के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल २ मासा २ रत्ती खावे। इसका सेवन करने से दुःसाध्य ग्रहणी, श्वास, कास, आमवात, अग्निमान्द्य, जीर्णज्वर, विषमज्वर, विबंध, आनाह, शूल, यकृत्, प्लीहा, उदर, अठारह प्रकार के कुष्ठ, ग्रहणीदोष, उदावर्त्त और गुल्म आदि अनेक रोग दूर होते हैं॥ १७१-१७७॥

बृहच्चुक्रसन्धान।

प्रस्थं तण्डुलतोयतस्तुषजलात् प्रस्थत्रयं चाम्लतः, प्रस्थार्द्धं दधितोऽम्लमूलकपलान्यष्टौ गुडान्मानिके। मान्यौशोधितशृङ्गवेरशकलात् द्वे सिन्धुजाज्योः पले, द्वे कृष्णोपणयोर्निशः पलयुगं निक्षिप्य भाण्डे दृढे॥१७८॥ स्निग्धे धान्ययवादिराशिनिहितं त्रीन् वासरान् स्थापयेद्, ग्रीष्मे तोयधरात्यये च चतुरो वर्षासु पुष्पागमे। षट् शीतेऽष्टदिनान्यतः परमिदं विस्राव्य संचूर्णयेत्, चातुर्जातपलेन संहितमिदं शुक्तञ्च चुक्रं च तत्॥ १७९॥ हन्याद्वातकफामदोषजनितान्नानाविधानामयान्, दुर्नामानि च शूलगुल्मजठरान् हत्वानलं दीपयेत्॥ १८०॥

चावलों का जल ४ सेर १४ तोले, काँजी १९२ तोले, दही ६४ तोले, काँजी की अधःस्थित सिट्टी ३२ तोले और गुड़ ३२ तोले; इनको मिश्रित कर एक मिट्टी के घड़े में रक्खे। तदनन्तर छीलकर छोटे-छोटे टुकड़े करके अदरख (आदी) १४ तोले, लाहौरी नमक, जीरा, पीपल, मिर्च और हल्दी प्रत्येक आठ-आठ तोले डालकर, पात्र का मुख मुद्रित करके, जौ आदि अन्नों की राशि में, ग्रीष्म और शरद् ऋतु में ३ दिन, वर्षाकाल में ४ दिन, वसंत ऋतु में ६ दिन और शीतकाल में ८ दिन गड़ा रक्खे। तदनन्तर उसमें दालचीनी, छोटी इलायची के दाने, तेजपात और नागकेसर, इनका एक-एक तोला चूर्ण मिश्रित कर रख लेवे। इसका नाम बृहत्शुक्त या बृहत्चुक्र है। यह चुक्र वात, कफ और आमदोषजन्य अनेक रोग, बवासीर, शूल, गुल्म और जठर रोगों को नष्ट कर अग्नि को दीप्त करता है। मात्रा ४ तो०-८ तो० ॥१७८-१८०॥

कठिन्यादि पेया।

कठिनी पलसंख्याता सिता चार्द्धपला मता। बब्बूलस्य च निर्य्यासो ग्राह्योऽर्द्धपलसंमितः॥ १८१॥ ग्राह्या मधुरिका दारु सिता कर्षमिता शुभा। एकीकृत्य मनाक्क्षुण्णं तोयमष्टपलं तथा॥ १८२॥ मृद्भाजने परिस्थाप्य संरक्षेन्निशि यत्नतः। स्रावयित्वा पिबेत्प्रात स्वच्छांशमुपरि स्थितम्॥ १८३॥ प्रवाहिकायां पित्तास्रे ग्रहण्याञ्च प्रशस्यते। लवङ्गधान्यसंयुक्तमम्लपित्ते महौषधम्। सशोणितेऽतिसारे च शस्तं बिल्वसमायुतम्॥ १८४॥

खड़ियामिट्टी ४ तोले, मिश्री २ तोले, बबूल का गोंद २ तोले, सौंफ १ तोला और दालचीनी १ तोला; इन द्रव्यों को एकत्र कर थोड़ा कूट लेवे, पश्चात् किसी मिट्टी के पात्र में रखकर ३२ तोले पानी में भिगो देवे। रात भर पानी में पड़ा रहे। प्रातःकाल छानकर जल को किसी पात्र में रख देवे। थोड़ी देर के बाद जब औषधों का अंश नीचे बैठ जावे, तब ऊपर के स्वच्छ जल को पान करावे। यह पेया प्रवाहिका, रक्तपित्त और ग्रहणीरोग में लाभदायक होती है। इसी में लौंग और धनियाँ मिलाकर अम्लपित्तरोग में और बेलगिरी

मिलाकर रक्तातीसार में देना अत्यंत लाभदायक होता है। मात्रा ४-८ तो० ॥ १८१-१८४ ॥

आयामकाञ्जिक।

वाट्यस्य दद्याद् यवशक्तुकानां पृथक् पृथक् चाढकसंमितन्तु । मध्यप्रमाणानि च मूलकानि दद्याच्चतुःपष्टिसुकल्पितानि ॥ १८५ ॥ द्रोणेऽम्भसः स्नाव्य घटे सुधौते दद्यादिदं भेषजजातयुक्तम् । क्षारद्वयं तुम्बुरुवस्तगन्धा धनीयकं स्याद्बिडसैन्धवञ्च ॥१८६॥ सौवर्चलं हिङ्गु शिवाटिकां च चव्यञ्च दद्याद् द्विपलप्रमाणम् । इमानि चान्यानि पलोन्मितानि विजर्जरीकृत्य घटे क्षिपेच्च ॥ १८७ ॥ कृष्णामजाजीमुपकुञ्चिकां च तथा सुरीं कारविचित्रकञ्च । पक्षस्थितोऽयं बलवर्णदेहवयस्करोऽतीव बलप्रदश्च॥१८८॥ काञ्जीवयामीति यतः प्रवृत्तस्तत् काञ्जिकेति प्रवदन्ति चैनम् । आयामकालाज्जरयेच्च भुक्तमायामिकेति प्रवदन्ति चैनम्॥१८९॥ दकोदरं गुल्ममथ प्लीहानं हृद्रोगमानाहमरोचकञ्च । मन्दाग्नितां कोष्ठगतं च शूलमर्शोविकारान् सभगन्दरांश्च ॥ वातामयानाशु निहन्ति सर्वान् संसेव्यमानो विधिवन्नराणाम्॥ १९० ॥

(निस्तुषदरदलितयवे चतुर्दशगुणजलदानात् साधितो मण्डो वाट्यः तस्य पलानि ६४। तथा यवशक्तुपलानि ६४॥)

निस्तुष (बिनाभूसी के) जौ को दलकर चौदह गुने पानी में पकाकर, सिद्ध किया हुआ मण्ड (मांड) २५६ तोले, जौ का सत्तू २५६ तोले और मध्य प्रमाण की (न बहुत मोटी और न बहुत पतली) मूलियों के टुकड़े २५६ तोले; इन औषधों को स्वच्छ घड़े में रखकर, २५ सेर ४८ तोला जल डाल देवे, पश्चात् जवाखार, सज्जीखार, नेपाली धनियाँ, अजवाइन, धनियाँ, विड नमक, सेंधा नमक, काला नमक, हींग, पुनर्नवा और चव्य प्रत्येक का आठ आठ तोले चूर्ण मिला देवे। पीपरि, जीरा, कालाजीरा, राई कलौंजी, चीता की जड़, इनमें से प्रत्येक का चार चार तोले चूर्ण मिश्रित कर, पात्रका मुख मुद्रित करके रख देवे। पद्रह दिन के पश्चात् उपयोग में लावे। यह कान्तिवर्धक, वयःस्थापक और अत्यंत बलप्रद है। इसका आयामकाञ्जिक यौगिक नाम है। किनको जिलाऊं इस विचार से प्रवृत्त है, अतः इसको 'काञ्जिक' कहते हैं। 'याम' शब्द का एक प्रहर समय अर्थ है। एक प्रहर में भुक्त (खाये हुए) पदार्थ को जीर्ण करने से इसको 'आयामिक' कहते हैं अर्थात् एक ही प्रहर में भुक्त पदार्थ को जीर्ण करके रोगियों को जीवन प्रदान करने से इसका आयामकाञ्जिक नाम पड़ा है। इसका सेवन करने से जलोदर, गुल्म, प्लीहा, हृद्रोग, आनाह, अरोचक, अग्निमांद्य, कोष्ठगत शूल, बवासीर, भगन्दर और सब प्रकार के वातरोग तत्काल नष्ट होते हैं। मात्रा ४-८ तोला ॥ १८५-१९० ॥

बिल्वतैल।

तुलार्द्धं शुष्कबिल्वस्य तुलार्द्धं दशमूलतः। जलद्रोणे विपक्कव्यं चतुर्भागावशेषितम् ॥ १९१ ॥ आर्द्रकस्य रसप्रस्थमारनालं तथैव च। तैलप्रस्थं समादाय क्षीरप्रस्थं तथैव च ॥ १९२ ॥ धातकी बिल्वकुष्ठञ्च शटी रास्ना पुनर्नवा। त्रिकटुः पिप्पलीमूलं चित्रकं गजपिप्पली ॥ १९३ ॥ देवदारु वचा कुष्ठं मोचकं कटुरोहिणी। तेजपत्राजमोदे च जीवनीयगणस्तथा ॥ १९४ ॥ एषामर्द्धपलान् भागान् पाचयेत् मृदुनाग्निना। एतद्धि बिल्वतैलाख्यं मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ॥

१६५ ॥ ग्रहणीं विविधां हन्ति अतीसारमरोचकम् । संग्रहग्रहणीं हन्ति ग्रर्शसामपि नाशकम् ॥ १९६ ॥ श्लीपदं विविधं हन्ति अन्त्रवृद्धिञ्च नाशयेत् । कफवातोद्भवं शोथं ज्वरमाशु व्यपोहति ॥ १९७ ॥ कासं श्वासञ्च गुल्मञ्च पाण्डुरोगविनाशनम् । सकल्लशूलशमनं, सूतिकातङ्कनाशनम् ॥ १९८ ॥ मूढगर्भे च दातव्यं मूढवातानुलोमनम् । शिरोरोगहरञ्चैव स्त्रीणां गदनिषूदनम् ॥ १९९ ॥ रजोदुष्टाश्च या नार्यो रेतोदुष्टाश्च ये नराः तेऽपि तारुण्यशुक्राढ्या भविष्यन्ति महाबलाः ॥ २०० ॥ वन्ध्यापि लभते पुत्रं शूरं पण्डितमेव च । बिल्वतैलमिति ख्यातमात्रेयेण विनिर्मितम् ॥ २०१ ॥

शुष्क बेलगिरी २०० तोले दशमूल औषध २०० तोले को २५ सेर ४८ तोला जल में पकावे । ६ सेर ३२ तोला जल शेष रहने पर छानकर रख लेवे, तथा अदरख का रस १२८ तोला, काँजी १२८ तोला, तिलों का तैल १२८ तोला और दूध १२८ तोला इनको मिलाकर धाय के फूल, बेलगिरी, कूट, कचूर, रास्ना, सौंठी, सोंठ, मिर्च पीपल, पीपरामूल, चीता, गजपीपल, देवदारु, वच, कूट, मोचरस, कुम्भी, तेजपात, अजमोद, जीवनीय गण अर्थात् जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि, इनमें से प्रत्येक औषध को दो दो तोले लेकर कल्क बनावे और इनके कल्क को मिलाकर धीमी आँच पर यथाविधि तैल सिद्ध करे । इस तैल का मर्दन करने से अग्निमान्द्य, विविध प्रकार के ग्रहणी रोग, अतीसार, अरोचक, संग्रहणी, बवासीर, श्लीपद, अन्त्रवृद्धि, वातश्लैष्मिक शोथ, ज्वर, कास, श्वास, गुल्म, पाण्डुरोग, सकलशूल और सूतिका रोग नष्ट होते हैं । यह तैल मूढगर्भ में देना चाहिये, क्योंकि यह मूढवायु का अनुलोमन करता है । यह शिरोरोग और स्त्रीरोगों को नष्ट करता है । जिन स्त्रियों के रज और जिन पुरुषों के वीर्य दूषित हैं, वे भी इस तैल का सेवन करने से शुद्ध रज वीर्य-सम्पन्न होकर तरुण और महान् बलिष्ठ हो जाते हैं । इस तैल का सेवन करने से वन्ध्या स्त्री भी शूर और विद्वान् पुत्र पाती हैं । इसको बिल्व तैल कहते हैं । आत्रेयजी ने इसे बनाया है ॥ १९१-२०१ ॥

ग्रहणीमिहिरतैल ।

धन्याकं धातकी लोध्रं समङ्गातिविषा शिवा । उशीरं वारिवाहश्च जलं मोचं रसाञ्जनम् ॥ २०२ ॥ बिल्वं नीलोत्पलं पत्रं केशरं पद्मकेशरम् । गुडूचीन्द्रयवौ श्यामा पद्मकं कटुरोहिणी ॥ २०३ ॥ तगरं नलदं भृङ्गं केशराजी पुनर्नवा । आम्रजम्बुकदम्बानां त्वचः कुटजवल्कलम् ॥ २०४ ॥ यमानी जीरकञ्चैषां कार्षिकाणि प्रकल्पयेत् । तैलप्रस्थं पचेत् सम्यक् तक्रेणान्यतमेन वा ॥ २०५ ॥ कुटजत्वक्कषायेण धन्याककथितेन वा । बुद्ध्वादोषगतिं तत्तु तथान्यौषधवारिणा ॥ २०६ ॥ एतद्रसायनवरं वलीपलितनाशनम् । हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वरूपिणीम् ॥ २०७ ॥ ज्वरं तृष्णां तथा कासं हिक्कां श्वासं वमिं भ्रमिम् । सोपद्रवं कोष्ठरुजं नाशयेत् सत्यमेव हि ॥ २०८ ॥ अर्शांसि कामलां मेहं श्वयथुं शूलमुल्बणम् । एतद्धि बृंहणं वृष्यं सर्वरोगनिबर्हणम् ॥२०९ ॥ वशीकरणमेतद्धि पुष्ययोगे विपाचयेत् । ग्रहणीमिहिरं नाम तैलं भुवनमङ्गलम् ॥ २१० ॥

धनियाँ, धाय के फूल, लोध, मुईमुई,

अतीस, हड़, खस, नागरमोथा, सुगंधबाला, मोचरस, रसौत, येलगिरी, नीलकमल, तेजपात, नागकेसर, कमल की केसर, गिलोय, इन्द्रजौ; निशोत, पद्माख, कुटकी, तगर, जटामांसी, भृंगराज, केशराज, सोंठी, आम की छाल, जामुन की छाल, कदंब की छाल, कुड़े की छाल, अजवाइन और जीरा प्रत्येक एक-एक तोला, इनका कल्क बनाकर तिलों के १२८ तोले तेल में मिलाकर ६ सेर ३२ तोला तक्र के साथ अथवा कुड़े की छाल के क्वाथ के साथ, अथवा धनियाँ के क्वाथ के साथ अथवा दोषानुसार कल्पित ग्रहणीरोगनाशक किसी अन्य औषध के क्वाथ के साथ, धीमी आँच पर यथाविधि पाक करके तैल सिद्ध करे। यह श्रेष्ठ रसायन है, बली (झुर्री) और पलित (बाल सफेद होना) का नाशक है। इस तैल का मर्दन करने से सब प्रकार के अतीसार, ग्रहणी-रोग, ज्वर, तृष्णा, कास, हिचकी, श्वास, वमन, भ्रमि (चक्कर आना), उपद्रवयुक्त कोष्ठशूल, बवासीर, कामला, प्रमेह, शोथ और प्रबल शूल ये सब शान्त होते हैं। यह तैल बल-वीर्य-वर्धक और सर्वरोगनाशक है। पुष्य नक्षत्र में इस तैल को सिद्ध करना चाहिये। यह वशीकरण है एवम् यह ग्रहणीमिहिर नामक तैल समस्त संसार के लिये मंगल-दायक है॥ २०२-२१० ॥

बृहद्ग्रहणीमिहिरतैल।

तैलं प्रस्थमितं ग्राह्यं तक्रं दद्याच्चतुर्गुणम्। कुटजं धान्यकञ्चैव ग्राह्यं पलशतं पृथक् ॥ २११ ॥ तयोःक्वाथं पचेद् द्रोणे अम्बुपादावशेषितम्। एकीकृत्य पचेद्वैद्यः कल्कं कर्षमितं पृथक् ॥ २१२ ॥ धान्यकं धातकी लोध्रं समङ्गातिविषा शिवा। लवङ्गं बालकञ्चैव शृङ्गाटकरसाञ्जनम् ॥ २१३ ॥ नागपुष्पं पद्मकञ्च गुडूचीन्द्रयवं तथा। प्रियङ्गुकटुकीपद्मकेशरं तगरं तथा ॥ २१४ ॥ शरमूलं भृङ्गराजः केशराजः पुनर्नवा। आम्रजम्बुकदम्बानां वल्कलानि च दापयेत् ॥ २१५ ॥ ग्रहणीं हन्ति तच्छीघ्रं वलीपलितनाशनम्। हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वरूपिणीम् ॥ ११६ ॥ ज्वरं तृष्णां तथा श्वासं कासं हिक्कां वमिं भ्रमिम्। सोपद्रवं कोष्ठरुजं नाशयेत् सद्य एव हि ॥ २१७ ॥ वशीकरणमेतद्धि पुष्पयोगेन पाचयेत्। ग्रहणीमिहिरं नाम तैलं भुवनमङ्गलम् ॥ २१८ ॥

तिलों का तैल १२८ तोले, तक्र ५१२ तोले, क्वाथ के लिये कुड़े की छाल ५ सेर लेकर २५ सेर ४८ तोला जल में पकावे, ६ सेर ३२ तोला शेष रहने पर उतारकर वस्त्र से छानकर क्वाथ को रख लेवे। इसी प्रकार ५ सेर धनियाँ को २५ सेर ४८ तोला जल में पकावे, ६ सेर ३२ तोला जल अवशिष्ट रहने पर उतारकर छान लेवे। पश्चात् तैल, तक्र और इन दोनों औषधों के क्वाथों को एकत्र मिलावे। तदनन्तर धनियाँ, धाय के फूल, लोध, छुईमुई, अतीस, हड़, लौंग, सुगंधबाला, सिंघाड़ा, रसौत, नागकेसर, पद्माख, गिलोय, इन्द्रजौ, प्रियंगु, कुटकी, कमल की केसर, तगर, सरपते की जड़, भृंगराज, केशराज, साँठी, आम की छाल, जामुन की छाल और कदंब की छाल, इनमें से प्रत्येक का एक-एक तोला कल्क मिलाकर धीमी आँच पर पकाकर यथाविधि तैल सिद्ध करे। इस तैल का मर्दन करने से वली-पलित, हर प्रकार के अतीसार, नाना प्रकार के ग्रहणीरोग, ज्वर, तृष्णा, श्वास, कास, हिचकी, वमन, भ्रमि और उपद्रवयुक्त कोष्ठशूल यह सब तत्काल नष्ट होते हैं। यह तैल वशीकरण है। इसको पुष्य-नक्षत्र में सिद्ध करना चाहिए। यह ग्रहणीमिहिर नामक तैल समस्त संसार के लिये श्रेयस्कर है ॥२११-२२०॥

दाडिमादितैल

दाडिमत्वग्जलं धान्यं वत्सकस्य

त्वचस्तथा । प्रत्येकाढकं ग्राह्यं जलद्रोणे पचेत् पृथक् ॥२२१ ॥ चतुर्भागावशिष्टन्तु तक्रमाढकसम्मितम् । पचेत्तैलाढके धीमान् गर्भं दत्त्वा भिषग्वरः ॥ २२२ ॥ त्रिकटु त्रिफला मुस्तं चव्यजीरकसैन्धवम् । चातुर्जातं मधुरिकामांसी च देवपुष्पकम् ॥२२३॥ जातीकोषफले धान्यं यमान्यौ वालकं तथा । कञ्चटातिविषा भेकी शृङ्गाटं बृहतीद्वयम् ॥ २२४॥ आम्रजम्बू त्वचः पर्ण्यौ समङ्गेन्द्रयवं वरी । धातकी बिल्वमोचञ्च मुषली वत्सकं बला ॥ २२५ ॥ श्वदंष्ट्रालोध्रपाठाश्च काष्ठं खादिरमेव च । अमृता शाल्मलीत्वक् च सर्वमर्द्धपलोन्मितम् ॥ २२६ ॥ पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन साधयेन्मृदुनाग्निना ग्रहणीं हन्ति दुर्वारां प्रमेहानपि विंशतिम् । अर्शांसि षड्विधान्येव नाशयेन्नात्र संशयः ॥ २२७ ॥

अनार की छाल, धनियाँ, कुड़ा की छाल, प्रत्येक ३ सेर १६ तोला ; इनको पृथक्-पृथक् २५ सेर ४८ तोला जल में पका करके चतुर्थांशावशिष्ट क्वाथ बना लेवे । तथा तक्र ६ सेर ३२ तोला और तिलों का तैल १ सेर ३२ तोला ; इन द्रव्यों को मिश्रित करे । पश्चात् सोंठ, मिर्च, पीपल, आँवला, हरड़, बहेड़ा, नागरमोथा, चव्य, जीरा, सेंधा नमक, दालचीनी, छोटी इलायची के बीज, तेजपात, नागकेसर, सौंफ, जटामांसी लौंग, जावित्री, जायफल, धनियाँ, अजवाइन, अजमोद, सुगंधवाला, जल की चौराई, अतीस, मंडूकपर्णी, सिंघाड़ा, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, आम की छाल, जामुन की छाल, शालिपर्णी, पृष्टपर्णी, छुईमुई, इन्द्रजौ, शतावरि, धाय के फूल, बेलगिरी, मोचरस, कालीमूसली, कुड़े की छाल, गोखरू, लोध, पाढ़ी, खैर की लकड़ी, गिलोय और सेमर की छाल इन औषधों को दो-दो तोले लेकर चावलों के जल के साथ पीसकर कल्क बनावे । इस कल्क को मिलाकर धीमी आँच में पकाकर यथाविधि तैल सिद्ध करे । इस तैल का मर्दन करने से दुःसाध्य ग्रहणीरोग, २० प्रकार के प्रमेह और ६ प्रकार के बवासीर निःस्सन्देह नष्ट होते हैं ॥ २२१-२२७

बिल्वगर्भघृत ।

मसूरस्य कषायेण बिल्वगर्भं पचेद् घृतम् । हन्ति कुक्ष्यामयान् सर्वान् ग्रहणीपाण्डुकामलाः ॥ २२८ ॥ केवलं व्रीहिमांसयङ्क्वाथो व्युष्टस्तु दोषतः ॥ २२९ ॥

गो घृत ४ सेर, क्वाथार्थ मसूर की दाल ४ सेर, जल ६४ सेर, अवशिष्ट क्वाथ, १६ सेर, कल्क, बेलफल की गिरी १ सेर इनसे यथाविधि घृतपाक करके कुक्षिरोग, ग्रहणी, पाण्डु, कामला आदि में रोगी को सेवन कराना चाहिये । घृतपाक में व्रीहि तथा मांस आदि का क्वाथ तत्काल बनाना चाहिये । नहीं तो बासी होकर दोषों को कुपित करता है । मात्रा ६ माशा १ तोला ॥ २२१-२२७ ॥

बिल्वादि घृत ।

बिल्वाग्निचव्यार्द्रकशृङ्गवेरक्वाथेन कल्केन च सिद्धमाज्यम् । सच्छागदुग्धं ग्रहणीगदोत्थशोथाग्निमान्द्यारुचिनुद्वरिष्ठम् ॥ २३० ॥

गो घृत ४ सेर, क्वाथ के लिये बिल्व, चित्रक, चव्य, अदरख, सोंठ मिलाकर ८ सेर, जल ४८ सेर, क्वाथ १२ सेर, बकरी का दूध ४ सेर, कल्क के लिये बिल्वादि क्वाथ के द्रव्य मिलाकर १ सेर, इस घृत के सेवन से ग्रहणी तथा उससे उत्पन्न होनेवाली सूजन, मन्दाग्नि, अरुचि आदि उपद्रव शीघ्र नष्ट होते हैं । मात्रा ६ माशा १ तोला ॥ २२८ ॥

मरिचादिघृत ।

मरिचं पिप्पलीमूलं नागरं पिप्पली

तथा। भल्लातकं यमानी च विडङ्गं हस्तिपिप्पली ॥ २२९ ॥ हिङ्गु सौवर्चलञ्चैव विडसैन्धवचव्यकम् । सामुद्रं सयवक्षारं चित्रको वचया सह ॥ २३० ॥ एतैरर्द्धपलैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्। दशमलीरसे सिद्धं पयसा द्विगुणेन च ॥ २३१ ॥ मन्दाग्नीनां हितं श्रेष्ठं ग्रहणीदोषनाशनम्। विष्टम्भमामदौर्बल्यं प्लीहानञ्चापकर्षति ॥ २३२ ॥ कासं श्वासं क्षयञ्चापि दुर्नाम सभगन्दरम् । कफजान् हन्ति रोगांश्च वातजान् कृमिसम्भवान् । तान् सर्वान्नाशयत्याशु शुष्कं दावनलो यथा ॥ २३३ ॥

घी १२८ तोले, दशमूल का क्वाथ २५६ तोले, दुग्ध २५६ तोले, इन सब द्रव्यों को और नीचे लिखे औषधों के कल्क को भी एकत्र मिलाकर धीमी आँच पर घृत सिद्ध करे।

कल्क द्रव्य—मिर्च, पिपरामूल, सोंठ, पीपल, भिलावाँ, अजवाइन, बायबिडंग, गजपीपल, हींग, काला नमक, विड नमक, लाहौरी नमक, चव्य, समुद्र लवण, जवाखार, चीते की जड़ और बच प्रत्येक औषध दो-दो तोले लेकर चूर्ण करके डाल दे। इस घृत का पान करने से अग्निमान्द्य, ग्रहणीरोग, विष्टम्भ, आम, दुर्बलता, प्लीहा, कास, श्वास, क्षय, बवासीर, भगंदर, श्लेष्मिक रोग, वातिक रोग और कृमिजन्य रोग नष्ट होते हैं। आग जैसे शुष्क ईंधन को दग्ध करती है वैसे ही यह घृत उन सब रोगों को तत्काल नष्ट करता है। मात्रा ६ माशा-१ तोला ॥ २२९-२३३ ॥

महापट्पल घृत

सौवर्चलं पञ्चकोलं सैन्धवं हवुषं विडम्। अजमोदां यवक्षारं हिङ्गु जीरकमौद्भिदम् ॥ २३३ ॥ कृष्णाजाजीं समृतीकं कल्कीकृत्य पलार्द्धकम् । आर्द्रकस्वरसं चुक्रं क्षीरमस्त्वारनालकम् ॥ २३५ ॥ दशमूलकषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् । भक्तेन सह पातव्यं निर्भक्तं वा विचक्षणैः ॥ २३६ ॥ कृमिप्लीहोदराजीर्णज्वरकुष्ठप्रवाहिकाः। पाण्डुरोगं क्षयं कासं दौर्बल्यं ग्रहणीगदम् ॥ महापट्पलकं नाम्ना हन्त्यमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २३७ ॥

घृत १२८ तोले, अदरख का स्वरस १२८ तोले, चुक्र १२८ तोले, दूध १२८ तोले, दही का पानी १२८ तोले, काँजी १२८ तोले, और दशमूल का क्वाथ १२८ तोले; इन द्रव्यों को और नीचे लिखे औषधों के कल्क को भी एकत्र मिलाकर, धीमी आँच से पकाकर यथाविधि घृत सिद्ध करे।

कल्क द्रव्य—काला नमक २ तोले, पञ्चकोल (पीपल, पिपरामूल, चव्य, चीते की जड़ और सोंठ) की समस्त औषधियों को मिलाकर २ तोले, लाहौरी नमक, हाऊबेर, विड नमक, अजमोद, जवाखार, हींग, जीरा, खारी नमक, कलौंजी और अजवाइन, इनमें से प्रत्येक औषध को दो-दो तोले लेकर चूर्ण करके डाल दे। भात के साथ इस घृत का सेवन करे अथवा केवल घृत ही का सेवन करे। इस महापट्पलक नामक घृत का सेवन करने से वज्राहत वृक्ष के समान कृमि, प्लीहा, उदर, अजीर्ण, ज्वर, कुष्ठ और प्रवाहिका रोग तत्काल नष्ट होते हैं। मात्रा १ माशा १ तोला ॥ २३४-२३७ ॥

चाङ्गेरी घृत।

नागरं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली । श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं बिल्वं पाठा यमानिका ॥ २३८ ॥ चाङ्गेरीस्वरसे सर्पिःकल्कैरेतैर्विपाचयेत् । चतुर्गुणेन दध्ना च तद्घृतं कफवातनुत् ॥ २३९ ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहि-

काम् । गुदभ्रंशार्तिमानाहं घृतमेतद्व्यपोहति ॥ २४० ॥

(दधिसाहचर्याचाङ्गेरीस्वरसश्चतुर्गुणः ।)

घृत ६४ तोले, चाङ्गेरी (चौपतिया) का स्वरस २५६ तोले और दही २५६ तोले, इन द्रव्यों को और नीचे लिखे औषधों के कल्क को एकत्रकर, धीमी आँच में पकाकर यथाविधि घृत सिद्ध करें।

कल्कार्थद्रव्य ।

सोंठ, पिपरामूल, चीता, गजपीपल, गोखुरू, पीपल, धनियाँ, बेलगिरी, पाढ़ी और अजवाइन, सम भाग इन औषधों को मिलाकर १६ तोले लेवे। यह घृत वात और कफनाशक है। इसका पान करने से बवासीर, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, गुदभ्रंश और आनाह रोग नष्ट होते हैं ॥ २३८-२४० ॥

रस-प्रयोग ।

अग्निकुमार रस ।

रसं गन्धं विषं व्योषं टंगनं लौहभस्मकम् । अजमोदाहिफेनञ्च सर्वतुल्यं मृताभ्रकम् ॥ २४१ ॥ चित्रकस्य कषायेण मर्दयेद् याममात्रकम् । मरिचाभां वटीं खादेदजीर्णे ग्रहणीं तथा । नाशयेन्नात्र सन्देहो गुह्यमेतच्चिकित्सितम् ॥ २४२ ॥

पारा, गन्धक, विष, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), सोहागा फूला हुआ, लोह-भस्म, अजमोद और अफीम प्रत्येक समभाग और सबके समान अभ्रक-भस्म लेवें। इन औषधों को चीते की जड़ के क्वाथ में एक प्रहरपर्यंत घोटकर मिर्च के समान वटी बनावे। इसका सेवन करने से अजीर्ण और ग्रहणीरोग निःसंदेह नष्ट होते हैं। यह योग गुप्त है। मात्रा १-२ रत्ती ॥ २४१-२४२ ॥

स्वल्पग्रहणीकपाट रस ।

दरदं गन्धपापाणं तुगाक्षीर्यहिफेनकम् । तथा वराटिकाभस्म सर्वं क्षीरेण मर्दयेत् ॥ २४३ ॥ रक्तिकायुग्ममानेन छायाशुष्कां वटीं चरेत् । ग्रहणीं विविधां हन्ति रक्तातीसारमुल्बणम् ॥ २४४ ॥

हिंगुल, गंधक, वंशलोचन, अफीम और कौड़ी की भस्म, इन औषधों को समभाग लेकर दुग्ध में घोटकर दो-दो रत्ती की वटी बनाकर छाया में शुष्क कर लेवे। यह वटी विविध प्रकार के ग्रहणी-रोग और तीव्र रक्तातीसार को नष्ट करती है ॥ २४३-२४४ ॥

ग्रहणीकपाट रस ।

रसगन्धकयोश्चापि जातीफललवङ्गयोः । प्रत्येकं शाणमानञ्च श्लक्ष्णचूर्णीकृतं शुभम् ॥ २४५ ॥ सूर्यावर्त्तरसेनैव बिल्वपत्ररसेन च । शृङ्गाटकस्य पत्राणां रसैः प्रत्येकशः पलैः ॥ २४६ ॥ चण्डातपेन संशोष्य वटिकां कारयेद्भिषक् । बिल्वपत्ररसेनैव दापयेद्रक्तिकाद्वयम् २४७ दध्ना च भोजनीयञ्च ग्रहणीरोगनाशनः । पाण्डुरोगमतीसारं शोथं हन्ति तथा ज्वरम् । ग्रहणीकपाटनामा रसः परमदुर्लभः ॥ २४८ ॥

पारा, गंधक, जायफल और लौंग प्रत्येक को तीन-तीन माशा लेकर महीन चूर्ण करे। तदनन्तर सूर्यावर्त (सूर्यमुखी), बिल्वपत्र और सिंघाड़ा की पत्तियाँ, इन में से प्रत्येक के चार-चार तोले रस में घोटकर, दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनाकर तेज धूप में शुष्क करे। बिल्वपत्र के रस के साथ अथवा दही के साथ सेवन कराना चाहिये। यह रस ग्रहणी-रोग, पाण्डुरोग, अतीसार, शोथ और ज्वर को नष्ट करता है। यह ग्रहणीकपाट नामक रस परम दुर्लभ है ॥२४५-२४८ ॥

बृहद्ग्रहणीकपाट रस।

टङ्कनक्षारगन्धाश्मरसं जातीफलं तथा। बिल्वं खदिरसारश्च जीरकं श्वेतधूनकम् ॥ २४९ ॥ कपिहस्तकबीजश्च तथैव वकपुष्पिका। एषां शाणं समादाय श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ २५० ॥ बिल्वपत्रककार्पासफलं शालिश्चदुग्धिका। शालिश्च मूलं कुटजत्वचः कच्चटपत्रकम् ॥ २५१ ॥ सर्वेषां स्वरसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक्। रक्तिकैकप्रमाणेन खादयेद्दिवसत्रयम् ॥ २५२ ॥ दधिमस्तु ततः पेयं पलमात्रप्रमाणतः। अपि योगशताक्रान्तां ग्रहणीमुद्धतां जयेत् ॥ २५३ ॥ आमशूलं ज्वरं कासं श्वासं शोथं प्रवाहिकाम्। रक्तस्रावकरं द्रव्यं कार्यं नैवात्रयुक्तितः ॥ २५४ ॥ कृष्णवार्ताकुमत्स्यञ्च दधितक्रञ्च शस्यते। ज्ञात्वा वायोः कृतिं तत्र तैलं वारि च दापयेत् ॥ २५५ ॥

सोहागा की खील, जवाखार, गन्धक, पारा, जायफल, खदिर (खैर), जीरा, श्वेत राल, कौंच के बीज और बकपुष्प (अगस्त्य के फूल), इनको तीन-तीन मासे लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। तदनंतर बिल्वपत्र कपास के फल, शालिञ्चशाक, दूधिया, शालिञ्चशाक की जड़, कुड़ा की छाल और जलचौराई की पत्तियाँ, इन सबके रस में घोटकर एक एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। एक गोली खाकर चार तोले दही का पानी पीना चाहिये। जो सैकड़ों योगों से शान्त नहीं हुआ है, उस प्रबल ग्रहणीरोग को यह रस केवल तीन दिन में जीतता है। यह रस आमशूल, ज्वर, कास, श्वास, शोथ और प्रवाहिका रोग को भी नष्ट करता है। इस रस का सेवन करनेवाले रोगी को रक्तस्रावजनक द्रव्यों का सेवन न करना चाहिये। काला बैंगन, मछली, दही और तक्र ये लाभदायक हैं। वायु की विकृति प्रतीत होने पर तैल और जल का उपयोग करना चाहिये ॥ २४९-२५५ ॥

बृहद्ग्रहणीकपाट।

तारमौक्तिकहेमानि सारश्चैकैकभागिकम्। द्विभागो गन्धकः सूतस्त्रिभागो मर्दयेदिमान् ॥ २५६ ॥ कपित्थस्वरसैर्गाढं मृगशृङ्गे ततः क्षिपेत्। पुटेन्मध्यपुटेनैव तत उद्धृत्य मर्दयेत् ॥ २५७ ॥ बलारसैः सप्तधैवमपामार्गरसैस्त्रिधा। लोध्रप्रतिविषामुस्तधातकीन्द्रयवाऽमृताः ॥ २५८ ॥ प्रत्येकमेतत् स्वरसैर्भावना स्यात् त्रिधा त्रिधा। द्विगुञ्जाप्रमितो देयो मधुना मरिचैस्तथा ॥ २५९ ॥ हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वजामपि। कपाटो ग्रहणीरोगे रसोऽयं वह्निदीपनः ॥ २६० ॥

चाँदी, मोती, सोना और लौह प्रत्येक एक-एक भाग, गन्धक २ भाग, पारा ३ भाग इनको कपित्थ (कैथा) की पत्तियों के रस में भली भाँति घोटकर मृग की सींग में भरकर, गजपुट में फूंक देवे। तदनन्तर निकालकर खरैटी के रस की ७ भावना, चिरचिरा के रस की ३ भावना, लोध, अतीस, नागरमोथा, धाय के फूल, इन्द्र जौ और गिलोय इनमें से प्रत्येक के रस अथवा क्वाथ की तीन भावना देकर, दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। इन्हें मधु और मिर्च के चूर्ण के साथ सेवन करना चाहिये। यह बृहद्ग्रहणीकपाट-रस सब प्रकार के अतीसार, सकल-दोष-जन्य ग्रहणी-रोग को नष्ट करता है और अग्नि को दीपन करनेवाला है २५६-२६०

संग्रहग्रहणीकपाट।

मुक्तासुवर्णं रसगन्धटङ्कमभ्रं कपर्दोऽमृततुल्यभागः। सर्वैः समं शङ्खकचूर्णमत्र खल्ले च भाव्योऽतिविषाद्रवेण ॥

२६१ ॥ गोलञ्च कृत्वा मृदुकर्पटस्थं सम्पाच्य भाण्डे दिवसार्द्धकञ्च। सर्वाङ्गशीतोरस एष भाव्यो धुस्तूरवह्निचोर्मुषलीद्रवैश्च ॥ २६२ ॥ लौहस्य पात्र परिभावितश्च, सिद्धो भवेत् संग्रहणीकपाटः। वातोत्तरायां मरिचाज्ययुक्तः, पित्तोत्तरायां मधुपिप्पलीभिः ॥ २६३ ॥ कफोत्तरायां विजयारसेन कटुत्रयेणाज्ययुतो ग्रहण्याम्। क्षयज्वरे चार्शसि षट्प्रकारे मान्धातिसारेऽरुचिपीनसे च ॥ २६४ ॥ मेहे च कृच्छ्रे गतधातुवर्द्धने गुञ्जाद्वयश्चापि महामयघ्नम् ॥ २६५ ॥

मोती, सुवर्ण, पारा, गन्धक, सोहागा फूला हुआ, अभ्रकभस्म, कौड़ी का भस्म और विष प्रत्येक सम भाग और सबके समान शंख-भस्म, इन औषधों को मिलाकर, खरल में चतीस के काढ़ा की भावना देकर, भली भाँति घोटकर, एक गोला बना लेवे। उस गोला को कपड़ा में लपेटकर, पात्र में रखकर, दो प्रहरपर्यंत पुट-पाक करे। सर्वांग शीतल होने पर गोला को निकालकर, लोह के पात्र में रखकर, धतूर, चीता और मुसली के रस की भावना देकर, दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। वात-प्रधान ग्रहणी रोग में मिर्च के चूर्ण और घृत के साथ, पित्त-प्रधान ग्रहणी रोग में मधु और पीपल के चूर्ण के साथ, कफ-प्रधान ग्रहणीरोग में भाँग की पत्तियों के रस के साथ, अथवा त्रिकटु (सोंठ मिर्च और पीपल) के चूर्ण और घृत के साथ सेवन करे। क्षयजन्य ज्वर, ६ प्रकार के बवासीर, अग्निमान्द्य, अतीसार, अरुचि, पीनस, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र और धातु-क्षीणता में दो-दो रत्ती-मात्र प्रयोग करने से अत्यन्त लाभ करता है। यह संग्रह-ग्रहणी-कपाट-रस अत्यंत असाध्य रोगों को नष्ट करता है ॥ २६१-२६५ ॥

ग्रहणीकपाट रस।

गिरिजाभवबीजकज्जलीपरिमर्घार्द्ररसेन शोषिता। कुटजस्यतु भस्मना पुनर्द्विगुणेनाथ विमर्द्य मिश्रिता ॥२६६॥ मर्दयित्वा प्रदातव्यमस्य गुञ्जाचतुष्टयम्। अजाक्षीरेण दातव्यं क्वाथेन कुटजस्य वा ॥२६७॥ यूषं देयं मसूरस्य वारिभक्तञ्च शीतलम्। दध्ना सह पुनर्देयं ग्रासादौ रक्तिकाद्वयम् ॥ २६८ ॥ वर्द्धयेद्दशपर्यन्तं ह्रासयेत् क्रमशस्तथा। निहन्ति ग्रहणीं सर्वां विशेषात् कुक्षिमार्दवम् ॥ २६९ ॥

पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, इनकी कज्जली करके अदरख के रस से मर्दन कर धूप में सुखा ले। पश्चात् कुड़े के छाल की राख ४ भाग को उसमें मिलाकर जल से अच्छी प्रकार घोटना चाहिये। साधारण मात्रा-४ रत्ती, अनुपान-बकरी का दूध, कुड़ा की छाल का क्वाथ। पथ्य-मसूर का यूष, वारिभक्त, दही। इसके सेवन का विशेष नियम यह है कि प्रथम २ रत्ती मात्रा में सेवन कर क्रम से शनैः-शनैः १० रत्ती तक बढ़ाये। पश्चात् क्रम से घटाना चाहिये। यह रस सब प्रकार की ग्रहणी को नष्ट करता है, विशेषतः कोठा को मृदु करता है ॥ २६६-२६९ ॥

दूसरा ग्रहणीकपाट रस।

श्वेतसर्ज्जस्य शुद्धस्य गन्धकस्य रसस्य च। शुभेऽह्नि पृथगादाय चूर्णं माषचतुष्टयम् ॥ २७० ॥ एकीकृत्य शिलाखल्ले दद्याच्चेषां तदा रसम्। सूर्यावर्त्तस्य चिल्वस्य भृङ्गराजस्य च पत्रजम् ॥ २७१ ॥ प्रत्येकं पलमेकैकं दापयेद् ग्रहणीगदे। दापयित्वा ततोयत्नाद् दधिभक्तं समाचरेत् ॥२७२॥ असंहतगुदद्वारं कपाटमिव ढक्कयेत्। अतश्च ग्रहणीरोगे कपाटोऽयं रसः स्मृतः ॥ २७३ ॥

पारा ४ माशे, गन्धक ४ माशे, इनकी कज्जली करके सफेद राल का चूर्ण ४ माशे मिलावे, उसके बाद क्रमशः सूरजमुखी, बेल, सिघाड़ा इनके पत्तों के ८ तोले रस से मर्दन करे। ४ रत्ती की गोलियाँ बनावें। अनुपान-बेल के पत्तों का रस। इसके सेवन के कुछ काल बाद दही, चांवल का भोजन करना चाहिये। चूंकि यह ग्रहणी रोग में दस्तों में आते हुये मल को किवाड़ की तरह रोक देता है। अतएव इस रस का नाम ग्रहणी-कपाट है॥ २७०-२७३॥

जातीफलादि वटी।

जातीफलं टङ्कनमभ्रकञ्च धुस्तूरबीजं समभागचूर्णम्। भागद्वयं स्यात् फणिफेनकस्य गन्धालिकापत्ररसेन मर्द्यम्॥ २७४॥ चणप्रमाणा वटिका विधेया मधुप्रयुक्ता ग्रहणीगदेषु। रोगेषु दद्यादनुपानभेदैर्युक्त्या विदध्यादतिसारवत्सु॥ २७५॥ सामेषु रक्तेषु सशूलकेषु पक्वेष्वपक्वेषु गुदामयेषु। पथ्यं सदध्योदनमत्र देयं रसोत्तमोऽयं ग्रहणीकपाटः॥ २७६॥

जायफल, सोहागा फूला हुआ, अभ्रक-भस्म और धतूरे के बीज प्रत्येक एक-एक तोला और अफीम २ तोले, इन द्रव्यों को एकत्र खरल करके फिर गंध प्रसारणी (गधपसारन) की पत्तियों के रस की भावना देकर, खरल करके चना के समान गोलियाँ बनावे। ग्रहणी रोग में मधु के साथ सेवन करे और अन्य रोगों में दोषानुसार अनुपान के साथ प्रयोग करना चाहिये। साम, रक्त और शूल-युक्त पक्व अथवा अपक्व, अतीसार-रोग में तथा बवासीर में यह ग्रहणीकपाट रस अत्यंत लाभदायक है। भोजन के लिए दही और भात देना चाहिये॥२७४-२७६॥

वृहज्जातीफलादिवटी

विशुद्धसूतस्य[1] च गन्धकस्य प्रत्येकशो मध्ये सुकज्जलीं वैद्यवरः प्रयत्नात्॥२७७॥ जातीफलं शाल्मलिवेष्टमुस्तं सटङ्कनं सातिमाषचतुष्टयं तु। विधाय शुद्धोपलपात्रविषं सजीरम्। प्रत्येकमेषां मरिचस्य शाणप्रमाणमेकं विषमाषकञ्च॥ २७८॥ विचूर्ण्य सर्वाण्यवलोड्य पश्चाद् विभावयेत् पत्रभवैरमीषाम्। रसै रसोन्मानमितै रसालवंशौ च भद्रोत्कटकश्च टौ च॥२७९॥ इन्द्रालिकेन्द्राशनकं सजम्बु जयन्तिका दाडिमकेशराजौ। अविद्धकर्णापि च भृङ्गराजो विभाव्य सम्यक् वटिका विधेया॥ २८०॥ वल्लप्रमाणा च बहुप्रकारं सामं निहन्त्यत्र यथानुपानम्। कुर्याद्विशेषादनलावलम्बं कासञ्च पश्चात्मकमम्लपित्तम्॥ २८१॥ इयं निहन्ति ग्रहणीं प्रवृद्धां मर्त्यस्य जीर्णग्रहणीमसाध्याम्। चिरोद्भवां संग्रहकोष्ठदुष्टिं शोथं समग्रं गुदजानसाध्यान्॥ २८२॥ आमानुबद्धन्त्वतिसारमुग्रं जयेत् भृशं योगशतैरसाध्यम्। विवर्जनीयास्त्विह भृष्टमत्स्या मत्स्यस्तथा पाण्डुरवर्ण एव॥ २८३॥ रम्भाफलं मूलमथोदनं च बुधैर्विधेयं न कदाचिदत्र। जातीफलाद्या वटिका विधेया यशोऽर्थिनो वैद्यवरस्य हृद्या॥ २८४॥ अनेकसम्भावितमर्त्यलोका नानाविधव्याधिपयोधिनौका॥ २८५॥

पारा ४ माशे, गन्धक ४ माशे, इनको भली भाँति घोटकर उत्तम कज्जली बनावे। पश्चात् जायफल, मोचरस, नागरमोथा, सोहागा फूला हुआ, अतीस, जीरा और मिर्च प्रत्येक ४ माशे और विष १ माशा, इन द्रव्यों को एकत्र मिलाकर खरल करे। तदनंतर आम, बाँस, गन्धप्रसा-

[1] मन्यान्तरे च अभ्रस्य सूतस्य चेति पाठः।

रिपी, जलचौराई, सँभालू, भाँग, जामुन, जयन्ती, अनार, केशराज, पाद और भृंगराज इनकी पत्तियों की भावना देकर और घोटकर दो-दो रत्ती की मात्रा में गोलियाँ बनावे। अनुपानविशेष के साथ प्रयुक्त होने पर अनेक प्रकार के आम-दोष युक्त विकार को नष्ट और अग्नि को दीप्त करती है। पाँच प्रकार के कास-रोग, अम्लपित्त, अत्यत बढ़ा हुआ जीर्ण और असाध्य ग्रहणी-रोग, चिरंतन संग्रह-कोष्ठ-दुष्टि, सब प्रकार के शोथ, सब प्रकार के असाध्य बवासीर और सैकड़ों योगों से शान्त न होनेवाला, आमयुक्त उग्र अतीसार इन सब रोगों को शान्त करती है। इस वटी के सेवन करनेवाले रोगी को भूनी मछली, श्वेत वर्ण की मछली, केला का फल, मूली और भात कदापि खाने के लिये न देवे। जीवन प्रदान करके, अनेक मनुष्यों को संतुष्ट करनेवाली, विविध प्रकार के रोगरूपी समुद्र से पार करने के लिए नौकारूप और हृद्य (हृदय को लाभ करनेवाली) जातीफलाद्य वटिका को, यश चाहनेवाले वैद्य को बनानी चाहिये॥ २७७-२८४॥

ग्रहणीशार्दूलवटिका।

जातीफलं देवपुष्पमजाजीकुष्ठटङ्कनम्। विडं त्वगेलाधत्तूरं फणिफेनं समं समम्॥ २८६॥ प्रसारणीरसेनैव संमर्द्य वटिका कृता। यथादोषानुपानेन सेविता ग्रहणीं हरेत्॥ २८७॥ नानावर्णमतीसारं दारुणं च प्रवाहिकाम्। नाम्ना ग्रहणीशार्दूलवटिका ग्राहिणी परम्॥ २८८॥

जायफल, लौंग, जीरा, कूट, सोहागा फूला हुआ, बिड नोन, दालचीनी, छोटी इलायची के बीज, धतूरे के बीज और अफीम; इन द्रव्यों को समान परिमाण में लेकर, गंधपसारन के स्वरस की भावना देकर, खरल करके दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। दोषानुसार अनुपान के साथ इस ग्रहणीशार्दूलवटिका के सेवन करने से ग्रहणी, विविध प्रकार के अतीसार और दारुण प्रवाहिका नष्ट होती है। यह वटी अत्यंत ग्राहिणी है॥ २८६-२८८॥

ग्रहणीगजेन्द्रवटिका।

रसगन्धकलौहानि शङ्खटङ्कनरामठम्। शटीतालीशमुस्तानि धान्यजीरकसैन्धवम्॥ २८९॥ धातक्यतिविषा शुण्ठी गृहधूमो हरीतकी। भल्लातकं तेजपत्रं जातीफललवङ्गकम्॥ २९०॥ त्वगेलावालकं[1] बिल्वं मेथी शक्राशनस्य च। रसैः संमर्द्य वटिका रसवैद्येन कारिता॥ २९१॥ गहनानन्दनाथेन भाषितेयं रसायने। ग्रहणीगजेन्द्रसंज्ञेयं[2] श्रीमता लोकरक्षणे॥ २९२॥ ग्रहणीं विविधां हन्ति ज्वरातीसारनाशिनी। शूलगुल्माम्लपित्तांश्च कामलां च हलीमकम्॥ २९३॥ बलवर्णाग्निजननी सेविता च चिरायुषे। कण्डूं कुष्ठं विसर्पञ्च गुदभ्रंशं कृमिं जयेत्॥ २९४॥ गुञ्जाद्वयीं वटीं खादेच्छागीदुग्धानुपानतः। वयोऽग्निबलमावीक्ष्य युक्त्वा वा बुद्धिवर्द्धनम्॥ २९५॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म, शङ्खभस्म, सोहागा फूला हुआ, हींग, कचूर, तालीशपत्र, नागरमोथा, धनियाँ, जीरा, लाहौरी नमक, धाय के फूल, अतीस, सोंठ, गृह-धूम (घर के धूम का जाला) हरड़, भिलावाँ, तेजपात, जायफल, लौंग, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने, सुगन्धवाला, बेलगिरी और मेथी; समभाग इन सब द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण कर लें। पश्चात् भाँग की पत्तियों के रस की भावना देकर भली भाँति खरल करके दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। संसार की रक्षा के निमित्त रसायनप्रकरण में श्रीमान्

1 त्वगेलावालकं बिल्वं मेथी शक्राशनं समम्। छागीदुग्धेन वटिका रसवैद्येन कारितेति॥ पुस्तकान्तरे पाठः।

2 वटीगजेन्द्रसंज्ञेयमिति साधुः पाठः।

महानानन्दजी ने इस ग्रहणीगजेंद्रवटिका को कहा है । यह वटी विविध प्रकार के ग्रहणीरोग, ज्वरातिसार, शूल, गुल्म, अम्लपित्त, कामला, हलीमक, खुजली कुष्ठ, विसर्प, गुदभ्रंश और कृमिरोग को नष्ट करती है तथा बल, वर्ण, अग्नि और आयु को बढानेवाली है । प्रारम्भ में २ रत्ती की मात्रा देनी चाहिये । बाद में अवस्था, अग्नि और बल के अनुसार क्रमशः न्यून अथवा वृद्धि करके यथोचित मात्रा की व्यवस्था कर सकते हैं । अनुपान—बकरी का दूध है ॥ २८६-२६५ ॥

महागन्धक ।

रसगन्धकयोः कर्षं ग्राह्यमेकं सुशोधितम् । ततः कज्जलिकां कृत्वा मृदुपाकेन साधयेत् ॥ २६६ ॥ जात्याः फलं तथा कोषो लवङ्गारिष्टपत्रके । एतेषां कर्षमात्रेण तोयेन सह मर्दयेत् ॥ २६७ ॥ मुक्तागृहे पुनः स्थाप्यं पुटपाकेन साधयेत् गुञ्जाषट्कप्रमाणेन प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥२६८॥ एतत् प्रोक्तं कुमाराणां रक्षणाय महौषधम्। ज्वरघ्नं दीपनञ्चैव बलवर्णप्रसादनम् ॥ २६६ ॥ दुर्वारं ग्रहणीरोगं जयत्येव प्रवाहिकाम् । सूतिकाञ्च जयेदेतदपि वैद्यविवर्जिताम् ॥ ३०० ॥ कासश्वासातिसारघ्नं वाजीकरणमुत्तमम् । बालरोगं निहन्त्याशु सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ ३०१ ॥ पिशाचा दानवा दैत्या बालानां ये विघातकाः । यत्रौषधवरस्तिष्ठेत् तत्र सीमां त्यजन्ति ते ॥ ३०२ ॥ बालानां गदयुक्तानां स्त्रीणाञ्चापि विशेषतः । महागन्धकमेतद्धि सर्वव्याधिनिषूदनम् ॥ ३०३ ॥

रसगन्धकयोः प्रत्येकं कर्षः जातीफलादीनामपि चतुर्णां प्रत्येकं कर्षः । कज्जलीं जलेन पङ्कवत् कृत्वा लौहकटाहे स्वेदयित्वा ततः सर्वमेकीकृत्य जलेन पिष्ट्वा एकस्मिन् मुक्तागृहे औषधं संस्थाप्य अपरेणाच्छाद्य कदलीपत्रेण वेष्टयित्वा घनपङ्केनालिप्य करीषाग्नेर्मध्ये संस्थाप्य बहिरारक्तता भवति तदैवाकृष्य ग्राह्यः । यथा व्याध्यनुपानं रक्तिकाः षट् खाद्याः । बालकानामुदरामयादावतिप्रशस्तम् ।

१ तोला शुद्ध पारा और १ तोला शुद्ध गन्धक की कज्जली बनावे । उसमें थोड़ा-सा जल डालकर, कीचड़ के समान गीला करके, लोह के तवा पर रखकर, धीमी आँच से गरम करे । पश्चात् उसमें जायफल, जावित्री, लौंग और निम्बपत्र का एक-एक तोला चूर्ण मिलाकर, जल के साथ खरल करके मोतियों की सीप में रक्खे । दूसरी सीप से आच्छादित करके केला की पत्ती लपेटकर सूत से बाँध देवे । तदनन्तर ऊपर भली भाँति मिट्टी का लेप करके कंडियों की आग में रखकर पुट-पाक करे । जब बाहर कुछ रक्तवर्ण प्रतीत होने लगे, तो आग से निकाल लेवे । शीतल होने पर औषध को खरल करके रख लेवे । रोगानुसार अनुपान के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिये । मात्रा—२ रत्ती से बढ़ाकर ६ रत्ती तक देनी चाहिये। यह बालकों के उदररोग आदि में अत्यंत लाभदायक है। ज्वरनाशक, अग्निदीपन, बल और कान्ति का वर्धक है । असाध्य ग्रहणीरोग, प्रवाहिका, असाध्य सूतिकारोग, कास, श्वास, अतीसार और उपद्रवयुक्त बालरोग को तत्काल नष्ट करता है, तथा उत्तम वाजीकरण है । पिशाच, दानव और दैत्य आदि जो बालकों के विघातक है, वे उस स्थान की सीमा को जहाँ यह औषध रहती है, छोड़ देते हैं । यह महागन्धक सब प्रकार के बालरोग और स्त्रीरोगों का महौषध है[१] ॥ २६६—३०३ ॥

[१] कुछ लोग इसका पाक बालरोगाधिकार में वर्णित दूसरी विधि से भी करते हैं । अनुभव से यह विधि अधिक उपयोगी प्रमाणित हुई है ।

श्रीवैद्यनाथवटिका ।

रसस्य शाणं संगृह्य काञ्जिकेन तु शोधयेत् । चित्रकस्य रसेनापि त्रिफलायाश्च बुद्धिमान् ॥ ३०४ ॥ रसार्द्धं गन्धकं शुद्धं भृङ्गराजरसेन वा । द्वाभ्यां संमूर्च्छनं कृत्वा स्वरसैः शाणसंमितैः ॥ ३०५ ॥ खल्लयेत्तु शिलाखल्ले क्रमशो वक्ष्यमाणजैः । निर्गुण्डीमण्डुकीश्वेताकुचेलाग्रीष्मसुन्दरैः ॥ ३०६ ॥ भृङ्गाह्केशराजैश्च जयेन्द्राशानकोत्कटैः । सर्षपाभां वटीं कृत्वा दद्यात्तां ग्रहणीगदे ॥ ३०७ ॥ सामवातेऽग्निमान्द्ये च ज्वरे प्लीहोदरेषु च ॥ वातश्लेष्मविकारेषु तथा श्लेष्मगदेषु च ॥ ३०८ ॥ दधिमस्तु विनिक्षिप्य मर्दयित्वा यथाबलम् । दातव्या गुटिकाः सप्त रोगिणे ग्रहणीगदे ॥ ३०९ ॥ अम्बुतक्रादि सेवान्तु कुर्वीत स्वेच्छया बहु । श्रीमता वैद्यनाथेन लोकानुग्रहकारिणा । स्वप्नान्ते ब्राह्मणस्येयं भाषिता लिखितापि च ॥ ३१० ॥

तीन मासे पारा को काँजी, चीता का रस और त्रिफला के क्वाथ से शुद्ध करे । तदनंतर भाँगरे के रस में शुद्ध किये हुए १॥ मासे गंधक को उक्त पारा में मिलाकर कज्जली बनावे । पश्चात् सँभालू, ब्राह्मी, सफेद कोयल, पाढ़ी, गूमा, भृङ्गराज, केशराज, जयन्ती, भाँग और सरपत के रस की भावना देकर खरल करके सरसों के समान वटी बनावे । ग्रहणीरोग, आमवात, अग्निमान्द्य, ज्वर, प्लीहा, उदर-रोग, वात-श्लेष्मिकरोग और श्लैष्मिक रोगों में इस वटी का प्रयोग करना चाहिये । ग्रहणी-रोग में ७ गोलियों की एक मात्रा दही के तोड़ के अनुपान में देनी चाहिये । पथ्य-इच्छानुसार तक्र आदि देवे । लोगों के ऊपर अनुग्रह करनेवाले श्रीमान् वैद्यनाथजी ने स्वप्न के अंत में किसी ब्राह्मण को लेख द्वारा इस वटी का उपदेश किया था ॥ ३०४—३१० ॥

खसर्पणवटी ।

पक्वेष्टका हरिद्राभ्यामागारधूमकेन च । शोधितं पारदञ्चैव कर्षार्द्धं तुलया धृतम् ॥ ३११ ॥ भृङ्गराजरसैः शुद्धं गन्धकं रससम्मितम् । द्वाभ्यां कज्जलिकां कृत्वा भावयेत्तु भेषजैः ॥ ३१२ ॥ सिन्धुवारदलद्रावैर्मण्डूकपर्णिकारसे । केशराजरसे चापि ग्रीष्मसुन्दरजे रसे ॥ ३१३ ॥ रसेऽपराजितायाश्च सोमराजीरसे तथा । रक्तचित्रकपत्रोत्थे रसे च परिभावितम् ॥ ३१४ ॥ रसमानसमानेन छायायां शोषयेद्भिषक् । सर्षपाभाश्च गुटिकाः कारयेत् कुशलो भिषक् ॥ ३१५ ॥ ततः सप्तवटीर्दद्याद्दधिमस्तुसमाप्लुताः । नित्यं दध्ना च भोक्तव्या कोष्ठदुष्टिनिवृत्तये ॥ ३१६ ॥ ग्रहणीमतिसारञ्च ज्वरदोषञ्च नाशयेत् । अग्निदार्ढ्यकरं श्रेष्ठमामपर्पटिकाह्वयम् ॥ ३१७ ॥

पकी ईंट का चूर्ण, हल्दी का चूर्ण और गृहधूम (घर के धूम का जाला) से शुद्ध किया हुआ पारा आधा तोला, भाँगरा के रस से शुद्ध किया हुआ गंधक आधा तोला, इनकी उत्तम कज्जली बनावे पश्चात् निर्गुण्डी, मण्डूकपर्णी (ब्राह्मी), अँगरैया, गूमा, अपराजिता (विष्णुक्रान्ता), बकुची और लालचीता, इनमें से प्रत्येक के आधे-आधे तोले रस की भावना देकर भलीभाँति खरल करे । तदनंतर सरसों के समान गोलियाँ बनाकर सुखा लेवे । दही के पानी में मिलाकर कोष्ठ के दोष की निवृत्ति के

लिये सात मात गोलियाँ का सेवन करे। प्रतिदिन दही के साथ भात खावे। यह भ्राम पर्पटिका वटी ग्रहणी-रोग, अतीसार और ज्वर को नष्ट करती है तथा सर्वोत्तम अग्नि-दीपन है ॥ ३१२-३१७ ॥

अभ्रवटिका ।

अथ शुद्धस्य सूतस्य गन्धकस्याभ्रकस्य च । प्रत्येकं कर्षमानं तु ग्राह्यं रसगुणैपिणा ॥ ६१८ ॥ ततः कज्जलिकां कृत्वा व्योमचूर्णं[1] प्रदापयेत् । केशराजस्य भृङ्गस्य निर्गुण्डयाश्चित्रकस्य च ॥ ३१९ ॥ ग्रीष्मसुन्दरकस्याथ जयन्त्याः स्वरसं तथा। मण्डूकपर्ण्याः स्वरसं तथा शक्राशनस्य च ॥ ६२० ॥ श्वेतापराजिताश्च स्वरसं पर्णसम्भवम् । दापयेत् तत्र तुल्यं च विधिवत् कुशलो भिषक् ॥ ३२१ ॥ रसतुल्यं प्रदातव्यं चूर्णं मरिचसम्भवम् । देयं रसार्द्धभागेन चूर्णं टङ्कनसम्भवम् ॥ ३२२ ॥ शुभे शिलामये पात्रे घर्षणीयं प्रयत्नतः । शुष्कमातपसंयोगाद्वटिकां कारयेद्भिपक् ॥ ३२३ ॥ कलायपरिमाणां तु खादेत्तां तु प्रयत्नतः । दृष्ट्वा वयश्चाग्निबलं यथाव्याध्यनुमानतः ॥ ३२४ ॥ हन्ति कासं क्षयं श्वासं वातश्लेष्मभवं रुजम् । परं वाजीकरः श्रेष्ठो बलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ ३२५ ॥ ज्वरे चैवातिसारे च सिद्ध एष प्रयोगराट् । नातः परतरः श्रेष्ठो विद्यतेऽभ्ररसायनात् ॥ ३२६ ॥ चातुर्थके ज्वरे श्रेष्ठः सूतिकातङ्कनाशनः । भोजने शयने पाने नास्त्यत्र नियमः क्वचित् । दधि चावश्यकं भक्ष्यं प्राह नागार्जुनो मुनिः ॥ ३२७ ॥

1 क्वचिद्व्योमचूर्णमिति पाठान्तरम्-तेषात्रये तु कर्षं त्रिकटुनापि प्रक्षेप्यम् ।

(शुद्धरसकर्षं १ शुद्धगन्धककर्षं १ कज्जलीं कृत्वा जारिताभ्रकर्षं १ टङ्कनक्षारमर्धतोलकं मिश्रीकृत्य केशराजादीनां स्वरसकर्षेण भावयित्वा छायाशुष्कां वटीं कारयेत् ।)

१ तोला पारा और १ तोला गंधक की कज्जली बनाकर, उसमें अभ्रक-भस्म १ तोला, मिर्च १ तोला, सोहागा फूला हुआ आधा तोला मिलाकर केशराज, भृंगराज, सँभालू, चीता, ग्रीष्मसुन्दरशाक, जयन्ती, ब्राह्मी, भाँग, श्वेत अपराजिता (सफेद विष्णुक्रान्ता) और पान, इनमें से प्रत्येक के एक-एक तोले रस की भावना दे, मटर के समान गोलियाँ बनाकर सुखा लेवे। अवस्था, अग्नि, बल और व्याधि के अनुसार अनुपान की व्यवस्था करे । यह 'अभ्रवटिका' कास, क्षय, श्वास और वात-श्लैष्मिक रोगों को नष्ट करती है। वाजीकरण, बल, वर्ण और अग्नि की वृद्धि करती है। ज्वर और अतीसार के लिये यह सिद्ध प्रयोग है । इन रोगों के लिये इस 'अभ्ररसायन' से उत्तम और कोई योग नहीं है। यह अभ्ररसायन चातुर्थिक ज्वर और सूतिका-रोगों को नष्ट करती है। इस औषध के सेवन करने पर भोजन, शयन और जलपान के विषय में कोई नियम नहीं है, किंतु दही का खाना आवश्यक है, ऐसा 'नागार्जुन' मुनि ने कहा है ॥ ३१८-३२७ ॥

महाभ्रवटी ।

अभ्रकं पुटितं ताम्रं लौहं गन्धकपारदम् । कुनटी टङ्कनं क्षारं त्रिफला च पलं पलम् ॥ ३२८ ॥ गरलस्य तथा माषचतुष्कं चैव चूर्णितम् । तं सर्वं भावयेदेषां रसैः प्रत्येकशः पलैः ॥ ३२९ ॥ देवराजाशनाख्यस्य केशराजाख्यकस्य च । सोमराजस्य भृङ्गाख्यराजस्य श्रीफलस्य च ॥ ३३० ॥ पारिभद्राग्निमन्थस्य दुग्ध-

दारस्य तुम्बुरोः। मण्डूकपर्णी निर्गुण्डी पूतिकोन्मत्तकस्य च ॥ ३३१ ॥ श्वेतापरः जितायाश्च जयन्त्याश्चित्रकस्य च। ग्रीष्मसुन्दरकस्याटरूपकस्य रसेन तु ॥ ३३२ ॥ रसैस्ताम्बूलवल्ल्याश्च पत्रोत्थैर्भावयेत् पृथक्। द्रवे किञ्चित् स्थिते चूर्णं मरिचस्य पलं क्षिपेत् ॥ ३३३ ॥ ततश्चैव वटीं कुर्य्यात् मात्रां दद्याद् यथोचिताम् ॥ ज्वरे चैवातिसारे च कासे श्वासे क्षये तथा ॥ ३३४ ॥ सन्निपातज्वरे चैव विविधे विषमज्वरे। क्षयरोगेषु सर्वेषु क्षीणशुक्रे च यक्ष्मणि ॥ ३३५ ॥ ग्रहण्यां चिरभूतायां सूतिकायांविशेषतः। शोथे शूले तथासाध्ये स्थावरे चामवातके॥ ३३६ ॥ मन्दानलेऽबले चैव सकले श्लेष्मजे गदे। पीनसेऽपीनसे चैव पक्वेऽपक्वे विशेषतः॥ ३३७ ॥ वातश्लेष्मणि वाते वा विविधे चेन्द्रियस्थिते। वातवृद्धे वृते पित्ते बलासेनावृतेऽपि च ॥ ३३८ ॥ अष्टसूदररोगेषु कण्ठरोगे प्रशस्यते। अजीर्णे कर्णरोगे च कृशे स्थूले च यक्ष्मणि ॥ ३३९ ॥ अयं सर्वगदेष्वेव रसो वै परिकीर्तितः। महाभ्रवटिका सेयं परं श्रेष्ठा रसायने ॥३४०॥

अभ्रक-भस्म, ताम्रभस्म, लोह-भस्म, गंधक, पारा, मैनशिल, सोहागा फूला हुआ, हरड़, बहेड़ा और आँवला ; प्रत्येक चार-चार तोले और विष ४ मासे ; इन द्रव्यों को भाँग, केशराज, सोमराज, भृङ्गराज, विल्वपत्र, फरहद, अरनी, विधारा, नेपाली धनिया, सँभालू, पूतिकरंज, धतूरे की पत्तियाँ, श्वेत अपराजिता(सफेद विष्णुकान्ता), जयती, चदरख, ग्रीष्मसुन्दरशाक अडूसा और पान ; इनमें से प्रत्येक के चार-चार तोले रस की अलग-अलग भावना देवे। कुछ गीला रहते ही चार तोले मिर्च का चूर्ण बनाकर गोलियाँ बनावे। रोगी का बलाबल देखकर मात्रा की यथोचित व्यवस्था करे। यह 'महाभ्रवटी' ज्वर, अतीसार, कास, श्वास, क्षय, सन्निपात-ज्वर, विविध प्रकार के विषम-ज्वर, सब प्रकार के क्षय-रोग, शुक्र-क्षीणता, यक्ष्मा, पुराना ग्रहणी-रोग सूतिका रोग, शोथ, शूल, असाध्य और पुराना आमवात, अग्नि-मान्द्य, निर्बलता, पीनस अथवा पीनसातिरिक्त पक्वापक्व, सब प्रकार के श्लैष्मिक रोग, वातश्लैष्मिक, इन्द्रियों में कुपित अनेक प्रकार का वायु, कफावृत पित्त अथवा अनावृत पित्त, आठ प्रकार के उदर-रोग, कण्ठ-रोग, अजीर्ण, कर्ण रोग, कार्श्य-रोग, स्थौल्य रोग और यक्ष्मा आदि सब रोगों में अत्यन्त लाभदायक है। यह 'महाभ्रवटिका' श्रेष्ठ रसायन है। मात्रा—२।४ रत्ती ॥ ३२८-३४० ॥

पीयूषवल्लीरस।

सूतकं गन्धकं चाभ्रं तारं लौहं सटङ्कनम्। रसाञ्जनं माक्षिकञ्च शाणमेकं पृथक् पृथक् ॥ ३४१ ॥ लवङ्गं चन्दनं मुस्तं पाठाजीरकधान्यकम्। समङ्गातिविषा लोध्रं कुटजेन्द्रयवं त्वचम् ॥ ३४२॥ जातीफलं विश्वबिल्वं कनकं दाडिमच्छदम्। समङ्गा धातकी कुष्ठं प्रत्येकं रससम्मितम् ॥ ३४३ ॥ भावयेत् सर्वमेकत्र केशराजरसैः पुनः। चणकाभा वटी कार्या छागीदुग्धेन पेषिता ॥ ३४४ ॥ अनुपानं प्रदातव्यं दग्धबिल्वसमं गुडम्। अतीसारं ज्वरं तीव्रं रक्तातीसारमुल्बणम् ॥ ३४५ ॥ ग्रहणीं चिरजां हन्ति शोथं दुर्नामकं तथा। आमशूलविबन्धघ्नं संग्रहग्रहणीहरम् ॥ ३४६ ॥ पिच्छामदोषं विविधं पिपासादाहरोगकम्। हृल्लासारोचकच्छर्दि

गुदभ्रंशं सुदारुणम् ॥ ३४७ ॥ पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥ कृष्णारुणञ्च पीतञ्च मांसधावनसन्निभम् ॥३४८॥ प्लीहगुल्मोदरानाहं सूतिकारोगसङ्करम्। असृग्दरं निहन्त्येव वन्ध्यानां गर्भदं परम् ॥ ३४९ ॥ कामलां पाण्डुरोगञ्च प्रमेहानपि विंशतिम्। एतान् सर्वान्निहन्त्याशु मासार्द्धेनात्र संशयः ॥ ३५० ॥ पीयूषवल्लीवटिका अश्विभ्यां निर्मिता पुरा। कश्यपाय ददेऽश्विभ्यां ततः प्राप प्रजापतिः ॥ ३५१ ॥ धन्वन्तरिस्ततः प्राप देवतानां पतिस्ततः। परम्पराप्राप्त एष रसस्त्रैलोक्यदुर्लभः ॥ ३५२ ॥

पारा, गन्धक, अभ्रक-भस्म, चाँदी-भस्म, लोह-भस्म, सोहागा फूला हुआ, रसोत, स्वर्णमाक्षिक, लौंग, रक्त-चन्दन, नागरमोथा, पाढ़, जीरा, धनियाँ, छुईमुई, अतीस, लोध, कुड़े की छाल, इन्द्र जौ, दालचीनी, जायफल, सोंठ, बेलगिरी, धतूरे के बीज, अनार की पत्तियाँ, धाय के फूल और वृट प्रत्येक तीन-तीन माशे इन द्रव्यों को एकत्र चूर्णित करके भाँगरा के रस की भावना देवे। तत्पश्चात् बकरी के दूध के साथ पीसकर चना के समान वटी बनावे। भूने हुए बेल के गूदे और गुड़ के साथ सेवन करना चाहिए। यह पीयूषवल्ली रस अतीसार, तीव्रज्वर, घोर रक्तातीसार, पुराना ग्रहणीरोग-शोथ, बवासीर, आमशूल, मलबद्धता, संग्रह-ग्रहणी, दिग्दर्शक आमविकार, विविध प्रकार के पिपासारोग, दाहरोग, मच्छली, अरोचक, वमन, दारुण गुदभ्रंश (काँच निकलना), पक्व अथवा अपक्व, नानावर्णवाला, वेदनायुक्त, कृष्ण और रक्तवर्णवाला अथवा पीला, मांसधोवन के सदृश, अतीसार, प्लीहा, गुल्म, उदर, आनाह, सूतिका के रोगों का मिथ्यारोग, रक्तप्रदर, बाँझपन, कामला, पाण्डुरोग और बीस प्रकार के प्रमेह आदि रोगों को पन्द्रह दिन में नि:संदेह नष्ट करता है। इस पीयूषवल्ली रस को पहले अश्विनीकुमारों ने बनाया था। पश्चात् अश्विनीकुमारों ने कश्यपजी को बताया। कश्यपजी से प्रजापतिजी ने पाया। उनसे धन्वन्तरिजी ने पाया और धन्वन्तरिजी से इन्द्र ने पाया। इस परम्परा से इस त्रैलोक्य-दुर्लभ रस की प्राप्ति हुई। मात्रा २।३ रत्ती ॥ ३४१-३५२ ॥

श्रीनृपतिवल्लभ।

जातीफललवङ्गाब्दत्वगेला टङ्करामठम्। जीरकं तेजपत्रञ्च यमानी विश्वसैन्धवाः ॥ ३५३॥ लौहमभ्रं रसो गन्धस्ताम्रं प्रत्येकशः पलम्। मरिचं द्विपलं दत्त्वा छागीक्षीरेण पेषयेत् ॥ ३५४ ॥ धात्रीरसेन वा पेष्यं वटिकाः कुरु यत्नतः। श्रीमद्गहननाथेन विचिन्त्य परिनिर्मितः ॥ ३५५ ॥ सूर्यवत्तेजसा जायं रसो नृपतिवल्लभः। अष्टादश वटीः खादेत् पवित्रः सूर्यदर्शकः ॥ ३५६ ॥ हन्ति मन्दानलं सर्वमामदोषं विसूचिकाम्। प्लीहगुल्मोदराष्ठीलायकृत्पाण्डुत्वकामलाम् ॥ ३५७ ॥ हृच्छूलं पृष्ठशूलं च पार्श्वशूलं हलीमकम्। कटीशूलं कुक्षिशूलमानाहमष्टशूलकम् ॥ ३५८ ॥ कासश्वासामवातांश्च श्लीपदं महदर्बुदम्। गलगण्डं गण्डमालामम्लपित्तञ्च गर्दभी ॥ ३५९ ॥ कृमिकुष्ठानि दद्रूणि वातरक्तं भगन्दरम्। उपदंशमतीसारं ग्रहण्यर्शः प्रमेहकम् ॥ ॥ ३६० ॥ अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च मूत्राघातं सुदारुणम्। ज्वरं जीर्णं तथा पाण्डुं तन्द्रालस्यं भ्रमं क्लमम् ॥ ३६१ ॥ दाहञ्च त्रिदोषं हिक्कां जडगद्गदमूकताम्। मूढञ्च स्वरभेदञ्च ब्रध्नवृद्धिविसर्पकान् ॥३६२॥

ऊरुस्तम्भ रक्तपित्तं गुदभ्रंशारुचिं तृषाम् । कर्णनासामुखोत्थांश्च दन्तरोगांश्च पीनसान् ॥ ३६३ ॥ स्थौल्यञ्च शीतपित्तञ्च स्थावरादिविषाणि च । वातपित्तकफोत्थांश्च द्वन्द्वजान् सान्निपातिकान् ॥ ३६४ ॥ सर्वानेव गदान् हन्ति चण्डांशुरिव पापहा । बलवर्णकरो हृद्य आयुष्यो वीर्य्यवर्द्धनः ॥ ३६५ ॥ परं वाजीकरः श्रेष्ठः पटुदो मन्त्रसिद्धिदः । अरोगी दीर्घजीवी स्याद्रोगी रोगाद्विमुच्यते । रसस्यास्य प्रसादेन बुद्धिमान् जायते नरः ॥ ३६६ ॥

जायफल, लौंग, नागरमोथा, दालचीनी, छोटी इलायची के बीज, सोहागा फूला हुआ, हींग, जीरा, तेजपात, अजवाइन, सोंठ, लाहौरी नमक, लोह-भस्म, अभ्रक भस्म, पारा, गन्धक और ताम्र भस्म प्रत्येक चार चार तोले और मिर्च ८ तोले, इन द्रव्यों को बकरी के दूध के साथ अथवा आँवले के रस के साथ पीसकर वटी बना लेवे। इस नृपतिवल्लभरस को, सूर्य के समान तेजस्वी श्रीमान् गहननाथजी ने विचार कर बनाया है। प्रातःकाल सूर्योदय के समय स्नान आदि द्वारा पवित्र होकर, १८ वटियाँ खाई जाये। इस नृपति-वल्लभ रस के सेवन करने से अग्निमान्द्य, सब प्रकार के आम दोष, विसूचिका, प्लीहा, गुल्म, उदर, अष्ठीला, यकृत, पाण्डुरोग, कामला हृदय शूल, पृष्ठ शूल, पार्श्व शूल, हलीमक, कटि शूल, कुक्षि-शूल, आनाह, आठ प्रकार के शूल, कास, श्वास, आमवात, श्लीपद, शोथ, अर्बुद, गलगंड, गण्डमाला, अम्लपित्त, गर्दभी,[1] कृमि, कुष्ठ, दद्रु, वातरक्त, भगंदर, उपदंश, अतीसार, ग्रहणी, बवासीर, प्रमेह, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, घोरमूत्राघात, जीर्णज्वर, पाण्डुरोग, तन्द्रा, आलस्य, भ्रम, क्लम, दाह, विद्रधि, हिक्का, जड़ता, गद्गदता (गिड़गिड़ाना), मूकता, मूढ़ता, स्वर भेद, भग्न-रोग, वृद्धि (अण्डवृद्धि), विसर्प रोग ऊरुस्तम्भ, रक्तपित्त, गुदभ्रंश (काँच निकलना), अरुचि, तृषा, कर्णरोग, नासा रोग, मुखरोग दन्त रोग, पीनस, स्थूलता, शीत पित्त और स्थावर आदि विष तथा अन्यान्य वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, द्वन्द्वज और सान्निपातिक समस्त रोग इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्य भगवान् द्वारा जगत् का समस्त अन्धकार नष्ट हो जाता है। एवं यह रस बल, कान्ति, आयु और वीर्य को बढ़ानेवाला, हृदय के लिये लाभदायक, श्रेष्ठ वाजीकरण, प्रवीणता और मन्त्र सिद्धि का दाता है। एवं स्वस्थ पुरुष इस रस के सेवन करने से दीर्घजीवी और रोगी पुरुष स्वस्थ तथा इस रस के प्रभाव से मनुष्य बुद्धिमान् होता है[1] ॥ ३५३-३६६ ॥

बृहन्नृपवल्लभ ।

रसगन्धकलौहाभ्रं नागं चित्रं च मुस्त[2]कम् । टङ्कं जातीफलं हिङ्गु त्वगेलावह्निवङ्गकम् ॥ ३६७ ॥ तेजपत्रमजाजी च यमानी निरवसैन्धवम् । प्रत्येकं तोलकं चूर्णं तथा मरिचताम्रयोः ॥ ३६८ ॥ निरुत्थकमृतं हेम तथा माषचतुष्टयम्[3] । आर्द्रकस्य रसेनैव धात्र्याश्च स्वरसैस्तथा ॥ ३६९ ॥ भावयित्वा प्रदातव्यं चणमात्रं[4] भिषग्वरैः । भक्षयेत् प्रातरुत्थाय पथ्यं भक्ष्यं यथोचितम् ॥ ३७० ॥ अग्निमान्द्यमजीर्णञ्च दुर्नामग्रहणीं जयेत् । आमाजीर्णप्रशमनं सर्व

1—यह क्षुद्ररोग विशेष है। लक्षण यह है—मण्डलं वृत्तमुत्सन्नं सरक्तं पिडिकाचितम्। रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्याद्वातपित्तजाम् ॥

1 इसकी गोली आधी आधी रत्ती की बनानी चाहिये एवम् क्रमशः बढ़ाकर १८ गोली तक सेवन कराना लाभदायक है।

2—'नागं चित्रं त्रिवृत्समम्' इति पाठान्तरम्।

3—'द्वादशरक्तिकम्' इति पाठान्तरम्।

4—'माषद्वयप्रमाणेन' इति ग्रन्थान्तरमतम्।

रोगनिषूदनम्। नाशयेदौदरान् रोगान् विष्णुचक्रमिवासुरान् ॥ ३७१ ॥

(ग्रन्थान्तरेऽस्य राजवल्लभसंज्ञा)

पारा, गन्धक, लौह भस्म, अभ्रक-भस्म, नाग-भस्म, चीता, नागरमोथा, सोहागा फूला हुआ, जायफल, हींग, दालचीनी, छोटी इलायची के बीज, चीता की जड़, वङ्गभस्म, तेजपात, जीरा, अजवाइन, सोंठ, लाहौरी नमक, मिर्च और ताम्र भस्म प्रत्येक का एक-एक तोला चूर्ण तथा निरुत्थ स्वर्ण-भस्म ४ मासे, इन द्रव्यों को अदरख के रस और आँवला के स्वरस में भावित करके चना के समान गोलियाँ बना लेवे। एक प्रातःकाल इस रस का सेवन करे। यथोचित (हितकर) पथ्य भोजन करते इस बृहन्नृपवल्लभ रस के सेवन करने से अग्नि-मान्द्य, अजीर्ण, वातामीर, ग्रहणी, आमाजीर्ण आदि सब रोग नष्ट हो जाते हैं। जैसे सुदर्शन-चक्र द्वारा असुरों का विनाश हो गया है, वैसे ही यह रस समस्त पेट के रोगों को नष्ट कर देता है मात्रा—२ रत्ती ॥ ३६७-३७१ ॥

(ग्रन्थान्तर में इस रस का राजवल्लभ नाम है)

अजाज्यादिचूर्णं।

पलद्वन्द्वमजाज्यास्तु पलैकं यवशूकजम्। अब्दुदं द्विपलं ज्ञेयं फणिफेनपलं तथा ॥ ३७२ ॥ अर्कमूलभवं चूर्णं चतुःपलमितं स्मृतम्। अजाज्यादिकमेतद्धि हन्त्युग्रं ग्रहणीगदम् ॥ ३७३ ॥ सरप्रमथ नीरमतिसारं गूढाक्रमम्। उग्रातिसारं नाशयेद्विसूचीं प्राणहारिणीम् ॥ ३७४ ॥

जीरा ८ तोले, जवखार ४ तोले, नागरमोथा ८ तोले, अफीम ४ तोले और आक के मूल का चूर्ण १६ तोले, इनका चूर्ण करके रख लेवे। यह चूर्ण अतिसार, उग्र ग्रहणी रोग, रक्तातिसार और रक्त रहित घोर अतिसार [illegible]। यह घोर विसूचिका रोग को नष्ट करता है। इसकी मात्रा ३।४ रत्ती है ॥ ३७२-३७४ ॥

रसपर्पटी।

श्रीविन्ध्यवासिपादान् नत्वा धन्वन्तरिञ्च सुरभिषजम्। रसगन्धकपर्पटिकापरिपाटीपाटवं वक्ष्ये ॥ ३७५ ॥ मग्नं रसे जयन्त्याः पश्चादेरण्डसंभूते। आर्द्रकरसे च सूतं पत्ररसे काकमाच्याश्च ॥ ३७६ ॥ मग्नमुदितानुपूर्व्या मर्दनशुष्कं करेण गृह्णीयात्। प्रस्तरभाजनमध्ये शुद्धिरियं पारदस्योक्ता ॥ ३७७ ॥ शुकपुच्छसमच्छायो नवनीतसमद्युतिः। मसृणः कठिनः स्निग्धः श्रेष्ठो गन्धक इष्यते ॥ ३७८ ॥ कृत्वा भद्रं गन्धकमतिपुगलः चुक्रतण्डुलाकारम्। तद्भृङ्गराजरसैरनन्तरं भावयेत् पात्रे ॥ ३७९ ॥ तदनु च शुष्कं कुर्याद् धूलिसमानञ्च सप्तधा रौद्रे। तदनु च शुष्कं चूर्णं कृत्वा विन्यस्य लौहिकामध्ये ॥ ३८० ॥ निर्धूमबदरपृकाष्ठाङ्गारे न्यस्तं विलाप्य तत्समम्। पात्रस्थितभृङ्गराजरसमध्ये ढालयेन्निपुणः ॥ ३८१ ॥ तस्मिन् मज्जिष्यति कठिनतरं याति गन्धकचूर्णम्। पुनरपि रौद्रे शुष्कं वेतस्रजसा समानतां नीतम् ॥ ३८२ ॥ शुद्धे सूते शोधितगन्धकचूर्णेन तुल्यता कार्या। तावन्मर्दनमनयोर्यावद्वर्णोऽपि दृश्यते सूते ॥ ३८३ ॥ पश्चात् कज्जलसदृशं चूर्णं लौहिस्थितं सर्वम्। निर्धूमबदरकाष्ठाङ्गारे न्यस्तं विलाप्य तत्समम् ॥ ३८४ ॥ सद्यो गोमयनिहिते कदलीदले ढालयेन्मृदुनि। सौरीभिः [illegible]

शिष्टं कठिनं तत्र गृहीतव्यम् ॥ ३८५ ॥ पश्चात्पर्पटीरूपा पर्पटिका कीर्त्यते लोकैः। मयूरचन्द्रिकाकारं लिङ्गं यत्र तु दृश्यते ॥ ३८६ ॥ तत्र सिद्धं विजानीयाद्वैद्यो नैवात्रसंशयः। समुदितपात्रे भरणा वदनीया पर्पटी मनुजैः ॥ ३८७॥ जीरकगुञ्जे हिङ्गोरर्द्धं खादेच्च वातले जठरे। जीरकहिङ्ग्वो रसेन त्वनुपानं सलिलधारया कार्य्यम् ॥ ३८८ ॥ रसगन्धकपर्पटिका भक्षणमात्रे तु नाम्भसः पानम्। प्रथमं गुञ्जायुगलं प्रतिदिनमेकैकवृद्धितो भक्ष्यम् ॥ ३८९ ॥ दशगुञ्जापरिमाणान्नाधिकमदनीयमेकविंशतिदिनानि। वातातपकोपमनश्चिन्तनमाहारसमयवैपम्यम् ॥ ३९० ॥ व्यायामश्चायासः स्नानं व्याख्यानमहितमत्यन्तम्। पाके स्तोकं सर्पिर्जीरकधन्याकवेशवारैश्च[1] ॥ ३९१ ॥ सिन्धूद्भवेन रन्धनमोदनधान्यानि शालयो भक्ष्याः। कूष्माण्डं वातिङ्गनफलमविद्धकर्णं[2] च वास्तूकम् ॥ ३९२ ॥ अक्षतमुद्गसहितं फलदलसहितो पटोलश्च। क्रमुकफलमृङ्गवेरौ भक्ष्यौ शाकेषु काकमाची च ॥ ३९३ ॥ लावकवर्चकतित्तिरमयरमांसञ्च हिततरं भवति। मद्गुररोहितमीनावदनीयौ[3] कूष्माण्डमत्स्याश्च ॥ ३९४ ॥ नीरक्षीरं व्यञ्जनमदनीयं पक्वकदलञ्च। रम्भाफलदलवल्कलमूलानां वर्जनं कार्य्यम् ॥ ३९५ ॥ तिक्तं निम्बादिकमपि नाद्यं नोष्णं तथान्नञ्च। आनूपमांसजलचरपतत्रिपलञ्च सर्वथा त्याज्यम् ॥ ३९६ ॥ स्त्रीणां सम्भाषणमपि गडकश्च कूष्माण्डमत्स्येषु। नाम्लं न दधि शाकं पर्पट्या भक्षणे भक्ष्यम् ॥ ३९७ ॥ गुडखण्डशर्करादिक इक्षुविकारो न भक्ष्य इक्षुश्च। न दलं न फलं न लताप्यदनीया कारवेल्लस्य ॥ ३९८ ॥ स्तोकं घृतमिह भक्ष्यं पथ्ये साकांक्षमुत्थानम्। क्षुत्पीडायां भोजनमवश्यकार्य्यं महानिशायाञ्च॥३९९॥ समजलमिश्रं पक्वं क्षीरं यद्वाधिकजलपक्वञ्च। कथमपि भोजनसमयातिक्रमजाते ज्वरे विरेके च ॥ ४०० ॥ वमने च नारिकेलसलिलं दुग्धञ्च पातव्यम। स्वप्ने जाते रमिते विरेकतः क्षीरमेव पातव्यम्॥४०१॥ न ज्ञायते बुभुक्षालक्षयालक्ष्या प्रतीयते यदि वा। अशक्तिभिन्निभिन्निमस्तकशूलाद्यैर्नूनमवधार्य्या ॥ ४०२ ॥ किं बहु वाच्यं रोगी यदा यदा भवति साकांक्षः। पाययितव्यं दुग्धं तदा तदा निर्भयीभूय ॥ ४०३ ॥ विहिताऽकरणे चास्यामविहितकरणे च रोगखिन्नानाम। व्यापत्तयोऽपि बहुधा दृष्टाः भामाणिकैर्बहुशः॥ ४०४ ॥ तस्मादवधातव्यं भवितव्यं भोजने निपुणैः। एवमियं क्रियमाणा भवति श्रेयस्करी नियतम् ॥ ४०५ ॥ अर्शोरोगं ग्रहणीं सामां शूलातिसारौ च। कामलपाण्डुव्याधिं प्लीहानञ्चातिदारुणं हन्ति ॥४०६॥ गुल्मजलोदरभस्मकरोगं हन्त्यामवातांश्च। अष्टादशैव कुष्ठान्यशेषशोथादिरोगांश्च ॥४०७॥ इयमम्लपित्तशमनी त्रिदोषदमनी क्षुधातिकमनीया।

1 वेशवारः=तैपक्वे पिष्टमांसे च।
2 वातिङ्गन -वार्त्ताकुवृक्षे (बैंगन का वृक्ष)।
3 मत्स्यभेदे।

अग्निं निमग्नमुदरे ज्वालाजटिलं करोत्याशु ॥४०८॥ रसगन्धकपर्पटिका त्वपवार्य्य व्याधिसंघातम् । वलीपलितशून्यं पुरुषं दीर्घायुषं कुरुते ॥ ४०९ ॥ व्याधिप्रभावहरणादपमृत्युत्रासनाशकरणाच्च । मर्त्यानाममृतघटी रसगन्धकपर्पटी जयति ॥४१०॥ शम्भुं प्रणम्य भक्त्या पूजां कृत्वा च विष्णुचरणाब्जे। रसगन्धकपर्पटिका भक्ष्या तेनातिसिद्धिदा भवति ॥ ४११ ॥ नृणां ससरुजां ध्रुवमियमारोग्यं सततशीलिता कुरुते । श्रीवत्साङ्कविनिर्मितसम्यग्रसपर्पटी श्रेष्ठा ॥४१२॥ उक्तमेव हि कर्तव्यं नानुरागतया तथा। औषधक्रिययैवात्र कर्तव्या चोत्तरक्रिया ॥ ४१३ ॥प्रत्यवायविनाशार्थं क्षेत्रपालबलिं न्यसेत्। कृतमङ्गलकः मातर्योगिनीनामतः परम् ॥ ४१४ ॥

भक्षणपूर्व बलिदानमन्त्रो यथा 'ॐ क्षां क्षीं क्षेत्रपालाय नमः'। इति क्षेत्रपालस्य सामान्यबलिमन्त्रः । 'ॐ ह्रीं ह्रूँ दिव्याभ्यो योगिनीभ्यो मातृभ्यः क्षेत्रीभ्यो भूतेभ्यः शाकिनीभ्यो नमो नमो ह्रीं ।' इति सामान्ययोगिनीनां बलिमन्त्रः । ॐ गन्धकमहाकालाय स्वाहा । ॐ ब्रह्मकोपिणि रक्ष रक्ष स्वाहा।' इति विशेषबलिमन्त्रः ।

अत्र पारदस्य नैसर्गिकदोषत्रयशोधनञ्चावश्यकं कार्य्यम् ।

तदुक्तम्—यदुक्तं मलशिखिविषनामानो रसस्य नैसर्गिका दोषाः। मूर्च्छां मलेन कुरुते शिखिना दाहं विषेण हिक्काञ्च ॥ ४१५ ॥ गृहकन्या हरति मलं त्रिफला वह्निं चित्रकश्च विषम् । तस्मादेभिर्वारान् संमूर्च्छयेत् सप्त सप्तैव इति ॥ ४१६ ॥ गृहकन्या घृतकुमारी तस्या दलरसेन खल्लनम् ।

(त्रिफलायाश्चूर्णेन खल्लनम् । चित्रकस्य पत्ररसेन मूर्च्छनम् । तदेव नैसर्गिकदोषापहारानन्तरं जयन्त्यादिद्रव्यचतुष्टयरसेन मूर्च्छनमधिगन्तव्यम् ।)

श्रीमती विन्ध्यवासिनी देवी और सुरवैद्य धन्वन्तरिजी को नमस्कार करके रस और गन्धक की पर्पटी बनाने की रीति कहता हूँ।

पहले यह बता देना आवश्यक है कि मल, वह्नि और विष ये तीन पारा के नैसर्गिक दोष हैं। पारद मल-दोष से मूर्च्छा, वह्निदोष से दाह और विष दोष से हिक्का उत्पन्न करता है। अतः रस पर्पटी सिद्ध करने के पहले, पारद के मल दोष, वह्निदोष, और विष दोष को दूर करना आवश्यक है।

उन दोषों को दूर करने की रीति यह है कि— ४ तोले पारद को लेकर, घृतकुमारी (घीकुआँर) के रस में घोटने से पारद का मलदोष दूर हो जाता है। इसी प्रकार त्रिफला के चूर्ण के साथ घोटने से वह्नि दोष और चीता की पत्तियों के रस में घोटने से विष दोष दूर होता है। इस रीति से पारद के दोषों के दूर करने के बाद पारद को पत्थर के खरल में रखकर, क्रमशः जयन्ती की पत्तियों के रस में, एरंड की पत्तियों के रस में, अदरख के रस में और मकोय की पत्तियों के रस में डुबो डुबोकर इतनी घोटाई करे कि जिससे उन औषधों के रस शुष्क हो जावें। इस प्रकार शुद्ध किया हुआ पारद रसपर्पटी के बनाने योग्य होता है।

इस पारद में मिलाने के लिये ऐसा गंधक लेना चाहिए, जो तोते की पूँछ के समान कान्तिमान्, मक्खन के समान प्रभावान्, चिकना,

कठोर और स्निग्ध हो। क्योंकि ऐसा ही गंधक श्रेष्ठ माना गया है।

ऐसे गंधक को ४ तोले लेकर, चावलों के समान छोटे छोटे टुकड़े करके ७ बार भाँगरा के रस की भावना देवे, और प्रतिवार धूप में रखकर शुष्क करे। उसके बाद धूल के समान चूर्ण बनाकर बेर की लकड़ी के निर्धूम अंगारों की आँच से लोहे की कड़ाही में गलाकर भाँगरा के रस में डाले। उसमें डालते ही गंधक कड़ा हो जाता है। उसको घाम में सुखाकर और भलीभाँति खरल करके केतकी के रज के समान चूर्ण बना लेवे।

उक्त रीति से शुद्ध किये हुए पारद में समभाग शुद्ध गंधक का चूर्ण मिलाकर, तब तक मर्दन करे, जब तक पारद के कण अदृश्य न हो जाँय। पश्चात् उत्तम कज्जली के सिद्ध होने पर लोहे की कड़ाही में उस कज्जली को डालकर बेर की लकड़ी के निर्धूम अंगारों की आँच से गलाकर तेल के समान करे। तदनन्तर गौ के ताजा गोबर पर केला का पत्ता रखकर उस पर कज्जली की द्रुति को पतली पतली फैला देवे, और ऊपर भी केले के पत्तों से ढक करके उसके ऊपर गोबर रख देवे। दो घण्टे के बाद पापड़ के समान दोनों पत्तों के बीच में जमी हुई रस पर्पटी को निकाल लेवे। गली हुई कज्जली का जो अंश कठिन होकर कड़ाही में लगा रह जाता है, उसको न लेना चाहिये। जिस पर्पटी में मयूरपिच्छ की चन्द्रिका के समान चमक हो, उस पर्पटी को वैद्यराज लोग निःसंदेह सिद्ध जानें। इस शास्त्रोक्त शुभ मुहूर्त भरणी नक्षत्र में इस पर्पटी को बनाना और सेवन करना चाहिये।

वातोदर रोग में २ रत्ती जीरा और १ रत्ती हींग के साथ सेवन करे। जीरा और हींग के साथ पर्पटी का सेवन करने पर शीतल जल पीना चाहिए। केवल पर्पटी के सेवन करने पर जल पीना आवश्यक नहीं है। पहले दिन दो रत्ती की मात्रा रखकर तदनन्तर प्रतिदिन एक एक रत्ती मात्रा बढ़ाकर दस रत्ती तक सेवन करे। दस रत्ती से अधिक मात्रा में सेवन करना उचित नहीं है। इस प्रकार २१ दिन पर्यन्त इस औषध के सेवन करने का नियम है।

रसपर्पटी के सेवन करने के समय वायुसेवन, धूपसेवन, क्रोध, अधिक चिन्ता, सोना समय पर न करना, व्यायाम, परिश्रम, स्नान और अधिक बोलना, ये सब वर्जित हैं। घी, जीरा, धनिया, और लाहौरी नमक से संस्कृत व्यञ्जन आदि शालि धान के चावलों का भात, काला बैंगन, पाठा का शाक, बथुआ का शाक, कीड़ा आदि द्वारा बिना खाई हुई मूँग, परवल के फल तथा पत्र-सहित परवल, सुपारी, अदरख, मकोय का शाक, लावा, बटेर, तित्तिर और मयूर के मांस मद्गुर (माँगुर), रोहू, काले वर्ण की मछली और जल मिश्रित करके सिद्ध किया हुआ दुग्ध ये सब पदार्थ पथ्य हैं।

पका हुआ केले का फल, केले का पत्ता, केले का बकला, केले का मूल, निम्ब आदि कड़वे द्रव्य, उष्ण अन्न, जलप्राय देश में रहनेवाले पशुओं का मांस, जलचर पक्षियों का मांस, काली मछलियों में से शकुल मछली का मांस, ये सब सर्वथा त्याज्य हैं। अम्ल (खट्टे) द्रव्य, खट्टा दही और पापड़ी का शाक ये सब पदार्थ त्याज्य हैं। एवं स्त्री के साथ सम्भाषण भी न करना चाहिए। गुड़, खाँड़ और शक्कर आदि इक्षुविकार और ईख, इनका भी सेवन न करना चाहिये। करेले का पत्र, फल और डंठल आदि सब त्याज्य हैं। एवं घृत थोड़ा थोड़ा खाना चाहिए। भूख लगने पर भोजन अवश्य करना चाहिए। यदि आधी रात में भूख लगे, तो भी तत्काल भोजन करना चाहिए। यदि भोजन के समय के अतिक्रमण हो जाने से किसी प्रकार ज्वर आ जावे, अथवा दस्त होने लगे, तो दूध में समभाग जल अथवा अधिक जल मिला करके पकाकर पीना चाहिए। यदि वमन होता हो, तो नारियल का जल मिलाकर दूध पीवे। यदि स्वप्न दोष से धातु क्षीण होता हो, तो दूध पीना चाहिए। भूख है, या नहीं, इसका यदि ठीक परिज्ञान न हो, तो शरीर की प्रसन्नता, कुनकुनी और शिर की

पीना आदि से भूख का होना निश्चित करके भोजन कर लेना चाहिए। अधिक क्या रोगी को जब भोजन करने की इच्छा हो, तभी निर्भय होकर दुग्ध पिलाया करे। उक्त आहार-विहार के परित्याग करने से और अनुक्त आहार-विहार के सेवन करने से;-उस मनुष्य को विषम व्याधियाँ उपस्थित हो जाती हैं। इस कारण जो उक्त आहार-विहार आदि का निश्चय करके भोजन के विषय में सावधान रहकर, इसका सेवन करता है, उसको यह पर्पटी अवश्य लाभ-दायक होती है। यह रसपर्पटी बवासीर, अत्यन्त-दोष-युक्त ग्रहणी, शूल, अतीसार, कामला, पाण्डु रोग, अति दारुण, प्लीहा, गुल्म, जलोदर, भस्मक, आमवात, १८ प्रकार के कुष्ठ और सब प्रकार के शोथ आदि रोगों को नष्ट करती है। यह पर्पटी अम्लपित्त को शान्त, त्रिदोष का दमन, बुभुक्षा की वृद्धि और अग्नि को तत्काल दीप्त करती है।

एवं व्याधि-समूह को दूर करके पुरुष को वली (शरीर की त्वचा में झुर्रियाँ पड़ना), पलित (बाल पकना) रहित और दीर्घायु करती है। व्याधियों के प्रभाव का हरण और अपमृत्यु के भय को नष्ट करने से यह रसगंधक-पर्पटी अमृत की घटी (अमृत भरी कलशी) के समान है। अतएव यदि शिव और विष्णु का पूजन तथा अभिवादन करके इस रसगंधक पर्पटिका का सेवन करे, तो यह पर्पटी अत्यन्त लाभकारक होती है। यह उत्तम रस-पर्पटी श्रीवत्साङ्क (विष्णु) निर्मित है, अतएव यह निरंतर सेवित होने पर रोगियों को अवश्य आरोग्य करती है। विविध प्रकार का विषमरोग होने पर भी यथोक्त आचरण करना चाहिए। औषध सेवन करने के साथ ही निम्नलिखित क्षेत्रपाल-बलि आदि क्रियाओं को भी करना आवश्यक है। प्रत्यवाय की निवृत्ति के लिये प्रातःकाल स्वस्ति पुण्याहवाचन आदि मांगलिक कृत्यों को करके क्षेत्रपाल और योगिनी के अर्थ बलि देवे। औषध-भक्षण करने के पूर्व, क्षेत्रपाल और योगिनी के लिये मूल श्लोकों में कहे हुए सामान्य और विशेष बलि के मन्त्रों से बलि-प्रदान करनी चाहिए॥ ३७९-४१५॥

ताम्र पर्पटी।

प्रत्येकं दश गद्याणान शुद्धगन्धक सूतयोः। मृतताम्रस्य पञ्चैव खल्वेवं पञ्चविंशतिम्॥ ४१७॥ क्षिप्त्वा सम्मर्दयेत्तावद्यावन्निर्याति सत्वरम्। निर्धूमाङ्गारके वह्नौ लौहपात्रे घृताक्तके॥ ४१८॥ तावच्च स्थाप्यते यावत्तैलायो जायते रसः। प्रथमं कदली, श्रेष्ठा ह्यलाभे, पद्मिनीदलम्॥ ४१९॥ तदलाभे नागवल्लीकस्य च पत्रद्वयम्। गोमयोपरि निक्षिप्ते पत्रे तं ढालयेद्रसम्॥ ४२०॥ पुनर्दत्वाऽपरं पत्रं पत्रस्योपरि गोमयम्। रसं तं शीतलीभूतं खल्वे सूक्ष्मं हि पेषयेत्॥ ४२१॥ भृङ्गराज रसेनादौ दातव्याः सप्तभावनाः। आटरूपक पत्राणां स्वरसैः सप्तभावना॥ ४२२॥ कटुत्रयजलैः सप्त सप्तैवं त्रिफलाम्भसा। सप्तार्द्रकरसेनैवं सप्तपत्रकजैर्द्रवैः॥ ४२३॥ व्याघ्रीरसेन सप्तैव शिग्रुमूलरसेन च। वत्सनाभ विषेणैव श्रीखण्डे नैव सप्त च॥ ४२४॥ संशुष्कं च ततश्चूर्णं सूक्ष्मं सम्मर्दयेद्दृढम्। प्रक्षिपेत्कूप्यके चूर्णं सम्भिन्नाञ्जन सन्निभम्॥ ४२५॥ ताम्रपर्पटी संज्ञोऽयं रसं च परिकीर्तितः। रोगिणे प्रत्यहं देया वल्लयुग्मौ जलान्वितः॥ ४२६॥ त्रिभिर्दिनैर्ज्वरो याति श्लेष्मवातादि सम्भवः वातरक्ते ह्यजीर्णेषु ग्रहण्यां कुष्ठ रोगिषु॥ ४२७॥ मासेकेन निहन्त्याशु गदानेतान्मुदारुणान॥ ४२८॥

शुद्धपारा और गन्धक ५-५ तोले, ताम्रभस्म २॥ तोले लेकर घृताक्त लोहे की कड़ाही में गलाकर भैंस के ताजे गोबर पर रक्खे हुए केले के पत्ते पर उसे डाल दूसरे पत्ते से दबाकर ऊपर ताजा गोबर रख देवे। ठंडा होने पर निकाल महीन पीस भाँगरा, अडूसा, त्रिकुटा, त्रिफला, अदरख, पत्रज, भटकटैया, सहिजन की जड़, बच्छनाग, चन्दन इन सबके रसों से सात २ बार घोलकर ६-६ रत्ती की गोलियाँ बनाकर रखले अथवा चूर्ण ही रखे, इनमें से १-१ गोली जल के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देने से, श्लेष्म ज्वर, वातज्वर तीन दिन में मिट जाते हैं। वातरक्त, अजीर्ण, ग्रहणी और कुष्ठ रोग इसके सेवन से १ महीने में बिल्कुल अच्छे हो जाते हैं। विशेष अनुभूत है ॥ ४१७-४२८ ॥

लौहपर्पटी।

समौ गंधरसौ कृत्वा कज्जलीकृत्य यत्नतः। शुद्धलौहस्य चूर्णन्तु रसतुल्यं प्रदापयेत् ॥ ४२९ ॥ एकीकृत्य ततो यत्नाल्लौहपात्रे प्रमर्दितम्। घृतप्रलिप्तदर्व्यान्तु स्वेदयेन्मृदुनाग्निना ॥ ४३० ॥ द्रवीभूतं समाहृत्य ढालयेत् कदलीदले। चूर्णीकृत्य सुखार्थाय पथ्यभुग्भिः प्रसेव्यते ॥ ४३१ ॥ शीतोदकानुपानं वा क्वाथं वा धान्यजीरयोः। लौहेन पर्पटी ह्येषा भव्या लोकस्य सिद्धिदा ॥ ४३५ ॥ रक्तिकैकां समारभ्य वर्द्धयेत् रक्तिकां क्रमात्। सप्ताहं वा द्वयं वापि यावदारोग्यदर्शनम् ॥ ४३६ ॥ सूतिकाञ्च ज्वरञ्चैव ग्रहणीमतिदुस्तराम्। आमशूलातिसारांश्च पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ ४३७ ॥ प्लीहानमग्निमान्द्यञ्च भस्मकञ्च तथैव च। आमवातमुदावर्त्तं कुष्ठान्यष्टादशैवतु ॥ ४३८ ॥ एवमादींस्तथा रोगान् गराणि विविधानि च। हन्त्यनेन प्रयोगेण च पुष्पाग्निर्मलः सुखी ॥ ४३९ ॥ जीवेद्वर्षशतं पूर्णं वलीपलितवर्जितः। भोजनं रक्तशालीनां त्यक्त्वा शाकं विदाहि च ॥ ४४० ॥ आमवातप्रकोपञ्च चिन्तनं मैथुनं तथा। प्रातरुत्थाय संसेव्या विधिनायुः प्रवर्द्धिनी ॥ ४४१ ॥

१ तोला पारा और १ तोला गंधक की कज्जली बनाकर, उसमें १ तोला लौहभस्म मिला करके लौहपात्र में खरल करे। पश्चात् लोहे के कलछे में घी चुपड़कर, उसमें उक्त कज्जली को डालकर, मंद-मंद आँच दे। जब कज्जली द्रुत हो जाय, तब गौ के गोबर पर केला का पत्ता रखकर उस पर कज्जली की द्रुति को पतली-पतली फैला दें और उसके ऊपर भी केले के पत्ता से ढाँकदर, उसके ऊपर गोबर रख दे। दो घटे के बाद दोनों पत्तों के बीच में पापड़ के समान जमी हुई लौहपर्पटी को निकालकर चूर्ण कर लेवे। १ रत्ती से आरम्भ करके प्रतिदिन १ रत्ती परिमित मात्रा बढ़ावे। इस प्रकार एक सप्ताह अथवा दो सप्ताह तक अर्थात् आराम होने तक सेवन करना चाहिए। अनुपान—शीतल जल अथवा जीरा और धनियाँ का क्वाथ देवे। पथ्य भोजन करना चाहिये। यह "लौहपर्पटी" सूतिकारोग, ज्वर, असाध्य ग्रहणीरोग, आमशूल, अतीसार, पाण्डुरोग, कामला, प्लीहा, अग्निमान्द्य, भस्मक, आमवात, उदावर्त और १८ प्रकार के कुष्ठ आदि विविध रोगों और विषदोषों को नष्ट करती है। इस 'लौहपर्पटी' का सेवन करनेवाला मनुष्य कान्तिमान्, सुखी, वली और पलित से रहित होकर सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहता है। औषध सेवन के समय रक्त शालीधान के चावलों का भात, विदाहि शाक आदि द्रव्य, आम-द्रव्य (कच्ची वस्तु) का सेवन, वायुसेवन, क्रोध, चिन्ता और मैथुन; ये सब त्याज्य हैं। इस आयु बढ़ानेवाली पर्पटी' का प्रातःकाल विधिपूर्वक सेवन करना चाहिए ॥ ४२९-४४१ ॥

स्वर्णपर्पटी।

रसोत्तमं पलं शुद्धं हेमतोलकसंयुतम्[1]। शिलायां मर्दयेत्तावद्यावदेकत्वमागतम् ॥ ४४२ ॥ गन्धकस्य पलञ्चैकमयः पात्रे ततो दहे। मर्दयेद्दृढपाणिभ्यां यावत्कज्जलतां व्रजेत् ॥ ४४३ ॥ ततः पर्पटि[2] विधानज्ञः पर्पटीं कारयेत्सुधीः। रक्तिकादिक्रमेणैव योजयेदनुपानतः ॥ ४४४ ॥ ग्रहणीं विविधां हन्ति यक्ष्माणञ्च विशेषतः। शूलमष्टविधं हन्ति वृष्या सर्वरुजापहा ॥ सर्वज्वरोपहन्त्री च नाम्नेयं स्वर्णपर्पटी ॥ ४४५ ॥

(अत्र हेम्नोऽष्टभागित्वमुपलक्षणमिति प्रामाणिकाः)

पारा ४ तोले, गंधक ४ तोले और स्वर्ण भस्म आधा तोला, इन तीनों को खरल में घोट करके उत्तम कज्जली बना लेवे। पश्चात् लोह की कड़ाही में कज्जली को डालकर, मंद मंद आँच में पकावे। जब कज्जली द्रुत हो जाय, गौ के गोबर पर केला का पत्ता रखकर उस पर कज्जली की द्रुति को पतली पतली फैला देवे और उसके ऊपर भी केला का पत्ता ढाककर, ऊपर गोबर रख देवे। दो घंटे के बाद दोनों पत्तों के बीच में पापड के समान जमी हुई स्वर्ण-पर्पटी को निकाल लेवे। इस 'स्वर्ण-पर्पटी' की मात्रा एक रत्ती से प्रारम्भ करके, प्रतिदिन एक एक रत्ती बढ़ाकर, एक मासपर्यंत देवे। दोषानुसार अनुपानके साथ सेवन करने से यह 'स्वर्ण पर्पटी' विविध प्रकार के ग्रहणी-रोग, विशेषत क्षय, आठ प्रकार के शूल और सब प्रकार के ज्वरों को नष्ट करती है। यह वीर्यवर्द्धक है ॥ ४४२-४४५ ॥

१ तोलकशब्द शब्दमालायां कोलरूपे परिमाणे प्रयुक्तः। लीलावतीवैद्यकसंग्रहयोस्तु कर्ष प्रयुक्तो दृश्यते। अत्र तु कोलाऽपरपर्याय एव गृह्यते, स्वर्णपर्पट्यां पारदाऽष्टमांशस्यैव हेम्नो ग्राह्यत्वात्। क्वचिच्चतुर्थांशस्यापि हेम्नो ग्रहण विद्यते।

२ 'पाकं' इति पाठान्तरम्।

पञ्चामृत पर्पटी।

अष्टौ गन्धकतोलका रसदलं लौहं तदर्द्धं शुभं, लौहार्द्धञ्च वराभ्रकं सुविमलं ताम्रं तथार्द्धिकम्। पात्रे लौहमये च मर्दनविधौ चूर्णीकृतञ्चैकतो, दर्व्या बादरवह्निनातिमृदुना पाकं विदित्वा दले ४४६॥ रम्भाया लघु ढालयेत् पदुरयं पञ्चामृता पर्पटी, ख्याता क्षौद्रघृतान्विता प्रतिदिनं गुञ्जाद्वयं वृद्धितः। लौहे मर्दनयोगतः सुविमलं भक्ष्यक्रिया लौहवद्, गुञ्जाष्टावथवा त्रिकं त्रिगुणितं सप्ताहमेवं भजेत्॥ ४४७ ॥ नानावर्णग्रहण्यामरुचसमुदये दुष्टदुर्नामकादौ, छर्द्यां दीर्घातिसारे ज्वरभयकसिते रक्तपित्ते क्षयेऽपि। वृष्याणां वृष्यराशीवलिपलितहरा नेत्ररोगैकहन्त्री, तुन्दं दीप्तस्थिराग्निं पुनरपि नवकं रोगिदेहं करोति ॥ ४४८ ॥

(रसदलं गन्धकार्द्धमित्यर्थः। दीर्घातिसारे चिरोत्थितातिसारे।)

गंधक ८ तोले और पारा ४ तोले, इनकी कज्जली बनाकर उसमें २ तोले लौहभस्म, १ तोला अभ्रक भस्म और आधा तोला ताम्र भस्म मिलाकर, लोहे के खरल मे भलीभांति मर्दन करे। पश्चात् इस कज्जली को लोहे के कलछे या कड़ाही में डालकर बेर की लकड़ी की अत्यंत धीमी आंच दे। जब कज्जली पतली हो जाय, तब गौ के गोबर पर कला का पत्ता रखकर, उस पर कड़ाही की कीचड़ के समान दवा को इस प्रकार से लीप देवे, जिसमें पापड़ सा बन जाय। उसके ऊपर भी केले के

पत्ते से ढाककर, ऊपर गोपर रख देवे। दो घड़े के अनन्तर दोनों पत्तों के बीच में पापड के समान जमी हुई 'पञ्चामृत पर्पटी' को निकाल लेवे। पश्चात् लोह के खरल में घोटकर रख लेवे। इसकी मात्रा–२ रत्ती है। प्रतिदिन घृत और मधु के साथ सेवन करे। प्रतिदिन एक एक रत्ती की मात्रा बढा करके, ८ या ९ रत्ती पर्यन्त सेवन करना चाहिए। एक सप्ताह सेवन करने से विविध प्रकार के ग्रहणीरोग, अरुचि, कुष्ठ, बवासीर, वमन, पुराना अतीसार, ज्वर, कास, रक्तपित्त और क्षय आदि सब रोग नष्ट होते हैं। यह 'पर्पटी' बल और वीर्य को बढाती है, तथा वली (शरीर की झुर्रियां), पलित (बाल सफेद हो जाना) और नेत्र के रोगों को दूर करती है। एवं अग्नि को प्रदीप्त करके, रोगी के शरीर को फिर स्थूल तथा नूतन बना देती हैं॥ ४४६ ४४८॥

विजयपर्पटी।

गन्धकं स्रुतं कृत्वा भाव्यं भृङ्गरसेन तु। सप्तधारा त्रिधा वापि पश्चात्तच्छुष्कं विचूर्णयेत् ॥ ४४९ ॥ चूर्णयित्वायसे पात्रे कृत्वा वह्निगतं सुधीः। द्रुतं भृङ्गरसे क्षिप्तं तत उद्धृत्य शोषयेत् ॥ ४५० ॥ तच्च गन्धं पलञ्चैकं गन्धार्द्धं शुद्धपारदम्। सूतार्द्धं भस्मरौप्यञ्च तदर्द्धं स्वर्णभस्मकम् ॥ ४५१ ॥ तदर्द्धं मृतवैक्रान्तं मौक्तिकञ्च विनिक्षिपेत्। एकीकृत्य ततः सर्वं कुर्य्यात् पर्पटिकां शुभाम् ॥ ४५२ ॥ लौहपात्रे समरसं मर्दितं कज्जलीकृतम्। बदराङ्गारवह्निस्थे लौहपात्रे द्रवीकृते ॥ ४५३ ॥ मयूरचन्द्रिकाकारं लिङ्गं वा यदि दृश्यते। आद्ययोर्दृश्यते सूतः खरपाके न दृश्यते। मृदौ[1] न सम्यग्भङ्गः स्यान्मध्ये भङ्गश्च रूप्यवत् ॥ ४५४ ॥ खरे लघु भवेद्भङ्गो रूक्षः सूक्ष्मोऽरुणच्छविः। मृदुमध्यौ तथा खाद्यौ खरस्त्याज्यो विषोपमः ॥ ४५५ ॥ जराव्याधिशताकीर्णं विश्वं दृष्ट्वा पुरा हरः। चकार पर्पटीमेतां यथा नारायणोऽमृतम् ॥ ४५६ ॥ आदौ शङ्करमभ्यर्च्य द्विजातीन् प्रणिपत्य च। प्रभाते भक्षयेदेनां माषं रक्तिद्वयसम्मिताम् ॥ ४५७ ॥ रक्तिकादिक्रमाद् वृद्धिर्भक्ष्या नैव दशोपरि। आरोग्यदर्शनं यावत्तावद् ह्रासस्ततः परम् ॥ ४५८ ॥ अजीर्णे भोजनं नैव पथ्यकालव्यतिक्रमः। घृतसैन्धवधन्याकहिङ्गुजीरकनागरैः ॥ ४५९ ॥ शस्यते व्यञ्जनं सिद्धं पित्ते स्याद्वम्लमाक्षिकम्। कृष्णमत्स्येन मुद्गेन मांसेन जाङ्गलेन च ॥ ४६० ॥ जाङ्गलेषु शशच्छागौ मत्स्ये रोहितमद्गुरौ। पटोलपत्रञ्च तथा कृष्णवार्त्ताकुनालिकाः[1] ॥ ४६१ ॥ सुस्विन्नपूगैस्ताम्बूलैर्लाभे कर्पूरसयुतैः। क्षुधाकाले व्यतिक्रान्ते यदि वायुः प्रकुप्यति ॥ ४६२ ॥ भिञ्झिनीति गिरःशूले विरेके वमथौ तथा। तृष्णायाञ्चाधिके पित्ते नारिकेलाम्बु निर्भयम् ॥ ४६३ ॥ नारिकेलपयः पेयं निर्भयं क्षीरमेव च। स्वप्ने शुक्रच्युतौ चैव चम्पकं कदलीदलम् ॥ ४६४ ॥ वर्ज्यं निम्बादिकं शाकं शाकाम्लकाञ्जिकं सुराम्। कदलीफलपत्राद्यं त्रपुषालाबुकर्कटी[2] ॥ ४६५ ॥ कूष्माण्डं कारवेल्लञ्च व्यायामजागरं निशि। न पश्येन्न स्पृशेद् गच्छेन् स्त्रियं जीवि-

१—आद्ययोर्दृश्यते सूतः खरपाके न दृश्यते। इति ग्रन्थान्तरेऽधिक पाठः।

१—नालिका–महाकोशातक्याम्, हि० नेनुआ।
२—त्रपुषा त्रपुकर्कटयम्, हि० खीरा।

तुमिच्छति ॥ ४६६ ॥ यद्यौषधे स्त्रियं गच्छेत् कर्त्तव्या तु प्रतिक्रिया। दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति दुःसाध्यां बहुवार्षिकीम् ॥ ४६७॥ आमशूलमतीसारं सामञ्चैव सुदारुणम्। अतिसारं पडर्शांसि यक्ष्माणं सपरिग्रहम् ॥ ४६८ ॥ शोथञ्च कामलां पाण्डुं प्लीहानञ्च जलोदरम्। पक्तिशूलं चाम्लपित्तं वातरक्तं वमिं क्रिमिम्। अष्टादशविधं कुष्ठं प्रमेहान् विषमज्वरान् ॥ ४६९ ॥ वातपित्तकफोत्थांश्च ज्वरान् हन्ति सुदारुणान्। जीर्णोऽपि पर्पटीं कुर्वन् वपुषा निर्मलः सुधीः ॥ जीवेद्वर्षशतं श्रीमान् वलीपलितवर्जितः ॥४७०॥ प्रातः करोति सततं नियतं द्विगुञ्जां यस्तां स विन्दति तुलां कुसुमायुधस्य। आयुश्च दीर्घमनघं वपुषः स्थिरत्वं हानिं वलीपलितयोरतुलं बलञ्च ॥ ४७१ ॥

चावलों के समान गंधक के छोटे-छोटे टुकडे करके, ७ बार या ३ बार भँगरा के रस की भावनाएँ देवे। और प्रतिवार धूप में रखकर शुष्क करे। पश्चात् धूल के समान चूर्ण बनाकर लोह के पात्र में रखकर बेर की लकडी के निर्धूम अगारों की आँच से गलाकर, भँगरा में के रस में डाल देवे। तदनतर निकालकर शुष्क कर लेवे। इस प्रकार शुद्ध किया हुआ गंधक ४ तोले, पारद २ तोले, चाँदी की भस्म १ तोला, स्वर्ण भस्म आधा तोला (६ माशे), वैक्रान्त भस्म ६ माशे और मुक्ता (मोती) ६ माशे, इन द्रव्यों को मिलाकर, लोह के खरल में यत्न पूर्वक मर्दन करके उत्तम कज्जली बना लेवे। पश्चात् उस कज्जली को लोह की कडाही में डालकर, बेर की लकडी के अगारों की आँच से पिघला कर पतली करे। जब गली हुई कज्जली में मयूर पिच्छ की चन्द्रिका के समान कान्ति देख पड़ने लगे, तब पाक को सिद्ध समझे। पश्चात् गौ के गोवर पर केला का पत्ता रखकर, उस पर कज्जली की द्रुति को पतली-पतली फैला दे, और उसके ऊपर भी केले के पत्ते को रख करके, उसके ऊपर गोवर रख देवे। दो घंटे के बाद दोनों पत्तों के बीच में पापड़ के समान जमी हुई 'विजयपर्पटी' को निकाल लेना चाहिये।

कज्जली का पाक मृदु, मध्य और खर, इन भेदों से तीन प्रकार का होता है। मृदु पाक होने पर पर्पटी उत्तम रूप से भस्म नहीं होती। मध्य पाक होने पर चाँदी के समान टुकडे होते हैं। परंतु खर पाक में लघु, रूक्ष, सूक्ष्म और रक्तवर्ण के टुकड़े होते हैं। मृदु और मध्य पाक की पर्पटी सेवन करने-योग्य होती है। खर पाक की कज्जली विष के समान त्याज्य है। श्रीशङ्करजी ने संसार के प्राणियों को जरा और व्याधि से पीड़ित देख करके इस 'पर्पटी' को बनाकर इस प्रकार प्रकाशित किया था, जैसे विष्णु ने अमृत को आविष्कृत करके देवताओं को दिया था। अतएव पहले शिवजी का पूजन करके ब्राह्मणों को प्रणाम करे, तदनतर प्रतिदिन प्रातःकाल इस औषध का सेवन करना चाहिये।

पहले दिन प्रातःकाल दो रत्ती की मात्रा रक्खे। तदनतर प्रतिदिन एक एक रत्ती की मात्रा बढा करके दस रत्तीपर्यन्त सेवन करनी चाहिये। दस रत्ती से अधिक मात्रा में सेवन करना उचित नहीं है। इस प्रकार जब तक आरोग्यता प्राप्त न हो, तब तक सेवन करना चाहिये। आरोग्यता प्राप्त होने पर क्रमशः मात्रा कम कर देनी उचित है। अजीर्ण में भोजन अथवा भोजनकाल के समय को छोड़कर भोजन न करे। घृत, लौहौरी नमक, धनियाँ, हींग, जीरा और सोंठ मिलाकर सिद्ध किये हुए खट्टे पदार्थ खाने चाहिये और पित्ताधिक्य में मधुर और खट्टे पदार्थों का तथा मधु का सेवन करना चाहिये। काली मछली, दूध और जंगली पशुओं के मांस के साथ भोजन करे। जंगली पशुओं में खरगोश और बकरा, मछली में रोहू और माँगुर तथा शाकों में परवल की पत्तियाँ, फल, काला बैंगन और बथुआ सेवन

करने योग्य है। यदि मिल सके, तो उबालकर कोमल की हुई सुपारी और कपूर से युक्त पान का बीड़ा भी खावे। भूख लगने पर भोजन न करने से यदि वायु कुपित हो जाय तथा देह में झुनझुनी, शिर में पीड़ा, अतिसार, वमन, अधिक तृष्णा और पित्त की वृद्धि हो, तो निर्भय होकर नारियल का पानी पिलाना चाहिये। पेय पदार्थों में नारियल का पानी और प्रतिदिन दूध का सेवन करे। स्वप्न में धातु क्षीण होने पर भी दुग्ध का पीना लाभदायक है। चम्पक, कदलीदल, बिल्व आदि तिक्त द्रव्यों का शाक, इमली, काँजी, मदिरा, केले के फल, पत्र और मूल, खीरा, घीयां, ककड़ी और पेठा इनका सेवन न करना चाहिये। व्यायाम और रात्रि का जागरण भी वर्जित है। यदि जीवन की इच्छा हो, तो औषध के सेवनकाल में स्त्री को न देखे, और न स्पर्श करे और न उसके पास जावे। यदि कदाचित् दुर्भाग्यवश स्त्री-समागम हो ही जाय, तो यथोचित-रूप से उसका प्रतीकार करना चाहिये। यह 'पर्पटी' कठिन एवं दुःसाध्य और बहुत दिनों के पुराने ग्रहणी-रोग, आमशूल, अतीसार, ३ प्रकार के बवासीर, उपद्रव-युक्त यक्ष्मा, शोथ, कामला, पाण्डु, प्लीहा, जलोदर, परिणामशूल, अम्लपित्त, वातरक्त, वमन, कृमि, अठारह प्रकार के कुष्ठ, प्रमेह, विषमज्वर, वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक ज्वर आदि अनेक प्रकार की व्याधियों को नष्ट करके शरीर की पुष्टि, रति-शक्ति की वृद्धि, वली पलित शून्यता (शरीर की झुर्रियाँ, बालों की सफेदी रहित) और परमायु की वृद्धि करती है ॥ ४५१-४७१ ॥

तन्त्रान्तरोक्तविजयपर्पटी ।

रसंवज्रं हेमतारं मौक्तिकं ताम्रमभ्रकम्। सर्वतुल्येन गन्धेन कुर्य्याद्विजयपर्पटीम् ॥ ४७२ ॥ दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति दुःसाध्यां बहुवार्षिकीम् । आमशूलमतीसारं चिरोत्थमतिदारुणम् ॥ ४७३ ॥ प्रवाहिकां पर्शांसि यक्ष्माणं सपरिग्रहम् । शोथं च कामलांपाण्डुंप्लीहगुल्मजलोदरम् ॥४७४॥ पंक्तिशूलमम्लपित्तं वातरक्तं वर्मि भ्रमम् । अष्टादशविधं कुष्ठं प्रमेहान् विषमज्वरान् ॥ ४७५ ॥ चतुर्विधमजीर्णञ्च मन्दाग्नित्वमरोचकम् । जीर्णोऽपि पर्पटीं कुर्वन् वपुषा निर्मलः सुधीः ॥ जीवेद्वर्षशतं श्रीमान् वलीपलितवर्जितः ॥ ४७६ ॥ प्रातः करोति सततं नियतं द्विगुञ्जां यस्तां स विन्दति तुलां कुसुमायुधस्य। आयुश्च दीर्घमनघं वपुषः स्थिरत्वं हानिं वलीपलितयोरतुलं बलञ्च ॥ ४७७ ॥ जराव्याधिसमाकीर्णं विश्वं दृष्ट्वा पुरा हरः । चकार पर्पटीमेतां यथा नारायणः सुधाम् ४७८॥

पारा, हीरा की भस्म, सोना की भस्म, चाँदी की भस्म, मोती की भस्म, ताम्रभस्म और अभ्रकभस्म प्रत्येक एक-एक तोला तथा गंधक सात तोले; इनको एकत्र करके विधिपूर्वक घोटना चाहिये और पहिली कही विधि से 'विजय-पर्पटी' को बना लेवे। यह "विजय पर्पटी" कठिन और बहुत पुराने ग्रहणीरोग, आमशूल, पुराने अतीसार, प्रवाहिका, ६ प्रकार के बवासीर, उपद्रव-युक्त-यक्ष्मा, शोथ, कामला, पाण्डु, प्लीहा, गुल्म, जलोदर, परिणामशूल, अम्लपित्त, वात-रक्त, वमन, भ्रम, १८ प्रकार के कुष्ठ, प्रमेह, विषमज्वर, ४ प्रकार के अजीर्ण, अग्निमान्द्य और अरोचक आदि अनेकों प्रकार के रोगों को नष्ट करके शरीर की पुष्टि, कान्ति-वृद्धि, रति-शक्ति की वृद्धि, शरीर की झुर्रियों और बालों की सफेदी का नाश और परमायु की वृद्धि करती है। इसे पहले शिवजी ने संसार को बुढ़ापा और बीमारी से पीड़ित देखकर, इस प्रकार प्रचलित किया था, जैसे विष्णु ने अमृत का आविष्कार करके देवताओं को दिया था। इसकी मात्रा २ रत्ती की है। प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करना चाहिये ॥४७२-४७८॥

---

१ कृमिमिति पाठान्तरम् ।

हिरण्यगर्भपोट्टली रस।

एकांशो रसराजस्य ग्राह्यो द्वौ हाटकस्य च। मुक्ताफलस्य चत्वारो भागः षड्दीर्घनिःस्वनात् ॥ ४७६ ॥ त्र्यंशं पलेर्वराटयाश्च टङ्कनो रसपादिकः। पक्वनिम्बुकतोयेन सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥४८०॥ मूषामध्ये न्यसेत् कल्कं तस्य वक्त्रं निरोधयेत्। गर्तेऽरत्निप्रमाणेन पुटेत् त्रिंशद्वनोपलैः ॥ ४८१ ॥ स्वाङ्गशीतलतां ज्ञात्वा रसं मूषोदरान्नयेत्। ततः खल्लोदरे मर्द्य सुधारूपं समुद्धरेत् ॥ ४८२ ॥ एतस्यामृतरूपस्य दद्याद् द्विगुञ्जसम्मितम्। घृतमाध्वीकसंयुक्तमेकोनत्रिंशदूषणैः ॥४८३॥ मन्दाग्नौ रोगसंघे च ग्रहण्यां विषमज्वरे। गुदाङ्कुरे महामूले पीनसे श्वासकासयोः ॥ ४८४ ॥ अतीसारे ग्रहण्याञ्च श्वयथौ पाण्डुके गदे। सर्वेषु कोष्ठरोगेषु यकृत् प्लीहादिकेषु च ॥ ४८५ ॥ वातपित्तकफोत्थेषु द्वन्द्वजेषु त्रिजेषु च। दद्यात् सर्वेषु रोगेषु श्रेष्ठमेतद्रसायनम् ॥४८६॥

पारा १ तोला, स्वर्ण-भस्म २ तोले, मोती-भस्म, ४ तोले, काँसा भस्म ६ तोले, गंधक ३ तोले, कौड़ी की भस्म ३ तोले और सोहागा फूला हुआ ३ माशे इन सब द्रव्यों को एकत्र करके, पके नींबू के रस में खरल करे। पश्चात् इस कल्क को मूषा यन्त्र में रखकर, मूषा-यन्त्र का मुख मुद्रित करके वृहत्पुट में ३० कंडियों की आँच देकर यथाविधि पुटपाक करे। स्वाङ्गशीतल होने पर रस को मूषा-यन्त्र से निकालकर, खरल में घोटकर रख लेवे। अमृतरूप इस रस की मात्रा २ रत्ती की है। घी मधु और २९ मिर्च के साथ सेवन करना चाहिए। अग्निमान्द्य, ग्रहणीरोग, विषम-ज्वर, असाध्य बवासीर, पीनस, श्वास, कास, अतीसार शोथ, पाण्डु और सब प्रकार के कोष्ठरोग, यकृत् और प्लीहा आदि रोगों में तथा अन्यान्य सब प्रकार के वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, द्वन्द्वज और सान्निपातिक रोगों में यह 'हिरण्यगर्भपोटलीरस' अत्यन्त लाभदायक और श्रेष्ठ रसायन है ॥ ४७८-४८६ ॥

तक्रारिष्ट।

यमान्यामलकं पथ्या मरिचं त्रिपलांशिकम्। लवणानि पलांशानि पञ्च चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ४८७ ॥ तक्रकं संयुतं जातं तक्रारिष्टं पिबेन्नरः दीपनं शोथगुल्मार्शः कृमिमेहोदरापहम् ॥ ४८८ ॥

अजवाइन, आँवला, हड़ और मिर्च प्रत्येक बारह-बारह तोला, पाँचों नमक प्रत्येक चार चार तोला; इन सब द्रव्यों को एकत्र करके चूर्ण बनावे। पश्चात् इस चूर्ण को १६ सेर तक्र में मिलाकर ४ दिन पर्यंत रख छोड़े। इसका नाम 'तक्रारिष्ट' है। यह 'तक्रारिष्ट' अग्नि को दीप्त तथा शोथ, गुल्म, बवासीर, कृमिरोग, प्रमेह और उदररोगों को नष्ट करता है मात्रा ४ तोला ॥ ४८७-४८८ ॥

पिप्पल्यादि आसव।

पिप्पली मरिचं चव्यं हरिद्रा चित्रको घनः। विडङ्गं क्रमुको लोध्रः पाठा धात्र्येलवालुकम् ॥ ४८९ ॥ उशीरं चन्दनं कुष्ठं लवङ्गं तगरं तथा। मांसी त्वगेलापत्रञ्च प्रियङ्गु नागकेशरम ॥ ४९० ॥ एषामर्द्धपलान् भागान् सूक्ष्मचूर्णीकृताञ्छुभान्। जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा दद्याद् गुडतुलात्रयम् ॥ ४८१ ॥ पलानि दश धातक्या द्राक्षा षष्टिपला भवेत्। एतान्येकत्र संयोज्य मृदो भाण्डे विनिक्षिपेत् ॥४९२॥ ज्ञात्वा रसगतं सर्वं पाययेदग्न्यपेक्षया। क्षयं गुल्मोदरं कार्श्यं ग्रहणीं पाण्डुतां तथा ॥५३०॥

अर्शांसि नाशयेच्छीघ्रं पिप्पल्याद्यासवस्त्वयम् ॥ ४६४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां ग्रहण्यधिकारः समाप्तः ।

पीपल, मिर्च, चव्य, हल्दी, चीता, नागरमोथा, बायबिडंग, सुपारी, लोध, पाढ़ी, आँवला एलबालुक (सुगन्धद्रव्य) खस, लालचंदन, कूट, लौंग, तगर, जटामांसी, दालचीनी, छोटी इलायची के बीज, तेजपात, फूलप्रियंगु और नागकेसर, प्रत्येक को दो-दो तोले लेवें। इनका महीन चूर्ण करके २५ सेर ४८ तोला जल में मिलाकर पन्द्रह सेर गुड़, ४० तोला धाय के फूल और ३ सेर मुनक्का डालकर, मिट्टी के पात्र में रखकर, पात्र का मुख मुद्रित करके, एक मासपर्यन्त रख छोड़े। पश्चात् छानकर बोतलों में भरकर रख लेवे। अग्नि के बल का विचार करके मात्रा स्थिर करनी चाहिये। यह "पिप्पल्याद्यासव" क्षय, गुल्म, उदर, कार्श्य, ग्रहणीरोग, पाण्डु और बवासीर को तत्काल नष्ट करता है ॥ ४८६-४६४ ॥

ग्रहणी रोग में पथ्य ।

निद्राच्छर्दन लंघनं चिरभवा ये शालयः षष्टिकः । मण्डोलाजकृतो मसूर तुवरो मुद्गप्रसूतारसः । निःशेषोद्धृतसारमेव दधि यत्सत्तीर जातेगवांछाग्या । वानवनीतमेवदधिजं तद्वत्पयः संभवम् ॥ ४६५ ॥ छागाल्याज्य पयोदधीनि तिलजे तैलं सुरा मासिकं । शालूकं वकुलं च दाडिमयुगं मत्स्यानि मत्स्यानि च ॥ रामाभ्यः कुसुमं फलं चतरुणं विल्वं च शृंगाटकं चांगेरी विजया कपित्थ कुटजा नागकेसरमेव च ॥ ४६६ ॥ तक्रं काञ्चट सौनिषण्णकं जातीफलं जाम्बवं। धान्याकानि च तिन्दुकानि चमद्दानिम्बोऽरुणा पेलवम् ॥४६७॥ कृत्याल्लाव शशैण निन्तिडरसः क्षुद्राभ्रुपः सर्वतः । खुड्डीशो मधुरालिका च खलिशः सर्व कषायो रसः ॥ ४६८ ॥ नाभेद्व्यंगुल कादयोर्ध्वं शशि वा द्वंशास्त्रियुपे तथा, दाहः प्रज्वलितायसायकथितं पथ्यं ग्रहण्यातुरे ॥ ४६८ ॥

सोना, वमन, उपवास, पुराने शाली चावल, पुराने साठी चावल, खीलों का मांड, मसूर, अरहर और मूँग का रस, मक्खन निकला हुआ, गौ बकरी का दही, बकरी का मक्खन घी, बकरी का दही दूध, तिल का तैल, मदिरा, शहद, कमलकंद, मौलसिरी, दोनों प्रकार के अनार, लिसोड़े नए, केला के फूल फल नए कच्चे बेलफल, सिंघाड़ा, चाँगेरी भाँग, कैथ, कुड़ा की छाल जीरा, कसेरू, छाछ, जव, चौलाई की पत्ती, चौपतिया, जायफल, जामुन, धनियां, नागकेसर, बकायन, मजीठ, पेलव, मांसाहारी पक्षियों का मांस, खरगोश, पयातीतर का मांसरस, सब प्रकार की छोटी २ मछलियां, खुड्डीशर खास प्रकार की मछली जो थोड़ी देर तक उड़ती रहती है, मधुरालिका (खास तरह की मछली) सब प्रकार के कसैले द्रव्य नाभि के दो अंगुल नीचे तथा दो अंगुल ऊपर रीढ़ की हड्डी में लोहे से अर्द्धचिन्ह आकार में दाग देना ग्रहणी रोग में पथ्य है ॥ ४६५-४६८ ॥

ग्रहणी रोग में अपथ्य ।

रक्त स्रुति जागरमम्बुपानं स्नान स्त्रियं इंद्रियनिग्रहं च । नस्याञ्जन स्वेदन धूम्रपानं श्रम विरुद्धाशन मातपं च । गोधूम निष्पावकलायमाषयवार्द्रकच्छत्रक राजमाषाम् । उपोदिका वास्तुक काकमाची कूष्माण्ड तुंबी मधु शिग्रुकन्दान् ॥४६६॥ ताम्बूलमिक्षु बदरं रसालभेर्वारुकं पूगफलं रसोनम् । धान्याम्ल सौवीर

तुपोदकानि दुग्धं गुडं मस्तु च नारिकेलम् पुनर्नवार्थोहत वैणवाणि च यलवन्ति ॥ ५०० ॥ दुष्टाम्बु गीवरि कुरङ्ग नार्कक्षारं सराणिचापि द्राक्षामथाम्यं लवणं सरंच । गुर्वन्न पानं सकले च यूपम् वैद्यश्चिकित्सन्ग्रहणी विकारं विवर्जयत्संततमप्रमत्तः ॥ ५०१ ॥

फसद खोलना, रात में जगना, अत्यन्त जल पीना, नहाना, स्त्रीसंसर्ग, मलमूत्र आदि के वेग को रोकना नस्यकर्म, सुरमा लगाना, स्वेदन, धूम्रपान, परिश्रम करना, विरुद्ध भोजन, धूप पर आग से तापना, गेहूँ, सफेद सेम की फली, मटर, उड़द, जौ, अदरख, छतवन, चौलाई, पोई का साग, बथुआ, मकोय, पेठा और काशीफल, तुम्बी, मीठा सहजना, आलू अरई आदि कंद पान, ईख, बेर, आम, ककड़ी, खीरा, सुपारी, लहसुन काँजी सौवीर (जौमेदू की फली) तुपोदक कच्चे जौ की बनी काँजी, दूध दही का तोड़, गुड़ नारियल की गिरी और जल, सोंठी कटेरी, बांस के अंकुर, सब प्रकार के पत्तों के शाक, दूषित जल, गोमूत्र, कस्तूरी जवाखार आदि सार, सब प्रकार की दस्तावर वस्तुएँ, दारु, आमचूर आदि की खटाई, नमक, आदि देर से पचनेवाले आहार पूआ-पूरी आदि पकवान सब ग्रहणी के रोगी को हानिकारक हैं ॥ ४११-५०१ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां ग्रहण्यधिकारः समाप्तः ।

अथ कृम्यधिकारः

पारसीययमानी पीता पर्युषितवारिणा प्रातः । गुडपूर्वा कृमिजातं कोष्ठगतं पातयत्याशु ॥ १ ॥

गुडपूर्वा प्रथमतो गुडं भक्षयित्वा मनाक् विलम्बं कृत्वा पातव्या ।

प्रातःकाल पहले थोड़ा गुड़ खाकर थोड़ी देर के बाद खुरासानी अजवाइन को बासी पानी के साथ खाने से कोष्ठगत सब प्रकार के कृमि शीघ्र गिर जाते हैं । मात्रा-२ रत्ती से ६ रत्ती तक ॥ १ ॥

पारिभद्रकपत्रोत्थं रसं क्षौद्रयुतं पिबेत् । केबुकस्य रसं वापि पत्तूरस्याथवा[1] पुनः ॥ लिह्यात् क्षौद्रेण वैडङ्गं चूर्णं कृमिहरं परम् ॥ २ ॥

शहद मिलाकर फरहद के पत्ते का रस, केमुआँ के पत्ते का रस अथवा पत्तूर के पत्तों का रस पीने से अथवा शहद के साथ वायविडंग के चूर्ण को चाटने से भी उदर के भीतर के कृमि नष्ट हो जाते हैं मात्रा २ तोला ॥ २ ॥

मुस्ताखुपर्णी फलशिग्रु दारुक्वाथः सकृष्णाकृमिशत्रु कल्कः । मार्गद्वयेनापि चिरप्रवृत्तान् कृमीन्निहन्ति कृमिजांश्च रोगान् ॥ ३ ॥

नागरमोथा, मूसाकानी, त्रिफला, सहिजन की छाल और देवदारु के क्वाथ में एक-एक माशे पीपल और वायविडंग का कल्क मिलाकर पान करे, दोनों मार्गों से प्रवृत्त हुए चिरकालिक कृमि और कृमिजन्य अन्यान्य रोग नष्ट हो जाते हैं मात्रा ४ तोला ॥ ३ ॥

फलत्रिक ।

पलाशबीजस्वरसं पिबेद्वा क्षौद्रसंयुतम् । पिबेत्तद्बीजकल्कं वा तक्रेण कृमिनाशनम् ॥ ४ ॥

शहद मिलाकर पलाश के बीजों के स्वरस

१—यह शाक विशेष है । इसको बंगाल में शालिच कहते हैं ।

२—मन्दारविशेषो निम्बोऽपि गृह्यते तेन ।

को अथवा तक्र[1] में घोलकर ढाक के बीजों के कल्क को पीने से उदर के भीतर के कृमि नष्ट होते हैं मात्रा स्वरस २ तोला कल्क ६ मा १ तोला ॥ ४ ॥

क्वाथं खर्जूरपत्राणां सक्षौद्रमुषितं निशि। पीत्वा निवारयत्याशु कृमिसङ्घमशेषतः ॥ ५ ॥

खजूर के पत्तों के बासी क्वाथ को शहद मिलाकर पान करे, तो समस्त कृमि तत्काल नष्ट हो जाते हैं मात्रा ४ तोला ॥ ५ ॥

अपक्वं क्रमुकं पिष्टं पीतं जम्बीरजै रसैः। निहन्ति विड्भवं कीटं रसः खर्जूरजम्भयोः ॥ ६ ॥

दो माशे कच्ची सुपारी को पीसकर दो तोले नीबू के रस में घोलकर पीने से अथवा चार तोले खजूर की पत्तियों के स्वरस में चार तोले नीबू के स्वरस को मिलाकर पीने से विष्ठा के कृमि नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

पिबेत्तुम्बीबीजचूर्णं तक्रेण कृमिनाशनम्। नारिकेलजलं पीतं सक्षौद्रं कृमिनाशनम् ॥ ७ ॥

कड़वी लौकी के बीजों के चूर्ण को तक्र में घोलकर पीने से अथवा नारियल के जल में शहद मिलाकर पीने से कृमि नष्ट होते हैं मात्रा ६ माशा ॥ ७ ॥

यमानीं लवणोपेतां भक्षयेत्कल्य उत्थितः। अजीर्णमामवातञ्च कृमिजांश्च जयेद् गदान् ॥ ८ ॥

प्रातःकाल अजवाइन के चूर्ण में लाहौरी नमक मिलाकर खाने से अजीर्ण, आमवात और कृमि-जन्य समस्त रोग नष्ट होते हैं मात्रा ३ माशा ॥ ८ ॥

पलाशबीजेन्द्रयवविडङ्गनिम्बभूनिम्बचूर्णं सगुडं लिहेद् यः। दिनत्रयेण कृमयः पतन्ति पलाशबीजेन यमानिकां वा ॥९॥

ढाक के बीज, इन्द्रजव, वायविडङ्ग, नीम की छाल और चिरायता के चूर्ण को गुड़ के साथ सेवन करने से अथवा ढाक के बीज के साथ अजवाइन के चूर्ण को सेवन करने से सब प्रकार के कृमि तीन ही दिनों में गिर पड़ते हैं मात्रा ४ ६ माशा ॥ ९ ॥

कम्पिल्लचूर्णं माषार्द्धं गुडेन सह भक्षितम्। संपातयेत् कृमीन् सर्वानुदरस्थान्न संशयः ॥ १० ॥

चार रत्ती कमीले को गुड़ के साथ सेवन कराने से पेट के अन्दर के सब कीड़े बाहर निकल जाते हैं ॥ १० ॥

पारासीयादिचूर्णं।

पारासीययमानिका घनकणा भृङ्गी विडङ्गारुणा चूर्णं श्लक्ष्णतरं विलीढमपि तत् क्षौद्रेण संयोजितम्। कासं नाशयति ज्वरञ्च जयति गौडातिसारं जयेत् छर्दिं मर्दयति कृमिन्तु नियतं कोष्ठस्थमुन्मूलयेत् ॥ ११ ॥

खुरासानी अजवाइन, नागरमोथा, पीपल, काकड़ासिंगी, वायविडङ्ग और अतीस, इन सब औषधों का चूर्ण मधु के साथ चाटने से खाँसी, ज्वर, अतीसार, वमन और कोष्ठस्थ कृमि नष्ट हो जाते हैं मात्रा १॥ ३ माशा ॥ ११ ॥

पेषयेदारनालेन नाडीचस्य फलानि च। यूकालिक्षाप्रशान्त्यर्थं दद्याल्लेपन्तु मस्तके ॥ १२ ॥

काँजी के साथ नाड़ी (पटुआ) के फलों को पीसकर मस्तक पर लेप करने से जूँ और लीख मर जाते हैं ॥ १२ ॥

१—सुश्रुतकार ने इस प्रयोग को चावलों के जल के साथ भी पीने को लिखा है। यथा "पलाशबीजस्वरसस्सकल्को वा तण्डुलाम्बुना" इति।

रसेन्द्रेण[1] समायुक्तो रसो धुस्तूरपत्रजः। ताम्बूलपत्रजो वापि लेपाद् यूकाविनाशनः॥ १३॥

धतूरे की पत्तियों के रस में अथवा पान की पत्तियों के रस में पारा मिलाकर लेप करने से जूँ आदि बाहरी कृमि नष्ट हो जाते हैं॥ १३॥

विडङ्गतैल।

सविडङ्गगन्धकशिलासिद्धं सुरभीजलेन कटुतैलम्। आजन्म नयति नाशं लिक्षासहितांश्च यूकांश्च॥ १४॥

शिला मनःशिला, गन्धक शिला शब्देन गन्धक इति भानुः।

कडुवा तेल २ सेर, गोमूत्र ८ सेर, वायविडंग, गन्धक और मैनसिल का कल्क १ सेर, इनको एकत्र पकाकर तैल सिद्ध करे। इस तैल के मर्दन करने से चिर-संचित जूँ और लीख नष्ट हो जाते हैं॥ १४॥

इस श्लोक में 'शिला' का अर्थ मैनशिल है, परन्तु भानुजी का मत है कि यहाँ गन्धकशिला शब्द गन्धक अर्थ का वाचक है॥

विडङ्गाद्य तैल।

तुलामानं विडंगस्य सोमवल्याः पलं शतम्। जलद्रोणे विपक्तव्यं चतुर्भागावशेषितम्॥ १५॥ एतत्क्वाथे पचेत्तैलं द्वात्रिंशपलमानकम्। विडंगो वारुणी वह्निर्लाङ्गली च प्रसारिणी॥ १६॥ दासीकुरण्टकश्चैव कट्फलस्त्र्यूषणं वरा। रास्ना चैरण्डमूलं च प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम्॥ १७॥ कल्कार्थं दीयते तत्र शनैर्मृद्वग्निना पचेत्। कोठकण्डूज्वरानाहहृल्लासारुचिपीनसान्॥ १८॥ ग्रहणी पाण्डुता मूर्च्छाः कृमींश्चान्तर्बहिश्चरान्। विडंगाद्यमिदं तैलं नाशयेन्नात्र संशयः॥ १९॥

वायविडंग पाँच सेर और सोमवल्ली (अभाव में काली जीरी) पाँच सेर इन दोनों को बारह सेर ६४ तोला जल में पकावे। जब चौथाई जल शेष रहे, तब उस क्वाथ में ६४ तोला तेल डाले और वायविडंग, इन्द्रायण, चीते की जड़, कलियारी, गन्धप्रसारिणी, नील और पीत पुष्प का-पियावासा, कायफल, सोंठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला, रासना और अरंडी की जड़ प्रत्येक दो-दो तोला ले। इनका कल्क तैल और क्वाथ में डालकर धीरे-धीरे मन्दाग्नि से पकाना चाहिये।

यह विडंगाद्य तैल कोठ, खुजली, ज्वर, पेट फूलना, हृल्लास, अरुचि, पीनस, ग्रहणी, पाण्डुरोग, मूर्छा और दोनों प्रकार के (भीतरी और बाहरी) कृमियों को निःसन्देह नाश करता है॥ १५-१९॥

धुस्तूरतैल।

धुस्तूरपत्रकल्केन तद्रसेन च साधितम्। तैलमभ्यङ्गमात्रेण यूकां नाशयति ध्रुवम्॥ २०॥

धतूरे की पत्तियों का कल्क और धतूरे की पत्तियों के रस में तेल को पकाकर शिर में मालिश करने से जूं अवश्य नष्ट होते हैं॥ २०॥

त्रिफलाघृत।

त्रिफला त्रिवृता दन्ती वचा काम्पिल्लकं तथा। सिद्धमेभिर्गवां मूत्रे सर्पिः कृमिविनाशनम्। सर्वान् कृमीन् प्रणुदति वज्रं मुक्तमिवासुरान्॥ २१॥

त्रिफला, निसोत, दन्ती (जमालगोटा की जड़), वच और कबीले का कल्क और गोमूत्र के साथ सिद्ध किए हुए घृत के सेवन करने से सब प्रकार के कृमि इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे इन्द्र के वज्र द्वारा असुरों का विनाश हुआ था॥ २१॥

१—'कर्पूरेण' इति पाठान्तरम्।

त्रिफलाद्य[1]घृत ।

त्रिफलायास्त्रयः प्रस्था विडंगप्रस्थ एव च । दीपनं[2] दशमूलञ्च लाभतः समुपाचरेत् ॥ २२ ॥ पादशेषे जलद्रोणे शृते सर्पिर्विपाचयेत् । प्रस्थोन्मितं सिन्धुयुतं तत्परं कृमिनाशनम् ॥ त्रिफलाघृतमेतद्धि लेह्यं शर्करया सह ॥ २३ ॥

दीपनं पञ्चकोलम् ।

त्रिफला २ सेर ३२ तोला, वायविडंग ६४ तोला, पञ्चकोल ६४ तोला और दशमूल ६४ तोला लेकर १ मन ११ सेर १६ तोला जल में पकावे और १२ सेर ६४ तोला जल शेष रहने पर छान करके उस क्वाथ में ३ सेर १६ तोला घृत और ६४ तोला लाहौरी नमक डाल करके धीमी आँच से यथाविधि घृत सिद्ध कर लेवे । इस घृत को शक्कर के साथ सेवन करने से सब प्रकार के कृमि नष्ट हो जाते हैं २२-२३

कृमिरोग में हरिद्राखण्ड पारिभद्रावलेह ।

स्वरसं पारिभद्रस्य प्रस्थमादाय यत्नतः। तदर्द्धां च सितां दत्त्वा घृतं कुडवसम्मितम् ॥ २४ ॥

प्रस्थार्द्धं रजनीचूर्णं दत्त्वा पाकं समाचरेत् । यदा दर्वीप्रलेपः स्यात्तदैषां चूर्णमाक्षिपेत् ॥ २५ ॥

चित्रकं त्रिफला मुस्तं विडंगं कृष्णजीरकम् । यमानीद्वयसिन्धूत्थं निर्गुण्डीफलमेव च ॥ २६ ॥ पाठाविडङ्गकञ्चैव सारिवाद्वयवासकौ । पलाशबीजं व्योषञ्च त्रिवृद्दन्ती सरेणुका ॥ २७ ॥ अरिष्टं सोमराजी च प्रत्येकन्तु द्विकार्षिकम् । ततो शाणमितं खादेत्तोयञ्चानु पिबेन्नरः ॥२८॥ कृमींश्च विंशतिविधान् नाशयेन्नात्रसंशयः। दुष्टव्रणञ्च कुष्ठञ्च नाडीव्रणभगन्दरम् ॥२९॥ शीतपित्तं विद्रधिञ्च दद्रुं चर्म्मदलं तथा । अजीर्णं कामलां गुल्मं श्वयथुञ्च विनाशयेत् ॥ ३० ॥ बलपुष्टिकरो ह्येष वलीपलितनाशनः । हरिद्राखण्डनामायं सर्वव्याधिनिषूदनः ॥ व्रणिनां हितकामो हि प्राह नागार्जुनो मुनिः ॥३१॥

द्रवद्वैगुण्यादष्टपलमिति ग्रन्थकर्त्तर्मतम् । पारिभद्रावलेहोऽयमित्यन्यत्र पाठः ।

फरहद की पत्तियों का स्वरस १२८ तोला, चीनी ६४ तोला, घृत आधा सेर और हलदी का चूर्ण ३२ तोला; इन सब औषधों को पकावे। जब पाक कर्छी में चिपकने लगे, तब चीता, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडँग, काला जीरा, खुरासानी अजवाइन, अजवाइन, लाहौरी नमक, सँभालू के फल, पाढ़ी, वायविडंग, काली सारिवा, अनन्तमूल, अडूसे की जड़, ढाक के बीज, त्रिकटु, निसोत, दन्ती (जमालगोटा की जड़), सँभालू के बीज, नीम की छाल और काली जीरी दो-दो तोले चूर्ण को मिलाकर उतार लेवे, इसको हरिद्राखंड कहते हैं । मात्रा-३ माशे । । अनुपान-जल। यह औषध बीस प्रकार के कृमियोंको अवश्य नष्ट करती है। तथा दुष्टव्रण, कुष्ठ, नाड़ी-व्रण, भगन्दर, शीतपित्त, विद्रधि, दद्रु, चर्मदल, अजीर्ण, कामला, गुल्म और शोथ आदि सकल व्याधियों को दूर करके वली और पलित को नष्ट करती है। व्रणरोगियों की हितकामना से नागार्जुनजी ने इसका उपदेश किया है।

'द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः' के अनुसार द्रवपदार्थ द्विगुण लिए गए हैं, अतः यहाँ पर 'कुडवम्' का अर्थ आठ पल समझना चाहिए। यह ग्रन्थकार का मत है । इस हरिद्राखंड को अन्यत्र 'पारिभद्रावलेह' कहते हैं ॥ २४-३१ ॥

१—ग्रन्थांतरे पुस्तकांतरे च विडंगघृतनाम्ना लिखितमस्ति ।

२—द्विपलं दशमूलं चेति पाठान्तरम् ।

पारिभद्रावलेह।

पलाशबीजं द्विपलं च योज्यं तथेन्द्रबीजं कृमिशत्रुचूर्णम्। लवंगमेलागजपिप्पली च त्वक्पत्रशुण्ठीमरिचानि टंगम्॥ ३२॥ शुभाकणे चित्रकमुस्तके च विडं तथा सैन्धवसूक्ष्मचूर्णम्। रेणुकधात्रीफलशैलजं च हरीतकी चाक्षफलं जलं च॥ ३३॥ लौहाभ्रवंगानि सुचूर्णितानि प्रत्येकमेषां पिचुमागयोज्यम्। मन्दारपत्रस्वरसस्य प्रस्थं शरावमेकं सुरभीजलस्य। एकत्र सर्वं परिपाचयेच्च पलद्वयं माक्षिकमेव दद्यात्॥ ३४॥ ततोऽक्षमात्रां प्रपिबेन्नरो वै कृमीन् निहन्यात् कृमिशूलमुग्रम्। मन्दानलं हन्ति तथा वमिञ्च कासं तथा श्वासमरोचकं च॥ ३५॥

ढाक के बीज (पलाशपापड़ा) ८ तोला, इन्द्रयव, वायविडंग, लौंग, इलायची, गजपीपर, तज, पत्रज, सोंठ, मिर्च, सुहागा फूला हुआ, वंशलोचन, पीपर छोटी, चीता, नागरमोथा, विडनमक, सेंधानमक, सँभालू के बीज, आँवला, शिलाजतु, हरड़, बहेड़ा, नेत्रवाला, लौह, अभ्र और वंग इन सबको एक-एक तोला लेकर खूब महीन चूर्ण करे तथा इसमें ६४ तोला आक (देववृक्ष कोई-कोई नीमको ले लेते हैं) के पत्रों का स्वरस और एक सेर गोमूत्र डालकर पकावे और ८ तोला शहद डालकर रख छोड़े। इसको एक कर्ष[1] खावे, तो कृमि-रोग कृमि-शूल मन्दाग्नि, वमन, कास, श्वास और अरुचि ये सब नष्ट होते हैं॥ ३२-३५॥

कृमिघातिनी वटिका।

शशिलेखा निशा कृष्णा काम्पिल्लो गिरिमृत्तिका। त्रिवृन्मूलं शिवाबीजं पलाशस्य समं समम्॥ ३६॥ सम्मर्द्य वारिणा कार्या चतुर्गुञ्जामिता वटी। हृल्लासं सदनं शोथं शूलक्षवथुपीनसान्॥ ३७॥ भक्तद्वेषं ज्वरं कार्श्यं वमनं विड्विबद्धताम्। कृमींश्च विंशतिविधान् नाशयेत् कृमिघातिनी॥ ३८॥

सोमराजी (काली जीरी), हल्दी, पीपर, कबीला, गेरू, निशोथ,[1] पीपरामूल, हरड़, ढाक के बीज इन सब औषधियों को समान भाग लेवे, और जल के साथ महीन घोटकर चार-चार रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। यह कृमिघातिनी वटिका हल्लास (मुँह में पानी भर आना), देह पीड़ा, शोथ, शूल, छींक, पीनस, अन्न में अरुचि, ज्वर, कृशता, वमन, मलबद्ध (मलावरोध) और बीस प्रकार के कृमियों का नाश करती है॥ ३६-३८॥

कृमिशार्दूल चूर्ण

सोमवल्ली विडङ्गं च भूनिम्बो कटुकी तथा। पर्णीबीजं त्रिवृन्मूलं पिचुमर्दो हरीतकी॥ ३९॥ एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्। माषमात्रं प्रदातव्यं यथानुपानयोगतः[2] ॥४०॥ कृमीन् कृमिगदान् सर्वान् मन्दाग्नित्वमरोचकम्। ज्वरं च नाशयेच्चूर्णं कृमिशार्दूलनामकम्॥ ४१॥

कालीजीरी, वायविडंग, चिरायता, कुटकी, ढाक के बीज, निशोथ, नीम की छाल, हरड़ का बकला, ये सब समान भाग लेकर खूब महीन चूर्ण बनावे। यह कृमिशार्दूल चूर्ण कृमि, कृमिजरोग, मन्दाग्नि, अरुचि और ज्वर को दूर करता है॥ ३९-४१॥

१—इसकी मात्रा १ कर्ष (१ तोला) अधिक है। अस्तु, २-४ माशा की मात्रा देनी चाहिये।

१—किसी का मत है कि निशोथ की जड़ का बकला।

२—'अनुपानस्य योगतः' इति पाठान्तरम्।

कृमिकुठार रस।

कर्पूरश्चाष्ट भागश्च कुटजश्चैक भागिकः। तत्समानं त्रायमाणमजमोदा विडङ्गकम् ॥ ४२ ॥ हिंगुलं विषभागश्च तत्समानं च केसरम्। सर्वं दृढं च सम्मर्द्य भृङ्गराज रसैस्तथा ॥ ४३ ॥ पलाश बीज सम्मिश्र मुन्दुरी रस भावितम्। ब्राह्मी रसं तथोदत्वा सिध्येत्कृमि कुठारकः ॥४४॥ वल्लमात्रां वटी कुर्याद्धत्तूरमसमन्वितम्। कुर्यात्कृमि विनाशश्च सर्वशः सप्तभिः दिनैः ॥ ४५ ॥

शुद्ध कपूर ८ भाग, कुरैया की छाल, त्रायमाण, अजमोद, विडङ्ग, हिंगुल, शुद्ध विष, केसर, ये सब १-१ भाग लेकर सब को कपड़ छान चूर्ण बनाकर भंगरा, [redacted] रस में १ रोज घोटकर सुखा ले। इनके समान पलाश बीज का चूर्ण मिलाकर मूषा कर्णी, के रस और ब्राह्मी के रस में घोटकर २-२ रत्ती की गोली धतूरे, के रस के साथ देने से सात दिन में सब तरह के कीड़े मिट जाते हैं विशेष-अनुभूत।

कृमिमुद्गररस।

क्रमेण वृद्धं रसगन्धकाजमोदाविडङ्गं विषमुष्टिका च। पलाशबीजश्च विचूर्णमस्य वल्लप्रमाणं मधुनावलीढम् ॥ ४६ ॥ पिबेत् कषायं घनजं तदूर्ध्वं रसोऽयमुक्तः कृमिमुद्गराख्य। कृमीन्निहन्ति कृमिजांश्च रोगान् सन्दीपयत्यग्निमयं त्रिरात्रात् ॥ ४७ ॥

पारा १ तोला, गन्धक २ तोले, अजमोद ३ तोले, वायविडंग ४ तोले, कुचिला ५ तोले और पलाश [redacted] बीज का ६ तोले लेकर चूर्ण बना लेवे। मधु के साथ ३ रत्ती चूर्ण को चाटकर, नागरमोथा के क्वाथ का पान करे। यह 'कृमिमुद्गर रस' कहा जाता है। यह रस तीन रात में सब प्रकार के कृमियों और कृमिजन्य रोगों को नष्ट करके अग्नि को दीप्त करता है ॥ ४६-४७ ॥

कीटारि रस।

शुद्धसूतमिन्द्रयवश्चाजमोदा मनःशिला। पलाशबीजं गन्धश्च देवदाल्या द्रवैर्दिनम् ॥ ४८ ॥ संमर्द्य भक्षयेन्नित्यं मुद्गपर्णीरसैः सह। सितायुक्तं पिबेच्चानु कृमिपातो भवत्यलम् ॥ ४९ ॥

शुद्ध पारा, इन्द्रजौ, अजमोद, मैनशिल, ढाक के बीज और गन्धक को देवदाली के स्वरस की भावना दे देकर दिन भर खरल करके एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना ले। शर्करा युक्त मुगवन के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ प्रतिदिन सेवन करने से कृमि अवश्य गिर जाते हैं। मात्रा-½ रत्ती से ¼ रत्ती तक ॥ ४८-४९ ॥

कीटमर्द रस।

शुद्धसूतं शुद्धगन्धमजमोदा विडङ्गकम्। विषमुष्टिर्ब्रह्मदण्डी[1] यथाक्रमगुणोत्तरम् ॥ ५० ॥ चूर्णयेन्मधुना मिश्रं वल्लैकं कृमिजिद्भवेत्। कीटमर्दो रसो नाम मुस्तकाथं पिबेदनु ॥ ५१ ॥

अत्र ब्रह्मदण्डी भार्गी।

पारा १ तोला, गन्धक २ तोले, अजमोद ३ तोले, वायविडंग ४ तोले, कुचिला या चकाइन ५ तोले और भारंगी या उसके बीज ६ तोले लेकर चूर्ण बना लेवे। इसको 'कीटमर्दरस' कहते हैं। इस रस को शहद के साथ ३ रत्ती चाटकर नागरमोथा के क्वाथ का पान करे। यह रस हर प्रकार के कृमियों को नष्ट करता है ॥ ५०-५१ ॥

द्वितीयाकृमिघातिनी गुटिका।

रसगन्धाजमोदानां कृमिघ्नब्रह्मणी-

---

[1] १—ब्रह्मबीजमिति पाठान्तरम्।

जयोः । एकाद्वित्रिचतुः पञ्च तिन्दोर्बीजस्य पट् क्रमात् ॥ ५२ ॥ संचूर्ण्य मधुना सर्वं गुटिकां कृमिघातनीम । खादन् पिपासुस्तोयञ्च मुस्तानां कृमिशान्तये ॥ आखुपर्णीकषायं वा प्रपिबेच्छर्करान्वितम् ॥ ५३ ॥

पारा १ तोला, गंधक २ तोले, अजमोद ३ तोले, वायबिडंग ४ तोले, भारंगी के बीज ५ तोले और कुचला ६ तोले इनका चूर्ण बना लेवे और उसमें मधु मिलाकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवे । इस औषध के सेवन के बाद यदि प्यास लगे, तो शक्कर मिलाकर नागरमोथा का क्वाथ अथवा मूसाकानी का क्वाथ पीना चाहिए । इस औषध के सेवन करने से सब प्रकार के कृमि शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ५०-५३

कृमिघ्न रस ।

कृमिघ्नं किंशुकारिष्टबीजं सुरसभस्मकम् । वल्लद्वयं चाखुपर्णीरसैः कृमिविनाशनः ॥ ५४ ॥

वायबिडंग, ढाक के बीज, नीम के बीज, रससिन्दूर इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर मूसाकरनी के रस से सेवन कराने पर कीड़े नष्ट होते हैं । मात्रा-२ से ४ रत्ती तक ॥ ५४ ॥

कृमिकालानल रस ।

विडङ्गं द्विपलञ्चैव विषचूर्णं तदर्धकम् । लौहचूर्णं तदर्धं च तदर्धं शुद्धपारदम् ॥ ५५ ॥ रसतुल्यं शुद्धगन्धं छागीदुग्धेन पेषयेत् । छायाशुष्कां वटीं कृत्वा खादेद् गुञ्जैकसम्मिताम् ॥ ५६ ॥ धान्यजीरानुपानेन नाम्ना कालानलो रसः । उदरस्थं कृमिं हन्याद् ग्रहण्यर्शस्समन्वितम् ॥ ५७ ॥ अग्निदः शोथशमनो गुल्मप्लीहोदरान् जयेत् । गहनानन्दनाथेन भाषितो विश्वसम्पदे ॥ ५८ ॥

वायबिडंग ८ तोला, बच्छनाग ४ तोला, लौहभस्म २ तोला, पारा १ तोला, गन्धक १ तोला । इन्हें बकरी के दूध से घोटकर आधी रत्ती से १ रत्ती तक की गोली बनावे । अनुपान-धनियाँ तथा जीरा, यह रस कृमिरोग, ग्रहणी, मस्से, सूजन, गुल्म, प्लीहा, उदररोग आदि को शान्त करता है तथा अग्निदीपक है ॥ ५५-५८ ॥

कृमिविनाशन रस ।

शुद्धसूतं समं गन्धमभ्रं लौहं मनःशिला । धातकी त्रिफला लोध्रं विडङ्ग रजनीद्वयम् ॥ ५९ ॥ भावयेत्सप्तधा सर्वं शृङ्गवेरभवैः रसैः । गुञ्जार्धां च वटीं कृत्वा त्रिफलारससंयुताम् ॥ ६० ॥ भक्षयेत्प्रातरुत्थाय कृमिरोगोपशान्तयेवातिकंपैत्तिकं हन्ति श्लैष्मिकञ्च त्रिदोषजम् ॥ कृमिविनाशनामायं कृमिरोगकुलान्तकः ॥६१॥

पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, मैनशिल, धाय के फूल, त्रिफला, लोध, वायबिडङ्ग, हलदी, दारुहल्दी, प्रत्येक बराबर मात्रा में इन्हें अदरख के रस से सात बार भावना देकर आधी रत्ती की गोली बनावे । अनुपान—त्रिफला क्वाथ । इसे प्रातःकाल सेवन करना चाहिये । यह सब प्रकार के कृमिरोगों का नाश करनेवाला है मात्रा २।३ रत्ती ॥ ५९-६१ ॥

कृमिधूलिजलप्लव रस ।

पारदं गन्धकं शुद्धं वङ्गं शंङ्खं समं समम् । चतुर्णां योजयेत्तुल्यं पथ्याचूर्णं भिषग्वरः ॥ ६२ ॥ दण्डयन्त्रेण निर्मथ्य पटोलस्वरसं क्षिपेत् । कार्पासबीजसदृशीं वटिकां कुरु यत्नतः ॥ ६३ ॥ त्रिवटीं भक्षयेत्प्रातः शीततोयं पिबेदनु । केवलं

पैत्तिके योज्यः कदाचिद्वातपैत्तिके॥ श्रीमद्गहननाथोक्तः कृमिधूलिजलप्लवः ॥६४॥

पारा, गन्धक, वंगभस्म, शंखभस्म हरएक १ तोला, हरड़ ४ तोले, इन्हें परस्पर मिलाकर पटोल (परवल) के रस से घोटकर बिनौले के समान गोलियाँ बनावे। मात्रा—३ गोली। अनुपान—शीतल जल। इसे पैत्तिक कृमिरोग में अथवा वातपैत्तिक कृमिरोग में प्रयोग करना चाहिये॥ ६२-६४॥

कृमिरोगारि रस।

सूतं गन्धं मृतं लौहं मरिचं विषमेव। धातकी त्रिफला शुण्ठी मुस्तकं सरसाञ्जनम् ॥ ६५ ॥ त्रिकटुमुस्तकं पाठा बालकं विल्वमेव च। भावयेत् सर्वमेकत्र-स्वरसैर्भृङ्गजैस्ततः ॥ ६६ ॥ गुञ्जाद्वयप्रमाणेन भक्षणीया विशेषतः। कृमिरोगविनाशाय रसोऽयं क्रिमिनाशनः॥ ६७॥

पारा, गन्धक, लौहभस्म, कालीमिर्च बच्छनाग, धाय के फूल, त्रिफला, सोंठ, मोथा, रसौत, त्रिकटु, मोथा, पाठा, गन्धबाला, बेल, हरएक के समभाग चूर्ण को भाँगरे के रस से घोटकर २ रत्ती की गोली बनाकर सेवन करे, यह रस कृमिरोग को नष्ट करता है॥ ६५-६७॥

विडङ्गलौह।

रसं गन्धञ्च मरिचं जातीफलवलङ्गकम्। शुण्ठी तालं कणा वङ्गं प्रत्येकं भागसम्मितम् ॥ ६८ ॥ सर्वचूर्णसमं लौहं विडङ्गं सर्वतुल्यकम्। लौहं विडङ्गकं नाम कोष्ठस्थकृमिनाशनम् ॥६९॥ दुर्णाममरुचिञ्चैव मन्दाग्निञ्च विसूचिकाम्। शोथं शूलं ज्वरं हिक्कां श्वासं कासं विनाशयेत् ॥ ७० ॥

पारा, गन्धक, कालीमिर्च, जायफल, लौंग, पीपल, हरिताल, सोंठ, वंगभस्म प्रत्येक १ भाग, लौहभस्म ६ भाग, वायविडङ्ग १८ भाग, इन्हें इकट्ठाकर जल से घोटकर गोलियाँ बनावे। यह अर्श, अरुचि, मन्दाग्नि, विसूचिका, सूजन, शूल, ज्वर, हिक्का, श्वास-खाँसी तथा कृमिरोग को नष्ट करता है। मात्रा २ रत्ती॥ ६८-७०॥

अत्र प्रसङ्गान्मक्षिकाद्युपद्रवशमनोपायः। तक्रपिष्टेन तालेन लेपात्पुत्तलकं शुभम्। तमाघ्राय गृहाद्यान्ति मक्षिका नात्र संशयः॥ ७१ ॥

पिष्टकादिपुत्तलकं तक्रपिष्टेन हरितालेन लिप्त्वा गृहे स्थापयेत्, तमाघ्राय मक्षिकास्त्यजन्ति।

आटे की एक पुतली बनाकर उसे छाछ से पीसी हुई हरिताल से लीप दे और मक्षिकायुक्त घर में रख दे। इसकी गन्ध से मक्खियाँ घर को छोड़कर बाहर निकल जाती हैं॥ ७१॥

शालनिर्यासधूमेन गृहं त्यजति मक्षिका॥ ७२ ॥

राल का धुआँ देने से घर में मक्खियाँ नहीं रहती हैं॥ ७२॥

तालकं छागविण्मूत्रपलाण्ड्वा सह पेषयेत्। आलिप्य मूषिकं तेन सजीवन्तं विसर्जयेत्॥ दृष्ट्वैव तं गृहं त्यक्त्वा पलायन्ते हि मूषिकाः॥ ७३ ॥

हरिताल को पहिले बकरी की मेंगनियाँ, मूत्र तथा प्याज के रस से पीसकर उससे एक जीवित चूहे को रँग दे और उसे जीता ही घर में छोड़ दे। इस चूहे को देखकर घर के तमाम चूहे भाग जायेंगे॥ ७३॥

मार्जारस्य पलं तालं पिष्ट्वा मूषिकमालिपेत्। तमाघ्राय गृहं त्यक्त्वा सद्यो निर्यान्ति मूषिकाः॥ ७४ ॥

बिल्ली के मांस तथा हरिताल से जीवित चूहे

को लेपकर घर में छोड़ दे। इसके गन्ध से ही चूहे घर को छोड़ भाग जाते हैं ॥ ७४ ॥

क्रिमिरोग में पथ्य।

आस्थापनं कायशिरोविरेचनं धूमः कफघ्नानि शरीरमार्जनाः। चिरन्तना वैणवरक्तशालयः पटोलवेत्राग्ररसोनवास्तुकम् ॥ ७५ ॥ हुताशमन्दारदलानि सर्षपाः नवीनमोचं बृहतीफलानि। तिक्तानि नाडी च दलानि मौषिकं मांसं विडङ्गं पिचुमर्दपल्लवम् ॥ ७६ ॥ पथ्या च तैलं तिलसर्षपोद्भवं सौवीरशुक्तञ्च तुषोदकं मधु। पचेलिमं तालमरुष्करं गवां मूत्रञ्च ताम्बूलसुरामृगाण्डजम् ॥ ७७ ॥ औष्ट्राणि मूत्राज्यपयांसि रामठं क्षाराजमोदाखदिरञ्च वत्सकम्। जम्बीरनीरं सुपवीयवानिका साराः सुराह्वागुरुशिंशपोद्भवाः॥७८॥तिक्तःकषायःकटुको रसोऽप्ययं वर्गो नराणां क्रिमिरोगिणां सुखः ॥७९॥

क्रिमिरोगियों के लिये आस्थापन, विरेचन, शिरोविरेचन, धूम, कफघ्न आहार, शरीर-परिमार्जन (शुद्धि), पुराने बाँस के चावल, लालशालि चावल, परवल, बेंत की कोपल, लहसुन, बथुआ, चित्रक के पत्ते, हरसिंगार के पत्ते, सरसों, कच्चा केला, बड़ी कटेरी का फल, तिक्त द्रव्य, नाड़ीसाक, चूहे का मांस, वायविडङ्ग, नीम के पत्ते, हरड़, तिल तथा सरसों का तेल, सौवीर, शुक्त (सिरका), तुषोदक, शहद, पचेलिम, ताल, भिलावे, गोमूत्र, पान, सुरा, कस्तूरी, ऊँट का मूत्र, दूध, घी, हींग, क्षार, अजमोद, खैर, इन्द्रजौ, जम्बीररस, करेली अजवाइन, देवदारु, अगर तथा शीशम की लकड़ी, कड़वे, चरपरे, एवं कषाय रस ये वर्ग लाभदायक हैं ॥ ७५-७९ ॥

क्रिमिरोग में अपथ्य।

छर्दिश्च तद्वेगविधारणं च विरुद्धपानाशनमह्नि निद्राम्। द्रवं च पिष्टान्नमजीर्णताञ्च घृतानि माषान् दधि पत्रशाकम्॥ ८० ॥मांसपयोऽम्लं मधुरं रसञ्च क्रमीन् जिघांसुः परिवर्जयेच्च ॥ ८१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां क्रिमिरोगाधिकारः समाप्तः।

वमन के वेग को रोकना, विरुद्ध पान एवं विरुद्ध भोजन, दिन में सोना, द्रव, पिट्ठी के बने हुये, भोज्य पदार्थ, अजीर्ण, घी, उड़द, दही, पत्रशाक, मांस, दूध, खटाई, मधुर रस, क्रिमियों के नाश करने की इच्छा रखनेवाले पुरुष को इनको त्याग देना चाहिये ॥ ८०-८१ ॥

इति श्री पं० सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां क्रिमिचिकित्साधिकारः समाप्तः।

अथ अम्लपित्ताधिकारः।

वान्तिं कृत्वाम्लपित्ते तु विरेकं मृदु कारयेत्। सम्यग्वान्तविरिक्तस्य सुस्निग्धस्यानुवासनम्॥ १ ॥ आस्थापनं चिरोद्भूते देयं दोषाद्यपेक्षया। क्रियाशुद्धस्य शमनी ह्यनुबन्धव्यपेक्षया॥२॥दोषसंसर्गजे कार्या भेषजाहारकल्पना। ऊर्ध्वगं वमनैर्धीमान् अधोगं रेचनैर्हरेत् ॥ ३ ॥

अम्लपित्तरोग में पहले वमन कराकर मृदु विरेचन कराना चाहिये। तदनन्तर स्नेहन और उसके बाद अनुवासन कराना चाहिये। पुराने अम्लपित्तरोग में निरूहबस्ति देवे। इस प्रकार शुद्ध हुए रोगी की अवस्था के अनुसार उपयुक्त शमन-क्रिया और दोष-संसर्ग में औषध और आहार की उचित व्यवस्था करे। एवं ऊर्ध्वगामी अम्लपित्त को वमन द्वारा और अधोगामी अम्लपित्त को विरेचन द्वारा दूर करना चाहिये ॥ १-३ ॥

अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टपत्रकैः। कारयेन्मदनक्षौद्रसिन्धुयुक्तैः कफोल्वणे। विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुधात्रीफलद्रवैः॥४॥

कफप्रधान अम्लपित्तरोग में परवल के पत्ते, नीम के पत्ते, मैनफल, मधु और लाहौरी नमक, द्वारा वमन कराना चाहिये। यदि विरेचन की आवश्यकता हो, तो मधु और आँवला के स्वरस सहित निसोत के चूर्ण का सेवन कराना चाहिये॥ ४॥

अम्लपित्त में पथ्य।

तिक्तभूयिष्ठमाहारं पानञ्चापि प्रकल्पयेत् ॥ ५ ॥ यवगोधूमविकृतीस्तीक्ष्णसंस्कारवर्जिताः। यथास्वं लाजसक्तून् वा सितामधुयुतान् पिवेत् ॥ ६ ॥

इस रोग में आहार और पान दोनों तिक्तरसप्रधान होने चाहिए। भोजन के लिये जौ और गेहूँ के खाद्य पदार्थ देने चाहिये परन्तु इनमें भी अधिक लवण, कटु और अम्ल आदि तीक्ष्ण द्रव्यों का मेल न करे। वात-प्रधान अम्लपित्त में आहार के लिये—चीनी और मधु मिलाकर धान के खीलों का सत्तू देना चाहिये॥ ५-६॥

अम्लपित्तविनाशनयोग।

निस्तुषयवदृषधात्री क्वाथस्त्रिसुगन्धिमधुयुतः पीतः। अपनयत्यम्लपित्तं यदि भुङ्क्ते मुद्गयूषेण ॥ ७ ॥

भूसी रहित जौ, अरूसे की पत्तियाँ और आँवले के क्वाथ में दालचीनी, छोटी इलाइची के बीज और तेजपात का चूर्ण तथा मधु मिलाकर पान करे एवम् आहार के लिये मूँग के यूस की व्यवस्था करे, तो अम्लपित्त-रोग शीघ्र ही दूर हो जाता है मात्रा—४ तोला॥ ७॥

कफपित्तवमीकण्डूज्वरविस्फोटदाहहा। पाचनो दीपनः क्वाथः शृङ्गवेरपटोलयोः ॥८॥

सोंठ और परवल के पत्ते का क्वाथ पीने से अम्लपित्त, कफ, वमन, खुजली, ज्वर, विस्फोट और दाह ये सब दूर होते हैं। यह क्वाथ अग्नि को दीपन करनेवाला और पाचन है मात्रा—४ तोला॥ ८॥

पटोलं नागरं धान्यं क्वाथयित्वा जलं पिवेत्। कण्डूपामार्त्तिशूलघ्नं कफपित्ताग्निमान्द्यजित् ॥ ९ ॥

परवल के पत्ते, सोंठ और धनियाँ के क्वाथ का पान करे तो कण्डू (खुजली) पामा (छाजन) कफ, अम्लपित्त और अग्निमान्द्य रोग शान्त हो जाते हैं मात्रा ४ तोला॥ ९॥

पटोलविश्वामृतरोहिणीकृतं जलं पिवेत् पित्तकफाश्रयेषु। शूलभ्रमारोचकवह्निमान्द्यदाहज्वरच्छर्दिनिवारणं तत् १०॥

पित्त और कफ-प्रधान रोगों में परवल के पत्ते सोंठ, गिलोय और कुटकी के क्वाथ का पान करना चाहिये। यह क्वाथ शूल, भ्रम, अरोचक, अग्निमान्द्य, दाह, ज्वर और वमन को नष्ट करता है मात्रा ४ तोला॥ १०॥

यवकृष्णापटोलानां क्वाथं क्षौद्रयुतं पिवेत्। नाशयेदम्लपित्तञ्चारुचिञ्च वमनं तथा॥ ११ ॥

जौ, पीपर और परवल की पत्तियाँ; इनके क्वाथ को मधु मिलाकर पीवे, तो अम्लपित्त, अरुचि और वमन रोग शान्त होते हैं मात्रा—४ तोला॥ ११॥

अभया पिप्पली द्राक्षा सिता धान्यं यवासकम्। मधुना कण्ठदाहघ्नं पित्तश्लेष्महरं परम् ॥ १२ ॥

हरड़, पीपल, दाख, खाँड, धनियाँ तथा जवासा; इनके चूर्ण को शहद के साथ चटाने से अम्लपित्त नष्ट होता है मात्रा—१६ माशा॥१२॥

फलत्रिकं पटोलञ्च तिक्ताक्वाथः सितायुतः। पीतः क्लीतकमध्वाक्तो ज्वरच्छर्द्यम्लपित्तजित् ॥ १३ ॥

त्रिफला, परवल, कुटकी इनके क्वाथ में खाँड, मुलहठी का चूर्ण तथा शहद को डालकर पीने से ज्वर, वमन तथा अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ १३ ॥

भुक्तान्ते वारिणा पीतं चूर्णं धात्रीफलोद्भवम्। त्र्यहान्निहन्त्यम्लपित्तं कण्ठदाहसमायुतम् ॥ १४ ॥

भोजन के बाद आँवले के चूर्ण को आध तोला मात्रा में सेवन करने से कण्ठदाहयुक्त अम्लपित्त बहुत जल्दी अच्छा हो जाता है ॥१४॥

दशाङ्ग क्वाथ।

वासामृतापर्पटीकनिम्बभूनिम्बमार्कवैः। त्रिफला कुलकैः[1] क्वाथः सक्षौद्रश्चाम्लपित्तहा ॥ १५ ॥

अरूसे की पत्तियाँ, गिलोय, पित्तपापड़ा, नीम की छाल, चिरायता, भँगरैया, त्रिफला, और परवल; इनको समभाग लेकर क्वाथ बनावे। उसमें मधु मिलाकर पीने से अम्लपित्त रोग दूर हो जाता है मात्रा—४ तोला ॥ १५ ॥

छिन्ना खदिरयष्ट्याह्व दार्व्यम्भो वा मधुद्रवम्। सद्राक्षामभयां खादेत् सक्षौद्रां सगुडञ्च ताम् ॥ १६ ॥

गिलोय खैर, मुलेठी और दारुहल्दी के (४तोला)क्वाथ में मधु मिलाकर पान करे अथवा मुनक्का, मधु और गुड मिलाकर हरीतकी का सेवन करे तो अम्लपित्त रोग शान्त हो जाता है॥ १६ ॥

छिन्नोद्भवानिम्बपटोलपत्रं फलत्रिकं सुक्वथितं सुशीतम्। क्षौद्रान्वितं पीतमनेकरूपं सुदारुणं हन्ति तदम्लपित्तम् ॥१७॥

गिलोय, नीम की छाल, परवल के पत्ते और त्रिफला के क्वाथ को शीतल होने पर मधु मिलाकर पीवे, तो अत्यन्त कठिन और अनेक रूपोंवाला अम्लपित्त-रोग दूर हो जाता है मात्रा—४ तोला ॥ १७ ॥

[1]—कुलक पटोललतिकायाम्।

हिंगु च कतकफलानि च चिञ्चात्वचो घृतञ्च पुटदग्धम्। शमयति तदम्लपित्तमम्लभुजो यदि यथोत्तरं द्विगुणम् ॥ १८ ॥

हिंगु इत्यादौ यथोत्तरं द्विगुणमिति। हिंग्वपेक्षया कतकफलं द्विगुणं कतकफलापेक्षया घृतं द्विगुणमिति एतत्सर्वं स्थालीमध्ये निक्षिप्य शरावेण विधायान्तर्धूमेन दग्ध्वा माषकचतुष्टयमुपयोज्यं तप्तजलञ्चानुपेयं तन्त्रान्तरे संवादात्।

हींग १ तोला, निर्मली के फल २ तोले, इमली की छाल ४ तोले और घृत ८ तोले लेवे। इन सब औषधों को एक पात्र में रखकर, सकोरा से मुख बंद करके, मुद्रा देकर, अन्तर्धूम भस्म करे। इस भस्म को चार माशे खावे। अनुपान—उष्ण जल। इस भस्म के सेवन करने से खटाई खानेवाले रोगी का अम्लपित्त शान्त हो जाता है ॥ १८ ॥*

कान्तपात्र वराकल्को व्युषितोऽभ्यासयोगतः। सिताक्षौद्रसमायुक्तः[1] कफपित्तहरः स्मृतः ॥ १९ ॥

सायंकाल, त्रिफला को पानी के साथ पीस करके, कान्तलौह के पात्र में रख देवे। प्रातःकाल उस कल्क में चीनी और मधु मिलाकर सेवन करे, तो कफ और पित्त दोनों शान्त होते हैं मात्रा ३।६ माशा ॥ १९ ॥

पञ्चनिम्बादि चूर्ण।

एकोंऽशः पञ्चनिम्बानां द्विगुणो वृद्धदारकः। सक्तुर्दशगुणो ज्ञेयः शर्करामधुरीकृतः ॥ २० ॥ शीतेन वारिणा पीतं शूलं पित्तकफोच्छ्रितम्। निहन्ति चूर्णं सक्षौद्रमम्लपित्तं सुदारुणम् ॥ २१ ॥

*२ माशे से शुरू करके ४ माशे तक खाना चाहिये।

[1]—'शर्करामधुसंयुत' इति ग्रन्थान्तरे पाठः।

नीम का पंचाङ्ग (छाल, पत्र, पुष्प, मूल, और फल) १ भाग, विधारा २ भाग और जव का सत्तू १० भाग, इन औषधों में आवश्यकतानुसार चीनी मिला देवे । मात्रा—२ तोले । मधु और शीतल जल के साथ । इस औषध के सेवन करने से दारुण अम्लपित्त-रोग और पित्त तथा कफज शूल दूर हो जाते हैं ॥ २०-२१ ॥

वासाघृतं तिक्तघृतं पिप्पलीघृतमेव च । अम्लपित्ते प्रयोक्तव्यं गुडकूष्मांडकं तथा ॥ पक्तिशूलापहा योगास्तथा खण्डामलक्यपि ॥ २२ ॥

अम्ल पित्त रोग में वासा-घृत, तिक्त-घृत, पिप्पली-घृत या गुडकूष्मांडक का प्रयोग करना चाहिये । एवं पक्ति-शूल नाशक जितने योग हैं, उनका और खण्डामलकी का भी प्रयोग करना चाहिए ॥ २२ ॥

पिप्पली मधुसंयुक्ता अम्लपित्तविनाशिनी । जम्भीरस्वरसः पीतः सायं हन्त्यम्लपित्तकम् ॥ २३ ॥

१॥ माशा पीपर के चूर्ण को मधु के साथ सेवन करने से अम्लपित्त रोग नष्ट होता है । सायंकाल में १॥ तोला नींबू का स्वरस पीने से भी अम्लपित्त रोग शान्त हो जाता है ॥ २३ ॥

अविपत्तिकर चूर्ण ।

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडं[1] चैव विडंगकम् । एलापत्रं च चूर्णानि समभागानि कारयेत् ॥ २४ ॥ सर्वमेकीकृतं यावल्लवङ्गं तत्समं भवेत् । सर्वचूर्णद्विगुणितं त्रिवृच्चूर्णं प्रदापयेत् ॥ २५ ॥ सर्वमेकीकृतं यावत्तावच्छर्करयान्वितम् । भोजनादौ[2] तथा मध्ये खादेन्माषाष्टकं शुभम् ॥ २६ ॥ अम्लपित्तं निहन्त्याशु विबन्धं मलमूत्रयोः । अग्निमान्द्यभवान् रोगान् नाशयेदविकल्पतः ॥ २७ ॥ प्रमेहान् विंशतिं चैव सर्वदुर्नामनाशनम् । अविपत्तिकरं चूर्णमगस्त्यविहितं शुभम् ॥ २८ ॥

त्रिकटु (सोंठ, कालीमिर्च और पीपर), त्रिफला, नागरमोथा, बिडनमक, वायविडंग, छोटी इलायची और तेजपात प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, लौंग का चूर्ण ११ तोले, निसोत का चूर्ण ४४ तोले और ६६ तोले चीनी मिलाकर, भोजन के आदि और मध्य में आठ-आठ माशे खाने से अम्लपित्त रोग शीघ्र नष्ट होता है । यह चूर्ण मल और मूत्रों की बद्धता, अग्निमान्द्य-जन्य रोग, २० प्रकार के प्रमेह और सब प्रकार के बवासीर को भी नष्ट करता है । अगस्त्यजी ने इस विपत्तिविनाशक उत्तम चूर्ण का आविष्कार किया है ॥ २४-२८ ॥*

बृहत्पिप्पलीखण्ड ।

पिप्पल्याः कुडवं चूर्णं घृतस्य कुडवद्वयम् । पलषोडशिकं खण्डाद्रसे धात्र्याः पलाष्टके ॥ २९ ॥ पलषोडशिके चैव आमलक्या रसस्य च । क्षीरप्रस्थद्वये साध्यं लेहीभूते ततः क्षिपेत् ॥ ३० ॥ त्रिजातकामयाजाजीधन्याकंमुस्तकं शुभा । धात्री च कार्षिकं चूर्णं कर्षार्द्धं चापि[1] जीरकम् ॥ ३१ ॥ कुष्ठं[2] नागरकं नागं सिद्धशीनेऽवचूर्णितम् । जातीफलं समरिचं मधुनश्च पलत्रयम् ॥ ३२ ॥ उपयुञ्ज्यात्ततो

* मात्रा २ माशे से बढ़ाते बढ़ाते आठ माशे कर सकते हैं । एक साथ ४ माशे से अधिक देना ठीक नहीं है ।

१—बीजं चैवेत्यपि पाठः ।

२—ग्रन्थान्तरे तु भोजनादौ तथान्ते च मध्याऽद्यमिदं शुभम् । शीततोयानुपानं च नारिकेलोदक तथेति पाठः ।

१—कृष्णजीरकमिति पाठान्तरम् ।

२—हिममिति योगरत्नाकरे पाठः ।

धीमान् अम्लपित्तनिवृत्तये। हृल्लासारोचकच्छर्दिश्वासकासक्षयापहम्। अग्निसन्दीपनं हृद्यं पिप्पलीखण्डसंज्ञितम्॥३३॥

पीपरि का चूर्ण १६ तोला, घृत ३२ तोला, खाँड ६४ तोला, शतावरि का रस ३२ तोला, आँवले का रस ६४ तोला और दूध ३ सेर १६ तोला लेवे। इन औषधों को मिलाकर पाक-रीति से पका लेना चाहिये। उसके बाद दालचीनी, इलायची, तेजपात, हरड़, जीरा, धनियाँ, नागरमोथा, वंशलोचन और आँवला, प्रत्येक का चूर्ण १ तोला तथा जीरा, कूट, सोंठ और नागकेशर, इनमें से प्रत्येक का चूर्ण आधा तोला मिलाकर उतार लेवे। ठंढा होने पर जायफल का चूर्ण, कालीमिर्च का चूर्ण और मधु प्रत्येक को बारह-बारह तोला मिलावे। यह पिप्पलीखण्ड अम्लपित्त, हल्लास, अरोचक, वमन, श्वास, कास और क्षय-रोग को नष्ट करके अग्नि को दीप्त करता है और हृदय के लिये अत्यन्त लाभदायक है। मात्रा—४-६ माशा॥ ३०-३३।

खण्डकूष्माण्डक अवलेह

कूष्माण्डकरसो ग्राह्यः पलानां शतमात्रकम्। रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं पलाष्टकम्॥ ३४॥ धात्रीतुल्या सिता योज्या गव्यमाज्यं पलद्वयम्। मन्दाग्निना पचेत्सर्वं यावद् भवति पिण्डितम्॥३५॥ कोलार्द्धं कोलमेकं वा प्रत्यहं भक्षयेदिदम्। खण्डकूष्माण्डकं ख्यातमम्लपित्तापहं परम्॥ ३६॥

पेठे का रस ५ सेर, गोदुग्ध ५ सेर, आँवले का चूर्ण ३२ तोला, खाँड ३२ तोला, गोघृत ८ तोला इन्हें इकट्ठा करके मन्दी-मन्दी आँच पर पकावे जब पकाते पकाते गोला बँधने लगे तब नीचे उतार ले। मात्रा—आधे तोले से एक तोले तक। इसे प्रतिदिन सेवन कराने से अम्लपित्त नष्ट होता है॥ ३४-३६।

शुण्ठीखण्ड।

शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं खण्डप्रस्थं समावपेत्। दत्त्वा द्विकुडवं सर्पिः क्षीरप्रस्थद्वये पचेत्॥ ३७॥ लेह्येऽवतारिते दद्याद्धात्रीधान्यकमुस्तकम्। अजाजी पिप्पली वांशी त्रिजातं कारवी शिवा॥ ३८॥ त्रिशाणं मरिचं नागं पणमापं तु पृथक् पृथक्। पलत्रयञ्च मधुनः शीतीभूते प्रदापयेत्॥३९॥ ततो मात्रां प्रयुञ्जीत अम्लपित्तनिवृत्तये। शूलहृद्रोगवमनैरामवातैश्च पीडितः॥४०॥

सोंठ का चूर्ण १६ तोला, खाँड ६४ तोला और घृत ६४ तोला लेकर ३ सेर १६ तोला दूध में पकावे। गाढ़ा होने पर आँवला, धनियाँ, नागरमोथा, जीरा, पीपरि, वंशलोचन, दालचीनी, इलायची, तेजपात, कालाजीरा और हरड़ प्रत्येक के चूर्ण ६ माशे तथा कालीमिर्च और नागकेशर के चूर्ण ४॥—४॥ माशे मिलाकर उतार लेवे। उसके बाद ठंढा हो जाने पर १२ तोला मधु मिलावे। रोगी का बलाबल देखकर मात्रा की व्यवस्था करनी चाहिये। यह शुंठीखंड अम्लपित्त, शूल, हृद्रोग, वमन और आमवात को दूर करता है। मात्रा—६ माशे से १ तोला॥ ३७-४०॥

शतावरीघृत।

शतावरीमूलकल्कं घृतप्रस्थं पयः समम्। पचेन्मृद्वग्निना सम्यक् क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम्॥ ४१॥ नाशयेदम्लपित्तञ्च वातपित्तोद्भवान् गदान्। रक्तपित्तं तृषां मूर्च्छां श्वासं सन्तापमेव च॥ ४२॥

शतावरीघृते—पयःसममिति शब्देनेह पयः, साधर्म्यात् शतावरीरसो ग्राह्यः न तु क्षीरं, तस्य पृथगुपादानादिति केषाञ्चिन्मतम्।

शतावरि का कल्क ६४ तोला, घृत १२८ तोला, जल[1] १२८ तोला लेकर ६ सेर ३२ तोला दूध में धीमी आँच में पका लेवे। यह घृत अम्लपित्त, वातपित्तजन्य रोग, रक्तपित्त, तृषा, मूर्च्छा, श्वास और सन्ताप (दाह) को दूर करता है॥ ४१-४२॥

जीरकाद्य घृत।

पिष्ट्वाजाजीं सधन्याकां घृतप्रस्थं विपाचयेत्। कफपित्तारुचिहरं मन्दानलवमिं जयेत्॥ ४३॥

गौ का घृत १२८ तोला, कल्क के लिये धनियाँ और जीरा मिलाकर ३२ तोला, पाक के लिये जल ६ सेर ३२ तोला विधिपूर्वक पकावे। इसके सेवन से अम्लपित्त, मन्दाग्नि तथा वमन अच्छी हो जाती है। मात्रा—आधा तोला॥ ४३॥

पटोलशुण्ठीघृत।

पटोलशुण्ठ्याः कल्काभ्यां केवलं फूलकेन वा। घृतप्रस्थं विपक्तव्यं कफरोगहरं परम्॥ ४४॥

गौ का घी १२८ तोला, कल्क के लिये परवल, सोंठ मिलाकर ३२ तोला अथवा केवल परवल ३२ तोला, पाक के लिये जल ६ सेर ३२ तोला विधिपूर्वक पाक कर प्रयोग करने से कफरोग अच्छा हो जाता है॥ ४४॥

पिप्पलीघृत।

पिप्पलीक्वाथकल्केन घृतं सिद्धं मधुप्लुतम्। पिवेच्च प्रातरुत्थाय अम्लपित्तनिवृत्तये॥ ४५॥

पीपल के क्वाथ तथा कल्क से विधिपूर्वक घृत पकाकर शहद के साथ मिलाकर उचित मात्रा में प्रयोग कराने से अम्लपित्त नष्ट होता है। मात्रा—१ तोला॥ ४६॥

[1]—किसी विद्वान् का मत है कि पय शब्द से जल के स्थान पर शतावरी का स्वरस लेना चाहिये।

द्राक्षामृताशक्रपटोलपत्रैः सोशीरधात्रीघनचन्दनैश्च। त्रायन्तिकापद्मकिरातधान्यैः कल्कैः पचेत्सर्पिरुपेतमेभिः॥ ४७॥ युञ्जीत मात्रां सह भोजनेन सर्वत्र पानेऽपिभिषग्विदध्यात्। बलासपित्तग्रहणीं मद्रूढां कासाग्निसादज्वरमम्लपित्तम्॥ ४८॥ सर्वं निहन्याद् घृतमेतदाशु सम्यक् प्रयुक्तं ह्यमृतोपमञ्च॥ ४९॥

गौघृत १२८ तोला, कल्क के लिये दाख, गिलोय, इन्द्रजौ, परवल, खस, आँवला, मोथा, लालचन्दन, त्रायमाणा पद्माख, चिरायता, धनियाँ मिलाकर ३२ तोला, पाक के लिये जल ६ सेर ३२ तोला विधिपूर्वक पकाकर प्रयोग कराना चाहिये। मात्रा—आधा तोला, इसे भोजन के साथ प्रयोग कराने से कफपित्त, ग्रहणी, खाँसी, मन्दाग्नि, ज्वर, अम्लपित्त इत्यादि रोग अच्छे होते हैं॥ ४७-४९॥

नारायणघृत।

जलैर्दशगुणैः क्वाथ्यं पिप्पली पलषोडश। पादशेषं हरेत् क्वाथं क्वाथतुल्यं घृतं पचेत्॥ ५०॥ रसप्रस्थं गुडूच्याश्च धात्र्याः षष्टिपलं रसम्। द्राक्षा धात्री पटोलञ्च विश्वञ्च कटुका वचा॥ ५१॥ पलप्रमाणं कल्कञ्च दत्त्वा सर्पिः समुद्धरेत्। अम्लपित्तहरं खादेत् दाहच्छर्दिनिवारणम्। असाध्यं साधयेत्सद्यो नाम्ना नारायणं घृतम्॥ ५२॥

६४ तोला पीपर को ८ सेर जल में पकावे, २ सेर शेष रहने पर उसे छान लेवे। उस क्वाथ में २ सेर घृत, १२८ तोला गिलोय का स्वरस और ३ सेर आँवले का स्वरस मिलावे। तथा मुनक्का, आँवला, परवल की पत्तियां, सोंठ, कुटकी और वच; इनमें से प्रत्येक का चार-चार

घृत सिद्ध करे। इस नारायण घृत के खाने से असाध्य अम्लपित्त, दाह और वमनरोग शान्त हो जाते हैं ॥ ४४-४६ ॥

सितामण्डूर।

धमनविधि विशुद्धं गोजले सप्त वारान् तरणिकरणशुष्कं श्लक्ष्णमण्डूरचूर्णम्। विमलं कपलमेकं पञ्च संख्यं सिताया अनवघृतपलाष्टौ द्व्यष्टकं गव्यदुग्धम् ॥ ५३ ॥ मृदुदहनशिखाभिर्मन्दमन्दं कटाहे विगतसलिलशेषं पाचयेत् पाकविज्ञः। वितरित गुडपाके किञ्चिदुष्णेऽवतीर्णे द्रुपदि दृढमभीक्ष्णं चूर्णितं देयमाशु ॥ ५४ ॥ त्रिकटुकमधुकैलायासवैडङ्गसारं त्रिफलगदलवङ्गं कर्षमेकैकशश्च। तदनु शिशिरकाले द्वे पले माक्षिकस्य प्रतनुपटनिघृष्टं गालितं सम्प्रदद्यात् ॥ ५५ ॥ शुभतिथिदिवसादौ भोजनादौ निषेव्यं प्रथमदिवसमेनं सार्द्धमाषं तदूर्ध्वम्। अहरहरनुवृद्ध्या शाणमानं प्रयोज्यं हिमकररुचिशीतं गव्यदुग्धञ्च पेयम् ॥ ५६ ॥ नियतमयमसाध्यानम्लपित्तोत्थशूलान् वमिनिवहसदाहानाहमोहप्रमेहान्। विविधरुधिररोगान् पित्तयुक्तानशेषानपहरति सिताख्यो दिव्यमण्डूरयोगः ॥ ५७ ॥

४ तोला मदूर को अग्नि में तपा-तपाकर सात बार गोमूत्र में बुझाकर शुद्ध कर लेवे। फिर धाम में सुखा करके उत्तम चूर्ण बना लेवे। यह मण्डूर-चूर्ण २४ तोला, चीनी २० तोला, पुराना घी ३२ तोला और गाय का दूध ६४ तोला, इन चारों औषधों को लोह की कड़ाही में डालकर धीमी आँच में पकावे। उसके बाद कुछ गरम रहते ही त्रिकटु, मुलेठी, इलायची, जवासा, वायविडंग, त्रिफला, कूट और लौंग का एक एक तोला चूर्ण मिला देवे। शीतल होने पर महीन कपड़े में छानकर ८ तोला मधु मिला देवे। एवं किसी शुभ मुहूर्त में इसका सेवन आरम्भ करना चाहिए। प्रतिदिन भोजन के पूर्व इसका सेवन करे। पहिले दिन ½ माशे खावे। पश्चात् प्रतिदिन आधा-आधा माशा बढ़ाकर ३ माशे तक सेवन करे। इस औषध को खाकर गाय का दूध अवश्य पीना चाहिए। इसके सेवन करने से *अम्लपित्तजन्य असाध्य शूल*, वमन, दाह, आनाह, मोह और प्रमेह तथा विविध प्रकार के रक्तविकार और समस्त पित्त-विकार निस्सन्देह दूर हो जाते हैं ॥ ५३-५७ ॥

१—द्विपटकपलमेकमित्यपि पाठः।

२—'गतवति' इति पाठान्तरम्।

सौभाग्यशुण्ठीमोदक।

त्रिकटुत्रिफलाभृङ्गजीरकद्वयधान्यकम्। कुष्ठाजमोदालौहाभ्रं शृङ्गीकट्फलमुस्तकम् ॥ ५८ ॥ एला जातीफलं मांसी पत्रं तालीशकेशरम्। गन्धमात्रा शटी यष्टी लवङ्गं रक्तचन्दनम् ॥ ५९ ॥ एतानि समभागानि शुण्ठीचूर्णन्तु तत्समम्। सिता द्विगुणिता तत्र गव्यक्षीरं चतुर्गुणम् ॥६०॥ तोलप्रमाणं दातव्यं दुग्धेनापि जलेन वा। अम्लपित्तं निहन्त्येतदरोचकनिषूदनम् ॥ ६१ ॥ शूलहृद्रोगशमनं कण्ठदाहं नियच्छति। हृद्दाहं च शिरःशूलं मन्दाग्नित्वं विनाशयेत् ॥ ६२ ॥ हृच्छूलं पार्श्वकुक्षिस्थं वस्तिशूलं गुदे रुजम्। बलपुष्टिकरं चैव वशीकरणमुत्तमम् ॥ ६३ ॥ विशेषादम्लपित्तं च मूत्रकृच्छ्रं ज्वरं भ्रमम्। निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥६४॥

त्रिकटु, त्रिफला, भाँगरा, स्याहजीरा, सफेद जीरा, धनियाँ, कूट, अजमोद, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, काकड़ासिंगी, कायफल, नागरमोथा, इलायची, जायफल, जटामांसी, तेजपात, ताली-शपत्र, नागकेशर, गन्धमात्रा, कपूर, मुलेठी,

लौंग और लालचंदन; प्रत्येक सम भाग और मिली हुई सब चीजों के समभाग सोंठ का चूर्ण तथा सोंठ के चूर्ण सहित सब चीजों से दूनी चीनी और चीनी सहित सब चीजों का चौगुना गाय का दूध लेकर यथाविधि पाककरके लड्डू बना लेवे। इसकी मात्रा १ तोला की है। दूध या जल के साथ सेवन करना चाहिए। यह सौभाग्यशुंठीमोदक अम्लपित्त, अरोचक, शूल, हृद्रोग, कण्ठदग्ह, हृदय का दाह, शिर की पीड़ा, अग्निमान्द्य, हृदय-शूल, पार्श्वशूल, कुक्षि-शूल, वस्ति-शूल और गुदा की पीड़ा को दूर करता है तथा बलवर्धक, पौष्टिक और उत्तम वशीकरण है। विशेष करके यह मोदक अम्लपित्त, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर और भ्रम-रोगों को निःसंदेह नष्ट करता है। जैसे सूर्य भगवान् अन्धकार को नष्ट करते हैं। ॥ ५०-६४ ॥

अम्लपित्तान्तकमोदक।

नागरस्य कणायाश्च पलान्यष्टौ प्रदापयेत्। गुवाकस्य पलान्यष्टौ सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ ६५ ॥ घृतं क्षीरं ततः पश्चात् प्रस्थं प्रस्थं प्रदापयेत्। लवङ्गं केशरं कुष्ठं यमानी कारवी वचा ॥ ६६ ॥ चन्दनं मधुकं रास्ना देवदारु फलत्रिकम्। पत्रमेला वरङ्गं च सैन्धवं हवुषं शटी ॥६७॥ मदनं कट्फलं मांसी गगनं वङ्गरूप्यकम्। तालीशं पद्मकं मूर्वा समङ्गा वंशलोचना ॥ ६८ ॥ ग्रन्थिकं शतपुष्पा च शतमूली कुरुण्टकम्। जातीफलं जातिकोषं कङ्कोलमम्बुदं कणा ॥६९॥ कर्पूरञ्च विडङ्गञ्च अजमोदा बलामृता। मर्कटी तुरवीजञ्च चन्दनं देवताडकम् ॥ ७० ॥ लौहं कांस्यं प्रदातव्यं कर्षमात्रं भिषग्विदा। अन्यत् सर्वं कर्षमात्रं कर्षार्द्धं स्वर्णभस्मकम् ॥७१॥ चतुर्धा तु विधानेन मारितं ग्राहयेत् सुधीः। अम्लपित्तान्तको ह्येष मोदको मुनिभाषितः ॥ ७२ ॥ वान्तिं मूर्च्छां च दाहं च कासं श्वासं भ्रमं तथा। वातजं पित्तजञ्चैव कफजं सान्निपातिकम् ॥ ७३ ॥ सर्वरोगं निहन्त्याशु प्रमेहं सूतिकागदम्। शूलञ्च वह्निमान्द्यञ्च मूत्रकृच्छ्रं गलग्रहम् ॥ ७४ ॥

सोंठ, पीपरि और सुपारी के बत्तीस-बत्तीस तोला चूर्ण में घृत १२८ तोला और दूध १२८ तोला डालकर यथाविधि पाक करे। पाक शेष होने पर लौंग, नागकेसर, कूट, अजवाइन, कालाजीरा, बच, चन्दन, मुलेठी, रास्ना, देवदारु, त्रिफला, तेजपात, इलायची, दालचीनी, लाहौरी नमक, हाऊबेर, कचूर, मैनफल, कायफल, जटामांसी, अभ्रक भस्म, वंगभस्म, चाँदी की भस्म, तालीशपत्र, पद्माख, मूर्वा, मजीठ, वंशलोचन, पिपरामूल, सौंफ, शतावरि, पियाबासा की जड़, कुबे की छाल, जायफल, जावित्री, कंकोल, नागरमोथा, पीपरि, कपूर, बायविडंग, अजमोद, खरेटी, गिलोय, कौंच के बीज, तालमखाना, चंदन, देवताड़ (देवदाली), लौहभस्म और काँसे की भस्म प्रत्येक एक-एक तोला और स्वर्णभस्म आधा तोला मिलाकर मोदक (लड्डू) बना लेवे। यह मोदक अम्लपित्त रोग का नाशक है, ऐसा मुनियों ने कहा है। इसका सेवन करने से वमन, मूर्च्छा, दाह, कास, श्वास, भ्रम तथा अन्यान्य वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक समस्त रोग तत्काल नष्ट होते हैं। प्रमेह सूतिका-रोग, शूल, अग्नि-मान्द्य, मूत्रकृच्छ्र, और गलग्रह को भी नष्ट करता है। मात्रा—६ माशा ॥ ६५-७४ ॥

सर्वतोभद्रलौह।

लौहचूर्णं मृतं ताम्रमभ्रकञ्च पलं पलम्। शुद्धसूतञ्च कर्षैकं गन्धकार्द्धपलं तथा ॥ ७५ ॥ माक्षिकस्य विशुद्धस्य कर्षं शुद्धा शिला परा। सार्द्धकर्षं विशुद्धञ्च शिलाजतु तथा परम् ॥ ७६ ॥ गुग्गुलो-

श्चापि कर्पैकं शाणमानं परस्य च । चूर्णं विडङ्गभल्लातवह्निश्वेतार्कमूलजम् ॥ ७७ ॥ करिकर्णपलाशश्च तालमूली पुनर्नवा । घनामृता नागवला चक्रमर्दकमुण्डिरी ॥ ७८ ॥ भृङ्गकेशशतावर्य्यो वृद्धदारं फलत्रिकम् । त्रिकटुश्चापि सर्वेषां प्रत्येकञ्च नयेद्भिषक् ॥ ७९ ॥ सर्वमेकत्र संमर्द्य घृतेन मधुना सह । स्निग्धे भाण्डे विनिःक्षिप्य ततः कुर्याद्विधानवित् ॥ ८० ॥ द्विगुंजादिक्रमेणैव लौहं सर्वरसायनम् । अम्लपित्तं जयेच्छीघ्रं सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ ८१ ॥ तद्वदर्शांसि सर्वाणि सर्वमेव भगन्दरम् । पक्तिशूलञ्च शूलञ्च तथामं कुक्षिसम्भवम् ॥ ८२ ॥ वातरक्तं तथा कुष्ठं पाण्डुरोगं हलीमकम् । आमवातं तथा शोथमग्निमान्द्यं सुदुस्तरम् ॥ ८३ ॥ कामलां वातगुल्मञ्च पिडकागरगृध्रसीः । कासश्वासारुचिहरं वृष्यमेतद्विशेषतः ॥ ८४ ॥ सर्वव्याधिहरं प्रोक्तं यथेष्टाहारसेविनः । यक्ष्माणं रक्तपित्तञ्च वातरोगं विनाशयेत् ॥ संज्ञया सर्वतोभद्रलौहो रसवरः स्मृतः ॥ ८५ ॥

लौह-भस्म, ताम्र-भस्म, अभ्रक-भस्म प्रत्येक चार-चार तोला, पारा १ तोला, गंधक २ तोला, शुद्ध सोनामाखी १ तोला, शुद्ध मैनशिल १ तोला, शुद्ध शिलाजीत १॥ तोला, गुग्गुल १ तोला, वायविडंग, भिलावाँ, चीता, सफेद आक के मूल की छाल, हस्तिकर्ण, ढाक के मूल की छाल, स्याहमुसली, सोंठी, नागरमोथा, गिलोय, गुलसकरी, पमार, गोरखमुंडी, भाँगरा, शतावरि, विधारा, त्रिफला और त्रिकटु प्रत्येक तीन-तीन माशे ले । इन औषधों का चूर्ण बनाकर घृत और मधु मिलाकर घी के चिकने पात्र में रख देवे । मात्रा—२ रत्ती से प्रारम्भ करके १ माशा तक । इसके सेवन करने से उपद्रवयुक्त अम्लपित्त, सब प्रकार के बवासीर, सब प्रकार के भगंदर, पक्तिशूल, शूल, आमशूल, कुक्षिशूल, वातरक्त, कुष्ठ, पाण्डुरोग, हलीमक, आमवात, शोथ, अग्निमान्द्य, कामला, वायगोला, पिडका (फुंसियाँ) विष-विकार, गृध्रसी, कास, श्वास, अरुचि, यक्ष्मा, रक्तपित्त, वातरोग आदि सब प्रकार के रोग नष्ट होते हैं और बल, वीर्य की वृद्धि होती है । इसके सेवन करनेवाले मनुष्य को यथेष्ट आहार करना चाहिये । इसको सर्वतोभद्रलौह कहते हैं । यह सर्वोत्तम रस है ॥ ७९-८५ ॥

सूतशेखर

शुद्धं सूतंमृतं स्वर्णं टङ्कणं वत्सनाभकम् । व्योषमुन्मत्त बीजञ्च गन्धकं ताम्रभस्मकम् ॥ ८६ ॥ चातुर्जातं शङ्खभस्म बिल्वमज्जा कचोरकम् । सर्वसमं क्षिपेत्खल्ले मर्द्यं भृङ्गरसैर्दिनम् ॥ ८७ ॥ गुञ्जा मात्रावटी कृत्वाभक्षयेन्मधुसर्पिषा । रसोऽयमम्लपित्तघ्नो वान्तशूलामयापहः ॥८८॥ पञ्च गुल्मान् पञ्चकासान्ग्रहण्यामयनाशनः । त्रिदोषोत्थातिसारघ्नः श्वासमन्दाग्निनाशनः ॥ ८९ ॥ उग्रहिक्कामुदावर्तं दाहयाप्यगदापहः । मण्डलान्नात्र सन्देहः सर्वरोगहरः परः ॥ ९० ॥ राजयक्ष्महरः साक्षाद्रसोऽयं सूतशेखरः ॥ ९१ ॥

शुद्ध पारा सुवर्णभस्म, भुनासुहागा, शुद्धविष, त्रिकुटा, शुद्ध धतूरे के बीज और गन्धक ताम्रभस्म, चातुर्जात, शंख भस्म, बेलगिरी, कचूर सब समान भाग लेकर महीन चूर्णकर कजली भांगरे के रस से १ दिन घोटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावे । इनमें से १-१ गोली शहद और घृत के साथ लेने से अम्लपित्त उल्टी दर्द पाँचों गुल्म, कास, ग्रहणी, त्रिदोष, अतिसार, श्वास, मन्दाग्नि, भयंकर हिक्का, उदावर्त, दाह याप्य

रोग, राजयक्ष्मा इन सबको बिलकुल नष्ट कर देता है ॥ ८९-९१ ॥

पानीयभक्तवटिका

कृष्णाभ्रलौहमलकुष्ठविडङ्गचूर्णं प्रत्येकमेकपलिकं विधिवद्विधाय । चव्यं कटुत्रयफलत्रयकेशराजदन्तीपयोदचपलानलघण्टकर्णाः[1] ॥ ९२ ॥ माणौलशुक्लबृहतीत्रिवृताः ससूर्यावर्त्ताः पुनर्नविकया सहितास्त्वमीषाम् । मूलं प्रति प्रतिविशोधितमत्तमेकं चूर्णं तदर्द्धरसगन्धकमेकसंस्थम् ॥ ९३ ॥ कृत्वार्द्रकीयरससंवलितञ्च भूयः सम्पिष्य तस्य वटिका विधिवद्विधेया । हन्त्यम्लपित्तमरुचिं ग्रहणीमसाध्यां दुर्नामकामलभगन्दरशोथगुल्मान् ॥ ९४ ॥ शूलञ्च पाकजनितं सततान्निमान्द्यं सद्यः करोत्युपचयं चिरनष्टवह्नेः । कुष्ठान्निहन्ति पलितञ्च वलिं विवृद्धां श्वासञ्च कासमपि पाण्डुगदं निहन्ति ॥ ९५ ॥ वार्य्यन्नमांसदधिकाञ्जिकृतक्रमत्स्यचिञ्चाम्लतैलपरिपक्वभुजो यथेष्टम् । भृङ्गाटबिल्वगुडकञ्चटनारिकेलदुग्धानिसर्वविदलानिविवर्जयेत्तु ९५॥

एषा ग्रहण्यामपि प्रशस्ता ।

अभ्रक-भस्म, मंडूर, कूठ और वायविडङ्ग प्रत्येक चार-चार तोले, चव्य, त्रिकटु, त्रिफला, भाँगरा, दन्ती (जमालगोटा) की जड़, नागरमोथा, पीपरि, चीता, घण्टकर्ण,[1] (मोखा), मानकन्द, सूरनकन्द, श्वेत लोध, कटेरी की जड़, निसोत, सूर्यमुखी और साँठी की जड़ प्रत्येक एक एक तोला, पारा आधा तोला और गन्धक आधा तोला लेवे । इन द्रव्यों को अदरख के रस में घोट करके गोलियाँ बना लेवे । यह 'पानीयभक्तवटिका' अम्लपित्त, अरुचि, ग्रहणी, बवासीर, कामला, भगंदर, शोथ, वायगोला, परिणामशूल, अग्निमान्द्य, वलि (झुर्रियाँ पड़ना), पलित (बाल सफेद होना), श्वासकास और पाण्डुरोग को तत्काल नष्ट करती है तथा अग्नि को बढ़ाती है । इस औषध का सेवन करनेवाला रोगी जल, भात, मांस, दही, काँजी, तक्र, मछली, इमली और तैलपक पदार्थों का यथेष्ट आहार कर सकता है । सिंहाड़ा, बेल, गुड़, चौराई का साग, नारियल, दूध और सर्व प्रकार की दालों का त्याग करना चाहिये । यह 'पानीयभक्तवटिका' ग्रहणी रोग की भी श्रेष्ठ औषध है ॥ ९२-९६ ॥

१—घंटकर्ण को बंगभाषा में घेंटू कहते हैं ।

बृहत्सुधावती गुटिका ।

गगनाद् द्विपलं चूर्णं लौहस्य पलमात्रकम् । लौहकिट्टपलार्द्धं च सर्वमेकत्र संस्थितम् ॥ ९७ ॥ मण्डूकपर्णीवशिर[1]तालमूलीरसैस्तथा । भृङ्गराजकेशराजकालमरिपत्रैरथ ॥ ९८ ॥ त्रिफलामद्रमुस्ताभिः स्थालीपाकाद्विचूर्णितम् । रसगन्धकयोः कर्षं प्रत्येकं ग्राह्यमेकतः ॥९९॥ तन्मसृणशिलाखल्ले यत्नतः कज्जलीकृतम् । वचा चव्यं यमानी च जीरकेशतपुष्पिका ॥ १०० ॥ व्योषं विडङ्गं मुस्तञ्च ग्रन्थिकं खरमञ्जरी । त्रिवृता चित्रको दन्ती सूर्यावर्त्तः सितस्तथा ॥ १०१ ॥ भृङ्गमाणककन्दाश्च घण्टाकर्णक एव च । दण्डोत्पलाकेशराजकोली कर्कटकोऽपि च ॥ १०२ ॥ एषामर्द्धपलं ग्राह्यं पटघृष्टं सुचूर्णितम् । प्रत्येकं त्रिफलायाश्च पलार्द्धं पलमेव च ॥१०३॥ एतत् सर्वं समालोड्य लौहपात्रे च भावयेत् । आतपे दण्डसंघृष्टमार्द्रकस्य रसै-

१—वशिरम्=समुद्रलवणे गजपिप्पल्यां च । परन्तु प्राचीनैः श्वेतसूर्यावर्त्तस्यापि बोधकमित्यभिहितम् । अत्र तस्यैव ग्रहणं श्रेयस्करम् ।

त्रिधा ॥ १०४ ॥ तद्रसेन शिलापिष्टां गुटिकां कारयेद्भिषक् । बदरास्थिनिभां शुष्कां सुनिगुप्तां निधापयेत् ॥१०५॥ तत्प्रातर्भोजनादौ च सेवितं गुटिकात्रियम्। अम्लोदकानुपानन्तु हितं मधुरवर्जितम् ॥ १०६ ॥ दुग्धश्च नारिकेलश्च वर्जनीयं विशेषतः । भोज्यं यथेष्टमिष्टञ्च वारिभक्ताम्लकाञ्जिकम् ॥ १०७ ॥ हन्त्यम्लपित्तं विविधं शूलञ्च परिणामजम्। पाण्डुरोगञ्च गुल्मञ्च शोथोदरगुदामयान् १०८ यक्ष्माणं पञ्चकासाँश्च मन्दाग्नित्वमरोचकम्। प्लीहानं श्वासमानाहमामवातं स्वरामयम्। गुटी क्षुधावती सेयं विख्याता रोगनाशिनी ॥ १०९ ॥

अभ्रक-भस्म ८ तोला, लौह भस्म ४ तोला और मण्डूर २ तोले लेकर एक में मिलावे। तदनन्तर मंडूकपर्णी, सफेद सूर्यावर्त (सूरजमुखी) और स्याहमुसली के स्वरस में घोट करके स्थाली में पकावे। उसके बाद श्वेत और रक्त दोनों प्रकार के भाँगरे और चौराई के रस से द्वितीय स्थालीपाक करे। ऐसे ही त्रिफला और नागरमोथा के स्वरस से तृतीय स्थालीपाक करके, भली भाति घोट कर चूर्ण बना लेवे और उस चूर्ण में एक एक तोले गन्धक और पारे की कजली और वच, चव्य, अजवाइन, स्याहजीरा, सफेदजीरा, सौंफ, त्रिकटु, वायविडंग, नागरमोथा, पिपरामूल, अपामार्ग (औंगा), निसोत, चीता की जड़, दन्ती, श्वेत सूर्यावर्त (सूरजमुखी), भँगरैया, मानकन्द शूरणकन्द, घण्टाकर्ण (मोखा), पीले फूलोंवाली सहदेई, भाँगरा, करील की जड़ और काकड़ासिंगी का दो-दो तोला चूर्ण तथा आवला, हरड़ और बहेड़ा के छ-छ तोला चूर्ण को मिलाकर कपड़छान करके लौहपात्र में रक्खे और अदरख के रस की तीन भावना देकर धूप में लोह के दण्ड से खरल करके छोटी बेर की गुठली के समान गोलिया बना लेवे। भोजन करने के पहले प्रतिदिन प्रात काल कांजी के साथ तीन-तीन गोलियों का सेवन करना चाहिए। मधुर पदार्थ, दुग्ध और नारियल को त्याग देना चाहिये। जल, भात, कांजी आदि के अनुसार पदार्थों का आहार करे। यह 'वृहत्क्षुधावती' विविध प्रकार के अम्लपित्त, परिणामशूल, पाण्डु रोग, गुल्म, शोथ, उदर, बवासीर, यक्ष्मा, पांच प्रकार की खासी, अग्निमान्द्य, अरोचक, प्लीहा, श्वास, आनाह, आमवात और स्वररोग को तत्काल नष्ट करती है। यह 'क्षुधावती' गुटिका रोगों को दूर करने में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं ॥ ९७ १०९ ॥

त्रिफलामण्डूर ।

गोमूत्र शुद्धमण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम्। विलिहन् मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्त्यम्लपित्तजम् ॥ ११० ॥

त्रिफला मिलाकर १ भाग, मण्डूरभस्म १ भाग; इन्हें मिलाकर घी और शहद के साथ चाटने से अम्लपित्त से उत्पन्न हुआ शूल अच्छा होता है ॥ ११० ॥

क्षुधावती गुटिका ।

रसायोगन्धकाभ्राणि त्र्यूषणं त्रिफला वचा। यमानी शतपुष्पा च चविका जीरकद्वयम् ॥ १११ ॥ प्रत्येकं पलमेषान्तु घण्टकर्णपुनर्नवा। माणकं ग्रन्थिकश्चेन्द्रकेशराग सुदर्शना ॥ ११२ ॥ दण्डोत्पला त्रिवृद्दन्ती जामातृरक्तचन्दनम्। भृङ्गापामार्गकुलका मण्डूकश्च पलार्द्धकम् ॥ ११३ ॥ आर्द्रकस्वरसेनाथ गुडिकां सम्प्रकल्पयेत्। बदरास्थिसमाञ्चैकां भक्षयित्वा पिबेदनु ॥ ११४ ॥ वारिभक्तं जलञ्चैव प्रातरुत्थाय मानवः। वटी क्षुधावती नाम सर्वाजीर्णविनाशिनी ॥ ११५ ॥ अग्निश्च कुरुते दीप्तं भस्मकञ्च नियच्छति। अम्ल-

पित्तञ्च शूलञ्च परिणामकृतञ्च यत् ॥ ११६ ॥ तत् सर्वं शमयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा । मधुरं वर्जयेदत्र विशेषात् क्षीरशर्करे ॥ ११७ ॥

पारा, लौहभस्म, गन्धक, अभ्रकभस्म, त्रिकटु, त्रिफला, बच, अजवाइन, सोया, चव्य, स्याहजीरा और सफेदजीरा प्रत्येक एक एक पल, घण्टकर्ण (मोखा), सोंठी, मानकन्द, पिपरामूल, इन्द्रजौ, मॉंगरा, सुदर्शना, पीले फूलोंवाली सहदेई, निसोत, दन्ती, सूर्यमुखी, लालचन्दन, केशराज, भींगा, पटोलपत्र और मण्डूकपर्णी को दो-दो तोले लेवे । इनको अदरख के रस में घोटकर बेर की गुठली के समान गोलियाँ बनावे । प्रात काल एक गोली खाकर कॉंजी या जल का पान करे । यह 'क्षुधावती' गुटिका सब प्रकार के अजीर्ण को नष्ट करके अग्नि को दीप्त करती और भस्मकरोग को शान्त करती है । जैसे सूर्य अन्धकार को तत्काल दूर करते हैं वैसे ही यह 'क्षुधावती' गुटिका अम्लपित्त और परिणामशूल को तत्काल नष्ट करती है । इसके सेवन-काल में मधुर वस्तुओं का और विशेष करके दूध और चीनी का सेवन नहीं करना चाहिये ॥ १११-११७ ॥

लीलाविलास ।

रसो बलिर्व्योम रविस्तु लौहं धात्र्यक्षनीरैस्त्रिदिनं विमर्द्य । तदल्पघृष्टं मृदुमार्कवेण संमर्दयेदस्य हि रक्तिमात्रम् ॥११८॥ हन्त्यम्लपित्तं विविधप्रकारं लीलाविलासो रसराज एषः । छर्दिं सशूलां हृदयस्य दाहं निवारयेदेष न संशयोऽत्र ॥ ११९॥ दुग्धं सकुष्माण्डरसं सधात्रीफलं समेतं ससितं भजेद्वा ॥ १२० ॥

पारा, गंधक, अभ्रक, ताम्र और लौहभस्म को समभाग लेकर आंवला और बहेड़ा के स्वरस की भावना दे देकर, तीन दिन तक खरल करके, एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे । इसको लीलाविलास रस कहते हैं । इसका सेवन करने से विविध प्रकार के अम्लपित्त, वमन, शूल और हृदय-दाह, ये सब नि सन्देह नष्ट हो जाते हैं । अनुपान—दूध, पेठा का रस और आंवले के रस के साथ अथवा चीनी के साथ इस रस का सेवन करना चाहिए ॥ ११८-१२० ॥

योगरत्नसमुच्चय का सर्वतोभद्रलौह ।

लौहचूर्णं मृतं ताम्रमभ्रकञ्च पलं पलम् । शुद्धसूतस्य कर्षैकं गन्धकार्द्धपलं तथा ॥ १२१ ॥ माक्षिकस्य विशुद्धस्य कर्षं शुद्धशिलापरा । सार्द्धकर्षं विशुद्धञ्च शिलाजतु तथापरम् ॥ १२२ ॥ गुग्गुलोश्चापि कर्षैकं शाणमानं परस्य च । चूर्णं विडङ्गभल्लातवह्निश्वेतार्कमूलजम् ॥१२३॥ करिकर्णपलाशञ्च तालमूली पुनर्नवा । घनामृता नागबला चक्रमर्दकपुण्डरी ॥ १२४ ॥ भृङ्गकेशशतावर्यौ वृद्धदारं फलत्रयम् । त्रिकटुश्चापि सर्वेषां प्रत्येकञ्च नयेद्भिषक् ॥ १२५ ॥ सर्वमेकत्र सम्मर्द्य घृतेन मधुना सह । स्निग्धे भाण्डे विनिःक्षिप्य ततः कुर्याद्विधानवित् ॥ १२६ ॥ द्विगुञ्जादिक्रमेणैव लौहं सर्वरसायनम् । अम्लपित्तं जयेच्छीघ्रं सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ १२७ ॥ तद्वदर्शांसि सर्वाणि सर्वमेव भगन्दरम् । पक्तिशूलञ्च शूलञ्च तथामं कुक्षिसम्भवम् ॥ १२८ ॥ वातरक्तं तथा कुष्ठं पाण्डुरोगं हलीमकम् । आमवातं तथा शोथमग्निमान्द्यं सुदुस्तरम् ॥१२९॥ कामलां वातगुल्मञ्च पिडकागरगृध्रसी । कासश्वासारुचिहरं वृष्यमेतद्विशेषतः ॥ १३० ॥ सर्वव्याधिहरं मोक्षं यथेष्टाहार-

1—'मधुनाथक्षौद्रो' इति पाठान्तरमन्यपुस्तके

सेविनः । यक्ष्माणं रक्तपित्तञ्च वातरोगं विनाशयेत् ॥ १३१ ॥ संज्ञया सर्वतोभद्र-लौहो रसवरः स्मृतः ॥ १३२ ॥

लौहभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म हरएक ४ तोला, शुद्ध पारा १ तोला, गन्धक २ तोला, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ तोला, शुद्ध मैनसिल १ तोला, शुद्ध शिलाजीत १॥ तोला, शुद्ध गूगल १ तोला, वायविडङ्ग, शुद्ध भिलावा, चीता, सफेद आक की जड़, हस्तिकर्ण, पलाश की छाल, मूसली, पुनर्नवा (विषखपरा) मोथा, गिलोय, गंगेरन, पँवाड़ के बीज, गोरखमुण्डी, भाँगरा, दूसरी प्रकार का भाँगरा, शतावर, विधारा के बीज, त्रिफला, त्रिकटु हरएक ६ माशे, इन्हें इकट्ठा मिलाकर घृत और शहद के साथ घोटकर चिकने बासन में रक्खे। मात्रा—२ रत्ती से प्रारम्भ कर क्रम से ८ रत्ती तक बढ़ावे। यह लौह वृष्य एवं रसायन है तथा सब उपद्रव सहित अम्लपित्त, बवासीर, भगन्दर, परिणाम-शूल, शूल, आमदोष, वातरक्त, कोढ़, पाण्डु, हलीमक, आमवात, सूजन, मन्दाग्नि, कामला, वातगुल्म, पिड़का, गरदोष, गृध्रसी, खाँसी, श्वास, अरुचि, राजयक्ष्मा, रक्तपित्त तथा वात-रोगों को नाश करता है ॥ १२१-१३२ ॥

अम्लपित्तान्तक रस ।

मृतसूतार्कलौहानां तुल्यां पथ्यां विमर्द-येत् । माषमात्रं लिहेत् क्षौद्रैरम्लपित्त-प्रशान्तये ॥ १३३ ॥

रससिंदूर, ताम्रभस्म और लौहभस्म प्रत्येक एक-एक तोला और हरड़ तीन तोले। इनको एकत्र खरल करके शहद मिलाकर, प्रतिदिन चार रत्ती की मात्रा में इस 'अम्लपित्तान्तक' रस के सेवन करने से अम्लपित्त की शान्ति होती है ॥ १३३ ॥

पञ्चाननगुटिका ।

शुद्धसूतं पलार्द्धञ्च तत् समं शुद्धगन्ध-कम् । तयोस्तुल्यं ताम्रपात्रं लिप्त्वा मूषान्तरे क्षिपेत् ॥ १३४ ॥ आच्छाद्य पञ्चलवणैः लिप्त्वा गजपुटे पचेत् । सिद्धं ताम्रं समा-दाय पलमेकं विचूर्णयेत् ॥ १३५ ॥ पार-दस्य पलञ्चैकं गन्धकस्य पलं तथा । पुट दग्धस्य लौहस्य गगनस्य पलं पलम् ॥ १३६ ॥ यमानी शतपुष्पा च त्रिकटु त्रिफलापि च । त्रिवृता चविका दन्ती शिखरी जीरकद्वयम् ॥ १३७ ॥ एतेषां पलिकैर्भागैर्घण्टकर्णकमाणकम् । ग्रन्थिकं चित्रकञ्चैव कुलिशानां पलार्द्धकम् ॥ १३८ ॥ आर्द्रकस्वरसैः पिष्ट्वा चतुर्गुञ्जामितां गुटीम् । पञ्चाननवटी ख्याता सर्वरोगविनाशिनी ॥ १३९ ॥ अम्लपित्तमहाव्याधिनाशिनी च रसायनी । महाग्निकारिका चैषा परिणाम-व्यथापहा ॥ १४० ॥ शोथपाण्ड्वामयाना-हप्लीहगुल्मोदरापहा । गुरुवृष्यान्नपानानि पयोमांसरसा हिताः ॥ १४१ ॥

शुद्ध किया हुआ पारा और शुद्ध गंधक दो-दो तोले, लेकर दोनों की कज्जली बना लेवें। उसके बाद चार तोले ताँबे के पत्र पर इस कज्जली का लेप करके मूषा-यन्त्र में रखकर, पंच लवण से ढककर गजपुट में पाक करे। ऐसा करने से ताम्रभस्म सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार भस्म करके खरल किया हुआ ताम्रभस्म ४ तोला, पारा ४ तोला, गंधक ४ तोला, लौहभस्म ४ तोला, अभ्रकभस्म ४ तोला, अजवाइन, सोया, त्रिकटु, त्रिफला, निसोत, चव्य, दन्ती, अपामार्ग, स्याह जीरा और सफेद जीरा, प्रत्येक चार-चार तोला, घण्ट-कर्ण (मोखा) मानकन्द, पिपरामूल, चीता और हरमंडारी की जड़ प्रत्येक दो-दो तोले; इन द्रव्यों का चूर्ण करके, अदरख के रस में खरल करके, चार-चार रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। यह 'पंचाननवटी' समस्त रोगों को नष्ट

करती और अम्लपित्त आदि महान् रोगों को नाश, करती हैं और रसायनी है। एवं यह 'पंचाननगुटिका' अग्नि को दीप्त करती है। परिणामशूल, शोथ, पाण्डुरोग, आनाह, प्लीहा, गुल्म और उदररोग को नष्ट करती है। इस औषध के सेवन करनेवाले रोगी के लिये दुग्ध और मांस-रस आदि गुरुपाक और वीर्यवर्धक अन्न, पान पथ्य हैं॥ १३४-१४१॥

भास्करामृताभ्र।

वासामृताकेशराजपर्पटीनिम्बभृङ्गकम्। मुस्तं वृश्चीरबृहती वाट्यालकशतावरी॥ १४२॥ एषां सर्वैः पलोन्मानैर्मर्दितं विमलाभ्रकम्। सहस्रपुटितं तत्र शतावर्य्या रसं क्षिपेत्॥ १४३॥ वारद्वादशकं दत्त्वा वटिकां कारयेद्भिषक्। भास्करामृतनामेदमम्लपित्तं नियच्छति॥ १४४॥ शूलमन्नद्रवं शूलं शूलं च परिणामजम्। छर्दिं हृल्लासमरुचिं तृष्णां कासञ्च दुर्जयम्॥ १४५॥ हृद्ग्रहं कामलां रक्तपित्तं यक्ष्माणमेव च। दाहं शोथं भ्रमं तन्द्रां विस्फोटं कुष्ठमेव च। श्वासं मूर्च्छाञ्च मन्दाग्निं यकृत्प्लीहोदरं तथा॥ १४६॥

अडूसा, गिलोय, सफेद भाँगरा, पित्तपापड़ा, नीम की छाल, भाँगरा, नागरमोथा, श्वेत साँठी, बड़ी कटेरी, खरैटी और शतावरि, इनके चार-चार तोले स्वरस में खरल किए हुए, सहस्र-पुटित अभ्रक-भस्म में शतावरि के रस की बारह भावना देकर, २ तोले की गोलियाँ बना लेवें। इसको 'भास्करामृताभ्र' कहते हैं।

यह 'भास्करामृताभ्र' अम्लपित्त, अन्नद्रव-शूल, परिणामशूल आदि विविध शूल, छर्दि, हृल्लास, अरुचि, तृष्णा, कास, हृद्ग्रह, कामला, रक्त-पित्त, यक्ष्मा, दाह, शोथ, भ्रम, तन्द्रा, विस्फोट, कुष्ठ, श्वास, मूर्च्छा, अग्नि-मान्द्य, यकृत् और प्लीहा को नष्ट करता है। मात्रा—एक रत्ती से दो रत्ती तक॥ १४२-१४६॥

अम्लपित्तान्तक लौह।

रसगन्धकमण्डूरैरयस्कान्तः सुजारितः। सम्यङ्मारितमभ्रञ्च सर्वंसदृशभागिकम्॥ १४७॥ धात्रीरसेन सम्मर्द्य वटी कार्या द्विरक्तिका। धन्यामया मधुरिका क्वाथेन यदि सेव्यते॥ १४८॥ अम्लपित्तादिकान् रोगान् हन्ति शूलान्यशेषतः। अम्लपित्तान्तको नाम्ना लौहोऽयं परिकीर्तितः॥ १४९॥

पारा, गंधक, मडूर, कान्तलौह-भस्म, अभ्रक भस्म ये सब सम भाग लेकर, आँवले के रस में घोटकर दो दो रत्ती की गोलियाँ बनावे और धनियाँ, बड़ी हरड़ का छिलका, सौंफ का क्वाथ करके उसके साथ अम्लपित्तान्तक लौह का सेवन करने से अम्लपित्तादिक रोग और सम्पूर्ण शूल शान्त हो जाते हैं॥ १४७-१४९॥

श्रीबिल्वतैल।

बालबिल्वं पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत्। पादावशेषे तस्मिंस्तु तैलमर्धं विपाचयेत्॥ १५०॥ धात्रीरसं तैलसमं द्विगुणं छागदुग्धकम्। कल्कीकृत्य पचेद्धीमान् धात्रीं लाक्षां तथाभयाम्॥ १५१॥ मुस्तकं चन्दनोदीच्यसरलं देवदारु च। मञ्जिष्ठां चन्दनं कुष्ठमेलां तगरपादिकम्॥ १५२॥ मांसीं शैलेयकं पत्रं प्रियङ्गुं सारिवां वचाम्। शतावरीमश्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाम्॥ १५३॥ तत् सिद्धं स्थापयेत् कुम्भे मासमेकं सुरक्षिते। बिल्वतैलमिदं श्रेष्ठमम्लपित्तकुलान्तकृत्॥१५४॥ शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः। सूतिकारोगशमनं गर्भदं शुक्रवर्द्धनम्॥ १५५॥ हस्तपादशिरोदाहं दौर्बल्यं कृशतां

तथा। ग्रहणीं गुल्महिक्कार्त्तिरक्तपित्तज्वरं जयेत् ॥ १५६ ॥

२ सेर कच्चे बेल की गिरी को २१ सेर ४८ तोला जल में पकावे, चतुर्थांश शेष रहने पर छान लेवे। इस क्वाथ में १२८ तोला तिलतैल, १२८ तोला आँवले का स्वरस ३ सेर १६ तोला बकरी का दूध और ६४ तोला नीचे लिखे औषधों का कल्क मिलाकर यथाविधि तैल सिद्ध करना चाहिये।

कल्कार्थ औषध।

आँवला, लाख, हरड़, नागरमोथा, चन्दन, सुगंधवाला, धूपसरल, देवदारु, मजीठ, रक्तचंदन, कूट, छोटी इलायची, तगर, जटामांसी, छरीला, तेजपात, फूल प्रियंगु, अनंतमूल, बच, शतावरि, असगंध, सोया और सोंठी।

तैल सिद्ध होने पर घड़े में एक मास तक रख छोड़े। इस श्रीबिल्वतैल के मर्दन करने से अम्लपित्त, शूल और सूतिकारोग नष्ट होते हैं। यह बिल्वतैल गर्भदायक और शुक्र-वर्धक है। एवं हाथ, पैर और शिर के दाह को दूर करता है। तथा दुर्बलता, कृशता, ग्रहणी, गुल्म, हिक्का और रक्तपित्त को दूर कर देता है ॥१५०-१५६॥

अम्लपित्तरोग में पथ्य-विधि।

ऊर्ध्वगे वमनं पूर्वमधोगे तु विरेचनम्। सर्वत्र[1]शस्यते पश्चान्निरूहश्चापि शालयः॥ १५७ ॥ यवगोधूममुद्गाश्च पुराणा जाङ्गला रसाः। जलानि तप्तशीतानि शर्करामधुसक्तवः ॥ १५८ ॥ कर्कोटकं कारवेल्लं पटोलं हिलमोचिका। वेत्राग्रं वृद्धकूष्माण्डं रम्भापुष्पञ्च वास्तुकम् ॥ १५९ ॥ कपित्थं दाडिमं धात्री तिक्तानि सकलानि च। अम्लपित्तामये नित्यं सेवितव्यानि मानवैः ॥ १६० ॥

१—द्वयोरल्पाशनमिति साधु पाठः।

ऊर्ध्वगामी अम्लपित्त में पहले वमन और अधोगामी अम्लपित्त में पहले विरेचन कराना चाहिए। तदनंतर दोनो प्रकार के अम्लपित्त रोग में निरूहवस्ति (पिचकारी) देना चाहिए। इस रोग में साठी का पुराना चावल, मूँग, जौ, गेहूँ, जंगली पशुओं के मांस का रस, उबाला हुआ शीतल जल, शक्कर, मधु, सत्तू, ककड़ी, करेला, परवल, हुरहुर (हिंचे शाक नाम से बंगदेश में प्रसिद्ध है), बेत की फुनगी, पुराना पेठा, केले के फूल, बथुआ, कैथा, अनार, आँवला और सम्पूर्ण कड़वे द्रव्य पथ्य हैं ॥ १५७-१६० ॥

अम्लपित्त में अपथ्य।

नवान्नानि विरुद्धानि पित्तकोपकराणि च। वमिवेगं तिलान्माषान् कुलत्थांस्तैलभक्षणम् ॥ १६१ ॥ अविदुग्धञ्च धान्याम्लं लवणाम्लकटूनि च। गुर्व्वन्नं दधि मद्यञ्च वर्जयेदम्लपित्तवान् ॥ १६२ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामम्लपित्तरोगचिकित्सा समाप्ता ॥

विरुद्ध आहार, नवीन अन्न, पित्तकोपक आहार द्रव्य, वमन के वेग का रोकना, तिल, उर्द, कुलथी, तैल, भेड़े का दूध, काँजी, नमक, खटाई, चरपरे द्रव्य, देर में पचनेवाले पदार्थ, दही और मद्य, अम्ल-पित्त-रोग में त्याज्य हैं ॥ १६१-१६२ ॥

इति श्रीपं०सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायामम्लपित्ताधिकारः समाप्तः।

अथ शूलाधिकारः ।

शूलचिकित्सा ।

वमनं लङ्घनं स्वेदः पाचनं फलवर्त्तयः ।
क्षारचूर्णानि गुटिकाः शस्यन्ते शूलशान्तये ॥ १ ॥

लङ्घनम् आमपाचनार्थमेव स्वेदः पित्तं विना, क्षारचूर्णानि वक्ष्यमाणानि, फलैर्निर्मिता वर्तयः फलवर्तयः ।

वमन, आमदोष-पाचनार्थ संघन, यदि पित्ताधिक्य न हो तो स्वेद-क्रिया, पाचन-फलवत्तियाँ एवं आगे कहे जानेवाले क्षार-चूर्ण और गुटिका ये सब शूलरोग की शान्ति के उपाय हैं ॥ १ ॥

पुंसः[1] शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावहः । पायसैः कृशरैः पिष्टैः स्निग्धैर्वा पिशितोत्करैः ॥ २ ॥

शूल-रोगी के लिये तिल और चावलों की खीर, पिंड, स्निग्धपिंड (पुलटिस) तथा मेषादि मांसों द्वारा स्वेद-क्रिया विशेष लाभदायक होती है ॥ २ ॥

वातिक शूलचिकित्सा ।

विज्ञाय वातशूलन्तु स्नेहस्वेदैरुपाचरेत् । तस्य शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावहः ॥ ३ ॥

वातशूल पीड़ित रोगी को स्नेहन तथा स्वेदन (पसीना निकालना) द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये । वातशूल में स्वेदन ही अत्यन्त लाभदायक है ॥ ३ ॥

वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं स्नेहेन युक्तस्तु कुलत्थयूषः । ससैन्धवव्योषयुतः सलावः सहिङ्गुसौवर्चलदाडिमाढ्यः ४ ॥

लावमांसं कुलत्थश्च युक्त्या गृहीत्वा काथयित्वा छानयित्वा च यूषः कार्यः ततो घृतं दत्त्वा सैन्धवं लवणत्वमात्रापादकं, व्योषञ्च कटुत्रयं कटुत्वमात्रकारकं दाडिमफलरसः स्वादुत्वार्थं ततो हिङ्गुसौवर्चलं च प्रक्षिप्य पिबेत् । अन्ये तु कुलत्थयूषः पृथगेव देय इति कथयन्ति ।

कुलथी और लवापक्षी का मांस दो-दो तोले लेकर ६४ तोले जल में पकावे । जब १६ तोला जल बच रहे तो उतारकर छान ले एवम् हींग और घृत से छौंक दे तथा सेंधा नमक, काला नमक एवम् त्रिकुटा का चूर्ण डालकर अनार का रस मिला देना चाहिये । यह यूष वातजन्य शूल को शीघ्र ही नष्ट करता है ॥ ४ ॥*

बलादि क्वाथ ।

बलापुनर्नवैरण्डबृहतीद्वयगोक्षुरैः ।
सहिङ्गुलवणोपेतं[1] सद्यो वातरुजापहम् ५॥

खरैटी की जड़, सोंठी, एरंड की जड़, दोनों कटेरी और गोखरू ; इनके क्वाथ में हींग और सेंधा नमक मिलाकर पीने से वातिक शूल नष्ट होता है । मात्रा—४ तोला ॥ ५ ॥

हिंग्वादि चूर्ण ।

शूली निरत्रकोष्ठोऽद्भिरुष्णाभिश्चूर्णिताः पिबेत् । हिङ्गुमतिविषाव्योषवचासौवर्चलाभयाः ॥ ६ ॥

शूल-रोगी के कोष्ठ की अजीर्णता को दूर करके उष्ण जल के साथ हींग, अतीस, त्रिकटु, वच, काला नमक और हरड़ के चूर्ण का सेवन कराना चाहिये । मात्रा—४ रत्ती से १ माशा ॥ ६ ॥

तुम्बुर्वादि चूर्ण ।

तुम्बुरूण्यभयाहिङ्गुपौष्करं लवण-

---

[1]—'वातशूलाभिपन्नस्य' इति पाठान्तरम् ।

* किसी-किसी का मत है कि कुलथी का यूष अलग ही देना चाहिये ।

[1]—सहिंगुलवणं पीतमिति पाठान्तरम् ।

त्रयम्। पिवेदुष्णाम्बुना वापि शूलगुल्मापतन्त्रकी[1] ॥ ७ ॥

शूल, गुल्म और अपतन्त्रकरोग में धनियाँ, हरड़, हींग, पुहकरमूल और तीनों लवणों के चूर्ण का उष्ण जल के साथ सेवन करना लाभदायक होता है। मात्रा १॥ माशा ॥ ७ ॥

यमान्यादि चूर्ण।

यमानी हिङ्गुसिन्धूत्थक्षारसौवर्चलाभयाः। सुरामण्डेन पातव्या वातशूलनिषूदनाः ॥ ८ ॥

अजवाइन, हींग, सेंधा नमक, यवक्षार, काला नमक और हरड़ के चूर्ण को ४ माशा की मात्रा में सुरामंड के साथ पीने से वातिक शूल नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

विश्वादि काथ।

विश्वमेरण्डजं मूलं काथयित्वा जलं पिवेत्। हिङ्गुसौवर्चलोपेतं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ ९ ॥

सोंठ और एरंड की जड़ के काथ में हींग और काला नमक मिलाकर पान करने से शूलरोग शीघ्र शान्त हो जाता है।

हिङ्गुपुष्करमूलाभ्यां हिङ्गुसौवर्चलेन वा। विश्वैरण्डयवकाथः सद्यः शूलनिवारणः। तद्वदेव[2] यवकाथो हिङ्गुसौवर्चलान्वितः ॥ १० ॥

सोंठ, एरंड-मूल और इन्द्रजौ के काथ में हींग और पुहकरमूल का ४ तोला चूर्ण मिलाकर अथवा हींग और काला नमक मिलाकर पान करे, तो शूल-रोग तत्काल नष्ट हो जाता है।

इसी प्रकार केवल इन्द्रजौ के काथ में हींग और काला नमक मिलाकर पान करने से भी शूलरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ १० ॥

सौवर्चलादिगुटिका।

सौवर्चलाम्लिकाजाजी मरिचैर्द्विगुणोत्तरैः। मातुलुङ्गरसैः पिष्ट्वा गुटिकावातशूलनुत् ॥ ११ ॥

काला नमक एक तोला, इमली दो तोले, जीरा ४ तोले और काली मिर्च ८ तोले; इनके चूर्ण को बिजौरा नींबू के रस में घोटकर गोलियाँ बना लेवे। इसका सेवन गर्म जल के साथ करने से वातिक शूल नष्ट होता है ॥ ११ ॥

बीजपूरकमूलञ्च घृतेन सह पाययेत्। जयेद्वातभवं शूलं माषमेकं प्रमाणतः ॥ १२ ॥

एक माशा बिजौरे नींबू के मूल का काथ बना करके, उसमें घृत मिलाकर पान करे तो वातिक शूल नष्ट होता है ॥ १२ ॥

हिङ्ग्वादिगुटिका।

हिङ्ग्वम्लवेतसव्योषयमानीलवणत्रिकैः। बीजपूररसोपेतैर्गुटिका वातशूलनुत् ॥ १३ ॥

हींग, अमलवेत, त्रिकटु, अजवाइन और तीनों लवण को बिजौरे नींबू के रस में घोटकर गोलियाँ बना लेवे। यह गोली वातशूल को नष्ट करती है विशेष अनुभव ॥ १३ ॥

मृत्तिकास्वेद।

मृत्तिकां सजलां पाकाद् घनीभूतां पटे क्षिपेत्। कृत्वा तत्पोट्टलीं शूली यथास्वेदं निधापयेत् ॥ १४ ॥

जल में मिट्टी को घोलकर अग्नि पर पकावे। जब जल लेप के समान गाढ़ा हो जाय तब अग्नि पर से उतार ले और एक कपड़े के टूक में डालकर पोटली बना ले और गरम-गरम ही जहाँ पर शूल होता हो स्वेदन के लिये लगावे ॥ १४ ॥

१—पिवेद्यवाम्बुना, वातशूलगुल्मापतन्त्रकी इत्यपि पाठोऽन्यत्र प्रचरित तत्र यवाम्बुना इति यवक्वाथेनेत्यर्थः।

२—तद्वद्वयवकाथ इति पाठान्तरम्; ग्रन्थान्तरे तु नागरैरण्डयोः क्वाथः, क्वाथ इन्द्रयवस्य वेति पाठः।

तिलैश्च गुटिकां कृत्वा लेपयेज्जठरोपरि। गुटिका शमयत्येषा शूलञ्चैवातिदुस्तरम् ॥ १५ ॥

तिलों को पीसकर उसकी गोली को पेट पर लेपन करे। इस प्रकार करने से अतिकठिन शूल नष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥

बिल्वमूलतिलैरण्डं पिष्ट्वा चाम्लतुषाम्भसा। गुटिकां भ्रामयेदुष्णां वातशूलविनाशिनीम् ॥ १६ ॥

बेल के मूल की छाल, तिल और एरंड के मूल को खट्टी काँजी में पीसकर पोटली बना लेवे। इस पोटली को उष्ण करके पेट को सेंके। जिस स्थान पर शूल हो, वहाँ पर घुमावे। कुछ देर तक ऐसा करने से वातिक शूल नष्ट हो जाता है ॥ १६ ॥

नाभिलेपाज्जयेच्छूलं मदनं काञ्जिकान्वितम्। जीवन्तीमूलकल्को वा सतैलः पार्श्वशूलनुत् ॥ १७ ॥

मैनफल को काँजी में पीसकर नाभि पर लेप करने से शूल-रोग नष्ट होता है। जीवन्ती के मूल के कल्क में तेल मिलाकर लेप करने से पसली का शूल दूर होता है ॥ १७ ॥

हिङ्ग्वादि चूर्ण।

हिंग्वम्लकृष्णामलकं यवानी क्षाराभयासैन्धवतुल्यभागम्। चूर्णं पिबेद्वारुणिमण्डमिश्रं शूले प्रवृद्धेऽनिलजे शिवाय ॥ १८ ॥

"अम्लोऽम्लवेतसः ॥"

हींग, अमलबेत, पीपल, आँवला, अजवाइन, जवाखार, हरड, सेंधा नमक, इन्हें बराबर मात्रा में मिलावे। मात्रा—४ रत्ती से ८ रत्ती तक। अनुपान—सुरामण्ड (शराब के ऊपर का स्वच्छ भाग)। यह चूर्ण वातजन्य शूल में लाभदायक है ॥ १८ ॥

श्यामादि चूर्ण।

श्यामा विडं शिग्रुफलानि पथ्या विडङ्गकम्पिल्लकमश्वमूत्री। कल्कं समं मद्ययुतञ्च पीत्वा शूलं निहन्याद‍निलात्मकन्तु ॥ १९ ॥

'श्यामा वृद्धदारकः अश्वमूत्री शल्लकी'।

विधारा, बिड नमक, सहिजने के बीज, हरड, बायविडङ्ग, कमीला, अश्वमूत्री (शल्लकी), इनके चूर्ण को शराब के साथ पीने से वातजन्य शूल नष्ट हो जाता है। मात्रा—२ माशे ॥१९॥

अथ पित्तशूलचिकित्सा।

गुडशालियवाः क्षीरं सर्पिःपानं विरेचनम्। जाङ्गलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनाम् ॥ २० ॥

गुडोऽत्र शर्कराः पुरातनगुड इति वृद्धमतम्।

गुड, शाली, धान, जौ, दूध, घी, विरेचनऔषध और जंगली पशुओं का मांस पैत्तिक शूल के रोगियों के लिये लाभदायक होता है। इस श्लोक में गुड शब्द का अर्थ शक्कर है। पुराना गुड लिया जावे, ऐसा भी अनुभवी वृद्ध वैद्यों का मत है ॥ २० ॥

पैत्ते तु शूले वमनं पयोऽम्बुरसैस्तथेक्षोः सपटोलनिम्बैः। शीतावगाहाः पुलिनाः सवाताः कांस्यादिपात्राणि जलप्लुतानि॥ २१ ॥

पैत्तिक शूल में जल मिश्रित दुग्ध अथवा परवल के पत्ते और नीम के पत्ते के अर्धसिद्ध क्वाथ से युक्त ऊख के रस के साथ मैनफल का सेवन करा के वमन कराना लाभदायक होता है। शीतल जल से स्नान, नदी के तट पर वायुसेवन और जलपूर्ण कांस्य-पात्र का उदर पर स्पर्श कराने से पैत्तिक शूल नष्ट होता है ॥ २१ ॥

पय आदि यथालाभं मदनफलयोगेना-

कण्ठं पीत्वा वमनम् । पटोलनिम्बयोरर्द्धशृतं मदनफलयुक्तं मधुहितञ्च पीत्वा विरेचनम् ।

विरेचनं पित्तहरञ्च शस्तं रसाश्च शस्ताः शशलावकानाम् । सन्तर्पणं लाजमधूपपन्नं योगाः सुशीताः मधुसम्प्रयुक्ताः ॥ २२ ॥

लाजसक्तुकं नारिकेलोदकेन माधुर्यार्थं मधु दत्वा सन्तर्पणम् ।

छर्द्यां ज्वरे पित्तभवेऽथ शूले घोरे विदाहे त्वतितर्पिते च । यवस्य पेयां मधुना त्रिमिश्रां पिबेत् सुशीतां मनुजः सुखार्थी ॥ २३ ॥ धात्र्या रसं विदार्य्या वा त्रायन्ती गोस्तनाम्बुना । पिबेत् सशर्करं सद्यः पित्तशूलनिषूदनम् ॥ २४ ॥ शतावरीरसं क्षौद्रयुतं प्रातः पिबेन्नरः । दाहशूलोपशान्त्यर्थं सर्वपित्तामयापहम् ॥ २५ ॥ शतावरी सयष्ट्याह्वाह्यालकुशगोक्षुरैः । शृतशीतं पिबेत्तोयं सगुडक्षौद्रशर्करम् । पित्तासृग्दाहशूलघ्नं सद्यो दाहज्वरापहम्¹ । ॥ २६ ॥ तैलमेरण्डजं वापि मधुककाथसंयुतम् । शूलं पित्तोद्भवं हन्ति गुल्मं पैत्तिकमेव च ॥ २७ ॥

पैत्तिक शूल में विरेचन, खरगोश और लवा आदि पक्षी के मांस का रस, नारियल का जल, मधु-मिश्रित धान के खील का चूर्ण और मधु-संयुक्त अन्यान्य सुशीतल मुष्टि-योग चुटकले प्रयोग लाभदायक होते हैं। धान के लावा के सतुवा में मिठास के लिए मधु मिलाकर नारियल के जल के साथ सेवन करना चाहिए । वमन, ज्वर, पित्त-शूल, प्रबल दाह और अधिक प्यास में मधु-मिश्रित जौ की शीतल पेया का पान कराना लाभदायक होता है। आँवले के रस में अथवा विदारीकंद के रस में अथवा त्रायमाण के रस में और मुनक्का के रस में शक्कर मिलाकर पान करने से पैत्तिक शूल तत्काल नष्ट हो जाता है। प्रातःकाल शतावरि के रस में मधु मिलाकर पान करने से दाह, शूल और सब प्रकार के पैत्तिक रोग नष्ट हो जाते हैं । शतावरि, मुलेठी, खरेटी, कुश और गोखुरू के क्वाथ को शीतल करके गुड़, मधु और शक्कर मिलाकर पान करने से रक्त-पित्त, दाह, पैत्तिक शूल और दाह-युक्त ज्वर ये सब तत्काल विनष्ट हो जाते हैं । मुलेठी के क्वाथ में एरंड का तैल मिलाकर पीने से पैत्तिक शूल और पैत्तिक गुल्म-रोग नष्ट होता है ॥ २१-२७ ॥

प्रलिह्यात् पित्तशूलघ्नं धात्रीचूर्णं समाक्षिकम् ॥ २८ ॥

मधु के साथ आँवला के चूर्ण का सेवन करने से पैत्तिक शूल नष्ट होता है ॥ २८ ॥

बृहत्यादि क्वाथ ।

बृहत्यौ गोक्षुरैरण्डकुशकाशेक्षुबालिकाः । पीताः पित्तभवं शूलं सद्यो हन्युः सुदारुणम् ॥ २९ ॥

छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखुरू, अंडी की जड़, काँस तृण मिलाकर २ तोले, क्वाथ के लिये जल ३२ तोले, बचा हुआ क्वाथ ४ तोले । इस क्वाथ के पान करने से कठिन पित्तजन्य शूल अच्छा हो जाता है ॥ २९ ॥

त्रिफलादि क्वाथ ।

त्रिफलारग्वधक्वाथं सक्षौद्रं शर्करान्वितम् । पाययेद्रक्तपित्तघ्नं दाहशूलनिवारणम् ॥ ३० ॥

त्रिफला तथा अमलतास के ४ तोला क्वाथ में शहद और खाँड डालकर पीने से रक्तपित्त, दाह, शूल नष्ट होते हैं ॥ ३० ॥

त्रिफलादि क्वाथ ।

त्रिफलानिम्बयष्ट्याह्वकटुकारग्वधैः

1—हिक्काज्वरवमिस्तृड्दिमिति योगरत्नाकरे पाठः ।

भृतम् । पाययेन्मधुसंमिश्रं दाहशूलोपशान्तये ॥ ३१ ॥

त्रिफला, नीम की छाल, मुलहठी, कटुकी, अमलतास का गूदा, इनके क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से दाह तथा शूल शान्त होते हैं ॥ ३१ ॥

अथ श्लैष्मिक शूलचिकित्सा।

श्लेष्मात्मके छर्दनलङ्घनानि शिरोविरेकं मधुसीधुपानम् । मधूनि गोधूमयवानरिष्टान् सेवेत रूक्षान् कटुकांश्च सर्वान् ॥ ३२ ॥

मधुसीधु इत्येकपदं मद्यविशेषस्य संज्ञा।

श्लैष्मिक शूल-रोग में वमन, लंघन, शिरोविरेचन (नस्य), मधुसीधु (मद्य), मधु (शहद), गेहूँ, जौ, अरिष्ट, रूक्ष द्रव्य और चरपरे द्रव्य लाभदायक होते हैं ॥ ३२ ॥

लवणत्रयसंयुक्तं पञ्चकोलं सरामठम् । सुखोष्णेनाम्बुना पीतं कफशूलनिवारणम् ॥ ३३ ॥ बिल्वमूलमथैरण्डं[1] चित्रकं विश्वभेषजम् । हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ ३४ ॥

तीनों लवण, पञ्चकोल (पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चीता और सोंठ) और हींग के चूर्ण का गरम जल के साथ सेवन करने से श्लैष्मिक शूल निवृत्त हो जाता है। बेल की जड़, एरंड की जड़, चीता और सोंठ के काथ में हींग और सेंधा नमक मिलाकर पीने से श्लैष्मिक शूल तत्काल नष्ट हो जाता है ॥ ३३ ३४ ॥

दशमूलकाथ।

दशमूलकृतः काथः समयक्षारसैन्धवः। हृद्रोगगुल्मशूलानि काथः श्वासञ्च नाशयेत् ॥ ३५ ॥

दशमूल के काथ में जवाखार तथा सेंधा नमक डालकर पीने से हृदयरोग, शूल तथा श्वास आदि रोग अच्छे हो जाते हैं ॥ ३५ ॥

कट्यादिशूलचिकित्सा।

हिङ्गुसौवर्चलं शुण्ठी पथ्या च द्विगुणोत्तरा । एतच्चूर्णं कटीकुक्षिपार्श्वहृद्बस्तिशूलनुत् ॥ ३५ ॥

हींग १ भाग, काला नमक २ भाग, सोंठ ४ भाग और हरड़ ८ भाग लेकर चूर्ण बनावे। इस चूर्ण के सेवन करने से कटि, कुक्षि, पसली, हृदय और बस्ति के शूल नष्ट होते हैं ॥ ३६ ॥

मातुलुङ्गरसो वापि शिग्रुक्वाथस्ततः परः । सक्षारो मधुना पीतः पार्श्वहृद्बस्तिशूलनुत् ॥ ३७ ॥

बिजौरे की जड़ या सहिजने की छाल के ४ तोला क्वाथ में जवाखार तथा शहद डालकर पिलाने से पसवाड़े का दर्द, हृदय का शूल तथा मूत्राशय का शूल अच्छे हो जाते हैं ॥ ३७ ॥

एरण्डसप्तक।

एरण्डबिल्वबृहतीद्वयमातुलुङ्गपाषाणभित्त्रिकटमूलकृतः कषायः। सक्षारहिंगुलवणो रुबुतैलमिश्रः श्रोण्यं समेढ्रहृदयस्तनरुक्तयेयः ॥ ३८ ॥

अंडी की जड़, बेल की जड़, दोनों भाँति की कटेरी, बिजौरे की जड़, पाषाण भेद, गोखुरू मिलाकर २ तोले, क्वाथ के लिये जल ३२ तोले, बचा हुआ क्वाथ ४ तोले। इसमें जवाखार, हींग तथा सेंधा नमक ३।४ रत्ती डालकर गरम क्वाथ को अंडी के साथ पीना चाहिये। इससे कमर का दर्द, कंधे का दर्द, शिश्नेन्द्रियशूल, हृदयशूल और स्तनों का दर्द अच्छा हो जाता है ॥ ३८ ॥

हिंग्वादि चूर्ण।

हिंगुसौवर्चलं पथ्या विडसैन्धवतुम्बुरु।

1—ग्रन्थान्तरे तु वातशूलचिकित्साधिकारे लिखितमिदं पद्यम्।

पौष्करञ्च पिबेच्चूर्णं दशमूलयवाम्भसा- ॥ ३९ ॥ पार्श्वहृत्कटिपृष्ठांशशूले तन्द्राप तानके। शोथे श्लेष्मप्रसेके च कर्णरोगे च शस्यते ॥ ४० ॥

हींग, काला नमक, हरड़, बिड नमक, सेंधा नमक, धनियाँ, पोहकरमूल इनके चूर्ण को बराबर मात्रा में मिला ले। मात्रा—४ रत्ती से ८ रत्ती तक। इस चूर्ण को दशमूल तथा जौ के क्वाथ के साथ सेवन कराना चाहिए। इसके सेवन से पसवाड़े का दर्द, हृदय का दर्द, कमर का दर्द, पीठ का दर्द, कंधे का दर्द, तन्द्रा, अपतानक, सूजन, कफप्रसेक (मुँह और नाक द्वारा कफ गिरना) तथा कान के रोग अच्छे हो जाते हैं ॥ ३९-४० ॥

हिंग्वादि गुटिका।

हिंगु त्रिकटुकं कुष्ठं यवक्षारोऽथ सैन्धवम्। मातुलुङ्गरसोपेता प्लीहशूलापहा गुटी ॥ ४१ ॥

हींग, त्रिकुटा, कूठ, जवाखार, सेंधा नमक इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर बिजौरे के रस से गोली बनाये। मात्रा—४ रत्ती से ८ रत्ती तक। इसके सेवन से तिल्ली, शूल अच्छे हो जाते हैं ॥ ४१ ॥

आमशूलचिकित्सा।

आमशूले क्रिया कार्या कफशूलविनाशिनी। सेव्यमामहरं सर्वं यदग्निबलवर्द्धनम् ॥ ४२ ॥

कफस्य तुल्यत्वात् कफशूले यत् पञ्चकोलादियुक्तं तदामशूले कार्यम्।

आम-शूल में कफ-शूलोक्त चिकित्सा करनी चाहिए। एवं अग्नि-वर्धक, बल-वर्धक और आम नाशक औषधों का सेवन करना चाहिए ॥ ४२ ॥

मुस्तादि चूर्ण

मुस्तां वचां तिक्तकरोहिणीञ्च तथाभयां निर्दहनीञ्च तुल्याम्। पिबेत्तु गोमूत्रयुतां कफोत्थशूले तथामस्य च पाचनार्थम् ॥ ४३ ॥

मोथा, वच, कुटकी, हरड़, मूर्वा की जड़, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर गोमूत्र के साथ शूलरोगी के लिये पिलाने से आमरस पच जाता है मात्रा—३ माशे ॥ ४३ ॥

चतुःसम चूर्ण।

दीप्यकं सैन्धवं पथ्या नागरञ्च चतुःसमम्। चूर्णं शूलं जयत्याशु मन्दस्याग्नेश्च दीपनम् ॥ ४४ ॥

अजवाइन, सेंधा निमक, हरड़ और सोंठ इनको समभाग लेकर चूर्ण बनाये। इस 'चतुःसम' चूर्ण के सेवन करने से शूल-रोग का निवारण और अग्नि का दीपन होता है ॥ ४४ ॥ मात्रा—३ माशा ॥

पित्तानिलशूलचिकित्सा।

समाक्षिकं बृहत्यादि पिबेत् पित्तानिलात्मके। व्यामिश्रं वा विधिं कुर्य्यात् शूले पित्तानिलात्मके ॥ ४५ ॥

वात-पैत्तिक शूल में मधुमिश्रित कटेरी, गोखुरू और एरंड आदि के क्वाथ के पीने से तथा मिश्रित क्रिया करने से अर्थात् वातज शूल और पित्तज शूल में जो पृथक्-पृथक् चिकित्सा कही गई है उनको मिलाकर देने से लाभ होता है ॥ ४५ ॥

कफपित्तशूलचिकित्सा।

पित्तजे कफजे चापि क्रिया या कथिता पृथक्। एकीकृत्य प्रयुञ्जीत तां क्रियां कफपित्तजे ॥ ४६ ॥

पैत्तिक और श्लैष्मिक शूल-रोगों में जो अलग-अलग चिकित्साएँ लिखी गयी हैं उनको मिश्रित करके कफ-पित्तज शूल में प्रयोग करना चाहिए ॥ ४६ ॥

पटोलादि क्वाथ।

पटोलत्रिफलारिष्टक्वाथं मधुयुतं

पिबेत् । पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहशूलोपशान्तये ॥ ४७ ॥

परवल के पत्ते त्रिफला तथा नीम की छाल के ४ तोला क्वाथ में शहद डालकर रोगी को पिलाना चाहिए। इसके सेवन से कफपित्त-प्रधान ज्वर, वमन, दाह तथा शूल अच्छे हो जाते हैं ॥ ४७ ॥

वातश्लेष्मशूलचिकित्सा।

रसोनं मधुसंमिश्रं पिबेत् प्रातः प्रकाङ्क्षितः । वातश्लेष्मभवं शूलं निहन्तुं वह्निदीपनम् ॥ ४८ ॥

१ माशा लहसुन के रस में मधु मिलाकर पीने से वातश्लैष्मिक शूल का निवारण और अग्नि का दीपन होता है ॥ ४८ ॥

रुचकादि चूर्ण।

चूर्णं समं रुचकहिंगुमहौषधानां शुण्ठ्यम्बुना कफसमीरणसम्भवासु । हृत्पार्श्वपृष्ठजठरार्तिविषूचिकासु पेयं तथा यवरसेन तु विड्विबन्धे ॥ ४९ ॥

सोंठ के क्वाथ के साथ काला नमक, हींग तथा सोंठ मिले हुए चूर्ण को सेवन करने से कफ-वातजन्य हृदय का शूल, पीठ का दर्द, पसवाड़े का दर्द, पेट का दर्द तथा हैजा आदि रोग अच्छे हो जाते हैं। यदि कब्ज हो तो इस चूर्ण को जौ के क्वाथ के साथ पीना चाहिए। चूर्ण की मात्रा—६ रत्ती ॥ ४९ ॥

त्रिदोषशूलचिकित्सा।

शङ्खचूर्णं सलवणं सहिङ्गुव्योषसंयुतम् । उष्णोदकेन तत्पीतं शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ ५० ॥

सुदग्धस्य शङ्खस्य चूर्णं माषमेकमधिकं वा लवणव्योषयोर्मिलित्वा माषकद्वयं हिङ्गुनो रक्तिकाद्वयं दत्त्वा पिबेत् श्लेष्मोत्तरे योगोऽयम् । अन्ये तु भागानुक्तत्वात् सर्वं समभागम् । इति भानुः ।

शङ्खभस्म १ भाग, सेंधा नमक और त्रिकटु ये दोनों मिलाकर २ भाग, हींग चौथाई, इनका गरम जल के साथ सेवन करने से कफ-प्रधान सान्निपातिक शूलरोग नष्ट होता है। मात्रा—४।६ रत्ती की उपयुक्त है ॥ ५० ॥

गोमूत्रशुद्धं सुमृतं मण्डूरं वरया सह । विलिहन् मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ ५१ ॥

मिलितत्रिफलाचूर्णसमं मण्डूरम् ।

गोमूत्र से शुद्ध किया हुआ एवम् भस्म किया हुआ मंडूर एक भाग और त्रिफला चूर्ण एक भाग लेकर घृत और मधु मिलाकर अवलेह बना लेवे। इसके सेवन करने से त्रिदोषजन्य शूलरोग नष्ट होता है। मात्रा १॥-२ माशा ॥५१॥

विदारीदाडिमरसः सव्योषलवणान्वितः । क्षौद्रयुक्तो जयत्याशु शूलं दोषत्रयोद्भवम् ॥ ५२ ॥

विदारीकन्द का रस २ तोला, अनार का रस २ तोला, इनके साथ त्रिकटु, सेंधा नमक तथा शहद मिलाकर पीने से त्रिदोषजन्य शूल अच्छा होता है ॥ ५२ ॥

एरण्डद्वादशकम्।

एरण्डफलमूलानि बृहतीद्वयगोक्षुरम् । पर्ण्यः सहदेवा च सिंहपुच्छीक्षुबालिका ॥ ५३ ॥ तुल्यैरेतैः शृतं तोयं यवक्षारयुतं पिबेत् । पृथग्दोषभवं शूलं हन्यात्सर्वभवं तथा ॥ ५४ ॥

अंडी का फल, अंडी की जड़, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखुरू, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी माषपर्णी, सहदेवा (दण्डोत्पलविशेष), इक्षुवालिका (तृणविशेष), पृश्निपर्णीभेद, मिलाकर २ तोले, पाक के लिये जल ३२

तोला, बचा हुआ क्वाथ ८ तोले। इस क्वाथ में जवाखार ४ रत्ती डालकर पीने से वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, त्रिदोषजन्य शूल अच्छे हो जाते हैं ॥ २३-२४ ॥

दग्धमर्निर्गतधूमं मृगशृङ्गं गोघृतेन सह लीढम्। हृदयनितम्बजशूलं हरति शिखी दारुनिवहमिव ॥ ५५ ॥

हरिणशृङ्गं सङ्कुट्य अन्तर्धूमेन दग्ध्वा तद्भस्म घृतेन सह लेह्यम्।

हरिन के सींग को कूटकर, अन्तधूम भस्म करके घृत के साथ सेवन करने से हृदय और नितम्ब (चूतड़) के शूल को इस प्रकार नष्ट करता है, जैसे अग्नि लकड़ी के ढेर को भस्म कर देती है ॥ ५५ ॥ मात्रा—२ रत्ती

शूलरोग में पथ्य।

छर्दिस्वेदोलङ्घनंपायुवर्त्तिवस्तिर्निद्रारेचनं पाचनं च। अब्दोत्पन्नाः शालयोवायदण्डस्तप्तक्षीरंजाङ्गलानो रसाश्च ॥ ५६ ॥ पटोलशोभाञ्जनकारवेल्लं वार्ताकुमाम्राणि-पचोलिमानि। द्राक्षाकपित्थं रुचकं पियाजं शालिञ्चपत्राणि च वास्तुकानि ॥ ५७ ॥ सामुद्र सौवर्चलहिङ्गु विश्वं विडंशताह्वा लशुनंलवङ्गम। एरण्डतैलं सुरभीजलंच तत्पाम्बु जम्बीररसोऽपिकुष्ठम् ॥ ५८ ॥ लघूनि च क्षाररजासिकेतिवर्गोहितः शूलगदार्दितेभ्यः ॥ ५६ ॥

वमन, स्वेदन, लंघन, गुदामें बत्ती (सपोन्टरी) लगाना, वस्तिकर्म, सोना, जुलाब, पाचनद्रव्य साल भर पुराने चावल, गर्म दूध, जंगली जीवों का मांस रस, परवल, सहजना, करेला, बैंगन, पका आम, मुनक्का, कैथ, कालानमक चिरौंजी शालिच शाकके पत्ते बथुआ समुद्रनमक सौचरनमक हींग सोंठ विड़नमक, लौंग, सौंफ लहसन अंडी का तेल, गौमूत्र गर्मजल जमीरी नींबू, कूठ इनके क्षारों का चूर्ण शूल रोग में पथ्य है।

शूल में अपथ्य।

विरुद्धान्यन्नपानानि जागरं विषमाशनम्। रूक्षातिक्तकषायाणि शीतलानि-गुरुणिच ॥ ६० ॥ व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कटुवैदलम्। वेगरोधं शुचं क्रोधं वर्जयेच्छूलवान्नरः ॥ ६१ ॥

परस्पर विरोधी अन्नपान रात में जागना विषय भोजन रूखा कड़वा कसैला शीतल और गुरुपाकी अन्न, व्यायाम, मैथुन, मद्य, लवण, कटु पदार्थ और वैदल (दाल) का सेवन, मलमूत्रादि वेगों का रोकना, शोक और क्रोध करना शूल-रोगीके लिए त्याज्य हैं ॥ ६१ ॥

माषादि शिम्बीधान्यानि मद्यानि-वनितादियम्। आतपं जागरं क्रोधं शुचं सन्धानमम्लकम् वर्जयेत्पक्तिशूलार्त्तस्तथाऽजीर्णं तिलानापि।

परिणामशूल के रोगी को उड़द आदि शिम्बोधान्य अनेक प्रकार की शराब, स्त्रीसंभोग शीतल पदार्थ (बरफ आदि) का सेवन धूप में चलना, जागना, क्रोध, शोक, संधान की हुई खट्टी चीजें (अचार काँजी आदि) भोजन और तिल का सेवन नहीं करना चाहिए ॥ ५६-६० ॥

अथ परिणामशूलचिकित्सा।

वमनं तिक्तमधुरैर्विरेकश्चात्र शस्यते। वस्तयश्च हिताः शूले परिणामसमुद्भवे ६२

परिणाम-शूल में कड़वे और मधुर-द्रव्य के द्वारा, विरेचन और वस्ति-क्रिया विशेष लाभदायक होती है ॥ ६२ ॥

नागरतिलगुडकल्कं पयसा संसाध्य यःपुमानद्यात्। उग्रं परिणतिशूलं तस्यापैति सप्तरात्रेण ॥ ६३ ॥

शुण्ठी चूर्णगुडयोः प्रत्येकं कर्षः तिला ४ पलमिताः एतयोः पायसं कृत्वा भक्षयेत्।

सोंठ का चूर्ण एक तोला, गुड़ एक तोला, तिल १६ तोला, दूध में पकाकर (यवागू की तरह) सेवन करने से बलवान् परिणाम-शूल सात दिन मे अच्छा हो जाता है ॥ ६३ ॥

परिणतिशूल में शम्बूकभस्म।

शम्बूकजं भस्मपीतं जलेनोष्णेन तत्-क्षणात। पक्तिजं विनिहन्त्येतत् शूलं विष्णुरिवासुरान् ॥ ६४ ॥

निर्मांसीकृतशम्बूकभस्म मापमेकं द्वयं वा घृताक्तमुखकुहरेण उष्णाम्बुना मेल-यित्वा पेयम्।

छोटी शंखी (घोंघा) के भीतर का मांस अलग करके शंखी का भस्म बना लेवे। उसको गरम जल में मिलाकर सेवन करने से, यह परिणाम-शूल को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे विष्णु भगवान् असुरों को नष्ट करते हैं। इसे ½ माशा की मात्रा में सेवन करे किन्तु पहिले मुख को घी से चिकना कर लेना चाहिए ॥ ६४ ॥ (मुख को जला देता है इसलिए अधिक मधु या घृत मिलाकर ले।)

दध्नाऽन्यूनसरेणाधात् सतीनयव-सक्तुकान्। अचिरान्मुच्यते शूलान्नरोऽन्न-परिवर्जनात् ॥ ६५ ॥

अन्न भोजन का परित्याग करके मलाई-सहित दही के साथ मटर और जौ के सत्तू के सेवन करने से शूल-रोग शीघ्र शान्त हो जाता है ॥ ६५ ॥

तिलनागरपथ्यानां भागं शम्बूक-भस्मनाम्। द्विभागगुडसंयुक्तां गुटींशाणैक-सम्मिताम् ॥६६॥ शीताम्बुपानात् पूर्वाह्णे भक्षयेत् क्षीरभोजनः। सायाह्ने रसकं पीत्वा नरो मुच्येत दुर्जयात् ॥ ६७ ॥ परिणामसमुत्थाच्च शूलाच्चिरभवादपि॥६८॥

तिल, सोंठ, हरड़ और छोटे शंख (घोंघा) की भस्म प्रत्येक एक-एक भाग और गुड़ आठ भाग; सबको मिलाकर तीन-तीन माशे की गोलियाँ बना लेवे और शीतल जल के साथ सेवन करे। प्रातःकाल दुग्ध और सायंकाल में मांस के रस का पान करना पथ्य है। इसके द्वारा प्राचीन परिणाम-शूल भी तत्काल नष्ट हो जाता है ॥ ६७-६८ ॥

शम्बूकादि गुटिका।

शम्बूकं त्र्यूषणञ्चैव पञ्चैव लवणानि च। समांशा गुटिकाः कार्य्याः कलम्ब-करसेन च ॥ ६९ ॥ प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेच्चयथाबलम्। शूलाद्विमुच्यते जन्तुः सहसा परिणामजात् ॥ ७० ॥

सर्वं समांशं कलम्बकरसेन मर्दयित्वा मापकचतुष्टयमिता वटिकाः कार्य्याः। तत एकामुष्णजलेन पिबेत्।

छोटे शंख (घोंघा) की भस्म १ तोला, त्रिकटु एक तोला और पाँचों नमक मिलाकर १ तोला; इन सबको एकत्र कर केरमुआ के साग के रस में घोट करके चार-चार माशे की गोलियाँ बना लेवे। प्रातःकाल अथवा भोजन के पूर्व एक-एक गोली, गरम जल के साथ सेवन करने से परिणामशूल अवश्य शान्त हो जाता है[1] ॥ ६९-७० ॥

शंखरस गुटिका।

पलानि चिञ्चाक्षारस्य पञ्च पञ्च पलानि च। लवणानां क्षिपेत् प्रस्थद्वयं जम्बीर-वारिणः ॥ ७१ ॥ पलद्वादश शङ्खस्य भस्मीभूतं क्षिपेत् पुनः। पूर्वत्रयेण संमर्द्य हिङ्गुव्योषचतुःपलम् ॥ ७२ ॥ रसा-मृतसुगन्धानां पलार्द्धञ्च पृथक् पृथक्। दद्यात् समस्तं संमर्द्य जम्बीराम्ले दिन-

[1] मात्रा १॥ माशे होनी चाहिए।

त्रयम् ॥ ७३ ॥ बदरास्थिप्रमाणेन गुटिकाः कारयेद्भिषक् । भक्षयेत् प्रातरुत्थाय तोयमुष्णं पिबेदनु ॥ ७४ ॥ शूलञ्च सर्वगुल्मञ्च अजीर्णपरिणामजम् अन्त्रशूलं पक्तिशूलं हृच्छूलञ्च विशेषतः ॥ ७५ ॥ कुक्षिशूलं पार्श्वशूलं पृथक्वातादिसम्भवम् । आमशूलमुदावर्त्तं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ७६ ॥

तिन्तिडीत्वग्भस्म पञ्चपलानि पञ्चलवणं प्रत्येकं पलं शङ्खभस्म १२ पलानि जम्बीररसांशं अष्टपलानि शनैः शनैः पक्त्वा पश्चात् हिङ्गुशुण्ठीपिप्पलीमरिचानां चूर्णं प्रत्येकं पलमितं रसगन्धकामृतानां प्रत्येकं ४ तोलकानि सर्वमेकीकृत्य जम्बीररसेन मर्दयित्वा दिनत्रयं रौद्रे शोषयेत्ततो बदरास्थिमिता वट्यः कार्य्याः तत एकामुष्णजलेन भक्षयेत् ।

इमली का क्षार २० तोला, पाँचों नमक प्रत्येक चार चार तोला, शंखभस्म ४८ तोला, नींबू का रस १ सेर १६ तोला ; इनको धीमी आँच में पकाकर, हींग, सोंठ, पीपरि और मिर्च चार-चार तोला, और पारा, गन्धक और विष प्रत्येक दो-दो तोला ;इन द्रव्यों को नींबू के रस में घोट करके दो दिन घाम में सुखाकर झरबेर की गुठली के समान गोलियाँ बनाकर, गरम जल के साथ एक-एक गोली खा लेने से परिणामशूल आदि अवश्य नष्ट हो जाते हैं ॥ ७१-७४ ॥

परिणामजशूल में सक्तुप्रयोग ।

यः पिबति सप्तरात्रं सक्तूनेकान् कलाययूषेण । स जयति परिणामजं शूलं चिरजमपि किमुत नूतनजम् ॥ ७६ ॥

सात रात्रि तक केवल सत्तू, मटर के यूष के साथ पीने से, प्राचीन और नवीन परिणामशूल अच्छा हो जाता है ॥ ७६ ॥

लौहचूर्णं वरायुक्तं विलीढं मधुसर्पिषा । परिणामशूलं शमयेत्तन्मलं वा प्रयोजितम् ॥ ७७ ॥

असमान मात्रा में घृत और मधु के साथ लोह-भस्म या मंडूर भस्म २।१ रत्ती और त्रिफलाचूर्ण १ मा० के सेवन करने से परिणामशूल नष्ट हो जाता है ॥ ७७ ॥

कृष्णाभयालोहचूर्णं लिह्यात्समधुशर्करम् । परिणामभवं शूलं सद्यो हन्ति सुदारुणम् ॥ ७८ ॥ मधुशर्करेति स्थाने गुडदानाद्योगान्तरं भवति ।

पीपल, हरड़, लोहभस्म इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर शहद तथा खाँड के साथ चटाने से कठिन परिणामशूल अच्छा होता है । मात्रा ३।६ रत्ती ॥ ७८ ॥

पथ्या लोहरजः शुण्ठीचूर्णं माक्षिकसर्पिषा । परिणामरुजां हन्ति वातपित्तकफात्मिकाम् ॥ ७९ ॥

हरड़, लोहभस्म, सोंठ इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर शहद तथा घृत के साथ सेवन करने से वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, परिणामशूल अच्छा हो जाता है मात्रा ३।६ रत्ती ॥ ७९ ॥

दधिकघृत ।

पिप्पली नागरं बिल्वं कारवीचव्यचित्रकम् । हिंगुदाडिमवृक्षाम्लं वचासाराम्लवेतसम् ॥ ८० ॥ वर्षाभूकृष्णलवणमजाजीबीजपूरकम् । दधि त्रिगुणितं सर्पिस्तत्सिद्धं दाधिकं घृतम् ॥ ८१ ॥ गुल्मार्शःप्लीहहृत्पार्श्वशूलयोनिरुजापहम् । दोषसंशमनं श्रेष्ठं दाधिकं परमं स्मृतम् ॥ ८२ ॥

गाय का घी ४ सेर, दही १२ सेर, कल्क के लिये—पीपल, सोंठ, बेल की जड़, काला जीरा, चव्य, चित्रक, हींग, अनारदाना, चितडीक, बच,

जवाखार, अमलवेत; सोंठी, कालानमक, जीरा बिजौरे की जड़ मिलाकर १ सेर, विधिपूर्वक घृत छान करके रोगी को सेवन कराना चाहिए। इस घृत के सेवन से गुल्म, अर्श, प्लीहा, हृदयशूल तथा पसवाड़े का शूल अच्छा हो जाता है। दोषोंको शमन करने के लिये यह घृत परम उत्तम औषध है। मात्रा—६ माशे से १ तोला तक॥ ८०-८२॥

हिङ्ग्वादि चूर्ण।

सहिंगुतुम्बुरुव्योषयमानीचित्रकाभयाः। सक्षारलवणारचूर्णं पिबेत्प्रातः सुखाम्बुना॥८३॥ विण्मूत्रानिलशूलघ्नं पाचनं वह्निदीपनम्॥ ८४॥

हींग, धनियाँ, त्रिकटु, अजवाइन, चित्रक, हरड़, जवाखार, सेंधानमक इनको बराबर मात्रा में मिलाकर चूर्ण करे, चूर्ण को प्रातः गुनगुने पानी से सेवन करावें। (मात्रा—१माशा) यह चूर्ण पाचक, अग्निदीपक तथा शूल को नष्ट करनेवाला है॥ ८३-८४॥

विडङ्गादिमोदक।

विडंगतण्डुलव्योषं त्रिवृद्दन्ती सचित्रकम्। सर्वाण्येतानि संहृत्य सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्॥ ८५॥ गुडेन मोदकं कृत्वा खादेदुष्णेन वारिणा। जयेत् त्रिदोषजं शूलं परिणामसमुद्भवम्॥ ८६॥

छिले हुए विडङ्ग, त्रिकुटा, निसोत, दन्ती की जड़, चित्रक, इनका महीन चूर्ण करके चूर्ण से दुगुने गुड़ से विधिपूर्वक लड्डू बनावे। मात्रा ३ माशे। अनुपान—गरम जल। इसके सेवन से सान्निपातिक तथा परिणामशूल अच्छा हो जाता है॥ ८५-८६॥

लौहगुटिका।

लौहस्य रजसो भागस्त्रिफलायास्त्रयस्तथा। गुडस्याष्टौ तथा भागा गुडान्मूत्रं चतुर्गुणम्॥ ८७॥ एतत्सर्वञ्च विपचेद् गुडपाकविधानवित्। लिहेच्च तद्यथाशक्ति क्षये शूले च पाकजे॥ ८८॥

लोहभस्म १ भाग, त्रिफला ३ भाग, गुड़ ८ भाग, गोमूत्र ३२ भाग इसे गुड़पाक की विधि से पकाकर रोगी को शक्ति के अनुसार सेवन कराना चाहिए। मात्रा—१॥ माशा। इसके सेवन से क्षय एवं परिणामज शूल अच्छा होता है॥ ८७-८८॥

भीमवटकमण्डूर।

कोलाग्रन्थिकसहितैर्विश्वौषधमागधीचव्यक्षारैः। अस्थमयोरजसां पलिकांशैश्चूर्णितैर्मिश्रैः॥ ८९॥ अष्टगुणमूत्रयुक्तं क्रमपाकात् पिण्डतां नयेत्सर्वम्। कोलप्रमाणवटिकास्तिस्रो भोज्यादिमध्यविरतौ च॥ ९०॥ रससर्पिर्यूषपयोमांसैरनन्नरो निवारयति। अन्नविवर्त्तनशूलं प्लीहागुल्माग्निसादांश्च॥ ९१॥

मण्डूरभस्म ६४ तोला को ६ सेर ३२ तोला गोमूत्र में पाक करे, जब पकने पर आवे तो चव्य, पीपलामूल, सोंठ, पीपल, जवाखार हर एक के ४ तोला चूर्ण को डालकर अच्छी तरह मथकर पिण्डाकार होने पर गोली बना ले। मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती, इन्हें भोजन के पहिले, बीच में तथा आखिर में सेवन कराना चाहिए। पथ्य—मांसरस, घृत मूँग आदि का यूप, दूध, मांस। इस प्रकार इस औषधि-सेवन से परिणामशूल, प्लीहा तथा मन्दाग्नि रोग अच्छे होते हैं॥ ८९-९१॥

लौहामृत।

तनूनि लोहपत्राणि तिलोत्सेधसमानि च। काशिकामूलकल्केन संलिप्य सर्पपेण वा॥ ९२॥ विशोष्य सूर्यकिरणैः पुनरेवावलेपयेत्। त्रिफलायाः जले ध्मातं

यापयेच्च पुनः पुनः ॥ ९३ ॥ ततः सञ्चूर्णितं कृत्वा कर्पटेन तु छानयेत्। भक्षयेन्मधुसर्पिर्भ्यां यथाग्न्येतत्प्रयोजयेत् ९४॥ गुञ्जार्द्धं गुञ्जकं वाथ द्विगुञ्जकमथापि वा। छागस्य पयसः कुर्यादनुपानममावतः ॥९५॥ गवां घृतेन दुग्धेन चतुःषष्टिगुणेन च। पक्तिशूलं निहन्त्येतन्मासेनैकेन निश्चितम् ॥ ९६ ॥ लोहामृतमिदं श्रेष्ठं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा। ककारपूर्वकं यच्च यच्चाम्लं परिकीर्त्तितम् ॥ ९७ ॥ सेव्यं तन्न भवेदत्र मांसं चानूपसम्भवम् ॥९८॥

सूचीवेध्य लोह के पत्र को मदार की जड़ के कल्क से अथवा सफेद सरसों के कल्क से लपेटकर धूप में सुखावे, पीछे अग्नि से तपाकर त्रिफलाक्वाथ में बुझावे। इसी प्रकार बार-बार करें जब तक कि ठीक भस्म न हो जाय। पुनः अच्छी प्रकार पीसकर कपड़े से छान ले, यदि त्रिफलाक्वाथ से टिकिया बनाकर पुट दे दी जाय और विधिपूर्वक भस्म कर ले तो अत्यन्त उत्तम हो जिससे बिना पुट लगे हुए लोहे से उत्पन्न होनेवाले जो रोग हैं वह उत्पन्न न हों। इस लोहभस्म को शहद तथा घृत के साथ रोगों की अग्नि के अनुसार सेवन करावें। मात्रा आधी रत्ती से दो रत्ती तक। अनुपान—बकरी का दूध, अभाव में औषध की मात्रा से ६४ गुण गोघृत अथवा गोदूध के साथ सेवन करावे। इसके सेवन से एक मास में ही परिणामशूल अच्छा होता है। अपथ्य-पेठा ककड़ी, करेला आदि (ककारात्मक द्रव्य), आनूप मांस तथा अम्लपदार्थ ॥ ९२-९८ ॥

अथान्नद्रवशूलचिकित्सा।

अन्नद्रवे च तत्कार्यं जरत्पित्ते यदीरितम्। आमपक्वाशये शुद्धे गच्छेदन्नद्रवः शमम् ॥ ९९ ॥ धात्रीफलभवं चूर्णमयश्चूर्णसमन्वितम्। यष्टीचूर्णेन वा युक्तं लिह्यात् क्षौद्रेण तद्गदे ॥ १०० ॥

अन्नद्रव नामक शूल में वही चिकित्सा करनी चाहिए जो अम्लपित्त रोग में कही गई है। आमाशय तथा पक्वाशयके वमन तथा विरेचन द्वारा शुद्ध होने पर अन्नद्रवशूल बहुत शीघ्र ही अच्छा होता है। आँवले के चूर्ण में लोहभस्म को अथवा मुलहठी के चूर्ण को मिलाकर शहद के साथ इस रोग में चाटना चाहिए ॥९९-१००॥

गुडमण्डूर

गुडामलकपथ्यानां चूर्णं प्रत्येकशः पलम्। त्रिपलं लौहकिट्टस्य तत्सर्वं मधुसर्पिषा ॥ १०१ ॥ समालोड्य समश्नीयाच्चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः। आदिमध्यावसानेषु भोजनस्य निहन्ति तत् ॥ १०२ ॥ अन्नद्रवं जरत्पित्तमम्लपित्तं सुदारुणम्। परिणामसमुत्थञ्च शूलं संवत्सरोत्थितम् ॥ १०३ ॥

गुड़, आँवले और हरड़ का चूर्ण हर एक ४ तोला मण्डूरभस्म १२ तोला, इन्हें इकट्ठाकर शहद तथा घी में मिलाकर सेवन करना चाहिए। मात्रा-४ रत्ती। भोजन के प्रथम, मध्य तथा अन्त में सेवन करने से अन्नद्रवशूल, अम्लपित्त, रक्तपित्त तथा १ वर्ष का पुराना परिणामशूल अच्छा हो जाता है ॥१०१--१०३॥

सामुद्राद्य चूर्ण।

सामुद्रं सैन्धवं क्षारौ रुचकं रौमकं विडम्। दन्ती लौहरजः किट्टं त्रिवृच्छूरणकं समम् ॥ १०४ ॥ दधिगोमूत्रपयसा मन्दपाके विपाचितम्। तद्यथाग्निबलं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ १०५ ॥ जीर्णेऽजीर्णे तु भुञ्जीत मांसादि घृतसाधितम्। नाभिशूलं स्रीहशूलं यकृद्गुल्मकृतञ्च यत्॥ १०६॥ विद्रध्यष्ठीलिकां हन्ति कफवातोद्भवां तथा। शूलानामपि सर्वेषामौषधं

नास्ति तत्परम् ॥ परिणामसमुत्थस्य विशेषेणान्तकृन्मतम् ॥ १०७ ॥

सामुद्रादीनां प्रत्येकं समभागचूर्णमेकीकृत्य दधिदुग्धगोमूत्राणां समभागेन यावता आलोडितं भवति तावद्दत्वा मन्दानलेन पचेत् आचूर्णीभावात्ततः कदुष्णोदकेन यथायोग्यं प्रयोज्यम्। अन्ये तु समुदितचूर्णात् दध्यादीनां मिलितानां चातुर्गुण्यमाहुः।

सामुद्रलवण, सैंधव, यवक्षार, सज्जीखार, काला नमक, सांभर नमक, विड नमक, दन्ती (जमालगोटा) की जड़, लोह-चूर्ण, मंडूर, निसोत और सूरन (जिमीकंद) समभाग, प्रत्येक वस्तु को दही, गोमूत्र और दूध के साथ पकावे। अग्नि और बल के अनुसार मात्रा का प्रयोग करना चाहिए। उष्ण जल के साथ इसका सेवन करना चाहिए। इस औषध का सेवन करनेवाला रोगी घृत-पक्व मांसादि का भी सेवन कर सकता है। यह 'सामुद्राद्य चूर्ण' हर प्रकार के शूल-रोग की, विशेषकर परिणाम-शूल की महौषध है। सामान्यतया १ माशे की मात्रा उचित है ॥ १०४–१०५ ॥

नारिकेल लवण।

नारिकेलं सतोयञ्च लवणेन प्रपूरितम्। विपक्वमग्निना सम्यक् परिणामजशूलनुत्[1] ॥ १०८ ॥ पिप्पल्या भक्षितं हन्ति शूलं विविधहेतुजम्। वातिकं पैत्तिकञ्चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ १०९ ॥

जल-युक्त नारियल के भीतर सेंधा नमक भरकर और नारियल के ऊपर मिट्टी का लेप करके धूप में सुखाकर अग्नि में भस्म करे। उसके बाद मृत्तिका को अलग करके सैंधव-युक्त नारिकेल की भस्म में पीपरि मिलाकर उचित मात्रा में सेवन करने से वात-पित्त-कफ त्रिदोष जन्य शूल तथा परिणाम-शूल नष्ट हो जाते हैं। मात्रा १–माशा ॥ १०८–१०९ ॥

सप्तामृतलौह।

मधुकं त्रिफलाचूर्णमयोरजः समं लिहन्। मधुसर्पिर्युतं सम्यक् गव्यं क्षीरं पिबेदनु ॥ ११० ॥ छर्दिं सतिमिरं शूलमम्लपित्तं ज्वरं क्लमम्। आनाहं मूत्रसङ्गञ्च शोथञ्चैव निहन्ति सः ॥ १११ ॥

घृत और शहद के साथ मुलेठी, त्रिफला और लोह-भस्म का सेवन करने के बाद दूध पीने से छर्दि, तिमिर, शूल, अम्ल-पित्त, ज्वर, क्लम, आनाह, मूत्राघात और शोथरोग, ये सब नष्ट हो जाते हैं। मात्रा २ रत्ती ॥ ११०–१११ ॥

गुडपिप्पली घृत।

सपिप्पली गुडं सर्पिः पचेत् क्षीरे चतुर्गुणे। विनिहन्त्यम्लपित्तञ्च शूलञ्च परिणामजम् ॥ ११२ ॥

चौगुने दूध में पीपरि, गुड़ और घृत को पकाकर सेवन करने से अम्लपित्त और परिणाम-शूल समूल नष्ट हो जाते हैं ॥ ११२ ॥

पिप्पलीघृत।

क्वाथेन कल्केन च पिप्पलीनां सिद्धं घृतं माक्षिकसंप्रयुक्तम्। क्षीरानुपानस्य निहन्त्यवश्यं शूलं प्रवृद्धं परिणामसंज्ञम् ॥ ११३ ॥

सुशीते मधुपादिकं कल्कवन्मधुशर्करेति वचनात्। दुग्धपलमनुपिबेत्।

पीपरि के कल्क और क्वाथ के साथ सिद्ध किये हुए घृत में मधु मिलाकर दूध के साथ सेवन करने से प्रबल परिणाम-शूल निःसंदेह नष्ट हो जाता है। घृत की मात्रा ६ माशे से १ तोला तक। दूध की मात्रा ४ तोला की होनी चाहिए ॥ ११३ ॥

बीजपूराद्यघृत।

बीजपूरकमेरण्डं रास्नां गोक्षुरकं बलाम्।

[1] १–पिप्पलीसहितमिति वृद्धमतम्।

पृथक् पञ्चपलान् भागान् यवप्रस्थसमायुतान् ॥ ११२ ॥ वारिद्रोणेन संसाध्यं यावत् पादावशेषितम् । घृतप्रस्थं पचेत्तेन कल्कं दत्त्वाक्षसंमितम् ॥ ११५ ॥ तुम्बुरूण्यभयाव्योषं हिङ्गुसौवर्चलं विडम् । सैन्धवं यावशूकञ्च सर्जिकाम्म्लवेतसम् ॥ ११६ ॥ पुष्करं दाडिमञ्चैव वृक्षाम्लं जीरकद्वयम् । मस्तु प्रस्थद्वयं दत्त्वा सर्वं मृद्वग्निना पचेत् ॥११५॥ घृतमेतत् प्रशंसन्ति शूलं हन्ति त्रिदोषजम् । वातशूलं यकृच्छूलं गुल्मं प्लीहापहं परम् ॥ ११८ ॥ हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च देहशूलञ्च नाशयेत् । बलवर्णकरं हृद्यमग्निसन्दीपनं परम् ॥११६॥

घृत १२८ तोला, बिजौरे नींबू की जड़, एरंड की की जड़, रास्ना, गोखुरू और खरेटी, प्रत्येक बीस-बीस तोला, छिले हुए यव १२८ तोला, इनको २४ सेर ४८ तोला जल में पकावे। ६ सेर ३२ तोला शेष रहने पर इस क्वाथ में घृत और निम्नलिखित द्रव्यों का एक एक तोला कल्क मिलावे।

कल्कार्थ द्रव्य—धनिया, हरीतकी, त्रिकटु, हींग, कालानमक, विड नमक, सेंधव, यवक्षार, सज्जीखार, अमलवेत, पुहकरमूल, अनारदाना, इमली की छाल और दोनों जीरे। तदनन्तर तीन सेर १६ तोला दही का पानी डाल कर मन्द-मन्द आँच में पकावे। इस 'बीजपूराद्य' घृत के सेवन करने से विविध प्रकार के शूल-रोग जैसे त्रिदोषजन्य शूल, वातशूल, यकृतशूल, गुल्म, प्लीहा, हृदयशूल, पसवाड़े का शूल, शरीर का शूल नष्ट होता है। यह बल और वर्ण की उज्ज्वलता की वृद्धि करनेवाला, हृदय को हितकारी एवम् अग्निदीपक है ॥ ११४–११६ ॥

कोलादिमण्डूर ।

कोलाग्रन्थिकशृङ्गवेरचपलाक्षारैः समं चूर्णितं, मण्डूरं सुरभीजलेऽष्टगुणिते पक्त्वाथ सान्द्रीकृतम् । तत् खादेदशनादिमध्यविरतौ प्रायेण दुग्धान्नभुक्, जेतुं वातकफामयान् परिणतौ शूलञ्च शूलानि च ॥ १२० ॥

शुद्ध मंडूर की मात्रा ४ भाग, चव्य, पिपरामूल, सोंठ, पीपरि और यवक्षार प्रत्येक एक-एक भाग, गोमूत्र ४० भाग।

पहले मंडूर को गोमूत्र में पकावे। पाकशेष में पूर्वोक्त औषधियों का चूर्ण मिलावे, भोजन के पूर्व, मध्य और अन्त में इस औषध का सेवन करना चाहिए। जब तक औषध सेवन करे, तब तक दुग्धान्न भोजन करना चाहिए। इस 'कोलादिमंडूर' के सेवन करने से परिणाम-शूल तथा अन्यान्य शूल-रोग नष्ट होते हैं। मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक ॥१२०॥

क्षीरमण्डूर ।

लौहकिट्टपलान्यष्टौ गोमूत्रार्द्धाढके पचेत् । क्षीरप्रस्थेन तत् सिद्धं पक्तिशूलहरं परम् ॥ १२१ ॥

३ सेर १६ तोला गोमूत्र और १२८ तोला दूध में ३२ तोला मण्डूर को पकाकर सिद्ध करे। इस 'क्षीर-मण्डूर' के सेवन करने से परिणामज शूल नष्ट हो जाता है ॥ १२१ ॥

तारामण्डूरगुड़ ।

विडङ्गं चित्रकं चव्यं त्रिफला त्र्यूषणानि च । नवभागानि चैतानि लौहकिट्टसमानि च ॥ १२२ ॥ गोमूत्रं द्विगुणं दत्त्वा मूत्रार्द्धिकगुडान्वितम् । शनैर्मृद्वग्निना पक्त्वा सुसिद्धं पिण्डतां गतम् ॥ १२३॥ स्निग्धे भाण्डे विनिःक्षिप्य गुञ्जात्रितयमात्रया । भाङ्मध्यान्तक्रमेणैव भोजनस्य प्रयोजितम् ॥ १२४ ॥ योगोऽयं शमयत्याशु पक्तिशूलं सुदारुणम् । कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं मन्दाग्निता-

मपि ॥ १२५ ॥ अर्शांसि ग्रहणीरोगं कृमिगुल्मोदराणि च । नाशयेदम्लपित्तञ्च स्थौल्यञ्चापि नियच्छति ॥ १२६ ॥ वर्जयेच्छुष्कशाकानि विदाह्यम्लकटूनि च । पक्तिशूलान्तको ह्येष गुडो मण्डूरसंज्ञितः ॥ शूलार्त्तानां कृपाहेतोस्तारया परिकीर्त्तितः ॥ १२७ ॥

६ भाग मंडूर, १८ भाग गोमूत्र और ६ भाग गुड़ में आवश्यकतानुसार जल डाल कर पकावे । पाक के समय एक एक भाग वायविडंग, चीता की जड़, चव्य, त्रिफला और त्रिकटु के चूर्ण का प्रक्षेप करे । धीमी आँच में धीरे धीरे पकावे । पिंड बाँधने योग्य होने पर चिकने पात्र में रख देवे । मात्रा ४ रत्ती से ८ रत्ती तक । भोजन के पूर्व, मध्य और अन्त में इसका सेवन करना चाहिए । इससे अति दारुण परिणामशूल, कामला, ग्रहणी, पाण्डुरोग, मन्दाग्नि, सूजन, बवासीर, कृमिरोग, गुल्म, उदर, अम्लपित्त और स्थूलता रोग ये सब नष्ट होते हैं । इस 'तारा-मंडूर-गुड़' सेवन करनेवाले रोगी को शुष्क शाक व विदाही पदार्थ, खट्टे और कडुए पदार्थों का भोजन में परित्याग कर देना चाहिए। इस 'तारा-मंडूरगुड़' को शूल रोगियों पर कृपा करके *श्रीतारा आचार्य ने प्रकाशित किया है १२३–१२७*

शतावरीमण्डूर ।

संशोध्य चूर्णितं कृत्वा मण्डूरस्य पलाष्टकम् । शतावरीरसस्याष्टौ दध्नश्च पयसस्तथा ॥१२८॥ पलान्यादाय चत्वारि तथा गव्यस्य सर्पिषः । विपचेत् सर्वमेकत्र यावत् पिण्डत्वमागतम् ॥ १२९ ॥ सिद्धन्तु भक्षयेन्मध्ये भोजनस्याग्रतोऽपि वा । वातात्मकं पित्तभवं शूलञ्च परिणामजम् ॥ निहन्त्येव हि योगोऽयं मण्डूरस्य न संशयः ॥ १३० ॥

शुद्ध किया हुआ मंडूर-भस्म ३२ तोला, शतावरि का रस ३२ तोला, दधि ३२ तोला, दुग्ध ३२ तोला, घृत १६ तोला ; इनको एकत्रित कर पाक बनावे । पिण्ड के समान होने पर उतार लेवे । इस 'शतावरीमंडूर' के सेवन करने से वातिक शूल, पैत्तिक शूल और परिणाम-शूल निश्चय आराम होते हैं १२८-१३० मात्रा—४–६ रत्ती ।

बृहच्छतावरीमण्डूर ।

मण्डूरस्याततप्तस्य वराक्वाथप्लुतस्य च चूर्णीकृत्य पलान्यष्टौ शतावरीरसस्य च ॥ १३१ ॥ दध्नश्च पयसश्चाष्टावामलक्या रसस्य च । चतुष्पलं घृतस्यापि शाणमात्रं विनिःक्षिपेत् ॥ १३२ ॥ सिद्धे प्रत्येकमेतेषामजाजीधान्यमुस्तकम् । त्रिजातकं कणा पथ्या उपयुक्तं निहन्ति च ॥ १३३ ॥ शूलं दोषत्रयोद्भूतमम्लपित्तञ्च दारुणम् । अरुचिञ्च वमिञ्चैव कासं श्वासञ्च नाशयेत् ॥ १३४ ॥

त्रिफलाक्वाथनिर्वापितमण्डूरपलानि ८ पाकार्थं शतमूलीरसपलानि ८ दधिपलानि ८ दुग्धपलानि ८ आमलकीरसपलानि ८ घृतपलानि ४ सिद्धे पाके प्रक्षेपार्थं अजाज्यादीनां चूर्णं प्रत्येकं माषकाः ४ अत्र अजाजी जीरकम् ।

पहले मंडूर को तपा-तपा करके त्रिफला के क्वाथ में बुझावे । इस प्रकार शुद्ध किया हुआ मंडूर ३२ तोला, शतावरि का रस ३२ तोला, दही ३२ तोला, दूध ३२ तोला, आँवले का रस ३२ तोला और घृत १६ तोला, इनको पकावे । पाक सिद्ध होने पर तीन तीन माशे जीरा, धनियां, नागरमोथा, दालचीनी, तेजपात, इलायची, पीपरि और हरीतकी का चूर्ण मिलावे । इस 'बृहच्छतावरीमंडूर' को भोजन के आदि और

मध्य में सेवन करने से सान्निपातिक शूल और अम्लपित्त, अरुचि, वमन, कास और श्वासप्रभृति विविध रोग नष्ट होते हैं। मात्रा–४ रत्ती से ८ रत्ती तक ॥ १३१-१३४ ॥

चतुःसममण्डूर।

सद्यो लौहमलाज्यमाक्षिकसिता भागाः समा मानतः, पात्रे लौहमये दिनान्तमश्रितं संस्थापयेदातपे। पश्चात्तद् घनतां प्रणीय रजनीमेकां बहिः स्थापयेत्, पात्रे ताम्रमये निधेयमथवा पात्रे हविर्भाविते ॥ १३५ ॥ पश्चान्माषकसंमितं प्रतिदिनं जग्ध्वा जलं शीतलं, पेयं भोजनपूर्वमध्यविरतौ स्वच्छन्दभोज्यैर्नरैः। जेतुं शूलहुताशमान्द्यकसनश्वासाम्लपित्तज्वरोन्मादापस्मृतिमेहसर्वजठराजीर्णादिसर्वा रुजः ॥ १३६ ॥

सद्योधित मण्डूर भस्म ४ तोला, घृत ४ तोला, मधु ४ तोला और शक्कर ४ तोला लेवे। इनको तांबे के खरल में लोह दण्ड से घोटकर दिन भर धूप में और रात भर ओस में रक्खे। तदनतर किसी ताँबे या घृत के पात्र में रख देवे। शीतल जल के साथ प्रति दिन १ माशे सेवन करे। भोजन के पूर्व, मध्य और अन्त में इसका सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से शूल, अग्निमान्द्य, कास, श्वास, अम्लपित्त, ज्वर, उन्माद, अपस्मार, प्रमेह, सब उदररोग तथा अजीर्ण आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। इस 'चतु सम-मण्डूर' की मात्रा चार माशे लिखी है–उसके तीन भाग कर लेवे। उनमें एक भाग भोजन के पूर्व, एक भाग मध्य और एक भाग अन्त में सेवन करे। यह वृद्ध वैद्यों की सम्मति है ॥ १३५ १३६ ॥

रसमण्डूर।

कुडवं पथ्याचूर्णं द्विपलं गन्धाश्मलौहकिट्टञ्च। शुद्धरसस्यार्द्धपलं भृङ्गस्य रसं सकेशराजस्य ॥ १३७ ॥ प्रस्थोन्मितञ्च दत्त्वा पात्रे लौहेऽथ दण्डसंघृष्टम्। शुष्कं घृतमधुयुक्तं मृदितं स्थाप्यञ्च भाजने स्निग्धे ॥ १३८ ॥ उपयुक्तमेतदचिराद्विहन्ति कफपित्तजान् रोगान्। शूलं तथाम्लपित्तं ग्रहणीञ्च कामलामुग्राम् ॥ १३९ ॥

१६ तोला हरीतकी का चूर्ण, ८ तोला शुद्ध गंधक, चार तोला पारा, ८ तोला शुद्ध मडूर, ३ सेर १६ तोला भाँगरा का रस, ३ सेर १६ तोला केशराज का रस (कोई-कोई कहते हैं कि १२८ तोला भृंगराज का रस और १२८ तोला केशराज का रस) लोहे के खरल में लाहदण्ड द्वारा घोट करके धूप में सुखा कर, चूर्ण के समान कर स्निग्ध-पात्र में रक्खे। इस 'रसमडूर' की मात्रा ४ रत्ती से १ माशे तक है। इसका सेवन घृत और मधु मिलाकर करना चाहिए। इसके द्वारा कफज और पित्तज शूल और अम्लपित्त, सग्रहणी और अति उग्र कामला रोग का विनाश हो जाता है ॥ १३७ १३९ ॥

धात्रीलौह।

धात्रीचूर्णस्यादौ पलानि चत्वारि लौहचूर्णस्य। यष्टीमधुकरजश्च द्विपलं दद्यात् पटे घृष्टम् ॥ १४० ॥ अमृताक्काथेन तच्चूर्णं भाव्यञ्च सप्तसप्ताहम्। चण्डातपेषु शुष्कं भूयः पिष्ट्वा नवे घटे स्थाप्यम् ॥ १४१ ॥ घृतमधुना संयुक्तं भक्तादौ मध्यतस्तथान्ते च। त्रीनपि वारान् खादेत् पथ्यं दोषाद्यनुबन्धेन ॥ १४२ ॥ भक्तस्यादौ शमयति रोगान् पित्तानिलोद्भूतान्। मध्येऽन्ने विष्टम्भं जयति नृणां विदह्यते नान्नम् ॥ १४३ ॥ पानान्नकृतान् दोषान् भुक्तान्ते शीलितं जयति। एवं जीर्यति चान्ने शूलं नृणां सुकष्टमपि॥ १४४ ॥ हरति च सहसा युक्तो योग-

श्चायं जरत्पित्तम्। चतुष्यः पलितघ्नः कफपित्तसमुद्भवान् जयति[1] ॥ १४५॥

अत्र अमृता आमलकीति भानुदासः। अन्ये तु गुडूचीमाहुः।

सप्ताहं सप्तभावनाः। औषधस्य माषकत्रयं भोजनादिमध्यान्तेषु घृतमधुभ्यां मर्दितं भक्ष्यमिति त्रिपुरारिः॥

आँवले का चूर्ण ३२ तोला, लोह की भस्म १६ तोला और मुलेठी का चूर्ण ८ तोला लेवे। इनमें गिलोय के क्वाथ की ७ दिन में ७ भावनाएँ देवे। फिर धूप में सुखाकर, खरल करके नवीन पात्र में रख देवे। घृत और मधु मिलाकर प्रतिदिन भोजन के पूर्व, मध्य और अन्त में तीन बार खावे और दोषों के अनुसार पथ्य करे। भोजन के आदि में इस 'धात्री-लौह' के सेवन करने से वातज और पित्तज रोग, भोजन के मध्य में सेवन करने से विष्टम्भ नष्ट होता है और खाया हुआ अन्न विदग्ध नहीं होता। और भोजन के अन्त में इस औषध के सेवन करने से अन्नपान और भोजन करने से उत्पन्न हुए रोग विनष्ट होते हैं। एवं यह औषध खाये हुए अन्न को भस्म करता है और कष्ट-साध्य शूल, ज्वर, पित्त-शूल, पलित रोग और कफ और पित्तज शूल, इन सबको नष्ट कर देता है एवम् आँखों के लिये हितकारक है॥ १४०-१४५॥ मात्रा ४ रत्ती।

धात्रीलौह।

षट्पलं शुद्धमण्डूरं यवस्य कुडवं तथा। पाकाय नीरप्रस्थार्द्धं दद्यात् पादावशेषितम्॥ १४६॥ शतमूलीरसस्याढ्यामलक्या रसस्तथा। तथा दधि पयो भूमिकूष्माण्डस्य चतुःपलम्॥ १४७॥ चतुष्पलं सर्पिरिक्षुरसं दद्याद्विचक्षणः। क्षिपेद् जीरधन्याकं त्रिजातं करिपिप्पलीम्॥ १४८॥ मुस्तं हरीतकीश्चैव लौहमभ्रं कटुत्रिकम्। रेणुकं त्रिफलाश्चैव तालीशं नागकेशरम्[1]॥ १४९॥ एतेषां कार्षिकं भागं चूर्णयित्वा विनिःक्षिपेत्। भोजनाद्यवसाने च मध्ये चैव समाहितः॥ १५०॥ माषैकं भक्षयेचानु पेयं नित्यं पयस्तथा। शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा॥ १५१॥ वातिकं पैत्तिकञ्चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्। परिणामभवं शूलमन्नद्रवभवं तथा॥ १५२॥ द्वन्द्वजानपि शूलांश्च अम्लपित्तं सुदारुणम् सर्वशूलहरं श्रेष्ठं धात्रीलौहमिदं शुभम्॥ १५३॥

जौ १६ तोले ६४ तोला जल में क्वाथ करे जब १६ तोला जल शेष रहे तो छान ले। यह क्वाथ तथा शतावरी का रस ३२ तोला, आँवले का रस ३२ तोला, दही १६ तोला, दूध १६ तोला, पेठे का रस १६ तोला, घी १६ तोला, ईख का रस १६ तोला (अभाव में खाँड) मिलाकर विधिपूर्वक पाक करे, अधपकी दशा में २४ तोला शुद्ध मण्डूर और एक-एक तोले जीरा, धनियाँ, दालचीनी, इलायची, तेजपात, गजपीपरि, नागरमोथा, हरीतकी, लौह-भस्म, अभ्रक-भस्म, त्रिकटु, सँभालू के बीज, त्रिफला, तालीशपत्र और नागकेशर का प्रक्षेप करे। यथाविधि पाक तैयार करके प्रतिदिन भोजन के पूर्व, मध्य और अन्त में एक माशा की मात्रा में इस औषध को दुग्ध के साथ सेवन करना चाहिए। इस "धात्री-लौह" के द्वारा साध्य और असाध्य वातिक शूल, पैत्तिक शूल, कफज शूल, सान्निपातिक शूल, परिणाम शूल, द्वंद्वज शूल और अन्नद्रव-जन्य शूल तथा अम्लपित्तरोग। ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं। यह "धात्री-लौह"

1—जयेद्रोगान् इति पाठान्तरम्।

1—इतः परं ग्रन्थान्तरे कटुकं मधुकं रास्ना वारवगन्धा सचन्दनेत्यधिक पाठः।

सब प्रकार के शूलरोग के दूर करने के लिये महान् औषध है॥ १४६-१५३॥

शर्करालौह।

शतावरीरसप्रस्थे प्रस्थे च सुरभीजले। अजायाः पयसः प्रस्थे प्रस्थे धात्रीरसस्य च॥ १५४॥ लौहमलपलान्यष्टौ शर्करा पलषोडश। दत्त्वाज्यकुडवं तत्र शनैर्मृद्वग्निना पचेत्॥ १५५॥ सिद्धशीते घनीभूते द्रव्याणीमानि दापयेत्। विडङ्गं त्रिफलाव्योषं यमानी गजपिप्पली॥ १५६॥ द्विजीरकं घनं लौहमभ्रं कर्षद्वयं पृथक्। खादेदग्निबलापेक्षी भोजनादौ विचक्षणः॥ १५७॥ शूलं सर्वभवं हन्ति पित्तशूलं विशेषतः। हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कुक्षिबस्तिगुदे रुजम्॥ १५८॥ कासं श्वासं तथा शोथं ग्रहणीदोषमेव च। यकृत् प्लीहोदरानाहराजयक्ष्मविनाशनम्॥ १५९॥ विष्टम्भमामं दौर्बल्यमग्निमान्द्यञ्च यद्भवेत्। एतान् रोगान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा॥ १६०॥

शतावरि का रस या क्वाथ १२८ तोला, गोमूत्र १२८ तोला, बकरी का दूध १२८ तोला, आँवले का रस १२८ तोला, शुद्ध मंडूर ३२ तोला, शक्कर ६४ तोला, घृत ३२ तोला। इन सबको धीमी आँच में पकावे। गाढ़ा होने पर उतार लेवे। जब शीतल हो जावे तो दो-दो तोले वायबिडंग, त्रिफला, त्रिकटु, अजवाइन, गजपीपरि, स्याह जीरा, सफेद जीरा, नागरमोथा, लौह-भस्म और अभ्रक-भस्म मिलाकर रख लेवे। रोगी के अग्नि और बल के अनुसार मात्रा में प्रयोग करना चाहिये। भोजन के पूर्व इस औषध का सेवन करना चाहिए। इसके द्वारा सब प्रकार के शूल विशेषत पित्त शूल शीघ्र विनष्ट होता है। यह "शर्करा-लौह" हृच्छूल, पार्श्व-शूल, कुक्षि-शूल, बस्ति-शूल, गुद-शूल, खाँसी, श्वास, सूजन, संग्रहणी, यकृत्-रोग, तिल्ली-रोग, उदर-रोग, अफरा, राजयक्ष्मा, विष्टम्भ-रोग, आम-दोष, दुर्बलता और मन्दाग्नि इन सब रोगों को इस प्रकार विनष्ट करता है, जैसे सूर्यदेवजी अंधकार को नष्ट कर देते हैं। मात्रा ३ मासे से ६ मासे तक॥ १५४-१६०॥

खण्डामलकी।

स्विन्नपीडितकूष्माण्डात् तुलार्द्धं भृष्टमाज्यतः। प्रस्थार्द्धे खण्डतुल्यन्तु पचेदामलकीरसात्॥ १६१॥ प्रस्थे सुस्विन्नकूष्माण्डरसप्रस्थे विघट्टयन्। दर्व्या पाक गते तस्मिंश्चूर्णीकृत्य विनिःक्षिपेत्॥ १६२॥ द्वे द्वे पले कणाजाजीशुण्ठीनां मरिचस्य च। पलं तालीशधन्याकचातुर्जातकमुस्तकम्॥१६३॥ कर्षप्रमाणं प्रत्येकं प्रस्थार्द्धं माक्षिकस्य च। पक्तिशूलं निहन्त्येतद्दोषत्रयकृतञ्च यत्॥१६४॥ छर्द्यम्लपित्तमूर्च्छांश्च श्वासं कासमरोचकम्। हृच्छूलं पृष्ठशूलञ्च रक्तपित्तञ्च नाशयेत्॥ रसायनमिदं श्रेष्ठं खण्डामलकसंज्ञितम्॥ १६५॥

छर्द्यम्लपित्तयोः पित्तोत्तरशूले च दृष्टफलोऽयं योगः।

स्विन्न (कुछ पकाया हुआ अर्थात् बफाया हुआ) वस्त्र निष्पीडित तथा शिलापिष्ट सुपक्व पेठा २॥ सेर लेकर ६४ तोला घृत में भूनकर २॥ सेर शक्कर, १२८ तोला आँवले का रस और १२८ तोला पेठा रस जो प्रथम निचोड़कर रख लिया गया हो मिलाकर पकावे। उसमें आठ-आठ तोला पीपरि, जीरा और सोंठ और ४ तोला मिर्च का चूर्ण डाले। तथा एक-एक तोला तालीशपत्र, धनियाँ, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर और नागरमोथा

मिलाकर यथाविधि पाक सिद्ध करे। तदनन्तर ३२ तोला मधु मिलाकर रख लेवे। इस 'खण्डामलकी' के सेवन करने से परिणामजशूल, सान्निपातिकशूल, छर्दि, अम्लपित्त, मूर्च्छा, श्वास, खाँसी, अरुचि, हृच्छूल, पृष्ठ-शूल और रक्तपित्त; ये सब रोग शान्त हो जाते हैं। यह 'खण्डामलक' संज्ञक प्रयोग रसायन वमन, अम्लपित्त और पित्तप्रधान शूलरोग में अनुभूत है ॥ १६१-१६२ ॥

नारिकेलखण्ड।

कुडवमितमिह स्यान्नारिकेलं सुपिष्टं, पलपरिमितसर्पिः पाचितं खण्डतुल्यम्। निजपयसि तदेतत् प्रस्थमात्रे विपक्वं गुडवदथ सुशीते शाणमानान्[1] क्षिपेच्च १६६॥ धन्याकपिप्पलिपयोदतुगाद्विजीरान्, शाणं त्रिजातमिभकेशरवह्निचूर्णम्। हन्त्यम्लपित्तमरुचिं क्षयमम्लपित्तं, शूलं वमिं सकलपौरुषकारि हारि ॥ १६७ ॥

भली भाँति पिसी हुई नारियल की गिरी १६ तोला लेकर ४ तोला घृत में भून करके उसमें १२८ तोला नारियल का जल और १६ तोला खाँड़ मिलाकर पका लेवे। पाक सिद्ध होने पर धनियाँ, पीपरि, नागरमोथा, वंशलोचन, स्याह जीरा और सफ़ेद जीरा तीन-तीन माशे तथा दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेसर चारों मिलाकर ३ माशा रख लेवें। यह 'नारिकेल-खण्ड' अम्लपित्त, अरुचि, क्षय-रोग, रक्त-पित्त, शूल और वमनरोग शान्त करता है तथा बलवर्धक है ॥ १६६-१६७ ॥

बृहत् नारिकेल खण्ड।

नारिकेलपलान्यष्टौ शर्करा प्रस्थसंमिता। तज्जलं पात्रमेकन्तु सर्पिः पञ्चपलानि च ॥ १६८ ॥ शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं प्रस्थार्द्धं क्षीरमेव च। सर्वमेकीकृतं पात्रे शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥१६९॥ तुगा त्रिकटुकं मुस्तं चातुर्जातं सधान्यकम्। द्विकणा जीरकञ्चैव कर्षयुग्मं पृथक् पृथक् ॥१७०॥ श्लक्ष्णचूर्णं विनिःक्षिप्य स्थापयेद्भाजने मृदः। खादेत्तु प्रतिदिनं शाणं यथेष्टाहारवानपि ॥ १७१ ॥ सर्वदोषभवं शूलमेकजं द्वन्द्वजं तथा। परिणामभवं शूलमम्लपित्तञ्च नाशयेत् ॥ १७२ ॥ बलपुष्टिकरं हृद्यं वाजीकरणमुत्तमम्। रक्तपित्तहरं श्रेष्ठं छर्दिहृद्रोगनाशनम् ॥ धन्वन्तरिकृतञ्चैतन्नारिकेलरसायनम् ॥ १७३ ॥

नारियल की गिरी ३२ तोले, नारियल का जल ६४ तोले, चीनी ६४ तोले, घृत ४० तोले, सोंठ का चूर्ण १६ तोले और दूध ६४ तोले मिलाकर धीमी आँच में पकावे। पाक सिद्ध हो जाने पर वंशलोचन, त्रिकटु (सोंठ मिर्च और पीपरि), नागरमोथा, गुलचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, धनियाँ, पीपरि, गजपीपरि और जीरे का चूर्ण दो दो तोले मिलाकर मिट्टी के पात्र में रख देवे। मात्रा ३ माशे १ तोला तक। इस 'बृहन्नारिकेल खण्ड' के सेवन करने से सर्वदोषज शूल, वात, पित्त, कफ, द्वन्द्वज और परिणाम शूल, अम्लपित्त, रक्तपित्त, वमन और हृद्रोग का नाश तथा बल की वृद्धि होती है। इस रसायन का निर्माण श्रीधन्वन्तरिजी ने किया ॥ १६८-१७३ ॥

नारिकेलामृत।

नारिकेलफलप्रस्थं सुपिष्टं भर्जितं घृते। प्रस्थे प्रस्थं समादाय शुण्ठीचूर्णन्तु तत्समम् ॥ १७४ ॥ द्विपात्रं नारिकेलाम्बु तत् समं क्षीरमेव च। धात्र्याश्च स्वरसप्रस्थं खण्डस्यापि तुलां न्यसेत् ॥ १७५ ॥ एकीकृत्य पचेत् सर्वं शनैर्मृद्वग्निना भिषक्। सिद्धशीते प्रदातव्यं चूर्णमेषां सुशोभनम् ॥ १७५ ॥ कटुत्रयं चतुर्जातं

[1] भागानिति पाठान्तरम्।

प्रत्येकञ्च पलोन्मितम्। धात्रीजीरकयुग्मञ्च धन्याकं ग्रन्थिपर्णकम्॥ १७७॥ तुगापयोदचूर्णानि त्रिकर्षाणि पृथक् पृथक्। चतुःपलानि मधुनः स्निग्धे भाण्डे निधापयेत्॥ १७८॥ शिवं प्रणम्य सगणं धन्वन्तरिमथापरम्। कर्षप्रमाणं कर्त्तव्यं[1] मुद्गयूषं पिबेदनु॥ १७९॥ अम्लपित्तं निहन्त्युग्रं शूलञ्चैव सुदारुणम्। परिणामभवं शूलं पृष्ठशूलञ्च नाशयेत्॥ १८०॥ अन्नद्रवभवं शूलं पार्श्वशूलं सुदुस्तरम्। अग्निसन्दीपनकरं रसायनमिदं शुभम्॥ १८१॥ मूत्राघातानशेषांश्च रक्तपित्तं विशेषतः। पीनसञ्च प्रतिश्यायं नाशयेन्नित्यसेवनात्॥ १८२॥ रोगानीकविनाशाय लोकानुग्रहहेतवे। अश्विभ्यां निर्म्मितं श्रेष्ठं नारिकेलामृतं शुभम्॥ १८३॥

अत्र नारिकेलफलप्रस्थं द्वात्रिंशत्पलमार्द्रत्वात्। शुण्ठीचूर्णस्य पुनः षोडशपलमेव प्रस्थसाम्यात्। पात्रं चतुःषष्टिपलं द्विपात्रं अष्टाविंशत्यधिकशतपलं स्यात्किन्तु द्रवद्वैगुण्येन नारिकेलजलदुग्धधात्रीरसा ग्राह्याः।

१२८ तोले पिसी हुई नारियल की गिरी को १२८ तोले घृत में भून करके, सोंठ का चूर्ण ६४ तोले, नारियल का जल १२ सेर ६४ तोला, गाय का दूध ११ सेर ६४ तोला, आँवले का रस १२८ तोले और चीनी ४०० तोले मिलाकर धीरे-धीरे मन्द-मन्द अग्नि में पकावे। जब पाक सिद्ध हो जावे, तो उतार लेवे। शीतल होने पर त्रिकटु, दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेसर प्रत्येक चार तोले तथा आँवला, सफेद जीरा, स्याह जीरा, धनियाँ, गठिवन, वंशलोचन और नागरमोथा, तीन-तीन तोले लेकर चार पल (१६ तोले) मधु मिलाकर चिकने पात्र में रख लेवे। मूँग की दाल के जूस के साथ प्रतिदिन ६ माशे से एक तोला तक की मात्रा में खावे। इस 'नारिकेलामृत' नाम औषध को सेवन करने से उग्र अम्लपित्त, दारुण शूल, परिमाण-शूल, पृष्ठ-शूल, अन्नद्रवज शूल, दुस्तर पसली-शूल, सब प्रकार के मूत्राघात रोग, रक्तपित्त, पीनस और जुकाम; इन अम्लपित्तादि अनेक रोगों का विनाश हो जाता है। श्रीअश्विनीकुमार ने जनता पर कृपा करके रोगसमूह के नाश के लिये इसको बनाया था॥ १७४–१८३॥

१—पाठान्तरे च 'कर्षप्रमाणं भोक्तव्यं क्षीर यूष पिबेदनु' इति पाठः।

हरीतकीखण्ड।

त्रिफलाब्दं चतुर्जातं यमानी कटुकत्रयम्। धान्यं मधुरिका चैव शतपुष्पा लवङ्गकम्॥ १८४॥ प्रत्येकं कार्षिकं ग्राह्यं त्रिवृता स्वर्णपत्रिका। पलद्वन्द्वप्रमाणेन सर्वतुल्या हरीतकी॥ १८५॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि सिता तद् द्विगुणा मता। दद्यादेतानि विधानेन क्षीरेणोष्णेन सम्पिबेत्॥ १८६॥ हन्त्यम्लपित्तं शूलञ्च षडर्शांस्यनिलामयम्। कोष्ठवातं कटीशूलमानाहमपि दारुणम्॥ १८७॥

त्रिफला, नागरमोथा, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, अजवाइन, त्रिकटु, धनियाँ, सोया, सौंफ और लौंग एक एक तोला निसोथ और सनाय आठ-आठ तोले, हरीतकी का चूर्ण ३२ तोले और चीनी १२८ तोले लेकर यथाविधि पाक करे। मात्रा १ तोला। अनुपान—उष्ण दुग्ध। इस 'हरीतकी-खण्ड' के सेवन करने से अम्लपित्त, शूल, ६ प्रकार का बवासीर, वात-रोग, कोष्ठवात, कटिशूल और अफारारोग शांत हो जाता है॥ १८४–१८७॥

हरीतकीखण्ड।

चतुःपलं हरीतक्यास्त्रिवृतायाश्चतुःपलम्। चतुर्जातं समुस्तञ्च तालीशं जीरकं तथा॥ १८८॥ जातीकोषं लवङ्गञ्च लौहमभ्रञ्च टङ्कणम्। प्रत्येकं कर्षमानेन श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्॥ १८९॥ प्रस्थेन गव्यदुग्धस्य पचेन्मृद्वग्निना भिषक्। शर्करायाः दशपलं पाकसिद्धिविधानवित्॥ १९०॥ दर्वीप्रलेपावस्थायां क्षिपेच्चूर्णं विचक्षणः। पूजयेद्भास्करं शम्भुं द्विजातीनभिवादयेत्॥ १९१॥ शूलमष्टविधं हन्ति अम्लपित्तं सुदुर्जयम्। अन्नद्रवभवं शूलं कासं श्वासं तथा वमिम्॥ १९२॥ कान्तिपुष्टिकरो हृद्यो बलमेधाग्निवर्द्धनः। ख्यातो हरीतकीखण्डः सर्वशूलनिकृन्तनः॥ १९३॥

हरड़ १६ तोला, निसोत १६ तोला, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, मोथा, तालीशपत्र, जीरा, जावित्री, लौंग, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, सुहागा हरएक का बारीक चूर्ण २ तोले, गोदुग्ध १२८ तोले, खाँड ४० तोला, इन्हें विधिपूर्वक मन्दी आँच पर पकाकर दर्वीप्रलेपावस्था में (गाढ़ा होने पर) ऊपर लिखे हुए चूर्ण को डाल दे। इसके सेवन से आठों प्रकार का शूल, अम्लपित्त, अन्नद्रवशूल, खाँसी, श्वास, वमन आदि रोग अच्छे होते हैं, कान्ति, पुष्टि, बल, बुद्धि तथा जठराग्नि को बढ़ाता है और हृदय को बलकारक है। मात्रा—६ माशा १ तोला॥१८८-१९३॥

पूगखण्ड।

छिन्नं पूगफलं दृढं परिणतं पक्त्वा च दुग्धाम्बुभिः प्रक्षाल्यातपशोषितं वसुपलं ग्राह्यं ततश्चूर्णितात्। तत् सर्पिः कुडवे विपाच्य हि वरीधात्रीरसौ द्व्यञ्जली, द्वे प्रस्थे पयसः प्रदाय विपचेन्मन्दं तुलार्द्धां सिताम्॥ १९४॥ हेमाम्भोधरचन्दनं त्रिकटुकं धात्रीप्रियालास्थिजौ मज्जानौ त्रिसुगन्धिजीरकयुगं शृङ्गाटकं वंशजा। जातीकोषफले लवङ्गमपरं धन्याककङ्कोलकं नाकूलीतगराम्बुवीरणशिफाभृङ्गाश्वगन्धे तथा॥ १९५॥ सर्वं द्व्यक्षमितं विचूर्ण्य विधिना पाके तु मन्दे ततः, प्रक्षिप्याशु विघट्टयन् मुहुरिदं दाव्यविताच्यं क्षणात्। सिद्धं वीक्ष्य विधारयेदवहितस्निग्धेऽथ मृद्भाजने, खादेत् प्रातरिदं ज्वरप्रयहरं हृद्यं बुधः कार्षिकम्॥१९६॥ शूलाजीर्णगुदप्रवाहरुधिरं दुष्टाम्लपित्तं जयेद्, यक्ष्मक्षीणहितं महाग्निजननं तृट्छर्दिमूर्च्छापहम्। पाण्डुघ्नं बलवर्णदृष्टिकरणं गर्भप्रदं योषितामेतत् पूगरसायनं प्रदरनुद्विएमूत्रसङ्गापहम्॥ १९७॥

अच्छी पकी दखिणी सुपारी के छोटे-छोटे टुकड़े करके जलमिश्रित दुग्ध में पकावे। तदनन्तर जल से धोकर, धूप में सुखाकर चूर्ण कर लेवे। इस प्रकार बनाया हुआ सुपारी का चूर्ण ३२ तोले लेकर ३२ तोले घृत में पका लेवे। उसके बाद आँवले का रस ६४ तोले, शतावरि का रस ६४ तोले, दुग्ध ३ सेर १६ तोले और चीनी २॥ सेर मिलाकर पाक करें। पाक सिद्ध हो जाने पर नागकेसर, नागरमोथा, चन्दन, त्रिकटु, आँवले की गिरी, चिरौंजी, दालचीनी, तेजपात, इलायची, सफेद जीरा, काला जीरा, सिंघाड़ा, वंशलोचन, जावित्री, जायफल, लौंग, धनियाँ, कंकोल, रास्ना, तगर, सुगंधबाला, खस, भाँगरा और असगंध का चूर्ण दो-दो तोला छोड़कर कलछुल से भली भाँति मिलाकर उतार लेवे और शीतल होने पर मिट्टी के चिकने पात्र में रख लेवे। प्रतिदिन

प्रातःकाल आधा तोला से एक तोला की मात्रा में सेवन करे। यह 'पूग-खंड' औषध शूल, अजीर्ण, गुदामार्ग से रक्त आना, दुष्ट अम्लपित्त, राजयक्ष्मा, क्षयरोग, तृषा-रोग, छर्दि, मूर्च्छा-रोग, पाण्डु-रोग, प्रदर-रोग, विड्बंध (मलावरोध) और मूत्रबंध (मूत्रावरोध); इन सब रोगों को निःसंदेह आराम करता है। यह औषध अत्यन्त अग्निवर्द्धक, बल-वर्ण और दृष्टि की वृद्धि करनेवाला एवम् स्त्रियों को गर्भदायक है॥ १९४—१९७॥

अपर पूगखण्ड।

प्रस्थैकं पूगचूर्णस्य पयसश्चाढकं क्षिपेत्। शर्करायाः पलशतं घृतस्य कुडवद्वयम्॥ १९८॥ चातुर्जातं त्रिकटुकं देवपुष्पं सचन्दनम्। मांसी तालीशपत्रञ्च बीजं कमलसम्भवम्॥ १९९॥ नीलोत्पलं तथा वांशी शृङ्गाटं जीरकं तथा। विदारीकन्दजञ्चैव रजोगोक्षुरसम्भवम्॥ २००॥ शतमूलीरजश्चैव मालतीकुसुमं तथा। धात्रीचूर्णं समं कर्षं कर्पूरं शुक्तिमानतः॥ २०१॥ मन्देऽग्नौ विपचेद्वैद्यः स्निग्धे भाण्डे निधापयेत्। खादेच्च प्रातरुत्थाय कोलमेकं प्रमाणतः॥ २०२॥ छर्द्यम्लपित्तहृद्दाहभ्रमिमूर्च्छापहं नृणाम्। सर्वशूलहरं श्रेष्ठमामवातविनाशनम्॥ ११३॥ मेहमेदोविकारघ्नं प्लीहपाण्डुगदापहम्। अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च गुदजं रुधिरं जयेत्॥ २०४॥ रेतोवृद्धिकरं हृद्यं पुष्टिदं कामदं तथा। वन्ध्यापि लभते पुत्रं वृद्धोऽपि तरुणायते॥ नातः परतरं श्रेष्ठं विद्यते वाजिकर्म्मसु २०५

चिकनी सुपारी का चूर्ण [illegible] तोला, दूध ६ सेर ३२ तोला, चीनी सवा सेर एकत्रित करके यथाविधि पाक करे। अधपका होने पर दाल चीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, त्रिकटु, लौंग, चन्दन, जटामांसी, तालीशपत्र, कमलगट्टा, नीलकमल, वंशलोचन, सिंघाड़ा, जीरा, विदारीकंद, गोखरू, शतावरि मालती का पुष्प और आँवले का चूर्ण एक-एक तोला तथा कपूर[1] २ तोला मिलाकर यथाविधि पाक सिद्ध होने पर मृत्तिका के चिकने पात्र में रख देवे। प्रतिदिन प्रातःकाल आधा तोला इस औषध का सेवन करे तो छर्दि, अम्लपित्त, हृद्दाह, भ्रम, मूर्च्छा, सब प्रकार के शूलरोग, आमवात, प्रमेह, मेद-रोग, तिल्ली, पाण्डुरोग, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, गुदज रोग और रुधिर-दोष; ये सब रोग शान्त हो जाते हैं। यह औषध वीर्यवर्धक, हृदय को हितकारक, कामवर्द्धक तथा पुष्टिकारक है। इस औषध के सेवन करने से वन्ध्या स्त्री पुत्रवती और वृद्ध पुरुष पुनः युवा हो जाता है। एवं वाजीकरण के लिये इस औषध से बढ़कर अन्य औषध नहीं है॥ १९८—२०५॥

शंखचूर्ण।

शङ्खचूर्णं पलञ्चैव पञ्चैव लवणानि च। क्षारद्वयकं जाती शतपुष्पा यमानिका॥ २०६॥ हिङ्गु त्रिकटुकं चैव सर्वमेकत्र चूर्णयेत्। आमवातं यकृच्छूलं परिणामसमुद्भवम्॥ अन्नद्रवकृतं शूलं शूलञ्चैव त्रिदोषजम्॥ २०७॥

शङ्खभस्म, सेंधानमक, सौंचरनमक, बिड़नमक, सामुद्रनमक, औद्भिदनमक, जवाखार सुहागा, जायफल, सोंफ, अजवाइन, हींग, त्रिकुटा, हरएक ४ तोले, इनके चूर्ण को मिलाकर ८ रत्ती की मात्रा में सेवन करना चाहिए। अनुपान-गर्म जल। इसके सेवन से आमवात यकृच्छूल, परिणामशूल, अन्नद्रवशूल, तथा त्रिदोषजशूल अच्छे होते हैं॥ २०६—२०७॥

त्रिपुरभैरव।

भागो रसस्याश्मरेन्नो भागो ग्रामो-

1—रसरपैवेति पाठान्तरम्।

1 कपूर उड़ाया हुआ।

ऽतियत्नतः। तयोर्द्वादशभागानि ताम्रपत्राणि लेपयेत् ॥ २०८ ॥ पचेच्छूलहरः सूतो भवेत्त्रिपुरभैरवः । मध्वाज्ययुक्तो गुञ्जार्द्धं देयोऽस्य परिणामजे ॥ अन्येष्वेरण्डतैलेन हिंगुरक्तिमितेन च ॥२०९॥

पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, इनकी कज्जली करके १२ भाग सूचीवेध्य ताम्रपत्र को लपेटकर बालकापुट में पाक करे जब पाक हो जाय तब औषधि को निकालकर अच्छी प्रकार पीस ले। मात्रा-आधी रत्ती। अनुपान-परिणाम-शूल में शहद तथा घृत। अन्य शूलों में अण्डी का तेल तथा हींग १ रत्ती ताम्रभस्म निरुत्थ हो तभी प्रयोग में ले अन्यथा और पुट दे ॥ २०८-२०९ ॥

शूलहरणयोग।

हरीतकी त्रिकटुकं, कुचिला हिङ्गु सैन्धवम्। गन्धकश्च समं सर्वं वटीं कुर्यात् सुखावहम् ॥ २१० ॥ गुञ्जाद्वयप्रमाणान्तु भोजनान्ते प्रशस्यते। एकैका वटिका ग्राह्या गुल्मशूलविनाशिनी ॥ २११ ॥ ग्रहण्यामतिसारे च साजीर्णे मन्दपावके योजयेदुष्णपयसा सुखमाप्नोति निश्चितम् ॥ २१२ ॥ सुवर्णवद् भवेद्देहं सद्योत्साहयुतं नृणाम् ॥ २१३ ॥

हरड, त्रिकुटा, शुद्ध कुचला, हींग, सेंधानमक, गन्धक, हरएक १ तोला, इन्हें इकट्ठा कर जल से घोटकर २ रत्ती की गोलियाँ बनावे। अनुपान-गरम दूध। इसे भोजन के पश्चात् सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से गुल्म, शूल, ग्रहणी, अतिसार, अजीर्ण, मन्दाग्नि आदि रोग अच्छे होते हैं। तथा शरीर सोने के समान वर्ण, कान्ति और हर्षयुक्त हो जाता है ॥ २१०-२१३ ॥

त्रिगुणाख्य रस।

टङ्कणं हरिणं शृंगं स्वर्णं गन्धरसे रसम् दिनैकमार्द्रक द्रावैर्मर्द्यं रुद्ध्वा पुरे पचेत् ॥ २१४ ॥ त्रिगुणाख्यो रसो नाम्ना माषैकं मधुसर्पिषा सैन्धवं जीरकं हिङ्गु मध्वाज्याभ्यां लिहेदनु ॥ २१५ ॥ पक्तिशूलहरः ख्यातो याम मात्रान्नसंशयः।

सुहागा फूला हुआ हरिण के सींग की भस्म सोने की भस्म गन्धक और रससिन्दूर सम भाग लेकर एक दिन तक अदरख के रस से घोटकर सम्पुट में रख कर गजपुट में फूँक दे। स्वांगशीतल होने पर निकाल घोट कर रखे। १ रत्ती की मात्रा में घी शहद (असमानमात्रा में) के साथ खावे या जीरा सेंधा नमक हींग सम भाग मिला उसके (२रत्ती) चूर्ण के साथ मधु शहद के साथ खावे। इसके सेवन से निश्चय ही २ घंटे में परिणाम शूल नष्ट हो जाता है ॥ २१४-२१६ ॥

शूलराजलौह।

कर्षैकं कान्तलौहस्य शुद्धमभ्रं पलं तथा। सितायाश्च पलं चैकं मधुसर्पिस्तथैव च ॥ २१७ ॥ सर्वमेकीकृतं पात्रे लौहदण्डेन मर्दयेत्। त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकम् ॥ २१८ ॥ प्रत्येकं तोलकं मानं चूर्णितं तत्र दापयेत्। भक्षयेत्प्रातरुत्थाय शिशिराम्ब्वनुपानतः ॥ २१९ ॥ सर्वदोषभवं शूलं कुक्षिशूलञ्च यद्भवेत्। हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च अम्लपित्तञ्च नाशयेत् ॥ २२० ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषं प्रमेहांश्च विसूचिकाम्। शूलराजमिदं लौहं हरेण परिनिर्मितम् ॥ २२१ ॥

कान्तलौहभस्म १ तोला, अभ्रकभस्म ४ तोला, खांड ४ तोला, शहद ४ तोला, घृत ४ तोला, इन्हें इकट्ठा करके लौहदण्ड द्वारा घोटकर त्रिकुटा, त्रिफला, मोथा, वायविडङ्ग, चव्य, चित्रक, हरएक का चूर्ण १ तोला डाले। मात्रा-२ रत्ती। अनुपान-ठण्डा जल। इसे प्रातःकाल सेवन करने से त्रिदोषजशूल, कुक्षिशूल, हृदय

का दर्द, पसवाड़े का दर्द, अम्लपित्त, बवासीर, ग्रहणी, प्रमेह, विसूचिका आदि रोग अच्छे हो जाते हैं ॥ २१७-२२१ ॥

बृहद्विद्याधराभ्र।

शुद्धसूतं तथा गन्धं फलत्रयकटुत्रयम्। विडङ्गमुस्तकञ्चैव त्रिवृता दन्तिचित्रकम् ॥ २२२ ॥ आखुपर्णी ग्रन्थिकञ्च प्रत्येकं कर्षसम्मितम्। पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य मृतायश्च चतुर्गुणम् ॥ २२३ ॥ घृतेन मधुना पिष्ट्वा वटीं गुञ्जात्रयोन्मिताम्। एकैकां वटिकां खादेत् प्रातरुत्थाय नित्यशः ॥ २२४ ॥ अनुपानं गवां क्षीरं नीरं वा नारिकेलजम्। सर्वशूलं निहन्त्याशु वातपित्तभवं तथा ॥ २२५ ॥ एकजं द्वन्द्वजञ्चैव तथैव सान्निपातिकम्। परिणामोद्भवं शूलमामवातोद्भवं तथा ॥ २२६ ॥ कार्श्यं वैवर्ण्यमालस्यं तन्द्रारुचिविनाशनम्। साध्यासाध्यं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ २२७ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडङ्ग, मोथा, निसोत, दन्ती, चित्रक, आखुपर्णी, पीपलामूल, हर एक १ तोला, अभ्रकभस्म ४ तोला, लोहभस्म १६ तोला, इसे घी तथा शहद से पीसकर ३ रत्ती की गोली बनावें। प्रति दिन प्रातःकाल रोगी एक गोली सेवन करे। अनुपान-गोदुग्ध अथवा नारियल का जल। यह एकदोषज शूल, द्वन्द्वजन्य शूल, त्रिदोषज शूल, परिणामशूल, आमवातजन्य शूल, कृशता, विवर्णता, आलस्य, तन्द्रा, अरुचि आदि रोगों को नष्ट करता है ॥ २२२-२२७ ॥

सूक्ष्मैलाद्यारिष्ट।

सूक्ष्मैलाया द्वे पले जातिकोषं स्थूलैला च दीपनो देवपुष्पम्। त्वक् कुंकुमं क्षीरकाकोलिका च प्रत्येकशः कोलमानं प्रकुट्य ॥ २२८ ॥ सञ्जीविन्याः कौडवं तोयमर्द्धं स्निग्धे भाण्डे सर्वमेतन्निधाय। सप्ताहैकं स्थापयेत् प्राप्तास्ये उद्धृत्यैनं वस्त्रपूतं प्रयुञ्ज्यात् ॥ २२९ ॥ बिन्दुस्त्रिंशतकरचादौ षष्टिबिन्दुमितां पराम्। अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत शूलरोगापनुत्तये ॥ २३० ॥

छोटी इलायची ८ तोला, जावित्री, बड़ी इलायची, अजवाइन, लौंग, दालचीनी, केशर, क्षीरकाकोली, हरएक १ तोला, मृतसञ्जीवनी सुरा १६ तोला, जल ८ तोला, इन्हें इकट्ठा कर चिकने पात्र में डालकर पूर्वोक्त चूर्ण को डालकर मुख बन्द कर दे इस प्रकार सात दिन पड़े रहने के पश्चात् निकाल कपड़े से छानकर एक शीशी में बन्द करके रख दे। मात्रा-३० बूँद से ६० बूँद तक। इसके सेवन से बहुत जल्दी कठिन शूल अच्छा हो जाता है ॥ २२८-२३० ॥

परिणामशूल में वर्जित।

माषादिशिम्बिधान्यानि मद्यानि वनिता हिमम्। आतपं जागरं क्रोधं शुचं सन्धानमम्लकम्। वर्जयेत्पक्तिशूलार्तस्तथाजीर्णं तिलानपि ॥ २३१ ॥

उड़द आदि शिम्बीजाति के धान्य, शराब, स्त्रीभोग, शीत अथवा बर्फ, धूप, रात को जागना, क्रोध, शोक, अचार आदि खटाई, तिल तथा अजीर्ण रोग से परिणामशूलवालों को बचना चाहिए ॥ २३१ ॥

वैश्वानरलौह।

द्विपलं तिन्तिडीक्षारं तथापामार्गसंभवम्। शम्बूकभस्मसंयुक्तं लवणञ्च समं तथा ॥ २३२ ॥ चतुर्णां समभागाः स्युस्तुल्यश्च लौहचूर्णकम्। चूर्णं सम्पिष्य खल्वादौ कारयेदेकतां भिषक् ॥ २३३ ॥

शूलस्यागमवेलायां खादेद्रक्तिचतुष्टयम्। शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः ॥ २३४ ॥

इमली का क्षार, चिचिडा का क्षार, घोंघा की भस्म और सेंधव लवण पाव-पाव भर, लोहभस्म एक सेर, एकत्र मिलाकर, खरल करके रख लेवे। शूल उत्पन्न होने के समय चार रत्ती इस "वैश्वानर-लोह"-नामक औषध का सेवन करना चाहिए। इस औषध के सेवन करने से सब प्रकार के शूल-रोग निस्संदेह नष्ट हो जाते हैं ॥ २३२-२३४ ॥

शूलगजकेशरी।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं यामैकं मर्दयेद् दृढम्। द्वयोस्तुल्यं शुद्धताम्रसम्पुटे तं निरोधयेत् ॥ २३५ ॥ ऊर्ध्वाधो लवणं दत्वा मृद्भाण्डे स्थापयेद्बुधः। रुध्वा गजपुटं दत्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ २३६ ॥ सम्पुटं चूर्णयेत् श्लक्ष्णं पर्णखण्डे द्विगुञ्जकम्। भक्षयेत् सर्वशूलार्त्तो हिङ्गु-शुण्ठीसजीरकम् ॥ २३७ ॥ वचामरिचजं चूर्णं कर्षमुष्णजलैः पिवेत्। असाध्यं साधयेच्छूलं श्रीशूलगजकेशरी ॥ २३८ ॥

शुद्ध पारा २ तोले और गंधक ४ तोला लेकर कज्जली बना लेवे। उस कज्जली को नींबू के रस में घोटकर छः तोला के वजनवाले शुद्ध ताँबे के संपुट (पात्र) के भीतर लेप कर देवे। तदनंतर उस संपुट को बंद करके एक हाँडी में नमक रखकर उसके ऊपर संपुट रक्खे। संपुट के ऊपर पुनः नमक रखकर हाँडी का मुख ढक्कन से बंद करके, कपरौटी करके गजपुट में फूँक देवे। स्वाङ्गशीतल होने पर संपुट का महीन चूर्ण बनाकर रख लेवे। आधी रत्ती की मात्रा में इस औषध को पान के पत्ते में रखकर सेवन करना चाहिये। एवं औषध सेवन करने के बाद हींग, सोंठ, जीरा, बच और मिर्च का चूर्ण एक तोला लाकर, उष्ण जल पी लेवे। इस 'शूलगजकेशरी'-नामक औषध के सेवन करने से असाध्य शूल भी आराम हो जाता है। ताम्रभस्म निरुत्थदोष रहित ही लेवे अन्यथा और पुट दे ॥ २३१-२३८ ॥

शूलवर्ज्जिनी[1] वटी।

रसगन्धकलौहानां पलार्द्धेन समन्वितम्। टङ्कनं रामठं शुल्वं[2] त्रिकटु त्रिफलाशटी ॥ २३९ ॥ त्वगेला पत्रतालीशं जातीफललवङ्गकम्। यमानी जीरकं धान्यं प्रत्येकं तोलकं शुभम् ॥ २४० ॥ चतुर्गुञ्जामिता वट्यश्छागीदुग्धेन पेषिताः। गणेशं योगिनीं शम्भुं हरिं सूर्यं प्रपूज्य च ॥ २४१ ॥ शीततोयानुपानेन छागीदुग्धेन वा पुनः। एकैका भक्षिता चैवं वटिका शूलवर्जिनी ॥ १४२ ॥ शूलमष्टविधं हन्ति प्लीहगुल्मोदरज्वरान्। अष्ठीलानाहमेहांश्च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ २४३ ॥ अम्लपित्तामवातांश्च कामलां पाण्डुरोगकम्। गुरुणा चन्द्रनाथेन वटिकैषा प्रकीर्त्तिता ॥ संसारलोकरक्षार्थं विचिन्त्य परिनिर्मिता ॥ २४४ ॥

पारा, गंधक और लौह-भस्म दो-दो तोला, सोहागा, हींग, सोंठ ताम्रभस्म, त्रिकटु, त्रिफला कचूर, दालचीनी इलायची, तेजपात, तालीशपत्र, जायफल, लौंग, अजवाइन, जीरा और धनियाँ एक-एक तोला, एकत्रित करके बकरी के दूध में घोटकर चार-चार रत्ती की गोलियाँ बना लेवे तदनतर गणेश, योगिनी, महादेव, विष्णु और सूर्य की पूजा करके बकरी के दूध या शीतल जल के साथ इस औषध की एक-एक गोली खावे। इस शूलवर्जिनी वटी के सेवन करने से सब प्रकार के शूल, तिल्ली, गुल्म, उदररोग,

१—शूलवज्रिणीति ग्रन्थान्तरे नाम।
२—शुण्ठी इति पाठान्तरे।

अष्ठीलावात, अफरा, प्रमेह, मन्दाग्नि, अरोचक अम्लपित्त, आमवात, कामला और पाण्डुरोग शान्त हो जाता है। संसार के कल्याणार्थ श्रीचन्द्रनाथजी ने इस शूलवर्जिनी वटी का निर्माण किया है ॥ २३६-२४४ ॥

शंखोदर रस ।

कम्बोर्भस्म चतुष्कर्षं कर्षैकंमहिफेनकम् । जातीफलं टङ्कणश्च कर्षं कर्षं नियोजयेत् ॥ २४५ ॥ चूर्णीकृत्य ततश्चाऽस्य गुञ्जामात्रां प्रयोजयेत् । नवीन तेन साकं हि रक्तातीसार हृत्परम् ॥ २४६ ॥ गुदाङ्कुरोद्भवं रक्तमामरक्तं नियच्छति । कृच्छ्र साध्यमतीसारं विविधं शूल मुल्बणम् ॥ २४७ ॥ शमयत्यतिवेगेन रसः शङ्खोदराह्वयः । गुड बिल्व कषायेण शूलं पक्वाशयोत्थितम् ॥ २४८ ॥ आमं पाचयते सद्यः सर्वाति सृति कृन्तनः ॥ २४९ ॥

शङ्ख भस्म ४ तोला अफीम जायफल, भुना सुहागा १-१ तोला लेकर महीन चूर्ण कर १-१ रत्ती की मात्रा देने से रक्तातिसार रक्तार्श आम कृच्छ्रसाध्य अतिसार नाना तरह की उत्कट शूल इन सबको यह नष्ट करता है। गुड़ और बेल के काढ़े के साथ पक्वाशय के शूल को नष्ट करता है और आम को पचाता है ॥२४५-२४९॥

शूलान्तक रस ।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं त्रिवृता चित्रकं तथा । एकैकशः समो भागस्तदर्द्धं रसगन्धयोः ॥ २५० ॥ लौहाभ्रकविडङ्गानां भागस्तु द्विगुणो भवेत् । एतत् सर्वं समादाय चूर्णयित्वा विचक्षणः ॥२५१॥ त्रिफलायाः कषायेण गुटिकाः कारयेद्भिषक् । तदेकां भक्षयेत् प्रातर्भक्तवारि पिबेदनु ॥ २५२ ॥ निहन्ति परिणामोत्थमम्लपित्तं वमिं तथा अन्नद्रवभवं शूलं सन्निपातसमुद्भवम् ॥ सर्वशूलान्निहन्त्याशु शुष्कं दावानलो यथा ॥ २५३ ॥

त्रिकटु, त्रिफला, नागरमोथा, निशोत और चीते की जड़ एक-एक तोला, कज्जली एक तोला, लौह-भस्म, अभ्रक-भस्म और वायविडंग दो-दो तोले एकत्र करके खरल करे। इस चूर्ण को त्रिफला के क्वाथ में घोटकर चार-चार रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। अनुपान काँजी। यह 'शूलान्तक-रस' परिणाम-शूल, अम्लपित्त, अन्नद्रवशूल, सन्निपातजशूल एवं सब प्रकार के शूल, इन सब रोगों को इस प्रकार नष्ट कर देता है जैसे सूखी लकड़ियों को अग्नि भस्म कर देती है ॥ २५०-२५३ ॥

श्रीविद्याधराभ्रक ।

विडङ्गमुस्तत्रिफला गुडूची दन्ती त्रिवृद्वह्निकटुत्रिकञ्च । प्रत्येकमेषां पिचुभागचूर्णपलानि चत्वार्य्ययसोमलस्य ॥२५४॥ गोमूत्रशुद्धस्य पुरातनस्य यद्वायसो वापि चिराटिकायाः । कृष्णाभ्रकाच्चूर्णपलं विशुद्धं निश्चन्द्रकं श्लक्ष्णमतीव सूतात् ॥ २५५ ॥ पादोनकर्षं स्वरसेन खल्लशिलातले मन्युमनीदलस्य । संमर्द्य यत्नादतिशुद्धगन्धपाषाणचूर्णेन पिचून्मितेन ॥ २५६ । युक्त्या ततः पूर्वरजांसि दत्वा सर्पिर्मधुभ्यामवमर्द्य यत्नात् । संस्थापयेत् स्निग्धविशुद्धभाण्डे ततः प्रयोज्यास्य रसायनस्य ॥ २५७ ॥ वल्लप्रमाणन्त्वथवा द्विवल्लं गव्यं पयो वा शिशिरं जलं वा । पिबेदयं योगवरः प्रभूतः कालमनष्टानलदीपकश्च ॥ २५८ ॥ रोगेषु हन्यात् परिणामशूलं शूलं तथान्नद्रव

संज्ञकश्च। यस्माम्लपित्तं ग्रहणीं प्रदुष्टां जीर्णज्वरं लोहितपित्तमुग्रम् ॥ २५९ ॥ न सन्ति ते यान्न निहन्ति रोगान् योगोत्तमः सम्यगुपास्यमानः ॥ २६० ॥

मन्युमनीदलं थूलकुडीति यस्य प्रसिद्धिः चिराटिका लौहचटकेति ख्याता। भोजनादिमध्यान्तेषु भक्ष्यं भोजनात् पूर्वं तु व्यवहरन्ति वैद्याः। मण्डूरस्थाने लौहं ग्राह्यम् तत्तु परिणामशूलेऽतिप्रशस्तम्।

वायविडङ्ग, नागरमोथा, त्रिफला, शुण्ठी, दन्तीमूल, निशोत, चीते की जड़ और त्रिकटु का एक एक तोला चूर्ण तथा गोमूत्र में शुद्ध किया हुआ पुराना मण्डूर अथवा लौह-भस्म १६ तोला, श्वेत पुनर्नवा की भस्म १६ तोला, निश्चन्द्र अभ्रक-भस्म ४ तोला, थूलकुढी (मण्डूकपर्णी) के रस में शुद्ध किया हुआ हिंगुलोत्थ पारद ढाई मासे और शुद्ध गंधक एक तोला लेवे।

पहले पारा और गंधक की कज्जली बनाकर उसमें सब औषधियों को मिश्रित करके यत्नपूर्वक खरल करे तथा घृत और मधु मिलाकर, मिट्टी के चिकने पात्र में रख देवे। मात्रा-२ रत्ती से ४ रत्ती तक देनी चाहिए। अनुपान-गोदुग्ध या शीतल जल। यह 'श्रीविद्याधराभ्रक' मन्दाग्नि, परिणाम शूल, साधारण-शूल, अन्नद्रव शूल, राजयक्ष्मा, अम्लपित्त, संग्रहणी, जीर्ण ज्वर और रक्तपित्त रोग का विनाश करता है। विशेष करके यह रसायन परिणाम शूल का महौषध है। इस संसार में ऐसा कोई रोग नहीं है, जिसमें यह औषध लाभकारी न हो ॥ २५४-२६० ॥

चतुःसमलौह।

अभ्रं गन्धं रसं लौहं प्रत्येकं संस्कृतं पलम्। सर्वमेतत् समाहृत्य यत्नतः कुशलो भिषक् ॥ २६१ ॥ आज्ये पले द्वादशके दुग्धे वत्सरसंख्यके। पक्त्वा क्षिपेत्तत्र चूर्णं सुपूतं घनवाससा ॥ २६२ ॥ विडङ्गत्रिफलावह्नित्रिकटूनां तथैव च। पिष्ट्वा पलोन्मितानेतांस्तथा संमिश्रितान्नयेत् ॥ २६३ ॥ तत्तु पिष्टं शुभे भाण्डे स्थापयेत्तु विचक्षणः। आत्मनः शोभने चाह्नि पूजयित्वा रविं गुरुम् ॥ २६४ ॥ घृतेन मधुना मर्द्य[1] भक्षयेन्माषकावधि[2] क्रमेण[3] वर्द्धयेत् तच्च समाहितमनः सदा ॥ २६५ ॥ अनुपानञ्च दुग्धेन नारिकेलोदकेन वा। जीर्णान्ने[4] हितशाल्यन्नमुद्गमांसरसादिभिः ॥ २६६ ॥ रसायनाविरुद्धानि चान्यान्यपि च कारयेत्। हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्चाप्यामवातं कटिग्रहम् ॥ २६७ ॥ गुल्मशूलं शिरःशूलं यकृत् प्लीहानमेव च। अग्निमान्द्यं क्षयं कुष्ठं कासं श्वासं विचर्चिकाम् ॥ अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च योगेनानेन साधयेत् ॥ २६८ ॥

अभ्रक भस्म, गन्धक, पारद और लौह भस्म चार चार तोला लेकर ४८ तोला घृत और ४८ तोला दुग्ध में पकाकर मोटे वस्त्र से कपड़छान किये हुए निम्न लिखित औषधियों के चूर्ण को मिला देवे।

औषधियाँ

वायविडङ्ग, त्रिफला, चीता की जड़ और त्रिकटु चार-चार तोला।

यथाविधि पाक सिद्ध होने पर उत्तम पात्र में रख लेवे। एक माशा से प्रारम्भकर क्रमशः

१–आलोड्येति पाठान्तरम्।

२–माषकादिकमिति पाठान्तरम्।

३–'अष्टौमाषान् क्रमशैव वर्धयेच्च समाहितः' इति ग्रन्थान्तरे पाठः।

४–'जीर्णे लोहितशाल्यन्नमुद्गमांसरसादिभिः। भक्षयेद्घृतसंयुक्तं सद्यः शूलाद्विमुच्यते॥' इति ग्रन्थान्तरे पाठः।

मात्रा की वृद्धि करे। दुग्ध या नारियल के जल के साथ सेवन करना चाहिए।

पथ्य—साठी के चावल का भात, मूँग का यूप (जूस) और मांस-रस आदि।

इस 'चतुःसमलौह' नामक रस के सेवन करने से हृदयशूल, पार्श्व-शूल, आमवात, कटिग्रह, गुल्म-शूल, शिरःशूल, यकृत, तिल्ली, मन्दाग्नि, क्षय-रोग, कुष्ठ, खाँसी, श्वास, विचर्चिका, पथरी और मूत्रकृच्छ्र ये सब रोग शान्त होते हैं॥ २६१-२६८ ॥

शूलगजेन्द्रतैल।

एरण्डं दशमूलञ्च प्रत्येकं पलपञ्चकम्। जले चाष्टगुणे पक्त्वा तैलस्यार्द्धाढकं पचेत् ॥ २६९ ॥ विश्वं जीरं यमानीञ्च धान्यकं पिप्पलीं वचाम्। सैन्धवं बदरीपत्रं प्रत्येकञ्च पलद्वयम् ॥ २७० ॥ यवक्वाथः पयश्चैव तैलाद्देयं गुणद्वयम्। तैलमेतन्महातेजो नाम्ना शूलगजेन्द्रकम् ॥ २६१ ॥ निहन्त्यष्टविधं शूलमुपद्रव[1]समन्वितम्। अग्निमदं वमिहरं श्वासकासारुचीर्जयेत् ॥ २७२ ॥ ज्वरघ्नं रक्तपित्तघ्नं प्लीहगुल्मविनाशनम्। श्रीमद्गहननाथेन निर्मितं विश्वसम्पदे ॥ २७३ ॥

एरण्ड-मूल और दशमूल प्रत्येक बीस-बीस तोला लेकर आठगुने जल में पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर इस क्वाथ में तिल-तैल २ सेर १६ तोला, कल्कार्थ-सोंठ, जीरा, अजवाइन, धनियाँ, पीपरि, वच, सेंधा नमक और बेर के पत्ते आठ-आठ तोला, यव का क्वाथ ६ सेर ३२ तोला और दूध ६ सेर ३२ तोला मिलाकर यथाविधि पाक करके तेल सिद्ध करे। इस 'शूलगजेन्द्र' तैल के मर्दन करने से आठ प्रकार के शूल और शूलजन्य वमन आदि उपद्रव तथा श्वास आदि विविध रोग निवृत्त होते हैं ॥ २६६-२७३ ॥

[1]—वेदनातितृषा मूर्च्छा आनाहो गौरवारुची। ज्वरो भ्रमः कृशत्वञ्च बलहानिस्तथैव च ॥ कासः श्वासश्च हिक्का च ज्वरस्योपद्रवाः स्मृताः ॥

इति श्रीपं० सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां शूलाधिकारः समाप्तः ॥

गुल्माधिकारः

लङ्घनं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम्। बृंहणं यद्भवेत् सर्वं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ १ ॥

लङ्घनमित्यत्र लघ्वन्नमिति वा पाठः।

लङ्घन, अग्निदीप्तकारक औषध, स्निग्ध, उष्ण और वायु की अनुलोमन क्रिया एवम् जिनके द्वारा शरीर की पुष्टि हो वे समस्त क्रियाएँ गुल्म-रोगी के लिये लाभदायक होती हैं ॥ १ ॥

सिद्धमेकादशविधं शृणु मे गुल्मभेषजम्। स्नेहनं स्वेदनञ्चैव निरूहमनुवासनम् ॥ १ ॥ विरेकवमने चोभे लङ्घनं बृंहणं तथा। शमनञ्चावसेकञ्च शोणितस्याग्निकर्म्म च। कारयेदिति गुल्मानां यथारम्भं चिकित्सितम् ॥ ३ ॥

गुल्मरोग में निम्न-लिखित एकादश प्रकार की क्रियाएँ करनी चाहिए। जैसे-स्नेहन, स्वेदन, निरूहन, अनुवासन, विरेचन, वमन, लङ्घन, बृंहण, शमन, रक्तावसेचन और अग्निकर्म ॥ २-३ ॥

गुल्मिनामनिलशान्तिरुपायैः सर्वशो विधिवदाचरितव्या। मारुते ह्यवजितेऽन्यमुदीर्णं दोपमल्पमपि कर्म निहन्यात् ॥४॥

गुल्म-रोग में सबसे पहिले वायु की शान्ति का यत्न करना चाहिए। क्योंकि वायु के शान्त होने पर अन्यान्य दोष बहुत थोड़े यत्न से शान्त हो जाते हैं ॥ ४ ॥

स्निग्धस्य भिषजा स्वेदः कर्त्तव्यो गुल्मशान्तये ॥ ५ ॥

गुल्म-रोग की शान्ति के लिये पहिले स्नेहन करके फिर स्वेदन करे ॥ ५ ॥

स्वेद के गुण।

स्रोतसां मार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुल्बणम्। भित्त्वा विबन्धं स्निग्धस्य स्वेदो गुल्मान् व्यपोहति ॥ ६ ॥

स्निग्ध रोगी के लिये किया हुआ स्वेदन स्रोतों को मृदु करके प्रबल वायु को जीत कर और वायु की गाँठों को तोड़कर गुल्म रोग को नष्ट करता है ॥ ६ ॥

कुम्भीपिण्डेष्टकास्वेदन् कारयेत् कुशलो भिषक्। उपनाहाश्च कर्त्तव्याः सुखोष्णाः शाल्वणादयः ॥ ७ ॥

कुम्भीस्वेदः वातहरकाथादिभिः,काञ्जिकादिभिर्वा घटस्थितैः स्वेदः। पिण्डस्वेदः उत्स्विन्नमांसादिपिण्डेन स्वेदः । तथा इष्टकास्वेदः प्रतप्तया काञ्जिकसिक्तया कर्त्तव्य इति भानुदासः।

वायुनाशक क्वाथ या काँजी के द्वारा घड़ा भर कर उसके वाष्प से जो स्वेदन किया जाता है उसे कुम्भीस्वेद कहते हैं।

मांसपिण्ड को पानी में डाल कर पकावे, फिर उसके वाष्प से जो स्वेदन किया जाता है उसे पिण्डस्वेद कहते हैं।

ईंट को आग पर तपा-तपाकर काँजी में बुझावे, तो उसके द्वारा जो स्वेदनक्रिया होती है, उसे इष्टकास्वेद कहते हैं।

चतुर वैद्य को चाहिए कि इन त्रिविध स्वेदों से, सुखोष्ण प्रलेप से और सल्वपण आदि के द्वारा गुल्मरोगों को शान्त करे ॥ ७ ॥

स्थानावसेको रक्तस्य बाहुमध्ये सिराव्यधः। स्वेदोऽनुलोमनञ्चैव प्रशस्तं सर्वगुल्मिनाम् ॥ ८ ॥

स्थानावसेको गुल्मस्थाने रक्ताकृष्टिः शृङ्गादिना विधेया।

बाहुमध्ये सन्धेरधोऽस्य सिराव्यधः न तु मध्यसिराव्यधः तस्य मर्म्मत्वात्। यस्मिन् पार्श्वे गुल्मस्तस्मिन् पार्श्वे बाहौ वा सिराव्यध इति। चरकोऽपि, गुल्मे सत्यनिलादीनां कृते सम्यग्भिषग्जिते। न प्रशाम्यति रक्तस्यावसेकाच्च प्रशाम्यति।

जिस स्थान में गुल्मरोग उत्पन्न हुआ हो, उस स्थान से तथा जिस पार्श्व में उत्पन्न हो उस तरफ के बाहु के मध्य से रक्त निकाल लेना, स्वेदन करना और वायु की अनुलोमन क्रिया करना गुल्मरोग में लाभदायक होता है ॥ ८ ॥

पेया वातहरैः सिद्धा कौलत्था धान्वजा रसाः। खड्गाः सपञ्चमूलाश्च गुल्मिनां भोजने हिताः ॥ ९ ॥

वातनाशक औषधादि द्वारा सिद्ध पेया, कुलथी की दाल का जूस, धन्वन पशी का मांसरस और पञ्चमूल के द्वारा सिद्ध किया हुआ जङ्गली जानवरों के मांस का रस गुल्मरोगी के भोजन में लाभदायक होता है ॥ ९ ॥

मातुलुङ्गरसो हिङ्गु दाडिमं विडसैन्धवम्। सुरामण्डेन पातव्यं वातगुल्मरुजापहम् ॥ १० ॥

नींबू का रस, हींग, अनारदाने, बिडनमक और सेंधवनमक को सुरामण्ड में मिलाकर पान करने से वातगुल्म की वेदना शान्त होती है ॥ १० ॥

नागरार्द्धपलं पिष्टं द्वे पले लुञ्चितस्य च। तिलस्यैकं गुडपलं क्षीरेणोष्णेन पाययेत्। वातगुल्ममुदावर्त्तं योनिशूलञ्च नाशयेत् ॥ ११ ॥

सोंठ २ तोला, तुष-रहित तिल ८ तोला और गुड़ ४ तोला इनको एकत्र पीस कर उष्ण

दुग्ध के साथ सेवन करने से वायुगुल्म, उदावर्त और योनिशूल आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

पिबेदेरण्डतैलं वा वारुणीमण्डमिश्रितम् । तदेव तैलं पयसा वातगुल्मी पिबेन्नर ॥ १२ ॥

उष्ण-दुग्ध या वारुणीमण्ड मिश्रित कर एरण्ड के तैल का पान करने से, पित्तानुबन्धी तथा कफानुबन्धी वायुजन्य गुल्मरोग में विशेष लाभ होता है ॥ १२ ॥

साधयेच्छुद्धशुष्कस्य लशुनस्य चतुःपलम् ॥ १३ ॥ क्षीरोदकेऽष्टगुणिते क्षीरशेषञ्च पाययेत् । वातगुल्ममुदावर्त्तं गृध्रसीं विषमज्वरम् ॥ १४ ॥ हृद्रोगं विद्रधिं शोथं नाशयत्याशु तत्पयः । एवन्तु साधिते क्षीरे स्तोकमप्यत्र दीयते ॥ १५ ॥

शुद्ध और शुष्क लहसुन १६ तोला, दुग्ध ६४ तोला, जल ६४ तोला इनको एकत्र कर पकावे । दुग्धमात्र शेष रहने पर इस दुग्ध को थोड़ा-थोड़ा पीने से वातगुल्म उदावर्त और गृध्रसी आदि नाना रोग नष्ट होते हैं ॥ १३-१५ ॥

सर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकजोऽपि वा । तैलेन पीतः शमयेद् गुल्मं पवनसम्भवम् ॥ १६ ॥

एरण्ड तैल या तिल-तैल में सज्जी का क्षार ६ रत्ती और कूट का चूर्ण ६ रत्ती अथवा केतकी के फूल का क्षार ३ से १२ रत्ती तक मिश्रित कर सेवन करने से वातगुल्म शान्त होता है ॥ १६ ॥

आवश्यिकक्रियासूत्र ।

वातगुल्मे कफे वृद्धे वान्तिरचूर्णादि चेष्यते ।

वातगुल्म में कफाधिक्य होने पर वमन और चूर्ण आदि औषध सेवन करना चाहिए ।

पित्ते विरेचनं स्निग्धं रक्ते रक्तस्य मोक्षणम् ॥ १७ ॥ स्निग्धोष्णेनोदिते गुल्मे पैत्तिके स्रंसनं हितम् । रूक्षोष्णेन तु सम्भूते सर्पिः प्रशमनं परम् ॥ १८ ॥

स्निग्धोष्णेन राजिकादिना कारणेन सम्भूते गुल्मे पैत्तिके पित्तोत्तरे स्रंसनं विरेचनं हितम् । एवं रूक्षोष्णेन अग्न्यातपादिना कारणेन सम्भूते सर्पिःपानं हितं रक्तपित्तोक्तमिति भानुः ।

यदि पित्त की अधिकता हो, तो स्निग्ध विरेचन देना चाहिए । रक्त की विकृति हो, तो रक्त मोक्षण कराना चाहिए । स्निग्ध और उष्ण जो राई आदि द्रव्य हैं उनके सेवन करने से उत्पन्न पैत्तिक गुल्म में पित्त की अधिकता होने पर विरेचन कराना लाभदायक होता है । तथा रूक्ष और उष्ण अर्थात् अग्नि और धूप आदि के द्वारा उत्पन्न गुल्म-रोग में रक्तपित्ताधिकारोक्त घृतपान लाभदायक होता है ॥ १७-१८ ॥

काकोल्यादिमहातिक्तवासाद्यैः पित्तगुल्मिनम् । स्नेहितं स्रंसयेत् पश्चाद्योजयेद्बस्तिकर्म्मणा ॥ १९ ॥

काकोल्यादि गण के साथ सिद्ध किया हुआ अथवा महातिक्तादि या वासादि के साथ सिद्ध किये हुए तैल का पान कराकर विरेचन कराने के पश्चात् बस्तिक्रिया कराना पित्त-गुल्म में लाभदायक होता है ॥ १९ ॥

हेतु विशेषजन्य पैत्तिक गुल्म में क्रिया की विशेषता ।

स्निग्धोष्णजे पित्तगुल्मे कम्पिल्लं मधुना लिहेत् । रेचनार्थे रसं वापि द्राक्षायाः सगुडं पिबेत् ॥ २० ॥

राई, सरसों आदि स्निग्धोष्ण द्रव्यों के सेवन से उत्पन्न गुल्म में श्वेत निसोत को मधु के साथ सेवन करे अथवा द्राक्षा के रस में गुड़ मिलाकर पान करे, तो विशेष लाभ होता है ॥ २० ॥

दाहशूलार्त्तिसङ्क्षोभस्वप्ननाशारति[1]-ज्वरैः । विदह्यमानं जानीयाद् गुल्मं तदुपनाहयेत् ॥ २१ ॥ पक्वे तु व्रणवत् कार्य्यं व्यधशोधनरोपणम् । स्वयमूर्ध्वमधोवापि स चेद्दोषः प्रवर्त्तते ॥ २२ ॥ द्वादशाहमुपेक्षेत रक्षन्नन्यानुपद्रवान् । परंतु शोधनं सर्पिः शुद्धे मधु सतिक्तकम् ॥ २३ ॥

गुल्म-रोग में दाह, शूल, वेदना, क्षुब्धता (Agitation), निद्रानाश, अधीरता और ज्वर उपस्थित हो, तो समझना चाहिए कि गुल्म का पकना प्रारम्भ हुआ है। अतः उसके शीघ्र पकाने के लिए यथाशोथोक्त पाचक प्रलेप (उपनाह) तत्काल करना चाहिए। गुल्म के पक जाने पर व्रण के समान ऑपरेशन करके पीव आदि निकालना और रोपणक्रिया करना उचित है। यदि स्वयं ही फूटकर पीव आदि के निकल जाने की संभावना हो, तो इस निमित्त बारह दिन पर्यंत शोधनादि कोई क्रिया न करे। केवल अन्यान्य उपद्रव जो उपस्थित हों, उन्हीं का उपाय करना चाहिए॥ २१-२३ ॥

कफगुल्मचिकित्सा ।

लङ्घनोल्लेखने[2] स्वेदे कृतेऽग्नौ सम्धुक्षिते । घृतं सक्षारकटुकं पातव्यं कफगुल्मिनाम् ॥ २४ ॥

कफजन्य गुल्म में लङ्घन, लेखन और स्वेदन के द्वारा अग्नि दीपन होने पर त्रिकटु और यवक्षारादि कल्क के द्वारा यथाविधि घृत सिद्ध करके सेवन कराना चाहिये ॥ २४ ॥

वमनार्ह गुल्मरोगी के लक्षण ।

मन्दोऽग्निर्वेदना मन्दा गुरुस्तिमितकोष्ठता । सोत्क्लेशतारुचिर्यस्य स गुल्मी वमनोपगः ॥ २५ ॥

अग्निमान्द्य, वेदना की मन्दता, कोष्ठ में भारीपन, स्तैमित्य (शरीर गीला कपड़ा फेरा-सा मालूम हो), उबकाई आने और अरुचि होने पर गुल्म रोगी को वमन कराना चाहिए ॥ २५ ॥

मन्देऽग्नावनिले मूढे ज्ञात्वा सस्नेहमाशयम् । गुटिकाश्चूर्णनिर्य्यूहाः प्रयोज्याः कफगुल्मिनाम् ॥ २६ ॥

कफगुल्म में अग्निमान्द्य और वायु की विकृति द्वारा कोष्ठ की स्निग्धता जानकर गुटिका, चूर्ण और क्वाथ औषध सेवन करना चाहिए ॥ २६ ॥

तिलादि स्वेद ।

तिलैरण्डातसीबीजसर्षपैः परिलिप्य च । श्लेष्मगुल्ममयः पात्रैः सुखोष्णैः स्वेदयेद्भिषक् ॥ २७ ॥

कफगुल्म में तिल, एरण्डबीज, अलसी और सरसों पीसकर गुल्मस्थान में लेप करना चाहिए और किञ्चित् उष्ण किए हुए लोहपात्र से स्वेदन करना चाहिए ॥ २७ ॥

यमानीचूर्णितं तक्रं विडेन लवणीकृतम् । पिबेत् सन्दीपनं वातमूत्रवर्चोऽनुलोमनम् ॥ २८ ॥

तक्र में अजवाइन और विडलवण को मिलाकर सेवन करने से अग्नि का दीपन तथा वायु, मूत्र और पुरीष का अनुलोमन होता है ॥ २८ ॥ मात्रा—१।१॥ मा० ।

द्वन्द्वजगुल्मचिकित्सा ।

व्यामिश्रदोषे व्यामिश्रः सर्व एव क्रियाक्रमः । सन्निपातोद्भवे गुल्मे त्रिदोषघ्नो विधिर्हितः ॥ २९ ॥ वचामयाविडाशुण्ठीहिङ्गुकुष्ठाग्निदीप्यकाः । द्वित्रिषट्चतुरेकाष्टपञ्चपञ्चाशिकाः[1] क्रमात् ॥ ३० ॥

१—स्वप्नेति पाठान्तरम् ।

२—स्नेहोपनाहनस्वेदैस्तीक्ष्णस्रंसनबस्तिभिः । योगैश्च वातगुल्मोक्तैः श्लेष्मगुल्ममुपाचरेदित्यधिकः पाठः ।

१—क्वचित् सप्त इति पाठान्तरम् ।

चूर्णं मद्यादिभिः पीतंगुल्मानाहोदरापहम्। शूलार्शः श्वासकासघ्नं ग्रहणीदीपनं परम् ॥ ३१ ॥

द्वन्द्वज गुल्म में उभयविध क्रिया तथा सान्निपातिक गुल्म में त्रिदोषनाशक क्रिया करनी चाहिए।

वच २ भाग, हरीतकी ३ भाग, विड़लवण ६ भाग, सोंठ ४ भाग, हींग १ भाग, कूट ८ भाग, चीते की जड़ २ भाग और अजवाइन ५ भाग लेकर चूर्ण बनावे। मद्य आदि के साथ इस चूर्ण का सेवन करने से गुल्म, आनाह, उदररोग, शूल, बवासीर, श्वास, खाँसी और ग्रहणीरोग शान्त हो जाते हैं ॥ २६-३१ ॥ मात्रा ३ माशा।

यमानीहिङ्गुसिन्धूत्थक्षारसौवर्चलाभयाः। सुरामण्डेन पातव्या गुल्मशूलनिषूदनाः ॥ ३२ ॥

अजवाइन, हींग, सेंधा नमक, जवाखार, काला नोन और हरीतकी इनके चूर्ण का मदिरा के साथ सेवन करने से गुल्मशूल का नाश होता है ॥ ३२ ॥ मात्रा-२॥ माशा।

हिंग्वादिचूर्ण।

हिङ्गु त्रिकटुकं पाठां हवुषामभयां शटीम्। अजमोदाजगन्धे च तिन्तिडीकाम्लवेतसौ ॥ ३३ ॥ दाडिमं पौष्करं धान्यमजाजीं चित्रकं वचाम्। द्वौ क्षारौ लवणे द्वे च चव्यञ्चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ३४ ॥ चूर्णमेतत् प्रयोक्तव्यमनुपानेष्वनत्ययम्। प्रागुक्तमथवा पेयं मद्येनोष्णोदकेन वा ३५ पार्श्वहृद्बस्तिशूलेषु गुल्मे वातकफात्मके। आनाहे मूत्रकृच्छ्रेषु गुदयोनिरुजासु च ॥ ३६ ॥ ग्रहण्यर्शोविकारेषु प्लीहपाण्ड्वामयेऽरुचौ। उरोविबद्धे हिक्कायां श्वासे कासे गलग्रहे ॥ ३७ ॥ भावितं मातुलुङ्गस्य चूर्णमेतद्रसेन वा। बहुशो गुटिकाः कार्य्या माषिकाः स्युस्ततोऽधिकाः ॥३८॥

गुडिकापक्षे एषां समभागचूर्णं सप्तदिनं छोलङ्गरसेन भावयित्वा गुटिकाः कार्य्याः।

हींग, त्रिकुट, पाढ़, हाऊबेर, हरीतकी, कचूर, अजमोद, वन अजवाइन, इमली की छाल, अमलबेत, अनारदाने, पुहकरमूल, धनियाँ, जीरी, चीता की जड़, वच, जवाखार, सज्जीखार, सेंधा नमक, काला नमक और चव्य बराबर-बराबर इन औषधों को लेकर चूर्ण बनावे। मात्रा-२॥ माशा। मद्य या उष्ण जल के साथ सेवन करने से यह चूर्ण पार्श्वशूल, हृदय शूल, बस्तिशूल, वातश्लैष्मिक गुल्म और आनाह आदि अनेक रोगों को नष्ट करता है। यदि इस चूर्ण की गोली बनानी हो, तो नींबू के रस में ७ दिन तक भावना देकर एक-एक माशे की बनावे ॥ ३३-३८ ॥

हिङ्गुपुष्करमूलानि तुम्बुरूणि हरीतकी। श्यामा विडं सैन्धवञ्च यवक्षारं महौषधम् ॥ ३९ ॥ यवक्वाथोदकेनैतद् घृतभृष्टन्तु पाययेत्। तेनास्य भिद्यते गुल्मः सशूलः सपरिग्रहः ४० ॥

हींग, पुहकरमूल, धनियाँ, हरीतकी, काली सारिवा, विड़ नोन, सेंधव, जवाखार और सोंठ इनके चूर्ण को घृत में भूनकर जौ के क्वाथ के साथ सेवन करने से गुल्म तथा तज्जन्य शूल और उपद्रव शान्त होते हैं ॥ ३९-४० ॥ मात्रा ३ मा०।

वचादिचूर्ण।

वचा हरीतकी हिङ्गु सैन्धवं चाम्लवेतसम्। यवक्षारं यमानीञ्च पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ४१ ॥ एतद्धि गुल्मनिचयं सशूलं सपरिग्रहम्। भिनत्ति सप्तरात्रेण वह्निवृद्धिं करोति च ॥ ४२ ॥

वच, हरीतकी, हींग, सेंधव लवण, अमलबेत, जवाखार और अजवाइन का चूर्ण बनाकर प्रति-

दिन प्रात काल ११२ माशा तक सेवन करे, तो सात दिन में गुल्मरोग की शान्ति और अग्नि तथा बल की वृद्धि होती है ॥ ४१-४२ ॥

हिंग्वादिचूर्ण।

हिङ्ग्गूग्रगन्धाबिडशुण्ठ्यजाजीहरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम्। भागोत्तरं चूर्णितमेतदिष्टं गुल्मोदराजीर्णविसूचिकासु ॥४३॥

हींग १ भाग, वच २ भाग, विड लवण ३ भाग, सौंठ ४ भाग, जीरा ५ भाग, हरीतकी ६ भाग, पुहकरमूल ७ भाग और कूट ८ भाग एकत्र कर चूर्ण बनावे। यह हिंग्वादि चूर्ण गुल्म, उदररोग, अजीर्ण और विसूचिका रोग को नष्ट करता है। मात्रा एक माशे से दो माशे तक ॥ ४३ ॥ मात्रा-२ माशा।

चित्रकादि चूर्ण।

चित्रकं नागरं हिंगु पिप्पलीं पिप्पलीजटा चव्याजमोदा मरिचं प्रत्येकं कर्षसंमितम् ॥ ४४ ॥ स्वर्जिका च यवक्षारः सिन्धु सौवर्चलं विडम् सामुद्रकं रोमकं च कोलमात्राणि कारयेत् ॥ ४५ ॥ एकीकृत्याऽखिलं चूर्णं भावयेन्मातुलुङ्गजैः रसैर्दाडिमजैर्वापि शोषयेदातपेन च ॥४६॥ एतच्चूर्णं जयेद् गुल्मं ग्रहणी मामजां रुजम् अग्निं च कुरुते दीप्तं रुचिं कृत् कफनाशनम् ॥ ४७ ॥

चीता की जड़, सौंठ भुनी, हींग, पीपल, पीपलीमूल, चव्य अजमोद और काली मिर्च, प्रत्येक 1-1 तोला, सजीखार जवाखार, सैंधानमक, काला नमक, विड नमक सामुद्र नमक (पाँगा) साँभर नमक ■ सब छह ? माशे इन सबका चूर्ण बनाकर बिजौरा नींबू के रस अथवा अनार दानों के रस में घोट कर सुखा लेवे। यह चूर्ण गुल्म सग्रहणी आमरोग और कफरोग को नष्ट करता है तथा अग्नि को दीप्ति कर रुचि को बढ़ाता है। मात्रा ३ से ६ माशा तक।

लवङ्गादिचूर्ण।

लवङ्गदन्तीत्रिवृतायमानीशुण्ठीवचाधान्यकचित्रकाणि। फलत्रयं मागधिका च कट्वी द्राक्षा चवी गोक्षुरयावशूकम् ॥ ४८ ॥ एलाजमोदाकुटजस्य बीजं विधाय चूर्णानि समान्यमीषाम्। खादेत्ततः मापमितं हिताशी कोष्णं जलं चानुपिबेत् प्रयत्नात् ॥ ४९ ॥ निहन्ति गुल्मं सरुजं सदाहमर्शांसि शोथांश्च तथामवातम्। सर्वोदराण्येव चिरोत्थितानि चूर्णं लवङ्गादिकमाशु हन्ति ॥ ५० ॥

लौंग, दन्तीमूल, निसोथ, अजवाइन, सौंठ, वच, धनियाँ, चीता की जड़, त्रिफला, पीपरि, कुटकी, मुनक्का, चव्य, गोखुरू, जवाखार, इलायची, अजमोद और इन्द्रजौ बराबर-बराबर लेकर चूर्ण बनावे। गरम जल के साथ एक माशा (से तीन माशा तक) परिमित इस चूर्ण के सेवन करने से दाहसहित गुल्मरोग, बवासीर, शोथ, आमवात तथा सब प्रकार के पुराने उदर-रोग तत्काल नष्ट होते हैं ॥४८-५० ॥

काङ्कायनगुटिका।

शठीं पुष्करमूलञ्च दन्तीं चित्रकमाढकीम्। शृङ्गवेरं वचाञ्चैव पलिकानि समाहरेत् ॥ ५१ ॥ त्रिवृतायाः पलञ्चैकं कुर्य्यात् त्रीणि च हिङ्गुनः। यवक्षारपले द्वे तु द्वे पले चाम्लवेतसात् ॥ ५२ ॥ यामान्यजाजी मरिचं धन्याकञ्चेति कार्षिकम्। उपकुंच्यजमोदाभ्यां तथा चाष्टमिकामपि ॥ ५३ ॥ मातुलुङ्गरसे चैता गुटिकाः कारयेद्भिषक्। आसां चैकां पिबेद् द्वे वा तिस्रोवाथसुखाम्बुना ॥५४॥ अम्लैर्मद्यैश्च यूषैश्च घृतेन पयसाथवा। एषा काङ्कायनोक्ता च गुटिका गुल्मना-

शिनी ॥ ५५ ॥ अर्शोहृद्रोगशमनी कृमीणाञ्च विनाशिनी । गोमूत्रयुक्ता शमयेत्कफगुल्मं चिरोत्थितम् ॥ ५६ ॥ क्षीरेण पित्तगुल्मञ्च मद्यैरम्लैश्च वातिकम् । रक्तगुल्मे च नारीणामुष्ट्रीक्षीरेण पाययेत् ॥ ५७ ॥

कपूर, पुहकरमूल, दन्ती चीता, अरहर की जड़, सोंठ, वच और निसोथ प्रत्येक चार-चार तोला हींग १२ तोला, जवाखार ८ तोला, अमलवेत ८ तोला, अजवाइन, जीरा, मिर्च और धनियाँ प्रत्येक एक-एक तोला, कृष्णजीरा और अजमोद प्रत्येक दो २ तोला एकत्र कर चूर्ण बनावे। पश्चात् इस चूर्ण में नीबू के रस की भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। प्रतिदिन एक-एक दो-दो या तीन तीन गोलियाँ सुखोष्ण (गुनगुना) जल, काँजी, मद्य, मांसयूप, घृत या दुग्ध के साथ सेवन करना चाहिए। यह कांकायनगुटिका हर प्रकार के गुल्म-रोग को नष्ट करती है। बवासीर, हृद्रोग और कृमिरोग को भी नष्ट करती है। गोमूत्र के साथ सेवन करने से पुराने श्लैष्मिक गुल्म, दुग्ध के साथ सेवन करने से पैत्तिक गुल्म, मद्य तथा कांजी के साथ सेवन से वातजन्य गुल्म और ऊँटनी के दूध के साथ सेवन करने से स्त्रियों के रक्तगुल्म को नष्ट करती है ॥ ५१-५७ ॥

नाराचघृत।

चित्रकं त्रिफला दन्ती त्रिवृता कण्टकारिका। स्नुहीक्षीरविडङ्गानि घृतं दशममुच्यते ॥ ५८ ॥ एकैकस्य च कर्षेण घृतस्य कुडवं पचेत्। अस्य मात्रां पिबेत् काले शाणार्द्धेन च सम्मिताम् ॥ ५९ ॥ उष्णोदकञ्चानुपिबेद्विरेकार्थं पिबेन्नरः। पिबेद्यवागूं हविषा पेयां वा क्षीरसाधिताम् ॥ ६० ॥ रसेन जाङ्गलानां वा भोजयेन्मतिमान् भिषक्। वातगुल्ममुदावर्त्तं प्लीहार्शोब्रध्नकुण्डलम् ॥ ६१ ॥ ग्रहणीं दीपयेन्मन्दां कुष्ठदोषांश्च नाशयेत्। नाराचकमिदं सर्पिः ख्यातं नाराचसन्निभम् ॥ ६२ ॥

घृत ३२ तोला, कल्कार्थ चीतामूल, त्रिफला, दन्तीमूल, निशोथ, कटेरी, थूहर का दुग्ध और वायविडङ्ग एक-एक तोला। पाकार्थ जल १२८ तोला यथाविधि पाक करके रख लेवे। मात्रा—१॥ माशा (से ६ माशा तक)। अनुपान—उष्ण-जल। घृतसंयुक्त यवागू और दुग्ध से सिद्ध पेया अथवा जंगली जानवरों के मांस का यूष (जूस)। इस नाराचघृत का पान करने से वातगुल्म और उदावर्त, तिल्लीरोग, बवासीर, ब्रध्नरोग, संग्रहणी और कुष्ठरोग नष्ट होते हैं ॥ ५८-६२ ॥

हवुषाद्यघृत।

हवुषाव्योषपृथ्वीकाचव्यचित्रकसैन्धवैः। साजाजीपिप्पलीमूलदीप्यकैः पाचयेद् घृतम् ॥ ६३ ॥ सकोलमूलकरसं सक्षीरदधिदाडिमम्। तत्परं वातगुल्मघ्नं शूलानाहविबन्धनुत् ॥ ६४ ॥ योन्यर्शोग्रहणीदोषश्वासकासारुचिज्वरान्। पार्श्वहृद्बस्तिशूलञ्च घृतमेतद् व्यपोहति ६५॥

घृत २ सेर, बेर के बीज की गिरी का क्वाथ २ सेर, सूखी मूली का क्वाथ २ सेर, दूध २ सेर, दधि २ सेर, अनारदाने का क्वाथ २ सेर। कल्कार्थ द्रव्य—हाऊबेर, त्रिकटु, इलायची, चव्य, चीते की जड़, सैंधव नमक, काला जीरा, पिपरामूल और अजवाइन सब मिलकर आधसेर इन औषधियों द्वारा यथाविधि घृत सिद्ध करे। इस हवुषाद्यघृत का पान करने से वातगुल्म, शूल, अफरा, विड्बंध (मल का कड़ा हो जाना), बवासीर, संग्रहणी, श्वास, खाँसी, अरुचि, ज्वर, पसलीशूल, हृच्छूल और बस्तिशूल ये रोग शान्त होते हैं। मात्रा—आधा तोला से १ तोला तक ॥ ६३-६५ ॥

पंचपलघृत ।

पिप्पल्याः पिचुरध्यर्द्धो दाडिमाद् द्विपलं पलम् । धान्यात् पञ्चघृतात् शुण्ठ्याः कर्षः क्षीरं चतुर्गुणम् ॥६६॥ सिद्धमेतद् घृतं सद्यो वातगुल्मं चिकित्सति । योनिशूलं शिरःशूलमर्शांसि विषमज्वरम् ॥ ६७ ॥

घृत २० तोला, कल्कार्थ पीपरि १॥ तोला, अनारदाने ८ तोला, धनियाँ ४ तोला, सोंठ १ तोला और दुग्ध १ सेर एकत्र कर यथाविधि घृत सिद्ध करे । इस 'पंचपल घृत' के सेवन करने से वातगुल्म, योनिशूल, शिर की पीड़ा, बवासीर रोग और विषमज्वर नष्ट होते हैं । मात्रा—आधा तोला से एक तोला तक ॥ ६६-६७ ॥

त्रायमाणाघृत ।

जले दशगुणे साध्यं त्रायमाणा चतुःपलम् । पञ्चभागस्थितं पूतं कल्कैः संयोज्य कार्षिकैः ॥ ६८ ॥ रोहिणी कटुका मुस्तं त्रायमाणा दुरालभा । कल्कस्तामलकी वीरा जीवन्ती चन्दनोत्पलम् ॥ ६९ ॥ रसस्यामलकीनाञ्च क्षीरस्य च घृतस्य च । पलानि पृथगष्टाष्टौ दत्त्वा सम्यग् विपाचयेत् ॥ ७० ॥ पित्तगुल्मं रक्तगुल्मं विसर्पं पैत्तिकज्वरम् । हृद्रोगं कामलां कुष्ठं हन्यादेव घृतोत्तमम् ॥ ७१ ॥ पलोल्लेखागते माने न द्वैगुण्यमिहेष्यते । चत्वारिंशत् पलं तेन तोयं दशगुणं भवेत् ॥७२॥

१६ तोला, त्रायमाणा को २ सेर जल में पकावे । ३२ तोला शेष रहने पर छानकर इस क्वाथ में रोहिषतृण, कुटुकी, नागरमोथा, त्रायमाणा, धमासा, आँवला, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, रक्तचन्दन और कमल एक-एक तोला, कूटकर मिलावे तथा आँवले का रस ३२ तोला, दूध ३२ तोला, घृत ३२ तोला मिलाकर यथाविधि घृत सिद्ध करे । इस त्रायमाणाघृत के सेवन करने से पित्तगुल्म, रक्तगुल्म, विसर्परोग, पित्तज्वर, हृद्रोग, कामला और कुष्ठरोग नष्ट होते हैं । पल का प्रमाण होने से दुगुना न चाहिए । इस प्रयोग में जल एकसौ साठ तोला का दश गुणा होता है । मात्रा-६ माशे से १ तोला तक ॥ ६८-७२ ॥

क्षीरषट्पलकघृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । पलिकैः सयवक्षारैः सर्पिः प्रस्थं विपाचयेत् ॥७३॥ क्षीरप्रस्थेन तत् सर्पिर्हन्ति गुल्मं कफात्मकम् । ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ॥ ७४ ॥

केचित् पुनरत्र जतुकर्णसंवादात् त्रिगुणं जलमिच्छन्ति यदुक्तं-सक्षारैः पञ्चकोलैस्तु पलिकैस्त्रिगुणोदके । सक्षीरञ्च घृतप्रस्थमित्यादि

पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चीता की जड़, सोंठ और जवाखार चार-चार तोले, घृत १२८ तोला, दुग्ध १२८ तोला, पाकार्थ जल ३ सेर १६ तोला (कोई-कोई कहते हैं कि जल १९२ तोला लेवे); इन सब द्रव्यों को एकत्र कर यथाविधि घृत सिद्ध करे । इस घृत के द्वारा कफ-गुल्म आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं ॥ ७३-७४ ॥ मात्रा-१ तोला ।

धात्रीषट्पलकघृत ।

धात्रीफलानां स्वरसैः षडङ्गं पाचयेद् घृतम् । शर्करासैन्धवोपेतं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ ७५ ॥

घृत १२८ तोला, आँवले का रस ८ सेर कल्कार्थ पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चीता की जड़ और जवाखार प्रत्येक दो-दो तोला, पाकार्थ जल ६ सेर ३२ तोला एकत्र कर यथाविधि घृत सिद्ध करे । सैंधव और शर्करायुक्त यह घृत सब प्रकार के गुल्मरोग में लाभदायक होता है । मात्रा-१ तो० ॥ ७५ ॥

दन्तीहरीतकी ।

जलद्रोणे विपक्तव्या विंशतिः पञ्च चाभयाः । दन्त्याः पलानि तावन्ति चित्रकस्य तथैव च ॥ ७६ ॥ तेनाष्टभागशेषेण पचेद्दन्तीसमं गुडम् । तारचाभयास्त्रिवृच्चूर्णात् तैलाच्चापि चतुःपलम् ॥ ७७ ॥ पलमेकं कणाशुण्ठ्योः सिद्धे लेहे च शीतले । क्षौद्रं तैलसमं दद्याच्चातुर्जातपलं तथा ॥ ७८ ॥ द्वितोलकमितं लेहं जग्ध्वा चैकां हरीतकीम् । सुखं विरिच्यते स्निग्धो दोषग्रस्तोऽप्यनामयः[1] ॥७९॥ प्लीहश्वयथुगुल्मार्शोहृत्पांडुग्रहणीगदाः । शाम्यन्त्युत्क्लेशविषमज्वरकुष्ठान्यरोचकाः ॥ ८० ॥

बड़ी हरड़ पोटली में बँधी हुई २५, दन्ती की जड़ सवा सेर, चीता की जड़ सवा सेर, जल २५ सेर ४८ तोला एकत्र कर क्वाथ करे। ३ सेर १६ तोला जल शेष रहने पर इस क्वाथ में सवा सेर पुराना गुड़, पूर्वोक्त २५ हरीतकी और १६ तोला तिल-तैल मिलाकर पाक करे। अधपका होने पर निसोथ का चूर्ण १६ तोला, पीपरि का चूर्ण २ तोला और सोंठ का चूर्ण २ तोला मिलाकर उत्तम रीति से चलाकर उतार लेवे। शीतल होने पर मधु १६ तोला, दालचीनी १ तोला, तेजपात १ तोला, इलायची १ तोला और नागकेशर १ तोला मिलाकर रख लेवे। प्रतिदिन दो तोला लेह और एक हरीतकी का सेवन करना चाहिए। इसके द्वारा विरेचन होने से गुल्म, प्लीहा और शोथ आदि सब रोग शान्त होते हैं ॥ ७६-८० ॥

रसायनामृतलौह ।

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं जीरकद्वयम् । यमानीद्वयभूनिम्बं त्रिवृद्दन्ती च निम्बकम् ॥ ८१ ॥ सर्वेषां कार्षिकं भागं सैन्धवं कर्षमभ्रकम् । खण्डस्य षोडशपलं प्रस्थञ्च त्रिफलाजलम् ॥ ८२ ॥ जम्बीराणां रसं दद्यात् पलषोडशकं तथा । पाच्यं सर्वं प्रयत्नेन लौहं दत्त्वा पलद्वयम्[2] ॥ ८३ ॥ सिद्धे पाके पुनर्देयं घृतं पलचतुष्टयम् । सर्वरोगेषु संयोज्यं महामृतरसायनम् ॥ ८४ ॥ गुल्मं पञ्चविधं हन्ति यकृत्प्लीहोदराणि च । कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं जीर्णज्वरं तथा ॥ रोगान् सर्वान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ८५

त्रिकटु, त्रिफला, नागरमोथा, विड़ंग, श्वेत जीरा, स्याह जीरा, अजवाइन, अजमोद, चिरायता, निसोथ, दन्ती की जड़, नीम की छाल, सेंधवनमक और अभ्रकभस्म एक-एक तोला, खाँड़ १६ पल, त्रिफला का क्वाथ १२८ तोला, नींबू का रस ६४ तोला, लोहभस्म ८ तोला एकत्र कर यथाविधि पाक करे। पाक सिद्ध होने पर १६ तोला घृत मिलाकर रख लेवे। यह अमृततुल्य रसायन सर्वरोगों में देने योग्य है। इस औषध का सेवन करने से गुल्म आदि विविध रोग नष्ट होते हैं। मात्रा-१ से ३ मा० ॥ ८१-८५ ॥

गुल्मकालानल रस ।

पारदं गन्धकं तालं ताम्रकं टङ्कनं समम् । तोलद्वयमितं भागं यवक्षारं च तत्[3] समम् ॥ ८६ ॥ मुस्तकं पिप्पली शुण्ठी मरिचं गजपिप्पली । हरीतकी वचा कुष्ठं तोलैकं चूर्णयेत् सुधीः ॥ ८७ ॥ सर्वमेकीकृतं पात्रे भावना क्रियते ततः । पर्पटं मुस्तकं शुण्ठ्यपामार्गं पापचेलिकम् ॥ ८८ ॥ तत् पुनश्चूर्णयेत् पश्चात् सर्वगुल्मनिवारणम् । गुञ्जाचतुष्टयं खादेद्धरी-

[1]—दोषग्रस्तमनामयः इति साधु पाठः ।
[2]—सुवर्णंलौहमिति ग्रन्थान्तरे पाठः ॥

[3]—सर्वद्रव्यसममिति केचिन्मतम् । रसेऽस्मिन् टङ्कनमित्यत्र लौहमिति रसेन्द्रः ।

तक्यनुपानतः ॥ ८९ ॥ वातिकं पैत्तिकं गुल्मं श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् । द्वन्द्वजं विनिहन्त्याशु वातगुल्मं विशेषतः ॥ श्री मद्गहननाथेन निर्मितो विश्वसम्पदे ९०

पारा, गन्धक, हरताल, ताम्र, सोहागा और जवाखार दो-दो तोला, नागरमोथा, पींपरि, सोंठ, मिर्च, गजपीपरि, हरीतकी, वच और कूट एक-एक तोला एकत्र कर चूर्ण बनावे। पश्चात् इस चूर्ण में पित्तपापड़ा, नागरमोथा, सोंठ, (अपामार्ग), चिरचिटा और पाढ़ी के क्वाथ की भावना देकर सुखावे और फिर चूर्ण कर रख लेवे। प्रतिदिन हरीतकी के क्वाथ के साथ अथवा चूर्ण के साथ दो से चार रत्ती की मात्रा में इस औषध का सेवन करना चाहिए। इसके द्वारा हर प्रकार के कफगुल्म अनुपान गुल्मरोग नष्ट होते हैं। यह श्रीमान् गहननाथ का बनाया हुआ है ॥ ८९-९० ॥

बृहद्गुल्मकालानल रस।

अभ्रं लौहं रसं गन्धं टङ्कनं कटुकं वचाम् । द्विक्षारं सैन्धवं कुष्ठं त्र्यूषणं सुरदारु च ॥ ९१ ॥ पत्रमेलां त्वचं नागं खादिरं सारमेव च । गृहीत्वा समभागेन श्लक्ष्णचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ९२ ॥ जयन्ती चित्रकोन्मत्तकेशराजदलं तथा । निष्पीड्य स्वरसंनीत्वाभावयेत्कुशलो भिषक् ॥९३॥ चतुर्गुञ्जाप्रमाणेन वटिकाः कारयेत्ततः । उत्थायभक्षयेत्प्रातरनुपानं जलं पयः ९४॥ गुल्मं पञ्चविधं हन्ति यकृत्प्लीहोदराणि च । कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथञ्चैव सुदारुणम् ॥ ९५ ॥ हलीमकं रक्तपित्तं मन्दाग्निमरुचिं तथा । ग्रहणीमार्दवं कार्श्यं जीर्णं च विषमज्वरम् ॥ ९६ ॥

अभ्रक, लोह, पारा, गन्धक सोहागा, कुटकी, वच, जवाखार, सज्जीखार, सेंधव नमक, कूट, त्रिकटु, देवदारु, तेजपात, इलायची, दालचीनी, नागकेसर और खदिरसार (कत्था) समभाग एकत्र कर चूर्ण बनावे। इस चूर्ण में जयन्ती, चीता, धतूरा और भाँगरा के पत्तों के रस की भावना देकर चार-चार रत्ती की गोली बना ले। एक गोली जल या दुग्ध के साथ प्रातःकाल सेवन करना चाहिए। पाँच प्रकार के गुल्म, यकृत, प्लीहोदर, कामला, पांडु, शोथ, हलीमक, रक्तपित्त, मंदाग्नि, अरुचि, ग्रहणी, कृशता, जीर्णज्वर, विषमज्वर इतने रोग इस रस के सेवन से नष्ट होते हैं ॥ ९१-९६ ॥

शिखिवाडव रस।

मारितं ताम्रसूताभ्रं गन्धकं माक्षिकं समम् । मर्दयेच्चित्रकद्रावैर्यवक्षारयुतं दिनम्[1] ॥ ९७ ॥ द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं नागवल्लीदलेन च । वातगुल्महरः ख्यातो रसोऽयं शिखिवाडवः ॥ ९८ ॥

ताम्रभस्म, पारद, अभ्रकभस्म, गन्धक, सोनामाखी की भस्म और जवाखार बराबर-बराबर लेकर चीता के रस में दिन भर घोटकर दो-दो रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—पान का रस। इसका सेवन करने से वातगुल्म की पीड़ा तत्काल शान्त होती है ॥९७-९८॥

नागेश्वर रस।

शुद्धसूतस्तथा गन्धो नागवङ्गौ मनःशिला । निशादलञ्च त्रिक्षारं लौहं शुल्वं तथाभ्रकम् ॥ ९९ ॥ एतानि समभागानि स्नुहीक्षीरेण मर्दयेत् । चित्रकं वासकं दन्तीक्वाथेनैकेन मर्दयेत् ॥ १०० ॥ दिनैकन्तु प्रयत्नेन रसो नागेश्वरो मतः । गुल्मप्लीहपाण्डुशोथानाध्मानञ्च विनाशयेद् ॥ भक्षयेदस्य गुञ्जैकं पर्णखण्डेन गुल्मवान् ॥ १०१ ॥

पारद, गन्धक, सीसा, वङ्ग, मैनसिल, नौसादर, जवाखार, सज्जीखार, सोहागा, लोह, ताम्र

1—यवसारमिति पाठान्तरम्।

और अभ्रक इन औषधों को बराबर-बराबर लेकर, थूहर के दूध में भली-भाँति घोटकर सुखा लेवे। फिर चीत की जड़, अरूसा और दन्ती के क्वाथ में एक-एक दिन पर्यंत घोटकर एक-एक रत्ती की गोली बनाकर रख लेवे। इस नागेश्वर रस को पान के रस के साथ सेवन करे। इससे गुल्म, प्लीहा, पाण्डु, शोथ, अफारा आदि रोग आराम होते हैं ॥ ९९-१०१ ॥

बाडवानल रस।

शुद्धं सूतं समं गन्धं मृतताम्राऽभ्रटङ्कणम्। सामुद्रं च यवक्षारं स्वर्जि सैन्धवनागरम् ॥ १०२ ॥ अपामार्गस्य च क्षारं पालाशं वत्सनाभकम्। प्रत्येकं सूततुल्यं स्याच्चणकाम्लेन मर्दयेत् ॥१०३॥ हस्तिकर्ण्या द्रवैश्चाहो ह्यार्द्रयुक्तं पुटेल्लघु। माषैकं भक्षयेन्नित्यं रसोऽयं बडवानलः ॥ १०४ ॥ सर्वान् गुल्मान्निहन्त्याशु ग्रहणीश्च विशेषतः ॥ १०५ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक ताम्र और अभ्रकभस्म सुमा सुहागा समुद्र नमक यवक्षार सज्जी सैन्धव सोंठ अपामार्ग और पलाश का क्षार शुद्धविष ये सब समान भाग लेकर महीन पीसकर कज्जली [redacted] मिला चणकाम्ल (चने का खारजल) हस्तिकर्ण पलाश अदरख इन के द्रवों से १-१ दिन घोटकर पुटपाक अथवा भूधर यंत्र से गरम होने तक स्वेदन कर उड़द बराबर गोलियाँ बना कर रख छोड़े। इनमें से १-१ गोली समय अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देने [redacted] सब प्रकार के गुल्म और ग्रहणी-रोग को मिटाता है विशेष अनुभूत है ॥१०२-१०५॥

अथ रक्तगुल्म।

रौधिरस्य तु गुल्मस्य गर्भकालव्यतिक्रमे। स्निग्धस्विन्नशरीरायै दद्यात् स्निग्धविरेचनम् ॥ १०६ ॥

रक्तगुल्म में दश मास व्यतीत होने पर रोगिणी को स्नेह और स्वेद प्रदान करके स्निग्ध विरेचक औषध देवे ॥१०६॥

शताह्वा चिरबिल्वत्वग्दारुभार्गीकणोद्भवः। कल्कः पीतो हरेद्गुल्मं तिलक्वाथेन रक्तजम् ॥ १०७ ॥

सोया, कंजे की छाल, देवदारु, भारंगी, पीपरि इन औषधों का कल्क बनाकर तिल के क्वाथ के साथ सेवन करे तो रक्तगुल्म आराम होता है मात्रा कल्क ४ माशा क्वाथ ४ तोला ॥ १०७ ॥

तिलक्वाथो गुडव्योषहिङ्गुभार्गीयुतो[1] भवेत्। पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषिताम् ॥ १०८ ॥

पुराना गुड़, त्रिकटु, हींग और भारंगी के कल्क का तिल के क्वाथ के साथ सेवन करने से रक्तगुल्म नष्ट होता है और मासिक धर्म की प्रवृत्ति होती है मात्रा—कल्क ४ माशा क्वाथ ४ तोला ॥ १०८ ॥

सक्षारत्र्यूषणं मद्यं प्रपिबेदस्रगुल्मिनी। पलाशक्षारतोयेन सिद्धं सर्पिः पिबेच्च सा ॥ १०९ ॥

जवाखार और त्रिकटु के चूर्ण के साथ मद्य का सेवन करने से अथवा पलाशक्षार-युक्त जल में सिद्ध किये हुए घृत का पान करने से रक्त-गुल्म रोग नष्ट होता है ॥ १०९ ॥

उष्णैर्वा भेदयेद्भिन्ने विधिरासृग्दरोहितः। न प्रभिद्येत यद्येवं दद्याद्योनिविशोधनम् ॥ ११० ॥ क्षारेण युक्तं पललं सुधाक्षीरेण वा पुनः। रुधिरेऽतिप्रवृत्ते तु रक्तपित्तहरी क्रिया ॥ १११ ॥

दन्ती, गुडादि उष्णविरेचन द्रव्य के द्वारा गुल्म का भेदन करके पश्चात् रक्तप्रदर के समान

1—योगरत्नाकरे—हिंगुस्थाने घृतप्रक्षेपो विहितः।

चिकित्सा करना रक्तगुल्म में हितकर होता है। यदि इससे गुल्म का भेदन न हो तो तिल के कल्क में जवाखार अथवा थूहर का दूध मिलाकर सेवन कराना चाहिये। यदि इससे अधिक रक्तस्राव होने लगे तो रक्तपित्तनाशक चिकित्सा करे ॥ ११०-१११ ॥

भल्लातकात् कल्ककषायपक्वं सर्पिः पिबेच्छर्करया विमिश्रम् । तद्रक्तगुल्मं विनिहन्ति पीतं बलासगुल्मं मधुना समेतम् ॥ ११२ ॥

भिलावा के कल्क और क्वाथ में यथाविधि घृत सिद्ध करके उसमें चीनी मिलाकर सेवन करे तो रक्तगुल्म और मधु मिश्रित कर सेवन करे तो कफजन्य गुल्म आराम होता है ॥ ११२ ॥

पञ्चानन रस।

पादांशकतुत्थश्च[1] गन्धं जैपालपिप्पली । आरग्वधफलान्मज्जा वज्रीक्षीरेण भावयेत् ॥ ११३ ॥ धात्रीरसयुतं खादेद्रक्तगुल्मप्रशान्तये । चिञ्चादलरसश्चानु पथ्यं दध्योदनं हितम् ॥११४॥

पारा, तूतिया, गन्धक जमालगोटा, पीपरि और अमलतास का गूदा इनको थूहर के दूध में घोटकर एक-एक रत्ती की गोली बनावे। आँवले के रस के साथ या इमली की पत्तियों के रस के साथ सेवन करे। पथ्य में दही और भात खावे। इसके द्वारा रक्तगुल्म रोग दूर होता है ॥ ११३-११४ ॥

गुल्म रोग में पथ्य।

स्नेहः स्वेदो विरेकश्च वस्तिर्वाहु शिराव्यधः। लङ्घनं वसिराभ्यङ्ग स्नेहः पक्वे तु पाटकम् ॥ ११५ ॥ संवत्सर समुत्पन्नाः कणा रक्त शालयः। खडः कुलत्थ यूषश्च धन्वमांसरसः सुरा ॥ ११६ ॥ ग्रामजायाश्चपयो मृद्वीका च परूपकम्। खर्जूरं दाडिमं धात्री नागरङ्गाम्लवेतसम् ॥११७॥ तक्रमेरण्ड तैलं च लशुनं बालमूलकम्। पतूरा वास्तुके शिग्रु यवक्षारो हरीतकी ॥ ११८ ॥ रामठं मातुलुङ्गं च त्र्यूषणं सुरभी जलम्। यदन्नं स्निग्धमुष्णं च बृंहणं लघु दीपनम् ॥ ११९ ॥ वातानुलोमनं चैव पथ्यगुल्मेनृणां भवेत् ॥१२०॥

स्नेहन स्वेदन विरेचन वस्तिकर्म बाहुकी नसभेदना लंघन, बत्तीप्रयोग, मालिश स्नेहपान, गुल्म पकने पर चीरफाड़, एक वर्ष पुराने अगहनी चावल खड्यूष, कुलथी का यूष, जंगली पशु पक्षियों का मांस, रस, मदिरा, गौदूध बकरी का दूध, मुनक्का फालसा, खजूर, अनार, आँवलों नारंगी, अमलवेत मठा, अण्डी का तेल, लहसन, छोटी मूली, पतूर बथुआ, सहजने की फली जवाखार, हरड़ हींग, बिजौरा नीबू, त्रिकुटा गौमूत्र चिकना, गर्म पौष्टिक हल्का जल्दी पचनेवाला, अग्निदीपक वात अनुलोमक भोजन ये सब गुल्म रोग में पथ्य है ॥११५-१२०॥

गुल्म रोग में अपथ्य।

वातकारीणि सर्वाणि विरुद्धान्यशनानि च। वल्लूरं मूलकं मत्स्यान् मधुराणि फलानि च ॥ १२१ ॥ शुष्क शाकं शमीधान्यं विष्टम्भीनि गुरूणि च। अधोवात शकृन्मूत्रश्रम श्वासाम्बु धारणम् ॥ १२२ ॥ वमनं जलपानं च गुल्म रोगी परित्यजेत् ॥ १२३ ॥

सभी वातकारक अन्न परस्पर विरुद्ध अन्न, सुखाया हुआ मांस, मूली, मछली, मधुरफल सूखा शाक शमीधान्य, विष्टम्भकारक तथा गुरुशाक, पदार्थ मलमूत्रादि के वेगों का रोकना वमन तथा जलपान गुल्मरोगी के लिए हानिकारक हैं इनको छोड़ देना चाहिए ॥१२१-१२३॥

वल्लूरं मूलकं मत्स्यान् शुष्कशाकानि

1—पारदं शिखितुत्थं चेति पाठान्तरम्।

चैदलम्। न खादेच्चालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥ १२५ ॥

इति भैषज्यर० गुल्माधिकारः समाप्तः

शुष्कमांस, मूली, मछली, शुष्कशाक, दाल, आलू और सुमधुर फल गुल्म रोगी के लिये अपथ्य है ॥ १२५ ॥

इति श्रीयं सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां गुल्माधिकारः समाप्तः।

अथ उदावर्त्ताधिकारः।

तत्र उदावर्त्ते।

त्रिवृत्सुधापत्रतिलादिशाकग्राम्यौदकानूपरसैर्यवान्नम्। अन्यैश्च सृष्टानिलमूत्रविड्भिरद्यात् प्रसन्नागुडशीधुपायी ॥ १ ॥

निशोथ, सेंहुड का पत्ता, तिल आदि का शाक तथा ग्राम्य, औदक और आनूप मांस का रस, जौ एवं मूत्रकारक और विरेचक अन्यान्य सब द्रव्य उदावर्त रोग में लाभदायक होते हैं। इस रोग में प्रसन्ना और गुड का सीधु विशेष लाभदायक हैं ॥ १ ॥

वातादिजनित उदावर्तों में क्रिया।

आस्थापनं मारुतजे स्निग्धस्विन्नस्य शस्यते। पुरीषजे तु कर्त्तव्यो विधिरानाहिकस्तु यः ॥ २ ॥

वायुजन्य उदावर्त रोग में स्नेह और स्वेदन करने के बाद निरूह क्रिया करनी चाहिए। मलनिरोधजन्य उदावर्त में आनाहोक्त क्रिया लाभदायक होती है ॥ २ ॥

विड्विघातसमुत्थे तु विड्भेद्यन्नं तथौषधम्। वर्त्यभ्यङ्गावगाहाश्च स्वेदो बस्तिर्हितो मतः ॥ ३ ॥

मलवेग के रोकने से पैदा हुए दूसरे उदावर्त में भेदक औषध, वर्ति, अभ्यङ्ग, अवगाहन स्वेदन तथा बस्तिक्रिया हितकर है ॥ ३ ॥

व्योषादि क्वाथ।

सव्योषं पिप्पलीमूलं त्रिवृद्दन्ती च चित्रकम्। तत्क्वाथं गुडसम्मिश्रं पाययेत्प्रातरुत्थितः ॥ ४ ॥ उदावर्त्तानाहगुल्मशोथपाण्ड्वामयापहम् ॥ ५ ॥

त्रिकुटा, पीपलामूल, निसोत, दन्तीमूल, चित्रक मिलाकर २ तोले। पाक के लिये जल ३२ तोले, बचा हुआ क्वाथ ८ तोला। इस क्वाथ में गुड़ डालकर प्रातःकाल पीने से उदावर्त, आनाह, गुल्म, सूजन तथा पाण्डु आदि रोग अच्छे होते हैं ॥ ४-५ ॥

नाराचचूर्ण।[1]

खण्डपलं त्रिवृतासममुपकुल्या कर्षचूर्णितं श्लक्ष्णम्। प्राग् भोजने च समधु तोलैकार्द्धं लिहेत्प्राज्ञः ॥ ६ ॥ एतद्गाढपुरीषे पित्ते कफे च विनियोज्यम्। स्वादुर्नृपयोग्योऽयं चूर्णो नाराचको नाम्ना ॥७॥

खाँड ४ तोला, निसोथ ४ तोला और पीपरि का चूर्ण एक तोला। इन सब द्रव्यों को एकत्र खरल करके रख लेवे। भोजन के पूर्व ६ माशा से एक तोला तक की मात्रा में सेवन करना चाहिए। मल की कठिनता में तथा कफ और पित्त के विकार में इस चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए। यह नाराचचूर्ण राजाओं के सेवन करने योग्य सुस्वादु होता है ॥ ६-७ ॥

हिंग्वादिवर्त्ति।

हिंगुमाक्षिकसिन्धूत्थैः पिष्टैर्वर्तिविनिर्मिताम्। घृताभ्यक्तां गुदे न्यस्येदुदावर्त्तविनाशिनीम् ॥ ८ ॥

हींग, शहद तथा सेंधा नमक, इन्हें इकट्ठा कर बराबर मात्रा में पीसकर बत्ती बनावे और

---

[1] —देयं विड्रुदावर्ते इति पाठान्तरम्।

इस बत्ती के ऊपर घृत चुपड़कर गुदा में रख दे इससे उदावर्त्त अच्छा होता है ॥ ८ ॥

फलवर्त्ति ।

मदनं पिप्पली कुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः । गुडक्षीरसमायुक्ताः फलवर्त्तिरिहोच्यते ॥ ९ ॥

मैनफल, पीपल, कूठ, बच, सफ़ेद सरसों इन्हें इकट्ठा कर गुड़ तथा दूध के साथ पीसकर बत्ती बनावे । इसे फलवर्त्ति कहते हैं । गुदा में फलवत्ती को रखने से उदावर्त्तरोग अच्छा होता है ॥ ९ ॥

गुडाष्टक ।

सव्योपपिप्पलीमूलं त्रिवृद्दन्ती च चित्रकम् । तच्चूर्णं गुडसंमिश्रं भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥ १० ॥ एतद् गुडाष्टकं नाम्ना बलवर्णाग्निवर्द्धनम् । उदावर्त्तप्लीहगुल्मशोथपाण्ड्वामयापहम् ॥ ११ ॥

त्रिकुटा, पीपलामूल, निसोत, दन्तीमूल, चित्रक, हरएक के चूर्ण को बराबर मात्रा में मिलाकर इस सब चूर्ण के बराबर गुड़ मिला ले । इसे प्रातःकाल उचित मात्रा में सेवन करने से उदावर्त्त, प्लीहा, गुल्म, सूजन, पाण्डु आदि रोग अच्छे होते हैं । और बल-वर्ण तथा अग्नि बढ़ती है । मात्रा—१ मासे से २ मासे तक ॥ १०-११ ॥

मूत्रावरोधजउदावर्त्त में एर्वारुबीजादि योग ।

एर्वारुबीजं तोयेन पिबेद्वा लवणान्वितम् । पञ्चमूलीमृतं क्षीरं द्राक्षारसमथापि वा ॥ १२ ॥

जरा-सा नमक मिलाकर ककड़ी के बीजों को जल के साथ पीने से अथवा लघुपञ्चमूल से सिद्ध दूध अथवा द्राक्षारस के पीने से मूत्ररोध दूर होकर उदावर्त्त अच्छा होता है ॥ १२ ॥

यवक्षारादि योग ।

यवक्षारं सितायुक्तं पिबेद्वा मृद्विकारसैः । वरीकूष्माण्डयोस्तोयं सितायुक्तं पिबेदथ ॥ १३ ॥

जवाखार ४ रत्ती को ४ रत्ती खाँड के साथ मिलाकर अंगूर के रस के साथ पीने से अथवा शतावरी के रस को खाँड के साथ अथवा पेठे के रस को खाँड के साथ पीने से मूत्ररोध दूर होकर उदावर्त्त नष्ट होता है ॥ १३ ॥

किंशुकक्काथसेको वा कवोष्णो मूत्ररोधहा । अत्र सर्वं प्रयुञ्जीत मूत्रकृच्छ्राश्मरीविधिम् ॥ १४ ॥

ज़रा गर्म टेसू के क्काथ से मसाना पर सेक करने से मूत्ररोध अच्छा होता है । पेशाब रुकने से उत्पन्न उदावर्त्त में मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी रोग में कहे हुए उपचार करने चाहिए ॥ १४ ॥

नाराचरस ।

सूतगन्धकतुल्यांशं मरिचं सूततुल्यकम् । टङ्कनं पिप्पली शुंठी द्वौ द्वौ भागौ विमिश्रयेत् ॥ १५ ॥ सर्वतुल्यानि बीजानि दन्तीनां निस्तुषाणि च । स्नुहीक्षीरेण संयुक्तं मर्दयेद्दिवसत्रयम् ॥ १६ ॥ नारिकेलोदरे स्थाप्यं महागाढाग्निना ततः । तत्कल्कं पाचयेत् क्षिप्रं खल्वयित्वा निधापयेत् ॥ १७ ॥ तन्मध्ये नाभिलेपेन राजयोग्यं विरेचनम् । घटिका लेपमात्रेण दशवारं विरेचयेत् ॥ तद्गन्धघ्राणमात्रेण विरेको जायते ध्रुवम् ॥ १८ ॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, काला मिरिच १ तोला, सोहागा भुना हुआ २ तोला, पीपरि २ तोला, सोंठ २ तोला और छिलके रहित शुद्ध जमालगोटा ९ तोला एकत्र कर थूहर के दूध में तीन दिन पर्यन्त खरल करके नारियल के मध्य में रक्खे और ऊपर मृत्तिका का लेप करके तीव्र आँच में पकावे । पश्चात् खरल करके रख लेवे । नाभि के मध्य में इसका लेप करने से राजाओं के योग्य विरेचन होता है ।

एक घटी (२४ मिनट) पर्यन्त लेप रखने से दश दस्त होते हैं तथा इसके गन्धमात्र से भी विरेचन हो जाता है ॥ १५-१८ ॥

त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्विचतुःपञ्च-भागिकाः[1] गुडिका गुडतुल्या सा विड्विबन्धगदापहा ॥ १९ ॥

निसोत २ तोला, पीपरि ४ तोला, हरीतकी ५ तोला और पुराना गुड़ ११ तोला एकत्र कर गोली बनावे। इससे मलबद्धता आदि विकार दूर होते हैं। मात्रा–६ मासे १ तोला तक ॥१९॥

उदावर्त में पथ्य।

स्नेह स्वेद विरेकाश्च वस्तयः फलवर्त्तयः। अभ्यङ्गश्च यवाः सर्व सृष्टविण मूत्र मारुतम् ॥ २० ॥ ग्राम्यौदकान्नय रसारुबुतैलं च वारुणी। बालमूलक सम्पाक त्रिवृत्तिल सुधादलम् ॥ २१ ॥ शृङ्गवेरं मातुलुङ्गं यवक्षारो हरीतकी। लवङ्गं रामठंद्राक्षा गोमूत्रं लवणानि च ॥ २२ ॥ इति पथ्यमुदावर्ते नृणामुक्तं महर्षिभिः ॥ २३ ॥

स्नेहन स्वेदन विरेचन, वस्ति, फलवर्त्ति तैलादिमर्दन मलमूत्र वायु आदि सब वेगों को लाने वाले पदार्थ, ग्राम्य (पालतू या गाँवों में रहने वाले जानवर) जीव और आनूप अधिक जल वाले प्रान्तों में रहने वाले पशुपक्षियों का मांसरस अंडी का तैल, शराब छोटी मूली अमलतास निशोथ तिल थूहर के पत्ते अदरख छोटी इलायची बिजौरा नींबू जवाखार, हरड़ लौंग हींग दाख गोमूत्र सब प्रकार के नमक ये सब पदार्थ उदावर्त में लाभदायक हैं ॥२०-२३॥

उदावर्त में अपथ्य।

वमनं वेगरोधं च शमीधान्यानि कोद्रवम्। नालीतशाकं शालूकं जाम्बवं कर्कटीफलम् ॥ २४ ॥ पिण्याक मालुकं सर्व करीरं पिष्टकृतम्। विष्टम्भीनि विरुद्धानि कषायाणि गुरूणि च ॥ २५ ॥ उदावर्ते प्रयत्नेन वर्जये मतिमान्नरः ॥ २६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामुदावर्त्ताऽधिकारः समाप्तः।

वमन मलमूत्र आदि वेगों को रोकना शमीधान्य (मापकलाय आदि) कोदों, नालिताशाक, शालूर (कुमुदादिसार फूल) जामुन ककड़ी फल पिण्याक (खली) सब प्रकार के आलू बासक अकुर मिट्ठी के बने पदार्थ विबंध करने वाले पदार्थ, विरुद्ध खानपान कषाय रसवाले पदार्थ और भारी पचनेवाले पदार्थ उदावर्त्त में अपथ्य हैं ॥ २४-२६ ॥

इति श्रीवं० सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्याया-मुदावर्ताधिकारः समाप्तः।

अथ आनाहाधिकारः

त्रिवृद्धरीतकीश्याम स्नुहीक्षीरेण भावयेत्। स्नुहीमूलस्य[2] चूर्णं वा पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ १ ॥

निसोथ, हरड़ और काली निसोथ के चूर्ण में थूहर के दूध की भावना देकर गुटिका बनावे। उसका गरम जल के साथ सेवन करने से अथवा थूहर की जड़ के चूर्ण का उष्ण जल के साथ सेवन करने से आनाह रोग शीघ्र आराम होता है ॥ १ ॥

त्रिकट्वादि वर्त्ति।

वर्त्तिस्त्रिकटुकसैन्धवसर्षपगृहधूमकुष्ठ-मदनफलैः। मधुनि गुडे वा पक्त्वा पायौ-रिताङ्गुष्ठपरिमाणा ॥२॥ वर्त्तिरियं दृष्ट-

---

१—वटिकामूत्रपीतास्ताः श्रेष्ठास्त्वानाहभेदिका। इति पाठान्तरम्।

फला शनैः शनैः प्रणिहिता घृताभ्यक्ता। आनाहोदावर्त्तप्रशमनी जठरगुल्मनिवारिणी च ॥ ३ ॥

सर्षपः श्वेतः मदनफलमेकं त्रिकद्वादीनां मिलित्वा कर्षः मधुनः पलं पक्त्वा वर्त्तिः कर्त्तव्येत्येके। त्रिकद्वादिद्रव्यं संगृह्य गुडे दत्त्वा पक्त्वा वर्त्तिः कार्य्येति केचित् ॥

त्रिकटु, सेंधा नमक, सफेद सरसों, गृह धूम, मैनफल (मैनफल एक लिखा है किन्तु वह तोल में तोला भर हो) और कूट १ तोला इन द्रव्यों को ४ तोला मधु या गुड के साथ पाक करके अँगूठे के बराबर की बत्ती बनावे। इस बत्ती को घृताक्त करके गुदा के छिद्र में धीरे-धीरे प्रवेश करने से अफरा, उदावर्त, जठर और गुल्म रोग नष्ट होता है। यह त्रिकट्वादि वर्ति कई बार प्रयोग द्वारा अनुभूत है ॥ २-३ ॥

स्थिराद्य घृत।

स्थिरादिवर्गस्य पुनर्नवायाः सम्पाकपूतीककरञ्जयोश्च। सिद्धः कषायो द्विपलांशिकानां प्रस्थो घृतात्स्यात्प्रतिरुद्धवाते ॥ ४ ॥

लघुपञ्चमूल, पुनर्नवा, अमलतास का फल करञ्ज हरएक ८ तोला। क्वाथ के लिए जल २५६ तोला। बचा हुआ क्वाथ ६४ तोला, इस क्वाथ के साथ १२८ तोला घृत पकाकर सेवन करने से उदावर्त आदि रोग अच्छे होते हैं। मात्रा—आधा तोला ॥ ४ ॥

शुष्कमूलाद्य घृत।

मूलकं शुष्कमार्द्रञ्च वर्षाभूमूलपञ्चकम्। आरग्वधफलञ्चापि पिष्ट्वा तेन पचेद् घृतम्। तत्पीतमात्रं शमयेदुदावर्त्तमसंशयम् ॥ ५ ॥

सूखी मूली, अदरक, पुनर्नवा, लघुपञ्चमूल, अमलतास, इनके कल्क से विधिपूर्वक घृत पाक करना चाहिए। इसके पीने मात्र से ही उदावर्त रोग अच्छा होता है। मात्रा--आधा तोला ॥५॥

उदयमार्त्तण्ड रस।

हिङ्गुलं जयपालटङ्कणविषाण्यन्त्यार्धभागोत्तरं, सर्वं खल्वतले विमर्द्य मतिमान् गुञ्जामितं वै ददेत्। मार्त्तण्डोदयको ज्वरादिसहितान् यः सोदराध्मानके, पाण्ड्वाजीर्णगदेऽनुपानवशतः पथ्यं च तक्रौदनम् ॥ ६ ॥ व्योषेणार्द्ररसेन तत्र सितया युक्तो ज्वरे दारुणे, मान्द्ये गुल्मकफानले च पवने शूले च शोफोदरे। वातास्रे स्वरवर्णकुष्ठगुदजान्रोगानशेषाञ्जयेत् ॥ ७ ॥

सिंगरफ ४ तोला, जमालगोटा २ तोला, सुहागा १ तोला, बच्छनाग आधा तोला, इन्हें इकट्ठाकर खरल में घोटकर एक रत्ती की मात्रा में सेवन करना चाहिए। यह मार्तण्डोदय रस ज्वर आदि उपद्रवसहित उदररोग, अफरा, पाण्डु, अजीर्ण आदि रोगों में योग्य अनुपानों के साथ सेवन कराने से नष्ट करता है। अनुपान--त्रिकुटा, अदरख का रस, खाँड़। इसके सेवन से कठिन ज्वर, मन्दाग्नि, गुल्म, कफरोग, पित्तरोग, वातरोग शूल, सूजन, उदररोग, वातरक्त, स्वरभेद, विवर्णता, कोढ़ तथा बवासीर आदि रोग अच्छे होते हैं। पथ्य -छाछ तथा भात ६--७ ॥

बृहदिच्छाभेदी रस।

शुद्धं पारदटङ्कणं समरिचं गन्धाश्मतुल्यं त्रिवृद्, विश्वा च द्विगुणा ततो नवगुणं जैपालचूर्णं क्षिपेत्। खल्ले दण्डयुगं विमर्द्य विधिना चार्कस्य पत्रे ततः, स्वेदं गोमयवह्निना च मृदुना स्वेच्छावशाद्धे दकः ॥ ८ ॥ गुञ्जैकप्रमितो रसो हिमजलैः संसेवितो रेचयेत्, यावन्नोष्णजलं पिबेदपि वरं पथ्यञ्च दध्योदनम्। आमं सर्वभवं सुजीर्णमुदरं गुल्मं विशालं

हरेत्, वह्नेर्दीप्तिकरो बलामहरणः सर्वामयध्वंसनः ॥ ९ ॥

शुद्ध पारा, सुहागा, कालीमिर्च, गन्धक हरएक १ भाग, निसोत २ भाग, सोंठ २भाग, शुद्ध जमालगोटा ६ भाग इन्हें विधिपूर्वक दो घड़ी तक खरल में मदार के पत्तो के रस से घोटकर गोवर के चूर्ण की अग्नि से मृदुपाक करे, बाद में १ रत्ती की गोली बनाकर शीतल जल से रोगी को सेवन करावे। बाद में आवश्यकतानुसार दस्त होने पर गरम जल पीवे जिससे अधिक दस्त न हों। पथ्य--दही, चावल। यह रस आमदोष, पुराना उदररोग, गुल्म तथा कफ रोगों को दूर करता तथा अग्नि को दीप्त करता है॥ ८--९ ॥

आनाह में पथ्य।

उदावर्त्ते हितं सर्वं पाचनं लङ्घनं तथा। आनाहेऽपि यथायोग्यं सेवयेन्मतिमान्नरः ॥ १० ॥

उदावर्त में पाचन औषध और उपवास लाभदायक है। अफरा के लिए उपयुक्त पाचक, वातानुलोमक द्रव्यों का सेवन करना चाहिए ॥१०॥

अपथ्यानि प्रदिष्टानि मान्युदावर्त्तिनां सदा। आनाहार्त्तः परिहरेत् तानि सर्वाणि यत्नतः।

विष्टम्भीनि विरुद्धानि कषायाणि गुरूणि च। उदावर्त्ते प्रयत्नेन वर्जयेन्मतिमान्नरः ॥ ११ ॥

उदावर्त रोग मे जो अपथ्य कहा है वह सब आनाहरोग में भी अपथ्य है।

इति भैषज्यरत्नावल्यामानाहाधिकारः समाप्तः।

विष्टंभी, वीर्यविरुद्ध, कषैले तथा भारी द्रव्यों को एकदम छोड़ देना चाहिए ॥ ११ ॥

इति श्रीपण्डितसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधाया व्याख्याया-मानाहाधिकारः समाप्तः।

अथ अनाहरोध अन्त्रवृद्धि-रोगाधिकारः।

रुद्धान्त्रगद का लक्षण।

तोदः पुरीषसंरोध आध्मानाक्षेपकौ तथा। नाभावाकर्षणं वान्तिः समला च बलक्षयः ॥ १ ॥ हिक्कोदरे व्यथा घोरा वह्निनाशोऽरतिस्तथा। चिह्नानीमानि जायन्ते गदे रुद्धान्त्रसंज्ञके ॥ २ ॥

रुद्धान्त्रनामक रोग में अर्थात् अन्त्रावरोध में उदर में सूचीवेध के समान पीड़ा, अत्यन्त मलरोध, अध्मान (पेट फूलना), उदर की सब पेशियों का आक्षेप, नाभिप्रदेश में खिंचाव, मलयुक्त वमन, बलक्षय, हिचकी आना, पेट में अत्यन्त पीड़ा, भूख न लगना और बेचैनी आदि लक्षण उपस्थित होते हैं ॥ १-२ ॥

रुद्धान्त्रगद की चिकित्सा।

विरेचनं बस्तिकर्म्म विविच्य परियोजयेत्। स्वेदक्रियाञ्च कुर्वीत गदे रुद्धान्त्रनामनि ॥ ३ ॥

अन्त्रावरोध रोग में भलीभाँति विचारकर विरेचन और बस्तिक्रिया का प्रयोग करना चाहिए। तत्पश्चात् उदर पर स्वेदन-क्रिया करने से विशेष लाभ होता है ॥ ३ ॥

सुरा ससलिला देया फणिफेनश्च युक्तितः। ततः शाम्यन्ति सहसा कुञ्चनाक्षेपवेदनाः ॥ ४ ॥

जलमिश्रित सुरा और अफीम का सेवन करने से आकुञ्चन, आक्षेप और वेदना आदि की शान्ति होती है। अफीम छः-छः घंटे के बाद आधी-आधी रत्ती देनी चाहिए ॥ ४ ॥

पिष्ट्वा कनकपत्राणि खाखसस्य फलं तथा। उष्णीकृत्याम्लयोगेनोदरं तेन मलेपयेत् ॥ ५ ॥

धतूरे के पत्ते और पोस्ता के फल को कांजी में पीसकर तथा गरम करके नाभि पर लेप करने से विशेष लाभ होता है ॥ ५ ॥

एवं बहुविधैर्व्याधिः कर्म्मभिश्चेन्न शाम्यति। ततः कुर्य्याद्भिषग्यत्नात्सलिलेनान्त्रपूरणम् ॥६॥ संवेशितमथोत्तानमातुरं बलिभिर्धृतम्। उन्नितव्यमवाक्स्कन्धं सान्त्वयित्वा च सान्त्वनैः ॥ ७ ॥ सुदूरमन्त्रमध्येऽस्य नाडी दीर्घां प्रवेशयेत्। तूलेन वस्त्रखण्डैर्वा पायुरन्ध्रं निरुध्य च ॥ ८ ॥ वस्तियोगेनान्त्रमध्ये तोयमुष्णं प्रयोजयेत्। संशूनमुदरं दृष्ट्वा निवर्त्तेत भिषक् ततः ॥ ६ ॥ वस्तिदेशादथारभ्योत्पीडयेदुदरं क्रमात्। वक्रत्यान्त्रस्य सारल्यं कर्म्मणानेन जायते ॥ १० ॥ सलिलेनेव सूतेनपलाष्टकमितेन च। वस्तियोगप्रयुक्तेन रुद्धान्त्रत्वं विनश्यति ॥ ११ ॥

इस प्रकार की अनेक क्रियाओं के करने पर भी यदि लाभ न हो तो जल के द्वारा अन्त्र को पूर्ण कर देवे। जिसकी विधि यह है—रोगी को चित लिटा देना चाहिए। नितम्ब ऊँचे कर देने चाहिए और बलवान् मनुष्य उसे पकड़े रहे। तथा सन्तोषजनक वचनों से सान्त्वना करके अन्त्र के भीतर दूर तक एक लम्बी नली का प्रवेश करावे। रुई या वस्त्र के टुकड़ों से गुदा के छिद्र को बंद करके अन्त्र में गरम जल की पिचकारी देवे। प्रविष्ट हुए जल के द्वारा पेट फूल जाने पर पिचकारी देना बन्द कर देवे और नली को सावधानी से निकाल ले, किंतु गुदा के छिद्र को और भी अच्छी तरह बन्द करे। तदनन्तर वस्तिप्रदेश से प्रारम्भ करके क्रमशः पेट के ऊपरी भाग को दबावे। ऐसा करने से टेढ़ी आँतें सीधी हो जाती हैं। जल की पिचकारी के समान पारा की पिचकारी देने से अधिक लाभ होता है। ३२ तोला पारा की पिचकारी देनी चाहिए ॥६-११॥

अत्र शस्त्रक्रिया प्राणनाशाय प्रायशो भवेत्। आतुराणां सहस्रेषु कस्यचित्स्यात्सुखाय वा ॥ १२ ॥ द्रवोपयोगो रुद्धान्त्रगदे न स्याद्धिताय हि ॥ युक्त्या तद्दिने दद्यात्ततः सान्द्ररसादिकम् ॥ १३ ॥

इस रोग में शस्त्र-क्रिया करने से प्रायः रोगी मर ही जाते हैं। तथा हजारों रोगियों में कदाचित् कोई अच्छा भी हो जाय। पतली चीज इस रुद्धान्त्र-रोग में लाभदायक नहीं होती, अतः रुद्धान्त्र रोगी को गाढ़ा मांसरस एवं विचार-पूर्वक अन्यान्य पथ्य वस्तु भोजनार्थ देवें ॥ १२-१३ ॥

बिन्दुघृतं च यत्प्रोक्तमुदरे सविधानतः। तस्योपयोगो बद्धान्त्रे गुल्मितान्त्रेऽपि जायते ॥ १४ ॥

उदररोग-अधिकार के बिन्दुघृत का प्रयोग बद्धान्त्र एवं गुल्मितान्त्र रोग में भी किया जाता है। इसको नाभि के चारों ओर विकृत जगह पर मालिश करने से (यदि मलावरोध अधिक हो तो खिलाना चाहिये) मलावरोध अच्छा होता है। जैसे ही मल अपने स्थान से चलकर नीचे को आता है तब रुके हुये मूर्च्छित गुल्मित अन्त्र भाग को सीधा कर देता है ॥१४॥

अन्त्रवृद्धि।

विविधैः कर्मभिः क्रूरैरन्त्रस्यावयवो वृतिम्। भित्त्वोदरीं निःसरति सान्त्रवृद्धिर्निगद्यते ॥ १५ ॥

जोरों से उछलना, कूदना और दौड़ना आदि विविध रुद्रकर्मों से उदरवृति (उदरस्थ छिद्र) (Inguinal Canal) का भेदन करके आँत निकल आती है, इसी को अन्त्रवृद्धि (Hernia) कहते हैं ॥ १५ ॥

अन्त्रवृद्धि की चिकित्सा।

अन्त्रवृद्धेः प्रशान्त्यर्थं धार्य्या कुण्डलबन्धनी। स्वेदभेदादिकर्माणि कर्त्तव्यानि

अन्त्रवृद्धि की शान्ति के लिए कुण्डल-बन्धिनी (पेटी Truss) को धारण करे। और स्वेदन, भेदन आदि शस्त्रकर्म द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १६ ॥ १६ ॥

मुष्ककोषमगच्छन्त्यामन्त्रवृद्धौ विचक्षणः। वातवृद्धिक्रमं कुर्यात्स्वेदस्तत्राग्निना हितः ॥ १७ ॥

आन्त्रवृद्धि जब तक अण्डकोष में प्राप्त न हुई हो तब तक वातवृद्धि में कही चिकित्सा करनी चाहिये, यहाँ पर अग्नि से स्वेदन करना हितकर है ॥ १७ ॥

रेचनं मूत्रकृच्च यद्वातस्यानुलोमनम्। तत्सर्वं वृद्धिरोगेषु भेषजं परियोजयेत् ॥ १८ ॥

वृद्धि रोगों में रेचक, मूत्रल एवं वातानुलोमन करनेवाली औषध का सेवन करना चाहिये ॥१८॥

वातवृद्धौ पिबेत्स्निग्धं यथाप्राप्तं विरेचनम् ॥ १९ ॥

वातजन्य अण्डवृद्धि में समय के अनुसार प्राप्त स्निग्ध विरेचन पीना चाहिए ॥ १९ ॥

पैत्तिकमुष्कवृद्धिचिकित्सा।

पित्तग्रन्थिक्रमेणैव पित्तवृद्धिमुपाचरेत्। जलौकाभिर्हरेद्रक्तं वृद्धौ पित्तसमुद्भवे २० ॥

पित्तग्रन्थि के चिकित्साक्रम के अनुसार ही पित्तवृद्धि की चिकित्सा करनी चाहिए। पैत्तिक वृद्धि में जोंक द्वारा रक्तमोक्षण कराना चाहिए २०

मुहुर्मुहुर्जलौकाभिः शोणितं रक्तजे हरेत्। पिबेद्विरेचनं चापि शर्कराक्षौद्रसंयुतम् ॥ २१ ॥

रक्तजन्य वृद्धि में बारबार जोंक द्वारा रक्त निकालना चाहिए। इसमें खाँड तथा शहद से युक्त रेचन औषध पीनी चाहिए ॥ २१ ॥

शीतमालेपनं सर्वं सर्वं पित्तहरं तथा। पित्तवृद्धिक्रमं कुर्यादामे पक्वे च रक्तजे २२

रक्तजन्य वृद्धि में शीत प्रलेप लगाना चाहिए और सम्पूर्ण पित्तहर कर्म करना चाहिए। रक्तजन्य आमवृद्धि में एवं पक्ववृद्धि में कहे गये चिकित्सा-क्रम द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २२ ॥

लेपनं कटुतीक्ष्णोष्णं स्वेदनं रूक्षमेव च। परिषेकोपनाहौ च सर्वमुष्णमिहेष्यते २३

कफज वृद्धि कटु, तीक्ष्ण एवं गरम लेप करना चाहिए। रूक्ष स्वेदन करना चाहिए। परिषेचन एवं उपनाह उष्ण होने चाहिए ॥ २३ ॥

मूत्रजवृद्धिचिकित्सा।

संस्वेद्य मूत्रप्रभवं वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत्। सेविन्याः पार्श्वतोऽधस्ताद्विध्येद् व्रीहिमुखेन वै ॥ २४ ॥

मूत्रजन्य वृद्धि में स्वेदन कर वस्त्र से लपेट दे, जिससे चमड़ा मुलायम रहे। पश्चात् अण्डकोष की सीवन को बचाकर उसके पास ही निम्न पार्श्व में व्रीहिमुख नामक शस्त्र से विद्ध कर द्रव को निकाल लेना चाहिए ॥ २४ ॥

पटोलेन कषायेणापि विधिना विहितं शृतम्। रुबुतैलेन संयुक्तमन्त्रवृद्धिं व्यपोहति ॥ २५ ॥

विधिपूर्वक सिद्ध किये हुए परवल एवं वासक क्वाथ में अण्डी का तेल मिलाकर पीने से अन्त्रवृद्धि अच्छी होती है ॥ २५ ॥

न्यग्रोधक्षीरलेपेन ब्रध्नरोगो विनश्यति ॥ २६ ॥

बड के दूध का लेप करने से ब्रध्नरोग अच्छा होता है ॥ २६ ॥

हरीतक्यादि क्वाथ।

हरीतकी वचा शुण्ठी त्रिवृता स्वर्णपत्रिका। एलाद्वयं देवपुष्पं क्वाथयित्वा जलं पिबेत् ॥ अनेन प्रशमं यान्ति ब्रध्नकासज्वरा ध्रुवम् ॥ २७ ॥

हरड़, वच, सोंठ, निसोत, सनाय, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, लौंग मिलाकर २ तोला क्वाथ के लिए जल ३२ तोला, शेष ८ तोला। इस क्वाथ के पीने से अण्ड, खाँसी तथा ज्वररोग अच्छे होते हैं ॥ २७ ॥

सौरेश्वर घृत।

घृतं सौरेश्वरं योज्यं अण्डवृद्धिनिवृत्तये ॥ २८ ॥

अण्डवृद्धि के नाश के लिए सौरेश्वर घृत अन्तःप्रयोग कराना चाहिए ॥ २८ ॥

वातवृद्धिनाशकयोग।

गुग्गुलं रुबुतैलं वा गोमूत्रेण पिबेन्नरः। वातवृद्धिं निहन्त्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ २९ ॥

गुग्गुल को अण्डी के तेल से मिला गोमूत्र के साथ पीने से बहुत काल की वातवृद्धि अच्छी होती है ॥ २९ ॥

कफ की वृद्धि में विरेचन का योग।

त्रिकटुत्रिफलाक्वाथं सक्षारलवणं पिबेत्। विरेचनमिदं श्रेष्ठं कफवृद्धिविनाशनम् ॥ ३० ॥

त्रिकुटा, त्रिफला के क्वाथ में जवाखार और सेंधा नमक डालकर कफवृद्धि के नाश के लिए विरेचनार्थ देना चाहिए ॥ ३० ॥

त्रिफलाक्वाथगोमूत्रं पिबेत्प्रातरतन्द्रितः। कफवातोद्भवं हन्ति श्वयथुं वृषणोत्थितम् ॥ ३१ ॥

त्रिफला के क्वाथ में गोमूत्र को डाल प्रातः सेवन कराने से कफवातजन्य अण्डकोषों की सूजन अच्छी होती है ॥ ३१ ॥

सरलागुरुकुष्ठानि देवदारु महौषधम्। मूत्रारनालसंयुक्तं शोथघ्नं कफवातनुत् ३२

सरलकाष्ठ (चीड़ की लकड़ी), अगर, कुष्ठ, देवदारु, सोंठ इन्हें गोमूत्र और काँजी के साथ पीसकर लेप करने से कफवातजन्य शोथ अच्छा होता है ॥ ३२ ॥

शिग्रुत्वक्सर्षपैर्लेपः शोथश्लेष्मानिलापहः ॥ ३३ ॥

सहिजन की छाल तथा सरसों इन्हें इकट्ठा कर पीसकर लेप करने से कफवातज शोथ एवं वृद्धिरोग अच्छा होता है ॥ ३३ ॥

तैलमेरण्डजं पीत्वा बलासिद्धपयोऽन्वितम्। आध्मानशूलोपचितामन्त्रवृद्धिं जयेन्नरः ॥ ३४ ॥

खरेंटी के कल्क और क्वाथ के साथ विधिपूर्वक सिद्ध किए हुए एरण्डतैल का पान करने से आध्मान, शूल और अन्त्रवृद्धि रोग शान्त होता है ॥ ३४ ॥

रास्नायष्टयमृतैरण्डबलारग्वधगोक्षुरैः। पटोलेन वृषेणापि विधिना विहितं शृतम् ॥ रुबुतैलेन संयुक्तमन्त्रवृद्धिं व्यपोहति ३५ ॥

रास्ना, मुलेठी, गिलोय, एरण्ड-मूल, खरेंटी अमिलतास का गूदा, गोखुरू, परवल या अरूसा के विधि-पूर्वक सिद्ध किए हुए क्वाथ में एरण्ड का तैल मिलाकर पान करने से अन्त्रवृद्धिरोग आराम होता है ॥ ३५ ॥

गन्धर्वहस्ततैलेन क्षीरेण विहितं शृतम्। विशालामूलजं चूर्णं वृद्धिं हन्ति न संशयः ॥ ३६ ॥

आगे लिखे गन्धर्वहस्त तैल या एरण्ड तैल और दुग्ध में इन्द्रायण की जड़ का चूर्ण पकाकर सेवन करने से निःसंदेह अन्त्रवृद्धि रोग दूर होता है ॥ ३६ ॥

वचासर्षपकल्केन[1] प्रलेपः शोथनाशनः। शिग्रु त्वक्सर्षपैर्लेपः शोथश्लेष्मानिलापहः ॥ ३७ ॥

वच और सरसों अथवा सहिजन की छाल और सरसों पीसकर तथा गरम करके शोथ

१ ग्रन्थान्तरेतु-वचासर्षपकल्केनप्रलेपेवृद्धिनाशनः। लज्जागृध्रमलाभ्याञ्च लेपो वृद्धिहरः परः ॥ इति पाठः।

की जगह लेप करने से शोथ और कफ-वात दोनों नष्ट होते हैं॥ ३७॥

वृद्धिवाधिका वटी।

शुद्धसूतं तथा गन्धं मृतान्येतानि योजयेत्। लौहं वङ्गं तथा ताम्रं कांस्यञ्चाथ विशोधितम्॥ ३८॥ तालकं तुत्थकञ्चापि तथा शङ्खं वराटकम्। त्रिकटु त्रिफला चव्यं विडङ्गं वृद्धदारुकम्॥ ३९॥ कर्चूरं मागधीमूलं पाठां सहवुषां वचाम्। एलाबीजं देवकाष्ठं तथा लवणपञ्चकम्॥ ४०॥ एतानि समभागानि चूर्णयेदथ कारयेत्। कषायेण हरीतक्या वटिकां टङ्कसंमिताम्॥ ४१॥ एकां तां वटिकां यस्तु निर्गिलेद्वारिणा सह। अन्त्रवृद्धिरसाध्यापि तथ्यं नश्यति सत्वरम्॥ ४२॥

शोधा हुआ पारा, गंधक, लोह, वङ्ग, ताम्र, काँसा, हरिताल, तूतिया तथा शंखभस्म, कौड़ी की भस्म, त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, वायविडंग, विधारा, कचूर, पिपरामूल, पाढ़ी, हाऊबेर, वच, इलायची के बीज, देवदारु और पाँचों नमक बराबर-बराबर लेकर चूर्ण बनावे। उस चूर्ण में हरीतकी क क्वाथ की भावना देकर तीन-तीन मासे की गोली बनावे। इस 'वृद्धिवाधिका वटिका' का जल के साथ सेवन करने से अन्त्रवृद्धिरोग तत्काल शान्त होता है मात्रा २-रत्ती॥ ३८-४२॥

अन्त्रेऽन्ये बहवो रोगा जायन्ते बहुदुःखदाः। विविच्य भिषजा तत्र क्रिया कार्य्या विधानतः॥ ४३॥

अन्त्र-रोग में अत्यन्त कष्टदायक अन्यान्य बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं, उनकी विचारपूर्ण चिकित्सा करनी चाहिए॥ ४३॥

सर्वान्त्ररोगेषु भेषजानि।

महोदधिरस।

रसं गन्धं तथा हेम वज्रविद्रुममौक्तिकम्। गृहीत्वा समभागेन मर्दयेत् त्रिफलाम्बुना॥ ४४॥ ततो रक्तिमिताः कुर्य्याद् वटीश्छायाभशोषिताः। एकैकां दापयेदासां यथादोषानुपानतः॥ ४५॥ रुद्धान्त्रत्वमन्त्रवृद्धिं तथान्यानन्त्रजान् गदान्। वातपित्तकफोत्थांश्च सर्वान् हन्ति महोदधिः॥ ४६॥

पारा, गंधक, सोना, हीरा, मूँगा, मोती इन सबको बराबर-बराबर लेकर त्रिफला के क्वाथ में घोटकर एक-एक रत्ती की गोली बनावे और उसको छाया में सुखा लेवे। दोषानुसार अनुपान के साथ एक-एक वटी का सेवन करे। यह 'महोदधि रस' रुद्धान्त्र, अन्त्रवृद्धि तथा अन्त्रजन्य अन्यान्य रोगों को नष्ट करता है। एवं वात, पित्त और कफजन्य समस्त रोगों को नष्ट करता है॥ ४४-४६॥

शशिशेखर रस।

लौहमभ्रञ्च सिन्दूरं मर्दयेत् कन्यकाम्बुना। अस्य रक्तिमितं दद्यादन्त्ररोगनिवृत्तये॥ ४७॥

लोह, अभ्रक और रससिन्दूर को घृतकुमारी के रस में घोटकर एक-एक रत्ती की गोली बनावे। इस 'शशिशेखर-रस' के द्वारा अन्त्ररोग निवृत्त होता है॥ ४७॥

रसराजेन्द्र।

हिङ्गुलोत्थं रसं गन्धं केशराजाम्बुशोधितम्। रसार्द्धं हेमतारञ्च नागं हेमार्द्धकं तथा॥ ४८॥ क्षिप्त्वा खल्लतले पश्चाद्वासाक्वाथेन भावयेत्। काकमाच्याश्चित्रकस्य निर्गुण्ड्याः कुटजस्य च॥ ४९॥ स्थलपद्मस्योत्पलस्य सप्तकृत्वो द्रवैः पृथक्। ततो रक्तिमिताः कुर्य्याद्वटीश्चण्डांशुशोषिताः॥ ५०॥ अन्त्रजान्निखिलान् रोगान् सर्वदोषोद्भवांस्तथा। हन्त्ययं रसराजेन्द्रो मृगराजो यथा मृगान्॥ ५१॥

हिङ्गुलोत्थ पारा और भाँगरा के रस में शुद्ध किया गंधक एक-एक तोला, स्वर्णभस्म और चाँदी की भस्म छह-छह माशे तथा नागभस्म तीन माशे एकत्र कर अरूसा, काकमाची, चीता, संभालू कुड़े की छाल, स्थलपद्म और कमल के क्वाथ में अलग-अलग सात-सात भावना देकर एक-एक रत्ती की गोली बनावे। उसको धूप में सुखाकर रख लेवे। उपयुक्त अनुपान के साथ सेवन करने से यह 'रसराजेन्द्र' अन्त्रजन्य तथा वातादि दोषजन्य समस्त रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सिंह मृगों का विनाश करता है। मात्रा २-३ रत्ती ॥४८-५१॥

वृद्धिहर रस।

रसं गंधं विषं व्योषं तथा लवणपञ्चकम् । त्रिक्षारं जयपालञ्च मर्दयेद्वह्निवारिणा ॥ ५२ ॥ रक्तिमात्रा वटीं कृत्वा पाययेत्पयसा सह । अनेन प्रशमं यान्ति वृद्धिब्रध्नादयो गदाः ॥ ५३ ॥

पारा, गन्धक, वत्सनाग, त्रिकुटा, पाँचोनमक, जवाखार, सज्जीखार, सुहागा और जमालगोटा इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर चित्रक के जल से घोटकर १ रत्ती की गोलियां बनावे। अनुपान-दूध। इसके प्रयोग से वृद्धि एवं ब्रध्न आदि रोग अच्छे होते हैं मात्रा १।२ रत्ती ॥ ५२-५३ ॥

अर्यमामृताभ्रक।

दशमूली च निर्गुण्डी सरसा च पुनर्नवा स्नुही च चविका वासा चित्रकं शृद्धदारकम् ॥ ५४ ॥ बला चातिबला चैव पाठारग्वधचित्रकम् । सहस्रपुटिताभ्रं तु रसैरेषां विमर्दयेत् ॥ ५५ ॥ अर्यमामृतनामेदं ब्रध्नवृद्धिं नियच्छति । अन्त्रवृद्धिं तथाध्मानं श्लीपदं कुलसम्भवम् ॥ ५६ ॥ गण्डमालां तथा ग्रन्थिमर्बुदं वातशोणितम् । ज्वरं घोरं तथा शोथमुदरं प्लीहपाण्डुताम् ॥ रसायनवरं वृष्यं वह्निकृद्धातुवर्द्धनम् ॥ ५७ ॥

दशमूल, सम्भालू, त्रिवृता (निसोत), सौंठी, थूहर, अडूसा, चित्रक, विधारा, खरेटी, सहदेवी, पाढ़, अमलतास, चित्रक इनके रस से अलग-अलग सहस्रपुटी अभ्रक को घोटकर उचित मात्रा में सेवन कराने से ब्रध्नवृद्धि, अन्त्रवृद्धि, अफरा, श्लीपद, गण्डमाला, ग्रन्थि, अर्बुद, वातरक्त, ज्वर, सूजन, उदररोग, प्लीहा तथा पाण्डुरोग अच्छे होते हैं। यह अभ्रक रसायन, वीर्यवर्द्धक, अग्निवर्धक और धातुवर्धक है। मात्रा १।३ रत्ती ॥५४-५७॥

त्रिवृतादि घृत।

त्रिवृतामधुयष्ट्यम्पयोधरयमानिकाः । श्यामा विदारी मिश्रेया पिप्पली गिरिमल्लिकाः ॥ ५८ ॥ घृतमर्धं पयःमर्धं दध्याढकसमन्वितम् । शतावरीरसमर्धं सर्वाण्येकत्र सम्पचेत् ॥ ५९ ॥ त्रिवृतादिघृतञ्चैतदन्त्रजाञ्चिखिलान् गदान् । प्रमेहान् विंशतिं श्वासान्कुष्ठान्यर्शांसि कामलाम् ॥ ६० ॥ हलीमकं पाण्डुरोगं गलगण्डं तथार्बुदम् । विद्रधिं व्रणशोथञ्च हन्ति नास्त्यत्र संशयः ॥ ६१ ॥

गोघृत १२८ तोला, दुग्ध १२८ तोला, दही का पानी ३ सेर ३२ तोला और शतावरी का रस १२८ तोला ये सब एकत्रकर उसमें निशोथ, मुलेठी, सुगन्धवाला, नागरमोथा, अजवाइन, काली निसोथ, विदारीकन्द, सोया, पीपरि, और कुड़े की छाल का कल्क १० तोला मिलाकर यथाविधि पाक करके घृत सिद्ध करना चाहिए। इस 'त्रिवृतादि' घृत का सेवन करने से अन्त्रज समस्त रोग एवं बीस प्रकार के प्रमेह और श्वास, कोढ़, बवासीर, कामला, हलीमक, पाण्डुरोग, गलगण्ड, अर्बुद, विद्रधि और व्रणशोथ ये रोग निवृत्त होते हैं। इसमें संशय नहीं। मात्रा—३ माशे से १ तोला तक ५८—६१

बृहद्दन्तीघृत।

जलद्रोणे पचेत् सम्यग्दन्त्याः पलशतं भिषक् । पादशिष्टं गृहीत्वेमं क्वाथं

सर्पिः पयस्तथा ॥ ६२ ॥ दन्तीमूलं बलां द्राक्षां सहदेवीं शतावरीम्। सरलं शारिवां श्यामां प्रत्येकं कुडवोन्मितम् ॥६३ ॥ विदार्य्यास्तालमूल्याश्च शाल्मल्याः कुटजस्य च। रसाढकं परिक्षिप्य साधयेत् मृदुनाग्निना ॥ ६४ ॥ अन्त्रवृद्धिमन्त्ररोधमन्त्रदाहं सुदारुणम्। मुष्कवृद्धिं तथा ब्रध्नं व्रणशोथं भगन्दरम् ॥ ६५ ॥ आमवातं वातरक्तं मुखनासाशिरोरुजः। रेतःशोणितदोषांश्च हन्ति दन्तीघृतं बृहत् ६६

२५ सेर ४८ तोला जल में ५ सेर जमालगोटा की जड़ को पकावे। चतुर्थांश अर्थात् ६ सेर ३२ तोला शेष रहने पर इस क्वाथ में घृत ६ सेर ३२ तोला और दूध ६ सेर ३२ तोला। जल १२ सेर ६४ तोला एकत्र कर उसमें कल्क बनाकर दन्तीमूल, खरेटी, मुनक्का, सहदेई, शतावरी, सरलकाष्ठ अनन्तमूल, काली निशोथ सोलह-सोलह तोला मिलावे। विदारीकंद, काली मुसली, सेमर का मुसरा और कुड़े की छाल का रस या क्वाथ प्रत्येक ६ सेर ३२ तोला मिलाकर धीमी आँच में यथाविधि घृत सिद्ध करे। इस बृहद्दन्ती घृत के सेवन करने से अन्त्रवृद्धि, अन्त्ररोध, अन्त्रदाह, अण्डकोषों की वृद्धि, ब्रध्न, व्रणशोथ, भगंदर आमवात, वातरक्त तथा मुख, नासिका और शिर के रोग, वीर्य और आर्तव के दोष ये सब नष्ट हो जाते हैं ॥ ६२–६६ ॥

बृहन्मन्दारतैल।

यन्मध्यनारायणनामतैलं तस्याङ्गसङ्घैस्तिलजं हि तैलम्। मन्दारपुष्पस्वरसेन सार्द्धं पचेद्विधिज्ञः कमलाम्भसा च ॥ ६७ ॥ मन्दारतैलं बृहदेतदाशु गलश्च शुक्रं परिवर्द्धयेद्धि। यन्त्रोत्थरोगानखिलान्निहन्ति पित्तोत्थवातोत्थकफोत्थितांश्च ॥ ६८ ॥

जिन जिन ओषधियों से कल्क और क्वाथ के द्वारा वाताधिकारोक्त मध्यनारायण तैल सिद्ध होता है, उन समस्त ओषधियों के कल्क और क्वाथ, आक के पुष्प के स्वरस और कमल के पुष्प के स्वरस के साथ यथाविधि तिल-तैल सिद्ध करे, तो इसको 'बृहन्मंदार तैल' कहते हैं। शरीर में इस तैल के मर्दन करने से यन्त्रजन्य समस्त रोग तथा अन्यान्य विविध रोग नष्ट होते हैं ॥ ६७–६८ ॥

पथ्य।

संशोधनं वस्तिरसृग्विमोक्षः स्वेदप्रलेपोऽरुणशालयश्च। एरण्डतैलं सुरभीजलश्च धन्वामिषं शिग्रु फलं पटोलम् ६९ पुनर्नवा गोक्षुरकाग्निमन्थं ताम्बूलपथ्यारसनारसोनम्। वार्त्ताकुनं गृञ्जनकं मधूनि कौम्भं घृतं तप्तजलश्च तक्रम् ॥ ७० ॥ अर्धेन्दुवद्वङ्क्षणयोश्च दाहो व्यत्यासतो बाहुशिराव्यधश्च। यथामयं शस्त्रविधिश्च वर्गः स्याद्ब्रध्नवृद्ध्यामयिनां सुखाय ७१

संशोधन (वमन, विरेचन आदि), वस्ति, रक्तमोक्षण, स्वेद, प्रलेप, लाल शालि चावल, अण्डी का तेल, गोमूत्र, जङ्गली जीवों का मांस, सहिजने की फली, परवल, पुनर्नवा, गोखुरू, अरणी, पान, हरड़ रास्ना, लहसुन, बैंगन, गाजर, शहद, दश वर्ष का पुराना घी, गरम जल, छाछ, जाँघों की सन्धि में आधे चन्द्रमा के समान चिह्नित दाग, दाहिने अण्डकोष के बढ़ जाने पर बाईं भुजा तथा यदि अण्डकोष के बढ़ जाने पर दाहिने हाथ की सिरा को बेधना चाहिए। रोग के अनुसार ऐसे शस्त्रकर्म ये सब आहार-विहार, ब्रध्न एवं वृद्धरोगियों के लिए लाभदायक हैं ॥ ६९–७१ ॥

अनभिष्यन्दिपानान्नं नातिशीता क्रिया तथा। वृद्धिरोगे हिताय स्याद्विपरीतं विवर्जयेत् ॥ ७२ ॥

वृद्धिरोग में भोजन तथा पीने के पदार्थ ऐसे

होने चाहिए जो अभिष्यन्दी न हों तथा चिकित्सा भी अधिक शीतल न होनी चाहिए ७२

अपथ्य ।

आनूपमांसानि दधीनि माषः पिष्टानि दुष्टान्नमुपोदिका च । गुरूणि शुक्रोत्थितवेगरोधाः स्युर्वृध्नवृद्ध्यामयिनाममित्राः ॥ ७३ ॥

अन्यच्च—

वृद्धावत्यशनं मार्गमुपवासं गुरूणि च । वेगरोधं पृष्ठयानं व्यायामं मैथुनं त्यजेत् ७४

इति भैषज्यरत्नावल्यामन्त्रवृद्धिरोगाधिकारः समाप्तः ।

आनूपमांस, दही, उड़द, पिट्ठी के बने खाद्य पदार्थ, दूषित अन्न, पोई का शाक, भारी पदार्थ, वीर्य के वेग को रोकना, ये ब्रध्न एवं वृद्धिरोगियों के शत्रु हैं । वृद्धिरोग में अधिक भोजन, अधिक चलना फिरना, उपवास, भारी पदार्थ, वेगों को रोकना, घोड़े आदि की पीठ पर सवारी करना, व्यायाम एवं मैथुन का त्याग करना चाहिए ॥ ७३--७४ ॥

इति श्रीपण्डितसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रसप्रभाभिधायां व्याख्यायामन्त्रवृद्धिरोगाधिकारः समाप्तः

यक्ष्माधिकारः ।

पथ्य ।

शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्गादयः शुभा । मद्यानि जाङ्गलाः पक्षिमृगाः शस्ता विशुष्यताम् ॥ १ ॥

शालिचावल, साठी चावल, गेहूँ जौ और मूँग आदि तथा मद्य और जांगल देश के पक्षी और मृगों के मांस ये सब यक्ष्मारोगी के लिये लाभदायक होते हैं ॥ १ ॥

शुष्यतां क्षीणमांसानां कल्पितानि विधानवित् । दद्यात् क्रव्यादमांसानि बृंहणानि विशेषतः ॥ २ ॥

जिन यक्ष्मारोगियों के मांस क्षीण और शुष्क हो गए हैं, उनके लिए कच्चे मांस खानेवाले पशु- पक्षियों के मांस लाभदायक होते हैं ॥ २ ॥

दोषाधिक्य में विधान ।

दोषाधिकानां वमनं शस्यते सविरेचनम् । स्नेहस्वेदोपपन्नानां सस्नेहं यत्र कर्षणम् ३ ॥

ननु सर्वथैव यक्ष्मिणां विरेचनं निषिद्धं यद्वदयति—'शुक्रायत्तं बलं पुंसां मलायत्तं हि जीवनम् । तस्माद् यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी ॥' अत्रोच्यते- 'रोगे शोधनसाध्ये तु यं विद्याद् दोषवर्द्धनम् तं समीक्ष्य भिषक् कुर्यात् दोषप्रच्यावनं मृदु ॥' इति ।

अधिक दोषवाले यक्ष्मारोगी को स्नेहन, स्वेदन करके वमन तथा विरेचन कराना अच्छा है परंतु ऐसा विरेचन न करावे जो क्षीणताकारक हो ।

यहाँ यह शंका होती है कि यक्ष्मा के रोगियों के लिये तो विरेचन निषिद्ध है । क्योंकि लिखा है कि मनुष्यों का शुक्राधीन बल और मलाधीन जीवन होता है अतः यक्ष्मारोगी के मल और वीर्य की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए । ऐसी दशा में यक्ष्मारोगी के लिए विरेचन का विधान क्यों किया गया ? इसका उत्तर यह है कि यद्यपि यक्ष्मारोग में विरेचन निषिद्ध है, तथापि रोग यदि शोधनसाध्य प्रतीत हो तो जो मल दोषवर्धक जान पड़े, उस मल को मृदु विरेचन के द्वारा दूर कर देवे । तात्पर्य यह है कि अत्यन्त आवश्यक होने पर मृदु विरेचन देना चाहिए ॥ ३ ॥

बलिनो बहुदोषस्य पञ्चकर्माणि कार-

येत् । यदिमणः क्षीणदेहस्य तत्कृतं स्याद्विषोपमम् ॥ ४ ॥

यक्ष्मारोगी यदि बलवान् हो, तो बहुत दोषों की प्रबलता में पञ्चकर्म अर्थात् वमन, विरेचन, अनुवासन, निरूह और नस्य कर्म की व्यवस्था करे। परंतु यदि रोगी निर्बल हो, तो ये ही यक्ष्मारोगी के लिए पञ्चकर्म विष के समान हानिकारक होते हैं ॥ ४ ॥

शुक्रायत्तं बलं पुंसा मलायत्तं हि जीवनम् । तस्माद् यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी ॥ ५ ॥

मनुष्यों का शुक्राधीन बल और मलाधीन जीवन होता है। अतः यक्ष्मारोगी के मल और शुक्र की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए ॥ ५ ॥

पारावतकपिच्छागकुरङ्गाणां पृथक् पृथक् । मांसचूर्णमजाक्षीरैः पीतं क्षयहरं परम् ॥ ६ ॥

कबूतर, वानर, बकरा या हरिन के मांस सुखाकर चूर्ण बनावे। बकरी के दूध के साथ उस चूर्ण को पीने से क्षयरोग निवृत्त होता है ॥ ६ ॥

घृतकुसुमरसलीढं क्षयं नयति गजबलामूलम् । दुग्धेन केवलेन च वायसजङ्घा निपीतेव ॥ ७ ॥

नागबला के चूर्ण को घृत और मधु के साथ चाटने से अथवा काकजंघा के चूर्ण को दुग्ध के साथ पीने से यक्ष्मारोग निवृत्त होता है ॥ ७ ॥

शर्करामधुसंयुक्तं नवनीतं लिहन् क्षयी । क्षीराशी लभते पुष्टिमतुल्ये चाज्यमाक्षिके ॥ ८ ॥

शक्कर और शहद मिलाकर मक्खन चाटनेवाले, दूध पीनेवाले और घी, शहद (जोकि समान भाग न हो) चाटनेवाले क्षयरोगी का शरीर पुष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

सितोपलादि चूर्ण सितोपलादिलेह।

सितोपला तुगाक्षीरी पिप्पली बहुलात्वचः । अन्त्यादूर्ध्वं द्विगुणितं लेहयेत् क्षौद्रसर्पिषा ॥ ९ ॥ चूर्णं वा प्राशयेदेतत् श्वासकासक्षयापहम् । सुप्तजिह्वारोचकिनं मंदाग्निं पार्श्वशूलिनम् । हस्तपादांसदाहेषु ज्वरे रक्ते तथोर्ध्वगे ॥ १० ॥

मिश्री १६ तोला, वंशलोचन ८ तोला, छोटी पीपरि ४ तोला, इलायची २ तोला और दालचीनी १ तोला एकत्र कर, कूट पीस कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। शहद और घृत के साथ इस चूर्ण का सेवन करे। यह 'सितोपलादि लेह' श्वास, कास, क्षय, सुप्तजिह्वता, अरोचक, अग्निमान्द्य, पार्श्वशूल, हाथों और पैरों का दाह, ज्वर और ऊर्ध्वगामी रक्त पित्त में विशेष लाभदायक होता ॥ ९-१० ॥

लवङ्गादिचूर्ण

लवङ्गकक्कोलमुशीरचन्दनं नतं सनीलोत्पलजीरकं समम् । त्रुटिः सकृष्णागुरुभृङ्गकेशरं कणा सविश्वा नलदं सहाम्बुदम् ॥११॥ अहीन्द्रजातीफलवंशलोचना सिताष्टभागं समसूक्ष्मचूर्णितम् । सुरोचनं तर्पणमग्निदीपनं बलप्रदं वृष्यतमं त्रिदोषनुत् ॥ १२ ॥ उरोविबन्धं तमकं गलग्रहं सकासहिक्कारुचियक्ष्मपीनसम् । ग्रहण्यतीसारभगन्दरार्बुदं प्रमेहगुल्मांश्च निहन्ति सत्वरम् ॥ १३ ॥

नतं तगरपादुका पत्रं तेजपत्रं त्रुटिः सूक्ष्मैला भृङ्गं गुडत्वचं नलदं जटामांसी अहीन्द्रोऽनन्तमूलं सिताष्टभागं शर्कराष्टभागं मिलितचूर्णाच्छर्कराया अष्टगुणो भागः इति तु पैत्तिके । प्रथमभागापेक्षया इत्यन्यः ॥

लौंग, शीतलचीनी, खस, लालचन्दन, तगर, नील कमल, सफेद जीरा, छोटी इलायची,

अगर, दालचीनी, नागकेशर, पीपल, सोंठ, जटामांसी, मोथा, शारिवा, जायफल, वंशलोचन, हरएक का चूर्ण १ भाग, खाँड ८ भाग। कुछ लोगों के मत से मिले हुए चूर्ण में पैत्तिक रोग में आठगुनी खाँड मिलानी चाहिए। यह चूर्ण रोचकर, तृप्तिकर, अग्निदीपक बलवर्धक, वीर्यवर्धक तथा त्रिदोषनाशक है। इसके सेवन से उर:क्षत, तमक श्वास, गलग्रह, खाँसी, हिक्का (हिचकी), अरुचि, क्षय, पीनस, ग्रहणी, अतीसार, भगन्दर, अर्बुद, प्रमेह तथा गुल्म आदि रोग शीघ्र ही अच्छे हो जाते हैं। मात्रा—१ माशे से ३ माशे तक ॥ ११-१३ ॥

तालीशाद्यमोदक।

तालीशपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली शुभा। यथोत्तरं भागवृद्ध्या त्वगेले चार्द्धभागिके ॥ १४ ॥ पिप्पल्यष्टगुणा चात्र प्रदेया सितशर्करा। श्वासकासारुचिहरं तच्चूर्णं दीपनं परम् ॥ १५ ॥ हृत्पाण्डुग्रहणीरोगप्लीहशोषज्वरापहम्। छर्द्यतीसारशूलघ्नं मूढवातानुलोमनम् ॥ १६ ॥ कल्पयेद् गुटिकाञ्चैतच्चूर्णं पक्त्वा सितोपलाम्। गुडिका ह्यग्निसंयोगाच्चूर्णाल्लघुतरा स्मृता ॥ १७ ॥ पैत्तिके ग्राहयन्त्येके शुभया वंशलोचनाम् ॥ १८ ॥

त्वगेले प्रथमभागस्यार्द्धभागिके शुभेति पिप्पल्या विशेषणम्। वंशलोचनापक्षे वंशलोचनाया यथोत्तरभागः।

तालीसपत्र १ भाग, कालीमिर्च २ भाग, सोंठ ३ भाग, पीपल ४ भाग, दारचीनी तथा छोटी इलायची अलग-अलग आधा भाग, खाँड ३२ भाग। मात्रा—१ माशे से २ माशे तक। इसके सेवन से श्वास, खाँसी, अरुचि, हृद्रोग, पाण्डु, ग्रहणी, प्लीहा, यक्ष्मा, ज्वर, वमन, अतीसार, शूल आदि रोग अच्छे होते हैं। यह चूर्ण अग्नि को तेज करता है तथा मूढवात का अनुलोमन करता है। इस चूर्ण को खाँड की लड्डू की सी चाशनी बनाकर गोली भी बना सकते हैं। अग्नि पर पकाई हुई गोली चूर्ण की अपेक्षा हलकी होती है। पैत्तिक खाँसी आदि में शुभा शब्द से वंशलोचन का ग्रहण किया जाता है। अतः यहाँ वंशलोचन ४ भाग मिलाना चाहिए ॥ १४-१८ ॥

शृङ्ग्यर्जुनाद्य चूर्ण।

शृङ्ग्यर्जुनाश्वगन्धानागबलापुष्करा-भयाछिन्नरुहाः। तालीसादिसमेता मधुसर्पिर्भ्यां यक्ष्महराः ॥ १९ ॥

काकड़ासिंगी, अर्जुन की छाल, असगन्ध, नागबला, पोहकरमूल, हरड़ तथा तालीसादि इन सबके चूर्ण को बराबर मात्रा में मिलाकर घृत तथा शहद के साथ सेवन करने से यक्ष्मारोग अच्छा होता है। मात्रा—१ माशे से ३ माशे तक ॥ १९ ॥

कर्पूराद्यचूर्ण।

कर्पूरचोचककोलजातीफलदलाः समाः। लवङ्गमांसीमरिचकृष्णाः शुण्ठ्या विवर्धिताः ॥ २० ॥ चूर्णं सितासमं हृद्यं सदाहक्षयकासजित्। वैस्वर्यपीनसश्वासच्छर्दिकण्ठामयापहम् ॥ प्रयुक्तं चान्नपानैर्वा भेषजद्वेषिणां हितम् ॥ २१ ॥

कपूर, दालचीनी, शीतलचीनी, जायफल, जावित्री हरएक १ भाग, लौंग २ भाग, जटामांसी ३ भाग, कालीमिर्च ४ भाग, पीपल ५ भाग, सोंठ ६ भाग, कुल चूर्ण के बराबर खाँड। यह चूर्ण हृदय को हितकारी है। तथा दाह, क्षय, खाँसी स्वरभेद, पीनस, श्वास, वमन, कण्ठरोग आदि को अच्छा करता है। औषधद्वेषी रोगियों को अन्न के साथ मिलाकर इस चूर्ण का सेवन करना चाहिए। मात्रा—३ माशा ॥ २०-२१ ॥

एलादिचूर्ण।

एलापत्रं नागपुष्पं लवङ्गं भागस्त्वेषां

द्वौ च खर्जूरकस्य। द्राक्षायष्टीशर्करापिप्पलीनां चत्वारस्तत् क्षौद्रयुक्तं क्षये स्यात् ॥ २२ ॥

छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, लौंग हरएक १ भाग, पिण्डखजूर २ भाग, दाख, मुलहठी, खाँड, पीपल, हरएक ४ भाग। इसे शहद के साथ मिलाकर यक्ष्मा के रोगी को सेवन कराना चाहिए। मात्रा-१½माशे से ३ माशे तक ॥ २२ ॥

अजापञ्चकघृत।

छागशकृद्रसमूत्रक्षीरैर्दध्ना च साधितं सर्पिः। सक्षारं यक्ष्महरं श्वासकासोपशान्तये परमम् ॥ २३ ॥

बकरी की मींगनी का रस ४ सेर, बकरी का मूत्र ४ सेर, बकरी का दूध ४ सेर, बकरी का दही ४ सेर, और बकरी का घृत ४ सेर, एकत्र कर पाक करे। उसमें यथानुसार जवाखार मिला करके उतार लेवे। एक तोला प्रमाण इस 'अजापञ्चकघृत' का प्रतिदिन पान करने से यक्ष्मा, श्वास और कासरोग की शान्ति होती है ॥ २३ ॥

छागमांसं पयश्छागं छागं सर्पिः सशर्करम्। छागोपसेवा शयनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत् ॥ २४ ॥

बकरी के मांस का भक्षण, बकरी के दूध का पीना, शक्करसहित बकरी के घृत का पान, बकरी की सेवा और बकरी के मध्य में शयन करना यक्ष्मा को दूर करता है ॥ २४ ॥

जीवन्त्याद्यघृत।

जीवन्तीं मधुकं द्राक्षां फलानि कुटजस्य च। शटीं पुष्करमूलञ्च व्याघ्रीं गोक्षुरकं बलाम् ॥ २५ ॥ नीलोत्पलं तामलकीं त्रायमाणां दुरालभाम्। पिप्पलीञ्च समं पिष्ट्वा घृतं वैद्यो विपाचयेत् ॥ २६ ॥ एतद्व्याधिसमूहस्य रोगेशस्य समुत्थितम्। रूपमेकादशविधं सर्पिरुग्रं व्यपोहति ॥ २७ ॥

जीवन्ती, मुलेठी, मुनक्का, इन्द्रजौ, कचूर, पुहकरमूल, छोटी कटेरी, गोखरू, खरेटी, नीलकमल, भुइँआँवला, त्रायमाणा, जवासा और छोटी पीपरि बराबर-बराबर इन औषधियों को लेकर इनके कल्क और क्वाथ के साथ यथाविधि घृत सिद्ध करे। इस 'जीवन्त्यादिघृत' के सेवन करने से ग्यारह लक्षण युक्त भयंकर यक्ष्मारोग शमन होता है ॥ २५-२७ ॥ मात्रा १ तो० ॥

छागलाद्य घृत।

छागमांसतुलां गृह्य साधयेन्नल्वणेऽम्भसि। पादशेषेण तेनैव सर्पिः प्रस्थं विपाचयेत् ॥ २८ ॥ ऋद्धिवृद्धी च मेदे द्वे जीवकर्षभकौ तथा। काकोलीक्षीरकाकोलीकल्कैः पृथक पलोन्मितैः ॥२९॥ सम्यक् सिद्धेऽवतार्य तं शीते तस्मिन् प्रदापयेत्। शर्करायाः पलान्यष्टौ मधुनः कुडवं क्षिपेत् ॥ ३० ॥ शाणं शाणं पिबेत्प्रातर्यक्ष्माणं हन्ति दुर्जयम्। क्षतक्षयञ्च कासांश्च पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ३१ ॥ स्वरक्षयमुरोरोगं श्वासं हन्यात् सुदारुणम्। बल्यं मांसकरं वृष्यमग्निसन्दीपनं परम् ३२

बकरी का मांस ५ सेर, जल २१ सेर ४८ तोला, बचा हुआ क्वाथ ५ सेर ३२ तोला, घृत १२८ तोला। कल्क के लिए ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, हरएक ४ तोला इस घृत को विधिपूर्वक सिद्ध करले, शीतल होने पर खाँड ३२ तोला, शहद १६ तोला मिलावे। मात्रा—आधा तोला। इस घृत के सेवन से यक्ष्मा, क्षतक्षय, खाँसी, पार्श्वशूल, अरुचि, स्वरभेद, श्वास एवं अन्य फुफ्फुस में पैदा होनेवाले रोग अच्छे होते हैं।

यह घृत बलप्रद, मांसकर, वृष्य तथा अग्निको बढ़ाता है ॥ २८-३२ ॥

पाराशर घृत।

यष्टीबलागुडूच्यल्पपञ्चमूलीतुलां पचेत्। शूर्पेऽपामष्टभागस्थे तत्र पात्रे पचेद् घृतम्॥ ३३ ॥ धात्रीविदारीक्षुरसत्रिपात्रे पयसोऽर्मणे। सुपिष्टैर्जीवनीयैश्च पाराशरमिदं घृतम् ॥ ससैन्यं राजयक्ष्माणमुन्मूलयति शीलितम् ॥ ३४ ॥

घृत ६ सेर ३२ तोला, मुलहठी, बला, गिलोय, स्वल्पपञ्चमूल मिलाकर ५ सेर। पाक के लिए जल १ मन ११ सेर १६ तोला, बचा हुआ क्वाथ ६ सेर ३२ तोला, आँवले का रस ६ सेर ३२ तोला, विदारीकन्द का रस ६ सेर ३२ तोला, इक्षुरस ६ सेर ३२ तोला, दूध २५ सेर ४८ तोला, कल्कार्थ—जीवनीयगणोक्त दश औषध (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती तथा मुलहठी) बराबर मात्रा में मिलाकर १२८ तोला, विधिपूर्वक इस घृत को सिद्ध कर सेवन कराने से काम, ज्वरआदि उपद्रवयुक्त रोगराज यक्ष्मा अच्छा होता है। मात्रा-आधा तोला या १ तोला॥ ३३ ३४ ॥

द्विपञ्चमूलस्य पचेत्कषाये प्रस्थद्वयं मांसरसस्य चैके। कल्कं बलायाः सुनियोज्य गर्भं सिद्धं पयः प्रस्थयुतं घृतं च ३५ सर्वाभिघातोत्थितयक्ष्मशूलक्षतक्षय कासहरं प्रदिष्टम् ॥ ३६ ॥

घृत १२८ तोला, दशमूल क्वाथ ३ सेर १६ तोला- छाग मांस रस १२८ तोला, दूध १२८ तोला। कल्क के लिए खरेंटी कूटी हुई ३२ तोला। विधिपूर्वक पाक करके इस घृत का पान करने से अभिघातज, यक्ष्मा, शूल, क्षतक्षय, तथा खाँसी अच्छी होती है। मात्रा-आधा तोला ३५-३६

कुङ्कुमाद्य घृत।

क्लीतनं क्षीरकाकोली दशमूलं निदिग्धिका। तुलामानानि सर्वाणि जलद्रोणे पचेत् पृथक् ॥ ३७ ॥ पादांशकं तमापूर्य घृतं कुङ्कुममूर्च्छितम् । आज्याच्चतुर्गुणं छागं दुग्धं दत्त्वा विपाचयेत् ॥ ३८ ॥ भायशः क्षीरपाकार्थी देयं तोयश्चतुर्गुणम् । श्रीमसूनाब्दगोलोमीकुङ्कुमं जीवनीयकम् ॥ ३९ ॥ वाट्या त्रिकटुकं नीलोत्पलं रेणुर्गुहा तथा। वाराही तंत्रिका वंशी दुर्वर्णं वनिता तथा ॥ ४० ॥ एलाद्वन्द्वं तिष्यफलामालत्याः कुसुमानि च। मत्स्यगन्धा चवीपत्रं तालीशं नागपुष्पकम् ४१ हयोपकुञ्चिका दीप्या प्रत्येकं कार्षिकं क्षिपेत्। कसनं श्वसनं हन्ति क्षयं यक्ष्माणमेवच ॥ ४२॥ प्रमेहमत्रपित्तञ्च कुङ्कुमाद्यघृतं स्मृतम् ॥ ४३ ॥

केशर से मूर्च्छित गोघृत ३ सेर १६ तोला, क्वाथ के लिए मुलहठी ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोला, बचा हुआ क्वाथ ६ सेर ३२ तोला, क्षीरकाकोली ५ सेर जल २५ सेर ४८ तोला, बचा हुआ क्वाथ ६ सेर ३२ तोला दशमूल मिलाकर ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोला, बचा हुआ क्वाथ ६ सेर ३२ तोला, छोटी कटेरी ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोला, बचा हुआ क्वाथ ६ सेर ३२ तोला, बकरी का दूध १० सेर ६४ तोला, दूध के पाक के लिए जल १ मन ११ सेर १६ तोला। कल्क के लिए लौंग, मोथा, बच, केशर, जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुलहठी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी जीवन्ती), बला, त्रिकटु, नीलकमल, रेणुका, पृश्निपर्णी, वाराहीकन्द, गिलोय, बवासीर, एलवालुक, प्रियंगु, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, आँवला, मालती के फूल, हाऊबेर, चव्य, तेजपात, तालीशपत्र, नागकेशर, असगन्ध, जीरा, अजवाइन,

चाहिए। मात्रा—आधा तोला से १ तोला इसके प्रयोग से खाँसी, श्वास, क्षय, यक्ष्मा, प्रमेह तथा रक्तपित्त अच्छा होता है ॥ ३६-४३ ॥

स्वल्पचन्दनादि तैल।

चन्दनागुरुतालीशनखमञ्जिष्ठपद्मकाः। मुस्तकञ्च शटी लाक्षा हरिद्रे रक्तचन्दनम् ॥ ४४ ॥ एषां प्रतिपलैश्चूर्णैस्तैलार्द्धपात्रकं पचेत्। भार्गीरसः कण्टकारी वाट्यालकगुडूचिका ॥ ४५ ॥ एषां पलशतक्वाथे समभागे जडीकृते। पक्त्वा तैलं प्रदातव्यं राजयक्ष्मविनाशनम् ॥ ४६ ॥ कासघ्नं गरदोषघ्नं बलवर्णाग्निवर्द्धनम्। पापालक्ष्मीप्रशमनं ग्रहदोषविनाशनम् ॥ ४७ ॥

तिल का तैल ३ सेर १६ तोला, भारंगी का रस, कटेरी का क्वाथ, बलाक्वाथ, गिलोय का रस, हरएक ६ सेर ३२ तोला। कल्क के लिए सफेद चन्दन, अगर, तालीशपत्र, नखी, मंजीठ, पद्माख, मोथा, कचूर, लाक्षा, हल्दी, दारुहल्दी, लाल चन्दन हरएक का चूर्ण ४ तोला। इसका विधिपूर्वक पाक करना चाहिए। राजयक्ष्मा, खाँसी, गर (संयोगज विष), आदि में इस तैल की मालिश करनी चाहिए। यह बल, रंग तथा अग्नि को बढ़ाता है और ग्रहदोष को दूर करता है ॥ ४५—४७ ॥

चन्दनादि तैल

चन्दनाम्बुनखं वाप्ययष्टीशैलेयपद्मकम्। मञ्जिष्ठा सरलं दारु शट्येला पूतिकेशरम् ॥ ४८ ॥ पत्रं चैलं मुरामांसी कक्कोलं वनिताम्बुदम्। हरिद्रे शारिवे तिक्ता लवङ्गागुरुकुङ्कुमम् ॥ ४९ ॥ त्वग्रेणुर्नालुका चैभिस्तैलं मस्तु चतुर्गुणम्। लाक्षारससमं सिद्धं ग्रहघ्नं बलवर्णकृत् ५० अपस्मारज्वरोन्मादकृत्यालक्ष्मीविनाशनम् आयुः [illegible] ॥ ५१ ॥

तिल का तैल १२८ तोला, कल्क के लिए, लालचन्दन, गन्धवाला, नखी, कूट, मुलहठी, शैलज, पद्माख, मजीठ, चीढ़ की लकड़ी, देवदार, कचूर छोटी इलायची, पूति (गन्धमार्जारपद) नागकेशर, तेजपात, शिलारस, मुरामांसी, शीतलचीनी, प्रियंगु, मोथा, हल्दी, दारुहल्दी, अनन्तमूल (गौरीसर), श्यामलता (कालीसर), लताकस्तूरी, लौंग, अगर, केशर, दालचीनी, रेणुका, नालुका मिलाकर ३२ तोला, दही का पानी ६ सेर ३२ तोला, लाक्षारस १२८ तोला, इस तैल को विधिपूर्वक पकाकर, प्रयोग करने से अपस्मार, ज्वर, कृत्या तथा ग्रहादि दोष दूर होते हैं। यह तैल आयु, बल तथा वर्ण को बढ़ाता है एवं पुष्टिकर तथा वशीकरण है ॥ ४—२१ ॥

वासावलेह।

वासकस्वरसप्रस्थे सितामष्टपलोन्मिताम्। सर्पिषो द्विपलं दत्त्वा पिप्पली द्विपलं तथा ॥ ५२ ॥ पचेत् स्नेहत्वमायाते शीते मधु पलाष्टकम्। दत्त्वावतारयेद्वैद्यो मात्रया लेह उत्तमः ॥५३॥ निहन्ति राजयक्ष्माणं कासं श्वासं सुदारुणम्। पार्श्वशूलञ्च हृच्छूलं रक्तपित्तज्वरं तथा ॥ ५४ ॥

स्वकीयो रसः स्वरसस्तदभावे शुष्कवासकवल्कलमष्टगुणजले पक्त्वा चतुर्थावशेषं कृत्वा रसो ग्राह्यः।

अड़ूसे के १२८ तोला रस में ३२ तोला खाँड मिलाकर पाक करे। जब यह गाढ़ा हो जाय तब पीपल ८ तोला डाल दे तथा पाक सिद्ध होने पर घृत १६ तोला देकर अच्छी प्रकार मथकर नीचे उतार ले। शीतल होने पर ३२ तोला शहद मिलावे। मात्रा—आधा तोला से १ तोला। यह अवलेह राजयक्ष्मा, खाँसी, श्वास, पसवाड़ों का दर्द, हृदय का शूल, रक्तपित्त तथा ज्वर को अच्छा करता है ॥ ५२—५४ ॥

वृहद्वासावलेह।

शतं संगृह्य वासायास्तोयद्रोणे विपाचयेत्। चतुर्भागावशेषेऽस्मिन् शर्करायाः पलं-शतम् ॥ ५५ ॥ त्रिकटु त्रिसुगन्धिश्च कट्फलं मुस्तकं गदम्। जीरकं पिप्पलीमूलं रोचनी चविका शुभा ॥ ५६ ॥ कटुका श्रेयसी चैव तालीशं सधनीयकम्। कार्षिकं पृथगेतेषां क्षिपेत् मधुपलाष्टकम् ॥ ५७ ॥ तद्यथाग्निबलं लिह्याच्छृतशीतांबुपानतः। निहन्ति राजयक्ष्माणं रक्तपित्तं क्षतं क्षयम् ॥ ५८ ॥ वातिकं पैत्तिकं कासं श्वासञ्चैव सुदारुणम्। हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च वमिञ्चा-रुचिं ज्वरम् ॥ ५९ ॥ अश्विभ्यां निर्मितो ह्येष वृहद्वासावलेहकः ॥ ६० ॥

अरूसा के मूल की छाल ९ सेर लेकर २५ सेर ४८ तोला जल में पकावे। ६ सेर ३२ तोला शेष रहने पर इसमें शक्कर ५ सेर मिलाकर पाक करे। गाढ़ा होने पर त्रिकटु, दालचीनी, तेजपात, इलायची, कायफल, नागरमोथा, कूट, जीरा, पिपरामूल, आँवला, चव्य, वंशलोचन, कुटकी, गजपीपरि, तालीशपत्र और धनिया का चूर्ण एक-एक तोला मिलाकर उतार लेवे। शीतल होने पर ३२ तोला मधु मिलाकर चिकने पात्र में रख लेवे। अग्नि और बल के अनुसार मात्रा की कल्पना करे। गरम किये हुए शीतल जल के साथ इस 'वृहद्वासावलेह' का सेवन करना चाहिए। यह अवलेह राजयक्ष्मा, रक्तपित्त, क्षत, क्षय, वातिक और पैत्तिक दारुण श्वास, हृदय-शूल, पार्श्व-शूल, वमन, अरुचि और ज्वर को शांत करता है। इस 'वृहद्वासावलेह' का आविष्कार अश्विनीकुमारों ने किया है ॥ ५५-६० ॥

रक्तवान्तिहरयोग।

अलक्तकरसैः क्षौद्रं रक्तवान्तिहरं परम्। यष्ट्याह्वश्चन्दनोपेतं सम्यक् क्षीरमपेषितम्॥ क्षीरेणालोड्य पातव्यं रुधिरच्छर्दिनाशनम् ॥ ६१ ॥

लाक्षा-रस में शहद मिलाकर सेवन करने से अथवा मुलेठी और रक्तचंदन को दूध में पीसकर और दुग्ध मिलाकर पान करने से रक्त का वमन दूर होता है ॥ ६१ ॥

वृहद्वासावलेह (रसार्णवोक्त)।

पञ्चविंशपलं ग्राह्यं वृहत्योर्वासकस्य च। भार्ग्याश्च पञ्चविंशच्च जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ६२ ॥ पादशेषे रसे तस्मिन् खण्डप्रस्थं समावपेत्। कुडवार्द्धश्च हविषोमधुनः कुडवं तथा ॥ ६३ ॥ मृताभ्रकं पलञ्चैकं कणाचूर्णं चतुःपलम्। कुष्ठं तालीशपत्रञ्च मरिचं तेजपत्रकम् ॥ ६४ ॥ मुरां मांसीमुशीरञ्च लवङ्गं नागकेशरम्। त्वग्भार्गीवालकं मुस्तं प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ॥ ६५ ॥ श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वं लेहीभूते विनिःक्षिपेत् हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं कासं पञ्चविधं तथा ॥ ६६ ॥ रक्तपित्तं क्षयं श्वासं ज्वरं प्लीहानमेव च। बालानामपि वृद्धानां तरुणानां विशेषतः ॥ ६७ ॥ पार्श्वशूलञ्च हृच्छूलमम्लपित्तं वमिं तथा। वृहद्वासावलेहोऽयं महादेवेन निर्मितः ॥ ६८ ॥

छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, अरूसा और भारंगी प्रत्येक सवा-सवा सेर लेकर २५ सेर ४८ तोला जल में पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर उसमें ६४ तोला खांड़ मिलावे १६ तोला मधु, २३ तोला अभ्रकभस्म, २६ तोला पीपरि का चूर्ण तथा एक-एक तोला कूट, तालीशपत्र, कालीमिर्च, तेजपात, मुरामांसी, जटामांसी खस, लौंग, नागकेशर, दालचीनी, भारंगी, सुगंधबाला और नागरमोथा का चूर्ण मिलाकर उतार लेवे। मात्रा—६ मा० से १ तोले तक। यह औषध बालक, वृद्ध और जवानों के लिये लाभदायक है एवम् प्रबल राजयक्ष्मा, पाँच प्रकार के कास,

रक्तपित्त, क्षय, श्वास, ज्वर, पार्श्व-शूल, हृदय-शूल, अम्लपित्त और वमन को नष्ट करता है। यह बालक, तरुण और वृद्ध सबके लिए लाभदायक होता है। इस 'बृहद्वासावलेह का आविष्कार श्रीमहादेवजी ने किया है ॥ ६२-६८ ॥

राजयक्ष्मा के निदान, लक्षण आदि।

मेहेन चोपदंशेन रसेन देहगेन वा। धातुर्विकृतिमापन्नो यक्ष्माणं जनयेदपि ॥ ६९ ॥ शिरोरुहाणां पतनं निशास्वेदश्च जायते। रक्तनिष्ठीवनं श्वासो बलमांसक्षयादयः ॥ ७० ॥

प्रमेह, उपदंश अथवा देहगत पारद के द्वारा रस, रक्तादि धातुविकृत होकर राजयक्ष्मारोग उत्पन्न करते हैं। इस रोग में केशों का गिरना रात्रि में पसीना आना, थूँक के साथ खून गिरना, श्वास का आना तथा बल और मांस आदि का क्षीण होना ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं ॥ ६९-७० ॥

राजयक्ष्मा में योग।

यक्ष्मामयाविनां स्वप्ने रेतसश्च च्युतिर्भवेत्। कस्तूरीप्रमुखं तत्र निशास्वेदोपशान्तये ॥ ७१ ॥ प्रलापे च प्रयोक्तव्यं भेषजं भिषजां वरैः। यक्ष्मामये त्रिदोषोत्थे त्वचिरात् क्षयकारिणि ॥ ७२ ॥ भवेद्द्वैकालिको वापि ज्वरस्त्रैकालिकोऽपि वा। अनिशं जायते स्वेदो बुभुक्षा न प्रवर्त्तते ॥ ७३ ॥ करणानि निपीडेयुः शय्या चाश्रीयतेतराम्। कश्चिदेव प्रमुच्येत गदादस्मात्सुदुस्तरात् ॥ ७४ ॥ प्रवालभस्म कस्तूरी मृतसञ्जीवनी सुरा। अरिष्टश्चासवश्चात्र गदे सात्म्यमनुत्तमम् ॥ ७५ ॥ वीजनं तालवृन्तेन स्वेदसन्ततिशान्तये। बलपुष्टिप्रवर्धकं पथ्यं मांसयूषं प्रकल्पयेत् ॥ अधिकारगतानन्यानगदान् सान्निपातिके ॥ ७६ ॥

यक्ष्मा के रोगी को रात को स्वप्न में वीर्यपात भी होता है, इस रोग में रात्रि में पसीना आना और प्रलाप की शान्ति के निमित्त कस्तूरी आदि ओषधियों को विचार कर देना चाहिए। शीघ्र क्षयकारी सान्निपातिक यक्ष्मारोग में प्रतिदिन दो बार या तीन बार ज्वर का आना, सर्वदा पसीना का आना, भूख न लगना, इन्द्रियों की शक्ति का ह्रास और शीघ्र शय्याशायी होना ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं। इस दुस्तर रोग से कोई विरला ही मनुष्य मुक्त होता है। इस रोग में प्रवालभस्म, कस्तूरी, मृतसञ्जीवनी सुरा, अरिष्ट और आसव आदि औषध उपकारक होते हैं। निरंतर होनेवाले पसीना के निवारण के निमित्त ताड़ के पत्ते से हवा करनी चाहिए और बलपुष्टि के लिये मांसरस आदि पथ्य वस्तु भोजन के लिये देनी चाहिए। और भी इस अधिकार के योग देने चाहिए ॥ ७१-७६ ॥

मेहजे चोपदंशोत्थे रसोद्भूते च यक्ष्मणि। प्रयुञ्जीत समीक्ष्यापि गदागदबलाबलम् ॥ ७७ ॥

प्रमेहजन्य, उपदंशजन्य तथा पारदजन्य राजयक्ष्मारोग में रोग और औषध के बलाबल का विचार करके प्रयोग करना चाहिए ॥ ७७ ॥

वासारिष्टमसृद्दरारिष्टं मृगमदासवः। मृतसञ्जीवनी चैव कर्पूरासव एव च ॥ ७८ ॥ उरःक्षतं रक्तपित्तं राजयक्ष्माणमेव च। कासं पञ्चविधं चैव नाशयेदविकल्पतः ॥ ७९ ॥

राजयक्ष्मारोग में वासारिष्ट, असृग्दरारिष्ट, मृगमदासव, मृतसञ्जीवनी और कर्पूरासव के द्वारा उरःक्षत, रक्तपित्त राजयक्ष्मा और पाँच प्रकार की खाँसी को नष्ट करना चाहिए ॥७८-७९॥

उपद्रवा ज्वराद्यास्ते साध्याः स्वैः स्वैश्चिकित्सितैः। तेषु शान्तेषु रोगेषु परनाड्योपपाचरेत् ॥ ८० ॥

शोष (यक्ष्मा) रोग में ज्वर आदि जितने उपद्रव उपस्थित हों, उनकी उन रोगों के लिए कही हुई औषधियों के द्वारा पहिले चिकित्सा करनी चाहिए। जब ये सब रोग शान्त हो जावें, तब शोष (यक्ष्मा) की चिकित्सा करे ॥ ८० ॥

च्यवनप्राश।

बिल्वाग्निमन्थश्योनाककाश्मर्यः पाटला बला। पर्ण्यश्चतस्रः पिप्पल्यः श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ॥ ८१ ॥ शृङ्गी तामलकी द्राक्षा जीवन्ती पुष्करागुरुः। अभया चामृता ऋद्धिर्जीवकर्षभकौ शटी॥ ८२ ॥ मुस्तं पुनर्नवा मेदा सूक्ष्मैलोत्पलचन्दने। विदारीवृषमूलानि काकोली काकनासिका ॥ ८३ ॥ एषां पलोन्मितान् भागान् शतान्यामलकस्य च। पञ्च दद्यात्तदैकध्यं जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ८४ ॥ ज्ञात्वा गतरसान्येतान्यौषधान्यथ तं रसम्। तच्चामलकमुद्धृत्य निष्कुलं तैलसर्पिषोः ॥ ८५ ॥ पलद्वादशके भृष्ट्वा दत्त्वा चार्द्धतुलां भिषक्। मत्स्यण्डिकायाः पूताया लेहवत्साधु साधयेत् ॥ ८६ ॥ षट्पलं मधुनश्चात्र सिद्धशीते प्रदापयेत्। चतुःपलं तुगाक्षीर्याः पिप्पल्या द्विपलं तथा ॥ ८७ ॥ पलमेकं निदध्याच्च त्वगेलापत्रकेशरात्। इत्ययं च्यवनप्राशः परमुक्तो रसायनः ॥ ८८ ॥ कासश्वासहरश्चैव विशेषेणोपदिश्यते। क्षीणक्षतानां वृद्धानां बालानाश्चाङ्गवर्द्धनः ॥ ८९ ॥ स्वरक्षयमुरोरोगं हृद्रोगं वातशोणितम्। पिपासां मूत्रशुक्रस्थां दोषांश्चैवापकर्षति॥ ९० ॥ अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत नोपरुन्ध्याच्च भोजनम्। अस्य प्रयोगात् च्यवनः सुवृद्धोऽभूत्पुनर्युवा ॥ ९१ ॥ मेधां स्मृतिं कान्तिमनामयत्वमायुःप्रकर्षं बलमिन्द्रियाणाम्। स्त्रीषु प्रहर्षं परमग्निवृद्धिं वलप्रसादं पवनानुलोम्यम् ॥ ९२ ॥ रसायनस्यास्य नरः प्रयोगाल्लभेत जीर्णोऽपि कुटिप्रवेशात्। जराकृतं रूपमपास्य रूपं बिभर्ति रूपं नवयौवनस्य ॥ ९३ ॥ सिता मत्स्यण्डिकालाभे धात्र्याश्च मृदुभर्जनम्। चतुर्भागजले प्रायो द्रव्यं गतरसं भवेत् ॥ ९४ ॥

बेल, अरनी, स्योनाक, खम्भारी, पाढ़र, खरेटी, सरिवन, पिठवन, वनमूँग, वनउर्द, पीपरि, गोखरू, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, काकड़ासिंगी, भुइँआमला, मुनक्का, जीवन्ती, पोहकरमूल, अगर, हरड़, गिलोय, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, कचूर, नागरमोथा, साँठी, मेदा, छोटी इलायची, नीलकमल, लालचन्दन, विदारीकन्द, अडूसे की जड़, काकोली और कउआठोडी का चार चार तोले चूर्ण ५०० पाँच सौ या ६ सेर आँवले की पोटली लेकर २५ सेर ४८ तोला जल में पकावे चौथाई पानी रहे, तो उतारकर काढ़ा छान लेना। और आँवला पोटली से निकाल, बीज अलग करके २४ तोला घी और २४ तोला तिल तेल में मिले हुए भूनकर सिल पर पीस लेना चाहिए। फिर मिश्री २ सेर ऊपर कहा काढ़ा और पिसा हुआ आँवला एकत्र पाक करना। गाढ़ा होने पर वंशलोचन का चूर्ण १६ तोला, पीपरि का चूर्ण ८ तोला, दालचीनी का चूर्ण १ तोला, तेजपात का चूर्ण १ तोला, इलायची का चूर्ण १ तोला और नागकेसर का चूर्ण १ तोला मिलाकर उतार लेना चाहिए। शीतल होने पर उसमें शहद २४ तोला मिलाकर घृत के चिकने पात्र में रखना चाहिए। इसकी मात्रा आधा तोला से दो तोला तक है। अनुपान—बकरी का दूध। यह 'च्यवनप्राशावलेह' कास और श्वास का महौषध है। क्षत, क्षीण, वृद्ध और बालकों के

अंगों को परिपुष्ट करता है। स्वरभंग, उरःक्षत, हृद्रोग, वातरक्त, पिपासा, मूत्रगत दोष और शुक्रगत दोषों को दूर करता है। इसकी मात्रा उतनी है जो कि भोजन को न रोके अर्थात् इतनी मात्रा में न खाय कि भूख न लगे। इस अवलेह के सेवन करने से च्यवन ऋषि को बुढ़ापे में युवावस्था प्राप्त हो गई थी। यह अवलेह बुद्धि, स्मृति, कांति, आरोग्य, आयु, इन्द्रियशक्ति को बढ़ाता है। स्त्रीसंसर्ग में प्रसन्नता की प्राप्ति, एवम् अग्निवृद्धि, बलवृद्धि, और वायु की अनुलोमता होती है। बुड्ढा मनुष्य भी कुटी प्रावेशिक विधि से, इसके सेवन से-धूप और वायु से बचे रहने से-वृद्धावस्था के रूप को त्यागकर जवानी के रूप को प्राप्त करता है। मिश्री के अभाव में शक्कर लेना चाहिए, आंवलों को थोड़ा भूँज लेना चाहिए। चौथाई जल रहने पर द्रव्य का रस आ जाता है ॥ ८१-९४ ॥

विन्ध्यवासियोग।

व्योषं शतावरी त्रीणि फलानि द्वे बले तथा। सर्वामयहरो योगः सोऽयं लौहरजोऽन्वितः ॥ ९५ ॥ एष वक्षःक्षतं हन्ति कण्ठजाश्च गदाँस्तथा। राजयक्ष्माणमत्युग्रं बाहुस्तम्भमथार्दितम् ॥ ९६ ॥

त्रिकटु, शतावरि, त्रिफला, खरैटी और नागबला एक-एक तोला और लोहभस्म ४ तोला एकत्र घोट कर रख लेवे। इस विन्ध्यवासि-योग के सेवन करने से उरक्षत, कंठरोग, राजयक्ष्मा, बाहुस्तम्भ तथा अर्दित रोग शान्त होते हैं ॥ ९५-९६ ॥

यक्ष्मान्तकलौह।

रास्नातालीशकर्पूरमेकपर्णीशिलाह्वयैः। त्रिकत्रयसमायुक्तैर्लौहोयक्ष्मान्तको मतः ॥ ९७ ॥ सर्वोपद्रवसंयुक्तमपि वैद्यविवर्जितम् ॥ हन्ति कासं स्वराघातं क्षयकासं क्षतक्षयम्। बलवर्णाग्निपुष्टीनां साधनो दोषनाशनः ॥ ९८॥

शिला शिलाजतु मनःशिला इति केचित्।

रास्ना, तालीसपत्र, कपूर, मंडूकपर्णी, शिलाजतु, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला), त्रिमद (बायविडंग, नागरमोथा और चीत) एक एक भाग तथा लोहभस्म चौदह भाग एकत्र मर्दन करके रख लेवे। इसका सेवन करने से समस्त उपद्रवों से युक्त असाध्य यक्ष्मारोग नष्ट होता है। तथा कास, स्वरभङ्ग, क्षयकास और क्षतक्षीण रोग नष्ट होते हैं। बल, वर्ण, पुष्टि और अग्नि की वृद्धि होती है। मात्रा—२ रत्ती ॥ ९७-९८ ॥

यहाँ पर शिला से शिलाजतु लेना चाहिए, कोई-कोई मैनसिल लेते हैं।

शिलाजत्वादिलौह।

शिलाजतुमधुव्योपताप्यलौहरजांसि च। क्षीरेण लोहितस्याशु क्षयं क्षयमवाप्नुयुः ॥ ९९ ॥

अवाप्नुयुः गमयेयुः अन्तर्भूतण्यर्थत्वात्।

शिलाजतु, मुलेठी, त्रिकटु और स्वर्णमाक्षिकभस्म, शहद, लोह-भस्म सम भाग एकत्र घोट कर रख लेवे। इसका दुग्ध के साथ सेवन करने से शीघ्र क्षयरोग आराम होता है मात्रा—१ रत्ती ॥ ९९ ॥

क्षयकेशरी।

त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवङ्गकैः। नवभागान्वितं लौहं समं सिन्दूरसन्निभम् ॥१०० ॥ छागीदुग्धेन संपिष्य वल्लभस्य प्रयोजयेत्। मधुना यक्षरोगांश्च हन्त्ययं क्षयकेशरी ॥ १०१ ॥

त्रिकटु, त्रिफला, इलायची, जायफल और लौंग एक एक भाग तथा सिन्दूर की तरह लाल लोहे का भस्म नौ भाग एकत्र कर बकरी के दूध में घोटकर दो-दो रत्ती की गोली बनावे।

मधु के साथ इसका सेवन करने से हर प्रकार के क्षयरोग निवृत्त होते हैं ॥ १००-१०१ ॥

रसेन्द्रगुटिका।

कर्षं शुद्धरसेन्द्रस्य स्वरसेन जयार्द्रयोः। शिलायां खल्लयेत्तावद्यावत्पिण्डं घनं भवेत् ॥ १०२ ॥ जलकणा काकमाची रसाभ्यां भावयेत् पुनः। सौगन्धिकपलं भृङ्गस्वरसेन सुभावितम् ॥ १०३ ॥ चूर्णितं रससंयुक्तमजाक्षीरपलद्वये। खल्लितं घनपिण्डन्तुगुटीः स्विन्नकलायवत् १०४॥ कृत्वादौ शिवमभ्यर्च्य द्विजातीन् परितोष्य च। जीर्णान्नो भक्षयेदेकां क्षीरमांसरसाशनः ॥ १०५ ॥ सर्वरूपं क्षयं कासं रक्तपित्तमरोचकम्। अपि वैद्यशतैस्त्यक्तमम्लपित्तं नियच्छति ॥ १०६ ॥

एक तोला शुद्ध पारा को जयन्ती और अदरख के रस में घोटकर पिण्डवत् करे। पश्चात् इसको जलकणा (बथूए) और काकमाची (मकोय) के रस से अलग भावना देवे। तदनन्तर भाँगरा के रस में भावित गन्धक के चूर्ण को मिलाकर कज्जली बनावे। पश्चात् ८ तोला बकरी के दूध में घोटकर उबाली हुई मटर के बराबर छोटी-छोटी गोलियाँ बना लेवे। शिवपूजन तथा ब्राह्मणों को संतुष्ट करके बकरी के दूध अथवा मधु और अडूसे के रस, अनुपान के साथ भोजन किये हुए अन्न का परिपाक होने पर इसका सेवन करे। इस औषध का सेवन करनेवाले रोगी के लिये पथ्य दुग्ध और मांस रस हैं। इसका सेवन करने से क्षय, कास, रक्तपित्त, अरुचि और अम्लपित्त रोग नष्ट होते हैं ॥ १०२-१०६ ॥

बृहद्रसेन्द्रगुटिका।

कुमार्या त्रिफलाचूर्णैश्चित्रकस्य रसैः क्रमात्। शोधयित्वा पुनः राजी गृहधूमहरिद्रया ॥ १०७ ॥ पक्वेष्टकारजोभिश्च धूर्त्तपत्ररसेन च। शृङ्गबेररसेनापि शोधयित्वा पुनः पुनः ॥ १०८ ॥ प्रक्षालयेत् पुनः पश्चाच्छानयेद्वसने घने। कर्षद्वयं रसेन्द्रस्य भावयेद्विजयारसे ॥ १०९ ॥ शिलायां खल्लयेच्चापि यावच्चूर्णत्वमागतम्। जलकणाकाकमाचीरसाभ्यां भावयेत् पुनः ॥ ११० ॥ सौगन्धिकपलं शुद्धं मर्द्दं मरिचटङ्कनम्। माक्षिकञ्च शिखिग्रीवं तालकञ्चाभ्रकं तथा ॥ १११ ॥ एतांस्तु मिलितान् दत्त्वा भावयेदार्द्रकद्रवैः रक्तिकैकप्रमाणेन कारयेद्गुटिकां भिषक् ११२॥ जीर्णान्नो भोजयेदेकां क्षीरमांसरसाशनः। हन्ति कासं क्षयं श्वासं रक्तपित्तमरोचकम् ॥११३॥ पाण्डुकृमिज्वरहरी कृशानां पुष्टिवर्द्धिनी। वाजीकरणमुद्दिष्टमम्लपित्तहरी परम् ॥ ११४ ॥

पारा लेकर उसको त्रिफला और चीते का रस, राई का चूर्ण, गृहधूम, हलदी, पकी ईंट का चूर्ण, धतूरे की पत्तियों का रस और अदरख के रस के साथ क्रमशः अलग-अलग घोटकर शुद्ध करे। तदनन्तर पानी में धोवे। फिर मोटे वस्त्र से छान लेवे। ऐसा शुद्ध दो तोला पारा लेकर भाँग के रस में उस समय तक भावना देना चाहिये जब तक कि वह चूर्ण न हो जावे। पश्चात् बथूए की छाल और मकोय के रस में अलग-अलग भावना देकर मर्दन करे और धूप में शुष्क कर लेवे। पश्चात् शोधित गन्धक ४ तोला, मिर्च, सोहागा, स्वर्णमाक्षिक, तूतिया, हरताल और अभ्रकभस्म दो-दो तोला मिलाकर अदरख के रस में घोटकर एक-एक रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—अदरख का रस। इस औषध का सेवन कराने के पश्चात् दुग्ध और मांस का भोजन करे तो खाँसी, क्षय, श्वास, रक्तपित्त, अरोचक, पाण्डु, कृमिरोग, ज्वर, अम्लपित्त, इन सबको नाश करता है। तथा कृश मनुष्य

को मोटा करता है। यह उत्तम वाजीकरण प्रयोग है॥ १०७-११४॥

कल्याणसुन्दराभ्र।

वज्राभ्रमेकपलिकं पुटनैः सुजीर्णं धात्रीपयोदवृहतीशतमूलिकेक्षु। विल्वाग्निमन्थजलवासककण्टकारीश्योनाकपाठलिवला च रसैरमीषाम्॥ ११५॥ सम्मर्दितं पलमितैः पृथगेकशश्च गुञ्जासमं सुवलितं वटिकाकृतञ्च। यक्ष्मक्षयौ सकलशोषनलासपित्तं श्वासं समीरमरुचिं कसनाङ्गसादम्॥ ११६॥ शोथं स्वरक्षयमजीर्णमुदर्दशूलं मेहज्वरं विषमुरोग्रहपाण्डुहिकाः। कार्श्यंकृमिं वलविनाशनमम्लपित्तं प्लीहामयं सहहलीमकमस्रगुल्मम्॥११७॥ तृष्णामवार्तानचयं ग्रहणीं प्रदुष्टां विस्फोटकुष्ठनयनास्यशिरोगदांश्च। मूर्च्छां वमिं विरसतां विनिहन्ति सद्य कल्याणसुन्दरमिदं वलदं सुवृष्यम्॥ ११८॥ मेध्यं रसायनवरं सकलामयानां नाशाय यक्ष्मनिवहे कथितं हरेण॥ ११९॥

अभ्रकभस्म चार तोला, आँवला, नागरमोथा, कटेरी, शतावरी ईख, विल्व, अरनी, नेत्रबाला, अरूसा सोनापाठा की छाल, पाढरि की छाल और खरेटी के स्वरस पृथक् पृथक् चार-चार तोला की मात्रा में लेकर इनमें अलग-अलग घोटकर एक एक रत्ती की गोली बनावे। इसका सेवन करने से यक्ष्मा, क्षय, सम्पूर्ण शोष, श्लेष्मा, पित्त, श्वास, वायु, अरुचि, खाँसी शरीर की हड़फूटन, शोथ, स्वरभंग, अजीर्ण, दर्द, शूल, प्रमेह, ज्वर, उरोग्रह, पाण्डु, हिक्का, कृशता, कृमि, वलक्षय, अम्लपित्त, प्लीहा, हलीमक, रक्तगुल्म, तृष्णा, आमवात, विस्फोटक, कुष्ठ, नेत्ररोग, मुखरोग, शिरोरोग, मूर्च्छा वमन, मुख की विरसता ये सब रोग नष्ट होते हैं। यह 'कल्याणसुन्दर' रस बल देनेवाला है, वृष्य, मेधा को हितकारी और रसायनों में श्रेष्ठ है। महादेवजी ने यह योग यक्ष्माधिकार में समस्त रोगों के नाश के लिए कहा है॥ ११५-११९॥

शृङ्गाराभ्र।

शुद्धं कृष्णाभ्रचूर्णं द्विपलपरिमितं शाणमानं यदन्यत्, कर्पूरं जातिकोषं सजलमिभकणा तेजपत्रं लवङ्गम्। मांसी तालीशचोचं गजकुसुमगदं धातकी चेति तुल्यं, पथ्याधात्रीविभीतत्रिकटुरपि पृथक् त्वर्द्धशाणं द्विशाणम्॥ १२०॥ एलाजातीफलाख्यं क्षितितलविधिना शुद्धगन्धाश्मकीलं, कोलार्द्धं पारदस्य प्रतिपदविहितं पिष्टमेकत्र योज्यम्। पानीयेनैव कार्याः परिणतमरिचस्विन्नतुल्याश्च वटयः, प्रातः खाद्या द्विवटयस्तदनु च कियच्छृङ्गवेरं सपर्णम्॥ १२१॥ पानीयं पीतमन्ते ध्रुवमपहरति क्षिप्रमादौ विकारान्, कोष्ठे दुष्टाग्निजातान् ज्वरमुदररुजो राजयक्ष्मक्षयञ्च। कासं श्वासं सशोथं नयनपरिभवं मेहमेदोविकारान्, छर्दिं शूलाम्लपित्तं तृषमपि महती गुल्मजालं विशालम्॥ १२२॥ पाण्डुत्वं रक्तपित्तं गरगरलगदान् पीनसं प्लीहरोगं, हन्यादामाशयोत्थान् कफपवनकृतान् पित्तरोगानशेषान्। वल्यो वृष्यश्च भोग्यस्तरुणतरकरः सर्वरोगेषु शस्तः, पथ्यं मांसैश्च यूषैर्घृतपरिलुलितैः गव्यदुग्धैश्च भूयः॥ १२३॥ भोज्यं मिष्टं यथेष्टं ललितललनया दीयमानं मुदा यत्, शृङ्गाराभ्रेण कामी युवतिजनशतो भोगयोगादतुष्टः। वर्ज्यंशाकाम्लमादौ दिनकतिचिदथ

स्वेच्छया भोज्यमन्यत्, दीर्घायुः काममूर्त्तिर्गतगदपलितो मानवोऽस्य प्रसादात् ॥ १२४ ॥

चोचं गुडत्वक्। गदं कुष्ठम्। कर्पूरादि धातकीपर्यन्तानां माषचतुष्टयो भागः, त्रिफलात्रिकट्वोमाषद्वयं एलाजातीफलगन्धकानां तोलकं रसस्यार्द्ध तोलकं परिगतमरिचसिताभतुल्या इति आदौ सिता पश्चात्तुल्या स्नातानुलिप्तवत् सिक्ताः शुष्का इत्यर्थः ।

अभ्रकभस्म ८ तोला, कपूर, ज विश्री, गन्धवाला, गजपीपल, तेजपात, लौंग, जटामांसी, तालीशपत्र, दालचीनी, नागकेशर,कुष्ठ, धाय के फूल, हरएक ३ माशा, हरड़, आंवला, बहेड़ा, त्रिकुटा, हरएक १॥ माशे, छोटी इलायची जायफल, भूधर यन्त्र द्वारा शुद्ध गन्धक, प्रत्येक १ तोला, पारा आधा तोला, इन्हें इकट्ठा मिलाकर जल से घोटकर गोली बनावे। मात्रा– १ रत्ती से २ रत्ती तक। इसे प्रातःकाल सेवन कर अदरख तथा पान को चबाए पीछे जलपान करे, इस प्रकार सेवन करने से क्षुधाग्निजन्य, कोष्ठरोग, ज्वर, उदररोग, राजयक्ष्मा, क्षय, खाँसी, श्वास, सूजन, नेत्ररोग, प्रमेह, मेदोरोग, वमन, शूल, अम्लपित्त, तृष्णा, गुल्म, पाण्डु, रक्तपित्त विषजरोग, पीनस, प्लीहा, आमाशयरोग तथा अन्य वात पित्त, तथा कफजन्य व्याधियाँ अच्छी होती हैं। यह बल वीर्यवर्धक, तथा भोग्य है। इस औषध के सेवन से पुष्टि होती है। पथ्य–घृतपक्व, मांसरस, गऊ का दूध तथा अन्य मधुर भोजन। यह औषध वृष्य तथा वाजीकरण है। इसको सेवन करते समय प्रथम कुछ दिनों तक शाक तथा अम्ल पदार्थों का वर्जन करना चाहिए पश्चात् ठीक भोजन करें। इस औषध के प्रसाद से मनुष्य दीर्घायु, कामदेव के समान दिव्य रूपवाला तथा रोग एवं वृद्धावस्था के वलीपलित आदि लक्षणों से रहित हो जाता है ॥ १२०–१२४ ॥

स्वल्पमृगाङ्क ।

सिन्दूरं हेमभस्माथ समं सम्मिश्रयेद् बुधः। स्वल्पमृगाङ्कः पिप्पल्या गुञ्जार्द्ध उपयोजितः ॥ हन्ति कासं क्षयं श्वासं बलवर्णाग्निकृत्परः ॥ १२५ ॥

रससिन्दूर तथा स्वर्णभस्म इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर आधी रत्ती मात्रा में उपयोग करावे। अनुपान–पीपल का चूर्ण। यह स्वल्पमृगाङ्क रस खाँसी तथा क्षय, श्वास को अच्छा करता हैं। बल, वर्ण एवं अग्नि को बढ़ाता है ॥ १२५ ॥

मृगाङ्कचूर्ण ।

प्रवालं मौक्तिकं शङ्खं वङ्गश्चैव समांशकम्। निम्बक्वाथेन सम्मर्द्य ततो गजपुटे पुटेत्। ॥ १२६ ॥ वांशी ग्राह्या सर्वतुल्या हिङ्गुलं तत्कलांशकम्। एतत्सर्वं विचूर्ण्याथ पिप्पलीमधुसंयुतम् ॥ १२७ ॥ गुञ्जाद्वयं प्रदातव्यं कृच्छ्ररोगोपशांतये। क्षयं हन्ति तथा कासं यक्ष्माणं श्वासमेव च ॥ १२८ ॥ स्वरभेदं ज्वरं मेहान् दोषत्रयसमुत्थितान् । मृगाङ्कचूर्णमेतद्धि कासरोगकुलान्तकृत् ॥ १२९ ॥

प्रवालभस्म, मुक्ताभस्म, शंखभस्म, वंगभस्म इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर नीम की छाल के क्वाथ से घोटे। तदनन्तर शुष्क हो जाने पर गजपुट दे पश्चात् इस औषध के बराबर वंशलोचन तथा वंशलोचन का १⁄१६ सिंगरफ मिलावे। मात्रा २ रत्ती। अनुपान–पीपल का चूर्ण तथा शहद। यह मूत्रकृच्छ्र, क्षय खाँसी, यक्ष्मा, श्वास, स्वरभेद, ज्वर, त्रिदोषज प्रमेह को अच्छा करता है। एवम् सब तरह की खाँसियों को अच्छा करता है ॥ १२६–१२९ ॥

सर्वाङ्गसुन्दर रस ।

रसं गन्धञ्च तुल्यांशं द्वौ भागौ टङ्कणस्य च। मौक्तिकं विद्रुमं शङ्खभस्म देयं समांशिकम् ॥ १३० ॥ हेमभस्मार्द्ध-

भागश्च सर्वं खल्ले विमर्दयेत्। निम्बूद्रवेण संपिष्य पिण्डकां कारयेत्ततः॥ १३१॥ पश्चाल्लघुपुटं दत्वा सुशीतञ्च समुद्धरेत्। हेमभस्म समं तीक्ष्णं तीक्ष्णार्द्धं दरदं मतम्॥ १३२॥ एकीकृत्य समस्तानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्। ततः पूजा प्रकुर्वीत रसस्य दिवसे शुभे॥ १३३॥ सर्वाङ्गसुन्दरो ह्येष राजयक्ष्मनिकृन्तनः। वातपित्तज्वरे घोरे सन्निपाते सुदारुणे॥ १३४॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषे मेहे गुल्मभगन्दरे। निहन्ति वातजान् रोगान् श्लेष्मिकांश्च विशेषतः॥ १३५॥ पिप्पलीमधुसंयुक्तं घृतयुक्तमथापि वा। भक्षयेत् पर्णखण्डेन सितया चार्द्रकेण वा॥ १३६॥

पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, सुहागा २ भाग, मुक्ताभस्म १ भाग, मूँगा भस्म १ भाग, शंखभस्म १ भाग, स्वर्णभस्म आधा भाग इन्हें नींबू के रस से घोटकर गोला बना ले तदनन्तर लघुपुट दे। स्वाङ्गशीतल होने पर औषध निकालकर तीक्ष्ण लोहभस्म आधा भाग तथा लोहभस्म से आधा भाग सिङ्गरफ मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण कर ले। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—पीपल और शहद, पीपल और घृत, पान का रस, खाँड अथवा अदरख का रस। इसके सेवन से राजयक्ष्मा, बवासीर, ग्रहणी, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर, वातजरोग तथा विशेषतः श्लैष्मिक रोग अच्छे होते हैं॥ १३०--१३६॥

हेमगर्भपोट्टलीरस।

रसभस्मत्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकम्। मृतताम्रस्य भागैकं भागैकं गन्धकस्य च॥ १३७॥ मर्दयेच्चित्रकद्रावैर्दिनयामान्ते समुद्धरेत्। पूर्या वराटिका तेन टङ्कणेन विलेपयेत्॥ १३८॥ वराटीं पूरयेद्भाण्डे रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्। विचूर्णयेत्स्वाङ्गशीते पोट्टलीहेमगर्भिकाम्॥ मृगाङ्कवच्च गुञ्जैका भक्षणाद् राजयक्ष्मनुत्॥ १३९॥

रससिन्दूर ३ भाग, स्वर्णभस्म १ भाग, ताम्रभस्म १ भाग, गन्धक १ भाग, इन्हें चित्रक क्वाथ से दो प्रहर घोटकर एक कौड़ी में भरकर सुहागे से मुख बन्द कर दे पश्चात् मिट्टी के पात्र में बंदकर गजपुट दे। स्वाङ्गशीतल होने पर चूर्ण कर १ रत्ती की मात्रा में सेवन करावे। इसके सेवन से राजयक्ष्मा अच्छा होता है॥ १३७—३९॥

बृहत्क्षयकेशरी।

मृतमभ्रं मृतं सूतं मृतं लौहञ्च ताम्रकम्। मृतं नागञ्च कांस्यञ्च मण्डूरं विमलं तथा॥ १४०॥ वङ्गं खर्परकं तालं शङ्खटङ्कणमाक्षिकम्। वैक्रान्तं कान्तलौहञ्च स्वर्णविद्रुममौक्तिकम्॥ १४१॥ वराटं मणिरागञ्च राजपट्टञ्च गन्धकम्। सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्य खल्लमध्ये विनिक्षिपेत्॥ १४२॥ मर्दयेत्वग्निभानुभ्यां प्रपुटेत् त्रिदिनं लघु। भावयेत्पुटयेदेभिर्वारांस्त्रींश्च पृथक्-पृथक्॥ १४३॥ मातुलुङ्गवरावह्निस्त्वम्लवेतसमार्कवम्। हयमारार्द्रकरसैः पाचितो लघुवह्निना॥ १४४॥ वातपित्तकफोत्क्लेशान् ज्वरान् सम्मर्दितानपि। सान्निपातं निहन्त्याशु सर्वाङ्गिकाङ्गमारुतान्॥ १४५॥ सेवितश्च सितायुक्तो मागधीरजसा युतः। मधुकार्द्रकसंयुक्तस्तद्व्याधिहरणौषधैः॥ १४५॥ सेवितो हन्ति रोगान् हि व्याधिवारणकेशरी। क्षयमेकादशविधं शोषं पाण्डुकृमिं जयेत्॥ १४७॥ कासं पञ्चविधं श्वासं मेहमेदो महोदरम्। अश्मरीं शर्करां शूलं प्लीहगुल्मं

हलीमकम् ॥ सर्वव्याधिहरो वल्यो वृष्यो मेध्यो रसायनः ॥ १४८ ॥

अभ्रकभस्म, रससिन्दूर, लोहभस्म, ताम्रभस्म, सीसा की भस्म, कांसी की भस्म, मण्डूरभस्म, रूपामाखीभस्म, बङ्गभस्म, खपरिया की भस्म, हरतालभस्म, शंखभस्म, सुहागा, सोनामाखीभस्म, वैक्रान्तभस्म, कान्तलौहभस्म, सोने की भस्म, मूँगाभस्म, मुक्ताभस्म, कौड़ीभस्म, सिङ्गरफ, कान्तपाषाण भस्म, गन्धक, इन्हें बराबर मात्रा में इकट्ठा कर खरल में चित्रक एवं आक के रस से भावना देकर ३ दिन मन्द-मन्द अग्नि पर लघुपुट पाक करे इस प्रकार भावना देकर उसके बाद ३ बार पुटपाक करना चाहिए। पश्चात् मातुलुङ्ग (बिजौरा), त्रिफला, चित्रक, अम्लवेत, भाँगरा, कनेर, अदरख, इनके रस से मन्द अग्नि पर पकाते हुए भावना दे। इसके सेवन से वातरोग, पित्तरोग, कफरोग, ज्वर, सन्निपात, सर्वाङ्गवात, एकांगवात आदि रोग अच्छे होते हैं। मात्रा--आधी रत्ती से १ रत्ती तक। अनुपान, लौंग, पीपल चूर्ण, शहद तथा अदरख का रस। यह रस क्षय, शोथ, पाण्डु, कृमि, खांसी, श्वास, प्रमेह, मेदोरोग, महोदर पथरी, शर्करा, शूल, प्लीहा, गुल्म एवं हलीमक आदि रोगों को अच्छा करता है और यह रस बलकारक, वीर्यवर्धक, बुद्धिवर्द्धक तथा रसायन है ॥ १४०--१४६ ॥

बृहच्चन्द्रामृत रस।

रसगन्धकयोर्ग्राह्यं कर्षमेकं सुशोधितम्। अभ्रं निश्चन्द्रकं दद्यात् पलार्द्धञ्च विचक्षणः ॥ १४७ ॥ कर्पूरं शाणकं दद्यात् स्वर्णं तोलकसम्मितम्। ताम्रञ्च तोलकं दद्याद् विशुद्धं मारितं भिषक् ॥ १४८ ॥ लौहं कर्षं क्षिपेत्तत्र वृद्धदारकजीरकम्। विदारी शतमूली च क्षुरकञ्च बला तथा॥ १४९ ॥ मर्कट्यतिबला चैव जातीकोषफले तथा। लवङ्गं विजयाबीजं श्वेतसर्जरसं तथा ॥ १५० ॥ शाणभागं समादाय चैकीकृत्य प्रयत्नतः। मधुना मर्दयेत्तावद् यावदेकत्वमागतम् ॥ १५१ ॥ गुञ्जाद्वयप्रमाणेनवटिकांकुरुयत्नतः। भक्षयेद्वटिकामेकां पिप्पलीमधुना सह ॥ १५२ ॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, अभ्रकभस्म २ तोला, कपूर ३ माशा, सोने की भस्म १ तोला, ताँबे की भस्म १ तोला, लोहे की भस्म १ तोला, विधारावीज, विदारीकन्द शतावरी, तालमखाना, बलामूल, कौंच के बीज, अतिबला, जाविम्री, जायफल, लौंग, भाँग के बीज, श्वेतराल हरएक ३ माशा, इन्हें इकट्ठाकर शहद से घोटकर २ रत्ती की गोलियाँ बनाये। अनुपान--पीपल का चूर्ण तथा शहद इसके सेवन से यक्ष्मारोग नष्ट होता है ॥ १४१--१५२ ॥

मृगाङ्कवटिका।

पारदो गन्धकः शुद्धो लौहमभ्रञ्च टङ्कणम्। त्रिकटुत्रिफलाचव्यं तालीशं पिप्पली तथा ॥ १५३ ॥ रसोत्पलं तथा लाक्षा सर्वमेकीकृतं शुभम्। वासाक्काथेन सम्भाव्य वल्लमात्रां वटीं चरेत् ॥ १५४ ॥ एकैकं वटिकां खादेद्रक्तोत्पलरसप्लुताम्। वासाक्काथेन पिप्पल्या चोडुम्बररसेन वा १५५ ॥ वातिकं पैत्तिकञ्चापि पित्तश्लेष्मसमुद्भवम्। सर्वकासं निहन्त्याशु ज्वरं श्वाससमन्वितम् ॥ १५५ ॥ रक्तनिष्ठीवनं तृष्णां दाहं मेहं वमिं भ्रमम्। प्लीहगुल्मोदरानाहकृमिकण्डूविनाशिनी १५६ ॥ मृगाङ्कवटिका ज्ञेया बलवर्णाग्निकारिणी ॥ १५७ ॥

पारा, गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, सुहागा, त्रिकुटा, त्रिफला, चव्य, तालीशपत्र, पीपल, लालकमल, कच्ची लाख, सब औषध बराबर भाग में पीसकर अडूसे के काथ की भावना देकर दो दो रत्ती की गोली बनानी चाहिए।

अनुपान—लाल कमल का रस, वासाक्वाथ, पीपल का चूर्ण अथवा जंगली गूलर का रस। इस रस के सेवन से वातपित्तकफजन्य, त्रिदोषजन्य, वातकफजन्य, पित्तकफजन्य सम्पूर्ण कास को नष्ट करता है। श्वासयुक्त ज्वर, थूक के साथ रुधिर आना, पिपासा, दाह, मूर्च्छा, प्रमेह, वमन, भ्रम, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, आनाह, कृमि तथा कण्डूरोग नष्ट होते हैं। यह बल, वर्ण एवम् अग्नि को बढ़ाता है॥ १५३-१५७॥

अश्मन्तरारिष्ट।

अश्मघ्नीस्वरसश्चैव मृतसञ्जीवनी तथा। पलमेकं समादाय प्रत्येकं यत्नतो भिषक्॥ १५८॥ मृदारुद्धमुखे भाण्डे स्थापयेत्सप्त वासरान्। ततः स्थूलपटापूतः शीतलेन जलेन च॥ १५९॥ सेव्यो दशबिंदुमितो यामे यामे प्रयत्नतः। उरःक्षतं रक्तपित्तं कासं रक्तातिसारकम्॥ नाशयेद्राजयक्ष्माणं रक्तप्रदरमेव च॥ १६०॥

अश्मघ्नी (विशल्यकरणी नाम की एक वनस्पति) का रस ४ तोला, मृतसंजीवनी ४ तोला इन्हें इकट्ठाकर बोतल में या काचलिप्त मृत्पात्र में डालकर मुख बन्द कर दें। सात दिन के बाद खोलकर गाढ़े वस्त्र से छान ले। मात्रा—५ बूँद से २० बूँद तक। इस अरिष्ट की १० बूँदें १ औंस ठण्डे जल में डालकर तीन या चार घण्टे बाद प्रयोग कराना चाहिए। इसके प्रयोग से उरःक्षत, रक्तपित्त, खांसी, रक्तातिसार, राजयक्ष्मा, एवं रक्तप्रदर अच्छा होता है॥ १५८-१६०॥

मृगाङ्क रस

स्याद्रसेन समं हेम मौक्तिकं द्विगुणं ततः। गन्धकश्च समं तेन रसपादं तु टङ्कनम्॥ १६१॥ सर्वं तद्गोलकं कृत्वा काञ्जिकेनावगोपयेत्। भाण्डे लवणपूर्णेऽथ पचेद्यामचतुष्टयम्॥ १६२॥ स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य देयं गुञ्जाप्रमाणतः। मृगाङ्कसंज्ञः स ज्ञेयो रोगराजनिकृन्तनः॥ १६३॥ रसस्य भस्मना हेम भस्मीकृत्य प्रयोजयेत्। गुञ्जैकं सम्मितं चास्य द्विरक्तिमितया भिषक्॥ १६४॥ पिप्पल्या मरिचेनाथ मधुना लेहयेद् बुधः। पथ्यं सुलवुमांसेन प्रायशोऽस्य प्रयोजयेत्॥ १६५॥ दध्याज्यं गव्यतक्रं वा मांसमाजं प्रयोजतेत्। व्यञ्जनैर्[1]तपकैश्च नातिक्षारैरहिङ्गुभिः॥ १६६॥ वृन्ताकं तैलबिल्वानि कारवेल्लञ्च वर्जयेत्। स्त्रियं परिहरेद्दूरे कोपञ्चापि परित्यजेत्॥ १६७॥ सर्वं काञ्जिकेन पिष्ट्वा गोलकं कृत्वा संशोष्य कटोरिकायां वालुकायंत्र इव लवणयंत्रे पचेत्।

पारद एक तोला, स्वर्णभस्म एक तोला, मुक्ताभस्म दो तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला और सोहागा ३ माशा एकत्र कर कांजी में घोट गोला बनाकर इसको सुखावे। लवणयंत्र (लवणपूर्णपात्र) में चार पहर की आँच देवे। राजयक्ष्मा को नाश करनेवाला यह 'मृगाङ्क' नाम का रस है। जब स्वाङ्ग शीतल हो जाय तो इस औषध को निकालकर एक दो रत्ती की मात्रा में सेवन कराना चाहिए। अनुपान-छोटी पीपल का चूर्ण दो रत्ती या काली मिर्च दो रत्ती और शहद मिलाकर सेवन करे तथा हलके मांस के रस के साथ रोगी को पथ्य देना चाहिए। गौ का दही, घी व तक्र, छागमांस और पुनर्नवा, किञ्चित् क्षार तथा हिंगुयुक्त व्यञ्जनादि यक्ष्मारोगी के लिए पथ्य हैं। बैंगन, तेल, बिल्व और करेला आदि द्रव्य त्याज्य हैं। स्त्रीगमन और क्रोध अत्यन्त त्याज्य है। इस रस में स्वर्णभस्म पारदद्वारा भस्म की हुई होनी चाहिए॥ १६१-१६७॥

१—फलाम्लानिमरीचैश्च संस्कृतैरथवा दधिभिरिति क्वचिदधिकः पाठः।

राजमृगाङ्क रस।

रसभस्मत्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकम् । मृतताम्रस्य भागैकं शिलातालकगन्धकम् ॥ १६८ ॥ प्रतिभागद्वयं शुद्धमेकीकृत्य निधापयेत् । वराटीः पूरयेत्तेन चाजाक्षीरेण टङ्कनम् ॥१६९॥ पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भाण्डे तां निरोधयेत् । शुष्कं गजपुटे पाच्यं चूर्णयेत् स्वाङ्गशीतलम् ॥ १७० ॥ रसो राजमृगाङ्कोऽयं गुञ्जैकश्च क्षयापहम् । गुञ्जाद्वयमितैःकृष्णामरिचैः क्षौद्रसंयुतैः ॥ १७१ ॥ सघृतैर्दापयेद्वातपित्तश्लेष्मोद्भवे क्षये ॥१७२॥

पारभस्म (अभाव में रससिन्दूर) ३ तोला, स्वर्णभस्म १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला शुद्ध मैनशिल २ तोला, शुद्ध हरिताल २ तोला और शुद्ध गन्धक २ तोला एकत्र कर भली भाँति खरल करके इस चूर्ण को कौड़ी में भरे और बकरी के दूध में घोटे हुए सोहागा से कौड़ी के मुख को बन्द कर देवे। पश्चात् इन कौड़ियों को सुखाकर मिट्टी के पात्र में रखकर गजपुट में पकावे। स्वाङ्गशीतल होने पर चूर्ण करके रख लेवे। इसे 'राजमृगाङ्क' रस कहते हैं। यह क्षय रोग को नाश करता है। इसकी मात्रा एक रत्ती की है। दो रत्ती काली मिर्च और छोटी पीपल का चूर्ण लेकर असमान भाग गोघृत और शहद के साथ चाटना चाहिए। इसके द्वारा वात, पित्त और कफज क्षय रोग दूर होता है ॥१६७-१७२॥

महामृगाङ्क रस।

निरुत्थं भस्म सौवर्णं द्विगुणं भस्मसूतकम् । त्रिगुणं भस्म मुक्तोत्थं शुकपुच्छं चतुर्गुणम् ॥ १७३ ॥ मृततारस्य पञ्चांशं दद्यादत्र भिषक् सुधीः । सप्तभागं प्रवालञ्च रसतुल्यञ्च टङ्कनम् ॥ १७४ ॥ सर्वमेकत्र सम्मर्द्य त्रिदिनं लुङ्गवारिणा। तं ततो गोलकं कृत्वा शोषयित्वा खरातपे ॥ १७५ ॥ लवणैः पात्रमापूर्य तन्मध्ये गोलकं क्षिपेत् । तन्मुखञ्च मृदा रुद्ध्वा पचेद्यामचतुष्टयम् ॥ १७६ ॥ आकृष्य चूर्णितं शुद्धं मर्दयं पूर्वभागिकम् । वज्रञ्च तदभावे तु वैक्रान्तं तत् समांशकम् ॥ १७७ ॥ महामृगाङ्कः खलु सिद्ध एष श्रीनन्दिनाथप्रकटीकृतोऽयम् । गुञ्जास्य सेव्यो मरिचाज्ययुक्तः सेव्योऽथवा पिप्पलिकासमेतः ॥ १७८ ॥ अत्रोपचाराः कर्त्तव्याः सर्वे क्षयगदोदिताः। वर्ज्यं घृतञ्च भोक्तव्यं त्याज्यं सूतविरोधि यत् ॥ १७९ ॥ यक्ष्माणं बहुरूपिणं ज्वरगणं गुल्मं तथा विद्रधिं, मन्दाग्निं स्वरभेदकासमरुचिं वान्तिञ्च मूर्च्छां भ्रमम् । अष्टावेव महागदान् गदगणान् पाण्ड्वामयं कामलां, पित्तार्शिं समलग्रहान् बहुविधानन्यांस्तथा नाशयेत् ॥ १८० ॥

स्वर्णभस्म १ भाग, पारदभस्म २ भाग मुक्ताभस्म ३ भाग, शुद्ध गन्धक ४ भाग, स्वर्णमाक्षिक भस्म ५ भाग, प्रवालभस्म ७ भाग और सोहागा की खील २ भाग एकत्र कर बिजौरा नींबू के रस में तीन दिन तक खरल कर गोला बनावे तथा तीव्र धूप में सुखाकर लवण पात्र (लवणपूर्ण पात्र) में रख उसके मुख को मिट्टी से बन्द करके चार पहर तक आँच देवे। स्वाङ्गशीतल होने पर निकाल उसका चूर्ण कर ले। उसमें पूर्व के कहे हुए भाग के प्रमाण से अर्थात् हीरा का भस्म एक भाग अथवा वैक्रान्त का भस्म एक भाग मिश्रित कर खरल करके रख ले। इस सिद्ध 'महामृगाङ्क' रस को श्रीनन्दिनाथ ने प्रकट किया है। मात्रा १ रत्ती। अनुपान मिर्च या पीपरि का चूर्ण और गाय का घृत। इस औषध के सेवन करनेवाले रोगी को घृत आदि बलवर्धक द्रव्यों का सेवन करना तथा पारदविरोधी ककाराष्टक और बलनाशक कार्यो

को त्याग देना चाहिए तथा क्षयरोगोक्त विधि के अनुसार कार्य करना आवश्यक है। इसका सेवन करने से सब प्रकार के यक्ष्मा, सब प्रकार के ज्वर, गुल्म, विद्रधि, मंदाग्नि, स्वरभेद, कास, अरुचि, वमन मूर्च्छा, भ्रम, वातव्याधि आदि आठ महारोग, पाण्डु, कामला पित्तजन्य विकार तथा मलबंध आदि नाना प्रकार के रोग शान्त होते हैं॥ १७३-१८०॥

रत्नगर्भपोट्टलीरस।

रसं वज्रं हेमतारं नागं लौहञ्च ताम्रकम्। तुल्यांशं मारितं योज्यं मुक्तामाक्षिकविद्रुमम् ॥ १८१ ॥ शङ्खञ्च[1] तुत्थं तुल्यांशं सप्ताहं चित्रकद्रवैः। मर्दयित्वा विचूर्ण्याथ तेन पूर्या वराटिकाः ॥१८२॥ टङ्कनं रविदुग्धेन पिष्ट्वा तन्मुखतोऽर्पयेत्। मृद्भाण्डे तं निरुध्याथ सम्यग्गजपुटे पचेत् ॥ १८३ ॥ आदाय चूर्णयेत् सर्वं निर्गुण्ड्याः सप्तभावनाः। आर्द्रकस्य रसैः सप्तचित्रकस्यैकविंशतिः ॥ १८४ ॥ द्रवैर्भाव्यं ततः शोष्यं देयं गुञ्जैकसम्मितम्। यक्ष्मरोगं निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न संशयः ॥ १८५ ॥ योजयेत् पिप्पलीक्षौद्रैः सघृतैर्मरिचैस्तथा। महारोगाष्टके कासे ज्वरे श्वासेऽतिसारके ॥ १८६ ॥ पोट्टलीरत्नगर्भोऽयं योगवाहेन योजयेत्। वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदरभगन्दराः। अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्तिताः ॥ १८७ ॥

रससिंदूर, हीरकभस्म, स्वर्णभस्म, रौप्यभस्म, नागभस्म, लौहभस्म, ताम्रभस्म, मुक्ताभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, प्रवालभस्म शंखभस्म नीलाथोथा सबको समान भाग लेकर चीते के रस में सात दिन तक घोट चूर्ण करके कौडी के भीतर भर देवे। पश्चात् सोहागा को आक के दूध में घोटकर उससे कौडी को बन्द कर मिट्टी के पात्र में भर करके पात्र के मुख को बन्दकर कपड़मिट्टी कर गजपुट में पकावे। स्वाङ्गशीतल होने पर औषध को निकालकर चूर्ण करके सँभालू के रस की ७ भावना, अदरख के रस की सात भावना और चीते के रस की २१ भावना देकर सुखा लेवे। इसकी मात्रा १ रत्ती की है। अनुपान—मधु और पीपरि का चूर्ण अथवा घृत और मिर्च के चूर्ण के साथ सेवन करना चाहिए। इसका सेवन करने से कष्टसाध्य यक्ष्मा, अष्टविध महारोग, कास, ज्वर, श्वास और अतिसार रोग शान्त होते हैं। वातव्याधि, अश्मरी, कुष्ठ, प्रमेह, उदर, भगन्दर, बवासीर और ग्रहणी ये आठ महारोग हैं॥ १८१-१८७॥

काञ्चनाभ्ररस।

काञ्चनं रससिन्दूरं मौक्तिकं लौहमभ्रकम्। विद्रुमञ्चाभयातारं कस्तूरी च मनःशिला ॥ १८८ ॥ प्रत्येकं बिन्दुमात्रञ्च सर्वं सम्मर्द्य यत्नतः। वारिणा वटिका कार्या गुञ्जार्द्धफलमानतः ॥ १८९ ॥ अनुपानं प्रयोक्तव्यं यथादोषानुसारतः। नानारोगप्रशमनं सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ १९० ॥ क्षयं हन्ति तथा कासं श्लेष्मपित्तसमुद्भवम्। प्रमेहान् विंशतिश्चैव दोषत्रयसमुत्थितान् ॥ १९१ ॥ अशीतिं वातजान् रोगान् नाशयेत् सद्य एव हि। बलवृद्धिं वीर्यवृद्धिं लिङ्गदार्ढ्यं करोति च॥ १९२ ॥ काञ्चनस्य यथा कान्तिर्मदनस्य समं वपुः। अश्विनः मातरस्याय रसोऽयं काञ्चनाभ्रकः ॥ १९३ ॥

स्वर्णभस्म, रससिन्दूर, मुक्ताभस्म, लौह-

1 शंखं तुत्थं च तुल्यांशं सप्ताहं चार्द्रकद्रवैरित्यपि पाठः।

भस्म, अभ्रकभस्म प्रवालभस्म, हरीतकी, रजतभस्म, कस्तूरी और मैनशिल प्रत्येक को समभाग लेकर जल में घोटकर आधी-आधी रत्ती की गोली बनावे। दोषानुसार अनुपान के साथ सेवन करने से उपद्रवयुक्त विविध रोगों को दूर करता है। क्षयरोग और श्लेष्मा तथा पित्तजन्य कास, तीनों दोषों से उत्पन्न बीस प्रकार के प्रमेह और अस्सी प्रकार की वायु की बीमारियों को तत्काल दूर करता है। बल-वृद्धि, वीर्य-वृद्धि तथा लिङ्ग की दृढ़ता होती है। प्रातःकाल उठकर इस 'काञ्चनाभ्र' रस के सेवन से सुवर्ण के समान कान्ति तथा कामदेव के समान शरीर हो जाता है॥ १८८-१९३॥

बृहत्काञ्चनाभ्ररस।

काञ्चनं रससिन्दूरं मौक्तिकं लौहमभ्रकम्। विद्रुमं मृतवैक्रान्तं तारं ताम्रञ्च वङ्गकम्॥ १९४॥ कस्तूरिका लवङ्गञ्च जातीकोपैलवालुकम्। प्रत्येकं बिन्दुमात्रञ्च सर्वं मर्द्यं प्रयत्नतः॥ १९५॥ कन्यानीरेण संमर्द्य केशराजरसेन च। अजाक्षीरेण सम्भाव्यं प्रत्येकं दिवसत्रयम्॥ १९६॥ रक्तिकैकप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक्। अनुपानं प्रदातव्यं यथादोषानुसारतः॥ १९७॥ नानारोगप्रशमनं सर्वोपद्रवसंयुतम्। क्षयं हन्ति तथा कासं यक्ष्माणं श्वासमेव च॥ १९८॥ प्रमेहान् विंशतिञ्चैव दोषत्रयसमुत्थितान्। सर्वान् रोगान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा॥ १९९॥

स्वर्णभस्म, रससिन्दूर, मुक्ताभस्म, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, प्रवालभस्म, वैक्रान्तभस्म, रौप्यभस्म, ताम्रभस्म, वङ्गभस्म, कस्तूरी, लौंग, जावित्री और एलवालुक (सुगन्ध द्रव्य) को एकत्र चूर्णित कर घृतकुमारी के रस में, भँगरैया के रस में और बकरी के दूध में क्रमशः तीन-तीन दिन तक भावना देकर एक-एक रत्ती की गोली बनानी चाहिए। दोषानुसार अनुपान के साथ देने की व्यवस्था करे। इसका सेवन करने से श्वास, कास और यक्ष्मा, वात-पित्त कफजन्य बीस प्रकार के प्रमेह तथा सब रोग उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है॥ १९४-१९९॥

चूडामणिरस।

द्विनिष्कं रससिन्दूरं तदर्द्धं हेमजारितम्। निष्कद्वयं गन्धकञ्च मर्दयेच्चित्रकद्रवैः॥ २००॥ कुमारिकाद्रवैर्यामं छागदुग्धैस्त्रियामकम्। मुक्ताविद्रुमवङ्गानां निष्कं निष्कं विमिश्रयेत्॥२०१॥ गोलकं पूरयेद्भाण्डे रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्। स्वाङ्गशीतं विचूर्ण्याथ भक्षयेद्रक्तिकाद्वयम्॥ २०२॥ मधुना क्षयरोगघ्नं वातपित्तसमुद्भवम्। अजाघृतञ्चानुपिबेत् शर्करामधुसंयुतम्॥ २०३॥

रससिन्दूर १ तोला, स्वर्णभस्म ६ माशे और गन्धक १ तोला लेकर चीते के रस और घृतकुमारी के रस में एक-एक पहर तथा बकरी के दूध में ३ पहर घोटकर उसमें मुक्ताभस्म, प्रवालभस्म और वंगभस्म छः-छः माशे मिला, कर गोला बनावे। उस गोला को मिट्टी के पात्र में रखकर मुख बन्दकर कपड़मिट्टी करके गजपुट में पकावे। स्वाङ्गशीतल होने पर चूर्ण कर रख लेवे। इसको २ रत्ती की मात्रा में क्षयरोगी को मधु के साथ सेवन कराना चाहिए। सेवन के पश्चात् शर्करा तथा मधुयुक्त बकरी के घृत का सेवन करना चाहिए॥ २००-२३॥

महाचन्दनादितैल।

चन्दनं शालपर्णी च पृश्निपर्णी निदिग्धिका। बृहती गोक्षुरश्चैव मुद्गपर्णी विदारिका॥ २०४॥ अश्वगन्धा माषपर्णी तथामलकमेव च। शिरीषं पद्मको-

शीरं सरलं नागकेशरम् ॥२०५॥ प्रसारणी तथा मूर्वा प्रियङ्गत्वेलवालुकम्। वाट्यालकं चातिबला मृणालं बिसशालकम् ॥ २०६॥ पञ्चाशत् पलमेतेषां श्वेतवाट्यालकं तथा। जलद्रोणे विपक्तव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ २०७॥ अजाक्षीरं तैलसमं शतमूलीरसाढके। लाक्षारसं काञ्जिकञ्च दधि मस्तु तथैव च ॥ २०८॥ हरिणच्छागशशकमांसानाञ्च पृथक् पृथक्। चतुःप्रस्थं विनिष्काथ्य तैलाढकं विपाचयेत् ॥२१६॥ श्रीखण्डागुरु कंकोलं नखं शैलेयकेशरम्। पत्रं चोचं मृणालञ्च हरिद्रे शारिवाद्वयम् ॥२१०॥ रक्तोत्पलं नतं कुष्ठं त्रिफला च परूषकम्। मूर्वा च ग्रन्थिपर्णी च नलिका देवदारु च ॥ २११॥ सरलं पद्मकोशीरं धातकी बिल्वपेषिका। रसाञ्जनं मुस्तकञ्च शिह्लकं वालकं वचा ॥२१२॥ मञ्जिष्ठा लोधमधुरी जीवनीयं प्रियङ्गुरुम्। शट्येला कुङ्कुमञ्चैव रुद्राक्षी पद्मकेशरम् ॥ २१३॥ रास्ना च जातीकोषञ्च विश्नकं सधनीयकम्। परार्द्धमेषां प्रत्येकं पेषयित्वा विनिःक्षिपेत् ॥ २१४॥ महासुगन्धितैलस्य गन्धमत्र प्रदीयते। काश्मीरमदचन्द्रांश्च सिद्धे पूते विनिःक्षिपेत् ॥ २१५॥ यथालाभं शुभे पात्रे सङ्गोपेन निधापयेत्। वातपित्तहरं वृष्यं धातुपुष्टिकरं परम् ॥ हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं रक्तपित्तमुरःक्षतम् ॥ २१६॥ येषां भूरिपरिश्रमादनुदिनं नश्यन्ति देहा नृणां ये वा कामकलाङ्कुलतरुणीसङ्गेच निर्यातनः। ये वा व्याधिविशीर्णा तामुपगतास्तेषां परं भेषजं वल्यं वृष्यतमं तनूपचयकृत् श्रीचन्दनाद्यं महत् ॥ २१७॥

तिलतैल ६ सेर ३२ तोला, कल्कार्थ लालचन्दन, सरिवन, पिठवन, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी गोखुरू, वनमूँग, विदारीकन्द, असगन्ध बनउर्द, आँवला, सिरस की छाल, पद्माख, खस, सरल काष्ठ (विशेष प्रकार की चीड़ की लकड़ी), नागकेशर, गंधप्रसारणी, मूर्वा का मूल, फूलप्रियगु नील कमल, सुगन्धवाला, सहदेई, कंघी, मृणाल (कमलनाल) और भसीड़ा इन सबको मिलाकर २॥ सेर और श्वेत पुष्पवाली खरेटी २॥ सेर लेकर २५ सेर ४८ तोला जल में पकावे। चतुर्थांश अवशिष्ट रहने पर उसमें बकरी का दूध, शतावरि का रस, लाक्षा का क्वाथ, काँजी और दही का पानी प्रत्येक ६ सेर ३२ तोला मिलावे। तथा हरिन, बकरी और खरगोश का पृथक्-पृथक् ३ सेर १६ तोला मांस लेकर २५ सेर ४८ तोला पानी में अलग अलग पकावे। ६ सेर शेष रहने पर पूर्वोक्त तैलादि मत्र क्वाथ में मिला देवे। पश्चात् श्वेत चन्दन, अगर, कंकोल, नख (सुगन्धित द्रव्य), छरीला, नागकेसर, तेजपात, दालचीनी, कमल की नाल, हरदी, दारुहरदी, काली शारिवा, अनन्तमूल, लालकमल, तगर, कूट, त्रिफला, फालसा, मूर्वामूल गठिवन, नाड़ीशाक देवदारु, सरलकाष्ठ, पद्माख, खस, धाय के फूल, बेलगिरी, रसौत, नागरमोथा, शिलारस, सुगन्धवाला, बच, मजीठ, पठानीलोध, सौंफ, जीवनीयगण की औषध, पूलप्रियगु, कपूर, इलायची, केसर, गन्धमार्जार के अण्डकोष दो दो तोले, बमरबेमर रास्ना, जावित्री, मोंठ और धनियाँ दो दो तोला लेकर कल्क बनाकर मिलावे। वातव्याधिप्रकरणोक्त महासुगन्धित 'लक्ष्मीविलास' तैल के गन्धद्रव्य डालकर यथाविधि तैलपाक करे। पाक होने पर उतारकर छान लेवे फिर कुङ्कुम, कस्तूरी और कपूर थोड़ा-थोड़ा मिलाकर रख लेवे। इस का मर्दन करने से वात पित्तजन्य दोष दूर होते

है, वीर्य बढ़ता है, धातुपुष्टि होती है, राजयक्ष्मा, रक्तपित्त और उरःक्षत नष्ट होता है। अत्यन्त परिश्रम करने से जिन पुरुषों का देह क्षीण हो जाता है या जिनका वीर्य क्षीण हो गया हो अथवा जो किसी रोग के कारण अत्यन्त निर्बल हो गये हैं उनके लिये यह तैल बलकारक, वीर्यवर्धक और शरीर को पुष्ट करनेवाला है ॥ २१४–२१७ ॥

द्राक्षारिष्ट।

द्राक्षातुलार्द्धं द्विद्रोणे जलस्य विपचेत् सुधीः। पादशेषे कषाये च पूते शीते विनिःक्षिपेत् ॥ २१८ ॥ गुडस्य द्वितुलां तत्र त्वगेलापत्रकेशरम्। प्रियङ्गुर्मरिचं कृष्णा विडङ्गश्च विचूर्णयेत् ॥ २१९ ॥ पृथक्पलोन्मितैर्भागैर्घृतभाण्डे निधापयेत्। समन्ततो घट्टयित्वा पिबेज्जातरसं ततः ॥ २२० ॥ उरःक्षतं क्षयं हन्ति कासश्वासगलामयान्। द्राक्षारिष्टाह्वयः प्रोक्तो बलकृन्मलशोधनः २२१ ॥

२॥ सेर मुनक्का को १ मन ११ सेर जल में पकावे १२ सेर ४८ तोला शेष रहने पर छान लेवे। शीतल हो जाने पर इस क्वाथ में साढ़े दस सेर गुड़ और चार-चार तोले दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, फूलप्रियगु, काली मिर्च, पीपरि और वायविडंग का चूर्ण मिला कर घृत के पात्र में भरकर पात्र का मुख बन्द करके रख देवे। अरिष्ट तैयार होने पर छान लेवे। इस द्राक्षारिष्ट का पान करने से उरःक्षत, क्षयरोग, कास, श्वास और गलरोग नष्ट होते हैं। यह अरिष्ट बलवर्धक और मलशोधक है। मात्रा—१ तोला से २॥ तोले तक ॥ २१८--२२१ ॥

यक्ष्मारोग में पथ्य।

मद्यानि जाङ्गलं पक्षिमृगमांसं विशुध्यताम् मुद्गषाष्टिक गोधूम यवशाल्यादयो हिताः ॥ २२२ ॥ दोषाधिकस्य बलिनो मृदुशुद्धिरादौ गोधूम मुद्ग पाकारुण शालयश्च ॥२२३॥ छागादिमांस नवनीत पयोघृतानि क्रव्यादि मांसमपि जाङ्गलजा रसाश्च ॥ २२४ ॥ मार्तण्ड चण्डकिरणैः परिशोषितानि लेह्यान्यपक्वफलानि सुचूर्णितानि ॥ २२५ ॥ रागासकाम्बलिकषाडव वेश वारा भक्ष्याः शशाङ्क किरणा मधुरो रसश्च ॥ २२६ ॥ पक्वानि मोच पनसाम्रफलानि धात्री खर्जूर पौष्कर परूषक नारिकेलम् ॥ २२७ ॥ शोभाञ्जनं व्यकुलकं नवतालशस्यं द्राक्षा फलानि मिशयोऽपि च भागिमन्थम् ॥ २२८ ॥ सिंहास्य पत्रमपि गो महिषी घृतंच छागाश्चपश्च तदवस्कर मूत्रलेपः ॥२३०॥ मत्स्याण्डिका शिखरिणी मदिरारसाला कर्पूरकंमृग मदः सित चन्दनंच ॥२३१॥ आभ्यञ्जनानि सुरभीण्यनुलेपनानि स्नानानि वेशरचनान्यवगाहनानि हर्म्य स्रजः स्मरकथा मृदुगन्धवाहो गीतानि नृत्यमपि चन्द्ररुचो विपञ्ची ॥ २३२ ॥ संदर्शनं मृगदृशामपि हेमचूर्ण मुक्तामणि प्रचुर भूषण धारणंच होमः सदानममरद्विज पूजनानि हृद्यान्न पानमपि पथ्यगणं क्षयेषु ॥ २३३ ॥

शराब जांगल पशु पक्षियों का मांस मूँग साठी चावल गेहूँ जौ शालिधान्य ये सब यक्ष्मा रोगी को लाभदायक है। अधिक दोषों वाला क्षय रोगी बलवान हो तो उसे हलका जुलाब देकर शोधन करे। गेहूँ मूँग चना लाव चावल बकरे का मांस, बकरी के दूध से निकला मक्खन दूध घी मांस खानेवाले पशु, पक्षियों का मांस जांगल जीवों का मांस रस, सूर्य की तेज किरणों से सुखाये अवलेह कच्चे मांस का सुखाया हुआ चूरा खड़यूप (मठा

मसाले आदि से सिद्ध मूँग का यूष) रामषाडव-(अनार दाखरसयुक्त मूँग का यूष) देशवार ये सब यक्ष्मा रोगी को हितकर हैं। चन्द्रमा की किरणें मधुर रस, पके हुए केले कटहल आम आमला खजूर कमलकंद, फालसा नारियल, सहिजना, कामतिन्दू नया ताड़का फल, दाख, सौंध सेंधा नमक अडूसे की पत्ती गाय भैंस का घी बकरी-बंधने के स्थान पर रहना बकरी की मेंगनी और मूत्र का लेप, मिश्री सिखरना दही चीनी पानी तथा-मसाले युक्त घना पदार्थ शराब रसाला (अचरहित गाढ़े दही में मिश्री डाल तथा मसाले मिला कर बनाया पेय) कपूर कस्तूरी सफेदचन्दन, सुगंधित द्रव्यों की शरीर में मालिश, सुगंधित द्रव्यों का लेप स्नान करना, अच्छे रकपड़े जेवर आदि पहनना जलकेलि उत्तम महलों में निवास फूलमाला-पहिनना, कामोद्दीपन चर्चायें सुनना कहना शीतल व मंद सुगंधित वस्तुओं का सेवन, गाना सुनना, स्त्रियों का नृत्य देखना चाँदनी में घूमना वीणा आदि बाजे सुनना मृगनयनी सुन्दर स्त्रियोंका-दर्शन, स्वर्णमाल, मोतीमूँगे जड़े आभूषण पहनना, हवन, दान देवता ब्राह्मणों का पूजन हृदय के लिए हितकारी अन्नपान ये सब यक्ष्मा रोगी के लिए लाभदायक हैं।

यक्ष्मारोग के अपथ्य।

विरेचनं वेगविधारणानि श्रमं स्त्रियं स्वेदन मञ्जनं च। प्रजागरं साहसकर्मसेवा रुक्षान्नपानं विषमाशनं च ॥ २३४ ॥ ताम्बूलकालिन्द कुलत्थमाष, रसोनवंशाङ्कुरामठानि यम्लानितिक्तानि कषायकाणि, कटूनि सर्वाणि च पत्रशाकम् ॥ २३५ ॥ क्षारान्विरुद्धान्यशनानि शिम्बी, कर्कोटकं चापिविदाहि सर्वम् कठिल्लकं कृष्णामपि क्षयेषु विवर्जयेत् सततमप्रमत्तः ॥ २३६ ॥ वृन्ताकं कारयेल्लंच तैलं विल्वंच राजिकाम् व्यायामं च दिवानिद्रा क्षयो कोपे विवर्जयेत् ॥ २३७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां यक्ष्माधिकारः समाप्तः।

जुलाब मलमूत्र आदि के वेगों को रोकना, थकावट पैदा करने वाले काम मैथुन, स्वेदन, अंजन रात में जागना अपनी ताकत से अधिक कामों को करने की कोशिश करना रूखे अन्नों का खाना पीना, विषम भोजन। मौके-बे-मौके कम अधिक खान पान तरबूज कुलथी उड़द लहसुन-बाँस की कोपल हींग खट्टे तीते कसैले कड़ये रस पत्तों के शाक क्षार पदार्थ परस्परविरोधी भोजन-(दूध मछली आदि) सेम ककोड़ा सब प्रकार के विदाही अन्न लावाकोठिल्लक बैंगन करेला तेल बेल राई व्यायाम दिन में सोना ये सब क्षय-रोगो के लिए हानिकारक है। ॥ २३४-२३७ ॥

इति श्रीपण्डितसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां यक्ष्माधिकारः समाप्तः।

अथ कासाधिकारः।

वास्तुको वायसीशाकं मूलकं सुनिषण्णकम्। स्नेहास्तैलादयो भक्ष्याः क्षीरेक्षुरसगौडिकाः ॥ १ ॥ दध्यारनालाम्लफलं प्रसन्नापानमेव च। शस्यते वातकासे तु स्वाद्वम्ललवणानि च ॥ २ ॥ ग्राम्यानूपोदकैः शालीयवगोधूमषष्टिकान्। रसैर्माषात्मगुप्तानां यूषैर्वा भोजयेद्धितान् ॥३॥

वातजन्य कासरोग में बथुआ का साग, मकोय, कच्ची मूली, चौपतिया, तैल और घृत आदि स्नेहपदार्थ तथा दूध, ईख का रस, गुड़ की बनी वस्तुयें, दही, काँजी और खट्टे फल,

सुरामंड, मधुर, अम्ल तथा लवणरसयुक्त पदार्थ हितकारक होते हैं। ग्राम्य अर्थात् छागादि, अनूप अर्थात् वाराहादि और औदक अर्थात् कच्छपादि जन्तुओं के मांस के रस के साथ शालि के चावल का भात, जौ या गेहूँ की रोटी, उर्द अथवा केपांच के बीज के जूस के साथ लाभदायक है॥ १-३॥

पञ्चमूलीकृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः। रसान्नमश्नतो नित्यं वातकासमुदस्यति॥ ४॥

अत्र पञ्चमूली महती उष्णवीर्यतया विशेषेण वातप्रत्यनीकत्वात्।

वृहत् पञ्चमूल के क्वाथ में पीपल का चूर्ण डालकर वातजन्य खाँसी में सेवन करावे तथा रोगी को खाने के लिये मांसयूष के साथ भात दे॥ ४॥

भार्ङ्गीद्राक्षाशठीशृङ्गी पिप्पली विश्वभेषजैः। गुडतैलयुतो लेहो हितो मारुतकासिनाम्॥ ५॥

भारंगी, दाख, कचूर, काकड़ासिंगी, पीपल, सोंठ इनके चूर्ण को पुराना गुड़ तथा कटुतैल (सरसों का तैल) के साथ सेवन कराने से वातजन्य खाँसी अच्छी हो जाती है॥ ५॥

अपराजितादिलेह।

शठी शृङ्गी कणा भार्ङ्गी गुडवारिदयासकैः। सतैलैर्वातकासघ्नो लेहोऽयमपराजितः॥ ६॥

कचूर, काकड़ासिंगी, पीपरि, भारंगी, गुड़, नागरमोथा और जवासा को पीसकर कड़ुआ तेल मिलाकर चाटने से वातजन्य कासरोग दूर होता है। इस अवलेह का नाम 'अपराजित' है॥ ६॥

पैत्तिक कासचिकित्सा।

पित्तकासे तनुकफे त्रिवृतां मधुरैर्युताम्। दद्याद् घनकफे तिक्तैर्विरेकार्थयुतां भिषक्॥ ७॥

पित्तजन्य कास में यदि कफ पतला हो तो विरेचनार्थ मधुररसयुक्त निशोथ का क्वाथ देवे। यदि कफ गाढ़ा हो तो उसी क्वाथ को कड़वे रस के साथ देवे॥ ७॥

मधुरैर्जाङ्गलरसैः श्यामाकयवकोद्रवाः। मुद्गादियूषैः शाकैश्च तिक्तकैर्मात्रया हिताः॥ ८॥

पैत्तिक कास में जाङ्गल अर्थात् हरिण आदि पशुओं के मधुररस युक्त मांसरस के साथ अथवा तिक्तशाक के साथ सावाँ, जौ और कोदौं का भात देना चाहिए॥ ८॥

द्राक्षादिलेह।

द्राक्षामधुकखर्जूरं पिप्पलीमरिचान्वितम्। पित्तकासहरं ह्येतल्लिह्यान्माक्षिकसर्पिषा॥ ९॥

मुनक्का, मुलेठी, पिंडखजूर, पीपल और मिर्च के १ माशा चूर्ण को मधु और घृत के साथ चाटना चाहिए। यह चूर्ण पैत्तिक कास का नाशक है॥ ९॥

खर्जुरपिप्पली द्राक्षासितालाजाः समांशकाः। मधुसर्पिर्युतो लेहः पित्तकासहरः परः॥ १०॥

पिंडखजूर, पीपल, दाख, खाँड तथा खील इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर १।२ मा० की मात्रा में शहद तथा घृत के साथ चाटने से पैत्तिक खाँसी अच्छी होती है॥ १०॥

बलाद्विबृहतीवासाद्राक्षाभिः क्वथितं जलम्। पित्तकासापहं पेयं शर्करामधुयोजितम्॥ ११॥

खरैटी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, अडूसा, दाख इनके क्वाथ में खाँड तथा शहद डालकर पीने से पित्तजन्य खाँसी अच्छी होती है॥ ११॥

बलिनं वमनेनादौ शोधितं कफकासिनम्। यवान्नैः कटुरूक्षोष्णैः कफघ्नैश्चाप्युपाचरेत्॥ १२॥

श्लैष्मिक कासवाला रोगी बलवान् हो तो पहिले उसको वमन कराकर फिर कफघ्न, चरपरे, रूक्ष और उष्ण यवान्न भोजन कराना चाहिए॥ १२ ॥

दशमूल क्वाथ।

पार्श्वशूले ज्वरे श्वासे कासे श्लेष्मसमुद्भवे। पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं दशमूलीजलं पिबेत्॥ १३ ॥

पार्श्वशूल, ज्वर श्वास और श्लैष्मिक कास में पीपर का चूर्ण मिश्रित कर दशमूल का क्वाथ पान कराना चाहिए॥ १३ ॥

पौष्करं कट्फलं भार्गी पिप्पली विश्वसाधितम्। पिबेत्काथं कफोद्रेके कासे श्वासे च हृद्ग्रहे॥ १४ ॥

पोहकरमूल, कायफल, भारंगी, पीपल, सोंठ इनके सिद्ध क्वाथ को कफज खाँसी, श्वास, हृद्ग्रह में सेवन कराना चाहिए॥ १४ ॥

पञ्चकोलैः शृतं क्षीरं कफघ्नं लघु शस्यते। श्वासकासं ज्वरहरं बलवर्णाग्निवर्द्धनम्॥ १५ ॥

पञ्चकोल (पीपरा, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) से सिद्ध किया हुआ दूध कफ को नष्ट करता है तथा हलका है इसके सेवन से, खाँसी, श्वास तथा ज्वर नष्ट होता है और बल, वर्ण तथा अग्नि की वृद्धि होती है॥ १५ ॥

कट्फलादि।

कट्फलं कत्तृणं भार्ङ्गी मुस्तं धान्यवचाभयाः। शुण्ठी पर्पटकं शृङ्गी सुराह्वं च जले शृतम्॥ १६ ॥ मधुहिङ्गुयुतं पेयं कासे वातकफात्मके। कण्ठरोगेषु मुख्येषु श्वासहिक्काज्वरेषु च॥ १७ ॥

कायफल, गन्धतृण, भारंगी, मोथा, धनियाँ, वच, हरड़, सोंठ, पित्तपापड़ा, काकड़ासिंगी, देवदारु मिलाकर २ तोले, पाक के लिये जल ३२ तोले, पका हुआ क्वाथ ४ तोले, इसमें शहद तथा हींग डालकर वातकफजन्य खांसी, कण्ठरोग, श्वास, हिक्का तथा ज्वर आदि में सेवन कराना चाहिए॥ १६-१७ ॥

शृङ्गवेर स्वरस।

स्वरसं शृङ्गवेरस्य माक्षिकेण समन्वितम्। पाययेच्छ्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफापहम्॥

कण्टकारी क्वाथ।

कण्टकारीकृतः काथः सकृष्णः सर्वकासहा॥ १८ ॥

अदरख के रस में शहद मिलाकर पान करने से श्वास, कास, प्रतिश्याय और कफ नष्ट होते हैं। कटेरी (भटकटैया) के क्वाथ में पीपरि का चूर्ण मिलाकर पीने से सब प्रकार के कास नष्ट होते हैं॥ १८ ॥

कास में विभीतक प्रयोग।

विभीतकं घृताभ्यक्तं गोशकृत् परिवेष्टितम्। स्विन्नमग्नौ हरेत्कासं ध्रुवमास्यविधारितम्॥ १९ ॥

बहेड़े में घृत चुपड़, गोबर लपेट आग में थोड़ा पका लेवे। इस बहेड़े के छिलके को मुख में रखने से निःसंदेह सब प्रकार के कासरोग नष्ट होते हैं॥ १९ ॥

वासकस्वरस।

वासकस्वरसः पेयः मधुयुक्तो हिताशिना। पित्तश्लेष्मकृते कासे रक्तपित्ते विशेषतः॥ २० ॥

अडूसे के स्वरस में मधु मिलाकर पान करे और पथ्य पदार्थ का भोजन करे तो पित्तकफज कासरोग तथा विशेषकर रक्तपित्त रोग दूर होता है॥ २० ॥

पामायाः स्वरसं पूतं कणामाक्षिकसंयुतम्। अभ्यासान्मुच्यते पीत्वाऽप्यमाध्यात् कासरोगतः॥ २१ ॥

पुटपाकेन चोत्तिष्ठ वासकस्य रसो ग्राह्यः। अत्र क्वाथं व्यवहरन्ति वृद्धाः।

अड़ूसे के स्वरस में पीपरि का चूर्ण और मधु मिश्रित कर अधिक दिनों तक पीने से असाध्य कासरोग अच्छा हो जाता है ॥ २१ ॥

अड़ूसे की पत्तियों को पुटपाक की रीति से पकाकर स्वरस निकालना चाहिए। वृद्ध वैद्य कहते हैं, क्वाथ करके पान करना चाहिए।

समूलं चित्रकञ्चैव पिप्पलीचूर्णकं हरेत्। कासं श्वासञ्च हिक्काञ्च मधुयुक्तं न संशयः ॥ २२ ॥

सूखीमूली, चीते का मूल और पीपरि के चूर्ण को मधु मिश्रित कर चाटे तो कास, श्वास और हिचकी ये रोग निस्सन्देह दूर होते हैं ॥२२॥

तद्वत् क्रव्यादजं मांसं कौलिङ्गं मांसमेव वा। असाध्यान्मुच्यते भुक्त्वा कासादभ्यासयोगतः ॥ २३ ॥

मांस खानेवाले अथवा चटक पक्षी के मांस का प्रतिदिन सेवन करने से असाध्य कासरोग भी नष्ट हो जाता है ॥ २३ ॥

क्षयकास में मुस्तकाद्यवलेह।

मुस्तकं पिप्पली द्राक्षा संपक्वं बृहतीफलम्। घृतक्षौद्रयुतो लेहः क्षयकासनिवर्हणः ॥ २४ ॥

नागरमोथा, पीपरि, मुनक्का और पके हुए कटेरी के फल को पीसकर घृत और मधु के साथ सेवन करे तो क्षय-कास नष्ट होता है ॥२४॥

मरिचाद्य चूर्ण।

वर्षं कर्षार्द्धमथो पलं पलद्वयं तथार्द्धकर्षश्च। मरिचस्य पिप्पलीनां दाडिमगुडयावशूकानाम् ॥ २५ ॥ सर्वौषधैरसाध्या ये कासाः सर्ववैद्यविनिर्मुक्ताः। अपि पूयं छर्दयतां तेषामिदं महौषधं पथ्यम् ॥२६॥

मिर्च का चूर्ण १ तोला, पीपरि का चूर्ण ६ मासे, अनार का दाना ४ तोला, गुड़ ८ तोला और जवाखार ६ मासे एकत्र कर चूर्ण बनावे। जो कास किसी औषध से न अच्छा होता हो, जिस कास को असाध्य कहकर वैद्यों ने चिकित्सा करना छोड़ दिया हो और जिस कास में रोगी पूयादि का वमन करता हो उन कासों के दूर करने के लिए यह महौषध है। मात्रा—१ मासा ॥ २५-२६ ॥

समशर्कराचूर्ण।

लवङ्गजातीफलपिप्पलीनां भागान् प्रकल्प्याक्षसमानमेषाम्। पलार्द्धमेकं मरिचस्य दद्यात्पलानि चत्वारि महौषधस्य ॥२७॥ सितासमं चूर्णमिदं प्रसह्य रोगानिमानाशु बलान्निहन्यात्। कासज्वरारोचकमेहगुल्मश्वासाग्निमान्द्यग्रहणीप्रदोषान् ॥ २८ ॥

लौंग, जायफल और पीपरि एक तोला, मिर्च २ तोला, सोंठ १६ तोला और सबके बराबर शक्कर मिलाकर खरल कर चूर्ण बनावे। इसका सेवन करने से कास, ज्वर, अरोचक, प्रमेह, गुल्म, श्वास, अग्निमांद्य और ग्रहणी रोग नष्ट होते हैं ॥ मात्रा—२ मासा ॥ २७ २८ ॥

धूमपानविधि।

मनःशिलालमरिचं मांसीमुस्तेङ्गुदैः पिबेत्। धूमं त्र्यहञ्च तस्यानु सगुडञ्च पयः पिबेत् ॥२९॥ एष कासान् पृथग्द्वन्द्वसर्वदोषसमुद्भवान्। शतैरपि प्रयोगाणां साधयेदमसाधितान् ॥ ३० ॥

मैनशिल, हरिताल, मिर्च, जटामासी, नागरमोथा और इङ्गुदीफल का धूमपान कराके पश्चात् थोड़ा दूध और गुड का सेवन करावे। तीन दिन इस प्रकार करने से अत्यन्त साध्य कास भी नष्ट होता है ॥ २९ ३० ॥

मनःशिलालिप्त बदरीपत्र-धूम।

मनःशिलालिप्तदलं बदर्या उपशोषितम्। सक्षीरं धूमपानश्च महाकासनिबर्हणम्॥ ३१॥

मैनशिल को पानी में घोलकर उसको बेर की पत्तियों में चुपड़ करके सुखा लेवे। उसको अग्नि पर रखकर धूमपान करना चाहिए पश्चात् कुछ दुग्धपान करना चाहिए। इससे महान् कास दूर होता है॥ ३१॥

अर्कादि धूम।

अर्कच्छल्लशिले तुल्ये ततोऽर्द्धेन कटुत्रिकम्। चूर्णितं वह्निनिक्षिप्तं पिवेद्धूमं तु योगवित्॥ ३२॥ भक्षयेदथ ताम्बूलं पिवेद्दुग्धमथाम्बु वा। कासाः पञ्चविधा यान्ति शान्तिमाशु न संशयः॥ ३३॥

आक की छाल १ भाग, मैनशिल १ भाग और त्रिकटु अर्धभाग लेकर चूर्ण बनावे। इस चूर्ण का धूमपान करके ताम्बूल भक्षण करना चाहिए और दुग्ध अथवा जल का पान करना चाहिए तो पाँच प्रकार के कास तत्काल शान्त होते हैं॥ ३२ ३३॥

मरिचं शिलार्कक्षीरैरार्कत्वचमाशु भावितां शुष्काम्। कृत्वा विधिना धूमं पिवतः कासाः शमं यान्ति॥ ३४॥

मरिच, मैनशिल और आक का दूध इनकी भावना आक की सूखी जड़ में देकर विधिपूर्वक धूमपान करने से सब प्रकार का कासरोग नष्ट होता है॥ ३४॥

कण्टकारीघृत।

घृतं रास्नाबलाव्योषश्वदंष्ट्राकल्कपाचितम्। कण्टकारीरसे पानात्पञ्चकासनिषूदनम्॥ ३५॥

सोलह सेर कण्टकारी का रस या क्वाथ लेकर उसमें चार सेर घृत मिलावे तथा रास्ना, खरेटी, त्रिकटु और गोखुरू ये कुल मिलाकर १ सेर हों। इनका कल्क बनाकर मिला देवे। पश्चात् धीमी आंच पर विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर लेवे। इस घृत का पान करने से पञ्चविध कासरोग दूर होते हैं॥ ३५॥

व्याघ्री हरीतकी।

समूलपुष्पच्छदकण्टकार्यास्तुलां जलद्रोणपरिप्लुताञ्च। हरीतकीनाञ्च शतं निदध्याद् विपच्य सम्यक् चरणावशेषम्॥ ३६॥ गुडस्य दत्वा शतमेतमग्नौ विपक्वमुत्तार्य ततः सुशीते। कटुत्रिकञ्च द्विपलप्रमाणं पलानि षट् पुष्परसस्य चात्र॥३७॥ क्षिपेच्चतुर्जातपलं यथाग्निप्रयुज्यमानो विधिनावलेहः। वातात्मकं पित्तकफोद्भवञ्च द्विदोषकासानपि च त्रिदोषम्॥३८॥ क्षयोद्भवञ्च क्षतजञ्च हन्यात् सपीनसं श्वासस्वरक्षयञ्च। यक्ष्माणमेकादशमुग्ररूपं भृगूपदिष्टं हि रसायनं स्यात्॥ ३९॥

जड़, फूल, पत्र सहित कण्टकारी ५ सेर और १०० हरीतकी लेकर २५ सेर ४८ तोला जल में पकावे। ६ सेर ३२ तोला शेष रहने पर इस क्वाथ में पुराना गुड़ ५ सेर मिलावे और गुठली निकाल सिद्ध हरीतकी को भी इसी में मिलाकर पकावे। अवलेह के समान गाढ़ा होने पर त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि) आठ तोला, चतुर्जात अर्थात् दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेसर चार तोला मिलाकर उतार ले। शीतल होने पर चौबीस तोले शहद मिला ले। मात्रा अवलेह ४ माशे हरीतकी का आधा टुकड़ा मिलाकर सेवन

१ बदर्यातपशोषितमिति पाठान्तरम्। बदर्या मनःशिलालिप्तदलम्, आतपे शोषितमिति योजना। बदर्यामिति आसिद्धेर्बदरीपत्रा-त्मनिर्धारणे षष्ठ॥

करना चाहिए। इस अवलेह के सेवन से सब प्रकार के कास (दोषज कास, क्षयज कास, क्षतज कास), श्वास, स्वरभेद तथा एकादश लक्षणयुक्त उग्र राजयक्ष्मा और पीनस आदि रोग नष्ट होते हैं ३६-३९ ॥

तिन्तिडीपत्रजः क्वाथो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः । दुष्टकासं जयत्याशु तृणवृन्दमिवानलः ॥ ४० ॥

इमली की पत्तियों के क्वाथ में हींग और लाहौरी नमक मिलाकर पान करे तो जैसे अग्नि तृण के समूह को क्षणमात्र में भस्म कर देता है वैसे ही यह क्वाथ दुष्ट कास को तत्काल जीतता है ॥ ४० ॥

अगस्त्यहरीतकी ।

दशमूलीं स्वयंगुप्तां शङ्खपुष्पीं शटीं बलाम् हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकान् ॥ ४१ ॥ भार्गीं पुष्करमूलञ्च द्विपलांशं यथाक्रमम् । हरीतकी शतं चैव जले पञ्चाढके पचेत् ॥ ४२ ॥ यवैः स्विन्नैः कषायं तं पूतं तचाभयाशतम् । पचेद् गुडतुलां दत्त्वा कुडवञ्च पृथक् घृते ॥ ४३ ॥ तैलात् सपिप्पलीचूर्णात् सिद्धे शीते च माक्षिकात् । लिह्यादेकां शिवां नित्यमतः खादेद्रसायनात् ॥ ४४ ॥ तद्वलीपलितं हन्याद्वर्णायुर्बलवर्धनम् । पञ्चकासान् क्षयं श्वासं हिकाञ्च विषमज्वरान् ॥ ४५ ॥ हन्यात्तथा ग्रहण्यर्शो हृद्रोगारुचिपीनसान् । अगस्त्यविहितं धन्यमिदं श्रेष्ठं रसायनम् ॥ ४६ ॥

दशमूल, कौंच के बीज, शंखाहूली, कचूर, खरैटी, गजपीपल, औंगा, पीपलामूल, चित्रक, भारंगी, पोहकरमूल, हरएक ८ तोले, पोटली में बँधे हुए जौ ३ सेर १६ तोला, हरड नग १०० इन्हें ३२ सेर जल में पकावे। जब पकाते पकाते चौथाई भाग बचे तब इसे छान ले और उबली हुई १०० हरड़को घृत १६ तोले तथा तिल का तैल १६ तोले में भूनकर ऊपर कहा हुआ ८ सेर क्वाथ और ८ सेर गुड़ मिलाकर पकावे। गाढ़ा होने पर पीपल का चूर्ण ३२ तोले डालकर चलावे। ठंढा होने पर ३२ तोले शहद डाले। मात्रा १ तोला अवलेह तथा १ हरड़। इसके सेवन से बालों का सफेद होना और शरीर में झुर्रियाँ पड़ना आदि बुढ़ापे के चिह्न नष्ट होकर वर्ण, आयु तथा बल बढ़ता है। यह पाँचों तरह की खाँसी, क्षय, श्वास, हिक्का, विषमज्वर, ग्रहणी, बवासीर, हृदय का रोग, पीनस आदि रोगों को अच्छा करता है ॥ ४१-४६ ॥

वासावलेह ।

वासकस्वरसप्रस्थे मानिका सितशर्करा। पिप्पलीद्विपलं दत्त्वा सर्पिषश्च पचेच्छनैः ॥ ४७ ॥ लेहीभूते ततः पश्चाच्छीते क्षौद्रपलाष्टकम् । दत्त्वावतारयेद्वैद्यो मात्रया लेह उत्तमः ॥ ४८ ॥ निहन्ति राजयक्ष्माणं कासं श्वासञ्च दारुणम् । पार्श्वशूलञ्च हृच्छूलं रक्तपित्तं ज्वरं तथा ॥४९॥

अडूसे के १२८ तोला स्वरस में ३२ तोला श्वेत शक्कर, ८ तोले पीपरि का चूर्ण और ८ तोले घृत मिलाकर धीरे-धीरे पाक करे और गाढ़ा होने पर उतार ले। जब शीतल हो जावे तो ३२ तोले शहद मिलाकर रख ले। उचित मात्रा में सेवन करने से यह अवलेह राजयक्ष्मा, कास, श्वास, पार्श्वशूल, हृदयशूल, रक्तपित्त और ज्वर को नष्ट करता है ॥ ४७-४९ ॥

बृहत्तालीशाद्य चूर्ण ।

तालीशं त्र्यूषणं भृङ्गी त्रुटैलात्वक्च वैष्णवी सर्वाणि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥५०॥ खादेदस्मात्प्रति दिनं माषार्द्धं मधुना सह । कासं श्वासं रक्तपित्तं हन्ति सर्वम् गलामयान् ॥५१॥

तालीशपत्र, त्रिकुटा, काकड़ासिंगी, छोटी इलायची, बहेड़ा, वंशलोचन इनके चूर्ण को इकट्ठाकर बराबर मात्रा में मिला ले। मात्रा आधा माशा, अनुपान-शहद। इसके नित्य सेवन करने से खाँसी, स्वास, रक्तपित्त तथा सब कण्ठरोग अच्छे हो जाते हैं ॥ ५०-५१ ॥

तालीशचूर्ण तथा मोदक।

तालीशपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली शुभा यथोत्तरं भागवृद्ध्या त्वगेले चार्द्धभागिके ॥ ५२ ॥ पिप्पल्यष्टगुणा चात्र प्रदेया सितशर्करा। कासश्वासारुचिहरं तच्चूर्णं दीपनं परम् ॥ ५३ ॥ हृत्पाण्डुग्रहणीरोगप्लीहशोथज्वरापहम्। छर्द्यतीसारशूलघ्नं मूढवातानुलोमनम् ॥ ५४ ॥ कल्पयेद्गुडिकाञ्चैतच्चूर्णं पक्त्वा सितोपलाम्। गुडिका ह्यग्निसंयोगाच्चूर्णाल्लघुतरा स्मृता ॥ ५५ ॥ पैत्तिके ग्राहयन्त्येके शुभायां वंशलोचनम्। विशेषणं हि पिप्पल्या अन्यत्र पैत्तिकाच्छुभा ॥ ५६ ॥

तालीशपत्र १ तोला, काली मिर्च २ तोला, सोंठ ३ तोला, पीपरि ४ तोला, वंशलोचन ५ तोला, दालचीनी आधा तोला, इलायची आधा तोला और सफेद शक्कर बत्तीस तोले लेकर चूर्ण बनावे। यदि मोदक बनाना हो तो खाँड की चाशनी यथाविधि पक करके मोदक तैयार करे। यह मोदक अग्नि-संयोग के कारण चूर्ण की अपेक्षा अत्यन्त लघु होता है। इस चूर्ण अथवा मोदक के सेवन से कास, श्वास, अरुचि, हृद्रोग, पांडु, ग्रहणी, प्लीहा, शोथ और ज्वर आदि रोग नष्ट होते हैं। पिप्पली शुभा इस जगह कोई कहते हैं कि पैत्तिक कास में शुभा शब्द से वंशलोचन लेना चाहिए। अन्य दोषजन्य कास में यहाँ के शुभा शब्द को पिप्पली का विशेषण जानना चाहिए। मात्रा चूर्ण १-३ माशे, मोदक ४-६ माशे ॥ ५२-५६ ॥

टिप्पणी—कास के लिए वंशलोचन प्रत्येक दशा में लेना उचित है।

सितोपलादि चूर्ण।

सितोपला षोडश स्यादष्टौ स्याद्वंशरोचना पिप्पली स्याच्चतुष्कर्षा स्यादेला चद्विकार्षिकी ॥ ५७ ॥ एकःकर्षस्त्वचः कार्यश्चूर्णयेत्सर्वमेकतः सितोपलादिकं चूर्णं मधु सर्पिर्युतं लिहेत् ॥ ५८ ॥ श्वासकासक्षयहरं हस्तपादाङ्गदाहजित्। मन्दाग्निं सुप्तजिह्वत्वं पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ५९ ॥ ज्वरं मूर्ध्वगतं रक्तं पित्तमाशु व्यपोहति ॥ ६० ॥

मिसरी १६ तोले वंशलोचन आठ तोले पीपरि ४ तोले छोटी इलायची के बीज २ तोले और दालचीनी १ तोला इन सब को महीन पीस चूर्ण कर बलानुसार मात्रा में घी और शहद के साथ मिलाकर चाटना चाहिये। यह श्वास खाँसी क्षयरोग तथा हाथ और पैरों की जलन मन्दाग्नि जीभ की शून्यता पसली की पीड़ा अरुचि ज्वर तथा ऊर्ध्वगत रक्त और पित्तरोग को नाश करता है। विशेष अनुभूत है। ५७-६० ॥

पञ्चामृत रस

शुद्धसूतस्य भागैकं भागौ द्वौ गन्धकस्य च। भागद्वयं मृतं ताम्रं मरिचं दशभागिकम् ॥ ६१ ॥ मृताभ्रस्य चतुर्भागं भागमेकं विषं क्षिपेत्। अम्लेन मर्दयेत् सर्वं माषैकं वातकासनुत्। अनुपानं लिहेत् क्षौद्रं विभीतकफलत्वचम् ॥६२ ॥

पारा १ तोला, गन्धक २ तोला, ताम्रभस्म २ तोला, मिर्च १० तोला, अभ्रकभस्म ४ तोला और विष (शुद्ध मीठाविष) १ तोला लेकर नींबू के रस में घोटकर उर्द के बराबर गोली बनावे। बहेड़ा के छिलका के चूर्ण और

मधु के साथ इसका सेवन करने से वातज कास नष्ट होता है ॥ ६१—६२ ॥

अमृतार्णव रस

पारदं गन्धकं शुद्धं मृतं लौहञ्च टङ्कनम्। रास्ना विडङ्गत्रिफलादेवदारु कटुत्रिकम् ॥ ६३ ॥ अमृता पद्मकं* क्षौद्रं विषञ्चापि विचूर्णयेत्। द्विगुञ्जं वातकासार्तः सेवयेदमृतार्णवम् ॥ ६४ ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म, सोहागा, रास्ना, वायविडङ्ग, त्रिफला, देवदारु, त्रिकटु गिलोय, पद्माख और विष (शुद्ध सींगिया) समभाग इन सब ओषधियों को एकत्रित कर मधु में मर्दन कर दो दो रत्ती की गोलियां बनाकर मधु के साथ सेवन करने से वातजन्य कासरोग आराम होता है ॥ ६३-६४ ॥

चन्द्रामृता वटी

(चन्द्रामृतरस)

रसगन्धकलोहाभ्रं प्रत्येकं कार्षिकं शुभम्। टङ्कनस्य पलं दत्त्वा मरिचस्य पलार्धकम् ॥ ६५ ॥ त्रिकटु त्रिफला चव्यं धान्यजीरकसैन्धवम्। प्रत्येकं तोलकं ग्राह्यं छागीक्षीरेण गोलयेत्[१] ॥ ६६ ॥ चतुर्गुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद् भिषक्। प्रातः काले शुचिर्भूत्वा चिन्तयित्वामृतेश्वरीम् ॥ ६७ ॥ एकैकां वटिकां खादेद् रक्तोत्पलरसप्लुताम्। नीलोत्पलरसेनापि कुलत्थस्य रसेन वा ॥ ६८ ॥ पिप्पल्या मधुना वापि शृङ्गवेररसेन वा। हन्ति पञ्चविधं कासं वातपित्तसमुद्भवम् ॥ ६९ ॥ वातश्लेष्मोद्भवं दोषं पित्तश्लेष्मोद्भवं तथा। वातिकं पैत्तिकञ्चैव नानादोषसमुद्भवम् ॥ ७० ॥ रक्तनिष्ठीवनञ्चापि ज्वरं श्वाससमन्वितम्। तृष्णां दाहं भ्रमं हन्ति जठराग्निप्रदीपिनी ॥ ७१ ॥ बलवर्णकरी ह्येषा प्लीहगुल्मोदरापहा। आनाहकृमिहृत्पाण्डुजीर्णज्वरविनाशिनी ॥ ७२ ॥ इयं चन्द्रामृतानाम चन्द्रनाथेन निर्मिता। वासा गुडूची भार्गी च मुस्तकं कण्टकारिका। सेवनान्ते प्रयोक्तव्या गुटिका वीर्यवर्धिनी ॥ ७३ ॥

त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, धनिया, जीरा, सैंधवलवण, पारा, गन्धक, लोह प्रत्येक एक-एक तोला, सोहागा फुला हुआ ४ तोला, मरिच २ तोला एकत्र कर बकरी के दूध में पीस चार-चार रत्ती की गोली बनावे। अनुपान लाल कमल का रस, नीले कमल का रस अथवा कुलथी का क्वाथ या पीपरि का चूर्ण और मधु अथवा अदरख का रस निश्चित करना चाहिए। इस औषध का सेवन करने के पश्चात् अडूसा, गिलोय, भारंगी, नागरमोथा और कटेरी के क्वाथ का सेवन करे तो यह गुटिका विशेष लाभ करती है। इस गुटिका का सेवन करने से हर प्रकार के कास, रक्तवमन, ज्वर, श्वास, तृष्णा, दाह, भ्रम, प्लीहा, गुल्म, उदर, आनाह, कृमि, हृद्रोग, पांडु और जीर्णज्वर दूर होते हैं तथा जठराग्नि प्रबल होती है ॥ ६५—७३ ॥

श्रीडामरानन्द अभ्रक

अभ्रस्यामलमारितस्य तु पलं क्षुद्राटरूषस्थिरा बिल्वश्चारलुपाटलाः कलशिका सब्रह्मयष्ट्यार्द्रकाः। चित्रग्रन्थिकगोक्षुरं सचविकं भार्ग्यात्मगुप्तान्वितं सर्वैर्मर्दितमेकशश्च पलिकैर्गुञ्जार्द्रकं भक्षितम् ॥ ७४ ॥ कासं पञ्चविधं स्वरामयमुरोघातञ्च हिक्कां ज्वरं श्वासं पीनसमेहगुल्मअरुचिं यक्ष्माम्लपित्तं क्षयम्। दाहं मोहमशेषदोषजनितं शूलं बलासं कृमिं

[१] —'छागीक्षीरेण मुस्तेन केशराजरसेन च' इत्यपि क्वचित् पाठः।

च ॥ ९८ ॥ मनःशिलायाः चाराणां बीजं धुस्तूरकस्य च। मरिचस्यापि सर्वेषां समं चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ९९ ॥ जयन्ती चित्रकं माणवण्टकर्णोल्लमण्डुकी। शक्राशनं भृङ्गराजं केशराजार्द्रकं तथा ॥१००॥ सिन्धुवारस्य च रसैः कर्षमात्रैर्विभावयेत्। गुञ्जैकपरिमाणान्तु गुटिकां कारयेद्भिषक् ॥१०१॥ हन्ति पञ्चविधं कासं श्वासञ्चैव सुदारुणम्। कफवातामयानुग्रानानाहं विड्विबद्धताम् ॥ १०२ ॥ अग्निमान्द्यारुचिं शोथमुदरं पाण्डुकामलाम्। रसायनी च वृष्या च बलवर्णप्रसादनी ॥ १०३ ॥ मधुरं बृंहणं वृष्यं मत्स्यं मांसञ्च जाङ्गलम्। घृतपक्वं सदा भक्ष्यं रूक्षं तीक्ष्णं विवर्जयेत् ॥ १०४ ॥

आर्द्रकरसेन भक्षणम्। यक्ष्माधिकारोक्ता स्वल्परसेन्द्रगुटिका चात्र कर्त्तव्या।

पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, ताम्रभस्म, हरताल, विष (शुद्ध सींगिया), मैनसिल, जवाखार, सज्जी, सुहागा, धतूरे के बीज और मरिच का समभाग चूर्ण एकत्र कर जयन्ती, चित्रक, मानकन्द, घंटाकर्ण, जिमीकन्द, भार्ङ्गी, इन्द्रजौ, भांगरा सफेद, भांगरा काला, अदरख और सम्भालू के एक एक तोला रस में भावना देकर एक एक रत्ती के समान गोली बनावे। अदरख के रस के साथ इसका सेवन करे। यह औषधि पञ्चविध कास, भयंकर श्वास, तीव्र कफज तज्जन्य रोग, आनाह, विबन्ध, मन्दाग्नि, अरुचि, शोथ, उदर, पांडु तथा कामला इन रोगों को दूर करती है। इस औषध का सेवन करनेवाले रोगी के लिए मधुर, बृंहण और वृष्य पदार्थ, मत्स्य और जाङ्गल पशुओं के मांस तथा घृतपक्व पदार्थ पथ्य हैं। रूक्ष और तीक्ष्ण पदार्थ त्याज्य हैं। यह रसायन बल, वीर्य तथा वर्ण को बढ़ानेवाला है। यक्ष्माधिकार में कही स्वल्परसेन्द्रगुटिका भी इस जगह व्यवहार में लेनी चाहिए ॥ ९८-१०४ ॥

गुणमहोदधि।

सूतकं गन्धकं लौहं विषञ्चापि वराङ्गकम्। ताम्रकं वङ्गभस्मापि व्योमकञ्च समांशकम् ॥१०५॥ पत्रं त्रिकटुकं मुस्तं विडङ्गं नागकेशरम्। रेणुकामलकञ्चैव पिप्पलीमूलमेव च ॥१०६॥ एषाञ्च द्विगुणं दत्त्वा मर्दयित्वा प्रयत्नतः। भावना तत्र दातव्या जलपिप्पलिनिम्बुभिः[1] ॥ १०७ ॥ मात्रा चणकतुल्या तु वटिकेयं प्रकीर्त्तिता। हन्ति कासं तथा श्वासमर्शांसि च भगन्दरम् ॥ १०८ ॥ हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कर्णरोगं कपालिकाम्। हरेत् संग्रहणीरोगानष्टौ च जठराणि च। प्रमेहान् विंशतिञ्चैवाप्यरमरीञ्च चतुर्विधाम् ॥ १०९ ॥ न चान्नपाने परिहार्य्यमस्ति न चातपे चाध्वनि मैथुने च। अथेष्टचेष्टाभिरतः प्रयोगे नरो भवेत् काञ्चनराशिगौरः ॥ ११० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, विष (शुद्ध सींगिया), दालचीनी, ताम्रभस्म, वङ्गभस्म और अभ्रकभस्म एक एक तोला, तेजपात, त्रिकटु, नागरमोथा, विडङ्ग, नागकेसर, सम्भालू के बीज, आंवला और पिपरामूल दो दो तोला एकत्र खरल कर मुगन्धवाला तथा पीपरि के क्वाथ और नींबू के रस की भावना देकर चना के बराबर गोली बनावे। इससे कास, श्वास, बवासीर, भगन्दर, हृच्छूल, पार्श्वशूल, कर्णरोग, कपालिका, संग्रहणी, आठ प्रकार के उदररोग, बीस प्रकार के प्रमेह और चार प्रकार की पथरी यह सब रोग नष्ट होते

1—गजपिप्पलिकाम्बुभिरिति पाठान्तरम्।

है। इस औषधि को सेवन करनेवाला रोगी, (शक्ति और अवस्थानुसार) यथेच्छ आहार-विहार करे। इसके सेवन से मनुष्य कांचन वर्ण (गौर शरीर) वाला हो जाता है ॥ १०९-११० ॥

समशर्करालौह।

लवङ्गं कट्फलं कुष्ठं यमानी त्र्यूषणं तथा। चित्रकं पिप्पलीमूलं वासकं कण्टकारिका ॥ ॥ १११ चव्यं कर्कटशृङ्गी च चातुर्जातं हरीतकी शटी कक्कोलकं मुस्तं लौहमभ्रं यवाग्रजम् ॥ ११२ ॥ सर्वं प्रतिसमञ्चूर्णं तावच्छर्करयान्वितम्। सर्वमेकीकृतञ्चूर्णं स्थापयेत् स्निग्धभाजने ॥ ११३ ॥ निहन्ति सर्वजं कासं वातश्लेष्मसमुद्भवम्। क्षयकासं रक्तपित्तं श्वासमाशु विनाशयेत्। क्षीणस्य पुष्टिजननं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ११४ ॥

लौंग, कायफल, कूट, अजवाइन, त्रिकटु, चीता की जड़, पिपरामूल, अडूसा, कटेरी, चव्य, काकड़ासिंगी, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, हरड़, कपूर, कंकोल, नागरमोथा, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और जवाखार यह सब सम भाग, सबके बराबर शक्कर मिलाकर खरल करके घृत के पात्र में रख ले। शक्ति अनुसार इसका सेवन करने से कास, रक्तपित्त, क्षयकास और श्वासरोग नष्ट होते हैं। यह समशर्करलोह क्षीणपुरुष को पुष्ट करनेवाला और बल, वर्ण तथा अग्नि का बढ़ानेवाला है। मात्रा-१-१ ॥ माशा ॥ १११-११४ ॥

भागोत्तरगुटिका।

रसभागो भवेदेको गन्धको द्विगुणो भवेत्। त्रिभागा पिप्पली पथ्या चतुर्भागो विभीतकः॥ ११५ ॥ पञ्चभागस्तथा वासा षड्गुणा सप्तभागिका। भार्गी सर्वमिदं चूर्णं भाव्यं बब्बूलजैर्द्रवैः ॥ ११६ ॥ एकविंशतिवारांस्तु मधुना गुटिकाः कृताः। एकमाषप्रमाणेन प्रातरेकान्तु भक्षयेत् ॥ कासं श्वासं हरेत् क्षुद्राकाथस्तदनु कृष्णया ॥ ११७ ॥

शुद्ध पारा, १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, पीपरि ३ तोला, हरड़ ४ तोला, बहेड़ा ५ तोला, अडूसा ६ तोला और भारंगी ७ तोला एकत्र कर २१ बार बबूल की छाल के स्वरस में भावना देकर मधु मिश्रितकर एक-एक माशे की गोली बनावे। पीपल का चूर्ण और कटेरी के क्वाथ के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली खाय तो कास और श्वासरोग नष्ट होते हैं ॥ ११५-११७ ॥

लक्ष्मीविलासरस।

पलं वङ्गं पलं कान्तं घनं ताम्रञ्च कांस्यकम्। शुद्धसूतं सतालञ्च तालाङ्कुर[1] सखर्परम् ॥ ११८ ॥ केशराजरसेनैव भावना दिवसत्रयम्। कुलत्थस्वरसे चैव भावयेच्च पुनः पुनः ॥ ११९ ॥ एलाजातीफलाख्यञ्च तेजपत्रं लवङ्गकम्। यमानी जीरकञ्चैव त्रिकटु त्रिफलासमम् ॥ १२० ॥ नतं भृङ्गं वंशगर्भं कर्षमात्रञ्च कारयेत्। भावयेच्च रसेनाथ गोलयेत् सर्वमौषधम् ॥ १२१ ॥ छायाशुष्कावटी कार्या गुञ्जैकं प्रमितातथा। शीताम्बुना पिबेद्धीमान् सर्वकासनिवृत्तये ॥ १२२ ॥ मत्स्यं मांसं तथा क्षीरं पथ्यं स्यात् स्निग्धभोजनम्। क्षतकासं तथा श्वासं ज्वरं हन्ति न संशयः ॥ १२३ ॥ हलीमकं पाण्डुरोगं शोथं शूलं प्रमेहकम्। अर्शोनाशं करोत्येव बलपुष्टिञ्च कारयेत् ॥ १२४ ॥ कामदेवसमं वर्णं तृष्णारोचकनाशनम्।

---

[1] गन्धकञ्चेति पाठः साधु।

छर्दिं पाण्डुहलीमकं गलगदं विस्फोटकं कामलाम् ॥ ७५ ॥ मन्दाग्निं ग्रहणीं क्षयं च यकृतं प्लीहानमर्शांसि षट् हन्यादामकफोद्भवान् गुरुगदान् श्रीडामराभ्रकम् । बल्यं वृष्यमशेषदोषहरणं धातुप्रदं कासिनां मेध्यं हृद्यरसायनं हरमुखाज ज्ञात्वा मया भाषितम् ॥ ७६ ॥

चार तोला अभ्रकभस्म को लेकर छोटी कटेरी, अडूसे की जड़ शालपर्णी बेल के जड़ की छाल, स्योनाक, पाटला, पृश्निपर्णी, भारंगी, अदरख, चीते की जड़, पीपरामूल, गोखुरू, चव्य, भारंगी और कौंच (केवांच) इनमें से प्रत्येक ओषधि के रस में क्रमशः खरल करके रख ले। मात्रा आधी रत्ती। इसका सेवन करने से पञ्चविध कास, स्वरभेद, उरोघात, हिचकी, ज्वर, श्वास, पीनस, प्रमेह, गुल्म, अरुचि, यक्ष्मा, अम्लपित्त, क्षय, दाह, मोह, शूल, कृमि, वमन, पांडु, हलीमक, कंठरोग, विस्फोटक, कामला, मन्दाग्नि, ग्रहणी, यकृत, प्लीहा, छह प्रकार की बवासीर, आम तथा कफज रोग सब नष्ट होते हैं, यह बलकारक, वीर्यवर्धक, मेधा और हृदय को हितकारक, रसायन तथा धातुवर्द्धक है। श्रीमहादेवजी के मुखारविन्द से सुनकर मैंने कहा है ॥ ७४--७६ ॥

महाकालेश्वर रस

मृतं लौहं मृतं वङ्गं मृतार्कं मृतमभ्रकम् । शुद्धं सूतश्च गन्धश्च माक्षिकं हिङ्गुलं विषम् ॥ ७७ ॥ जातीफलं लवङ्गश्च त्वगेला नागकेसरम् । उन्मत्तस्य च बीजानि जयपालश्च शोधितम् ॥ ७८ ॥ एतानि समभागनि मरिचं हरनेत्रकम् ॥ सर्वद्रव्यं क्षिपेत् खल्ले लौहदण्डेन मर्दयेत् ॥ ७९ ॥ शक्राशनस्य स्वरसैर्भावयेदेकविंशतिम् । गुञ्जामात्रा प्रदातव्या आर्द्रकस्य रसैर्युता ॥ ८० ॥ तदर्द्धं बालवृद्धेषु पथ्यं देयं यथोचितम् । पञ्चकासान् क्षयं श्वासं राजयक्ष्माणमेव च ॥ ८१ ॥ सन्निपातं कण्ठरोगमभिन्यासमचेतनम् । महाकालेश्वरो हन्ति कालनाथेन भाषितः ॥ ८२ ॥

लोह, वङ्ग, ताम्र, अभ्रक, पारद, स्वर्णमाक्षिक इनकी भस्म, गन्धक, हिङ्गुल, विष (सींगिया), जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, नागकेसर, धतूरे के बीज और शुद्ध जमालगोटा प्रत्येक १ तोला, मरिच ३ तोला एकत्र कर लोहे की मूसली से घोटकर भाँग की पत्तियों के रस की २१ भावना दे, एक-एक रत्ती की गोली बनावे। बालक और वृद्धों को तो आधी ही रत्ती की मात्रा देनी चाहिए। एवम् यथायोग्य पथ्य की व्यवस्था करे। अनुपान अदरख का रस। इसके सेवन से पञ्चविध कास, क्षय, श्वास, यक्ष्मा सन्निपात, कण्ठरोग, अभिन्यास और अचेतनता, ये रोग शान्त होते हैं। कालनाथ का कहा हुआ यह महाकालेश्वर रस है ॥ ७७-८२ ॥

विजयभैरव रस ।

सूतकं गन्धकं लौहं विषमभ्रकतालकम् । विडङ्गं रेणुकं मुस्तमेलाग्रन्थिककेशरम् ॥ ८३ ॥ त्रिकटु त्रिफला चित्रं शुद्धं जैपालबीजकम् । एतानि समभागानि गुडं द्विगुणमुच्यते ॥ ८४ ॥ गुञ्जाद्वयप्रमाणेन प्रातःकाले तु भक्षयेत् । कासं श्वासं क्षयं गुल्मं प्रमेहं विषमज्वरम् ॥ ८५ ॥ अजीर्णं ग्रहणीदोषं हन्ति पाण्ड्वामयं तथा । अपाने हृदये शूलं वातरोगं गलग्रहम् ॥ ब्रह्मणा निर्म्मितो ह्येष रसो विजयभैरवः ॥ ८६ ॥

१—पशुपते इत्यपि क्वचित् पाठः ।

च ॥ ९८ ॥ मनःशिलायाः क्षाराणां वीजं धुस्तूरकस्य च । मरिचस्यापि सर्वेषां समं चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ९९ ॥ जयन्ती चित्रकं माणघण्टकर्णोल्लमण्डुकी । शक्राशनं भृङ्गराजं केशराजार्द्रकं तथा ॥१००॥ सिन्धुवारस्य च रसैः कर्षमात्रैर्विभावयेत् । गुञ्जैकपरिमाणान्तु गुटिकां कारयेद्भिषक् ॥१०१॥ हन्ति पञ्चविधं कासं श्वासञ्चैव सुदारुणम् । कफवातामयानुग्रानानाहं विड्विबद्धताम् ॥ १०२ ॥ अग्निमान्द्यारुचिं शोथमुदरं पाण्डुकामलाम् । रसायनी च वृष्या च बलवर्णप्रसादनी ॥ १०३ ॥ मधुरं बृंहणं वृष्यं मत्स्यं मांसञ्च जाङ्गलम् । घृतपक्वं सदा भक्ष्यं रूक्षं तीक्ष्णं विवर्जयेत् ॥ १०४ ॥

आर्द्रकरसेन भक्षणम् । यक्ष्माधिकारोक्ता स्वल्परसेन्द्रगुटिका चात्र कर्त्तव्या ।

पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, ताम्रभस्म, हरताल, विष (शुद्ध सींगिया), मैनसिल, जवाखार, सज्जी, सुहागा, धतूरे के बीज और मरिच का समभाग चूर्ण एकत्र कर जयन्ती, चित्रक, मानकन्द, घंटाकर्ण, जिमीकन्द, माखी, इन्द्रजौ, भांगरा सफेद, भांगरा काला, अदरख और सम्भालू के एक एक तोला रस में भावना देकर एक एक रत्ती के समान गोली बनावें। अदरख के रस के साथ इसका सेवन करे। यह औषधि पञ्चविध कास, भयकर श्वास, तीव्र कफज तज्जन्य रोग, आनाह, विबन्ध, मन्दाग्नि, अरुचि, शोथ, उदर, पांडु तथा कामला इन रोगों को दूर करती है। इस औषध का सेवन करनेवाले रोगी के लिए मधुर, बृंहण और वृष्य पदार्थ, मत्स्य और जाङ्गल पशुओं के मांस तथा घृतपक पदार्थ पथ्य हैं। रूक्ष और तीक्ष्ण पदार्थ अपथ्य हैं। यह रसायन बल, वीर्य तथा वर्ण को बढ़ानेवाला है। यक्ष्माधिकार में कही स्वल्परसेन्द्रगुटिका भी इस जगह व्यवहार में लेनी चाहिए ॥ ९८-१०४ ॥

गुणमहोदधि ।

सूतकं गन्धकं लौहं विषञ्चापि वराङ्गकम् । ताम्रकं वङ्गभस्मापि व्योमकञ्च समांशकम् ॥१०५॥ पत्रं त्रिकटुकं मुस्तं विडङ्गं नागकेशरम् । रेणुकामेलकञ्चैव पिप्पलीमूलमेव च ॥१०६॥ एषाञ्च द्विगुणं दत्त्वा मर्दयित्वा प्रयत्नतः । भावना तत्र दातव्यां जलपिप्पलिनिम्बुभिः[1] ॥ १०७ ॥ मात्रा चणकतुल्या तु वटिकेयं प्रकीर्त्तिता । हन्ति कासं तथा श्वासमर्शांसि च भगन्दरम् ॥ १०८ ॥ हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कर्णरोगं कपालिकाम् । हरेत् संग्रहणीरोगानष्टौ च जठराणि च । प्रमेहान् विंशतिञ्चैवाप्यश्मरीञ्च चतुर्विधाम् ॥ १०९ ॥ न चान्नपाने परिहार्य्यमस्ति न चातपे चाध्वनि मैथुने च। अथेष्टचेष्टाभिरतः प्रयोगे नरो भवेत् काञ्चनराशिगौरः ॥ ११० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, विष (शुद्ध सींगिया), दालचीनी, ताम्रभस्म, वङ्गभस्म और अभ्रकभस्म एक एक तोला, तेजपात, त्रिकटु, नागरमोथा, विडङ्ग, नागकेसर, सम्भालू के बीज, आंवला और पिपरामूल दो दो तोला एकत्र खरल कर पुनः घपाला तथा पीपरि के साथ और नीबू के रस की भावना देकर चना के बराबर गोली बनावें। इससे कास, श्वास, बवासीर, भगन्दर, हृच्छूल, पार्श्वशूल, कर्णरोग, कपालिका, संग्रहणी, आठ प्रकार के उदररोग, बीस प्रकार के प्रमेह और चार प्रकार की पथरी यह सब रोग नष्ट होते

1—जलपिप्पलिकाम्बुभिरिति पाठान्तरम् ।

है। इस औषधि को सेवन करनेवाला रोगी, (शक्ति और अवस्थानुसार) यथेच्छ आहार-विहार करे। इसके सेवन से मनुष्य काञ्चन वर्ण (गौर शरीर) वाला हो जाता है ॥ १०८-११० ॥

समशर्करालौह।

लवङ्गं कट्फलं कुष्ठं यमानी व्यूषणं तथा। चित्रकं पिप्पलीमूलं वासकं कण्टकारिका ॥ ॥ १११ ॥ चव्यं कर्कटश्रृङ्गी च चातुर्जातं हरीतकी शटी कङ्कोलकं मुस्तं लौहमभ्रं यवाग्रजम् ॥ ११२ ॥ सर्वं प्रतिसमञ्चूर्णं तावच्छर्करयान्वितम्॥ सर्वमेकीकृतञ्चूर्णं स्थापयेत् स्निग्धभाजने ॥ ११३ ॥ निहन्ति सर्वजं कासं वातश्लेष्मसमुद्भवम्। क्षयकासं रक्तपित्तं श्वासमाशु विनाशयेत्। क्षीणस्य पुष्टिजननं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ११४ ॥

लौंग, कायफल, कूट, अजवाइन, त्रिकटु, चीता की जड़, पिपरामूल, अड़ूसा, कटेरी, चव्य, काकड़ासिंगी, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, हरड़, कचूर, कंकोल, नागरमोथा, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और जवाखार यह सब सम भाग, सबके बराबर शक्कर मिलाकर खरल करके घृत के पात्र में रख ले। शक्ति अनुसार इसका सेवन करने से कास, रक्तपित्त, क्षयकास और श्वासरोग नष्ट होते हैं। यह समशर्करलोह क्षीणपुरुष को पुष्ट करनेवाला और बल, वर्ण तथा अग्नि का बढ़ानेवाला है। मात्रा-१-१ ॥ माशा ॥ १११-११४ ॥

भागोत्तरगुटिका।

रसभागो भवेदेको गन्धको द्विगुणो भवेत्। त्रिभागा पिप्पली पथ्या चतुर्भागो विभीतकः॥ ११५ ॥ पञ्चभागस्तथा वासा षड्गुणा सप्तभागिका। भार्गी सर्वमिदं चूर्णं भाव्यं वब्बूलजैर्द्रवैः ॥ ११६ ॥ एकविंशतिवारांस्तु मधुना गुटिकाः कृताः। एकमाषप्रमाणेन प्रातरेकान्तु भक्षयेत् ॥ कासं श्वासं हरेत् क्षुद्राक्काथस्तदनु कृष्णया ॥ ११७ ॥

शुद्ध पारा, १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, पीपरि ३ तोला, हरड़ ४ तोला, बहेड़ा ५ तोला, अड़ूसा ६ तोला और भारंगी ७ तोला एकत्र कर २१ बार बबूल की छाल के स्वरस में भावना देकर मधु मिश्रितकर एक एक माशे की गोली बनावे। पीपल का चूर्ण और कटेरी के क्वाथ के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली खाय तो कास और श्वासरोग नष्ट होते हैं ॥ ११५-११७ ॥

लक्ष्मीविलासरस।

पलं वङ्गं पलं कान्तं घनं ताम्रञ्च कांस्यकम्। शुद्धसूतं सतालञ्च तालाङ्कुर[1] सतर्परम् ॥ ११८ ॥ केशराजरसेनैव भावना दिवसत्रयम्। कुलत्थस्वरसे चैव भावयेच्च पुनः पुनः ॥ ११९ ॥ एलाजातीफलाख्यञ्च तेजपत्रं लवङ्गकम्। यमानी जीरकश्चैव त्रिकटु त्रिफलासमम् ॥ १२० ॥ नतं भृङ्गं वंशगर्भं कर्षमात्रञ्च कारयेत्। भावयेच्च रसेनाथ गोलयेत् सर्वमौषधम् ॥ १२१ ॥ छायाशुष्कावटी कार्या गुञ्जैकप्रमितातथा। शीताम्बुना पिबेद्धीमान् सर्वकासनिवृत्तये ॥ १२२ ॥ मत्स्यं मांसं तथा क्षीरं पथ्यं स्यात् स्निग्धभोजनम्। क्षतकास तथा श्वासं ज्वरं हन्ति न संशयः ॥ १२३ ॥ हलीमकं पाण्डुरोगं शोथं शूलं प्रमेहकम्। अर्शोनाशं करोत्येव बलपुष्टिञ्च कारयेत् ॥ १२४ ॥ कामदेवसमं वर्णं तृष्णारोचकनाशनम्।

[1] गन्धकश्चेति पाठ साधु।

वर्ज्यं शाकाम्लमादौ च भृष्टद्रव्यं हुताशनम् ॥ रसो लक्ष्मीविलासोऽयं महादेवेन भाषितः ॥ १२५ ॥

वङ्गभस्म, कान्तलोहभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, कांसभस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनशिल और खरिया प्रत्येक चार तोला एकत्र कर तीन दिन काले भाँगरा के रस की और तीन दिन कुलथी के काढ़े की भावना दे। पश्चात् इलायची, जम्रफल, तेजपात, लौंग, अजवाइन, जीरा, त्रिकटु, त्रिफला, तगर, भँगरा और वंशलोचन का चूर्ण एक-एक तोला मिलाकर भँगरा के रस और कुलथी के क्वाथ की फिर भावना देकर एक-एक रत्ती की गोली बनावे। शीतल जल के साथ सेवन करे। इसका सेवन करने से क्षतकास, श्वास, ज्वर, हलीमक, पांडु, शोथ-शूल, प्रमेह, तृष्णा, अरुचि तथा बवासीर का नाश होता है। यह बलकारक तथा पुष्टिकारक है। इसके सेवन में मछली, मांस, दूध तथा स्निग्ध पदार्थ पथ्य हैं। शाक, अम्ल पदार्थ और भुने हुए पदार्थ त्याज्य हैं। यह महादेवजी का कहा हुआ लक्ष्मीविलास रस है ॥ ११८-१२५ ॥

कासकुठार रस।

हिंगुलं मरिचं गन्धं सव्योषं टङ्कणं तथा। द्विगुञ्जमार्द्रकद्रावैः सन्निपातं सुदारुणम् ॥ १२६ ॥ कासं नानाविधं हन्ति शिरोरोगं सुदुःसहम् ॥

सिङ्गरफ, कालीमिर्च, गन्धक, त्रिकुटा, सुहागा, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर अदरख के रस से घोटकर २-२ रत्ती की गोली बनावे। इसके सेवन से अनेक प्रकार की खांसी, सन्निपात तथा कष्टदायक शिरोरोग नष्ट होता है ॥ १२६ ॥

कासकेसरी।

गन्धं त्रिकटुकं चाभ्रं रोहिणी तालकं समम् पञ्च कोलकषायेण मर्दयेद्दिवसत्रयम्। १२७ ॥ मूषायां भूधरे पाच्यं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् मधुना चानुपानेन ह्यूर्ध्वकासं विनश्यति ॥ १२८ ॥

शुद्ध गन्धक त्रिकुटा अभ्रक भस्म कुटकी रसमाणिक्य या शुद्ध हरिताल इन सब को बराबर लेकर महीन चूर्ण बना पञ्चकोल (पीपल पिपलामूल चव्य चित्रक सोंठ) के काढ़े से उसे घोटकर अन्धमूषा में रख भूधर यन्त्र में रख लघुपुट से पकावे, ठंडा होने पर निकालकर उसकी ॰ रत्ती से ३ रत्ती मात्रा देने से ऊर्ध्व श्वास कास रक्तविकार त्वग्विकार आदि का नाश होता है। ॥ १२७-१२८ ॥

कासान्तक रस।

सूतं गंधं विषञ्चैव शालिपर्णी च धान्यकम्। यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रं मरीचकम् ॥ गुञ्जाद्वयमितं खादेन्मधुना कासशान्तये ॥ १२९ ॥

पारा, गन्धक, वच्छनाग, शालिपर्णी तथा धनिया हरएक १ भाग, कालीमिर्च ५ भाग इन्हें मिलाकर जल से घोटकर गोलियाँ बनावे। मात्रा-१ रत्ती से २ रत्ती तक। इससे खाँसी अच्छी हो जाती है ॥ १२९ ॥

बृहत्कुठाराभ्र रस

पारदं गन्धकं चैव टङ्कणं नागकेशरम्। कर्पूरं जातिकोषञ्च लवङ्गं तेजपत्रकम् ॥ १३० ॥ सुवर्णञ्चापि प्रत्येकं कर्षमात्रं प्रकल्पयेत्। शुद्धकृष्णाभ्रचूर्णन्तु चतुःकर्षं प्रयोजयेत् ॥ १३१ ॥ तालीशघनकुष्ठानि मांसीत्वक् धात्रिपुष्पिका। एलाबीजं त्रिकटुकं त्रिफला करिपिप्पली ॥ १३२ ॥ कर्षद्वयञ्च चैतेषां पिप्पलीक्वाथमर्दितम्। अनुपानं प्रयोक्तव्यं चोचं क्षौद्रसमायुतम् ॥ १३३ ॥ अग्निमान्द्यादिकान्

रोगानरुचिं पाण्डुकामलाम् । उदराणि तथा शोथमानाहं ज्वरमेव च ॥ १३४ ॥ ग्रहणीं श्वासकासञ्च हन्याद्यक्ष्माणमेव च । नानारोगप्रशमनं बलवर्णाग्निकारकम् ॥ १३५ ॥ बृहच्छृङ्गाराभ्रनाम विष्णुना परिकीर्तितम् । एतस्याभ्यासमात्रेण निर्व्याधिर्जायते नरः ॥ १३६ ॥

पारा, गन्धक, सुहागा, नागकेशर, कपूर, जावित्री, लौंग, स्वर्णभस्म, हरएक २ तोला, अभ्रकभस्म ८ तोला, तालीशपत्र, मोथा, कूट, जटामांसी, दालचीनी, धाय के फूल, छोटी इलायची, त्रिकुटा, त्रिफला, गजपीपल, हरएक ४ तोले इन्हें पीपल के क्वाथ से घोटकर गोलियाँ बनावे । मात्रा-२रत्ती । अनुपान-दालचीनी का चूर्ण और शहद । इसके सेवन से मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डु, कामला, उदर, सूजन, आनाह, ज्वर, ग्रहणी, श्वास, खाँसी तथा यक्ष्मा आदि दूर होते हैं तथा अग्नि को बढ़ाता है ॥१२०-१३६॥

सिंहस्यादि वटी ।

वासादलरसैर्जातो मुद्रालेहः पलोन्मितः । कर्षोऽर्कमूलचूर्णस्य फणिफेनस्य तन्मितः ॥१३७॥ तदर्द्धं घनसारस्य सर्वं सम्मिश्र्य मर्दयेत् । द्विगुञ्जां वा त्रिगुञ्जां वा वटिकांकारयेत्ततः ॥ १३८ ॥ सिंहस्यादि वटी नाम सेव्या च मधुना सह । हन्यादुरःक्षतं श्वासं रक्तपित्तं गलामयान् ॥ १३९ ॥ रक्तातीसारयक्ष्माणौ रक्तप्रदरमेव च । कासं पञ्चविधं शोथं ग्रहणीञ्च तथा क्षयम् ॥ १४० ॥

सबसे पहिले अडूसे के पत्तों के रस को वाष्पयन्त्र में सुखावे । जब देखे कि वह गाढ़ा हो गया है और हाथ की मुद्रा के चिह्न उस पर पड़ आते हैं, तो उतार ले । यह मुद्रालेह ४ तोला आक की जड़ के छिलके का चूर्ण २ तो० शुद्ध अफीम १ तोला, कपूर ½ तोला, इन्हें इकट्ठा कर मिलाकर अच्छी प्रकार घोटे । तत्पश्चात् २ रत्ती या ३ रत्ती की गोली बनावे । इसे शहद के साथ सेवन कराना चाहिए। इसके सेवन से उरःक्षत, श्वास, रक्तपित्त, गलरोग, रक्तातीसार, यक्ष्मा, रक्तप्रदर, पाँचों प्रकार की खाँसी, सूजन, ग्रहणी, तथा क्षयरोग नष्ट होता है॥ १३७-१४० ॥

मरिचादि गुटिका

मरिचं कर्ष मात्रं स्यात्पिप्पली कर्ष संमितं अर्ध कर्षो यवक्षारः कर्ष युग्मंच दाडिमम् ॥ १४१ ॥ एतच्चूर्णीकृतं युंज्यादष्टकर्ष गुडेन हि । शाण प्रमाणं गुटिकां कृत्वा वक्त्रे विधीरयेत ॥ १४२ ॥ अस्याः प्रभावात सर्वेऽपि कासायांत्येव संक्षयम् ॥ १४३ ॥

काली मिर्च १ तोला पीपल १ तोला जवाखार ६ मासे और अनारदाना २ तोले । सबका चूर्ण कर आठ तोले गुडमें मिला कर तीन २ मासे की गोली बना लेवे । इस गोली को मुँह में रख लेने से सब प्रकार की खाँसी नष्ट हो जाती है। विशेष अनुभूत है। टिप्पणी ४-४ रत्ती की गोली ही उचित रहेगी आवश्यकता अनुसार १ से ४ गोली तक चूसनी चाहिए ॥ १४१-१४३ ॥

शशिप्रभा वटी ।

भुजङ्गफेनं मधुकं घनञ्च कोलास्थिशस्य समभागमेव । आदाय तोयेन विमर्द्य खल्ले द्विरक्तिमानां वटिकां विरच्य॥ १४४ ॥ तमांसिनैशानि शशिप्रभेव हन्याद्धि कासादिकनामवातम् । उदग्रमप्युच्चमदाहशूलं गलामयं चामययातनाञ्च १४५ ॥ तथैव सुरतापविधायिनीयं यतो नाराणां विविधार्तिभाजाम्। अतो

गुणज्ञै रुदिता भिषग्भि: शशिप्रभा सार्थकनामिकैव ॥ ४६ ॥

शुद्ध अफीम, मुलहठी, मोथा बेर की गुठली की गिरी, हरएक को बराबर मात्रा में इकट्ठा कर खरल में जल से घोटकर २ रत्ती की गोली बनावे यह गोली खाँसी आदि रोग, आमवात, अत्यन्त तीव्र दाह एवं शूल तथा गलरोग आदि पीडाओं को इस प्रकार नष्ट करती है जैसे चन्द्रमा की चाँदनी अन्धकार को नष्ट करती है। यह वटी अनिद्रा को दूर कर सुख की नींद लाती है ॥ १४४–१४६ ॥

सार्वभौम रस।

भृङ्गराभ्ररसे स्वर्णं लौहं वा यदि दीयते। तदायं सर्वरोगाणां सार्वभौमो न संशयः ॥ १४७ ॥

यदि यक्ष्माधिकार में वर्णित भृङ्गाराभ्र रस में स्वर्णभस्म या लौहभस्म मिला दी जाय तो उसका नाम सार्वभौम हो जाता है यह खाँसी आदि सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करता है ॥ १४७ ॥

पित्तकासान्तक रस।

भस्म ताम्राभ्रकान्तानां कासमर्दरसैर्बुधैः। मुनिजैर्वेतसाम्लैश्च दिनं मर्द्यं सुपिण्डितम् ॥ १४८ ॥ गुञ्जार्द्धं पित्तकासार्त्तो भक्षयेच्च दिनत्रयम्। कासश्वासाग्निमान्द्यं च क्षयञ्चापि निहन्त्यलम् ॥ १४९ ॥

ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, कान्तलौहभस्म, हरएक १ तोला, इन्हें कसौंदी की छाल, अगस्तिया तथा अम्लवेतस के रस से एक-एक दिन घोटकर आधी-आधी रत्ती की गोलियाँ बनावे। इसके सेवन से खाँसी, श्वास, मन्दाग्नि आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १४८–१४९ ॥

वासारिष्ट।

वासास्वरसमादाय मृतसञ्जीवनीसमम्। सम्मिश्र्य भिषगन्योऽन्यं वासरे शुभतारके ॥ १५० ॥ मृद्भाण्डे काचभाण्डे वा निरुद्ध्य तन्मुखं दृढम्। सप्ताहं स्थापयेत् तस्मात् पूतीकुर्याच्च वाससा ॥ १५१ ॥ वासारिष्टः सुसेव्योऽयं माषमात्रो दिने दिने। एतत्सेवी सुपथ्याशी देवभूदेवभक्तिमान् ॥ १५२ ॥ कासं श्वासं रक्तपित्तं कण्ठरोगमुरःक्षतम्[1]। अन्यांश्च विविधान् रोगान् जयेदाशु न संशयः ॥ १५३ ॥

अडूसे के पत्तों का रस तथा मृतसञ्जीवनी-सुरा, दोनों को बराबर मात्रा में मिलाकर काँचलिस मृत्पात्र में अथवा काँच की बोतल में डाल दे और मुख बन्द कर दे। सात दिन तक इसी प्रकार पड़ा रहने दे, पश्चात् गाढ़े वस्त्र से छानकर शीशियों में भर दे। मात्रा--१ माशा। इस अरिष्ट के सेवन से पथ्य सेवन करनेवाले रोगी की खाँसी, श्वास, रक्तपित्त, कण्ठरोग उर:क्षत तथा अन्य विविध रोग नष्ट होते हैं ॥ १५०–१५३ ॥

वसन्ततिलक रस।

हेम्नो भस्मकतोलकं घनं द्विगुणितं लौहास्त्रयः पारदश्चत्वारो नियतन्तु वङ्गयुगलं चैकीकृतं मर्दयेत्। मुक्ताविद्रुमयो रसेन समता गोक्षुरवासेक्षुणा, सर्वं वन्यकरीषकेण सुदृढं तप्तं पचेत् सप्तधा ॥१५४॥ कस्तूरीघनसारमर्दितरसः पश्चात् सुसिद्धो भवेत्, कासश्वासंसपित्तवातकफजित् पाण्डुक्षयादीन् हरेत्। शूलादिग्रहणीविषादिहरणो मेहाश्मरीविंशतिम् १५५॥ हृद्रोगापहरं ज्वरादिशमनं वृष्यं वयोवर्द्धनम्। श्रेष्ठं पुष्टिकरं वसन्ततिलकं मृत्युञ्जयेनोदितम् ॥ १५६ ॥

1--वायुकफान्तगार इति पाठान्तरम्।

स्वर्णभस्म १ तोला, अभ्रकभस्म २ तोला, लोहभस्म ३ तोला, पारद ४ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला, वङ्गभस्म २ तोला, मुक्ताभस्म ४ तोला और प्रवालभस्म ४ तोला एकत्र कर गोखुरू, अडूसा और ईख के रस में घोट कर जंगली कंडे की सात बार आँच दे। स्वाङ्गशीतल होने पर औषध को निकालकर उसमें कस्तूरी ४ तोला और कपूर ४ तोला मिलाकर रख ले। यह कास, त्रिदोष, पांडु, क्षय, शूल, ग्रहणी, विष, प्रमेह, पथरी, हृद्रोग तथा ज्वर आदि का नाशक है। वीर्य, तरुणता तथा पुष्टता करनेवाला है। यह वसन्ततिलक रस मृत्युञ्जय का कहा हुआ है। मात्रा—१ से २ रत्ती॥ १५४-१५६॥

चन्दनादि तैल।

चन्दनागुरुतालीशमञ्जिष्ठानखपद्मकम्। मुस्तकं च शटी लाक्षा हरिद्रा रक्तचन्दनम् ॥ १५७॥ एषां प्रतिपलैश्चूर्णैस्तैलमर्द्धं पचेद् भिषक्। भार्गी वासा कण्टकारी वाट्यालकगुडूचिका॥ १५८॥ एषां शतपले क्वाथ्ये समभागे जडीकृते। पक्त्वा तैलं प्रदातव्यं राजयक्ष्मविनाशनम्॥ १५९॥ कासघ्नं गरदोषघ्नं बलवर्णाग्निवर्द्धनम्। पापालक्ष्मीप्रशमनं ग्रहदोषविनाशनम्॥ १६०॥ आदौ कल्कं प्रदातव्यं गन्धद्रव्यं अतः परम्। तैलमुत्तार्य दातव्यं शिह्लकं कुंकुमं नखम्। गन्धचन्दनकर्पूरमेलाबीजं लवङ्गकम् १६१॥

तिलतैल ३ सेर १६ तोला, कल्कार्थ श्वेतचन्दन, अगर, तालीशपत्र, मँजीठ, नखी, पद्मसार, नागरमोथा, कचूर, लाख, हल्दी और रक्तचन्दन प्रत्येक चार-चार तोला, क्वाथार्थ भारंगी, अडूसे की जड़, कटेरी, खरेटी और गिलोय मिश्रित पाँच सेर, जल २५ सेर ४८ तोला, शेष ६ सेर ३२ तोला। उक्त कल्क और क्वाथ में तैल डालकर धीमी आँच से पाक करे। तैलपाकार्थ और जल डालने की आवश्यकता नहीं। इसी क्वाथ में सिद्ध कर ले। तैलपाक के अन्त में उतारने पर शिलारस, केसर, नखी, श्वेत चन्दन, कर्पूर और इलायची इन गन्धद्रव्यों को तैल में मिलावे। इस तैल के मर्दन करने से यक्ष्मा, कास, गरदोष, पाप, अलक्ष्मी तथा ग्रहदोष शान्त होता है और बल-वर्ण तथा अग्नि की वृद्धि होती है १५७-१६१

वासाचन्दनादि तैल।

चन्दनं रेणुका पूतिर्हयगन्धप्रसारणी। त्रिसुगन्धि कणामूलं नागकेशरमेव च ॥१६२॥मेदे द्वे च त्रिकटुकं रास्ना मधुकशैलजम्। शटी कुष्ठं देवदारु वनिता च विभीतकम्॥ १६३॥ एतेषां पलिकैर्भागैः पचेत्तैलाढकं भिषक्। वासायाश्च पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत्॥ १६४॥ लाक्षारसाढकं चैव तथैव दधि मस्तुकम्। चन्दनश्चामृता भार्गी दशमूलं निदिग्धिका॥ १६५॥ एतेषां विंशतिपलं जलद्रोणे विपाचयेत्। पादशेषे स्थिते क्वाथे तैलं तेनैव साधयेत्॥ १६६॥ कासाज्ज्वरान् रक्तपित्तं पाण्डुरोगं हलीमकम्। कामलां च क्षतक्षीणं राजयक्ष्माणमेव च॥ १६७॥ श्वासान् पञ्चविधान् हन्ति बलवर्णाग्निपुष्टिकृत्। तैलं वासाचन्दनादि कृष्णात्रेयेण भाषितम्॥ १६८॥

तिलतैल ६ सेर ३२ तोला, क्वाथार्थ अडूसे का मूल ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोला, शेष ६ सेर ३२ तोला, रक्तचन्दन, गिलोय, भारंगी, दशमूल और कटेरी आधा-आधा सेर, जल २५ सेर ४८ तोला, शेष ६ सेर ३२ तोला, दही का पानी और लाक्षारस ६ सेर ३२ तोला,

१—तैलार्द्धं पाग्रकं पचेदिति पाठान्तरम्।

कल्कार्थ रक्तचन्दन, सँभालू के बीज, कंजा, असगन्ध, गन्धप्रसारिणी, दालचीनी, इलायची, तेजपात, पिपरामूल, नागकेसर, मेदा, महामेदा, त्रिकटु, रास्ना, मुलेठी, शैलज (भूरिछरीला), कचूर, कूट, देवदारु, प्रियंगु और बहेड़ा चार-चार तोला, तैलकल्क और काथ को एकत्र कर यथाविधि पाक करके तैल सिद्ध करे। इस तैल का मर्दन करने से कासज्वर, रक्तपित्त, पांडुरोग, हलीमक, कामला, क्षतक्षय, राजयक्ष्मा तथा पाँच प्रकार के श्वासरोग शान्त होते हैं और बल, वीर्य तथा अग्नि की वृद्धि होती है ॥१६२-१६८॥

कासरोग में पथ्य।

स्वेदो विरेचनं छर्दि धूमपानं समाशिता। शालिषाष्टिकगोधूम श्यामाक यवकोद्रवाः ॥१६६॥ आत्मगुप्तामापमुद्गकुलत्थानां रसाः पृथक्। ग्राम्योदका नूप धन्वमांसानि विविधानिच ॥१७०॥ सुरापुरातनं सर्पिश्छागं चापि पयोघृतं। वास्तूकः वायसी शाकं वार्ताकुबाल मूलकम् ॥१७१॥ कण्टकारी काममर्दन जीवन्ती सुनिषण्णकम्। द्राक्षा बिम्बीमातुलुङ्गं पौष्करं वासकस्त्रुटि ॥१७२॥ गोमूत्रं लशुनं पथ्या कोष्णमुष्णोदकं मधु लाजा दिवस निद्रा च लघून्यन्नानियानिच ॥१७३॥ पथ्यामेतद् यथादोषमुक्तं कास गदातुरे ॥१७४॥

स्वेदन जुलाब वमन धूम्रपान, समाशन (नियमित समयपर परमित भोजन) शालिधान्य (अगहनी चावल) साठी चावल गेहूँ, सवाँ जौ कोदों कौंच के बीज उड़द मूंग कुलथी इन सब का अलग २ रस, बकरा आदि ग्राम्यपशु, मछली आदि जलचर आनूप (भैंसा आदि) धान्वन, मरुभूमिवासी पशुओं का अनेक-प्रकार का मांस, शराब, पुराना घी, बकरी का-घ घी, बथुआ का साग, मकोय का साग, बैंगन छोटी मूली, कटेरी, कसौंदी, जीवन्ती शिरिआरी का शाक, दाखर्कदूरी, बिजौरानींबू, कमलकंद, अड़ूसा, छोटीइलायची, गौमूत्र-लहसन, हरड़, त्रिकुटा, गर्म जल शहद, धान कीखील, दिनमें सोना लघुपाकी अन्न ये सब दोषानुसार कास में पथ्य हैं ॥ १६६-१६४ ॥

कास में अपथ्य।

वास्ति नस्यमसृङ्मोक्षंव्यायामं दन्तधर्षणम्। आतपं दुष्टपवनं रजोमार्ग निषेवणम् ॥१७५॥ विष्टम्भीनिविदाहीनि रुक्षाणि विविधानिच। शकृन्मूत्रोद्गारकास वमिवेगविधारणम् ॥१७६॥ मत्स्य कन्दं सर्षपं च तुम्बी फल मुपोदिकाम्। दुष्टाम्बु चान्नपानं च विरुद्धान्यशनानिच ॥१७७॥ गुरुशीतं चान्न पानंच कासरोगीपरित्यजेत् ॥१७८॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां कासाधिकारः समाप्तः।

वस्तिकर्म, नस्य रुधिर मोक्षण (सिंगी-नोश या नश्तर से रुधिर निकलवाना) कसरत, दातून मंजन धूपखाना दूषित वायु और धूल-का सेवन मार्ग रेतीली जगह पर घूमना विष्टम्भ विदाही रूखे अन्न का सेवन मलमूत्र डकार खाँसी वमन आदि का रोकना मछली जमीकंद आलू अरई आदि का सेवन सरसों-का शाक तूम्बीफल पोई शाक सेवन बिगड़े अन्नपान विपरीत भोजन, भारी और शीतल-अन्नों का खानापीना कास रोग में हानिकारक हैं ॥ १७५-१७८ ॥

भैषज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाख्यायां व्याख्यायां पं० सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां कासाधिकारः समाप्तः ॥

हिक्काश्वासाधिकारः।

हिक्काश्वासातुरे पूर्वं तैलाक्ते स्वेद इष्यते। स्निग्धैर्लवणयोगैश्च मृदुवातानुलोमनम्। ऊर्ध्वाधःशोधनं शक्ते दुर्बले शमनं मतम् ॥ १ ॥

पहिले हिक्कारोगी के उदर पर और श्वास रोगी के वक्षःस्थल पर लवणयुक्त तेल मर्दन कराकर स्निग्ध द्रव्यों से स्वेद करावे। बलवान् रोगी को हलका तथा वायु को अनुलोमन करानेवाला वमन-विरेचन करावे और दुर्बल रोगी को शमन औषध का सेवन करावे ॥ १ ॥

हिक्का में लेह।

कोलमज्जाञ्जनं लाजा तिक्ता काञ्चनगैरिकम्। कृष्णा धात्री सिता शुण्ठी काशीशं दधि नाम च ॥ २ ॥ पाटल्याः सफलं पुष्पं कृष्णाखर्जूरमुस्तकम्। षडेते पादिका लेहा हिक्काघ्ना मधुसंयुताः ॥ ३ ॥

(१) बेर के बीज की मींगी, सफेद सुरमा भस्म और धान की खील का चूर्ण। मात्रा १-२ माशा

(२) कुटकी और सोनागेरू का चूर्ण। मात्रा १-२ माशा

(३) पीपरि, आँवला, शक्कर और सोंठि। मात्रा २ माशा

(४) शुद्ध हीरा कसीस[1] और कैथा के गूदा का चूर्ण। मात्रा१-२ माशा

(५) पाढर के फल तथा पुष्पों का चूर्ण। मात्रा १-२ माशा

(६) पीपरि, खजूर और नागरमोथा का चूर्ण। मात्रा १-२ माशा

इन छः चूर्णों में से किसी एक चूर्ण को शहद के साथ सेवन करने से हिक्कारोग शान्त होता है ॥ २-३ ॥

१—भदरक के रस की भावना देने से हीराकसीस शुद्ध हो जाता है।

मधुकं मधुसंयुक्तं पिप्पली शर्करान्विता। नागरं गुडसंयुक्तं हिक्काघ्नं नावनत्रयम् ॥ ४ ॥

मुलेठी का चूर्ण मधु के साथ, पीपरि का चूर्ण चीनी के साथ तथा सोंठि का चूर्ण गुड़ के साथ मिश्रित कर नस्य (नास) लेने से हिचकी शान्त होती है ॥ ४ ॥

स्तन्येन मक्षिकाविष्ठानस्यं वाऽलक्तकाम्बुना ॥ ५ ॥

मक्खी की विष्ठा को नारी-दुग्ध के साथ अथवा लाक्षारस में मिश्रित कर नस्य करने से हिक्कारोग आराम होता है ॥ ५ ॥

योज्यं हिक्काभिभूताय स्तन्यं वा चन्दनान्वितम्। मधुसौवर्चलोपेतं मातुलुङ्गरसं पिबेत् ॥ ६ ॥

नारी-दुग्ध में रक्तचन्दन को घिसकर नस्य लेने से अथवा दो तोला नींबू के रस में छः माशे मधु और छः माशे काला नमक मिश्रित कर पीने से हिक्कारोग आराम होता है ॥ ६ ॥

हिक्कार्त्तस्य पयश्छागं हितं नागरसाधितम्। अप्यसाध्यां नयत्यस्तं हिक्कां क्षौद्रविलेहनम् ॥ ७ ॥

सोंठि के साथ बकरी का दुग्ध सिद्ध करके पीने से हिक्कारोग की निवृत्ति होती है तथा केवल शहद चाटने से भी हिक्का शान्त होती है ॥ ७ ॥

सद्य एव महारोगं कासमूलभवं रजः। माषचूर्णभवो धूमो हिक्कां हन्ति न संशयः ॥ ८ ॥

कास के मूल के चूर्ण का शहद के साथ सेवन करने से असाध्य हिक्कारोग तत्काल आराम होता है। उर्द के चूर्ण के धूम का पान करने से भी हिक्कारोग निःसंदेह आराम होता है ॥ ८ ॥

असाध्यां साधयेद्धिक्कां सिनर्पन्नाभरं

रजः । शर्करा मरिचं चूर्णं लीढं मधुयुतं मुहुः ॥ ९ ॥ निहन्ति प्रबलां हिक्कामसाध्यामपि देहिनाम् । हिक्काघ्नः कदलीमूलरसः पेयः सशर्करः ॥ १० ॥

१-२ माशा सफेद इलायची के चूर्ण को शक्कर के साथ खाने से असाध्य हिक्कारोग आराम होता है। शक्कर मिलाकर १ माशा मिर्च के चूर्ण को मधु के साथ बार बार खाने से प्रबल हिक्कारोग आराम होता है। ६ माशा केला के मूल के जल में शक्कर मिलाकर पान करे, तो हिक्कारोग आराम होता है ॥९--१०॥

कृष्णामलकशुण्ठीनां चूर्णं मधुसिता घृतम् । मुहुर्मुहुः प्रयोक्तव्यं हिक्काश्वासनिबर्हणम् ॥ ११ ॥

पीपरि, आँवला और सोंठ को समभाग एकत्र कर चूर्ण बनावे। इस २-२ माशा चूर्ण को शहद, घी (असमानमात्रा में) और शक्कर के साथ बार-बार सेवन करने से हिचकी और श्वासरोग आराम होता है ॥ ११ ॥

हिक्कां हरति प्रबलां श्वासमतिप्रवृद्धं जयति । शिखिपुच्छभूति पिप्पलीचूर्णं मधुमिश्रितं लीढम् ॥ १२ ॥

मयूरपिच्छ की भस्म २-२ रत्ती बनाकर उसमें सम भाग पीपरि चूर्ण मिलाकर शहद के साथ चाटने से प्रबल हिचकी और अत्यन्त बढ़ा हुआ श्वासरोग आराम होता है ॥ १२ ॥

अभया नागरकल्कं पौष्करयौवमूकमरिचकल्कं वा । तोयेनोष्णेन पिबेच्छ्वासी हिक्की च तच्छान्त्यै ॥ १३ ॥

हरड़ और सोंठ के कल्क अथवा पुष्करमूल, जवाखार और मिर्च के कल्क को उष्ण जल में घोलकर पीने से श्वास और हिक्कारोग शान्त होता है ॥ १३ ॥ मात्रा १-२ माशा ॥

माषं कालिकफलं चूर्णं लीढं चात्यन्तमिश्रितं मधुना । अचिराद्धरति श्वासं प्रबलामूर्ध्वहिक्काञ्च ॥ १४ ॥

एक माशा बहेड़े के चूर्ण को मधु के साथ सेवन करने से श्वास और प्रबल हिक्का रोग तत्काल नष्ट होते हैं ॥ १४ ॥

कनकस्य फलं शाखां पत्रं संकुट्य यत्नतः । शोषयित्वा च तद्धूमपानाच्छ्वासो विनश्यति ॥ १५ ॥

धतूरे के फल, शाखा और पत्र को कूटकर सुखा ले और फिर उसके धूम का पान करने से श्वासरोग नष्ट होता है ॥ १५ ॥

हरिद्रादि चूर्ण ।

हरिद्रां मरिचं द्राक्षां गुडं रास्नां कणां शटीम् । जग्धा तैलेन विलिहञ्छ्वासान् प्राणहरानपि ॥ १६ ॥

हलदी, मिर्च, मुनक्का, पुराना गुड़, रास्ना, पीपरि और कचूर के चूर्ण को कड़वे तेल के साथ सेवन करने से प्रबल श्वासरोग नष्ट होता है। मात्रा--२ माशा ॥ १६ ॥

गुडं कटुकतैलेन मिश्रयित्वा समं लिहेत् । त्रिसप्ताहप्रयोगेण श्वासं निर्मूलतो जयेत् ॥ १७ ॥

एक तोला पुराना गुड़ और एक तोला सरसों का तेल एकत्र मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से इक्कीस दिन में श्वास रोग समूल नष्ट हो जाता है ॥ १७ ॥

भृङ्ग्यादि चूर्ण ।

भृङ्गी कटुत्रयफलत्रयकण्टकारी भार्गी सपुष्करजटालवणानि पञ्च ॥ १८ ॥ चूर्णं पिबेदशिशिरेण जलेन हिक्काश्वासोर्ध्ववातरसनारुचिपीनसेषु ॥ १९ ॥

काकड़ासींगी, त्रिकटु, त्रिफला, कटेरी भारंगी, पुष्करमूल, जटामांसी और पञ्चलवण का चूर्ण बनाकर दो माशा उष्ण जल के साथ सेवन करने से हिक्का, ऊर्ध्वश्वास और काश आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १८--१९ ॥

हिक्काश्वासचिकित्सा ।

माषं कलिकफलचूर्णं लीढं चात्यन्तमिश्रितं मधुना । अचिराद्धरति श्वासं प्रबलामुद्ध्वंसिकाञ्चैव ॥ २० ॥

एक माशे बहेड़े के चूर्ण को शहद के साथ अच्छी प्रकार मिलाकर सेवन करने से शीघ्र ही हिक्का तथा श्वास शान्त होते हैं ॥ २० ॥

शृङ्गीमहौषधकणाघनपुष्कराणां चूर्णं शटीमरिचशर्करया समेतम् । क्वाथेन पीतममृताद्दपपञ्चमूल्याः श्वासं त्र्यहेण शमयेदति दीपमुग्रम् ॥ २१ ॥

काकड़ासिंगी, सोंठ, पीपल, मोथा, पोहकरमूल, कचूर, काली मिर्च तथा खाँड़ इनके एक माशे चूर्ण को गिलोय, अडूसा तथा बृहत्पञ्चमूल के क्काथ के साथ सेवन करने से तीन दिन में प्रबल श्वासरोग नष्ट होता है ॥ २१ ॥

बिल्वाटरूपदलवारिसमूल शुक्लदण्डोत्पलदलजलं कटुतैलमिश्रम् । भार्गीगुडो यदि च यत्र हतप्रभावस्तं श्वासमाशु विनिहन्ति महाप्रभावः ॥ २२ ॥

बिल्ववासकयोः पत्रस्य शुक्लदण्डोत्पलपत्रस्य च स्वरसः कटुतैलेन पेयः ॥

बेल, अडूसा तथा सफ़ेद दण्डोत्पल के पत्तों के रस को सरसों के तेल में मिलाकर सेवन करने से श्वासरोग नष्ट होता है । जिस श्वास में भार्गी, गुड़ आदि से भी लाभ नहीं होता वहाँ पर भी यह योग अत्यन्त लाभदायक है ॥ २२ ॥

कूष्माण्डचूर्णं ।

कूष्माण्डकानां चूर्णन्तु पेयं कोष्णेन वारिणा । शीघ्रं प्रशमयेच्छ्वासं कासं चैव सुदारुणम् ॥ २३ ॥

२ माशा पेठे के चूर्ण को गुनगुने गरम जल के साथ पीने से शीघ्र ही कठिन श्वास तथा खाँसी अच्छी होती है ॥ २३ ॥

कृष्णासैन्धवचूर्णं स्वरसेन शृङ्गवेरस्य । यो लेढि शयनकाले स जयति सप्ताहतः श्वासान् ॥ २४ ॥

जो रोगी पीपल तथा सेंधा नमक के १ माशा चूर्ण को अदरख के रस के साथ सोने के समय सेवन करता है, उस, रोगी का श्वास ७ दिन में ही अच्छा हो जाता है ॥ २४ ॥

श्वास में गन्धक का प्रयोग ।

गन्धकं मरिचं साज्यं श्वासकासक्षयापहम् । गन्धकं घृतयोगेन श्वासकासक्षयापहम् ॥ २५ ॥

शुद्ध गन्धक तथा काली मिर्च के चूर्ण को घृत से अथवा केवल गन्धक चूर्ण को घृत के साथ सेवन करने से श्वास, खाँसी तथा क्षय रोग नष्ट होता है ॥ २५ ॥

दशमूलीकषायस्तु पुष्करेणावचूर्णितः । कासश्वासप्रशमनः पार्श्वहृच्छूलनाशनः ॥

दशमूल के क्काथ में पोहकरमूल डालकर सेवन करने से श्वास, खाँसी, पसवाड़े का दर्द तथा हृदय का शूल आदि रोग अच्छे होते हैं ॥ २६ ॥

भार्गी गुड़ ।

शतं संगृह्य भार्ग्यास्तु दशमूल्यास्तथा शतम् । शतं हरीतकीनां च पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥ २७ ॥ पादावशेषे तस्मिंस्तु रसे वस्त्रपरिस्रुते । आलोड्य च तुलां पूतां गुडस्य त्वभयां ततः ॥ २८ ॥ पुनः पचेत् मृदावग्नौ यावल्लेहत्वमागतम् । शीते च मधुनश्चात्र षट् पलानि प्रदापयेत् ॥ २९ ॥ त्रिकटुत्रिसुगन्धञ्च पलिकानि पृथक् पृथक् । कर्षद्वयं यवक्षारं संचूर्ण्य प्रक्षिपेत्ततः ॥ ३० ॥ भक्षयेदभयामेकां लेहस्य कर्षकं लिहेत् । श्वासं सुदारुणं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा ॥ ३१ ॥ स्वरवर्णप्रदो ह्येष जर-

राग्नेश्च दीपनः ॥ ३२ ॥ पलोल्लेखागते मानेन द्वैगुण्यमिहेष्यते। हरीतकीशतस्यात्र प्रस्थत्वादाढकं जलम् ॥ ३३ ॥

भारंगी ५ सेर, दशमूल कुल मिलकर ५ सेर, ढीली पोटली में बद्ध हरीतकी ६४ तोला, जल १ मन ३ सेर १६ तोला, शेष १० सेर ६४ तोला रहने पर उतार कर छान ले। पश्चात् इस क्काथ में उक्त हरीतकी और पाँच सेर पुराना गुड़ मिलाकर पाक करे। गाढ़ा होने पर उसमें त्रिकटु, दालचीनी, तेजपात और इलायची का चूर्ण चार-चार तोला और जवाखार २ तोला मिलाकर उतार ले। शीतल होने पर उसमें २४ तोले मधु मिलाये। एक हरीतकी और एक तोला अवलेह प्रतिदिन खाय। इस भार्गी गुड़ के सेवन से प्रबल श्वास और पञ्चविध कास नष्ट होते हैं तथा यह स्वर और वर्ण का देनेवाला और जठराग्नि का बढ़ानेवाला है। पल का मान होने पर यहाँ दुगना लेना योग्य नहीं है। सौ हरीतकी का एक प्रस्थ होने से एक आढक जल में पकाना चाहिए २७-३३

टिप्पणी—सबका एक साथ क्काथ करने से सुविधा रहती है, इसलिये ऊपर का परिमाण लिखा है।

भृङ्गीगुडघृत १

कण्टकारीद्वयं वासामृता पञ्चपलं पृथक्। शतावर्याः पञ्चदश भार्ग्या दश पलानि च ॥ ३४ ॥ गोक्षुरं पिप्पलीमूलं पृथक् पलसमन्वितम्। पाटला त्रिपलञ्चैव चतुर्गुणजले पचेत् ॥ ३५ ॥ चतुर्भागावशिष्टं तु कषायमवतारयेत्। पुरातनगुडस्यात्र पलानि दश दापयेत् ॥ ३६ ॥ घृतस्य पञ्च दत्त्वा च दत्त्वा दशपलं पयः। सर्वमेकीकृतं पक्त्वा चूर्णमेषां विनिःक्षिपेत् ॥ ३७ ॥ भृङ्गी द्वितोलकं जातीफलं पत्रं त्रितोलकम्। चतुस्तोलं लवङ्गं च तुगाक्षीरी पृथक्पृथक् ॥३८॥ गुडत्वगेले च तथा तोलकद्वयमानिके। कुष्ठतोलचतुष्कञ्च शुण्ठ्यास्तोलकसप्तकम् ॥ ३९ ॥ पिप्पल्याः पलमेकं च तालीशं तोलकत्रयम्। जातीकोषं तोलकैकं शीते च मधुनः पलम् ॥ ४० ॥ ततः खाद्यं च कर्षैकमनुपानविधिं शृणु। काष्ठमार्जारिका चूर्णं मरिचं तच्चतुर्गुणम् ॥ ४१ ॥ एकीकृत्य वटीं यत्नात् कुर्यान्माषमितां पृथक् ॥४२॥ तासामेकां चर्वयित्वा पिबेदनुजलं कियत् ॥ ४३ ॥ भृङ्गी गुडघृतं नाम सर्वरोगहरं परम्। अपि वैद्यशतैस्त्यक्तं श्वासं हन्ति सुदारुणम् ॥ ४४ ॥ कासं पञ्चविधं हन्ति विविधोपद्रवान्वितम्। रक्तपित्तं क्षयञ्चैव स्वरभङ्गमरोचकम् ॥ ४५ ॥ विशेषाच्चिरकालोत्थं श्वासं हन्ति सुदुस्तरम् ॥ ४६ ॥

कटेरी, बड़ी कटेरी, अडूसे के मूल की छाल और गिलोय २० तोला, शतावरि ६० तोले, भारंगी ४० तोले, गोखुरू और पिपरामूल चार चार तोले, पाढ़र की छाल १२ तोले एकत्र कर सब मिले हुए द्रव्यों के चतुर्गुण जल में पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर उतारकर छान ले। पश्चात् इस क्काथ में पुराना गुड़ ४० तोले, घृत २० तोले और दुग्ध ४० तोले मिलाकर पाक करे। गाढ़ा होने पर काकड़ासिंगी २ तोला जायफल ३ तोला, तेजपात ३ तोला, लौंग ४ तोला, वंशलोचन ४ तोला, दालचीनी २ तोला, इलायची २ तोला, कूट ४ तोला, सोंठ ७ तोला, पीपरि ४ तोला, तालीशपत्र ३ तोला और जावित्री १ तोला चूर्ण कर मिला के उतार ले। शीतल होने पर मधु चार तोला मिला देना चाहिए। निम्नलिखित अनुपान के साथ एक तोला परिमित इस औषध का सेवन करे। काष्ठमार्जारिका (बिदारीलता) का चूर्ण एक भाग और मिर्च का चूर्ण चार

भाग एकत्र घोटकर एक-एक माशे की गोली बनावे । औषध सेवन के पश्चात् यह एक गोली खाकर थोड़ा जल पी ले । इसका सेवन करने से सैकड़ों वैद्यों से परित्यक्त चिरकाल का प्रबल श्वास तथा उपद्रवयुक्त पाँच प्रकार के कास, क्षय, स्वरभंग, अरुचि और रक्तपित्तरोग शान्त होते हैं ॥३४—४६॥

टिप्पणी—अनुपान के अभाव में तिंतिडीकपत्र का क्वाथ कालीमिर्च और हींग के चूर्ण का प्रक्षेप देकर सेवन करना चाहिए।

भार्गीशर्करा ।

भार्ग्याः शतार्द्धं वासायाः कण्टकार्याश्च पाचयेत् । तुलामितंजलं दत्त्वा निशाचरचतुष्टयम् ॥ ४७ ॥ जलाढके पचेत्तेन चतुर्थमवशेषयेत् । वस्त्रपूतञ्च तत् सर्वं सितामस्थं ततः क्षिपेत् ॥ ४८ ॥ उष्णेऽवतारिते तत्र चूर्णानीमानि दापयेत् । त्रिकटु-त्रिफला मुस्तं तालीशं नागकेशरम् ॥४६॥ भार्गी वचा श्वदंष्ट्रा च त्वगेलापत्रजीरकम् । यमानी चाजमोदा च वांशी कौलत्थजं रजः ॥ ५० ॥ कट्फलं पौष्करं शृङ्गी कोलमात्रं क्षिपेत्ततः । शीते क्षौद्रं प्रदातव्यं कुडवार्द्धं शुभे दिने । लिहेत्कोलमितं नित्यं भातर्वीक्ष्यानुपानतः ॥ हन्ति पञ्चविधं कासंश्वासमेव सुदारुणम् ॥५१॥ यक्ष्माणं हन्ति हिक्काञ्च ज्वरं जीर्णं व्यपोहति । रोगानेतान्निहन्त्याशु बलपुष्टचग्निवर्द्धनम् ॥ ५२ ॥

भारंगी २४ तोले, अडूसा के मूल की छाल २४ तोले, कटेरी २४ तोले एकत्र कर पाँच सेर जल में पकावे, चतुर्थांश शेष रहने पर उतार कर छान ले । निशाचर[1] (ग्रन्थिपर्ण विशेष) २ तोला लेकर ३ सेर १६ तोला जल में पकावे । चतुर्थांश शेष रहने पर उतार ले । दोनों क्वाथों को एकत्र कर उसमें ६४ तोला शक्कर मिलाकर पाक करे । गाढ़ा होने पर उतार ले । पश्चात् उसमें त्रिकटु, त्रिफला, नागरमोथा, तालीशपत्र, नागकेसर, भारंगी का मूल, वच, गोखुरू, दालचीनी, इलायची तेजपात, जीरा, अजवाइन, अजमोद, वंशलोचन, कुलथी, कायफल, पुष्करमूल और काकड़ासिंगी का चूर्ण छः माशा मिलावे । रोग की विवेचना कर उचित अनुपान के साथ आधा तोला से एक तोला पर्यन्त मात्रा निश्चित करे । इसका सेवन करने से प्रबल श्वास, कास, यक्ष्मा, हिक्का और जीर्णज्वर शान्त होता है । बल की वृद्धि और शरीर की पुष्टि भी होती है ॥ ४७—५२ ॥

[1]—बंगाल के वैद्य निशाचर शब्द से चिमगादड़ का मांस ग्रहण करते हैं ।

डामरेश्वर अभ्रक ।

मेचकं पलमितं मृतमभ्रं ब्रह्मयष्टिकनकामृतवासाः । कासमर्दघननिम्बकचव्यं ग्रन्थिकं दहनमूलसमेतम् ॥ ५३ ॥ एकशश्च पलिकैरिह सत्त्वैर्मर्दितं सुवलितं गुरुहिक्काम् । श्वासकासमुदरं चिरमेहान् पाण्डुगुल्मयकृतं गलरोगम् ॥ ५४ ॥ शोधमोहनयनास्यजरोगं यक्ष्मपीनसगरं बलसादम् । गण्डमण्डलवमिभ्रमिदाहं प्लीहशूलविषमज्वरकृच्छ्रम् ॥ ५५ ॥ हन्ति वातकफपित्तमशेषं डामरेश्वरमिदं महदभ्रम् ॥ ५६ ॥

हिक्कायां श्वासे च प्रशस्तम् ।

४ तोले अभ्रक भस्म को भारंगी, धतूरे के पत्र, गिलोय, अडूसा, कसौंदी के पत्र, वनजीर की छाल, चव्य, पिपरामूल और चीते की जड़ के स्वरस अथवा क्वाथ में प्रत्येक चार तोला खरल करके रख ले । मधु के साथ एक से चार रत्ती तक बलानुसार सेवन करे । इस 'डामरेश्वर अभ्रक' का सेवन करने से प्रबल हिक्का, श्वास, कास, उदर, प्राचीन प्रमेह, पांडु, यकृत, गल

रोग, शोथ, मोह नेत्ररोग, मुखरोग, यक्ष्मा, पीनस, गरदोष, निर्बलता, गंडमाला, वमन, भ्रम, दाह, प्लीह, शूल, विषमज्वर, मूत्रकृच्छ्र और वातपित्तकफजन्य रोग शान्त होते हैं ॥ ४३--५६ ॥

महाश्वासारि लौह।

कर्षद्वयं लौहचूर्णं कर्षार्द्धमभ्रमेव च। सिता कर्षद्वयञ्चैव मधु कर्षद्वयं तथा॥५७॥ त्रिफला मधुकं द्राक्षा कणा कोलास्थि-वंशजा। तालीशपत्रं वैडङ्गमेलापुष्कर-केशरम्॥ ५८॥ एतानि श्लक्ष्णचूर्णानि कर्षार्द्धञ्च समांशकम्। लौहे च लौह-दण्डेन मर्दयेत् प्रहरद्वयम्॥ ५९॥ ततो मात्रां लिहेत् क्षौद्रैर्बुद्ध्वा दोषबला-बलम्। इदं श्वासारिलौहञ्च महाश्वासं विनाशयेत्॥ ६०॥ कासं पञ्चविधञ्चैव रक्तपित्तं सुदारुणम्। एकजं द्वन्द्वजञ्चैव तथैव सान्निपातिकम्॥ निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा॥ ६१॥

लोहभस्म २ तोला, अभ्रकभस्म छः माशा खाँड २ तोला, मधु २ तोला तथा त्रिफला, मुलेठी, मुनक्का पीपरि, बेर की गुठली की मींगी, वंशलोचन, तालीशपत्र, विडङ्ग, इलायची, पुहकरमूल और नागकेसर का चूर्ण आधा-आधा तोला एकत्र कर लोहपात्र में लोहदण्ड से दो प्रहरपर्यन्त खरल करके रख ले। दोषों का बलाबल जानकर मधु के साथ सेवन करे। यह लोह श्वास, पाँच-प्रकार के कास और रक्तपित्त आदि रोगों को आराम करता है। मात्रा ४ रत्ती से ८ रत्ती तक ॥ ५७--६१ ॥

पिप्पल्यादिलौह।

पिप्पल्यामलकी द्राक्षा कोलास्थि मधु-शर्करा। विडङ्गं पुष्करैर्युक्तं लौहं हन्ति सुदारुणम्। हिक्कां छर्दिं महाश्वासं त्रिरा-त्रेण न संशयः॥ ६२॥ सर्वं चूर्णं समं लौहं हिक्कायामति प्रशस्तम्।

पीपरि, आँवला, मुनक्का, बेर के बीजों की मींगी, मुलेठी, शक्कर, वायविडङ्ग और पुहकरमूल का चूर्ण एक-एक तोला, आठ तोला लोहभस्म एकत्रकर जल के साथ घोटकर गोली बनावे। दोषानुसार उचित अनुपान के साथ सेवन करने से यह लौह हिक्का, वमन और प्रबल श्वास को तीन रात में निःसंदेह नष्ट कर देता है। मात्रा-दो रत्ती ॥ ६२ ॥

श्वासकुठार रस।

रसं गन्धं विषं टङ्कं शिलोषणकटुत्रि-कम्। सर्वं संमर्द्य दातव्यो रसः श्वास-कुठारकः॥ ६३॥ वातश्लेष्मसमुद्भूतं कासं श्वासं स्वरक्षयम्। नाशयेन्नात्र सन्देहो वृत्तमिन्द्राशनिर्यथा॥ ६४॥

अत्र मरिचस्य भागद्वयं पुनरुक्तत्वात् मात्रा रक्तिमिता। वृद्धवैद्योपदेशात् आर्द्र-करसानुपानम्।

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक विष (सींगिया), सोहागा की खील, मैनशिल, मिर्च और त्रिकटु को समान भाग एकत्र कर जल में घोटकर एक-एक रत्ती की गोली बनावे। अदरख के रस और मधु के साथ सेवन करे। यह रस वात- कफजन्य कास, श्वास और स्वरभङ्ग को निःसंदेह नष्ट करता है ॥ ६३--६४ ॥

तन्त्रान्तरोक्त श्वासकुठार रस।

रसं विषं समं गन्धं टङ्कनं समनः-शिलम्। एतानि समभागानि मरिचश्चाष्ट-टङ्कणात्॥ ६५॥ टङ्कपट्कं द्विकटुकं खल्ले कृत्वा विचूर्णयेत्। रसः श्वास-कुठारोऽयं विषमश्वासकासजित्॥ ६६॥ प्रतिश्यायंक्षतक्षीणमेकादशविधंक्षयम्। हृद्रोगं पार्श्वशूलञ्च स्वरभेदञ्च दारुणम् ६७ सन्निपातं तथा तन्द्रां प्रमेहांश्च विनाश-

येत्। गता संज्ञा यदा पुंसां तदा नस्यं प्रदापयेत् ॥ ६८ ॥ घ्रापयेन्नासिकारन्ध्रे संज्ञाकारणमुत्तमम् । सूर्यावर्त्तार्द्धभेदौ च दुःसहाञ्च शिरोव्यथाम्।अनुपानं पर्णरस-मार्द्रकस्य रसं तथा ॥ ६६ ॥

टङ्कणादष्टगुणं मरिचं षड्गुणा पिप्पली शुण्ठी च।

पारा, विष (सींगिया), शुद्ध गन्धक, सोहागा फूला हुआ और मैनशिल एक-एक तोला, मिर्च आठ तोला, पीपरि छः तोला और सोंठ छः तोला एकत्र कर जल में घोटकर एक-एक रत्ती की गोली बनावे। पान के रस अथवा अदरख के रस के साथ सेवन करने से यह रस श्वास, कास, प्रतिश्याय, यक्ष्मा, क्षय, हृद्रोग, पार्श्वशूल, स्वरभेद, सन्निपात, तन्द्रा और प्रमेह को नष्ट करता है। रोगी को होश में लाने के लिए इसकी नस्य देनी चाहिए। इस नस्य से सूर्यावर्त्त अर्द्धावभेदक (आधासीसी) और सिर की असह्य पीड़ा नष्ट होती है॥६२--६६॥

श्वासभैरव रस।

रसं गन्धं विषं व्योषं मरिचञ्चव्य-चित्रकम् । आर्द्रकस्यरसेनैव संमर्द्य वटिकां ततः ॥७० ॥ गुञ्जाद्वयप्रमाणेन खादेत्तोयानुपानतः । स्वरभेदं निहन्त्याशु श्वासं कासं सुदुर्जयम् ॥ ७१ ॥

व्योषस्थाने टङ्कनमिति कौमुद्याम्। अत्रापि मरिचस्य भागद्वयम्।

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, विष (शुद्ध सींगिया), त्रिकटु,[1] मिर्च, चव्य और चीते का मूल सम भाग लेकर अदरख के रस में घोटकर दो-दो रत्ती की गोली बनावे। जल के साथ सेवन करे। इसका सेवन करने से श्वास, कास और स्वरभेद-रोग निवृत्त होता है॥ ७०--७१ ॥

1-रसकौमुदी में त्रिकटु के स्थान पर सुहागा लिखा है। यहाँ मिर्च के दो भाग लेने चाहिये एक त्रिकटु के लिये दूसरे मिर्च स्वतंत्र है ही।

सूर्यावर्त्त रस।

सूतकं गन्धको मर्द्यो यामैकं कन्यका-द्रवैः। द्वयोस्तुल्यं ताम्रपात्रं पूर्वकल्केन लेप-येत् ॥ ७२ ॥ दिनैकं वालुकायन्त्रे पाच्य-मादाय चूर्णयेत्। सूर्यावर्त्तरसो ह्येष गुञ्जार्द्धं श्वासजिद्भवेत् ॥७३ ॥ इन्द्रवारुणिका-मूलं देवदारुकटुत्रयम्। शर्करासहितं खादे-दूर्ध्वश्वासनिवृत्तये ॥ ७४ ॥

एतेषां चूर्णं यथाबलं लेह्यं कस्य चिन्मते क्वाथः।

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक सम भाग एकत्र कर घृतकुमारी के रस में एक प्रहर पर्यन्त घोटकर उससे दुगने तौल के ताँबे के पात्र में लेप करके एक दिन वालुका-यन्त्र में पाक करे, पश्चात् उस पात्र को निकाल कर चूर्ण कर ले। प्रतिदिन आधी रत्ती इस रस का सेवन करके इन्द्रायण की जड़ देवदारु और त्रिकटु के चूर्ण अथवा क्वाथ का सेवन शक्कर मिलाकर करना चाहिए। यह रस ऊर्ध्वश्वास को निवृत्त करता है॥ ७२--७४ ॥

श्वासचिन्तामणि।

द्विकर्षं लौहचूर्णस्य तदर्द्धं गन्धमभ्र-कम्। तदर्द्धं पारदं ताप्यं पारदार्द्धेन मौक्ति-कम् ॥ ७५ ॥ शाणमानं हेमचूर्णं सर्वं संमर्द्य यत्नतः। कण्टकारीरसैश्चापि शृङ्ग-वेररसैस्तथा ॥ ७६ ॥ छागीक्षीरेण मधुकैः क्रमेण मतिमान् भिषक्। गुञ्जाद्वयमितं चास्य विभीतकसमन्वितम्। भक्षयेत् श्वासकासार्तो राजयक्ष्मनिपीडितः ॥७७॥

लौहभस्म २ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, शुद्ध पारा आधा तोला, स्वर्णमाक्षिक आधा तोला, मुक्ताभस्म ३ माशे

और स्वर्णभस्म १ मासे एकत्र कर क्रमशः कटेरी के रस में, अदरख के रस में तथा बकरी के दूध में और मुलेठी के क्वाथ में खरल करके दो-दो रत्ती की गोली बनावे। मधु और बहेड़ा के चूर्ण के साथ प्रतिदिन सेवन करे तो श्वास, कास और यक्ष्मारोग नष्ट होता है ॥ ७१--७७ ॥

बृहन्मृगाङ्कवटी।

हेमायस्कान्तसूताभ्रप्रवालमौक्तिकानि च। विभीतककषायेण सर्वं भस्मावयेत् त्रिधा ॥ ७८ ॥ एरण्डपत्रमध्यस्थं धान्यराशौ दिनत्रयम्। स्थापयित्वा तदुद्धृत्य द्विगुञ्जां वटिकां चरेत् ॥ ७९ ॥ विभीतकास्थिमज्जा च माषार्द्धा मधुसंयुता। अनुपानमिह प्रोक्तः क्वाथो वाक्षसमुद्भवः ॥ ८० ॥ क्षयं हन्ति तथा कासं यक्ष्माणं श्वासमेव च। स्वरभेदं ज्वरं मेहं सर्वामयविनाशकृत् ॥ ८१ ॥

स्वर्णभस्म, अयस्कान्त (लौहविशेष) भस्म, रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, प्रवालभस्म, मुक्ताभस्म, इन्हें इकट्ठा मिलाकर बहेड़े के क्वाथ से ३ बार भावना दे, पश्चात् अण्डी के पत्ता में लपेटकर धान्यराशि में ३ दिन तक दबा रक्खे, तदनन्तर २ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान--बहेड़े की गुठली की गिरी आधा माशा अथवा बहेड़े का क्वाथ। यह वटी क्षय, खाँसी, यक्ष्मा, श्वास, स्वरभेद, ज्वर तथा प्रमेह आदि सब रोगों को नष्ट करती है ॥ ७८--८१ ॥

नागार्जुनाभ्र।

सहस्रपुटनै शुद्धं वज्राभ्रमर्जुनत्वचः। सत्वैर्विमर्दितं सप्तदिनं खल्ले विशोषितम् ॥ ८२ ॥ छायाशुष्का वटी कार्या नाम्ना नागार्जुनाभ्रकम्। हृद्रोगं सर्वशूलार्शोहृल्लासच्छर्दरोचकान् ॥ ८३ ॥ अतीसारमग्निमान्द्यं रक्तपित्तं क्षतक्षयम्। शोथोदराम्लपित्तञ्च विषमज्वरमेव च। हन्त्यन्यानपि रोगांश्च बल्यं वृष्यं रसायनम् ८४

सहस्रपुटी वज्राभ्रकभस्म को अर्जुन की छाल के क्वाथ से खरल में सात दिन घोट करके एक-एक रत्ती की गोली बना छाया में सुखा ले। इसके सेवन से हृदय का रोग, सम्पूर्ण शूल, बवासीर, जी मचलाना, वमन, अरुचि, अतीसार, मन्दाग्नि, रक्तपित्त, क्षतक्षय, सूजन, उदररोग अम्लपित्त विषमज्वर तथा अनेक भाँति के रोग नष्ट होते हैं। यह बलकारक, वीर्यवर्द्धक तथा रसायन है ॥ ८२--८४ ॥

हिंस्राद्य घृत।

हिंस्राविडङ्गपूतीकत्रिफलाव्योषचित्रकैः। द्विक्षीरं सर्पिषः प्रस्थं चतुर्गुणजलान्वितम् ॥ ८५ ॥ कोलमात्रैः पचेत्तद्धि श्वासकासौ व्यपोहति। अर्शांस्यरोचकं गुल्मं शकृद्भेदं क्षयं तथा ॥ ८६ ॥

घी १२८ तोला, दूध ३ सेर १६ तोला, कल्क द्रव्य-हिंस्रा (कण्टकपालीलता या कटेरी छोटी), बायविडङ्ग करञ्ज, त्रिकुटा, चित्रक, हरएक १ तोला। इस घृत का विधिपूर्वक पाक करके सेवन करने से श्वास, खाँसी, बवासीर, अरुचि, गुल्म, मलभेद तथा क्षय आदि रोग नष्ट होते हैं। मात्रा--आधा तोला ॥ ८५--८६ ॥

तेजोवत्याद्य घृत।

तेजोवत्यभया कुष्ठं पिप्पली कटुरोहिणी। भूतीकं पौष्करं मूलं पलाशश्चित्रकं शटी ॥ ८७ ॥ सौवर्चलं तामलकी सैन्धवं विल्वपेशिका। तालीशपत्रं जीवन्ती वचा तैरक्षसम्मितैः ॥८८॥ हिंगुपादैर्घृतप्रस्थं पचेत्तोये चतुर्गुणे। एतद्यथाबलं पीत्वा हिक्काश्वासौ जयेन्नरः ॥ शोथानिलार्शोग्रहणीहृत्पार्श्वरुज एव च ॥८९॥

घृत १२८ तोला, जल ६ सेर ३२ तोला, कल्क के लिये तेजोवती, हरड़, कूठ, पीपल,

कुटकी, गन्धतृण, पोहकरमूल, पलाश की जड़ की छाल, चित्रक, कचूर, सौंचल नमक, भुइँ-आँवला, सेंधानमक, बेल के फल की गिरी, तालीशपत्र, जीवन्ती, वच हरएक २ तोला, हींग आधा तोला। मात्रा—½ तोला। इसके सेवन से हिक्का, श्वास, सूजन, वातार्श, ग्रहणी, हृद्रोग आदि नष्ट होते हैं ॥८७-८९॥

कनकासव।

संक्षुद्य कनकं शाखामूलपत्रफलैः सह। ततश्चतुःपलं ग्राह्यं वृषमूलत्वचस्तथा॥ ९०॥ मधुकं मागधी व्याघ्री केशरं विश्व भेषजम्। भार्गी तालीशपत्रञ्च सञ्चूर्ण्येषां पलद्वयम्॥ ९१॥ संगृह्य धातकीप्रस्थं द्राक्षायाः पलविंशतिम्। जलं द्रोणद्वयं दत्त्वा शर्करायास्तुलां तथा॥ ९२॥ क्षौद्रस्यार्द्धतुलाञ्चापि सर्वं संमिश्र्य यत्नतः। भाण्डे निक्षिप्य चावृत्य विदध्यान्मासमात्रकम्॥ ९३॥ निहन्ति निखिलान् श्वासान् कासं यक्ष्माणमेव च। क्षतक्षीणं ज्वरं जीर्णं रक्तपित्तमुरःक्षतम्॥ ९४॥

शाखा, मूल, पत्र और फल सहित कुटा हुआ धतूरा १६ तोले, अरूसा के मूल की छाल १६ तोले, मुलेठी, पीपरि, कटेरी, नागकेसर, सोंठ, भारगी और तालीशपत्र का चूर्ण ८ ८ तोले, धाय के फूल ६४ तोले, मुनक्का ८० तोले, जल २२ सेर ४८ तोला, शक्कर ५ सेर, मधु २॥ सेर ले। इन सब वस्तुओं को अच्छी तरह से मिलाकर एक पात्र में बन्द करके रख दे। एक मास के बाद छानकर रख ले। इसका सेवन करने से हर प्रकार का श्वास, कास, यक्ष्मा, क्षतक्षीणता, जीर्णज्वर, रक्तपित्त और उर-क्षत रोग नष्ट होता है। इसकी मात्रा—३ माशा से १ तोला तक की है॥ ९०—९४॥

हिक्कारोग में पथ्य।

स्वेदनं वमनं नस्यं धूमपानं विरेचनम्। निद्रा स्निग्धानि चान्नानि मृदूनि लवणानि च॥ ९५॥ जीर्णाः कुलत्था गोधूमाः शालयः षष्टिकाय वाः एणतित्तिरिलावाद्या जाङ्गला मृगपक्षिणः॥ ९६॥ पक्वं कपित्थं लशुनं पटोलं नालमूलकम्। पौष्करं कृष्ण तुलसी मदिरा नलदाम्बु च॥ ९७॥ उष्णोदकं मातुलुङ्गं माक्षिकं सुरभी जलं। अन्न पानानि सर्वाणि वात श्लेष्महराणि च॥ ९८॥ शीताम्बुसेकः सहसा त्रासो विस्मापनंभयम् क्रोधो हर्षः प्रियोद्वेग प्राणायाम निषेवणम्॥ ९९॥ दग्ध सिक्तमृदा घ्राणं कर्चैर्धारा जलार्पणम् नाभ्यूर्ध्वं घातनं दाहो दीपदग्धहरिद्रया॥ १००॥ पादयोर्द्व्यङ्गुलान्नाभेरूर्ध्वं चेष्टानि हिक्किनाम्॥ १०१॥

पसीना देना, उल्टी कराना, नस्यकर्म, धूम्रपान विरेचन निद्रा स्निग्ध अन्न का भोजन, थोड़ा नमक सेवन करना पुरानी कुलथी पुराने गेहूँ पुरानी शालि धान्य का चावल पुराने सॉठी चावल पुराने घी हिरन तीतर लवा आदि से लेकर सभी जाङ्गल पशु पक्षियों का माँस पका-हुआ कैथ, लहसन परवल छोटी मूली पोहकर-मूल काली तुलसी मदिरा खस का जल गर्म जल बिजौरा नीबू शहद गोमूत्र सब प्रकार के कफ वात नाशक अन्न और पान ठंढे पानी का परिषेक अचानक डर दिलाना गुस्सा दिलाना खुशी कराना प्रियवस्तु दिखाना उद्वेग करना प्राणायाम करना जली हुई मिट्टी पर पानी-डाल कर सूँघना कूँचों से पानी की धारा डालना नाभि के ऊपर चोट मारना या दीपक से जली हुई हल्दी से दागना पावों में जलाना अथवा नाभि से ऊपर दो अंगुल पर जलाना ये सब हिक्कारोग में लाभदायक हैं॥ ९९-१०१॥

हिक्कारोग में अपथ्य ।

वातमूत्रोद्गारकासश कृद्वेगविधारणम्। रजोऽनिलातपायासान विरुद्धान्यशनानि च ॥ १०२ ॥ विष्टम्भीनि विदाहीनि रुक्षाणि कफदानि च । निष्पावः पिष्टकं मापः पिरायकानूपजामिषम् ॥ १०३ ॥ अवीदुग्धं दन्तकाष्ठं वस्ति-मत्स्यांश्च सर्पपात् अम्लं तुम्बी फलं कन्दं तैलभृष्ट पुपोदिकाम् ॥ १०४ ॥ गुरु शीतं चान्न पानं हिक्कारोगी विवर्जयेत् ॥ १०५ ॥

अधोवायु मूत्र डकार खाँसी मल आदि के वेगों को रोकना धूल हवा धूप श्रमोत्पादक कर्म , परस्पर विरुद्ध भोजन विष्टम्भीविदाही रूखे और कफ करने वाले पदार्थों का सेवन-करना चौल पीठी के पदार्थ उरद, तिल की खली अनूप देशके पक्षियों का मांस, भेड़ का दूध, दातुन करना वास्ति कर्म करना मछली खाना सरसों का साग खटाई तुम्बी फल तेल में भुने हुए आलू अरुई आदि कन्द के साग पुदीना और ठंडा खान पान ये सब हिचकी में हानिकारक हैं ॥१०२-१०५॥

श्वास रोग में पथ्य ।

विरेचनं स्वेदन धूमपान प्रच्छर्दनानि स्वपनं दिवा च पुरातनाः षष्टिक रक्तशालि कुलत्थगोधूम यवा प्रशस्ताः ॥ १०६ ॥ शशाहिभुक् तित्तिर लावदत्त शुकादयो धन्वमृगद्विजाश्च । पुरातनं सर्पिरजाप्रसूतं पयोघृतं चापि सुरामधूनि ॥१०७॥ निदिग्धिका वास्तुक तण्डुलीयं जीवन्तिका मूलकयोनिकाच । पटोल वार्त्ताकु रसोन पथ्या जम्बीर बिम्बी फल मातुलुंगम् ॥ १०८ ॥ द्राक्षा त्रुटिः पौष्कर मुष्णवारि कटुत्रयं गो जनितं च मूत्रम् । अन्नानि पानानि च भेपजानि कफानिलानि च यानि यानि ॥ १०९ ॥ वक्षः-प्रदेशादपि पार्श्वयुग्मे करस्थयोर्मध्यमयो द्वयोश्च। प्रदीप्त लोहेन च कण्ठकूपे दाहोऽपि च श्वासिनिपथ्यवर्गः ॥ ११० ॥

जुलाब स्वेदन धूम्रपान वमन दिन में सोना पुराने साठी तथा लाल चावल, कुलथी गेहूँ जौ खरगोश मोर तीतर लवा मुर्ग तोता आदि पक्षी मरुस्थान के पशु पक्षियों का मांस, पुराना घी बकरी का दूध घी शराब शहद कटेरी बथुआ चौलाई, जीवन्ती, छोटीमूली, परवल, बैंगन, लहसन, हरड़, जमीरीनींबू, कदूरी के फल, बिजौरा नींबू दाख छोटी इलायची पोहकरमूल, गर्मजल त्रिकुटा, गोमूत्र सभी कफवात नाशक खानपान का सेवन वक्षस्थल दोनों पसवाड़े दोनों हाथों के बीच की उँगली और कंठ कूप में गर्म लोहे से दागना श्वास रोग में लाभदायक है ॥ १०६-११० ॥

श्वासरोग में अपथ्य ।

मूत्रोद्गारच्छर्दि तृत कास रोधो नस्यं वस्तिर्दन्त काष्ठं श्रमश्च अध्वाभारो रेणवः सूर्यपादा विष्टम्भीनि ग्राम्यधर्मौ विदाहि ॥ १११ ॥ आनूपनामामिषं तैलभृष्टं निष्पावं च श्लेष्म कारीणिमाषाः रक्तस्रावः पूर्ववातानुपानं मेपीसर्पि दुग्ध-मम्भोऽपि दुष्टम् ॥ ११२ ॥ मत्स्याः कन्दोः सर्पपाश्चपानं रुक्षं शीतं गुर्वपि श्वास्यमित्रम् ॥ ११३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां हिक्कश्वासाधिकारः समाप्तः ।

मूत्र डकार वमन तृषा खाँसी के वेगों को रोकना, नस्य वास्ति दातुन थकावट पैदाकरने वाले काम अधिक मार्ग चलना बोझ उठाना

गर्दा (धूल) जलन करने वाले पदार्थ, आनूप देश के पशु पक्षियों के मांस तेल के बने मँगोड़े आदि चौला, कफकारक वस्तुओं का खाना उड़द फसद खुलवाना, पूरब की हवा आहार-विहार के बाद तुरंत जलपीना, भेड़ का घी दूध बिगड़ा हुआ जल मछली कन्द शाक, सरसों का साग रूखा शीतल और भारी खानपान श्वास रोगी को छोड़ देना चाहिए ॥ ११२-११३ ॥

इति श्रीप० सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां हिक्का श्वासाधिकारः समाप्तः ।

स्वरभेदाधिकारः ।

वाते सलवणं तैलं पित्ते सर्पिः समाक्षिकम् । कफे सक्षारकटुकं क्षौद्रं कवल इष्यते ॥ १ ॥ गले तालुनि जिह्वायां दन्तमूलेषु चाश्रितः तेन निष्क्रयते श्लेष्मा स्वरश्चास्य प्रसीदति ॥ २ ॥ स्वरोपघाते मेदोजे कफवद्विधिरिष्यते । क्षयजे सर्वजे चापि प्रत्याख्याय चरेत् क्रियाम् ॥ ३ ॥

वायुजन्य स्वर भङ्ग में तैल और लवण, पित्तजन्य स्वरभङ्ग में घृत और मधु तथा कफजन्य स्वरभङ्ग में क्षार और चरपरे द्रव्ययुक्त मधु का कवल ग्रहण करना उचित है। इससे गल, तालु, जिह्वा और दन्तमूलाश्रित कफ पतला होकर निकल जाता है और स्वर ठीक हो जाता है। मेदोजन्य स्वरभङ्ग में श्लैष्मिक स्वरभङ्ग के समान चिकित्सा करनी चाहिये। क्षयजन्य और सान्निपातिक स्वरभङ्ग को असाध्य कहकर चिकित्सा न करनी चाहिये ॥ १—३ ॥

चव्यादिचूर्ण ।

चव्याम्लवेतसकटुत्रिकतिन्तिडीकतालीशजीरकतुगादहनैः समांशैः । चूर्णं गुडैर्विमृदितं त्रिसुगन्धियुक्तं वैस्वर्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम् ॥ ४ ॥

चव्य, अमलबेत, त्रिकटु, इमली, तालीशपत्र, जीरा, वंशलोचन, चीते की जड़, दालचीनी, तेजपात और छोटी इलायची समभाग लेकर चूर्ण करके पुराने गुड़ के साथ मिलाकर सेवन करे तो स्वरभङ्ग, पीनस, कफ और अरुचि रोग दूर होते हैं। मात्रा--२ माशा ॥ ४ ॥

अजमोदादि चूर्ण ।

अजमोदां निशां धात्रीं क्षारं वह्निं विचूर्णयेत् । मधुसर्पिर्युतं लीढ्वा स्वरभेदमपोहति ॥ ५ ॥

अजमोद, हलदी, आँवला, जवाखार और चीता की जड़ समभाग एकत्र कर चूर्ण करे। इस चूर्ण का घृत और मधु के साथ सेवन करने से स्वरभङ्ग रोग दूर होता है ॥५॥ मात्रा१-२माशा॥

बदरीपत्रकल्क लेह ।

बदरीपत्रकल्कं वा घृतभृष्टं ससैन्धवम् । स्वरोपघाते कासे च लेहमेतत् प्रयोजयेत् ॥६ ॥

६ माशा बेर की पत्तियों को पीसकर घी में भूनकर सेंधा नमक मिलाकर चाटने से स्वरभेद तथा खाँसी का नाश होता है ॥ ६ ॥

पिप्पल्यादि चूर्ण ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् । पिबेन्मूत्रेण मतिमान् कफजे स्वरसंक्षये ॥ ७ ॥

पीपरि, पिपरामूल, मिर्च तथा सोंठ के चूर्ण को गोमूत्र के साथ पीने से कफज स्वरभेद का नाश होता है ॥७॥ मात्रा १-२ माशा ॥

शर्करामधुमिश्राणि शृतानि मधुरैः सह । पिबेत्पयांसि यस्योच्चैर्वदतोऽभिहतः स्वरः ॥ ८ ॥

मुलहठी आदि मधुर पदार्थों द्वारा सिद्ध दूध में खाँड तथा शहद मिलाकर ऊँचा (जोर) से बोलने से पैदा हुए स्वरभेद में पीना चाहिये ८

व्याघ्री घृत ।

व्याघ्रीस्वरसविपक्वं रास्नावाट्यालगो-

त्तुरण्योपैः। सर्पिःस्वरोपघातं हन्यात्कासञ्च पञ्चविधम् ॥ ६ ॥ शुष्कद्रव्यमुपादाय स्वरसानामसम्भवे। वारिण्यष्टगुणे साध्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ १० ॥

गौ का घी तीन सेर, भटकटैया (छोटी कटेरी) का रस बारह सेर, रास्ना, खरेटी, गोखुरू तथा त्रिकटु ये सब मिलाकर इनके कल्क में विधिपूर्वक घी पकावे। इस 'व्याघ्रीघृत' से स्वरभेद तथा पाँच प्रकार के कास नष्ट होते हैं। यदि किसी द्रव्य का स्वरस न मिले, तो सूखी लेकर अठगुने पानी में पकाकर चतुर्थांश रहने पर स्वरस के बदले में ग्रहण करना चाहिये ॥ ९-१० ॥ मात्रा ६ माशा १ तोला ॥

सारस्वतघृत और ब्राह्मीघृत।

समूलपत्रमादाय ब्राह्मीं प्रक्षाल्य वारिणा। उखले चोदयित्वा रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥ ११ ॥ रसे चतुर्गुणे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत्। औषधानि तु पेष्याणि तानिमानि प्रदापयेत् ॥ १२ ॥ हरिद्रा मालती कुष्ठं त्रिवृता सहरीतकी। एतेषां पलिकान् भागान् शेषाणि कार्षिकाणि च ॥ १३ ॥ पिप्पल्योऽथ विडङ्गानि सैन्धवं शर्करा वचा। सर्वमेतत् समालोड्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ १४ ॥ एतत्प्राशितमात्रेण वाग्विशुद्धिः प्रजायते। सप्तरात्रप्रयोगेण किन्नरैः सह गीयते ॥ १५ ॥ अर्द्धमासप्रयोगेण सोमराजीवपुर्भवेत्। मासमात्रप्रयोगेण श्रुतमात्रं तु धारयेत् ॥ १६ ॥ हन्त्यष्टादशकुष्ठानि अर्शांसि विविधानि च। पञ्चगुल्मान् प्रमेहांश्च कासं पञ्चविधं तथा ॥ १७ ॥ वन्ध्यानामपिनारीणांनराणामल्परेतसाम्। घृतं सारस्वतं नाम बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ १८ ॥

इदानीन्तनैरिदं ब्राह्मीघृतमुच्यते।

मूल तथा पत्रसहित ब्राह्मी को धोकर ऊखल में कूटकर उसके रस को वस्त्र से छान ले। यह स्वरस चार सेर, घी एक सेर कल्कार्थ हल्दी, मालती के फूल, कूट, निसोत और हड़ चार-चार तोला, पीपरि, वायविडंग, सेंधानोन, शक्कर और वच एक-एक तोला, स्वरस, कल्क और घृत एकत्र कर धीमी आँच से यथाविधि पाक-कर घृत सिद्ध करे। इसके चाटने से स्वर शुद्ध हो जाता है, सात दिन सेवन करने से किन्नरों के समान गानेवाला हो जाता है। पन्द्रह दिन के सेवन से चन्द्रमा के तुल्य कान्तियुक्त होता है। एक मास सेवन करने से प्रत्येक विषय सुनते ही याद हो जाते हैं। इसके सेवन से १८ कुष्ठ, अनेक बवासीर, पाँच प्रकार के गुल्म, प्रमेह तथा पञ्चविध कास नष्ट होते हैं। वन्ध्या स्त्री तथा अल्प वीर्य पुरुषों के लिये यह घृत बल, वर्ण तथा अग्नि को बढ़ानेवाला है। इसको सारस्वत घृत अथवा ब्राह्मी घृत भी कहते हैं। मात्रा—६ माशा से १ तोला तक ॥ ११--१८ ॥

कल्याणावलेह।

सहरिद्रा वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम्। अजाजी चाजमोदा च यष्टीमधुकसैन्धवम् ॥ १९ ॥ एतानि सममागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्। तच्चूर्णं सर्पिषालोड्य प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ २० ॥ एकविंशतिरात्रेण भवेच्छ्रुतधरो नरः। मेघदुन्दुभिनिर्घोषो मत्तकोकिलनिःस्वनः ॥ जडगद्गदमूकत्वं लेहः कल्याणको जयेत् ॥ २१ ॥

हल्दी, वच, कूठ, पीपल, सोंठ, कालाजीरा, अजवायन, मुलहठी, सेंधा नमक हरएक के चूर्ण को बराबर मात्रा में लेकर गोघृत में

मिलाकर मथकर प्रतिदिन सेवन करावें। इक्कीस दिन के सेवन से स्मृतिशक्ति अत्यन्त बढ जाती है, तथा इसको सेवन करनेवाला मेघ एवं दुन्दुभि के समान गम्भीर ध्वनियुक्त तथा मस्त कोयल के समान मधुर शब्दवाला हो जाता है। यह लेह वाणी की जड़ता, गद्गद तथा मूकता दूर करता है ॥ १९--२१ ॥ मात्रा ६माशा से १ तोला ॥

भैरव रस।

रसं गन्धं विषं टङ्कं मरिचं चव्यचित्रकम् । आर्द्रकस्य रसेनैव संमर्द्य वटिकां ततः ॥ २२ ॥ रक्तिकैकप्रमाणेन खादेत्तोयानुपानतः । स्वरभेदं निहन्त्याशु श्वासं कासं सुदुस्तरम् ॥ २३ ॥

पारा, गन्धक, बच्छनाग, सुहागा, कालीमिर्च, चव्य, चित्रक इन्हें अदरख के रस से घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावें। अनुपान--जल। इसके सेवन से स्वरभेद, श्वास तथा खाँसी का रोग अच्छा होता है ॥ २२-२३ ॥

रसेन्द्रगुडिका।

अयोऽभ्रकं पृथक् कोलं बलीशावर्द्धभागिनौ । विद्रुमं खर्परञ्चैव लौहपादांशमाचरेत् ॥ २४ ॥ यथाभागं समीकृत्य व्याघ्री ब्राह्म्याटरूपजैः । रसैर्वापि कषायैश्च पृथक् भाव्यं त्रिधा त्रिधा ॥ २५ ॥ गुञ्जाद्वयमितां धीमान् वटिकां कारयेत्ततः । सप्ताहसेवनादेव स्वरः शुद्धयत्यसंशयम् ॥ २६ ॥ मासात्कोकिलकण्ठः स्यात् किन्नरैः समतां लभेत् । मेधावी स्याद्यशस्वी च तुष्टिपुष्टिसमन्वितः ॥ २७ ॥ कासश्वासप्रमेहाद्यैर्नरः सद्यः प्रमुच्यते । रसेन्द्रगुडिका ह्येषा धन्वन्तरिविनिर्मिता ॥ २८ ॥

लोहभस्म, अभ्रकभस्म अलग-अलग एक-एक तोला, पारा ६ माशा, गन्धक ६ माशा, प्रवालभस्म ३ माशा, खपरियाभस्म ३ माशा इन्हें इकट्ठा मिलाकर कटेरी छोटी, ब्राह्मी तथा अडूसे के रस से अलग-अलग तीन-तीन भावना दें और २ रत्ती की गोली बनावे। इससे ७ दिन सेवन करने से स्वर श्रेष्ठ हो जाता है। यदि १ मास सेवन किया जाय तो कोयल के समान स्वर हो जाता है। गाने में किन्नरों की बराबरी करता है। अतएव सेवन करनेवाला व्यक्ति यशस्वी हो जाता है। यह मेधा को बढ़ाती है, शरीर का पोषण करती है। खाँसी, श्वास, प्रमेह एवं बहुमूत्र को नष्ट करती है। यह रसेन्द्र गुडिका श्रीधन्वन्तरि ने बनाई थी ॥ २४--२८ ॥

किन्नरकण्ठ रस।

रसं गन्धकमभ्रञ्च माक्षिकं लौहमेव च । कर्षप्रमाणं संगृह्य वैक्रान्तं रसपादिकम् ॥ २९ ॥ वैक्रान्तार्द्धं तथा हेम रौप्यं हेमचतुर्गुणम् । वासायाश्च तथा भार्ग्या बृहत्योरार्द्रकस्य च ॥ ३० ॥ स्वरसेन सरस्वत्या भावयित्वा पृथक् पृथक् । रक्तिद्वयमिताः कुर्याद्वटीश्छाया विशोषिताः ॥ ३१ ॥ स्वरभेदानशेषांश्च कासान् श्वासांश्च दारुणान् । निखिलान् कफजान् व्याधीन् वातश्लेष्मसमुद्भवान् ॥ ३२ ॥ हन्यात् किन्नरकण्ठाख्यो रसोऽसौ रुद्रनिर्मितः । किन्नरस्येव कण्ठस्य स्वरोऽस्य प्राशनाद्भवेत् ॥ ३३ ॥

पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, लोहभस्म, हरएक १ तोला, वैक्रान्त भस्म २ माशा, स्वर्ण भस्म १ ॥ माशा, चाँदी की भस्म १ तोला, इन्हें इकट्ठा कर अड़ूसा, भारगी छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, अदरख, ब्राह्मी, इनके रस से अलग-अलग भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावे और छाया में सुखा ले। इसके सेवन से सब स्वरभेद, खाँसी,

कठिन श्वास सम्पूर्ण कफज एवं वातकफजन्य रोग नष्ट होते हैं । इसके सेवन से कण्ठ किन्नरों के समान हो जाता है ॥ २१-२३ ॥

रुजा विविधयार्त्तानां वलासार्द्रस-सेवनात् । कासार्त्तानां यक्ष्मिणाञ्च जायन्ते प्रायशो नृणाम् ॥ ३४ ॥ कण्ठेऽनुबन्धभावेन ये च शोथक्षतादयः । ते चिकित्स्याः पृथङ् नैव जिगीषेन्मुख्यमामयम् ॥ ३५ ॥ सहैव वा तथा शान्तिरिति वृद्धमतं स्मृतम् । ते चापि कण्ठशोथाद्या विवृद्धा जनयन्त्यपि ॥ ३६ ॥ अनन्यहेतुकं तेषां स्वरभेदं सुदारुणम् । अनुबन्ध्यांश्चिकित्सेत तत्र पूर्वं भिषग्वरः ॥ ३७ ॥ शान्तेऽनुबन्ध्ये शाम्यन्ति स्वयमेवानुबन्धकाः । प्रभूतशाखोऽपि तरुश्छिन्ने मूले विशुष्यति ॥ ३८ ॥ अतः पूर्वं परीक्षेतनिदानगतिभिः पृथक् । अनुबन्ध्यानुबन्ध्यान्वै ततः कुर्याच्चिकित्सितम् ॥ ३९ ॥

विविध प्रकार के रोगों से पीड़ित मनुष्यों को कफवृद्धि से, पारा के सेवन से तथा खाँसी एवं यक्ष्मा से पीड़ित रोगी के उपद्रवरूप से कण्ठ में जो सूजन एवं क्षत आदि हो जाते हैं उनकी अलग चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती वहाँ प्रधान (अनुबन्ध्य) रोग की ही चिकित्सा करनी चाहिये अथवा मुख्य रोग के साथ ही साथ चिकित्सा करें तो इन उपद्रवों की शान्ति स्वयं हो जाती है, यह वृद्ध वैद्यों का मत है । ये कण्ठशोथ आदि बढ़कर उन उन रोगियों में स्वरभेद को पैदा कर देते हैं । ऐसी अवस्था में स्वरभेद का कोई दूसरा कारण नहीं होता । ऐसे रोगियों में पहिले अनुबन्ध्य (प्रधान) की चिकित्सा करनी चाहिये । अनुबन्ध्य के शान्त होने पर अनुबन्धक स्वयं शान्त हो जाते हैं, जैसे बहुशाखायुक्त वृक्ष की जड़ को काटने से सारा वृक्ष ही सूख जाता है । अतः स्वरभेद की चिकित्सा से पहिले निदान आदि द्वारा अनुबन्ध्य एवं अनुबन्धक की परीक्षा कर लेनी चाहिये । परीक्षा के बाद ही चिकित्सा लाभदायक होती है ॥ ३४-३९ ॥

किङ्किराटाद्य कवल

किङ्किराटं स्थूलपत्रं तिन्दुकं जातिकां तथा । समभागां समादाय तत्षोडशगुणेऽम्भसि ॥ ४० ॥ पचेदर्द्धावशिष्टः स कवलो धार्यते यदि । स्वरभेदं क्षतं हन्याद् व्यथाञ्च शोणितस्रुतिम् ॥ ४१ ॥

बबूल, जामुन, तेन्दुक तथा चमेली, इनकी छाल को बराबर मात्रा में लेकर १६ गुने पानी में उबाले । जब जल आधा रह जाय तो उतार ले और छानकर गुनगुने क्वाथ का ही कवल धारण करे । इस प्रकार स्वरभेद, मुखक्षत, कण्ठक्षत, वेदना तथा रक्तस्राव बन्द हो जाता है ॥ ४०-४१ ॥

क्वाथं यस्च हरीतक्या धारयेत् सह शुभ्रया । रक्तस्रावादिकं सोऽपि जयेदाशु विनिश्चितम् ॥ ४२ ॥

तथा हरड़ के क्वाथ में किञ्चित् फिटकरी को घोलकर कवल धारण करने से शीघ्र ही रक्तस्राव आदि बन्द हो जाते हैं ॥ ४२ ॥

ऊर्णानिर्मितपट्टेन कण्ठो वर्त्यः सदा नरैः ॥ ४३ ॥

स्वरभेद के रोगी को सदा ऊन के बने गुलूबन्द से कण्ठ को ढके रहना चाहिये ॥४३॥

त्र्यम्बक अभ्रक ।

अभ्रं मेचकमारितं पलमितं व्याघ्री बला गोक्षुरं, कन्यापिप्पलिमूलभृङ्गवृषकाः पत्रं तथा वादरम् । धात्रीरात्रिगुडूचिकाः पृथगतः सर्वैः पलांशैर्युतं, सम्मर्द्यातिमनोरमं सुवलितं कृत्वा यदा सेवितम् ॥ ४४ ॥ वातोत्थं कफपित्तजं स्वरमदं यश्च

त्रिदोषात्मकम् अत्युच्चैर्वदतो हतं बहुविधं पानीयदोषोद्भवम्। कासं श्वासमुरोग्रहं सयकृतं हिक्कां तृषां कामलामर्शांसि ग्रहणींज्वरं बहुविधं शोथं क्षयश्चार्बुदम्॥ ४४॥ हन्ति त्र्यम्बकमभ्रमद्भुततरं वृष्यातिवृष्यं परं वह्नेर्वृद्धिकरं रसायनवरं सर्वामयध्वंसि तत्॥ ४६॥

चार तोला अभ्रक भस्म को कटेरी, खरेंटी, गोखरू, घृतकुमारी, पिपरामूल, भाँगरा, अडूसा, बेर के पत्ते, आँवला, हल्दी और गिलोय के चार-चार तोला रस में क्रमशः भावना देकर एक-एक रत्ती की गोली बनावे। इस 'त्र्यम्बकाभ्र' का सेवन करने से सब प्रकार के स्वरभङ्ग, खाँसी, श्वास, उरोग्रह, यकृत्, हिचकी, तृषा, कामला, अर्श, ग्रहणी, ज्वर, शोथ तथा अर्बुद आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं। यह अत्यन्त वीर्यवर्धक, अग्निदीपक तथा रसायन है। मात्रा १ रत्ती-२ रत्ती॥४४-४६॥

स्वरभेद में पथ्य

स्वेदो बस्तिधूमपानं विरेकः कवलग्रहः नस्यं भाले शिरावेधो यवा लोहितशालयः॥ ४७॥ हंसाटवीताम्रचूडकेकिमांसरसाः सुरा। गोकण्टकः काकमाची जीवन्ती बालमूलकम्॥ ४८॥ द्राक्षा पथ्या मातुलुङ्गं लशुनं लवणार्द्रकम्। ताम्बूलं मरिचं सर्पिः पथ्यानि स्वरभेदिनः॥ ४९॥

स्वेद, बस्ति, आयुर्वेदोक्त स्वरभेदनाशक धूमपान, विरेचन, कवलधारण, नस्य, मस्तक पर शिरावेध, जौ, लाल शालिचावल; हंस, जंगली मुर्गा और मोर के मांस का रस, शराब, गोखरू, मकोय, जीवन्ती, कच्ची मूली, अंगूर, मुनक्का, हरड़, बिजौरा, लहसन, नमकसहित अदरख, पान, कालीमिर्च, घी ये सब स्वरभेदियों के लिये पथ्य हैं॥ ४७-४९॥

अपथ्य।

आमं कपित्थं बकुलं शालूकं जाम्बवानि च। तिन्दुकानि कषायाणि वमिं स्वप्नं मजल्पनम्। अम्लं दधि च यत्नेन स्वरभेदी विवर्जयेत्॥ ५०॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां स्वरभेदाधिकारः समाप्तः।

कच्चे फल, कच्चे कैथ, बघूल, जलीय कन्द, जामुन, तेन्दू, कसैले द्रव्य, वमन, स्वप्न, अधिक बोलना, खटाई, दही, इनका यत्नपूर्वक परित्याग कर देना चाहिये॥ ५०॥

इति श्रीपं॰सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां स्वरभेदाधिकारः समाप्तः।

हृद्रोगाधिकारः।

वातज हृद्रोगचिकित्सा।

वातोपसृष्टे हृदये वामयेत् स्निग्धमातुरम्। द्विपञ्चमूलीक्वाथेन सस्नेहलवणेन च॥ १॥

मदनादिचूर्णयुक्तेन द्विपञ्चमूलीक्वाथेन वमनं कर्त्तव्यम्। अत्र विरेचनमपि कर्त्तव्यं लङ्घनञ्च। यदुक्तं—हृद्रोगिणं स्नेहयित्वा वामयेत् स्रंसयेत्तथा। लङ्घयेदचिरोत्थञ्च हृद्रोगं वातिकं विना इति।

वातप्रधान हृद्रोग में स्नेहन करने के बाद मैनफल आदि के चूर्ण से युक्त दशमूल के क्वाथ में स्नेह और लवण मिलाकर पान करके वमन कराना चाहिये। इसमें विरेचन और लंघन भी करना चाहिए, क्योंकि लिखा है कि हृद्रोगी को स्नेहन कराके वमन और विरेचन करावे। यदि हृद्रोग नूतन हो, तो लंघन करावे, किन्तु वातिक हृद्रोग में लंघन कराना उचित नहीं है॥ १॥

पिप्पल्यादि चूर्ण

पिप्पल्येला वचा हिङ्गु यवक्षारोऽथ सैन्धवम्। सौवर्चलमथोशुण्ठी अजमोदा च चूर्णितम्॥ २॥ फलधान्याम्लकौलत्थदधिमद्यासवादिभिः। पाययेच्छुद्धदेहश्च स्नेहेनान्यतमेन वा॥ ३॥

पहिले स्नेहन अथवा वमन आदि के द्वारा शरीर को शुद्ध करके पीपरि, इलायची, वच, हींग, जवाखार, सेंधानमक, कालानमक, सोंठ और अजमोद का चूर्ण बनाकर नींबू का रस, काँजी, कुलथी का जूस, दही, मद्य अथवा आसव आदि के साथ पान कराना चाहिये॥ २-३॥ मात्रा १।२ माशा॥

नागरं वा पिबेदुष्णं कषायश्चाग्निवर्द्धनम्। कासश्वासानिलहरं शूलहृद्रोगनाशनम्॥ ४॥

सोंठ का गरम-गरम काढ़ा पीने से अग्नि की वृद्धि होती है। कास, श्वास, वायु, शूल और हृद्रोग नष्ट होते हैं॥ ४॥

पित्तज हृद्रोगचिकित्सा।

श्रीपर्णी मधुकं क्षौद्रं सितागुडजलैर्वमेत्। पित्तोपसृष्टे हृदये सेवेन्मधुरकैः शृतम्। घृतं कषायांश्चोद्दिष्टान् पित्तज्वरविनाशनान्॥ ५॥

पैत्तिक हृद्रोग में गम्भारी का फल और मुलेठी के अर्धावशिष्ट (आधा रह गया हो) क्वाथ में मधु, शक्कर, पुराना गुड़ और मैनफल का चूर्ण मिलाकर वमन करना चाहिये। मधुर द्रव्यों से सिद्ध किये हुए क्वाथ, घृत तथा पित्तज्वराधिकारोक्त क्वाथों का सेवन कराना चाहिये॥ ५॥

शीताः प्रदेहाः परिषेचनानि तथा विरेको हृदि पित्तदुष्टे। द्राक्षा सिता क्षौद्रपरूषकैः स्याच्छुद्धे च पित्तापहमन्नपानम्॥ ६॥

पैत्तिक हृद्रोग में शीतल प्रलेप, सेचन और विरेचन कराना चाहिये। वमन और विरेचन द्वारा देह शुद्ध कराके मुनक्का, चीनी, मधु और फालसा के साथ पित्तनाशक अन्नपान की व्यवस्था करनी चाहिये॥ ६॥

पिष्ट्वा पिबेद्वापि सिताजलेन यष्ट्याह्वयं तिक्तकरोहिणीश्च॥ ७॥

अथवा चीनी के शर्बत में मुलेठी और कुटकी पीसकर पान करना चाहिये॥ ७॥

अर्जुनस्य त्वचा सिद्धं क्षीरं योज्यं हृदामये। सितया पञ्चमूल्या वा बलया मधुकेन वा॥ ८॥

अर्जुन की छाल से सिद्ध लघुपञ्चमूल और शक्कर के साथ सिद्ध अथवा खरेटी और मुलेठी के साथ सिद्ध किये हुए दुग्ध को पीना चाहिये॥ ८॥

अर्जुनत्वक्चूर्ण।

घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा पिबन्ति चूर्णं ककुभत्वचो ये। हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते॥ ९॥

घृत, दुग्ध अथवा गुड़ के शर्बत के साथ जो अर्जुन की छाल का चूर्ण सेवन करते हैं वे हृद्रोग, जीर्णज्वर और रक्तपित्त रोग को नष्ट करके दीर्घायु होते हैं॥ ९॥

वचानिम्बकषायाभ्यां वान्तं हृदि कफोत्थिते। वातहृद्रोगहृच्चूर्णं पिप्पल्यादिश्च पाययेत्॥ १०॥

पिप्पल्यादिचूर्णं पिप्पल्येलावचा हिङ्गु इत्यादि यदुक्तम्।

कफजन्य हृद्रोग में वच और नीम की छाल का क्वाथ पिलाकर वमन कराना चाहिये। वातहृद्रोगनाशक 'पिप्पल्येलावचाहिङ्गु' इत्यादि श्लोक के द्वारा पीछे कहे हुए पिप्पल्यादि चूर्ण का सेवन कराना चाहिये॥ १०॥

त्रिदोषहृद्रोगचिकित्सा ।

त्रिदोषजे लंघनमादितः स्यादन्नञ्च सर्वेषु हितं विधेयम् । हीनातिमध्यत्वमवेक्ष्य चैव कार्यं त्रयाणामपि कर्मशस्तम् ॥ ११ ॥

सान्निपातिक हृद्रोग में पहिले लघन के द्वारा दोषों को क्षीणबल करके पश्चात् तीनों दोषों में हितकर भोजन देना चाहिये तथा दोषविशेष की प्रबलता, मध्यता और हीनावस्था का विचार कर यथाविहित चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

पुष्करमूलचूर्ण ।

चूर्णं पुष्करजं लिह्यान्माक्षिकेण समायुतम् । हृच्छूलश्वासकासघ्नं क्षयहिक्कानिवारणम् ॥ १२ ॥

१।२ माशा पुहकरमूल के चूर्ण का मधु के साथ सेवन करने से हृदयशूल, श्वास, कास, क्षय और हिक्कारोग दूर होते हैं ॥ १२ ॥

तैलाज्यगुडविपक्वं चूर्णं गोधूमपार्थजं वापि । पिबति पयोऽनु च स भवेज्जितसकलश्वासकासहृदामयः पुरुषः ॥ १३ ॥

पार्थोऽर्जुनः पार्थगोधूमाभ्यां समो गुडः तैलाज्ये अल्पमात्रया देये किञ्चिज्जलं दत्त्वा पिबेत् वा शब्दः पूर्वयोगापेक्षया ।

गोधूमचूर्ण १ भाग, अर्जुन की छाल का चूर्ण १ भाग और गुड़ २ भाग एकत्र कर थोड़े से तिलतेल और घृत में पकाकर उसमें थोड़ा जल मिलाकर पान करे और ऊपर से थोड़ा दूध पिये, तो प्रबल हृद्रोग, श्वास और कासरोग दूर होते हैं । मात्रा—१॥ माशा ॥ १३ ॥

गोधूमककुभचूर्णं छागपयो गव्यसर्पिषा पक्वम् । मधुशर्करासमेतं शमयति हृद्रोगमुद्धतं पुंसाम् ॥ १४ ॥

गोधूमचूर्ण १ भाग, अर्जुन की छाल का चूर्ण १ भाग, बकरी का दूध ४ भाग, इन्हें एकत्र पाक करके किंचित् गोघृत से भून ले । शीतल होने पर थोड़ा शहद या शक्कर मिलाकर सेवन करने से प्रबल हृद्रोग नष्ट, होता है । मात्रा १।२ तोला ॥ १४ ॥

नागवलाचूर्ण ।

मूलं नागवलायास्तु चूर्णं दुग्धेन पाययेत् । हृद्रोगश्वासकासघ्नं ककुभस्य च वल्कलम् ॥ १५ ॥ रसायनं परं बल्यं वातजिन्मासयोजितम् । संवत्सरप्रयोगेण जीवेद्वर्षशतं ध्रुवम् ॥ १६ ॥

नागबला के मूल के ३ माशा चूर्ण को दूध के साथ सेवन करे, तो हृद्रोग, श्वास और कासरोग आराम होता है । तथा अर्जुन की छाल के ३ माशा चूर्ण को दुग्ध के साथ एक मास पर्यन्त सेवन से हृद्रोग नष्ट होता है । यह वातनाशक, बल कारक परम रसायन है । एक वर्ष पर्यन्त निरन्तर सेवन करने से निःसंदेह सौ वर्ष तक जीता है ॥ १५-१६ ॥

हिंग्वादिचूर्ण ।

हिङ्गूग्रगन्धाविडविश्वकृष्णाकुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम् । पिबेत् ससौवर्चलपुष्कराढ्यं यवाम्भसा शूलहृदामयघ्नम् ॥१७॥

हींग, मीठी बच, बिड नमक, सोंठ, पीपरि, कूट, हड़, चीता की जड़ जवाखार, काला नमक और पुहकरमूल के चूर्ण को जौ के क्वाथ के साथ सेवन करने से शूल और हृद्रोग नष्ट होते हैं । मात्रा—१।२ माशा ॥ १७ ॥

दशमूलकषायस्तु लवणक्षारयोजितः । कासं श्वासञ्च हृद्रोगं गुल्मं शूलञ्च नाशयेत् ॥ १८ ॥

दशमूल के क्वाथ में सेंधा नमक और जवाखार मिलाकर पान करे तो कास, श्वास, हृद्रोग, गुल्म और शूल नष्ट होते हैं ॥ १८ ॥

पाठाद्यचूर्ण ।

पाठां वचां यवक्षारमभयां चाम्लवेतसम् । दुरालभां चित्रकञ्च त्र्यूषणञ्च फल-

त्रयम् ॥ १९ ॥ शटीं पुष्करमूलञ्च तिन्तिडीकं सदाडिमम्। मातुलुङ्गस्य मूलानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ २० ॥ सुखोदकेन मद्यैर्वा प्लुतान्येतानि पाययेत्। अर्शः शूलञ्च हृद्रोगं गुल्मञ्चाशु नियच्छति २१

पाढी, बच, जवाखार, हरड़, अमलवेत, जवासा, चीता की जड़, त्रिकुट, त्रिफला, कचूर, पुहकरमूल, इमली की छाल, अनार की छाल और बिजौरे नींबू के मूल की छाल के ३ माशा चूर्ण को गुनगुने जल अथवा मद्य के साथ सेवन करे तो बवासीर, शूल, हृद्रोग और गुल्म रोग नष्ट होते हैं ॥ १९–२१ ॥

पुष्करमूलादिचूर्ण।

सपुष्कराख्यं फलपूरमूलं महौषधं शट्यभया च कल्कः। क्षीराम्लसर्पिर्लवणैर्विमिश्रः स्याद् वातहृद्रोगहरो नराणाम् ॥ २२ ॥

पोहकरमूल, बिजौरे की जड़, सोंठ, कचूर, हरड़, इनके चूर्ण को दूध, काँजी, घृत अथवा नमक के साथ सेवन करने से सम्पूर्ण हृद्रोग शान्त होते हैं। मात्रा–२ माशा ॥ २२ ॥

हरीतक्यादि चूर्ण।

हरीतकी वचा रास्ना पिप्पली नागरोद्भवम्। शटीपुष्करमूलोत्थं चूर्णं हृद्रोगनाशनम् ॥ २३ ॥

हरड़, बच, रास्ना, पीपल, सोंठ, कचूर, पोहकरमूल, इनके चूर्ण को बराबर मात्रा में मिलाकर सेवन करने से सब हृद्रोग शान्त होते हैं। मात्रा–२ माशा ॥ २३ ॥

त्रिवृतादि चूर्ण।

त्रिवृत्शटी वला रास्ना शुण्ठी पथ्या सपौष्करा। चूर्णिता वा शृता मूत्रे पातव्या कफहृद्गदे ॥ २४ ॥

कफज हृद्रोग में निसोत, कचूर, खाला, रास्ना, सोंठ, हरड़, पोहकरमूल, इनके मिले हुए चूर्ण को अथवा गोमूत्र से सिद्ध क्वाथ को सेवन कराना चाहिये। चूर्ण की मात्रा १ माशे से ४ माशे तक ॥ २४ ॥

सूक्ष्मैलादि चूर्ण।

सूक्ष्मैला मागधीमूलं मलीढं सर्पिषा सह। नाशयेदाशु हृद्रोगं कफजं सपरिग्रहम् ॥ २५ ॥

छोटी इलायची तथा पीपलामूल के चूर्ण को घृत के साथ मिलाकर चाटने से शीघ्र ही उपद्रवयुक्त कफज हृद्रोग नष्ट होता है। मात्रा ४ रत्ती से ८ रत्ती तक ॥ २५ ॥

पुटदग्धमश्मपिष्टं हरिणविषाणं च सर्पिषा पित्वेतः। हृत्पृष्ठशूलमुपशमगुपयात्यचिरेण कष्टमपि ॥ २६ ॥

गजपुटदग्ध (गजपुट में फूँके हुए) हरिणशृङ्ग को पीसकर घृत के साथ सेवन करे तो हृदय और पृष्ठ का शूल तत्काल नष्ट होता है २६

क्रिमिहृद्रोगिणं स्निग्धं भोजयेत् पिशितौदनम्। दध्ना च पललोपेतं त्र्यहं पश्चाद्विरेचयेत् ॥ २७ ॥ सुगन्धिभिः सलवणैर्योगैः साजाजिशर्करैः। विडङ्गाढ्यैर्धान्याम्लं पाययेद्धितमुत्तमम् ॥ २८ ॥

अत्र पिशितौदनं क्रमीणामुत्क्लेशार्थं पिशितप्रधानमोदनं पिशितौदनं दध्ना पललेन च संयुक्तं त्र्यहं भोजयेत्। पललं पिष्टकमिति जेज्जडः तिलचूर्णमिति चक्रः। अन्ये तु शुष्कमांसचूर्णमाहुः। एते क्रिमिघातकाः। सुगन्धिभिः सलवणैर्योगैरिति विरेचनयोगैः चातुर्जातेन सुगन्धीकरणञ्च वान्तिशङ्कानिरासार्थं धान्याम्लमनुपेयम्।

क्रिमिजन्य हृद्रोग में पहिले ३ दिन पर्यन्त दही और तिलपिष्टक के साथ मांसयुक्त भात खिलावे। पश्चात् दालचीनी, तेजपात, नागकेसर,

इलायची आदि ओषधियों द्वारा सुगन्धित सैंधव, जीरा, शक्कर और अधिक वायविडंग सहित विरेचक औषधों से विरेचन कराना चाहिये। अनुपान—धान्याम्ल (कांजी)। यहाँ मांसप्रधान भात का दही और पलल के साथ जो विधान किया गया है वह कृमियों के निकालने के लिये है। यहाँ पलल पद से पिष्टक का ग्रहण करना चाहिए, ऐसा जेज्जटजी कहते हैं। तिलचूर्ण का ग्रहण करे ऐसा चक्रदत्तजी कहते हैं। और लोगों का मत है कि शुष्क मांस के चूर्ण का ग्रहण करना चाहिए। ये सब वस्तु कृमिनाशक हैं। सुगन्धिभिः सलवणैयोगैः इस विरेचन के योग में चातुर्जात से सुगन्धित जो करना है, वह वमन की शङ्का दूर करने के लिये है। धान्याम्ल का अनुपान रखना चाहिए ॥ २७-२८ ॥

कृमिजे च पिबेन्मूत्रं विडङ्गामयसंयुतम् । हृदि स्थिताः पतन्त्येवमधस्तात् क्रमयो नृणाम् । यवान्नं वितरेच्चास्मै स विडङ्गमतः परम् ॥ २९ ॥

कृमिजन्य हृद्रोग में विडंग और कूट के चूर्ण के साथ गोमूत्र पान करे तो हृदयस्थित कृमि गिर जाते हैं। तदनन्तर रोगी को विडङ्गचूर्ण मिलाकर जौ का भात खिलाना चाहिये ॥ २९ ॥

बल्लभक घृत।

मुख्यं शतार्द्धञ्च हरीतकीनां सौवर्चलस्यापि पलद्वयञ्च । पक्वं घृतं वल्लभकेति नाम्ना हृल्लासशूलोदरमारुतघ्नम् ॥ ३० ॥

हरड़ पचास नग और काला नमक ८ तोला एकत्र कर, इन दोनों को एक साथ घी में पकावे। यह वल्लभक नाम घृत मतली, शूल, उदररोग और वातरोग का नाशक है ॥ ३० ॥

श्वदंष्ट्राद्य घृत।

श्वदंष्ट्रोशीरमञ्जिष्ठा बलाकारमर्यकतृणम् । दर्भमूलं पृथक् पर्णी पलाशर्षभकौ स्थिरा ॥ ३१ ॥ पलिकां साधयेत्तेषां रसे क्षीरे चतुर्गुणे । कल्कैः स्वगुप्तर्षभकमेदा जीवन्तिजीरकैः ॥ ३२ ॥ शतावर्यृद्धि मृद्वीका शर्करा श्रावणीबिसैः । प्रस्थ सिद्धो घृतादेव पित्तहृद्रोगशूलनुत् ३३ मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शःश्वासकासक्षयापहः । धनुः स्त्रीमद्यभाराध्वखिन्नानां बलमांसदः ॥ ३४ ॥

घृत १२८ तोला, क्वाथार्थ गोखुरू, खस, मजीठ, खरेटी, खम्भारी की छाल, कतृण (सुगन्धित तृणविशेष), कुशमूल, पृष्ठिपर्णी, पलाश की छाल, ऋषभक और शालिपर्णी चार-चार तोला, पाकार्थ जल ६ सेर ३२ तोला, शेष १ सेर ४८ तोला, दुग्ध ६ सेर ३२ तोला, कल्कार्थ कौंच के बीज, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, जीरा, शतावरि, ऋद्धि, मुनक्का, शक्कर, गोरखमुण्डी और मृणाल कुल मिलाकर ३२ तोला ले, घृत, क्वाथ, दुग्ध और कल्क एकत्र कर धीमी आँच से पकाकर घृत सिद्ध करे। यह घृत पैत्तिक हृद्रोग, शूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, श्वास कास और क्षय रोगों को नष्ट करता है। यह घृत धनुष, नारी, मदिरा, बोझा, मार्ग में अधिक चलना इत्यादि कारणों से खिन्न पुरुषों के मांस और बल को बढ़ानेवाला है मात्रा ६ माशा से १ तोला ॥ ३१—३४ ॥

बलाद्य घृत।

घृतं बलानागबलार्जुनाम्बु सिद्धं सयष्टीमधुकल्कपादम् । हृद्रोगशूलक्षतरक्तपित्तकासानिलासृक् शमयत्युदीर्णम् ३५

घृत २ सेर, क्वाथार्थ खरियारा, नागबला (गुलसकरी) और अर्जुन की छाल कुल मिलाकर ४ सेर, जल ३२ सेर, शेष ८ सेर।। कल्कार्थ मुलेठी सब द्रव्यों की चौथाई। यथाविधि पाककर घृत सिद्ध करे। इस घृत का पान करने से हृद्रोग, शूल, उरःक्षत, रक्तपित्त, खाँसी और वातरक्त आदि रोग शान्त होते हैं ॥ ३५ ॥ मात्रा ६ माशा से १ तोला।

अर्जुन घृत।

पार्थस्य कल्कस्वरसेन सिद्धं शस्तं घृतं सर्वहृदामयेषु ॥ ३६ ॥

घृत २ सेर, क्वाथार्थ अर्जुन की छाल ४ सेर, जल ३२ सेर, शेष ८ सेर। कल्कार्थ अर्जुन-छाल आधसेर। यथाविधि पाककर घृत सिद्ध करे। यह घृत हर प्रकार के हृद्रोग के लिये लाभदायक है ॥ ३६ ॥ मात्रा ६ माशा से १ तोला।

ककुभादि चूर्ण।

ककुभत्वग्वचा रास्ना बलानागबलाभया। शटीपुष्करमूलञ्च पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ ३७ ॥ सर्वाण्येतानि सञ्चूर्ण्य सर्पिषा शाणमात्रया। भक्षयेत् प्रातरुत्थाय सर्वहृद्रोगशान्तये ॥ ३८ ॥

अर्जुन की छाल, वच, रास्ना, खरियारा, नागबला, हरड़, कचूर, पुहकरमूल, पीपरि और सोंठ का चूर्ण बनाकर तीन-तीन माशे घृत के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करे। यह चूर्ण हर प्रकार के हृद्रोग को शान्त करता है ॥३७-३८॥

कल्याणसुन्दर रस।

सिन्दूरमभ्रं तारञ्चताम्रं हेमंचमाक्षिकम्। सर्वं खल्वतले क्षिप्त्वा मर्दयेद् वह्निवारिणा ॥ ३९ ॥ हस्तिशुण्ड्यम्भसा पश्चाद्भावयित्वा च सप्तधा। गुञ्जामात्रां वटीं कृत्वा कोष्णतोयेन दापयेत् ॥ ४० ॥ उरस्तोयञ्च हृद्रोगं वक्षो वातमुरोऽस्रकम्। फौप्फुसान् हन्ति रोगांश्च रसः कल्याणसुन्दरः ॥ ४१ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, चाँदी की भस्म, ताम्रभस्म, स्वर्णभस्म और द्विगुण स्वर्णमाक्षिक लेकर चीता के रस में एक बार और सात बार हाथीसुंडा के रस की भावना दे एक-एक रत्ती की गोली बनावे। थोड़े गरम जल के साथ सेवन करे। इस 'कल्याणसुंदर रस' के सेवन से उरस्तोय, हृद्रोग उरोवात और उरोरुधिर (वक्षःस्थल के रक्तसंचय) तथा फुप्फुस सम्बन्धी रोग नष्ट होते हैं ॥ ३९-४१ ॥ मात्रा १ रत्ती।

चिन्तामणि रस।

पारदं गन्धकञ्चाभ्रं लौहं वङ्गं शिलाजतु। समं समं गृहीत्वा च स्वर्णं सूताङ्घ्रिसम्मितम् ॥ ४२ ॥ स्वर्णस्य द्विगुणं रौप्यं सर्वमेकत्र मर्दयेत्। चित्रकस्य द्रवेणापि भृङ्गराजाम्भसा ततः ॥ ४३ ॥ पार्थस्याथ कषायेण सप्तकृत्वो विभावयेत्। ततो गुञ्जामिताः कुर्याद्वटीश्छायाप्रशोषिताः ॥ ४४ ॥ एकैकां दापयेदासां गोधूमक्वाथवारिणा। हृद्रोगान्निखिलान् हन्ति व्याधीन् फुप्फुसजानपि ॥ ४५ ॥ प्रमेहान् विंशतिं श्वासान् कासानपि सुदुस्तरान्। बलपुष्टिकरो हृद्यो रसश्चिन्तामणिः स्मृतः ॥ ४६ ॥

पारा, गन्धक, अभ्रक, लौह, वङ्ग और शिलाजीत एक एक तोला, स्वर्णभस्म ३ माशे, चाँदी की भस्म आधा तोला एकत्र कर क्रमशः चीता के रस में, भाँगरे के रस में और अर्जुन की छाल के क्वाथ के में सात-सात भावना देकर एक-एक रत्ती की गोली बनावे। प्रतिदिन एक एक गोली गेहूँ के क्वाथ के साथ सेवन करे। इसका सेवन करने से हृद्रोग, फेफड़े के रोग, प्रमेह, श्वास कास आदि विविध रोग शान्त होते हैं। बल वीर्य की वृद्धि होती है तथा हृदय के लिए अत्यन्त हितकारी है ॥ ४२-४६ ॥ मात्रा १ रत्ती।

प्रभाकरवटी।

माक्षिकं लौहमभ्रञ्च तुगाक्षीरीं शिलाजतु। क्षिप्त्वा खल्वोदरे पश्चाद्भावयेत् पार्थवारिणा ॥ ४७ ॥ गुञ्जाद्वयमितां कुर्याद्वटीं छायाविशोषिताम्। प्रभाकरवटी सेयं हृद्रोगान्निखिलान् जयेत् ॥ ४८ ॥

स्वर्णमाक्षिक, लौह, अभ्रक, वंशलोचन और शिलाजीत समभाग लेकर अर्जुन के क्वाथ की भावना देकर २-२ रत्ती की गोली बना छाया में शुष्क कर ले। इस प्रभाकरवटी के सेवन से सब प्रकार के हृद्रोग आराम होते हैं॥ ४७--४८॥ मात्रा १ वटी।

विश्वेश्वर रस।

स्वर्णाभ्रलौहवङ्गानां रसगन्धकयोरपि। वैक्रान्तस्य च संगृह्य भागांस्तोलकसम्मितान्॥ ४६॥ पार्थस्य सलिलेनाथ भावयित्वा यथाविधि। रक्तिकैकप्रमाणेन विदध्याद्वटिकास्ततः॥ ५०॥ अयं विश्वेश्वरो नाम रसः फुफ्फुसजान् गदान्। हृद्रोगांश्च जयेत् सर्वान् संशयोऽत्र न विद्यते॥ ५१॥

स्वर्णभस्म, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, वङ्गभस्म, पारद, शुद्ध गन्धक और वैक्रान्त एक-एक तोला एकत्र कर अर्जुन के क्वाथ की भावना दे एक-एक रत्ती की गोली बनावे। इसका सेवन करने से हृद्रोग और फेफड़े के समस्त रोग नष्ट होते हैं॥ ४६--५१॥ मात्रा ½-१ रत्ती।

हृदयार्णवरस।

सूतार्कगन्धकं क्वाथे वराया मर्दयेद्दिनम्। काकमाच्या वटीं कृत्वा गुञ्जामानाञ्च भक्षयेत्॥ हृदयार्णवनामायं हृद्रोगदलनो रसः॥ ५२॥

पारा, ताम्र और शुद्ध गन्धक को क्रमशः त्रिफला के क्वाथ और मकोय के स्वरस में एक-एक दिन खरल करके एक-एक रत्ती की गोली बनावे। इसका सेवन करने से हृद्रोग शान्त होता है॥ ५२॥ मात्रा १ रत्ती।

शङ्करवटी।

रसस्य भागाश्चत्वारो बलेरष्टौ तथा मताः। त्रयो लौहस्य नागस्य द्वावित्येकत्र मर्दयेत्॥ ५३॥ भावयेत् काकमाच्याश्च चित्रकस्यार्द्रकस्य च। स्वरसेन जयन्त्याश्च वासाया बिल्वपार्थयोः॥ ५४॥ ततो गुञ्जाद्वयमिता विदध्याद्वटिका भिषक्। एकां दापयेदासामीषदुष्णेन वारिणा॥ ५५॥ जयेदियं फुफ्फुसजान् रोगान् हृदयसम्भवान्। जीर्णज्वरं तथा घोरं प्रमेहानपि विंशतिम्॥ ५६॥ कासश्वासामवातांश्च ग्रहणीमपि दुस्तराम्। वटी श्रीशङ्करप्रोक्ता बलपुष्टिविवर्द्धिनी॥ ५७॥

पारा ४ भाग, शुद्ध गन्धक ८ भाग, लौहभस्म ३ भाग और शीशा २ भाग एकत्र कर क्रमशः मकोय, चीता, अदरख, जयन्ती, अडूसा, बिल्व और अर्जुन के स्वरस में भावना देकर दो-दो रत्ती की गोली बनावें। यह शिवजी की कही हुई शङ्करवटी गुनगुने जल के साथ सेवन करने से फेफड़े के रोग, हृद्रोग, जीर्णज्वर, प्रमेह, कास, श्वास, आमवात, ग्रहणी आदि विविध रोगों को दूर कर बल और पुष्टि को देती है॥ ५३--५७॥ मात्रा १ वटी।

त्रिनेत्ररस।

रसगन्धाभ्रभस्मानि पार्थवृक्षत्वगम्बुना। एकविंशतिधा घर्मे भावितानि विधानतः॥ ५८॥ वटीं गुञ्जामितां कृत्वा मधुना सह लेहयेत्। वातजं पित्तजं श्लेष्मसम्भूतं वा त्रिदोषजम्॥ कृमिजं चापि हृद्रोगं निहन्त्येव न संशयः॥ ५९॥

पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म इन्हें इकट्ठा कर बराबर मात्रा में मिला अर्जुन की छाल के क्वाथ से २१ बार भावना दे और १ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान-शहद। इसके सेवन से वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, त्रिदोषज तथा कृमिज हृद्रोग अच्छा होता है। मात्रा १-२ रत्ती॥ ५८-५९॥

नागार्जुनाभ्र।

सहस्रपुटनैः शुद्धं वज्राभ्रमर्जुनत्वचः। सत्त्वैर्विमर्दितं सप्तदिनं राज्ञे विशोषितम्॥

६० ॥ छायाशुष्का वटी कार्या नाम्नेदमर्जुनाह्वयम्। हृद्रोगं सर्वशूलार्शो हृल्लासच्छर्द्यरोचकम् ॥ ६१ ॥ अतीसारमग्निमान्द्यं रक्तपित्तं क्षतक्षयम्। शोथोदराम्लपित्तञ्च विषमज्वरमेव च ॥ हन्त्यन्यानपि रोगांश्च बल्यं वृष्यं रसायनम् ॥ ६२ ॥

सहस्रपुटी अभ्रकभस्म को अर्जुन के क्वाथ से सात दिन भावना देकर १ रत्ती की गोली बनाकर छाया में सुखा ले। इसके सेवन से हृद्रोग, शूल, बवासीर, हृल्लास (जी मतलाना), वमन, अरुचि, अतिसार, मन्दाग्नि रक्तपित्त, क्षतक्षय, शोथ, उदररोग, अम्लपित्त, विषमज्वर आदि रोग नष्ट होते हैं। यह बलकारक, वीर्यवर्द्धक तथा रसायन है। मात्रा १-२ रत्ती ॥ ६०—६२ ॥

पञ्चाननरस।

सूतगन्धौ द्रवैर्धात्र्या मर्दयेत् गोस्तनोद्रवैः। यष्टिखर्जूरसलिलैर्दिनञ्च परिमर्दयेत्। धात्रीचूर्णं सिताञ्चानुपिबेद् हृद्रोगशान्तये॥ ६३ ॥

पारा तथा गन्धक की कज्जली को आँवला, दाख, मुलहठी, खजूर इनमें से प्रत्येक के क्वाथ में १ दिन घोटकर गोली बनावे। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—आँवले का चूर्ण तथा खाँड। इससे हृद्रोग शान्त होता है ॥ ६३ ॥

पार्थाद्यरिष्ट।

पार्थत्वचस्तुलामेकां मृद्वीकार्द्धतुलां तथा। भागं मधूकपुष्पस्य पलविंशतिसम्मितम् ॥६४॥ चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणमेकावशेषयेत्। धातक्या विंशतिपलं गुडस्य च तुलां क्षिपेत् ॥६५॥ मासमात्रं स्थितो भाण्डे भवेत् पार्थाद्यरिष्टकः। हृत्फुस्फुसगदान् सर्वान् हन्त्ययं बलवीर्यकृत् ॥ ६६ ॥

अर्जुन की छाल ५ सेर, मुनक्का २½ सेर, महुआ के फूल १ सेर एकत्र कर ५१ सेर १६ तोला जल में पकावे। १२ सेर ६४ तोला जल शेष रहने पर उतारकर छान ले। इस क्वाथ में ५ सेर गुड़ और १ सेर धाय के फूल का चूर्ण मिलाकर पात्र में बन्द कर एक मास तक रख छोड़े, पश्चात् छान ले। इसको पार्थाद्यरिष्ट कहते हैं। इसके सेवन से हृदय और फेफड़े के कुल रोग आराम होते हैं तथा बल वीर्य की वृद्धि होती है मात्रा १-२ रत्ती ॥ ६४—६६ ॥

हृद्रोग में पथ्य।

शालिमुद्गा यवा मांसं जाङ्गलं मरिचान्वितम्। पटोलं कारवेल्लञ्च पथ्यं प्रोक्तं हृदामये ॥ ६७ ॥

शालि चावल, मूँग, जौ, मरिचयुक्त जाङ्गल पशु-पक्षियों का मांस, परवल तथा करेला ये हृद्रोग में पथ्य हैं ॥ ६७ ॥

अपथ्य।

तैलाम्लतक्रगुर्वन्नकषायश्रममातपम्। रोषं स्त्रीनर्म चिन्तां वा भाष्यं हृद्रोगवांस्त्यजेत् ॥ ६८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां हृद्रोगाद्यधिकारः समाप्तः।

तैल, खटाई, छाछ, भारी अन्न, कषाय द्रव्य, थकावट, धूप, क्रोध, स्त्री भोग, चिन्ता, अधिक बोलना ये हृद्रोग में त्याग देने चाहिये ॥ ६८ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां हृद्रोगाद्यधिकारः समाप्तः।

वायुरोगाधिकारः

सामान्यवायुरोगचिकित्सा ।

स्वाद्वम्ललवणैः स्निग्धैराहारैर्वातरोगिणः । अभ्यङ्गस्नेहबस्त्याद्यैः सर्वानेवोपपादयेत् ॥ १ ॥

वातव्याधियुक्त रोगी की मधुर, खट्टा, नमकीन और स्निग्ध आहार तथा तैलादि मर्दन, स्नेहपान और बस्तिक्रिया आदि से चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

कोष्ठस्थवायुचिकित्सा ।

विशेषतस्तु कोष्ठस्थे वाते क्षीरं पिबेन्नरः ॥ २ ॥

कोष्ठस्थ वायु में दुग्धपान विशेष लाभदायक होता है ॥ २ ॥

आमाशयस्थ वायुचिकित्सा ।

आमाशयस्थे शुद्धस्य यथा रोगहरी क्रिया । आमाशयगते वाते छर्दिताय यथाक्रमम् । रूक्षः स्वेदो लङ्घनञ्च कर्त्तव्यं वह्निदीपनम् ॥ ३ ॥

आमाशयगत वायु हो तो वमन और विरेचन आदि के द्वारा शुद्ध करके रोगानुसार चिकित्सा करनी चाहिये । तथा रूक्ष, स्वेद, लङ्घन और अग्निवर्धक क्रिया करनी चाहिये ॥ ३ ॥

पक्वाशयस्थवायुचिकित्सा ।

पक्वाशयगते वाते हितं स्नेहविरेचनम् । कार्यो बस्तिगते वापि विधिर्बस्तिविशोधनः ॥ ४ ॥

पक्वाशयगत वायु हो तो स्नेह विरेचन विशेष लाभदायक है । यदि बस्तिगत वायु हो तो बस्ति को शुद्ध करना चाहिये ॥ ४ ॥

रसादिगत वायुचिकित्सा ।

त्वङ्मांसासृक्शिराप्राप्ते कुर्याच्चासृग्विमोक्षणम् ।

त्वक्शब्देनात्र रस इति भानुः ।

स्नेहोपनाहाग्निकर्मबन्धनोन्मर्दनानि च । स्नायुसन्ध्यस्थिसंप्राप्ते कुर्याद्वाते विचक्षणः ॥ ५ ॥

रस, मांस, रुधिर और शिरोगत वायु हो तो रक्तमोचण करना लाभदायक होता है । स्नायु, सन्धि और अस्थिगत वायु होने पर स्नेह, उपनाह, अग्निकर्म, बन्धन और मर्दन क्रिया श्रेष्ठ होती हैं ॥ ५ ॥

त्वग्गतवायुचिकित्सा ।

स्वेदाभ्यङ्गावगाहांश्च हृद्यं चान्नं त्वगाश्रिते ॥ ६ ॥

त्वचागत वायु हो तो स्वेद, तैलादि मर्दन, स्नान और हृद्य अन्नभोजन लाभदायक होता है ॥ ६ ॥

रक्त, मांस, मेद और अस्थिगत वायुचिकित्सा ।

शीताः प्रदेहा रक्तस्थे विरेको रक्तमोक्षणम् । विरेको मांसमेदःस्थे निरूहाः शमनानि च । बाह्याभ्यन्तरतः स्नेहैरस्थिमज्जगतं जयेत् ॥ ७ ॥

रक्तगत वायु में शीतल प्रलेप, विरेचन और रक्तमोचण करे । मांस तथा मेदोगत वायु में विरेचन, निरूहबस्ति (पिचकारी देना) और वायुशमनकारक औषधि देना लाभप्रद होता है । अस्थिगत तथा मज्जाश्रित वायु में स्नेहपान और तैलादि मर्दन करना चाहिये ॥ ७ ॥

शुक्रगतवायुचिकित्सा ।

हृद्यान्नपानं शुक्रस्थे बलशुक्रकरं हितम् । विबद्धमार्गं शुक्रं तु दृष्ट्वा दद्याद्विरेचनम् ॥ ८ ॥

शुक्रगत वायु हो तो हृद्य (सुमधुर), बलवर्द्धक और वीर्यवर्द्धक अन्नपान देना हितकर होता है । यदि शुक्र का मार्ग अवरुद्ध हो गया हो तो विरेचन कराना चाहिये ॥ ८ ॥

गर्भशोषचिकित्सा।

गर्भे शुष्के तु वातेन बालानाञ्चापि शुष्यताम्। सितामधुककाश्मर्यैर्हितमुत्थापने पयः॥ ९॥

वायु के द्वारा गर्भ शुष्क हुआ हो अथवा वायु के द्वारा बच्चा कृश हुआ जाता हो तो मुलेठी, खम्भारि और शक्कर के साथ पकाया हुआ दुग्ध विशेष लाभदायक होता है॥ ९॥

शिरोगतवायुचिकित्सा।

शिरोगतेऽनिले वाऽथ शिरोरोगहरी क्रिया॥ १०॥

वायु शिरोगत हो तो वायुजन्य शिरोरोग की चिकित्सा करनी चाहिये॥ १०॥

व्यादितास्य चिकित्सा।

व्यादितास्ये हनुं स्विन्नामंगुष्ठाभ्यां प्रपीड्य च। प्रदेशिनीभ्याञ्चोन्नम्य चिबुकोन्नमनं हितम्॥ ११॥

व्यादितास्यरोग (जिसमें मुख खुला ही रह जाय) में हनु गण्डास्थि प्रदेश में स्वेदन करके अँगूठे से दबाकर तर्जनी उँगलियों से चिबुक (ठुड्डी) को ऊपर उठाना लाभदायक होता है॥ ११॥

अर्दितरोगचिकित्सा।

रसोनकल्कं नवनीतमिश्रं खादेन्नरो योऽर्दितरोगयुक्तः। तस्यार्दितं नाशयतीह शीघ्रं वृन्दं घनानामिव मातरिश्वा॥१२॥

अर्दित रोग में जो रोगी मक्खन मिलाकर लहसुन के कल्क का सेवन करता है उसका अर्दितरोग उसी प्रकार नष्ट होता है, जैसे प्रबल वायु से मेघों का समूह नष्ट हो जाता है॥१२॥

अर्दिते नवनीतेन खादेन्माषेण्डरी नरः। क्षीरमांसरसैर्भुक्त्वा दशमूलीरसं पिबेत्॥ १३॥

अर्दितरोग में उर्द की पीठी के बड़े बनाकर मक्खन के साथ खाय अथवा दुग्ध या मांस रस के साथ भोजन करके दशमूल के क्वाथ का सेवन करे तो अर्दितरोग आराम होता है॥ १३॥

स्वेदाभ्यङ्गशिरोबस्तिपाननस्यपरायणः। अर्दितं स जयेत् सर्पिः पिबेदौत्तरभक्तिकम्॥ १४॥

स्वेद, तैलमर्दन, शिरोबस्ति, स्नेहपान, नस्य और भोजन के पश्चात् घृतपान करना अर्दित रोग में विशेष लाभदायक होता है॥ १४॥

मन्यास्तम्भचिकित्सा।

पञ्चमूलीकृतः क्वाथो दशमूलीकृतोऽथवा। रूक्षः स्वेदस्तथा नस्यं मन्यास्तम्भे प्रशस्यते॥ १५॥

मन्यास्तम्भ रोग में वृहत् पञ्चमूल अथवा दशमूल का क्वाथ तथा रूक्ष स्वेद और नस्य विशेष लाभप्रद होता है॥ १५॥

ग्रीवास्तम्भचिकित्सा।

कटुतैलेनाभ्यक्ते लिप्ते कल्केन वाजिगन्धायाः। शाम्येद् ग्रीवास्तम्भं शूलं महदप्यनायासम्॥ १६॥

कड़वा तेल मलने तथा असगन्ध की जड़ को पीसकर लेप करने से ग्रीवास्तम्भ और शूल नष्ट होता है।

वातधमनीदोषचिकित्सा।

वाताद्वाग्धमनीदुष्टौ स्नेहगण्डूषधारणम्॥ १७॥

वायु के द्वारा यदि स्वरवाहिनी धमनी दूषित हो गई हो तो घृत और तैलादि का गंडूष धारण करना चाहिए॥ १७॥

कुब्जता चिकित्सा।

वातघ्नैर्दशमूल्या च नवं कुब्जमुपाचरेत् स्नेहैर्मांसरसैर्वापि महद्वं तं विवर्जयेत्॥ १८॥

वायु के द्वारा मनुष्य कुबडा हो जाय तो वातनाशक औषध, दशमूल क्वाथ, स्नेहपान और मांसरस आदि से चिकित्सा करनी चाहिये। यदि कुबड़ापन प्राचीन हो तो उसको त्याग देना चाहिये ॥ १८ ॥

आध्मान चिकित्सा।

आध्माने लंघनं पाणितापश्च फलवर्त्तयः दीपनं पाचनञ्चैव वस्तिश्चाप्यत्र शोधनः ॥ १९ ॥

उदराध्मान में लंघन, हाथ गरम करके उसके द्वारा स्वेदन, फलवर्ति[1], दीपन और पाचन औषध प्रदान तथा शोधनवस्ति क्रिया की व्यवस्था करनी चाहिये ॥ १९ ॥

प्रत्यष्ठीलाष्ठीलिक चिकित्सा।

प्रत्यष्ठीलाष्ठीलिकयोरन्तर्विद्रधिगुल्मवत् ॥ २० ॥

अष्ठीला और प्रत्यष्ठीला रोग में अन्तर्विद्रधि और गुल्म के समान चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २० ॥

गृध्रसीचिकित्सा।

तैलमेरण्डजं वापि गोमूत्रेण पिबेन्नरः। मासमेकं प्रयोगोऽयं गृध्रस्यूरुग्रहापहः ॥ २१ ॥

२ तोला गोमूत्र के साथ २ तोला एरण्ड के तेल को एक महीना पीने से गृध्रसी और ऊरुग्रह रोग नष्ट होते हैं ॥ २१ ॥

शेफालिकादलक्वाथो मृद्वग्निपरिसाधितः। दुर्वारं गृध्रसीरोगं पीतमात्रं समुद्धरेत् ॥ २२ ॥

धीमी आँच से पकाये हुए, ४ तोला सँभालू की पत्तियों के क्वाथ को पीने से गृध्रसी रोग तत्काल आराम होता है ॥ २२ ॥

पिष्ट्वैरण्डफलं क्षीरे सविश्वं वा रुबोः फलम् प्रायशो भक्षितः सिद्धो गृध्रसीकटिशूलनुत् ॥ २३ ॥

केवल एरण्ड के फल २ तोला को दूध में पीसकर सेवन करने से अथवा समान भाग सोंठ और एरण्ड के फल को दूध के साथ सेवन करने से गृध्रसी और कमर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ २३ ॥

वातकण्टकचिकित्सा।

रक्तावसेचनं कार्यमभीक्ष्णं वातकण्टके। पिबेदेरण्डतैलं वा दहेत् सूचीभिरेव वा ॥ २४ ॥

वातकण्टक रोग में बार-बार पाददेश में रुधिर निकालना (फस्द खोलना), गरम सलाई से दागना अथवा एरण्ड के तैल का पान करना चाहिए ॥ २४ ॥

खल्लीचिकित्सा।

खल्ल्यां स्निग्धाम्ललवणैः स्वेदोन्मर्दोपनाहनम् ॥ २५ ॥

खल्ली रोग में स्निग्ध, अम्ल और लवण द्रव्य के द्वारा स्वेद, मर्दन तथा बन्धन करना चाहिए ॥ २५ ॥

क्रोष्टुशीर्ष चिकित्सा।

गुग्गुलं क्रोष्टुशीर्षे तु गुडूचीत्रिफलाम्भसा। क्षीरेणैरण्डतैलं वा पिबेद्वा वृद्धदारकम् ॥ २६ ॥

क्रोष्टुशीर्ष में गिलोय तथा त्रिफला के ४ तोला क्वाथ से गुग्गुल १ माशा दूध के साथ एरण्डी के तैल अथवा दूध एवं गरम जल के साथ विधारा का सेवन कराना हितकारक है ॥ २६ ॥

वायुनाशक लेप।

कौलं कुलत्थाः सुरदारुरास्नामाषातसीतैलफलानि कुष्ठम्। वचाशताह्वायवचूर्णमम्लमुष्णानि वातामयिनांप्रदेहः ॥ २७ ॥

बेर की मींगी, कुलथी, देवदारु, रास्ना, उर्द,

---

[1] —वायु अनुलोमन के लिए लवणमिश्रित घृत-तैलादि से भिगोई हुई कपड़े की बत्ती गुदा में दी जाती है।

अलसी का तैल, त्रिफला कूट, वच, सोया और जौ के आटे को काँजी में पीसकर गरम करके लेप करने से वातरोग की शान्ति होती है ॥ २७ ॥

तैलकाञ्जिकद्रोणी।

पक्षाघातं कटिहनुशिरःकर्णनासाक्षितालुग्रीवाग्रन्थिप्रबलमनिलं सार्दितं सापतानम्। मूत्राघातं ग्रहणिगलरुक्श्वाससर्वाङ्गकम्पं तैलद्रोणी हरति न चिरात् काञ्जिकद्रोणिका च ॥ २८ ॥

किसी टब या नाँद में एक द्रोण (१२ सेर ६४ तोला) तिलतैल अथवा काँजी भरकर उसमें बैठकर स्नान करने से पक्षाघात, कटि, हनु, मस्तक, कर्ण, नासिका, चक्षु, तालु, ग्रीवा और ग्रन्थिस्थित प्रबल वायु, अर्दित, अपतानक, मूत्राघात, ग्रहणी, गलरोग, श्वास और सर्वाङ्गकम्परोग शीघ्र निवृत्त होते हैं ॥ २८ ॥

माषबलादिपाचन।

माषबलाशुकशिम्बीकतृणरास्नाश्वगन्धोरुबूकाणाम्। क्वाथो नस्यनिपीतो रामठलवणान्वितः कोष्णः ॥ २९ ॥ अपहरति पक्षाघातं मन्यास्तम्भं सकर्णनादरुजम्। दुर्जयमर्दितवातं सप्ताहाज्जयति चावश्यम् ॥ ३० ॥

उड़द, खरेटी की जड़, कौंच के बीज, गन्धतृण, रास्ना, असगन्ध, अरण्डी की जड़; इनके ४ तोला क्वाथ में हींग तथा सेंधा नमक २।२ रत्ती डालकर नासिका द्वारा पीने से पक्षाघात, मन्यास्तम्भ, कर्णनाद तथा अर्दितरोग शीघ्र नष्ट होते हैं (आजकल इसे मुख द्वारा ही देते हैं) २९-३०॥

माषात्मगुप्तकैरण्डं भृतं वाट्यालकं पिबेत्। हिंगुसैन्धवसंयुक्तं पक्षाघातनिवारणम् ॥ ३१ ॥

उड़द, कौंच के बीज, अरण्डी की जड़ तथा बला की जड़; इनके ४ तोला क्वाथ में हींग तथा सेंधानमक २।२ रत्ती डालकर पीने से पक्षाघात नष्ट हो जाता है ॥ ३१ ॥

शाल्वण स्वेद।

काकोल्यादिः सवातघ्नः सर्वाम्लद्रव्यसयुतः सानूपमांसः सुस्विन्नः सर्वस्नेहसमन्वितः ॥ ३२ ॥ सुखोष्णः स्पष्टलवणः शाल्वणः परिकीर्तितः। तेनोपनाहं कुर्वीत सर्वदा वातरोगिणाम् ॥ ३३ ॥ वातघ्नो भद्रदार्वादिः काकोल्यादिस्तु सौश्रुतः। मांसेनात्रौषधं तुल्यं यावताम्लेन चाम्लता ॥ ३४ ॥ पट्वी स्यात् स्वेदनार्थश्च काञ्जिकाद्यम्लमिष्यते। तावन्तश्च चतुःस्नेहाः स्निग्धत्वं च यथा भवेत् ॥ ३५ ॥

उपनाहः कोष्णो बहुलो लेपः ॥

सुश्रुतसंहिता में वर्णित काकोल्यादिगण तथा वातघ्न भद्रदार्वादिगण, आनूप मांस, काँजी, सुरा आदि अम्लद्रव्य, चारों स्नेह (घृत, तैल, वसा, मज्जा), लवणवर्ग सबको मिलाकर गर्म करके किंचित् गुनगुना उपनाह करना चाहिये। इस स्वेद में चक्रपाणि के अनुसार काकोल्यादिगण तथा भद्रदार्वादि दोनों गणों की औषधों के वज़न के बराबर आनूप मांस लेना चाहिये। अम्लस्नेह, लवण पदार्थ अनुमान से ही डालने चाहिये, जिससे अधिक न हों। वृन्द के अनुसार काकोल्यादि, भद्रदार्वादि तथा आनूप मांस, तीनों की आवश्यकता होने से समान भाग में ग्रहण करना चाहिये ॥३२-३५॥

स्वल्परास्नादि क्वाथ।

रास्नाविश्वविडङ्गानि रुबूकत्रिफला तथा। दशमूलपृथक् श्यामा क्वाथो वातामयापहः ॥ ३६ ॥ अर्दिते च शिरःशूले ज्वरेऽपस्मार एव च। मनोभ्रंशे च विविधे कथितश्च शुभप्रदम् ॥ ३७ ॥

रास्ना, सोंठ, वायविडङ्ग, अरण्डी की जड़, त्रिफला, दशमूल, काली शारिवा; इनका क्वाथ अर्दित आदि वातरोगों को नष्ट करता है। यह शिरःशूल, ज्वर, अपस्मार, उन्माद आदि में भी हितकारक है मात्रा—४ तोला ॥३६-३७॥

पलमर्द्धपलञ्चैव रसोनस्य सुकुट्टितम्। हिंगुमीरकसिन्धूत्थसौवर्चलकटुत्रिकैः ३८॥ चूर्णितैर्माषकोन्मानैरवचूर्ण्य विलोडितम्। यथाग्निभक्षितं प्रातरुबुकाथानुपानतः॥ ३६॥ दिने दिने प्रयोक्तव्यं मासमेकं निरन्तरम्। वातरोगं निहन्त्याशु अर्दितं सापतन्त्रकम्॥ ४०॥ एकाङ्गरोगिणे चैव तथा सर्वाङ्गरोगिणे। ऊरुस्तम्भे च गृध्रस्यां कृमिदोषे विशेषतः॥ कटिपृष्ठामयं हन्यादुदरञ्च विनाशयेत्॥४१॥

छः तोले लहसुन को पीसकर उसमें हींग, जीरा, लाहौरी नमक, काला नमक, सोंठ, मिरच और पीपरि का चूर्ण एक-एक माशा मिलाकर रख ले। अग्नि के अनुसार उचित मात्रा में प्रतिदिन प्रातःकाल इस चूर्ण को खाकर अरण्डी के मूल के क्वाथ का एक मास तक सेवन करे तो अर्दित, अपतन्त्रक, एकांगवात, सर्वांगवात, ऊरुस्तम्भ, गृध्रसी, कटिशूल, पृष्ठशूल, कृमिदोष, उदररोग आदि वातरोग नष्ट होते हैं। मात्रा—२ माशे॥ ३८-४१॥

कट्यादिवातनाशकयोग।

तैलं घृतञ्चार्द्रकमातुलुङ्ग्या रसं सचुक्रं सगुडं पिवेद्वा। कटचूरुपृष्ठत्रिकगुल्मशूलगृध्रस्युदावर्त्तहरः प्रयोगः॥ ४२॥

तिलतैल, घृत, अदरख के रस और बिजौरा नींबू के रस का चूक या गुड़ के साथ सेवन करे तो कटि, ऊरु, पीठ और त्रिक की पीड़ा गुल्म, शूल, गृध्रसी और उदावर्त रोग नष्ट होते हैं॥ ४२॥

पञ्चमूलीबलासिद्धं क्षीरं वातामये हितम्॥ ४३॥

वातरोग में बृहत्पञ्चमूल और खरैंटी के साथ सिद्ध किया दुग्ध लाभदायक होता है ४३॥

त्रयोदशाङ्गगुग्गुलु।

आभाश्वगन्धा हवुषा गुडूची शतावरी गोक्षुरवृद्धदारकम्। रास्ना शताह्वा सशटी यमानी सनागरा चेति समैश्च चूर्णम्॥ ४४॥ तुल्यं भवेत् कौशिकमत्रमध्ये देयं तथा सर्पिरथार्द्धभागम्। कोलार्द्धमात्रं तु ततः प्रयोगात् कृत्वानुपानं सुरयाथ यूषैः॥ ४५॥ मद्येन वा कोष्णजलेन वाथ क्षीरेण वा मांसरसेन वापि। कटिग्रहे गृध्रसि बाहुपृष्ठे हनुग्रहे जानुनि पादयुग्मे॥ ४६॥ सन्धिस्थिते चास्थिगते च वाते मज्जाश्रिते स्नायुगते च कुष्ठे। रोगान् जयेद्वातकफानुविद्धान् वातेरितान् हृद्ग्रहयोनिदोषान्॥ ४७॥ भग्नास्थिविद्धेषु च खञ्जवाते त्रयोदशाङ्गं प्रवदन्ति सन्तः॥ ४८॥

गुग्गुलोरर्द्धभागं घृतम्। वृद्धवैद्यास्तु यावता घृतेन गुग्गुलुपिट्टनं भवति तावदेव घृतं गृह्णन्ति।

बबूल की छाल, असगन्ध, हाऊबेर, गिलोय, शतावरि, गोखरू, विधारा, रास्ना, सौंफ, कपूर, अजवाइन और सोंठ का चूर्ण एक-एक तोला गूगुल १२ तोला और घृत ६ तोला एकत्र कर घोटकर रख ले। मदिरा, यूष, गरम जल, दूध अथवा मांसरस आदि के यथोचित अनुपानसे कमर की पीड़ा, बाहु, पृष्ठ, जाँघ, पाँव, जोड़, अस्थि, मज्जा और स्नायुगत वायु, हनुग्रह, हृद्ग्रह, कुष्ठ, योनिदोष, अस्थिभंग, खंजवात, वातकफजरोग आदि शान्त होते हैं। मात्रा १-६ माशा।

घी गुग्गुल से आधा लेना चाहिए। वृद्ध वैद्यगण जितने घृत में गुग्गुल घोटा जाय, उतना ही घृत लेते हैं ॥ ४४-४८ ॥

तैलमूर्च्छा विधि।

आदौ तैलं कटाहे दृढतरविमले मन्द-मन्दानलैस्तत्, पक्वं निष्फेनभावं गतमिह हि यदा शैत्यभावं तदैतत् । मञ्जिष्ठा रात्रिलोध्रैर्जलधरनलुकैः सामलैः, साक्ष-पथ्यैः,सूचीपुष्पांघ्रिनीरैरुपहिनमथितैर्गन्ध-योगं जहाति ॥ ४६ ॥ तैलस्येन्दुकलांशिकैस्तु विकपाभागा हि मूर्च्छाविधौ, ये चान्ये त्रिफलापयोदरजनीह्रीवेरलोध्रा-न्विताः । सूचीपुष्पवटावरोहनलिकास्त-स्याश्च पादांशिका, दुर्गन्धं विजहात्यतीव सुरभिं कुर्वन्ति घर्णारुणम् ॥ ५० ॥

पहले ४ सेर तिल्ली के तैल को एक लोहे की कढ़ाई में डालकर मन्दी-मन्दी अग्नि से पकावे। पकाते-पकाते जब तैल झाग से रहित हो जाय तब आम आदि के पत्तों से उसकी परीक्षा करे, अर्थात् उस तैल में आम के एक नरम पत्ते को डाले। यदि वह पत्ता डालने के साथ ही तल जाय और तोड़ने पर सहज में मुड़ जाय तो समझना चाहिये कि वह तैल मूर्च्छा पाक के योग्य हो गया है। अब तैल को अग्नि पर से उतारकर ठंडा होने दे। किञ्चित् ठंडा होने पर ५ तोला हल्दी को पीसकर जल के साथ घोलकर डाल दे। तत्पश्चात् मजीठ २० तोला एवं लोध, मोथा, नालुका, आँवला, बहेड़ा, हरड़, केवड़ा, बड़ की डाढ़ी, गन्धबाला, हरएक ५ तोला, सबको कूटकर १६ सेर जल में मिला-कर तेल में डाल दे और मन्द-मन्द अग्नि पर पकावे। थोड़ा सा जल बाकी रहते-रहते उतार ले। इस प्रकार मूर्च्छापाक करने से दुर्गन्ध नष्ट होकर तैल सुगन्धित और लाल रंग का हो जाता है ॥ ४६-५० ॥

वातहर तैलों की विशेषमूर्च्छा विधि।

आम्रजम्बूकपित्थानां बीजपूरकबिल्वयोः । गन्धकर्मणि सर्वत्र पत्राणि पञ्च-पल्लवम् । पञ्चपल्लवतोयेन गन्धानां क्षालनं मतम् ॥ ५१ ॥

आम, जामुन, कैथा, बिजौरा नींबू और बेल की पत्तियों को पञ्चपल्लव कहते हैं। इस पञ्चपल्लव से गन्धद्रव्यों का शोधन करना चाहिए। इसको चौगुने जल में पकावे, चतुर्थांश शेष रहने पर उतारकर छान ले। इस क्वाथ के साथ तैल को पकाने से उसकी गन्ध दूर हो जाती है ॥ ५१ ॥

गन्धद्रव्यों का कथन

एलाचन्दनकुङ्कुमागुरुमुरा कक्कोल-मांसी शटी, श्रीवासच्छदग्रन्थिपर्णशश-भृत् चौणीधृजोशीरकम् । कस्तूरीनख-पूतितैलजलमुङ्मेथीलवङ्गादिकं गन्धद्रव्यमिदं प्रदेयमखिलं श्रीविष्णुतैलादिषु ५२

इलायची, श्वेत चन्दन, कुंकुम, अगर, मुरा, कंकोल, जटामांसी, कचूर, सरल काष्ठ, गठिवन, कपूर, शिलारस, (छरीला), खस, कस्तूरी, नखी, [1]पूति (गंधमार्जारअण्ड), नागरमोथा, मेथी और लौंग आदि गन्धद्रव्य हैं। विष्णुतैल आदि सब तैलों में ये डाले जाते हैं ॥ ५२ ॥

तन्त्रान्तर में।

कुष्ठञ्च नलिका पूतिरुशीरं श्वेतचन्दनम् । जटामांसी तेजपत्रं नखी मृगमदः फलम् ॥ ५३ ॥ कक्कोलं कुङ्कुमं चोचं लताकस्तूरिका वचा । सूक्ष्मैलागुरुमुस्तञ्च कर्पूरं ग्रन्थिपर्णकम् ॥ ५४ ॥ श्रीवासा कुन्दुरुर्देवकुसुमं गन्धमातृका । सिह्लको मिषिका मेथी भद्रमुस्तं तथा शटी ॥ ५५ ॥

१—पूति से बंगाल के कविराज खट्टाशी गन्धमार्जारअण्ड का ग्रहण करते हैं।

जातीकोषं शैलजञ्च देवदारु सजीरकम् । एतानि गन्धद्रव्याणि तैलपाकेषु युक्तितः ॥ ५६ ॥

कूट, मालीशाक, पूर्ति (गधमार्जारथयड), खस, श्वेतचन्दन, जटामांसी, तेजपात, मखी, कस्तूरी, जायफल, कंकोल, केसर, दालचीनी, लता कस्तूरी (येदमुश्क), दुधवच, छोटी इलायची, अगर, नागरमोथा, कपूर गठिवन, राल (सरल वृक्ष), विरोजा (कुंदुरु), लौंग, गन्धमातृका, शिलारस, सोया, मेथी, भद्रमोथा, कचूर, जावित्री, शैलज, देवदारु और जीरा ये गन्धद्रव्य कहे जाते हैं । यथा नियम तैलों में इनका प्रयोग होता है ॥ ४३–५६ ॥

स्वल्पविष्णुतैल ।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बला च बहुपुत्रिका । एरण्डस्य च मूलानि बृहत्योः पूतिकस्य च ॥ ५७ ॥ गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च । एतेषां पलिकैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५८ ॥ आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् । अस्य तैलस्य पक्वस्य शृणु वीर्यमतः परम् ॥ ५९ ॥ अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां तथैव च । अपुमांश्च नरः पीत्वा निश्चयेन पुमान् भवेत् ॥ ६० ॥ हृच्छूले पार्श्वशूले च तथैवार्धावभेदके । कामलापाण्डुरोगेषु शर्करास्वश्मरीषु च ॥ ६१ ॥ क्षीणेन्द्रिया नरा ये च जरया जर्जरीकृताः । येषाञ्चैव क्षयो व्याधिरन्त्रवृद्धिश्च दारुणा ॥ ६२ ॥ अर्दितं गलगण्डञ्च वातशोणितमेव च । स्त्रियो या न प्रसूयन्ते तासाञ्चैव प्रदापयेत् ॥ ६३ ॥ गर्भमश्वतरी विन्द्याच्च मृत्युवशं व्रजेत् । एतत्तैलवरञ्चैव विष्णुना परिकीर्त्तितम् ॥ ६४ ॥

तिलतैल १२८ तोला, गाय या बकरी का दूध ६ सेर ३२ तोला, कल्क के लिये सरिवन, पिठवन, खरेंटी, शतावरि, एरण्डमूल, बड़ी कटेरी का मूल, बजे का मूल, मागबला का मूल और पियाबासा का मूल ये सब चार-चार तोले, तैल, दुग्ध और कल्क एकत्र कर यथाविधि तैल सिद्ध करना चाहिए । इस तैल के पान से नपुंसक मनुष्य पुरुषत्व प्राप्त करता है । यह वातपीड़ित हाथी, घोड़ों के लिए भी हितकर है । मर्दन से इन्द्रियदौर्बल्य, अर्दित, गलगण्ड, वक्षस्थल की पीड़ा, पार्श्वशूल, अन्त्रवृद्धि, रतिशक्तिहीनता, अधकपारी, (आधे माथे में दर्द) वातरक्त, कामला, पीलिया, सिकतामेह और पथरी आदि अनेक रोग अच्छे होते हैं । शरीर में बलवीर्य की वृद्धि होती है । जिस गर्भिणी स्त्री को प्रसवकाल में अतिकष्ट होता हो, उसे भी देना चाहिए । इस तैल का सेवन करने से खच्चरी भी गर्भ धारण करती है और मरती नहीं, तो फिर वन्ध्या स्त्री का कहना ही क्या । इस सर्वोत्तम तैल का उपदेश विष्णु ने किया था, अतः इसको विष्णुतैल कहते हैं ॥ ५७-६४ ॥

मध्यम विष्णुतैल ।

शतावरी चांशुमती पृश्निपर्णी शटी बला । एरण्डस्य च मूलानि बृहत्योः पूतिकस्य च ॥ ६५ ॥ गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च । एषां द्विपलिकान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ६६ ॥ पादशेषे च पूते च गर्भञ्चैनं[1] समावपेत् । पुनर्नवा वचा दारु शताह्वा चन्दनागुरु ॥ ६७ ॥ शैलेयं तगरं कुष्ठमेला मांसी स्थिरा बला । अश्वाह्वा सैन्धवं रास्ना पलार्द्धानि च पेषयेत् ॥ ६८ ॥ गव्याजपयसोः प्रस्थौ द्वौ द्वावत्र प्रदापयेत् ।

1—गर्भम् कल्कम् ।

शतावरीरसप्रस्थं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ६९ अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम्। अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां तथा नृणाम् ॥ ७० ॥ तैलमेतत् प्रयोक्तव्यं सर्ववातविकारनुत् अपुमांश्च नरः पीत्वा निश्चयेन पुमान् भवेत् ॥ ७१ ॥ गर्भमश्वतरी विन्द्यात् किं पुनर्मानुषी तथा। हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च तथैवार्द्धावभेदकम् ॥ ७२ ॥ अपचीं गण्डमालाञ्च वातरक्तं गलग्रहम्। कामलां पाण्डुरोगञ्च अश्मरीञ्च विनाशयेत् ॥७३॥ तैलमेतद्भगवता विष्णुना परिकीर्त्तितम्। विष्णुतैलमिदं ख्यातं वातान्तकरणं शुभम् ॥ ७४ ॥

तिलतैल १२८ तोला, क्वाथ के लिये शतावरि, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, कचूर, खरेटी, एरंड का मूल, छोटी कटेरी का मूल, बड़ी कटेरी का मूल, कजे का मूल, नागबला का मूल और अड़ूसे की जड़, प्रत्येक आठ-आठ तोले, जल २५ सेर ४८ तोला, शेष ६ सेर १२ तोला, कल्क के लिये पुनर्नवा, वच, देवदारु, सौंफ, रक्त चन्दन, अगर शैलज (छरीला), तगर, कूट, इलायची, जटामांसी, शालपर्णी, खरेटी की जड़, असगन्ध, सेंधा नमक और रास्ना ये दो-दो तोले, गाय का दूध ३ सेर १६ तोला, बकरी का दूध ३ सेर १६ तोला, शतावरि का रस १२८ तोला, तैल, क्वाथ, कल्क और दुग्ध इन पूर्वोक्त सब वस्तुओं को एकत्र कर यथाविधि तैल सिद्ध करे। इसका गुण पूर्वोक्त स्वल्प विष्णुतैल के समान ही है। इसमें उससे अपेक्षा अपची, गण्डमाला और गलग्रह को नाश करने की विशेष शक्ति है ॥ ६९-७४ ॥

वृहद्विष्णुतैल।

अश्वगन्धा जलधरो जीवकर्षभकौ शटी। काकोली क्षीरकाकोली जीवन्ती मधुयष्टिका ॥ ७५ ॥ देवदारुं मधुरिका पद्मकाष्ठञ्च शैलजम्। मांसी चैला त्वचं कुष्ठं वचा चन्दनकुङ्कुमम् ॥ ७६ ॥ मञ्जिष्ठा मृगनाभिश्च श्वेतचन्दनरेणुकम्। पर्णिनी कुन्दुरुखोटिश्च ग्रन्थिकश्च नखी तथा ॥ ७७ ॥ एतेषां पलिकैर्भागैस्तैलस्यापि तथाढकम्। शतावरीरससमं दुग्धञ्चापि समं पचेत् ॥ ७८ ॥ विष्णुतैलमिदं श्रेष्ठं सर्ववातविकारनुत्। ऊर्ध्ववातं तथा वातमङ्गुलिग्रहमेव च ॥ ७९ ॥ शिरोमध्यगतं वातं मन्यास्तम्भं गलग्रहम्। हन्ति नानाविधं वातं सन्धिमज्जागतं तथा ॥८०॥ यस्य शुष्यति चैकाङ्गं गतिर्यस्य च विह्वला। ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः। सर्वांस्तान् नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः ॥ ८१ ॥

कल्क के लिये नागरमोथा, असगन्ध, जीवक, ऋषभक, कचूर, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलेठी, सौंफ, देवदारु, पद्माख, शैलज (छरीला), जटामांसी, इलायची, दालचीनी, कूट, वच, रक्त चन्दन, केसर, मजीठ, कस्तूरी, श्वेत चन्दन, सँभालू के बीज, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, गंधाबिरोजा, गठिवन, ६ सेर ३२ तोला और नखी चार-चार तोले। तिलतैल ६ सेर ३२ तोला, शतावरि का रस ६ सेर ३२ तोला, दुग्ध ६ सेर ३२ तोला, जल २५ सेर ४८ तोला, एकत्रकर यथाविधि पाक कर तैल सिद्ध करे। इस तैल का मर्दन करने से ऊर्ध्ववात, अङ्गुलिग्रह, शिरदर्द, मन्यास्तम्भ, गलग्रह, सन्धिगत वायु, मज्जागत वायु तथा एकाङ्गशोष, कंपवायु और वातपित्तज रोग इसी प्रकार नष्ट होते हैं जिस प्रकार सूर्य द्वारा अंधकार नष्ट होता है ॥ ७५-८१ ॥

मध्यम नारायणतैल।

बिल्वाग्निमन्थश्योनाकपाटलापारिभ-

द्रकम्। प्रसारण्यश्वगन्धा च बृहती कण्टकारिका ॥ ८२ ॥ बला चातिबला चैव श्वदंष्ट्रा सपुनर्नवा। एषां दशपलान् भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ ८३ ॥ पादशेषं परिस्राव्य तैलपात्रं प्रदापयेत्। शतपुष्पा देवदारु मांसी शैलेयकं वचा ॥ ८४ ॥ चन्दनं तगरं कुष्ठमेला पर्णीचतुष्टयम्। रास्ना तुरगगन्धा च सैन्धवं सपुनर्नवम् ८५ एषां द्विपलिकान् भागान् पेषयित्वा विनिक्षिपेत्। शतावरीरसञ्चैव तैलतुल्यं प्रदापयेत् ॥ ८६ ॥ आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम्। पाने बस्तौ तथाभ्यङ्गे भोज्ये चैव प्रशस्यते ॥ ८७ ॥ अश्वो वा वातभग्नो वा गजो वा यदि वा नरः। पङ्गुश्च पीठसर्पी च तैलेनानेनसिध्यति८८ अधोभागे च ये वाताः शिरोमध्यगताश्च ये। मन्यास्तम्भे हनुस्तम्भे दन्तरोगे गलग्रहे ॥८६॥ यस्य शुष्यति चैकाङ्गं गतिर्यस्य च विह्वला। क्षीणेन्द्रियाः क्षीणशुक्रा ज्वरक्षीणाश्च ये नराः ॥ ६० ॥ बधिरा लल्लजिह्वाश्च मन्दमेधस एव च। अल्पप्रजा च या नारी या च गर्भं न विन्दति ६१ वातार्त्तौ वृषणौ येषामन्त्रवृद्धिश्च दारुणा। एतत्तैलवरं तेषां नाम्ना नारायणं स्मृतम् ॥ ६२ ॥

तिलतैल ६ सेर ३२ तोला, क्वाथार्थ बेल की जड़, अग्निमन्थ (अरणी), श्योनाक, पाढल, नीम की छाल, गन्धप्रसारणी, असगन्ध, बड़ी कटेरी, कटेरी, खरेटी, कंघी, गोखरू और साँठी चालीस-चालीस तोले, पाकार्थ जल २ मन २२ सेर ३२ तोला, कल्कार्थ सौंफ, देवदारु, जटामांसी, छरीला, वच, रक्तचंदन, तगर, कूट, छोटी इलायची, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, रास्ना, असगंध, सेंधा नोन और पुनर्नवा ये आठ-आठ तोले, शतावरि का रस ६ सेर ३२ तोला, बकरी या गाय का दूध २६ सेर ४८ तोला, इन सब वस्तुओं को एकत्र कर यथाविधि तैल सिद्ध करे। इस तैल का पान करने से वस्तिकर्म और मर्दन करने से वातभग्न हाथी, घोड़े एवं मनुष्यों के वातरोग नष्ट होते हैं। तथा पङ्गुता पीठ के बल चलना, अधोवात, शिरोरोग, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, दन्तरोग, गलग्रह, एकाङ्गशोष, कम्पनयुक्त गति, इन्द्रियदौर्बल्य, शुक्र की क्षीणता, ज्वर के कारण क्षीणता और बहिरापन, तोतलापन आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं। जिस स्त्री के अल्प सन्तान हो, गर्भ गिर जाया करता हो उसके लिये यह तेल लाभदायक है। वातजन्य अण्डवृद्धि और दारुण अन्त्रवृद्धि के लिये भी हितकर है। इस श्रेष्ठ तैल का नाम मध्यम नारायण है ॥८२-६२॥

महानारायणतैल।

बिल्वाश्वगन्धा बृहती श्वदंष्ट्रा श्योनाकवाट्यालकपारिभद्रम्। क्षुद्राकठिल्लातिबलाग्निमन्थं मूलानि चैषां सरणीयुतानाम् ॥ ६३ ॥ मूलं विदध्यादथ पाटलीनां प्रस्थं सपादं विधिनोद्धतानाम्। द्रोणैरपामष्टभिरेव पक्त्वा पादावशेषेण रसेन तेन ॥ ६४ ॥ तैलाढकाभ्यां सममेव दुग्धमाजं निदध्यादथवापि गव्यम्। एकत्र सम्यग्विपचेत् सुबुद्धिर्दद्याद्रसं चैव शतावरीणाम् ॥ ६५ ॥ तैलेन तुल्यं पुनरेव तत्र रास्नाश्वगन्धामिषिदारुकुष्ठम्। पर्णीचतुष्कागुरुकेशराणि सिन्धूत्थमांसीरजनीद्वयं च ॥ ६६ ॥ शैलेयकं चन्दनपुष्कराणि एलाग्रयष्टीतगराब्दपत्रम्। भृङ्गाष्टवर्गाम्बुवचा पलाशं स्थौणेयवृश्चीरकचोरकाख्यम् ॥ ६७ ॥ एतैः समस्तैर्द्विपलप्रमाणैरालोड्य सर्वं विधिना विपक्वम्। कर्पूर-

काश्मीरमृगाण्डजानां चूर्णीकृतानांत्रिपलप्रमाणम् ॥ ९८ ॥ प्रस्वेददौर्गन्ध्यानिवारणाय दद्यात् सुगन्धाय वदन्ति केचित्। नारायणं नाम महच्च तैलं सर्वप्रकारैर्विधिवत्प्रयोज्यम् ॥ ९९ ॥ आश्वेव पुंसां पवनार्दितानामेकाङ्गहीनार्दितवेपनानाम्। ये पङ्गवः पीठविसर्पिणश्च बाधिर्यशुक्रक्षयपीडिताश्च॥१००॥मन्याहनुस्तम्भशिरोरुजार्त्ता मुक्तामयास्ते बलवर्णयुक्ताः। संसेव्य तैलं सहसा भवन्ति वन्ध्या हि नारी लभते च पुत्रम् ॥ १०१ ॥ वीरोपमं सर्वगुणोपपन्नं सुमेधसं श्रीविनयान्वितं च। शाखाश्रिते कोष्ठगते च वाते वृद्धौ विधेयं पवनार्दितानाम् ॥ १०२ ॥ जिह्वानिले दन्तगते च शूले उन्मादकौब्जज्वरकर्शितानाम्। प्राप्नोति लक्ष्मीं प्रमदाप्रियत्वं वपुः मकर्षे विजयं च नित्यम् ॥ १०३ ॥ तैलोपसेवी जरयाभिमुक्तोजीवेच्चिरञ्चापिमवेत् युवेव। देवासुर युद्धापरे समीक्ष्य स्नाय्वस्थिभङ्गानसुरैः सुरांश्च ॥ १०४ ॥ नारायणेनापि सुबृंहणार्थं स्वनामतैलं विहितं च तेषाम् ॥ १०५ ॥

बिल्व, असगन्ध, बड़ी कटेरी, गोखरू, स्योनाक, खरेटी, फरहदी की छाल, कटेरी, पुनर्नवा, कंघी, अरणी और गन्धप्रसारणी का मूल तथा पादल का मूल एक-एक सेर लेकर २ मन ४ सेर ६४ तोला पानी में पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर रस ले। उस क्वाथ में १२ सेर ६४ तोला तेल और १२ सेर ६४ तोला बकरी या गाय का दूध मिलावे। फिर रास्ना, असगन्ध, सौंफ, देवदारु, कूट, शालपर्णी, पृश्नपर्णी मुद्गपर्णी, माषपर्णी, अगर, नागकेसर, सेंधा नमक, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, शैलज, छरीला, रक्त चन्दन, पुष्करमूल इलायची, मजीठ, मुलेठी, तगर, नागरमोथा, तेजपात, भांगरा, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि मेदा महामेदा, सुगन्धवाला, वच, ढाँक की जड, गठिवन, सफेद साँठी और चोरक (भटेउर), ये आठ-आठ तोले लेकर कल्क बनाकर मिला दे। बाद में विधि अनुसार पाक करे। पाक सिद्ध होने पर छानकर पश्चात् बारह तोले कपूर, केसर और कस्तूरी का चूर्ण मिलाकर सुगन्धित करे। किसी के मत में कपूरादि का चूर्ण पसीना के दुर्गन्ध को दूर करने के लिये और किसी के मत में तैल को सुगन्धित करने के लिये मिलाया जाता है। यह तैल भी पूर्वोक्त तैल के समान विविध रोगों को दूर करता है। पहले देवासुरसंग्राम में असुरों द्वारा स्नायु-अस्थिभंगवाले देवताओं को देखकर उनकी पुष्टि के लिये नारायणजी ने यह अपने नाम का तैल बनाया है ॥ ९३–१०२ ॥

चन्दनाद्य तैल।

चन्दनाम्बु नखं वाप्ययष्टीशैलेयपद्मकम्। मञ्जिष्ठा सरलं दारु शट्येला पूतिकेशरम् ॥ १०६ ॥ पत्रं तैलं मुरामांसी कक्कोलं वनिताम्बुदम्। हरिद्रे शारिवे तिक्ता लवङ्गागुरुकुङ्कुमम् ॥ १०७ ॥ त्वग्रेणु नालुका चैभिस्तैलं मस्तुचतुर्गुणम् लाक्षारससमं सिद्धं ग्रहघ्नं बलवर्णकृत् ॥ १०८ ॥ आयुःपुष्टिकरञ्चैव वशीकरणमुत्तमम्। अपस्मारज्वरोन्मादकृत्यालक्ष्मीविनाशनम् ॥ १०९ ॥

तिल का तेल १२८ तोला, दही का पानी ६ सेर ३२ तोला, लाख का क्वाथ १२८ तोला, कल्क के लिये लालचन्दन, गन्धबाला, नखी, कूट, मुलहठी, शैलज (भूरिछरीला), पद्माख, मजीठ, सरलकाष्ठ, देवदारु, कचूर, इलायची, खट्टाशी (गंधमार्जार), नागकेसर, तेजपात, शिलारस, मुरामांसी, शीतलचीनी, प्रियंगु,

मोथा, हलदी, दारुहलदी, अनन्तमूल, काली शारिवा, कटुकी, लौंग, अगर, केसर, दारचीनी, सँभालू के बीज, नालुका, सब मिलाकर ३२ तोला। इस तैल को पकाकर मालिश करने से ग्रह अपस्मार, ज्वर, उन्माद, कृत्या तथा वातव्याधियाँ अच्छी होती हैं। यह बलकारक, वर्ण को सुन्दर करनेवाला, आयु की वृद्धि करनेवाला, शरीर को पुष्ट करनेवाला एवं वशीकरण है ॥ १०६--१०३ ॥

सिद्धार्थक तैल।

शतावरीं तु निष्पीड्य रसं प्रस्थद्वयं हरेत्। तिलतैलं पचेत् प्रस्थं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ ११० ॥ शतपुष्पा देवदारु मांसी शैलेयकं बला। चन्दनं तगरं कुष्ठमेला चांशुमती तथा ॥ १११ ॥ रास्ना तुरगगन्धा च समङ्गा सारिवाद्वयम्। पृष्णिपर्णी वचा चैव तथा गन्धर्वहस्तकम् ॥ ११२ ॥ सिन्धूद्भवं समं दद्याद् विश्वभेषजमेव च। एभिस्तैलं पचेद्धीमान् दत्त्वार्द्रकरसं समम् ॥ ११३ ॥ कुब्जाश्च वामना ये च पङ्गुपादाश्च ये नराः। महावातेन ये रुग्णा अङ्गसङ्कुचिताश्च ये ॥ ११४ ॥ तेषां हितमिदं तैलं सन्धिवाते च शस्यते। येषां शुष्यति चैकाङ्गं गतिर्येषां च विह्वला ॥ ११५ ॥ क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्रा जरया जर्जरीकृताः। अमेधसश्च बधिरास्तेषामपि परं हितम् ॥ ११६ ॥ मासमेकं पिबेद्यस्तु यौवनस्थः पुनर्भवेत्। सिद्धार्थकमिति ख्यातं नरनारीहिताय वै ॥ ११७ ॥

तिलतैल १२८ तोला, शतावरि का रस, ३ सेर १६ तोला, दुग्ध ६ सेर ३२ तोला, अदरख का रस १२८ तोला, कल्कार्थ सौंफ, देवदारु, जटामांसी, छरीला, खरेटी, रक्तचन्दन, तगर, कूट, इलायची, शालपर्णी, रास्ना, असगन्ध, लज्जावन्ती (छुईमुई), काली सारिवा, सफेद सारिवा, पृष्टपर्णी, वच, एरण्डमूल, सैंधव नमक और सोंठ एक सेर तैलादि कल्कपर्यन्त सब वस्तुओं को एकत्र कर यथाविधि तैल सिद्ध करे। इस तैल से कुब्जापन, वामता, पंगुता, एकाङ्गशोष, महावातरोग, अंगसिकुड़न, कम्पवात, इन्द्रियक्षीणता, नष्टवीर्यता, वृद्धावस्था की शिथिलता, बुद्धिहीनता, बधिरता और सन्धिवात आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं। यदि इस तैल को वृद्ध मनुष्य एक मास तक निरंतर उचित मात्रा से पिये, तो पुनः युवावस्था को प्राप्त हो। यह सिद्धार्थक तैल स्त्री-पुरुष दोनों के लिये हितकारी है ११०--११७ ॥

हिमसार तैल।

शतावरीरसप्रस्थे विदार्याः स्वरसे तथा। कूष्माण्डकरसप्रस्थे धात्र्याश्च स्वरसे तथा ॥ ११८ ॥ शाल्मल्याः स्वरसप्रस्थे तथा गोक्षुरकस्य च। नारिकेलरसप्रस्थे तिलतैलस्य प्रस्थतः ॥ ११९ ॥ कदल्याः स्वरसप्रस्थे क्षीरप्रस्थचतुष्टये। अस्यौषधस्य कल्कस्य प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ॥ १२० ॥ चन्दनं तगरं वाप्यं मञ्जिष्ठा सरलागुरु। मांसी मुरा च शैलेयं यष्टी दारु नखी शिवा ॥ १२१ ॥ पूतिका पीतिका पत्रं कुन्दुरुर्नलिका तथा। बरी लोध्रं तथा मुस्तं त्वगेला पत्रकेशरम् ॥ १२२ ॥ लवङ्गं जातिकोषश्च तथा मधुरिका शटी। चन्दनं ग्रन्थिपर्णं च कर्पूरं लाभतः क्षिपेत् ॥ १२३ ॥ अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम्। उच्चैः प्रपततो वायोर्गजतो वाजिनस्तथा ॥ १२४ ॥ उद्धृतो लोष्ट्रपाताच्च पदगूनां पीठसर्पिणाम्। एकाङ्ग-

शोषिणां चैव तथा सर्वाङ्गशोषिणाम् ॥ १२५ ॥ क्षतानां क्षीणशुक्राणामत्यन्तक्षयरोगिणाम्। हनुमन्याहतानां च दुर्बलानां तथैव च ॥ १२६ ॥ शोषिणां ललजिह्वानां तथा मिन्मिनभाषिणाम्। अत्यन्तदाहयुक्तानां क्षीणानां वातरोगिणाम् ॥ १२७ एतत्तैलं परं श्रेष्ठं विष्णुना परिकीर्त्तितम्। हिमसागरमाख्यातं सर्ववातविकारनुत् ॥ १२८ ॥ ये वातप्रभवा रोगा ये चपित्तसमुद्भवाः। शिरोमध्यगता ये च शाखामाश्रित्य ये स्थिताः। ते सर्वे प्रशमं यान्ति तैलस्यास्य प्रसादतः १२९

शतावरि का रस १२८ तोला, बिदारीकंद का रस १२८ तोला, सेमर के मूल का स्वरस १२८ तोला, गोखरू का रस १२८ तोला, नारियल का पानी १२८ तोला, तिलतैल १२८ तोला, केला के मूल का रस १२८ तोला, दूध ६ सेर ३२ तोला और निम्नलिखित ओषधियों का कल्क एकत्र कर यथाविधि तैल सिद्ध करे। कल्कद्रव्य--रक्तचन्दन, तगर, कूट, मजीठ, सरलकाष्ठ, अगर, जटामांसी, मुरामांसी, छरीला, मुलेठी, देवदारु, नखी, हरीतकी, करञ्ज, हल्दी, तेजपात, कुन्दरू, नाड़ीशाक, शतावरि, लोध। नागरमोथा, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, लौंग, जावित्री, सौंफ, कचूर, लाल चन्दन, गठिवन और कपूर ये प्रत्येक एक-एक तोला। इस तैल में गन्धद्रव्य जितने मिल सकें डाल देने चाहिये। वायुरोग के लिये यह तैल उत्तम वस्तु है। इस तैल का मर्दन करने से ऊँचे स्थान और हाथी, घोड़ा आदि ऊँची सवारी से गिरने की पीड़ा, पंगुला, पीठ से चलना, यक्ष्मशोष, दौर्बल्य, शुक्रक्षय, क्षयरोगी, [illegible] और मन्या (हनुस्तम्भ और मन्यास्तम्भ), तोतलापन, मिनमिना कर बोलना, गात्रदाह और अन्यान्य अनेक प्रकार के रोग शान्त होते हैं। यह वातज, पित्तज, शिरोमध्यगत एवं शाखागत वातरोगों को शान्त करता है ॥ ११८--१२९ ॥

वायुच्छायासुरेन्द्र तैल।

वाट्यालकं पलशतं तत्समं दशमूलकम्। जलपोडशिकेपक्त्वा पादशेषं समुद्धरेत् ॥ १३० ॥ एतत्क्वाथे पचेत्तैलं द्वात्रिंशत्पलमेव च। कल्कार्थं दीयते तत्र मञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम् ॥ १३१ ॥ कुष्ठमेला देवदारु शैलजं सैन्धवं वचा। कक्कोलं पद्मकाष्ठश्च शृङ्गी तगरपादिका ॥ १३२ ॥ गुडूची मुद्गपर्णी च माषपर्णी शतावरी। नागजिह्वा श्यामलता शतपुष्पा पुनर्नवा ॥ १३३ ॥ एषां तोलद्वयं भागं दत्त्वा तैलं तु पाचयेत्। एत्तैलवरं नाम्ना वायुच्छायासुरेन्द्रकम् ॥ १३४ ॥ सर्ववातविकारेषु हितं पुंसां च योषिताम्। क्षीणशुक्रार्त्तवानां च नारीणां च विशेषतः ॥१३५॥ चेतोविकारं[1] हन्त्याशु वायुमाक्षेपसम्भवम्। मर्मवातं श्रमकृतं गात्रकम्पादिकं तथा ॥ १३६ ॥ हिक्कां श्वासं च कासं च वातपित्तसमुद्भवम्। अपस्मारे महोन्मादे हितं लेपे च भक्षणे। श्रीमद्गहननाथेन रचितं विश्वसम्पदे ॥ १३७ ॥

जलपोडशिके तैलात् पोडशगुणे जले इत्यर्थः।

खरेटी की जड़ और दशमूल पाँच-पाँच सेर लेकर दो मन जल में क्वाथ बनावे। चतुर्थांश शेष रहने पर उतारकर छान ले। इस क्वाथ में ६ सेर १६ तोला तैल और निम्नलिखित औषधों का कल्क मिलाकर तैल सिद्ध करे। कल्कार्थ— मजीठ, लाल चन्दन, कूठ, इलायची, देवदारु, छरीला, सेंधा नमक, वच, कंकोल, पद्माख, काकड़ासिंगी, तगर गिलोय, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शतावरि, अनन्तमूल, काली

1—रेतोधिकार इत्यपि पाठान्तरम्।

सारिया, सौंफ और पुनर्नवा दो-दो तोला ले। क्षीणशुक्र पुरुषों और क्षीणार्तव स्त्रियों के लिये तथा वातविकारों में पान एवं मर्दन से यह तैल विशेष हितकारी है। तथा शुक्रविकार, अपस्मार, उन्माद, आक्षेप, वायु और मर्मवात, गात्रकम्प, वात-पित्तज हिचकी, श्वास और कास आदि अनेक प्रकार के रोगों को शान्त करता है। यह संसार के हित के लिए श्रीगहननाथ ने बनाया है ॥ १३०--१३७ ॥

लघु विषगर्भ तैल।

धत्तूरस्य रसस्यपञ्चकुडवंतैलंतथाकाञ्जिकम्। प्रस्थानां च चतुष्टयं गदवचा त्रिंशत्परं शाणकाः ॥ १३८ ॥ वृद्धात्रीमरिचात्पृथङ्नवविषात् पट्स्वर्णबीजात् पटोः। स्युः सप्ताधिकविंशतिः परिमितं तीव्रानिलध्वंसनम् ॥ १३९ ॥ पक्षाघातं हनुस्तम्भं मन्यास्तम्भं कटिग्रहम्। पृष्ठत्रिकशिरःकम्पं सर्वांगग्रहणं तथा ॥ १४० ॥

तिलतैल ६ सेर ३२ तोला, धतूरे का रस ७० तोला, काञ्जी ६ सेर २४ तोला, कल्क के लिये कूट, बच, हरएक ७॥ तोला, भुईआँवला, कालीमिर्च, अलग-अलग २७ माशा, बच्छनाग १ तोला, धतूरे के बीज तथा सेंधा नमक हरएक ६ तोले ६ माशा। यह तैल तीव्र वातरोगों को नष्ट करता है। इसकी मालिश से पक्षाघात, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, कटिग्रह, पृष्ठकम्प, त्रिकम्प, शिरःकम्प, सर्वांगग्रह आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १३८--१४० ॥

महाविषगर्भ तैल

कनकस्य च निर्गुण्डी तुम्बिनी च पुनर्नवा। वातारिश्वगन्धा च प्रपुन्नाडं सचित्रकम् ॥ १४१ ॥ साञ्जनं काकमाची कलिकारी च निम्बकम्। महानिम्बेश्वरी चैव दशमूलं शतावरी ॥ १४२ ॥ कारवल्ली सारिवा च श्रावणी च विदारिका। वत्राकौ मेषशृङ्गी च करवीरद्वयं वचा ॥ १४३ ॥ काकजङ्घा त्वपामार्गो बला चातिबलाद्वयम्। व्याघ्री महाबला वासा सोमवल्ली प्रसारिणी ॥ १४४ ॥ पलोन्मितानि चैतानि द्रोणेऽम्भसि विनिक्षिपेत्। पचेत्पादावशेषेऽस्मिन् कल्कस्य कुडवं क्षिपेत् ॥ १४५ ॥ त्रिकटु विषतिन्दुं च रास्ना कुष्ठं विषं घनम्। देवदारुर्वत्सनाभो द्वौ क्षारौ लवणानि च ॥ १४६ ॥ तुत्थकं कट्फलं पाठा भार्गी च नवसादरम्। त्रायन्ती धन्वयासं च जीरकं चेन्द्रवारुणी ॥ १४७ ॥ तैलप्रस्थं समादाय पाचयेन्मृदुवह्निना। विषगर्भमिदं नाम्ना सर्वान् वातान् व्यपोहति ॥ १४८ ॥ वक्षोरुकटिजङ्घानां सन्धानं श्रेष्ठमेव च। गृध्रसीं च महावातान् सर्वाङ्गग्रहणं तथा ॥ १४९ ॥ दण्डापतानकं चैव कर्णनादं च शून्यताम्। वनमध्ये यथा सिंहात्पलायन्ते महामृगाः ॥ १५० ॥ तथाश्वगजभग्नानां वराणां च चतुष्पदाम्। नाशयेन्नात्र सन्देहो विषगर्भस्य लेपनात् ॥ १५१ ॥

तिल का तैल १२८ तोला, क्वाथ के लिये धतूरा, सँभालू, कड़वी तूमरी, सोंठी की जड़, असगन्ध, पँवाड़ [illegible] बीज, चित्रक, सहिजना, मकोय, कलिहारी, नीम, महानिम्ब (बकायन), ईश्वरी (रुद्रजटा अथवा शिवलिंगी), दशमूल, शतावरि, करेली, अनन्तमूल, मुण्डी, विदारीकन्द, थूहर की जड़, आक की जड़, मेढासिंगी, दोनों कनेर, काकजङ्घा, अपामार्ग, बला, अतिबला, नागबला, छोटी कटेरी, महाबला, अड़ूसा, सोमवल्ली (गिलोय), प्रसारिणी हरएक ४ तोला, जल २५ सेर ४८ तोला, बचा हुआ क्वाथ ६ सेर ३२ तोला, कल्क

के लिये त्रिकुटा, तुचरा, रास्ना, कूठ, मोथा, देवदार, वच्छनाग, जवाखार, सज्जीखार, पाँचों नमक, नीला तूतिया, दायफल, पाठा, भारंगी, नौसादर, त्रायमाण, धमासा, जीरा, इन्द्रायण की जड मिलाकर १६ तोला, विधिपूर्वक मन्द अग्नि पर पकावे। यह तैल सब वातविकारों को नष्ट करता है। छाती, ऊरू, कमर, जंघा की सन्धि-भंग में यह सन्धियों को जोड़नेवाला है। गृध्रसी, महावात, सर्वाङ्गग्रह, दण्डापतानक, कर्णनाद, कर्णशून्यता आदि रोग इस तैल के प्रयोग से नष्ट होते हैं। जिस प्रकार जङ्गल में सिंह को देखकर हिरन आदि पशु भाग जाते हैं उसी प्रकार इस तेल की मालिश से घोड़े, हाथी, मनुष्य तथा चौपायों के वातजन्य रोग, सन्धिभग आदि नष्ट हो जाते हैं ॥ १४१–१५१ ॥

शतावरी तैल।

रुग्दारुद्रविडीप्रियङ्गुतगरत्वक्पत्रकौन्तीनखैः मांसीसर्जरसाम्बुचन्दनवचाशैलेयलामज्जकैः ॥ १५२ ॥ मञ्जिष्ठा सरलागुर्वद्वपबला रास्नाश्वगन्धा वरी वर्षाभूमिसिसिन्धुभिश्च सकलैरेभिः पचेत्कल्कितैः ॥ १५३ ॥ तुल्यं गोपयसा वरीरससमं तैलं विपक्वं मृदु स्याद्वातघ्नमिदं नृणामिति वरी तैलं भिषक् पूजितम् ॥ १५४ ॥

तिल का तेल ४ सेर, शतावरी का रस ४ सेर, गौ का दूध ४ सेर, कल्क के लिये कूट, देवदारू, छोटी इलायची, प्रियङ्गु तगर, दारचीनी, तेजपात, सँभालू के बीज, नखी, जटामांसी, राल, गंधवाला, चन्दन, वच, छारछबीला, उशीरभेद, मजीठ, चीड की लकडी, अगर, नागबला, रास्ना, असगन्ध, शतावरि, साँठी, सौंफ, सेंधा नमक मिलाकर १ सेर, इसे विधिपूर्वक मन्दी अग्नि पर पकावे। वैद्यों द्वारा माना हुआ यह तेल वात को नष्ट करता है ॥ १५२–१५४ ॥

महाबला तैल।

बलामूलकषायस्य दशमूलीकृतस्य च। यवकोलकुलत्थानां क्वाथस्य पयसस्तथा ॥ अष्टावष्टौशुभाभागास्तैलादेकस्तदेकतः। पचेदवाप्य मधुरं गणं सैन्धवसंयुतम् ॥ १५५ ॥ तथागुरुः सर्जरसं सरलं देवदारु च। मञ्जिष्ठां चन्दनं कुष्ठमेलां कालानुशारिवाम् ॥ १५६ ॥ मांसी शैलेयकं पत्रं तगरं सारिवां वचाम्। शतावरीमश्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाम् ॥ १५७ ॥ तत्साधुसिद्धं सौवर्णे राजते मृण्मयेऽपि च। प्रक्षिप्य कलशे सम्यगात्मगुप्ते निधापयेत् ॥ १५८ ॥ बलातैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत्। यथाबलमतो मात्रां सूतिकायै प्रदापयेत् ॥ १५९ ॥ या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान्। क्षीणवाते मर्महतेऽभिहते मर्दितेऽथवा ॥ १६० ॥ भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैवोपयोजयेत्। सर्वानाक्षेपकादींश्च वातव्याधीन् व्यपोहति ॥ १६१ ॥ हिक्कां कासमधीमन्थं गुल्मं श्वासं सुदारुणम्। षण्मासानुपयुज्यैतदन्त्रवृद्धिमपोहति ॥ १६२ ॥ प्रत्यग्रधातुः पुरुषो भवेच्च स्थिरयौवनः। एतद्धि राज्ञा कर्त्तव्यं राजमात्राश्च ये नराः ॥ १६३ ॥ सुखिनः सुकुमाराश्च बलिनश्चैव ये नराः ॥ १६४ ॥

तिलतैल २ सेर, खरेटी का क्वाथ १६ सेर, दशमूल का क्वाथ १६ सेर तथा इन्द्रजौ, बेर की गींगी और कुलथी का क्वाथ १६ सेर, दूध १६ सेर, कल्कार्थ—जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलेठी, सेंधा नमक, अगर,

राल, चीड़ की लकड़ी, देवदार, मजीठ, चन्दन, कूट, इलायची, पीला चन्दन, जटामासी, छरीला, तेजपात, तगर, सारिवा, बच, शतावरि, असगन्ध, सौंफ और पुनर्नवा, इन सब द्रव्यों को एक सेर एकत्र कर यथाविधि तैलपाक करके सोने, चाँदी या काँच लिये हुए मिट्टी के पात्र में भरकर सुरक्षित रक्खे। यह महायज्ञतैल सब प्रकार के वात-विकार, हिचकी, खाँसी, अधिमन्थ, गुल्म, श्वास आदि रोगों को नष्ट करता है बल के अनुसार उचित मात्रा में प्रसूता (जच्चा) को, गर्भधारण करने की इच्छावाली स्त्री और नष्टवीर्य पुरुष को सेवन करना चाहिए। क्षीणवात, जिसके मर्म में चोट लगी हो, चोट खाये हुए, हड्डी कुचल गई हो, हड्डी टूट गई हो, थकन अधिक हो गई हो तो भी हितकर है। यदि छः मास निरन्तर सेवन किया जाय तो अन्त्रवृद्धि रुक जाती है। इस तैल के सेवन से क्षीण धातुवाला पुरुष स्थिर यौवनवाला हो जाता है यह तैल राजा, राजा के समान (सम्पन्न) सुखी और सुकुमार मनुष्यों के सेवन करने योग्य है॥ १५४-१६४॥

पुष्पराजप्रसारणी तैल।

प्रसारणीपलशतं मूलश्चैवाश्वगन्धजम्। पञ्चाशत्पलमानं तु जलद्रोणे विपाचयेत्॥ १६५॥ पादशेषे हरेत् क्वाथं क्वाथांशं तिलतैलकम्। तैलाच्चतुर्गुणं क्षीरं गव्यं वामाहिषं तथा॥१६६॥ पुण्डरीकरसस्तत्र शतावर्या रसस्तथा। तैलसमं प्रदातव्यः पाचयेन् मृदुवह्निना॥ १६७॥ शतपुष्पा कणा चैला कुष्ठश्च कण्टकारिका। शुण्ठी यष्टी देवदारुः शालपर्णी पुनर्नवा॥ १६८॥ मञ्जिष्ठा पत्रकं रास्ना वचा पुष्करमूलकम्। यमानी मूर्तिकं मांसी निर्गुण्डी च तथा बला॥ १३६॥ वह्निर्गोक्षुरकश्चैव मृणालं बहुपुत्रिका। नवी। नागरं मागधी मुस्तं पथ्या रजनीमतिरर्पमिद योज्यं सर्वमेत्र पाचयेत्॥ १७०॥ तैलशेषं समुद्धृत्य पुष्पराजप्रसारणीम्। अभ्यङ्गे योजयेत् पाने नस्यकर्मणि सर्वदा॥ १७१॥ भग्नानां खञ्जपङ्गूनां शिरोरोगे हनुग्रहे। समस्तान् वातजान्रोगान्तूर्णंनाशयतिध्रुवम्॥ १६२॥

तिलतैल ८ सेर, क्वाथार्थ गन्धप्रसारणी ३०० तोले असगन्ध २०० तोले, जल २५ सेर ४८ तोला, शेष ६ सेर ३२ तोला, गौ या भैंस का दूध २५ सेर ४८ तोला, कमल और शतावरि का रस ६ सेर ३२ तोला, कल्क के लिये सौंफ, पीपरि, इलायची, कूट, कटेरी, सोंठ, मुलैठी, देवदार, शालपर्णी, पुनर्नवा, मजीठ, तेजपात, रास्ना, बच, पुहकरमूल अजवाइन, गन्धतृण, जटामांसी, सँभालू, खरेंटी, चीता, गोखरू, मृणाल और शतावरि, ये सब एक एक तोला ले यथाविधि तैल सिद्ध करे। यह पुष्प राजप्रसारिणी तैल पान, मर्दन तथा नस्य में उपयुक्त होता है। अस्थि-भंग, खञ्ज एवं पङ्गुओं के लिए हितकर है। शिरोरोग तथा हनुग्रह आदि सब प्रकार के वायुरोगों को तत्क्षण नष्ट करता है॥ १६५,१७२॥

महाकुक्कुटमांसतैल।

माषस्यार्द्धाढकं देयं दशमूल्यास्तुलार्द्धकम्। बलामूलञ्च तस्यार्द्धं केतकीनां तथैव च॥ १७३॥ कुक्कुटमांसंपलत्रिंशत् भिक्षिण्टिका पश्चिंशतिः। जलद्रोणद्वये पक्त्वा पादशेषेऽवतारिते॥ १७४॥ तिलतैलस्य च प्रस्थं पयो दत्त्वा चतुर्गुणम्। जीवनीयानि यान्यष्टौ मञ्जिष्ठा चव्यकट्फलम्॥ १७५॥ व्याधिरास्ना कणामूलं मधुकं पुष्करं तथा। मागारमगुप्ते सैरण्डा शताह्वा लवणत्रयम्॥ १७६॥ कृष्णागरुगन्धा अमृता यमानीत्वचरी नदी। नागरं मागधी मुस्तं पथ्या रजनीद्वयम्॥ १७७॥ ननारसी मूर्न्या च

एतैरन्नसमन्वितैः । पक्षाघातेषु सर्वेषु अर्दिते च हनुग्रहे ॥ १७८ ॥ मन्दश्रुतौ चाश्रवणे तिमिरे च त्रिदोषजे । हस्तकम्पे शिरःकम्पे गात्रकम्पे शिरोग्रहे ॥ १७९ ॥ शस्तं कलायखञ्जे च गृध्रस्यामपबाहुके बाधिर्ये कर्णनादे च सर्ववातविकारनुत् ॥ १८० ॥ दण्डापतानके चैव मन्यास्तम्भे विशेषतः । हनुस्तम्भे प्रशस्तं स्यात् सूतिकातङ्कनाशनम् ॥ १८१ ॥ त्वच्यं मांसप्रदञ्चैव शुक्राग्निबलवर्द्धनम् । अण्डवृद्ध्यन्त्रवृद्धि वा वातरक्तञ्च नाशयेत् ॥ १८२ ॥

तिलतैल १२८ तोला, क्वाथार्थ उर्द १२८ तोला, दशमूल अर्धतुला (२०० तोले), खरेटी की जड़ १०० तोले, केतकी की जड़ १०० तोले मुर्गा का मांस १२० तोले, कटसरैया १०० तोले, पाकार्थ जल १ मन ११ सेर १६ तोला, शेष १२ सेर ६४ तोला, दूध ६ सेर ३२ तोला, कल्क के लिये जीवक दि अष्टवर्ग, मजीठ, चव्य, कायफल, कूट, रास्ना, पिपरामूल, मुलेठी, पुहकरमूल, उर्द, कौंच के बीज, एरण्डमूल, सौंफ, बिडनमक, सैंधव, काला नमक, पीपरि, असगन्ध, गिलोय, अजवाइन, इन्द्रजौ, नरकचूर, सोंठ, पीपल नागरमोथा, साठी, दोनों हल्दी, शतावरि और कटेरी, ये सब एक-एक तोला का कल्क डालकर विधिपूर्वक तैल सिद्ध करना चाहिये। इस तैल का मर्दन करने से पक्षाघात, अर्दित, हनुग्रह, श्रवणशक्ति की न्यूनता (कम सुनना), कम देख पड़ना, हाथ का काँपना, शिर का काँपना, बदन का काँपना, शिरोग्रह, कलायखञ्ज, गृध्रसी, अपबाहुक, बधिरता, कर्णनाद, दण्डापतानक, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ तथा सूतिका रोग, अण्डवृद्धि, अन्त्रवृद्धि और वातरक्त आदि सब रोग नष्ट होते हैं। यह त्वचा के लिए हितकर, मांसप्रद तथा शुक्र, अग्नि और बल का वर्धक है १७३–१८२

नकुलतैल।

मधुकं जीरकं रास्ना सैन्धवं शतपुष्पिका । यमानी मरिचं कुष्ठं विडङ्ग गजपिप्पली ॥ १८३ ॥ सौवर्चलश्चाजमोदा बला षड्ग्रन्थिका तथा । ग्रन्थिकं शैलजं मांसी कर्षांशेषां पृथक् पृथक् ॥ १८४ ॥ विनीय पाचयेत् तैलं प्रस्थं रुबुकसम्भवम् । प्रस्थे नकुलमांसस्य क्वाथे च दशमूलजे ॥ १८५ ॥ प्रस्थे च काञ्जिकस्यापि मस्तुप्रस्थे तथैव च । सिद्धं तैलमिदं हन्ति कम्पवातं सुदारुणम् ॥ १८६ ॥ हस्तकम्पं शिरःकम्प बाहुकम्पञ्च नाशयेत् । आमवातं सशूलञ्च सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ १८७ ॥ पानाभ्यञ्जनवस्तीभिर्नाशयेन्नात्र संशयः । आढ्यवातं कटीपृष्ठजानुजङ्घाश्रितं तथा ॥ १८८ सन्धिस्थं वातमाश्वेव जयेन्नकुलसंज्ञकम् । हारीतभाषितमिदं तैलं हितचिकीर्षया ॥ १८९ ॥ वैद्यानां सारभूतानां शतेनापि समुज्झितम् । वातव्याधिं निहन्त्याशु कम्पवातं विशेषतः ॥ १९० ॥ अशीतिं वातजान् रोगान नाशयेदाशु देहिनाम् ॥ १९१ ॥

नकुलमांस १२८ तोला, जल ६ सेर ३२ तोला, शेष १२८ तोला, दशमूल १२८ तोला, जल ६ सेर ३२ तोला, शेष १२८ तोला कांजी १२८ तोला, दही का तोड़ १२८ तोला, एरण्डतैल १२८ तोला, कल्कार्थ मुलेठी, जीरा, रास्ना, सैंधवनमक, सौंफ, अजवाइन, मिर्च, कूट, बायबिडंग, गजपीपरि, कालानमक, अजमोद, खरेटी, बच, पिपरामूल, दरीला और जटामासी, ये सब दो-दो तोले। इन सब वस्तुओं द्वारा तैल सिद्ध

करे । इस तैल का पान, मर्दन और वस्तिक्रिया में उपयोग होता है । यह तैल कम्पवात, हस्तकम्पन, शिरःकम्प, बाहुकम्प, शूलयुक्त आमवात, सन्धिवात, आढ्यवात, कमर, पीठ और जंघस्थित वायु, और सैकड़ों वैद्यों से असाध्य कहे हुए रोगियों के भी अस्सी प्रकार वातरोगों को यह नकुलतैल नष्ट करता है । यह हारीत ऋषि का कहा हुआ है ॥ १८३–१९१ ॥

माषतैल ।

माषातसीयवकुरुण्टककण्टकारीगोकण्टदुण्डुकजटाकपिकच्छुतोयैः । कार्पासकास्थिशणबीजकुलत्थकोलकाथेन बस्तपिशितस्य रसेन चापि ॥ १९२ ॥ शुण्ठ्या समागधिकया शतपुष्पया च सैरण्डमूलसपुनर्नवया सरण्या । रास्नाबलामृतलताकटुकैर्विपक्वं माषाख्यमेतदपबाहुहरश्च तैलम् ॥ १९३ ॥अर्द्धाङ्गशोषमपतानकमाढ्यवातमाक्षेपकं सभुजकम्पशिरः प्रकम्पम् । नस्येन बस्तिविधिना परिषेचनेन हन्यात् कटीजघनजानुरुजः समीरात् १९४ ॥

तिल तैल २ सेर, क्वाथार्थ उर्द, अलसी, जौ, कुश कटेरी, गोखरू, श्योनाक, जटामांसी, कौंच के बीज १६-१६ तोले, पाकार्थ जल ३२ सेर शेष ८ सेर । कपास के बीज, सन के बीज, कुरथी और बेर की मींगी ३२ तोले, पाकार्थ जल ३२ सेर शेष ८ सेर । छाग के मांस का रस ४ सेर, जल ३२ सेर शेष ८ सेर । कल्कार्थ सोंठ, पीपरि, सौंफ, एरण्डमूल, पुनर्नवा, गन्धप्रसारिणी, रास्ना, खरेंटी, गिलोय और कुटकी एक सेर । इनसे सिद्ध किया हुआ यह तैल अपबाहु, अर्धाङ्गशोष, अपतानक, आढ्यवात, आक्षेपक, ऊरुस्तम्भ, बाहुकम्प, शिरःकम्प कमर, ऊरु और जांघ के वातरोगों को नस्य, बस्ति तथा मर्दन से नष्ट करता है ॥ १९२-१९४ ॥

स्वल्पमाषतैल ।

माषप्रस्थं समावाप्य पचेत् सम्यग् जलाढके । पादशेषे रसे तस्मिन् क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ १९५ ॥ प्रस्थञ्च तिलतैलस्य कल्कं दत्त्वाक्षसम्मितम् । जीवनीयानि यान्यष्टौ शतपुष्पां ससैन्धवाम् ॥ १९६ ॥ रास्नात्मगुप्ता मधुकं बलाव्योषत्रिकण्टकम् । पक्षाघातेऽर्दिते वाते कर्णशूले च दारुणे ॥ १९७ ॥ मन्दश्रुतौ चाश्रवणे तिमिरे च त्रिदोषजे । हस्तकम्पे शिरःकम्पे विश्वाच्यामपबाहुके ॥ १९८ ॥ शस्तं कलायखञ्जे च पानाभ्यञ्जनबस्तिभिः । माषतैलमिदं श्रेष्ठमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ १९९ ॥

तिलतैल २ सेर, क्वाथार्थ उर्द १ सेर, जल ८ सेर, शेष २ सेर । दूध ८ सेर, कल्कार्थ अष्टवर्ग, सौंफ, लाहौरी नमक, रास्ना, केवांच, मुलेठी, खरेंटी, त्रिकटु और गोखरू ये दो-दो तोले । इनसे सिद्ध किया हुआ यह स्वल्पमाष तैल पक्षाघात, अर्दित, कर्णशूल, श्रवणशक्ति की अल्पता, बधिरता, मूर्च्छा, त्रिदोषज तिमिर, हस्तकम्पन, शिरःकम्पन, विश्वाची, अपबाहुक एवं कलायखञ्ज आदि त्रिविध वातरोगों में पान, मर्दन तथा बस्ति के द्वारा प्रयोग करना चाहिये । यह माषतैल हंसुली के ऊपर के रोगों को नष्ट करने में श्रेष्ठ है ॥ १९५-१९९ ॥

बृहन्माषतैल ।

माषक्वाथे बलाक्वाथे रास्नाया दशमूलजे । यवकोलकुलत्थानां छागमांसभवे पृथक् ॥ २०० ॥ प्रस्थे तैलस्य च प्रस्थं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् । रास्नात्मगुप्तासिन्धूत्थशताह्वैरण्डमस्तकैः ॥२०१॥ जीवनीयबलाव्योषैः पचेद्दृक्षसमैर्भिषक् ।

हस्तकम्पे शिरःकम्पे बाहुशोषेऽपबाहुके ॥ २०२ ॥ बाधिर्ये कर्णशूले च कर्णनादे च दारुणे । विश्वाच्यां मर्दिते कुब्जे गृध्रस्यामपतानके ॥ २०३ ॥ वस्त्यभ्यञ्जनपानेषु नावने च प्रयोजयेत् । एषतैलमिदं श्रेष्ठमूर्ध्वजत्रुगदापहम् । क्वाथस्थाः षडेवात्र विभक्तं तेन दर्शिताः ॥ २०४ ॥

तैलेन सह सप्तमस्थिमितत्वादस्य सप्तमस्थमाषतैलमिति संज्ञान्तरम् ।

क्वाथार्थ उर्द ६४ तोला, जल ६ सेर ३२ तोला, शेष १२८ तोला, खरेटी ६४ तोला, जल ६ सेर ३२ तोला, शेष १२८ तोला, रास्ना ६४ तोला, जल ६ सेर ३२ तोला, शेष १२८ तोला, दशमूल ६४ तोला, जल ६ सेर ३२ तोला, शेष १२८ तोला, जौ, बेर की मींगी, कुलथी ६४ तोला जल ६ सेर ३२ तोला, शेष १२८ तोला, छागमांस ६४ तोला, जल ६ सेर ३२ तोला, शेष १२८ तोला, दूध ६ सेर ३२ तोला, कल्क के लिये रास्ना, कौंच के बीज, सेंधा नमक, सौंफ, एरण्डमूल, नागरमोथा, जीवनीयवर्ग, खरेटी और त्रिकटु, ये सब एक-एक तोला। इनसे यथाविधि तैल सिद्ध करे। यह तैल हस्तकम्पन, शिरःकम्प, बाहुशोष, अपबाहुक, बधिरता, कर्णशूल, कर्णनाद, विश्वाची, अर्दित वायु, कुब्जरोग, गृध्रसी और अपतानक आदि अनेक रोगों को नष्ट करता है। इस तैल का नस्य, मर्दन, पान एवं बस्ति में प्रयोग करना चाहिए। यह बृहन्माषतैल ऊर्ध्वजत्रुरोगों को दूर करता है ॥ २००-२०४ ॥

महामाषतैल।

माषस्याद्र्धाढकं दत्त्वा तुलार्द्धादशमूलतः । पलानि छागमांसस्य त्रिंशद् द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ २०५ ॥ पूतशीते कषाये च चतुर्थांशावशेषिते । प्रस्थं च तिलतैलस्य पयो दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥२०६ आत्मगुप्ता रुबूकश्च शताह्वा लवणत्रयम् । जीवनीयानि मञ्जिष्ठा चव्यचित्रककट्फलम् ॥ २०७ ॥ सव्योषं पिप्पलीमूलं रास्ना मधुकसैन्धवम् । देवदार्वमृता कुष्ठं वाजिगन्धा वचा शटी ॥ २०८ ॥ एतैरक्षसमैर्भागैः साधयेत् मृदुनाग्निना पक्षाघातेऽर्दिते वाते बाधिर्ये हनुसंग्रहे ॥२०९॥ कर्णमन्याशिरःशूले तिमिरे च त्रिदोषजे । पाणिपादशिरोग्रीवाभ्रमणे मन्दचङ्क्रमे ॥ २१० ॥ कलायखञ्जे पाङ्गुल्ये गृध्रस्यामपबाहुके ॥ पाने वस्तौ तथाभ्यङ्गे नस्ये कर्णाक्षिपूरणे । तैलमेतत् प्रशंसन्ति सर्ववातरुजापहम् ॥ २११ ॥

पोटली में बँधे उर्द १२८ तोला, दशमूल २½ सेर, पोटली में बँधा छागमांस १२० तोला, २५ सेर ४८ तोला जल में पकाकर चतुर्थांशावशिष्ट रहने पर छान ले। इस क्वाथ में १२८ तोला तिल का तैल, ६ सेर ३२ तोला दूध और निम्नलिखित ओषधियों का कल्क मिलाकर यथाविधि तैल सिद्ध करे। कौंच का मूल, एरण्डमूल, सौंफ, सेंधानोन, बिडनमक, कालानमक, जीवनीयवर्ग, मँजीठ, चव्य, चीतामूल, कायफल, त्रिकटु, पिपरामूल, रास्ना, मुलेठी, सेंधानमक, देवदार, गिलोय, कूट, असगन्ध, वच और कचूर ये सब एक-एक तोला। यह तैल पक्षाघात, अर्दित, बधिरता, हनुग्रह, कर्णशूल, मन्यास्तम्भ, शिरोवेदना, त्रिदोषज तिमिर, हाथ-पाँव शिर और ग्रीवा आदि का काँपना, कलायखंज, पंगुता, गृध्रसी, अपबाहुक आदि सब प्रकार की वातपीड़ाओं को पान, बस्ति, मर्दन, नस्य, कर्णपूरण और नेत्रपूरण से नष्ट करता है ॥२०५-२११॥

निरामिषमहामाषतैल।

दशमूलाढकं पक्त्वा जलद्रोणेऽङ्घ्रिशेषिते । तद्वन्माषाढकक्वाथे तैलमर्धं पयः समम् ॥ २१२ ॥ कल्कैरेतैश्च मतिमान्

साधयेन् मृदुनाग्निना। अश्वगन्धा शटी दारुबला रास्ना प्रसारणी ॥ २१३ ॥ कुष्ठं परूषकं भार्गी द्वे विदार्यौ पुनर्नवा। मातुलुङ्गफलाजाज्यौ रामठंशतपुष्पिका ॥ २१४ शतावरी गोक्षुरकं पिप्पलीमूलचित्रकौ। जीवनीयगणं सर्वं संहृत्यैव ससैन्धवम् ॥ २१५ ॥ तत्साधुसिद्धं विज्ञाय माषतैलमिदं महत्। बस्त्यभ्यञ्जनपानेषु नावनेषु प्रशस्यते ॥ २१६ ॥ पक्षाघाते हनुस्तम्भे अर्दिते सापतन्त्रके। अपबाहुकविश्वाच्योः खाञ्ज्यपाङ्गुल्ययोरपि ॥ २१७ ॥ शिरोमन्याग्रहे चैव अधिमन्थे च वातिके। शुक्रक्षये कर्णनादे कर्णक्ष्वेडे च दारुणे। कलायखञ्जशमने भैषज्यमिदमादिशेत् ॥ २१८ ॥

३ सेर १६ तोला दशमूल को २५ सेर ४८ तोला जल में पकावे, ६ सेर ३२ तोला शेष रहने पर छान ले। इसी प्रकार ३ सेर १६ तोला उर्द का, जल २५ सेर ४८ तोला का ६ सेर ३२ तोला क्वाथ तैयार करे। इन क्वाथों को एकत्र कर उसमें ६ सेर ३२ तोला दूध, १२८ तोला तैल और निम्नलिखित ओषधियों का कल्क मिलाकर यथाविधि तैल सिद्ध करे। असगन्ध, कचूर, देवदार, खरेटी, रास्ना, गन्धप्रसारणी, कूट, फालसा, भारंगी, विदारीकन्द, वाराहीकन्द, पुनर्नवा, बड़ा नींबू, जीरा, हींग, सौंफ, शतावरि, गोखरू, पिपरामूल, चीता, जीवनीयगण और सेंधानमक कुल मिलाकर ३२ तोला। इस तैल का उपयोग बस्तिक्रिया, नस्य, अभ्यङ्ग और पान में होता है। यह पक्षाघात, हनुस्तम्भ, अर्दित, अपतन्त्रक, अपबाहुक, विश्वाची, खाञ्ज्य, पङ्गुता, शिरोग्रह मन्यास्तम्भ, वातिक अधिमन्थ, शुक्रक्षय, कर्णनाद, कर्णक्ष्वेड और कलायखञ्ज आदि विविध वातरोगों को नष्ट करता है ॥ २१२-२१८ ॥

कुब्जप्रसारणीतैल।

प्रसारणीशतं क्षुण्णं पचेत्तोयार्मणे शुभे। पादशेषे समं तैलं दधि दद्यात् सकाञ्जिकम् ॥ २१९ ॥ द्विगुणञ्च पयो दत्त्वा कल्कान् द्विपलिकांस्तथा। चित्रकं पिप्पलीमूलं मधुकं सैन्धवं वचाम् ॥ २२० ॥ शतपुष्पां देवदारुं रास्नां वारणपिप्पलीम्। प्रसारण्याश्च मूलानि मांसीभल्लातकानि च ॥ २२१ ॥ पचेन्मृद्वग्निना तैलं वातश्लेष्मामयान् जयेत्। अशीतिं नरनारीस्थान् वातरोगान् व्यपोहति ॥ २२२ ॥ कुब्जस्तिमितपङ्गुत्वं गृध्रसी खुडकार्दितम्। हनुपृष्ठशिरोग्रीवास्तम्भं चाशु नियच्छति ॥ २२३ ॥

५ सेर गन्धप्रसारिणी को २५ सेर ४८ तोला जल में पकाकर चतुर्थांशावशिष्ट क्वाथ करे। उसमें तिलतैल ६ सेर ३२ तोला, दही का पानी ६ सेर ३२ तोला, कांजी ६ सेर ३२ तोला, दूध १२ सेर ६४ तोला और निम्नलिखित ओषधियों का कल्क मिश्रित कर यथाविधि कोमल अग्नि से तैल सिद्ध करे। कल्कार्थ द्रव्य—चीता, पिपरामूल, मुलेठी, सेंधानमक, खरेटी, सौंफ, देवदार, रास्ना, गजपीपरि, गन्धप्रसारणी का मूल, जटामासी और भिलावाँ ये सब चार-चार तोला। यह तैल गृध्रसी, हनुस्तम्भ, कुब्जता, पंगुता, खुड्डवात, अर्दितवात तथा हनुस्तंभ, पीठस्तम्भ, शिरोग्रह और ग्रीवास्तम्भ एवं स्त्री-पुरुषों के अस्सी प्रकार के वातरोगों और कफरोगों को दूर करता है ॥ २१९-२२३ ॥

सप्तशतिकाप्रसारणीतैल।

समूलपत्रामुत्पाट्य शरत्काले प्रसारणीम्। शतं ग्राह्यं सहचराच्छतावर्याः शतं तथा ॥ २२४ ॥ बलात्मगुप्ताश्वगन्धा-

केतकीनां शतं शतम्। पचेच्चतुर्गुणे तोये द्रवैस्तैलाढकं भिषक् ॥ २२५ ॥ मस्तुमांसरसं चुक्रं पयश्चाढकमादकम्। दध्याढकसमायुक्तं पाचयेन्मृदुनाग्निना ॥२२६॥ द्रव्याणां तु प्रदातव्या मात्रा चार्द्धपलांशिका। तगरं मदनं कुष्ठं केशरं मुस्तकं त्वचम् ॥ २२७ ॥ रास्नासैन्धवपिप्पल्यौ मांसीमञ्जिष्ठयष्टिकाः। तथा मेदा महामेदा जीवकर्षभकौ पुनः ॥ २२८ ॥ शतपुष्पा व्याघ्रनखं शुण्ठी देवाह्वमेव च। काकोली क्षीरकाकोलीवचा भल्लातकं तथा ॥२२९॥ पेषयित्वा समानेतान् साधनीया प्रसारणी। नातिपक्वं न हीनञ्च सिद्धं पूतं निधापयेत् ॥ २३० ॥ यत्र यत्र प्रदातव्या तन्मे निगदतः शृणु। कुब्जानामथ पङ्गूनां वामनानां तथैव च ॥ २३१ ॥ यस्य शुष्यति चैकाङ्गं ये च भग्नास्थिसन्धयः। वातशोणितदुष्टानां वातोपहतचेतसाम् ॥ २३२ ॥ स्त्रीमद्यक्षीणशुक्राणां वाजीकरणमुत्तमम्। बस्तौ पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्ये चैव प्रयोजयेत्। प्रयुक्तं शमयत्याशु वातजान् विविधान् गदान् ॥ २३३ ॥

मूल-पत्र सहित शरद् ऋतु में उखाडी हुई गन्धप्रसारणी ५ सेर, सहचर (पियावासा) ५ सेर, शतावरि ५ सेर, खरैटी ५ सेर, केवाँच के मूल की छाल ५ सेर, असगन्ध ५ सेर और केतकी का मूल ५ सेर लेकर चौगुने जल में पृथक् पृथक् चतुर्थांशावशिष्ट क्वाथ करे। उसमें तिलतैल ६ सेर ३२ तोला, दही का पानी ६ सेर ३२ तोला, छागमांस का क्वाथ ६ सेर ३२ तोला, चुक्र ६ सेर ३२ तोला, दूध ६ सेर ३२ तोला, दही ६ सेर ३२ तोला, और निम्नलिखित ओषधियों का कल्क मिलाकर तैल सिद्ध करे। तगर, मैनफल, कूट, नागकेसर, नागरमोथा, दालचीनी, रास्ना, सेंधानमक, पीपरि, जटामांसी, मजीठ, मुलेठी, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, सौंफ, नखी, सोंठ, देवदारु, काकोली, क्षीरकाकोली, वच और भिलावाँ, ये दो-दो तोले एकत्रकर कोमल अग्नि से तैल पाक करे। पाक में ध्यान रखना चाहिए कि खरपाक या मंदपाक न हो जाय। यह तैल पान, बस्ति, मर्दन और नस्य में उपयुक्त होता है और अनेक प्रकार के वातज रोगों को नाश करता है तथा कुब्ज (कुबड़े) पङ्गु (पँगुले), वामन (छोटे) अङ्गवाले, एकाङ्गशोषवाले, अस्थिभंग या सन्धिभङ्गवाले, वातरक्त और वायु से उपहत चित्तवाले, स्त्री-संग और मदिरापान से क्षीण वीर्यवाले रोगियों को हितकर और वाजीकरण है ॥ २२४-२३३ ॥

एकादशशतिकमहा प्रसारणीतैल।

शाखामूलदलैः प्रसारणितुलास्तिस्रः कुरण्टीतुले छिन्नायाश्च तुले तुले स्वुकतो रास्ना शिरीषात्तुलाम्। देवाह्वाच्च सकेतकात् घटशते निःक्वाथ्य कुम्भांशिके तोये तैलघटं तुषाम्बुकलशौ दत्त्वाढकं मस्तुनः ॥ २३४ ॥ शुक्राच्छागरसादथेक्षुरसतः क्षीराच्च दत्त्वाढकं पक्वा कर्कटजीवकाद्यविकपाकाकोलिकाकच्छुराः। सूक्ष्मैलाघनसारकुन्दुसरला काश्मीरमांसी नलैः कालीयोत्पलपद्मकाह्वयनिशाकक्कोलकग्रन्थिकैः ॥ २३५ ॥ चाम्पेयाभयचोचपूगवटुका जातीफला भीरुभिः श्रीवासामरदारुचन्दनवचाशैलेयसिन्धूद्भवैः। तैलाम्भोदकटम्भराङ्घ्रिनलिनाष्टश्रीरकचोरकैः कस्तूरी दशमूलकेतकनतध्यामाश्वगन्धाम्बुभिः ॥ २३६ ॥ कौन्तीतार्क्ष्यजशल्लकीफललघुश्यामाशताह्वामयं -

भल्लातत्रिफलाब्जकेशरमहाश्यामालवङ्गान्वितैः । सव्योषौस्त्रिपलैर्महीयसिपचेन्मन्देन पात्रेऽग्निना पानाभ्यञ्जनवस्तिनस्यविधिनातान्मारुतंनाशयेत् २३७॥ सर्वाङ्गैकाङ्गगतं तथावयवगं सन्ध्यस्थिमज्जागतं श्लेष्मोत्थानथ पैत्तिकांश्च शमयेन् नानाविधानामयान् । धातून् बृंहयति स्थिरञ्च कुरुते पुंसां नवं यौवनं वृद्धस्यापि बलं करोति सुमहद्वन्ध्यासु गर्भप्रदम् ॥ २३८ ॥ पीत्वा तैलमिदं जरत्यपि सुतं सूतेऽमुना भूरुहाः सिक्ताः शोषमुपागताश्च मलिनाः स्निग्धा भवन्ति स्थिराः । भग्नाङ्गाः सुदृढा भवन्ति मनुजा गावो हयाः कुञ्जराः ॥ २३९ ॥

शाखा, मूल और पत्र सहित गन्धप्रसारणी १५ सेर, पियाबासा की जड़ १० सेर, गिलोय १० सेर, एरण्डमूल १० सेर, रास्ना और शिरीष दोनों मिलाकर ५ सेर और देवदारु, केतकी की जड़ मिलाकर ५ सेर लेकर ३२ मन जल में पकावे, शतांश (सवां हिस्सा) शेष रहने पर उतारकर छान ले। इसमें तिल तैल २५ सेर ४८ तोला, कांजी १ मन ११ सेर १६ तोला, दही का पानी ६ सेर ३२ तोला, गुड़ ६ सेर ३२ तोला, छागमांस का क्वाथ ६ सेर ३२ तोला, इक्षुरस ६ सेर ३२ तोला, दुग्ध ६ सेर ३२ तोला मिलावे और निम्नलिखित औषधियों का कल्क मिलाकर यथाविधि तैल सिद्ध करे। कल्कद्रव्यप्रद्राशाक, काकड़ासिंगी, जीवनीयगण, मजीठ, काकोली, क्षीरकाकोली, कौंच के मूल की छाल, छोटी इलायची, कपूर, कुन्दुरू, चीड़, केशर, जटामांसी नखी, अगर, कमल, पद्माख, हल्दी, परवल, पिपरामूल, नागकेसर, मम, दालचीनी, सुपारी, कुटकी, जायफल, शतावरी, मरचापियांग, देवदारु, रक्तचन्दन, वच, खरेंटा, सेंधानमक, शिलारस, नागरमोथा, गन्धप्रसारणी, नालुका, पुनर्नवा, गठिवन, कस्तूरी, दशमूल, केतकी, तगर गन्धतृण, असगन्ध सुगन्धवाला, सँभालू के बीज, रसौत, शल्लकी (सर्जभेद,), मैनफल, अगर, कालीनिसोथ, सौंफ, कूट, भिलावाँ, त्रिफला, कमल, नागकेसर, काली सारिवा, लौंग, त्रिकटु ये सब द्रव्य १२-१२ तोले एकत्रकर किसी पात्र में रख मन्द मन्द अग्नि से पाक करे। यह तैल पान, मर्दन वस्ति तथा नस्य के प्रयोग से सर्वाङ्गवात, अर्द्धाङ्गवात, अंगसन्धि तथा अस्थिमज्जागत वायु को तथा पित्त एवं नाना प्रकार के कफज रोगों को नष्ट करता है। धातुओं को बढ़ाता, यौवन को स्थिर करता, वृद्ध को बल देता, वन्ध्या को गर्भ देता तथा प्रसूता को प्रसव में सुख देता है। इसके सींचने से सूखे वृक्ष हरे हो जाते हैं। इस तैल से भग्नाङ्ग मनुष्य, गौ, घोड़े, हाथी आदि दृढ़ अंगवाले होते हैं ॥ २३४-२३९ ॥

अष्टादशशतिकप्रसारणीतैल ।

समूलदलशाखायाः प्रसारण्याः शतत्रयम् । शतमेकं शतावर्या अश्वगन्धाशतं तथा ॥ २४० ॥ केतकीनां शतं चैकं दशमूलाच्छतं शतम् । शतं वाट्यालकस्यापि शतं सहचरस्य च ॥ २४१ ॥ जलद्रोणशतं दत्त्वा शतभागावशेषितम् । तस्मिन्नेन कषायेण कषायद्विगुणेन च ॥ २४२ ॥ शुक्तेनारनालेन दधिमस्त्वाढकेन च । क्षीरगुणेनेक्षुनिर्यासच्छागमांसरसाढकैः ॥ २४३ ॥ तैलद्रोणं समायुक्तं दृढे पात्रे निधापयेत् । द्रव्याणि यानि पेष्याणि तानि वक्ष्याम्यतः परम् ॥ २४४ ॥ मल्लातकं नतं शुण्ठी पिप्पली चित्रकं शटी । वचा पृक्का प्रसारण्याः पिप्पल्या मूलमेव च ॥ २४५ ॥ देवदार्वेलवालुका च मूर्वामलात्वचालकम् । कुङ्कुमं मदमञ्जिष्ठा तुरुष्कं

नखिकागुरु ॥ २४६ ॥ कर्पूरकुन्दुरुनिशा लवङ्गं ध्यामचन्दनम् । कक्कोलं नलिकामुस्तं कालीयोत्पलपत्रकम् ॥ २४७ ॥ शटी-हरेणु शैलेयं श्रीवासश्च मर्कटकम् । त्रिफला कच्छुराभीरु सरलं पद्मकेशरम् २४८ प्रियङ्गूशीरनलदं जीवकाद्यं पुनर्नवा। दशमूल्यश्वगन्धे च नागपुष्पं रसाञ्जनम् २४९ कटुका जातिपूगानां फलानि शल्लकीरसम् । भागांस्त्रिपलिकान् दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ २५० ॥ विस्तीर्णे सुदृढे पात्रे पाच्यैषा तु प्रसारणी । प्रयोगः षड्विधश्चात्र रोगार्त्तानां विधीयते ॥ २५१ ॥ अभ्यङ्गात् त्वग्गतं हन्ति पानात् कोष्ठगतं तथा । भोजनात् सूक्ष्मनाडीस्थान् नस्यादूर्ध्वगतं तथा ॥ २५२ ॥ पक्वाशयगते वस्तिर्निरूहः सर्वगात्रिके । एतद्धि वडवाश्वानां किशोराणां यथामृतम् ॥ २५३ ॥ एतदेव मनुष्याणां कुञ्जराणां गवामपि । अनेनैव च तैलेन शुष्यमाणा महाद्रुमाः ॥ २५४ ॥ सिक्ताः पुनः प्ररोहन्ति भवन्ति फलशालिनः । वृद्धोऽप्यनेन तैलेन पुनश्च तरुणायते ॥ २५५ ॥ न प्रसूते च या नारी सापि पीत्वा प्रसूयते । अप्रजः पुरुषो यस्तु सोऽपि पीत्वा लभेत् सुतम् ॥ २५६ ॥ अशीतिं वातजान् रोगान् पैत्तिकान् श्लैष्मिकानपि । सन्निपातसमुत्थांश्च नाशयेत् क्षिप्रमेव हि ॥ २५७ ॥ एतेनान्धकवृष्णीनां कृतं पुंसवनं महत् । कृत्वा विष्णोर्बलिश्चापि तैलमेतत् प्रयोजयेत् ॥ २५८ ॥

काथार्थ मूल, पत्र और शाखासहित गन्धप्रसारणी १२ सेर, शतावरि ५ सेर, असगन्ध ५ सेर, केवड़ा का मूल ५ सेर, दशमूल की प्रत्येक ओषधि पाँच पाँच सेर, खरेटी ५ सेर और पियावासा ५ सेर लेकर १४ मन जल में पकावे। जब २५ सेर ४८ तोला शेष रहे तो उतारकर छान ले। २५ सेर ४८ तोला काथ, १ मन ११ सेर १६ तोला काँजी, ६ सेर ३२ तोला दही के पानी, ६ सेर ३२ तोला दूध, ६ सेर ३२ तोला शुक्र, ६ सेर ३२ तोला ईख के रस और ६ सेर ३२ तोला छाग के मांस के रस के साथ २५ सेर ४८ तोला तिल तैल एक दृढ़ पात्र में रखकर पकावे। परचात् पकाते समय भिलावाँ, तगर, सोंठ, पीपरि, चीता, कचूर, वच, पृक्का (पुरीशाक) गन्धप्रसारणी का मूल, पिपरामूल, देवदारु, सौंफ, छोटी इलायची, दालचीनी, सुगन्धवाला, केसर, कस्तूरी, मजीठ, शिलारस, नखी, अगर, कपूर, कुन्दुरू (कुन्दुरखोटी), हल्दी लौंग, गन्धतृण, रक्तचन्दन, कंकोल, नाड़ीशाक, नागरमोथा, काली अगर, कमल, तेजपात, कचूर, सँभालू के बीज चीड़, श्रीवास, केवड़ा, त्रिफला, कौंच, शतावरि, सरलकाष्ठ, पद्मकाठ, नागकेसर, फूलप्रियंगु, खस, जटामांसी, जीवनीयगण, साँठी, दशमूल, असगन्ध, नागकेसर, रसौत, कुटकी, जायफल, सुपारी और शल्लकीरस (राल) प्रत्येक बारह-बारह तोले पीसकर मिलावे और धीमी आँच से पकाकर यथाविधि तैल सिद्ध करे। इस तैल के मर्दन करने से चमड़े के रोग, पीने से कोष्ठगत रोग, भोजन से सूक्ष्म नाड़ीगत रोग और नस्य से ऊर्ध्वगत रोग नष्ट होते हैं। वस्तिक्रिया से पक्वाशय के और निरूहवस्तिक्रिया से संपूर्ण शरीर के रोगों का नाश करता है। यह तैल घोड़े, हाथी, गाय और मनुष्य आदि सब जीवों के लिये अमृत के तुल्य लाभदायक होता है। इस तैल से सूखते हुए बड़े-बड़े वृक्ष सिंचकर हरे भरे और फलसम्पन्न हो जाते हैं। वृद्ध मनुष्य भी इस तैल का मर्दन करने से तरुण के समान हो जाता है। जिस स्त्री या पुरुष के सन्तान न होती हो उसको इस तैल के पीने

से अवश्य सन्तान होती है। यह तैल ८० प्रकार के वात रोग, सब प्रकार के पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक रोगों को तत्काल नष्ट करता है। इस तैल से अन्धक और वृष्णियों (यादव आदि) को पुंसवन हुआ था। विष्णु को बलि देकर इस तैल का प्रयोग करना चाहिए॥ २४०–२५८॥

टिप्पणी—केशर कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्य तैल बन जाने के बाद फिर डालने चाहिये। यही विधि सब घृतों में बरतनी चाहिए।

त्रिशतीप्रसारणीतैल।

समूलपत्रशाखाञ्च जातसारां प्रसारणीम्। कुट्टयित्वा पलशतं दशमूलशतं तथा॥ २५९॥ अश्वगन्धापलशतं कटाहेसमधिक्षिपेत्। वारिद्रोणे पृथक्कृत्वा पादशेषेऽवतारितम्॥ २६०॥ कषायसममात्रं तु तैलमत्र प्रदापयेत्। दध्नस्तथाढकं दत्त्वा द्विगुणञ्चाम्लकाञ्जिकात्॥ २६१॥ चतुर्द्रोणेन पयसा जीवनीयैः पलोन्मितैः। मृङ्गवेरपलान् पञ्च शिग्रुद्वल्लातकानि च॥ २६२॥ द्वे पले पिप्पलीमूलात् चित्रकाञ्च पलद्वयम्। यवक्षारपले द्वे च सैन्धवस्य पलद्वयम्॥ २६३॥ सौवर्चलपले द्वे च मञ्जिष्ठायाः पलद्वयम्। प्रसारणीपले द्वे च मधुकस्य पलद्वयम्॥ २६४॥ सर्वाण्येतानि संहृत्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत्। एतदभ्यञ्जने श्रेष्ठं वस्तिकर्मनिरूहणे॥ २६५॥ पाने नस्य च दातव्यं न क्वचित् प्रतिहन्यते। अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच पैत्तिकान्॥ २६६॥ विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव सर्वानेतान् व्यपोहति। गृध्रसीमस्थिभङ्गञ्च मन्दाग्नित्वमरोचकम्॥ २६७॥ अपस्मारं तथोन्मादं विभ्रमं मन्दगामिताम्। त्वग्गताश्चापि ये वाताः शिरःसन्धिगताश्च ये॥ २६८॥ जानुसन्धिगताश्चैव पादपृष्ठगताश्च ये। अभग्नो वा वातसंभग्नो गजो वा यदि वा नरः॥ २६९॥ प्रसारयति यस्मात्तु तस्मादेषा प्रसारणी। इन्द्रियाणाञ्च जननी वृद्धानाञ्च सूयनी॥ २७०॥ एतेनान्धकवृष्णीनां कृतं पुंसवनं महत्। प्रसारणीतैलमिदं बलवर्णाग्निवर्द्धनम्॥ २७१॥ अपनयति जरां पलितं शोषयति रुजामुत्पादयति तारुण्यम्॥ २७२॥ पक्षाघातं सर्वाङ्गहतं वातगुल्मञ्च नाशयेत्। एतदुपयुज्यमानः प्रसन्नवर्णेन्द्रियो भवेत्॥ २७३॥

१ सेर मूल, पत्र और शाखासहित गन्धप्रसारणी तथा ५ सेर दशमूल की ओषधियाँ और ५ सेर असगन्ध प्रत्येक को कूटकर २५ सेर ४८ तोला जल में पकाकर चतुर्थांश शेष रहने पर छान ले। इन काढ़ों में ६ सेर ३२ तोला तिलतैल, ६ सेर ३२ तोला दही, १२ सेर ६४ तोला कांजी और २ मन २२ सेर ३२ तोला जल डालकर पकावे। पश्चात् पकाते समय चार-चार तोले जीवनीयगण की प्रत्येक ओषधि, चार तोले अदरख, १२० तोला भिलावा और पिपरामूल, चीता, जवाखार, सेंधानमक, कालानमक, मजीठ, प्रसारणी और मुलेठी ये सब आठ आठ तोले लें। कल्क बनाकर डाल दे और धीमी-धीमी आँच पर यथाविधि तैल सिद्ध करें। इस तैल को अभ्यङ्ग, वस्तिक्रिया, निरूहण, पान और नस्य में देना चाहिए। यह कहीं भी विफल नहीं होता। यह तैल ८० प्रकार के वातिक, ४० प्रकार के पैत्तिक और २० प्रकार के श्लैष्मिक रोगों को नष्ट करता है। गृध्रसी, अस्थिभङ्ग, अग्निमान्द्य, अरोचक, अपस्मार, उन्माद, विभ्रम और मन्दगामिता को तथा चर्मगत, शिरोगत, सन्धिगत, जानुसन्धिगत, पाद और

पृष्ठगत वातरोगों को नष्ट करता है। वातरोग से पीड़ित घोड़ा, हाथी या मनुष्य हो, सबको यह रोगमुक्त कर देता है, इसलिये इसका नाम प्रसारणी है। यह तैल इन्द्रियों की शक्ति को बढ़ाता और वृद्धों को सन्तान देता है। इसने अन्धक और वृष्णियों को परम शक्ति दी थी। यह बल, वर्ण और अग्नि का वर्द्धक है, बुढ़ापे को मिटाता है, पलित रोग तथा अनेक पीड़ाओं को दूर करता है। तरुणता उत्पन्न करता है। पक्षाघात, सर्वाङ्गहत और वातगुल्म को नष्ट कर इन्द्रिय कान्ति को निर्मल करता है॥ २५६-२७३॥

महाराजप्रसारणीतैल

शतत्रयं प्रसारण्या द्वे च पीतसहाचरात्। अश्वगन्धैरण्डबला वरी रास्ना पुनर्नवा॥ २७४॥ केतकी दशमूलञ्च पृथक्त्वक्पारिभद्रतः। प्रत्येकमेषां तु तुलां तुलार्द्धं किलिमात्तथा॥ २७५॥ तुलार्द्धं स्यान्झिरीपाच्च लाक्षायाः पञ्चविंशतिः। पलानि लोध्राच्च तथा सर्वमेकत्र साधयेत्॥ २७६॥ जलपञ्चाढकशते सपादे तत्र शेषयेत्। द्रोणद्वयं काञ्जिकस्य पड्विंशत्याढकोन्मितम्॥ २७७॥ क्षीरदध्नोः पृथक्प्रस्था दशमस्त्वाढकं तथा। इक्षो रसाढकं चापि छागमांसतुलात्रये॥ २७८॥ जलपञ्चत्रिंशत् प्रस्थे पक्वे तु शेषयेत्। सप्तदशरसप्रस्थान् मञ्जिष्ठाक्वाथ एव च॥ २७९॥ कुडवो नाढकोन्मानो द्रवैरेभिस्तु साधयेत्। सुशुद्धं तिलतैलस्य द्रोणं प्रस्थेन संयुतम्॥ २८०॥ आद्य एभिर्द्रवैः पाकः कल्को भल्लातकं कणा। नागरं मरिचञ्चैव प्रत्येकं षट्पलोन्मितम्॥ २८१॥ भल्लातकासहत्वे तु रक्तचन्दनमिष्यते। पथ्याक्षधात्र्यः सरलं शताह्वा कट्फलं वचा॥ २८२॥ चोरपुष्पी शटी मुस्तद्वयं पद्मञ्च सोत्पलम्। पिप्पलीमूलमञ्जिष्ठा साश्वगन्धा पुनर्नवा॥ २८३॥ दशमूलं समुदितं चक्रमर्दो रसाञ्जनम्। गन्धतृणं हरिद्रा च जीवनीयो गणस्तथा॥ २८४॥ एषां द्विपलिकैर्भागैराद्यः पाको विधीयते। देवपुष्पीगोलपत्रं शल्लकीरसशैलजे॥ २८५॥ प्रियङ्गूशीरमधुरी मांसी दारु बला चला। श्रीवासो नलिका खोटिः सूक्ष्मैला कुन्दुरूर्मुरा॥ २८६॥ नखीत्रयञ्च त्वक्पत्री पामरापूतिचम्पकम्। मदनं रेणुका पृक्का मरुवञ्च पलत्रयम्॥ २८७॥ प्रत्येकं गन्धतोयेन द्वितीयः पाक इष्यते। गन्धोदकन्तु त्वक्पत्री पत्रकोशीरमुस्तकम्॥ २८८॥ प्रत्येकं सरलामूलं पलानि पञ्चविंशतिः। कुष्ठार्द्धं भागोऽत्र जलप्रस्थास्तु पञ्चविंशतिः॥ २८९॥ अर्द्धाविशिष्टाः कर्त्तव्याः पाके गन्धाम्बुकर्मणि। गन्धाम्बुचन्दनाम्बुभ्यां तृतीयः पाकइष्यते॥ २९०॥ कल्कोऽत्र केशरं कुष्ठं त्वक् कालीयककुङ्कुमम्। भद्रश्रियं ग्रन्थिपर्णं लता कस्तुरिका तथा॥ २९१॥ लवङ्गागुरुकक्कोलजातीकोषफलानि च। एला लवङ्गवल्ली च प्रत्येकं त्रिपलोन्मितम्॥ २९२॥ कस्तूरी षट्पला चन्द्रात् पलं सार्द्धञ्च गृह्यते। वेधनार्थं पुनश्चन्द्रमेदो देयौ तथोन्मितौ॥ २९३॥ महाप्रसारणी सेयं राजभोग्या प्रकीर्तिता। गुणान् प्रसारणीनां तु वहत्येषा पलोत्तमान्॥ २९४॥ चाक्षिकं मानतो द्रोणःशुभ्रेनात्र विधीयते। अत्र शुभ्रविधिर्मतः प्रस्थः

पश्चाढकोन्मितः ॥ २६५ ॥ काञ्जिकं कुडवो दध्नो गुडप्रस्थोऽम्लमूलकात् । पलान्यष्टौ शोधितार्द्रात्पलषोडशिकं तथा ॥ २६६ ॥ कणाजीरकसिन्धूत्थहरिद्रा मरिचं तथा । द्विपलं भाविते भाण्डे घृतेनाष्टदिनं स्थितम् ॥ २६७ ॥ सिद्धं भवति तच्छुक्तं यदावतार्य गृह्यते । तदा देयं चतुर्जातं पृथक्कर्षत्रयोन्मितम् ॥ २६८ ॥

यद्यपि काञ्जिकस्य षड्विंशतिराढकानीत्युक्तं तथापि काञ्जिकद्रोणमात्रेण व्यवहारः अन्यथा काञ्जिकस्यैव गन्धः स्यादिति अतएव चक्रो वक्ष्यति काञ्जिकं मानतो द्रोण इति । चन्दनाम्बुसाधनविधिर्यथा, कुट्टितचन्दनपलम् ५०, पाकार्थं जलशरावम् ५०, शेषशरावम् २५ । घृष्टचन्दनं गोलयित्वा वा दातव्यमिति ।

१५ सेर प्रसारणी, १० सेर पीले फूल का पियावासा, पाँच-पाँच सेर (सौ सौ पल) असगन्ध, एरण्ड, खरेटी, शतावरि, रास्ना, पुनर्नवा, कंतकी, दशमूल और फरहद २॥ सेर, देवदारु २॥ सेर, सिरीस १। सेर, लोध और लाख १। सेर को ४० मन जल में पकाकर १ मन ११ सेर १६ तोला जल शेष रक्खे। इसमें २५ सेर ४८ तोला कांजी, १६ सेर दूध और १६ सेर दही, ६ सेर ३२ तोला दही का तोड़, १२ सेर ६४ तोला ईख का रस मिलावे। १५ सेर छागमांस को १ मन ३२ सेर जल में काढ़ा करके शेष २० सेर १६ तोला ६ सेर ३२ तोला मजीठ का क्वाथ और २५ सेर ४८ तोला शुद्ध तिलतेल तथा निम्नलिखित द्रव्यों [redacted] कल्क के साथ प्रारम्भिक पाक करे। कल्कार्थ द्रव्य—चौबीस-चौबीस तोला भिलावाँ, पीपरि, सोंठ और मिर्च, (यदि भिलावाँ सह्य न हो तो भिलावाँ के बदले रक्तचन्दन ले)। चार-चार तोला हड़, बहेड़ा, आँवला, चीड़, सौंफ, काकड़ासिंगी, बच, चोर-पुष्पी (शंखिनी), कचूर, मोथा, नागरमोथा, पद्माख, कमल के पुष्प, पीपरामूल, मजीठ, असगंध, साठी, दशमूल (मिलित), चकवँड़ (पँवार) रसौत, गन्धतृण, हलदी और जीवनीयगण ले। पूर्वोक्त, द्रवद्रव्यों और कल्कों के साथ पाक होने पर निम्नलिखित द्रव्यों के कल्क और गन्धोदक के साथ दुबारा पाक करना चाहिए। कल्कार्थ द्रव्य—लौंग, बोल (गन्धरस), तेजपात, धूप, छरीला, प्रियंगु, खस, सौंफ, जटामांसी, देवदारु, खरेटी, शिलारस, लोबान, नालिका (पवारी), नवनीतखोटि, छोटी इलायची, कुन्दुरू मुरामांसी, तीनों नखी, दालचीनी, तेजपात, बच, खट्टाशी (मुश्कबिलाई के अंडे), धवपा के पुष्प, दौना, सँभालु के बीज, पृक्का (पुरीशाक) और मरुआ प्रत्येक बारह-बारह तोले ले।

गन्धोदक विधि।

तेजपात, पत्रक (तेजपात के सदृश पत्र-विशेष), खस, नागरमोथा और सुगन्धबाला का मूल १००-१०० तोले, कूट ५० तोला लेकर १ मन जल में पकावे, २० सेर शेष रहे तो छान ले। यह क्वाथ गन्धोदक कहा जाता है। पूर्वोक्त कल्क और गन्धोदक के साथ पाक सिद्ध होने पर गन्धोदक चन्दनाम्बु और निम्नलिखित कल्कों के साथ तृतीय पाक करे— कल्कार्थ द्रव्य— नागकेसर, कूट, दालचीनी, कालीयक (पीलाचन्दन), कुंकुम, श्वेतचन्दन, गठिवन, लताकस्तूरी, लौंग, अगर, कंकोल, जावित्री, जायफल, इलायची और तगर की छाल बारह-बारह तोले। गन्धोदक, चन्दनाम्बु और उक्त कल्क के साथ पाक सिद्ध होने पर फिर कस्तूरी २४ तोले और कपूर ६ तोला मिलावे। यह महाराजप्रसारणीतैल राजाओं के सेवन करने योग्य है। इसमें अन्यान्य प्रसारणी तैलों की अपेक्षा बहुत शक्तिशाली गुण है।

शुक्तसाधनविधि

यहाँ शुक्त बनाने की विधि लिखते हैं। जैसे— भात का माँड़ १२८ तोला, कांजी ३२ सेर

दही ६४ तोला, गुड़ ६४ तोला, अम्लमूलक (कांजी का अधःस्थित द्रव्य) ३२ तोला, अदरख ६४ तोला, पीपर, जीरा, लाहौरी नमक, हल्दी और काली मिरिच आठ-आठ तोला ले। इन सब द्रव्यों को घृत से स्निग्ध किये हुए पात्र में ८ दिन तक मुँह ढककर रक्खे। पश्चात् उसमें दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेसर का तीन-तीन तोला चूर्ण मिला लेना चाहिए। इसको शुक्त कहते हैं।

यद्यपि इस महाराजप्रसारणीतैल के साधन में कांजी २६ आढक लिखी है तथापि एक ही द्रोण ली जाती है। नहीं तो तेल में कांजी की ही गन्ध आने लगती। अतएव चक्रपाणिदत्त ने भी एक ही द्रोण (१२ सेर ६४ तोला) कांजी लेने को लिखा है।

चन्दनाम्बुसाधनविधि।

२॥ सेर चन्दन का चूर्ण अथवा घिसे हुए चन्दन की गोलियों को ४० सेर जल में पकाये। २० सेर जल शेष रहने पर छान ले। इस क्वाथ को चन्दनाम्बु कहते हैं॥ २७४—२९८॥

मृगमदादिकों के उत्कर्ष और अपकर्ष के लक्षण।

मृगमद

या गन्धं केतकीनां वहति परिमलं वर्णतः पिञ्जराभा स्वादे तिक्ता कटुर्वा परिलघुतुलना मर्दिता चिक्कणा सा। दग्धा नो याति भस्मं मिपिमिपि कुरुते चर्मगन्धा तु चान्ते सा भद्रा लोभनीया वरमृगतनुजा राजयोग्या प्रदिष्टा॥ २९९॥ पीतः किञ्चिल्लघुरतिशयं केतकीतुल्यगन्धः स्निग्धो दग्धो मिपिमिमिपिकरो भस्मभावं न याति। ईषत्तिक्तः कटुरपि मनाक्चारगन्धानुविद्धः सम्यक् शुद्धो मद इह महीपालयोग्यो मनोज्ञः॥ ३००॥

जिस कस्तूरी का गन्ध केवड़े के पुष्प के समान हो, वर्ण पीला हो स्वाद में तिक्त या कटु हो, हल्की हो, मलने पर चिकनी हो, आग में डालने पर शीघ्र दग्ध न हो, केवल मिप-मिप करके सङ्कुचित हो जाय और अन्त में इससे चमड़े की-सी गन्ध आने लगे। वही कस्तूरी श्रेष्ठ और राजाओं के योग्य है। यही तात्पर्य 'पीतः किञ्चिल्लघुरतिशयम्' इत्यादि ग्रन्थान्तरोक्त श्लोक का भी है॥ २९९—३००॥

कर्पूर

पक्वात्कर्पूरतः प्राहुरपक्वं गुणवत्तरम्। तत्रापि स्याद् यदक्षुण्णं स्फटिकाभं तदुत्तमम्॥ ३०१॥ पक्वं च सदलं स्निग्धं हरितद्युति चोत्तरम्। भङ्गे मनागपि न चेन्निपतन्ति ततः कणाः॥ ३०२॥ हस्ते निघृष्य कर्पूरं रेखां हस्तस्य लक्षयेत्। यदि सा दृश्यते विद्धि कर्पूरमतिभद्रकम् ३०३

पक्व कर्पूर की अपेक्षा अपक्व कर्पूर अधिक गुणवाला होता है। अपक्व कर्पूर से भी जो चूर्णित न किया गया हो तथा स्फटिक की तरह स्वच्छ हो वह उत्तम है। पक्व कर्पूर में जो सदल (पत्र अथवा दानेदार) स्निग्ध और हरे रंग की प्रभावाला हो तथा तोड़ने पर यदि कण पृथक्-पृथक् होकर न गिरें तो वह उत्कृष्ट है। कर्पूर को हथेली पर घिसकर हाथ की रेखाओं को देखे, यदि उन रेखाओं में कर्पूर दीखे तो समझना चाहिए कि यह कर्पूर अत्यन्त श्रेष्ठ है॥ ३०१—३०३॥

कुष्ठ

मृगभृङ्गाकृति कुष्ठं कीटदोषविवर्जितम्॥ ३०४॥

कूठ की आकृति यदि हरिण के सींग के

समान हो तथा कीट आदि से दूषित न हो तो श्रेष्ठ है ॥ ३०४ ॥

चन्दन

श्वेतचन्दनमत्यन्तं स्निग्धं गुरु सुगन्धि च । श्रेष्ठचन्दनं रक्तपीतसारं तदुत्तमम् । यत्पाण्डुरमसारञ्च न भद्रं प्रवदन्ति तत् ॥ ३०५ ॥

श्वेत चन्दन यदि अत्यन्त स्निग्ध हो, भारी हो तथा सुगन्धयुक्त हो तो श्रेष्ठ है । जिस चन्दन के भीतर की लकड़ी लाल अथवा पीली हो वह चन्दन उत्तम है । जो पाण्डुवर्ण का हो तथा असार (कमजोर) हो वह चन्दन श्रेष्ठ नहीं है ॥ ३०५ ॥

अगुरु

काकतुण्डाकृतिः स्निग्धो गुरुश्चैवोत्तमोऽगुरुः । असारं पाण्डुरं रूक्षं लघु चाधममादिशेत् ॥ ३०६ ॥ नादेयं नाप्युपादेयं तित्तिरीपक्षकागुरु । शाल्मलीकाष्ठसङ्काशो नैव ग्राह्यः कदाचन ॥ ३०७ ॥

जो अगर आकृति में कौवे की चोंच के समान, तथा स्निग्ध और भारी हो वह उत्तम है । जो असार, पाण्डुवर्ण तथा हल्का हो उसे निकृष्ट समझो । नदी के किनारे उत्पन्न हुआ अथवा तीतर के पक्ष के सदृश वर्णवाला और सेमर की लकड़ी सदृश रूपवाला अगर ग्रहण करने के योग्य नहीं है ॥ ३०६ ३०७ ॥

कुंकुम

पाण्डुरैः केशरैर्व्यक्तं रक्तं कुंकुममुत्तमम् । हीनं द्विवर्णं काश्मीरं खरपाण्डुरकेशरम् ॥ ३०८ ॥

जिस केसर में पाण्डु रंग की केसर न हो तथा जिसका वर्ण लाल हो वह उत्तम है । जिसमें दो रंग हों तथा खुरदरे और पाण्डुवर्ण के केसर हों वह अधम है ॥ ३०८ ॥

खट्टास

खट्टासोऽनूपजः श्रेष्ठो वर्तुलो मांसलश्च यः । सम्मतो मध्यदेशीयो मध्यमो मरुजोऽधम ॥ ३०९ ॥

जलप्राय देश में उत्पन्न, गोल और मांसल खट्टासी (मुश्कबिलाव के अण्ड) श्रेष्ठ है, मध्य देश में उत्पन्न मध्यम और मरुस्थल में उत्पन्न अधम होता है ॥ ३०९ ॥

मुरामांसी और रेणुक

किञ्चित् पीतमुरा शस्ता मांसी पिङ्गजटाकृतिः । रेणुको मुद्गतुल्यो यो भद्रः स सम्मतः सताम् । स्थूलो मरिचसङ्काशो गन्धकर्मणि गर्हितः ॥ ३१० ॥

मुरामांसी कुछ पीले रंग की, जटामांसी (बालछड़) पिङ्गल वर्ण की जटा के सदृश तथा रेणुका मूँग के समान हो तो श्रेष्ठ है । कालीमिर्च के समान तथा मोटी रेणुका गन्धकर्म (तैलादि सुगन्धित करने के लिये) में निन्दित है ॥ ३१० ॥

मुस्तक

आनूपदेशसम्भूतो मुस्तः स्यादतिशोभनः मिश्रिते मध्यमः मोक्तोजाङ्गलस्त्वधमो मतः ॥ ३११ ॥

अनूप देशोत्पन्न मोथा उत्तम, मिश्रित देश (अनूप तथा जाङ्गलमिश्रित) का मध्यम और जाङ्गल देश का अधम होता है ॥ ३११ ॥

जातीफल

जातीफलं सशब्दञ्च स्निग्धं गुरु च शस्यते । लघुकं शब्दहीनञ्च रूक्षाङ्गमतिनिन्दितम् ॥ ३१२ ॥

शब्दयुक्त, स्निग्ध तथा गुरु जायफल श्रेष्ठ है । लघु, शब्दहीन तथा रूक्ष जायफल अति निन्दित है ॥ ३१२ ॥

एला

एला कक्कोलबीजाभा सा ग्राह्या

कोद्रवाकृतिः । या कक्कोलसमाकारा कर्पूर-रेणुसंयुता । सरला सा त्रुटिः श्रेष्ठा विपरीता तु नेष्यते ॥ ३१३ ॥

जो इलायची कंकोल के बीज तथा कोदों के आकारवाली हो वह श्रेष्ठ है। जो इलायची कंकोल के समान दानेवाली, कपूर के सदृश रेणुयुक्त और सरल हो वह छोटी इलायची श्रेष्ठ है। इससे विपरीत आकारवाली अग्राह्य है ॥ ३१३ ॥

प्रियङ्गु

या किञ्चित्पाण्डुरा श्यामा कीटदोषविवर्जिता । सा प्रियंगुर्मता भद्रा विपरीता तु निन्दिता ॥ ३१४ ॥

जो श्यामवर्ण तथा किञ्चित् पाण्डुवर्ण की हो, कीड़ों से न खाई गई हो वह प्रियङ्गु श्रेष्ठ है तथा इससे विपरीत लक्षणवाली निन्दित है ॥ ३१४ ॥

नखी

नखी पञ्चविधा ज्ञेया गन्धार्थं गन्धतत्परैः । काचिदुदुम्बरपत्राभा तथोत्पलदलायता ॥ ३१५ ॥ काचिदश्वखुराकारा गजकर्णसमा परा । वराहकर्णसङ्काशा गन्धकर्मणि गर्हिता ॥ ३१६ ॥

गन्धकर्म के लिये नखी पाँच प्रकार की है। गूलर के पत्र के सदृश, कमल के पत्र के सदृश, घोड़े के सुम के सदृश और हाथी के कान के सदृश होती है तथा शूकर के कान के सदृश आकारवाली नखी गन्धकर्म में निन्दित है ॥ ३१५-३१६ ॥

ग्रन्थिक

ग्रन्थिकः पाण्डुरः किञ्चित् कनिष्ठः सर्वसम्मतः । उत्तमः कृष्णवर्णो यः स्थूलोऽतीव च निन्दितः ॥ ३१७ ॥

किञ्चित पाण्डुवर्णयुक्त तथा पतला गठिवन उत्तम है। काले रंगवाला और मोटा निन्दित है ॥ ३१७ ॥

उशीर

दीर्घमूलं दृढं सूक्ष्ममुत्तमं गन्धसंयुतम् । देशे साधारणे जातं लामज्जं भद्रकं भवेत् ॥ ३१८ ॥

लम्बे मूलवाला, दृढ़, पतला, उत्तम गन्धवाला और साधारण देश (न जांगल न आनूप) में उत्पन्न खस उत्तम है ॥ ३१८ ॥

नलिका

मध्ये सारविहीना या सरसा कीटवर्जिता । नलिका सा भवेद्भद्रा विपरीता तु निन्दिता ॥ ३१९ ॥

मध्य में खोखली, सरस तथा कीड़ों से न खाई गई नलिका प्रशस्त है। इससे विपरीत लक्षणवाली निन्दित है ॥ ३१९ ॥

शिलारस

निर्मलः कपिलः स्वच्छः सिह्लकोऽतितरां नवः । मध्वाभो मलयुक्तश्च वर्जितो गन्धकर्मणि ॥ ३२० ॥

मल-रहित, कपिल वर्णवाला और नवीन शिलारस उत्तम है। मलयुक्त और शहद के सदृश वर्णवाला शिलारस गन्धकर्म में वर्जित है ॥ ३२० ॥

श्रीवास और लाक्षा

श्रीवासो भद्रकः प्रोक्तो मलकाष्ठविवर्जितः । लाक्षा च नूतना ग्राह्या मृत्तिकादिविवर्जिता ॥ ३२१ ॥

मल और काष्ठ से रहित गन्धाबिरोजा उत्तम है। इसी प्रकार मिट्टी तथा लकड़ी से रहित नवीन लाक्षा उत्तम है ॥ ३२१ ॥

पद्मक और त्वक्पत्र

पद्मकं सरलं भद्रं कीटदोषविवर्जितम् । जलदोषविहीनश्च त्वक्पत्रश्च तथैव च ॥ ३२२ ॥

कीड़े से न खाये हुए पत्राख तथा सरल काष्ट श्रेष्ठ हैं। जलदोषरहित दालचीनी और तेजपात श्रेष्ठ है॥ ३२२॥

वालक

सूक्ष्ममूलो वरः केशोऽनूतनः सरलस्तथा। नूतनः स्थूलमूलश्च वर्जनीयः प्रयत्नतः॥ ३२३॥

पतली जड़वाली, पुरानी तथा सरल सुगन्ध वाला श्रेष्ठ है। नवीन और मोटी जड़वाली निन्दित है॥ ३२३॥

कक्कोल

कक्कोलकं शुभं विद्धि वेष्टितं सूक्ष्मया त्वचा। स्निग्धं गुरुकमत्यन्तमन्यथातीव निन्दितम्॥ ३२४॥

पतली त्वचा से वेष्टित, स्निग्ध तथा गुरु (भारी) शीतलचीनी को उत्तम और विपरीत लक्षणवाली को निकृष्ट समझना चाहिए॥ ३२४॥

वच

अत्युग्रापि सरागापि ग्रन्थिला वापि सम्मिता। अन्तःशुचित्वमात्रेण वचा ग्राह्यतरमुज्झति॥ ३२५॥

उग्र, कुछ लालवर्ण तथा अत्यन्त गांठवाली वच उत्तम है। परन्तु इन लक्षणों के होते हुए भी यदि इसका भीतरी भाग शुभ्र वर्ण का हो तो वह वच कर्म में निन्दित है॥ ३२५॥

द्विमुस्त और चोरपुष्पी

द्विमुस्तं नूतनं पुष्टं गन्धाढ्यं परमं विदुः। चोरपुष्पीं नवां श्यामामामनन्ति मनीषिणः॥ ३२६॥

नवीन, पुष्ट तथा उत्तम गन्धवाले मोथा और नागरमोथा श्रेष्ठ कहे जाते हैं। चोरहुली नवीन और श्यामवर्ण की उत्तम होती है॥ ३२६॥

चम्पककलिका और नागकेसर

ग्राह्या प्रशोष्य सम्यक् चम्पककलिका प्रदीपकलिकेव। कीटादिकेन रहितमभिनवमिह केशरं ग्राह्यम्॥ ३२७॥

दीपक की शिखा के समान आकृतिवाली चम्पक की कली को सुखाकर ग्रहण करना चाहिए। तथा कीटादि से रहित नागकेसर ग्रहण करनी चाहिये॥ ३२७॥

मांसी और देवदारु

ससूक्ष्मकेशरा स्निग्धा मांसी पिङ्गजटाकृतिः। सुगन्धि लघु रूक्षञ्च सुरदारु प्रकीर्त्तितम्॥ ३२८॥

पतले केसरवाली, चिकनी, पिङ्गल वर्ण की जटा के समान आकारवाली[1] जटामासी ग्रहण करनी चाहिए। इसी प्रकार सुगन्धित, लघु और रूक्ष देवदारु ग्रहण करना चाहिए॥ ३२८॥

रक्तचन्दन।

आकृष्णमुत्तमं नूनं रक्तश्चेदश्च मध्यमम्। आरक्तमधमं विद्धि रक्तचन्दनकं त्रिधा॥ ३२९॥

रक्तचन्दन तीन प्रकार का है—जिसमें कुछ कृष्णवर्णवाले को सर्वोत्तम, लालरंगवाले को मध्यम और थोड़े रक्तवर्णवाले को अधम जानना चाहिए॥ ३२९॥

टिप्पणी—किन्तु इसमें सुगन्ध होना आवश्यक है सुगन्धहीन ग्राह्य नहीं है।

हरिद्रा।

हरिद्रा शस्यते स्थूला छेदे या कुङ्कुमच्छविः।

जो हल्दी स्थूल हो तथा तोड़ने पर भीतर से केसर के रंग की हो वह श्रेष्ठ है।

अधिवासनपुष्प।

केतकी यूथिका जाती चम्पकश्चाति-

मुक्तकः । कदम्बो मल्लिका नागपुष्पञ्च कुटजं तथा ॥ ३३० ॥ पाटलावरुणौ सौरीपुष्पैरेभिः समाचरेत् ॥ वासनं कुसुमैरन्यैस्तथान्यैरतिशोभनैः ॥ ३३१ ॥

केवड़ा, जूही, जाती, चमेली, माधवी, कदम्ब, मल्लिका, नागकेसर, कुड़ा के पुष्प, पाढल के फूल, बरना, प्याल तथा अन्यान्य अति सुगन्धित पुष्पों से अधिवासन करना चाहिए ॥ ३३०-३३१ ॥

कालानमक, सैन्धवनमक, मैनशिल और स्वर्णमाक्षिक।

सौवर्चलं तु केशाभं सैन्धवं स्फटिकप्रभम् । जवाकुसुमसङ्काशा मनोह्वा चोत्तमा मता । सुवर्णवच्च विज्ञेयं स्वर्णमाक्षिकमुत्तमम् ॥ ३३२ ॥

बालों के समान काला सौंचलनमक, स्फटिक के सदृश स्वच्छ सेंधानमक, गुड़हल के फूल के सदृश लालरंग की मैनशिल तथा सोने के सदृश चमकवाला स्वर्णमाक्षिक उत्तम होता है ॥ ३३२ ॥

शिलाजतु।

श्रेष्ठं शिलाजतु ज्ञेयं यत्तु क्षिप्तं न शीर्यते । तोयपूर्णे यदा पात्रे प्रतान्येव विरुध्यते ॥ ३३३ ॥ भाद्रक्यं कीर्त्तितं येषां विरुद्धत्वं न कीर्त्तितम् । तेषां तद्विपरीतत्वाद् विरुद्धत्वञ्च लक्षयेत् ॥ एतेषामपरेषां च नवता प्रवरो गुणः ॥३३४॥

जलपूर्ण पात्र में शिलाजीत को डालने से यदि वह छिन्न-भिन्न न हो, किन्तु तन्तु छोड़े, तो वह शिलाजीत ग्राह्य है तथा इसके विपरीत लक्षणवाला अग्राह्य है ॥ ३३३ ॥

जहाँ-जहाँ ग्राह्यत्व बताया गया है और अग्राह्य नहीं बताया गया है, उन्हें उन गुणों से विपरीत होने पर अग्राह्य समझना चाहिए। इन सब द्रव्यों में और अन्य द्रव्यों में नवीनता एक प्रधान गुण है ॥ ३३४ ॥

महासुगन्धितैल और लक्ष्मीविलासतैल।

जिङ्गीचोरकदेवदारुसरलव्याघ्रीवचाचेलकत्वक्पत्रैः सह गन्धपत्रकशटीपथ्याक्षधात्रीघनैः । एतैः शोधितसंस्कृतैः पलयुगेत्याख्यातया संख्यया तैलमस्थमवस्थितैः स्थिरमतिः कल्कैः पचेद्वान्धिकैः ॥ ३३५ ॥ मांसीमुरादमनचम्पकसुन्दरीत्वग्ग्रन्थाम्बुरुङ्मरुवकैर्द्विपलैःसपृक्कैः। श्रीवासकुन्दुरुनखीनलिकामिषीणां प्रत्येकतः पलमुपाद्य पुनः पचेत्तु ॥ ३३६ ॥ एलालवङ्गचलचन्दनजातिपूतिककोलकागुरुलतागुरुसृणैः पलार्द्धैः । कस्तूरिकासहितामलदीप्तियुक्तैः पक्त्वा च मन्दशिखिनैव महासुगन्धम् ॥ ३३७ ॥ पञ्चद्विकेन चार्द्धेन मदात्कर्पूरमिष्यते । प्रागुक्तौ शुद्धिसंस्कारौ गन्धानामिहतैः पुनः । कर्पूरमदयोरर्द्धं पत्रकल्कादिहेष्यते ॥ ३३८ ॥ द्विगुणैर्लक्ष्मीविलासः स्यादयं तु तैलसत्तमः । पञ्चपत्राम्बुना चाद्यो द्वितीयो गन्धवारिणा ॥ ३३९ ॥ तृतीयोऽपि च तेनैव पाको वा धूपिताम्बुना । तैलयुग्ममिदं तूर्णं विकारान् वातसम्भवान् । क्षपयेज्जनयेत्पुष्टिं कान्तिं मेधां धृतिं धियम् ॥३४०॥

पञ्चद्विकेनेतिपञ्चधा त्रिभक्तस्य कस्तूरी-

१—पक्वपूतेऽप्युष्णा एव मदाः पेषणार्पितम् । क्षिप्यते गन्धवृद्ध्यर्थं पत्रकल्कं तदुच्यते ॥

तैल सिद्ध हो जाने पर छानने के बाद गरम गरम में ही सुगन्ध बढ़ाने के लिये बारीक तरह से पिसा किंचित् तैल मिला जो कल्क डाला जाता है उसे पत्रकल्क कहते हैं।

कस्यैको भागो रक्तिद्वयाधिकत्रिमापको भवति तथा मानेन कर्पूरस्य द्वौ भागौ किंवा अर्द्धेन कस्तूरीकर्पात्कर्पूरस्याष्टौ मापकाः।

मजीठ चोरपुष्पी (चोरक), देवदारु, चीड़, व्याघ्री (छोटी कटेरी, गन्धद्रव्य विशेष) बच, चेलक (सुपारी के वृक्ष की छाल) दालचीनी, तेजपात, गन्धतृण, कचूर, हरीतकी, बहेड़ा, आँवला और नागरमोथा प्रत्येक आठ २ तोला, इन गन्धद्रव्यों के कल्क द्वारा प्रथम १२८ तोला तिलतैल को पकावे। तदनन्तर जटामांसी, मुरामांसी, दौना, चम्पक-पुष्प, प्रियङ्गु, दालचीनी, गठियन, सुगन्धवाला, कूट, मरुवा के पुष्प और पिण्डीशाक आठ २ तोले। गन्धाबिरोजा, कुंदुरू, नखी, नलिका (पवारी) और सौंफ़ चार २ तोले, इन कुल द्रव्यों के कल्क द्वारा द्वितीय पाक करे। इलायची, लौंग, शिलारस, श्वेत चन्दन, जायफल या चमेली के फूल, खट्टाशी (मुश्कबिलाई-अण्ड) शीतलचीनी, अगर, लताकस्तूरी और केसर दो-दो तोला, कस्तूरी १ तोला, कपूर ६ माशा एकत्र कर, इन कुल द्रव्यों के कल्क के साथ मन्द-मन्द अग्नि से तृतीय पाक करना चाहिए। पूर्वोक्त तैल के समान इस तैल में कहे गये गन्धद्रव्यों का शोधन और संस्कार कर लेना चाहिए। नियमानुसार प्रतिवार कल्कपाक के लिये चौगुना जल डाला जाता है। कस्तूरी और कपूर मिले हुए पत्रकल्क से आधे लिये जाते हैं। यह ध्यान रहे कि प्रथम कल्कपाक बिल्वादि पञ्चपल्लव के क्वाथ द्वारा करना चाहिए। गन्धाम्बु द्वारा द्वितीय कल्कपाक करे। अगर से धूपित किये हुए गन्धाम्बु द्वारा तृतीय कल्कपाक करे। इस तैल का नाम महासुगन्धि तैल है। यह तैल सब प्रकार के वातरोगों को नष्ट कर शरीर को पुष्ट करता है। कान्ति, मेधा, धैर्य और बुद्धि को बढ़ाता है।

पूर्वोक्त समस्त कल्कों को द्विगुणित परिमाण में डालकर जो तैल सिद्ध किया जाता है उस को लक्ष्मीविलास तैल कहते हैं महासुगन्धि तैल के जो गुण हैं वे ही गुण अधिक रूप में इस तैल के हैं ॥ ३२९--३४० ॥

पञ्चपल्लव।

शोधनञ्चापि संस्कारो विशेषश्चात्र कथ्यते।
आम्रजम्बुकपित्थानां वीजपूरकबिल्वयोः॥
गन्धकर्माणि सर्वत्र पत्राणि पञ्चपल्लवम् ३४१

अब यहाँ पर तैल में कहे हुए गन्धद्रव्यों का शोधन और संस्कार कहा जायगा। आम, जामुन, कैथ, बिजौरा, बेल, इन पाँचों पत्तों को पञ्चपल्लव कहते हैं। गन्धकर्म में सर्वत्र पञ्चपल्लव शब्द से इन्हीं का ग्रहण करना चाहिए ॥३४१॥

नखीशुद्धि।

चण्डीगोमयतोयेन यदि वा तिन्तिडीदलैः। नखं संक्वाथयेदेभिरलाभे मृण्मयेन तु ॥ ३४२ ॥ पुनरुद्धृत्य प्रक्षाल्य भर्जयित्वा निषेचयेत्। गुडाभयाम्बुना ह्येवं शुद्ध्यते नात्र संशयः ॥ ३४३ ॥

चण्डीगोमयेत्यादि—हयखुरोत्पलपत्रकरिकर्णनखीत्रयं ग्राह्यं तत्रोत्तमा सदना मांसला स्निग्धा। महिषीगोमयजले तत्स्वेदनीया। महिषीगोमयजलाभावे तिन्तिडीजलेन वा। ततो मृण्मये पात्रे वालुकायां भर्जयित्वा गुडहरीतकीजलेन सेचनीयम्, ततो रौद्रे शोषयित्वा सितचन्दनागुरुकल्केन कुंकुमतोलकद्वयमितेन कुष्ठामलकीदेवदारूणां प्रत्येकं द्विपलपरिमितेन कल्केन यत्नेन पुनः पुनर्मर्दयेत्। ततो गन्धोदकेन प्रक्षाल्य पुनः पुनरातपे शोषयेत्। ततो मल्लिकामालत्यादिकुसुमैर्मृण्मयपात्रे अधः ऊर्ध्वं पुष्पं दत्त्वा संस्थाप्य पुनरुद्धृत्य ग्राह्यं तिसृणां प्रत्येकम्। इति नखीशुद्धिः। एवम् प्रकारेणैव समुद्राकर्कटस्य शुद्धस्य त्रिपलम्।

नखी पाँच प्रकार की है। उनमें से १—घोड़े के सुम के समान, २—कमल के पत्ते के समान, ३—हाथी के कान के समान, यह तीनों ग्रहण करने के योग्य हैं। इनमें भी जो मोटी तथा चिकनी है वह बहुत श्रेष्ठ है। इन्हें प्रथम भैंस के गोबर के रस में अथवा इमली के जल में स्वेदन करना चाहिए, पश्चात् एक मिट्टी के पात्र में बालू में भूनकर गुड़ मिलाकर हरड़ के क्वाथ में सेवन करना चाहिए। इसके बाद धूप में सुखाकर सफेद चन्दन, अगर तथा केसर २ तोला एवं कूट, आँवला, देवदारु, हरएक ८ तोला, इनके कल्क से नखी को बारबार मलें। इसके बाद गन्धोदक से धोकर धूप में सुखा ले और एक मिट्टी के बर्तन में ऊपर नीचे मल्लिका तथा मालती आदि के सुगन्धित फूल रखकर बीच में इसे रख दें, पश्चात् इसे निकाल तीनों को अलग-अलग ऊपर कहे हुए तैल के लिये ग्रहण करें। इसी प्रकार समुद्रकफेंद (समुद्री केकड़ों) का भी शोधन कर १२ तोला लेना चाहिए॥ ३४२-३४३॥

हरिद्रावचाशुद्धि।

गोमूत्रे चाम्बुपके पक्त्वा पञ्चदलोदके।
पुनः सुरभितोयेन वाष्पस्वेदेन स्वेदयेत्॥
गन्धोग्रा शुद्ध्यते ह्येवं रजनी च विशेषतः॥

गोमूत्र इत्यादि—पर्वरहिता। ग्रन्थिप्रचुरतरा वरा वचा ग्राह्या। जर्जरीकृत्य गोमूत्रे मुण्डरीसहितजले च पक्त्वा पुनरुद्धृत्य पञ्चपल्लवजलेन पचेत्। उद्धृत्य संशोष्य गन्धोदकेन प्रक्षाल्य शोषयित्वा तदनु गन्धोदकहण्डिकायां वचां प्रक्षिप्य पिधाय अधो ज्वाला दातव्य। इति वाष्पस्वेदः। ततश्च गोमूत्रे क्षणमेकं प्रक्षिप्य शोभाञ्जनवल्कलक्वाथेन प्रक्षाल्य गन्धोदकेन क्षालयेत्। ततो मरुवकमल्लिकादिकुसुमैरधिवासयेत् ततः संचूर्ण्य सर्जरसकुन्दुरुनखिकादिभिर्धूपयित्वा ग्राह्या। इति वचाशुद्धिः। एवं हरिद्राया अपि। अस्या विशेषशुद्धिः। मातुलुङ्गरसकाञ्जिकाभ्यां टङ्कणक्षारतोलकेन उत्स्वेदनीया यावद्रसम् तदनुशोषणीयं ततो निर्मलतिलतैलचतुःपलानि गन्धोदकेन मृद्वग्निना दिनत्रयं उत्स्वेदयेत्। हरिद्रां धूपयित्वा धूपितभाण्डे दिनत्रयं स्थापयेत् एवं कुंकुमवर्णा भवेत् हरिद्रा।

जिसमें पर्व न हों और गाँठें बहुत-सी हों ऐसी वच का ग्रहण करना चाहिए। वच को कूटकर गोमूत्र में तथा गोरखमुंडीयुक्त जल में पकाकर पुनः इसका पञ्चपल्लव के क्वाथ से पाक करें और सुखाकर गन्धोदक से धोकर सुखा लें। इसके बाद एक हाँडी में गन्धोदक डाल दूसरी सछिद्र हाँडी में वच को डाल दें और हाँडी के मुख पर रख नीचे से अग्नि दें। इसके बाद वच गोमूत्र में रख सहिजने की छाल के क्वाथ से धोकर गन्धोदक से धोवें और मरुआ तथा मल्लिका आदि फूलों से सुगन्धित करें। अन्त में वच का चूर्ण कर राल, कुन्दरू तथा नखी आदि के धूप से धूपित करके ग्रहण करें। इसी प्रकार हल्दी को शुद्ध करें। हल्दी की विशेष शुद्धि—१ तोले सुहागे को बिजौरे के रस तथा काञ्जिक में मिलायें और इसके द्वारा हल्दी का उत्स्वेदन करें और सुखा लें। इसके बाद १६ तोला शुद्ध तिल के तैल को गन्धोदक से मिलाकर तीन दिन तक हल्दी का स्वेदन कर, तदनन्तर हल्दी को धूपित कर तीन दिन तक धूपित पात्र में रक्खें। इस प्रकार हल्दी केसरिया रंग की हो जाती है॥ ३४४॥

मुस्तकशुद्धि।

मुस्तकन्तुमनाक्क्षुण्णं काञ्जिके त्रिदिनोषितम्। पञ्चपल्लवतोयेन सिक्तमातपशोषितम्॥ ३४५॥ गुडाम्बुना सिच्यमानं

भर्जयेच्चूर्णयेत्ततः । आजशोभाञ्जनजलै-र्भावयेच्चेति शुद्धयति ॥ ३४६ ॥

मुस्तकमित्यादि—मनाक् खण्डखण्डं कृत्वा काञ्जिके दिनत्रयं संस्थाप्य, प्रक्षाल्य पञ्चपल्लवतोयेन स्वेदयेत् । अथातत संशोष्य खोलके भृष्ट्वा चूर्णयेत् । ततश्छाग-मूत्रशोभाञ्जनजलेन भावयेत् । तदनु चम्पकादिकुसुमैरधिवासयेत् । ततः पश्चाद् धूपयित्वा संचूर्ण्य त्रिपलं ग्राह्यमिति मुस्तकशुद्धिः ।

मोथे के छोटे-छोटे टुकड़े कर काँजी में तीन दिन रखकर पानी से धो लें और पञ्चपल्लव क्वाथ से स्वेदन करें । स्वेदन के अनन्तर गुड़ मिले हुए जल से सेचन कर धूप में सुखाकर भाड़ में भूनकर चूर्णित कर लें । तदनन्तर बकरी के मूत्र एवं सहिजने के क्वाथ से भावना दें और अन्त में चमेली आदि फूलों से इसे सुगन्धित कर धूपित करें, इसके बाद चूर्ण कर १२ तोला की मात्रा में लें ॥ ३४५–३४६ ॥

शैलजशुद्धि ।

काञ्जिके क्वथितं शैलं भ्रष्टा पथ्या गुडाम्बुना । सिञ्चेदेवं ततः पुष्पैर्विविधैरधि-वासयेत् ॥ ३४७ ॥

शैलजं काञ्जिके पचेत् । ततः प्रक्षाल्य पञ्चपल्लवदलेन वाष्पस्वेदनमित्युपदेशः । भृष्टहरीतकीजलेनाभिषिच्य सुगन्धि-पुष्पैरधिवासयेत् ।

अथवा—काञ्जिके क्वथितं शैलं छाग-मूत्रेण भावितम् । शिग्रुतोयेन सौद्रेण मर्दितं धूपयेत्ततः । धूपितं लगुसर्जाभ्यां वासितं कुसुमैर्नरैः ॥ ३४८ ॥

शैलजं काञ्जिके निक्षिप्य पचेत् तदनु प्रक्षाल्य छागमूत्रेण भावयेत् । ततः शोभाञ्जनक्वाथे । ततो मधुना मर्दयेत् । ततोऽगुरुधूमकाभ्यां धूपयित्वा कुसुमैरधि-वासयेत् ॥ इति शैलजशुद्धिः ।

शैलज (भूरछरीला) को काँजी में पकाकर जल से धोवें और पञ्चपल्लव क्वाथ से वाष्प स्वेदन करें । इसके बाद गुड़ और भुनी हरड़ के जल से सेचन कर सुगन्धित फूलों द्वारा इसे सुगन्धित करें । अथवा—पहिले काँजी में शैलज को अच्छी प्रकार उबाले, पश्चात् धोकर बकरी के दूध से भावना दें । भावना देने के बाद क्रमशः सहिजने के क्वाथ से तथा शहद से घोटें । तद-नन्तर अगर तथा राल से धूपन कर इसे फूलों द्वारा सुगन्धित करें ॥ ३४७–३४८ ॥

खट्टाशी शुद्धि ।

यथालाभमपामार्गस्नुह्यादिक्षारलेपितम् । वाष्पस्वेदेन संस्वेद्य पूतिं निर्लोमतां नयेत् ॥ ३४९ ॥ दोलापाकं पचेत्पश्चात् पञ्चपल्लववारिणि । खलः साधु मिथोत्पीड्य ततोनिःस्नेहतां नयेत् ॥ ३५० ॥ आज-शोभाञ्जनजलैर्भावयेच्च पुनः पुनः । शिग्रु-मूले च केतक्याः पुष्पपत्रपुटे च तम् । पचेदेवं विशुद्धिश्च मृगनाभिसमो भवेत् ॥ ३५१ ॥

यथालाभमित्यादि—अपामार्गाम्बष्ठा-स्नुहीक्षारैः खट्टाशी लिप्त्वा सजल-स्थाल्यभ्यन्तरे (काष्ठाम्बुपरिपिष्टक) पक्त्वा निर्लोमतां नयेत् । तदनु वस्त्रेण पट्टोलं बद्ध्वा पञ्चपल्लवतोयेन दोला-वत्पचेत् । ततो गाढं निष्पीड्य निःस्नेहतां नयेत् । ततश्छागमूत्रेण शोभाञ्जनक्वाथेन बहुधा भावयेत् । इति खट्टाशीशुद्धिः ।

अपामार्ग, पाठा तथा थूहर के क्षार से खट्टाशी पर लेप करके एक हँडिया में जल भर कर वाष्पस्वेदन कर खट्टाशी के बालों को उतार लें । पश्चात् इसे कपड़े की पोटली में बाँध

कर पञ्चपल्लवक्काथ से दोलायंत्र में पकावें। पकाकर इसे अच्छी प्रकार निचोड़कर चिकनाई दूर कर ले। अन्त में बकरी के मूत्र तथा सहिंजने के क्वाथ से सात वार भावना दें। इसके बाद सहिंजने की जड़ तथा केवडे के फूलों का पाक करना चाहिए। इस प्रकार यह कस्तूरी के समान हो जाती है॥ ३४६-३५१॥

शिलारस, कुंकुम, अगर, ग्रन्थिपर्ण और

मधुरी की शुद्धि।

तुरुष्कं मधुना भाव्यं काश्मीरञ्चापि सर्पिषा। रुधिरेणागुरुं भाव्यैर्गोमूत्रैर्ग्रन्थिपर्णकम्॥ मधूदकेन मधुरीं पत्रकं तण्डुलाम्बुना॥ ३५२॥

तुरुष्कमित्यादि—सिल्हकं प्रक्षाल्य मधुना वारत्रयं भावयेत्। ततो गन्धोदकेन प्रक्षालयेत्। ततः शोधितधूपेन धूपयेत्। चम्पकादिकुसुमैरधिवासयेत्—इति शिलारसशोधनम्।

कुंकुमं गन्धोदकेन प्रक्षाल्य संशोष्य दुग्धघृतभाण्डे कृत्वा तत्र कुंकुमं प्रक्षाल्य वस्त्रेण भाण्डमुखं रुद्ध्वा बाष्पस्वेदेन स्वेदयित्वा गन्धाम्बुना प्रक्षाल्य पूर्वोक्तकुसुमैरधिवासयेत्॥ इतिकुंकुमशुद्धिः।

अगुरुं गन्धोदकेन प्रक्षाल्यातपे शोषणीयम्। ततो विशुद्धकुंकुमजलेनाप्लाव्य शोषणीयम्। ततो गन्धोदकेन वारत्रयं प्रक्षाल्य संशोष्य त्रिपलं ग्राह्यम्। इत्यगुरुशोधनम्।

ग्रन्थिपर्णं गोमूत्रे विपाच्य प्रक्षालयेत्। पुनर्गन्धोदकेन प्रक्षाल्य संशोष्य कुसुमैरधिवासयेत्। इति ग्रन्थिपर्णशुद्धिः।

मधुरीं मधुमिश्रितजलेन प्रक्षाल्य पुनर्मधूदकेन वारत्रयं भावयेत्। पुनः संशोष्य पुष्पैरधिवासयेत्। तण्डुलाम्बुना मधुरीवत्तेजपत्रशोधनम्।

शिलारस को धोकर शहद से तीन बार भावना दें। इसके बाद गन्धोदक से धोकर धूपित और चमेली आदि के फूलों से सुगन्धित करें।

केसर को गन्धोदक से धोकर सुखा लें और दूध तथा घृतयुक्त पात्र में इसे रख वहाँ धोवे और वस्त्र द्वारा पात्र के मुख को बन्द कर भाप से स्वेदन करें, पश्चात् गन्धोदक से धोकर चमेली आदि के फूलों से सुगन्धित करें।

अगर को गन्धोदक से धोकर धूप में सुखावें। तत्पश्चात् शुद्ध केसर के जल में डुबो करके पुनः सुखावें और गन्धोदक से तीन बार धोकर पहले की तरह सुखा लें। यह अगर-शोधनविधि है।

गठिवन को गोमूत्र में पकाकर गन्धोदक से धोवें और धूप में सुखावें। चमेली आदि फूलों से इसे सुगन्धित करें। यह गठिवन-शोधनविधि है।

सौंफ को शहदयुक्त जल से धोकर पुनः शहदयुक्त जल से तीन बार भावना दें और सुखाकर फूलों द्वारा सुगन्धित करें। इसी प्रकार तेजपात को तण्डुलोदक से शुद्ध करना चाहिए॥ ३५२॥

कुष्ठशुद्धि।

कुष्ठं पञ्चदलस्विन्नं मूर्वाकुन्दुरुधूपितम्। वासितं कुसुमैरेभिः शुद्धिमाप्नोति निर्मलाम्॥ ३५३॥

पञ्चपल्लवक्काथेन कुष्ठं पक्त्वा परिशोष्य मूर्वाकुन्दुरुभ्यां सन्धूप्य जात्यादिकुसुमैरधिवासयेत्। इति कुष्ठशोधनम्।

पञ्चपल्लव क्काथ में कूठ का स्वेदन कर सुखा लें और मूर्वा की जड़ तथा कुन्दरू के धूप से धूपित कर चमेली आदि के फूलों से सुगन्धित करना चाहिए॥ ३५३॥

गन्धतृणशोधन ।

ध्यामकं चूर्णितं शुद्धिं शर्कराजलसंप्लुतम् । घृतगुग्गुलधूपेन याति चन्दनवासितम् ॥ ३५४ ॥

गन्धतृणं चूर्णयित्वा शर्करामिश्रितजलेन प्रक्षाल्य परिशोष्य श्रीखण्डचन्दनपङ्केन मर्दयेत् । इति गन्धतृणशोधनम् ।

गन्धतृण का चूर्ण कर शर्करोदक (शरबत) से धोकर सुखावें और सफेद चन्दन को जल में घिस उससे मलना चाहिए ॥ ३५४ ॥

कुन्दुरुशुद्धि ।

कुन्दुरुश्चूर्णितोऽत्यर्थं कुंकुमेन च मर्दितः । धूपितो गुडसर्जाभ्यां वासितः शुद्ध्यतेतराम् ॥ ३५५ ॥

कुन्दुरुं गन्धोदकेन प्रक्षाल्य शोषयित्वा कुंकुमपङ्केन मिश्रयित्वा गाढं मर्दयेत् । अथ गुडसर्जाभ्यां धूपयित्वा सुगन्धिकुसुमैरधिवासयेत् । इति कुन्दुरुशोधनम् ।

कुन्दरू को गन्धोदक से धोकर सुखावें, पश्चात् केसर को जल में पीसकर उसके साथ इसे मिलाकर अच्छी तरह घोटें । तदनन्तर गुड़ तथा राल से धूपित और फूलों से सुगन्धित करें ॥ ३५५ ॥

रेणुकाशोधन ।

रेणुको भावितश्चादौ मधुना तक्रभावितः । आतपे शोषयित्वैवं पुष्पैरप्यधिवासयेत् ॥ ३५६ ॥

रेणुकं गन्धोदकेन प्रक्षाल्य मधूदकेन पुनर्भाव्यम् । आतपे संशोष्य गन्धकुसुमैरधिवासयेत् । इति रेणुकशोधनम् ।

सम्भालू के बीजों को पहिले गन्धोदक से धोकर शहद तथा छाल से क्रमशः भावना देनी चाहिये । भावना के बाद फूलों से सुगन्धित करें इस प्रकार रेणुका शुद्ध हो जाती है ॥ ३५६ ॥

चोरपुष्पीशोधन ।

क्षौद्रेण भावितं चोरपुष्पमातपशोषितम् । धूपितं गुडसर्जाभ्यां वासितं शुध्यते ध्रुवम् ॥ ३५७ ॥

चोरपुष्पं मधुना संनीयातपे शोषयित्वा गुडधूनकाभ्यां धूपयित्वा सुगन्धिकुसुमैरधिवासयेत् । इति चोरपुष्पीशोधनम् ।

चोरहुली को शहद से भावना देकर धूप में सुखा गुड़ तथा राल से धूपित और फूलों से सुगन्धित करें । ३५७ ॥

नवनीतखोटि शोधन ।

नवनीतखोटिं गन्धोदकेन प्रक्षाल्य संशोष्य शर्करोदकेनपुनर्भाव्यम् । प्रक्षाल्य संशोष्य सञ्चूर्ण्य घृतगुग्गुलधूपेन धूपयित्वा जात्यादिकुसुमचन्दनाभ्यां वासयेत् ।

नवनीतखोटि (गन्धाविरोजा) को गन्धोदक से धो सुखाकर शरबत से भावना दें और पुनः गन्धोदक से धोकर सुखा लें । पश्चात् इसे चूर्णित कर घी तथा गूगल के धूप से धूपित और चमेली आदि के फूल तथा चन्दन से सुगन्धित करें ।

सामान्यशोधन ।

सर्वेषामेव सुगन्धिद्रव्याणां गन्धवारिणा प्रक्षाल्यातपे संशोष्य भर्जनं सेचनं गुडोदकेन ।

सामान्यतः सब सुगन्धित द्रव्यों को गन्धोदक से धोकर धूप में सुखाना चाहिए । तत्पश्चात् किञ्चित् भूनकर गुडोदक (गुड़ के शरबत) से द्रव्य को सिञ्चित करें ।

शोधितं शोधितंद्रव्यं न कुर्यादेकपात्रतः। यस्माद्धि काकसंसर्गात् कृष्णो भवति कोकिलः ॥ ३५८ ॥

शुद्ध किये हुए अलग-अलग द्रव्यों को इकट्ठा कर एक पात्र में न रक्खें, क्योंकि कौए के संग में कोयल भी काली हो जाती है, अर्थात् हीन द्रव्यों के संग से उत्तम द्रव्य भी दुर्गुणयुक्त हो जाते हैं ॥ ३२८ ॥

नकुलाद्यघृत।

नकुलस्य च मांसस्य पचेत् प्रस्थं जलाढके। तत्समं दशमूलञ्च पक्वं माषकलान्वितम् ॥ ३५९ ॥ घृतप्रस्थं पचेत्तत्र चतुर्भागावशेषिते। शतावरीरसप्रस्थं गव्यदुग्धञ्च तत्समम् ॥ ३६० ॥ अष्टौ वर्गश्च काकोल्यौ जीवन्ती मधुयष्टिका। एलात्वचञ्च पत्रञ्च त्रिकटु त्रिफला तथा ॥ ३६१ ॥ मुस्तकं नागजिह्वा च कर्षं कर्षं प्रदापयेत्। सर्ववातविकारेषु अपस्मारे विशेषतः ॥ ३६२ ॥ पक्षाघाते महोन्मादे चाध्माने कोष्ठनिग्रहे। हस्तकम्पे शिरःकम्पे बाधिर्ये मूकमिन्मिने॥ ३६३ ॥ ऊर्ध्वजत्रुगते वाते जङ्घापार्श्वादिसंश्रिते। नकुलाद्यमिदं नाम्ना ऊर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ ३६४ ॥

घृत १२८ तोला। क्वाथार्थ नेवले का मांस ६४ तोला, पाकार्थ जल ६ सेर ३२ तोला, शेष १२८ तोला दशमूल ६४ तोला जल ६ सेर ३२ तोला, शेष १२८ तोला। उरद ६४ तोला, जल ६ सेर ३२ तोला, शेष १२८ तोला। सरैंटी ६४ तोला, जल ६ सेर ३२ तोला शेष १२८ तोला। इस प्रकार चारों को ले शतावरि का रस १२८ तोला, दुग्ध १२८ तोला मिलाकर कल्कार्थ अष्टवर्ग (जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा), काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलैठी, इलायची, दालचीनी, तेजपात, त्रिकटु, त्रिफला, नागरमोथा और अनन्तमूल प्रत्येक एक एक तोला लेकर घृत सिद्ध करें। इस घृत का पान करने से अपस्मार, उन्माद, पक्षाघात, आध्मान, मलबद्धता, हस्तकम्प, शिरःकम्प, बधिरता, मूकत्व, अस्पष्टभाषण, हँसुली के ऊपर के रोग तथा जाँघ, पसुली आदि में स्थित वात रोग और नाना प्रकार की वातज पीड़ाएँ शान्त होती हैं ॥३५९--३६४॥ मात्रा ६माशा से १ तोला॥

छागलाद्यघृत।

आजं चर्मविनिर्मुक्तं त्यक्तशृङ्गनखादिकम्। पञ्चमूलीद्वयञ्चैव जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ३६५ ॥ तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत्। जीवनीयैः सयष्ट्यह्वैः क्षीरञ्चैव शतावरी ॥ ३६६ ॥ छागलाद्यमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत्। अर्दिते कर्णशूले च बाधिर्ये मूकमिन्मिने ॥३६७॥ जडगद्गदपङ्गूनां खञ्जे गृध्रसिकुब्जयोः। अपतानेऽपतन्त्रे च सर्पिरेतत् प्रशस्यते ॥ ३६८ ॥ पृथगर्द्धतुलां पञ्चमूलद्वन्द्वाजमांसयोः। निष्क्वाथ्य सलिलद्रोणे क्वाथे पादावशेषिते ॥ ३६९ ॥

घृतारम्भ में मन्त्र।

ॐ कालि प्रजेश्वरि अमुकस्य फलसिद्धिं देहि रुद्रवचनेन स्वाहा। स्नापयित्वा छागमादौ मधु दत्त्वा ललाटके। उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा भिषगेनमुपालभेत् ॥ ३७० ॥

छागमारणमन्त्र।

ॐ ह्रां ॐ ग्लौं गणपतये स्वाहा ॥३७१॥

अत्र यष्टिमधुभागद्वयमिति शिवदासः।

गाय का घृत १२८ तोला, सींग और नख आदि से रहित बकरे का मांस २॥ सेर, दशमूल मिश्रित २॥ सेर, जल २५ सेर ४८ तोला, शेष ६ सेर ३२ तोला। दूध १२८ तोला, शतावरि का रस १२८ तोला। कल्कार्थ—जीवक,

ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती और मुलेठी मिलाकर ६४ तोला लेकर फिर विधिपूर्वक घृत सिद्ध करे। इस छागलाद्य घृत का पान करने से अर्दित, कर्णशूल, बधिरता, गूँगापन, अस्पष्टभाषण, जड़ता, पङ्गुता, खञ्जता, गृध्रसी, कुब्जत्व, अपतानक और अपतन्त्रक आदि वातरोग नष्ट होते हैं। इस घृत के कल्कद्रव्यों में मुलेठी दो भाग लेनी चाहिए। यह शिवदास का मत है।

इस घृत के बनाने के समय 'ॐकालि' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र पढ़कर बकरे को स्नान कराकर उसके मस्तक पर शहद लगाना चाहिए। पश्चात् उत्तराभिमुख वैद्य ॐ ह्रीं इत्यादि मन्त्र से बकरे को मारे॥ ३६९-३७१॥

बृहच्छागलाद्यघृत।

छागमांसतुलां गृह्य दशमूल्याः पलं शतम्। अश्वगन्धापलशतं वाट्यालकशतं तथा॥ ३७२॥ घृताढकं पचेत्तोयैश्चतुर्भागावशेषितैः। क्षीरं स्नेहसमं दद्यात् शतावर्या रसं तथा॥ ३७३॥ ताम्रपात्रे दृढे चैव शनैर्मृद्वग्निना पचेत्। अस्यौषधस्य कल्कस्य प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम्॥ ३७४॥ जीवन्ती मधुकं द्राक्षाकाकोल्यौ नीलमुत्पलम्। मुस्तं सचन्दनं रास्ना पर्णिनीद्वयशारिवे॥ ३७५॥ मेदे द्वे च तथा कुष्ठं जविकर्षभकौ शटी। दार्वी प्रियङ्गुस्त्रिफला नतं तालीशपद्मकौ॥ ३७६॥ एलापत्रं वरी नागं जातीकुसुमधान्यकम्। मञ्जिष्ठा दाडिमं दारु रेणुकं शैलवालुकम्॥ ३७७॥ विडङ्गं जीरकञ्चैव पेषयित्वा विनिक्षिपेत्। वस्त्रपूते च शीते च शर्करामस्थसंयुतम्॥ ३७८॥ निधापयेत् स्निग्धभाण्डे श्यार्द्रे वा भाजने शुभे। अस्यौषधस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम्॥ ३७९॥ देवदेवं नमस्कृत्य संपूज्य गणनायकम्। पिबेत्पाणितलं तस्य व्याधिं वीक्ष्यानुपानतः॥ ३८०॥ सर्ववातविकारेषु अपस्मारे विशेषतः। पक्षाघाते तथोन्मादे आध्माने कोष्ठनिग्रहे॥ ३८१॥ कर्णरोगे शिरोरोगे बाधिर्ये चापतन्त्रके। भूतोन्मादे च गृध्रस्यां सोद्गारे चाक्षिपातजे॥ ३८२॥ पार्श्वशूले च हृच्छूले नाड्यायामार्दिते तथा। वातकण्टकहृद्रोगमूत्रकृच्छ्रे सपङ्गुके॥ ३८३॥ क्रोष्टुशीर्षे तथा खञ्जे कुब्जे चाध्वनि मिन्मिने। अपतानेऽन्तरायामे रक्तपित्ते तथोर्ध्वगे॥ ३८४॥ आनाहेऽर्शोविकारेषु चातुर्थकज्वरेऽपि च। हनुग्रहेतथा शोषेक्षीणेचैवापबाहुके॥ ३८५॥ दण्डापतानके भग्ने दाहे चाक्षेपके तथा। जीर्णज्वरे विषे कुष्ठे शेफःस्तम्भे मदात्यये॥ ३८६॥ आढ्यवातेऽग्निमान्द्ये च वातरक्तगदेषु च। एकाङ्गरोगिणे चैव तथा सर्वाङ्गरोगिणे॥ ३८७॥ हस्तकम्पे शिरःकम्पे जिह्वास्तम्भे जडे भ्रमे। क्षीणेन्द्रियेनष्टशुक्रेशुक्रनिःसरणेतथा॥ ३८८॥ क्षीणवातास्रपाते च पटले चाक्षिस्पन्दने। एकाङ्गस्पन्दने चैव सर्वाङ्गस्पन्दने तथा ३८९ नगादिपतिते वाते स्त्रीणाममासिहेतुके। आभिचारिकदोषे च धनसन्तापसम्भवे॥ ३९०॥ ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः। शिरोमध्यगता ये च जङ्घापार्श्वास्थिसंस्थिताः॥ ३९१॥ मातृग्रहाभिभूतश्चशिशुर्यश्चनिगृह्यति। प्रत्ती-

गावलर्यासश्च न वर्त्मगमनक्षमः ॥ ३६२ ॥ घृतेनानेन सिध्यन्ति वज्रमुक्तिरिवासुरान्। निहन्ति सकलान् रोगान् घृतं परमदुर्लभम् ॥ ३६३ ॥ रसायनं वह्निबलप्रदञ्च वपुःप्रकर्षं विदधाति रूपम्। दत्ता बलेन्द्रेण समानतेजा दीर्घायुषं पुत्रशतं करोति ॥ ३६४ ॥ स्त्रीणां शतं गच्छति यातिरेकं न याति तृप्तिं सरसः समाङ्गः। अपुत्रिणी पुत्रशतं करोति शतायुषं कामसमं बलिष्ठम् ॥ ३६५ ॥ महद्घृतं नाम तु छागलाद्यं विनिर्मितं वातनिषूदनञ्च। शिवं शुभं रोगभयापहञ्च चकार हारीतमुनिर्विशिष्टः ॥ ३६६ ॥ शृगालबर्हिणोः पाके पुमांसं तत्र दापयेत्। मयूरी जम्बुकी छागी वीर्यहीनाः स्वभावतः ॥ भाषितं काशिराजेन छाग एव नपुंसकः ॥३६७॥

गाय का घृत ६ सेर ३० तोला, क्वाथार्थ नपुंसक छाग-मांस ४ सेर, पाकार्थ जल ४२ सेर ४८ तोला, शेष १२ सेर ६४ तोला। दशमूल मिलित ४ सेर, पाकार्थ जल २५ सेर ४८ तोला, शेष ६ सेर ३२ तोला। असगन्ध ४ सेर, जल २५ सेर ४८ तोला, शेष ६ सेर ३२ तोला। खरेंटी ४ सेर, पाकार्थ जल २५ सेर ४८ तोला, शेष ६ सेर ३२ तोला। दुग्ध ६ सेर ३२ तोला। शतावरि का रस ६ सेर ३२ तोला, इन सब द्रव्यों को मिलाकर कल्कार्थ—जीवन्ती, मुलेठी, दाख, काकोली, क्षीरकाकोली, नीलोत्पल, नागरमोथा, रक्तचन्दन, रास्ना, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, पृश्नपर्णी, शालपर्णी, श्यामालता (कालीसर), अनन्तमूल (सफेद सारिवा), मेदा, महामेदा, कूट, जीवक, ऋषभक, कपूर, दारुहल्दी, प्रियंगु, त्रिफला, तगर, तालीशपत्र, पद्माख, इलायची, तेजपात, शतावरि, नागकेसर, चमेली के फूल, धनिया, मजीठ, अनार के बीज, देवदारु, सँभालू के बीज, एलुबालक (सुगन्ध द्रव्य) वायविडङ्ग और जीरा प्रत्येक दो-दो तोले लेकर दृढ़ कल्क किये हुए ताम्रपात्र में धीमी आँच से इस तैल का यथाविधि पाक करना चाहिए। पाक सिद्ध हो जाने पर घृत को छानकर उसमें ६४ तोला शक्कर मिलाकर चिकने पात्र में रख ले। इस औषध के गुणों को कहते हैं—श्रीगणेश का पूजन करके व्याधि के अनुसार अनुपान के साथ एक तोला की मात्रा में इसका सेवन करना चाहिए। बृहच्छागलाद्य घृत उचित अनुपान से वातव्याधि की सर्वोत्तम महौषध है। इसके सेवन से अपस्मार, उन्माद, पक्षाघात, आध्मान, कोष्ठरोध, कर्णरोग, शिरोरोग, बधिरता, अपतन्त्रक, भूतोन्माद, गृध्रसी, उदररोग, नेत्रपातरोग, पसली का शूल, हृदयशूल, बाह्यायाम, अर्दित, वातकण्टक, मूत्रकृच्छ्र, पङ्गुरोग, क्रोष्टुशीर्ष, खञ्ज, कुब्जापन, अध्वनि (बहुत मार्ग चलने से कुबड़ापन) मिन्मिन भाषण, (मिनमिनाना), अपतानक, अन्तरायाम, ऊर्ध्वंग रक्तपित्त, आनाह, अर्शोविकार, चातुर्थिक ज्वर, हनुग्रह, शोष, क्षीण, अपबाहुक, दण्डापतानक, अस्थिभग्न, दाह, आक्षेपक, जीर्णज्वर, विषदोष, कुष्ठ, लिंगस्तम्भ (शिश्नेन्द्रिय का जकड़ जाना), मदात्यय, आढ्यवात, मन्दाग्नि, वातरक्त, एकांगवात, सर्वांगवात, हस्तकम्प, शिर कम्प, जिह्वास्तम्भ, जड़ता, भ्रम, क्षीणेन्द्रियता, वीर्यक्षय, स्त्रमदोष, स्त्रियों का वातप्रदर, आँख फड़कना, एकाग फड़कना, सब शरीर फड़कना, पर्वतादि से गिर पड़ने से उत्पन्न वातरोग, इच्छा होने पर स्त्री के प्राप्त न होने से उत्पन्न वातरोग, अभिचार दोष से उत्पन्न वातरोग, धननाशोत्पन्न वातरोग तथा नाना-प्रकार के वातज, पित्तज, शिरोमध्यगत तथा पसली जंघा आदि में प्राप्त वातरोग और मातृमदजन्य बच्चों का सूखा रोग, बल मांस की क्षीणता, चलने की शक्ति का अभाव आदि बीमारियों को ऐसे नष्ट करता है जैसे इन्द्र का वज्र दैत्यों का नाश करता है। यह घृत अत्यन्त दुर्लभ है। यह घृत रसायन है। अग्नि, बल, शरीर में

कान्तिवर्द्धक है। इसके प्रयोग से मनुष्य सुदृढ़, सुडौल, तेजस्वी, दीर्घायु तथा सन्तानयुक्त होता है। इसके प्रयोग से सौ स्त्रियों से भी रमण करने से तृप्ति नहीं होती, अर्थात् रतिशक्ति बढ़ती है। अपुत्रियों को इन्द्र के समान दीर्घायु कामदेव के समान रूपवान्, सैकड़ों बलिष्ठ पुत्रों का देनेवाला है। सभी वातरोगों का नाश करनेवाले इस कल्याणकारक बृहच्छागलाद्यघृत को हारीत मुनि ने बनाया था।

पाक के वर्णन में -स्यार और मोर का मांस ही ग्राह्य है। स्यारिन, मोरिन और बकरी का नहीं, क्योंकि ये क्षीणवीर्य होती हैं। काशिराज का मत है कि छागमांस में नपुंसक बकरे का मांस लेना चाहिए ॥ ३७२-३६७ ॥

अश्वगन्धाद्य घृत।

अश्वगन्धाकषाये च कल्के क्षीरं चतुर्गुणम्। घृतं पक्वन्तु वातघ्नं वृष्यं मांसविवर्द्धनम् ॥ ३६८ ॥

गोघृत ४ सेर, असगन्ध का क्वाथ १६ सेर, दूध १६ सेर, असगन्ध का कल्क १ सेर, यह घृत वातनाशक, वीर्य तथा मांसवर्द्धक है। मात्रा आधा तोला ॥ ३६८ ॥ मात्रा १ तो०।

दशमूलाद्य घृत

दशमूलस्य निर्यूहे जीवनीयैः पलोन्मितैः। क्षीरेण च घृतं पक्वं तर्पणं पवनार्तिजित् ॥ क्वाथोऽत्र त्रिगुणः सर्पिः प्रस्थः साध्यः पयः समम् ॥ ३६६ ॥

गौ का घी ४ सेर, दशमूल का क्वाथ १२ सेर, कल्क के लिये—जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलहटी, ऋद्धि, वृद्धि मिलाकर १ सेर। यह घृत तृप्तिकारक तथा वातवेदना को नष्ट करता है ॥ ३६६ ॥ मात्रा १ तो०।

महावात विध्वंसन रस।

रसं गन्धकं नागवङ्गं च लोहं तथा ताम्रजं व्योम निश्चन्द्रवज्ज्र कणाटङ्कणे पोषणं नागरंवै। पृथग्भागमेकं विमर्द्यैकयामम् ततो वत्सनाभं चतुःसार्धभागं ॥ ४०० ॥ दृढं मर्दयेद्भावना व्योषजात्रिः वराचित्रकैर्मार्कवैः कुष्ठतोयैस्तथा कराहाटेः सनिर्गुण्डि तोयै ॥ ४०१ ॥ मनोधात्रिकैरार्द्रके निम्बुनीरैस्त्रिभिर्भावयेद्वात विध्वंसनोऽयम्। समीरे च शूले महाश्लेष्मरोगे। ग्रहण्यां तथा सन्निपाते च मौढ्ये ॥ ४०२ ॥ अपस्मार मान्द्ये सशैत्ये सपित्तोदर प्लीहकुष्ठाऽर्शो स्त्रीगदे च। निषेवेत गुञ्जाद्वयं चास्य तत्र तद्वद्घ्नाऽनुपानैरयं रोगजित्स्यात् ॥ ४०३ ॥

शुद्ध पारा गन्धक नाग बङ्ग लोह ताम्र अभ्रक इनकी भस्म पीपल भुना सुहागा मरिच सोंठ ये सब १-१ भाग १ भाग विष लेकर महीन चूर्ण कर कज्जली में मिलाय, त्रिकुटा, त्रिफला, चित्रक, भंगरा, कूठ, अकलकरा, निर्गुण्डी, अमलोनिया, अदरख, नीबू, इन सबके रसों में तीन बार घोट कर १-२ रत्ती की गोलियां बना लेवे, बलानुसार इनमें से १ से २ गोली तक समय तथा रोगानुसार अनुपान के साथ देने से भयंकर वात, शूल, उत्कट श्लेष्मरोग, ग्रहणी, सन्निपात, मूढ़ता, अपस्मार, मन्दाग्नि शीतपित्त उदररोग प्लीहा कुष्ठ बवासीर स्त्री रोग इन सबको नष्ट करता है। विशेष अनुभूत है ॥ ४००-४०३ ॥

चतुर्मुखरस।

रसगन्धकलोहाभ्रं समं सूताद्धि् प्रहेम च। सर्वं खल्लतले क्षिप्त्वा कन्यास्वरसमर्दितम् ॥ ४०४ ॥ एरण्डपत्रैरावेष्ट्य धान्यराशौ दिनत्रयम्। संस्थाप्य च तदुद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत् ॥४०५॥ एतद्रसायनवरं त्रिफलामधुयोजितम्। तद्यथा-

ग्निबलं खादेद्वलीपलितनाशनम् ॥४०६॥ क्षयमेकादशविधं पाण्डुरोगं प्रमेहकम् । कासं शूलञ्च मन्दाग्निं हिक्काञ्चैवाम्लपित्तकम् ॥ ४०७ ॥ व्रणान् सर्वानाढ्यवातं विसर्पं विद्रधिं तथा । अपस्मारं महोन्मादं सर्वार्शांसि त्वगामयान् ॥ ४०८ ॥ क्रमेण शीलितं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा । पौष्टिकं धन्यमायुष्यं स्त्रीणां प्रसवकारणम्॥ चतुर्मुखेन देवेन कृष्णात्रेयस्यसूचितम् ॥ ४०६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म और अभ्रकभस्म एक-एक तोला, स्वर्ण भस्म ६ माशा। इन द्रव्यों को एकत्र कर घृतकुमारी के रस, में मर्दन करे। फिर एरण्ड के पत्तों में लपेटकर तीन दिन तक धान्यराशि में पड़ा रहने दे। तदनन्तर वहाँ से निकालकर इसका सब रोगों में प्रयोग करना चाहिए। अनुपान त्रिफला का रस और मधु। अग्नि और बल का विचार कर मात्रा की यथोचित व्यवस्था करनी चाहिए। इसका सेवन करने से वलीपलित ग्यारह प्रकार का क्षय, पाण्डु, प्रमेह, कास, शूल, अग्निमांद्य, हिचकी, अम्लपित्त, सब प्रकार के व्रण, आढ्यवात, विसर्प, विद्रधि, अर्श, त्वचा के रोग एवं अपस्मार और उन्माद आदि नाना प्रकार के रोग शान्त होते हैं। यह रसायन पौष्टिक और आयु का देनेवाला है। यह स्त्रियों के प्रसव में सुख देनेवाला है। इसे चतुर्मुख महाराज ने कृष्णात्रेयजी को बतलाया था। मात्रा-१ रत्ती ॥ ४०४-४०६ ॥

चिन्तामणिचतुर्मुख।

विशुद्धं रससिन्दूरं तदर्द्धं लौहमभ्रकम् । तदर्द्धं कनकं खल्ले कन्यारसमर्दितम् ॥ ४१० ॥ एरण्डपत्रैरावेष्ट्य धान्यराशौ निधापयेत् । त्रिदिनान्ते समुद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत् ॥४११॥ एतद्रसायनवरं त्रिफलामधुसंयुतम् । तद्यथाग्निबलं खादेद्वलीपलितनाशनम् ॥४१२ ॥ अपस्मारं महोन्मादं रोगान् वातसमुद्भवान् । क्रमेण शीलितं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा॥४१३॥

शुद्ध रससिन्दूर ४ तोला, लोहभस्म २ तोला, अभ्रकभस्म २ तोला, स्वर्णभस्म १ तोला, इन्हें घृतकुमारी के रस में मर्दन कर एरण्ड के पत्रों में लपेट कर तीन दिन धान्य की राशि में रक्खे। तदनन्तर उसे निकालकर दो रत्ती की मात्रा में प्रयोग करे। अनुपान त्रिफला का स्वरस तथा मधु। यह रसायन है। अग्नि और बल का विचार कर खाने से वली, पलित, अपस्मार, उन्माद तथा अन्य वातज रोगों को यह ऐसे नष्ट करता है जैसे इन्द्र का वज्र वृक्षों को नष्ट कर देता है ॥ ४१०-४१३ ॥

अमरसुन्दरी वटी या विजय भैरवरस।

सूतकं गन्धकं लोहं चित्रकमभ्रकम् विडङ्गं रेणुका मुस्ता द्राविणीपत्रकेशरम् ॥ ४१४ ॥ फलत्रयं त्रिकटुकं शुल्न भस्म तथैन च एतानि समभागानि द्विगुणो दीयते गुडः ॥ ४१५ ॥ कासे श्वासे क्षये गुल्मे प्रमेहे विषमज्वरे ॥४१६॥ सूतायां ग्रहणी मान्द्ये शूले पाण्ड्वमये तथा हस्तपादादि रोगेषु गुटिकेयं प्रशस्यते ॥ ४१७ ॥

शुद्ध पारा गन्धक और विष लोह और अभ्रक भस्म चित्रक मूल विडङ्ग सँभालू के बीज नागरमोथा इलायची पत्रज नागकेशर त्रिफला त्रिकुटा ताम्रभस्म ये समान भाग लेकर महीन चूर्ण कर १२ पहर तक सूखा ही घोट कर दूने गुड़ या खाँड की चाशनी कर ४ रत्ती अथवा १ माशे की गोलियाँ बनाकर रख देवे इसमें से १-१ गोली रोगानुसार अनुपान के साथ देने से श्वास कास, क्षय, गुल्म, प्रमेह विषम ज्वर, सूतिका रोग,

ग्रहणी, मन्दाग्नि शूल, पाण्डु और हस्तपादादि रोग इन सबका विनाश करता है ॥ ४१४-४१७ ॥

एकांग वात ।

शुद्धगन्धं मृतं सूतं कान्तं वङ्गञ्च नागकम् ताम्रं चाभ्रं मृतं तीक्ष्णं नागरं मरिचं कणाम् ॥ ४१८ ॥ सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्य भावयेत्त्रिः पृथक्-पृथक् वराव्योषक निर्गुण्डीवह्निशार्द्रकजैर्द्रवैः ॥ ४१९ ॥ शिग्रु द्रवेणापि ततो धात्र्या द्रवेण च । विषमुष्ट्याऽर्क हाटञ्च आर्द्रकस्य रसैस्तथा ॥ ४२० ॥ रसश्चैकाङ्ग वीरोऽसो सुसिद्धो रसराड् भवेत् पक्षाघातं चार्दितञ्च धनुर्वातं तथैव च ॥ ४२१ ॥ अर्धाङ्ग गृध्रसी वार्य विश्वाचीमपबाहुकम् सर्वान्वाताामयान्हन्ति सत्यं सत्यं न संशयः ॥४२२॥

शुद्ध गन्धक और पारा कान्तलोह बङ्ग नाग पीपल ये सब बराबर लेकर सबको मिला घोटे फिर त्रिफला, त्रिकटु, निर्गुण्डी अदरख सहजन कूठ, आँवला, जहर कुचिला आक की जड़ की छाल अकलकरा और अदरख इनके रस से कमसे कम तीन २ बार घोट ३-१ रत्ती की गोलियाँ बना ले। वात को नाश करने वाले अनुपान के साथ देने से लकवा पक्षाघात धनुर्वात अर्द्धांगवात गृध्रसी विश्वाची अपबाहुक आदि सब वात रोगों का नाश करती है। विशेष अनुभूत ॥ ४१८--४२२ ॥

तालकेश्वर रस।

एकभागो रसस्य स्याच्छुद्धतालैकभागिकः। अर्धां स्युर्विजयायायाश्च गुडिका गुडतश्चरेत ॥ ४२२ ॥ एकैकां भक्षयेत्मातश्छायायामुपवेशयेत् । तालकेश्वरनामायं योगोऽस्पर्शविनाशनः ॥ ४२३ ॥

रससिन्दूर १ भाग, शुद्ध हरताल १ भाग, भाँग ८ भाग, गुड़ २० भाग। इन्हें इकट्ठा अच्छी तरह मिलाकर १ माशे के परिमाण में सेवन करावें। प्रातः औषध के सेवन के पश्चात् रोगी को छाया में बैठे रहने का आदेश देना चाहिए। वात के दुष्ट होने से पैदा हुआ स्पर्श ज्ञान का अभाव इसके सेवन से नष्ट होता है ॥ ४२२-४२३ ॥

चिन्तामणि रस।

कर्षैकं रससिन्दूरं तत्समं मृतमभ्रकम् । तदर्धं मृतलोहञ्च स्वर्णं शाणं क्षिपेद् बुधः ॥ ४२४ ॥ कन्यारसेन सम्मर्द्य गुञ्जामानां वटीं चरेत् । अनुपानादिकं दद्याद् बुद्ध्या दोषं बलाबलम् ॥४२५॥ हन्ति श्लेष्मान्वितं वातं केवलं पित्तसंयुतम् । हृल्लासमरुचिं दाहं वान्ति भ्रान्ति शिरोग्रहम् ॥ ४२६ ॥ प्रमेहं कर्णनादञ्च ज्वरगद्गदमूकताम् । बाधिर्यं गर्भिणीरोगमश्मरीसूतिकामयम् ॥ ४२७ ॥ प्रदरं सोमरोगञ्च यक्ष्माणं ज्वरमेव च । बलवर्णाग्निदः सम्यक् कान्तिपुष्टिप्रसाधकः ॥ चिन्तामणिरसश्चायं चिन्तामणिरिवापरः ॥ ४२८ ॥

रससिन्दूर १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, लोहभस्म ½ तो०, स्वर्णभस्म ३ माशे, इन्हें घीकार के रस से घोटकर १ रत्ती की गोली बनाकर दोष और बलाबल को देखकर वैसे ही अनुपान के साथ सेवन करावें। इससे कफवात-जन्य, वातजन्य और वात-पित्त-जन्य रोग नष्ट होते हैं। इसके सेवन से हृल्लास, अरुचि, जलन, वमन, भ्रम, शिरोवेदना, प्रमेह, कर्णनाद, ज्वर, मूकता, बधिरता, गर्भिणी रोग, अश्मरी, सूतिका रोग, प्रदर, सोमरोग तथा यक्ष्मा आदि रोग नष्ट होते हैं। यह रस बल, वर्ण तथा अग्नि को बढ़ानेवाला है ॥ ४२४-४२८ ॥

वातगजांकुश।

मृतं सूतं मृतं लोहं ताप्यं गन्धकतालकम् । पथ्या शृङ्गी विषं व्योपमग्नि-

मन्थञ्च टङ्कणम् ॥ ४२६ ॥ तुल्यं खल्ले दिनं मर्द्यं मुण्डीनिर्गुण्डिकाद्रवैः। द्विगुञ्जां वटिकां खादेत् सर्ववातप्रशान्तये ॥४३०॥ कणाचूर्णयुतं चैव मञ्जिष्ठाक्वाथं पिबेदनु। साध्यासाध्यं निहन्त्याशु रसो वातगजाङ्कुशः ॥ ४३१ ॥ सप्ताहाद्गृध्रसीं हन्ति दारुणां सान्निपातिकम्। क्रोष्टुशीर्षक वातञ्चाप्यपबाहुकसंज्ञकम् ॥ ४३२ ॥ मन्यास्तम्भमुरुस्तम्भं वातरोगं विनाशयेत्। पक्षाघातादिरोगेषु कथितः परमोत्तमः ४३३

पारा, लोहभस्म, सोनामाखीभस्म, गन्धक, हरताल, हड़, काकड़ासिंगी, बच्छनाग, त्रिकुटा, अरणी, सुहागा, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर गोरखमुण्डी तथा सम्भालू के रस से अलग-अलग एक दिन घोटें और २ रत्ती की गोली बनायें। अनुपान पीपली का चूर्ण तथा मजीठ का क्वाथ। इसके सेवन से गृध्रसी, क्रोष्टु-शीर्ष, अपबाहुक, मन्यास्तम्भ, ऊरुस्तम्भ, तथा पक्षाघात आदि वातरोग नष्ट होते हैं ॥ ४२६–४३३ ॥ मात्रा २ रत्ती ॥

बृहद्वातगजाङ्कुश।

सूताभ्रतीक्ष्णकान्तानि ताम्रतालकगन्धकम्। स्वर्णं शुण्ठी बला धान्यं कट्फलञ्चाभया विषम् ॥ ४३४ ॥ पथ्या शृङ्गी पिप्पली च मरिचं टङ्कणं तथा। तुल्यं खल्ले दिनं मर्द्यं मुण्डीनिर्गुण्डिजैर्द्रवैः ॥ ४३५ ॥ द्विगुञ्जां वटिकां खादेत्सर्ववातप्रशान्तये। साध्यासाध्यं निहन्त्याशु बृहद्वातगजांकुशः ॥ ४३६ ॥

पारा, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, कान्तलोह-भस्म, तांबे की भस्म, हरताल, गन्धक, सोने की भस्म, सोंठ, बला धनिया, कट्फल, हड़, बच्छनाग, हड़, काकड़ासिंगी, पीपल, काली-मिर्च, सुहागा, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर गोरखमुण्डी तथा सम्भालू के रस से अलग-अलग एक दिन घोटकर २ रत्ती की गोली बनाकर वात रोग में सेवन कराना चाहिए ॥ ४३४--४३६ ॥ मात्रा २ रत्ती।

महावातगजाङ्कुश।

मृताभ्रतीक्ष्णताम्रञ्च सूततालकगन्धकम्। भार्गी शुण्ठी बला धान्यं कट्फलञ्चाभया विषम् ॥ ४३७ ॥ सम्पिष्य चपलाद्रावैर्द्विगुञ्जां भक्षयेद्वटीम्। वातश्लेष्महरो ह्येष गुरुवातगजांकुशः ॥४३८॥

अभ्रक भस्म, लोहभस्म, ताम्रभस्म, पारा, हरताल, गन्धक, भारंगी, सोंठ, बला, धनिया, कट्फल, हड़, बच्छनाग, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर पीपल के क्वाथ से घोटकर २ रत्ती की गोली बनावे। यह रस वात तथा कफ को नष्ट करता है ॥ ४३७--४३८ ॥ मात्रा २ रत्ती ॥

लक्ष्मीविलास रस।

पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य तदर्धौ रसगन्धकौ। बला नागबला भीरु विदारीकन्दमेव च ॥ ४३९ ॥ कृष्णधुस्तूरनिचुलं गोक्षुरं इक्षुरकम्। बीजं शक्राशनस्यापि जातीकोषफले तथा ॥ ४४० ॥ कर्पूरञ्चैव कर्षांशं श्लक्ष्णचूर्णं पृथक्-पृथक्। गृहीत्वा चाष्टमांशेन स्वर्णं पर्णरसेन च ॥ ४४१ ॥ गुञ्जाचतुष्टयमितां वटिकां कारयेद्भिषक्। रसो लक्ष्मीविलासोऽयं पूर्ववद् गुणकारकः ॥ ४४२ ॥

अभ्रकभस्म ४ तो०, पारा २ तो०, गन्धक २ तो०, बला, नागबला (गङ्गेरन), शतावरी, विदारीकन्द, काले धतूरे के बीज, समुद्रफल, गोखरू के बीज, विधाराबीज, भांग के बीज, जावित्री, जायफल, कपूर, हरएक १ तो० स्वर्णभस्म २ माशे इन्हें इकट्ठा मिलाकर पान के रस से भावना दें और ४ रत्ती की गोली

बनावें। चतुर्मुख रस के समान ही इस रस के गुण हैं ॥ ४३६--४४२ ॥ मात्रा २-३ रत्ती ॥

योगेन्द्ररस।

विशुद्धं रससिन्दूरं तदर्द्धं शुद्धहाटकम्। तत्समं कान्तलौहञ्च तत्र समञ्चाभ्रमेव च ॥ ४४३ ॥ विशुद्धं मौक्तिकञ्चैव वङ्गञ्च तत्समं मतम्। कुमारिकारसैर्भाव्यं धान्यराशौ दिनत्रयम् ॥ ४४४ ॥ ततो रक्तिद्वयमितां वटीं कुर्याद्विचक्षणः। योगवाही रसो ह्येष सर्वरोगकुलान्तकः ॥ ४४५ ॥ वातपित्तभवान् रोगान् प्रमेहान् बहुमूत्रताम्। मूत्राघातमपस्मारं भगन्दरगुदामयम् ॥ ४४६ ॥ उन्मादं मूर्च्छां यक्ष्माणं पक्षाघातं हतेन्द्रियम्। शूलाम्लपित्तकं हन्ति भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ४४७ ॥ त्रिफलारसयोगेन शुभया सितयापि वा। भक्षयित्वा भवेद्रोगी कामरूपी सुदर्शनः ॥ ४४८ ॥ रात्रौ सेव्यं गवां क्षीरं कृशानाञ्च विशेषतः। योगेन्द्राख्यो रसो नाम्ना कृष्णात्रेयविनिर्मितः ॥ ४४९ ॥

रससिन्दूर १ तोला, स्वर्ण, लोह तथा अभ्रक भस्म, मुक्ता और वङ्ग प्रत्येक आधा-आधा तोला ले। इन सबको घृतकुमारी के रस में मर्दन कर धान्य की राशि में तीन दिन रख दें। पश्चात् दो-दो रत्ती की गोली बना ले। यह रस योगवाही है, सब रोगों को नष्ट करता है। त्रिफला के स्वरस, वंशलोचन या मिसरी के साथ इसका सेवन करे। विशेषतः रात में गोदुग्ध पान करना चाहिए। यह योगवाही रस है। यह सभी रोगों का नाशक है। विशेष कर वात पित्तजन्य रोग, प्रमेह, बहुमूत्रता, मूत्राघात, अपस्मार, भगन्दर, बवासीर, उन्माद, मूर्च्छा, यक्ष्मा, पक्षाघात, इन्द्रियों की शक्तिहीनता, शूल और अम्लपित्त को ऐसे नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट करते हैं। इसके सेवन से कामदेव के समान रूप हो जाता है। यह पुरुषों को विशेषकर लाभदायक है। इसका नाम योगेन्द्र रस है। इसको कृष्णात्रेयजी ने बनाया था ॥ मात्रा-२ रत्ती ॥४४३-४४९॥

रसराजरस

पलैकं मूर्च्छितं सूतं व्योमसत्त्वञ्च कार्षिकम्। सुवर्णं तत्समं ज्ञेयं कन्यारसविमर्दितम् ॥ ४५० ॥ लौहं रूप्यं मृतं वङ्गं वाजिगन्धां लवङ्गकम्। जातीकोषं तथा क्षीरकाकोलीञ्च तदर्द्धकम् ॥ ४५१ ॥ काकमाचीरसेनैव सर्वं सम्मर्द्दयेद् दृढम्। गुञ्जाद्वयप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ क्षीरञ्च शर्करातोयमनुपानं प्रकल्पयेत् ४५२ पक्षाघातेऽर्दिते वाते हनुस्तम्भेऽपतन्त्रके। धनुस्तम्भेऽपताने च बाधिर्ये मस्तकभ्रमे ॥ ४५३ ॥ सर्ववातविकारेषु रसराजः प्रकीर्त्तितः। बल्यो वृष्यश्च भोग्यश्च वाजीकरण उत्तमः ॥ ४५४

रससिन्दूर ४ तोले, अभ्रकभस्म १ तोला, स्वर्णभस्म १ तोला। इनको घृतकुमारी के रस में घोटकर उसमें लोहभस्म, रौप्यभस्म, वङ्गभस्म, असगन्ध, लौंग जावित्री तथा क्षीरकाकोली प्रत्येक आधा-आधा तोला मिलाकर काकमाची (मकोय) के रस में घोटकर दो-दो रत्ती की गोली बनावे। अनुपान दुग्ध या शक्कर का शर्बत। पक्षाघात, अर्दित, वात, हनुस्तम्भ, अपतन्त्रक, धनुस्तम्भ, अपतानक, बाधिर्य और मस्तकभ्रम आदि समस्त वातरोगों, में इस रसराज का प्रयोग कहा गया है। यह श्रेष्ठ बलकारक, वीर्यवर्द्धक, भोग्य और वाजीकरण है ॥ मात्रा २ रत्ती ॥४५०-४५४॥

बृहद्वातचिन्तामणि।

भागत्रयं स्वर्णभस्म द्विभागं रौप्यमभ्रकम्। लौहात् पञ्च प्रवालञ्च मौक्तिकं त्रयसम्मितम् ॥४५५॥ भस्मसूतं सप्तकञ्च

कन्यारसविमर्दितम् । वल्लमात्रा वटी कार्या भिषग्भिः परियत्नतः ॥ ४५६ ॥ यथा व्याध्यनुपानेन नाशयेद्रोगसंकुलम् । वातरोगं पित्तकृतं निहन्ति नात्र चिन्तनम् ॥ ४५७ ॥ वृद्धोऽपि तरुणस्पर्द्धी कन्दर्पसमविक्रमः दृष्टः सिद्धफलश्चायं वातचिन्तामणिस्त्विह ॥ ४५८ ॥

स्वर्णभस्म ३ भाग, चाँदी की भस्म २ भाग, अभ्रकभस्म २ भाग, लोहभस्म ५ भाग, प्रवालभस्म ३ भाग, मुक्ता ३ भाग और रससिन्दूर ७ भाग। इनको घृतकुमारी के रस में घोटकर दो-दो रत्ती की गोली बनावे। व्याधिविशेष में अनुपानविशेष के साथ प्रयोग करना चाहिए। यह रस वातजन्य तथा पित्तजन्य विविध रोगों को निःसन्देह नष्ट करता है। इस रस का सेवन करने से वृद्ध पुरुष भी तरुण पुरुष के समान पराक्रमयुक्त हो जाता है और कामदेव के समान पराक्रमी होता है। यह वातचिन्तामणि रस अनुभूत है मात्रा—२ रत्ती ॥ ४५५-४५८ ॥

बलारिष्ट।

बलाश्वगन्धयोर्ग्राह्यं पृथक् पलशतं शुभम्। चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा द्रोणमेवावशेषयेत् ॥४५९॥ शीते तस्मिन् रसे पूते क्षिपेद् गुडतुलात्रयम्। धातकीं षोडशपलां पयस्यां द्विपलांशिकाम् ॥४६०॥ पञ्चाङ्गुलपलद्वन्द्वं रास्नामेलां प्रसारणीम्। देवपुष्पमुशीरञ्च श्वदंष्ट्राञ्च पलांशिकाम् ४६१॥ मासं भाण्डे स्थितस्त्वेष बलारिष्टो महाफलः। हन्त्युग्रान् वातजान् रोगान् बलपुष्ट्यग्निवर्द्धनः ॥ ४६२ ॥

खरेटी ५ सेर, असगन्ध ५ सेर पाकार्थ जल १०२ सेर ३२ तोला, शेष २५ सेर ४८ तोला। गुड़ १२ सेर, धाय के फूल ६४ तोला, क्षीरकाकोली ८ तोला, एरण्डमूल ८ तोला, रास्ना, इलायची, गन्धप्रसारिणी, लौंग, खस और गोखरू प्रत्येक चार-चार तोला। इन सब वस्तुओं को एक महीना पात्र में बन्द रक्खे। यह बलारिष्ट बहुत लाभदायक है: उग्र वात-रोगों का नाशक है तथा बलवर्धक, पौष्टिक और अग्निवर्धक है मात्रा—२ तोला ॥ ४५९-४६२ ॥

वातव्याधि में पथ्य।

अभ्यङ्गो मर्दनं बस्तिः स्नेहः स्वेदोऽवगाहनम्। संवाहनं संशमनं प्राक्प्रवातप्रवर्जनम् ॥ ४६३ ॥ कुलत्थमाषगोधूमा रक्ताभाः शालयो हिताः। पटोलं शिग्रुवार्ताकं दाडिमञ्च परूपकम् ॥ ४६४ ॥ मत्स्यण्डिका घृतं दुग्धं किलाटं दधिकूर्चिका। बदरं लशुनं द्राक्षा ताम्बूलं लवणं तथा ॥ ४६५ ॥ चटकः कुक्कुटो बर्हिस्तित्तिरश्चेति जाङ्गलाः। शिलीन्द्रः पर्वतो नक्रो गर्गरः खुडिशो झषः ॥४६६॥ यथाश्रयं यथावस्थं यथाचरणमेव च। वातव्याधौ समुत्पन्ने पथ्यमेतन्नृणां भवेत् ॥ ४६७ ॥

अभ्यङ्ग (तेल मलना), मर्दन (मीड़ना) बस्ति, स्नेह (घृत आदि), स्वेद, वातहर क्वाथ में अवगाहन (स्नान), संवाहन (दबवाना), संशमन औषध, सीधी आती हुई वायु तथा आँधी का परित्याग, कुलथी, उड़द, गेहूँ लाल शालि चावल, परवल, सहिजना, बैंगन, अनार, फालसा, मत्स्यण्डिका (दानेदार खाँड अथवा राब), घी, दूध, किलाट (फटे हुए दूध का घन भाग), दही, कूर्चिका (दाब के साथ दूध को पकाने से जो बनता है), बेर, लहसुन, मुनक्का, पान, नमक, चिड़िया, मुर्गा, मोर, तीतर, जङ्गली पशु, पक्षी, शिलीन्द्र (मत्स्यभेद), पर्वत (मत्स्यभेद), नक्र, गर्गर, खुडिश, झष इत्यादि मत्स्य, इनका वातव्याधि के आश्रय के अनुसार दोष अथवा रोगी की अवस्था के अनुसार अथवा जैसे पूर्व प्रयोग

कराते हैं, ऐसा वातव्याधि के उत्पन्न होने पर ये पथ्य होते हैं ॥ ४६३-४६७ ॥

वातव्याधि में अपथ्य।

चिन्ता प्रजागरणवेगविधारणानि छर्दिः श्रमोऽनशनता चणकाः कलायाः। श्यामाकचूर्ण कुरुविन्दनिवारकंगु-मुद्गास्तडागतटिनीसलिलं करीरम् ॥४६८॥ क्षौद्रं कषायकटुतिक्तरसा व्यवायो हस्त्यश्वयानमपि चङ्क्रमणं च खट्वा। आध्मानिनोऽर्दितवतोऽपि पुनर्विशेषात् स्नानं प्रदुष्टसलिलाद् द्विजघर्षणं च ॥ निःशेषतन्त्रपरिकीर्तित एष वर्गो नृणां समीरणगदेषु मुदं नधत्ते ॥ ४६९ ॥

इति श्रीभैषज्यरत्नावल्यां वायुरोगा-धिकारः समाप्तः।

चिन्ता, रात में जागना, वेगों को रोकना, वमन, थकावट, उपवास, चने, मटर, समा-धान्य का आटा, चींरा, नीवार, धान्य, कगुनी, मूँग, तालाब एवं नदी का जल, करीर, शहद, कषाय, कटु एवं तिक्त रस, मैथुन, हाथी, घोड़े की सवारी, अधिक चलना, सोये रहना, ये वात-व्याधि में अपथ्य हैं। आध्मान तथा अर्दित रोगी के लिये विशेषतः दुष्ट जल से स्नान एवं दातुन वर्जित हैं। यह सम्पूर्ण तन्त्रों में बताया गया वर्ग वातरोग में हानिकारक है ॥ ४६८-४६९ ॥

इति श्रीपण्डितसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां वायुरोगाधिकारः समाप्तः।

आमवाताधिकारः।

आमवातरोग में क्रियाक्रम।

लङ्घनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनि च। विरेचनं स्नेहपानं वस्तयश्चाम-मारुते ॥ १ ॥

आमवात रोग में लंघन, स्वेदन, कड़वे द्रव्य, अग्निप्रदीपन द्रव्य, चरपरे द्रव्य, विरेचन, घृत आदि स्नेहपान तथा वस्तिकर्म करना चाहिए। १ ॥

आमवात में पथ्य।

आमवाते पञ्चकोलसिद्धपानान्नमिष्यते। पटोलं गोक्षुरञ्चैव वरुणं कारवेल्लकम् ॥२॥ यवकोद्रवशाल्यादि मपुराणं सतिक्तकम्। लावादीनां तथा मांसं तक्रेण मस्तुना हितम् ॥ ३ ॥

आमवात में पीपर, पिपरामूल, चव्य, चीता, सोंठ से सिद्ध जल तथा अन्न लाभदायक होता है। पटोलपत्र, गोखरू, बरना, करेला, कड़ुये द्रव्य सहित पुराने जौ, कोदों तथा शालि एवं तक्र तथा दही के तोड़ के साथ लावा आदि पक्षियों का मांस आमवात में पथ्य है ॥ २-३ ॥

शङ्करस्वेद।

कार्पासास्थिकुलत्थिका तिलयवैरण्ड-मूलातसी वर्षाभूशणबीजकाञ्जिकयुतैरेकी-कृतैर्वा पृथक्। स्वेदः स्यादिति कूर्परोदर-शिरः स्फिक्पाणिपादाङ्गुलीगुल्फस्कन्ध-कटीरुजा विजयते सामाः समीरानुगः ॥४॥

एतानि समुदितानि एकैकशो वा संकुट्य काञ्जिकेन संसिच्य वस्त्रेण पोट्टली-द्वयं बद्ध्वा दीप्ताग्निचुल्ल्युपरिस्थितका-ञ्जिकस्थाल्युपरिलिप्तसच्छिद्रशरावस्थं वा-ष्पतप्तमेकैकमानीय वेदनास्थाने स्वेदयेत्।

बिनौले, कुलथी, तिल, जौ, एरण्डमूल, अलसी, पुनर्नवा और सन के बीज, इन समस्त द्रव्यों को अथवा किसी एक को दोषानुसार काँजी में भिगोकर दो पोटली बनावे। पश्चात् एक हाँडी में भरकर आग पर रक्खे और उसका मुख छिद्रयुक्त ढकने से बन्द कर दे। [illegible]

पोटलियों को रख दे। जब भाप से पोटलियाँ गरम हो जायें तब उनसे क्रमशः रुग्ण अंग पर स्वेदन करे। इस प्रकार स्वेदन करने से कूर्पर, उदर शिर, स्फिक्, हाथ, पाँव, अँगुली, गुल्फ स्कन्ध तथा कमर की आमवातजनित वेदना शान्त होती है॥ ४॥

रूक्षस्वेदो विधातव्यो वालुकापुटकै-स्तथा॥ ५॥

आमवात में बालू की पोटली द्वारा रूक्ष स्वेदन करने से भी रोगी को लाभ होता है॥ ५॥

हिंस्रादिलेप।

गोजलपिष्टं हिंस्राकेबुकशिग्रूद्भवं मूलम्। माकुयुतं परिलेपात् सामसमीरणः कुत्र॥ ६॥

एषां समभागं गोमूत्रेण पिष्ट्वा वेदनास्थाने प्रलेपः।

छोटी कटेरी, केउआँ, सहिंजने की जड़, वल्मीकमृत्तिका (बामी की मिट्टी), इन्हें समभाग लेकर गोमूत्र से पीसकर वेदना के स्थान में लेप करने से आमवातजनित पीड़ा शान्त होती है॥ ६॥

शतपुष्पादि लेप।

शतपुष्पा वचा शिग्रुश्वदंष्ट्रावरुणात्वचः। सहदेवी च वर्षाभूः शटी च संप्रसारिणी॥ ७॥ सतर्कारीफलं हिङ्गु शुक्तकाञ्जिकपेषितम्। आमवातहरं श्रेष्ठं सुखोष्णं लेपनं हितम्॥ ८॥

सौंफ, बच, सहिंजने की छाल, गोखरू, बरना की छाल, सरेटी पुनर्नवा, कचूर, गन्धप्रसारिणी, जयन्तीफली और हींग इनको समभाग लेकर सिर्का या काँजी में पीसकर थोड़ा गरम करके सोथ के स्थान में गुनगुना लेप करना चाहिए। यह लेप आमवातनाशक है॥ ७-८॥

रास्नादिदशमूल।

दशमूल्यमृतैरण्डरास्नानागरदारुभिः। काथोरुबूकतैलेन सामं हन्त्यनिलं गुरुम्॥ ९॥

दशमूल, गिलोय, एरण्डमूल, रास्ना, सोंठ और देवदारु ये सब मिलाकर दो तोले। पाकार्थ जल आध सेर, शेष आधपाव। एरण्ड के तैल के साथ इस क्वाथ का पान करने से आमवात शान्त होता है॥ ९॥

रास्नासप्तक।

रास्नामृतारग्वधदेवदारुत्रिकण्टकैरण्डपुनर्नवानाम्। क्वाथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं जङ्घोरुपार्श्वत्रिकपृष्ठशूली॥ १०॥

रास्ना, गिलोय अमिलतास का गूदा, देवदारु, गोखरू, एरण्डमूल और पुनर्नवा ये सब मिलाकर दो तोले। जल आधा सेर, शेष आध पाव। इस क्वाथ में सोंठ का चूर्ण मिलाकर पान करे तो जंघा ऊरु, पसली, त्रिक और पीठ का शूल आराम होता है॥ १०॥

रास्नापञ्चक।

रास्ना गुडूचीमेरण्डं देवदारु महौषधम्। पिबेत्सार्वाङ्गिके वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे॥ ११॥

रास्नापञ्चके रास्नासप्तके च उष्णे भेदार्थमेरण्डतैलं भक्षिपन्ति वृद्धाः।

रास्ना, गिलोय एरण्डमूल देवदारु और सोंठ का क्वाथ सन्धिगत, अस्थिगत, मज्जाश्रित और सार्वाङ्गिक आमवात व्याधि में हितकर है॥ ११॥

रास्नादिपञ्चक या रास्नादिसप्तक के उष्ण क्वाथ में विरेचनार्थ एरण्डतैल मिलाना चाहिए, ऐसा वृद्ध वैद्य कहते हैं।

दशमूलीकषायेण पिबेद् वा नागराम्भसा। कुक्षिवस्तिकटीशूले तैलमेरण्डसम्भवम्॥ १२॥

दशमूल या सोंठ के उष्ण क्वाथ के साथ एरण्डतैल के पीने से कुक्षिशूल, बस्तिशूल तथा कटिशूल शान्त होते हैं॥ १२॥

आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिणः। एक एव निहन्तासावेरण्डस्नेहकेशरी १३

शरीररूपी वन में विचरते हुए आमवातरूपी हाथी को मारनेवाला केवल एरण्डतैलरूपी सिंह ही है। अर्थात् एरण्डतैल आमवात में अत्यन्त लाभदायक है। मात्रा ½ तोले से २½ तोले तक है॥१३॥

एरण्डतैलयुक्तां हरीतकीं भक्षयेन्नरो विधिवत्। आमानिलार्त्तियुक्तो गृध्रसिवृद्ध्यर्दितो नित्यम्॥ १४॥

आमवात, गृध्रसी तथा वृद्धिरोग से पीड़ित मनुष्य को एरण्डतैल के साथ हड़ का सेवन करना चाहिए॥ १४॥

भृष्टच्छायात् कटुतैलेऽन्नैः सहारग्वधपल्लवम्। किंवाम्लकाञ्जिके पक्त्वा खादेदामानिलापहम्॥ १५॥

अमलतास के पत्तों को सरसों के तेल में भूनकर भोजन के साथ खाने से अथवा पत्तों को खट्टी कांजी में पकाकर सेवन करने से आमवात नष्ट होता है। मात्रा एक तोला से दो तोला तक॥ १५॥

माषं नागरचूर्णस्य काञ्जिकेन पिबेत् सदा। आमवातप्रशमनं कफवातहरं परम्॥ १६॥

१ माशा सोंठ का चूर्ण कांजी के साथ पीने से आमवात और कफवात शान्त होते हैं॥ १६॥

त्रिवृत्सैन्धवशुण्ठीनामारनालेन चूर्णितम्। पीत्वा विरिच्यते जन्तुरामवातहरं परम्॥ १७॥

निसोथ, सेंधानमक और सोंठ इनके चूर्ण को कांजी के साथ पीने से विरेचन होकर आमवात शान्त हो जाता है॥ १७॥

सप्ताहं त्रिवृतश्चूर्णं त्रिवृत्क्वाथेन भावितम्। काञ्जिकेन तु तत्पीतं रेचयेदामवातिनम्॥ १८॥

आमवात के रोगी को विरेचन देने के लिए निसोथ के चूर्ण को सात दिन तक निसोथ के क्वाथ से भावित कर कांजी के साथ सेवन कराना चाहिए॥ १८॥ मात्रा ४ माशा॥

शट्यादि क्वाथ।

शटी शुण्ठ्यभया चोग्रा देवाह्वातिविषामृता। कषायमामवातस्य पाचनं रूक्षभोजनम्॥ १९॥

कचूर, सोंठ, हड़, वच देवदारु, अतीस, गिलोय मिलकर २ तोला, क्वाथ के लिये जल ३२ तोला शेष ४ तोला। यह क्वाथ आमवात में पाचन है। पथ्य—रूक्ष द्रव्यों का भोजन॥ १९॥

रास्नादि क्वाथ।

रास्नैरण्डशतावरीसहचरा दुःस्पर्शवासामृता देवाह्वातिविषाभयाघनशटीशुंठीकषायः कृतः। पीतः सोरुवुतैल एव विहितः सामे सशूलेऽनिले जङ्घोरुत्रिकपार्श्वपृष्ठजठरक्रोडेषु वातार्त्तिजित्॥२०॥

रास्ना, एरण्डमूल, शतावरी, पियावासा, धमासा, अडूसा, गलोय, देवदारु, अतीस, हड़, मोथा, कचूर, सोंठ मिलाकर २ तोला, पाक के लिये जल ३२ तोला, शेष ४ तोला इस क्वाथ को अरण्डी के तैल के साथ पीने से शूलयुक्त आमवात तथा जंघा, उरु, त्रिकसन्धि, पार्श्व पृष्ठ, उदर एवं कुक्षिगत वातवेदना शान्त होती है॥ २०॥

महारास्नादि पाचन।

रास्ना वातारिमूलञ्च वासकञ्च दुरालभम्। शटी दारु बला मुस्तं नागराति-

विषाभया ॥ २१ ॥ श्वदंष्ट्रा व्याधिघातश्च मिसिधान्यपुनर्नवाः । अश्वगन्धा मृता कृष्णा वृद्धदारः शतावरी ॥ २२ ॥ वचा सहचरश्चैव चविका बृहतीद्वयम् । समभागान्वितैरेतैः रास्नाद्विगुणभागिकैः २३ कषायं पाययेत्सिद्धमष्टभागावशोषितम् । शुण्ठीचूर्णसमायुक्तमाभाद्येन युतं तथा २४ अलम्बुषादिसंयुक्तमजामोदादिसंयुतम् । यथादोषं यथाव्याधिः प्रक्षेपं कारयेद्भिषक् ॥२५॥ सर्वेषु वातरोगेषु सन्धिमज्जगतेषु च । आनाहेषु च सर्वेषु सर्वगात्रानुकम्पिने ॥ २६ ॥ कुब्जके वामने चैव पक्षाघाते तथार्दिते । जानुजङ्घास्थिपीडासु गृध्रस्यां च हनुग्रहे ॥२७॥ सर्वेषां पाचनानान्तु श्रेष्ठमेतद्धि पाचनम् । महारास्नादिकं नाम प्रजापतिविनिर्मितम् ॥ २८ ॥

रायसी की जड़, अडूसा, धमासा, कचूर, देवदारु, खरेटी, मोथा, सोंठ, अतीस, हड़, गोखरू, अमिलतास, सौंफ, धनिया, साँठी, असगन्ध, गिलोय, पीपल, विधारे की जड़, शतावर, वच, पीले फूल का पियाबासा, चव्य, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी हरएक १ भाग, रास्ना २ भाग। इसमें १६ गुना जल डालकर पकावे, जब आठवाँ भाग बाकी रहे तब उतार कर छान ले और रोगी को पिलावे तथा व्याधि के अनुसार इस क्वाथ में शुण्ठीचूर्ण, आभाद्यचूर्ण, अलम्बुषादि चूर्ण एवं अजमोदादि चूर्ण डालकर सेवन कराना चाहिए। इसके सेवन से सन्धिगत एवं मज्जागत वातव्याधि, आनाह, सर्वाङ्गकम्प, कुब्जरोग, पक्षाघात, अर्दित तथा जानुजङ्घास्थिगत पीड़ा, गृध्रसी, हनुस्तम्भ आदि रोग नष्ट होते हैं। सब पाचनों में प्रजापतिनिर्मित यह महारास्नादि पाचन सबसे उत्तम है ॥ २१–२८ ॥

शुण्ठीगोक्षुरकक्वाथः प्रातःप्रातर्निषेवितः। सामे वाते कटीशूले पाचनो रुग्विनाशनः॥ यवक्षारसमायुक्तो मूत्रकृच्छ्रविनाशनः २९॥ प्रचाराच्छुण्ठीभागमेकं गोक्षुरकभागत्रयं गृहीत्वा कर्षार्द्धस्य क्वाथः विरेचनार्थं पुनर्यवक्षारप्रक्षेपेणाप्ययं पेयः।

सोंठ १ भाग, गोखरू ३ भाग, इनका क्वाथ कर प्रातःकाल सेवन करने से आमवात तथा कटिशूल नष्ट होते हैं। यह क्वाथ पाचन तथा वेदना नाशक है। इस क्वाथ में जवाखार डालकर पीने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है। मलविरेचन तथा मूत्रविरेचन के लिये जवाखार डालना चाहिए ॥ २९ ॥

शटीविश्वौषधीकल्कं वर्षाभूक्वाथसंयुतम् । सप्तरात्रं पिबेज्जन्तुरामवातविपाचनम् ॥ ३० ॥

पुनर्नवा के क्वाथ के साथ कचूर तथा सोंठ के १ माशे चूर्ण को सात दिन तक आमवात में सेवन करने से आमरस का परिपाक होता है ॥ ३० ॥

आमवाते कणायुक्तं दशमूली जलं पिबेत् ३१

आमवात में दशमूल के क्वाथ में पीपल डाल कर रोगी को पिलाना चाहिए ॥ ३१ ॥

रसोनादि क्वाथ।

रसोनविश्वनिर्गुण्डीक्वाथमामार्दितः पिबेत्। नातः परतरं किञ्चिदामवातस्य भेषजम् ३२

लहसुन, सोंठ तथा सँभालू मिलाकर आधा तोला, जल ३२ तोला, शेष ८ तोला, यह क्वाथ आमवात में अत्यन्त हितकर है ॥ ३२ ॥

चित्रकादि चूर्ण और देवदार्वादि चूर्ण।

चित्रकं कटुका पाठा कलिङ्गातिविषामृताः। देवदारु वचा मुस्तनागरातिविषाभयाः॥ ३३॥ पिबेदुष्णाम्बुना नित्यमामवातस्य भेषजम्॥

(१) चित्रक, कुटकी, पाठा, इन्द्रजौ, अतीस,

गिलोय, या (२) देवदारु, वच, मोथा, सोंठ, अतीस, हड़, इन दोनों योगों में से किसी एक चूर्ण को (रोगी की अवस्था के अनुसार) गरम जल से प्रतिदिन सेवन कराना चाहिए। मात्रा ३ माशे से ६ माशे तक ॥ ३३ ॥

अमृतादि चूर्ण।

अमृतानागरगोक्षुरमुण्डितिकावरुणकैः कृतं चूर्णम् । मस्त्वारनालपीतमामानिलनाशनं ख्यातम् ॥ ३४ ॥

गिलोय, सोंठ, गोखरू, गोरखमुण्डी, बरना इनके चूर्ण को दही के पानी अथवा काँजी के साथ सेवन कराने से आमवात अच्छा होता है। मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक ॥ ३४ ॥

शतपुष्पाद्य चूर्ण।

शतपुष्पाविडङ्गानि सैन्धवं मरिचं समम् । चूर्णमुष्णाम्बुना पीतमग्निसन्दीपनं परम् ३५

सोया, वायविडङ्ग, सेंधा नमक, कालीमिर्च इनके चूर्ण को गरम जल के साथ पीने से अग्नि प्रदीप्त होकर आमवात नष्ट होता है। मात्रा—३ माशा ॥ ३५ ॥

हिङ्ग्वाद्य चूर्ण।

हिंगु चव्यं बिडं शुण्ठी कृष्णाजाजी सपौष्करम् । भागोत्तरमिदं चूर्णं पीतं वातामजिद् भवेत् ॥ ३६ ॥

हींग १ भाग, चव्य २ भाग, बिड नमक ३ भाग, सोंठ ४ भाग, पीपल ५ भाग, काला जीरा ६ भाग, पोहकरमूल ७ भाग, इस चूर्ण को गरम जल के साथ पीने से आमवात अच्छा होता है। मात्रा—३ माशा ॥ ३६ ॥

वैश्वानरचूर्ण।

माणिमन्थस्य भागौ द्वौ यमान्यास्तद्वदेव हि। भागास्त्रयोऽजमोदाया नागराद्भागपञ्चकम् ॥ ३७ ॥ दश द्वौ च हरीतक्याः श्लक्ष्णचूर्णीकृताः शुभाः । मस्त्वारनाम्लोलतक्र सर्पिषोष्णोदकेन वा ॥ ३८ ॥ पीतं जयत्यामवातं गुल्मं हृद्बस्तिजान् गदान्। प्लीहानं ग्रन्थिशूलादीनर्शांस्यानाहमेव च। ॥ ३९ ॥ विबन्धं वातजान् रोगांस्तथैव हस्तपादजान्। वातानुलोमनमिदं चूर्णं वैश्वानरं स्मृतम् ॥ ४० ॥

अजमोदायमानी एवं सर्वत्रान्तःपरिमार्जके बहिस्सम्मार्जने पुनरजमोदैव। उक्तं हि—“अन्तः सम्मार्जने प्रायोऽजमोदा यमानिका। बहिःसम्मार्जने ह्येषा चाजमोदाजमोदिका ॥”)

सेंधवनमक २ भाग, अजवाइन २ भाग, अजमोद ३ भाग (अजवाइन के ही पाँच भाग से), सोंठ ५ भाग और बड़ी हड़ १२ भाग, इन सबके चूर्ण को दही के पानी, काँजी, तक्र, घृत और उष्ण जल इनमें से किसी एक के साथ सेवन करावे। मात्रा चूर्ण का ३ माशा। इस चूर्ण के सेवन से आमवात गुल्म, हृद्रोग, बस्तिरोग, प्लीहा, ग्रन्थि, शूल, अर्श, आनाह, मलबद्धता, वातजन्यरोग तथा हाथ और पाँव के रोग नष्ट होते हैं। यह वैश्वानर चूर्ण वातानुलोमन है ॥ ३७-४० ॥

पुनर्नवादि चूर्ण।

पुनर्नवामृता शुण्ठी शताह्वा वृद्धदारकम् । शटी मुण्डितिकाचूर्णमारनालेन पाययेत् ॥ ४१ ॥ आमाशयोत्थवातघ्नं चूर्णं पेयं सुखाम्बुना। आमवातं निहन्त्याशु गृध्रसीमुद्धतामपि ॥ ४२ ॥

सफेद साँठी, गिलोय, सोंठ, सोया, विधारा, कचूर तथा गोरखमुण्डी इनके चूर्ण को बराबर मात्रा में मिलाकर यथादोष काँजी अथवा गरम जल के साथ रोगी को सेवन करावें। मात्रा ३ माशे। इसके सेवन से आमाशय में पैदा हुआ वात, आमवात एवं गृध्रसी आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ४१-४२ ॥

पथ्याद्य चूर्ण।

पथ्याविश्वयमानीभिस्तुल्याभिश्चूर्णितं पिबेत्। तक्रेणोष्णोदकेनापि काञ्जिकेनाथवा पुनः ॥४३॥ आमवातं निहन्त्याशु शोथं मन्दाग्नितामपि। पीनसं कासहृद्रोगं स्वरभेदमरोचकम् ॥ ४४ ॥

बड़ी हड़, सोंठ, अजवाइन, इनके चूर्ण को बराबर मात्रा में मिलाकर छांछ, गरम जल अथवा काँजी से सेवन करावें। मात्रा ३ माशे। इस चूर्ण के प्रयोग से आमवात, सूजन, मन्दाग्नि, पीनस, खाँसी, हृद्रोग, स्वरभेद तथा अरुचि आदि रोग अच्छे होते हैं ॥ ४३-४४ ॥

आभाद्य चूर्ण।

आभारास्ना गुडूची च शतमूली महौषधम्। शतपुष्पाश्वगन्धा च हवुषा वृद्धदारकः ॥ ४५ ॥ यमानी चाजमोदा च समभागानि कारयेत्। सूक्ष्मचूर्णमिदं कृत्वा द्विमाषकमितं पिबेत् ॥ ४६ ॥ मद्यैर्मांसरसैर्यूषैस्तक्रैरुष्णोदकेन वा। सर्पिषा वापि लेह्यन्तु दधिमण्डेन वा पुनः ॥ ४७ ॥ अस्थिसन्धिगतं वायु स्नायुमज्जाश्रितश्च यत्। कटिग्रहं गृध्रसीञ्च मन्यास्तम्भं हनुग्रहम् ॥४८॥ ये च कोष्ठगता रोगास्तांश्च सर्वान् प्रणाशयेत्। आभाद्योनामचूर्णोऽयं सर्वव्याधिनिबर्हणः ॥ ४९ ॥

बबूल की छाल, रास्ना, गिलोय, शतावर, सोंठ, सोया, असगन्ध, हाऊबेर, विधारा, अजवाइन तथा अजमोदा, हरएक के चूर्ण को बराबर मात्रा में मिलाकर रोगी को यथायोग्य मात्रा में सेवन करावें। मात्रा--२ माशे। अनुपान शराब, मांसरस का जूस, यूष, गरम जल, घृत अथवा दधिमण्ड (मन्तु)। इसके सेवन से अस्थिगत, सन्धिगत, स्नायुगत तथा मज्जा में आश्रित वात, कमर में दर्द, गृध्रसी, मन्यास्तम्भ, हनुग्रह तथा अन्य जो भी कोष्ठ में होनेवाले वातज रोग हैं, वे अच्छे होते हैं। यह आभाद्य चूर्ण सम्पूर्ण रोगों का नाश करनेवाला है। इस चूर्ण में इसके अंतःपरिमार्जक होने के कारण अजमोदा का अर्थ अजवाइन ही करना चाहिए। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना। इस साधारण नियम के अनुसार इस चूर्ण में अजवाइन के दो भाग लेने चाहिए ॥ ४५-४९ ॥

अलम्बुषाद्य चूर्ण।

अलम्बुषां गोक्षुरकं गुडूचीं वृद्धदारकम्। पिप्पलीं त्रिवृतां मुस्तं वरुणां सुपुनर्नवम् ॥ ५० ॥ त्रिफलां नागरञ्चैव श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्। मस्त्वारनालतक्रेण पयोमांसरसेन वा ॥५१॥ आमवातं निहन्त्याशु श्वयथुं सन्धिसंस्थितम्। प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत् ॥५२॥ अग्निश्च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिं बलं तथा। वातरोगान् जयत्येष सन्धिमज्जगतानपि ॥ ५३ ॥

गोरखमुण्डी, गोखरू, गिलोय, विधारे की जड़, पीपल, निसोत, मोथा, वरना की जड़ की छाल, सफेद साँठी, हड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, इनका महीन चूर्ण कर बराबर मात्रा में मिलाकर सेवन करावे। मात्रा—२ माशे। अनुपान—दही का पानी, काँजी, छाँछ, दूध, अथवा मांसरस। इसके सेवन से आमवात, सन्धिस्थित सूजन, प्लीहा, गुल्म, उदर रोग, अफरा, बवासीर तथा सन्धिगत एवं मज्जागत वातरोग अच्छे होते हैं। यह चूर्ण अग्नि को तीव्र करता है। तथा तेज और बल को बढ़ाता है ॥ ५०-५३ ॥

अपरअलम्बुषाद्य चूर्ण।

अलम्बुषागोक्षुरकत्रिफलानागरामृताः। यथोत्तर भागवृद्ध्याश्यामाचूर्णं तु तत्समम् ॥ ५४ ॥ पिबेन्मस्तुसुरातक्रकाञ्जिकोष्णोदकेन वा। पीतं जयत्यामवातं

सशोफं वातशोणितम् ॥ ५५ ॥ त्रिकजानूरुसन्धिस्थं ज्वरारोचकनाशनम् । अलम्बुषाद्यमिदं चूर्णं रोगानीकविनाशनम् ॥ ५६ ॥ हरीतक्यक्षधात्रीभिः प्रसिद्धा त्रिफलाक्रमात् । प्रत्येकं तेन चामुष्माद्भागवृद्धिर्यथोत्तरम् ॥ ५७ ॥

अत्र श्यामा वृद्धदारक इति चक्रदत्तटीकायां शिवदासः

गोरखमुण्डी १ भाग, गोखरू २ भाग, हड़ ३ भाग, बहेड़ा ४ भाग, आँवला ५ भाग, सोंठ ६ भाग, गिलोय ७ भाग, विधारे की जड़ २८ भाग, इनके महीन चूर्ण को मिलाकर दही के पानी, शराब, छाछ, कांजी अथवा गरम जल आदि के अनुपान से यथायोग्य मात्रा में सेवन करने से आमवात, ज्वर, अरुचि और त्रिकसन्धि, जानु तथा ऊरु, सन्धिस्थ, शोथयुक्त वातरक्त अच्छा होता है। मात्रा-३ माशा ॥ ५४-५७ ॥

अजमोदादिवटक ।

अजमोदामरिचपिप्पलीविडङ्गसुरदारुचित्रकशताह्वाः । सैन्धवपिप्पलीमूलं भागा नवकस्य पलिकाः स्युः ॥ ५८ ॥ शुण्ठी दशपलिका स्यात्पलानि तावन्ति वृद्धदारस्य । पथ्या पञ्च पलानि च सर्वाण्येकत्र सञ्चूर्ण्य ॥ ५९ ॥ समगुडवटकानदतश्चूर्णं वाप्युष्णवारिणा पिबतः । नश्यन्त्यामानिलजाः सर्वे रोगाः सुकष्टाश्च ॥ ६० ॥ विसूचिका प्रतितूणी हृद्रोगा गृध्रसी चोग्रा । कटिबस्तिगुदस्फुटनञ्चैवास्थिजङ्घयोस्तीव्रम् ॥ ६१ ॥ श्वयथुस्तथाङ्गसन्धिषु ये चान्येऽप्यामवातसम्भूताः । सर्वे प्रयान्ति नाशं तम इव सूर्यांशुविध्वस्तम् ॥ ६२ ॥

अजमोदादिवटके सर्वचूर्णसमो... किञ्चिदुदकं दत्त्वा वह्नौ गुडं द्रवीकृत्य तत्र चूर्णं प्रक्षिप्य वटकाः कार्याः चूर्णं वेति गुडं विहाय केवलमुष्णोदकादिभिः पेयमिति भानुः ।

अजमोद, कालीमिर्च, पीपरि, वायविडङ्ग, देवदारु, चीता सौंफ, सैन्धवनमक और पिपरामूल चार-चार तोले, सोंठ आध सेर, विधारा के बीज आध सेर, हड़ पाव भर, इन सबका चूर्ण एकत्र करे। पश्चात् सम्पूर्ण चूर्ण के समान गुड़ मिलाकर वटक बनावे। वटक की मात्रा ३ से ६ माशे की है। अनुपान उष्ण जल। यह वटक आमवात, आमवातजन्य अन्यान्य रोग, विसूचिका, प्रतितूनी, हृद्रोग, उग्र गृध्रसी, कटिशूल, बस्तिशूल, गुदा, अस्थि एवं जङ्घा आदि की तीव्र वेदना तथा सन्धिशोथ और आमवात से उत्पन्न अनेक रोगों को ऐसे नष्ट करता है जैसे भगवान् भास्कर की किरणें अन्धकार को नष्ट करती हैं। जो लोग वटक न बनाना चाहें वे बिना गुड़ के चूर्ण को ही उष्ण जल के साथ सेवन कर सकते हैं। चूर्ण की मात्रा ३ माशे। वटक बनाने की विधि यह है कि प्रथम गुड़ में थोड़ा जल डालकर आग पर रक्खे। जब उसकी वटक बनाने योग्य चाशनी हो जाय तो इसमें चूर्ण मिलाकर करछी से अच्छी प्रकार मिलाकर वटक बना ले ॥ ५८--६२ ॥

आमगजसिंहमोदक ।

शुण्ठीचूर्णस्य प्रत्येकं यमान्याश्च पलाष्टकम् । जीरकस्य पलद्वन्द्वं धन्याकस्य पलद्वयम् ॥ ६३ ॥ पलैकं शतपुष्पाया लवङ्गस्य पलं तथा । टङ्कणस्य पलं ग्राह्यं मरिचस्य पलं भवेत् ॥ ६४ ॥ त्रिवृतात्रिफलाक्षारपिप्पलीनां पलं पलम् । एतेषां सर्वचूर्णानां खण्डं दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ ६५ ॥ घृतेन गुडकीकृत्य मोदको मधुना कृतः । [illegible]

त्वचः ॥ ६६ ॥ चतुर्भिरधिवासोऽस्य तोलैकं खादयेद् बुधः। शरीरं वीक्ष्य मात्रास्य युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम् ॥ ६७ ॥ आमवातप्रशमनः कटीग्रहविनाशनः। शूलघ्नोरक्तपित्तघ्नश्चाम्लपित्तविनाशनः ६८ श्रीमता चन्द्रनाथेन गुरुणा भाषितं मयि। श्रीमद्गहननाथोऽयं कृतवान् मोदकं शुभम् ॥ ६९ ॥ गर्जत्यामगजेन्द्रोऽयमजीर्णवनमागतः। यथासिंहो वने हन्ति दन्तिनं बलिनं शुभम् ॥ तथामराजकरिणं निहन्त्येव न संशयः ॥ ७० ॥

शट्यादिनां चतुर्णां प्रत्येकमेककर्षं सुगममन्यत्।

सोंठ का चूर्ण ६४ तोले, अजवाइन ३२ तोले, जीरा ८ तोले, धनिया ८ तोले, सौंफ ४ तोले, लौंग ४ तोले, सुहागा ४ तोले, कालीमिर्च ४ तोले तथा निसोत, हड़, बहेड़ा, आँवला, जवाखार और पीपरि चार-चार तोले और सम्पूर्ण चूर्ण से चौगुनी खाँड़। घृत और मधु के साथ इनके मोदक (लड्डू) बनाकर छोटी इलायची, तेजपात तथा दालचीनी इनका एक-एक तोले चूर्ण लेकर उन मोदकों पर छिड़ककर इनको सुगन्धित कर दे। मात्रा ६ माशे से १ तोला पर्यन्त। रोगी के बलाबल के अनुसार मात्रा में न्यूनाधिक्य भी हो सकता है। पहले छोटी मात्रा से आरम्भ कर क्रमशः बढ़ाना अच्छा है। यह मोदक आमवात, कटिग्रह, शूल, रक्तपित्त तथा अम्लपित्त को नष्ट करता है। अजीर्णवन में आया हुआ आमवातरूपी गजराज तब तक गर्जता है जब तक यह कटकारूपी सिंह नहीं आता। जैसे सिंह वन में बलवान् गजराज को मार डालता है वैसे ही यह मोदकरूपी सिंह आमवातरूपी गजराज को निःसंदेह मार डालता है। यह श्रीगहननाथ का बनाया हुआ मोदक श्रीमान् चन्द्रनाथ ने कहा है ॥ ६३--७० ॥

रसोनपिण्ड।

रसोनस्य पलशतं तिलस्य कुडवं तथा। हिङ्गु त्रिकटुकं क्षारो द्वौ पञ्च लवणानि च ॥ ७१ ॥ शतपुष्पा तथा कुष्ठं पिप्पलीमूलचित्रकौ। अजमोदा यमानी च धन्याकश्चापि बुद्धिमान ॥ ७२ ॥ प्रत्येकं तु पलश्चैषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्। घृतभाण्डे दृढे चैतत् स्थापयेद्दिनषोडशम् ॥ ७३ ॥ प्रक्षिप्य तैलमानीञ्च प्रस्थार्द्धं काञ्जिकस्य च। खादेत्कर्षप्रमाणं तु तोयं मद्यं पिबेदनु ॥ ७४ ॥ आमवाते तथा वाते सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रये। अपस्मारेऽनले मन्दे कासश्वासगरेषु च। उन्मादे वातभग्ने च शूले जन्तोः प्रशस्यते ॥ ७५ ॥

छिलाहुआ लहसुन ५ सेर, निस्तुष (छिलकारहित) तिल पावभर, हींग त्रिकटु, यवक्षार, सज्जीखार, पञ्चलवण, सौंफ, कूट, पिपरामूल, चीता, अजमोद, अजवाइन और धनिया चार-चार तोले। इन सब ओषधियों के चूर्ण को किसी घृत के पात्र में रखकर उसमें आध सेर तिलतैल और आध सेर काँजी मिलाकर १६ दिन तक धान्य की राशि में रक्खे, पश्चात् एक एक तोला इसका सेवन करे और ऊपर से जल या मद्य पिये। इसके द्वारा आमवात, सर्वांगवात, एकांगवात, अपस्मार, अग्निमान्द्य, कास, श्वास, विष, उन्माद, वातभग्न, और शूल आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ७१--७५ ॥

महारसोनपिण्ड।

रसोनपलशतं क्षुण्णं तदर्द्धं निस्तुषात्तिलात्। पात्रं गव्यस्य तक्रस्य पिष्ट्वा चैतानि संक्षिपेत् ॥ ७६ ॥ त्रिकटु धान्यकं चव्यं चित्रकं गजपिप्पली। अजमोदा त्वगेला च ग्रन्थिकञ्च पलांशिकम् ॥ ७७ ॥ शर्करायाः पलान्यष्टौ पलांशं मरिचस्य

च । कुष्ठाजाज्योश्च चत्वारि मधुनः कुडवं तथा ॥ ७८ ॥ आर्द्रकस्य च चत्वारि सर्पिषोष्टौ पलानि च । तिलतैलस्य तावन्ति शुक्तकस्यापि विंशतिः ॥ ७९ ॥ सिद्धार्थकस्य चत्वारि राजिकायास्तथैव च । कर्षमात्रं दातव्यं हिङ्गुं लवणपञ्चकम् ॥ ८० ॥ एकीकृत्य दृढे कुम्भे धान्यराशौ निधापयेत् । द्वादशाहात् समुद्धृत्य मानः खादे यथाबलम् ॥ ८१ ॥ सुरां सौवीरकं मीधुं चीरश्चानुपिवेन्नरः । जीर्णे यथेप्सितं भोज्यं दधि पिष्टान्नवर्जितम् ॥ ८२ ॥ एकमासप्रयोगेण सर्वान् व्याधीन व्यपोहति । अशीतिं वातजान् रोगान् चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ ८३ ॥ विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव प्रमेहानपि विंशतिम् । अर्शांसि षट्प्रकाराणि गुल्मं पञ्चविधं तथा ॥ ८४ ॥ अष्टादशविधं कुष्ठमेकादशविधं क्षयम् । श्वयथुं योनिशूलञ्च सर्वमाशु विनाशयेत् ॥ ८५ ॥ क्षतसन्ध्यस्थिभग्नानां सन्धानकरणः परः । दृष्टेर्बलकरो हृद्य आयुष्यो बलवर्द्धनः ॥ महारसोनपिण्डोऽयमामवातकुलान्तकः ॥ ८६

सर्वमेकीकृत्य चण्डातपे शोषयित्वा स्निग्धभाण्डे संस्थाप्य धान्यराशौ द्वादशदिनानि स्थाप्यं तत उद्धृत्य आकृष्य खाद्यं माषं ८ उक्तमनुपानम् ।

छिला हुआ लहसुन ५ सेर, छिलकारहित तिल २॥ सेर, गाय के दही का तक्र ६ सेर ३२ तोले, त्रिकटु, धनिया, चव्य, चित्रक, गजपीपरि, अजमोद, दालचीनी, इलायची और पिपरामूल चार-चार तोले, कौंनी ३२ तोले, मिर्च ४ तोले, कूट १६ तोले, जीरा १६ तोले, मधु ३२ तोले, अदरख १६ तोले, घृत १६ तोले, तिल-तैल १६ तोले, काँजी ८० तोले, श्वेत सरसों १६ तोले, राई १६ तोले, हींग १ तोला, पाँचों नमक एक-एक तोला । इन सब ओषधियों में जो-जो कूटने-पीसने के योग्य हैं उनको कूट-पीस ले । पश्चात् पूर्वोक्त सब ओषधियों को एक चिकने पात्र (घड़े) में रखकर तीव्र धूप में कुछ समय तक रक्खे । पश्चात् पात्र का मुख बन्द कर धान्यराशि में १२ दिन तक रक्खे । फिर निकालकर प्रातःकाल रोगी का बलाबल देखकर ८ माशे तक की मात्रा दे और ऊपर से सुरा, सौवीर, सीधु या दुग्ध पीवे । औषधि के जीर्ण होने पर दधि और पीठी के बने पदार्थों के अतिरिक्त अन्यान्य वस्तुओं को यथेष्ट खावे । एक मासपर्यन्त सेवन करने से यह सब प्रकार के रोगों को नष्ट करता है । ८० प्रकार के वात रोग, ४० प्रकार के पैत्तिक रोग, २० प्रकार के श्लैष्मिक रोग २० प्रकार के प्रमेह, ६ प्रकार के अर्श (बवासीर), ५ प्रकार के गुल्म, १८ प्रकार के कुष्ठ, ११ प्रकार के क्षय, शोथ तथा योनिशूल आदि सब रोगों को शीघ्र नष्ट करता है । संधिभंग तथा अस्थिभंग को जोड़नेवाला, हृदय को हितकारी, आयुष्कार तथा बलवर्धक और दृष्टिवर्धक है । यह महारसोनपिण्ड आमवात को समूल नाश करता है ॥ ७६—८६ ॥

वातारिगुग्गुलु ।

वातारितैलसंयुक्तं गन्धकं पुरसंयुतम् । फलत्रययुतं कृत्वा पिष्टयित्वा चिरं रुजी ॥ ८७ ॥ भक्षयेत् प्रत्यहं प्रातरुष्णतोयानुपानतः । दिने दिने प्रयोक्तव्य मासमेकं निरन्तरम् ॥ ८८ ॥ सामवातं कटीशूलं गृध्रसीं खञ्जपङ्गुताम् । वातरक्तं सशोथञ्च महार्हं क्रोष्टुशीर्षकम् ॥ शमयेद्बहुशो दृष्टमपि वैद्यविवर्जितम् ॥ ८९ ॥

एरण्डतैल, गन्धक, गुग्गुलु और त्रिफला एकत्र पीसकर प्रतिदिन प्रातःकाल एक मास तक उष्ण जल के साथ सेवन करे । यह 'वातारि गुग्गुलु' आमवात, कटिशूल, गृध्रसी, लंगड़ा,

पंगुता, शोथयुक्त वातरक्त तथा दाहयुक्त क्रोष्टुशीर्ष आदि रोगों को नष्ट करता है ॥ ८७-८९ ॥

योगराजगुग्गुलु ।

चित्रकंपिप्पलीमूलंयमानी कारवी तथा। विडङ्गान्यजमोदा च जीरकं सुरदारु च ॥ ९० ॥ चव्यैला सैन्धवं कुष्ठं रास्ना गोक्षुरधान्यकम्। त्रिफलामुस्तकं व्योषं त्वगुशीरं यवाग्रजम् ॥ ९१ ॥ तालीशपत्रं पत्रञ्च श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रं तु गुग्गुलुम् ॥ ९२ ॥ सम्मर्द्य सर्पिषा गाढं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् । अतो मात्रां प्रयुञ्जीत यथेष्टाहारवानपि ॥ ९३ ॥ योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः । आमवाताढ्यवातादीन् क्रिमिदुष्टव्रणानि च ॥ ९४ ॥ प्लीहागुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत् । अग्निञ्च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिं बलं तथा॥ वातरोगान् जयत्येष सन्धिमज्जगतानपि ॥ ९५ ॥

आदौ सिद्धगुग्गुलुं घृतेन पिष्टयित्वा पश्चात् समेन सर्वचूर्णेन सह घृतेन पिष्टयित्वा स्निग्धभाण्डे स्थापयेत्ततोऽष्टौ माषकानुष्णोदकेन भक्षयेत् ।

चीते की जड़, पिपरामूल, अजवाइन, कलौंजी, वायविडङ्ग, अजमोद, जीरा, देवदारु, चव्य, इलायची, सेंधव, कूट, रास्ना, गोखरू, धनिया, त्रिफला, नागरमोथा, त्रिकटु, दालचीनी, खस, जवाखार, तालीशपत्र और तेजपात सम भाग इन सब ओषधियों को चूर्णित कर ले। चूर्ण जितना हो उतना ही गुग्गुलु लेकर पहिले घृत में मर्दित करे पश्चात् उस चूर्ण में मिलाकर फिर घृत के साथ घोटकर स्निग्धपात्र में रख दे। मात्रा ८ मासे तक उष्ण जल से खावे। यथेष्ट आहारवाला रोगी उचित मात्रा में इसका सेवन करे। यह योग अमृत के समान है। इसके सेवन से आमवात, ऊरुस्तम्भ, क्रिमि दुष्टव्रण, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, आनाह, अर्श एवं सन्धि तथा मज्जागत वातरोग नष्ट होते हैं। यह योगराज गुग्गुलु अग्नि का दीपक तथा तेज और बल का बढ़ानेवाला है ॥ ९०-,९५ ॥

वृहद्योगराजगुग्गुलु ।

त्रिकटु त्रिफला पाठा शताह्वा रजनीद्वयम् । अजमोदा वचा हिङ्गु हवुषा हस्तिपिप्पली ॥ ९६ ॥ उपकुञ्चिका शटी धान्यं विडं सौवर्चलं तथा । सैन्धवं पिप्पलीमूलं त्वगेला पत्रकेशरम् ॥ ९७ ॥ फणिज्झकश्च लौहश्च सर्जकश्च त्रिकण्टकम् । रास्ना चातिविषा शुण्ठी यवक्षाराम्लवेतसम् ॥ ९८ ॥ चित्रकं पुष्करं चव्यं वृक्षाम्लं दाडिमं त्रुटुः । अश्वगन्धा त्रिवृद्दन्ती बदरं देवदारु च ॥ ९९ ॥ हरिद्रा कटुका मूर्वा त्रायमाणा दुरालभा । विडङ्गं मृतवङ्गश्च यमानी वासकाभ्रकम् ॥ १०० ॥ एतानि समभागानिश्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । शोधितं गुग्गुलश्चैव सर्वचूर्णसमं नयेत् ॥ १०१ ॥ घृतेन पिष्टयित्वा च स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् । रसनातेन ये भग्नाः कटिभग्नाश्च ये जनाः ॥ १०२ ॥ एकाङ्गं शुष्यते येषां कुब्जं वापि क्षतोत्तरम् । पादौ विस्तारितौ येषां येषां च गृध्रसीग्रहः ॥ १०३ ॥ सन्धिवातं क्रोष्टुशीर्षं वातं सर्वशरीरगम् । अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ १०४ ॥ विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव हन्त्ययस्यं न संशयः । अयं वृहद्योगराजगुग्गुलुः सर्वरातहा ॥ १०५ ॥

त्रिकटु, त्रिफला, पाढ़, सौंफ, हल्दी, दारुहल्दी, अजमोद, वच, हींग, हाऊबेर, गजपीपरि, कलौंजी, कचूर धनिया, विडनमक, कालानमक, सेंधानमक, पिपरामूल, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेसर, मरुआ, लोहभस्म, राल, गोखरू, रास्ना, अतीस, सोंठ, जवाखार, अमलवेत, चीता, पुहकरमूल, चव्य, विषांबिल (चूक), अनारदाना, एरण्डमूल, असगन्ध, निसोथ, दन्ती का मूल, बेर के बीज की मींगी, देवदारु, हल्दी, कुटकी, मूर्वा, त्रायमाणा, जवासा, वायविडङ्ग, वङ्गभस्म, अजवाइन, अडूसे की छाल और अभ्रकभस्म प्रत्येक समभाग लेकर महीन चूर्ण करे। इस सम्पूर्ण चूर्ण के बराबर विशुद्ध गुग्गुलु ले घृत योग से कूट करके चूर्ण में उत्तम रीति से मिलाकर घृतपात्र में रख ले। मात्रा ४ रत्ती से २ माशे तक। इस बृहद्योगराजगुग्गुलु के सेवन से रसधात्वजन्य भग्न, कटिभग्न, एकाङ्गलोप, वातकुष्ठ, पैरों का फैल जाना, गृध्रसी, सन्धिवात, क्रोष्टुशीर्ष, सर्वाङ्गवात तथा सम्पूर्ण वातज, पित्तज एवं श्लैष्मिक रोग नष्ट होते हैं ॥ ६६-१०५ ॥

सिंहनादगुग्गुलु ।

पिष्टितां गुग्गुलोर्मार्णीं कटुतैलपलाष्टकम्। प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थौ सार्द्धद्रोणे जले पचेत् ॥ १०६ ॥ पादशेषञ्च पूतञ्च पुनरेतद्विमिश्रयेत् । त्रिकटुत्रिफलामुस्तविडङ्गामरकानिकम् ॥ १०७ ॥ गुडूच्यग्नित्रिवृद्दन्ती चवी शूरणमाणकम् । पारदं गन्धकञ्चैव प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ॥ १०८ ॥ सहस्रं कानकफलं सिद्धे सञ्चूर्ण्य निक्षिपेत् । ततो माषद्वयं जग्ध्वा पिबेत्तप्तजलादिकम् ॥ १०९ ॥ अग्निञ्च कुरुते दीप्तं वडवानलसन्निभम् । धातुवृद्धिं वयोवृद्धिं बलं सुविपुलं तथा ॥ ११० ॥ आमवातं शिरोवातं सन्धिवातं सुदारुणम् । जानुजङ्घाश्रितं वातं सकटिग्रहमेरुं च ॥ १११ ॥ अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च भग्नञ्च तिमिरोदरे । अम्लपित्तं तथा कुष्ठं प्रमेहं गुदनिर्गमम् ॥ ११२ ॥ कासं पञ्चविधं श्वासं क्षयञ्च विषमज्वरम् प्लीहानं श्लीपदं गुल्मं पाण्डुरोगं सकामलाम् ॥ ११३ ॥ शोथान्त्रवृद्धिशूलानि गुदजानि विनाशयेत् । मेदःकफामसञ्जातं व्याधिवारणदर्पहा ॥ सिंहनाद इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ ११४ ॥

कटुतैलेन गुग्गुलुं पिष्टयित्वा क्वाथजलेन सह पक्त्वा आसन्नपाके प्रक्षेपार्थं त्रिकट्वादीनां चूर्णतो ४ तो० शोधित जयपालबीज गोटा १००० रसगन्धकौ कज्जलीकृत्य शीतीभूते दातव्यौ इति वृद्धाः ।

हड़, आँवला और बहेड़ा प्रत्येक १२८ तोले, शिथिल पोटली में बँधा हुआ गूगुल ३२ तोले, पाकार्थ जल ३८ सेर ३२ तोले, शेष ६ सेर ४४ तोले। पोटली में बँधे हुए गूगुल को अलग कर ३२ तोले कटु तैल के साथ मर्दित कर क्वाथ में डालकर पकावे। जब ठीक पाक हो जाय तब त्रिकटु, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडङ्ग, देवदारु, गिलोय, चीता, निशोथ, दन्ती, चव्य, सूरन (जमीकन्द), मानकन्द, प्रत्येक दो-दो तोले, पारद[1] और गन्धक की कज्जली ४ तोले, शुद्ध जमालगोटा के १००० दाने, इन ओषधियों को भलीभाँति चूर्णित कर डाले और अच्छी तरह मिला दे। मात्रा–एक माशे से दो माशे तक। अनुपान–उष्ण जल या उष्ण दुग्ध। यह 'सिंहनादगुग्गुल' वड़वानल के समान अग्नि को दीप्त करता है तथा धातु, आयु और बल को बढ़ाता है। आमवात, शिरोगतवात, दारुण

1 पारद और गन्धक की कज्जली औषध के ठंडे होने पर मिलावे।

सन्धिवात, जानु एवं जानुश्रितवात, कटिग्रह (कमर की पीडा), अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, भग्न, तिमिर, उदररोग, अम्लपित्त, कुष्ठ, प्रमेह, गुदभ्रंश, कास, श्वास, क्षय, विषमज्वर, प्लीहा, श्लीपद, गुल्म, पाण्डु, कामला, शोथ, अन्त्रवृद्धि, शूल और अर्श आदि रोगों को नष्ट करता है। यह गुग्गुलु व्याधिरूपी हाथी के मद को चूर करता है, अतः 'सिंहनाद गुग्गुलु' नाम से ख्यात हुआ है। यह योग अमृत-तुल्य लाभदायक है॥ १०६--११४ ॥

अपर सिंहनाद गुग्गुलु

पलत्रयं कषायस्य त्रिफलायाः सुचूर्णितम्। सौगन्धिकपलञ्चैकं कौशिकस्य पलन्तथा॥ ११५॥ कुडवं चित्रतैलस्य सर्वमादाय यत्नतः। पाचयेत् पाकविद्वैद्यः पात्रे लौहमये दृढे॥ ११६॥ हन्ति वातं तथा पित्तं श्लेष्माणं खञ्जपंगुताम्। श्वासं सुदुर्जयं हन्ति कासं पञ्चविधन्तथा॥ ११७॥ कुष्ठानि वातरक्तानि गुल्मशूलोदराणि च। आमवातं जयेदेतदपि वैद्यविवर्जितम्॥ ११८॥ एतदभ्यासयोगेन जरापलितनाशनम्। सर्पिस्तैलरसोपेतमश्नीयाच्छालिषष्टिकम्॥ ११९॥ सिंहनाद इति ख्यातो रोगवारणदर्पहा। वह्निवृद्धिकरः पुंसां भाषितो दण्डपाणिना॥ १२०॥

हड़, बहेड़ा, आंवला, इनका क्वाथ १२ तोले, शुद्ध गन्धकचूर्ण ४ तोले, गुग्गुलु ४ तोले, अरण्डी का तैल ३२ तोले लें। एक लौह के पात्र में पहिले अरण्डी का तैल तथा गुग्गुलु डालकर पकावे। जब गुग्गुलु तैल में मिल जाय तब त्रिफला का क्वाथ डालकर पुनः पाक करे। जब ठीक पक जाय तब उसे नीचे उतारकर थोड़ी देर ठंडा होने पर गन्धक डालकर घुमावे। इस औषध के सेवन से वातजन्य रोग, कफजन्य रोग, लूलापन, लँगड़ापन, श्वास, खाँसी कुष्ठ, वातरक्त, गुल्मशूल, उदररोग, शूल तथा कठिन आमवात रोग अच्छा होता है। इसके निरन्तर उपयोग से जरा एवं पलित नष्ट होता है। पथ्य--घृत, तैल-वसायुक्त शालि एवं साँठी के चावल आदि। यह सिंहनाद गुग्गुलु अग्नि को तीव्र करता है। मात्रा ३ रत्ती से ६ रत्ती तक॥ ११५--१२०॥

शिवागुग्गुलु

शिवाविभीतामलकीफलानां प्रत्येकशो मुष्टिचतुष्टयञ्च। तोयाढके तत्क्वथितं विधाय पादावशेषे स्ववतारणीयम्॥ १२१॥ एरण्डतैलं द्विपलं निधाय पिचुत्रयं गन्धकनामकस्य। पचेत् पुरस्यात्र पलद्वयञ्च पाकावशेषे च विचूर्ण्य दद्यात्॥ १२२॥ रास्ना विडङ्गं मरिचं कणा च दन्तीजटा नागरदेवदारु। प्रत्येकशः कोलमितं तथैषां विचूर्ण्य निक्षिप्य नियोजयेच्च॥ १२३॥ आमवाते कटीशूले गृध्रसी क्रोष्टुशीर्षके। न चान्यदस्ति भैषज्यं यथायं गुग्गुलुः स्मृतः॥ १२४॥

हड़, बहेड़ा, आंवला हरएक १६ तोले, क्वाथ के लिये जल ६ सेर ३० तोले, बचा हुआ क्वाथ १२८ तोले। इस क्वाथ में अरण्डी का तैल ८ तोले तथा गुग्गुलु ८ तोले डालकर पाक करें। जब पाक ठीक हो जाय तब गन्धक का चूर्ण ३ तोले और रास्ना, वायविडङ्ग, काली मिर्च, पीपल, दन्तीमूल, सोंठ, देवदारु हर एक १ तोला डाल दें और अच्छी तरह मिलावें। मात्रा--४ रत्ती से ८ रत्ती तक। आमवात, कटिशूल, गृध्रसी, क्रोष्टुशीर्ष आदि रोगों में इससे बढ़कर और कोई औषधि नहीं है १२१-१२४

शुण्ठीघृत

नागरक्वाथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत्। चतुर्गुणेन तेनाथ केवलेनोदकेन

वा ॥ १२५ ॥ वातश्लेष्मप्रशमनमग्निसन्दीपनं परम् । नागरं घृतमित्युक्तं कट्यामशूलनाशनम् ॥ १२६ ॥

गौ का घी ४ सेर, सोंठ का क्वाथ अथवा केवल जल १६ सेर, कल्क के लिये कुटी हुई सोंठ १ सेर। इस घृत का विधिपूर्वक पाककर रोगी को सेवन करावें। यह घृत वात और कफ को शान्त तथा अग्नि को तीव्र कर कटिशूल एवं आमशूल को नष्ट करता है। मात्रा-३ माशे से ६ माशे तक ॥ १०५--१२६ ॥

शृङ्गवेराद्य घृत।

शृङ्गवेरयवक्षारपिप्पलीमूलपिप्पलीः । पिष्ट्वा विपाचयेत् सर्पिरारनालं चतुर्गुणम् ॥ १२७ ॥ शूलं विबन्धमानाहमामवातं कटिग्रहम् । नाशयेद् ग्रहणीदोषमग्निसन्दीपनं परम् ॥१२८॥

गोघृत ४ सेर, काँजी १६ सेर कल्क के लिये सोंठ, जवाखार, पीपलामूल, पीपल यह सब मिलाकर १ सेर। इस घृत को विधिपूर्वक पकाकर रोगी को सेवन कराने से शूल, मलबन्ध, अफरा, आमवात, कटिशूल तथा ग्रहणीरोग नष्ट होते हैं और अग्नि तीव्र होती है। मात्रा—आधा तोला ॥ १२७-१२८ ॥

काञ्जिकषट्पल घृत।

हिङ्गुत्रिकटुकं चव्यं माणिमन्थं तथैव च। कल्कान् कृत्वा तु पलिकान् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १२९ ॥ आरनालाढकं दत्त्वा तत्सर्पिर्जठरापहम्। शूलं विबन्धमानाहमामवातं कटिग्रहम् ॥ १३० ॥ नाशयेद् ग्रहणीदोषं मन्दाग्नेर्दीपनं परम्। पुष्ट्यर्थं पयसा साध्यं दध्ना विण्मूत्रसंग्रहे ॥ १३१ ॥ दीपनार्थं मतिमता मस्तुना च प्रकीर्त्तितम्।

गौ का घृत १२८ तोले, काँजी ६ सेर ३२ तोले, कल्क के लिते—हींग, त्रिकुटा, चव्य, सेंधा नमक, हरएक ४ तोले। विधिपूर्वक घी पकाकर सेवन करने से शूल, मलबन्ध, अफरा, आमवात, कटिशूल तथा ग्रहणी आदि रोग नष्ट होते हैं। यह मन्द हुई अग्नि को तीव्र करता है। मात्रा—आधा तोला। पुष्टि के लिये काँजी के स्थान पर दूध के साथ, मलबन्ध तथा मूत्रग्रह में दही के साथ तथा दीपन के लिये दही के पानी के साथ इस घृत को सिद्ध करना चाहिए ॥ १२९-१३१ ॥

प्रसारणी तैल

प्रसारण्या रसैः सिद्धं तैलमेरण्डजं पिबेत् । सर्वदोषहरञ्चैव कफरोगहरं परम् ॥१३२॥

अंडी का तैल ४ सेर, पसरन का रस १६ सेर। तैल को विधिपूर्वक पकाकर रोगी को सेवन करायें। मात्रा—१ तोले से २ तोले तक। यह सब दोषों को नष्ट तथा कफज रोगों को अच्छा करता है ॥ १३२ ॥

द्विपञ्चमूलाद्य तैल।

द्विपञ्चमूलीनिर्यूहकल्कदध्यम्लकाञ्जिकैः । तैलं कट्यूरुपार्श्वार्त्तिकफवातामयान् ग्रहान् ॥ हन्ति बस्तिप्रदानेन करोत्यग्निबलं महत् ॥१३३॥

दशमूल के क्वाथ और कल्क एवं दही तथा काँजी से विधिपूर्वक तैल पकाकर रोगी को बस्ति देने से कटिशूल, पसवाड़े का दर्द एवं अन्य कफवातजन्य शूल नष्ट होते हैं। यह अग्नि को तीव्र करता है ॥ १३३ ॥

बृहत् सैन्धवाद्य तैल।

सैन्धवं श्रेयसी रास्ना शतपुष्पा यमानिका। सर्जिका मरिचं कुष्ठं शुण्ठी सौवर्चलं विडम् ॥ १३४ ॥ वचाजमोदां मधुकं जीरकं पौष्करं कणा। एतान्यर्द्धपलांशानि श्लक्ष्णपिष्टानि कारयेत् १३५ प्रस्थमेरण्डतैलस्य प्रस्थाम्लशतपुष्पजम् ।

काञ्जिकं द्विगुणं दत्त्वा तथा मस्तु शनैः पचेत् ॥ १३६ ॥ सिद्धमेतत् प्रयोक्तव्य-मामवातहरं परम् ॥ पानाभ्यञ्जनवस्तौ च कुरुतेऽग्निबलं भृशम् ॥ १३७ ॥ वाता-सृक्तरुणे शस्तं कटिजानूरुसन्धिजे। शूले हृत्पार्श्वपृष्ठेषु कृच्छ्रेऽश्मरिनिपीडिते १३८ याह्यायामार्दितानाहे अन्त्रवृद्धिनिपीडिते। अन्यांश्चानिलजान् रोगान् नाशयत्याशु देहिनाम् ॥१३९॥

एरण्ड तैल १२८ तोले, सौंफ का काढ़ा १२८ तोले, काँजी २२६ तोले, दही का तोड़ २५६ तोले। कल्कार्थ—सैंधव, गजपीपरि, रास्ना सौंफ, अजवाइन, राल, मिर्च, कूट, सोंठ, काला नमक, बिड़नमक, वच, अजमोद, मुलेठी, जीरा, पुहकरमूल और पीपरि दो-दो तोले। इस तैल को मन्द अग्नि से सिद्ध करके पान, अभ्यङ्ग तथा बस्ति द्वारा प्रयोग करें। इसके प्रयोग से आमवात, कमर, जानु (घुटने), ऊरु तथा सन्धिगत वात, हृच्छूल, पार्श्वशूल, पृष्ठशूल, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, बाह्यायाम, अर्दित, आनाह, अन्त्रवृद्धि तथा अन्यान्य वातरोग शीघ्र नष्ट होते हैं और अग्नि प्रदीप्त होती है ॥ १३४-१३९ ॥

द्वितीय सैन्धवाद्य तैल।

सैन्धवं देवकाष्ठञ्च वचा शुण्ठी च कट्फलम्। शताह्वा मुस्तकं चव्यं मेदे मलहरं त्रिवृत् ॥ १४० ॥ द्विजलस्य त्वचं वालं चित्रकं ब्रह्मयष्टिका। शटी-विडङ्गमधुकं रेणुकातिविषा रुजु ॥ १४१ ॥ श्यामपुष्टी नीलिनी दन्तीमूलं मरिचमेव च। अजमोदा पिप्पली च कुष्ठं रास्ना च ग्रन्थिकम् ॥ १४२ ॥ एषां कर्षमितैः कल्कैः शनैर्मृद्वग्निना पचेत्। प्रस्थञ्च कटुतैलस्य मूर्च्छितस्य यथाविधि ॥१४३॥ एतत् तैलवरं श्रेष्ठमभ्यङ्गात् सर्ववातनुत्। विशेषेणामवातेषु कटिजानूरुसन्धिषु १४४ हृत्पार्श्वसर्वगात्रेषु शूलञ्चैव विनाशयेत्। वातश्लेष्मणि बाह्यायामन्त्रवृद्धौ भगन्दरे॥ १४५ ॥ शस्तं नाडीव्रणान् सर्वान् नाशयत्यथ देहिनाम्। अन्यांश्च विविधान् रोगान् वृत्रमिन्द्राशनिर्यथा। सैन्धवाद्य-मिदं तैलं सर्वामयनिषूदनम् ॥१४६॥

यथाविधि मूर्च्छित कटु तैल १२८ तोले। कल्कार्थ—सेंधानमक, देवदारु, वच, सोंठ, कायफल, सौंफ, नागरमोथा, चव्य, मेदा, महामेदा, जयपाल, निसोथ, समुद्रफल का छिलका, सुगन्धबाला, चीते का मूल, भारगी, कचूर, वायविडङ्ग, मुलेठी, रेणुका बीज, अतीस, एरण्डमूल, पाढ़ी, नीली का मूल, दन्ती का मूल, कालीमिर्च, अजमोद, पीपरि, कूट, रास्ना और पिपरामूल एक एक तोला। इस तैल को यथाविधि मन्द अग्नि से सिद्ध कर मालिश करने से सम्पूर्ण वातविकार नष्ट होते हैं। विशेषकर आमवात, कटिशूल, जानुशूल, ऊरुशूल, सन्धिशूल, हृच्छूल, पार्श्वशूल तथा सर्वाङ्गशूल को शान्त करता है। यह तेल वात और कफ के विकार, बाह्यायाम, अन्त्रवृद्धि, भगन्दर और नाड़ीव्रण तथा अन्यान्य विविध रोगों को इस प्रकार ध्वंस करता है जैसे इन्द्र का वज्र वृत्रों को। यह 'सैंधवाद्य तैल' सम्पूर्ण रोगों का नाशक है ॥ १४०-१४६ ॥

आमवातारिवटिका।

रसगन्धकलौहाभ्रतुत्थटङ्कनसैन्धवान्। समभागैर्विचूर्ण्याथ चूर्णद्विगुणगुग्गुलुः ॥ १४७ ॥ गुग्गुलोः पादिकं देयं त्रिवृता-चूर्णमुत्तमम्। तत्समं चित्रकस्याथ घृतेन वटिकां कुरु ॥ १४८ ॥ खादेन्माषद्वयं चेमां त्रिफलाजलयोगतः। आमवातारि-वटिका पाचिका भेदिका मता ॥ १४९ ॥ आमवातं निहन्त्याशु गुल्मशूलोदराणि

च। यकृत्प्लीहोदराष्ठीलां कामलां पाण्डुरोगकम् ॥ १५० ॥ हलीमकं चाम्लपित्तं श्वयथुं श्लीपदार्बुदौ। ग्रन्थिशूलंशिरःशूलं वातरोगं च गृध्रसीम् ॥ १५१ ॥ गलगण्डं गण्डमालां कृमिं कुष्ठं च नाशयेत्। विद्रधिं गर्दभानाहावन्त्रवृद्धिं च दारुणाम् ॥ १५२ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, तूतिया, सोहागा और सैन्धव, प्रत्येक समभाग। सबसे दूना शुद्ध गुग्गुलु, उस का चतुर्थांश निशोथ का चूर्ण, निसोथ के चूर्ण के बराबर चीते के मूल का चूर्ण, इन सबको एकत्र कर घृत में मर्दन कर दो-दो माशे की गोलियाँ बनावे। अनुपान-त्रिफला का जल। यह आमवातारिवटिका, पाचक और भेदक है। इस वटी के सेवन से आमवात, गुल्म, शूल, उदररोग, यकृत, तिल्ली, अष्ठीला, कामला, पाण्डु, हलीमक, अम्लपित्त, शोथ, श्लीपद, अर्बुद, ग्रन्थिशूल, शिरःशूल, वातरोग, गृध्रसी, गलगण्ड, गण्डमाला, कृमिरोग, कुष्ठ, विद्रधि, पापाणगर्दभ, आनाह तथा अन्त्रवृद्धि आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १४७-१५२ ॥

आमवातारि रस।

रसो गन्धो वरा वह्निर्गुग्गुलुः क्रमवर्द्धितः। एतदेरण्डतैलेन श्लक्ष्णचूर्णमपेषयेत् ॥ १५३ ॥ कर्षोऽस्यैरण्डतैलेन हन्त्युष्णजलपायिनाम्। आमवातमतीवोग्रं दुग्धमुद्गादि वर्जयेत् ॥ १५४ ॥

पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, त्रिफला ३ भाग, चित्रक ४ भाग, गुग्गुलु ५ भाग, इनको थोड़े से रेंडी के तेल के साथ घोटकर रख ले। मात्रा—एक कर्ष[1]। इसे रेंडी के तेल के साथ सेवन कर पश्चात् उष्णजल का पान करे। यह अत्यन्त आमवातनाशक है। इस औषध के सेवन-काल में दूध तथा मूँग आदि अपथ्य है ॥ १५३-१५४ ॥

आमवातेश्वर रस।

शुद्धगन्धपलार्द्धं च मृतताम्रं च तत्समम्। ताम्रार्द्धं पारदं देयं रसतुल्यं मृतायसम् ॥ १५५ ॥ सर्वपञ्चाङ्गुलदले ढालयेन्निपुणो भिषक्। संचूर्ण्य पञ्चकोलस्य सर्वं क्वाथे विमर्दयेत् ॥ १५६ ॥ रौद्रे विंशतिवारांश्च गुडूचीनां रसैर्दश। भृष्टटङ्कनचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत् ॥ १५७ ॥ टङ्कनार्द्धं विडं देयं मरिचं विडतुल्यकम्। तिन्तिडीबीजचूर्णं तु सूततुल्यं च दन्तिका ॥ १५८ ॥ त्रिकटु त्रिफला चैव लवङ्गं चार्द्धभागिकम्। आमवातेश्वरो नाम विष्णुना परिकीर्त्तितः ॥ १५९ ॥ महाग्निकारको ह्येष आमवातकुलान्तकः। स्थूलानां कुरुते कार्श्यं कृशानां स्थौल्यकारकम् ॥ १६० ॥ अनुपानविशेषेण सर्वरोगकुलान्तकः। साध्यासाध्यं निहन्त्याशु चामवातं सुदारुणम् ॥ १६१ ॥ गुरुष्याश्रपानानि पयोमांसरसा हिताः। भोजयेत् कण्ठपर्यन्तं चतुर्गुञ्जमितं रसम् ॥ १६२ ॥ कट्वम्लतिक्तरहितं पिबेत्तदनुपानकम्। शीघ्रं जीर्यति तत्सर्वं जायते दीपनः परः ॥ १६३ ॥ अनेन सदृशो नास्ति वह्निसन्दीपनो रसः। गुल्मार्शोग्रहणीरोगशोथपाण्डूदरापहः ॥ १६४ ॥

सर्वतोभद्रश्चायमुच्यते। गन्धकादिलौहान्तानां यथोक्तभागं सर्वमेकीकृत्य चूर्णयित्वा लौहपात्रे घृतं किञ्चिद्दत्त्वा तत्र चूर्णं द्रवीभूतं सद्यो गोमयोपरि-

[1] यद्यपि मूल में कर्षप्रमाण मात्रा लिखी है तथापि इसकी मात्रा बलानुसार देनी चाहिए। आजकल के अल्पगत्त्व प्राणियों के लिए १ रत्ती से १ माशे तक मात्रा योग्य है।

निहितैरण्डपत्रोपरि ढालयेत्। अथ पर्पटीभूतं संचूर्ण्य पञ्चकोलक्वाथेन विंशतिवारान् भावयेत्ततो गुडूचीरसेन पूर्ववत् क्वाथेन वा दशधा भावयेत्, रक्तियुगं खादेत्, माषैकमिति पिष्टेन वङ्गेन काञ्जिकं कोष्णं पिबेत्, दशरक्तिकपर्यन्तं वर्द्धयेदित्युपदेशः।

शुद्ध गन्धक २ तोले ताम्रभस्म २ तोले, पारा १ तोला और लोहभस्म १ तोले, इन सब औषधियों को एकत्र घोट ले। पश्चात् एक लोहे की कड़ाही में थोड़ा घृत डालकर आँच पर रक्खे, उसमें पूर्वोक्त चूर्ण डालकर पिघला ले, तदनन्तर गोबर पर रक्खे हुए रेंडी के पत्ते पर डालकर पर्पटी तैयार कर ले। पश्चात् इसको चूर्णित कर पञ्चकोल क्वाथ में २० बार और गुर्च के क्वाथ में १० बार घोटकर घाम में सुखा ले। पश्चात् इसमें कुल मिलित औषधियों के बराबर भुने हुए सोहागे का चूर्ण मिलावे। सोहागे के चूर्ण का आधा विडनमक। विड नमक के बराबर कालीमिर्च। पारे के बराबर इमली के बीज की मींगी और दन्ती के मूल का चूर्ण। त्रिकटु, त्रिफला और लौंग प्रत्येक का चूर्ण पारद का अर्धभाग। इन सब औषधियों को एकत्र मर्दन कर चार-चार रत्ती की गोलियाँ बना ले। यह 'आमवातेश्वररस' विष्णु नाम के आचार्य ने कहा है। यह महान् अग्निवर्धक और आमवात-कुल-नाशक है। स्थूल पुरुषों को कृश और कृश पुरुषों को स्थूल करता है। अनुपानविशेष से सब रोगों को नष्ट करता है। साध्य, असाध्य तथा दारुण आमवात को तत्काल नष्ट करता है। इस रस का सेवन करनेवाला रोगी गुड़, पुष्प, अन्न, पान, दुग्ध और हितकारी मांसरस तृप्तिपर्यन्त खा सकता है। कटु, अम्ल और तिक्त रस अनुपान में वर्जित हैं। यह रस गुरु पदार्थ को शीघ्र पचाता है। गुल्म, अर्श, ग्रहणीरोग शोथ, पाण्डु और उदर रोगों को नष्ट करता है। इसके समान अग्निदीपक और कोई रस नहीं। इसको 'सर्वतोभद्ररस' भी कहते हैं। वृद्ध वैद्यों की सम्मति है कि दो रत्ती से दस रत्तीपर्यन्त मात्रा बढ़ावे ॥ १५५-१६४ ॥

त्रिफलादि लौह।

त्रिफला मुस्तकं व्योपं विडङ्गं पुष्करं वचा। चित्रकं मधुकं चैव पलांशं श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ १६५ ॥ अयश्चूर्णपलान्यष्टौ गुग्गुलोस्तावदेव हि। आलोड्य मधुनोपेतं पलद्वादशकेन च ॥ १६६ ॥ प्रातर्विलिह्य भुञ्जानो जीर्णे तस्मिन् जयेद्रुजः। दुःसाध्यमामवातं च पाण्डुरोगं हलीमकम्। जीर्णान्नसम्भवं शूलं श्वयथुं विषमज्वरम् ॥ १६७ ॥

त्रिफला, नागरमोथा, त्रिकटु, वायविडंग, पुष्करमूल, वच, चीते का मूल और मुलेठी का चूर्ण चार-चार तोले, लोहभस्म ३२ तोले, गुग्गुलु ३२ तोले। इन सब औषधियों को ४८ तोले मधु के साथ घोटकर रख ले। प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करे। इसके पचने पर भोजन करनेवाला मनुष्य दुःसाध्य आमवात, पाण्डुरोग, हलीमक, परिणामशूल, शोथ और विषमज्वर आदि अनेक रोगों से मुक्त होता है ॥ १६५-१६७ ॥

विडङ्गादि लौह।

वज्रपाण्ड्यादिलौहानां ग्राह्यं पञ्चपलं शुभम्। चूर्णं मृताभ्रकस्यापि लौहार्द्धं पारदं तथा ॥ १६८ ॥ त्रिगुणा त्रिफला ग्राह्या लौहाभ्रात् षोडशैर्जलैः। पक्त्वाष्टभागशेषं तु ग्राह्यं क्वाथजलं ततः ॥ १६९ ॥ तेन लौहाभ्रचूर्णं च पुनः पाच्यं समं घृतम्। शतावर्या रसं चैव क्षीरं च द्विगुणं रसात् ॥ १७० ॥ लौहमय्या पचेद् दर्व्या पात्रे चायसि ताम्रके। पचेत् पाकविधि-

ज्ञस्तु वह्निना मृदुना शनैः ॥ १७१ ॥ सिद्धे च प्रक्षिपेदेतान् विडङ्गादि यथोदितान् । विडङ्गं नागरं धान्यं गुडूचीसत्त्वजीरकम् ॥ १७२ ॥ पलाशबीजं मरिचं पिप्पली हस्तिपिप्पली । त्रिवृता त्रिफला दन्ती एला चैरण्डकं तथा ॥ १७३ ॥ चविका ग्रन्थिकं चित्रं मुस्तकं वृद्धदारकम् । सर्वेषां चूर्णमेतेषां लौहाभ्रकसमं भवेत् ॥ १७४ ॥ आमवातगजेन्द्रस्य केशरी विधिनिर्मितः । आमवातं च शोथं चाप्यग्निमान्द्यं हलीमकम् ॥ १७५ ॥

हन्तीति शेषः । अत्र गन्धकमपि पारदसमं दत्त्वा कज्जलीं कुर्वन्ति ।

फौलाद् आदि लोह की भस्म २० तोले, अभ्रकभस्म १० तोले, शुद्ध पारद १० तोले, त्रिफला ६० तोले, क्वाथार्थ जल १८ सेर, शेष २५ सेर, २० तोले । इस क्वाथ में लोहभस्म, अभ्रकभस्म, गाय का घृत ३० तोले, शतावरि का रस ३० तोले, दूध ६० तोले डालकर लोहपात्र या कलई किए ताम्रपात्र में लोहे की कलछी से मन्द-मन्द आँच में पकावे । पाक सिद्ध हो जाने पर वायविडंग, सौंठ, धनिया, गिलोय का सत, जीरा, ढाक के बीज, कालीमिर्च, पीपरि, गजपीपरि, निसोथ, त्रिफला, दन्तीमूल, छोटी इलायची, एरण्डमूल, चव्य, पिपरामूल, चित्रक, नागरमोथा और विधारा; इनके समभाग मिलित चूर्ण ३० तोले का प्रक्षेप देकर अच्छी प्रकार मिला दे । मात्रा—४ रत्ती । इसका सेवन करने से आमवात, शोथ, अग्निमान्द्य, हलीमक, कामला और पाण्डु आदि रोग नष्ट होते हैं । इस योग में यद्यपि गन्धक उक्त नहीं है तथापि पारद के समान परिमाण में गन्धक मिलाकर कज्जली करके पाक के शीतल होने पर उसमें मिला दे ॥ १६८–१७५ ॥

पञ्चाननरस लौह ।

जारितं पुटितं लौहचूर्णं पञ्चपलं गुग्गुलोश्च पलं पञ्च लौहार्द्धं मृतमभ्रकम् ॥ १७६ ॥ शुद्धसूतमभ्रसमं गन्धकं तत्समं भवेत् । त्रिगुणामयसश्चूर्णात् कृत्वा तां त्रिफलां पचेत् ॥ १७७ ॥ द्विरष्टभागं पानीयमष्टभागावशेषितम् । तेन चाष्टावशेषेण पचेत् लौहाभ्रगुग्गुलुम् ॥ १७८ ॥ घृततुल्यं शतावर्या रसं दत्त्वा तथा शुभम् । प्रस्थं प्रस्थं च दुग्धस्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ १७६ ॥ लौहमय्या पचेद्दर्व्या पात्रेचायसि मृण्मये । ततः पाकविधिज्ञस्तु पाकसिद्धौ विनिक्षिपेत् ॥१८०॥ विडङ्गं नागरं धान्यं गुडूचीसत्त्वजीरकम् । पञ्चकोलं त्रिवृद्दन्ती त्रिफलैला च मुस्तकम् ॥ १८१ ॥ सुचूर्णितं च प्रत्येकमेषामर्द्धपलं क्षिपेत् । रसस्य कज्जलीं कृत्वा ईषदुष्णे विमर्दयेत् ॥१८२॥ उत्तार्य स्थापयेद्भाण्डे स्निग्धे चापि सुरक्षितम् । घृतेन मधुना पश्चान्मर्दयित्वानुपानतः ॥१८३॥ गुडूचीनागरैरण्डं क्वाथयित्वा जलं पिबेत् । भक्षयेत्क्षुद्रदेहस्तु शुभेऽहनि सुरार्चकः ॥ १८४ ॥ आमवातमहाव्याधिविनाशायेष्टदेवताम् । सन्धिवातं कटीशूलं कुक्षिशूलं सुदारुणम् ॥ १८५ ॥ जङ्घापादाङ्गुलीशूलं गृध्रसीं हन्ति पङ्गुताम् । गुल्मशोथं पाण्डुरोगं सन्धिवातं च दुःसहम् । आमवातगजेन्द्रस्य केशरी विधिनिर्मितः १८६॥

लोहभस्म २० तोले, शुद्ध गुग्गुलु २० तोले, अभ्रकभस्म १० तोले, पारद १० तोले, शुद्ध गन्धक १० तोले । क्वाथार्थ—त्रिफला मिलित ६० तोले, जल २४ सेर, अवशिष्ट क्वाथ ३ सेर । इस क्वाथ में लोहभस्म, अभ्रकभस्म और गुग्गुलु (पूर्वोक्त), गाय का घृत १२८ तोले,

शतावरि का रस १२८ तोले और दुग्ध १ सेर २½ पाव डालकर लोह के अथवा मिट्टी के पात्र में लोहे की कलछी से मन्द-मन्द आँच पर पकावे। आसन्न पाक होने पर वायविड़ंग, सोंठ, धनिया, गिलोय का सत, जीरा, पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चीता, सोंठ, निसोथ, दन्तीमूल, त्रिफला, छोटी इलायची और नागरमोथा प्रत्येक का दो-दो तोला चूर्ण लेकर उसमें मिलावे। पारद गन्धक की कज्जली कर किञ्चित् उष्ण अवस्था में ही मिला दे। पश्चात् घृत के स्निग्ध पात्र में इसको रक्खे। इस लौह में घृत और मधु मिलाकर गिलोय, सोंठ और एरण्ड के क्वाथ के साथ सेवन करे। शुभ दिन में शुद्धदेह होकर आमवात रोग के नाश के लिये इष्टदेवता का पूजन कर इसका सेवन करे। मात्रा—२ माशे। यह लौह सन्धिवात, कटिशूल, दारुण कुक्षिशूल, जंघाशूल, पादाङ्गुलीशूल, गृध्रसी, पंगुता, गुल्म, शोथ और पाण्डुरोग आदि अनेक रोगों को नष्ट करता है। आमवातरूपी हाथी के लिये यह सिंहरूप है॥ १७६—१८६॥

वातगजेन्द्रसिंह।

अभ्रं लौहं रसं गन्धं ताम्रं नागं सटङ्कनम्। विषं सिन्धुं लवङ्गं च हिंगु जातीफलं समम्॥ १८७॥ तदर्द्धं त्रिसुगन्धं च त्रैफलं जीरकं तथा। कन्यारसेन संपिष्य वटी कार्या त्रिरक्तिका॥ १८८॥ सेव्या पयोऽनुपानेन सदा प्रातः सुखान्वितैः। अशीतिं वातजान् रोगान् चत्वारिंशच्च पैत्तिकान्॥ १८९॥ विंशतिं श्लैष्मिकान् रोगान् सेवनादेव नाशयेत्। अभिघातेन ये क्षीणाः क्षीणार्द्धानयवाश्च ये॥ १९०॥ व्याधिक्षीणा वयःक्षीणाः स्त्रीक्षीणाश्चापि ये नराः। क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्रा वह्निहीनाश्च मानवाः॥ १९१॥ तेषां वृष्यश्च बल्यश्च वयःस्थापन एव च। खञ्जानां पङ्गुकुब्जानां क्षीणानां मांसवर्धनः॥ १९२॥ अरोगी सुखमाप्नोति रोगी रोगाद्विमुच्यते। रसस्यास्य प्रसादेन नास्ति रोगाद्भयं क्वचित्। वातगजेन्द्रसिंहोऽयं रसो रोगविनाशकः॥ १९३॥

अभ्रकभस्म, लोहभस्म, पारद शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, सीसकभस्म, सुहागा, मीठा विष, सेंधानमक, लौंग, हींग और जायफल प्रत्येक १ भाग। दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, त्रिफला और जीरा प्रत्येक आधा भाग। इनको एकत्र कर घृतकुमारी के रस में घोटकर दो-दो या तीन-तीन रत्ती की गोलियाँ बनावे। प्रातःकाल दुग्ध के साथ इसका सेवन करे। इसके सेवन से ८० प्रकार के वातज, ४० प्रकार के पित्तज तथा २० प्रकार के कफज रोग नष्ट होते हैं। यह रस अभिघातादि कारणों से क्षीण हुए पुरुषों की क्षीणता को नष्ट करता और वृष्य, बलकारि तथा आयुवर्धक है। यह खञ्जता, पंगुता तथा कुब्जरोग को नष्ट करता है। अग्नि को दीप्त करता है। पुरुषों के मांस को बढ़ाता है। नीरोग पुरुष इसके सेवन से स्वस्थ रहता तथा रोगी रोग से मुक्त हो जाता है। इस रस की कृपा से रोगों का डर नहीं रहता। यह वातरूपी हाथी के लिये सिंहरूप है॥१८७—१९३॥

हिंगुलेश्वर रस।

तुल्यांशं मर्दयेत्खल्वे पिप्पलीं हिंगुलं विषम्। गुञ्जार्द्धं मधुना देयमामवातनिवृत्तये॥ १९४॥

पीपल, शिंगरफ तथा वत्सनाग को बराबर मात्रा में मिलाकर खरल में घोटकर आधी रत्ती की मात्रा में शीघ्र ज्वरयुक्त नवीन आमवात के रोगी को सेवन कराने से लाभ होता है। यह हजारों रोगियों पर अनुभव किया हुआ प्रयोग है॥ १९४॥

अमृतमञ्जरी।

हिंगुलं च विषञ्चैव कणा मरिचटङ्क-

णम्। जातीकोषं समं सर्वं जम्बीररस-मर्दितम् ॥ १९५ ॥ रक्तिमात्रां वटीं कुर्यादार्द्रकद्रवसंयुताम् । अग्निमान्द्यमजीर्णं च सामवातं सुदारुणम् ॥ १९६ ॥ उष्णतोयानुपानेन सर्वं व्याधिं नियच्छति। कासं पञ्चविधं श्वासं सर्वाङ्गग्रहमेव च॥ १९७ ॥

शिंगरफ, बच्छनाग, पीपल, कालीमिर्च, सुहागा, जावित्री इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर जम्बीरी नींबू के रस से घोटकर एक-एक रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—अदरख का रस। इस गोली के सेवन से आमवातयुक्त मन्दाग्नि एवं अजीर्ण तथा तरुण आमवात में पैदा होनेवाला तीव्र ज्वर नष्ट होता है। गरम जल के अनुपान से यह गोली पांचो प्रकार की खांसी, श्वास तथ सर्वाङ्गशूल आदि सब रोग अच्छे करती है ॥ १९५--१९७ ॥

आमप्रमाथिनी वटिका।

सोरकं रविमूलञ्च गन्धकं लौहमभ्रकम्। व्याधिघातरसैः पिष्ट्वा कुर्याद्वल्लमितां वटीम् ॥१९८॥ निर्गुण्डीस्वरसैः[1] सेव्या कफामयनिषूदिनी । आमवातप्रशमनी वटिकाममाथिनी॥ १९९ ॥

शोरा, आक की जड़, गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर अमलतास के पत्तों के रस से भावना देकर दो रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—सँभालू के पत्तों का रस। इसके सेवन से आमवात तथा कफरोग नष्ट होते हैं ॥ १९८--१९९ ॥

आमवाताद्रि वज्ररस।

रसगन्धकलौहाभ्रमहिफेनं समं समम्। यवक्षारं सप्तभागं मर्दयित्वार्कपत्रजैः ॥ २०० ॥ रसैर्वल्लद्वयमितां विदध्याद्वटिकां भिषक् । सिन्दुवारदलद्रावैः प्रदद्यादामवातिने ॥२०१॥ आमवातं महाघोरं वेदनां वातसम्भवाम्। आमवाताद्रिवज्राख्यरसो हन्ति न संशयः ॥२०२॥

पारा, गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, अफीम, हरएक १ भाग, जवाखार, ७ भाग। इन्हें आक के पत्तों के रस से घोटकर ४ रत्ती की गोली बनावे। आमवात से पीड़ित रोगी को यह गोली सँभालू के पत्तों के रस के साथ देनी चाहिए। इसके सेवन से कठिन आमवात तथा अन्य वातजन्य कष्ट नष्ट होते हैं ॥ २००--२०२ ॥

आमवात में पथ्य।

यवाः कुलत्थाः श्यामाकाः कोद्रवा रक्तशालयः। वास्तुकं शिग्रु वर्षाभूः कारवेल्लं पटोलकम् ॥ २०३ ॥ आर्द्रकं तप्तनीरञ्च लशुनं तक्रसंस्कृतम्। जाङ्गलानां तथा मांसं सामवातगदे हितम् ॥ २०४ ॥ मन्दारगोक्षुरकवृद्धदारं भल्लातकं गोजलमार्द्रकञ्च। कटूनि तिक्तानि च दीपनानिस्युरामवातामयिने हितानि ॥२०५॥

जौ, कुलथी, सावाँ, कोदों लालशालि चावल, बथुआ, सहजने की फली, सफेद सोंठी, करेला, परवल, अदरक, गरम जल, छाँछ से सिद्ध लहसन, जाङ्गल पशु-पक्षियों का मांस आमवात के रोगी के लिये लाभदायक है। मन्दार गोखरू, विधारा, भिलावा, गोमूत्र, अदरक, कटु, तिक्त एवं अग्निदीपक द्रव्य आमवात के रोगी के लिये हितकारी हैं ॥ २०३--२०५ ॥

आमवातरोग में अपथ्य।

दधिमत्स्यगुडक्षीरपोतकीमाषपिष्टकान्। वर्जयेदामवातार्त्तो मांसं चानूपसम्भवम् ॥ २०६ ॥ अभिष्यन्दकरा ये च ये चान्ये

[1] निवृत्त क्वाथेन सा इति पाठान्तरम्, अर्थात् निशोथ क्वाथ के साथ सेवन करने का भी विधान है।

गुरुपिच्छिलाः। वर्जनीयोः प्रयत्नेन आमवातार्दितैर्नरैः ॥ २०७ ॥

दही, मछली, गुड, खीर, पोई का शाक, उर्द, पिष्टक, अनूपमांस, अभिष्यन्दी, गुरु और पिच्छिल भोजन आमवात से पीड़ित पुरुष को यत्नपूर्वक छोड़ देने चाहिए ॥२०६–२०७ ॥

विजयभैरव तैल।

रसगन्धशिलातालं सर्वं कुर्यात् समांशकम्। चूर्णयित्वा ततः सूक्ष्ममारनालेन पेषयेत् ॥ २०८ ॥ तैलकल्केन संलिप्य सूक्ष्मवस्त्रं ततः परम्। तैलार्धं कारयेद्वर्त्तिमूर्ध्वभागे च दीपयेत् ॥ २०९ ॥ वर्त्यधःस्थापिते पात्रे तैलं पतति शोभनम्। लेपयेत्तेन गात्राणि भक्षणाय च दापयेत् ॥ २१० ॥ नाशयेत् सूततैलं तद्वातरोगानशेषतः। बाहुकम्पं शिरःकम्पं जङ्घाकम्पं ततः परम्। एकाङ्गं च तथा वातं हन्ति लेपान्न संशयः ॥ २११ ॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, मैनसिल और हरताल समभाग लेकर चूर्णित करके कांजी में अच्छी प्रकार घोट ले। इस कल्क से एक पतले कपड़े को लिप्त कर बत्ती बनाकर सुखा ले। पश्चात् इस बत्ती को तिलतैल में भिगोकर सँड़सी से पकड़ कर सिरे पर आग लगावे और नीचे एक स्वच्छ पात्र रक्खे जिससे तैल उसमें गिरता रहे। रोगी इस तैल को अपने अवयवों पर मर्दन करे तथा इस तैल से लिप्त पान के पत्ते को खाय। मात्रा–२ बूँद से ४ बूँद पर्यन्त। यह तैल लगाने से सम्पूर्ण वातरोगों को तथा विशेषकर बाहुकम्प, शिरःकम्प, जङ्घाकम्प तथा एकाङ्ग वात को नष्ट करता है ॥ २०८–२११ ॥

महाविजयभैरव।

फेनयुतश्चैतन्महाविजयभैरवम् २१२॥

विजयभैरव तैल में ही यदि अफीम मिला दी जाय तो इसका नाम महाविजय भैरव तैल होता है ॥ २१२ ॥

महासैन्धवाद्य तैल।

सिन्धुरुग्विश्वजा सोग्रा भार्गी यष्टिस्थिरा फलैः। दारु विश्वशटी धान्यकृष्णा कट्फलपौष्करैः॥ २१३ ॥ दीप्यकातिविषैरण्डनीली नीलाम्बुजैः पचेत्। तैलं सकाञ्जिकं हन्ति पानाभ्यञ्जननावनैः॥ २१४ ॥ आमवातं कृमीन् गुल्मान् प्लीहोदरशिरोरुजः। मन्दाग्निं पक्षसन्ध्यण्डवातस्तम्भगदानपि ॥ २१५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामामवाताधिकारः समाप्तः।

तैल ४ सेर, काँजी १६ सेर, कल्क के लिये—सेंधानमक, कुठ, सोंठ, वच, भारंगी, मुलहटी, शालपर्णी, जायफल, देवदारु, सोंठ, कचूर, धनिया, पीपली कायफल, पोहकरमूल, अजवाइन, अतीस, अरण्डी की जड़, नील की जड़, नीलकमल मिलाकर १ सेर। इस तैल को विधिपूर्वक पकाकर पिलाना, मालिश करना और नस्य देना चाहिये। इसके प्रयोग से आमवात, कृमि, गुल्म, प्लीहा (तिल्ली), उदररोग, शिर का दर्द, मन्दाग्नि, पक्षाघात, सन्धिवात, अण्डवात तथा ऊरुस्तम्भ आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ २१३–२१५ ॥

इति श्रीपण्डितम्बरप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायामामवाताधिकारः समाप्तः।

अथ मूत्रकृच्छ्राधिकारः

वातिक मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा।

अभ्यञ्जन स्नेहनिरूहबस्तिस्वेदोपनाहोत्तरबस्तिसेकान् । स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान् दद्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥

तैलाभ्यङ्ग, स्नेहपान, निरूहबस्ति, स्वेद, उपनाह, उत्तरबस्ति (पिचकारी), परिषेक तथा शालपर्णी प्रभृति वातनाशक औषधों से सिद्ध मांसरस वातज मूत्रकृच्छ्र में हितकारी हैं ॥ १ ॥

पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा।

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहा ग्रैष्मो विधिर्बस्तिपयोविकाराः। द्राक्षा विदारीक्षुरसैर्घृतैश्च कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कार्याः ॥ २ ॥

पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र में शीतल परिषेक, स्नान तथा प्रलेप, ग्रीष्मोचित ऋतुचर्या, बस्तिकर्म, दुग्धविकार (दूध से बने पदार्थ), मुनक्का, विदारीकन्द, ईख के रस और घृत आदि की व्यवस्था करे ॥ २ ॥

श्लैष्मिक मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा।

क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानं स्वेदो यवान्नं वमनं निरूहाः । तक्रं सतिक्तौषधसिद्धतैलमभ्यङ्गपानं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ३ ॥

श्लैष्मिक मूत्रकृच्छ्र में क्षार, उष्ण और तीक्ष्ण औषध, अन्नपान, स्वेद, जौ का भोजन, वमन, निरूहबस्ति, छाँछ तथा तिक्तरसयुक्त औषधियों से सिद्ध तैल का अभ्यङ्ग एवं कफनाशक द्रव्यों का पान करना चाहिए ॥ ३ ॥

सान्निपातिक मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा।

सर्वं त्रिदोषप्रभवे च वायोः स्थानानुपूर्व्या प्रसमीक्ष्य कार्यम् । त्रिभ्योऽधिके प्राग्वमनं विरेकः पित्ते कफे स्यात् पवने च बस्तिः ॥ ४ ॥

त्रिदोषजन्य मूत्रकृच्छ्र में तीनों दोषों की मिलित चिकित्सा करनी चाहिए। किन्तु बस्ति के वातस्थानीय होने से प्रथम प्रकुपित वात की ही शान्ति करनी चाहिए। वाताधिक्य में बस्ति, पित्ताधिक्य में विरेचन और कफाधिक्य में वमन कराना चाहिए ॥ ४ ॥

अभिघातज मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा।

तथाभिघातजे कुर्यात् सद्यो व्रणचिकित्सितम् ।

अभिघातज मूत्रकृच्छ्र में सद्योव्रणाधिकार में कही हुई चिकित्सा करनी चाहिए।

पुरीषविघातज मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा।

स्वेदचूर्णक्रियाभ्यङ्गबस्तयः स्युः पुरीषजे ॥ ५ ॥

पुरीषजन्य मूत्रकृच्छ्र में स्वेद, चूर्णक्रिया, अभ्यङ्ग और बस्तिक्रिया करनी चाहिए ॥ ५ ॥

अश्मरीजात मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा।

क्रिया हिता त्वश्मरिशर्कराया या मूत्रकृच्छ्रे कफमारुतोत्थे ॥ ६ ॥

अश्मरी तथा शर्कराजन्य मूत्रकृच्छ्र में कफवातज मूत्रकृच्छ्रोक्त चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ६ ॥

शुक्रविबन्धज मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा।

लेह्यं शुक्रविबद्धोत्थे शिलाजतु समाक्षिकम् । वृष्यैर्बृंहितधातूत्थे विधेया प्रमदोत्तमा ॥ ७ ॥

शुक्रविबन्धजन्य मूत्रकृच्छ्र में मधु के साथ शिलाजीत का सेवन कराना चाहिए। वृष्य प्रयोगों द्वारा प्रवृद्ध धातु से उत्पन्न शुक्रविबन्धज मूत्रकृच्छ्र में सुन्दर स्त्री लाभदायक होती है ॥ ७ ॥

शोणित मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा।

यन्मूत्रकृच्छ्रं विहितञ्च पैत्ते तत्कारयेच्छोणितमूत्रकृच्छ्रं ॥ ८ ॥

रक्तज मूत्रकृच्छ्र में पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ८ ॥

कूष्माण्डकरसं पीत्वा सयवक्षारशर्करम्। मूत्रकृच्छ्राद्विमुच्येत शीघ्रं च लभते सुखम् ॥ ९ ॥

पेठे के रस में यवक्षार तथा खाँड मिलाकर पीने से रोगी मूत्रकृच्छ्र से शीघ्र मुक्त होता और सुख पाता है ॥ ९ ॥

तृणपञ्चमूल

कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवम्। पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं वस्तिविशोधनम् ॥ १० ॥

कुश, काश, शर, दर्भ और इक्षु (गन्ना) का क्वाथ पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र का नाशक तथा वस्ति (मूत्राशय) का शोधक होता है ॥ १० ॥

पञ्चतृण क्षीर।

एतत्सिद्धं पयः पीतं मेढ्रजं हन्ति शोणितम् ॥ ११ ॥

पञ्चतृणमूल से यथाविधि सिद्ध किया हुआ दुग्ध मूत्रमार्ग से प्रवृत्त हुए रक्त में लाभदायक होता है ॥ ११ ॥

त्रिकण्टकादि।

त्रिकण्टकारग्वधदर्भकाशदुरालभापर्वतभेदपथ्या। निहन्ति पीडां मधुनाश्मरीञ्च संप्राप्तमृत्योरपि मूत्रकृच्छ्रम् ॥ १२ ॥

गोखरू, अमलतास, दर्भ, काश, दुरालभा (धमासा), पाषाणभेद और हरीतकी के क्वाथ में मधु मिलाकर पान करने से आसन्नमृत्युरोगी का भी मूत्रकृच्छ्र और मूत्रकृच्छ्रजन्य पीड़ा शमन होती है ॥ १२ ॥

गोक्षुरक्वाथ।

क्वाथं गोक्षुरबीजस्य यवक्षारयुतं पिबेत्। मूत्रकृच्छ्रं तथा रक्तं पीतः शीघ्रं निवारयेत् ॥ १३ ॥

गोखरू के बीज के क्वाथ में जवाखार मिलाकर पान करे तो मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्रमार्ग से प्रवृत्त हुआ रुधिर शीघ्र निवृत्त होता है ॥ १३ ॥

धात्र्यादि।

धात्री द्राक्षा विदारी च यष्ट्याह्वं गोक्षुरं तथा। एभिः कषायं विपचेत् पिबेच्छीतं सशर्करम् ॥ अपि योगशतासाध्यं मूत्रकृच्छ्रं जयेद्ध्रुवं ॥ १४ ॥

आँवला, मुनक्का, विदारीकन्द, मुलेठी और गोखरू के क्वाथ को शीतल कर उसमें शक्कर मिलाकर पान करे। यह सैकड़ों योगों से असाध्य मूत्रकृच्छ्र को भी आराम करता है ॥ १४ ॥

बृहद्धात्र्यादि।

धात्री द्राक्षा च यष्ट्याह्वं विदारी सत्रिकण्टका। दर्भेक्षुमूलमभयाः क्वाथयित्वा जलं पिबेत् ॥ ससितं मूत्रकृच्छ्रघ्नं रुजोदाहहरं परम् ॥ १५ ॥

आँवला, मुनक्का, मुलेठी, विदारीकन्द, गोखरू, दर्भमूल, काशेक्षु (ईख) का मूल और हड़ के क्वाथ में खाँड मिलाकर पीने से मूत्रकृच्छ्र की वेदना तथा दाह नष्ट होता है ॥ १५ ॥

वातिक कृच्छ्र में अमृतादि।

अमृता नागरं धात्री वाजिगन्धा त्रिकण्टकम्। प्रपिबेद्वातरोगार्त्तः सशूलो मूत्रकृच्छ्रवान् ॥ १६ ॥

गिलोय, सोंठ, आँवला, असगन्ध और गोखरू का क्वाथ पीने से वेदनायुक्त मूत्रकृच्छ्र आराम होता है ॥ १६ ॥

शतावर्यादि।

शतावरीकाशकुशः श्वदंष्ट्राविदा-

रिशालीक्षुकशेरुकाणाम्। क्वाथं सुशीतं मधुशर्करात्कं पिबन् जयेत् पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रम्॥ १७॥

शतावरि, काश, कुश, गोखरू, विदारीकन्द, शालिधान, इक्षु (ईख) और, कसेरू के क्वाथ में मधु और खाँड मिलाकर शीतल होने पर पान करे तो पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र आराम होता है॥ १७॥

गुडेनामलकं वृष्यं श्रमघ्नं तर्पणं परम्। पित्तासृग्दाहशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम्॥ १८॥

आँवले का क्वाथ गुड मिलाकर पान करने से वृष्य, श्रमनाशक और अत्यन्त तर्पण होता है तथा यह रक्तपित्त, दाह, शूल और मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है॥ १८॥

एर्वारुबीजं मधुकं सदार्वि पैत्ते पिबेत्तण्डुलधावनेन। दार्वीं तथैवामलकीरसेन समाक्षिकां पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रे॥ १९॥

पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र में ककड़ी के बीज, मुलेठी और दारहल्दी के चूर्ण को चावल के धोवन के साथ अथवा केवल दारहल्दी के चूर्ण को आँवले के रस में घोलकर मधुमिश्रित कर पान करे तो पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र आराम होता है॥ १९॥

हरीतक्यादि।

हरीतकीगोक्षुरराजवृक्षपाषाणभिद्धन्वयवासकानाम्। क्वाथं पिबेन्माक्षिकसंप्रयुक्तं कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विबन्धे॥२०॥

हड़, गोखरू, अमलतास, पाषाणभेद, धमासा और जवासा के क्वाथ को मधुमिश्रित कर पान करे तो दाह, वेदना, मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होते हैं॥ २०॥

सितातुल्यो यवक्षारः सर्वकृच्छ्रविनाशकः। सूर्यावर्त्तभवं बीजं श्लक्ष्णं दृषदि पेषितम्॥२१॥ व्युषितोदकसम्पीतं कृच्छ्रं हन्ति सुदारुणम्। मधुना च यवक्षारं मूत्रकृच्छ्राश्मरीहरम्॥ २२॥

जवाखार और मिसरी सम भाग मिश्रित कर सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र रोग आराम होता है। सूर्यावर्त (सूर्यमुखी) के बीज को सिल पर महीन पीसकर बासी जल के साथ सेवन करने या मधु के साथ जवाखार का सेवन करने से दारुण मूत्रकृच्छ्र और पथरी रोग नष्ट होते हैं॥ २१-२२॥

सगन्धकयवक्षारां शर्करां तक्रतः पिबेत्। मूत्रकृच्छ्राद्विमुच्येत साध्यासाध्यान्न संशयः॥ २३॥

शुद्ध गन्धक, जवाखार और शक्कर समभाग मिश्रित कर तक्र के साथ सेवन करे तो साध्य और असाध्य सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र निःसंदेह आराम होते हैं॥ २३॥

नारिकेलोद्भवं पुष्पं तण्डुलोदकसंयुतम्। रक्तजं मूत्रकृच्छ्रं हि पीतं हन्ति न संशयः॥ २४॥

नारियल के फूल को तण्डुलोदक के साथ पीस कर पीने से रक्तजन्य मूत्रकृच्छ्र निःसंदेह नष्ट होता है॥ २४॥

कफमूत्रकृच्छ्र में एलायोग।

मूत्रेण सुरया वापि कदलीस्वरसेन वा। कफकृच्छ्रविनाशाय श्लक्ष्णां पिष्ट्वा त्रुटिं पिबेत्॥ २५॥

छोटी इलायची के बारीक चूर्ण को गोमूत्र, शराब अथवा केले की जड़ के रस के साथ कफजन्य मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करने के लिये सेवन करना चाहिए॥ २५॥

एरण्डमूलादि कषाय।

एरण्डमूलं मधुकाश्मभेदवृषाश्वदंष्ट्रा कृतमालकृष्णाः। एलाशिलाह्वित्रियुतः कषायः समूत्रकृच्छ्रं हरति प्रमह्य॥ २६॥

एरण्डी की जड़, मुलहठी, पाषाणभेद, अडूसा, गोखरू, अमलतास, पीपल, इनके क्वाथ में छोटी इलायची, शिलाजीत तथा हुलहुल के बीजों के चूर्ण को डालकर पीने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ २६ ॥

अश्मरीजन्य मूत्रकृच्छ्र में एलादि क्वाथ।

एलोपकुल्या मधुकाश्मभेदकौन्ती-श्वदंष्ट्रामधुकोरुबूकैः। शृतं पिबेदश्मजतु मगाढं सशर्करं साश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ॥२७॥

छोटी इलायची, पीपल, मुलहठी, पाषाणभेद, सँभालू, गोखरू, मुलहठी, एरण्डी की जड़, सब मिलाकर २ तोले, पाक के लिये जल ३२ तोले, बचा हुआ क्वाथ ८ तोले। इनके क्वाथ में शीतल होने पर शिलाजीत और खाँड डालकर पीने से अश्मरीयुक्त मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ २७ ॥

दुरालभादि कषाय।

दुरालभाश्मभित्पथ्याव्याघ्रीमधुकधान्यकैः। कृतः क्वाथः सितापीतो मूत्रकृच्छ्रविबन्धनुत् ॥ दाहं शूलं निहन्त्याशु तमः सूर्योदये यथा ॥ २८ ॥

दुरालभा, पाषाणभेद, हड़, छोटी कटेरी, मुलहठी, धनिया सब मिलाकर २ तोले। पाक के लिए जल ३२ तोले, बचा हुआ क्वाथ ८ तोले। इस क्वाथ में खाँड डालकर पीने से मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघातरोग नष्ट होता है तथा इसकी दाह एवं वेदना शान्त होती है ॥ २८ ॥

पाषाणभेदादि क्वाथ।

पाषाणभेदो मधुयष्टिरेला कृष्णा शिफैरण्डसितावरपाः। स्पृक्काश्वदंष्ट्रा च शिवासमेतैः क्वाथो हरेद् दुःसहमूत्रकृच्छ्रम् ॥ २६ ॥

पाषाणभेद, मुलहठी, छोटी इलायची पीपलामूल, एरण्डी की जड़, अडूसा, स्पृक्का (असबर्ग) गोखरू, हड़ इनका क्वाथ पीने से कठिन मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ २६ ॥

एलादिचूर्ण।

एलाश्मभेदकशिलाजतुपिप्पलीनां चूर्णानि तण्डुलजलैलुलितानि पीत्वा। यद्वा गुडेन सहितान्यवलिह्य चैतानासन्नमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री ३० ॥

छोटी इलायची, पाषाणभेद, शिलाजीत, पीपल, इनके चूर्ण को इकट्ठा कर बराबर मात्रा में मिलाकर तण्डुलोदक के साथ पीने अथवा इस चूर्ण को गुड़ के साथ मिलाकर चाटने से मरणासन्न मूत्रकृच्छ्र का रोगी भी पुनः जीवन प्राप्त करता है। चूर्ण की मात्रा—१२ रत्ती ॥ ३० ॥

तारकेश्वर।

शुद्धसूतं समं गन्धं लौहं वङ्गं मृताभ्रकम्। दुरालभां यवक्षारं बीजं गोक्षुरजं शिवाम् ॥ ३१ ॥ समांशं भावयेत्सर्वं कूष्माण्डफलवारिणा। पञ्चतृणभवक्वाथे रसे गोक्षुरजे तथा ॥ ३२ ॥ सम्पिष्य वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः। मधुना भक्षं विलिहेत् मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ३३ ॥ उदुम्बरफलं पक्वं चूर्णितं कर्षमात्रकम्। लेहयेत् मधुना सार्द्धमनुपानं सुखावहम् ॥ ३४ ॥ अजाक्षीरं भवेत् पथ्यं शर्करेक्षुरसो हितः ॥ ३५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म, धमासा, जवाखार गोखरू के बीज और हड़ इन सब औषधियों को समभाग लेकर पेठे के रस, पञ्चतृण के क्वाथ तथा गोखरू के रस की भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। शहद में मिलाकर रोगी को सेवन करावे पश्चात् पके हुए गूलर के फलों का चूर्ण एक तोला शहद के साथ चाटे, तो मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो। पथ्य—बकरी का दूध, खाँड तथा गन्ने का रस ॥ ३१-३५ ॥

मूत्रकृच्छ्रान्तक।

सूतं स्वर्णं च वैक्रान्तं गन्धतुल्यं विमर्दयेत्। चाण्डाली राक्षसीद्रावैर्द्वियामान्ते तु गोलकम् ॥ ३६ ॥ शुष्कं बद्ध्वा पुटेद्धाढः करीषाग्नौ महापुटे। माषमात्रं लिहेत् क्षौद्रैर्मूत्रकृच्छ्रप्रशान्तये ॥ ३७ ॥

पारद, सुवर्णभस्म, वैक्रान्तभस्म और शुद्ध गन्धक, इन्हें सम परिमाण में एकत्र कर चाण्डालिनीकन्द और सुरामांसी के रस से दो पहर मर्दन करके गोलाकार कर ले। पश्चात् सम्पुट में बंद कर महापुट दें और स्वाङ्गशीतल होने पर औषध को निकाल लें। मात्रा--आधी रत्ती, अनुपान—मधु। इसका सेवन करने से मूत्रकृच्छ्ररोग शान्त होता है ॥ ३६-३७ ॥

त्रिकण्टकाद्य घृत।

त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यभीरु
कर्कारुकेक्षुस्वरसेन सिद्धम्।
सर्पिर्गुडार्द्धांशयुतं प्रपेयं
कृच्छ्राश्मरीमूत्रविघातहेतोः ॥ ३८ ॥

गाय का घृत २ सेर, क्वाथार्थ गोखरू १ सेर, जल ८ सेर, शेष क्वाथ २ सेर, एरण्डमूल १ सेर, तृणपञ्चमूल मिलित १ सेर, जल ८ सेर, शेष क्वाथ २ सेर, शतावरि का रस २ सेर, कूष्माण्डरस २ सेर और ईख का रस २ सेर, इन सबको एकत्रकर पाक करे। सिद्ध हो जाने पर उतारकर गरम-गरम ही छान ले और सेर भर गुड़ मिलाकर आलोडित कर ले। इसके सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र तथा अश्मरीरोग नष्ट होता है। मात्रा--आधा तोला ॥ ३८ ॥

मूत्रकृच्छ्रहर।

विदारी गोक्षुरं यष्टी केशरं च समं पचेत्। तत्कषायं पिबेत् क्षौद्रे रसभस्मयुतं पुनः ॥ मूत्रकृच्छ्रं हरेत् सर्वं सप्ताहात् पित्तसम्भवम् ॥ ३९ ॥

विदारीकन्द, गोखरू, मुलेठी और नागकेसर इनका क्वाथ मधु मिलाकर पारदभस्म के साथ सेवन करे तो एक सप्ताह में पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो ॥ ३९ ॥

श्वदंष्ट्रादि लेप।

पिष्ट्वाश्वदंष्ट्रा फलमूलिकाभिरेर्वारुबीजानि सकाञ्जिकानि। आलिप्यमानानि समानि बस्तौ मूत्रस्य संशुद्धिकराणि सद्यः ॥ ४० ॥

गोखरू के बीज, गोखरू की जड़, ककड़ी के बीज इन्हें इकट्ठा कर काँजी में पीसकर बस्तिस्थल पर लेप करने से मूत्र मूत्राशय से बाहर निकल जाता है ॥ ४० ॥

बृहद्गोक्षुराद्यवलेप।

गोकण्टकं पलशतं दशमूलं तथैव च। पाषाणभेदोऽष्टपलं गुडूचीपलपञ्चकम् ॥ ४१ ॥ एरण्डोऽभीरुरष्टौ च मूलं दशपलं पृथक्। पद्ममूलं चाश्वगन्धा प्रत्येकं पलविंशतिः ॥ ४२ ॥ सर्वमेकत्र संकुट्य जलद्रोणे विपाचयेत्। पादशेषन्तु संगृह्य वस्त्रपूतं समाक्षिपेत् ॥ ४३ ॥ घनीभूते तु सञ्जाते द्रव्याणीमानि दापयेत्। गव्याज्यं प्रस्थमेकन्तु शिलाजञ्च तथा स्मृतम् ॥ ४४ ॥ तालमूली शताह्वा च त्रिकटु त्रिफला तथा। सूक्ष्मैला भूतकेशी च ह्रीवेरं नागकेशरम् ॥ ४५ ॥ पद्मकं जातिपत्रत्वक् मधुयष्टी सरोचना जातीफलमुशीरञ्च त्रिवृता रक्तचन्दनम् ॥ ४६ ॥ धान्यकं कटुकाक्षारौ नागवल्ली च शृङ्गिका। पुष्कराह्वं शटी दारु सीसलोहं च वङ्गकम् ॥ ४७ ॥ द्रव्याणीमानि संगृह्य प्रत्येकं पलमात्रकम्। स्निग्धभाण्डे नि-

धायाथ नित्यं माषद्वयोन्मितम् ॥ ४८ ॥ खादेद् बलाग्निं सम्प्रेक्ष्य पथ्यं सेवेत मानवः । अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च मूत्राघातं विबद्धताम् ॥ ४९ ॥ प्रमेहा विंशतिश्चैव शुक्रदोषस्तथैव च । धातुक्षयश्चोष्णवातो वातकुण्डलिकादयः ॥ ५० ॥ ते सर्वे प्रशमं यान्ति भास्करेण तमो यथा । नातः परतरं किञ्चित् कृष्णात्रेयेण पूजितम् ॥५१॥

गोखरू ५ सेर, पाषाणभेद ३२ तोले, गिलोय २० तोले, एरण्डी की जड़ ३२ तोले, शतावरि ४० तोले, कमल की जड़ ८० तोले, असगन्ध ८० तोले, इन्हें इकट्ठा कर कूटकर २५ सेर ४८ तोले जल मे पकावें जब ६ सेर ३२ तोले बाकी रह जाय तब उतार कर कपड़े से छान लें और पुनः अग्नि पर रक्खें। जब गाढ़ा हो जाय तब गोघृत १२८ तोले, शिलाजीत ६४ तोले, मूसली सोया, त्रिकुटा, त्रिफला, छोटी इलायची, भूतकेशी, गन्धबाला, नागकेशर, पद्माख, जावित्री, दारचीनी, मुलहठी, गोरोचन, जायफल, खस, निसोत, लालचन्दन, धनिया, कुटकी, जवाखार, सज्जीखार, पान की जड़, काकड़ासिंगी, पोहकरमूल, कचूर, देवदारु, सीसकभस्म, लोहभस्म, बङ्गभस्म, हरएक ४ तोले डालकर अच्छी तरह चलाकर घी के चिकने बर्तन में रक्खे। मात्रा--२ माशे । इसके सेवन से अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, मूत्रविबन्ध, प्रमेह, वीर्यदोष, धातुक्षय, उष्णवात और वातकुण्डलिका आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ४१-५१ ॥

सुकुमारकुमारक घृत ।

पुनर्नवामूलतुला दशमूलं शतावरी । बला तुरगगन्धा च तृणमूलं त्रिकण्टकम् ॥ ५२ ॥ विदारिगन्धा नागाह्वा गुडूच्यतिबला तथा । पृथग्दशपलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ५३ ॥ तेन पादावशेषेण घृतस्यार्द्धाढकं पचेत् । मधूकं शृङ्गवेरञ्च द्राक्षासैन्धवपिप्पलीः ॥ ५४ ॥ द्विपलिकाः पृथग् दद्याद्यमान्याः कुडवं तथा । त्रिंशद् गुडपलान्यत्र तैलस्यैरण्डजस्य च ॥ ५५ ॥ प्रस्थं दत्त्वा समालोड्य सम्यङ्मृद्वग्निना पचेत् ॥ एतदीश्वरपुत्राणां प्राग्भोजनमनिन्दितम् ॥ ५६ ॥ राज्ञां राजसमानाञ्च बहुस्त्रीपतयश्च ये । मूत्रकृच्छ्रे कटिस्तम्भे तथा गाढपुरीषिणाम् ॥ ५७ ॥ मेढ्रवङ्क्षणशूले च योनिशूले प्रशस्यते । यथोक्तानाञ्च गुल्मानां वातशोणितिकारचये ॥ ५८ ॥ बल्यं रसायनं शीतं सुकुमारकुमारकम् ॥ पुनर्नवाशते द्रोणो देयोऽन्येषु तथापरः ॥ ५९ ॥

सोंठी ५ सेर, पाक के लिए जल २५ सेर ४८ तोले, बचा हुआ क्वाथ ६ सेर ३२ तोले। दशमूल, शतावरि, खरेंटी की जड़, असगन्ध, पञ्चतृणमूल, गोखरू, शालिपर्णी, नागबला, गिलोय, अतिबला, हरएक ४० तोले। इन्हें इकट्ठा कर २५ सेर ४८ तोले जल में पकावें। जब चौथाई भाग बाकी रह जाय तब उतारकर कपड़े से छान लें । दोनों क्वाथ, गाय का घृत ३ सेर १६ तोले, गुड़ १२० तोले, अंडी का तैल १२८ तोले । कल्क के लिए मुलहठी, अदरख, दाख, सेंधानमक, पीपली हरएक ८ तोले, अजवाइन १६ तोले । इसे विधिपूर्वक मन्द आँच पर पकावें । इसे भोजन से पहिले ही सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से मूत्रकृच्छ्र, कटिस्तम्भ, शिश्नेन्द्रियशूल, वंक्षणशूल (रान का दर्द), योनिशूल, गुल्म, वातरक्त आदि रोग नष्ट होते हैं। जिनको दस्त में कड़ा मल आता हो उनके लिए भी लाभदायक है । यह घृत बलकारक, वीर्यवर्द्धक तथा रसायन है। सुकुमार पुरुषों तथा बच्चों के लिए लाभदाक होने से

इस घृत का नाम सुकुमारकुमारकघृत है। मात्रा—½-१ तोला॥ ५२-५६॥

शतावर्यादिसर्पि।

शतावरी काशकुशश्च दंष्ट्रा विदारिकेक्षामलकेषु सिद्धम्। सर्पिः पयो वा सितया विमिश्रं कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु योज्यम्॥ ६०॥

घृत ४ सेर, कल्क के लिए शतावरि, कॉस की जड़, कुश की जड़, गोखरू, विदारीकन्द, गन्ने की जड़, आँवला सब मिलाकर १ सेर। पाक के लिए जल १६ सेर। इस घृत को मन्द आँच पर पकावें। प्रयोग के समय इस घृत में खाँड मिलाकर सेवन करें। मात्रा—आधा तोला। अथवा इन्हीं द्रव्यों द्वारा दूध को सिद्ध कर पीवें अर्थात् शतावरि आदि मिलाकर २ तोले, दूध १६ तोले, जल ६४ तोले। जब पकाते-पकाते दूध मात्र बाकी बच रहे तब उतारकर छान लें और खाँड मिलाकर सेवन करावें॥ ६०॥

त्रिनेत्राख्य रस।

वङ्गं सूतं गन्धकं भावयित्वा लौहे पात्रे मर्दयेदेकयामम्। दूर्वा यष्टी गोक्षुरैः शाल्मलीभिः मूषामध्ये भूधरे पाचयित्वा॥ ६१॥ तत्तद् द्रावैर्भावयित्वास्य वल्लं दद्याच्छीतं पायसं वक्ष्यमाणम्। दूर्वा यष्टी शाल्मलीतोयदुग्धैस्तुल्यैः कुर्यात्पायसं तद्ददीत। प्रातःकाले शीतपानीयपानात् मूत्रे जाते स्यात्सुखी च क्रमेण॥ ६२॥

वङ्गभस्म, पारा, गन्धक इन्हें इकट्ठाकर बराबर मात्रा में मिलाकर दूब, मुलहठी, गोखरू तथा सेमल की जड़ के रस से लोहे के खरल में घोटें। पश्चात् सूख जाने पर एक मूषा में बन्द कर भूधरयन्त्र में पकावें। शीतल होने पर फिर ऊपर कही हुई औषधियों के रस से भावना दें और २ रत्ती की गोली बनावें। रोगी को इस गोली का सेवन कराकर नीचे लिखी हुई शीतल खीर खाने को दें। दूब, मुलहठी, सेमल की जड़ इनके क्वाथ से बराबर मात्रा में दूध को सिद्ध करें और दूध से खीर तैयार करें। प्रातःकाल शीतल जल के साथ इसे पीने से मूत्र के प्रवृत्त होने पर रोगी क्रमशः अच्छा हो जाता है॥ ६१-६२॥

वरुणाद्य लौह।

द्विपलं वरुणं धाव्यास्तदर्द्धं धातकीसुमम्। हरीतक्या पलार्द्धञ्च पृश्निपर्णी तदर्धकम्॥ ६३॥ कर्षमानञ्च लोहाभ्रं चूर्णमेकत्र कारयेत्। भक्षयेत्प्रातरुत्थाय माषकौ द्वौ विधानवित्॥ ६४॥ मूत्राघातं तथा घोरं मूत्रकृच्छ्रञ्च दारुणम्। अश्मरीं विनिहन्त्याशु प्रमेहं विषमज्वरम्॥ ६५॥ बलपुष्टिकरञ्चैव वृष्यमायुष्यमेव च। वरुणाद्यमिदं लौहं चरकेण विनिर्मितम्॥ ६६॥

बरना की छाल ८ तोले, आँवले ८ तोले, धाय के फूल ४ तोले, हड़ ४ तोले, पृश्निपर्णी २ तोले, लोहभस्म २ तोले, अभ्रकभस्म २ तोले, इन्हें इकट्ठा कर मिलावें। मात्रा—१ माशा से २ माशे तक। इसके सेवन से मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह, विषमज्वर आदि रोग नष्ट होते हैं। यह बलवर्द्धक, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक तथा आयुवर्द्धक है॥ ६३-६६॥

चन्द्रकला रस।

प्रत्येकं कर्षमात्रं स्यात्सूतं ताम्रं तथाभ्रकम्। द्विगुणं गन्धकञ्चैव कृत्वा कज्जलिकां शुभाम्॥ ६७॥ मुस्तादाडिमदूर्वोत्थैः केतकीस्तवकद्रवैः। सहदेव्याः कुमार्याश्च पर्पटस्य च वारिणा॥ ६८॥ रामशीतलिकातोयैः शतावर्या रसेन च।

भावयित्वा प्रयत्नेन दिवसे दिवसे पृथक् ॥ ६९ ॥ तिक्ता गुडूचिकासत्त्वं पर्पटोशीरमाधवी। श्रीगन्धं सारिवा चैषां समानं सूक्ष्मचूर्णितम् ॥ ७० ॥ द्राक्षाफलकषायेण सप्तधा परिभावयेत्। ततः पोताश्रयं कृत्वा वल्यः कार्यश्चणोपमाः ॥ ७१ ॥ अयं चन्द्रकला नाम्ना रसेन्द्रः परिकीर्तितः। सेव्यः पित्तगदध्वंसी वातपित्तगदापहः ॥ ७२ ॥ अन्तर्बाह्यमहादाहविध्वंसनमहाघनः। ग्रीष्मकाले शरत्काले विशेषेण प्रशस्यते ॥ ७३ ॥ कुरुते नाग्निमान्द्यं च महातापं ज्वरं हरेत्। भ्रममूर्च्छाहरश्चाशु स्त्रीणां रक्तं महास्रवम् ॥ ७४ ॥ ऊर्ध्वाधो रक्तपित्तञ्च रक्तवान्तिं विशेषतः। मूत्रकृच्छ्राणि सर्वाणि नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ७५ ॥

पारा २ तोला, ताम्रभस्म २ तोले, अभ्रकभस्म २ तोले, गन्धक ४ तोले। इसमें पहिले पारा तथा गन्धक की कज्जली करके तत्पश्चात् ताम्रभस्म और अभ्रकभस्म मिलावें। इसके बाद मोथा, अनार, दूब, केवड़ा, सहदेई, ग्वारपाठा, पित्तपापड़ा, आरामशीतलिका और शतावरि इनके रस से अलग-अलग एक-एक भावना दें। तदनन्तर सूख जाने पर कुटकी, गिलोय का सत, पित्तपापड़ा, खस, माधवी, सफेदचन्दन, शारिवा हरएक दो-दो तोले, बारीक चूर्ण को मिलाकर दाख के क्वाथ से सात बार भावना देकर चने के बराबर गोलियां बना लें। इसे चन्द्रकला रस कहते हैं। यह पित्तरोग तथा वातपित्तरोगों को नष्ट करता है। यह बाहिरी तथा भीतरी दाह नष्ट करने के लिए अत्यन्त श्रेष्ठ है। ग्रीष्म तथा शरद्ऋतु में अर्थात् जब पित्त का संचय अथवा प्रकोप होता है, यह विशेषतया लाभकारक है। इसके सेवन से भ्रम, मूर्च्छा, रक्तप्रदर, ऊर्ध्वगरक्तपित्त, अधोगत रक्तपित्त, रक्तवमन तथा सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र नष्ट होते हैं। यह रस ज्वर की बढ़ी हुई गरमी को हरता है। यद्यपि यह पित्त को नष्ट करता, परन्तु इसके सेवन से मन्दाग्नि नहीं होती, अर्थात् यह चन्द्रकला रस बढ़े हुए पित्त को ठीक अवस्था में लाता है ॥ ६७-७५ ॥

मूत्रकृच्छ्र में पथ्य।

पुरातनालोहितशालयश्च धन्वामिषं मुद्गरसः सिता च। तक्रं पयो गोश्च दधिप्रभूतं पुराणकूष्माण्डफलं पटोलम् ॥ ७६ ॥ ऊर्वारुखर्जूरकनारिकेलं तण्डुलियं चामलकञ्च सर्पिः। प्रतीरनीरं हिमवालुका च मित्रं नृणां स्यात्सति मूत्रकृच्छ्रे ॥ ७७ ॥

पुराना लाल शालि चावल, जाङ्गल मांस, मूँग का यूष, खाँड, छाँछ, गौ का दूध, दही, पुराना पेठा, परवल, खरबूजा अथवा ककड़ी, खजूर, नारियल, चौलाई, आँवला, घी, नदी का जल और कपूर, ये मूत्रकृच्छ्र रोगियों के लिए पथ्य हैं ॥ ७६-७७ ॥

मूत्रकृच्छ्र में अपथ्य।

मद्यं श्रमं निधुवनं गजवाजियानं सर्वं विरुद्धमशनं विषमाशनञ्च। ताम्बूलमत्स्यलवणार्द्रकतैलभृष्टं पिण्याकहिंगुतिलसर्षपमूत्रवेगान् ॥ ७८ ॥ माषान् करीरमतितीक्ष्णविदाहिरूक्षमम्लं प्रमुञ्चतु जनः सति मूत्रकृच्छ्रे ॥ ७९ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मूत्रकृच्छ्राधिकारः समाप्तः।

शराब, परिश्रम, मैथुन, हाथी एवं घोड़े आदि की सवारी, विरुद्ध भोजन, विषम भोजन, पान, मछली, नमक, अदरक, तैल से पकाये हुए पदार्थ, तिल कल्क, हींग,

तिल, सरसों, मूत्र का वेग, उड़द, टैंटी, अतितीक्ष्ण (लाल मिरच आदि), जलन पैदा करनेवाले पदार्थ, रूक्ष पदार्थ, खटाई, इनका मूत्रकृच्छ्र के रोगी को त्याग करना चाहिए ॥ ७८-७९ ॥

इति श्रीपण्डितसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां मूत्रकृच्छ्राधिकारः समाप्तः।

अथ मूत्राघाताधिकारः।

मूत्राघातान् यथादोषं मूत्रकृच्छ्रहरैर्जयेत्। बस्तिमुत्तरबस्तिश्च दद्यात् स्निग्धविरेचनम् ॥ १ ॥

दोषानुसार मूत्रकृच्छ्रनाशक औषधियों द्वारा मूत्राघात रोग को जीते। गुदबस्ति, उत्तरबस्ति और स्निग्ध विरेचन दे ॥ १ ॥

कल्कमेर्वारुबीजानामक्षमात्रं ससैन्धवम्। धान्याम्लयुक्तं पीत्वैव मूत्राघाताद्विमुच्यते ॥ २ ॥

एक तोला ककड़ी के बीज का कल्क बनाकर उसमें सेंधा नमक और कांजी मिलाकर पीते ही मूत्राघात से मुक्ति होती है ॥ २ ॥

यवक्षारगुडोन्मिश्रं पिबेत् पुष्पफलोद्भवम्। रसं मूत्रविबन्धघ्नं शर्कराश्मरिनाशनम् ॥ ३ ॥

यवक्षार और गुड मिलाकर [illegible] के रस को पीने से मूत्राघात, शर्करा और अश्मरी रोग नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

सपत्रफलमूलस्य क्वाथं गोक्षुरकस्य च। पिबेन्मधुसितायुक्तं मूत्राघातादिरोगनुत् ॥ ४ ॥

गोखरू के पञ्चाङ्ग का क्वाथ बनाकर उसमें मधु और शक्कर मिलाकर पीने से मूत्राघात आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

नलकुशकाशेक्षुशिफां क्वथितां प्रातः सुशीतलां ससिताम्। पिबतः प्रयाति नियतं मूत्रग्रह इत्युवाच चरकः ॥ ५ ॥

नरकुल, कुश, काश और ईख के मूल का क्वाथ बनाकर शीतल होने पर उसमें मिसरी मिलाकर प्रातःकाल पान करे तो अवश्य ही मूत्राघात रोग नष्ट होता है। ऐसा चरक ने कहा है ॥ ५ ॥

बिम्बीमूलं च संपिष्टं काञ्जिकेन समन्वितम्। नाभिलेपनमात्रेण मूत्ररोधं निहन्ति च ॥ ६ ॥

बिम्बी के मूल को कांजी में पीसकर नाभि पर लेप करते ही मूत्राघात रोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

मूत्रे विपन्ने कर्पूरचूर्णं लिङ्गे प्रवेशयेत्। कूष्माण्डकरसो वापि पेयः सक्षारशर्करः ॥ ७ ॥

मूत्राघात रोग में यदि मूत्र न उतरे, तो लिङ्ग के छिद्र में कपूर का चूर्ण प्रविष्ट करावे अथवा पेठे के रस में यवक्षार और शक्कर मिलाकर पान करे ॥ ७ ॥

जलेन खदिरीबीजं मूत्राघाताश्मरीहरम्। मूलं रुद्रजटायाश्च तक्रपीतं तदर्थकृत् ॥ ८ ॥

खदिरी के बीज को जल में पीसकर पीने से मूत्राघात और अश्मरी रोग नष्ट होता है। रुद्रजटा के मूल का तक्र के साथ सेवन करने से भी वही गुण होता है ॥ ८ ॥

सुरां सौवर्चलवतीं मूत्राघाती पिबेन्नरः। दाडिमाम्बुयुतं मुख्यमेलाबीजं सनागरम् ॥ पीत्वा सुरां सलवणां मूत्राघाताद्विमुच्यते ॥ ९ ॥

शराब में काला नमक डालकर पीने से अथवा छोटी इलायची के चूर्ण और सोंठ के चूर्ण को मिलाकर अनार के रस के साथ

पीने से अथवा शराव में सेंधानमक डालकर पीने से रोगी का मूत्राघात रोग नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

कर्कटीबीजादि चूर्ण।

कर्कटीबीजसिन्धूत्थत्रिफलासमभागिकम्। पीतमुष्णाम्भसा चूर्णं मूत्ररोधं निवारयेत् ॥ १० ॥

ककड़ी के बीज, सेंधानमक, हड़, बहेड़ा, आँवला, इन सबको बराबर मात्रा में मिलाकर चूर्ण करे। इस चूर्ण को गरम जल के साथ पीने से मूत्राघात रोग नष्ट होता है। मात्रा—१ माशे ॥ १० ॥

दशमूल क्वाथ।

दशमूलीभृतं पीत्वा सशिलाजतुशर्करम्। वातकुण्डलिकाष्ठीला वातवस्तौ प्रमुच्यते ॥ ११ ॥

दशमूल के क्वाथ में शिलाजीत ४ रत्ती तथा खाँड डालकर पीने से वातकुण्डलिका, अष्ठीला तथा वातवस्ति नामक रोग नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

शिलाजतु प्रयोग।

सशर्करञ्च समधु लीढं शुद्धं शिलाजतु। निहन्ति मूत्रजठरं मूत्रातीतञ्च देहिनाम् ॥ १२ ॥

शिलाजीत में खाँड़ तथा शहद को मिलाकर चाटने से मूत्रजठर तथा मूत्रातीत रोग नष्ट होता है। शिलाजीत की मात्रा—२ रत्ती से ८ रत्ती तक ॥ १२ ॥

धान्यगोक्षुर घृत।

धान्यगोक्षुरकक्वाथकल्कयुक्तं घृतं हितम्। मूत्राघाते मूत्रदोषे शुक्रदोषे च दारुणे ॥ १३ ॥

गोघृत ४ सेर, धनिया तथा गोखरू का क्वाथ १६ सेर, कल्क के लिए धनिया तथा गोखरू मिलाकर १ सेर। विधिपूर्वक घृत पकाकर रोगी को सेवन करावे। मात्रा—आधा तोला। इस घृत के सेवन से मूत्राघात तथा मूत्र और वीर्य के दोष नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

भृतशीतपयोऽन्नाशी चन्दनं तण्डुलाम्बुना। पिबेत् सशर्करं श्रेष्ठमुष्णवातविनाशनम् ॥ १४ ॥

तण्डुलोदक में चन्दन और शक्कर मिलाकर पान करे और श्रृतशीत (औटाकर ठंडे किये हुए) दुग्ध के साथ भात खावे, तो उष्णवात रोग नष्ट होता है। यह इसकी श्रेष्ठ औषधि है ॥ १४ ॥

गोधापद्या मूलं घृततैलगोरसोन्मिश्रम्। पीतं निरुद्धमचिराद्भिनत्ति मूत्रस्य संरोधम् ॥ १५ ॥

हंसपदी की लता के मूल को पीसकर घृत, तैल और दुग्ध मिलाकर पान करे, तो मूत्राघात रोग में रुके हुए मूत्र को तत्काल निकाल देता है ॥ १५ ॥

वराम्ललवणोपेतं सूतं यश्च पिबेन्नरः। तस्य नश्यन्ति वेगेन मूत्राघातास्त्रयोदश ॥ १६ ॥

त्रिफला, काँजी और नमक के साथ पारद-भस्म को जो मनुष्य पान करता है उसके तेरह प्रकार के मूत्राघात शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १६ ॥

चित्रकाद्य घृत।

चित्रकं शारिवा चैव बला कालानुसारिवा। द्राक्षा विशाला पिप्पल्यस्तथा चित्रफला भवेत् ॥ १७ ॥ तथैव मधुकं दद्याद्दद्यादामलकानि च। घृताढकं पचेदेभिः कल्कैरक्षसमन्वितैः ॥ १८ ॥ क्षीरद्रोणे जलद्रोणे तत्सिद्धमवतारयेत्। शीतं परिस्रुतञ्चैव शर्करामस्थसंयुतम् १९॥ तुगाक्षीर्याश्च तत्सर्वं मतिमान् प्रतिमिश्रयेत्। ततो मितं पिबेत् काले यथा-

दोषं यथाबलम् ॥ २० ॥ वातरेता पित्तरेता श्लेष्मरेता च यो भवेत् । रक्तरेता ग्रंथिरेता पिबेदिच्छन्नरोगिताम् ॥ २१ ॥ जीवनीयञ्च वृष्यञ्च सर्पिरेतन्महागुणम् । प्रजाहितञ्च धन्यञ्च सर्वरोगापहं शिवम् ॥ २२ ॥ सर्पिरेतत्प्रयुञ्जाना स्त्री गर्भं लभतेऽचिरात् । असृग्दोषान् जयेच्चापि योनिदोषांश्च संहतान् ॥ मूत्रदोषेषु सर्वेषु कुर्यादेतच्चिकित्सितम् ॥ २३ ॥

गोघृत ६ सेर १२ तोले, दूध २१ सेर ४८ तोले, जल २१ सेर ४८ तोले, कल्क के लिये-चित्रक, अनन्तमूल, बला, तगर, दाख, इन्द्रायण की जड, पीपल, चिर्मिट, मुलहठी, आँवला हरएक दो-दो तोले । विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर कपड़े से छान लें । इसमें खाँड ६४ तोले तथा वंशलोचन १४ तोले मिलाकर पात्र में रक्खें, तदनन्तर मात्रानुसार इसे सेवन करावें । मात्रा—आधा तोला से १ तोला तक । इस घृत के सेवन से वात, पित्त, कफ तथा रक्त आदि द्वारा दूषित वीर्य तथा ग्रन्थिवीर्य आदि रोग नष्ट होते हैं । यह घृत जीवनीय, वीर्यवर्धक तथा गर्भकारक है । यह रक्तदोष एवं योनिदोष को हरता है । सम्पूर्ण मूत्ररोगों में इसका प्रयोग लाभदायक है ॥ १७—२३ ॥

भद्रावह घृत ।

अश्मघ्ना पाटला चैव वर्षाभूद्वयमेव च । विदारिकन्दः काशश्च कुशमोरटगोक्षुराः ॥ २४ ॥ पाषाणभेदो वाराही शालिमूलं शरस्तथा । भल्लातकं शिरीषस्य मूलमेषामथाहरेत् ॥ २५ ॥ समभागानि सर्वाणि क्वाथयित्वा विचक्षणः । पादशेषकषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २६ ॥ कल्कं दत्वाथ मतिमान् गिरिजं मधुकं तथा । नीलोत्पलञ्च काकोलीं बीजं त्रापुसमेव च ॥२७॥ कौष्माण्डञ्च तथैर्वारुसंभवञ्च समं भवेत् । उष्णवातं निहन्त्येतद् घृतं भद्रावहं शुभम् ॥ मूत्राघाताश्मरीमेहान् भास्करस्तिमिरं यथा ॥ २८ ॥

गोघृत १२८ तोले, कल्क के लिये- पाठा, पाडल, सफेद साँठी, लालसाँठी, विदारीकन्द, काश, कुश, गन्ने की जड, गोखरू, पाषाणभेद, वाराहीकन्द, शालिधान्य की जड़, सरकंडे की जड़, भिलावाँ, सिरस की जड, सब मिलाकर ३ सेर १६ तोले । क्वाथ के लिये जल २६ सेर ४८ तोले, बाकी ६ सेर ३२ तोले । कल्क के लिये शैलज, मुलहठी, नीलकमल, काकोली, खीरे के बीज, पेठे के बीज मिलाकर ३२ तोले । इसे विधिपूर्वक सिद्धकर सेवन करने से उष्णवात, मूत्राघात, अश्मरी तथा प्रमेहरोग नष्ट होता है । मात्रा-आधा तोला से १ तोला तक ॥२४--२८॥

विदारी घृत ।

विदारी वृषको यूथी मातुलुङ्गी च भूस्तृणम् । पाषाणभेदः कस्तूरी वसुकोवशिरोऽनलः ॥ २९ ॥ पुनर्नवा वचा रास्ना बला चातिबला तथा । कशेरुबिसशृङ्गाटतामलक्यः स्थिरादयः ॥ ३० ॥ शरेक्षुदर्भमूलञ्च कुशः काशस्तथैव च । पलद्वयन्तु संहृत्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ३१ ॥ पादशेषे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् । शतावर्यास्तथा धात्र्याःस्वरसो घृतसम्मितः ॥ ३२ ॥ षट्पलं शर्करायाश्च कार्षिकाण्यपराणि च । यष्टया पिप्पली द्राक्षा काश्मर्य सपरूषकम् ॥ ३३ ॥ एला दुरालभा कौन्ती कुंकुमं नागकेशरम् । जीवनीयानि चाष्टौ च दत्वा च द्विगुणं पयः ॥ ३४ ॥ एतत्सर्पिर्विपक्तव्यं शनैर्मृदग्निना बुधैः । मूत्राघातेषु सर्वेषु विशेषात्पित्तजेषु च ॥ ३५ ॥ शर्कराश्मरि-

शूलेषु शोणितप्रभवेषु च। हृद्रोगे पित्तगुल्मे च वातासृक्पित्तजेषु च॥ ३६॥ कासश्वासक्षतोरस्के धनुस्त्रीभारकर्षिते। तृष्णाच्छर्दिमनःकम्पशोणितच्छर्दिनेतथा॥ ३७॥ रक्ते यक्ष्मण्यपस्मारे तथोन्मादे शिरोग्रहे। योनिदोषे रजोदोषे शुक्रदोषे स्वरामये॥ ३८॥ एतत्स्मृतिकरं हृद्यं वाजीकरणमुत्तमम्। पुत्रदं बलवर्णाढ्यं विशेषाद्वातनाशनम्॥ ३९॥ पानभोजननस्येषु न क्वचित्प्रतिहन्यते। विदारीघृतमित्युक्तं रसायनमनुत्तमम्॥ ४०॥

गोघृत १२८ तोले, क्वाथ के लिये—विदारीकन्द, अड़ूसा, जूही, बिजौरे की जड़, गन्धतृण, पाषाणभेद, कस्तूरी, आक (मदार), गजपीपल, चित्रक, सोंठी, बच, रास्ना, बला, अतिबला, केसर कमल की जड़, सिंघाड़ा, भुईंआंवला, शालपर्णी, सरकण्डे की जड़, गन्ने की जड़, डाभ की जड़, कुश की जड़, काश की जड़, हरएक ८ तोले। पाक के लिए जल २५ सेर ४८ तोले, बचा हुआ क्वाथ ६ सेर ३२ तोले, शतावर का रस १२८ तोले, आंवले का रस १२८ तोले, दूध ३ सेर १६ तोले। कल्क के लिए—खाँड २४ तोले, मुलहठी, पीपल, दाख, कम्भारी, फालसा, छोटी इलायची, धमासा, सम्भालू के बीज, केशर, नागकेशर, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक और ऋषभक, हरएक दो-दो तोले। इसे विधिपूर्वक मन्दी मन्दी आंच पर पकावे, जब पक जाय तब उतार ले। इस घृत के सेवन से सब प्रकार के मूत्राघात, विशेषतः पैत्तिक मूत्राघात नष्ट होता है। यह शर्करा, अश्मरी, शूल, रक्तजरोग, हृद्रोग, पित्तगुल्म, वातरक्त तथा पित्तजन्य रोग, खाँसी, श्वास, उरःक्षत, तृष्णा, वमन, रक्तवमन, यक्ष्मा, अपस्मार, शिरोवेदना, योनिदोष, वीर्यदोष, स्वरभङ्ग आदि रोगों में लाभदायक है। अतिव्यायाम तथा मैथुन आदि द्वारा थके हुए आदमी को इसे सेवन करना चाहिए। यह घृत बुद्धिवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, वाजीकरण, पुत्रदायक बल, बुद्धिवर्द्धक और रंग को उज्ज्वल करनेवाला है। पान, भोजन तथा नस्य आदि द्वारा इस घृत का सेवन करना चाहिए। मात्रा—६ माशा से १ तोला तक॥ २९-१०॥

शिलोद्भिदादि तैल।

शिलोद्भिदैरण्डसमस्थिराभिः पुनर्नवाभीरुरसेषु सिद्धम्। तैलं भृतं क्षीरमथानुपानं कालेषु कृच्छ्रादिषु सम्प्रयोज्यम्॥ ४१॥

तैल ४ सेर, सोंठी तथा शतावरि का रस १६ सेर। कल्क के लिए पाषाणभेद, अरण्डी की जड़, शालपर्णी मिलाकर १ सेर। विधिपूर्वक तैल सिद्धकर दूध के साथ सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र आदि रोग नष्ट होते हैं। मात्रा—आधा तोला॥ ४१॥

क्षतजे शल्यजे चैव मूत्रग्रन्थौ प्रवेशयेत्। शलाकां कुशलो वैद्यो मूत्राघातप्रशान्तये॥ ४२॥

क्षत एवं शल्य से पैदा होनेवाली मूत्रग्रन्थि में सलाई (Bougie) का प्रवेश कराना चाहिए। इस प्रकार मार्ग के खुल जाने से मूत्राघात शान्त हो जाता है। जैसे पूयमेह आदि में मूत्रनाली में व्रण हो जाने के बाद एक किण (Sean) बच जाता है और यह मूत्रमार्ग को रोक देता है, वैसे ही इस रुकावट को भी हटाने के लिए शलाका प्रवेश कराई जाती है। सबसे पहिले पतली, तदनन्तर क्रमशः मोटी सलाई का प्रवेश कराया जाता है॥ ४२॥

उशीराद्य तैल।

उशीरं तगरं कुष्ठं यष्टीमधुकचन्दनम्। विभीतक्यभया भीरुः पद्ममुत्पलशारिवे॥ ४३॥ बला तुरगगन्धा च दशमूलं शतावरी। विदारी चैव काकोली

गुडूच्यतिबला तथा ॥ ४४ ॥ श्वदंष्ट्रा शतपुष्पा च वाट्यालकमधूरिके। एतैः कर्षमितैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४५ ॥ सपत्रफलमूलस्य गोक्षुरस्य पलं शतम्। जलद्रोणे विपक्तव्यं पादांशेनावतारयेत् ॥ ४६ ॥ तक्रं तैलसमं देयं वीरणक्वाथकाढकम्। मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रमश्मरीं हन्ति दारुणाम् ॥ ४७ ॥ बलवर्णकरं वृष्यं वातपित्तनिषूदनम्। उशीराद्यमिदं तैलं काशिराजेन निर्मितम् ॥ ४८ ॥

खस, तगर, कूट, मुलेठी, चन्दन, बहेड़ा, इड, कटेरी, पदुमकाठ, कमल, शारिवा, खरेटी, असगन्ध, दशमूल, शतावरि, विदारीकन्द, काकोली, गुर्च, अतिबला, गोखरू, सौंफ, खरेंटी और सोवा एक-एक तोला लेकर, कल्क बनावे। पत्र-मूल-फलसहित ५ सेर गोखरू को २५ सेर ४८ तोले पानी में पकावे। ६ सेर १२ तोले शेष रहने पर उतारकर छान ले और इसी प्रकार चार सेर उशीर (खस) का भी क्वाथ बना ले। पूर्वोक्त कल्क और दोनों क्वाथ दो सेर तक्र के साथ दो सेर तैल में पकावे। यह तैल मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र तथा दारुण अश्मरी को नष्ट करता है। बल और कान्ति को बढ़ाता है। वात और पित्त को नष्ट करता है। इस 'उशीरादि तैल' को काशिराज ने बनाया था ॥ ११-४८ ॥

मूत्राघात में पथ्य।

अभ्यञ्जनस्नेहविरेकबस्ति स्वेदावगाहोत्तरबस्त्यश्च। पुरातनालोहितशालयश्च मांसानि धन्वप्रभवाणि मद्यम् ॥ तक्रं पयोदध्यपि माषयूषः पुराणकूष्माण्डफलं पटोलम्। महार्द्रक तालफलास्थिमज्जा हरीतकी कोमलनारिकेलम् ॥ ४९ ॥ गुवाकखर्जूरकनारिकेलतालद्रुमाणामपि मस्तकानि। यथाबलं सर्वमिदञ्च मूत्राघातातुराणां हितमामनन्ति ॥ ५० ॥

तेलादि की मालिश स्नेहपान जुलाब बस्तिकर्म स्वेदन जल क्रीडा उत्तर बस्ति पुराने लाल चावल मरुस्थल देश के पशु पक्षियों के मांस मदिरा छाँछ, दूध, दही, उडद का यूष, पुराना पेठा, परवल, तिक्त-तडीक, तालफल की गुठली की गिरी, सुपारी, खजूर, नारियल तथा ताड़ के वृक्षों के मस्तक, इन्हें रोग दोष के बलानुसार मूत्राघात में हितकारक समझना चाहिए ॥ ४९-५० ॥

अपथ्य।

विरुद्धानि च सर्वाणि व्यायामं मार्गशीतलम्। रूक्षं विदाहि विष्टम्भि व्यवायं वेगधारणम् ॥ करीरं वमनञ्चापि मूत्राघाती विवर्जयेत् ॥ ५१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मूत्राघाताधिकारः समाप्तः।

विरुद्ध भोजन, व्यायाम, अत्यन्त चलना, शीतल द्रव्य, रूक्ष, विदाही एवं विष्टम्भी द्रव्य, मैथुन, वेगों का रोकना, करीर (टेंटी) और वमन, ये मूत्राघात रोगी के लिए अपथ्य हैं ॥५१॥

इति श्रीपण्डितसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां मूत्राघाताधिकारः समाप्तः।

अथ अश्मर्यधिकारः।

अश्मरी दारुणो व्याधिरन्तकप्रतिमो मतः। औषधैस्तरुणः साध्यः प्रवृद्धश्छेदमर्हति ॥ १ ॥

पथरी अत्यन्त भयानक रोग है। यह यम के समान ही मारनेवाला है। यह तरुणावस्था में औषधियों द्वारा सिद्ध हो सकती है। परन्तु अश्मरी (पथरी) के अत्यन्त बढ़ जाने पर शस्त्रचिकित्सा ही करनी चाहिए ॥ १ ॥

वरुणादि क्वाथ।

वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां शुण्ठीगोक्षुरसंयुताम्। यवक्षारं गुडं दत्त्वा क्वाथयित्वा जलं पिबेत्। अश्मरीं वातजां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ २ ॥

वरना की छाल, सोंठ और गोखरू का काढ़ा बनाकर उसमें जवाखार और गुड़ मिलाकर पान करे। यह काढ़ा चिरकालोत्पन्न वातज अश्मरी को नष्ट करता है ॥ २ ॥

शुण्ठ्यादिकषाय।

शुण्ठ्यग्निमन्थपाषाणशिग्रुवरुणगोक्षुरैः। काश्मर्यारग्वधफलैः क्वाथं कृत्वा विचक्षणः ॥ ३ ॥ रामठक्षारलवणचूर्णं दत्त्वा पिबेन्नरः। अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं दीपनं पाचनं परम् ॥ हन्यात्कोष्ठाश्रितं वातं कट्यूरुगुदमेढ्रजम् ॥ ४ ॥

सोंठ अरणी, पाषाणभेद, सहिजने की जड़ की छाल, वरना की छाल, गोखरू, कम्भारी, अमलतास फल, सब मिलाकर २ तोले। क्वाथ के लिए जल ३२ तोले, शेष ८ तोले। इस क्वाथ में हींग, जवाखार तथा सेंधानमक डालकर पीने से अश्मरी तथा मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है। यह क्वाथ अग्नि को तीव्र करनेवाला तथा पाचन है। यह कोष्ठ, कटि, ऊरु, गुदा तथा शिश्नगत वात को नष्ट करता है ॥ ३-४ ॥

एलादि क्वाथ।

एलोपकुल्यामधुकाश्मभेदकौन्तीश्वदंष्ट्रावृषकोरुबूकैः। शृतं पिबेदश्मजतुप्रगाढं सशर्करे चाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ॥ ५ ॥

छोटी इलायची, पीपल, मुलहठी, पाषाणभेद, सम्भालू के बीज, गोखरू, अडूसा, अरण्डी की जड़ सब मिलाकर २ तोले। क्वाथ के लिए जल ३२ तोले, बाकी ८ तोले। इस क्वाथ में शिलाजीत डालकर शर्करा, अश्मरी तथा मूत्रकृच्छ्र में पीना चाहिए ॥ ५ ॥

ऊषकादि गण।

ऊषकं सैन्धवं हिंगु कासीसद्वयगुग्गुलः। शिलाजतु तुत्थकञ्च ऊषकादिरुदाहृतः ॥ ६ ॥ ऊषकादिगणो हन्ति कफमेदोविशोधनः। अश्मरीशर्करामूत्रशूलघ्नः कफगुल्मनुत् ॥ ७ ॥

खारमृत्तिका, सेंधानमक, हींग, कसीस, पुष्पकसीस, गूगल, शिलाजीत, तूतिया, इसे ऊषकादिगण कहते हैं। यह ऊषकादिगण कफघ्न, मेदशोधक और अश्मरी, शर्करा, मूत्रशूल तथा कफगुल्म को नष्ट करता है ॥ ६-७ ॥

श्वदंष्ट्रादि क्वाथ।

श्वदंष्ट्रैरण्डपत्राणि नागरं वरुणत्वचम्। एतत्क्वाथवरं प्रातः पिबेदश्मरिभेदनम् ॥ ८ ॥

गोखरू, अरण्डी के पत्ते, सोंठ और वरना की छाल, इनका क्वाथ प्रातःकाल पीने से अश्मरी नष्ट होती है ॥ ८ ॥

अश्मरिभेदन योग।

मूलं श्वदंष्ट्रेक्षुरकोरुबूकात् क्षीरेण पिष्टं बृहतीद्वयञ्च। आलोड्य दध्ना मधुरेण पेयं दिनानि सप्ताश्मरिभेदनार्थम् ॥ ९ ॥

गोखरू की जड़, तालमखाना की जड़, अरण्डी की जड़ और कटेरी, इन्हें बराबर मात्रा में इकट्ठा कर दूध से पीसकर मीठे दही में

मिला सात दिन तक पीने से अश्मरी रोग नष्ट होता है। चूर्ण की मात्रा ३ मासे ॥ ९ ॥

बृहद्वरुणादि क्वाथ।

वारुणं वल्कलं शुण्ठी बीजं गोक्षुरसम्भवम्। तालमूलीकुलत्थञ्च कुशादिपञ्चमूलकम् ॥ १० ॥ शर्कराक्षारसंयुक्तं क्वाथयित्वाजलं पिबेत्। अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं वस्तिमेहनशूलनुत् ॥ ११ ॥

वरना की छाल, सोंठ, गोखरू के बीज, काली मुसली, कुरथी, तथा "कुश, काश दर्भ शर और ईख" इन पाँचों के मूल का काढ़ा बनाकर उसमें शक्कर और जवाखार, मिलाकर पान करे। यह काढ़ा अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है। वस्ति और मूत्रेन्द्रिय के शूल को दूर करता है ॥ ११ ॥ मात्रा ४-६ तोला

सगुडो वरुणक्वाथस्तत् कल्केनाथवान्वितः। शिग्रुक्वाथोऽथवास्युष्णोहन्त्याशु सरुगश्मरीम् ॥ १२ ॥

वरना की छाल के काढ़े या कल्क में मिलाकर पुराने गुड़ का अथवा अत्यन्त उष्ण सहिंजन के काढ़े का सेवन करे। यह क्वाथ पीड़ासहित अश्मरी को तत्काल नष्ट करता है ॥ १२ ॥

त्रिकण्टकस्य बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम्। अजाक्षीरेण सप्ताहं पेयमश्मरिभेदनम् ॥ १३ ॥

मधुमिश्रित ३ माशा गोखरू के चूर्ण को खाकर बकरी का दूध सप्ताह पर्यन्त पान करना चाहिए। यह योग अश्मरीनाशक है ॥ १३ ॥

प्रपिबेत्तालमूल्या वा कल्कं व्युषितवारिणा। तेनैवाथ गवाक्ष्या वा त्र्यहादश्मरिपातनम् ॥ १४ ॥

काली मुसली अथवा इन्द्रायण की जड़ को बासी पानी में पीसकर बासी पानी के साथ सेवन करे तो तीन ही दिन में पथरी गिर जाती है ॥ १४ ॥

यो नारिकेलकुसुमं सक्षारं वारिणा पिष्ट्वा। पिबति तस्य हि दिनैकान्निपतति घोराश्मरी नूनम् ॥ १५ ॥

जो नारियल के फूल को जल के साथ पीसकर उसमें जवाखार मिलाकर पीता है उसकी घोर पथरी एक ही दिन में नि सदेह गिर जाती है ॥ १५ ॥

कुलत्थाद्य घृत।

कुलत्थसिन्धूत्थविडङ्गसारं सशर्करं शीतलियावशूकम्। बीजानि कूष्माण्डकगोक्षुराभ्यां घृतं पचेत् तद्वरुणस्य तोये ॥ १६ ॥ दुःसाध्यसर्वाश्मरिमूत्रकृच्छ्रं मूत्राभिघातं च समूत्रबद्धम्। एतानि सर्वाणि निहन्ति शीघ्रं मल्लद्रुमानिव वज्रपातः ॥ १७ ॥

शीतलियावशूकमिति यवक्षारः। स च स्फटिकसैन्धवसङ्काशः। अन्ये तु शीतली स्वनामख्याता इति।

कुरथी, सेंधानमक, वायविडंग, शक्कर, जवाखार, कूष्माण्ड और गोखरू के बीज दो-दो तोले लेकर कल्क बनावे। चार सेर वरना की छाल को ३२ सेर जल में पकावे, जब आठ सेर जल शेष रह जाय, तो उतारकर छान ले। उक्त कल्क और क्वाथ के साथ दो सेर घृत पकावे। यह घृत दुःसाध्य सब प्रकार की अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और मूत्रबद्धता को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे प्रौढ़ वृक्ष को वज्रपात नष्ट करे।

इस योग में 'शीतलयावशूकम्' का अर्थ यवक्षार है। यह स्फटिक अथवा सेंधव लवण के सदृश होता है। कुछ लोगों का मत है कि 'शीतलियावशूकम्' से शीतली इस नाम से प्रसिद्ध द्रव्य गृहीत होता है ॥१६-१७॥

वाताश्मरी में पाषाणभेदाद्य घृत।

पाषाणभेदो वसुको वशिरोऽश्मन्तक-

स्तथा । शतावरी श्वदंष्ट्रा च बृहती कण्टकारिका ॥ १८ ॥ कपोतवक्त्रार्त्तगलाकाञ्चोनोशीरगुल्मकाः । वृक्षादनी भल्लुकश्च वरुणः शाकजं फलम् ॥ १९ ॥ यवाः कुलत्थाः कोलानि कतकस्य फलानि च । ऊपकादिप्रतीवापमेषां क्वाथे शृतं घृतम् ॥ २० ॥ भिनत्ति वातसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु । क्षारान् यवागूः पेयाश्च कषायाणि पयांसि च । भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन्वातनाशने ॥ २१ ॥

घृत ४ सेर। क्वाथ के लिए पाषाणभेद, आक, सफेद सूरजमुखी, सिरहंटा, शतावर, गोखरू, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, कपोतवक्त्र, (कड़ई), नीली कटसरैया, काञ्चन (जलाशय के समीप दलदल में उत्पन्न क्षुपविशेष), खस, गिलोय, बन्दाक, श्योनाक, वरना की छाल, सागवान का फल, जौ, कुलथी, बेर, निर्मली मिलाकर ८ सेर। जल ६४ सेर । बचा हुआ क्वाथ १६ सेर । कल्क के लिए—ऊपकादिगण मिलाकर १ सेर। विधिपूर्वक घी पकाकर सेवन कराने से वातज अश्मरी नष्ट होती है। मात्रा तीन-चार बूँद । इन वातनाशक औषधों से सिद्ध क्षार, यवागू, पेया, क्वाथ, दूध तथा भोजन के उपयोग से वाताश्मरी नष्ट होती है ॥१८-२१॥

पित्ताश्मरी में कुशाद्य घृत ।

कुशः काशः शरो गुल्म उत्कटो मोरटोऽश्मभित् । दर्भो विदारी वाराही शालिमूलं त्रिकण्टकः ॥ २२ ॥ भल्लूकः पाटली पाठा पत्तूरोऽथ कुरण्टिका । पुनर्नवेशिरीषश्च कथितास्तेषु साधितम् ॥ २३ ॥ घृतं शिलाह्मधुकबीजैरिन्दीवरस्य च । त्रपुषैर्वारुकाणां वा बीजैश्चावापितं शृतम् ॥ २४ ॥ भिनत्ति पित्तसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु । क्षारान् यवागूः पेयाश्च कषायाणि पयांसि च । भोजनानि प्रकुर्वीत वर्गेऽस्मिन् पित्तनाशने ॥ २५ ॥

कुश, काश, सरकण्डे की जड़, गिलोय, लालगन्ना, गन्ने की जड़, पाषाणभेद, डाभ की जड़, विदारीकन्द, वाराहीकन्द, शालि की जड़, गोखरू, श्योनाक, पाढल, पाढ़, शालिञ्च, पीली कटसरैया, लाल साँठी, सफेद साँठी तथा सिरस की छाल । इनके क्वाथ से तथा शिलाजीत, मुलहठी, कमलबीज, खीरे के बीज, ककड़ी के बीज, इनके कल्क से विधिपूर्वक घृत सिद्धकर सेवन करने से पैत्तिक अश्मरी नष्ट होती है । उपर्युक्त पित्तनाशक औषधों से क्षार, यवागू, पेया, क्वाथ, दूध तथा अन्य भोज्य द्रव्यों को सिद्ध कर पित्ताश्मरी के नाश के लिए सेवन कराना चाहिए । घृत-मात्रा आधा तोला से १ तोला ॥२२-२५॥

कफाश्मरी में वरुणाद्य घृत ।

गणे वरुणकादौ च गुग्गुल्वेलाहरेणुभिः । कुष्ठभुस्ताह्वमरिचचित्रकैः ससुराह्वयैः ॥ २६ ॥ एतैः सिद्धमजासर्पिरूपकादिगणेन च । भिनत्ति कफसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ॥ २७ ॥ क्षारान् यवागूः पेयाश्च कषायाणि पयांसि च । भोजनानि प्रकुर्वीत वर्गेऽस्मिन् कफनाशने ॥ २८ ॥

वरुणादिगण के क्वाथ से तथा गूगल, छोटी इलायची, सम्भालू के बीज, कूठ, मोथा, कालीमिर्च, चित्रक, देवदारु, तथा ऊपकादिगण के कल्क से विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर उचित मात्रा में प्रयोग करने से कफज अश्मरी नष्ट होती है । मात्रा ६ बूँद से ८ बूँद तक । उपर्युक्त कफनाशक वर्ग से क्षार, यवागू, पेया, क्वाथ, दूध, तथा भोज्य द्रव्यों को सिद्धकर श्लैष्मिक

अश्मरी के नाश के लिये प्रयोग करना चाहिए ॥२६-२८।

वरुणाद्य तैल।

त्वक्पत्रपुष्पमूलस्य वरुणात् सत्रिकण्टकात्। कषायेण पचेत्तैलं बस्तिनास्थापनेन च॥ शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम्॥ २९॥

तिलतैल ४ सेर, वरुणा की छाल, पत्ते, फूल एवं जड़ तथा गोखरू मिलाकर ८ सेर। क्वाथ के लिए जल १४ सेर, बाकी १६ सेर। इस क्वाथ से विधिपूर्वक तैल सिद्ध कर आस्थापनबस्ति द्वारा प्रयोग करावे। इसके प्रयोग से शर्करा, अश्मरी, शूल तथा मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥२९॥

वरुण घृत।

वरुणस्य तुलां क्षुण्णां जलद्रोणे विपाचयेत्। पादशेषं परिस्राव्य घृतमर्धं विपाचयेत्॥ ३०॥ वरुणं कदली निम्बं तृणजं पञ्चमूलकम्। अमृता चाश्मजं देयं बीजं च त्रपुषोद्भवम्॥ ३१॥ शतपर्वतिलक्षारं पलाशक्षारमेव च। यूथिकायाश्च मूलानि कार्षिकाणि समावपेत्॥३२॥ अस्य मात्रां पिबेज्जन्तुर्देशकालाद्यपेक्षया। जीर्णे तस्मिन् पिबेत् पूर्वं गुडं जीर्णं तु मस्तुना। अश्मरीं शर्करां चैव मूत्रकृच्छ्रं विनाशयेत्॥ ३३॥

क्वाथार्थ कुटी हुई वरना की छाल ५ सेर। जल १२ सेर ४८ तोले, शेष ६ सेर ३२ तोले, कल्कार्थ वरना की छाल, कदलीमूल, नीम की छाल, तृण पञ्चमूल, गुर्च, शिलाजीत, ककडी के बीज, दूब, तिलक्षार, पलाशक्षार, और जूही का मूल एक-एक तोला ले। उक्त क्वाथ और कल्क के साथ दो सेर घृत यथाविधि सिद्ध करे। इसकी मात्रा ६ माशे से २ तोला पर्यन्त है। देशकालानुसार इसमें न्यूनाधिक्य भी हो सकता है। सेवित घृत का परिपाक होने पर दही के तोड़ के साथ पुराने गुड़ का सेवन करे। यह घृत अश्मरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट करता है ॥३०-३३॥

पाषाणभिन्न।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं शिलाजतुरसः पलम्। श्वेतपुनर्नवावासारसैः श्वेतापराजितैः॥ ३४॥ प्रतिद्रवं त्र्यहं मर्द्यं शुष्कं तद्भाण्डसंपुटे। स्वेदयेद्दोलिकायन्त्रे संशुष्कं तं विचूर्णयेत्॥ ३५॥ रसः पाषाणभिन्नः स्याद् द्विगुञ्जश्चाश्मरीं हरेत्। भूधात्रीफलविशालां पिष्ट्वा दुग्धेन पाययेत्। कुलत्थक्वाथसंपीतमनुपानं सुखावहम्॥ ३६॥

शुद्ध पारा ४ तोले, गन्धक ८ तोले और शिलाजीत ४ तोले, इनको क्रम से श्वेत पुनर्नवा, रूसा और श्वेत अपराजिता के रस में तीन-तीन दिन घोटकर शुष्क कर ले। पश्चात् एक पात्र में बन्द करके दोलायन्त्र में स्वेदन करे। तदनन्तर सुखाकर चूर्णित करके रख ले। इस पाषाणभिन्न रस की मात्रा दो रत्ती है। अनुपान भुईआँवला और इन्द्रायण के कल्क के साथ मिश्रित दुग्ध अथवा कुरथी का क्वाथ पीना सुखावह होता है॥ ३४-३६॥

त्रिविक्रम रस।

मृतताम्रमजाक्षीरैः पाच्यं तुल्यं गते द्रवे। तत्ताम्रं शुद्धसूतञ्च गन्धकञ्च समं समम्॥ ३७॥ निर्गुण्डीस्वरसैर्मर्द्यं दिनं तद्गोलकीकृतम्। यामैकं वालुकायन्त्रे पक्त्वा दद्यार्धगुञ्जकम्॥ ३८॥ बीजपूरस्य मूलञ्च सजलञ्चानुपाययेत्। रसस्त्रिविक्रमो नाम शर्कराश्मरीं जयेत॥ ३९॥

ताम्रभस्म में समान मात्रा में बकरी का दूध मिला अग्नि पर पकावे। जब दूध का द्रव भाग उड़ जाय तब उतार ले। तदनन्तर शुद्ध पारा और गन्धक को अलग-अलग ताम्रभस्म के समान लेकर कज्जली करे। इस कज्जली को ताम्रभस्म के साथ मिला ले। सम्भालू के पत्तों के रस से १ दिन मर्दन कर बालुकायन्त्र में एक पहर पाक करे, परचात् औषध को निकाल रोगी को सेवन करावे। वि० स० परीक्षा करले ताम्रभस्म निरुत्थ हुई है। अन्यथा पुनः पाक करे। मात्रा आधी एक रत्ती। अनुपान-बिजौरे की जड़ का चूर्ण, जल। यह रस शर्करा तथा अश्मरी रोग को नष्ट करता है॥ ३७-३९॥

पाषाणवज्र रस।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं रसैः श्वेतपुनर्नवैः। मर्दयित्वा दिनं खल्ले रुद्ध्वा तद्भूधरे पचेत्॥४०॥ दिनान्ते तत्समुद्धृत्य मर्दयेद् गुडसंयुतम्। अश्मरीं वस्तिशूलञ्च हन्ति पाषाणवज्रकः॥ ४१॥ गोरक्षकर्कटीमूलक्वाथं कौलत्थकं तथा। अनुपानं प्रयोक्तव्यं बुद्ध्वा दोषबलाबलम्॥ ४२॥

शुद्ध पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, इनकी कज्जली कर सफेद साँठी के रस से एक दिन घोंटकर भूधर यन्त्र में पाक करे। पश्चात् इसको निकाल मर्दन पीस ले। मात्रा--१ रत्ती। इसे गुड़ के साथ सेवन करने से अश्मरी और वस्तिशूल नष्ट होता है। अनुपान--इन्द्रायण की जड़ का क्वाथ तथा कुलथी का क्वाथ। इसमें दोष के बलाबल के अनुसार अनुपान का प्रयोग कराना चाहिए॥ ४०-४२॥

आनन्दयोग।

तिलापामार्गकदलीपलाशामलकाण्डकान्। दग्ध्वा तद्भस्मतोयं तु वस्त्रपूतं च स्रावयेत्॥ ४३॥ तत् पचेत्तोयमल्पेऽवशान्तं ततश्चूर्णं द्विगुञ्जकम्। पाययेदविमूत्रेण शर्कराश्मरिजिद्भवेत्॥ ४४॥

छागमूत्रेणेति रसेन्द्रचिन्तामणौ॥

तिल, अपामार्ग (लटजीरा), केला, पलाश और आँवले की शाख को भस्म कर जल में घोल दे, पश्चात् कपड़े से छानकर शुद्ध जल निकाल ले, फिर उस जल को पकाकर क्षार सिद्ध करे। इस क्षार की मात्रा २ रत्ती है। बकरी के मूत्र के साथ सेवन करावे। यह शर्करा और अश्मरी का नाशक है॥ ४३-४४॥

"रसेन्द्रचिन्तामणि" में लिखा है कि बकरा के मूत्र के साथ इसका सेवन करावे।

अश्मरी रोग पथ्यानि।

वस्ति विरेको वमनं च लङ्घनं स्वेदोऽवगाहोऽपि च वारि सेवनम्। यवः कुलत्थाः मधुराणि शालयो मद्यानि धन्वाण्डज संभवा रसाः॥ ४५॥ पुराणकूष्माण्डफलं च तल्लता गोकण्टको वारुणशाकमार्द्रकम्। पाषाणभेदो यव शूकरेणवः स्थिराः समाकर्षण भस्मनापि॥ ४६॥ एतानि सर्वाणि भवन्ति सर्वदा। मुदेऽश्मरी रोगनिपीडितानाम्॥ ४७॥

वस्तिकर्म (पिचकारी देना) जुलाब, वमन लंघन पसीने देना जलमें बैठना, जल का सेवन, जौ, कुलथी पुराने शालिधान्य का चावल मदिरा, मरुदेशी पक्षियों के अण्डों का रस, पुराना पेठा पेठा की बेल, गोखरू, वरना के पत्तों का शाक अदरक, पाषाण भेद, जवाखार, सँभालू के बीज शालिपर्णी तथा यन्त्र द्वारा पथरी को बाहर खींचकर निकालना ये सब पथरी रोग वालों को पथ्य हैं॥ ४५-४७॥

अपथ्य।

मूत्रस्य शुक्रस्य च वेगमन्नं विष्टम्भि रूक्षं गुरु चान्नपानम्। विरुद्धमना-

शनमश्मरीमान् विवर्जयेत् सन्ततमप्रमत्तः ॥ ४८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामश्मर्यधिकारः समाप्तः।

मूत्र के वेग अथवा शुक्र के वेग को रोकना, खटाई, विष्टम्भी द्रव्य, रूक्ष एवं गुरु भोजन, इनका अश्मरी के रोगी को त्याग करना चाहिए ॥ ४८ ॥

इति श्रीपण्डितसरयूप्रसादत्रिपाठि-
विरचितायां भैषज्यरत्नावल्यां
रत्नप्रभाभिधायां व्याख्या-
यामश्मर्यधिकारः
समाप्तः।

अथ उपदंशाधिकारः।

उपदंश की सामान्य चिकित्सा।

स्निग्धस्विन्नशरीरस्य ध्वजमध्ये शिराव्यधः। जलौकापातनं वा स्यादूर्ध्वाधःशोधनं तथा ॥ १ ॥ सद्यो निर्जितदोषस्य रुक्शोथावुपशाम्यतः। पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्नक्षयकरो हि सः ॥ २ ॥

स्नेहन और स्वेदन के पश्चात् लिंग के बीच में शिरावेधन करना चाहिए। अथवा जोंक लगावे तथा वमन और विरेचन करावे। तत्काल ही जिसके दोष निर्जित हो जाते हैं उसकी पीड़ा और शोथ शान्त हो जाते हैं। घाव को पकने से बचाने का उद्योग पूर्णतया करना चाहिए; क्योंकि घाव के पक जाने से शिश्न नष्ट हो जाता जाता है ॥ १-२ ॥

वातकोपदंश पर लेप।

प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्वसरलागुरुदारुभिः। सरास्ना कुष्ठपृथ्वीकैर्वातिके लेपसेचने ॥ ३ ॥

पुण्डरिया, मुलहठी, सरलकाष्ठ, अगर, देवदारु, रास्ना, कूठ, इलायची, इनके लेप से अथवा इनके क्वाथ द्वारा सेचन करने से वातिक उपदंश व्रण नष्ट होता है ॥ ३ ॥

पैत्तिकोपदंश पर प्रलेप।

गैरिकाञ्जनमञ्जिष्ठा मधुकोशीरपद्मकैः। सचन्दनोत्पलैः स्निग्धैः पैत्तिकं सम्प्रलेपयेत् ॥ ४ ॥

पैत्तिक उपदंश व्रण पर गेरू, रसौत, मजीठ, मुलहठी, खस, पद्माख, लाल चन्दन, नील कमल, इनके कल्क में थोड़ा सा सौ बार धोया हुआ घी मिलाकर लेप करना चाहिए ॥ ४ ॥

पद्मादि लेप।

पद्मोत्पलमृणालैश्च ससर्जार्जुनवेतसैः। सर्पिः स्निग्धैः समधुकैः पैत्तिकं सम्प्रलेपयेत् ॥ ५ ॥

कमल, नीलकमल, बिस, राल, अर्जुन की छाल, बेंत, मुलहठी, इनके कल्क में किंचित् प्रक्षेप योग्य सौ बार धोया हुआ घृत मिलाकर पैत्तिक उपदंश व्रण पर लेप करना चाहिए ॥ ५ ॥

प्रक्षालन।

त्रिफलायाः कषायेण भृङ्गराजरसेन वा। व्रणप्रक्षालनं कुर्यादुपदंशप्रशान्तये ॥ ६ ॥

उपदंश की शान्ति के लिए त्रिफला के क्वाथ अथवा भृङ्गराज के रस से व्रण को धोना चाहिए ॥ ६ ॥

लेप।

दहेत् कटाहे त्रिफलां समांशां मधुसंयुताम्। उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥ ७ ॥

नूतनस्थाल्यां समभागत्रिफला शरावेण पिधाय दग्धव्यं तद्भस्म मधुना संनीयोपदंशे लेपः कर्त्तव्यः।

समांश त्रिफला को कड़ाही में भस्म करके उस भस्म में मधु मिश्रित कर लेप करना चाहिए। यह लेप सद्यः व्रण को रोपण करता है ७ ॥

कुछ लोग कहते हैं कि समभाग त्रिफला को नवीन थाली में रखकर सकोरे से ढककर जला देना चाहिए और मधु मिश्रित कर उस भस्म का उपदंश पर लेप करना चाहिए।

लेप।

रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया वा समन्वितम् । सक्षौद्रं वा प्रलेपोऽयं सर्वलिङ्गगदापहः ॥ ८ ॥

शिरीष की छाल अथवा हरीतकी पीसकर उसमें थोड़ी रसौत मिलाकर अथवा रसौत और मधु मिलाकर लेप करने से सम्पूर्ण लिङ्गरोग नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

लेप और पथ्य।

बब्बूलदलचूर्णेन दाडिमत्वग्भवेन वा । गुण्डनं अस्थिचूर्णेन उपदंशहरं परम् ॥ ९ ॥ लेपः पूगफलेनाश्वमारमूलेन वा तथा । सेवेन्नित्यं यवान्नं च पानीयं कौपमेव च ॥ १० ॥

सूखी बबूल की पत्ती का चूर्ण, अनार के छिलके का चूर्ण अथवा मनुष्य की हड्डी का चूर्ण लगाने से उपदंश के व्रण अच्छे हो जाते हैं। सुपारी या कनेर की छाल का लेप करने से उपदंश को फायदा होता है। उपदंश के रोगी को यव और कुएँ के पानी का प्रतिदिन सेवन करना चाहिए ॥ ९-१० ॥

प्रक्षालनार्थ क्वाथ।

जयाजात्यश्वमारार्कशम्याकानां दलैः पृथक् । कृतं प्रक्षालने क्वाथं मेढ्रपाके प्रयोजयेत् ॥ ११ ॥

अरणी, जाती, कनेर, मदार और अमलतास इनमें से किसी एक की पत्तियों का क्वाथ कर प्रक्षालन करने से मेढ्रपाक शान्त होता है ॥ ११ ॥

धूप।

बदरार्कमपामार्गस्तथा ब्राह्मणयष्टिका । हिङ्गुलं च समं चैषां भागं कृत्वा च धूपनम् ॥ दोषजं कर्मजंहन्यादुपदंशादिकं व्रणम् ॥ १२ ॥

बेर के वृक्ष की छाल, मदार, अपामार्ग, भारंगी और हिंगुल समभाग मिश्रित कर धूप देने से दोषज और कर्मज आदि सब प्रकार का उपदंश-व्रण नष्ट होता है ॥ १२ ॥

पारदादि धूप।

रसं तालं शिला मुद्रा शङ्ख सिन्दूरतुत्थके । स्फटिकारियवक्षारौ विडं टङ्कणमूषणम् ॥ १३ ॥ श्वेतार्कमूलत्वक् चैव देया माषमिता ततः । हिंगुलं तोलकं सार्द्धं सर्वमेकत्र चूर्णितम् ॥ १४ ॥ घृतप्लुतं संविधाय धूपनं दद्याद्यथाविधि । एभिः प्रधूपनं हन्याद् व्रणं लिङ्गसमुत्थितम् ॥ १५ ॥

पारा, हरताल, मैनशिल, मुर्दासंग, सिन्दूर, नीलाथोथा, फिटकरी, जवाखार, विड नमक, सुहागा, कालीमिर्च, सफेद आक की जड़ की छाल, हरएक १ माशा। सिंगरफ १॥ तोला, इनको इकट्ठा कर चूर्ण कर घृत मिला विधिपूर्वक धूप देने से शिश्नेन्द्रिय में हुआ उपदंश या व्रण अच्छा हो जाता है ॥ १३-१५ ॥

उपदंश में निषिद्ध कर्म।

दिवानिद्रां मूत्रवेगं गुर्वन्नं मैथुनं गुडम् । आयासमम्लं तक्रं च वर्जयेदुपदंशवान् ॥ १६ ॥

दिन में सोना, मूत्र का वेग रोकना गुरुपाक अन्न का खाना, मैथुन, गुड़, अधिक परिश्रम, खट्टा पदार्थ और तक्र उपदंश रोगी के लिये परित्याज्य हैं ॥ १६ ॥

पद्मारविन्द घृत।

मृणालं पद्मबीजानि नालं पद्मं च केशरम्। सर्वं समपलं कुर्यात् त्रिंशत्पलञ्च गोघृतम् ॥ १७ ॥ घृताच्चतुर्गुणं क्षीरं घृतशेषं विपाचयेत्। पाकान्ते चूर्णमेषाञ्च क्षिप्त्वा तदवतारयेत् ॥ भक्षयेल्लिङ्ग-रोगघ्नं घृतं पद्मारविन्दकम् ॥ १८ ॥

गोघृत १½ सेर, दूध ६ सेर। रास, कमलबीज, कमल की डंडी, कमल के फूल, कमलकेसर मिलाकर २८ तोले हों। इन्हें विधिपूर्वक इकट्ठाकर पकावे। जब घृतमात्र बाकी रह जाय तब उपर्युक्त द्रव्यों को डालकर उतार ले। इस घृत का भक्षण करने से लिङ्गरोग नष्ट होता है। मात्रा—आधा तोला से १ तोला ॥१७-१८॥

अनन्ताद्य घृत।

अनन्तामलकीद्राक्षाः काकोलीयुगलं वरीम्। एलाद्वयं विदारीञ्च मधूकं मधुकं सुराम् ॥ १९ ॥ त्रिफलां स्वर्णपर्णाञ्च बीजं गोक्षुरसम्भवम्। दशमूलं ताल-मूलीं त्रिवृतामिन्द्रवारुणीम् ॥ २० ॥ नीलिनीं शूकशिम्ब्याश्च बीजं कर्षप्रमा-णतः। कल्कीकृत्य पचेत्प्रस्थे सुसर्पिः सारि-वाम्भसा ॥ २१ ॥ घृतमेतदनन्ताद्यमुप-दंशविनाशनम्। रसायनं परं वृष्यमस्र-दोषनिसूदनम् ॥ २२ ॥

गोघृत १२८ तोले अनन्तमूल का क्वाथ ६ सेर ३२ तोले, कल्क के लिए अनन्तमूल, आँवला, दाख, काकोली, क्षीरकाकोली, शता-वरि, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, विदारी कन्द, महुए के फल, मुलहठी, मुरामांसी, त्रिफला, सनाय, गोखरू के बीज, दशमूल, सफेद मूसली, निसोत, इन्द्रायण की जड़, नीलीमूल, कौंच के बीज, हरएक १० मासे विधिपूर्वक सिद्ध कर सेवन करने से उपदंश तथा रक्तदोष नष्ट होता है। यह घृत वीर्यवर्द्धक और रसायन है। मात्रा—आधा तोला से १ तोला ॥ १९-२२ ॥

भूनिम्बाद्य घृत।

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलकरञ्जजाती-खदिराशनानाम्। सतोयकल्कैर्घृतमाशु पक्वं सर्वोपदंशापहरं प्रदिष्टम् ॥ २३ ॥

घृत २ सेर, क्वाथार्थ द्रव्य—चिरायता, निम्ब-पत्र, त्रिफला, परवल के पत्ते, कंजा के बीज, चमेली के पत्ते, खदिर काष्ठ और असना की छाल, प्रत्येक आध सेर अर्थात् कुल मिलित ४ सेर। जल ३२ सेर, शेष ८ सेर। कल्कार्थ ऊपर लिखे कुल द्रव्य पाँच पाँच तोले अर्थात् कुल मिलित आध सेर। इस क्वाथ और कल्क के साथ सिद्ध किया हुआ घृत शीघ्र ही सब प्रकार के उपदंश रोग को दूर करता है ॥२३॥

करञ्जाद्य घृत।

करञ्जनिम्बार्जुनशालजम्बूवटादिभिः कल्ककषायसिद्धम्। सर्पिर्निहन्यादुपदंश-दोषं सदाहपाकं स्रुतिरागयुक्तम् ॥ २४ ॥

कंजा की मींगी, नीम, अर्जुन, शाल, जामुन, बरगद, गूलर, पीपर, पाकड़, और बेत की छाल के क्वाथ और कल्क के साथ सिद्ध किया हुआ घृत दाह और स्रावयुक्त सदोष उपदंश को नष्ट करता है मात्रा—६ मासा १ तोला ॥२४॥

गोजी तैल।

गोजीविडङ्गयष्टीभिः सर्वगन्धैश्च संयुतम्। एतत्सर्वोपदंशेषु तैलं रोपण-मिष्यते ॥ २५ ॥

तिलतैल १२८ तोला, कल्क के लिए गोजी, वायविडङ्ग, मुलहठी तथा सर्वगन्ध (दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेसर, कपूर, कंकोल, अगर, केसर, लौंग) मिलाकर ३२ तोले। यह तैल उपदंशव्रण का रोपण करता है ॥२५॥

कोशातकी तैल।

तिक्तकोशातक्यलाब्वोर्बीजं नागर-

साधितम्। तैलं हन्त्यविशेषेण व्रणं दुष्टमनेकधा ॥ २६ ॥

तिलतैल १२८ तोला, कड़वी तोरई के बीज, कड़वी तुंबी के बीज, सोंठ मिलाकर ३२ तोला, पाक के लिए ६ सेर ३२ तोला, विधिपूर्वक पकावे। यह तेल नाना प्रकार के दुष्ट व्रणों को नष्ट करता है ॥२६॥

जम्ब्वाद्य तैल।

जम्बूवेतसपत्राणि धात्रीपत्रं तथैव च। नक्तमालस्य पत्राणि तद्वत्पद्मोत्पलानि च ॥२७॥ एला चातिनिषाम्रास्थिमधुकञ्च प्रियङ्गवः। लाक्षाकालीयकं लोध्रं चन्दनं त्रिवृताहया ॥ २८ ॥ एतान्येकीकृतान्येव वस्तमूत्रेण पेषयेत्। अक्षमात्रैरिमैर्द्रव्यैस्तैलं प्रस्थं विपाचयेत्। उपदंशहरं श्रेष्ठं मुनिभिः परिकीर्त्तितम् ॥ २९ ॥

तिलतैल १२८ तोले, कल्क के लिए—जामुन के पत्ते, बेत के पत्ते, आंवले के पत्ते, लताकरञ्ज के पत्ते, पद्मपत्र, नील कमल के पत्ते, छोटी इलायची, अतीस, आम की गुठली, मुलहठी प्रियंगु, लाक्षा, कालीयक काष्ठ (एक प्रकार का चंदन), लोध, लाल चंदन, निसोत, हरएक दो-दो तोले। इन्हें इकट्ठा कर बकरी के मूत्र से पीसकर तथा विधिपूर्वक पकाकर लगाने से उपदंश नष्ट होता है ॥२७-२९॥

आगारधूमाद्य तैल।

आगारधूमो रजनी सुराकिट्टं च तैस्त्रिभिः। भागोत्तरैः पचेत्तैलं कण्डूशोथरुजापहम् ॥ शोधनं रोपणं चैव सावर्ण्यकरणं तथा ॥ ३० ॥

गृहधूम अर्थात् धुएँ का जाला २ तोला २ माशे, ६ रत्ती, हल्दी १० तोला १० माशा ६ रत्ती मदिरा का किट्ट १६ तोला ४ माशा १ रत्ती। इसके कल्क के साथ दो सेर तैल को पकावे। यह तैल उपदंशजन्य कण्डू, शोथ और पीड़ा को नष्ट करता है। उपदंश के व्रण में पूय (पीब) आदि को निकालकर व्रण को शुष्क कर स्वाभाविक वर्ण को प्राप्त कराता है ॥ ३० ॥

दरदसिन्दूररस

नव कर्षमितः शुद्धः पारदस्तत्प्रमाणतः। रस कर्पूरकञ्चैवरसार्द्धौ दरदः स्मृतः। ॥ ३१ ॥ सार्धं पञ्चाऽक्षमात्रः स्याद्गन्धकश्च सुशोधितः। सर्वमेकत्र सम्पिष्य पूरयेत्काचकूपिकाम् ॥ ३२ ॥ वालुकायन्त्र मध्यस्थां पचेत्क्रमवह्निना। अहोरात्रद्वयादूर्ध्वं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥३३॥ युक्ताऽनुपानतो हन्याद्रसोऽयं वातजान्गदान्। सन्निपातादिकांश्चाऽपि ज्वरादीन्हन्त्यशेषतः ॥ ३४ ॥ नाम्ना दरदसिन्दूरो रसोऽयं सर्वरोगहृत् ॥ ३५ ॥

शुद्ध पारा और रस कपूर ६-६ तोले शुद्ध सिंगरफ ४॥ तोले शुद्ध गन्धक २॥ तोले लेकर सबको मिला पीस कर ६ ७ कपड मिट्टी की हुई आतशी शीशी में डालकर शीशी का मुख खड़िया मिट्टी वगैरह से बन्द करके बालुका यन्त्र में रख ४८ घन्टे की क्रमवृद्ध अग्नि देकर शीतल होने पर निकाल कर रस लेवे। १-१ रत्ती की मात्रा में रोगानुसार अनुपान [illegible] साथ देने से सब प्रकार के सन्निपात, वातरोग उपदंश आदि रोगों का शीघ्र ही विनाश हो जाता है ॥३१-३५॥

भैरवरस।

शुद्धसूतं गृहीत्वाथं रक्तिकाशतमात्रकम्। त्रिगुणां शर्करां लौहे निम्बदण्डेन मर्दयेत् ॥ ३६ ॥ यामभात्रं ततो दद्याच्छ्वेतं खदिरचूर्णकम्। सूततुल्यं ततः कुर्यान्मर्दनात् कज्जलोपमम् ॥ ३७ ॥ विंशतिर्वटिकाः कार्याः स्थाप्याः गोधूमचूर्णके।

निःशेषनिःसृता ज्ञात्वा पिडिकास्ताः कलेवरे ॥ ३८ ॥ भैरवं देवमभ्यर्च्य वलिं तस्मै प्रदाय च। विधाय योगिनीपूजां दुर्गामभ्यर्च्य यत्नतः ॥३९॥ वटिकास्ताः प्रयोक्तव्या भिषजा जानता क्रियाम्। दिवसत्रितयं दद्यात्तिस्रस्तिस्रो विजानता ॥ ४० ॥ चतुर्थाञ्च समारभ्य एकोमेकां प्रयोजयेत्। एवं चतुर्दशदिने नीरोगो जायते नरः ॥ ४१ ॥ पथ्यं शर्करया सार्द्धमुष्णान्नं घृतगन्धि च। कुर्यात्साकाङ्क्षमुत्थानं सकृद्भोजनमिष्यते ॥ ४२ ॥ जलपानं जलस्पर्शं न कदाचन कारयेत्। दुःसहायां तु तृष्णायामिक्षु दाडिमकादिकम् ॥ ४३ ॥ शौचकार्येऽप्युष्णवारि वाससा प्रोञ्छनं घृतम्। वातातपाग्निसम्पर्कं दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ४४ ॥ मेघागमे वा शीते वा कार्यमेतद्विजानता। मुखरोगे तु संजाते मुखरोगहरी क्रिया ४५ श्रमाध्वभाराध्ययनस्वप्नालस्यान् विवर्जयेत्। ताम्बूलं भक्षयेन्नित्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ४६ ॥ क्रिया श्लेष्महरी युक्ता वातपित्ताविरोधनी। लवणं वर्जयेदम्लं दिवानिद्रां तथैव च ॥ ४७ ॥ रात्रौ जागरणं चैव स्त्रीमुखालोकनं तथा। सप्ताहद्वयमुत्क्रम्य स्नानमुष्णाम्बुना चरेत् ॥ ४८ ॥ पथ्यं कुर्याद्धितमिदं जाङ्गलानां रसादिभिः। व्यायामाद्यं वर्जनीयं यावन्न प्रकृतिर्भवेत् ॥ ४९ ॥ एवं कृतविधानस्तु यः करोत्येतदौषधम्। स एव पापरोगस्य पारं याति जितेन्द्रियः ॥५०॥ पिडिका विलयं यान्ति बलं तेजश्चवर्द्धते। रुजा च प्रशमं याति ग्रन्थिशोथश्च शाम्यति ॥ ५१ ॥ अस्थ्नां भवति दार्ढ्यं च आमवातश्च शाम्यति। भैरवेण समाख्यातो रसोऽयं भैरवः स्वयम् ॥ ५२ ॥

शुद्ध पारा १०० रत्ती, शकर २०० रत्ती, दोनों को एकत्र कर लोहे के खरल में नीम के दण्डे से एक पहर तक घोटे। पश्चात् १०० रत्ती श्वेत कत्थे का चूर्ण मिलाकर इतना घोटे कि जिससे कज्जल के समान हो जाय। तत्पश्चात् उसकी २० गोलियाँ बनाकर गेहूँ के आटे में रख दे। शरीर में पूर्णरूप से उपदंश पिडिकायें निकली हुई जानकर भैरवजी की पूजा करके उनको बलि दे। योगिनी और दुर्गा की भी यत्नपूर्वक पूजा करके विधिज्ञ वैद्य को उन वटियों का प्रयोग करना चाहिए। पहिले तीन दिन तक तीन-तीन गोलियाँ दे, फिर चौथे दिन से एक एक गोली दे। इस प्रकार १४ दिन में मनुष्य नीरोग हो जाता है। शकर के साथ उष्ण भात थोड़ा घी डाल कर खावे। भोजन इतना खावे कि कुछ इच्छा बनी ही रहे तथा एक ही बार भोजन न करे। जलपान और जलस्पर्श कदापि न करे। दुःसह प्यास लगने पर ईख और अनार आदि का सेवन करे। शौच कार्य में उष्ण जल का प्रयोग करे। और तत्काल उसको कपड़ा से पोंछ डाले। वायु, घाम और अग्नि का सम्पर्क दूर से ही त्याग दे। विज्ञ वैद्य को चाहिए कि वर्षाकाल अथवा शीतकाल में इस योग का प्रयोग करे। मुखरोग होने पर मुखरोगनाशक क्रिया करे। अधिक परिश्रम, मार्ग चलना, भारी बोझ उठाना, पढ़ना, सोना और आलस्य को त्याग दे। प्रतिदिन कर्पूरादि से सुवासित ताम्बूल का सेवन करे। इसमें कफनाशक और वातपित्त को रोकनेवाली चिकित्सा उचित है। नमक और खटाई का खाना, दिन में सोना, रात में जागना और स्त्री का मुखावलोकन त्याग दे। इस प्रकार दो सप्ताह व्यतीत करके उष्ण जल से स्नान करे। जाङ्गल जीवों के मांस-रसादि के साथ हित पदार्थ (उष्ण

भात आदि) का सेवन करे। जब तक पूर्णतया स्वस्थ न हो जावे तब तक व्यायाम आदि न करे। इस प्रकार विधिपूर्वक जो जितेन्द्रिय होकर इस औषध का सेवन करता है वही इस पाप रोग के पार जाता है। पिडिकाएँ विनष्ट हो जाती हैं, बल और तेज बढ़ता है, पीड़ा शान्त हो जाती है। गाँठों की सूजन भी जाती रहती है। हड्डियाँ दृढ़ हो जाती हैं और आमघात शान्त हो जाता है। भैरवजी का कहा हुआ यह 'भैरव रस' है ॥ ३६—५२ ॥

रसगुग्गुल।

ग्राह्यः पातनयन्त्रेण शुद्धश्चन्द्रसमो रसः। रक्तिकाशतमेतस्य शर्करा त्रिगुणा भवेत् ॥ ५३ ॥ ततश्चतुर्गुणो ग्राह्यो गुग्गुलुर्महिषाक्षकः। घृतं रससमं दद्यात् मर्दयेच्च प्रयत्नतः ॥ ५४ ॥ विंशतिर्वटिकाः कार्यास्तिस्रस्तिस्रो दिनत्रयम्। एकादशदिनैरन्या देया एकादशैव ताः ॥ ५५ ॥ सप्ताहद्वयमेवं च कारयेद्भिषजां वरः। लवणं वर्जयेत् पथ्ये पादार्द्धाशनमिष्यते ॥ ५६ ॥ दिनद्वये व्यतीते तु पादोनं पथ्यमाचरेत्। मसूरसूपं सगुडं व्यञ्जनं चाथ कल्पयेत् ॥ ५७ ॥ पुनर्नवा पटोलानि तिक्तपत्री च गोक्षुरम्। पुष्पत्री कोकिलाक्षं शाकार्थे घृतभर्जितम् ॥ ५८ ॥ शर्करा लवणस्थाने वेशवारे धनीयकम्। लवङ्गाजाजीहिङ्गूनि धान्यकं जीरकानि च ॥ ५९ ॥ पाकार्थे संप्रदातव्यं संस्कारार्थं भिषग्वरैः। भैरवस्य रसस्यान्याः क्रियाश्चात्र प्रयोजयेत् ॥ ६० ॥ रसगुग्गुलुरेवं हि सर्वान् जित्वामयानयम्। कुष्ठोपदंशनामानं व्रणं वातादिसंयुतम् ॥ कामदेवमतीकाशश्चिरजीवी भवेन्नरः ॥ ६१ ॥

पातन यन्त्र द्वारा शुद्ध चन्द्र के समान शुभ्र पारद १०० रत्ती, शक्कर ३०० रत्ती, शुद्ध महिषाक्ष गुग्गुल ४०० रत्ती और घृत १०० रत्ती, इन सब औषधियों का एकत्र परिश्रम के साथ घोट कर २० गोलियाँ बनावे। पहिले तीन दिन तक प्रतिदिन तीन-तीन गोलियाँ और चौथे दिन से ११ दिन पर्यन्त प्रति दिन एक-एक गोली दे। इस प्रकार वैद्यवर दो सप्ताहपर्यन्त औषध सेवन करावे। इसके सेवन के दिनों में नमक खाना वर्जित है। पहिले दिन पाद भोजन, द्वितीय दिन अर्ध भोजन, और दो दिन व्यतीत होने पर अर्थात् तृतीय दिन पादोन भोजन करे। मसूर की दाल और गुड़ का व्यञ्जन बनावे। गदहपुरैना, परवल, कर्कोटक (ककोड़ा), गोखरू, पुष्पत्री (चंचु--चेंचना) और कोकिलाक्ष (तालमखाने के पत्ते) को घृत में भूनकर शाक बनावे। नमक के बदले शक्कर और मसाला के बदले धनिया डाले, तथा लौंग, कालाज़ीरा, हींग धनिया और सफ़ेद ज़ीरा पाक के संस्कारार्थ डाले। 'भैरव रस' की अन्यान्य क्रियाओं का यहाँ भी प्रयोग करे। इस प्रकार सेवन करने से यह रसगुग्गुल सब रोगों को तथा वातादियुक्त कुष्ठ उपदंश नाम व्रण को जीतता है। इसका सेवन करनेवाला मनुष्य कामदेव के समान कान्तिमान् होकर चिरजीवी होता है ॥ ५३--६१ ॥

धूम

रसं वङ्गं च खदिरं हरीतक्याश्च भस्मकम्। कोमलं कदलीभस्म गुवाकफलभस्म च ॥ ६२ ॥ एतत्तोलकमानं स्याद्धिङ्गुलं हरितालकम्। गन्धकं तुत्थकं चापि पद्मकं सरलं तथा ॥ ६३ ॥ द्वे चन्दने देवदारु वचमं काश्मीरं च। तथा केशरकाष्ठं च माषमानं प्रकल्पयेत् ॥ ६४ ॥ एकीकृत्य चूर्णयित्वा सर्वशास्त्रविशारदैः। तुनमीपत्ररसैः पुराणन-

गुडेन च ॥ ६५ ॥ घृतेन सह पट्कार्या घटिका मन्त्ररक्षिताः । वेदनायामुत्कटायां चतस्रः शुक्लवाससा ॥ ६६ ॥ वेष्टयित्वा च निर्धूमाङ्गारोपरि च दापयेत् । तं धूपं परिगृह्णीयान्नरो वस्त्रादिवेष्टितः ॥ ६७ ॥ मुखनासाकर्णबहिर्निश्वासस्य निरोधतः। स्वेदे जातेऽस्य नैरुज्यं सायंप्रातर्दिनत्रयम् ॥ ६८ ॥ मासमात्रं तु पथ्याशी शाकाम्लदधिवर्जनम् । गुर्वन्नपायसादीनि चापथ्यानि विवर्जयेत् ॥ ६९ ॥ दिनत्रये व्यतीते तु स्नानमुष्णाम्बुनाचरेत् । एवं धूमे कृते शान्तिं व्रणाश्च पिडिका अपि ॥ ७० ॥ तथा शोथश्चामवातः खञ्जता पङ्गुतापि च । कुष्ठोपदंशशान्त्यर्थं भैरवेण प्रकीर्त्तितः ॥ ७१ ॥

शुद्ध पारा, वङ्गभस्म, श्वेत खदिर, हरीतकी भस्म, केला के फूलों की भस्म और सुपारी की भस्म एक-एक तोला । हिंगुल, हरिताल, शुद्ध गन्धक, तूतिया, पदुमकाठ, सरलकाष्ठ, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, देवदारु, अकमकाष्ठ और नागकेसर काष्ठ एक एक मासा ले । इन सब ओषधियों को एकत्र कर चूर्णित करे, फिर चौराई के स्वरस, तुलसीपत्र के स्वरस, पुराने गुड़ और घृत के साथ लोहे के खरल में लोहे के दण्ड से घोटकर ६ गोली बना ले और उनको मन्त्र द्वारा सुरक्षित करके रख दे । जब उपदंशजन्य वेदना उत्कट हो तब इनमें से ४ गोली को सफ़ेद कपड़े में लपेट कर निर्धूम अग्नि पर रख दे । रोगी वस्त्रादि से शरीर को ढककर उस धूम का ग्रहण करे । धूम का ग्रहण करते समय बाहरी निःश्वास को रोक दे, जिससे मुख नाक और कान के द्वारा वह धूम भीतर न चला जावे । इस प्रकार साय-प्रातः तीन दिन तक स्वेद देने से आरोग्य प्राप्त होता है । एक मासपर्यन्त पथ्य पदार्थ का सेवन करे । शाक, खटाई, दही, गुरुपाक अन्न और खीर आदि अपथ्य पदार्थों को त्याग दे । तीन दिन व्यतीत होने पर गरम पानी से स्नान करे । इस प्रकार धूम का ग्रहण करने से व्रण और पिडिकाएं शान्त हो जाती हैं । शोथ, आमवात, खञ्जता, पङ्गुता कुष्ठ और उपदंश की शान्ति के लिए भैरवजी ने इस धूम का प्रयोग कहा है ॥ ६२--७१ ॥

लेप ।

विषतिन्दुं लौहपात्रे मलाक्तं निम्बुकद्रवैः । घर्षेत् कृष्णसुधामूलं प्रत्येकं माक्षिकं दृढम् ॥ ७२ ॥ तुत्थं तदनु सूतं च लौहदण्डेन तद्युतम् । सर्वं तदेकतां यातं तेन लिङ्गं प्रलेपयेत् ॥ ७३ ॥ लेपे शुष्के पुनर्लेपं दद्यात् शुष्के पुनस्तथा । शुष्कं न संसयेल्लेपं शुष्कस्योपरि दापयेत् ॥ ७४ ॥

कुचले को मुर्चा लगे हुए लोहपात्र में लोहदण्ड से नींबू के अर्क की भावना दे-देकर घोटे, पश्चात् क्रमशः थूहर का मूल, स्वर्णमाक्षिक, तूतिया और पारा डालकर भली भाँति घोटते-घोटते एकरूप कर डाले । एकीभूत होने पर उसका लिङ्ग पर लेप करे । लेप के शुष्क होने पर वैसे ही फिर लेप करे । शुष्क हुए लेप को छुड़ावे नहीं, इसी पर बार-बार लेप करता रहे ॥ ७२-७४ ॥

रसशेखर ।

पारदं चाहिफेनं च द्विद्वादशरक्तिकम् । अयःपात्रे निम्बकाष्ठे मर्दयेत्तुलसीद्रवैः ॥ ७५ ॥ तस्मिन् संमूर्छिते दद्याद्रदं रससम्मितम् । मर्दयेच्च तुलस्यैव ततस्चैतानि दापयेत् ॥ ७६ ॥ जातीकोपफले चैव पारसीययमानिकाम् । आकारकरभं चैव द्वात्रिंशद्रक्तिकां प्रति ॥ ७७ ॥ मर्दयेत्तुलसीतोयैरेतेषां द्विगुणं शुभम् । दद्यात् खदिरसत्वं च वटिका

चणकप्रभा ॥ ७८ ॥ सायं द्वे द्वे प्रयोज्ये च लवणाम्लं च वर्जयेत् गलत्कुष्ठं तथा-स्फोटान् दुष्टान् गर्दभिकामपि ॥ ७९ ॥ ये स्युर्व्रणा नृणामन्ये उपदंशपुरःसराः । तान् सर्वान् नाशयत्याशु सिद्धोऽयं रसेश्वरः ॥ ८० ॥

दो रत्ती पारा और १२ रत्ती अफ़ीम तुलसीपत्र के स्वरस के साथ लोहपात्र में निम्ब-दण्ड से घोटे। इस प्रकार घोटने से पारद के मूर्च्छित हो जाने पर उसमें पारद के समान भाग (२ रत्ती) शुद्ध हिंगुल डाले और फिर तुलसी के स्वरस के साथ ही घोटे। पश्चात् जावित्री, जायफल, खुरासानी अजवाइन और अकरकरहा बत्तीस-बत्तीस रत्ती डाले तथा सबसे द्विगुण साफ़ कत्था डालकर तुलसी के स्वरस के साथ मर्दन करके चना के समान गोलियाँ बना लें। प्रति दिन सायंकाल दो-दो गोलियों का सेवन करें। नमक और खटाई का परहेज़ रक्खे। गलितकुष्ठ, दुष्ट स्फोट, गर्दभिका और उपदंश आदि अन्यान्य जितने व्रण हैं उन सबको यह रसेश्वर तत्काल नष्ट करता है। यह योग अनुभूत है ॥ ७९-८० ॥

उपदंश सूर्य ।

शङ्खोपलं कोलमितं पलत्रिकं, मुद्गरसं निम्बुरसं तथैव ॥ ८१ ॥ लोहे कटाहे विनिधाय सर्वं सङ्घृष्य सत्वक पिचुमर्द-जेन दण्डेन यावद्धि घनी भवेच्च सिद्धो-भवेन्दुमरिचमात्रम् ॥ ८२ ॥ देयः-फिरङ्गामयकेऽभिपामिः स्वच्छं विधेयं निलपथ्यमस्य ॥ ८३ ॥ तैलाम्लजय-निखिलव्रणघ्नं छत्रानुपानं स्वदेश सूर्यः

पारा तोला लेकर मकोय तथा भाँग के रस में तीन तीन पहर लोहे की कढ़ाही में नीम के डंडे से घोटे कड़ा होने पर काली मिर्च के समान गोली बना ले। 1-1 गोली रोज घी के साथ लेने से अच्छा लाभ होता है। तेल खटाई त्याज्य है। अन्य पथ्य इच्छानुसार दे। विशेष अनुभूत है ॥ ८१-८३ ॥

वरादि गुग्गुलुः ।

वरानिम्बार्जुनाश्वत्थखदिरासनवासकैः । चूर्णितैर्गुग्गुलुसमैर्वटिका अक्ष-सम्मिताः ॥ ८४ ॥ कर्त्तव्या नाशयन्त्याशु सर्वान् लिङ्गसमुत्थितान् । उपदंशानसृग्-दोषान् तथा दुष्टव्रणानपि ॥ ८५ ॥

त्रिफला, नीम की छाल, अर्जुन की छाल, पीपल की छाल, खैर, असन (पीतशाल), अड़ूसा हरएक का चूर्ण समभाग, सब चूर्ण के समान शुद्ध गूगल, इन्हें इकट्ठा मिलाकर गोलियाँ बनायें। मात्रा—४ रत्ती से २ माशे तक। इनके सेवन से उपदंश, रक्तदोष और दुष्टव्रण नष्ट होते हैं ॥ ८४-८५ ॥

सारिवाद्यवलेह ।

सारिवायाः पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् । तस्मिन् पादावशेषे तु गुडूची शतमूलिका ॥ ८६ ॥ विदारी जीवनी त्रिकटुमुराही च त्रिफला तथा । चुर्द्दला चोपचीनी च प्रत्येकार्द्धपलं मतम् ॥ ८७ ॥ सुपिष्टं निक्षिपेत्तत्र शीते मधु पलाष्टकम् । क्षीरानुपानयोगेन पिबेत्तोलकसम्मितम् ॥ ८८ ॥ प्रमेहांश्चोपदंशांश्च मूत्रकृच्छ्रञ्च पीडिकाः । नश्यन्ति स्वपरे रोगा रक्तदुष्ट्या भवन्ति ये ॥ ८९ ॥ सूतोत्थविकृतिश्चापि सन्देहो नात्र कश्चन । पुरुषः सर्वरोगेभ्यो बलवर्णाग्निसंयुतः ॥ ९० ॥ मानवः सिद्धकामोऽस्माच्छीघ्रं भवति निश्चितम् ॥ ९१ ॥

अनन्तमूल ६ सेर, जल २२ सेर ४८ तोले, बाकी ६ सेर ३२ तोले। प्रक्षेपार्थ गिलोय, शतावरि, विदारीकन्द, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली,

मुलहठी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, निसोत, मुण्डी, त्रिफला, इलायची और चोपचीनी, हरएक का चूर्ण चार-चार तोले विधिपूर्वक पकायें। शीतल होने पर १२ तोला शहद मिलायें। मात्रा-आधे तोले से १ तोले तक। अनुपान—दूध। प्रमेह, उपदंश, मूत्रकृच्छ्र, पिडिका तथा अन्य रोग, जो रक्त के विकार से पैदा होते हैं, इसके सेवन से नष्ट हो जाते हैं। पारे के सेवन से उत्पन्न विकार को भी यह अवलेह निश्चयपूर्वक नष्ट करता है। सम्पूर्ण रोगों से छूटकर रोगी बल तथा अग्नियुक्त होता है॥ ८६-९१॥

फिरङ्ग रोग में चोपचीनी का प्रयोग।

चोपचीनीभवं चूर्णं शाणमानं समाचिकम्। फिरङ्गव्याधिनाशाय भक्षयेल्लवणं त्यजेत्॥ ९२॥ लवणं यदि वा त्यक्तुं न शक्नोति यदा जनः। सैन्धवं स हि भुञ्जीत मधुरं परमं हितम्॥ ९३॥

चोपचीनी के चूर्ण को चौथाई तोले से आधे तोले तक की मात्रा में शहद के साथ मिलाकर फिरङ्ग रोग की शान्ति के लिए सेवन करें। अपथ्य—नमक। यदि पुरुष नमक का त्याग न कर सके तो केवल सेंधा नमक का ही प्रयोग करे॥ ९२-९३॥

कज्जल्यादि मोदक।

पारदः कर्षमात्रः स्यात्तावन्मात्रन्तु गन्धकम्। तावन्मात्रस्तु खदिरस्तेषां कुर्यात्तु कज्जलीम्॥ ९४॥ रजनी केशरत्रुट्यौ जीरयुग्मं यमानिका। चन्दनद्वितयं कृष्णा वांशी मांसी च पत्रकम्॥९५॥ अर्द्धकर्षमितं सर्वं चूर्णयित्वा च निक्षिपेत्। तत्सर्वं मधुसर्पिभ्यां द्विपलाभ्यां पृथक्-पृथक्॥ ९६॥ मर्दयेदथ तत्खादेदर्द्धकर्षमितं नरः। व्रणः फिरङ्गरोगोत्थस्तस्यावश्यं विनश्यति॥ ९७॥ अन्योऽपि चिरजातोऽपि प्रशाम्यति महाव्रणः। एतद्भक्षयतः शोथो मुखस्यान्तर्न जायते॥ वर्जयेदत्र लवणमेकविंशति वासरान्॥९८॥

पारा २ तोले, गन्धक २ तोले, इनकी कज्जली करके सफेद कत्था २ तोले मिलावें। पश्चात् हल्दी, नागकेशर, छोटी इलायची, सफेद जीरा, कालाजीरा, अजवाइन, सफेद-चन्दन, लालचन्दन, पीपल, वंशलोचन, जटामांसी और तेजपात हरएक के एक-एक तोला चूर्ण को मिलाये। तदनन्तर इस सब चूर्ण को शहद तथा घृत चौंसठ-चौंसठ तोले डालकर लड्डू बना लें। मात्रा—आधे तोले से १ तोला तक। इसके सेवन से फिरङ्ग,व्रण, चिरकालीन व्रण आदि नष्ट होते हैं। पारा विकृति से उत्पन्न होनेवाले लालास्राव तथा मुखान्तर्गत शोथ (मुँह आना) आदि उपद्रव रोगी के उत्पन्न नहीं होते। इसके सेवन-काल में २१ दिन तक नमक न खाना चाहिए॥ ९४-९८॥

उपदंश रोग में पथ्य।

छर्दिर्विरेको ध्वजमध्यनाडीवेधौ जलौका परिपातनं च। सेकः प्रलेपो यवशालयश्च धन्वामिषं मुद्गरसो घृतानि॥ ९९॥ कठिल्लकं शिग्रुफलं पटोलं शालिञ्च शाकं नवमूलकं च। तिक्तं कषायं मधु कूपवारि तैलं च हन्यादुपदंशरोगम्॥ १००॥

वमन, विरेचन, पुरुषेन्द्रिय की मध्यगामिनी नाड़ी का वेधन, जोंक लगाना, सेक करना लेप करना तथा जौ, शाली चावल, जांगल पशु-पक्षियों का मांस, मूँग का रस, घी, करेला, सहिजना, परवल, शालिचशाक, नई मूली, कडवे और कसैले रस, शहद, कुएँ का जल, तिल के तेल की मालिश, ये सब उपदंश-रोगी को पथ्य हैं॥ ९९-१००॥

उपदंश रोग में अपथ्य।

दिवानिद्रा मूत्रवेगं गुर्वन्नं मैथुनं गुडम्।

आयासमम्लं तक्रं च वर्जयेदुपदंशवान् ॥ १०१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामुपदंशाधिकारः समाप्तः।

दिन में सोना मूत्र के वेग को रोकना, भारी अन्न, मैथुन, गुड़, शारीरिक परिश्रम, मट्ठा और खटाई, ये सब उपदंशरोगी को अपथ्य हैं ॥ १०१ ॥

इति श्रीपण्डितसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायामुपदंशाधिकारः समाप्तः।

अथ शूकदोषाधिकारः।

शूकदोषेषु सर्वेषु पित्तघ्नीं कारयेत्क्रियाम् ॥ १ ॥ हितं च सर्पिषः पानं पथ्यं चापि विरेचनम् ॥ हितः शोणितमोक्षश्च यच्चापि लघु भोजनम् ॥ २ ॥

सब शूकदोषों में पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिए और कुष्ठ रोगोक्त पञ्चतिक्तादि से सिद्ध घृत का पान और हरीतकी प्रभृति विरेचक औषध सेवन, रक्तमोक्षण और लघु भोजन हित होते हैं ॥ १-२ ॥

सर्षपीचिकित्सा।

सर्षपीं लिखितां सूक्ष्मैः कषायैरवचूर्णयेत्। तैरेवाभ्यञ्जनं तैलं साधयेद् व्रणरोपणम् ॥ ३ ॥ क्रियेयमवमन्थेऽपि रक्तं स्राव्यं तयोभयोः। अष्ठीलायां हृते रक्ते श्लेष्मग्रन्थिवदाचरेत् ॥ ४ ॥

शूक-दोषोत्पन्न सर्षपिका नामक पिडिका को सागू आदि की पत्ती से घिसकर किंशुक, मजीठ, पीपर, वट आदि कषाय द्रव्यों के चूर्ण से अवकीर्ण करे। उन्हीं कषायद्रव्यों के क्वाथ और कल्क द्वारा सिद्ध तैल का मर्दन करे। इस क्रिया से व्रण भरकर शुष्क हो जाता है। अवमान्ध रोग में भी यही क्रिया करनी चाहिए। सर्षपिका और अवमन्थ इन दोनों में रक्तमोक्षण करना चाहिए। अष्ठीला रोग में रक्तमोक्षण करने के पश्चात् श्लैष्मिक ग्रन्थि के समान चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ३-४ ॥

कुम्भिकाचिकित्सा।

कुम्भिकायां हरेद्रक्तं पक्वायां शोधिते व्रणे। तिन्दुकत्रिफलालोध्रैर्लेपस्तैलं च रोपणम् ॥ ५ ॥

कुम्भिका रोग में रक्तमोक्षण करे तथा व्रण के पक जाने पर पीब आदि निकाल कर तेन्दू, त्रिफला और लोध का लेप करे और व्रणरोपण तैल लगावे ॥ ५ ॥

अलजीचिकित्सा।

अलज्यां कूररक्तायामयमेव क्रियाक्रमः। स्वेदयेत् ग्रथितं स्निग्धं नाडीस्वेदेन बुद्धिमान् ॥ सुखोष्णैरुपनाहैश्च सुस्निग्धैरुपनाहयेत् ॥ ६ ॥

अलजीरोग में रक्त के दूषित हो जाने पर कुम्भिका के समान ही चिकित्सा करे। ग्रथित रोग में नाडीस्वेद द्वारा स्निग्धस्वेदन और सुस्निग्ध तथा किञ्चदुष्ण द्रव्यों का प्रलेप करे ॥ ६ ॥

उत्तमाचिकित्सा।

उत्तमाख्यां तु पिडिकां सञ्छिद्य बडिशोद्धृताम्। कल्कैश्चूर्णैः कषायाणां क्षौद्रयुक्तैरुपाचरेत् ॥ ७ ॥

उत्तमा नाम की पिडिका को बडिश से उठाकर छेदन करके कषायद्रव्यों के कल्क और चूर्ण में मधु मिलाकर लेप करे ॥ ७ ॥

पुष्करीचिकित्सा।

क्रमः पित्तविसर्पोक्तः पुष्करीमूढ-

मोहितः ॥ ८ ॥ त्वक्पाके स्पर्शहान्यां च सेचयेन्मृदितं पुनः। बलातैलेन कोष्णेन मधुरैश्चोपनाहयेत् ॥ ६ ॥

पुष्करी और मूढ़ा नाम की पिडिका में पित्तविसर्पोक्त क्रिया करे। चमड़ा पक गया हो और स्पर्शशून्यता हो गई हो तो सेचन करे। मृदित रोग में किञ्चिदुष्ण बलातैल लगावे या मधुर द्रव्यों का लेप करे ॥ ८-६ ॥

शतपोनकचिकित्सा।

रसक्रिया विधातव्या लिखिते शतपोनके। पृथक्पर्ण्यादिसिद्धं तु तैलं देयमनन्तरम् ॥ १० ॥

शतपोनक में लेखनक्रिया करके रसक्रिया करे पश्चात् पृष्ठपर्णी आदि से सिद्ध तैल लगावे ॥ १० ॥

शोणितार्बुद की चिकित्सा।

रक्तविद्रधिवच्चापि क्रियाशोणितजेऽर्बुदे। कषायकल्कसर्पींषि तैलञ्चूर्णं रसक्रियाम् ॥ शोधने रोपणे चैव वीक्ष्य वीक्ष्यावचारयेत् ॥ ११ ॥

शोणितार्बुद में रक्तविद्रधि के समान चिकित्सा करे। उसके शोधन और रोपण के लिये कषाय द्रव्य के कल्क द्वारा सिद्ध घृत, तैल, कषाय द्रव्यों के चूर्ण और रस क्रिया की यथायोग्य व्यवस्था करे ॥ ११ ॥

अर्बुदचिकित्सा।

अर्बुदं मांसपाकं च विद्रधिं तिलकालकम् ॥ १२ ॥ प्रत्याख्याय प्रकुर्वीत भिषक् तेषां प्रतिक्रियाम्। सर्वेषां शूकदोषाणां क्रियां व्रणवदाचरेत् ॥ उपदंशाधिकारोक्तमौषधं शूकदोषतः ॥ १३ ॥

शूकदोषोत्पन्न अर्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक रोगों में इनका उल्लेखन करके चिकित्सा करनी चाहिए। शूक-दोषोत्पन्न सभी पीड़ाओं में व्रणवत चिकित्सा करे। शूक-दोषों में उपदंशाधिकारोक्त औषधों की व्यवस्था करे ॥ १२-१३ ॥

दार्व्यो तैल।

दार्वीसुरसयष्ट्याह्वगृहधूमनिशायुतैः। तैलमभ्यञ्जने पाने मेढ्ररोगं निवारयेत् ॥ १४ ॥

तिलतैल २ सेर। कल्कार्थ दारुहल्दी, तुलसी, मुलेठी, गृहधूम और हल्दी कुल मिलित आधासेर। पाकार्थ जल ८ सेर। यथोचित रीति से सिद्ध कर इस तैल का अभ्यङ्ग और पान दोनों प्रकार से प्रयोग करे तो मेढ्र रोग दूर होता है ॥ १४ ॥

शूकदोष में पथ्य।

लेपो विरेकोऽसृङ्मोक्षः सर्पिः पानञ्च शालयः। यवा जाङ्गलमांसानि मुद्गयूपः कठिल्लकम् ॥ १५ ॥ पटोलं शिग्रु कर्कोटं पत्तूरं बालमूलकम्। वेत्राग्रमापाढफलं दाडिमं सैन्धवं वरा ॥ १६ ॥ कूपोदकं गन्धसारः कस्तूरी हिमवालुका। तिक्तं कषायं तैलञ्च स्यात्पथ्यं शूकरोगिणाम् ॥ १७ ॥

प्रलेप, विरेचन, रक्तमोक्षण, घृतपान, शालि, जौ, जांगलमांस, मूँग का जूस, पुनर्नवा, परवल, सहिजना, ककोड़ा, शालिञ्च, कच्ची मूली, बेत की कोंपल, ककड़ी, अनार, सेंधानमक, त्रिफला, कुएँ का जल, चन्दन, कस्तूरी, कपूर, कड़वे कषैले द्रव्य और तैल, ये शूक रोगियों के लिए पथ्य हैं ॥ १५-१७ ॥

शूकरोग में अपथ्य।

मूत्रवेगं दिवानिद्रां व्यायामं मैथुनं गुडम्। विदाहि गुरु तक्रञ्च शूकदोषामयी त्यजेत् ॥ १८ ॥

इति श्रीभैषज्यरत्नावल्यां शूकदोषाधिकारः समाप्तः।

मूत्र का वेग, दिन में सोना, व्यायाम, मैथुन, गुड़, विदाहि, तथा गुरुभोजन और छाँछ इनका शूक दोष रोगी को त्याग करना चाहिए ॥ १८ ॥

इति श्रीवैद्यदत्तसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां शूकदोषाधिकारः समाप्तः।

अथ प्रमेहाधिकारः।

सामान्य चिकित्सा।

स्थूलः प्रमेही बलवानिहैकः कृशस्तथान्यः परिदुर्बलश्च। संबृंहणं तत्र कृशस्य कार्यं संशोधनं दोषबलाधिकस्य ॥ १ ॥

कोई प्रमेहरोगी स्थूल और बलवान् तथा कोई कृश और दुर्बल होते हैं। उनमें कृश व्यक्ति के लिये बृंहण (बलमांसवर्धन) तथा अधिक दोष और बलसम्पन्न व्यक्ति के लिये संशोधन (विरेचनादि) की व्यवस्था करनी चाहिए ॥ १ ॥

ऊर्ध्वं तथाधश्च मलेऽपनीते मेहेषु सन्तर्पणमेव कार्यम्। संशोधनं नार्हति यः प्रमेही तस्य क्रिया संशमनी विधेया ॥२॥

वमन और विरेचन द्वारा मलों के निकल जाने पर सन्तर्पण क्रिया ही करनी चाहिए। जिस प्रमेहरोगी के लिये संशोधन क्रिया उचित न हो उसके लिये संशमन क्रिया करनी चाहिए ॥ २ ॥

प्रमेह रोगी के लिए पथ्य।

ये विष्किरा ये प्रतुदा विहङ्गास्तेषां रसैर्जाङ्गलजैर्मनोज्ञैः। मन्दाः कषाया रसचूर्णलेहा मसूरमुद्गा लघवश्च भक्ष्याः ॥३॥

जो विष्किर (हंस, मयूर और कुक्कुटादि) और प्रतुद (कबूतर आदि) पक्षी हैं तथा जो जंगल में रहनेवाले पशु हैं उनके उत्तम मांसरस के साथ क्वाथ, रस, चूर्ण, अवलेह, मसूर, मूँग, और मधु आहार प्रमेहरोगी को देना चाहिए ॥ ३ ॥

श्यामाककोद्रवोद्दालगोधूमचणकाढकी। कुलत्थाश्च हिता भोज्ये पुराणा मेहिनां सदा ॥ ४ ॥ जाङ्गलं तिक्तशाकं च यवान्नं च श्रमो मधु। रूक्षमुद्वर्त्तनं गाढं व्यायामो निशि जागरः ॥ यच्चान्यत् श्लेष्मपित्तघ्नं बहिरन्तश्च तद्धितम् ॥ ५ ॥

पुराने साबाँ, कोदों, जंगली कोदों, गेहूँ, चना, अरहर और कुलथी प्रमेहरोगी के लिए सदा भोज्य हैं। जाङ्गलमांस, तिक्तशाक, जौ का भात, परिश्रम और मधु, ये सब प्रमेहरोगी के लिए हितकर हैं। तथा पर्याप्तरूप से रूक्ष उद्वर्तन व्यायाम, रात में जागना और इसी प्रकार अन्यान्य जिन शारीरिक और मानसिक क्रियाओं के द्वारा कफ और पित्त नष्ट हों वे सब प्रमेहरोगी के लिए हितकर हैं ॥ ४-५ ॥

सर्वमेहहरो धात्र्या रसः क्षौद्रनिशायुतः ॥ ६ ॥

मधु और हल्दी के चूर्ण को मिलाकर आँवले के स्वरस का सेवन करने से सब प्रकार का प्रमेहरोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

कषायस्त्रिफलादारुमुस्तकैरथवा कृतः। त्रिफलादारुदार्व्यब्दक्वाथः क्षौद्रेण मेहहा ॥ ७ ॥ त्रिफलालोहशिलाजतु पथ्याचूर्णं च लीढमेकैकम्। मधुनामरास्वरस इव सर्वान् मेहान्निवारयति ॥ ८ ॥

प्रत्येकं त्रिफलादिचतुर्णां चूर्णं मधुना लेह्यम्।

त्रिफला, देवदारु, और नागरमोथा का क्वाथ तथा मधुयुक्त त्रिफला, देवदारु, दारुहल्दी और नागरमोथा का क्वाथ प्रमेह नाशक है ॥ ७ ॥

जैसे मधुयुक्त गिलोय का स्वरस सब प्रकार के प्रमेह को दूर करता है वैसे ही त्रिफला, लोहभस्म, शिलाजीत और हरीतकी का चूर्ण ये प्रत्येक मधु के साथ चाटने से सब प्रकार के प्रमेह को दूर करते हैं ॥ ८ ॥

पीतः सारो गुडूच्या वा मधुना मेहनाशनः ॥ ९ ॥

गुर्च का सत्त मधु के साथ सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेह को नष्ट करता है ॥ ९ ॥

शतावर्या रसं नीत्वा क्षीरेण सह यः पिबेत् । प्रमेहा विंशतिस्तस्य क्षयं यान्ति न संशयः ॥ १० ॥

शतावरि के रस को निकालकर दूध के साथ जो पीता है उसके बीसों प्रकार के प्रमेह निःसंदेह नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥

आमदुग्धं समजलं यः पिबेत्प्रातरुत्थितः । निःसंशयं शुक्रमेहा पुराणस्तस्य नश्यति ॥ ११ ॥

प्रातःकाल उठते ही कच्चे दूध में समभाग जल मिलाकर जो पीता है उसका पुराना शुक्रमेह अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

पलाशपुष्पतोलैकं सितायाश्चार्द्धतोलकम् । पिष्टं शीताम्भसा पीतं मेहं हन्ति न संशयः ॥ १२ ॥

एक तोले पलाश के पुष्प में ६ माशे शक्कर मिलाकर शीतल जल के साथ पीसकर पीने से प्रमेहरोग निःसंदेह नष्ट हो जाता है ॥ १२ ॥

स्फाटिकं चूर्णमादाय नारिकेलोदरे क्षिपेत् । तत्फलं पङ्कमध्ये तु स्थापयेदेकरात्रकम् ॥ १३ ॥ प्रातरानीय सजलं चूर्णं पेयं प्रयत्नतः । अनेन चिरकालीनो मेहो नश्यति निश्चितम् ॥ १४ ॥

फिटकरी के चूर्ण को नारियल के भीतर भरकर उसको रात भर पङ्क में गाड रक्खे और प्रातःकाल निकालकर उसके सजल चूर्ण का पान करे । इससे पुराना प्रमेह रोग अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ १३-१४ ॥

व्यायामजातमखिलं भजन्मेहान् व्यपोहति । पादतश्छत्ररहितो भिक्षाशी मुनिवत् यतः ॥ १५ ॥ योजनानां शतं गच्छेदाधिकं वा निरन्तरम् । मेहान् जेतुं वने वापि नीवारामलकाशनः ॥ १६ ॥

सब प्रकार के व्यायाम से प्रमेह रोग नष्ट होते हैं । मुनियों के समान छत्ररहित पैदल भिक्षाटन करता हुआ शतयोजन या इससे भी अधिक की निरन्तर यात्रा करने से अथवा वन में निवास कर निवार और आँवले का आहार करने से प्रमेह रोग नष्ट होते हैं ॥ १५-१६ ॥

फलत्रिकादि ।

फलत्रिकं दारु निशां विशालां मुस्ता च निःक्वाथ्य निशांशकल्कम् । पिबेत्कषायं मधुसंप्रयुक्तं सर्वप्रमेहेषु समुच्छ्रितेषु ॥ १७ ॥

हड़, बहेड़ा, आँवला, दारुहल्दी, इन्द्रायन की जड़, मोथा मिलाकर २ तोले । पाक के लिए जल ३२ तोले, बाकी क्वाथ ८ तोले, इस क्वाथ में हल्दी का चूर्ण तथा शहद मिलाकर पीने से सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १७ ॥

मुस्तादि क्वाथ ।

मुस्ता फलत्रिकनिशा सुरदारुमूर्वा ऐन्द्री च लोध्रसलिलेन कृतः कषायः । पाने हितः सकलमेहभवे गदे च मूत्रग्रहेषु सकलेषु नियोजनीयः ॥ १८ ॥

मोथा, त्रिफला, देवदारु, मूर्वा की जड़, इन्द्रायण की जड़ और लोध मिलाकर २ तोले । पाक के लिये जल ३२ तोले, बाकी ८ तोले । यह क्वाथ सम्पूर्ण प्रमेह तथा मूत्रकृच्छ्र रोग में लाभदायक है ॥ १८ ॥

दशविध श्लेष्मज प्रमेह में योग ।

हरीतकी कट्फलमुस्तलोध्राः पाठा-

विडङ्गार्जुनधन्वयासाः। उभे हरिद्रे तगरं विडङ्गंकदम्बशालार्जुनदीप्यकाश्च ॥१९॥ दार्वी विडङ्गं खदिरो धवश्च सुराह्वकुष्ठा गुरुचन्दनानि। दार्व्यग्निमन्थौ त्रिफला वचा च पाठा च मूर्वा च तथा श्वदंष्ट्रा २० यवा उशीराण्यभया गुडूची जम्बू शिवा-चित्रकसप्तपर्णाः। पादैः कषायाः कफ-मेहिनां ते दशोपदिष्टा मधुसम्प्रयुक्ताः २१

१--हड़, कायफल, मोथा, लोध। २--पाढ़, वायविडङ्ग, अर्जुन, दुरालभा (धमासा)। ३--हल्दी, दारुहल्दी, तगर, वायविडङ्ग। ४--कदम्ब की छाल, साल की छाल, अर्जुन, अजवाइन। ५--दारुहल्दी, वायविडङ्ग, खैर, धव। ६--देव-दारु, कूठ, अगर, लालचन्दन। ७--दारुहल्दी, अरणी, त्रिफला, वच। ८--पाढ़, मूर्वा की जड़, गोखरू,। ९--जौ, खस, हड़, गिलोय। १०--जामुन की गुठली, हड़, चित्रक सतौना इनमें से हर-एक के विधिपूर्वक सिद्ध किये हुए क्वाथ में शहद डालकर पीने से दसों प्रकार के श्लैष्मिक प्रमेह नष्ट होते हैं ॥१९--२१॥ मात्रा--५-५ तोला॥

विडङ्गादि क्वाथ।

विडङ्गसर्जार्जुनकट्फलानां कदम्ब-लोध्राशनदृप्तकाणाम्। जलेन क्वाथश्च हितो नराणां कफप्रमेहेन सदातुरा-णाम् ॥ २२ ॥

वायविडङ्ग, साल, अर्जुन की छाल, कट्फल, कदम्ब की छाल, लोध, असन, कुड़ा की छाल मिलाकर २ तोले। क्वाथ के लिये जल ३२ तोले, शेष ४ तोले। यह क्वाथ सदा कफ-प्रमेह से पीड़ितों के लिये अत्यन्त हितकारक है ॥ २२ ॥

पित्तप्रमेह में छः क्वाथ।

उशीरलोध्रार्जुनचन्दनानामुशीरमुस्ता-मलकाभयानाम्। पटोलनिम्बामल-काम्रतानां मुस्ताभया पुष्करवृक्षकाणाम् २३

लोध्राम्बुकालीयकधातकीनां त्रिशवार्जुनैलाशिरिषोत्पलानाम्। पैत्तेषु मेहेष्विहसम्प्र-दिष्टाः कषाययोगा मधुसम्प्रयुक्ताः ॥२४॥

१--खस, लोध, अर्जुन की छाल और लाल चन्दन मिलाकर २ तोले, क्वाथ के लिये जल ३२ तोले, बाकी क्वाथ ८ तोले। २- खस, मोथा, आँवला, हड़ मिलाकर २ तोले, पाक के लिये जल ३२ तोले, बाकी क्वाथ ८ तोले, ३--परवल के पत्ते, नीम की छाल, आँवला, गिलोय मिलाकर २ तोले, पाक के लिये जल ३२ तोले, बाकी क्वाथ ८ तोले। ४--मोथा, हड़, पोहकरमूल, कुड़ा की छाल मिलाकर २ तोले, जल ३२ तोले, बाकी क्वाथ ८ तोले। ५--लोध, गन्धबाला, दारुहल्दी, धाय के फूल मिलाकर २ तोले, पाक के लिये जल ३२ तोले, बाकी क्वाथ ८ तोले। ६--सोंठ, अर्जुन की छाल, छोटी इलायची, शिरीष की छाल, नील कमल मिलाकर २ तोले, पाक के लिये जल ३२ तोले, शेष क्वाथ ४ तोले। इन क्वाथों में से किसी एक में शहद डालकर पैत्तिक मेहों की शान्ति के लिये पीना चाहिए अथवा इन क्वाथों को यथाक्रम मञ्जिष्ठमेह, हरिद्रामेह, नीलमेह, क्षारमेह, कालमेह तथा रक्तमेह में प्रयुक्त कराना चाहिए ॥ २३--२४ ॥

उदकप्रमेह में धवार्जुनादि क्वाथ।

धवार्जुनश्चन्दनशालशल्लकी क्वाथो हितः स्याद्ध जलप्रमेहे ॥ २५ ॥

धवछाल, अर्जुनछाल, लाल चन्दन, शाल-त्वक्, शल्लकी (शालमेद, सलई) मिला-कर २ तोले, जल ३२ तोले, बचा हुआ क्वाथ ४ तोले। यह क्वाथ उदकमेह में हितकारक है ॥ २५ ॥

उदकप्रमेह आदि रोगों में आठ क्वाथ।

पारिजातजयानिम्बवह्निकायत्रिणां पृथक्। पाठायाः सागुरोः पीताद्रयस्य न्यारदस्य च ॥ २६ ॥ जलेनुमधसिक्ता-

शनैर्लवणपिष्टकान् । सान्द्रमेहान् क्रमाद् घ्नन्ति क्वाथाश्चाष्टौ समाक्षिकाः ॥ २७ ॥

पारिभद्र के क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से उदकमेह, जयन्तीपत्र के क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से इक्षुमेह, नीमछाल के क्वाथ में शहद डालकर पीने से सुरामेह, मधुयुक्त चित्रक क्वाथ से सिक्तामेह, खैर के क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से शनैर्मेह, पाढ़ और अगर के क्वाथ में शहद डालकर सेवन करने से लवणमेह, हल्दी और दारुहल्दी के क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से पिष्टमेह एवं सतौने की छाल के क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से सान्द्रमेह नष्ट होता है ॥ मात्रा--४।५ तोला ॥२६--२७॥

नीलादिपैत्तिक प्रमेह में पञ्च क्वाथ ।

अश्वत्थाद्राजवृक्षान्न्यग्रोधाच्च फलत्रयात् । सचन्दनसमङ्गायाः क्वाथाः पञ्च समाक्षिकाः ॥ नीलहारिद्रफेनाख्यक्षारमंजिष्ठकाह्वये ॥ २८ ॥

१--पीपल, २--अमलतास, ३--बड़ की जड़ की छाल, ४--त्रिफला, ५--लालचन्दन, ६-मजीठ इनसे सिद्ध किये क्वाथ में शहद डालकर पीने से यथाक्रम नीलमेह, हारिद्रमेह, फेनमेह, क्षारमेह तथा मंजिष्ठकमेह नष्ट होते हैं ॥ २८ ॥

रक्तप्रमेह में क्वाथ ।

रक्तप्रमेहे क्वथितं पयश्च द्राक्षान्वितं यष्टिकचन्दनेन ॥ २९ ॥

दाख, मुलहठी तथा लालचन्दन से सिद्ध शीतल क्वाथ को दूध के साथ सेवन करने से रक्तप्रमेह शान्त होता है ॥ २९ ॥

सर्पिप्रमेह में फलत्रिकादि क्वाथ ।

फलत्रिकारग्वधमूर्वमूलं शोभाञ्जनारिष्टत्वचौ च मोचा । द्राक्षायुतो वा क्वथितः प्रयोज्यः सर्पिःप्रमेहस्य निवारणाय ॥३०॥

त्रिफला, अमलतास, मूर्वामूल, सहिजना की छाल, नीम की छाल, सेमल की जड़ और दाख इनके क्वाथ को सर्पिमेह के निवारण के लिये रोगी को सेवन कराना चाहिए ॥ ३० ॥

हस्तिमेह में पाठादि क्वाथ ।

पाठा शिरीषो दुःस्पर्शा मूर्वा किंशुकतिन्दुकम् । कपित्थानां भिषक् क्वाथं हस्तिमेहे प्रयोजयेत् ॥ ३१ ॥

पाढ़, सिरस की छाल, दुरालभा, मूर्वामूल, ढाक के फूल, तिन्दुक की छाल, कैथा मिलाकर २ तोले । पाक के लिये जल १२ तोले । बाकी क्वाथ २ तोले । इस क्वाथ के पीने से हस्तिमेह नष्ट होता है ॥ ३१ ॥

क्षौद्रमेह में कदरादि कषाय ।

कदरखदिरपूगक्वाथं क्षौद्राह्वये पिबेत् ।

कदर (श्वेत खदिर), खैरकाष्ठ और सुपारी इनके क्वाथ को क्षौद्रमेह में पीना चाहिए ।

वसामेह में अग्निमन्थकषाय ।

अग्निमन्थकषायन्तु वसामेहे प्रयोजयेत् ॥ ३२ ॥

अरणी की छाल के क्वाथ को वसामेह में प्रयुक्त करने से रोगी को लाभ होता है ॥ ३२ ॥

न्यग्रोधादि चूर्ण ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थश्योनाकारग्वधासनम् । आम्रजम्बूकपित्थञ्च प्रियालं ककुभं धवम् ॥ ३३ ॥ मधूको मधुकं लोध्रं वरुणः पारिभद्रकम् । पटोलं मेषशृङ्गी च दन्तीचित्रकमाढकी ॥ ३४ ॥ करञ्जत्रिफलाशक्रभल्लातकफलानि च । एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ३५ ॥ न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत् । फलत्रयरसञ्चानुपिबेन्मूत्रं विशुद्ध्यति ॥ ३६ ॥ एतेन विंशतिर्मेहा मूत्रकृच्छ्राणि यानि च । प्रशमं

यान्ति योगेन पिडिका न च जायते। न्यग्रोधाद्यमिदं तत्र चाम्रजम्ब्वस्थि गृह्यते ॥ ३७ ॥ इष्टफलमिदं चूर्णम् ॥

बड़, गूलर पीपल, करञ्ज, अमलतास, पीतशाल की छाल, आम्रबीज, जामुनबीज, कैथा, प्रियाल (चिरौंजी), अर्जुन की छाल, धव की छाल, मधूकपुष्प (महुए के फूल), मुलहठी, लोध, बरना की छाल, पारिभद्र (फरहद) की छाल, परवल के पत्ते, मेढ़ासिंगी, दन्तीमूल, चित्रक, अरहर की जड़, करञ्जफल, त्रिफला, कुड़ा की छाल, शुद्ध भिलावाँ, इन्हें बराबर मात्रा में इकट्ठाकर मिला लें। मात्रा-१माशे से ३ माशे तक। अनुपान—त्रिफला का क्वाथ। इसके सेवन से मूत्र शुद्ध हो जाता है तथा सम्पूर्ण प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है। इसके प्रयोग से प्रमेह-पिडिकाएँ पैदा नहीं होतीं ॥ ३३-३७ ॥

कुशावलेह।

कुशः काशो वीरणश्च कृष्णेक्षुः खण्डस्तथा। एषां दशपलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ३८ ॥ अष्टभागावशेषं तु कषायमवतारयेत्। खण्डमस्थं समादाय लेहवत् साधु साधयेत् ॥ ३९ ॥ अवतार्य ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत्। मधुकं कर्कटीबीजं कर्कारुत्रपुषं तथा ॥ ४० ॥ शुभ्रामलकपत्राणि त्वगेलानागकेशरम्। वरुणामृता प्रियङ्गुश्च प्रत्येकमक्षसम्मितम् ॥ ४१ ॥ प्रमेहान् विंशतिं हन्ति मूत्राघातांस्तथाश्मरीः। वातिकान् पैत्तिकांश्चापि श्लेष्मिकान् सान्निपातिकान्। हन्त्यरोचकमत्युग्रं बलपुष्टिकरं परम् ॥४२॥

१०-१० तोला पल कुश, काश, खस, काली ऊख और खागड़ा को १२ सेर ६४ तोला जल में पकावे और अष्टमांश क्वाथ अवशिष्ट रहने पर उतार ले। उस क्वाथ में सेर भर खाँड डालकर फिर आँच पर चढ़ाकर उत्तम अवलेह के समान बनाकर उतार ले। पश्चात् उसमें एक एक तोला मुलेठी[1] ककड़ी के बीज, कद्दू के बीज, खीरा के बीज, वंशलोचन, आँवला, तेजपात, दालचीनी इलायची नागकेसर, बरना की छाल, गिलोय और प्रियंगु के फूल का चूर्ण मिला दे। यह अवलेह बीस प्रकार के प्रमेहों, सब प्रकार के मूत्राघातों तथा वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक अश्मरी को और अत्युग्र अरोचक रोग को नष्ट करता है तथा अत्यन्त बलवर्धक और पुष्टिकारक है ॥ ३८-४२ ॥

[1] शुभ्रा = वंशरोचना।

शिलाजतुप्रयोग।

शालसारादितोयेन भावितं यच्छिलाजतु। पिबेत्तेनैव संशुद्धदेहः पिष्टं यथाबलम् ॥ ४३ ॥ जाङ्गलानां रसैः सार्द्धं तस्मिन् जीर्णे च भोजनम्। कुर्यादेवं तुलां यावदुपयुञ्जीत मानवः ॥ ४४ ॥ मधुमेहं विहायासौ शर्करामश्मरीं तथा। वपुर्वर्णबलोपेतः शतं जीवत्यनामयः ॥ माक्षिकं धातुमप्येवं युञ्ज्यादस्याप्ययं गुणः ॥४५॥

शिलाजीत को शालसारादि के क्वाथ से भावित कर फिर उसी के क्वाथ के साथ पीसकर बल के अनुसार मात्रा में सेवन करे। उसके जीर्ण होने पर जाङ्गल पशुओं के मांसरस के साथ भोजन करे। इस प्रकार मनुष्य एक तुलापर्यन्त शिलाजीत का सेवन करे तो उसके मधुमेह, शर्करा और अश्मरी रोग नष्ट हो जाते हैं। वह सुन्दर कान्ति और बलसम्पन्न शरीर से १०० वर्ष पर्यन्त निरोग होकर जीता है। इसी प्रकार माक्षिक धातु (स्वर्णमाक्षिक) का भी प्रयोग करे। उसके भी ये ही गुण हैं ॥ ४३-४५ ॥

शालसारादिलेह।

शालसारादिवर्गस्य क्वाथे तु घनतां गते। दन्तीलोध्रशिवाकान्तलोहताम्ररजः

क्षिपेत् ॥ घनीभूतमदग्धं च प्राश्य मेहान् व्यपोहति ॥ ४६ ॥

शालसारादियों के क्वाथ को पकाकर गाढ़ा बना ले। पश्चात् उसमें दन्ती, लोध, हरीतकी, कान्तलोह की भस्म और ताम्रभस्म डाले। किन्तु इन चूर्णों का प्रक्षेप करते समय ध्यान रखते कि चूर्ण दग्ध न होने पावे और पाक घनीभूत (बहुत गाढ़ा) हो जाय। यह अवलेह सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है मात्रा २ माशा ॥ ४६ ॥

धान्वन्तर घृत।

दशमूलं करञ्जौ द्वौ देवदारु हरीतकी। वर्षाभूर्वरुणो दन्ती चित्रकं सपुनर्नवम् ४७ सुधानिम्बकदम्बाश्च बिल्वभल्लातकानि च। शटी पुष्करमूलञ्च पिप्पलीमूलमेव च ॥ ४८ ॥ प्रथक् दशपलान् भागान् तत्तस्तोयार्मणे पचेत्। यवकोलकुलत्थानां प्रस्थं प्रस्थञ्च दापयेत् ॥ ४६ ॥ तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत्। निचुलं त्रिफला भार्गी रोहिषंगजपिप्पली ॥५०॥ शृङ्गवेरं विडङ्गानि वचा कम्पिल्लकं तथा। गर्भेणानेनतत्सिद्धं पाययेत्तुयथाबलम् ५१ एतद्धान्वन्तरं नाम विख्यातं सर्पिरुत्तमम्। कुष्ठं गुल्मप्रमेहांश्च श्वयथुं वातशोणितम् ॥ ५२ ॥ प्लीहोदरं तथार्शांसि विद्रधिं पिडिकाश्च याः। अपस्मारं तथोन्मादं सर्पिरेतन्नियच्छति ॥ ५३ ॥ पृथक् तोयार्मणे तत्र पचेद्द्रव्याच्छतं शतम्। शतत्रयाधिके तोयमुत्सर्गक्रमतो भवेत् ॥ ५४ ॥

गोघृत १२८ तोले। कल्क के लिये—दशमूल, दोनों करञ्जा के फल, देवदारु, हड़, लाल साँठी, वरना की छाल, दन्तीमूल, चित्रक, सफेद साँठी, थूहर की जड़, नीम की छाल, कदम्ब बेल की छाल मिलावाँ, कचूर, शटी, पोहकरमूल, हर एक ४० तोले। जौ, बेर का गूदा, कुलथी, हर एक ६४ तोले। जल नीचे लिखे नियमानुसार। शेष चतुर्थांश। कल्क के लिये—हिज्जल, त्रिफला, भारंगी रोहिषतृण, गजपीपल, सोंठ, वायविडङ्ग, वच, कबीला मिलाकर ३२ तोले। इस घृत को विधिपूर्वक सिद्ध कर रोगी के बल के अनुसार सेवन कराये। मात्रा--आधा तोला। इसके सेवन से कुष्ठ, गुल्म, प्रमेह, सूजन, वातरक्त प्लीहोदर, बवासीर, विद्रधि, पिडिका, अपस्मार और उन्माद आदि रोग नष्ट होते हैं। यहाँ पर क्वाथ में जल का नियम—१ सेर क्वाथ के लिये २१ सेर ४८ तोला जल लेना चाहिए; परन्तु १५ सेर से अधिक क्वाथ द्रव्य के लिए नियमानुसार आठ गुणा जल देना चाहिए ॥ मात्रा—६--माशा से १ तोला ॥ ॥ ४७--५४ ॥

दाडिमाद्य घृत।

दाडिमस्य तु बीजानि कृमिघ्नस्य च तण्डुलाः। रजनी चविकाजाजी त्रिफला नागरं कणा ॥५५॥ त्रिकण्टकस्य बीजानि यमानी धान्यकं तथा। वृक्षाम्लं चपला कोलं सिन्धूद्भवसमायुतम् ॥५६॥ कल्कैरत्तसमैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्। पाने भोज्ये च दातव्यं सर्वर्तुषु च मात्रया ॥ ५७॥ प्रमेहान् विंशतिविधान् मूत्राघातांस्तथाश्मरीम्। कृच्छ्रं सुदारुणं चैव हन्यदेतन्न संशयः ॥५८॥ विबन्धानाहशूलघ्नं कामलाज्वरनाशनम्। दाडिमाद्यं घृतं नाम्ना अश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥ ५६ ॥

अत्र चपला पिप्पलीमूलमिति वृन्दः। गजपिप्पलीति पद्मसेनत्रिपुरकवीन्द्रौ।

अनार के बीज, वायविडङ्ग के चावल, हल्दी, चव्य, जीरा, त्रिफला, सोंठ, पीपरि, गोखरू के बीज, अजवाइन, धनिया, विषाविल (तिन्तिडी), पिपरामूल, बेर और सेंधानमक एक एक तोला

लेकर इनका कल्क बनावे। इस कल्क के साथ दो सेर घृत सिद्ध करे। इस घृत को सब ऋतुओं में रोगी का बलाबल देखकर उचित मात्रा में पीने और भोज्य पदार्थों के साथ खाने के लिये देना चाहिए। यह घृत बीस प्रकार के प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी और दारुण मूत्रकृच्छ्र को निःसन्देह नष्ट करता है। विबन्ध, आनाह, शूल, कामला और ज्वर का नाशक है। इसका नाम 'दाडिमाद्यघृत' है। पहले अश्विनीकुमारों ने इसे बनाया था। इस योग में चपला करके पिपरामूल लिया जाता है, यह वृन्द का मत है। गजपीपरि ली जाती है, यह चक्रसेन और त्रिपुर कवीन्द्र के मत हैं ॥ मात्रा--६--माशा से १ तोला ॥ तक ॥ ५५--५६ ॥

बृहद्दाडिमाद्य घृत ।

चतुःषष्टिपलं पक्वदाडिमस्य सुकुट्टितम् । चतुर्गुणं जलं दत्त्वा चतुर्भागावशेषितम् ॥ ६० ॥ क्वाथेन वस्त्रपूतेन घृतमस्थं विपाचयेत्। दाडिमं चविकाजाज्यौ कृमिघ्नं रजनीद्वयम् ॥ ६१ ॥ द्राक्षा खर्जूरयुञ्जात-मुत्पलं गजपिप्पली। अजमोदा महानिम्बा काकोली नागरं वचा ॥ ६२ ॥ देवाह्वा चविका कुष्ठं काश्मरी मधुयष्टिका । श्यामेन्द्रवारुणी मूर्वा शुभा शृङ्गी धनीयकम् ॥ ६३ ॥ कुलत्थं च महामेदा निम्बश्च बृहतीद्वयम् । दण्डोत्पलं[1] वरा वासा समला सिन्दुवारकम् ॥ ६४ ॥ कल्कश्चैषां युक्तियोगाद् ग्राह्यो हि परिभाषया। प्रमेहं वातिकं हन्ति पैत्तिकं श्लैष्मिकं तथा ॥६५॥ हृच्छूलं बस्तिजं शूलं मूत्राघातांस्त्रयोदश । हिक्कां श्वासं च कासं च यक्ष्माणं सर्वरूपिणम् ॥ ६६ ॥ स्वरक्षयमुरोरोगं रक्तपित्तमरोचकम् । ये च प्रमेहजा रोगास्तान्

[1] दण्डोत्पलम्=सहदेवी

सर्वान्नाशयत्यपि ॥ ६७ ॥ दाडिमाद्यमिदं सर्वप्रमेहाणां निषूदनम् । अश्विभ्यां निर्मितं ह्येतत् प्रमेहकरिकेशरी ॥ ६८ ॥

कुटा हुआ परिपक्व अनार २ सेर १६ तोले लेकर चतुर्गुण पानी में पकावे और चतुर्थांशावशिष्ट रहने पर वस्त्र से छान ले। इस क्वाथ के साथ १२८ तोले घृत पकावे। कल्कार्थ--अनार, चव्य, जीरा, वायविडंग, हल्दी, दारहल्दी, मुनक्का, पिण्डखजूर, मुञ्जात, कमल, गजपीपरि, अजमोद, महानिम्ब, काकोली, सोंठ, वच, देवदारु, चव्य, कूठ, खम्भारि, मुलेठी, अनन्तमूल, इन्द्रायण, मरोरफली, वंशलोचन, काकड़ासिंगी, धनिया, कुलथी, महामेदा, निम्ब, कटेरी, वनभांटा, सहदेई, त्रिफला, रूसा, शालछा, (थूहर का भेद) और निर्गुण्डी कुलमिलित ३२ तोले लेकर कल्क करे। इसके साथ यथाविधि घृत सिद्ध करे। यह घृत वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक प्रमेहों को नष्ट करता है। हृदय के शूल, बस्तिशूल और तेरह प्रकार के मूत्राघात, हिक्का, कास, श्वास, सर्वरूप यक्ष्मा, स्वरभङ्ग, उरःक्षत, रक्तपित्त और अरोचकरोग को तथा प्रमेहजन्य अन्यान्य सब रोगों को नष्ट करता है। यह 'दाडिमाद्य घृत' सब प्रकार के प्रमेहों का नाशक है। अश्विनीकुमारों से बनाया गया यह घृत प्रमेहरूपी गज को मारने के लिये केसरीरूप है ॥ मात्रा-६-मासे से १ तोला ॥ ६०-६८॥

महादाडिमाद्य घृत ।

दाडिमस्य फलमस्थं प्रस्थं च यवतण्डुलम् । कुलत्थमस्थमादाय घृतमस्थं विपाचयेत् ॥ ६९ ॥ शतावरीरसमस्थं गव्यदुग्धं च तत्समम् । कल्कः सार्द्धपिचुर्द्राक्षा खर्जूरं त्रिफला तथा ॥ ७० ॥ रेणुका चाश्वगन्धा च देवदारु निशाद्वयम् । शृङ्गी कुष्ठमेला च विदार्यतिबला तथा ॥७१॥ शिलात्वचमुशीरं च शुद्धं कृष्णाभ्रचूर्णकम् । प्रमेहान् विंशतिं हन्ति श्लेष्मजान्

सन्निपातजान् ॥ ७२ ॥ बृंहणं च विशेषेण सर्वमेहहरं परम् । अश्विभ्यां निर्मितं सिद्धं दाडिमाद्यमिदं महत् ॥ ७३ ॥

क्वाथार्थ परिपक्व अनार ६४ तोले, जल ६ सेर ३२ तोले, शेष १२८ तोले, जौ का तण्डुल ६४ तोले जल ६ सेर ३२ तोले, शेष १२८ तोले, कुलथी ६४ तोले, जल ६ सेर ३२ तोले, शेष १२८ तोले, शतावरि का स्वरस १२८ तोले, गाय का दूध १२८ तोले। कल्कार्थ—डेढ़-डेढ़ तोले मुनक्का, पिंडखजूर, त्रिफला, रेणुकाबीज, अष्टवर्ग, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, मजीठ, कूट, इलायची, विदारीकन्द, अतिबला (कंघी), शिलाजतु, दालचीनी, खस और शुद्ध कूष्माण्ड का चूर्ण ले। इन क्वाथ, स्वरस, दुग्ध और कल्क के साथ यथाविधि १२८ तोले घृत सिद्ध करे। यह घृत बीस प्रकार के प्रमेहों तथा विशेषकर श्लैष्मिक और सान्निपातिक प्रमेहों को नष्ट करता है। विशेषरूप से बृंहण और सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करने के लिये उत्कृष्ट औषध है। अश्विनीकुमारों से निर्मित यह 'महादाडिमाद्य घृत' प्रमेह के लिये सिद्ध औषध है ॥ ६६-७३ ॥ मात्रा-६ माशा से एक तोला तक ॥

अथ रसप्रयोग

शुक्रमातृका वटी।

गोक्षुरबीजं त्रिफला पत्रमेला रसाञ्जनम् । धान्यं चविका जीरं तालीशं टङ्कदाडिमौ ॥ ७४ ॥ प्रत्येकार्द्धपलं दत्त्वा गुग्गुलोः कर्षमेव च । रसाभ्रगन्धलौहानां प्रत्येकं च पलं क्षिपेत् ॥ ७५ ॥ सर्वमेकीकृतं वैद्यो दण्डयोगेन मर्दयेत् । घृतभाण्डे तु संस्थाप्य माषमेकं च भक्षयेत् ॥ ७६ ॥ अनुपानं प्रदातव्यं जातिभेदात् पृथक् पृथक् । दाडिमस्य रसेनैव छागदुग्धेन वाम्भसा ॥ ७७ ॥ चन्द्रनाथेन गदिता वटिका शुक्रमातृका । प्रमेहान् विंशतिं हन्ति वातपित्तकफोद्भवान् ॥ ७८ ॥ द्वन्द्वजान सन्निपातोत्थान् मूत्रकृच्छ्राश्मरीगदान् । बलवर्णाग्निजननी ज्वरदोषनिसूदनी ॥ ७९ ॥

दाडिमरसेनैव वटी कार्या।

गोखरू के बीज, त्रिफला, तेजपात, इलायची, रसौत, धनिया, चव्य, जीरा, तालीशपत्र, सुहागा और अनार प्रत्येक दो-दो तोले तथा गूगुल एक तोला और पारा, गन्धक और लोहभस्म चार-चार तोले ले। सबको एकत्र मिश्रित कर अनार के रस की भावना देकर डण्डे से मर्दन करके एक-एक माशे की गोली बनाकर घी के पात्र में रख दे। यह रोग की सम्प्राप्तिभेद से अनार का रस, बकरी का दूध या जल आदि भिन्न-भिन्न अनुपान के साथ देना चाहिए। चन्द्रनाथजी से कही गई इस वटी का नाम 'शुक्रमातृका' है। यह वटी वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक बीस प्रकार के प्रमेहों, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी रोगों को नष्ट करती है। बल, वर्ण और अग्नि की वर्धक तथा ज्वरदोष की नाशक है ॥ ७४-७९ ॥ मात्रा-३-४ रत्ती ॥

अपर बृहद्वङ्गेश्वर।

मूतंगन्धं मृतं लोहं मृतमभ्रं समांशिकम् । हेम वङ्गश्च मुक्ता च ताप्यमेवं समं समम् ॥ ८० ॥ कृत्वा चूर्णञ्च सर्वेषां कन्यारसविमर्दितम् । गुञ्जाद्वयप्रमाणेन वटिकां कुरु यत्नतः ॥ ८१ ॥ बृहद्वङ्गेश्वरो ह्येष रक्तमूत्रे प्रशस्यते । श्वेतमूत्रं बृहन्मूत्रं कृच्छ्रमूत्रं तथैव च ॥ ८२ ॥ सर्वप्रकारमेहांस्तु नाशयेदविकल्पतः । अग्निवृद्धिं वयोवृद्धिं कान्तिवृद्धिं करोति च ॥ ८३ ॥ क्षयरोगं निहन्त्याशु कासं पञ्चविधं तथा। कुष्ठमष्टादशविधं पाण्डुरोगं हलीमकम्

॥ ८४ ॥ शूलं श्वासं ज्वरं हिक्कां मन्दाग्नित्वमरोचकम् । क्रमेण शीलितो हन्ति वृत्तमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ८५ ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, स्वर्णभस्म, वङ्गभस्म, मुक्ताभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर ग्वारपाठा के रस से घोटे और दो दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। इसके सेवन से रक्तमूत्र, श्वेतमूत्र, बहुमूत्र (मूत्रातीसार), मूत्रकृच्छ्र, सम्पूर्ण प्रमेह राजयक्ष्मा, खाँसी, कुष्ठ, पाण्डु, हलीमक, शूल, श्वास, ज्वर, हिक्का, मन्दाग्नि और अरुचि आदि रोग नष्ट होकर पाचकाग्नि, आयु तथा कान्ति बढ़ती है ॥ ८० ८५ ॥

मेहान्तक रस ।

रसगन्धकलौहश्च तारवङ्गत्रिभागिकम् । अभ्रकस्य त्रयो भागा भागार्द्धेन सुवर्णकम् ॥ ८६ ॥ सर्वचूर्णसमं दद्यात् तालमूलीसुचूर्णितम् । नानारोगहरं श्रेष्ठं वातपित्तगदं महत् ॥ कान्तिपुष्टिकरञ्चैव रतिशक्तिविवर्द्धनम् ॥ ८७ ॥

पारा गन्धक, लोहभस्म, वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म प्रत्येक तीन ३ भाग सुवर्ण भस्म आधा भाग। मूसली का चूर्ण १२½ भाग। इन्हें इकट्ठा मिलाकर रोगी को सेवन करावे। इसके सेवन से वातज, पित्तज नाना रोग नष्ट होते हैं। यह कान्ति तथा पुष्टि करता है और रतिशक्ति बढ़ाक है। मात्रा ४ रत्ती ॥ ८६ ८७ ॥

योगीश्वर रस ।

मृतसूताभ्रनागानां तुल्यभागं प्रकल्पयेत् । महानिम्बस्य बीजोत्थं चूर्णं योज्यं त्रिभिः समम् ॥ ८८ ॥ मधुना लेहयेद् गुञ्जाद्वयं मेहप्रशान्तये । सर्त्ताद्रजनी चाथ लेह्यं माषत्रय सदा ॥ ८९ ॥ असाध्यं नाशयेन्मेहं विद्याद् योगीश्वरो रसः ॥ ९१ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, सीसकभस्म, हर एक १ भाग । बकायनबीज ३ भाग इन्हें इकट्ठा कर दो रत्ती की मात्रा में सेवन करावे। अनुपान—हलदीचूर्ण ३ माशे और शहद । इसके सेवन से सम्पूर्ण प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ ८८ ९० ॥

बृहत्कामचूड़ामणि रस ।

मौक्तिकं माक्षिकञ्चैव स्वर्णभस्म पृथक पृथक् । कर्पूरं जातिकोपश्च जातीफललवङ्गकम् ॥ ९१ ॥ वङ्गभस्म तथा ग्राह्यं रूप्यश्चापि तथार्द्धकम् । चातुर्जातञ्च संग्राह्यं सर्वमेकत्र चूर्णितम् ॥ ९२ ॥ शतमूलीरसेनैव भावयेत्सप्तवारकम् । ततो गुञ्जाप्रमाणेन वटिका भिषजा कृता ॥ ९३ ॥ अनुपानविशेषेण रोगाकरविनाशिनी। शीतं पयोऽनुपानश्च कामिनीः कामयेच्छतम् ॥ ९४ ॥ वीर्यहीनो भवेद्यस्तु यो वा स्यात् पतितध्वजः। सोऽशीतिवार्षिको भूत्वा युवेव रमतेऽङ्गनाः ॥ ९५ ॥ भेषजैर्विविधैः किं स्यादन्यैश्च शतसंख्यकैः । फलं न किञ्चित्तत्रास्ति केवलं गौरवं मुहुः ॥ ९६ ॥ नातः परतरं किञ्चिदस्ति पुष्टिकरं च तत् । अतः सर्वप्रयत्नेन सेव्या भूमिभुजा सदा ॥ ९७ ॥ विशेषाद् ध्वजभङ्गञ्च सप्ताहेन विनाशयेत् । प्रमेहं मूत्ररोगञ्च मन्दाग्निरवयथुं तथा ॥ रक्तदोषञ्च नारीणां पानादेषो विनश्यति ॥ ९८ ॥

मोतीभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, स्वर्णभस्म, कपूर, जावित्री, जायफल, लौंग, वङ्गभस्म, हर एक एक-एक भाग, चाँदी की भस्म आधा भाग, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, हरएक आधा भाग। इन्हें इकट्ठा कर शतावर के रस से सात बार भावना दे और एक रत्ती प्रमाण की

गोली बनावे। अनुपान—शीतल दूध। अनुपान भेद से यह रस विविध रोगों को नष्ट करता है। इसके सेवन से रतिशक्ति बढ़ती है। यह वीर्यवर्द्धक तथा शिश्नेन्द्रिय को दृढ़ करनेवाला है, यह राजाओं के सेवन योग्य है। इससे बढ़कर कोई अन्य पुष्टिकर रस नहीं है। इसके प्रयोग से ध्वजभङ्ग, प्रमेह, मूत्ररोग, मन्दाग्नि, शोथ तथा स्त्रियों के आर्त्तवसम्बन्धी रोग नष्ट होकर पुष्टि होती है मात्रा—१।२ रत्ती ॥ ९१-९८ ॥

अपूर्व मालिनीवसन्त।

वैक्रान्तमभ्रं रवितारौप्यं वङ्गं प्रवालं रसभस्म लौहम्। सुटङ्कणं कम्बुकभस्म सर्वं समांशकं सेव्यवरी हरिद्राः ॥ ९९ ॥ द्रवैर्विभाव्यं मुनिसंख्यया च मृगाङ्कजाशीतकरेण पश्चात्। वल्लप्रमाणो मधुपिप्पलीभिः जीर्णज्वरे धातुगते नियोज्यः ॥ १०० ॥ गुडूचिकासत्त्वसितायुतश्च सर्वप्रमेहेषु नियोजनीयः ॥ १०१ ॥ कृच्छ्राश्मरीं निहन्त्याशु मातुलुङ्गाङ्घ्रिजैर्द्रवैः। रसो वसन्तनामायं पूर्वो मालिनीपदः ॥ १०२ ॥

वैक्रान्तभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, चाँदीभस्म वङ्गभस्म, मूँगाभस्म, रससिन्दूर, सुहागा, शङ्खभस्म, इन्हें इकट्ठा कर बराबर मात्रा में मिलाकर खस, शतावरि, और हल्दी [redacted] रस से अलग-अलग सात बार भावना दे, पश्चात् इसमें कस्तूरी,, कपूर एक-एक भाग लेकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। अनुपान—धातुगत जीर्णज्वर में पीपल का चूर्ण आधी रत्ती और शहद। सम्पूर्ण प्रमेहों में गिलोय का सत १ रत्ती और खाँड। मूत्रकृच्छ्र तथा अश्मरी में बिजौरे की जड़ का रस १ तोला ॥ ९९-१०२ ॥

वसन्ततिलक रस।

लौहं वङ्गं माक्षिकञ्च सुवर्णञ्चाभ्रकन्तथा। प्रवालतारमुक्ता च जातिकोषफलं तथा ॥ १०३ ॥ एतेषां समभागेन चातुर्जातञ्च मिश्रितम्। मर्दयेत् त्रिफलाक्वाथे वटिकां कुरु यत्नतः ॥ १०४ ॥ रोगांश्च भिषजा ज्ञात्वा अनुपानं यथायथम्। वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ १०५ ॥ वायुं नानाविधं हन्ति ह्यपस्मारं विशेषतः। विसूचिकाक्षयोन्मादशरीरस्तंभमेव च ॥ प्रमेहान् विंशतिञ्चैव नानारोगान् विशेषतः ॥ १०६ ॥

लौहभस्म, वङ्गभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, स्वर्णभस्म, अभ्रकभस्म, मूँगाभस्म, चाँदीभस्म, मोतीभस्म, जावित्री, जायफल, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेसर, हरएक बराबर भाग। इन्हें इकट्ठा कर त्रिफला के क्वाथ से घोटकर दो रत्ती की गोली बनावे। इसे रोगानुसार अनुपानों के साथ सेवन कराना चाहिए। इसके सेवन से सम्पूर्ण वातरोग, अपस्मार, विसूचिका, क्षय, उन्माद, शरीरस्तम्भ एवं प्रमेह आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ मात्रा—२ रत्ती ॥ १०३-१०६ ॥

चन्द्रकान्ति रस।

विशुद्धं पारदं गन्धं गगनं गतचन्द्रिकम्। तारं तालं तथा कांस्यं लौहं वारितरं तथा ॥१०७॥ माक्षिकं भस्म स्वर्णस्य समभागं प्रकल्पयेत्। यावन्त्येतानि सर्वाणि वङ्गभस्म च तत्समम् ॥ १०८ ॥ रसालत्वग्भवैस्तोयैरामलक्या रसैस्तथा। ततः कुलत्थतोयेन लज्जालुस्वरसैस्तथा ॥ १०९ ॥ वटावरोहतोयेन रोचनस्वरसेन च। भावना खलु दातव्या प्रत्येकं दिवसत्रयम् ॥११०॥ जातीफललवङ्गाब्दत्वगेलाजातिकोषकम्। समभागं विचूर्ण्याथ दत्वा वै कल्पयेद्

वटीम् ॥ १११ ॥ आमलक्या रसेनैव खादेदेकां शुभेऽहनि। चन्द्रकान्तिरसाख्योऽयं सर्वमेहविनाशनः ॥ ११२ ॥ वृष्याद् वृष्यतरोऽप्ययं क्षीणानाञ्चाङ्गवर्द्धनः। ध्वजभङ्गादींस्तु रोगान् नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ११३॥ मूत्राघातमश्मरीञ्च मधुमेहं सुदारुणम्। मूत्रातीसारमत्युग्रं कासं पञ्चविधं तथा ॥ ११४ ॥ राजयक्ष्माणमप्युग्रं वह्निमान्द्यं भगन्दरम्। नाशयेदविकल्पेन वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ११५ ॥ नाशयेदम्लपित्तञ्च शूलमष्टविधं तथा। रेतोवृद्धिकरं पुंसां ध्वजभङ्गादिनाशनम् ॥११६॥

शुद्ध पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म, चाँदीभस्म, हरताल, कांस्यभस्म, लौहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, स्वर्णभस्म, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर इसमें सम्पूर्ण चूर्ण के समान वङ्गभस्म मिलाकर आम की छाल के क्वाथ से, आँवले के रस से कुलथी के क्वाथ से तथा लाजवन्ती के रस से, बरगद की जटा के क्वाथ से एवं सेमल की जड़ के रस से अलग-अलग तीन-तीन भावनाएँ देकर जायफल, लौंग, मोथा, दारचीनी, छोटी इलायची, जावित्री मिलित को ऊपर कहे हुए चूर्ण के समभाग में मिलाकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावें। अनुपान—आँवलों का रस। शुभ दिन में इसका सेवन करे। यह रस सब प्रमेह, ध्वजभंग, मूत्राघात, अश्मरी, मधुमेह, मूत्रातीसार, खाँसी, राजयक्ष्मा, मन्दाग्नि, भगन्दर, अम्लपित्त तथा शूल को नष्ट करता है। यह अत्यन्त वीर्यवर्द्धक, वृष्य तथा क्षीण पुरुषों के लिये पुष्टिकर एवं नपुंसकतानाशक है ॥ मात्रा—२ रत्ती ॥ १०७-११६ ॥

मेहकेशरी।

मृतवङ्गं सुवर्णञ्च कान्तलौहञ्च पारदम्। मुक्ता गुडत्वचञ्चैव सूक्ष्मैला पत्रकेशरम् ॥ ११७ ॥ समभागं विचूर्ण्याथ कन्यानीरेण भावयेत्। द्विगुञ्जां वटिकां खादेद् दुग्धान्नं प्रपिबेत्ततः ॥ ११८ ॥ प्रमेहं नाशयेदाशु केशरी करिणं यथा। शुक्रमेहं शमयेत्त्रिरात्रान्नात्र संशयः ॥ ११९ ॥

वङ्गभस्म, सुवर्णभस्म, लौहभस्म, रससिन्दूर, मुक्ताभस्म, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, और नागकेसर, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर ग्वारपाठा के रस की भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। पथ्य—दूध, चाँवल। यह प्रमेह को शीघ्र ही नष्ट करता है तथा शुक्रमेह को ३ दिन में ही शान्त करता है ॥ मात्रा—२ रत्ती ॥ ११७-११९ ॥

मेहवज्र।

भस्मसूतं तथा कान्तलौहभस्म शिलाजतु। मृतं ताप्यं शिला व्योषं त्रिफला बिल्वजीरकम् ॥ १२० ॥ कपित्थं रजनीचूर्णं भृङ्गराजेन भावयेत्। त्रिंशद्वारं विशोष्याथ लिह्याच्च मधुना सह ॥१२१॥ गुञ्जात्रयं हरेन्मेहान् मूत्रकृच्छ्रं सुदारुणम्। महानिम्बस्य बीजञ्च माषैकं पेषितञ्च यत् ॥ ॥ १२२ ॥ कर्षतण्डुलतोयेन घृतमाषद्वयेन च। एकीकृत्य पिबेच्चानु हन्ति मेहं चिरोत्थितम् ॥ १२३ ॥

रससिन्दूर, कान्तलोहभस्म, शिलाजीत, स्वर्णमाक्षिकभस्म, मैनसिल, त्रिकुटा, त्रिफला, बेल का गूदा, जीरा, कैथा और हलदीचूर्ण। इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर भांगरे के रस से ३० बार भावना दें। मात्रा—३ रत्ती। अनुपान—बकायन के बीज १ माशा, तण्डुलोदक २ तोले तथा घी २ माशे। इसके सेवन से मूत्रकृच्छ्र तथा प्रमेह रोग नष्ट होता है ॥१२०-१२३॥

प्रमेहसेतु।

मृताभ्रञ्च वरीसारं मर्दयेत्सहदद्वयम्। विशोष्य पक्वमूषायां सर्वरोगे प्रयोजयेत् ॥

१२४ ॥ विशेषान्मेहरोगेषु त्रिफलामधुसंयुतम्। युञ्जीत वल्लमेकन्तु रसेन्द्रस्यास्य वैद्यराट् ॥ १२५ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म इकट्ठा मिलाकर वट के दूध से दो पहर घोटकर मूषा में बन्द करे। सन्धिलेप के सूख जाने पर पुट दे। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान–त्रिफला क्वाथ तथा शहद। इसके सेवन से प्रमेह नष्ट होता है ॥ १२४-१२५ ॥

मेघनाद रस।

भस्मसूतं समं कान्तमभ्रकन्तु शिलाजतु। शुद्धताप्यं शिलाव्योषत्रिफलाङ्कोठजीरकम् ॥ १२६ ॥ कार्पासबीजं रजनीचूर्णं भाव्यश्च वह्निना। निशाद्वारं विशोष्याथ लिह्याच्च मधुना सह ॥ १२७ ॥ गुञ्जात्रयं हरेन्मेहं मेघनादरसो महान् ॥

रससिन्दूर, कान्तलोहभस्म, अभ्रकभस्म, शिलाजीत, स्वर्णमाक्षिक भस्म, मैनशिल, त्रिकटु, त्रिफला, अङ्कोल, जीरा, बिनौले और हल्दीचूर्ण को एकत्र घोटकर चित्रक के क्वाथ से २० बार भावना दे। मात्रा—३ रत्ती। अनुपान शहद। यह रस प्रमेह को नष्ट करता है ॥ १२६–१२७ ॥

वृहत् हरिशङ्कर रस।

रसगन्धकलौहश्च स्वर्णं वङ्गश्च माक्षिकम् ॥ १२८ ॥ समभागन्तु सम्पिष्य वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ सप्ताहमामलद्रावैर्भावितोऽयं रसेश्वरः ॥ १२९ ॥ हरिशङ्करनामायं गहनानन्दभाषितः ॥ प्रमेहान् विंशतिं हन्ति सत्यं सत्यं न संशयः ॥ १३० ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म, स्वर्णभस्म, वङ्गभस्म और स्वर्णमाक्षिक भस्म, इन्हें बराबर मात्रा में इकट्ठाकर आँवले के रस से सात दिन भावना देकर १ रत्ती की गोली बनावें। इसके सेवन से बीसों प्रकार के प्रमेह अवश्य नष्ट होते हैं ॥ १२८–१३० ॥

चन्द्रोदय रस।

अभ्रकं गन्धकं सूतं वङ्गभस्म समांशकम्। शिलाजतु त्रुटिश्चैव रम्भासारेण मर्दयेत् ॥ १३१ ॥ प्रमेहान्विंशतिं हन्यात्कामलापित्तनाशनः ॥ १३२ ॥

अभ्रक भस्म शुद्धगन्धक और पारा वङ्गभस्म शिलाजीत इलायची ये समान भाग लेकर पहले पारे और गन्धक की कज्जली बनाकर बाद में सब चीजों को डालकर केले के कन्द के पानी से ४-४ रोज घोट कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना कर रख ले इनमें से १-१ गोली तत्तद्रोगहरानुपान के साथ देने से बीसों प्रकार के प्रमेह कामला और पित्त का नाश करता है ॥१३१-१३२॥

आनन्दभैरव रस।

वङ्गभस्म मृतं स्वर्णं रसं क्षौद्रैर्विमर्दयेत्। द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं हन्ति मेहं चिरोद्भवम् ॥ गुञ्जामूलं तथा क्षौद्रैरनुपानं प्रशस्यते ॥ १३३ ॥

वङ्गभस्म, स्वर्णभस्म और रससिन्दूर को बराबर मात्रा में मिलाकर शहद से घोटे। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान गुञ्जामूल और शहद। इसके सेवन से पुराना प्रमेह नष्ट होता है ॥ १३३ ॥

मालतीकुसुमाकर रस।

चन्द्रभागः सुवर्णस्य कर्पूरं युग्मभागिकम्। वङ्गसीसकलौहानां भागत्रयमुदाहृतम् ॥ १३४ ॥ अभ्रप्रवालमुक्तानां भागाश्चत्वार ईरिताः। गव्येन पयसा चैव कदलीपुष्पजैः रसैः ॥ १३५ ॥ रसेनेक्षुसमुत्थेन तथा पद्मरसेन च। उदुम्बररसेनैव भावयेत्सप्तधा पृथक् ॥ १३६ ॥ रक्तिद्वयमितो हन्ति मालती-

कुसुमाकरः। रसः सर्वप्रमेहांश्च बहुमूत्रादिकं तथा॥ सोमरोगांश्च संहन्ति भास्करस्तिमिरं यथा॥ १३७॥

स्वर्णभस्म १ भाग, कपूर २ भाग, वङ्गभस्म, सीसकभस्म और लोहभस्म तीन-तीन भाग। अभ्रकभस्म, मूँगाभस्म और मोतीभस्म चार-चार भाग। इन्हें एकत्र मिलाकर गोदुग्ध से, केले के फूल के रस से, इक्षुरस से तथा सफेद कमल के रस, गूलर के रस से अलग-अलग सात-सात बार भावना दे। मात्रा—२ रत्ती। यह रस सब प्रकार के प्रमेह, बहुमूत्र, सोमरोग आदि रोगों को नष्ट करता है॥ १३४-१३७॥

प्रमेहकुञ्जरकेशरी।

रसगन्धायसाभ्राणि नागवङ्गौ सुवर्णकम्। वज्रकं मौक्तिकं सर्वमेकीकृत्य विचूर्णयेत्॥ १३८॥ शतावरीरसेनैव गोलकं शुष्कमातपे। बुद्ध्वा शुष्कं तमुद्धृत्य शरावे सुदृढे क्षिपेत्॥ १३९॥ सन्धिलेपं मृदा कुर्याद्दत्त्वे च गोमयाग्निना। पुटेद्यामचतुः संख्यमुद्धृत्य स्वाङ्गशीतलम्॥ १४०॥ श्लक्ष्णखल्वे विनिक्षिप्य गोलं तं मर्दयेत् दृढम्। देवब्राह्मणपूजां च कृत्वा धृत्वाथ कूपिके॥ १४१॥ गुञ्जापादं भजेत् प्रातः शीतं चानुपिबेज्जलम्। अष्टादशप्रमेहांश्च जयेन्मासोपयोगतः। १४२॥ तुष्टिं तेजो बलं वर्णं शुक्रवृद्धिश्च दारुणम्। अग्नेर्बलं वितनुते मेहकुञ्जरकेशरी॥ दिव्यं रसायनं श्रेष्ठं नात्र कार्या विचारणा॥ १४३॥

पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म, सीसकभस्म, वङ्गभस्म, स्वर्णभस्म, वज्रभस्म (हीराभस्म), मुक्ताभस्म इन्हें बराबर मात्रा में इकट्ठा मिलाकर शतावरि के रस से घोटकर पिण्डाकार बनावे। इसके बाद धूप में सुखाकर सम्पुट में बन्द करे और मिट्टी से सन्धि लेप कर दे, पश्चात् ४ पहर गोमयाग्नि से पुट दे। जब स्वाङ्गशीतल हो जाय तब औषध को बाहर निकाल अच्छी तरह खरल में पीस ले और शीशी में रख ले। देवता तथा ब्राह्मणों की पूजा करके इसका सेवन करे। मात्रा-चौथाई रत्ती। अनुपान--शीतल जल। इसके एक मास सेवन से अठारह प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं। यह तेज तथा बल का वर्द्धक, रोगी को उत्तम करनेवाला, वीर्य को बढ़ानेवाला तथा जठराग्नि को तीव्र करनेवाला श्रेष्ठ रसायन है॥ १३८-१४३॥

स्वर्णवङ्ग।

प्रपिबेद्भाजने वङ्गमायसे चापि मृण्मये। विद्रुतं वह्नितापेन तस्मिंस्तन्मानकं रसम्॥ ॥ १४४॥ क्षिप्त्वा सञ्चूर्णयेत्तत्र नरसारञ्च गन्धकम्। तनुवासो मृदालिप्तकाचकुप्यां निधाय च॥ १४५॥ ततसर्वं सिकतायन्त्रे पचेद्यामचतुष्टयम्। पाकात्सञ्जायते चित्रं कीर्णं हेमकणैरिव॥ १४६॥ रमणीयतरं स्वर्णवङ्गं नाम रसायनम्। बल्यं मेहहरं कान्तिमेधावीर्याग्निवर्द्धनम्॥ १४७॥

लोहे के अथवा मिट्टी के बर्तन में वंग (कलई, रांगे) को अग्नि पर गलाकर बराबर मात्रा में पारा मिलावें। पश्चात् पारे के समान गन्धक मिलाकर अच्छी तरह घोटें जब यह कज्जल के समान कृष्ण वर्ण का हो जाय तब गन्धक के समान नवसादर चूर्ण मिला दें। एक आतशी शीशी पर कपड़मिट्टी कर औषध को इसमें डाल दें और बालुकायन्त्र में मृदु अग्नि पर ४ पहर पकावें। पाक के समय शीशी का मुख खुला रहना चाहिए, जिसमें गन्धक आदि का धूम बाहर निकलता रहे।

जब धूम बन्द हो तो उसी यन्त्र शीशी को उतार लें और शीतल होने पर शीशी फोड़ स्वर्णवंग को बाहर निकाल लें, यह औषध स्वर्ण के समान चमकते हुए कणों से युक्त होती है। अतएव इसका नाम स्वर्णवङ्ग है। यह रसायन, बलवर्द्धक, प्रमेह को हरनेवाली तथा कान्ति, बुद्धि, वीर्य और अग्नि को बढ़ाती है। विधि—वंग तथा पारे की पिट्ठी करने के बाद उस पिट्ठी में थोड़ा-सा सेंधानमक मिलाकर खूब घोटना चाहिए। पश्चात् कुछ जल देकर घोटें जब पानी काला हो जाय तो पानी को फेंक दें। इस तरह तब तक करते रहें जब तक पानी काला होना बन्द न हो जाय। पश्चात् गन्धक मिला लें। मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक ॥ १४४—१४७ ॥

मेहमुद्गर रस।

रसाञ्जनं विडं दारु बिल्वगोक्षुरदाडिमम्। प्रत्येकं तोलको देयं लौहचूर्णं तु तत्समम् ॥ १४८ ॥ पलैकं गुग्गुलं दत्त्वा घृतेन वटिकां कुरु। प्रमेहान् विंशतिं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥ १४९ ॥ मूत्रकृच्छ्रं तथा पाण्डुं धातुस्थं च ज्वरं जयेत्। हलीमकं रक्तपित्तं वातपित्तकफोद्भवम् ॥ १५० ॥ ग्रहणीमामदोषं च मन्दाग्निमरुचिन्तथा। एतान् सर्वान्निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ १५१ ॥

एक एक तोला रसौत, विड नमक, देवदारु, बेलगिरी गोखुरू और अनार तथा ८ तोले लोहभस्म और एक पल गुग्गुल मिलाकर घृत के साथ घोटकर गोली बनावे। यह वटी बीस प्रकार के प्रमेहों को— चाहे वे साध्य हों या असाध्य—नष्ट करती हैं। मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, धातुगत ज्वर, हलीमक तथा वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक, रक्तपित्त, ग्रहणी, आमदोष, अग्निमान्द्य और अरुचि इन सब रोगों को तत्काल इस प्रकार नष्ट करती है जैसे इन्द्र का वज्र वृक्ष को नष्ट कर देता है ॥ मात्रा ४ रत्ती ॥१४८—१५१ ॥

विडङ्गादि लौह।

विडङ्गत्रिफलामुस्तैः कणया नागरेण च। जीरकाभ्यां युतो हन्ति प्रमेहानतिदारुणान् ॥ लौहो मूत्रविकारांश्च सर्वानेव विनाशयेत् ॥ १५२ ॥

बायविडंग, त्रिफला, नागरमोथा, पीपरि, सोंठ स्याह जीरा और सफेद जीरा सम भाग तथा समष्टि का सम भाग लोहभस्म एकत्र कर मर्दन कर रख ले। यह लौह अतिदारुण प्रमेहों और सब प्रकार के मूत्रविकारों को नष्ट करता है ॥ १५२ ॥

पञ्चानन रस।

सूतं गन्धं मृतं लौहं मृतमभ्रं समांशिकम्। सर्वेषां द्विगुणं वङ्गं मधुना मर्दयेद्दिनम् ॥ १५३ ॥ भक्षयेत्प्रातरुत्थाय शीततोयं पिबेदनु। प्रमेहान् विंशतिं हन्ति मूत्राघातांस्तथाश्मरीम् ॥ मूत्रकृच्छ्रं हरेदुग्रमयं पञ्चाननो रसः ॥१५४॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म और अभ्रकभस्म सम भाग तथा सबसे द्विगुण वङ्गभस्म एकत्र कर मधु के साथ घोटकर एक-एक रत्ती की गोली बना ले। प्रातःकाल शीतल जल के साथ सेवन करे। यह 'पञ्चानन रस' बीस प्रकार के प्रमेहों तथा मूत्राघात, अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है ॥ १५३—१५४ ॥

मेहकुलान्तक रस।

मृतं वङ्गं मृतं चाभ्रं शुद्धपारदगन्धकम्। भूनिम्बं पिप्पलीमूलं त्रिकटु त्रिफला त्रिवृत् ॥ १५५ ॥ रसाञ्जनं विडङ्गाब्दबिल्वगोक्षुरदाडिमम्। प्रत्येकं तोलकं ग्राह्यं शुद्धमश्मजतोः पलम् ॥ १५६ ॥ गोपालकर्कटीमूलस्वरसैर्वटिकां कुरु। प्रमेहान् विंशतिं हन्ति मूत्रकृच्छ्रं हलीमकम् ॥ १५७ ॥ अश्मरीं कामलां पाण्डु

मूत्राघातमरोचकम् । अनुपानं प्रयोक्तव्यं छागीदुग्धं पयोऽथवा ॥ धात्रीफलस्य निर्यासं क्वाथं कौलत्थजं पिबेत् ॥१५८॥

एक-एक तोला वङ्गभस्म अभ्रकभस्म शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, चिरायता, पिपरामूल त्रिकटु, त्रिफला, निशोथ रसौत, वायबिडंग नागरमोथा, बेलगिरी, गोखरू और अनारदाने तथा चार तोले शुद्ध शिलाजीत एकत्र कर कुँदरू की जड़ के स्वरस के साथ गोली बनावे। यह वटी बीस प्रकार के प्रमेहों तथा मूत्रकृच्छ्र, हलीमक, अश्मरी कामला, पाण्डु, मूत्राघात और अरोचक को नष्ट करती है। इसके अनुपान में बकरी का दूध, जल और आँवले का क्वाथ या कुरथी का क्वाथ दे ॥ मात्रा-३।४ रत्ती ॥ १५५-१५८ ॥

मेहानल रस।

भस्मसूतं मृतं वङ्गं तुल्यं क्षौद्रेण मर्दयेत् । द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं मेहं हन्ति चिरोत्थितम् ॥ गुञ्जामूलं पिबेच्चानु क्षीरैरेव प्रशाम्यति ॥ १५९ ॥

रससिन्दूर और वङ्गभस्म समभाग लेकर मधु के साथ घोटकर दो-दो रत्ती की गोली बनावे। यह रस चिरकालोत्पन्न प्रमेह को नष्ट करता है। इस रसका सेवन कर गुञ्जा के मूल के साथ सिद्ध किये हुए दुग्ध का पान करे ॥ १५९ ॥

चन्द्रकला।

सूताभ्रवङ्गा रसभस्म सर्वमेतत् समानं परिभावयेत्तु । गुडूचिका शाल्मलिका कषायैर्विन्यप्रमाणं मधुना ततश्च ॥१६०॥ वद्धेयं गुटी चन्द्रकलेति संज्ञा मेहेषु सर्वेषु नियोजयेत ॥ १६१ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, वङ्गभस्म और पारदभस्म समान भाग, इन सब औषधियों को लेकर गुर्च और सेमर के क्वाथ की भावना देकर तीन-तीन रत्ती की गोली बनावे। 'चन्द्रकला' नाम की इस गोली का मधु के साथ सब प्रकार के प्रमेहों में प्रयोग करे ॥ मात्रा-२।३ रत्ती ॥ १६०-१६१ ॥

तारकेश्वर रस।

मृतं सूतं मृतं लौहं मृतं वङ्गाभ्रकं समम् । मर्दयेत्मधुना चाह्नो रसोऽयं तारकेश्वरः ॥ १६२ ॥ माषमात्रं लिहेत् क्षौद्रैर्बहुमूत्रापनुत्तये । औदुम्बरं पक्वफलं चूर्णितं मधुना लिहेत् ॥ १६३ ॥

रससिन्दूर, लोहभस्म, वङ्गभस्म और अभ्रकभस्म, ये सब समभाग लेकर मधु के साथ एक दिन मर्दन करके एक-एक माशे की गोली बनावे। इसका नाम 'तारकेश्वर रस' है। मधु के साथ इसका सेवन करने से बहुमूत्र रोग दूर होता है। इस रस का सेवन करने के पश्चात् गूलर के परिपक्व फल का चूर्ण मधु के साथ चाटे ॥ मात्रा २ रत्ती ॥ १६२-१६३ ॥

सोमेश्वर रस।

शालार्जुनकलोध्रं च कदम्बागुरुचन्दनम् । अग्निमन्थनिशाद्वन्द्वधात्रीदाडिमगोक्षुरम् ॥ १६४ ॥ जम्बुवीरणमूलं च भागमेषां पलार्द्धकम् । रसगन्धकधान्याब्दमेलापत्रं च पत्रकम् ॥ १६५ ॥ लौहं रसाञ्जनं पाठा विडङ्गं टङ्कजीरकम् । प्रत्येकं शाणकं ग्राह्यं पलार्द्धं गुग्गुलोरपि ॥ १६६ ॥ घृतेन वटिकां कृत्वा खादेत् षोडशरक्तिकाम् । गहनानन्दनाथेन रसो यत्नेन निर्मितः ॥ १६७ ॥ सोमेश्वरो महातेजा वातमेहान्निहन्त्यलम् । एकजं द्वन्द्वजं चोग्रं सन्निपातसमुद्भवम् ॥ १६८ ॥ उपद्रवसमायुक्तं चिरकालसमुद्भवम् । मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रं कामलां च हलीमकम् ॥ १६९ ॥ भगन्दरोपदंशौ च विविधान् पिडकाव्रणान् । विस्फोटार्बुदकादद्रु

वातपित्ताम्लपित्तके ॥ १७० ॥ यकृत् प्लीहोदरं गुल्मं शूलार्शः कासविद्रधीः । सोमरोगं निहन्त्याशु चिरकालानुबन्धिनम् ॥ १७१ ॥ बलवर्णाग्निजननो ग्रहवैगुण्यनाशनः । छागीदुग्धानुपानेन नारिकेलोदकेन वा ॥ १७२ ॥ शीतेन पाकतैलेन यवयूषादियोगतः । युक्त्या प्रयोज्यो भिषजा रसो दोषविदाहयम् ॥ १७३ ॥

शाल की छाल, अर्जुन की छाल, लोध की छाल, कदम्ब की छाल, अगर, सफेद चन्दन, अग्निमन्थ, हल्दी, दारुहल्दी, आमला, अनार के दाने, गोखरू, जामुन के मूल की छाल और जल प्रत्येक दो-दो तोले। पारा, गन्धक, धनिया, नागरमोथा, इलायची, तेजपात, पदुमकाठ, लोहभस्म, रसौत, पाढ़ी, वायविडंग, सोहागा और सफेद जीरा प्रत्येक तीन-तीन माशे, गूगुल १ तोले एकत्रकर घृत के साथ घोटकर सोलह सोलह रत्ती की गोली बनावे। महनानन्दनाथ ने बड़े यत्न से इस सोमश्वर रस को बनाया था। यह महान् तेजोवर्धक और वातिक प्रमेह को विनष्ट करता है। एक दोषोत्पन्न, द्वन्द्वज, उग्रसान्निपातिक, उपद्रवयुक्त, चिरकालोत्पन्न मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, कामला, हलीमक, भगंदर उपदंश, विविध प्रकार के पीडिकायें, विस्फोट, अर्बुद, कण्डू वातपित्त, अम्लपित्त, यकृत, प्लीहोदर, गुल्म, शूल, अर्श, कास, विद्रधि और चिरकालोत्पन्न सानुबन्ध सोमरोग को तत्काल नष्ट करता है। बल, कान्ति और अग्नि का वर्धक है। ग्रहजन्य वैगुण्य को नष्ट करता है। इस रस को बकरी के दूध के साथ, नारियल के जल के साथ, शीतवीर्य पाक तैल के साथ या यवागू आदि के साथ युक्ति से वैद्य प्रयुक्त करे। यह रस दोषों को नष्ट करता है ॥ १६४ १७३ ॥ मात्रा १ माशा।

सर्वेश्वर रस।

स्वर्णं रूप्यं मौक्तिकं च विशुद्धं च शिलाजतु । लौहभस्म तथा ताप्यं मधुयष्टी च पिप्पली ॥ १७४ ॥ मरिचं विश्वकं चेति सर्वमेकत्र कारयेत् । निमर्द्य प्रहरं यत्नात्कज्जलाकृतिसन्निभम् । केशराजभृङ्गराजशक्राशनरसे पृथक् ॥ १७५ ॥ प्रमेहं विविधं हन्ति मधुमेहं सुदुर्जयम् ॥ १७६ ॥ वातपित्तसमुद्भूतं तथा कफसमुद्भवम् । सर्वेश्वरो रसो नाम्ना प्रमेहकुलनाशनः ॥ १७७ ॥

स्वर्ण, रूप्य, मौक्तिक, विशुद्ध शिलाजीत, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिक, मुलेठी, पीपरि, कालीमिर्च और सोंठ इन सबको एकत्र घोटकर कज्जल के समान कर ले। फिर क्रमशः केशराज, भृङ्गराज और भाँग के रस में पृथक्-पृथक् घोटकर गोली बना ले। यह रस विविध प्रकार के प्रमेहों और दुर्जय मधुमेहों को—वे चाहे वातिक पैत्तिक अथवा श्लैष्मिक हों—नष्ट करता है। इसका नाम 'सर्वेश्वर रस' है। यह सब प्रकार के प्रमेह का नाशक है ॥ १७४ १७७ ॥ मात्रा २।३ रत्ती ॥

वेदविद्यावटी।

पारदाभ्रककान्तानां नागभस्मसमं समम् । दिनं ब्राह्मीरसैर्मर्द्य वालुकायन्त्रगं पुनः ॥ १७८ ॥ उद्धृत्य चूर्णयेत् श्लक्ष्णं जारिताभ्रं शिलाजतु । ताप्यं मण्डूरवैक्रान्तं काशीशं तुल्यमेव च १७६ ॥ सर्व सर्वसमं चूर्णं कल्कयेच्च ततः पुनः । मुस्तचन्दनपुन्नागनारिकेलस्य मूलकम् ॥ १८० ॥ कपित्थरजनीदार्वीचूर्णं सर्वसमं भवेत् । जम्बीराणां द्रवैर्मर्द्य द्वियामं वटकीकृतम् ॥ १८१ ॥ वेदविद्यावटी नाम्ना भक्षणात् सर्वमेहजित् । मधुधात्रीरसं चानु क्षौद्रैरपि गुडूचिका ॥ १८२ ॥

पारद, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, और नागभस्म समान भाग एकत्र कर ब्राह्मी के रस में

दिनभर घोटकर बालुकायन्त्र में पाक करके निकाल ले। फिर अभ्रकभस्म, शिलाजीत, स्वर्णमाक्षिक, मण्डूर, वैक्रान्त और कसीस पूर्वोक्त प्रत्येक द्रव्य के समान भाग लें। इसी प्रकार नागरमोथा, चन्दन, पुन्नाग, नारियल का मूल, कैथा, हल्दी और दारुहल्दी के चूर्ण भी पूर्वोक्त प्रत्येक द्रव्य के सम भाग ले। इन सबको एकत्र कर दो पहरपर्यन्त जामुन के रस के साथ घोटकर गोली बनावे। यह 'वेदविद्या' नाम की वटी है। मधुयुक्त आँवले के स्वरस के साथ अथवा मधुयुक्त गुर्च के स्वरस के साथ सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेहों को जीतती है ॥ १७८-१८२ ॥

वङ्गेश्वर।

रसस्य भस्मना तुल्यं वङ्गभस्म प्रयोजयेत्। अस्य माषद्वयं हन्ति मेहान् क्षौद्रसमन्वितम् ॥ १८३ ॥

रससिन्दूर और वङ्गभस्म सम भाग मिश्रित कर रख ले। इसमें से मधु के साथ दो-दो माशे सेवन करने से यह रस सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है ॥१८३॥ मात्रा ३ रत्ती॥

बृहद्वङ्गेश्वर रस।

वङ्गभस्मरसं गन्धं रूप्यं कर्पूरमभ्रकम्। कर्षं कर्षं मानमेषां सूताङ्घ्रिहेममौक्तिकम् ॥ १८४ ॥ केशराजरसैर्भाव्यं द्विगुञ्जाफलमानतः। प्रमेहान् विंशतिं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः ॥ १८५ ॥ मूत्रकृच्छ्रं तथा पाण्डुं धातुस्थं च ज्वरं जयेत्। हलीमकं रक्तपित्तं वातपित्तकफोद्भवम् ॥१८६ ॥ ग्रहणीमामदोषं च मन्दाग्निमरोचकम्। एतान् सर्वान् निहन्त्याशु वृत्रमिन्द्राशनिर्यथा ॥ १८७ ॥

वङ्गभस्म, पारद, गन्धक, चाँदी की भस्म, कपूर और अभ्रकभस्म एक-एक तोला, पारा, सुवर्ण भस्म और मौक्तिक भस्म चार-चार माशे एकत्र कर भाँगरे के रस की भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना ले। यह रस बीस प्रकार के प्रमेहों को, चाहे वे साध्य हों या असाध्य, निःसंदेह नष्ट करता है तथा मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, धातुज्वर, हलीमक एवं वातज, पित्तज और श्लैष्मिक, रक्तपित्त, ग्रहणी, आमदोष, अग्निमान्द्य और अरोचक इन सब रोगों को तत्काल विनष्ट करता है, जैसे इन्द्र का वज्र वृत्र को नष्ट करता है ॥ १८४-१८७ ॥ मात्रा २-३ रत्ती।

वङ्गाष्टक।

रसं गन्धं मृतं लौहं मृतरूप्यं च खर्परम्। मृताभ्रकं मृतं ताम्रं सर्वतुल्यं च वङ्गकम् ॥ १८८ ॥ पुटेद् गजपुटे विद्वान् स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्। रक्तिद्वयप्रमाणेन मधुना लेहयेन्नरम् ॥ १८९ ॥ निशाचूर्णं क्षौद्रयुतं पिबेद्धात्रीरसं ह्यनु। वङ्गाष्टकमिदं ख्यातं महादेवप्रकाशितम् ॥ १९० ॥ प्रमेहान् विंशतिं हन्ति चामदोषं विसूचिकाम् ॥ विषमज्वरगुल्मार्शो मूत्रातीसारपित्तजित् ॥ वीर्यवृद्धिं करोत्याशु सोमरोगनिबर्हणम् ॥ १९१ ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म, चाँदी की भस्म, खपरिया, अभ्रक भस्म और ताम्रभस्म एक-एक तोला, वङ्गभस्म ७ तोले एकत्र कर मर्दन करके गजपुट में फूँक दे। स्वाङ्गशीतल होने पर उसमें से निकाल ले। दो-दो रत्ती इस रस को मधु के साथ चाटे और ऊपर से हल्दी के चूर्ण और मधु के साथ आँवले का स्वरस पिये। महादेवजी करके प्रकाशित इस रस का नाम 'वङ्गाष्टक' है। यह बीस प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है तथा आमदोष, विसूचिका, विषमज्वर, गुल्म, अर्श, मूत्रातिसार और रक्तपित्त को जीतता है। तत्काल वीर्य को बढ़ाता और सोमरोग को नष्ट करता है ॥ १८८-१९१ ॥

वसन्तकुसुमाकर।

पृथक् द्वौ हाटकं चन्द्रस्त्रयो वङ्गाहिकान्तकाः। चत्वारो मृतमभ्रं च प्रवालं मौक्तिकं तथा॥ १९२॥ भावना गव्यदुग्धेन भावनेक्षुरसेन च। वासा लाक्षा रसोदीच्यरम्भाकन्दप्रसूनकैः॥ १९३॥ शतपत्ररसेनैव मालत्याः कुसुमेन च। पश्चात् मृगमदैर्भाव्यं सुसिद्धो रसराड् भवेत्॥ १९४॥ कुसुमाकरविख्यातो वसन्तपदपूर्वकः। गुञ्जाद्वयेन संसेव्यः सिताज्यमधुसंयुतः॥ १९५॥ वलीपलितहृन्मेध्यः कामदः सुखदः सदा। मेहघ्नः पुष्टिदः श्रेष्ठः पुत्रप्रसवकारणम्॥ १९६॥ क्षयकासघ्न उन्मादश्वासरक्तविषापहः। सिता चन्दनसंयोगादम्लपित्तादिरोगजित्॥ १९७॥

स्वर्णभस्म २ भाग, रूप्यभस्म २ भाग, (कोई-कोई यहाँ चन्द्र करके कपूर लेते हैं) वङ्ग, नाग और लोहभस्म तीन-तीन भाग तथा अभ्रकभस्म, प्रवालभस्म और मौक्तिक भस्म चार-चार भाग, ले। इनको एक में मिलाकर क्रम से गोदुग्ध, ईख के रस, वासा के स्वरस, लाक्षा के क्वाथ, सुगन्धबाला के क्वाथ, कदली के मूल के स्वरस, कदली के फूलों के स्वरस कमल के फूलों के रस, चमेली के फूलों के स्वरस और कस्तूरी के क्वाथ की एक-एक भावना देकर दो-दो रत्ती की गोली बना ले - यह 'वसन्तकुसुमाकर' बहुत विख्यात है। शक्कर, घी और मिसरी के साथ दो रत्ती सेवन करना चाहिए। यह रस बली और पलित को हरता है, मेधावर्धक कामोद्दीपन तथा सदा सुखप्रद है। प्रमेहनाशक पुष्टिदायक, पुत्रप्रसव का कारण तथा क्षय, कास, उन्माद श्वास, रक्तदोष और विषदोष का नाशक है। मिसरी और चन्दन के संयोग से अम्लपित्तादि रोगों को जीतता है॥ १९२-१९७॥

चन्द्रप्रभादिवटिका।

चन्द्रप्रभा वचा मुस्ता भूनिम्बसुरदारवः। हरिद्रातिविषा दार्वी पिप्पलीमूलचित्रकम्॥ १९८॥ त्रिवृद्दन्ती पत्रकं च त्वगेला वंशलोचना। प्रत्येकं कर्षमात्राणि कुर्यादेतानि बुद्धिमान्॥ १९९॥ धान्यकं त्रिफला चव्यं विडङ्गं गजपिप्पली। सुवर्णमाक्षिकं व्योषं द्वौ क्षारौ लवणत्रयम्॥ २००॥ एतानि कर्षमात्राणि संगृह्णीयात् पृथक्-पृथक्। द्विकर्षं हतलौहं स्याच्चतुष्कर्षा सिता भवेत्॥ २०१॥ शिलाजत्वष्टकर्षं स्यादष्टौ कर्षाश्च गुग्गुलोः। विधिना योजितैरेतैः कर्त्तव्या गुटिका शुभा॥ २०२॥ चन्द्रप्रभेति विख्याता सर्वरोगप्रणाशिनी। निहन्ति विंशतिं मेहान् कृच्छ्रमष्टविधं तथा॥ २०४॥ चतस्रश्चाश्मरीस्तद्वन्मूत्राघातांस्त्रयोदश। अण्डवृद्धिं पाण्डुरोगं कामलां च हलीमकम्॥ २०३॥ कासं श्वासं तथा कुष्ठमग्निमान्द्यमरोचकम्। वातपित्तकफव्याधीन् बल्या वृष्या रसायनी॥ २०५॥ समाराध्य शिवं तस्मात् प्रयत्नाद् गुडिकामिमाम्। प्राप्तवांश्चन्द्रमा यस्मात्तस्माच्चन्द्रप्रभा स्मृता॥ २०६॥

कपूर, बच, नागरमोथा, चिरायता, देवदार, हल्दी, अतीस, दारुहल्दी, पिपरामूल, चीत, निशोथ, दन्ती, तेजपात, दालचीनी, इलायची, और वंशलोचन ये सब एक-एक तोला तथा धनिया, त्रिफला, चव्य, वायविडंग, गजपीपरि, सोनामाखी, सोंठ, मिर्च पीपरि, यवक्षार, सज्जीखार, सेंधव, बिड और कालानमक ये सब एक-एक तोला तथा लोहभस्म २ तोले। मिसरी ४ तोले, शिलाजीत ८ तोले और गूगुल ८ तोले

ले। विधिपूर्वक इनको मिलाकर उत्तम गोली बनावे। 'चन्द्रप्रभा' नाम से विख्यात यह वटी सब रोगों की नाशक है। बीस प्रकार के प्रमेह आठ प्रकार के मूत्र कृच्छ्र, चार प्रकार की अश्मरी, तेरह प्रकार के मूत्राघात, अण्ड वृद्धि, पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, कास, श्वास, कुष्ठ, अग्निमान्द्य, अरोचक तथा अन्यान्य वात, पित्त और कफजन्य रोगों को यह वटी नष्ट करती है। बल-वीर्यवर्द्धक और रसायन है। बड़े परिश्रम से शिवजी की आराधना करके चन्द्रमा ने इस वटी को प्राप्त किया था, इसी कारण से इसका नाम 'चन्द्रप्रभा' रक्खा गया॥ मात्रा ३।६ रत्ती॥ १९८-२०५॥

मेहमिहिर तैल।

पञ्चमूलयमृता धात्री दाडिमानां तुलां पचेत्। जलद्रोणे स्थिते पादे तैलमस्थं विपाचयेत् ॥२०७॥ क्षीरं तैलसमं कल्कान् निम्बभूनिम्बगोक्षुरम्। दाडिमं रेणुकं बिल्वं दारुदार्वीबलाहकान ॥२०८॥ त्रिफला तगरं द्राक्षा जम्ब्वाम्रवल्कलाभयम्[1]। नाम्नेदं मेहमिहिरं सर्वमूत्रामयान् जयेत् ॥२०९॥ हस्तपादशिरोदाहं दौर्बल्यं कृशतां तथा। क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्राः स्त्रीक्षीणाश्चापि ये नराः। तेषां वृष्यं च बल्यंच वयःस्थापनमेव च ॥२१०॥

तिलतैल १२८ तोले, क्वाथार्थ बृहत् पञ्चमूल (बेल, श्योनाक खम्भारि, पाडल और अरनी) की छाल, गुर्च, आँवला और अनार के दाने मिलित ४ सेर। जल २४ सेर ४८ तोले, शेष ६ सेर ३२ तोले। दूध १२८ तोले। कल्कार्थ नीम की छाल, चिरायता, गोखरू, अनारदाने रेणुका के बीज, बेलगिरी, देवदारु, दारुहल्दी, नागरमोथा, त्रिफला, तगर, मुनक्का, जामुन की छाल, आम की छाल और हड़ ये सब मिलाकर ३२ तोले। इन सबसे यथा विधि तैल सिद्ध करे। इसका नाम 'मेहमिहिर तैल' है। यह सब प्रकार के मूत्ररोगों को जीतता है। हाथ, पाँव और शिर के दाह को, दुर्बलता तथा कृशता को जीतता है। क्षीणेन्द्रिय, नष्टशुक्र और स्त्रीप्रसंग के कारण क्षीण जो मनुष्य हैं उनके बल-वीर्य का वर्धक और वयः स्थापक है॥ २०७-२१०॥

[1] अभयम्=हरीरे।

प्रमेहमिहिर तैल।

शतपुष्पा देवकाष्ठं मुस्तकं च निशाद्वयम्। मूर्वा कुष्ठं वाजिगन्धा चन्दनद्वयरेणुकम् ॥ २११ ॥ कटुकी मधुकं रास्ना त्वगेला ब्रह्मयष्टिका। चविका धान्यकं वत्सं पूतिकागुरुपत्रकम् ॥ २१२ ॥ त्रिफला नलिका बाला बला चातिबला तथा। मंजिष्ठा सरलं पद्मं लोध्रं मधुरिका वचा। अजाजी चोशीरजाती वासा तगरपादुका ॥ २१३ ॥ एतेषां कार्षिकैर्भागैस्तैलमस्थं विपाचयेत्। शतावर्या रसं तुल्यं लाक्षारसचतुर्गुणम् ॥ २१४ ॥ मस्तुलाक्षारसैस्तुल्यं क्षीरं तुल्यं प्रदापयेत्। द्रवैरेतैः पचेत्तैलं गन्धं दत्वा यथाक्रमम् ॥ २१५ ॥ एतत्तैलवरं श्रेष्ठमभ्यङ्गान् मारुतापहम्। विषमाख्यान् ज्वरान् हन्ति मेदोमज्जागतानपि ॥ २१६ ॥ वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्। क्षीणेन्द्रिये तथा शस्तं ध्वजभङ्गे विशेषतः ॥ २१७ ॥ द्वयात्तैलं विशेषेण फलमस्य च कथ्यते। दाहं पित्तं पिपासां च छर्दिं च मुखशोषणम् ॥ २१८ ॥ प्रमेहान् विंशतिं चैव नागवेदविकल्पतः। प्रमेहमिहिरं नाम्ना रतिनाथेन भाषितम् ॥ २१९ ॥

एक-एक तोला सौंफ, देवदारु, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, मरोरफली, कूट, असगन्ध सफेद चन्दन, लाल चन्दन, रेणुका के बीज,

कुटकी, मुलेठी, रास्ना, दालचीनी, इलायची, नारंगी, चव्य, धनियाँ, इन्द्रजौ, कंजा के बीज, काली अगर, तेजपात, त्रिफला, यवासी, सुगन्धबाला, खरियारा, अतिबला (कंघी), मजीठ, सरलकाष्ठ, पदुमकाठ, लोध, सोया, बच, जीरा, खस, जावित्री, अडूसा और तगर, इनके कल्क के साथ १२८ तोले तिल का तैल पकावे। इसमें शतावरी का रस १२८ तोले, लाक्षारस १ सेर १२ तोले, दही का तोड़ १ सेर ३२ तोले और दूध १२८ तोले डाले। इन द्रव पदार्थों के साथ तैल को पकावे। यथोचित रीति से गन्धद्रव्य भी डाले। यह सब तैलों में श्रेष्ठ है। मर्दन करने से वातिक रोगों को नष्ट करता है। विषम ज्वरों को, मेदोगत और मज्जागत रोगों को तथा अन्यान्य वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक रोगों को नष्ट करता है। इन्द्रियों की क्षीणता और ध्वजभङ्ग रोगों में विशेष रूप से इसका प्रयोग करना चाहिए। यह दाह, पित्त, पिपासा, छर्दि, मुखशोष और बीस प्रकार के प्रमेहों को निःसंदेह नष्ट करता है। इस 'प्रमेहमिहिर' नाम के तैल को रतिनाथ ने कहा था ॥ २११-२१६ ॥

इन्द्रवटी ।

मृतं सूतं मृतं वङ्गमर्जुनस्य त्वचा सिता । तुल्यांशं मर्दयेत् खल्ले शाल्मल्या मूलजैर्द्रवैः ॥ २२० ॥ दिनान्ते वटिका कार्या माषमात्रा प्रमेहहा । एषा चन्द्रवटी नाम्ना मधुमेहप्रशान्तये । त्रुटिं शाल्मलिमूलानां मधुना चानुपाययेत् ॥ २२१ ॥

रससिन्दूर, वङ्गभस्म, अर्जुन की छाल और शक्कर समभाग लेकर सेमर के मूसरा के क्वाथ के साथ दिन भर घोटकर एक-एक माशे की गोलियाँ बनावे। इसका नाम 'इन्द्रवटी' है। मधुमेह की शान्ति के लिये इलायची, सेमर के मूसला का चूर्ण और मधु के साथ मिश्रित कर सेवन करावे ॥ मात्रा—३ रत्ती ॥ २२०-२२१ ॥

मेहमुद्गरवटिका ।

रसाञ्जनं विडं दारु बिल्वगोक्षुरदाडिमाः भूनिम्बः पिप्पलीमूलं त्रिकटुत्रिफला त्रिवृत् ॥ २२२ ॥ प्रत्येकं तोलकं देयं लौहचूर्णं तु तत्समम् । पलैकं गुग्गुलुं दत्त्वा घृतेन वटिकां कुरु ॥ २२३ ॥ माषैका निर्मिता चेयं मेहमुद्गरसंज्ञिनी । श्रीमद्गहननाथेन लोकनिस्तारकारिणा ॥ २२४ ॥ अनुपानं प्रकर्त्तव्यं छागीदुग्धं जलं च वा । विंशन्मेहान् निहन्त्याशु मूत्रकृच्छ्रं हलीमकम् ॥ २२५ ॥ अश्मरीं कामलां पाण्डुं मूत्राघातमरोचकम् । षडर्शांसिव्रणं कुष्ठं भगन्दरमसूरिकाम् । सुखिनो यदि कर्त्तव्या त्रिसुगन्धिसमन्विता ॥ २२६ ॥

रसौत, बिड़लवण, देवदारु, बेलगिरी, गोखरू के बीज, अनारदाने, चिरायता, पिपरामूल, त्रिकटु, त्रिफला और निशोथ प्रत्येक एक-एक तोला। सर्व समान लौहचूर्ण तथा गुग्गुलु ४ तोले मिलाकर घी के साथ घोटकर एक-एक माशे की गोलियाँ बनावे। 'मेहमुद्गर' नाम की इस वटी को लोकोपकारपरायण श्रीमान् गहननाथजी ने बनाया था। बकरी के दूध या जल के साथ सेवन करना चाहिए। यह बीस प्रकार के प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, हलीमक, अश्मरी, कामला, पाण्डु, मूत्राघात, अरोचक छः प्रकार के अर्श, व्रण, कुष्ठ, भगन्दर और मसूरिका रोगों को तत्काल नष्ट करती है। यदि सुखी (स्वस्थ) मनुष्य के लिये देना हो तो त्रिसुगंधि (दालचीनी, इलायची और तेजपात) के साथ देना चाहिए ॥ मात्रा—३ रत्ती ॥ २२२-२२६ ॥

बृहत् सोमनाथ रस ।

हिङ्गुलसम्भवं सूतं पालिधारसमर्दितम् । रण्डाशोधितगन्धं च तेनैव कज्जलीकृतम् ॥ २२७ ॥ तद्द्वयोर्द्विगुणं लौहं कन्यारसविमर्दितम् । अभ्रकं वङ्गकं रौप्यं खर्परं माक्षिकं तथा ॥ २२८ ॥ सुवर्णं च

समं सर्वं प्रत्येकं च रसार्द्धकम्। तत्सर्वं कन्यकाद्रावैर्मर्दयेद्भावयेत् तथा ॥ २२९ ॥ भेकपर्णीरसेनैव गुञ्जाद्वयवटीं हिताम्। मधुना भक्षयेचापि सोमरोगनिवृत्तये ॥ २३० ॥ प्रमेहान् विंशतिं हन्ति बहुमूत्रं च सोमकम्। मूत्रातिसारमत्युग्रं मूत्राघातं सुदारुणम् ॥ २३१ ॥ मूत्रदोषं बहुविधं प्रमेहं मधुसंज्ञकम्। हस्तिमेहमिक्षुमेहं नानामेहान् विनाशयेत् ॥ २३२ ॥ वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सोमसंज्ञितम्। नाशयेद् बहुमूत्रं च प्रमेहमविकल्पतः ॥ २३३ ॥ सोमनाथरसश्चायं चरकेण विनिर्मितः। वृष्याद्वृष्यतमो ह्येष मूत्रदोषकुलान्तकृत् ॥ २३४ ॥

निम्बपत्र के रस में शोधित हिंगुलोत्थ पारद और मूसाकानी के रस में शोधित गन्धक एक-एक तोला लेकर दोनों की कज्जली करे। उस कज्जली में ४ तोला लोहभस्म मिलाकर कुमारी के रस में मर्दित करे। पश्चात् उसमें अभ्रक-भस्म, वङ्गभस्म, रौप्य, खर्पर, स्वर्णमाक्षिक तथा सुवर्ण छः-छः माशे मिश्रित कर फिर क्रमशः कुमारी और मण्डूकपर्णी के स्वरस की भावना दे-देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। सोमरोग की निवृत्ति के लिये इस परम लाभदायक रस का मधु के साथ सेवन करे। यह रस बीस प्रकार के प्रमेह, बहुमूत्र, सोमरोग, अत्युग्र मूत्रातिसार, दारुण मूत्राघात, विविध प्रकार के मूत्रदोष, मधुप्रमेह, हस्तिमेह, इक्षुमेह तथा अन्यान्य विविध प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है। वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक सोमनामक बहुमूत्र या मूत्रप्रमेह को निःसन्देह नष्ट करता है। अत्यन्त बलवीर्य-वर्धक और मूत्र दोषों के समूह को नष्ट करनेवाला है। इस 'सोमनाथरस' को चरकजी ने बनाया था ॥ २२७-२३४ ॥

देवदार्वरिष्ट

तुलार्द्धं देवदारु स्याद्वासायाः पलविंशतिः। मञ्जिष्ठेन्द्रयवा दन्ती तगरं रजनीद्वयम् ॥ २३५ ॥ रास्ना कृमिघ्नं मुस्तं च शिरीषं खदिरार्जुनौ। भागान् दशपलान् दद्याद्यवान्या वत्सकस्य च ॥ २३६ ॥ चन्दनस्य गुडूच्याश्च रोहिण्यश्चित्रकस्य च। भागानष्टपलानेतानष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ २३७ ॥ द्रोणशेषे कषाये च पूते शीते प्रदापयेत्। धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम् ॥ २३८ ॥ व्योषस्य द्विपलं दद्यात् त्रिजातकचतुष्पलम्। चतुष्पलं प्रियङ्गोश्च द्विपलं नागकेशरम् ॥ २३९ ॥ सर्वाण्येतानि संचूर्ण्य घृतभाण्डे निधापयेत्। मासादूर्ध्वं पिबेदेनं प्रमेहं हन्ति दुस्तरम् ॥ २४० ॥ वातरोगग्रहण्यर्शोमूत्रकृच्छ्राणि नाशयेत्। देवदार्वादिकोऽरिष्टो दद्रुकुष्ठविनाशनः ॥ २४१ ॥

देवदारु २½ सेर और अडूसे के मूल की छाल १ सेर। मजीठ, इन्द्रजौ, दन्ती, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, वायविडङ्ग, नागरमोथा, सिरस की छाल, खदिरकाष्ठ (खैर की लकड़ी) और अर्जुन की छाल आध-आध सेर तथा अजवाइन, कुड़ा की छाल, लाल चन्दन, गुर्च रोहिड़ा और चीत चत्तीस-बत्तीस तोले ले। इनको ५ मन ४ सेर ६४ तोले पानी में पकावे। २५ सेर ४८ तोले जल अवशिष्ट रहने पर उतार कर छान ले। शीतल हो जाने पर इस क्वाथ में धाय के फूल ६४ तोले, मधु १५ सेर। त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि) मिलित ८ तोले, त्रिजातक (दालचीनी, इलायची और तेजपात) मिलित १६ तोले, प्रियङ्गु के फूल १६ तोले और नागकेसर ८ तोले। इन सबको चूर्णित कर मिला दे और घृत के चिकने पात्र में बन्द करके रख दे। एक मास के अनन्तर छानकर इसका पान करे। यह अरिष्ट दुस्तर प्रमेह, वातरोग,

ग्रहणी, अर्श और मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है। यह देवदार्व्यरिष्ट दद्रु और कुष्ट का नाशक है॥ २३९-२४१॥

प्रमेहरोग में पथ्य।

प्राग्लङ्घनानि वमनानि विरेचनानि मोद्वर्त्तनानिशमनानि च दीपकानि,नीवार कड्गु यवर्वेणव करुदूष श्यामाकजीर्ण कुरुविन्द मुकुन्दकाश्च ॥ २४४॥ गोधूम-शालिक लमाश्चिरजाः कुलत्थ मुद्गाढकी पण्क यूपरसास्तिलाश्च लाजाः पुरातनसुरा मधुवाट्यमण्डस्तक्रं च रासभजलं महिषीजलं च ॥ २४३॥ लट्वा-कपोतशश तित्तिरि लाववर्हि भृङ्गैणवर्तक-शुकादिक जाङ्गलाश्च शोभाञ्जनानि कुलकानि कठिल्लकानि कर्कोटकानि तलकानि च वार्हतानि ॥ २४४॥ औदुम्बराणि लशुनानि नवीनमोचं पत्तूर गोक्षुरक मूषिक पर्णि शाकम् मन्दार पत्रममृता त्रिफलाकपित्थं जम्बूः कशेरू कमलोत्पलकन्द बीजम्॥ २४५॥ खजूरलाङ्गलिकतालतरूत्तमाङ्ग व्योषं च तिन्दुकफलं खदिरः कलिङ्गः तिक्तानि चापि सकलानि कषायकाणि, हस्त्यश्ववाहनमतिभ्रमणं रविस्त्विट् ॥ २४६॥ व्यायाम इत्यपिगणो भवति प्रकामंमित्रं प्रमेह गदपीडितमानवानाम्॥ २४७॥

प्रमेह रोग के होते ही प्रथम लङ्घन वमन विरेचन उबटना प्रमेह को शान्त करने वाले तथा अग्नि दीपन पदार्थों का उपयोग करना चाहिये और नीवार कागुनी जौ बाँस का चावल कोदो साया पुरानी जंगली कुल्थी और मुकुन्दक (साठी चावल का भेद) चावल पुराना गेहूँ शालि चावल कलमीधान का चावल कुल्थी मूँग अरहर चना इनका यूष तिल धान का लावा पुरानी शराब शहद वाट्यमण्ड (चतुर्गुणजलसिद्ध जौ का माड) मट्ठा गधे का मूत्र भैंस का मूत्र और लोटन कबूतर। खरगोश तीतर लवा मोर भृङ्गराजपक्षी हरिण वतक तोता आदिक जंगली पशु पक्षियों का मांस और सहजन परवल करेला खेकसा सालफल कटेरी का फल गूलर का फल लहसुन नवीन केले का फल पथूर का शाक मूषाकर्णी के पत्तों का शाक आक के पत्ते गिलोय त्रिफला कैथ जामुन कसेरू कमल, कमल कन्द, कमल गट्टा खजूर कलिहारी ताड़की कोपल त्रिकुटा तेंदुफल खैर तरबूज सभी प्रकार तिक्त तथा कसैले रस वाले पदार्थ हाथी घोड़े पर चढ़कर चलना अत्यन्त भ्रमण करना सूर्य की धूप में फिरना कसरत कुश्ती ये सब प्रमेहरोग में अत्यन्त हितकर हैं॥ २४२-२४७॥

प्रमेह में अपथ्य।

सदासनं दिवानिद्रा नवान्नानि दधीनि च। मूत्रवेगं धूमपानं स्वेदं शोणितमोक्षणम्॥ २४८॥ सौवीरकं सुरां शुक्तं तैलं क्षारं घृतं गुडम्। अम्ले क्षुरसपिष्टान्नानूपमांसानि वर्जयेत्॥ २४९॥

तुम्बी तालास्थिमज्जानं विरुद्धान्यशनानि च। कूष्माण्डमिक्षु दुष्टाम्बु स्वाद्वम्ललवणानि च॥ अभिष्यन्दि प्रयत्नेन प्रमेही परिवर्जयेत् २५०॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां प्रमेहाधिकारः समाप्तः।

सदा बैठे रहना, दिन में सोना, नये शालि आदि धान्य, दही, मूत्रवेग को रोकना, धूमपान, स्वेदन, रक्तनिर्हरण (फस्द खोलना), सौवीर, मदिरा, शुक्त (सिरका) तैल, क्षार, घी, गुड़, खटाई ईख का रस, पीठी के भोज्य तथा जलप्रधान देश के पशु पक्षियों का मांस लौकी,

ताड़ का गूदा, विरुद्ध भोजन, पेठा, ईख, दूषित जल, मीठे खट्टे और नमकीन रस तथा अभिष्यन्दी पदार्थ, ये सब प्रमेह रोग में त्याज्य हैं ॥ २४८-२५० ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां प्रमेहाधिकारः समाप्तः ।

सोमरोगाधिकारः

स्त्रीणामतिप्रसङ्गाद्वा शोकाद्वापि श्रमादपि । आभिचारिकदोषाद्वा गरदोषात्तथैव च ॥ १ ॥ आपः सर्वशरीरेभ्यः क्षुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति च । तस्मात्ताः प्रच्युताः स्थानान्मूत्रमार्गं व्रजन्ति च ॥२॥ प्रसन्ना विमलाः शीता निर्गन्धा नीरुजः सिताः । स्रवन्ति चातिमात्रं तु दौर्बल्यं रतिहीनता ॥ ३ ॥ शिरसः शिथिलत्वं च मुखतालुविशोषणम् । सोमरोग इति ज्ञेयो देहे सोमक्षयान्नृणाम् ॥ ४ ॥ सोऽतिक्रान्तं क्रमेणैव स्रवेन् मूत्रमभीक्ष्णशः । मूत्रातिसारमप्येवं तमाहुर्बलनाशनम् । तेन तृष्णाभिभूतोऽसौ जलं पिबति चाधिकम् ॥ ५ ॥

अत्यन्त स्त्रीप्रसङ्ग करने से, शोक से, अधिक श्रम करने से, आभिचारिक दोष से (योनिदोषग्रस्त स्त्री के साथ संगम से) और विषदोष से सम्पूर्ण शरीर से जलीय पदार्थ क्षुब्ध होकर प्रस्रुत होने लगते हैं । अतः अपने स्थान से च्युत होकर मूत्रमार्ग में प्राप्त होते हैं । तब स्वच्छ, निर्मल, शीतल, निर्गन्ध, व्यथारहित श्वेतमूत्र अत्यधिक मात्रा में गिरने लगता है । इससे शरीर में दुर्बलता, रतिशक्तिहीनता, शिर की शिथिलता, मुख और तालु का शुष्क होना, ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं । इस रोग से मनुष्यों के शरीर में सोम (जल) का क्षय हो जाता है । अतः इसका नाम सोम रोग है । अधिक समय व्यतीत होने पर जब मूत्र क्रमशः थोड़ी-थोड़ी देर में अधिक गिरने लगता है तब उसको मूत्रातिसार भी कहते हैं । यह बल का नाशक है जलीय पदार्थ के अत्यधिक गिर जाने से रोगी तृषार्त होकर अत्यधिक जल पीता है ॥ १-५ ॥

कदलीनां फलं पक्वं धात्रीफलरसं मधु । शर्करा पयसा पीतमपां धारणमुत्तमम् ॥ ६ ॥

केले का परिपक्व फल, आँवले का स्वरस १ तोला, मधु ४ माशे, शक्कर ४ माशे और दूध पावभर लेवे । इनको मिश्रित कर पान करे । यह बहुमूत्र को रोकने के लिये उत्तम औषध है ॥ ६ ॥

कदलीनां फलं पक्वं विदारीं च शतावरीम् क्षीरेण पाययेत्प्रातरपां धारणमुत्तमम् ॥ ७ ॥

केले का पका फल, विदारीकंद और शतावर को दूध में मिलाकर प्रातःकाल पान करे । यह बहुमूत्र को रोकने के लिए उत्तम औषध है ॥ ७ ॥ मात्रा १-२ तोला ॥

धात्रीफलस्य रसकं मधुना च पिबेत्सदा । बहुमूत्रक्षयं कुर्यात् क्षारेण यासकस्य च ॥८॥

प्रतिदिन मधुयुक्त आँवले के अथवा यवक्षार युक्त दुरालभा के स्वरस का पान करे । ये योग बहुमूत्र को नष्ट करते हैं ॥ मात्रा ११२ तोला ॥ ८ ॥

तालकन्दं च तरुणं खर्जूरं कदलीफलम् । पयसा पाययेत्प्रातर्मूत्रातीसारनाशनम् ॥९॥

तालवृक्ष के तरुणकन्द, खजूर और केले के फल को दुग्ध में मिश्रित कर प्रातःकाल पिलावे । यह मूत्रातिसार को नष्ट करता है । मात्रा—११२ तोला ॥ १० ॥

मापचूर्णं समधुकं विदारी शर्करा मधु । पयसा पाययेत्प्रातः सोमरोगविनाशनम् ॥१०॥

उर्द का चूर्ण, मुलेठी, विदारीकंद, शक्कर और मधु को दूध में मिलाकर प्रातःकाल पान करावे। यह योग सोमरोग का नाशक है ॥ मात्रा—१।२ तोला ॥ १० ॥

त्रिफलादि योग ।

त्रिफलावेणुपत्राब्दपाठामधुघृतैः कृतः । कुम्भयोनिरिवाम्भोधिं बहुमूत्रन्तु शोषयेत् ॥११॥

त्रिफला, बाँस के पत्ते, मोथा और पाढ के चूर्ण को शहद तथा घी के साथ सेवन करने से यह रोग शीघ्र नष्ट होता है । अगस्त्य मुनि ने जिस प्रकार समुद्र को सुखा दिया था उसी प्रकार यह योग बहुमूत्र को सुखा देता है ॥ ११ ॥

बृहद्धात्री घृत ।

धात्रीफलरसप्रस्थं विदारीस्वरसं तथा। क्षीरस्यापि शतावर्याः प्रस्थं प्रस्थं रसस्य च ॥ १२ ॥ तृणपञ्चरसप्रस्थं दत्त्वा प्रस्थं घृतस्य च । पचेन्मृद्वग्निना वैद्यः पाकं ज्ञात्वा विधानतः ॥ १३ ॥ एलालवङ्गत्रिफला कपित्थफलमेव च । सजलं सरलं मांसी कदलीकन्दमेव च ॥ १४ ॥ उत्पलस्य च कन्दानि कल्कं दत्त्वा विचक्षणः। ततः कल्कं परिस्राव्य चूर्णं दद्यात्पलं पलम् ॥ १५ ॥ मधुकं त्रिवृता चैव क्षारकं वृद्धदारकम् । शर्करायाः पलान्यष्टौ मधुनश्च पलाष्टकम् ॥ १६ ॥ चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धभाण्डे निधापयेत् । सोमरोगं निहन्त्याशु तृष्णां दाहमरोचकम् ॥ १७ ॥ मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रं नाशयेद् बहुमूत्रकम् । पित्तजान् विविधान्-व्याधीन् वातजांश्च सुदारुणान् ॥ १८ ॥ करोति शुक्रोपचयं बलवर्णकरं परम् । नानारूपविकारघ्नं विशेषाद् बहुमूत्रनुत् ॥१९॥

आँवले का स्वरस १२८ तोले, विदारीकंद का स्वरस १२८ तोले, दूध १२८ तोले, शतावरि का स्वरस १२८ तोले, तृणपञ्चमूल का स्वरस या क्वाथ १२८ तोले, और घृत १२८ तोले एकत्र कर धीमी आँच पर पकावे । वैद्य विधिवत् पाक की परीक्षा कर चार चार तोले इलायची, लवङ्ग, आँवला, हड़, बहेड़ा, कैथा के फल, सुगन्धवाला, सरलकाष्ठ, जटामांसी, केले का कन्द और नसीदा के कल्क के साथ पाक करे । पश्चात् घृत को कपड़े से छानकर उसमें चार-चार तोले मुलेठी, निसोथ, यवक्षार और विधारा का चूर्ण मिलावे । शक्कर ३२ तोले और मधु ३२ तोले मिलाकर घोटकर घी के चिकने पात्र में रख दे । यह घृत सोमरोग को तत्काल नष्ट करता है । तृष्णा, दाह, अरुचि मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, बहुमूत्र तथा अन्यान्य विविध प्रकार के पित्तज और दारुणवातज, व्याधियों को नष्ट करता है । शुक्र, बल और कान्ति को बढ़ाता है तथा अन्यान्य नाना प्रकार के रोगों को, विशेषकर बहुमूत्र रोग को नष्ट करता है ॥ मात्रा—६ माशा से १ तोला ॥ १२-१९ ॥

स्वल्पधात्री घृत ।

विना कल्कं स्वल्पधात्रीघृतमेतन्निगद्यते । सर्वं तुल्यं गुणैरेव पथ्यापथ्यं तदेव हि ॥२०॥

पूर्वोक्त घृत को कल्क के बिना ही सिद्ध करे, तो यह 'स्वल्पधात्रीघृत' कहा जाता है । शेष सब विधि उक्त 'धात्रीघृत, के तुल्य ही है । गुण और पथ्यापथ्य सब उसी के तुल्य हैं ॥ २० ॥

कदल्यादि घृत ।

कदलीकन्दनिर्यासे सत्प्रसूनतुलां पचेत् । चतुर्भागावशेषेऽस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २१ ॥ चन्दनं सरलं मांसी

कदलीमूलकं तथा । एला लवङ्गत्रिफला कपित्थफलमेव च ॥ २२ ॥ औदकानि च कन्दानि न्यग्रोधादिगणस्तथा । कल्केनानेन संसिद्धं सोमरोगनिवारणम् ॥ २३ ॥ मूत्ररोगानशेषांश्च प्रभूतान् शुक्रपिच्छिलान् । प्रमेहान् विंशतिं चैव मूत्राघातांस्त्रयोदश ॥ २४ ॥ बहुमूत्रं विशेषेण मूत्रकृच्छ्रं तथाश्मरीम् । पीतं घृतं निहन्त्याशु विष्णुचक्रमिवासुरान् । कदल्यादिघृतं नाम विष्णुना परिकीर्तितम् ॥ २५ ॥

२५ सेर ४८ तोले केले के मूल के स्वरस में ५ सेर केले के फूल पकावे । ६ सेर ३२ तोले शेष रहने पर उस क्वाथ में १२८ तोले घृत पकावे । पश्चात् रक्तचन्दन, सरलकाष्ठ, जटामांसी, केले का मूल, इलायची, लौंग, आँवला, हड़, बहेड़ा, कैथा का फल, पद्ममूल, नीलोत्पलमूल आदि जलोत्पन्न कन्द तथा न्यग्रोधादिगण का कल्क मिलाकर यथाविधि घृत सिद्ध करे । यह घृत सोमरोग का नाशक है। शुक्र मिश्रित होने से पिच्छिल तथा सब प्रकार के मूत्रविकारों को, बीस प्रकार के प्रमेह और तेरह प्रकार के मूत्राघातों को, विशेषकर बहुमूत्र रोग को, मूत्रकृच्छ्र तथा अश्मरी रोग को ऐसे शीघ्र विनष्ट करता है जैसे विष्णुचक्र असुरों का संहार करता है । यह 'कदल्यादि घृत' विष्णु करके कहा गया है मात्रा—६ माशा से १ तोला ॥ २१-२५ ॥

सिद्धफल न्यग्रोधादिगण ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थपियालप्लक्षवेतसम् । आम्रो जम्बूद्वयं कोलं मधुकं तिन्दुकोऽर्जुनः । तिनिशः कटुको नीपो गर्दभाण्डोऽथ किंशुकः ॥ २६ ॥

बड़, गूलर, पीपर, पियाल (चिरौंजी), पाकर, बेंत, आम, जामुन, बनजामुन, बेर, महुआ, लोध, अर्जुन, तिमक, कुटकी, कदम्ब, सिरस और पलाश इनको न्यग्रोधादिगण कहते हैं ॥ २६ ॥

हेमनाथ रस ।

सूतं गन्धं हेमताप्यं प्रत्येकं कोलसम्मितम् । अयश्चन्द्रं प्रवालं च वङ्गं चार्द्धं विनिक्षिपेत् ॥ २७ ॥ फणिफेनस्य तोयेन कदलीकुसुमेन च । उदुम्बररसेनापि सप्तधा परिमर्दयेत् ॥ २८ ॥ वल्लमात्रां वटीं खादेद्यथाव्याध्यनुपानतः । प्रमेहान् विंशतिर्हन्ति बहुमूत्रं सुदारुणम् ॥ २९ ॥ सोमरोगं क्षयं चैव श्वासं कासमुरःक्षतम् । हेमनाथरसो नाम्ना कृष्णात्रेयेण भाषितः ॥ ३० ॥

पारा, गन्धक, स्वर्ण और स्वर्णमाक्षिक छह-छह माशे तथा लोह, कपूर, प्रवाल और वङ्गभस्म तीन-तीन माशे डाले । सात-सात बार अफीम के जल, केले के फूल के रस और गूलर के स्वरस के साथ घोटकर तीन-तीन रत्ती की गोलियाँ बनावे व्याधि के अनुसार अनुपान की व्यवस्था करे । यह रस बीस प्रकार के प्रमेह, बहुमूत्र, दारुण सोमरोग, क्षय, श्वास, कास और क्षत को नष्ट करता है । कृष्णात्रेयजी ने इसका 'हेमनाथरस' कहा है। मात्रा—३ रत्ती ॥ २७-३० ॥

वसन्तकुसुमाकर रस ।

वैक्रान्तस्य च भागैकं द्विभागं हेमभस्मनः । अभ्रकस्य च भागौ द्वौ मुक्ताविद्रुमयोस्तथा ॥ ३१ ॥ वङ्गभस्म त्रिभागं स्यात् रसस्य भस्मनस्तथा । चत्वारोऽस्य च भागाश्च सर्वमेकत्र मर्दितम् ॥ ३२ ॥ जम्बीराद्भिश्चगोदुग्धैः क्षीरोद्भववारिभिः । इक्षुद्रवैरिक्षुनीरैः सप्तधा भावयेत्पृथक् ॥ ३३ ॥ भावितो रसराजः स्याद् वसन्तकुसुमाकरः । वल्लोऽस्य मधुना लीढः सोमरोगं

क्षयं नयेत् ॥ ३४ ॥ मूत्रातिसारं मेहांश्च मूत्राघाताश्मरीरुजम्। तृष्णां दाहं तालुशोषं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ३५ ॥ बल्यः पुष्टिकरो वृष्यः सर्वरोगनिवर्हणः। हन्त्यजीर्णं ज्वरं श्वासं क्षयरोगं कृशाङ्गताम् ॥ नातः परतरं किञ्चिद्रसायनमिहेष्यते ॥ ३६ ॥

रसभस्म तदभावे मूर्च्छितरसः । मूत्रातिसारे सोमरोगे च रसायनम्।

वैक्रान्त (हीराभस्म) १ भाग, स्वर्णभस्म, अभ्रकभस्म, मोतीभस्म, और प्रवालभस्म दो-दो भाग। वङ्गभस्म, ३ भाग, और रससिन्दूर ४ भाग इन सबको मिलाकर घोट लें। पश्चात् क्रम से नीबू के रस, गोदुग्ध, खस के क्वाथ, रूसे के स्वरस और इक्षुरस की सात-सात भावनाएँ दें। इस रसराज का नाम 'वसन्तकुसुमाकर' है। यह मधु के साथ तीन-तीन रत्ती सेवन करने से सोमरोग, मूत्रातिसार, प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी, तृष्णा दाह और तालुशोष को नष्ट करता है, इसमें कोई संदेह नहीं। यह बल वीर्यवर्द्धक, पौष्टिक और अन्यान्य सब प्रकार के रोगों का नाशक है। अजीर्ण ज्वर, श्वास, क्षयरोग और कृशाङ्गता को नष्ट करता है। इससे बढ़कर और कोई रसायन नहीं है ॥ ३१-३६ ॥

यहाँ रसभस्म के अभाव में मूर्च्छित पारद लेना चाहिए। मूत्रातिसार और सोमरोग में यह रसायन है ॥ मात्रा—२ रत्ती।

तारकेश्वर रस।

मृतसूताभ्रगन्धश्च मर्दयेन्मधुना दिनम्। तारकेश्वरनामायं गहनानन्दभाषितः ॥ ३७ ॥ गुञ्जामात्रं भजेत्क्षौद्रैर्बहुमूत्रप्रशान्तये। उदुम्बरफलं पक्वं चूर्णितं कर्षमात्रकम् ॥ संलिह्यान्मधुना सार्द्धमनुपानं सुखावहम् ॥ ३८ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, गन्धक इन्हें इकट्ठा कर शहद के साथ घोटकर १ रत्ती की मात्रा में बहुमूत्र रोग की शान्ति के लिये शहद के साथ सेवन कराना चाहिए। इस रस का सेवन करने के पश्चात् पके गूलर का चूर्ण १ तोला तथा शहद मिलाकर अनुपान रूप से चाटना चाहिए ॥ ३७-३८ ॥

तालकेश्वर रस।

तालं मृतं समं गन्ध मृतलौहाभ्रवङ्गकम्। मर्दयेन्मधुना चैव रसोऽयं तालकेश्वरः ॥ ३९ ॥ गुञ्जामात्रं लिहेत्क्षौद्रैर्बहुमूत्रप्रशान्तये। उदुम्बरफलं पक्वं चूर्णितं कर्षमानतः ॥ संलेह्यं मधुना सार्द्धमनुपानं सुखावहम् ॥ ४० ॥

शुद्ध हरताल, पारा, गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और वङ्गभस्म, इन्हें इकट्ठा कर बराबर मात्रा में मिला शहद से घोटे। मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक, इसे बहुमूत्र की शान्ति के लिये शहद के साथ सेवन कराना चाहिए। अनुपान पके गूलर के फल का चूर्ण १ तोला और शहद ॥ ३९-४० ॥

सोमनाथ रस।

कर्षं जारितलौहश्च तदर्द्धं रसगन्धकम्। एलापत्रं निशायुग्मं जम्बूवीरणगोक्षुरम् ॥ ४१ ॥ विडङ्गं जीरकं पाठा धात्री दाडिमटङ्कणम्। चन्दनं गुग्गुलुः लोध्रशालार्जुनरसाञ्जनम् ॥ ४२ ॥ छागीदुग्धेन वटिकां कारयेद्दशरक्तिकाम्। निर्मिता नित्यनाथेन सोमनाथरसस्त्वयम् ॥ ४३ ॥ सोमरोगं बहुविधं प्रदरं हन्ति दुर्जयम्। योनिशूलं मेढ्रशूलं सर्वजं चिरकालजम् ॥ बहुमूत्रं विशेषेण दुर्जयं हन्त्यसंशयम् ॥ ४४ ॥

लोहभस्म १ तोला, पारा, गन्धक, छोटी

इलायची, तेजपात, हल्दी, दारुहल्दी, जामुन की गिरी, खस, गोखरू, वायविडङ्ग, जीरा, पाढ़, आँवला, अनारदाना, सुहागा, लालचन्दन, शुद्ध गूगुल, लोध, शाल की छाल, अर्जुन की छाल और रसौत हरएक आधा आधा तोला। इन्हें बकरी के दूध से घोटकर गोली बनावे। मात्रा—२ रत्ती से १० रत्ती तक। इसके सेवन से अनेक प्रकार का सोमरोग, प्रदर, योनिशूल, मेढ्शूल तथा त्रिदोषज और पुराना बहुमूत्र ये अवश्य ही अच्छे हो जाते हैं। यह सोमनाथ रस नित्यनाथ का बनाया हुआ है॥ ४१-४४॥

गगनादि लौह।

गगनं त्रिफला लौहं कुटजं कटुकत्रयम्। पारदं गन्धकञ्चैव विषटङ्कणसज्जिकाः॥ ४५॥ त्वगेला तेजपत्रञ्च वङ्गं जीरकयुग्मकम्। एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्॥ ४६॥ तदर्धं चैत्रकं चूर्णं माषार्द्धं मधुना लिहेत्। अवश्यं विनिहन्त्याशु मूत्रातीसारसोमकम्॥४७॥

अभ्रकभस्म, त्रिफला, लोहभस्म, कुटज की छाल, त्रिकुटा, पारा, गन्धक, बच्छनाग, सुहागा, सज्जी, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, वङ्गभस्म, सफेद जीरा और काला जीरा हरएक १ तोला, चित्रक का चूर्ण सबका आधा। इन्हें एकत्र मिलाकर रोगी को सेवन करावे। मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक। इसके सेवन से मूत्रातीसार तथा सोमरोग नष्ट होता है ४५-४७

बहुमूत्रान्तक रस।

सिन्दूरञ्च तथा लौहो वङ्गाहिफेनसारकौ। उदुम्बरभवं बीजं बिल्वमूलं सुरप्रिया॥ ४८॥ सर्वं समं जम्बुफलरसैः सम्मर्दितं भवेत्। रक्तिद्वयमितां खादेद्वटिकामनुपानतः॥ ४९॥ दध्यादौ-दुम्बरफलरसं पथ्यविधिं शृणु। मांसप्रधानं भक्ष्यञ्च तथा गोधूमपिष्टकम्॥५०॥ बहुमूत्रान्तकरसो नाशयेदविकल्पतः। बहुमूत्रं तथा चान्यान् रोगांश्चैव तदुद्भवान्॥ ५१॥ तृष्णाधिक्ये प्रदातव्यं मृतशीतमिदं शुभम्॥ सारिवा मधुकं द्राक्षा दर्भः सरलचन्दने॥ ५२॥ पथ्या मधूकपुष्पञ्च सर्वञ्च समभागकम्। जले संस्थाप्य रजनी पराह्णे वस्त्रगालितम्। प्रोक्तं गहननाथेन सद्यस्तृष्णाहरं परम् ५३

रससिन्दूर, लोहभस्म, वङ्गभस्म, अफीम, गूलर के बीज, बेल की जड़, कवावचीनी इन्हें इकट्ठा कर बराबर मात्रा में गूलर के रस से घोटकर २ रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—गूलर के फल का रस। पथ्य—मांसप्रधान भोजन, गेहूँ का आटा। इस औषध के सेवन से बहुमूत्र तथा उससे पैदा होनेवाले अन्य रोग नष्ट होते हैं। यदि रोगी को बहुमूत्र रोग के कारण अत्यन्त पिपासा हो तो नीचे लिखे हुए शीत कषाय को पिलाना चाहिए। कषाय—अनन्तमूल, मुलहठी, दाख, डाभ की जड़, चीड़ की लकड़ी लाल चन्दन, हड़, महुए के फूल मिलाकर १ तोला। इसे कूटकर १२ तोले पानी में रात्रि को भिगो दे। अगले दिन प्रातः कपड़े से छान रोगी को पिलावे यह तत्काल तृष्णा को नष्ट करता है॥ मात्रा २ रत्ती॥ ४८-५३॥

अन्य बहुमूत्रान्तक रस।

रसश्च शाल्मलीमूलचूर्णं कदलिमूलजम्। उदुम्बरबीजचूर्णं लौहो वङ्गश्च विद्रुमम्॥ ५४॥ मुक्ताहिफेनसारौ च प्रत्येकं समभागिकम्। मर्दयेन्मालतीपुष्परसेन कुशलो भिषक्॥ ५५॥ रक्तिद्वयमितां कुर्याद्वटिकामतिशोभनाम्। बहुमूत्रान्तको नाम रसः परमशोभनः॥ मधुमेहं सोमरोगं हन्ति भास्वान् यथा तमः॥ ५६॥

रससिन्दूर, सेमल की जड़, केले की जड़, गूलर के बीज, लोहभस्म, मूँगाभस्म, मोतीभस्म और अफीम इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर मालतीफूल के रस से घोटे और दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। यह बहुमूत्रान्तकरस मधुमेह तथा सोमरोग को नष्ट करता है मात्रा २ रत्ती ॥ ५४-॥ ५६ ॥

हिमांशु रस।

रसस्य कर्षमादाय खल्ले निक्षिप्य बुद्धिमान्। रक्तागस्त्यप्रसूनस्य स्वरसेन विमर्दयेत् ॥ ५७ ॥ सप्तवारं तथा साधु श्वेतदूर्वारसेन च। निष्कद्वयं टङ्कणञ्च कर्षं खादिरसारतः ॥ ५८ ॥ कर्पूरं रसतुल्यञ्च सर्वमेकत्र मर्दयेत्। यावच्चिक्कणतां याति युक्त्या चन्दनवारिणा॥५९॥ हरेणुमात्रान् वटकान् छायायां परिशोषितान्। प्रातः प्रातश्च सेवेत मध्याह्ने च विशेषतः ॥ ६० ॥ निशायाञ्च विशेषेण सेवनीयः प्रयत्नत। एतद्धि मेहतुड्द्रव्यं मुखशोषहरं परम् ॥ सोमरोगहरं सर्वपिटिकानाशनं परम् ॥ ६१ ॥

रससिन्दूर १ तोला खरल में डालकर लाल अगस्तिया के फूल के रस से सात बार भावना दे। इसी प्रकार श्वेत दूब के रस से भी सात बार अच्छी तरह घोटे। पश्चात् सुहागा ६ माशा, कत्था १ तोला, कपूर १ तोला डालकर अच्छी तरह चन्दन के जल से घोटे और मटर के बराबर गोली बनावे। इसे प्रातः मध्याह्न तथा रात्रि के समय सेवन करना चाहिये। यह प्रमेहनाशक है, मुखशोष को हटाता है, सोमरोग तथा सम्पूर्ण पिटिकाओं को नष्ट करता है मात्रा ॥ ३-३ रत्ती ॥ ५६-६१ ॥

पथ्य।

मासानि यवगोधमाः क्षीरमुद्धृतसारकम्। विविधानि च कन्दानि कदल्यादिफलानि च ॥ ६२ ॥ पादत्रहीनं भ्रमणं व्यायामः श्रम एव च। चलःप्रसक्तिः पथ्यं स्यात् सोममूत्रातिसारिणाम् ॥ ६३ ॥

उड़द, जौ, गेहूँ, मक्खन निकाला हुआ दूध विविध कन्द, केला, गूलर आदि फल, नंगे पैर भ्रमण, व्यायाम, परिश्रम, मन का प्रसन्न रहना, ये सोमरोग एवं मूत्रातिसारियों के लिये पथ्य हैं ॥ ६२-६३ ॥

अपथ्य।

इक्षोर्विकारा भृशमम्बुपानं फलान्यपक्वानि सुखासनञ्च। दिवा तु निद्रां भयकोपशोकान् विवर्जयेन्मूत्रगदी प्रयत्नात् ॥ ६४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां सोमरोगाधिकारः समाप्तः।

ईख से बने गुड़, खाँड आदि द्रव्य, अत्यन्त जलपान, कच्चे फल, सुख से बैठे रहना, दिन में सोना, अत्यन्त सोना, भय, क्रोध एवं शोक इनसे मूत्ररोगी को बचाना चाहिए ॥ ६४ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां सोमरोगाधिकारः समाप्तः।

अथौपसर्गिकमेहाधिकारः

औपसर्गिकमेहोऽथ पूयमेहस्तथैव च। तथैवागन्तुजश्चापि व्रणमेहोऽपि कथ्यते ॥ १ ॥

औपसर्गिक मेह, पूयमेह, आगन्तुज मेह तथा व्रणमेह ये एकार्थवाचक हैं। इसे साधारण भाषा में सूजाक (Gonorpheea) कहते हैं ॥ १ ॥

निदान।

क्लिन्नयोनिः ऋतुमती बहुभुक्ता तथैव

या। कामान्धस्तत्र गमनाद् गदमाप्नोति दारुणम् ॥ २ ॥

व्रण आदि के मवाद से गीली योनिवाली-ऋतुमती तथा वेश्याओं के साथ संभोग करने से कामान्ध पुरुष को यह कष्टदायक रोग होता है। परन्तु यह बात अवश्य है कि जिस स्त्री को यहरोग होगा उसके साथ सम्भोग करने से ही यह रोग हुआ करता है अन्यथा नहीं।

रोगी के अधोवस्त्र (धोती-पाजामा आदि) जिस पर इस रोगी का पीब लगा हुआ हो उसके परिधारण करने से मूत्रेन्द्रिय आदि पर स्पर्श होकर भी यह रोग हो सकता है। इसी प्रकार जिस पुरुष को यह रोग हो वह यदि स्त्री-सम्भोग करेगा तो उस स्त्री को भी यह रोग हो सकता है, अर्थात् यह रोग संसर्ग से फैलनेवाला है ॥ २ ॥

बहुसङ्करसम्भोगप्रक्लिन्नेन्द्रियया पुमान्। स्त्रिया सङ्गम्य संमूढो गदमाप्नोति दारुणम् ॥ ३ ॥ मूत्रनाड्यन्तरस्थानात् त्वगस्य श्लेष्मवाहिनी। व्रणिता वाहयेत् क्लेदं व्रणमेहः स उच्यते ॥ ४ ॥ औपसर्गिकमेहश्च तस्य नामान्तरं मतम्। मेह आगन्तुकश्चापि स कैश्चित्परिभाष्यते ॥ ५ ॥ आरभ्य सङ्गमनिशा संख्या या च सप्तमी। एतद्द्व्यवहिते काले प्रायशो जायते गदः ॥ ६ ॥ कण्डूः शिश्नाग्रतस्तस्य समुत्थानं मुहुर्मुहुः। तीव्रवेदनया चापि मुहुर्मूत्रप्रवर्त्तनम् ॥ ७ ॥ स्फीतिर्लिङ्गस्य लौहित्यं कोपे व्रध्ने च वेदना। कदाचित् क्लेदसंरुद्धमार्गत्वादतिरुक् स्रवेत् ॥ ८ ॥ मूत्रं दाहेन घोरेण द्विधारं वा प्रवर्त्तते। सरेद्वा सतजं मेढ्रान्मूत्रकाले कदाचन ॥ ९ ॥ सन्ततं तनुरास्रावः स्रवेदादौ ततोऽतनुः। स तावत्पुनराशुष्यन् प्रतिमानं प्रयाति च ॥ १० ॥ कालो लघ्वीं व्यथां कुर्याद्व्याधिं च दुष्प्रतिक्रियम्। आमवातास्थिरोगाद्या ज्ञेयश्चास्य ह्युपद्रवाः ॥ ११ ॥

बहुत से पुरुषों के साथ सम्भोग करने से विकृत योनिवाली स्त्री के साथ सङ्गम (सम्भोग) करनेवाला मूढ़ पुरुष भयङ्कर रोग को प्राप्त होता है। मूत्रनाडी के भीतरी स्थान से इसकी श्लेष्मवाहिनी त्वक् व्रणयुक्त होने के कारण क्लेद को बहाती है अतः इसको व्रणमेह कहते हैं। इसका दूसरा नाम औपसर्गिक मेह भी माना गया है। कुछ आचार्य इसे आगन्तुक मेह भी कहते हैं। विकृत योनिवाली स्त्री के साथ सम्भोग की रात से आरंभ करके एक सप्ताह के भीतर ही प्रायः यह रोग उत्पन्न हो जाता है। उस रोगी के शिश्न के अग्रभाग में खुजली, बार-बार उत्थान, तीव्र वेदना से बार-बार मूत्र की प्रवृत्ति, लिङ्ग में शोथ, लालिमा, अण्डकोष और व्रध्न (बाधी) में वेदना, कभी-कभी क्लेद से मूत्रमार्ग अवरुद्ध हो जाने से अत्यन्त पीड़ा और घोर दाह के साथ मूत्र का निकलना अथवा दो धार से मूत्र का प्रवृत्त होना इत्यादि लक्षण होते हैं। अथवा कभी-कभी लघुशङ्का करने के समय लिङ्ग से खून गिरने लगता है। पहिले निरन्तर थोड़ा-थोड़ा गिरता है, पश्चात् बहुत अधिक गिरने लगता है। वह क्रमशः शुष्क होता हुआ सारूप्य को प्राप्त हो जाता है। कालान्तर में व्यथा कम हो जाती है। परन्तु यह रोग असाध्य हो जाता है। आमवात और अस्थिरोग आदि इसके उपद्रव जानने चाहिए ॥ ३-११ ॥

औपसर्गिकमेहचिकित्सा।

व्रणमेही त्यजेद्यत्नाद्व्यवायं सोऽहितो यतः। स्त्रियाश्च परिभुक्ताया आमयं जनयेच्च तम् ॥ १२ ॥ भेषजं पानमन्नं च निषेवेतानुलोमनम्। व्रणघ्नं मूत्रजननं क्रियामुग्रां विवर्जयेत् ॥ १३ ॥

व्रणमेही यत्नपूर्वक मैथुन का परित्याग करे

क्योंकि यह अहित है। तथा परिभुक्ता स्त्री को भी वही रोग उत्पन्न हो जाता है। वातानुलोमन, व्रणघ्न और मूत्रोत्पादक औषध और अन्न पान का सेवन करे तथा उग्र क्रिया का परित्याग करे ॥ १२-१३ ॥

कोष्णे जात्या वराया वा क्वाथे शिश्नं निमज्जयेत्। वेदनोपशमस्तेन व्याधेश्च बलसंक्षयः ॥ १४ ॥

चमेली या त्रिफला के गुनगुने क्वाथ में लिङ्ग को डुबावे। उससे पीड़ा की शान्ति होती है और व्याधि का बल क्षीण होता है ॥ १४ ॥

आभानिर्यासतोयं च यवक्षारयुतं पिबेत्। सजलं क्षीरमामं वा व्रणमेहनिवृत्तये ॥ १५ ॥

बबूल के गोंद को पानी में भिगो दे, जब वह घुल जावे तो उसमें जवाखार मिलाकर पान करे। अथवा कच्चे दूध में पानी मिलाकर पान करे तो व्रणमेह रोग निवृत्त होता है ॥ १५ ॥ मात्रा १ माशा ॥

पिबेद्वा शारिवाक्वाथं सक्षारं नरसारकम्। श्यामामनन्तां कट्वीं च बीजं गोक्षुरसंभवम् ॥ १६ ॥ गन्धाश्मनरसाराभ्यां क्वाथयित्वा जलं पिबेत्। एकं सुरभियफलं मेहमागन्तुकं हरेत् ॥ १७ ॥

अनन्तमूल के ४ तोला क्वाथ में एक माशा यवक्षार और नवसादर मिलाकर पान करे। अथवा श्यामालता, अनन्तमूल, कुटकी और गोखरू के बीज का क्वाथ बनाकर ४ तोले में गन्धक ३ रत्ती और नवसादर ६ रत्ती मिलाकर पान करे। अकेली कबावचीनी आगन्तुक मेह का हरण करती है ॥ १६-१७ ॥

वराभापिप्पलीनां च व्रणमेहनिवृत्तये। कुर्यादुत्तरवस्तिं च कषायेण प्रयत्नतः ॥ १८ ॥

त्रिफला, बबूल की छाल और पीपर की छाल के क्वाथ से पिचकारी देने से व्रणमेह की निवृत्ति होती है ॥ १८ ॥

उत्तरवस्ति।

कणाभात्रिफलाक्वाथं दद्यादुत्तरवस्तिना। प्रयोगादस्य सततं व्रणमेहः प्रशाम्यति १९

पीपली, बबूल की छाल तथा त्रिफला इसके क्वाथ से व्रणमेही को उत्तरबस्ति दे। इस प्रकार शीघ्र ही व्रणमेह शान्त हो जाता है ॥ ॥ १९ ॥

सितं तुत्थस्य भसितं कर्षकद्वयसम्मितम्। मृद्दारशृङ्गदरदं प्रत्येकं रसमापिकम् ॥ २० ॥ दध्नः स्वच्छं जलं प्रस्थं त्रिफलाक्वाथपादिकम्। सर्वं सम्मिश्र्य विधिवद् दद्यादुत्तरवस्तिना ॥ २१ ॥

तूतिया की श्वेत भस्म २ तोला, मुर्दासंग ६ माशे, हिंगुल ६ माशे, दही का स्वच्छ पानी १२८ तोला, त्रिफला क्वाथ ३२ तोला, इन्हें विधिपूर्वक मिलाकर उत्तरवस्ति देने से व्रणमेह नष्ट होता है ॥ २०-२१ ॥

व्रणमेहहर चूर्ण।

श्रीवेष्टसत्वं शुद्धं स्यात् कक्कोलं केशरं तथा। स्फुटी शुद्धा सोरकश्च रालो जङ्गं च जीरकम् ॥ २२ ॥ सर्वं समं समादाय भक्षयेत् सन्ध्ययोर्द्वयोः। दुग्धाम्बुना पूयमेहः ध्रुवं पक्षाद्विनश्यति ॥ २३ ॥

शुद्ध गन्धाबिरोजा, शीतलचीनी, नागकेशर, शुद्ध फिटकरी, शोरा, राल, काकजङ्घा और श्वेत जीरा इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर दोनों सन्ध्या समय रोगी को सेवन करावें। मात्रा—१ माशे से २ माशे तक। अनुपान- कच्चे दूध की लस्सी। इस चूर्ण के सेवन से पूयमेह १५ दिन के अन्दर ही नष्ट हो जाता है ॥ २२-२३ ॥

महाभ्रवटिका।

त्रिःसप्तकृत्वः सम्भाव्य भृङ्गराजाम्भसाभ्रकम्। तेन गन्धं रसं लौहं हेम चाभ्रार्द्ध-सम्मितम् ॥ २४ ॥ वराक्वाथेन संमर्द्य वटिकां रक्तिकोन्मिताम्। औपसर्गिकमेहस्य नाशाय दापयेद्भिषक् ॥ २५ ॥

भाँगरे के रस में इक्कीस बार भावित अभ्रकभस्म और इससे अर्धभाग गन्धक, पारा, लोहभस्म और स्वर्णभस्म लेकर सबको एकत्र कर त्रिफला के क्वाथ के साथ घोट कर एक-एक रत्ती की गोली बनावे। वैद्य औपसर्गिक प्रमेह के नाश के लिये एक-एक गोली दे ॥ २४-२५ ॥

कन्दर्परस।

रसं गन्धं प्रवालं च काञ्चनं गिरिमृत्तिका। वैक्रान्तं रजतं शङ्खं मौक्तिकं च समं समम् ॥ २६ ॥ न्यग्रोधस्य कषायेण भावयित्वा च सप्तधा। वल्लोन्मानां वटीं कृत्वा त्रिफलाक्वाथवारिणा ॥ २७ ॥ सुरभियस्याजुर्नस्य क्वाथेनाभाम्भसापि वा। औपसर्गिकमेहस्य शान्त्यर्थं विनियोजयेत् ॥ २८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामौपसर्गिकमेहाधिकारः समाप्तः।

पारा, गन्धक, प्रवाल, स्वर्णभस्म, गेरू, हीरकभस्म, रजतभस्म, शङ्खभस्म और मौक्तिक भस्म ये सब बराबर-बराबर लेकर एकत्र कर बरगद की छाल के क्वाथ के साथ सात बार भावित कर तीन-तीन रत्ती की गोली बनावे। त्रिफला के क्वाथ के साथ अथवा कबाबचीनी और अर्जुन की छाल के क्वाथ के साथ औपसर्गिक प्रमेह के शान्त्यर्थ इसका प्रयोग करे ॥ २६-२८ ॥

इति श्रीमत्पूज्यपादाम्बिकादत्तशास्त्रिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्याः रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायामौपसर्गिकमेहाधिकारः समाप्तः।

अथ शुक्रमेहाधिकारः

शुक्रमेह का निदान।

योऽनाभावनविधिना कुरुते रेतसो व्ययम्। शुक्रमेहाभिधस्तस्य गदो भवति दारुणः ॥ १ ॥
अविधिना अतिसङ्गमेन करकर्म्मणा वा।

जो मूर्ख व्यक्ति (अपनी इन्द्रियों को वश में न रख के) हानिकारक अनुचित मार्ग (अति मैथुन, हस्तमैथुन आदि) से वीर्य नष्ट करता है उसके अत्यन्त कष्टकारक वीर्यमेह रोग हो जाता है ॥ १ ॥

शुक्रमेह लक्षण।

मलमूत्रातिवेगेन तथा कामस्य वेगतः। स्त्रीस्पर्शाद्दृष्टिस्मरणादपि रेतः पतेत्तथा ॥ २ ॥ निद्रायां रमणीसङ्गानुभावात् संपतेदपि। रोगेऽतिप्रबले शिश्ने शिथिलेऽपि च तत्पतेत् ॥ ३ ॥ तन्द्रावेशेऽथ शयने तत्पतेदत एव च। न शक्नुयात्स्त्रियं नारीं सन्तोषयितुमण्वपि ॥ ४ ॥ ततो यायात्तारुण्यहीनो ध्वजभङ्गाख्यमामयम्। वृथा जीवति स क्लीबो मरणस्तस्य जीवनम् ॥ ५ ॥ अग्निमान्द्यं कोष्ठरोधः शिरसः परिघूर्णनम्। अजीर्णमतिसारश्च हृद्दौर्बल्यं तथा ॥ नेत्रान्ते नीलिमा शुक्रमेहस्योपद्रवा इमे ॥ ६ ॥

मलमूत्र के अधिक वेग से तथा काम वेग से स्त्री के स्मरण, दर्शन और स्पर्श से वीर्यपतन हो जाता है या निद्रा में (सोते समय) स्त्री सम्भोग का अनुभव होकर भी वीर्यपात हो जाता है। रोग की अति प्रबलता से शिश्नेन्द्रिय शिथिल हो जाती है। किंचित् उत्तेजना होकर फिर गिर जाती है। तन्द्रा में, और [illegible] (बिना स्वप्न के) भी वीर्यपात हो जाता

है। वह रोगी सम्भोग में स्त्री को सन्तोष नहीं कर सकता। उस भाग्यहीन व्यक्ति को ध्वज भङ्ग (नपुंसकता) नामक रोग हो जाता है। वह व्यक्ति व्यर्थ जीता है। उसकी मृत्यु ही उसका जीवन है मन्दाग्नि, मलावरोध, शिर में शूल (चक्कर आना), अजीर्ण, अतिसार, दृष्टि की दुर्बलता, नेत्रों के नीचे नीली झाई पड़ जाना शुक्रमेह के उपद्रव हैं ॥ २-६ ॥

त्रिवारं वा चतुर्वारं दिवारात्रौ पतेत्क्वचित् । एवं रूढगदो मूढः ध्वजशैथिल्यमेति च ॥ ७ ॥

कहीं कहीं दिन और रात में तीन अथवा चार बार भी वीर्यपात होते देखा गया है। इस प्रकार रोग के अधिक बढ़ जाने से अन्त में इन्द्रियों में शिथिलता हो जाती है ॥ ७ ॥

न शक्नुयान्मर्दयितुं कदाचिन्मदं स्मरस्मेरविलासिनीनाम् । पतद्ध्वजस्तीव्रविषादयुक्तः कदाचिदिच्छेन्मरणं विरक्तः ८

शुक्रमेह रोग के बढ़ जाने पर पुरुष मैथुन करने में असमर्थ हो जाता है अर्थात् उसका वीर्य मैथुन से पहिले ही निकल पड़ता है। जिससे रोगी अत्यन्त दुःखी रहने लगता है, यहाँ तक कि उदासीन होकर आत्महत्या का विचार भी कर लेता है ॥ ८ ॥

शुक्रमेह के उपद्रव।

ध्वजभङ्गः प्रतिश्यायस्त्रिकदेशे च वेदना। विषण्णतागदोद्वेगः कासो यक्ष्मारतिस्तथा ॥ ९ ॥ कोष्ठावरोधः शिरसश्च घूर्णनं वह्नेर्विनाशस्त्वतिसार एव । ह्रासश्च दृष्टेर्ननु नीलिमा दृशोरजीर्णमेते प्रभवन्त्युपद्रवाः ॥ १० ॥

ध्वजभङ्ग (शिश्नेन्द्रिय का खड़ा न होना), जुकाम, त्रिकदेश (कमर) में दर्द, विषण्णता (सदा दुखी अथवा ग्लानियुक्त रहना), गदोद्वेग नामक मिथ्या काल्पनिक व्याधि, खाँसी, राजयक्ष्मा तथा अरति (किसी भी कार्य करने में रुचि न होना), मलबद्धता (कब्ज), सिर का घूमना, मन्दाग्नि, अतिसार, दृष्टि-शक्ति का कम होना, आँखों का नीलापन तथा अजीर्ण आदि उपद्रव हो जाते हैं ॥ ९-१० ॥

शुक्रमेह प्रथमतः क्रिया संशोधनी हिता। रेतसो रक्षणं तत्र कार्यं चातिप्रयत्नतः ॥ ११ ॥

शुक्रमेह में संशोधन क्रिया हितकर होती है। उसमें वीर्य की रक्षा का विशेष प्रयत्न करना चाहिए ॥ ११ ॥

अन्नपानौषधैः सर्वैर्धातुपुष्टिकरैर्भृशम् । रेतसो रक्षणं तत्र कार्यश्चातिप्रयत्नतः ॥१२॥

इस रोग में वीर्य आदि को पुष्ट करनेवाले अन्नपान एवं औषध आदि द्वारा अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक वीर्य की रक्षा करनी चाहिये ॥ १२ ॥

प्रायशः शयने तेषां च्युतिः शुक्रस्य जायते । ब्राह्मो मुहूर्त्ते उत्थानं तेषामावश्यकं मतम् ॥ १३ ॥

जिन्हें प्रायः सोते हुए बिस्तर पर ही वीर्यपात हो जाता है उनके लिये ब्राह्ममुहूर्त में उठना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि इस समय निद्रा का स्वाभाविक वेग समाप्त हो जाता है और तन्द्रायस्त होता है। इस समय स्वप्न अधिक आते हैं और इसी समय मूत्राशय और पक्वाशय भी भरे होते हैं जिससे वीर्यपात होने की सम्भावना रहती है और देखा भी गया है प्रायः इसी समय ही रोगियों का वीर्य पतन भी होता है। अतः इस समय आलस्य को त्यागकर जागना और नित्यकर्म में लग जाना चाहिए ॥ १३ ॥

चन्दनादि कषाय।

चन्दनं त्रिफलां देवदारु कुष्ठं कशेरुका । शैवालमर्जुनं दूर्वा निशेऽगुरु चला तथा ॥ क्वाथमेषां पिबेच्छुक्रमेहे शर्करया युतम् ॥ १४ ॥

लाल चन्दन, त्रिफला, देवदार, कूठ, कसेरू,

शैवाल, अर्जुन की छाल, दूब, हल्दी, दारुहल्दी, अगर और खरैटी की जड़ मिलाकर २ तोले, क्वाथ के लिए जल ३२ तोले, बचा हुआ क्वाथ ४ तोले। इस क्वाथ में खाँड डालकर शुक्रमेह में पिलाना चाहिए॥ १४॥

दूर्वा च मूर्वा कुशकाशमूलं दन्ती समङ्गा सहशाल्मली च। शुक्रप्रमेहे क्वथितं जलेन पानं हितं वा रुधिरप्रमेहे॥ १५॥

दूब, मूर्वामूल, कुश की जड़, काश की जड़, दन्तीमूल, मजीठ, सेमल की जड़, इनके ४ तोले क्वाथ को शुक्रमेह तथा रक्तमेह रोग में पीने से रोगी अच्छा हो जाता है॥ १५॥

शाल्मल्याः स्वरसो ज्ञेयः शुक्रमेहनिषूदनः। शुक्रमेहहरो दृष्टः क्षौद्रेणामलकीरसः॥ १६॥

सेमल की जड़ का रस १-२ तो० शुक्रमेह को हरता है। आँवले के रस में १-२तो०शहद मिलाकर सेवन करने से भी शुक्रमेह नष्ट हो जाता है॥ १६॥

स्वप्ने शुक्रच्युतिर्नस्याद्यदि चाद्यात् सुरभियाम्। सकर्पूराहिफेनस्य सेवनञ्च तदर्थकृत्॥ १७॥

यदि शीतलचीनी के चूर्ण को सेवन किया जाय तो स्वप्न में शुक्रच्युति नहीं होता। मात्रा—१ माशा। अफीम और कपूर को मिलाकर उचित मात्रा में सेवन करने से भी रात्रिमेह नष्ट होता है। मात्रा–१ रत्ती॥ १७॥

त्रिफला दारु दार्व्यब्दं पार्थत्वग्रक्तचन्दनम्। त्रिफला मुस्तकं दारुकुष्ठागुरुकशेरुकम्॥ १८॥ ताम्बूलामयशैवालं श्लोकपादसमापनाः। कषायाः शमयन्त्याशु शुक्रमेहं न संशयः॥ १९॥

त्रिफला, देवदारु, दारुहल्दी, नागरमोथा, अर्जुन की छाल और लाल चन्दन। त्रिफला, नागरमोथा, देवदारु, कूट, काली अगर और कसेरु। पान, बायबिडंग और सेवार। इन तीनों क्वाथों में से कोई क्वाथ ४ तोले पीना चाहिए। ये सब क्वाथ शुक्रमेह को तत्काल शान्त करते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं॥ १८–१९॥

कामधेनु रस।

सिन्दूरमभ्रं नागं च कर्पूरं हेममाक्षिकम्। खर्परं रजतं चापि मर्दयेत्कमलाम्भसा॥ २०॥ ततो गुञ्जामिताः कृत्वा वटीश्छायामशोषिताः। एकैकां दापयेदासां कसेरुस्वरसेन च॥ २१॥ प्रमेहान् विंशतिं हन्ति शुक्रमेहं विशेषतः। ज्वरं जीर्णं च यक्ष्माणं कामधेन्वभिधो रसः॥ २२॥

रससिन्दूर, अभ्रक, नागभस्म, कपूर, स्वर्णमाक्षिक, खपरिया और चाँदी की भस्म एकत्र कर कमल के पुष्प के रस की भावना देकर मर्दन करे। पश्चात् एक एक रत्ती की गोली बनाकर छाया में शुष्क करके इनमें से एक-एक गोली कसेरू के स्वरस के साथ दे। यह बीस प्रकार के प्रमेह, विशेषकर शुक्रमेह, जीर्णज्वर और राजयक्ष्मा को नष्ट करता है। इसका नाम 'कामधेनुरस' है॥ २०–२२॥

शिलाजत्वादिवटी।

शिलाजत्वभ्रहेमानि लौहगुग्गुलुटङ्कणम्। केशराजस्य तोयेन मर्दयेद्दिवसद्वयम्॥ २३॥ वल्लमानां वटीं कृत्वा शैवालसलिलेन च। पीतः प्रातः प्रयुञ्जीत शुक्रमेहनिवृत्तये॥ २४॥

शिलाजीत, अभ्रकभस्म, स्वर्णभस्म, लोहभस्म, गुग्गुल और सोहागा को एकत्र कर भाँगरे के स्वरस के साथ दो दिन तक घोटकर तीन-तीन रत्ती की गोली बनावे। उसको सेवार के जल के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल

सेवन करे तो शुक्रमेह रोग निवृत्त हो जाता है। मात्रा ३ रत्ती ॥ २३–२४ ॥

चन्दनादिचूर्ण।

चन्दनं शाल्मलीपुष्पं त्रिजातं रजनीद्वयम्। अनन्तां शारिवां मुस्तमुशीरं यष्टिकामले ॥ २५ ॥ स्वर्णपत्रीं शुभा भार्गी देवादारु हरीतकीम्। सर्वं द्विगुणितं लौहं चैकत्र परिमर्दयेत् ॥ २६ ॥ प्रमेहा विंशतिः श्वासः कासो जीर्णज्वरस्तथा। प्राशनादस्य नश्यन्ति दुर्नामानि च कामला ॥ २७ ॥

चन्दनमत्र श्वेतम्।

चन्दन, सेमर के फूल, त्रिजात (दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात), हलदी, दारुहल्दी, अनन्तमूल, शारिवा, नागरमोथा, खस, मुलेठी, आँवला, सनाय, वंशलोचन, भारंगी, देवदारु और हड़ ये समभाग ले तथा इन सबका द्विगुण लोहभस्म मिश्रित कर मर्दन करे। बीस प्रकार के प्रमेह, श्वास, कास, जीर्णज्वर, अर्श और कामला रोग इस चूर्ण के सेवन से विनष्ट होते हैं। मात्रा-१॥ रत्ती ॥ २५–२७ ॥

इसमें चन्दन श्वेत लेना चाहिए।

माक्षिकादिचूर्ण।

माक्षिकं पारदं गन्धं खर्परं गिरिमृत्तिकाम्। शिलाजत्वभ्रलोहानि शाल्मल्याः कुसुमं त्वचम् ॥ २८ ॥ विदारीं गोक्षुरं बीजं चैकत्र परिमर्दयेत्। माषमात्रं प्रयुञ्जीत शुक्रमेहनिवृत्तये ॥ २९ ॥

सोनामाखी, पारा, गन्धक, खपरिया, गेरू शिलाजीत, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, सेमर के फूल, दालचीनी, विदारीकंद और गोखरू के बीज को एकत्र कर घोट ले। शुक्रमेह की निवृत्ति के लिये एक-एक माशा सेवन करे ॥ २८–२९ ॥

शाल्मलीघृत।

शाल्मलीद्रवसंयुक्तं सर्पिश्छागीपयोऽन्वितम्। अश्वगन्धां वरीं रास्नां मुशलीं विश्वभेषजम् ॥ ३० ॥ अनन्तां मधुकं द्राक्षां दत्त्वा च पलमानतः। पचेन्मन्दाग्निना वैद्यः पात्रे मृत्परिनिर्मिते ॥ ३१ ॥ प्रमेहान्निखिलान् हन्ति शुक्रमेहं विशेषतः। क्लैब्यं धातुक्षयं शोषं कासं चैतद्वरं घृतम् ॥ ३२ ॥

सेमर की छाल का रस १२८ तोले और बकरी का दूध १२८ तोले, घृत १२८ तोले। असगन्ध, शतावरि, रास्ना, मुसली, सोंठ, अनन्तमूल, मुलेठी और मुनक्का का कल्क चार-चार तोले मिलाकर वैद्य धीमी आँच से मिट्टी के पात्र में पकावे। यह श्रेष्ठ घृत सब प्रकार के प्रमेह, विशेषकर शुक्रमेह, क्लीबता धातुक्षीणता शोष और कास को नष्ट करता है ॥ मात्रा ६ माशा या १ तोला ॥ ॥३०–३२ ॥

चन्दनासव।

चन्दनं बालकं मुस्तं गम्भारीं नीलमुत्पलम्। प्रियङ्गुं पद्मकं लोध्रं मञ्जिष्ठां रक्तचन्दनम् ॥ ३३ ॥ पाठां किराततिक्तं च न्यग्रोधं पिप्पलं शटीम्। पर्पटं मधुकं रास्नां पटोलं काञ्चनारकम् ॥ ३४ ॥ आम्रत्वचं मोचरसं प्रत्येकं पलमात्रकम्। धातकीं षोडशपलां द्राक्षायाः पलविंशतिम् ॥ ३५ ॥ जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा शर्करायास्तुलां तथा। गुडस्यार्द्धं तुलां चापि मासं भाण्डे निधापयेत् ॥ ३६ ॥ चन्दनासव इत्येष शुक्रमेहविनाशनः। बलपुष्टिकरो हृद्यो वह्निसन्दीपनः परः ॥ ३७ ॥

सफेद चन्दन, सुगन्धबाला, नागरमोथा, खम्भारि, नीलकमल, प्रियंगु फूल, पद्माख, लोध, मजीठ, लालचन्दन, पाढ़ी, चिरायता,

बरगद, पीपल, कचूर, पित्तपापड़ा, मुलेठी, रास्ना, परवल की पत्ती, कचनार की छाल, आम की छाल और मोचरस। ये सब चार-चार तोले, धाय के फूल ६४ तोले और मुनक्का ८० तोले। इनको २१ सेर १६ तोले जल में डाले तथा उसी में २ सेर शक्कर और २½ सेर गुड़ डालकर मृत्पात्र में एक मास तक बन्द रक्खे। इसका नाम 'चन्द्रनासव' है। यह शुक्रमेह का नाशक, बलवर्धक, पौष्टिक, हृदय के लिए हितकारक तथा परम अग्निसन्दीपन है। मात्रा—२ तोला ॥ ३३-३७ ॥

शुक्रमेह में अपथ्य ।

अभिष्यन्द्यतितीक्ष्णं च पानान्नं वह्निसूर्ययोः । सन्तापं स्त्रीप्रसक्तिं च वेगरोधं प्रजागरम् ॥ ३८ ॥ क्रोधं शोकं दिवानिद्रां लङ्घनं चातिचिन्तिनम् । अत्यालस्यमसत्सङ्गं शुक्रमेहे विवर्जयेत् ॥ ३९ ॥

शुक्रमेह में कफजनक और अतितीक्ष्ण अन्नपान, अग्नि और सूर्य की गरमी, स्त्रीप्रसंग, मल-मूत्रादि के वेग का अवरोध, रात्रि-जागरण, क्रोध, शोक, दिन में शयन, उपवास, अधिक चिन्ता, आलस्य और दुर्जन-संसर्ग परित्याज्य हैं ॥ ३८-३९ ॥

शुक्रमेह में पथ्य ।

सुपाच्यं शुक्रकृच्चान्नं सत्संसक्तिश्च सत्कथा । शान्तिग्रन्थस्याध्ययनं हितान्यत्रेशचिन्तनम् ॥ ४० ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शुक्रमेहाधिकारः समाप्तः ।

इस रोग में सुपाच्य और शुक्रवर्धक आहार, सत्पुरुषों का संसर्ग, सत्कथा, शान्तिप्रद ग्रन्थों का अध्ययन और ईश्वरोपासना में समय यापन हितकारक होते हैं ॥ ४० ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां शुक्रमेहाधिकारः समाप्तः ।

अथ लसीकामेहाधिकारः ।

लसीका मेह का निदान और लक्षण ।

मधुराणां फलानाञ्च मूलानाञ्च गुडोद्भवम् । द्रव्याणाञ्चातियोगाच्च तथैवातिपरिश्रमात् ॥ १ ॥ मानसश्रमशीलानां वर्ज्जयित्वा तु कायिकम् । गुरुपर्य्युषितक्लिन्नाभिष्यन्दिद्रव्यभोजनात् ॥ २ ॥ आनूपमत्स्यमांसादिभोजनादतिभोजनात् । एभिर्निदानैः संदुष्टो यकृत्पक्वाशयस्तथा ॥ ३ ॥ वृक्कयोर्मूत्रकोषे च जनयित्वाक्षतं ततम् । मूत्रमार्गेण तरलं पूयरक्तादिसन्निभम् ॥ ४ ॥ समेदस्कं सलसिकं नराणां स्रावयेन्मुहुः । लालक्तकपयस्तुल्यं मूत्रं सम्यक् प्रवर्त्तयेत् ॥ ५ ॥ कदाचिज्जायते मूत्रं पूयरक्तादिभिर्घनम् । स्थूलं सूत्रनिभं तस्मादधिका जायते व्यथा ॥ ६ ॥ दोषदूष्यादिभेदेन मूत्रस्य ह्रासवर्द्धने । तथा वर्णविभेदश्च जायते मोहनः सदा ॥ ७ ॥

मीठे फल, मूल और गुड़ से बने पदार्थों के अतिसेवन से, अधिक परिश्रम से, मानसिक श्रम करनेवाले किन्तु शारीरिक श्रम न करनेवाले व्यक्तियों के यह लसीका मेह होता है। भारी बासी, क्लिन्न (गीला, मड़ा सा), अभिष्यन्दी द्रव्यों के सेवन से, आनूप देश के मांस और मछली आदि के अतिभोजन से यकृत् और पक्वाशय दूषित हो जाते हैं जिससे वृक्क और मूत्राशय में क्षत हो जाते हैं और मूत्रमार्ग से पूय, रक्त, मेदा, लसीका आदि मिला हुआ पेशाब बार-बार आता है। मूत्र का रंग लाख के जल जैसा भी होता है। कभी कभी पेशाब, पीब और रक्त गाढ़े भी आते हैं। कभी सूत-जैसे मोटे तन्तु भी आते हैं। कभी इस प्रकार के प्रमेहरोगी के दोष दूष्य आदि

के भेद से पेशाब की मात्रा घटती-बढ़ती रहती है। इसी प्रकार रंग में भी भेद होता है ॥ १-७ ॥

वातिकलसीका मेह के लक्षण।

वातजो लसिकामेहो चाम्लगन्धि सशोणितम् । आभिन्नाजलवन्मूत्रं मुहुर्मूत्रयते नरम् ॥ विश्लिष्टाः सन्धयस्तस्मिन् मलं सम्यक् न निःसरेत् ॥ ८ ॥

वातजन्य लसीका मेह में मूत्र में खटास (खटाई के द्रव्यों की सी) और रुधिर की सी गन्ध आती है और जल की तरह बारबार पेशाब आता है। उसकी सन्धियाँ जकड़ी सी ढिहली सी रहती हैं एवम् दस्त साफ नहीं होता ॥ ८ ॥

पैत्तिक के लक्षण।

घनं सपूयं मूत्रञ्च पैत्तिकेऽधिकपूतिमत् । जायते चास्य वैरस्यं सन्तापः करपादयोः ॥ ९ ॥

पैत्तिक लसीका मेह में गाढ़ा पूययुक्त अधिक दुर्गन्धित मूत्र आता है। मुख का स्वाद बिगड़ जाता है और हाथ पैरों में दाह होता है ॥ ९ ॥

श्लैष्मिक के लक्षण।

श्लैष्मिके लसिकामेहे मूत्रं शुक्लं तथाविलम् । तथा पर्य्युषिते तस्मिन्नुपर्य्यच्छमधोघनम् । क्षुन्नाशो वङ्क्षणकटिव्यथा सम्यक् प्रजायते ॥ १० ॥

कफजन्य लसीका मेह में मूत्र में थोड़ा वीर्य मिला होता है। बासी मूत्र में नीचे कुछ जम जाता है और ऊपर स्वच्छ मूत्र रहता है। भूख कम हो जाती है और कमर-अण्डकोष आदि स्थानों में दर्द होता रहता है ॥ १० ॥

दो तीन दोषों के लक्षण।

द्वित्रिदोषभवे मेहे मिश्रं लक्षणमीक्ष्यते ॥ ११ ॥

दो या तीन दोषजन्य लसीका मेह में प्रमेह के मिश्रित लक्षण होते हैं ॥ ११ ॥

साध्यासाध्य विचार।

सुसाध्योऽसौ भवेद् यूनामल्पकालभवो गदः । नोचेदसाध्यो दुःसाध्यो भवेदेव न संशयः ॥ १२ ॥ कदाचित् प्रबलीभूय प्रशाम्येत् पथ्यसेवनात् । ततः पुनर्वर्द्धमानः कालात् कालवशं नयेत् ॥ १३ ॥

जवान रोगी के थोड़े दिन का उत्पन्न लसीका मेह साध्य है, अन्यथा दुःसाध्य (कठिनता से आराम होनेवाला) और असाध्य ही है। कभी कभी प्रबल होकर भी पथ्यसेवन से शान्त हो जाता है और बाद में फिर बढ़कर प्राण ले लेता है ॥ १२-१३ ॥

लसीकामेह की चिकित्सा।

तिन्दुकादि।

तिन्दुबिल्वं विडङ्गञ्च व्याघ्री धात्री च जाम्बली । बब्बूलं लोहितञ्चैव खदिरं रक्तचन्दनम् ॥ १४ ॥ एषां क्वाथो हरेन्मेहान् लसिकाख्यं सुदारुणम् । तथा माञ्जिष्ठमेहादि नानोपद्रवसंयुतम् ॥ १५ ॥

तेन्दू, बेल, बायबिडङ्ग छोटी कटेरी आँवला, मालदमन, बबूल, रोहेड़ा, खैर और लाल चन्दन, इन सबका ४ तोला क्वाथ कष्टदायक लसीकामेह और अनेक उपद्रवयुक्त मञ्जिष्ठामेह को नष्ट करता है ॥ १४-१५ ॥

चन्दनादि चूर्ण।

रक्ताङ्गबब्बूलरसः प्रियङ्गु जम्ब्वाम्रबीजेन्द्रयवं यमानी । वन्या च सा मोचरसो गुडूची लौहस्य भस्म सममेव सर्व्वम् ॥ १६ ॥ मात्रैकमाषप्रमिता निषेव्या मोक्तं महेशेन च चन्दनादि । चूर्णं प्रमेहान् सकलांश्च तूर्णं सपूय-

रक्तं लसिकाख्यमेहम् । सोपद्रवं हन्ति तथाग्निमान्द्यं तृष्णाज्वरारोचकरोगसंघान् ॥ १७ ॥

केसर, बबूल, बोल प्रियंगु जामुन और आम की गुठली की मींगी, इन्द्रजौ, अजवाइन, असगन्ध, मोचरस, गिलोय और लौहभस्म सबको समान भाग लेकर चूर्ण कर ले। इस चूर्ण को १ माशा की मात्रा में सेवन कराने से सब प्रकार के प्रमेह, पूय और रक्तयुक्त लसीकामेह, मन्दाग्नि, ज्वर, अरुचि आदि अनेक उपद्रवयुक्त प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १६-१७ ॥

सोमनाथ रसो हेमनाथो वङ्गेश्वरस्तथा। चन्द्रप्रभाख्या गुटिका तथैव चन्दनासवः ॥ १८ ॥ तैलं पल्लवसाराख्यं श्रीगोपालाभिधं तथा । युञ्जयात् युक्त्यनुसारेण व्याधौ चास्मिन् प्रयत्नतः ॥ १९ ॥

सोमनाथरस, हेमनाथरस, वङ्गेश्वररस, चन्द्रप्रभावटी श्रीगोपाल तेल सबको युक्ति के अनुसार प्रयुक्त करना चाहिये। इससे लसीकामेह में लाभ होता है ॥ १८-१९ ॥

पथ्य।

रक्तशाल्योदनं मुद्गं यवा वास्तूकमेव च। पालंकी चैव वेत्राग्रं कर्कोटी कदली तथा ॥ २० ॥ हिमालयप्रदेशे च वासो या सुस्थचित्तता । हितानेतान् निषेवेत गुर्वभिष्यन्दिभोजनम् ॥ २१ ॥ मत्स्यं मांसं तथा रौद्रसेवाध्वा परिश्रमम् । वर्जयेत् यत्नतो धीमान् आयुरारोग्यवृद्धये ॥ २२ ॥

इति श्रीभैषज्यरत्नावल्यां लसीकामेहाधिकारः समाप्तः।

लालशाली चावल का भात, मूँग, जौ, बथुआ, पालक, बेत की कोंपल, ककोड़ा, केला, हिमालय की तराई में निवास, चित्त की शान्ति यह सब लसीकामेह के रोगी के लिये पथ्य हैं। भारी, अभिष्यन्दी भोजन, मछली, मांस, क्रोध, धूप, परिश्रम,मैथुन और मार्ग चलना यह सब यत्नपूर्वक छोड़ देना चाहिए; क्योंकि ये अपथ्य हैं ॥२०-२२ ॥

इति श्रीभैषज्यरत्नावल्या भाषाटीकायां लसीकामेहाधिकारः समाप्तः।

अथ प्रमेहपिडिकाधिकारः

प्रमेहपिडिकायां तु हितं शोधनमुच्यते । सर्पिस्तैलं च कुष्ठघ्नं विविच्यात्र च योजयेत् ॥ १ ॥

प्रमेहपिडिका में शोधन औषध हितकारक होती है। कुष्ठनाशक घृत और तैल का भी विचार कर इसमें प्रयोग करे ॥ १॥

अनन्तां शारिवां द्राक्षां त्रिवृतां स्वर्णपत्रिकाम् । कटुकीं हरीतकीं वासां पिचुमर्दनिशायुगम् ॥ २ ॥ बीजं गोक्षुरजं चापि क्वाथयित्वा जलं पिबेत् । नाशं यान्ति प्रमेहोत्था अनेन पिडिका ध्रुवम् ॥ ३ ॥

अनन्तमूल, शारिवा, मुनक्का, निशोथ, सनाय, कुटकी, हड़ अडूसे की जड़ की छाल, नीम की छाल, हल्दी, दारुहल्दी और गोखरू के बीज के क्वाथ का पान करे । इससे प्रमेहपिडिकाएँ अवश्य नष्ट हो जाती हैं ॥ २-३ ॥

मुद्गपर्णी माषपर्णी त्रिवृदारग्वधः शटी। वृद्धदारकबीजं च नीलिन्येला हरीतकी ॥ ४ ॥ श्यामानन्ता देवपुष्पमित्येषां साधुसाधितः । क्वाथो हन्यात् प्रमेहोत्थाः पिडिकाः क्षिप्रमेव हि ॥ ५ ॥

मुद्गपर्णी, माषपर्णी, निशोथ, अमलतास, कचूर, विधारा के बीज, नील, इलायची, हड़, श्यामालता, अनन्तमूल और लौंग का उत्तम

रीति से सिद्ध किया हुआ ४ तोला क्वाथ प्रमेहजन्य पिडिकाओं को शीघ्र ही नष्ट करता है ॥ ४-५ ॥

मकरध्वज रस।

सिन्दूरं हेमलौहं च देवपुष्पं सचन्द्रकम्। जातीफलं मृगमदं चैकत्र परिमर्दयेत् ॥ ६ ॥ पर्णाम्भसा ततः कुर्याद्वटिकां वल्लसम्मिताम् । सेवितश्छागपयसा प्रमेहांस्तत्कृतान् गदान् ॥ ७ ॥ क्लैब्यं धातुक्षयं कासं जीर्णं च विषमज्वरम् । रसोऽयं क्षपयेत्तूर्णं मकरध्वजसंज्ञकः ॥ ८ ॥

रससिन्दूर, स्वर्णभस्म, लोहभस्म, लौंग, कपूर, जायफल और कस्तूरी समभाग एकत्र कर पान के रस में घोटकर तीन-तीन रत्ती की गोली बनावे। बकरी के दूध के साथ सेवित होने पर यह रस सब प्रकार के प्रमेहों और तज्जन्य अन्यान्य रोगों को तथा क्लीवता, धातुक्षय, कास, जीर्णज्वर और विषमज्वर को शीघ्र नष्ट करता है। इसका नाम 'मकरध्वज रस' है। मात्रा २ रत्ती ॥६-८॥

शारिवादिलौह।

शारिवा नीलिनी रास्ना गुडूच्येला च चित्रकः। माणशूरणशङ्खिन्यस्त्रिवृद्भल्लातकाभयाः ॥ ९ ॥ एभिर्युक्तमयो हन्ति प्रमेहपिडिका दश । वातरक्तं षडर्शांसि त्वग्गदान् निखिलानपि ॥ १० ॥

शारिवा, नील की मूल, रास्ना, गुर्च, इलायची, चीता की जड़, मानकन्द, जमीकन्द, शङ्खपुष्पी, निशोथ, भिलावाँ और हड़, इनसे युक्त लोहभस्म दश प्रकार की प्रमेहपिडिका, वातरक्त, छः प्रकार के अर्श और सब प्रकार के चर्मरोग नष्ट करता है ॥ ९-१० ॥

बृहत्श्यामाघृत।

श्यामा वारा बला पद्मं विदारी नीलमुत्पलम्। अष्टवर्गं च मधुकमश्वगन्धा शतावरी ॥ ११ ॥ अजमोदा हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा चन्दनद्वयम्। द्राक्षा प्रसारणीमूलं सविश्वा कटुरोहिणी ॥ १२ ॥ एषां कर्षमितैर्भागैर्घृतमस्थं पचेद्भिषक्। श्यामाशतावरीचूर्णां विदार्याः स्वरसं तथा ॥ १३ ॥ छागीपयश्च तत्तुल्यं दत्त्वा मन्देन वह्निना। सिद्धमेतद् घृतं पात्रे स्थापयेदथ मृण्मये ॥ १४ ॥ प्रमेहांस्तत्कृतान् व्याधीन् क्लीवतां वातशोणितम्। शुक्रक्षयं रक्तपित्तं हृद्रोगं धातुशोषणम् ॥ १५ ॥ नाशयेन्नात्र सन्देहः श्यामाघृतमिदं बृहत्। बालानां पुष्टिजननं गर्भदोषहरं परम् ॥ १६ ॥

कल्क के लिये श्यामालता, त्रिफला, खरियारा, पदुमकाठ, विदारीकंद, नीलकमल, अष्टवर्ग (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, काकोली क्षीरकाकोली), मुलेठी, असगन्ध, शतावरि, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी, मजीठ, सफ़ेदचन्दन, रक्तचन्दन, मुनक्का, प्रसारणीमूल, सोंठ और कुटकी। घृत १२८ तोले श्यामालता, शतावरि, ईख और विदारीकंद प्रत्येक का १२८ तोले स्वरस तथा बकरी का दूध १२८ तोले मिलाकर धीमी आँच से घृत पकावे। इस प्रकार सिद्ध हुए इस घृत को मिट्टी के पात्र में रख दे। यह घृत सब प्रकार के प्रमेह, तज्जन्य अन्यान्य रोग, क्लीवता, वातरक्त, शुक्रक्षय, रक्तपित्त, हृद्रोग और धातुशोष को निःसंदेह नष्ट करता है। इसका नाम 'बृहत् श्यामाघृत' है। बालकों के शरीर को परिपुष्ट करने और गर्भ के दोषों को हरने के लिये यह उत्कृष्ट औषध है। मात्रा-६ मासे-१ तोला ॥ ११--१६ ॥

शारिवाद्यासव।

शारिवां मुस्तकं लोध्रं न्यग्रोधं पिप्पलं शटीम्। अनन्तां पद्मकं वालं पाठां धात्रीं-

गुडूचिकाम् ॥ १७ ॥ उशीरं चन्दनद्वन्द्वं यमानीं कटुरोहिणीम्। पत्रमेलाद्वयं कुष्ठं स्वर्णपत्रीं हरीतकीम् ॥ १८ ॥ एषां चतुष्पलान् भागान् सूक्ष्मचूर्णी कृतान् शुभान्। जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा दद्याद् गुडतुलात्रयम् ॥ १९ ॥ पलानि दशधातक्या द्राक्षां षष्टिपलां तथा। मासं संस्थापयेद्भाण्डे संवृते मृण्मये शुभे ॥ २० ॥ शारिवाद्यासवस्यास्य पानात् मेहाश्च विंशतिः। शराविकादयः सर्वाः पिडिकास्तत्कृताश्च याः ॥ २१ ॥ औपदंशिकरोगाश्च वातरक्तं भगन्दरम्। सर्व एते शमं यान्ति व्याधयो नात्र संशयः ॥ २२ ॥

शारिवालता, नागरमोथा, लोध, बरगद की छाल, पीपर की छाल, कचूर, अनन्तमूल, पदुमकाठ, सुगन्धबाला, पाढ़रि, आँवला, गुर्च, खस, सफ़ेदचन्दन, लालचन्दन, अजवाइन, कुटकी, तेजपात, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, कूट, सनाय और हड़ इनका सोलह-सोलह तोले सूक्ष्म उत्तम चूर्ण लेकर ५१ सेर १६ तोले पानी में डाले तथा उसमें १८ सेर गुड़, ४० तोले धाय के फूल और ३ सेर मुनक्का मिलाकर मिट्टी के पात्र में मुख बन्द करके एक मासपर्यन्त रक्खे। इसका नाम 'शारिवाद्यासव' है। इस आसव के सेवन से बीस प्रकार के प्रमेह तथा प्रमेहजन्य शराविका आदि पिडिकाएँ, औपदंशिक रोग, वातरक्त और भगन्दर ये सब रोग शान्त हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १७--२२ ॥

प्रमेहपिडिका में अपथ्य

पानमन्नमभिष्यन्दि रूक्षं तीक्ष्णं च दुर्जरम्। वेगरोधं व्यवायं च व्यायामं निशि जागरम् ॥ २३ ॥ सुरां सुतीक्ष्णां मत्स्यं च पलाण्डुं च रसोनकम्। त्यजेत् सूर्याग्निसन्तापं प्रमेहजगदातुरः ॥ २४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां प्रमेहपिडिकाधिकारः समाप्तः।

कफजनक, रूक्ष, तीक्ष्ण और गुरुपाक अन्न-पान, वेगरोध, मैथुन, व्यायाम, रात्रिजागरण, तीक्ष्ण, मदिरा, मछली, प्याज, लहसुन, सूर्य और अग्नि की गरमी, ये सब प्रमेहपिडिकारोग में परित्याज्य हैं। मात्रा ६ मासे–१ तोला ॥ २३-२४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां प्रमेहपिडिकाधिकारः समाप्तः

अथ ध्वजभङ्गाधिकारः

नपुंसक के लक्षण, संख्या और निदान।

क्लीवः स्यात् सुरताशक्तस्तद्भावः क्लैब्यमुच्यते। तच्च सप्तविधं प्रोक्तं निदानं तस्य कथ्यते ॥ १ ॥ तैस्तैर्भावैरहृद्यैस्तु रिरंसोर्मनसि क्षते। ध्वजः पतत्यधो नृणां क्लैब्यं समुपजायते ॥ २ ॥ द्वेष्यस्त्रीसम्प्रयोगाच्च क्लैब्यं तन्मानसं स्मृतम्। कटुकाम्लोष्णलवणैरतिमात्रोपसेवितैः ॥ ३ ॥ पित्ताच्छुक्रक्षयो दृष्टः क्लैब्यं तस्मात् प्रजायते। अतिव्यवायशीलो यो न च वाजीक्रियारतः ॥ ४ ॥ ध्वजभङ्गमवाप्नोति स शुक्रक्षयहेतुकम्। महता मेढ्ररोगेण चतुर्थी क्लीबता भवेत् ॥ ५ ॥ वीर्यवाहिशिराच्छेदात् मेहनानुन्नतिर्भवेत्। बलिनः क्षुब्धमनसो निरोधाद् ब्रह्मचर्यतः ॥ ६ ॥ षष्ठं क्लैब्यं स्मृतं तत्तु शुक्रस्तम्भनिमित्तजम् ॥ ७ ॥

बलिनः पुष्टस्य, क्षुब्धमनसः कामात् सञ्चलितमनसः, ब्रह्मचर्यममैथुनं तस्मात् निरोधात् शुक्रस्य क्लैब्यं भवति।

रति-शक्तिहीन पुरुष को क्लीब कहते हैं और रतिविषयक अशक्ति क्लीवता कही जाती है। वह क्लीवता सात प्रकार की कही गई है। उसका निदान कहते हैं।

भय, शोक आदि तथा अन्यान्य अहृद्य कारणों से रमणोत्सुक पुरुष का मन व्याहत हो जाने से मनुष्यों का शिश्न पतित हो जाता है, उससे नपुंसकता हो जाती है। द्वेषभाजन स्त्री के साथ सङ्गम करने से भी क्लीवता होती है। इसका नाम मानस (मनोविघातक) क्लीवता है।

कड़वे, खट्टे उष्ण और नमकीन पदार्थ के अधिक सेवन से पित्त की वृद्धि होती है, उससे शुक्र का क्षय होना देखा गया है। उस शुक्रक्षय से भी क्लीवता हो जाती है।

जो मनुष्य अधिक स्त्रीप्रसङ्ग करता है, परन्तु वाजीकरण औषधादि का सेवन नहीं करता, उसको शुक्रक्षयजन्य ध्वजभङ्ग रोग हो जाता है।

अति कठिन लिङ्गरोग से भी क्लीवता हो जाती है। यह चौथी है।

वीर्यवाहिनी शिरा के छिन्न हो जाने से क्लीवता होती है। तथा कामाविर्भाव के कारण सञ्चलितचित्त बलवान् पुरुष को मैथुन का प्रसङ्ग न होने से शुक्रस्तम्भजन्य क्लीवता हो जाती है। यह छठी क्लीवता है॥ १—७॥

जन्मप्रभृति यत् क्लैब्यं सहजं तद्धि सप्तमम्। असाध्यं सहजं क्लैब्यं मर्मच्छेदाच्च यद्भवेत्॥ ८॥

मर्मच्छेदाद् वीर्यवाहिशिराच्छेदात्

जन्म काल से जो क्लीवता होती है, उसको सहज क्लीवता कहते हैं। यह सातवीं क्लीवता है। सहज क्लीवता और वीर्यवाहिनी शिरा के छिन्न होने से जो क्लीवता होती है ये दोनों असाध्य होती हैं॥ ८॥

क्लैब्यचिकित्सा।

क्लैब्यानामिह साध्यानां कार्यो हेतुविपर्ययः। मुख्यं चिकित्सितं यस्मान्निदानपरिवर्जनम्॥ ९॥

जो-जो साध्य क्लीवताएँ हैं, उनमें निदान का विपर्यय करना चाहिए, अर्थात् जिस कारण से क्लीवता उत्पन्न हो, उससे विपरीत क्रिया करनी चाहिए, क्योंकि निदानपरिवर्तन मुख्य चिकित्सा मानी गई है॥ ९॥

अश्वगन्धाघृत।

अश्वगन्धापलशतं शुभदेशे समुत्थितम्। पुण्येऽहनि समुद्धृत्य साधयेत् श्लक्ष्णचूर्णितम्॥ १०॥ द्रोणेऽम्भसि पचेत्तावद्यावत् पादावशेषितम्। सर्पिःप्रस्थं पचेत्तेन गव्यं क्षीरं चतुर्गुणम्॥ ११॥ कषायं छागमांसस्य दद्यान्छतद्वयस्य च। कल्कानि श्लक्ष्णपिष्टानि कर्षमात्राणि योजयेत्॥ १२॥ काकोलीद्वयमृद्वीका द्वे मेदे चाथ जीवकम्। स्वयंगुप्ता ऋषभको वेला मधुकमेव च॥ १३॥ मृद्वीका मुद्गपर्ण्यौ च जीवन्ती चपला नला। नारायणी विदारी च वरुणा सम्यगिपाचयेत्॥ १४॥ सिता चतुष्पलं शीते क्षिपेन्मधु पलाष्टकम्। लीढ़ा कर्षं पयः शीतं शीतं चानुपिबेज्जलम्॥ १५॥ वृद्धबालक्षतक्षीणाः क्षीणमांसबलेन्द्रियाः। पुष्टिमोजोबलारोग्यं लभन्ते मानवाः॥ १६॥ भवेत् सप्ततिवर्षोऽपि युवेव स्त्रीसहस्रगः। वन्ध्यातीतरजाः स्त्री च लभते पुत्रमुत्तमम्॥ १७॥ एतन्निर्मितम्-

शिभ्यामश्वगंधाघृतं महत्। क्षीणे रेतसि कर्त्तव्या सर्वा शुक्रकरी क्रिया ॥१८॥

उत्तम स्थान में उत्पन्न हुई असगन्ध किसी पवित्र दिन में उखाड़कर ५ सेर ले। उसका सूक्ष्म चूर्ण करके २५ सेर ४८ तोले जल में पकावे। ६ सेर ३२ तोले जल अवशिष्ट रहने पर छानकर इस क्वाथ के साथ १२८ तोले घृत पकावे। इस क्वाथ के साथ पाक होने पर ६ सेर ३२ तोले गाय के दूध के साथ पाक करे। पश्चात् १० सेर बकरी के मांस को अष्ट-गुण जल में पकाकर उसके चतुर्थावशिष्ट क्वाथ के साथ पाक करे। कल्कार्थ द्रव्य—काकोली, क्षीरकाकोली, मुनक्का, मेदा, महामेदा, जीवक, केवाँच के बीज, ऋषभक, इलायची, मुलेठी, मुनक्का, मुद्गपर्णी, जीवन्ती, पीपरि, खरेंटी, शतावरि और विदारीकन्द। इन प्रत्येक एक-एक तोला ओषधियों के महीन पिसे हुए कल्क के साथ घृत सिद्ध कर उतार ले। शीतल हो जाने पर १६ तोला शक्कर और ३२ तोला मधु मिलाकर रख ले। शीतल दुग्ध के साथ एक-एक तोला यह घृत चाटकर पश्चात् शीतल जल पिये। वृद्ध, बालक, क्षतक्षीण, क्षीण-मांस, क्षीणबल और क्षीणेन्द्रिय मनुष्य इस घृत का प्राशन कर पुष्टि, तेज बल और आरोग्य को प्राप्त करते हैं। ७० वर्ष की अवस्था-वाला भी नवयुवक के समान हजार स्त्रियों के साथ प्रसङ्ग कर सकता है। वन्ध्या तथा अतीतप्रसवा स्त्री भी उत्तम पुत्र को पाती है। अश्विनीकुमारों ने इस महत् अश्वगन्धा घृत को बनाया था। वीर्य के क्षीण हो जाने पर समस्त शुक्रवर्धक क्रिया करनी चाहिए। मात्रा—६ माशा से १ तोला ॥ १०-१८ ॥

अमृतप्राश घृत।

छागमांसतुलां चैव वाजिगन्धां तथैव च। जलद्रोणे विपक्तव्यं कुर्यात्पादावशेषितम् ॥ १९ ॥ घृतप्रस्थं पचेत्तेन छागीक्षीरं चतुर्गुणम् ॥ मूर्च्छनार्थे प्रदातव्यं कुंकुमं च द्विकार्षिकम् ॥ २० ॥ बलामूलं च गोधूमं चाश्वगन्धा तथामृता। गोक्षुरं च कशेरुश्च त्रिकटु च सधन्यकम् ॥ २१ ॥ तालांकुरं त्रैफलं च कस्तूरी बीजवानरी। मेदे द्वे च तथा कुष्ठं जीवकर्षभकौ शटी ॥ २२ ॥ दार्वी प्रियंगुमंजिष्ठा नतं तालीशपत्रकम्। एलापत्रत्वचं नागं जातीकुसुमरेणुकम् ॥ २३ ॥ सरलं जातिकोषं च सूक्ष्मैलोत्पलसारिवा। मूलं बिम्बस्य जीवन्ती ऋद्धिवृद्धी उदुम्बरम् ॥ २४ ॥ प्रत्येकं कर्षमात्राणि पेषयित्वा विनिक्षिपेत्। वस्त्रपूते सुशीते च सितां दद्याच्छरावकम् ॥ २५ ॥ कर्षमात्रं ततः खादेदुष्णदुग्धानुपानतः। बृंहणीयं विशेषेण बलपुष्टिकरं सदा ॥ २६ ॥ प्रमेहान् ध्वजभङ्गांश्च नाशयेदविकल्पतः। एतद् वृष्यकरं सर्पिः काशिराजेन निर्मितम् ॥ २७ ॥ दृष्टं सिद्धफलं ह्येतद्वाजीकरणमुत्तमम्। अमृतप्राशनामेदं सर्वामयनिषूदनम् ॥ २८ ॥ शिरोरोगे नष्टशुक्रे स्त्रीषु नष्टार्त्तवासु च। न च शुक्रं क्षयं याति बलं ह्रासं न च व्रजेत् ॥ २९ ॥ दश स्त्रीणां रमेन्नित्यमानन्दमुपजायते। कासार्शआमशूलघ्नं पक्कोष्ठहरं परम् ॥ सिद्धघृतप्रयोगेण स्थिरं भवति यौवनम् ॥ ३० ॥

५ सेर बकरी का मांस और क्वाथ के लिए जल २५ सेर ४८ तोले, अवशिष्ट जल ६ सेर ३२ तोले, ५ सेर असगन्ध, क्वाथ के लिए जल २५ सेर ४८ तोले, अवशिष्ट जल ६ सेर ३२ तोले। इन क्वाथों के साथ १२८ तोले घृत को पकावे। क्वाथ के साथ पाक होने पर घृत के चौगुने (६ सेर ३२ तोले) दूध के साथ पकावे। मूर्च्छा के लिये दो तोले

केसर डालना चाहिए। एक-एक तोला बरियारे के फूल, गेहूँ, असगन्ध, गिलोय, गोखरू, कसेरू, त्रिकटु, धनिया, तालांकुर, त्रिफला कस्तूरी, केवाँच के बीज, मेदा, महामेदा, कूट, जीवक, ऋषभक, कचूर, दारुहल्दी, प्रियंगुफूल, मजीठ, तगर, तालीशपत्र, इलायची, तेजपात, दालचीनी, नागकेसर, जाविश्री, लौंग, रेणुका के बीज, सरलकाष्ठ, जायफल, छोटी इलायची, कमल, सारिवा, कुँदरू (कन्दुरी) का मूल, जीवन्ती, ऋद्धि, वृद्धि और गूलर पिसवा कर फरिकत कर डाल दे। घृत सिद्ध होने पर यत्न से छान ले। ठंडा होने पर इस घृत में १२ तोले शक्कर मिला दे। प्रतिदिन उष्ण दुग्ध के साथ एक-एक तोला खाय। यह विशेष कर वृंहण और सदा बलपुष्टिवर्धक है। यह सब प्रकार के प्रमेह आदि ध्वजभङ्ग रोगों को निःसंदेह नष्ट करता है। इस बल वीर्यवर्धक घृत को काशिराज ने बनाया था। यह घृत दृष्ट-सिद्धफल है। उत्तम वाजीकरण है। इसका नाम 'अमृतप्राश' है। सब रोगों को दूर करता है। शिरोरोग, नष्टशुक्र पुरुष और नष्टार्तवा स्त्री के लिये लाभदायक है। इसके सेवन से न वीर्य नष्ट होता है और न बल ही क्षीण होता है। प्रतिदिन दस स्त्री के साथ रमण करे, तो भी आनन्द प्राप्त होता है। कास, अर्श, आमशूल और कोष्ठबद्धता को हरने के लिए यह उत्कृष्ट औषध है। इस सिद्ध घृत के सेवन से यौवन स्थिर रहता है। मात्रा—६ माशा से १ तोला तक ॥ १६-३० ॥

श्रीमदनानन्दमोदक।

सूतो गन्धस्तथा लौहं त्रिसमं शुद्धमभ्रकम्। कर्पूरं सैन्धवं मांसी धात्र्येला च कटुत्रयम् ॥ ३१ ॥ जातीकोषफलं पत्रं लवङ्गं जीरकद्वयम्। यष्टी मधु वचा कुष्ठं हरिद्रा देवदारुकम् ॥ ३२ ॥ ऐज्जलं टङ्कनं भार्गी नागरं पुष्पकेशरम्। भृङ्गी तालीशपत्रं च द्राक्षाग्निदन्तिबीजकम् ॥ ३३ ॥ बला चातिबला चोचं धनिकेभकणा शटी। सजलं जलदं गन्धा विदारी च शतावरी ॥ ३४ ॥ अर्कं वानरिबीजं च गोक्षुरं वृद्धदारकम्। त्रैलोक्यविजयाबीजं समांशं पेषयेद्भिषक् ॥ ३५ ॥ शतावरीरसं दत्त्वा श्लक्ष्णचूर्णं समाचरेत्। शाल्मलीमूलचूर्णं तु चूर्णाङ्घ्रिसममाहरेत् ॥ ३६ ॥ चूर्णार्द्धं विजयाचूर्णं विशुद्धं तत्र दापयेत्। सर्वमेकत्र संयोज्य छागीक्षीरेण पेषयेत् ॥ ३७ ॥ मोदकार्थे सिता देया पाकयोग्या तथा मधु। नातिवाह्यं च धूमान्ते पाचयेन्मन्दवह्निना ॥ ३८ ॥ चातुर्जातं सकर्पूरं सैन्धवं सकटुत्रयम्। संचूर्ण्य च ततो देयं हव्यं किञ्चिन्निधापयेत् ॥ ३९ ॥ पाकं ज्ञात्वा कर्षमितं मोदकं परिकल्पयेत्। भूतनाथे सुरपतौ रतिनाथे तथैव च ॥ ४० ॥ हुतभुक्के गणपतौ मोदकाग्रं निवेदयेत्। मूलमन्त्रं समुच्चार्य हुताशने समर्पयेत् ४१ काञ्चने राजते काचे भृङ्गाण्डे वा निधापयेत्। प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा हरगौरीं प्रपूजयेत् ॥ ४२ ॥ कालानलभवं बीजं सतिलं घृतसंयुतम्। गव्यक्षीरं सितायुक्तमनुपेयं च पायसम् ॥ ४३ ॥ विलासार्थे प्रदोषे च मोदकं परिषेवयेत्। त्रिसप्ताहप्रयोगेण कामान्धो जायते नरः ॥ ४४ ॥ कामज्वरो भवेत्तावद्यावन्नारीं न गच्छति। स सहस्रं वरारोहा रमयत्यपि सोद्यमः ॥ ४५ ॥ न च लिङ्गस्य शैथिल्यं वेगवीर्यं विवर्द्धयेत्। प्रमदाप्राणगाहुल्यं मत्तवारणविक्रमः ॥ ४६ ॥ वामावश्यकरो रम्य

ऊर्ध्वरेता भवेन्नरः। कामतुल्यं भवेद्रूपं स्वरः परभृतोपमः ॥ ४७ ॥ खगतुल्या भवेद्दृष्टिर्वृद्धोऽपि तरुणायते। अष्टोत्तरं भजेद्यस्तु भवेत्तस्य सुधोपमम् ॥ ४८ ॥ वीर्यवृद्धिकरं श्रेष्ठं जरामृत्युविनाशनम्। अपस्मारज्वरोन्मादक्षयानिलगदापहम् ॥ ४९ ॥ कासं श्वासं सशोथं च भगन्दर-गुदामयम्। अग्निमान्द्यमतीसारं विविधं ग्रहणीगदम् ॥ ५० ॥ बहुमूत्रं प्रमेहं च शिरोरोगमरोचकम्। हन्ति सर्वान् गदान् घोरान् वातपित्तबलासजान् ॥ ५१ ॥ वन्ध्या च मृतवत्सा च नष्टपुष्पा च या भवेत्। बहुपुत्रा जीववत्सा भवेदस्य निषे-वणात् ॥ ५२ ॥ हरते सूतिकारोगं वृत्त-मिन्द्राशनिर्यथा। मोदकं मदनानन्दं सर्व-रोगे महौषधम्। कथितं देवदेवेनरावणस्य हितार्थिना ॥ ५३ ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म एक-एक तोला, अभ्रक भस्म ३ तोला। कपूर, सेंधानमक, जटामांसी, आँवला, इलायची, सोंठ, मिर्च, पीपर, जायफल, तेजपात, लौंग, सफेद जीरा, स्याह जीरा, मुलेठी वच, कूट, हल्दी, देवदारु, समुद्रफेन, सोहागा, भारंगी, सोंठ नागकेसर, काकड़ासिंगी, तालीशपत्र, मुनक्का, चीत, इन्द्र जौ, बला (बरियारा), अतिबला (कंघी), दालचीनी, धनिया, गजपीपरि, कचूर, सुगन्ध-बाला, नागरमोथा, असगन्ध, विदारीकन्द, शतावरि, मदार का मूल, केवाँच के बीज, गोखरू, विधारा और भाँग के बीज प्रत्येक एक-एक तोला, एकत्र कूट पीसकर चूर्ण करे। फिर शतावरि के रस में घोटकर बहुत महीन चूर्ण करे और सब चूर्ण का चौथाई भाग सेमर की जड़ का चूर्ण उसमें और मिलावे। तद-नन्तर चूर्ण का अर्ध भाग विशुद्ध भाँग का चूर्ण डालकर सबको एक में मिलाकर बकरी के दूध के साथ पीसे। पश्चात् मोदक बनाने के निमित्त पाक-योग्य (समष्टि चूर्ण से द्विगुण) शक्कर को बकरी के दूध में घोलकर मन्द अग्नि से चासनी करे। चासनी ठीक हो जाने पर उतार कर उसमें पूर्वोक्त चूर्ण को मिला दे। पश्चात् दालचीनी, इलायची, तेजपात, नाग-केसर, कपूर, सेंधानमक, सोंठ मिर्च और पीपरि तथा घृत और मधु उपयुक्त परिमाण में मिला दे। पाक ठीक हुआ जानकर एक-एक तोले का लड्डू बनावे। मोदक तैयार हो जाने पर भूतनाथ, इन्द्र, कामदेव और गणेशजी को भोग लगाकर, मूलमन्त्र का उच्चारण करके कुछ अग्नि में डाले। पश्चात् मोदकों को सोने, चाँदी, काँच या मिट्टी के पात्र में रख दे। प्रातःकाल पवित्र होकर शिव और पार्वती की पूजा करे। पूजनोत्तर एक-एक लड्डू खाकर स्याह जीरा, तिल, गोदुग्ध और घृतयुक्त पायस का पान करे। विलासार्थ प्रदोष काल में मोदक का सेवन करे। तीन सप्ताह के प्रयोग से मनुष्य कामान्ध हो जाता है। वह जब तक स्त्रीप्रसङ्ग नहीं करता, तब तक कामज्वर से पीड़ित रहता है। वह पुरुष हजार स्त्री के साथ रमण करने पर भी उत्साहित रहता है। लिङ्ग की शिथि-लता नहीं होती। स्फूर्ति और वीर्य को बढ़ाता है। रतिकाल में प्रमदा की अपेक्षा अधिक शक्ति होती है। मत्तहस्ती के समान पराक्रमी, स्त्री को वश करनेवाला, सुन्दर और ऊर्ध्व-रेता होता है। कामदेव के समान रूप, कोकिला के समान स्वर और गृद्ध के समान दृष्टि हो जाती है। वृद्ध भी तरुण के समान हो जाता है। एकसौ आठ वर्ष की उसकी आयु हो जाती है। यह मोदक अमृत के समान श्रेष्ठ है, वीर्य को बढ़ाता है। जरा और मृत्यु का नाशक है। अपस्मार, ज्वर, उन्माद, क्षय, शोथ, भगंदर, बवासीर, वातरोग, खाँसी, श्वास, अग्निमान्द्य, अतिसार, विविध प्रकार के ग्रहणीरोग, बहुमूत्र, प्रमेह, शिरोरोग और अरुचि को नष्ट करता है। यह अन्यान्य सब वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक, घोर रोगों को नष्ट करता है। वन्ध्या

के बहुत से पुत्र होते हैं। मृतवत्सा की संतान जीवित होती है। जिसका मासिक होना रुक गया हो, उसको मासिक होने लगता है। जैसे इन्द्र का वज्र वृक्ष को नष्ट करता है वैसे ही यह मोदक सूतिकारोग को नष्ट करता है। 'मदनानन्दमोदक' सब रोगों के लिये महौषध है। गयण के हितैषी देवदेव (शिवजी) ने इसका उपदेश किया था ॥ ३१-३३ ॥

कामिनीदर्पघ्न।

कज्जलीकृतसुगन्धकशम्भोस्तुल्यमेव कनकस्य हि बीजम्। मर्दयेत्कनकतैलयुतं स्यात् कामिनीमदविधूनन एषः ॥ ५४ ॥ अस्य वल्लकमथो सितयाक्तं सेवितं हरति मेहगदौघान्। वीर्यदार्ढ्यकरणं कमनीयं द्रावणं निधुवने वनितानाम् ॥ ५५ ॥

एक-एक तोले पारा और गन्धक की कज्जली करके उसमें २ तोले धतूरे के बीज का चूर्ण मिश्रित कर धतूरे के बीज के तैल के साथ मर्दन करके रख ले। यह रस स्त्रियों के मद को नष्ट करनेवाला है। तीन-तीन रत्ती की मात्रा में इस रस को शक्कर के साथ सेवन करे। यह रस सब प्रकार के प्रमेहों को हरता है, वीर्य को दृढ़ करता है और रतिकाल में स्त्रियों के मद को दूर करता है ॥ ५४-५५ ॥

स्वल्पचन्द्रोदयमकरध्वज

जातीफलं लवङ्गं च कर्पूरं मरिचं तथा। प्रत्येकं तोलकं दत्त्वा सुवर्णस्य च माषकम् ॥ ५६ ॥ अण्डजं माषमानं च सर्वं तुल्यमथेश्वरम्। यत्नतो मर्दयेत् खल्ले चतुर्गुञ्जां वटीं चरेत् ॥ ५७ ॥ एष चन्द्रोदयो नाम रसो वाजीकरः परः। हन्ति रोगानशेषांश्च बलवीर्याग्निवर्धनः ॥५८॥

एक-एक तोला जायफल, लौंग, कपूर और कालीमिर्च। एक-एक माशा सोने की भस्म और कस्तूरी तथा समष्टि का सममाग अर्थात् ४ तोला और २ माशे रससिन्दूर मिलाकर अच्छे प्रकार घोटकर चार-चार रत्ती की गोलियाँ बना ले। इसका नाम 'चन्द्रोदय रस' है। यह परम उत्तम वाजी करण स्वल्पचन्द्रोदय सब प्रकार के रोगों को नष्ट करता है। बल, वीर्य और अग्नि को बढ़ाता है ॥ ५६-५८ ॥

बृहच्चन्द्रोदयमकरध्वज।

पलं मृदुस्वर्णदलं रसेन्द्रात् पलाष्टकं षोडश गन्धकस्य। शोणैः सुकार्पासभवैः प्रसूनैः सर्वं विमर्द्याथ कुमारिकाद्भिः ५९ तत्काचकुम्भे निहितं सुगाढे मृत्कर्पटीभिर्दिवसत्रयं च। पचेत् क्रमाग्नौ सिकताख्ययन्त्रे ततो रजःपल्लवरागरम्यम्॥६० ॥ निगृह्य चैतस्य पलं पलानि चत्वारि कर्पूररजांसि तद्वत्। जातीफलं सोषणमिन्द्रपुष्पं कस्तूरिकाया इह शाणमेकम् ॥ ६१ ॥ चन्द्रोदयोऽयं कथितोऽस्य माषो भुक्तोऽहिवल्लीदलमध्यवर्ती। मदोन्मदानां प्रमदाशतानां गर्वाधिकत्वं श्लथयत्यकाण्डे ॥ ६२ ॥ घृतं घनीभूतमतीवदुग्धं मृदूनि मांसानि समस्तकानि। माषान्नपिष्टानि भवन्ति पथ्यान्यानन्ददायीन्यपराणि चात्र ॥ ६३ ॥ वलीपलितनाशनस्तनुभृतां वयःस्तम्भनः समस्तगदखण्डनः प्रचुररोगपञ्चाननः। गृहेऽपि गृहभूपतिर्भवति यस्य चन्द्रोदयः स पञ्चशरदर्पितो मृगदृशां भवेद्वल्लभः ॥ ६४ ॥

कोमल स्वर्णदल ४ तोला, पारा ३२ तोला और गन्धक ६४ तोले ले। इनमें पारा और गन्धक की कज्जली करके उसी में उक्त स्वर्णदल को मिलाकर मर्दन करे। फिर लाल कपास के फूल के स्वरस के साथ मर्दन करे। उसके पश्चात् ग्वारपाठा [illegible] स्वरस के साथ मर्दन

करके, दृढ़ कपड़मिट्टी की हुई काँच की शीशी में भरकर, शीशी को बालुकायन्त्र में रखकर क्रमशः मन्द, मध्य और तीव्र अग्नि द्वारा तीन दिन पर्यन्त पकाकर स्वाङ्गशीतल होने पर शीशी को उतार ले। पश्चात् शीशी को तोड़कर उसकी नली में लगे हुए नवपल्लव के समान रक्तवर्ण के रस को निकाल ले। यह रस ४ तोले, कपूर का चूर्ण १६ तोले, जायफल १६ तोले तथा त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि) मिलित १६ तोले, लौंग १६ तोले, कस्तूरी ४ माशे। इन सबको एकत्र घोटकर रख ले। एक-एक माशा की मात्रा में पान के साथ सेवन करे। इस रस का सेवन करनेवाला पुरुष मदोन्मत्त सैकड़ों स्त्रियों के प्रबल मद को दूर करता है। घृत, गाढ़ा दुग्ध, समस्त प्रकार के मृदुमांस, उर्द की पिट्ठी तथा अन्यान्य आनन्दप्रद आहार इसमें पथ्य होते हैं। यह रस मनुष्यों के वली-पलित को नष्ट करता है और वयःस्थापक है। समस्त रोगों को नष्ट करता है। प्रचुर रोगरूपी हाथियों को भगाने के लिये सिंहरूप है। जिस गृहस्थ के घर में यह रस रहता है वह कामदेव के बाणों से पीड़ित हो स्त्रियों का प्रिय होता है ॥ ५६-६४ ॥

सिद्धसूत।

मुक्ताफलं शुद्धसूतं सुवर्णं रूप्यमेव च। यवक्षारं च तत्सर्वं तोलकैकं प्रकल्पयेत् ॥ ६५ ॥ रक्तोत्पलपत्रतोयैर्मर्दयेत् पुत्तलीकृतम्। मर्दयेच्च पुनर्दत्त्वा गन्धकं तदनन्तरम् ॥ ६६ ॥ क्षिप्त्वा काचघटीमध्ये सन्निरुध्य त्रियामकम्। सिकताख्ये पचेच्छीते सिद्धसूतं तु भक्षयेत् ॥ ६७ ॥ पञ्चरक्तिप्रमाणेन मुशलीशर्करान्वितम्। शुक्रवृद्धिं करोत्येष ध्वजभङ्गं च नाशयेत् ॥ ६८ ॥ दुर्बलं वपुरत्यर्थं बलयुक्तं करोत्यसौ। मुद्गगर्भं घृतं क्षीरं शालयः स्निग्धमामिषम् ॥ पारावतस्य मांसस्तु तित्तिरस्य सदा हितः ॥ ६९ ॥

मोती, शुद्ध पारा, स्वर्ण, रूप्य और यवक्षार एक-एक तोला ले। सबको एकत्र कर लाल कमल के पुष्पों के स्वरस के साथ घोटकर गोला बना ले। पश्चात् एक तोला गन्धक डालकर फिर घोटे। अच्छे प्रकार से घोटकर कपरौटी की हुई काँच की शीशी में भरकर बालुकायन्त्र में रखकर तीन पहर तक आँच दे। स्वाङ्गशीतल होने पर शीशी से सिद्ध पारद को निकालकर में मुशली के चूर्ण और शक्कर के साथ सेवन करे। यह रस शुक्र को बढ़ाता और ध्वजभङ्ग को नष्ट करता है। अतिदुर्बल शरीर को बलवान् बनाता है। इस रस का सेवन करनेवाले को घृतसिद्ध मूँग, दूध, शालिचावल के भात, स्निग्ध मांस, कबूतर और तित्तिर के मांस सदा हितकर होते हैं मात्रा ॥ २ रत्ती ॥ ६५-६९ ॥

कामदीपक।

सितं पुनर्नवामूलं शाल्मलीरसभावितम्। शाल्मलीसत्त्वनिर्यासं दद्यात्तेन समं समम् ॥ ७० ॥ गन्धकं सर्वतुल्यं च भक्षयेच्छाणमात्रकम्। अनुपानं प्रकुर्वीत ततः क्षीरं पलद्वयम् ॥ ७१ ॥ अयं चाण्डालिनीयोगोऽगम्याप्यत्र हि गम्यते। निषेधान्निधनं याति करणात् कामरूपधृक् ॥ ७२ ॥

श्वेत पुनर्नवा की जड़ के चूर्ण को सेमर के मुसला के स्वरस से भावितकर उक्त चूर्ण के समान भाग मोचरस का चूर्ण और समष्टि के समान शुद्ध गन्धक मिलाकर उत्तम रीति से चूर्ण कर रख ले। चार-चार माशे की मात्रा में आठ-आठ तोले दूध के साथ सेवन करे। यह चाण्डालिनीयोग है। इसका सेवन करने पर अगम्या स्त्री के पास भी गमन किया जाता है। निषेध करने से मृत्यु को प्राप्त होता है। किन्तु अगम्या-गमन करने से कामदेव के समान कान्तिमान् हो जाता है ॥ ७०-७२ ॥

सिद्धशाल्मलीकल्प ।

भूकूष्माण्डं तालमूली धात्री चैव पुनर्नवा । समभागं समाहृत्य भागार्द्धं गन्धकं तथा ॥ ७३ ॥ तदर्धं पारदं शुद्धं कज्जलीकृत्य निक्षिपेत् । श्वेतशाल्मलितोयेन सप्तधा भावयेत्ततः ॥ ७४ ॥ माहिषेण च दुग्धेन तच्चूर्णं भावयेत् पुनः । शुष्कं तच्चूर्णयेदस्नाल्लेहयेन्मधुसर्पिषा ॥ ७५ ॥ अनेनाशीतिवर्षोऽपि शतधा रमते स्त्रियः । ऊर्ध्वलिङ्गः सदा तिष्ठेत कामदेव इव स्वयम् ॥ ७६ ॥ ज्वरादिरोगनिर्मुक्तः संसारसुखमश्नुते । शाणमेकं तु कर्त्तव्यं दुग्धमत्रानुपानकम् ॥ ७७

विदारीकन्द, स्याह मुसली, आँवला और गदहपुरैना एक-एक तोला मिश्रित कर उस में ६ माशे गन्धक और ३ माशे शुद्ध पारद की कज्जली करके मिला दे। पश्चात् श्वेत सेमर के मुसला के स्वरस से सात बार भावित करके फिर भैंस के दूध से उस चूर्ण को भावित करे घोटते-घोटते शुष्क कर डाले। इस चूर्ण को मधु और घृत में मिलाकर चाटे। इसके सेवन से ८० वर्ष का वृद्ध भी सौ स्त्रियों से रमण कर सकता है। सदा उन्नमितलिङ्ग रहता है और कामदेव के समान कान्तिमान् हो जाता है। ज्वरादि रोगों से मुक्त हो संसार के सुख का उपभोग करता है। इसकी मात्रा ४ माशे और अनुपान दुग्ध है ॥ ७३-७७ ॥

पञ्चशर रस ।

रसेन वा शाल्मलिजेन सूतं त्रिसप्तवाराणि वलिं विमर्द्य । पृथक तयोः कज्जलिकां विपक्कां घृते रसः पञ्चशरोऽयमुक्तः ॥ ७८ ॥ वल्योऽहिवल्लीदलसंप्रयुक्तो वीर्यातिवृद्धिं कुरुतेऽस्य नूनम् । मांसाद्यमद्यं गुरुपायसं च पयः पिबेन्माहिषमत्र सिद्धम् ॥ ७९ ॥

सेमर के मुसला के स्वरस के साथ पारा और गन्धक को अलग-अलग इक्कीस-इक्कीस बार घोटकर उनकी कज्जली करके घृत में पकाकर सिद्ध करे। इसका नाम 'पञ्चशररस' है। पान के साथ तीन-तीन रत्ती की मात्रा में सेवन करने से निःसंदेह अति वीर्यवृद्धि करता है। मांस, भात, मद्य, गुरुपाक पदार्थ, पायस और भैंस के दूध इसमें पथ्य होते हैं ॥ ७८-७९ ॥

त्रिकण्टकाद्य मोदक ।

गोक्षुरेक्षुरबीजानि वाजिगन्धा शतावरी । मुशली वानरीबीजं यष्टिनागबला बला ॥ ८० ॥ एषां चूर्णं दुग्धसिद्धं गव्येनाज्येन भर्जितम् । सितया मोदकं कृत्वा भक्ष्यं वाजीकरं परम् ॥ ८१ ॥ चूर्णादष्टगुणं क्षीरं घृतं चूर्णसमं स्मृतम् । सर्वतो द्विगुणं खण्डं खादेदग्निबलं यथा ॥ ८२ ॥ वाजीकराणि भूरीणि संगृह्य रचितो यतः । तस्माद्बहुषु योगेषु योगोऽयं प्रवरो मतः ॥ ८३ ॥

गोखरू, तालमखाने के बीज, असगन्ध, शतावरि, स्याह मूसली, केवाँच के बीज, मुलेठी, सहदेई और खरेटी के चूर्ण को दुग्ध के साथ सिद्ध कर गाय के घी में भूने और शक्कर डालकर लड्डू बनाकर खाय। यह अत्यन्त वाजीकरण है। दूध चूर्ण से अठगुना, घृत चूर्ण के बराबर और शक्कर सबसे दूनी होनी चाहिए। अग्नि और बल का विचारकर इसका सेवन करना चाहिए। बहुत सी वाजीकरण ओषधियों को संगृहीत कर यह चूर्ण बनाया जाता है, अतः यह बहुत योगों की अपेक्षा श्रेष्ठ माना गया है मात्रा—१।२ तोला ॥ ८०-८३ ॥

रसाला

दध्नोऽर्द्धाढकमीषदम्लमधुरं खण्डस्य चन्द्रद्युतेः, प्रस्थं क्षौद्रपलञ्च पञ्च हविषः शुण्ठ्याश्चतुर्माषकान् । एलामाषचतुष्टयं

मरिचतः कर्षं लवङ्गं तथा, धृत्वा शुक्लपटे शनैः करतलेनोन्मथ्य विस्रावयेत् ॥८४॥ मृद्भाण्डे मृगनाभिचन्दनरसस्पृष्टेऽगुरुद्धूपिते, कर्पूरेण सुगन्धिकं तदखिलं संलोड्य संस्थापयेत्। स्वस्यार्थे मथुरेश्वरेण रचिता ह्येषा रसाला स्वयं, भोक्तुर्मन्मथदीपनी सुखकरी कान्तेव नित्यं प्रिया ॥ ८५ ॥

किञ्चित् खट्टा और मीठा दही १२८ तोले, श्वेत शक्कर ६४ तोले, मधु ४ तोले, घृत २० तोले, सोंठ का चूर्ण ४ माशे, इलायची का चूर्ण ४ माशे, कालीमिर्च का चूर्ण १ तोला और लौंग का चूर्ण १ तोला, सबको मिश्रित कर श्वेत वस्त्र में रखकर हाथ से धीरे-धीरे मलकर छान ले। पश्चात् कस्तूरी, सफेद चन्दन के रस से लित और अगर के द्वारा धूपित मिट्टी के पात्र में उस दधि आदि मिश्रित पदार्थ को रखकर कपूर से सुगन्धित करके अच्छी तरह मिलाकर रख ले। मथुरेश्वर कृष्ण भगवन ने स्वयं अपने लिये इस रसाला को बनाया था। यह रसाला सेवन करनेवाले को कामोद्दीपन करती है, सुखकर होती है और कान्ता के समान नित्य प्रिय होती है ॥ ८४-८५ ॥

चन्दनादितैल।

द्रव्याणि चन्दनादीनि चन्दनं रक्तचन्दनम्। पतङ्गमथ कालीयागुरुकृष्णागुरुणि च ॥ ८६ ॥ देवद्रुमः ससरलः पद्मकं तूणिकोऽपि च। कर्पूरो मृगनाभिश्च लताकस्तूरिकापि च ॥ ८७ ॥ सिह्लकः कुङ्कमं नव्यं जातीफलकमत्र च। जातीपत्रं लवङ्गञ्च सूक्ष्मैला महती च सा ॥ ८८ ॥ कक्कोलफलकं त्वक् च पत्रकं नागकेशरम्। मालकञ्च तथोशीरं मांसी दारुसितापि या ॥ ८९ ॥ मुरा कर्पूरकश्चापि शैलेयं भद्रमुस्तकम्। रेणुका च प्रियङ्गुश्च श्रीवासो गुग्गुलुस्तथा ॥ ९० ॥ लाक्षा नखश्च रालश्च धातकीकुसुमं तथा। ग्रन्थिपर्णञ्च मञ्जिष्ठा तगरं सिक्थकं तथा॥९१॥ एतानि शाणमानानि कल्कीकृत्य शनैः पचेत्। तैलं प्रस्थमितं सम्यगेतत्पात्रे शुभे क्षिपेत् ॥ ९२ ॥ अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धोऽशीतितमोऽपि यः। शुभ्रो भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः ॥ ९३ ॥ वन्ध्यापि लभते गर्भं षण्डोऽपि तरुणायते। अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ॥ ९४ ॥ चन्दनादिमहातैलं रक्तपित्तं क्षयं ज्वरम्। दाहप्रस्वेददौर्गन्ध्यं कुष्ठं कण्डुं विनाशयेत् ॥ ९५ ॥

श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, भाँगरा, पीतचन्दन, अगर, काली अगर, देवदारु, चीड़ की लकड़ी, पद्माख, तून की छाल, कपूर, कस्तूरी, लताकस्तूरी, राल, नई केशर, जायफल, जावित्री, लौंग, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, कंकोलफल (शीतलचीनी), दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, सुगन्धबाला, खस, जटामांसी, दालचीनी, मुरामासी, कपूर, शैलज (छरीला), नागरमोथा, सँभालू के बीज, प्रियगुफूल, गन्धाविरोजा, गूगुल, लाख, नख, राल, धाय के फूल, गठिवन, मजीठ, तगर और मोम प्रत्येक तीन तीन माशे एकत्र कर कल्क बनावे। इस कल्क के साथ १२८ तोले तैल उत्तम पात्र में धीमी आँच से पकावे। इस तैल का मर्दन करने से ८० वर्ष का वृद्ध मनुष्य भी कान्तिमान्, वीर्यवान् और स्त्रियों का मानमर्दन करनेवाला हो जाता है; वन्ध्या स्त्री भी गर्भ धारण करती है, नपुंसक भी तरुण पुरुष के समान आचरण करता है; अपुत्र मनुष्य पुत्र पाता है और सौ वर्ष जीता है। यह चन्दनादि महातैल रक्तपित्त, क्षय, ज्वर, दाह, स्वेददौर्गन्ध्य, कुष्ठ और कण्डू रोगों को नष्ट करता है ॥ ८६-९५ ॥

राक्षसरस।

पलद्वयं सूतसुशुद्धशोधितं चांकोटतोयेन पुनर्विभावितम्। दिनत्रयं तच्च विमर्द्य गाढं समानगन्धेन पुनर्विचूर्ण्य॥ ९६॥ यदा भवेदंजनसन्निकाशः पूर्वोक्ततोयेन पुनर्विभावयेत्। तत्कालछागस्य तु मांसमध्ये संक्षिप्य संलोहितचित्रकस्य॥ ९७॥ रसेन तुल्यं खलु तालमूली निर्यासयुक्तेन विमुद्रय गाढम्। तन्मांसपिण्डे त्वपरे निवेश्य मापस्य पिष्टेन लिपेत्प्रयत्नात्॥ ९८॥ तत्तप्ततैले च निवेश्य चूल्यां मन्दाग्निना तद्विपचेत्प्रयत्नात्। पंचाक्षरं चात्र जपेद्विधिज्ञो देवीमिमां सिद्धरसेश्वरीञ्च॥ ९९॥ ततः सिंदूरवर्णाभं वटकं तं समुद्धरेत्। अष्टोत्तरसहस्रं तु जप्त्वा पंचाक्षरीमिमाम्॥ १००॥ ततस्तस्मात्समुद्धृत्य मुहूर्त्ते शोभने दिने। भिषजं तोष्य विप्रादीन् रक्तिकैकन्तु भक्षयेत्॥ १०१॥ मधुसर्पिर्युतं सेव्यं पश्चाद्भोजनमाचरेत्। अनुपाने पिबेद्दुग्धं रसायनमतानुगम्॥ १०२॥ यथेष्टं भोजनं कार्य्यं कपायकटुवर्जितम्। अनेन विधिना कृत्वा नरः स्यात्कामदेववत्॥ १०३॥ योषिच्छतं भजेन्नित्यं सहस्रं काममोहितः। अकृत्वा मैथुनं रेतः स्फुटित्वालोचनं व्रजेत्॥१०४॥ स भवेन्मन्मथाकारो नात्र कार्य्या विचारणा। रसराक्षसमुद्भुज्य भूपतिः स्यादनंगवत्॥ १०५॥

शुद्ध पारा ८ तोला ले, उसको अंकोल के रस अथवा काढ़े की भावना दे। फिर तीन दिन खरल कर ८ तोले शुद्ध आमलासार गन्धक मिलाकर कज्जली करे, जब काजल के समान बारीक हो जाय तब फिर अंकोल के रस से घोटे। फिर तत्काल मारे हुए बकरे के मांस में इस कज्जली के गोले को रख चीते के रस में शतावर के गोंद को घोटकर उस मांस के चारों तरफ लपेट कर उसे बंद कर दे। फिर उसको दूसरे मांसपिण्ड में रखकर उड़द का सना हुआ आटा उस पर लपेट दे। फिर उस गोले को गरम-गरम तैल में छोड़ दे और चूल्हे में उसके नीचे मन्द-मन्द आँच जलावे। पचाक्षरी मन्त्र का जप करे तथा रसेश्वरी भगवती का ध्यान करे तो निस्सन्देह इस रस का सिन्दूर के वर्ण के समान गोला बनकर तैयार होगा। फिर अष्टोत्तर सहस्र पंचाक्षरी मन्त्र का जप करके शुभ मुहूर्त और तिथि में इस गोले को उक्त तेल में से निकालकर आटा और जले मांसादिक को दूर करे और उस रस को निकाल ले। फिर वैद्य और ब्राह्मणों का पूजन कर एक वा दो रत्ती शहद और गौ के घृत में मिलाकर खाय। फिर भोजन कर ऊपर से रसायन की विधि से दूध पिये और यथेष्ट भोजन करे, परन्तु कसैले और चरपर आदि पदार्थों को न खाय। इस विधि के करने से मनुष्य कामदेव के समान होता है। उसमें हजार स्त्रीसेवन की सामर्थ्य होती है। मनुष्य मैथुन न करेंगे तो वीर्य फूटकर नेत्रों में आ जायगा; इस कारण अवश्य मैथुन करे। इसमें विचार न करना चाहिए। इस राक्षसरस के सेवन से मनुष्य कामदेव के समान स्वरूपवान् हो जाता है॥ ९६-१०५॥

विलासिनीवल्लभ रस।

समानभागे बलिशूलिबीजे तयोः समानं कनकस्य बीजम्। धत्तूरतैलेन विमर्द्य सम्यक् विलासिनीवल्लभनामधेयः॥ १०६॥ सूतो भवेद्वल्लयुगप्रमाणः सितायुतो मेहसमूहहारी। वीर्य्यस्य बन्धं कुरुते नराणां निहन्ति दर्पं च सुलोचनानाम्॥ १०७॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, धतूरे के बीज २ तोले, सबका बारीक चूर्ण कर धतूरे के तेल में खूब घोटे तो यह विलासिनीवल्लभ नाम पारा बनकर तैयार हो जाता है। इसको ४ रत्ती की मात्रा में मिसरी के साथ सेवन करने से सम्पूर्ण प्रमेह नष्ट होते हैं। यह वीर्य का स्तंभन करता है और स्त्रियों के अभिमान को हरता है। मात्रा समयानुसार १-२ रत्ती की ही देनी चाहिए। ४ रत्ती की आजकल अधिक है ॥ १०६-१०७ ॥

मदनकामदेवरस।

तारं वज्रं सुवर्णञ्च ताम्रं सूतं सगन्धकम्। लौहञ्च क्रमवृद्धानि कुर्य्यादेतानि मात्रया ॥ १०८ ॥ विमर्द्य कन्यकाद्रावैः न्यसेत् काचमये घटे। विमुद्रय पिठरीं मुद्रय धारयेत्सैंधवे भृते ॥१०९॥ पिठरीं मुद्रयेत् सम्यक् ततश्चूल्यां निवेशयेत्। वह्निं शनैः शनैः कुर्य्याद्दिनैकं तत्समुद्धरेत् ॥ ११० ॥ स्वांगशीतं ततश्चूर्णं भावयेदर्कदुग्धतः। अश्वगन्धा च काकोली वानरी मुशली चरा ॥ १११ ॥ त्रिस्त्रिवल्लरसैरासां शतावर्य्या च भावयेत्। पद्मकन्दकसेरूणां रसैरेका च भावना ॥ ११२ ॥ कस्तूरी व्योषकर्पूरं कंकोलैलालवंगकम्। पूर्णचूर्णादष्टमांशमेतच्चूर्णं विमिश्रयेत् ॥ ११३ ॥ सर्वैः समां शर्कराञ्च दत्वा शाणोन्मितं पिबेत्। गोदुग्धद्विपलेनैव मधुराहारसेवकः ॥ ११४ ॥ अस्य प्रभावात्सौन्दर्य्यम्बलं तेजोऽभिवर्द्धते। तरुणी रमयेद्बह्वीर्न च हानिः प्रजायते ॥ ११५ ॥

चाँदी की भस्म, हीरे की भस्म, सुवर्ण की भस्म, ताँबे की भस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोह की भस्म, हरएक क्रम से अधिक भाग ले। सबको घीकुवार के रस में खरल करे। फिर एक हाँडी में पिसा नमक भर बीच में शीशी को रख मुखपर्यन्त नमक भर दे और मुख को परिया से बन्द कर दे, फिर उसको चूल्हे पर चढ़ा धीरे-धीरे एक दिन बराबर अग्नि दे, फिर असगंध, कंकोल, कौंच, मुसली, तालमखाने, इन हरएक के रस की तीन-तीन बार भावना दे। फिर कमलकन्द और कसेरू के रस की एक-एक भावना दे। पश्चात् कस्तूरी, सोंठ, मिरच पीपल, भीमसेनी कपूर, कंकोल, छोटी इलायची, लौंग ये सब पहिले चूर्ण से अष्टमांश ले। फिर सबकी बराबर मिसरी मिलाकर ४ माशे को ८ तोले गौ के दूध के साथ पिये और इसके ऊपर मधुर आहार करे। इसके प्रभाव से सुन्दरता, बल और तेज की वृद्धि होती है और बहुत स्त्रियों से रमण कर सकता है तथा वीर्य की भी कभी हानि नहीं होती ॥ १०८-११५ ॥

कन्दर्पसुन्दर रस।

सूतो वज्रमहिं मुक्ता तारं हेम सिताभ्रकम्। रसैः कर्षांशकानेतान् मर्दयेदरिमेदजैः ॥ ११६ ॥ प्रवालं चर्णगन्धस्य द्विद्विकर्षं विमिश्रयेत्। प्रवालं चूर्णगन्धस्य विमर्द्य मृगशृंगके ॥ ११७ ॥ क्षिप्त्वा मृदुपुटे पक्त्वा भावयेद्धातकीरसैः। काकोली मधुकं मांसी बलात्रयविसेक्षुगुदम् ॥ ११८ ॥ द्राक्षा पिप्पलिबन्दाकं वरीपर्णीचतुष्टयम्। परूषकं कसेरुश्च मधुकं वानरी तथा ॥ ११९ ॥ भावयित्वा रसैरेषां शोषयित्वा विचूर्णयेत्। एलात्वक् पत्रकं मांसी लवंगागुरुकेशरम् ॥ १२० ॥ मुस्तं मृगमदं कृष्णा जलं चन्द्रञ्च मिश्रयेत्। एतच्चूर्णैः शाणमितैः रसं कन्दर्पसुन्दरम् ॥ १२१ ॥ खादेच्छाणमितं रात्रौ सिता धात्री विदारिका। एतेषां कर्षचूर्णेन सर्पिष्कर्षेण सम्मितम् ॥

१२२ ॥ तस्यानुद्विपलं क्षीरं पिबेत्सुखितमानसः। रमणी रमयेद्बह्वीर्न हानिं कापि गच्छति ॥ १२३ ॥

शुद्ध पारा, हीरे की भस्म, सीसे की भस्म, मोती की भस्म, चाँदी की भस्म और सफेद अभ्रक की भस्म, इन सबको एक-एक तोला लेकर खैर के काढ़े से खरल करे। फिर मूँगा की भस्म २ तोले और गन्धक की भस्म २ तोले मिलाकर घोटकर हिरन के सींग में भर, ऊपर कपरमिट्टी कर, लघु संपुट में रख फूँक दे। फिर धाय के फूलों के काढ़े की भावना देकर काकोली, मुलहठी, जटामांसी, खरैटी-गुजसकरी और पंची, भसींडा, हिंगोट, दारु, पीपल, धाँदा, सतावर, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी फालसे, कसेरू, महुआ, और कौंच के बीज इन सबके रस की अलग-अलग भावना देकर धूप में सुखाता जाय। इलायची, तेजपात, जटामांसी, लौंग, गेरू, केशर, नागरमोथा, कस्तूरी, पीपल, नेत्रबाला, और भीमसेनी कपूर इन सबको मिलाकर चूर्ण करे तो यह कंदर्पसुन्दर रस बने। रात्रि के समय १ तोला मिसरी, १ तोला आँवला का चूर्ण, १ तोला विदारीकन्द का चूर्ण और १ तोला घृत में ४ मासे इस रस को मिलाकर खाय और ऊपर से ८ तोले दूध पिये तथा प्रसन्नचित्त रहे तो अनेक स्त्रियों से संभोग करने की शक्ति हो तथा वीर्य की हानि भी न हो ॥ ११६-१२३ ॥

स्तंभनकर्त्ता पारा।

शुद्धं सूतमिपुमतोलकमितं गन्धं तथा शुद्धिमत् पंचात्तं परिगृह्य संयतमुखां शुक्तिं समुद्घाट्य ताम्। तत्कीलं परिहृत्य शुक्तिजठरादन्तः क्षिपेद्गन्धकं मोक्षस्यार्द्धमथान्तरे विनिहितं सूतं समस्तं ततः ॥ १२४ ॥ सूतस्योपरिशेषगन्धकरजः संक्षिप्य तन्मध्यगं सूतं शुक्तिकयान्यतोपरिगतासंमुद्रय मृद्वस्त्रकैः ॥ १२५ ॥ तां शुक्तिं परिशोष्य सूर्यकिरणात्संदीयतेऽग्निस्तुषैः धान्यानां गजसंज्ञके वरपुटे तत्स्वांगसंशीतलम् ॥ १२६ ॥ संचूर्ण्यांशुकगालितं किल भवेद्गुञ्जोन्मितं पुष्टिकृत् रेतस्तम्भनकृत्पयोऽनु च पिबेत्सायं सिता संयुतम् ॥ १२७ ॥

शुद्ध पारा ४ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले लेकर मुखमुँदी सीप के मुँह को खोलकर उसके भीतर के कीड़े को निकाल डाले, फिर इस गंधक के आधे चूर्ण को उसमें बिछाकर उस पर पारे को रख बाकी आधे चूर्ण से दबा दे। फिर दस सीप के पलड़े से बंद कर कपरमिट्टी करके धूप में सुखा ले और धान्य के तुषों के गजपुट में रखकर फूँक दे। जब स्वांगशीतल हो जाय तब निकालकर उसकी कपरमिट्टी को दूर करे और पारे की डली को निकाल चूर्ण कर कपरछान करे और किसी उत्तम शीशी आदि में भरकर रख छोड़े। इसमें से १ रत्ती रस मक्खन, मिसरी, दूध आदि के अनुपान से भक्षण करे तो पुष्टता करे और वीर्य का स्तंभन करे तथा सायंकाल में इसके ऊपर मिसरी मिला हुआ दूध पिये ॥ १२४-१२७ ॥

स्तंभन।

कर्पूरं टंकणं सूतं तुल्यं मुनिरसं मधु। संमर्द्य लेपयेल्लिङ्गं स्थित्वायामं तथैव च ॥ १२८ ॥ ततः प्रक्षाल्य रमयेद्वनितानां शतं सुखम्। वीर्यस्तंभकरं पुंसां सम्यङ् नागार्जुनोदितम् ॥ १२९ ॥

कपूर, सुहागा और पारा तीनों औषधियाँ बराबर मात्रा में लेकर पीस डाले, फिर अगस्तियाँ के रस में और शहद में घोट करके लिंग पर लेप करे, एक प्रहर के बाद उस लेप को धोकर स्त्री से रमण करे तो सौ स्त्रियों से भोग करे, वीर्य का स्तंभन करे। यह नागार्जुन सिद्ध का कहा हुआ प्रयोग है ॥ १२८-१२९ ॥

सौगतिगुटिका।

पारदगन्धकचम्पककेसरकुसुमकरहाटाः अजमोदाम्बुधिशोषौ जातीपत्रञ्च जातिफलम् ॥ १३० ॥ प्रत्येकं भागैकं भागद्वितीयं च शुद्धमहिफेनम्। तेन बदरसदृशगुटिका कार्य्या मधुनाथ भक्षयेदेकाम् ॥ १३१ ॥ यामेऽतीते ललनां सविधे स्थित्वा जवानिकाकर्षम्। तैलार्द्रं भुंजीयादनुपानं चैतदेतस्य ॥ १३२ ॥ लिंगं कठिनतरं स्याद्वीर्यस्तंभं भवेद्यामम्। एषा सौगतिगुटिका सत्यं सत्यं च रोधकारी ॥ १३३ ॥

पारा, गन्धक, नागकेशर, केशर, लौंग, अकरकरा, अजमोद, समुद्रशोष, जावित्री और जायफल, हरएक एक-एक तोला, और शुद्ध अफीम २ तोला लेकर सबको घोटकर बेर की गुठली के बराबर गोलियाँ बनावे। एक गोली रात्रि के समय शहद के साथ खाय, फिर एक प्रहर बाद १ तोला (४ माशे ही पर्याप्त होगी) अजवाइन को तेल में मिलाकर सेवन करे। यह इसका पथ्य है। इससे लिंग कठिन होता है। वीर्य का एक पहर तक स्तंभन होता है। यह सौगतिगुटिका वीर्य्य को रोकनेवाली है ॥ १३०-१३३ ॥

कामदेव रस।

सूतो माषमितः स्वदोषरहितस्तत्तुर्य्यभागो बलिस्तन्मानस्तु भुजंगफेन उदितः क्षुद्राफलस्याम्बुना। एतद्गोलकमाकलय्य विपचेत्क्षुद्राफले हेमगे लावैरष्टमितैर्भवेदिति रसः श्रीकामदेवाभिधः ॥१३४॥ मात्रा सूर्योदये गुञ्जामेकां यामचतुष्टये। गुञ्जाचतुष्टयं देयं नागवल्लीदलान्वितम्। दुग्धोदनं सलवणं रात्रौ क्षीरं यथेच्छया ॥ १३५ ॥

पारा १ माशे, गन्धक ४ माशे, अफीम ४ माशे इन सबको कटेरी के फल के रस में घोटकर गोलियाँ बनावे। उनको कटेरी के फल में रखकर पकावे, फिर धतूरे के फल में रखकर उनको ८ लावक पुट दे तो यह कामदेव रस सिद्ध हो जाता है। इसमें से १ रत्ती मात्रा में प्रातःकाल दे। १ रत्ती दूसरे पहर। इस प्रकार चार पहर ४ रत्ती मात्रा पान में रखकर दे और दिन में दूध, भात का भोजन करावे। परन्तु नमक का पदार्थ न खाय और रात्रि को यथेष्ट दूध पिये तो यह गुटिका अत्यन्त स्तंभन करती है ॥ १३४-१३५ ॥

महानीलकण्ठ रस।

पलैकं नागभस्माथ भावयेत्त्रिमिषिक्ततः। तन्मानं सुमृतं स्वर्णं तोलैकं वापि मिश्रयेत् ॥ १३६ ॥ द्विपलं भस्मसूतस्य त्रिपलं मृतमभ्रकम्। त्रिपलं लौहभस्माथ सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ १३७ ॥ भावयेच्च पृथक् कन्या ब्राह्मी निर्गुण्डिका शमी। मुण्डी शतावरी छिन्ना कोकिलाक्षस्य बीजकैः ॥ १३८ ॥ मुसली वृद्धदारोग्निद्रवैर्भिषग्वरः। ततः संचूर्णयेत्सर्वं तुल्यमेकादशाभिधम् ॥ १३९ ॥ वराव्योपाब्दवह्न्येलाः जातीफललवंगकम्। पूजयेद् धूपपुष्पाद्यैः नीलकण्ठं महेश्वरम् १४० द्विगुंजा भक्षयेदस्या मृत्युंजयमनुस्मरन्। क्षयमेकादशविधं ग्रहणीरक्तपित्तकम् ॥ १४१ ॥ त्रिविधान् वातजान् रोगान् चत्वारिंशच्च पैत्तिकान्। हन्ति सर्वामयानेव कामिनीनां शतं व्रजेत् ॥ १४२ ॥ एकविंशतिरात्रार्द्धं परिहार्य्य त्यजेदिह। यथेष्टाहारचेष्टो हि कंदर्पसदृशो नरः ॥ १४३ ॥ मेधावी बलवान् प्राज्ञो महाशी भीमविक्रमः। पुत्रार्थिनी

तथा नारी सैव पुत्रं प्रसूयते। अस्य सूतस्य माहात्म्यं वेत्ति शंभुर्न चापरः॥१४४॥

मछली के पित्त में घोटा हुआ नागेश्वर ४ तोले लेकर उसी में १ तोला सोने की भस्म मिलावे। चन्द्रोदय ८ तोले, अभ्रकभस्म १२ तोले और लोहभस्म १२ तोले मिलाय सबको इकट्ठा कर घीकुवार, ब्राह्मी, निर्गुण्डी, छोंकरा, गोरखमुण्डी, शतावरि, गिलोय, तालमखाने, मुसली, त्रिधारा और चीता इनके रसों की अलग-अलग भावना दे, फिर हड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा, चीता, इलायची, जायफल और लौंग इनका चूर्ण मिलाकर रस सिद्ध करे। फिर अदरख के फल आदि से श्रीनीलकण्ठ शिवजी का पूजन करे, तब दो रत्ती सेवन कर श्रीमृत्युंजय शिव का स्मरण करे तो ग्यारह प्रकार का क्षयरोग, संग्रहणी, रक्तपित्त, अनेक वात के रोग और ४० पित्त के रोगों को नष्ट करे। सौ स्त्रियों के भोगने की सामर्थ्य हो। २१ रात्रि पथ्य सेवन करके फिर परिहार को त्याग दे, फिर यथेष्ट आहार और आचारों का सेवन करे। कामदेव के समान रूप होवे, बुद्धिमान्, बलवान्, प्राज्ञ, बहुत भोजन करनेवाला, भीमसेन के समान पराक्रमी हो तथा जिनको पुत्र की इच्छा हो उसके पुत्र हो। इस महानील कण्ठ रस की महिमा श्रीशिव ही जानते हैं, अन्य नहीं॥ मात्रा–४ रत्ती॥१३९-१४४॥

पुष्पधन्वा रस।

हरजभुजगलौहश्चाभ्रकं वङ्गचूर्णं कनकविजययष्टी शाल्मली नागवल्ली। घृतमधुसितदुग्धं पुष्पधन्वा रसेन्द्रो रमयति शतरामा दीर्घमायुर्बलश्च॥१४५॥

कनकादिकाथेन भावयित्वा घृतादिभियोजयेत्।

रससिन्दूर, नागभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, और वङ्गभस्म समान भाग एकत्र मिश्रित कर क्रमशः धतूरे के पत्ते, भाँग, मुलेठी, सेमर का मुसरा और पान के स्वरस में भावित कर रख ले। घृत, मधु और शक्कर में मिलाकर दूध के साथ सेवन करे। इस पुष्पधन्वा नामक रसेन्द्र के सेवन करने से सौ स्त्रियों के साथ रमण करने की शक्ति हो जाती है। आयु और बल की वृद्धि होती है। कनक (धतूर) आदि द्रव्यों के क्राथ की भावना देकर घृत आदि के साथ मिश्रित कर सेवन करना चाहिए॥ मात्रा–२।४ रत्ती॥१४५॥

पूर्णचन्द्र रस।

सूताभ्रलौहं सशिलाजतु स्याद् विडङ्गताप्ये मधुना घृतेन। पिष्टं प्रशस्तं खलु पूर्णचन्द्रो द्विगुञ्जयुक्तो भवति प्रशस्तः॥१४६॥

रससिन्दूर, अभ्रक, लोहभस्म, शिलाजीत, वायविडंग और स्वर्णमाक्षिक समभाग मिश्रित कर घृत और मधु के साथ घोटकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। इसका नाम पूर्णचन्द्र रस है। यह शरीर की पुष्टि के लिये प्रशस्त है॥१४६॥

कामाग्निसन्दीपन रस।

पलपरिमितशुद्धं सूतकं गन्धतुल्यं दरदकुनटितुल्यं भावितं भृङ्गवेरैः। तदनु कनकबीजैर्भावितं सप्तवारान् तदनुसितजयन्त्या भृङ्गराजैश्च सर्वम्॥१४७॥ पुटितमुपरि शुष्कं काचकूप्यां तु क्षिप्तं पडहमुपरि पाच्यं वालुकायन्त्रकैश्च॥१४८॥ एलाजातीन्द्रचन्द्रैर्मृगमदसहितैः सोपर्णैः साश्वगन्धैस्तुल्यैर्वल्लमात्रं प्रतिदिनमशितं प्रातरुत्थाय शुद्ध्यै। ओजःपुष्टिविवर्द्धनोऽतिबलकृत्सर्वेन्द्रियानन्दनः सर्वातङ्कहरो रसायनवरः कामाग्निसन्दीपनः॥१४९॥

एक-एक तोला शुद्ध पारा, गन्धक, हिंगुल और मैनशिल को एकत्र कर क्रमशः अदरख,

धतूरे के बीज, श्वेत जयंती और भाँगरे के यथासम्भव स्वरस या क्वाथ के साथ सात-सात बार भावना देकर सुखा लेवे, पश्चात् काँच की शीशी में भरकर बालुकायन्त्र द्वारा ६ दिन पर्यन्त आंच देकर पकावे; फिर स्वाङ्गशीतल होने पर उतारकर शीशी से रस को निकालकर रख ले। इलायची, जायफल, कपूर, कस्तूरी, कालीमिर्च और असगन्ध सम भाग लेकर चूर्ण कर उसमें मिला ले। दो-दो रत्ती इस कामाग्नि-सन्दीपन रस को प्रतिदिन प्रातःकाल शौचादि-क्रिया से शुद्ध होकर सेवन करे। कामाग्नि-सन्दीपन रस ओज को पुष्ट करता तथा बलवर्धक है। सम्पूर्ण इन्द्रियों को आनन्द देता है तथा सम्पूर्ण रोगों को हरता है और रसायनों में श्रेष्ठ है॥ १४७--१४० ॥

ध्वजभङ्ग में पथ्य।

शालि षष्टिक गोधूम मसूर चणकादयः नवनीतं च दुग्धं च सुरासीधुश्च वर्त्तकः ॥ १५० ॥ चटकः कुक्कुटश्चैव तित्तिरिर्हरिणस्तथाशशकश्छागयोरेपांपललानि मृदूनितु ॥ १५१ ॥ द्राक्षाखर्जुराम्रजम्बू दाडिमानां फलानि च पथ्यान्येतानि प्रोक्तानि ध्वजभङ्गगदे बुधैः ॥ १५२ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां ध्वजभङ्गाधिकारः समाप्तः।

शालि तथा साठी धान्य का चावल गेहूँ मसूर चना आदि मक्खन दूध शराब सुरा सीधु वत्तक गौरैया मुर्गा तीतर हरिण खरगोश बकरा इन का कोमल मांस दाख खजूर आम जामुन तथा अनार के फल इन सबों का सेवन ध्वजभंग रोग में पथ्य है। ॥ १५०--१५२ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रसप्रभाभिधायां व्याख्यायां ध्वजभङ्गाधिकारः समाप्तः।

अथ मुष्कवृद्धिब्रध्नाधिकारः।

वातिक वृद्धिचिकित्सा।

वातवृद्धौ पिबेत्स्निग्धं यथाप्राप्तविरेचनम्। सक्षीरं वा पिबेत्तैलं मासमेरण्डसम्भवम् ॥ १ ॥ पुनर्नवायास्तैलं वा तैलं नारायणं तथा। पाने वस्तौ रुवोस्तैलं पेयं वा दशकाम्भसा ॥ २ ॥

वातिक अण्डवृद्धि में यथावश्यक स्निग्ध विरेचन देना चाहिए। एक मासपर्यन्त दुग्ध में मिश्रित कर एरण्डतैल का पाक या पुनर्नवा के क्वाथ और कल्क के साथ सिद्ध किये हुए तैल का पान अथवा नारायण तैल का पान करना चाहिए। एरण्ड के तैल की पिचकारी देना अथवा दशमूल के क्वाथ के साथ एरण्ड-तैल का पान करना चाहिए॥ १-२ ॥

पैत्तिक और रक्तवृद्धिचिकित्सा।

चन्दनं मधुकं पद्मसुशीरं नीलमुत्पलम्। क्षीरपिष्टैःप्रलेपः स्याद्दाहशोथरुजापहः ॥ ३ ॥

चन्दन, मुलेठी, पद्माख, खस और नील-कमल इनको दूध में पीसकर लेप करने से दाह, शोथ और पीड़ा शान्त होती है॥ ३ ॥

रक्तजाण्डवृद्धिचिकित्सा।

पञ्चवल्कलकल्केन सघृतेन प्रलेपनम्। सर्वपित्तहरं कार्यं रक्तजे रक्तमोक्षणम् ॥४॥

वड, गूलर, पीपर, पाकड़ और बेत इन पाँच वृक्षों की छाल को पीसकर घृत मिलाकर लेप करने से सब प्रकार के पैत्तिक वृद्धिरोग नष्ट होते हैं। रक्तज वृद्धि में रक्तमोक्षण कराना चाहिए॥ ४ ॥

श्लैष्मिकवृद्धिचिकित्सा।

श्लेष्मवृद्धिमुष्णवीर्यैर्मूत्रपिष्टैः प्रलेपयेत्। पीतदारुकषायञ्च पिबेत् मूत्रेण संयुतम् ॥ ५ ॥

श्लैष्मिक वृद्धिरोग में बृहत्पञ्चमूल आदि उष्णवीर्य ओषधियों को गोमूत्र में पीसकर प्रलेप करे तथा देवदारु के क्वाथ को गोमूत्र मिश्रित कर पान करे ॥ ५ ॥

मेदजवृद्धिचिकित्सा।

स्विन्नं मेदःसमुत्थञ्च लेपयेत् सुरसादिना। शिरोविरेकद्रव्यैर्वा सुखोष्णैर्मूत्रसंयुतैः ॥ ६ ॥

मेदोज तवृद्धि में स्वेदन करने के पश्चात् तुलसी और पुनर्नवा आदि द्रव्यों को पीसकर लेप करे। इस रोग में गोमूत्र के साथ सैंधव, पीपरि और कालीमिर्च आदि शिरोविरेचक द्रव्यों को पीसकर कुछ उष्ण करके प्रलेप करने से विशेष लाभ होता है ॥ ६ ॥

अन्त्रवृद्धिचिकित्सा।

रास्नायष्ट्यमृतैरण्डबलागोक्षुरसाधितः। क्वाथोऽन्त्रवृद्धिं हन्त्याशु रुवुतैलेन मिश्रितः ॥ ७ ॥

रास्ना, मुलेठी, गिलोय, अरंड की जड़, खरेटी और गोखरू, इनके काढ़े में अरंड का तेल डाल कर पीने से अन्त्रवृद्धिरोग नष्ट होता है ॥ ७ ॥

भृष्टो रुवुकतैलेन कल्कः पथ्यासमुद्भवः। कृष्णासैन्धवसंयुक्तो वृद्धिरोगहरः परः ॥ ८ ॥

हरीतकीं पेषयित्वा पिप्पलीं सैन्धवञ्च दत्त्वा एरण्डतैलेन भृष्ट्वा खादयम्। अनुपानमुष्णोदकेन करणीयं योगोऽयं सप्ताहं सेव्यः। तन्त्रान्तरसंवादादिति भानुः।

हरीतकी को जल के साथ पीसकर उसमें पीपरि और सेंधानमक मिलाकर तथा रेंडी के तेल में भून कर उष्ण जल के साथ इस योग को एक सप्ताहपर्यन्त सेवन करना चाहिए, क्योंकि तन्त्रान्तर में ऐसा ही लिखा है और भानुजी का भी ऐसा ही मत है ॥ ८ ॥

वृद्धिहरलेप।

लज्जागृध्रमलाभ्याञ्च लेपो वृद्धिहरः परः ॥ ९ ॥

छुईमुई और गिद्ध के मल का लेप करने से वृद्धिरोग दूर होता है ॥ ९ ॥

व्रध्न के लक्षण।

अत्यभिष्यन्दिगुर्वामसेवनान्निचयंगतः। करोति ग्रन्थिवत् शोथं दोषो वंक्षणसन्धिषु। ज्वरशूलाङ्गदाहाढ्यं तंव्रध्नमिति निर्दिशेत् ॥ १० ॥

अत्यन्त अभिष्यन्दि, गुरु और आम पदार्थ के सेवन करने से सचित दोष वंक्षण और सन्धियों में ग्रन्थि के समान शोथ उत्पन्न करता है। इस शोथ के साथ ज्वर, शूल और अङ्गदाह भी होते हैं ॥ १० ॥

बिल्वादिचूर्ण।

मूलं बिल्वकपित्थयोररलुकस्याग्नेर्बृहत्योर्द्वयोः श्यामापूतिकरञ्जशिग्रु कतरोर्विश्वौषधारुष्करम्। कृष्णाग्रन्थिकचव्य पञ्चलवणक्षाराजमोदान्वितं पीतं काञ्जिककोष्णतोयमथितं चूर्णीकृतंव्रध्नजित् ११

बेल, कैथ, अरलू, चीता दोनों कटेरी बड़ी कटेरी, श्यामालता, कञ्जा और सहिंजन इनके मूल, सोंठ, अरूसा, पीपरि, गठिवन, चव्य, पञ्चलवण, यवक्षार, और अजमोद इन सबको सम भाग लेकर चूर्ण कर ले। फिर इसको काँजी या किंचित् उष्ण जल में घोलकर पान करे। यह चूर्ण व्रध्नरोग को जीतता है ॥ ११ ॥

व्रध्नशूलहरलेप।

अजाक्षीरेण गोधूमकल्कं कुन्दुरुकस्य वा। प्रलेपनं सुखोष्णं स्याद्व्रध्नशूलहरं परम् ॥ १२ ॥

बकरी के दूध के साथ पीसकर गेहूँ के कल्क का अथवा कुन्दुरू के कल्क का सुखोष्ण प्रलेप व्रध्न और शूल को हरता है ॥ १२ ॥

मृतमात्रे तु वै काके विशस्ते तु प्रवेशयेत् ब्रध्नं मुहूर्तं मेधावी तत्क्षणादरुजं भवेत् ॥ १३ ॥

बुद्धिमान् पुरुष एक काक (कौआ) को मारकर तत्काल उसके भीतर की आँतें निकाल कर उसमें ब्रध्न को एक मुहूर्तपर्यन्त प्रविष्ट रक्खे। ऐसा करने से तत्काल नीरोग हो जाता है ॥ १३ ॥

अजाज्यादि लेप।

अजाजीहपुषाकुष्ठगोधूमबदराणि च। काञ्जिकेन समं पिष्ट्वा कुर्याद् ब्रध्ने प्रलेपनम् ॥ १४ ॥

जीरा, हाऊबेर' कूट, गेहूँ और बेर को काँजी के साथ पीसकर ब्रध्न के ऊपर लेप करना चाहिए ॥ १४ ॥

बृहत्सैन्धवाद्यतैल।

सैन्धवं मदनं कुष्ठं शताह्वां निचुलं वचाम्। ह्रीवेरं मधुकं भार्गी देवदारु सनागरम् ॥ १५ ॥ कट्फलं पौष्करं मेदाश्चविकां चित्रकं शटीम्। विडङ्गातिविषे श्यामां रेणुकां नीलिनीं स्थिराम् ॥ १६ ॥ बिल्वाजमोदे कृष्णाश्च दन्तीं रास्नां प्रपिष्य च। साध्यमेरण्डजं तैलं तैलं वा कफवातनुत ॥ १७ ॥ब्रध्नोदावर्त्तगुल्मार्शःप्लीहामेहाढ्यमारुतान्। आनाहमश्मरीञ्चैव हन्यात्तदनुवासनात् ॥ १८ ॥

सेंधानमक, मैनफल, कूट, सौंफ, बेंत, बच, सुगन्धबाला, मुलेठी, भारंगी, देवदारु, सोंठ कायफल, पुहकरमूल, मेदा, चव्य चीत की जड़, कचूर, वायविडंग, अतीस, श्यामालता (सारिवा), सँभालू के बीज, नील, सालपर्णी, बेल की छाल, अजमोद, छोटी पीपरि, दन्ती और रास्ना (सब मिलाकर ६४ तोले) को पीसकर कल्क बनावे। इस कल्क के साथ पाक के लिये जल ६ सेर ३२ तोले और एरण्ड तैल १२८ तोले लेकर तैल सिद्ध करे। यह तैल कफ और वात का नाशक है। मर्दन करने से यह तैल ब्रध्न, उदावर्त, गुल्म, अर्श, प्लीहा, प्रमेह और वातरोगों को नष्ट करता है। अनुवासनबस्ति द्वारा आनाहयुक्त अश्मरी रोग को नष्ट करता है ॥ १५-१८ ॥

गन्धर्वहस्ततैल।

शतमेरण्डमूलस्य पलं शुण्ठ्यायवाढकम्। जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत् पादावशेषितम् ॥ १९ ॥ तेन पादावशेषेण पयसा तत्समेन च। प्रस्थमेरण्डतैलस्य तन्मूलाच्च चतुःपलम् ॥ २० ॥ त्रिपलं शृङ्गवेरञ्च गर्भं दत्त्वा विपाचयेत्। तत् पिबेत्प्रयतः शुद्धो नरः क्षीरान्नभुक् सदा। अन्त्रवृद्धिं जयत्याशु तैलं गन्धर्वहस्तकम् ॥ २१ ॥

एरण्ड की जड़ ५ सेर, सोंठ ५ सेर और यव ३ सेर, १६ तोले लेकर २५ सेर ४८ तोले पानी में पकावे। जब ६ सेर ३२ तोले अवशिष्ट रह जावे, तब उस क्वाथ और ६ सेर ३२ तोले दूध के साथ १२८ तोले एरण्ड का तैल पकावे। इसमें पकाते समय १६ तोले एरण्डमूल और १२ तोले अदरख का कल्क डाले। वमन, विरेचनादि द्वारा शुद्ध होकर यत्नपूर्वक इस तैल का पान करे। दूध और भात का भोजन करे तो यह गन्धर्वहस्त तैल अन्त्रवृद्धि को तत्काल जीतता है ॥ १९-२१ ॥

शतपुष्पाद्यघृत।

शतपुष्पामृता दारु चन्दनं रजनीद्वयम्। जीरके द्वे वचा नागं त्रिफला गुग्गुलुत्वचम् ॥ २२ ॥ मांसी सकुष्ठपत्रैला रास्ना भृङ्गी च चित्रकम्। कृमिघ्नमश्वगन्धा च शैलेयं कटुरोहिणी ॥ २३ ॥ सैन्धवं तगरञ्चैव कुष्ठ-

जातीविसैः समैः। एतैश्च कार्षिकैः कल्कैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ २४॥ वृषमुण्डितिकैरण्डबिल्वपत्रभवो रसः। कण्टकार्यास्तथा प्रस्थं क्षीरप्रस्थं विनिक्षिपेत्॥२५॥ सिद्धमेतद्घृतं पीतमन्त्रवृद्धिं व्यपोहति। वातवृद्धिं पित्तवृद्धिं मेदोवृद्धिमथापिवा २६ मूत्रवृद्धिं श्लीपदञ्च यकृत्प्लीहानमेव च। शतपुष्पाद्यमेतद्धि घृतं हन्ति न संशयः २७

सौंफ, गिलोय, देवदारु, सफेद चन्दन, हल्दी, दारुहल्दी, सफेद जीरा, स्याह जीरा, वच, नागकेसर, त्रिफला, गूगुल, दालचीनी, जटामासी, कूट, तेजपात, छोटी इलायची रास्ना, काकड़ासिंगी, चीत की जड़, वायविड़ंग असगन्ध, शिलाजीत, कुटकी, सेंधा-नमक, तगर, कूट, जायफल, और भसींडा; ये सब एक-एक तोला लेकर कल्क बनावे। इस कल्क के साथ दो सेर घृत सिद्ध करे। इस घृत को सिद्ध करते समय अडूसा मुंडी, एरण्ड और बिल्वपत्र का एक-एक प्रस्थ (६४-६४ तोले) रस या क्वाथ, और कटेरी का क्वाथ ६४ तोले तथा ६४ तोले दुग्ध डालकर यथाविधि घृत को सिद्ध करे। पान करने से यह घृत अन्त्रवृद्धि को नष्ट करता है। वातवृद्धि, पित्तवृद्धि, मेदोवृद्धि, मूत्रवृद्धि, श्लीपद, यकृत और प्लीहा को निःसंदेह नष्ट करता है॥ २२-२७॥

कफवातजवृद्धि में हरीतकी का प्रयोग।

हरीतकीं मूत्रसिद्धां सतैलां लवणान्विताम्। प्रातः प्रातश्चसेवेत कफवातामयापहम्॥ २८॥

गोमूत्र-सिद्ध हरीतकी को तैल और लवण के साथ प्रात:काल सेवन करे। यह कफ और वात के रोगों को नष्ट करती है॥ २८॥

वातवृद्धिनाशक तैल।

गुग्गुलं रुवुतैलं वा गोमूत्रेण पिबेन्नरः। वातवृद्धिं निहंत्याशु चिरकालानुबन्धिनीम्॥ २९॥

गूगुल या एरण्डतैल को गोमूत्र के साथ पान करे तो यह योग चिरकालोत्पन्न वातवृद्धि को तत्काल नष्ट करता है॥ २९॥

वृद्धिरोगनाशक प्रलेप।

निष्पिष्टमारनालेन रूपिकामूलवल्कलम्। लेपो वृद्ध्यामयं हन्ति बद्धमूलमपि ध्रुवम्॥ ३०

श्वेत पुष्पवाले मदार के मूल के छिलके को कांजी के साथ पीसकर लेप करने से बद्धमूल वृद्धिरोग भी नष्ट हो जाता है॥ ३०॥

कुरण्डनाशक योग।

गव्यं घृतं सैन्धवसंमयुक्तं शम्बूकभाण्डे निहितं तदेव। सप्ताहमादित्यकरैर्विपक्वं हन्यात्कुरण्डं चिरजं प्रवृद्धम्॥ ३१॥

सैंधवयुक्त गोघृत को शंख के मध्य में रखकर ७ दिन पर्यन्त सूर्य की किरणों द्वारा परिपक्व करे। यह घृत चिरकालोत्पन्न प्रवृद्ध कुरण्ड रोग को विनष्ट करता है॥ ३१॥

अपर कुरंडनाशक योग।

सैन्धवञ्च घृताभ्यक्तं ताम्रभाजनमातपे। प्रतप्तपूर्णया घृष्टं तन्मलञ्च समाहरेत्॥ ३२॥ कुरण्डं म्रक्षयेत्तेन सनिर्विघ्नं दिवानिशम्। कुरण्डं तेन संलिप्तं नास्तीत्याह पुनर्वसुः॥ ३३॥

ताम्रभाजने घृतं सैन्धवं दत्वा रौद्रे तप्तं कृत्वा मेषलोमतुण्डिकया घृष्ट्वा मलग्रहं कृत्वा तेन म्रक्षयेत्।

ताम्रपात्र को घृत से चुपड़ करके इसमें सेंधानमक डालकर और धूप में गरम करके ऊन से घिसे। उससे जो मल निकले उसका व्रण पर निरन्तर रातदिन लेप करने से कुरण्ड नष्ट हो जाता है। ऐसा पुनर्वसुजी कहते हैं॥ ३२-३३॥

गोमूत्रसिद्धां रुबुतैलभृष्टां हरीतकीं सैन्धवसम्प्रयुक्ताम्‌ पिबेन्नरः कोष्णजलानुपानात्‌ निहन्ति वृद्धिं चिरजां प्रवृद्धाम्‌ ॥ ३४ ॥

हरीतकी को पहले गोमूत्र में भिगोकर आर्द्र कर ले, पश्चात्‌ रेंडी (अरण्डी) के तैल में भूनकर सेंधानमक के साथ खाकर कुछ उष्ण जल का पान करे। यह योग चिरकालोत्पन्न प्रवृद्ध वृद्धिरोग को नष्ट करता है ॥ ३४ ॥

ऐन्द्रीमूलभवं चूर्णं रुबुतैलेन मर्दितम्‌। त्र्यहाद्‌ गोपयसा, पीतं सर्ववृद्धिहरं परम्‌॥ वचासर्षपकल्केन लेपो वृद्धिविनाशनः ३५

इन्द्रायण के मूल के चूर्ण को एरण्ड के तैल के साथ घोटकर गोदुग्ध के साथ तीन दिन सेवन करें। यह योग सब प्रकार के वृद्धिरोग का नाशक है तथा वच और सरसों के कल्क का लेप करने से वृद्धिरोग नष्ट होता है ॥ ३५ ॥

कुरण्ड पर लेप।

बहुवारस्य बीजञ्च पिष्ट्वा तथार्द्रकैः सह। कुरण्डं नाशयेद्भद्रे लेपनान्नात्र संशयः ॥ ३६ ॥

हे भद्रे! बहुवार बीज (लसोढ़ा) को अदरख के साथ पीसकर लेप करने से कुरण्ड अवश्य विनष्ट हो जाता है ॥ ३६ ॥

घृतैर्नीलोत्पलं मूलं पिष्ट्वा लिम्पेत्कुरण्डकम्‌। अथवा लेपनं कुर्याद्‌ गृहमण्डूकशोणितैः ॥ ३७ ॥

नीलकमल की जड़ को पीसकर घी में मिलाकर कुरण्ड पर लेप करे। अथवा गृहमण्डूक (घर में रहनेवाले मेंढक) के रक्त का लेप करे तो कुरण्ड रोग शान्त हो ॥ ३७ ॥

भक्तोत्तरीय।

अभ्रकं गन्धकञ्चैव पिप्पलीलवणानि च। त्रिक्षारं त्रिफला चैव हरितालं मनःशिला ॥ ३८ ॥ पारदश्चाजमोदा च यमानी शतपुष्पिका। जीरकं हिङ्गु मेथी च चित्रकं चविका वचा ॥ ३९ ॥ दन्ती च त्रिवृता मुस्तं शिला च मृतलौहकम्‌। अञ्जनं निम्बबीजानि पटोलं वृद्धदारकम्‌ ॥ ४० ॥ सर्वाणि चाक्षमात्राणि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्‌। शतं कानकबीजानि शोधितानि प्रयोजयेत्‌ ॥ ४१ ॥ एतदग्निविवृद्ध्यर्थमृषिभिः परिकीर्त्तितम्‌। श्लीपदान्यन्त्रवृद्धिश्च वातवृद्धिश्च दारुणाम्‌ ॥ ४२ ॥ अरुचिंचामवातञ्च शूलं वातसमुद्भवम्‌। गुल्मञ्चैवोदरव्याधीन्नाशयत्याशु तत्क्षणात्‌। भक्तोत्तरमिदं चूर्णमश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥ ४३ ॥

अभ्रकभस्म, गन्धक, पीपरि, पाँचोनमक, यवक्षार, सज्जीखार, सोहागा, भुना, आँवला, हड़, बहेड़ा हरिताल, मैनशिल, शुद्ध पारा, अजमोद, अजवाइन, सौंफ, सफ़ेद जीरा, हींग, मेथी, चीत की जड़, चव्य, वच, दन्ती, निसोथ, नागरमोथा, शिलाजीत, लोहभस्म, रसौत, नीम के बीज, पटोलपत्र और विधारा ये सब एक-एक तोला, तथा धतूरे के बीज १०० ले। पारा और गन्धक की कज्जली करे फिर इन सबको एकत्र कर कूट पीस कर महीन चूर्ण बना ले। इसको जठराग्नि की वृद्धि के लिए ऋषियों ने कहा है। यह श्लीपद, अन्त्रवृद्धि, दारुण, वातवृद्धि, अरुचि, आमवात, शूल, वातजन्य शूल, गुल्म और उदर-व्याधियों को तत्काल नष्ट करता है। इस भक्तोत्तर चूर्ण को पहिले अश्विनीकुमारों ने बनाया था। (भोजनोत्तर इस चूर्ण का सेवन किया जाता है अतः इसका नाम भक्तोतर चूर्ण रक्खा गया है। इसकी मात्रा एक माशे से दो माशे तक है) ॥ ३८-४३ ॥

वातारिरस।

रसभागो भवेदेको गन्धको द्विगुणो

मतः । त्रिगुणा त्रिफला ग्राह्या चतुर्भागश्च चित्रकः ॥ ४४ ॥ गुग्गुलुः पञ्चभागः स्यादेरण्डतैलमर्दितः । क्षिप्त्वात्र पूर्वकच्चूर्णं तेनैव सह मर्दयेत् ॥४५॥ गुटिकां कर्षमात्रान्तु भक्षयेत् प्रातरेव हि । नागरैरण्डमूलानां क्वाथं तदनुपाययेत् ॥ ४६ ॥ अभ्यङ्ग्यैरण्ड तैलेन स्वेदयेत् पृष्ठदेशकम् । विरेके तेन सञ्जाते स्निग्धमुष्णञ्च भोजयेत् ॥ ४७ ॥ वातारिसंज्ञको ह्येष रसो निर्वातसेवितः । अन्त्रवृद्धिं निहन्त्येव ब्रह्मचर्यपुरः सरः ॥ अनुपानं च तिलजमार्द्रकद्रवसंयुतम् ॥ ४८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मुष्कवृद्धिब्रध्नाधिकारः समाप्तः ।

शुद्ध पारा एक भाग, गन्धक दो भाग, त्रिफला तीन भाग, चीत की जड़ चार भाग और गूगुल पाँच भाग ले । पहिले गूगुल को एरण्ड के तेल के साथ मर्दित कर उसमें पूर्वोक्त औषधियों का चूर्ण मिश्रित कर एरण्ड के तेल के साथ ही मर्दन करके एक-एक तोला की गोली बनाकर प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करे । इस औषध के सेवन करने के पश्चात् सोंठ और एरण्ड के मूल का क्वाथ पिला पीठ पर एरण्ड का तेल मलकर स्वेदन करे । इस औषधि के सेवन करने से विरेचन हो जाने के पश्चात् स्निग्ध और उष्ण भोजन करावे । वातारि नाम का यह रस है । इसका सेवन निर्वात स्थान में करना चाहिए । यह रस ब्रह्मचर्यपूर्वक सेवित होने पर अन्त्रवृद्धि रोग को विनष्ट करता है । अदरख के रस में मिश्रित तिल तैल इसका अनुपान है ॥ ४४-४८ ॥

वृद्धिब्रध्नरोग में पथ्य

संशोधनं वस्तिरसृग्विमोक्षः स्वेदः प्रलेपोऽरुणशालयश्च । एरण्ड तैलं सुरभीजलञ्च धन्वामिषं शिग्रुफलं पटोलम् ॥ ४९ ॥ पुनर्नवा गोक्षुरकाग्निमन्थं ताम्बूल पथ्या रसना रसोनम् । वार्त्ताकुनं गृञ्जनकं मधूनि कौम्भं घृतं तप्तजलञ्च तक्रम् ॥ ५० ॥ अर्धेन्दुवद्वङ्क्षणयाश्च दाहो व्यत्यासतो बाहुशिराव्यधश्च । यथामयं शस्त्र विधिश्च वर्गः स्याद् ब्रध्नवृद्ध्यामयिनां सुखाय ॥ ५१ ॥ अनभिष्यन्दि पानान्नं नातिशीताक्रिया तथा । वृद्धिरोगे हिताय स्याद्विपरीतं विवर्जयेत् ॥ ५२ ॥

वमन विरेचनादिक संशोधन बस्तिकर्म रक्तमोक्षण स्वेदन प्रलेप लालशालि चावल एरण्ड तैल गौमूत्र जाङ्गल देश के पशु पक्षियों का मांस सहजन की फलियों का शाक पटोलपत्र शाक, पुनर्नवा शाक, गोखरू, अरणी, पान, हरड़, रास्ना, लहसुन, बैंगन, गाजर, शहद १० साल से १०० साल तक का पुराना घी, गरम जल, मट्ठा, वंक्षण प्रदेश पर अर्धचन्द्राकृति दाह उलटे क्रम से बाहु की शिरा का वेधन अर्थात् दक्षिणाण्ड वृद्धि में बायें बाहु की शिरा का वेधन तथा शस्त्र कर्म ये सब रोगानुसार से ब्रध्न और वृद्धिरोगियों के लिए पथ्य है । अभिष्यन्द (क्लेद) नहीं करनेवाले पदार्थों का पानी तथा भोजन करना एवं अधिक शीतरहित औषधियों के द्वारा क्रिया तथा अधिक शीतरहित आहार विहारादिक क्रियायें वृद्धिरोग में हितकर हैं । तथा इनके विपरीत को छोड़ देना चाहिये ।

ब्रध्नवृद्धिरोग में अपथ्य

विरुद्धपानान्नमसात्म्यसेवा संक्षोभणं हस्ति हयादियानम् । आनूप मांसानि दधीनि माषादुग्धानि पिष्टान्न मुपोदिका च । गुरूणि शुक्रोत्थित वेगरोधाः स्-

वघ्न वृद्ध्यामयिनाम मित्राः ॥ ५३ ॥
वेगाहितिं पृष्ट यानं व्यायामं मैथुनं तथा । अत्यशनं तथाध्वानमुपवासं परित्यजेत् ॥ ५४ ॥

विरुद्ध और प्रतिकूल आहार विहार क्रोध, हाथी घोड़े आदि की सवारी, आनूप मांस दही उड़द पीठी, पोई शाक, भारी पदार्थ, वीर्य वेग रोकना, व्यायाम, मैथुन, अति भोजन, अधिक मार्ग चलना, और उपवास अपथ्य है ।

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां मुष्कवृद्धिघ्नाधिकारः समाप्तः ।

अथ श्लीपदाधिकारः ।

श्लीपद में क्रियाकर्म ।

लङ्घनालेपनस्वेदरेचनै रक्तमोक्षणैः । प्रायः श्लेष्महरैरुष्णैः श्लीपदं समुपाचरेत् ॥ १ ॥
लङ्घनं प्रथमतः लेपस्वेदादयो नवे पुराणे च ।

लंघन, प्रलेप, स्वेदन, रेचन रक्तमोक्षण द्वारा तथा अधिकतर कफनाशक उष्ण क्रियाओं के द्वारा श्लीपद की चिकित्सा करे । नये या पुराने श्लीपद रोग में पहले लंघन कराकर लेप और स्वेदन करना चाहिए ॥ १ ॥

कणादिचूर्ण ।

कणावचादारुपुनर्नवानां चूर्णं सबिल्वं समवृद्धदारम् । सम्मर्द्य चैतस्य निहन्ति धल्लः सकाञ्जिकश्लीपदमुग्रवेगम् ॥ २ ॥

पीपल, बच, देवदारु, सोंठी और बेल की छाल हरएक समभाग, सबके समान विधारा के बीज का चूर्ण । इन्हें इकट्ठा मिलाकर और पीसकर काँजी के साथ सेवन करने से श्लीपद रोग नष्ट होता है.। मात्रा—१ रत्ती ॥ २ ॥

मदनादि लेप ।

मदनश्च तथा सिक्थं सामुद्रलवणं तथा । महिषीनवनीतेन सन्तप्ते लेपनं हितम् । सप्ताहात् स्फुटितौ पादौ जायेते कमलोपमौ ॥ ३ ॥

मैनफल, मोम और सामुद्र नमक इन्हें इकट्ठाकर भैंस के दूध के मक्खन में मिलाकर दाहयुक्त फटे हुए पाँवों पर एक सप्ताह तक लगाने से पैर कमल के समान मृदु हो जाते हैं ॥ ३ ॥

धुस्तूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रु सर्षपैः॥ प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम् ॥ ४ ॥

धतूरे के बीज, एरण्डमूल, निर्गुण्डी, पुनर्नवा के मूल, सहिंजन की छाल और सरसों को पीसकर प्रलेप करने से चिरकाल का भी दारुण श्लीपदरोग नष्ट करता है ॥ ४ ॥

निष्पिष्टमारनालेन रूपिकामूलवल्कलम् । प्रलेपात् श्लीपदं हन्ति बद्धमूलमपि स्थिरम् ॥ ५ ॥

श्वेत मदार (आक) के मूल की छाल को काँजी के साथ पीसकर प्रलेप करे । यह प्रलेप बहुत प्राचीन बद्धमूल श्लीपद को भी नष्ट करता है ॥ ५ ॥

पिण्डारकतरुसम्भववन्दाकशिफा जयति सर्पिषा पीता श्लीपदमुग्रं नियतं वा सूत्रेण जङ्घायाम् ॥ ६ ॥

पिण्डकार के वृक्ष में उत्पन्न हुए बाँदा के मूल को पीसकर घृत में मिश्रित कर पान करने तथा सूत में लपेटकर जाँघ में बाँधने से उग्र श्लीपदरोग शीघ्र विनष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

हितश्चालेपने नित्यं चित्रको देवदारु वा । सिद्धार्थशिग्रु कल्को वा सुखोष्णो मूत्रपेषितः ॥ ७ ॥

चीत की जड़ अथवा देवदारु का लेप करना,

अथवा सरसों और सहिंजन की छाल को गोमूत्र में पीसकर किये हुए कल्क को कुछ गरम करके लेप करना श्लीपदरोग में लाभदायक होता है ॥ ७ ॥

स्नेहस्वेदोपनाहांश्च श्लीपदेऽनिलजे भिषक्। कृत्वा गुल्फोपरिसिरां विध्येत् तच्चतुरङ्गुले ॥ ८ ॥

वातिक श्लीपदरोग में स्नेहन, स्वेदन और उपनाह करके गुल्फों के ऊपर चार अंगुल की दूरी पर शिरावेधन करे ॥ ८ ॥

गुल्फस्याधःशिरां विध्येत् श्लीपदे पित्तसम्भवे। पित्तघ्नीश्च क्रियां कुर्यात् पित्तार्बुदविसर्पवत् ॥ ९ ॥

पैत्तिक श्लीपदरोग में गुल्फ के नीचे की शिरावेधन करे तथा पित्त अर्बुद और विसर्परोग के समान पित्तनाशक क्रियाओं को करे ॥ ९ ॥

मञ्जिष्ठां मधुकं रास्ना सहिंस्रां सपुनर्नवाम्। पिष्ट्वारनालैर्लेपोऽयं पित्तश्लीपदशान्तये ॥ १० ॥

मंजीठ, मुलेठी, रासन, भटकटैया और गदहपुरैना (साँठी) को काँजी में पीसकर लेप करने से पैत्तिक श्लीपद की शान्ति होती है ॥ १० ॥

शिरां सुविदितां विध्येदङ्गुष्ठे श्लेष्मश्लीपदे। मधुयुक्तानि वा तीक्ष्णकषायाणि पिबेन्नरः ॥ ११ ॥

भलीभाँति समझकर कफजन्य श्लीपद में अंगुष्ठ के ऊपर की शिरा का वेधन करे अथवा मधु मिश्रितकर तीक्ष्ण औषधियों के क्वाथ का पान करे ॥ ११ ॥

पिबेत्सर्षपतैलेन श्लीपदानां निवृत्तये। पूतिकरञ्जच्छदजं रसं वापि यथाबलम् १२

कंजे की पत्तियों के रस में सरसों का तैल मिलाकर बलानुसार न्यूनाधिक परिमाण में पान करे। इससे श्लीपदरोग की शान्ति होती है ॥ १२ ॥

अनेनैव प्रकारेण पुत्रञ्जीवकजं रसम्। काञ्जिकेन पिबेच्चूर्णं मूत्रैर्वा वृद्धदारुजम् ॥ १३ ॥

पूर्वोक्त रीति से सरसों के तैल के साथ पुत्रजीवक (जियापोता) के रस का पान करे तथा विधारे के चूर्ण को काँजी के साथ अथवा गोमूत्र के साथ पान करे ॥ १३ ॥

रजनीं गुडसंयुक्तां गोमूत्रेण पिबेन्नरः। वर्षोत्थं श्लीपदं हन्ति दद्रुकुष्ठं विशेषतः ॥ १४ ॥

गुडमिश्रित हल्दी को गोमूत्र में घोलकर पान करे। यह योग एक वर्ष के श्लीपद को तथा विशेषकर दद्रु और कुष्ठरोग को नष्ट करता है ॥ १४ ॥

गन्धर्वतैलभृष्टां हरीतकीं गोजलेन यः पिबति। श्लीपदबन्धनमुक्तो भवत्यसौ सप्तरात्रेण ॥ १५ ॥

एरण्ड के तेल में हरीतकी को भूनकर गोमूत्र के साथ जो सेवन करते हैं, वे सात रात में श्लीपद के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं ॥ १५ ॥

धान्याम्लं तैलसंयुक्तं कफवातविनाशनम्। दीपनश्चामदोषघ्नमेतत् श्लीपदनाशनम् ॥ १६ ॥

तैलयुक्त काँजी कफ और वात की नाशक होती है। तथा दीपन, आमदोषनाशक और श्लीपदनाशक होती है ॥ १६ ॥

गोधावतीमूलयुक्तां खादेन्माषेण्डरीं नरः। जयेत् श्लीपदकोपोत्थं ज्वरं सद्यो न संशयः ॥ श्लीपदघ्नो रसोऽभ्यासाद् गुडूच्यास्तैलसंयुतः ॥ १७ ॥

गोधावती (हंसपदी) की जड़ का चूर्ण मिलाकर उर्द की बड़ी बनाकर सेवन करने से श्लीपदजन्य ज्वर निःसंदेह शीघ्र नष्ट हो जाता है। गिलोय के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ

कटुतैल का सेवन करने से भी श्लीपद नष्ट होता है ॥ १७ ॥

वृद्धदारकसमचूर्ण।

त्रिकटु त्रिफला चव्यं दार्वी वरुणगोक्षुरम्। अलम्बुषां गुडूचीञ्च समभागानि चूर्णयेत् ॥ १८ ॥ सर्वेषां चूर्णमाहृत्य वृद्धदारस्य तत्समम्। काञ्जिकेन च तत्पेयं माषमात्रं प्रमाणतः ॥ १९ ॥ जीर्णे च परिहारं स्याद्भोजनं सर्वकामिकम्। नाशयेत् श्लीपदं स्थौल्यमामवातञ्च दारुणम्। गुल्मकुष्ठानिलहरं वातश्लेष्मज्वरापहम् २०

सोंठ मिर्च, पीपरि, आँवला, हड़, बहेड़ा, चव्य, दारुहल्दी, बरना की छाल, गोखरू, मुण्डी और गिलोय समभाग लेकर चूर्ण करे। कुल चूर्ण की बराबर विधारे का चूर्ण मिलाकर एक एक मासे की मात्रा में काँजी के साथ प्रतिदिन सेवन करे। खाई हुई औषध का परिपाक हो जाने पर यथेच्छ भोजन करे। श्लीपद, स्थूलता दारुण आमवात, गुल्म, कुष्ठ और वातरोग को तथा वातश्लैष्मिक ज्वर को यह चूर्ण नष्ट करता है ॥ १८--२० ॥

पिप्पल्याद्यचूर्ण।

पिप्पली त्रिफला दारु नागरं सपुनर्नवम्। भागैर्द्विपलिकैरेषां तत्समं वृद्धदारकम् ॥ २१ ॥ काञ्जिकेन पिबेच्चूर्णं माषमात्रं प्रमाणतः। जीर्णे च परिहारं स्याद्भोजनं सर्वकामिकम् ॥ २२ ॥ श्लीपदं वातरोगांश्च हन्यात् प्लीहानमेव च। अग्निञ्च कुरुते घोरं भस्मकञ्च नियच्छति ॥ २३ ॥

पीपरि, आँवला, हड़, बहेड़ा, देवदारु, सोंठ और गदहपुरैना (साँठी) ये सब आठ-आठ तोले तथा सबके बराबर विधारा मिलाकर चूर्ण बना ले। एक-एक मासे की मात्रा में काँजी के साथ सेवन करे। भुक्त औषध का परिपाक हो जाने पर यथेच्छ भोजन करे। यह चूर्ण श्लीपद वातरोग और प्लीहा को नष्ट करता है। अग्नि को प्रबल करता है और भस्मकरोग को शान्त करता है ॥ २१--२३ ॥

कृष्णाद्यमोदक।

कृष्णाचित्रकदन्तीनां कर्षमर्द्धपलं पलम्। विंशतिश्च हरीतक्या गुडस्य तु पलद्वयम् ॥ मधुना मोदकं खादन् श्लीपदं हन्ति दुस्तरम् ॥ २४ ॥

पीपरि १ तोला, चीत की जड़ २ तोले, दन्ती ४ तोले, छोटी हड़ २० नग और गुड़ ८ तोले लेकर मधु के साथ मोदक बनाकर सेवन करे। यह मोदक दुस्तर श्लीपद को नष्ट करता है ॥ २४ ॥

सौरेश्वरघृत।

सुरसा देवकाष्ठञ्च त्रिकटुत्रिफले तथा। लवणान्यथ सर्वाणि विडङ्गान्यथ चित्रकम् ॥ २५ ॥ चविका पिप्पलीमूलं गुग्गुलुर्हबुषा वचा। यवाग्रजश्चपाठा च शट्येलावृद्धदारकम् ॥ २६ ॥ कल्कैश्च कार्षिकैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्। दशमूलकषायेण धान्ययूषद्रवेण च ॥ २७ ॥ दधिमस्तु समायुक्तं प्रस्थं प्रस्थं पृथक् पृथक्। पक्वं स्यादुद्धृतं कल्कात् पिबेत् कर्षार्द्धकं हविः ॥ २८ ॥ श्लीपदं कफवातोत्थं मांसरक्ताश्रितञ्च यत्। मेदःश्रितञ्च वातोत्थं हन्यादेव न संशयः ॥ २९ ॥ अपचीं गण्डमालाञ्च अन्त्रवृद्धिं तथार्बुदम्। नाशयेद् ग्रहणीदोषं श्वयथुं गुदजानि च। परमग्निकरं हृद्यं कोष्ठकृमिविनाशनम् ॥ ३० ॥

तुलसी की पत्ती, देवदारु, सोंठ, मिर्च, पीपरि, आँवला, हड़, बहेड़ा, पाँचों नमक,

बायबिडग, चीत की जड, चव्य, पिपरामूल, गूगुल, हाऊबेर, बच, जवाखार, पाढ़ी, कचूर, इलायची और विधारा ये सब एक-एक तोला लेकर कल्क बनावे। घी १२८ तोले। ६४ तोले दशमूल को ३ सेर १६ तोले जल में पकावे। ६४ तोले जल अवशिष्ट रहने पर इस क्वाथ और कल्क के साथ घृत को पकावे। फिर ६४ तोले काँजी और ६४ तोले दही के तोड़ के साथ भी अलग अलग पकावे। यथोचित पाक हो जाने पर घृत को कल्क से अलग कर छानकर रख ले। छः छः माशा की मात्रा में इसका पान करे। यह कफ-वातोत्थ और मांस, रक्तगत, मेदोगत और वातजन्य श्लीपद को निःसंदेह नष्ट करता है। अपची, गण्डमाला, अन्त्रवृद्धि, अर्बुद, ग्रहणीविकार, शोथ और बवासीर को नष्ट करता है। अग्निवर्धक, हृदय के लिये लाभदायक और कोष्ठस्थ कृमियों का नाशक है॥ २९--३०॥

विडङ्गादितैल।

विडङ्गमरिचार्केषु नागरे चित्रके तथा। भद्रदार्वेलकाह्वे च सर्वेषु लवणेषु च॥ तैलं पक्वं पिवेद्वापि श्लीपदानां निवृत्तये॥ ३१॥

बायबिडंग, कालीमिर्च, मदार (आक) की जड़, सोंठ, चीत की जड़, देवदारु, एलुआ और पाँचों नमक के कल्क के साथ सिद्ध तैल को श्लीपद की निवृत्ति के लिये पान करे॥ ३१॥

नित्यानन्दरस।

हिङ्गुलसम्भवं सूतं गन्धकं मृत ताम्रकम्। कांस्यं वङ्गं हरीतालं तुत्थं शङ्खं वराटिका॥ ३२॥ त्रिकटु त्रिफला लौहं विडङ्गं पटुपञ्चकम्। चविका पिप्पलीमूलं हवुषा च वचा तथा॥ ३३॥ शटी पाठा देवदारु एला च वृद्धदारकम्। त्रिवृतां चित्रकं दन्ती गृहीत्वा तु पृथक् पृथक्॥ ३४॥ एतानि समभागानि सञ्चूर्ण्य गुडकीकृतम्। हरीतकीरसं दत्त्वा दशगुञ्जोन्मितं शुभम्॥ ३५॥ एकैकं भक्षयेन्नित्यं शीतश्चानुपिवेज्जलम्। श्लीपदं कफवातोत्थं रक्तमांसाश्रितश्च यत्॥ ३६॥ मेदोगतं धातुगतं निहन्ति नात्र संशयः। अर्बुदं गण्डमालाञ्च वातरक्तं सुदारुणम्॥ ३७॥ कफवातोद्भवं रोगमन्त्रवृद्धिचिरन्तनीम्। वातरक्ते वातकफे गुदरोगे कृमौ तथा॥ ३८॥ अग्निवृद्धिं करोत्येष बलवर्णञ्च सुस्थताम्। श्रीमद्गहननाथेन निर्मितो विश्वसम्पदे॥ ३९॥ नित्यानन्दरसश्चायं महाश्लीपदनाशनः। रक्तजे पित्तजे चापि श्लीपदे योजयेदमुम्। नातः परतरं किञ्चिद्विद्यते श्लीपदामये॥ ४०॥

'त्रिवृतां चित्रकं दन्ती गृहीत्वा तु पृथक् पृथक्।' इत्यत्र 'त्रिवृत् चित्रकदन्तीनां भावयित्वा रसैः पृथक्।' इति सारकौमुद्यां पाठः कुत्रापि वा एतत् पद्यार्द्धं नास्त्येव। 'शटी पाठा देवदारु एला च वृद्धदारकम्।' इत्यत्र शटीपाठा देवदारुत्वगेलावृद्धदारकमिति पाठान्तरं दृश्यते।

हिंगुलोत्थ शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक ताम्रभस्म, कांस्यभस्म, वङ्गभस्म, शुद्ध हरिताल शुद्ध तूतिया, शङ्खभस्म, कौड़ी की भस्म सोंठ, कालीमिर्च, पीपरि, आँवला, हड़, बहेड़ा, लोहभस्म, बायबिडंग, पाँचों नमक, चव्य, पिपरामूल हाऊबेर, बच, कचूर पाढ़ी, देवदारु, इलायची, विधारा, निसोथ, चीत की जड़ और दन्ती को समभाग लेकर चूर्ण करके छोटी हड़ के क्वाथ के साथ दश दश रत्ती की गोली बना कर रख ले। शीतल जल के साथ एक एक गोली का सेवन करे। यह रस कफवातोत्थ, रक्तमांसाश्रित, मेदोगत और धातुगत श्लीपद को निःसंदेह नष्ट करता है। अर्बुद, गण्डमाला,

कठिन वातरक्त और कफवातजन्य अन्यान्य रोगों को तथा प्राचीन अन्त्रवृद्धरोग को नष्ट करता है। वातरक्त, वातकफ, बवासीर और कृमिरोगों में अग्निवर्धक है। बल, कान्ति और स्वास्थ्य को बढ़ाता है। संसार के लाभार्थ श्रीमान् गहननाथ ने इसको बनाया था। यह नित्यानन्दरस महान् श्लीपद को नष्ट करता है। रक्तज और पित्तज श्लीपद में इसका प्रयोग करना चाहिए। श्लीपदरोग की शान्ति के लिए इससे बढ़कर और कोई योग नहीं है॥ ३३-४०॥

('त्रिवृता चित्रकं दन्तीं गृहीत्वा तु पृथक् पृथक्' यहाँ पर 'त्रिवृत् चित्रकदन्तीनां भावयित्वा रसैः पृथक्' ऐसा सारकौमुदी में पाठ है। कहीं-कहीं यह आधा पद्य है ही नहीं। 'शटीपाठा-देवदारु एला च वृद्धदारकम्' यहाँ, 'शटी पाठा-देवदारु त्वगेला वृद्धदारकम्' में ऐसा पाठान्तर देखा जाता है।)

श्लीपदगजकेशरी।

व्योषामृतयमानी च सूतोऽग्निर्गन्धकं शिला। सौभाग्यं जयपालञ्च चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ ४१ ॥ भृङ्गगोक्षुरजम्बीरार्द्रकतोयैर्विमर्दयेत्। अस्य गुञ्जामितं खादेदुष्णतोयानुपानतः ॥ ४२ ॥ श्लीपदं दुस्तरं हन्ति प्लीहानं हन्ति सेवितः ॥ ४३ ॥

सोंठ, कालीमिर्च, पीपरि, मीठा विष, अजवाइन, पारा, चीत की जड़, गन्धक, मैनशिल, सोहागा और शुद्ध जमालगोटा इनको समभाग लेकर चूर्ण करे और इस चूर्ण को भाँगरा, गोखरू, नीबू और अदरख के रस के साथ घोटकर एक-एक रत्ती की गोली बनाकर उष्ण जल के साथ सेवन करे। यह रस दुस्तर श्लीपद और प्लीहा को निःसंदेह नष्ट करता है॥ ४१-४३॥

श्लीपदारि।

निम्बं खदिरसारञ्च मधुना माषकद्वयम्। गवां मूत्रेण पिष्ट्वा तु पिबेत् श्लीपदशान्तये ॥ ४४ ॥

नीम की छाल और कत्था के चूर्ण को दो माशे लेकर गोमूत्र में पीसकर और मधु मिलाकर श्लीपद की निवृत्ति के लिये पान करे॥ ४४॥

श्लीपदारिलौह।

हरीतक्या विभीतस्य धात्र्याश्चूर्णं सुचूर्णितम्। पट्तोलकप्रमाणेन ग्राह्यं तेषां गुणैषिणा ॥ ४५ ॥ तोलद्वयं कान्तलोहचूर्णं तद्वच्छिलाजतु। कृत्वैकत्र समस्तेषु त्रिफलाक्वाथभावना ॥ ४६ ॥ श्लीपदाद्यगदध्वंसी सर्वव्याधिविनाशनः। श्लीपदारिरिति ख्यातो लौहो मुनिभिरर्चितः ॥ ४७ ॥

हड़, बहेड़ा, आँवला हरएक ६ तोले, कान्तलौह भस्म २ तोले, शुद्ध शिलाजीत २ तोले इन्हें इकट्ठा मिलाकर त्रिफला के क्वाथ की भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। यह श्लीपद आदि रोगों को नष्ट करता है॥ ४५-४७॥

पञ्चाननघृत।

शालञ्चिकापलद्वन्द्वं पौनर्नवपलद्वयम्। इन्द्रसूरपलद्वन्द्वं पलैकं चमरीफलम् ॥ ४८ ॥ गुञ्जादलं पलैकन्तु क्वाथयेत्मास्थिकेऽम्भसि। पादावशेषे विपचेत् गोघृतं मास्थिकं सुधीः ॥ ४९ ॥ अभया चित्रकं तारं सैन्धवं विश्वभेषजम्। एतेषां कर्षमानेन वरघृतं सुचूर्णितम् ॥ ५० ॥ घृते सिद्धे प्रदातव्यं तत्र मासन्तु खादयेत्। पञ्चाननघृतं नाम श्लीपदे गदकुम्भिनि॥ ५१ ॥ प्लीहगुल्मोदरानाहज्वरशोधविनाशनम्। श्रीमद्गहननाथेन निर्मितं विश्वमङ्गलम् ॥ ५२ ॥ गोमूत्रं श्ले-

ष्मिके देयं दुग्धं वाते च पैत्तिके। सामान्य-भोजनं देयमनुपानं प्रकीर्तितम् ॥ ६३ ॥

गोघृत १२८ तोले, कल्क के लिये शालिञ्च ८ तोले, सौंठी की जड़ ८ तोले, सँभालू ८ तोले, काञ्चनफल ४ तोले, घुँघची के पत्ते ४ तोले। इन्हें एकत्रकर १२८ तोले जल में पकावे। जब चतुर्थांश रह जाय तब उतारकर क्वाथ को छान ले। प्रक्षेपार्थ—हड़, चित्रक, जवाखार, सभा नमक और सोंठ, प्रत्येक का महीन चूर्ण १ तोला। विधि पूर्वक क्वाथ द्वारा घृत को सिद्ध कर उसे छान ले और उसमें हड़ आदि डालकर अच्छे प्रकार मथ ले। मात्रा—आधा तोला से १ तोला तक। इसे श्लीपद, गदकुम्भी रोग में एक मास तक सेवन करावे। इसके सेवन से प्लीहा, गुल्म, उदर, आनाह, ज्वर तथा शोथ नष्ट होता है। अनुपान—श्लैष्मिक श्लीपद में गोमूत्र, वातिक एवं पैत्तिक में दूध पथ्य है। भोजन सामान्य करना चाहिए ॥ ४८-५३ ॥

पञ्चाननतैल।

एतत्तैलं प्रकर्तव्यं कल्केन वस्तुना विना। घृतेन वा कृतं तैलं घृततुल्य-गुणं भवेत् ॥ ५४ ॥

१२८ तोले तिलतैल को पहिले घृत के क्वाथ द्वारा (पूर्वोक्त मान से ही) सिद्ध करने से पञ्चानन तैल बन जाता है। इसमें हड़ आदि का कल्क नहीं डाला जाता। अथवा तिलतैल को पूर्वोक्त घृत में कहे गये क्वाथ से सिद्धकर उसमें हड़ आदि भी डाल सकते हैं। यह तेल गुणों में पहिले घृत के तुल्य ही होगा ॥ ५४ ॥

श्लीपदरोग में पथ्य।

पुरातनाः षष्टिकशालयश्च यवाः कुलत्था लशुनं पटोलम्। वार्ताकुशोभाञ्जनकार-वेल्लं कटूनि तिक्तानि च दीपनानि॥५५॥ एरण्डतैलं सुरभीजलञ्च पुनर्नवामूल-कपोतिकाश्च। एतानि पथ्यानि भवन्ति पुंसां रोगे सति श्लीपदनामधेये ॥ ५६ ॥

श्लीपद नामक रोग के होने पर पुराने साँठी के चावल, जौ, कुलथी, लहसुन, परवल, बैंगन, सहिजना, करेला, चरपरे एवं कड़वे द्रव्य, दीपन पदार्थ, अरण्डी का तेल, गोमूत्र, साँठी, छोटी कच्ची मूली ये पथ्य हैं ॥ ५५-५६ ॥

अपथ्य।

पिष्टान्नं दुग्धविकृतिं गुडमानूपमामि-षम्। स्वादुरसं महेन्द्रोत्थं सह्यविन्ध्यनदी-जलम् ॥ पिच्छिलं गुर्वभिष्यन्दि श्लीपदी परिवर्जयेत् ॥ ५७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां श्लीपदा-धिकारः समाप्तः।

पीठी के भक्ष्य पदार्थ, रबड़ी आदि दूध से बने द्रव्य, गुड़ आनूप मांस, मधुर रसवाले द्रव्य, महेन्द्र, सह्यादि एवं विन्ध्य पर्वत से निकलनेवाली नदियों के जल, लसीले द्रव्य, गुरु एवं अभिष्यन्दि भोजन करना श्लीपद के रोगी को त्याग करना चाहिए ॥ ५७ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां श्लीपदाधिकार समाप्त।

अथ गलगण्डाद्यपचीग्र-न्थ्यर्बुदाधिकारः।

गलगण्डचिकित्सा।

यवमुद्गपटोलानि कटु रूक्षं च भोजनम्। छर्दिं सरक्तमुक्तिं च गलगण्डे प्रयोजयेत् ॥ १ ॥

गलगण्ड रोग में जौ, मूँग, परवल, कड़ुवा और रूखा भोजन देना चाहिए तथा वमन कराना और रक्त खुलाना चाहिए ॥ १ ॥

गलगण्ड में लेप।

तण्डुलोदकपिष्टेन मूलेन परिलेपितः। हस्तकर्णपलाशस्य गलगण्डः प्रशाम्यति ॥ २ ॥

एरण्ड की जड को चावल के पानी से पीसकर लेप करने से गलगण्डरोग शान्त होता है ॥ २ ॥

सर्षपादि प्रलेप

सर्षपान् शिग्रुबीजानि शणबीजातसीयवान्। मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पेपयेत् ॥ ३ ॥ गलगण्डा ग्रन्थयश्च गण्डमालाः सुदारुणाः। प्रलेपात्तेन शाम्यन्ति विलयं यान्ति चाचिरात् ॥ ४ ॥

सरसों, सहिजने के बीज, सन के बीज, अलसी, जौ और मूली के बीजों को खट्टी छाछ में पीसकर लेप करने से गलगण्ड, ग्रन्थि और कठिन गण्डमाला शान्त होकर शीघ्र ही विनष्ट हो जाती है ॥ ३-४ ॥

गलगण्ड में नस्य।

जीर्णकर्कारुकरसो विडसैन्धवसंयुतः। नस्येन हन्ति तरुणं गलगण्डं न संशयः ॥ ५ ॥

पके हुए पेंठे (कुम्हड़े) के रस में विड और सेंधानमक मिलाकर नास लेने (सूँघने) से नया गलगण्डरोग नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

जलकुम्भीकजं भस्म पक्वं गोमूत्रगालितम्। पिबेत् कोद्रवभक्ताशी गलगण्डप्रशान्तये ॥ ६ ॥

जलकुम्भीक (काई) की भस्म को गोमूत्र में पकाकर छान ले और योग्य मात्रा में इसको पीवे तथा कोदों का भात खावे तो गलगण्डरोग शान्त हो ॥ ६ ॥

सूर्यावर्त्तरसोनाभ्यां गलगण्डोपनाहने। स्फोटस्रावैः शमं यान्ति गलगण्डो न संशयः ॥ ७ ॥

सूरजमुखी और लहसुन की पुलटिस बाँधने से गलगण्ड के फोड़े फूट जाते हैं और पीब बह जाता है। इससे गलगण्ड शान्त हो जाता है ॥ ७ ॥

तिक्तालाबुफले पक्वे सप्ताहमुषितं जलम्। मद्यं वा गलगण्डघ्नं पानात् पथ्याम्लसेविनः ॥ ८ ॥

पकी हुई कड़ई तूँबी में सात दिन तक रक्खे हुए जल के अथवा मदिरा के पीने से तथा पथ्य और अम्ल पदार्थों के सेवन करने से गलगण्डरोग शान्त होता है ॥ ८ ॥

कट्फलचूर्णान्तर्गलघर्षो गलगण्डामयं हन्ति। घृतमिश्रं पीतमपि श्वेतगिरिकर्णिकामूलम् ॥ ९ ॥

कायफल के चूर्ण को गले में घिसने से गलगण्डरोग नष्ट होता है। तथा सफ़ेद विष्णुक्रान्ता (कोयली) की जड़ के चूर्ण में घी मिलाकर पीने से भी गलगण्ड शान्त हो जाता है ॥ ९ ॥

महिषीमूत्रविमिश्रं लौहमलं संस्थितं घटे मासम्। अन्तर्धूमविदग्धं लिह्यात् मधुनाथ गलगण्डे ॥ १० ॥

मण्डूर को भैंस के मूत्र में भिगोकर एक महीने तक मिट्टी के घड़े में रक्खे, फिर उसकी अन्तर्धूमभस्म करके शहद के साथ चाटे, तो गलगण्ड शान्त हो ॥ १० ॥

जिह्वायाः पार्श्वतोधस्ताच्छिरा द्वादश कीर्त्तिताः। तासां स्थूलशिरे द्वेऽधश्छिद्यात्ते च शनैः शनैः ॥ ११ ॥ पटिशेनैव संगृह्य कुशपत्रेण बुद्धिमान्। स्रुते रक्ते व्रणे तस्मिन् दद्यात् सगुडमार्द्रकम् ॥ भोजनञ्चानभिष्यन्दि यूषः कौलत्थ इष्यते ॥ १२ ॥

जीभ के नीचे बगल में १२ शिराएँ कही गई हैं, उनमें से दो शिराएँ मोटी हैं, उनको बडिश यन्त्र से पकडकर कुशपत्र यन्त्र से धीरे-धीरे नीचे से काट दे। जब घाव से खून निकल जाय तब गुड़ और अदरख का उस पर लेप कर दे। अनभिष्यन्दी (जो कफकारी न हों) पदार्थों का तथा कुलथी के यूष का भोजन करे ॥ १११२ ॥

कर्णयुग्मबहिःसन्धिमध्याभ्यासे स्थितञ्च यत्। उपर्युपरि तच्छिन्धाद् गलगण्डे शिरात्रयम् ॥ १३ ॥

दोनों कानों की बाहरी सन्धि के पास ऊपर नीचे तीन शिराएँ हैं। उनका छेदने करने से भी गलगण्ड शान्त होता है ॥ १३ ॥

तुम्बीतैल।

विडङ्गक्षारसिन्धूत्थरास्नाग्निव्योपदारुभिः। कटुतुम्बीफलरसे कटुतैलं विपाचितम् ॥ चिरोत्थमपि नस्येन गलगण्डं विनाशयेत् ॥ १४ ॥

कडुई तूँबी का रस ८ सेर, कडुआ तैल २ सेर। कल्क के लिए वायविडङ्ग, जवाखार, सेंधा-नमक, और देवदारु ये सब मिलित आध सेर ले, फिर विधिपूर्वक तैल सिद्ध कर नस्य लेने से बहुत पुराना गलगण्डरोग शान्त हो जाता है ॥ १४ ॥

अमृताद्यतैल।

तैलं पिबेच्चामृतवल्लिनिम्बहिंस्राभयावत्सकपिप्पलीभिः। सिद्धं बलाभ्यां च सदेवदारु हिताय नित्यं गलगण्डरोगी ॥ १५ ॥

गिलोय, नीम की छाल, दोनों हींस (रक्त और श्वेत पुष्प के भेद से)[1], कुडा की छाल पीपल, बला, अतिबला और देवदारु ये सब मिलित आध सेर कल्क के लिए ले। तिल-तैल २ सेर और पकार्थ जल ८ सेर। विधि से तैल सिद्ध करके सेवन करने से गलगण्ड नष्ट होता है ॥ १५ ॥

गण्डमाला की चिकित्सा।

काञ्चनारत्वचः क्वाथः शुण्ठी चूर्णेन संयुतः। माक्षिकाढ्यं सकृत्पीतः क्वाथो वरुणमूलजः ॥ गण्डमालां हरत्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १६ ॥

कचनार की छाल के क्वाथ में सोंठ का चूर्ण डालकर पीने से एवं बरना के मूल की छाल के क्वाथ में शहद डालकर पीने से बहुत दिन का पुराना गण्डमालारोग तुरन्त नष्ट होता है ॥ १६ ॥

पिष्टा ज्येष्ठाम्बुना[1] पीताःकाञ्चनारत्वचः शुभाः। विश्वभेषजसंयुक्ता गण्डमालापहाः पराः ॥ १७ ॥

कचनार की छाल को चावलों के धोवन के साथ पीसकर उसमें सोंठ का चूर्ण मिलाकर पान करने से गण्डमाला नष्ट होती है ॥ १७ ॥

काञ्चनगुटिका।

त्रिफलायास्त्रयो भागा व्योषाच्च द्विगुणो मतः। तस्माच्च द्विगुणं ज्ञेयं काञ्चनारस्य वल्कलम् ॥ १८ ॥ एकीकृते तु चूर्णेऽस्मिन् समो देयोऽथ गुग्गुलुः। क्षौद्रं दशगुणं दद्यात् त्रिफलाचूर्णतो भिषक् ॥ १९ ॥ सर्वासु गण्डमालासु गलगण्डे

1. हिंस्र-कण्टकपाली सा च रक्तश्वेतपुष्पभेदेन द्विधा। हिन्दी में हींस कहते हैं।

1 ज्येष्ठाम्बु-तण्डुलोदकम्। शालितण्डुलपानीयं ज्ञेयं ज्येष्ठाम्बुसञ्ज्ञितम्। इत्यभिधानात्, तन्निर्माणविधि-यथा-कुट्टितं तण्डुलपलं जलेऽष्टगुणिते क्षिपेत्। भावयित्वा जलं ग्राह्यं देयं सर्वेषु कर्मसु ॥

शालिधान के चावलों के धोवन को ज्येष्ठाम्बु या तण्डुलोदक कहते हैं। इसके बनाने की विधि यह है ४ तोले चावलों को ३२ तोले जल में भिगो दे थोड़ी देर के बाद छानकर जल को ले ले। यह जल सब कामों में देने योग्य है ॥

गलगण्ड में लेप।

तण्डुलोदकपिष्टेन मूलेन परिलेपितः। हस्तकर्णपलाशस्य गलगण्डः प्रशाम्यति ॥ २ ॥

एरण्ड की जड़ को चावल के पानी से पीसकर लेप करने से गलगण्डरोग शान्त होता है ॥ २ ॥

सर्षपादि प्रलेप

सर्षपान् शिग्रु बीजानि शणबीजातसीयवान्। मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पेषयेत् ॥ ३ ॥ गलगण्डा ग्रन्थयश्च गण्डमालाः सुदारुणाः। प्रलेपात् तेन शाम्यन्ति विलयं यान्ति चाचिरात् ॥ ४ ॥

सरसों, सहिजने के बीज, सन के बीज, अलसी, जौ और मूली के बीजों को खट्टी छाछ में पीसकर लेप करने से गलगण्ड, ग्रन्थि और कठिन गण्डमाला शान्त होकर शीघ्र ही विनष्ट हो जाती है ॥ ३-४ ॥

गलगण्ड में नस्य।

जीर्णकर्कारुकरसो विडसैन्धवसंयुतः। नस्येन हन्ति तरुणं गलगण्डं न संशयः ॥ ५ ॥

पके हुए पेठे (कुम्हड़े) के रस में विड और सेंधानमक मिलाकर नास लेने (सूँघने) से नया गलगण्डरोग नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

जलकुम्भीकजं भस्म पक्वं गोमूत्रगालितम्। पिबेत् कोद्रवभक्ताशी गलगण्डप्रशान्तये ॥ ६ ॥

जलकुम्भीक (काई) की भस्म को गोमूत्र में पकाकर छान के और योग्य मात्रा में इसको पीवे तथा कोदों का भात खावे तो गलगण्डरोग शान्त हो ॥ ६ ॥

सूर्यावर्तरसोनाभ्यां गलगण्डोपनाहने। स्फोटस्रावैः शमं यान्ति गलगण्डो न संशयः ॥ ७ ॥

सूरजमुखी और लहसुन की पुलटिस बाँधने से गलगण्ड के फोड़े फूट जाते हैं और पीब बह जाता है। इससे गलगण्ड शान्त हो जाता है ॥ ७ ॥

तिक्तालाबुफले पक्वे सप्ताहमुषितं जलम्। मद्यं वा गलगण्डघ्नं पानात् पथ्याम्लसेविनः ॥ ८ ॥

पकी हुई कड़ुई तूँबी में सात दिन तक रक्खे हुए जल के अथवा मदिरा के पीने से तथा पथ्य और अम्ल पदार्थों के सेवन करने से गलगण्डरोग शान्त होता है ॥ ८ ॥

कट्फलचूर्णान्तर्गलघर्षो गलगण्डामयं हन्ति। घृतमिश्रं पीतमपि श्वेतगिरिकर्णिकामूलम् ॥ ९ ॥

कायफल के चूर्ण को गले में घिसने से गलगण्डरोग नष्ट होता है। तथा सफ़ेद विष्णुकान्ता (कोयली) की जड़ के चूर्ण में घी मिलाकर पीने से भी गलगण्ड शान्त हो जाता है ॥ ९ ॥

महिषीमूत्रविमिश्रं लौहमलं संस्थितं घटे मासम्। अन्तर्धूमविदग्धं लिह्यात् मधुनाथ गलगण्डे ॥ १० ॥

मण्डूर को भैंस के मूत्र में भिगोकर एक महीने तक मिट्टी के घड़े में रक्खे, फिर उसकी अन्तर्धूमभस्म करके शहद के साथ चाटे, तो गलगण्ड शान्त हो ॥ १० ॥

जिह्वायाः पार्श्वतोधस्ताच्छिरा द्वादश कीर्तिताः। तासां स्थूलशिरे द्वे ऽधश्छिन्द्याच्च च शनैः शनैः ॥ ११ ॥ बडिशेनैव संगृह्य कुशपत्रेण बुद्धिमान्। श्रुते रक्ते व्रणे तस्मिन् दद्यात् मरिचमार्द्रकम् ॥ भोजनश्चानभिष्यन्दि यूषः कौलत्थ इष्यते ॥ १२ ॥

जीभ के नीचे बगल में १२ शिराएँ कही गई हैं, उनमें से दो शिराएँ मोटी हैं, उनको बडिश यन्त्र से पकड़कर कुशपत्र यन्त्र से धीरे-धीरे नीचे से काट दे। जब घाव से खून निकल जाय तब गुड और अदरख का उस पर लेप कर दे। अनभिष्यन्दी (जो कफकारी न हों) पदार्थों का तथा कुलथी के यूष का भोजन करे ॥ ११-१२ ॥

कर्णयुग्मबहिःसन्धिमध्याभ्यासे स्थितञ्च यत्। उपर्युपरि तच्छिन्द्याद् गलगण्डे शिरात्रयम् ॥ १३ ॥

दोनों कानों की बाहरी सन्धि के पास ऊपर नीचे तीन शिराएँ हैं। उनका छेदने करने से भी गलगण्ड शान्त होता है ॥ १३ ॥

तुम्बीतैल।

विडङ्गक्षारसिन्धूत्थरास्नाग्निव्योषदारुभिः। कटुतुम्बीफलरसे कटुतैलं विपाचितम् ॥ चिरोत्थमपि नस्येन गलगण्डं विनाशयेत् ॥ १४ ॥

कडुई तूँबी का रस ८ सेर, कडुआ तैल २ सेर। कल्क के लिए वायविडङ्ग, जवाखार, सेंधानमक, और देवदारु ये सब मिलित आध सेर ले, फिर विधिपूर्वक तैल सिद्ध कर नस्य लेने से बहुत पुराना गलगण्डरोग शान्त हो जाता है ॥ १४ ॥

अमृताद्यतैल।

तैलं पिबेच्चामृतवल्लिनिम्बहिंस्राभयावृक्षकपिप्पलीभिः। सिद्धं बलाभ्यां च सदेवदारु हिताय नित्यं गलगण्डरोगी ॥ १५ ॥

गिलोय, नीम की छाल, दोनों हींस (रक्त और श्वेत पुष्प के भेद से), कुड़ा की छाल पीपल, बला, अतिबला और देवदारु ये सब मिलित आध सेर कल्क के लिए ले। तिलतैल २ सेर और पकाने जल ८ सेर। विधि से तैल सिद्ध करके सेवन करने से गलगण्ड नष्ट होता है ॥ १५ ॥

गण्डमाला की चिकित्सा।

काञ्चनारत्वचः क्वाथः शुण्ठीचूर्णेन संयुतः। माक्षिकाढ्यं सकृत्पीतः क्वाथो वरुणमूलजः ॥ गण्डमालां हरत्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १६ ॥

कचनार की छाल के क्वाथ में सोंठ का चूर्ण डालकर पीने से एवं वरना के मूल की छाल के क्वाथ में शहद डालकर पीने से बहुत दिन का पुराना गण्डमालारोग तुरन्त नष्ट होता है ॥ १६ ॥

पिष्ट्वा ज्येष्ठाम्बुना[1] पीताःकाञ्चनारत्वचः शुभाः। विश्वभेषजसंयुक्ता गण्डमालापहाः पराः ॥ १७ ॥

कचनार की छाल को चावलों के धोवन के साथ पीसकर उसमें सोंठ का चूर्ण मिलाकर पान करने से गण्डमाला नष्ट होती है ॥ १७ ॥

काञ्चनगुटिका।

त्रिफलायास्त्रयो भागा व्योषाच्च द्विगुणो मतः। तस्माच्च द्विगुणं ज्ञेयं काञ्चनारस्य वल्कलम् ॥ १८ ॥ एकीकृते तु चूर्णेऽस्मिन् समो देयोऽथ गुग्गुलुः। क्षौद्रं दशगुणं दद्यात् त्रिफलाचूर्णतो भिषक् ॥ १९ ॥ सर्वासु गण्डमालासु गलगण्डे

---

१. हिंस-कण्टकपाली सा च रक्तश्वेतपुष्पभेदेन द्विधा। हिन्दी में हींस कहते हैं।

[1] ज्येष्ठाम्बु तण्डुलोदकम्। शालितण्डुलपानीयं ज्ञेयं ज्येष्ठाम्बुसञ्ज्ञितम्। इत्यभिधानात्, तन्निर्माणविधि यथा-कुट्टितं तण्डुलपलं जलेऽष्टगुणिते क्षिपेत्। भावयित्वा जलं ग्राह्यं देयं सर्वेषु कर्मसु ॥

शालिधान के चावलों के धोवन को ज्येष्ठाम्बु या तण्डुलोदक कहते हैं। इसके बनाने की विधि यह है ४ तोले चावलों को ३२ तोले जल में भिगो दे थोड़ी देर के बाद छानकर जल को ले ले। यह जल सब कामों में देने योग्य है ॥

तथैव च। नाडीव्रणेषु गण्डेषु गुडिकेयं प्रशस्यते ॥ २० ॥

त्रिफला ३ भाग, त्रिकटु ६ भाग, कचनार की छाल १० भाग और सब के बराबर शुद्ध गुग्गुलु लेकर सबका चूर्ण करे और त्रिफला से दशगुना अर्थात् ३० भाग शहद मिलाकर गोली बनावे। यह गोली गण्डमाला, गलगण्ड, नाडीव्रण (नासूर) और गण्डरोगों में श्रेष्ठ है ॥ १८-२० ॥

गण्डमाला कंडनरस।

कर्षं शुद्धस्य सूतस्य गन्धकं त्वर्धमुत्तमम्। सार्धाकर्षं ताम्रभस्म मृतं किट्टं त्रिकर्षकम् ॥२१॥ व्योषंवट्कर्षं तुलितमर्धं सैन्धवं सितम्। कश्चिनारत्वचञ्चूर्णं पलत्रयमितं क्षिपेत् ॥ २२ ॥ पलत्रयं गुग्गुलोश्च शुद्धस्य समुपाहरेत्। एतद्युकत्वातु सम्मेल्य सुरभी सर्पिषादृढम् २३ गण्डमाला कण्डनोऽयं रसो माषत्रयात्मकः मुक्तो निहन्ति गण्डानिगण्डमालाश्च दारुणम् ॥ २४ ॥

शुद्धपारा १ तोला शुद्ध गन्धक आधा तोला ताम्रभस्म २ रत्ती १॥ तोलामण्डूर भस्म ३ तोला त्रिकुटा ६ तोला सफेद सेंधा नमक आधा तोला कचनार की छाल का चूर्ण १२ तोला उत्तमगुग्गुल १२ तोला सबको ले ऊखल में थोड़ा गाय का घी का हाथ फेर कर पहिले गुग्गुल को कुटावे जब गुग्गुल पतला हो जाय तब धीरे धीरे चूर्ण को डालता जाय जब सब बिलकुल मिलजाय तब ३।३ माशे की गोलियां बना लेवे। इसको कचनार और वरुणादिगण के क्वाथ के साथ देने से गलगण्ड गण्डमाला और अपची का नाश करता है ॥ २१-२४ ॥

सिन्दूरादि तैल।

चक्रमर्दकमूलस्य कल्कं कृत्वा विपाचयेत्। केशराजरसे तैलं कटुकं मृदुनाग्निना ॥ २५ ॥ पाकशेषे विनिक्षिप्य सिन्दूरमवतारयेत्। एतत्तैलं निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ २६ ॥

कल्क के लिए चक्रमर्द (पवाँड) की जड़ पाव भर, भँगरे का रस ८ सेर और कडुवा तैल। २ सेर लेकर यथाविधि मन्दाग्नि से पाक करे जब तैलमात्र रह जावे तब १६ तोले सिन्दूर डालकर उतार ले। इस तैल के लगाने से कठिन से कठिन गण्डमाला नष्ट होती है ॥ २५-२६ ॥

आरग्वधशिफां क्षिप्रं पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा। सम्यङ्नस्यप्रलेपाभ्यां गण्डमालां समुद्धरेत् ॥ २७ ॥

अमलतास की जड़ को चावलों के पानी में पीसकर नस्य लेने और लेप करने से गण्डमाला नष्ट होती है ॥ २७ ॥

गण्डमालामयार्त्तानां नस्यकर्मणि योजयेत्। निर्गुण्ड्यास्तु शिफां सम्यग्वारिणा परिपेषिताम् ॥ २८ ॥

गण्डमालारोग से पीड़ित मनुष्य को नस्य के लिए निर्गुण्डी (सँभालू) की जड़ जल में खूब महीन पीसकर देवे ॥ २८ ॥

कोषातकीनां स्वरसेन नस्यं तुम्ब्यास्तु वा पिप्पलिसंयुतेन। तैलेन वारिष्टभवेन कुर्याद् गजोपकुल्येन समाक्षिकेण ॥२९॥

कडुई तोरई के रस का नस्य लेने से या तूँबी के रस में पीपल का चूर्ण मिलाकर नस्य लेने से अथवा नीम के तैल का नस्य लेने से या गजपीपल के चूर्ण में शहद मिलकर नस्य लेने से पुरानी गण्डमाला शान्त होती है ॥ २९ ॥

ऐन्द्रया वा गिरिकर्ण्या वा मूलं गोमूत्रयोगतः। गण्डमालां हरेत् पीतं चिरकालोत्थितामपि ॥ ३० ॥

इन्द्रायण की जड़ या श्वेत कोयली (विष्णुकान्ता) की जड़ को गोमूत्र के साथ पीने

से बहुत दिन की उत्पन्न हुई गण्डमाला नष्ट होती है ॥ ३० ॥

अलम्बुपादलोद्भूतं स्वरसं द्विपलं पिबेत्। अपच्या गण्डमालायाः कामलायाश्च नाशनम् ॥ ३१ ॥

गोरखमुण्डी के पत्तों का आठ तोले रस पीने से अपची, गण्डमाला और कामला का नाश होता है ॥ ३१ ॥

गलगण्डं गण्डमालां कुरण्डञ्च विनाशयेत्। पिष्टं ज्येष्ठाम्बुना लेपात् मूलं ब्राह्मणयष्टिजम् ॥ ३२ ॥

भारगी की जड़ को चावलों के धोवन में पीसकर लेप करने से गलगण्ड, गण्डमाला और कुरण्डरोग का नाश होता है ॥ ३२ ॥

छुच्छुन्दरी तैल।

छुछुन्दर्या विपक्वञ्च तणार्त्तैलवरं ध्रुवम्। अभ्यङ्गान्नाशयेत् क्षिप्रं गण्ड माला सुदारुणाम् ॥ ३३ ॥

छुच्छुन्दर्याः कल्के जलं चतुर्गुणम्। अस्य प्राधान्यात् 'क्वाथकल्कौ' इति चक्रः।

कल्क के लिये छछूँदर का मास आध सेर, क्वाथ के लिये उसी का मास आध सेर, पाकार्थ जल ८ सेर। यथाविधि तैल सिद्ध करे। इस तैल की मालिश करने से कठिन से कठिन गण्डमाला शीघ्र ही नष्ट होती है ॥ ३३ ॥

चक्रदत्त के मत से छछूँदर के मास के क्वाथ और कल्क दोनों में तैल पकाना चाहिए।

शाखोटक तैल।

गण्डमालापहं तैलं सिद्धं शाखोटकत्वचा।

शाखोटकत्वचा क्वाथकल्काभ्यामिति गदाधरः। कल्कमानेण जलञ्च चतुर्गुणमित्यन्ये।

सिहोरा की छाल के क्वाथ और कल्क से सिद्ध किया हुआ तैल गण्डमाला को नष्ट करता है।

गदाधर के मत से सिहोरा कल्क और क्वाथ दोनों में तैल पकावे। यदि केवल कल्क ही से तैल सिद्ध करना हो, तो जल चौगुना लेवे।

बिम्ब्यादि तैल।

बिम्बाश्वमारनिर्गुण्डीसाधितं वापि नावनम् ॥ ३४ ॥

कुन्दुरु, कनेर और सँभालू के कल्क और क्वाथ से सिद्ध किये हुए तैल का नस्य लेने से गण्डमाला नष्ट होती है ॥ ३० ॥

निर्गुण्डी तैल।

निर्गुण्डीस्वरसे वाथ लाङ्गलीमूलकल्कितम्। तैलं नस्यान्निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ ३५ ॥

सँभालू के स्वरस और कलिहारी की जड़ के कल्क में तैल सिद्ध करके नस्य लेने से कठिन से कठिन गण्डमाला शीघ्र नष्ट होती है ॥ ३१ ॥

अपचीचिकित्सा।

वनकार्पासिकामूलं तण्डुलैः सह योजितम्। पक्त्वापूपलिकाः खादेदपचीनाशनाय तु ॥ ३६ ॥

वनकपास की जड़ १ भाग और चावल ३ भाग मिश्रितकर पूआ बनाकर और पकाकर खावे, तो अपचीरोग शान्त हो ॥ ३६ ॥

शोभाञ्जनादि लेप।

शोभाञ्जनं देवदारु काञ्जिकेन तु पेषितम्। कोष्णं प्रलेपतो हन्यादपचीमतिदुस्तराम् ॥ ३७ ॥

सहिजन की जड़ और देवदारु को काँजी में पीसकर गुनगुना करके लेप करने से उग्र अपचीरोग नष्ट होता है ॥ ३७ ॥

सर्षपादि लेप

सर्षपारिष्टपत्राणि दग्ध्वा भल्लातकैः सह। छागमूत्रेण संपिष्टमपचीघ्नं प्रलेपनम्॥ ३८॥

सरसों, नीम के पत्ते और भिलावा इन सबकी भस्म कर बकरी के मूत्र में पीसकर लेप करे, तो अपचीरोग नष्ट हो॥ ३८॥

अपचीहर लेप।

अश्वत्थकाष्ठं निचुलं गवां दन्तं च दाहयेत्। वराहमज्जसंयुक्तं भस्महन्त्यपचीव्रणान्॥ ३९॥

पीपल की लकड़ी, समुद्रफल और गौ के दाँत इन सबको भस्म करके सूअर की चर्बी में मिलाकर लेप करने से अपची के घाव नष्ट होते हैं॥ ३९॥

दण्डोत्पलभवं मूलं बद्धं पुष्येऽपचीं जयेत्। अपामार्गस्य वा छिन्द्यात् जिह्वातलगते शिरे॥ ४०॥

सहदेवी की जड़ अथवा अपामार्ग की जड़ को पुष्य नक्षत्र में अपची पर बाँधे, तो अपची अच्छी हो। अथवा जीभ के नीचे की दोनों शिराओं का छेदन करने से अपचीरोग शान्त हो जाता है॥ ४०॥

व्योषाद्य तैल।

व्योषं विडङ्गं मधुकं सैन्धवं देवदारु च। तैलमेभिः शृतं नस्यात् कृच्छ्रामप्यपचीं जयेत्॥ ४१॥

कल्क के लिये त्रिकटु, विडंग, मुलेठी, सेंधानमक और देवदारु ये सब आधा सेर, तैल २ सेर, पाकार्थ जल ८ सेर। यथाविधि तैल सिद्ध करके नस्य लेने से कृच्छ्रसाध्य भी अपचीरोग नष्ट होता है॥ ४१॥

चन्दनाद्य तैल।

चन्दनं साभया लाक्षा वचा कटुकरोहिणी। एभिस्तैलं शृतं पीतं समूलामपचीं जयेत्॥ ४२॥

कल्क के लिए लाल चन्दन, हड़, पीपल की लाख, वच और कुटकी ये सब आध सेर, तैल २ सेर, पाकार्थ जल ८ सेर। यथाविधि तैल सिद्ध करके पीने से अपचीरोग जड़ से नष्ट हो जाता है॥ ४२॥

गुञ्जाद्य तैल।

गुञ्जाहयारिश्यामार्कसर्षपैर्मूत्रसाधितम्। तैलं तु दशधा पश्चात् कणालवणपञ्चकैः॥ ४३॥ मरिचैश्चूर्णितैर्युक्तं सर्वावस्थागतां जयेत्। अभ्यङ्गादपचीं नाडीं वल्मीकार्शोऽर्बुदव्रणान्॥ ४४॥

घुँघुची की जड़, कनेर की जड़, काली निसोथ, मदार और सरसों ये सब आध सेर। तैल २ सेर, गोमूत्र ८ सेर। इनसे दश बार सिद्ध किये हुए तैल में पीपल, पाँचों नमक और कालीमिर्च का चूर्ण डालकर मालिश करे तो अपची, नासूर, वल्मीक, बवासीर, अर्बुद और व्रण ये सब रोग नष्ट होते हैं॥ ४३--४४॥

ग्रन्थिचिकित्सा।

ग्रन्थिष्वामेषु कुर्वीत भिषक् शोथप्रतिक्रियाम्। पक्वानुत्पाट्य संशोध्य रोपयेद् व्रणभेषजैः॥ ४५॥

जब तक ग्रन्थि (गाँठ) न पके तब तक शोथ के समान यत्न करे। जब गाँठ पक जाय तब चीरा लगाकर मवाद निकाल दे, फिर घाव भरने की औषध करे॥ ४५॥

वातग्रन्थि में हिंस्रादि लेप।

हिंस्रा सरोहिण्यमृता तथैव श्योनाकबिल्वागुरुकृष्णगन्धाः। गोपित्तपिष्टाः सह तालपर्ण्या ग्रन्थौ विधेयोऽनिलजे प्रलेपः॥ ४६॥

हैंस, कुटकी, गिलोय, श्योनाक (सोनापाठा), बेल की छाल, काली अगर, सहिजन की छाल और काली मूसली इनको गोपित्त में पीसकर

गाँठ पर लेप करने से वायु से उत्पन्न हुआ ग्रन्थिरोग शान्त होता है ॥ ४६ ॥

पित्तग्रन्थिचिकित्सा।

जलायुकाः पित्तकृते हितास्तु क्षीरोदकाभ्यां परिषेचनं च। काकोलवर्गस्य तु शीतलानि पिबेत् कषायाणि सशर्कराणि ॥ ४७ ॥

पित्तज ग्रन्थिरोग में जोंक का प्रयोग तथा जलमिश्रित दूध का परिषेक और शक्कर मिला हुआ काकोलीवर्ग का काढ़ा ठंढा करके पीना हितकर है ॥ ४७ ॥

द्राक्षारसेनेक्षुरसेन वापि चूर्णं पिबेद्वापि हरीतकीनाम्। मधूकजम्ब्वर्जुनवेतसानां त्वग्भिः प्रदेहानवतारयेच्च ॥ ४८ ॥

मुनक्का के अथवा ईख (गन्ने) के रस में हर्रों का चूर्ण मिलाकर पीना पित्तज ग्रन्थिरोग में लाभदायक है। महुआ, जामुन, अर्जुन और बेत की छाल का लेप करना चाहिए ॥ ४८ ॥

श्लैष्मिकग्रन्थिचिकित्सा।

हृतेषु दोषेषु यथानुपूर्व्या ग्रन्थौ भिषक् श्लेष्मसमुद्भवे तु। विकङ्कतारग्वधकाकणन्तीकाकादनीतापसवृक्षमूलैः ॥ ४९ ॥ आलेपयेदेनमलाबुभार्गीकरञ्जकालामदनैश्च विद्वान् ॥ ५० ॥

कफज ग्रन्थिरोग में वमन, स्वेदन, आदि क्रिया द्वारा दोषों के दूर होने पर कटाई, अमलतास, घुंघुची, कौआठोडी और इंगुदी की जड़ का तथा कड़वी तुम्बी, भारंगी, करंज, नील और मैनफल का लेप करने से ग्रन्थिरोग शान्त होता है ॥ ४९-५० ॥

दन्ती चित्रकमूलत्वक् सौधार्कपयसी गुडः। भल्लातकास्थिकासीसं लेपात् छिन्द्याच्छिलामपि ॥ ५१ ॥

जमालगोटा और चीत की जड़ की छाल, थूहर का दूध, मदार (आक) का दूध, गुड़, भिलावाँ की गिरी और हीराकसीस, इसका लेप करने से पत्थर भी फट जाता है। ग्रन्थि का तो कहना ही क्या है ? ॥ ५१ ॥

ग्रन्थ्यर्बुदादिजिल्लेपो मातृवाहककीटजः। सर्जिकामूलकक्षारः शङ्खचूर्णसमन्वितः। प्रलेपो विहितस्तीक्ष्णो हन्ति ग्रन्थ्यर्बुदादिकान् ॥ ५२ ॥

मातृवाहक कीड़े (केशों के कीड़े) का लेप करने से ग्रन्थि और अर्बुद आदि अच्छे हो जाते हैं तथा सज्जीखार और मूली का खार और शंख का चूर्ण इन सबको मिलाकर लेप करने से ग्रन्थि और अर्बुद आदिक नष्ट होते हैं। यह लेप बहुत तेज है ॥ ५२ ॥

ग्रन्थीनमर्मप्रभवानपक्वान् उद्धृत्य चाग्निं विदधीत वैद्यः। क्षारेण चैतान् प्रतिसारयेत्तु सर्वांश्च संलिख्य यथोपदेशम् ॥ ५३ ॥

जो ग्रन्थिरोग मर्मस्थान में न हो और पका भी न हो, उसको अग्निकर्म द्वारा निकालकर शान्त करे अथवा शास्त्र के उपदेश द्वारा लेखनकर्म करके क्षार आदि लगाकर शान्त करे ॥ ५३ ॥

अर्बुदचिकित्सा।

ग्रन्थ्यर्बुदानाञ्च यतोऽविशेषः प्रदेशहेत्वाकृतिदोषदूष्यैः। ततश्चिकित्सेद्भिषगर्बुदानि विधानविद्ग्रन्थिचिकित्सितेन ५४

ग्रन्थि और अर्बुदरोग की उत्पत्ति का स्थान, कारण, लक्षण और दोष-दूष्य ये सब समान होने से विधान के जाननेवाले वैद्य को अर्बुद की चिकित्सा ग्रन्थि की चिकित्सा के समान करना चाहिए ॥ ५४ ॥

वातार्बुदचिकित्सा।

वातार्बुदे चाप्युपनाहनानि स्निग्धैश्च मांसस्य वेशवारैः। स्वेदं विदध्यात् कुशलस्तु नाड्या शृङ्गेण रक्तं बहुशो हरेच्च ॥ ५५ ॥

वातार्बुद में चिकने मांस और वेशवार द्वारा उपनाहन करे अर्थात् पुलटिस बाँधकर पकावे। नाड़ी द्वारा स्वेदन करे अथवा सींगी से रक्त निकलवावे ॥ ५५ ॥

पित्तार्बुदचिकित्सा ।

स्वेदोपनाहा मृदवश्च पथ्याः पित्तार्बुदे कायविरेचनञ्च । विघृष्य चोडुम्बरशाकगोजीपत्रैर्भृशं क्षौद्रयुतैः प्रलिम्पेत् ॥५६॥ श्लक्ष्णीकृतैः सर्जरसप्रियंगुपत्तङ्गलोध्राञ्जनयष्टिकाह्वैः ॥ ५७ ॥

पित्तार्बुद में स्वेदन, उपनाह, कोमल पथ्य और जुलाब हितकर है तथा अर्बुद को गूलर, सागवान और गोभी के पत्रों से खूब घिसकर राल, प्रियंगु फूल (मालकांगनी), लालचन्दन, लोध, रसौत और मुलेठी इनका महीन चूर्णकर शहद में मिलाकर लेप करना चाहिए ॥ ५६-५७ ॥

कफार्बुदनाशक लेप ।

लेपनं शङ्खचूर्णेन सहमूलकभस्मना । कफार्बुदापहं कुर्य्याद् ग्रन्थ्यादिषु विशेषतः ॥ ५८ ॥

शंख का चूर्ण और मूली की भस्म मिलाकर लेप करने से कफार्बुद और ग्रन्थिरोग नष्ट होते हैं ५८ ॥

निष्पावपिण्याककुलत्थकल्कैर्मांसप्रगाढैर्दधिमर्दितैस्तु । लेपं विदध्यात् कृमयो यथात्र मुञ्चन्त्यपत्यान्यथ मक्षिका वा ॥ ५९ ॥ अल्पावशिष्टं कृमिभिः प्रजग्धं लिखेत्ततोऽग्निं विदधीत पश्चात् यदल्पमूलं त्रपुताम्रसीसैः संवेष्ट्य पत्रैरथवाय सैर्वा ॥ ६० ॥ क्षाराग्निशस्त्राण्यवतारयेच्च मुहुर्मुहुः प्राणमवेक्षमाणः । यदृच्छया चोपगतानि पाकं पाकक्रमेणोपचरेद्यथोक्तम् ॥ ६१ ॥

सेम, तिल की खली, कुलथी इनके कल्क में मांस मिलाकर दही से पीसकर लेप करे जिससे कीड़े और मक्खियाँ अपने बच्चों को वहाँ छोड़ दें। जब वे कीड़े अर्बुद को खाने लगें और उनके खाने से थोड़ा सा बचे उस समय लेखन करके शलाका द्वारा दाह करना चाहिए। यदि अर्बुद छोटा हो तो राँगा, ताँबा, सीसा और लोह के पत्रों से वेष्टित करके क्षार, अग्नि अथवा शस्त्र का प्रयोग करे। परन्तु रोगी के बलाबल का अवश्य ध्यान रक्खे रहे। यदि अर्बुद अपनी इच्छा से ही पक जाय तो पके अनुसार ही चिकित्सा करना चाहिए ॥ ५९-६१ ॥

उपोदिका रसाभ्यक्तास्तत् पत्रपरिवेष्टिताः । प्रणश्यन्त्यचिरान्नृणां पिडिकार्बुदजातयः ॥ ६२ ॥

पोई शाक के रस की मालिश से और पोई शाक के पत्तों के बाँधने से मनुष्यों के चिरकाल से उत्पन्न हुआ पिडिका और अर्बुदरोग शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ ६२ ॥

उपोदिका काञ्जिकतक्रपिष्टा तयोपनाहो लवणेन मिश्रः । दृष्टोऽर्बुदानां प्रशमाय कैश्चिद्दिने दिने रात्रिषु मर्मजानाम् ॥ ६३ ॥

पोई के पत्तों को काँजी तथा मट्ठे (छाछ) में पीसकर और उसमें सेंधानमक मिलाकर प्रतिदिन रात्रि में गरम करके बाँधने से मर्मगत अर्बुदरोग का नाश होता है ॥ ६३ ॥

लेपोऽर्बुदजिद्रम्भामोचकभस्मतुषशङ्खचूर्णकृतः । सरटरुधिरार्द्रगन्धकयवाग्रजविडङ्गनागरैर्वाथ ॥ ६४ ॥

केला की भस्म, मेथा का छिलका और शंख का चूर्ण इनका लेप करने से अर्बुद रोग शान्त होता है। अथवा गिरगिट (इकलास, किलर्राट) के रक्त में गन्धक, जवाखार, विडंग और सोंठ का चूर्ण मिलाकर लेप करने से अर्बुद शान्त होता है ॥ ६४ ॥

स्नुह्यादिस्वेद।

स्नुहीगण्डीरिकास्वेदो नाशयेदर्बुदानि च। सीसकेनाथ लवणैः पिण्डारकफलेन च ॥ ६५ ॥

थूहर की डंडी का स्वेद अर्बुद को नष्ट करता है अथवा सीसा, नमक या पिण्डारक फल (कटाई के फल) की पोटली द्वारा स्वेदन कराने से अर्बुदरोग नष्ट होता है ॥ ६५ ॥

मेदोऽर्बुद तथा शर्करार्बुदचिकित्सा।

हरिद्रालोध्रपत्तङ्गगृहधूममनःशिलाः। मधुप्रगाढो लेपोऽयं मेदोऽर्बुदहरः परः। एतामेव क्रियां कुर्य्यादशेषां शर्करार्बुदे ॥ ६६ ॥

हल्दी, लोध, लालचन्दन, गृहधूम और मैनशिल इनको शहद में मिलाकर लेप करने से मेदा तथा अर्बुदरोग नष्ट होता है। यही संपूर्ण क्रियाएँ शर्करार्बुद में भी करनी चाहिए ॥ ६६ ॥

काञ्चनार गुग्गुलु।

काञ्चनारस्य गृह्णीयात् त्वचां पञ्चपलोन्मिताम्। नागरस्य कणायाश्च मरिचस्य पलं पलम् ॥ ६७ ॥ पथ्याविभीतधात्रीणां पलमर्धं पृथक् पृथक्। वरुणस्याक्षमेकञ्च पत्रैलात्वचां पुनः ॥ ६८ ॥ टङ्कं टङ्कं समादाय सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत्। यावच्चूर्णमिदं सर्वं तावानेवात्र गुग्गुलुः ॥ ६९ ॥ सङ्कुट्य सर्वमेकत्र पिण्डं कृत्वा विधारयेत्। गुटिका माषिकाः कृत्वा प्रभाते भक्षयेन्नर ॥ ७० ॥ गलगण्डं जयत्युग्रमपचीमर्बुदानि च। ग्रन्थीन् व्रणानि गुल्मांश्च कुष्ठानि च भगन्दरम् ॥ ७१ ॥ मदेयश्चानुपानार्थं क्वाथो मुण्डितिकाभवः। क्वाथः खदिरसारस्य क्वाथः कोष्णोऽभयाभवः ॥ ७२ ॥

कचनार की छाल २० तोले; सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, हरएक चार-चार तोले; हड़, बहेड़ा, आँवला, हरएक दो-दो तोले; वरना की छाल २ तोले; तेजपात, छोटी इलायची, दारचीनी, हरएक आधा-आधा तोला। सम्पूर्ण चूर्ण के समान शुद्ध गूगुल। इन्हें इकट्ठा कर कूटकर मिलावे और एक-एक माशे की गोलियाँ बना प्रतिदिन प्रातः सेवन करे। इसके सेवन से गलगण्ड, अपची, अर्बुद, ग्रन्थि, व्रण- गुल्म, कुष्ठ, भगन्दर आदि रोग नष्ट होते हैं। अनुपान—गोरखमुण्डी का क्वाथ अथवा खदिरकाष्ठ का क्वाथ या गुनगुना हड़ का क्वाथ ॥ ६७-७२ ॥

पार्ष्णिं प्रति द्वादश चांगुलानि भित्त्वेन्द्रबस्तिं परिवर्ज्य सम्यक्। विदार्य मत्स्याण्डनिभानि वैद्यो निष्पिष्य जालान्यनलं विदध्यात् ॥ ७३ ॥

पार्ष्णि से १२ अंगुल ऊपर मापकर इन्द्रबस्ति नामक मर्म को बचाकर अपची को विदीर्ण करना चाहिए। तत्पश्चात् मछली के अण्डों के समान जाल को निकालकर उस स्थल पर अग्नि से जलाना चाहिए ॥ ७३ ॥

मणिबन्धोपरिष्टाद्वा कुर्याद्रेखात्रयं भिषक्। अंगुलान्तरितं सम्यगपचीनां प्रशान्तये ॥ ७४ ॥

कक्षागत अपची में मणिबन्ध (कलाई) से एक अथवा दो अंगुल ऊपर तप्त शलाका से तीन रेखाएँ बनानी चाहिए ॥ ७४ ॥

गलगण्डादि में पथ्य।

पौराणघृतपानञ्च जीर्णा लोहितशालयः। यवा मुद्गाः पटोलाश्च रक्तशिग्रु कठिल्लकम् ॥ ७५ ॥ शालिञ्च शाकं वेत्राग्रं रूक्षाणि च कटूनि च। दीपनानि च सर्वाणि गुग्गुलुश्च शिलाजतु ॥ ७६ ॥ गलगण्डगण्डमाला-

पचीग्रन्थ्यर्बुदान्तरे। यथादोषं यथावस्थं पथ्यमेतत्प्रकीर्त्तितम्॥ ७७॥

पुराने घृत का पान, पुराने लाल शालि चावल, जौ मूँग, परवल, लाल सहिंजना, करेला, शालिञ्च शाक, बेत की कोंपल, रूक्ष एवं चरपरे द्रव्य, सम्पूर्ण दीपन पदार्थ, गूगुल, शिलाजीत, ये गलगण्ड, गण्डमाला, अपची, ग्रन्थि तथा अर्बुद के रोगियों के दोष एवं अवस्था को देखकर प्रयोग कराने चाहिए॥ ७२-७७॥

अपथ्य।

क्षीरेक्षुविकृतीः सर्वाः मांसञ्चानूपसम्भवम्। पिष्टान्नमम्लं मधुरं गुर्वाभिष्यन्दकारि च॥ ७८॥ गलगण्डगण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदामयान्। चिकित्सन्नगदङ्कारो यशोऽर्थी परिवर्जयेत् ७९

इति भैषज्यरत्नावल्यां गलगण्डगण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदाधिकारः समाप्तः।

दूध तथा ईख से बने हुए सब पदार्थ, आनूपमांस, पीठी के भोज्य, द्रव, खटाई, मधुर द्रव्य इनका गलगण्ड, गण्डमाला, अपची, ग्रन्थि एवं अर्बुद के रोगियों की चिकित्सा करते हुए वैद्य को त्याग करवाना चाहिए॥ ७८-७९॥

इति श्रीपण्डितसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां गलगण्डगण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदाधिकारः समाप्तः।

अथ शीतपित्तोदर्दकोठाधिकारः।

उदर्दचिकित्सा।

अभ्यङ्गः कटुतैलेन सेकश्चोष्णाम्बुभिस्तथा। उदर्दे वमनं कार्य्यं पटोलारिष्टवारिणा॥ १॥

उदर्द रोग में कड़ुए तैल की मालिश और गर्म जल का सेंक तथा परवल और नीम के औटाये हुए पानी से वमन कराना हितकर है॥१॥

त्रिफलां क्षौद्रसंयुक्तां खादेच्च नवकार्षिकम्। विसर्पोक्तममृतादिं भिषगत्रापि योजयेत्॥ २॥

वैद्य को इस रोग में शहद के साथ त्रिफलाचूर्ण का सेवन एवं नवकार्षिक क्वाथ अथवा विसर्परोगोक्त अमृतादि क्वाथ के पीने की व्यवस्था देनी चाहिए॥ २॥

त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्चात्र शस्यते। विसर्पोक्तममृतादिं भिषगत्रप्रयोजयेत्॥ ३॥

त्रिफला, गुग्गुलु और पीपल के क्वाथ से दस्त कराना इस रोग में हितकर है। अथवा वैद्य को विसर्परोग में कहे अमृतादि क्वाथों का प्रयोग कराना चाहिए॥ ३॥

सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत् पथ्यान्नभुङ् नरः। तस्य नश्यति सप्ताहादुदर्दः सर्वदेहजः॥ ४॥

पथ्य सेवन करनेवाला मनुष्य अजवायन को गुड़ के साथ सेवन करे तो सात दिन में उसके सब शरीर का उदर्दरोग नष्ट हो जाता है॥ ४॥

शीतपित्तचिकित्सा।

दूर्वानिशायुतो लेपः कण्डूपामाविनाशनः। कृमिदद्रुहरश्चैव शीतपित्तापहः स्मृतः॥ क्षारसैन्धवतैलेन गात्राभ्यङ्गं प्रकारयेत्॥ ५॥

दूब और हल्दी को पीसकर लेप करने से खुजली, पामा, कृमिरोग, दाद और शीतपित्त नष्ट होते हैं। अथवा जवाखार और सेंधानमक मिलाकर तैल की मालिश करने से शीतपित्त नष्ट होता है॥ ५॥

यष्टीमधुरपुष्पं च सरासनं चन्दन-

द्वयम् । निर्गुण्डी सकणा क्वाथं शीतपित्तहरं पिबेत् ॥ ६ ॥

मुलहठी, महुए के फूल, रास्ना, सफेद चन्दन, लालचन्दन, सँभालू और पीपल इनका क्वाथ शीतपित्त के नाश के लिये पीना चाहिए ॥ ६ ॥

अमृता रजनी निम्बधन्वयासस्तथा मृतम् । प्राणिनां प्राणदं चैतच्छीतपित्ते समाचरेत् ॥ ७ ॥

गिलोय, हल्दी, नीम की छाल, धमासा इनके क्वाथ का शीतपित्त में प्रयोग कराने से अत्यन्त लाभ होता है ॥ ७ ॥

सिद्धार्थरजनीकुष्ठप्रपुन्नाडतिलैः सह । कटुतैलेन सम्मिश्रमेतदुद्वर्त्तनं हितम् ॥८॥

श्वेत सरसों, हल्दी, कूठ, पवाँड़ (चकवँड) के बीज, काले तिल, इनका चूर्ण इकट्ठाकर कडवे तेल में मिलाकर उबटन करना चाहिए ॥ ८ ॥

अग्निमन्थ भवं मूलं पिष्टं पीतञ्च सर्पिषा । शीतपित्तोदर्दकोठान् सप्ताहादेव नाशयेत् ॥ ९ ॥

अरणी की जड़ को पीसकर और घी में मिलाकर पीने से सात दिन में शीतपित्त, उदर्द और कोठरोग नाश होता है ॥ ९ ॥

कुष्ठोक्तञ्च क्रमं कुर्य्यादम्लपित्तघ्नमेव च । उदर्दोक्तां क्रियां चापि कोठरोगे समासतः । सर्पिः पीत्वा महातिक्तं कार्य्यं रक्तस्य मोक्षणम् ॥ १० ॥

कोठरोग में कुष्ठ रोगोक्त, उदर्दोक्त तथा अम्लपित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिए । अथवा महातिक्त घृत का पान करके रक्त निकलवाना (फ़स्द खुलवाना) चाहिए ॥ १० ॥

कर्षं गव्यघृतस्यापि कर्षार्द्धं मरिचस्य च । एकीकृत्य पिबेत् प्रातः शीतपित्तविनाशनम् ॥ ११ ॥

एक तोले गौ के घृत में आधा तोला (छः माशे) कालीमिर्च मिलाकर प्रातःकाल पीने से शीतपित्तरोग नाश होता है ॥ ११ ॥

आर्द्रकखण्ड ।

आर्द्रकं प्रस्थमेकं स्यात् गोघृतं कुडवद्वयम् । गोदुग्धं प्रस्थयुगलं तदर्द्धं शर्करा मता ॥ १२ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् । चित्रकञ्च विडङ्गञ्च मुस्तकं नागकेशरम् ॥१३॥ त्वगेलापत्रकर्पूरं प्रत्येकं पलमात्रकम् । विधाय पाकं विधिवत्खादेत्कोलार्द्धसम्मितम् ॥ १४ ॥ आर्द्रकखण्डनामायं प्रातर्भुक्तो व्यपोहति । शीतपित्तमुदर्दञ्च कोठमुत्कोठमेव च १५ यक्ष्माणं रक्तपित्तञ्च कासं श्वासमरोचकम् । वातगुल्ममुदावर्त्तं शोथं कण्डूकृमीनपि ॥ १६ ॥ दीपयेदुदरे वह्निं बलं वीर्यञ्च वर्धयेत् । वपुः पुष्टं प्रकुरुते तस्मात्सेव्यमिदं सदा ॥ १७ ॥

अच्छे प्रकार पीसी हुई अदरख १२८ तोले, गोघृत ३२ तोले, गोदुग्ध ३ सेर १६ तोले, खाँड़ १२८ तोले । प्रक्षेपार्थ—पीपल, पीपलामूल, कालीमिर्च, सोंठ, चित्रक, वायविडङ्ग, मोथा, नागकेशर, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, कपूर, हरएक चार-चार तोले, विधिपूर्वक पाक कर प्रातःकाल रोगी को सेवन करावे । मात्रा—आधा तोला । इसके सेवन से शीतपित्त, उदर्द, कोठ, उत्कोठ, राजयक्ष्मा, रक्तपित्त, खाँसी, श्वास, अरुचि, वातगुल्म, उदावर्त, शोथ, कण्डू और कृमिरोग नष्ट होते हैं । यह जठराग्नि को प्रदीप्त कर बल एवं वीर्य को बढ़ाता है, और शरीर को पुष्ट करता है ॥ १२–१७ ॥

श्लेष्मपित्तान्तक रस ।

मृतसूतार्कलौहञ्च वह्निगन्धञ्च टङ्कणम् । भूनिम्बेन्द्रयवौ रास्ना गुडूची पद्मकं

समम् ॥ १८ ॥ दिनं पर्पटकद्रावैर्मर्दितं वटकीकृतम् सिता क्षौद्रैर्लिहन्मांसैः श्लेष्मपित्तान्तकं रसम् ॥ १९ ॥ पथ्या कणा गुडं शुण्ठीं माषैकं भक्षयेदनु। कफ वातहरं खादेद्दाडिमं नागरं गुडम् ॥ २० ॥

रससिन्दूर, ताम्रभस्म, लौहभस्म, चित्रक, गन्धक, सुहागा, चिरायता, इन्द्रजौ, रास्ना, गिलोय और पद्माख इन्हें इकट्ठा कर बराबर मात्रा में मिला पित्तपापड़ा के रस से १ दिन घोटे और दो-दो रत्ती की गोली बनावे। खाँड़, शहद अथवा मांसरस के साथ इस गोली का सेवन कराना चाहिए। अनुपान--हड़, पीपल, गुड़ तथा सोंठ का मिला हुआ चूर्ण १ माशा कफवात के नाश के लिए अनारदाना, सोंठ और गुड़ एकत्र मिलाकर अनुपान रूप से प्रयुक्त कराना चाहिए॥ १८--२० ॥

वीरेश्वर रस।

मृतसूतार्कलौहञ्च तालगन्धककट्फलम्। मेषशृङ्गी वचा शुण्ठी भार्गी पथ्या च बालकम् ॥ २१ ॥ धन्याकं मर्दयेत्तुल्यं पटोलोत्थद्रवैर्दिनम्। गुञ्जाद्वयं लिहेत्क्षौद्रैः कफवाते प्रशान्तये॥ रसो वीरेश्वरो नाम उक्तो नागार्जुनेन च ॥ २२ ॥

रससिन्दूर, ताम्रभस्म, लौहभस्म, हड़ताल, गन्धक, कट्फल, मेढ़ासिंगी, बच, सोंठ, भारंगी, हड़, गन्धबाला, धनियाँ इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर पटोलपत्र के रस से १ दिन घोटे और दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। अनुपान-शहद। यह कफवात को शान्त करता है॥ २१--२२ ॥

स्पर्शवात के लक्षण।

अङ्गेषु तोदनं प्रायो देहस्पर्शं न विन्दति। मण्डलानि च दृश्यन्ते स्पर्शवातस्य लक्षणम् ॥ २३ ॥

स्पर्शवात नामक रोग में अङ्गों में सुई के चुभने के समान पीड़ा होती है। स्पर्शानुभव नहीं होता तथा शरीर पर चकत्ते दिखाई देते हैं॥ २३ ॥

रसादि गुटी।

अष्टभागो रसः शुद्धो विषतिन्दोर्दशैव तु। गन्धकस्य दश द्वौ त्रिकटुत्रिफलयोस्त्रयः ॥ २४ ॥ वह्निचित्रकमुस्तानां वचाश्वगन्धयोरपि। रेणुकाविषकुष्ठानां पिप्पलीमूलनागयोः ॥ २५ ॥ एकैकस्तु भवेद्भाग इति ग्राह्याः क्रमेण च। गुडश्चतुर्विंशतिः स्याद्वटी गुञ्जाद्वयोन्मिता। क्रमेण वानुसेवेत स्पर्शवातापनुत्तये ॥२६॥

शुद्ध पारा ८ भाग, शुद्ध कुचिला १० भाग, गन्धक १२ भाग, त्रिकटु (मिलित) ३ भाग, त्रिफला (मिलित) ३ भाग। शुद्ध भिलावाँ, चित्रक, मोथा, बच, असगन्ध, सँभालू के बीज, वत्सनाग, कूट, पिपलामूल, नागकेशर, प्रत्येक एक-एक भाग। गुड़ २४ भाग। इन्हें इकट्ठा कर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनाकर रोगी को स्पर्शवात के नष्ट करने के लिये सेवन करानी चाहिए॥ २४-२६ ॥

हरिद्राखण्ड।

हरिद्रायाः पलान्यष्टौ षट्पलं हविषस्तथा। क्षीराढकेन संयुक्तं खण्डस्यार्द्धशतं तथा ॥ २७ ॥ पचेत् मृद्वग्निना वैद्यो भाजने मृण्मये दृढे। त्रिकटु त्रिजातकञ्चैव कृमिघ्नं त्रिवृता तथा ॥ २८ ॥ त्रिफला केशरं मुस्तं लौहं प्रतिपलं पलम्। सञ्चूर्ण्य प्रक्षिपेत् तत्र कर्षार्द्धकं तु भक्षयेत् ॥ २९ ॥ कण्डूविस्फोटदद्रूणां नाशनं परमौषधम्। मतप्रत्याश्वनाभागो देहो भवति नान्यथा ॥ ३० ॥ शीतपित्तोदर्द-

कोठान् सप्ताहादेव नाशयेत् । हरिद्रा-नामतः खण्डः कण्डूनां परमौषधम् ॥ ३१ ॥

हल्दी ३२ तोले, गौ का घृत २४ तोले, गोदुग्ध ६ सेर ३२ तोले, खाँड २½ सेर, इन सबको मिट्टी के पात्र में मन्द-मन्द अग्नि से पकावे। जब पाक सिद्ध हो जाय तब सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, छोटी इलायची, तेज-पात, बायबिडंग, निसोथ, आँवला, हड़, बहेड़ा, चार-चार तोले पीसकर उसमें मिला दे। मात्रा ६ माशे। यह खुजली, विस्फोटक और दाद को नष्ट करने के लिये महौषध है तथा शरीर को सुवर्ण के समान कान्तिमान् करने के लिये यह सब औषधों से उत्तम है। एक सप्ताह सेवन करने से शीतपित्त, उदर्द और कोठ को नष्ट करता है। यह हरिद्राखण्ड खुजली की उत्तम औषध है ॥ २७-३१ ॥

बृहत् हरिद्राखण्ड।

निशाचूर्णस्य कुडवं त्रिवृत्पल-चतुष्टयम् । अभया तत्समं देयं सार्द्धप्रस्थ-द्वयं सिता ॥ ३२ ॥ दार्वी मुस्ता यमान्यौ द्वौ चित्रकं कटुरोहिणी । अजाजी पिप्पली शुण्ठी त्रिजातं कृमिकण्टकम् ॥ ३३ ॥ अमृता वासकं कुष्ठं त्रिफला चव्यधान्य-कम् । मृतलौहं मृताभ्रं च प्रत्येकं कोल-सम्मितम् ॥ ३४ ॥ पचेत् मृद्वग्निना वैद्यो भाजने मृण्मये नवे । कर्षार्द्धं च ततः खादेदुष्णतोयानुपानतः ॥ ३५ ॥ शीतपित्तोदर्दकोठकण्डूपामाविचर्चिकाम् । जीर्णज्वरं कृमिं पाण्डुशोथादींश्च विना-शयेत् ॥ ३६ ॥

हल्दी का चूर्ण १६ तोले, निसोथ १६ तोले, हड़ १६ तोले, खाँड २ सेर तथा दारुहल्दी, नागरमोथा, अजवायन, अजमोदा, चित्रक, कुटकी इलायची, तेजपात, बायबिडंग, गिलोय, अडूसा, कूट, त्रिफला, चव्य, धनियाँ, लोहभस्म, और अभ्रकभस्म ये सब आधा-आधा तोला लेकर इनको मिट्टी के नये पात्र में मन्द अग्नि द्वारा पकावे। ६० माशे की मात्रा में उष्ण जल के साथ सेवन करे। यह शीतपित्त, उदर्द, कोठ, खुजली, पामा, विचर्चिका, जीर्णज्वर, कृमिरोग, पाण्डुरोग और शोथ आदि को नष्ट करता है। इसके बनाने की विधि यह है कि पिसी हल्दी, निसोथ और शक्कर को ३ सेर १६ तोले जल में पकावे। जब गाढ़ा होने लगे तब दारुहल्दी आदि द्रव्य का प्रक्षेप देकर मिला दे ॥ ३२-३६ ॥

शीतपित्तादि रोगों में पथ्य।

शालिमुद्गकुलत्थांश्च कारवेल्लमुपोदि-काम् । वेत्राग्रं तप्तनीरञ्च श्लेष्मपित्तहराणि च ॥ ३७ ॥ कटुतिक्तकषायाणि सर्वा-णीति गणः सखा । शीतपित्तोदर्दकोठ-रोगिणां स्याद्यथामलम् ॥ ३८ ॥

शालिचावल, मूँग, कुलथी, करेला, पोई, बेत की कोंपल, गरम जल तथा कफपित्त को नष्ट करनेवाले द्रव्य, चरपरे, कड़वे एवं कषाय द्रव्य, ये शीतपित्त, उदर्द एवं कोठरोगियों के लिये यथादोष पथ्य हैं ॥ ३७-३८ ॥

अपथ्य।

क्षीरेक्षुजाता विविधा विकारा मत्स्यो-दकानूपभवामिषाणि । नवीनमद्यं वमि-वेगरोधः प्राग्दक्षिणाशा पवनोऽह्निनिद्रा ॥ ३९ ॥ स्नानं विरुद्धाशनमातपश्च स्निग्धं तथाम्लं मधुरं व्यवायः । गुर्वन्नपानानि च शीतपित्तकोठामयोदर्दवताविषाणि ४०

इति भैषज्यरत्नावल्यां शीतपित्तो-दर्दकोठाधिकारः समाप्तः

दूध एवं ईख के बने द्रव्य, मछली, जलीय जीवों का मांस, आनूपमांस, नवीन मद्य, वमन के वेग को रोकना, पूर्व और दक्षिण दिशा की वायु, दिन में सोना, स्नान, विरुद्ध भोजन, धूप द्रव्य, मैथुन, गुरु

अन्नपान, ये शीतपित्त, कोठ एवं उदर्द रोगियों के लिये विष के समान हानिकारक हैं ॥ ३१-४० ॥

इति श्रीपण्डितसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां शीतपित्तोदर्दकोठाधिकारः समाप्तः।

अथ मसूरिकाधिकारः।

बहवो भिषजो नात्र भेषजं योजयन्ति हि। केचित्प्रयोजयन्त्येव मतं तेषामथ ब्रुवे ॥ १ ॥

बहुत से वैद्य इस रोग में औषध का प्रयोग नहीं करते। जो इसमें औषध का प्रयोग करते हैं उन्हीं के अनुसार आगे चिकित्सा कही गई है ॥ १ ॥

चैत्रासितभूतदिने रक्तपताकान्विता स्नुही भवने। धवलितकलशे न्यस्ता पापरोगं दूरतो धत्ते ॥ २ ॥

चैत्रमास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन लाल झंडी के साथ थूहर की शाखा को सफ़ेद कलश पर घर में रक्खे तो पापरोग (मसूरिका रोग) नहीं होता है ॥ २ ॥

नारीणां वामपार्श्वस्थं नराणामपसव्यगम्। पापरोगभयं दूराच्छिवास्थि विनिवारयेत् ॥ ३ ॥

शिवास्थीत्यत्र हरीतकीबीजमिति नीलकण्ठः। शृगालास्थीति केचित्।

स्त्रियों के बायें पसवाड़े में और पुरुषों के दाहिने पसवाड़े में हड़ की गुठली बाँधने से मसूरिका रोग का आक्रमण नहीं होता है ॥ ३ ॥

किसी-किसी का मत है कि सियारिन की हड्डी बाँधनी चाहिए।

ज्वरे जाते स्पृशेन्नाम्बु तिष्ठेन्निर्वातवेश्मनि। म्रक्षयेद्विजयाचूर्णैर्गात्रं वस्त्रेण बन्धयेत् ॥ ४ ॥

मसूरिका में ज्वर हो जाने पर जल को न छुए और निर्वात स्थान में रहे तथा भाँग का चूर्ण शरीर पर मसलकर वस्त्र से बाँध दे ॥ ४ ॥

रुद्राक्षं मरिचैर्युक्तं पीतं पर्युषिताम्भसा। त्र्यहात् पापरुजं हन्ति दृष्टं वारसहस्रशः ५

रुद्राक्ष और कालीमिर्च का चूर्ण बासी पानी के साथ पीने से तीन दिन में पाप रोग दूर होता है, यह हज़ारों बार देखा गया है ॥ ५ ॥

ये शीतलेन सलिलेन विपिष्य सम्यङ् निम्बाक्षबीजसहितां रजनीं पिबन्ति। तेषां भवन्ति न कदाचिदपीह देहे स्फोटास्तथा जगति शीतलिकाविकाराः ६

नीम के बीज, बहेड़े के बीज तथा हल्दी को इकट्ठा कर अच्छी प्रकार पीस कर ठण्डे जल के साथ पीने से शरीर में स्फोट तथा मसूरिका नहीं होती है। मात्रा २ माशे ॥ ६ ॥

मोचारसेन सहितं सितचन्दनं ये वासारसेन मधुकं मधुकेन वाथ। आदौ पिबन्ति सुमनास्वरसेन मिश्रं ते नाप्नुवन्ति भुवि शीतलिकाविकारम् ७

मोचा (कदलीकाण्ड के बीच का डण्डा) के रस के साथ सफेद चन्दन अथवा अडूसे के रस के साथ मुलहठी का क्वाथ अथवा चमेली के रस में शहद मिलाकर मसूरिका के दिनों में पीने से शीतला रोग नहीं होता है ॥ ७ ॥

चन्दनं वासको मुस्तं गुडूची द्राक्षया सह। एषां शीतकषायस्तु शीतलाज्वरनाशनः ॥ ८ ॥

लालचन्दन, अडूसा की छाल, मोथा, गिलोय और दाख इनका शीतल काढ़ा पीने से शीतला का ज्वर नष्ट होता है ॥ ८ ॥

निम्बादि क्वाथ।

निम्बं पर्पटकं पाठां पटोलं कटुरोहिणीम्। वासां दुरालभां धात्रीमुशीरं

चन्दनद्वयम् ॥ ९ ॥ एष निम्बादिकः ख्यातः पीतः शर्करयान्वितः। हन्ति त्रिदोषमसूरीं ज्वरवीसर्पसम्भवाम् ॥ उत्थिता प्रविशेद् या तु पुनस्ता वाह्यतो नयेत् ॥ १० ॥

नीम की छाल, पित्तपापड़ा, पाढ, पटोलपत्र, कुटकी, अडूसा की छाल, दुरालभा (धमासा), आँवला, श्वेतचन्दन और लालचन्दन, इनके क्वाथ में खाँड डालकर पीने से त्रिदोषज मसूरिकाज्वर तथा विसर्प नष्ट होता है। जो मसूरिका बाहर निकल कर फिर छिप जाती है उसे पुनः यह क्वाथ बाहर ले आता है ॥ ९-१० ॥

काञ्चनारादि क्वाथ।

काञ्चनारत्वचः क्वाथस्ताप्यचूर्णविमिश्रित। निर्गत्यान्तःप्रविष्टां तु मसूरीं बाह्यतो नयेत् ॥ ११ ॥

कचनार की छाल के क्वाथ में स्वर्णमाक्षिक भस्म डालकर पीने से बहिर्गत होकर छिपी हुई मसूरिका पुनः बाहर निकल आती है ॥ ११ ॥

खदिराष्टक।

खदिरत्रिफलारिष्टपटोलमृतवासकैः। क्वाथोऽष्टकाङ्गो जयति रोमान्तिकमसूरिकाः ॥ कुष्ठवीसर्पविस्फोटकण्ड्वादीनपि पानतः ॥ १२ ॥

खदिरकाष्ठ, त्रिफला, नीम की छाल, पटोलपत्र, गिलोय और अडूसा की छाल का क्वाथ रोमान्तिका (Variola खसरा), मसूरिका, कुष्ठ, विसर्प, विस्फोटक तथा कण्डू आदि को नष्ट करता है, विशेष अनुभूत है ॥ १२ ॥

सर्वासां वमनं पथ्यं पटोलारिष्टवासकैः। कषायैश्च वचावत्सयष्ट्याह्वफलकल्कितैः ॥ १३ ॥

सब प्रकार के मसूरिका रोग में परवल के पत्ते, नीम की छाल और कारीया (कुड़ा) की छाल के काढे में वच, इन्द्रजौ, मुलेठी और मैनफल का कल्क मिलाकर वमन कराना हितकर है ॥ १३ ॥

सक्षौद्रं पाययेद् ब्रह्मारसं वा हैलमोचिकम्। वान्तस्य रेचनं देयं शमनं चाबले नरे ॥१४ ॥

ब्राह्मी के रस में अथवा हिलमोचिका (हुरहुर) के रस में शहद मिलाकर पीना चाहिए। बलवान् को पहले वमन कराकर पीछे जुलाब देना चाहिए किन्तु निर्बल रोगी की रोगशामक चिकित्सा ही करनी चाहिए ॥ १४ ॥

सुषवीपत्रनिर्यासं हरिद्राचूर्णसंयुतम्। रोमान्तीज्वरविस्फोटमसूरीशान्तये पिबेत् ॥ १५ ॥

कलौंजी के पत्तों के रस में हल्दी का चूर्ण मिलाकर पीने से रोमान्तीज्वर (खसरे का ज्वर), विस्फोटक और मसूरिका रोग शान्त होता है ॥ १५ ॥

उष्ट्रकण्टकमूलं वाप्यनन्तामूलमेव वा। विधिगृहीतं ज्येष्ठाम्बु पीतं हन्ति मसूरिकाम् ॥ १६ ॥

ऊँटकटेरी की जड़ अथवा अनन्तमूल को विधि से लाकर तण्डुलोदक (चावलों के धोवन) के साथ पीने से मसूरिका रोग नष्ट होता है ॥ १६ ॥

तद्वच्छृगालकण्टकमूलञ्च व्युषिताम्भसा। निशाचिञ्चाच्छदैः शीतवारिपीतैस्तथैव च ॥ १७ ॥

शृगालकण्टक (सत्यानासी, स्वर्णक्षीरी) की जड़ को बासी पानी के साथ पीने से अथवा हल्दी और इमली के पत्तों को ठंडे पानी के साथ पीने से मसूरिका रोग नष्ट होता है ॥ १७ ॥

व्युषिताम्बुना समरिचं पिबेत्पीतकपर्दकम्। यावत्संख्यामसूर्यङ्गे तावद्भिः शैलुजैर्दलैः ॥ १८ ॥ छिन्नं रातुरनाम्ना

तु गुडी व्येति न वर्द्धते। व्युषितं वारि सक्षौद्रं पीतं दाहगुडीहरम्॥ १९॥

पीली कौड़ी की भस्म और कालीमिर्च को बासी पानी के साथ पीने से मसूरिका रोग नष्ट होता। अथवा रोगी के शरीर में जितनी फुन्सियाँ हों उतने ही लसोड़े के पत्ते उसके नाम से तोड़ने पर मसूरिका की फुन्सियाँ नष्ट हो जाती है और फिर नई उत्पन्न नहीं होती हैं। अथवा बासी पानी में शहद मिलाकर पीने से मसूरिका की फुन्सियाँ और दाह नष्ट होते हैं॥ १८-१९॥

तर्पणं वातजायां प्राक् लाजचूर्णैः सशर्करैः। भोजनं तिक्तयूषैश्च प्रतुदानां रसेन वा॥ २०॥

वातज मसूरिका रोग में पहले धान की खीलों के चूर्ण में खाँड मिलाकर भोजन कराना तर्पण (तृप्तिप्रद) होता है। पश्चात् तिक्त ओषधियों के साथ अथवा कबूतर, सारस आदि पक्षियों के मांसरस के साथ भोजन कराना चाहिए॥ २०॥

पटोलादि क्वाथ।

पटोलकुण्डलीमुस्तवृषधन्वयवासकैः। भूनिम्बनिम्बकटुकापर्पटैश्च शृतं जलम्॥ २१॥ मसूरीं शमयेदामां पक्वां चैव विशोषयेत्। नातः परतरं किञ्चिद्विस्फोटज्वरशान्तये॥ २२॥

परवल के पत्ते, गिलोय, नागरमोथा, अडूसा, धमासा, चिरायता, नीम की छाल, कुटकी और पित्तपापड़ा, इनका क्वाथ शहद डालकर पीने से अपक्व मसूरिकाएँ बैठ जाती है और पकी हुई सूख जाती है। विस्फोटक ज्वर की शान्ति के लिये इससे बढ़कर कोई उत्तम औषध नहीं है। विशेष अनुभूत है॥ २१-२२॥

अमृतादि।

अमृतादिकषायञ्च विसर्पोक्तं प्रयोजयेत्॥ २३॥

विसर्परोग में कहे हुए अमृतादि क्वाथ का मसूरिका रोग में भी प्रयोग करना चाहिए॥ २३॥

अमृतादि यथा—

अमृतवृषपटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं खदिरमसितवेत्रं निम्बपत्रं हरिद्रे। विविधविषविसर्पान् कुष्ठविस्फोटकण्डूरपनयति मसूरीं शीतपित्तं ज्वरं च॥ २४॥

गिलोय, अडूसा, परवल के पत्ते, नागरमोथा, छितवन (सतवन), खैर, कालाबेत, नीम के पत्ते, हलदी और दारुहल्दी, ये अमृतादि ओषधियाँ हैं। इनका क्वाथ बनाकर पीने से अनेक प्रकार के विषरोग, विसर्प, कोढ़, विस्फोटक, खुजली, मसूरिका, शीतपित्त और ज्वर नष्ट होते हैं॥ २४॥

सौवीरेण तु सम्पिष्टं मातुलुङ्गस्य केशरम्। प्रलेपात् पाचयत्याशु दाहं चाशु नियच्छति॥ २५॥

बिजौरे की केशर को काँजी में पीसकर मसूरिका पर लेप करने से मसूरिकाएँ पक जाती हैं और दाह शान्त हो जाता है॥ २५॥

पाददाहं प्रकुरुते पिडिका पादसम्भवा। तत्र सेकं प्रशंसन्ति बहुशस्तण्डुलाम्बुना॥ २६॥

पैरों में उत्पन्न हुई फुन्सियाँ पैरों में दाह पैदा कर देती हैं अतः दाह की शान्ति के लिये तण्डुलोदक से सेक कराना चाहिए॥ २६॥

पाककाले तु सर्वास्ता विशोषयति मारुतः। तस्मात्संबृंहणं कार्यं न तु पथ्यं विशोषणम्॥ २७॥

पाककाल में मसूरिकाओं को वायु सुखा देता है अतः उस समय बृंहण-कर्म करना चाहिए। शोषण-कर्म हितकारक नहीं है॥ २७॥

गुडूचीं मधुकं द्राक्षां मोरटं दाडिमैः

सह। पाककाले तु दातव्यं भेषजं गुड-संयुतम् ॥ तेन पाकंव्रजत्याशु न च वायुः प्रकुप्यति ॥ २८ ॥

पाककाल में गिलोय, मुलेठी, दाख, ईख की जड़ और अनारदाना, इनके चूर्ण अथवा क्वाथ को गुड़ मिला कर सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से मसूरिकाएँ शीघ्र पक जाती हैं और वायु का कोप नहीं होता है ॥ २८ ॥

लिहेद्वा बादरञ्चूर्णं पाचनार्थं गुडेन तु। अनेनाशु विपच्यन्ते वातपित्तकफात्मिकाः ॥ २९ ॥

मसूरिकाओं को पकाने के लिए बेर के चूर्ण में गुड़ मिलाकर खाना चाहिए। इससे वात, पित्त और कफ की मसूरिकाएँ शीघ्र पक जाती हैं ॥ २९ ॥

शूलाध्मानपरीतस्य कम्पमानस्य वायुना। धन्वमांसरसाः शस्ता ईषत्सैन्धव-संयुताः ॥ ३० ॥

मसूरिका रोग में शूल, अफरा और कम्प आदि वायु के उपद्रवों से युक्तरोगी को मरुदेश उत्पन्न पशु पक्षियों मांसरस में थोड़ा सा सेंधानमक मिलाकर देना हितकर हैं ॥ ३० ॥

पिबेदम्भस्तप्तशीतं भावितं खदिरा-शनैः। शौचे वारि प्रयुञ्जीत गायत्री-बहुवारजम् ॥ ३१ ॥

खैर और असना (विजयसार) से सिद्ध किया हुआ जल ठंढा करके पीना चाहिए। और शौच के लिये खैर और लिसोढ़ा से सिद्ध किया हुआ जल देना चाहिए ॥ ३१॥

जातीपत्रं समञ्जिष्ठ दार्वीपूगफलं शमी ॥ ३२ ॥ धात्रीफल समधुकं कथितं मधुसयुतम्। मुखरोगे कण्ठरोगे गण्डूषार्थं प्रशस्यते ॥ ३३ ॥

जायफल, मजीठ, दारुहल्दी, सुपारी, शमी (छोंकर, जाँट) की छाल, आँवला और मुलेठी, इनके क्वाथ में शहद मिलाकर कुल्ला करने से मुखरोग और कण्ठ रोग (मुख और कण्ठ की मसूरिका) शान्त होता है ॥ ३२-३३ ॥

अक्ष्णोः सेकं प्रशंसन्ति गवेधुमधु-काम्बुना। पञ्चवल्कलचूर्णेन क्लेदिनीमव-चूर्णयेत् ॥ ३४ ॥ भस्मना केचिदिच्छन्ति केचिद्गोमयरेणुना। कृमिपातभयाच्चापि धूपयेत् सरलादिभिः ॥ ३५ ॥

गवेरन (गुलसकरी) और मुलेठी के काढ़े से आँखों को सेंकने से आँखों की मसूरिकाएँ शान्त होती हैं। जिन मसूरिकाओं से पानी निकलता हो उन पर पचवल्कल (पीपल, गूलर, पकरिया, बरगद और बेतस) का चूर्ण छिड़कना हितकर है। किसी किसी का मत है कि गोबर की राख छिड़कना चाहिए तथा किसी किसी का मत है कि गोबर का चूर्ण छिड़कना हितकर है। मसूरिका को कीड़ों से बचाने के लिए कृमिनाशक सरल वृक्ष आदि की धूप देना हितकर है ॥ ३४ ३५ ॥

वेदनादाहशान्त्यर्थं स्रुतानां च विशुद्धये। सगुग्गुलुं वराक्वाथं युञ्ज्याद्वा खदिराष्टकम् ॥ ३६ ॥

पीड़ा और दाह की शांति तथा जिन मसूरिकाओं से पीब बह गई हो उनकी शुद्धि के लिए गुग्गुलयुक्त त्रिफला का क्वाथ अथवा खदिराष्टक का क्वाथ पीना चाहिए ॥ ३६ ॥

कृष्णाभयारजो लिह्यान् मधुना कण्ठ-शुद्धये। तथाष्टाङ्गावलेहश्च कवलश्चार्द्र-कादिभि ॥ ३७ ॥

कण्ठ की शुद्धि के लिए पीपल और हड़ के चूर्ण को शहद के साथ चाटना चाहिए। अथवा अष्टाङ्ग अवलेह का चाटना और अदरख आदि का कवल धारण करना हितकर है ॥ ३७ ॥

पञ्चतिक्तं प्रयुञ्जीत पानाभ्यञ्जनभो-जनैः। कुर्याद् व्रणविधानं च तैलादीन् वर्जयेच्चिरम् ॥ ३८ ॥

पीने, खाने और मालिश करने के लिए पञ्चतिक्त कषाय देना चाहिए। अथवा व्रण की सो चिकित्सा करनी चाहिए और बहुत दिनों तक तैल आदि वर्जित कर देना चाहिए ॥ ३८ ॥

घण्टाकर्णं शिवं गौरीं विष्णुं विप्रं च पूजयेत् । आचरेज्जपहोमादीन् व्रतं रोगहरं तथा ॥ ३९ ॥ अगदानि विषघ्नानि रत्नानि विविधानि च । धारयेद्वाचापि वैनतेयस्य संहिताम् ॥ ४० ॥

घण्टाकर्ण शिव, पार्वती और विष्णुजी का पूजन तथा जप और होम एवं शीतलानाशक व्रत करना चाहिए। और विषनाशक औषधि तथा अनेक प्रकार के रत्न धारण करना चाहिए। एवं गरुडपुराण का पाठ कराना चाहिए ॥ ३९—४० ॥

दुष्टव्रणासु तास्वेव जलौकाभिर्हरेदसृक् । व्रणशोथहरं योगमाचरेत् तत्प्रशान्तये ॥ ४१ ॥

यदि फुन्सियाँ खराब हो जायँ तो जोंक लगाकर खून निकलवाना चाहिए और उनकी शान्ति के लिए व्रण और सूजन को हरनेवाले प्रयोग करने चाहिए ॥ ४१ ॥

विषघ्नैः सिद्धमन्त्रैश्च प्रमृज्यात्तु पुनः पुनः । भक्त्या पठेत्पाठयेच्च शीतलायाः स्तवं शुभम् ॥ ४२ ॥

विषनाशक सिद्ध मन्त्रों से बार-बार मार्जन (झाड़-फूँक) करना चाहिए और शीतला के स्तोत्र का भक्ति से पाठ करना या कराना चाहिए ॥ ४२ ॥

दुर्लभ रस ।

अथ शुद्धस्य सूतस्य मूर्च्छितस्य मृतस्य च । द्विबला पिप्पली धात्री रुद्राक्षघृतमाक्षिकैः ॥ ४३ ॥ मर्दनं कारयेत् खल्ले गुञ्जामानां वटीं चरेत् । पापरोगान्तको योगः पृथिव्यामेव दुर्लभः ॥ ४४ ॥

रससिन्दूर, पारा की भस्म, खरेटी, सहदेई, पीपल, आँवला, रुद्राक्ष, घी और शहद इन्हें एकत्र कर घोटे और एक एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। यह दुर्लभ रस मसूरिका रोग को नष्ट करता है ॥ ४३-४४ ॥

मसूरिका में पथ्य ।

पूर्वं लङ्घनवान्तिरेचनसिरावेधाः शशाङ्कोज्ज्वला जीर्णाः षष्टिकशालयोऽपि चणका मुद्गा मसूरा यवाः ।

१ अथ शीतलास्तोत्रम् । स्कन्द उवाच । भगवन् देवदेवेश शीतलायाः स्तवं शुभम् । वक्तुमर्हस्यशेषेण विस्फोटकभयापहम् ॥

ईश्वर उवाच ।

वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम् । यामासाद्य निवर्तेत विस्फोटकभयं महत् ॥ शीतले शीतले चेति यो ब्रूयाद्दाहपीडितः । विस्फोटकभयं घोरं क्षिप्रं तस्य प्रणश्यति ॥ यस्त्वामुदकमध्ये तु धृत्वा सम्पूजयेन्नरः । विस्फोटकभयं घोरं कुले तस्य न जायते ॥ शीतले ज्वरदग्धस्य पूतिगन्धगतस्य च । प्रणष्टचक्षुषः पुंसस्त्वामाहुर्जीवनौषधम् ॥ नमामि शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम् । मार्जनीकलशोपेतां सूर्पालंकृतमस्तकाम् ॥ अस्य श्रीशीतलास्तोत्रस्य महादेव ऋषिरनुष्टुप् छन्दः । शीतला देवता शीतलोपद्रवशान्त्यर्थं जपे विनियोगः ॥ शीतले तनुजान् रोगान् नृणां हरसि दुस्तरान् । विस्फोटकविशीर्णानां त्वमेकामृतवर्षिणी ॥ गलगण्डग्रहा रोगा ये चान्ये दारुणा नृणाम् । त्वदनुध्यानमात्रेण शीतले यान्ति ते क्षयम् ॥ न मन्त्रं नौषधं किञ्चित् पापरोगस्य विद्यते । त्वमेका शीतले धात्रि नान्यां पश्यामि देवताम् ॥ मृणालतन्तुसदृशीं नाभिहृन्मध्यसंस्थिताम् । यस्त्वां सञ्चिन्तयेद्देवि तस्य मृत्युर्न जायते ॥ अष्टकं शीतलादेव्या यः पठेन्मानवः सदा । विस्फोटकभयं घोरं कुले तस्य न जायते ॥ श्रोतव्यं पठितव्यञ्च नरैर्भक्तिसमन्वितैः । उपसर्गविनाशाय परं स्वस्त्ययनं महत् ॥ शीतलाष्टकमेतद्धि न देयं यस्य कस्यचित् । किन्तु तस्मै प्रदातव्यं भक्तिश्रद्धान्वितो हि यः ॥

सर्वेऽपि प्रतुदाः कपोतचटकादात्यूहक्रौञ्चादयो जीवञ्जीवशुकादयोऽपि कुलकं काठिल्लमापाढकम् ॥ ४५ ॥ इत्थं सर्वदशाविभागविहितं पथ्यं यथादोषतः संयुक्तं मुदमातनोति नितरां नृणां मसूरीगदे ॥ ४६ ॥

मसूरिका रोग में पहिले लङ्घन, वमन, विरेचन और शिरावेध करना चाहिए। चन्द्र के समान सफेद परन्तु पुराने साठी एवं शालि धान्य, चने, मूँग, मसूर, जौ, सम्पूर्ण प्रतुद पक्षी, कबूतर, चिड़िया, जलकाक, क्रौञ्च आदि चकोर एवं तोता आदि का मांस, परवल, सांठी, आपाढफल (ककड़ी-खीरा आदि) इन्हें रोगी की अवस्था के अनुसार विभक्त करके दोषानुसार पथ्य देने से स्वास्थ्य लाभ होता है ॥ ४५—४६ ॥

मसूरिका में अपथ्य।

रतं स्वेदं श्रमं तैलं गुर्वन्नक्रोधमातपम्। दुष्टाम्बुदुष्टपवने विरुद्धान्यशनानि च ॥ ४७ ॥ निष्पावमालुकं शाकं लवणं विषमाशनम्। कट्वम्लं वेगरोधं च मसूरीगदवांस्त्यजेत् ॥ ४८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मसूरिकाधिकारः समाप्तः।

स्त्रीसंभोग, स्वेदन कर्म (पसीना लानेवाले कार्य), थकावट पैदा करनेवाले कार्य, तैल की मालिश, भारी अन्न, क्रोध, धूप में बैठना, दुष्ट जल, दुष्ट पवन, विरुद्धभोजन, चौंला (लोबिया), आलू, नमक, विषम भोजन, कड़वे-खट्टे पदार्थ, मलमूत्र आदि वेगों का रोकना ; इन सबको त्याग देना चाहिए ॥ ४७-४८ ॥

इति श्रीपण्डितसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां मसूरिकाधिकारः समाप्तः।

अथ रोमान्तिकाधिकारः

उच्चैस्तरे प्रशस्ते च रोमान्तीगदपीडितः। गृहेऽनार्द्रे वसेन्नित्यं गुरुप्रावसनावृतः ॥ १ ॥

रोमान्तिका (क्षुद्रमसूरिका) रोग से पीड़ित रोगी को अच्छे, ऊँचे और सीलनरहित गृह में भारी और गरम वस्त्र ओढ़कर नित्य निवास करना चाहिए ॥ १ ॥

शीतवायुं शीततोयं सन्तापं वह्निसूर्ययोः। त्यजेत्स्त्रियं दिवानिद्रामध्वानं निशि जागरम् ॥ सुखोष्णेनाम्बुना स्वेदो रोमान्तिज्वरहृन्मतः ॥ २ ॥

शीतल वायु, शीतल जल, अग्नि तापना और सूर्य का धूप, स्त्रीप्रसंग, दिन का सोना, मार्ग चलना और रात्रिजागरण रोमान्तिक रोगी को त्याग देना चाहिए। सुखोष्ण (सुहाते हुए) जल से स्वेदन करना रोमान्तिकजन्य ज्वर को हरण करता है ॥ २ ॥

मसूर्यां ये च कथिता इह क्वाथादयोऽपि ते। प्रयुज्यमाना गदिनं सुस्थीकुर्वन्ति सत्वरम् ॥ यथातथं प्रतीकार्या ज्वरकासादयश्च ते ॥ ३ ॥

मसूरिका रोग में कहे हुए क्वाथ आदिक रोमान्तिका रोग में देने से भी रोगी को शीघ्र ही स्वस्थता मिलती है। रोमान्तिका के उपद्रवरूप ज्वर, कास आदि की भी यथायोग्य चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ३ ॥

---

१ यह रोग शीतला का ही भेद है। इसमें ज्वर होकर बालों के छिद्र के तुल्य ऊँची, छोटी-छोटी, लालवर्ण की शीतला की फुन्सियां हो जाती हैं तथा खाँसी और अरुचि हो जाती है। यथा—"रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्यः कफपित्तजाः। कासारोचकसंयुक्ता रोमान्त्यो ज्वरपूर्विकाः।"

इन्दुकला वटिका।

शिलाजत्वयसी हेम संमर्द्यार्जकवारिणा। गुञ्जामात्रा वटीः कृत्वा कुर्याच्छायाविशोषिताः ॥ ४ ॥ मसूरिकायां विस्फोटे ज्वरे लोहितसंज्ञके। एकैकां दापयेदासां सर्वव्रणगदेषु च ॥ ५ ॥

शुद्ध शिलाजीत, लोहभस्म और सुवर्णभस्म; इन तीनों को सममाग ले तुलसी के रस में घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना ले और छाया में सुखाकर मसूरिका (शीतला), विस्फोटक, लोहितज्वर (लालबुखार) और सब प्रकार के व्रण रोगों में इसकी एक-एक गोली सेवन करना चाहिए॥ ४–५ ॥

ऊषणादि चूर्ण

ऊषणं पिप्पलीमूलं कुष्ठं वारणपिप्पलीम्। मुस्तकंमधुकं मूर्वां भार्गीं मोचरसं शुभाम् ॥६॥ यव जातिविषा वासा गोत्तुरं बृहतीद्वयम्। सञ्चूर्ण्य समभागानि मापमानेन योजयेत् ॥ ७ ॥ ऊषणाद्यमिदं चूर्णं विस्फोटं लोहितज्वरम्। रोमान्तिका ज्वरं जीर्णंहन्याचापि मसूरिकाम् ॥ ८ ॥

कालीमिर्च, पिपरामूल, कूट, गजपीपरि, नागरमोथा, मुलेठी, मूर्वा, भारंगी, मोचरस, वंशलोचन, जवाखार, अतीस, अरूसा की छाल, गोखुरू, बड़ी कटेरी और छोटी कटेरी; इनको सममाग एकत्र कर चूर्ण बनावे। मात्रा—१ माशा। सेवन करने से यह ऊषणाद्य चूर्ण विस्फोटक, लोहितज्वर, रोमान्तिका, जीर्णज्वर और मसूरिका रोग को नष्ट करता है॥ ६–८ ॥

सर्वतोभद्र रस।

सिन्दूरमभ्रं रजतं च हेम समेन भागेन मनःशिलां च। द्विशस्तु वांशीं निखिलेन तुल्यं संमर्दयेद् गुग्गुलुकं प्रयत्नात् ॥ ९ ॥ ततस्तु गुञ्जाममितां विधाय वटीं प्रयुञ्जीत यथानुपानम्। यं सर्वतोभद्ररसो न हन्ति न सोऽस्ति रोगः खलु देहिदेहे ॥ १० ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, रजतभस्म, स्वर्णभस्म और मैनशिल; प्रत्येक एक एक भाग तथा वंशलोचन २ भाग और सबके बराबर शुद्ध गूगुल; इन सबको एकत्र घोटकर एक एक माशा की गोलियाँ बनावे। दोषानुसार अनुपान के साथ सेवन करने से मनुष्य के शरीर में ऐसा कोई रोग नहीं है, जिसको यह सर्वतोभद्र रस नष्ट न कर दे॥ ९–१० ॥

पलाद्यरिष्ट।

पञ्चाशत्पलमेलाया वासायाः पलविंशतिम्। मञ्जिष्ठां कुटजं दन्ती गुडूचीं रजनीद्वयम् ॥ ११ ॥ रास्नामुशीरं मधुकं शिरीषंखदिरार्जुनौ। भूनिम्बनिम्बवल्कीश्च कुष्ठं मधुरिकां तथा ॥ १२ ॥ गृहीत्वा दिक्पलोन्मित्या जलद्रोणाष्टके पचेत्। द्रोणशेषे कषाये च पूते शीते विनिक्षिपेत् ॥ १३ ॥ धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम्। चातुर्जातं त्रिकटुकं चन्दनं रक्तचन्दनम् ॥ १४ ॥ मांसीं मुरां मुस्तकं च शैलेयं शारिवाद्वयम्। पलप्रमाणतश्चात्र क्षिप्त्वा मासं निधापयेत् ॥ १५ ॥ एलाद्यरिष्टो हन्त्येष विसर्पांश्चमसूरिकाम्। रोमान्तिकां शीतपित्तं विस्फोटं विषमज्वरम् ॥ १६ ॥ नाडीव्रणं व्रणं दुष्टं कासं श्वासं च दारुणम्। भगन्दरोपदंशौ च प्रमेहपिडिकास्तथा ॥ १७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां रोमान्तिकाधिकारः समाप्तः।

छोटी इलायची ६।॥ सेर, अरूसा की छाल ६। सेर, मँजीठ, कुटज (कुड़ा की छाल),

जमालगोटे की जड़, गिलोय, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, खस, मुलेठी, सिरस की छाल, कत्था, अर्जुन की छाल, चिरायता, नीम की छाल, चीत की जड़, कूट और सौंफ ; प्रत्येक आठ-आठ छटाँक। क्वाथ के लिए जल २ मन २२ सेर ३२ तोले। अवशिष्ट जल २५ सेर ४८ तोले। इसको छानकर ठंडा कर ले और धाय के फूल ६४ तोले, शहद १२ सेर, चातुर्जात (छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर), त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि) चन्दन, लाल चन्दन, जटामांसी, मुरामांसी, नागरमोथा, छारछरीला, अनन्तमूल और कालीशारिवा ; प्रत्येक चार-चार तोले उसमें डालकर एक महीने तक मिट्टी के पात्र में बन्द करके रक्खे। पश्चात् निकालकर छान ले। मात्रा -१ तोले से २ तोले तक। यह एलाद्यरिष्ट विसर्प, मसूरिका, रोमान्तिका, शीतपित्त, विस्फोटक, विषमज्वर, नासूर, दुष्ट व्रण, खाँसी कठिनतर श्वास, भगन्दर, उपदंश (गरमी) और प्रमेह-पिडिकाओं को नष्ट करता है ॥ ११--१७ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां रोमान्तिकाधिकारः समाप्तः।

अथ वातरक्ताधिकारः।

वातरक्त की संप्राप्ति।

वायुः प्रवृद्धो वृद्धेन रक्तेनावरितः पथि। क्रुद्धः सन्दूषयेद्रक्तं तज्ज्ञेयं वातशोणितम् ॥ १ ॥

बढ़े हुए रक्त द्वारा जब बढ़ा हुआ वायु मार्ग में रोक दिया जाता है तो वह वायु कुपित होकर रक्त को दूषित कर देता है तब उसको वातरक्त कहते हैं ॥ १ ॥

वातरक्त के दो भेद।

उत्तानमथ गम्भीरं द्विविधं वातशोणितम् । त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानं गम्भीरं तूत्तराश्रयम् ॥ २ ॥

वातरक्त के दो भेद हैं। एक उत्तान और दूसरा गम्भीर। त्वचा और मांस के आश्रय उत्तान और शरीर के भीतर गम्भीर रहता है ॥ २ ॥

वातरक्तशमनविधि।

बाह्यं लेपाभ्यङ्गसेकोपनाहैर्वातशोणितम् । विरेकास्थापनस्नेहपानैर्गम्भीरमाचरेत् ॥ द्वयोर्मुञ्चेदसृक् शृङ्गसूच्यलाबुजलौकसा ॥ ३ ॥

बाह्य वातरक्त को प्रलेप, अभ्यङ्ग, सेंक, उपनाह (पुलटिस Poultice) आदि द्वारा तथा गम्भीर वातरक्त को विरेचन, आस्थापन स्नेहपान आदि क्रियाओं द्वारा शान्त करना चाहिए। दोषानुसार बाह्य तथा आभ्यन्तर वातरक्त में सींगी, सूची (सुई, इन्जेक्शन), अलाबु (तुम्बी) तथा जोंक द्वारा दुष्ट रक्त को निकालना चाहिए ॥ ३ ॥

बोधिवृक्षकषायं तु पाययेन्मधुना सह । वातरक्तं जयत्याशु त्रिदोषमपि दारुणम् ॥ ४ ॥

पीपल की त्वचा के क्वाथ में शहद डालकर पीने से कष्टदायक एवं त्रिदोषज वातरक्त भी शीघ्र नष्ट होता है ॥ ४ ॥

घृतेन वातं सगुडा विबन्धं पित्तं सिताढ्या मधुना कफञ्च । वातासृगुग्रं रुबुतैल मिश्राशुण्ठ्यामवातं शमयेद् गुडूची ५

गिलोय को घृत के साथ सेवन करने से वातरोग, गुड़ के साथ सेवन करने से मलबन्ध, खाँड के साथ पित्तरोग, शहद के साथ कफज रोग, अरण्डी के तेल के साथ कष्टदायक वातरक्त तथा सोंठ के साथ गिलोय का सेवन करने से आमवात नष्ट होता है ॥ ५ ॥

लीढ्वा मुण्डितिका चूर्णं मधुसर्पिः समायुतम् । छिन्नाक्वाथं पिबन् हन्ति वातरक्तं सुदुस्तरम् ॥ ६ ॥

गोरखमुण्डी के चूर्ण को शहद और घी के साथ चाटकर तत्पश्चात् गिलोय का क्वाथ पीने से कठिन वातरक्त भी नष्ट होता है ॥ ६ ॥

तिलप्रलेप।

लेपे पिष्टास्तिलास्तद्वद् भ्रष्टाः पयसि निर्वृताः ॥७॥

वातरक्त रोग में भुने हुए तिलों को दूध में पीसकर लेप करना चाहिए ॥ ७ ॥

मञ्जिष्ठादि क्वाथ।

मंजिष्ठा त्रिफला निम्बं वचा कटुकरोहिणी। वत्सादनी दारुनिशा कषायो वातरक्तनुत् ॥ ८ ॥ अन्यत्रायं नवकार्षिक इति नाम्ना ख्यातः।

मँजीठ, त्रिफला, नीम की छाल, वच, कुटकी, गिलोय, और दारुहल्दी मिलाकर २ तोले। क्वाथ के लिये जल ३२ तोले, बचा हुआ क्वाथ ८ तोले। यह क्वाथ वातरक्त को नष्ट करता है। अन्य ग्रन्थों में इसका नाम नवकार्षिक है। नवकार्षिक में पाँच रत्ती का माशा मानकर यह नौ चीजें अलग-अलग एक एक तोला भर ली जाती हैं। बाद में आठगुने जल में क्वाथ कर मात्रानुसार पिलाया जाता है, शेष छोड़ दिया जाता है। इसीलिये चक्रदत्त में लिखा है कि "पञ्चरत्तिकपाषेण कार्योऽयं नवकार्षिकः। किन्त्वेवं साधिते क्वाथे योग्या मात्रा प्रदीयते।" परन्तु आजकल इस प्रकार उपयोग नहीं किया जाता। उपयोग पूर्वोक्त विधि से ही है। यह क्वाथ वातरक्त के अतिरिक्त कुष्ठ, पामा, रक्तमण्डल तथा कपालकुष्ठ आदि में भी हितकारक है ॥ ८ ॥

एरण्डादि क्वाथ।

गन्धर्वहस्तत्रपगोक्षुरकामृताभिः मूलैर्बलेक्षुरकयोश्च पचेत्कषायम्। वातासृगाशु विनिहन्ति चिरप्रवृद्धमाजानुगं स्फुटितमूर्ध्वगतं तु पीतम् ॥ ९ ॥

अण्डी की जड़, अडूसे की जड़, गोखरू, गिलोय, खरैटी की जड़ और तालमखाने की जड़, इनका क्वाथ शीघ्र ही पुराने जानुपर्यन्त स्फुटित एवं ऊर्ध्वगत वातरक्त को नष्ट करता है ॥ ९ ॥

एरण्डबीजादि प्रलेप।

एरण्डबीजममृतां शताह्वां जीरकं बलाम्। छागेन पयसा पिष्ट्वा लेपयेद्सकृद्भिषक् ॥ १० ॥

अण्डी के बीज, गिलोय, सोया, जीरा तथा खरैटी को बकरी के दूध में पीसकर बराबर लेप देना चाहिए ॥ १० ॥

रास्नादि प्रलेप।

रास्नां गुडूचीं मधुकं बलाञ्च पयसा सह। पिष्ट्वा प्रलेपयेत्तेन वातरक्तं प्रशाम्यति ॥ ११ ॥

रास्ना, गिलोय, मुलहठी, खरैटी, इनको बराबर मात्रा में लेकर दूध में पीस लेप करने से वातरक्त नष्ट होता है ॥ ११ ॥

गृहधूमादि प्रलेप।

गृहधूमो वचा कुष्ठं शताह्वा रजनीद्वयम्। प्रलेपः शूलनुद् वातरक्ते वातकफोत्तरे ॥ १२ ॥

गृहधूम, वच, कूठ, सोया, हल्दी, दारुहल्दी इनका लेप करने से वातकफज वातरक्तशूल नष्ट होता है ॥ १२ ॥

शतावरी घृत।

शतावरीकल्कगर्भं रसं तस्याश्चतुर्गुणे। क्षीरतुल्यं घृतं पक्वं वातशोणितनाशनम् ॥ १३ ॥

गोघृत ४ सेर, शतावर का रस १६ सेर, गौ का दूध ४ सेर। कल्क के लिये शतावर १ सेर। इस घृत को विधिपूर्वक पका कर सेवन कराने से वातरक्त नष्ट होता है। मात्रा—आधा तोला से १ तोला तक ॥ १३ ॥

गुडूची घृत।

गुडूचीक्वाथकल्काभ्यां सपयस्कं घृतं

घृतम्। हन्ति वातं तथा रक्तं कुष्ठं जयति दुस्तरम्॥ १४॥

गोघृत ४ सेर। गिलोय का क्वाथ अथवा रस १६ सेर। दूध ४ सेर, कल्क के लिये गिलोय १ सेर। इस घृत के सेवन से वातरक्त तथा कुष्ठरोग नष्ट होता है। मात्रा—½ तोला से १ तोला तक॥ १४॥

अमृताद्य घृत।

अमृता मधुकं द्राक्षा त्रिफला नागरं बला। वासारग्वधवृश्चीरदेवदारु त्रिकण्टकम्॥ १५॥ कटुका सवरी कृष्णा काश्मर्यस्य फलानि च। रास्ना क्षुरकगन्धर्वेवृद्धदारघनोत्पलैः॥ १६॥ कल्कैरेभिः समैः कृत्वा सर्पिः प्रस्थं विपाचयेत्। धात्रीरससमं दत्त्वा वारि त्रिगुणसंयुतम्॥ १७॥ सम्यक् सिद्धन्तु विज्ञाय भोज्यपाने प्रशस्यते। बहुदोषान्वितं वातं रक्तेन सह मूर्च्छितम्॥ १८॥ उत्तानश्चापि गम्भीरं त्रिकजङ्घोरुजानुजम्। क्रोष्टुशीर्षे महाशूले चामवाते सुदारुणे॥ १९॥ वातरोगोपसृष्टस्य वेदनाश्चापि दुस्तराम्। मूत्रकृच्छ्रमुदावर्त्तं प्रमेहं विषमज्वरम्॥ २०॥ एतान् सर्वाभिहन्त्याशु वातपित्तकफोद्भवान्। सर्वकालोपयोगेन वर्णायुर्बलवर्द्धनम्॥ अश्विभ्यांनिर्मितं श्रेष्ठंघृतमेतदनुत्तमम् २२

घी १२८ तोले, आँवला का रस १२८ तोले, जल ४ सेर ६४ तोले। कल्क के लिये गिलोय, मुलहटी, दाख, त्रिफला (अलग अलग), सोंठ खरेटी की जड़, अड़ूसे की छाल, अमलतास, सफेद सोंठी, देवदारु, गोखुरू, कुटकी, शतावर, पीपल, गम्भारीफल, रास्ना, तालमखाना, भण्डी की जड़, विधारा की जड़, मोथा, नील कमल सब मिलाकर १४ तोले। विधिपूर्वक घृत पकाकर रोगी को सेवन करावे। मात्रा—आधा तोला। यह घृत अत्यन्त दुष्ट एवं त्रिकसन्धि, जङ्घा, ऊरु तथा जानुपर्यन्त प्रवृद्ध उत्तान तथा गम्भीर वातरक्त को नष्ट करता है। यह घृत क्रोष्टुशीर्ष शूल, दारुण आमवात, वातव्याधि, अत्यन्त वेदना, मूत्रकृच्छ्र, उदावर्त्त, प्रमेह, विषमज्वर आदि वात, पित्तज तथा कफरोगों में अत्यन्त हितकारक है। इस घृत के निरन्तर उपयोग से वर्ण, आयु एवं बल की वृद्धि होती है। अश्विनीकुमारों ने इस घृत का निर्माण किया था॥ १५-२२॥

वातरक्त में पथ्य।

आढक्यश्चणका मुद्गा मसूराः समकुष्ठकाः। यूषार्थे बहुसर्पिष्काः प्रशस्ता वातशोणिते॥ २३॥ पुराणा यवगोधूमनीवाराः शालिषष्टिकाः। भोजनार्थे हिता गव्यमाहिषाजपयो हितम्॥ २४॥

अरहर, चना मूँग, मसूर और मोथी (मोठ); इनके जूस में बहुत सा घृत मिलाकर वातरक्त में देना बहुत उत्तम है। तथा पुराने जौ, गेहूँ, नीवार, शालि चावल और साँठी चावल भोजन के लिए और गौ, भैंस और बकरी का दूध पीने के लिए हितकर है॥ २३ २४॥

हड़ का प्रयोग।

हरीतकीः प्राश्य सम गुडेन एकाऽथवा द्वे च ततो गुडूच्याः। क्वाथोऽनुपीतः शमयत्यवश्य प्रभिन्नमाजानुजवातरक्तम्॥ २५॥

एक या दो हरड़ें गुड़ के साथ खाकर पीछे गिलोय का क्वाथ पीने से घुटनों तक फैला हुआ वातरक्त अवश्य ही शान्त हो जाता है॥ २५॥

पटोलादि क्वाथ।

पटोलकटुकाभीरुत्रिफलामृतमाधि-

तम्। क्वाथं पीत्वा जयेज्जन्तुः सदाहं वातशोणितम् ॥ २६ ॥

परवल के पत्ते, कुटकी, शतावरि, त्रिफला और गिलोय इनका काढ़ा पीने से दाहयुक्त वातरक्त शान्त होता है ॥ २६ ॥ यह योग पैत्तिक वातरक्त के लिए है।

शम्पाकादि क्वाथ।

शम्पाकमृतवासानामेरण्डस्नेहसंयुतम्। पीत्वा क्वाथमसृग्वातं क्रमात् सर्वाङ्गजं जयेत् ॥ २७ ॥

अमलतास, गिलोय और अडूसा; इनके काढ़े में अरण्डी का तेल मिलाकर पीने से सर्वाङ्ग का वातरक्त शान्त होता है ॥ २७ ॥

वातरक्त में प्रलेप और सेंक।

गोधूमचूर्णाजपयोघृतं च सच्छागदुग्धो रुबुबीजकल्कः। लेपो विधेयः शतधौतसर्पिः सेके पयश्चाविकमेव शस्तम् ॥ २८ ॥

गेहूँ का आटा, बकरी के दूध का घृत तथा उत्तम बकरी का दूध, अरण्ड के बीजों का कल्क और सौ बार धोया हुआ घृत; इनका लेप करने से और भेड़ के दूध से सेक देने से वातरक्त रोग नष्ट होता है ॥ २८ ॥

वातरक्त में गुडूची प्रयोग।

गुडूच्याः स्वरसं चूर्णं कल्कं वा क्वाथमेव वा। प्रभूतकालमासेव्यमुच्यते वातशोणितात् ॥ लेपे पिष्टास्तिलास्तद्वद् भृष्टाः पयसि निर्वृतः ॥ २९ ॥

गिलोय का रस, चूर्ण, कल्क और क्वाथ इनमें से किसी एक का बहुत दिन सेवन करने से वातरक्त रोग से मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार भुने हुए तिलों को दूध में पीसकर लेप करना इस रोग में लाभदायक है ॥२९॥

निम्बादिचूर्ण।

निम्बामृताभया धात्री प्रत्येकं च पलोन्मितम्। सोमराजीपलं शुण्ठी विडङ्गैडगजाः कणाः ॥ ३० ॥ यमानी चोग्रगन्धा च जीरकं कटुकं तथा। खदिरं सैन्धवं क्षारं द्वे हरिद्रे च मुस्तकम् ॥ ३१ ॥ देवदारु तथा कुष्ठं कर्षं कर्षं प्रदापयेत्। सर्वं संचूर्णितं कृत्वा सूक्ष्मवस्त्रेण छानयेत् ॥ ३२ ॥ माषद्वयं तु भोक्तव्यं छिन्नाक्वाथं पिवेदनु। मासमात्रप्रयोगेण भवेत् काञ्चनसन्निभः ॥ ३३ ॥ वातशोणितमत्युग्रं श्वित्रमौदुम्बरं तथा। कोठं चर्मदलाख्यं च सिध्मपामा च विप्लुता ॥ ३४ ॥ कण्डूविचर्चिकाकारुदद्रुमण्डलकिट्टिमम्। सर्वाण्येव निहन्त्याशु दूर्वामिद्राशनिर्यथा ॥ ३५ ॥ आमवातकृतं शोथमुदरं सर्वरूपिणम्। प्लीहानं गुल्मरोगं च पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ ३६ ॥ सर्वान् कण्डूव्रणांश्चैव हरते नात्र संशयः। एतन्निम्बादिकं चूर्णं प्राह नागार्जुनो मुनिः ॥ ३७ ॥

नीम की छाल, गिलोय, हड़ और आँवला ये सब चार-चार तोले, बायची ४ तोले, सोंठ, वायविडंग पवांड़ (चकमर्द), पीपली अजवाइन, बच, जीरा, कुटकी, खैर, सेंधा नमक, जवाखार, हल्दी, दारुहल्दी, नागरमोथा, देवदारु और कूट ये सब एक-एक तोला। इन सबको कूट पीसकर महीन कपड़े से छान ले। दो मासे की मात्रा में इस चूर्ण को खाकर ऊपर से गिलोय का काढ़ा पीना चाहिए। एक महीने तक सेवन करने से शरीर सुवर्ण के तुल्य हो जाता है और कठिन वातरक्त, सफेद कोढ़, औदुम्बर कोढ़, कोढ़, चर्मदल, सेहुआ (छाई), पामा, व्रण, फुन्सी, विचर्चिका दाद, मण्डलरोग और

किट्टिम कोढ़, इन सबको यह चूर्ण इस प्रकार नाश करता है जैसे वज्र वृक्षों को। तथा आमवात से उत्पन्न सब प्रकार की सूजन, सब प्रकार के उदररोग, प्लीहा, गुल्मरोग, पाण्डुरोग, कामला (काँवर, पीलिया) और सब प्रकार की खुजली तथा व्रणों को निःसंदेह नष्ट करता है। इस निम्बादि चूर्ण को नागार्जुन मुनि ने कहा है ॥ ३०-३७ ॥

स्वल्पगुडूची तैल।

गुडूचीक्वाथकल्काभ्यां सिद्धं तैलं प्रयत्नतः। वातरक्तं निहन्त्याशु नात्र कार्या विचारणा ॥ ३८ ॥

क्वाथ के लिए गिलोय १२८ तोले, जल २५ सेर, ४८ तोले, शेष ६ सेर ३२ तोले। कल्क के लिए गुर्च ३२ तोले और तिलतैल १२८ तोले। यथाविधि तैल सिद्ध कर सेवन करने से वातरक्त शीघ्र ही नाश हो जाता है ॥ ३८ ॥

( ) मध्यगुडूची तैल।

गुडूचीक्वाथकल्काभ्यां सिद्धं तैलं पयःसमम्। वातरक्तं निहन्त्याशु साध्यासाध्यमथापि वा ॥ ३९ ॥ एकजं द्वन्द्वजं चैव तथैव सान्निपातिकम्। नाशयेत्तिमिरं घोरं गुडूचीतैलमुत्तमम् ॥ ४० ॥

गिलोय का क्वाथ [illegible] सेर, कल्क के लिए गिलोय आध सेर तिल का तेल २ सेर, गौ का दूध २ सेर। यथाविधि तेल सिद्ध कर मालिश करने से साध्य अथवा असाध्य सब प्रकार का वातरक्त रोग नष्ट होता है और अत्यन्त बढ़ा हुआ तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ ३९-४० ॥

वृहद्गुडूची तैल।

शतं छिन्नरुहायाश्च जलद्रोणे विपाचयेत्। तेन पादावशेषेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४१ ॥ क्षीरं चतुर्गुणं दद्यात्कल्कानेतान् प्रयत्नतः। अश्वगन्धा विदारी च काकोल्यौ हरिचन्दनम् ॥ ४२ ॥ शतावरी चातिबला श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम्। कृमिघ्नं त्रिफला रास्ना त्रायमाणा च शारिवा ॥ ४३ ॥ जीवन्ती ग्रन्थिकं व्योषं वागुजीभेकपर्णिका। विशाला ग्रन्थिपर्णं च मञ्जिष्ठा चन्दनं निशा ॥ ४४ ॥ शताह्वा सप्तपर्णी च कार्षिकाण्युपकल्पयेत्। पानाभ्यञ्जननस्येषु वातरक्तं प्रयोजयेत् ॥ ४५ ॥ वातरक्तमुदावर्तं कुष्ठान्यष्टादशैव तु। हनुस्तम्भं प्रमेहं च कामलां पाण्डुतां जयेत् ॥ ४६ ॥ विस्फोटं च विसर्पं च नाडीव्रणभगन्दरम्। विचर्चिकां गात्रकण्डूं पाददाहं विशेषतः ॥ ४७ ॥ एतत्तैलवरं श्रेष्ठं वलीपलितनाशनम्। आत्रेयनिर्मितं चैव बलवर्णकरं स्मृतम् ॥ ४८ ॥

५ सेर गिलोय को २५ सेर ४८ तोले जल में औटावे। जब ६ सेर ३२ तोले बाकी रहे तब उतार कर छान ले। तेल १२८ तोले, दूध ६ सेर ३२ तोले। कल्क के लिए असगन्ध, विदारीकन्द, काकोली, क्षीरकाकोली, पीला चन्दन, शतावरी, कघी, गोखुरू, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, वायविडंग, त्रिफला, रास्ना, त्रायमाण, शारिवा, जीवन्ती, पिपरामूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, बावची, मण्डूकपर्णी, इन्द्रायण, गठिवन, मँजीठ, सफेद चन्दन, हल्दी, सोया के बीज और सतवन, ये सब एक एक तोला। यथाविधि तैल सिद्ध करे। इसके पीने से, मालिश करने से तथा नस्य लेने से वातरक्त, उदावर्त, १८ प्रकार के कोढ़, हनुस्तम्भ, प्रमेह, काँवर (पीलिया), पाण्डुरोग, विस्फोटक, विसर्प, नाड़ीव्रण, भगन्दर, विचर्चिका खुजली और पाददाह और वलीपलित; इन रोगों का नाश होता है। यह बल और वर्ण का देनेवाला वृहद्गुडूची तैल आत्रेयजी का बनाया हुआ है ॥ ४१-४८ ॥

विषतिन्दुक तैल

विषतरुफलमज्जप्रस्थयुग्मं च शिग्रु स्वरसलकुचवारिप्रस्थमेकैकशश्च । कनकवरुणचित्रापत्रनिर्गुण्डिकास्नुकस्वरसतुरगगन्धावैजयन्तीरसश्च ॥ ४९ ॥ पृथगिति परिकल्प्य प्रस्थयुग्मेन युग्मं विषतरुफलमज्जातुल्यतैलं विपक्वम् । लशुनसरलयष्टिकुष्ठसिन्धूत्थयुग्मं दहनतिमिरकृष्णाकल्कयुक्तं सुसिद्धम् ॥ ५० ॥ हरति सकलवातान् घोररूपानसाध्यान्प्रतिदिनमनुलेपात् सुप्तवातस्य जन्तोः ॥ ५१ ॥ कुष्ठमष्टादशविधं विविधं वातशोणितम् । वैवर्ण्यं त्वग्गतान् दोषान्नाशयत्याशु मर्दनात् ॥ ५२ ॥

कुचिले की मींगी १२८ तोले, क्वाथ के लिए जल १२ सेर ६४ तोले, अवशिष्ट जल ३ सेर १६ तोले, सहिजना का रस, १२८ तोले, बड़हर का रस, १२८ तोले, धतूरा के पत्तों का रस १२८ तोले, वरना की छाल का काढ़ा १२८ तोले, चित्रक की पत्तियों का स्वरस १२८ तोले, सँभालू का काढ़ा १२८ तोले, थूहर का रस १२८ तोले, असगन्ध का काढ़ा १२८ तोले और अरणी के पत्तों का रस १२८ तोले, तिलतैल १२८ तोले। कल्क के लिए— लहसुन, सरलकाष्ठ, मुलेठी, कूट, सेंधानमक, विड़नमक, चीत की जड़, हल्दी और पीपल; ये सब चार-चार तोले। यथाविधि तैल सिद्ध कर प्रतिदिन मालिश करने से अत्यन्त कठिन तथा असाध्य सब प्रकार के वातरोग, सुप्तवात, १८ प्रकार के कोढ़, अनेक प्रकार के वातरक्त, विवर्णता और त्वचा के दोषों का नाश होता है ॥ ४९–५२ ॥

रुद्र तैल

पुनर्नवानिशानिम्बं वार्त्ताकुबृहतीत्वचम् । कण्टकारी करञ्जश्च निर्गुण्डीवृषमूलकम् ॥ ५३ ॥ अपामार्गपटोलं च धुस्तूरं दाडिमीफलम् । जयन्तीमूलकं दन्ती प्रत्येकं कार्षिकद्वयम् ॥ ५४ ॥ त्रिफलायाः प्रदातव्यं द्विकर्षं च पृथक् पृथक् । दत्वा छिन्नरुहायाश्च द्वात्रिंशच्च पलानि च ॥ ५५ ॥ पाचयेद् भाजने तोयं चतुर्भागावशेषितम् । कटुतैलस्य च प्रस्थं दुग्धं च तत्समं भवेत् ॥ ५६ ॥ वासकस्वरसप्रस्थं मन्दमन्देन वह्निना । गन्धं शटी च कंकोलं चन्दनं ग्रन्थिकं नखी ॥ ५७ ॥ पूतिकं केशरं कुष्ठं हन्त्यस्थिमज्जगं पुनः । हस्तपादांगुलिसन्धिगलितं स्फुटितं तथा ॥ ५८ ॥ कृष्णं श्वेतं तथा रक्तं नानावर्णं सदाहकम् । पामां विचर्चिकां कण्डूं छायां त्वचं च कालिनीम् ॥ ५९ ॥ मसूरिकां मण्डलं च ज्वलनं च विसर्पकम् । नाडीव्रणं धर्महीनं गात्रवैवर्ण्यदद्रुकम् । निहन्ति रक्तदोषं च भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ६० ॥

गदहपुर्ना (साँठी) की जड़, हल्दी, नीम की छाल, बैंगन, बड़ी कटेरी, दालचीनी, छोटी कटेरी, करंजुआ, सँभालू, अडूसे की जड़, लटजीरा, परवल के पत्ते, धतूरा, अनारदाना, अरणी की जड़, जमालगोटे की जड़; ये सब दो-दो तोले। आँवला २ तोले, हड़ २ तोले, बहेड़ा दो तोले। इन सबका कल्क। गिलोय १२८ तोले, पाकार्थ जल १ सेर ३२ तोले, अवशिष्ट १२८ तोले। कडुआ तैल १२८ तोले- गोदुग्ध १२८ तोले, अडूसे का रस १२८ तोले। मन्दाग्नि से यथाविधि तैल सिद्ध करके उसमें काली अगर, कपूर, कंकोल, सफेद चन्दन, गठिवन, नखी, स्टाशी, नागकेसर और कूट; इनका प्रक्षेप देकर तेल को सुगन्धित करे। इस रुद्रतैल के मर्दन करने से हड्डी और मज्जागत कुष्ठ तथा जिसमें हाथ और पैर की अँगुलियाँ गल गई हों अथवा फूट गई हों

वह कुष्ठ तथा काला, सफेद, लाल और अनेक वर्ण का कुष्ठ, पामा, विचर्चिका, खुजली, छायारोग, खाल का कालापन, मसूरिका, मण्डलकुष्ठ, दाह, विसर्प, नाड़ीव्रण (नासूर), पसीना का न आना, शरीर की विवर्णता, दाद और रक्तदोष इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे सूर्योदय से अन्धकार ॥ ५३--६० ॥

महारुद्र तैल ।

पुनर्नवा निशा निम्बं वार्त्ताकुदाडिमीफलम् । बृहत्यौ पूतिकामूलं वासकं सिन्धुवारकम् ॥ ६१ ॥ पटोलपत्रं धुस्तूरमपामार्गं जयन्तिका । दन्ती वरा पृथक सर्वं कर्षद्वयमितं पुनः ॥ ६२ ॥ विषस्य द्विपलं देयं पृथक् व्योषं पलत्रयम् । मस्थं च सार्षपं तैलं मस्थाम्बुद्वयपात्रजम् ॥ ६३ ॥ गुडूच्यास्तु चतुःषष्टिपलक्वाथरसेन च । वारिमस्थेन पक्तव्यं महारुद्रमिदं शुभम् ॥६४॥ वातरक्तं निहन्त्याशु नानादोषसमुद्भवम् । अष्टादशविधं कुष्ठं हन्ति वर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ६५ ॥ क्रिमिं दुष्टव्रणं चैव दाहं कण्डूं निहन्ति च । अस्वेदनं महास्वेदमभ्यङ्गादेव नश्यति ॥ ६६ ॥

वासारुद्रगुडूचीतैलमित्यस्य संज्ञान्तरम् ।

क्वाथ के लिए गदहपुरैना (साँठी) की जड़, हल्दी, नीम की छाल, बैंगन, अनारदाना, दोनों कटेरी, करंज की जड़, रूसे की छाल, सँभालू, परवल के पत्ते, धतूरा, लटजीरा, अरणी, जमालगोट की जड़, त्रिफला, (अलग-अलग) ये सब चीजें दो-दो तोले। विष ८ तोले, सोंठ १२ तोले, मिर्च १२ तोले, पीपल १२ तोले, सरसों का तेल १२८ तोले । रूसे के पत्तों का रस १२८ तोले, गिलोय का रस ३ सेर १६ तोले, जल १२८ तोले । मंदाग्नि से यथाविधि तैल सिद्ध करे। इस महारुद्र तैल की मालिश करने से अनेक दोषों से उत्पन्न हुआ वातरक्त, अठारहों प्रकार के कुष्ठ, कृमि, दुष्ट-व्रण, दाह, कण्डू, प्रस्वेद (पसीना न निकलना), महास्वेद (पसीना ज्यादा निकलना) इन रोगों को यह तैल नाश करता है तथा वर्ण और अग्नि को बढ़ाता है। वासातैल, रुद्रतैल तथा गुडूचीतैल ये इसके नाम हैं। ॥ ६१--६६ ॥

कैशोरगुग्गुलु ।

वरमहिषलोचनोदरसन्निभवर्णस्य गुग्गुलोः मस्थम् । मक्षिप्य तोयराशौ त्रिफलां च यथोक्तपरिमाणम् ॥ ६७ ॥ द्वात्रिंशच्छिन्नरुहापलानि देयानि यत्नेन । विपचेदमत्तो दर्व्या सङ्घट्टयन् मुहुर्यावत् ॥ ६८ ॥ अर्द्धक्षयितं तोयं जातं ज्वलनस्य सम्पर्कात् । अवतार्य वस्त्रपूतं पुनरपि संसाधयेदयः पात्रे ॥ ६९ ॥ सान्द्रीभूते तस्मिन्नवतार्य हिमोपलमख्ये । त्रिफलाचूर्णार्द्धपलं त्रिकटोश्चूर्णं षडक्षपरिमाणम् ॥७०॥ कृमिरिपुचूर्णार्द्धपलं कर्षं कर्षं त्रिवृद्दन्त्योः । अमृतायाः पलमेकं सर्पिषश्च पलाष्टकं क्षिपेदमलम् ॥ ७१ ॥ उपयुज्य चानुपानं यूषं क्षीरं सुगन्धिसलिलं च । इच्छाहारविहारी भेषजमुपयुज्य सर्वकालमिदम् ॥ ७२ ॥ तनुरोधिवातशोणितमेकजमथ द्वन्द्वजं चिरोत्थं च जयति स्रुतपरिशुष्कं स्फुटितञ्चाजानुजं चापि ॥७३॥ व्रणकासकुष्ठगुल्मश्वयथूदरपाण्डुमेहांश्च । मन्दाग्निं च विबन्धं प्रमेहपिडिकाश्च नाशयत्याशु ॥ ७४ ॥ सततं निषेव्यमाणः कालवशाद्धन्ति सर्वगदान् । अभिभूय जरादोषं करोति कैशोरिकं रूपम् ॥ ८५ ॥ मत्येकं त्रिफला-

प्रस्थो जलमत्र षडाढकम्। पाकायत्तं फलं पाके काथे पाकप्रधानता। तस्मात् काथविधौ नित्यं यतितव्यं चिकित्सकैः॥७६॥

पोटली में बँधा हुआ महिषाक्षगुग्गुलु (भैंसागुग्गुलु) ६४ तोले, त्रिफला मिलित २ सेर ३२ तोले, गिलोय १२८ तोले, इनको ३८ सेर ३२ तोले जल में पकावे। पकाते समय करछी से चलाता जाय। जब आधा पानी जल जाय तो उतार कर वस्त्र से छान ले और पोटली का गुग्गुलु निकालकर घी में सान ले और काढ़े में मिलाकर फिर लोहे के पात्र में अग्नि पर चढ़ाकर पाक करे। गाढ़ा होने पर उतार ले और शीतल हो जाने पर ये चीजें डाले। हड़, बहेड़ा आँवला का चूर्ण दो-दो तोले, सोंठ, मिर्च, पीपल का चूर्ण दो-दो तोले, वायविडंग का चूर्ण २ तोले, निसोथ १ तोला, जमालगोटे की जड़ २ तोले, गिलोय ४ तोले, गौ का घृत ३२ तोले डालकर गुग्गुलु सिद्ध करे। इस गुग्गुलु को मूँग आदि का जूस, दूध, मुलायजल इत्यादि के साथ खावे और इच्छानुसार भोजन करे। इस गुग्गुलु के सेवन करने से एक दोषज, द्विदोषज तथा चिरकालिक, स्रुतपरिशुष्क (बहकर सूखा हुआ), स्फुटित जानुपर्यन्त फैला हुआ वातरक्त दूर होता है। व्रण, कास, कुष्ठ, गुल्म, सूजन, उदररोग, पाण्डु, मेह, मंदाग्नि, विबंध (पेट फूलना और) प्रमेहपिडिका आदि रोगों को यह नष्ट करता है। इसका निरंतर सेवन करने से सब प्रकार के रोग नाश होते हैं। यह कैशोरगुग्गुलु जरावस्था को दूर करके कैशोर अवस्था को प्राप्त कराता है। त्रिफला की प्रत्येक ओषधि ६४ तोले और इसमें जल ६ आढक (३८ सेर ३२ तोले) होना चाहिए। फल पाक के ही अधीन रहता है और क्वाथ में पाक ही प्रधान है, अतः वैद्यों को चाहिए कि सदा क्वाथविधि में परिश्रम करें॥६७-७६॥

रसाभ्रगुग्गुलु।

कर्षद्वयं पारदस्य लौहं गन्धं च तत्समम्। लौहगन्धसमं चाभ्रं गुग्गुलुं कुडवद्वयम्॥७७॥ अमृताया रसप्रस्थे रसप्रस्थे फलत्रिके। सान्द्रीभूते रसे तस्मिन् गर्भं दत्त्वा विचक्षणः॥७८॥ त्रिकटु त्रिफला दन्ती गुडूची चेन्द्रवारुणी। विडङ्गं नागपुष्पं च त्रिवृता च सुचूर्णितम्॥७९॥ प्रत्येकं कर्षमादाय सर्वमेकत्र कारयेत्। भक्षयेत् कोलमात्रं तु छिन्नाक्वाथानुपानतः॥८०॥ वातरक्तं महाघोरं स्फुटितं गलितं जयेत्। अष्टादशविधं कुष्ठं कृमिरोगाश्मरीं तथा॥८१॥ भगन्दरं गुदभ्रंशं श्वेतकुष्ठं सकामलम्। अपचीं गण्डमालां च पामां कण्डूं विचर्चिकाम्॥८२॥ चर्मकीलं महादद्रुं नाशयेन्नात्र संशयः। वातरक्तविनाशाय धन्वन्तरिकृतः पुरा॥८३॥ रसाभ्रगुग्गुलुः ख्यातो वातरक्तेऽमृतोपमः॥८४॥

शुद्ध पारा २ तोले, लौहभस्म २ तोले, गन्धक २ तोले, अभ्रकभस्म ४ तोले और गुग्गुलु ३२ तोले, गिलोय का रस १२८ तोले, त्रिफला का रस १२८ तोले; इन सबको मिलाकर पाक करे। जब गाढ़ा हो जाय तब त्रिफला, त्रिकुटा, जमालगोटे की जड़ गिलोय, इन्द्रायण की जड़, वायविडंग, नागकेशर, निसोथ; इनको एक-एक तोले लेकर चूर्ण करे। इस चूर्ण को पूर्वोक्त क्वाथ में डालकर गुग्गुलु सिद्ध करे। इसकी मात्रा ६ मासे, अनुपान गुर्च का क्वाथ। इसके सेवन करने से महाघोर स्फुटित तथा गलित वातरक्त, अठारह प्रकार के कुष्ठ, कृमिरोग, पथरी, भगन्दर, गुदभ्रंश, श्वेतकुष्ठ, कामला, अपची, गण्डमाला, पामा, कण्डू, विचर्चिका, चर्मकील और दद्रु ये रोग नष्ट होते हैं। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। यह वातरक्त को नाश करने के लिए धन्वन्तरिजी का बनाया हुआ रसाभ्रगुग्गुलु अमृत के समान है॥७७-८४॥

वातरक्तान्तक रस ।

पारदं गन्धकं लौहं घनं तालं मनःशिला । शिलाजतु पुरं शुद्धं समभागं विचूर्णयेत् ॥ ८५ ॥ विडङ्गं त्रिफलाव्योषमब्धिफेनं पुनर्नवा । देवदारु चित्रकं च दार्वी श्वेता पराजिता ॥ ८६ ॥ चूर्णमेषां पृथक् तुल्यं सर्वमेकत्र भावयेत् । त्रिफला भृङ्गराजस्य रसेनैव त्रिधा त्रिधा ॥ ८७ ॥ संभाव्य भक्षयेत् पश्चान्माषमात्रं दिने दिने । कृत्वानुपानं निम्बस्य पत्रं पुष्पं त्वचं समम् ॥ ८८ ॥ माषमात्रं घृतैः कुर्यात् सर्ववातविकारनुत् । वातरक्तं महाघोरं गम्भीरं सर्वजं जयेत् ॥ ८९ ॥ सर्वोपद्रवसंयुक्तं साध्यासाध्यं निहन्त्ययम् ॥ ९० ॥

शुद्धपारा, गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, हरिताल, मैनशिल, शिलाजीत, शुद्ध गुग्गुलु, वायविडंग, त्रिफला, त्रिकटु, समुद्रफेन, गदहपुरैना (साँठी) देवदारु, चीत की जड़, दारुहल्दी, विष्णुकांता; इन सबको सम भाग ले चूर्ण करे और उसमें त्रिफला और भाँगरे के रस की पृथक्-पृथक् तीन-तीन भावना दे। इसकी उर्द के समान गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन एक गोली का सेवन करे। एक-एक माशे नीम के पत्ते, पुष्प और छाल के साथ में घृत मिलाकर अनुपान करे। इस वातरक्तान्तक रस के सेवन से महाघोर, गम्भीर, त्रिदोषजन्य सब प्रकार के उपद्रवों से संयुक्त साध्य तथा असाध्य वातरक्त रोग दूर होता है ॥ ८५-९० ॥

पुनर्नवागुग्गुलु ।

पुनर्नवा मूलशतं विशुद्धं रुवूकमूलञ्च तथा प्रयोज्य । दत्त्वा पलं षोडशकञ्च शुण्ठ्याः सङ्कुट्य सम्यग्विपचेद् घृतेऽपाम् ॥ ९१ ॥ पलानि चाष्टाथ कौशिकस्य तेनाष्टशेषेण पुनः पचेत्तु । एरण्डतैलं कुडवञ्च दद्यात् दत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि पञ्च ॥ ९२ ॥ निकुम्भचूर्णस्य पलं गुडूच्याः पलद्वयं चार्द्धपलं पलं प्रति । फलत्रयत्र्यूषणचित्रकाणि सिन्धूत्थभल्लातविडङ्गकानि ॥ ९३ ॥ कर्षं तथा माक्षिकधातुचूर्णं पुनर्नवायाः पलमेव चूर्णम् । चूर्णानि दत्त्वा व्यवतार्य शीते खादेन्नरो माषत्रयप्रमाणम् ॥ ९४ ॥ वातासृजं वृद्धिगदञ्च सप्त जयत्यवश्यं त्वथ गृध्रसीञ्च । जङ्घोरुपृष्ठत्रिकबस्तिजञ्च तथामवातं प्रबलञ्च शीघ्रम् ॥ ९५ ॥

साँठी की जड़ ५ सेर, अरंडी की जड़ ५ सेर, सोंठ ६४ तोले इन्हें अधकुटकर २५ सेर ४८ तोले जल में पकावे, जब ३ सेर १६ तोले क्वाथ बाकी रह जाय तब उतार ले। इस क्वाथ को छानकर इसमें ३२ तोले गूगलको डाल पुनः पकावे पश्चात् अरंडी का तैल १६ तोले, निसोत २० तोले, दन्तीमूल ४ तोले, गिलोय ८ तोले, त्रिफलाचूर्ण २ तोले, त्रिकटु २ तोले, चित्रक ४ तोले, सेंधानमक ८ तोले, शुद्ध भिलावाँ ८ तोले, वायविडङ्ग ८ तोले, स्वर्णमाक्षिकभस्म १ तोला, साँठी ४ तोले। इनके चूर्ण को डालकर पकावे। जब पाक भले प्रकार तैयार हो जाय तब उतारकर शीतल होने दे। मात्रा ३ माशे। इसके सेवन से वातरक्त, वृद्धिरोग, गृध्रसी तथा जङ्घा, ऊरु, पृष्ठ, त्रिकसन्धि आदि में पैदा हुआ बलवान् आमवात शीघ्र नष्ट होता है ॥ ९१—९५ ॥

विश्वेश्वररस ।

रसाद्दश विषात्पञ्च गन्धकाद्दश शोधितात् । तुत्थाद्दश पलाशस्य बीजेभ्यः पञ्च कारयेत् ॥ ९६ ॥ क्षुद्राश्वमारधुस्तूरकरहाटकनीलितः । दशकं दशकं कुर्याच्छोपयित्वा जटात्वचः ॥ ९७ ॥ दशकं दशकं दत्त्वा कुचिलाद्दश नूतनात् । भल्लातकाच्च

दशकं चूर्णयित्वा भिषक् ततः ॥ ९८ ॥ सुदिने च बलिं दत्त्वा वैद्यः पूजापरायणः। रक्तिकैकमितं दद्यात् सहते यदि वा द्वयम् ॥ ९९ ॥ वातरक्तं ज्वरं कुष्ठं खरस्पर्शमसौ रुयदम्। आजानुस्फुटितं हन्ति विषजं वास्थिनिःसृतम् ॥ १०० ॥ कुष्ठमष्टादशविधमग्निमान्द्यमरोचकम्। विश्वेश्वरो रसो नाम विश्वनाथेन भाषितः ॥ १०१ ॥

शुद्ध पारा १० भाग, शुद्ध बच्छनाग ४ भाग, शुद्ध गन्धक १० भाग, शुद्ध नीलाथोथा १० भाग, ढाक के बीज ५ भाग, छोटी कटेरी, कनेर की जड़, धतूरा, अकरकरा, नील की जड़, जटामांसी, दारचीनी, हरएक दस-दस भाग। नूतन एवं शोधा हुआ कुचला १० भाग; शुद्ध भिलावाँ १० भाग। इनके चूर्ण को एकत्र कर मिलावे, पश्चात् शुभ दिन में बलि देकर पूजापरायण वैद्य रोगी को सेवन करावे। मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक। यह रस जानुपर्यन्त स्फुटित वातरक्त, ज्वर, कुष्ठ, विषरोग, मन्दाग्नि और अरुचि आदि को नष्ट करता है ॥ ९६—१०१ ॥

लाङ्गल्याद्य लौह।

विशुद्धलाङ्गलीमूलत्रिकटुत्रिफलैस्तथा। द्राक्षा गुग्गुलुभिस्तुल्यं लौहचूर्णं नियोजयेत् ॥ १०२ ॥ मातुलुङ्गरसेनैव त्रिफलाया रसेन च। विमृद्य यत्नतः पश्चाद् गुडिकां वल्लसम्मिताम् ॥१०३॥ भक्षयेन्मधुना सार्द्धं शृणु कुर्वन्ति यान् गुणान्। आजानुस्फुटितं घोरं सर्वाङ्गस्फुटितं तथा ॥ तत्सर्वं नाशयत्याशु साध्यासाध्यञ्च शोणितम् ॥ १०४ ॥

शुद्ध कलिहारी की जड़, त्रिकटु, त्रिफला, दाख, शुद्ध गूगल, प्रत्येक एक-एक भाग, इन मिले हुए चूर्ण के बराबर लौहभस्म, इन सबको एकत्र कर बिजौरे के रस तथा त्रिफला के रस से अलग अलग घोटकर ३ रत्ती के परिमाण में गोलियाँ बनावे। अनुपान शहद। यह लौह जानुपर्यन्त स्फुटित अथवा सर्वाङ्गस्फुटित साध्यासाध्य वात रक्त को नष्ट करता है ॥ १०२—१०४ ॥

कुष्ठोक्तोऽप्यत्र दातव्यः श्रीमहातालकेश्वरः सर्वेश्वरश्च दातव्यस्तस्मिन् कुर्यादिमं विधिम् ॥ १०५ ॥

कुष्ठ चिकित्सा में कहे हुए महातालकेश्वर एवं सर्वेश्वर रस भी वातरक्त में हितकर होता है ॥ १०५ ॥

रक्तरोग में शोणितमोक्षण।

रक्ताधिक्ये रक्तमोक्षः पदे बाहौ ललाटके। कर्त्तव्यो रक्तरोगेषु कुष्ठिनाञ्च विशेषतः ॥ १०६ ॥

यदि रक्ताधिक्य अथवा रक्तरोग हो तो पाँव, बाहु अथवा ललाट से रोगी के बलाबल तथा व्याधि की अवस्था को देखकर रक्त निकालना चाहिए। कुष्ठ, वातरक्त आदि रोगों में प्रायः रक्तमोक्षण किया जाता है। इस प्रकार रक्तमोक्षण से रक्ताधिक्य से प्रवृद्ध रक्त का दबाव (Blood Pressure) घटता है तथा रक्तरोगियों के रक्त में स्थित विष (Toxins) बहुत कुछ कम हो जाता है ॥ १०६ ॥

नारकीमुखघृत गुडूचीलौह।

गुडूचीसारसंयुक्तं त्रिकत्रयसमायुतम्। वातरक्तं निहन्त्याशु सर्वरोगहरं ह्ययः ॥ १०७ ॥

सर्वसमं लौहम्।

गिलोय के सत के साथ त्रिकटु (सोंठ, कालीमिर्च, पीपल), त्रिफला (हर, बहेड़ा, आँवला) तथा त्रिमद (वायविडंग, चित्रक, मोथा), इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर सबके बराबर लौहभस्म मिलावे, मात्रा २ रत्ती। इसके सेवन से वातरक्त नष्ट होता है ॥ १०७ ॥

पित्तान्तकलौह।

रसं गन्धकमभ्रञ्च गुडूचीमभयां तथा। उशीरं धान्यकं ताम्रसारं सर्वं समं समम् ॥

१०८ ॥ गृहीत्वाऽयः सर्वसमं खल्ले संस्थाप्य मर्दयेत। रक्तिद्वयमितां खादेद्वटिकामतियत्नतः ॥ १०९ ॥ पटोलपत्रधन्याककाथेनैवानुपानतः। पाण्डुं पित्तोद्भवान्रोगानशेषान् यकृतं तथा ॥ ११० ॥ उपदंशं तथा हन्याद्विकृतिं पारदोद्भवाम्। लौहः पित्तान्तको नाम वातरक्तं सुदारुणम् ॥ दाहं च हस्तपदयोर्हन्ति सूर्यो यथा-तमः ॥ १११ ॥

पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म, गिलोय, इन, सत, सुगन्धवाला, माक्षभस्म, सब समभाग। लौहभस्म ८ भाग, इन्हें इकट्ठा खरल में डाल घोटकर जल से दो दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। अनुपान—पटोलपत्र तथा धनियाँ का काथ। इसके प्रयोग से पाण्डु सम्पूर्ण पित्तरोग, उपदंश, पारदसेवन से उत्पन्न विकार, कठिन वातरक्त तथा हाथ पैरों की जलन नष्ट होती है ॥ १०८—१११ ॥

द्वादशायस।

गरुत्मान् दरदस्तीक्ष्णं गन्धाख्यो वङ्गशङ्खिके। गलनं च गगनं फेनं रुधिरं च त्रि नेत्ररूम् ॥ ११२ ॥ पातालनृपतिश्चैव वह्निमूलं सरामठम्। त्रिकटु त्रिफला शिग्रु चाजमोदा यमानिका ॥ ११३ ॥ पिप्पलीमूलं भार्गी च लशुनं जीरकद्वयम्। आर्द्रकस्य रसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ११४ ॥ वातरक्तं महाकुष्ठं गलिताङ्गं त्रिदोषजम्। शोथं कण्डूं च रुधिरं सर्वमेतद् व्यपोहति ॥ ११५ ॥ मन्दानलामवातश्च श्लेष्माणं च जलोदरम्। घ्राणाक्षिकर्णजिह्वानां सर्वरोगं विनाशयेत् ११६

सुवर्णमाक्षिक, हिगुल (शिंगरफ) लौह भस्म, पारा, वङ्गभस्म, गन्धक ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, समुद्रफेन, गेरू, सुवर्ण शीशा, चीत की जड़, हींग, त्रिकटु, त्रिफला, सहिंजने के बीज, अजमोद, अजवाइन, पिपरामूल, भारंगी, लहसुन सम भाग लेकर चूर्ण करे। पश्चात् अदरख के रस की भावना देकर गोलियाँ बनावे। इन गोलियों के सेवन करने से वातरक्त, महाकुष्ठ, गलितकुष्ठ, त्रिफला शोथ, खुजली, रुधिरविकार, अग्निमान्द्य, आमवात, कफरोग, जलोदर तथा कान, नाक, आँख, और जिह्वा के सब रोग दूर होते हैं ॥ ११२-११६ ॥

छिन्नोद्भवाकषायेण सेव्यं शुद्धं शिलाजतु। पञ्चकर्मविशुद्धेन वातरक्तप्रशान्तये ॥ ११७ ॥

पाँचों कर्मों (स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन तथा वस्ति) से शुद्ध होकर वातरक्त की शान्ति के लिए गिलोय के काढ़े के साथ शुद्ध शिलाजीत का सेवन करे ॥ ११७ ॥

कुष्ठोक्तोऽप्यत्र दातव्यः श्रीमहातालकेश्वरः। सर्वेश्वरश्च दातव्यस्तस्मिन् कुर्यादमुं विधिम् ॥ ११८ ॥ रक्ताधिक्ये रक्तमोक्षः पादे बाहौ ललाटके। कर्त्तव्यो रक्तरोगेषु कुष्ठिनां च विशेषतः ॥ ११९ ॥ बलिनो बहुदोषस्य वयःस्थस्य शरीरिणः। परं प्रमाणमिच्छन्ति प्रस्थं शोणितमोक्षणे ॥ १२० ॥

कुष्ठाधिकार में कहे हुए महातालकेश्वर और सर्वेश्वर रसों को भी वातरक्त की शान्ति के लिए देना चाहिए। रक्तविकार में विशेषकर कुष्ठरोग में रोगी के शरीर में रक्त अधिक होने पर पैर, बाहु और ललाट में रक्तमोचण करे। बलवान्, बहुत दोषों युक्त और युवावस्थावाले रोगी के रक्तमोचण में ज्यादा से ज्यादा ६४ तोले रक्त निकाले ॥ ११८–१२० ॥

तालेन निहतं ताम्रं रसगन्धकसंयुतम्। बहुधा पुटितं तालं वातरक्ते महौषधम् ॥ १२१ ॥

हरिताल के संयोग से भस्म किये हुए ताम्र

में पारा और गंधक की कज्जली मिलाकर सेवन करने से अथवा बहुत पुट दिया हुआ हरिताल सेवन करने से वातरक्त नष्ट होता है। यह वातरक्त के लिए महौषध है ॥ १२१ ॥

वातरक्तान्तकरस।

गन्धकं पारदं लोहं शिलां तालं धनं तथा। शिलाजतु पुरं शुद्धं सम भागं विचूर्णयेत् ॥ १२२ ॥ श्वेताऽपराजिता दार्वीवाकुची चित्रकन्तथा। पुनर्नवा देवकाष्ठं त्रिफला व्योपवेल्लके ॥ १२३ ॥ चूर्णमेषां पृथक् तुल्यं सर्वमेकत्र कारयेत्। त्रिफला भृङ्गराजस्य रसेनैव त्रिधा-त्रिधा ॥ १२४ ॥ भावयेद्भक्षयेत्पश्चाच्चणमात्रं दिने दिने । ततोऽनुपान निम्बस्य पत्रं पुष्पंत्वचं समम् ॥ १२५ ॥ शाणमात्रं घृते कुर्यात्सर्व वातविकारनुत्। वातरक्त महाघोरं गम्भीरं सर्वजं च यत् ॥ १२६ ॥ सर्वोपद्रव संयुक्तं साध्याऽसाध्यं निहन्त्यलम् ॥ १२७ ॥

शुद्ध पारा और शुद्धगन्धक लोह भस्म शुद्धमैनसिल और हरिताल अभ्रक भस्मशिलाजीत गूगल सब १-१ भाग लेकर कज्जली में मिलाकर सफेद कोयल दारु हल्दी बाकुची चित्रकमूल पुनर्नवा देवदारु, त्रिफला त्रिकुटाविडङ्ग ये सब १-१ भाग लेकर महीनचूर्ण कर पूर्वोक्त दवा में मिलाकर त्रिफला और भांगरा के रस में ३-३ दिन घोटकर चना के समान गोलियां बना लेवे। इनमें से १-१ गोली नीमके पत्ते फूल और छाल सम भाग के ४ माशे चूर्ण और घी के साथ सेवन से सब प्रकार के वातरक्त और वात व्याधियों का नाश करता है ॥ १२२-१२७ ॥

गुडूच्यादि लौह।

गुडूचीसारसंयुक्तं त्रिकत्रयसमायुतम्। वातरक्तं निहन्त्याशु सर्वरोगहरं ह्ययः ॥ १२८ ॥

गुडूचीं कुट्टयित्वा पात्रस्थजले संमर्द्य अधः पतितसारो विशुष्को ग्राह्यः। त्रिकत्रयं त्रिफला त्रिकटु त्रिमदाः। सर्वसमं लौहम्।

गिलोय का सत, त्रिफला (हड़, बहेड़, आँवला), त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), त्रिमद (वायविडंग, नागरमोथा, चीता), इनके बराबर लोहभस्म ले । यह लोहभस्म सेवन करने से वातरक्त को दूर करता है ॥ ॥ १२२ ॥

गिलोय का सत्व (सत) निकालने की रीति यह है कि गुर्च के छोटे-छोटे टुकड़े करके महीन कूटकर जल में भिगो दे। ५ या ६ घंटे के बाद मलकर वस्त्र से छान ले। छानने से गिलोय के छोद (छूंछ) वस्त्र में रह जाते हैं और सत्वमिश्रित जल अलग हो जाता है। कुछ देर में जब सत्व नीचे बैठ जाय तब धीरे-धीरे जल को गिरा दे और अधःस्थित स्वच्छ सत्व को घाम में सुखाकर ग्रहण करे।,

शताह्वादि तैल।

क्वाथेन शतपुष्पायाः कुष्ठस्य मधुकस्य च। एकैकं साधयेत्तैलं वातरक्तरुजापहम् ॥ १२९ ॥

सोया, कूट, मुलहठी, इनमें से किसी एक के क्वाथ से तैल सिद्धकर अभ्यङ्ग करने से वातरक्त नष्ट होता है ॥ १२९ ॥

पिण्ड तैल।

समधूच्छिष्टमञ्जिष्ठं ससर्जरससारिवम्। पिण्डतैलमिति ख्यातं वातरक्तरुजापहम् ॥ १३० ॥

तिलतैल ४ सेर। जल १६ सेर, कल्क के लिए—मधूच्छिष्ट (मोम), मजीठ, राल तथा अनन्तमूल मिलाकर १ सेर। इसे विधिपूर्वक सिद्ध कर गरम ही को कपड़े से छान ले। इस

पिण्ड तैल को मालिश करने से वातरक्त नष्ट होता है ॥ १३० ॥

महापिण्ड तैल ।

अमृतायाः पलशतं सोमराजीतुलां तथा । प्रसारण्याः पलशतं जलद्रोणे पृथक् पचेत् ॥ १३१ ॥ पादशेषं गृहीत्वा च तैलमस्थं पचेद्भिषक् । क्षीरं चतुर्गुणं दत्त्वा मन्दमन्देन वह्निना ॥ १३२ ॥ पिण्डशालजनिर्याससिन्धुगारफलत्रयम् । विजया बृहती दन्ती कंकोलकपुनर्नवाः ॥ ॥ १३३ ॥ वह्निग्रन्थिककुष्ठानि निशे द्वे चन्दनद्वयम् । पूतिपूतीकसिद्धार्थनाकुचीचक्रमर्दकम् ॥ १३४ ॥ वासानिम्बपटोलीना वानरीबीजमेव च । अश्वगन्धा सरलं सर्वं मतिकर्षमितं पचेत् ॥ १३५ ॥ एतत्तैलवरं हन्ति वातरक्तमसंशयम् । कुष्ठमष्टादशविधं ग्रन्थिवातं सुदारुणम् ॥ १३६ ॥ कायग्रहश्चामवातं भगन्दरगुदामयम् । ज्वरमष्टविधं हन्ति मर्दनान्नात्र संशयः ॥ १३७ ॥

कटु तैल १२८ तोले, क्वाथ के लिए—गिलोय ५ सेर, जल २४ सेर ४८ तोले बचा हुआ क्वाथ ६ सेर ३२ तोले । काली जीरा ५ सेर, पाक के लिए जल २४ सेर ४८ तोले । बचा हुआ क्वाथ ६ सेर ३२ तोले । दूध १ सेर ३२ तोले । कल्क के लिए—शिलारस, राल, सम्भालू, त्रिफला भाग बड़ी कटेरी, दन्ती की जड़ शीतलचीनी, साठी, चित्रक, पीपलामूल, कूठ हल्दी, दारुहल्दी, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, खटाशी, करंज, सफेद सरसों, काली जीरा, पवाँड के बीज, अडूसा, नीम की छाल, पटोलपत्र, कौंच के बीज असगन्ध, सरलकाष्ठ (चीड की लकड़ी), हर एक एक-एक तोला लेकर यथाविधि तैल पकावे । इस तैल की मालिश से वातरक्त, कुष्ठ ग्रन्थिवात' कायग्रह (सम्पूर्ण शरीर का जकड़ना), आमवात, भगन्दर, बवासीर तथा आठों प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥ १३१–१३७ ॥

दशपाकबला तैल ।

बलाकषायकल्काभ्यां तैलं क्षीरचतुर्गुणम् । दशपाकं भवेदेतत् वातसृग्वातपित्तजित् ॥ १३८ ॥ धन्यं पुंसवनञ्चैव नराणां शुक्रवर्द्धनम् । रेतोयोनिविकारघ्नमेतद्वातविकारनुत् ॥ १३९ ॥

तिलतैल ४ सेर, खरैटी का क्वाथ १६ सेर । दूध १६ सेर, कल्क के लिए—खरैटी १ सेर । इस तैल को इसी प्रकार दस बार पकाना चाहिए । इससे तैल में प्रकृतिसमसमवेत व्याधि के दोष नष्ट करनेवाली शक्ति बढ़ती है । यह तैल वातरक्त, एवं वातपित्तज रोगों को नष्ट करता है । यह तैल पुंसवन, वीर्यवर्द्धक तथा वीर्य एवं योनि के विकारों को नष्ट करता है ॥ १३८-१३९ ॥

महारुद्रगुडूची तैल ।

अमृतायास्तुलां सम्यग् जलद्रोणे विपाचयेत् । पिचुमर्दत्वचं तुल्यां भाजनममितां तथा ॥ १४० ॥ जलद्रोणे विनिष्क्वाथ्य ग्राह्यं पादावशेषितम् । प्रस्थं च कटुतैलस्य गोमूत्रं चापि तत् समम् ॥ १४१ ॥ अमृता नागुजी कुम्भी करवीरं फलत्रिकम् । दाडिमं निम्बबीजं च रजन्यौ बृहतीद्वयम् ॥ १४२ ॥ नागबला त्रिकटुकं पत्रं मांसी पुनर्नवा । ग्रन्थिकं निम्साश्वाह्वा शतपुष्पा च चन्दनम् ॥ १४३ ॥ शारिवे द्वे सप्तपर्णो गोमयस्य रसस्तथा । एषां कर्षमितैर्भागैः साधयेन् मृदुनाग्निना ॥ १४४ ॥ वातरक्तं निहन्त्याशु सर्वोपद्रवसंयुतम् । कुष्ठं चाष्टादशविधं विसर्पं च व्रणामयम् ॥ महारुद्र-

गुडूच्याख्यं तैलं भुवनदुर्लभम् ॥ १४५ ॥ दिवास्वप्नाग्निसन्तापं व्यायामं मैथुनं तथा । कट्वुष्णगुर्वभिष्यन्दिलवणाम्लानि वर्जयेत् ॥ १४७ ॥

गिलोय ४ सेर, क्वाथ के लिए जल २५ सेर ४८ तोले, अवशिष्ट जल ६ सेर ३२ तोले। नीम की छाल ३ सेर १६ तोले, जल २२ सेर ४८ तोले, अवशिष्ट जल ६ सेर ३२ तोले। कडुआ तैल १२८ तोले और गोमूत्र १२८ तोले। कल्क के लिए गिलोय, बकुची, दन्ती, करंजे की जड़, त्रिफला, अनारदाना, नीम के बीज, हल्दी, दारुहल्दी, दोनों कटेरी, नागबला, त्रिकटु, तेजपात, जटामांसी, गदहपुरैना, पिपरामूल, मजीठ, असगन्ध, सोया, लालचन्दन, दोनों सारिवा, सप्तपर्ण, (छितवन) गोबर का रस ये सब एक-एक तोला ले। यथाविधि धीमी आंच से तैल सिद्ध करे। इस महारुद्र गुडूची तेल की मालिश करने से सब उपद्रवों से संयुक्त वातरक्त, अठारहों प्रकार के कुष्ठ, विसर्प, व्रण इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। यह महारुद्रगडूची तैल संसार में दुर्लभ है। इस तैल के मर्दन करनेवाले को दिन में सोना, अग्नि का तापना, व्यायाम करना, मैथुन करना, कटु, उष्ण, गुरु और अभिष्यन्दि पदार्थों का सेवन करना तथा अम्ल और लवण का सेवन करना वर्जित है ॥ १४०-१४६ ॥

वातरक्त में पथ्य।

उत्तानेऽभ्यञ्जनं सेकः सोपनाहः मलेपनम्। गम्भीरे स्नेहपानश्च स्थापनश्च विरेचनम् ॥ १४७ ॥ द्वयोरस्रस्रुतिः सूचीजलौकाश्रृङ्गालाबुभिः । शतधौतघृताभ्यङ्गो गेव्यादुग्धासेचनम् ॥ १४८ ॥ यवषष्टिकनीवारकलमारुणशालयः। गोधूमाश्चणका मुद्गास्तुवर्योऽपि मकुष्ठकाः ॥ १४९ ॥ अजानां महिषीणाञ्च गवामपि पयांसि च। लावतित्तिरिमपूरकुक्कुटाम्रचूडादिविष्किराः ॥ १५० ॥ प्रतुदाः शुकदात्यूहकपोतचटकादयः । उपोदिका काकमाची वेत्राग्रं सुनिषण्णकम् ॥१५१॥ वास्तुकं कारवेल्लश्च तण्डुलीयः प्रसारणी। पत्तूरो वृद्धकूष्माण्डं सर्पिः शम्पाकपल्लवम् ॥ १५२ ॥ पटोलं रुबुतैलश्च मृद्वीका श्वेतशर्करा। नवनीतं सोमवल्ली कस्तूरी सितचन्दनम् ॥ १५३ ॥ शिंशपागुरुदेवाह्वसरलस्नेहमर्दनम्। तिक्तञ्च पथ्यमुद्दिष्टं वातरक्तगदे नृणाम् ॥ १५४ ॥

उत्तान वातरक्त में अभ्यङ्ग, परिषेचन, पुल्टिस और प्रलेप का प्रयोग करना चाहिए। गम्भीर वातरक्त में स्नेहपान, आस्थापन बस्ति और विरेचन करना चाहिए। उत्तान तथा गम्भीर दोनों प्रकार के वातरक्त में सुई (इञ्जेक्शन), जोंक, सिंगी तथा तुम्बी द्वारा रक्त निकालना चाहिए। सौ बार धुले घृत की मालिश, भेड़ के दूध से परिषेचन, जौ, साठी के चावल, नीवार (धान्यविशेष), कमल (धान्यविशेष), लाल शालि चावल, गेहूँ, चने, मूँग, अरहर, मोठ (मोथी) ये अन्न; बकरी, भैंस एवं गौ का दूध; लाव, तीतर, मोर, मुर्गा आदि विष्किर तथा तोता, दात्यूह (पक्षिविशेष), कबूतर, चिड़िया आदि प्रतुद पक्षियों के मांस, पोई का शाक, मकोय, बेत की कोंपल, चौपतिया, बथुआ, करेला, चौलाई, प्रसारणी, शालिञ्च, पुराना पेठा, घी, अमलतास के पत्ते, परवल, अरण्डी का तैल, किशमिश, सफेद खांड, मक्खन, गिलोय, कस्तूरी, श्वेत चन्दन, शीशम अगर, देवदारु और चीड़, इनके तैल की मालिश तथा तिक्त पदार्थ ये वातरक्त में पथ्य हैं ॥ १४७-१५४ ॥

अपथ्य।

माषाः कुलत्था निष्पावाः कलायाः क्षारसेवनम्। अम्बुजानूपमांसानि विरुद्धानि दधीनि च ॥ १५५ ॥ दुग्धं मुनक

मद्यं पिण्याकोऽम्लानि काञ्जिकम् । दिवास्वप्नाग्निसन्तापं व्यायामं मैथुनं तथा ॥ १५६ ॥ कट्वष्णगुर्वभिष्यन्दि-लवणाम्लानि वर्जयेत् ॥ १५७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वातरक्ता-धिकारः समाप्तः ।

वातरक्त के रोगी को उड़द, कुलथी, सेम, मटर, क्षारद्रव्यों का सेवन, जलज मत्स्य आदि तथा अनूप देश के पशु पक्षियों के मांस, विरुद्ध भोजन, दही ईख, मूली, शराब, तिल-कल्क, खटाई कांजी, दिन में सोना आग सेकना, व्यायाम, मैथुन तथा कटु, उष्ण, गुरु, अभिष्यन्दी (जैसे दही), अत्यन्त नमक तथा खटाई छोड़ देना चाहिए ॥ १५५–१५७ ॥

इति सरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्ना-वल्यां रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां . वातरक्ताधिकार. समाप्त ।

अथ कुष्ठाधिकारः ।

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु । पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनं श्रेष्ठम् ॥ १ ॥

वातज कुष्ठरोग में घी पिलाना, कफज में वमन कराना और पित्तज कुष्ठ रोग में रक्त-मोक्षण (फस्त खुलवाना) तथा विरेचन परमा-श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

कुष्ठरोग में कुपथ्य ।

पुराणधान्यानि च जाङ्गलानि मांसानि मुद्गाश्च पटोलयुक्ताः । यवादयश्चात्र हिताः पुराणा घृतानि शाकानि च तिक्तकानि ॥ २ ॥

पुराने धान्य, जांगल जीवों का मांस, मूँग, परवल, यव आदि पुराने अन्न घी और तिक्त शाक कुष्ठ रोगवाले को हितकारी हैं । ॥ २ ॥

चक्रमर्दकबीजन्तु जम्बीररसमर्दितम् । लेपितं भक्षितं हन्ति दद्रु कुष्ठमशेषतः ३॥

पवाँड के बीजों को जम्बीर के रस से घोटकर लेप करने से तथा खाने से दाद और कुष्ठ नष्ट होता है ॥ ३ ॥

तन्त्रान्तर में ।

पुराणाः शालिगोधूममुद्गाद्याः कुष्ठिनो हिताः । तिक्तशाकं जाङ्गलं च पानादौ खदिरोदकम् ॥ ४ ॥

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि पुराने चावल, गेहूँ और मूँग आदि कुष्ठरोगी को हितकर हैं । तिक्त शाक, जंगली जीवों का मांस और पीने को खैर की लकड़ी को जलाकर बुझाया हुआ पानी कुष्ठ रोगवाले को हितकारी होता है ॥ ४ ॥

ये लेपाः कुष्ठानां युज्यन्ते निर्गतास्रदोषाणाम् । संशोधिताशयानां सद्यः सिद्धिर्भवेत्तेषाम् ॥ ५ ॥

विरेचन आदि तथा रक्तमोक्षण द्वारा शुद्ध किये हुए कुष्ठरोगी के शरीर में जो लेप किया जाता है वह तुरत फल देनेवाला होता है ॥ ५ ॥

दद्रु चिकित्सा

दूर्वाभयासैन्धवचक्रमर्दकुठेरकः काञ्जितक्रपिष्टाः । एभिः प्रलेपैरपि बद्धमूलां कण्डूं च दद्रुं च निवारयन्ति ॥६॥

दूब, हड़, सेंधानमक, पवाँड़ के बीज और तुलसी की पत्ती, इनको काँजी तथा तक्र में पीसकर लेप करने से बहुत दिन से उत्पन्न हुई खुजली तथा दद्रु (दाद) का नाश होता है ॥ ६ ॥

तुल्यो रसः गालतरोस्तुषेण सचक्रमर्दोऽप्यभयाविमिश्रः । पानीयभक्तेन तदम्लपिष्टो लेपः कृतो दद्रु गजेन्द्रसिंहः ॥ ७ ॥

राल, तुष, पवाँड़े के बीज और हड़ इनको सम भाग लेकर काँजी के साथ पीसकर किया हुआ लेप दाद को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे कि सिंह हाथी को विनाश कर देता है ॥ ७ ॥

विडङ्गादिलेप।

विडङ्गैडगजाकुष्ठनिशासिन्धूत्थसर्षपैः। धान्याम्लपिष्टैर्लेपोऽयं दद्रुकुष्ठविनाशनः ॥ ८ ॥

बायबिडंग, पवाँड़ के बीज, कूट, हल्दी, सेंधा नमक, और सरसों इनको काँजी के साथ पीसकर लेप करने से दाद तथा कुष्ठ का नाश होता है ॥ ८ ॥

एडगजादिलेप।

एडगजकुष्ठसैन्धवसौवीरसर्षपैःकृमिघ्नैः। कृमिसिध्मदद्रुमण्डलकुष्ठानां नाशनो लेपः ॥ ९ ॥

पवाँड़े के बीज, कूट, सेंधानमक, श्वेत सरसों, बायबिड़ंग, इनको काँजी के साथ पीसकर लेप करने से कृमि, सिध्म (छाई), दद्रु और मण्डल-कुष्ठ का नाश होता है ॥ ९ ॥

अन्य तन्त्रान्तर में

कुष्ठसैन्धवसिद्धार्थकृमिघ्नैडगजैः समैः। दद्रुमण्डलकुष्ठघ्नं लेपनं काञ्जिकान्वितम् ॥ १० ॥ इति रविगुप्तः।

कूट, सेंधानमक, श्वेत सरसों, बायबिड़ंग, पवाँड़ के बीज इनको सम भाग लेकर काँजी में पीसकर लेप करने से दाद और मण्डलकुष्ठ नष्ट होता है ॥ १० ॥ यह रविगुप्त का मत है।

पर्णानि पिष्ट्वा चतुरंगुलस्य तक्रेण पर्णान्यथ काकमाच्याः। तैलाक्तगात्रस्य नरस्य कुष्ठान्युद्वर्तयेदश्वहनच्छदैश्च ॥ ११ ॥

शरीर में तेल लगाकर अमलतास, कनेर और मकोय के पत्तों को मट्ठे में पीसकर उबटन लगाने से कुष्ठरोग दूर होता है ॥ ११ ॥

विडङ्गसैन्धवशिवाशशिरेखासर्षपकरञ्जरजनीभिश्च। गोजलपिष्टो लेपः कुष्ठहरो दिवसनाथसमः ॥ १२ ॥

बायबिडंग, सेंधानमक, हड़ बाकुची, बीज, सरसों, करंज और हल्दी इनको गोमूत्र में पीसकर लेप करने से कुष्ठ ऐसे नष्ट होता है जैसे सूर्य से अन्धकार नष्ट होता है ॥ १२ ॥

किट्टिमकुष्ठचिकित्सा।

कासमर्दकमूलं च काञ्जिकेन प्रपेषितम्। दद्रु किट्टिमकुष्ठानि जयेदेतत्प्रलेपनात् ॥ १३ ॥

कसौंदी की जड़ को काँजी में पीसकर लेप करने से दाद किट्टिम तथा कुष्ठरोग दूर होते हैं ॥ १३ ॥

आरग्वधस्य पत्राणि आरनालेन पेषयेत्। दद्रु किट्टिमकुष्ठानि हन्ति सिध्मानमेव च ॥ १४ ॥

अमलतास के पत्तों को काँजी में पीसकर लेप करने से दाद, किट्टिम, कुष्ठ तथा सिध्म इन रोगों का नाश होता है ॥ १४ ॥

चक्राह्वयं स्नुहीक्षीरभावितं मूत्रसंयुतम्। रवितप्तं हि किंचित्तु लेपनं किट्टिमापहम् ॥ १५ ॥

पवाँड़ के बीजों के चूर्ण में थूहर के दूध की तथा गोमूत्र की भावना देकर किंचित् धूप में गर्म कर लेप करने से किट्टिम रोग शान्त होता है ॥ १५ ॥

कुष्ठैरीभवं तैलं कुष्ठघ्नं चर्मदोषनुत्। तन्मज्जा च मधूत्थेन लिप्तं गन्धाश्मना तथा ॥ कुष्ठं मर्शसिध्मं च नाशं याति न संशयः ॥ १६ ॥

चौलमूगरा के तेल की मालिश करने से कुष्ठ तथा त्वचा के दोष नष्ट होते हैं अथवा बीज

मूगरा की मज्जा, मोम, गन्धकचूर्ण इन्हें एकत्र पीसकर लेप देने से सब कुष्ट नष्ट होते हैं ॥१६॥

कुष्ठानां विनिवृत्तौ च गोमूत्रं परमौषधम्। अभयासहितं तद्धि ध्रुवं सिद्धिप्रदं मतम् ॥ १७ ॥

कुष्ठ के निवारण के लिये गोमूत्र अत्यन्त उत्तम औषध है। यदि गोमूत्र को हड के साथ सेवन करे तो निश्चय लाभ होता है ॥१७॥

चूर्णोदकेन कुष्ठघ्नतैलं कुष्ठहरं परम् १८

कुष्ठघ्न तैल (गर्जनतैल) को ८ या १० बूँद की मात्रा में चूने के जल के साथ रोगी को सेवन करावे तो शीघ्र ही कुष्ठ अच्छा हो जाता है ॥ १८ ॥

लघुमञ्जिष्ठादि क्वाथ।

मञ्जिष्ठा त्रिफला तिक्तवचा दारुनिशाभया। निम्बश्चैष कृतः क्वाथः सर्वकुष्ठं विनाशयेत् ॥ १९ ॥ वातरक्तं तथा कण्डूं पामानं रक्तमण्डलम् । दद्रूं विसर्पं विस्फोटं पानाभ्यासेन नाशयेत् ॥ २० ॥

मजीठ हड, बहेड़ा, आँवला, कुटकी, वच, दारुहल्दी, हड की छाल मिलाकर २ तोले क्वाथ के लिये जल ३२ तोले, बाकी ८ तोले। यह क्वाथ सेवन करने से सम्पूर्ण कुष्ट, वातरक्त, कण्डू, पामा, रक्तमण्डल, दाद, विसर्प तथा विस्फोटक को नष्ट करता है ॥ १९ २०॥

बृहन्मञ्जिष्ठादि क्वाथ।

मञ्जिष्ठा कुटजामृता घनवचा शुण्ठी हरिद्राद्वयं क्षुद्रारिष्टपटोलतिक्तकटुका भार्गीविडङ्गाम्लिकम् । मूर्वादारुकलिङ्गभृङ्गमगधात्रायन्तिपाठावरी गायत्रीत्रिफलाकिरातकमहानिम्बाशनारग्वधाः ॥२१॥ श्यामावल्गुजचन्दनं वरुणकं दन्तीवशाखोटकं वासापर्पटशारिवाप्रतिविषानन्ताविशालाजलम् । मञ्जिष्ठाप्रथमं कषायमिति यः संसेवते तस्य तु त्वग्दोषास्त्वचिरेण यान्ति विलयं कुष्ठानिचाष्टादश ॥ २२ ॥ नाशं गच्छति वातरक्तमखिलं नश्यन्ति रक्तामयाः वीसर्पस्त्वचि शून्यता नयनजा रोगाः प्रशाम्यन्ति च ॥ २३ ॥

मजीठ, कुडा की छाल, गिलोय, मोथा, वच, सोंठ, हल्दी, दारुहल्दी, छोटी कटेरी, नीम की छाल, पटोलपत्र, कुटकी, भारंगी, वायविडङ्ग, इमली की छाल, मूर्वामूल, देवदारु, इन्द्रजौ, भाँगरा, पीपल, त्रायमाण, पाढ, शतावर, खदिरकाष्ठ (खैर की लकडी), त्रिफला, चिरायता, महानिम्ब (बकायन) की छाल, पीतशाल, अमलतास, निसोत, बावचीबीज (कालीजीरी), लाल चन्दन, बरना की छाल, दन्तीमूल, लहोडा की छाल, अडूसा, पित्तपापडा, अनन्तमूल, अतीस, श्यामालता, इन्द्रायण की जड तथा गन्धवाला मिलाकर २ तोले । पाक के लिये जल ३२ तोले, बाकी ८ तोले । इसके क्वाथ के सेवन करने से त्वचादोष, १८ कुष्ठ, वातरक्त, सम्पूर्ण रुधिरविकार, वीसर्प, त्वक्शून्यता (त्वचा में स्पर्शानुभव न होना) तथा नेत्रविकार नष्ट होते हैं ॥ २१-२३ ॥

मञ्जिष्ठादि क्वाथ।

मञ्जिष्ठा बाकुची चक्रमर्दश्च पिचुमर्दकः। हरीतकी हरिद्रा च धात्री वासा शतावरी ॥ २४ ॥ बला नागबला यष्टिमधुकं क्षुरकोऽपि च। पटोलस्य लतोशीरं गुडूची रक्तचन्दनम् ॥ २५ ॥ मञ्जिष्ठादिरयं क्वाथः कुष्ठानां नाशनः परः। वातरक्तस्य संहर्ता कण्डूमण्डलनाशनः ॥२६॥

मजीठ, बावचीबीज (कालीजीरी), पवांड के बीज, नीम की छाल, हड, हल्दी, आँवला, अडूसा की छाल, शतावर, खरेटी, गंगेरन, मुलहठी, तालमखाने के बीज, पटोल की लता, खस, गिलोय, लाल चन्दन मिलाकर २ तोले, क्वाथ के लिये

जल ३२ तोले, शेष ८ तोले । यह क्वाथ पीने से कुष्ठ, वातरक्त तथा दाद आदि रोगों को नष्ट करता है ॥ २३–२६ ॥

अमृतादि क्वाथ ।

अमृतैरण्डवासाश्च सोमराजी हरीतकी । क्वाथ एषां हरेत्कुष्ठं वातरक्तश्च दारुणम् ॥ २७ ॥

गिलोय, अरण्डी की जड़, अड़ूसा की छाल, बावची (कालीजीरी) और हड़ ; इनका क्वाथ कुष्ठ एवं वातरक्त को नष्ट करता है ॥ २७ ॥

पञ्चकषाय ।

वचावासापटोलानां निम्बस्य फलिनीत्वचः । कषायो मधुना पीतो वान्तिकृन्मदनान्वितः ॥ २८ ॥

वच, अड़ूसा की छाल, पटोल की जड़, नीम की छाल और प्रियंगु इनके क्वाथ में मैनफल का चूर्ण तथा शहद डालकर कुष्ठ में वमनार्थ पिलाना चाहिए ॥ २८ ॥

विभीतकादि क्वाथ ।

विभीतकत्वङ्मलयूजटानां क्वाथेन पीतं गुडसंयुतेन । अवल्गुजं बीजमपाकरोति श्वित्राणि कृच्छ्राण्यपि पुण्डरीकम् ॥ २९ ॥

बहेड़े की छाल तथा काकोदुम्बर की जड़ के क्वाथ में गुड़ को मिलाकर और बाकुचीबीज (कालीजीरी) डालकर पीने से कष्टसाध्य श्वित्र तथा पुंडरीक कुष्ठ नष्ट होता है २९॥

नवकषाय ।

त्रिफलापटोलरजनीमञ्जिष्ठारोहिणीवचानिम्बैः । एषकषायोऽभ्यसतो निहन्ति कफपित्तजं कुष्ठम् ॥ ३० ॥

हड़, बहेड़ा, आँवला, पटोलपत्र, हल्दी, मंजीठ, कुटकी, वच और नीम की छाल इनका क्वाथ प्रतिदिन पीने से कफपित्तज कुष्ठ नष्ट होता है ॥ ३० ॥

सप्तसम योग ।

तिलाज्यत्रिफलाक्षौद्रव्योषभल्लाश्च शर्कराः । वृष्यः सप्तसमो मेध्यः कुष्ठहा कामचारिणः ॥ ३१ ॥

काले तिल, घृत, त्रिफला (मिलित), शहद, त्रिकुटा (मिलित), शुद्ध भिलावाँ, खाँड इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर रोगी को सेवन करावे । यह वृष्य, बुद्धिवर्धक तथा कुष्ठरोग को नष्ट करता है ॥ ३१ ॥

सिध्मकुष्ठचिकित्सा ।

शिखरीरसेन सुपिष्टं मूलकबीजं प्रलेपितं सिध्मम् । क्षारेण वा कदल्या रजनीमिश्रेण नाशयति ॥ ३२ ॥

लटजीरा की पत्तियों के रस में मूली के बीजों को पीसकर लेप करने से तथा केला के क्षार में हल्दी मिलाकर काँजी में पीसकर लेप करने से सिध्मरोग शान्त होता है ॥ ३२ ॥

सक्षारं गन्धकं लेपात् कटुतैलेन सिध्मजित् । कासमर्दकबीजानि मूलकानां तथैव च ॥ गन्धाश्मचूर्णमिश्राणि सिध्मानां परमौषधम् ॥ ३३ ॥

जवाखार और गन्धक को कड़वे तेल में मिलाकर लेप करने से तथा कसौंदी और मूली के बीज, असगन्ध का चूर्ण मिलाकर काँजी में पीसकर लेप करने से सिध्म (सेहुँआ) रोग नष्ट होता है ॥ ३३ ॥)

उपदेशात् काञ्जिकपिष्टैर्लेपः ।

गन्धपाषाणचूर्णेन यवक्षारेण लेपितम् । सिध्मनाशं व्रजत्याशु कटुतैलयुतेन च ॥ ३४ ॥

द्वयं समं कटुतैलेन लेपः ।

सम भाग गन्धक का चूर्ण और जवाखार को कटुतैल में मिलाकर लेप करने से सिध्म रोग (झाँई) तुरंत नाश होता है ॥ ३४ ॥

कुष्ठादिलेप।

कुष्ठं मूलकबीजं प्रियङ्गवः सर्षपास्तथा रजनी। एतत्केशरपष्ठं निहन्ति बहुवार्षिकं सिध्म ॥ ३५ ॥

कूट, मूली के बीज, प्रियंगु (मालकांगनी), सरसों, हलदी और नागकेसर इनको पीसकर लेप करने से बहुत दिन का उत्पन्न हुआ सिध्म (सेहुँआ) रोग नष्ट होता है ॥ ३५ ॥

कुरण्टकादिलेप।

नीलकुरण्टकपत्रैरालिप्य गात्रमतिबहुशः। लिम्पेन्मूलकबीजैः पिष्टैस्तक्रेण सिध्मनाशाय ॥ ३६ ॥

सिध्म (सेहुँआ) को नाश करने के लिए नीलकुरण्ड (नीली कटसरैया) के पत्तों के कल्क को शरीर में खूब मलकर तक्र में पिसे हुए मूली के बीजों का लेप करना चाहिए ॥ ३६ ॥

विचर्चिकाचिकित्सा।

एडगजतिलसर्षपकुष्ठं मागधिका लवणत्रयमस्तु। पूतीकृतं दिनत्रयमेतद्धन्ति विचर्चिकदद्रुकुष्ठम् ॥ ३७ ॥

पवाँड़ के बीज, तिल, सरसों, कूट, पीपरि, तीनों नमक (सेंधा, काला और साँभर नमक) इनको पीस दही के तोड़ में मिलाकर तीन दिन पर्यन्त रखकर सड़ा ले, पश्चात् उसको लेप करे तो विचर्चिका, दद्रु तथा कुष्ठ रोग दूर होते हैं ॥ ३७ ॥

पामामें प्रलेप।

सिन्दूरमरिचचूर्णं महिषीनवनीतसंयुतं बहुशः। लेपान्निहन्ति पामां तैलं करवीरसिद्धं वा ॥ ३८ ॥

सिन्दूर और मिर्च के चूर्ण को भैंस के मक्खन में मिलाकर लेप करने से तथा कनेर के मूल की छाल के कल्क और क्वाथ द्वारा सिद्ध किये हुए तैल का मर्दन करने से पामा नष्ट होती है ॥ ३८ ॥

पारदादि प्रलेप।

पारदं शङ्खगन्धं च शिला चौचरवारुणी। प्रपुन्नाडश्च सर्पाक्षी मेघनादाग्निलाङ्गली ॥ ३९ ॥ भल्लातं गृहधूमं च मुनिगुञ्जास्नुहीपयः। अरिष्टं च गुडक्षौद्रं वागुजीबीजतुल्यकम् ॥ ४० ॥ गोमूत्रैरारनालैर्वा पिष्ट्वा लेपं च कारयेत्। दद्रुमण्डलकण्डूं च विचर्चीं च विनाशयेत् ॥ ४१ ॥

पारा, शङ्खभस्म, गन्धक, मैनशिल, इन्द्रायण की जड़, पवाँड़ के बीज, सर्पाक्षी (गन्धनाकुली), चौलाई, चीता की जड़, कलिहारी, भिलावाँ, गृहधूम, मुनि (अगस्तिया), घुँघुची, थूहर का दूध, नीम की पत्ती गुड़, शहद और बाकुची के बीज इन सबको समान भाग लेकर गोमूत्र अथवा काँजी में पीसकर लेप करने से दाद, मण्डलकुष्ठ, खुजली, विचर्चिका इत्यादि रोग दूर होते हैं ॥ ३९–४१ ॥

कुष्ठहर लेप।

मनः शिलाले मरिचं च तैलमार्कं पयः कुष्ठहरः प्रलेपः ॥ ४२ ॥

मैनशिल, हरताल, कालीमिर्च, कडुआ तेल और आक का दूध इनका लेप कुष्ठ को हरनेवाला है ॥ ४२ ॥

विषवरुणहरिद्राचित्रकागारधूममनलमरिचदूर्वाक्षीरमर्कस्नुहीभ्याम्। दहति पतितमात्रं कुष्ठजातीरशेषाः कुलिशमिव सरोषाच्छक्रहस्ताद्विमुक्तम् ॥ ४३ ॥

अत्र अनलं भल्लातकः।

मीठातेलिया, वरना की छाल, हलदी, चित्रक, गृहधूम, भिलावाँ, मिर्च, दूब और थूहर तथा आक (मदार) का दूध इनका लेप करने से सब प्रकार के कुष्ठों का इस प्रकार नाश होता है जिस प्रकार क्रोधित इन्द्र के हाथ

से छूटे हुए वज्र से शत्रुओं का नाश होता है ॥ ४३ ॥

भल्लातकद्वीपिसुधार्कमूलं गुञ्जाफलन्त्र्यूषणशङ्खचूर्णम् । तुत्थं सकुष्ठं लवणानि पञ्च क्षारद्वयं लाङ्गलिकां च पक्त्वा ॥ ४४ ॥ स्नुह्यर्कदुग्धे घनमायसस्थं शलाकया तद्विदधीत लेपम् ॥ कुष्ठे किलासे तिलकालके च अशेषदुर्नामसु चर्मकीले ॥ ४५ ॥

एषां समभागचूर्णं स्नुह्यर्कयोः क्षीरं दत्त्वा किंचित् पाकं कुर्यात्। अथवा क्षीरद्वयं चतुर्गुणं चूर्णं पादिकं लेपयोग्यं पाकं कुर्यात् । शलाकया कुष्ठस्थाने दद्यात् ।

भिलावाँ, चीता की जड़, थूहर की जड़ और मदार की जड़, घुँघुची, सोंठ, मिर्च, पीपरि, शंखचूर्ण, नीलाथोथा, कूट, पाँचों लवण, दोनों खार (जवाखार, सज्जीखार) तथा कलिहारी इनके चूर्ण को सम भाग लेकर थूहर तथा आक के दूध में भिगोकर किंचित् पकावे। अथवा दोनों दूध चूर्ण से चौगुने लेकर लेप के योग्य पकाकर पश्चात् शलाका (सलाई) से कुष्ठ में लेप करे। इसके लेप करने से कुष्ठ, किलास, तिलकालक, अर्श तथा चर्मकील रोग नष्ट होते हैं ॥ ४४--४५ ॥

स्नुकाण्डशुषिरे दग्ध्वा गृहधूमं ससैन्धवम् । अन्तर्धूमं तैलयुक्तं लेपाद्धन्ति विचर्चिकाम् ॥ ४६ ॥

स्नुहीनालके सैन्धवं गृहधूमं च समभागं मपूर्य स्थाल्यभ्यन्तरे कृत्वा शरावेण पिधाय दग्ध्वापिष्ट्वा कटुतैलेन लेपः ।

थूहर के डंडे में छेदकर उसमें गृहधूम और सेंधानमक भरकर हाँडी में अन्तर्धूम भस्मकर तेल में मिलाकर लेप करने से विचर्चिका रोग नष्ट होता है ॥ ४६ ॥

थूहर की नली में गृहधूम और सेंधानमक समान भाग लेकर हाँडी में रक्खे और सरवे से हाँडी का मुँह बन्द करके अन्तर्धूम भस्म करे फिर उस भस्म को पीसकर तेल में मिलाकर लेप करे।

स्नुकाण्डे सर्षपात कल्कः करीषानलपाचितः । लेपाद्विचर्चिकां हन्ति रागवेग इव त्रपाम् ॥ ४७ ॥

थूहर की नली में सरसों का कल्क भरकर करने कंडों की अग्नि में पकावे। इसका लेप विचर्चिका रोग को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे प्रेम का वेग लज्जा को नष्ट कर देता है ॥ ४७ ॥

विपादिका में लेप ।

नारिकेलोदरे न्यस्तस्तण्डुलः पूतितां गतः । लेपाद्विपादिकां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ ४८ ॥

सजल नारियल में चावलों को भरकर रख दे। जब चावलों में दुर्गंध आने लगे तब उन्हें पीसकर लेप करने से चिरकाल से उत्पन्न हुआ विचर्चिका रोग नष्ट होता है ॥ ४८ ॥

तिलकुसुमलवणगोजलकटुतैलं लौहभाजने कृत्वा । शोषितमर्कमयूखैः पादस्फुटनं निहन्ति लेपेन ॥ ४९ ॥

तिल के फूल, सेंधानमक, गोमूत्र और कडुआ तेल इनको लोहे के पात्र में एकत्रितकर मर्दन करके धूप में सुखावे, फिर इसका लेप करने से पैरों का फटना (बिवाई) शान्त होता है ॥ ४९ ॥

उन्मत्त तैल ।

उन्मत्तकस्य बीजेन माणकक्षारवारिणा । कटुतैलं विपक्वं शीघ्रं हन्ति विपादिकाम् ॥ ५० ॥

धतूरे के बीज, मानकन्द का खार और जल डालकर यथाविधि कडुआ तेल पकावे। इस तेल के मर्दन करने से विपादिका शीघ्र नष्ट होती है ॥ ५० ॥

कच्छूचिकित्सा।

अवल्गुजं कासमर्दं चक्रमर्दं निशायुगम्। मानिमन्थश्च तुल्यांशं मस्तुकाञ्जिकपेषितम् ॥ कण्डूं कच्छूं जयत्युग्रां सिद्ध एष प्रयोगराट् ॥ ५१ ॥

बाकुचीबीज, कसौंदी, पवाँड के बीज, हल्दी, दारुहल्दी और सेंधानमक ये समान भाग लेकर दही के तोड और कांजी से पीसकर लेप करने से कठिन से कठिन खुजली और कच्छू रोग नष्ट होते हैं। यह सिद्ध प्रयोग है ॥ ५१ ॥

कोमलसिंहास्यदलं सनिशं सुरभीजलेन संपिष्टम्। दिनत्रयेण नियतं क्षपयति कच्छूं विलेपनतः ॥ ५२ ॥

अरूसे के कोमल पत्ते तथा हल्दी को गोमूत्र में पीसकर लेप करने से तीन दिन में कच्छू रोग शान्त होता है ॥ ५२ ॥

श्वित्रचिकित्सा।

वायस्येडगजाकुष्ठकृष्णाभिर्गुटिका कृता। बस्तमूत्रेण सम्पिष्टा लेपाच्छ्वित्रविनाशिनी ॥ ५३ ॥

मकोय, पवाँड के बीज, कूट और पीपर इनको बकरे के मूत्र में पीसकर गोलीबनाकर बकरे के ही मूत्र में घिसकर लेप करने से श्वित्रकुष्ठ शान्त होता है ॥ ५३ ॥

पूतीकार्कस्नुङ्नरेन्द्रद्रुमाणां मूत्रैः पिष्टाः पल्लवाः सौमनाश्च। लेपाच्छ्वित्रं हन्ति दद्रुव्रणांश्च कुष्ठान्यर्शांस्यस्रनाडीव्रणांश्च ॥ ५४ ॥

करंज, मदार, थूहर, अमलतास, इनके फूल और पत्ते गोमूत्र में पीसकर लेप करने से सफेद कोढ़, दद्रु, व्रण, रक्तार्श तथा नाडीव्रण का नाश होता है ॥ ५४ ॥

गजचित्रव्याघ्रचर्ममसीतैलविलेपनात्। श्वित्रं नाशं व्रजेत् किंवा पूतिकीटविलेपनात् ॥ ५५ ॥

गजचर्म, चित्रचर्म, व्याघ्रचर्मणां भस्म कटुतैलेन लेपः।

हाथी, चीता और बाघ के चर्म की भस्म बनाकर उसमें कडूआ तेल मिलाकर लेप करने से अथवा पूतिकीट (कीटविशेष) के मलने से श्वित्रकुष्ट नाश होता है ॥ ५५ ॥

कुडवोऽवल्गुजबीजात् हरितालचतुर्थभागसंमिश्रः। मूत्रेण गवां पिष्टः सवर्णकरणः परं श्वित्रे ॥ ५६ ॥

आयुर्वेदसारेऽपि।

कुडवो वागुजीबीजात् हरितालपलान्वितः। गवां मूत्रेण संपिष्य लेपनात् श्वित्रनाशनम् ॥ ५७ ॥

बाकुची के बीज १६ तोले, हरताल ४ तोले को गौ के मूत्र में पीसकर लेप करने से श्वित्र नाश होता है और सवर्णता प्राप्त होती है ॥५६-५७॥

धात्रीखदिरयोः क्वाथं पीत्वा च मधुसंयुतम्। शङ्खकुन्देन्दुधवलं जयेच्छ्वित्रं न संशयः ॥ ५८ ॥

आँवला और खैर (कत्था) इनका क्वाथ शहद मिलाकर पीने से शंख, कुन्द और इन्दु के समान श्वित्रकुष्ट दूर होता है इसमें संशय नहीं है ॥ ५८ ॥

धात्रीखदिरयोः क्वाथमवल्गुजरजोऽन्वितम्। पीत्वा शङ्खेन्दुकुन्दाभं हन्ति श्वित्रं न संशयः ॥ ५९ ॥

अथवा आँवला और कत्थे के क्वाथ में बाकुची का चूर्ण मिलाकर पीने से शंख और चन्द्रमा के समान श्वित्रकुष्ट का नाश होता है ॥ ५९ ॥

क्षारे सुदग्धे गजलिण्डजे च गजस्य मूत्रेण बहुस्रुते च द्रोणप्रमाणं दश भागयुक्तं दत्त्वापचेद् बीजमवल्गुजस्य ॥ ६० ॥ एतद्यदा चिक्कणतामुपैति तदा सुसिद्धां

गुटिकां प्रकुर्यात्। श्वित्रं प्रलिम्पेदथ तेन घृष्टं तदा व्रजत्याशु सवर्णभावम् ॥ ६१ ॥

हस्तिपुरीषभस्मनः षट्पञ्चाशत्पलाधिकपलशतद्वयं ग्राह्यं क्षारोदकात् दशमांशेन किञ्चिन्न्यूनत्रयोदशमाषाधिकपञ्चाशत्पलानि।

हाथी की लीद की भस्म को हाथी के मूत्र में डाल कर कपड़े से छानकर उसमें दश भाग बाकुची के बीज मिलाकर पकावे। जब चिकना हो जावे तो गोलियाँ बना ले। इन गोलियों को श्वित्रकुष्ठ पर घिसकर लगाने से श्वित्रकुष्ठ रोग शान्त होकर शरीर का वर्ण अच्छा हो जाता है ॥ ६०-६१ ॥

हाथी की लीद की भस्म २५६ पल (१२ सेर ६४ तोले) लेकर चौगुने हाथी के मूत्र में मिलाकर धीरे-धीरे मूत्र को निकाल ले और उसे ७ बार वस्त्र से छान ले। इस क्षारोदक का दशवाँ हिस्सा बाकुची के बीज उसमें डालकर पकावे।

श्वेतजयन्तीमूलं पीतं पिष्टं च पयसैव। श्वित्रं निहन्ति नियतं रविवारे वैद्यनाथाज्ञा॥ ६२ ॥

श्वेत जयन्ती (अरनी) की जड़ दूध में पीसकर दूध ही के साथ पीने से श्वित्रकुष्ठ नाश होता है। परन्तु इस योग को प्रति रविवार के दिन करना चाहिए। यह वैद्यनाथजी की आज्ञा है ॥ ६२ ॥

गुञ्जाफलानां चूर्णं तु लेपितं श्वेतकुष्ठनुत्। शिलापामार्गभस्मापि लिप्तं श्वित्रं विनाशयेत् ॥ ६३ ॥

घुंघुची का चूर्ण अथवा मैनशिल और अपामार्ग की भस्म श्वित्रकुष्ठ पर लेप करने से रोग शान्त होता है ॥ ६३ ॥

श्वित्र पञ्चानन तैल।

एरण्डतुलसीबीजं वागुजीचक्रमर्दकम्। तिक्तकोषातकीबीजं कृष्णाङ्कोठस्य बीजकम् ॥ ६४ ॥ गोमूत्रदधिदुग्धैश्च पचेदप्याजमूत्रकैः। कल्कं दत्त्वा शिला काशी पथ्याकुष्ठं विडङ्गकम् ॥ ६५ ॥ कटुतैलं च तल्लपादीयद् घृष्ट्वा विलेपनैः। पञ्चाननमिदं तैलं श्वेतकुष्ठकुलापहम् ॥ ६६ ॥

कडुआ तेल २ सेर, कल्कार्थ—एरण्डबीज, तुलसीबीज, बाकुची, चकवड़ (पवाँड) के बीज कड़ुई तोरई के बीज, काले अकोल के बीज, मैनशिल, कशीस, हड़, कूट और वायविडंग मिश्रित आधा सेर। गोमूत्र, दही का तोड़, दूध और बकरी का मूत्र दो सेर। यथाविधि तैल सिद्ध करे। जहाँ श्वेत हो गया हो वहाँ वहाँ थोड़ा रगड़ कर इस पंचानन तेल का मर्दन करे तो श्वेतकुष्ठ नष्ट होता है ॥ ६४-६६ ॥

आरग्वधादि तैल।

आरग्वधं धवं कुष्ठं हरितालं मनःशिला। रजनीद्वयसंयुक्तं पचेत्तैलं विधानवित्। एतेनाभ्यञ्जनादेव क्षिप्रं श्वित्रं विनश्यति ॥ ६७ ॥

अमलतास, धाय के फूल, कूट, हरताल, मैनशिल, हल्दी और दारुहल्दी; ये प्रत्येक दो-दो तोले, ले। इनके कल्क में १ सेर कटुतैल और ४ सेर तैल डालकर यथाविधि तैल सिद्ध करे। इस तैल की मालिश करने से शीघ्र ही श्वित्रकुष्ठ नष्ट होता है ॥ ६७ ॥

श्वेतारि रस।

शुद्धसूतं समं गन्धं त्रिफलां भृङ्गराजीम्। भल्लातकं तिलं कृष्णं निम्बबीजं समं समम् ॥ ६८ ॥ मर्दयेद् भृङ्गजद्रावैः शोष्यं पेष्यं पुनः पुनः। इत्थं कुर्यात्त्रिसप्ताहं रसः श्वेतारिको भवेत् ॥ मध्याज्यैर्माषमात्रं तु खादेच्छ्वेतं विनाशयेत् ॥ ६९ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, त्रिफला, भंगरा, बाकुची, भिलावाँ, काले तिल, नीम के बीज; इनको सम भाग लेकर भंगरा के रस में डालकर मर्दन करे

और सुखावे। इस प्रकार ३ सप्ताह अर्थात् २१ दिन तक मर्दन और शोषण करने से श्वेतारि रस सिद्ध होता है। इसको मधु और घृत के साथ २ रत्ती से एक माशे की मात्रा में खाने से श्वेत कुष्ठ नष्ट होता है ॥ ६८-६९ ॥

गन्धकप्रयोग।

पिबति सकटुतैलं गन्धपाषाचूर्णं, रविकिरणसुतप्तं पामनो योऽष्टगुञ्जम्। त्रिदिनतदनुसिक्तः क्षीरभोजी च शीघ्रं भवतिकनकदीप्तिः कामरूपी मनुष्यः॥७०॥

पामा के रोगी को चाहिए कि तीन दिन तक शुद्ध गन्धक के चूर्ण को कड़ुआ तेल में मिलाकर और धूप में गरम करके पीवे और उसी की मालिश करे और दुग्ध का भोजन करे। मात्रा १ माशा तक की है। ऐसा करने से मनुष्य का वर्ण सुवर्ण के सदृश तथा रूप कामदेव के सदृश हो जाता है ॥ ७० ॥

सोमराजीप्रयोग।

तीव्रेण कुष्ठेन परीतदेहो यः सोमराजीं नियमेन खादेत्। संवत्सरं कृष्णतिलद्वितीयां स सोमराजीं वपुषातिशेते ॥७१॥

तीव्र कुष्ठ से पीड़ित मनुष्य बाकुची और काले तिलों को मिलाकर साल भर नियम से खाय तो कुष्ठ रोग दूर होकर शरीर की कान्ति चन्द्रमा के समान हो जाय ॥ ७१ ॥

घर्मसेवी कदुष्णेन वारिणा वागुजीं पिबेत्। क्षीरभोजी च सप्ताहात् कुष्ठी कुष्ठं व्यपोहति॥ ७२ ॥

जो मनुष्य उष्ण जल के साथ बाकुची को पीता है और धूप का तथा दुग्ध का सेवन करता है उसका कुष्ठ रोग एक सप्ताह में शान्त हो जाता है ॥ ७२ ॥

अवल्गुजबीजमाषं पीत्वा कोष्णेन वारिणा। भोजनं सर्पिषा कार्यं सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥ ७३ ॥

सहस्रशो दृष्टफलोऽयं योगः।

१ माशा बाकुची के बीज उष्ण जल के साथ सेवन करने से सब प्रकार के कुष्ठ शान्त होते हैं। इसमें पथ्य घृत का भोजन करना चाहिए। यह हजारों बार का अनुभूत योग है ॥ ७३ ॥

छिन्नायाः स्वरसो वापि सेव्यमानो यथावलम्। जीर्णे घृतेन भुञ्जीत मुद्गयूषौदनेनच। अपि पूतिशरीरोऽपि दिव्यरूपी भवेन्नरः ॥ ७४ ॥

गिलोय का स्वरस शरीर के बलानुसार सेवन करने से कुष्ठ रोग के कारण दुर्गन्धित शरीरवाला भी रोग दिव्य रूप हो जाता है। जब ओषधि हजम हो जाय तब घृतयुक्त मूँग के जूस के साथ चावल खाना चाहिए ॥ ७४ ॥

यः खादेदभयारिष्टमरिष्टामलकानिवा। स जयेत् सर्वकुष्ठानि मासादूर्ध्वं न संशयः ॥ ३७ ॥

जो मनुष्य हड़ और नीम की छाल अथवा नीम की छाल और आँवला इनके चूर्ण का सेवन करता है वह एक महीने में सब प्रकार के कुष्ठों को जीत लेता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ७५ ॥

पञ्चनिम्ब।

निम्बस्य पत्रं मूलानि सत्वकपुष्पफलानिच। चूर्णितानि घृतक्षौद्रसंयुतानि दिने दिने ॥ ७६ ॥ लिह्यात् पिबेद्वा मूत्रेण संयुक्तान्युदकेन वा। मदिरामलतोयेन पयसा वा यथावलम् ॥ ७७ ॥ भुञ्जीत घृतयूषाद्यैः शाल्यन्नं पयसापि च। सर्वं कुष्ठविसर्पार्शोनाडीदुष्टव्रणानपि ॥७८॥ कामलां च गदानन्यांस्तथा पित्तकफास्रजान्। संवत्सरप्रयोगेण सर्ववर्ज्यविव-

जितः। जयत्येषञ्चनिम्बं रसायनमनुत्तमम् ॥ ७९ ॥

नीम के पत्ते, मूल, छाल, फूल और फल इनके चूर्ण को घी और शहद में मिलाकर प्रतिदिन चाटे अथवा गोमूत्र, जल, मदिरा आँवले के स्वरस या दूध के साथ बलानुसार सेवन करे। घृतयुक्त यूष आदि के साथ अथवा दूध के साथ शालिधान के चावलों का भात खावे। इस पञ्चनिम्ब चूर्ण को सालभर पथ्य से सेवन करनेवाले मनुष्य के सम्पूर्ण कुष्ठ, विसर्प, अर्श, नाडीव्रण, दुष्टव्रण, कामला तथा अन्यान्य पित्त, कफ और रक्त से उत्पन्न होनेवाले रोग दूर होते हैं। यह पञ्चनिम्ब चूर्ण अत्युत्तम रसायन है। मात्रा—१ माशा से ३ माशे तक ॥ ७६-७९ ॥

तन्त्रान्तरोक्त पञ्चनिम्ब।

पुष्पकाले च पुष्पाणि फलकाले फलानि च। संचूर्ण्य पिचुमर्दस्य त्वङ्मूलानि दलानि च ॥ ८० ॥ द्विरंशानि समाहृत्य भागिकानि प्रकल्पयेत्। त्रिफला त्र्यूषणं ब्राह्मी श्वदंष्ट्रारुष्कराग्निकाः ॥ ८१ ॥ विडङ्गसारवाराहीलौहचूर्णामृताः समाः। हरिद्राद्वयावल्गुजव्याधिघाताः सशर्कराः॥८२॥ कुष्ठेन्द्रयवपाठाश्च कृत्वा चूर्णं सुसंयुतम्। खदिराशननिम्बानां घनक्वाथेन भावयेत् ॥ ८३ ॥ सप्तधा पञ्चनिम्बं च मार्कवस्वरसेन च। स्निग्धशुद्धतनुर्धीमान् योजयेच्च शुभे दिने ॥ ८४ ॥ मधुना तिक्तहविषा खदिराशनवारिणा। सेव्यमुष्णाम्बुना वापि कोलवृद्ध्या पलं पिबेत् ॥ जीर्णे च भोजनं कार्यं स्निग्धं लघु हितं च यत् ॥ ८५ ॥ विचर्चिकोदुम्बरपुण्डरीककपालदद्रुकिटिमालसादि। शताहविस्फोटविसर्पपामां कुष्ठप्रकोपं विविधं किलासम् ॥ ८६ ॥ भगन्दरं श्लीपदवातरक्तं जडान्ध्यनाडीव्रणशीर्षरोगान्। सर्वान् प्रमेहान् प्रदरांश्च सर्वान् दंष्ट्राविषं मूलविषं निहन्ति॥८७॥ स्थूलोदरः सिंहकृशोदरश्च सुश्लिष्टसान्धिमधुनोपयोगात्। समोपयोगादपि ये दशन्ति सर्पादयो यान्ति विनाशमाशु ॥ ८८ ॥ जीवेच्चिरं व्याधिजराविमुक्तःशुभेरतश्चन्द्रसमानकान्तिः ॥ ८९ ॥

निम्बस्य पुष्पफलमूलदलत्वचां प्रत्येकं भागद्वयं त्रिफलादेः प्रत्येकमेको भागः। अग्निश्चित्रकं वाराही वाराहीकन्दःतदभावे चर्मकारालुकं लौहचूर्णं शोधितपुटितसुजीर्णलोहचूर्णम्। क्वाथनीयद्रव्यं गृहीत्वा अष्टभागावशिष्टः क्वाथो ग्राह्यः। तेन निम्बादिचूर्णस्य भावना सप्तधा कर्त्तव्या एवं भृङ्गराजरसेन सप्तधा भावना। स्निग्धशुद्धतनुत्वं स्नेहक्रियावमनविरेचनादि।

पुष्पकाल में नीम के पुष्प, फलकाल में फल, छाल, जड़ और पत्ते प्रत्येक दो-दो भाग लेकर चूर्ण करे। त्रिफला, त्रिकटु, ब्राह्मी, गोखरू, भिलावा, चीता, वायविडंग, वाराहीकंद (अभाव में चर्मकारालुक), लोहभस्म, गिलोय, हल्दी, दारुहल्दी, बाकुची, अमलतास, खाँड कूट, इन्द्रजौ और पाढ़ी इनका चूर्ण एक-एक भाग। इस चूर्ण में खैर, असना की छाल और नीम की छाल इनमें से प्रत्येक के अष्टमांशावशिष्ट गाढ़े क्वाथ की और भँगरे के रस की सात-सात भावना दे। स्नेहन, स्वेदन, वमन और विरेचन से शुद्ध होकर शुभ दिन से इस चूर्ण का मधु, पञ्चतिक्तादि घृत, खदिर तथा असना की छाल के क्वाथ और उष्ण जल इनमें से किसी एक के साथ सेवन करे। औषधि पच जाने पर स्निग्ध,

लघु तथा हितकारी भोजन करना चाहिए। इस चूर्ण के सेवन करने से विचर्चिका, उदुम्बर, पुण्डरीक, कपाल, दद्रु, किट्टिम, अलस, शतारू, विस्फोट, विसर्प, पामा, विविध प्रकार के कुष्ठ-प्रकोप, किलास, भगंदर, श्लीपद, वातरक्त, जड़ता, अन्वापन, नाड़ीव्रण, शिरारोग, सब प्रकार के प्रमेह, प्रदर, दन्तविष और मूलविष इन सब का नाश होता है। मधु के साथ सेवन करने से स्थूलोदर मनुष्य सिंह के समान कृशोदर हो जाता है। सन्धियाँ परिपुष्ट हो जाती हैं। एक वर्ष पर्यन्त इसका सेवन करनेवाले को यदि साँप आदि काटें तो वे स्वयं मर जावें और सेवनकर्ता यदि सच्चरित्र हो तो सब प्रकार की व्याधियों और जरावस्था से मुक्त हो चिरजीवी होता है ॥ ८०-८६ ॥

अमृता गुग्गुलु।

अमृतायाः पलशतं दशमूल्यास्तथा शतम्। पाठामूर्वाबलातिक्तादार्वीगन्धर्वहस्तकाः ॥ ६० ॥ एषां दशपलान् भागान् बिभीतक्याः शतं हरेत् । द्वे शते च हरीतक्या आमलक्यास्तथा शतम् ॥६१॥ जलद्रोणद्वये पक्त्वा अष्टभागावशेषितम्। प्रस्थं गुग्गुलुमाहृत्य प्रस्थार्द्धं च घृतं पचेत् ॥ ६२ ॥ पाकसिद्धौ प्रदातव्यं गुडूच्याः सत्वमेव च । पलद्वयं तथा शुण्ठ्याः पिप्पल्याश्च पलद्वयम् ॥ ६३॥ ततो मात्रां प्रयुञ्जीत ज्ञात्वा दोषबलाबलम्। अष्टादशसु कुष्ठेषु वातरक्तगदेषु च ॥ ६४ ॥ कामलामामवातं च अग्निमान्द्यं भगन्दरम्। पीनसं च प्रतिश्यायं प्लीहानमुदरं तथा। एतान् रोगान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ६५ ॥

अयं वातरक्ते प्रशस्तः।

गिलोय ५ सेर, दशमूल ५ सेर, पाढ़ी, मूर्वा, खरेटी की जड़, कुटकी, दारुहल्दी, एरंड की जड़; ये आध-आध सेर, बहेड़े नग १००, हड़ नग १०० और आँवले १००, इन सबको १ मन ११ सेर १६ तोला जल में पकावे। जब ६ सेर ३२ तोला जल अवशिष्ट रह जाय तब उतार कर छान ले। उक्त ओषधियों का क्वाथ करते समय ६४ तोला शुद्ध गूगुल को ढीली पोटली में बाँधकर दोलायन्त्र से स्विन्न कर ले। पश्चात् उक्त क्वाथ में इस गूगुल को मिलावे और त्रिफला को भी पीसकर ६४ तोला घी में भूनकर इसी क्वाथ में मिलाकर पकावे। पाक सिद्ध हो जाने पर गिलोय का सत ८ तोला, सोंठ का चूर्ण ८ तोला और पीपरि का चूर्ण ८ तोला उसमें मिलाकर नीचे उतार ले। दोषों का बलाबल समझकर मात्रा निश्चित करे। यह अमृतागूगुल अठारह प्रकार के कुष्ठ, वातरक्त, कामला, आमवात, अग्निमान्द्य, भगन्दर, पीनस प्रतिश्याय, प्लीहा और उदररोग; इनको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट किया करता है ॥ ६०-६५ ॥

यह वातरक्त की उत्तम ओषधि है।

एकविंशतिक गुग्गुलु।

चित्रकत्रिफलाव्योषमजाजीं कारवीं वचाम्। सैन्धवातिविषे कुष्ठं चव्यैलायावशूकजम् ॥ ६६ ॥ विडङ्गान्यजमोदाश्च मुस्तान्यमरदारु च। यावन्त्येतानि सर्वाणि तावन्मात्रन्तु गुग्गुलुम् ॥ ६७ ॥ संक्षुद्य सर्पिषा सार्द्धं गुडिकां कारयेद् भिषक्। प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेत्तु यथाबलम् ॥ ६८ ॥ हन्त्यष्टादशकुष्ठानि क्रमीन् दुष्टव्रणानपि। ग्रहण्यर्शोविकारांश्च मुखामयगलग्रहान् ॥ ६६ ॥ गृध्रसीमथ भग्नञ्च गुल्मञ्चापि नियच्छति। व्याधीन् कोष्ठगतांश्चान्यान् जयेद्विष्णुरिवासुरान् ॥ १०० ॥

चित्रक, त्रिफला, त्रिकटु, जीरा, कालाजीरा, बच, सेंधानमक, अतीस, कूट, चव्य, छोटी इलायची, जवाखार, वायविडङ्ग, अजमोदा, मोथा और देवदारु, हरएक का चूर्ण समान भाग, सब चूर्ण के समान शुद्ध गूगुल, इसे घृत में घोटकर उपयुक्त मात्रा में गोली बनावे। मात्रा ४ रत्ती से २ माशे तक। प्रातःकाल भोजन के समय इस गोली का सेवन करने से सम्पूर्ण कुष्ठ, कृमि, दुष्टव्रण, संग्रहणी, बवासीर, मुखरोग, गलग्रह, गृध्रसी, अस्थिभंग, गुल्म तथा अन्य कोष्ठगत रोग नष्ट होते हैं ॥ ९९–१०० ॥

तिक्तकघृत।

त्रिफलाद्विनिशावासयासपर्पटकूलकान्। त्रायन्तीकटुकानिम्बान् प्रत्येकं द्विपलोन्मितान् ॥ १०१ ॥ क्वाथयित्वा जलद्रोणे पादशेषेण तेन तु। घृतप्रस्थं पचेत्कल्कैः पिप्पलीघनचन्दनैः ॥ १०२॥ त्रायन्तीशक्रभूनिम्बैस्तत्पीतं तिक्तकं घृतम्। हन्ति कुष्ठज्वरार्शांसि श्वयथुं ग्रहणीगदम् ॥ पाण्डुरोगं विसर्पञ्च क्लीबानामपि शस्यते ॥ १०३ ॥

घृत १२८ तोले। क्वाथ के लिये–त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, वासा, जवासा, पित्तपापड़ा, पटोलपत्र, त्रायमाणा, कुटकी, नीम की छाल, हरएक ८ तोले। पाक के लिये जल २५ सेर ४८ तोले, बाकी ६ सेर ३२ तोले। कल्क के लिये–पीपल, मोथा, लालचन्दन, त्रायमाणा, इन्द्रजौ, चिरायता, सब मिलाकर ३२ तोले। विधिपूर्वक घृत पकाकर सेवन करने से कुष्ठ, ज्वर, बवासीर, शोथ, ग्रहणी, पाण्डुरोग तथा विसर्प आदि रोग नष्ट होते हैं। यह घृत नपुंसकता में भी लाभदायक है। मात्रा–आधा तोला ॥ १०१–१०३ ॥

महातिक्तकघृत।

सप्तच्छदं प्रतिविषां शम्पाकं तिक्तकरोहिणीं पाठाम्। मुस्तमुशीरं त्रिफलां पटोलपिचुमर्दपर्पटकम् ॥ १०४ ॥ धन्वयासं सचन्दनमुपकुल्ये पद्मकं रजन्यौ च। षड्ग्रन्थां सविशालां शतावरीशारिवे चोभे॥ १०५ ॥ वत्सकबीजं वासां मूर्वाममृतां किराततिक्तञ्च। कल्कान् कुर्यान्मतिमान् यष्ट्याह्वं त्रायमाणाञ्च ॥ १०६ ॥ कल्कस्तु चतुर्भागो जलमष्टगुणं रसोऽमृतफलानाम्। द्विगुणो घृतात्प्रदेयस्तत्सर्पिः पाययेत्सिद्धम् ॥ १०७ ॥ कुष्ठानि रक्तपित्तं प्रबलान्यर्शांसि रक्तवाहीनि। वीसर्पमम्लपित्तं वातसृक् पाण्डुरोगश्च ॥ १०८ ॥ विस्फोटकान् सपामानुन्मादान् कामलां ज्वरं कण्डूम्। हृद्रोगगुल्मपिडकामसृग्दरं गण्डमालाञ्च ॥ १०९ ॥ हन्यादेतत्सद्यः पीतं काले यथाबलं सर्पिः। योगशतैरप्यजितान् महाविकारान् महातिक्तम् ११० ॥

घृत १२८ तोले, आँवले का रस ३ सेर १६ तोले। कल्क के लिये–सतौने की छाल, अतीस, अमलतास, कुटकी, पाढ़, मोथा, खस, त्रिफला, पटोलपत्र, नीम की छाल, पित्तपापड़ा, धमासा, लालचन्दन, पीपल, गजपीपल, पद्माख, हल्दी, दारुहल्दी, बच, इन्द्रायण की जड़, शतावर, अनन्तमूल, श्यामालता, इन्द्रजौ, सब मिलाकर ३२ तोले। पाक के लिये जल १२ सेर ३२ तोले। विधिपूर्वक घृत पकाकर रोगी को बलानुसार सेवन कराने से कुष्ठ, रक्तपित्त, रक्तार्श, विसर्प, अम्लपित्त, वातरक्त, पाण्डुरोग विस्फोट, पामा, उन्माद, कामला, ज्वर, कण्डू, हृद्रोग, गुल्म, पिडिका, रक्तप्रदर और गण्डमाला आदि रोग नष्ट होते हैं। मात्रा—आधा तोला ॥ १०४-११० ॥

महाखदिरकघृत।

खदिरस्य तुलाः पञ्च शिंशपासनयोस्तुले। तुलार्द्धाः सर्व एवैते करञ्जारिष्टवे-

रसाः ॥ १११ ॥ पर्पटः कुटजश्चैव वृषः कृमिहरस्तथा हरिद्रे कृतमालश्च गुडूची त्रिफला त्रिवृत् ॥ ११२ ॥ सप्तच्छदश्च संक्षुद्य दशद्रोणेन वारिणा। अष्टभागावशेषन्तु कषायमवतारयेत् ॥ ११३ ॥ धात्रीरसञ्च तुल्यांशं सर्पिषश्चाढकं पचेत्। महातिक्तककल्कैश्च यथोक्तैः पलसम्मितैः ॥ ११४ ॥ निहन्ति सर्वकुष्ठानि पानाभ्यङ्गनिषेवणात् । महाखदिरमित्येतत्सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥ ११५ ॥

गोघृत ६ सेर ३२ तोले' आँवले का रस ६ सेर ३२ तोले । क्वाथ के लिये—खदिरकाष्ठ २५ सेर, शीशम तथा असन (पीतशाल) की छाल प्रत्येक ५ सेर, करञ्ज नीम की छाल, बेत, पित्तपापड़ा, कुड़ा की छाल, अडूसा, बायबिडङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी, अमलतास, गिलोय, त्रिफला, निसोत, सतौना की छाल हरएक कुटे हुए ढाई-ढाई सेर। पाक के लिये जल ६ मन १६ सेर, शेष क्वाथ ३२ सेर। कल्क के लिये—महातिक्त घृत में कहे हुए कल्क द्रव्य प्रत्येक ५ तोले। विधिपूर्वक घृत में पकाकर अभ्यङ्ग तथा पान करने से सम्पूर्ण कुष्ठ नष्ट होते हैं। मात्रा—आधा तोला ॥ १११-११५ ॥

सोमराजीघृत।

चतुष्पलं सोमराज्याः खदिरस्य पलं तथा। पटोलमूलं त्रिफला त्रायमाणा दुरालभा ॥ ११६ ॥ कल्कार्थं कटुकञ्चापि कार्षिकान् सूक्ष्मपेषितान्। पलद्वयं कौशिकस्य शुद्धस्यात्र प्रदापयेत् ॥ ११७ ॥ सिद्धं सर्पिरिदं श्वित्रं हन्याटम्भइवानलम्। अष्टादशानां कुष्ठानां परमञ्चैतदौषधम् ॥ ११८ ॥ सोमराजीघृतं नाम निर्मितं ब्रह्मणा पुरा। लोकानामुपकाराय श्वित्रकुष्ठादिरोगिणाम् ॥ ११९ ॥

बाकुची के बीज (कालाजीरी) १६ तोले, खदिरकाष्ठ ४ तोले। पटोलमूल, त्रिफला, त्रायमाण, धमासा, कुटकी हरएक दो दो तोले। शुद्ध गूगल ८ तोले। इस कल्क से विधिपूर्वक १२८ तोले घृत को पाककर सेवन कराने से श्वित्र तथा अठारहों कुष्ठ नष्ट होते हैं। श्वित्र तथा कुष्ठ से पीड़ित रोगियों के उपकार के लिये ही ब्रह्मा ने इसे बनाया था। मात्रा—आधा तोला ॥ ११६-११९ ॥

वज्रकघृत।

वासा गुडूची त्रिफला पटोलकरञ्जनिम्बाशनकृष्णवेत्रम्। तत्क्वाथकल्केन घृतं विपक्वं तद्वज्रकंकुष्ठहरं प्रदिष्टम् ॥ १२० ॥ विशीर्णकर्णाङ्गुलिहस्तपादः कृम्यर्दितो भिन्नगलोऽपि मर्त्यः। पौराणिकीं कान्तिमवाप्य जीवेदभ्याहतो वर्षशतञ्च कुष्ठी ॥ १२१ ॥

अडूसा, गिलोय, त्रिफला, पटोलपत्र, करञ्ज, नीम की छाल, असन की छाल और कालावेत, इनके क्वाथ और कल्क से विधिपूर्वक घृत पका ले। यह घृत कुष्ठनाशक है। इसके सेवन से जिस कुष्ठ रोगी के कान, अँगुली, हाथ, पाँव आदि झड़ गये हों वह भी अपनी पुरानी कान्ति को प्राप्त होकर शतायु होता है। मात्रा—आधा तोला ॥ १२०-१२१ ॥

करवीरादि तैल।

श्वेतकरवीररसो गोमूत्रं चित्रकं विडङ्गञ्च। कुष्ठेषु तैलयोगः सिद्धोऽयं सम्मतो भिषजाम् ॥ १२२ ॥

सफ़ेद कनेर की जड़ का रस, गोमूत्र, चित्रक, तथा बायबिडङ्ग इनसे विधिपूर्वक सिद्ध तैल का कुष्ठ में बाह्य प्रयोग कराना चाहिए ॥ १२२ ॥

श्वेतकरवीरादि तैल।

श्वेतकरवीरमूलं विषांशसाधितं मूत्रं।

चर्मदलसिध्मपामाविस्फोट कृमिकिटिमजित्तैलम् ॥ १२३ ॥

तिलतैल १२८ तोले, गोमूत्र ६ सेर ३२ तोले, कल्क के लिये श्वेत कनेर की जड़ १६ तोले, वत्सनाग १६ तोले विधिपूर्वक सिद्ध कर मालिश करने से चर्मदल, सिध्म, पामा, विस्फोट, कृमि तथा किटिम कुष्ठ नष्ट होता है ॥ १२३ ॥

अर्कमनःशिला तैल।

अर्कपत्ररसे पक्वं कटुतैलं निशायुतम्। मनःशिलायुतं वापि पामाकन्द्वादिनाशनम् ॥ १२४ ॥

सरसों के तैल को आक के पत्तों के रस में हल्दी के कल्क से अथवा मैनशिल के कल्क से सिद्धकर पामा, कण्डू आदि को नष्ट करने के लिये मालिश करनी चाहिए ॥ १२४ ॥

गण्डीरिकादि तैल।

गण्डीरिकाचित्रकमार्कवार्ककुष्ठद्रुमत्वग्लवणैः समूत्रैः। तैलं पचेन्मण्डलकुष्ठदद्रुदुष्टव्रणारुःकिटिमापहारि ॥ १२५ ॥

थूहर का दूध, चित्रकमूल, भाँगरा, आक का दूध, कूठ, अमलतास, के मूल की छाल, सेंधानमक, इनके कल्क से गोमूत्र द्वारा तिलतैल को सिद्धकर अभ्यङ्ग द्वारा प्रयोग करावे। इसके प्रयोग से मण्डल, कुष्ठ, दद्रु, दुष्टव्रण, शतारु तथा किटिम आदि नष्ट होते हैं ॥ १२५ ॥

आदित्यपाक तैल।

मञ्जिष्ठात्रिफलालाक्षानिशाशिलालगन्धकैः । चूर्णितैस्तैलमादित्यपाकं पामाहरं परम् ॥ १२६

मंजीठ, त्रिफला, लाक्षा, हल्दी, मैनसिल, हरिताल और गन्धक इनका कल्क, तैल तथा तैल के समान जल एकत्र मिलाकर धूप में रक्खे जब सब जल शुष्क हो जाय तब उसको छानकर रख ले। यह तैल मालिश करने से पामा को नष्ट करता है ॥ १२६ ॥

दूर्वादि तैल।

स्वरसे चैव दूर्वायाः पचेत्तैलं चतुर्गुणे। कन्छू विचर्चिका पामा अभ्यङ्गादेव नाशयेत् ॥ १२७ ॥

तैल से चौगुने दूब के रस के साथ विधिपूर्वक तैल पकाकर अभ्यङ्ग करने से कच्छू, विचर्चिका तथा पामा नष्ट होती है ॥ १२७ ॥

जीरकादि तैल।

जीरकस्य पलं पिष्टं सिन्दूरार्द्धपलं तथा। कटुतैलं पचेदाभ्यां सर्वपामाहरं परम् ॥ १२८ ॥

जीरा ४ तोले, सिन्दूर २४ तोले, कटुतैल १६ तोले। पाकविधि—१६ तोले तेल में ४ तोले जीरा तथा ६४ तोले जल डाल कर पाक करे। पाक शेष होने पर ४ तोले सिन्दूर मिलाकर उतार ले। इसके अभ्यङ्ग से पामा नष्ट होती है ॥ १२८ ॥

सिन्दूरादि तैल।

सिदूरार्धपलं पिष्ट्वा जीरकस्य पलं तथा। कटुतैलं पचेन्मानी सद्यः पामाहरं परम् ॥ १२९ ॥

सिन्दूर ४ तोले, जीरा ८ तोले, कटुतैल ३२ तोले विधिपूर्वक पकाकर बाह्य प्रयोग करें। इसके अभ्यङ्ग से पामा नष्ट होती है ॥ १२९ ॥

महासिन्दूरादि तैल।

सिन्दूरं चन्दनं मांसी विडङ्गं रजनीद्वयम् प्रियङ्गु पद्मकं कुष्ठं मञ्जिष्ठां खदिरं वचाम् ॥ १३० ॥ जात्यर्कत्रिवृतानिम्बकरञ्जं विषमेव च ॥ कृष्णवेत्रकलोध्रञ्च प्रपुन्नाडञ्च संहरेत् ॥ १३२ ॥ श्लक्ष्णपिष्टानि सर्वाणि योजयेत्तैलमात्रया। अभ्यङ्गेन प्रयुञ्जीत सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥ १३२ ॥ पामाविचर्चिकाकण्डूवीसर्पादिविनाशनम् । रक्तपित्तो-

स्थितान् हन्ति रोगानेवं विधान् बहून् ॥ १३३ ॥
तैलमात्रयेति प्रस्थरूपया।

सिन्दूर, लाल चन्दन, जटामासी, बायविडङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी, प्रियंगु, पद्माख, कूठ, मंजीठ खदिरकाष्ठ, बच, चमेली के पत्ते, आक का दूध, करञ्ज के बीज, बच्छनाग, कालावेत, लोध और पवाँड के बीज इनके महीन पिसे कल्क से तैल पकाकर रोगी को अभ्यङ्ग करावे। इस प्रकार इसके बाह्य प्रयोग से पामा, विचर्चिका, कण्डू, विसर्प तथा इसी प्रकार की अन्य रक्तपित्तज व्याधियाँ नष्ट होती हैं ॥ १३०-११५ ॥

वज्रकतैल।

सप्तपर्णकरञ्जार्कमालतीकरवीरजम्। मूलं स्नुहीशिरीषाभ्यां चित्रकास्फोतयोरपि ॥ १३४ ॥ करञ्जबीजं त्रिफलां त्रिकटू रजनीद्वयम्। सिद्धार्थकं विडङ्गञ्च पूपुन्नाडञ्च संहरेत् ॥ १३५ ॥ मूत्रपिष्टैः पचेत्तैलमेभिः कुष्ठविनाशनम्। अभ्यङ्गाद् वज्रकं नाम नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ १३६ ॥

सतौने की छाल, पूतकरञ्ज, आक की जड़, मालतीपत्र, कनेर की जड़, थूहर की जड़ सिरस की जड़, चित्रक की जड़, शारिवा, करञ्ज के बीज, त्रिफला, त्रिकटु, हल्दी, दारुहल्दी, सफेद सरसों, वायविडङ्ग और पवाँड के बीज, इन्हें गोमूत्र में पीसकर कल्क द्वारा गोमूत्र से तिल तैल का पाक करे। यह तैल कुष्ठ, नाड़ीव्रण तथा दुष्टव्रण को नष्ट करता है ॥ १३४-१३६॥

तृणकतैल।

मञ्जिष्ठारुड्निशाचक्रमर्दारग्वधपल्लवैः। तृणकस्वरसे सिद्धं तैलं कुष्ठहरं परम् ॥ १३७ ॥

कूठ, हल्दी, मंजीठ, पवाँड के बीज, अमलतास के पत्ते, इनके कल्क तथा गन्धतृण के रस द्वारा तैल पकावे। यह तैल कुष्ठ को नष्ट करता है ॥ १३७ ॥

महातृणकतैल।

हरिद्रात्रिफलादारुहयमारकचित्रकम्। सप्तच्छदश्च निम्बत्वक्करञ्जौ बालकं नखी ॥ १३८ ॥ कुष्ठमेडगजाबीजं लाङ्गली गणिकारिका। जातीपत्रञ्च दार्वी च हरितालं मनःशिला ॥ १३९ ॥ कलिङ्गं तिलपत्रञ्च अर्कक्षीरंच गुग्गुलुः ॥ गुडत्वङ्मरिचञ्चैव कुङ्कुमं ग्रन्थिपर्णिकम् ॥ १४० ॥ सर्जपर्णासखदिरं विडङ्गं पिप्पली वचा। घनरेवमृता यष्टी केशरं श्यामकं विषम् ॥ १४१ ॥ विश्वकद्फलमञ्जिष्ठा बोलस्तुम्बीफलन्तथा। स्नुहीशम्पाकयोः पत्रं वागुजीबीजमांसिके ॥ १४२ ॥ एला ज्योतिष्मतीमूलं शिरीषो गोमयाद्रसः। चन्दने कुष्ठनिर्गुण्डी विशाला मल्लिकाद्वयम् ॥ १४३ ॥ वासाश्वकर्णी ब्राह्मी च श्याह्वं चम्पककुड्मलम्। एतैः कल्कैः पचेत्तैलं तृणकस्वरसद्रवम्। सर्वत्वग्दोषहरणं महातृणकसंज्ञितम् ॥ १४५ ॥

हल्दी, त्रिफला, देवदारु, कनेर की जड़, चित्रकमूल, सतौने की छाल, नीम की छाल, लताकरञ्ज, पूतकरञ्ज, गन्धबाला, नखी, कूट, पवाँड के बीज, कलिहारी, अरनी, चमेली के पत्ते, दारुहल्दी, हड़ताल, मैनशिल, इन्द्रजौ, तिलपत्र, आक का दूध, गूगल, दारचीनी, कालीमिर्च, केसर, गठिवन, राल, तुलसी खदिरकाष्ठ वायविडङ्ग, पीपल, बच, मोथा, सम्भालू के बीज, गिलोय, मुलहठी, नागकेशर, गन्धतृण, बच्छनाग, सोंठ, कटफल, मजीठ, बोल, कड़वी तूँबी, थूहर के पत्ते, अमलतास

के पत्ते, काली जीरी, जटामांसी, छोटी इलायची, मालकंगनी की जड़, सिरस की छाल, गोमयरस (गोबर का जल), सफेद चन्दन, लाल चन्दन, कूट, सम्भालू की जड़, इन्द्रायण की जड़, मल्लिका (मोतिया), नवमल्लिका, अडूसा, अश्वकर्ण (शालविशेष), ब्राह्मी, श्याह्व (गन्धविरोज') चम्पक की कली, इनके कल्क से गन्धतृण के रस द्वारा तैल पकावे। यह सम्पूर्ण त्वचा के दोषों को हरता है ॥१३८-१४४॥

कच्छूराक्षस तैल।

मनःशिलालं कासीसगन्धाश्मासिन्धुजन्म च। स्वर्णक्षीरी शिलाभेदी शुण्ठी कुष्ठश्च मागधी ॥ १४४ ॥ लाङ्गली करवीरश्च दद्रुघ्नः कृमिहानलः। दन्ती निम्बदलश्चैभिः पृथक् कर्षमितैर्भिषक् ॥ १४६ ॥ कल्कीकृत्य पचेत्तैलं कटुमस्थद्वयोन्मितम्। अर्कस्नेहुएडदुग्धेन पृथक् पलमितेन च॥१४७॥ गोमूत्रस्याढकेनापि शनैर्मृद्वग्निना पचेत्। अभ्यङ्गेन हरेदेतत् कच्छूं दुःसाध्यतामपि॥१४८॥ पामानश्च तथा कण्डूं त्वग्व्याधिरुधिरामयान्। कच्छूराक्षसनामेदं तैलं हारीतभाषितम् ॥ १४६ ॥

सरसों का तेल ३ सेर १६ तोले, गोमूत्र ६ सेर ३२ तोले। कल्क के लिये-मैनशिल, हरिताल, कसीस, गन्धक, सेंधानमक, सत्यानाशी, पाषाणभेद, सोंठ, कूट, पीपल, कलिहारी कनेर की जड़, पवाँड के बीज, वायविडङ्ग, चित्रकमूल, दन्तीमल और नीम के पत्ते हरएक दो-दो तोले। आक का दूध ८ तोले, थूहर का दूध ८ तोले। इसे विधिपूर्वक मन्दी-मन्दी आँच पर पकावें। इस तैल के अभ्यङ्ग से असाध्य कच्छू, पामा, कण्डू, त्वचा के रोग तथा रुधिरविकार नष्ट होते हैं ॥ १४१-१४६ ॥

यासाद्यद्रतैल।

त्रिफला निम्बभण्टाकी बृहत्यौ सपुनर्नवा। हरिद्रे वृषनिर्गुण्ड्यौ पटोलकनकाह्वयौ ॥ १५० ॥ हरितालं शिलाकुष्ठौ लाङ्गलीदाडिमाह्वयौ। अपामार्गविषं चैव जयन्तीपूतिकट्फलैः ॥ १५१ ॥ एषां कर्षद्वयैः कल्कैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत्। चतुर्गुणे गुडूच्याश्च रसे वैद्यः समाहितः ॥ १५२ ॥ चतुर्गुणन्तु गोक्षीरं वृषपत्ररसं तथा। दत्त्वावतारयेद्वैद्यो रुद्रमन्त्रं समाजपेत् ॥ १५३ ॥ दद्रुं कुष्ठं दुष्टव्रणं विसर्पं विद्रधिं तथा। नाडीव्रणं व्रणं घोरं वातरक्तं सुदुर्जयम् ॥ १५४ ॥ सन्निपातज्वरं चैव शिरोरोगं सुदारुणम्। शोथञ्च गलगण्डञ्च श्लीपदं त्वबुर्दं तथा ॥ १५५ ॥ वातरोगानशेषांश्च अन्त्रवृद्धिं सुदारुणम्। पीनसश्वासकासश्च सुदारुणभगन्दरम् ॥ १५६ ॥ उपदंशं महाघोरं चक्षुःशूलञ्च नाशयेत्। चर्मोत्थान् सर्वरोगांश्च तैलमेतद्विनाशयेत् ॥ रुद्रतैलमिदं नाम्ना स्वयं रुद्रेण भाषितम् ॥ १५७ ॥

तिलतैल १२८ तोले, गिलोय का रस ६ सेर ३२ तोले, अडूसा के पत्तों का रस ६ सेर ३२ तोले, गोदुग्ध ६ सेर ३२ तोले। कल्क के लिये त्रिफला, नीम की छाल, बैंगन की जड़, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, विषखपरा, हल्दी, दारुहल्दी, अडूसा की छाल, सम्भालू के पत्ते, पटोलपत्र, श्वेत धतूरे की जड़, हरताल, मैनशिल, कूट, कलिहारी, अनार का छिलका, अपामार्ग, वत्सनाग, जयन्तीपत्र, लताकरञ्ज और कटफल, हरएक ४ तोले। विधिपूर्वक तैल पकावे। इसके बाह्य प्रयोग से दद्रु, कुष्ठ, दुष्टव्रण, विसर्प, विद्रधि, नाडीव्रण, व्रण, वातरक्त, सन्निपातज्वर, शिरोरोग, शोथ, गलगण्ड, श्लीपद, अर्बुद, सम्पूर्ण वातरोग, अन्त्रवृद्धि, पीनस,

श्वास, खाँसी, भगन्दर, उपदंश, चक्षुःशूल तथा सम्पूर्ण त्वचा के रोग नष्ट होते हैं ॥१२०-१२७॥

पञ्चतिक्तघृत गुग्गुलु ।

निम्बामृतावृषपटोलनिदिग्धिकानां, भागान् पृथक् दशपलान् विपचेद् घटेऽपाम् । अष्टांशशेषितरसेन सुनिश्चितेन, प्रस्थं घृतस्यविपचेत्पिचुभागकल्कैः १५८ पाठाविडङ्गसुरदारुगजोपकुल्याद्विक्षारनागरनिशामिसिचव्यकुष्ठैः । तेजोवती मरिचवत्सकदीप्यकाग्निरोहिण्यरुष्करवचाकणमूलयुक्तः ॥ १५९ ॥ मंजिष्ठयातिविषया वरया यमान्या, संशुद्धगुग्गुलुपलैरपि पञ्चसंख्यैः । तत्सेवितं विधिमतिप्रबलं समीरं सन्ध्यस्थिमज्जगतमप्यथ कुष्ठमीदृक्॥ १६०॥ नाडीव्रणार्बुदभगन्दरगण्डमालाजत्रूर्ध्वसर्वगदगुल्मगुदोत्थमेहान् । यक्ष्मारुचिश्वसनपीनसकासशोषहृत् पाण्डुरोगगलविद्रधिवातरक्तम् ॥ १६१ ॥

क्वाथारम्भसमये गुग्गुलं श्लथपोट्टलिकायां बध्वा दोलायन्त्रेण स्विन्नं कृत्वा तत्तेन क्वाथजलेन छानयित्वा घृते निःक्षिप्य पचेत् । दीप्यकं जीरा इति प्राचीनाः ।

नीम की छाल, गिलोय, अडूसे की जड़, परवल के पत्ते और भटकटैया; प्रत्येक आध-आध सेर लेकर २४ सेर ४८ तोले जल में पकावे। ३ सेर १६ तोले जल अवशिष्ट रह जाने पर उतार कर छान ले। क्वाथारम्भ के समय ही २० तोले शुद्ध गूगुल को ढीली पोटली में बाँधकर स्विन्न कर ले और उक्त उष्ण क्वाथ में इस गूगुल को मिलाकर फिर छान ले। पश्चात् इस गूगुलमिश्रित क्वाथ में १२८ तोले घृत और निम्नलिखित औषधियों का कल्क डालकर पाक करे। कल्कार्थ—पाढ़, वायविडंग, देवदारु, गजपीपरि, जवाखार, सज्जीखार, सोंठ, हल्दी, सौंफ, चव्य, कूट, मालकाँगनी, कालीमिर्च, कुड़ा की छाल, जीरा, चित्रक, भिलावाँ, वच, पिपरामूल, मजीठ, अतीस, त्रिफला और अजवायन; ये सब एक-एक तोले। रोगी के बलानुसार मात्रा निश्चित करे। इस घृत के सेवन से अत्यन्त प्रबल सन्धि, हड्डी और मज्जागत वायुरोग, कुष्ठ नाडीव्रण, अर्बुद, भगन्दर, गण्डमाला, ऊर्ध्वजत्रुरोग, गुल्मरोग, बवासीर, प्रमेह, यक्ष्मा, अरुचि, श्वास, पीनस, खाँसी, शोष, हृद्रोग, पाण्डुरोग, गलविद्रधि और वातरक्त नष्ट होते हैं ॥ १५८--१६१ ॥

करवीर तैल ।

श्वेतकरवीरमूलं विपांशकं साधितं गोमूत्रे । चर्मदलसिध्मपामाविस्फोटकृमिकिट्टिमजित्तैलम् ॥ १६२ ॥

सफेद कनेर की जड़ और मीठा तेलिया तथा गोमूत्र में तेल सिद्ध करके मालिश करने से चर्मदल, सेहुआँ, पामा, विस्फोटक, कृमि और किट्टिम रोग का नाश होता है ॥ १६२ ॥

कृष्णसर्प तैल ।

मृतस्य कृष्णसर्पस्य शिरःपुच्छान्त्रवर्जितम् । अन्तर्धूमकृतं भस्म वागुजीतैलमिश्रितम् । एतेन मर्दनादेव गलत्कुष्ठं विनश्यति ॥ १६३ ॥

मरे हुए काले साँप के शिर, पूँछ और आँतों से रहित शरीर की अन्तर्धूम भस्म करके बाकुची कल्क और क्वाथ द्वारा सिद्ध किये हुए तेल में मिलाकर मर्दन करने से गलित कुष्ठ नाश होता है ॥ १६३ ॥

कुष्ठराक्षस तैल ।

सूतकं गन्धकं कुष्ठं सप्तपर्णं च चित्रकम् । सिन्दूरं च रसोनं च हरितालमवल्गुजम् ॥ १६४ ॥ आरग्वधस्य बीजानि जीर्णताम्रं मनःशिला । प्रत्येकं कर्षमेतेषां कटुतैलं पलाष्टकम् ॥ १६५ ॥

साधयेत् सूर्यतापेन सर्वकुष्ठविनाशनम्। श्वित्रमौदुम्बरं कच्छूं मांसवृद्धिं भगन्दरम्॥ १६६॥ विचर्चिकां च पामानं वातरक्तं सुदारुणम्। गम्भीरं च तथोत्तानं नाशयेत् यस्य म्रक्षणात्॥ १६७॥ कुष्ठराक्षसनामेदं सावर्ण्यकरणं परम्। अश्विभ्यां निर्मितं ह्येतल्लोकानुग्रहहेतवे १६८

पारा, गन्धक, कूट, सतवन, की छाल, चीता की जड़, सिन्दूर, लहसन, हरताल, बाकुची, अमलतास के बीज, ताम्रभस्म और मैनशिल; प्रत्येक एक-एक तोला लेकर ३२ तोले कडुए तेल में मिलाकर धूप में रख दें। जब तेल और सब दवाएँ एक में मिल जायँ तब उस तेल की मालिश करे। यह कुष्ठराक्षस नाम तेल सब प्रकार के कोढ़, श्वित्र कुष्ठ, उदुम्बर कुष्ठ, कच्छू, मांसवृद्धि, भगन्दर विचर्चिका, पामा, गम्भीर और उत्तान संज्ञक दारुण वातरक्त का नाशक है तथा कुष्ठाक्रान्त स्थान को शरीर के तुल्य वर्णवाला करता है। लोक की भलाई के लिए इसे अश्विनीकुमारों ने बनाया था १६४--१६८॥

कुष्ठकालानल तैल।

सूतं गन्धं शिला तालं काञ्जिकैर्मर्दयेद्दिनम्। तल्लिप्तवस्त्रवर्त्तीं तां तैलाक्तां ज्वालयेदधः॥ १६९॥ स्थिते पात्रे पतेत्तैलं गृहीत्वा लेपयेत्ततः। कुष्ठस्थानं विशेषेण सर्वकुष्ठं हरत्यलम्। इदं कालानलं तैलं वातकुष्ठे महौषधम्॥ १७०॥

एषां समं काञ्जिकं सर्वेषां द्विगुणं तिलतैलकम्। कल्कं वस्त्रे संलिप्य संशोष्य च वर्त्तिं कुर्यात् तां तैलाक्तां संदंशिकया ज्वालयित्वा उपरि तैलं दत्वा पतितं तैलमधः पात्रे गृह्णीयात्। ततः कुष्ठस्थाने दद्यात् सिद्धफलः प्रयोगः।

पारा, गन्धक, मैनशिल और हरताल को सम भाग लेकर काँजी में पीस ले और कपड़े में लीप दे। जब कपड़ा सूख जाय तब उसकी बत्ती बनाकर तेल में भिगो ले और सँड़सी से एक किनारा पकड़कर दूसरा, किनारा जला दे। जलते समय उस पर तेल छोड़ता जावे। बत्ती के नीचे एक पात्र रख दे जिससे तेल टपक कर उसमें गिरता जावे। इस तेल को कालानल कहते हैं। इसकी मालिश करने से सब प्रकार के कुष्ठ नष्ट होते हैं। यह वातिक कुष्ठ की महौषधि है॥ १६९--१७०॥

चारों औषधियों के तुल्य काँजी लेनी चाहिए और सबसे दूना कडुआ तेल लेना चाहिए।

पद्बिन्दु तैल।

सिन्दूरामृततालगैरिकहला जाजीगदव्यूषणैर्हयारपाषाणरसोनयाग्य दहनस्नुह्यर्कदुग्धैर्निशा। राजीगन्धकहिंगुभिः परिमितैः शुक्त्या पचेत् सार्षपं तैलं प्रस्थमितं घृतस्य कुडवं पात्रं तथार्कद्रसम्॥ १७१॥ गोमूत्रञ्च तथा विलीय सकलं पूतं भृतं रोगिणे दद्यात्कुष्ठविचर्चिकादिषु भिषङ नाम्ना तु पद्बिन्दुकम्॥ १७२॥ सर्वकुष्ठे व्रणे सर्वे सर्वे च गलितक्षते॥ तैलमेतत् प्रशस्तं स्याद् धन्वन्तरिसुसम्मतम्॥ १७३॥

कल्क के लिये सिन्दूर, मीठा तेलिया, हरताल, गेरू, कलिहारी, जीरा, कूट, सोंठ, मिर्च, पीपरि, मैनशिल, लहसुन, सरफोंका, चीता की जड़, थूहर का दूध, मदार का दूध, हल्दी राई, गन्धक और हींग; ये सब दो-दो तोले, कडुआ तेल १२८ तोले, घी ३२ तोले, मदार का रस ६ सेर ३२ तोले, गोमूत्र ६ सेर ३२ तोले, यथाविधि तेल सिद्ध करके

थान लो इस तेल के मर्दन करने से कोढ़, विचर्चिका, सब प्रकार के कोढ़, व्रण (घाव) और गले हुए घाव अच्छे होते हैं। इस तेल का नाम षड्बिन्दु है। इस उत्तम तेल की धन्वन्तरिजी ने भी सराहना की है॥ १७१-१७३॥

विष तैल।

नक्तमालं हरिद्रे द्वे चार्कं तगरमेव च। करवीरवचाकुष्ठमास्फोता रक्तचन्दनम्॥१७४॥मालतीसिन्धुवारश्च मञ्जिष्ठा-सप्तपर्णकम्। एषामर्द्धपलान् भागान् विषस्य द्विपलं तथा॥ १७५॥ चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलप्रस्थं विपाचयेत्। श्वित्र-विस्फोटकिटिमकीटलूताविचर्चिकाः॥ १७६॥ कण्डूकच्छुरिकायाश्च ये व्रणा विषदूषिताः। ते सर्वे नाशमायान्ति तमः सूर्योदये यथा॥ विषतैलमिदं नाम्ना सर्वव्रणविशोधनम्॥ १७७॥

करंज, हल्दी, दारुहल्दी, आक की जड़, तगर, कनेर की जड़, बच, कूट, सारिवा, लालचन्दन, मालती के पत्ते, सम्हालू के पत्ते, मंजीठ और सतौना की छाल; ये सब दो-दो तोले लेकर कल्क करे। मीठा तेलिया ८ तोले, कडुआ तेल १२८ तोले और गोमूत्र ६ सेर ३२ तोले। यथाविधि तेल सिद्ध करके इसकी मालिश करने से सफ़ेद कोढ़, विस्फोटक, किटिम, कीटदोष, मकड़ी के विष से उत्पन्न फुन्सियाँ, विचर्चिका, कण्डू, कच्छू और विष से दूषित घाव; ये सब इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे सूर्य के उदय से अन्धकार। यह विष तेल सब प्रकार के घावों को शुद्ध करनेवाला है॥ १७४-१७७॥

सोमराजी तैल।

सोमराजी हरिद्रे द्वे सर्षपाः कुष्ठमेव च। करञ्जैडगजाबीजं पत्राण्यारग्वधस्य च॥ १७८॥ विपचेत् सार्षपं तैलं नाडीदुष्टव्रणापहम्। अनेनाशु प्रशाम्यन्ति कुष्ठान्यष्टादशैव तु॥ १७९॥ नीलिका पिडिका व्यङ्गा गम्भीरं वातशोणितम्। कण्डुकच्छुप्रशमनं दद्रुपामानिवारणम्॥ १८०॥

बाकुची, हल्दी, दारुहल्दी, सरसों, कूट, करंज, पवाँड़ के बीज और अमलतास के पत्ते; ये सब चार-चार तोले लेकर कल्क करे। कडुआ तेल १२८ तोले, पाकार्थ जल ६ सेर ३२ तोले। यथाविधि तेल सिद्ध कर मालिश करने से नासूर, ख़राब घाव, अठारह प्रकार के कोढ़, नीलिका, फुन्सियाँ, व्यंग, गभीर वातरक्त, खुजली, कच्छू, दाद और पामा ये रोग नष्ट होते हैं॥ १७८-१८०॥

बृहत्सोमराजी तैल।

सोमराजितुलाक्वाथे तथा दद्रुहनस्य च। गोमूत्रस्य तथा पात्रे कल्कं दत्त्वा विचक्षणः॥ १८१॥ विपचेत्कार्षिकै-र्भागैः प्रस्थं तैलं तु सार्षपम्। चित्रकं लाङ्गलाख्या च नागरं कुष्ठमेव च॥ १८२॥ हरिद्रा नक्तमालश्च हरितालं मनःशिला। आस्फोतार्ककरवीरं सप्तपर्णश्च गोमयम्॥ १८३॥ खदिरो निम्बपत्रश्च मरिचं कासमर्दकम्। एतानि श्लक्ष्णपिष्टानि कल्कं दत्त्वा विचक्षणः॥ १८४॥ हन्ति सर्वाणि कुष्ठानि कृमिदुष्टव्रणानि च। किट्टिमं दद्रुजातश्च गात्रवैवर्ण्यमेव च॥ १८५॥ विशीर्णचर्ममांसादिदृढीकरणमुत्तमम्। पाण्डुरोगं तथा कण्डूं विसर्पं हन्ति दारुणम्। ये चान्ये त्वग्गता रोगास्तांस्तु शीघ्रं व्यपोहति॥ १८६॥

बाकुची ५ सेर क्वाथार्थ जल २५ सेर ४८ तोले अवशिष्ट ६ सेर ३२ तोले। पवाँड़ के बीज ५ सेर, क्वाथार्थ जल २५ सेर ४८ तोले,

अवशिष्ट ६ सेर ४८ तोले, गोमूत्र ६ सेर ४८ तोले, कडुआ तेल १२८ तोले। कल्क के लिये चीता की जड़, कलिहारी, सोंठ, कूट, हल्दी करंज, हरताल, मैनशिल, सारिवा, आक की जड़, कनेर, सतवन, गोबर, खैर, नीम के पत्ते, मिर्च और कसौंदी; ये सब एक-एक तोला। यथाविधि तेल सिद्ध करके मालिश करे तो यह वृहत्सोमराजी तेल सब प्रकार के कुष्ठ कीड़ों से युक्त दुष्ट व्रण, किटिम कुष्ठ, सब प्रकार के दाद, शरीर की विवर्णता, पाण्डुरोग, खुजली और विसर्प; इन रोगों को नष्ट करता है। गले हुए चर्म और मांस आदि को दृढ़ करता है तथा सब प्रकार के चर्म-रोगों को दूर करता है ॥ १८१--१८६ ॥

मरिचादि तैल

मरिचालशिलाब्दार्कपयोऽश्वारिजटा त्रिवृत्। शकृद्रसविशालारुङ्निशायुग्दारुचन्दनैः ॥ १८७ ॥ कटुतैलात् पचेत् प्रस्थं द्व्यक्षैर्विषपलान्वितैः। सगोमूत्रैस्तदभ्यङ्गाद् दद्रुश्वित्रविनाशनम्। सर्वेष्वपि च कुष्ठेषु तैलमेतत् प्रशस्यते ॥ १८८ ॥

कल्क के लिये कालीमिर्च, हरताल, मैनशिल, आक का दूध, कनेर की जड़, निसोथ, गोमयरस, इन्द्रायण की जड़, कूट, हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु और लाल चन्दन; प्रत्येक दो-दो तोले। विष (मीठा तेलिया) ४ तोले कडुआ तेल १२८ तोला, गोमूत्र ६ सेर ३२ तोले यथाविधि तैल सिद्धकर मर्दन करने से यह मरिचादि तैल दाद और सफेद कोढ़ को नाश करता है। एवम् सब प्रकार के कुष्ठों में भी लाभदायक है ॥ १८७-१८८ ॥

वृहन्मरिचादि तैल।

मरिचं त्रिवृता दन्ती क्षीरमार्कं शकृद्रसः। देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ॥ १८९ ॥ विशाला करवीरश्च हरितालं मनःशिला। चित्रको लाङ्गलाख्या च विडङ्गं चक्रमर्दकम् ॥ १९० ॥ शिरीषं कुटजो निम्बः सप्तपर्णः स्नुहामृता। शम्पाको नक्तमालोऽब्दं खदिरं पिप्पली वचा ॥ १९१ ॥ ज्योतिष्मती च पलिका विषस्य द्विपलं भवेत्। आढकं कटुतैलस्य गोमूत्रञ्च चतुर्गुणम् ॥ १९२ ॥ मृत्पात्रे लौहपात्रे वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत्। पक्त्वा तैलवरं ह्येतत् म्रक्षयेत् कुष्ठकान् व्रणान् ॥ १९३ ॥ पामाविचर्चिकादद्रुकण्डूविस्फोटकानि च। वलयः पलितं छाया नीली व्यङ्गं तथैव च ॥ १९४ ॥ अभ्यङ्गेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्यञ्च जायते। प्रथमे वयसि स्त्रीणां यासां नस्यं तु दीयते ॥ १९५ ॥ परामपि जरां प्राप्य न स्तना यान्ति नम्रताम्। बलीवर्दस्तुरङ्गो वा गजो वा वायुपीडितः। एभिरभ्यञ्जनैर्गाढं भवेन्मारुतविक्रमः ॥ १९६ ॥

कालीमिर्च, निसोथ, दन्ती (जमालगोटा की जड़), आक मदार का दूध, गोबर का रस, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, जटामासी, कूट, लालचन्दन, इन्द्रायण की जड़- कनेर की जड़, हरताल, मैनशिल, चीता की जड़, कलिहारी, वायविडंग, चकवँड़ (पवाँड़ के बीज), सिरसा की छाल, कुड़े की छाल, नीम की छाल, सतवन, थूहर, गिलोय, अमलतास, करंजुआ, नागरमोथा, खैर, पीपरि, वच और मालकाँगनी; ये सब चार--चार तोले, मीठा तेलिया ८ तोले; इन सबका कल्क बनावे। कडुआ तेल ६ सेर ३२ तोले और गोमूत्र २५ सेर ४८ तोले। यथाविधि मिट्टी या लोह, के पात्र में धीरे-धीरे मन्दाग्नि से तेल सिद्ध करे। इस तेल के मर्दन करने से कोढ़, घाव, पामा, विचर्चिका, दाद, खुजली, फोड़े, सिकुड़न, बाल पकना, छाया, नीलिका और व्यंग रोग नाश होता है तथा शरीर में सुकुमारता आ जाती है। युवा अवस्था में यदि स्त्रियों को

इसकी नस्य दी जाय तो बुढ़ापे में भी उनके स्तन ढीले न हों। वातरोग से पीड़ित बैल, घोड़ा और हाथियों के शरीर में मसलने से उनमें हवा के तुल्य वेग हो जाता है ॥ १८६-१९६ ॥

कन्दर्पसार तैल।

सप्तपर्णस्तथा काली गुडूचीपिचुमर्दकम् । शिरीषश्च महातिक्ता जया तुम्बी मृगादनी ॥ १९७ ॥ निशादशपलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् । तैलप्रस्थं समादाय गोमूत्रश्च चतुर्गुणम् ॥ १९८ ॥ आरग्वधो भृङ्गराजो जयाधुस्तूरत्रयः ऐन्द्राशनाग्निखर्जूरं गोमयार्कस्नुहीच्छदम् ॥ १९९ ॥ तैलतुल्यं मदातव्यं स्वरसश्च पृथक् पृथक् । महाकालवचा ब्रह्मी तुम्ब्यग्निगृहपुत्रिकाः ॥ २०० ॥ कुचेला कुलका रात्रिर्मेघनामा च ग्रन्थिका । शम्पाकमर्कक्षीरञ्च कासुन्देस्वरमूलकम् ॥ २०१ ॥ आखुजिह्वी महातिक्ता विशाला छविपत्रकम् । पूतिकास्फोतमूर्वा च सप्तपर्णशिरीषकम् ॥ २०२ ॥ कुटजं पिचुमर्दश्च महानिम्बं तथैव च गुडूची चन्द्ररेखा च सोमराट् चक्रमर्दकम् ॥ २०३ ॥ तुम्बुरुभृङ्गयष्ट्याह्कन्दकं कटुरोहिणी । शटी दार्वी त्रिवृत्पद्मग्रन्थिकागुरुपुष्करम् ॥ २०४ ॥ कर्पूरं कट्फलं मांसीं मुरैलाटरुषामयम् । एतेषां कार्षिकैः कल्कैर्नाम्ना कन्दर्प उच्यते ॥ २०५ ॥ अष्टादशविधं कुष्ठं अस्थिमज्जगतं तथा । हस्तपादाङ्गुलीसंधिगलितं सर्वसन्धिषु ॥ २०६ ॥ अधिकानि च मांसानि यस्य गात्रे भवन्ति हि । नासाकर्णास्यवैकल्यं भेकाकारवपुस्त्वचम् ॥ २०७ ॥ श्वेतं रक्तं तथा कुष्ठं नानावर्णं विपादिकम् । श्वित्रं चतुर्विधञ्चैव वातशोणितमेव च ॥ २०८ ॥ कपालं कृमिजं कुष्ठं कंडूदद्रुविचर्चिकान् । पामाविस्फोटका नीली कृमिवृद्धि तथैव च ॥ २०९ ॥ कीटदद्रुमसूरी च किट्टिमं रक्तमण्डलम् । कुष्ठमौदुम्बरं पद्मं महापद्मं तथैव च ॥ २१० ॥ गलगण्डार्वुदं हन्याद्गण्डमालां भगन्दरम् । वातजं पित्तजञ्चैव श्लेष्मजं सान्निपातिकम् ॥ एकोत्थर्णं ह्युलगणश्च कुष्ठं हन्यान्न संशयः ॥ २११ ॥

क्वाथ के लिये सतवन, नील, गिलोय, नीम की छाल, सिरस की छाल, बकायन की छाल, जयन्ती, कड़ुई तूँबी, इन्द्रायण की जड़ और हल्दी, ये सब चालीस चालीस तोले लेकर २५ सेर ८ तोले जल में औटावे। ६ सेर ३२ तोले क्वाथ रहने पर उतारकर छान ले। कड़ुआ तेल १२८ तोले। गोमूत्र ६ सेर ३२ तोले। अमलतास, जयन्ती, भँगरा, हल्दी, भाँग, चीता की जड़ खजूर के पत्ते, गोबर, आक के पत्ते, थूहर के पत्ते, इनका पृथक् पृथक् स्वरस १२८ १२८ तोले ले। कल्क के लिये लाल इन्द्रायण, वच ब्रह्मी, कड़ुई तूंबी, चीता की जड़ घीकुवार, कुचिला, परवल के पत्ते, हल्दी, मोथा, पिपरामूल, अमलतास, आक का दूध, कसौंदी, शिवलिङ्गी की जड़, आखुमूल (आल की जड़) मजीठ, चिरायता इन्द्रायण की जड़ छविपत्र (त्रिछाटी के पत्ते), करञ्ज पत्र, मदार की जड़' मूर्वा, सतवन, सिरस की छाल, कुड़ा की छाल, नीम की छाल, बकायन की छाल, गिलोय, बाकुची, सोमराजी, (बाकुची के बीज), पवाँड, धनिया, भगरा, मुलहठी, जमींकन्द, कुटकी, कचूर, दारुहल्दी, निसोथ पद्माख, गठिवन, अगर, पोहकरमूल, कपूर, कायफल, जटामासी, मुरामासी, इलायची छोटी, अडूसा और कूस ये सब एक-एक तोला ले। यथा विधि तेल सिद्ध कर मालिश करने से यह

कन्दर्पसार तेल अठारह प्रकार के कोढ, गाँठ और मज्जागत कुष्ठ, हाथ और पैर की अंगुलियों की संधियों तथा अन्य संधियों का गलना, अधिक मांस बढ़ना, नाक और कान का विकृत हो जाना, शरीर की मेंढक की-सी खाल होना, श्वेत तथा रक्त कुष्ठ, अनेक प्रकार की विपादिका, चार प्रकार का सफ़ेद कोढ़, वातरक्त, कपाल कुष्ठ, कृमिज कुष्ठ खाज, दाद, विचर्चिका, पामा आदि की फुन्सियाँ, नीली, कृमि पड़ना, कीटरोग, दाद, मसूरिका, किटिभ, लाल चकत्ते, औदुम्बरकोढ़, पद्मकोढ़ महापद्मकोढ़, गलगण्ड, अर्बुद, गण्डमाला, भगन्दर तथा वातज पित्तज, कफज और सान्निपातिक एकोलवण तथा द्युलवण कुष्ठ रोगों को नष्ट करता है। इसमें संशय नहीं ॥ १६७-२११ ॥

अमृतभल्लातक।

भल्लातकानां पवनोद्धतानां वृन्तच्युतानाञ्च यदाढकं स्यात्। तच्चेष्टकाचूर्णकणैर्विघृष्यप्रक्षालयित्वा विसृजेत् प्रवाते॥ २१२॥ शुष्कं पुनस्तद्द्विदलीकृतञ्च ततः पचेदप्सु चतुर्गुणासु। तत्पादशेषं परिपूतशीतं क्षीरेण तुल्येन पुनः पचेत्तु॥२१३॥ तत्पादशेषं पुनरेव शीतं घृतेन तुल्येन पुनः पचेत्तु। तदर्द्धया शर्करया विकीर्णं ततः खजेनोन्मथितं विधाय॥ २१४॥ तत्सप्तरात्रादुपजातवीर्यं सुधारसादप्यधिकत्वमेति। प्रातर्विशुद्धः कृतदेवकार्य्यो मात्राञ्च खादेत् स्वशरीरयोग्याम्॥२१५॥ न चान्नपाने परिहार्यमस्ति न चातपे चाध्वनि मैथुने च। यथेष्टचेष्टो विहितोपयोगाद् भवेन्नरः काञ्चनराशिगौरः॥ २१६॥ अनन्यमेधा नरसिंहतेजा हृष्टेन्द्रियोऽव्याहतबुद्धिसत्त्वः। दन्ताश्च शीर्णाः पुनरुद्भवन्ति केशाश्च शुक्लाः पुनरेव दिव्याः॥ २१७॥ नीलाञ्जनालिप्रतिमा भवन्ति त्वचो विकर्णाः पुनरेव दिव्याः। विशीर्णकर्णाङ्गुलिनासिकोऽपि कृम्यर्दितो भिन्नगलोऽपि कुष्ठी॥२१८॥ सोऽपि क्रमादंकुरिताग्रशाखस्तरुर्यथा भाति नभोऽम्बुसिक्तः। उष्ट्रान् मयूरान् जयति स्वरेण बलेन नागस्तुरगो जवेन॥ २१६॥ रसायनस्यास्य नरः प्रसादाद् बृहस्पतेरप्यधिकोऽपि बुद्ध्या। ग्रन्थान् विशालान् पुनरुक्तिदोषान् गृह्णाति शीघ्रं न च नश्यते तु॥ २२०॥ कुर्वन्निमं कल्पमनल्पबुद्धिर्जीवेन्नरो वर्षशतानि पञ्च। राजा ह्ययं सर्वरसायनानां चकार योगं भगवानगस्त्यः॥ २२१॥

पवन के लगने से गिरे हुए भिलावें ३ सेर १६ तोले लेकर ईंट के चूर्ण में डालकर खूब मसले फिर जल से धोकर हवा में सुखावे। जब भिलावें सूख जायँ तब उनके दो-दो टुकड़े करके १२ सेर ६४ तोले जल में औटावे। जब ३ सेर १६ तोले जल बाकी रहे तब छान कर ठंडा कर ले। फिर ३ सेर १६ तोले दूध में डालकर पकावे। जब चतुर्थांश दूध रह जाय तब ठंडा करके ३ सेर १६ तोले घी में पकावे और उसमें १२८ तोले शक्कर डाल कलछी से खूब चलाकर मिला दे। इसको सात दिन तक भरा रक्खे। ऐसा करने से इसमें वीर्य पैदा हो जाता है और अमृत से भी अधिक गुणदायक हो जाता है। प्रातःकाल स्नानसन्ध्योपासन आदि कृत्यों से निवृत्त होकर अपने बलानुसार इसका सेवन करे। इसके सेवन में अन्न-पान, धूप और स्त्री- प्रसङ्ग आदि का परहेज़ नहीं है। इसका विधिपूर्वक सेवन करने से मनुष्य का शरीर सुवर्ण के तुल्य गौरवर्ण हो जाता है और बुद्धिमान्, तेजस्वी, प्रबलेन्द्रिय तथा अकुण्ठितबुद्धि हो जाता है। गिरे हुए दाँत फिर उत्पन्न हो जाते हैं तथा सफेद बाल

भ्रमर के तुल्य काले हो जाते हैं । खाल का वर्ण सुन्दर हो जाता है । जिसकी कोढ़ से अंगुली, कान और नासिका गल गई हो, कीड़े पड़ गये हों और गला विकृत हो गया हो वह मनुष्य इसके सेवन से निर्दोष मधुत्वादि अंगवाला हो जाता है । जैसे वर्षा के पानी से वृक्ष शाखा, पत्रादि से युक्त हो जाते हैं । स्वर से ऊँट और मयूर को तथा बल से हाथी और वेग से घोड़ा को जीत लेता है । इस रसायन के प्रभाव से बुद्धि में बृहस्पति के समान हो जाता है और पुनरुक्ति दोष से रहित बड़े-बड़े ग्रन्थों को और उनके पुनरुक्ति दोषों को शीघ्र हृदयङ्गम कर लेता है और उनकी स्मृति शीघ्र नष्ट नहीं होती है । इस कल्क को सेवन करनेवाला मनुष्य ५०० वर्ष तक जीता है । भगवान् अगस्त्यजी ने इस रसायनराज को कहा है ॥ २१२-२२१ ॥

महाभल्लातक गुड़ ।

निम्बं गोपारुणा कट्वी त्रायन्ती त्रिफला घनम् । पर्पटावल्गुजानन्ता वचा-खदिरचन्दनम् ॥ २२२ ॥ पाठा शुण्ठी शटी भार्गी वासा भूनिम्बवत्सकम् । श्यामेन्द्रवारुणीमूर्वा विडङ्गेन्द्रविषानलम् ॥ २२३ ॥ हस्तिकर्णामृताद्रेका पटोलं रज-नीद्वयम् । कृतारग्वधसप्ताहकृष्णवेत्रो-घटाफलम् ॥ २२४ ॥ मूकन्दं तृणपर्णश्च जिह्वी पद्माटमूशली । विष्वक्सेना च कैटर्यं शरपुङ्खाथ कञ्चुकी ॥ २२५ ॥ येषां द्विपलिकान् भागान् जलद्रोणे विपा-चयेत् । अष्टभागावशिष्टन्तु कषायमवतार-येत् ॥ २२६ ॥ भल्लातकसहस्राणि त्रीणि छित्वाम्भसोऽम्भसि । चतुर्भागावशेषन्तु कषायमवतारयेत् ॥ २२७ ॥ तौ कषायौ समादाय वस्त्रपूतौ च कारयेत् । गुडस्य तु तुलां ताभ्यां कषायाभ्यां पचेद्भिषक् २२८ भल्लातकसहस्राणां मज्जनं तत्र दापयेत् । त्रिकटुत्रिफलामुस्तसैन्धवानां पलं पलम् ॥ २२९ ॥ दीप्यकस्य पलञ्चैव चतुर्जातं पलांशिकम् । सञ्चूर्ण्य प्रक्षिपेदत्र गन्ध-कञ्च चतुःपलम् ॥ २३० ॥ स्निग्ध-भाण्डे विनिःक्षिप्य स्थापयेत् कुशलो भिषक् । महाभल्लातको ह्येष महादेवेन निर्मितः ॥ २३१ ॥ जगतस्तु हितार्थाय जयेच्छीघ्रं निषेवितः । श्वित्रमौदुम्बरं दद्रुमृष्यजिह्वं सकाकणम् ॥ २३२ ॥ पुण्डरीकञ्च चर्म्माख्यं विस्फोटं मण्डलं तथा । कण्डूं कपालकुष्ठञ्च पामानं सवि-पादिकम् ॥ २३३ ॥ वातरक्तमुदावर्त्तं पाण्डुरोगव्रणक्रिमीन् । अर्शांसि षट्प्रका-राणि कासं श्वासं भगन्दरम् ॥ २३४ ॥ तदभ्यासेन पलितमामवातं सुदुस्तरम् । अनुपाने प्रयोक्तव्यं छिन्नाक्वाथं पयो-ऽथवा । भोजने च तथायोज्यमुष्णश्चान्नं विशेषतः ॥ २३५ ॥

नीम की छाल, कालीसर (कालीसारिवा) अतीस, कुटकी, त्रायमाण, त्रिफला, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, बाकुची, अनन्त मूल, बच, खदिर, लालचन्दन, पाढ़ी, सोंठ, कचूर, भारगी, अडूसा, चिरायता, कुड़ा की छाल, विधारा, इन्द्रायण की जड़, मरोरफली, विड ग, इन्द्रयव, मीठा विष, चीता की जड़, हस्तिकर्ण (पलाशभेद) की छाल, गिलोय, बकायन की छाल, परवल के पत्ते, हल्दी, दारुहल्दी, पीपरि, अमलतास, सतवन, काली निसोथ, बेत, सफेद घु घुची, जमीकन्द, तृणपर्णी (चीनाघास), मजीठ, पवाँड़, मुसली, प्रियगु, कायफल, सरफोंका और कञ्चुकी (सिरस की छाल); ये सब आठ आठ तोले लेकर २५ सेर ४८ तोले जल में औटावे । जब ३ सेर १६ तोले अवशिष्ट रहे तब उतार कर रख ले । फिर तीन हजार ३००० भिलावें लेकर उनके टुकड़े-टुकड़े करके २५ सेर ४८

तोले जल में औटावे । जब ६ सेर ३२ तोले क्वाथ शेष रहे तब उतार कर रख ले । अब दोनों क्वाथों को कपड़े से छानकर और उसमें ४ सेर गुड़ मिलाकर पकावे । पकाते समय एक हज़ार भिलावों की गिरी उसमें मिला दे । जब पाक तैयार हो जाय तब त्रिफला, त्रिकटु, नागरमोथा, सेंधानमक और अजवाइन चार-चार तोले ; दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र और नागकेशर प्रत्येक एक-एक तोले ; शुद्ध आँवलासारगन्धक १६ तोले कूट पीस कर उसमें मिला दे और चिकने बर्तन में भरकर रख दे । यह महाभल्लातक महादेवजी का बनाया हुआ है । इसके योग्य मात्रा में खाने से सफ़ेद कोढ़, उदुंबर, दाद, ऋष्यजिह्व, काकण, पुण्डरीक, चर्मदल, विस्फोट, मण्डल, खुजली, कपालकुष्ठ, पामा, विपादिका, वातरक्त, उदावर्त, पाण्डुरोग, घाव, कृमि, छह प्रकार की बवासीर, कास-श्वास, भगन्दर, वलीपलित और दारुण आम-वात आदि रोग नष्ट होते हैं । अनुपान गिलोय का काढ़ा या दूध । पथ्य के लिये गर्म-गर्म भात देना चाहिए ॥ २२२-२३५ ॥

सर्वेश्वर रस ।

सुवर्णं रजतं चैव प्रत्येकं दशनिष्ककम् । माषैकं मृतवज्रञ्च तालसत्त्वं पलद्वयम् ॥ २३६ ॥ जम्बीरोन्मत्तसलिलैः स्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः । मर्द्यं हयारिजैर्द्रावैः प्रत्येकेन दिनं दिनम् ॥ २३७ ॥ एवं सप्तदिनं मर्द्यं तद्गोलं वस्त्रवेष्टितम् । वालुकायन्त्रगं स्वेद्यं त्रिदिनं लघुवह्निना ॥ २३८ ॥ आदाय चूर्णयेत् श्लक्ष्णं पलैकं योजयेद्विषम् । द्विपलं पिप्पलीचूर्णमिश्रं सर्वेश्वरो रसः ॥ २३९ ॥ गुञ्जार्द्धं लिह्यते क्षौद्रैः सुप्तिमण्डलकुष्ठनुत् । वाकुची देवकाष्ठं च शाणार्द्धं तु विचूर्णयेत् ॥ लिहेदेरण्डतैलाक्रमनुपानं सुखावहम् ॥ २४० ॥

सोने की भस्म, चाँदी की भस्म, हरएक ५ तोले, हीरक भस्म १ माशा (८ रत्ती), हरिताल सत्त्व ८ तोले । इन्हें एकत्र मिला जम्बीर, धतूरपत्र, सेहुण्डपत्र, आक के पत्ते, कुचला और कनेर की जड़, इनके रस से एक-एक दिन घोटे । इस प्रकार सात-सात दिन घोट-कर पिण्डाकार कर ले पश्चात् इसे वस्त्र में लपेट कपड़मिट्टी कर बालुकायन्त्र में मन्द-मन्द आँच से तीन दिन स्वेदन करे । स्वाङ्गशीतल होने पर महीन चूर्ण करके शुद्ध वत्सनाग का चूर्ण ४ तोले, पीपल का चूर्ण ८ तोले मिला-कर आधी रत्ती की मात्रा शहद के साथ चटावे । यह सुप्ति (त्वचा में स्पर्शानुभव न होना) तथा मण्डलकुष्ठ को नष्ट करता है । अनुपान बाकुची के बीज तथा देवदारु का चूर्ण मिलित २ माशे को किञ्चित् अण्डी के तेल में मिलाकर सेवन करना चाहिए ॥ २३६—२४० ॥

ब्रह्मरस ।

भागैकं मूर्च्छितं सूतं गन्धकं त्वग्नि-वागुजी । चूर्णन्तु ब्रह्मबीजानां प्रतिद्वादश-भागकम् ॥ २४१ ॥ त्रिंशद्भागं गुडस्यापि क्षौद्रेण गुडिका कृता । गुञ्जाचतुष्टयं हन्ति प्रसुप्तिकुष्ठमण्डलम् ॥ पातालगरुडीमूलं जलैः पिष्ट्वा पिबेदनु ॥ २४२ ॥

रससिन्दूर, गन्धक, चित्रक, बाकुची बीज, (कालीज़ीरी), तथा पलाशबीज अथवा भारंगी-बीज हरएक बारह-बारह भाग । गुड़ ३० भाग, इन्हें एकत्र शहद के साथ घोटकर गोलियाँ बनावे । मात्रा—४ रत्ती । इसके सेवन से सुप्ति तथा मण्डलकुष्ठ नष्ट होता है । अनुपान—पातालगरुड़ी (जलजमनी) की जड़ तथा जल ॥ २४१—२४२ ॥

चन्द्रानन रस ।

सूतव्योमाग्नयस्तुल्यास्त्रिभागा गन्धकस्य च । काकोदुम्बरिकाक्षीरैः सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ २३३ ॥ त्रिगुञ्जां च गुडीं कृत्वा कुष्ठरोगे प्रयोजयेत् । देहशुद्धिं पुरा कृत्वा

सर्वकुष्ठानि नाशयेत् ॥ एष चन्द्राननो नाम साक्षात् श्रीभैरवोदितः ॥ २४४ ॥

पारा, अभ्रकभस्म, चित्रक प्रत्येक एक-एक भाग, गन्धक ३ भाग। इन्हें कठगूलर के दूध से घोटे। मात्रा—१ रत्ती। इसके सेवन से कुष्ठरोग नष्ट होता है। इसके सेवन करने से पहिले वमन-विरेचन आदि द्वारा शरीर की शुद्धि कर लेना चाहिए। यह चन्द्रानन रस श्रीभैरवजी का कहा हुआ है॥ २४३--२४४ ॥

महातालेश्वर रस।

तालताप्यशिला सूतं शुद्धं टङ्कणसैन्धवम्। समं सञ्चूर्णयेत् खल्ले सूताद् द्विगुणगन्धकम् ॥ २४५ ॥ गन्धाद् द्विगुणलौहञ्च जम्बीराम्लेन मर्दयेत्। ततो लघुपुटे पाच्यं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥२४६॥ त्रिंशदंशं विषञ्चात्र क्षिप्त्वा सर्वं विचूर्णयेत्। माहिषाज्येन सम्मिश्रं गुञ्जैकं भक्षयेत् सदा॥ २४७ ॥ मध्वाज्यैर्वागुजीचूर्णं माषमात्रं लिहेदनु। सर्वान् कुष्ठान् निहन्त्याशु महातालेश्वरो रसः ॥ २४८ ॥

शुद्ध हरिताल, स्वर्णमाक्षिक की भस्म, शुद्ध मैनशिल, शुद्ध पारा, सुहागा, सेंधानमक, हरएक एक एक भाग, गन्धक २ भाग, लौहभस्म ४ भाग इन्हें इकट्ठा मिलाकर जम्भीरी के रस से घोटे, पश्चात् लघुपुट दे। स्वाङ्गशीतल होने पर सब चूर्ण का तीसवाँ भाग शुद्ध बच्छनाग मिलावे। मात्रा—१ रत्ती। औषध को भैंस के घी में मिलाकर सेवन करना चाहिए। अनुपान—कालीजीरी का चूर्ण १ माशा तथा शहद और घी। यह रस सम्पूर्ण कुष्ठों को नष्ट करता है॥ २४५--२४८ ॥

माणिक्य रस।

पलं तालं पलं गन्धं शिलायाश्च पलार्द्धकम्। चपलः शुद्धसीसञ्च ताम्रमभ्रमयोरजः ॥ २४९ ॥ एतेषां कोलभागञ्च वटक्षीरेण मर्दयेत्। ततो दिनत्रयं घर्मे निम्बक्वाथेन भावयेत् ॥ २५० ॥ गुडूचीतालहिन्तालशानरीनीलझिण्टिकाः। शोभाञ्जनमुराजाजीनिर्गुण्डीहयमारकम्॥ २५१ ॥ एषां शाणमितं चूर्णमेकीकृत्य सरित्तटे। मृत्पात्रे कठिने कृत्वा मृदम्बरयुते दृढे ॥ २५२ ॥ एकाकी पाकविद्वैद्यो नग्नः शिथिलकुन्तल। पचेदवहितो रात्रौ यत्नात्संयतमानसः ॥ २५३ ॥ तद्विजानीहि भैषज्यं सर्वकुष्ठविनाशनम्। सर्पिषा मधुना लौहपात्रे तद्दण्डमर्दितम् ॥२५४॥ द्विगुञ्जं सर्वकुष्ठानां नाशनं बलवर्द्धनम्। शीतलं सारसं तोयं दुग्धं वा पाकशीतलम् ॥ २५५ ॥ आनीतं तत्क्षणाटाजमनुपानं सुखावहम्। वातरक्तं शीतपित्तं हिक्काञ्च दारुणां जयेत् ॥ २५६ ॥ ज्वरान् सर्वान् वातरोगान् पाण्डुं कण्डूञ्च कामलाम्। श्रीमद्गहननाथेन निर्मितो बहुयत्नतः ॥ २५७ ॥

शुद्ध हरिताल ४ तोले, गन्धक ४ तोले, मैनशिल २ तोले, शुद्धपारा, शुद्धसीसा की भस्म ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, लौहभस्म हरएक ६ माशे, इन्हें एकत्र मिलाकर बरगद के दूध से घोटकर नीम के क्वाथ से तीन दिन भावना दे धूप में सुखा ले। पश्चात् इसके साथ गिलोय, गन्धबाला, हिन्ताल, कौंच, नीली कटसरैया, सहिजना, मुरामासी, जीरा, सम्भालू, कनेर की जड़ हरएक का चूर्ण तीन तीन माशे ले, इन्हें एकत्र मिलाकर नदी किनारे एक कपडमिट्टी किये हुए कठिन मिट्टी के पात्र में रक्खे। इसके बाद पाकविधि को जाननेवाला वैद्य नग्न होकर केश खोले हुए इकल्ला रात्रि में शान्त चित्त हो पाक करे। यह सम्पूर्ण कुष्ठों को नष्ट करता है। मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक। सेवनकाल में इसे घृत और शहद के साथ लौहपात्र में लौहदण्ड द्वारा घोटकर सेवन करावे।

अनुपान—तालाब का शीतल जल, औटाकर ठंढा किया दूध अथवा बकरी का ताज़ा दूध। यह रस वातरक्त, शीतपित्त, हिक्का, ज्वर, वातरोग, पाण्डु, कण्डू तथा कामला रोग को नष्ट करता है ॥ २४१--२४७ ॥

कुष्ठनाशन रस।

चिरविल्वपत्रपथ्याशिरीषञ्च विभीतकम्। काष्ठोडुम्बरिकामूलं मूत्रैरालोड्य फेनितम् ॥ २५८ ॥ कर्षमात्रं पिवेद्रोगी गोस्तन्या सह टङ्कणम्। सप्तसप्तकपर्यन्तं सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥ २५६ ॥

करञ्जपत्र, हड़, सिरस की छाल, बहेड़ा, कठगूलरि की जड़, इन्हें एकत्रकर गोमूत्र में डाल मथ डाले। जब झाग पैदा हो जाय तब रोगी को मुनक्का और सुहागा के साथ मिलाकर सेवन कराने से सम्पूर्ण कुष्ठ नष्ट होते हैं। चूर्ण की मात्रा—२ माशे, गोमूत्र २ तोले ॥ २५८--२५६ ॥

पारिभद्र रस।

मूर्च्छितं सूतकं धात्रीफलं निम्बस्य चाहरेत्। तुल्यांशं खदिरक्वाथैर्दिनं मर्दञ्च भक्षयेत् ॥ गुञ्जैकं दद्रुकुष्ठघ्नः पारिभद्राह्वयो रसः ॥ २६० ॥

रससिन्दूर, आँवला, निबौली, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर खदिरकाढ़ के क्वाथ से घोटकर एक एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। यह रस दाद और कुष्ठ को नष्ट करता है ॥ २६० ॥

कुष्ठारि रस।

काष्ठोडुम्बरिकाचूर्णं ब्रह्मदण्डीबलात्रयम्। प्रत्यहं मधुना लीढं वातरक्तं निहन्ति च ॥ २६१ ॥ स्रवद्रक्तंस्रवन्मांसं मासमात्रेण सर्वथा। गलत्पूयं पतत्कीटं त्रिमापं सेव्यमीरितम् ॥ २६२ ॥

कठगूलरि का चूर्ण, भारगी, खरैटी, अतिबला, नागबला, इन्हें एकत्र मिलाकर शहद के साथ चाटने से वातरक्त और गलत्कुष्ठ नष्ट होता है। मात्रा—३ माशे ॥ २६१--२६२ ॥

कुष्ठकालानल रस।

गन्धं रसं टङ्कणताम्रलौहं भस्मीकृतं मागधिकासमेतम्। पञ्चाङ्गनिम्बेन फलत्रिकेण विभावितं राजतरोस्तथैव। नियोजयेद्रक्तित्रयप्रमाणं कुष्ठेषु सर्वेषु च रोगसङ्घे ॥ २६३ ॥

गन्धक, पारा, सुहागा, ताम्रभस्म, लौहभस्म, पीपल, इन्हें एकत्र कर इसमें नीम के पञ्चाङ्ग (पत्ते, फूल, फल, जड़, छाल), त्रिफला तथा अमलतास की छाल, इनके क्वाथ की भावना देकर तीन तीन रत्ती की गोलियाँ बनावे। इसके सेवन से सम्पूर्ण कुष्ठ नष्ट होता है ॥२६३॥

गलत्कुष्ठारि रस।

रसो बलिस्ताम्रमयःपुरोग्निशिलाजतु स्याद्विपतिन्दुकोऽग्रे। सर्वञ्च तुल्यं गगनं करञ्जबीजं तथा भागचतुष्टयञ्च ॥ २६४ ॥ सम्मर्द्य गाढं मधुना घृतेन गुञ्जाद्वयञ्चास्य निहन्त्यवश्यम्। कुष्ठं किलासमपि वातरक्तं जलोदरं वाथ विबद्धमूलम् ॥ २६५ ॥ विशीर्णकर्णाङ्गुलिनासिकोऽपि भवेत्प्रसादात् स्मरतुल्यमूर्तिः ॥ २६६ ॥

पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, लौहभस्म, गूगुल, चित्रक, शुद्ध शिलाजीत, कुचिला प्रत्येक एक-एक भाग; अभ्रकभस्म, करञ्जबीज, हरएक चार-चार भाग, इन्हें एकत्र कर घोटे। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—शहद तथा घी। यह रस कुष्ठ, श्वित्र, वातरक्त, जलोदर आदि रोगों को नष्ट करता है। जिस रोगी के कान, अँगुली तथा नाक आदि गलत्कुष्ठ के कारण गल गये हों वह भी यदि इसे सेवन करे तो इसके प्रभाव से कामदेव के समान स्वरूपवाला हो सकता है ॥ २६४--२६६ ॥

पञ्चवटी।

शुद्धसूताग्निमरिचं सूताद् द्विगुणगन्धकम्। काकोदुम्बरिकाक्षीरैर्दिनं मर्द्यं प्रयत्नतः॥ २६७॥ वराव्योषकषायेण वटीश्चास्य समाचरेत्। लिह्यात्पञ्चवटी ह्येषा पामारोगविनाशनी॥ २६८॥

शुद्ध पारा, चित्रक, कालीमिर्च प्रत्येक एक एक भाग, गन्धक २ भाग, इन्हें एकत्र मिलाकर कठूमरि के दूध से १ दिन घोटे। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—त्रिफला और त्रिकुटा का क्वाथ। इसके सेवन से पामा रोग नष्ट होता है॥ २६७--२६८॥

कुष्ठकुठार रस।

भस्मसूतसमो गन्धो मृतायस्ताम्रगुग्गुलुः। त्रिफला[1] च महानिम्बश्चित्रकश्च शिलाजतु॥ २६९॥ इत्येतच्चूर्णितं कुर्यात् प्रत्येकं भागषोडश। चतुःषष्टि करञ्जस्य बीजचूर्णं प्रकल्पयेत्॥ २७०॥ चतुःषष्टिमृतश्चाभ्रं मध्वाज्याभ्यां विलोडयेत्। स्निग्धभाण्डे स्थितं खादेद् द्विनिष्कं सर्वकुष्ठनुत्॥ रसः कुष्ठकुठारोऽयं गलत्कुष्ठविनाशनः॥ २७१॥

रससिन्दूर, गन्धक, लौहभस्म, ताम्रभस्म, गूगुल, त्रिफला, बकायन की छाल, चित्रक, शिलाजीत हरएक का चूर्ण सोलह सोलह भाग, करञ्जबीज का चूर्ण तथा अभ्रकभस्म का चौंसठ चौंसठ भाग। इन्हें एकत्र कर शहद तथा घी से मथकर एक चिकने बर्तन में रक्खे। मात्रा—६ रत्ती। यह रस सब प्रकार के कुष्ठ तथा गलत्कुष्ठ को नष्ट करता है। २६९--२७१।

कुष्ठहरितालेश्वर।

हरितालं भवेद्भागं द्वादशात्र विशुद्धिमत्। गन्धकोऽपि तथा ग्राह्यो रसः सप्तात्र दीयते॥ २७२॥ कृष्णाभ्रकमपि श्लक्ष्णं खल्ले कृत्वा विमर्दयेत्। अङ्कोठमूलनीरेण सेहुण्डपयसाऽथवा॥ २७३॥ अर्कदुग्धेन सम्पिष्य करवीरजलेन च। काकोदुम्बरनीरेण पेपणीयो रसो भृशम्॥ २७४॥ शुद्धताम्रकोटरे च लेपणीयो रसेश्वरः। पूर्ववत्पच्यते यामं पटुकश्चायं रसेश्वरः॥ २७५॥ रक्तिकैकप्रमाणेन काकोदुम्बरवारिणा। कुष्ठाष्टादशसंख्येषु देय एष भिषग्वरैः॥ २७६॥ अचिरेणैव कालेन विनाशं यान्ति निश्चयः। पथ्यसेवा विधातव्या प्रणतिः सूर्यपादयोः॥ २७७॥ साधकेन तथा सेव्यो रसो रोगौघनाशनः। पिप्पलीभिः समं दद्यात्कुष्ठरोगे रसेश्वरम्॥ २७८॥

शुद्ध हरताल और गन्धक बारह बारह भाग, पारा तथा अभ्रकभस्म सात सात भाग, इन्हें इकट्ठा कर खरल में डाल अङ्कोल की जड़ के रस से, थूहर और आक के दूध से, कनैर की जड़ के रस से, तथा कठूमरि के रस से क्रमशः घोटकर शुद्ध ताँबा के पात्र में १ प्रहर पकावे। मात्रा १ रत्ती। अनुपान--कठूमरि का रस। इसके सेवन से अठारहों कुष्ठ नष्ट होते हैं। कुष्ठ रोग में पीपल के चूर्ण के साथ मिलाकर इस रस को देना चाहिए। २७२--२७८।

राजराजेश्वर।

आतपे मर्दयेत्सूतं गन्धकं मृतताम्रकम्। सुहस्तमर्दितं तालं यावत्तत्र विलीयते॥ २७९॥ भृङ्गराजद्रवं दत्त्वा दिनमात्रं विमर्दयेत्। त्रिफला खादिरं सारममृता वागुजीफलम्॥ २८०॥ प्रत्येकं सूततुल्यं स्याच्चूर्णीकृत्य विमर्दयेत्। मध्वाज्याभ्यां

[1] त्रिफला विषमुष्टिश्च इति पाठान्तरे बकायन के स्थान पर कुचला भी लेते हैं।

लौहपात्रे माषाभ्यां भक्षयेत्ततः ॥ २८१ ॥ दद्रुकिट्टिमकुष्ठानि मण्डलानि विनाशयेत्। द्विगुञ्जोऽपि निहन्त्याशु राजराजेश्वरो रसः ॥ २८२ ॥

पारा, गन्धक, ताम्रभस्म और शुद्ध हरताल इन्हें एकत्र कर धूप में अच्छी तरह घोट जब देखे कि भली प्रकार मिल गया है तब भांगरे के रस से १ दिन घोटकर इसमें त्रिफला, कत्था, गिलोय, एवं कालीजीरी हरएक का चूर्ण एक-एक भाग मिलावे। मात्रा--१ रत्ती से २ रत्ती तक। शहद और घृत को एकत्र असमानपरिमाण में २ मासे लेकर उसके साथ लौहपात्र में घोटकर सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से दाद, किट्टिम और मण्डल कुष्ठ आदि रोग नष्ट होते हैं। २७६-२८२।

लङ्केश्वर रस।

भस्मसूताभ्रशुल्वानि गन्धतालं शिलाजतु। अम्लवेतसतुल्यांशं त्र्यहं दत्त्वा विमर्दयेत् ॥ २८३ ॥ मध्वाज्याभ्यां वटीं कुर्याद् द्विगुञ्जां भक्षयेत्ततः। कुष्ठं हन्ति गजं सिंहो रसो लङ्केश्वरो महान्॥२८४॥ त्रिफला निम्बमञ्जिष्ठा वचा पोटलमूलकम्। कटुकारजनीकाथं चानुपानं प्रयोजयेत् ॥ २८५ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध शिलाजीत और अम्लवेतस हरएक को बराबर मात्रा में मिलाकर घृत और शहद से ३ दिन घोटकर १ रत्ती से २ रत्ती तक की गोलियाँ बनावे। यह रस कुष्ठ को नष्ट करनेवाला है। अनुपान–त्रिफला, नीम की छाल, मजीठ, वच, पाढ़ल की जड़, कुटकी और हल्दी इनका क्वाथ। २८३-२८५ ॥

अर्केश्वर।

पलानीशस्य चत्वारि बलेर्द्वादश तावती। ताम्रस्य चक्रिका देया रसस्योर्द्ध्वं शरावकम् ॥ २८६ ॥ दत्त्वा विपद्धभाण्डस्थं पूरयेद्भस्मना दृढम्। अग्निं प्रज्वालयेद्यामद्वयं शीतं विचूर्णयेत् ॥ २८७ ॥ पुटे द्वादशधा सूर्यदुग्धेनालोडितं पुनः। वरापावकभृङ्गाणां द्रवैस्त्रिभिर्विभावयेत् ॥ २८८ ॥ अयमर्केश्वरो नाम्ना रक्तमण्डलकुष्ठजित् ॥ २८९ ॥

पारा १६ तोले, गन्धक ४८ तोले, ताम्र ४८ तोले इन्हें एकत्र हँडिया में रखकर उसके ऊपर अधोमुख एक मिट्टी का शराव रख सन्धि लेप कर दे और बचे हुए हाँड़ी के भाग को भस्म द्वारा भर दे पश्चात् दो प्रहर अग्नि पर पकावे। जब शीतल हो जाय तब चूर्ण कर ले और आक के दूध से घोटकर १२ पुट दे। पश्चात् त्रिफला, चित्रक तथा भांगरा इन तीनों के रस से भावना दे। मात्रा–चौथाई रत्ती से आधी रत्ती तक। यह रस रक्तमण्डल तथा कुष्ठ रोग को नष्ट करता है ॥ २८६-२८९ ॥

ज्योतिष्मत् रस।

कान्तं सुवर्णमभ्रञ्च रसं षड्गुणजारितम्। वैक्रान्तं विद्रुमं रुद्रजटामूलं हयप्रियम् ॥ २९० ॥ कङ्कुष्ठं च समं सर्वं गृहीत्वा यत्नतो भिषक्। एकीकृत्य रसेनैडगजपत्रभवेन च ॥ २९१ ॥ भल्लातमूलखदिरमूलकाथेन यत्नतः। त्रिधा सम्भाव्य विधिवन्मात्रा चणकसम्मिता ॥ २९२ ॥ ज्योतिष्मात्रामकरसो वातरक्तं हरेद् द्रुतम्। कुष्ठमष्टादशविधं रोगांश्चान्यांस्तदुद्भवान् ॥ २९३ ॥ तथा गौणोपदंशं च विकृतिं पारदोद्भवाम्। दुष्टव्रणं गण्डमालां भगन्दरमथापचीम् ॥ २९४ ॥ नातः परतरं किञ्चिद्भेषजं रक्तशुद्धिकृत्। सारिवा तन्त्रिका पथ्या पर्पटं मञ्जिनी तथा ॥ २९५ ॥ चक्राङ्गी काथ एतेषां

ज्योतिष्मद्रससेवनात् । वर्द्धयेदाशु वीर्यञ्च सर्वरोगकुलान्तकृत् ॥ २९३ ॥ भाषितः श्रीमहेशेन विबुधानां यथामृतम् ॥२९७॥

कान्तलौहभस्म, स्वर्णभस्म, अभ्रकभस्म, षड्गुण गन्धक जारित रससिन्दूर, वैक्रान्तभस्म, प्रवालभस्म, रुद्रजटा की जड़, असगन्ध, कंकुष्ठ (रेवन्दचीनीसत) इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर चक्रमर्दन के पत्तों के रस, एवं भिलावें की जड़ तथा खैर की जड़ के क्वाथ से अलग-अलग तीन-तीन बार भावना देकर चने के बराबर गोलियाँ बना ले। यह रस वातरक्त, १८ कुष्ठ तथा अन्य कुष्ठजन्य रोग, उपदंश, पारदविकार, दुष्टव्रण, गण्डमाला, भगन्दर और अपची इत्यादि रोगों को नष्ट करता है। इससे बढ़कर रक्तशोधन के लिए अन्य औषध नहीं है। इस औषध के सेवन काल में अनन्त-मूल, गिलोय, हरड़, पित्तपापड़ा, रेवन्दचीनी तथा कुटकी इनका विधिपूर्वक सिद्ध किया हुआ क्वाथ अनुपान रूप में प्रयुक्त किया जाता है यह रस वीर्यवर्धक एवं सब रोगों को नष्ट करता है। इस अमृततुल्य औषध को महादेवजी ने देवताओं के लिए कहा था। २९०-२९७।

महापिण्ड तैल।

अमृतायाः पलशतं सोमराजीतुलां तथा। प्रसारण्याः पलशतं जलद्रोणे पृथक् पचेत् ॥ २९८ ॥ पादशेषं गृहीत्वा च तैलप्रस्थं पचेद् भिषक। चीरं चतुर्गुणं दत्त्वा मन्दमन्देन वह्निना ॥ २९९ ॥ पिण्डशालजनिर्यासिसिन्धुवारफलत्रयम् । वह्निग्रन्थिककुष्ठानि निशे द्वे चन्दन-द्वयम् ॥ ३०० ॥ पूतिपूतीकसिद्धार्थ-वागुजीचक्रमर्दकम् । वासानिम्बपटो-लानि वानरीबीजमेव च ॥ ३०१ ॥ अश्वाह्वा सरलं सर्वं प्रतिकर्षमितं पचेत्। एतत्तैलवरं हन्ति वातरक्तमसंशयम् । ३०२ ॥ कुष्ठमष्टादशविधं ग्रन्थिवातं सुदारुणम् । कायग्रहं चामवातं भगन्दर-गुदामयम् ॥ ३०३ ॥ ज्वरमष्टविधं हन्ति मर्दनान्नात्र संशयः ॥ ३०४ ॥

तैल १२ तोले। क्वाथ के लिये-गिलोय ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोले, बचा हुआ क्वाथ ६ सेर ३२ तोले। कालीजीरी ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोले, बचा हुआ क्वाथ ६ सेर ३२ तोले। प्रसारिणी ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोले, बचा हुआ क्वाथ ६ सेर ३२ तोले। दूध ६ सेर ३२ तोले। कल्क के लिये-शिलारस, राल, सम्भालू, त्रिफला, चित्रक, पीपलामूल, कूट, हल्दी, दारुहल्दी, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, पूति (खट्टाशी, मुश्कबिलाव के अंड), करञ्ज, सफेद सरसों, बाकुची बीज, पवाँड के बीज, अडूसा, नीम की छाल, पटोलपत्र, कौंच के बीज, असगन्ध और चीड़ की लकड़ी हरएक १ तोला। विधिपूर्वक मन्द-मन्द आँच पर पकावे। इस तेल के अभ्यङ्ग से वातरक्त, १८ कुष्ट, कष्टदायक ग्रन्थिवात, सम्पूर्ण शरीरगत वेदना, आमवात, भगन्दर, बवासीर तक आठों प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥ २९८-३०४ ।

ओष्ठश्वित्रनाशन लेप।

मुखे श्वेते च सञ्जाते कुर्य्याच्चेमां प्रति-क्रियाम् । गन्धक चित्रकासीसं हरितालं फलत्रयम् ॥ ३०५ ॥ मुखे लिम्पेद्दिनैकेन वर्णनाशो भविष्यति ॥ ३०६ ॥

यदि मुख पर विशेषतः ओष्ठ पर श्वित्र हो जाय तब गन्धक, रक्तचित्रक (लाल चीता) की जड़, कसीस, हरताल, त्रिफला इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर जल के साथ लेप करे इससे शीघ्र ही श्वित्र रोग नष्ट होता है ॥ ३०५-३०६ ॥

अमृतांकुर लौह।

हुताशमुखसंशुद्धं पलमेकं रसस्य वै। पलं लौहस्य ताम्रस्य पलं भल्लातकस्य

च ॥ ३०७ ॥ गन्धकस्य पलश्चैकमभ्रकस्य च गुग्गुलोः । हरीतकीविभीतयोश्चूर्णं कर्षद्वयं द्वयोः ॥ ३०८॥ अष्टमाषाधिकं तत्र धात्र्याः पाणितलानि षट् । घृतं द्व्यष्टगुणं लौहाद् द्वात्रिंशत्रिफलाजलम् । ३०९ ॥ एवं कृत्वा पचेत् पात्रे लौहे च विधिपूर्वकम् । पाकमेतस्य जानीयात् कुशलो लौहपाकवत् ॥ ३१० ॥ विशुद्धः प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चकः । रक्तिकादिक्रमेणैव घृतं श्रामरमर्दितम् ॥ ३११ ॥ लौहे लौहस्य दण्डेन कुर्याद्देतद्रसायनम् । अनुपानश्च कुर्वीत नारिकेलोदकं पयः ॥ ३१२ ॥ सर्वकुष्ठहरं श्रेष्ठं बलीपलितनाशनम् । पाण्डुमेहामवातघ्नं वातरक्तरुजापहम् ॥ ३१३ ॥ कृमिशोथाश्मरीशूलदुर्नामवातरोगनुत् । क्षयं हन्ति महाश्वासमत्यर्थं शुक्रवर्द्धनम् ॥ अग्निसन्दीपनं हृद्यं कान्त्यायुर्बलवृद्धिकृत् ॥ ३१४ ॥ विवर्ज्य शाकाम्लमपि स्त्रियश्च सेव्यो रसो जाङ्गलजाविकानाम् । शाल्योदनं षष्टिकमाज्यमुद्गक्षौद्रं गुडक्षीरमिह क्रियायाम् ॥ ३१५ ॥ शालिश्च गुर्वादिबृहत्करञ्जशिलाजतुक्षौद्रयुतं पयश्च । सर्पिर्युतान् भक्षयतो विहङ्गान् प्रपूर्यते दुर्बलदेहधातुः ॥ ३१६ ॥ कृष्णस्य पक्षस्य सिते तु पक्षे त्रिपञ्चरात्रेण यथा शशाङ्कः ॥ ३१७ ॥

रससिन्दूर, लोहभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध शिलाजीत, गन्धक, अभ्रकभस्म और गूगुल, प्रत्येक चार-चार तोले। हड़ और बहेड़ा दो-दो तोले। आंवले छह तोले और आठ माशे। घी ६४ तोले। त्रिफला के १२८ तोले क्वाथ में सब रस, गूगुल और घी डालकर लोह की कड़ाही में पकावे, जब गाढ़ा होने लगे तब उपर्युक्त त्रिफला का चूर्ण डालकर विधिपूर्वक लोहपाकवत् पाक तैयार करे। प्रातःकाल उठकर गुरु, देवता और ब्राह्मण की पूजा करके एक रत्ती औषधि घी और शहद में मिलाकर और लोहपात्र में लोहे की मुसली से रगड़ कर सेवन करे। क्रमशः इसकी मात्रा बढ़ाता जाय। अनुपान नारियल का जल और दूध। इसके सेवन से सब प्रकार के कोढ़, बलीपलित, पाण्डुरोग, प्रमेह, आमवात, वातरक्त, कृमि, सूजन, अश्मरी, शूल, अर्श, वातरोग, क्षय, श्वास आदि रोग नष्ट होते हैं तथा शुक्र की वृद्धि होती है। अग्निदीपन, हृदय को हितकारी एवं कान्ति, आयु और बल बढ़ाता है। इसके सेवन के समय शाक, खटाई और स्त्रीप्रसंग त्याग देना चाहिए और जंगली भेड़ आदि का मांस, शाली और साठी चावल, घी, मूँग, शहद, गुड़, दूध, शालिंच शाक (शान्ति शाक), भारी पदार्थ, करंजुआ, शिलाजीत, शहदयुक्त दूध और घृत युक्त पक्षियों का मांस सेवन करना चाहिए। इससे शरीर की क्षीणता नष्ट होकर शरीर १५ दिन में इस प्रकार पूर्णाङ्ग हो जाता है जैसे कृष्णपक्ष का चन्द्रमा शुक्लपक्ष के १५ दिनों में पूर्ण हो जाता है ॥ ३०७-३१७ ॥

पाकलक्षण यथा।

वस्त्रे निष्पीडितं सूक्ष्मे स्थूलतन्तौ घने दृढे। समुद्रं जायतं व्यक्तं न निःसरति सन्धिभिः ॥ ३१८ ॥ न च शब्दायते वह्नौ तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ ३१९ ॥

हुताशमुखसंशुद्धरसगन्धकाभ्यां कज्जलीकृत्य प्रस्तरभाजने पिण्डिका कार्या ततः पिण्डिकोपरि तप्तताम्रभाजनं निवेशनीयं ततः किञ्चित्पर्पट्याकृतौ मृतायां षोडशांशटङ्कनक्षारं दत्त्वा अन्धमूषिकायां कृत्वा यावद्गन्धकसम्बन्धो नोपलभ्यते तावदेव ध्मातव्यम् । एवमग्नौ स्थिरीकृत्य रसस्य पलम् १। एवं लौहादिगुग्गुल्वन्तानां

प्रत्येकपलं १ घृतं दलं १६ सर्वमेकीकृत्य लौहपात्रे त्रिफलाक्वाथेन पचनीयं शेषपाक मन्तेपार्थ यथोक्तभागं त्रिफलाचूर्णम् ।

मोटे सूत से बहुत गहरे बिने हुए मजबूत कपड़े में बाँधकर निचोड़ने से सन्धियों से निकलकर प्रकट न हो और अग्नि पर डालने से उसमें से शब्द न निकले, तब पाक को सिद्ध समझे ॥ ३१८-३१९ ॥

अग्नि क मुख से शुद्ध पारा और गन्धक की कज्जली करके पाथर के पात्र में पिण्ड बनाकर रख दे । फिर उस पिण्ड के ऊपर ताँबे का तप्त पात्र रख दे जिससे कि फैलकर पर्पटी-सी हो जाय । कुछ पर्पटी के आकार का हो जाने पर उसमें षोडशांश सुहागा डालकर उसको अन्धमूषिका यन्त्र में रखकर गन्धकजारण पर्यन्त अग्नि पर उस अन्धमूषिका यन्त्र को रक्खे । इस प्रकार अग्नि पर स्थिर किया हुआ पारद ४ तोले, लोह से गुग्गुलु पर्यन्त प्रत्येक चार तोले, घृत ६४ तोले, इन सब वस्तुओं को एकत्र कर लोहपात्र में त्रिफला के क्वाथ से पकावे, पाक शेष होने पर यथोक्त भाग त्रिफलाचूर्ण डाले । यही अमृताङ्कुर लौह बनाने की रीति है ॥

आरोग्यवर्धनीगुटिका ।

रसगन्धक लोहाभ्रशुल्व भस्म समांशकम् त्रिफला द्विगुणं प्रोक्ता त्रिगुणंच शिलाजतु ॥ ३२० ॥ चतुर्गुणं पुरं शुद्धं चित्रमूलञ्च तत्समम् । तिक्ता सर्वसमा ज्ञेया सर्व सञ्चूर्ण्य यत्नतः ॥ ३२१ ॥ निम्ब वृक्ष दलाम्भोभिमर्दयेद्द्विदिनावधि । ततश्च वटिका कार्या क्षुद्रकोलफलोपमा ॥ ३२२ ॥ मण्डलं सेविता सैषा हन्ति कुष्ठान्यशेषतः । वातपित्त कफोद्भूता ज्वराननाना विकारजान् ॥ ३२३ ॥ देया पञ्चदिने जाते ज्वरे रोगे वटी शुभा । पाचनी दीपनी पथ्या हृद्यामेदो विनाशिनी ॥ ३२४ ॥ मलशुद्धिकरी नित्यं दुर्धर्ष क्षुत्प्रवर्तिनी । बहुनाऽत्राक्र मुक्तेन सर्वरोगेषु शस्यते ॥ ३२५ ॥ आरोग्य वर्धनी नाम्ना गुटिकेयं प्रकीर्तिता । सर्व रोग प्रशमनी श्रीनागार्जुन चोदिता ॥३२६॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म अभ्रकभस्म और ताँबे की भस्म हरएक १ भाग त्रिफला २ भाग शिलाजतु ३ भाग गुगुल और चित्रकमूल हरएक ४ भाग और कुटकी सबके बराबर लेकर सबको कूट पीस २ रोज तक नीम के पत्तों के रस में घोट झाड़ी बेर के समान गोलियाँ बना लेवे । २१ दिन तक इसको लेने से सब प्रकार के कोढ़ समूल नष्ट हो जाते हैं । वात पित्त और कफ से उत्पन्न सब तरह के ज्वर दूर होते हैं पाचन दीपन है । अग्नि को प्रबल करती है मल को साफ करती है यह सब रोगों में लाभदायक है । विशेष अनुभूत ॥ ३२० ३२६ ॥

उदयभास्कर ।

गन्धकेन हतं ताम्रं दशभागं समुद्धरेत् । ऊषणं पञ्चभागं स्यादमृतञ्च द्विभागिकम् ॥ ३२७ ॥ दातव्यं कुष्ठिने सम्यगनुपानस्य योगतः । गलिते स्फटिते चैव विपले मण्डले तथा ॥ विचर्चिकादद्रुपामासर्वकुष्ठप्रशान्तये ॥ ३२८ ॥

गन्धक के संयोग से की हुई ताँबे की भस्म १० भाग, कालीमिर्च ५ भाग और मीठा तेलिया २ भाग। इन सबको एकत्र कर खूब महीन पीस ले । बलानुसार इसकी मात्रा उचित अनुपान से कुष्ठी को दे तो गलित और स्फुटित कुष्ठ, मण्डल कुष्ठ, विचर्चिका, दाद, पामा और सब प्रकार के कुष्ठ शान्त हों ॥ ३२७ ३२८ ॥

रसमाणिक्य ।

तालकं वंशपत्राख्यं कूष्माण्डसलिले क्षिपेत् । सप्तधा वा त्रिधा वापि दध्नाम्लेनतथैव च ॥ ३२९ ॥ शोधयित्वा

पुनः शुष्कं चूर्णयेत् तण्डुलाकृतिम्। ततः शरावके यन्त्रे स्थापयेत् कुशलो भिषक् ॥ ३३० ॥ बदरीपल्लवोत्थेन लेपनं कारयेत् ततः। अरुणाभमधः पात्रं तावज्ज्वाला प्रदीयते ॥ ३३१ ॥ स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य माणिक्याभो भवेद्रसः। घृतक्षौद्रेण संमर्द्य खादयेद्रक्तिकामितम् ॥ ३३२ ॥ सम्पूज्य देवदेवेशं कुष्ठरोगाद्विमुच्यते। स्फुटितं गलितं कुष्ठं वातरक्तं भगन्दरम् ॥ ३३३ ॥ नाडीव्रणं व्रणं दुष्टमुपदंशं विचर्चिकाम्। नासास्यसम्भवान् रोगान् क्षतान् हन्यात् सुदारुणान् ॥ ३३४ ॥ पुण्डरीकञ्च चर्माख्यं विस्फोटं मण्डलं तथा ॥ ३३५ ॥

तबकिया हरताल को पेठे के जल और खट्टे दही में क्रमशः सात सात बार या तीन-तीन बार अग्नि पर दोलायन्त्र द्वारा शुद्ध करने के पश्चात् पानी से धोकर सुखा ले, फिर इस का चावल के समान मोटा चूर्ण करके शराव यन्त्र में बन्द करे (ऊपर से एक अभ्रक का टुकड़ा रख ढक दे) और बेर के पत्तों की लुगदी से सन्धि भाग को अच्छी तरह बन्द करके सुखा ले। फिर अग्नि पर रखने, जब नीचे का सिकोरा लाल वर्ण हो जाय तब उतार ले। स्वाङ्गशीतल हो जाने पर उसमें से निकाल ले। यह रस माणिक्य के तुल्य दीप्तियुक्त हो जाता है। महादेवजी की पूजा करके घी और शहद के साथ दो रत्ती की मात्रा में सेवन करे। यह माणिक्य रस कुष्ठ से देह का फूटना और गलना, वातरक्त, भगन्दर, नासूर, घाव, उपदंश (गर्मी), विचर्चिका, नाक और मुख के रोग, व्रण, पुण्डरीक, चर्मदल, विस्फोटक और मण्डल कुष्ठ को नाश करता है ॥ ३२६-३३५ ॥

तालकेश्वर।

कूष्माण्डत्रिफलातैलसर्पिःकन्याकाञ्जिर-भावितम्। तालकं तुल्यगन्धं स्यादर्द्धपारदमर्दितम् ॥ ३३६ ॥ अजाक्षीरेण निम्बूककन्यातोयैर्दिनत्रयम्। प्रत्येकं भावयेत् शुष्कं चक्रिकाकारतां गतम् ॥ ३३७ ॥ विपचेत् हण्डिकामध्ये पलाशक्षारमध्यगम्। यामान् द्वादश शीतेऽस्मिन् प्रयोज्यो रक्तिकामितः ॥ ३३८ ॥ हन्त्यष्टादश कुष्ठानि रोमविध्वंसनं तथा। द्विविधं वातरक्तञ्च नाडीदुष्टव्रणानि च ॥ ३३९ ॥

करोटिकां विना केवलक्षारमध्यगं कृत्वा पचेत्।

पेठे के रस, त्रिफले के काथ, तेल, घी, घीकुवार के रस और काँजी इनसे क्रमशः भावित २ तोले हरताल में २ तोले गन्धक और १ तोला पारा की कजली मिला दे। फिर इसको बकरी के दूध, नींबू के रस और घीकुवार के रस में क्रमशः तीन तीन दिन घोटकर टिकिया बना ले और सुखाकर हाँडी में पलाश (ढाक) का खार रखकर उस पर टिकिया रख दे। १२ पहर तक उसे पकावे। जब ठंढा हो जाय तब निकालकर उचित अनुपान से एक रत्ती की मात्रा में खाना चाहिए। इसके सेवन से अठारह प्रकार के कुष्ठ, बालों का झड़ जाना, दो प्रकार का वातरक्त, नासूर, दुष्ट व्रण ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ३३६-३३९ ॥

अपरतालकेश्वर।

दद्रुघ्ननागार्जुनदधिरसं दत्त्वा तालं सुचूर्णितम्। पुनः पुनश्च संमर्द्य शुष्कं कृत्वा पुटेद्दृढ़म् ॥ ३४० ॥ दृढस्थाल्यां मृतं क्षारं पलाशस्याप्युपर्यधः। ततो ज्वाला प्रदातव्या दिनरात्रं मृतं भवेत् ॥ ३४१ ॥ शुक्लवर्णं यदा च स्याद्वह्नौ दत्ते न धूमरम्। तदा ज्ञातं मृतं तालं सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥ ३४२ ॥ गलत्कुष्ठं वातरक्तं ताम्रवर्णञ्च

मण्डलम्। शीतपित्तं महादद्रुच्छुन्दरविनाशनम्। पथ्यं मसूरं चणकं मुद्गसूपं यथेच्छया॥ ३४३॥

अतिदिष्टफलोऽयं तालकेश्वरः।

हरताल के चूर्ण में पवाँड और शरफोंका के रस की बार-बार भावना देकर उसकी टिकिया बना ले। फिर सुखाकर दृढ हाँडी में पलाश का खार रखकर उसके बीच में टिकिया रख दे। टिकिया के ऊपर और पलाशखार रखकर एक दिन-रात उसके नीचे अग्नि देने से हरताल की भस्म हो जाती है। हरताल की भस्म तब ठीक समझी जाती है जब उसका वर्ण सफेद हो जाय और अग्नि पर डालने से धुआँ न दे। यह तालकेश्वर रस गलित कुष्ठ, वातरक्त, ताम्रवर्ण के चकत्ते, शीतपित्त, महादद्रु और छुछुंदर रोग को नष्ट करता है। इसमें मसूर, चना, और मूँग की दाल हितकारी है। यह तालकेश्वर रस अनुभूत है॥ ३४०--३४३॥

महातालकेश्वर।

संमर्द्य तालकं शुष्कं वंशपत्राख्यमुत्तमैः। कूष्माण्डनीरैः सम्भाव्य त्रिदिनं शोधयेत् पुनः॥ ३४४॥ घृतकन्याद्रवैर्भूयो भावयेच्च दिनत्रयम्। संमर्द्य काञ्जिकेनैव दध्नाम्लेन विमर्दयेत्॥ ३४५॥ संमर्द्य चूर्णं सलिले रसे पौनर्नवे पुनः। त्रिदिनं मर्दयित्वा तु कारयेत खटिकाकृतिम्॥ ३४६॥ स्थाल्यां दृढतरायां तु पलाशक्षारसञ्चयम्। उपर्यधस्तालकस्य क्षारं दत्त्वा शरावकैः॥ ३४७॥ विधाय लेपयेद्यत्नात् पूरयेत् क्षारसंञ्चयम्। पुनारुद्ध्वा शरावेण लेपयेत्तद् दृढं ततः॥३४८॥ द्वात्रिंशद्यामपर्यन्तं वह्निज्वाला प्रदीपयेत्। एवं सिद्धेन तालेन गन्धतुल्येन मेलयेत्॥ ३४९॥ द्वयोस्तुल्यं जीर्णताम्रं वालुकायन्त्रगं पचेत्। अयं तालेश्वरो नाम रसः परमदुर्लभः॥ ३५०॥ हन्त्यष्टादश कुष्ठानि वातशोणितनाशनः। रक्तमण्डलमत्युग्रं स्फुटितं गलितं तथा। बहुरूपं सर्वजातं नाशयेदविकल्पतः॥ ३५१॥ दुष्टव्रणश्च वीसर्पं त्वग्दोषश्च विनाशयेत्। दृष्टो वारसहस्रश्च रोगवारणकेशरी॥ ३५२॥

तबकिया हरताल को खूब महीन पीसकर पेठे के रस में तीन दिन भिगोकर सुखा ले, पश्चात् घीकुवार के रस की तीन दिन भावना देकर क्रमशः काँजी, खट्टा दही और जल में घोटकर फिर तीन दिन तक गदापुरैना के रस में घोटे। तदनन्तर टिकिया बनाकर हाँडी में हरताल के ऊपर और नीचे पलाशखार रखकर सिकोरा से ढककर यत्न से लीप दे, पश्चात् हाँडी के शेष भाग को फिर पलाशखार से भरकर सकोरे से हाँडी का मुख मुद्रित कर सन्धिभाग में मिट्टी लेस दे और सुखाकर ३२ पहर तक अग्नि पर पकावे। जब हरताल सिद्ध हो जाय तब उसके बराबर गन्धक और दोनों के बराबर ताम्रभस्म मिलाकर वालुकायन्त्र में पकावे। यह परम दुर्लभ महातालकेश्वर नामक रस अठारह प्रकार के कुष्ठ और वातरक्त को नष्ट करनेवाला है। तथा लाल चकत्ते, स्फुटित और गलित कुष्ठ एवं अनेक रूप और जातिवाले कुष्ठ, दुष्ट व्रण, विसर्प और त्वचा के दोषों को नष्ट करता है। इसकी हजारों बार परीक्षा करके देखी है। यह रोगरूपी हाथी के लिये सिंहरूप है॥ ३४४-३५२॥

गन्धक रसायनम्

शुद्धं बलिं गोपयसा विभाव्य स्ततश्चतुर्जातगुडूचिकाद्भिः। पथ्याक्षधात्रीऔषधभृङ्गराजै भाव्योऽष्टवारं पृथगार्द्रकेण॥ ३५३॥ सिद्धे सितां योजय तुल्य भागां रसायनं गन्धक

पूर्वकं स्यात् । माषद्वयं सेवितमाशुकुर्याद्वीर्यस्यवृद्धिं दृढ देहमग्निम् ॥ ३५४ ॥ कण्डू सपामां विषदोषमुग्रं सपाण्डु रोगं सहमुष्कवृद्धिम् । जीर्णज्वरं मेहगणञ्च तीव्रं वातामयांश्चैव सकृन्निहन्ति ॥ ३५५ ॥ समस्तगद गृञ्जनं मृगदृशां मनोरञ्जनं सहेमरस संयुतं भजति यो नरावत्सरम् । न तस्य यमराडभयं भवति वत्सराणांशतं बलं भवति कामिनी प्रबल दर्प विद्रावणम् एतद्रसायनवरं खलु गन्धकाख्यं ॥ ३५६ ॥ संसेवितम् सुविधिना मनुजेन नित्यम् पथ्यं सखण्ड मनुपष्टिक मोदनश्च । गव्यं घृतं सकदलीफल सैन्धवं च ॥ ३५७ ॥ आम्रं सचोचं मधुमांस युक्तं ताम्बूल वल्लीदल पूग खादिरम् एतद्रसायनवरं समखण्ड मिश्रं । दृष्टमिदं क्षपयति ग्रहणी विकारान् ॥ ३५८ ॥ धातुक्षयं प्रदररोग गुदप्रवेगं । सोमाभिधंगुदगदंच सकीलकंच । हन्ति प्रसह्य पवनं कफपित्तयुक्तं । मेधाकरंश्च जठरानल वर्धनंच ॥ ३५९ ॥ आमातिसार मुदरार्ति विनाशनंच । कर्पो निमतं सकलमेहगणापहारी।व्यायाम् मैथुनायासं गन्ध सेवीसदात्यजेत ॥३६०॥

शुद्ध गन्धक को गाय के दूध चातुर्जात गुडूची हड़ बहेड़ा आँवला भंगरा अदरक इन हर एक के रस से आठ २ दफे भावित कर सुखा लेना इसमें तुल्य भाग शक्कर मिलावे इसमें से २-२ माशे की मात्रा में रोगानुसार अनुपान के साथ देने से कुराता कण्डू पामा विषदोष पाण्डु मुष्कवृद्धि जीर्णज्वर प्रमेह वातरोग इनको दूर कर सुन्दर स्त्रियों के मन को हरण करता है, स्वर्ण भस्म और पारद भस्म के साथ अगर इसका सेवन १ साल तक करे तो १०० वर्ष तक मृत्यु का भय नहीं रहता। इसमें खाँड साठी चावल गाय का घी केला सेंधानमक आम तज मधु मांस ताम्बूल सुपारी कत्था पथ्य है इसके सेवन से ग्रहणी विकार धातुक्षय तीव्र प्रदर सोमरोग बवासीर वातरोग कफरोग मन्दाग्नि आमातिसार पेट का दर्द ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं। गन्धक सेवन करने वाले व्यक्ति को कसरत और मैथुन छोड़ देना चाहिए ॥ ३५३–३६० ॥

पञ्चतिक्त घृत।

निम्बं पटोलं व्याघ्रीश्च गुडूचीं वासकं तथा। कुर्यादशपलान् भागान् एकैकस्य सुकुट्टितान् ॥ ३६१ ॥ जलद्रोणे विपक्वयं यावत्पादावशेषितम् । घृतप्रस्थं पचेत्तेन त्रिफलागर्भसंयुतम् ॥ ३६२ ॥ पञ्चतिक्तमिदं ख्यातं सर्पिः कुष्ठविनाशनम्। अशीतिं वातजाम् रोगांश्चत्वारिंशच पैत्तिकान् ॥ ३६३ ॥ विंशतिश्लेष्मिकांश्चैव पानादेवापकर्षति । दुष्टव्रणकृमीनर्शः पञ्च कासांश्च नाशयेत् ॥ ३६४ ॥

नीम की छाल, परवल के पत्ते, छोटी कटेरी, गिलोय और अरूसा ये सब आध आध सेर लेकर कूट ले और २५ सेर ४८ तोले जलमें डालकर क्वाथ करे। जब ६ सेर २२ तोले क्वाथ अवशिष्ट रहे तब उसे छान ले। इसमें ३२ तोले त्रिफला का कल्क मिलाकर १३ तोले घृत सिद्ध करे। यह पचतिक्त घृत पीने से कुष्ठ, अस्सी प्रकार के वातरोग, चालीस प्रकार के पित्त रोग और बीस प्रकार के कफरोगों को एवं दुष्ट व्रण, कृमिरोग, बवासीर और पाँच प्रकार की खाँसी को नष्ट करता है ॥ ३६१--३६४ ॥

पृथ्वीसार तैल।

चित्रकस्याथ निर्गुण्ड्या हयमारस्य मूलतः । नाडीचबीजाद्विपतः काञ्जीपिष्टं पलं पलम् ॥ ३६५ ॥ करञ्जतैला

द्विपलं काञ्जिकस्यं पलं पुनः। मिश्रितं सूर्यसंपक्वं तैलं कुष्ठव्रणास्रजित् ॥ ३६६ ॥

चीत की जड़, निर्गुण्डी की जड़, कनेर की जड़, पटुआ के बीज और मीठा तेलिया; प्रत्येक चार-चार तोले लेकर काँजी में पीसे, फिर ३२ तोले करंज के तेल में डाल कर उस में चार तोले काँजी और मिला दे और धूप में रख दे। जब जलीय भाग सूख जाय तब इसका मर्दन करे तो कुष्ठ, घाव और रक्त-दोष दूर होता है ॥ ३६५--३६६ ॥

खदिरारिष्ट।

खदिरस्य तुलार्धं तु देवदारु च तत्समम्। वाकुची द्वादशपला दार्वी स्यात् पलविंशतिः ॥ ३६७ ॥ त्रिफला विंशतिपलान्यष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत्। कषाये द्रोणशेषे च पूते शीते विनिःक्षिपेत् ॥ ३६८ ॥ तुलाद्वयं माक्षिकस्य तुलैका शर्करा मता। धातक्या विंशतिपलं कक्कोलं नागकेशरम् ॥ ३६९ ॥ जातीफलं लवङ्गैला त्वक्पत्राणि पृथक् पृथक्। पलोन्मितानि कृष्णाया दद्यात्पलचतुष्टयम् ॥ ३७० ॥ घृतभाण्डे विनिःक्षिप्य मासादूर्ध्वं पिबेत्ततः। महाकुष्ठानि हृद्रोगं पाण्डुरोगार्बुदं तथा ॥ ३७१ ॥ गुल्मं ग्रन्थिकृमीन् कासं तथा प्लीहोदरं जयेत्। एष वै खादिरारिष्टः सर्वकुष्ठनिवारणः ॥ ३७२ ॥

खैर की लकड़ी २ ॥ सेर, देवदारु २ ॥ सेर, बाकुची ४८ तोले, दारुहल्दी १ सेर और त्रिफला १ सेर इनको कूटकर आठ द्रोण (२ मन २२ सेर ३२ तोले) जल में पकावे। जब १२ से ६४ तोले अवशिष्ट रहे तब उसे छान कर ठंढा कर ले। इस क्वाथ में शहद १० सेर, शक्कर ५ सेर, धाय के फूल १ सेर तथा कंकोल (शीतलचीनी), नागकेशर, जायफल, लौंग, छोटी इलायची दालचीनी और तेजपत्र चार-चार तोले, पीपल १६ तोले इन सबका चूर्ण कर डाले। घी के चिकने घड़े में भरकर मुख मुद्रित कर एक महीने तक धरा रहने दे, फिर छानकर इसका सेवन करे। मात्रा १ तोला से २ तोले तक। इस खदिरारिष्ट के सेवन करने से महाकुष्ठ, हृदय के रोग, पाण्डुरोग, अर्बुद, गुल्म, गाँठ, कृमिरोग, खाँसी, तिल्ली, उदर-रोग और सब प्रकार के कुष्ट नष्ट होते हैं ॥ ३६७–३७२ ॥

कुष्ठरोगेऽपथ्यानि।

अन्नपानं हितं कुष्ठे न त्वम्ललवणोपणम्। दधिदुग्धगुडानूपतिलमाषांस्त्यजेन्नराम् ॥ ३७३ ॥ पापानिकर्माणि कृतघ्नभावं निन्दां गुरूणां गुरुधर्षणं च विरुद्धपानाशनमह्नि निद्रां चण्डांशुतापं विषमाशनं च ॥ ३७४ ॥ स्वेदं रतं वेगनिरोधमिक्षुं। व्यायाममम्लानि तिलांश्चमाषान् द्रवान्न गुर्वन्नानवान्नभुक्तं विदाहिविष्टम्भिचमूलकानि। सह्याद्रिविन्ध्याद्रि समुद्भवानां तरङ्गिणीनामुदकानिचापि आनूपमांसं दधिदुग्धमद्य गुडञ्च कुष्ठामयिनस्त्यजेयुः ॥ ३७५ ॥

कुष्ठ में अम्ल, लवण तथा कटुद्रव्य का अन्नपान हितकर नहीं है। दही, दूध, गुड़ आनूपमांस, तिल तथा उड़द का कुष्ठ रोग में त्याग करना चाहिए। पाप कर्म में रत रहना, किये हुए उपकारों को न मानना गुरुओं की निन्दा करना गुरुओं को धमकाना विरुद्ध भोजन पान करना, दिन में सोना सूर्य का तेज धूप में फिरना विषम भोजन करना स्वेदन कर्म स्त्री ससर्ग, मलमूत्रादि के वेगों को रोकना ईख के पदार्थों का सेवन, कसरत कुश्ती खट्टे पदार्थ तिल उर्द पतले पदार्थ भारी अन्न नवीन अन्न का भोजन दाहकारी तथा विष्टम्भकारक पदार्थो का सेवन मूली सह्याद्रि तथा विन्ध्याचल से निकली हुई नदियों का पानी आनप देश के

पशु पक्षियों का मांस दही दूध मद्य गुड़ ये सब कुष्ट रोगियों के लिये अपथ्य हैं ॥ ३७३--३७६ ॥

कुष्ठरोग में पथ्य।

पक्षात् पक्षाच्छर्दनानि मासान्मासाद्विरेचनम्। नस्यं त्र्यहात्त्र्यहान्मासि षष्ठे षष्ठेऽस्रमोक्षणम् ॥ ३७७ ॥ सर्पिर्लेपाश्चिरोत्पन्नयवगोधूमशालयः। मुद्गाढकीमसूराश्च माक्षिकं जांगलामिषम् ॥ ३७८ ॥ आपाढफलवेत्राग्रं पटोलं बृहतीफलम्। काकमाची निम्बपत्रं लशुनं हिलमोचिका ॥ ३७९ ॥ पुनर्नवा मेषशृङ्गं चक्रमर्ददलानि च। भल्लातकं पक्वतालं खदिरश्चित्रको वरा ॥ ३८० ॥ जातीफलं नागपुष्पं कुंकुमं मदनं हविः। कोषातकी करञ्जोऽपि तिलसर्षपनिम्बजम् ॥ ३८१ ॥ तैलं तथेंगुदोत्थं च लघून्यन्नानि यानि च। स्नेहाः सरलदेवाह्वाः शिंशपागुरुसम्भवाः ॥ ३८२ ॥ मूत्राणि गोखरोष्ट्राश्वमहिषीजनितानि च। कस्तूरिकागन्धसारतिक्तानि क्षारकर्म च ॥ ३८३ ॥ यथादोषं समस्तानि पथ्यान्येतानि कुष्ठिनाम् ॥ ३८४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां कुष्ठाधिकारः समाप्तः।

पन्द्रह दिन में एक बार वमन, महीने में एक बार दस्त कराना, तीन महीने में एक बार नस्यकर्म, छः महीने में एक बार फस्त खोलकर रुधिर निकालना, इसी प्रकार करते रहना लाभदायक है। घृत का सेवन, लेप, पुराने जौ, गेहूँ, शालि चावल, मूँग, अरहर, मसूर, शहद, जांगल पशु पक्षियों का मांसरस, ककरी-खीरे आदि आषाढफल, बेत की कोंपल, परवल, कटेरी के फल, मकोय, नीम के पत्ते, लहसुन, हुलहुला, सोंठी, मेढासिंगी, पँवार के पत्ते, भिलावाँ, ताड़ के फल (पके हुए), खैरसार, चीता, त्रिफला, जायफल, नागकेसर, पुराना घृत, करंज, कटु तोरई और तिल का तेल, सरसों का तेल, नीम का तेल, गोंदी का तेल, हलके अन्न, चीड़, देवदारु, शीशम और अगर का तेल; गौ, गधा, ऊँट, घोड़ा और भैंसा का मूत्र; कस्तूरी मधुद्रव्य, कडुए पदार्थ और क्षारकर्म ये सब वस्तुएँ यथादोष पथ्य हैं ॥ ३७७--३८४ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां कुष्ठाधिकारः समाप्तः।

अथार्शोऽधिकारः।

अर्श के चार उपाय।

दुर्नाम्नां साधनोपायश्चतुर्धा परिकीर्तितः। भेषजक्षारशस्त्राग्निसाध्यत्वादाद्य उच्यते ॥ १ ॥

बवासीर को दूर करने के चार उपाय कहे गये हैं। ओषधि, क्षार, शस्त्रचिकित्सा तथा अग्नि-कर्म। अब इनमें से पहली (भेषजरूप) चिकित्सा कही जाती है ॥ १ ॥

अर्शचिकित्सा।

यद्वायोरानुलोम्याय यदग्निबलवृद्धये। अनुपानौषधद्रव्यं तत्सेव्यं नित्यमर्शसैः ॥ २ ॥

जो-जो अनुपान, ओषधि और भोजन के पदार्थ वायु के अनुलोमन करनेवाले हैं तथा अग्नि और बल की वृद्धि करनेवाले हैं; अर्शरोगी को उन,उनका नित्य सेवन करना चाहिए ॥ २ ॥

शुष्क और आर्द्र अर्श की क्रिया।

शुष्कार्शसां प्रलेपादिक्रिया तीक्ष्णा

विधीयते। स्राविणां रक्तमालोक्य क्रिया कार्यासपैत्तिकी ॥ ३ ॥

सूखी बवासीरवालों की तीक्ष्ण लेप आदि से चिकित्सा करनी चाहिए और खूनी बवासीरवालों की चिकित्सा रक्तपित्त की-सी करनी चाहिए ॥ ३ ॥

कठिन अर्श की चिकित्सा।

शस्त्रैर्वाथ जलौकाभिः प्रच्छन्नं कठिनार्शसः। शोणितं सञ्चितं दृष्ट्वा हरेत्प्राज्ञः पुनः पुनः ॥ ४ ॥

यदि बवासीर में मस्से कड़े हों तथा उनमें खून इकट्ठा हो गया हो तो शस्त्र द्वारा काटकर वहाँ छेदन (सुरच) करके जोंक द्वारा बार-बार रक्त को निकाल देना चाहिए ॥ ४ ॥

श्लेष्मार्श की चिकित्सा।

श्लेष्मार्शसो गुदे पार्श्वे रक्तमोक्षं जलौकया। कृत्वा चार्कस्नैर्लेपो दाहो वात्रापि शस्यते ॥ ५ ॥

कफज बवासीर में मस्सों की एक बगल से जोंक द्वारा खून निकालकर आक के पत्तों के रस का लेप अथवा दाह करना चाहिए ॥ ५ ॥

ज्योत्स्निकामूल लेप।

ज्योत्स्निकामूलकल्केन लेपो रक्तार्शसां हितः ॥ ६ ॥

कड़ुई तोरई की जड़ के चूर्ण का पानी के साथ खूनी बवासीर पर लेप करने से अत्यन्त लाभ होता है ६ ॥

पीलुतैलेन संलिप्ता वर्त्तिका गुदमध्यगा। पातयत्यर्शसां सिद्धं न वलिवेदना क्वचित् ॥ ७ ॥

एक बत्ती को पीलू के तेल में भिगोकर गुदा में रखने से मस्से गिर जाते हैं। तथा वलि (आँटों) में किसी प्रकार की वेदना नहीं होती ॥ ७ ॥

पिप्पल्यादि लेप।

पिप्पली सैन्धवं कुष्ठं शिरीषस्य फलं तथा। सुधादुग्धार्कदुग्धैर्वा लेपोऽयं गुदजं हरेत् ॥ ८ ॥

पीपल, सेंधानमक, कूट, सिरस के बीज इनके चूर्ण को थूहर तथा आक के दूध के साथ घोटकर लेप करने से बवासीर अच्छी हो जाती है ॥ ८ ॥

हरिद्राजालिनी चूर्णं कटुतैलसमन्वितम्। एष लेपो वरः प्रोक्तो ह्यर्शसामन्तकारकः ॥ ९ ॥

सरसों के तेल में हल्दी तथा कड़वा तोरई का लेप करने से अर्श नष्ट होती है ॥ ९ ॥

शूरणं रजनी वह्निष्टङ्कणं गुडमिश्रितम्। पिष्ट्वारनालकैर्लेपो हन्त्यर्शांसि महान्त्यपि ॥ १० ॥

जमीकन्द, हल्दी, चित्रक और सुहागा इनके चूर्ण को गुड़ के साथ काँजी से पीसकर लेप करने से बवासीर नष्ट होती है ॥ १० ॥

आरनालेन संपिष्टा सबीजकटुतुम्बिका। सगुडा हन्ति लेपेन चार्शांसि मूलतो ध्रुवम् ॥ ११ ॥

बीजसहित कड़वी तूँबी के चूर्ण को गुड़ के साथ काँजी से पीसकर लेप करने पर बवासीर का जड़ से नाश होता है ॥ ११ ॥

भावितं रजनीचूर्णैः स्नुहीक्षीरे पुनः पुनः। बन्धनात् सुदृढं सूत्रं छिनत्त्यर्शो न संशयः ॥ १२ ॥

एक डोरे को हल्दी तथा थूहर के दूध से भिगोकर उस डोरे से मस्से की जड़ को बाँध दे। इसके बाँधने से मस्से धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं ॥ १२ ॥

हरीतकीं तिलान् धात्रीं मृद्वीकां मधुकं तथा। परूषकस्य तोयेन पिबेदर्शो निवृत्तये ॥ १३ ॥

हड़, काले तिल आँवला, किशमिश तथा मुलेठी के चूर्ण को फालसे के रस के साथ पीने से बवासीर अच्छी हो जाती है ॥ १३ ॥

तिलं भल्लातकं पथ्या गुडश्चेति समांशिकम्। दुर्नामकासश्वासघ्नं प्लीहपाण्डुज्वरापहम् ॥ १४ ॥

तिल, भिलावाँ, हड़, गुड़ इन्हें बराबर-बराबर मिलाकर उपयुक्त मात्रा में सेवन करावे। इसके सेवन से बवासीर, खाँसी, श्वास, तिल्ली पाण्डु तथा ज्वर आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १४ ॥

चन्दनादि क्वाथ।

चन्दनकिराततिक्तकधन्वयवासाः सनागराः क्वथिताः। रक्तार्शसां प्रशमना दार्वीत्वगुशीरनिम्बश्च ॥ १५ ॥

लालचन्दन, चिरायता, धमासा, सोंठ, दारुहल्दी, दालचीनी, खस, नीम की छाल सब मिलाकर २ तोले। पाक के लिये जल ३२ तोले, शेष ८ तोले। इस क्वाथ से खूनी बवासीर नष्ट होती है ॥ १५ ॥

पथ्यादि क्वाथ।

पथ्यामृता च धनिका पाने क्वाथो गुडान्वितः। सर्वेष्वर्शःसु हितः चिरजातेष्वसंशयम् ॥ १६ ॥

हड़, गिलोय और धनियाँ इनके क्वाथ का गुड़ के साथ सेवन करने से सब प्रकार के अर्शरोग नष्ट होते हैं ॥ १६ ॥

विडङ्गादि क्वाथ।

विडङ्गपत्रकेशरशुण्ठीसमेलाकुस्तुम्बुरुधान्यकतिलानाम्। क्वाथो हरीतकीसर्पिर्गुडेन पीतो निहन्ति गुदे गुदजानि १७

वायविडङ्ग, तेजपत्र, नागकेसर, सोंठ, इलायची, नेपाली धनियाँ, धनियाँ, और तिल इनके क्वाथ को हड़ के चूर्ण, गुड़ तथा घृत के साथ पान करने से बवासीर के मस्से नष्ट होते हैं १७

अर्शनाशक लेप।

स्नुक्क्षीरं रजनीयुक्तं लेपाद्दुर्नामनाशनम्। कोशातकीरजोघर्षान्निपतन्ति गुदोद्भवाः ॥ १८ ॥

थूहर के दूध में हल्दी मिलाकर लेप करने से बवासीर के मस्से नष्ट हो जाते हैं तथा कड़ुई तोरई का चूर्ण बवासीर के मस्सों पर रगड़ने से मस्से गिर जाते हैं ॥ १८ ॥

अर्कक्षीरादि प्रलेप

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं तिक्ततुम्ब्याश्च पल्लवाः। करञ्जो बस्तमूत्रञ्च लेपनं श्रेष्ठमर्शसाम् ॥ १९ ॥

आक का दूध, थूहर का दूध, कड़ुई तूँबी के पत्ते और करंज की छाल को बकरे के मूत्र में पीसकर लेप करना बवासीर के मस्सों को गिराने के लिये उत्तम है ॥ १९ ॥

घोषाफलवर्ति।

अर्शोघ्नी गुदजा वर्त्तिर्गुडघोषा फलोद्भवा। ज्योत्स्निकामूलकल्केन लेपो रक्तार्शसां हितः ॥ २० ॥

पुराने गुड़ को जल में पकावे पश्चात् उसमें कड़ुई तोरई के चूर्ण को मिलाकर बत्ती बनावे। इस बत्ती को गुदा में रखने से बवासीर के मस्से नष्ट हो जाते हैं। कड़ुई तोरई की जड़ के कल्क का लेप करना खूनी बवासीर के मस्सों के लिये हितकर है ॥ २० ॥

तुम्बीबीजं सोद्भिदन्तु काञ्जीपिष्टं गुडीत्रयम्। अर्शोहरं गुदस्थं स्याद्दधि माहिषमश्नतः ॥ २१ ॥

कड़ुई तूँबी के बीज और खारी लवण को काँजी में पीसकर गोली बनावे। इसको गुदा में रक्खे तो तीन ही गोली से बवासीर के मस्से नष्ट हो जाते हैं। पथ्य-भैंस का दही ॥ २१ ॥

महाबोधिप्रदेशस्य पथ्या कोशातकीरजः। सफेनं लेपतो हन्ति लिङ्गवर्तिमसंशयः ॥ २२ ॥

महाबोधि देश की हड़ और कडुई तोरई का चूर्ण तथा समुद्रफेन को पानी में पीस कर लेप करने से लिङ्गार्श (लिङ्ग की बवासीर) के मस्से नष्ट हो जाते हैं॥ २२॥

अपामार्गोद्भवान्मूलात् क्षारः सहरितालकः। लिङ्गार्शो लेपतो हन्ति चिरजातमसंशयम्॥ २३॥

लटजीरा की जड़ के खार में हरताल मिलाकर लेप करने से चिरकाल से पैदा हुआ (पुराना) लिङ्गार्श नष्ट होता है। इसमें संशय नहीं है॥ २३॥

वातातिसारवद्भिन्नवर्चांस्यर्शांस्युपाचरेत्। उदावर्त्तविधानेन गाढविट्कानि चासकृत्॥ २४॥

बवासीर रोग में यदि पतले दस्त आते हों तो वातातीसार की-सी चिकित्सा करनी चाहिए। यदि विष्ठा कठिन होती हो तो उदावर्त के समान चिकित्सा करनी चाहिए॥ २४॥

विड्विबद्धे हितं तक्रं यमानीविडसंयुतम्। वातश्लेष्मार्शसां तक्रात् परं नास्तीह भेषजम्॥ २५॥ तत्प्रयोज्यं यथादोषं सस्नेहं रूक्षमेव वा। न विरोहन्ति गुदजाः पुनस्तक्रसमाहिताः॥ २६॥

बवासीर रोग में यदि दस्त बन्द हो गये हों तो अजवायन और बिड़ नमक मिलाकर छाछ (मट्ठा) पीना हितकारी है। वातज और कफज बवासीर के लिये छाछ से उत्तम अन्य औषधि नहीं है। दोषानुसार घी युक्त[1] छाछ अथवा केवल छाछ का सेवन कराना चाहिए। छाछ के सेवन से नष्ट हुई बवासीर फिर नहीं उत्पन्न होती॥ २५—२६॥

त्वचं चित्रकमूलस्य पिष्ट्वा कुम्भं प्रलेपयेत्। तक्रं वा यदि वा तत्र जातमर्शोहरं पिबेत्॥ २७॥

चीता की जड़ को पीसकर घड़े में लीप दे। उस घड़े में जमाया हुआ दही अथवा छाछ पीने से बवासीर नष्ट होती है॥ २७॥

पित्तश्लेष्मप्रशमनी कच्छूकण्डूरुजापहा। गुदजान्नाशयत्याशु योजिता सगुडाभया॥ २८॥

हड़ का चूर्ण गुड़ मिलाकर सेवन करने से बवासीर को शीघ्र नष्ट करता है तथा पित्त, कफ, कच्छू तथा खुजली का रोग नष्ट करता है॥ २८॥

सगुडां पिप्पलीयुक्तामभयां घृतभर्जिताम्। त्रिवृद्दन्तीयुतां वापि भक्षयेदानुलोमिकीम्॥ २९॥

घी में भुनी हुई हड़ को गुड़ और पीपरि के साथ अथवा निसोथ और दन्तीमूल के साथ सेवन करने से वायु का अनुलोमन होता है॥ २९॥

तिलारुष्करसंयोगं भक्षयेदग्निवर्द्धनम्। कुष्ठरोगहरं श्रेष्ठमर्शसां नाशनं परम्॥ ३०॥

तिल और भिलावाँ मिलाकर सेवन करने से कोढ़ और बवासीर नष्ट होते हैं और अग्नि की वृद्धि होती है॥ ३०॥

गोमूत्राध्युषितां दद्यात् सगुडां वा हरीतकीम्। पञ्चकोलयुतं वापि तक्रमस्मै प्रदापयेत्॥ ३१॥

गोमूत्र में भिगोई हुई हड़ को गुड़ में मिलाकर सेवन करने से अथवा पञ्चकोल (पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चित्रक और

1 वातज बवासीर में बिना घृत निकाली और कफज बवासीर में घृत निकाली हुई छाछ का सेवन हितकारी है।

सोंठ) युक्त छाछ पीने से अर्शरोग नष्ट होता है ॥ ३१ ॥

मृल्लिप्तं शौरणं कन्दं पक्त्वाग्नौ पुटपाकवत्। अद्यात् सतैललवणैर्दुर्नाम्नां विनिवृत्तये ॥ ३२ ॥

अर्शरोग की निवृत्ति के लिये जमींकन्द को मिट्टी में लपेट कर पुटपाक की विधि से अग्नि में पकाकर तेल और नमक के साथ खाना चाहिए ॥ ३२ ॥

स्विन्नं वार्ताकुफलं घोषायाः क्षारजेन सलिलेन। तद्घृतभृष्टं युक्तं गुडेनातृप्तितो योऽत्ति ॥ ३३ ॥ पिबति च न्यूनं तक्रं तस्याश्वेवातिवृद्धगुदजानि। यान्ति विनाशं पुंसां सहजान्यपि सप्तरात्रेण ॥ ३४ ॥

कडुई तोरई के क्षार के जल में बैंगन को उबालकर और घी में भूनकर गुड़ के साथ पेट भरकर खावे और ऊपर से थोड़ा सा मट्ठा (छाछ) पीवे तो अत्यन्त बढ़े हुए गुदांकुर और सहजार्शरोग सात दिन में नष्ट होते हैं ॥ ३३--३४ ॥

असितानां तिलानाञ्च प्रकुञ्चं शीतवार्यनु। खादितोऽर्शांसि नश्यन्ति द्विजदार्ढ्याङ्गपुष्टिदम् ॥ ३५ ॥

एक छटाँक काले तिल खाकर ठंढा पानी पीने से सब प्रकार का बवासीररोग नष्ट होता है तथा दाँत दृढ़ और अङ्ग पुष्ट होते हैं ॥ ३५ ॥

नागराद्य मोदक।

समागरारुष्करवृद्धदारकं गुडेन यो मोदकमत्युदारकम्। अशेषदुर्नामकरोगदारकं करोति वृद्धं सहसैव दारकम् ॥ ३६ ॥ चूर्णे चूर्णसमो देयो मोदके द्विगुणो ड़ः ॥ ३७ ॥

सोंठ, गुद़ भिलावाँ और विधारा इनके समभाग चूर्ण में दुगुना गुड़ मिलाकर लड्डू बनावे। उचित मात्रा में इस लड्डू का सेवन करने से बढ़ा हुआ भी बवासीर रोग नष्ट होता है। यदि चूर्ण ही रखना हो तो चूर्ण के बराबर गुड़ और लड्डू बनाने हों तो दुगुना गुड़ मिलाना चाहिए ॥ ३६ -३७ ॥

लवणोत्तमादिचूर्ण।

लवणोत्तमवह्निकलिङ्गयवान् चिरबिल्वमहापिचुमर्दयुतान्। पिब सप्तदिनं मथितालुलितान् यदि मर्दितुमिच्छसि पायुगदान् ॥ ३८ ॥

सेंधा नमक, चीत की जड़, इन्द्रजौ, जौ, करंज के बीज और बकायन की छाल इनका समभाग चूर्ण छाछ में मथकर सात दिन पीने से बवासीर रोग नष्ट होता है ॥ ३८ ॥

दशमूलगुड़।

दशमूलाग्निदन्तीनां प्रत्येकं पलपञ्चकम्। जलद्रोणेन संक्वाथ्य पादशेषे समुद्धरेत् ॥ ३९ ॥ गुडं पलशतञ्चैव सिद्धे शीते विमिश्रयेत्। त्रिवृताया रजः प्रस्थं तदर्धं पिप्पलीरजः ॥ ४० ॥ घृतभाण्डे स्थितं खादेत् तोलकार्द्धं दिने-दिने। दशमूलगुडः ख्यातः शमयेदर्श आमयम् ॥ ४१ ॥ अजीर्णं पाण्डुरोगञ्च सर्वरोगहरं परम् ॥४२ ॥

दशमूल, चित्रक, दन्तीमूल हरएक २० तोले। इन्हें २५ सेर ४८ तोले जल में पकावे। जब ६ सेर ३२ तोले जल शेष रहे तब उतार ले और ५ सेर गुड़ मिलाकर पुनः पाक करे। जब उपयुक्त पाक हो जाय तब उसे ठंढा करके उसमें निसोत का चूर्ण ६४ तोले और पिप्पली चूर्ण ३२ तोले उपरोक्त प्रकार मिलाकर घी के पात्र में रक्खे। मात्रा—आधा तोला इसके सेवन से बवासीर, अजीर्ण और पाण्डु आदि सम्पूर्ण रोग शान्त होते हैं ॥ ३९–४२

अगस्तिमोदक।

हरीतकीनां त्रिपलं त्रीण्याम्राणि कटुत्रिकम्। त्वक्पत्रकं चार्द्धपलं गुडस्याष्टपलं मतम् ॥ ४३ ॥ अगस्तिमोदकानेतान् कल्पितान् परिभक्षयेत्। शोफार्शो ग्रहणीदोषकासोदावर्त्तनाशनम् ॥ ४४ ॥

हड़ १२ तोले, सोंठ १२ तोले, काली मिर्च १२ तोले, पीपल १२ तोले, दालचीनी २ तोले, तेजपात २ तोले और गुड़ ३२ तोले। इनसे विधिपूर्वक अगस्तिमोदक निर्माण कर सूजन, बवासीर, ग्रहणी, खांसी तथा उदावर्त आदि व्याधियों में प्रयोग करावे। मात्रा—आधा तोला ॥ ४३--४४ ॥

भल्लातकादिमोदक।

भल्लातकं तिलं पथ्या चूर्णं गुडसमन्वितम्। मोदकं भक्षयेन्माषत्रयं पित्तार्शसां जये ॥ ४५ ॥

भिलावां, काले तिल और हड़, इनके चूर्ण में गुड़ को मिलाकर लड्डू बनावे और पित्तार्श की शान्ति के लिये प्रयोग करावे। मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक ॥ ४५ ॥

काङ्कायनमोदक।

पथ्या पञ्चपलान्येकमजाज्या मरिचस्य च। पिप्पलीपिप्पलीमूलाचव्यचित्रकनागराः ॥ ४६ ॥ पलाभिवृद्ध्या क्रमशो यवक्षारपलद्वयम्। भल्लातकपलान्यष्टौ कन्दस्तु द्विगुणो मतः ॥ ४७ ॥ द्विगुणेन गुडेनैषां वटकान् शाणसम्मितान्। कृत्वैनं भक्षयेत् प्रातस्तक्रमम्भोऽनु वा पिबेत् ॥ ४८ ॥ मन्दाग्निं दीपयत्येव ग्रहणीपाण्डुरोगनुत्। काङ्कायनेनशिष्येभ्यः शस्त्रक्षाराग्निभिर्विना। भिषग्जितमिति मोक्तं श्रेष्ठमर्शोविकारिणाम् ॥ ४९ ॥

हड़ २० तोले, काला जीरा ४ तोले, काली मिर्च ४ तोले, पीपल ४ तोले, पिपलामूल ८ तोले, चव्य १२ तोले, चित्रक १६ तोले सोंठ २० तोले, जवाखार ८ तोले, भिलावाँ ३२ तोले, जमीकंद ६४ तोले, सबको मिलाकर चूर्ण कर ले और सब चूर्ण से दूना गुड़ मिलाकर ६-६ माशे के लड्डू बनाकर प्रातःकाल सेवन करावे। इसके सेवन के बाद छाछ अथवा ठंडा जल पिलाना चाहिए। यह मन्दाग्नि को तेज करता है तथा ग्रहणी और पाण्डुरोग का नाशक है। बवासीर के रोगियों के लिये काङ्कायन ने अपने शिष्यों को इसका उपदेश दिया था। इसके सेवन से शस्त्र, क्षार तथा अग्नि आदि के बिना ही मस्से नष्ट हो जाते हैं ॥ ४६--४९ ॥

माणिभद्रमोदक।

विडङ्गसारामलकाभयानां पलं पलं स्यात् त्रिवृतात्रयञ्च। गुडस्य षड्द्वादशभागयुक्ता विमर्द्य सम्यक् गुडिका विधेया ॥ ५० ॥ निवारणे यक्षवरेण सृष्टः स माणिभद्रः किल शाक्यभिक्षवे। अयं हि कासक्षयकुष्ठनाशनो भगन्दरप्लीहजलोदरार्शसाम् ॥ ५१ ॥ यथेष्टचेष्टान्नविहारसेवी अनेन वृद्धस्तरुणो भवेच्च ॥ ५२

वायविडङ्ग, आँवला और हड़ हरएक ४ तोले, निशोत १२ तोले, गुड़ २४ तोले, इन्हें इकट्ठा करके मिलाकर ६ माशे के लड्डू बनाकर रोगी को सेवन करावे। यह लड्डू शाक्यभिक्षु के मस्से के निवारण के लिये यक्षवर ने बनाया था। यह खांसी, क्षय, कुष्ठ, भगन्दर, प्लीहा, जलोदर तथा बवासीर को नष्ट करता है। यथेष्ट आहार-विहार आदि के साथ इसे सेवन करने से शरीर की पुष्टि होती है ॥ ५०—५२ ॥

विजयचूर्ण।

त्रिकत्रयवचाहिंगुपाठाक्षारनिशाद्वय-

म्। चव्यतिक्ताकलिङ्गाग्निशताह्वालवणानि च ॥ ५३ ॥ ग्रन्थिबिल्वाजमोदा च गणोऽष्टाविंशतिर्मतः। एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ५४ ॥ ततो द्विमाषप्रमितं पिबेदुष्णेन वारिणा। एरण्डतैलयुक्तं तु सदा लिह्यात्ततो नरः ॥ ५५ ॥ कासं हन्यात्तथा शोथमर्शांसि च भगन्दरम्। हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च वातगुल्मं तथोदरम् ॥ ५६ ॥ हिक्काश्वासप्रमेहांश्च कामलां पाण्डुरोगताम्। आमान्वयमुदावर्तमन्त्रवृद्धिं गुदं क्रमीन् ॥ ५७ ॥ अन्ये च ग्रहणीदोषा ये मया परिकीर्त्तिताः। महाज्वरोपसृष्टानां भूतोपहतचेतसाम् ॥ ५८ ॥ अप्रजानां तु नारीणां प्रजावर्द्धनमेव च। विजयो नाम चूर्णोऽयं कृष्णात्रेयेण पूजितः ॥ ५९ ॥

त्रिकटु, त्रिफला, त्रिजात (दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र,), वच, हींग, पाठा, जवाखार, हल्दी दारुहल्दी, चव्य, कुटकी, इन्द्रजौ, चित्रक, सोया, पाँचों प्रकार के नमक, पिप्पलीमूल, बेल और अजमोदा इन सब चीजों के चूर्ण को सम भाग मिला कर गरम जल से अथवा अंडी के तेल के साथ सेवन करावे। मात्रा—२माशे। इसके सेवन से खाँसी, सूजन, बवासीर, भगन्दर, हृदय का शूल, पसवाड़े का दर्द, वातगुल्म, उदररोग, हिक्का, श्वास, प्रमेह, कामला, पाण्डु, उदावर्त, अन्त्रवृद्धि, गुदा का रोग, कृमि, ज्वर तथा अपस्मार (मृगी) आदि रोग नष्ट होते हैं। नि:सन्तान स्त्रियों के लिये सन्तान का देनेवाला है ॥ ५३-५९ ॥

समशर्करचूर्ण।

शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगेलं चूर्णीकृतं क्रमविवर्द्धितमूर्ध्वमन्त्यात्। खादेदिदं समसितं गुदजाग्निमान्द्यकासारुचिश्वसनकण्ठहृदामयेषु ॥ ६० ॥

छोटी इलायची १ भाग, दालचीनी २ भाग, तेजपात ३ भाग, नागकेशर ४ भाग, काली मिर्च ५ भाग, पीपल ६ भाग, सोंठ ७ भाग। इस सम्पूर्ण चूर्ण की बराबर खाँड मिलाकर सेवन करावे। मात्रा—१ माशा। इसके सेवन से बवासीर, मन्दाग्नि, खाँसी, अरुचि, श्वास, कण्ठरोग तथा हृदयरोग आदि नष्ट होते हैं ॥ ६० ॥

कर्पूराद्यचूर्ण।

घनसारो लवङ्गञ्च एलात्वक् नागकेशरम्। जातीफलमुशीरञ्च नागरं कृष्णजीरकम् ॥ ६१ ॥ कृष्णागुरुतुगाक्षीरी मांसी नीलोत्पलं कणा। चन्दनं तगरं वालं कक्कोलश्चेति चूर्णयेत् ॥ ६२ ॥ समभागानि सर्वाणि सर्वेभ्योऽर्द्धा सिता भवेत्। कर्पूराद्यमिदं चूर्णं वातार्शोनाशनं परम् ॥ ६३ ॥ रोचनं तर्पणं वृष्यं त्रिदोषघ्नं बलप्रदम्। हृद्रोगं कटिरोगञ्च कासं हिक्काञ्च पीनसम् ॥ ६४ ॥ यक्ष्माणं तमकश्वासमतीसारबलक्षयम्। प्रमेहारुचिगुल्मादीन् ग्रहणीमपि नाशयेत् ॥ ६५ ॥

कपूर, लौंग, छोटी इलायची दालचीनी, नागकेशर, जायफल, खस, सोंठ, कालाजीरा, काली अगर, वंशलोचन, जटामांसी, नीलकमल, पीपल लालचन्दन, तगर, गन्धवाला और शीतलचीनी, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर सब चूर्ण से आधी खाँड मिलावे। यह चूर्ण वातज बवासीर, हृदयरोग कटिरोग खाँसी, हिक्का, जुकाम, राजयक्ष्मा, तमकश्वास, अतीसार, प्रमेह, अरुचि, गुल्म तथा ग्रहणी आदि रोगों में हितकर है। यह रोचक, तृप्तिकारक, वीर्यवर्द्धक, बलकारक तथा त्रिदोषनाशक है। मात्रा १ माशा से २ माशे तक ॥ ६१-६५ ॥

करञ्जादि चूर्ण ।

चिरबिल्वाग्निसिन्धूत्थनागरेन्द्रयवारलुम् । तक्रेण पिबतोऽर्शांसि निपतन्त्यसृजा सह ॥ ६६ ॥

करञ्ज के बीज, चित्रक, सेंधानमक, सोंठ, इन्द्रजौ, बरलू की छाल इनके चूर्ण को बराबर मात्रा में मिलाकर रोगी को सेवन करावे । मात्रा—२ माशे । अनुपान—छाछ । इससे मस्से तथा खूनी बवासीर नष्ट होती है ॥ ६६ ॥

धुस्तूरादि चूर्ण ।

धुस्तूरस्य फलं पक्वं पिप्पली नागराभया । बालकं गुडसंयुक्तं भक्ष्यं गुञ्जात्रयं निशि ॥ सिताभध्वाज्यकर्षैकं पिबेत् पित्ताशर्सां जये ॥ ६७ ॥

पका हुआ धतूरे का फल, पीपल, सोंठ, हड़, गन्धबाला, गुड़ हरएक को बराबर मात्रा में मिलाकर रात्रि में सेवन करावे । मात्रा ३ रत्ती । अनुपान—खांड, शहद तथा घृत । इससे पित्तज बवासीर अच्छी हो जाती है ॥६७॥

भल्लातकामृतयोग ।

गुडूची लाङ्गली भृङ्गी मुण्डी गुञ्जा च केतकी । षण्णां पत्ररसैर्मर्द्य बालभल्लातबीजकम् ॥ ६८ ॥ दिनैकं मर्दयेद्गाढं माषार्धं भक्षयेत्सदा । भल्लातामृतयोगोऽयं पित्तजार्शांसि नाशयेत् ॥ ६९ ॥

गिलोय, कलिहारी, काकडासिंगी, मुण्डी, घुँघची, केवड़ा, इन छहों के पत्तों के रस से कच्चे भिलावों के बीजों को एक-एक दिन मर्दन कर पित्तार्श में प्रतिदिन सेवन करावे । मात्रा—आधा माशा ॥ ६८- ६९ ॥

देवदाली योग ।

देवदालीकषायेण शौचमाचरतां नृणाम् । किंवा तद्धिमसेवाभिः कुतः स्युर्गुदजाङ्कुराः ॥ ७० ॥

कड़वी तोरई के क्वाथ से गुदा को प्रतिदिन धोने से अथवा इसके हिम के अन्त:प्रयोग से मस्से पैदा नहीं होते ॥ ७० ॥

मरिचादि चूर्ण ।

मरिचं पिप्पली कुष्ठं सैन्धवं जीरनागरम् । वचाहिंगुविडङ्गानि पथ्या वह्न्यजमोदकम् ॥ ७१ ॥ एतेषां कारयेच्चूर्णं चूर्णस्य द्विगुणं गुडम् । खादेन्माषद्वयञ्चापि पिबेदुष्णजलं ततः । सर्वाण्यर्शांसि नश्यन्ति वातजानि विशेषतः ॥

कालीमिर्च, पीपल, कूठ, सेंधा नमक, श्वेत जीरा, सोंठ, बच, हींग, बायबिडङ्ग, हड़, चित्रक और अजमोद हरएक के चूर्ण को बराबर मात्रा में ले सबसे दूना पुराना गुड़, मिलाकर उसे रोगी को सेवन करावे । मात्रा--२ माशे । अनुपान गरम जल । इसके सेवन से सम्पूर्ण मस्से नष्ट होते हैं । विशेषत: यह वातज बवासीर को लाभदायक है ॥ ७१-७२ ॥

दन्त्यरिष्ट ।

दन्तीचित्रकमूलानामुभयोः पञ्चमूलयोः । भागान् पलांशानापोथ्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ७३ ॥ त्रिपलं त्रिफलायाश्च दलानां तत्र दापयेत् । रसे चतुर्थशेषे तु पूतशीते प्रदापयेत् ॥ ७४ ॥ तुलां गुडस्य तत्तिष्ठेन्मासार्धं घृतभाजने । तन्मात्रया पिबेन्नित्यमर्शोभ्यः प्रविमुच्यते ॥ ७५ ॥ ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं वातवर्चोऽनुलोमनम् । दीपनं चारुचिघ्नश्च हन्त्यरिष्टमिमं विदुः ॥ ७६ ॥ पात्रेऽरिष्टादिसन्धानं धातकीलोध्रलेपिते ॥ ७७ ॥

दन्तीमूल, चित्रकमूल, दशमूल हरएक ८ तोले । इन्हें २५ सेर ४८ तोले जल में पाक करे । उसमें त्रिफला (मिलित) के पत्तों के २४ तोले चूर्ण को डाल दे । जब पाक होकर ६ सेर ३२ तोले शेष रहे तब उस जल को छानकर

उबला होने पर उसमें १० सेर गुड़ मिलाकर मिट्टी के चिकने पात्र में १२ दिन तक मुख बन्द करके रक्खे। फिर छानकर मात्रा से रोगियों को सेवन करावे। इसके सेवन से मस्से, ग्रहणी तथा पाण्डु आदि रोग नष्ट होते हैं। यह वात तथा पुरीष का अनुलोमन करता है। धातकी तथा लोध्र से लिप्त पात्र में अरिष्ट का सन्धान करना चाहिए। मात्रा—१। तोला से २॥ तोले तक ॥ ७३-७७ ॥

बृहत्कासीसाद्य तैल।

कासीसं सैन्धवं कृष्णा शुण्ठी कुष्ठञ्च लाङ्गली। शिलाभिदश्वमारश्च दन्ती जन्तुघ्नचित्रकम् ॥ ७८ ॥ तालकं कुनटी स्वर्णक्षीरी चैतैः पचेद्भिषक्। तैलं स्नुह्यर्कपयसा गवां मूत्रं चतुर्गुणम् ॥ ७९ ॥ एतदभ्यङ्गतोऽर्शांसि क्षारेणेव पतन्ति हि। क्षारकर्मकरं ह्येतन्न च सन्दूषयेद्वलिम्॥८०॥

तिल्ली का तेल ४ सेर। कल्क के लिये द्रव्य—कसीस, सेंधा नमक, पीपल, सोंठ, कूठ, कलिहारी, पाषाणभेद, कनेर की जड़, दन्तीमूल, वायविडङ्ग, चित्रक, हड़ताल, मैनसिल, चोक, थूहर का दूध, आक का दूध मिलित १ सेर, गोमूत्र १६ सेर, इस तेल का विधिपूर्वक पाक करके इसे मस्सों पर लगाने से मासाङ्कुर गिर जाते हैं। इसका प्रभाव क्षार की तरह है। यह गुदा की वलि को दूषित नहीं करता है ॥ ७८-८० ॥

कासीसाद्य तैल।

कासीसं दन्तिसिन्धूत्थकरवीरामलैः पचेत्। तैलमर्कपयोमिश्रमभ्यङ्गात् पायुकीलजित् ॥ ८१ ॥

तिल्ली का तेल १ सेर, काँजी ४ सेर। कल्कार्थ—कसीस, दन्तीमूल, सेंधा नमक, कनेर, आँवला प्रत्येक ४ तोले। इसका विधिपूर्वक पाक करके थोड़ा सा मदार का दूध मिलाकर लगाने से मस्से नष्ट होते हैं ॥ ८१ ॥

पिप्पल्याद्य तैल।

पिप्पली मधुकं बिल्वं शताह्वां मदनं वचाम्। कुष्ठं शुण्ठी पुष्कराख्यं चित्रकं देवदारु च ॥ ८२ ॥ पिष्ट्वा तैलं विपक्तव्यं द्विगुणक्षीरसंयुतम्। अर्शसां मूढवातानां तच्छ्रेष्ठमनुवासनम् ॥ ८३ ॥ गुदनिःसरणं शूलं मूत्रकृच्छ्रप्रवाहिकाम्। कट्यूरुपृष्ठदौर्बल्यमानाहं वङ्क्षणे रुजम्॥८४॥ पिच्छास्रावं गुदे शोथं वातवर्चोविनिग्रहम्। उत्थानं बहुशो यच्च जयेच्चैवानुवासनात् ॥ ८५ ॥

तिल्ली का तेल ४ सेर, दूध ८ सेर जल १६ सेर। कल्कार्थ द्रव्य—पीपल, मुलहठी, बेल की छाल, सोया, मैनफल, बच, कूठ, सोंठ पुष्करमूल, चित्रक तथा देवदारु मिलित १ सेर। इस तेल के अनुवासन से मस्से, मूढवात, गुदाभ्रंश, शूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, दुर्बलता, अफरा, पिच्छास्राव, गुदा की सूजन और मलबन्ध आदि रोग नष्ट होते हैं - ८२-८५ ॥

उदावर्तपरीता ये ये चात्यर्थं विरूक्षिताः। विलोमवाताः शूलार्त्तास्तेष्विष्टमनुवासनम् ॥ ८६ ॥

जिन्हें उदावर्त हो, जो अत्यन्त रूखे हों या जिनकी वायु नहीं खुलती हो एवं जिन्हें शूल हो उन्हें अनुवासन कराना चाहिए ॥ ८६ ॥

षट्पलक घृत।

सक्षारैः पञ्चकोलैश्च पलिकैस्त्रिगुणोदकैः। समं क्षीरं घृतमस्थं ज्वरार्शःप्लीहकासनुत् ॥ ८७ ॥

गोघृत १२८ तोले, दूध १२८ तोले। कल्क द्रव्य—जवाखार, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ प्रत्येक ८ तोले। जल ४ सेर ६४ तोले। इस घृत का विधिपूर्वक पाक करके मस्से, प्लीहा तथा खाँसी आदि रोगों में सेवन कराना चाहिए ॥ ८७ ॥

व्योषाद्य घृत ।

व्योषगर्भं पलाशस्य त्रिगुणे भस्म वारिणि। साधितं पिबतः सर्पिःपतन्त्यर्शांस्यसंशयम् ॥ ८८ ॥

गोघृत ४ सेर, ढाक के खार का जल १२ सेर। कल्कद्रव्य--त्रिकटु मिलित १ सेर। इस घृत के सेवन से निश्चय ही मस्से गिर जाते हैं ॥ ८८ ॥

चव्यादि घृत ।

चव्यं त्रिकटुकं पाठां क्षारं कुस्तुम्बुरूणि च। यमानीं पिप्पलीमूलमुभे च विडसैन्धवे ॥ ८९ ॥ चित्रकं बिल्वमभयां पिष्ट्वासर्पिर्विपाचयेत्। शकृद्वातानुलोम्यार्थं जाते दध्नि चतुर्गुणे ॥ ९० ॥ प्रवाहिकां गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं परिस्रवम्। गुदवङ्क्षणशूलञ्च घृतमेतद्व्यपोहति ॥ ९१ ॥

गौ का घृत ४ सेर, दही १६ सेर, जल १६ सेर। कल्क के लिये द्रव्य—चव्य, त्रिकटु, पाठा, जवाखार, धनियाँ, अजवायन, पीपलामूल, विड्लवण, सेंधा नमक, चित्रक, बेल की छाल, हड़ मिलाकर १ सेर। विधिपूर्वक पाक करके इस घृत का सेवन करावे। इसके सेवन से पुरीष तथा वात का अनुलोमन होता है एवं प्रवाहिका, गुदभ्रंश, मूत्रकृच्छ्र, गुदा का शूल तथा वङ्क्षणशूल आदि रोग नष्ट होते हैं ॥८९-९१॥

कुटजाद्य घृत ।

कुटजफलवल्ककेशरनीलोत्पललोध्रधातकीकल्कैः। सिद्धं घृतं विधेयं शूलरक्तार्शसां भिषजा ॥ ९२ ॥

गोघृत ४ सेर। कल्क के लिये द्रव्य—इन्द्रजौ, कुड़ा की छाल, नागकेसर, नीला कमल, लोध, धाय के फूल सब मिलाकर १ सेर, जल १६ सेर। विधिपूर्वक पाक करके शूल एवं खूनी बवासीर में सेवन कराना चाहिए ॥ ९२ ॥

सुनिषण्णकचाङ्गेरी घृत ।

अवाक्पुष्पी बला दार्वी पृश्निपर्णी त्रिकण्टकम्। न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गाश्च द्विपलोन्मिताः ॥ ९३ ॥ कषाय एष पेष्यास्तु जीवन्ती कटुरोहिणी। पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं देवदारु च ॥ ९४ ॥ कलिङ्गं शाल्मलीपुष्पं वीरा चन्दनमञ्जनम्। कट्फलं चित्रकं मुस्तं प्रियङ्ग्वतिविषे स्थिरा ॥ ९५ ॥ पद्मोत्पलानां किञ्जल्कः समङ्गा सनिदिग्धिका। बिल्वमोचरसे पाठा भागाः स्युः कार्षिकाः पृथक् ॥ ९६ ॥ चतुःप्रस्थभृतं प्रस्थं कषायमवतारयेत्। त्रिंशत्पलानि तु प्रस्थो विज्ञेयो द्विपलाधिकः ॥ ९७ ॥ सुनिषण्णकचाङ्गेर्योः प्रस्थौ द्वौ स्वरसस्य च। सर्वैरेतैर्यथोद्दिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ९८ ॥ एतदर्शःस्वतीसारे त्रिदोषे रुधिरस्रुतौ। प्रवाहणे गुदभ्रंशे पिच्छासु विविधासु च ॥ ९९ ॥ उत्थाने चातिबहुशः शोथशूलगुदामये। मूत्रग्रहे मूढवाते मन्दाग्नावरुचावपि ॥ १०० ॥ प्रयोज्यं विधिवत्सर्पिर्बलवर्णाग्निवर्द्धनम्। विविधेष्वन्नपानेषु केवलं वा निरत्ययम् ॥ १०१ ॥

सोया, खरेटी, दारुहल्दी, पृश्निपर्णी, गोखरू, वड़ के अंकुर, गूलर के पेड़ की कोपलें, पीपल की कोपलें हरएक ८ तोले। पान के लिये जल ६ सेर ३२ तोले, अवशिष्ट क्वाथ १२८ तोले। कल्क द्रव्य—जीवन्ती, कुटकी, पीपल, पीपलामूल, क्षीरकाकोली, लाल चन्दन, रसौत, कटफल, चित्रक, मोथा, प्रियङ्गु, अतीस, शालपर्णी, कमलकेशर, नील कमल की केशर, मजीठ, छोटी कटेरी, बेल, मोचरस, पाठा; हरएक दो दो तोले। चौपतिया तथा चांगेरी हरएक का स्वरस ३ सेर १६ तोले, घृत डेढ़

सेर ८ तोले । इस घी का विधिपूर्वक पाक करके सेवन करावे । बवासीर, खून बहना, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, पिच्छास्राव, सूजन, शूल, मूत्ररोध, मूढ़वात, मन्दाग्नि, अरुचि आदि रोग इसके सेवन से नष्ट होते हैं। यह बल, वर्ण तथा जठराग्नि को बढ़ाता है ॥ ९२—१०१ ॥

अश्वगन्धादि धूप ।

अश्वगन्धाथ निगुण्डी बृहती पिप्पली फलम् । धूपोऽयं स्पर्शमात्रेण ह्यर्शसां शमने हलम् ॥ १०२ ॥

अश्वगन्धा, सम्भालू, बड़ी कटेरी, पीपल इनको अंगारों पर रखकर इस धूप को गुदद्वार पर लगाने से बवासीर के मस्से अच्छे होते हैं ॥ १०२ ॥

अर्कमूलादि धूप ।

अर्कमूलं शमीपत्रं नृकेशाः सर्पकञ्चुकाः । मार्जारचर्म चाज्यञ्च गुदधूपोऽर्शसां हितः ॥ १०३ ॥

आक की जड़, शमी (जाँट-छोंकर) के पत्ते, साँप की केंचुली, बिल्ली का चमड़ा और घृत इनकी धूप मस्सों में लाभदायक है १०३ ॥

रालचूर्णस्य तैलेन सार्षपेण युतस्य च । धूपदानेन युक्त्यार्शो रक्तस्रावो निवर्त्तते ॥ १०४ ॥ रक्तौघशान्तये देयं गुदे कर्पूरधूमकम् ॥ १०५ ॥

सरसों का तेल तथा राल इनका विधिपूर्वक धूम देने से मस्सों से निकलनेवाला रक्त बन्द हो जाता है। अत्यन्त रक्तस्राव के लिये गुदा में कपूर का धूआँ देना चाहिए ॥ १०४—१०५ ॥

सपद्मकेशरं क्षौद्रं नवनीतं नवं लिहन्। सिताकेशरसंयुक्तंरक्तार्शासिमुखीभवेत् १०६

कमल की केशर, शहद, ताज़ा मक्खन, खाँड तथा नागकेशर के चूर्ण को मिलाकर रक्तार्श में प्रयोग करना चाहिए ॥ १०६ ॥

कुटजरसक्रिया ।

कुटजत्वचो विपाच्यं शतपलमार्द्रं महेन्द्रसलिलेन । यावत्स्यादरसं तद् द्रव्यं स रसस्ततो ग्राह्यः ॥ १०७ ॥ मोचरसः समङ्गफलिनीपलांशिभिस्त्रिभिस्तैश्च । वत्सकबीजं तुल्यं चूर्णीकृतमत्र दातव्यम् ॥ १०८ ॥ पूतोत्कथितः सान्द्रः सरसो दर्वीप्रलेपनो ग्राह्यः । मात्रा कालोपहिता रसक्रियैषा जयत्यसृक्स्रावम् ॥ १०९ ॥ छागलीपयसा युक्ता पेया मण्डेनाथवा यथाग्निबलम् । जीर्णौषधश्च शालीन् पयसा छागेन भुञ्जीत ॥ ११० ॥ रक्तगुदजातीसारं शूलं सासृग्रुजो निहन्त्याशु । बलवच्च रक्तपित्तं रसक्रियैषा ह्युभयभागम् ॥ १११ ॥

कुड़ा की छाल १० सेर, क्वाथार्थ जल २५ सेर ४८ तोले, बाकी क्वाथ ६ सेर ३२ तोले । इस क्वाथ को छानकर पुनः पाक करे । जब गाढ़ा हो जाय तब मोचरस, मंजीठ, प्रियंगु प्रत्येक चार-चार तोले तथा इन्द्रजौ १२ तोले । इनके चूर्ण का प्रक्षेप दें और गाढ़ा कर ले । इस औषध को यथाकाल मात्रा में सेवन कराने से रुधिर का प्रवाह रुक जाता है । अग्नि तथा बल के अनुसार बकरी [illegible] दूध, पेया अथवा मांड के अनुपान से इसे सेवन कराना चाहिए । जब औषध जीर्ण हो जाय तब शालि चावल का भात तथा बकरी का दूध आहारार्थ दे । इसके सेवन से रक्तार्श, अतिसार, शूल तथा रक्तपित्त आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १०७-१११ ॥

तीक्ष्णमुख रस ।

मृतसूतार्कहेमाभ्रतीक्ष्णं मुण्डञ्च गन्धकम् । मण्डूरञ्च समं ताप्यं मर्द्यं कन्यार्द्रवैर्दिनम् ॥ ११२ ॥ अन्धमूषागतं सर्वं ततः पाच्यं दृढाग्निना । चूर्णितं मितया मासं

खादेच्चार्शसां हितम् ॥ रसस्तीक्ष्णमुखो नाम चासाध्यमपि साधयेत् ॥ ११३ ॥

रससिन्दूर, ताम्रभस्म, स्वर्णभस्म अभ्रकभस्म, तीक्ष्ण लौहभस्म, मुण्डलौहभस्म, गंधक, मण्डूरभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म इनको बराबर मात्रा में। इन्हें ग्वारपाठा के रस से एक दिन घोटकर अन्धमूषा में रख तेज अग्नि से पकाकर चूर्ण करे। मात्रा-१ रत्ती। अनुपान-सोंठ। यह रस बवासीर के मस्सों के रोग में हितकर है ॥ ११२--११३ ॥

अर्शकुठार रस।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धमृतलौहञ्च ताम्रकम्। प्रत्येकं द्विपलं दन्ती व्यूषणं शूरणं तथा ॥ ११४ ॥ शुभाटङ्कयवक्षारसैन्धवं पलपञ्चकम्। पलाष्टकं स्नुहीक्षीरं द्वात्रिंशच्च गवां जलैः ॥ ११५ ॥ आपिण्डितं पचेदग्नौ खादेन्माषद्वयं ततः। रसश्चार्शःकुठारोऽयं सर्वरोगकुलान्तकः ॥ ११६ ॥

पारा ३ तोले गन्धक, ८ तोले, लौहभस्म ८ तोले, ताँबे की भस्म ८ तोले। दन्तीमूल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, जमीकन्द, वंशलोचन, सुहागा, जवाखार, सेंधा नमक प्रत्येक बीस बीस तोले। थूहर का दूध ३२ तोले, और गोमूत्र १२८ तोले में उपर्युक्त सम्पूर्ण द्रव्य डालकर पाक करे। जब लड्डू बनाने योग्य हो जाय तब उतार ले। मात्रा-२ माशे। यह अर्शकुठार रस बवासीर आदि सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करता है ॥ ११४--११६ ॥

द्वितीय अर्शकुठाररस।

भागः शुद्धरसस्य भागयुगलं गन्धस्य लोहाभ्रयोः षड्बिल्वाग्निहलोपणाभयरजोदन्ती च भागैः पृथक्। पञ्च स्युः स्फुटटङ्कणस्य च यवक्षारस्य सिन्धूद्भवाद्भागाः पञ्चगवां जलं सुविमलं द्वात्रिंशदेतत्पचेत् ॥ ११७ ॥ स्नुग्दुग्धं च गवां जलाग्रधिशनैः पिण्डीकृतं तद्भवेत् माषैकं गुदकीलकद्रुमजटाच्छेदे कुठारो रसः ॥ ११८ ॥

शुद्ध पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, लोहभस्म ६ भाग, अभ्रकभस्म ६ भाग, बेल, चित्रक, शुद्ध कलिहारी, कालीमिरच, हड़ और दन्तीमूल भाग, सेंधानमक ५ भाग, गोमूत्र ३२ भाग, थूहर का दूध ६ भाग, थूहर के दूध को छोड़कर शेष द्रव्यों को गोमूत्र में डालकर पाक करे। पाक करते समय धीरे-धीरे थूहर के दूध को डालता जाय। जब गाँठ पड़ने लगे तब उतार ले। यह रस बवासीर को जड़ से काटने के लिए कुल्हाड़ी की तरह है। मात्रा १ माशा ॥ ११७-११८ ॥

चक्राख्य रस।

मृतसूताभ्रवैक्रान्तं ताम्रं कांस्यं समं समम्। सर्वतुल्येन गन्धेन दिनं भल्लातकेद्रवैः ॥ ११९ ॥ मर्दयेद्यत्नतः पश्चाद् वटी कुर्याद् द्विगुञ्जिकाम्। भक्षणाद् गुदजान् हन्ति द्वन्द्वजान् सर्वजानपि ॥ १२० ॥

रससिन्दूर अभ्रकभस्म, वैक्रान्तभस्म, ताँबे की भस्म, कांसी की भस्म प्रत्येक बराबर मात्रा में ले। सबके समान गंधक ले मिलावें के रस से एक दिन मर्दन कर आधी २ रत्ती की गोलियाँ बनावे। इस औषध के सेवन से मस्से अच्छे हो जाते हैं। कई आचार्यों के मतानुसार भावना के बदले १ भाग भिलावाँ डाल देना चाहिए ॥ ११९-१२० ॥

वज्रकुठार रस।

रसगन्धकलौहानां प्रत्येकं भागयुग्मकम् त्रिकटुदन्तिकुष्ठैकं षड्भागं लाङ्गलस्य च ॥ १२१ ॥ क्षारसैन्धवटङ्कानां प्रत्येकं भागपञ्चकम्। गोमूत्रस्य च द्वात्रिंशत्स्नुहीक्षीर तथैव च ॥ १२२ ॥ यावच्च पिण्डितं सर्वं तावन्मृद्वग्निना

पचेत् । रक्तिद्वयं ततः खादेद्दिवास्वप्नादि वर्जयेत् ॥ १२३ ॥ रसश्चाश्वकुठारोऽय-मर्शसां कुलनाशनः ॥ १२४ ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म हरएक २ भाग । त्रिकटु, दन्ती हरएक ३ भाग । कलिहारी ६ भाग । जवाखार, सेंधा नमक, सुहागा हरएक ५ भाग । गोमूत्र ३२ भाग, थूहर का दूध ३२ भाग । इसका मन्द अग्नि पर पाक करे । मात्रा—२ रत्ती । इसके सेवन काल में दिन में सोना मना है । यह सब प्रकार के अर्शों को नष्ट करता है ॥ १२१--१२४ ॥

जातीफलादि वटी ।

जातीफलं लवङ्गञ्च पिप्पली सैन्धवं तथा । शुण्ठी धुस्तूरबीजञ्च दरदं टङ्कणं तथा ॥ १२५ ॥ समं सर्वं विचूर्ण्याथ जम्भाम्भसा विमर्दयेत् । जातीफलादि-वटिकेयमर्शोऽग्निमान्द्यनाशिनी ॥१२६॥

जायफल, लौंग, पीपल, सेंधानमक, सोंठ धतूरे के बीज, शिंगरफ, सुहागा हरएक को बराबर मात्रा में मिलाकर नींबू के रस से मर्दन कर दो-दो रत्ती की गोलियां बनावें । इसके सेवन से मन्दाग्नि तथा बवासीर अच्छी हो जाती है ॥ १२५--१२६ ॥

अष्टाङ्ग रस ।

गन्धं रसेन्द्रं मृतलौहकिट्टं फलत्रयं व्यूषणवह्निभृङ्गम् । कृत्वा समं शाल्मलि-कागुडूचीरसेन यामत्रितयं विमर्द्य ॥ माष-प्रमाणां गटितानुपानैः सर्वाणि चार्शांसि हरेद्रसस्य ॥ १२७ ॥

गन्धक, पारा, मण्डूरभस्म, त्रिफला, त्रिकटु, चित्रक, भृङ्गराज इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर सेमल तथा गिलोय के रस में तीन पहर घोट कर इस अनुपानों में बवासीर में इस रस को सेवन कराना चाहिए । मात्रा—१ माशा ॥ १२७ ॥

पञ्चानन वटी ।

मृतसूताभ्रलौहानि मृतार्कगन्धकैः सह । सर्वाणि समभागानि भल्लातं सर्व-तुल्यकम् ॥ १२८ ॥ वन्यशरणकन्दो-त्थैर्द्रवैः पलमितैः पृथक् । मर्दयेद्दिनमेक-ञ्च माषमात्रं पिबेद्घृतैः ॥ १२९ ॥ भक्षणाद्धन्ति सर्वाणि चार्शांसि च न संशयः । असाध्येष्वपि कर्त्तव्या चिकित्सा शङ्करोदिता ॥ १३० ॥ कुष्ठरोगं निह-न्त्याशु मृत्युरोगविनाशिनी ॥ १३१ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, ताम्र-भस्म, गन्धक हरएक १ तोला । भिलावां ५ तोले । इन सबको जंगली जमीकन्द के ८ तोले रस से दिन भर घोटकर उड़द की बराबर गोली बनावें । अनुपान घृत । मृत्युरूप अर्श रोग को नष्ट करनेवाली यह वटी कुष्ठरोग को शीघ्र ही नष्ट करती है ॥ १२८--१३१ ॥

शिलागन्धक वटिका ।

शिलागन्धकयोश्चूर्णं पृथक् भृङ्ग-रसाप्लुतम् । सप्ताहं भावयेत्सर्पिमधुभ्या-ञ्च विमर्दयेत् ॥ १३२ ॥ अर्शसश्चानु-लोम्यार्थं हताग्निबलवर्द्धनम् । गुञ्जाष्ट-मांशकं खादेत् कुष्ठादिरहिता नरः ॥ १३३ ॥

मैनसिल तथा गन्धक में भांगरा के रस की सात भावना देकर घृत तथा शहद से घोटे और गोली बनावे । मात्रा—⅛ रत्ती से ¼ रत्ती । बवासीर के रोगी को सेवन कराने से यह वातानुलोमन करती एवं अग्नि तथा बल को बढ़ाती है ॥ १३२--१३३ ॥

स्वल्पशूरण मोदक ।

मरिचमहौषधचित्रकशूरणभागा यथोत्तरं द्विगुणाः । सर्वसमो गुडभागः सेव्योऽयं मोदकः सिद्धफलः ॥ १३४ ॥ ज्वलनं ज्वलयति जाठरमुन्मूलयति गुल्म-

शूलगदान् । निःशेषयति श्लीपदमस्य-मर्शांसि नाशयत्याशु ॥ १३५ ॥

कालीमिर्च १ तोला, सोंठ २ तोले, चीता की जड़ ४ तोले और जमीकन्द ८ तोले। गुड़ १५ तोले। इनके लड्डू बनाकर सेवन करे। यह प्रत्यक्ष फल देनेवाला मोदक जठराग्नि को प्रदीप्त करता, गुल्म तथा शूल को निर्मूल करता और श्लीपद रोग को निःशेष करके बवासीर को अवश्य ही शीघ्र नष्ट करता है ॥ १३४-१३५ ॥

बृहच्छूरण मोदक ।

शूरणषोडशभागा वह्नेरष्टौ महौषध-स्ताः। अर्द्धेन भागयुक्तिर्मरिचस्य ततोऽपि चार्द्धेन त्रिफला ॥ १३६ ॥ कणा समूला तालीशारुष्करक्रमिघ्नानाम्। भागा महौषधसमा दहनांशा तालमूली च ॥ १३७ ॥ भागः शूरणतुल्यो दातव्यो वृद्धदारकस्यापि। भृङ्गैले मरिचांशे सर्वाण्येकत्र सञ्चूर्ण्य ॥ १३८ ॥ द्विगुणेन गुडेन युतः सेव्योऽयं मोदकः सकामधनैः। गुरुवृष्यभोज्यरहितोऽपितरेषूपद्रवंकुर्य्यात्॥ १३९ ॥ भस्मकमनेन जनितं पूर्व-मगस्त्यस्य प्रयोगराजेन। भीमस्य मारुतेरपि येन तौ महाशनौ जातौ ॥ १४० ॥ अग्निबलवृद्धिहेतुर्न केवलं शूरणो महावीर्य्यः। प्रभवति शस्त्रक्षाराग्निभिर्विनाप्यर्शसामेषः ॥ १४१ ॥ श्वयथुश्लीपदगरजिद् ग्रहणीश्च तथा हिक्कामनिलजाम्। नाशयति वलीपलितं मेधां कुरुते वृष्यतां च ॥ १४२ ॥ हिक्कां श्वासं कासं सराजयक्ष्मप्रमेहांश्च। प्लीहानञ्चाथोग्रं हन्तीति रसायनं पुंसाम् ॥ १४३ ॥

जमीकन्द १६ भाग, चीता की जड़ ८ भाग, सोंठ ४ भाग, कालीमिर्च २ भाग तथा हड़, बहेड़ा, आँवला, पीपरि, पिपलामूल, तालीश पत्र, भिलावा और बायविड़ग, प्रत्येक चार-चार भाग। तालमूली (मुसली) ८ भाग, विधारा १६ भाग, भँगरा और छोटी इलायची दो-दो भाग, इन सबको खूब महीन कूट पीसकर छान ले और इन सबसे दुगुना गुड़ ले मोदक बनाकर सेवन करे। इसके सेवन के समय चिकने तथा भारी पदार्थ खाने चाहिए, क्योंकि ऐसे पदार्थ न खाने से यह मोदक उपद्रव पैदा कर देता है। पहले समय में इस प्रयोगराज ने अगस्त्यजी, भीम, और हनुमान्‌जी के भी भस्मक रोग उत्पन्न कर दिया था, जिससे वे बहुत भोजन करनेवाले हो गये थे। यह महापराक्रमी शूरणमोदक केवल अग्निबल का ही बढ़ानेवाला नहीं है किन्तु बिना शस्त्र, क्षार और अग्निकर्म के भी बवासीर को नष्ट कर सकता है। यह मोदक शोथ श्लीपद (फीलपाँव) और विषदोष, ग्रहणीरोग वातज हिचकी, वली पलित, श्वास खाँसी, राजयक्ष्मा, प्रमेह और कठिन तिल्ली रोग को नष्ट करता है और बुद्धिवर्धक, वृष्य तथा रसायन है। मात्रा—१ तोला ॥ १३६-१४३ ॥

श्रीबाहुशाल गुड़ ।

त्रिवृत्तेजोवती दन्ती श्वदंष्ट्रा चित्रकं शटी। गवाक्षी मुस्तविश्वाह्वविडङ्गानि हरीतकी ॥ १४४ ॥ पलोन्मितानि चैतानि पलान्यष्टान्यरुष्करात्। षट्पलं वृद्धदारस्य शूरणस्य च षोडश ॥ १४५ ॥ जलद्रोणद्वये क्वाथ्यं चतुर्भागावशेषितम्। पूतं तु तं रसं भूयः क्वाथ्येभ्यस्त्रिगुणो गुडः ॥ १४६ ॥ लेह पचेत्तु तं तावद् यावद्दर्वीप्रलेपनम्। अवतार्य्य ततः पश्चाच्चूर्णीनीमानि दापयेत् ॥ १४७ ॥ त्रिवृत्तेजोवतीकन्दचित्रकान् द्विपलांशिकान्। एलात्वङमरिचंचापि गजाह्वाश्चापिपटपलाम् ॥ १४८ ॥ द्वात्रिंशत्पलमेतात्र चूर्णं दत्त्वा

निधापयेत्। ततो मात्रां प्रयुञ्जीत जीर्णे क्षीररसाशनः ॥ १४९ ॥ पञ्चगुल्मान् प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं हलीमकम्। जयेदर्शांसि सर्वाणि तथा सर्वोदराणि च ॥ १५० ॥ दीपयेद् ग्रहणीं मन्दां यक्ष्माणमपकर्षति। पीनसे च प्रतिश्याये आढ्यवाते तथैव च ॥ १५१ ॥ अयं सर्वगदेष्वेव कल्याणो लेह उत्तमः। दुर्नामारिरयञ्चांशु दृष्टो वारसहस्रशः ॥ १५२ ॥ भवन्त्येनं प्रयुञ्जानः शतवर्षं निरामयाः। आयुषो दैर्घ्यजननो वलीपलितनाशनः ॥ १५३ ॥ रसायनवरश्चैव मेधाजनन उत्तमः। गुडः श्रीबाहुशालोऽयं दुर्नामारिः प्रकीर्त्तितः ॥ १५४ ॥ मुखमर्दः खरस्पर्शो गन्धवर्णरसान्वितः। पीडितो भजने मुद्रां गुडः पाकमुपागतः ॥ १५५ ॥

निशोथ, तेजबल, जमालगोटे की जड़, गोखुरू, चीता की जड़, कचूर, इन्द्रायण, नागरमोथा, सोंठ, बायबिड़ंग, हड़ ये सब चार-चार तोले, भिलावाँ ३२ तोले, बिधारा २४ तोले; जमीकन्द ६४ तोले, इन सबको कूटकर १ मन ११ सेर १६ तोले जल में पकावे। जब चौथाई क्वाथ अवशेष रहे तब छानकर उसमें १८ सेर ३० तोले गुड़ मिलाकर पाक करे। जब कलछी में चिपकने लगे तब उतारकर उसमें ये औषधें पीसकर मिलावे—निसोथ तेजबल, जमीकन्द, चीता की जड़; प्रत्येक आठ-आठ तोले। छोटी इलायची, दालचीनी, कालीमिर्च और गजपीपर; प्रत्येक २४-- तोले। ये सब चीजें मिलाकर ढककर रख दे। बलानुसार मात्रा का सेवन करे। औषधि हजम हो जाने पर दूध और मांसरस का भोजन करे। इसके सेवन से पाँचों प्रकार के गुल्मरोग, प्रमेह, पाण्डुरोग, हलीमक तथा छह प्रकार की बवासीर और सब प्रकार के उदररोग अच्छे हो जाते हैं। यह मन्द ग्रहणी को दीपन करता है, यक्ष्मारोग को दूर करता है। पीनस, जुकाम, आढ्यवात और सब रोगों में लाभदायक है तथा हजारों बार का अनुभूत है। इसके सेवन करने से मनुष्य सौ वर्ष तक नीरोग रहते हैं यह आयु का बढ़ानेवाला, वलीपलित का नाशक, बुद्धिवर्धक और श्रेष्ठ रसायन है। इस श्रीबाहुशाल गुड़ को बवासीर का शत्रु कहते हैं। जब मुख से मसला जाय, छूने में खरदरा हो, गन्ध, वर्ण और रस से युक्त हो तथा दबाने से अँगुली आदि की रेखाओं के चिह्न पड़ जायें तब गुड़पाक को उत्तम समझना चाहिए ॥ १४४–१५५ ॥

प्राणदा गुटिका।

त्रिपलं शृङ्गवेरस्य चतुर्थं मरिचस्य च। पिप्पल्या कुडवार्द्धश्च चव्याश्च पलमेव च ॥ १५६ ॥ तालीशपत्रस्य पलं पलार्द्धं केशरस्य च। द्वे पले पिप्पलीमूलादर्द्धकर्षञ्च पत्रकात् ॥ १५७ ॥ सूक्ष्मैला कर्षमेकाञ्च कर्षञ्च त्वङ्मृणालयोः। गुडात् पलानि त्रिंशच्च चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ १५८ ॥ कोलप्रमाणा गुटिका प्राणदेति प्रकीर्तिता। पूर्वं भक्ष्याच्च पश्चाच्च भोजनस्य यथाबलम् ॥ १५९ ॥ मद्यं मांसरसं यूषं क्षीरं तोयं पिबेदनु। हन्यादर्शांसि सर्वाणि सहजान्यस्रजान्यपि ॥ १६० ॥ वातपित्तकफोत्थानि सन्निपातोद्भवानि च। पानात्यये मूत्रकृच्छ्रे वातरोगे गलग्रहे ॥ १६१ ॥ विषमज्वरे च मन्देऽग्नौ पाण्डुरोगे तथैव च। कृमिहृद्रोगिणां चैव गुल्मशूलार्त्तिनां तथा ॥ १६२ ॥ श्वासकासपरीतानामेषा स्यादमृतोपमा। गुण्ट्याः स्थानेऽभया देया विड्ग्रहे पित्तपायुजे ॥ १६३॥

प्राणदायां सिता देया चूर्णमानाच्चतुर्गुणा। अम्लपित्ताग्निमान्द्यादौ प्रयोज्या गुदजातुरे ॥ १६४ ॥ पक्त्वैनं गुटिकाः कार्य्या गुडेन सितयाथवा। परं हि वह्निसंसर्गाल्लघिमानं भजन्ति ताः ॥ १६५ ॥

सोंठ १२ तोले, कालीमिर्च १६ तोले, पीपरि ८ तोले, चव्य ४ तोले, तालीशपत्र ४ तोले, नागकेसर २ तोले, पिपरामूल ८ तोले, तेजपात आधा तोला, छोटी इलायची १ तोला, दालचीनी १ तोला और कमल की नाल १ तोला; सबको कूट पीसकर छान ले और १॥ सेर गुड़ की चाशनी बनाकर उसमें इस चूर्ण को मिलाकर छः छः माशे की गोलियां बना ले। इसको प्राणदा गुटिका कहते हैं। बलानुसार भोजन के पहले तथा पीछे इसका सेवन करे। अनुपान—मदिरा, मांसरस, यूष, दूध अथवा जल, इसके खाने से सब प्रकार की सहज और खूनी, वातिक, पैत्तिक, कफज और सान्निपातज बवासीर नष्ट होती है। पानात्यय, मूत्रकृच्छ्र, वातरोग, गलग्रह विषमज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डुरोग, कृमिरोग, हृद्रोग, गुल्मशूल, श्वास और खांसी; इन रोगों में यह अमृत के समान है। यदि बवासीर में कब्जियत रहती हो तो सोंठ के स्थान में हड़ देना चाहिए। पैत्तिक बवासीर में कुल चूर्ण से चौगुने मिसरी मिलाकर गुटिका बनाना चाहिए। इसको अम्लपित्त, अग्निमान्द्य तथा गुदा में उत्पन्न होनेवाले रोगों में भी देना चाहिए। गुड़ अथवा मिसरी को पकाकर ही डालना चाहिए क्योंकि अग्नि के संयोग से वे हलकी हो जाती हैं ॥ १२६-११२ ॥

रक्तार्श की चिकित्सा

रक्तार्शसामुपेक्षेत रक्तमादौ स्रवेद्भिषक्। दुष्टास्रे निगृहीते तु शूलानाहासृग्गदाः ॥ १६६ ॥

खूनी बवासीर का पहले रक्त बह जाने देना चाहिए, रोकना न चाहिए, क्योंकि खराब खून के रोकने से शूल, आनाह और रक्त की व्याधियाँ हो जाती हैं ॥ १६६ ॥

शक्रकाथः सविश्वो वा किंवा बिल्वशलाटुकः। योज्या रक्तार्शसैस्तद्वज्ज्योत्स्निकामूललेपनम् ॥ १६७ ॥

इंद्रजौ के काढ़े में सोंठ मिलाकर अथवा बेल की गिरी में सोंठ मिलाकर खाना रक्तार्श में हितकर है। इसी तरह कड़ुई तुरई की जड़ का लेप करना भी हितकार है ॥ १६७ ॥

नवनीततिलाभ्यासात् केशरनवनीतशर्कराभ्यासात्। दधिसरमथिताभ्यासात् गुदजाः शाम्यन्ति रक्तवहाः ॥ १६८ ॥

मक्खन और तिल या नागकेसर, मक्खन और शक्कर अथवा दही की मलाई का तक्र (छाँछ) बनाकर सेवन करने से खूनी बवासीर शीत होती है।

समङ्गोत्पलमोचाह्वतिरीटतिलचन्दनैः। छागक्षीरं प्रयोक्तव्यं गुदजे शोणितापहम् ॥ १६९ ॥

मँजीठ, नीलकमल, मोचरस, पठानीलोध, तिल और लाल चन्दन; इनका समभाग चूर्ण बकरी के दूध में मिलाकर पीने से बवासीर का खून बन्द हो जाता है ॥ १६९ ॥

कोमलं नलिनीपत्रं पिष्ट्वा खादेत् सशर्करम्। प्रातराजं पयः पीत्वा रक्तस्रावाद्विमुच्यते ॥ १७० ॥

कमलिनी के कोमल पत्तों को खूब महीन पीसकर और शक्कर मिलाकर बकरी के दूध से प्रातःकाल सेवन करे तो बवासीर का खून बहना बन्द हो ॥ १७० ॥

सशर्करं कृष्णतिलस्य कल्कं बस्तीपयोभिः पिबति प्रभाते। सद्यो हरत्येव गुदोत्थरक्तं योगोऽयमित्थं गिरिशप्रयुक्तः ॥ १७१ ॥

काले तिलों के कल्क में शक्कर मिलाकर प्रातःकाल बकरी के दूध के साथ पीने से बवासीर का खून शीघ्र बन्द होता है। इस प्रयोग को शिवजी ने प्रयुक्त किया है ॥ १७१ ॥

कौटजं कल्कमादाय पिष्ट्वा तक्रेण बुद्धिमान्। पीत्वा रक्तार्शसो रक्तस्रुतिमाशु नियच्छति ॥ १७२ ॥

कुड़ा की छाल के कल्क को छाछ के साथ पीसकर पीने से बवासीर का खून शीघ्र बन्द हो जाता है ॥ १७२ ॥

तण्डुलसलिलोपेतं कल्कमपामार्गजं पिबतः। क्षीरमनुवाप्य भीरोर्गुदजाः शाम्यन्ति रक्तवहाः ॥ १७३ ॥ दाडिमस्य रसः पेयः शर्करामधुरीकृतः ॥ १७४ ॥

लटजीरा के पञ्चाङ्ग के कल्क को चावल के पानी के साथ पीकर ऊपर से दूध पीने से खूनी बवासीर का खून बन्द हो जाता है। अथवा अनार के रस में शक्कर मिलाकर पीना चाहिए ॥ १७३–१७४ ॥

धोलबद्धरस।

गुडूचिकासत्व समं रसेन्द्रं गन्धं समांशं निखिलेन वर्बरः। विमर्दयेच्छाल्मलिका भवद्भिः स्याद्धोलबद्धो मधुयुक् त्रिमाषः ॥ १७५ ॥ रक्तार्शसां नाशकृदेष सूतः पित्तार्शसां पित्तजविद्रधेश्च रक्तप्रमेहस्य-खुदस्य चाऽपि ॥ १७६ ॥ स्त्रीणां प्रदाहस्य भगन्दरस्य।

गिलोय का सत्व शुद्ध पारा और गन्धक समान भाग तथा हीरा दखिन सबको समान ले पञ्चली में सबको मिलाकर सेमल के मुसले के स्वरस अथवा छाल के काढ़े में घोट कर ३-३ मासे की गोलियां बना कर रख दे इनमें से १-१ गोली रोगानुसार अनुपान के साथ देने से खूनी और पित्तज बवासीर पित्तज विद्रधि रक्त प्रमेह वातरक्त प्रदर और भगन्दर आदि व्याधियों को मिटाता है। विशेष अनुभूत है ॥ १७५-१७६

कुटजलेह।

कुटजत्वक् पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत्। अष्टभागावशिष्टं तु कषायमवतारयेत् ॥ १७७ ॥ वस्त्रपूतं पुनः क्वाथं पचेल्लेहत्वमागतम्। भल्लातकं विडङ्गानि त्रिकटुत्रिफले तथा ॥ १७८ ॥ रसाञ्जनं चित्रकञ्च कुटजस्य फलानि च। वाचामतिविषां बिल्वं प्रत्येकञ्च पलं पलम् ॥ १७९ ॥ गुडात् पलानि त्रिंशच्च चूर्णीकृत्य विनिःक्षिपेत्। मधुनः कुडवं दद्याद् घृतस्य कुडवं तथा ॥ १८० ॥ एष लेहः शमयति अर्शो रक्तसमुद्भवम्। वातिकं पैत्तिकंचापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ १८१ ॥ ये च दुर्नामजा रोगास्तान् सर्वान्नाशयत्यपि। अम्लपित्तमतीसारं पाण्डुरोगमरोचकम् ॥ १८२ ॥ ग्रहणीमार्दवं कार्श्यं श्वयथुं कामलामपि। अनुपानं घृतं दध्यन्मधु तक्रं जलं पयः ॥ रोगानीकविनाशाय कौटजो लेह उत्तमः ॥ १८३ ॥

५ सेर कुड़ा की छाल को २३ सेर ४८ तोले जल में पकावे। जब ३ सेर १६ तोले क्वाथ शेष रहे तब उतारकर कपड़े से छान ले। फिर इसमें १॥ सेर गुड़ और १२ तोले घी डालकर पाक करे। जब पाक तैयार हो जाय तब भिलावाँ, वायविडंग, सोंठ, मिर्च, पीपल, हड़, बहेड़ा, आँवला, रसौत, चीता की जड़, इन्द्रजौ, वच, अतीस और बेल की गिरी, प्रत्येक चार-चार तोले लेकर चूर्ण कर पाक में मिला दें। फिर ठंढा होने पर ३२ तोले शहद मिलाकर रख ले। यह कुटजावलेह खूनी बवासीर तथा वातिक, पैत्तिक, कफज और सान्निपातिक एवं सब प्रकार की बवासीरों को नष्ट करता है। तथा अम्लपित्त, अतीसार, पाण्डुरोग, अरुचि, ग्रहणी, दुर्बलता, शोथ

और कामला आदि रोगों के समूहों को भी नष्ट करता है। अनुपान—घी, शहद, छाछ, जल और दूध ॥ १७७–१८३ ॥

अग्निमुख लौह।

त्रिवृच्चित्रकनिर्गुण्डीस्नुहीमुण्डिरिका जटा। मत्स्येकगोऽष्टपलिका जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ १८४ ॥ पलत्रयं विडङ्गाच्च व्योषं कर्षत्रयं पृथक्। त्रिफलायाः पलं पञ्च शिलाजतुपलं न्यसेत् ॥ १८५ ॥ दिव्यौषधिहतस्यापि वैकङ्कतहतस्य वा। पलद्वादशकं देयं रुक्मलौहस्य चूर्णितम् ॥ १८६ ॥ पलैश्चतुर्विंशत्याज्यान्मधुशर्करयोरपि। घनीभूते सुशीते च ढापयेद्वत' रिते ॥ १८७ ॥ एतदग्निमुखं नाम दुर्नामान्तकरं परम्। मन्दमग्निं करोत्याशु कालाग्निसमतेजसम् ॥ १८८ ॥ पर्वताश्चापि जीर्य्यन्ति प्राशनादस्य देहिनाम्। गुरुवृष्यान्नपानानि पयोमांसरसो हितः ॥ १८९ ॥ दुर्नामपाण्डुश्वयथुकुष्ठप्लीहोदरापहम्। अकालपलितं हन्यादामवातं गुदामयम् ॥ १९० ॥ न स रोगोऽस्ति यश्चापि न निहन्ति क्षणादिदम्। करीरकाञ्जिकादीन ककारादीनि वर्जयेत्। स्रवत्यतोऽन्यथा लौहं देहाम् किट्टश्च दुर्जरम् ॥ १९१ ॥

निसोथ, चीता की जड़ निर्गुंडी, थूहर, गोरखमुण्डी और भूमि आंवला, ये सब बत्तीस बत्तीस तोले। जल २५ सेर ४८ तोले शेष काढ़ा ६ सेर ३२ तोले। इसमें शकर १ सेर १६ तोले और घी १ सेर १६ तोले। तथा मैनशिल अथवा कटाई (स्रुवावृच) से मारे हुए रुक्मलोह की भस्म ४८ तोले डाल कर पाक करे। जब पाक सिद्ध हो जाय तब वायविडंग १२ तोले, सोंठ ३ तोले मिर्च ३ तोले, पीपरि २ तोले, त्रिफला मिलित २० तोले, शिलाजीत ४ तोले; इनके चूर्ण का प्रक्षेप देकर गाढ़ा करके उतार ले। ठंढा हो जाने पर १ सेर १६ तोले शहद मिला दे। यह अग्निमुख नाम लोह बवासीर का अन्त करने में श्रेष्ठ है। यह मन्द जठराग्नि को कालाग्नि के समान तेज करता है। इसके खाने से पत्थर भी पच जाता है। भारी पदार्थ, वृष्य (धातुओं को बढ़ानेवाले), अन्नपान, दूध और मांसरस खाना हितकर है। इसके सेवन से बवासीर, पाण्डु, शोथ, कुष्ठ, प्लीहा, उदररोग, बाल सफेद होना, आमवात और गुदा के रोग नष्ट होते हैं। ऐसा कोई रोग नहीं है जिसको यह क्षणमात्र में न नष्ट कर सके। इसके सेवन में करीर और काँजी आदि ककारादि वस्तुओं से परहेज करना चाहिए अन्यथा शरीर से लौह तथा लौहकिट्ट बाहर निकल जाते हैं ॥ १८४–१९१ ॥

माणशूरणाद्य लौह।

माणशूरणभल्लातत्रिवृद्दन्तीसमन्वितम्। त्रिकत्रयसमायुक्तमयोदुर्नामनाशनम् ॥ १९२ ॥

मानकन्द, जमीकन्द, भिलावां, निसोथ, जमालगोटा की जड़, सोंठ, मिर्च, पीपरि हड़ बहेड़ा, आँवला, वायविडंग, नागरमोथा और चीता की जड़ इनको समभाग लेकर लोहभस्म में मिलाकर सेवन करे। इससे बवासीर नष्ट हो जाती है ॥ १९२ ॥

चोलपर्पटी रस।

सूतगन्धक सुकज्जलिकायाः। पर्पटीसमयुता सम भागम्। चोल चूर्ण विहितं प्रतिवाप्यं। स्याद्रसोऽयम सृगामय हारी- ॥ १९३ ॥ वल्लयुग्मयुगलं प्रतिदेयं। शर्करामधु युतः किल दत्तः। रक्तपित्तगुदजस्रुति योनि स्रावमाशु विनिवारयतीशः ॥ १९४ ॥

* समभाग शुद्धपारे और गन्धक की कज्जली कर लोहे की कलछी में बेर के कोयलों पर गला कर कज्जली के बराबर हीरा दक्खिन का चूर्ण डाल कर गोबर पर रक्खे हुए केले के पत्ते पर डाल कर पर्पटी बना ले ठंढा होने पर निकाल कर रख छोड़े। अथवा कज्जली की पर्पटी बनाकर उसकी बराबर हीरा दक्खिन का चूर्ण मिलाकर रख छोड़े। इसमें से ३ रत्ती की मात्रा शक्कर और मधु के साथ देने से रक्तपित्त खूनी बवासीर योनिस्राव इन सबको यह मिटता है विशेष अनुभूत है॥ १९३--१९४॥

निर्त्योदित रस।

मृतसूतार्कलौहाभ्रं विषं गन्धं समं समम्। सर्वतुल्यांशभल्लातफलमेकत्र चूर्णयेत्॥ १९५॥ द्रवैः शूरणमाणोत्थैर्भाव्यं खल्ले दिनत्रयम्। माषमात्रं लिहेदाज्यै रसश्चार्शांसि नाशयेत्। रसो नित्योदितो नाम गुदोद्भवकुलान्तकः॥ १९६॥

पारे की भस्म (रससिन्दूर), ताम्रभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, मीठा तेलिया और गन्धक; ये सब समभाग ले। सबकी बराबर भिलावां का चूर्ण; इन सबको एक में मिलाकर और खरल में रखकर जमींकन्द तथा मानकन्द के रस की तीन-तीन दिन भावना देकर उड़द के बराबर गोलियां बना ले। इस रस को घृत के साथ खाने से सब प्रकार की बवासीर नष्ट हो जाती है। यह नित्योदित नामक रस गुदा के रोगों का अन्त करनेवाला है॥ १९५--१९६॥

रसगुटिका।

रसस्तुपादिकस्तुल्या विडङ्गमरिचाभ्रकाः। गङ्गापालङ्कजरसे खल्लयित्वा पुनः पुनः॥ १९७॥ रक्तिमात्रा गुदार्शोघ्नी वह्नेरत्यर्थदीपनी॥ १९८॥

रससिन्दूर १ भाग तथा वायबिडंग, काली-मिर्च और अभ्रकभस्म चार-चार भाग। सबको एकत्रकर जंगली पालक के शाक के रस में बार-बार खरल करके एक-एक रत्ती की गोलियां बना ले। इसके सेवन से गुदा का अर्शरोग नष्ट होता है और जठराग्नि का दीपन होता है॥ १९७--१९८॥

कण्टकिफलान्तर्मुपलक्षारो गोरोचनाजलम्। लेपमात्रेण विस्राव्य रसान् हन्ति गुदांकुरान्॥ १९९॥

कटहल के फल का मुसरा (कटहल के फल के भीतर जो दण्डा के समान होता है वह कटहल का मुसरा कहा जाता है) का क्षार और गोरोचन को जल में पीसकर लेप करने से बवासीर के मस्सों का पानी निकल जाता है और मस्से नष्ट हो जाते हैं॥ १९९॥

भावितं रजनीचूर्णैः स्नुहीक्षीरे पुनः पुनः। बन्धनात् सुदृढं सूत्रं छिनत्त्यर्शो न संशयः॥ २००॥

सूत (डोरा) को थूहर के दूध से युक्त हल्दी के चूर्ण में बार-बार भिगोकर मस्सों पर कसकर बांध देने से निःसंदेह मस्से कट-कट कर गिर जाते हैं॥ २००॥

वेगावरोधं स्त्रीपृष्ठयानमुत्कट कासनम्। यथास्वं दोषलञ्चान्नमर्शसः परिवर्जयेत्॥ २०१॥

मल-मूत्रादि वेगों का रोकना, स्त्रीप्रसंग, घोड़े आदि की पीठ पर सवारी, कष्टजनक आसन पर बैठना और दुष्ट (सड़े और बासी) अन्नों का खाना बवासीर के रोगी को त्याग देना चाहिए॥ २०१॥

चन्द्रप्रभा गुटिका।

कृमिरिपुदहनव्योषत्रिफलामरदारुचव्यमूनिम्बम्। मागधीमूलमुस्तं सशटीवचाधातुमाक्षिकं चैव॥२०२॥ लवण-

त्वारनिशायुगकुस्तुम्बुरुगजकणातिविषा ॥ २०३ ॥ कर्षांशकान्येव समानि कुर्य्यात् पलाष्टकं चाश्मजतोर्विदध्यात् । निष्पत्रशुद्धस्य पुरस्य धीमान् पलद्वयं लौहरजस्तथैव ॥ २०४ ॥ सिताचतुष्कं पलमत्र वांश्या निकुम्भकुम्भत्रिसुगन्धियुक्तम् । चन्द्रप्रभेयं गुडिका प्रयोज्या अर्शांसि निर्नाशयते पडेव ॥ २०५ ॥ भगन्दरं पाण्डुककामलां च निर्नष्टवह्नेः कुरुते च दीप्तिम् । हन्त्यामयान् पित्तकफानिलोत्थान् नाडीगते मर्मगते व्रणे च ॥ २०६ ॥ ग्रन्थ्यार्बुदे विद्रधिराजयक्ष्ममेहे भगाख्ये प्रबले च योज्या । चतुःत्रये चाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे शुक्रप्रवाहेऽप्युदरामये च ॥ २०७ ॥ तक्रानुपानं त्वथ मस्तुपानं आजो रसो जाङ्गलजो रसो वा । पयोऽथवा शीतजलानुपानं बलेन नागस्तुरगो जवेन ॥ २०८ ॥ दृष्ट्या सुपर्णः श्रवणैर्वराहः कान्त्या रतीशो धिषणश्च बुद्ध्या । न पानभोज्ये परिहार्यमस्ति न शीतवातातपमैथुनेषु ॥ २०९ ॥ शम्भुं समभ्यर्च्य कृतप्रणामं प्राप्ता गुडी चन्द्रमसः प्रसादात् ॥ २१० ॥ शुक्रदोषाष्टहन्त्यष्टौ प्रमेहानपि विंशतिम् । बलीपलितनिर्मुक्तो वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ २११ ॥ वृद्धवैद्योपदेशेन पलार्द्धं रसगन्धकम् केवलं मूर्च्छितं वापि पलं वा दापयेद्रसम् २१२ ॥ अभ्रकञ्च क्षिपेत्कश्चित् पलमानं भिषग्वरः संमर्द्य मधुसर्पिभ्यामादौ रक्तिचतुष्टयम् ॥ २१३ ॥ भक्ष्यं वृद्ध्या तथायुक्तं यावन्माषचतुष्टयम् । त्रिफलात्रिजातानां कर्षमानं पृथक्-पृथक् ॥ २१४ ॥

वायविडंग, चीता की जड, सोंठ मिर्च, पीपलि, हड़, बहेड़ा, आंवला, देवदारु,चव्य, चिरायता, पिपलामूल, नागरमोथा, कचूर, वच, स्वर्णमाक्षिक की भस्म, सेंधा नमक, कालानमक, जवाखार, सज्जीखार, हल्दी, दारुहल्दी, धनियाँ, गजपीपलि और अतीस ये सब एक एक तोला, शिलाजीत ३२ तोले, पत्ररहित शुद्ध गुग्गुल ८ तोले, लोहभस्म ८ तोले, मिसरी १६ तोले, वंशलोचन ४ तोले, दालचीनी ४ तोले, तेजपात ४ तोले और छोटी इलायची ४ तोले इन सबको कूट पीसकर गोली बनावे। इस चन्द्रप्रभागुटिका के प्रयोग करने से छह प्रकार की बवासीर, भगन्दर, पाण्डु, कामला और वातिक पैत्तिक, तथा कफज रोग नष्ट होते हैं। नष्ट जठराग्नि को दीप्त करती है। नासूर, मर्मव्रण, ग्रन्थि, अर्बुद, विद्रधि, राजयक्ष्मा, प्रमेह और प्रबल प्रदर, अक्षिरोग, अश्मरी (पथरी), मूत्रकृच्छ्र, शुक्रप्रमेह और उदरविकार में इसका प्रयोग करना चाहिए। अनुपान छाछ, दही का तोड़ (पानी), बकरी के मांस का रस, अथवा जंगली जीवों के मांस का रस, दूध या जल इसके खाने से बल में हाथी, वेग में घोड़े, दृष्टि में गरुड, सुनने में वराह, शोभा में कामदेव और बुद्धि में बृहस्पति के समान होता है। खाने-पीने और शीत, हवा, घाम और मैथुन आदि का परहेज नहीं है। शिवजी का पूजन कर इसका सेवन करना चाहिए। यह चन्द्रप्रभा गुटिका चन्द्रमा की कृपा से प्राप्त हुई है। इसके सेवन से आठ प्रकार के शुक्रदोष, बीस प्रकार के प्रमेह और वलीपलित और रोगों से छूटकर वृद्ध मनुष्य भी जवान हो जाता है। * वृद्ध वैद्यों के उपदेश से इस योग में पारा २ तोले

* अर्श और प्रमेह आदि में तो यह वटी लाभदायक है ही, परन्तु कटीली चौराई के मूल के क्वाथ अथवा खिंचे हुए अर्क के साथ देने से प्रदररोग में मैंने इसका अद्भुत चमत्कार देखा है। बीसों वर्ष [illegible]

और गन्धक २ तोले की कज्जली करके अथवा केवल रससिन्दूर ही ४ तोले छोड़ना चाहिए। कोई वैद्य इस योग में ४ तोले अभ्रकभस्म भी छोड़ते हैं। इसको घी और शहद में मिलाकर ४ रत्ती की मात्रा से प्रारंभ कर बलानुसार ४ माशे तक युक्तिपूर्वक सेवन करे। इस गुटिका के खाने के पश्चात् निसोथ, इन्द्रायण की जड़, छोटी इलायची, दालचीनी और तेजपात; प्रत्येक एक-एक तोला लेकर बनाये हुए चूर्ण में से थोड़ा-थोड़ा सेवन करना चाहिए ॥२०२-२१४॥

अभयारिष्ट।

अभयायास्तुलामेकां मृद्वीकार्द्धतुलां तथा। विडङ्गस्य दशपलं मधूककुसुमस्य च ॥२१५॥ चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा द्रोणमेवावशेषयेत्। शीतीभूते रसे तस्मिन् पूते गुडतुलां क्षिपेत् ॥ २१६ ॥ श्वदंष्ट्रां त्रिवृतां धान्यं धातकीमिन्द्रवारुणीम्। चव्यं मधुरिकां शुण्ठीं दन्तीं मोचरसं तथा ॥ २१७ ॥ पलयुग्ममितं सर्वं पात्रे महति मृण्मये। क्षिप्त्वा संरुध्य तत्पात्रं मासमात्रं निधापयेत् ॥ २१८ ॥ ततो जातरसं ज्ञात्वा परिस्राव्य रसं नयेत्। बलं कोष्ठञ्च वह्निञ्च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥ २१९ ॥ अर्शांसि नाशयेच्छीघ्रं तथाष्टावुदराणि च। वर्चोमूत्रविबन्धघ्नो वह्निं संदीपयेत् परम् ॥ २२० ॥

हड़ ५ सेर, मुनक्का २॥ सेर, वायविड़ंग ४० तोले, महुआ के फूल ४० तोले इन सबको २ मन २२ सेर ३२ तोले जल में पकावे। जब २५ सेर १६ तोले अवशिष्ट रहे तब उसको ठंढा करके छान ले। इसमें ५ सेर गुड़ और आठ-आठ तोले गोखुरू, निसोथ, धनिया, धाय के फूल, इन्द्रायण, चव्य, सौंफ, सोंठ, दन्तीमूल और मोचरस मिलाकर मिट्टी के एक बड़े घड़े में डालकर और उसका मुख बन्द करके एक महीने तक धरा रहने दे। जब अरिष्ट तैयार हो जाय तब उसको छानकर रख ले। बल, कोठा और जठराग्नि की परीक्षा करके रोगानुसार मात्रा की व्यवस्था करनी चाहिए। यह अरिष्ट सब प्रकार की बवासीर, आठ प्रकार के उदररोग और मल-मूत्र का अवरोध इन सब रोगों को नष्ट कर अग्नि को दीप्त करता है ॥ २१५-२२० ॥

अर्शरोग में वर्जनीय पदार्थ।

आनूपमामिषं मत्स्यं पिण्याकं दधि पिष्टकम्। माषान् करीरं निष्पावं बिल्वं तुम्बीमुपोदिकाम् ॥ २२१ ॥ पकाम्रं शालुकं सर्वं विष्टम्भीनि गुरूणि च। आतपं जलपानानि वमनं वस्तिकर्म च ॥ २२२ ॥ प्राच्यवन्त्यपरान्तोत्थनदीनां सलिलानि च। विरुद्धानि च सर्वाणि मारुतं पूर्वदिग्भवम् ॥ २२३ ॥ वेगावरोधं स्त्रीपृष्ठयानमुत्कटकासनम्। यथास्वं दोषलञ्चान्नमर्शसः परिवर्जयेत् ॥ २२४ ॥

आनूप देश के पशु-पक्षियों का मांस, मछली, तिल की खल, दही, पिट्ठी के बने पदार्थ, उड़द, करीर, मटर, बेल, लौकी, पोई का शाक, पका आम, कमल ककड़ी आदि जलकन्द, सम्पूर्ण विष्टम्भी तथा गुरु पदार्थ, धूप में बैठना, अधिक जल पीना, वमन करना, अवन्ति तथा पश्चिम की ओर बहनेवाली नदियों का जल, सब वीर्य विरुद्ध पदार्थ तथा पूर्व दिशा की पवन, मल-मूत्र, वीर्य आदि के वेगों को रोकना, मैथुन, सवारी, उत्कटासन (घोड़े ऊँट आदि की सवारी), अन्य वात आदि दोषों को कुपित करनेवाले सब आहार-विहार बवासीर के रोगी को छोड़ देना चाहिए ॥ २२१-२२४ ॥

अर्श में पथ्य।

विरेचनं लेपनमस्रमोक्षः क्षाराग्निशस्त्राचरितं च कर्म। पुरातना लोहितशालयश्च सषष्टिकाश्चापि यवाः कुलत्थाः

२२५ ॥ गोधाशुलोपाकगवोष्ट्रकूर्मश्वाविल्कुलिङ्गाजखरोतुकोशाः । तरक्षुचाषश्वसृगालकाका येऽन्येऽपि मांसात्प्रसहाश्च तेऽपि ॥ २२६ ॥ पटोलपत्तूररसोनगृञ्जिपुनर्नवाशूरणवास्तुकानि । जीवन्तिका दन्तशठः सुरा च शुण्ठी वयस्था नवनीतकञ्च ॥ २२७ ॥ कक्कोलधात्री रुचकं कपित्थमौष्ट्राणि मूत्राज्यपयांसि चापि । भल्लातकं सार्षपजञ्च तैलं गोमूत्रसौवीरतुषोदकानि । वातापहं यच्च यदग्निकारि तदन्नपानं हितमर्शसेभ्यः ॥ २२८ ॥

विरेचन, प्रलेप, रक्तनिर्हरण (फस्द खुलाना), क्षार, अग्नि एवं शस्त्र का प्रयोग करना चाहिए। अन्नों में—पुराने लाल शालिचावल, साँठी के चावल, जौ और कुलथी श्रेष्ठ हैं। मांसों में-गोह, चूहा, लोमड़ी, गौ, ऊँट, कछुआ, सेह गृहचरक, बकरी, गदहा, बिड़ाल, वानर, तरक्षु, चाप, घोड़ा, गीदड़, कौआ इनके मांस तथा अन्य भी जो प्रसह पक्षी हैं उनका मांस हितकर होता है। शाकों में—परवल; शालिञ्च, लहसन, चित्रक, पुनर्नवा, जमीकन्द, बथुआ, जीवन्तीशाक, जम्बीर, शराब, सोंठ, दह तथा मक्खन हितकर है। शीतलचीनी, आँवला, कालानमक, कैथ, ऊँट का मूत्र, घी तथा दूध, भिलावाँ, सरसों का तेल, गोमूत्र, सौवीर, काँजी तथा अन्य वात को नष्ट करनेवाले तथा अग्निप्रदीपक अन्नपान अर्शरोगियों को लाभदायक हैं॥ २२५-२२८ ॥

खूनी बवासीर में विशेष विधि।

यत्पथ्यं यदपथ्यं च वक्ष्यते रक्तपित्तिनाम्। रक्तार्शोरोगिणां तत्तदपि विधाद्विशेषतः ॥ २२९ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामर्शोऽधिकारः समाप्तः।

रक्तपित्त के रोगियों के लिये जो पथ्यापथ्य उचित है उसी का पालन रक्तार्श के रोगियों को करना चाहिए ॥ २२९ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या वृत्तप्रभाभिधायां व्याख्यायामर्शोऽधिकारः समाप्तः।

अथ भगन्दराधिकारः।

गुदस्य श्वयथुं दृष्ट्वा विशोष्य शोधयेत्ततः। रक्तावसेचनं कार्य्यं यथा पाकं न गच्छति ॥ १ ॥

उपवासादिना संशोष्य वमनविरेचनादिना शोधयेत्। रक्तावसेचनं जलौकादिभिः।

गुदा के आसपास सूजन देखकर शोषण, शोधन और रक्तमोक्षण करना चाहिए, जिससे कि सूजन पक न सके ॥ १ ॥

उपवास आदि से शोषण करके वमन और विरेचन आदि से शोधन करना तथा जोंक आदि के द्वारा रक्त निकलवाना चाहिए।

तिला ज्योतिष्मती कुष्ठं लाङ्गली गिरिकर्णिका। शताह्वा त्रिवृतादन्त्यः शोधनाय भगन्दरे ॥ २ ॥

काले तिल, मालकांगनी, कूट, कलिहारी, अपराजिता (कोयल) की जड़, सोया, निसोत और दन्ती की जड़, इनको इकट्ठा कर भगन्दर पर शोधनार्थ लेप करना चाहिए ॥ २ ॥

रसाञ्जनादि योग।

रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा निम्बपल्लवाः। त्रिवृत्तेजोवतीदन्तीकल्को नाडीव्रणापहः ॥ ३ ॥

रसौत, हल्दी, दारुहल्दी, मँजीठ, नीम के पत्ते, निसोत, मालकांगनी की जड़ तथा दन्ती की जड़ इनके कल्क का लेप करने से भगन्दर और नाड़ीव्रण नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

सुमना वटपत्राणि गुडूची विश्वभेषजम्। ससैन्धवस्तक्रपिष्टो लेपो हन्ति भगन्दरम् ॥ ४ ॥

चमेली के पत्ते, बड़ के पत्ते, गिलोय, सोंठ, सेंधानमक, इन्हें एकत्र कर छाछ से पीस कर लेप देने से भगन्दर नष्ट होता है ॥ ४ ॥

कुष्ठं त्रिवृत्तिलादन्ती मागध्याः सैन्धवं मधु। रजनी त्रिफला तुत्थं हितं व्रणविशोधनम् ॥ ५ ॥

कूट, निसोत, काले तिल, दन्ती की जड़, पीपल, सेंधा नमक, शहद, हल्दी, त्रिफला और तूतिया इन्हें पीसकर लेप देने से व्रण शुद्ध होता है ॥ ५ ॥

भगन्दर में जम्बूकमांस का उपयोग।

भक्षयेज्जाम्बुकं मांसं प्रकारैर्व्यञ्जनादिभिः। अजीर्णवर्जी मासेन मुच्यते तु भगन्दरात् ॥ ६ ॥

जिस भगन्दर के रोगी को अजीर्ण न हो उसे नाना प्रकार के व्यञ्जनों के साथ एक मास तक गीदड़ का मांस सेवन कराने से भगन्दर रोग से मुक्ति होती है ॥ ६ ॥

खदिरादि क्वाथ।

खदिरत्रिफलाक्वाथो महिषीघृतसंयुतः। विडङ्गचूर्णसंयुक्तो भगन्दरविनाशनः ॥ ७ ॥

खादिरकाष्ठ और त्रिफला इनका एकत्र विधिपूर्वक क्वाथ कर भैंस का घी और वायविडङ्ग का चूर्ण डालकर पीने से भगन्दर नष्ट होता है ॥ ७ ॥

वटपत्रेष्टकाशुण्ठीगुडूच्यः सपुनर्नवा। सुपिष्टाः पिडिकावस्थे लेपः शस्तो भगन्दरे ॥ ८ ॥

बरगद के कोमल पत्ते, ईंट का चूर्ण, सोंठ, गिलोय और गदहपुरैना (सांठी) को खूब पीसकर भगन्दर के फोड़े पर लेप करना उत्तम होता है ॥ ८ ॥

स्नुह्यादि वर्ति।

स्नुह्यर्कदुग्धदार्वीभिर्वर्तिं कृत्वा विचक्षणः। भगन्दरगतिं ज्ञात्वा पूरयेत् तां प्रयत्नतः ॥ ९ ॥ एषा सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यान्न संशयः ॥ १० ॥

थूहर का दूध, आक का दूध और दारुहल्दी; इनको एक में घोटकर बत्ती बनावे। इस बत्ती को भगन्दर में रक्खे। यह बत्ती सब शरीर के नाडीव्रणों (नासूरों) को नष्ट करती है ॥ ९-१० ॥

तिलादि और निशादि लेप।

तिलाभयालोध्रमरिष्टपत्रं निशे वचा लोध्रमगारधूमम्। भगन्दरे नाड्युपदंशयोश्च दुष्टव्रणे शोधनरोपणोऽयम् ॥११॥ समभागपिष्टलेपद्वयम्।

तिल, हड़, लोध और नीम के पत्ते अथवा हल्दी, दारुहल्दी, बच, लोध और गृहधूम; इनका लेप करने से भगन्दर, नासूर, उपदंश के घाव और दुष्ट घाव को शोधन और रोपण होता है ॥ ११ ॥

दोनों लेपों की ओषधियाँ समभाग लेना चाहिए।

त्रिफलारससंपिष्टबिडालास्थिप्रलेपनात्। भगन्दरं निहन्त्याशु दुष्टव्रणहरं परम् ॥ १२ ॥

त्रिफला के रस में बिलाव (बिलार) की हड्डी पीसकर लेप करे तो भगन्दर और दुष्ट घाव शीघ्र अच्छे हो जाते हैं ॥ १२ ॥

भगन्दरं प्रत्यहं तु सुधौतं त्रिफलाम्बुना। त्रिफलारसपिष्टेन मार्जारास्थ्ना च लेपयेत् ॥ १३ ॥

प्रतिदिन भगन्दर को त्रिफला के क्वाथ से धोकर त्रिफला के रस से पिसी हुई बिलार की हड्डी का लेप करना चाहिए ॥ १३ ॥

खरास्रपकमूरोहचूर्णलेपो भगन्दरम्।

हन्ति दन्त्यग्न्यतिविषालेपस्तद्वच्छुनोऽस्थि वा ॥ १४ ॥

गदहे के मूत्र में केंचुओं को पकाकर और पीसकर लेप करने से अथवा जमालगोटे की जड़, चीता की जड़ और अतीस को त्रिफला के रस में कुत्ते की हड्डी को पीसकर लेप करने से भगन्दर रोग नष्ट होता है ॥ १४ ॥

नवकार्षिक गुग्गुलु।

त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चैकांशयोजिता। गुटिका शोथगुल्मार्शोभगन्दरहिता स्मृता ॥ १५ ॥

सम्मिलित त्रिफला ३ तोले, शुद्ध गूगुल ५ तोले और छोटी पीपल १ तोला; इनको जल में पीसकर गोली बनावे। यह गोली शोथ, गुल्म, बवासीर और भगन्दर के लिए लाभदायक है ॥ १५ ॥

सप्तविंशति गुग्गुलु।

त्रिकटुत्रिफलामुस्तविडङ्गामृतचित्रकम्। शट्येलापिप्पलीमूलं हवुषा सुरदारु च ॥ १६ ॥ तुम्बुरुर्पुष्करं चव्यं विशाला रजनीद्वयम्। विडसौवर्चले क्षारौ सैन्धवं गजपिप्पली ॥ १७ ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि तावद् द्विगुणगुग्गुलुः। कोलप्रमाणां गुटिकां भक्षयेन्मधुना सह ॥१८॥ कासं श्वासं तथा शोथमर्शांसि च भगन्दरम्। हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कुक्षिवस्तिगुदे रुजम् ॥ १९ ॥ अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च अन्त्रवृद्धिं तथा कृमीन्। चिरज्वरोपसृष्टानां क्षयोपहतचेतसाम् ॥ २० ॥ आनाहञ्च तथोन्मादं कुष्ठानि चोदराणि च। नाडीदुष्टव्रणान् सर्वान् प्रमेहं श्लीपदं तथा ॥ २१ ॥ सप्तविंशतिको हन्ति सर्वरोगनिषूदनः ॥ २२ ॥

सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, वायविडङ्ग, गिलोय, चीता की जड़, कचूर, छोटी इलायची, पीपलामूल, हाऊबेर, देवदारु, धनियाँ, भिलावाँ, चव्य, इन्द्रायण की जड़, हल्दी, दारुहल्दी, विड़नमक, काला नमक, जवाखार, सज्जीखार, सेंधा नमक, गजपीपल; ये सब समभाग ले और इन सबके चूर्ण से दुगुना गूगुल ले। इसकी बेर के बराबर गोलियाँ बनाकर शहद के साथ सेवन करे। खाँसी, श्वास, शोथ, बवासीर, भगन्दर, हृदयशूल, पसली का शूल, तथा कुक्षि, बस्ति और गुदा की पीड़ा, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्त्रवृद्धि, कृमिरोग, पुराना बुखार, क्षय, आनाह, उन्माद, कुष्ठ, उदरविकार, नासूर, दुष्टव्रण, सब प्रकार के प्रमेह और श्लीपद; इन रोगों को यह सप्तविंशति गूगुल नष्ट करता है ॥ १६-२२ ॥

भगन्दरहर रस।

सूतस्य द्विगुणेन शुद्धबलिना कन्यापयोभिस्त्र्यहं शुद्धं ताम्रमयःसमस्ततुलितं पात्रं निधायोपरि ॥ स्वेद्यं यामयुगञ्च भस्मपिठरे निम्बूजलैः सप्तधा पाकं तत्पुटयेद्भगन्दरहरो गुञ्जोन्मितः स्यादिति ॥ २३ ॥

पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग इनकी कज्जली कर घीकुवार के रस में ३ दिन घोटे। इस कज्जली में ताम्रभस्म और लोहभस्म मिलाकर भस्मयन्त्र में दो प्रहर स्वेदन करे, पश्चात् स्वाङ्ग शीतल होने पर नींबू के रस से सात भावना देकर पुटपाक करना चाहिए। मात्रा—१ रत्ती। यह भगन्दर को हरता है ॥ २३ ॥

विष्यन्दन तैल।

चित्रकार्कौ त्रिवृत्पाठे मलयूहयमारकौ। सुधां वचां लाङ्गलिकीं हरितालं सुवर्चिकाम् ॥ २४ ॥ ज्योतिष्मतीञ्च संहृत्य तैलं धीरो विपाचयेत्। एतद्विष्यन्दनं नाम तैलं दद्याद् भगन्दरे ॥ शोधनं रोपणञ्चैव सावर्ण्यकरणं परम् ॥ २५ ॥

चित्रकादीनां कल्कः जलेन चतुर्गुणेन पाकः। विष्यन्दयति विशोधयतीति विष्यन्दनम्।

चीता की जड़, मदार की जड़, निसोत, पाढ़ी, कठगूलर, कनेर, थूहर, बच कलिहारी, हरताल, सज्जीखार, मालकांगुनी सब मिलाकर ३२ तोले, तेल १२८ तोले। उपर्युक्त औषधियों के कल्क में तेल और ६ सेर ३२ तोले पानी डालकर तेल सिद्ध करे। यह विष्यन्दन नाम तेल लगाने से भगन्दर का शोधन और रोपण होता है तथा भगन्दरपीड़ित स्थान का वर्ण शरीर के तुल्य हो जाता है॥ २४-२५॥

चित्रक आदि के कल्क से चतुर्गुण जल में पाक करना चाहिए। विष्यन्दन का अर्थ शोधन करना है।

करवीराद्य तैल।

करवीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणाग्निभिः। मातुलुङ्गार्कवत्साह्वैः पचेत्तैलं भगन्दरे॥ २६॥

कनेर, हल्दी, जमालगोटे की जड़, कलिहारी, सेंधानमक, चीता की जड़ बिजौरा नीबू की जड़, आक की जड़ और कुड़ा की छाल; इनको चार-चार तोले लेकर कल्क बनावे। इस कल्क में २ सेर तेल और ८ सेर जल डालकर यथाविधि तैल सिद्धकर भगन्दर में लगाने से भगन्दर अच्छा हो जाता है॥ २६॥

निशाद्य तैल।

निशार्कक्षीरसिन्धूग्निपुराश्वहनवत्सकैः। सिद्धमभ्यञ्जने तैलं भगन्दरविनाशनम्॥ २७॥

कल्क के लिए हल्दी, आक का दूध, सेंधानमक, चीता की जड़, गूगुल, कनेर की जड़ और कुरैया की छाल, प्रत्येक पाँच-पाँच तोले। तेल २ सेर, पाकार्थ जल ८ सेर। यथाविधि तेल सिद्ध कर भगन्दर पर लगाने से भगन्दर अच्छा हो जाता है॥ २७॥

सैन्धवाद्य तैल।

सैन्धवं चित्रकं दन्ती पलाशश्चेन्द्रवारुणी। गोमूत्रेऽष्टगुणे पक्त्वा ग्राह्यमष्टावशेषितम्॥ २८॥ क्वाथपादं पचेत्तैलं कल्कः कृष्णायसं मृतम्। पचेत्तैलावशेषञ्च तेन लेप्यं भगन्दरम्॥ २९॥ असाध्यं साधयत्याशु पक्वं कृमिकुलान्वितम्॥ ३०॥

सेंधा नमक चीता की जड़, जमालगोटे की जड़, ढाक के बीज और इन्द्रायण की जड़; सब औषधियाँ मिलाकर ४ सेर, गोमूत्र ३२ सेर, अवशिष्ट क्वाथ ४ सेर, कडुआ तेल १ सेर, लोहभस्म १६ तोले। विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर भगन्दर पर लेप करने से कृमियों से युक्त असाध्य भगन्दर भी अच्छा होता है॥ २८-३०॥

नारायण रस।

दरदं पार्वतीपुष्पं कुनटी पुरुषो रसः। शोणितं गन्धको दैत्यः सैन्धवातिविषा चवी॥ ३१॥ शरपुङ्खा विडङ्गश्च यमानी गजपिप्पली। मरिचार्कौ च वरुणो धूनकश्च हरीतकी॥ ३२॥ संमर्द्य कटुतैलेन गुटिकां कारयेद्भिषक्। नाडीव्रणं प्रवाहञ्च गण्डमालां विचर्चिकाम्॥ ३३॥ चिरदुष्टव्रणं दद्रुपूतिकर्णं शिरोगदम्। हस्तपादपरिस्फोटं दुःसाध्यञ्च भगन्दरम्॥ एतान् रोगान् निहन्त्याशु प्रभिन्नमिव केशरी॥ ३४॥

ग्रन्थान्तरे अस्यैव व्रणगजांकुश इति संज्ञा।

शिंगरफ, सौराष्ट्रमृत्तिका, रसौत, शुद्ध मैनशिल, सुवर्णभस्म, पारा, ताम्रभस्म, गन्धक, लोहभस्म, सेंधानमक, अतीस, चव्य, सरफोंका, वायविडंग, अजवायन, गजपीपल, कालीमिर्च,

आक की जड़, वरना की छाल, राल और हड़; इन सबको समभाग लेकर कड़ुए तेल में घोटकर गोलियां बनावे। यह रस नासूर, प्रवाहिका गण्डमाला, विचर्चिका, पुराना दुष्ट घाव, दाद, पूतिकर्ण, शिरोरोग, हाथ और पैरों की फूटन और दुःसाध्य भगन्दर, इन रोगों को शीघ्र ही इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सिंह हाथी को ॥ ३१-३४ ॥

ग्रन्थान्तर में इसको भगणगजांकुश कहते हैं। मात्रा १॥ रत्ती से ३ रत्ती तक।

चित्रविभाण्डक रस।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं कुमारीरसमर्दितम्। त्र्यहान्ते गोलकं कृत्वा ताम्रं तेन प्रलेपयेत् ॥ ३५ ॥ द्वयोस्समं भस्मपूर्णे भाण्डे रुद्ध्वा विपाचयेत्। द्वियामान्ते समुद्धृत्य स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत् ॥ ३६ ॥ जम्बीरस्य द्रवैः पिष्ट्वा रुद्ध्वा सप्तपुटे पचेत्। गुञ्जार्द्धं मधुनाज्येन लिह्याद्धन्ति भगन्दरम् ॥ ३७ ॥ मुषलीलशुनं चानु चारनालयुतं पिबेत्। कर्त्तव्यो मधुराहारो दिवास्वप्नश्च मैथुनम् ॥ ३८ ॥ वर्जयेच्छीतलाहारं रसे चित्रविभाण्डके ॥ ३९ ॥

शुद्ध पारा १ तोला और गन्धक २ तोले की कज्जली करे और घीकुवार के रस में तीन दिन घोटकर इसका गोला बनावे। ३ तोले शुद्ध ताम्र के पत्रों पर उसका लेप करे। इन पत्रों को शरावसंपुट में बन्द कर एक हांडी में रक्खे और ऊपर-नीचे मुद्रित कंडों की भस्म भरकर दोपहर तक अग्नि में पकावे। फिर ठंडा होने पर इसका चूर्ण कर जम्बीरी नींबू के रस में घोटकर शरावसंपुट में बन्दकर गजपुट में पकावे। इस प्रकार सात पुट दे। मात्रा १ रत्ती। अनुपान—शहद और घी। इस रस के सेवन करने से भगन्दर नष्ट होता है। इसके खाने के बाद मुसली और लहसुन के चूर्ण को काँजी में मिलाकर पीना चाहिए। इस चित्रविभाण्डक रस के सेवन करनेवाले मनुष्य को मीठा आहार करना चाहिए और दिन में सोना, मैथुन तथा ठंडे पदार्थों का सेवन त्याग देना चाहिए ॥ ३५-३९ ॥

तार्क्ष्यप्रयोग।

ताम्रपत्रं रविक्षीरे निर्गुण्डीस्वरसे तथा। त्रिकण्टजे स्नुहीरसे ताम्रं दग्ध्वा क्षिपेत्रिधा ॥ ४० ॥ रसस्यार्द्धपलं शुद्धं गन्धकस्य पलं तथा। कज्जल्यर्द्धेन जम्बीरप्लुतेन ताम्रतः पलम् ॥ ४१ ॥ परिलिप्यान्धमूषायां दद्यात् पञ्चपुटान् लघून्। संमर्द्य मधुसर्पिर्भ्यां लिहेद् गुञ्जार्द्धसम्मितम्। भगन्दरे सर्वभवे कार्य्यं सर्वव्रणेषु च ॥ ४२ ॥

४ तोले ताँबे के पत्रों को खूब गरम करके क्रम से मदार के दूध, सिन्दुवारी के रस, गोखरू के क्वाथ और थूहर के दूध में बुझावे। फिर शुद्ध पारा २ तोले और गन्धक ४ तोले लेकर कज्जली करे। इस कज्जली में १ तोले नींबू का रस मिलाकर ताँबे के पत्रों पर लेप करे। अन्धमूषा में बन्द करके पाँच लघुपुट देवे। इसको मधु और घी में मिलाकर ½ रत्ती की मात्रा में चाटने से यह भगन्दर और सब प्रकार के व्रणों को नष्ट करता है ॥ ४०-४२ ॥

भगन्दर में पथ्य।

सर्वत्र शालयो मुद्गा विलेपी जाङ्गलो रसः। पटोलं शिग्रुवेत्राग्रं पत्तूरो बालमूलकम् ॥ ४३ ॥ तिलसर्षपयोस्तैलं तिक्तवर्गो घृतं मधु। एतत्पथ्यं नरैः सेव्यं यथादोषं भगन्दरे ॥ ४४ ॥ आमेसंशोधनं लेपो लङ्घनं रक्तमोक्षणम्। पक्वे पुनः-शस्त्रविधिस्तथा क्षाराग्निकर्म च ॥ ४५ ॥

शालि चावल, मूँग, विलेपी (यवागू भेद), जङ्गली जीवों के मांस का रस, परवल, सहिजन, बेत की कोंपल, शालिञ्च, कच्ची मूली, तिल तैल सरसों का तेल, स्निग्धवर्ग, घी और शहद इनका दोषानुसार भगन्दर में सेवन करना चाहिए ॥ ४३–४५ ॥ भगन्दर की आमावस्था में संशोधन औषध लेप लङ्घन रक्तमोक्षण तथा पक्वावस्था में शस्त्र क्रिया क्षार कर्म अग्नि दाह विधि पूर्वक कराना हितकर है ।

भगन्दर में अपथ्य ।

विरुद्धान्यन्नपानानि विषमाशन मातपम् । व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरूणि च । संवत्सरं परिहरेद्यावद्रूढव्रणो नरः ॥ ४६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां भगन्दराधिकारः समाप्तः ।

विरुद्ध अन्नपान विषमभोजन धूप व्यायाम, मैथुन, कुश्ती, घोड़े आदि की पीठ पर सवारी और गुरु भोजन, इनका घाव भर जाने के बाद भी रोगी को एक वर्ष तक सेवन न करना चाहिए ॥ ४६ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधाया व्याख्यायां भगन्दराधिकार समाप्त ।

अथ विद्रध्यधिकारः ।

विद्रधि पर सामान्य चिकित्सा ।

जलौकापातनं शस्तं सर्वस्मिन्नेव विद्रधौ। मृदुर्विरेको लघ्वन्नं स्वेदः पित्तोद्भवं विना ॥ १ ॥

सब प्रकार के विद्रधिरोग में जोंक लगाना, हलकी जुलाब, लघु भोजन और स्वेदन हितकर हैं, किन्तु पित्तविद्रधि में स्वेदन न करना चाहिए ॥ १ ॥

स तेऽप्यूर्द्ध्वमधश्चैव मैरेयाम्लसुरासवैः । पेयो वरुणकादिस्तु मधुशिग्रुरसोऽथवा ॥ २ ॥

ऊर्ध्वमार्ग अथवा अधोमार्ग से प्रवृत्त पूय में अन्तर्विद्रधि के नाश के लिये मैरेय, काँजी, सुरा, आसव, वरुणादिगण का क्वाथ तथा मधुशिग्रु (मीठे सहिजन) का रस पीना चाहिए ॥ २ ॥

कज्जली योग ।

वरुणादिकषायेण रसगन्धककज्जली । भुक्ता निहन्ति माषैका बाह्यमन्तश्च विद्रधिम् ॥ ३ ॥

वरुणादि गण के क्वाथ के साथ पारा तथा गन्धक की कज्जली का सेवन करने से बाह्य तथा अन्तर्विद्रधि नष्ट होती है । मात्रा–२ रत्ती से ८ रत्ती तक ॥ ३ ॥

वरुणादि घृत ।

सिद्धं वरुणादिगणे विधिना तत्कल्के पाचितं सर्पिः । अन्तर्विद्रधिमुग्रं मस्तकशूलं हुताशमान्द्यञ्च ॥ ४ ॥ गुल्मानपि पञ्चविधान् नाशयतीदं यथाम्बु वायुसखम् । एतत्प्रातः प्रपिबेद् भोजनसमये निशास्येऽपि ॥ ५ ॥

वरुणादिगण के कल्क से विधिपूर्वक घृत पकाकर प्रात काल भोजन के समय और सन्ध्याकाल में सेवन कराने से अन्तर्विद्रधि, शिरोवेदना, मन्दाग्नि तथा पाँचों गुल्म नष्ट होते हैं । मात्रा–आधा तोला ॥ ४-५ ॥

प्रियङ्ग्वाद्य तैल ।

प्रियङ्गुधातकी लोध्रकट्फलं तिनिशत्वचम् । एतैस्तैलं विपक्तव्यं विद्रधौ व्रणरोपणम् ॥ ६ ॥

प्रियङ्गु, धाय के फूल, लोध, कट्फल जलवेतस की छाल, इनके कल्क से विधिपूर्वक तिल का तैल पकावे। यह तैल विद्रधि में व्रण का रोपण करता है ॥ ६ ॥

वातविद्रधि की चिकित्सा।

वातघ्नमूलकल्कैस्तु वसातैलघृतान्वितैः। सुखोष्णो बहुलो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ॥ ७ ॥

मांसक्वाथे यत्तैलं निःसरति सा वसा इति भानुः।

वात की विद्रधि में वातनाशक दशमूलादि के कल्क में वसा, तेल या घी मिलाकर सुखोष्ण (सुहाता गरम) मोटा लेप करना चाहिए ॥ ७ ॥

मांस के क्वाथ में तेल निकलता है उसको वसा कहते हैं, यह भानुजी का मत है।

स्वेदोपनाहाः कर्त्तव्याः शिग्रुमूलसमन्विताः। यवगोधूममुद्गैश्च सिद्धपिष्टैश्च लेपयेत् ॥ विलीयते क्षणेनैवमपक्वश्चैव विद्रधिः ॥ ८ ॥

यवादिस्विन्नं कृत्वा पिष्ट्वा पुनरपि मनागुष्णं कृत्वा लेपनम्।

सहिजन के मूल की छाल से स्वेदन और उपनाह करना चाहिए। और जौ, गेहूँ और मूँगों को उबालकर पानी में पीसकर गरम करके लेप करने से क्षणमात्र में कच्ची विद्रधि बैठ जाती है। उबाले हुए जौ आदि को पीस कर फिर किंचित् उष्ण करके लेप करना चाहिए ॥ ८ ॥

पुनर्नवादारुविश्वदशमूलाभयाम्भसा। गुग्गुलं रुबुतैलं वा पिबेन्मारुतविद्रधौ ॥ ९ ॥

गदहपुरैना, देवदारु, सोंठ, दशमूल और हड़ के काढ़े में गूगुल या एरण्ड का तेल मिलाकर वातविद्रधि में पीना चाहिए ॥ ९ ॥

पित्तविद्रधि की चिकित्सा।

पैत्तिके शर्करालाजमधुकैः सारिवायुतैः। प्रदिह्यात् क्षीरपिष्टैर्वा पयस्योशीरचन्दनैः ॥ १० ॥

पैत्तिक विद्रधि में शक्कर, धान की खील, मुलेठी और अनन्तमूल का अथवा क्षीरकाकोली, खस और सफ़ेद चन्दन को दूध में पीसकर लेप करना चाहिए ॥ १० ॥

पञ्चवल्कलकल्केन घृतमिश्रेण लेपनम्। यष्ट्याह्वशारिवादूर्वानलमूलैः सचन्दनैः ॥ क्षीरपिष्टैः प्रलेपस्तु पित्तविद्रधिनाशनः ॥ ११ ॥

पीपल, बरगद पाकड़, गूलर और बेंत की छाल के कल्क में घी मिलाकर लेप करना तथा मुलहठी, अनन्तमूल, दूब, नरसल की जड़ और लालचन्दन को दूध में पीसकर लेप करना पित्तविद्रधि को नष्ट करता है ॥ ११ ॥

श्लेष्मविद्रधि की चिकित्सा।

इष्टकासिकतालोहगोशकृत्तुषपांशुभिः। मूत्रपिष्टैश्च सततं स्वेदयेत् श्लेष्मविद्रधिम् ॥ १२ ॥

गोमूत्रपिष्टमिष्टकादिकमुत्स्विद्य एरण्डादिपत्रैर्बद्ध्वा स्वेदः।

ईंट, बालू, लोहचूर्ण, गौ का गोबर और यवों का तुष; इनको मूत्र में पीसकर और गरम करके कफविद्रधि का बार-बार स्वेदन करना चाहिए। अर्थात् ईंट के चूर्ण आदिकों को गोमूत्र में पीसकर, और गरम करके अरण्ड के पत्तों से लपेटकर विद्रधि के ऊपर बाँधना चाहिए ॥ १२ ॥

रक्तज और आगन्तुक विद्रधि की चिकित्सा।

पित्तविद्रधिवत् सर्वां क्रियां निरवशेषतः। विद्रध्योः कुशलः कुर्याद्रक्तागन्तुनिमित्तयोः ॥ १३ ॥

रक्तज और आगन्तुक विद्रधियों में चतुर वैद्य को पित्तविद्रधि की-सी ही संपूर्ण क्रिया करनी चाहिए ॥ १३ ॥

सामन्यविद्रधि की चिकित्सा ।

शोभाञ्जनकनिर्यूहो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः । अचिराद्विद्रधिं हन्ति प्रातः प्रातर्निषेवितः ॥ १४ ॥

सहिंजने के गोंद में हींग और सेंधानमक मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करने से शीघ्र ही विद्रधि का नाश हो जाता है ॥ १४ ॥

अन्तर्विद्रधि की चिकित्सा ।

शिग्रुमूलं जले धौतं दरपिष्टं प्रगालयेत् । तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रधिं नरः ॥ १५ ॥

सहिजने की जड़ को जल में धोकर पीस ले और वस्त्र में डालकर उसका रस निचोड़ ले फिर उसमें शहद मिलाकर पीने से अन्तर्विद्रधि नष्ट हो जाती है ॥ १५ ॥

अपक्वविद्रधि की चिकित्सा ।

श्वेतवर्षाभुवो मूलं मूलं वरुणकस्य च । जलेन क्वथितं पीतमपक्वं विद्रधिं जयेत् ॥ १६ ॥

सफेद साँठी की जड़ और वरना की जड़ का क्वाथ पीने से अपक्व विद्रधि नष्ट होती है ॥ १६ ॥

शमयति पाठामूलं क्षौद्रयुतं तण्डुलाम्भसा पीतम् । अन्तर्भूतं विद्रधिमुद्धतमाश्वेव मनुजस्य ॥ १७ ॥ अपक्वे त्वेतदुद्दिष्टं पक्वे तु व्रणवत् क्रिया ॥ १८ ॥

पाढ़ी की जड़ के चूर्ण में शहद मिलाकर चावल के धोवन के साथ पीने से अन्तर्विद्रधि शीघ्र नष्ट होती है । अपक्व विद्रधि में उपयुक्त चिकित्सा करनी चाहिए और पकी हुई विद्रधि की व्रणवत् चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १७-१८ ॥

विद्रधि में पथ्य ।

आमावस्थे रेचनानि लेपः स्वेदोरक्तमोक्षणम् जीर्णश्यामाककलमकुलत्थलशुनानि च । घृतं तैलं मुद्गरसो विलेपी धन्वरसाः ॥ १९ ॥ रक्तशिग्रु कारवेल्लं पटोलं हिमवालुका । चन्दनं तप्तशीताम्बु सर्वञ्चापि व्रणोदितम् ॥ २० ॥ नराणां विद्रधि व्याधा यथावस्थं यथामजम् । पथ्यान्येतानि सर्वाणि विदिष्ट विमर्षिभीः ।

विरेचन लेप स्वेदन रक्तमोक्षण पुराने श्यामाक (सावाँ), कलम, कुलथी आदि धान्य, लहसुन, घी, तैल, मूँग का यूष, विलेपी, जांगल मांसरस, लाल सहिंजना, करेला, परवल, कपूर, चन्दन, उबालकर ठण्डा किया हुआ जल तथा व्रण में कहा हुआ पथ्य विद्रधि में हितकारक है ॥ १९-२० ॥

विद्रधि में अपथ्य ।

शोथिनं यान्यपथ्यानि व्रणिनामहितानि च । क्रमादामे च पक्वे च विद्रधौ वर्जयेन्नरः ॥ २१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां विद्रध्यधिकारः समाप्तः ।

शोथ एवं व्रण के रोगियों के लिये जो अपथ्य हैं वही क्रमशः आमविद्रधि एवं पक्वविद्रधि में अपथ्य हैं अर्थात् शोथ में जो अपथ्य हैं वह आम (कच्ची) विद्रधि में अपथ्य है । और जो व्रण में हानिकारक हैं वह पक्व विद्रधि के लिये भी अपथ्य हैं ॥ २१ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां विद्रध्यधिकारः समाप्तः ।

अथ उरुस्तम्भाधिकारः ।

ऊरुस्तम्भ में क्रियाक्रम ।

श्लेष्मणः क्षपणं यत्स्यान्न च मारुतकोपनम् । तत्सर्वं सर्वदा कार्य्यमूरुस्तम्भस्य भेषजम् ॥ १ ॥

जिससे कफ नष्ट हो और वायु कुपित न हो ऐसी समस्त चिकित्साएँ ऊरुस्तम्भ रोग में करनी चाहिए ॥ १ ॥

रूक्षणाद्वातकोपश्चेन्निद्रानाशार्तिपूर्वकः । स्नेहस्वेदक्रमस्तत्र कार्यो वातामयापहः ॥ २ ॥

यदि रूक्षक्रिया से निद्रानाश आदि लक्षणयुक्त वात कुपित हो तो वातरोगनाशक स्नेह स्वेद आदि द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २ ॥

प्रतारयेत् प्रतिस्रोतो नदीं शीतजलां शिवाम् । सरश्च विमलं शीतं स्थिरतोयं पुनः पुनः ॥ ३ ॥

ऊरुस्तम्भ के रोगी को शीतल जलवाली नदी में प्रवाह के विरुद्ध तैरने का अथवा जिस तालाब का जल स्वच्छ, शीतल तथा स्थिर हो उसमें बारम्बार तैरने की अनुमति देनी चाहिए ॥ ३ ॥

तस्य न स्नेहनं कार्य्यं न बस्तिर्न विरेचनम् । सर्वो रूक्षक्रमः कार्य्यस्तत्रादौ कफनाशनः ॥ पश्चाद्वातविनाशाय कृत्स्नः कार्य्यः क्रियाक्रमः ॥ ४ ॥

ऊरुस्तम्भ के रोगी को स्नेहन, बस्तिकर्म और विरेचन वर्जित है । पहले कफनाशक रूखी चिकित्सा करके फिर अन्य वातविनाशक सब प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ४ ॥

शिलाजतुं गुग्गुलं वा पिप्पलीमथ नागरम् । ऊरुस्तम्भे पिबेन्मूत्रैर्दशमूलीरसेन वा ॥ ५ ॥

ऊरुस्तम्भ रोग में शिलाजीत, गूगुल, पीपरि अथवा सोंठ को गोमूत्र या दशमूल के काढ़े के साथ पीना चाहिए ॥ ५ ॥

भल्लातकामृताशुण्ठीदारुपथ्यापुनर्नवाः । पञ्चमूलीद्वयोन्मिश्रा ऊरुस्तम्भनिबर्हणः ॥ ६ ॥

भिलावाँ, गिलोय, सोंठ, देवदारु, हड़, माँठी और दोनों पञ्चमूल (अर्थात् दशमूल); इनका क्वाथ पीने से ऊरुस्तम्भ रोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलभल्लातकाथ एव वा । कल्को वा समधुर्देय ऊरुस्तम्भविनाशनः ॥ ७ ॥

पीपरि, पीपलामूल और भिलावाँ, इनके काथ अथवा कल्क को शहद के साथ सेवन करने से ऊरुस्तम्भ रोग का नाश होता है ॥ ७ ॥

त्रिफला चव्यकटुकं ग्रन्थिकं मधुना लिहेत् । ऊरुस्तम्भविनाशाय पुरं मूत्रेण वा पिबेत् ॥ ८ ॥ अत्र कटुकं त्रिकटु ।

हड़, बहेरा, आँवला, चव्य, सोंठ, मिर्च, पीपरि और पीपलामूल ; इनको समभाग ले चूर्णकर शहद के साथ चाटे अथवा गोमूत्र के साथ गूगुल का सेवन करे तो ऊरुस्तम्भ रोग नष्ट हो ॥ ८ ॥

लिह्याद्वा त्रिफलाचूर्णं क्षौद्रेण कटुकायुतम् सुखाम्बुना पिबेद्वापि चूर्णं षड्धरणं नरः ॥ ९ ॥

षड्धरणो योग उक्त एव वातव्याधौ अत्र दशमूलीरसेन गुग्गुलुः सिद्धफल ।

त्रिफला और कुटकी का चूर्ण शहद के साथ चाटे अथवा सुखोष्ण जल के साथ षड्धरण चूर्ण का पान करे । षड्धरण योग वातरोग में कहा ही है । ऊरुस्तम्भ में दशमूल के क्वाथ के साथ गूगुल का सेवन करना लाभदायक सिद्ध हुआ है ॥ ९ ॥

पिप्पलीवर्द्धमानो[1] वा माक्षिकेण गुडेन वा। स्नेहवर्जी पिबेदत्र चूर्णं षड्रूपणं नरः॥ १०॥

वर्धमान[1] पीपरि का शहद या गुड के साथ सेवन करे अथवा षड्रूषण (सोंठ, मिर्च, पीपरि, पीपलामूल, चीता की जड़ और चव्य) के चूर्ण का सेवन करे। इस योग में घृत, तेल आदि पदार्थों का सेवन निषिद्ध है॥ १०॥

हितमुष्णाम्बु वा तद्वत् पिप्पल्यादिगणैः कृतम्। ऊरुस्तम्भे प्रशंसन्ति गण्डीरारिष्टमेव वा॥ ११॥

ऊरुस्तम्भरोग में पिप्पल्यादिगण का चूर्ण उष्ण जल के साथ तथा गण्डीरारिष्ट अथवा मँजीठ और नीम का सेवन करना हितकर है॥ ११॥

क्षौद्रसर्षपवल्मीकमृत्तिकासंयुतं भिषक्। गाढमुत्सादनं कुर्यादूरुस्तम्भे प्रलेपनम्॥ १२॥

धुस्तूरपत्ररसेन स्नुहीपत्ररसेन वा सर्वं पिष्ट्वा गाढं प्रलिप्य वस्त्रादिनावेष्ट्य बध्नीयात्।

शहद, सरसों और वल्मीकमृत्तिका (बाँबी की मिट्टी); इनको धतूरे के पत्तों के रस में या थूहर के पत्तों के रस में पीसकर ऊरुस्तम्भ में गाढ़ा-गाढ़ा लेप करके ऊपर से पट्टी बाँध देनी चाहिए॥ १२॥

रास्नादि क्वाथ।

रास्ना श्यामाकपथ्या मरिचमिसिशिवा बिल्वमज्जाश्वगन्धा यासच्छिन्नाजमोदाः सुमुखमतिविषाव्द्धदारो बृहत्यौ। शुण्ठी तिक्ता यमानी सहचरचविकैरण्डदार्वीभकृष्णा - ऊरुस्तम्भामवातकफपवनरुजं दण्डकांश्चाशु हन्यात्॥ १३॥

रास्ना, श्यामालता (कालीसर), हड़, कालीमिर्च, सौंफ, आँवला, बेलगिरी, असगन्ध, जवासा, गिलोय, अजमोदा, तुलसी, अतीस, विधारा की जड़, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, सोंठ, कुटकी, अजवायन, कटसरैया की जड़, चव्य, अरण्डी की जड़, दारुहल्दी और गजपीपल, सब मिलाकर २ तोले। पाक के लिये जल ३२ तोले, बचा हुआ क्वाथ ८ तोले। इस क्वाथ के पीने से ऊरुस्तम्भ, आमवात, कफरोग, वातरोग तथा दण्डक रोग नष्ट होता है॥ १३॥

कृष्णधुस्तूरमूलञ्च फलञ्च खाखसाभिधम्। रसोनमरिचाजाजीजयन्तीशिग्रुसर्षपाः॥ १४॥ सर्वाण्येतानि मूत्रेण पिष्टाण्युष्णीकृतानि च। गाढं प्रलेपयेद् वैद्य आढ्यवाते भयावहे॥ १५॥

काले धतूरे की जड़, पोस्त के डोंडे, लहसुन, कालीमिर्च, काला जीरा, जयन्ती के पत्ते, सहिंजने की छाल, सरसों, इन्हें गोमूत्र में अच्छी तरह पीसकर गरम कर ऊरुस्तम्भ में गाढ़ा लेप करना चाहिए॥ १४—१५॥

अष्टकट्वरतैल।

पलाभ्यां पिप्पलीमूलनागराद‍ष्टकट्वरः। तैलप्रस्थः समो दध्ना गृध्रस्यूरुग्रहापहः। अष्टकट्वरतैलेऽस्मिन् तैलं सार्षपमिष्यते॥ १६॥

सरसों का तेल १२८ तोले, दही १२८ तोले, कट्वर (घृतयुक्त दही की छाछ) १२ सेर ६४ तोले। कल्क के लिये—पीपलामूल तथा सोंठ मिलाकर ८ तोले (निश्चल के मत से प्रत्येक ८ तोले) विधिपूर्वक तैल सिद्ध कर प्रयोग करने से गृध्रसी तथा ऊरुस्तम्भ दोनों नष्ट होते हैं॥ १६॥

कुष्ठादि तैल।

कुष्ठश्रीवेष्टकोदीच्यं सरलं दारु-

[1] प्रतिदिन एक-एक बढ़ाकर पीपरि का सेवन करना।

केशरम्। अजगन्धाश्वगन्धा चा तैलं तैः सार्षपं पचेत् ॥ १७ ॥ सक्षौद्रं मात्रया तस्मादूरुस्तम्भार्दितः पिबेत् ॥ १८ ॥

सरसों का तेल ४ सेर, जल १६ सेर। कल्क के लिये—कूठ, श्रीवेष्टक (नवनीत खोटी गन्धाबिरोजा), गन्धमाला, चीड़ की लकड़ी, देवदार, नागकेशर, अजमोदा, असगन्ध—प्रत्येक दो २ छटांक। इसे नियमपूर्वक सिद्ध कर शहद के साथ योग्य मात्रा में उरुस्तम्भ के रोगी को पीना चाहिए। मात्रा ३ माशे से ६ माशे तक ॥ १७—१८ ॥

सैन्धवादि तैल।

द्वे पले सैन्धवात् पञ्च शुण्ठ्या ग्रन्थिकचित्रकात्। द्वे द्वे भल्लातकास्थीनि विंशतिर्द्वे तथाढके ॥ १९ ॥ आरनालात् पचेत् प्रस्थं तैलमेतैरपत्यदम्। गृध्रस्यूरुग्रहार्शोर्तिसर्ववातविकारनुत् ॥ २० ॥

तिलतैल १२८ तोले, कांजी १० सेर ६४ तोले। कल्क के लिये—सेंधानमक ८ तोले, सोंठ २० तोले, पीपलामूल ८ तोले, भिलावें के बीज २० नग। विधिपूर्वक पकाकर मालिश करने से गृध्रसी, उरुस्तम्भ, बवासीर तथा अन्य वातव्याधि नष्ट होती हैं ॥ १९—२० ॥

षड्धरण चूर्ण।

चित्रकेन्द्रयवाः पाठा कटुकातिविषाभयाः। महाव्याधिप्रशमनो योगः षड्धरणः स्मृतः ॥ २१ ॥

चित्रक (चीता), इन्द्रजौ, पाढ़, कुटकी, अतीस, हरड़, हरएक तीन-तीन माशे। इस चूर्ण को वातरक्त में प्रयुक्त कराने से लाभ होता है ॥ २१ ॥

गुञ्जाभद्र रस।

निष्कत्रयं शुद्धसूतं निष्कद्वादशगन्धकम्। गुञ्जाबीजञ्च षड्निष्कं निष्कं जैपालबीजकम् ॥ २२ ॥ जयाम्बीरधुस्तूरकाकमाचीद्रवैर्दिनम्। भावयित्वा वटीं कुर्याद्घृतैर्वल्लकसम्मिताम् ॥ २३ ॥ गुञ्जाभद्रो रसो नाम्ना पिंगुसैन्धवसंयुतः। शमयत्येव नो चित्रमूरुस्तम्भं सुदुर्जयम् ॥ २४ ॥

शुद्ध पारा ३ तोले, गन्धक १२ तोले, घुँघुची ६ तोले, जमालगोटे के बीज १ तोला; इन सबको एकत्र कर क्रम से एक-एक दिन जयन्ती, नींबू, धतूरा और मकोय के रस में पृथक्-पृथक् घोटे। फिर घी की भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। इस गुञ्जाभद्र रस को हींग और सेंधानमक के साथ सेवन करे तो यह कठिन से कठिन ऊरुस्तम्भ रोग को नष्ट करता है। इसमें आश्चर्य नहीं है ॥ २२—२४ ॥

ऊरुस्तम्भ में पथ्य।

रूक्षः सर्वो विधिः स्वेदः कोद्रवा रक्तशालयः। यवाः कुलत्थाः श्यामाका उद्दालाश्च पुरातनाः ॥ २५ ॥ शोभाञ्जनं कारवेल्लं पटोलं लशुनानि च। मुनिपण्णः काकमाची वेत्राग्रं निम्बपल्लवम् ॥ २६ ॥ पत्तूरो वास्तुकं पथ्यावार्ताकुस्तप्तवारि च शम्पाकशाक पिण्याकस्तक्रारिष्टमधूनि च ॥ २७ ॥ कटुतिक्तकषायाणि क्षारसेवा गवाञ्जलम्। व्यायामं च यथाशक्ति स्थलस्याक्रमणानि च ॥ २८ ॥ स्वच्छे ह्रदे सन्तरणं मतिस्रोतोनदीषु च। तत्पथ्यं नरैः सेव्यमूरुस्तम्भविकारिभिः ॥ २९ ॥

सब रूक्ष क्रियाएँ, स्वेदन, पुराने कोदों, लाल शालिचावल, जौ, कुलथी, श्यामाक धान्य (सावाँ), उद्दालक धान्य, सहिजना, करेला, परवल, लहसुन, चौपतियाँ, मकोय, बेत का कोंपल, नीम के पत्ते, शालिञ्चशाक

बथुआ, दह, बैंगन गरम जल, अमलतास के पत्तों का शाक, तिलकल्क, छाछ, अरिष्ट, शहद, चरपरे, कड़वे एवं कषाय द्रव्य, क्षार-द्रव्यों का सेवन, गोमूत्र, व्यायाम, यथाशक्ति स्थल पर चलना, स्वच्छ तालाब में तैरना, नदी में उसके बहाव के विरुद्ध तैरना, ये ऊरुस्तम्भ के रोगियों के लिये पथ्य हैं ॥ २८–२९ ॥

अपथ्य।

गुरुशीतद्रवस्निग्धविरुद्धासात्म्यभोजनम्। विरेचनं स्नेहनं च वमनं रक्तमोक्षणम् ॥ ३० ॥ बस्तिं च न हितं माहुरूरुस्तम्भविकारिणाम् ॥ ३१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामूरुस्तम्भाधिकारः समाप्तः।

गुरु, शीत, द्रव, अत्यन्त चिकना, विरुद्ध एवं असात्म्य (विपरीत) भोजन, विरेचन, स्नेहन, रक्तनिर्हरण (फस्द), और बस्तिकर्म ये ऊरुस्तम्भ में हानिकारक हैं ॥ ३०–३१ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायामूरुस्तम्भाधिकारः समाप्तः।

अथ भग्नाधिकारः।

आदौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेच्छीतलाम्बुना। पङ्केनालेपनं कार्य्यं बन्धनञ्च कुशान्वितम् ॥ १ ॥ सुश्रुतोक्तं तु भग्नेषु वीक्ष्य बन्धादिमाचरेत्। अवनामितमुन्नद्ध दुन्नतञ्चावपीडयेत् ॥ २ ॥ अञ्छेदतिक्षिप्तमधोगतञ्चोपरि वर्त्तयेत्। आलेपनार्थं मञ्जिष्ठा मधुकं चाम्लपेषितम् ॥ ३ ॥

पहले टूटे हुये अंग को पहचानकर शीतल जल का सेवन करे और कीचड़ का लेप करके कदम्ब, गूलर आदि की छाल को भग्नस्थान पर रखकर पट्टी से बाँध दे। भग्नाधिकार में सुश्रुत के कहे हुए बन्धनविधान का अवलोकन करके उसका प्रयोग करे। जो हड्डी आदि झुक गई हो उसे ऊपर उठाना और जो ऊपर को उठ आई हो उसे नीचे बैठा देना चाहिए। जो हड्डी इधर उधर हट गई हो उसे खींचकर ठिकाने बैठा दे और जो नीचे को हट गई हो उसे ऊपर उठा दे तथा मँजीठ और मुलेठी को काँजी में पीसकर उसपर लेप कर दे ॥ १-३ ॥

शतधौतघृतोन्मिश्रं शालिपिष्टं च लेपनम्। सप्तरात्रात् सप्तरात्रात् सौम्येष्वृतुषु मोक्षणम् ॥ ४ ॥ कर्तव्यं स्यात् त्रिरात्राच्च तत्राग्नेयेषु जानता। काले च समशीतोष्णे पञ्चरात्राद्विमोक्षयेत् ॥ ५ ॥

चाँवलों के चूर्ण (आटा) में सौ बार का धोया हुआ घी मिलाकर टूटे हुए पर लेप करना चाहिए। सात-सात दिन के बाद सौम्य (शरद्) ऋतु में पट्टी खोलनी चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में ३ दिन के पश्चात् और समशीतोष्ण ऋतु में पाँच दिन के पश्चात् पट्टी आदि खोलनी चाहिए ॥ ४-५ ॥

न्यग्रोधादिकषायञ्च सुशीतं परिषेचने। पञ्चमूलीविपक्वन्तु क्षीरं दद्यात् सवेदने ॥ ६ ॥

न्यग्रोधादिगण के काढ़े को ठंढा करके टूटे स्थान पर सींचना चाहिए, अथवा अधिक पीड़ा हो तो पंचमूल डालकर पकाये हुए दूध से सींचना चाहिए ॥ ६ ॥

भग्न में पथ्य।

सुखोष्णमत्रचार्य्यं वा चक्रतैलं विजानता। मांसं मांसरसः सर्पिः क्षीरं यूषः

१ कदम्बोदुम्बराश्वत्थसर्जार्जुनपलाशजैः। गुरलबर्षैः सुप्रतिष्ठभैर्वंशकलैः सकलैरपि। कुशाद्यैः समं बन्धं पादस्योपरि योजयेत् ॥

सतीनजः ॥ बृंहणं चान्नपानं स्याद्देयं भग्नाय जानता ॥ ७ ॥

कोल्हू के तेल (कची घाणी के तेल) को किंचित् गरम करके सेवन करे अथवा मांस मांसरस, घी, दूध और मटर का यूष तथा अन्य बृंहण अन्न-पान भग्नरोगी को सेवन करावे ॥ ७ ॥

गृष्टिक्षीरं ससर्पिष्कं मधुरौषधसाधितम्। शीतलं लाक्षया युक्तं प्रातर्भग्नः पिबेन्नरः ॥ ८ ॥

एक बार की ब्याई हुई गौ के दूध में घी मिलाकर मधुरादि गण की ओषधियों से सिद्ध करे और ठंडा करके उसमें लाख का चूर्ण मिलाकर प्रातःकाल पीवे तो भग्नरोग दूर हो ॥ ८ ॥

सघृतेनास्थिसंहारं लाक्षागोधूममर्जुनम्। सन्धिमुक्तेऽस्थिभग्ने च पिबेत् क्षीरेण मानवः ॥ ९ ॥

सन्धि के पास हुए अस्थिभंग में हडजोड, लाख, गेहूँ और अर्जुन की छाल; इनके चूर्ण में घी मिलाकर पीना चाहिए ॥ ९ ॥

रसोनादि योग।

रसोनमधुलाक्षाज्यसिताकल्कं समश्नताम्। छिन्नभिन्नच्युतास्थीनां सन्धानमचिराद्भवेत् ॥ १० ॥

लहसुन, शहद, लाख, घी और शकर के कल्क का सेवन करने से छिन्न-भिन्न और टूटी हुई हड्डी शीघ्र ही जुड़ जाती है ॥ १० ॥

पीतवराटिकाचूर्णं द्विगुञ्जं वा त्रिगुञ्जकम्। अपक्वक्षीरपीतं स्यादस्थिभग्नप्ररोहणम् ॥ ११ ॥

पीली कौड़ी की भस्म को ३ या ४ रत्ती की मात्रा में कच्चे दूध के साथ पीने से टूटी हुई हड्डी जुड़ जाती है ॥ ११ ॥

क्षीरं सलाक्षामधुकं ससर्पिः स्याज्जीवनीयश्च सुखावहश्च। भग्नः पिबेत् त्वक् पयसार्जुनस्य गोधूमचूर्णं सघृतेन वाथ ॥ १२ ॥

लाख और मुलेठी को दूध के साथ और जीवनीयगण की ओषधियों को घी के साथ सेवन करने से अथवा अर्जुन की छाल को दूध के साथ और गेहूँ के चूर्ण को घी के साथ सेवन करने से भग्नरोग दूर हो जाता है ॥ १२ ॥

लाक्षागुग्गुलु।

लाक्षास्थिसंहृत्ककुभाश्वगन्धाश्चूर्णीकृता नागबला पुरश्च। सम्भग्नमुक्तास्थिरुजं निहन्यादङ्गानि कुर्यात् कुलिशोपमानि ॥ १३ ॥

अतोऽन्यत्रोपदिष्टत्वात्तुल्यश्चूर्णैश्च गुग्गुलुः।

लाख, हडजोड़, अर्जुन की छाल, असगन्ध, गुलशकरी और गूगुल; इनकी गोली बनाकर सेवन करे तो भग्न और मुक्तास्थि (मोच आना) की पीडा दूर हो तथा अङ्ग वज्र के समान दृढ़ हों ॥ १३ ॥

ग्रन्थान्तर में उपदिष्ट होने के कारण चूर्ण के समभाग गूगुल डालना चाहिए।

आभागुग्गुलु।

आभाफलत्रिकव्योपैः सर्वैरेभिः समीकृतैः। तुल्यो गुग्गुलुरायोज्यो भग्नसन्धिप्रसाधकः ॥ १४ ॥

बबूल की छाल, हड, बहेडा, आँवला, सोंठ, पीपरि और काली मिर्च; इनके समभाग चूर्ण के बराबर गूगुल मिलाकर गोली बनावे। इसके सेवन करने से टूटी हुई हड्डी जुड़ जाती है ॥ १४ ॥

सव्रणस्य तु भग्नस्य व्रणं सर्पिर्मधूत्तरैः। प्रतिसार्य्य कषायैश्च शेषं भग्नवदाचरेत् ॥ १५ ॥ भग्नं नैति यथा पाकं

मयतेत् तथा भिषक् । वातव्याधिविनिर्दिष्टान् स्नेहानत्र प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥

घावयुक्त भग्नवाले रोगी के घाव को घी और शहद मिले हुए काढ़ों से धोकर पश्चात् भग्न की चिकित्सा करे। जिस उपाय से टूटा हुआ पके नहीं वही उपाय वैद्य को करना चाहिए। वात-व्याधि में कहे हुए तेल आदि का भी भग्नरोग में प्रयोग करना चाहिए ॥१५-१६॥

गन्धतैल।

रात्रौ रात्रौ तिलान् कृष्णान् वासयेदस्थिरे जले । दिवादिवैवं संशोष्य क्षीरेण परिभावयेत् ॥ १७ ॥ तृतीयं सप्तरात्रं तु भावयेन्मधुकाम्बुना । ततः क्षीरं पुनः पीतान्लुप्कान् सूक्ष्मान् विचूर्णयेत् ॥ १८ ॥ काकोल्यादिं सयष्ट्याह्वं मञ्जिष्ठां सारिवां तथा । कुष्ठं सर्जरसं मांसीं सुरदारु सचन्दनम् ॥ १९ ॥ शतपुष्पाश्च संचूर्ण्य तिलचूर्णानि योजयेत् । पीडनार्थं च कर्त्तव्यं सर्वगन्धैः शृतं पयः ॥ २० ॥ चतुर्गुणेन पयसा तत्तैलं पाचयेत् पुनः । एलामंशुमतीं पत्रं जीवन्तीं तुरगं तथा ॥ २१ ॥ लोध्रं प्रपौण्डरीकञ्च तथा कालानुसारिवाम् । शैलेयकं क्षीरशुक्लामनन्तां समधूलिकाम् ॥ २२ ॥ पिष्ट्वा शृङ्गाटकञ्चैव भागुक्तान्यौषधानि च । एभिस्तद्विपचेत् तैलं शास्त्रविन्मृदुनाग्निना ॥ २३ ॥ एतत् तैलं सदा पथ्यं भग्नानां सर्वकर्मसु। आक्षेपके पक्षघाते तालुशोपे तथार्दिते ॥ २४ ॥ मन्यास्तम्भे शिरोरोगे कर्णशूले हनुग्रहे । बाधिर्य्ये तिमिरे चैव ये च स्त्रीषु क्षयंगताः ॥ २५ ॥ पथ्यं पाने तथाभ्यङ्गे नस्ये वस्तिषु भोजने । ग्रीवास्कन्धोरसां वृद्धिरनेनैवोपजायते ॥ २६ ॥ मुखञ्च पद्मप्रतिमं ससुगन्धिसमीरणम् । गन्धतैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ॥ २७ ॥ राजार्हमेतत् कर्त्तव्यं राज्ञामेव विचक्षणैः । तिलचूर्णसमं त्वत्र मिलितं चूर्णमिष्यते ॥ २८ ॥

तिलों को वस्त्र की पोटली में बाँधकर बहते हुए नदी आदि के जल में रात्रि भर रक्खे और प्रातःकाल निकालकर धूप में सुखाये। इस प्रकार सात दिन करे। पश्चात् रात्रि में दूध में भिगोये और दिन में धूप में सुखाये। यह क्रिया भी सात दिन करे। तदनन्तर मुलहठी के क्वाथ में रात भर भिगोकर दिन में धूप में सुखावे। इस प्रकार सात दिन तक करे। फिर एक रात्रि दूध में भिगोकर सुखा ले और तुष अलग करके उनका महीन चूर्ण कर ले। काकोल्यादिगण, मुलहठी, मजीठ, अनन्तमूल, कूट, राल, जटामांसी, देवदार, लालचन्दन और सौंफ; इनका चूर्ण बनाकर पूर्व किये हुए तिलों के चूर्ण में मिलावे। पश्चात् सब गन्धों के द्वारा सिद्ध किये हुए दूध में उस चूर्ण को गीला करके कोल्हूयन्त्र द्वारा तैल निकलवा ले। यह तेल २ सेर। पाकार्थ जल ८ सेर। कल्कार्थ द्रव्य—छोटी इलायची, शालिपर्णी, तेजपात, जीवन्ती, असगन्ध, लोध्र, पुंडरिया, तगर, भूरिछरीला, क्षीरविदारी, अनन्तमूल, मूर्वा, सिंघाड़े तथा पूर्वोक्त काकोल्यादिगण से लेकर सौंफ तक की सब ओषधियाँ मिलाकर आध सेर; इनके कल्क द्वारा मन्द अग्नि से तेल सिद्ध करे। यह तेल भग्नरोगी के लिए सब कामों में पथ्य है। आक्षेपवायु, पक्षाघात, तालुशोष, अर्दित, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, कर्णशूल, हनुग्रह, बधिरता, तिमिर और क्षीणता आदि रोगवालों को यह तेल पीने में, मालिश में, नस्य और वस्तिक्रिया में तथा भोजन में देना हितकर है। इसके सेवन से गला, छाती और कन्धों की बढ़ती होती है और मुख कमल के तुल्य सुगन्धियाला हो जाता है। यह गन्ध-

तेल सब प्रकार के वायुरोगों को नष्ट करता है। यह तेल राजाओं के योग्य है। तिलचूर्ण के बराबर काकोल्यादि का चूर्ण लेना चाहिए॥ १७-२८॥

भग्नरोग में निषिद्ध।

लवणं कटुकं क्षारमम्लं मैथुनमातपम्। व्यायामञ्च न सेवेत भग्नो रूक्षान्नमेव च॥ २९॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां भग्नाधिकारः समाप्तः।

नमकीन, कडुई और खट्टी वस्तुएँ, क्षार, स्त्रीप्रसङ्ग, धूप, कसरत और रूखा अन्न; इनका भग्नरोगी सेवन न करे॥ २९॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां भग्नाधिकार समाप्त।

अथ व्रणशोथाधिकारः।

व्रणशोथ में क्रियाक्रम।

आदौ विम्लापनं कुर्याद् द्वितीयमवसेचनम्। तृतीयमुपनाहं तु चतुर्थी पाटनक्रियाम्॥ १॥ पञ्चमं शोधनं कुर्यात् षष्ठं रोपणमिष्यते। एते क्रमा व्रणस्योक्ताः सप्तमो वैकृतापहः॥ २॥

विम्लापयतीति विम्लापनं कर्त्तर्य्यनट्, एतेन लङ्घनस्वेदप्रलेपादीनां ग्रहणमिति भानुदासः।

पहले व्रणशोथ में विम्लापन कर्म अर्थात् शोथ को मिटानेवाले लेप, परिषेकादि क्रियाओं को करना चाहिए। इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि पहले अंगुष्ठ आदि से मर्दन कर शोथ को मुलायम कर दे जिससे रक्त निकालने में सुविधा हो पश्चात् रक्त निकालना, पुलटिस बाँधना, चीरफाड करना, शोधन और रोपण कर्म करना; यह छह कर्म व्रण के लिए हैं। इनके अतिरिक्त सातवाँ वैकृतापह (जिससे विकार उत्पन्न हुआ है उसका शमन करना भूतनाशन (Antiseptic) कर्म करना चाहिए। भानुदासजी के मत में विम्लापन से लघन, स्वेदन और प्रलेपन आदि का ग्रहण करना चाहिए॥ १-२॥

व्रणे श्वयथुरायासात्स च रागश्च जागरात्। तौ च रुक् च दिवास्वप्नात्ताश्च मृत्युश्च मैथुनात्॥ ३॥

परिश्रम करने से व्रण में सूजन, रात्रि में जागने से सूजन और लाली, दिन में सोने से सूजन, लाली और पीडा तथा मैथुन करने से सूजन मोह, पीडा और मृत्यु होती है। इसलिए व्रणरोगी को परिश्रम, रात्रि जागरण, दिन का सोना और मैथुन त्याग देना चाहिए॥ ३॥

मातुलुङ्गादि लेप।

मातुलुङ्गाग्निमन्थौ च भद्रदारुमहौषधम्। अहिंस्रा चैव रास्ना च प्रलेपो वातशोथहा॥ ४॥

बिजौरे की जड़, अरणी की छाल, देवदार, सोंठ, अहिंस्रा, रास्ना, इन्हें एकत्र पीसकर लेप देने से वातशोथ नष्ट होता है॥ ४॥

आगन्तौ शोणितोत्थे च एष एव क्रियाक्रमः॥ ५॥

आगन्तु एवं रक्तज व्रणशोथ में भी पैत्तिक व्रणशोथ की सी चिकित्सा करनी चाहिए॥ ५॥

श्लेष्मशोथ में अजगन्धादि लेप।

अजगन्धाश्वगन्धा च काला सरलया सह। एकेशिका च शृङ्गी च प्रलेपः श्लेष्मशोथहा॥ ६॥

अजवाइन, असगन्ध, काला (हिंसा),

चीड़ की लकड़ी, निशोथ तथा काकड़ासिंगी इन्हें एकत्र पीसकर लेप कर देने से कफजन्य शोथ नष्ट होता है ॥ ६ ॥

कफवातज में पुनर्नवादि लेप।

पुनर्नवादारुशिग्रु दशमूलमहौषधैः। कफवातकृते शोथे लेपः कोष्णो विधीयते ॥ ७ ॥

साँठी, देवदार, सहिंजना, दशमूल, सोंठ इन्हें एकत्र पीसकर कफवातज शोथ पर गुनगुना लेप लगाना चाहिए ॥ ७ ॥

स्थिरान् मन्दरुजान् शोथान् स्नेहैर्वातकफापहैः। अभ्यज्य स्वेदयित्वा च वेणुनाड्या ततः शनैः ॥८॥ विम्लापनार्थं मृद्नीयात् तलेनाङ्गुष्ठकेन वा ॥ ९ ॥

कठिन, मन्दवेदनायुक्त शोथ में पहिले वातकफ हरनेवाले स्नेह का मर्दन कर स्वेदन करे। इस प्रकार मृदु हो जाने पर शोथ के दूर करने के लिये बशनाडी अथवा अगूठे के तलभाग से शनै-शनैः मर्दन करना चाहिए ॥ ८-९ ॥

क्षारद्रव्यस्तथा क्षारो दारणः परिकीर्त्तितः ॥ १० ॥

क्षार प्रधान औषधि (अपामार्ग) आदि तथा क्षार दोनों ही व्रणों को हरण करते हैं ॥ १० ॥

दारण द्रव्य।

चिरबिल्वाग्निको दन्ती चित्रको हयमारकः। कपोतकङ्कगृध्राणां पुरीषाणि च दारणम् ॥ ११ ॥

करंजुआ, भिलावाँ, दन्ती, चित्रक, कनेर, तथा कबूतर, कङ्क एवं गिद्ध आदि पक्षियों का पुरीष भी दारण करता है ॥ ११ ॥

पाचनार्थ उपनाह द्रव्य।

शणमूलकशिग्रूणां फलानि तिलसर्षपाः। अतसीशक्तवो किण्वमुष्णद्रव्यञ्च पाचनम् ॥ १२ ॥

सन के बीज, मूली के बीज सहिंजने के बीज, तिल, सरसों, अलसी, सत्तू, सुराबीज तथा अन्य उष्णवीर्य द्रव्यों को पाचनार्थ उपनाहन आदि में व्यवहार करना चाहिए ॥ १२ ॥

तैलेन सर्पिषा वापि ताभ्यां वा शक्तुपिण्डिका। सुखोष्णःसुखपाकार्थमुपनाहः प्रशस्यते ॥ १३ ॥

तैल अथवा घी अथवा दोनों से ही सत्तू की पिण्डिका को गरम करके उपनाहन करने से शोथ पक जाता है ॥ १३ ॥

सतिला सातसीबीजा दध्यम्ला शक्तुपिण्डिका। सकिण्वकुष्ठलवणा शस्ता स्यादुपनाहने ॥ १४ ॥

तिल, अलसी के बीज, खट्टा दही, सुराबीज, कूठ, सेंधानमक, इन्हें सत्तू के साथ मिला गर्म कर उपनाहन करना चाहिए ॥ १४ ॥

त्रिफला खदिरो दार्वी न्यग्रोधादिबला कुशाः। निम्बकोलकपत्राणि कषायः शोधने हितः ॥ १५ ॥

त्रिफला, खदिरकाष्ठ, दारुहल्दी, न्यग्रोधादिगण, खरैटी, कपूर नीम के पत्ते, बेरी के पत्ते, इनमें से हरएक का क्वाथ व्रणशोधक है ॥ १५ ॥

वातिके दशमूलानां क्षीरिणां पैत्तिके व्रणे। आरग्वधादेः कफजे कषायः शोधने हितः ॥ १६ ॥

वातिक व्रण में दशमूल का क्वाथ, पैत्तिक व्रण में वट आदि दूधवाले वृक्षों के क्वाथ, कफज में आरग्वधादिगण का क्वाथ व्रणशोधन के लिये श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥

व्रणस्य त्वविशुद्धस्य क्वाथः शुद्धिकरः परः। पटोलनिम्बपत्रोत्थः सर्वत्रैव प्रयुज्यते ॥ १७ ॥

दूषित व्रण के शोधन के लिये पटोलपत्र तथा नीम के पत्तों का क्वाथ सब जगह व्यवहार में आता है ॥ १७ ॥

व्रणरोपण।

अपेतपूतिमांसानां मांसस्थानामरोहताम्। कल्कः संरोपणंकार्यस्तिलजो मधुसंयुतः ॥ १८ ॥

जो व्रण दुष्ट मांसरहित हो अथवा मांस में स्थित व्रण यदि भरता हो तो तिलकल्क और शहद मिलाकर लगाना चाहिए इससे शीघ्र घाव भर जाता है ॥ १८ ॥

निम्बपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुता। वर्त्तिस्तिलानां कल्को वा शोधयेद् रोपयेद् व्रणान् ॥ १९ ॥

नीम के पत्ते, घी, शहद, दारुहल्दी तथा मुलेठी इनके मिले हुए कल्क को कपड़े के टुकड़े पर लेप कर बत्ती तैयार करे। इस बत्ती को व्रणमुख में देने से रोपण होता है अथवा तिलकल्क द्वारा बनी हुई बत्ती से भी घाव भर जाता है ॥ १९ ॥

अश्वगन्धारुहालोध्रं कटफलं मधुयष्टिका। समङ्गा धातकीपुष्पं परमं व्रणरोपणम् ॥ २० ॥

असगन्ध, कुटकी, लोध, कटफल, मुलहठी, मँजीठ, धाय के फूल, इनका लेप व्रणरोपण में अत्यन्त लाभदायक है ॥ २० ॥

करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीलेपो हन्याद् व्रणकृमीन्। लशुनस्याथवा लेपो हिङ्गुनिम्बकृतोऽथवा ॥ २१ ॥

करंजुआ, नीम तथा सँभालू के पत्तों का लेप व्रणस्थित कृमियों को नष्ट करता है। अथवा लहसुन या हींग और नीम के पत्तों का लेप भी व्रणकृमियों को नष्ट करता है ॥ २१ ॥

निम्बपत्रवचाहिङ्गुसर्पिर्लवणसर्षपैः। धूपनं स्याद व्रणे रौक्ष्यकृमिकण्डूरुजापहम् ॥ २२ ॥

नीम के पत्ते, बच, हींग, घी, सेंधानमक, सरसों इनका धूपन करने से व्रण की रूक्षता, कृमि, कण्डू (खुजली) तथा वेदना नष्ट होती है ॥ २२ ॥

दूर्वाद्य तैल और घृत।

दूर्वास्वरससिद्धं वा तैलं कम्पिल्लकेन च। दार्वीत्वकश्च कल्केन प्रधानं व्रणरोपणम् ॥ २३ ॥ येनैव विधिना तैलं घृतं तेनैव साधयेत्। रक्तपित्तोत्तरं ज्ञात्वा सर्पिरेवावचारयेत् ॥ २४ ॥

दूब का रस तथा कमीला एवं दारुहल्दी की छाल के कल्क से विधिपूर्वक तैल पकाकर मालिश करे। इसकी मालिश से व्रण का शीघ्र ही रोपण होता है। जिस विधि से तैल पकाते हैं उसी प्रकार घृत का भी पाक करना चाहिए। रक्तपित्त प्रधान व्रण में घृत का ही प्रयोग करना चाहिए ॥ २३-२४ ॥

करंजाद्य घृत।

नक्तमालस्य पत्राणि तरुणानि फलानि च। सुमनायाश्च पत्राणि पटोलारिष्टके तथा ॥ २५ ॥ द्वे हरिद्रे मधूच्छिष्टं मधुकं तिक्तरोहिणी। मञ्जिष्ठा चन्दनोशीरमुत्पलं सारिवे त्रिवृत् ॥ २६ ॥ एतेषां कार्षिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्। दुष्टव्रणप्रशमनं तथा नाडीविशोधनम् ॥ सद्यश्छिन्नव्रणानाञ्च करञ्जाद्यमिदं शुभम् ॥ २७ ॥

गोघृत १२८ तोले। कल्क के लिये—करंजुए के पत्ते तथा कच्चे फल, मालतीपत्र, परवल के पत्ते, नीम [redacted] पत्ते, हल्दी, दारुहल्दी, मोम, मुलहठी, कुटकी, मँजीठ, लालचन्दन, खस, नील, कमल, अनन्तमूल, श्यामालता, निसोत, हरएक ८ तोले। विधिपूर्वक पकाकर बाह्य प्रयोग करे। इसके प्रयोग से दुष्टव्रण, नाडीव्रण तथा सद्यःव्रण (हथियार के घाव) नष्ट होते हैं ॥ २५-२७ ॥

तिक्ताद्य घृत।

तिक्तासिक्थनिशायष्टिनक्ताह्वफलपल्लवैः। पटोलमालतीनिम्बपत्रैर्हन्ति व्रणं घृतम् ॥ २८ ॥

गोघृत १२८ तोले। कल्क के लिये—कुटकी, मोम, हल्दी, मुलहठी, करंजुए के पत्ते तथा कच्चे फल, पटोलपत्र, मालतीपत्र, नीम के पत्ते मिलाकर ६४ तोले। विधिपूर्वक घृत पकावे। इसके बाह्यप्रयोग से व्रण नष्ट होता है ॥ २८ ॥

प्रपौण्डरीकाद्य घृत।

प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः। सहरिद्रैः शृतं सर्पिः सक्षीरं व्रण रोपणम् ॥ २९ ॥

गोघृत १२८ तोले, दूध ६ सेर ३२ तोले। कल्क के लिये—पुण्डरिया, मजीठ, मुलेठी, खस, पद्माख, हल्दी मिलाकर ६४ तोले। विधिपूर्वक पकावे। यह घृत व्रणरोपक है ॥ २९ ॥

व्रणशोथहरलेप।

धुस्तूरमूलं सलवणमुष्णं व्रणस्थित्यारम्भे। दत्तं लेपान्नियतं व्रणशोथं हरति बहुदुष्टम्। धुस्तूरमूलं पिष्ट्वा ससैन्धवं कृत्वा कोष्णो लेपः कार्यः ॥ ३० ॥

व्रणशोथ की पहली अवस्था में धतूरे की जड़ और नमक का गरम-गरम लेप करने से दुष्ट व्रणशोथ नष्ट होता है ॥ ३० ॥

वातजव्रणशोथ में लेप।

कल्कः काञ्जिकसंपिष्टः स्निग्ध शाखोटकत्वचः। सुपर्ण इव नागानां वातशोथविनाशनः ॥ ३१ ॥

सिहोरा की गीली छाल को कांजी में पीसकर लेप करे तो वातजशोथ का इस प्रकार नाश होता है जैसे गरुड़ से सर्पों का नाश होता है ॥ ३१ ॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलैः। ससर्पिष्कैः प्रलेपः स्यात् शोथनिर्वापणः परः ॥ ३२ ॥

समभागपिष्टैर्घृतमिश्रैर्लेपः।

बरगद, गूलर, पीपल, पकड़िया और बेंत की समभाग छाल के कल्क में घी मिलाकर लेप करने से व्रणशोथ नष्ट होता है ॥ ३२ ॥

न रात्रौ लेपनं दद्यादद्यत्तश्च पतितं तथा। न च पर्युषितं शुष्यमाणं नैवावधारयेत् ॥ ३३ ॥ शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रदेयं पीडनं प्रति। न चापि मुखमालिम्पेत् तेन दोषः प्रसिच्यते ॥ ३४ ॥

रात्रि में लेप न करना चाहिए। एक बार लगाया लेप यदि उतर जाय तो फिर उसे नहीं लगाना चाहिए। बासी धरा हुआ लेप न लगाना चाहिए और लगाया हुआ यदि सूख जावे तो उसे लगा हुआ न रक्खे, किन्तु फौरन ही उतार दे। यदि सूजन को पकाकर पीब आदि निकालने के लिए लेप लगाया हो तो उसके सूख जाने पर न उतारा जाय, क्योंकि वह सूखकर अच्छी तरह पीड़न करता है और अन्तःस्थित पूय को बाहर निकालता है। व्रण के मुख पर लेप नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि मुख के द्वारा ही दोष बाहर निकलते हैं ॥ ३३-३४ ॥

रक्तावसेचनं कुर्य्यादादावेव विचक्षणः। शोथे महति संवृद्धे वेदनावति वा व्रणे। निवारणाय पाकस्य वेदनोपशमाय च ॥ ३५ ॥ यो न याति शमं लेपस्वेदसेकापतर्पणैः। सोऽपि नाशं व्रजत्याशु शोथः शोणितमोक्षणात् ॥ ३६ ॥ एकतश्च क्रियाः सर्वा रक्तमोक्षणमेकतः। रक्तं हि व्यम्लतां याति तच्च नास्ति न चास्ति रुक् ॥ ३७ ॥

यदि सूजन बहुत बढ़ जाय तथा उसमें अधिक पीड़ा होने लगे तो बुद्धिमान् मनुष्य को पाक निवारण और वेदनाशान्ति के लिये पहले ही रक्तमोक्षण करना चाहिए । क्योंकि जो सूजन लेप स्वेद, सेक और अपतर्पण आदि से नष्ट नहीं होती है वह रक्तमोक्षण कराने से शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। शोथहर सब उपाय एक ओर तथा केवल रक्तमोक्षण एक ओर; क्योंकि रुधिर के बिगड़ने से ही पीड़ा होती है। अस्तु, जब बिगड़ा हुआ रुधिर निकल जाता है तब वेदना शान्त हो ही जाती है ॥ ३२-३७ ॥

स चेदेवमुपक्रान्तः शोथो न प्रशमं व्रजेत् । तस्योपनाहैः पक्वस्य पाटनं हितमुच्यते ॥ ३८ ॥ बालवृद्धासहक्षीणभीरूणां योषितामपि । मर्मोपरि च जाते च पक्वे शोथे च दारणम् ॥ ३९ ॥

यदि इस प्रकार चिकित्सा करने पर सूजन शान्त न हो तो उपनाह (पुलटिस) द्वारा उसे पकाकर चिरा देना हितकर है। बाल, वृद्ध, क्षीण, डरपोक, असहनशील तथा स्त्रियों के व्रण को तथा मर्मस्थान के व्रण को न चिराना चाहिए। यदि शोथ अच्छे प्रकार पक जावे तो चीरा लगवाना उचित है ॥ ३८-३९ ॥

गवां दन्तं जले घृष्टं बिन्दुमात्रं प्रलेपनात् । अत्यन्तकठिने चापि शोथे पाचनभेदनम् । क्षारद्रव्यस्तथाक्षारोदारणः परिकीर्तितः ॥ ४० ॥

गौ के दाँत को जल से घिस कर एक बूँद मात्र लेप करने से अत्यन्त कठिन शोथ पक कर फूट जाता है । क्षार-प्रधान औषध तथा क्षार दोनों ही व्रण को फोड़ देते हैं ॥ ४० ॥

कटुतैलान्वितैर्लेपात् सर्पनिर्मोकभस्मभिः । चयः शाम्यति गण्डस्य प्रकोपः स्फुटति द्रुतम् । कपोतगृध्रकङ्कानां पुरीषमपि दारणम् ॥ ४१ ॥

साँप की केंचुली की भस्म कडुए तेल में मिलाकर लेप करने से कच्चा शोथ शान्त हो जाता है और पका हुआ शीघ्र ही फूट जाता है। कबूतर, गिद्ध और कंकपक्षी की विष्ठा का लेप भी सूजन को फोड़ देता है ॥ ४१ ॥

तिलकल्कः सलवणो द्वे हरिद्रे त्रिवृद् घृतम् । मधुकं निम्बपत्रञ्च लेपः स्याद् व्रणशोधनः ॥ ४२ ॥

तिल, सेंधानमक, हल्दी, दारुहल्दी, निशोथ, घी, मुलेठी और नीम के पत्तों का लेप व्रण को शुद्ध करता है ॥ ४२ ॥

व्रणशोधनकेशरी लेप ।

निम्बपत्रं तिला दन्ती त्रिवृत् सैन्धवमाक्षिकम् । दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनकेशरी ॥ ४३ ॥ एकं वा सारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम् ॥ ४४ ॥

नीम के पत्ते, तिल, जमालगोटे की जड़, निसोथ, सेंधानमक और शहद; इनका लेप दुष्टव्रण को शान्त करता है तथा व्रणशोधन के लिए सिंहरूप है ॥ ४३-४४ ॥

सप्तदलदुग्धकल्कः शमयति दुष्टव्रणं लेपात् । मधुयुक्ता शरपुङ्खा दुष्टव्रणरोपणी कथिता ॥ ४५ ॥

सतवन का दूध कुछ देर रखने पर जब कल्क के समान गाढ़ा हो जावे तो उसका लेप करने से दुष्टव्रण शान्त होता है तथा शरफोंका की जड़ को शहद के साथ लेप करने से दुष्टव्रण का रोपण होता है ॥ ४५ ॥

मानुषशिरःकपालं तदस्थिलेपनं मूत्रेण । रोपणमिदं क्षतानां योगशतैरप्यसाध्यानाम् ॥ ४६ ॥

मनुष्य के कपाल की हड्डी को गोमूत्र में पीसकर लेप करने से सैकड़ों उपाय करने पर भी जो साध्य नहीं हुआ हो उस व्रण का रोपण होता है ॥ ४६ ॥

सुपर्वीपत्रपत्तूरकर्णमोटकुठेरकाः। पृथगेते प्रलेपेन गम्भीरव्रणरोपणाः॥ ४७॥

वनकरेला के पत्ते, पत्तूर (शालिंच) की छाँछ, कर्णमोटा (बर्बर, बबूल,) वनतुलसी; इनका पृथक्-पृथक् लेप देने से गम्भीर व्रणों को रोपण होता है॥ ४७॥

लौहकुद्दालके घृष्ट्वा लिम्पाकफलवारिणा। श्वेतार्कसम्भवं मूलं लेपं दद्यात् क्षतोपरि॥ अपि योगशतासाध्यं क्षतं हन्ति न संशयः॥ ४८॥

सफेद आक की जड़ को नींबू के रस से लोह की कुदाल पर रगड़कर घाव पर लेप करने से सैकड़ों योगों से असाध्य भी व्रण नष्ट होता है। इसमें संशय नहीं है॥ ४८॥

श्वेतकारवीरमूलस्वरसं द्विपलोन्मितम्। पलाष्टकमिदं गव्यक्षीरमेकत्र मिश्रयेत्॥ ४९॥ दधि कृत्वा तदावर्त्य निर्मथ्य नवनीतकम्। गृहीत्वा तेन लेपेन क्षतं हन्ति चिरोत्थितम्॥ ५०॥

सफेद कनेर की जड़ का रस ८ तोले और गौ का दूध ३२ तोले, इन दोनों को मिलाकर दही जमावे। फिर उसको मथकर मक्खन निकालकर उसका लेप करने से पुराना घाव अच्छा हो जाता है ४९ ५०॥

आस्फोतोद्भवनिर्यासः क्षतं हन्ति चिरोत्थितम्॥ ५१॥

हरफमाली के दूध का लेप करने से पुराना घाव अच्छा हो जाता है॥ ५१॥

ये क्लेदपाकस्रुतिगन्धवन्तो व्रणा महान्तः सरुजः सशोथाः। प्रयान्ति ते गुग्गुलुमिश्रितेन पीतेन शान्तिं त्रिफलारसेन॥ ५२॥

त्रिफला के काढ़े में गूगुल मिलाकर पीने से क्लेद, पाक, स्राव, दुर्गन्ध, पीड़ा और शोथयुक्त बड़े-बड़े घाव भी शान्त हो जाते हैं॥ ५२॥

सप्ताङ्गगुग्गुलु।

विडङ्गत्रिफलाव्योषचूर्णं गुग्गुलुना समम्। सर्पिषा वटिकां कृत्वा खादेद्वा हितभोजनः। दुष्टव्रणापचीमेहकुष्ठनाडीविशोधनः॥ ५३॥

वायविडंग, हड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ मिर्च और पीपरि; इन सबको समभाग लेकर एकत्र चूर्ण करे। चूर्ण के समान गूगुल डालकर और घी में मिलाकर एक एक माशे की गोली बनावे। इसको खानेवाला पथ्य पदार्थ का भोजन करे तो यह सप्ताङ्गगूगुल दुष्टव्रण, अपची, प्रमेह, कुष्ठ और नासूर आदि रोगों को शान्त करती है॥ ५३॥

जात्याद्य घृत और तैल।

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुकादार्वीनिशासारिवामञ्जिष्ठाभयसिक्थतुत्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजैः समैः। सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः स्राविणो गम्भीराः सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुष्यन्ति रोहन्ति च॥ ५४॥

एवम् तैलमपि।

चमेली के पत्ते, नीम के पत्ते, परवल के पत्ते, कुटकी, दारुहल्दी, हल्दी, सारिवा, मँजीठ, हड़, मोम, नीलाथोथा, मुलेठी और करंज के बीज आधी-आधी छटाक लेकर कल्क बनावे। घी अथवा कड़ुआ तेल २ सेर। पाकार्थ जल ८ सेर। विधिपूर्वक घी या तेल को सिद्ध कर व्रण पर लगाने से छोटे मुख के तथा मर्मस्थान के बहनेवाले, गहरे, पीड़ाकारक और गतियुक्त व्रण सूख जाते हैं और भर जाते हैं॥ ५४॥

गौराद्य घृत और तैल।

गौरा हरिद्रा मञ्जिष्ठा मांसी मधुकमेव च। प्रपौण्डरीकं ह्रीवेरं भद्रमुस्तं सचन्दनम्॥ ५५॥ जातीनिम्बपटोलञ्च करञ्जं कटुरोहिणी। मधूच्छिष्टं समधुकं महामेदा

तथैव च ॥ ५६ ॥ पञ्चवल्कलतोयेन घृतमर्धं विपाचयेत्। एष गौरो महायोगः सर्वव्रणविशोधनः ॥ ५७ ॥ आगन्तुसहजाश्चैव सुचिरोत्थाश्च ये व्रणाः। विषमामपि नाडीं तु शोधयेच्छीघ्रमेव तु ॥ ५८ ॥ गौराद्यं जातिकाद्यञ्च तैलमेवं प्रसाध्यते। तैलं सूक्ष्मानने दुष्टे व्रणे गम्भीर एव च ॥ ५९ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, मँजीठ, जटामांसी, मुलेठी, पुंडरिया, सुगन्धवाला, नागरमोथा, लालचन्दन, चमेली के पत्ते, नीम के पत्ते परवल के पत्ते, कंजा, कुटकी, मोम, मुलेठी और महामेदा ; ये सब मिलित आध सेर लेकर इनका कल्क बनावे। पंचवल्कल का काढ़ा ८ सेर, घी अथवा तेल २ सेर। यथाविधि सिद्ध कर प्रयोग में लावे। इस गौराद्य तेल के लगाने से सब प्रकार के व्रण शुद्ध होते हैं। यह महायोग आगन्तुक, सहज, पुराने, विषम और नाड़ीव्रणों को शीघ्र ही शुद्ध करता है। गौराद्य और जात्याद्य तेल छोटे मुखवाले, दुष्ट और गंभीर व्रणों को शुद्ध करते हैं। अत्यन्त सूक्ष्म मुखवाले नाड़ीव्रण आदि घावों में इस तेल Probepointed Hypodermic Syrisge से अंतर्प्रविष्ट (इंजेक्शन) किया जा सकता है ॥ ५५--५९ ॥

बृहज्जात्याद्य तैल।

जातीनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः। सिक्थकं मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी ॥ ६० ॥ मञ्जिष्ठा पद्मकं लोध्रमभया पद्मकेशरम्। तुत्थकं सारिवाबीजं नक्तमालस्य दापयेत् ॥ ६१ ॥ एतानि सममागानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत्। विषव्रणे समुत्पन्ने स्फोटके कुष्ठरोगिषु ॥ ६२ ॥ दद्रुवीसर्परोगेषु कीटरोगेषु सर्वशः। सद्यः शस्त्रप्रहारेषु दंष्ट्राविद्धेषु चैव हि ॥ ६३ ॥ नखदन्तक्षते देहे दुष्टमांसापकर्षणम्। म्रक्षणार्थमिदं तैलं हितं शोधनरोपणम् ६४

कल्क के लिए चमेली के पत्ते, नीम के पत्ते, परवल के पत्ते, कंजा के पत्ते, मोम, मुलेठी, कूट, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मँजीठ, पद्मकाठ, लोध, हड़, कमलकेशर, नीलाथोथा, अनन्तमूल और कंजे के बीज; सब मिलित आधसेर। तेल २ सेर। पाकार्थ जल ८ सेर। यथाविधि तैल सिद्ध करके प्रयोग में लावे। यह तेल विषदोष से उत्पन्न हुए फोड़े, घाव, कुष्ठ रोग, दद्रु, विसर्प, कृमिरोग, शस्त्र का घाव, दाँत अथवा दाढ़ का घाव और नखक्षत को म्रक्षण करता है तथा शरीर के घाव से दुष्ट मांस को निकालकर शोधन और रोपण करता है ॥ ६०--६४ ॥

विपरीतमल्ल तैल।

सिन्दूरकुष्ठविषहिंगुरसोनचित्रबालांघ्रिलाङ्गलिककल्कविपक्वतैलम्। मासांदमन्त्रयुतफूत्कृतलूनफेनं क्लिन्नव्रणप्रशमने विपरीतमल्लः ॥ ६५ ॥ खड्गाभिघातगुरुगण्ड महोपदंशनाडीव्रणव्रणविचर्चिककुष्ठपामाः। एतान्निहन्ति विपरीतकमल्लनाम तैलं यथेष्टशयनासनभोजनस्य ६६ "ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं शिवाय स्वाहा" इति पठित्वा फूत्कारेण फेनावलोडनं कार्यम्।

कल्क के वास्ते सिन्दूर, कूट, मीठा विष, हींग, लहसुन, चीता की जड़, सुगन्धवाला, वटजटा और कलिहारी चार-चार तोले। सरसों का तेल २ सेर, पाकार्थ जल ८ सेर। पाक करते समय यदि तेल में फेना आवे तो "ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं शिवाय स्वाहा"। यह मंत्र पढ़कर फूँक मारकर उसको शान्त करना चाहिए इस विपरीतमल्ल तेल के लगाने से गीला रहनेवाला व्रण, तलवार का घाव, गण्डरोग, उपदंश, नासूर, घाव, विचर्चिका, कुष्ठ और पामा; इन रोगों को यह तेल नष्ट करता है। इसका सेवन-

कर्त्ता इच्छानुसार शयन, आसन और भोजन का सेवन कर सकता है ॥ ६१-६६ ॥

बृहत् व्रणराक्षस तैल।

कुडवं सार्षपं तैलं तदर्द्धं गोघृतस्य च। एकीकृत्य पचेत्तत्तु सूर्य्यावर्त्तरसेन तु ६७ चित्रपत्रपलं कल्कं दत्त्वा तत्र विपाचयेत्। तत् कल्कं स्रावयित्वा तु चूर्णमेषां विनिक्षिपेत् ॥ ६८ ॥ गन्धकं शुद्धसिन्दूरं हरितालं मनःशिला। हरिद्रागैरिकं राजी कर्षार्द्धं प्रतिभागिकम् ॥ ६९ ॥ भागार्द्धं पारदं चापि कज्जलीकृत्य मिश्रयेत्। सुतप्तं मिश्रयित्वा तु तप्तं कृत्वा प्रलेपयेत् ७० कण्डूं विचर्चिकां पामां क्लेदं कुष्ठं सुदुस्तरम्। वातरक्तं व्रणान् सर्वान् विषविस्फोटदद्रुकम्। निहन्त्याशु महाश्वित्रं तैलं तु व्रणराक्षसम् ॥ ७१ ॥

चित्रपत्रपलं कल्कमित्यत्र तस्य पत्रपलं कल्कमिति क्वचित् पाठः तस्येति अर्कस्य।

कड़वा तेल २८ तोले, गौ का घृत ८ तोले, मदार के पत्तों का रस १ सेर १६ तोले, कल्क के लिये चीता की पत्तियाँ १ छटांक। सबको एकत्र कर पाक करे। जब सिद्ध हो जाय तब उतारकर छान ले। फिर उस गरम तेल में शुद्ध सिन्दूर, हरताल, मैनशिल, हल्दी, गेरू और राई आधा-आधा तोला तथा गन्धक आधा तोला और पाव तोला पारे की कज्जली करके मिलाना चाहिए। गरम करके इसके लेप लगाने से खुजली, विचर्चिका, पामा, क्लेद, कुष्ठ, वातरक्त, सब प्रकार के व्रण, विषदोष, फोड़े और दाद शीघ्र नष्ट होते हैं। यह बृहद्व्रणराक्षस तैल महाश्वित्र कुष्ठ को नष्ट करता है। यहां "चित्रपत्रपलं कल्कम्" के स्थान में "तस्य पत्रपलं कल्कम्" ऐसा कहीं-कहीं पाठ है। वहां 'तस्य' का अर्थ मदार है ॥ ६७-७१ ॥

तन्त्रान्तरोक्त व्रणराक्षस तैल।

सूतकं गन्धकं तालं सिन्दूरञ्च मनःशिला। रसोनं च विषं ताम्रं प्रत्येकं कर्षमाहरेत् ॥ ७२ ॥ कुडवं सार्षपं तैलं साधयेत् सूर्य्यतापतः। नाडीव्रणं च विस्फोटं मांसवृद्धिं विचर्चिकाम् ॥ ७३ ॥ दद्रुकुष्ठापचीकण्डूमण्डलानि व्रणांस्तथा। व्रणराक्षसनामेदं तैलं हन्ति गदान् बहून् ७४

पारा, गन्धक, हरताल, सिन्दूर, मैनशिल, लहसुन, मीठा विष और ताम्रभस्म; प्रत्येक एक-एक तोला। कड़वा तेल १६ तोले। सबको इकट्ठा कर धूप में रक्खे। जब खूब गरम हो जाय और सब द्रव्य एक में मिल जायँ तब इसे सिद्ध समझे। यह व्रणराक्षस तैल नासूर, फोड़े, मांसवृद्धि, विचर्चिका, दाद, कोढ़, अपची, खुजली, चकत्ते पड़ना, घाव तथा अन्य बहुत से रोगों को नष्ट करता है ॥ ७२—७४ ॥

विडङ्गारिष्ट।

विडङ्गं ग्रन्थिकं रास्ना कुटजत्वक्फलानि च। पाठैलवालुकं धात्री भागान् पंचपलान् पृथक ॥७५॥ अष्टद्रोणेऽम्भसः पक्त्वा कुर्य्याद् द्रोणावशेषितम्। पूतेशीते क्षिपेत्तत्र क्षौद्रं पलशतत्रयम् ॥७६॥ धातकीविंशतिपलं त्रिजातं द्विपलं तथा। प्रियंगुकांचनाराणां सलोध्राणां पलं पलम् ॥ ७७ ॥ व्योषस्य च पलान्यष्टौ चूर्णीकृत्य प्रदापयेत्। घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मासमेकं विधारयेत् ॥ ७८ ॥ ततः पिबेद्यथार्ह तु जयेद्विद्रधिमुत्थितम्। ऊरुस्तम्भाश्मरी-मेहान् प्रत्यष्ठीलाभगन्दरान्। गण्डमालां हनुस्तम्भं विडङ्गारिष्टसंज्ञकः ॥ ७९ ॥

वायविडङ्ग, पीपरामूल, रास्ना, कुड़े की छाल, इन्द्रजौ, पाढ़ी, एलुआ और आंवला,

प्रत्येक बीस-बीस तोले। इन सबको कूटकर २ मन ४ सेर १६ तोले जल में पकावे। २२ सेर ३८ तोले जल बाकी रहे तब उसे ठंडा कर छान ले। इस काढ़े में शहद १२ सेर, धाय के फूल १ सेर, त्रिजात (इलायची, दालचीनी और तेजपात) प्रत्येक ८ तोले। प्रियंगु, कचनार की छाल और लोध चार-चार तोले। त्रिकटु (सोंठ, मिर्च और पीपरि) १२ तोले। इन सबका चूर्ण करके मिलावे। इसको घी के चिकने बर्तन में भरकर और मुख बन्द करके एक महीने भर धरा रहने दे। पश्चात् छानकर सेवन करने से विद्रधि, उरुस्तम्भ, पथरी, प्रमेह, प्रत्यष्ठीला, भगन्दर, गण्डमाला और हनुस्तम्भ आदि रोगों को यह विडङ्गारिष्ट शान्त करता है। मात्रा—१ तोले से २॥ तोले तक ॥७१-७९॥

व्रण में निषिद्ध पदार्थ।

नवं धान्यं माषास्तिलगुडकुलत्थाम्लकशराः सतीना निष्पावा हरिणकमजानूपपिशितम्। हिमाम्भो वल्लूरं लवणकटुकं पिष्टविकृतिर्दधिक्षीरं तक्रं व्रणिषु सकलं दोषजननम् ॥ ८० ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां व्रणशोथाधिकारः समाप्तः।

नये अन्न, उड़द, तिल, गुड़, कुलथी, खटाई, खिचड़ी, मटर, भटवांस, हरिण का मांस, बकरे का मांस, आनूप देश के जीवों का मांस, ठंडा जल, सूखा मांस, नमक, कडुआ पदार्थ, पीठी के पदार्थ, दही, दूध, और माठा ये सब पदार्थ व्रणरोगी को हानिप्रद हैं ॥ ८० ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां व्रणशोथाधिकारः समाप्तः।

अथ सद्योव्रणाधिकारः।

सद्यःक्षतं व्रणं वैद्यं सशूलं परिषेचयेत्। यष्टिमधुकयुक्तेन किंचिदुष्णेन सर्पिषा ॥ १ ॥

तत्काल के घाव को और शूलयुक्त व्रण को मुलेठी के कल्क से सिद्ध किये हुए किंचित् गरम घी से सेंकना चाहिए ॥ १ ॥

अपामार्गस्य संसिक्तं पत्रोत्थेन रसेन तु। सद्योव्रणेषु रक्तं तु प्रवृत्तं परितिष्ठति ॥ २ ॥

चिरचिटा के पत्तों के रस का सिंचन करने से तत्काल के घाव का रक्त बहना बन्द हो जाता है ॥ २ ॥

कर्पूरपूरितं बद्धं सघृतं संप्ररोहति। सद्यःशस्त्रक्षतं पुंसां व्यथापाकविवर्जितः ॥ ३ ॥

तलवार आदि के घाव में तत्काल कपूर का चूर्ण सौवार के धोये हुए घी मे मिलाकर भर दे और वस्त्र से बाँध दे, इससे घाव भर जाता है और पीड़ा दूर हो जाती है एवं घाव पकता नहीं है ॥ ३ ॥

शुनो जिह्वाकृतश्चूर्णः सद्यःक्षतविरोहणः। इति साप्ताहिकः कार्यः सद्योव्रणहितो विधिः ॥ ४ ॥ सप्ताहात् परतः कुर्याच्छारीरव्रणवत् क्रियाम् ॥ ५ ॥

कुत्ते की जीभ का चूर्ण शीघ्र ही घाव को पूरित करता है। इस प्रकार सद्योव्रण के हितकारी उपाय सात दिन तक करे। सात दिन के पश्चात् शारीरव्रण के समान चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ४-५ ॥

प्रसङ्गवश यहाँ अग्निदग्धव्रण की चिकित्सा लिखते हैं।

पित्तविद्रधिवीसर्पशमनं लेपनादिकम्।

अग्निदग्धव्रणे सम्यक् प्रयुञ्जीत चिकित्सकः॥ ६॥

वैद्य को चाहिए कि अग्नि से जले हुए घाव में पित्तविद्रधि और पित्तविसर्प आदि में लिखे हुए लेप आदि का प्रयोग करे॥ ६॥

तिलञ्चैवाग्निना दग्धं यवभस्मसमन्वितम्। अग्निदग्धव्रणं नश्येदनेनैवानुलेपनात्॥ ७॥

तिल और जौ की भस्मों को मिलाकर जले हुए घाव में लगाने से घाव अच्छा हो जाता है॥ ७॥

तिलतैलैर्यवान् दग्ध्वा समं कृत्वा तु लेपयेत्। तेनैव लेपनादाशु वह्निदग्धः सुखी भवेत्॥ ८॥

जौ की भस्म को समभाग तिल के तेल में मिलाकर लेप करने से अग्नि का जला हुआ सुखी होता है॥ ८॥

सद्यो दग्धश्च मधुना लेपं कृत्वा भिषग्वरः। तत्पृष्ठे यवचूर्णेन लेपः स्याद्दाहशान्तये॥ ९॥

तत्काल के जले हुए में शहद का लेप करके ऊपर से जौ के चूर्ण का लेप करने से दाह की शान्ति होती है॥ ९॥

माहिषीनवनीतेन क्षीरेण पेषयेत्तिलम्। तेन लेपेन दग्धाङ्गं सदाहं सुखमश्नुते॥ १०॥

भैंस के मक्खन और दूध में तिलों को पीसकर लेप करने से जले हुए अङ्ग का दाह शान्त हो जाता है, जिससे दग्ध मनुष्य सुखी होता है॥ १०॥

महाराष्ट्रीजटालेपाद्दग्धपृष्ठावचूर्णनम्। जीर्णगृहतृणाच्चूर्णं दग्धव्रणहरं परम्॥ ११

जले हुए घाव पर जलपीपरि की जड़ का लेप करने से अथवा पुराने छप्पर के फूस का चूर्ण घाव पर लगाने से दग्धव्रण शान्त होता है॥ ११॥

अन्तर्दग्धकुठेरको दहनजं लेपान्निहन्ति व्रणं, ह्यश्वत्थस्य विशुष्कवल्कलकृतं चूर्णं तथा गुग्गुलोः। अभ्यङ्गाद्विनिहन्ति तैलमखिलं गण्डूपदैः साधितं, पिष्ट्वा शाल्मलितूलकैर्जलगता लेपात्तथा वालुकाः॥ १२॥

वनतुलसी की अन्तरधूम भस्म, पीपल की सूखी हुई छाल का चूर्ण और गूगुल का चूर्ण इनमें से किसी एक को घाव पर छिड़कने से जला हुआ घाव अच्छा होता है। केंचुओं से सिद्ध किये हुए तेल की मालिश करने से तथा सेमर की रुई और जल के भीतर की बालू को पीसकर लेप करने से अग्निदग्ध व्रण अच्छा होता है॥ १२॥

जीरक घृत।

जीरकपक्वं परचात्सिक्थकसर्जरसमिश्रितं हरति। घृतमभ्यङ्गात् पावकदग्धजदुःखं क्षणार्द्धेन॥ १३॥

जीरा १ पाव, घी १ सेर, पाकार्थ जल ४ सेर। विधि से घृत पकाकर छान ले। इसमें एक छटांक मोम और एक छटांक राल के चूर्ण का प्रक्षेप करके मिला दे। इस तैल को जले हुए घाव पर लगाने से क्षणमात्र में घाव की जलन शान्त होती है॥ १३॥

पाटली तैल।

सिद्धं कल्ककषायाभ्यां पाटल्याः कटुतैलकम्। दग्धव्रणरुजास्रावदाहविस्फोटनाशनम्॥ १४॥

पाढल के कल्क और काढ़े से सिद्ध किया हुआ कडुआ तेल जले हुए घाव पर लगाने से घाव की पीड़ा, खून का बहना, जलन और फफोलों को नष्ट करता है॥ १४॥

मञ्जिष्ठाद्य तैल।

मञ्जिष्ठां चन्दनं मूर्वां पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत । सर्वेषामग्निदग्धानामेतद्रोपणमिष्यते ॥ १५ ॥

मँजीठ, लालचन्दन और मूर्वा, इनके कल्क के साथ कडुए तेल को सिद्ध करे। यह तैल सब प्रकार के अग्निदग्ध व्रणों को रोपण करता है ॥ १५ ॥

सवर्णकर लेप।

मनःशिला समञ्जिष्ठा सलाक्षा रजनीद्वयम् । प्रलेपः सघृतक्षौद्रस्त्वचः सावर्ण्यकृत्परः ॥ १६ ॥

मैनशिल, मँजीठ लाख, हल्दी, दारुहल्दी, इन्हें घृत और शहद के साथ मिलाकर लेप लगाने से त्वचा का वर्ण स्वाभाविक हो जाता है ॥ १६ ॥

कालीयकलताम्रास्थिहेमकालारसोत्तमैः। लेपः सगोमयरसः सवर्णीकरणः परः ॥ १७ ॥

काली अगर, प्रियगु, आम की गुठली, धतूरा और नील के स्वरस में गोबर का रस मिलाकर लेप करने से व्रणस्थान का वर्ण शरीर के वर्ण के तुल्य हो जाता है ॥ १७ ॥

चतुष्पदां हि लोमत्वक्खुरशृङ्गास्थिभस्मना। तैलाक्ता लेपिता भूमिर्भवेद्रोमवती पुन• ॥ १८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां सद्योव्रणाधिकारः समाप्तः।

चौपायों के बाल, खाल खुर, सींग और हड्डी की भस्म में तेल मिलाकर लेप करने से घाव के स्थान में बाल उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १८ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां सद्योव्रणाधिकार समाप्त

अथ नाडीव्रणाधिकारः।

नाडीनां गतिमन्विष्य शस्त्रेणापाट्य कर्मवित् । सव्रणकर्मं कुर्याच्छोधनं रोपणादिकम् ॥ १ ॥

नाडीव्रण (नासूर के घाव) की गति का जानकर अर्थात् नाड़ी किस तरफ कितनी दूर तक विकृत हो गई है, इसका पूर्ण निश्चय करने के पश्चात् जहाँ तक वह विकृत हुई हो वहाँ तक शस्त्र द्वारा चीरकर निकाल दे। पश्चात् शोधन और रोपण आदि व्रणों के समान चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १ ॥

श्वेतैरण्डस्य निर्यासः खदिरेण समायुतम् । हन्ति नाडीव्रणान् सर्वान् मृगान् मृगपतिर्यथा ॥ २ ॥

सफेद अरण्ड के गोंद और कत्थे को एकत्र मिलाकर लगाने से सम्पूर्ण नाडीव्रण नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

आस्फोताक्षीरसंयोगो नाडीं नाशयति द्रुतम् ॥ ३ ॥

हाफरमाली के दूध को लगाने से नाड़ी व्रण शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ ३ ॥

विडङ्गादि चूर्ण।

विडङ्गत्रिफलाकृष्णाचूर्णं लीढं समाक्षिकम् । हन्ति कुष्ठक्रमीन् मेहनाडीव्रणभगन्दरान् ॥ ४ ॥

वायविडङ्ग, त्रिफला, पीपल, इनके चूर्ण को शहद के साथ चाटने से कुष्ठ, कृमिरोग, नाडीव्रण तथा भगन्दर नष्ट होता है ॥ ४ ॥

सैन्धवाद्य तैल।

सैन्धवार्कमरिचज्वलनाख्यैर्मार्कवेण रजनीद्वयसिद्धम्। तैलमेतदचिरेण निहन्याद् दूरगामपि कफानिलनाडीम् ॥ ५ ॥

तैल १२८ तोले, कल्क के लिये सेंधा नमक, आक की जड़, कालीमिर्च, चित्रक,

भांगरा, हल्दी, दारुहल्दी, मिलाकर ३२ तोले । पाक के लिये जल ६ सेर ३२ तोले । विधिपूर्वक तैल पकाकर इसकी मालिश करने से अत्यन्त गम्भीर कफ वातज नाड़ीव्रण नष्ट होता है ॥ ५ ॥

हिंस्राद्य तैल ।

हिंस्रां हरिद्रां कटुकां वचाञ्च गोजिह्विकाञ्चापि सबिल्वमूलम् । संहृत्य तैलं विपचेद् व्रणस्य संशोधनं पूरणरोपणञ्च ॥ ६ ॥

हींस, हल्दी कुटकी, बच, गोभी, बेल की जड़, इनके कल्क से विधिपूर्वक साधित तैल व्रण को शुद्ध करता है तथा उसे भरकर पुराता है ॥ ६ ॥

कच्चूर तैल ।

कच्चूरकस्य स्वरसे कटुतैलं विमिश्रयेत् । सिन्दूरकलितं नाडीदुष्टव्रणविसर्पनुत् ॥ ७ ॥

सरसों के तैल को कचूर के क्वाथ से विधिपूर्वक सिद्ध कर सिन्दूर मिलावे । यह तैल नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण तथा विसर्प को नष्ट करता है ॥ ७ ॥

वातनाड़ी की चिकित्सा ।

नाडी वातकृतां साधुपाटितां लेपयेद्भिषक् । प्रत्यकपुष्पीफलयुतैस्तिलैः पिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ ८ ॥

वातज नासूर को अच्छे प्रकार चीरकर उस पर लटजीरा के बीज और तिलों को पीस कर लेप करना चाहिए ॥ ८ ॥

पित्त और कफनाड़ी की चिकित्सा ।

पैत्तिकीं तिलमञ्जिष्ठानागदन्तीनिशायुगैः । श्लैष्मिकीं तिलयष्ट्याह्वनिकुम्भारिष्टसैन्धवैः ॥ ९ ॥

पित्तज नासूर पर तिल, मँजीठ, नागदन्ती, (हाथीशुण्डा), हल्दी और दारुहल्दी को पीस कर लेप करना चाहिए । कफज नासूर पर तिल, मुलेठी, जमालगोटे की जड़, नीम के पत्ते और सेंधानमक को पीसकर लेप करना चाहिए । ९ ॥

शल्यज नाड़ी की चिकित्सा ।

शल्यजां तिलमध्वाज्यैर्लिप्त्वा बन्धनमाचरेत् । आरग्वधनिशाकालाचूर्णाज्यक्षौद्रसंयुता ॥ सूत्रवर्त्तिर्व्रणे योज्या शोधनी गतिनाशिनी ॥ १० ॥

शल्यज नासूर को चीर कर उस पर तिल, शहद और घी का लेप करके बाँध देना चाहिए अमलतास, हल्दी और कौआठोडी के चूर्ण में घी और शहद मिलाकर सूत की बत्ती भिगोवे और उस बत्ती को नासूर में रक्खे तो नासूर शुद्ध होकर भर जाता है ॥ १० ॥

घोण्टाफलादि वर्ति ।

घोण्टाफलत्वङ्मदनात् फलानि पूगस्य च त्वग्लवणञ्च मुख्यम् । स्नुह्यर्कदुग्धेन सहैव कल्को वर्त्तीकृतो हन्त्यचिरेण नाडीम् ॥ ११ ॥

जँगली बेर का छिलका, मैनफल; सुपारी की छाल और सेंधानमक; इनको सममाग लेकर थूहर और मदार के दूध में घोट कर बत्ती बना ले इस बत्ती को नासूर में रखने से नासूर शीघ्र ही भर जाता है ॥ ११ ॥

वर्त्तीकृतं माक्षिकसम्प्रयुक्तं नाडीघ्नमुक्तं लवणोत्तमं वा । दुष्टव्रणे यद्विहितञ्च तैलं तत्सेव्यमानं गतिमाशु हन्ति ॥ १२ ॥

सेंधानमक और शहद की बत्ती बनाकर नासूर में रखने से नासूर नष्ट होता है अथवा दुष्ट व्रण के लिए जो तेल कहे हैं, उनका सेवन करने से नासूर नष्ट होता है ॥ १२ ॥

जात्यादि वर्ति ।

जात्यर्कशम्पाककरञ्जदन्तीसिन्धूत्थ-

सौवर्चलयावशूकैः। वर्त्तिः कृता हन्त्यचिरेण नाडीं स्नुक्क्षीरपिष्टा सह चित्रकेण ॥ १३ ॥

चमेली के पत्ते, मदार के पत्ते, अमलतास, करंजुआ, दन्ती, सेंधानमक, काचानमक, जवाखार और चीता की जड़ को समभाग लेकर थूहर के दूध में घोटे। पश्चात् वत्ती बनाकर नासूर में रक्खे तो घाव शीघ्र अच्छा हो जाता है ॥ १३ ॥

माहिषं दधि कोद्रवभक्तमिश्रितं हरति चिरविरूढाश्च। भक्तं कंगुनिकाभवमतिदारुणां नाडीं शमयेत् ॥ १४ ॥

कोदों के भात में अथवा काँगनी के भात में भैंस का दही मिलाकर खाने से बहुत पुराना अत्यन्त कठिन नासूर अच्छा होता है ॥ १४ ॥

क्षारसूत्र प्रयोग।

कृशदुर्बलभीरूणां गतिर्मर्माश्रिता च या। क्षारसूत्रेण तां छिन्द्यान्न शस्त्रेण कदाचन ॥ १५ ॥

कृश, दुर्बल और डरपोक पुरुषों के नाडीव्रण को तथा मर्मस्थान के नाडीव्रण को क्षारसूत्र से काटना चाहिए, शस्त्र से कभी न काटना चाहिए ॥ १५ ॥

एषण्या गतिमन्विष्य क्षारसूत्रानुसारिणीम्। सूचीं निदध्याद्गत्यन्ते चोन्नम्याशु च निर्हरेत् ॥१६॥ सूत्रास्यान्तं समानीय गाढबन्धनमाचरेत्। ततः क्षारबलं वीक्ष्य सूत्रमन्यत् प्रवेशयेत् ॥ १७ ॥ क्षारोक्तं मतिमान् वैद्यो यावन्न भिद्यते गतिः। भगन्दरेऽप्ययेष विधिः कार्य्यो वैद्येन जानता ॥ १८ ॥

एषणीयंत्र से नाड़ीव्रण की गति को जान कर फिर सुई में क्षारसूत्र पिरोकर नाड़ी के छेद में उसे प्रविष्ट करके दूसरी ओर निकाल ले। पश्चात् सुई को अलग करके सूत्र के दोनों किनारों को मिलाकर मज़बूत गाँठ लगा दे। जब क्षार का बल कम हो जाय तब उस डोरे को निकाल पूर्वोक्त रीति से फिर दूसरा क्षारसूत्र प्रवेश करके बाँध दे। इसी प्रकार क्षारसूत्र का प्रयोग तब तक करे जब तक नाडी की गति (छिद्र) विदीर्ण[1] न हो जाय। भगन्दर में भी चतुर वैद्य को यह विधान करना चाहिए १६-१८

अर्बुदादिषु चोत्क्षिप्य मूले सूत्रं निधापयेत्। सूचीभिर्यवक्त्राभिराचितं वा समन्ततः ॥ मूलं सूत्रेण बध्नीयाच्छिन्ने चोपचरेद् व्रणम् ॥ १९ ॥

अर्बुद आदि को ऊँचा उठाकर उसके मूल में क्षारसूत्र बाँध दे अथवा यवमुखी सुई से चारों ओर अर्बुद को छिद्र करके उसके मूल में क्षारसूत्र बाँधे। जब अर्बुद कट जाय तब व्रण की सी चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १९ ॥

सप्ताङ्ग गुग्गुल।

गुग्गुलुत्रिफलाव्योषैः समांशैराज्ययोजितः। नाडीदुष्टव्रणशूलभगन्दरविनाशनः ॥ २० ॥

गूगुल, हड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च और पीपरि; इनको समभाग लेकर खूब महीन पीसकर घी में मिला ले। इसका सेवन करने से नासूर, दुष्टव्रण, शूल और भगन्दर नष्ट होता है। मात्रा २ माशे से ४ माशे तक ॥ २० ॥

स्वर्जिकाद्यतैल।

स्वर्जिकासिन्धुदन्त्यग्निरूपिकानलनीलिकाः। खरमञ्जरिबीजानि तैलं गोमूत्रपाचितम् ॥ दुष्टव्रणप्रशमनं कफनाडीव्रणापहम् ॥ २१ ॥

कल्क के लिए सज्जीखार, सेंधानमक, जमालगोटे की जड़, चीता की जड़, सफेद आक

[1] नासूर विदीर्ण हो जाने पर व्रणवत् उपचार करने से बहुत शीघ्र अच्छा हो जाता है।

की जड़, नरसल की जड़, नील की जड़ और लटजीरा के बीज; सब मिलित आध सेर। तेल २ सेर। गोमूत्र ८ सेर। तैलपाक की विधि से तैल सिद्ध कर लगाने से दुष्ट नाड़ीव्रण तथा कफज नाड़ीव्रण का नाश होता है ॥ २१ ॥

कुम्भीकाद्यतैल।

कुम्भीकखर्जूरकपित्थबिल्ववनस्पतीनां तु शलाटुवर्गैः। कृत्वा कषायं विपचेत्तु तैलमावाप्य मुस्तासरलप्रियंगुम् ॥ २२ ॥ सौगन्धिकामोचरसाहिपुष्पा लोध्राग्नियुक्ता खलु धातकी च। एतेन शल्यप्रभवा हि नाडी रोहेद्व्रणो वै सुखमाशु चैव २३

पुन्नागवृक्ष, खजूर, कैथा और बेल; इन वनस्पतियों के कच्चे फलों के काढ़े से और नागरमोथा, चीड़ की लकड़ी, प्रियंगु, रोहिषतृण, मोचरस, नागकेशर, लोध, चीता की जड़ और धाय के फूल; इनके कल्क से विधिपूर्वक तैल सिद्ध करके व्रण पर लगाने से शल्यज व्रण सुखपूर्वक शीघ्र ही अच्छा हो जाता है ॥२२-२३॥

भल्लातकाद्य तैल।

भल्लातकार्कमरिचैर्लवणोत्तमेन सिद्धं विडङ्गरजनीद्वयचित्रकैश्च। स्यान्मार्कवस्य च रसेन निहन्ति तैलं नाडीं कफानिलकृतामपचीं व्रणांश्च ॥ २४ ॥

कल्क के लिए भिलावाँ, मदार की जड़, कालीमिर्च, सेंधानमक, वायविडंग, हल्दी, दारुहल्दी और चीता की जड़; सब मिलाकर आध सेर। कडुआ तेल २ सेर भँगरे का रस ८ सेर, इनके कल्क और स्वरस के साथ सिद्ध किया हुआ तेल वायु और कफ के नाड़ीव्रण, अपची और व्रणों को नष्ट करता है ॥ २४ ॥

निर्गुण्डी तैल।

समूलपत्रां निर्गुण्डीं पीडयित्वा रसेन तु। तेन सिद्धं समं तैलं नाडीव्रणविशोधनम् ॥ २५ ॥ हितं पामापचीनां तु पानाभ्यञ्जननावनैः। विविधेषु च रोगेषु तथा सर्वव्रणेषु च ॥ २६ ॥

निर्गुण्डी की जड़ और पत्तों के रस में समान भाग कडुआ तेल मिलाकर यथाविधि तेल सिद्ध करे। यह तेल मालिश, पान अथवा नस्यकर्म में प्रयोग करने से नाड़ीव्रण को शुद्ध करता है एवं पामा, अपची, सब प्रकार के व्रण तथा अन्यान्य रोगों को नष्ट करता है ॥ २५-२६ ॥

हंसपादी तैल।

हंसपाद्यरिष्टपत्रं जातीपत्रं ततो रसैः। तत्कल्कैश्च पचेत्तैलं नाडीव्रणविशोधनम् ॥ २७ ॥

हंसपदी, नीम के पत्ते और चमेली के पत्ते इनके रस से तथा इन्हीं पूर्वोक्त तीनों औषधों के कल्क से सिद्ध किया हुआ तेल नाड़ीव्रण को पूरित करता है ॥ २७ ॥

सर्वव्रणों में पथ्य।

यवषष्टिकगोधूमाः पुराणाः सितशालयः। मसूरी तुवरीमुद्गयूषश्च मधु शर्करा ॥ २८ ॥ विलेपी लाजमण्डश्च जाङ्गला मृगपक्षिणः। घृतं तैलं पटोलञ्च वेत्राग्रं बालमूलकम् ॥ २९ ॥ एतत्पथ्यं नरैः सेव्यं यथावस्थं यथामलम् व्रणशोथे व्रणे सद्योव्रणे नाडीव्रणेऽपि च ॥ ३० ॥

जौ, साँठी के चावल, गेहूँ, पुराने सफेद और लाल शालि चावल तथा मसूर, अरहर, मूँग इनका यूष। शहद, शर्करा, विलेपी, धान की खीलों का माँड, जाङ्गल पशु-पक्षियों का मांस, घी तेल, परवल, बेत की कोंपल, कच्ची मूली; इस पथ्य को व्रणशोथ, व्रण, सद्योव्रण एवं नाड़ीव्रण में अवस्था और दोष के अनुसार सेवन करना चाहिए ॥ २८-३० ॥

सर्वव्रणों में अपथ्य।

रूक्षाम्लशीतं लवणं व्यवायमाया-

समुच्चैः परिभाषणञ्च। प्रियासमालोकनमह्नि निद्रां प्रजागरं चङ्क्रमणं नितान्तम्॥ ३१॥ शोकं विरुद्धाशनमम्बुपानं ताम्बूलसेवाऽखिलपत्रशाकम्। अजाङ्गलं मांसमसात्म्यमन्नं विवर्जयेत् सन्ततमप्रमत्तः॥ ३२॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां नाडीव्रणाधिकारः समाप्तः।

कूप, खट्टा, शीतल, नमक, मैथुन, श्रम, ऊँचा बोलना, स्त्रीदर्शन, दिन में सोना, रात को जागना, अधिक चलना, शोक, विरुद्ध भोजन, अति जलपान, पान खाना, सम्पूर्ण पत्र शाक, आनूप एवं जलज मांस, असात्म्य भोजन, इनका व्रण के रोगी को सर्वथा त्याग करना चाहिए॥ ३१-३२॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां नाडीव्रणाधिकारः समाप्तः।

अथ शिरोरोगाधिकारः।

वातिक शिरोरोग की चिकित्सा।

वातिके शिरसो रोगे स्नेहस्वेदान् सनावनान्। पानान्नमुपनाहांश्च कुर्याद्वातामयापहान्॥ १॥

वातज शिरोरोग में वातहर स्नेह, स्वेद, नस्य, अन्न पान तथा उपनाह का प्रयोग करना चाहिए॥ १॥

कुष्ठमेरण्डमूलञ्च लेपात् काञ्जिकयोजितम्। शिरोर्ति नाशयत्याशु चूर्णं वा मुचुकुन्दजम्॥ २॥

कूट और अरण्ड की जड़ को काँजी में पीसकर शिर पर लेप करने से तथा मुचुकुन्द के फूलों को पीसकर लेप करने से शिर का दर्द नष्ट होता है॥ २॥

शिरोवस्ति।

आशिरो व्यायतं चर्म्म कृत्वाष्टांगुलमुच्छ्रितम्। तेनावेष्ट्यो शिरोऽधस्तात् माषकल्केन लेपयेत्॥ ३॥ निश्चलस्थोपविष्टस्य तैलैरुष्णैः प्रपूरयेत्। धारयेदारुजः शान्तेर्यामं यामार्द्धमेव वा॥ ४॥ शिरोवस्तिर्जयत्येष शिरोरोगं मरुद्भवम्। हनुमन्याक्षिकर्णार्तिमर्दितं मस्तकम्पनम्॥ ५॥

रोगी के शिर की गोलाई के बराबर लंबा और आठ अंगुल चौड़ा चमड़ा लेकर शिर पर लपेट दे और उसके नीचे उड़द की पीठी लगा कर चपका दे, जिसमें तेल बहने न पावे। फिर रोगी को निश्चल बैठाकर उसमें गरम तेल भर दे, इस तेल को १ पहर या आधा पहर अथवा जब तक रोग की शान्ति न हो तब तक धारण करे। यह शिरोवस्ति वातज शिरोरोग को जीत लेती है तथा हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, आँख और कान की पीड़ा, अर्दित और शिरःकंपरोग को नष्ट करती है॥ ३-५॥

पैत्तिक शिरोरोग की चिकित्सा।

पैत्ते घृतं पयः सेकाः शीतलेपाः सनावनाः। जीवनीयानि सर्पींषि पानान्नञ्चापि पित्तनुत्॥ ६॥

पित्तज शिरोरोग में घी और दूध का सेवन, सेंक, ठंढा लेप और नस्य, जीवनीय गण से सिद्ध किया हुआ घी और पित्तनाशक अन्न-पानों का सेवन पित्तज शिरोरोगों को नष्ट करता है॥ ६॥

शतधौतघृताभ्यङ्गशीतवातादिसेवनम्। शीतस्पर्शाश्च संसेव्याः सदा दाहार्तिशान्तये॥ ७॥

पैत्तिक शिरोरोग में दाह तथा वेदना की शान्ति के लिये सौ बार शीतल जल से धोया हुआ घी का अभ्यङ्ग, शीतल वायु का सेवन तथा शीतल अर्थात् कुमुद, नील कमल, श्वेत कमल आदि के पत्तों को शिर पर रखना चाहिए ॥ ७ ॥

चन्दनोशीरयष्ट्याह्वबलाव्याघ्रनखोत्पलैः । क्षीरपिष्टैःप्रदेहः स्याच्छृतैर्वा परिषेचनम् ॥ ८ ॥

लाल चन्दन, खस, मुलेठी, खरैटी, नखी, नील कमल, इन्हें एकत्र दूध से पीसकर पैत्तिक शिरोरोग की शान्ति के लिये लेप करना चाहिए। अथवा इन्हीं द्रव्यों के क्वाथ से परिषेचन करना चाहिए ॥ ॥

कफज शिरोरोग की चिकित्सा।

कफजे लंघनं स्वेदो रूक्षोष्णैः पाचनात्मकैः । तीक्ष्णावपीडधूमाश्च तीक्ष्णाश्च कवलग्रहाः ॥ ९ ॥

कफज शिरोरोग में लंघन तथा रूक्ष, गरम और पाचन ओषधियों से पसीना लेना, तीक्ष्ण ओषधियों के रस से अवपीडनस्य[1], धूम्रपान और तीक्ष्ण ओषधियों का कवल धारण करना हितकर है ॥ ९ ॥

कृष्णाब्दशुण्ठीमधुकशताह्वोत्पलपाकलैः । जलपिष्टैः शिरोलेपः सद्यः शूलनिवारणः ॥ १० ॥

पीपल, मोथा, सोंठ, मुलेठी, सोया, नील कमल, कूट ; इन्हें एकत्र जल से पीसकर लेप देने से शीघ्र ही कफज शिरोवेदना नष्ट होती है ॥ १० ॥

देवदारु नतं कुष्ठं नलदं विश्वभेपजम् । लेपः काञ्जिकसम्पिष्टस्तैलयुक्तः शिरोऽर्त्तिनुत् ॥ ११ ॥

देवदारु, तगर, कूट, जटामांसी, सोंठ इन्हें एकत्र कर काँजी से पीस, तैल में मिलाकर लेप करने से शिरःशूल नष्ट होता है ॥ ११ ॥

प्रयोऽयं दारुगरलमर्द्धभेदप्रशान्तये । विरतौ तत्प्रयोक्तव्यं न प्रकोपे कदाचन ॥ १२ ॥

अर्द्धावभेदक (अधकपारी) की शान्ति के लिये उचित मात्रा में संखिये का प्रयोग करना चाहिए। जब अर्द्धावभेदक की वेदना शान्त हुई हो, उसी समय ही आनेवाले दौरे को रोकने के लिये इसका प्रयोग कराना चाहिए। जब वेदना हो रही हो उस समय कदापि प्रयोग न करावे। मात्रा—$\frac{1}{64}$ से $\frac{1}{32}$ रत्ती तक ॥ १२ ॥

सारिवादि लेप।

सारिवोत्पलकुष्ठानि मधुकं चाम्लपेषितम् । सर्पिस्तैलयुतो लेपः सूर्य्यावर्त्तार्द्धभेदयोः ॥ १३ ॥

सारिवादिभिः समभागैः काञ्जिकपिष्टैर्घृततैलेन सहितैर्लेपः ।

सारिवा (अनन्तमूल), नीलकमल, कूट, मुलेठी इनको समभाग ले काँजी में पीसे पश्चात् घी और तेल मिलाकर लेप करने से सूर्यावर्त और आधाशीशी शान्त होती हैं ॥१३॥

नागरकल्कविमिश्रं क्षीरं नस्येन योजितं पुंसाम् । नानादोषोद्भूतां शिरोरुजां हन्ति तीव्रतराम् ॥ १४ ॥

दूध से चतुर्थांश सोंठ का कल्क मिला नस्य लेने से नाना दोषों से उत्पन्न तीव्र शिरोवेदना नष्ट होती है ॥ १४ ॥

नृसारस्य सुधायाश्च चूर्णमेकत्रयोजि-

[1] तीक्ष्ण ओषधियों को पीसकर कल्क करके निचोड़ ले। उस निचुड़े हुए रस को अवपीड कहते हैं। उस रस से जो नस्य लिया जाता है वह अवपीड नस्य कहा जाता है।

तम्। सार्द्रं कृत्वास्य गन्धेन विनश्यति शिरोऽव्यथा ॥१५॥

नौसादर के चूर्ण तथा चूने को इकट्ठा मिलाकर किंचित् जल से गीला करके सुंघाने से, इसकी गन्ध से, शिरो वेदना नष्ट होती है। इसे जिस शीशी में रक्खें उसकी डाट सर्वदा अच्छी प्रकार बन्द करके रखना चाहिए। अन्यथा औषध गुणहीन हो जाती है॥ १५॥

अथ योग कहते हैं।

सूर्यावर्त्तभवं बीजं तद्रसेन सुपेषितम्। वेदनानाशनो लेपः सूर्य्यावर्त्तार्द्धभेदयोः ॥ १६॥

सूरजमुखी के बीजों को सूरजमुखी के रस में पीसकर लेप करने से सूर्यावर्त्त[1] और आधा शीशी की पीड़ा शान्त होती है। १६॥

सूर्य्यावर्त्ते विधातव्यं नस्यकर्मादिभेषजम्। पाययेत् सगुडं सर्पिर्घृतपूरांश्च भोजयेत् ॥ १७॥

सूर्यावर्त्त रोग में नस्य आदि औषधियों का प्रयोग करना चाहिए तथा घी और गुड़ का पान एवं घेवर का भोजन देना चाहिए॥ १७॥

सूर्य्यावर्त्ते शिरावेधो नावनं क्षीरसर्पिषा। हितः क्षारघृताभ्यासस्ताभ्याञ्चैव विरेचनम् ॥ १८॥

सूर्यावर्त्त रोग में नस का वेधन कराकर रक्त निकालना तथा दूध और घी की नस्य लेना, जवाखार और घी का सेवन करना तथा जवाखार और घी से ही जुलाब लेना हितकर है॥ १८॥

कृतमालपल्लवरसे खरमञ्जरीकल्कसिद्धनवनीतम्। नस्येन जयति नियतं सूर्य्यावर्त्त सुदुर्वारम् ॥ १९॥

मक्खन आधसेर, अमलतास के पत्तों का रस २ सेर और कल्कार्थ लटजीरा आधपाव लेकर यथाविधि पाक करे। इस मक्खन के नस्य लेने से अत्यन्त कठिन सूर्यावर्त्त रोग शान्त होता है॥ १९॥

दशमूलीकषायन्तु सर्पिः सैन्धवसंयुतम्। नस्यमर्द्धावभेदघ्नं सूर्य्यावर्त्तं शिरोर्त्तिजित् ॥ २०॥

दशमूल के काढे में घी और सेंधानमक मिलाकर सूँघने से आधाशीशी, सूर्यावर्त्त और शिरपीड़ा नष्ट होती है॥ २०॥

शिरःशूलहर नस्य।

शिरोऽर्त्तिं हन्ति नस्येन स्फटिकीघनसारजम्। चूर्णं तूर्णं रुणद्धीह रक्तं नासास्रुतं भृशम् ॥ २१॥

फिटकिरी तथा कपूर; इनके चूर्ण को बराबर मात्रा में मिलाकर नस्य लेने से शिरोवेदना एवं नाक से प्रवृत्त रक्त (नकसीर) तत्काल बन्द होता है॥ २१॥

शिरीषमूलकफलैरवपीडश्च योजयेत्। अवपीडो हितो वा स्याद्वचापिप्पलिभिः कृतः ॥ २२॥

सिरस और मूली के बीजों के रस की नास लेने से अथवा बच और पीपरि के स्वरस की नास लेने से सूर्यावर्त्त नष्ट होता है॥ २२॥

जाङ्गलानि च मांसानि कारयेदुपनाहकम्। तेनास्य शाम्यते व्याधिः सूर्य्यावर्त्तः सुदारुणः ॥ २३॥

जंगली जीवों के मांस का लेप करने से परम दारुण सूर्यावर्त्त रोग शान्त होता है॥ २३॥

---

[1] सूर्यावर्त्त रोग में सूर्योदय से पीड़ा प्रारंभ होती है और मध्याह्न तक उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है तथा मध्याह्न के पश्चात् धीरे-धीरे कम होती जाती है और सूर्यास्त के समय बिलकुल शान्त हो जाती है।

भृङ्गराजरसश्छागक्षीरान्तश्चार्कतापितः। सूर्य्यावर्त्तं निहन्त्याशु नस्येनैव प्रयोगराट्॥ २४॥ एष एव विधिः कृत्स्नः कार्य्यश्चार्द्धावभेदके॥ २५॥

भाँगरे के रस में समान भाग बकरी का दूध मिलाकर धूप में गरम करके नस्य लेने से सूर्यावर्त शीघ्र ही नष्ट होता है। यह प्रयोगों का राजा है। यही पूर्वोक्त संपूर्ण विधि आधासीसी रोग में करनी चाहिए॥ २४-२५॥

पिबेत् सशर्करं क्षीरं वा नारिकेलजम्। सुशीतं वापि पानीयं सर्पिर्वा नस्यतस्तयोः॥ २६॥

नासिका के द्वारा शक्कर मिला हुआ दूध वा नारियल का जल या ठंढा जल अथवा घी पीने से सूर्यावर्त और अर्धावभेदक (आधासीसी); इन दोनों रोगों में लाभ होता है॥ २६॥

तिलात् कल्कं सनलदं सक्षौद्रलवणान्वितम्। तेनास्य लेपयेच्छीर्षमर्द्धभेदं व्यपोहति॥ २७॥

तिल और जटामांसी के कल्क में नमक और शहद मिलाकर शिर पर लेप करने से आधासीसी रोग नष्ट होता है॥ २७॥

सविडङ्गं तिलं कृष्णं समं कृत्वा प्रपेषयेत्। नस्यकर्म्मणि दातव्यमर्द्धभेदं विनाशयेत्॥ २८॥

समभागं पिष्ट्वा उष्णोदकेन घोलयित्वा नस्यम्।

काले तिल और वायविडंग समभाग लेकर खूब महीन पीस ले और उसे उष्ण जल में घोलकर उसकी नास लेने से आधासीसी नष्ट होती है॥ २८॥

दग्धचुल्लीमृदरचूर्णं तथा मरिचचूर्णकम्। समांशं मिलितं कृत्वा नस्यं देयं प्रयत्नतः॥ २९॥

चुल्हे की जली हुई मिट्टी और कालीमिर्च का चूर्ण समभाग मिलाकर नस्य देने से आधासीसी शान्त होती है॥ २९॥

अनन्तवात की चिकित्सा

अनन्तवाते कर्त्तव्यः सूर्य्यावर्तहितो विधिः। शिरावेधश्च कर्त्तव्योऽनन्तवातप्रशान्तये॥ ३०॥ आहारश्च विधातव्यो वातपित्तविनाशनः। मधुमस्तकसंयावसर्पिःपूरैश्च यः क्रमः॥ ३१॥

सूर्यावर्त में जो चिकित्सा हितकर हो वही आमवात रोग में भी करनी चाहिए तथा अनन्तवात की शान्ति के लिए शिरावेध भी कराना चाहिए। आहार-वात-पित्तनाशक एवम् मधुमस्तक, संयाव तथा घेवर का सेवन करना चाहिए॥ ३०-३१॥

शंखक रोग की चिकित्सा।

सूर्य्यावर्ते हितं यच्च शङ्खके स्वेदवर्जितम्। क्षीरसर्पिः प्रशंसन्ति नस्तः पानञ्च शङ्खके॥ ३२॥

सूर्यावर्त में जो चिकित्सा हितकर है, स्वेद के अतिरिक्त वही चिकित्सा शंखक रोग में लाभदायक होती है। दूध और घी पीना और नस्य लेना भी शंखक रोग में प्रशस्त है॥ ३२॥

शतावरीं कृष्णतिलान् मधुकं नील-

---

१ मधुतैलघृतैर्मध्ये वेष्टिताः समिताश्च याः। मधुमस्तकमुद्दिष्टं तस्यास्या परिमार्जनमिति—शब्दचन्द्रिका।

२ पर्पटाः साज्यमिता निर्मिता घृतभर्जिताः। कुट्टिताश्चालिताः शुद्धाः शर्कराभिर्विमर्दिताः। तच्चूर्णं प्रक्षिपेदेलां लवङ्गमरिचानि च। नालिकेरं सकर्पूरं सारबीजान्यनेकशः। घृताक्तसमिता पुटरोटिका रचिता ततः। तस्यां तत्पूरणांसस्य कुर्यान्मुद्रां स्वां सुधीः। सर्पिषि मधुरे तास्तु सुपचेन्निपुणो जनः। प्रकारैः प्रकारोऽयं संयाव इति कीर्तितः।

मुत्पलम् दूर्वां पुनर्नवाञ्चापि। लेपं साध्ववतारयेत् ॥ ३३ ॥

शतावरी, काले तिल, मुलेठी, नील कमल, दूब और सोंठी इनका लेप करने से शंखक रोग शान्त होता है ॥ ३३ ॥

शीततोयावसेकांश्च क्षीरसेकांश्च शीतलान्। कल्कैश्च क्षीरवृक्षाणां शङ्खकस्य प्रलेपनम् ॥ ३४ ॥

ठंढे जल से तथा ठंढे दूध से शिर का सींचना अथवा बरगद आदि दूधवाले वृक्षों के कल्क का लेप करना शंखक रोग में हितकर है ॥ ३४ ॥

क्रौञ्चकादम्बहंसानां शराट्याः कच्छपस्य च। रसैः संबृंहणस्याथ तस्य शङ्खकसन्धिजाः ॥ ३५ ॥ ऊर्ध्वास्तिस्रः शिराः प्राज्ञो भिन्द्यादेव न ताडयेत् ॥ ३६ ॥

क्रौञ्च, कलहंस, हंस, टिटिहरी और कछुआ; इनके मांस-रसों से रोगी का बृंहण कर्म करके शख की सन्धि के ऊपर की तीन शिराओं का वेधन करे, ताडन करे, क्योंकि वह मर्म स्थल है और सन्धि भग होने का भय है ॥ ३५,३६ ॥

गिरिकर्णीफलरसं मूलञ्च नस्यमाचरेत्। मूलं वा बन्धयेत् कर्णे शीघ्रं हन्ति शिरोव्यथाम् ॥ ३७ ॥

कोयली (विष्णुकान्ता) के फल के रस का अथवा उसकी जड़ के चूर्ण का नस्य लेने से तथा उसके मूल को कान में बाँधने से शिर की पीड़ा शीघ्र शान्त होती है ॥ ३७ ॥

गुञ्जाकरञ्जबीजञ्च तयोः कल्को जले कृता। मरिचैर्भृङ्गराजैश्च शीघ्रं हन्ति शिरोव्यथाम् ॥ ३८ ॥

घुंघुची और कंजा के बीजों को जल में पीसकर अथवा कालीमिर्च और भाँगरे को पीसकर नस्य लेने से शिर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ३८ ॥

क्षुद्रतीक्ष्णां तथा तीक्ष्णां स्नुहीक्षीरेण पेषयेत्। लेपनादाशु नश्यन्ति वेदनाः सर्वसम्भवाः ॥ ३९ ॥

छोटी लालमिर्च और बड़ी लालमिर्च को थूहर के दूध में पीसकर शिर पर लेप करने से सब प्रकार की शिर पीड़ाएँ नष्ट होती हैं ॥ ३९ ॥

षड्बिन्दु तैल।

एरण्डमूलं तगरं शताह्वा जीवन्तिरास्ना सहसैन्धवञ्च। भृङ्गं विडङ्गं मधुयष्टिका च विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम् ॥ ४० ॥ आजं पयस्तैलविमिश्रितञ्च चतुर्गुणे भृङ्गरसे विपक्वम्। षड्बिन्दवो नासिकया विधेया निहन्ति शीघ्रं शिरसो विकारान् ॥ ४१ ॥ च्युतांश्च केशांश्चलितांश्च दन्तान् दुर्बन्धमूलांश्च दृढीकरोति। सुपर्णदृष्टिप्रतिमञ्च चक्षुर्बाह्वोर्बलञ्चाप्यधिकं ददाति ॥ ४२ ॥

कल्क के लिए अरण्ड की जड़, तगर, सौंफ, जीवन्ती, रासना, सेंधा नमक, भँगरा बायबिडंग, मुलेठी और सोंठ; सब मिलाकर आध सेर। काले तिल का तेल २ सेर, बकरी का दूध २ सेर, भँगरे का रस ८ सेर। विधिपूर्वक तेल सिद्ध करे। इस तेल को छः-छः बूँद की मात्रा में प्रत्येक नासिका छिद्र में छोड़ने से शिर के कुल विकार शीघ्र नष्ट होते हैं तथा यह षड्बिन्दु तैल गिरते हुए केशों को तथा जड़ से हिले हुए दाँतों को जमा देता है एवं नेत्रों में गरुड़ की-सी दृष्टि और बाहुओं में अधिक बल देता है ॥ ४०-४२ ॥

मायूराद्य घृत।

दशमूलीबलारास्नामधुकैस्त्रिपलैः सह।

मयूरं पक्षपित्तान्त्रशकृत्पादास्यवर्जितम्॥ ४३॥ जले पक्त्वा घृतप्रस्थं तस्मिन् क्षीरसमं पचेत्। मधुरैः कार्षिकैः कल्कैः शिरोरोगार्दितापहम्॥ ४४॥ कर्णनासाक्षिजिह्वास्यगलरोगविनाशनम्। मयूराद्यमिदं सर्पिरूर्ध्वजत्रुगदापहम्॥ ४५॥ आखुभिः कुक्कुटैर्हंसैः शशैश्चापि हि बुद्धिमान्। कल्केनानेन विपचेत् सर्पिरूर्ध्वगदापहम्॥ ४६॥ दशमूलादिना तुल्यो मयूर इह गृह्यते। अन्ये त्वाकृतिमानेन मयूरग्रहणं विदुः॥ ४७॥

क्वाथ के लिये दशमूल का प्रत्येक द्रव्य बारह-बारह तोले, खरेटी १२ तोले, रासना १२ तोले और मुलेठी १२ तोले। पंख, पित्ता, आँत, बींट, और चोंच से रहित मोर का मांस १५ तोले। जल २५ सेर ४८ तोले। अवशिष्ट क्वाथ ६ सेर ३२ तोले। घी १२८ तोले। दूध १२८ तोले। कल्क के लिए मधुर द्रव्य (काकोल्यादि गण—काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मुँगवन, मषवन, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकड़ासिंगी, वंशलोचन, पद्माख, पुंडरिया, ऋद्धि, वृद्धि, मुनक्का, जीवन्ती, मुलेठी—की प्रत्येक औषधि) एक-एक तोला। विधि से घृत सिद्ध कर पान करने से शिर के रोग तथा कान, नाक, आँख, जीभ, मुख, गल और जत्रुसन्धि से ऊपर होनेवाले रोगों को यह मयूराद्य घृत नष्ट करता है।

इसी प्रकार पूर्वोक्त क्वाथ और कल्क के साथ चूहा, मुर्गा, हंस और खरगोश के मांस को मिश्रित कर घृत सिद्ध करके सेवन करने से जत्रुसन्धि से ऊपर होनेवाले रोग नष्ट होते हैं। यहाँ दशमूल आदि के तुल्य मयूर मांस का ग्रहण करना बताते हैं॥ ४३-४७॥

बृहन्मयूराद्य घृत।

शतं मयूरमांसस्य दशमूलं बलां तुलाम्। द्रोणेऽम्भसः पचेत् क्षुत्वा तस्मिन् पादस्थिते ततः॥ ४८॥ निषिच्य पयसो द्रोणं पचेत्तत्र घृताढकम्। प्रपौण्डरीकं वर्गोक्तैर्जीवनीयैश्च भेषजैः॥ ४९॥ मेधाबुद्धिस्मृतिकरमूर्ध्वजत्रुगदापहम्। मायूरमेतन्निर्दिष्टं सर्वानिलहरं परम्॥ ५०॥ मन्याकर्णशिरोनेत्ररुजापस्मारनाशनम्। विषवातामयश्वासविषमज्वरकासनुत्॥ ५१॥

क्वाथार्थं जवान मयूरों का मांस ५ सेर। जल २५ सेर ४८ तोले। अवशेष क्वाथ ६ सेर ३२ तोले और दशमूल तथा खरेटी मिलित ५ सेर, क्वाथार्थ जल २५ सेर ४८ तोले। अवशेष क्वाथ ६ सेर ३२ तोले। दूध २५ सेर ४८ तोला। घृत ६ सेर ३२ तोला। कल्क के लिए पुण्डरिया और जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलेठी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी) की ओषधियाँ मिलित १२८ तोले। विधिवत् घृत सिद्ध करके सेवन करने से मेधा, बुद्धि और स्मरणशक्ति को बढ़ाता है और जत्रुसन्धि से ऊपर के रोगों को नाश करता है। यह बृहन्मयूराद्य घृत सब प्रकार के वातरोग, गर्दन के रोग तथा कान, शिर और आँख की पीड़ा, अपस्मार, विषदोष, वातरोग, श्वास, विषमज्वर और कासरोग को नष्ट करता है॥ ४८-५१॥

गुञ्जातैल।

विशुद्धं तिलतैलञ्च तत्समं काञ्जिकं भवेत्। आरनालसमं भृङ्गद्रवं कृत्वा प्रदापयेत्॥ ५२॥ मन्दाग्निना ततः पाच्यं यावत्तैलं स्थितं भवेत्। तैलमध्ये प्रदातव्यं पिष्ट्वा गुञ्जापलद्वयम्॥ ५३॥ उत्तार्य्य तैलशेषं तु दिनैकं तत्तु रक्षयेत्। शिरोरोगेषु दुष्टेषु चार्द्धशीर्षे सुदारुणे॥ ५४॥ भ्रूशङ्खकर्णपीडाश्च नश्यन्ति

१ 'यकृत्पादास्यवर्जितम्' इत्यपि पाठः।

नात्र संशयः। गुञ्जातैलमिति ख्यातं दत्तं हन्ति शिरोव्यथाम् ॥ ५५ ॥

तिल तैल ३२ तोले। काँजी ३२ तोले। भाँगरे का रस ३२ तोले। कल्क के लिए घुँघची ८ तोले। मन्दाग्नि से तेल सिद्ध करे। जब केवल तेल बाकी रहे तब छान कर एक दिन धरा रहने दे। इस तेल का नस्य लेने से शिरोरोग, आधासीसी, भौं, शंख और कान की पीड़ा नष्ट होती है। यह गुञ्जातैल शिर की पीड़ा को नष्ट करता है ॥ ५२-५५ ॥

पञ्च पञ्च पलं नीत्वा पञ्चमूलीयुगात् पृथक्। विपाचयेज्जलद्रोणे चाष्टभागावशेषितम् ॥ ५६ ॥ आर्द्रकस्य रसप्रस्थं निर्गुण्ड्यास्तत्समं भवेत्। त्र्यूषणं पञ्चकोलं च जीरकद्वयसर्षपम् ॥ ५७ ॥ सैन्धवञ्च यवक्षारं त्रिवृता च निशाद्वयम्। तोयञ्च द्विगुणं दत्त्वा कल्कमक्षसमं विदुः ॥ ५८ ॥ सर्वैरेभिः पचेत्तैलं शिरोरोगं व्यपोहति। ऊर्ध्वजत्रु जरोघ्नं वातश्लेष्मगदापहम् ॥ ५९ ॥ एकजे द्वन्द्वजे चैव तथैव सान्निपातिके। अर्द्धावभेदकेचैव सूर्य्यावर्त्ते प्रशस्यते ॥ ६१ ॥ सिद्धफलमिदम्।

दशमूल की प्रत्येक ओषधि बीस-बीस तोले लेकर २५ सेर ४८ तोले जल में औटावे जब ३ सेर १६ तोले बाकी रहे तब उतार कर छान ले। अदरख का रस १२८ तोले, संभालू की पत्तियों का रस १२८ तोले, कडुआ तेल १२८ तोले। कल्क के लिए सोंठ, मिर्च, पीपरि, पीपरामूल, चव्य, चीता की जड़, सोंठ, सफेद जीरा, कालाजीरा, सरसों, सेंधानमक, जवाखार, निशोथ हल्दी और दारुहल्दी, प्रत्येक एक-एक तोला। जल ३ सेर १६ तोले। विधि से तेल का पाक करना चाहिए। इस तेल के पीने, मालिश करने और सूंघने से शिरोरोग, जत्रुसन्धि के ऊपर के रोग, वायु और कफ के रोग तथा एकदोषज, द्वन्द्वज और सान्निपातिक, आधासीसी, सूर्यावर्त और कर्णरोग नष्ट होते हैं। यह सिद्धफल (अनुभूत) है ॥ ५६-६१ ॥

महादशमूलतैल।

दशमूलं पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत्। तेन पादावशेषेण कटुतैलाढकं पचेत् ॥ ६२ ॥ जम्बीरार्द्रकधुस्तूरस्वरसं तैलतुल्यतः। कल्कः कणामृता दार्वी शतपुष्पा पुनर्नवा ॥ ६३ ॥ शिग्रु पिप्पलिका तिक्ता करञ्जं कृष्णजीरकम्। सिद्धार्थकं वचा शुण्ठी पिप्पली चित्रकं शटी ॥ ६४ ॥ देवदारु यला रास्ना सूर्यावर्त्तककटफलम्। निर्गुण्डी चविका गैरी ग्रन्थिकं शुष्कमूलकम् ॥ ६५ ॥ यमानी जीरकं कुष्ठमजमोदा त्व ताडकम्। एतेषां पलिकैर्भागैर्विपचेन्मतिमान् भिषक् ॥ ६६ ॥ हन्ति श्लेष्माणमभ्यङ्गात् पानात् कासं व्यपोहति। निहन्ति विविधान् व्याधीन् कफवातसमुद्भवान् ॥ ६७ ॥ शिरोमध्यगतान् रोगान् शोथान् हन्ति व्रणानपि ॥ ६८ ॥

दशमूल ५ सेर लेकर २५ सेर ४८ तोले जल में औटावे, जब ६ सेर ३२ तोले बाकी रहे तब उतार कर छान ले। कडुआ तेल ६ सेर ३२ तोले, जंबीरी नींबू का रस ६ सेर ३२ तोले, अदरख का रस ६ सेर ३२ तोले और धतूरे का रस ६ सेर ३२ तोले। कल्क के लिए पीपरि, गिलोय, दारुहल्दी, सौंफ, सांठी की जड़, सहिजन की छाल, पीपरि, कुटकी, करञ्जुआ, कालाजीरा, सफेद सरसों, वच, सोंठ, पीपरि, चीता की जड़, कचूर, देवदारु, भटेंटी, रासना, सूरजमुखी, कायफल, सँभालू की जड़, चव्य, गेरू, पीपलामूल, सूखी मूली, अजवायन, जीरा, कूट, अजमोदा और देवदाली; प्रत्येक चार-चार तोले यथाविधि तेल सिद्ध कर पान

करने अथवा सूँघने से कफरोग, खाँसी, अनेक प्रकार की कफवातज व्याधियाँ, शिरोरोग, सूजन और व्रणरोग नष्ट होते हैं ॥ ६२—६८ ॥

तन्त्रान्तरोक्त बृहद्दशमूल तैल।

दशमूलीशतं ग्राह्यं तथा धुस्तूरकस्य च। शतं पुनर्नवायाश्च निर्गुण्ड्याश्च शतं तथा ॥ ६९ ॥ एतैः कषायैर्विपचेत् कटुतैलाढकं भिषक्। वासा वचा देवदारु शटी रास्ना सयष्टिका ॥ ७० ॥ मरिचं पिप्पली शुण्ठी कारवी कट्फलं तथा। करञ्जं शिग्रुकुष्ठञ्च चिञ्चा च वनशिम्बिका ॥ ७१ ॥ चित्रकञ्च पृथग्भागान् दत्त्वा चैषां पलोन्मितान्। श्लैष्मिकं सन्निपातोत्थं वातश्लेष्मोद्भवं तथा ॥७२॥ कर्णशूलं शिरःशूलं नेत्रशूलञ्च दारुणम्। निहन्ति दशमूलाख्यं तैलमेतन्न संशयः ॥ ७३ ॥

दशमूल ४ सेर, जल २५ सेर ४८ तोले, अवशिष्ट क्वाथ ६ सेर ३२ तोले। धतूरा ४ सेर, जल २५ सेर ४८ तोले, अवशिष्ट क्वाथ ६ सेर ३२ तोले। साँठी ४ सेर, जल २५ सेर ४८ तोले, अवशिष्ट क्वाथ ६ सेर ३२ तोले, तेल कड़ुवा ६ सेर ३२ तोले। कल्क के लिए अडूसा, बच, देवदारु, कचूर, रास्ना, मुलेठी, मिर्च, पीपरि, सोंठ, सोया, कायफल, करंजुआ सहिंजन, कूट, इमली की छाल, वनसेम और चीता की जड़; प्रत्येक चार-चार तोले। विधि से तेल सिद्ध कर सेवन करने से यह दशमूल नामक तेल कफज, सन्निपातज तथा वात कफज कर्णशूल, शिरःशूल और कठिन नेत्रशूलों को निःसंदेह नष्ट करता है ॥ ६९-७३ ॥

तन्त्रान्तरोक्त दशमूल तैल।

दशमूलकाथकल्काभ्यां निर्गुण्डीरससंयुतम्। कटुतैलं समादाय पचेत् प्रस्थं भिषग्वरः ॥७४॥ सन्निपातं हरेदेतच्छिरोरोगं तथैव च। अस्थिसन्धिकफमायान् रोगान् हन्ति न संशयः ॥ ७५ ॥

दशमूल का क्वाथ ६ सेर ३२ तोले, सँभालू की पत्तियों का रस ६ सेर ३२ तोले, कड़ुआ तेल १२८ तोले। कल्क के लिए दशमूल ३२ तोले। विधि से तेल सिद्ध कर सेवन करने से सन्निपात, सिर के रोग तथा कफजन्य हड्डी और सन्धि के रोग नष्ट होते हैं ॥ ७४-७५ ॥

विशेषदशमूल तैल।

दशमूलकाथकल्काभ्यां तैलप्रस्थं विपाचयेत्। चतुर्गुणं पयो दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना भिषक् ॥ ७६ ॥ दशमूलमिति ख्यातं शोथं हन्ति सुदारुणम्। नस्येनाकालपलितं ज्वरारोचकनाशनम्। अभ्यङ्गेन सर्वञ्च शिरःशूलं विनाशयेत् ॥७७॥

दशमूल का क्वाथ ६ सेर ३२ तोले। तेल १२८ तोले। दूध ६ सेर ३२ तोले। कल्क के लिए दशमूल ३२ तोले। इन सबको एकत्र कर मन्द-मन्द अग्नि में पकावे। यह दशमूल तेल कठिन से कठिन सूजन को नष्ट करता है। इसका नस्य लेने से कुसमय बालों का पकना, ज्वर और अरुचि तथा मालिश करने से सब प्रकार के शिरःशूल नष्ट होते हैं ॥ ७६-७७ ॥

अपरदशमूल तैल।

दशमूलीकषायेण अष्टाङ्गकल्कसंयुतम्। क्षीरञ्च द्विगुणं दत्त्वा तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७८ ॥ शिरोर्तिं नाशयेदेतद् भास्करस्तिमिरं तथा। वातशूलं पित्तशूलं कफशूलं त्रिदोषजम् ॥ ७९ ॥ सूर्य्यावर्त्तमभिष्यन्दं जलदोषञ्च नाशयेत्। दशमूलमिदं तैलं शिरोरोगनिसूदनम् ॥ ८० ॥

दशमूल का क्वाथ ६ सेर ३२ तोले। तेल १२८ तोले। दूध ३ सेर १६ तोले। कल्क के लिए अष्टवर्ग३२ तोले। विधि से तेल सिद्ध

करे । यह तेल शिर की पीड़ा को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार सूर्य अन्धकार को तथा वातशूल, पित्तशूल, कफशूल, सान्निपातिक शूल, सूर्यावर्त, अभिष्यन्द, जलदोष और शिरोरोगों को नष्ट करता है ॥ ७८–८० ॥

अपर स्वल्पदशमूल तैल ।

दशमूलक्वाथकल्काभ्यां कटुतैलं विपाचयेत् । सन्निपातज्वरश्वासकासान् हन्ति सुदारुणान् ॥ ८१ ॥

दशमूल के क्वाथ और कल्क के साथ कड़ुआ तेल को यथाविधि सिद्ध करें । यह तेल दारुण सन्निपातज्वर, श्वास और खाँसी को नष्ट करता है ॥ ८१ ॥

धुस्तूर तैल ।

धुस्तूरक्वाथकल्काभ्यां कटुतैलं विपाचयेत् । सन्निपातज्वरश्लेष्मशोथशीर्षार्त्तिदाहनुत् ॥ कर्णग्रहहरं चास्थिसन्धिग्रहविनाशनम् ॥ ८२ ॥

धतूरे का क्वाथ ४ सेर, कड़ुआ तेल १ सेर । कल्क के लिए धतूरा पाव भर । यथाविधि तेल सिद्धकर मालिश करने से सन्निपातज्वर, कफ सूजन और शिरोरोग, दाह, कर्ण की पीड़ा, हड्डी और सन्धियों की पीड़ा को यह धुस्तूर तेल नष्ट करता है ॥ ८२ ॥

मध्यमदशमूल तैल ।

दशमूली करञ्जश्च निर्गुण्डी च जयन्तिका । धुस्तूरः षट्पलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ८३ ॥ पादशेषे रसे तैलं कटुप्रस्थं विपाचयेत् । तत्कल्कान् दापयेत् तत्र भागान् षट्तोलकान् पृथक् ॥ ८४ ॥ वातश्लेष्मसमुद्भूतं शिरोरोगं व्यपोहति । कासं पञ्चविधं शोथं जीर्णज्वरमपोहति ॥ ८५ ॥ दशमूलमिदं तैलं शिरःकर्णाक्षिरोगनुत् । मन्यास्तम्भमन्यावृद्धिं श्लीपदञ्च विनाशयेत् । दशमूलमिदं तैलमश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥ ८६ ॥

दशमूल, करञ्जुआ, सँभालू, जयन्ती के पत्ते और धतूरे के पत्ते, प्रत्येक चौबीस चौबीस तोले । जल २५ सेर ४८ तोले । चतुर्थांश क्वाथ ६ सेर ३२ तोले । कड़ुआ तेल १२८ तोले । कल्क के लिए दशमूल, करञ्जुआ, सँभालू, जयन्ती के पत्ते और सम्भालू के पत्ते; प्रत्येक छह छह तोले । यथाविधि तेल सिद्ध कर मालिश करने से यह दशमूल तेल वात कफज शिरोरोग, पाँचों प्रकार के कास, शोथ और जीर्णज्वर को नष्ट करता है । एवं शिर, कान और आँखों के रोग, गर्दन का रुक जाना, मन्यावृद्धि, श्लीपद (फीलपाँव) आदि रोगों को नष्ट करता है । इस दशमूल तेल को पहले अश्विनीकुमारों ने बनाया था ॥ ८३–८६ ॥

कनक तैल ।

कनकार्कशिला दूर्वा वासको वैजयन्तिका । निर्गुण्डी पूतिका भार्गी शाखोटकपुनर्नवे ॥ ८७ ॥ बदरीविजयापत्रं श्रीफलं बृहती तथा । चित्रकश्च स्नुहीमूलमग्निमन्थो व्यडम्बकम् ॥ ८८ ॥ विष्णुक्रान्ती गोमठी च पत्रमारग्वधस्य च । प्रत्येकं द्विपलं चैषां गृह्णीयात् तत्त्वगणादपि ॥ ८९ ॥ जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत् पादावशेषितम् । प्रस्थञ्च कटुतैलस्य पाचयेत् तीव्रवह्निना ॥ ९० ॥ द्रव्याण्येतानि सर्वाणि कल्कितानि प्रदापयेत् । चक्षुःशूलं शिरःशूलं श्लीपदं मांसवर्द्धनम् ॥ ९१ ॥ आमवातञ्च हृच्छूलं वृद्धिञ्च गलगण्डकम् । शोथं बाधिर्य्यमुदरं कासं हन्ति न संशयः ॥ ९२ ॥ दूर्वायां पतिते चिन्ता न कर्तव्या तत्त्वगणात् । कनकाख्यमिदं तैलं सर्वरोगकुलान्तकम् ॥ ९३ ॥

. धतूरा, आक की जड़, खरेटी, दूब, अरूसा, जयन्ती, निर्गुण्डी, करंजुआ के बीज, भारंगी, सिहोरा की छाल, सौंठी, बेर के पत्ते, भांग के पत्ते, बेलगिरी, कटेरी, चीता की जड़, थूहर की जड़, अरणी, एरण्ड की जड़, निसोथ, मँजीठ, वनभांटा और अमलतास में पत्ते; प्रत्येक आठ-आठ तोले। क्वाथ के लिए जल २५ सेर ४८ तोले। अवशिष्ट क्वाथ ६ सेर ३२ तोले। कडुआ तेल १२८ तोले। कल्क के लिए पूर्वोक्त क्वाथ की संपूर्ण ओषधियाँ मिलित ३२ तोले लेकर विधिपूर्वक तेज अग्नि द्वारा तेल सिद्ध करे। इस तेल की मालिश करने से नेत्रशूल, शिरःशूल, रक्तज और मांसज श्लीपद, आमघात, हृदय-शूल, अण्डवृद्धि, गलगण्ड, शोथ, बहरापन, उदर-विकार, खाँसी और सब प्रकार के कफ-रोगों को यह कनक तेल नष्ट करता है। हरी दूब पर यदि इसकी बूंद गिर जाय तो उसी समय दूब सूख जाती है॥ ८७-९३॥

महाकनक तैल।

कनकस्य रसप्रस्थं प्रस्थं वर्षाभुवस्तथा। निर्गुण्डीस्वरसप्रस्थं दशमूलरसस्य च॥ ९४॥ पारिभद्ररसप्रस्थं प्रस्थं वरुणकस्य च। तैलप्रस्थं समादाय भिषग्यत्नाद्विपाचयेत्॥ ९५॥ कल्कैरर्द्धपलैरेतैः शुण्ठीमरिचसैन्धवैः। पुनर्नवाकर्कटकश्रोलुत्यकपिप्पलीयुगैः॥ ९६॥ तत्साधुसिद्धं विज्ञाय शुभे पात्रे निधापयेत्। वातश्लेष्मकृतं सर्वमामवातं भगन्दरम्॥ ९७॥ सन्निपातभवं रोगं शोथकाशु विनाशयेत्। ये केचिद्व्याधयः सन्ति श्लैष्मिकाः सान्निपातिकाः॥ ९८॥ तान् सर्वान्नाशयत्याशु सूर्य्यस्तम इवोदितः॥ ९९॥

धतूरे का रस १२८ तोले। सांठी का रस १२८ तोले। निर्गुण्डी के पत्तों का रस १२८ तोले। दशमूल का काढ़ा १२८ तोले। नीम के पत्तों का रस १२८ तोले। बरना की छाल का काढ़ा १२८ तोले। तेल १२८ तोले। कल्क के लिए सोंठ, मिर्च, सेंधानमक, साँठी, काकड़ासिंगी, लसोढ़े की छाल, पीपरि और गजपीपरि, प्रत्येक दो-दो तोले। जब तेल अच्छे प्रकार सिद्ध हो जाय तब वस्त्र से छानकर अच्छे साफ बरतन में रक्खे। यह तैल वातकफ के विकार, सब प्रकार के आमवात, भगन्दर, सन्निपात के रोग और शोथ को तत्काल नष्ट करता है। तथा अन्यान्य कुल श्लैष्मिक और सान्निपातिक रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे उदित सूर्य अन्धकार को नष्ट करता है॥ ९४-९९॥

रुद्र तैल।

जैपालद्रोणधुस्तूरशिग्रुशक्राशनस्य च। सूर्यावर्त्तस्य सूर्य्यस्य पत्राणां स्वरसं पृथक्॥ १००॥ जम्बीरशृङ्गवेरस्य रसं दत्त्वा समं समम्। कटुतैलस्य पात्रं तु शोधयित्वा पचेद्भिषक्॥१०१॥ रजनीद्वयमञ्जिष्ठा कट्फलं कृष्णजीरकम्। त्रिकटु पिप्पलीमूलं सारिवे द्वे विडङ्गकम्॥ १०२॥ रास्ना दारु बला निम्बं मुस्तकं चन्दनं तथा। परशू द्वौ स्नुहीमूलं मूर्वापामार्गमूलकम्॥ १०३॥ स्वरसद्रव्यमेतेषां कल्कं दत्त्वा तु पादिकम्। मृत्पात्रे सुदृढे चैव पाचयेत् तीव्रवह्निना॥१०४॥ बलासमूर्ध्वगञ्चैव नाशयेत् त्रिदिनाद् ध्रुवम्। मुखनासाशिरोरोगांश्च कफशोणितसंस्रवान्॥ १०५॥ शिरोरोगं सन्निपातं श्लीपदं गलगण्डकम्। अभ्यङ्गान्नाशयेदेतान् पानात् कासं व्यपोहति॥ कालाग्निरुद्रेण प्रोक्तं रुद्रतैलमिदं पुरा॥ १०६॥

जमालगोटा, गोमा, धतूरा, सहिजन, भांग, सूरजमुखी और आक के पत्तों का रस प्रत्येक ६ सेर ३२ तोले। जंबीरी नींबू का रस ६ सेर

३२ तोले। अदरख का रस ६ सेर ३२ तोले। कड़ुआ तेल ६ सेर ३२ तोले। कल्क के लिए हल्दी, दारुहल्दी, मँजीठ, कायफल कालाजीरा, सोंठ, मिर्च, पीपरि, पीपरामूल, सफेद सारिवा (अनन्तमूल), काली सारिवा (कालीसर), वायविड़ंग, रासना, देवदारु, खरेंटी, नीम की छाल, नागरमोथा, लाल चन्दन, दोनों प्रकार के परशु (कोशातिया, कुड़ालिया), थूहर की जड़, मरोरफली, लटजीरा की जड़, जमालगोटा, गोमा, धतूरा, सहिजन, भाँग, सूरजमुखी और आक की जड़; ये सब मिलित १२८ तोले। इस तेल का पाक मिट्टी के दृढ़ पात्र में तेज अग्नि से करना चाहिए। यह तेल मालिश करने से कफरोग और जत्रु से ऊपर होनेवाले रोगों को तीन दिन में नाश करता है। तथा मुख, नाक और नेत्र के रोग, कफस्राव, रक्तस्राव, शिर के रोग, सन्निपात, श्लीपद और गलगण्ड; इन रोगों को मालिश करने से और खाँसी को पान करने से नष्ट करता है। पहले इस रुद्रतैल को कालाग्निरुद्र ने कहा था॥ १००–१०६॥

तप्तराजतैल।

लशुनीनां रसप्रस्थं शिग्रुधुत्तूरयोस्तथा। वासकस्य रसप्रस्थं तथा निर्गुण्डिकाकयोः ॥ १०७॥ दशमूलरसप्रस्थं करञ्जनलयोस्तथा। पृथगेतैः पचेद्धीमान् तैलप्रस्थञ्च सार्षपम् ॥ १०८॥ कल्कः कणा बला शुण्ठी पिप्पलीमूलचित्रकम्। कट्फलं कनकं चव्यं जीरकं शतपुष्पिका ॥ १०९॥ पुनर्नवा हरिद्रा च देवदारु च लाङ्गली। शुष्कमूलककुष्ठञ्च यामकं कृष्णजीरकम् ॥ ११०॥ स्नुह्यर्कक्षीरं जैपालमूलं नागदलं तथा। विडङ्गं सैन्धवं क्षारं चन्दनं शिग्रुमुत्पलम् ॥ १११॥ मरिचं मधुकं रास्ना शृङ्गी व्याघ्री वरुणकम्। प्लेपं कार्षिकैः कल्कैर्विपचेत् पाकविद्भिषक् ॥ ११२॥ अभ्यङ्गात् श्लैष्मिकं हन्ति पानात् कासं व्यपोहति। श्वयथुश्चोदरं शूलं शिरोरोगं सुदुस्तरम् ॥ ११३॥ शिरःशूलं नेत्रशूलं कर्णशूलञ्च दारुणम्। त्रयोदशसन्निपातान् वातश्लेष्मगलग्रहान् ॥ ११४॥ एकजं द्वन्द्वजं चैव तथैव सान्निपातिकम्। सर्वं शोथं निहन्त्येव ज्वरं प्लीहानमेव च ॥ ११५॥ श्लेष्मरोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा। तप्तराजमिदं तैलमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ११६

हरफारेवड़ी, सहिजना, धतूरा, अड़ूसा, निर्गुण्डी, मदार, दशमूल, करज और खरेंटी, प्रत्येक का रस या काढ़ा १२८ तोले। कड़ुआ तेल १२८ तोले। कल्क के लिए पीपरि, खरेंटी, सोंठ, पीपलामूल, चीता की जड़, कायफल, धतूरा के पत्ते, चव्य, जीरा, सौंफ, साँठी, हल्दी, देवदारु, कलिहारी, सूखी मूली, कूट, अजवासा, काला जीरा, थूहर का दूध, आक का दूध, जमालगोटे की जड़, नागदौन, वायविड़ंग, सेंधानमक, जवाखार, लालचन्दन, सहिजने की छाल, नीलोफर काली मिर्च, मुलेठी, रासना, काकड़ासिंगी, कटेरी और वरना की छाल; प्रत्येक एक-एक तोला। विधिपूर्वक तेल सिद्ध करे। मालिश करने से यह तेल कफरोगों को और पान करने से कासरोगों को नष्ट करता है। शोथ, उदररोग, शूल, कठिन से कठिन शिर [illegible] रोग, शिर शूल, नेत्रशूल, भयङ्कर कर्णशूल, तेरह प्रकार के सन्निपात, वात-कफ के रोग, गलग्रहरोग, एकदोषज, द्विदोषज, और सन्निपातज शोथ, ज्वर, तिल्ली और कफज रोग तथा जत्रुसन्धि से ऊपर के रोगों को यह तप्तराज तेल इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट करता है॥ १००–११६॥

तन्त्रान्तरोक्त तप्तराज तैल।

धुस्तूरं पूतिकं पीता नयन्ती सिन्धु-

धारकम् । शिरीषं हिज्जलं शिग्रु दशमूलं समं भवेत् ॥ ११७ ॥ प्रस्थं प्रस्थं समादाय कटुतैलं समांशकम् । जलद्रोणे विपक्कव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ ११८ ॥ गोमूत्रं चार्द्धकं दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत्। मदनं त्र्यूषणं कुष्ठमजाजीमिशिभेषजम् ॥ ११९ ॥ कट्फलं वरुण मुस्तं हिज्जलं बिल्वमेव च । हरितालं जवापुष्पममृतं कुनटी तथा ॥ १२० ॥ कर्कटं चन्दनं शिग्रुयमानी व्याघ्रपादपि । एतेषां कार्पिकैर्भागैः समभागं प्रकल्पयेत् ॥ १२१ ॥ तप्तराजमिति ख्यातं महादेवेन निर्मितम्। सन्निपातं महाघोरं शिरोरोगं महत्तरम् ॥ १२२ ॥ शिरःशूलं नेत्ररोगं कर्णशूलञ्च दारुणम् । ज्वरं दाहं महाघोरं स्वेदञ्चैव महत्तरम् ॥ १२३ ॥कामलां पाण्डुरोगञ्च सहलीमकपीनसम् । त्रयोदशसन्निपातान् हन्ति सद्यो न संशयः ॥ १२४ ॥

धतूरा, करंज, हल्दी, जयन्ती, सँभालू, सिरस की छाल, समुद्रफल, सहिजना की छाल और समभाग मिलित दशमूल, प्रत्येक ६४-६४ तोले। क्वाथ के लिए जल २५ सेर ४८ तोले। अवशिष्ट क्वाथ ६ सेर ३२ तोले। कड़ुआ तेल १२८ तोले। गोमूत्र ६ सेर ३२ तोले। कल्क के लिए मैनफल, सोंठ, मिर्च, पीपरि, कूट, जीरा, सोंठ, कायफल, बरना की छाल, नागरमोथा, समुद्रफल, बेलगिरी, हरताल, गुड़हल के फूल, मीठा विष, मैनशिल, काकड़ासिंगी, लाल चन्दन, सहिजन, अजवायन और कराई की छाल; प्रत्येक एक-एक तोला। इस तेल को धीरे-धीरे मन्द अग्नि से पकावे। यह महादेवजी का बनाया हुआ तप्तराज तेल मालिश करने से महाघोर सन्निपात, महान् शिरोरोग, शिरःशूल, नेत्ररोग, कर्णशूल, ज्वर दाह, पसीने की अधिकता, कामला, पाण्डु- रोग, हलीमक, पीनस और तेरह प्रकार के सान्निपातों को शीघ्र नष्ट करता है ॥ ११७-१२४ ॥

बृहत्किङ्किणी तैल।

किङ्किणीप्रस्थमेकञ्च प्रस्थं सहचरस्य च । कृष्णधुस्तूरकप्रस्थं प्रस्थञ्च सिन्धुवारकम् ॥ १२५ ॥ पचेत्पात्रं जलं दत्त्वा पादशेषं समुद्धरेत् । तैलप्रस्थं विपक्कव्यं द्रव्याणीमानि दापयेत् ॥ १२६ ॥ यष्टी कणा पयोदश्च गन्धकं कुष्ठमेव च । समुद्रान्ता तथा शृङ्गी किङ्किणीबीजमेहकम् ॥ १२७ ॥ रास्ना मधुरिका झिण्टीमूलमीश्वरमेव च । विषमाधुकमञ्जिष्ठाशोभाञ्जनत्वचं तथा ॥ १२८ ॥ एषां कर्षद्वयञ्चैव पिष्ट्वा चात्र समावपेत् । निहन्ति पूतिकर्णञ्च कर्णस्रावं सकण्डुकम्॥१२९॥ कर्णनादं कर्णशोथं बाधिर्य्यं दारुणं तथा। शिरोरोगं नेत्ररोगं मन्यास्तम्भं गलग्रहम्॥ एतान् रोगान् निहन्त्याशु वृत्तमिन्द्राशनिर्यथा ॥ १३१ ॥

हुलहुल ६४ तोले। पियापाँसा ६४ तोले। काला धतूरा ६४ तोले। सँभालू ६४ तोले। प्रत्येक को अलग-अलग ६ सेर ३२ तोले जल में पकाकर चौथाई जल अवशिष्ट रक्खे। कड़ुआ तेल १२८ तोले कल्क के लिए मुलेठी, पीपरि, नागरमोथा, गन्धक, कूट, जवासा, काकड़ासिंगी, सूर्यमुखी के बीज, काला धतूरा, रासना, सौंफ, पियाबाँसा की जड़, पारा, मीठाविष, मुलेठी, मँजीठ और सहिजना की छाल; प्रत्येक दो-दो तोले। विधि से तेल सिद्ध कर कान में छोड़े तो कर्णनाद, कर्णशोथ और दारुण बधिरता को नष्ट करे और मालिश करने से शिरोरोग, नेत्ररोग, गर्दन के ऊपर की नाड़ी का रुकना और गलग्रह; इन रोगों को इस प्रकार नष्ट करता

है जैसे इन्द्र का वज्र वृक्षों को नष्ट करता है ॥ १२९-१३१ ॥

श्लैष्मशैलेन्द्र रस।

ज्वराधिकार उक्तो यच्छ्लेष्मशैलेन्द्रको रसः। स चाप्यत्र प्रयोक्तव्यः शिरोरोगनिसूदनः ॥ १३२ ॥

ज्वराधिकार में जो हम श्लैष्मशैलेन्द्र रस कह आये हैं वह भी शिरोरोग को नाश करने के लिये प्रयुक्त करना चाहिए ॥ १३२ ॥

रसचन्द्रिका वटी।

त्रैलोक्यविजयाबीजं बीजमुन्मत्तकस्य च। कण्टकारीबीजकञ्च बीजं हैज्जलमेव च ॥ १३३ ॥ बीजञ्च वृद्धदारस्य समौ गन्धकपारदौ। आर्द्रकैर्वटिका कार्या गुञ्जाद्वितयसम्मिता ॥ १३४ ॥ एषा तोयानुपानेन प्रातः खाद्या हिताशिना। चिरजं सर्वरोगञ्च सन्निपातं सुदारुणम् ॥ १३५ ॥ आमवातं शिरोरोगं मन्यास्तम्भं गलग्रहम्। ग्रहणीं श्लीपदं हन्ति त्वन्त्रवृद्धिं भगन्दरम् ॥ १३६॥ कामलां शोथपाण्डुत्वं पीनसार्शोगुदामयान्। वटिका चन्द्रिका नाम वासुदेवेन भाषिता ॥ १३७ ॥

भाँग के बीज, काले धतूरे के बीज, छोटी कटेरी के बीज, समुद्रफल के बीज, विधारा के बीज, पारा और गन्धक इन्हें विधिपूर्वक बराबर मात्रा में मिलाकर अदरख के रस में पीस कर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। अनुपान—जल। यह वटी पथ्य आहार सेवन करनेवाले रोगी को प्रातःकाल सेवन करानी चाहिए। यह चन्द्रिका वटी आमवात, शिरोरोग, मन्यास्तम्भ, गलग्रह, ग्रहणी, श्लीपद, अन्त्रवृद्धि, भगन्दर, कामला, शोथ, पाण्डु, पीनस, बवासीर तथा गुदज रोगों को नष्ट करती है ॥१३३-१३७॥

चन्द्रकान्त रस।

मृतसूताभ्रकं तीक्ष्णं ताम्रं गन्धं समं समम्। स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्यं भक्षयेद्रक्तिकोन्मितम् ॥ १३८ ॥ मधुना मर्दितं सेव्यं लोहपात्रे दिने दिने। सप्ताहात्सूर्यावर्त्तादीन् शिरोरोगान् विनाशयेत् ॥ १३९ ॥

पारदभस्म, (अभाव में रससिन्दूर), अभ्रकभस्म, तीक्ष्ण, लोहभस्म, ताम्रभस्म और गन्धक इन्हें थूहर के दूध से घोटकर गोली बनावे। मात्रा आधी रत्ती से १ रत्ती तक। प्रयोग काल में १ वटी को जरा से शहद के साथ लौह पात्र में घोटकर सेवन करावे। एक सप्ताह के प्रयोग से यह सूर्यावर्त्त आदि शिरोरोगों को नष्ट करता है ॥ १३८-१३९ ॥

महालक्ष्मी विलास।

लोहमभ्रं विषं मुस्तं फलत्रयकटुत्रयम्। धुस्तूरं वृद्धदारञ्च बीजमिन्द्राशनस्य च ॥ १४० ॥ गोक्षुरकद्वयञ्चैव पिप्पलीमूलमेव च। एतत्सर्वं समं ग्राह्यं रसे धुस्तूरकस्य च ॥ १४१ ॥ भावयित्वा वटी कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः। महालक्ष्मीविलासोऽयं शिरोरोगविनाशकः ॥ १४२ ॥

लोहभस्म, अभ्रकभस्म, बच्छनाग, मोथा, त्रिफला, त्रिकुटा, धतूरे के बीज, विधारे के बीज, भाँग के बीज, छोटा गोखरू, बड़ा गोखरू पीपलामूल, इन्हें बराबर मात्रा में एकत्र मिलाकर धतूरे के रस से भावना दे और दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। यह शिरोरोग को नष्ट करता है ॥ १४०-१४२ ॥

शिरोरोगहर रस।

रसंगन्धकमभ्रञ्च लोहं कर्षमितं पृथक्। स्वर्णं शाणमितं चैव दार्वाख्यं च विषं तथा ॥ १४३ ॥ भृङ्गराजाम्भसा सम्यङ् मर्दयित्वा विचक्षणः। सर्षपप्रमिताः

कुर्याद्वटीश्चण्डांशुशोषिताः ॥ १४४ ॥ शिरोरोगहरो नाम रसोऽयं हरनिर्मितः। हरेत् सर्वशिरोरोगान् विरामे यदि सेवितः ॥ १४५ ॥

पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, हरएक दो तोले, स्वर्णभस्म आधा तोला, शुद्ध संखिया आधा तोला इन्हें एकत्र भाँगरे के रस मे घोटकर सरसों के बराबर गोलियाँ बनावे और छाया में सुखा ले। इससे जब शिरोवेदना शान्त हो तब सेवन करने से शिरोरोग का आक्रमण रुक जाता है ॥ १४३–१४५ ॥

अर्द्धनाड़ीनाटकेश्वर।

वराटं टङ्कनं शुद्धं पञ्चभागसमन्वितम्। नवभागं मरीचस्य विषं भागत्रयं मतम् ॥ १४६ ॥ स्तन्येन वटिकां कृत्वा नस्यं दद्याद्विचक्षणः। शिरोविकारान् विविधान् हन्ति श्लेष्मोत्तरानपि॥१४७॥

कौड़ी की भस्म ५ भाग, भुना सुहागा ५ भाग, कालीमिर्च ६ भाग, मीठा विष ३ भाग; इनको स्त्री के दूध में घोटकर गोली बनावे। इस गोली को पीसकर नस्य लेने से अनेक प्रकार के कफप्रधान शिर के समस्त रोग नष्ट होते हैं ॥ १४६–१४७ ॥

शिरःशूलाद्रिवज्ररस।

पलं रसं पलं गन्धं पलं लौहं पलं त्रिवृत्। गुग्गुलोः पलचत्वारि तदर्द्धं त्रिफलारजः ॥ १४८ ॥ कुष्ठं मधु कणा शुण्ठी गोक्षुरं कृमिनाशनम्। दशमूलञ्च प्रत्येकं तोलकं वस्त्रशोधितम् ॥ १४९ ॥ क्वाथेन दशमूलस्य च यथास्वं परिभावयेत्। घृतयोगात् प्रकर्त्तव्या वेदगुञ्जामिता वटी ॥ १५० ॥ छागीदुग्धानुपानेन पयसा मधुनाथवा। शिरःशूलाद्रिवज्रोऽयं चण्डनाथेन भाषितः ॥ १५१ ॥ एकजं द्वन्द्वजं चैव त्रिदोषजनितं तथा। वातिकं पैत्तिकं सर्वं शिरोरोगं विनाशयेत् ॥ १५२ ॥

शुद्ध पारा ४ तोले, गन्धक ४ तोले, लौहभस्म ४ तोले, निसोथ ४ तोले गूगुल १६ तोले, त्रिफला का चूर्ण ८ तोले तथा कूठ, मुलेठी, पीपरि, सोंठ, गोखरू वायविड़ंग और दशमूल; प्रत्येक एक-एक तोला। इन सबको कूट-पीसकर वस्त्र से छान ले, पश्चात् दशमूल के क्वाथ की भावना देकर घी के संयोग से चार-चार रत्ती की गोलियाँ बनावे। इसको बकरी के दूध, जल अथवा शहद के साथ सेवन करना चाहिए। यह चण्डनाथ का कहा हुआ शिरःशूलाद्रिवज्र रस एकदोषज, द्विदोषज, त्रिदोषज तथा वातिक, पैत्तिक सब प्रकार के शिरोरोगों को नष्ट करता है ॥ १४८–१५२ ॥

शिरोरोग में भोजन।

आमिषं जाङ्गलं पथ्यं तत्र शाल्यादयोऽपि च। मुद्गान् माषान् कुलत्थांश्च खादेद्वा निशि केवलान् ॥ कटुकोष्णान् ससर्पिष्कानुष्णं क्षीरं पिबेत्तथा ॥ १५३ ॥

जाङ्गल मांस, शालि आदि धान्य तथा केवल मूँग, उड़द, कुलत्थ, इनमें से किसी एक को पकाकर अधिक मात्रा में तथा कालीमिर्च, घी आदि डालकर रात्रि में भोजन के समय गरम २ खावे अथवा गरम दूध पीवे ॥ १५३ ॥

शिररोग में पथ्य।

स्वेदो नस्यं धूमपानं विरेको लेपस्रुग्दिर्लङ्घनं शीर्षं बस्तिः। रक्तोन्मुक्तिर्वह्निकर्मोपनाहो, जीर्णं सर्पिः शालयः षष्टिकाश्च ॥ १५४ ॥ यूषो दुग्धं धन्वमांसं पटोलं शिग्रुर्द्राक्षा वास्तुकं कारवेल्लम्। आम्रं धात्रीदाडिमं मातुलुङ्गं तैलतक्रं काञ्जिकं नारिकेलम् ॥ १५५ ॥ पथ्या कुष्ठं भृङ्गराजः कुमारी मुस्तो शीरं चन्द्रिका गन्धसारः। कर्पूरश्चत्याति मानेप वर्गः

सेव्यो मर्त्यैः शीर्ष रोगे यथास्वम् ॥ १५६ ॥

स्वेदन, नस्यकर्म, धूमपान, विरेचन, लेपन, लङ्घन, शिरो बस्ति, रक्त निकलवाना, दागना, उपनाहन, पुराना घी, शालि चावल, साठी चावल का यूष, दूध, जाङ्गल जीवों का मांस, परवल, सहिजना, दाख, बथुआ, करेला, आम, आंवला, अनार, बिजौरा, नीबू, तैल, मट्ठा, कांजी, नारियल, हरड, कूठ, भांगरा घृतकुमारी, नागर मोथा, खस, चांदनी रात, सुगन्धित वस्तु 'इत्र (पुष्प) आदि कपूर यह सब शिरोरोग में हितकर हैं ॥ १५४—१५६ ॥

शिरोरोग में अपथ्य ।

क्षवजृम्भामूत्रवाष्पनिद्राविड्वेगभञ्जनम् । दुष्टनीरं विरुद्धान्नं सह्यविन्ध्यसरिज्जलम् ॥ दन्तकाष्ठदिवानिद्रां शिरोरोगी परित्यजेत् ॥ १५७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शिरोरोगाधिकारः समाप्तः ।

छींक, जँभाई मूत्र, आँसू, निद्रा, पुरीष इनके वेगों को रोकना, दुष्ट जल, विरुद्ध भोजन; सह्याद्रि एवं विन्ध्य पर्वत की नदियों के जल, दातौन करना और दिन में सोना इनका शिरोरोगी को परित्याग करना चाहिए ॥ १५७ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां शिरोरोगाधिकारः समाप्तः ।

शीर्षाम्बुरोगाधिकारः ।

शीर्षाम्बुरोग का निदान और सम्प्राप्ति

मद्यातिपानादतिशैत्ययोगाद् विरुद्धभोज्यादनिलप्रदोषात् । दुष्टाम्बुपानादभिघाततश्च तथान्त्रमध्ये कृमिसम्भवाच्च ॥ १ ॥ शिरोगतस्नेहहृती क्रमेण सञ्चीयते तोयमतिप्रभूतम् । शीर्षाम्बुनामा गद एष पूर्व्वैः प्रकीर्त्तितः कृच्छ्रतरो भिषग्भिः॥२॥ प्रायशः शैशवे व्याधिर्विविधाहितसेवनात् । तथा दन्तोद्गतेरेष बाहुल्येनाभिजायते ॥ ३ ॥

अधिक मद्यपान से, अधिक शीत के संयोग से, विरुद्ध भोजन से, वात के दोष से, दूषित जल पीने से, अभिघात (चोट धक्का आदि) से, अंत्र में कृमिसंग्रह होने से और शिरोगतस्नेह की विपरीतता से मस्तक में अधिक जल संचय हो जाता है। इसको शीर्षाम्बु नामक रोग बतलाया है। प्रायः बचपन में अनेक प्रकार की अपथ्य वस्तुओं के सेवन से बच्चों को हो जाया करता है। विशेषतः दाँत निकलते समय अधिक हुआ करता है ॥ १—३ ॥

शीर्षाम्बु रोग का पूर्वरूप ।

जिह्वालिप्तातिनिद्रत्वं दौर्बल्यं श्वासपूतिता । गाढविट्ता च तस्मिंस्तु भविष्यति भविष्यति ॥ ४ ॥

जीभ लिसी-सी रहती है, नींद अधिक आती है, शरीर दुबला हो जाता है, श्वास में से गन्ध आती है, मल गाढ़ा (कड़ा) हो जाता है। इस प्रकार के लक्षण जिसके हों, समझना चाहिए इसे शीर्षाम्बु होनेवाला है ॥ ४ ॥

लक्षण ।

शिरसो वेदना घोरा श्रुतेर्दृष्टेश्च तीक्ष्णता । मूत्राल्पत्वं कृष्णविट्त्वं धमनी वेगवाहिनी ॥ ५ ॥ त्वग्रूक्षोष्णा तथा छर्दिर्विषमा च कनीनिका । कोपित्वं पुलवेपथुं निद्रायां दन्तघर्षणम् ॥ ६ ॥ कण्डूरोगस्य नासाया आक्षेपो रक्तनेत्रता । पक्षाघातः प्रलापश्च शीर्षाम्बुगदलक्षणम् ॥ ७ ॥

शिर में भयानक वेदना होती है, सुनने

और देखने की शक्ति क्षीण हो जाती है, मूत्र कम मात्रा में आता है, मल का रंग काला हो जाता है, नाड़ी की गति बढ़ जाती है। त्वचा रूक्ष और गरम रहती है, उलटी होती है, आँख की पुतली विषम हो जाती है, मुख का रंग विवर्ण हो जाता है, नींद में दाँत घिसता है ओठ और नाक में खुजली चलती है, आक्षेपक (झटके) आते हैं, आँखें लाल हो जाती हैं, पक्षाघात और प्रलाप भी होते हैं। ये लक्षण शीर्षाम्बु रोग के हैं॥ २-७॥

शीर्षाम्बु रोग की चिकित्सा।

भेषजं रेचनं यच्च यन्मूत्रस्य प्रवर्त्तनम्। रक्तदोषहरं यच्च तच्छीर्षाम्बुगदे शुभम्॥ ८॥ मुण्डयित्वा शिरस्तच्च च्छादयेदुष्णवाससा। पाययेन्नारिकेलस्य स्नेहञ्चापि निरन्तरम्॥ ९॥ सेवयेद्रसचूर्णञ्च स्तोकमात्रं विचक्षणः। पीतमूलीं त्रिवृच्छ्यामे पथ्यामामलकीं शटीम्॥ १०॥ अनन्तां मधुकं मुस्तां धन्याकं कटुरोहिणीम्। हरिद्रे [illegible] त्रिजातञ्च क्वाथयित्वा यथाविधि॥ यवक्षारेण सहितं पाययेदस्य शान्तये॥ ११॥

शीर्षाम्बु रोग में दस्तावर, मूत्र को प्रवृत्त करनेवाली तथा रुधिर को शुद्ध करनेवाली औषध लाभदायक होती हैं। शिर को मुँड़ाकर गरम कपड़े से ढकना चाहिए। नारियल का तेल बराबर पिलाते रहना चाहिए। रसचूर्ण (रससिन्दूर) थोड़ा सेवन कराते रहना चाहिए। गाजर, निशोथ, सारिवा, हड़, आँवला, कचूर, गिलोय, मुलेठी, मोथा, धनियाँ, कुटकी, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिजात (दालचीनी, इलायची, तेजपात) सबको समान भाग लेकर क्वाथ करके यवक्षार के साथ सेवन करने से शीर्षाम्बु रोग शान्त होता है॥ ८-११॥

सलिलशोषण चूर्ण।

रसचूर्णं यवक्षारं पीतमूलीं त्रिजातकम्। भार्गीमेलां तथा लक्ष्मीमभयामिन्द्रवारुणीम्॥ १२॥ समांशेन प्रगृह्याथ प्रयुञ्ज्यात् पयसा सह। शीर्षाम्ब्वेतन्निराकुर्य्याच्चूर्णं सलिलशोषणम्॥ १३॥

रससिन्दूर, जवाखार, गाजर, त्रिजात (दालचीनी, तेजपात, इलायची), भारंगी, इलायची, अमलतास, हड़, इन्द्रायण सबको समान भाग लेकर दूध के साथ प्रयुक्त करना चाहिए। यह सलिलशोषण चूर्ण शीर्षाम्बु रोग को अच्छा करता है॥ १२-१३॥

कुङ्कुमाद्य घृत।

कुङ्कुमं सारिवां द्राक्षां जीवन्तीमभयां विडम्। पत्रं पटोलमूलञ्च सर्पिषा पाचयेद्भिषक्॥ १४॥ अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत वीक्ष्य व्याधेर्बलाबलम्॥ सर्व्वान् शीर्षगदान् हन्यात् कुङ्कुमाद्याभिधं घृतम्॥ १५॥

केशर, सारिवा, दाख, जीवन्ती, हड़, विड नमक, तेजपात, परवल की जड़ और घी इनको घृतपाक करने की विधि के अनुकूल मात्रा में लेकर और विधिपूर्वक घृत बनाकर रोगी के बलाबल को विचारकर उचित मात्रा में सेवन करने से यह कुङ्कुमाद्य घृत सब प्रकार शिरोरोगों को नष्ट करता है॥ १४-१५॥

रस तैल।

धुस्तूरं धातकीं मूर्व्वां मधूकं मधुकं विडम्। नागरं नीलिनीं कृष्णां कट्फलं कटुकं जलम्॥ १६॥ शाणमानेन निःक्षिप्य कटुतैलशरावके। संवृते मृण्मये भाण्डे निशाः सप्त च वापयेत्॥ १७॥ ततः कल्कान् विनिर्हृत्य कज्जलीमर्द्दकार्पिकीम्। तत्र संमिश्य शिरसि मुण्डिते तत् प्रयोजयेत्॥ १८॥ रसतैलमिदं हन्यात् शीर्षाम्ब्वाशु न संशयः। व्या-

धितानां हितार्थाय हरेणैतत् समीरितम् ॥ १९ ॥

धतूरा, धाय, मूर्वा, मुलेठी, महुआ, विड्नमक, सोंठ, नील की जड़, पीपल, कायफल, कुटकी और सुगन्धवाला इन सबका तीन तीन माशे लेकर कल्क बना ६४ तोले सरसों के तैल में डालकर मिट्टी के पात्र में ७ दिन तक रक्खा रहने दे, बाद में खोलकर उस कल्क को निकालकर ६ माशे कज्जली डालकर अच्छी तरह मिलाकर मुँडे हुए शिर पर लेप करना चाहिए। यह रस तैल शीर्षाम्बु रोग को शीघ्र ही अच्छा करता है। इसे रोगियों के लाभ के लिए श्रीशिवजी ने कहा है ॥ १६–१९ ॥

वह्निभास्कर रस।

सुवर्णमभ्रं वैक्रान्तं रजतं शाणमानकम्। लौहं रसं गन्धकञ्च माक्षिकं कर्षसम्मितम् ॥ २० ॥ रक्तचित्रकतोयेन तथा ब्राह्मया रसेन च। त्रिःसप्तकृत्वः सम्भाव्य कुर्य्याद्बल्लमिता वटीः ॥ २१ ॥ रसोऽयं सर्व्वथा हन्ति मस्तिष्कोदकमाशु च। अन्यांश्च शिरसो रोगान् वह्निस्तृणगणानिव ॥ २२ ॥ वह्निवद्भासते यस्माद्वीर्य्येणैव रसोत्तमः। ख्यातः पृथ्वीतले तस्मादाख्यया वह्निभास्करः ॥ २३ ॥

सुवर्ण, अभ्रक, वैक्रान्त और चाँदी की भस्म प्रत्येक तीन-तीन माशे। लोहभस्म पारद, गन्धक और स्वर्णमाक्षिक की भस्म प्रत्येक एक-एक तोला। लाल चित्रक के रस से तथा ब्राह्मी के रस से २१ भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियां बनानी चाहिए। यह रस शीर्षाम्बु रोग को सर्वदा ही नष्ट करता है एवम् और भी दूसरे शिरोरोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे अग्नि तिनकों को नष्ट करता है। यह रस, वीर्य और वर्ण से अग्नि के समान प्रतीत होता है, इसी से इसे वह्निभास्कर कहते हैं ॥ २०—२३ ॥

नैवं शान्तिगते व्याधौ मस्तिष्कात् सलिलं हरेत्। त्रिकूर्चकेन लघुना यत्नतः कुशलो भिषक् ॥ २४ ॥

यदि रोग शान्त न हो तो चतुर वैद्य को हलके हाथ से त्रिकूर्चक यंत्र द्वारा मस्तिष्क में से जल निकालना चाहिए ॥ २४ ॥

लघुपुष्टिकरं सर्व्वं पानमन्नं रसश्च यत्। मस्तिष्काम्बुनि तत्पथ्यं विपरीतं हिताय न ॥ २५ ॥

इति श्रीभैषज्यरत्नावल्यां शीर्षाम्बुरोगाधिकारः समाप्तः।

शीर्षाम्बु रोग में हल्का, पौष्टिक अन्न-पान और रस पथ्य है। इससे विपरीत अपथ्य है ॥ २५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्या भाषाटीकायां शीर्षाम्बुरोगाधिकारः समाप्तः।

अथ मूर्च्छाधिकारः।

सेकावगाहौ मणयः सहाराः शीताः प्रदेहा व्यजनानिलाश्च। शीतानि पानानि च गन्धवन्ति सर्वासु मूर्च्छास्वनिवारितानि ॥ १ ॥

सब प्रकार की मूर्च्छाओं में शीतल जल का सेक, नदी आदि का स्नान, मणियुक्त हार पहनना, ठंडे लेप, पंखे की हवा और सुगन्धित ठंडे शर्बत आदि का पीना लाभदायक है ॥ १ ॥

रक्तजायां तु मूर्च्छायां हितः शीतक्रियाविधिः। मद्यजायां वमेन्मद्यं निद्रां सेवेद् यथासुखम् ॥ विषजायां विषघ्नानि भेषजानि प्रयोजयेत् ॥ २ ॥

रक्तज मूर्च्छा में शीत उपचार हितकर है।

मदिरा की मूर्च्छा में वमन करना और सुख-पूर्वक शयन करना हितकर है। विषजन्य मूर्च्छा में विषनाशक प्रयोग करना उचित है ॥ २ ॥

कोलमज्जोपणोशीरकेशरं शीतवारिणा। पीतं मूर्च्छां जयेल्लीढ्वा कृष्णां वा मधुसंयुताम् ॥ ३ ॥

बेर की गुठली की मींगी, कालीमिर्च, खस और नागकेसर; इनके चूर्ण को जल के साथ पीने से अथवा पीपरि और शहद मिलाकर चाटने से मूर्च्छा नष्ट होती है ॥ ३ ॥

पिबेद्दुरालभाक्वाथं सघृतं भ्रमशान्तये ॥ ४ ॥

जवासा के काढ़े में घी मिलाकर पीने से भ्रमरोग की शान्ति होती है ॥ ४ ॥

त्रिफलायाः प्रयोगो वा प्रयोगः पयसोऽपि वा। रसायनानां कौम्भस्य सर्पिषो वा प्रशस्यते ॥ ५ ॥

रसायनानां शिलाजत्वादिरसायनप्रयोगाणाम्। कौम्भं सर्पिर्दशाब्दिकम्।

त्रिफला, दूध अथवा शिलाजीत आदि रसायन या दशवर्ष के पुराने घृत का सेवन करना मूर्च्छारोग में हितकर है ॥ ५ ॥

मधुना हन्त्युपयुक्ता त्रिफला रात्रौ गुडार्द्रकं प्रातः। सप्ताहात् पथ्यभुजो मदमूर्च्छाकामलोन्मादान् ॥ ६ ॥

प्रतिदिन रात्रि के समय शहद के साथ त्रिफला का और प्रातःसमय अदरख और गुड़ का सेवन करने से पथ्य वस्तु का सेवन करनेवाले रोगी के सात दिन में मद, मूर्च्छा, कामला और उन्माद रोग नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

अञ्जनान्यवपीडश्च धूमः प्रधमनानि च। सूचिभिस्तोदनं शस्तं दाहः पीडा नखान्तरे ॥ ७ ॥ लुञ्चनं केशलोम्नाञ्च दन्तैर्दंशनमेव च। आत्मगुप्तावघर्षश्च हितस्तस्यावबोधने ॥ ८ ॥

तेज अंजन लगाने से, निगुंण्डी आदि के नस्य लेने से, धूम्रपान करने से, सोंठ-मिर्च आदि का चूर्ण सूँघने से, सुई चुभोने से, लोह की सलाई आदि से दागने से, नखों के मांस में पीड़ा करने से, बाल और रोमों के उखाड़ने से, दाँत से काटने से और कौंच की फली को शरीर पर रगड़ने से मूर्च्छित रोगी होश में आ जाता है ॥ ७-८ ॥

गुडं पिप्पलीमूलस्य चूर्णेनातिचितं लिहन्। चिरादपि च संनष्टां निद्रामाप्नोत्यसंशयम् ॥ ९ ॥

पीपरामूल के चूर्ण में गुड़ मिलाकर खाने से बहुत दिन की नष्ट हुई निद्रा भी शीघ्र आ जाती है। इसमें संशय नहीं है ॥ ९ ॥

इक्षवः पोतकी माषाः सुरा मांसं घृतं पयः। गोधूमगुडमत्स्याश्च निद्रां कुर्वन्ति देहिनाम् ॥ शक्राशनमजाक्षीरं पादलेपाच्चदर्थकृत् ॥ १० ॥

ईख, पोई का साग, उड़द, मदिरा, मांस, घी, दूध, गेहूँ, गुड़ और मछली के खाने से रोगी को नींद आ जाती है तथा भाँग को बकरी के दूध में पीसकर पैरों पर लेप करने से भी नींद आ जाती है ॥ १० ॥

अश्वगन्धारिष्ट।

तुलार्द्धं चाश्वगन्धाया मुशल्याः पलविंशतिः। मञ्जिष्ठाया हरीतक्या रजन्योर्मधुकस्य च ॥११॥ रास्नाविदारीपार्थानां मुस्तकत्रिवृतोरपि। भागान् दशपलान् दद्यादनन्ताश्यामयोस्तथा ॥ १२ ॥ चन्दनद्वितयस्यापि वचायाश्चित्रकस्य च। भागानष्टपलान् चुण्णानष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ १३ ॥ द्रोणशेषे कषायेऽस्मिन् पूते शीते प्रदापयेत्। धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम् ॥ १४ ॥

व्योषस्य द्विपलञ्चापि त्रिजातकचतुःपलम्। चतुःपलं प्रियङ्गोश्च द्विपलं नागकेशरम् ॥ १५ ॥ मासादूर्ध्वं पिबेदेनं पलार्द्धपरिमाणतः। मूर्च्छामपस्मृतिं शोषमुन्मादमपि दारुणम् ॥ १६ ॥ कार्श्यमर्शांसि मन्दत्वमग्नेर्वातभवान् गदान्। अश्वगन्धाद्यरिष्टोऽयं पीतो हन्यादसंशयम् ॥ १७ ॥

नागौरी असगन्ध २॥ सेर, मुसली १ सेर, मँजीठ, हड़, हल्दी, दारुहल्दी, मुलेठी, रासना, विदारीकन्द, अर्जुन की छाल, नागरमोथा और निसोथ, प्रत्येक आध आध सेर। अनन्तमूल, कालीसर, लालचन्दन, सफेद चन्दन, बच, चीता की जड़, प्रत्येक ३२-३२ तोले। सबको कूटकर ५ मन ४ सेर ६४ तोले जल में पकावे। जब ५१ सेर ४८ तोला क्वाथ बाकी रहे तब उतारकर कपड़े से छान ले। क्वाथ ठंडा होने पर धाय के फूल ६४ तोले; शहद १२ सेर; सोंठ, मिर्च और पीपरि आठ तोले, दालचीनी, तेजपात और छोटी इलायची १६ तोले; प्रियंगु के फूल १६ तोले और नागकेसर ८ तोले, इनको कूटकर उस क्वाथ में मिलाकर एक महीना भर धरा रहने दे। एक महीने पश्चात् २ तोले की मात्रा में इसका सेवन करे। मूर्च्छा, अपस्मार, शोष, कठिन उन्माद, कृशता, बवासीर, अग्निमान्द्य और वातज रोगों को यह अश्वगन्धारिष्ट निःसन्देह नष्ट करता है ॥ ११-१७ ॥

सुधानिधि रस।

कणा मधुयुतं सूतं मूर्च्छायामनुशीलयेत्। शीतसेकावगाहादि सर्वं वा शीतलं भजेत् ॥ सुधानिधिरसो नाम मदमूर्च्छाविनाशनः ॥ १८ ॥

रससिन्दूर को पीपल के चूर्ण तथा शहद के साथ मूर्च्छा रोग में सेवन कराना चाहिए। ठंडे जल से परिषेक तथा स्नान आदि एवम् शीतल वस्तुओं का सेवन कराना चाहिए। यह रस मद तथा मूर्च्छा को नष्ट करता है ॥ १८ ॥

मूर्च्छान्तक रस।

सिन्दूरं माक्षिकं हेम शिलाजत्वयसी तथा। शतमूल्या विदार्याश्च स्वरसेन विभावयेत् ॥ १९ ॥ श्लक्ष्णं पिष्ट्वा ततः कुर्याद् वटिका वल्लसम्मिताः। रसो मूर्च्छान्तको हन्यादसौ मूर्च्छां शिवोदितः ॥ २० ॥

रस सिन्दूर, स्वर्णभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, शिलाजीत, लोहभस्म, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर शतावरी तथा विदारीकन्द के रस से भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। यह शिवजी का कहा हुआ मूर्च्छान्तक रस मूर्च्छा रोग को नष्ट करता है ॥ १९-२० ॥

मूर्च्छारोग में पथ्य।

छाया नभोऽम्भः शतधौतसर्पिर्मृदूनि तिक्तानि च लाजमण्डः। जीर्णा यवा लोहितशालयश्च कौम्भं हविर्मुद्गमसूरयूषाः ॥ २१ ॥ धन्वोद्भवा मांसरसाश्च रागाः सपाडवा गव्यपयः सिता च। पुराणकूष्माण्डपटोलमोचं हरीतकीदाडिमनारिकेलम् ॥ २२ ॥ अत्युच्चशब्दोऽद्भुतदर्शनञ्च गीतानि वाद्यानि च चोत्कटानि। श्रमः स्मृतिश्चिन्तनमात्मबोधो धैर्यञ्च मूर्च्छागति पथ्यवर्गः ॥ २३ ॥

छाया, वर्षा का पानी, सौ बार धोया हुआ घृत, मृदु तथा तिक्त पदार्थ, खील से बने हुए मण्ड, पुराने जौ, लालशालि चावल, दश वर्ष का पुराना घृत, मूँग तथा मसूर का यूष, जङ्गली जीवों के मांस का रस, राग षाडव, गौ का दुग्ध, मिश्री, पुराना पेठा, परवल, केला, हड़, अनार, नारियल, अत्यन्त ऊँचा शब्द, अद्भुत पदार्थों का दिखाना, ऊँचा गाना, बजाना, श्रम, इष्टस्मरण, चिन्तन, आत्मज्ञान और धैर्य; ये मूर्च्छा रोगी के लिए पथ्य हैं ॥ २१-२३ ॥

मूर्च्छारोग में अपथ्य।

ताम्बूलं पत्रशाकञ्च दन्तघर्षणमातपम्। विरुद्धान्यन्नपानानि व्यवायं स्वेदनं कटु॥ तृण्निद्रयोर्वेगरोधं तक्रं मूर्च्छामयी त्यजेत्॥ २४॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मूर्च्छाधिकारः समाप्तः।

पान, सरसों आदि के पत्ता का शाक, दातुन करना, धूप, विरुद्ध अन्न-पान, मैथुन, स्वेद, चरपरे पदार्थ, प्यास एवं निद्रा के वेग को रोकना तथा तक्र; ये मूर्च्छा रोगी के लिए अपथ्य हैं॥ २४॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायांभैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां मूर्च्छाधिकारः समाप्तः।

अथ उन्मादाधिकारः।

उन्मादे वातिके पूर्वं स्नेहपानं विरेचनम्। पित्तजे कफजे वान्तिः परो बस्त्यादिकः क्रमः॥ १॥

वातज उन्माद में पहले स्नेहपान, पित्तज में विरेचन और कफज में वमन कराकर पश्चात् बस्ति आदि क्रिया करनी चाहिए॥ १॥

यच्चोपदेक्ष्यते किञ्चिदपस्मारचिकित्सिते। उन्मादे तच्च कर्त्तव्यं सामान्याद्दोषदूष्ययोः॥ २॥

दोष और दूष्य की समानता होने से जो कुछ अपस्मार रोग की चिकित्सा में कहा जायगा वह सब उन्माद रोग में भी करना चाहिए॥ २॥

ब्राह्मी कूष्माण्डफलं षड्ग्रन्था शङ्खपुष्पिकास्वरसाः। उन्मादहृतो दृष्टाः पृथगेते कुष्ठमधुमिश्राः॥ ३॥

ब्राह्मी, पेठा, वच और शङ्खपुष्पी; इनमें से प्रत्येक के रस में कूट और शहद मिलाकर पीने से उन्माद रोग नष्ट होता है॥ ३॥

सम्भोज्य पिकमांसं वा निर्वाते स्वापयेत् सुखम्। त्यक्त्वा स्मृतिमतिभ्रंशं संज्ञां लब्ध्वा प्रबुध्यते॥ अपक्वचटकक्षीरपानमुन्मादनाशनम्॥ ४॥

तरुणचटकमांसं शुष्कीकृत्य तच्चूर्णं दुग्धेन सह पातव्यम्।

उन्मादी को कोयल का मांस खिलाकर वायु-रहित स्थान में सुला देने से मतिभ्रंश और स्मृतिभ्रंश आदि विकारों से रहित होकर वह चेतनता को पाकर जाग उठता है।

गौरैया चिड़िया के जवान बच्चे के मांस को सुखाकर, चूर्ण सा करके दूध के साथ पीने से उन्माद रोग नष्ट होता है॥ ४॥

कूष्माण्डकबीजकल्कः पीतो विनाशयत्यपि। उन्मादरोगमत्युग्रं मधुना दिवसत्रयम्॥ ५॥

पेठे के बीजों के चूर्ण को शहद के साथ चाटने से तीन दिन में अत्यन्त प्रचण्ड उन्माद रोग नष्ट होता है॥ ५॥

उन्मादे समधुः पेयः शुद्धो वा तालशाखजः। रसो नस्येऽभ्यञ्जने च सार्षपं तैलमिष्यते॥ ६॥ बद्धं सार्षपतैलाक्तमुत्तानञ्चातपे न्यसेत्। पुराणमथवा सर्पिः पिबेत् प्रातरतन्द्रितः॥ ७॥

ताड़ की शाखा के रस में शहद मिलाकर अथवा केवल रस ही उन्माद के रोगी को पिलावे अथवा सरसों के तेल की नस्य दे और मालिश करे। या रोगी के शरीर में कड़ुआ तेल लगाकर धूप में चित्त लेटा दे और रस्सी आदि से बांध दे अथवा प्रातःकाल निरन्तर पुराना घी पिलावे तो उन्माद रोग नष्ट होता है॥ ६-७॥

गुदस्याचारविध्वंसे तीक्ष्णं नावन-

मञ्जनम् । ताडनञ्च मनोबुद्धिस्मृतिसंवेदनं हितम् ॥ ८ ॥ तर्जनं त्रासनं दानं सान्त्वनं हर्षणं भयम् । विस्मयो विस्मृतेर्हेतोर्नयन्ति प्रकृतिं मनः ॥ ९ ॥

आचार-विचार को नष्ट करनेवाले उन्माद रोग में रोगी को वमन-विरेचन आदि से शुद्ध करके फिर तेज नस्य और अंजन से तथा ताडन, भयप्रदर्शन, इच्छित दान, सान्त्वना हर्षोत्पादन और विस्मयजनन से तथा मन, बुद्धि और स्मृति के प्रकृतिस्थ होने से उन्माद रोग दूर हो जाता है ॥ ८ ९ ॥

कामशोकभयक्रोधहर्षेर्ष्यालोभसम्भवान् । परस्परप्रतिद्वन्द्वैरेभिरेव शमं नयेत् ॥ १० ॥

काम, शोक, भय, क्रोध, हर्ष, ईर्ष्या और लोभ से उत्पन्न हुए उन्मादों को परस्पर प्रतिद्वन्द्वी उपायों द्वारा शान्त करना चाहिए ॥ १० ॥

इष्टद्रव्यविनाशात्तु मनो यस्योपहन्यते । तस्य तत्सदृशप्राप्त्या सान्त्वाश्वासैश्च तं जयेत् ॥ ११ ॥

प्रिय वस्तु [redacted] विनाश से जिसके मन को चोट लगी हो उसको वैसी ही वस्तु की प्राप्ति से, सान्त्वना और आश्वासन से स्वस्थ करना चाहिए ॥ ११ ॥

सर्पिःपानादिनागन्तौ मन्त्रादिश्चेष्यते विधिः । पूजाबल्युपहारेष्टिहोममन्त्राञ्जनादिभिः ॥ जपेदागन्तुमुन्मादं यथाविधि शुचिर्भिषक् ॥ १२ ॥

आगन्तुक उन्माद रोग में घृतपान आदि से तथा चतुर वैद्य शुद्ध होकर मन्त्र-जप, पूजा, बलि, भेंट, यज्ञ, होम, मन्त्र-तन्त्र और अञ्जन आदि से उन्मादी को प्रकृतिस्थ करे ॥ १२ ॥

देवर्षिपितृगन्धर्वैरुन्मत्तस्य च बुद्धिमान् । वर्जयेदञ्जनादीनि तीक्ष्णानि क्रूरमेव च ॥ १३ ॥

देवर्षि, पितर और गन्धर्वों के आवेश से उत्पन्न उन्माद रोग में बुद्धिमान् वैद्य तीक्ष्ण अंजन आदि तथा क्लेशजनक अन्यान्य कर्मों का परित्याग कर दे ॥ १३ ॥

पानीयकल्याणक घृत ।

विशाला त्रिफला कौन्ती देवदार्वेलवालुकम् । स्थिरा नतं हरिद्रे द्वे सारिवे द्वे प्रियंगुकम् ॥ १४ ॥ नीलोपत्लैला मञ्जिष्ठा दन्ती दाडिमकेशरम् । तालीशपत्रं बृहती मालत्याः कुसुमं नवम् ॥ १५ ॥ विडङ्गं पृश्निपर्णी च कुष्ठं चन्दनपद्मकौ । अष्टाविंशतिभिः कल्कैरेतैरक्षसमन्वितैः ॥ १६ ॥ चतुर्गुणं जलं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् । अपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मन्दानले क्षये ॥ १७ ॥ वातरक्ते प्रतिश्याये तृतीयकचतुर्थके । वम्यर्शोमूत्रकृच्छ्रेषु विसर्पोपहतेषु च ॥ १८ ॥ कण्डूपाण्ड्वामयोन्मादविषमेहगरेषु च । दोषोपहतचित्तानां गद्गदानामरेतसाम् ॥१९॥ शस्तं स्त्रीणाञ्च वन्ध्यानां वर्णायुर्बलवर्द्धनम् । अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं सर्वग्रहनिवारणम् । कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ॥ २० ॥

इन्द्रायण, त्रिफला सँभालू के बीज, देवदारु, एलवालुक, (सुगन्ध द्रव्य), शालपर्णी, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, अनन्तमूल, कालीसर, प्रियंगु के फूल, नीलकमल, छोटी इलायची, मँजीठ, दन्ती की जड़, अनारदाना, नागकेसर, तालीशपत्र, बड़ी कटेरी, मालती के नवीन फूल, वायविडंग, पिठवन, कूठ लाल चन्दन और पद्माख, प्रत्येक एक-एक तोला लेकर कल्क बनावे। गौ का घृत १२८ तोले । पाकार्थ जल ६ सेर ४८ तोले । विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर रोगी को पान कराना चाहिए। यह कल्याणक

घृत अपस्मार, ज्वर, खाँसी, शोष, मन्दाग्नि, क्षय, वातरक्त, प्रतिश्याय, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वर, वमन, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, खुजली, पाण्डुरोग, उन्माद, विषदोष और प्रमेह आदि रोगों को नष्ट करता है। गद्गद बोलनेवाले तथा क्षीणवीर्य एवं दोषों से नष्ट चित्तवाले पुरुषों के लिए और बाँझ स्त्रियों के लिए हितकारी है। बल, वर्ण और आयु का बढ़ानेवाला तथा दरिद्रता, पाप राक्षस तथा सब ग्रहों के अरिष्टों को नष्ट करनेवाला और पुत्रकारक योगों में उत्तम है। मात्रा—आधा तोला से २ तोले तक ॥ १४-२० ॥

क्षीरकल्याणक घृत ।

द्विजलं तु चतुःक्षीरं क्षीरकल्याणकं त्विदम् ॥ २१ ॥

क्षीरकल्याणक घृत में दुगुना जल और चौगुना दूध लेना चाहिए। अन्य सब औषध और विधि पूर्वोक्त कल्याणक घृत के समान ही है ॥ २१ ॥

स्वल्पचैतस घृत ।

पञ्चमूल्यावकाश्मर्य्यौ रास्नैरण्डत्रिवृद्बलाः । मूर्वा शतावरी चेति क्वाथ्यैर्द्विपलिकैरिमैः २२ ॥ कल्याणकस्य चाङ्गेन तद्घृतं चैतसं स्मृतम् । सर्वचेतोविकाराणां शमनं परमं मतम् ॥ २३ ॥ घृतप्रस्थोऽत्र कर्त्तव्यः क्वाथो द्रोणाम्भसा घृतात् । चतुर्गुणोऽत्र सम्पाद्यः कल्कः कल्याणकेरितः ॥ २४ ॥

काश्मरी (गंभारी) रहित दोनों पञ्चमूल अर्थात् दशमूल, रास्ना, अरण्ड की जड़, निशोथ, खरेटी, मूर्वा और शतावरी ; प्रत्येक आठ-आठ तोले लेकर २५ सेर ४८ तोले जल में काढ़ा करें। जब ६ सेर ३२ तोले शेष रहे तब छान कर रख ले। घी १२८ तोले। दूध ६ सेर ३२ तोले। पानीय कल्याणक घृत में कहे हुए कल्कद्रव्य से चौगुना यहाँ कल्कद्रव्य लेना चाहिए। इस घृत को स्वल्पचैतस घृत कहते हैं। यह सब प्रकार के मन-सम्बन्धी विकारों को शान्त करने में श्रेष्ठ माना गया है ॥ २२-२४ ॥

हिङ्ग्वाद्य घृत ।

हिंगुसौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् । चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ॥ अपस्मारं महाघोरं सुचिरोत्थं जयेद् ध्रुवम् ॥ २५ ॥

कल्क के लिए हींग, कालानमक, सोंठ, मिर्च और पीपर ; प्रत्येक आठ-आठ तोले। घी ६ सेर ३२ तोले। गोमूत्र २५ सेर ४८ तोले। विधिपूर्वक घृत सिद्धकर इसका पान करें तो उन्माद तथा महाघोर बहुत दिन का अपस्माररोग नष्ट होता है ॥ २६ ॥

महापैशाचिक घृत ।

जटिला पूतना केशी चारटी मर्कटी वचा । त्रायमाणा जया वीरा चोरकं कटुरोहिणी ॥ २६ ॥ कायस्था शूकरी छत्रा सातिच्छत्रा पलङ्कषा । महापुरुषदन्ता च वयःस्था नाकुलीद्वयम् ॥ २७ ॥ कटम्भरा वृश्चिकाली स्थिरा चैव शृतं घृतम् । चातुर्थकज्वरोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ २८ ॥ महापैशाचिकं नाम घृतमेतद्यथामृतम् । मेधाबुद्धिस्मृतिकरं बालानां चाङ्गवर्द्धनम् ॥ २९ ॥

कल्क के लिए जटामांसी, हड़, श्वेत तुलसी, स्थलकमल (या ब्राह्मी), कौंच के बीज, वच, त्रायमाण, अरणी, काकोली ग्रन्थिपर्ण (भटेउर) कुटकी, छोटी इलायची, वाराहीकन्द, सौंफ, सोया, गूगुल, शतावरी, गिलोय, रास्ना, गन्धरास्ना, कटभी (अथवा गन्धप्रसारणी), वृश्चिकाली (बिछुवा घास) और शालपर्णी ; सब मिलित ३२ तोले। घृत १२८ तोले। जल ६ सेर ३२ तोले। विधि-

पूर्वक घृत सिद्ध कर सेवन करने से चातुर्थिक ज्वर, उन्माद, ग्रह और अपस्मार का नाश होता है। यह महापैशाचिक घृत अमृत के तुल्य है और मेधा, बुद्धि स्मृति और बालकों के अंगों को बढ़ानेवाला है ॥ २६-२९ ॥

कृष्णामरिचसिन्धूत्थमधुगोपित्तनिर्मितम्। अञ्जनं सर्वभूतोत्थमहोन्मादविनाशनम् ॥ ३० ॥

पीपरि, कालीमिर्च, सेंधानमक शहद और गोरोचन; इनको महीन पीसकर आंखों में आँजने से सब प्रकार के भूतोत्थ उन्माद रोग नष्ट होते हैं ॥ ३० ॥

निम्बपत्रवचाहिंगुसर्पनिर्मोकसर्षपैः। डाकिन्यादिहरो धूपो भूतोन्मादविनाशनः ॥ ३१ ॥

नीम के पत्ते, बच, हींग, साँप की केंचुल और सरसों, इनको एकत्र कर धूप देने से डाकिनी-पिशाचिनी आदि के आवेश तथा भूतोन्माद नष्ट होते हैं ॥ ३१ ॥

कार्पासास्थिमयूरपिच्छबृहतीनिर्माल्यपिण्डीतकैस्त्वग्वांशीवृषदंशविटतुषवचाकेशाहिनिर्मोककैः। गोशृङ्गद्विपदन्तहिंगुमरिचैस्तुल्यैस्तु धूपः कृतः स्कन्दोन्मादपिशाचराक्षससुरावेशज्वरघ्नः स्मृतः ॥ ३२ ॥

बिनौले मोरपंख, बड़ी कटेरी, शिवनिर्माल्य, मैनफल, दालचीनी, बंशलोचन, बिल्ली की विष्ठा, जौ की भूसी, बच, बाल, साँप की केंचुल, गौ का सींग, हाथीदाँत, हींग और काली मिर्च, इनको सम भाग लेकर धूप बनावे। यह धूप स्कन्द के आवेशजन्य उन्माद तथा पिशाच, राक्षस और देवों के आवेश तथा ज्वर को नष्ट करता है ॥ ३२ ॥

शिवा घृत

शिवायास्तु सुपूतायाः पञ्चाशत्पललात् पलम्। पञ्च पञ्च समादाय पञ्चमूलीयुगात् पृथक् ॥ ३३ ॥ कुट्टयित्वा चतुःषष्टिशरावैरम्भसः पचेत्। ज्ञात्वा पादावशेषेण तेन क्वाथोदकेन च ॥ ३४ ॥ क्षीरस्याष्टाभिराज्यस्य शरावाणां चतुष्टयम्। यष्टीमधुकमञ्जिष्ठा कुष्ठचन्दनपद्मकैः ॥ ३५ ॥ बिभीतकशिवाधात्रीबृहतीतगरपादिकैः। विडङ्गदाडिमीदेवदारुदन्तीहरेणुभिः ॥ ३६ ॥ तालीशकेशरश्यामाविशालाशालपर्णिभिः। प्रियंगुमालतीपुष्पकाकोलीयुगलोत्पलैः ॥ ३७ ॥ हरिद्रायुगलानन्तामेदैलाहरिवालुकैः। सपृश्निपर्णिकैरेभिः कल्कैरक्षसमन्वितैः ॥ ३८ ॥ सिद्धमेतद् घृतं यच्च तन्मे निगदतः शृणु। देवासुरग्रहग्रस्ते मानसे राक्षसक्षते ॥३९॥ गन्धर्वधर्षिते चैव पितृग्रहनिपीडिते। भूतैरप्यभिभूते च पिशाचैश्च परिप्लुते ॥ ४० ॥ भुजङ्गमगृहीते च तथा जाङ्गलभक्षिते। यक्षैरपि परिक्षिप्ते भयैरप्यर्दिते भृशम् ॥ ४१ ॥ शस्यते सर्ववाते च सर्वापस्मार एव च। शोषे सोरःक्षते कासे पीनसे च मदात्यये ॥ ४२ ॥ मेहे मूत्रग्रहे चैव ज्वरे जीर्णे च शस्यते। वृष्यं पुनर्नवकरं वन्ध्यानामपि पुत्रदम् ॥४३॥ श्रीविन्ध्यवासिपादेन सिद्धिदं समुदीरितम्। शिवाघृतमिदं नाम्ना शिवायोन्मादिनां सदा। मृगालवर्हिणोः पाके पुमांसं तत्र दापयेत् ॥ ४४ ॥

गीदड़ का मांस २॥ सेर और दशमूल की प्रत्येक औषध बीस-बीस तोले। सबको कूटकर २५ सेर ४८ तोले जल में पकावे। जब ६ सेर ३२ तोले बाकी रहे तब उतारकर छान

१—"गोरोचनाकृतम्" इत्यपि पाठः।

ले। दूध २५८ तोले, घृत १२८ तोले। कल्क के लिए मुलेठी, मँजीठ, कूट, लाल चन्दन, पद्माख, बहेड़ा, हड़, आँवला, बड़ी कटेरी, तगर, वायबिडंग, अनारदाना, देवदारु, दन्तीमूल, सँभालू के बीज, तालीशपत्र, नागकेशर, कालीसर, इन्द्रायण की जड़, शालपर्णी, प्रियंगु के फूल, मालती के फूल, काकोली, क्षीरकाकोली, नील कमल, हल्दी, दारुहल्दी, अनन्तमूल, मेदा, इलायची, एलुआ, और पृश्निपर्णी, प्रत्येक एक-एक तोला। इनसे विधिपूर्वक सिद्ध किये हुए घृत का गुण कहता हूँ, सुनिए। इस घृत को देव, असुर, ग्रह, राक्षस, गन्धर्व, पितृग्रह, भूत, पिशाच, नाग और यक्ष आदि से पीड़ित रोगी को सेवन कराना चाहिए। सब प्रकार के वातरोग, अपस्मार, शोष, उरःक्षत, खाँसी, पीनस, मदात्यय, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र और जीर्णज्वर में हितकर है। वृष्य, बलवर्द्धक और बाँझ स्त्रियों को पुत्र देनेवाला है, उन्माद रोगवालों के कल्याण के लिए सिद्धिदाता शिवाघृत को श्रीविन्ध्यवासी ने कहा था। जीवक और मोर के पाक में नर जीवक और नर मोर लेना चाहिए॥ ३३-४४॥

तैलं नारायणं वापि महानारायणं तथा। हितमत्र प्रयोक्तव्यमिति चक्रेण भाषितम्॥ ४५॥

नारायण तैल अथवा महानारायण तेल का प्रयोग करना भी उन्मादरोग में हितकर है। यह चक्रदत्त ने कहा है॥ ४५॥

सारस्वत चूर्ण।

कुष्ठाश्वगन्धे लवणाजमोदे द्वे जीरके त्रीणि कटूनि पाठा। माङ्गल्यपुष्पी च समान्यमूनि सर्वैः समानाश्च वचां विचूर्ण्य॥ ४६॥ ब्राह्मीरसेनाखिलमेव भाव्यं वारत्रयं शुष्कमिदं हि चूर्णम्। माषप्रमाणं मधुना घृतेन लिह्यान्नरः सप्तदिनानि चूर्णम्॥ ४७॥ सारस्वतमिदं चूर्णं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा। हिताय सर्वलोकानां दुर्मेधसां विचेतसाम्॥ ४८॥ एतस्याभ्यासतः पुंसां बुद्धिर्मेधा धृतिः स्मृतिः। सम्पत्तिः कविताशक्तिः प्रवर्धतोत्तरोत्तरम्॥ ४९॥

कूट, असगन्ध, सेंधानमक, अजवायन, जीरा, कालाजीरा, त्रिकटु (सोंठ मिर्च, पीपरि), पाढ़, शंखपुष्पी हरएक १ तोला, वच ११ तोले, इन्हें इकट्ठा मिलाकर ब्राह्मी के रस से तीन बार भावना दे और सुखाकर चूर्ण कर ले। इस चूर्ण को १ माशा लेकर शहद तथा घृत के, सात दिन तक सेवन करे। इसके सेवन से मनुष्यों की बुद्धि, मेधा, स्मृति, धृति, सम्पत्ति तथा कविताशक्ति बढ़ती है॥४६-४९॥

उन्माद गजकेसरी।

शुद्धं सूतं वचाक्काथैस्त्रिदिनं मर्दयेत्ततः शङ्खपुष्पा रसैस्तद्वद्गन्धकं मर्दितं क्षिपेत्॥ ५०॥ गोमूत्रमर्दितं गोलं कृत्वा मूष्या निरोधयेत् सप्तधाऽऽलेप्य मृद्वस्त्रैः पुटितं स्वाङ्ग शीतलम्॥ ५१॥ चूर्णीकृतं चतुर्वल्लं समसर्षप चूर्णकम् जीर्णघृतानुपानश्च नस्ये स्नेहं तु सार्षपम्॥ ५२॥ कारयेत्तेन चाभ्यङ्गं दिनानामेक विंशतिम् उन्मादापस्मृती हन्ति ह्युन्मादं गज केसरी॥ ५३॥

शुद्ध पारे को वच के क्वाथ के साथ ३ दिन तक घोटे और इसी प्रकार इतने ही गन्धक को शङ्खपुष्पी के रस में घोटकर दोनों को मिला गोमूत्र में घोट गोला बनाकर रखे फिर उसे मूषा में बन्द कर सात कपड़मिट्टी का लेप देकर भूधर यन्त्र में लघु पुट देवे ठंडा हो जाने पर महीन पीस कर १२ रत्ती की मात्रा लेकर उसके समान पीली सरसों का चूर्ण मिलाकर पुराने घी के साथ देवे। सरसों के तेल से नस्य देवे। इसी से शरीर में मालिश करावे। ऐसा २१ दिन तक करते रहने से उन्माद और अपस्मार को नष्ट कर देता है। विशेष अनुभूत है॥ ५०-५३॥

उन्मादभञ्जन रस ।

त्रिकटु त्रिफला चैव गजपिप्पलिका तथा । देवदारु विडङ्गञ्च किरातं कटुकी तथा ॥ ५४ ॥ कण्टकारी च यष्टीन्द्रयवं चित्रकमेव च । बला च पिप्पलीमूलं मूलञ्च वीरणस्य च ॥ ५५ ॥ शोभाञ्जनस्य बीजानि त्रिवृता चेन्द्रवारुणी । वङ्गं रूप्यमभ्रकञ्च प्रवालं समभागिकम् ॥५६॥ सर्वचूर्णसमं लौहं सलिलेन विमर्दयेत् । उन्मादमपि भूतोत्थमुन्मादं वातजं तथा ॥ ५७ ॥ अपस्मारं तथा कार्श्यं रक्तपित्तं सुदारुणम् । नाशयेदविकल्पेन रसश्चोन्मादभञ्जनः ॥ ५८ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, गजपीपरि, देवदारु बायविडङ्ग, चिरायता, कुटकी, छोटी कटेरी, मुलेठी, इन्द्रजौ चित्रक, खरेटी, पीपलामूल, खस सहिजना के बीज, निसोत इन्द्रायण, वङ्गभस्म, चाँदी की भस्म । अभ्रकभस्म, मूँगाभस्म, हरएक १ तोला । लोहभस्म २१ तोले । इन्हें एकत्र जल से घोटकर दो दो रत्ती की गोलियाँ बनावे । यह रस भूतोन्माद, वातज उन्माद, अपस्मार, कृशता तथा रक्तपित्त आदि रोगों को नष्ट करता है ॥ ५४-५८ ॥

चतुर्भुज रस ।

मृतसूतस्य भागौ द्वौ भागैकं हेमभस्मकम् । शिला कस्तूरिका तालं प्रत्येकं हेमतुल्यकम् ॥ ५९ ॥ सर्वं खल्लतले क्षिप्त्वा कन्याया मर्दयेद्रसैः । एरंडपत्रै रावेष्ट्य धान्यराशौ दिनत्रयम् ॥ ६० ॥ संस्थाप्य च तदुद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत् । एतद्रसायनं श्रेष्ठं त्रिफला मधुमर्दितम् ॥ ६१ ॥ तद्यथाग्निबलं खादेद् वलीपलितनाशनम् । अपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मन्दानले क्षये ॥ ६२ ॥ हस्तकम्पे शिरःकम्पे गात्रकम्पे विशेषतः । वातपित्तसमुत्थांश्च कफजान्नाशयेद् ध्रुवम् ॥ चतुर्भुजरसो नाम महेशेन प्रकाशितः ॥ ६३ ॥

पारदभस्म, (रससिन्दूर) २ भाग, स्वर्णभस्म १ भाग, मैनसिल १ भाग, कस्तूरी १ भाग हरिताल १ भाग, इन्हें एकत्र खरल में डालकर ग्वारपाठे के रस से घोटे फिर इसे अण्डी के पत्तों में लपेटकर धान्यराशि में ३ दिन पड़ा रहने दे । पश्चात् निकालकर अग्नि तथा बल के अनुसार सेवन करावे । मात्रा—१ रत्ती । अनुपान—त्रिफला तथा शहद । इसके सेवन से वलीपलित, अपस्मार, उन्माद, ज्वर, खाँसी, शोष, मन्दाग्नि, क्षय, हस्तकम्प, शिर.कम्प, गात्रकम्प आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ५९-६३ ॥

उन्मादगजाङ्कुश ।

त्रिदिनं कनकद्रावैर्महाराष्ट्रीरसैः पुनः । विषमुष्टिद्रवैः सूतं समुत्थाप्यार्कचक्रिकाम् ॥ ६४ ॥ कृत्वा तप्तां सगन्धान्तां युक्त्या बन्धनमाचरेत् । तत्समं कानकं बीजमभ्रकं गन्धकं विषम् ॥ ६५ ॥ मर्दयेत्त्रिदिनं सर्वं गुञ्जार्द्धं च प्रयोजयेत् । दोषोन्मादं द्रुतं हन्ति भूतोन्मादं विशेषतः ॥ ६६ ॥

२ तोले पारद को धतूरा, गजपीपरि और कुचिला के रस में अलग-अलग तीन-तीन दिन घोटे । पश्चात् ऊर्ध्वपातन करके उसमें २ तोले गन्धक मिलाकर सूर्य के समान गोल टिकिया बना ले । फिर उस टिकिया को स्वल्पपुट में पकाकर उसमें धतूरे के बीज २ तोले, अभ्रक २ तोले गन्धक २ तोले और मीठा विष २ तोले मिलाकर ३ दिन खरल कर आधी आधी रत्ती की गोली बना ले । यह उन्मादगजाकुश रस दोषोन्माद भी शीघ्र नष्ट करता है । विशेष

कर भूतोन्माद में अधिक लाभदायक होता है ॥ ६४-६६ ॥

कामदुधा।

मौक्तिकस्य प्रवालस्य मुक्ता शुक्तिभवस्य च। वराटिकायाः शङ्खस्य भस्मानि गैरिकं तथा ॥ ६७ ॥ गुडूचिकोद्भवं सत्वं समभागानि कारयेत् अजाजिका सिताभ्याश्च गृह्णीयाद्रक्तिकाद्वयम् ॥ ६८ ॥ जीर्णज्वर भ्रमोन्माद पित्तरोगेषु शस्यते। अम्लपित्ते सोमरोगे योऽयः कामदुधा-रसः ॥ ६९ ॥

मोती प्रवाल मोती की सीप कौड़ी इस सबकी भस्में सोनागेरू और गुडूची सत्व ये समान भाग लेकर सबको मिला घोट कर रखे और फिर इसमें से २ रत्ती की मात्रा में २ माशे जीरा, ३ माशे शक्कर के साथ देने से पुराना ज्वर, भ्रम, उन्माद, पित्तरोग, अम्लपित्त, सोमरोग ये सब दूर हो जाते हैं। विशेष अनुभूत ॥ ६७-६९ ॥

भूताङ्कुश रस।

सूतायस्तारताम्रञ्च मुक्ता चापि समं समम्। सूतपादं तथा वज्रं तालं गन्धं मनःशिला ॥ ७० ॥ तुत्थं तिलाञ्जनं शुद्धमब्धिफेनं रसाञ्जनम्। पञ्चानां लवणानाञ्च प्रतिभागं रसोन्मितम् ॥ ७१ ॥ भृङ्गराजचित्रकाभ्यां दुग्धेनापि विमर्दयेत्। दिनान्ते पिण्डितं कृत्वा रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ॥ ७२ ॥ भूतांकुशो रसो नाम नित्यं गुञ्जाद्वयं लिहेत्। आर्द्रकस्य रसेनापि चोन्मादे भूतजित्रसः ॥ ७३ ॥ माहिषञ्च घृतं क्षीरं गुर्वन्नमपि भोजयेत्। अभ्यङ्ग कटुतैलेन हितो भूतांकुशे रसे ॥ ७४ ॥

शुद्ध पारा १ तोला, लोहभस्म १ तोला, चाँदी की भस्म १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, मोतीभस्म १ तोला, हीरे की भस्म ३ माशे, शुद्ध हरताल १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, शुद्ध मैनशिल १ तोला, शुद्ध तूतिया १ तोला, काला सुरमा १ तोला, समुद्रफेन १ तोला, रसौत १ तोला तथा पाँचों नमक एक-एक तोला। सबको एकत्र कर भँगरा के रस, चीता के काढ़ा और थूहर के दूध में १ दिन घोटकर गोला बना ले और उस गोले को संपुट में बन्दकर गजपुट में फूँक दे। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—अदरख का रस। यह उन्माद और भूतोन्माद को जीतता है। भूतांकुश रस इसका नाम है। इसके सेवन करनेवाले को भैंस का दूध, दही और गुरु पदार्थ भोजन करना चाहिए तथा कड़ुए तेल से मालिश करनी चाहिए ॥ ७०-७४ ॥

उन्माद में पथ्य।

गोधूममुद्गारुणशालयश्च धारोष्ण-दुग्धं शतधौतसर्पिः। घृतं नवीनं च पुरातनं च कूर्मामिषं धन्वरसाः रसालम् ॥ ७५ ॥ पुराणकूष्माण्डफलं पटोलं ब्राह्मीदलं वास्तुकतण्डुलीयम्। खराश्वमूत्रं गगनाम्बु पथ्या सुवर्णचूर्णानि च नारिकेलम्। द्राक्षा कपित्थं पनसं च वैद्यैर्विधेयमुन्मादगदेषु पथ्यम् ॥ ७६ ॥

गेहूँ, मूँग, लाल शालि चावल, धारोष्ण दूध, सौ बार का धोया हुआ घृत, ताजा घी, पुराना घी, कछुए का मांस, जङ्गली पशु-पक्षियों के मांस का रस, आम, पुराना पेठा, परवल, ब्राह्मी, बथुआ, चौलाई गदहे तथा घोड़े का मूत्र वर्षा का जल, हड़, सुवर्णभस्म, नारियल, अंगूर, कैथ, कटहल ये उन्माद में पथ्य हैं ॥ ७५-७६ ॥

अपथ्य।

मद्यं विरुद्धाशनमुष्णभोजनं निद्राक्षुधातृट्कृतवेगधारणम्। व्यायाम-

मापाढफलं कठिल्लकं शाकानि पत्रभवानि सर्वशः ॥ ७७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामुन्मादाधिकारः समाप्तः।

शराब, विरुद्ध भोजन, उष्ण भोजन, निद्रा, भूख तथा प्यास के वेग को रोकना, व्यायाम, आपाढ़ फल, (खीरा, ककड़ी आदि) करेला तथा सम्पूर्ण पत्रशाक अपथ्य हैं ॥ ७७ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायामुन्मादाधिकारः समाप्तः।

अपस्माराधिकारः।

वातिकं वस्तिभिः प्रायः पैत्तं प्रायो विरेचनैः। श्लैष्मिकं वमनप्रायैरपस्मारमुपाचरेत् ॥ १ ॥

वातज अपस्मार की वस्ति से, पित्तज की विरेचन से और कफज अपस्मार की वमनकारक औषधियों से चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १ ॥

पुष्योद्धृतं शुनः पित्तमपस्मारघ्नमञ्जनम्। तदेव सर्पिषा युक्तं धूपनं परमं स्मृतम् ॥ २ ॥

पुष्य नक्षत्र में निकाले हुए कुत्ते के पित्त का अञ्जन तथा उसी में घी मिलाकर धूप देने से अपस्मार का नाश होता है ॥ २ ॥

नकुलोलूकमार्जारगृध्रकीटाहिकाकजैः। तुण्डैः पक्षैः पुरीषैश्च धूपनं कारयेद्भिषक् ॥ ३ ॥

नेवला, उल्लू, बिल्ली, गीध, कीट, साँप और कौवा ; इनकी चोंच, पंख और विष्ठा की धूप देने से अपस्मार नष्ट होता है ॥ ३ ॥

मनोह्वातार्क्ष्यजञ्चैव शकृत्पारावतस्य च। अञ्जनं हन्त्यपस्मारमुन्मादञ्च विशेषतः ॥ ४ ॥

मैनशिल, रसौत और कबूतर की बीट का अञ्जन अपस्मार और विशेषकर उन्माद को नष्ट करता है ॥ ४ ॥

अपेतराक्षसीकुष्ठपूतनाकेशचोरकैः। उत्सादनं मूत्रपिष्टैर्मूत्रैरेवावसेचनम् ॥ ५ ॥

सफेद तुलसी, कूट, हड़, सुगन्धबाला, गठिवन (भटेउर); इन सबको गोमूत्र में पीसकर शरीर पर उबटन लगाने से और शरीर पर गोमूत्र का सिंचन करने से अपस्मार रोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

जतुकाशकृता तद्वद्दग्धैर्वा वस्तलोमभिः। अपस्मारहरो लेपो मूत्रसिद्धार्थशिग्रुभिः ॥ ६ ॥

जतुका चर्मचटका।

चिमगादड़ की विष्ठा का अथवा बकरे के बालों की भस्म का अथवा गोमूत्र में पिसी हुई सरसों और सहिजन की छाल का लेप करने से अपस्मार रोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

यः खादेत् क्षीरभक्ताशी माक्षिकेण वचारजः। अपस्मारं महाघोरं स चिरोत्थं जयेद् ध्रुवम् ॥ ७ ॥

जो अपस्मार का रोगी प्रतिदिन वच के चूर्ण को शहद के साथ खाता है और दूध-भात का भोजन करता है वह महाघोर पुराने अपस्मार रोग को जीत लेता है ॥ ७ ॥

उल्लम्बितनरग्रीवापाशं दग्ध्वा कृता मसी। शीताम्बुना समं पीता हन्त्यपस्मारमुद्धतम् ॥ ८ ॥

फाँसी की रस्सी को जलाकर उसकी भस्म को ठंडे जल में घोलकर पीने से घोर अपस्मार नष्ट होता है ॥ ८ ॥

प्रयोज्यं तैललशुनं पयसा वा शतावरी । ब्राह्मीरसश्च मधुना सर्वापस्मारभेषजम् ॥ ९ ॥

तेल में मिलाकर लहसुन, दूध में मिलाकर शतावरी का चूर्ण तथा शहद मिलाकर ब्राह्मी के रस का सेवन करना सब प्रकार के अपस्मार को नष्ट करता है ॥ ९ ॥

निर्दुह्य निर्द्रवां कृत्वा छागिकामरनाडिकाम् । तामम्लसाधितां खादेदपस्मारमुदस्यति ॥ १० ॥

बकरी के बच्चे के नाभिनाल को अच्छी प्रकार से निचोड़कर, सुखा कर, अम्लरस से सिद्ध कर खाने से अपस्मार नष्ट होता है ॥ १० ॥

हृत्कम्पोऽक्षिरुजा यस्य स्वेदो हस्तादिशीतता । दशमूलीजलं तस्य कल्याणाज्यं च योजयेत् ॥ ११ ॥

जिस अपस्मार के रोगी के हृत्कंप, आँख में दर्द, पसीना, हाथ-पाँव का ठण्डा होना आदि लक्षण हों तो उसे दशमूल का क्वाथ तथा कल्याणघृत का सेवन करना चाहिए ॥ ११ ॥

स्वल्पपञ्चगव्य घृत ।

गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैः समैर्घृतम् । सिद्धं चातुर्थकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ १२ ॥

गोबर का रस १२८ तोले । खट्टा दही १२८ तोले । दूध १२८ तोले, गोमूत्र १२८ तोले तथा गोघृत १२८ तोले । यथाविधि घृत सिद्ध कर पान करने से चातुर्थिक ज्वर, उन्माद, ग्रहदोष और अपस्मार (मृगी) आदि नष्ट होते हैं ॥ १२ ॥

बृहत्पञ्चगव्य घृत ।

द्वे पञ्चमूले त्रिफलां रजन्यौ कुटजत्वचम् । सप्तपर्णमपामार्गं नीलिनीं कटुरोहिणीम् ॥ १३ ॥ शम्पाकं फल्गुमूलञ्च पौष्करं सदुरालभम् । द्विपलानि जलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषिते ॥ १४ ॥ भार्गी पाठा त्रिकटुकं त्रिवृतानिचुलानि च । श्रेयसी चाढकी मूर्वा दन्ती भूनिम्बचित्रकौ ॥ १५ ॥ द्वे सारिवे रोहितकं भूतिकां मदयन्तिकाम् । क्षिपेत् पिष्ट्वाक्षमात्राणि तैः प्रस्थं सर्पिषः पचेत् ॥ १६ ॥ गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैश्च तत्समैः । पञ्चगव्यमिदं ख्यातं महत्तदमृतोपमम् ॥ १७ ॥ अपस्मारे ज्वरे कासे श्वयथावुदरे तथा । गुल्मार्शःपार्श्वरोगेषु कामलायां हलीमके ॥ १८ ॥ अलक्ष्मीग्रहरक्षोघ्नं चातुर्थकविनाशनम् ॥ १९ ॥

काढ़ा के लिए दशमूल, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कुड़ा की छाल, सतौना, लटजीरा, नील, कुटकी, अमलतास, कठूमर की जड़, पोहकरमूल और जवासा; प्रत्येक आठ-आठ तोले। क्वाथार्थ जल २५ सेर ४८ तोले। अवशिष्ट ६ सेर ३२ तोले। गोघृत १२८ तोले, गोबर का रस १२८ तोले। खट्टा दही १२८ तोले। दूध १२८ तोले। गोमूत्र १२८ तोले। कल्क के लिए भारंगी, पाढ़ी, सोंठ, मिर्च, पीपरि, निसोथ, हिज्जल (समुद्र-फल) गजपीपरि, अरहर की जड़, मरोरफली, दन्तीमूल, चिरायता, चीता की जड़, दोनों सारिवा (अनन्तमूल और कालीसर), रोहिड़ा की छाल, अजयाइन और मोतिया (बेला) के फूल; प्रत्येक एक-एक तोला। यथाविधि घृत सिद्ध करे। अमृत के तुल्य गुणकारी यह पञ्चगव्य घृत अपस्मार, ज्वर, खाँसी, शोथ, उदरविकार, गुल्म, बवासीर, पसली का रोग, कामला, हलीमक और चातुर्थिकज्वर को नष्ट करता है तथा अलक्ष्मी, ग्रह, राक्षसावेश आदि को दूर करता है ॥ १३–१९ ॥

महाचैतस घृत।

शणस्त्रिवृत्तथैरण्डो दशमूली शतावरी। रास्ना मागधिका शिग्रु: काथ्यं द्विपलिकं भवेत् ॥ २० ॥ विदारी मधुकं मेदे द्वे काकोल्यौ सिता तथा। एभिः खर्जूरमृद्वीकाभीरुयुञ्जातगोक्षुरैः॥ २१ ॥ चैतसस्य घृतस्याङ्गैः पक्तव्यं सर्पिरुत्तमम्। महाचैतससंज्ञं तु सर्वापस्मारनाशनम् ॥ २२ ॥ गरोन्मादप्रतिश्यायतृतीयकचतुर्थकान्। पापालक्ष्मीर्जयेदेतत् सर्वग्रहनिवारकम्॥ २३ ॥ श्वासकासहरञ्चैव शुक्रार्त्तवविशोधनम्। घृतमानं क्राथविधिरिह चैतसवन्मतः ॥ २४ ॥ कल्कश्चैतसकल्कोक्तद्रव्यैः सार्द्धञ्च पादिकः। नित्यं युञ्जीतकाप्राप्तौ तालमस्तकमिष्यते ॥ २५ ॥

काढ़ा के लिए सन के बीज, निसोथ, एरण्ड की जड़, दशमूल, शतावरी, रास्ना, पीपरि और सहिंजन की छाल; प्रत्येक आठ आठ तोले। पाक के लिए जल २१ सेर ४८ तोले। अवशिष्ट ६ सेर ३२ तोले। घृत १२८ तोले। कल्क के लिए विदारीकन्द, मुलेठी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मिश्री, पिंडखजूर, मुनक्का, शतावरी, मुञ्जातक (कन्द विशेष), गोखुरू और स्वल्पचैतस घृत के सम्पूर्ण कल्कद्रव्य (इन्द्रायन, त्रिफला, सँभालू के बीज, देवदारु, एलुवा, शालपर्णी, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, सफेद और काली सारिवा, प्रियगु के फूल, नीलकमल, इलायची, मँजीठ, दन्ती, अनार, केसर, तालीशपत्र, बड़ी कटेली, चमेली के ताजे फूल, बायबिड़ग, पृश्निपर्णी, कूट, सफेद चन्दन और पद्माख) सब मिलाकर ६४ तोले। विधिपूर्वक घृत का पाक करे। यह महाचैतस घृत सब प्रकार के अपस्मारों का नाशक है तथा विषदोष, उन्माद, प्रतिश्याय, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वर, पाप, अलक्ष्मी, सर्वग्रह, श्वास और खाँसी आदि रोगों को नष्ट करता है। शुक्र और रज का शोधन करनेवाला है। मुञ्जातक की प्राप्ति न होने पर तालमस्तक ग्रहण करना चाहिए॥ २०–२५ ॥

कूष्माण्ड घृत।

कूष्माण्डकरसे सर्पिरष्टादशगुणे पचेत्। यष्टयाह्वकल्कं तत्पानमपस्मारविनाशनम् ॥ २६ ॥

गौ का घी २ सेर, पेठे का रस ३६ सेर। मुलेठी का कल्क आध सेर। यथाविधि घृत सिद्ध कर पान करने से अपस्मार का नाश होता है॥ २६ ॥

पलङ्कपाद्य तैल।

पलङ्कषावचापथ्यावृश्चिकाल्यर्कसर्षपैः। जटिलापूतनाकेशीलाङ्गलीहिङ्गचोरकैः॥ २७ ॥ लशुनातिविषाचित्राकुष्ठैर्विडभिश्च पक्षिणाम्। मांसाशिनां यथालाभं बस्तमूत्रे चतुर्गुणे। सिद्धमभ्यञ्जनात्तैलमपस्मारविनाशनम्॥ २८ ॥ अभ्यङ्गे सार्षपं तैलं बस्तमूत्रे चतुर्गुणे। सिद्धं स्याद्गोशकृन्मूत्रैः स्नानोत्सादनमेव च ॥ २९ ॥

गुगुल, बच, हड़, वृश्चिकाली (बिछाटी), आक की जड़, सरसों, जटामासी, हड़, भूतकेशी (गन्धमांसी), कलिहारी, हींग, प्रन्थिपर्ण (भटउर), लहसुन, अतीस, चीता की जड़, कूट और जितनी मिल सके उतनी मांसभक्षी पक्षियों की बीटें, सब मिलित आध सेर लेकर कल्क बनावे। तेल कड़ुआ २ सेर। बकरी का मूत्र ८ सेर। यथाविधि तेल का पाक कर मालिश करे तो अपस्मार को नष्ट करे। सरसों के तेल को चौगुने बकरी के मूत्र में सिद्ध करके मालिश करे और गोबर का उबटन लगाने तथा गोमूत्र से स्नान करने से अपस्मार रोग नष्ट होता है॥ २७–२९ ॥

कल्याण चूर्ण

पञ्चकोलं समरिचं त्रिफला विडसैन्धवम्। कृष्णाविडङ्गपूतीकयमानीधान्यजीरकम् ॥ ३० ॥ पीतमुष्णाम्बुना चूर्णं वातश्लेष्मामयापहम्। अपस्मारे तथोन्मादेऽप्यर्शसां ग्रहणीगदे ॥ एतत्कल्याणकं चूर्णं नष्टस्याग्नेश्च दीपनम् ॥ ३१ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, कालीमिर्च, त्रिफला, विडनमक, सेंधानमक पीपल, वायविडङ्ग, करंज, अजवायन, धनियाँ, जीरा इनके चूर्ण को गरम जल के साथ पीने से वातकफजन्य रोग, अपस्मार, उन्माद, बवासीर तथा ग्रहणी आदि रोग नष्ट होते हैं। यह चूर्ण अग्नि को प्रदीप्त करता है। मात्रा—१ माशा ॥ ३०—३१ ॥

स्मृति सागर रस।

रसगन्धकतालानां साशिलाताप्य भास्वताम्। शुद्धानां मूर्च्छितानां च चूर्णं भाव्यं वचामृतैः ॥३२॥ एकविंशतिधा पश्चाद्ब्राह्मीवारा तथैव च। कटभी बीजतैलेन भावयेदेकवारकम् ॥ ३३ ॥ स्मृतिसागर नामाऽयं रसोऽपस्मार नाशनः। सर्पिषामाषमात्रोऽयं भुक्तो हन्यादपस्मृतिम् ॥३४॥

शुद्ध पारा गन्धक हरिताल और मैनसिल सोना मासी और ताम्रभस्म सब बराबर लेकर कजली कर वच और ब्राह्मी के स्वरसों से २१-२१ बार घोटकर माल कांगनी के तैल में १ बार घोटकर रक्खे। इसमें १-१ माशा घी के साथ देने से अपस्मार का नाश करती है तथा याद रखने की शक्ति (स्मृति को) तेज करती है ॥ ३२-३४ ॥

चण्डभैरव।

मृतसूतार्कलौहञ्च तालं गन्धं मनःशिला। रसाञ्जनञ्च तुल्यांशं गोमूत्रेणापि मर्दयेत् ॥ ३५ ॥ तं गोलं द्विगुणं गन्धं लोहपात्रे क्षणं पचेत्। गुञ्जैकप्रमितं भक्ष्यमपस्मारहरं परम् ॥ ३६ ॥ हिङ्गु-सौवर्चलं कुष्ठं गवां मूत्रेण सर्पिषा। चतुर्गुञ्जं पिबेच्चानु रसेऽस्मिंश्चण्डभैरवे ॥ ३७ ॥

रससिन्दूर, ताम्रभस्म, लोहभस्म, हरताल, गन्धक, मैनशिल और रसौत, इन सबको सम भाग लेकर गोमूत्र में घोटे फिर उसका गोला बनावे। सबसे दुगुनी गन्धक मिलाकर लोहे की कड़ाही में थोड़ी देर उसे पकावे। इसकी मात्रा १ रत्ती की है। इस चण्डभैरव रस को खाकर हींग १ रत्ती, काला नमक १ रत्ती और कूट २ रत्ती के चूर्ण को एक तोला घी और गोमूत्र के साथ पीना चाहिए ॥ ३५-३७ ॥

सूतभस्म प्रयोग।

शङ्खपुष्पीवचाब्राह्मीकुष्ठकैलारसैः सह। सूतभस्मप्रयोगोऽयं रक्तिकैकप्रमाणतः ॥ ३८ ॥ सर्वापस्मारनाशाय महादेवेन भाषितः ॥ ३९ ॥

शंखाहूली, वच, ब्राह्मी, कूट तथा इलायची इनके क्वाथ के साथ १ रत्ती पारदभस्म या रससिन्दूर खाने से अपस्मार रोग नष्ट होता है ॥ ३८-३९ ॥

वातकुलान्तक।

मृगनाभिः शिला नागकेशरं कलिद्रुमजम्। पारदं गन्धकं जातीफलमेलालवङ्गकम् ॥ ४० ॥ प्रत्येकं कार्षिकञ्चैव श्लक्ष्णचूर्णञ्च कारयेत्। जलेन मर्दयित्वा तु वटीं गुञ्जार्धसम्मिताम् ॥ ४१ ॥ यथा व्याध्यनुपानेन योजयेच्च चिकित्सकः। अपस्मारे महाघोरे मूर्च्छारोगे च शस्यते ॥ ४२ ॥ वातजान् सर्वरोगांश्च हन्यादचिरसेवनात्। नातः परतरं श्रेष्ठमपस्मारेषु

वर्तते ॥ ब्रह्मणा निर्मितः पूर्वं नाम्ना वातकुलान्तकः ॥ ४३ ॥

कस्तूरी, मैनशिल, नागकेशर, बहेड़ा, पारा, गन्धक, जायफल, छोटी इलायची, लौंग हरएक २ तोले, इन्हें जल में घोटकर आधी रत्ती की गोली बनावे। इसके सेवन से अपस्मार, मूर्च्छा, वातव्याधि आदि रोग नष्ट होते हैं। अपस्मार (मृगी) में इससे बढ़कर और कोई रस नहीं है ॥ ४०--४३ ॥

अपस्मार में पथ्य।

नस्यं शिराव्यधो दानं त्रासनं बन्धनं भयम्। तर्जनं ताडनं हर्षो धूमपानश्च विस्मयः ॥ ४४ ॥ धीधैर्यात्मादिविज्ञानं स्नानमभ्यञ्जनानि च। लोहिताः शालयो मुद्गा गोधूमाः प्रतनं हविः ॥ ४५ ॥ कूर्मामिषं धन्वरसाः दुग्धं ब्राह्मीदलं वचा। पटोलं वृद्धकूष्माण्डं वास्तूकं स्वादु दाडिमम् ॥ ४६ ॥ शोभाञ्जनं पयःपेटी द्राक्षा धात्री परूपकम्। तैलं खराश्वमूत्रञ्च गगनाम्बु हरीतकी ॥ अपस्मारगदे नृणां पथ्यमेतदुदीरितम् ॥ ४७ ॥

नस्य, शिरावेध, दान, धमकाना, बाँधना, डराना, झिड़कना, ताड़न, हर्ष, धूमपान, आश्चर्यजनक दृश्य आदि, बुद्धि, धृति, आत्मादि ज्ञान, स्नान, अभ्यङ्ग, लाल शालि, चावल, मूँग, गेहूँ, पुराना घी, कछुए का मांस जांगल पशु-पक्षियों के मांस का रस, दूध, ब्राह्मीपत्र, वच, परवल, पुराना पेठा, बथुआ, मीठा अनार, सहिजना, नारियल, अंगूर, आँवला, फालसा, तिल तैल, गदहा और घोड़े का मूत्र, वर्षा का जल और हड़ ये अपस्मार रोग में पथ्य हैं ॥ ४४--४७ ॥

अपथ्य।

चिन्तां शोकं भयं क्रोधमशुचीन्यशनानि च। मद्यं मत्स्यं विरुद्धान्नं तीक्ष्णोष्णगुरुभोजनम् ॥ ४८ ॥ अतिव्यवायमायासंपूज्यं पूजाव्यतिक्रमम्। पत्रशाकानि सर्वाणि बिम्बीमाषाढकं फलम् ॥ ४९ ॥ तृषा निद्रा क्षुधा वेगमपस्मारी परित्यजेत् ॥ ५० ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामपस्माराधिकारः समाप्तः।

चिन्ता, शोक, भय, क्रोध, अपवित्र भोजन, शराब, मछली, विरुद्ध भोजन, तीक्ष्ण-उष्ण एवं गुरु भोजन, अति मैथुन, परिश्रम, पूज्य पुरुष, देवता आदि की पूजा न करना, सम्पूर्ण पत्रशाक, बिम्बी, आषाढ फल (खीरा, आरिया), प्यास निद्रा, भूख इनके वेगों को रोकना; ये अपथ्य हैं। इनका अपस्मारी को त्याग करना चाहिए ॥ ४८--५० ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायामपस्माराधिकारः समाप्तः।

तत्त्वोन्मादाधिकारः।

तत्त्वोन्माद का स्वरूप।

अहो मम महद्भाग्यं लब्धा यद् ब्रह्मणः कृपा। इत्येवं भ्रमजो मोहस्तत्त्वोन्माद इतीरितः ॥ १ ॥ तत्त्वोन्मादो हर्षमौढ्यं ब्रह्ममोहश्च स स्मृतः। वृथा धर्मभवो व्याधिरयं सद्भिर्निरूपितः ॥ २ ॥ किं रूपं कुत्र वा ब्रह्म नैतज्जानाति कोऽप्यहो। पुराणैर्दर्शनैर्वा न लब्धं यद् ब्रह्मदर्शनम् ॥ ३ ॥ एकेशकर्तृकं विश्वं वदन्त्यन्ये निरीश्वरम्। ब्रह्माण्डं ब्रह्मतर्केण व्याकुलं बहुधा वृथा ॥ ४ ॥ मानं दुरूहं सत्तायामास्तां

दूरे दयादिकम् । अनिर्णीतमनिर्णेयं तदेवमवधारय ॥ ५ ॥ मदर्थं ब्रह्म कुर्व्वेतज्जहीनं मम वैरिणम् । धनं देहि यशो देहि देहि राज्यमकण्टकम् ॥६॥ विशालनेत्रां सुदतीं पीनोन्नतपयोधराम् । नितम्बिनीं क्षीणमध्यां स्मरकेलिकलाविदम् ७ नित्यं नर्म्मप्रियां तन्वीं रम्भोरुं रसिकेश्वरीम् । मद्रतां नित्यसन्तुष्टां सुन्दरीं देहि कामिनीम् ॥ ८ ॥ इत्थमर्थनमात्रेण ब्रह्मभीनं ससम्भ्रमम् । भ्रान्तबुद्धेन मन्यस्व प्रार्थितं साधयिष्यति ॥ ९ ॥ कदाचित् प्रार्थना कापि यदि ते सफला भवेत् । सिद्धि तत् काकतालीयं तत्र ब्रह्म न कारणम् ॥ १० ॥ न स्तवैर्हृष्यति ब्रह्म नापि द्वेष्टि च निन्दया । अस्तिवादी प्रियो नास्य नास्तिवादी न चाप्रियः ॥ ११ ॥ न मूर्खेऽनादरस्तस्य बहुमानो न पण्डिते । धनिनोरा भयं नास्य न दरिद्रे च ताडनम् ॥ १२ ॥ श्वपाके यवने वापि ब्राह्मणे वेदपारगे । मद्यपे गणिकासक्ते मालातिलकधारिणि ॥ १३ ॥ शुची वाप्यशुची साध्व्यां वेश्यायां बालवृद्धयोः । सर्व्वत्रैव समं ब्रह्म विश्वरूपं सनातनम् ॥ १४ ॥ एवं भूतस्य तस्येयमिति मत्प्रीतये कृतिः । तत्त्वोन्मादयति यस्तस्य व्याधिरुन्माद एव हि॥१५॥ प्रायशो बुद्धिहीनानामसतां नीचचेतसाम्। व्याधिरेषोऽभिजायेत कदाचिन्महतामपि ॥ १६ ॥ तत्त्वोन्माद इत्यत्र उन्मादशब्दो भावकृता निष्पन्नः ।

'अहो मेरा महान् भाग्य है जो मैंने ब्रह्म की कृपा [illegible] पाया है' ऐसा भ्रमजन्य मोह तत्त्वोन्माद कहलाता है। सज्जनों ने तत्त्वोन्माद, दर्पमौढ्य, ब्रह्ममोह नाम रोग मिथ्या बुद्धि से उत्पन्न कहा है। ब्रह्म का क्या रूप है ? कहाँ है, इसे कोई भी नहीं जानता । पुराण और दर्शनशास्त्रों से भी उस ब्रह्म के दर्शन प्राप्त नहीं होते हैं। एक कहता है, संसार का रचयिता ब्रह्म है । दूसरा कहता है, ईश्वर है ही नहीं। बहुधा ब्रह्माण्ड और ब्रह्म के तर्क से व्यर्थ ही व्याकुल रहता है, कठिनता से प्राप्त मानसत्ता में आसक्ति जो निश्चय नहीं हुआ है और न निश्चय किया जा सकता है, उसका निश्चय हे ब्रह्म ! मेरे लिये उन्नत कर, मेरे वैरियों को नष्ट कर, धन दे, यश दे, निष्कटक (एकछत्र) राज्य दे । विशाल नेत्रवाली, पुष्ट और उठे स्तनोंवाली, मोटे नितम्ब (चूतड़) और पतली कमरवाली, कामक्रियाओं में चतुर, सदैव हास्यप्रिय (हँसमुख), छरहरी, केला के खंभ सी (चिकनी) जाँघवाली, रसिकों की स्वामिनी, मेरे प्रति प्रेम रखनेवाली और सदैव सन्तुष्ट रहनेवाली कामिनी दे । इस प्रकार की इच्छा करनेमात्र से ब्रह्म में भ्रमित बुद्धिवाला व्यक्ति प्रार्थना को नहीं मानता हुआ साधना करता है । कदाचित् किसी की कोई प्रार्थना सफल भी हो जाय तो उसे काकतालीय न्याय से अकस्मात् ही समझिये, उसका कारण ब्रह्म नहीं है । ब्रह्म (ईश्वर) प्रार्थना से प्रसन्न नहीं होता है, निन्दा से नाराज नहीं होता है, मूर्ख का अनादर नहीं करता है, पण्डितों का विशेष सम्मान नहीं करता है, आस्तिक प्रिय नहीं है, नास्तिक अप्रिय नहीं है, धनियों का भय नहीं है, निर्धनों की दरिद्रता में ताड़ना नहीं है, चाण्डाल, यवन, वेदपाठी ब्राह्मण, शराबी, रंडीबाज, व्यभिचारी और माला-तिलकधारी, पवित्र और अपवित्र, स्त्री पतिव्रता और वेश्या तथा बालक और वृद्ध में सर्वत्र ही समान विश्वरूप सनातन ब्रह्म है । इस प्रकार के उस ब्रह्म ने मेरे लिए ही यह किया है । उन्माद नामक रोग के समान ही यह तत्त्वोन्माद ही है । प्रायः यह रोग बुद्धिहीन, दुर्जन, नीच विचारवाले व्यक्तियों के ही होता है, कभी-कभी महान् व्यक्तियों को भी हो जाता है ॥ १-१६ ॥

तत्त्वोन्माद का निदान।

अतिमगाढचित्तस्य धर्म्माद्यभिनिवेशनात् । व्याधिस्तत्त्वोन्मादो नाम जायते वातकोपतः ॥ १७ ॥

चित्त की कठोरता से और धर्म आदि के अभिनिवेश (कठोरपूर्वक पालन) से वात कुपित होकर तत्त्वोन्माद नाम की यह बीमारी पैदा करता है ॥ १७ ॥

तत्त्वोन्माद के लक्षण।

भ्रममोहे प्रमूढत्वं स्थिरास्पन्दा कनीनिका । चक्षुरुन्मीलितं सुस्निग्धतिरोधोऽथ वाग्मिता ॥ १८ ॥ दम्भोग्रभावौ विक्षेपो हास्यं चैव्यश्च रोदनम् । एवम्भूतानि लिङ्गानि तत्त्वोन्मादे भवन्ति हि ॥ १९ ॥

भ्रममोह में मूढावस्था, पुतलियों का स्थिर रह जाना, पलकों का टिमटिमाना, नींद कम आना, कम चलना फिरना, बातें करना, दम्भ, विचारों की तीव्रता, विक्षेप, हँसी, उन्मत्तता, रोना; इस प्रकार के लक्षण तत्त्वोन्माद में होते हैं ॥ १८-१९ ॥

वातनाडीस्थैर्यकरं तथा वातानुलोमनम् । भेषजं पानमन्नञ्च भिषगत्र प्रयोजयेत् ॥ २० ॥

तत्त्वोन्माद में वातनाड़ियों (Nerves) की स्थिरता करनेवाली, वात को अनुलोमन करनेवाली औषधि, पेय तथा अन्न का प्रयोग करना चाहिए ॥ २० ॥

प्रहारैस्ताडनाद्यैश्च गदं स्वप्नकृतं नयेत् ॥ २१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां तत्त्वोन्मादाधिकारः समाप्तः ।

प्रहार एवं ताडन आदि द्वारा कृत्रिम तत्त्वोन्माद को जीतना चाहिए ॥ २१ ॥

इति श्रीभैषज्यरत्नावल्या भाषाटीकायां तत्त्वोन्मादाधिकारः समाप्तः ।

योषापस्माराधिकारः ।

योषापस्मार का निदान।

शोणितस्य क्षयाद्वापि तथाधिक्याद्जीर्णतः । कोष्ठरोधान्मनोभङ्गादत्युद्वेगाच्च शोकतः ॥ १ ॥ रजोऽभावाच्च योषाणां जरायुविकृतेस्तथा । अशक्तेरपि नैष्ठुर्यात् पत्युरस्नेहतस्तथा ॥ २ ॥ वैधव्यजन्याद्दाधेश्च योषापस्मारसंज्ञकः । गदः सञ्जायते कृच्छ्रो मनोदेहप्रतापनः ॥ ३ ॥ योषितामेव बाहुल्याद् यत एष भवेद् गदः । अपस्मारप्रकृतिकस्तेनास्यैषाभिधा मता॥ ४ ॥ कालोऽस्य यौवनं व्याधेर्नार्वाग् द्वादशवर्षतः । परं पञ्चाशतो वापि व्याधिरेषः प्रजायते ॥ ५ ॥

रुधिर के क्षय और अधिकता से, अजीर्ण से, कोष्ठावरोध (मलावरोध-कब्ज) से, उद्वेक से, शोक से, मासिक स्राव के अभाव से, गर्भाशय के विकार से, अशक्ति से, पति के प्रेम की कमी से और उनकी कठोरता से, वैधव्यजन्य दुःख से और उनकी कठोरता से, वैधव्यजन्य दुःख से मन और देह को तपानेवाला कष्टदायक स्त्रियों के योषापस्मार नामक रोग उत्पन्न होता है । यह रोग प्रायः स्त्रियों को अधिकता से होने से योषापस्मार नाम रक्खा है । इसके उत्पन्न होने का समय भी यौवनावस्था ही है। न तो बारह वर्ष की आयु से पहिले होता है और न पचास वर्ष के बाद होता है ॥ १-५ ॥

योषापस्मार का पूर्वरूप।

हृद्रुजा जृम्भणं सादो वर्ष्मणो मनसोऽपि च । भवेद्भविष्यति गदे योषापस्मारसंज्ञके ॥ ६ ॥

जिस स्त्री के योषापस्मार नामक रोग होनेवाला होता है उसके हृदय में पीड़ा, जँभाई, शरीर और मन का दुखित होना आदि लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

योषापस्मार के लक्षण ।

वैचित्त्यं बुद्धिविभ्रान्तिर्हास्यं क्रन्दनमेव च । उच्चैः क्रोशः प्रलपनं ज्योतिर्द्वेषस्तथा भ्रमः ॥ ७ ॥ औद्धत्यं श्वासकृच्छ्रं च कण्ठामाशयवेदना । प्राबल्यं स्पर्शशक्तेश्च क्वचिदङ्गे सदा व्यथा ॥ ८ ॥ अलीकवर्तुलोत्थानमाकण्ठमुदरादपि । सदल्पबुद्धिर्मूर्च्छा च व्याधावस्मिन् प्रजायते ॥ ९ ॥

चित्त की विकलता, बुद्धिभ्रम, हँसना, रोना ऊँची आवाज़ से पुकारना, अंट संट बकना, उजाले से अरुचि, भ्रम, ऊधम मचाना, श्वास में कष्ट, कण्ठ और आमाशय में वेदना, स्पर्शशक्ति की प्रबलता, किसी-किसी अवयव में सदैव ही कष्ट रहना, पेट में कण्ठ तक एक गोला-सा उठना, अल्प बुद्धि और मूर्च्छा होना आदि लक्षण इस रोग के उत्पन्न होने पर होते हैं ॥ ७-९ ॥

योषापस्मार की चिकित्सा ।

यद्धातुपोषकं पानमन्नमौषधमेव च । कोष्ठशुद्धिकरञ्चापि तत्तदत्र प्रयोजयेत् ॥ १० ॥ मूर्च्छायां शीततोयेन सेकः शिरसि चक्षुषोः । शिरोविरेचनं वापि प्रयोज्यं तन्निवृत्तये ॥ ११ ॥ अत्र प्रयोजयेत् सर्वं मूर्च्छापस्मारभेषजम् । जरायुदोषं निखिलं प्रतिकुर्य्याद् यथाविधि । योषापस्मरणं सान्त्वैः प्रियदानाच्च शाम्यति ॥ १२ ॥

जो औषध और अन्नपान धातुओं को पुष्ट करते हैं और कोष्ठ को शुद्ध करते हैं वे सब अपस्मार के रोगियों को देने चाहिए । मूर्च्छा होने पर शीतल जल से शिर और आँखों पर सेचन अथवा नस्य आदि से शिरोविरेचन करना चाहिए । यहाँ मूर्च्छा और अपस्मारनाशक औषधें ही प्रयुक्त करनी चाहिए । गर्भाशय के समस्त दोषों को दूर करनेवाला उपचार भी करना चाहिए । योषापस्मार के रोगी को सान्त्वना देने से और उसकी प्रिय वस्तु देने से भी रोग शमन हो जाता है ॥ १०-१२ ॥

बृहत् भूतभैरव रस ।

द्विगुणं स्वर्णसिन्दूरं तत्समं हेमभस्मकम् । मुक्ताप्रवालकान्तायोराजपट्टं समं मतम् ॥ १३ ॥ कन्यानीरेण संमर्द्य भेकपर्ण्या रसेन च । पत्रैरेरण्डजैर्बद्ध्वा धान्यराशौ निधापयेत् ॥ १४ ॥ त्रिदिनान्ते समुद्धृत्य वल्लमात्रां वटीं चरेत् । एकैकां वटिकां खादेत् त्रिफलाशर्करायुताम् ॥ १५ ॥ अथवा पयसा सार्धं भूतोन्मादविनाशिनीम् । अपस्मारं महाघोरं योषापस्मारमेव च ॥ १६ ॥ हन्त्यवश्यं मदं मूर्च्छां विविधा वातवेदनाः ॥ १७ ॥

इति श्रीभैषज्यरत्नावल्यां योषापस्माराधिकारः समाप्तः ।

दो भाग स्वर्णसिन्दूर, २ भाग स्वर्णभस्म तथा मोती, प्रवाल, कान्तलौह और राजपट्ट मणि की भस्म सब एक-एक भाग । इन्हें ग्वारपाठे के रस और मण्डूकपर्णी के रस से पृथक्-पृथक् घोटकर गोला बना अरण्डी के पत्तों से लपेटकर अनाज के ढेर के भीतर रख दें । तीन दिन रखे रहने के बाद दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनाये । एक-एक गोली की मात्रा त्रिफला और खाँड मिलाकर गाय या दूध के साथ खाय तो भूतोन्माद, महाभयानक अपस्मार, योषापस्मार, मद, मूर्च्छा और अनेक प्रकार की वातवेदनायें नष्ट होती हैं ॥ १३-१७ ॥

इति श्रीभैषज्यरत्नावल्यां भाषाटीकायां योषापस्माराधिकारः समाप्तः

अथ मदात्ययाधिकारः।

मन्थः खर्जूरमृद्वीकावृक्षाम्लाम्लिकादाडिमैः। परूषकैः सामलकैर्युक्तो मद्यविकारनुत्॥ १॥

द्रवालोडितलाजसक्तुः खर्जूरादिभिर्युक्तो मन्थ इत्यर्थः। खर्जूरादीनां द्रवो ग्राह्य इति भानुः।

मन्थ में खजूर, मुनक्का, इमली, अमलबेत, अनार, फालसे और आँवले; इनका रस मिलाकर पीने से मद्यविकार दूर होता है। खील (लावा) के सत्तुओं में घी और जल मिलाकर सानने से मन्थ[1] संज्ञा होती है॥ १॥

मद्यं सौवर्चलव्योषयुक्तं किञ्चिज्जलान्वितम्। जीर्णमद्याय दातव्यं वातपानात्ययापहम्॥ २॥

पी हुई मदिरा जब हजम हो जाय तब सोंठ, मिर्च, पीपरि और काला नमक मिलाकर किंचित् जलयुक्त मदिरा[2] पीने से वातज मदात्यय रोग नष्ट होता है॥ २॥

मुद्गयूषः सितायुक्तः स्वादुर्वा पैशितो रसः। पित्तपानात्यये योज्याः सर्वतश्च क्रिया हिमाः॥ ३॥

मिसरीयुक्त मूँग का जूस अथवा मधुररसयुक्त मांसरस का पान और सब प्रकार की ठंढी चिकित्सा पित्तज पानात्यय रोग में हितकर है॥ ३॥

पानात्यये कफोद्भूते लङ्घनञ्च यथाबलम्। दीपनीयौषधोपेतं पिबेन्मद्यं समाहितः॥ ४॥

कफज पानात्यय रोग में बलानुसार लंघन करना और सावधान होकर दीपन औषध मिलाकर मदिरा का पीना हितकर है॥ ४॥

सर्वजे सर्वमेवेदं प्रयोक्तव्यं चिकित्सितम्। आभिः क्रियाभिः सिद्धाभिः शमं याति मदात्ययः॥ ५॥

सन्निपातज पानात्यय रोग में उपर्युक्त तीनों दोषों की सी चिकित्सा करनी चाहिए। इन सिद्ध क्रियाओं से मदात्यय शान्त हो जाता है॥ ५॥

सच्छर्दिमूर्च्छातिसारं मद्यं पूगफलोद्भवम्। सद्यः प्रशमयेत् पीतमातृप्तेर्वारिशीतलम्॥ ६॥

वमन, मूर्च्छा और अतीसार से युक्त सुपारी के मद में तृप्तिपर्यन्त शीतल जल पीना शीघ्र ही मद को शान्त करता है॥ ६॥

वन्यकरीषघ्राणाज्जलपानाल्लवणभक्षणाद्वापि। शाम्यति पूगफलमदश्चूर्णरुजां शर्कराकवलात्॥ ७॥

वन के सूखे कंडों के सूँघने से, जल पीने से और नमक खाने से सुपारी का मद शान्त होता है। शर्करा का कवल धारण करने से चूना से उत्पन्न मुखव्याधि नष्ट होती है॥ ७॥

कूष्माण्डरसः सगुडः शमयति मदमाशु मदनकोद्रवजम्। धुस्तूरजञ्च दुग्धं सशर्करं पानयोगेन॥ ८॥

गुड़ मिलाकर पेठे का रस पीने से मैनफल और कोदों का मद शीघ्र शान्त होता है। खाँड़युक्त दूध पीने से धतूरा का मद शान्त होता है॥ ८॥

मद्यं पीत्वा यदि ना तत्क्षणमवलेढि शर्करां सघृताम्। जातु न मदयति मद्यं मनागपि प्रथितवीर्यमपि॥ ९॥

मद्य पीकर उसी समय खाँड़ में घी मिलाकर चाटने से तेज़ से तेज़ मदिरा भी मद नहीं कर सकती है॥ ९॥

---

1 "सक्तवः सर्पिषाऽभ्यक्ताः शीतोदकपरिप्लुताः। नातिद्रवा नातिसान्द्रा मन्थ इत्यभिधीयते" इति धन्वन्तरीयनिघण्टुः।

2—"मद्योत्थानां च रोगाणां मद्यमेव हि भेषजम्। यथा दहनदग्धानां दहनं स्वेदनं हितम्॥ मिथ्यातिहीनमद्येन यो व्याधिरुपजायते। समेनैव निपीतेन मद्येन स हि शाम्यति" इति भावमिश्रः।

एलाद्य मोदक ।

एलां मधुकमग्निञ्च रजन्यौ द्वे फलत्रयम् । रक्तशालिं कणां द्राक्षां खर्जूरञ्च तिलं यवान् ॥ १० ॥ विदारीं गोक्षुरं बीजं त्रिवृताञ्च शतावरीम् । सञ्चूर्ण्य मोदकं कुर्यात् सितया द्विगमाणया ॥११॥ धारोष्णेनापि पयसा मुद्गयूषेण वा समम् । पिबेदक्षप्रमाणं तु प्रातर्नत्वाम्बिकां गदी ॥ १२ ॥ मद्यपानसमुत्थाना विकारा निखिला अपि । सेवनादस्य नश्यन्ति व्याधयोऽन्ये च दारुणाः ॥ १३ ॥

छोटी इलायची, मुलेठी, चीता की जड़, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, लाल साँठी के चावल, पीपरि, मुनक्का, पिण्डखजूर, तिल, जौ, बिदारीकन्द, गोखरू के बीज, निसोथ, शतावरी; इन सब को सम भाग लेकर कूट पीस ले। पश्चात् सब चूर्ण से दूनी मिसरी का पाक कर लड्डू बना ले। मात्रा १ तोला। अनुपान धारोष्ण दूध या मूँग का जूस। प्रातःकाल भगवती को प्रणाम कर सेवन करना चाहिए। यह मोदक मद्यपान से उत्पन्न हुए सब प्रकार के विकार और व्याधियों को नष्ट करता है ॥ १०-१३ ॥

फलत्रिकाद्य चूर्ण ।

फलत्रिकं त्रिविच्छ्यामा देवदारु महौषधम् । अजमोदा यमानी च दार्वी लवणपञ्चकम् ॥ १४ ॥ शतपुष्पा वचा कुष्ठं त्रिसुगन्ध्येलवालुकम् । सर्वाण्येतानि सञ्चूर्ण्य पिबेच्छीतेन वारिणा ॥ १५ ॥ पानात्ययादिरोगाणां हरणेऽग्नेश्च दीपने । संग्रहग्रहणीध्वंसेऽप्येतदेवौषधं क्षमम् १६

आँवला, बहेड़ा, हड़, निसोथ, कालीसर, देवदारु, सोंठ, अजमोद, अजवाइन दारुहल्दी, पाँचो नमक, सौंफ, बच, कूट, दालचीनी, तेजपात, इलायची और एलुवा; इन सबको सम-भाग ले कूट पीसकर चूर्ण बनावे। ठंढे जल से इसका सेवन करने से पानात्यय आदि रोग, मन्दाग्नि और संग्रहणी आदि उदरविकार नष्ट होते हैं ॥ १४-१६ ॥

महाकल्याण वटी ।

हेमाभ्रञ्च रसं गन्धमयो मौक्तिकमेव च । धात्रीरसेन संमर्द्य गुञ्जामात्रां वटीं चरेत् ॥ १७ ॥ भक्षयेत् प्रातरुत्थाय तिलक्षौद्रमधुप्लुताम् । सिताक्षौद्रयुतां वापि नवनीतेन वा सह ॥ १८ ॥ अथ-थापानजा रोगा वातजाः कफपित्तजाः । गदाः सर्वे विनश्यन्ति ध्रुवमस्य निषेवणात् ॥ १९ ॥

सुवर्णभस्म, अभ्रकभस्म, पारा, गन्धक, लोहभस्म और मोती की भस्म को आँवले के रस में खूब घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। प्रातःकाल उठाकर इसका भक्षण करे। अनुपान तिल का चूर्ण और शहद अथवा मिसरी और शहद अथवा मक्खन। इसके सेवन से निस्संदेह वातज, पित्तज और कफज मदात्यय रोग नष्ट होते हैं ॥ १७-१९ ॥

वृहद्धात्री तैल ।

धात्रीफलरसप्रस्थं शतमूलीरसं तथा । विदारीस्वरसप्रस्थं प्रस्थं धस्तपयः पृथक् ॥ २० ॥ बलायाश्चाश्वगन्धायाः कुलत्थस्य यवस्य च । पृथक् कषायांश्च माषस्य तैलप्रस्थेन संपचेत् ॥ २१ ॥ जीवनीयो गणो मांसी मञ्जिष्ठा चेन्द्रवारुणी । शारिवाद्वयशैलेयशतपुष्पाः पुनर्नवा ॥ २२ ॥ चन्दनद्वयमेलात्वक् कमलं कदलीफलम् । वचागुर्वभयाधात्रीत्येतान् कल्कान् पचेत्तथा ॥ २३ ॥ मर्दनादस्य तैलस्य गदाः पानात्ययादयः । पलायन्ते सुदूरं हि सिंहत्रस्ता मृगा इव ॥ २४ ॥

आँवलों का रस १२८ तोले, शतावरी का रस १२८ तोले विदारीकन्द का रस १२८ तोले, बकरी का दूध १२८ तोले । खरेटी, असगन्ध, कुलथी, जौ और उर्द के क्वाथ १२८-१२८ तोले । तेल १२८ तोले । कल्क के लिए—जीवनीयगण की सब ओषधियाँ, जटामांसी, मंजीठ, इन्द्रायण, अनन्तमूल कालीसर, भूरिछरीला, सौंफ, सोंठी, लालचन्दन सफेद चन्दन, छोटी इलायची, तज, कमल, केले की फली, बच, अगर, हड़ और आँवला सब मिलित ३२ तोले । विधि से तेल सिद्ध कर मालिश करने से पानात्ययसम्बन्धी सब रोग इस प्रकार दूर भाग जाते हैं जैसे सिंह से डरे हुए मृग भाग जाते हैं ॥ २०-२४ ॥

श्रीखण्डासव ।

श्रीखण्डं मरिचं मांसीं रजन्यौ चित्रकं घनम् । उशीरं तगरं द्राक्षां चन्दनं नागकेशरम् ॥ २५ ॥ पाठां धात्रीं कणां चव्यं लवङ्गञ्चैलवालुकम् । लोध्रञ्चाद्धपलोन्मानं जलद्रोणद्वये क्षिपेत् ॥ २६ ॥ द्राक्षां पष्टिपलां तत्र गुडस्य च तुलात्रयम् । धातकीं द्वादशपलां चैकत्र परियोजयेत् ॥ २७ ॥ मासं संस्थाप्य मृद्भाण्डे वस्त्रपूतं रसं नयेत् । पाययेन्मात्रया वैद्यो वयोऽग्न्याद्यपेक्षया ॥ २८ ॥ पानात्ययं परमदं पानाजीर्णञ्च नाशयेत् । पानविभ्रममत्युग्रं श्रीखण्डासवमाशु च ॥ २९ ॥

मलयागिरिचन्दन, मिर्च, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, चीता की जड़, नागरमोथा, खस, तगर, दाख, लालचन्दन, नागकेशर, पाढ़ी, आँवला, पीपरि, चव्य, लौंग, एलुआ और लोध; प्रत्येक दो-दो तोले लेकर १ मन ११ सेर १६ तोले जल में डाल दे । इसी में ३ सेर मुनक्का, १५ सेर गुड़ और ४८ तोले धाय के फूल मिलाकर मिट्टी के पात्र में भरकर रख दे । एक महीने के बाद वस्त्र से छानकर रख ले रोगी के अग्निबल और आयु के अनुसार वैद्य मात्रा निर्धारित कर इसका पान करावे । इस श्रीखण्डासव के सेवन से पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और अत्यन्त प्रचण्ड पानविभ्रम रोग नष्ट होते हैं । मात्रा १ । तोला से २॥ तोले तक ॥ २५--२९ ॥

मदात्यय में पथ्य ।

संशोधनं संशमनं स्वपनं लङ्घनं श्रमः । संवत्सरसमुत्पन्नाः शालयः षष्टिकैः सह ॥ ३० ॥ मुद्गा माषाश्च गोधूमाः सतीना रागषाडवौ । एणतित्तिरलावाजदक्षवर्हिशशामिषम् ॥ ३१ ॥ वेशवारो विविधान्नं हृद्यं मद्यं पयः सिता । तण्डुलीयं पटोलञ्च मातुलुङ्गं परूषकम् ॥ ३२ ॥ धारागृहं चन्द्रपादा मणयो मित्रसङ्गमः । क्षौमाम्बरं प्रियाश्लेषो गीतं वादित्रमुद्धतम् ॥ ३३ ॥ शीताम्बु चन्दनं स्नानं सेव्यमेतन्मदात्यये ॥ ३४ ॥

संशोधन, संशमन, सोना, लङ्घन, परिश्रम, एक वर्ष के पुराने लाल शालिचावल तथा सांठी के चावल, मूँग, उड़द, गेहूँ, मटर, राग, षाडव (मुरब्बे), हिरण, तीतर लाव, बकरा, मुर्गा, मोर और शशक इनका मांस ; वेशवार, विविध प्रकार के रुचिकर अन्न, मद्य, दूध, खाँड़, चौलाई, परवल, बिजौरा, फालसा, धारागृह (जिस घर में पानी के फव्वारे छूटते हों), चाँदनी, मणियाँ, मित्रमण्डली में बैठना, रेशमी वस्त्र, प्रिया का आलिङ्गन, गानाबजाना, शीतल जल चन्दन का अनुलेपन और स्नान इनका मदात्यय में सेवन करना चाहिए ॥ ३०--३४ ॥

मदात्यय में अपथ्य ।

स्वेदोऽञ्जनं धूमपानं नस्यं दन्तघर्ष-

णम् । ताम्बूलं चेत्यपथ्यं स्यान्मदात्यय-विकारिणाम् ॥ ३५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मदात्यया-धिकारः समाप्तः ।

स्वेदन, अञ्जन, धूमपान, दातौन करना और पान चबाना ये मदात्यय रोगियों के लिए अपथ्य हैं ॥ ३५ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य-रत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां मदात्ययाधिकारः समाप्तः ।

अथ नेत्ररोगाधिकारः ।

लङ्घनालेपनस्वेदशिराव्यधविरेचनैः । उपाचरेदभिष्यन्दानञ्जनाश्च्योतनादिभिः १

अभिष्यन्द रोग की लंघन, लेप, स्वेदन, शिरावेधन, विरेचन (जुलाब और शिरोविरेचन), अंजन और आश्च्योतन आदि से चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १ ॥

श्रीवासातित्रिपालोध्रैश्चूर्णितैरल्पसैन्धवैः । अव्यक्तेऽक्षिगदे कार्यं मोतस्थैर्गुण्ठनं बहिः ॥ २ ॥

गन्धाविरोजा, अतीस और लोध तथा थोड़ा सा सेंधा नमक; इनका चूर्ण कर कपड़े की पोटली में बांध कर अप्रकट नेत्ररोग में (रोग के प्रारंभिक रूप में) नेत्रों के बाहर अवगुण्ठन करे। रोगी की आँखें बन्द करके पोटली फेरनी चाहिए ॥ २ ॥

अक्षिकुक्षिभवा रोगाः प्रतिश्याय-व्रणज्वराः । पञ्चैते पञ्चरात्रेण प्रशमं यान्ति लङ्घनात् ॥ ३ ॥

आँख तथा कुक्षि के रोग, जुकाम, व्रण और ज्वर; ये पाँच रोग लंघन करने से पाँच दिन में शान्त होते हैं ॥ ३ ॥

स्वेदः प्रलेपस्तिक्तान्नं सेको दिनचतुष्टयम् । लङ्घनञ्चाक्षिरोगाणामामानां पाचनानि षट् । अञ्जनं पूरणं क्वाथपानमामे न शस्यते ॥ ४ ॥

स्वेदन, लेप, तिक्त अन्न, सेंक तथा लंघन से और चार दिन बीतने पर नेत्र के रोग पक जाते हैं। कच्चे नेत्ररोग में अञ्जन, आश्च्योतन और काढ़े का पीना ठीक नहीं है ॥ ४ ॥

धात्रीफलनिर्यासो नवदृक्कोपं निहन्ति पूरणतः । सक्षौद्रसैन्धवो वापि शिग्रूद्भवरससेकः ॥ ५ ॥

आँवले का रस आँखों में डालने से या शहद और सेंधानमकयुक्त सहिजन का रस आँखों में डालने से अभिष्यन्द (आँखें दुखना) रोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

दार्वीरसाञ्जनं वापि स्तन्ययुक्तं प्रपूरणम् । निहन्ति शीघ्रं दाहाश्रुवेदनाः स्यन्दसम्भवाः ॥ ६ ॥

दारुहल्दी और रसौत को खूब महीन पीसकर स्त्री के दूध में मिलाकर आँखों में डालने से अभिष्यन्द से उत्पन्न दाह, अश्रुपात और पीड़ा शीघ्र नष्ट होती है ॥ ६ ॥

करवीरतरुणकिसलयच्छेदोद्भवसलिलसम्पूर्णम् । नयनयुगं भवति दृढं सहसैव तत् क्षणात् कुपितम् ॥ ७ ॥

कनेर के नये-नये कोमल पत्तों का रस निकालकर नेत्र में डालने से कुपित नेत्ररोग शान्त होता है और नेत्र दृढ़ हो जाते हैं ॥ ७ ॥

शिखरिजमूलं ताम्रभाजनके स्तोकसैन्धवोन्मिश्रम् । मस्तुनिघृष्टं भरणाद्धरति च नवलोचनात् कोपम् ॥ ८ ॥

अपामार्ग की जड़ और थोड़ा सा सेंधा-

नमक मिला कर तांबे के पात्र में दही के तोड़ से घिस कर नेत्रों में डालने से नवीन नेत्रकोप नष्ट होता है ॥ ८ ॥

लेप।

सैन्धवदारुहरिद्रागैरिकपथ्यारसाञ्जनैः पिष्टैः। दत्त्वा बहिः प्रलेपो भवत्यशेषाक्षिरोगहरः ॥ ९ ॥

सेंधानमक, दारुहल्दी, गेरू, हड़ और रसौत; इनको समभाग एकत्र पीस कर नेत्रों के बाहर लेप करने से संपूर्ण नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

तथा सावरकं लोध्रं घृतभृष्टं बिडालकः। कार्या हरीतकी तद्वद् घृतभृष्टा बिडालकः ॥ शालाक्येऽक्ष्णोर्बहिर्लेपो बिडालक उदाहृतः ॥ १० ॥

सफेद लोध को अथवा हड़ को घी में भून कर बिडालक नाम लेप करना चाहिए। सुश्रुत ने नेत्रों के बाहर चारों ओर लेप करने को बिडालक कहा है ॥ १० ॥

गिरिमृच्चन्दननागरखटिकांशयोजितो बहिर्लेपः। कुरुते वचया मिश्रो लोचनमगदं न सन्देहः ॥ ११ ॥

गेरू, लालचन्दन, सोंठ, खड़िया और बच; इनका आँखों के बाहर लेप करने से निःसन्देह आँखें रोगरहित हो जाती हैं ॥ ११ ॥

भूम्यामलकी घृष्टा सैन्धवगृहवारियोजिता ताम्रे। याता घनत्वमक्ष्णोर्जयति बहिर्लेपतः पीडाम् ॥ १२ ॥

सामान्याभिष्यन्दे भूम्यामलकीमूलं ताम्रभाजने काञ्जिकसैन्धवयोगेन घृष्टं घनीभूतं चक्षुषि लेपात् पीडां हरति।

भुइंआँवला की जड़ और सेंधानमक को ताँबे के पात्र में कांजी से घिसे, जब गाढ़ा हो जाय तब आँखों के बाहर उसका लेप करने से आँखों की पीड़ा शान्त हो जाती है ॥ १२ ॥

आश्च्योतन।

आश्च्योतनं मारुतजे क्वाथो बिल्वादिभिर्हितः। कोष्णः सैरण्डबृहतीतर्कारीमधुशिग्रुभिः ॥ १३ ॥

वातज अभिष्यन्द में बिल्वादि पंचमूल के क्वाथ की किंचित् गरम-गरम बूँदें आँख में टपकावे अथवा अरण्डमूल, बड़ी कटेरी, जयन्ती और लाल सहिजन की जड़ के क्वाथ की गरम-गरम बूँदें टपकावे तो हितकर है। अथवा बिल्वादि और अरण्डमूलादि के मिलित क्वाथ का आश्च्योतन[1] करना चाहिए ॥ १३ ॥

एरण्डपल्लवे मूले त्वचि वाजपयःशृतम्। कण्टकार्याश्च मूलेषु सुखोष्णं सेचने हितम् ॥ १४ ॥

अरण्ड के पत्ते, जड़ और छाल तथा कटेरी की जड़ को बकरी के दूध में पकाकर सुहाते हुए गरम-गरम दूध की बूँदें आँखों में डालने से अभिष्यन्दरोग शान्त होता है ॥ १४ ॥

अञ्जन

सम्पक्वेऽक्षिगदे कार्यमञ्जनादिकमिष्यते। प्रशस्तवर्त्मता चाक्ष्णोः संरम्भाश्रुप्रशान्तता ॥ १५ ॥ मन्दवेदनता कण्डूः पक्वाक्षिगदलक्षणम्। अञ्जनादिविधिश्चाग्रे निखिलेनाभिधास्यते ॥ १६ ॥

जब नेत्ररोग अच्छी तरह पक जाय तब अंजन आदिक क्रिया करनी चाहिए। नेत्ररोग की परिपक्वावस्था में पलकों में कीचड़ आदि नहीं रहता है, सूजन और आँसू बहना शान्त हो जाता है, पीड़ा कम हो जाती है तथा खुजली

1—'क्वाथक्षीरद्रवस्नेहबिन्दूनां यत्तु पातनम्। द्व्यङ्गुलोन्मीलिते नेत्रे प्रोक्तमाश्च्योतनं हि तत् ॥ बिन्दवोऽष्टौ लेखनेषु रोपणे दशबिन्दवः। स्नेहने द्वादश प्रोक्तास्ते शीते कोष्णरूपिणः ॥ उष्णे तु शीतरूपाः स्युः सर्वत्रैव निश्चयः। आश्च्योतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वाक्शतोन्मिता ॥" इति भावमिश्रः।

चलने लगती है। ये पक्ष्मरोग के लक्षण हैं। अब अंजन आदि की विधि आगे कहेंगे ॥ १५-१६ ॥

बृहत्येरण्डमूलत्वक् शिग्रोमूलं ससैन्धवम्। अजाक्षीरेण पिष्टं स्याद्वर्त्तिर्वाताक्षिरोगनुत् ॥ १७ ॥

बड़ी कटेरी की जड़, अरण्ड के मूल की छाल, सहिजन की जड़ और सेंधानमक, इनको बकरी के दूध में पीसकर बत्ती बनाकर आँखों में अंजन लगाना वातज नेत्र रोग को दूर करता है ॥ १७ ॥

हरिद्रे मधुकं द्राक्षां देवदारु च पेषयेत्। आजेन पयसा श्रेष्ठमभिष्यन्दे तदञ्जनम् ॥ १८ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, मुलेठी, मुनक्का और देवदारु; इनको बकरी के दूध में पीसकर बत्ती बनाकर अंजन लगाने से अभिष्यन्द रोग में लाभ होता है ॥ १८ ॥

कज्जल।

संगृह्योपरतानलक्तकरसेनामृज्य गण्डूपदान्, लाक्षारञ्जिततूलवर्त्तिनिहितान् यष्टीमधून्मिश्रितान्। प्रज्वाल्योत्तमसर्पिषानलशिखासन्तानजं कज्जलं, दूरासन्ननिशान्ध्यकाचतिमिरप्रध्वंसकृच्चोदितम् ॥ १९ ॥

मरे हुए गण्डूपदों (केंचुओं) को इकट्ठा करके अलक्तकरस (लाक्षारस) से भावना दे। पश्चात् इस चूर्ण में समपरिमाण मुलहठी का चूर्ण मिला लाक्षारस से रँगी हुई रुई में रख बत्ती बनाये। इस बत्ती को गाय के घृत से अच्छी तरह भिगोकर एक किनारे आग लगावे। इसकी अग्निशिखा से उत्पन्न काजल को काँच के पात्र में इकट्ठा करे। इस काजल को आँख में लगाने से दूरान्ध्य (दूर की वस्तु न दीखना), आसन्नान्ध्य (समीप की वस्तु न दीखना), रतौंधी, काचरोग तथा तिमिर आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १९ ॥

पूर्ववद्वर्त्ति।

गैरिकं सैन्धवं कृष्णा तगरञ्च यथोत्तरम्। पिष्टं द्विरंशतोऽद्भिर्वा गुडिकाञ्जनमिष्यते ॥ २० ॥

गेरू १ तोला, सेंधानमक २ तोले, पीपरि ४ तोले और तगर ८ तोले; इनको जल में घोटकर गोली बना ले। इसका अंजन करने से अभिष्यन्द रोग अच्छा होता है ॥ २० ॥

प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्वनिशामलकपद्मकैः। शीतैर्मधुसमायुक्तैः सेकः पित्ताक्षिरोगनुत् ॥ २१ ॥

पुंडरिया, मुलेठी, हल्दी, आँवला और पद्माख, इनके काढ़े में शहद मिलाकर ठंढा होने पर आश्च्योतन करने से पित्तज नेत्ररोग नष्ट होता है ॥ २१ ॥

पचेत्तु गौधं हि यकृत् प्रकल्पितं सुपूरितं मागधिकाभिरम्बुना। निषेवितं तद्यकृदञ्जनेन निहन्ति नक्तान्ध्यमसंशयं खलु ॥ २२ ॥

गोह के यकृत् को फाड़कर भीतर में पिप्पली भर जल में पकावे। ठीक तरह से स्वेदित हो जाने पर पिप्पली की पहले की तरह बत्ती बनावे। इस बत्ती के अंजन से तथा उबाले हुए यकृत् के खाने से रात्र्यन्ध (रतौंधी) अच्छी हो जाती है ॥ २२ ॥

दध्ना निघृष्टं मरिचं रात्र्यन्धाञ्जनमुत्तमम्। ताम्बूलयुक्तं खद्योतमक्षणाच्च तदर्थकृत् ॥ २३ ॥

दही में कालीमिर्च को घिसकर अंजन करने से रात्र्यन्ध्य नष्ट होता है। पान के पत्ते के साथ खद्योत (जुगनू) को खाने से भी रात्र्यन्ध्य नष्ट होता है ॥ २३ ॥

शफरीमत्स्यक्षारो नक्तान्ध्यमञ्जनाद्विनिहन्ति। तद्वद्रासभकर्णमलश्चैकको मधुना ॥ २४ ॥

शफरी नामक मछली को अन्तर्धूम दग्ध कर शहद के साथ अञ्जन करने से, तथा हींग, सुहागा, कर्णमल (कान की मैल) इनमें से किसी एक को शहद के साथ आँजने से नक्तान्ध्य (रतौंधी रोग) दूर होता है॥ २४॥

केशराजान्वितं सिद्धं मत्स्याण्डं हन्ति भक्षितम्। नक्तान्ध्यं नियतं नृणां सप्ताहात्पथ्यसेविनाम्॥ २५॥

केशराज तथा रोहू मछली के अण्डों को एकत्र कर काँजी में सिद्धकर खाने से तथा इसके साथ ही यथावत् पथ्य के सेवन से सात दिन में ही रतौंधी नष्ट होती है॥ २५॥

द्राक्षामधुकमञ्जिष्ठाजीवनीयैः शृतं पयः। प्रातराश्च्योतनं शस्तं शोथशूलाक्षिरोगिणाम्॥ २६॥

मुनक्का, मुलेठी, मंजीठ और जीवनीयगण की समस्त औषधियों से सिद्ध दूध का प्रातःकाल आश्च्योतन करने से शोथ, शूल और नेत्ररोग नष्ट होते हैं॥ २६॥

निम्बस्य पत्रैः परिलिप्य लोध्रं स्वेद्याग्निना चूर्णमथापि कल्कम्। आश्च्योतनं मानुषदुग्धयुक्तं पित्तास्रवातापहमग्र्यमुक्तम्॥ २७॥

लोध के चूर्ण या कल्क को पिसे हुए नीम के पत्तों के गोले में रखकर अग्नि पर पकावे। फिर इसको निकालकर स्त्री के दूध में मिला वस्त्र से छान कर उसकी बूँदें आँख में छोड़े तो पित्तज, रक्तज और वातज अभिष्यन्द रोग नष्ट हो॥ २७॥

कफजे लङ्घनं स्वेदो नस्यं तिक्तान्नभोजनम्। तीक्ष्णैः प्रधमनं कुर्यात् तीक्ष्णैश्चोपनाहनम्॥ २८॥

कफज अभिष्यन्द में लंघन, स्वेदन, नस्य, तिक्त अन्नों का भोजन तथा तीक्ष्ण औषधों से नस्य एवं प्रलेप करना चाहिए॥ २८॥

फणिज्झकास्फोतकपित्थबिल्वपत्तूरपीलुसुरसार्जकभङ्गैः। स्वेदं विदध्यादथवा प्रलेपं बर्हिष्ठशुण्ठीसुरदारुकुष्ठैः॥ २९॥

पलाश की छाल, कोयल, कैथ, बेल, पतंग, पीलू (जाल नामक वृक्ष), काली तुलसी, सँभालू और भाँग, इनके पत्ते गर्म-गर्म बाँध कर पसीना दे अथवा सुगन्धवाला, सोंठ, देवदारु और कूट; इनका लेप करे तो कफज नेत्र रोग नष्ट हो॥ २९॥

शुण्ठीनिम्बदलैः पिण्डः सुखोष्णैः स्वल्पसैन्धवैः। धार्यश्चक्षुषि संसेपाच्छ्रोथकण्डूव्यथापहः॥ ३०॥

सोंठ, नीम के पत्ते और थोड़ा-सा सेंधानमक इनको महीन पीसकर गरम करके टिकिया बनावे और आँख पर बाँधे। इससे शोथ, खुजली और पीड़ा दूर हो जाती है॥ ३०॥

वल्कलं पारिजातस्य तैलकाञ्जिकसैन्धवम्। कफोद्भूताक्षिशूलघ्नं तरुघ्नं कुलिशं यथा॥ ३१॥

पारिजात (फरहद) की छाल, तेल, काँजी और सेंधानमक; इनकी पिण्डी बनाकर आँख पर बाँधे तो कफज नेत्ररोग इस प्रकार नष्ट होता है जैसे वज्र के प्रहार से वृक्ष॥ ३१॥

ससैन्धवं लोध्रमथाज्यभृष्टं सौवीरपिष्टं सितवस्त्रबद्धम्। आश्च्योतनं तन्नयनस्य कार्यं कण्डूञ्च दाहञ्च रुजाञ्च हन्यात्॥

सेंधानमक और लोध को घी में भूनकर काँजी में पीस ले फिर सफेद कपड़े में बाँध कर आँखों में निचोड़ने से खुजली, जलन और पीड़ा नष्ट होती है॥ ३२॥

स्निग्धैरुष्णैश्च वातोत्थः पित्तजो मृदुशीतलैः। तीक्ष्णैरुष्णैश्च विशदैः प्रशाम्यति कफात्मकः। तीक्ष्णोष्णमृदुशीतानां व्यत्यासात् सान्निपातिकः॥ ३३॥

वातज नेत्ररोग, स्निग्ध और उष्ण क्रिया

द्वारा, पित्तज नेत्ररोग कोमल और शीतल क्रिया द्वारा तथा कफज नेत्ररोग तीक्ष्ण, उष्ण और स्वच्छ क्रिया द्वारा शान्त होता है। एवं सान्निपातज नेत्ररोग तीक्ष्ण, उष्ण, कोमल और शीतल क्रियाओं के उलट फेर करने से अर्थात् तीक्ष्ण के पश्चात् तद्विपरीत मृदु क्रिया और उष्ण के पश्चात् तद्विपरीत शीतल क्रिया करने से शान्त होता है ॥ ३३ ॥

तिरीटत्रिफलायष्टीशर्करामद्रमुस्तकैः। पिष्टै शीताम्बुना सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः ॥ ३४ ॥

लोध, त्रिफला, मुलेठी, खाँड और नागरमोथा; इनको समभाग ले पीसकर शीतल जल में मिलाकर आँखों का सिंचन करने से रक्ताभिष्यन्द नष्ट होता है ॥ ३४ ॥

कशेरुमधुकानाञ्च चूर्णमम्बरसंवृतम्। न्यस्तमप्स्वन्तरीक्षासु हितमाश्च्योतनं भवेत् ॥ ३५ ॥

कसेरु और मुलेठी के चूर्ण को कपड़े की पोटली में बाँधकर वर्षा के जल में रक्खे। पश्चात् इस जल का आश्च्योतन करना हितकर होता है ॥ ३५ ॥

दार्वी पटोलं मधुकं सनिम्बं पद्मकोत्पलम्। प्रपौण्डरीकं चैतानि पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥ ३६ ॥ विपाच्य पादशेषं तु तत् पुनः कुडवं पचेत्। शीतीभूते पत्र मधु दद्यात् पादांशिकं ततः। रसक्रियैषा दाहाश्रुरागशोथरुजापहा ॥ ३७ ॥

दारुहल्दी, परवल के पत्ते, मुलेठी, नीम की छाल, पद्माख, नीलकमल और पुंडरिया; इनको चौगुने जल में पकावे। जब चतुर्थांश जल बाकी रहे तब उतारकर छान ले। फिर अग्नि पर पकाकर गाढ़ा करे। पश्चात् ठंडा होने पर उसका चतुर्थांश शहद मिलाकर इस रसक्रिया का लेप करे। यह दाह, अश्रुपात, लाली, शोथ और पीड़ा को नष्ट करती है ॥ ३६-३७ ॥

तिक्तस्य सर्पिषः पानं बहुशश्च विरेचनम् ॥ ३८ ॥ अक्ष्णोरपि समन्ताच्च पातनं तु जलौकसः। पित्ताभिष्यन्दशमनो विधिश्चाप्युपपादितः ॥ ३९ ॥

पटोलादि तिक्त घृत का पान, बार-बार विरेचन लेना और आँखों के चारों ओर जोंक लगवाना; यह विधि पित्ताभिष्यन्द को शान्त करनेवाली है ॥ ३८-३९ ॥

शिग्रुपल्लवनिर्यासः सुघृष्टस्ताम्रसम्पुटे। घृतेन धूपितो हन्ति शोथघर्षाश्रुवेदनाः ॥ ४० ॥

सहिजन की पत्तियों के रस को ताँबे के पात्र में घिसे। जब घिसने से गाढ़ा हो जाय तब उसी ताँबे के पात्र में फैलाकर लगा दे पश्चात् कपड़े की अग्नि पर घी डालकर उस पात्र में धूप दे। इस कज्जल को आँखों में आँजने से शोथ, पलकों का परस्पर रगड़ना, आँसू गिरना और पीड़ा होना आदि रोग नष्ट होते हैं। *कोई-कोई सहिजनरसलिप्त ताम्रपात्र में घृत के दीपक से कज्जल बनाकर आँखों में आँजना बताते हैं ॥ ४० ॥*

पिष्टैर्निम्बस्य पत्रैरतिविमलतरैर्जातिसिन्धूत्थमिश्रैरन्तर्गर्भं दधाना पटुतरगुटिका पिप्पलोध्रेण मृष्टा। तूर्णैः सौवीरसान्द्रैरतिशयमृदुभिर्वेष्टिता सा समन्तात् चक्षुःकोपप्रशान्तिं चिरमुपरि दृशोर्भ्राम्यमाणा करोति ४१ ॥

नीम के स्वच्छ पत्ते, चमेली के पत्ते और सेंधानमक; इनको पीसकर गोली बना ले। फिर लोध को पीसकर उस गोली के मध्य में रखकर फिर गोली बना ले। इसको गरम करके कांजी में भिगोई कोमल रुई इसके चारों ओर लपेट दे। पश्चात् इस (गर्म-गर्म) गोली को

बहुत देर तक आँखों पर फेरने से नेत्रकोप शांत होता है ॥ ४१ ॥

बिल्वाञ्जन।

बिल्वपत्ररसः पूतः सैन्धवाज्यसमन्वितः। शुल्वे वराटिकाघृष्टो धूपितो गोमयाग्निना ॥ ४२ ॥ पयसालोडितश्चाक्ष्णोः पूरणाच्छोथशूलनुत्। अभिष्यन्देऽधिमन्थे च स्रावे रक्ते च शस्यते॥४३॥

बेल के पत्तों के रस को कपड़े से छानकर उसमें सेंधानमक और घी मिलावे। फिर ताँबे के पात्र में डालकर कौड़ी से घोटे। जब गाढ़ा हो जाय तब गोमूत्र की अग्नि से धूपित करे, पश्चात् दूध मिलाकर आँखों में लगावे तो नेत्रशोथ और नेत्रशूल को दूर करे। यह विधि अभिष्यन्द, अग्निमन्थ और रक्तस्राव में भी हितकर है ॥ ४२-४३ ॥

बिल्वपत्ररसं साम्लं निघृष्टं ताम्रभाजने। सिन्धूत्थकटुतैलाक्तं कुर्यान्नेत्रस्रवादिषु ॥ ४४ ॥

बेल के पत्तों के रस और काँजी को ताँबे के पात्र में घिसकर उसमें सेंधानमक और कडुआ तेल मिलाकर अंजन करने से नेत्रस्राव आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ४४ ॥

सलवणकटुतैलं काञ्जिकं कांस्यपात्रे घनितमुपलघृष्टं धूपितं गोमयाग्नौ। सपवनकफकोपं छागदुग्धावसिक्तं जयति नयनशूलं स्रावशोथं सरागम् ॥ ४५ ॥

सेंधानमक, कड़वा तेल और काँजी; इनको काँसे के पात्र में पत्थर से घोटे। जब गाढ़ा हो जाय तब कंडों की आग से धूपित करे। पश्चात् बकरी के दूध में मिलाकर आँखों में लगाने से नेत्रशूल, नेत्रों से जल बहना, शोथ और नेत्रों की सुर्खी को शान्त करता है ॥ ४५ ॥

तरुस्थविद्धामलकरसः नर्वादिरोगनुत्। पुराणं सर्वथा सर्पिः सर्वनेत्रामयापहम् ॥ ४६ ॥

वृक्ष में लगे हुए आँवले को सुई आदि से बिद्धकर रस निकाल ले। इस रस को आँखों में डालने से सब प्रकार के नेत्ररोग दूर होते हैं। अथवा पुराना घी सब प्रकार के नेत्ररोगों को दूर करता है ॥ ४६ ॥

अयमेव विधिः सर्वो मन्थादिष्वपि शस्यते। अशान्तौ सर्वथा मन्थे भ्रुवोरुपरि दाहयेत् ॥ ४७ ॥

पूर्वोक्त सब विधियाँ मन्थ आदि रोगों में श्रेष्ठ कही गई हैं। यदि इनसे मन्थ रोग शान्त न हो तो भौंहों के ऊपर दाहकर्म करना चाहिए ॥ ४७ ॥

जलौकापातनं शस्तं नेत्रपाके विरेचनम्। शिरावेधं प्रकुर्वीत सेकलेपांश्च शुक्रवत् ॥ ४८ ॥

नेत्रपाक रोग में जोंक लगवाना, विरेचन और शिरावेध करवाना श्रेष्ठ है। एवं शुक्र (फूली) रोग के समान सेक और लेप भी करना चाहिए ॥ ४८ ॥

स्विन्नां भित्त्वा विनिष्पीड्य भिन्नामञ्जननामिकाम्। शिलैलानतसिन्धूत्थैः सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत् ॥ ४९ ॥ रसाञ्जनमधुभ्यां च भित्त्वा वा शस्त्रकर्मवित्। प्रतिसार्याञ्जनैर्युञ्ज्याद्दुष्णैर्दीपशिखोद्भवैः ॥ ५० ॥

अञ्जननामिका (Stye) को प्रथम स्वेदन से मृदु हो जाने पर निष्पीडन करे। इस विधि से भिन्न होने पर मैनशिल, इलायची, तगर, सेंधा नमक, इनके चूर्ण में शहद मिला प्रतिसारण करना (शनैः २ घिसना) चाहिए अथवा रसौंत और शहद को मिलाकर प्रतिसारण करे। प्रतिसारण के बाद दीपशिखा से पारा हुआ उष्ण काजल आँख में डाले ॥ ४९-५० ॥

स्वेदयेद् घृष्टयाङ्गुल्या हरेद्रक्तं जलौकसा ॥ ५१ ॥

अँगुली को दूसरे हाथ की हथेली पर घिसकर अञ्जननामिका का स्वेदन करे तथा जोंकों द्वारा उसका रक्तनिर्हरण करे ॥ ५१ ॥

रोचनाक्षारतुत्थानि पिप्पल्यः क्षौद्रमेव च। प्रतिसारणमेकैकं भिन्ने लगण इष्यते ॥ ५२ ॥

लगण नामक पिडिका को भेदन करके गोलोचन, जवाखार, नीलाथोथा, पीपर तथा शहद इनसे प्रतिसारण करना चाहिए ॥ ५२ ॥

निमेषे नासया पेयं सर्पिस्तेन च पूरणम् ॥ ५३ ॥

निमेष रोग में रोगी को नाक द्वारा घृतपान तथा घृत से ही नेत्रों को पूरण कराना चाहिए ॥ ५३ ॥

स्वेदयित्वा विसग्रन्थि छिद्राण्यस्य निराश्रयम्। पक्वं भित्त्वा तु शस्त्रेण सैन्धवेनावचूर्णयेत् ॥ ५४ ॥

पक्व विसग्रन्थि को स्वेदन करके शस्त्र द्वारा अच्छी प्रकार भेदन करना चाहिए जिससे वह आश्रयरहित हो जाय। पश्चात् सैन्धवचूर्ण द्वारा उसके मुख को भर देना चाहिए ॥ ५४ ॥

वर्त्मावलेखं बहुशस्तद्वच्छोणितमोक्षणम्। पुनः पुनर्विरेकश्च पिल्लरोगातुरो भजेत् ॥ ५५ ॥

पिल्लरोग में शाखोटक आदि के खरदरे पत्तों द्वारा वर्त्म का लेखन करके रक्तमोक्षण कराना और रोगी को वारम्बार विरेचक औषध देना चाहिए ॥ ५५ ॥

पिल्लो स्निग्धो वमेत्पूर्वं शिरावेधं सुनेऽसृजि। शिलारसाञ्जनव्योषगोपित्तैश्चनुरञ्जयेत् ५६ ॥

पिल्लरोगी को स्नेहन करा कर प्रथम वामक औषध दे। वमन हो जाने पर ललाटस्थित शिरा को विद्ध करे। रक्तमोक्षण के पश्चात् मैनशिल, रसौंत, गोलोचन, इन्हें एकत्र मिलाकर अञ्जन करना चाहिए ॥ ५६ ॥

हरितालवचादारुसुरसारसपेषितम्। अभयारसपिष्टं वा तगरं पिल्लनाशनम् ॥ ५७ ॥

हरताल बच, देवदारु, इन्हें तुलसी के रस से घोटकर अञ्जन करने से अथवा हड के क्वाथ से पिसे तगर के अञ्जन से पिल्लरोग नष्ट होता है ॥ ५७ ॥

रसाञ्जनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला। समुद्रफेनो लवणं गैरिकं मरिचानि च ॥ ५८ ॥ एतत्समांशं मधुना पिष्टं प्रक्लिन्नवर्त्मनि। अञ्जनं क्लेदकण्डूघ्नं पक्ष्मणाञ्च प्ररोहणम् ॥ ५९ ॥

रसौंत, राल, चमेली के फूल, मैनशिल, समुद्रफेन, सेंधानमक, गेरू, काली मिर्च; इन्हें बराबर मात्रा में एकत्र मिला शहद के साथ पीसकर प्रक्लिन्नवर्त्म अथवा पिल्लरोग में अञ्जन करावे। इसके अञ्जन से क्लेद एवं कण्डू नष्ट होकर पक्ष्म (पलक) पुनः पैदा होते हैं ॥ ५८-५९ ॥

ताम्रपात्रे गुहामूलं सिन्धूत्थं मरिचान्वितम् ॥ आरनालेन संघृष्टमञ्जनं पिल्लनाशनम् ॥ ६० ॥

पृश्निपर्णी की जड़, सेंधा नमक, काली मिर्च, इनके चूर्ण को एकत्र मिलाकर ताम्रपात्र में कांजी के साथ घिसकर पिल्लरोग को नष्ट करने के लिए अञ्जन करना चाहिए ॥ ६० ॥

हरिद्रे त्रिफला लोध्रं मधुकं रक्तचन्दनम्। भृङ्गराजरसे पिष्ट्वा घर्षयेल्लोहभाजने ॥ ६१ ॥ तथा ताम्रे च सप्ताहं कृत्वा वर्त्ति रजोऽथवा। पिथ्रटी धूमदर्शी च तिमिरोपहतेक्षणः ॥ प्रतिनित्यञ्जयेन्नित्यं सर्वनेत्रामयापहम् ॥ ६२ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, लोध, मुलेठी, और लाल चन्दन, इनके चूर्णों को एकत्र कर भंगरे के रस से घोटकर लौहपात्र तथा ताम्रपात्र में पृथक्-पृथक् सात दिन घोटे। पश्चात् बत्ती बना ले अथवा चूर्ण रूप में रहने दे। प्रतिदिन रात को सोते समय रोगी को इसका अञ्जन करावे। इसके अञ्जन से पिचिट, धूमदृष्टि तथा तिमिर रोग आदि सम्पूर्ण नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ ६१-६२ ॥

चूर्णाञ्जन।

मञ्जिष्ठामधुकोत्पलोदधिकफत्वकसेव्यगोरोचनामांसीचन्दनशङ्खपत्रगिरिमृत्तालीशपुष्पाञ्जनैः। सर्वैरेव समांशमञ्जनमिदं शस्तं सदा चक्षुषोः कण्डूक्लेदमलाश्रुशोणितरुजापिल्लार्मशुक्रापहम् ॥ ६३ ॥

मजीठ, मुलहठी नीलकमल, समुद्रफेन, दारचीनी, खस, गोरोचन, जटामांसी, लाल चन्दन, शङ्खनाभि, तमालपत्र (अथवा तेजपत्र), गेरू, तालीशपत्र, पुष्पाञ्जन, इनके महीन चूर्णों को एकत्र बराबर मात्रा में मिला अञ्जन करने से कण्डू, क्लेद, मल अश्रु, रक्तस्राव, वेदना, पिल्ल, अर्म तथा शुक्ररोग नष्ट होता है ॥ ६३ ॥

तुत्थकस्य पलं श्वेतमरिचानि च विंशतिः। त्रिंशत् काञ्जिकपलैः पिष्ट्वा ताम्रे निधापयेत्॥ ६४ ॥ पिल्लानपिल्लान् कुरुते बहुवर्षोत्थितानपि। तत्सेकेनोपदेहाश्रुकण्डूशोथांश्च नाशयेत् ॥ ६५ ॥

तूतिया ४ तोले, सहिंजन के बीज २० (संख्या से), कांजी १२० तोले इन्हें पीसकर ताम्रपात्र में रख दे। इसकी १ बूँद आंख में डालने से बहुत वर्षों से उत्पन्न हुआ पिल्लरोग, मल, अश्रुस्राव, कण्डू तथा शोथ नष्ट होता है ॥ ६४--६५ ॥

मृद्वन्तमुखं रोम सद्विष्णोरुद्धरेच्छनैः। सन्दंशेनोद्धरेद्दृष्ट्यां पक्ष्मरोमाणि बुद्धिमान् ॥ ६६ ॥ रक्तवर्त्म दहेत्पक्ष्म तप्तहेमशलाकया। पक्ष्मरोगे पुनर्नैवं कदाचिद्रोमसम्भवः ॥ ६७ ॥

पक्ष्मकोप (परवाल) में सहनशील पुरुष के अन्तर्मुख लोमों का सन्देश से पकड़कर धीरे से उखाड़ दे। पश्चात् तप्त सुवर्ण की सुई द्वारा आंख को बचाते हुए उन रोमस्थलों को जला दे। इस प्रकार चिकित्सा करने से रोग पुनः उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ ६६--६७ ॥

घृतसैन्धवचूर्णेन कफानाहं पुनः पुनः। विलिखेन्मण्डलाग्रेण प्रच्छयेद्वा समन्ततः ॥ ६८ ॥

कफानाह रोग में घृत मिलाकर सैन्धवलवण के चूर्ण से प्रतिसारण तथा मण्डलाग्रशस्त्र द्वारा प्रच्छन्न करना चाहिए ॥ ६८ ॥

पटोलामलककाथैराश्च्योतनविधिर्हितः। फणिज्झकरसोनस्य रसैः पोथकिनाशनः ॥ ६९ ॥

पटोलपत्र तथा आँवले के क्वाथ से अथवा तुलसी के पत्तों को लहसन के रस से पीसकर आश्च्योतन करने से पोथकी (रोहे पड़ना) रोग नष्ट होता है ॥ ६९ ॥

आनाहपिडिकां छिन्नां तिर्यग्भित्वाग्निना दहेत् ॥ ७० ॥

आनाहपीडिका को छिन्न करने के पश्चात् तिर्यक् भेदन करके अग्नि द्वारा दग्ध करना चाहिए॥ ७० ॥

अर्शस्तथा वर्त्मनाम्ना शुष्कार्शोऽर्बुदमेव च। मण्डलाग्रेण तीक्ष्णेन मूले छिन्याद्भिषक् शनैः ॥ ७१ ॥

नेत्रार्श, नेत्रवर्त्मरोग, शुष्कार्श तथा अर्बुद, इनको धीरे २ तीक्ष्ण मण्डलाग्रशस्त्र द्वारा मूल से छिन्न करना चाहिए॥ ७१ ॥

सिन्धूत्थपिप्पलीकुष्ठपर्णिनीत्रिफलारसैः। मुरामण्डेन वर्त्तिः स्याद् श्लेष्मा-

भिष्यन्दनाशिनी।पोथकीवर्त्मोपरोधक्रिमिग्रन्थिकुकूणके ॥ ७२ ॥

सेंधा नमक, पीपल, कूठ, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, त्रिफला रसाञ्जन; इन्हें सुरामण्ड से पीस बत्ती बनावे। इस बत्ती के प्रयोग से श्लैष्मिक अभिष्यन्द, पोथकी, वर्त्मरोग, कृमिग्रन्थि तथा कुकूणकरोग नष्ट होता है।

यहाँ कई टीकाकार इस प्रकार अर्थ करते हैं कि सेंधा नमक आदि द्रव्यों को त्रिफलारस से भावना देकर सुरामण्ड द्वारा बत्ती बनावे। वे त्रिफलाचूर्ण तथा रसाञ्जन नहीं डालते हैं॥७२॥

शुक्लहर गुग्गुल।

अयःसयष्टित्रिफलाकणानां चूर्णानि तुल्यानि पुरेण नित्यम्। सर्पिर्मधुभ्यां सह भक्षितानि शुक्लानि काचानि निहन्ति शीघ्रम् ॥ ७३ ॥

लौहभस्म, मुलेठी, त्रिफला, पीपल; प्रत्येक समभाग। शुद्ध गूगुल सब चूर्ण के बराबर। इन्हें मिलाकर शहद तथा घृत के साथ सेवन करने से शुक्ल तथा काचरोग नष्ट होता है। मात्रा-४ रत्ती से ८ रत्ती तक॥ ७३॥

तारकाद्यवर्त्ति।

तारं ताम्रं रसं नागं कर्पूरं खर्परं तथा। रसाञ्जनं कांस्यशङ्खं हंसपाद्या द्रवैर्दिनम् ॥ वर्त्तिः कृताञ्जनाद्धन्ति समस्तं नेत्रजामयम् ॥ ७४ ॥

गन्धक से फुकी चाँदी की भस्म, ताम्रभस्म, पारा, सीसा, कपूर, खर्परभस्म (केवल अग्नि द्वारा की हुई), रसाञ्जन, कांस्यभस्म, (गन्धक द्वारा की हुई), शङ्खचूर्ण इन्हें हंसराज के रस से १ दिन घोटकर बत्ती बनावे। इस बत्ती के अञ्जन से समस्त नेत्ररोग नष्ट होते हैं॥ ७४॥

नयनशाणाञ्जन।

कणा सलवणोपणा सहरमाञ्जना साञ्जना सरित्पतिकफः सितासितपुनर्नवा शर्करा। रजन्ययुगचन्दनं मधु च तुत्थपथ्या शिला अरिष्टदलसावरस्फटिकशङ्खनाभीन्दवः ॥ ७५ ॥ इमानि तु विचूर्णयेत्त्रिविदनासमा शोधयेत् तथायसि विमर्दयेन्मधुताम्रदण्डेन तत्। इदं मुनिभिरीरितं नयनशाणाञ्जनं करोति तिमिरक्षयं पटलपुष्पनाशं बलात् ॥ ७६ ॥

पीपल, सेंधा नमक, काली मिर्च, रसौत, सौवीराञ्जन (सुरमा), समुद्रफेन, सफेद, सोंठी लाल सोंठी, खाँड़, हल्दी, लाल चन्दन, शहद, तूतिया, हड़, मैनशिल, नीम के पत्ते, लोध, फिटकरी, शङ्खनाभि, तथा कपूर। इन्हें अलग अलग, चूर्णित करके गाढ़े कपड़े से छान ले और पश्चात् मिला ले। तदनन्तर लौहपात्र में चूर्ण तथा जरा सा शहद मिला ताम्रदण्ड से मर्दन करे। इसके अञ्जन से तिमिर, पटल तथा पुष्प (फूला) नष्ट होता है। बनाते समय सीसे को पिघलाकर पारे के साथ मिला लेना चाहिए॥ ७५-७६॥

मुक्तादि महाञ्जन।

मुक्ताकर्पूरकाचागुरमरिचकणासैन्धवं सैलवालं शुण्ठीकक्कोल कांस्यत्रपुरजनिशिलाशङ्खनाभ्यभ्रतुत्थम्। दत्ताण्डत्वक् च सार्द्ध ततमथ शिरा स्रोतकं राजवर्त्तः जातीपुष्पं तुलस्याः कुसुममभिनवं बीजकं स्यात्तथैव ॥ ७७ ॥ पूतीकनिम्बाञ्जनभद्रमुस्तं सताम्रसारं रसगर्भयुक्तम्। प्रत्येकमेषां खलु माषकं यत्नेन पिष्येन्मधुनातिसूक्ष्मम् ॥ ७८ ॥ भवन्ति रोगा नयनाश्रिता ये नितान्तमात्रोपचिताश्च तेषाम्। विधीयते शान्तिरवश्यमेव मुक्तादिनानेन महाञ्जनेन ॥ ७९ ॥

मोती, कपूर, काँच, अगर (काला नमक), अगर, काली मिर्च, पीपल, सेंधा नमक, एलवालुक, (सुगन्ध द्रव्य), सोंठ, शीतलचीनी,

कांस्यभस्म (गन्धक द्वारा की हुई), सीसाभस्म, हल्दी, मैनशिल, शंखनाभि, अभ्रकभस्म, नीलाथोथा, मुर्गी के अण्डे का छिलका, बहेड़ा, केसर, हड़, मुलहठी, लाजवर्द, चमेली के फूल, तुलसी के नूतन पुष्प तथा बीज, करञ्जबीज, नीम की छाल, अर्जुन की छाल, नागरमोथा गन्धक द्वारा की हुई ताम्रभस्म, रसौत; हरएक को १ माशे के परिमाण में लेकर शहद के साथ अच्छी तरह पीसकर अत्यन्त सूक्ष्म कर ले। इस महाञ्जन द्वारा अत्यन्त बढ़े हुए सम्पूर्ण नेत्ररोग भी अवश्य नष्ट होते हैं।

यहाँ पर कोई-कोई रस शब्द से पारद का ग्रहण करते हैं। यदि पारा लेना हो तो सीसे को पिघलाकर प्रथम पारे के साथ मिला लेना चाहिए। इस अञ्जन में त्रिफला द्वारा की हुई अभ्रकभस्म ली जाती है। परन्तु जल से धोकर इसे चारहीन कर लेना चाहिए। यदि योग में पारा न लेना हो तो गन्धक द्वारा की हुई सीसा की भस्म ही श्रेष्ठ है॥ ७७-७९॥

नयनामृत।

रसेन्द्रभुजगौ तुल्यौ तयोर्द्विगुणमञ्जनम्। सूततुर्यांशकर्पूरमञ्जनं नयनामृतम् ॥ ८० ॥ तिमिरं पटलं काचं शुक्रमर्मार्जुनानि च। क्रमात् पथ्याशिनो हन्ति तथान्यानपि दृग्गदान् ॥ ८१ ॥

पारा ४ भाग, सीसक ४ भाग, सौवीराञ्जन (सुरमा) ८ भाग, कपूर १ भाग, इन्हें इकट्ठा मिलाकर पथ्य का सेवन करते हुए अञ्जन करने से तिमिर, पटल, काँच, शुक्र, अर्म, अर्जुन आदि रोग नष्ट होते हैं। इस योग में भी सीसक को पिघलाकर पारे के साथ मिला लेना चाहिए॥ ८०-८१॥

षडङ्गघृतगुग्गुलु।

विभीतकशिवाधात्रीपटोलारिष्टवासकैः। क्वाथो गुग्गुलुना पेयः शोथपाकाक्षिशूलनुत् ॥ ८२ ॥ पिल्लं च सव्रणं शुक्रं रागादींश्चापि नाशयेत्। एतैश्चापि घृतं पक्वं रोगास्तांश्च व्यपोहति ॥८३॥

बहेड़ा, हड़, आँवला, परवल के पत्ते, नीम की छाल और अरूसे के मूल के क्वाथ में गूगुल डाल कर पीने से शोथ, नेत्रपाक, नेत्रशूल, पिल्ल, व्रणयुक्त फूली और नेत्र की लालिमा आदि रोग नष्ट होते हैं। अथवा पूर्वोक्त औषधियों के क्वाथ में घृत सिद्ध कर पीने से उपर्युक्त रोग नष्ट होते हैं। घृत इस प्रकार सिद्ध करना चाहिए—उपर्युक्त औषधियों का काढ़ा ८ सेर। घी २ सेर। गूगुल आध सेर। काढ़ा करते समय गूगुल को पोटली में बाँधकर उस पर लटका देना और काढ़ा तैयार होने पर छानकर उसमें गूगुल घोल दे और उसमें घी डालकर पकावे घृतमात्र अवशिष्ट रहने पर छानकर रख ले। मात्रा—३ माशे से १ तोला तक ॥८२-८३॥

वासकादि।

अटरूषाभयानिम्बधात्रीमुस्ताक्षकूलकैः। रक्तस्रावं कफं हन्ति चक्षुष्यं वासकादिकम् ॥ ८४ ॥

क्वाथस्य पानं चक्षुषि सेकश्च इति वृद्धाः।

अरूसा, हड़, नीम की छाल, आँवला, नागरमोथा, बहेड़ा, और परवल के पत्ते; इनका क्वाथ बनाकर पीने से तथा नेत्र धोने से कफज रक्तस्राव नष्ट होता है। यह वासकादि नेत्रों के लिए हितकारी है॥ ८४॥

वृद्धवासादि।

वासा घनं निम्बपटोलपत्रं तिक्तामृताचन्दनवत्सकत्वक्। कलिङ्गदार्वीदहनानि शुण्ठी भूनिम्बधात्र्यावभयाविभीतम् ॥ ८५ ॥ श्यामा यवक्वाथमथाष्टमागं पिबेदिमं पूर्वदिने कषायम्। तैमिर्यकण्डूपटलार्बुदश्च शुक्रं तथा सव्रणमव्रणश्च ॥ ८६ ॥ सर्वांश्चनयनामयांश्च भृगुपदिष्टं नयनामयेषु ॥ ८७ ॥

अरूसा, नागरमोथा, नीम की छाल, परवल के पत्ते, कुटकी, गिलोय, लालचन्दन, कुड़ा की छाल, इन्द्रजौ, दारुहल्दी, चीता की जड़, सोंठ, चिरायता, आँवला, हड़, बहेड़ा, काली सारिवा, और जौ मिलित २ तोले लेकर ३२ तोले जल में औटावे, जब ४ तोले बाकी रहे तब छानकर प्रातःकाल पीवे। यह योग तिमिर, खुजली, पटल, अर्बुद, व्रणयुक्त और बिना व्रण की फूली तथा सब प्रकार के नेत्ररोगों को नष्ट करता है। नेत्ररोगों के लिए इसे भृगुजी ने कहा है॥ ८६-८७॥

पथ्यास्तिस्रो बिभीतक्यः षड्धात्र्यो द्वादशैव तु। प्रस्थार्द्धे सलिले क्वाथमष्टभागावशेषितम्॥ ८८॥ पीत्वाभिष्यन्दमास्रावं रागं च तिमिरं जयेत्। संरम्भरागशूलास्रनाशनं दृक्प्रसादनम्॥ ८९॥ नेत्रे त्वभिहते कुर्याच्छीतमाश्च्योतनादिकम्॥ ९०॥

हड़ नग ३, बहेड़े नग ६ और आँवले नग १२, इनको आध सेर जल में पकावे। जब १ छटाँक जल बाकी रहे तब छानकर पीवे तो अभिष्यन्द, नेत्रस्राव, लालिमा, तिमिर, आँखें उठना, नेत्रशूल और रक्तरोगों को नष्ट एवं नेत्रों को निर्मल करता है। यदि नेत्र में चोट आदि लग जाय तो शीतल आश्च्योतन करना चाहिए॥ ८८-९०॥

दृष्टेः प्रसादजननं विधिमाशु कुर्यात् स्निग्धैर्हिमैश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगैः। स्वेदाग्निधूमभयशोकरुजाभितापैरभ्याहतामपि तथैव भिषक् चिकित्सेत्॥ ९१॥

पसीना, अग्नि, धूप, भय, शोक, रोग और धूप आदि से यदि दृष्टि में आघात हो तो शीघ्र ही स्निग्ध, शीतल और मधुर प्रयोगों से दृष्टि को निर्मल करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिए॥ ९१॥

आगन्तु नेत्ररोग की चिकित्सा।

आगन्तुदोषं प्रसमीक्ष्य कार्यं वक्त्रोष्मणा स्वेदनमादितश्च। आश्च्योतनं स्त्रीपयसा च सद्यो यच्चापि पित्तक्षतजापहं स्यात्॥ ९२॥

आगन्तुक दोषों के कारणों का विचार कर मुख की वाष्प से वस्त्र को गरम करके स्वेदन करना चाहिए। अथवा स्त्री के दूध से आश्च्योतन करना चाहिए तथा पित्तज और रक्तज नेत्ररोग की सी चिकित्सा करनी चाहिए॥ ९२॥

सूर्योपरागानलविद्युताञ्च विलोकनेनोपहतेक्षणस्य। सन्तर्पणं स्निग्धहिमादि कार्यं सायं निषेव्या त्रिफलाप्रयोगाः॥ ९३॥

सूर्यग्रहण, अग्नि और बिजली के देखने से जिसकी दृष्टि नष्ट हो गई हो उसके लिए स्निग्ध तथा शीतल क्रिया द्वारा संतर्पण करना चाहिए और सायंकाल के समय त्रिफला के प्रयोग का सेवन करना चाहिए॥ ९३॥

निशाब्दत्रिफलादार्वीसितामधुकसंयुतम्। अभिघाताक्षिशूलघ्नं नारीक्षीरेण पूरणम्॥ ९४॥

हल्दी, मोथा, हड़, बहेड़ा, आँवला, दारुहल्दी, मिसरी और मुलेठी; इनके महीन चूर्ण को स्त्री के दूध में मिलाकर आँखों में डालने से नेत्राभिघात और नेत्रशूल नष्ट होते हैं॥ ९४॥

उत्कटाङ्कुरजस्तद्वत् स्वरसो नेत्रपूरणे। आजं घृतं क्षीरपात्रं मधुकश्चोत्पलानि च॥ ९५॥ जीवकर्षभकौ चापि पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत्। सर्वनेत्राभिघातेषु सर्पिरेतत् प्रशस्यते॥ ९६॥

लाल ईख के अंकुर का रस नेत्रों में डालने से नेत्राभिघात अच्छा होता है। तथा बकरी का घी २ सेर, दूध ८ सेर, कल्क के लिए मुलेठी, नीलोफर, जीवक और ऋषभक; प्रत्येक आठ-आठ तोले। यथाविधि घृत सिद्ध कर नेत्रों में डालने-

से अथवा सेवन करने से सब प्रकार के नेत्राभिघातों को नष्ट करता है ॥ ९१-९६ ॥

शुष्काक्षिपाकचिकित्सा।

सैन्धवं दारु शुण्ठी च मातुलुङ्गरसो घृतम्। स्तन्योदकाभ्यां कर्त्तव्यं शुक्रपाके तदञ्जनम् ॥ ९७ ॥

सेंधा नमक, देवदारु, सोंठ, बिजौरे नींबू का रस, घी, स्त्री का दूध और जल; इनको एकत्र घोटकर शुक्रपाक नेत्ररोग में अंजन करना चाहिए ॥ ९७ ॥

अन्यतोवात और मारुतपर्यय की चिकित्सा।

वाताभिष्यन्दवच्चान्यवाते मारुतपर्यये। पूर्वभक्तं हितं सर्पिः क्षीरं वाप्यथ भोजने ॥ ९८ ॥

वाताभिष्यन्द के तुल्य अन्यतोवात और मारुतपर्यय रोग में भोजन से पहले घी खाना और भोजन के साथ दूध खाना हितकर है ॥ ९८ ॥

वृक्षादन्यां कपित्थे च पञ्चमूले महत्यपि। सक्षीरं कर्कटरसे सिद्धश्चापि पिबेद्घृतम् ॥ ९९ ॥

बाँदा, कैथ और बृहत्पञ्चमूल मिलित आध सेर लेकर कल्क बनावे। घी २ सेर, दूध ४ सेर, काकड़ासिंगी का काढ़ा ४ सेर। विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर पान करने से आगन्तुक नेत्ररोग शान्त होते हैं ॥ ९९ ॥

अभिष्यन्दमधीमन्थं रक्तोत्थमथवार्जुनम्। शिरोत्पातं शिराहर्षमन्यांश्चासृभवान् गदान् ॥ स्निग्धस्याज्येन कौम्भेन शिरावेधैः शमं नयेत् ॥ १०० ॥

रक्तज, अभिष्यन्द, अधिमन्थ अथवा अर्जुन, शिरोत्पात, शिराहर्ष तथा अन्य रक्तज रोगों में दशवर्षीय पुराने घृत का पान कराकर रोगी को स्निग्ध करके शिरावेध करने से उपर्युक्त रोग शान्त हो जाते हैं ॥ १०० ॥

अम्लाध्युपितशान्त्यर्थं कुर्याल्लेपात् सुशीतलान्। तोलकं त्रैफलं सर्पिर्जीर्णं वा केवलं हितम्। शिरावेधं विना कार्यः पित्तस्यन्दहरो विधिः ॥ १०१ ॥

अम्लाध्युपित रोग की शान्ति के लिए ठंडे लेप करने चाहिए। अथवा १ तोला त्रिफलाघृत या पुराने घृत का पान करना हितकर है। शिरावेध के अतिरिक्त पित्ताभिष्यन्द की सी चिकित्सा भी करनी चाहिए ॥१०१॥

शिरोत्पातचिकित्सा।

सर्पिः क्षौद्राञ्जनञ्च स्याच्छिरोत्पातस्य भेषजम्। तद्वत् सैन्धवकासीसं स्तन्यपिष्टञ्च पूजितम् ॥ १०२ ॥

शिरोत्पात रोग में घी, शहद और सुरमा को पीसकर अंजन करना चाहिए। इसी प्रकार सेंधानमक और कसीस को स्त्री के दुग्ध में पीसकर अंजन करना चाहिए ॥ १०२ ॥

शिराहर्षचिकित्सा।

शिराहर्षेऽञ्जनं कुर्यात् फाणितं मधुसंयुतम्। मधुना तार्क्ष्यशैलं वा कासीसं वा समाक्षिकम् ॥ १०३ ॥

शिराहर्ष रोग में राब (सीरा) और शहद मिलाकर अंजन करना तथा शहद और रसौत का अथवा शहद और कसीस का अंजन करना हितकर है ॥ १०३ ॥

व्रणशुक्रचिकित्सा।

व्रणशुक्रप्रशान्त्यर्थं षडङ्गं गुग्गुलुं पिबेत् ॥ १०४ ॥

व्रण-शुक्र रोग की शान्ति के लिए षडङ्ग गूगुल पीना चाहिए ॥ १०४ ॥

करञ्जस्य फलं शङ्खं तिन्दुकं रौप्यमेव च। कांस्ये निघृष्टं स्तन्येन क्षतशुक्रार्तिरागजित् ॥ १०५ ॥

करंज के बीज, शंखनाभि, तेंदुआ के फल और चाँदी की भस्म; इनको समभाग ले काँसे के पात्र में स्त्री के दूध से घिसकर अंजन करे तो

व्रणशुक्र नेत्रपीड़ा और नेत्र की लालिमा नष्ट होती हैं। इस योग में अन्यत्र करंज बीज की जगह काकबीज पाठ है, जिसका अर्थ निर्मली बीज होता है॥ १०५॥

व्रणशुक्रहरी वर्ति।

चन्दनं गैरिकं लाक्षामालतीकलिकाः समाः। व्रणशुक्रहरी वर्तिः शोणितस्य प्रसादनी॥ १०६॥

लालचन्दन, गेरू, लाख और मालती की कली को जल में घोटकर बत्ती बनावे। यह बत्ती शुक्रव्रण को नष्ट करती है और नेत्रगत रक्त को दूर करके नेत्र को साफ कर देती है॥ १०६॥

शिरया वा हरेद्रक्तं जलौकाभिश्च लोचनात्। अक्षमज्जाञ्जनं सायं स्तन्येन शुक्रनाशनम्॥ १०७॥

नेत्र की शिरा पर जोंक लगा कर रक्त निकलवाना एवं सायंकाल बहेड़े की मींगी को स्त्री के दूध में घिसकर अंजन करना फूली को नष्ट करता है॥ १०७॥

एकं वा पुण्डरीकञ्च[1] छागक्षीरावसेचितम्। रागास्रवेदनां हन्यात् क्षतपाकात्ययाजकाः॥ १०८॥

केवल कमल को ही बकरी के दूध में पीसकर उसका रस आँखों में डालने से नेत्र की लालिमा, अश्रुपात, पीड़ा, व्रणशुक्र, नेत्रपाकात्यय और अजकारोग नष्ट होता है॥ १०८॥

तुत्थकं वारिणा युक्तं शुक्रं हन्त्यक्षिपूरणात्। समुद्रफेनटञ्चाण्डत्वक्सिन्धूत्थैः समाक्षिकैः॥ १०९॥ शिग्रु बीजयुतैर्वर्त्तिः शुक्रघ्नी शिग्रुवारिणा॥ ११०॥

तूतिया को जल में घोलकर आँख में डालने से फूली नष्ट होती है (एक रत्ती तूतिया ४० रत्ती जल में घोल दो-तीन बूँद ही डालनी चाहिए)। समुद्रफेन, मुर्गी के अंडे का छिलका, सेंधानमक, सहिंजन के बीज; इनको शहद में घोटकर बत्ती बनावे। इस बत्ती को सहिजन के रस में घिसकर अंजन करने से फूली नष्ट हो जाती है॥ १०९-११०॥

धात्रीफलं निम्बकपित्थपत्रं यष्ट्याह्वलोध्रं खदिरं तिलाश्च। क्वाथः सुशीतो नयने निषिक्तः सर्वप्रकारं विनिहन्ति शुक्रम्॥ १११॥

आँवला, नीम के पत्ते, कैथ के पत्ते, मुलेठी, पठानी लोध, खैरसार और तिल; इनके काढ़े को ठंडा कर आँखों में डालने से सब प्रकार के शुक्र नष्ट होते हैं॥ १११॥

तरुणपुन्नागपत्रेण परिभावितवारिणा। श्यामाक्वाथाम्बुना वाथ सेचनं कुसुमापहम्॥ ११२॥

पुन्नाग (नागकेशर के वृक्ष) के पत्तों को पीसकर जल में मिलाकर छान ले। इसका नेत्र में सिंचन करने से अथवा काली सारिवा के काढ़े का सिंचन करने से फूली नष्ट होती है॥ ११२॥

दक्षाण्डत्वक्शिलाशङ्खकाचचन्दनगैरिकैः। तुल्यैरञ्जनयोगोऽयं पुष्पार्मादिविलेखनः॥ ११३॥

मुर्गी के अण्डे का छिलका, मैनसिल, शंखनाभि, कचियानमक (मनिहारी नमक) लालचन्दन और गेरू; इनको समभाग लेकर अंजन बनावे। यह अंजन फूली और नेत्रार्म रोग का लेखन करता है॥ ११३॥

शिरीषबीजमरिचपिप्पलीसैंधवैरपि।

[1] कुछ विद्वान् यहाँ पुंडरीक से पुण्डरिया काठ का ग्रहण करते हैं। उनके मतानुसार इसकी पोटली बनाकर बकरी के दूध में रख दें। जब दूध का रंग पीला हो जाय तब पोटली को निकाल लेना चाहिए फिर दूध से आँख में सिंचन करना चाहिए।

शुक्रे प्रघर्षणं कार्यमथवा सैन्धवेन च ॥ ११४ ॥

सिरस के बीज, काली मिर्च, पीपरि और सेंधानमक; इनके महीन पिसे हुए चूर्ण से या केवल सेंधानमक के चूर्ण से फूली को घिसना चाहिए ॥ ११४ ॥

बहुशः पलाशकुसुमस्वरसैः परिभाविता जयत्यचिरात्। नक्ताह्वबीजवर्त्तिः कुसुमचयं दृक्षु चिरजमपि ॥ ११५ ॥

करंजुआ के बीजों के चूर्ण में टेसू के रस की बहुत सी (सात) भावनाएँ देकर बत्ती बना ले यह बत्ती बहुत दिन की पुरानी फूली को शीघ्र ही नष्ट करती है ॥ ११५ ॥

सैन्धवं त्रिफलाकृष्णाकटुकाशङ्खनाभयः। सताम्ररजसो वर्त्तिः पिष्टा शुक्रविनाशिनी ॥ ११६ ॥

सेंधा नमक, हड़, बहेड़ा आँवला, पीपरि, कुटकी, शंखनाभि और तांबे की भस्म, इनको जल से पीस कर बत्ती बनावे। यह बत्ती फूली को नष्ट करती है ॥ ११६ ॥

चन्दनं सैन्धवं पथ्या पलाशतरुशोणितम्। क्रमवृद्धमिदं चूर्णं शुक्रार्मादिविलेखनम् ॥ ११७ ॥

लालचन्दन १ तोला, सेंधा नमक २ तोले, हड़ ३ तोले और ढाक का गोंद ४ तोले; इनका महीन चूर्ण कर आँख में लगाने से फूली और नेत्रार्म रोग का लेखन होता है ॥ ११७ ॥

दन्तवर्त्ति

दन्तैर्दन्तिवराहोष्ट्रगवाश्वाजखरोद्भवैः। सशङ्खमौक्तिकाम्भोधिफेनैर्मरिचपादिकैः। क्षतशुक्रमपि व्याधिं दन्तवर्त्तिर्निवर्त्तयेत् ॥ ११८ ॥

हाथी, शूकर, ऊँट, गऊ, घोड़ा, बकरी और गदहा के दांत, शंखनाभि, मोती तथा समुद्रफेन, ये सब समभाग। सबका चतुर्थांश कालीमिर्च। सबको जल में घोटकर बत्ती बनावे। यह बत्ती व्रण और फूली को नष्ट करती है ॥ ११८ ॥

शङ्खादि अंजन।

शङ्खस्य भागाश्चत्वारस्ततोऽर्द्धेन मनःशिलाः ॥ ११९ ॥ मनःशिलार्द्धं मरिचं मरिचार्द्धेन सैन्धवम्। एतच्चूर्णाञ्जनं श्रेष्ठं शुक्रयोस्तिमिरेषु च ॥ १२० ॥

शंखनाभि ४ तोले, मैनशिल २ तोले, कालीमिर्च १ तोला और सेंधानमक ६ माशे; इनके चूर्ण का अंजन सव्रण शुक्र और अव्रण शुक्र तथा तिमिर रोगों में हितकर है ॥ ११०-१२० ॥

ताप्यं मधुकसारो वा बीजमक्षस्य सैन्धवम्। मधुनाञ्जनयोगाः स्युश्चत्वारः शुक्रशान्तये ॥ १२१ ॥

अथवा जारित सुवर्णमाक्षिक, मुलेठी का सत, बहेड़े की मींगी और सेंधानमक; इनमें से किसी एक को शहद के साथ घोटकर अंजन करने से फूली नष्ट होती है ॥ १२१ ॥

वटक्षीरेण संयुक्तं श्लक्ष्णं कर्पूरजं रजः। क्षिप्रमञ्जनतो हन्ति शुक्रञ्चातिघनोन्नतम् ॥ १२२ ॥

कपूर के महीन पिसे हुए चूर्ण में बरगद का दूध मिलाकर अंजन करने से कठिन और ऊँची उठी हुई फूली शीघ्र नष्ट होती है ॥ १२२ ॥

तालस्य नारिकेलस्य तथैवारुष्करस्य च। करीरस्य तु वंशानां कृत्वा क्षारं परिस्रुतम् ॥ १२३ ॥ करमास्थिकृतं चूर्णं क्षारेण परिभावितम्। सप्तकृत्वोऽष्टकृत्वो वा श्लक्ष्णचूर्णं तु कारयेत् ॥ १२४ ॥ एतच्छुक्लेषु साध्येषु कृष्णीकरणमुत्तमम्। यानि शुक्राण्यसाध्यानि तेषां परममञ्जनम् ॥ १२५ ॥

ताड़ की जटा, नारियल की जटा, भिलावाँ बाँस के करील; इनकी समभाग भस्म को अठगुने जल में घोलकर गाढ़े वस्त्र से छान ले। इसको २१ बार छानने से क्षार जल तैयार होगा। ऊँट की हड्डी के चूर्ण में इस क्षारजल की सात या आठ भावनाएँ देकर खूब महीन चूर्ण तैयार करे। इसका अंजन साध्य शुक्ल (सफेदी) को नष्ट कर आँख के स्वाभाविक कालेपन को ला देता है। तथा जितने प्रकार के असाध्य शुक्र रोग हैं उनके लिए भी यह उत्कृष्ट अंजन है॥ १२२-१२५॥

टिप्पणी—भावना के क्षार जल में टीकाकारों का मतभेद है। कुछ टीकाकार भाव्य द्रव्यों के समान भस्म में अठगुना या सोलहगुना जल मिलाकर क्वाथ करते हैं। आधा या चतुर्थांश रहने पर छान लेते हैं। इस प्रकार २१ बार करते हैं। वाग्भटाचार्य के मतानुयायी बिनाक्वाथ किये ही चौगुने या सोलहगुने जल से परिस्रुत करना मानते हैं तथा दूसरे टीकाकार चौगुने या सोलह गुने जल में क्वाथ कर आधा रहने पर विस्रावण करना श्रेष्ठ मानते हैं।

पटोलादि घृत

पटोलं कटुका दार्वी निम्बं वासाफलत्रिकम्। दुरालभां पर्पटकं त्रायन्तीश्च पलोन्मिताम्॥ १२६॥ प्रस्थमामलकानाञ्च क्वाथयेन्नल्वणेऽम्भसि। पादशेषे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ १२७॥ कल्कैर्भूनिम्बकुटजमुस्तयष्ट्याह्वचन्दनैः। सपिप्पलीकैस्तत्सिद्धं चक्षुष्यं शुक्रयोर्हितम्॥ १२८॥ घ्राणकर्णाक्षिवर्त्मत्वङ्मुखरोगव्रणापहम्। कामलाकुष्ठवीसर्पगण्डमालापहं परम्॥ १२९॥

परवल के पत्ते, कुटकी, दारुहल्दी, नीम की छाल, अडूसा हड़, बहेड़ा, आँवला, जवासा, पित्तपापड़ा और त्रायमाणा; ये सब प्रत्येक चार-चार तोले। आँवला ६४ तोले। इनको १२ सेर ६८ तोले जल में पकावे, जब ३ सेर ३२ तोले अवशिष्ट रहे, तब उतार कर छान ले। घी १२८ तोले। कल्क के लिए चिरायता, कुड़ा की छाल, नागरमोथा, मुलेठी, लालचन्दन और पीपरि; सब मिलित ३२ तोले। यथाविधि घृत सिद्ध करे। यह नेत्रों के लिए विशेषकर दोनों प्रकार के शुक्ररोगों के लिए हितकारी है। इसके सेवन करने से नाक, कान, आँख, पलक, त्वचा के रोग, मुखरोग, व्रण, कामला, कोढ़, विसर्प और गण्डमाला आदि रोग नष्ट होते हैं। मात्रा ६ माशे से १॥ तोले तक। शिवदास के मत से पटोलफल और क्वाथ-द्रव्य पृथक् २ चार चार तोला लिये जाते हैं॥ १२६-१२९॥

कृष्णादि तैल।

कृष्णाविडङ्गमधुयष्टिकसिन्धुजन्मविश्वौषधैः पयसि सिद्धमिदं छगल्याः। तैलं नृणां तिमिरशुक्रशिरोऽक्षिशूलपाकात्ययाञ्जयति नस्यविधौ प्रयुक्तम्॥ १३०॥

कल्क के लिए पीपरि, वायविडङ्ग, मुलेठी, सेंधानमक और सोंठ; सब मिलित आधसेर। तिल का तेल २ सेर। बकरी का दूध ८ सेर। विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर नस्य लेने से यह कृष्णाद्य तेल तिमिर, फूली, शिरोरोग, नेत्रशूल और पाकात्यय रोग को नष्ट करता है। नस्य में तेल दो बूँद से पाँच बूँद तक लेना चाहिए॥ १३०॥

अजकाचिकित्सा।

अजकां पार्श्वतो विद्ध्वा सूच्या विस्राव्य चोदकम्। व्रणं गोमयचूर्णेन पूरयेत् सर्पिषा सह॥ १३१॥

अजकानामक नेत्ररोग को एक बाजू में सुई से वेधन कर उसका जल निकाल दे। पश्चात् गोबर का चूर्ण और घी मिलाकर उस छेद को भर दे। इससे यह अच्छा हो जाता है॥ १३१॥

टिप्पणी—वाग्भट आदि में गोमयचूर्ण की जगह गोमांसचूर्ण का पाठ है।

सैन्धवं वाजिपादश्च गोरोचनसमन्वितम्। शेलुत्वग्रससंयुक्तं पूरणं चाजकापहम्॥ १३२॥

सेंधानमक, विष्णुक्रान्ता और गोरोचन; इनको महीन पीसकर लसोढ़ा की छाल के रस में मिलाकर आँख में डालने से अजका नष्ट होता है॥ १३२॥

शशकादि घृत।

शशकस्य शिरःकल्के शेषाङ्गकथिते जले। घृतस्य कुडवं पक्वं पूरणञ्चाजकापहम्॥ १३३॥

घृत १२ तोले। कल्क के लिए हड्डी-रहित खरगोश का शिर। क्वाथ के लिए शिर-रहित खरगोश का मांस ६४ तोले। जल ६ सेर ३२ तोले और अवशिष्ट क्वाथ १२८ तोले। यथाविधि घृत सिद्ध करके नेत्र में डालने से अजका रोग नष्ट होता है॥ १३३॥

शशकादि घृत।

शशकस्य कषाये तु सर्पिषा कुडवं पचेत्। यष्टिमपौण्डरीकस्य कल्केन पयसा समम्॥ १३४॥ छगल्याः पूरणाच्छुक्रक्षतपाकात्ययाजकाः। हन्ति भ्रूशङ्खशूलञ्च दाहरोगानशेषतः॥ १३५॥

खरगोश का मांस ६४ तोले। जल ६ सेर ३२ तोले। अवशिष्ट क्वाथ १२८ तोले। घी ३२ तोले। कल्क के लिए-मुलेठी और पुंडरिया चार-चार तोले। बकरी का दूध ३२ तोले। विधिपूर्वक घी सिद्ध करके नेत्र में पूर्ण कर देने से फूली, व्रण, पाकात्यय, अजका, भौंहों का शूल, कनपटियों का शूल तथा विशेषकर नेत्रदाह रोग नष्ट होता है॥ १३४-१३५॥

नेत्र के काले भाग के रोगों के लिए अनेक योग।

त्रिफला घृतमधुयवाः पादाभ्यङ्गाः शतावरीमुद्गाः। चक्षुष्यः संक्षेपाद्वर्गः कथितो भिषग्भिरयम्॥ १३६॥

त्रिफला, पुराना घी, शहद, जौ, पैरों की मालिश, शतावरि और मूँग। वैद्यों ने संक्षेप से यह वर्ग नेत्रों के लिए हितकर कहा है। अर्थात् उपर्युक्त योगों का सेवन करना नेत्ररोगों में हितकर होता है॥ १३६॥

लिह्यात् सदा वा त्रिफलां सुचूर्णितां घृतप्रगाढां तिमिरेऽथ पित्तजे। समीरजे तैलयुतां कफात्मके मधुप्रगाढां विदधीत युक्तितः॥ १३७॥

पित्तज तिमिर रोग में सदा त्रिफला का चूर्ण घृत में मिलाकर, वातज तिमिर रोग में त्रिफला का चूर्ण तिल के तैल में मिलाकर और कफज तिमिर रोग में त्रिफला का चूर्ण शहद में मिलाकर युक्ति से खाना चाहिए॥ १३७॥

कल्कः क्वाथोऽथवा चूर्णं त्रिफलाया निषेवितम्। मधुना सर्पिषा वापि समस्ततिमिरापहम्॥ १३८॥

त्रिफला के कल्क, क्वाथ अथवा चूर्ण में शहद या घी मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार के तिमिर रोग नष्ट होते हैं॥ १३८॥

यस्त्रैफलं चूर्णमपथ्यवर्जी सायं समश्नाति हविर्मधुभ्याम्। स मुच्यते नेत्रगतैर्विकारैर्भृत्यैर्यथा क्षीणधनो मनुष्यः १३९

पथ्य का सेवन करनेवाला जो रोगी घी और शहद के साथ त्रिफला के चूर्ण को सायंकाल के समय खाता है उसको नेत्र के रोग इस प्रकार छोड़ देते हैं जैसे कि धन नष्ट होने पर नौकर लोग मालिक को छोड़ देते हैं॥ १३९॥

सघृतं वा वराक्वाथं शीलयेत्तिमिरामयी। जाता रोगा विनश्यन्ति न भवन्ति कदाचन। त्रिफलायाः कषायेण प्रातर्नयनधावनात्॥ १४०॥

त्रिफला के क्वाथ में घी मिलाकर तिमिर-रोगी को पीना चाहिए। अथवा त्रिफला के क्वाथ से प्रातःकाल नेत्र धोने से नेत्ररोग नष्ट

हो जाते हैं और पुनः कभी उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ १४० ॥

जलगण्डूषैः प्रातर्बहुशोऽम्भोभिः प्रपूर्य मुखरन्ध्रम् । निर्दयमुक्षन्नक्षि क्षपयति तिमिराणि ना सद्यः ॥ १४१ ॥

प्रातःकाल अच्छे प्रकार जल से मुख भरकर उसके कुल्ला के जल से नेत्रों का सेचन करने से तिमिररोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ १४१ ॥

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्दीयते यदि । अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ १४२ ॥

भोजन करके गीली हथेलियों को परस्पर घिसकर नेत्रों पर लगाने से शीघ्र ही तिमिर-रोग नष्ट होता है ॥ १४२ ॥

सुखावती वर्त्ति ।

कनकस्य फलं शङ्खं त्र्यूषणं सैन्धवं सिता । फेनो रसाञ्जनं क्षौद्रं विडङ्गानि मनःशिला ॥ १४३ ॥ कुक्कुटाण्डकपालानि वर्त्तिरेषा व्यपोहति । तिमिरं पटलं काचमर्मशुक्रं तथैव च । कण्डूक्लेदार्बुदं हन्ति मलं चाशु सुखावती ॥ १४४ ॥

निर्मली का फल, शंखनाभि, सोंठ, मिर्च, पीपरि, सेंधानमक, मिसरी, समुद्रफेन, रसौत, शहद, वायविडङ्ग, मैनशिल और मुर्गी के अण्डे का छिलका; इनको समभाग लेकर जल से घोटकर बत्ती बनावे । यह सुखावती बत्ती तिमिर पटल, काच, अर्म, फूली, खुजली, क्लेद, अर्बुद और कीचड़ आना इत्यादि रोगों को नष्ट करती है ॥ १४३--१४४ ॥

चन्द्रोदया वर्त्ति ।

हरीतकी वचा कुष्ठं पिप्पली मरिचानि च । बिभीतकस्य मज्जा च शङ्खनाभिर्मनःशिला ॥ १४५ ॥ सर्वमेतत्समाहृत्य छागक्षीरेण पेषयेत् । नाशयेत् तिमिरं कण्डूं पटलान्यर्बुदानि च ॥ १४६ ॥ अधिकानि च मांसानि यच्च रात्रौ न पश्यति । अपि द्विवार्षिकं पुष्पं मासेनैकेन नश्यति । वर्त्तिश्चन्द्रोदया नाम नृणां दृष्टिप्रसादनी ॥ १४७ ॥

हड़, वच, कूट, पीपरि, कालीमिर्च, बहेड़ा की मींगी, शंखनाभि और मैनशिल; इनको समभाग ले बकरी के दूध में घोटकर बत्ती बनावे । इसको जल से घिसकर नेत्र में आँजने से तिमिर, खुजली, पटल, अर्बुद, अधिकमांस रतौंधी और दो वर्ष की फूली; ये रोग एक महीने में नष्ट हो जाते हैं । यह चन्द्रोदया नामक बत्ती नेत्रों को निर्मल करनेवाली है ॥ १४५-१४७ ॥

बृहच्चन्द्रोदया वर्त्ति ।

रसाञ्जनमथैला च कुङ्कुमं समनःशिलम् । शङ्खनाभिः शिग्रुबीजं शर्करा चात्र सप्तमी ॥ १४८ ॥ एषा चन्द्रोदया नाम वर्त्तिश्चक्षुःप्रसादनी । हन्यात् पिच्छञ्च कण्डूञ्च तिमिरञ्चापकर्षति ॥ १४९ ॥

रसौत, छोटी इलायची, कुंकुम, मैनशिल, शंखनाभि, सहिजना के बीज और शकर; इन सातों को जल में घोटकर बत्ती बनावे । यह चन्द्रोदया वर्त्ति नेत्रों को निर्मल करनेवाली तथा नेत्रमल, खुजली और तिमिररोग नष्ट करनेवाली है ॥ १४८-१४९ ॥

हरीतक्यादि वर्त्ति ।

हरीतकी हरिद्रा च पिप्पल्यौ लवणानि च । कण्डूतिमिरजिद्वर्त्तिर्न क्वचित् प्रतिहन्यते ॥ १५० ॥

हड़, हल्दी, पीपरि, और सेंधानमक; इनको जल में घोटकर बत्ती बनावे । यह बत्ती खुजली और तिमिर-रोग को नष्ट करती है । यह बत्ती सब प्रकार के तिमिर रोगों को जीतती है, किसी में विफल नहीं होती है ॥ १५० ॥

कुमारिका वर्त्ति।

अशीतिस्तिलपुष्पाणि षष्टिः पिप्पलितण्डुलाः। जातीपुष्पाणि पञ्चाशन्मरिचानि च षोडश। एषा कुमारिका वर्त्तिर्गतं चक्षुर्निवर्त्तयेत्॥ १५१॥

तिल के फूल ८०, पीपरि के चावल ६०, चमेली के फूल ५० और कालीमिर्च नग १६; इनको जल में पीसकर बत्ती बनावे। यह कुमारिका वर्त्ति नष्ट हुई नेत्र की ज्योति को पुनः ले आती है॥ १५१॥

दृष्टिप्रदा वर्त्ति।

त्रिफला कुक्कुटाण्डत्वक् कासीसमयसो रजः। नीलोत्पलं विडङ्गानि फेनञ्च सरितास्पतेः॥ १५२॥ आजेन पयसा पिष्ट्वा भावयेत्ताम्रभाजने। सप्तरात्रस्थितं भूयः पिष्टं क्षीरेण वर्त्तयेत्। एषा दृष्टिप्रदा वर्त्तिरन्धस्याभिन्नचक्षुषः॥ १५३॥

हड़, बहेड़ा, आँवला, मुर्गी के अण्डे का छिलका, कसीस (गंधकजारित), लोहभस्म, नीलकमल, वायविडंग और समुद्रफेन, इन सबको समभाग ले बकरी के दूध में घोटकर ताँबे के पात्र में ७ दिन तक भीगने दे। पश्चात् बकरी के दूध में पीसकर बत्ती बनावे। यह दृष्टिप्रदा वर्त्ति जिसके नेत्र फूटे नहीं हैं उन अन्धों को दृष्टि देनेवाली है॥ १५२-१५३॥

चन्दनाद्य वर्त्ति।

चन्दनत्रिफलापूगपलाशतरुशोणितैः। जलपिष्टैरियं वर्त्तिरशेषतिमिरापहा॥१५४॥

लालचन्दन, हड़, बहेड़ा, आँवला, सुपारी और ढाक का गोंद; इनको समभाग ले जल में घोटकर बत्ती बनावे। यह सब प्रकार के तिमिररोगों को नष्ट करती है॥ १५४॥

व्यूषणाद्या वर्त्ति।

व्यूषणत्रिफलावल्कसैन्धवानि मनः-शिला। क्लेदोपदेहकण्डूघ्नी वर्त्तिः शस्ता कफापहा॥ १५५॥

सोंठ, मिर्च, पीपरि, हड़, बहेड़ा, आँवला मुलेठी, सेंधा नमक, हरताल और मैनशिल; इनको जल में घोटकर बत्ती बनावे। यह वर्त्ति क्लेद, मल और खुजली को नष्ट करती है तथा कफज नेत्र रोगों में प्रशस्त है॥ १५५॥

नयनसुखा वर्त्ति।

एकगुणा मागधिका द्विगुणा च हरीतकी सलिलपिष्टा। वर्त्तिरियं नयनसुखा तिमिरार्मपटलकाचाश्रुहरी॥१५६॥

पीपरि, १ तोला और हड़ २ तोले; इनको जल से पीसकर बत्ती बनावे। यह नयनसुखा वर्त्ति तिमिर, अर्म, पटल, काच और अश्रुपात को नष्ट करती है॥ १५६॥

चन्द्रप्रभा वर्त्ति।

अञ्जनं श्वेतमरिचं पिप्पली मधुयष्टिका। बिभीतकस्य मध्यं तु शङ्खनाभिर्मनःशिला॥ १५७॥ एतानि समभागानि छागीक्षीरेण पेषयेत्। छायाशुष्कां कृतां वर्त्तिं नेत्रेषु च प्रयोजयेत्॥ १५८॥ अर्बुदं पटलं काचं तिमिरं रक्तराजिकाम्। अधिमांसार्मणी चैव यश्च रात्रौ न पश्यति। वर्त्तिश्चन्द्रप्रभा नाम जातान्ध्यमपि नाशयेत्॥ १५९॥

सुरमा, सफेद मिर्च, पीपरि, मुलेठी, बहेड़ा की मींगी, शङ्खनाभि, मैनशिल; इनको समभाग ले बकरी के दूध में घोटकर बत्ती बनावे। इस बत्ती को छाया में सुखाकर नेत्र-रोगों में सेवन करे। इसके अंजन से अर्बुद, पटल, काच, तिमिर, लाली, अधिमांस, अर्म और रतौंधी नष्ट होती है। यह जन्मान्ध्य को भी नष्ट करती है॥ १५७-१५९॥

पञ्चशतिका वर्त्ति।

नीलोत्पलपत्रशतं मुद्गशतं यवशतञ्च निस्तुषं ग्राह्यम्। मालत्याः कुसुमशतं पिप्पलीतण्डुलशतञ्च ॥ १६० ॥ पञ्चशतैर्वर्त्तिर्विहिताञ्जनं कुर्यात् सर्वात्मके नयने। तिमिराश्रुकाचपटलेन नास्त्यपरः साधनोपायः ॥ १६१ ॥

नीलकमल की पँखुरी १००, मूँग १००, निस्तुष जौ १००, चमेली के फूल १०० और पीपरि के दाने १००; इनको पीसकर वत्ती बनावे। इसका अञ्जन सब प्रकार के नेत्ररोगों में करना चाहिए। तिमिर, अश्रुपात, काच और पटल रोगों के लिये इससे बढ़कर अन्य साधन नहीं है ॥ १६०-१६१ ॥

व्योषोत्पलाभयाकुष्ठतार्क्ष्यैर्वर्त्तिः कृता हरेत्। अर्बुदं पटलं काचं तिमिरार्माश्रुनिःस्रुतिम् ॥ १६२ ॥

सोंठ मिर्च, पीपरि, नील कमल, हड़, कूट, और रसौत, इनकी वत्ती बनाकर अञ्जन करे। यह वत्ती अर्बुद, पटल काच, तिमिर, अर्म और अश्रुपातरोग को नष्ट करती है ॥ १६२ ॥

नागार्जुनाञ्जन।

त्रिफला व्योषसिन्धूत्थयष्टितुत्थरसाञ्जनम्। प्रपौण्डरीकं जन्तुघ्नं लोध्रं ताम्रं चतुर्दश ॥ १६३ ॥ द्रव्याण्येतानि संचूर्ण्य वर्त्तिः कार्या नभोऽम्बुना। नागार्जुनेन लिखिता स्तम्भे पाटलिपुत्रके ॥ १६४ ॥ नाशिनी तिमिराणाञ्च पटलानां विशेषतः। सद्यः प्रकोप स्तन्येन स्त्रिया विजयते ध्रुवम् ॥ १६५ ॥ किंशुकरसेनाथ पैल्लं पुष्पञ्च रक्तताम्। अञ्जनाल्लोध्रतोयेन आसन्नतिमिरं जयेत् ॥ १६६ ॥ चिरं संछादिते नेत्रे बस्तमूत्रेण संयुता। उन्मीलयत्यकृच्छ्रेण प्रसादं चाधिगच्छति ॥ १६७ ॥

हड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपरि, सेंधा नमक, मुलेठी, तूतिया, रसौत, पुंडरिया, बायबिडङ्ग, लोध और ताम्रभस्म, इन चौदह औषधों का चूर्ण कर वर्षा के जल से बत्ती बनावे। नागार्जुन ने पटने में एक स्तम्भ पर लिखा था। यह अंजन तिमिर रोग और विशेषकर पटल रोगों को नष्ट करता है। स्त्री के दूध में घिसकर अंजन करने से नये नेत्र-कोप को, टेसू के रस में घिसकर अंजन करने से पैल्ल-रोग, फूली और लालिमा को और लोध के जल से अजन करने से शीघ्र आनेवाले तिमिर-रोग को विजय करता है। बकरे के मूत्र में घिसकर अजन करने से बहुत दिन की बन्द हुई आँखें बिना कष्ट खुल जाती हैं तथा स्वच्छ हो जाती हैं ॥ १६३–१६७ ॥

सौगताञ्जन।

निशाद्वयाभयामांसीकुष्ठकृष्णाविचूर्णिताः। सर्वनेत्रामयान् हन्यादेतत् सौगतमञ्जनम् ॥ १६८ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, हड़, जटामांसी, कूट और पीपरि, इनका महीन चूर्ण बनाकर अजन करने से सब प्रकार के नेत्र रोग नष्ट होते हैं ॥१६८॥

पिप्पल्यादि वर्त्ति।

पिप्पलीं सतगरोत्पलमात्रां वर्त्तयेत् समधुकां सहरिद्राम्। एतया सततमञ्जयितव्यं यः सुपर्णसममिच्छति चक्षुः ॥ १६९ ॥

पीपरि, तगर, नीलकमल, मुलेठी और हल्दी, इनको जल में घोटकर बत्ती बनावे। इसका प्रतिदिन अजन करने गरुड़ की-सी दृष्टि हो जाती है ॥ १६९ ॥

कोकिला वर्त्ति।

व्योषायश्चूर्णसिन्धूत्थत्रिफलाञ्जन-

संयुता। त्रिफलाजलसंपिष्टा कोकिला तिमिरापहा॥ १७०॥

सोंठ, मिर्च, पीपरि, गंधकजारित लौहभस्म, हड़, बहेड़ा, आँवला और सुरमा, इनको त्रिफला के जल में घोटकर बत्ती बनावे। यह कोकिला बत्ती तिमिर रोग को नष्ट करती है॥ १७०॥

जनरञ्जन अञ्जन।

त्रीणि कटूनि करञ्जफलानि द्वे च निशे सह सैन्धवकश्च। बिल्वतरोर्वरुणस्य च मूलं वारिचरं दशमं प्रवदन्ति॥ १७१॥ हन्ति तमस्तिमिरं पटलञ्च पिच्चटशुक्रमथार्बुदकञ्च। अञ्जनकं जनरञ्जनकञ्च दृङ् न विनश्यति वर्षशतेऽपि॥ १७२॥

सोंठ, मिर्च, पीपरि, करंज के बीज, हलदी, दारुहलदी, सेंधा नमक, बिल्व की जड़, बरना की जड़ और शंखनाभि; इनको समभाग ले महीन पीस कर अंजन बनावे। यह जनरंजन-नामक अंजन अन्धकार, तिमिर, पटलरोग, पिचट, फूली और अर्बुद रोग को नष्ट करता है। इसके सेवन से सौ वर्ष में भी नेत्र की ज्योति कम नहीं होती है॥ १७१-१७२॥

नीलोत्पलं विडङ्गानि पिप्पली रक्तचन्दनम्। अञ्जनं सैन्धवञ्चैव सद्यस्तिमिरनाशनम्॥ १७३॥

नीलकमल, वायविडंग, पीपरि, लालचन्दन, सुरमा और सेंधा नमक; इनको पीसकर अंजन करने से शीघ्र ही तिमिर-रोग नष्ट होता है॥ १७३॥

पत्रगैरिककर्पूरयष्टिनीलोत्पलाञ्जनम्। नागकेशरसंयुक्तमशेषतिमिरापहम्॥ १७४॥

तेजपत्र, गेरू, कपूर, मुलेठी, नीलकमल और नागकेशर; इनका अंजन सब प्रकार के तिमिर-रोगों को नष्ट करता है॥ १७४॥

शंखादिअञ्जन।

शङ्खस्य भागाश्चत्वारस्ततोऽर्धेन मनःशिला। मनःशिलार्धं मरिचं मरिचार्धेन पिप्पली॥ १७५॥ वारिणा तिमिरं हन्ति अर्बुदं हन्ति मस्तुना। पिच्चटं मधुना हन्ति स्त्रीक्षीरेण तदुत्तमम्॥ १७६॥

शंखनाभि ४ तोले, मैनशिल २ तोले, कालीमिर्च १ तोला और पीपरि ६ माशे; इनको जल में पीसकर आँजने से तिमिर रोग दही से पानी के साथ आँजने से अर्बुद और शहद के साथ आँजने से पिचट रोग नष्ट होता है तथा स्त्री के दूध के साथ आँजने से सबसे उत्तम गुण करता है॥ १७५-१७६॥

हरिद्राद्यवर्ती।

हरिद्रा निम्बपत्राणि पिप्पल्यो मरिचानि च। भद्रमुस्तं विडङ्गानि सप्तमं विश्वभेषजम्॥ १७७॥ गोमूत्रेण गुटी कार्या छागमूत्रेण चाञ्जनात्। ज्वरांश्च निखिलान् हन्ति भूतावेशं तथैव च॥ १७८॥ वारिणा तिमिरं हन्ति मधुना पटलं तथा। नक्तान्ध्यं भृङ्गराजेन नारीस्तन्येन पुष्पकम्। शिशिरेण परिस्रावमर्बुदं पिच्चटं तथा॥ १७९॥

हलदी, नीम के पत्ते, पीपरि, मिर्च, नागरमोथा, वायविडंग और सोंठ; इन ओषधियों को समभाग ले गोमूत्र में घोटकर गोली बनावे। इसको बकरी के मूत्र में घिसकर अंजन करे, तो सब प्रकार के ज्वरों को और भूतबाधा को नष्ट करे। यह गुटिका जल के योग से तिमिर को, शहद के योग से पटल को, भँगरा के रस से रतौंधी को, स्त्री के दूध से फूली को और ओस से घिसकर अंजन करने से अश्रुपात, अर्बुद और पिचटरोग को नष्ट करती है॥ १७७-१७९॥

कज्जल।

भूमौ निघृष्टयांगुल्याञ्जनं संशमनं तयोः। तिमिरकाचार्महर धूमिकायाश्च नाशनम् ॥ १८० ॥

पहले अंगुली को भूमि पर रगड़कर पश्चात् उससे अंजन डालने से तिमिर, काच, अर्म और धूमदृष्टिरोग नष्ट होते हैं ॥ १८० ॥

त्रिफलाभृङ्गमहौषधमध्वाज्यच्छागपयसि गोमूत्रे। नागं सप्तनिषिक्तं करोति गरुडोपमं चक्षुः ॥ १८१ ॥

त्रिफला का क्वाथ, भँगरे का रस, सोंठ का क्वाथ, शहद, घी, बकरी का दूध और गोमूत्र, प्रत्येक में सात-सात बार गर्म किये हुए सीसे को बुझाकर सलाई बनावे। इस सलाई से अंजन लगाने से गरुड़ के तुल्य दृष्टि हो जाती है ॥ १८१ ॥

त्रिफलसलिलयोगे भृङ्गराजद्रवे च हविषि च विपकल्के छागदुग्धे मधुग्रे। प्रतिदिनमथ तप्तं सप्तधा सीसमेकं प्रणिहितमथ पश्चात् कारयेत् तच्छलाकाम् ॥ १८२ ॥ सवितुरुदयकाले साञ्जना व्यञ्जना वा कनकनिभसमेतानर्मपैच्चिट्यरोगान्। असितसितसमुत्थान् सन्धिमर्माभिजातान् हरति नयनरोगान् सेव्यमाना शलाका ॥ १८३ ॥

त्रिफला के क्वाथ, भँगरा के रस, विषकल्क युत घृत, बकरी के दूध और मुलेठी के काढ़े में प्रतिदिन तपाये हुए सीसे को प्रत्येक में सात सात बार बुझाकर सलाई बनावे। प्रातःकाल इस सलाई द्वारा अंजन लगाने से अथवा केवल सलाई नेत्रों में लगाने से काचिमायुक्त अर्म, पिच्चट, कृष्णभाग के तथा श्वेतभाग के रोग सन्धि तथा मर्म के रोग एवं सब प्रकार के नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ १८२-१८३ ॥

चिञ्चापत्ररसं निधाय विमले त्वौदुम्बरे भाजने मूलं तत्र निघृष्य सैन्धवयुतं गौञ्जं विशोष्यातपे। तच्चूर्णं विमलाञ्जनेन सहितं नेत्रामये शस्यते काचार्मार्जुनपिच्चटे सतिमिरे स्रावश्च निर्णाशयेत् ॥ १८४ ॥

स्वच्छ ताँबे के पात्र में इमली के पत्तों का रस डालकर उसमें सेंधानमक और घुँघची की जड़ का चूर्ण मिलाकर घोटे और फिर धूप में सुखावे। इस चूर्ण को शुद्ध सुरमा में मिलाकर आँजने से काच, अर्म, अर्जुन, पिच्चट, तिमिर और अश्रुपात आदि सब नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ १८४ ॥

चित्रार्यष्टियोगे सैन्धवममलं विचूर्ण्य तेनाक्षि। सममञ्जयतस्तिमिरं गच्छति वर्षादसाध्यमपि ॥ १८५ ॥

चीता की जड़ और मुलेठी के चूर्ण में समान भाग स्वच्छ सेंधा नमक मिलाकर अंजन बनावे। इस अंजन को निरंतर १ वर्ष तक नेत्रों में आँजता रहे, तो असाध्य तिमिर-रोग भी नष्ट हो जाता है ॥ १८५ ॥

दद्यादुशीरनिर्यूहे चूर्णितं कणसैन्धवम्। तच्छृते सघृतं तत्र भूयः क्षौद्रं क्षिपेद्घने। शीते चास्मिन् हितमिदं सर्वजे तिमिरेऽञ्जनम् ॥ १८६ ॥

खस का काढ़ा १६ तोले, गौ का घृत ४ तोले, सेंधानमक और पीपरि का चूर्ण एक-एक तोला। सबको मिलाकर पकावे। जब गाढ़ा हो जाय तब २ तोले शहद डालकर ठंडा कर ले। यह अंजन सब प्रकार के तिमिर-रोगों में हितकर है ॥ १८६ ॥

धात्रीरसाञ्जनक्षौद्रसर्पिर्भिस्तु रसक्रिया। पित्तानिलाक्षिरोगघ्नी तैमिर्यपटलापहा ॥ १८७ ॥

आँवले का काढ़ा १६ तोले, गौ का घृत ४ तोले, रसौत २ तोले। सबको मिलाकर

पकावे। जब गाढ़ा हो जाय तब २ तोले शहद मिलाकर ठंडा कर ले। यह रसक्रिया पित्त और वात के नेत्ररोग, तिमिर और पटल के रोगों को नष्ट करती है ॥ १८७ ॥

मृङ्गवेरं भृङ्गराजं यष्टितैलेन मिश्रितम्। नस्यमेनेन दातव्यं महापटलनाशनम् ॥ १८८ ॥

सोंठ और भँगरे के चूर्ण में मुलेठी द्वारा सिद्ध किये हुए तेल को मिलाकर नस्य देने से बढ़े हुए पटल के रोग नष्ट होते हैं ॥ १८८ ॥

लिङ्गनाशे कफोद्भूते यथावद्विधिपूर्वकम् ॥ १८९ ॥ विद्ध्वा दैवकृते छिद्रे नेत्रं स्तन्येन पूरयेत्। ततो दृष्टेषु रूपेषु शलाकामाहरेच्छनैः ॥ १९० ॥ नयनं सर्पिषाभ्यज्य वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत्। ततो गृहे निराबाधे शयीतोत्तान एव च ॥ १९१ ॥ उद्गारकासक्षवथुष्ठीवनोत्कम्पनानि च। तत्कालं नाचरेदूर्ध्वं यन्त्रणास्नेहपीतवत् ॥ १९२ ॥ त्र्यहात् त्र्यहात् धारयेत्तत् कषायैरनिलापहैः। वायोर्भयात् त्र्यहादूर्ध्वं स्वेदयेदक्षि पूर्ववत् ॥ १९३ ॥ दशरात्रं तु संयम्य हितं दृष्टिप्रसादनम्। पश्चात् कर्म च सेवेत लघ्वन्नश्चापि मात्रया ॥ १९४ ॥ रागश्चोपोऽर्बुदं शोथो बुद्बुदं केकराक्षिता। अधिमन्थादयश्चान्ये रोगाः स्युर्दुष्टवेधजाः ॥ अहिताचारतो वापि यथास्वं तानुपाचरेत् ॥ १९५ ॥

कफ के कोप से उत्पन्न हुए मोतियाबिन्द (लिङ्गनाश) को विधिपूर्वक (कृष्णमण्डल से शुक्लमंडल की ओर दो भाग अपाग की ओर स्थित) तीक्ष्ण शलाका से दैवकृत छिद्र में बेधन करके नेत्र को स्त्री के दूध से भर दे, जब रूप दिखाई देने लगे, तब धीरे-धीरे शलाका को निकाल ले। पश्चात् नेत्र में घी लगाकर कपड़े की पट्टी बाँध दे और रोगी को धुआँ धूप, वायु और धूल आदि से रहित, रक्षित स्थान में सीधा लिटा दे। उस समय डकार खाँसी, छींक थूकना और और काँपना आदि कार्य न करे। स्नेहपीत के तुल्य आहार आदि का विचार रक्खे। तीन तीन दिन के पश्चात् पट्टी खोलकर वातनाशक काढ़े से नेत्र को धोकर और उस पर वस्त्र ढककर कोमल स्वेदन करे। इस प्रकार दस दिन तक संयम करना चाहिए। पश्चात् दृष्टि को निर्मल करनेवाले अञ्जन आदि प्रयोगों का तथा लघु आहार का सेवन करना चाहिए। ज्ञाता वैद्य के द्वारा अच्छे प्रकार वेधन कराना चाहिए, नहीं तो वेधन ठीक न होने से लालिमा चोप, अर्बुद, शोथ, बुद्बुद, किरकिराहट और अधिमन्थ आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। नियमपूर्वक न रहने से भी रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए जो रोग उत्पन्न हो उसी रोग के अनुसार चिकित्सा करना चाहिए ॥ १८९-१९५ ॥

रुजायामक्षिरागे वा भूयो योगान्निबोध मे ॥ १९६ ॥ कल्किता सघृता दूर्वा यवगैरिकसारिवाः। सुखालेपाः प्रयोक्तव्या रुजारागोपशान्तये ॥ १९७ ॥

अब फिर नेत्र-पीड़ा और नेत्र-लालिमा के योगों को कहता हूँ, सुनिए-दूब, जौ, गेरू और अनन्तमूल, इनको घी के साथ पीसकर लेप करने से नेत्र-पीड़ा और नेत्रलालिमा शान्त होती है ॥ १९६--१९७ ॥

पयस्यासारिवापत्रमञ्जिष्ठामधुकैरपि। अजाक्षीरान्वितैर्लेपः सुखोष्णः पथ्य उच्यते ॥ १९८ ॥

क्षीरकाकोली, अनन्तमूल, तेजपात्र, मंजीठ और मुलेठी, इनको बकरी के दूध में पीसकर सुहाता सुहाता गर्म लेप करना नेत्र पीड़ा और नेत्रलालिमा के लिए पथ्य कहा जाता है ॥१९८॥

वातघ्नसिद्धे पयसि सिद्धं सर्पिश्चतुर्गुणे। काकोल्यादिप्रतीवापं तद्युञ्ज्यात्सर्वकर्मसु ॥ १९९ ॥ शाम्यत्येवं न

चेच्छूलं स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत् । ततः शिरां दहेच्चापि मतिमान् कीर्तितं यथा ॥ २०० ॥

भद्रदार्वादि वातनाशक गणों से सिद्ध किये हुए चौगुने दूध में तथा काकोल्यादि गण के कल्क में सिद्ध किये हुए घृत का नस्य और पान आदि सब कामों में प्रयोग करना चाहिए। यदि इसके प्रयोग से भी शूल शान्त न हो, तो स्नेहन और स्वेदन करके फस्द खुलावे और बाद में शिरा को दग्ध कर दे, जैसा कि शास्त्र में विधान है ॥ १९९-२०० ॥

दृष्टेरथ प्रसादार्थमञ्जनं शृणु मे शुभे। मेषशृङ्गस्य पुष्पाणि शिरीषधवयोरपि ॥ २०१ ॥ मालत्याश्चापि तुल्यानि मुक्तावैदूर्यमेव च । अजाक्षीरेण सम्पिष्य ताम्रे सप्ताहमावपेत् ॥ प्रविधाय तु तद्वर्त्तीर्योजयेदञ्जने भिषक् ॥ २०२ ॥

अब दृष्टि को निर्मल करनेवाले अंजनों को कहता हूँ, सुनिए । मेढासिंगी, धव, सिरस और चमेली, इनके फूल, मोती और वैदूर्य, इनको बकरी के दूध में घोटकर सात दिन तक ताम्रपात्र में रक्खे। फिर उसकी बत्ती बनाकर वैद्य अजन में प्रयुक्त करे ॥ २०१-२०२ ॥

स्रोतोजं विद्रुमं फेनं सागरस्य मनःशिला । मरिचानि च तां वर्त्तिं कारयेद्वापि पूर्ववत् ॥ २०३ ॥

सुरमा, मूँगा, समुद्रफेन, मैनशिल और कालीमिर्च, इनको बकरी के दूध में पूर्ववत् घोटकर सात दिन तक ताम्रपात्र में रक्खे और फिर बत्ती बनाकर अजन के काम में लावे ॥ २०३ ॥

रसाञ्जनं घृतं क्षौद्रं तालीशं स्वर्णगैरिकम् ॥ गोशकृद्रससंयुक्तं पित्तोपहतदृष्टये ॥ २०४ ॥

रसौत, घी, शहद, तालीशपत्र और स्वर्णगेरू, इनको गोबर के रस में घोटकर बत्ती बनावे। इस बत्ती का अजन पित्तहत दृष्टि के लिए उपयोगी है ॥ २०४ ॥

नलिनोत्पलकिञ्जल्कं गोशकृद्रससंयुतम् । गुटिकाञ्जनमेतत् स्याद्दिनरात्र्यन्धयोर्हितम् ॥ २०५ ॥

सफेद कमल और नील कमल की केशर को गोबर के रस में घोटकर गोली बनावे। इस गोली का अजन करने से दिनान्ध्य (दिन में कम दिखना) और रतौंधी (रात्रि में कम दीखना) नष्ट होती है ॥ २०५ ॥

नदीजशङ्खत्रिकटून्यथाञ्जनं मनःशिला द्वे च निशे गवां शकृत् । सचन्दनेयं गुटिकाथवाञ्जने प्रशस्यते रात्रिदिनेष्वपश्यताम् ॥ २०६ ॥

काला सुरमा, शख, सोंठ, मिर्च, पीपरि, रसौत, मैनशिल, हल्दी, दारुहल्दी, और लाल चन्दन, इनको गाय के गोबर के रस में घोटकर गोली बनावे अथवा अजन बनावे । यह रात्र्यन्ध और दिनान्ध्य में उपयोगी है ॥ २०६ ॥

कणाच्छागयकृन्मध्ये पक्त्वा तद्रसपेषिता । अचिराद्धन्ति नक्तान्ध्यं तद्वत्सक्षौद्रमूषणम् ॥ २०७ ॥

पीपरि को बकरी के जिगर में रखकर जल में पकावे । जब सिद्ध हो जाय तब उसी के रस में पीसकर गोली बनावे । इसका अजन रतौंधी को नष्ट करता है। इसी प्रकार कालीमिर्च को सिद्ध कर शहद के साथ अजन करने से भी रतौंधी नष्ट होती है ॥ २०७ ॥

त्रिफलाद्य घृत ।

त्रिफलाक्वाथकल्काभ्यां सपयस्कं शृतं घृतम् ॥ तिमिराण्यचिराद्धन्ति पीतमेतन्निशामुखे ॥ २०८ ॥

त्रिफला का क्वाथ ८ सेर, कल्क के लिए त्रिफला आध सेर, घी २ सेर और गौ का दूध

२ सेर। यथाविधि घृत सिद्ध करके सायंकाल के समय पीने से शीघ्र ही तिमिर-रोग नष्ट होते हैं ॥ २७८ ॥

महात्रिफलाद्य घृत ।

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरजस्य च । वृषस्य च रसप्रस्थं शतावर्याश्च तत्समम् ॥ २०९ ॥ अजाक्षीरं गुडूच्याश्च आमलक्या रसं तथा । प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिर्घृतं पचेत् ॥२१०॥ कल्कः कणा सिता द्राक्षा त्रिफला नीलमुत्पलम् । मधुकं क्षीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धिका ॥२११॥ तत्साधुसिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत् । ऊर्ध्वं पानमधःपानं मध्ये पानञ्च शस्यते ॥ २१२ ॥ यावन्तो नेत्ररोगास्तान् पानादेवापकर्षति । रक्तजे रक्तदुष्टे च रक्ते चातिश्रुतेऽपिच ॥ २१३ ॥ नक्तान्ध्ये तिमिरेकाचे नीलिकापटलार्बुदे । अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पक्ष्मकोपे च दारुणे ॥ २१४ ॥ नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपित्तकफेषु च । अदृष्टिं मन्ददृष्टिञ्च कफवातप्रदूषिताम् ॥ २१५ ॥ स्रवतो वातपित्ताभ्यां सकण्ड्वासन्नदूरदृक् । गृध्रदृष्टिकरं सद्यो बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ २१६ ॥ सर्वनेत्रामयं हन्यात्त्रिफलाद्यं महद्घृतम् ॥ २१७ ॥

त्रिफला का काढ़ा १२८ तोले, भँगरा का रस १२८ तोले, अडूसे का रस १२८ तोले, शतावरी का काढ़ा १२८ तोले, बकरी का दूध १२८ तोले, गिलोय का रस १२८ तोले, आँवले का रस १२८ तोले, गौ का घी १२८ तोले। कल्क के लिए पीपरि, मिसरी, मुनक्का, त्रिफला, नील कमल, मुलेठी, क्षीरकाकोली, गिलोय और कटेरी, सब मिलित ३२ तोले। यथाविधि घृत सिद्ध करके स्वच्छ बर्तन में रक्खे। इसका भोजन के आदि में, मध्य में तथा अन्त में पान करना श्रेष्ठ है। इसके पान से ही नेत्र के सब रोग नष्ट हो जाते हैं। रक्तज रोग, रक्तदुष्टि, नेत्र से रक्त का निकलना, रतौंधी, तिमिर, काच, नीलिका, पटल, अर्बुद, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, कठिनतर पक्ष्म-कोप तथा सब प्रकार के वातज, पित्तज तथा कफज नेत्ररोग, कफ और वात से उत्पन्न अदृष्टि (अन्धता) और मन्ददृष्टि तथा वातज और पित्तज स्राव, खुजली, दूरदृष्टि एवं आसन्नदृष्टि इत्यादि सब प्रकार के नेत्ररोगों को यह घृत नष्ट करता है। यह महात्रिफलाद्य घृत गिद्ध की सी दृष्टि करनेवाला तथा बल, वर्ण और अग्नि का बढ़ानेवाला है ॥ २०९-२१७ ॥

त्रिफलाद्य घृत ।

त्रिफला व्यूषणं द्राक्षा मधुकं कटुरोहिणी । प्रपौण्डरीकं सूक्ष्मैला विडङ्गं नागकेशरम् ॥ २१८ ॥ नीलोत्पलं शारिवे द्वे चन्दनं रजनीद्वयम् । कार्षिकैः पयसा तुल्यं त्रिगुणं त्रिफलारसम् ॥२१९॥ घृतप्रस्थं पचेदेतत् सर्वनेत्ररुजापहम् । तिमिरं दोषमास्रावं कामलां काचमर्बुदम् । २२० ॥ विसर्पं प्रदरं कण्डूं रक्तं श्वयथुमेव च । खालित्यं पलितञ्चैव केशानां पतनं तथा ॥ २२१ ॥ विषमज्वरमर्माणि शुक्रञ्चाशु व्यपोहति । अन्ये च बहवो रोगा नेत्रजा ये च वर्त्मजाः ॥ २२२ ॥ तान् सर्वान्नाशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा न चैतस्मात्परं किञ्चिदृषिभिः कश्यपादिभिः ॥ २२३ ॥ दृष्टिप्रसादनं दृष्टं तथा स्यात्त्रैफलं घृतम् ॥ २२४ ॥

कल्क के लिए त्रिफला, त्रिकटु, मुनक्का, मुलेठी, कुटकी, पुंडरिया, छोटी इलायची, वायबिडंग, नागकेशर, नीलकमल, अनन्तमूल, कालीसर, लालचन्दन, हल्दी और दारु-

हल्दी ; प्रत्येक वस्तु एक-एक तोले। घी १२८ तोले। दूध १२८ तोले। त्रिफला का काढ़ा ४ सेर ६४ तोले। यथाविधि घृत सिद्ध करे। यह त्रिफलाद्य घृत सब प्रकार के नेत्ररोग, तिमिर, नेत्रस्राव, कामला, काच, अर्बुद, विसर्प, प्रदर, खुजली रक्तस्राव, सूजन, गजापन, बाल पकना और गिरना, विषमज्वर, अर्म, फूली तथा अन्य बहुत से नेत्र और पलकों के रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकार को। कश्यप आदि ऋषियों ने दृष्टि को निर्मल करनेवाला त्रिफला घृत से बढ़कर कोई भी योग नहीं देखा था॥ २१८-२२४॥

त्रिफलाद्य घृत।

फलत्रिकं भीरुकषायसिद्धं कल्केन यष्टीमधुकस्य युक्तम्। सर्पिःसमं क्षौद्रचतुर्थभागं हन्यात्त्रिदोषं तिमिरं प्रवृद्धम्॥ २२५॥

त्रिफला का क्वाथ ४ सेर, शतावरी का क्वाथ ४ सेर, घी २ सेर, कल्क के लिये मुलेठी आध सेर। यथाविधि घृत सिद्ध कर ठंढा करे, पश्चात् आधा शहद मिलाकर उसका सेवन करने से बढ़ा हुआ सन्निपातज तिमिर-रोग नष्ट होता है॥ २२५॥

भृङ्गराज तैल।

भृङ्गराजरसप्रस्थे यष्टीमधुपलेन च। तैलस्य कुडवं पक्वं सद्यो दृष्टिं प्रसादयेत्। नस्याद्वलीपलितघ्नं मासेनैतन्न संशयः॥ २२६॥

भँगरे का रस १२८ तोले, कल्क के लिए मुलेठी ४ तोले, तिल का तेल ३२ तोले। यथाविधि तेल सिद्ध कर नस्य लेने से दृष्टि निर्मल होती है और एक महीने के सेवन से वलीपलित रोग अवश्य नष्ट होता है॥ २२६॥

निराकरोति नक्तान्ध्यं सगोमयरसा कणा। यथा रतेन रमणी रमणस्य महाबलम्॥ २२७॥

पीपरि को गोबर के रस में पीसकर अंजन करने से रतौंधी इस प्रकार नष्ट होती है जैसे रमणी के साथ रमण करने से पुरुष का बल नष्ट होता है॥ २२७॥

गोमय तैल।

गवां शकृत्क्वाथविपक्वमुत्तमं हितञ्च तैलं तिमिरेषु नस्यतः। घृतं हितं केवलमेव पैत्तिके तथाम्बुतैलं पवनासृगुत्थयोः॥ २२८॥

गौ के गोबर के काढ़े में तेल पकाकर नस्य लेने से तिमिर-रोग नष्ट होता है। पैत्तिक तिमिर रोग में केवल घृत का नस्य लेना ही हितकर है तथा वातज और रक्तज तिमिर-रोग में जलमिश्रित तैल का नस्य लेना हितकर है॥ २२८॥

नृपवल्लभ और घृत।

जीवकर्षभकौ मेदा द्राक्षांशुमती निदिग्धिका बृहती। मधुकं बला विडङ्गं मञ्जिष्ठा शर्करा रास्ना॥ २२९॥ नीलोत्पलं श्वदंष्ट्रा प्रपौण्डरीकं पुनर्नवा लवणम्। पिप्पल्यः सर्वेषां भागैस्त्वांशिकैः पिष्टैः॥ २३०॥ तैलं वा यदि वा सर्पिर्दत्त्वा क्षीरं च चतुर्गुणं पक्वम्। आत्रेयनिर्मितमिदं तैलं नृपवल्लभं सिद्धम्॥ २३१॥ तिमिरं पटलं काचं नक्तान्ध्यं चार्बुदं दिवान्ध्यञ्च। श्वेतञ्च लिङ्गनाशं नाशयति च नीलिकां व्यङ्गम्॥ २३२॥ मुखनासादौर्गन्ध्यं पलितञ्चाकालजं हनुस्तम्भम्। श्वासं कासं शोषं हिक्कां तथास्यं नेत्रे॥ २३३॥ मुखजंदन्तमर्शभेदं रोगं वाहुग्रहं शिरःस्तम्भम्। रोगानयोर्ध्वजत्रोः सर्वानचिरेण नाशयति॥ २३४॥ पञ्चाढ्यं कुडवं तैलं नस्यार्थे

नृपवल्लभम्। अन्तांशैः शाणिकैः कल्कैरन्यैर्भृङ्गादितैलवत् ॥ २३५ ॥

कल्क के लिये जीवक, ऋषभक, मेदा मुनक्का, शालपर्णी, कटेरी, बड़ी कटेरी, मुलेठी, खरेटी, वायविड़ंग, मँजीठ, शक्कर (खांड), रास्ना, नीलकमल, गोखुरू, पुंडरिया, सोंठ, सैंधानमक और पीपरि; प्रत्येक एक एक तोला। घी या तेल १२८ तोले, गोदुग्ध १ सेर ३२ तोले। यथाविधि तैल या घृत सिद्ध करे। यह नृपवल्लभ तेल आत्रेयजी का बनाया हुआ है। यह तिमिर, पटल, काच, रतौंधी, अर्बुद, दिनान्ध्य, श्वेतता, लिङ्गनाश, नीलिका, स्यह, मुख और नाक की दुर्गन्धता, अकालपलित, हनुस्तम्भ, श्वास, कास, शोष, हिक्का, अर्दितआकारण्य, मुख और जिह्वा के रोग, आधासीसी, बाहुस्तम्भ, शिरःस्तम्भ और ऊर्ध्वजत्रु रोगों को शीघ्र नष्ट करता है। यदि १६ तोले तेल या घृत सिद्ध करना हो, तो कल्क द्रव्य तीन-तीन मासे तथा दूध ६४ तोले लेना चाहिए ॥ २२६-२३५ ॥

अजित तैल।

तैलस्य पचेत् कुडवं मधुकस्य पलेन कल्कपिष्टेन। आमलकरसमस्थं क्षीरप्रस्थेन संयुतं कृत्वा ॥ २३६ ॥ अजितं नाम्ना तैलं तिमिरं हन्यान्निमिमोक्तम्। विमलां कुरुते दृष्टिं नष्टामयानयेत्तद्वत् ॥ २३७ ॥

इति दृष्टिजेषु योगाः।

तिल का तेल १६ तोले, कल्क के लिये मुलेठी ४ तोले, आंवला का रस १२८ तोले, दूध १२८ तोले। विधिपूर्वक तेल सिद्ध करके नस्य लेने से यह अजित-नामक तेल तिमिर रोग को नष्ट करके दृष्टि को स्वच्छ करता है तथा गई हुई दृष्टि को फिर वैसी ही कर देता है। ॥ २३६-२३७ ॥

अर्मचिकित्सा।

अर्म तु छेदनीयं स्यात् कृष्णमाप्तं भवेद्यदा। बडिशाविद्धं मनुष्यस्य त्रिभागश्चात्र वर्जयेत् ॥ २३८ ॥

जब अर्मरोग बढ़कर काले भाग तक पहुँच जाय तब उसे बडिश यंत्र द्वारा विद्ध करके छेदन करना चाहिए; किन्तु नेत्र के तीन हिस्से छोड़ देने चाहिए ॥ २३८ ॥

पिप्पली त्रिफला लाक्षा लौहचूर्णं ससैन्धवम्। भृङ्गराजरसे पिष्टं गुडिकाञ्जनमिष्यते ॥ २३९ ॥ अर्मसतिमिरं काचं कण्डुं शुक्रं तथार्जुनम्। अञ्जनान्नेत्ररोगांश्च हन्यान्निरवशेषतः ॥ २४० ॥

पीपरि, त्रिफला, लाख और लोहचूर्ण इनको भँगरे के रस में घोटकर गोली बनावे। इसका अंजन करने से अर्म, तिमिर काच, कण्डू, फुली तथा अर्जुन आदि सब प्रकार के नेत्र रोग नष्ट होते हैं ॥ २३९-२४० ॥

पुष्पाख्यतार्क्ष्यजसितोदधिफेनशङ्खसिन्धूत्थगैरिकशिलामरिचैः समांशैः। पिष्टैस्तु माक्षिकरसेन रसक्रियेयं हन्त्यर्मकाचतिमिरार्जुनवर्त्मरोगान् ॥ २४१ ॥

पुष्पाख्य (पुष्पकासीस या पुष्पाञ्जन), रसौत, शक्कर, समुद्रफेन, शङ्खनाभि, सेंधानमक, गेरू, मैनशिल और कालीमिर्च; इनको समभाग ले खूब महीन पीसकर शहद में मिलावे। अंजन करने से यह रसक्रिया अर्म, काच, तिमिर, अर्जुन और वर्त्मज रोगों को नष्ट करती है ॥ २४१ ॥

शुक्तिका चिकित्सा।

कौम्भस्य सर्पिषः पानैर्विरेकालेपसेचनैः स्वादुशीतैः प्रशमयेच्छुक्तिकामञ्जनैस्ततः ॥ २४२ ॥

दश वर्ष के पुराने घी के पान, विरेचन, लेप और सिंचन से तथा मधुर और शीतल औषधियों से बने अंजनों से शुक्तिका रोग को शान्त करना चाहिए ॥ २४२ ॥

प्रवालमुक्तावैदूर्यशङ्खस्फटिकचन्दनम् । सुवर्णरजतक्षौद्रमञ्जनं शुक्तिकापहम् २४३

मूँगा, मोती, वैदूर्य, शंखनाभि, फिटकरी, लालचन्दन, जारित सुवर्ण, जारित चाँदी; इनका अंजन बनाकर शहद में मिलाकर आँजने से शुक्तिकारोग नष्ट होता है ॥ २४३ ॥

अर्जुनचिकित्सा।

शङ्खक्षौद्रेण संयुक्तः कनकः सैन्धवेनवा । सितयार्णवफेनो वा पृथगञ्जनमर्जुने २४४ पैत्तं विधिमशेषेण कुर्यादर्जुनशान्तये २४५

अर्जुन रोग में शंखनाभि और शहद; निर्मली और सेंधानमक अथवा खाँड और समुद्रफेन का अंजन करना चाहिए तथा अर्जुन रोग की शान्ति के लिये पित्तज नेत्ररोगोक्त संपूर्ण चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २४४–२४५ ॥

पिष्टक चिकित्सा।

वैदेहीं श्वेतमरिचं सैन्धवं नागरं समम् । मातुलुङ्गरसैः पिष्टमंजनं पिष्टकापहम् ॥ २४६ ॥

इति शुक्रजेषु योगाः।

पीपरि, सफेद मिर्च, सेंधानमक और सोंठ; इनको समभाग ले बिजौरे नींबू के रस में घोट कर अंजन करने से पिष्टकरोग शान्त होता है ॥ २४६ ॥

उपनाह चिकित्सा।

भित्त्वोपनाहं कफजं पिप्पलीमधुसैन्धवैः । विलिखेन्मण्डलाग्रेण प्रच्छयित्वा समन्ततः ॥ २४७ ॥

कफज उपनाह रोग को भेदन करके मण्डलाग्र शस्त्र से लेखन करे पश्चात् पोंछकर पीपरि, शहद और सेंधानमक से घर्षण करना चाहिए ॥ २४७ ॥

पथ्याक्षधात्रीफलमध्यबीजैस्त्रिद्व्येकभागैर्विदधीत वर्त्तिम् । तयाञ्जयेदस्रमतिप्रगाढमक्ष्णोर्हरेत् कोपमतिप्रवृद्धम् २४८

हड़ की मींगी ३ भाग, बहेड़ा की मींगी २ भाग और आँवले की मींगी १ भाग; इनको जल से पीसकर बत्ती बनावे। इसका अंजन करने से नेत्रों की सुर्खी और अत्यन्त बढ़ा हुआ नेत्र-कोप शान्त होता है ॥ २४८ ॥

स्रावेषु त्रिफलाक्वाथं यथादोषं प्रयोजयेत् । क्षौद्रेणाज्येन पिप्पल्या मिश्रं वेध्येच्छिरां तथा ॥ २४९ ॥

नेत्रस्राव रोग में दोषानुसार त्रिफला का काढ़ा शहद, घी अथवा पीपरि के चूर्ण के साथ पान करना चाहिए। तथा शिरावेधन कराना चाहिए ॥ २४९ ॥

त्रिफलातुत्थकासीससैन्धवैः सरसाञ्जनैः । रसक्रिया कृमिग्रन्थौ भिन्ने स्यात् प्रतिसारणम् ॥ २५० ॥

इति सन्धिजेषु योगाः।

त्रिफला के काढ़े में तूतिया, कसीस, सेंधा नमक और रसौत मिलाकर रसक्रिया तैयार करे। जब कृमिग्रन्थि फूट जाय तब उस पर रसक्रिया को लगाना चाहिए ॥ २५० ॥

सप्तामृतलौह।

त्रिफलारज आयसं चूर्णं सहयष्टिमधुकं समांशयुक्तम् । मधुना सर्पिषा दिनान्ते तरुणो निष्परिहारमाददीत २५१ तिमिरक्षतरक्तराजिकण्डूक्षणदान्ध्यार्बुदतोयदाहशूलान् । पटलं सह काचपिल्लकं शमयत्येव निषेवितः प्रयोगः ॥ २५२ ॥ न च केवलमेव लोचनानां विहितो रोगनिबर्हणाय पुंसाम् । दशनश्रवणोर्ध्वकण्ठजानां प्रशमे हेतुरयं महागदानाम् २५३ पलितानि विनाशयेत्तथाग्निं चिरनष्टं कुरुते रविप्रचण्डम् । दयितामुजपंजरोपगूढः स्फुटचन्द्रामरणासु यामिनीषु ॥ सुरतानि चिरं निषेवतेऽसौ पुरुषो योगवरं निषेव-

माणः ॥ २५४ ॥ मुखेन नीलोत्पलचारुगन्धिना शिरोरुहैरंजनमेचकप्रभैः ॥ भवेच गृध्रस्य समानलोचनः सुरैर्नरो वर्षशतञ्च जीवति ॥ २५५ ॥

हड़, बहेड़ा, आँवला, लोहभस्म तथा मुलेठी; ये सब द्रव्य समभाग लेकर चूर्ण करे। सायंकाल के समय शहद और घी मिलाकर सेवन करने से यह सप्तामृत लौह तिमिर, व्रण, लालिमा, खुजली, रतौंधी, अर्बुद, आँख से जल बहना, दाह, शूल, पटल, काच और पिल्लक; इन रोगों को अवश्य शान्त करता है। यह केवल नेत्ररोगों को ही नष्ट करने के लिये नहीं है, किन्तु दाँत, कान तथा कण्ठ से ऊपर होनेवाले महारोगों को शान्त करने का भी यह कारण है। अकालपलित को नष्ट कर बहुत दिन से नष्ट हुई जठराग्नि को प्रचण्ड करता है तथा रतिशक्ति को बढ़ाता है। इसके सेवन से मनुष्य कमलसा सुन्दर एवं सुगन्धित मुखवाला, अंजन से काले बालवाला और गिद्ध की-सी दृष्टिवाला तथा सौ वर्ष की आयुवाला होता है। मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक ॥ २५१—२५५ ॥

नेत्राशनि रस।

अभ्रं ताम्रं तथा लौहं माक्षिकञ्च रसाञ्जनम्। पातनायन्त्रसंशुद्धं गन्धकं नवनीतकम् ॥ २५६ ॥ पलप्रमाणं प्रत्येकं प्रहीयाच्च विधानवित्। सर्वमेकीकृतं चूर्णं वैद्यैः कुशलकर्मभिः ॥ २५७ ॥ ततस्तु भावना कार्या त्रिफलाभृङ्गराजकैः। ततः प्रक्षेपचूर्णञ्च पिप्पलीमूलयष्टिका ॥ २५८ ॥ एला पुनर्नवा दारु पाठा भृङ्गशटीत्वचाः। नीलोत्पलं चन्दनं च श्लक्ष्णचूर्णञ्च दापयेत् ॥ २५९ ॥ माषमेकं प्रदातव्यं घृतश्रीमधुमर्दितम्। मर्दनं लौहदण्डेन पात्रे लौहमये दृढे ॥ २६० ॥ अनुपानं प्रयोक्तव्यमुष्णेन वारिणा तथा। यावतो नेत्ररोगांश्च पानादेव विनाशयेत् ॥ २६१ ॥ नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे। अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पिष्टे चैव चिरन्तने ॥ २६२ ॥ नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपित्तकफेषु च ॥ सर्वनेत्रामयं हन्याद् वृत्तमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २६३ ॥

अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लौहभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, रसौत, पातनायन्त्र द्वारा शोधित आँवलासार गन्धक हरएक ४ तोले। इन्हें एकत्र मिलाकर त्रिफला के क्वाथ तथा भाँगरे के रस से ७ बार भावना देकर पीपलामूल, मुलेठी, छोटी इलायची, साँठी, देवदारु, पाढ़, भाँगरा, कचूर, वच, नीलकमल, लालचन्दन हरएक का चूर्ण १ माशा परिमाण में डाले। पश्चात् घृत और शहद के साथ लौहपात्र में लौहदण्ड द्वारा घोट ले। मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक। अनुपान—उष्ण जल। इसके सेवन से रतौंधी, तिमिर, काच, नीलिका, पटल, अर्बुद, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, पुरातन पिष्टक आदि सम्पूर्ण वातज, पित्तज एवं कफज नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ २५६—२६३ ॥

तिमिरहरलौह।

त्रिफलापद्मयष्ट्याह्वयुक्तं सारं निषेवितम्। लौहं तिमिरकं हन्ति सुधांशुस्तिमिरं यथा ॥ २६४ ॥

त्रिफला, पद्म (श्वेत कमल), मुलेठी, हरएक १ भाग। लौहभस्म सम्पूर्ण के समान। इन्हें एकत्र मिलाकर योग्य मात्रा में सेवन करावे। मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक। यह तिमिर को नष्ट करता है ॥ २६४ ॥

माक्षिकादिवटी।

माक्षिकं तोलकमितं तदर्द्धं गन्धकं रसम्। तथाभ्रञ्च समादाय मुक्तास्वर्णौ च पादिकौ ॥ २६५ ॥ काकमाचीपत्ररसैस्त्रिधा सम्भाव्य यत्नतः। रक्तिद्वयमिता

कार्या माक्षिकादिवटी शुभा ॥ २६६ ॥ वेष्टिता पद्मपत्रेण धान्यराशौ निधापिता। यथायोगानुपानेन सेविता संहरेन्नृणाम् ॥ नेत्ररोगांश्च निखिलान् नानोपद्रवसंयुतान् ॥ २६७ ॥

स्वर्णमाक्षिक भस्म १ तोला, गन्धक आधा तोला, पारा आधा तोला, अभ्रकभस्म आधा तोला, मुक्ताभस्म चौथाई तोला, स्वर्णभस्म चौथाई तोला, इन्हें एकत्र कर मकोय के रस से तीन बार भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। इन गोलियों को एक कमल के पत्ता में लपेट कर अनाज के ढेर में रक्खे। कुछ दिन के परचात् निकालकर त्रिफलाकाथ आदि के अनुपान के साथ सेवन कराने से अनेक उपद्रवयुक्त नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ २६२--२६७ ॥

मधुकाद्यलौह ।

मधुकं त्रिफलाचूर्णं लौहचूर्णं तथैव च। भक्षयेन्मधुसर्पिर्भ्यामक्षिरोगप्रशान्तये ॥ १६८ ॥

मुलेठी, हड़, बहेड़ा, आँवला और लोहभस्म; इनको समभाग ले घी और शहद मिलाकर सेवन करने से नेत्ररोग शान्त होते हैं। मात्रा--१ रत्ती से २ रत्ती तक ॥ २६८ ॥

नयनचन्द्रलौह ।

त्रिकटु त्रिफला शृङ्गी शटी रास्ना महौषधम्। द्राक्षा नीलोत्पलं चैव काकोली मधुयष्टिका ॥ २६९ ॥ वाट्यालकं केशरञ्च कण्टकारीद्वयं तथा। लौहाभ्रयोः पलं दत्त्वा भावयेदौषधैरिमैः ॥ २७० ॥ त्रिफलाकाथतैलेन भृङ्गराजरसेन च। भावयित्वा वटी कार्या गुंजाद्वयमिताः शुभाः। यावन्तो नेत्ररोगाश्च तान्निहन्ति न संशयः ॥ २७१ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपरि, हड़, बहेड़ा, आँवला, काकड़ासिंगी, कचूर, रास्ना, सोंठ, मुनक्का, नीलकमल, काकोली, मुलेठी, खरेंटी, नागकेशर, कटेरी, बड़ी कटेरी; सब मिलित ८ तोले। लोहभस्म ४ तोले, अभ्रकभस्म ४ तोले। सबको एकत्र कर इसमें क्रमशः त्रिफला काथ, तिल के तेल और भँगरा के रस की भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। इसका सेवन करने से नेत्र के संपूर्ण रोग नष्ट होते हैं ॥ २६९--२७१ ॥

त्रिफला चूर्ण ।

एका हरीतकी योज्या द्वौ च योज्यौ बिभीतकौ चत्वार्यामलकान्येव त्रिफलैषा प्रकीर्तिता ॥ २७२ ॥ त्रिफलामेहशोथघ्नी नाशयेद्विषमज्वरान् ॥ २७३ ॥ दीपनी श्लेष्म पित्तघ्नी कुष्ठहन्त्र रसायनी सर्पिर्मधुभ्यां संयुक्ता सैव नेत्रामयाञ्जयेत् ॥ २७४ ॥

एक हरड दो बहेड़ा और और चार आँवला, मिलाने से त्रिफला चूर्ण कहा जाता है। त्रिफला प्रमेह शोथ कफ तथा पित्तको नष्ट करती है एवं दीपन, और रसायन होती है। नेत्र रोगों में त्रिफला को शहद, और घी, के साथ खाने से सब नेत्ररोग शान्त हो जाते हैं। ॥ २७१--२७४ ॥

टिप्पणी—त्रिफला के तीनों फल गुठली निकले समभाग होने चाहिए। गिनती में समता हो या न हो।

नेत्ररोग में पथ्य ।

आश्च्योतनं लङ्घन मञ्जनं च स्वेदो विरेकः प्रतिसारणंच ॥ २७५ ॥ मयूरणांनस्यमसृग्विमोक्षः शस्त्र क्रियालेपन माज्यपानम्। सेको मनोवृत्तिरथाङ्घ्रिपूजा मुद्गा यवालोहिताशालयश्च ॥ २७६ ॥ लावोमयूरोवन कुक्कुटश्च कूर्मः कुलिङ्गोऽ थकपिञ्जलश्च। कौम्भं हविर्वन्य पुलस्य

यूषः पेयाविलेपीलशुनं पटोलम् ॥ २७७ ॥

धार्ताकककोटककारवेल्लं नवीनमोचं नवमूलकञ्च । पुनर्नवामार्कवकाकमाचीपत्तूरशाकानि कुमारिका च ॥ २७८ ॥ सेको मनोह्वचिरथाङ्घ्रिपूजा मुद्रा यवा लोहितशालयश्च । लावो मयूरो वनकुक्कुटश्च कूर्मः कुलिङ्गोऽथ कपिञ्जलश्च । द्राक्षा च कुस्तुम्बुरुमाणि मन्थ लोध्रं वराक्षौद्रमुपानहौ नारीपयश्चन्दन मिन्दु खण्डितं तिक्तानि सर्वाणि लघूनि चापि ॥ २७८ ॥ विजानता पथ्यमिदं प्रयुक्तं यथामलं दोषचयं निहन्ति ॥ २८० ॥

आश्च्योतन लङ्घन अञ्जनस्वेदन विरेचन प्रतिसारण प्रपूरण नस्य रक्तमोक्षण शस्त्र क्रिया लेप घृतपान सेवन, मन, शुद्धि पैरों की स्वच्छता मूँग, जौ, लालशालि चावल, लावा, पक्षी, मोर, वन का मुर्गा, कच्छप, (कछुआ) चिड़िया, सफेद तीतर, इनका मांस १०० वर्ष पुराना घी, जंगली कुलथी का यूष पेया, विलेपी, लहसन, परवल, बैंगन, करोंदा, करेला, कच्चा केला, कच्ची मूली, साठी, भंगरा, मकोय, शालिञ्चशाक, ग्वारपाठा, परिषेचन, चित्तनिरोध (संयम), पैर आदि को स्वच्छ रखना, मूँग औ लाल शालि, लावपक्षी, मोर, वनमुर्गा, कछुआ, चिड़िया, सफेद तीतर, दाख, धनिया, मथा ममक लोधी, त्रिफला शहद का सेवन जूता पहिनना पहली स्त्री का दूध (आंख में डालना) चन्दन, कपूर, कड़वे पदार्थ हलके पदार्थ यह सब दोषा नुसार नेत्ररोगी को सेवन कराने चाहिए । इससे दोषसमूह नष्ट होते हैं ॥ २७१–२८० ॥

अपथ्य ।

क्रोधं शुचं मैथुनमश्रुवायुविण्मूत्रनिद्रावमिवेगरोधान् । सूक्ष्मेक्षण दन्तविघर्षणं च स्नानं निशाभोजनमातपञ्च ॥ २८१ ॥ द्रवं रजोधूम निषेवणं च ह्रक्स्वेदनं चापि विरुद्धमन्नम् प्रजल्पनं छर्दन -मम्बुपानं मधूक पुष्पं दधि वेत्र शाकम् ॥ २८२ ॥ कालिन्द पिण्याक विरूढ कानि मत्स्यं सुरामांसमजाङ्गलंच ॥ २८३ ॥ ताम्बूलमम्लं लवणं विदाहि तीक्ष्णं कटूष्णं गुरुचान्नपानम् । नरो न सेवेत हिताभिलाषी रोगेषु सर्वेषु दृगाश्रयेषु ॥ २८४॥

अत्र सर्वचूर्णसमं लौहाभ्रं ग्राह्यम् ।
इति भैषज्यरत्नावल्यांनेत्ररोगाधिकारः समाप्तः ।

क्रोध, शोक, मैथुन, आँसू, अपान-वायु, पुरीष, मूत्र, निद्रा, कै, इनके वेगों को रोकना, सूक्ष्म पदार्थों को देखना, दांतों को कटकटाना, स्नान रात्रिभोजन, धूपसेवन, पतले पदार्थ, धूल धुआँ, का सेवन आंख में स्वेदन, विपरीत अन्न सेवन अधिक जलना, वमन, अधिक जल पीना, महुए, के फूल, दही, बेत की कोपल, तरबूज तिलकुरा अंकुरदार अन्न, मछली, शराब, जंगली (जांगल देश के जीवों को छोड़कर) अन्य जीवों का मांस, पान चबाना, अम्ल, लवण, विदाहि, कटु, उष्ण एवं गुरु अन्नपान, इनका सेवन हित चाहनेवाले रोगी को सर्व नेत्र रोगों में न करना चाहिए ॥ २८१–२८४ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य रत्नावल्यां रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां नेत्ररोगाधिकार समाप्त ।

अथ नासारोगाधिकारः।

सर्वेषु पीनसेष्वादौ निर्वातागारगो भवेत्। स्नेहस्वेदप्रधमनं धूमं गण्डूषधारणम्॥ १॥

सब प्रकार के पीनस रोग में पहले निर्वात घर में रहना, स्नेहपान, स्वेदन नस्य, धूमपान और गण्डूष धारण करना श्रेष्ठ है॥ १॥

वासो गुरूष्णं शिरसः सुघनं परिवेष्टनम्। लघूष्णं लवणं स्निग्धमुष्णं भोजनमद्रवम्॥ २॥

मोटा, भारी तथा गर्म कपड़ा शिर पर बांधना तथा हल्का, गर्म, नमकीन, चिकना और पतलापनरहित भोजन पीनस रोग में हितकारी है॥ २॥

पञ्चमूलीभृतं क्षीरं स्याच्चित्रकहरीतकी। सर्पिर्गुडः षडङ्गश्च यूषःपीनसशान्तये॥३॥

पञ्चमूल से सिद्ध किया हुआ दूध, चित्रक, हरीतकी, यक्ष्मा रोग में कहा हुआ सर्पिर्गुड और षडङ्ग यूष के सेवन करने से पीनस रोग शान्त होता है॥ ३॥

व्योषाद्य चूर्ण।

व्योषचित्रकतालीशतिन्तिडीकाम्लवेतसम्। स च व्याजाजितुल्यांशमेलात्वक्पत्रपादिकम्॥ ४॥ व्योषादिकं चूर्णमिदं पुराणगुडसंयुतम्। पीनसश्वासकासघ्नं रुचिस्वरकरं परम्॥ ५॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, चीता की जड़, तालीशपत्र, तिन्तिड़ीक, अमलवेत, चव्य और जीरा, प्रत्येक एक एक भाग। छोटी इलायची, दालचीनी और तेजपात; प्रत्येक चौथाई भाग। सबका चूर्ण कर उस चूर्ण के समान गुड़ मिलावे। यह व्योषादिक चूर्ण पीनस, श्वास और खाँसी को नष्ट करता तथा रुचि और स्वर को बढ़ाता है॥ ४-५॥

पाठादि तैल।

पाठाद्विरजनीमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः। दन्त्या च तैलं संसिद्धं नस्यं सम्यक्पीनसे॥ ६॥

कल्क के लिए—पाढ, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, पीपरि, चमेली के पत्ते, और दन्ती की जड़, सब मिलाकर आध सेर। पाकार्थ जल ८ सेर। तेल २ सेर। यथाविधि तेल सिद्ध कर पकी हुई पीनस में नस्य देना चाहिए॥ ६॥

व्याघ्री तैल।

व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुसुरसाव्योपसैन्धवैः। पाचितं नावनं तैलं पूतिनासागदापहम्॥ ७॥

कल्क के लिए—छोटी कटेरी, दन्ती की जड़, वच, सहिंजन की छाल, तुलसी, सोंठि, मिर्च, पीपरि और सेंधानमक; सब मिलित आध सेर। पाकार्थ जल ८ सेर। तेल २ सेर। विधि से तेल सिद्ध कर नस्य लेने से पूतिनस्य रोग (नाक से दुर्गन्ध आना) नष्ट होता है॥ ७॥

त्रिकट्वादि तैल।

त्रिकटुकविडङ्गसैन्धवबृहतीफलशिग्रुदन्तीभिः। तैलं गोजलसिद्धं नस्यं स्यात् पूतिनस्यस्य॥ ८॥

सोंठि, मिर्च, पीपरि, वायविडंग, सेंधानमक, बड़ी कटेरी के फल, सहिंजन की छाल और दन्ती की जड़; मिलित आध सेर। गोमूत्र ८ सेर। तेल २ सेर। इन द्रव्यों द्वारा सिद्ध किये हुए तेल का नस्य लेने से पूतिनस्य रोग शान्त होता है॥ ८॥

कलिङ्गाद्यवपीड।

कलिङ्गहिंगुमरिचलाक्षासुरसकट्फलैः व्योषोग्राशिग्रुजन्तुघ्नैरवपीडः प्रशस्यते॥ ९॥ तैरेव मूत्रसंयुक्तैः कटुतैलं विपा-

चयेत्। अपीनसे पूतिनस्ये शमनं परिकीर्त्तितम् ॥ १० ॥

इन्द्रजौ, हींग, मिर्च, लाख, तुलसी, कायफल, सोंठि, मिर्च, पीपरि, बच, सहिजन की छाल और वायविडङ्ग; इनके स्वरस की नास लेने से अथवा उपर्युक्त द्रव्यों के कल्क और गोमूत्र द्वारा सिद्ध किये हुए तेल का नस्य लेने से पीनस और पूतिनस्य रोग नष्ट होते हैं ॥ ९-१० ॥

नासापाक की चिकित्सा।

नासापाके पित्तहरं विधानं कार्यं सर्वं बाह्यमाभ्यन्तरं च। हृत्वा रक्तं क्षीरिवृक्षत्वचश्च योज्याः सेके सर्पिषश्च प्रदेहाः ॥ ११ ॥

नासापाक रोग में पित्त को नाश करनेवाली सब प्रकार की बाह्य तथा आन्तरिक चिकित्सा करनी चाहिए। रक्तमोक्षण करके बरगद आदि दूधवाले वृक्षों की छाल के काढे से सेक देना चाहिए और घी का लेप करना चाहिए ॥ ११ ॥

पूयास्रे रक्तपित्तघ्नाः कषाया नावनानि च।

नाक से पूयस्राव तथा रक्तस्राव होने पर रक्त-पित्त-नाशक काढ़ों की तथा नस्यों की योजना करनी चाहिए।

क्षवथुनाशक योग।

शुण्ठीकुष्ठकणाबिल्वद्राक्षाकल्ककषायवत्। साधितं तैलमाज्यं वा नस्यं क्षवथुरुक्प्रणुत् ॥ १२ ॥

सोंठ, कूट, पीपरि, बिल्वमूल की छाल और दाख; इनके काढ़े से तथा कल्क से तैल अथवा घृत सिद्ध कर नस्य लेने से क्षवथुरोग (छींक आना) शान्त होता है ॥ १२ ॥

दीप्ते रोगे पैत्तिके पैत्तिकं तु कार्यं कुर्यान्मधुरं शीतलं च। नासादाहे स्नेहपानं प्रधानं स्निग्धा धूमामूर्द्धवस्तिश्च नित्यम् ॥ १३ ॥

पैत्तिक दीप्त रोग (अर्थात् जिस रोग में नासिका के छिद्रों में अत्यन्त दाह और नासिका से धूम निकलता मालूम हो) में पित्तनाशक, मधुर और शीतल चिकित्सा करनी चाहिए। नासादाह रोग में स्नेहपान प्रधान उपाय है तथा स्निग्ध धूम का पान और शिरोबस्ति का नित्य सेवन करना हितकर है ॥ १३ ॥

प्रतिश्यायचिकित्सा।

वातिके तु प्रतिश्याये पिबेत् सर्पिर्यथाबलम्। पञ्चभिर्लवणैः सिद्धं प्रथमेन गणेन च। नस्यादिषु विधिं कृत्स्नमवेक्षेतार्दितेरितम् ॥ १४ ॥

वातिक प्रतिश्याय (जुकाम) में पञ्चलवणों के कल्क से या प्रथमगण (विदार्यादिगण) के कल्क और क्वाथ से सिद्ध किये हुए घी का पान करना हितकर है। नस्य आदि के सेवन के समय अर्दित रोगोक्त संपूर्ण विधि का ध्यान रखना चाहिए ॥ १४ ॥

पित्तरक्तोत्थयोः पेयं सर्पिर्मधुरकैः शृतम्। परिषेकान् प्रदेहांश्च कुर्यादपि च शीतलान् ॥ १५ ॥

पित्तज और रक्तज प्रतिश्याय रोग में मधुरादि (काकोल्यादि) गण से सिद्ध घृत का पान तथा शीतल ओषधियों के क्वाथ का सिंचन और शीतल लेप करना चाहिए ॥ १५ ॥

कफजे सर्पिषा स्निग्धं तिलमाषविपक्वया। यवाग्वा वामयित्वा या कफघ्नं क्रममाचरेत् ॥ १६ ॥

कफज प्रतिश्याय रोग में रोगी को पहले घृतपान कराकर स्निग्ध करना चाहिए। पश्चात् तिल और उड़द के संयोग से पकाई हुई यवागू का पान कराकर वमन कराना चाहिए। तदनन्तर कफनाशक चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १६ ॥

दार्व्यङ्गुदीनिकुम्भैश्च क्रिणिहाः स्वरसेन च। वर्त्तयोऽथ कृता योज्या धूमपाने यथाविधि॥ १७॥

दारुहल्दी, हिंगोटफल और दन्ती की जड़; इनके चूर्ण को लटजीरा के स्वरस में घोटकर बत्ती बनावे। इस बत्ती का विधि से धूमपान करना चाहिए॥ १७॥

अथवा सघृतान् सक्तून् कृत्वामलकसम्पुटे। नवप्रतिश्यायवतां धूमं वैद्यः प्रयोजयेत्॥ १८॥

यव के सत्तू को घृतमिश्रित कर आँवले के कल्क द्वारा बनाए हुए सकोरे में रखे और उस पर अग्नि रखकर छेदवाले सकोरे से ढक दें। छेद से जो धूआँ निकले उसे नली द्वारा नये प्रतिश्यायवाले को पान कराना चाहिए॥ १८॥

यः पिबति शयनकाले शयनारूढः सुशीतलं भूरि। सलिलं पीनसंयुक्तो मुच्यते तेन रोगेण॥ १६॥

पीनसवाला सोने के समय शय्या पर बैठकर जो बहुत-सा शीतल जल पीता है वह वातपित्तोल्वण पीनस रोग से छूट जाता है॥ १९॥

पुटपक्वं जयापत्रं सिन्धुतैलसमायुतम्। प्रतिश्यायेषु सर्वेषु शीलितं परमौषधम्॥ २०॥

जयन्ती के पत्तों का पुटपाक कर उसमें सेंधानमक और तेल मिलाकर सेवन करना सब प्रकार के प्रतिश्याय में अत्यन्त हितकर है॥ २०॥

सोषणं गुडसंयुक्तं स्निग्धदध्यम्लभोजनम्। नवप्रतिश्यायहरं विशेषात् कफपाचनम्॥ २१॥

स्निग्ध खट्टे दही में गुड़ और कालीमिर्च मिलाकर सेवन करने से नया प्रतिश्याय नष्ट हो जाता है और अधिकतर कफ पच जाता है॥ २१॥

प्रतिश्याये नवे शस्तो यूषश्चिञ्चाच्छदोद्भवः। ततः पक्वं कफं ज्ञात्वा हरेच्छीर्षविरेचनैः॥ २२॥

नये प्रतिश्याय में इमली के पत्तों का क्वाथ पीना श्रेष्ठ है। कफ के पक जाने पर शिरोविरेचन द्वारा उसे निकालना चाहिए॥ २२॥

शिरसोऽभ्यञ्जनस्वेदनस्यकट्वम्लभोजनैः। वमनैर्घृतपानैश्च तान् यथास्वमुपाचरेत्॥ २३॥

कफ निकालनेवाले तेल की शिर पर मालिश स्वेदन, नस्य, कटु और अम्लयुक्त भोजन, वमन और घृतपान आदि का दोषानुसार प्रयोग करना सब प्रकार के प्रतिश्याय में हितकर है॥ २३॥

भक्षयेत्तु भुक्तमात्रे सलवणसुस्विन्नमाषमत्युष्णम्। स जयति सर्वसमुत्थं चिरजातं च प्रतिश्यायम्॥ २४॥

भोजन करने के पश्चात् नमकयुक्त गरम-गरम सिझाये हुए उड़दों का भोजन करना सब प्रकार के पुराने प्रतिश्याय को नष्ट करता है॥ २४॥

पिप्पल्यः शिग्रुबीजानि विडङ्गं मरिचानि च। अवपीडः प्रशस्तोऽयं प्रतिश्यायनिवारणः॥ २५॥

पीपरि, सहिंजने के बीज, वायविडङ्ग और कालीमिर्च, इनके स्वरस का नस्य प्रतिश्याय को नष्ट करने में श्रेष्ठ है॥ २५॥

समूत्रपिष्टाश्चोद्दिष्टाः क्रियाः कृमिषु योजयेत्। धावनार्थं कृमिघ्नानि भेषजानि च बुद्धिमान्॥ शेषाणां तु विकाराणां यथास्वं स्याच्चिकित्सितम्॥ २६॥

प्रतिश्याय रोग में यदि नाक में कीड़े पड़ गये हों, तो कृमिघ्न औषधियों को गोमूत्र में पीसकर नस्य देना चाहिए और नाक धोने के

लिये कृमिघ्न ओषधियों का काढ़ा काम में लाना चाहिए। शेष विकारों (नासार्बुद तथा नासार्श आदि) की दोषानुसार चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २६ ॥

करवीराद्य तैल।

रक्तकरवीरपुष्पं जात्यशनमल्लिकायारच। एतैः समस्तैस्तैलं नासार्शो नाशनं पक्वम् ॥ २७ ॥

लाल कनेर के फूल, चमेली के फूल, असना के फूल और मोतिया के फूल; इनके द्वारा सिद्ध किये हुए तैल का नस्य लेने से नासार्श का नाश होता है ॥ २७ ॥

शिखर्यादि तैल।

गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैन्धवैः। सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलं नासार्शसां हितम् ॥ २८ ॥

कल्क के लिये गृह धूम, पीपरि, देवदारु, जवाखार, करंज, सेंधानमक और लटजीरा के बीज; सब मिलाकर आध सेर, तेल २ सेर, पाकार्थ जल ८ सेर। यथाविधि तेल सिद्ध कर नस्य लेने से नासार्शरोग नष्ट होता है ॥ २८ ॥

चित्रक तैल।

चित्रकचविकादीप्यकनिदिग्धिकाकरञ्जबीजलवणार्कैः। गोमूत्रयुतैः सिद्धं तैलं नासार्शसां शान्त्यै ॥ २९ ॥

चीता की जड़, चव्य, अजवाइन, छोटी कटेरी करञ्ज के बीज, सेंधानमक और मदार की जड़; इनका कल्क आध सेर, गोमूत्र ८ सेर, तेल २ सेर। विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर नस्य लेने से नासार्श नष्ट होता है ॥ २९ ॥

चित्रक हरीतकी।

चित्रकस्यामलक्याश्च गुडूच्या दशमूलजम्। शतं शतं रसं दत्त्वा पथ्याचूर्णाढकं गुडात् ॥ ३० ॥ शतं पचेद्घनीभूते पलद्वादशकं क्षिपेत्। व्योषत्रिजातयोः क्षारात् पलार्द्धमपरेऽहनि ॥ ३१ ॥ मस्थार्द्धं मधुनो दत्त्वा यथाग्न्यद्यादयन्त्रणः। वृद्धयेऽग्नेः क्षयं कासं पीनसं दुस्तरं कृमीन्। गुल्मोदावर्त्तदुर्नामश्वासान् हन्ति सुदारुणान् ॥ ३२ ॥

चीत की जड़ का काढ़ा ४ सेर, आँवले का रस ४ सेर, गिलोय का काढ़ा ४ सेर और दशमूल का काढ़ा ४ सेर, सबको एकत्र कर इसमें ३ सेर १६ तोले हड़ का चूर्ण और ४ सेर गुड़ मिलाकर पाक करे। जब गाढ़ा होने लगे, तब सोंठ, मिर्च, दालचीनी तेजपत्र और छोटी इलायची; प्रत्येक का चूर्ण आठ-आठ तोले और जवाखार २ तोले एकत्र कर उसमें मिलावे। दूसरे दिन ६४ तोले शहद मिलाकर रख ले। जठराग्नि का बल देखकर इसकी मात्रा निश्चित करनी चाहिए। इसके सेवन से अग्नि की वृद्धि होती है तथा क्षय, कास, पीनस, कृमिरोग, गुल्म, उदावर्त, बवासीर और श्वास आदि कठिन रोगों को यह नष्ट करती है ॥ ३०-३२ ॥

नासारोग में पथ्य।

स्नेहः स्वेदः शिरोऽभ्यङ्गः पुराणा यवशालयः। कुलत्थमुद्गयोर्यूषो ग्राम्या जाङ्गलजा रसाः ॥ ३३ ॥ वार्ताकं कुलकं शिग्रु कर्कोटं बालमूलकम्। लशुनं दधि तप्ताम्बु वारुणी च कटुत्रयम् ॥ ३४ ॥ कट्वम्ललवणं स्निग्धमुष्णञ्च लघुभोजनम्। नासारोगे पीनसादौ सेव्यमेतद्यथाबलम् ॥ ३५ ॥

स्नेहन, स्वेदन, शिर पर तैल की मालिश, पुराने जौ तथा शालि चावल, कुलथी और मूँग का यूष, ग्राम्य एवं जाङ्गल पशु-पक्षियों के मांस का रस, बैंगन, परवल, सहिंजना, ककोड़ा, कच्ची मूली, लहसन, दही, उष्ण जल, वारुणी (शराब), त्रिकटु, कटु, अम्ल एवं लवण (नमकीन द्रव्य),

स्निग्ध, उष्ण तथा हलका भोजन, इनका पीनस आदि नाक के रोगों में दोषानुसार सेवन करना चाहिए ॥ ३३-३५ ॥

अपथ्य।

स्नानं क्रोधं सकृन्मूत्रवातवेगान् शुचं द्रवम्। भूमिशय्यां च यत्नेन नासारोगे परित्यजेत् ॥ ३६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां नासारोगाधिकारः समाप्तः।

स्नान, क्रोध, मल, मूत्र एवं वात के वेगों का रोकना; शोक, पतला भोजन, भूमि पर सोना, इनका नाक के रोगियों को त्याग करना चाहिए ॥ ३६ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां नासारोगाधिकारः समाप्तः।

अथ कर्णरोगाधिकारः।

कर्णशूल चिकित्सा।

कपित्थमातुलुङ्गाम्लशृङ्गवेररसैः शुभैः। सुखोष्णैः पूरयेत्कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ॥ १ ॥

कैथ की पत्तियों का रस, बिजौरे नींबू का रस और अदरख का रस, इनको किंचित् उष्ण करके कान में छोड़ने से कर्णशूल शान्त होता है ॥ १ ॥

शृङ्गवेरं च मधु च सैन्धवं तैलमेव च। कदुष्णं कर्णयोर्देयमेतद्वा वेदनापहम् ॥ २ ॥

अदरख का रस, शहद, सेंधानमक और तेल को कुछ गरम करके कानों में डालने से कानों की पीड़ा शान्त होती है ॥ २ ॥

लशुनार्द्रकशिग्रूणां स्वरसो मूलकस्य च। कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे ॥ समुद्रफेनचूर्णेन युक्त्या वाप्यवचूर्णयेत् ॥ ३ ॥

लहसुन, अदरख और सहिंजन का रस तथा केले की जड़ का रस, इनको किंचित् गरम करके कान में डालने से कर्णपीड़ा शान्त होती है अथवा कान में समुद्रफेन का चूर्ण डालने से कर्णपीड़ा शान्त होती है ॥ ३ ॥

आर्द्रकसूर्यावर्त्तकशोभाञ्जनमूलकस्वरसाः। मधुतैलसैन्धवयुताः पृथगुक्ताः कर्णशूलहराः ॥ ४ ॥

अदरख, हुलहुल, सहिंजना और मूली, इनमें से किसी एक के रस में शहद, तेल और सेंधानमक मिलाकर कान में गरम-गरम छोड़ने से कर्णशूल नष्ट होता है ॥ ४ ॥

वंशावलेखसंयुक्तं मूत्रे चाजाविके भिषक्। तैलं पचेत्तेन कर्णं पूरयेत्कर्णशूलिनः ॥ ५ ॥

तिलतैल १ सेर, बकरी अथवा भेड़ का मूत्र ४ सेर, कल्क के लिए वंशावलेख (बाँस के ऊपर का हरा-भरा छिलका) १ पाव। विधिपूर्वक पकाकर कान में दो-चार बूँदें टपकाने से कर्णशूल अच्छा हो जाता है ॥ ५ ॥

शोभाञ्जनस्य निर्यासस्तिलतैलेन संयुतः। व्यक्तोष्णः पूरणः कर्णे कर्णशूलोपशान्तये ॥ ६ ॥

सहिंजने के रस में तिल का तेल मिलाकर कुछ गरम करके कान में डालने से कर्णशूल शान्त होता है ॥ ६ ॥

अष्टानामपि मूत्राणां मूत्रेणान्यतमेन वै। कोष्णेन पूरयेत्कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ॥ ७ ॥

गौ आदि के आठ मूत्रों में से किसी एक

मूत्र को कुछ गरम करके कान में डालने से कर्णशूल शान्त होता है ॥ ७ ॥

अश्वत्थपत्रखल्लं वा विधाय बहुपत्रकम्। तैलाक्तमङ्गारपूर्णं निदध्याच्छ्रवणोपरि ॥ ८ ॥ यत्तैलं च्यवते तस्मात् खल्लादङ्गारतापितात्। तत्प्राप्तं श्रवणस्रोतः सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥ ९ ॥

पीपल के बहुत से पत्तों को तेल से चुपड़कर एक दोना बनावे और उस दोने में अग्नि का अंगारा रखकर कान के ऊपर किसी चिमटे आदि से पकड़े रहे। अग्नि के ताप से पत्तों में से जो तेल के बूँद कान में गिरें वे ठीक कान के छेद में गिरने चाहिएँ। इस तेल से शीघ्र कर्णपीड़ा शान्त होती है ॥ ८—९ ॥

अर्कपत्रपुटे दग्धः स्नुहीपत्रोद्भवो रसः। कदुष्णः पूरणादेव कर्णशूलनिवारणः ॥ १० ॥

सेंहुड़ के पत्तों को पीसकर एक गोला बनावे और उसके ऊपर आक के पत्ते लपेटकर, कपड़मिट्टी कर पका ले। जब पुटपाक तैयार हो जाय तब उसके अन्दर से सेंहुड़ के गोले को निकालकर उसका रस गरम-गरम कान में डालने से तुरन्त कर्णशूल शान्त होता है ॥ १० ॥

राजवृक्षादितोयेन सुरसादिजलेन वा। कर्णप्रक्षालनं कुर्याच्चूर्णैस्तैः प्रपूरणम् ॥ ११ ॥

आरग्वधादिगण के क्वाथ से अथवा सुरसादिगण के क्वाथ से कान को विधिपूर्वक पिचकारी द्वारा धोना चाहिए। और पूतिकर्ण आदि रोगों में इनके महीन चूर्ण का ही कान में प्रधमन करना चाहिए ॥ ११ ॥

दीपिका तैल।

महतः पञ्चमूलस्य काण्डान्यष्टांगुलानि च। क्षौमेणावेष्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेत्ततः ॥ १२ ॥ यत्तैलं च्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तत्प्रयोजयेत्। ज्ञेयं तद्दीपिकातैलं सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥ १३ ॥ एवं कुर्याद्भद्रकाष्ठे कुष्ठे काष्ठे च सारले। मतिमान् दीपिकातैलं कर्णशूलनिवारणम् ॥१४॥ अर्कस्य पत्रं परिणामपीतमाज्येन लिप्तं शिखिनावतप्तम्। आपीड्य तोयं श्रवणे निषिक्तं निहन्ति शूलं बहुवेदनं च ॥ १५ ॥

बृहत्पञ्चमूल के आठ-आठ अंगुल के टुकड़े लेकर रेशमी वस्त्र में लपेट दे और उनको तिल तैल से भिगोकर एक ओर से जला दे। जब उससे तेल की बूँदें टपकें तो उनको किञ्चित् गरम ही कान में छोड़ दे। यह दीपिका तेल शीघ्र ही कर्ण पीड़ा को शान्त करता है। पूर्वोक्त रीति से देवदारु, कूठ और चीड़ की लकड़ी से तेल टपकाकर सुखोष्ण कान में छोड़ना चाहिए। यह दीपिका तेल भी कर्णशूल को निवारण करनेवाला है। पके हुए आक के पीले पत्तों को घी से चुपड़कर और अग्नि पर तपाकर निचोड़ ले। इनमें से जो अर्क निकले उसे कान में छोड़ने से शूल और पीड़ा नष्ट होती है ॥ १२—१५ ॥

तीव्रशूलातुरे कर्णे सशब्दे क्लेदवाहिनि। बस्तमूत्रं क्षिपेत् कोष्णं सैन्धवेनावचूर्णितम् ॥ १६ ॥

जब कान में तेज शूल या शब्द होने लगे अथवा मवाद बहता हो, तो बकरे के मूत्र में सेंधानमक मिलाकर और किञ्चित् उष्ण करके कान में छोड़ना चाहिए ॥ १६ ॥

हिंगुतुम्बुरुशुण्ठीभिः साध्यं तैलं तु सार्षपम्। कर्णशूले प्रधानं तु पूरणं हितमुच्यते ॥ १७ ॥

हींग, धनिया और सोंठ के द्वारा सिद्ध किये हुए कड़ुए तेल को कान में डालना चाहिए। यह कर्णशूलरोग की मुख्य औषध है ॥ १७ ॥

विद्रधौ चापि कुर्वीत विद्रध्युक्तं हि भेषजम् ॥ १८ ॥

कर्णविद्रधि में विद्रधि के समान ही चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १८ ॥

शतावरीवाजिगन्धापयस्यैरण्डबीजकैः। तैलं विपक्वं सक्षीरं पालीनां पुष्टिकृत्परम् ॥ १९ ॥

शतावरी, असगन्ध, क्षीरकाकोली तथा अरण्डी के बीज; इनके कल्क तथा गोदुग्ध में विधिपूर्वक तैल पकाकर मालिश करने से कर्णपाली मोटी हो जाती है ॥ १९ ॥

गुञ्जाचूर्णयुते जाते माहिषीक्षीर उद्धृतम्। नवनीतं तदभ्यङ्गात् कर्णपालिविवर्द्धनम् ॥ २० ॥

भैंस के दूध में अष्टमांश (आठवाँ भाग) घुँघुची का चूर्ण मिलाकर दही जमावे, परचात् इस दही से जो मक्खन निकले उसकी मालिश करने से कर्णपालि बढ़ जाती है ॥ २० ॥

विषगर्भं तिक्ततुम्बी तैलमष्टगुणे खरात्। मूत्रे पक्वं तदभ्यङ्गात् कर्णपालीविवर्द्धनम् ॥ २१ ॥

कड़ुवी तुम्बी के बीजों का तैल आधा सेर। गदहे का मूत्र ४ सेर। कल्क के लिये वत्सनाग २ छटाँक। विधिपूर्वक तैल पकाकर मालिश करने से कर्णपाली बढ़ती है ॥ २१ ॥

जीवनीयाद्य तैल।

कल्केन जीवनीयेन तैलं पयसि साधितम्। आनूपमांसक्वाथेन पालीपोषणवर्द्धनम् ॥ २२ ॥

तिलतैल ४ सेर, आनूप मांस का क्वाथ १२ सेर, दूध ४ सेर, जीवनीयगण मिलाकर १ सेर। विधिपूर्वक पकाकर मालिश करने से कर्णपाली पुष्ट होती है ॥ २२ ॥

माहिषनवनीतयुक्तं सप्ताहं धान्यराशिपरिवासितम्। नवमूपलिकन्दचूर्णं वृद्धिकरं कर्णपालीनाम् ॥ २३ ॥

भैंस के दूध का मक्खन ४ तोले, ताजी मूसली का चूर्ण ८ तोले, इन्हें एक बर्तन में अच्छी प्रकार मिलाकर सप्ताह भर धान्यराशि में रक्खे। पश्चात् निकालकर मालिश करने से कर्णपाली बड़ी हो जाती है ॥ २३ ॥

कर्णस्य दुर्व्यधे भूते संरम्भो वेदना भवेत्। तत्र दुर्व्यधारोहार्थं लेपो मध्वाज्यसंयुतैः ॥ मधूकयवमञ्जिष्ठारुबुमूलैः समन्ततः ॥ २४ ॥

कान के गलत बिंध जाने से सूजन तथा वेदना होती है। अतः इसके रोपण के लिए मुलेठी, जौ, मंजीठ तथा अरण्डी की जड़, इनके चूर्ण में शहद तथा घृत मिलाकर लेप करना चाहिए ॥ २४ ॥

अनेकधा तु छिन्नस्य सन्धिः कर्णस्य वै भिषक्। यो यथा विनिविष्टः स्यात्तं तथा विनियोजयेत्॥ धान्याम्लोष्णोदकाभ्यान्तु सेको वातेन दूषिते ॥ २५ ॥ रक्तपित्तेन पयसा श्लेष्मणा तूष्णवारिणा। ततः सीव्य स्थिरं कुर्यात् सन्धिं बन्धेन वा पुनः ॥ २६ ॥ मध्वाज्येन ततोऽभ्यज्य पिचुना सन्धिवेष्टकम्। कपालचूर्णेन ततश्चूर्णयेत्पथ्ययाथवा ॥ २७ ॥

अनेक कारणों से विविध प्रकार की कर्णपाली के छिन्न होने पर उन्हें यथायोग्य स्थल पर जोड़ दे यदि वात के कारण कर्णपाली छिन्न हुई हो तो दूध अथवा शीतल जल से, यदि कफप्रकोप के कारण छिन्न हो तो गरम जल से परिषेक करना चाहिए। यथायोग्य स्थल पर जोड़ने के पश्चात् क्षौम सूत्र (रेशमी डोरे) से सीकर सन्धि को स्थिर कर ले। तदनन्तर शहद तथा घृत को एकत्र मिलाकर मालिश करके सन्धि के चारों ओर रुई रख, रात्र में

बाँध दे। इसके बाद मिट्टी के खपरा के चूर्ण अथवा ईट के चूर्ण के अवचूर्णन द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए॥ २१--२७ ॥

क्षार तैल।

बालमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिंगु सनागरम्। शतपुष्पा वचा कुष्ठं दारुशिग्रु रसाञ्जनम् ॥ २८ ॥ सौवर्चलयवक्षारस्वर्जिकोद्भिदसैन्धवम्। भूर्जग्रन्थिबिडं मुस्तं मधुशुक्तं चतुर्गुणम् ॥ २९ ॥ मातुलुङ्गरसश्चैव कदल्या रस एव च। तैलमेभिर्विपक्तव्यं कर्णशूलहरं परम् ॥ ३० ॥ बाधिर्यं कर्णनादश्च पूयस्रावश्च दारुणः। पूरणादस्य तैलस्य कृमयः कर्णसंश्रिताः ॥ ३१ ॥ क्षिप्रं विनाशं गच्छन्ति कृष्णात्रेयस्य शासनात्। क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं मुखदन्तामयापहम् ॥ ३२ ॥

सुगन्धवाला का क्षार, मूली का क्षार, सोंठ का क्षार, हींग, सोंठ, सौंफ, वच, कूट, देवदारु, सहिजना की छाल, रसौत, काला नमक, जवाखार, सज्जीखार, खारी नमक, सेंधा नमक, भोजपत्र, पिपरामूल, बिड नमक और नागरमोथा; ये सब मिलाकर आधा सेर लेकर कल्क बनावे। मधुशुक्त ८ सेर, बिजौरे का रस ८ सेर, केले का रस ८ सेर। तेल २ सेर। विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर कान में डालना चाहिए। यह तेल कर्णशूल, बधिरता, कर्णनाद, पूयस्राव, कर्णकृमि आदि को शीघ्र नष्ट करता है। यह कृष्णात्रेय का बनाया हुआ है। यह श्रेष्ठ क्षारतेल मुख और दाँत के रोगों को नष्ट करनेवाला है ॥ २८--३२ ॥

मधुशुक्त।

मधुप्रधानं शुक्तं तु मधुशुक्तं तथा परम्। जम्बीरस्य फलरसं पिप्पलीग्रन्थिसंयुतम् ॥ ३३ ॥ मधुभाण्डे विनिःक्षिप्य धान्यराशौ निधापयेत्। मासेन तज्जातरसं मधुशुक्तमुदाहृतम् ॥ ३४ ॥

मधुप्रधान शुक्त को मधुशुक्त कहते हैं। इसके बनाने की विधि यह है कि जंबीरी नींबू का रस, पीपरि, पीपलामूल और शहद को एक बर्तन में भरकर और मुख बन्द कर अन्न के भीतर रक्खे। एक महीने के बाद उसे निकाले। इस रस को मधुशुक्त कहते हैं ॥ ३३-३४ ॥

कर्णनाद और कर्णक्ष्वेड की चिकित्सा।

कर्णक्ष्वेडे कर्णनादे कटुतैलेन पूरणम्। नादबाधिर्ययोः कुर्याद्वातशूलोक्तमौषधम् ॥ ३५ ॥

कर्णक्ष्वेड और कर्णनाद रोग में कडुआ तेल गुनगुना करके कान में छोड़ना चाहिए। कर्णनाद और बधिरता में वातशूलोक्त औषधि करनी चाहिए ॥ ३५ ॥

अपामार्गक्षार तैल।

मार्गक्षारजलेन च तत्कृतकल्केन साधितं तैलम्। अपहरति कर्णनादं बाधिर्यञ्चापि पूरणतः ॥ ३६ ॥

लटजीरा के क्षार के जल और लटजीरे की जड़ के कल्क से सिद्ध किया हुआ तेल कान में डालने से कर्णनाद और बधिरता को नष्ट करता है ॥ ३६ ॥

स्वर्जिकाद्य तैल।

स्वर्जिकामूलकं शुष्कं हिंगु कृष्णा महौषधम्। शतपुष्पा च तैस्तैलं पक्वं शुक्तं चतुर्गुणम्। प्रणादशूलबाधिर्यं स्रावं चाशु व्यपोहति ॥ ३७ ॥

सज्जीखार, सूखी मूली, हींग, पीपरि, सोंठ और सौंफ; सब मिली हुई आधा सेर लेकर कल्क बनावे। तिल का तेल २ सेर। शुक्त (सिरका) ८ सेर। विधि से तेल सिद्ध कर कान में डालने से कर्णनाद, कर्णशूल, बधिरता और कर्णस्राव शीघ्र नष्ट होता है ॥ ३७ ॥

दशमूली तैल ।

दशमूलीकषायेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् । एतत् कल्कं प्रदायैव बाधिर्ये परमौषधम् ॥ ३८ ॥

दशमूल का काढ़ा ८ सेर, तिल तेल २ सेर । कल्क के लिये दशमूल आध सेर। इनसे सिद्ध किया हुआ तेल बधिरता की परमौषधि है ॥ ३८ ॥

बिल्व तैल ।

फलं बिल्वस्य मूत्रेण पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् । साज्यक्षीरं तद्धितरेद्बाधिर्ये कर्णपूरणे ॥ ३९ ॥

आधसेर बेलगिरी को गोमूत्र में पीसकर २ सेर तिल-तैल और ८ सेर बकरी के दूध में डालकर पकावे । जब तेल सिद्ध हो जाय तब उतारकर छान ले । यह तेल बधिरता को नष्ट करता है ॥ ३९ ॥

एष एव विधिः कार्यः प्रणादे नस्यपूर्वकः । गुडनागरतोयेन नस्यं स्यादुभयोरपि ॥ ४० ॥

कर्णनाद रोग में नस्य तथा पूर्वोक्त चिकित्सा करनी चाहिए । बधिरता तथा कर्णनाद में गुड़ और सोंठ के जल का नस्य लेना चाहिए ॥ ४० ॥

तन्त्रान्तरोक्त बिल्व तैल ।

बिल्वगर्भं पचेत्तैलं गोमूत्राजपयोऽन्वितम् । बाधिर्ये पूरयेत् तेन कर्णौ सकफवातजित् ॥ ४१ ॥

बेलगिरी आध सेर, तेल २ सेर, गोमूत्र ८ सेर और बकरी का दूध ८ सेर । यथाविधि तेल सिद्ध कर कान में डालने से बधिरता एवं कफवातज कर्णरोग नष्ट होता है ॥ ४१ ॥

लशुनाद्य तैल ।

लशुनामलकं तालं पिष्ट्वा तैले चतुर्गुणे । तैलाच्चतुर्गुणं क्षीरं पाच्यं तैलावशेषकम् ॥४२॥ तत्तैलं पूरयेत् कर्णौ बाधिर्यं परिणाशयेत् ॥ ४३ ॥

कल्क के लिये लहसुन, आँवला और हरताल; सब मिलाकर आध सेर । तेल २ सेर और दूध ८ सेर । यथाविधि से तेल सिद्ध कर कान में डालने से बधिरता नष्ट होती है ॥ ४२--४३ ॥

वातोक्तं माषतैलादि बाधिर्यादौ तु योजयेत् । वर्जयेन्मैथुनं क्रोधं रूक्षं बाधिर्यपीडितः ॥ ४४ ॥

बधिरता रोग में वातव्याधि में कहे हुए माषतेल आदि का प्रयोग करना चाहिए । तथा बाधिर्य रोगी को मैथुन, क्रोध और रूक्षता आदि छोड़ देना चाहिए ॥ ४४ ॥

कर्णस्रावचिकित्सा

चूर्णं पञ्चकषायाणां कपित्थरससंयुतम् । कर्णस्रावे प्रशंसन्ति पूरणं मधुना सह ॥ ४५ ॥

पञ्चकषायों[1] के चूर्ण में कैथ की पत्तियों का रस और शहद मिलाकर कान में छोड़ना कर्णस्राव को हितकर होता है ॥ ४५ ॥

मालतीदलरसं मधुना पूरितमथवा गवां मूत्रैः । दूरेण विभज्यते वै श्रवणयुगं पूतिरोगेण ॥ ४६ ॥

मोतिया की पत्तियों के रस में शहद मिलाकर कानों में डालना अथवा गोमूत्र कानों में डालना कान से मवाद बहने को बन्द करता है ॥ ४६ ॥

हरितालं सगोमूत्रं पूरणं पूतिकर्णजित् । सर्जत्वक्चूर्णसंयुक्तः कार्पासीफलजो रसः । मधुना संयुतः साधु कर्णस्रावे प्रशस्यते ॥ ४७ ॥

1 बच, बरूने की जड़, परवल, प्रियंगु के फूल और नीम की छाल इनको पञ्चकषाय कहते हैं ।

हरताल और गोमूत्र मिलाकर कान में डालने से कान से मवाद बहना बन्द हो जाता है। शाल की छाल का चूर्ण, कपास के फल का रस और शहद इनको मिलाकर कान में डालने से कान का बहना बन्द होता है ॥ ४७ ॥

जम्ब्वाद्य तैल।

जम्ब्वाम्रपत्रं तरुणं समांशं कपित्थकार्पासफलं च सार्द्रम्। कृत्वा रसं तं मधुना विमिश्रं स्रावापहं तं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ४८ ॥ एतैः शृतं निम्बकरञ्जतैलं ससार्षपं स्रावहरं प्रदिष्टम् ॥ ४९ ॥

जामुन और आम के कोमल पत्ते, कैथ और कपास के गीले फल; इनका समभाग रस और शहद मिलाकर कान में छोड़ने से कान का बहना बन्द होता है। इन्हीं पूर्वोक्त द्रव्यों के कल्क से नीम, करंज और सरसों का तेल सिद्ध कर कान में डालने से कान का बहना बन्द होता है। नीम, करंज और सरसों; इन तीनों के तेलों को एक में मिलाकर अथवा एक-एक के तेल को ही उपर्युक्त द्रव्यों के कल्क से अथवा रस से सिद्ध करना चाहिए--ऐसा भिन्न-भिन्न टीकाकारों का मत है ॥ ४८--४९ ॥*

पुटपाकविधिस्विन्नो हस्तिविडजातत्रजः। रसः सतैलसिन्धूत्थः कर्णस्रावहरः परः ॥ ५० ॥

हाथी की लीद पर उत्पन्न हुए धप्राऊ (छत्ता) का पुटपाक-विधि से स्वेदन कर रस निकाले। इस रस में तेल सेंधानमक मिलाकर कान में डालने से कान का बहना बन्द हो जाता है ॥ ५० ॥

शम्बूक तैल।

शम्बूकस्य च मांसेन कटुतैलं विपाचितम्। तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ॥ ५१ ॥

शम्बूक (घोंघा) के मांस से सिद्ध किये हुए तेल को कान में डालने से ही कर्ण का नाड़ीव्रण शान्त हो जाता है ॥ ५१ ॥

निशाद्य तैल।

निशागन्धपले पक्वं कटुतैलं पलाष्टकम्। धुस्तूरपत्रजरसे कर्णनाडीजिदुत्तमम् ॥ ५२ ॥

कल्क के लिये--हल्दी[1] और गन्धक चार-चार तोले, धतूरे के पत्तों का रस १२८ तोले और कडुआ तेल ३२ तोले। विधि से तेल सिद्ध कर कान में डालने से कर्ण का नाड़ीव्रण शान्त हो जाता है ॥ ५२ ॥

कुष्ठाद्य तैल।

कुष्ठहिंगुवचादारुशताह्वाविश्वसैन्धवैः। पूतिकर्णापहं तैलं बस्तमूत्रेण साधितम् ॥ ५३ ॥

कल्क के लिये कूट, हींग, बच, देवदारु, सौंफ, सोंठ और सेंधा नमक; सब मिलित १ पाव। तिल-तेल १ सेर। बकरे का मूत्र ४ सेर। विधि से तैल सिद्ध कर कान में डालने से पूतिकर्णरोग शान्त होता है ॥ ५३ ॥

---

* वस्तुतः इन तीनों तेलों को मिलाकर ही जम्ब्वाद्य तैल सिद्ध करना चाहिए, क्योंकि यहाँ निम्बकरञ्ज तैल का विशेषण 'ससार्षपं' रक्खा है। इसका अर्थ यह हुआ कि निम्बकरंज तैल सार्षप तैल से मिश्रित होना चाहिए। अतः नीम, करंज और सरसों के तेल अलग-अलग नहीं गृहीत हो सकते। यह भी नहीं हो सकता कि सार्षप तैलयुक्त निम्बतैल या करजतैल लिया जाय, क्योंकि 'ससार्षपं' यह निम्ब या करज का अलग-अलग विशेषण नहीं हो सकता, क्योंकि 'सविशेषणस्य वृत्तिर्न वृत्तस्य च विशेषणयोगो न' इस व्याकरण के नियम से विरुद्ध हो जायगा।

१--टीकाकार शिवदास आदि हल्दी और गंधक का चूर्ण मिला हुआ ४ तोले, धतूरे के पत्तों का रस तैल के समान ३२ तोले लेते हैं।

कर्णप्रतिनाहचिकित्सा।

अथ कर्णप्रतीनाहे स्नेहस्वेदौ, समाचरेत्। ततो विरिक्तशिरसः क्रियां प्राप्तां समाचरेत्॥ ५४॥

कर्णप्रतिनाह रोग मे पहले स्नेहन, स्वेदन और शिरोविरेचन करके फिर अन्य उचित चिकित्सा करनी चाहिए॥ ५४॥

कर्णपाकस्य भैषज्यं कुर्यात् क्षतविसर्पवत्। विधिश्च कफहा सर्वः कर्णकण्डूं व्यपोहति॥ ५५॥

कर्णपाक रोग में क्षतविसर्प की-सी चिकित्सा करनी चाहिए। कान में खुजली हो तो कफनाशक क्रिया करनी हितकर होती है॥ ५५॥

क्लेदयित्वा तु तैलेन स्वेदेन प्रविलाप्य च। शोधयेत् कर्णगूथं तु भिषक् सम्यक् शलाकया॥ ५६॥

कान में मैल जम जाने पर तेल डालकर कान को गीला कर स्वेदन करे, पश्चात् सलाई से मैल निकाले॥ ५६॥

निर्गुण्डीस्वरसस्तैलं सिन्धुधूमरजो गुडः। पूरणात् पूतिकर्णस्य शमनो मधुसंयुतः॥ ५७॥

सँभालू की पत्ती का रस, तेल, सेंधानमक, धुआँसा, शहद और गुड़ मिलाकर कान में छोड़ने से पूतिकर्ण नष्ट होता है॥ ५७॥

जातीपत्ररसे तैलं विपक्वं पूतिकर्णजित्। वरुणार्ककपित्थाम्रजम्बूपल्लवसाधितम्॥ ५८॥ पूतिकर्णापहं तैलं जातीपत्ररसोऽथवा॥ ५९॥

चमेली के पत्तों के रस में तेल पकाकर कान में डालने से पूतिकर्ण शान्त होता है। तथा वरना, मदार, कैथ, आम और जामुन की पत्तियों के कल्क से सिद्ध किया तैल पूतिकर्ण रोग को नष्ट करता है। अथवा चमेली के पत्तों का रस कान में डालने से भी पूतिकर्ण नष्ट होता है॥ ५८-५९॥

सूर्यावर्त्तकस्य रसं सिन्धुवाररसं तथा। लाङ्गलीमूलजरसं त्र्यूषणेनावचूर्णितम्। पूरयेत् कृमिकर्णं तु जन्तूनां नाशनं परम्॥ ६०॥

हुलहुल के पत्तों के रस में या सँभालू के पत्तों के रस में अथवा कलिहारी की जड़ के रस में सोंठ, मिर्च और पीपरि का चूर्ण डालकर कान में छोड़ने से कान के कीड़े नष्ट हो जाते हैं॥६०॥

कृमिकर्णविनाशाय कृमिघ्नं योजयेद् विधिम्। हितः वार्त्ताकुधूमश्च सर्षपस्नेह एव च॥ ६१॥

कानों के कीड़े नष्ट करने के लिये कृमिनाशक क्रिया करनी चाहिये अथवा बैंगन का धुआँ नलिका द्वारा कान में पहुँचाना और सरसों का तेल कान में छोड़ना कान के कीड़ों को नष्ट करता है॥ ६१॥

हलीसूर्यावर्च्यव्योषस्वरसेनातिपूरिते। कर्णे पतन्ति सहसा सर्वास्तु कृमिजातयः॥ ६२॥

कलिहारी, हुलहुल, सोंठ, मिर्च और पीपरि का स्वरस कान में डालने से एकाएकी सब कीड़े बाहर आ गिरते हैं॥ ६२॥

घृष्टं रसाञ्जनं नार्याः क्षीरेण क्षौद्रसंयुतम्। प्रशस्यते चिरोत्थेऽपि सास्रावे पूतिकर्णके॥ ६३॥

रसौत को स्त्री के दूध में घिसकर और शहद मिलाकर कान में डालने से पुराना कर्णस्राव और पूतिकर्ण रोग नष्ट होता है॥ ६३॥

मैरव रस।

सूतं गन्धं विषञ्चैव टङ्कणं सकपर्दकम्। मरिचेन समायुक्तमार्द्रतोयेन भावितम्॥ ६४॥ वह्निमान्द्यग्रामरोगं श्ले-

प्माणां ग्रहणीगदम् । सन्निपातं तथा शोथं हन्ति श्रोत्रोद्भवं गदम् ॥ ६५ ॥

पारा, गन्धक, बच्छनाग, सुहागा, कौड़ी की भस्म, कालीमिर्च इन्हें एकत्र मिला अदरख के रस से भावना देकर गोली बनावे। मात्रा—आधी रत्ती से १ रत्ती तक । इसके सेवन से मन्दाग्नि, श्वासरोग, दुष्ट, कफ, संग्रहणी, सन्निपातज्वर, शोथ तथा कर्णरोग शान्त होते हैं ॥ ६४-६५ ॥

इन्दुवटी ।

शिलाजत्वभ्रलौहानि समानि हेमपादिकम् । काकमाचीवरीधात्रीपद्मानामम्भसा पृथक् ॥ ६६ ॥ भावयित्वा वटीः कुर्याद् द्विगुञ्जाफलमानतः । धात्रीतोयेन संमर्द्य मातः प्रातः प्रयोजयेत् ॥ ६७॥ कर्णनादादयः सर्वे गदा वातोद्भवाश्च ये । प्रमेहा विंशतिश्चापि नश्यन्त्येतन्निषेवणात् ॥ ६८ ॥ सुधाविश्राणनादिन्दुर्जगतां तापहृद्यथा । तथैन्दुवटी नाम रोगतापनिषूदनी ॥ ६९ ॥

शुद्ध शिलाजीत, अभ्रकभस्म और लौहभस्म; प्रत्येक एक एक भाग । सोने की भस्म चौथाई भाग । सबको एकत्र कर इसमें क्रमशः मकोय, शतावरी, आँवला और कमल के रस से अलग-अलग भावना देकर दो दो रत्ती की गोलियाँ बनावे । प्रतिदिन प्रातःकाल एक गोली को पीस कर आँवले के रस के साथ सेवन करना चाहिए । इसके सेवन करने से कर्णनाद आदि संपूर्ण वादी के रोग और बीस प्रकार के प्रमेह रोग नष्ट होते हैं । अमृत के दान से जैसे चन्द्रमा सबके ताप को हरता है वैसे ही यह इन्दुवटी भी रोगरूपी ताप को नष्ट करती है ॥ ६६-६९ ॥

सारिवादि वटी ।

सारिवां मधुकं कुष्ठं चातुर्जातं प्रियङ्गुकम् । नीलोत्पलं गुडूचीं च देवपुष्पं फलत्रिकम् ॥ ७० ॥ अभ्रं सर्वसमं चाभ्रसमं लौहं विभावयेत् । केशराजाम्बुना पार्थकाथेन यवजाम्भसा ॥ ७१ ॥ काकमाचीरसेनापि गुञ्जामूलद्रवेण च । त्रिगुञ्जार्मिताः पश्चाद्विदध्याद्वटिका भिषक् ॥७२॥ धारोष्णेनापि पयसा शतमूलीरसेन वा । एकैकां योजयेत् मातः श्रीखण्डसलिलेन वा ॥ ७३ ॥ निखिलान् कर्णजान् रोगान् प्रमेहानपि विंशतिम् । रक्तपित्तं क्षयं श्वासं क्लैब्यं जीर्णज्वरं तथा ॥ ७४ ॥ अपस्मारमदाशाँसि हृद्रोगञ्च मदात्ययम् । सारिवादिवटी हन्यात् स्त्रीगदानखिलानपि ॥ ७५ ॥

अनन्तमूल, मुलेठी, कूट, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, प्रियगु के फूल, नीलकमल, गिलोय, लौंग, हड़ बहेड़ा और आँवला; ये समान भाग । सबके बराबर अभ्रकभस्म और अभ्रकभस्म के बराबर लोहभस्म ले। तत्पश्चात् सबको एकत्र कर क्रमशः भँगरा के रस, अर्जुन की छाल के क्वाथ, जवाखार के जल, मकोय के रस और घुँघुची की जड़ के क्वाथ की अलग अलग भावना दे। फिर तीन-तीन रत्ती की गोलियाँ बनावे। अनुपान-धारोष्ण दूध, शतावरी का रस या सफेद चन्दन का जल। एक गोली प्रातःकाल खाना चाहिए। यह सारिवादि वटी सब प्रकार के कर्णरोग, बीसों प्रकार के प्रमेह, रक्तपित्त, क्षय, श्वास, नपुंसकता, जीर्णज्वर, अपस्मार, मद, बवासीर, हृद्रोग तथा मदात्यय को और सपूर्ण स्त्री-रोगों को नष्ट करती है ॥ ७०-७५ ॥

दार्व्यादि तैल ।

दार्व्याश्च दशमूलस्य क्काथेन मधुकस्य च । कदल्याः स्वरसेनापि पचेत्तैलं तिलोद्भवम् ॥ ७६ ॥ कल्कैः कुष्ठवचाशिग्रुशतपुष्पारसाञ्जनैः । देवदारुयवक्षारस्व-

जिकाविडसैन्धवैः ॥७७॥ कर्णशूलं कर्णनादं बाधिर्यं पूतिकर्णकम्। कर्णक्ष्वेडं जन्तुकर्णं कर्णपाकं च दारुणम् ॥ ७८ ॥ कर्णकण्डूप्रतीनाहौ शोथान् कर्णसमुद्भवान्। तैलं दार्व्यादिकं हन्ति कर्णस्रावं तथैव च ॥ ७९ ॥

दारुहल्दी का क्वाथ ४ सेर, दशमूल का क्वाथ ४ सेर, मुलेठी का क्वाथ ४ सेर और केले का रस ४ सेर, तिल का तेल २ सेर। कल्क के लिये कूट, वच, सौंहजन की छाल, सौंफ, रसौत, देवदारु, जवाखार, सज्जीखार, बिडनमक और सेंधानमक; सब मिलित आध सेर। विधि से सिद्ध कर कान में डालने से यह दार्व्यादि तैल कर्णशूल, कर्णनाद, बधिरता, पूतिकर्ण, कर्णक्ष्वेड, जन्तुकर्ण, कर्णपाक, कर्णकण्डु, प्रतिनाह और कान में उत्पन्न होने वाले शोथ और कर्णस्राव रोग को नष्ट करता है ॥ ७६–७९ ॥

कर्णरोग में पथ्य।

स्वेदो विरेको वमनं नस्यं धूमः शिराव्यधः। गोधूमः शालयो मुद्गा यवाश्च प्रतनं हविः ॥ ८० ॥ लावो मयूरो हरिणस्तित्तिरो वनकुक्कुटः। पटोलं शिग्रु वार्ताकुं सुनिषण्णं कठिल्लकम् ॥ ८१ ॥ रसायनानि सर्वाणि ब्रह्मचर्य्यमभाषणम्। उपयुक्तं यथादोषमिदं कर्णामये हितम् ॥ ८२ ॥

स्वेद, विरेचन, वमन, नस्य, धूमपान, शिरावेध, गेहूँ, शालि चावल, मूँग, जौ, पुराना घी तथा लावपक्षी, मोर, हिरण, तीतर और वनकुक्कुट का मांस, परवल, सहिजन, बैंगन, चौपतिया, सांठी, सम्पूर्ण रसायन द्रव्य, ब्रह्मचर्य, कम बोलना ये कर्णरोग में दोषानुसार लाभदायक है ॥ ८०–८२ ॥

अपथ्य।

दन्तकाष्ठं शिरःस्नानं व्यायामं श्लेष्मनं गुरु। कण्डूयनं तुषारञ्च कर्णरोगी परित्यजेत् ॥ ८३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां कर्णरोगाधिकारः समाप्तः।

दातौन, शिर धोना, व्यायाम, कफवर्द्धक एवं गुरु द्रव्य, कान में तिनके आदि से खुजलाना और तुषार (बर्फ) ये सब कर्णरोगी को त्याग करना चाहिए ॥ ८३ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां कर्णरोगाधिकारः समाप्तः

अथ मुखरोगाधिकारः।

ओष्ठरोग चिकित्सा।

ओष्ठप्रकोपे वातोत्थे शाल्वणेनोपनाहयेत्। मस्तिष्के चैव नस्ये च तैलं वातहरैः शृतम् ॥ सेकोऽभ्यङ्गः स्नेहपानं रसायनमिहेष्यते ॥ १ ॥

वातज ओष्ठरोग में शाल्वण[1] सेक करना चाहिए। एवं वातनाशक औषधियों से सिद्ध तेल का नस्य, शिरोबस्ति, सेक, अभ्यङ्ग और स्नेहपान वातज ओष्ठरोग में रसायन है ॥ १ ॥

श्रीवेष्टकं सर्जरसं गुग्गुलुं सुरदारु च। यष्टीमधुकचूर्णं च विदध्यात् प्रतिसारणम् ॥ २ ॥

गन्धाबिरोजा, राल, गुग्गुल, देवदारु और मुलेठी इनके चूर्ण से धीरे-धीरे मसलने से वातज ओष्ठरोग शान्त होता है ॥ २ ॥

---

1 काकोल्यादिः सवातघ्नः सर्वाम्लद्रव्यसंयुतः। सानूपौदकमांसस्तु सर्वस्नेहसमन्वितः ॥ सुखोष्णः स्पष्टलवणः शाल्वणः परिकीर्तितः। तेनोपनाहं कुर्वीत सर्वदा वातरोगिणाम् ॥ वातघ्नो भद्रदार्वादिः। काकोल्यादि सुश्रुतोक्त।

वेधं शिराणां वमनं विरेकं तिक्तस्य पानं रसभोजनं च। शीतान् प्रलेपात् परिषेचनं च पित्तोपसृष्टेष्वधरेषु कुर्यात् ॥ ३ ॥

पित्तज ओष्ठरोग में शिरावेध, वमन, विरेचन, तिक्त अन्नपान, ठंडे लेप तथा ठंडे जल से परिसेचन करना चाहिए ॥ ३ ॥

पित्तरक्ताभिभूतोत्थान् जलौकाभिरुपाचरेत्। पित्तविद्रधिवच्चापि क्रियां कुर्यादशेषतः ॥ ४ ॥

रक्तपित्त से उत्पन्न ओष्ठरोग में जोंक लगाकर रक्त निकालना चाहिए और पित्तविद्रधि की-सी संपूर्ण चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ४ ॥

शिरोविरेचनं धूमः स्वेदः कवलधारणम्। हृतरक्ते प्रयोक्तव्यमोष्ठकोपे कफात्मके ॥ ५ ॥

कफज ओष्ठरोग में पहले रक्त निकलवाकर शिरोविरेचन, धूमपान, स्वेद और कफनाशक कवल धारण करना चाहिए ॥ ५ ॥

त्रिकटुः सर्जिकाक्षारः क्षारश्च यवशूकजः। क्षौद्रयुक्तं विधातव्यमेतच्च प्रतिसारणम् ॥ ६ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपरि, सज्जीखार और यवाखार; इनके चूर्ण में शहद मिलाकर धीरे-धीरे रगड़ना चाहिए ॥ ६ ॥

मेदोजे स्वेदिते भिन्ने शोधिते ज्वलनोदितः। प्रियंगु त्रिफलालोध्रं सक्षौद्रं प्रतिसारणम् ॥ हितं च त्रिफलाचूर्णमधुयुक्तं प्रलेपनम् ॥ ७ ॥

मेद से उत्पन्न हुए ओष्ठरोग में स्वेदन करके चीरा लगावे और घाव को साफ करके अग्नि से दग्ध कर दे। मालकांगनी, त्रिफला और लोध के चूर्ण में शहद मिलाकर रगड़ने अथवा त्रिफला के चूर्ण में शहद मिलाकर लेप करने से मेदज ओष्ठरोग शान्त होता है ॥ ७ ॥

सर्जरसकनकगैरिकधान्यघृततैलसिन्धुसंयुक्तम्। सिद्धं सिक्थकमधरे स्फुटितोच्चटिते व्रणं हरति ॥ ८ ॥

राल, सुनहला गेरू, धनिया, घृत, तेल, सेंधानमक तथा मोम; इनको एक में पकावे। गाढ़ा होने पर इसका लेप करने से ओठ का फटना तथा ओष्ठव्रण शान्त होता है ॥ ८ ॥

शीताद दन्तरोग की चिकित्सा।

शीतादे हृतरक्ते तु तोये नागरसर्षपान्। निष्क्वाथ्य त्रिफलाश्चापि कुर्याद् गण्डूषधारणम् ॥ प्रियङ्गवश्च मुस्ता च त्रिफला च प्रलेपनम् ॥ ९ ॥

शीताद नामक दन्तरोग में पहले रक्त निकलवाकर पश्चात् सोंठ, सरसों और त्रिफला के क्वाथ का गण्डूष धारण करना चाहिए अथवा प्रियंगु, नागरमोथा और त्रिफला का लेप करना चाहिए ॥ ९ ॥

कुष्ठं दार्वी लोध्रमब्दं समङ्गा पाठा तिक्ता तेजनी पीतिका च। चूर्णं शस्तं घर्षणं तद्द्विजानां रक्तस्रावं हन्ति कण्डूं रुजां च ॥ १० ॥

कूठ, दारुहल्दी, लोध, नागरमोथा, मंजीठ, पाढ़, कुटकी, तेजबल और हल्दी; इनके चूर्ण को दाँतों पर मलने से खून बहना, खुजली और पीड़ा नष्ट होती है ॥ १० ॥

चलदन्त की चिकित्सा।

भद्रमुस्तादि गुटिका।

भद्रमुस्ताभयाव्योषविडङ्गारिष्टपल्लवैः। गोमूत्रपिष्टैर्गुटिकां छायाशुष्कां प्रकल्पयेत् ॥ ११ ॥ तां विधाय मुखे सुप्याच्चलदन्तातुरो नरः। नातः परतरं किञ्चिच्चलदन्तस्य भेषजम् ॥ १२ ॥

नागरमोथा, हड़, सोंठ, मिर्च, पीपल, वायविडंग और नीम के पत्ते; इनको गोमूत्र

में पीसकर गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा ले। चलदन्त (दाँत हिलना) रोग से पीड़ित मनुष्य एक गोली मुख में रखकर सो जावे तो दाँत का हिलना बन्द हो जावे। इससे बढ़कर दाँत हिलने की अन्य कोई औषधि नहीं है ॥ ११-१२ ॥

करञ्जकरवीरार्कमालतीककुभाशनाः। शस्यन्ते दन्तपवने ये चाप्येवंविधा द्रुमाः ॥ १३ ॥

करंज, कनेर, आक, मालती, अर्जुन और असना ये वृक्ष तथा इन्हीं के सदृश अन्य वृक्ष दन्तपवन (दाँतून) के लिये श्रेष्ठ कहे गये हैं ॥ १३ ॥

चलदन्तस्थिरकरं कार्यं बकुलचर्वणम्। आसंगलदलक्वाथगण्डूषो दन्तचालनुत् ॥ दन्तचाले हितं श्रेष्ठं तिलोग्राचर्वणं सदा ॥ १४ ॥

मौलसिरी की छाल का चबाना हिलते हुए दाँतों को जमा देता है। नीली कटसरैया के पत्तों के काढ़े का कुल्ला करना दन्तचाल को नष्ट करता है। इसी प्रकार तिल तथा वच के चबाने से दन्तचाल रोग नष्ट होता है ॥ १४ ॥

दन्तपुप्पुट की चिकित्सा।

दन्तपुप्पुटके कार्यं तरुणे रक्तमोक्षणम्। सपञ्चलवणक्षारं सक्षौद्रं प्रतिसारणम् ॥ १५ ॥

नये दन्तपुप्पुट रोग में पहले खून निकलवाकर फिर पाँचों नमक, जवाखार और शहद का मञ्जन करना चाहिए ॥ १५ ॥

दन्तानां तोदहर्षे च वातघ्नाः कवला हिताः ॥ १६ ॥

दन्तहर्ष और दन्ततोद रोग में वातनाशक औषधियों का कवल धारण करना हितकर है ॥ १६ ॥

दन्तशूल की चिकित्सा।

माक्षिकं पिप्पली सर्पिर्मिश्रितं धारयेन्मुखे। दन्तशूलहरं प्रोक्तं प्रधानमिदमौषधम् ॥ १७ ॥

शहद, पीपरि का चूर्ण और घी मिलाकर मुख में रखना दन्तशूल को नष्ट करनेवाला कहा गया है। यह दन्तशूल की प्रधान औषधि है ॥ १७ ॥

दन्तवेष्टचिकित्सा।

विस्राविते दन्तवेष्टे व्रणं तु प्रतिसारयेत्। लोध्रपत्तङ्गमधुकलाक्षाचूर्णैर्मधूत्तरैः ॥ गण्डूषे क्षीरिणो योज्याः सक्षौद्रघृतशर्कराः ॥ १८ ॥

दन्तवेष्ट रोग में रक्तमोक्षण कराकर लोध, पतंग, मुलेठी तथा लाख के चूर्ण में शहद मिलाकर घाव पर रगड़ना चाहिए। तथा दूधवाले बरगद आदि वृक्षों की छाल के काढ़े में शहद, घी और शक्कर मिलाकर कुल्ला करना चाहिए ॥ १८ ॥

शौषिरचिकित्सा।

शौषिरे हृतरक्ते तु लोध्रमुस्तारसाञ्जनैः। सक्षौद्रैः शस्यते लेपो गण्डूषे क्षीरिणो हिताः ॥ १९ ॥

दन्तशौषिर रोग में पहले रक्त निकलवाकर फिर लोध, नागरमोथा और रसौत के चूर्ण में शहद मिलाकर लेप करना चाहिए तथा दूधवाले वृक्षों की छाल के क्वाथ से कुल्ला करना चाहिए ॥ १९ ॥

परिदर और उपकुश की चिकित्सा।

क्रियां परिदरे कुर्याच्छीतादोक्तां विचक्षणः। संशोध्योभयतः कायं शिरश्चोपकुशे ततः ॥ २० ॥ काकोदुम्बरिकागोजीपत्रैर्विस्रावयेदसृक्। सौद्रयुक्तैश्च लवणैः सव्योषैः प्रतिसारयेत् ॥२१॥

परिदार रोग में वमन और विरेचन से शरीर और नस्यादि से शिर की शुद्धि करके शीताद रोग में कही हुई चिकित्सा करनी चाहिए।

उपकुश रोग में भी शरीर और मस्तक की शुद्धि करके कठूमर और गोजी के पत्तों से घिसकर खून निकलवाना चाहिए तथा शहद, सेंधानमक, सोंठ, मिर्च, और पीपल के चूर्ण से मञ्जन करना चाहिए॥ २०-२१॥

पिप्पल्यः सर्षपाः श्वेता नागरं नैचुलं फलम्। सुखोदकेन संमर्द्य कवलं तस्य योजयेत्॥ २२॥

पीपरि, सफेद सरसों, नागर और समुद्रफल इनको सुखोष्ण जल से पीसकर ग्रास बनाकर मुख में रखने से उपकुश रोग शान्त होता है॥ २२॥

वैदर्भचिकित्सा।

शस्त्रेण दन्तवैदर्भे दन्तमूलानि शोधयेत्। ततः क्षारं प्रयुञ्जीत क्रियाः सर्वाश्च शीतलाः॥ २३॥

दन्तवैदर्भ रोग में शस्त्र द्वारा दाँतों की जड़ों को साफ करके क्षार लगाना चाहिए तथा अन्य सब शीतल चिकित्सा करनी चाहिए॥ २३॥

उद्धृत्याधिकदन्तं तु ततोऽग्निमवचारयेत्। कृमिदन्तकवच्चात्र विधिः कार्यो विजानता॥ २४॥

अधिक दन्त को उखाड़कर उसके स्थान को तप्तशलाका द्वारा दग्ध करना चाहिए और अन्य कृमिदन्त की-सी चिकित्सा करनी चाहिए॥ २४॥

अधिमांस चिकित्सा।

छित्त्वाधिमांसं सक्षौद्रैरेतैश्चूर्णैरुपाचरेत्॥ २५॥ पाठावचातेजवतीस्वर्जिकायावशूकजैः। क्षौद्रद्वितीयाः पिप्पल्यः कवलश्चात्र कीर्त्तितः॥ २६॥

अधिक मांस को शस्त्र से काटकर उस स्थान पर पाढ़, वच, तेजबल, सज्जीखार और जवाखार; इनके चूर्ण में शहद मिलाकर घिसना चाहिए और पीपरि के चूर्ण में शहद मिलाकर कवल धारण करना चाहिए॥ २५-२६॥

पटोलनिम्बत्रिफलाकषायश्चात्र धावने। शिरोविरेकश्च हितो धूमो वैरेचनश्च यः॥ २७॥

अधिक मांसरोग में परवल के पत्ते, नीम की छाल और त्रिफला के काढ़े से कुल्ला करना चाहिए। इस रोग में नस्य द्वारा शिरोविरेचन तथा विरेचक धूमपान हितकर होता है॥ २७॥

दन्तनाड़ी की चिकित्सा।

नाडीव्रणहरं कर्म दन्तनाडीषु कारयेत्। यं दन्तमधिजायेत नाडी तं दन्तमुद्धरेत्॥ २८॥ छित्त्वा मांसानि शस्त्रेण यदि नोपरिजो भवेत्। शोधयित्वा दहेच्चापि क्षारेण ज्वलनेन वा॥ २९॥

दन्तनाड़ीरोग में नाड़ीव्रणनाशक चिकित्सा करनी चाहिए। जिस दाँत में नासूर हो उस दाँत को उखड़वा देना चाहिए। यदि ऊपर का दाँत न हो, तो शस्त्र से खराब मांस को काटकर निकाल देना चाहिए और उस स्थान को क्षार से या तप्तशलाका से दग्ध कर देना चाहिए॥ २८-२९॥

गतिर्हिनस्ति हन्वस्थि दशने समुपेक्षिते। तस्मात् समूलं दशनं निर्हरेद्भग्नमस्थि च॥ ३०॥

दन्तनाड़ी की चिकित्सा न करने से यह बढ़कर हन्वस्थि को भी नाश कर देती है, इसलिए जड़सहित दाँत को तथा टूटी हुई हड्डी को उखड़वा देना चाहिए॥ ३०॥

उद्धृते तूत्तरे दन्ते शोणितं संप्रसिच्यते। रक्तातियोगात् पूर्वोक्ता घोरा रोगा भवन्ति च॥ चलमप्युत्तरं दन्तमतो नोपहरेत् भिषक्॥ ३१॥

ऊपर का दाँत उखड़वाने से खून अधिक निकल जाता है अतः खून के योग से पूर्वोक्त घोर रोग उत्पन्न हो जाते हैं इसलिए हिलते हुए भी ऊपर के दाँत को वैद्य न उखाड़े॥ ३१॥

कषायं जातीमदनकटुकस्वादुएकट-कैः ॥ ३२ ॥ लोध्रखदिरमञ्जिष्ठायष्ट्याह्वैश्चापि यत् कृतम्। तैलं संशोधनं तद्धि हन्याद्दन्तगतां गतिम् ॥ ३३ ॥

चमेली, मैनफल, कुटकी और कटाई के काढ़े का गण्डूष धारण करने से अथवा लोध, खैर, मजीठ और मुलेठी के कल्क से सिद्ध किये हुए तेल द्वारा नाड़ी का संशोधन करने से दन्तनाड़ी रोग नष्ट होता है। किसी किसी के मत में चमेली आदि के क्वाथ और लोध आदि के कल्क से सिद्ध तेल द्वारा दन्तनाड़ी का संशोधन करना हितकर है ॥ ३२--३३ ॥

दन्तहर्षचिकित्सा।

सुखोष्णाः स्नेहकवलाः ससर्पिस्त्रैवृतस्य वा। निर्यूहाश्चानिलघ्नानां दन्तहर्षप्रमर्दनाः ॥ स्नैहिकश्च हितो धूमो नस्यं स्नैहिकमेव च ॥ ३४ ॥

दन्तहर्ष रोग में किञ्चित् गर्म स्नेह का, त्रैवृतघृत का तथा देवदारु आदि वातनाशक ओषधियों के क्वाथ का कवल धारण करना हितकर है। इस रोग में स्नैहिक धूमपान और स्नैहिक नस्य भी लाभप्रद है ॥ ३४ ॥

दन्तशर्करा चिकित्सा।

अहिंसन् दन्तमूलानि शर्करामुद्धरेद् भिषक्। लाक्षाचूर्णैर्मधुयुतैस्ततस्तां प्रति-सारयेत् ॥ ३५ ॥ दन्तहर्षक्रियाश्चापि कुर्यान्निरवशेषतः। कपालिका कृच्छ्र-साध्या तत्राप्येषा क्रिया हिता ॥ ३६ ॥

दन्तशर्करा रोग में दन्तमूल को बचाकर दन्तशर्करा को दाँतों से छुड़ाना चाहिए; एवं लाख के चूर्ण में शहद मिलाकर उस पर रगड़ना चाहिए तथा दन्तहर्ष की भी सब चिकित्सा करनी चाहिए। कपालिका कष्टसाध्य है पर इसमें भी दन्तशर्करा की-सी चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ३५-३६ ॥

कृमिदन्त चिकित्सा।

जयेद्विस्रावणैः स्विन्नमचलं कृमिद-न्तकम्। तथावपीडैर्वातघ्नैः स्नेहगण्डूष-धारणैः ॥ ३७ ॥ भद्रदार्व्यादिवर्षाभूलेपैः स्निग्धैश्च भोजनैः। हिंगु कोष्णं तु मति-मान् कृमिदन्तेषु दापयेत् ॥ ३८ ॥

कृमिदन्त रोग को, जब कि दाँत हिलते न हों, तब स्वेदन करके रक्तमोक्षण, वातनाशक अवपीडसंज्ञक नस्य, स्नेहगण्डूष धारण, भद्र-दार्व्यादिगण और पुनर्नवा के लेप तथा स्निग्धभोजन से जीते और कीड़े लगे हुए दाँत में गर्म गर्म हींग रक्खे ॥ ३७--३८ ॥

बृहतीभूकदम्बपञ्चांगुलकण्टकारिका-क्वाथः। गण्डूषस्तैलयुतः कृमिदन्तक-वेदनाशमनः ॥ ३९ ॥

बड़ी कटेरी, भूमिकदम्ब, अरण्ड की जड़ और छोटी कटेरी; इनके क्वाथ में तेल डालकर कुल्ला करने से कृमिदन्त की पीड़ा शान्त होती है ॥ ३९ ॥

नीलीवायसजंघारनुग्दुग्धीनां तु मूल-मेकैकम्। संचर्व्य दशनविधृतं दशनकृमि-पातनं प्राहुः ॥ ४० ॥

नील, काकजंघा, थूहर और दूधी, इनमें से किसी एक की जड़ को चबाकर कृमिदन्त पर रखने से दाँतों के कीड़े गिर जाते हैं ॥ ४० ॥

विदार्यादि तैल।

चलमुद्धृत्य वा स्थानं दहेत्तु शुषि-रस्य वा। ततो विदारीयष्ट्याह्वशृङ्गाटक-कशेरुभिः ॥ तैलं दशगुणक्षीरं सिद्धं नस्ये तु पूजितम् ॥ ४१ ॥

कृमिदन्त में यदि दाँत हिलता हो, तो उसको उखाड़ कर उस सड़े हुए स्थान को दाग करके दग्ध करना चाहिए पश्चात् विदारीकन्द, मुलेठी सिंघाड़ा और कसेरू सब मिलित चापपाव लेकर कल्क बनावे। तिल तैल पाव सेर, दूध

२ सेर। विधि से तेल सिद्ध कर नस्य देने से दन्तरोग नष्ट होता है ॥ ४१ ॥

हनुमोक्षचिकित्सा।

हनुमोक्षे समुद्दिष्टा कार्या चार्दितवत् क्रिया ॥ ४२ ॥

हनुमोक्ष रोग में अर्दित रोग की सी चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ४२ ॥

दन्तरोग में वर्जित पदार्थ।

फलान्यम्लानि शीताम्बु रूक्षान्नं दन्तधावनम्। तथापि कठिनान् भक्ष्यान् दन्तरोगी विवर्जयेत् ॥ ४३ ॥

खट्टे फल, ठंढा जल, रूखा अन्न, दन्तधावन और कठिन भोज्य पदार्थ दन्तरोगी को छोड़ देने चाहिए ॥ ४३ ॥

जिह्वारोगचिकित्सा।

जिह्वाकण्टकचिकित्सा।

ओष्ठकोपे त्वनिलजे यदुक्तं प्राक् चिकित्सितम्। कण्टकेष्वनिलोत्थेषु तत्कार्यं भिषजा खलु ॥ ४४ ॥

वातज ओष्ठकोप में पहले जो चिकित्सा कही गई है वैद्य को वही चिकित्सा वातज जिह्वाकण्टक रोग में करनी चाहिए ॥ ४४ ॥

पित्तजेषु निघृष्टेषु निःसृते दुष्टशोणिते। प्रतिसारणगण्डूषनस्यं च मधुरं हितम् ॥ ४५ ॥

पित्तज जिह्वाकण्टक रोग में गोभी आदि के खुरदरे पत्तों द्वारा घिसकर रक्त निकाल देने के पश्चात् काकोल्यादि मधुरगण के द्वारा प्रतिसारण, गण्डूष और नस्य का प्रयोग करना चाहिए ॥ ४५ ॥

कण्टकेषु कफोत्थेषु लिखितेष्वसृजः क्षये। पिप्पल्यादिर्मधुयुतः कार्यस्तु प्रतिसारणः ॥ ४६ ॥

कफज जिह्वाकण्टक रोग में लेखन द्वारा रक्त निकलवा कर पिप्पल्यादिगण के चूर्ण में शहद मिलाकर धीरे-धीरे मसलना चाहिए ॥४६॥

जिह्वाजाड्यचिकित्सा।

गृह्णीयात् कवलं चापि गौरसर्षपसैन्धवैः। पटोलनिम्बवार्त्ताकुक्षारयूषैश्च भोजयेत् ॥ ४७ ॥

जिह्वाकण्टक रोग में सरसों और सेंधानमक पीसकर कवल धारण करना चाहिए और परवल के पत्ते, नीम की छाल, बैंगन और जवाखार का जूस पीना चाहिए ॥ ४७ ॥

जिह्वाजाड्यं माणकभस्मलवणतैलघर्षणं हन्ति। ईषत्स्नुक्क्षीराक्तं जम्बीराद्यम्लचर्वणं वापि ॥ ४८ ॥

मानकन्द की भस्म, सेंधानमक और तेल मिलाकर जीभ पर रगड़ने से अथवा जंभीरी नींबू आदि खट्टे पदार्थों में थोड़ा-सा थूहर का दूध मिलाकर चबाने से जिह्वाजाड्य रोग नष्ट होता है ॥ ४८ ॥

दन्तशब्दचिकित्सा।

कर्कटांघ्रिक्षीरपक्वघृताभ्यङ्गेन नश्यति। दन्तशब्दः कर्कटांघ्रिलेपाद्वा दन्तयोजितात् ॥ ४९ ॥

केकड़े के पैर और दूध से सिद्ध घी को दाँतों पर रगड़ने से अथवा केकड़े के पैरों को पीसकर दाँतों पर लेप करने से दन्त शब्द (सोते समय दाँत कटकटाना) रोग नष्ट होता है ॥ ४९ ॥

चरणौ कर्कटस्यापि गोक्षीरेण विपाचयेत्। घनतां च गते तस्मिन् रात्रौ चरणलेपनात्। दन्तानां कट्मर्दो हन्ति सत्यं सत्यं च पार्वति ॥ ५० ॥

केकड़े के दोनों पैरों को पीसकर दूध में पकावे जब वह गाढ़ा हो जावे तब उतारकर रख ले। रात्रि के समय इसका पैरों पर लेप करने से दाँतों का कटकटाना नष्ट होता है। हे पार्वति ! यह सत्य है ॥ ५० ॥

कृष्णवर्णाश्वपुच्छस्य सप्तकेशेन वे-

णिका। तां बद्ध्वा च गले दन्तकड्मर्दी हन्ति मानवः॥ ५१॥

काले घोड़े के सात बालों की वेणी बनाकर गले में बाँधने से दांतों का कटकटाना नष्ट हो जाता है॥ ५१॥

उपजिह्वकचिकित्सा।

उपजिह्वां तु संलिख्य क्षारेण प्रतिसारयेत्। शिरोविरेकगण्डूषधूमैश्चैनामुपाचरेत्॥ ५२॥

उपजिह्वक रोग में पहले जिह्वा का लेखन करके क्षार द्वारा प्रतिसारण, शिरोविरेचन, गण्डूष धारण और धूम का उपयोग करना चाहिए॥ ५२॥

व्योषक्षाराभयावह्निचूर्णमेतत् प्रघर्षणम्। उपजिह्वाप्रशान्त्यर्थमेस्तैलं विपाचयेत्॥ ५३॥

सोंठ, मिर्च, पीपरि, जवाखार, हड़ और चीता की जड़, इनका चूर्ण जीभ पर रगड़ने से अथवा इन्हीं के कल्क से तेल सिद्ध कर जीभ पर रगड़ने से उपजिह्वक रोग शान्त होता है॥ ५३॥

तालुरोग तथा गलशुण्डी की चिकित्सा।

छित्वा घर्षेद्गलशुण्डीं व्योषोग्राक्षौद्रसिन्धुजैः। कुष्ठोषणवचासिन्धुकणापाठाप्लवैरपि॥ ५४॥ सक्षौद्रैर्भिषजा कार्यं गलशुण्ड्याः प्रघर्षणम्। उपनासाव्यधो हन्ति गलशुण्डीं विशेषतः॥५५॥

गलशुण्डी को शस्त्र द्वारा छेदन कर सोंठ, मिर्च, पीपरि, वच, शहद और सेंधानमक के चूर्ण से अथवा कूट, कालीमिर्च, वच, सेंधानमक, पीपरि, पाढ़ और केवटी मोथा के चूर्ण में शहद में मिलाकर गलशुण्डी पर घिसना चाहिए। अथवा नाक के पास की शिरा का वेधन करने से भी प्रायः गलशुण्डी नष्ट हो जाती है॥ ५४-५५॥

गलशुण्डीं हरेत् तद्वच्छेफालीमूलचर्वणम्। वचामतिविषां पाठां रास्नां कटुकरोहिणीम्॥५६॥ निष्काथ्य पिचुमर्दं च कवलं तत्र योजयेत्। क्षारसिद्धेषु मुद्गेषु यूषश्चाप्यशने हितः॥ ५७॥

हारसिंगार की जड़ को चबाने से गलशुण्डी नष्ट होती है। वच, अतीस, पाढ़, रास्ना, कुटकी और नीम की छाल, इनका काढ़ा बनाकर कवल धारण करना चाहिए। क्षारों के जल से सिद्ध मूँग के जूस का भोजन हितकर होता है॥ ५६-५७॥

तुण्डिकेर्यध्रुवे कूर्मे सङ्घाते तालुपुप्पुटे। एष एव विधिः कार्यो विशेषः शस्त्रकर्म च॥ ५८॥

तुण्डिकेरी, अध्रुष, कूर्मसंघात और तालुपुप्पुट रोग में भी यही पूर्वोक्त चिकित्सा करनी चाहिए। अधिकतर शस्त्रचिकित्सा ही इन रोगों में की जाती है॥ ५८॥

तालुपाके तु कर्तव्यं विधानं पित्तनाशनम्। स्नेहस्वेदौ तालुशोषे विधिश्चानिलनाशनः॥ ५९॥

तालुपाक रोग में पित्तनाशक विधान और तालुशोष में वातनाशक चिकित्सा, स्नेह तथा स्वेदन करना चाहिए॥ ५९॥

कण्ठरोगचिकित्सा।

रोहिणीचिकित्सा।

साध्यानां रोहिणीनां तु हितं शोणितमोक्षणम्। छर्दनं धूमपानं च गण्डूषो नस्यकर्म च॥ ६०॥

साध्य रोहिणी रोग में रक्त निकलवाना, वमन, धूमपान, गण्डूष, धारण और नस्यकर्म हितकर है॥ ६०॥

वातिकीं तु हृते रक्ते लवणैः प्रतिसारयेत्। सुखोष्णांस्तैलकवलान् धारयेच्चाप्यभीक्ष्णशः॥ ६१॥

वातज रोहिणी रोग में रक्त निकलवाकर सेंधानमक से प्रतिसारण तथा वारंवार किञ्चित् गरम तेल का कवल धारण करना चाहिए ॥ ६१ ॥

पत्तङ्गशर्कराक्षौद्रैः पैत्तिकीं प्रतिसारयेत् । द्राक्षापरूषकक्काथो हितश्च कवलग्रहे ॥ ६२ ॥

पित्तज रोहिणी रोग में पतंग, शक्कर और शहद से प्रतिसारण करना चाहिए। तथा मुनक्का और फालसा के क्वाथ का कवल धारण करना हितकर है ॥ ६२ ॥

आगारधूमकटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् । श्वेताविडङ्गदन्तीषु सिद्धं तैलं ससैन्धवम् । नस्यकर्मणि दातव्यं कवलं च कफोच्छ्रये ॥ ६३ ॥

कफज रोहिणी रोग में गृहधूम और कुटकी के चूर्ण से मञ्जन करना चाहिए। एवं फिटकरी, वायविडंग, दन्ती की जड़ और सेंधानमक इनसे सिद्ध किये हुए तेल को नस्यकर्म और कवल धारण में प्रयोग करना चाहिए ॥ ६३ ॥

पित्तवत् साधयेद्वैद्यो रोहिणीं रक्तसम्भवाम् ॥ ६४ ॥

रक्त से उत्पन्न रोहिणी रोग में वैद्य को पित्तज रोहिणी की सी चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ६४ ॥

कण्ठशालूकचिकित्सा।

विस्राव्य कण्ठशालूकं साधयेत्तुण्डिकेरिवत् । एककालं यवान्नं च भुञ्जीत स्निग्धमल्पशः ॥ ६५ ॥

कण्ठशालूक रोग में रक्त निकालकर तुण्डिकेरी के तुल्य चिकित्सा करनी चाहिए तथा एक समय थोड़ा-सा स्निग्ध यवान्न का भोजन करना चाहिए ॥ ६५ ॥

उपजिह्वकवच्चापि साधयेदधिजिह्वकम् । उन्नाम्य जिह्वामाकृष्य बडिशेनाधिजिह्वकम् । छेदयेन्मण्डलाग्रेण तीक्ष्णोष्णौघर्षणादिभिः ॥ ६६ ॥

अधिजिह्वक रोग में उपजिह्वक की-सी चिकित्सा करनी चाहिए। अधिजिह्वक रोग में जीभ को उठाकर बडिशयंत्र से खींचकर मंडलाग्रयंत्र से अधिजिह्वक को काटना चाहिए और उस स्थान पर तीक्ष्ण और उष्ण द्रव्यों का घर्षण करना चाहिए ॥ ६६ ॥

विस्राव्य[1] शोणितं स्वल्पं ततः शोधनमाचरेत् ॥ ६७ ॥

एकवृन्द रोग में थोड़ा-सा रक्त निकलवाकर प्रतिसारण तथा शिरोविरेचनादि द्वारा शोधन करना चाहिए ॥ ६७ ॥

अमर्मस्थं सुपक्वं च भेदयेद्गलविद्रधिम् ॥ ६८ ॥

गलविद्रधि यदि मर्मस्थान पर न हो तो पक जाने पर उसमें चीरा लगा देना चाहिए ॥ ६८ ॥

कण्ठरोगेष्वसृङ्मोक्षस्तीक्ष्णैर्नस्यादिकर्म च । क्काथपानं तु दार्वीत्वङ्निम्बद्राक्षाकलिङ्गतः ॥ हरीतकीकषायो वा पेयो माक्षिकसंयुतः ॥ ६९ ॥ कटुकातिविषादारुपाठामुस्तकलिङ्गकाः । गोमूत्रक्वथिताः पेयाः कण्ठरोगविनाशनाः ॥ ७० ॥

सब प्रकार के कंठरोगों में रक्त निकलवाना तथा तीक्ष्ण नस्य आदि का प्रयोग करना; एवं दारुहल्दी, दालचीनी, नीम की छाल, मुनक्का और इन्द्रजौ, इनके क्काथ का पान अथवा हड़ के क्काथ में शहद मिलाकर पान करना चाहिए। कुटकी, अतीस, दारुहल्दी, पाढ़ी, नागरमोथा और इन्द्रजौ, इनका गोमूत्र में क्काथ बनाकर पीने से कण्ठरोगों का नाश होता है ॥ ६९—७० ॥

---

1 एकवृन्दं [illegible] विस्राव्य विधिशोधनमाचरेत् । इ[illegible]

दन्तरोगाशनि चूर्ण ।

जातीपत्रपुनर्नवातिलकणाकौरुण्टमुस्तावचाः शुण्ठीदीप्यहरीतकी च सघृतं चूर्णं मुखे धारयेत् । वातघ्नं कृमिकर्णशूलदहनं सर्वामयध्वंसनं दौर्गन्ध्यादिसमस्तदोषहरणं दन्तस्य रोगाशनिः ॥ ७१ ॥

एषां समभागचूर्णं घृतम्रक्षितं कृत्वा अस्य किञ्चिन्मुखे धार्यम् ॥

चमेली के पत्ते, साँठी, तिल, पीपरि, पीली कटसरैया नागरमोथा, बच, सोंठ, अजवायन और हड इनके चूर्ण को घृत में सानकर मुख में रखना चाहिए । यह दन्तरोगाशनि चूर्ण वातरोग, दन्तकृमिरोग, कर्णशूल और मुखदुर्गन्ध आदि समस्त मुखरोगों को नष्ट करता है ॥७१॥

कालक चूर्ण ।

गृहधूमो यवक्षारः पाठा व्योषं रसाञ्जनम् । तेजोह्वा त्रिफला लौहं चित्रकश्चेति चूर्णकम् ॥ ७२ ॥ सक्षौद्रं धारयेदेतद्गलरोगविनाशनम् । कालकं नाम तच्चूर्णं दन्तास्यगलरोगनुत् ॥ ७३ ॥

गृहधूम, जवाखार, पाढ़ी, सोंठ, मिर्च, पीपरि, रसौत, तेजबल, हड, बहेडा, आँवला, लौहभस्म और चीता की जड़; इनके चूर्ण में शहद मिलाकर मुख में रखने से गल के सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं । यह कालक नाम चूर्ण दन्त, मुख और गल के रोगों को नष्ट करनेवाला है ॥ ७२-७३ ॥

पीतक चूर्ण ।

मनःशिला यवक्षारो हरितालं ससैन्धवम् । दार्वीत्वक् चेति तच्चूर्णं माक्षिकेण समायुतम् ॥ ७४ ॥ मूर्च्छितं घृतयोगेन कण्ठरोगेषु धारयेत् । मुखरोगेषु च श्रेष्ठं पीतकं नाम कीर्तितम् ॥ ७५ ॥

मैनशिल, जवाखार, हरताल, सेंधानमक, दारुहल्दी और दालचीनी इनके चूर्ण में शहद मिलाकर तथा घृत में सानकर मुख में धारण करना चाहिए । यह पीतक नाम चूर्ण कंठरोग और मुखरोगों में हितकर कहा गया हैं ॥७४-७५॥

यवक्षारादि गुटी ।

यवाग्रजं तेजवतीं सपाठां रसाञ्जनं दारुनिशां सकृष्णाम् । क्षौद्रेण कुर्याद् गुटिकां मुखेन तां धारयेत् सर्वगलामयेषु ॥ ७६ ॥

दशमूलं पिबेदुष्णं यूषं मूलकुलत्थयोः ।

जवाखार तेजबल, पाढ़ी, रसौत, दारुहल्दी और पीपरि; इनके चूर्ण में शहद मिलाकर गोलियाँ बनावे । सब प्रकार के गलरोगों में इसको मुख में धारण करना चाहिए ॥ ७६ ॥

गल के रोगों में दशमूल का गरम-गरम काढ़ा तथा मूली और कुलथी का जूस पीना हितकर होता है ।

क्षीरेक्षुरसगोमूत्रदधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः । विदध्यात् कवलान् वीक्ष्य दोषं तैलघृतैरपि ॥ ७७ ॥

गल के रोगों में दोषों का विचार कर दूध, ईख का रस, गोमूत्र, दही का तोड और खट्टी काँजी का तथा तेल और घी का कवल धारण करना चाहिए ॥ ७७ ॥

क्षारगुटिका ।

पञ्चकोलकतालीशपत्रैलामरिचत्वचः । पलाशपुष्पकक्षारयवक्षाराश्च चूर्णिताः ॥ ७८ ॥ गुडे पुराणे क्वथिते द्विगुणे गुडिकाः कृताः । कर्कन्धुमात्राः सप्ताहं स्थिता मुष्ककभस्मनि ॥ कण्ठरोगेषु सर्वेषु धार्याः स्युरमृतोपमाः ॥ ७९ ॥

पीपरि, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, तालीशपत्र, छोटी इलायची, कालीमिर्च, दाल-

चीनी, पलाशक्षार, मोखा का क्षार और जवाखार, इनका चूर्ण कर सब ओषधियों से दूना गुड़ लेकर यथाविधि पाक करे और बेर के समान गोलियाँ बनाकर मोखा की राख में सात दिन तक रक्खे, फिर भस्म से निकाल कर सब प्रकार के कण्ठरोगों में इन अमृततुल्य गोलियों को मुख में रखना चाहिए ॥ ७८-७९ ॥

योगों का विधान।

मूत्रस्विन्नां शिवां तुल्यां मधुरीकुष्ठवालकैः। अभ्यस्य मुखरोगांस्तु जयेद्विरसतामपि ॥ ८० ॥

गोमूत्र में स्वेदित की हुई, हड़, सौंफ, कूट और सुगन्धवाला; ये सब सम भाग ले सेवन करे तो सब प्रकार के मुखरोग और मुख की विरसता नष्ट होती है ॥ ८० ॥

सर्वसरचिकित्सा।

वातात् सर्वसरं चूर्णैर्लवणैः प्रतिसारयेत्। तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥ ८१ ॥

वातज सर्वसर रोग में सेंधानमक महीन पीसकर मुख में रगड़ना चाहिए तथा वातनाशक ओषधियों से सिद्ध किये हुए तेल का नस्य एवं कवल धारण करना भी वातज सर्वसर रोग में हितकर है ॥ ८१ ॥

पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य देहिनः। सर्वः पित्तहरः कार्यो विधिर्मधुरशीतलः ॥ ८२ ॥

पित्तज सर्वसर रोग में वमन और विरेचन आदि से शरीर शुद्ध करके सब प्रकार की पित्तनाशक मधुर और शीतल क्रिया करनी चाहिए ॥ ८२ ॥

प्रतिसारणगण्डूषान् धूमसंशोधनानि च। कफात्मके सर्वसरे क्रमं कुर्यात् कफापहम् ॥ ८३ ॥

कफज सर्वसर रोग [redacted] कफनाशक ओषधियों से प्रतिसारण, गण्डूषधारण, धूमपान और संशोधन आदि क्रिया करनी चाहिए ॥ ८३ ॥

मुखपाकचिकित्सा।

मुखपाके शिरावेधः शिरःकायविरेचनम्। कार्यं च बहुधा नित्यं जातीपत्रस्य चर्वणम् ॥ ८४ ॥

मुखपाक रोग में शिरावेध, शिरोविरेचन, जुलाब द्वारा शरीरशोधन तथा बार-बार चमेली के पत्तों को चबाना चाहिए ॥ ८४ ॥

जातीपत्रामृताद्राक्षापाठादार्वी फलत्रिकैः। क्वाथः क्षौद्रयुतः शीतो गण्डूषो मुखपाकनुत् ॥ ८५ ॥

चमेली के पत्ते, गिलोय, मुनक्का, पाढ़ी, दारुहल्दी, हड़, बहेड़ा और आँवला; इन सबके ठंढे क्वाथ में शहद डालकर गण्डूष धारण करने से मुखरोग दूर होता है ॥ ८५ ॥

पटोलनिम्बजम्ब्वाम्रमालतीनवपल्लवैः। पञ्चपल्लवजः श्रेष्ठः कषायो मुखधावने ॥ ८६ ॥

परवल, नीम, जामुन, आम और मालती इन पाँचों [redacted] नवीन पत्तों के काढ़े से मुख धोना (कुल्ला करना) मुख रोग को शान्त करता है ॥ ८६ ॥

पञ्चवल्ककषायो वा त्रिफलाक्वाथ एव वा। मुखपाकेषु सक्षौद्रः प्रयोज्यो मुखधावने ॥ ८७ ॥

मुखपाक रोग में पञ्चवल्कल (बरगद, पकड़िया गूलर, पीपल और बेत की छाल) के काढ़े अथवा त्रिफला के काढ़े में शहद डालकर कुल्ला करना चाहिए ॥ ८७ ॥

स्वरसः क्वथितो दार्व्या घनीभूतो रसक्रिया। सक्षौद्रा मुखरोगासृग्दोषनाडीव्रणापहा ॥ ८८ ॥

दारुहल्दी के स्वरस को अथवा क्वाथ को पकाकर गाढ़ा करके रसक्रिया तैयार करे। इसमें

शहद मिलाकर मुख में धारण करे। अथवा चाटे तो मुखरोग, रक्तविकार और नाडीव्रण नष्ट होता है ॥ ८८ ॥

सप्तच्छदादिकाथ।

सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्तहरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः। यष्टयाह्वराजद्रुमचन्दनैश्च क्वाथं पिवेत् पाकहरं मुखस्य ॥ ८९ ॥

सतवन की छाल, खस, परवल के पत्ते, मोथा, हड़, कुटकी, मुलेठी, अमलतास और लालचन्दन, इन सबको समभाग लेकर क्वाथ बनावे। इस क्वाथ के पीने से मुख का पकना शान्त होता है ॥ ८९ ॥

पटोलादि क्वाथ।

पटोलशुण्ठीत्रिफलाविशालात्रायन्तितिक्ताद्विनिशामृतानाम् । पीतः कषायो मधुना निहन्ति मुखे स्थितश्चास्यगदानशेषान् ॥ ९० ॥

परवल के पत्ते, सोंठ, हड़, बहेड़ा, आँवला, इन्द्रायण की जड़, त्रायमाण, कुटकी, हल्दी, दारुहल्दी और गिलोय, इनके क्वाथ में शहद डालकर पीने से अथवा मुख में धारण करने से मुख के समस्त रोग नष्ट होते हैं ॥ ९० ॥

पुनः योगों का विधान।

क्वथितास्त्रिफलापाठामृद्वीकाजातिपल्लवाः। निषेव्या भक्षणीया वा त्रिफला मुखपाकहा ॥ ९१ ॥

त्रिफला, पाढ़, दाख और चमेली के पत्ते, इनका क्वाथ पीने से अथवा त्रिफला के खाने से मुखपाक नष्ट होता है ॥ ९१ ॥

कृष्णाजीरककुष्ठेन्द्रयवचर्वणतस्त्र्यहम्। मुखपाके व्रणक्लेददौर्गन्ध्यमुपशाम्यति ॥ ९२ ॥

पीपरि, जीरा, कूट और इन्द्रजौ; इनको तीन दिन चवाने से मुखपाक, मुखव्रण, क्लेद (लार बहना) और मुख की दुर्गन्धि शान्त होती है ॥ ९२ ॥

तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च। सक्षौद्रो दग्धवक्त्रस्य गण्डूषो दाहपाकहा ॥ ९३ ॥

तिलेतिपञ्चयोगाः सर्वत्र मधुप्रयोगः। तिलक्वाथस्तथा नीलोत्पलक्वाथो ग्राह्यः।

क्षार आदि द्वारा अथवा गरम भोजन से मुख के जलने पर तिल, नीलोफर, घी, खाँड, दूध, तथा शहद सबको मिलाकर गण्डूष करने से लाभ होता है। अथवा तिल का क्वाथ और शहद; नील कमल का क्वाथ और शहद; घृत और शहद; शक्कर और शहद तथा दूध और शहद; इन पाँचों योगों में से किसी एक योग का गण्डूष धारण करने से जले हुए मुख का दाह और पाक नष्ट होता है ॥ ९३ ॥

तैलेन काञ्जिकेनाथ गण्डूषश्चूर्णदाहहा ॥ ९४ ॥

तैल अथवा काँजी का गण्डूष धारण करने से चूने का दाह शान्त होता है ॥ ९४ ॥

घनकुष्ठैलाधान्यकयष्टीमध्वेलवालुकाकवडः। वदनेऽतिपूतिगन्धं हरति सुरालशुनगन्धं च ॥ ९५ ॥

घनादिकं मुखे निक्षिप्य चर्वणीयमिति वृद्धाः।

मोथा, कूट, छोटी इलायची, धनिया, मुलेठी और एलवालुक; इन सबको एकत्र कर चबाने से अथवा इनका कवल धारण करने से मुख की दुर्गन्ध तथा मदिरा और लहसुन की दुर्गन्ध नष्ट होती है ॥ ९५ ॥

विदार्यादि तैल।

ततो विदारीयष्ट्याह्वशृङ्गाटककशेरुभिः। तैलं दशगुणं क्षीरं सिद्धं नस्ये तु योजयेत् ॥ ९६ ॥

तिलतैल १६ तोले। दूध २ सेर, कल्क

के लिए—विदारीकन्द, मुलेठी, सिघाड़ा, कसेरू, हरएक २ तोले। विधिपूर्वक तैल सिद्धकर नस्य लेने से दन्तरोग नष्ट होता है ॥ ९६ ॥

सप्तच्छदार्कदुग्धाभ्यां पूरणं कृमिदन्तनुत्। अर्कक्षीरेणैवमेकयोगः सद्भिः प्रशस्यते ॥ ९७ ॥

कृमिदन्त के छिद्र को सतौने का दूध तथा आक का दूध, एकत्र मिलाकर अथवा केवल आक के दूध से ही पूरण करने से कृमिदन्त रोग नष्ट होता है। इसमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अन्यत्र न लगने पाये ॥ ९७ ॥

गिलायुश्चापि यो व्याधिस्तञ्च शस्त्रेण साधयेत् ॥ ९८ ॥

गिलायु नामक रोग में भी शस्त्रचिकित्सा करनी चाहिए। यदि गिलायु कड़ा, थोड़े कष्टयुक्त तथा कच्चा हो तो छेदन करना चाहिए। परन्तु यदि पक जाय तब मवाद आदि के निकालने के लिए भेदन करना चाहिए ॥ ९८ ॥

सहाचर तैल।

तुलां धृतां नीलसहाचरस्य द्रोणेऽम्भसः संस्रपयेद् यथावत्। पूते चतुर्भागरसे तु तैलं पचेच्छनैरर्द्धपलप्रमाणैः ॥ ९९ ॥ कल्कैरनन्ताखदिरारिमेदजम्ब्वाम्रयष्टीमधुकोत्पलानाम्। तत्तैलमास्थेव धृतं मुखेन स्थैर्यं द्विजानां विदधाति सद्यः ॥ १०० ॥

नील कटसरैया २ सेर, क्वाथार्थ जल २२ सेर ४८ तोले, अवशिष्ट क्वाथ ६ सेर ३२ तोले। तिलतैल १२८ तोले। कल्क के लिए अनन्तमूल, खैर, अरिमेद (दुर्गन्ध खैर) की छाल, जामुन की छाल, आम की छाल, मुलेठी और नील कमल; प्रत्येक दो-दो तोले। यथाविधि तेल सिद्ध कर मुख में धारण करने से दाँत शीघ्र ही स्थिर हो जाते हैं ॥९९-१००॥

अरिमेदाद्य तैल।

अरिमेदत्वक्पलशतमभिनवमापोथ्य खण्डशः कृत्वा। तोयाढकैश्चतुर्भिर्निष्क्वाथ्य चतुर्थशेषेण ॥ १०१ ॥ क्वाथेन तेन मतिमांस्तैलस्यार्द्धाढकं शनैर्विपचेत्। कल्कैरक्षसमांशैर्मञ्जिष्ठालोध्रमधुकानाम् ॥ १०२ ॥ अरिमेदखदिरकट्फललाक्षान्यग्रोधसूक्ष्मैला। कर्पूरागुरुपद्मकलवङ्गककोलजातीफलानाम् ॥ १०३ ॥ फलपत्तङ्गगैरिकवराङ्गगजकुसुमधातकीनां च। सिद्धं भिषग्विदध्यादिदं मुखोत्थेषु रोगेषु ॥ १०४ ॥ परिशीर्णदन्तविद्रधिशौषिरशीतादन्तहर्षेषु। कृमिदन्तदरणचलितमहृष्टमांसावशीर्णेषु ॥१०५॥ मुखदौर्गन्ध्येषु च कार्यं मागुप्तेष्वामयेषु तैलमिदम् १०६॥

अरिमेद (दुर्गन्ध खैर) की ताजी छाल ५ सेर लाकर उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर डाले और २५ सेर ४८ तोले जल में डाल कर पकावे। जब ६ सेर ३२ तोले बाकी रहे तब उतार कर छान ले। तिलतैल ३ सेर १६ तोले। कल्क के लिए मँजीठ, लोध, मुलेठी, अरिमेद, खैर की छाल, रैर, कायफल, लाख, बरगद की छाल, छोटी इलायची, कपूर, अगर, पद्माक, लवंग, कंकोल (शीतलचीनी), जावित्री, जायफल, पतङ्ग, गेरू, दालचीनी, नागकेशर और धाय के फूल; प्रत्येक दो-दो तोले। विधि से तेल सिद्ध करे। मुखरोगों में इस तेल का कवल धारण करने से दाँतों का गिरना, विद्रधि, शौषिर, शीताद, दन्तहर्ष, कृमिदन्त, दालन, दाँत हिलना, अधिमांस, दाँतों का मांस गलना और मुख की दुर्गन्ध इत्यादि दन्तरोग नष्ट होते हैं ॥ १०१-१०६ ॥

लाक्षाद्य तैल।

तैलं लाक्षारसं क्षीरं पृथक् प्रस्थं समं पचेत्। चतुर्गुणेऽरिमकाथे द्रव्यैश्च पलसंमितैः ॥ १०७ ॥ लोधकट्फलमञ्जिष्ठापद्मकेशरपद्मकैः। चन्दनोत्पलयष्ट्याह्वैस्तैलं

गण्डूषधारणम् ॥१०८॥दालनं दन्तचालं च दन्तमोचं कपालिकाम् । शीतादं पूतिवक्त्रं च अरुचिंविरसास्यताम् ॥ हन्यादाशु गदानेतान् कुर्याद्दन्तानपि स्थिरान् ॥ १०९ ॥

तिलतैल १२८ तोले, लाख का रस १२८ तोले, गौ का दूध १२८ तोले, अरिमेद का क्वाथ ६ सेर ३२ तोले। कल्क के लिए लोध, कायफल, मँजीठ, कमलकेशर, पद्माख, चन्दन, नील कमल और मुलेठी; ये सब चार-चार तोले । विधि से तैल सिद्ध कर गण्डूष धारण करे तो यह लाक्षाद्य तैल दालन, दाँत हिलना, दाँत गिरना, कपालिका, शीताद, मुखदुर्गंध, अरुचि, मुख की विरसता आदि रोगों को शीघ्र नष्ट करके दाँतों को स्थिर कर देता है ॥ १०७-१०९ ॥

दशनसंस्कार चूर्ण ।

शुण्ठी हरीतकी मुस्ता खदिरं घनसारकम् । गुवाकभस्ममरिचं देवपुष्पं तथा त्वचम् ॥ ११० ॥ श्लक्ष्णचूर्णीकृतं यत्नान्निक्षिपेत् खल्लमध्यतः । कठिनीसम्भवं चूर्णं प्रक्षिपेत् तत्र तत्समम् । एतद्दशनसंस्कारचूर्णं दन्तास्यरोगजित् ॥ १११ ॥

सोंठ, हड़, नागरमोथा, खैर, कपूर, सुपारी की भस्म, कालीमिर्च, लौंग और दालचीनी, इन सबको समभाग ले महीन चूर्ण करे और सब चूर्ण के समान खड़िया का चूर्ण उसमें मिलाकर खूब खरल करके रख ले। इस दशनसंस्कार चूर्ण का मञ्जन करने से दाँत और मुख के रोग नष्ट होते हैं ॥ ११०-१११ ॥

बकुलाद्य तैल ।

बकुलस्य फलं लोध्रं वज्रवल्ली कुरण्टकम् । चतुरंगुलबब्बोलवाजिकर्णारिमेदकम् ॥ ११२ ॥ येषां कषायकल्काभ्यां तैलं पक्वं मुखे धृतम् । स्थैर्यं करोति चलतां दन्तानां नावनेन च ॥ ११३ ॥

मौलसिरी के फल, लोध, हड़संहारी, पीली कटसरैया, अमलतास बबूल की छाल, अश्वकर्ण शाल, अरिमेद और पीतसाल इन सबके क्वाथ से तथा कल्क से तेल सिद्ध करे। यह तेल मुख में धारण करने से अथवा नस्य लेने से हिलते हुए दाँतों को स्थिर करता है ॥ ११२-११३ ॥

स्वल्पखदिरवटिका ।

खदिरस्य तुलां सम्यक् जलद्रोणे विपाचयेत् । शेषेऽष्टभागे तत्रैव प्रतिवापं प्रदापयेत् ॥ ११४ ॥ जातीकर्पूरपूगानि बब्बोलफलकानि च । इत्येषा गुटिका कार्या मुखसौभाग्यवर्द्धिनी । दन्तौष्ठमुखरोगेषु जिह्वाताल्वामयेषु च ॥ ११५ ॥

खैर ५ सेर, पाकार्थ जल २५ सेर ४८ तोले, अवशिष्ट क्वाथ ३ सेर १६ तोले। इस क्वाथ में जावित्री, कपूर, सुपारी, बबूल की छाल और जायफल, सब मिलित ६४ तोले डालकर पकावे। जब गाढ़ा हो जाय तब उतारकर गोलियाँ बना ले। इस गोली को मुख में रखने से दाँत, ओष्ठ, मुख, जीभ और तालुरोग नष्ट होते हैं तथा मुख सुगन्धित हो जाता है ॥ ११४-११५ ॥

बृहत्खदिरवटिका ।

गायत्रीसारतुलमेरिमवल्कलानां सार्द्धं तुलायुगलमम्बुघटैश्चतुर्भिः । निष्क्वाथ्य पादमवशिष्टसुवस्त्रपूतं भूयः पचेदथ शनैर्मृदुपावकेन ॥ ११६ ॥ तस्मिन् घनत्वमुपगच्छति चूर्णमेषां श्लक्ष्णं क्षिपेच्च कवडग्रहभागिकानाम् । एलामृणालसितचन्दनचन्दनाम्बुश्यामातमालनिकषायनलोहयष्टी ॥ ११७ ॥ लज्जाफलत्रयरसाञ्जनधातकीभश्रीपुष्पगं-

रिककटङ्कटकट्फलानाम् । पद्मादलोध्रवटरोहयवासकानां मांसीनिशासुरभिवल्कलसंयुतानाम् ॥ ११८ ॥ कक्कोलजातिफलकोपलवङ्गकानि चूर्णीकृतानि विदधीत पलांशकानि । शीतेऽवतार्य घनसारचतुष्पलं च लिप्त्वा कलायसदृशीर्गुडिकाः प्रकुर्यात् ॥११६॥ शुष्का मुखे विनिहिता विनिवारयन्ति रोगान् गलौष्ठरसनाद्विजतालुजातान् । कुर्युर्मुखे सुरभितां पटुतां रुचिं च स्थैर्यं परं दशनगं रसनालघुत्वम् ॥ १२० ॥

खैरसार (कत्था) ४ सेर, अरिमेद की छाल ५ सेर ; इन दोनों को सम्मिलित कर १ मन ११ सेर १६ तोले जल में पकावे । जब १२ सेर ६४ तोले क्वाथ अवशिष्ट रहे तब उतार कर कपड़े से छान ले। फिर इसको मन्द-मन्द अग्नि से पकावे । जब गाढ़ा होने लगे तब इसमें निम्नलिखित ओषधियों का महीन चूर्ण डाले। छोटी इलायची, मजीठा, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, सुगन्धबाला, सारिवा, तेजपत्र, मजीठ, नागरमोथा, लोहभस्म, मुलेठी, लजावन्ती, त्रिफला, रसौत, धाय के फूल, नागकेशर, लौंग, गेरू, दारुहल्दी, कायफल, पद्माख, लोध, बरगद की जटा, जवासा, जटामांसी, हल्दी, रास्ना और दालचीनी ; प्रत्येक एक-एक तोला। शीतलचीनी, जायफल और लौंग ; इन प्रत्येक का चूर्ण चार-चार तोले। जब सब ओषधियाँ अच्छे प्रकार मिलकर गोली बनाने योग्य पाक हो जाय तब नीचे उतार कर १६ तोले कपूर का चूर्ण मिलाकर मटर के समान गोलियाँ बना ले। जब गोलियाँ सूख जायँ तब उनका सेवन करना चाहिए। यह गोली मुख में रखने से गल, ओठ, जीभ, दाँत और तालु इत्यादि में होनेवाले रोगों को निवारण करती है तथा मुख को निवारण करती है तथा मुख को सुगन्धित, दाँतों को दृढ़ और जीभ को हलकी कर देती है और रुचि को बढ़ाती है (एक एक गोली मुँह में डालकर रस चूसना चाहिए) ॥ ११६-१२० ॥

मुखरोगहर रस।

रसगन्धौ समौ ताभ्यां द्विगुणं च शिलाजतु । गोमूत्रेण विमर्द्याथ सप्तधार्कद्रवेण च ॥ १२१ ॥ जातीनिम्बमहाराष्ट्रीरसैः सिध्यति पाकहा । कणा मधुयुता हन्ति मुखपाकं सुदारुणम् ॥ १२२ ॥ चतुर्गुञ्जाधृता वक्त्रे सद्यो हन्ति वटी गदान् । महाराष्ट्र्याश्च कल्केन मुखं च प्रतिसारयेत् ॥ धारणाद् वदने चैषा वटी हन्ति मुखामयान् ॥ १२३ ॥

शुद्ध पारा १ तोला, गन्धक १ तोला और शिलाजीत ४ तोले । पारा और गन्धक की कजली करके शिलाजीत मिलावे, फिर क्रम से गोमूत्र, आक के पत्तों का रस, चमेली के पत्तों का रस, नीम के पत्तों का रस और जलपीपरि के रस की अलग-अलग सात-सात भावनाएँ देकर आठ-आठ रत्ती की गोलियाँ बना ले। इस गोली को पीपरि के चूर्ण और शहद के साथ मुख में धारण करने से मुख के संपूर्ण रोग नष्ट होते हैं। इस गोली के सेवन के पश्चात् जलपीपरि का कल्क मुख में रखना चाहिए ॥ १२१-१२३ ॥

पथ्यावटी।

पथ्याबालककुष्ठञ्च गोमूत्रेण प्रसाधयेत् । एषा च वटिका हन्ति मुखदौर्गन्ध्यसन्ततम् ॥ १२४ ॥

हड़, गन्धबाला, कूठ हरएक का चूर्ण ४ तोले, इन्हें एकत्र १६ तोले गोमूत्र में पकाकर गाढ़ा होने पर दो दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। इस गोली को मुख में रखने से मुख की दुर्गन्धि नष्ट होती है ॥ १२४ ॥

रसामृत रस।

मृतसूताभ्रकं तुल्यं मृतलोहं शिलाजतु।

गुग्गुलुश्च शिलातार्प्यं समांशं मधुना लिहेत् ॥ अर्धगुञ्जप्रमाणेन मुखरोगं विनाशयेत् ॥ १२५ ॥

पारामस्म (अभाव में रससिन्दूर), अभ्रकभस्म, लोहभस्म, शिलाजीत, गूगल, मैनसिल, सोनामाखी की भस्म, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर आधी-आधी रत्ती की गोलियाँ बनावे। अनुपान—शहद। इसके सेवन से मुखरोग नष्ट होते हैं ॥ १२५ ॥

चतुर्मुखरस।

मृतं सूतं मृतं स्वर्णं द्वाभ्यां तुल्यां मनःशिलाम्। विमर्दयेच्च तैलेन अतसीसम्भवेन च ॥ १२६ ॥ तद्गोलं वद्धतो बद्ध्वा लेपयेच्च समन्ततः। अतसीफलकल्केन दोलायन्त्रे त्र्यहं पचेत्। उद्धृत्य धारयेद्वक्त्रेजिह्वादन्तास्यरोगनुत् ॥ १२७ ॥

रससिन्दूर १ भाग, स्वर्णभस्म १ भाग, शुद्ध मैनसिल २ भाग, इन्हें एकत्रकर अलसी के तेल में घोटकर पिण्डाकार कर ले। पश्चात् कपड़ा लपेट अलसी के कल्क से लेपन करे और अलसी के क्वाथ से दोलायन्त्र द्वारा तीन दिन पकावे पश्चात् औषध को पृथक् कर चौथाई रत्ती की मात्रा मुख में रक्खे। यह चतुर्मुखरस जिह्वा, दाँत तथा मुख के रोगों को दूर करता है ॥ १२६-१२७ ॥

पार्वती रस।

पार्वतीशिवसम्भूतो दरदो मधुपुष्पकम्। गुडूची शाल्मली द्राक्षा धान्यभूनिम्बमार्कवम् ॥ १२८ ॥ तिलमुद्गपटोलश्च कूष्माण्डलवणद्वयम्। यष्टिका धान्यकं भस्म चान्तर्दग्धं समं समम् ॥ १२९ ॥ मुखरोगं निहन्त्याशु पार्वतीरस उत्तमः। पित्तज्वरं चिरं हन्ति तिमिरञ्च तृषामपि ॥ १३० ॥

गन्धक, पारा, सिंगरफ, महुए के फूल, गिलोय, सेमल की जड़, दाख, धनियाँ, चिरायता, भँगरा, तिल, मूँग, पटोलपत्र, पेठा, सेंधानमक, बिड़नमक, मुलहठी, धनियाँ, इन्हें बराबर-बराबर मात्रा में मिला अन्तर्धूम पाक करे। शीतल होने पर औषध को बाहर निकाल ले। इसके सेवन से मुखरोग, जीर्ण पित्तज्वर, तिमिर तथा तृष्णा आदि रोग नष्ट होते हैं। मात्रा—२ रत्ती ॥ १२८-१३० ॥

रसेन्द्रवटी।

रसेन्द्रगन्धाश्मजतुप्रवाललौहानि वैद्यः समभागिकानि। रसेन्द्रपादप्रमितं च हेम विभाव्य निम्बाशनवह्नितोयैः ॥ १३१ ॥ ततो वटीर्वल्लमिता विमर्द्य विधाय बुद्ध्वा बहुवारवारा। फलत्रिकक्काथजलेन वापि प्रातः प्रयुञ्ज्यात् प्रकराम्बुना वा ॥ १३२ ॥ रसेन्द्रवट्यास्यगदान्निहन्ति वातामयान् मेहगणान् ज्वरांश्च। करोति वह्नेर्बलवीर्ययोश्च वृद्धिं विशेषेण रसायनी-यम् ॥ १३३ ॥

शुद्धपारा, गन्धक, शिलाजीत, मूँग की भस्म और लौहभस्म, प्रत्येक समभाग। पारा से चौथाई सुवर्णभस्म। इन सबको एकत्र कर नीम के पत्ते, असना की छाल और चीता की जड़ के काढ़े से अलग-अलग बारंबार घोटकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। प्रातःकाल त्रिफला के क्वाथ या त्रिफला के क्वाथ अथवा अगर के काढ़े के साथ एक गोली खाना चाहिए। यह रसेन्द्रवटी मुखरोग, वातरोग, बीसों प्रकार के प्रमेह और ज्वर रोगों को नष्ट करती है। यह अग्नि, बल और वीर्य की वृद्धि करती है तथा रसायन है ॥ १३१--१३३ ॥

खदिरादिवटी।

खदिरस्य निम्बस्य खदिरस्यासनस्य च। तुलां पृथग्विनिष्काथ्य द्रोणमानेन

चाम्बुना ॥ १३४ ॥ एकीकृत्य कषायांश्च पादशिष्टान् पुनः पचेत् । ततः क्षिपेन्मलयजं बालकं रक्तचन्दनम् ॥ १३५ ॥ गैरिकं देवपुष्पं च धातकीं रजनीद्वयम् । लोध्रं जातीफलं श्यामां चातुर्जातं फलत्रयम् ॥ १३६ ॥ वटप्ररोहमञ्जिष्ठामांसीरम्बुधरं विडम् । कटुत्रयमयश्चन्द्रं भक्त्यर्द्धं प्रमाणतः ॥ १३७ ॥ ततः कलायसदृशीर्विदध्याद् गुडिका भिषक् । रोगान् कण्ठौष्ठरसनादन्ततालुसमुद्भवान् ॥ १३८ ॥ सहकारवटी हन्यादाश्वेव वदने धृता । जनयेन्मुखसौरभ्यं सुरुचिं स्थिरदन्तताम् ॥ १३९ ॥

आम की छाल ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोले, अवशिष्ट क्वाथ ६ सेर ३२ तोले। नीम की छाल ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोले। अवशिष्ट क्वाथ ६ सेर १२ तोले। खैर ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोले। अवशिष्ट क्वाथ ६ सेर, ३२ तोले। असना की छाल ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोले। अवशिष्ट क्वाथ ६ सेर १२ तोले। सब क्वाथों को एकत्र कर फिर पकावे। पकाते समय गाढ़ा होने पर सफेद चन्दन, सुगन्धबाला, लालचन्दन, गेरू, लौंग, धाय के फूल, हल्दी, दारुहल्दी, लोध, जायफल, अनन्तमूल, दालचीनी, तेजपत्र, छोटी इलायची, नागकेशर, हड़, बहेड़ा, आँवला, बरगद की जटा, मंजीठ, जटामांसी, नागरमोथा, विड़नमक, सोंठ, मिर्च, पीपरि, लौहभस्म और कपूर; प्रत्येक चार-चार तोले। इन द्रव्यों का चूर्ण डालकर नीचे उतार ले और मटर के समान गोलियाँ बना ले। इस गोली को मुख में धरने से कंठ, ओठ, जीभ, दांत और तालु में उत्पन्न होनेवाले रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। इसके मुख सुगन्धित, सुन्दर रुचि और दाँत स्थिर होते हैं ॥ १३४--१३९ ॥

मालत्याद्य घृत ।

मालत्या द्रोणपुष्पाश्च निम्बवन्त्रोलयोस्तथा । सहाचरस्य सर्जस्य स्वरसेन पृथक् पृथक् ॥ १४० ॥ कल्कैर्मलयजोशीररक्तचन्दनचम्पकैः । अश्वत्थवटनीलीभी रजनीदारुसैन्धवैः ॥ १४१ ॥ दार्व्या विश्वाह्वकुष्ठाभ्यां कणया च पचेद् घृतम् । शनैस्ताम्रमये पात्रे कृतवङ्गविलेपने ॥ १४२ ॥ मालत्याद्यमिदं सर्पिर्गदान् मुखसमुद्भवान् । निहन्यान्नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १४३ ॥

मालतीपत्र, द्रोणपुष्पी (गूमा), नीम की छाल, बबूल की छाल, पीली कटसरैया और शाल; इनका स्वरस अथवा काढ़ा दो-दो सेर। घी २ सेर। कल्क के लिये सफेद चन्दन, खस, लाल चन्दन, चम्पा, पीपल की छाल, बरगद की जटा, नील की जड़, हल्दी, देवदारु, सेंधानमक, दारुहल्दी, सोंठ, कूट और पीपरि; सब मिलित आध सेर। इन सबको एकत्र कर कलई किये हुए ताँबे के पात्र में धीरे-धीरे पकावे। यह मालत्यादि घृत मुख के रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार सूर्यनारायण अन्धकार को नष्ट करते हैं। इसमें सन्देह नहीं है ॥ १४०--१४३ ॥

जात्याद्य तैल ।

जातीपल्लवतोयेन शङ्खपुष्पीरसेन च । बकुलत्वक्कषायेण पचेत्तैलं तिलोद्भवम् ॥ १४४ ॥ गायत्रीमाम्रबीजं च त्रिफलां कटुकत्रयम् । चव्यं नीलोत्पलं कुष्ठं मधुकं रजनीद्वयम् ॥ १४५ ॥ मुस्तकं बालकं लोध्रं सिन्दूरं स्वर्णगैरिकम् । कल्कीकृत्य क्षिपेत् तत्र वटरोहमयोऽपि च ॥ १४६ ॥ जात्याद्याख्यमिदं तैलं निखिलान् मुखजान् गदान् । भगन्दरोपदंशौ च व्रणं दुष्टं निहन्ति च ॥ १४७ ॥

का रस ४ सेर और मौलसिरी की छाल का क्वाथ ४ सेर। तिल तेल २ सेर। कल्क के लिए खैर, आम की गुठली, हड़, बहेड़ा, आंवला, सौंठ, मिर्च, पीपरि, चव्य, नीलकमल, कूट, मुलेठी, हल्दी, दारुहल्दी, मोथा, सुगन्धबाला, लोध, सिन्दूर, स्वर्णगेरू, बरगद की जटा और लोहभस्म; सब मिलित आध सेर। इनसे यथाविधि तेल सिद्ध करे। इस आत्यादि तेल को मुख में रखने से मुख के संपूर्ण रोग नष्ट होते हैं। यह तेल भगन्दर, उपदंश और दुष्टव्रण को भी नष्ट करता है ॥ १४४–१४७ ॥

मुखरोग में पथ्य।

स्वेदो विरेको वमनं गण्डूषः प्रतिसारणम्। कवलोऽसृक्स्रुतिर्नस्यं धूमः शस्त्राग्निकर्मणी ॥ १४८ ॥ तृणधान्यं यवा मुद्गाः कुलत्था जाङ्गलो रसः। बहुपुत्री कारवेल्लं पटोलं बालमूलकम् ॥ १४९ ॥ कर्पूरनीरं ताम्बूलं तप्ताम्बु खदिरो घृतम्। कटुतिक्तौ च वर्गोऽयं मित्रं स्यान्मुखरोगिणाम् ॥ १५० ॥

स्वेद, विरेचन, वमन, गण्डूषधारण, प्रतिसारण, कवलधारण, रक्तनिर्हरण, नस्य, धूमपान, शस्त्रकर्म, अग्निकर्म, तृणधान्य, जौ, मूँग, कुलथी, जाँगल पशु-पक्षियों के मांस का रस, शतावर, करेला, परवल, कच्ची मूली, कपूरजल, पान, गरम जल, खदिर (कत्था), घी, चरपरे एवं कड़वे द्रव्य; ये मुखरोगियों के लिए हितकारक हैं ॥ १४८–१५० ॥

मुखरोग में वर्ज्य पदार्थ।

दन्तकाष्ठं स्नानमम्लं मत्स्यमानूपमामिषम्। दधि क्षीरं गुडं माषं रूक्षान्नं कठिनाशनम् ॥ १५१ ॥ अधोमुखेन शयनं गुर्वभिष्यन्दकारि च। मुखरोगेषु सर्वेषु दिवानिद्रां विवर्जयेत् ॥ १५२ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मुखरोगाधिकारः समाप्तः।

सब प्रकार के मुख रोगों में दतून, स्नान, खटाई, मछली, अनूप देश के जीवों का मांस, दही, दूध, गुड़, उड़द, रूखा अन्न, कड़ा भोजन, नीचे को मुख करके सोना, भारी और अभिष्यन्दी पदार्थ खाना तथा दिन का सोना; ये सब आहार-विहार त्याज्य हैं ॥ १५१–१५२ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां मुखरोगाधिकारः समाप्तः।

अथ क्षुद्ररोगाधिकारः।

अजगल्लिका की चिकित्सा।

तत्राजगल्लिकामामां जलौकाभिरुपाचरेत्। शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षारकल्कैश्चालेपयेन्मुहुः ॥ १ ॥

कच्ची अजगल्लिका का जोंकों द्वारा रक्त निकलवा कर सीप, गोपीचन्दन और जवाखार को जल से पीसकर उस पर बारंबार लेप करना चाहिए ॥ १ ॥

नवीनकण्टकार्याश्च कण्टकैर्वेधमात्रतः। किमाश्चर्यं विपच्याशु प्रशाम्यन्त्यजगल्लिकाः ॥ २ ॥

नई कटेरी के काँटों से अजगल्लिका का वेधन करने से शीघ्र पककर अजगल्लिका शान्त हो जाती है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है ॥ २ ॥

वृषमूलविशालाभ्यां लेपो हन्त्यजगल्लिकाम्। कठिनां क्षारयोगैश्च द्रावयेदजगल्लिकाम् ॥ ३ ॥

अडूसे की जड़ और इन्द्रायण की जड़ का लेप करने से अजगल्लिका शान्त हो जाती है। कठिन अजगल्लिका को क्षारों के योग से फोड़ना चाहिए ॥ ३ ॥

अनुशयी आदि की चिकित्सा।

श्लेष्मविद्रधिकल्पेन जयेदनुशयीं भिषक्। विवृतामिन्द्रविद्धाश्च गर्दभीं

जालगर्दभम् ॥ ४ ॥ इरिवेल्लिकां गन्धमालां जयेत् पित्तविसर्पवत्। मधुरौषधसिद्धेन सर्पिषा शमयेद्व्रणम् ॥ ५ ॥

वैद्य अनुशयी रोग को कफविद्रधि के समान चिकित्सा करके जीते। विवृता, इन्द्रविद्धा, गर्दभी, जालगर्दभ, इरिवेल्लिका और गन्धमाला को पित्तविसर्प की-सी चिकित्सा करके जीतना चाहिए। एवं मधुरगण (काकोल्यादिगण) की ओषधियों से सिद्ध घृत से व्रण को शान्त करना चाहिए ॥ ४-५ ॥

विदारादि की चिकित्सा।

रक्तावसेकैर्बहुभिः स्वेदनैरपतर्पणैः। जयेद्विदारिकां लेपैः शिग्रुदेवद्रुमोद्भवैः ॥ ६ ॥

जोंक आदि से बार-बार रक्त निकलवाना, स्वेदन करना, लंघन करना तथा सहिजन की छाल और देवदारु को पीसकर लेप करना विदारिका को जीत लेता है ॥ ६ ॥

पनसिकां कच्छपिकामनेन विधिना भिषक्। साधयेत् कठिनानन्याञ्छोथान् दोषसमुद्भवान् ॥ ७ ॥

पनसिका और कच्छपिका तथा अन्य दोषज कठिन शोथों को इसी पूर्वोक्त विधान से शान्त करना चाहिए ॥ ७ ॥

अन्त्रालजी आदि की चिकित्सा।

अन्त्रालजीं कच्छपिकां तथा पाषाणगर्दभम्। सुरदारुशिलाकुष्ठैः स्वेदयित्वा प्रलेपयेत् ॥ कफमारुतशोथघ्नो लेपः पाषाणगर्दभे ॥ ८ ॥

अन्त्रालजी, कच्छपिका और पाषाणगर्दभ को स्वेदन करके देवदारु, मैनशिल और कूट का उन पर लेप करना चाहिए। तथा पाषाणगर्दभ पर कफ, वात और शोथनाशक लेप करना चाहिए ॥ ८ ॥

वल्मीक की चिकित्सा।

शस्त्रेणोद्धृत्य वल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत्। मनःशिलालभल्लातसूक्ष्मैलागुरुचन्दनैः ॥ ९ ॥ जातीपल्लवकल्कैश्च निम्बतैलं विपाचयेत्। वल्मीकं नाशयेत्तद्धि बहुच्छिद्रं बहुद्रवम् ॥ १० ॥

वल्मीकि को शस्त्र द्वारा काट कर उस पर क्षार तथा अग्नि का प्रयोग करना चाहिए। तथा मैनशिल, हरताल, भिलावाँ, छोटी इलायची, अगर, चन्दन और चमेली के पत्तों के कल्क से नीम के तेल को पकाकर लगाने से बहुत छेदवाला और बहुत बहनेवाला वल्मीक रोग नष्ट हो जाता है ॥ ९-१० ॥

सशोथं व्रणगन्धश्च प्रवृद्धं मर्मसुस्थितम्। हस्तपादस्थितश्चापि वल्मीकं परिवर्जयेत् ॥ ११ ॥

मर्मस्थान, हाथ और पैर में होनेवाला, शोथयुक्त, व्रण की-सी गन्धवाला और बहुत बड़ा वल्मीक रोग असाध्य होता है, अतः उसको त्याग देना चाहिए ॥ ११ ॥

पाददारी की चिकित्सा।

पाददारी तु शिरां वेधयेत् तलशोधिनीम् ॥ १२ ॥ स्नेहस्वेदोपपन्नौ तु पादौ चालेपयेन् मुहुः। मधूच्छिष्टवसामज्जघृतक्षारैर्विमिश्रितैः ॥ १३ ॥

पाददारी (बिवाई) रोग में तलुवा की शिरा को बेधना चाहिए तथा स्नेहन और स्वेदन करके मोम, चर्बी, मज्जा, घृत और क्षार मिलाकर लेप करना चाहिए ॥ १२-१३ ॥

गुडलवणघृतं चेत्तिन्तिडीयुक्तमेतद्द्विगुणमिह विदध्यान्मूत्रमेकत्रकृत्वा। दिनकतिचिदथेदं किञ्चिदाशोष्य लेपात् स्फुटितपदतलं स्यात् पद्मपत्राभमाशु ॥ १४ ॥

गुड़, सेंधानमक, घृत और इमली इनमें द्विगुण गोमूत्र मिलाकर और कुछ सुखा कर कई दिन तक पाददारी में लेप करने से फटा हुआ पैर का तलुआ कमलपत्र के समान कोमल हो जाता है ॥ १४ ॥

सर्जाख्यसिन्धूद्भवयोश्चूर्णं मधुघृताप्लुतम्। निर्मथ्य कटुतैलाक्तं हितं पादप्रमार्जनम् ॥ १५ ॥

राल और सेंधानमक के चूर्ण में शहद और घृत मिलाकर खूब मथे और उसमें कड़ुआ तेल मिलाकर पैरों पर लेप करे तो पाददारी रोग शान्त होता है ॥ १५ ॥

उपोदिकासर्षपनिम्बमोचककर्कारुकेर्व्वारुकभस्मतोये। तैलं विपक्वं लवणं सकल्कं तत्पाददारीं विनिहन्ति शीघ्रम् ॥ १६ ॥

पोई का साग, सरसों, नीम की छाल, मोच (केले के बीच का डंडा), कुम्हड़ा और ककड़ी इनकी भस्म के जल में नमक का कल्क डाल कर तेल सिद्ध करके पैरों पर लगाने से पाददारी रोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ १६ ॥

अलस की चिकित्सा।

अलसेऽम्लैश्चिरं सिक्तौ चरणौ परिलेपयेत्। पटोलारिष्टकासीसत्रिफलाभिर्मुहुर्मुहुः ॥ १७ ॥

अलस रोग में बहुत देर तक खटाई के जल या काँजी से पैरों को भिगोकर उन पर परवल के पत्ते, नीम की छाल, कसीस और त्रिफला को पीस कर लेप करना चाहिए ॥ १७ ॥

करञ्जबीजं रजनी कासीसं मधुकं मधु। रोचना हरितालश्च लेपोऽयमलसे हितः ॥ १८ ॥

करंज के बीज, हल्दी, कसीस, मुलेठी, शहद, गोरोचन और हरताल का लेप अलस रोग में हितकारी है ॥ १८ ॥

लाक्षाभयारसालेपः कार्यं रक्तस्य मोक्षणम्। बृहतीरससिद्धेन तैलेनाभ्यज्य बुद्धिमान् ॥ शिलारोचनकासीसचूर्णैर्वा प्रतिसारयेत् ॥ १९ ॥

अलस रोग में लाख और हड़ के रस का लेप तथा रक्तमोक्षण करना चाहिए। बड़ी कटेरी के रस से सिद्ध तेल की मालिश करके मैनशिल, गोरोचन और कसीस के चूर्ण को मर्दन करना चाहिए ॥ १९ ॥

कदर की चिकित्सा।

दहेत् कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा ॥ २० ॥

कदर (पैर में कंकड़ आदि लगकर गाँठ पड़ जाना) को शस्त्र से कटवाकर गर्म तेल अथवा अग्नि से दग्ध करना चाहिए ॥ २० ॥

चिप्प की चिकित्सा।

चिप्पमुष्णाम्बुना स्विन्नमुत्कृत्याभ्यज्य तं व्रणम्। दत्वा सर्जरसं चूर्णं बुद्ध्वा व्रणवदाचरेत् ॥ २१ ॥

चिप्प रोग को गर्म जल से स्वेदित कर गले हुए मांस को काटकर निकाल देना चाहिए और वहाँ तेल लगाकर राल के चूर्ण से घाव को भर देना चाहिए, पश्चात् विचारकर व्रण की-सी चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २१ ॥

स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृष्णायसेऽभयाम्। घृष्ट्वा तज्जेन कल्केन लिम्पेच्चिप्पं मुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥

लोह के पात्र में हल्दी के स्वरस से हड़ को घिस कर उस कल्क को बार-बार चिप्प पर लेप करना चाहिए ॥ २२ ॥

कुनख की चिकित्सा।

नखकोटिप्रविष्टेन टङ्कनेन प्रशाम्यति। कुनखश्चेत्सदा भ्रातः शैलोऽपि प्लवते जले ॥ २३ ॥

कुनख रोग में नख के भीतर सुहागा भर देने से रोग शान्त हो जाता है। हे भाई! जब में पर्वत भी तैरता है, अर्थात् असाध्य रोग भी अच्छा हो सकता है॥ २३॥

अंगुलीवेष्टक की चिकित्सा।

काश्मर्याः सप्तभिः पत्रैः कोमलैः परिवेष्टितः। अंगुलीवेष्टकः पुंसो ध्रुवमाशु व्यपोहति॥ २४॥

खमारी के कोमल सात पत्ते लपेटने से अंगुलीवेष्टक रोग शीघ्र ही शान्त होता है॥२४॥

पद्मिनीकंटक चिकित्सा।

निम्बोदकेन वमनं पद्मिनीकण्टके हितम्। निम्बोदककृतं सर्पिः सक्षौद्रं पानमिष्यते॥ २५॥

पद्मिनीकण्टक रोग में नीम की छाल के क्वाथ से वमन करा कर नीम के क्वाथ से सिद्ध घृत में शहद मिलाकर पान करना हितकर होता है॥ २५॥

पद्मनालकृतः क्षारः पद्मिनीं हन्ति लेपनात्। निम्बारग्वधकल्कैर्वा मुहुरुद्वर्तनं हितम्॥ २६॥

कमल के नाल के क्षार का लेप पद्मिनीकण्टक रोग को नष्ट करता है। अथवा नीम की छाल और अमलतास के पत्तों के कल्क का बार-बार उबटना करना हितकर होता है॥ २६॥

जालगर्दभ की चिकित्सा।

नीलीपटोलमूलाभ्यां साज्याभ्यां लेपनं हितम्। जालगर्दभरोगे तु सद्यो हन्ति च वेदनाम्॥ २७॥

नील और परवल की जड़ का चूर्ण घी में मिलाकर लेप करने से जालगर्दभ रोग की पीड़ा शीघ्र नष्ट होती है॥ २७॥

अहिपूतन की चिकित्सा।

अहिपूतनके धात्र्याः पूर्वं स्तन्यं विशोधयेत्। त्रिफलाखदिरक्वाथैर्व्रणानां धावनं सदा॥ २८॥

अहिपूतन रोग में पहले धाय (दूध पिलानेवाली) को दुग्धशोधक औषधियाँ सेवन कराकर फिर त्रिफला और खैर के क्वाथ से बालकों के व्रणों को धोना चाहिए॥ २८॥

करञ्जत्रिफलातिक्तैः सर्पिः सिद्धं शिशोर्हितम्। रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम्॥ २९॥

करज के बीज, त्रिफला और तिक्त द्रव्यों से घृत सिद्ध कर रोगी बच्चे को सेवन कराना हितकर होता है तथा रसौत का पीना और लेप करना भी विशेष हितकारी है॥ २९॥

गुदभ्रंश की चिकित्सा।

गुदभ्रंशे गुदं स्नेहैरभ्यज्यान्तः प्रवेशयेत्। प्रविष्टे स्वेदयेच्चापि बद्धगोरफणया भृशम्॥ ३०॥

गोरफणा बन्धनविशेषः मलनिर्गमार्थं सच्छिद्रेण चर्मणा कौपीनबन्धः कार्यः।

गुदभ्रंश (काँच निकलना) रोग में सौ बार धोये हुए घृत आदि से बाहर निकली हुई गुदा को चुपड़ कर अन्दर प्रविष्ट करना चाहिए। जब गुदा भीतर चली जाय तब स्वेदन करके गोरफण से गुदा को बाँधना चाहिए। गोरफण नामक एक प्रकार का चमड़े का बन्धन है तथा कौपीन या लँगोट की तरह बाँधा जाता है॥ ३०॥

कोमलं नलिनीपत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम्। अचिरेण शमं याति गुदभ्रंशो रुजान्वितः॥ ३१॥

कमलिनी के कोमल पत्तों को पीस कर और शक्कर मिलाकर खाने से पीड़ायुक्त गुदभ्रंश रोग शीघ्र शान्त हो जाता है॥ ३१॥

वृक्षाम्लानलचाङ्गेरीबिल्वपाठायवाग्र-

जम्। तक्रेण शीलयेत् पायुभ्रंशार्त्तोऽनलदीपनम् ॥ ३२ ॥

इमली, चीता की जड़, चांङ्गेरी (लोनिया), सोंठ, पाढ और जवाखार; इनको तक्र के साथ सेवन करने से गुदभ्रंश रोग नष्ट होता है तथा अग्नि प्रदीप्त होती है ॥ ३२ ॥

गुदं च गव्यवसया म्रक्षयेदविशङ्कितः। दुष्प्रवेशो गुदभ्रंशो विशत्याशु न संशयः ॥ ३३ ॥

बाहर निकली हुई गुदा को गौ की चर्बी से चुपड़ने से दुष्प्रवेश गुदाभ्रंश भी शीघ्र ही अन्दर प्रविष्ट होता है। इसमें संशय नहीं है ॥ ३३ ॥

मूषिकाणां वसाभिर्वा गुदे सम्यक् प्रलेपनम्। स्विन्नमूषिकमांसेनाथवा संस्वेदयेद्गुदम् ॥ गोतैलाभ्यङ्गतः शीघ्रं प्रविशेन्निर्गतो गुदः ॥ ३४ ॥

अथवा मूसों की चर्बी से गुदा पर अच्छे प्रकार लेप करना चाहिए। या मूसे के मांस को उसिजत्र (गुनगुना) कर गुदा को स्वेदन करना चाहिए। गौ की चर्बी के तेल से गुदा चुपड़ने से निकली हुई गुदा शीघ्र प्रविष्ट हो जाती है ॥ ३४ ॥

चाङ्गेरी घृत।

चाङ्गेरीकोलदध्यम्लनागरक्षारसंयुतम्। घृतमुत्कथितं पेयं गुदभ्रंशरुजापहम् ॥ शुण्ठीक्षारावत्र कल्कौ शिष्टं तु द्रवमिष्यते ॥ ३५ ॥

चाङ्गेरी का रस या क्वाथ ४ सेर, बेर का क्वाथ ४ सेर और मट्ठा दही ४ सेर। कल्क के लिए सोंठ १ पाव तथा जवाखार १ पाव। घृत २ सेर। यथाविधि घृत सिद्ध कर पीने से गुदभ्रंश रोग नष्ट होता है ॥ ३५ ॥

मूषिकाद्य तैल।

क्षीरे महत्पञ्चमूलं मूषिकामन्त्रवर्जिताम्। पक्त्वा तस्मिन् पचेत्तैलं वातघ्नौषधसंयुतम्। गुदभ्रंशमिदं तैलं पानाभ्यङ्गात् प्रसाधयेत् ॥ ३६ ॥

आँत से रहित चुहिया का मांस आधसेर और बृहत्पंचमूल आध सेर लेकर ४ सेर दूध और ४ सेर जल में पकावे। जब दूधमात्र रह जाय तब उसमें भद्रदारु आदि वातघ्न औषधियां पाव भर और तेल एक सेर डालकर पकावे। जब तेल सिद्ध हो जाय तब उसकी मालिश करने से और पीने से गुदभ्रंश रोग शान्त हो जाता है ॥ ३६ ॥

चर्मकील आदि की चिकित्सा।

चर्मकीलं जतुमणिं मशकांस्तिलकालकान्। उत्कृत्य शस्त्रेण दहेत् क्षाराग्निभ्यामशेषतः ॥ ३७ ॥

चर्मकील, जतुमणि, मस्सा और तिल; इनको शस्त्र से काट कर क्षार और अग्नि से दग्ध करना चाहिए ॥ ३७ ॥

स्नुनालात्तु चूर्णेन घर्षो मशकनाशनः। निर्मोकभस्मघर्षाद्वा मशः शान्तिं व्रजेद्द्रुतम् ॥ ३८ ॥

एरण्डपत्र के डंठल और चूने को अथवा सांप की कांचली की भस्म को मस्से पर घिसने से शीघ्र ही मस्सा शान्त हो जाता है ॥ ३८ ॥

युवानपिडिकादि चिकित्सा।

युवानपिडकान्यच्छनीलिकान्यङ्गशर्कराः। शिरावेधः प्रलेपश्च जयेदभ्यङ्गनेस्तथा ॥ ३९ ॥

जवानी की फुंसियां (मुहांसे), न्यच्छ, नीलिका, व्यङ्ग और शर्करा रोग को शिरावेध, लेप और मालिश करके जीतना चाहिए ॥ ३९ ॥

लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिडिकापहः। तद्वद् गोरोचनायुक्तं मरिचं मुख-

लेपनम् ॥ वमनञ्च निहन्त्याशु पिडिकां यौवनोद्भवाम् ॥ ४० ॥

लोध, धनियाँ और वच का लेप करने से मुहाँसा नष्ट होता है। इसी प्रकार गोरोचन और कालीमिर्च मिलाकर लेप करने से मुहाँसा नष्ट होता है अथवा वमन करने से भी मुहाँसा नष्ट हो जाता है ॥ ४० ॥

व्यङ्गेषु चार्जुनत्वग् वा मञ्जिष्ठा वा समाक्षिका। लेपः सनवनीता वा श्वेताश्वखुरजा मसी ॥ ४१ ॥

व्यङ्गरोग में अर्जुन की छाल के चूर्ण अथवा मंजीठ के चूर्ण में शहद मिलाकर लेप करना या सफ़ेद घोड़े के खुर को फूँक कर कज्जल बना कर और उसमें मक्खन मिलाकर लेप करना हितकर होता है ॥ ४१ ॥

रक्तचन्दनमञ्जिष्ठाकुष्ठलोध्रप्रियङ्गवः। वटांकुरा मसूराश्च व्यङ्गघ्ना मुखकान्तिदाः ॥ ४२ ॥ व्यङ्गानां लेपनं शस्तं रुधिरेण शशस्य च ॥ ४३ ॥

वटांकुराः वटस्य अभिनवपत्रमुकुलाः। दृष्टफलमेतम्।

लाल चन्दन, मंजीठ, कूट, लोध, प्रियंगु, बरगद के अंकुर अर्थात् बरगद की नई कोंपल और मसूर, इनका लेप करने से व्यङ्ग (झाईं) रोग नष्ट होता है तथा मुख पर कान्ति आ जाती है। खरगोश के रुधिर का लेप व्यङ्ग के लिए श्रेष्ठ होता है। यह अनुभूत योग है ॥ ४२-४३ ॥

केवलाम् पयसा पिष्ट्वा तीक्ष्णाञ्छाल्मलिकण्टकान्। आलिप्तं त्र्यहमेतेन भवेत् पद्मोपमं मुखम् ॥ ४४ ॥

केवल सेमर के तीक्ष्ण काँटों को दूध के साथ पीस कर लेप करने से तीन दिन में कमल के तुल्य मुख हो जाता है ॥ ४४ ॥

मसूरैः सर्पिषा भृष्टैर्लिप्तमास्यं पयोऽन्वितैः। सप्तरात्राद् भवेत् सत्यं पुण्डरीकदलप्रभम् ॥ ४५ ॥

मसूर की दाल को घी में भून कर और दूध में पीस कर लेप करने से कमलपत्र के तुल्य कान्तियुक्त मुख हो जाता है ॥ ४५ ॥

मातुलुङ्गजटा सर्पिः शिला गोशकृतो रसः। मुखकान्तिकरो लेपः पिडिकातिलकालजित् ॥ ४६ ॥

बिजौरा की जड़, घृत और मैनशिल; इनको गोबर के रस में पीस कर लेप करने से मुख की फुन्सियाँ और तिलकालक शान्त होते हैं तथा मुख कान्तियुक्त होता है ॥ ४६ ॥

नवनीतगुडक्षौद्रकोलमज्जप्रलेहनम्। व्यङ्गजिद् वरुणत्वग् वा छागक्षीरप्रपेषिता ॥ ४७ ॥

मक्खन, गुड़; शहद और बेर की मींगी इनका लेप अथवा बरना की छाल बकरी के दूध में पीस कर लेप करना व्यङ्ग को नष्ट करता है ॥ ४७ ॥

जातीफलकल्कलेपो नीलीव्यङ्गादि नाशनः। सायञ्च कटुतैलेनाभ्यङ्गो वक्त्रप्रसाधनः ॥ ४८ ॥

जायफल के कल्क का लेप नीली और व्यङ्ग को नष्ट करता है। सायंकाल के समय कडुए तेल की मालिश करने से मुख साफ हो जाता है ॥ ४८ ॥

कालीयकोत्पलामयदधिसरबदरास्थिमध्यफलिनीभिः। लिप्तं भवति हि वदनं शशिप्रभं सप्तरात्रेण ॥ ४९ ॥

कालीयक (सुगन्धित काष्ठविशेष या दारुहल्दी), नीलकमल, कूट, दही की मलाई, बेर की मींगी और प्रियंगु के फूल, इनको पीस कर सात दिन तक लेप करने से चन्द्रमा के तुल्य कान्तियुक्त मुख हो जाता है ॥ ४९ ॥

तुपरहितमसृणयवचूर्णसमयष्टीमधुक

लोध्रलेपेन भवति मुखं परिनिर्जितचामीकरचारुसौभाग्यम् ॥ ५० ॥

तुपरहित जौ का महीन आटा, मुलेठी और पठानी लोध; इनको सम भाग ले पीस कर लेप करने से मुख सुवर्ण से भी अधिक कान्तिमान् हो जाता है ॥ ५० ॥

रक्षोघ्नशर्वरीद्वयमञ्जिष्ठागैरिकाज्यवस्तपयः। सिद्धेन लिप्तमाननमुद्यद् विधुबिम्बवद्विभाति ॥ ५१ ॥

सफ़ेद सरसों, हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ, गेरू और घी; इनको बकरी के दूध में सिक्त कर और पीस कर लेप करने से उदय होते हुए चन्द्रमा के समान मुख शोभित होता है ॥ ५१ ॥

परिणतदधिशरपुङ्खैः कुवलयदलकुष्ठचन्दनोशीरैः। मुखकमलकान्तिकारी भृकुटीतिलकालकाञ्जयति ॥ ५२ ॥

सरफोंका, कमलपत्र, कूट, लाल चन्दन और खस; इनको ताजा दही के साथ पीसकर लेप करने से मुख कमल के तुल्य कान्तियुक्त होता है तथा भृकुटीदोष (माथे पर झुर्रियाँ पड़ना) और तिलकालक नष्ट होते हैं ॥ ५२ ॥

अर्कक्षीरहरिद्राभ्यां मर्दयित्वा विलेपनात्। मुखकार्ष्ण्यं शमं याति चिरकालोद्भवं ध्रुवम् ॥ ५३ ॥

आक के दूध में हल्दी को घोट कर लेप करने से बहुत दिन की पुरानी मुख की कृष्णता (कालिमा) अवश्य शान्त होती है ॥ ५३ ॥

हरिद्राद्य तैल।

हरिद्राद्वययष्ट्याह्वकालीयककुचन्दनैः। मर्पौण्डरीकमञ्जिष्ठापद्मपद्मककुंकुमैः॥ ५४ ॥ कपित्थतिन्दुकलक्षवटपत्रैः पयोऽन्वितैः। लेपयेत् कल्कितैरेभिस्तैलञ्चाभ्यञ्जनं पचेत् ॥ ५५ ॥ विसर्व नीलिकां व्यङ्गांस्तिलकान् मुखदूषिकाम्। नित्यसेवी जयेत् क्षिप्रं मुखं कुर्यान् मनोरमम् ॥ ५६ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, मुलेठी, काला चन्दन, लाल चन्दन, पुंडरिया, मंजीठ, कमल, पद्माक, केसर तथा कैथ, तिन्दुक (तेन्दू), पाकर और बरगद के पत्ते, इनको एकत्र कर दूध में पीस कर लेप करने से अथवा इनके कल्क और दूध से तेल सिद्ध कर नित्य मालिस करके से जतुमणि, नीलिका, व्यङ्ग, तिलकालक और मुहाँसा नष्ट होते हैं तथा मुख सुन्दर हो जाता है ॥ ५४--५६ ॥

कनक तैल।

मधुकस्य कषायेण तैलस्य कुडवं पचेत्। कल्कैः प्रियंगुमञ्जिष्ठाचन्दनोत्पलकेशरैः ॥ ५७ ॥ कनकं नाम तत्तैलं मुखकान्तिकरं परम्। आभीरुनीलिकाव्यङ्गशोधनं परमार्चितम् ॥ ५८ ॥

मुलेठी का काढ़ा ६४ तोले, तिलतैल १६ तोले। कल्क के लिए प्रियंगु के फूल, मजीठ, लाल चन्दन, नीलकमल और नागकेशर; सब मिलित ४ तोले। विधि से तेल सिद्ध करना चाहिए। यह कनक नाम का तैल मुख की शोभा को बढ़ानेवाला है तथा आभीर (जतुमणि), नीलिका और व्यङ्ग को शुद्ध करने में परमोत्तम है ॥ ५७--५८ ॥

मंजिष्ठाद्य तैल।

मञ्जिष्ठा मधुकं लाक्षा मातुलुङ्गं सयष्टिकम्। कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं तथा ॥ ५९ ॥ आजं पयस्तद्द्विगुणं शनैर्मृद्वग्निना पचेत्। नीलिकापिडिकाव्यङ्गानभ्यङ्गादेव नाशयेत् ॥ ६० ॥ मुखं प्रसन्नोपचितं वलीपलितवर्जितम्। सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत् कनकसन्निभम् ॥ ६१ ॥

मंजीठ, महुआ, लाख, बिजौरा की जड़

और मुलेठी ये सब एक-एक तोला लेकर कल्क बनावे और इसमें १६ तोले तिल का तेल, ३२ तोले बकरी का दूध तथा ३२ तोले जल डाल कर मन्द अग्नि से पकावे। इसके मर्दन से ही नीलिका, मुहाँसा और व्यङ्ग नष्ट होते हैं तथा मुख प्रसन्न एवं भरा हुआ हो जाता है, झुर्रियाँ नहीं रहती हैं। इसके सात दिन के प्रयोग से मुख सुवर्ण-सा हो जाता है ॥५९--६१॥

कुंकुमाद्य तैल।

कुंकुमं चन्दनं लाक्षा मञ्जिष्ठा मधुयष्टिका। कालीयकमुशीरं च पद्मकं नीलमुत्पलम् ॥ ६२ ॥ न्यग्रोधपादाः प्लक्षस्य मूलं पद्मस्य केशरम्। द्विपञ्चमूलसहितैः कषायैः पलिकैः पृथक् ॥ ६३ ॥ जलाढकं विपक्तव्यं पादशेषमथोद्धरेत्। मञ्जिष्ठा मधुकं लाक्षा पत्तङ्गमधुयष्टिके ॥ ६४ ॥ कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं पचेत्। अजाक्षीरं द्विगुणितं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ६५ ॥ सम्यक् पक्वं परं ह्येतन्मुखवर्णप्रसादनम्। नीलिकापिडिकाव्यङ्गानभ्यङ्गादेव नाशयेत् ॥ ६६ ॥ सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत् काञ्चनसन्निभम्। कुङ्कुमाद्यमिदं तैलमश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥ ६७ ॥

कषायार्थं पठितमपि कुंकुमं सिद्धतैले प्रक्षिपन्ति वृद्धाः।

केशर, लाल चन्दन, लाख, मंजीठ, मुलेठी, कालीयक (सुगन्धित काष्ठविशेष), खस, पद्माक, नीलकमल बरगद की जटा, पाखर की जड़, पद्मकेशर और मिलित दशमूल; प्रत्येक चार-चार तोले लेकर ६ सेर ३२ तोले जल में काढ़ा करे। जब १२८ तोले बाकी रहे तब उतार ले। कल्क के लिए मंजीठ, महुआ, लाख, पतंग और मुलेठी, एक एक तोला। तिलतैल १६ तोले। बकरी का दूध ३२ तोले। मन्द अग्नि से पकाकर मुख पर लगाने से मुख का वर्ण स्वच्छ हो जाता है तथा नीलिका, फुंसी और व्यङ्गरोगों को नष्ट करता है। सात रात्रि के प्रयोग से सुवर्ण के तुल्य मुख हो जाता है। यह कुंकुमाद्य तेल पहले अश्विनीकुमारों ने बनाया था। काढ़े में कही हुई केशर को तेल सिद्ध होने पर छोड़ना चाहिए, यह वृद्धों का उपदेश है ॥ ६२--६७ ॥

तन्त्रान्तरोक्त कुंकुमाद्य तैल।

कुंकुमं किंशुकं लाक्षा मञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम्। कालीयकं पद्मकञ्च मातुलुङ्गं सकेशरम् ॥ ६८ ॥ कुसुम्भं मधुयष्टी च फलिनी मदयन्तिका। निशे द्वे रोचना पद्ममुत्पलं च मनःशिला ॥ ६९ ॥ काकोल्यादिसमायुक्तैस्तैरक्षसमैर्भिषक्। लाक्षारसपयोभ्यां च तैलप्रस्थं निपाचयेत् ॥ ७० ॥ कुंकुमाद्यमिदं तैलमभ्यङ्गात् काञ्चनोपमम्। करोति वदनं सद्यः पुष्टिलावण्यकान्तिदम् ॥ सौभाग्यलक्ष्मीजननं वशीकरणमुत्तमम् ॥ ७१ ॥

कल्क के लिए केशर, टेसू (ढाक के फूल), लाख, मंजीठ, लाल चन्दन, कालीयक (सुगन्धित काष्ठविशेष) पद्माख, बिजौरा नींबू, नागकेशर, कसूम के फूल, मुलेठी, प्रियगु के फूल, मालिया, हल्दी दारुहल्दी, गोरोचन, कमल, नीलकमल, मेनशिल, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, जीवक, ऋषभक; ये सब एक एक तोला। तिलतैल १२८ तोले। लाख का रस ३ सेर १६ तोले और बकरी का दूध ३ सेर १६ तोले। विधि से तेल सिद्ध करे। यह कुंकुमादि तेल मर्दन करने से शीघ्र ही मुख को सोने के समान कान्तिमान् तथा लावण्ययुक्त करता है तथा पुष्टिप्रद, सौभाग्य और लक्ष्मीकारक एवम् उत्तम वशीकरण है ॥ ६८--७१ ॥

वर्ण्यक घृत।

मधुकं चन्दनं कंगु सर्षपं पद्मकं तथा।

कालीयकं हरिद्रा च लोध्रमेभिश्च कल्कितैः ॥ ७२ ॥ विपचेद्धि घृतं वैद्यस्तत् पक्वं वस्त्रगालितम् । पादांशं कुंकुमं सिक्थं क्षिप्त्वा मन्दानले पचेत् ॥ ७३ ॥ तत् सिद्धं शिशिरे नीरे प्रक्षिप्याकर्षयेत् ततः । तदेतद्वर्णकं नाम घृतं वक्त्रप्रसादनम् ॥ ७४ ॥ अनेनाभ्यासलिप्तं हि वलीभूतमपि क्रमात् । निष्कलङ्केन्दुविम्बाभं स्याद्विलासवतीमुखम् ॥७५॥

कुंकुमसिक्थयोर्मिलित्वा पादांशः । सिक्थकस्य द्रवीकरणार्थं स्वल्पपाकं दत्वा शीतलजले कियत्क्षणं स्थापयित्वा शीतलं सदनुगुप्तं निधापयेत् ।

कल्क के लिये मुलेठी, लाल चन्दन, काँगुनी धान्य (काकुन), सरसों, पद्माख, पीला चन्दन, हल्दी और लोध, प्रत्येक चार-चार तोले। गौ का घृत १२८ तोले। पाकार्थ जल ६ सेर ३२ तोले। जब घृत पक जाय तब उतार कर छान ले। इसमें १६ तोले केशर और १६ तोले मोम डालकर मन्द अग्नि से इतना पकावे कि मोम पिघल कर घृत में मिल जाय, पश्चात् इस घृत पात्र को ठंडे जल में रख दे। जब घृत ठंडा होकर जम जाय तब उसको निकालकर रख ले। यह वर्णक घृत मुख का स्वच्छ करता है तथा इसके निरन्तर मर्दन से मुख की झुर्रियाँ दूर होकर स्त्रियों का मुख कलङ्करहित चन्द्रमा के समान सुन्दर हो जाता है ॥ ७२-७५ ॥

अरुंषिका की चिकित्सा।

अरुंषिकायां रुधिरेऽवसिक्ते शिराव्यधेनाथ जलौकसा वा । निम्बाम्बुसिक्ते शिरसि प्रलेपो देयोऽश्ववर्चोरससैन्धवाभ्याम् ॥ ७६ ॥

अरुंषिका रोग में शिरावेध द्वारा अथवा जोंक द्वारा रक्तमोक्षण कराकर नीम के जल से सेचन करना चाहिए अथवा घोड़े की लीद का रस और सेंधानमक मिला कर शिर पर लेप करना चाहिए। लेप करने से पहले शिर मुँड़वा लेना चाहिए ॥ ७६ ॥

पुराणमथ पिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य वा । मूत्रपिष्टः प्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्यादरुंषिकाम् । अरुंषीघ्नं भृष्टकुष्ठचूर्णं तैलेन संयुतम् ॥ ७७ ॥

खोलके कपाले कुष्ठं भृष्ट्वा चूर्णयित्वा कटुतैलेन तद्रसप्रलेपः ।

पुरानी खली अथवा मुर्गा की विष्ठा को गोमूत्र में पीस कर लेप करने से अरूंषिका शीघ्र ही नष्ट होती है। कूट को खपरे में भून कर चूर्ण कर ले और कड़ुए तेल में मिला कर लगावे तो यह अरूंषिका को नष्ट करता है ॥ ७७ ॥

द्विहरिद्राद्य तैल।

हरिद्राद्वयभूनिम्बत्रिफलारिष्टचन्दनैः । एतत्तैलमरुंषीणां सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ॥ ७८ ॥

कल्क के लिए हल्दी, दारुहल्दी, चिरायता, त्रिफला, नीम की छाल और चन्दन, ये सब आध सेर। कड़ुआ तेल २ सेर। जल ८ सेर यथाविधि पाक कर मालिश करने से यह तेल अरूंषिका को नष्ट करता है ॥ ७८ ॥

दारुणक की चिकित्सा।

दारुणे तु शिरां विध्येत् स्निग्धस्विन्नां ललाटजाम् । अवपीडशिरोबस्तीनभ्यङ्गांश्चावचारयेत् ॥ ७९ ॥

दारुणक रोग में शिर का स्नेहन और स्वेदन करके शिरा का वेधन करे तथा अवपीडन-संज्ञक नस्य, शिरोबस्ति और मालिश का प्रयोग करे ॥ ७९ ॥

कोद्रवाणां तृणक्षारपानीयं परिधावने । कार्य्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः ॥ ८० ॥ पियालबीजमधुककुष्ठ-

माषैः ससैन्धवैः। काञ्जिकस्थास्त्रिसप्ताहं माषा दारुणकापहाः ॥ ८१ ॥

कोदों के तृण की भस्म के जल को वस्त्र से छान कर उससे दारुणक को धोना चाहिए। तथा चिरौंजी, मुलेठी, कूट, उड़द और सेंधानमक इनको पीसकर और शहद मिलाकर दारुणक रोग में मस्तक पर लेप करना चाहिए। २१ दिन काँजी में भिगोये हुए उड़दों को पीस कर लेप करने से दारुणक नष्ट होता है ॥ ८०-८१ ॥

सहनीलोत्पलकेशरयष्टिमधुतिलसममामलकम्। चिरजातमपि शीर्षं दारुणरोगं शमं नयति ॥ ८२ ॥

नील कमल, नागकेशर, मुलेठी तिल और आँवलों को समभाग लेकर जल में पीस कर शिर पर लेप करने से बहुत पुराना भी दारुण रोग नष्ट होता है ॥ ८२ ॥

त्रिफलाद्य तैल।

त्रिफलायोरजोयष्टीमार्कवोत्पलसारिवैः। ससैन्धवैः पचेत्तैलमभ्यङ्गाद्दारुणकां जयेत् ॥ ८३ ॥

त्रिफला, लोहचूर्ण, मुलेठी, भँगरा, कमल, अनन्तमूल और सेंधानमक; इनके कल्क से सिद्ध किये हुए तेल की मालिश करने से रूसिका नष्ट होती है ॥ ८३ ॥

वह्नि तैल।

चित्रकं दन्तीमूलं च कोषातकिसमन्वितम्। कल्कं पिष्ट्वा पचेत्तैलं केशदद्रुविनाशनम् ॥ ८४ ॥

चीता की जड़, दन्तीमूल और कड़ुई तुरई के कल्क से पकाये हुए तेल की मालिश करने से केशों में होनेवाला दाद रोग नष्ट होता है। कोई-कोई 'केशरीशत्रुविनाशनम्' ऐसा पाठ कहते हैं। केशशत्रु दारुणक कहाता है ॥ ८४ ॥

गुञ्जा तैल।

गुञ्जाफलैः पचेत्तैलं भृङ्गराजरसेन तु। कण्डूदारुणजित् कुष्ठकपालव्याधिनाशनम् ॥ ८५ ॥

घुँघुची के कल्क और भँगरा के रस में तेल पका कर मालिश करने से खुजली, दारुणक, कोढ तथा शिर के रोग नष्ट होते हैं ॥ ८५ ॥

स्वल्पभृङ्गराज तैल।

भृङ्गरजस्त्रिफलोत्पलशारिलोहपुरीषसमन्वितकारि। तैलमिदं पच दारुणहारि कुञ्चितकेशघनस्थिरकारि ॥ ८६ ॥

भँगरा का रस ८ सेर। कल्क के लिए त्रिफला, कमल, अनन्तमूल और मण्डूर; सब मिलित आध सेर, तिल का तेल २ सेर। विधि से पका कर तेल सिद्ध करे। यह तेल दारुणक को नष्ट कर बालों को सघन, कुञ्चित तथा स्थिर कर देता है ॥ ८६ ॥

महाभृङ्गराज तैल।

आनूपदेशसम्भूतं गृहीत्वा मार्कवं शुभम्। सुधौतं जर्जरीकृत्य स्वरसं तस्य चाहरेत् ॥ ८७ ॥ चतुर्गुणेन तेनैव तैलप्रस्थं विपाचयेत्। क्षीरपिष्टैरिमैर्द्रव्यैः संयोज्य मतिमान् भिषक् ॥ ८८ ॥ मञ्जिष्ठा पद्मकं लोध्रं चन्दनं गैरिकं बला। रजन्यौ केशरञ्चैव प्रियंगु मधुयष्टिका ॥८९॥ प्रपौण्डरीकं गोपी च पलिकान्यत्र दापयेत्। सम्यक् पक्वं ततो ज्ञात्वा शुभे भाण्डे निधापयेत् ॥ ९० ॥ केशपाते शिरोदुष्टे मन्यास्तम्भे गलग्रहे। शिरःकर्णाक्षिरोगेषु नस्येऽभ्यङ्गे च योजयेत् ॥ ९१ ॥ कुञ्चिताग्रानतिस्निग्धान् कचान् कुर्य्याद् वहूँस्तथा। खालित्यमिन्द्रलुप्तं च तैलमेतद् व्यपोहति ॥ ९२ ॥

अनूप देश में (जल के समीप में) उत्पन्न

हुए भँगरा को अच्छे प्रकार धोकर और कूट कर उसका रस निकाल ले। ये ६ सेर ३२ तोले, तिलतेल १२८ तोले। कल्क द्रव्य--मंजीठ, पद्माख, लोध, लालचन्दन, गेरू, खरेटी, हल्दी, दारहल्दी, नागकेशर, प्रियंगु के फूल, मुलेठी, पुंडरिया और सारिवा; प्रत्येक चार-चार तोले। इन सबको गौ के दूध में पीस कर बुद्धिमान् वैद्य यथाविधि तेल सिद्ध करे। जब अच्छे प्रकार तेल का पाक हो जाय तब साफ पात्र में रक्खे। इस तेल के मर्दन करने तथा नस्य लेने से बालों का गिरना, शिर के दुष्ट रोग, मन्यास्तंभ, गलग्रह, शिरोरोग कर्णरोग और नेत्ररोग दूर होते हैं। यह तेल खालित्य (गजापन) और इन्द्रलुप्त को नष्ट करके बालों को सघन, चिकने और घुँघराले बना देता है॥ ८७--९२॥

प्रपौण्डरीकाद्य तैल।

प्रपौण्डरीकमधुकपिप्पलीचन्दनोत्पलैः। कार्षिकैस्तैलकुडवैस्तैर्द्विरामलकीरसः॥ साध्यः सप्रतिमर्शः स्यात्सर्वशीर्षगदापहः॥ ९३॥

पुंडरिया, मुलेठी, पीपरि, लालचन्दन और कमल; इनको एक-एक तोला लेकर कल्क बनावे और इसमें १६ तोले तिल का तेल और ३२ तोले आँवले का रस मिला कर पकावे। इसका नस्य लेने से शिर के संपूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं॥ ९३॥

मालत्याद्य तैल।

मालतीकरवीराग्निनक्तमालविपाचितम्। तैलमभ्यञ्जने शस्तमिन्द्रलुप्तापहं परम्॥ इदं हि त्वरितं हन्ति दारुणं दारुणं नृणाम्॥ ९४॥

मालती के पत्र, कनेर की जड़, चीता की जड़ और करंज के कल्क से तेल सिद्ध कर शिर पर मसलने से इन्द्रलुप्त नष्ट होता है। यह तेल शीघ्र ही कठिन दारुणक रोग को भी नष्ट करता है॥ ९४॥

धात्र्याम्रमज्जलेपात् स्यात् स्थिरोरुस्निग्धकेशता॥ ९५॥

आँवले और आम की गुठली की मींगी को पीस कर लेप करने से बाल स्थिर लम्बे और चिकने होते हैं॥ ९५॥

इन्द्रलुप्तचिकित्सा।

इन्द्रलुप्ते शिरां विद्ध्वा शिलाकासीसतुत्थकैः। लेपयेत् परितः कल्कैस्तैलं चाभ्यञ्जने हितम्॥ कुटन्नटशिखीजातीकरञ्जकरवीरजैः॥ ९६॥

इन्द्रलुप्त रोग में शिरा का वेधन करके मैनशिल, कसीस और तूतिया को पीस कर लेप करना चाहिए। केवटी मोथा, चीता की जड़, चमेली के पत्ते, करंज और कनेर की जड़ के कल्क से तेल सिद्ध कर मालिश करना हितकर होता है॥ ९६॥

अवगाढपदं चैव प्रच्छयित्वा पुनः पुनः। गुञ्जाफलैस्चिरं लिम्पेत् केशभूमिं समन्ततः॥ ९७॥

पुराने इन्द्रलुप्त रोग में लेखन (पछना दे) कर बार-बार बालों के स्थान पर घुँघुची के कल्क का लेप करना चाहिए॥ ९७॥

हस्तिदन्तमर्सी कृत्वा मुख्यं चैव रसाञ्जनम्। लोमान्यनेन जायन्ते नृणां पाणितलेष्वपि॥ ९८॥

अन्तधूम भस्म किया हुआ हाथीदाँत और रसौत का लेप करने से हथेली में भी बाल उत्पन्न हो जाते हैं॥ ९८॥

हस्तिदन्तमर्सी कृत्वा तैलेन सह योजयेत्। हस्तेष्वपि प्रजायन्ते केशा नास्त्यत्र संशयः॥ ९९॥

---

१ यह प्रयोग संदिग्ध है; क्योंकि सफेद घुँघुची तो विपलक्षण उत्पन्न करती है। परन्तु, विचारपूर्वक सावधानी से रक्तघुँघुची का ही प्रयोग किया जा सकता है।

अन्तर्धूम हाथी के दाँत की भस्म का तेल में मिलाकर लगाने से हाथों में भी बाल उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ९९ ॥

भल्लातकबृहतीफलगुञ्जामूलफलेभ्य एकेन। मधुसहितेन विलिप्तं सुरपतिलुप्तं शमं याति ॥ १०० ॥

भिलावाँ, बड़ी कटेरी का फल, घुँघुची की जड़ अथवा घुँघुची; इनमें से किसी एक के कल्क को शहद में मिलाकर लेप करने से इन्द्रलुप्त रोग शान्त होता है ॥ १०० ॥

बृहतीफलरसपिष्टं गुञ्जामूलमिन्द्रलुप्तस्य। कनकफलनिघृष्टस्य सतो दातव्यं प्रच्छितस्य सदा ॥ १०१ ॥

धतूरे के फल के चूर्ण से इन्द्रलुप्त को रगड़ कर और पछना लगा कर बड़ी कटेरी के फल के रस में पिसी हुई घुँघुची का लेप करने से इन्द्रलुप्त नष्ट होता है ॥ १०१ ॥

घृष्टस्य कर्कशैः पत्रैरिन्द्रलुप्तस्य गुण्ठनम्। चूर्णितैर्मरिचैः कार्य्यमिन्द्रलुप्तविनाशनम् ॥ १०२ ॥

खुरदरे पत्तों से इन्द्रलुप्त को रगड़ कर कालीमिर्च का चूर्ण बुरकाने से इन्द्रलुप्त नष्ट होता है ॥ १०२ ॥

छागक्षीररसाञ्जनपुटदग्धगजदन्तमसीलिप्ताः। जायन्ते सप्तदिनात् खल्यामपि कुञ्चिताश्चिकुराः ॥ १०३ ॥

रसौत और गजपुट में फूँके हुए हाथीदाँत को बकरी के दूध में पीस कर लेप करने से सात दिन में गंजे के शिर में भी घुँघुराले बाल उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १०३ ॥

मधुकेन्दीवरमूर्वातिलाज्यगोक्षीरभृङ्गलेपेन। अचिराद्भवन्ति केशा घनदृढमूलायतानृजवः ॥ १०४ ॥

मुलेठी, नीलकमल, मूर्वा (चुरनहार), तिल, घृत, गौ का दूध और भँगरा का लेप करने से शीघ्र ही घने, दृढ़मूल, लम्बे तथा घुँघुराले बाल उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १०४ ॥

स्नुह्याद्य तैल।

स्नुहीपयः पयोऽर्कस्य मार्कवो लाङ्गलीविषम्। मूत्रमाजं सगोमूत्रं रक्तिकासेन्द्रवारुणी ॥ १०५ ॥ सिद्धार्थ तीक्ष्णतैलं च गर्भं दत्वा विचक्षणः। वह्निना मृदुना पक्वं तैलं खालित्यनाशनम् ॥ १०६ ॥ कूर्म्मपृष्ठसमानापि रुज्या या रोमतस्करी। दिग्धा सानेन जायेत् ऋक्षशारीरलोमशा ॥ १०७ ॥

कल्क के लिए थूहर का दूध, आक का दूध, भँगरा, कलिहारी, मीठा विष, घुँघुची की जड़, इन्द्रायण की जड़ और सरसों, ये सब चार-चार तोले। गोमूत्र ८ सेर, बकरी का मूत्र ८ सेर। कडुआ तेल २ सेर। विधिपूर्वक मन्द अग्नि से तेल सिद्ध करे। इस तेल से खालित्य (गंज) रोग दूर होता है। तथा कछुए की पीठ के समान बालरहित कठोर शिर पर भी इसके मसलने से रीछ के समान बाल निकल आते हैं ॥ १०५-१०७ ॥

आदित्यपक्वगुडूच्यौ तैल।

वटावरोहकेशिन्योश्चूर्णेनादित्यपाचितम्। गुडूचीस्वरसे तैलमभ्यङ्गात् केशरोहणम् ॥ १०८ ॥

बरगद की जटा तथा बालछड़ के कल्क और गिलोय के रस में तेल मिलाकर तेज धूप में रक्खे। जब जल का अंश सूख जाय तब छान कर इसका मर्दन करने से बाल उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १०८ ॥

चन्दनाद्य तैल।

चन्दनं मधुकं मूर्वा त्रिफला नीलमुत्पलम्। कान्ता वटावरोहश्च गुडूची बिसमेव च ॥ १०९ ॥ लौहचूर्णं तथा केशी सारिवे द्वे तथैव च। मार्कवस्व-

रसेनैव तैलं मृद्वग्निना पचेत् ॥ ११० ॥ शिरस्युपचिताः केशा जायन्ते घनकुञ्चिताः। स्निग्धाश्च दृढमूलाश्च तथा भ्रमरसन्निभाः ॥ नस्येनाकालपलितं निहन्यात्तैलमुत्तमम् ॥ १११ ॥

कल्क के लिए लाल चन्दन, मुलेठी, मूर्वा (चुरनहार, मरोडफली), त्रिफला, नील कमल, प्रियंगु के फूल, बरगद की जटा गिलोय, कमलनाल, लौहचूर्ण, बालछड़, अनन्तमूल और सारिवा; सब मिलाकर ३२ तोले, भँगरा का रस ६ सेर ४८ तोले, तिलों का तेल १२८ तोले; इन सबको एकत्र कर मन्दाग्नि से पकावे। इस तेल की नास लेने से शिर पर घने, घुँघराले, चिकने और दृढ़ जड़वाले बाल जम आते हैं यह असमय में बालों के पकने को नष्ट करने में उत्तम है ॥ १०९-१११ ॥

यष्टीमध्वाद्य तैल।

तैलं सयष्टिमधुकैः क्षीरे धात्रीफलैः शृतम्। नस्ये दत्तं जनयति केशान् श्मश्रूणि चाप्यथ ॥ ११२ ॥

मुलेठी और आँवला के कल्क तथा गौ के दूध में तेल पकाकर नस्य लेने से बाल और दाढ़ी, मूछें जम आती हैं ॥ ११२ ॥

केशरंजन योग।

त्रिफला नीलिनीपत्रं लौहं भृङ्गरजःसमम्। अविमूत्रेण संयुक्तं कृष्णीकरणमुत्तमम् ॥ ११३ ॥

त्रिफला, नील के पत्ते, लोह का चूर्ण और भँगरा, ये सब समान भाग ले भेड़ी के दूध में पीसकर शिर पर लेप करने से बाल काले हो जाते हैं ॥ ११३ ॥

त्रिफलाचूर्णसंयुक्तं लौहचूर्णं विनिक्षिपेत्। ईषत्पक्वे नारिकेले भृङ्गराजरसान्विते ॥ ११४ ॥ मासमेकं तु निक्षिप्य सम्यग्गर्त्तात् समुद्धरेत्। ततः शिरो मुण्डयित्वा लेपं दत्त्वा भिषग्वरः ॥ ११५ ॥ संवेष्ट्य कदलीपत्रैर्मोचयेत् सप्तमे दिने। क्षालयेत् त्रिफलाक्वाथैः क्षीरमांसरसाशिनः। कपालरञ्जनं चैतत् कृष्णीकरणमुत्तमम् ॥ ११६ ॥

थोड़े पके हुए नारियल में भँगरे का रस, त्रिफले का चूर्ण और लोह का चूर्ण डालकर एक महीने तक गाड़ कर रक्खे। फिर गड्ढे से निकाल ले। शिर मुँडवाकर इसका लेप करे और ऊपर केले का पत्ता बाँध दे। सात दिन के पश्चात् केले का पत्ता हटाकर त्रिफले के काढ़े से शिर को धो डाले। सात दिन तक दूध और मांसरस का भोजन करे। इस प्रयोग से बाल अत्यन्त काले हो जाते हैं ॥ ११४-११६ ॥

उत्पलं पयसा सार्द्धं मासं भूमौ निधापयेत्। केशानां कृष्णीकरणं स्नेहनं च विधीयते ॥ ११७ ॥

नील कमल को दूध में पीसकर लोहपात्र में भर कर धरती में गाड़ दे। एक महीने बाद निकालकर, शिर पर लगाने से बाल काले और चिकने हो जाते हैं ॥ ११७ ॥

भृङ्गपुष्पं जपापुष्पं मेषदुग्धप्रपेषितम्। तेनैवालोडितं लौहपात्रस्थं भूम्यधःकृतम् ॥ ११८ ॥ सप्ताहादुद्धृतं पश्चाद् भृङ्गराजरसेन तु। आलोड्याज्येन च शिरो वेष्टयित्वा वसेन्निशाम् ॥ ११९ ॥ प्रातस्तु क्षालनं कार्य्यमेवं स्यान्मूर्द्धरञ्जनम् एवं सिन्दूरबालाभ्रशङ्खभृङ्गरसैः क्रिया ॥ १२० ॥

भँगरे के और गुड़हल के फूलों को भेड़ी के दूध में पीस कर और भेड़ी ही के दूध में घोल कर लोहपात्र में भर कर धरती में गाड़ दे। सात दिन के बाद उसको निकाल कर और भँगरे के रस तथा घृत में उसे मिलाकर

और मथकर शिर पर लेप करे तथा ऊपर केले का पत्र बाँध दे। एक रात्रि बीतने पर प्रातःकाल त्रिफला के काढ़े से धो डाले। इससे बाल काले हो जाते हैं। इसी प्रकार सिन्दूर, नेत्रबाला, आम की गुठली, शंख का चूर्ण और भँगरे के रस का प्रयोग करने से बाल काले हो जाते हैं॥ ११८-१२०॥

नरदग्धशङ्खचूर्णकाञ्जिकरससंयुतं हि सीसकं घृष्ट्वा। लेपात् कचानर्कदलावबद्धान् शुभ्रान् करोतिनीलतरान्॥ १२१॥

नील वृक्ष, शंख की भस्म, पारा और सीसा को काँजी में रगड़ कर शिर पर लेप करे और ऊपर आक के पत्ते बाँधे तो सफ़ेद बाल नील से भी अधिक काले हो जाते हैं॥ १२१॥

लौहमलकल्कैः सजवाकुसुमैर्नरः सदा स्नायी। पलितानीह न पश्यति गङ्गास्नायीव नरकाणि॥ १२२॥

लोहकिट्ट (मण्डूर) और गुड़हल के फूलों के कल्क से स्नान करनेवाला मनुष्य पके हुए बालों को इस प्रकार नहीं देखता है जैसे गंगा में स्नान करनेवाला नरकों को नहीं देखता है॥ १२२॥

निम्बस्य बीजानि हि भावितानि भृङ्गस्य तोयेन तथाशनस्य। तैलं तु तेषां विनिहन्ति नस्याद् दुग्धान्नभोक्तुः पलितं समूलम्॥ १२३॥

नीम के बीजों में भँगरे के और असना के रस की भावना देकर उनका तेल निकलवाकर नास लेने से पलित रोग नष्ट होता है। इसके प्रयोग में दूध और चावल का भोजन करना चाहिए॥ १२३॥

निम्बस्य तैलं प्रकृतिस्थमेव नस्तो निषिक्तं विधिना यथावत्। मासेन गोक्षीरभुजो नरस्य यवाग्रभूतं पलितं निहन्ति॥ १२४॥

एक महीने तक गौ के दूध का भोजन करनेवाला साधारण नीम के तेल का विधि से नास लिया करे तो अत्यन्त सफ़ेद बाल काले हो जाते हैं॥ १२४॥

क्षीरात्समार्कवरसाद् द्विप्रस्थे मधुकात्पले। तैलस्य कुडवं पक्वं तन्नस्यं पलितापहम्॥ १२५॥

गोदुग्ध २ सेर, भँगरे का रस २ सेर। कल्क के लिए मुलेठी आध पाव। तिल का तेल आध सेर। विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर नास लेने से पलित रोग नष्ट होता है॥ १२५॥

महानील तैल।

आदित्यवल्ल्या मूलानि कृष्णशैरीयकस्य च। सुरसस्य च पत्राणि फलं कृष्णशणस्य च॥ १२६॥ मार्कवः काकमाची च मधुकं देवदारु च। पृथक् दशपलांशानि पिप्पल्यस्त्रिफलाञ्जनम्॥ १२७॥ प्रपौण्डरीकं मञ्जिष्ठा लोध्रं कृष्णागुरूत्पलम्। आम्रास्थि कर्दमः कृष्णो मृणाली रक्तचन्दनम्॥ १२८॥ नीलीभल्लातकास्थीनि कासीसं मदयन्तिका। सोमराज्यशनं शस्त्रं कृष्णौ पिण्डीतचित्रकौ॥१२९॥ पुष्पाण्यर्जुनकाश्मर्य्योराम्रजम्बूफलानि च। पृथक्पञ्चपलैर्भागैः सुपिष्टैराढकं पचेत्॥१३०॥ बिभीतकस्य तैलस्य धात्रीरसचतुर्गुणम्। कुर्य्यादादित्यपाकं वा यावच्छुष्को भवेद्रसः॥ १३१॥ लौहपात्रे ततः पूतं संशुद्धमुपयोजयेत्। पाने नस्यक्रियायां च शिरोऽभ्यङ्गे तथैव च॥ १३२॥ एतच्चक्षुष्यमायुष्यं शिरसः सर्वरोगनुत्। महानीलमिति ख्यातं पलितघ्नमनुत्तमम्॥ १३३॥

हुलहुल की जड, नीली कटभरैया की जड़, तुलसी के पत्ते, काले सन के बीज, भँगरा, मकोय, मुलेठी, देवदारु; प्रत्येक चालिस-चालिस तोले। पीपरि, त्रिफला, रसौत, पुंडरिया, मंजीठ, लोध, काली अगर, कमल, आम की गुठली, कमलिनी की जड के नीचे का कीचड, कमलनाल, लाल चन्दन, नील, भिलावें के बीज, कसीस, मोतिया, बकुची, असना की छाल, लोहचूर्ण, काला मैनफल, काले चीता की जड, अर्जुन के फूल, कंभारी के फूल और जामुन तथा आम के फल; प्रत्येक बीस बीस तोले। इन सबके महीन पिसे हुए कल्क को बहेडा के ६ सेर ३२ तोले तेल और आँवले के २५ सेर४८ तोले रस में मिला कर मन्द अग्नि से तेल सिद्ध करे अथवा सबको एकत्र कर लोह की कडाही में डालकर धूप में रख दे। जब जल का अंश सूख जाय तब छान कर रख ले। इसके पीने, नास लेने और शिर में लगाने से नेत्रों के रोग नष्ट होते हैं। आयु बढ़ती है तथा शिर के सब रोग नष्ट होते हैं। यह महानील तेल पलित रोग को नष्ट करने में परम उत्तम है॥ १२६--१३३॥

भृङ्गराज घृत।

भृङ्गराजरसे पक्वं शिखिपित्तेन कल्कितम्। घृतं नस्येन पलितं हन्यात् सप्ताहयोगतः॥ १३४॥

भँगरे का रस १ सेर। कल्क के लिए मोर का पित्ता १ छटाँक। घृत पाव भर। विधि से घृत पका कर नस्य ले। यह सात दिन में पलित रोग को नष्ट करता है॥ १३४॥

काञ्जिकपिष्टशेलुफलमज्जानि सच्छिद्रलोहगे। यदर्कतापात् पतति तैलं तन्नस्यभ्रक्षणात्॥ १३५॥ केशा नीलालिसङ्काशाः सद्यः स्निग्धा भवन्ति च। नयनश्रवणग्रीवादन्तरोगांश्च हन्त्यदः॥१३६॥

लसोड़े की गुठली की मींगी को काँजी में पीसकर पेंदी में छेदवाले लोहे के पात्र में डाल कर धूप में रख दे। जब सूर्य की गर्मी से उस छिद्र द्वारा तेल टपक कर गिरे उसे एक पात्र में रख ले। इस तेल के मर्दन करने तथा नास लेने से शीघ्र ही भौंरे के समान काले तथा चिकने बाल हो जाते हैं। यह नेत्र, कान, ग्रीवा और दाँतों के रोगों को भी नष्ट करता है॥ १३५--१३६॥

वृषणकच्छू और अहिपूतना की चिकित्सा।

कासीसरोचनातुत्थहरितालरसाञ्जनैः। अम्लपिष्टैः प्रलेपोऽयं वृषकच्छ्वहिपूतयोः॥ १३७॥

कसीस, गोरोचन, तूतिया, हरताल और रसौत; इनको काँजी से पीस कर लेप करने से वृषणकच्छू और अहिपूतना रोग शान्त होता है॥ १३७॥

पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जनविपाचितम्। पीतं घृतं नाशयति कृच्छ्रामप्यहिपूतनाम्॥ १३८॥

परवल के पत्ते, त्रिफला और रसौत; इनके कल्क से घृत सिद्ध कर पीने से कष्टतर अहिपूतना रोग शान्त होता है॥ १३८॥

शूकरदंष्ट्र की चिकित्सा।

रजनीमार्कवमूलं पिष्टं शीतेन वारिणा तुल्यम्। हन्ति विसर्पं लेपाद्वराहदशनाह्वयं घोरम्॥ १३९॥

हल्दी और भँगरे की जड को सम भाग ले ठंढे जल में पीसकर लेप करने से विसर्प और घोर शूकरदंष्ट्र रोग नष्ट होता है॥ १३९॥

नाडीकबीजकल्कः पीतो गव्येन सर्पिषा प्रातः। शमयति शूकरदंष्ट्रं सदाहपाकज्वरं घोरम्॥ १४०॥

पटुआ के बीजों के कल्क को प्रातःकाल गोघृत के साथ पीने से दाह, पाक और ज्वरयुक्त घोर शूकरदंष्ट्र शान्त होता है॥ १४०॥

विसर्पोक्तः प्रतीकारः कार्य्यः शूकरदंष्ट्रके॥ १४१॥

शूकरदंष्ट्र रोग में, विसर्प रोग में कहा हुआ उपाय करना चाहिए ॥ १४१ ॥

अमृतांकुरवटी ।

अमृतं पारदं गन्धं लौहमभ्रं शिलाजतु । गुञ्जामात्रा वटीं कुर्यान्मर्दयित्वामृताम्भसा ॥ १४२ ॥ एषाऽमृतांकुरवटी पीता धात्र्यम्भसा सह । क्षुद्ररोगानशेषांस्तु गदान् पित्तास्रकोपजान् ॥ १४३ ॥ ज्वरं जीर्णं प्रमेहं च कार्श्यमग्निक्षयं तथा । नाशयेज्जनयेत् पुष्टिं कान्तिं मेधां शुभां मतिम् ॥ १४४ ॥

मीठा विष, पारा, गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और शिलाजीत; इनको गिलोय के रस से पीसकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना ले। आँवले के रस या क्वाथ के साथ खाने से यह अमृताङ्कुर वटी सब प्रकार के क्षुद्ररोग, पित्त और रक्त के रोग, जीर्णज्वर, प्रमेह, कृशता और मन्दाग्नि को नष्ट कर पुष्टि, कान्ति, मेधा और अच्छी बुद्धि को देती है ॥ १४२-१४४ ॥

चन्द्रप्रभा रस ।

चन्द्रप्रभां तुगाक्षीरीं सैन्धवं च शिलाजतु । कौशिकं चाक्षमानं तु हेमारं रौप्यमभ्रकम् ॥ १४५ ॥ माक्षिकं शाणमात्रं च मधुना परिमर्दयेत् । ततो द्विवल्लमानेन वटिकाः परिकल्पयेत् ॥ १४६ ॥ अनुपानविशेषेण योजितोऽयं महारसः । सर्वान् क्षुद्रगदान् हन्ति प्रमेहानपि दुस्तरान् ॥ १४७ ॥ वातव्याधीनशेषांश्च पित्तजान् कफसम्भवान् । चिरप्रनष्टमग्निं च दीपयेज्जनयेद् बलम् ॥ १४८ ॥

बाकुची के बीज, वंशलोचन, सेंधानमक, शिलाजीत और शुद्ध गूगुल, प्रत्येक एक-एक तोला। सुवर्णभस्म, पीतल की भस्म, चाँदी की भस्म, अभ्रकभस्म और सुवर्णमाक्षिक की भस्म, प्रत्येक तीन-तीन माशे। इन सबको एकत्र शहद में पीसकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना ले। भिन्न-भिन्न अनुपानों के साथ इस रस का सेवन करने से यह सर्व प्रकार के नेत्ररोग, कठिन प्रमेह रोग, सब प्रकार की वातव्याधियों, पित्तज रोग, और कफज रोगों को नष्ट करता है। चिरकाल से नष्ट अग्नि को दीप्त कर बल को पैदा करता है। मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक ॥ १४५-१४८ ॥

कुंकुमादि घृत ।

कुंकुमेन निशाभ्यां च कणया वह्निवारिणा । घृतं पक्वं निराकुर्य्यान्नीलिकां मुखदूषिकाम् ॥ १४९ ॥ सिध्मादींस्त्वग्गदान् सर्वान् व्याधीन् कफसमुद्भवान् । शिरोर्त्तिं नाशयेच्चाशु लावण्यं जनयेत् परम् ॥ १५० ॥ जगतामुपकाराय दस्राभ्यां विहितं त्विदम् । पानेऽभ्यङ्गे तथा नस्ये युक्त्या योज्यं विचक्षणैः ॥ १५१ ॥

कल्क के लिये केशर, हल्दी, दारुहल्दी और पीपरि एक-एक छटाँक । चीता की जड़ का काढ़ा ४ सेर। घी १ सेर। विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर पान, मर्दन और नस्य में देना चाहिए। यह घृत नीलिका, मुहाँसा, सेहुआँ आदि चर्मरोग, सब प्रकार के कफज रोग और शिर की पीड़ा को शीघ्र नष्ट करता है। शरीर को सुन्दर बना देता है। संसार के हितार्थ अश्विनीकुमारों ने इसे बनाया है ॥ १४९-१५१ ॥

सप्तच्छदादि तैल ।

सप्तच्छदस्य वासायाः पिचुमर्दस्य चाम्भसा । तैलमर्धं पचेत् कल्कैर्निशादार्वीफलत्रिकैः ॥ १५२ ॥ व्योषेन्द्रयवमञ्जिष्ठासदिरक्षारसैन्धवैः । गोमूत्रस्याढकं दत्त्वा शनैश्च मृदुनाग्निना ॥ १५३ ॥ पद्मिनीकण्टकं चिप्पं कदरं व्य-

ङ्नीलिके। जालगर्दभकं चैतत्त्वग्गदांश्च विनाशयेत् ॥ १५४ ॥

सतवन की छाल का काढ़ा ६ सेर ३२ तोले, अरूसे का काढ़ा ६ सेर ३२ तोले और नीम की छाल का काढ़ा ६ सेर ३२ तोले। तिल का तेल १२८ तोले। कल्क के लिये हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, त्रिकटु (सौंठ, मिर्च और पीपरि), इन्द्रयव, मंजीठ, खैर की छाल, जवाखार और सेंधानमक; प्रत्येक चार-चार तोले। गोमूत्र ६ सेर ३२ तोले। विधिपूर्वक धीरे-धीरे मन्द अग्नि से पकाकर तेल तैयार करे। यह तेल पद्मिनीकण्टक, चिप्प, कदर, व्यङ्ग, नीलिका और जालगर्दभ; इन चर्मगत रोगों को नष्ट करता है ॥ १५२-१५४ ॥

सहाचरघृत।

सहाचरतुलाक्वाथे क्वाथे च दशमूलजे। शिरीषस्य कषाये च घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १५५ ॥ कल्कान् दत्त्वा पञ्चकोलं कृमिघ्नं पटुपञ्चकम्। क्षारत्रयं वृश्चिकालींसिन्दूरमपि गैरिकम्॥ १५६ ॥ हन्यादेतद्घृतं न्यच्छं नीलिकां तिलकालकम्। अंगुलीवेष्टकं पाददारीं च मुखदूषिकाम् ॥ १५७ ॥

पियाबाँसा ५ सेर, क्वाथार्थ जल २५ सेर ४८ तोले, अवशिष्ट क्वाथ ६ सेर ३२ तोले। दशमूल ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोले, अवशिष्ट ६ सेर ३२ तोले। सिरसा की छाल ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोले। अवशिष्ट ६ सेर ३२ तोले। घृत १२८ तोले। कल्क के लिए पंचकोल (पीपरि, पिपलामूल, चित्रक, सोंठ और चव्य), वायविडंग, पाँचों नमक, जवाखार, सज्जीखार, सुहागा, वृश्चिकाली विछुवा घास), सिन्दूर और गेरू मिलित ३२ तोले। विधिपूर्वक घृत सिद्ध करे। यह घृत न्यच्छ, नीलिका, तिलकालक, अंगुलीवेष्टक, बिवाई और मुहाँसा; इन रोगों को नष्ट करता है ॥ १५५-१५७ ॥

क्षारघृत।

मुष्ककं कुटजं गुञ्जां चित्रकं कदलीं वृषम्। अर्कस्नुह्यपामार्गं चाश्वमारं विभीतकम् ॥ १५८ ॥ पलाशं पारिभद्रं च नक्तमालं च सन्दहेत्। ततः प्रस्थं समादाय क्षारस्य षड्गुणाम्भसा ॥ १५९ ॥ त्रिःसप्तकृत्वो विस्राव्य पचेत् सर्पिस्तदम्भुना। कल्कं क्षारत्रयं दत्त्वा नातितीव्रेण वह्निना ॥ १६० ॥ क्षारसर्पिरिदं हन्यान् मशकं तिलकालकम्। पद्मिनीकण्टकं चिप्पमलसं दद्रुसिध्मनी ॥ १६१ ॥

मोखा, कुड़ा, घुँघुची, चीता की जड़, केला का काण्ड (डंडी), अडूसा, मदार, थूहर, लटजीरा, कनेर, बहेड़ा, ढाक, नीम और करंज, इनको समभाग लेकर भस्म बना ले। इस ६४ तोले भस्म को ४ सेर ६४ तोले पानी में मिलाकर २१ बार कपड़े से छान ले। इस जल में १२८ तोले घृत और जवाखार, सज्जीखार और सुहागा मिलित ३२ तोले डालकर मध्यम अग्नि से पकावे। यह क्षारघृत मस्सा, तिलकालक, पद्मिनीकण्टक, चिप्प, बेवाई और मुँहासा को नष्ट करता है ॥ १५८-१६१ ॥

शय्यामूत्रचिकित्सा।

कृतमूत्रार्द्रभूभागमृगमाकृष्य खोलके। सम्भर्ज्य मधुसर्पिर्भ्यां लेहयेन् मूत्रितं जनम्। शय्यायां मूत्ररोधः स्यान्मूत्रितस्य न संशयः ॥ १६२ ॥

शय्यातलस्तिमितमृत्तिकां गृहीत्वा खोलके भर्जयित्वा घृतमधुभ्यां लेहयेत्।

शय्या के नीचे की मूत्र से गीली हुई मिट्टी को लेकर खपडे में भूनकर और उसमें शहद और घी मिलाकर मूतनेवाले व्यक्ति को चटाने से निःसंशय शय्या का मूतना बंद हो जाता है ॥ १६२ ॥

बिम्बमूलरसः पीतं शय्यामूत्रं निवारयेत् । अहिफेनप्रयोगेण मूत्ररोधो भवेद्ध्रुवम् ॥ १६३ ॥

कुंदरू की जड़ का रस पीने से शय्यामूत्र रोग दूर होता है । उचित मात्रा में अफीम के सेवन से शय्या में मूतना अवश्य बन्द हो जाता है ॥ १६३ ॥

लोमशातनविधि ।

हरितालचूर्णकणिकालेपात् तप्तेन वारिणा सद्यः । निपतन्ति लोमनिचयाः कौतुकमिदमद्भुतं मन्ये ॥ १६४ ॥

हरताल के चूर्ण को गर्म जल के साथ लेप करने से शीघ्र ही बाल गिर जाते हैं ॥ १६४ ॥

दग्ध्वा शङ्खं क्षिपेद् रम्भास्वरसे तच्च पेषितम् । तुल्यालं लेपतो हन्ति लोम गुह्यादिसम्भवम् १६५ ॥

शंख की भस्म और हरताल बराबर लेकर केला के रस में पीस कर गुह्य स्थान में लेप देने से वहाँ के बाल गिर जाते हैं ॥ १६५ ॥

रक्ताञ्जनीपुच्छचूर्णयुक्तं तैलं तु सार्षपम् । सप्ताहमुषितं हन्ति मूलाद्रोमाण्यसंशयम् ॥ १६६ ॥

लाल अंजनी की जड़ के चूर्ण को सात दिन तक सरसों के तेल में रख कर लगाने से जड़ से बाल गिर जाते हैं ॥ १६६ ॥

पलाशभस्मान्विततालमूले रम्भाम्बुमिश्रैरुपलिप्य भूयः । कन्दर्पगेहे मृगलोचनानां रोमाणि रोहन्ति कदापि नैव ॥ १६७ ॥

पलाश (ढाक) की भस्म और हरताल के चूर्ण को केला के जल में मिला कर स्त्रियों के गुप्त स्थान में लगाने से फिर कभी बाल नहीं पैदा होते हैं ॥ १६७ ॥

एकः भर्द्यो हरितालभागः पञ्च भर्द्या जलजस्य भागाः । षड् भस्मनः पर्णतरोस्तथैव मोक्षश्च भागाः कदलीजलार्द्राः ॥ १६८ ॥ संमिश्र्य पात्रेषु च सप्तरात्रं कृत्वा स्मरागारविलेपनं च । रोमाणि सर्वाणि विलासिनीनां पुनर्न रोहन्ति कदाचिदेव ॥ १६९ ॥

हरताल १ तोला, शंख भस्म ५ तोले और ढाक की भस्म ६ तोले लेकर सबको केले के जल में भिगो कर सात दिन तक पात्र में रखा रहने दे । इसके लगाने से कामिनियों के गुह्य स्थान के बाल गिर जाते हैं और फिर कभी उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ १६८-१६९ ॥

रम्भाजले सप्तदिनं विभाव्य भस्मानि कम्बोर्मसृणानि पश्चात् । तालेन युक्तानि विलेपनेन लोमानि निर्मूलयति क्षणेन ॥ १७० ॥

शंख की भस्म को सात दिन तक केले के जल में घोट कर और उसमें हरताल मिला कर लेप करने से क्षणमात्र में बाल निर्मूल हो जाते हैं ॥ १७० ॥

कुसुम्भतैलाभ्यङ्गो वा रोम्णामुत्पाटकोऽन्तकृत् ॥ १७१ ॥

* कुसुम के तेल का मर्दन करने से बाल उखड़ जाते हैं और फिर नहीं जमते हैं । कहीं "रोम्णामुत्पाटितेऽन्तकृत्" ऐसा पाठ है । वहाँ पहले बाल उखाड़ कर तेल लगाने से बाल नष्ट हो जाते हैं, ऐसा अर्थ है ॥ १७१ ॥

कर्पूरभल्लातकशङ्खचूर्णं क्षारो यवानां च मनःशिला च । तैलं सुपक्वं हरितालमिश्रं रोमाणि निर्मूलयति क्षणेन ॥ १७२ ॥

कपूर, शुद्ध भिलावाँ, शंखभस्म, जवाखार और मैनशिल ; इनके कल्क में तेल सिद्ध कर और उसमें हरताल मिलाकर लगाने से बाल जड़ से नष्ट हो जाते हैं ॥ १७२ ॥

क्षारतैल।

शुक्तिशम्बूकशङ्खानां दीर्घवृन्तात् समुष्ककात्। दग्ध्वा क्षारं समादाय खरमूत्रेण भावयेत् ॥ १७३ ॥ क्षाराष्टभागं विपचेत्तैलं वै सार्षपं बुधाः। इदमन्तःपुरे देयं तैलमात्रेयपूजितम् ॥ १७४ ॥ बिन्दुरेकः पतेद्यत्र तत्र लोमापुनर्भवः। मदनादिव्रणे तैलमश्विभ्यां परिकीर्त्तितम् ॥१७५॥ अर्शसां कुष्ठरोगाणां पामादद्रुविचर्चिकाम्। क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं सर्वक्लेदरुजापहम् ॥ १७६ ॥

सीप, घोंघा, शंख, स्योनाक और मुष्कक (मोखा वृक्ष, कठपाडल); इनकी भस्म में गदहे के मूत्र की भावना दे। फिर उसे छह गुने जल में मिलाकर छान ले। यह जल ८ सेर। कड़ुआ तेल १ सेर, विधि से तेल सिद्ध करे। यह आत्रेय ऋषि द्वारा प्रशंसित है। इसको अन्तःपुर में देना चाहिए। इसकी एक बूँद भी जहाँ लगाई जावेगी वहाँ फिर बाल नहीं जमेंगे। यह मदनादि व्रण में अश्विनीकुमारों ने कहा है। बवासीर, कुष्ठ, पामा, दाद और विचर्चिका आदि में यह क्षार तेल हितकर है ॥१७३-१७६॥

लौहकिट्टं जवापुष्पं पिष्ट्वा धात्रीफलं समम्। त्रिदिनं लेपयेच्छीर्षं त्रिमासं केशरञ्जनम् ॥ १७७ ॥

मण्डूर, गुड़हल तथा आँवले; इन्हें समभाग एकत्र पीस तीन दिन तक शिर पर लेप देने से तीन महीना तक बाल काले रहते हैं ॥ १७७ ॥

पटोलाद्य घृत।

पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जनविपाचितम्। पीतं घृतं नाशयति कृच्छ्रामप्यहिपूतनाम् ॥ १७८ ॥

पटोलपत्र, त्रिफला, रसौत; इनसे विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर पीने से कष्टसाध्य अहिपूतना रोग नष्ट होता है ॥ १७८ ॥

क्षुद्र रोगों में पथ्यापथ्य।

क्षुद्ररोगेषु सर्वेषु नानारोगानुकारिषु। दोषानदूष्यानवस्थां च निरीक्ष्य मतिमान् भिषक् ॥ १७९ ॥ तस्य तस्य च रोगस्य पथ्यापथ्यानि सर्वशः। यथादोषं यथादूष्यं यथावस्थं प्रकल्पयेत् ॥ १८० ॥

इति श्रीभैषज्यरत्नावल्यां क्षुद्ररोगाधिकारः समाप्तः।

बुद्धिमान् वैद्य का कर्तव्य है कि अनेक रोगों के लक्षणों से युक्त क्षुद्र रोगों में दोष-दूष्य तथा दशा का अच्छी तरह से अवलोकन कर रोग के और अवस्था के अनुसार रोगी को पथ्यापथ्य का प्रयोग कराए तथा त्याग कराए ॥ १७९-१८० ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां क्षुद्ररोगाधिकारः समाप्तः।

अथ स्त्रीरोगाधिकारः।

अब पहले प्रदर की चिकित्सा कहते हैं।

दध्ना सौवर्चलाजाजी मधुकं नीलमुत्पलम्। पिबेत् क्षौद्रयुतं नारी वातासृग्दरपीडिता ॥ पिबेदैणेयकं रक्तं शर्करामधुसंयुतम् ॥ १ ॥

वातज रक्तप्रदर से पीड़ित स्त्री को दही (२ तोले) में काला नमक (१ माशा, जीरा, मुलेठी और नीलकमल का चूर्ण (प्रत्येक २-२ माशे) तथा शहद (६ माशे) मिलाकर पिलाना चाहिए। अथवा हरिण के रक्त में शक्कर और शहद मिलाकर पिलाना चाहिए ॥ १ ॥

वासकस्वरसं पित्ते गुडूच्या रसमेव वा। कुशमूलं समुद्धृत्य पेषयेत् तण्डुलाम्बुना। एतत् पीत्वा त्र्यहान्नारी प्रदरात् परिमुच्यते ॥ २ ॥

पैत्तिक रक्तप्रदर में अडूसे का रस अथवा गिलोय का रस शहद मिलाकर सेवन करना चाहिए। अथवा कुशा (डाभ) की जड़ को चावलों के जल में पीसकर तीन दिन पीने से स्त्री प्रदररोग से छुट्टी पा जाती है ॥ २ ॥

दार्व्यादि क्वाथ।

दार्वीरसाञ्जनवृषाब्दकिराताबिल्वभल्लातकैरवकृतो मधुना कषायः। पीतो जयत्यतिबलं प्रदरं सशूलं पीतासितारुणविलोहितनीलशुक्लम् ॥ ३ ॥

दारुहल्दी, रसौत, अडूसा, नागरमोथा, चिरायता, बेल की गिरी, शुद्ध भिलावाँ और कोकाबेली (कुमुद), इनके काढ़े में शहद मिलाकर पीने से शूलयुक्त अति प्रबल पीला, काला, लाल, लोहित, नील और श्वेत प्रदर नष्ट होता है ॥ ॥

अशोकवल्कलक्वाथशृतं दुग्धं सुशीतलम्। यथाबलं पिबेत् प्रातस्तीव्रासृग्दरनाशनम् ॥ ४ ॥

अशोक की छाल के काढ़े में दूध पकाकर ठंढा कर प्रातःकाल बलानुसार पीने से कठिन रक्तप्रदर नष्ट होता है ॥ ४ ॥

क्षौद्रयुक्तं फलरसं काकोडुम्बरजं पिबेत्। असृग्दरविनाशाय सशर्करपयोऽन्नभुक् ॥ ५ ॥

कठूमर (कठगूलर) फल के रस में शहद मिलाकर पीने से रक्तप्रदर नष्ट होता है। इसके सेवनकाल में दूध शक्कर और चावल खाना चाहिए ॥ ५ ॥

प्रदरं हन्ति बलाया मूलं दुग्धेन संयुतं पीतम्। कुशवाट्यालकमूलं तण्डुलसलिलेन रक्ताख्यम् ॥ ६ ॥

खरेटी की जड़ के कल्क को दूध के साथ पीने से प्रदर नष्ट होता है तथा कुशा की जड़ और खरेटी की जड़ को चावल के जल के साथ पीसकर पीने से रक्तप्रदर नष्ट होता है ॥ ६ ॥

गुडेन बदरीचूर्णमसृग्दरविनाशनम्। गुडेन बदरीचूर्णं मोचमामं तथा पयः ॥ पीता लाक्षा च सघृता पृथक् प्रदरनाशनम् ॥ ७ ॥

गुड़ के साथ बेर का चूर्ण खाने से रक्तप्रदर नष्ट होता है। गुड़ के साथ बेर का चूर्ण कच्चा केला और दूध अथवा घृत के साथ लाख का चूर्ण; इनमें से किसी एक का सेवन करने से प्रदर रोग नष्ट होता है ॥ ७ ॥

रक्तपित्तविधानेन प्रदरांश्चाप्युपाचरेत्। रक्तातिसारवच्चाथ रक्तार्शोवत् तथैव च ॥ ८ ॥

प्रदररोग में रक्तपित्त, रक्तातिसार तथा खूनी बवासीर की सी चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ८ ॥

असृग्दरे विशेषेण कुटजाष्टक इष्यते। रोहीतकमूलकल्कं पाण्डुरेऽसृग्दरेपिबेत् ६

रक्तप्रदर में कुटजाष्टक का सेवन करना विशेष हितकर होता है। पीले प्रदररोग में रुहेड़ा की जड़ के कल्क में शक्कर या शहद मिलाकर पीना उत्तम है ॥ ६ ॥

जलेनामलकीबीजकल्कं वा ससितामधु। धातक्यारचाक्षमात्रं वा आमलक्या मधुद्रवम् ॥ १० ॥ काकजानुकमूलं वा मूलं कार्पासमेव वा। पाण्डुप्रदरशान्त्यर्थं पिबेत् तण्डुलवारिणा ॥ ११ ॥

आँवले के बीजों को जल में पीसकर शक्कर और शहद मिलाकर अथवा धाय के फूलों के

कल्क को शहद के साथ, आँवले के १ तोले कल्क को शहद के साथ, काकजंघा अथवा कपास की जड़ को चावल के जल के साथ पीने से पीतप्रदर शान्त होता है ॥ १०-११ ॥

शर्करामधुकं शुण्ठी तैलं दधि च तत्समम् । खजेन मथितं पीतं हन्याद्वातोत्थितं रजः ॥ १२ ॥

शक्कर, मुलेठी, सोंठ और तेल ; इन चारों के बराबर दही मिलाकर मथानी से मथकर पीने से वातज प्रदर नष्ट होता है ॥ १२ ॥

धात्रीरसं सितायुक्तं योनिदाहापहं पिबेत् ॥ १३ ॥

आँवले के रस में मिश्री मिलाकर पीने से योनि का दाह शान्त होता है ॥ १३ ॥

भूम्यामलकचूर्णं तु पीतं तण्डुलवारिणा । दिनत्रयान्तरेणैव स्त्रीरोगं नाशयेद्ध्रुवम् ॥ १४ ॥

भुई आँवले का चूर्ण चावल के जल के साथ पीने से तीन दिन में स्त्रीरोग को नष्ट करता है ॥ १४ ॥

बृहत्धात्रीघृत ।

बहुमूत्राधिकारे यत्प्रोक्तं धात्रीघृतं महत् । तत्तेनैवानुपानेन धीमानत्रापि योजयेत् ॥ १५ ॥

बहुमूत्राधिकार में जो बृहद्धात्रीघृत कहा गया है उसी अनुपान से बुद्धिमान् वैद्य को यहाँ भी उस घृत का प्रयोग कराना चाहिए ॥ १५ ॥

अशोकघृत ।

अशोकवल्कलप्रस्थं तोयाढकविपाचितम् । पादस्थेन घृतप्रस्थं जीरककाथसंयुतम् ॥ १६ ॥ तण्डुलाम्बु त्वजाक्षीरं घृततुल्यं प्रदापयेत् । तथैव केशराजस्य प्रस्थमेकं भिषग्वरः ॥ १७ ॥ जीवनीयैः प्रियालैस्तु पर्वैः सरसाञ्जनैः । यष्ट्याह्वाशोकमूलं च मृद्वीका च शतावरी ॥ १८ ॥ तण्डुलीयकमूलं च कल्कैरेभिः पलार्द्धकैः । शर्करायाः पलान्यष्टौ सिद्धशीते प्रदापयेत् ॥ १९ ॥ पीतमेतद् घृतं हन्ति सर्वदोषसमुद्भवम् । श्वेतं नीलं तथा कृष्णं प्रदरं हन्ति दुस्तरम् ॥ २० ॥ कुक्षिशूलं कटीशूलं योनिशूलं च सर्वगम् । मन्दाग्निमरुचिं पाण्डुं कृशतां श्वासकासकम् ॥ २१ ॥ आयुः पुष्टिकरं बल्यं बलवर्णप्रसादनम् । देयमेतत् परं सर्पिर्विष्णुना परिकीर्त्तितम् ॥ २२ ॥

अशोक की छाल ६४ तोले, क्वाथार्थ जल ६ सेर ३२ तोले और अवशिष्ट क्वाथ १२८ तोले, जीरा का काढ़ा १२८ तोले, तण्डुलोदक १२८ तोले, बकरी का दूध १२८ तोले। और भँगरे का रस १२८ तोले, घृत १२८ तोले कल्क के लिए जीवनीयगण की प्रत्येक सब ओषधियाँ दो-दो तोले तथा चिरौंजी फालसा, रसौत, मुलेठी अशोक की जड़, मुनक्का, शतावरी और चौलाई की जड़; प्रत्येक दो-दो तोले। विधिपूर्वक घृत सिद्ध करे। ठंडा होने पर छान ले और उसमें ३२ तोले शक्कर मिला दे। इस घृत के पीने से सर्वदोषज सफ़ेद, नीला और काला कठिन प्रदर, कुक्षिशूल, कटिशूल, सब प्रकार का योनिशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डु रोग, दुबलापन, श्वास और कास आदि रोग नष्ट होते हैं। यह घृत आयु, पुष्टि, बल और वर्ण का करनेवाला है। यह उत्तम घृत विष्णुजी का कहा हुआ है ॥ १६-२२ ॥

जीवनीयगण ।

जीवकर्षभकौ मेदे काकोल्यौ शूर्पपर्णिके । जीवन्ती मधुकं चेति दशको जीवनीगणः ॥ २३ ॥

-जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवन्ती

और मुलेठी; ये दश जीवनीयगण की औषधियाँ हैं ॥ २३ ॥

न्यग्रोधाद्य घृत ।

न्यग्रोधाश्वत्थपार्थामृतवृषककुभाप्लक्षजम्बूप्रियालाः श्योनाकोदुम्बराख्यामधुकतरुबलावेतसं केन्दुनीपौ । रोहीतं पीतसारं विधिविहितहृतं सर्वमेषां तरूणां प्रत्येकं वल्कलं तद्युगपलमखिलं क्षोदयित्वा भिषग्भिः ॥ २४ ॥ क्वाथं द्रोणाम्भसा तद्दृढविमलकटाहेऽपिपादावशेषं सर्पिःप्रस्थं तु पाच्यं पचनकुशलिना मन्दमन्दानलेन । प्रस्थं धात्रीरसानां विधिविहितजलप्रस्थमेकं च शालेर्दत्त्वा त्र्यक्षं तु कल्कं मधुकमपि मधोः पुष्पखर्जूरदार्वी ॥ २५ ॥ जीवन्तीकाश्मरीणां फलमपि युगलं क्षीरकाकोलियुग्मं रक्ताख्यं चन्दनं यत्तदपरममलं चाञ्जनं सारिवा च ॥ २६ ॥ न्यग्रोधाद्यं घृतं ह्येतद्देहं मात्यामृतायते । दुस्तरं प्रदरं हन्ति नीलं रक्तं सितासितम् ॥ २७ ॥ योनिशूलं कुक्षिशूलं बस्तिशूलं सुदुःसहम् । अङ्गदाहं योनिदाहमक्षिकुक्षिभवं च यत् ॥ २८ ॥ मन्ददृष्टिमश्रुपातं तिमिरं वातसम्भवम् । आध्मानानाहशूलघ्नं वातपित्तप्रकोपजित् ॥ २९ ॥ अम्लपित्तं च पित्तं च योनिरोगं विनाशयेत् । दृष्टिप्रसादजननं बलवर्णाग्निकारकम् ॥ ३० ॥

बरगद की छाल, पीपल की छाल, अर्जुन की छाल, गिलोय, अडूसा की छाल, कुटकी, पकड़िया (पिलखन) की छाल, जामुन की छाल, चिरौंजी की छाल, श्योनाक की छाल, गूलर की छाल महुआ की छाल, खरेटी, बेत, तिन्दू की छाल, कदम्ब की छाल; रोहीरा की छाल और पीत चन्दन ये सब आठ-आठ तोले लेकर जवकुट कर ले और २५ सेर ४८ तोले पानी में डालकर साफ कड़ाही में पकावे। जब ६ सेर ३२ तोले क्राथ शेष रहे तब उतारकर छान ले। घृत १२८ तोले, आँवले का रस १२८ तोले, विधि से बनाया हुआ चावलों का जल १२८ तोले। कल्क के लिए—मुलेठी, महुए के फूल, खजूर, दारुहल्दी, जीवन्ती और कंभारी के फल, काकोली, क्षीरकाकोली, लाल चन्दन, श्वेत चन्दन, रसौत और अनन्तमूल ; प्रत्येक तीन-तीन तोले। पाककर्म में चतुर वैद्य मन्द-मन्द अग्नि से घृत को सिद्ध करे। यह न्यग्रोधाद्य घृत सेवन करने से अमृत के समान गुण करता है तथा कठिनतर नीला, लाल, श्वेत और काला प्रदर, योनिशूल, कुक्षिशूल और असह्य बस्तिशूल, अंगदाह, योनिदाह, नेत्ररोग, कुक्षिरोग मन्ददृष्टि, आँसू बहना, वातज तिमिर, आध्मान, आनाह, शूल, वात-पित्त का कोप, अम्लपित्त, पित्तरोग और योनिरोग को नष्ट करता है। दृष्टि को तेज करनेवाला तथा बल और वर्ण का करनेवाला है ॥ २४--३० ॥

पैत्तिक प्रदर में चन्दनादि चूर्ण ।

चन्दनं नलदं लोध्रमुशीरं पद्मकेशरम् । नागपुष्पं च बिल्वं च भद्रमुस्तं च शर्करा ॥ ३१ ॥ ह्रीवेरं चैव पाठा च कुटजस्य फलं त्वचम् । शृङ्गवेरं सातिविषा धातकी च रसाञ्जनम् ॥ ३२ ॥ आम्रास्थिजम्बुसारास्थि तथा मोचरसोद्भवः । नीलोत्पलं समङ्गा च सूक्ष्मैलादाडिमोद्भवम् ॥ ३३ ॥ चतुर्विंशतिरेतानि समभागानि कारयेत् । तण्डुलोदकसंयुक्तं मधुना सह योजयेत् ॥ ३४ ॥ चतुःप्रकारं प्रदरं रक्तातीसारमुल्बणम् । रक्तार्शांसि निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा । अश्विन्योः सम्मतो योगो रक्तपित्तनिबर्हणः ॥ ३५ ॥

एतानि चूर्णानि समभागानि एकीकृत्य माषकचतुष्टयं तण्डुलोदकेन मधुना च सह योजयेत् ।

,लाल चन्दन, जटामांसी, पठानीलोध, खस, कमलकेशर, नागकेशर, बेलगिरी, नागरमोथा, खाँड, सुगन्धबाला, पाढ़र, इन्द्रजौ, कुड़ा की छाल, सोंठ, अतीस, धाय के फूल, रसौत, आम की गुठली की मींगी, जामुन की गुठली की मींगी, मोचरस, नीलकमल, अंजीठ, छोटी इलायची और अनारदाना; इन २४ ओषधियों को सम भाग लेकर चूर्ण बना ले। मात्रा—१॥ माशे से ४ माशे तक। अनुपान—शहद और तण्डुलोदक (चावल का धोवन)। यह चूर्ण चार प्रकार के प्रदर रोग, दारुण अतीसार और खूनी बवासीर को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट करते हैं। यह अश्विनीकुमारों का सम्मत योग रक्त-पित्त को नष्ट करनेवाला है ॥ ३१-३५ ॥

पुष्करलेह।

रसाञ्जनं शुभा शृङ्गी चित्रकं मधुयष्टिकम्। धान्यतालीशगायत्री द्विजीरं त्रिवृता बला ॥ ३६ ॥ दन्ती व्यूषणकश्चापि पलार्द्धञ्च पृथक् पृथक्। चतुष्पलं माक्षिकस्यामलस्य च क्षिपेत्ततः ॥ ३७ ॥ जातीकोषलवङ्गञ्च कक्कोलं गोस्तनी तथा। चातुर्जातकखर्जूरं कर्षमेकं पृथक् पृथक् ॥ ३८ ॥ प्रक्षिप्य मर्दयित्वा च स्निग्धभाण्डे निधापयेत्। एष लेहवरः श्रीदः सर्वरोगकुलान्तकः ॥ ३९ ॥ यत्र यत्र प्रयोज्यः स्यात्तत्तदामयनाशनः। अनुपानं प्रयोक्तव्यं देशकालानुसारतः ॥ ४० ॥ सर्वोपद्रवसंयुक्तं प्रदरं सर्वसम्भवम्। द्वन्द्वजं चिरजञ्चैव रक्तपित्तं विनाशयेत् ॥ ४१ ॥ कासश्वासम्लपित्तञ्च क्षयरोगमथापि वा। सर्वरोगप्रशमनो बलवर्णाग्निवर्द्धनः। पुष्कराख्यो लेहवरः सर्वत्रैवोपयुज्यते ४२ ॥

रसौत, वंशलोचन, काकड़ासिंगी, चित्रक, मुलेठी, धनियाँ, तालीशपत्र, कत्था, जीरा, कालाजीरा, निसोत, खरैंटी की जड़ की छाल, दन्तीमूल और त्रिकुटा, हरएक चार-चार तोले। शुद्ध शहद ३२ तोले। जावित्री, लौंग, शीतलचीनी, दाख, चातुर्जात (दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेसर), पिण्डखजूर, हरएक दो दो तोले, इन्हें मिलाकर चिकने बर्तन में रक्खे। यह लेह सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करता है। देश और काल के अनुसार अनुपान देना चाहिए। मात्रा—आधा तोला। यह लेह त्रिदोषज तथा सम्पूर्ण उपद्रवों से युक्त प्रदर रोग को नष्ट करता है। इसके सेवन से पुराना रक्तपित्त, खाँसी, श्वास, अम्लपित्त तथा क्षय रोग नष्ट होता है और बल, वर्ण तथा जठराग्नि बढ़ती है ॥ ३६-४२ ॥

प्रदरारि लौह।

वत्सकस्य तुलां सम्यग् जलद्रोणे विपाचयेत्। अष्टभागावशिष्टं तु कषायमवतारयेत् ॥ ४३ ॥ वस्त्रपूते घनीभूते द्रव्याणीमानि दापयेत्। समङ्गा शाल्मलं पाठा बिल्वं मुस्तं च धातकी ॥ ४४ ॥ अरुणा व्योमकं लौहं प्रत्येकं तु पलं पलम्। माषद्वयं प्रयुञ्जीत कुशमूलं पयो हनु ॥ ४५ ॥ श्वेतं रक्तं तथा नीलं पीतं प्रदरदुस्तरम्। कुक्षिशूलं कटीशूलं देहशूलं च सर्वगम् ॥ ४६ ॥ प्रदरारियं लौहो हन्ति रोगान् सुदुस्तरान्। आयुःपुष्टिकरश्चैव बलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ ४७ ॥

कुड़ा की छाल ५ सेर। जल २५ सेर ४८ तोले। अवशिष्ट क्वाथ ३ सेर १६ तोले। इस क्वाथ को वस्त्र से छान कर फिर अग्नि पर चढ़ाकर पकावे। जब गाढ़ा होने लगे तब

मंजीठ, मोचरस, पादर, बेलगिरी, नागरमोथा, धाय के फूल, पतीस, अभ्रक की भस्म तथा लोह की भस्म; प्रत्येक चार-चार तोले। इन द्रव्यों को कूट पीस कर उस क्वाथ में मिला दे। तैयार होने पर स्वच्छ पात्र में रख ले। मात्रा २ माशे। अनुपान-जल में पिसी कुशा की जड़युक्त जल। यह प्रदरारि लौह सफेद, लाल, नीले और पीले रंग के कठिनतर प्रदर रोग को तथा कुक्षिशूल, कटिशूल और सब शरीर के शूलों को एवं दुस्तर रोगों को नष्ट करता है तथा आयु, पुष्टि, बल और वर्ण को बढ़ानेवाला है ॥ ४३-४७ ॥

पुष्यानुग चूर्ण।

पाठा जम्ब्वाम्रयोर्मध्यं शिलाभेदं रसाञ्जनम् अम्बष्ठकी मोचरसः समङ्गा पद्मकेशरम् ॥ ४८ ॥ वाह्लीकातिविषा मुस्तं बिल्वं लोध्रं सगैरिकम्। कट्फलं मरिचं शुण्ठी मृद्वीका रक्तचन्दनम् ॥ ४९ ॥ कट्वङ्गवत्सकानन्ता धातकी मधुकार्जुनम्। पुष्येणोद्धृत्य तुल्यानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ५० ॥ तानि क्षौद्रेण संयोज्य पाययेत्तण्डुलाम्बुना। अर्शःसु चातिसारेषु रक्तं यश्चोपवेश्यते ॥ ५१ ॥ दोषागन्तुकृता ये च बालानां तांश्च नाशयेत्। योनिदोषं रजोदोषं श्वेतं नीलं सपीतकम् ॥ ५२ ॥ स्त्रीणां श्यावारुणं यच्च तत्प्रसह्य निवर्त्तयेत्। चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम्। अम्बष्ठा दक्षिणे ख्याता गृह्णन्त्यन्ये तु लक्ष्मणाम् ॥ ५३ ॥

पाढ़, जामुन की गुठली की गिरी, आम की गुठली की गिरी, पाषाणभेद, रसौत, अम्बष्ठा (पाढ़), मोचरस, लज्जालु, कमलकेशर, केशर, अतीस, मोथा, बेलगिरी, पठानीलोध, गेरू, कायफल, कालीमिर्च, सोंठ, मुनक्का, लालचन्दन, श्योनाक (अरलू), इन्द्रजौ, अनन्तमूल, धाय के फूल, मुलहठी और अर्जुन की छाल; इनको पुष्य नक्षत्र में लाकर समभाग एकत्रित कर महीन चूर्ण बनावे। इसकी मात्रा—२ माशे शहद में मिलाकर सेवन करे अनुपान—चावल का पानी। यह खूनी बवासीर, रक्तातिसार, बालकों के आगन्तुक रोग, योनिदोष, रजोदोष तथा सफेद, नीले, पीले, काले और लाल प्रदर इनको अवश्य नष्ट करता है। यह पुष्यानुग चूर्ण हितकर तथा आत्रेय द्वारा प्रशंसित है। अम्बष्ठा दक्षिण में विख्यात है। कोई-कोई लक्ष्मणा को ग्रहण करते हैं ॥ ४८-५३ ॥

शिवकल्याणक घृत।

कुमुदं पद्मकोशीरं गोधूमं रक्तशालयः। मुद्गपर्णी पयस्या च काश्मरी मधुयष्टिका ॥ ५४ ॥ बलातिबलयोर्मूलमुत्पलं तालमस्तकम्। विदारी शतपुष्पा च शालिपर्णी सजीरका ॥ ५५ ॥ फलं त्रपुषबीजानि प्रत्यग्रं कदलीफलम्। एषामर्द्धपलान् भागान् गव्यक्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ५६ ॥ पानीयं द्विगुणं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत्। प्रदरे रक्तगुल्मे च रक्तपित्ते हलीमके ॥ ५७ ॥ बहुरूपं च यत् पित्तं कामलायां च शोणिते। अरोचके ज्वरे जीर्णे पाण्डुरोगे मदे भ्रमे ॥ ५८ ॥ तरुणी याल्पपुष्पा च या च गर्भं न विन्दति। अहन्यहनि च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ५९ ॥

कुमुद के फूल, पद्माख, खस, गेहूँ, साँठी चावल, मुद्गपर्णी, क्षीरकाकोली, कंभारी, मुलेठी, खरेटी की जड़, कंघी की जड़, कमल, ताड़ की जटा, विदारीकन्द, सौंफ, शालिपर्णी, जीरा, त्रिफला, खीरे के बीज और केला की कच्ची फली; प्रत्येक दो-दो तोले लेकर कल्क बनावे। गौ का दूध ६ सेर ३२ तोले। जल ३ सेर १६ तोले। और घृत १२८ तोले।

सबको एकत्र कर विधिपूर्वक घृत सिद्ध करे। इस घृत को रक्तप्रदर, रक्तगुल्म, रक्तपित्त, हलीमक, बहुत प्रकार के पित्तरोग, कामला, रक्तस्राव, अरोचक, ज्वर, पुराना पाण्डु रोग, मद और भ्रमरोग में देना चाहिए। जिस स्त्री के अल्परज होता हो अथवा गर्भ न रहता हो उसको सेवन कराना चाहिए। यह दिन-दिन स्त्रियों को प्रसन्न करनेवाला है। मात्रा—६ माशे ॥ ५७-५९ ॥

मधुकाद्यवलेह।

मधुकं चन्दनं लाक्षा रक्तोत्पलरसाञ्जनम्। कुशवीरणयोर्मूलं बलावासकयोस्तथा ॥ ६० ॥ कोलमज्जाम्बुदं बिल्वं पिच्छा दार्वी च धातकी। अशोकवल्कलं द्राक्षा जवाकुसुममस्फुटम् ॥ ६१ ॥ आम्रजम्बूकिशलयं कोमलं नलिनीदलम्। शतमूली विदारी च रजतं लौहमभ्रकम् ॥ ६२ ॥ एषां कोलमितं चूर्णं द्विगुणा सितशर्करा। वरीरसस्य प्रस्थार्द्धं पचेत् मन्देन वह्निना ॥ ६३ ॥ घनीभूते क्षिपेच्चूर्णं शीतीभूते पलं मधु। मधुकाद्यवलेहोऽयं महादेवेन भाषितः ॥ ६४ ॥ दुस्तरं प्रदरं हन्ति नानावर्णं सवेदनम्। योनिशूलं कुक्षिशूलं वस्तिशूलं सुदुःसहम् ॥ ६५ ॥ रक्तातिसारं रक्तार्शो रक्तपित्तं चिरोद्भवम्। मूत्ररोगानशेषांश्च दाहं मोहं वमिं भ्रमम् ॥ नाशयेन्नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ६६ ॥

चूर्ण के लिये मुलेठी, लालचन्दन, लाख लाल कमल, रसौत, कुश की जड़, खस, खरेटी की जड़, अडूसे की जड़, बेर की मींगी, नागरमोथा, बेलगिरी मोचरस, दारुहल्दी, धाय के फूल, अशोक की छाल, मुनक्का, गुड़हर की बिना खिली कली, आम के कोमल पत्ते, जामुन के कोमल पत्ते कमल के कोमल पत्ते, शतावरी, बिदारीकन्द, चांदी की भस्म, लोहभस्म और अभ्रक की भस्म; प्रत्येक आधा आधा तोला। मिसरी २६ तोले और शतावरी का रस ६४ तोले लेकर मन्द अग्नि से पकावे। जब गाढ़ा होने लगे तब उपर्युक्त चूर्ण डालकर मिला दे और नीचे उतार ले। जब ठंढा हो जाय तब आध पाव शहद और मिला दे। यह मधुकाद्यवलेह महादेवजी का कहा हुआ है। मात्रा—६ माशे। यह अनेक वर्णवाले और वेदनायुक्त कठिन से कठिन प्रदरों को नष्ट करता है तथा योनिशूल, कुक्षिशूल, असह्य वस्तिशूल, रक्तातिसार, खूनी बवासीर, पुराना रक्तपित्त, सब प्रकार के मूत्ररोग, दाह, मोह, वमन और भ्रम; इन रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट करते हैं। इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६०-६६ ॥

वासाकषायसहितं रसभस्मप्रयोजितम्। प्रदरं हन्ति वेगेन सक्षौद्रं नात्र संशयः ॥ ६७ ॥ रक्तपित्तहरः सर्वः प्रदरे नूतने विधिः रक्तातिसारयोगं च सर्वमत्र प्रयोजयेत् ॥ ६८ ॥

पारे की भस्म और शहद मिलाकर चाटे और अडूसे का रस पीवे तो शीघ्र प्रदर नष्ट होता है। रक्तप्रदर में रक्तपित्त को नष्ट करनेवाली तथा रक्तातिसार में कही हुई संपूर्ण चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ६७-६८ ॥

उत्पलादि।

कन्दं रक्तोत्पलस्याथ रक्तकार्पासमूलकम्। करवीरस्य मूलानि तथा रक्तोद्मूलकम् ॥ ६९ ॥ बकुलस्य तथा मूलं गन्धमातृकजीरकौ। रक्तचन्दनकं चैव सममागं च कारयेत् ॥ ७० ॥ तण्डुलोदकसंपिष्टं रक्तसूत्राय दापयेत्। योनिशूलं कटीशूलं कुक्षिशूलं च नाशयेत्। योनिशूलहरः श्रेष्ठ उत्पलादिर्न संशयः ॥७१॥

तण्डुलोदकेन गोलमिरा पेयः।

लाल कमल का कन्द, लाल कपास की जड़, लाल कनेर की जड़, लाल गुड़हर की जड़, मौलसिरी की जड़, गन्धमातृका, जीरा और लाल चन्दन; इनको समभाग लेकर चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को चावल के जल में घोलकर रक्तमूत्र के रोगी को पिलावे। यह योनिशूल, कटिशूल और कुक्षिशूल को भी नष्ट करता है। यह दरपकादि योनि के शूलों को नष्ट करने के लिए कहा गया है। इसमें संशय नहीं है। मात्रा—१॥ माशा ॥ ६६-७१ ॥

शरपुंखा चूर्ण।

मूलं च शरपुङ्खायाः पेषयेत् तण्डुलाम्बुना। पीत्वा च कर्षमात्रं तु अतिरक्तं प्रशान्तयेत् ॥ ७२ ॥

एक तोला सरफोंका की जड़ को चावलों के पानी से पीसकर पीने से अत्यन्त रक्तस्राव बन्द होता है ॥ ७२ ॥

धात्रीघृत।

धात्रीफलरसप्रस्थे विदार्य्याः स्वरसे तथा। तृणपञ्चरसप्रस्थे घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७३ ॥ क्षीरस्यापि शतावर्य्याः प्रस्थं प्रस्थं रसस्य च। दत्वा मृद्वग्निना वैद्यः पचेत् सिद्धं विधानतः ॥ ७४ ॥ सुशीते प्रक्षिपेच्चूर्णमेषां चापि पलं पलम्। मधुकं त्रिवृतां चैव क्षारं च वृद्धदारकम् ॥ ७५ ॥ शर्करायाः पलान्यष्टौ मधुनश्च पलाष्टकम्। चूर्णं दत्वा प्रमथितं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ ७६ ॥ सोमरोगं निहन्त्याशु तृष्णां दाहमरोचकम्। मूत्रकृच्छ्रं च कृच्छ्रं च बहुमूत्रं विनाशयेत् ॥ ७७ ॥ पित्तजान् विविधान् व्याधीन् वातजांश्च सुदुस्तरान्। करोति शुक्रोपचयं सर्पिरेतदनुत्तमम् ॥ ७८ ॥

आँवले का रस १२८ तोले। विदारीकन्द का रस १२८ तोले। तृणपञ्चक (कुश, काश, शर, डाभ और ईख) का रस १२८ तोले। दूध १२८ तोले। शतावरी का रस १२८ तोले। और घृत १२८ तोले। सबको एकत्र कर मन्द मन्द अग्नि से पकावे। जब घृत सिद्ध हो जाय तब ठंडा करके उसमें मुलेठी, निसोत, जवाखार और विधारा का चूर्ण चार-चार तोले, शक्कर ३२ तोले तथा शहद ३२ तोले मिलाकर घोट ले और चिकने बर्तन में रख ले। इसके सेवन से सोमारोग, तृष्णा, दाह, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, कृच्छ्र, बहुमूत्र तथा अनेक प्रकार की पित्तज तथा वातज व्याधियाँ नष्ट होती हैं। यह उत्तम धात्रीघृत शुक्र का बढ़ानेवाला है। मात्रा—६ माशे से १ तोला तक ॥ ७३–७८॥

प्रदरान्तक लौह।

लौहं ताम्रं हरीतालं वङ्गमभ्रं वराटिका। त्रिकटु त्रिफला चित्रं विडङ्गं पटुपञ्चकम् ॥ ७९ ॥ चविका पिप्पली शङ्खं वचा हवुषपालकम्। शटी पाठा देवदारु एला च वृद्धदारकम् ॥ ८० ॥ एतानि समभागानि सञ्चूर्ण्य वटिकां कुरु। शर्करा मधुसंयुक्तां घृतेन भक्षयेत्पुनः ॥ ८१ ॥ रक्तं श्वेतं तथा पीतं नील प्रदरदुस्तरम् ॥ कुक्षिशूलं कटीशूलं योनिशूलञ्च संहरेत् ॥ ८२ ॥ मन्दाग्निमरुचिं पाण्डुं कृच्छ्रश्वासञ्च कासनुत्। आयुःपुष्टिकरं बल्यं बलवर्णप्रसादनम् ॥ ८३ ॥

लौहभस्म ताम्रभस्म, शुद्ध हरताल, वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म, कौड़ीभस्म, त्रिकुटा, त्रिफला, चित्रक, बायविडङ्ग, पांचो नमक, चव्य, पीपल, शङ्खभस्म, वच, हाऊबेर, कूठ, कचूर, पाढ़, देवदारु, छोटी इलायची, विधारा, हर एक को बराबर-बराबर मात्रा में मिलाकर जल से गोली बनावे। मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक। इसको खांड, शहद तथा घृत के साथ मिलाकर सेवन कराना चाहिए। इसके सेवन से

लाल, सफेद, पीला अथवा नीले रंग का स्रावयुक्त कठिनता से आराम होनेवाला प्रदर, कुक्षिशूल, कमर का दर्द, योनिशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डु, कृच्छ्रश्वास तथा खाँसी आदि रोग नष्ट होकर शरीर की पुष्टि होती है। यह आयु-बल-वर्धक और वर्ण को उज्ज्वल करनेवाला है ॥ ७१--८३ ॥

लक्ष्मणा लौह।

लक्ष्मणायाः पलशतं क्राथयित्वा यथाविधि। क्वाथे पूते पुनः पक्वे घनीभूते च निक्षिपेत् ॥ ८४ ॥ अशोकं कुशमूलञ्च मधूकं मधुकं बलाम्। पाठां बिल्वं पलोन्मानं लौहं सर्वसमं तथा ॥ ८५ ॥ लक्ष्मणा लौहनामेदं भेषजं स्त्रीगदापहम्। जगतामुपकाराय दक्षाभ्यां परिनिर्मितम् ॥ ८६ ॥

लक्ष्मणा की जड़ ५ सेर, पाक के लिये जल २५ सेर ४८ तोले, बचा हुआ क्वाथ ६ सेर ३२ तोले, इस क्वाथ को छानकर पुनः पकावे, जब गाढ़ा हो जाय तब अशोक की छाल, कुश की जड़, महुए के फूल, मुलहठी खरेंटी, पाढ़ा, कच्चे बेल का गूदा हर एक चार-चार तोले, लौहभस्म २८ तोले इनके चूर्ण को डाले। यह औषध प्रदर आदि स्त्रीरोगों को नष्ट करती है। मात्रा—२ रत्ती ॥ ८४-८६ ॥

चन्द्रांशुरस।

रसमभ्रमयो वङ्गं गन्धकं कन्यकाम्बुना। मर्दयित्वा वटीं कुर्यात् गुञ्जाद्वन्द्वसमाणतः ॥ ८७ ॥ जीरकाथेन पीतोऽयं रसश्चन्द्रांशुसंज्ञकः। जरायुदोषानखिलान् योनिशूलं सुदारुणम् ॥ ८८ ॥ योनिकण्डूं स्मरोन्मादं योनिविक्षेपणं तथा। निराकरोति सन्तापं चन्द्रांशुर्देहिनं यथा ॥ ८९ ॥

पारा, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, वङ्गभस्म, गन्धक, इन्हें बराबर मात्रा में लेकर ग्वारपाठे के रस से घोटकर गोली बनावे। अनुपान—जीरे का क्वाथ। इसके सेवन से सम्पूर्ण, जरायु-दोष, योनिशूल, योनिकण्डू, स्मरोन्माद, योनि-विक्षेप आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ८७--८९ ॥

रसभस्मयोग।

वासाकषायसहितं रसभस्म प्रयोजितम्। प्रदरं हन्ति वेगेन सक्षौद्रं नात्र संशयः ॥ ९० ॥ रक्तपित्तहरः सर्वः प्रदरे रक्तजे विधिः। रक्तातिसारयोगांश्च सर्वमत्र प्रयोजयेत् ॥ ९१ ॥

इति सारकौमुद्याम्।

आधी रत्ती पारे की भस्म को शहद के साथ सेवन करने के पश्चात् अडूसे के क्वाथ को पीने से प्रदर रोग शीघ्र नष्ट होता है। रक्त-प्रदर में रक्तपित्त को हरनेवाली क्रिया तथा रक्तातिसारोक्त योगों का प्रयोग करने से अत्यन्त लाभ होता है ॥ ९०--९१ ॥

सर्वाङ्ग सुन्दर।

गगनं शोधितं ग्राह्यं पलैकमिष्टकासमम्। टङ्कणं स्याच्चतुर्थांशं शाणार्द्धं त्रिसुगन्धिकम् ॥ ९२ ॥ कर्पूरं नलदञ्चैव जातीकोषं जलंधनम्। नागेश्वर लवङ्गञ्च कुष्ठं सत्रिफलं तथा ॥ ९३ ॥ जलेन वटिका कार्या छायया शोषयेत्तु ताम्। प्रदरं नाशयेत्सर्वं साङ्गमर्दं सवेदनम् ॥ ९४ ॥ अशीतिर्वातजान् रोगान् मन्दाग्निमतिदारुणम्। सज्वरग्रहणीं चैव रक्तपित्तमरोचकम् ॥ कासान् पञ्च प्रतिश्यायं श्वासं हृद्रोगमेव च ॥ ९५ ॥

पकी ईंट के समान वर्णवाली अभ्रकभस्म ४ तोले, सुहागा १ तोला दालचीनी, इलायची, तेजपात, कपूर, नलद (खस), जाविनी, सुगन्धबाला, मोथा, नागकेसर, लौंग, कूट,

और त्रिफला, हरएक डेढ़-डेढ़ माशे। इन्हें एकत्र जल से पीसकर गोली बना छाया में सुखा ले। मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक। इनके सेवन से वेदना तथा अंगमर्द आदि लक्षणयुक्त प्रदर ८० प्रकार के वातज रोग, मन्दाग्नि, ज्वरयुक्त ग्रहणी, रक्तपित्त, अरुचि, खाँसी, प्रतिश्याय (जुकाम, नज़ला), श्वास तथा हृद्रोग नष्ट होता है॥ ९१-९५॥

रत्नप्रभा वटिका।

स्वर्णं मौक्तिकमभ्रञ्च नागं वङ्गञ्च पित्तलम्। माक्षिकं रजतं वज्रं लौहं तालञ्च खर्परम्॥ ९६॥ कदल्याः काकमाच्याश्च वासकस्योत्पलस्य च। स्वरसेन जयन्त्याश्च कर्पूरसलिलेन च॥ ९७॥ भावयित्वा यथाशास्त्रमहोरात्रमतः परम्। संमर्द्यातन्द्रितः कुर्याद् भिषग् गुञ्जामिता वटीः॥ ९८॥ एकैकाञ्च प्रयुञ्जीत प्रातराशं बलाम्बुना। उष्णेन पयसा वापि केशराजरसेन वा॥ ९९॥ इयं रत्नप्रभा नाम्नी वटिका सर्वसिद्धिदा। सर्वस्त्रीरोगहन्त्री च बल्या वृष्या रसायिनी १००

स्वर्णभस्म, मुक्ताभस्म, अभ्रकभस्म, सीसा की भस्म, वङ्गभस्म, पीतलभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, चाँदीभस्म, हीरा की भस्म, लौहभस्म, शुद्ध हरताल और खपरिया की भस्म, इन्हें बराबर मात्रा में एकत्र मिलाकर कदलीमूल, मकोय, अडूसा नीलकमल तथा जयन्ती के रस और कर्पूरोदक से भावना देकर गोली बनावे। मात्रा—आधी रत्ती से १ रत्ती तक। अनुपान—बलाक्वाथ, गरम दूध अथवा केशराज का रस। इस गोली को प्रातःकाल सेवन करना चाहिए। यह गोली सम्पूर्ण स्त्रीरोगों को नष्ट करती तथा बलमर्दक, वृष्य और रसायन है॥ ९६-१००॥

प्रदररिपु।

रसं गन्धं सीसं मृतमिति समं तैस्तु रसजं समानं सर्वैः स्यात्तुलितमपि लोध्रं वृषरसैः। दिनं पिष्टं नाम्ना प्रदररिपुरेषोऽपहरति द्विगुञ्जः क्षौद्रेण प्रदरमपि दुःसाध्यमपि च॥ १०१॥

पारा, गन्धक, और सीसकभस्म हरएक १ तोले, रसौत ३ तोले, लोध्रचूर्ण ६ तोले, पारा तथा गन्धक की कज्जली करके शेष द्रव्य इसमें मिला ले, पश्चात् अडूसे के पत्तों के रस से घोटकर दो २ रत्ती की गोलियाँ बना ले। अनुपान—शहद। इसके सेवन से कष्टसाध्य प्रदर रोग नष्ट होता है॥ १०१॥

प्रदरारि रस।

वङ्गायःफणिफेनाश्च रसः षड्गुणजारितः। मूलं रक्तोत्पलभवं रक्तचन्दनमेव च॥ १०२॥ समं सर्वमशोकस्य क्वाथैः सम्मर्द्य यत्नतः। चणकाभा वटी कार्या शोकक्वाथैः पिबेदनु॥ १०३॥ प्रदरारिरसो हन्ति द्विविधं प्रदरामयम्। बस्तौ च वेदनां रक्तस्रावं घोरं ज्वरं तथा॥ १०४॥ मूत्राधिक्यादिकांश्चैव भास्करस्तिमिरं यथा। अथवा त्वगशोकस्य गुडूची वासकत्वचः॥ १०५॥ रसाञ्जनं मुस्तकञ्च रक्तचन्दनमेव च। एषामनुपिबेत् क्वाथं सर्वप्रदरशान्तये॥ १०६॥

वङ्गभस्म, लौहभस्म, अफीम, षड्गुणजारित गन्धक, रससिन्दूर, लाल कमल की जड़, लाल चन्दन, इन्हें बराबर मात्रा में लेकर अशोक की छाल के क्वाथ से घोटकर चने के बराबर गोलियाँ बनावे। अनुपान—अशोक की छाल का क्वाथ अथवा अशोकछाल, गिलोय अडूसे की छाल, रसौत, मोथा और लाल चन्दन का क्वाथ। इस रस के सेवन से सम्पूर्ण प्रदर शान्त होते हैं। यह श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, बस्ति की वेदना, रक्तस्राव, घोरज्वर तथा बहुमूत्र आदि रोगों को नष्ट करता है॥ १०२-१६॥

लक्ष्मणारिष्ट।

लक्ष्मणायाः पलशतं चतुर्द्रोणे जले पचेत्। पादशेषे कषायेऽस्मिन् क्षिपेद् गुडतुलाद्वयम् ॥ १०७ ॥ धातकी षोडशपलां मुस्तकं मधुकं बलाम्। फलत्रयं निशाद्वन्द्वं जीरकं चन्दनद्वयम् ॥ १०८ ॥ अजमोदां यमानीञ्च बिल्वञ्च पलमानतः। मासादूर्ध्वन्तु सिद्धोऽयमरिष्टः स्त्रीगदान्तकृत् ॥ १०९ ॥

लक्ष्मणा की जड़ ५ सेर। पाक के लिए जल २ मन १२ सेर ३२ तोले। बचा हुआ क्वाथ २५ सेर ४८ तोले। इस क्वाथ में १० सेर गुड़ घोलकर एक मिट्टी के बर्तन में रक्खे, उसमें धाय के फूल ६४ तोले तथा मोथा, मुलेठी, खरैटी, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, जीरा, लालचन्दन, सफेद चन्दन, अजमोदा, अजवाइन, बेल का गूदा हरएक के चार-चार तोले चूर्ण को डालकर मुख बन्द कर एक महीना तक बन्द रहने दे पश्चात् निकाल कर छान ले। यह अरिष्ट स्त्रीरोगों को नष्ट करता है। मात्रा—१। तोले से २॥ तोले तक ॥ १०७-१०९ ॥

प्रदरान्तक रस।

शुद्धसूतं तथा गन्धं शुद्धवङ्गरूप्यकम्। खर्परं च वराटं च शाणमानं पृथक् पृथक् ॥ ११० ॥ ताम्रकत्रितयं ग्राह्यं लौहचूर्णं क्षिपेत् सुधीः। कन्यानीरेण संमर्द्य दिनमेकं भिषग्वरः। असाध्यं प्रदरं हन्ति भक्षणान्नात्र संशयः ॥ १११ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक (दोनों की कज्जली), शुद्ध वङ्गभस्म, रौप्यभस्म, शुद्ध खपरिया और कौड़ी की भस्म; प्रत्येक तीन-तीन माशे, ताम्रभस्म १ तोले। सबको घृतकुमारी के रस में १ दिन घोटे। मात्रा—१ रत्ती। इसके सेवन से असाध्य प्रदर नष्ट होता है ॥ ११०-१११ ॥

शिलाजतु वटिका।

शुद्धसूतं समं गन्धं रक्तोत्पलदलद्रवैः। कौटजेनाम्भसा चापि मर्दयेद्दिवसद्वयम् ॥ ११२ ॥ शिलाजतुपलान्यष्टौ तावती सितशर्करा। त्वक्क्षीरी पिप्पली धात्री कर्कटाख्या पलोन्मिता ॥ ११३ ॥ निदिग्धीफलमूलाभ्यां पलं युञ्ज्यात्रिजातकम्। मधुनः पलसंयुक्तं कुर्यात् माषसमान् गुडान् ॥ ११४ ॥ दाडिमाम्बु पयः पक्षिरसतोयसुवासितम्। तां भक्षयित्वानुपिबेन्निरन्नो भुक्त एव वा। पाण्डुकुष्ठज्वरप्लीहतमःकार्श्यभगन्दरान् ॥ ११५ ॥ पूतिविण्मूत्रशुक्रादिदोषमेहमहोदरम्। कासासृग्रक्तपित्तं च प्रदरं रक्तसम्भवम् ॥ तान् सर्वान् सुतरां हन्ति सर्वदोषहरा शिवा ॥ ११६ ॥ चन्द्रप्रभोक्तं शिलाजतुशोधनं कार्यम्।

शुद्ध पारा १ तोला और गन्धक १ तोला लेकर कज्जली करे और लाल कमल के पत्तों के रस तथा कुड़ा की छाल के काढ़े से दो दिन घोटे, पश्चात् शुद्ध शिलाजीत ३२ तोले, मिश्री ३२ तोले तथा वंशलोचन, पीपरि, आँवला, काकड़ासिंगी, कटेरी की जड़, कटेरी के फल दालचीनी, तेजपात और छोटी इलायची; प्रत्येक चार-चार तोले और शहद ४ तोले मिलाकर उड़द के समान गोलियाँ बना ले। इन गोली को भोजन करने से पहले या पश्चात् खाकर अनार का रस, दूध अथवा पक्षियों के मांस का रस या सुगन्धित जल पीना चाहिए। यह वटिका पाण्डुरोग, कुष्ठ, ज्वर, तिल्ली, तमकश्वास, कृशता, भगन्दर, दुर्गन्धित मल-मूत्र और शुक्र के दोष, प्रमेह, महोदर, खाँसी, रक्तस्राव, रक्तपित्त और रक्तप्रदर को नष्ट करती है। यह गुटिका सब रोगों को दूर करती है। चन्द्रप्रभा में कही हुई विधि से शिलाजीत का शोधन करना चाहिए ॥ ११२-११६ ॥

अशोकारिष्ट ।

अशोकस्य तुलामेकां चतुर्द्रोणे जले पचेत् । पादशेषे रसे पूते शीते पलशत द्वयम् ॥११७॥ दद्याद् गुडस्य धातक्याः पलषोडशिकं मतम् । अजाजीं मुस्तकं शुण्ठीं दार्व्युत्पलफलत्रिकम् ॥ ११८ ॥ आम्रास्थि जीरकं वासां चन्दनं च विनिक्षिपेत् । चूर्णयित्वा पलांशेन ततो भाण्डे निधापयेत् ॥११९॥ मासादूर्ध्वं च पीत्वैनमसृग्दररुजां जयेत् । ज्वरं च रक्तपित्ताशोमन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ १२० ॥ मेहशोथारुचिहरस्त्वशोकारिष्टसंज्ञितः॥१२१॥

अशोक की छाल ५ सेर । जल १ मन ११ सेर १६ तोले और अवशिष्ट क्वाथ १२ सेर ६४ तोले। ठंडा करके छान ले, पश्चात् उसमें १० सेर गुड़, धाय के फूल ६४ तोले, काला जीरा, नागरमोथा, सोंठ, दारुहल्दी, कमल, त्रिफला, आम की गुठली की मींगी, जीरा, अडूसा और लालचन्दन; प्रत्येक चार-चार तोले । सबका चूर्ण करके क्वाथ में मिला दे और घड़े में भरकर मुख बन्द करके १ महीने तक रखा रहने दे । पश्चात् छानकर काँच के पात्र (बोतलों) में रख ले । मात्रा—बलानुसार ११ तोले से २॥ तोले तक इसके पीने से रक्तप्रदर, ज्वर, रक्तपित्त, बवासीर, मन्दाग्नि, अजीर्ण, प्रमेह, शोथ और अरुचि आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ११७-१२१ ॥

पत्राङ्गासव ।

पत्राङ्गं खदिरं वासा शाल्मलीकुसुमं बला । भल्लातकं सारिवे द्वे जवाकुसुममस्फुटम् ॥ १२२ ॥ आम्रास्थि दार्वी भूनिम्ब आफूकफलजीरकम् । लौहं रसाञ्जनं बिल्वं केशराजं त्वचं तथा ॥१२३॥ कुंकुमं देवकुसुमं प्रत्येकं पलसम्मितम् । सर्वं सुचूर्णितं कृत्वा द्राक्षायाः पलविंशतिम् ॥ १२४ ॥ धातकीं षोडशपलां जलद्रोणद्वये क्षिपेत् । शर्करायास्तुलां दत्त्वा क्षौद्रस्यार्द्धतुलां तथा ॥ १२५ ॥ एकीकृत्य क्षिपेद्भाण्डे निदध्यान्मासमात्रकम् । हन्त्युग्रं प्रदरं श्वेतमरुणं च सवेदनम् ॥ ज्वरं पाण्डुं तथा शोफं मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ १२६ ॥

पतङ्गकाष्ठ, खैर, अडूसा, सेमर का फूल, खरैटी, भिलावाँ, सारिवा, कृष्णसारिवा, गुड़हर की बिना फूली कली, आम की गुठली की मींगी, दारुहल्दी, चिरायता, पोस्ते की डोडी, जीरा, लोहभस्म, रसौत, बेलगिरी, भँगरा, दालचीनी, केशर और लौंग, प्रत्येक चार-चार तोले लेकर खूब महीन चूर्ण बनावे । दाख १ सेर, धाय के फूल ६४ तोले । जल २५ सेर ४८ तोले, शकर ५ सेर और शहद २॥ सेर; सबको एकत्र मिट्टी के घड़े में भर कर और मुख बन्द करके १ महीना रखा रहने दे । पश्चात् छानकर काच के बर्तन में रख ले । मात्रा—१। तोले से २॥ तोले तक । यह पीड़ायुक्त अत्यन्त प्रचण्ड रक्त और श्वेतप्रदर, ज्वर, पाण्डु, शोथ, मन्दाग्नि और अजीर्ण को नष्ट करता है ॥ १२२— २६ ॥

प्रियंग्वादि तैल ।

प्रियंगूत्पलयष्ट्याह्वफलत्रिकरसाञ्जनैः । चन्दनद्वयमञ्जिष्ठाशताह्वासर्जसैन्धवैः ॥ १२७ ॥ मुस्तमोचरसानन्ताशायसीबिल्ववालकैः । कल्कैः करिकणाकृष्णाकाकोलीयुगलैस्तथा ॥ १२८ ॥ गन्धद्रव्यैश्च निखिलैश्छागीक्षीरेण मस्तुना । दार्वीक्वाथेन च पचेत् तैलं तिलसमुद्भवम् ॥ १२९ ॥ प्रियंग्वाद्यमिदं तैलं प्रदरं योनिजान् गदान् । ग्रहणीमतिसारं च हन्याद् गर्भस्य रक्षणम् ॥ १३० ॥

कल्क के लिए प्रियंगु के फूल, कमल, मुलेठी, त्रिफला, रसौत, लालचन्दन, श्वेतचन्दन, मंजीठ, सौंफ, राल, सेंधानमक, नागरमोथा, मोचरस, अनन्तमूल, मकोय, बेलगिरी, नेत्रबाला, गजपीपरि, पीपरि, काकोली, क्षीरकाकोली ; प्रत्येक दो-दो तोले। बकरी का दूध ८ सेर, दही का तोड़ ८ सेर और दारुहल्दी का क्वाथ ८ सेर। तिल तेल २ सेर। विधिपूर्वक पाक करके फिर संपूर्ण सुगन्धित द्रव्यों का प्रक्षेप देकर तैल सिद्ध करे। यह प्रियंग्वादि तेल प्रदर, योनिरोग, ग्रहणी और अतिसार को नष्ट कर गर्भ की रक्षा करता है ॥ १२७–१३० ॥

स्त्रीरोगाधिकार में योनिव्यापच्चिकित्सा।

योनिव्यापत्सु भूयिष्ठं शस्यते कर्म वातजित्। वस्त्यभ्यङ्गपरीषेकप्रलेपाः पिचुधारणम् ॥ १३१ ॥

योनि के रोगों में वातनाशक उपचार, उत्तरबस्ति, मालिश, परिषेक, लेप और पिचु धारण करना, योनि में औषधियों के तेल या जल में भिगोई हुई रुई रखना हितकर होता है ॥ १३१ ॥

वचोपकुञ्चिकाजाजी कृष्णा वृषकसैन्धवम्। अजमोदां यवक्षारं चित्रकं शर्करान्वितम् ॥ १३२ ॥ पिष्ट्वा प्रसन्नयालोड्य खादेत्तद्घृतभर्जितम्। योनिव्यापत्तिहृद्रोगगुल्मार्शोविनिवृत्तये ॥ १३३ ॥

बच, काला जीरा, सफेद जीरा, पीपरि, अड़ूसा, सेंधानमक, अजमोद, जवाखार, चीता की जड़ और शक्कर ; इनको पीसकर दो माशे चूर्ण को २ माशे घी में भूनकर २ तोले प्रसन्ना (निर्मलसुरा) में घोलकर खाना चाहिए। इसके सेवन करने से योनिरोग हृद्रोग, गुल्म और बवासीर आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १३२-१३३ ॥

गुडूचीत्रिफलादन्तीक्वाथैश्च परिषेचनम्। नतवार्ताकिनीकुष्ठसैन्धवामरदारुभिः ॥ तैलात् प्रसाधितात् कार्यः पिचुर्योनौ रुजापहः ॥ १३४ ॥

गिलोय, त्रिफला और दन्ती (जमालगोटा की जड़) के काढ़े से योनि को धोने से तथा तगर, कटेरी, कूट, सेंधानमक और देवदारु के कल्क से सिद्ध किये हुए तेल का फोया रखने से योनि पीड़ा नष्ट होती है ॥ १३४ ॥

पित्तलानां तु योनीनां सेकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः। शीताः पित्तहराः कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ॥ १३५ ॥

पित्तप्रधान योनिरोगों में शीतल तथा पित्तनाशक सेक, अभ्यंग और पिचु धारण करना चाहिए एवं स्निग्ध करने के लिए घृत से चुपड़ना चाहिए ॥ १३५ ॥

योन्यां बलासदुष्टायां सर्वं रूक्षोष्णमौषधम् ॥ १३६ ॥

कफ से दूषित योनियों में रूखी और गर्म चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १३६ ॥

पिप्पल्या मरिचैर्माषैः शताह्वाकुष्ठसैन्धवैः। वर्त्तिस्तुल्या प्रदेशिन्या धार्या योनिविशोधिनी ॥ १३७ ॥

पीपरि, कालीमिर्च, उड़द, सौंफ, कूट और सेंधानमक, इनको समभाग ले पीसकर तर्जनी अँगुली के समान मोटी लम्बी बत्ती बनाकर योनि में रखने से कफदूषित योनि शुद्ध होती है ॥ १३७ ॥

हिंस्राकल्कं तु वातार्त्ता कोष्णमभ्यज्य धारयेत्। पञ्चवल्कस्य पित्तार्त्ता श्यामादीनां कफोत्तरा ॥ १३८ ॥

वातरोग से पीड़ित योनि को तेल में चुपड़कर उसमें किंचित् गरम जटामांसी का कल्क धारण करना चाहिए। तथा पैत्तिक योनिरोग में पञ्चवल्कल का कल्क और कफज योनिरोग में श्यामा-आदि का कल्क धारण करना चाहिए ॥ १३८ ॥

मूषिकामांससंयुक्तं तैलमातपभावितम्। अभ्याङ्गाद्धन्ति योन्यर्शः स्वेदस्तन्मांससैन्धवैः ॥ १३९ ॥

चुहियां का मांस और तेल को मिलाकर धूप में रख दे, जब जल का अंश सूख जाय तब उसको योनि में मर्दन करना चाहिए अथवा चूहे के कुटे हुए मांस में सेंधानमक मिला गर्मकर योनि का स्वेदन करना चाहिए। इससे योन्यर्श रोग नष्ट होता है ॥ १३९ ॥

गोपित्ते मत्स्यपित्ते वा क्षौमं सप्ताहभावितम्। स्रोतसां शोधनं कण्डूक्लेदशोपहरं च तत् ॥ १४० ॥

गौ के पित्ते में अथवा मछली के पित्ते में रेशम के महीन कपड़े को सात दिन तक भावित कर योनि में रखने से योनि शुद्ध होती है तथा खुजली, क्लेद और शोथ नष्ट होता है ॥ १४० ॥

यामिन्याः पूतियोन्याश्च कर्त्तव्यः स्वेदनोऽपि वा। क्रमः कार्य्यस्ततः स्नेहपिचुभिस्तर्पणं भवेत् ॥ १४१ ॥

यामिनी तथा दुर्गन्धवाली योनि का स्वेदन से शुद्ध करके फिर तेल आदि में भिगोया हुआ रुई का फाया रखकर तर्पित करना चाहिए ॥ १४१ ॥

शल्लकीजिङ्गिनीजम्बूधवत्वकपञ्चपल्लवैः। कषायैः साधितः स्नेहः पिचुः स्याद्विप्लुतापहः ॥ १४२ ॥

शलई, जिगनी, जामुन और धव की छाल तथा बरगद, गूलर, पकड़िया, पीपल और बेत की छाल; इनके चतुर्गुण काढ़े से सिद्ध किये हुए तेल का फाया योनि में रखने से विप्लुता नामक योनिरोग नष्ट होता है ॥ १४२ ॥

कर्णिन्यां वर्त्तिकाकुष्ठपिप्पल्यर्काग्रसैन्धवैः। वस्तक्षीरे कृता धार्य्या सर्वं च कफनुद्धितम् ॥ १४३ ॥

कर्णिनी योनि में कूट, पीपरि, मदार के पत्ते और सेंधानमक; इनको बकरी के दूध में घोटकर वत्ती बनाकर योनि में रखना चाहिए और कफनाशक सब चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १४३ ॥

त्रैवृतं स्नेहनं स्वेद उदावर्त्तानिलार्त्तिषु। तदेव च महायोन्यां स्रस्तायां च विधीयते ॥ १४४ ॥

उदावर्त तथा वातिक योनिरोग में निसोत से सिद्ध तेल द्वारा स्नेहन प्रयोग कर स्वेदन करना चाहिए। महायोनि तथा स्रस्ता योनि में भी यही विधान करना चाहिए ॥ १४४ ॥

आखोर्मांसं सपदि बहुधा खण्डखण्डीकृतं यत्, तैले पाच्यं भवति नियतं यावदेतन्न सम्यक्। तत्तैलाक्तं वसनमनिशं योनिभागे दधाना हन्ति व्रीडाकरमगफलं नात्र सन्देहबुद्धिः ॥ १४५ ॥

चूहे के मांस को टुकड़े-टुकड़े करके तेल में पकावे। जब अच्छे प्रकार तेल सिद्ध हो जाय तब उसमें कपड़ा भिगोकर हरदम योनि में रखने से लज्जाकारक योनिकन्द रोग निःसन्देह नष्ट होता है ॥ १४५ ॥

शतपुष्पा तैललेपात्तुवरीदलजात्तथा। पेटिकामूललेपेन योनिर्भिन्ना प्रशाम्यति ॥ १४६ ॥

सौंफ के तेल के लेप से अथवा अरहर के पत्तों से सिद्ध किये तेल के लेप से तथा पावल की जड़ के लेप से फटी हुई योनि ठीक हो जाती है ॥ १४६ ॥

सुपर्णीमूललेपेन प्रविष्टा तु बहिर्भवेत्। योनिर्मूषावसाभ्यङ्गान्निःसृता प्रविशेदपि ॥ १४७ ॥

सौंफ की जड़ का लेप करने से भीतर को गई हुई योनि बाहर आ जाती है तथा मूषक की चर्बी मसलने से बाहर निकली हुई योनि भीतर चली जाती है ॥ १४७ ॥

लोध्रतुम्बीफलालेपो योनिदाढर्यं करोति च । वेतसमूलनिष्क्वाथक्षालनेन तथैव च ॥ १४८ ॥

लोध और कड़ुई तूँबी का लेप करने से योनि कठिन होती है । तथा बेंत की जड़ के क्वाथ से धोने से भी योनि दृढ़ हो जाती है ॥ १४८ ॥

वचा नीलोत्पलं कुष्ठं मरिचानि तथैव च । अश्वगन्धा हरिद्रा च गाढीकरणमुत्तमम् ॥ १४९ ॥

वच, नीलकमल, कूट, कालीमिर्च, असगन्ध और हल्दी का लेप करने से अथवा अवचूर्णन करने से योनि अच्छी तरह दृढ़ हो जाती है ॥ १४९ ॥

पलाशोदुम्बरफलं तिलतैलसमन्वितम् । मधुना योनिमालिप्य गाढीकरणमुत्तमम् ॥ १५० ॥

ढाक के बीज और गूलर के फलों को तिल के तेल के साथ पीस कर और शहद मिलाकर लेप करने से योनि दृढ़ होती है ॥ १५० ॥

मदनफलमधुकर्पूरप्रपूरितं कामिनीजनस्य । चिरगलितयौवनस्य च वराङ्गमतिगाढं सुकुमारम् ॥ १५१ ॥

मैनफल, कपूर और शहद; इनको एकत्र पीसकर योनि में भरने से अतिवृद्धा स्त्रियों की योनि भी अत्यन्त दृढ़ और कोमल हो जाती है ॥ १५१ ॥

पञ्चपल्लवयष्ट्याह्वमालतीकुसुमैर्घृतम् । रविपक्वमन्यथा वा योनिगन्धनिवारणम् ॥ १५२ ॥

आम, जामुन, कैथ, बिजौरा और बेल; इनके पत्ते, मुलेठी और मालती के फूल; इनके कल्क से घृत को सूर्य्याग्नि से अथवा सूर्य के तेज (धूप) से पकाकर लगाने से योनि की दुर्गन्धि नष्ट हो जाती है ॥ १५२ ॥

योन्याक्षेप का निदान और लक्षण ।

मारुते विगुणे योनौ स्पर्शस्यातिमहृद्धता । विक्षेपणं मुखस्यास्यास्तत्स्पर्शे तीव्रवेदना ॥ १५३ ॥ योन्याक्षेपवती नारी न सहेत रतिक्रियाम् । यदि गच्छेद्बलाद्भर्त्ता तां सातिव्यथिता भवेत् ॥ १५४ ॥ नोपसर्पति भर्त्तारं सदा साध्वसविह्वला । पत्या तिरस्कृता दुःखान्मृत्युमात्मन इच्छति ॥ १५५ ॥ उद्वेगो वह्निहानिश्च निद्राल्पत्वं तथा क्रमात् । वस्तिदाहो व्यथा पृष्ठेऽशक्तिश्चंक्रमणेऽपि च ॥ १५६ ॥ दौर्बल्यं वर्णहानिश्च तथोत्साहस्य संक्षयः । योन्याक्षेपगदस्यैताः प्रोक्ता आकृतयो बुधैः ॥ १५७ ॥

वायु की विपरीतता से योनि में वायु की अतिवृद्धि होने से योनि का मुख फड़कने लगता है और वहाँ स्पर्श करने से तीव्र वेदना होती है । योनि आक्षेप जिस स्त्री को होता है वह मैथुन क्रिया को सहन नहीं कर सकती । यदि पुरुष बलपूर्वक मैथुन करता भी है तो स्त्री को महान् कष्ट होता है । यदि पति को प्रसन्न नहीं कर सकती, अतः सदैव ही दुखी रहती है । पति के तिरस्कार से दुखी होकर मरने (आत्महत्या) की भी इच्छा करती है । उद्वेग, अग्निमान्द्य, निद्रा की कमी, क्रम से मूत्राशय में दाह और वेदना, पीठ में कमजोरी, चलने में कमजोरी, दुर्बलता, वर्णहानि (रंग की उज्ज्वलता में कमी) और उत्साह की कमी होती है । ये सब योनि-आक्षेप रोग के लक्षण आयुर्वेदज्ञ पंडितों ने कहे [illegible] ॥ १५३--१५७ ॥

योन्याक्षेप की चिकित्सा ।

नागदेन गदः साध्यः शस्त्रेणायं प्रसाध्यते । शस्त्रं प्रयोजयेदत्र भिषक् शास्त्रविशारदः ॥ १५८ ॥ पाययित्वा सुरां तीव्रां गदिनीं सम्यशायिनीम् । उत्तानाम-

धया कृत्वा योनौ शस्त्रं प्रवेश्य च ॥ १५९ ॥ हीमन्तं त्वरयाच्छिद्य मुखं योने-र्विदार्य्य च। तूलेनारुध्य बध्नीयाल्लघुहस्त-श्चिकित्सकः ॥ १६० ॥

हीमन्तं योन्यङ्गभेदम्।

जब योनि आक्षेप रोग औषध से आराम नहीं होता है, तब वहाँ शस्त्र-चिकित्सा करनी चाहिए। शस्त्रविशारद वैद्य रोगिणी को तीव्र शराब पिलाकर, ऊपर को सीधी सुलाकर योनि में शस्त्र प्रवेश करके 'हीमन्त' नामक योनि के अंग को शीघ्रता से काट कर योनि के मुख को चीर दे और रुई रखकर हलके हाथ से बाँध दे॥ १५८--१६०॥

अवरोधे तु मूत्रस्य वर्त्तयेत् तच्छला-कया। वेदनां वारयेद्वैद्यः फणिफेन-प्रयोगतः ॥ १६१ ॥ पुनर्वसद्वयान्ते तां पाययित्वा सुरां भिषक्। तूलं निःसार्य्य योनिस्थं मुखं योनेः प्रसार्य्य च ॥ १६२ ॥ तदधः कर्त्तनं कुर्य्यादङ्गुलार्द्धप्रमाणतः। इत्येवं कर्म्मणा व्याधिर्योन्याक्षेपः प्रशा-म्यति ॥ १६३ ॥

मूत्रावरोध होने पर शलाका डालकर मूत्र निकालना चाहिए और अफीम का प्रयोग करना चाहिए, जिससे वेदना बन्द हो जाय। फिर २-३ दिन बाद शराब पिलाकर रुई को निकालकर योनि के मुख को चौड़ाकर आधा अंगुल करीब नीचे से काटना चाहिए, इस क्रिया से योनि का आक्षेप रोग शमन हो जाता है॥ १६१--१६३॥

योनि-आक्षेप रोग में पथ्य और अपथ्य।

अत्र पथ्यं घृतं दुग्धं गोधूमचणका-दयः। यूषश्छागादिसंभूत उग्रवीर्यं हितं नहि ॥ १६४ ॥

यहाँ घी, दूध, गेहूँ, चना आदि पथ्य हैं। बकरे आदि के मांस का यूष तथा उग्रवीर्य अन्नपानादि हितकर नहीं हैं॥ १६४॥

इक्ष्वाकुबीजदन्तीचपलागुडमदनमू-लयष्टयाह्वैः। सस्नुक्क्षीरैर्वर्त्तिर्योनिगता कुसुमसञ्जननी ॥ १६५ ॥

कडुई तूँबी के बीज, दन्ती (जमाल गोटे की जड़), पीपरि, गुड़, मैनफल की जड़, मुलेठी, और थूहर के दूध से बत्ती बना-कर योनि में रखने से नष्ट हुआ मासिक धर्म फिर होने लगता है॥ १६५॥

सकाञ्जिक जवापुष्पं भृष्टं ज्योतिष्म-तीदलम्। दूर्वापिष्टं च संप्राश्य वनिता स्त्रार्तवं लभेत् ॥ १६६ ॥ दूर्वापिष्टं तण्डु-लयोगात् इति ज्ञेयम्।

गुड़हर के फूलों को काँजी में पीसकर पीने से अथवा मालकाँगनी के पत्तों को पीसकर और घी में भूनकर खाने से तथा दूब और चावलों को पीसकर पूआ बनाकर खाने से स्त्री रजोवती होने लगती है॥ १६६॥

धात्र्यञ्जनाभयाचूर्णं तोयपीतं रजो-हरेत्। शेलुच्छदमिश्रपिष्टभक्षणं च तदर्थ-कृत् ॥ पाठापत्रं ऋतुस्नाता पीत्वा गर्भं न धारयेत् ॥ १६७ ॥

आँवले, अंजन (सुरमा) और हड़ के चूर्ण को जल के साथ पीने से अथवा लसोड़े पत्ते और चावलों को पीसकर खाने से रजोदर्शन बन्द हो जाता है। तथा ऋतुस्नान के अनन्तर पाढ के पत्तों को पीस-कर पीने से गर्भस्थिति नहीं होती है। मात्रा--एक रत्ती॥ १६७॥

रसाञ्जनं हैमवती वयस्था चूर्णीकृतं शीतजलेन पीतम्। रजोविनाशं नियतं करोति शङ्कात्र कागर्भसमागमस्य १६८॥

रसौत, हड़ और आँवले का चूर्ण शीतल जल के साथ पीने से सदा के लिये रजोलोप

हो जाता है, फिर गर्भस्थिति होने की तो शंका ही क्या है। कोई-कोई रसौत के स्थान में काला सुरमा लेते हैं॥ १६८॥

पुष्योद्धृतं लक्ष्मणायाश्चक्राङ्कायास्तु कन्यया। पिष्टं मूलं दुग्धघृतमृतौ पीतं तु पुत्रदम्॥ १६९॥

लक्ष्मणा और सुदर्शन का मूल (किसी के मत से चक्रचिह्नयुक्त लक्ष्मणा का मूल) पुष्य नक्षत्र में उखाड़ कर लावे और कन्या के हाथ से पिसवाकर दूध और घृत के साथ ऋतुस्नान के बाद तीन दिन पीवे तो पुत्रोत्पत्ति होती है। तन्त्रान्तर के मतानुसार नस्य भी ले सकते हैं। कई टीकाकार कन्या से ग्वारपाठे का ग्रहण करते हैं॥ १६९॥

सुवर्णस्य रूप्यकस्य चूर्णं ताम्रस्य चाज्यसम्मिश्रे। पीते शुद्धे क्षेत्रे भेषजयोगाद् भवेद्गर्भः॥ १७०॥

सुवर्णभस्म, चाँदी की भस्म और ताम्रभस्म को घृत के साथ खाने से गर्भाशय शुद्ध होकर गर्भस्थिति हो जाती है॥ १७०॥

कृत्वा शुद्धौ स्नानं विलङ्घ्य दिवसान्तरे ततः प्रातः। स्नात्वा द्विजाय दत्त्वा भक्त्या संपूज्य लोकनाथेशम्॥ १७१॥ श्वेतबलांघ्रियष्टिकर्षं पलं तु शर्करायाः। पिष्ट्वैकवर्णजीवद्वत्सैकवर्णाया गोस्तु दुग्धेन॥ १७२॥ समधिकघृतेन पेयं नात्र दिने देयमन्नमन्यच्च। क्षुधिते सदुग्धमन्नं दद्यादापुरुषसन्निधेस्तस्याः॥ १७३॥ समदिवसे शुभयोगे दक्षिणपार्श्वावलम्बिनी धीरा। त्यक्तस्यन्तरसङ्गमहृष्टमनसोऽतिरूढधातोश्च १७४॥ पुंसः सङ्गमात्रात्प्रभवेत् पुत्रं ततो नियतम्॥ १७५॥

रजस्वला स्त्री शुद्ध स्नान करके उपवास करे और दूसरे दिन प्रातःकाल स्नान करके भक्ति से भगवान् का पूजन करे और ब्राह्मण को दान दे, पश्चात् सफ़ेद खरेटी की जड़ १ तोला, मुलेठी १ तोला और शक्कर ४ तोले; इनको जीवद्वत्सा और एक वर्णवाली (जिसके बछड़े मरते न हों और बछड़ा और गऊ का एक ही वर्ण हो उस) गौ के दूध में पीसकर घी के साथ पीवे। इस दिन कुछ अन्न नहीं खाना चाहिए। पति का संग करने से पहले यदि भूख लगे तो उसी गौ का दूध अन्न के साथ खाना चाहिए जब सम ६-८-१०, १२-१४ दिन और शुभ योग हो तब दहिने पसवाड़े लेटकर धैर्य के साथ प्रसन्न मन तथा अधिक शुक्रवाले पति के साथ प्रसंग करने से अवश्य पुत्र की प्राप्ति होती है। किन्तु पुरुष को तीन-तीन दिन का अन्तर देकर प्रसंग करना चाहिए॥ १७१-१७५॥

गोष्ठजातवटस्य प्रागुत्तरशाखजे शुभे। शुङ्गे माषौ तथा गौरसर्षपौ दधियोजितौ॥ पुष्यापीतौ द्रुतापन्नसत्त्वायाः पुत्रकारकौ॥ १७६॥

गोशाला में उत्पन्न बरगद की पूर्व और उत्तर की शाखा से दो पत्रांकुर, दो उड़द और दो सफ़ेद सरसों के दाने लेकर सबको पीस कर और दही मिलाकर पुष्यनक्षत्र में थोड़े दिन की गर्भवती पीवे तो उसके पुत्र होता है॥ १७६॥

पत्रमेकं पलाशस्य गर्भिणी पयसान्वितम्। पीत्वा च लभते पुत्रं रूपवन्तं न संशयः॥ १७७॥

ढाक के १ पत्ते को पीसकर दूध के साथ गर्भिणी स्त्री पीवे तो निस्सन्देह रूपवान् पुत्र को पाती है॥ १७७॥

फलकल्याण घृत।

मञ्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं त्रिफला शर्करा

बला। मेदे पयस्या काकोली मूलं चैवाश्वगन्धजम् ॥ १७८ ॥ अजमोदा हरिद्रे द्वे हिंगुः कटुकरोहिणी। उत्पलं कुमुदं द्राक्षाकाकोल्यौ चन्दनद्वयम् ॥ १७९ ॥ एतेषां कार्षिकैर्भागैर्घृतमस्थं विपाचयेत्। शतावरीरसक्षीरं घृतादेयं चतुर्गुणम् ॥ १८० ॥ सर्पिरेतन्नरः पीत्वा नित्यं स्त्रीषु वृषायते। पुत्रान् सञ्जनयेन्नारी मेधाढ्यान् प्रियदर्शनान् ॥ १८१ ॥ या चैवास्थिरगर्भा स्याद् या च वा जनयेन्मृतम्। अल्पायुषं वा जनयेद् या च कन्यां प्रसूयते ॥ १८२ ॥ योनिदोषे रजोदोषे परिस्रावे च शस्यते। प्रजावर्द्धनमायुष्यं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ १८३ ॥ नाम्ना फलघृतं ह्येतदश्विभ्यां परिकीर्त्तितम्। अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपन्त्यत्र चिकित्सकाः ॥ १८४ ॥ जीवद्वत्सैकवर्णाया घृतमत्र तु गृह्यते। अरण्यगोमयेनापि वह्निज्वाला प्रदीयते ॥ १८५ ॥

कल्क के लिए मंजीठ, मुलेठी, कूट, त्रिफला, खाँड, खरेटी, मेदा, महामेदा, दूधी काकोली, असगन्ध की जड़, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी, हींग, कुटकी, कमल, कुमोदिनी (कोकाबेली), दाख, क्षीरकाकोली, चन्दन और लालचन्दन; प्रत्येक एक-एक तोला। एकवर्ण बछड़ेवाली गौ का घृत १२८ तोले। शतावरी का रस ६ सेर ३२ तोले और दूध ६ सेर ३२ तोले। विधि से घृत सिद्धकर जो मनुष्य पीता है वह बैल (साँड) की तुल्य बलसंपन्न हो स्त्रियों में रमण करता है। जो स्त्री इसका सेवन करती है, वह प्रियदर्शन तथा बुद्धिमान् पुत्रों को उत्पन्न करती है। जिसके गर्भ न रहता हो या मरा हुआ पुत्र उत्पन्न होता हो अथवा अल्प आयुवाला पुत्र होता हो उसके दीर्घायु पुत्र होता है। यह घृत योनिदोष, रजोदोष और गर्भस्राव में हितकर है एवं प्रजा बढ़ानेवाला, आयु देनेवाला और सब ग्रहों का निवारण करनेवाला है। यह अश्विनीकुमारों का कहा हुआ फलघृत है। चिकित्सक लोग बिना कही हुई लक्ष्मणा की जड़ को भी इस प्रयोग में डालते हैं। मात्रा ६ माशे से १ तोला। एक ही रङ्गवाली और जीवित बछड़ेवाली गाय का घी लेकर जंगली कंडों की अग्नि से सिद्ध करना चाहिए ॥ १७८-१८५

क्वाथेन हयगन्धायाः साधितं सघृतं पयः। ऋतुस्नाता बला पीत्वा गर्भं धत्ते न संशयः ॥ १८६ ॥

असगन्ध के काढ़े से दूध को पकाकर और उसमें घृत डालकर जो स्त्री ऋतुस्नान के पश्चात् पीती है वह निस्सन्देह गर्भ को धारण करती है ॥ १८६ ॥

पिप्पलीशृङ्गवेरं च मरिचं नागकेशरम्। घृतेन सह पातव्यं वन्ध्यापि लभते सुतम् ॥ १८७ ॥

पीपरि, सोंठ, कालीमिर्च और नागकेशर; इन सबके चूर्ण को घृत के साथ पान करके बन्ध्या भी पुत्र उत्पन्न करती है ॥ १८७ ॥

विश्ववल्लभ घृत।

केशराजस्य निर्गुण्ड्याः शतावर्याः कुशस्य च। विदार्याः स्वरसेनापि छागेन पयसा तथा ॥ १८८ ॥ कल्कैर्दाडिमबिल्वाब्दैर्लवङ्गैलाफलत्रिकैः। महता पञ्चमूलेन द्राक्षाचन्दनचम्पकैः ॥ १८९ ॥ निशादारुनिशाभ्याञ्च वह्निना लवणैरपि। तोयपिष्टैः पचेत्सर्पिः पात्रे मृत्परिनिर्मिते ॥ १९० ॥ विश्ववल्लभनामेदं घृतं स्त्रीगदसूदनम्। बल्यं रसायनं वृष्यं बालानां वाग्वर्द्धनम् ॥ १९१ ॥

गोघृत २८ तोले, भंगरा का रस १२८ तोले, सम्भालू का रस १२८ तोले, शतावरी का रस १२८ तोले, कुश की जड़ का क्वाथ १२८ तोले, विदारीकन्द का रस १२८ तोले, बकरी का दूध १२८ तोले। कल्क के लिए--अनार की छाल, बेलगिरी, मोथा, लौंग, इलायची, त्रिफला, बृहत्पञ्चमूल, दाख, लालचन्दन, चम्पक-पुष्प, हल्दी, दारुहल्दी, चित्रक, सेंधानमक, सब मिलाकर ३२ तोले। विधिपूर्वक मिट्टी के बर्तन में पकावे। मात्रा—आधा तोला। यह घृत स्त्रीरोग को नष्ट करता है तथा बलकारक, रसायन, वीर्यवर्धक एवं बालकों के अंग की पुष्टि करनेवाला है॥ १८८--१९१॥

हयमारादि तैल

हयमारामृताव्योषसिन्धूत्थैः सरसोञ्जनैः। त्रिवृद्दन्तीनिशामिश्रपथ्याकट्फलमुस्तकैः॥ १९२॥ इन्द्रवारुणिकापाठानागकेशरचित्रकैः। सिद्धं तैलं निहन्त्याशु योनिकण्डूं सुदारुणाम्॥ १९३॥ भगाङ्कुरस्य संवृद्धिं स्मरोन्मादञ्च योषिताम्। योनिव्रणञ्च तत्क्लेदं तदर्शांसि च सर्वथा॥ १९४॥

तैल १२८ तोले। कल्क के लिए कनेर की जड़, गिलोय, त्रिकटु, सेंधानमक, रसौत, निसोत, दन्तीमूल, हल्दी, हड़, कायफल, मोथा, इन्द्रायण, पाठा, नागकेसर, चित्रक, सब मिलाकर ३२ तोले। इनसे विधिपूर्वक तैल पकावे। इस तैल के प्रयोग से दारुण योनिकण्डू, भगांकुरवृद्धि, स्त्रियों का स्मरोन्माद, योनिव्रण, योनिक्लेद तथा योन्यर्श नष्ट होते हैं। यहाँ पर कई वैद्य सर्षप तैल का पाक करते हैं॥ १९२-१९४॥

हिंग्वादि तैल।

हिङ्गुकासीससिन्धूत्थैः शुण्ठीपत्रकचित्रकैः। सहासाराङ्घिफेनेन्दुसारत्रयनिशायुगैः॥ १९५॥ विपक्वं सार्षपं तैलं पुष्पसञ्जननं परम्। रजःकृच्छ्रहरञ्चापि योनिशूलनिसूदनम्॥ १९६॥

सरसों का तैल १२८ तोले। कल्क के लिए हींग, हीराकसीस, सेंधानमक, सोंठ, तेजपात, चित्रक, मुसब्बर, समुद्रफेन, कपूर, जवाखार, सज्जीखार, सुहागा, हल्दी, दारुहल्दी सब मिलाकर, ३२ तोले। इन से विधिपूर्वक तैल पकावे। इसके प्रयोग से मासिक रजस्राव होता है। यह तैल रजःकष्ट एवं योनिशूल को नष्ट करता है॥ १९५–१९६॥

सुधाकर तैल।

बलायाः केशराजस्य दूर्वायाश्च धवस्य च। पारिभद्रस्य पद्मस्य स्वरसेन च मस्तुना॥ १९७॥ तण्डुलस्य च तोयेन लाक्षायाः सलिलेन च। काञ्जिकेन तथा कल्कैर्धात्रीधान्यकमुस्तकैः॥ १९८॥ काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभकोत्पलैः। वाजिगन्धातुगाक्षीरीशिलाजतुरसाञ्जनैः॥ १९९॥ यष्टीमधुकमञ्जिष्ठामुरामासीयवासकैः। गन्धद्रव्यैश्च निखिलैः पचेत् तैलं तिलोद्भवम्॥ २००॥ सुधाकराभिधं तैलमेतत् स्त्रीगदसूदनम्। बल्यं रसायनं वृष्यमायुष्यं स्मरदीपनम्॥ २०१॥

तिल तैल १२८ तोले, बलामूल का क्वाथ १२८ तोले, भंगरा का रस १२८ तोले, दूब का रस १२८ तोले, धव का क्वाथ १२८ तोले, पारिभद्र (फरहद) की छाल का क्वाथ १२८ तोले, कमल का रस १२८ तोले, मस्तु १२८ तोले, तण्डुलोदक १२८ तोले, लाक्षाजल १२८ तोले काँजी १२८ तोले। कल्क के लिए—आँवला, धनियाँ, मोथा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, नीलकमल, असगन्ध, वंशलोचन, शिलाजीत, रसौत, मुलेठी, मंजीठ, मुरामांसी, जवासा, सब मिलाकर ३२ तोले। विधिपूर्वक तैल पकाने के पश्चात् जो मिल

सकें उन सम्पूर्ण द्रव्यों से गन्धपाक करे। यह तैल स्त्रीरोग को नष्ट करता है। तथा बलकारक, रसायन, वीर्यवर्द्धक, आयुष्य एवं कामोद्दीपक है ॥ १६७-२०१ ॥

नष्टपुष्पान्तक रस।

तारलौहाभ्रसौभाग्यबलिवङ्गार्कसूतकम्। पृथक्पलैकममितं समादाय भिषग्वरः ॥ २०२ ॥ वराकुष्ठं देवदारु दन्ती वासा बलाऽमृता। शेफाली गोक्षुरश्चैव वेत्राग्रं बृहतीद्वयम् ॥ २०३ ॥ करञ्जश्चैव जीवन्ती तालीशं काकमाचिका। त्रिवारं भावयेत्काममेतेषां स्वरसैः पृथक् ॥ २०४ ॥ वांशी रास्ना च मधुकं सैन्धवञ्च लवङ्गकम्। दन्ती गोक्षुरबीजञ्च तोलकार्द्धमितं पृथक् ॥ २०५ ॥ जयन्तीतुलसीद्रावैः सम्मर्द्य खलु यत्नतः। वटिकाः कारयेद्वैद्यो रक्तिकाद्वयसम्मिताः ॥ २०६ ॥ रसोऽयं तु समाख्यातो नष्टपुष्पान्तकाभिधः। योनिशूलं योनिदाहं योनिक्लेदं च दारुणम् ॥ २०७ ॥ प्रणष्टपुष्पतां चैव नाशयत्याशु सर्वथा। नष्टपुष्पत्वशान्त्यर्थं रसोऽयमतिदुर्लभः ॥ २०८ ॥

चाँदी की भस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, सुहागा, गन्धक, बङ्गभस्म, ताम्रभस्म और पारा हरएक ४ तोले। इन्हें त्रिफला, कूट, देवदारु, दन्तीमूल, अडूसा की छाल, खरेटी की जड़, गिलोय, हारसिंगार, गोखरू, बेंत की कोपल, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, करञ्ज, जीवन्ती, तालीशपत्र और मकोय इनमें से जो मिल सकें उनके रस अथवा क्वाथ से क्रमशः तीन-तीन बार भावना दे। पश्चात् वंशलोचन, रास्ना, मुलठी, सेंधानमक, लौंग, दन्तीमूल, गोखरूबीज हरएक का आधा-आधा तोला, चूर्ण मिलाकर जयन्ती पत्र के रस तथा तुलसी के रस से घोटकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। यह नष्ट पुष्पान्तक रस योनिशूल, योनिदाह, योनिक्लेद और रजोलोप आदि व्याधियों को नष्ट करता है ॥२०२-२०८ ॥

कुमारिकावटी।

एलीयकं च काशीशं फणिफेनञ्च वङ्गकम्। सुरभियञ्चेति समं जलेन परिपेषयेत् ॥ २०९ ॥ वटिकाः कारयेद्वैद्यो रक्तिद्वितयसम्मिताः। अनुपाने च दातव्यं सलिलं त्वतिनिर्मलम् ॥ २१० ॥ कुमारीवटिका ह्येषा नामतः परिकीर्त्तिता। निषेवितेयं हन्त्याशु योनिशूलं च बाधकम् ॥ २११ ॥ जरायुशूलं मक्कल्लशूलं चैवातिदारुणम्। योनेश्च व्यापदः सर्वाः सर्वथा नेह संशयः ॥ २१२ ॥

मुसब्बर, काशीश, अफीम, बङ्गभस्म, शीतलचीनी, इन्हें बराबर मात्रा में लेकर जल से पीसकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। अनुपान—स्वच्छ जल। इसके सेवन से योनिशूल, बाधकवेदना, जरायुशूल (गर्भाशय के भ्रंश आदि से पैदा हुआ शूल), मक्कल्लशूल तथा सम्पूर्ण योनिरोग नष्ट होते हैं ॥ २०९-२१२ ॥

विजया वटिका।

विजयाकन्ययोः सारं रक्तोत्पलशिफा तथा। मयूरमूलं च समं सममेव समाहरेत् ॥ २१३ ॥ सम्पेष्य वारा वटिकाः कुर्याद् गुञ्जाद्वयोन्मिताः। विजयावटिका ह्येषा महादेवेन कीर्त्तिता ॥ २१४ ॥ सेविता शमयत्याशु दारुणं तु कटिव्यथाम्। बाधकं चैव विषमं तथा कष्टरजःस्रुतिम् ॥ २१५ ॥

भाग का सत, एलुआ (मुसब्बर), लाल कमल की जड़, लटजीरा की जड़, इन्हें एकत्र बराबर मात्रा में मिला जल से पीसकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। यह गोली कष्टदायक

कमर का दर्द, मासिक धर्म के समय का कष्ट, विषमरज-स्राव तथा कष्टयुक्त रजःस्राव को नष्ट करती है॥ २१३-२१५ ॥

रजःप्रवर्त्तिनी वटी।

कन्यासारं च काशीसं रामठं टङ्कणं तथा। समादाय समं सर्वं पेषयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ २१६ ॥ निर्मापयेद्भिषग्वर्योरक्तिद्वयमिता वटीः। शीलितेयं तु वटिका विनिहन्ति सुदारुणाम्॥ २१७ ॥ रजोरोधव्यथां कष्ट-रजःस्रावव्यथां तथा। रजःप्रवर्त्तिनी ह्येषा नीलकण्ठेन भाषिता॥ २१८ ॥

एलुआ (मुसब्बर), कशीश; हींग और सुहागा इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर ग्वार-पाठे के रस से घोटे और दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे।। इस गोली के सेवन से मासिक स्राव का रुकना तथा कष्ट से स्राव होना नष्ट होता है॥ २१६-२१८ ॥

शिखर्यादि वर्त्तिका।

शिखरीमूलचूर्णं च तथा गोधूमचूर्णकम्। खदिरं भोगिफेनं च पृथक् माषत्रयं समम्॥ २१९ ॥ आदाय वारा सम्पेष्य चतुर्गुञ्जोन्मिताः शुभाः। वर्त्तिकाः कारयेद्वैद्यो घृताक्तान्चैकवर्त्तिकाम्॥ २२० ॥ योनौ तु धारयेत्कामं रक्तातिस्रावरोधिकाम्। समाख्याता शिखर्यादिर्वर्त्तिका नामतो बुधैः॥ २२१ ॥

लटजीरा की जड़ का चूर्ण, गेंहू का आटा, कत्था, शुद्ध अफ़ीम, हरएक ३ माशे; इन्हें जल से घोटकर चार-चार रत्ती की बत्तियाँ बनावे। इस बत्ती पर घी चुपड़ कर योनि में रक्खे। यह बत्ती अधिक रजःस्राव को नष्ट करती है २१९-२२१॥

संविदासार।

संविदामञ्जरीपत्रस्वरसं वस्त्रशोधितम्। जलस्वेदनयन्त्रेण गाढमेवं प्रकल्पयेत्॥ २२२ ॥ यावन्मुद्राङ्कणं तत्र भवेद्वा गोलकं तथा। रक्तिपादमितादर्द्धरक्तिमात्रं प्रदापयेत्॥ २२३ ॥ द्वित्रिवारं सेवनेन स्त्रीणां शूलं जरायुजम्। योनिशूलं द्रुतं हन्यात् संविदासारनामकः॥ २२४ ॥ प्रोक्तो गहननाथेन फलवर्त्तिप्रयोगतः। मात्रयारक्तिमितया योनिव्यापत्प्रणश्यति॥ २२५ ॥ आमवातश्च दुःसाध्यस्तमकश्वास एव च। तथा चायामकः शीघ्रं सिंहाक्रान्तो तथा करिः॥ २२६ ॥ संविदामञ्जरीपत्रस्वरसाभावतोऽथवा। शुष्कमञ्जरीपत्राणां क्वाथो देयो यथाविधि॥ २२७ ॥

गाँजे के मंजरीयुक्त पत्तों का रस निकाल कर वस्त्र से छान ले। इस रस को जलस्वेदन यन्त्र द्वारा पकाकर गाढ़ा कर ले। जब इतना गाढ़ा हो जाय कि दबाने से हाथ की रेखाओं के चिह्न पड़ जायँ अथवा पिण्डाकार हो जाय तब नीचे उतार ले। मात्रा–¼ रत्ती से ½ रत्ती तक। दिन में दो तीन बार इसका सेवन करने से शीघ्र ही स्त्री का जरायुशूल तथा योनिशूल नष्ट होता है। फलवर्त्ति के समान एक रत्ती की मात्रा में इसका प्रयोग करने से योनिरोग नष्ट होते हैं। इसके अन्तःप्रयोग से दुःसाध्य आमवात, तमकश्वास और आयामक आदि रोग नष्ट होते हैं। यदि गाँजे के ताजे पत्ते न मिल सकें तो सूखे मंजरीयुक्त पत्तों के क्वाथ से ही सार तैयार करे। जलस्वेदन यन्त्र में नीचे के पात्र में जल तथा ऊपर के पात्र में रस डाल दे। पश्चात् इस यन्त्र के नीचे आग जलावे। इस यन्त्र में रस का पाक जल की वाष्प द्वारा होता है॥ २२२-२२७॥

सोमघृत।

सिद्धार्थकं वचा ब्रह्मी शङ्खपुष्पी पुनर्नवा। पयस्यामययष्ट्याह्वं कटुका

च फलत्रयम् ॥ २२८ ॥ सारिवे रजनी पाठा भद्रदारुसुवर्चलाः। मञ्जिष्ठा त्रिफला श्यामा वृषपुष्पं सगैरिकम् ॥ २२९ ॥ धीमान् पक्त्वा घृतमस्थं सम्यङ्मन्त्राभिमन्त्रितम्। द्विमासगर्भिणी नारी पएमासानुपयोजयेत् ॥ २३० ॥ सर्वज्ञं जनयेत् पुत्रं सर्वामयविवर्जितम्। अस्य प्रयोगात् कुक्षिस्थः स्फुटवत् व्याहरत्यपि ॥ २३१ ॥ योनिदुष्टाश्च या नार्यो रेतोदुष्टाश्च ये नराः। स्त्रीणां पुंसां दोषहरं घृतमेतदनुत्तमम् ॥ २३२ ॥ वन्ध्यापि लभते पुत्रं शूरं पण्डितमानिनम्। जडगद्गदमूकत्वं पानादेवापकर्षति ॥ २३३ ॥ सप्तरात्रप्रयोगेण नरः श्रुतिधरो भवेत्। नाग्निर्दहति तद्वेश्म न वज्रमुपहन्ति च ॥ २३४ ॥ न तत्र म्रियते बालो यत्रास्ते सोमसंज्ञितम् ॥ २३५ ॥

कटुका च फलत्रयमित्यत्र कटुकैलाफलत्रयमिति पाठः प्राचीनसम्मतः। अत्र फलत्रयं द्राक्षाकाश्मरीपरुषकाणि श्यामा प्रियंगुः शेषं सुबोधम्। मन्त्रश्च गायत्री यदाह सुश्रुतः। यत्र नोदीरितो मन्त्रो योगेषु येषु साधने। सर्वत्र गदिता तत्र गायत्री फलसिद्धिदा ॥ अथवात्र मन्त्रश्चायम्। "ॐ नमो महाविनायकाय अमृतं रक्ष रक्ष मम फलसिद्धिं देहि देहि रुद्रवचनेन स्वाहा" इति सप्तधा मन्त्रयेत्। इति तन्त्रान्तरदृष्टं लिखितम्।

कल्क के लिए सफेद सरसों, वच, ब्राह्मी, शंखाहुली, सौंठी, दूधी, कूट, मुलेठी, कुटकी, मुनक्का, कंभारी के फल, फालसा, अनन्तमूल, कालीसारिवा, हल्दी, पाढ़, मँगरा, देवदारु, हुलहुल मंजीठ, त्रिफला, प्रियंगु के फूल, अड़ूसा के फूल और गेरू; प्रत्येक दो-दो तोले, घी १२८ तोले। पाकार्थ जल ६ सेर ३२ तोले। यथाविधि घृत का पाक करे। इस घृत को गायत्रीमन्त्र से अथवा "ॐ नमो महावि०" इत्यादि ऊपर कहे हुए मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित कर दो महीने की गर्भवती छह महीने तक सेवन करे तो सब रोगों से रहित (नीरोग) और स्पष्ट उच्चारण करनेवाले सर्वज्ञ पुत्र को उत्पन्न करती है। यह घृत दूषित योनिवाली स्त्रियों और दूषित शुक्रवाले पुरुषों के सब दोषों को नष्ट करता है। बाँझ स्त्री भी शूरवीर तथा पण्डित पुत्र को उत्पन्न करती है। इसके पीने से ही जड़ता, मूकता और गद्गदता दूर होती है। इसके सात दिन के प्रयोग से मनुष्य वेदों का जाननेवाला होता है। जिस घर में यह सोमघृत रहता है उस घर को अग्नि नहीं जलाती है, न वज्र ही नष्ट कर सकता है और न वहाँ बालकों की मृत्यु ही होती है ॥ २२८-२३५ ॥

सुश्रुत ने कहा है कि जिस योग में साधकों ने मन्त्र नहीं कहा है वहाँ गायत्री ही कही गई है और गायत्री ही फल सिद्धि की देनेवाली है। "ॐ नमो" इत्यादि मन्त्र तन्त्रान्तर से लिया गया है। इस घृत में कई टीकाकार भद्र शब्द का अर्थ दालचीनी और सुवर्चला का अर्थ सौंचल नमक करते हैं।

कुमारकल्पद्रुमघृत।

पञ्चाशच्छागमांसस्य दशमूल्यास्तथैव च। जलमष्टगुणं दत्त्वा क्वाथेत मृदुनाग्निना ॥ २३६ ॥ चतुर्भागावशेषं च क्वाथं गृह्णात् प्रयत्नतः। गव्यं प्रस्थद्वयं सर्पिर्गृह्णीयात् कुशलो भिषक् ॥ २३७ ॥ क्षीरं घृतसमं दद्याच्छतावर्या रसं तथा। ताम्रे वा मृण्मये पात्रे तदेकत्र पचेच्छनैः ॥ २३८ ॥ कुष्ठं शटी च मेदे द्वे जीवकर्षभकौ तथा। प्रियंगु त्रिफला दारु पत्रमेला

शतावरी ॥ २३९ ॥ काश्मरी मधुकं क्षीरकाकोली मुस्तमुत्पलम्। जीवनी चन्दनं चैव काकोली शारिवायुगम् ॥ २४० ॥ श्वेतवाट्यालजं मूलं मूलं च शरपुङ्खजम्। विदारीद्वयमञ्जिष्ठा पर्णिनी द्वयमेव च ॥ २४१ ॥ नागपुष्पं तथा दारुहरिद्रा रेणुकं तथा। ज्योतिष्मतीभवं मूलं शङ्खिनी नीलिनी वचा ॥ २४२ ॥ अगुरुत्वग् लवङ्गं च कुंकुमं निक्षिपेत्ततः। एतेषां कार्षिकं कल्कं दत्त्वा शुभदिने सुधीः ॥ २४३ ॥ शुभनक्षत्रयोगे च संपूज्य गणनायकम्। शङ्करं च मृडानीं च नमस्कृत्यातिभक्तितः ॥ २४४ ॥ पाकं कुर्यात् प्रयत्नेन विजानन् मंत्रपूर्वकम्। सिद्धशीते क्षिपेतत्र पारदं परिनिर्मलम् ॥ २४५ ॥ सुजीर्णं शोधितं चाभ्रं गन्धकं कार्षिकं न्यसेत्। ततः पुष्परसं तत्र प्रस्थार्द्धं च विनिक्षिपेत् ॥ २४६ ॥ काचसम्पुटके वान्यपात्रे वा स्थापयेत् सुधीः। पराशरमुनिः प्रीतिकरुणावारिधिर्मुदा ॥ २४७ ॥ वन्ध्यामयविनाशाय शिशुकल्पद्रुमं घृतम्। चकारास्य प्रसादेन जन्मवन्ध्या लभेत् सुतम् ॥ २४८ ॥ खादेत् कर्षमितं सर्पिर्दत्त्वा विप्राय सादरम्। अनुपानं प्रकुर्वीत पयश्छागं विशेषतः ॥ २४९ ॥ गव्यं वापि पिवेत् क्षीरं शीत पलयुगं तथा। घृतास्यास्य सुसिद्धस्य गुणान् शृणु समाहितः ॥ २५० ॥ अस्य प्रसादात् पण्ढोऽपि वन्ध्यायां जनयेत् सुतान्। रजोदोषेण या दुष्टा शुक्रदोषेण योऽपि च ॥ २५१ ॥ स्त्रीभगस्थगदेनैव पीडिता या च सर्वदा। या च पुष्पं न विन्देत ऋतुना पीडिता च या ॥ २५२ ॥ मृता मृता च नश्यन्ति सुता यासां मुहुर्मुहुः। अनेकौषधयोगेन मन्त्रयोगेन वा पुनः ॥ २५३ ॥ अनेकव्रतयोगेन यासां पुत्रो न जायते। तासां कामसमाः पुत्रा जायन्ते चिरजीविनः ॥ २५४ ॥ एतद् घृतं गृहे यस्य न तस्य कुलिशाद्भयम्। न राक्षसैः पिशाचैश्च गृह्यते तस्य बालकः। नोपसर्पति सर्पोऽपि दर्पात्तस्य गृहान्तिकम् ॥ २५५ ॥

बकरे का मांस २॥ सेर और दशमूल २॥ सेर लेकर एक मन जल में मृदु अग्नि से काढ़ा बनावे। जब दस सेर अवशेष रहे तब उतारकर छान ले। गौ का घृत ३ सेर १६ तोले, गौ का दूध ३ सेर १६ तोले, शतावरी का रस ३ सेर १६ तोले। कल्क के लिए—कूठ, कचूर, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, प्रियंगु, त्रिफला, देवदारु, तेजपत्र, इलायची, शतावरी, कभारी, मुलेठी, क्षीरकाकोली, नागरमोथा, कमल, जीवन्ती, लालचन्दन, काकोली, अनन्तमूल, कालीसारिवा, सफेद खरेंटी की जड़, सरफोंका की जड़, विदारी, क्षीरविदारी, मंजीठ, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, नागकेशर, दारुहल्दी, सँभालू के बीज, मालकांगनी की जड़, शंखाहूली, नील, बच, अगर, लवंग और केशर; प्रत्येक एक एक तोला। शुभ दिन, शुभ नक्षत्र और शुभ योग में गणेशजी का पूजन तथा अत्यन्त भक्ति से शिव और पार्वतीजी को प्रणाम करके सब ओषधियों को एकत्र कर पाकविधि का ज्ञाता वैद्य गायत्री मन्त्र का जप करके ताँबे (कलई किया हुआ) या मिट्टी के पात्र में घृत सिद्ध करे। जब घृत शीतल हो जाय तब उसमें एक तोला शुद्ध पारा और एक तोला गन्धक की कज्जली करके डाले तथा १ तोला अभ्रकभस्म और ६४ तोले शहद मिलावे।

इसको शीशे के पात्र अथवा चीनी के साफ पात्र में रक्खे। करुणासिन्धु पराशर मुनि ने प्रसन्न होकर वन्ध्यापन निवारण करने के लिए यह कुमारकल्पद्रुम घृत बनाया है। इसके सेवन करने से जन्म की वन्ध्या भी पुत्र को पाती है। ब्राह्मण को आदर से दान देकर एक तोले घृत खाना चाहिए और बकरी का दूध अथवा गौ का दूध आठ तोले शीतल करके पीना चाहिए। इसके प्रकार सिद्ध किये हुए घृत के सेवन करने से नपुंसक भी वन्ध्या के पुत्र पैदा कर सकता है। इस घृत के सेवन से पुरुषों के शुक्रदोष, स्त्रियों के रजोदोष, योनिदोष, योनिपीड़ा तथा रजोदर्शन का न होना या पीड़ा से होना या सन्तान हो-होकर बार-बार मर जाना आदि रोग नष्ट होते हैं। जिन स्त्रियों के अनेक मत, अनुष्ठान और औषधि प्रयोगों से पुत्र नहीं हुआ हो उनके इस घृत के प्रयोग से कामदेव के समान चिरंजीवी पुत्र पैदा होते हैं। यह घृत जिसके घर में रहता है उसको यत्न से भय नहीं होता है तथा उसके बालकों को राक्षस और पिशाच नहीं सताते हैं और उनके घर में सर्प भी नहीं आता है ॥ २३६-२५५ ॥

गर्भिणीचिकित्सा।

प्रथमे मासि गर्भे तु यदा भवति वेदना। चन्दनं शतपुत्री च शर्करा मदयन्तिका ॥ २५६ ॥ एतानि समभागानि पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा। पाययेत् पयसालोड्य गर्भिणीं मात्रया भिषक् ॥२५७॥ तथा तिलान् पद्मकं च शालूकं शालितण्डुलान्। क्षीरेण पिष्ट्वा क्षीरेण सिताक्षौद्रान्वितेन च ॥ २५८ ॥ आलोड्य पाययेन्नारीं ततः सम्पद्यते शुभम्। तस्मिन् सुजीर्णे दातव्यं भोजनं क्षीरसंयुतम् ॥ २५६ ॥

यदि गर्भिणी के पहले महीने में गर्भसम्बन्धी पीड़ा हो तो सफेद चन्दन, शतावरी, खाँड और भाँगरा; इनको सम भाग लेकर तण्डुलोदक से पीस कर और दूध में घोल कर योग्य मात्रा में गर्भिणी को पिलाना चाहिए ॥ २२६-२२७ ॥

अथवा तिल, पद्माक, कमलकन्द और शालिचावल; इनको दूध में पीस कर दूध, शक्कर और शहद में घोलकर गर्भवती को पिलाने से लाभ होता है। जब औषधि हजम हो जाय तब दूध के साथ भोजन देना चाहिए ॥ २२८-२२६ ॥

द्वितीये मासि गर्भे तु यदा भवति वेदना। तदोत्पलस्य कल्कं तु शृङ्गाटककशेरुकम् ॥ २६० ॥ तण्डुलोदकपिष्टं तु पाययेत् तण्डुलाम्बुना। निवार्य गर्भशूलं च स्थिरं गर्भं करोति च ॥ २६१ ॥

दूसरे महीने में यदि गर्भ में पीड़ा हो तो कमल, सिंघाड़ा और कसेरू को तण्डुलोदक से पीस कर तण्डुलोदक के साथ पिलाने से गर्भशूल नष्ट होता है तथा गर्भ स्थिर होता है ॥ २६०-२६१ ॥

तृतीये क्षीरकाकोली काकोल्यामलकीफलम्। पिष्टमुष्णोदकेनैतत् पाययेत् गर्भिणीं भिषक् ॥ २६२ ॥ शाल्यन्नं पयसा जीर्णे भोजयेदनुगर्भिणीम्। तथा पद्मोत्पलं कुष्ठं शालूकं च समांशिकम् ॥ २६३ ॥ सितोदकेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणालोड्य पाययेत्। तेन शूलं निवर्त्तेत न गर्भो व्यथते ध्रुवम् ॥ २६४ ॥

तीसरे महीने में यदि गर्भ में पीड़ा हो तो क्षीरकाकोली, काकोली और आँवलों को पीस कर गर्म जल के साथ गर्भिणी को पिलावे और औषधि हजम हो जाने पर शालि चावल और दूध का भोजन करावे।

अथवा पद्माक, कमल, कूट और कमलकन्द; इनको सम भाग ले मिसरी के शर्बत

२८७ ॥ पृथक्पर्णी बला शिग्रु श्वदंष्ट्रा मधुयष्टिका। शृङ्गाटकं बिसं द्राक्षा कशेरु मधुकं सिता ॥ २८८ ॥ मासेषु सप्तरोगाः स्युरर्द्धश्लोकसमापकाः। यथाक्रमं प्रयोक्तव्या रक्तस्रावे पयोऽन्विताः ॥ २८९ ॥

१ मुलेठी, शाकबीज (सागौन के बीज), क्षीरकाकोली और देवदारु।

२ अश्मान्तक (पाषाणभेद), काले तिल, मंजीठ और शतावरी।

३ बाँदा, क्षीरकाकोली, कमल और अनन्तमूल।

४ अनन्तमूल, कालीसारिवा, रास्ना, भारंगी और मुलेठी।

५ बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, कंभारी के फल, बरगद आदि दूधवाले वृक्षों की कोपल और छाल तथा घृत।

६ पृश्निपर्णी, खरेंटी, सहिंजना की छाल, गोखरू और मुलेठी।

७ सिंघाड़े, कमलनाल, दाख, कसेरू, मुलेठी और शक्कर।

आधे-आधे श्लोकों में कहे हुए सातों महीने के क्रमवार सात प्रयोग हैं। यदि प्रथमादि महीनों में गर्भिणी को शूल हो या रक्तस्राव हो तो पूर्वोक्त प्रयोगों के कल्क को दूध के साथ पिलाना चाहिए। अथवा इनके क्वाथों से क्षीर पाक करके सेवन करना चाहिए ॥ २८९-२८६ ॥

कपित्थबिल्वबृहतीपटोलेक्षुनिदिग्धिकाः। मूलानि क्षीरपिष्टानि दापयेद्भिषगष्टमे ॥ २९० ॥

कैथ, बेल, बड़ी कटेरी, परवल, ईख और छोटी कटेरी; इनकी जड़ों को दूध में पीसकर आठवें महीने की पीड़ा में गर्भिणी को देना चाहिए ॥ २९० ॥

नवमे मधुकानन्तापयस्यासारिवाः पिबेत्। पयस्तु दशमे शुण्ठ्या भृतं शीतं प्रशस्यते ॥ २९१ ॥

नवें महीने में मुलेठी, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली और कालीसारिवा; इनको जल से पीसकर दूध के साथ पीना चाहिए।

दशवें महीने में सोंठि से सिद्ध किये हुए ठंडे दूध का सेवन करना चाहिए ॥ २९१ ॥

सक्षीरा वा हिता शुण्ठी मधुकं देवदारु च। एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक् च प्रशाम्यति ॥ २९२ ॥

सोंठि, मुलेठी और देवदारु; इनके कल्क को दूध के साथ दशवें महीने में पीना चाहिए। इनके सेवन से गर्भ पुष्ट होता है और शूल शान्त होता है ॥ २९२ ॥

कुशकाशोरुबूकाणां मूलैर्गोक्षुरकस्य च। भृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलनुत् परम् ॥ २९३ ॥

कुश की जड़, काँस की जड़, अरण्ड की जड़ और गोखरू; इनके क्वाथ से सिद्ध किये हुए दूध में शक्कर मिलाकर गर्भिणी को पिलाने से कठिन शूल नष्ट होता है ॥ २९३ ॥

कशेर्वादि पय।

कशेरुशृङ्गाटकजीवनीयपद्मोत्पलैरण्डशतावरीभिः। सिद्धं पयः शर्करया विमिश्रं संस्थापयेद्गर्भमुदीर्णवेगम् ॥ २९४ ॥

कसेरू, सिंघाड़ा, जीवनीयगण की औषधियाँ, कमल, नीलकमल, अरण्ड की जड़ और शतावरी; इनसे यथाविधि सिद्ध किये हुए दूध में शक्कर मिलाकर पीने से चलायमान गर्भ स्थिर हो जाता है ॥ २९४ ॥

मधुना छागदुग्धेन कुलालकरकर्दमः। अवश्यं स्थापयेद्गर्भं चलितं पानयोगतः ॥ २९५ ॥

कुम्हार के बरतन बनाने के लोंदे की मिट्टी को बकरी के दूध में मिलाकर तथा उसमें शहद डालकर पीने से चलायमान गर्भ अवश्य स्थिर

हो जाता है। मात्रा—मिट्टी ६ माशे, दूध १० तोले ॥ २९५ ॥

कशेरुशृङ्गाटकपद्मकोत्पलं समुद्गपर्णीमधुकं सशर्करम्। सशूलगर्भस्रुतिपीडिताङ्गना पयोविमिश्रं पयसान्नभुक् पिबेत् ॥ २९६ ॥

कसेरू, सिंघाड़े, पद्माक, नीलकमल, मुद्गपर्णी मुलेठी और शक्कर; इनके कल्क को दूध में मिलाकर गर्भिणी पीवे तो शूल और गर्भस्राव की पीड़ा निवृत्त हो। पथ्य—दूध और चावल ॥ २९६ ॥

गर्भे शुष्के तु वातेन बालानां चापि शुष्यताम्। सितामधुककाश्मर्यैर्हितमुत्थापने पयः ॥ २९७ ॥

यदि वायुरोग से गर्भ या बालक सूखते हों तो मिसरी, मुलेठी और कंभारी को दूध में मिलाकर गर्भिणी को और बालकों को पिलाना हितकर होता है ॥ २९७ ॥

गर्भिणीज्वरचिकित्सा।
चन्दनादि क्वाथ।

चन्दनं सारिवा लोध्रं मृद्वीका शर्करान्वितम्। क्वाथं कृत्वा प्रदातव्यं गर्भिण्या ज्वरनाशनम् ॥ २९८ ॥

चन्दन, अनन्तमूल, पठानीलोध और मुनक्का; इनके काढ़े में मिसरी मिलाकर सेवन करने से गर्भिणी का ज्वर शान्त होता है ॥ २९८ ॥

आरग्वधाद्य तैल।

आरग्वधमूलपलं कर्षद्वितयं हि शङ्खचूर्णस्य। हरितालस्य च खरजे मूत्रेऽर्धे तु कटुतैलम् ॥ २९९ ॥ पक्वं तैलं तदथो शङ्खहरितालचूर्णितं लेपात्। निर्मूलयति च लोमान्यन्येषां सम्भवो नैव ॥ ३०० ॥

कड़ु तेल ३२ तोले, गधे का पेशाब ८ तोले, कल्क के लिए अमलतास की जड़ की छाल ४ तोले, शङ्खभस्म ४ तोले, हरिताल ४ तोले लेकर विधिपूर्वक तेल पकावे। पश्चात् इस तेल में चतुर्थांश शङ्खभस्म डालकर लेप करना चाहिये। इसके लेप से बाल गिर जाते हैं। और पुन पैदा नहीं होते। २९९ ३००।

गर्भविनोद रस।

त्रिभागं त्रिकटोर्देयं चतुर्भागश्च हिंगुलम्। जातीकोषं लवङ्गश्च प्रत्येकञ्च त्रिकार्षिकम् ॥ ३०१ ॥ सुवर्णमाक्षिकश्चैव पलार्द्धं प्रक्षिपेद् बुधः। जलेन मर्दयित्वाथ द्विरक्तिप्रमिता वटी ॥ ३०२ ॥ निहन्ति गर्भिणीरोगं भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ३०३ ॥

त्रिकुटा (मिलित) ३ तोले, शुद्ध सिंगरफ ४ तोले, जावित्री और लौंग तीन तीन तोले, सुवर्णमाक्षिकभस्म २ तोले। इन्हें जल से घोटकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। यह रस गर्भिणीरोग को इस प्रकार नष्ट करता है, जैसे सूर्य अन्धकार को ॥ ३०१-३०३ ॥

देवदार्वादि क्वाथ।

देवदारु वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम्। भूनिम्बकट्फलं मुस्तं तिक्ता धान्यहरीतकी ॥ ३०४ ॥ गजकृष्णा सदुःस्पर्शा गोक्षुरो धन्वयासकः। बृहत्यतिविषा छिन्ना कर्कटः कृष्णजीरकः ॥ ३०५ ॥ समभागान्वितैरेतैः सिन्धुरामठसंयुतम्। क्वाथमष्टावशेषन्तु प्रसूतां पाययेत्स्त्रियम् ॥ ३०६ ॥ शूलकासज्वरश्वासमूर्च्छाकम्पशिरोऽर्त्तिभि। युक्तं प्रलापतृड्दाहतन्द्रातीसारवान्तिभिः ॥ ३०७ ॥ निहन्ति सूतिकारोगं वातपित्तकफोद्भवम्। कषायो देवदार्वादिः सूतायाः परमौषधम् ॥ ३०८ ॥

देवदारु, वच, कूट, पीपल, सोंठ, चिरायता,

कायफल, मोथा, कुटकी, धनियाँ, हड, गजपीपल छोटी कटेरी, गोखरू, जवासा या धमासा, बड़ी कटेरी, अतीस, गिलोय, काकड़ासिंगी, कालाजीरा, इन्ह मिलाकर २ तोले। क्वाथ के लिए जल ३२ तोले, बचा हुआ क्वाथ ४ तोले। इस क्वाथ में ४ रत्ती सेंधानमक और आधी रत्ती हींग डालकर प्रसूता स्त्री को पिलाना चाहिए। इसके सेवन से शूल, खाँसी, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कम्प, शिरोवेदना, प्रलाप, प्यास, जलन, तन्द्रा, अतीसार एवं वमन आदि उपद्रवों से युक्त सूतिकारोग नष्ट होता है। यह क्वाथ वातजन्य, पित्तजन्य, एवं कफजन्य सूतिका रोग को नष्ट करता है। यह क्वाथ प्रसूता के लिए अत्यन्त लाभदायक है॥ ३०७-३०८॥

एरण्डादि क्वाथ।

एरण्डमूलममृता मञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम्। दारुपद्मयुतः क्वाथो गर्भिण्या ज्वरनाशनः॥ ३०९॥

अत्र सामान्यज्वरोक्तः कषायाश्च बुद्ध्या देयः।

अरण्ड की जड़, गिलोय, मंजीठ, लालचन्दन, देवदारु और कमल, इनका काढ़ा गर्भिणी के ज्वर को नष्ट करता है॥ ३०९॥

गर्भिणी के ज्वर में विचारकर सामान्य ज्वर में कहे हुए क्वाथ देने चाहिए।

सिंहास्यादिर्गुडूच्यादिः पञ्चमूलीरसोऽपि वा। मधुना शमयन्त्येते गर्भिण्या ज्वरमाशु च॥ पञ्चमूलीमृतं क्षीरं गर्भिण्या ज्वरशान्तये॥ ३१०॥

इति ज्वराधिकारे चक्रदत्तलिखितम्।

सिंहास्यादि का क्वाथ, गुडूच्यादि का क्वाथ और लघुपंचमूल का क्वाथ, इन तीनों में से किसी एक प्रयोग के क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से गर्भिणी का ज्वर शीघ्र शान्त हो जाता है। अथवा लघुपंचमूल विधिपूर्वक दूध पकाकर गर्भिणी को देने से ज्वर शान्त हो जाता है॥ ३१०॥

यह चक्रदत्त के ज्वराधिकार में लिखा है।

आम्रजम्बूत्वचः क्वाथं लेहयेल्लाजशक्तुभिः। अनेन लीढमात्रेण गर्भिणीग्रहणीं जयेत्॥ ३११॥

आम की छाल और जामुन की छाल के काढ़े में धान की खीलों का चूर्ण मिलाकर पीने से गर्भिणी की संग्रहणी शान्त होती है॥ ३११॥

ह्रीवेरादि।

ह्रीवेरारलुरक्तचन्दनबलाधन्याकवत्सादनीमुस्तोशीरयवासपर्पटविषाक्वाथं पिवेद्गर्भिणी। नानावर्णरुजातिसारकगदे रक्तस्रुतौ वा ज्वरे योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितः सूतामयेपूत्तमः॥ ३१२॥

सुगन्धबाला, श्योनाक, लालचन्दन, खरैंटी, धनियाँ, गिलोय, मोथा, खस, जवासा, पित्तपापड़ा और अतीस, इनको मिलित २ तोले लेकर १६ तोले जल में औटावे। जब ४ तोले शेष रहे तब छानकर गर्भिणी को पिलाना चाहिए। इसके सेवन से अनेक प्रकार का पीड़ाकारक अतीसार, रक्तस्राव तथा ज्वर नष्ट होता है। इस प्रयोग को पुरातन ऋषियों ने सूतिकारोगों के लिए उत्तम कहा है॥ ३१२॥

लवङ्गादि चूर्ण।

लवङ्गं टङ्कनं मुस्तं धातकी बिल्वधान्यकम्। जातीफलं सर्जकं च शताह्वा दाडिमं तथा॥ ३१३॥ जीरकं सैन्धवं मोचं नीलोत्पलरसाञ्जनम्। अभ्रकं वङ्गकं चैव समङ्गा रक्तचन्दनम्॥ ३१४॥ विश्वं चातिविषा भृंगी खदिरं वालकं समम्। भृङ्गराजरसैः प्लाव्यं भावयित्वा दिनत्रयम्॥ ३१५॥ छागीदुग्धेन मतिमान् गर्भिणीमनुपानतः। एतच्चूर्णं प्रदातव्यं संग्रहग्रहणीहरम्॥ ३१६॥ नानावर्णमतीसारं ज्वरं चैव नियच्छति।

आमरक्तातिसारघ्नं शूलशोथनिसूदनम् ॥ ३१७ ॥

लौंग, सुहागा, नागरमोथा, धाय के फूल, बेल की गिरी, धनियाँ, जायफल, राल, शतावरी, अनारदाना, जीरा, सेंधानमक, मोचरस, नीलकमल, रसौत, अभ्रकभस्म, वङ्गभस्म, मंजीठ, लालचन्दन, सोंठ, पतीस, काकड़ासिंगी, कत्था और सुगन्धबाला, इनको सम भाग लेकर चूर्ण बनावे और इसमें तीन दिन तक भँगरे के रस की भावना दे। यह चूर्ण बकरी के दूध के साथ गर्भिणी को देने से संग्रहणी, अनेक प्रकार के अतीसार, ज्वर, आम, रक्तातिसार, शूल और सूजन को नष्ट करता है ॥ ३११-३१७ ॥

रोमराजी भवेद्यस्या वामपार्श्वे समुच्छ्रिता। कन्यां तस्या विजानीयाद् दक्षिणे च तथा सुतम् ॥ ३१८ ॥

गर्भवती स्त्री के बाँयें पसवाड़े में यदि रोमावली उठी हुई हो तो उसके गर्भ में कन्या जाननी चाहिए और दाहिने में हो तो पुत्र जानना चाहिए ॥ ३१८ ॥

धन्वन्तरिमतेनैव साध्वाज्ञातश्च शास्त्रवित्। सम्प्राप्ते चाष्टमे मासि मैथुनं परिवर्जयेत् ॥ ३१९ ॥ यदि गच्छति दुर्मेधाः काममोहादचेतनः। विपद्यते तदा गर्भो गर्भिणी च विनश्यति ॥ अन्धमूकादिवधिरो जायते कुब्ज एव वा ॥ ३२० ॥

बुद्धिमान् को चाहिए कि आठवें महीने के प्रारंभ से ही गर्भिणी का सहवास त्याग दे। यह धन्वन्तरिजी का मत तथा मुनियों की आज्ञा है। यदि दुर्बुद्धि कामान्ध होकर गर्भिणी के साथ प्रसंग करता है तो गर्भ तथा गर्भवती के नष्ट होने की सम्भावना होती है या अन्धी, गूँगी, बहिरी और कुबड़ी सतान होती है ॥ ३१९-३२० ॥

गर्भचिन्तामणि रस।

रसं तारं तथा लौहं प्रत्येकं कर्षमात्रकम्। कर्षद्वयं तथा चाभ्रं कर्पूरं वङ्गताम्रकम् ॥ ३२१ ॥ जातीफलं तथा कोषं गोक्षुरं च शतावरी। बलातिबलयोर्मूलं प्रत्येकं तोलकं शुभम् ॥ ३२२ ॥ वारिणा वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः। सन्निपातं निहन्त्याशु स्त्रीणां चैव विशेषतः ॥ गर्भिण्या ज्वरदाहं च प्रदरं सूतिकामयम् ॥ ३२३ ॥

रससिन्दूर, चाँदी की भस्म और लौहभस्म, प्रत्येक एक-एक तोला। अभ्रक-भस्म २ तोले तथा कपूर, वङ्गभस्म, ताम्रभस्म, जायफल, जावित्री, गोखरू, शतावरी, खरैंटी की जड़ और कंघी की जड़; प्रत्येक एक एक तोला। इन सबको जल से घोटकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। इसके सेवन से स्त्रियों का सन्निपातज्वर नष्ट होता है तथा गर्भिणी का ज्वर, दाह, प्रदररोग और सूतिकारोग नष्ट होता है ॥ ३२१--३२३ ॥

गर्भविलास रस।

रसगन्धकतुल्यं च त्र्यहं जम्बीरमर्दितम्। त्रिभावितं त्रिकटुना देयं गुञ्जार्द्धमात्रकम् ॥ ३२४ ॥ गर्भिण्याः शूलविष्टम्भज्वराजीर्णेषु केवलम्। तुत्थस्थाने यदि स्वर्णं चिन्तामणिरसः स्मृतः ॥ ३२५ ॥

पारा, गन्धक और तूतिया को तीन दिन जम्बीरी नींबू के रस में घोटकर त्रिकटु के क्वाथ की तीन भावनाएँ देकर आधी-आधी रत्ती का गोलियाँ बना ले। इसके सेवन से केवल गर्भिणी का शूल, विष्टम्भ, ज्वर और अजीर्ण रोग नष्ट होता है। यदि तूतिया के स्थान में स्वर्णभस्म डाली जाय तो इस रस का नाम गर्भचिन्तामणि होता है ॥ ३२४-३२५ ॥

गर्भपीयूषवल्ली रस।

सूतं गन्धं तथा स्वर्णं लौहं रजतमाक्षिकम्। हरितालं वङ्गभस्माप्यभ्रकं समभागिकम् ॥ ३२६ ॥ भावना खलु

दातव्या रसैरेषां पृथक् पृथक् । ब्राह्मी वासा भृङ्गराजं पर्पटं दशमूलकम् ॥ ३२७ ॥ सप्तधा भावयेद्वैद्यो गुञ्जामानां वटीं चरेत् । गर्भपीयूषवल्ल्याख्यो गर्भिणी-रोगहृत् परम् ॥ ३२८ ॥

पारा, गन्धक (दोनों की कज्जली), स्वर्ण-भस्म, लोहभस्म, रूपामाखी की भस्म, हरताल की भस्म, वङ्गभस्म और अभ्रकभस्म ये सब समभाग ले और इसमें ब्राह्मी, अडूसा, भँगरा और दशमूल के रसों की पृथक् पृथक् सात-सात भावनाएँ देकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। यह गर्भपीयूषवल्लीनामक रस गर्भिणी के रोगों को नष्ट करता है ॥ ३२६-३२८ ॥

टिप्पणी—'रजतमाक्षिकम्' इस पद से रौप्य-भस्म और स्वर्णमाक्षिकभस्म अलग २ ग्रहण किये जा सकते हैं। इस प्रकार बनाने से अधिक गुण-दायक होता है।

गर्भविलास तैल।

विदारी दाडिमं पत्रं रजनी च फल त्रयम्। भृङ्गाटकस्य पत्रं च जातीकुसुम-मेव च ॥ ३२६ ॥ वरी नीलोत्पलं पद्मं तैलमेतैः पचेत् सुधीः । एतद्गर्भविलासाख्यं गर्भसंस्थापनं परम् ॥ ३३० ॥ निहन्ति गर्भशूलं च शोणितस्रुतिसंहरम्। परं वृष्यतरं ह्येतत् काशिराजेन निर्मि तम् ॥ ३३१ ॥

कल्क के लिए विदारीकन्द, अनार के पत्ते, हरदी, त्रिफला, सिंघाड़े के पत्ते, चमेली के फूल, शतावरी, नीलकमल और कमल; सब मिलाकर ३२ तोले। तिलतैल १२८ तोले, पाकार्थ जल ६ सेर ३२ तोले। विधिपूर्वक तेल सिद्ध करना चाहिए। यह गर्भविलास नामक तेल गर्भ को स्थिर करनेवाला है तथा गर्भशूल और गर्भस्राव को नष्ट करता है। यह काशिराज का बनाया हुआ तेल परम वृष्य होता है ॥ ३२६-३३१ ॥

इन्दुशेखर रस।

शिलाजत्वभ्रसिन्दूरप्रवालायोरजांसि च। माक्षिकं च तथा तालं समभागानि मर्दयेत् ॥ ३३२ ॥ भृङ्गराजस्य पार्थस्य निर्गुण्ड्या वासकस्य च । स्थलपद्मस्य पद्मस्य कुटजस्य च वारिणा ॥ ३३३ ॥ भावयित्वा वटीः कृत्वा कलायपरिमा-णतः । यथादोषानुपानेन गर्भिणीषु प्रयोजयेत् ॥ ३३४ ॥ गर्भिणीनां ज्वरं घोरं श्वासं कासं शिरोरुजम् । रक्ताति-सारं ग्रहणीं वान्ति वह्नेश्च मन्दताम् ॥ ३३५ ॥ आलस्यमपि दौर्बल्यं हन्यादेव न संशयः । कलेरादौ ससर्जेमं भगवा-निन्दुशेखरः ॥ ३३६ ॥

शिलाजीत, अभ्रकभस्म, रससिन्दूर, मूँगा की भस्म, लोहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म और हरताल की भस्म; इनको सम भाग एकत्र कर क्रम से भँगरे के रस, अर्जुन की छाल के क्वाथ, सँभालू के क्वाथ, अडूसे के रस, स्थलपद्म, कमल और कुरैया के क्वाथ से भावना देकर मटर के समान गोलियाँ बना ले। यह दोषानुसार अनु-पानभेद से गर्भिणी को देना चाहिए। इससे गर्भिणी का ज्वर, कठिनतर श्वास, कास, शिर-पीड़ा, रक्तातिसार, संग्रहणी, वमन, मन्दाग्नि, आलस्य और दुर्बलता निःसन्देह नष्ट होती है। कलियुग के प्रारम्भ में शिवजी ने इसको बनाया था ॥ ३३२-३३६ ॥

सूतिकारोगचिकित्सा।

पाठालाङ्गलिसिंहास्यमयूरकजटैः पृथक् । नाभिवस्तिभगालेपात् सुखं नारी प्रसू-यते ॥ ३३७ ॥

पाढ़, कलिहारी, अडूसा और अपामार्ग; इनमें से किसी एक की जड़ को पीसकर नाभि, बस्तिप्रदेश तथा भगप्रदेश पर लेप करने से स्त्री को सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ ३३७ ॥

मातुलुङ्गस्य मूलानि मधुकं मधुसंयुतम् । घृतेन सह पातव्यं सुखं नारी प्रसूयते ॥ ३३८ ॥

बिजौरा की जड़ और मुलेठी के चूर्ण में शहद मिलाकर घृत के साथ पीने से स्त्री को सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ ३३८ ॥

इहामृतं च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनि । उच्चैःश्रवाश्च तुरगो मन्दिरे निवसन्तु ते ॥ ३३९ ॥

इदममृतमपां समुद्धृतं भैरवलघुगर्भमिमं विमुञ्चतु स्त्री । तदनलपवनार्कवासवास्ते सहलवणाम्बुधरैर्दिशन्तु शान्तिम् ॥ ३४० ॥

मुक्ताः पाशा विपाशाश्च मुक्ताः सूर्येन्दुरश्मयः । मुक्तः सर्वभयाद्गर्भ एह्येहि मा चिरं स्वाहा ॥ ३४१ ॥ इति स्रावयेत् ।

इहामृतं इत्यादि मन्त्रों से सात बार जल अभिमन्त्रित कर प्रसूता को पिलाकर प्रसव कराना चाहिए ॥३३९-३४१ ॥

जलं च्यवनमन्त्रेण सप्तवाराभिमन्त्रितम् । पीत्वा प्रसूयते नारी दृष्ट्वा चोभयत्रिंशकम् । तथोभयपञ्चदशदर्शनं सुखसूतिकृत् ३४२

च्यवनमन्त्रो यथा । ॐ क्षिप निक्षिप उन्मथ प्रमथ मुञ्च मुञ्च स्वाहा । इति मन्त्रेण जलं सप्तधाभिमन्त्रितं पाययेत् ।

च्यवन मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित जल पीने से अथवा उभयत्रिंशक और उभयपञ्चदश यन्त्र के देखने से स्त्री को सुखपूर्वक प्रसव होता है । च्यवन मन्त्र जैसे "ॐ क्षिप निक्षिप उन्मथ प्रमथ मुञ्च मुञ्च स्वाहा" इस मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित जल पिलाना चाहिए ॥ ३४२ ॥

अथोभयपञ्चदशकं दर्शयेत् । यथा—

वसुगुणवेदेन्दुबाणनवषट्सप्तयुगैः क्रमात् । सर्वं पञ्चदशं द्विस्तु त्रिंशकं नवकोष्ठके ॥ ३४३ ॥ नाडीऋतुवसुभिः सह पत्तदिग्गष्टादशभिरेव च । अर्कभुवनाब्धिसहितैरुभयत्रिंशकमाश्चर्यम् ३४४॥

उभयोरेकतरं शरावे लिखित्वा दर्शयेत् ।

उभयपञ्चदशकम् ।

८	३	४
१	५	९
६	७	२

उभयत्रिंशकम् ।

१६	६	८
२	१०	१८
१२	१४	४

उभयपञ्चदश यन्त्र के नौ कोठों में क्रम से ८, ३, ४ । १, ५, ९ और ६, ७, २ लिखना चाहिए । तथा उभयत्रिंशक यन्त्र के नौ कोठों में १६, ६, ८ । २, १०, १८ और १२, १४, ४ लिखना चाहिए । इनमें से किसी एक को सकोरे में लिखकर प्रसूता को दिखाना चाहिए ॥ ३४३-३४४ ॥

प्रसवमंत्र ।

यमुनासरटकरटतीरे जम्भलानाम राक्षसी । तस्याः स्मरणमात्रेण सद्यो नारी प्रसूयते ॥ ३४५ ॥ द्रष्टव्यम् ।

यमुना सरट इत्यादि प्रसव-मंत्र लिखकर गर्भिणी को दिखाना चाहिए ॥ ३४५ ॥

गृहाम्बुना गेहधूमपानं गर्भापकर्षणम्॥ ३४६ ॥

गृहधूम को काँजी के साथ पिलाने से प्रसव हो जाता है ॥ ३४६ ॥

पुटदग्धसर्पकञ्चुकमसृणमसीकुसुमसारसहिताक्षी । झटिति विशल्या जायते गर्भिणी मूढगर्भापि ॥ ३४७ ॥

सर्पकञ्चुकं शरावादिसम्पुटेन मृल्लिप्तेन दग्ध्वामसी ग्राह्या । मधुना श्लक्ष्णं पिष्ट्वा चक्षुरञ्जयेत् ॥

साँप की केंचुल को शरावसंपुट में भस्म करके और शहद में महीन पीसकर उसको आँख

में लगाने से मृतगर्भवाली स्त्री भी शल्य से रहित हो जाती है अर्थात् मृतगर्भ बाहर आ जाता है ॥ ३४७ ॥

स्नुहीक्षीरं तथा स्तोकं गर्भिण्या शिरसि क्षिपेत्। मृतगर्भं तदा सूते गर्भिणी रमणी द्रुतम् ॥३४८॥ गृहाम्बुना हिंगुसिन्धुपानं गर्भापकर्षणम् ॥ ३४६ ॥

थोड़ा-सा थूहर का दूध गर्भिणी के शिर पर डालने से गर्भिणी स्त्री मृतक गर्भ को शीघ्र ही पैदा कर देती है। तथा हींग और सेंधा नमक काँजी के साथ पीने से प्रसव हो जाता है ॥ ३४८-३४६ ॥

करिदमनदहनमूलं पिष्टं सलिलेन पानतः सद्यः। चिरमचिरजं गर्भं मृतममृतं वा निपातयति ॥ ३५० ॥

नागदौन और चीता की जड़ को पीसकर जल के साथ पीने से बहुत दिन का अथवा थोड़े दिन का गर्भ, मरा अथवा जीता हुआ, शीघ्र ही गिर पड़ता है ॥ ३५० ॥

कटुतुम्बाहिनिर्मोककृतवेधनसर्षपैः। कटुतैलान्वितैर्धूपो योनौ पातयतेऽमराम् ॥ ३५१ ॥

कड़ुई तूँबी, साँप की केंचुल, कड़ुई तोरई और सफेद सरसों; इनको कड़ुए तेल में मिलाकर योनि में धूप देने से आँवर (जरायु Placenta) गिर जाती है ॥ ३५१ ॥

कच्चेष्टितयांगुल्या घृष्टे कण्ठे पतत्यमरा। मूलेन लाङ्गलिक्या संलिप्ते हस्तपादे च ॥ ३५२ ॥

अँगुली में बाल लपेटकर कण्ठ में घिसने से तथा करिहारी की जड़ का पैरों पर लेप करने से आँवर गिर जाती है ॥ ३५२ ॥

अमरापातनं मद्यैः पिप्पल्यादिरजः पिबेत्। शालिमूलात्समात्रं वा मद्येनाम्लेन वा प्लुतम् ॥ ३५३ ॥

'पिप्पल्यादिगण'[1] का चूर्ण मदिरा के साथ पीने से अथवा शालि चावल की एक तोला जड़ मदिरा अथवा काँजी के साथ पीने से आँवर गिर जाती है ॥ ३५३ ॥

उपकुञ्चिकां पिप्पलीं च मदिरां लाभतः पिबेत्। सौवर्च्चलेन संयुक्तां योनिशूलनिवारिणीम् ॥ ३५४ ॥

काला जीरा, पीपरि और काला नमक; इनके चूर्ण को मदिरा के साथ सेवन करने से योनिशूल शान्त होता है ॥ ३५४ ॥

मक्कल्ल का स्वरूप और चिकित्सा।

सूताया हृच्छिरोबस्तिशूलं मक्कल्लसंज्ञितम्। यवक्षारं पिबेत्तत्र सर्पिषोष्णोदकेन वा ॥ पिप्पल्यादिगणक्वाथं पिबेद्वा लवणान्वितम् ॥ ३५५ ॥

सद्यःप्रसूता स्त्री के हृदय, शिर और बस्ति में जो शूल होता है उसको मक्कल्ल कहते हैं। इसमें जवाखार को घृत अथवा गरम जल के साथ पीने से लाभ होता है अथवा पिप्पल्यादि गण के क्वाथ में सेंधा नमक डालकर पीने से मक्कल्ल की पीड़ा शान्त होती है ॥ ३५५ ॥

पारावतशकृत्पीतं शालितण्डुलवारिणा। गर्भपातानन्तरोत्थरक्तस्रावनिवारणम् ॥ ३५६ ॥

शालि चावल के जल के साथ कबूतर की विष्ठा पीने से गर्भपात के पश्चात् का रक्तस्राव बन्द हो जाता है। मात्रा—२ रत्ती ॥ ३५६ ॥

जलपिष्टवरुणपत्रैः सघृतैरुद्वर्त्तनालेपौ। किक्किशरोगं हरतो गोमयपर्पादथो विहितौ ॥ ३५७ ॥

---

[1]—पिप्पल्यादिगण—पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, अतीस, सोंठ, जीरा, पाढ़ी, हींग, रेणुका, मूर्वा, सफेद सरसों, कुटकी, कालीमिर्च, बकायन, इन्द्रजव, अजमोदा, छोटी इलायची, भारंगी और वायविडंग। यह पिप्पल्यादिगण है।

भरने कंडे से आक्रान्त स्थान को रगड़कर उस पर बरना के पत्तों को जल में पीसकर उबटन या लेप करने से किकिसरोग शान्त होता है ॥ ३२७ ॥

प्रसव समय में पथ्य ।

गर्भसङ्गे तु कृष्णाहित्वग्भस्म मधुनाऽञ्जनम् । कट्यामास्फोटनं पाण्योर्योः स्फिचोर्गाढनिपीडनम् ॥ ३५८ ॥ वेण्याः स्पर्शस्तालु' कण्ठे मूर्ध्नि स्नुक्क्षीर लेपनम् । भूर्जं लाङ्गलिकी तुम्बी सर्पत्वक्कुष्ठ सर्षपाः ॥ ३५९ ॥ पृथग्द्वाभ्यां समस्तैर्वा योनि धूपनलेपनम् । नारीणां प्रसवे पथ्यमिदमाहुर्मनीषिणः ॥ ३६० ॥

जब प्रसव होने में रुकावट हो जाय और प्रसव पीड़ा अधिक होती हो तब काले सांप की केंचुली की भस्म और शहद आंखों में आंजे कमर तथा दूँकियों में थपकी लगावे कूल्हों को जोर से दबाए तालु तथा कण्ठ से चोटी के बालों को छुलावे, माथे में सेहुंड के दूध का लेप करे, तथा भोजपत्र कलिहारी तुम्बी सांप की केंचुल कूठ, सरसों इनमें से एक की अथवा दो-दो की या सबों की योनि में धूनी दें। और पीस कर लेप करे ये सब स्त्रियों को प्रसव कराने वाले हैं ॥ ३५८-३६० ॥

प्रसव समय में अपथ्य ।

श्रमं नस्यं रक्तमुक्तिं मैथुनं विषमाशनम् । विरुद्धान्नं वेगरोधमसात्म्यमतिभोजनम् ॥ ३६१ ॥ दिवानिद्रामभिष्यन्दि विष्टम्भि गुरु भोजनम् । योषितां प्रसवे प्राहुर पथ्यानि महर्षयः ॥ ३६२ ॥

परिश्रम, नस्यकर्म, रक्तमोक्षण, मैथुन, विषम, भोजन, विरुद्ध अन्न, मलमूत्रादिक वेगों का रोकना, अनुकूल पदार्थों का भोजन, अति खाना, दिन में सोना, तथा अभिष्यन्दी अजीर्ण कारक और गुरुपाकी भोजन ये सब गर्भिणी के लिये प्रसव समय में अपथ्य हैं ॥ ३६१-३६२ ॥

अमृतादि ।

अमृतानागरसहचरभद्रोत्कटपञ्चमूलजलदजलम् । पीतं मधुसंयुक्तं निवारयति सूतिकातङ्कम् ॥ ३६३ ॥

गिलोय, सोंठ, पियाबाँसा, प्रसारणी (खीप), पञ्चमूल (शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखुरू) और नागरमोथा; ये सब मिलित दो तोला लेकर ३२ तोले पानी में क्वाथ करें, जब ८ तोले जल शेष रहे तब उसको छान; कर और उसमें छः माशा शहद डालकर पीने से सूतिकारोग नष्ट होता है ॥ ३६३ ॥

सहचरादि ।

सहचरपुष्करवेतसमूलं विकङ्कतदारुकुलत्थसमम् । जलमत्र ससैन्धवहिंगुयुतं सद्यो ज्वरसूतिकशूलहरम् ॥ ३६४ ॥

पियाबासा की जड़, पोहकरमूल, बेत की जड़, विकंकत (कंटाई) की जड़, देवदारु और कुलथी; सब मिलित २ तोले लेकर ३२ तोले जल में औटावे । जब ८ तोले क्वाथ शेष रहे तब छानकर उसमें अन्दाज से थोड़ा सा सेंधा नमक और हींग मिलाकर पीने से सूतिका के ज्वर और शूल शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ३६४ ॥

दशमूलीकृतः क्वाथः साज्यः सूतिरुजापहः ॥ ३६५ ॥

दशमूल के क्वाथ में घृत डालकर पीने से सूतिकारोग नष्ट होता है ॥ ३६५ ॥

सूतिकादशमूल ।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरम् । टासी प्रसारणी विश्वं गुडूचीमुस्तकं तथा ॥ निहन्ति सूतिकारोगं ज्वरं दाहसमन्वितम् ॥ ३६६ ॥

शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरू, नीली कटसरैया, प्रसारणी, सोंठ, गिलोय और नागरमोथा ; इनका क्वाथ पीने

से ज्वर और दाहयुक्त सूतिकारोग नष्ट होता है ॥ ३६६ ॥

सहचरादि क्वाथ।

सहचरमुस्तगुडूचीभद्रोत्कटविश्ववालकैः क्वथितम्। पेयमिदं मधुमिश्रं सद्यो ज्वरशूलनुत् सूत्याः ॥ ३६७ ॥

पियावासा, नागरमोथा, गिलोय, प्रसारणी, सोंठ और सुगन्धवाला; इनके क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से प्रसूतिका का ज्वर और शूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ ३६७ ॥

सहचरकृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः। दीपनो ज्वरदोषामसूतिकारोगनाशनः ॥ ३६८ ॥

पियावासा की जड़ के क्वाथ में पीपल का चूर्ण मिलाकर पीने से अग्नि प्रदीप्त तथा ज्वर, आमदोष और सूतिकारोग नष्ट होता है ॥ ३६८ ॥

पीतकुरुण्टकथितं रजनीपर्युषितं पीतमपहरति। सूतिरोगान् सहस्रं तन्मूलं चर्वितं तद्वत् ॥ ३६९ ॥

पियावासा की जड़ के क्वाथ को रात भर धरा रक्खे, फिर प्रातःकाल ही उसका पान करे तो सूतिका के हजारों रोग नष्ट हों। इसकी जड़ को चबाने से भी यही फल होता है ॥ ३६९ ॥

वज्रकाञ्जिक।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यं शुण्ठी यमानिका। जीरके द्वे हरिद्रे द्वे विडं सौवर्चलं तथा ॥ ३७० ॥ एतैरेवौषधैः पिष्टैरारनालं विपाचयेत्। एतदामहरं वृष्यं कफघ्नं वह्निदीपनम् ॥ ३७१ ॥ काञ्जिकं वज्रकं नाम स्त्रीणामग्निविवर्द्धनम्। मक्कल्लशूलशमनं परं क्षीराभिवर्द्धनम् ॥ क्षीरपाकविधानेन काञ्जिकस्यापि साधनम् ॥ ३७२ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, सोंठ, अजवायन, सफेद जीरा, काला जीरा, हल्दी, दारुहल्दी, विड नमक और कालानमक, मिलित २ तोले। काँजी ८ तोले और जल ३२ तोले। सबको एकत्र कर पकावे। जब काँजीमात्र अवशेष रह जाय तब उतारकर छान ले। सेवन करने से यह वज्रकाञ्जिक आमदोष तथा कफ को नष्ट करता एवं वृष्य और अग्नि को दीप्त करनेवाला है। यह स्त्रियों की अग्नि को दीपन कर मक्कल्लशूल (अर्थात् प्रसूता के हृदय, शिर और वस्ति के शूल) को शान्त करता और दूध को बढ़ाता है। क्षीरपाक की विधि से काँजी को सिद्ध कर लेना चाहिए ॥ ३७०-३७२ ॥

भद्रोत्कटाद्यवलेह।

भद्रोत्कटतुलाक्वाथे पादशेषे विनिक्षिपेत्। शर्करायाः पलं त्रिंशत् चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ ३७३ ॥ वत्सकं धान्यकं मुस्तमुशीरं बिल्वमेव च। शाल्मलीवेष्टकं चैव पिप्पलीमरिचानि च ॥३७४॥ बला चातिविषा मांसी ह्रीवेरं सदुरालभम्। एषांच पलिकैर्भागैश्चूर्णैरेनं समाचरेत् ॥ ३७५ ॥ संग्रहग्रहणीं हन्ति सूतिकां च सुदुस्तराम्। वह्निं च कुरुते दीप्तं शूलानाहविबन्धनुत् ॥ ३७६ ॥

भद्रोत्कट (प्रसारिणी, खींप) ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोले मिलाकर क्वाथ करे। ६ सेर ३२ तोले क्वाथ अवशिष्ट रहने पर शक्कर डालकर पकावे। जब गाढ़ा होने लगे तब इन्द्रजव, धनियाँ, नागरमोथा, खस, बेलगिरी, मोचरस, पीपल, कालीमिर्च, खरैटी, अतीस, जटामांसी, सुगन्धवाला और जवासा; प्रत्येक चार-चार तोले लेकर कूट-पीसकर उसमें छोड़ दे और अच्छी तरह करछी से मिला दे। जब अवलेह सिद्ध हो जाय तब उतारकर रख ले। यह अवलेह संग्रहणी, कठिनतर सूतिका रोग, शूल, आनाह, मलबन्ध आदि रोगों को नष्ट तथा अग्नि को दीप्त करता है ॥ ३७३-३७६ ॥

भद्रोत्कटाद्यघृत।

समूलपत्रशाखं तु शतं भद्रोत्कटस्य च। वारिद्रोणेन संसाध्यं स्थाप्यं पादावशेषितम्॥ ३७७॥ घृतप्रस्थं विपक्तव्यं गर्भं दत्वा तु कार्षिकम्। सव्योषं पिप्पलीमूलं चित्रकं जीरकं तथा॥ ३७८॥ पञ्चमूलं कनिष्ठं च रास्नैरण्डसमन्वितम्। बला सिन्धु यवक्षारं स्वर्जिका कृष्णजीरकम्॥ ३७९॥ सिद्धमेतद्घृतं सद्यो निहन्यात् सूतिकामयान्। ग्रहणीं पाण्डुरोगं च अर्शांसि विविधानि च। अग्निं च कुरुते दीप्तं स्त्रीणां स्तन्यविशोधनम्॥ ३८०॥

जड़, पत्ते और शाखासहित भद्रोत्कट (प्रसारिणी) ४ सेर, क्वाथार्थ जल १२ सेर ४८ तोले। अवशिष्ट क्वाथ ६ सेर ३२ तोले। घृत १२८ तोले। कल्क के लिए—सोंठ, मिर्च, पीपल, पीपलामूल, चीता की जड़, जीरा, लघु पंचमूल, रास्ना, अरण्ड की जड़, खरैटी, सेंधा नमक, जवाखार, सज्जीखार और काला जीरा; प्रत्येक एक-एक तोला। विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से शीघ्र ही सूतिकारोग नष्ट होते हैं। यह भद्रोत्कटघृत ग्रहणी, पाण्डुरोग और सब प्रकार की बवासीरों को नष्ट कर अग्नि को दीप्त एवं स्त्रियों के दूध को शुद्ध करता है॥ ३७७-३८०॥

सौभाग्यशुण्ठीमोदक

कशेरुशृङ्गाटवराटमुस्तं द्विजीरकं जातिफलं सकोषम्। लवङ्गशैलेयसनागपुष्पं पत्रं वराङ्गं शटि धातकी च॥ ३८१॥ एला शताह्वा धनिकेभपिप्पली सपिप्पली शोषणका शतावरी। प्रत्येकमेषामिह कर्षयुग्मं लौहं तथाभ्रं पलभागयुक्तम्॥३८२॥ महौषधाच्चूर्णपलानि चाष्टौ पलानि त्रिंशत्सितशर्करायाः। पलानि चाष्टावपि सर्पिषश्च प्रस्थद्वयं क्षीरमिह प्रयुक्तम्॥३८३॥ पचेद्विधिज्ञः परमादरेण खादेदिदं शाणमथापि कोलम। कर्षान्वितं वापि समीक्ष्य शस्तं सौभाग्यशुण्ठी कथिता भिषग्भिः॥ अग्निप्रदा सूतिगदापहा च सर्वातिसारग्रहणीहरा च॥ ३८४॥

सोंठ का चूर्ण ३२ तोले लेकर ३ सेर १६ तोले दूध में पकावे, जब खोवा तैयार हो जावे तब उसको ३२ तोले घृत में भून ले। पश्चात् १२० तोले शक्कर की चाशनी में डाल कर पकावे। जब पाक तैयार हो जावे तब कसेरू, सिंघाड़ा, कमलगट्टा, नागरमोथा, काला जीरा, सफ़ेद जीरा, जायफल, जावित्री, लवङ्ग, छरछरीला, नागकेशर, तेजपात, दालचीनी, कचूर, धाय के फूल, छोटी इलायची, सौंफ, धनिया, गजपीपरि, कालीमिर्च और शतावरी; प्रत्येक दो-दो तोला तथा अभ्रकभस्म और लौह भस्म प्रत्येक दो-दो तोले उसमें मिलाकर उतार ले। इसकी मात्रा आधे तोले से २ तोले तक बलानुसार खानी चाहिए। वैद्यवरों की कही हुई यह सौभाग्यशुण्ठी जठराग्नि को प्रबल कर सूतिकारोगों, सब प्रकार के अतिसार और संग्रहणी रोगों को नष्ट करती है॥ ३८१-३८४॥

सौभाग्यशुण्ठीमोदक।

त्रिकटुत्रिफलाजाजी चातुर्जातकमुस्तकम्। जातीकोषफलं धान्यं लवङ्गं शतपुष्पिका॥ ३८५॥ नलिकामादनफलं यमानीद्वयधातकी। शतावरी तालमूली लोध्रं वारणपिप्पली॥ ३८६॥ पियालबीजममृता कर्पूरं चन्दनद्वयम्। कर्षप्रमाणान्येतेषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्॥ ३८७॥ नागरस्य च चूर्णस्य प्रस्थद्वयमितं क्षिपेत्। दृढे च मृण्मये पात्रे पाचयेन्मृदुनाग्निना॥ ३८८॥ यत्नतः पाकविद्वैद्यो गुडिकां कारयेत्ततः। घृतमष्टपलं दद्यात् क्षीरप्रस्थ-

द्वयं तथा ॥ ३८९ ॥ सार्द्धप्रस्थद्वयञ्चात्र शर्करायास्ततः क्षिपेद् । भक्षयेत्प्रातरुत्थाय अजाक्षीरं पिबेदनु ॥ ३९० ॥ आमवातं निहन्त्याशु कासं श्वासं सपीनसम् । ग्रहणीमम्लपित्तं च रक्तपित्तं क्षयं क्षतम् ॥ ३९१ ॥ स्त्रीरोगान् विंशतिं चैव तत्क्षणादेव नाशयेत् । अहन्यहनि च स्त्रीणां स्तनदार्ढ्यकरं परम् ॥ सौभाग्यजननं तासां पुष्टिदं धातुवर्द्धनम् ॥ ३९२ ॥

त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि), त्रिफला (हड़, बहेड़ा, आँवला), जीरा, चातुर्जात (छोटी इलायची, दालचीनी, नागकेशर, तेजपात), नागरमोथा, जायफल, जावित्री, धनिया, लवंग, सोये के बीज, नलिका (सुगन्धिद्रव्य), मैनफल, अजवायन, अजमोद, धाय के फूल, शतावरी, मूसली पठानी लोध, गजपीपल, चिरौंजी, गिलोय, कपूर, लालचन्दन और सफेद-चन्दन ; प्रत्येक एक-एक तोला लेकर इनका महीन चूर्ण कर ले । फिर १२८ तोले सोंठ के चूर्ण को ३ सेर १६ तोले दूध में डालकर मजबूत मिट्टी के पात्र में मन्दाग्नि से पकावे । जब पककर खोवे के तुल्य हो जाय तब ३२ तोले गौ का घृत डालकर भून ले । पश्चात् ४ सेर शक्कर की चाशनी में इसको डालकर पकावे । जब पाक सिद्ध हो जाय तब उपर्युक्त चूर्ण डालकर करछी से अच्छी तरह मिला दे और ठंढा करके लड्डू बना ले । मात्रा—आधे तोले से २ तक । प्रातःकाल इसका सेवन कर ऊपर से बकरी का दूध पीना चाहिए । यह आमवात, श्वास, खाँसी, पीनस, ग्रहणी, अम्लपित्त, रक्तपित्त, क्षय, उरःक्षत तथा स्त्रियों के २० प्रकार के रोगों को शीघ्र ही नष्ट करता है । यह सौभाग्यशुंठीमोदक दिन-दिन स्त्रियों के स्तनों को दृढ़, शरीर को पुष्ट करता तथा सौभाग्य और धातुओं को बढ़ाता है ॥३८९-३९२॥

बृहत्सौभाग्यशुण्ठी ।

महौषधं समादाय चूर्णयित्वा विधानतः । पलषोडशिकं नीत्वा क्षीरे दशगुणे पचेत् ॥ ३९३ ॥ क्रमेण पाकशुद्धिः स्याद् घृतप्रस्थे च भर्जयेत् । लघुपाकः प्रकर्त्तव्यो न खरो मोदकेष्वपि ॥ ३९४ ॥ शतावरी विदारी च मूशली गोक्षुरो बला । छिन्नासत्त्वं शताह्वा च जीरकौ व्योषचित्रकौ ॥ ३९५ ॥ त्रिसुगन्धियमानी च तालीशं कारवी मिशिः । रास्ना पुष्करमूलं च वांशी दारु शताह्वयम् ॥ ३९६ ॥ शटी मांसी वचा मोचत्वक्पत्रं नागकेशरम् । जीवन्ती मेथिका यष्टी चन्दनं रक्तचन्दनम् ॥ ३९७ ॥ कृमिघ्नं तोयसिंहास्यधन्याकं कटफलं घनम् । कर्षद्वयमितं भागं प्रत्येकं पटघर्षितम् ॥ ३९८ ॥ सर्वचूर्णाद् द्विगुणिता प्रदेया सितशर्करा । युक्त्या पाकविधानज्ञो मोदकं परिकल्पयेत् ॥ ३९९ ॥ शुद्धे भाण्डे निधायाथ खादेन्नित्यं यथाबलम् । वीर्याग्निबलकोष्ठञ्च नारीणाञ्च विशेषतः ॥ ४०० ॥ क्षौद्रानुपानतः प्रातः गुरुदेवान् समर्चयेत् । तद्वर्ण्यं पलयमायुष्यं वलीपलितनाशनम् ॥ ४०१ ॥ वयसः स्थापनं मोक्तमग्निदीपकरं परम् । तृष्याग्राममतिवृष्यञ्च रसायनमिदं शुभम् ॥ ४०२ ॥ विशेषात् स्त्रीगदे मोक्तं प्रसूतानां यथामृतम् । विंशतिर्व्यापदो योनेः प्रदरं पञ्चधापि च ॥ ४०३ ॥ योनिदोषहरं स्त्रीणां रजोदोषहरं तथा । पापसंसर्गजं दोषं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ४०४ ॥ आमवातहरञ्चैव शिरःशूलनिवारणम् । सर्वशूलहरञ्चैव विशेषात् कटिशूलनुत् ॥

४०५ ॥ वीर्यवृद्धिकरं पुंसां सूतिकातङ्क-नाशनम् । वातपित्तकफोद्भूतान् द्वन्द्वजान् सन्निपातजान् ॥ ४०६ ॥ हन्ति सर्वगदानेषा शुण्ठी सौभाग्य-दायिनी । सौभाग्यदायिनी स्त्रीणामतः सौभाग्यशुण्ठिका ॥ ४०७ ॥

सोंठ का चूर्ण १४ तोले ८ सेर दूध में पकावे । जब खोये की तरह गाढ़ा हो जाय तब १२८ तोले घी में भून ले, पश्चात् २ सेर १२ तोले खाँड़ की चाशनी में पकावे । जब लगभग पक चुके तब शतावर, विदारीकन्द, मूसली, गोखरू, खरैटी, गिलोय का सत, सोया, सफ़ेद जीरा, काला जीरा, त्रिकुटा, चित्रक, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, अजवाइन, तालीशपत्र, अजमोदा, सौंफ, रास्ना, पोहकर-मूल, पद्माख, देवदार, सोया, कपूर, जटा-मासी, बच, मोचरस, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, जीवन्ती, मेंथीबीज, मुलेठी, सफ़ेद चन्दन, लाल चन्दन, वायविडङ्ग, गन्धबाला अडूसा की छाल धनिया, कट्फल, मोथा; हर एक के ४ तोले चूर्ण को उसमें डाल दे और अच्छी प्रकार मिला नीचे उतार ले । इसमें पाक मृदु करना चाहिए । मोदक आदि के पाक में खरपाक नहीं करना चाहिए । पाक करने के पश्चात् लड्डू बना ले और शुद्ध बर्तन में रक्खे । मात्रा-आधे तोले से २ तोले तक गुरु और देवताओं की पूजा करके उपयुक्त मात्रा में शहद के साथ सेवन करना चाहिए । यह वर्णकारक, बलकारक, आयुर्वर्धक, वीर्यवर्धक, वय स्थापक तथा अग्नि की वृद्धि करता है । यह विशेषत सूतिकारोग में अत्यन्त लाभ-दायक है । इसके सेवन से योनिरोग, प्रदर, योनिदोष, आर्तवदोष, आमवात, शिरोवेदना सम्पूर्ण शूल, कमर का दर्द आदि रोग नष्ट होते हैं । सम्पूर्ण वातजन्य, पित्तजन्य, कफ-जन्य द्वन्द्वज तथा सन्निपातजन्य रोगों को शान्त करता है । यह बृहत्सौभाग्यशुण्ठी स्त्रियों के सौभाग्य को बढ़ाती है ॥ ३९३-४०७ ॥

प्रताप लङ्केश्वर ।

एकेन्दुचन्द्राऽनलशर्धि काष्ठा, फलैक भागैः क्रमशो विमिश्रम् । सूताऽभ्रगन्धोपण लोह शङ्ख वन्योत्पला भस्म विषं सुपिष्टम् ॥ ४०८ ॥ प्रसूति चापाऽनिल दन्त बन्ध मार्द्राम्बुना घोर सुसन्निपा-तान् पुरामृताऽऽर्द्रात्रिफला युतोऽयं गुदाऽङ्कुरान् वल्लमितो निहन्ति ॥४०९॥ निशानुऽपानैर्निजपथ्य युक्त्या सर्वाऽति-सार ग्रहणी गदांश्च प्रताप लङ्केश्वर नामधेयः सूतः प्रयुक्तो गिरिराज पुत्र्या ॥ ४१० ॥

शुद्ध पारा १ भाग अभ्रकभस्म १ भाग शुद्ध गन्धक १ भाग मरिच ३ भाग लोहभस्म ४ भाग शङ्खभस्म ८ भाग जंगली कण्डों की राख १६ भाग शुद्ध विषनाग लेकर सबको महीन पीसकर कज्जली में मिलाकर रख दे । इनमें से २-२ रत्ती अदरख के रस के साथ देने से प्रसूति-वात धनुर्वात दाती भिच जाना कठिन सन्निपात आदि रोगों का विनाश करता है । यही रस शुद्ध गूगल गिलोय अदरक त्रिफला के साथ देने से बवासीर को नाश करता है । रोगानुसार अनुपान और पथ्यों के साथ लेने से सब अतिसार और ग्रहणी प्रभृति रोग मिट जाते हैं विशेष अनुभूत है ॥ ४०८-४१० ॥

सूतिकारि रस ।

टङ्कणं मूर्च्छितं सूतं गन्धकं हेम-तारकम् । जातीफलं तथा कोपं लवङ्गैला च धातकी ॥ ४११ ॥ वत्सकेन्द्रयवः पाठा शृङ्गी त्रिवाजमोदिका । प्रसारणी-रसैः कार्या गुडी गुञ्जाद्वयोन्मिता ॥ ४१२ ॥ भक्षयेच्चद्रसैः प्रातः सूतिकातङ्क-शान्तये । जीर्णज्वरं हन्ति शोथं ग्रहणी-मीहकासनुत् ॥ ४१३ ॥

सुहागा, मूर्च्छित पारा (रससिन्दूर), गन्धक, स्वर्णभस्म, चाँदी की भस्म, जायफल, जावित्री, लौंग, छोटी इलायची, धाय के फूल, कुड़ा की छाल, इन्द्रजौ, पाढ़, काकड़ासिंगी, सौंठ, अजमोदा; इन्हें एकत्रकर प्रसारणी के रस में घोटकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। सूतिकारोग की शान्ति के लिये गोली प्रसारणीरस के अनुपान से प्रातःकाल सेवन करावे। यह रस जीर्णज्वर, शोथ, ग्रहणी, प्लीहा तथा खाँसी को नष्ट करता है॥ ४११-४१३॥

सूतिकाघ्न रस।

रसगन्धकलौहाभ्रं जातीकोषं सुवर्चलम्। समांशं मर्दयेत् खल्ले छागीदुग्धेन पेषयेत्॥ ४१४॥ गुञ्जाद्वयप्रमाणेन सूतिकातङ्कनाशनः। ज्वरातिसाररोगघ्नः कासश्वासातिसारनुत्॥ ४१५॥ सूतिकाघ्नो रसो नाम ब्रह्मणा परिकीर्त्तितः॥ ४१८॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, जावित्री, सौंचल नमक; इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर बकरी के दूध से खरल में पीसकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। यह सूतिकारोग, ज्वरातिसार, खाँसी, श्वास तथा अतिसार रोग को नष्ट करता है॥ ४१४-४१६॥

सूतिकान्तक रस।

रसाभ्रं गन्धकं व्योषं सुवर्णमाक्षिकं विषम्। सर्वमेकीकृतं चूर्णं खादेद् गुञ्जैकसम्मितम्॥ ४१७॥ सूतिकाग्रहणीरोगं वह्निमान्द्यञ्च नाशयेत्। अतीसारञ्च शमयेदपि पथ्यविवर्जितम्॥ ४१८॥ कासश्वासातिसारघ्नो वाजीकरण उत्तमः॥

पारा, अभ्रकभस्म, गन्धक, त्रिकुटा, स्वर्णमाक्षिकभस्म, बच्छनाग; इन्हें बराबर मात्रा में एकत्र मिला ले। मात्रा—१ रत्ती। यह रस सूतिकारोग, ग्रहणी, मन्दाग्नि, दुःसाध्य अतीसार, खाँसी, श्वास आदि रोगों को नष्ट करता तथा वाजीकरण है॥ ४१७-४१८॥

रसशार्दूल।

अभ्रं ताम्रं तथा लौहं राजपट्टं रसस्तथा। गन्धटङ्कमरीचञ्च यवक्षारं समांशकम्॥ ४१९॥ तथात्र तालकञ्चैव त्रिफलायाश्च तोलकम्। तोलकञ्चामृतञ्चैव गुञ्जाद्वयमिता वटी॥ ३२०॥ ग्रीष्मसुन्दरकस्यापि नागवल्लीरसेन च। भावयेत् सप्तधा हन्ति ज्वरकासाङ्गसंग्रहम्॥ सूतिकातङ्कशोथादि स्त्रीरोगञ्च विनाशयेत्॥ ४२१॥

अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म, राजपट्ट (कान्तपाषाण, चुम्बक पत्थर), पारा, गन्धक सुहागा, कालीमिर्च, जवाखार, हरताल, त्रिफला, बच्छनाग, हर एक १ तोला। इन्हें एकत्र मिलाकर ग्रीष्मसुन्दर तथा पान के रस से पृथक्-पृथक् सात-सात भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। यह रस ज्वर, खाँसी, सूतिकारोग, शोथ तथा स्त्री रोगों को नष्ट करता है॥ ४१९-४२१॥

महारस शार्दूल।

अभ्रकं पुटितं ताम्रं स्वर्णं गन्धञ्च पारदम्। शिला टङ्कं यवक्षारं त्रिफलायाः पलं पलम्॥ ४२२॥ गरलस्य तथा ग्राह्यमर्द्धतोलकसम्मितम्। त्वगेलापत्रकञ्च च जातीकोषलवङ्गकम्॥ ४२३॥ मांसी तालीशपत्रञ्च माक्षिकञ्च रसाञ्जनम्। एषां द्विकार्षिकं भागं देयञ्चापि विचक्षणैः॥ ४२४॥ द्रवे किञ्चित् स्थिते चूर्णे मरिचस्य पलं क्षिपेत्। भावना च प्रदातव्या पूर्वोक्तेन रसेन च॥ ४२५॥ निहन्ति विविधान् रोगान् ज्वरान् दाहान् वमिं भ्रमिम्।

तथातिसारकञ्चैव वह्निमान्द्यमरोचकम् ॥ विशेषाद् गर्भिणीरोगं नाशयेदचिरेण च ॥ ४२६ ॥

अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, स्वर्णभस्म, गन्धक, पारा, मैनशिल, सुहागा, जवाखार, त्रिफला (मिलित), हरएक ४ तोले, बच्छनाग आधा तोला; दारचीनी, इलायची, तेजपात, जावित्री, लौंग, जटामांसी, तालीशपत्र, स्वर्णमाक्षिक-भस्म, रसौत हरएक ४ तोले, इन्हें इकट्ठा मिला ले, फिर इसमें ग्रीष्मसुन्दर तथा पान के रस की अलग २ सात भावना दे। अन्त में जब चूर्ण कुछ गीला हो तब कालीमिर्च का चूर्ण ४ तोले डाल दे। मात्रा—२ रत्ती। यह ज्वर, दाह वमन, भ्रम, अतिसार, मंदाग्नि, अरुचि तथा गर्भिणीरोग को नष्ट करता है ॥ ४२२-४२६ ॥

महाभ्रवटी।

मृतमभ्रञ्च लौहञ्च कुनटी ताम्रकं तथा। रसगन्धकटङ्कञ्च यवक्षारफलत्रिकम् ॥ ४२७ ॥ प्रत्येकं तोलकं ग्राह्यमूषणं पञ्च-तोलकम्। सर्वमेकीकृतं चूर्णं प्रत्येकेन विभावयेत् ॥ ४२८ ॥ ग्रीष्मसुन्दरसिंहास्य-नागवल्ल्या रसेन च। रक्तिकैकप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ योजयेत्सर्वथा वैद्यः सूतिकारोगशान्तये ॥ ४२९ ॥

अभ्रकभस्म, लौहभस्म, मैनशिल, ताम्रभस्म, पारा, गन्धक, सुहागा, जवाखार, त्रिफला; हरएक १ तोला, कालीमिर्च ५ तोले; इन्हें एकत्र मिलाकर ग्रीष्मसुन्दर, अडूसा तथा पान के रस से घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। यह गोली सूतिकारोग नष्ट करती है ॥ ४२७-४२९ ॥

सूतिकाभरण रस।

सुवर्णं रजतं ताम्रं प्रवालं पारदं समम्। गन्धकं चाभ्रकं तालं शिला त्रिकटु रोहिणी ॥ ४३० ॥ एतानि समभागानि रविक्षीरेण मर्दयेत्। चित्रमूलकषायेण पौनर्णवरसेन च ॥ ४३१ ॥ ततो लघुपुटे पाच्यं मूषायां धारयेत्पृथक्। अनुपानविशेषेण देयं गुञ्जा-र्द्धकं च तत् ॥ ४३२ ॥ सूतिकारोगम-तुलं धनुर्वातं विशेषतः। त्रिदोषोत्थान् हरेद् व्याधीनिच्छापथ्यं प्रदापयेत् ॥ सूतिका-भरणं नाम सर्वरोगहरञ्च तत् ॥ ४३३ ॥

सुवर्णभस्म, चाँदी की भस्म, ताम्रभस्म, मूँगाभस्म, पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसिल, त्रिकुटा, कुटकी, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर आक के दूध, चीता की जड़ के क्वाथ तथा सौंठी के रस से क्रमशः घोटकर मूषा में बन्दकर लघुपुट दे। मात्रा—आधी रत्ती। इसमें दोष के अनुसार अनुपान का व्यवस्था देनी चाहिए। यह रस सूतिकारोग धनुर्वात तथा अन्य त्रिदोषजन्य रोगों को नष्ट करता है। पथ्य—इच्छानुसार भोजन ॥ ४३०-४३३ ॥

लक्ष्मीनारायण रस।

शुद्धगन्धकमेतञ्च टङ्कणं विषहिङ्गु-लम्। रोहिण्यतिविषा कृष्णा वत्सका-भ्रकसैन्धवम् ॥ ४३४ ॥ एतानि समभा-गानि खल्लमध्ये विनिक्षिपेत्। दन्तिद्रावैः फलद्रावैर्मर्दयेच्च दिनत्रयम् ॥ ४३५ ॥ गुञ्जामितां वटीं कृत्वा आर्द्रकस्य जलैर्द-देत्। दोषज्वरे सन्निपाते विसूच्यां विषम-ज्वरे ॥ ४३६ ॥ अतिसारे ग्रहण्यां च रक्तामे मेहशूलजित्। सूतिकावातदोषघ्नो लङ्कशमिव राघवः ॥ ४३७ ॥ इष्टान्नं भोजयेत्पथ्यमभ्यङ्गं स्नानमाचरेत्। कर्पूर-मिश्रताम्बूलं प्रसूनं हरिचन्दनम् ॥ ४३८ ॥ नारिकेलोदकं पीत्वा नारीणां सद्ममेव च। लक्ष्मीनारायणो नाम रसानामुत्तमो रसः ॥ ४३९ ॥

शुद्ध गन्धक, सुहागा, बच्छनाग, शुद्ध सिंगरफ़, कुटकी, अतीस, पीपल, इन्द्रजौ, अभ्रक-भस्म, सेंधानमक, इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर दन्तीमूल तथा मदनफल के क्वाथ से अलग-अलग तीन दिन घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। अनुपान—अदरख का रस। यह वात आदि दोषों से पैदा हुए ज्वर, अतिसार ग्रहणी, रक्तातीसार, आमातीसार, प्रमेह, शूल, प्रसूतवात आदि रोगों को नष्ट करता है। पथ्य—इच्छानुसार तृप्तिदायक भोजन, स्नान, तैल की मालिश, बरास-कपूर-युक्त पान का सेवन, पुष्पमाला का धारण, हरिचन्दन का लेप तथा नारियल का जल पीकर स्त्रीसहवास करना चाहिए। यह लक्ष्मीनारायण नामक रस सब रसों से उत्तम है ॥ ४३४-४३९ ॥

जीरकाद्यमोदक ।

जीरकस्य पलान्यष्टौ शुण्ठीधान्यं फलत्रयम् । शतपुष्पा यमानी च कृष्णजीरं पलं पलम् ॥ ४४० ॥ क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं खण्डस्यार्द्धशतं पलम् । घृतस्यापि पलान्यष्टौ शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ४४१ ॥ व्योषं त्रिजातकं चैव विडङ्गं चव्यचित्रकम् । मुस्तकं च लवङ्गं च पलांशं संप्रकल्पयेत् ॥ ४४२ ॥ मन्देन वह्निना पक्त्वा मोदकं कारयेद्भिषक् । सर्वयोपिद्विकाराणां नाशनं वह्निदीपनम् । सूतिकारोगशमनं विशेषाद् ग्रहणीहरम् ॥ ४४३ ॥

जीरा ३२ तोले, सोंठ ३२ तोले, धनिया ३२ तोले तथा सौंफ, अजवायन और काला जीरा चार-चार तोले; इनको सबको महीन पीस कर ३ सेर १६ तोले दूध में डालकर मन्दाग्नि से पकावे। जब खोवा के तुल्य हो जाय तब ३२ तोले घृत में भून ले। पश्चात् २॥ सेर शक्कर की चाशनी बनाकर उसमें डालकर पकावे। जब पाक सिद्ध हो जाय तब सोंठ, मिर्च, पीपल, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात, वायविड़ंग, के चार-चार तोले चूर्ण को उसमें डालकर लड्डू बना ले। मात्रा—आधे तोले से २ तोले तक। यह स्त्रियों के सब प्रकार के रोगों को नष्ट कर अग्नि को प्रचण्ड तथा सूतिकारोग और ग्रहणीरोग को नष्ट करता है ॥ ४४०-४४३ ॥

सूतिकारिरस ।

रसं गन्धं मृताभ्रं च मृतताम्रं च तुल्यकम् । चूर्णितं मर्दयेद्यत्नात् भेकपर्णीरसेन च ॥ ४४४ ॥ छायाशुष्का गुटी कार्या गुञ्जार्द्धप्रमिता ततः । मात्रया कटुना देया सूतिकातङ्कनाशिनी ॥ ज्वरतृष्णारुचिहरी शोथघ्नी वह्निदीपिनी ॥ ४४५

शुद्ध पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म और ताम्र-भस्म; इनको सम भाग ले। पहले पारा और गन्धक की कज्जली करे, पश्चात् सबको मिलाकर मण्डूकपर्णी के रस से घोटकर आधी-आधी रत्ती की गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा ले। अनुपान—अदरख का रस। यह सूतिकारस सूतिकारोग, ज्वर, तृषा, अरुचि और शोथरोगों को नष्ट तथा जठराग्नि को दीप्त करता है ॥ ४४४-४४५ ॥

बृहत्सूतिकाविनोद रस ।

शुण्ठ्या भागो भवेदेको द्वौ भागौ मरिचस्य च । पिप्पल्याश्च त्रिभागं स्यादर्द्धभागं च रोमकम् ॥ ४४६ ॥ जातीकोषस्य भागौ द्वौ द्वौ भागौ तुत्थकस्य च । सिन्धुवाररसेनैव मर्दयेदेकयामतः ॥ ४४७ ॥ मधुना सह सेवेत सूतिकातङ्कनाशनम् ॥ ४४८ ॥

सोंठ, १ भाग, कालीमिर्च २ भाग, पीपल ३ भाग; साँभर नमक आधा भाग, जावित्री २ भाग और नीलाथोथा २ भाग; इन सबको एकत्र कर सँभालू के रस से एक पहर तक घोट कर मटर के समान गोली बना ले।

अनुपान—शहद । यह रस सूतकारोगों को नष्ट करता है ॥ ४४६-४४८ ॥

स्तन्यदुष्टिचिकित्सा।

वनकार्पासकेक्षूणां मूलं सौवीरकेण वा। विदारीकन्दं सुरया पिबेद्वा स्तन्यवर्द्धनम् ॥ ४४९ ॥

वनकपास और ईख की जड़ के चूर्ण को कांजी के साथ अथवा विदारीकन्द को मदिरा के साथ सेवन करने से स्त्रियों के दुग्ध की वृद्धि होती है ॥ ४४९ ॥

दुग्धेन शालितण्डुलचूर्णपानं विवर्द्धयेत्। स्तन्यं सप्ताहतः क्षीरसेविन्यास्तु न संशयः ॥ ४५० ॥

दूध का सेवन करनेवाली स्त्री यदि दूध के साथ शालि चावलों के चूर्ण का पान करे तो एक सप्ताह में निस्सन्देह दूध की वृद्धि होती है ॥ ४५० ॥

हरिद्रादि वचादि वा पिबेत् स्तन्यविशुद्धये। तत्र वाताधिके स्तन्ये दशमूलीजलं पिबेत् ॥ ४५१ ॥

हरिद्रादिगण[1] अथवा वचादिगण[2] का क्वाथ पीने से दूध की शुद्धि होती है। यदि वात से दूध दूषित हो गया हो, तो दशमूल का काढ़ा पीना चाहिए ॥ ४५१ ॥

पित्तदुष्टेऽमृता भीरु पटोलं निम्बचन्दनम्। धात्रीकुमारश्च पिबेत् क्वाथयित्वा सशारिवम् ॥ ४५२ ॥

पित्त से दूध दूषित हो तो गिलोय, शतावरी परवल के पत्ते, नीम की छाल, लालचन्दन और अनन्तमूल; इनका क्वाथ बनाकर धाय अथवा बच्चे की माता को पिलाना चाहिए। यदि पित्त-दूषित दूध से बच्चे को हानि पहुँची हो, तो बच्चे को भी यह क्वाथ पिलाना हितकर होता है ॥ ४५२ ॥

धात्रीस्तन्यविशुद्ध्यर्थं मुद्गयूषरसाशना। भार्गीदारुवचापाठाः पिबेत्सातिविषाः शृताः ॥ ४५३ ॥

दूध बढ़ाने के लिए धाय को चाहिए कि मूँग का यूष और मांसरस का भोजन करे तथा भारंगी, देवदारु, वच, पाढ़ और अतीस का काढ़ा पीवे ॥ ४५३ ॥

कुक्कुरमेञ्चुकमूलं चर्वितमास्येन धारितं जयति। सप्ताहात् स्तनकीलं स्तन्यं चैकान्ततः कुरुते ॥ ४५४ ॥

कुकरमेञ्चुक (नागबला) की जड़ को चबाकर मुख में रखने से एक सप्ताह में स्तनकीलरोग दूर होता है और दूध भी बढ़ता है ॥ ४५४ ॥

शोथं स्तनोत्थितमवेक्ष्य भिषग्विदध्याद् यद्विद्रधावभिहितं बहुधा विधानम्। आमे विदह्यति तथैव गते च पाकं तस्याः स्तनौ सततमेव हि निर्दुहीत ॥ ४५५ ॥

स्तनों पर सूजन हो आवे तो वैद्य को उस सूजन की कच्ची, पच्यमान और पाकावस्था को विचार कर विद्रधिरोग के समान उसकी चिकित्सा करनी चाहिए, परन्तु सब अवस्थाओं में स्तन का दूध अवश्य ही निकलवा देना चाहिए ॥ ४५५ ॥

विशालामूललेपस्तु हन्ति पीडां स्तनोत्थिताम्। निशाकनकमूलाभ्यां लेपश्चापि स्तनार्तिहा ॥ ४५६ ॥

इन्द्रायण की जड़ का अथवा हल्दी और धतूरे की जड़ का लेप करने से स्तन की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ४५६ ॥

मूषिकरसया शौकरमाहिषगजमांस-

---

१ हरिद्रादिगण—"हरिद्राद्वयपट्याह्वसहीशक्रयवैः कृतः।" हल्दी, दारुहल्दी, मुलेठी, बड़ी कटेरी और इन्द्रजौ।

२ वचादिगण—"वचामुस्तं भद्रारुनागरातिविषागणः।" वच, नागरमोथा, देवदारु, सोंठ, अतीस।

चूर्णयुतया। अभ्यङ्गमर्दनाभ्यां सुकठिनपीनौ स्तनौ भवतः॥ ४५७॥

चूहे की चर्बी में सूअर, भैंस और हाथी के मांस का चूर्ण मिलाकर स्तनों पर लगाने से अथवा मर्दन करने से स्तन कठिन और मोटे हो जाते हैं॥ ४५७॥

महिषीभवनवनीतं व्याधिबलोग्रा तथैव नागबला। पिष्ट्वा मर्दनयोगात् पीनं कठिनं स्तनं कुरुते॥ ४५८॥

कूट, खरेटी, बच और गंगेरन; इनको महीन पीस कर भैंस के मक्खन में मिलाकर मालिश करने से स्तन पुष्ट (मोटे) और कठिन हो जाते हैं॥ ४५८॥

श्रीपर्णी तैल।

श्रीपर्णीरसकल्काभ्यां तैलं सिद्धं तिलोद्भवम्। तत्तैलं तुलकेनैव स्तनस्योपरि धारयेत्॥ पतितावुत्थितौ स्त्रीणां भवेतां च पयोधरौ॥ ४५९॥

खंभारी के रस और कल्क से तिल का तेल सिद्ध करके उसमें रुई का फाहा भिगोकर स्तन पर रखने से स्त्रियों के पड़े हुए भी स्तन उठ जाते हैं, अर्थात् ढीले हुए स्तन कठिन हो जाते हैं॥ ४५९॥

कासीसतुरगगन्धाशावरगजपिप्पलीविपक्वेन। तैलेन यान्ति वृद्धिं स्तनकर्णवराङ्गलिङ्गानि॥ ४६०॥

कसीस, असगन्ध, लोध और गजपीपरि; इनके कल्क से तिल का तेल सिद्धकर मालिश करने से स्तन, कान, योनि और लिङ्ग की वृद्धि होती है॥ ४६०॥

प्रथमर्त्तौ तण्डुलाम्भो नस्यं कुर्यात् स्तनौ स्थिरौ। गोमहिषीघृतसहितं तैलं श्यामाकृताञ्जलिवचाभिः॥ सत्र्युनिशाभिः सिद्धं नस्यं स्तनवर्द्धनं परमम्॥ ४६१॥

प्रथम रजोदर्शन के समय में चावल के जल का नस्य लेने से स्तन स्थिर हो जाते हैं। गौ का घृत ४ छटाँक, भैंस का घृत ४ छटाँक और तिल का तेल ८ छटाँक। कल्क के लिए अनन्तमूल, लज्जावन्ती, बच, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि) और हल्दी सब मिलित ४ छटाँक। यथाविधि तैल सिद्ध कर नस्य लेने से यह स्तनों को बढ़ाता है॥ ४६१॥

सुतनूकरोति मध्यं पीतं मथितेन मागधीमूलम्॥ ४६२॥

पीपलामूल के चूर्ण को मट्ठे के साथ सेवन करने से स्त्रियों का कटिभाग पतला हो जाता है॥ ४६२॥

वेतसस्य तु मूलानि क्राथयेन्मृदुनाग्निना। भगं प्रक्षालितं तेन गाढं समुपजायते॥ ४६३॥

मन्दाग्नि से बेत की जड़ का काढ़ा बनाकर योनि धोने से संकुचित हो जाती है॥ ४६३॥

सूतिकाहर रस।

हिंगुलं हरितालं च शङ्खभस्मायसो रजः। खर्परं धूर्त्तबीजं च यवक्षारं च टङ्कनम्॥ ४६४॥ विभीतककषायेण भावयित्वा विधानतः। मर्दयित्वा विदध्याच्च गुञ्जैकप्रमिता वटीः॥ ४६५॥ यथादोषानुपानेन प्रयुक्तोऽयं रसोत्तमः। निहन्यात् सूतकातङ्कान् वह्निस्तृणगणानिव॥ ४६६॥

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध हरताल, शङ्ख की भस्म, लोहभस्म, शुद्ध खपरिया, धतूरे के बीज, जवाखार और सुहागा; इनको बहेड़े के काढ़े से घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना ले। दोष का विचार कर उपयुक्त अनुपान के साथ सेवन करने से यह उत्तम रस सूतिकारोग को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे अग्नि तृणसमूह को नष्ट करती है॥ ४६४-४६६॥

बृहत्सूतिकावल्लभ रस ।

सूतं गन्धं माक्षिकं च व्योमेन्दुं हेमतालकम् । रजतं फणिफेनं च जातीकोषफले तथा ॥ ४६७ ॥ मुस्तकस्य बलायाश्च शाल्मल्याः स्वरसेन च । भावयित्वा वटीः कुर्याद् द्विगुञ्जापरिमाणतः ॥ ४६८ ॥ सूतिकावल्लभो नाम प्रयुक्तोऽयं महान् रसः । निहन्यात् सूतिकारोगान् दुर्धारं ग्रहणीगदम् ॥ ४६९ ॥ अतीसारं सुघोरं च दौर्बल्यं वह्निमन्दताम् । जनयेदाशु पुष्टिं च कान्तिं मेधां धृतिं तथा ॥ ४७० ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, सोनामक्खी की भस्म, अभ्रकभस्म, कपूर, सोने की भस्म, शुद्ध हरताल, चाँदी की भस्म, अफीम, जावित्री, जायफल, नागरमोथा और खरेटी; इनको सम भाग लेकर सेमर के रस से घोटकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना ले। इस सूतिकावल्लभ रस के सेवन करने से सब प्रकार के सूतिकारोग, घोर संग्रहणी, अतीसार, दुर्बलता और अग्निमान्द्य आदि रोग नष्ट होते हैं। यह पुष्टि, कान्ति, बुद्धि और स्मरणशक्ति को बढ़ानेवाला है ॥ ४६७-४७० ॥

धातक्यादि तैल ।

धातकीधवधन्याकधात्रीधुस्तूरधूपनैः । नीलीनीपनतैर्निम्बुनीरदनागरैः ॥ ४७१ ॥ पथ्यापद्मपृथापुत्रैः पत्रपत्रोर्णपूतिकैः । फणिज्भकफलेन्द्राभ्यां फञ्जिकाफेनफेनिलैः ॥ ४७२ ॥ कल्कैः कोलकपित्थाभ्यां कृष्णाकन्याकशेरुभिः । पिष्टैः पचेत् पयस्विन्याः पयसा पाकपण्डितः ॥ ४७३ ॥ तैलं तिलभवं तिष्ये तिष्यतोयेन तन्मनाः । पूजयित्वा परानन्दां प्रयतः परमेश्वरीम् ॥ ४७४ ॥ सूरसूनुदितमिदं सूतिकामयसूदनम् । सेवेत सततं सूता सुखदं सुखसेविनी ॥ ४७५ ॥

सुखसेविनी पथ्यसेविनी ।

आँवले का रस ६ सेर ३२ तोले, गोदुग्ध ६ सेर ३२ तोले, तिल का तेल १२८ तोले, कल्क के लिए धाय के फूल, धव की छाल, धनियाँ, आँवला, धतूरा राल, नील की जड़, कदम्ब की छाल, तगर, नीम की छाल, नींबू की जड़, नागरमोथा, सोंठ, हड़, कमल की जड़, अर्जुन की छाल, तेलपत्र, अरलू की छाल, करंजबीज, मरुआ, करौंदा (बड़ी जामुन) की छाल, भारंगी, समुद्रफेन, रीठा, बेर, कैथ, पीपरि, घीकुवार और कसेरू; मिलित ३२ तोले । पुष्य नक्षत्र में यथाविधि तेल सिद्ध करे । परमानन्ददात्री भगवती की पूजा करके सूरसूनु के कहे हुए इस सूतिकारोगनाशक धातक्यादि तेल का प्रसूता स्त्री को नियमित सेवन करना चाहिए और पथ्य से रहना चाहिए ॥ ४७१-४७५ ॥

जीरकाद्यरिष्ट ।

जीरकस्य तुलाद्वन्द्वं चतुर्द्रोणजले पचेत् । द्रोणशेषे क्षिपेत् तत्र तुलात्रयमितं गुडम् ॥४७६॥ धातकीं षोडशपलां शुण्ठीं च द्विपलोन्मिताम् । जातीफलं मुस्तकं च चातुर्जातं यमानिकाम् ॥ ४७७ ॥ कक्कोलं देवपुष्पं च पलमानेन निक्षिपेत् । मासं संस्थापयेद् भाण्डे मृत्तिकापरिनिर्मिते ॥ ४७८ ॥ ततः कल्कान् विनिर्हृत्य पाययेत् कर्षमात्रया । अरिष्टो जीरकाद्योऽयं निहन्यात् सूतिकामयान् ॥ ग्रहणीमतिसारं च तथा वह्नेश्च वैकृतम् ॥ ४७९ ॥

१० सेर जीरा को २ मन २२ सेर १२ तोले जल में पकावे। जब २५ सेर ४८ तोले जल बाकी रहे तब उसमें १५ सेर गुड़, धाय के फूल ६४ तोले, सोंठ आठ तोले तथा जाय-

फल, नागरमोथा, चातुर्जात (छोटी इलायची, दालचीनी, नागकेसर, तेजपात), अजवायन, कंकोल और लवङ्ग, चार-चार तोले चूर्ण करके डाल दे । इनको मिट्टी के पात्र में रखकर और उसका मुख बन्द करके एक महीने तक धरा रक्खे । फिर छानकर शीशे अथवा चीनी के बर्तन में रक्खे । मात्रा १। तोले से २॥ तोले तक । यह जीरकाद्यरिष्ट सूतिकारोग, संग्रहणी, अतिसार और अग्नि की मन्दता को नष्ट करता है ॥ ४७६-४७१ ॥

गर्भिण्याः पथ्यानि ।

शालयः षष्टिकामुद्र गोधूमालाज शक्तवः। नवनीतं घृतं क्षीरं रसालां मधुशर्करा ॥ ४८० ॥ पनसं कदलं धात्री द्राक्षाऽऽम्रं- स्वादुशीतलम् । कस्तूरी चन्दनं माला कर्पूरमनुलेपनम् ॥ ४८१ ॥ चन्द्रिका स्नानमभ्यङ्गो मृदुशय्या हिमानिलः सन्तर्पणं प्रिया वाचो विहाराश्च मनो- रमाः । प्रियङ्करं चान्नपानं गर्भिणीभ्यो हितं भवेत् ॥ ४८२ ॥

शालि और साठी चावल मूँग गेहूँ धान के खील का सत्तू मक्खन घृत दुग्ध रसाला (सिखरन) मधु शर्करा कटहर केला आँवला दाख तथा आम के पके फल मधुर तथा शीतल द्रव्य कस्तूरी श्वेतचन्दन सुगन्धित माला कर्पूर का लेप चाँदनी रात में रहना स्नान तैल मालिश कोमल शय्या ठण्ढी वायु सन्तर्पण क्रियायें प्रिय-वचन मनोरम विहार प्रिय रुचिकर अन्नपान ये सब गर्भिणी के लिये लाभदायक है ॥४८०-४८२॥

गर्भिण्या अपथ्यानि ।

स्वेदनं वमनं क्षारं कलहं विषमाशनम् । असात्म्यं नक्तसंचारं चौर्यचाप्रिय दर्श- नम् ॥ ४८३ ॥ अतिव्यवायमायासं भारं प्रावरणं गुरु । अकाल जागरस्वप्नं कठि- नोत्कटकासनम् ॥ ४८४ ॥ शोक क्रोध- भयोद्वेगवेग श्रद्धाविधारणम् । उपवासध्व तीक्ष्णोष्णं गुरुविष्टम्भिभोजनम् ॥४८५॥ नक्तं निरशनं श्वभ्रकूपेक्षां मद्यमामिषम् । उत्तानशयनं यच्च स्त्रियो नेच्छन्ति तत्त्यजेत् ॥ ४८६ ॥ पथारक्तस्रुतिं शुद्धि वस्तिमामासतोऽष्टमात् । एभिर्गर्भः स्रवे- दामः कुक्षौशुष्येन्म्रियेतवा ॥ ४८७ ॥ भजेन्न नित्यं तिक्ताम्लकटूष्ण कषाय- कान् । वातलैश्च भवेद् गर्भः कुब्जान्धजड- वामनः ॥ ४८८ ॥ पित्तलैः खलितीपिङ्गः श्वित्री पाण्डुःकफात्मनः । अपथ्यमिदमु- द्दिष्टं गर्भिणीनां महर्षिभिः ॥ ४८९ ॥

स्वेदन वमन क्षार पदार्थ कलह विषम भोजन असात्म्य आहार विहार रात में घूमना अप्रिय वस्तु देखना ज्यादा मैथुन परिश्रम बोझ उठाना भारी वस्त्र ओढ़ना असमय में जागना और सोना । कठिन आसन पर तथा उकरू बैठना शोक क्रोध भय तथा उद्वेग मल मूत्रादि वेग एवं श्रद्धा को रोकना उपवास मार्ग चलना । तीक्ष्ण उष्ण गुरुपाकी अजीर्ण कारक भोजन रात में भोजन करना गहरे गढ्ढे अथवा कुयें में झांकना मद्य मांस सेवन सीधा लेटना और जो अपने को पसन्द न हो वे सब विषय, गर्भिणी स्त्रियों को त्याग देना चाहिए और अष्टम मास से रक्तस्राव कराना वमनादि द्वारा शरीर का शोधन और वस्ति कर्म त्याग देना चाहिये । इन सबों को करने से कभी दशा असमय में ही गर्भ स्राव या उदर में ही गर्भ सूखना या मृत्यु हो जाती है, गर्भिणी स्त्री तिक्त अम्ल कटु चरपरा तथा कसैला पदार्थ का सेवन अधिक न करे । वातकारक पदार्थों के खाने से गर्भ कुबड़ा अन्धा जड़ और बौना होती है । पित्तकारक पदार्थों से गन्जा पिङ्गल वर्ण-वाला श्वेत कुष्ठी तथा कफकारक पदार्थों से पाण्डुवर्णवाला गर्भ हो जाता है । ये सब बातें गर्भिणी को अपथ्य है ॥ ४८३--४८९ ॥

सूतिकारोगे पथ्यानि ।

लङ्घनानि मृदुस्वेदो गर्भं कोष्ठ विशोधनम् । अभ्यञ्जनं तैलपानं कटुतीक्ष्णोष्ण सेवनम् ॥ ४६० ॥ दीपनं पाचनं मद्यं पुराणाः शालिषष्टिकाः कुलत्थो लशुनं शिग्रुवार्त्ताकु बालमूलकम् ॥४६१॥ पटोलं मातुलुङ्गं च ताम्बूलं दाडिमद्वयम् । यानि श्लेष्मानिलघ्नानि विधातव्यानि तानिच ॥ ४६२ ॥ सप्ताहाद् बृंहणं किञ्चिद् द्वादशाहा तथामिषम् । सार्द्धमासे व्यतिक्रान्ते त्याज्याऽऽहारादियंत्रणा ॥ ४६३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां स्त्रीरोगाधिकारः समाप्तः ।

लङ्घन मृदुस्वेद गर्भ कोष्ठ की शुद्धि मालिश तैलपान चरपरा तेज गर्म पदार्थों का सेवन दीपन पाचन पदार्थ मद्य पुराने शालि तथा साठी चावल कुलथी लहसन सहजन की फली बैंगन छोटी मूली परवल बिजौरा, नीबू, ताम्बूल खट्टे मीठे अनार कफ तथा वायुनाशक पदार्थ इन का सेवन करना चाहिये। ७ दिन के बाद कुछ पौष्टिक पदार्थ १२ दिन के बाद मास ये सब पदार्थ सूतिका रोग में पथ्य हैं। और डेढ़ महिने के बाद आहार विहार का परहेज त्याग देना चाहिये ॥ ४६०-४६३ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायांस्त्रीरोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ बालरोगाधिकारः ।

त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्त्तकः । स्वास्थ्यं ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां रोगसम्भवः ॥ १ ॥

बालक तीन प्रकार के कहे हैं। एक माता का दूध पीने वाले, दूसरे दूध और अन्न खानेवाले और तीसरे केवल अन्न खानेवाले। जब दूध और अन्न शुद्ध होते हैं तो बालक नीरोग रहता है और जब दूध या अन्न दूषित होते हैं तो बालक रोगी हो जाता है ॥ १ ॥

क्षीरपस्यौषधं धात्र्याः क्षीरान्नादस्य चोभयो । अन्नेन वा शिशौ देयं भेषजं भिषजा सदा ॥ २ ॥

दूध पीनेवाले बालक के रोगी होने पर दूध पिलानेवाली धाय या माता को ओषधि सेवन कराना चाहिए। जो बालक दूध और अन्न का सेवन करनेवाला हो तो धाय और बालक दोनों को ओषधि देना चाहिए और जो केवल अन्न ही खाता हो तो बालक को ही ओषधि देना चाहिए ॥ २ ॥

मात्रया लङ्घयेद्धात्रीं शिशोर्नेष्टं विशोषणम् । सर्वं निवार्यते बाले स्तन्यं तु न निवार्यते ॥ ३ ॥

दूध पिलानेवाली माता या धाय को आवश्यकतानुसार लंघन कराया जा सकता है किन्तु बालक को लंघन कराना उचित नहीं है। बालक के लिए सब कुछ रोका जा सकता है; परन्तु माता या धाय का दूध नहीं रोकना चाहिए ॥ ३ ॥

यो बालोऽचिरजातः स्तन्यं न गृह्णाति तस्य सहसैव । धात्रीमधुघृतपथ्याकल्केनाघर्षयेज्जिह्वाम् ॥ ४ ॥

यदि थोड़े दिन का पैदा हुआ बालक एकाएकी माता का दूध न पीवे तो आँवला और

हड के चूर्ण में शहद और घृत मिलाकर बालक की जीभ पर घिसना चाहिए ॥ ४ ॥

कुष्ठं वचाभया ब्राह्मी कनकं क्षौद्रसर्पिषा। वर्णायुःकान्तिजननं लेहं बालस्य दापयेत् ॥ ५ ॥

कूट, वच, हड, ब्राह्मी और सुवर्णभस्म; इनको शहद और घृत में मिलाकर बालक को चाटने से कान्ति, आयु और उत्तम वर्ण की वृद्धि होती है। मात्रा १/४ रत्ती से १/२ रत्ती तक इसे जन्म के बाद ही सेवन कराया जा सकता है ॥ ५ ॥

स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत्।

माता के दूध न होने पर उसी के समान गुणकारी बकरी या गौ का दूध पिलाना चाहिए।

मृत्पिण्डेनाग्नितप्तेन क्षीरसिक्तेन सोष्मणा। स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोथस्तेनोपशाम्यति ॥ ६ ॥

यदि बालक की नाभि में सूजन हो जावे तो मिट्टी के गोले को आग में तपाकर दूध से बुझावे और उससे नाभि पर सेंक दे तो सूजन शान्त हो जाती है ॥ ६ ॥

नाभिपाक की चिकित्सा।

नाभिपाके निशालोध्रप्रियङ्गुमधुकैः शृतम्। तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिर्वाप्यवचूर्णनम् ॥ ७ ॥

बालकों की नाभि पक जाने पर हल्दी, पठानीलोध, प्रियगु और मुलेठी के कल्क से तिल का तेल सिद्ध कर लगाने से अथवा उपर्युक्त औषधियों का चूर्ण नाभिपाक पर बुरकाने से नाभिपाक अच्छा होता है ॥ ७ ॥

तर्क्वधो गुडिकां तप्तां निर्वाप्य कटुतैलके। तत्तैलं पानतो हन्ति बालानामुल्वमुल्वणम् ॥ ८ ॥

लोहे की बनी हुई तकुं (तकुआ) के नीचे की गुड़िका को तपाकर कड़ुए तेल में बुझावे। बच्चे को इस तेल के पिलाने से दारुण उल्व (कठगत श्लेष्मा) नष्ट होता है ॥ ८ ॥

आहण्डिका की चिकित्सा।

सोमग्रहणे विधिवत् केकिशिखामूलमुद्धृतं। जंघनेऽथ कन्धरायां क्षपयत्याहण्डिकां नियतम् ॥ ९ ॥

चन्द्रमा के ग्रहण में मोरशिखा की जड़ उखाड़कर जाँघ अथवा कंधे पर बाँधने से आहण्डिका रोग नष्ट होता है ॥ ९ ॥

सप्तदलपुष्पमरिचं पिष्टं गोरोचनासहितम्। पीतं तद्वत्तण्डुलभक्तकृतो दग्धपिष्टकमाशः ॥ १० ॥

सतवन के फूल, कालीमिर्च और गोरोचन, इनको पीसकर बालक को पिलाने से अथवा चावल के भात का पिण्ड पुटपाक की विधि से पकाकर सेवन कराने से आहण्डिकारोग नष्ट होता है ॥ १० ॥

बालज्वरचिकित्सा।

भेषजं पूर्वमुद्दिष्टं नराणां यज्ज्वरादिषु। कार्यं तदेव बालानां मात्रा चात्र कनीयसी ॥ ११ ॥

मनुष्यों के ज्वर आदि रोगों में जो पहले औषधियाँ कह आये हैं वे ही बालकों को भी दी जाती हैं, किन्तु मात्रा अवस्थानुसार कम दी जाती है ॥ ११ ॥

भद्रमुस्ताभयानिम्बपटोलमधुकैः कृतः। क्वाथः कोष्णस्तु बालानामशेषज्वरनाशनः ॥ १२ ॥

नागरमोथा, हड, नीम की छाल, पटोलपत्र, मुलेठी; इनके क्वाथ को उचित मात्रा में गुनगुना गुनगुना पिलाने से बालकों के सम्पूर्ण ज्वर नष्ट होते हैं ॥ १२ ॥

निमन्त्र्य पूर्वं तु हरिप्रियाया मूलं

समुद्धृत्य दिनेरवेश्च। बद्धं शिखाया-मनुरक्तमेनं ज्वरञ्च हन्यादभिमन्त्रितेन ॥ १३ ॥

ॐ कुरु वन्दे अमुकस्य ज्वरं नाशय नाशय ह्रीं स्वाहा। अनेन अष्टोत्तरशत-वारानभिमन्त्र्य बालस्य शिरसि बन्धनीयम् ॥

तुलसी को पहले दिन निमन्त्रण देकर रविवार के दिन उसकी जड़ को उखाड़, लाल डोरा में लपेटकर "ॐ कुरु वन्दे" इत्यादि मन्त्र से १०८ बार अभिमन्त्रित कर बालक की चोटी में बाँध दे। इससे बालक का ज्वर नष्ट हो जाता है। यहाँ पर मन्त्र में अमुक शब्द की जगह बीमार बालक का नाम लेना चाहिए ॥ १३ ॥

ॐ ब्रह्मरुद्रमभरकन्दो विष्णुर्देवो हुताशनः। रक्षन्तु ज्वरितं बालं मुञ्च मुञ्च इमं स्वाहा ॥ १४ ॥

"ॐ ब्रह्मरुद्र०" इत्यादि मन्त्र से सफेद सरसों को अभिमन्त्रित कर बालक पर छोड़े ॥ १४ ॥

इति सर्षपमन्त्रः।

ज्वर में रक्षामन्त्र यथा—

यथा वज्रं यथा शूलं यथा चक्रं यथा हलम्। यथा च शक्तिः स्कन्दस्य रक्षा सैषा तथास्तु ते ॥ १५ ॥

स्वस्ति ते षण्मुखो देवो महाभागा च रेवती। दिशः सूर्योऽन्तरिक्षञ्च स्वस्ति कुर्वन्तु सर्वदा ॥ १६ ॥ तेजसा ब्रह्मणश्चाथ विष्णोरिन्द्रस्य तेजसा। सिद्धानां तेजसा चैव रक्षितोऽसि सुखीभव ॥ १७ ॥

"यथा वज्रं० यथा शूलं" इत्यादि मन्त्रों द्वारा परिमार्जन करे अर्थात् बालक के देह पर अभिमन्त्रित जल छिड़के ॥ १५-१७ ॥

बालक के लिए मात्रा का प्रमाण।

प्रथमे मासि जातस्य शिशोर्भेषजर-क्तिका। अवलेह्या तु कर्त्तव्या मधुक्षीर-सिताघृतैः ॥ १८ ॥ एकैकां वर्द्धयेत्तावद्यावत् संवत्सरो भवेत्। तदूर्ध्वं माषवृद्धिः स्याद् यावत्षोडशाब्दिकः ॥ १९ ॥

एक महीने के बालक को १ रत्ती ओषधि देना चाहिए। वह शहद, दूध, मिश्री अथवा घी में मिलाकर चटाना चाहिए। जब तक बालक एक वर्ष का न हो जाय तब तक एक-एक रत्ती प्रतिमास ओषधि की मात्रा बढ़ाना चाहिए। एक वर्ष की आयु से १६ वर्ष की आयु तक एक-एक माशा ओषधि प्रतिवर्ष बढ़ाना चाहिए। यह काष्ठादि द्रव्य की मात्रा है। यह मात्रा का प्रमाण प्राचीन है। इस समय बलानुसार मात्रा का प्रयोग करना चाहिए ॥ १८-१९ ॥

बालकों के ज्वरातीसार की चिकित्सा।

हरिद्रादि कषाय।

हरिद्राद्वययष्ट्याह्वसिंहीशक्रयवैः कृतः। शिशोर्ज्वरातिसारघ्नः कषायः स्तन्यदोषनुत् ॥ २० ॥

हल्दी, दारुहल्दी, मुलेठी, बड़ी कटेरी और इन्द्रजौ; इनका क्वाथ करके बालक को पिलाने से ज्वरातिसार नष्ट होता है। यदि दूध पीनेवाला बालक इसको न पी सके तो दूध पिलानेवाली माता या धाय को पिलाना चाहिए। इससे दूध शुद्ध होकर ज्वरातीसार दूर हो जायगा ॥ २० ॥

कर्कटादि चूर्ण।

कर्कटातिविषा शुण्ठी धातकी बिल्व-बालकम्। मुस्तं मज्जा च कोलस्य मधुना सह लेहयेत् ॥ २१ ॥ हन्ति ज्वरमतीसारं दुर्वारं ग्रहणीगदम्। छर्दिं रक्तस्रुतिं कासं श्वासं पश्चाद्रुजं तथा ॥ २२ ॥

काकड़ासिंगी, अतीस, सोंठ, धाय के फूल, बेलगिरी, सुगन्धवाला, नागरमोथा और बेर की मींगी; इनके समभाग चूर्ण को शहद में बालक को चटाने से ज्वर, अतीसार, कठिन ग्रहणीरोग, वमन, रक्तस्राव, खाँसी, श्वास और पश्चात् रुज

नाम का व्रणविशेष नष्ट होता है । पूर्ण मात्रा—२ माशे से ४ माशे तक ॥ २१-२२ ॥

बालचतुर्भद्रिका ।

घनकृष्णारुणाशृङ्गीचूर्णं क्षौद्रेण संयुतम् । शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं श्वासकासवमीहरम् ॥ २३ ॥

मोथा, पीपरि, अतीस और काकडासिंगी; इनके चूर्ण में शहद मिलाकर बालक को चटाने से ज्वरातीसार, श्वास, खाँसी और वमनरोग नष्ट होता है । पूर्ण मात्रा—१ माशा ॥ २३ ॥

धातक्यादि चूर्ण ।

धातकीबिल्वधन्याकलोध्रेन्द्रयववालकैः । लेहः क्षौद्रेण बालानां ज्वरातीसारवान्तिजित् ॥ २४ ॥

एषां समभागं चूर्णं मधुना लेह्यम् ।

धाय के फूल, बेलगिरी, धनियाँ, पठानी लोध, इन्द्रयव और सुगन्धबाला; इनके समभाग चूर्ण को शहद में मिलाकर चटाने से बालकों का ज्वरातीसार और वमनरोग नष्ट होता है । पूर्णमात्रा—२ माशे ॥ २४ ॥

रजन्यादि चूर्ण ।

रजनी सरलं दारु श्रेयसी बृहतीद्वयम् । पृश्निपर्णी शताह्वा च लीढं माक्षिकसर्पिषा ॥ २५ ॥ ग्रहणीदीपनं हन्ति मारुतार्त्तिं सकामलाम् । ज्वरातीसारपाण्डुघ्नं बालानां सर्वरोगजित् ॥ २६ ॥

हल्दी, चीड की लकडी, देवदारु, गजपीपरि, बडी कटेरी, छोटी कटेरी, पृश्निपर्णी और सौंफ, इनके चूर्ण को शहद और घृत में मिलाकर चटाने से बालकों की ग्रहणी में अग्नि प्रदीप्त होती है तथा वातरोग, कामला, ज्वरातीसार और पाण्डु आदि सब रोगों को यह रजन्यादि चूर्ण नष्ट करता है । पूर्ण मात्रा—२ माशे ॥ २५-२६ ॥

छर्द्यादि की चिकित्सा ।

मिषि कृष्णाञ्जनं लाजाशृङ्गीमरिचमाक्षिकैः । लेहः शिशोर्विधातव्यश्छर्दिकासज्वरापहः ॥ २७ ॥

सौंफ, पीपरि, रसौत, धान की खील, काकडासिंगी और काली मिर्च; इनके चूर्ण में शहद मिलाकर बालक को चटाने से वमन, खाँसी और ज्वर नष्ट होते हैं । पूर्णमात्रा—२ माशे ॥ २७ ॥

शृङ्ग्यादि चूर्ण ।

शृङ्गीसमुस्तातिविषां विचूर्ण्य लेहं विदध्यान्मधुना शिशूनाम् । कासज्वरच्छर्दिभिरर्दितानां समाक्षिकां वातिविषामथैकाम् ॥ २८ ॥

काकडासिंगी, नागरमोथा और अतीस; इनके चूर्ण में शहद मिलाकर खाँसी, ज्वर तथा वमन से पीडित बालकों को चाटना चाहिए । अथवा केवल अतीस के चूर्ण में शहद मिलाकर बालकों को चटाने से खाँसी, ज्वर और वमनरोग शान्त होते हैं । पूर्णमात्रा—शृङ्ग्यादि चूर्ण ॥-१॥ माशे, केवल अतीस चूर्ण १ माशा ॥ २८ ॥

पीतं पीतं वमेद्यस्तु स्तन्यं तन्मधुसर्पिषा । द्विवार्त्ताकीफलरसं पञ्चकोलञ्च लेहयेत् ॥ २९ ॥

जो बालक पिये हुए दूध को बार-बार वमन कर देता हो उसको छोटी और बडी कटेरी के फल के रस में शहद मिलाकर अथवा पञ्चकोल (पीपरि, पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ) के चूर्ण में शहद मिलाकर चटाना चाहिए । पूर्णमात्रा—दोनों कटेरी के फलों का स्वरस ॥-१॥ तोले, पंचकोल का चूर्ण २ रत्ती ॥ २९ ॥

आम्रास्थिलाजसिन्धूत्थैर्लेहः क्षौद्रेण छर्दिनुत् । पिप्पलीमरिचानां च चूर्णं समधुशर्करम् ॥ रसेन मातुलुङ्गस्य हिक्काछर्दिनिवारणम् ॥ ३० ॥

आम की गुठली की गिरी, धान की खील और सेंधा नमक; इनके चूर्ण को शहद में मिलाकर बालकों को चटाने से वमन होना बन्द हो जाता है। पीपरि और काली मिर्च के चूर्ण में शहद, शक्कर और बिजौरा नींबू का रस मिलाकर चटाने से हिक्का और वमन दूर होती है। चूर्ण मात्रा—४ रत्ती से १ माशा तक ॥ ३० ॥

अतिसारचिकित्सा।

पेटीपाठामूलाज्जम्ब्वाः सहकारवल्कलतः कल्कः। इत्येकशश्च पिण्डी विधितो हृन्नाभितात्वादौ ॥ ३१ ॥ छर्द्यतिसारज वेगं प्रबलं धत्ते तदेव नियमेन ॥ ३२ ॥

पेटारी की जड़, पाढ़ की जड़, जामुन की छाल और आम की छाल; इनमें से किसी एक को पीस कर पिण्ड (गोला) बना ले। इस पिण्ड को हृदय, नाभि और तालु आदि पर धारण करने से वमन और अतीसार का प्रबल वेग शान्त हो जाता है ॥ ३१-३२ ॥

पत्रैर्बदरचाङ्गेरीकाकमाचीकपित्थजैः। शिशोरुग्वम्यतीसारनाशनं मूर्द्धलेपनम् ॥ ३३ ॥

बेर, चांगेरी, मकोय और कैथे के पत्तों को पीसकर मस्तक पर लेप करने से शिरपीड़ा, वमन और अतीसार नष्ट होता है ॥ ३३ ॥

आमातीसार चिकित्सा।

क्षीरादस्य शिशोरामं शुष्कं दृष्ट्वा तु दारुणम्। मापयूषं पिबेद्धात्री पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ॥ ३४ ॥

दूध पीनेवाले बालक को सूखा आंव गिरने लगे, अर्थात् आंव के साथ मल न निकलता हो तो इस कष्टकर रोग को देखकर धाय या माता को उड़द के यूष में पीपरि का चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए ॥ ३४ ॥

स्तन्यपस्य कुमारस्य सर्वस्यामातिसारिणः। धात्री विलङ्घयेद्धीमान् देहदोषाद्यपेक्षया। पञ्चकोलकसिद्धं वा पेयादिं च प्रयोजयेत् ॥ ३५ ॥

दूध पीनेवाले बालक के यदि आमातीसार रोग हो जाय तो देह और दोष का विचार करके दूध पिलानेवाली को लंघन कराना चाहिए अथवा पञ्चकोल से सिद्ध की हुई पेया आदि का सेवन कराना चाहिए ॥ ३५ ॥

वचा मुस्तं भद्रदारु नागरातिविषागणः। हरिद्राद्वययष्ट्याह्वसिंहीशक्रयवैः कृतः ॥ ३६ ॥ इमौ वचाहरिद्रादिगणौ स्तन्यविशोधनौ। आमातिसारशमनौ कफमेदोविशोषणौ ॥ ३७ ॥ क्वाथजलं मात्रा पेयं बालेऽपि किञ्चिद्देयम्।

वच, नागरमोथा, देवदारु, सोंठ और अतीस; यह वचादिगण है तथा हल्दी, दारुहल्दी, मुलेठी, बड़ी कटेरी और इन्द्रजौ; यह हरिद्रादिगण है। इन दोनों का क्वाथ दूध को शुद्ध और आमातीसार को शान्त करनेवाला तथा कफ एवं मेद का शोषण करनेवाला है। यह माता और बच्चे को भी देना चाहिए ॥ ३६-३७ ॥

यमानीपञ्चक।

यमानी जीरकं देवपुष्पं जातीफलं विडम्। भर्जितं चूर्णमेतेषां समांशं वारिपाचितम् ॥ ३८ ॥ रक्तद्वयमितं बाल्ये यूनि मापकसम्मितम्। यमानीपञ्चकं नाम वारिणा सह योजयेम् ॥ अग्निमान्द्यमतीसारं ग्रहणीं हन्ति दुस्तराम् ॥ ३९ ॥

अजवाइन, सफेद जीरा, लौंग, जायफल, बिडनमक, इन्हें किंचित् भूनकर अलग-अलग चूर्ण कर ले। इनके चूर्णों को बराबर मात्रा में मिलावे। पश्चात् थोड़ा सा जल डालकर अग्नि में पकावे। जब गोली बनाने के योग्य हो जाय तब उतार ले। मात्रा—बालक के लिये २ रत्ती। युवा के लिये १ माशा। अनुपान--जल। इसके प्रयोग से मन्दाग्नि, अतिसार एवं घोर ग्रहणी नष्ट होती है ॥ ३८-३९ ॥

मुस्तकादिक्वाथ।

मुस्तकातिविषाशुण्ठीवालकेन्द्रयवैः कृतम्। क्वाथं शिशुः पिबेत् प्रातः सर्वातीसारनाशनम् ॥ ४० ॥ क्वाथजलं मात्रा पेयं बालेऽपि किञ्चिदेयम्।

नागरमोथा, अतीस, सोंठ, सुगन्धबाला और इन्द्रजौ; इनका काढ़ा बनाकर प्रातःकाल बालक को पिलाने से सब प्रकार के अतीसार नष्ट होते हैं। यह माता को भी पिलाना चाहिए ॥ ४० ॥

बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनां जलं सलोध्रं गजपिप्पली च। क्वाथावलेहौ मधुना विमिश्रौ बालेषु योज्यावतिसारितेषु ॥ ४१ ॥

बेलगिरी, धाय के फूल, सुगन्धबाला, पठानी लोध और गजपीपरि; इनके क्वाथ में शहद मिलाकर पिलाने से अथवा इनके चूर्ण में शहद मिलाकर चटाने से बालकों का अतीसार नष्ट होता है। चूर्ण की पूर्ण मात्रा ३ माशे ॥ ४१ ॥

आम्रातकाम्रजम्बूनां त्वचमादाय चूर्णयेत्। मधुना लेहयेद्बालमतीसारविनाशनम् ॥ ४२ ॥

अम्बाड़ा, और आम जामुन; इनकी छाल के चूर्ण में शहद मिलाकर बालक को चटाने से अतीसार रोग नष्ट होता है। पूर्ण मात्रा २ माशे ॥ ४२ ॥

सितजीरकसर्जचूर्णं बिल्वदलोत्थाम्बुमिश्रितं पीनम्। हन्त्यामरक्तशूलं गुडसहितः श्वेतसर्जो वा ॥ ४३ ॥

सफेद जीरा और राल का चूर्ण बेलपत्र के जल में मिलाकर पीने से अथवा सफेद राल और गुड़ का सेवन करने से शूलयुक्त आम और रक्तस्राव रोग नष्ट होते हैं। पूर्ण मात्रा—राल और जीरा दोनों मिलाकर १ रत्ती से ४ रत्ती। केवल राल चूर्ण की मात्रा १–२ रत्ती ॥ ४३ ॥

समङ्गाधातकीलोध्रसारिवाभिः शृतं जलम्। दुर्धरेऽपि शिशोर्देयमतीसारे समाक्षिकम् ॥ ४४ ॥

मँजीठ, धाय के फूल, पठानी लोध और अनन्तमूल के काढ़े में शहद मिलाकर बालक को पिलाने से कठिनतर अतीसार नष्ट होता है ॥ ४४ ॥

नागरातिविषामुस्तबालकेन्द्रयवैः शृतम्। कुमारं पाययेत् प्रातः सर्वातीसारनाशनम् ॥ ४५ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, सुगन्धबाला और इन्द्रजौ का क्वाथ प्रातःकाल बालक को पिलाने से सब प्रकार के अतीसार नष्ट होते हैं ॥ ४५ ॥

समङ्गा धातकी पद्मं वयःस्था कच्छुरा तथा। पिष्टैरेतैर्यवागूः स्यादतीसारविनाशिनी ॥ ४६ ॥

मंजीठ (या लज्जालू), धाय के फूल, कमल, आँवला और धमासा, इनके कल्क से यथाविधि यवागू बनाकर पिलाने से अतीसार नष्ट होता है॥ ४६ ॥

बिल्वमूलकषायेण लाजां चैव सशर्कराम्। आलोड्य पाययेद् बालं छर्द्यतीसारनाशनम् ॥ ४७ ॥

बेल की जड़ के काढ़े में धान की खील और शक्कर मिलाकर तथा मथकर बालक को पिलाने से वमन और अतीसार नष्ट होते हैं ॥ ४७ ॥

कल्कः प्रियंगुकोलास्थिमध्यमुस्तरसाञ्जनैः। क्षौद्रलीढः कुमारस्य छर्दितृष्णातिसारनुत् ॥ ४८ ॥

प्रियंगु, बेर की मींगी, नागरमोथा और रसौत; इनके कल्क में शहद मिलाकर बालक को चटाने से वमन, तृष्णा और अतीसार का नाश होता है। मात्रा चूर्ण—४ रत्ती से १ माशा तक ॥ ४८ ॥

मोचरसः समङ्गा च धातकी पद्मकेशरम्। पिष्टैरेतैर्यवागूः स्याद्रक्तातीसारनाशिनी॥ ४९॥

मोचरस, मजीठ (या लज्जालू), धाय के फूल और कमल की केशर, इनके कल्क से विधिपूर्वक यवागू सिद्ध कर बालक को पिलाने से रक्तातीसार नाश होता है॥ ४९॥

प्रवाहिका चिकित्सा।

लेहस्तैलसिताक्षौद्रतिलयष्ट्याह्वकल्कितः। बालस्य रुन्ध्यान्नियतं रक्तस्रावं प्रवाहिकाम्॥ ५०॥

तिल का तेल, मिश्री और शहद में तिल और मुलेठी का कल्क मिलाकर बालक को चटाने से रक्तस्राव तथा प्रवाहिका अवश्य नष्ट हो जाती है॥ ५०॥

लाजासयष्टीमधुकशर्कराः क्षौद्रमेव च। तण्डुलोदकसंयुक्तं क्षिप्रं हन्ति प्रवाहिकाम्॥ ५१॥

धान की खील और मुलेठी के कल्क में शक्कर, शहद तथा तण्डुलोदक मिलाकर पिलाने से शीघ्र ही प्रवाहिका (पेचिश) नष्ट होती है॥ ५१॥

ग्रहणी चिकित्सा।

अङ्कोटमूलमथवा तण्डुलसलिलेन कुटजमूलं वा। पीतं हन्त्यतिसारं ग्रहणीरोगं च दुर्वारम्॥ ५२॥

अकोट (ढेरा) की जड़ अथवा कुरैया की जड़ को तण्डुलोदक के साथ पीने से अतीसार और कठिनतर सग्रहणी नष्ट होती है। पूर्ण मात्रा—२ माशा॥ ५२॥

मरिचमहौषधकुटज द्विगुणीकृतमुत्तरोत्तरं क्रमशः। गुडतक्रयुतमेतद् ग्रहणीरोग निहन्त्याशु॥ ५३॥

काली मिर्च १ भाग, सोंठ, २ भाग तथा कुड़ा की छाल ४ भाग, इनके चूर्ण में गुड़ और मट्ठा (छाछ) मिलाकर बालक को पिलाने से शीघ्र ही ग्रहणी रोग नष्ट होता है। पूर्ण मात्रा-१॥ माशा॥ ५३॥

बिल्वशक्राम्बुमोचाब्दसिद्धमाजं पयः शिशोः। सामां सरक्तां ग्रहणीं पीतं हन्यात् त्रिरात्रतः॥ तद्वदजाक्षीरसमो जम्बूत्वक्सम्भवो रसः॥ ५४॥

बिल्व, इन्द्रजौ सुगन्धबाला, मोचरस और नागरमोथा, इनके कल्क से विधिपूर्वक बकरी का दूध सिद्ध कर बालक को पिलाने से तीन दिन में आँव और रक्तयुक्त सग्रहणी रोग नष्ट होता है। इसी प्रकार जामुन की छाल का रस और बकरी के दूध सम भाग लेकर पीने से ग्रहणी रोग नष्ट होता है। पूर्ण मात्रा—स्वरस की १ तोला है॥ ५४॥

गुदपाकचिकित्सा।

गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत् क्रियाम्। रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम्॥ ५५॥

बालकों की गुदा पक जाने पर पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिए। अधिकतर रसौत का पीना और लेप करना हितकर होता है॥ ५५॥

पश्चाद्रुज के लक्षण।

दुष्टमन्नादिभिर्मातुः स्तन्यं संपिबतः शिशोः। यदा प्रकुपितं पित्तं गुदं समभिधावति॥ ५६॥ तदा संजायते तत्र जलौकोदरसन्निभः। व्रणः सदाहो व्यङ्गोष्माः तदास्य स्याज्ज्वरः पर॥५७॥ हरितं पीतकं वापि वर्चस्तेन भवेद्ध्रुवम्। व्रणः पश्चाद्रुजो नाम व्याधिः परमदारुणः॥ ५८॥

दुष्ट अन्न पानादिकों से दूषित हुआ माता

का दूध पीने से बालक का पित्त कुपित होकर गुदा की ओर आता है, तब वहाँ जोंक के उदर से तुल्य व्रण हो जाता है। उसमें जलन तथा गरमी रहती है और जोर का बुखार हो जाता है। बालक के हरे और पीले दस्त होने लगते हैं। इस व्रण-व्याधि का नाम परचाद्रुज है। यह अत्यन्त कष्टदायक रोग है ॥ ५६--५८ ॥

चन्दनं शारिवे द्वे च शङ्खिनीतिसमायुतैः। परचाद्रुजे प्रलेपोऽयमवलेहस्तु शस्यते ॥ ५६ ॥

लाल चन्दन, अनन्तमूल, कालीसर और शंखपुष्पी; इनका परचाद्रुज पर लेप करना तथा इन्हीं के चूर्ण में शहद मिलाकर चटाना हितकर होता है। मात्रा--एक वर्ष की आयु के बालक को १ रत्ती ॥ ५६ ॥

मूत्रग्रह में कणादिलेह।

कणोपणसितात्तौद्रसूक्ष्मैलासैन्धवैः कृतः। मूत्रग्रहे प्रयोक्तव्यः शिशूनां लेह उत्तमः ॥ ६० ॥

पीपरि, कालीमिर्च, शक्कर, छोटी इलायची और सेंधा नमक; इनके चूर्ण में शहद मिलाकर चटाने से बालकों का मूत्रावरोध नष्ट होता है। मात्रा-एक वर्ष के बालक को १ रत्ती ॥ ६० ॥

आनाहशूलचिकित्सा।

घृतेन सिन्धुविश्वैलाहिंगुभार्गीरजो लिहन्। आनाहं वातिकं शूलं जयेत्तोयेन वा शिशुः ॥ ६१ ॥

सेंधानमक, सोंठ, छोटी इलायची, हींग और भारंगी; इनका चूर्ण घृत या जल के साथ खाने से बालक का आनाहरोग और वातिक शूल नष्ट होता है। मात्रा-एक वर्ष के बालक के लिये ½ रत्ती ॥ ६१ ॥

तालुपातचिकित्सा।

हरीतकीवचाकुष्ठकल्कं माक्षिकसंयुतम्। पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुपातनात् ॥ ६२ ॥

हड, बच और कूट के कल्क में शहद मिलाकर माता के दूध के साथ पीने से तालुआ का गिरना अच्छा होता है। मात्रा-एक वर्ष के बच्चे के लिये आधी रत्ती ॥ ६२ ॥

मुखपाकचिकित्सा।

मुखपाके तु बालानां साभ्रसारमयोरजः। गैरिकक्षौद्रसंयुक्तं भेषजं सरसाञ्जनम् ॥ ६३ ॥

बालकों के मुखपाक में अभ्रकसार, लोहभस्म, गेरू और रसौत; इनके चूर्ण में शहद मिलाकर लगाना चाहिए ॥ ६३ ॥

अश्वत्थत्वग्दलैः क्षौद्रैर्मुखपाके प्रलेपनम्। दार्वीयष्ट्यभयाजातीपत्रक्षौद्रैस्तथापरम् ॥ ६४ ॥

मुखपाक में पीपल की छाल तथा पत्ता को पीसकर और उसमें शहद मिलाकर लेप करने से अथवा दारुहल्दी मुलेठी हड और चमेली के पत्ते; इनके कल्क में शहद मिलाकर लेप करने से मुखपाक शान्त होता है ॥ ६४ ॥

सह जम्बीररसेन स्नुग्दलरसघर्षणं सद्यः। कृतमुपहन्ति हि पाकं मुखजं बालस्य चाश्वेव ॥ ६५ ॥

जंबीरी नीबू का रस और सेहुँड के पत्तों का रस मिलाकर घिसने से बालकों का मुखपाक शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ ६५ ॥

लावतित्तिरिवल्लूररसःपुष्परसान्वितः। द्रुतं करोति बालानां पुष्परोगरसन्मुखम् ॥ ६६ ॥

लवा और तीतर के मांस का रस शहद में मिलाकर पिलाने से बालकों का मुख पुष्परोग के तुल्य हो जाता है। तात्पर्य यह है कि इनके सेवन करने से मुखपाक रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ ६६ ॥

दन्तोद्भवेषु रोगेषु न बालमतियन्त्रयेत् । स्वयमेवोपशाम्यन्ति जातदन्तस्य ते गदाः ॥ ६७ ॥

दाँत निकलने के कारण उत्पन्न हुए रोगों में बालक को ओषधि आदि से अधिक पीड़ित न करना चाहिए; क्योंकि दाँत निकल आने पर वे रोग आप ही शान्त हो जाते हैं ॥ ६७ ॥

पूतिकर्णचिकित्सा ।

विभीतकफलं कुष्ठं हरितालं मनःशिला । एभिस्तैलं विपक्तव्यं बालानां पूतिकर्णके ॥ ६८ ॥

बहेड़ा, कूट, हरताल और मैनशिल के कल्क द्वारा पकाया हुआ तेल बालकों के कान में डालने से पूतिकर्ण रोग शान्त होता है ॥ ६८ ॥

हिक्काचिकित्सा ।

पञ्चमूलीकषायेण सघृतेन पयः शृतम् । सशृङ्गवेरं सगुडं शीतं हिक्कार्दितः पिबेत् ॥ ६९ ॥

बृहत्पञ्चमूल के काढ़े में (अष्टमांश) घृत और (चतुर्थांश) दूध डालकर पकावे । जब जलमात्र जल जाय तब गुड़ और सोंठ का चूर्ण डालकर ठंढा करके हिचकी से पीड़ित बालक को पिलाना चाहिए ॥ ६९ ॥

सुवर्णगैरिकस्यापि चूर्णानि मधुना सह । लीढं सुखमवाप्नोति क्षिप्रं हिक्कार्दितः शिशुः ॥ ७० ॥

सुनहले गेरू के चूर्ण में शहद मिलाकर चटाने से हिचकी से पीड़ित बालक शीघ्र ही सुखी हो जाता है । मात्रा-एक वर्ष के बालक के लिये $\frac{1}{16}$ रत्ती से $\frac{1}{8}$ रत्ती तक ॥ ७० ॥

चित्रकं शृङ्गवेरञ्च तथा दन्ती गवादन्यपि । चूर्णं कृत्वा तु सर्वेषां सुखोष्णेनाम्बुना पिबेत् ॥ कासं श्वासमथो हिक्कां कुमाराणां प्रणाशयेत् ॥ ७१ ॥

चीता की जड़, सोंठ, दन्ती और इन्द्रायण इनका चूर्ण बनाकर किंचित् गरम जल के साथ पीने से बालकों की खाँसी, श्वास और हिचकी नष्ट होती है । मात्रा-एक वर्ष के बालक के लिये $\frac{1}{16}$ रत्ती से $\frac{1}{8}$ रत्ती तक ॥ ७१ ॥

कासश्वास चिकित्सा ।

द्राक्षायासाभयाकृष्णाचूर्णं सक्षौद्रसर्पिषा । लीढं कासं निहन्त्याशु श्वासं च तमकं तथा ॥ ७२ ॥

दाख, जवासा, हड़ और पीपरि ; इनके चूर्ण में शहद और घृत मिलाकर चटाने से खाँसी, श्वास और तमकश्वास नष्ट होता है ॥ ७२ ॥

पुष्करादि चूर्ण ।

पुष्करातिविषाशृङ्गीमागधीधन्वयासकैः । तच्चूर्णं मधुना लीढं शिशूनां पञ्चकासनुत् ॥ ७३ ॥

पोहकरमूल, अतीस, काकड़ासिंगी, पीपरि और धमासा; इनके चूर्ण में शहद मिलाकर चटाने से बालकों के पाँचों प्रकार के कास नष्ट होते हैं । मात्रा—एक वर्ष के बालक को १ रत्ती ॥ ७३ ॥

तृष्णा में दाडिमादि चूर्ण ।

दाडिमस्य च बीजानि जीरकं नागकेशरम् । चूर्णितं शर्कराक्षौद्रलीढं तृष्णानिवारणम् ॥ ७४ ॥

अनारदाना, जीरा और नागकेशर के चूर्ण में शक्कर तथा शहद मिलाकर चटाने से तृष्णा (प्यास) शान्त होती है । मात्रा—एक वर्ष के बालक को २ रत्ती ॥ ७४ ॥

मयूरपक्षभस्मव्युषितजलं तेन भावितं पेयम् । तृष्णाघ्नं वटकाङ्कुरभस्मजलं वक्त्रशोषजिद्वक्त्रे ॥ ७५ ॥

मयूरपंख की भस्म को जल में मिलाकर रख छोड़े, दूसरे दिन छानकर पिलावे तो बालकों की तृष्णा शान्त होती है । इसी

प्रकार बरगद की छाल की भस्म को जल में घोलकर रख दे। दूसरे दिन छानकर पिलावे तो इससे भी बालकों की तृष्णा शान्त होती है ॥ ७५ ॥

नेत्ररोग चिकित्सा।

पिष्टैश्छागेन पयसा दार्वीमुस्तकगैरिकैः। बहिरालेपनं शस्तं शिशोर्नेत्रामयार्त्तिजित् ॥ ७६ ॥

दारुहल्दी, नागरमोथा और गेरू; इनको बकरी के दूध में पीसकर आँखों के बाहर लेप करने से बालक के नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ ७६ ॥

मनःशिला शङ्खनाभिः पिप्पल्योऽथ रसाञ्जनम्। वर्त्तिः क्षौद्रेण संयुक्ता बाले सर्वाक्षिरोगनुत् ॥ ७७ ॥

मैनशिल, शंखनाभि, पीपरि और रसौत; इनको जल में घोटकर बत्ती बना ले। इसको शहद में घिसकर लगाने से बालकों की आँखों के सब रोग शान्त होते हैं ॥ ७७ ॥

मातृस्तन्यकटुस्नेहकाञ्जिकैर्भावितो जयेत्। स्वेदाद्दीपशिखातप्तो नेत्रामयमलक्तकः ॥ ७८ ॥

माता का दूध, कड़ुआ तेल और काँजी से लाक्षारसयुक्त रुई को भावित करके दीपक की शिखा पर गरम कर आँखों को स्वेदित करने से नेत्र रोग नष्ट होते हैं ॥ ७८ ॥

कुकूणक रोग में आश्च्योतन।

शुण्ठीभृङ्गनिशाकल्कः पुटपकः ससैन्धवः। कुकूणकेऽक्षिरोगेषु तद्रसाश्च्योतनं हितम् ॥ ७६ ॥

सोंठ, भँगरा, हल्दी और सेंधानमक इनके कल्क को पुटपाक की विधि से पकाकर रस निचोड़ ले और नेत्रों में टपकावे तो कुकूणक तथा अन्य नेत्ररोग शान्त होते हैं ॥ ७६ ॥

कृमिघ्नालशिलादार्वीलाक्षाचन्दनगैरिकैः। चूर्णाञ्जनं कुकूणे स्यात् शिशूनां पोथकीषु च ॥ सुदर्शनामूलचूर्णाञ्जनं स्यात्तु कुकूणके ॥ ८० ॥

बायबिड़ंग, हरताल, मैनशिल, दारुहल्दी, लाख, लालचन्दन और गेरू; इनके चूर्ण का अंजन करना कुकूणक और पोथकी (Granular lids) रोग को नष्ट करता है। तथा सुदर्शन की जड़ के चूर्ण का अजन करना कुकूणक रोग में हितकारी होता है ॥ ८० ॥

सिध्मादि चिकित्सा।

गृहधूमनिशाकुष्ठराजिकेन्द्रयवैः शिशोः। लेपस्तक्रेण हन्त्याशु सिध्मपामाविचर्चिकाः ॥ ८१ ॥

गृहधूम (घर का धुआँ), हल्दी, कूट, राई और इन्द्रजौ, इनको छाछ के साथ पीसकर लेप करने से सेंहुआ, पामा और विचर्चिका रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ८१ ॥

अश्वगन्धा घृत।

पादकल्केऽश्वगन्धायाः क्षीरे दशगुणे पचेत्। घृतं पेयं कुमाराणां पुष्टिकृद्बलवर्द्धनम् ॥ ८२ ॥

घृत १ सेर, कल्क के लिए असगंध १ पाव और दूध १० सेर। विधि से घृत सिद्ध कर बालकों को पिलाने से पुष्टि करता है तथा बल को बढ़ाता है। मात्रा—एक वर्ष के बालक के लिये ३-४ बूँद ॥ ८२ ॥

बालचाङ्गेरी घृत।

चाङ्गेरीस्वरसे सर्पिश्छागक्षीरसमं पचेत्। कपित्थव्योषसिन्धूत्थसमङ्गोत्पलबालकैः ॥ ८३ ॥ सबिल्वधातकीमोचैः सिद्धं सर्वातिसारनुत्। ग्रहणीं दुस्तरां हन्ति बालानां तु विशेषतः ॥ ८४ ॥

चाँगेरी का स्वरस ८ सेर, बकरी का दूध २ सेर, घृत २ सेर। कल्क के लिए—कैथ, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि), सेंधानमक

मंजीठ, नीलकमल, सुगन्धवाला, बेलगिरी, धाय के फूल और मोचरस; सब मिलाकर आध सेर। विधि से घृत सिद्धकर बालकों को पिलाने से यह बालचाङ्गेरी घृत सब प्रकार के अतीसार और कठिनतर संग्रहणी रोगों को नष्ट करता है। मात्रा—एक वर्ष के बालक के लिये ३-४ बूँद ॥ ८३-८४ ॥

कुमारकल्याण घृत।

शङ्खपुष्पी वचा ब्रह्मी कुष्ठं त्रिफलया सह। द्राक्षा सशर्करा शुण्ठी जीवन्ती जीरकं बला ॥ ८५ ॥ शटी दुरालभा बिल्वं दाडिमं सुरसा स्थिरा। मुस्तं पुष्करमूलं च सूक्ष्मैला गजपिप्पली ॥ ८६ ॥ एषां कर्षसमैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्। कषाये कण्टकार्याश्च क्षीरे तस्मिंश्चतुर्गुणे ॥ ८७ ॥ एतत् कुमारकल्याणं घृतरत्नं सुखप्रदम्। बलवर्णकरं धन्यं पुष्ट्यग्निरुचिवर्द्धनम् ॥ ८८ ॥ छायासर्वग्रहालक्ष्मीकृमिदन्तगदापहम्। सर्वबालामयं हन्ति दन्तोद्भेदं विशेषतः ८९

अष्टमङ्गल घृत।

कल्क के लिए शंखपुष्पी (शंखाहूली), वच, ब्रह्मी, कूट, त्रिफला, दाख, शक्कर, सोंठ, जीवन्ती, जीरा, खरैटी, कचूर, जवासा, बेलगिरी, अनारदाना, तुलसी, शालपर्णी, नागरमोथा, पोहकरमूल, छोटी इलायची और गजपीपरि; प्रत्येक एक एक तोला, कटेरी का काढ़ा ६ सेर ३२ तोले, दूध ६ सेर ३२ तोले, घृत १२८ तोले। विधि से घृत सिद्ध करना चाहिए। रत्नरूपी यह कुमारकल्याण घृत बालकों को सुख देनेवाला, वर्ण, पुष्टि, जठराग्नि और रुचि को बढ़ानेवाला है तथा छाया, सब ग्रहों की पीड़ा, अलक्ष्मी, कृमिदन्त, दन्तोद्भव एवं सब प्रकार के बालरोगों को नष्ट करता है। मात्रा—एक वर्ष के बालक के लिये ३-४ बूँद ॥ ८५-८९ ॥

अष्टमङ्गल घृत।

वचा कुष्ठं तथा ब्रह्मी सिद्धार्थकमथापि च। शारिवा सैन्धवं चैव पिप्पली घृतमष्टमम् ॥ ९० ॥ मेध्यं घृतमिदं सिद्धं पातव्यं च दिने दिने। दृढस्मृतिः क्षिप्रमेधाः कुमारो बुद्धिमान् भवेत् ॥ ९१ ॥ न पिशाचा न रक्षांसि न भूता न च मातरः। प्रभवन्ति कुमाराणां पिबतामष्टमङ्गलम् ॥ ९२ ॥

कल्क के लिए वच, कूट, ब्रह्मी, श्वेत सरसों, अनन्तमूल, सेंधानमक और पीपरि; सब मिलाकर आध सेर। घृत २ सेर। पाकार्थ जल ८ सेर। यथाविधि घृत सिद्ध करना चाहिए। इस घृत को प्रतिदिन मात्रानुसार पिलाना चाहिए। इसके सेवन से बालक की स्मरणशक्ति, मेधा और बुद्धि की वृद्धि होती है। इस अष्टमंगल घृत के पिलाने से बालकों को पिशाच, राक्षस, भूत और मातृकाएँ नहीं सता सकती हैं। मात्रा—एक वर्ष के बालक के लिये ३-४ बूँद ॥ ९०-९२ ॥

लाक्षादि तैल।

लाक्षारससमं सिद्धं तैलं मस्तु चतुर्गुणम्। रास्नाचन्दनकुष्ठाब्दवाजिगन्धानिशायुगैः ॥ ९३ ॥ शताह्वादारुयष्ट्याह्वमूर्वातिक्ताहरेणुभिः। बालानां ज्वररक्षोघ्नमभ्यङ्गाद्बलवर्णकृत् ॥ ९४ ॥

लाख का रस २ सेर, तिल का तेल २ सेर, दही का तोड़ ८ सेर। कल्क के लिये रासना, लाल चन्दन, कूट, नागरमोथा, असगन्ध, हल्दी, दारुहल्दी, सौंफ, देवदारु, मुलेठी, मूर्वा (मरोरफली), कुटकी और रेणुका; सब मिलाकर आध सेर। यथाविधि तेल सिद्ध कर मालिश करने से यह ज्वर तथा राक्षसबाधा को नष्ट कर बल और वर्ण को बढ़ाता है ॥ ९३-९४ ॥

सर्पत्वक् लशुनं मूर्वा सर्पपारिष्ट-

पल्लवाः। विडाल विडजालोममेषशृङ्गीत्वचा मधु ॥ धूपः शिशोर्वरघ्नोऽयमशेषग्रहनाशनः ॥ ९५ ॥

साँप की केंचुल, लहसुन, मूर्वा, सरसों, नीम के पत्त, बिल्ली की विष्ठा, बकरी के बाल, मेढ़ासिंगी, बच और शहद, इनकी धूप बालक के ज्वर, राक्षस-बाधा और सब ग्रहों की पीड़ा को नष्ट करती है ॥ ९५ ॥

बालरोगान्तक रस।

शाणं सूतस्य शुद्धस्य गन्धकस्य च तत्समम्। सुवर्णमाक्षिकस्यापि चार्द्धभागं विनिःक्षिपेत् ॥ ९६ ॥ ततः कज्जलिकां कृत्वा लौहपात्रे दृढे नवे। केशराजस्य भृङ्गस्य निर्गुण्ड्याः पत्रसम्भवम् ॥ ९७ ॥ स्वरसं काकमाच्याश्च ग्रीष्मसुन्दरमस्य च। सूर्यावर्त्तकशालिच भेकपर्णीरसस्तथा ॥ ९८ ॥ श्वेतापराजितायाश्च मूलं दद्याद्विचक्षणः। देयं रसार्द्धभागेन चूर्णं मरिचसम्भवम् ॥ ९९ ॥ शुभे शिलामये पात्रे लौहदण्डेन मर्दयेत्। शुष्कमातपसंयोगाद् वटिकां कारयेद्भिषक ॥ १०० ॥ प्रमाणं सर्षपस्येव बालानां विनियोजयेत्। हन्ति त्रिदोषकं चैव ज्वरमामं सुदारुणम् ॥ १०१ ॥ कासं पञ्चविधं चापि सर्वरोगं निहन्ति च। शिशूनां रोगनाशाय निर्मितोऽयं महारसः ॥ १०२ ॥

शुद्ध पारा ३ माशे, गन्धक ३ माशे और स्वर्णमाक्षिक ३ माशे। नये लोहपात्र में पारा और गन्धक की कजली करके उसमें स्वर्णमाक्षिक मिलाना चाहिए। फिर भृंगराज (नीला भँगरा), भँगरा और मँभालू के पत्ते, मकोय, ग्रीष्मसुन्दर, सूर्यमुखी, शालिश, मंडूकपर्णी और श्वेत अपराजिता की जड़; इन सब के रस की भावना देकर 10 माशे कालीमिर्च डालकर पत्थर के खरल में लोह की मुसली से घोटकर सरसों के बराबर गोलियाँ बना ले और धूप में सुखा ले। यह सन्निपात, आमज्वर, पाँचों प्रकार की खाँसी और सब रोगों को नष्ट करता है। बालकों के रोगों को नष्ट करने के लिए यह महारस बनाया गया है ॥ ९६-१०२ ॥

कुमारकल्याण रस।

सिन्दूरं मौक्तिकं हेम व्योमयो हेममाक्षिकम्। कन्यातोयेन संमर्द्य कुर्यान्मुद्गमिता वटीः ॥ १०३ ॥ वटिकां वटिकार्द्धं वा वयोऽवस्थां विविच्य च। क्षीरेण सितया सार्द्धं बालेषु विनियोजयेत् ॥ १०४ ॥ कुमाराणां ज्वरं श्वासं वमनं पारिगर्भिकम्। ग्रहदोषांश्च निखिलान् स्तन्याग्रहणं तथा ॥ १०५ ॥ कामलामतिसारं च कृशतां वह्निवैकृतम्। रसः कुमारकल्याणो नाशयेन्नात्र संशयः १०६॥

रससिन्दूर, मोती की भस्म, स्वर्णभस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म और स्वर्णमाक्षिकभस्म; इनको घीकुवार के रस में घोटकर मूँग के बराबर (आधी रत्ती) गोलियाँ बना ले। एक गोली अथवा आधी गोली, आयु और अवस्था का विचार करके, दूध और मिश्री के साथ बालकों को सेवन कराना चाहिए। यह कुमारकल्याणरस ज्वर, श्वास, वमन, पारिगर्भिक रोग, सब प्रकार के ग्रहदोष, दूध न पीना, कामला, अतीसार और जठराग्नि के विकार को नष्ट करता है ॥ १०३-१०६ ॥

दन्तोद्भेदगदान्तक।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः। अजमोदायमानीभ्यां निशया मधुकेन च ॥ ॥ १०७ ॥ दारुदार्वीविडङ्गैलानागकेशरनीरदैः। शटीशृङ्गीविडव्योम्ना गद्दायोहेममाक्षिकैः ॥ १०८ ॥ विधाय पयसा पिष्टैर्वटिका मुद्गसम्मिता। दन्त-

पर्येऽभ्यवहृतौ योजयेच्च प्रयोगवित् ॥ १०९ ॥ प्रयोगादस्य दन्तानां त्वरयोद्गमतो गदाः । ज्वराक्षेपातिसाराद्या निवर्त्तन्ते न संशयः ॥ ११० ॥

पीपरि, पीपलामूल, चव्य, चीता की जड़, सोंठ, अजमोद, अजवाइन, हल्दी, मुलेठी, देवदारु, दारुहल्दी, वायविडंग, छोटी इलायची, नागकेसर, नागरमोथा, कपूर, काकड़ासिंगी, बिड़नमक, अभ्रकभस्म, शंखभस्म, लोहभस्म और स्वर्णमाक्षिक की भस्म; इन सबको सम भाग ले दूध में घोटकर तीन-तीन रत्ती की गोलियाँ बना ले। प्रयोग का जाननेवाला वैद्य बालकों के मसूढ़ों पर इसको घिसे तथा अवस्थानुसार मात्रा में सेवन करावे। इसके प्रयोग से दाँत बहुत शीघ्र निकल आते हैं तथा दाँत निकलने के कारण से उत्पन्न हुए ज्वर, आक्षेप तथा अतीसार आदि रोग निःसन्देह निवृत्त हो जाते हैं ॥ १०७--११० ॥

लवङ्गचतुःसम।

जातीफलं त्रिदशपुष्पसमन्वितं च जीरं च टङ्कनयुतं चरकैः प्रयुक्तम्। चूर्णानि माक्षिकसितासहितानि लीढ्वा सामातिसारमखिलं गुरु हन्ति शूलम् ॥ १११ ॥

जायफल, लवङ्ग, जीरा और सोहागा; इनके समभाग चूर्ण में शहद और मिश्री मिलाकर चटाने से सब प्रकार का आमातीसार और भयंकर शूलरोग नष्ट होता है। मात्रा-एक वर्ष के बालक के लिये ½ रत्ती से एक रत्ती तक ॥ १११ ॥

दाडिमचतुःसम।

एतद्द्रव्यचतुष्कं चेद् दाडिमीफलमध्यगम् । पुटपक्वं पयःपिष्टं तद्दाडिमचतुःसमम् ॥ ११२ ॥

पयोऽत्र छाग्याः, तस्यातिसारहरत्वात् । पयःशब्दोऽत्र जलवाचकमिति केचित् ।

उपर्युक्त चारों औषधियों को बीज निकले हुए अनार के भीतर भरकर पुटपाक की विधि से पका ले, पश्चात् बकरी के दूध में अथवा जल में पीसना चाहिए। यह दाडिमचतुःसम योग है। यहाँ बकरी का दूध इसलिए ग्रहण किया है कि वह अतीसार को नष्ट करनेवाला है। कोई आचार्य तो यहाँ पयःशब्द से जल ही ग्रहण करना बताते हैं। मात्रा-½ रत्ती से १ रत्ती तक ॥ ११२ ॥

पिप्पल्याद्य घृत।

पिप्पलीधातकीपुष्पधात्रीफलकशेरुभिः। वचामूर्वामृतापाठाकटुकातिविषाघनैः ॥ ११३ ॥ जीवनीयैर्घृतं सिद्धं शस्तं दशनजन्मनि । सुखोष्णेन यथामात्रं पयसैतत् प्रपाययेत् ॥ ११४ ॥

पीपरि, धाय के फूल, आँवला, कसेरू, वच, मूर्वा, गिलोय, पाढ़, कुटकी अतीस, नागरमोथा और जीवनीयगण की सब औषधियाँ आध सेर लेकर कल्क बनावे। घृत २ सेर, पाकार्थ जल ८ सेर। विधि से घृत सिद्ध करे। इसको उचित मात्रा में किंचित् गर्म दूध के साथ दाँत निकलने के समय बालक को पिलाना बहुत हितकर होता है ॥ ११३-११४ ॥

शिवमोदक।

शिवा तामलकी मूर्वा शतपुष्पा निशाद्वयम् । आत्मगुप्ता बला बिल्वं देवपुष्पं शतावरी ॥ ११५ ॥ मुरा मधुरिका मांसी विदारी विश्वभेषजम् । अनन्तामलकी श्यामा भार्गी करिकणा कणा ॥ ११६ ॥ चातुर्जातं चतुर्बीजं चन्दनं रक्तचन्दनम् । मुशली वाजिगन्धा च बीजं गोक्षुरसम्भवम् ॥ ११७ ॥ सर्वाण्येतानि तुल्यानि द्राक्षा सर्वसमा मता । सिता द्राक्षासमा

चैवेत्येतानि मधुना सह ॥ ११८ ॥ संमर्द्य मोदकान् कृत्वा माषकप्रमितान् भिषक्। एकैकमेषां पयसा प्रातः प्रातः प्रयोजयेत् ॥ ११९॥ बालानां सर्वरोगघ्नं पुष्टिकृद्वल-वर्द्धनम्। परं वह्निकरं मेध्यमायुष्यं ग्रह-दोषहृत् ॥ १२० ॥ भगवत्यै समुदितं शिवायै लोकमङ्गलम्। एतन्मोदकमीशेन युगे भगवता कृते ॥ १२१ ॥

हड, मुई आंवला, मूर्वा, सोया के बीज, हल्दी, दारुहल्दी, कौंच के बीज, खरैंटी, मेलगिरी, लवङ्ग, शतावरी, मुरामांसी, सौंफ, जटामांसी, विदारीकन्द, सौंठ, अनन्तमूल, आंवला, कालीसर, भारंगी, गजपीपरि, पीपरि, चातुर्जात, (दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर), चतुर्बीज (मेथी, चनसुर, काला जीरा, अजवायन) सफेद चन्दन, लाल चन्दन, मुसली, असगन्धा और गोखुरू के बीज, सब समान भाग। सबके बराबर मुनक्का और मुनक्का के बराबर खाँड, इन सबको शहद के साथ घोटकर एक-एक माशा के लड्डू बनाकर प्रातः काल दूध के साथ एक-एक लड्डू खावे। यह मोदक सब रोगों को नष्ट करके बालकों को पुष्ट कर देता है तथा बल को बढ़ाता, जठराग्नि को दीप्त करता, पवित्र, आयु बढ़ानेवाला और ग्रहदोषों को दूर करनेवाला है। शङ्करजी ने सतयुग में इस लोकमंगल मोदक को भगवती पार्वतीजी से कहा था ॥ ११८-१२१ ॥

सर्वौषधिस्नान।

मुरामांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीद्वयम्। शटी चम्पकमुस्तं च सर्वौषधिगणः स्मृतः ॥ १२२ ॥ सर्वौषध्यम्बुना स्नानं बालानां ग्रहनाशनम्। ग्रहरक्षः प्रशमनमायुष्यं कान्तिवर्द्धनम् ॥ १२३ ॥

मुरामांसी, वच, कूट, छारछरीला, हल्दी, दारुहल्दी, कचूर, चम्पा और मोथा, यह सर्वौषधिगण कहाता है। इन औषधियों के जल से बालकों को स्नान कराने से सब रोग नष्ट होते हैं। तथा ग्रह और राक्षसभय शान्त होते हैं और आयु तथा कीर्ति की वृद्धि होती है ॥ १२२-१२३ ॥

कण्टकारी घृत।

कण्टकार्या बृहत्याश्च भार्गीवासकयोरपि। स्वरसेन तथा छागक्षीरेण विपचेद्घृतम् ॥ १२४ ॥ कल्कैः करिकणाकृष्णामरिचैर्मधुकेन च। वचाग्रन्थिकमांसीभिश्चव्यचित्रकचन्दनम् ॥ १२५ ॥ मुस्तामृतामलयजैर्यमान्या जीरकेण च। बलाविश्वौषधाभ्यां च द्राक्षादाडिमदारुभिः ॥ १२६ ॥ सिद्धमेतद्घृतं सद्यः शिशूनां श्वासकासहृत्। ज्वरारोचकशूलघ्नं कफनुद्बलवह्निकृत् ॥ १२७ ॥

कटेरी का रस ४ सेर, बड़ी कटेरी का रस ४ सेर, भारंगी का रस ४ सेर, अडूसे का रस ४ सेर और बकरी का दूध ४ सेर, गोघृत २ सेर। कल्क के लिए गजपीपरि, पीपरि, मिर्च, मुलेठी, वच, पीपलामूल, जटामांसी, चव्य, चित्रक, लाल चन्दन, मोथा, गिलोय, सफेद चन्दन, अजवाइन, जीरा, खरैंटी, सोंठ, मुनक्का, अनारदाना और देवदारु; सब मिलाकर आध सेर। यथाविधि घृत सिद्धकर बालकों को उचित मात्रा में सेवन कराने से यह श्वास, खाँसी, ज्वर, अरुचि, शूल और कफरोग को नष्ट करता तथा बल और अग्नि को दीप्त करता है। मात्रा एक वर्ष के बच्चे को ४-५ बूँद ॥ १२४-१२७ ॥

व्याघ्रीतैल।

व्याघ्रीरास्नाकबिल्वानां नैशगजस्य चाम्बुना। काञ्जिकेन तथा कल्कैर्मुस्तमोचरसाञ्जनैः ॥ १२८ ॥ शताह्वादारुकव्याद्यबलारास्नानिशायुगैः। चन्दनद्वयमञ्जिष्ठाभिपद्मगृहस्पलरेणुरैः ॥ १२९ ॥ गान-

पर्णीपृश्निपर्णीचातुर्जातकबालकैः । मृदः पात्रे पचेत्तैलमरिष्टेन्धनवह्निना ॥ १३० ॥ श्वासं कासं च बालानां ज्वरं वन्हेश्च वैकृतम् ॥ व्याघ्रीतैलमिदं हन्यात्त्वग्गदान् निखिलानपि ॥ १३१ ॥

छोटी कटेरी, अरूसा, बेल की छाल, भँगरा; इनका चार-चार सेर रस, कांजी ४ सेर। तेल २ सेर। कल्क के लिए नागरमोथा, मोचरस, रसौत, सोया के बीज, देवदारु, मुलेठी, खरेंटी, रासना, हल्दी, दारुहल्दी, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, मँजीठ, प्रियंगु, कमल की केशर, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, चातुर्जात (दालचीनी, छोटी-इलायची, तेजपात, नागकेशर) और सुगन्धबाला; ये सब मिलाकर आध सेर। इस तेल को मिट्टी के पात्र में नीम की लकड़ी की अग्नि से विधिपूर्वक सिद्ध करना चाहिए। इस व्याघ्री तैल की मालिश करने से बालकों के श्वास, कास, ज्वर, अग्निविकार और संपूर्ण चर्मरोग नष्ट होते हैं ॥ १२८-१३१ ॥

शंखपुष्पी तैल।

शङ्खपुष्पीमहानिम्बवासानामर्जुनस्य च। स्वरसेनारनालेन लाक्षातोयेन मस्तुना ॥ १३२ ॥ कल्कैश्च दाडिमीदारुनिशायुगफलत्रिकैः। चन्दनोशीरबालैश्च श्रीखण्डमधुकाम्बुदैः ॥ १३३ ॥ श्यामाशैवालशेफालीरक्तोत्पलरसाञ्जनैः। गन्धद्रव्यैश्च निखिलैः पचेत्तैलं तिलोद्भवम् ॥ १३४ ॥ प्रयोगादस्य नश्यन्ति बालानामखिला गदाः। कान्तिर्मेधा धृतिः पुष्टिर्वर्द्धते नात्र संशयः ॥ १३५ ॥ कल्याणाय कुमाराणां कपर्दी करुणाकरः। ससर्जेदं शङ्खपुष्पीतैलं भुवनमङ्गलम् ॥ १३६ ॥

शंखाहुली, बकायन की छाल, अरूसा और अर्जुन की छाल, प्रत्येक का स्वरस अथवा काढ़ा चार-चार सेर। काँजी ४ सेर, लाख का काढ़ा ४ सेर। और दही का तोड़ ४ सेर। तिलतेल ४ सेर। कल्क के लिए अनारदाना, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, लाल चन्दन, खस, सुगन्धबाला, सफेद चन्दन, मुलेठी, मोथा, काली-सारिवा, सिवाल, हरसिंगार की छाल, लाल कमल, रसौत, सब मिलाकर १ सेर। तथा संपूर्ण गन्धद्रव्य डालकर तैल सिद्ध करे। यह तैल मालिश करने से बालकों के संपूर्ण रोगों को नष्ट करता है। तथा कान्ति, मेधा, धारणाशक्ति और पुष्टि की वृद्धि करता है, इसमें संशय नहीं है। बालकों के कल्याण के लिए शिवशंकरजी ने इस भुवन-मंगलप्रद शंखपुष्पी तैल को रचा था ॥ १३२-१३६ ॥

अरविन्दासव।

अरविन्दमुशीरं च काश्मर्रीं नीलमुत्पलम्। मञ्जिष्ठैलाबलामांसीरम्बुदं सारिवां शिवाम् ॥ १३७ ॥ विभीतकवचाधात्रीः शटीं श्यामां सनीलिनीम्। पटोलं पर्पटं पार्थं मधूकं मधुकं मुराम् ॥ १३८ ॥ पलमानेन संगृह्य द्राक्षायाः पलविंशतिम्। धातकीं षोडशपलां जलद्रोणद्वये क्षिपेत् ॥ १३९ ॥ शर्करायास्तुलां तत्र तुलार्द्धं माक्षिकस्य च। मासं संस्थापयेद्भाण्डे मृत्तिकापरिनिर्मिते ॥ १४० ॥ बालानां सर्वरोगघ्नो बलपुष्टयग्निवर्द्धनः। अरविन्दासवः प्रोक्त आयुष्यो ग्रहदोषहृत् ॥ १४१ ॥

कमल, खस, खम्भारि, नीलकमल, मँजीठ, इलायची, खरेंटी, जटामांसी नागरमोथा, अनन्तमूल, हड़, बहेड़ा, बच, आँवला, कचूर, काली सारिवा, नील की जड़, परवल के पत्ते, पित्तपापड़ा, अर्जुन की छाल, महुआ के फूल, मुलेठी और मुरामांसी; प्रत्येक चार-चार तोले। मुनक्का १ सेर। धाय के फूल ६४ तोले। जल २१ सेर ४८ तोले। शक्कर ५ सेर। शहद २॥ सेर; इन सबको एकत्र कर मिट्टी के पात्र में भरकर १ महीने तक धरा रहने दे, फिर छान-

कर उपयुक्त मात्रा में बालकों को सेवन कराने से यह अरविन्दासव सब रोगों को नष्ट करता है तथा आयुवृद्धि और ग्रहदोषों को नष्ट करता से। पूर्ण मात्रा १। तोला से २॥ तोले तक॥ १३७-१४१॥

बालकुटजावलेह।

मूलत्वचं वत्सकस्य पलमेकं सुकुट्टितम्। अष्टभागं जलं दत्त्वा चतुर्भागावशेषितम्॥ १४२॥ अतिविषा च पाठा च जीरकं बिल्वमेव च। आम्रास्थिशतपुष्पा च धातकी मुस्तकं तथा॥ १४३॥ जातीफलं च सञ्चूर्ण्य निक्षिपेत्तत्र यत्नतः। बालानामामशूलघ्नं रक्तस्रावं सुदारुणम्॥ १४४॥ अपि वैद्यशतैस्त्यक्तं जयेदेतन्न संशयः॥ १४५॥

कुड़ा की जड़ की छाल ४ तोले कूटकर ३२ तोले जल में पकावे। जब ८ तोले जल बाकी रहे तब छानकर उसमें अतीस, पाढ़ी, जीरा सफेद, बेलगिरी, आम की गुठली की मींगी, सोया के बीज, धाय के फूल, नागरमोथा और जायफल सब मिलाकर ४ तोले पीसकर मिलावे। इसके सेवन से बालकों के आमशूल और कठिनतर रक्तस्राव रोग नष्ट होते हैं, चाहे सैकड़ों वैद्य उसे त्याग चुके हों॥ १४२-१४५॥

रामेश्वररस।

शाणं सूतस्य गन्धस्य सुवर्णमाक्षिकस्य च। यत्नतः कज्जलीं कृत्वा लौहपात्रे विमर्दयेत्॥ १४६॥ केशराजस्य भृङ्गस्य निर्गुण्ड्याः पर्णसम्भवैः। स्वरसैः काकमाच्याश्च ग्रीष्मसुन्दरकस्य च॥ १४७॥ सूर्यावर्त्तकशालिञ्च भेकपर्णीरसैस्तथा। देयं रसार्द्धभागेन चूर्णं मरिचसम्भवम्॥ १४८॥ श्वेतापराजितायाश्च मूलं दद्याद्विचक्षणः। शुष्कामातपसंसर्गाद् गुटिकां कारयेद् भिषक्॥ १४९॥ प्रमाणं सर्षपाकारं बालानां चैव योजयेत्। हन्ति त्रिदोषसंम्भूतं ज्वरं घोरं सुदारुणम्॥ शिशूनां रोगनाशाय विश्वनाथेन निर्मितम्॥ १५०॥

शुद्ध पारा ३ माशे, गन्धक ३ माशे और सुवर्णमाक्षिक भस्म ३ माशे। पारा और गन्धक की कज्जली करके सुवर्णमाक्षिक की भस्म डालकर लोह के पात्र में घोटे। इसमें क्रम से केशराज, भँगरा, सँभालू के पत्ते, मकोय, ग्रीष्मसुन्दर, सूर्यमुखी, शालिञ्च और मण्डूकपर्णी इनके रस की भावना दे। इसमें १॥ माशे कालीमिर्च का चूर्ण और १॥ माशे श्वेत अपराजिता की जड़ का चूर्ण मिलाकर सरसों के बराबर गोलियाँ बनाकर धूप में सुखा ले। इसके सेवन करने से बालकों का कठिनतर सान्निपातिक ज्वर नष्ट होता है। बालकों के रोगों को नष्ट करने के लिए विश्वनाथ ने इसको बनाया था॥ १४६-१५०॥

भैषज्यं पूर्वमुद्दिष्टं नराणां यज्ज्वरादिषु। कार्यं तदेव बालानां मात्रा तत्र कनीयसी॥ १५१॥

ज्वर आदि रोगों में जो औषधि मनुष्यों के वास्ते कही गई है, वही औषधि बालकों को भी देनी चाहिए। परन्तु मात्रा अवस्थानुसार अत्यत छोटी देनी चाहिए॥ १५१॥

भूतग्रहचिकित्सा।

हिङ्गुव्योपालनेपालीलशुनार्कजटाजटाः। अजलोमीसगोलोमीभूतकेशीवचालताः॥ १५२॥ कुक्कुटी सर्पगन्धाख्या तिलाः काणविकाणिके॥ वज्रमोक्षा वयःस्था च शृङ्गी मोहनवल्ल्यपि॥ १५३॥ स्रोतोजाञ्जनरक्षोघ्नाःरक्षोघ्नं चान्यदीपधम्। खराश्वाश्विदुष्ट्रश्वगोधानकुलशल्यकान्॥ १५४॥ द्वीपिमार्जारगोसिंहव्या-

प्रसामुद्र- सत्वतः। चर्मपित्तद्विजनखावर्गेऽस्मिन् साधयेद्घृतम् ॥ १५५ ॥ पुराणमथवा तैलं नवं तत्पाननस्ययोः। अभ्यङ्गे च प्रयोक्तव्यमेतेषां चूर्णश्च धूपने ॥ १५६ ॥ एभिश्च गुटिकां युञ्ज्यादञ्जने सावपीडने। प्रलेपे कल्कमेतेषां क्वाथश्च परिषेचने ॥ प्रयोगोऽयं ग्रहोन्मादान् सापस्मारं शमं नयेत् ॥ १५७ ॥

हींग, त्रिकुटा, हरिताल, मैनशिल, लहसुन, आक की जड़, जटामासी, मेढ़ासिंगी, दूब की जड़, भूतकेशी, बच, प्रियंगु, सेमर, रास्ना, तिल, काकोली, क्षीरकाकोली, थूहर दूध, काकड़ासिंगी, ब्राह्मी, सुरमा, रक्षोघ्न, (सरसों अथवा गूगल) तथा अन्य यथालाभ रक्षोघ्न द्रव्य; गदहा, घोड़ा सेह, ऊँट, रीछ, गोह, नकुल, शल्यक, चीता, बिल्ली, गौ, सिंह, बाघ तथा सामुद्रिक जन्तुओं के चर्म, पित्त, दाँत तथा नख; इनका क्वाथ, कल्क आदि द्वारा पुराने घृत अथवा नवीन तैल को विधिपूर्वक सिद्ध करे। इसका पान, नस्य एवं अभ्यङ्ग द्वारा प्रयोग करना चाहिए। धूपनार्थ इन्हीं हींग आदि द्रव्यों के चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए। अञ्जनार्थ इन्हीं द्रव्यों से गोली बनावे और जल में घिसकर अञ्जन करे। अवपीडन तथा प्रलेपार्थ इन्हीं द्रव्यों का कल्क बनावे। परिषेचन अथवा स्नानार्थ इन्हीं द्रव्यों का क्वाथ लाभदायक है। ये ग्रह-उन्माद तथा अपस्मार को अच्छा करते हैं ॥ १५२-१५७ ॥

भूतरावं घृत।

त्रिकटुकदलकुङ्कुमग्रन्थिकक्षारसिंहीनिशादारुसिद्धार्थयुग्माम्बुशक्राह्वयैः ॥ सितलशुनफलत्रयोशीरतिक्तावचा तुत्थयष्टी बलालोहितैलाशिलापद्मकैः ॥ १५८ ॥ दधितगरमधूकसारभियाह्वाविषाख्याविषाताक्ष्यशैलैः सचव्यामयैः कल्कितैः। घृतमनवमशेषमूत्रांशसिद्धं मतं भूतरावाह्वयं पानतस्तद् ग्रहघ्नं परम् ॥ १५९ ॥

पुराना घी १२८ तोले, आठों मूत्र (मिलित) ६ सेर ३२ तोले। कल्क के लिये—त्रिकुटा, तेजपात, केशर, पीपलामूल, जवाखार, बड़ी कटेरी हल्दी, देवदारु, सफ़ेद सरसों, लाल सरसों, गन्धबाला, इंद्रजौ सफेद चन्दन, लहसुन, त्रिफला, खस, कुटकी, बच, तूतिया, मुलैठी, खरेंटी, मँजीठ, इलायची, मैनशिल, पद्माख, दधि (श्रीवास चीड़ की लकड़ी अथवा गन्धबिरोजा), तगर, महुए की लकड़ी, प्रियंगु कलिहारी, अतीस, रसौत, छारछरीला, चव्य, कूट, सब मिलाकर ३२ तोले। विधिपूर्वक घृत पकावे। मात्रा चौथाई तोला। इस घृत के पान से ग्रह नष्ट होते हैं ॥ १५८-१५९ ॥

महाभूतराव घृत।

नतमधुककरञ्जलाक्षापटोलीसमङ्गावचापाटलीहिङ्गुसिद्धार्थसिंहीनिशायुगलतारोहिणैः। बदरकटुफलत्रिकाकाण्डदारुकृमिघ्नाजगन्धामराङ्कोलकोशातकीशिग्रु-निम्बाम्बुदेन्द्राह्वयैः ॥ १६० ॥ गदशुक्रतरुपुष्पबीजोग्रयष्ट्यद्रिकर्णीनिकुम्भाग्निबिल्वैः समैः कल्कितैः मूत्रवर्गेण सिद्धं घृतम्। विधिविनिहितमाशु सर्वैः क्रमैर्योजितं हन्ति सर्वग्रहोन्मादकुष्ठज्वरास्तन्महाभूतरावं स्मृतम् ॥ १६१ ॥

गोघृत १२८ तोले, आठों मूत्र मिलाकर ६ सेर ३२ तोले। कल्क के लिये—तगर, मुलेठी, करञ्ज, लाख, पटोल, मँजीठ, बच, पाटला, हींग, सफेद सरसों, बड़ी कटेरी, हल्दी, दारु हल्दी, प्रियंगु, कुटकी, बेर कालीमिर्च, त्रिफला काण्ड, (चिरायता, अथवा शर) देवदारु, वायविडङ्ग, बबई, गिलोय, अङ्कोल, कड़वी तोरई, सहिंजना की छाल, नीम की छाल, मोथा, इन्द्रजौ, कूट, सिरस के फूल और बीज, बचा, (अथवा बोजोग्र यदि एक पद लिया जाय तो

बाँस), मुलेठी, गिरिकर्णी, दन्ती, चित्रक और बेल सब मिलाकर ३२ तोले। इनसे विधिपूर्वक घृत सिद्धकर सेवन करने से यह सम्पूर्ण ग्रह, उन्माद, दुष्ट तथा ज्वर आदि रोगों को नष्ट करता है ॥ १६०-१६१ ॥

सहामुण्डितिकोदीच्यकाथस्नानं ग्रहापहम् । सप्तच्छदनिशाकुष्ठचन्दनैश्चानुलेपनम् ॥ १६२ ॥

सहा (मापपर्णी), मुण्डी, गन्धवाला; इनके अर्द्धावशिष्ट (आधे बचे हुए) क्वाथ द्वारा स्नान कराने से अथवा सतौना, हल्दी कूट तथा सफ़ेद चन्दन; इनके लेप करने से सम्पूर्ण ग्रह नष्ट होते हैं ॥ १६२ ॥

महागन्धक।

रसगन्धकयोः कर्षं ग्राह्यमेकं सुशोधितम् । ततः कज्जलिकां कृत्वामृदुपाकेन साधयेत् ॥ १६३ ॥ जातीफलं तथा कोषं लवङ्गारिष्टपत्रके । सिन्धुवारदलं चैव एलावीजं तथैव च ॥ १६४ ॥ एषाञ्च कर्षमात्रेण तोयेनाथ विमर्दयेत् । मुक्तागृहे पुनः स्थाप्यं पुटपाकेन साधयेत् ॥ १६५ ॥ घनपङ्कं बहिर्लिप्त्वा पुटमध्ये निधापयेत् । गुञ्जाषट्कप्रमाणेन प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ १६६ ॥ एतत्प्रोक्तं कुमाराणां रक्षणाय महौषधम् । ज्वरघ्नं दीपनं चैव बलवर्णप्रसाधनम् ॥ १६७ ॥ दुर्वारं ग्रहणीरोगं जयत्येव प्रवाहिकाम् । सूतिकाञ्च जयेदेतद्रक्तार्शो रक्तसम्भवम् ॥ १६८ ॥ पिशाचा दानवा दैत्या बालानां विघ्नकारकाः । यत्रौषधवरस्तिष्ठेत्तत्र सीमां न यान्ति ते ॥१६९॥ बालानां गदयुक्तानां स्त्रीणाञ्चैव विशेषतः । महागन्धकमेतद्धि सर्वव्याधिनिषूदनम् ॥ १७० ॥

शुद्ध पारा १ तोला तथा शुद्ध गन्धक १ तोला; इनकी कज्जली करके विधिपूर्वक मृदुपाक द्वारा पर्पटी बनावे। पश्चात् पर्पटी को अच्छे प्रकार पीसकर उसमें जायफल, जावित्री, लौंग, नीम के पत्ते, सँभालू के पत्ते, छोटी इलायची; हरएक का चूर्ण १ तोला मिला दे और थोड़ा सा जल देकर अच्छे प्रकार घोट करके पिण्डाकार कर ले और सीपियों में डालकर सुखा ले, फिर अन्य सीपियों द्वारा बन्द कर दे। पश्चात् बाहर मिट्टी का मोटा घना लेप करके धूप में सुखा ले। तदनन्तर लघुपुट दे। जब गन्धक की गन्ध आने लगे तत्क्षण बाहर निकाल ले और शीतल होने पर सीपियों को अलग कर औषध चूर्णित कर ले और यदि गोली बनानी हों तो जल में घोटकर गोली बना ले। पूर्णमात्रा—२ रत्ती से ६ रत्ती तक। ग्रहणी रोग में भी इस औषध का वर्णन है ; किन्तु वहाँ इसका पाक भिन्न प्रकार से लिखा गया है। कुछ वैद्य पहले पाक के अनुसार ही इसका पाक करते हैं। परन्तु वह इतना लाभदायक नहीं होता जितना कि इस नई विधि के पाक से होता है। इसमें "सिन्धुवारदलं चैव एलाबीजं तथैव च" इत्यादि पाठ अधिक है। यह दोनों द्रव्य भी इस रस की शक्ति को बढ़ाते हैं। बालकों को रोगों से मुक्त करने के लिये यह अत्यन्त उत्कृष्ट औषध है। यह रस ज्वर, ग्रहणी, प्रवाहिका, सूतिकारोग, रक्तज रक्तार्श आदि रोगों को नष्ट करता है। इससे अग्नि उद्दीप्त होती है तथा बल एवं वर्ण की वृद्धि होती है। इस औषध के प्रयोग से पिशाच, दानव तथा दैत्य आदि बालकों के पास नहीं आते। बीमार बालकों तथा स्त्रियों के सम्पूर्ण रोगों को यह महागन्धक नाश करता है ॥ १६३-१७० ॥

बाल रस।

पलं शुद्धस्य सूतस्य गन्धकस्य पलं तथा । सुवर्णमाक्षिकस्यापि भागार्द्धं सम्प्रकल्पयेत् ॥ १७१ ॥ ततः कज्जलिकां कृत्वा लौहपात्रमये दृढे । केशराजस्य

भृङ्गस्य निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च ॥ १७२ ॥ शुभे शिलामये पात्रे लौहदण्डेन मर्दयेत् । राजिकासदृशीश्चैव वटिकां कारयेद्भिषक ॥ १७३ ॥ एकैकां वटिकां खादेन्नागवल्लीदलद्रवैः । हन्ति त्रिदोषसम्भूतं ज्वरञ्चैव सुदारुणम् ॥ १७४ ॥ चिरज्वरञ्च कासञ्च शूलंसर्वभवं तथा । शिशूनां रोगनाशाय शिवेन परिकीर्त्तितः ॥ १७५ ॥

शुद्ध पारा तथा गन्धक को अलग-अलग ४ तोले की मात्रा में लेकर लोहपात्र में घोटकर कज्जली करके उसमें सुवर्णमाक्षिक भस्म ४ तोले मिलावे पश्चात् पत्थर की खरल में इस औषध को डाल केशराज, भाँगरा तथा सँभालू के रस से लौहदण्ड द्वारा घोटकर राई के परिमाण की गोलियाँ बनावे । अनुपान–पान के पत्तों का रस । शिवजी द्वारा कहा हुआ यह रस त्रिदोष ज्वर, जीर्णज्वर, खाँसी, शूल आदि बालकों के रोगों के लिए अत्यन्त लाभदायक है ॥ १७१-१७५ ॥

बलिशान्तीष्टकर्माणि कार्याणि ग्रहशान्तये । मन्त्रश्चायं प्रयोक्तव्यस्तत्रादौ सर्वकामिकः ॥ १७६ ॥

मन्त्रो यथा । "ॐ नमो भगवते गरुडाय त्र्यम्बकाय स्वस्त्यस्तु स्वाहा ॐ कं टं यं शं वैनतेयाय ॐ ह्रां ह्रीं क्षः ।"

ग्रहों की शान्ति के लिए बलि, शान्ति और इष्टदेव की पूजा आदि कर्म करना चाहिए, किंतु सब कामों के आदि में आगे कहे हुए मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए ॥ १७६ ॥

मन्त्र जैसे—ॐ नमो भगवते गरुडाय त्र्यम्बकाय स्वस्त्यस्तु स्वाहा । ॐ क टं यं शं वैनतेयाय ॐ ह्रां ह्रीं क्षः ॥

बालदेहप्रमाणेन पुष्पमालां तु सर्वतः । प्रगृह्य मृच्छिकाभक्तं बलिर्देयस्तु शान्तिकः ॥ १७७ ॥

"ॐकारः स्वर्णपक्षीश बालकं रक्ष रक्ष स्वाहा ।"

बालक की देह के बराबर लंबी पुष्पों की माला ले और मिट्टी के सकोरे (सराव) में भात रखकर उसके चारों ओर माला रख दे और "ॐकारः स्वर्णपक्षीश बालकं रक्ष रक्ष स्वाहा" इस मन्त्र को पढ़कर चौराहे पर गरुड के लिए बलि दे ॥ १७७ ॥

अथ रावणकृत कुमारतन्त्र ।

ॐ नारायणाय स्वाहा । प्रथमे दिवसे मासि वर्षे वा गृह्णाति नन्दा नाम मातृका । तया गृहीतमात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः । अशुभशब्दं मुञ्चति आत्कारं च करोति स्तन्यं न गृह्णाति । बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।

नद्युभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा शुक्लौदनं शुक्लपुष्पं सप्तध्वजाः सप्त प्रदीपाः सप्त वटकाः सप्त स्वस्तिकाः सप्त शष्कुलिकाः जम्बुडिका गन्धपुष्पं ताम्बूलं मत्स्यं मांसं सुरा अग्रभक्तं च पूर्वस्यां दिशि चतुष्पथे मध्यान्हे बलिर्दातव्यः । अश्वत्थपत्रं कुम्भे निःक्षिप्य शान्त्युदकेन स्नापयेत् । रसोनसिद्धार्थकमेषभृङ्गनिम्बपत्रशिवनिर्माल्यैर्बालकं धूपयेत् ।

"ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा ।"

एवं दिनत्रयं बलिं दत्त्वा चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत् । ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ १ ॥

पहले दिन अथवा पहले महीने या पहले वर्ष में नन्दा नाम मातृका बालक को ग्रहण करती

है तब बालक को पहले ज्वर हो आता है, वह अशुभ शब्द छोड़ता है अर्थात् बुरी तरह रोता है, आ-आ करता है, दूध नहीं पीता है। उसके निवारण के लिए बलि कहता हूँ, जिससे कल्याण होता है।

"नदी के दोनों किनारों की मिट्टी लेकर एक पुतली अर्थात् मूर्ति बनावे और सफेद भात, सफेद फूल, ७ ध्वजाएँ, ७ दीपक, ७ बरे (उड़द के बड़े), ७ स्वस्तिक (अर्थात् चावलों को पीसकर कुछ मीठा डालकर बनाये हुए ७ तिकोने जो घी में पकाये गये हों), ७ सुहाली (छोटी-छोटी पूरियाँ), उबाले हुए उर्द, रोली, चन्दन, फूल, पान, मछली, मांस, मदिरा और भात (पके हुए चावल जो पात्र में से सबसे पहिले निकाले जायँ); इन सब चीजों को इकट्ठा कर पूर्व दिशा में चौराहे पर मध्याह्न के समय बलि (उतारा) देना चाहिए। फिर कलश मे पीपल का पत्ता छोड़कर शान्तिजल से स्नान कराना चाहिए। और लहसुन, सफेद सरसों, मेढ़े का सींग, नीम के पत्ते और बिल्व-पत्र इन सबकी बत्तों को धूप देना चाहिए। बलि (उतारा) देते समय—

"ॐ नमो रावणाय अमुकस्य [1] व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा।" इस मन्त्र को पढ़ना चाहिए। इस प्रकार तीन दिन बलि देकर चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। इससे बच्चा अच्छा हो जाता है ॥ १ ॥

द्वितीये दिवसे मासि वर्षे वा गृह्णाति सुनन्दा नाम मातृका। तया गृहीतमात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः। चक्षुरुन्मीलयति गात्रमुद्वेजयति न शेते क्रन्दति स्तन्यं न गृह्णाति आत्कारं च करोति। बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

तण्डुलं हस्तमुष्ट्येकं गृहीत्वा दधि-गुडघृतमिश्रितं कृत्वा शरावैकं गन्धं ताम्बूलं पीतपुष्पं पीतसप्तध्वजाः चत्वारः प्रदीपाः दश स्वस्तिकाः मत्स्यमांससुराग्र-भक्ततिलचूर्णानि पश्चिमायां दिशि चतुष्पथे दिवा बलिर्दातव्यः। दिनानि त्रीणि सन्ध्या च। ततः शान्त्युदकेन स्नापयेत्। शिवनिर्माल्यसिद्धार्थकमार्जाररोमोशीरवालकघृतैर्धूपं दद्यात्।

"ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा।"

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ २ ॥

दूसरे दिन, दूसरे महीने अथवा दूसरे वर्ष में

सुनन्दा नाम मातृका बालक को पकड़ लेती है तब बालक को उसी समय पहले ज्वर हो आता है, आँखें बन्द कर लेता है, अँगड़ाई लेता है, सोता नहीं है, रोता है, दूध नहीं पीता है और आ-आ करता (उबकाई आती) है। उसके लिए बलि कहता हूँ, जिससे कल्याण होता है।

एक मुट्ठी चावल लेकर! उसमें दही, गुड़ और घृत मिलाकर एक सकोरे में रख ले तथा रोली, चन्दन, पान, पीले फूल, पीली ७ ध्वजाएँ, ४ दीपक, १० घी के पके चावलों के तिकोने, मछली, मांस, मदिरा, भात (भात के पात्र में से पहिले निकाला भाग) और तिल का चूर्ण उसमें रखकर पश्चिम दिशा में चौराहे पर सायंकाल के समय दिन में तीन दिन तक बलि (उतारा) देना चाहिए। फिर शान्ति जल से स्नान कराना चाहिए। बिल्वपत्र, सफेद सरसों, बिल्ली के बाल खस, सुगन्धबाला और घृत मिलाकर धूप देना चाहिए। बलि (उतारा) देते समय—

"ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा" इस मन्त्र को पढ़ना चाहिए। चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन

[1]—मंत्र में अमुकस्य के स्थान पर सर्वत्र षष्ठ्यन्त बालक का नाम लेना चाहिए।

कराना चाहिए। इससे बच्चा अच्छा हो जाता है॥ २॥

तृतीये दिवसे मासि वर्षे वा गृह्णाति पूतना नाम मातृका। तया गृहीतमात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः। गात्रमुद्वेजयति स्तन्यं न गृह्णाति मुष्टिं बध्नाति क्रन्दति ऊर्ध्वं निरीक्षते। बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

नद्युभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा रक्तचन्दनं गन्धं ताम्बूलं रक्तपुष्पं रक्तचन्दनं रक्तसप्तध्वजाः सप्तप्रदीपाः सप्तस्वस्तिकाः पक्षिमांसं सुरा अग्रभक्तं च दक्षिणस्यां दिशि अपराह्णे चतुष्पथे बलिर्दातव्यः। शिवनिर्माल्यगुग्गुलुसर्षपनिम्बपत्रमेषशृङ्गैर्दिनत्रयं धूपयेत्।

"ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च हासय हासय स्वाहा।"

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः सम्पद्यते शुभम्॥ ३॥

तीसरे दिन, तीसरे महीने अथवा तीसरे वर्ष पूतना नाम मातृका बालक को पकड़ लेती है तब बालक को उसी समय पहले ज्वर हो जाता है, शरीर को ऐंठने लगता है, दूध नहीं पीता है, मुट्ठी बन्द करके रोता है और ऊपर को देखने लगता है। उसके लिए बलि कहता हूँ, जिससे कल्याण होता है।

नदी के दोनों किनारों की मिट्टी लेकर पुतली (मूर्ति) बनावे और लाल चन्दन, रोली, पान, लाल फूल, लाल वर्ण की ७ ध्वजाएँ, ७ दीपक, ७ चावल के तिकोने, पक्षी का मांस, मदिरा और पहला भात (पात्र के पींद्दे चावल); इन सबको एक सकोरे में रखकर दक्षिण दिशा में अपराह्ण के समय चौराहे पर बलि (उतारा) दे। फिर बिल्वपत्र, गूगुल, सरसों, नीम के पत्ते और मेढ़ा का सींग, इनकी तीन दिन धूप दे। बलि का मन्त्र—

"ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च हासयहासय स्वाहा।" चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करावे तो बालक सुखी होता है॥ ३॥

चतुर्थे दिवसे मासि वर्षे वा गृह्णाति मुखमुण्डितिका नाम मातृका। तया गृहीतमात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः। ग्रीवां नमयति चक्षुरुन्मीलयति स्तन्यं न गृह्णाति रोदिति स्वपिति मुष्टिं बध्नाति बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

नद्युभयकूलमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा उत्पलपुष्पं गन्धं ताम्बूलं दश शुक्लध्वजाः चत्वारः प्रदीपास्त्रयोदश स्वस्तिकाः मत्स्यमांससुरा अग्रभक्तं च उत्तरस्यां दिशि अपराह्णे चतुष्पथे बलिर्देयः।

"ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा।"

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः सम्पद्यते शुभम्॥ ४॥

चौथे दिन, चौथे महीने अथवा चौथे वर्ष में मुखमुण्डितिका नाम मातृका बालक को पकड़ लेती है तब उसी समय बालक को पहले ज्वर हो जाता है, गर्दन झुका देता है, आँखें बन्द कर लेता है, दूध नहीं पीता है, रोता है, सोया करता है और मुट्ठी बन्द कर लेता है। उसके बलि कहता हूँ, जिससे कल्याण होता है।

नदी के दोनों किनारों की मिट्टी लेकर मूर्ति (पुतली) बनाकर कमल के फूल, रोली, चन्दन, पान, १० सफेद ध्वजाएँ, ४ दीपक, १३ तिकोने, मछली, मांस, मदिरा और पहिला भात भात; इन सबको सकोरे में रखकर उत्तर दिशा में अपराह्ण के समय चौराहे पर बलि दे। बलि का मन्त्र—

"ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं ..."

हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा।" इस प्रकार ३ दिन बलि दे। चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करावे तो बालक सुखी होता है ॥ ४ ॥

पञ्चमे दिवसे मासि वर्षे वा गृह्णाति कटपूतना नाम मातृका। तया गृहीतमात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः। गात्रमुद्वेजयति मुष्टिं बध्नाति स्तन्यं न गृह्णाति। बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

कुम्भकारस्य चक्रमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा गन्धं ताम्बूलं शुक्लौदनं शुक्लपुष्पं पञ्चध्वजाः पञ्च वटकाः सप्त प्रदीपाः ऐशान्यां दिशि बलिर्दातव्यः। ततः शान्त्युदकेन स्नापयेत्। शिवनिर्माल्यसर्पनिर्मोकगुग्गुलुनिम्बपत्रबालकघृतैर्धूपं दद्यात्।

"ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा।"

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ५ ॥

पाँचवें दिन, पाँचवें महीने अथवा पाँचवें वर्ष में कटपूतना नाम मातृका बालक को पकड़ लेती है तब बालक को उसी समय पहले ज्वर हो जाता है, शरीर ऐंठने लगता है, मुट्ठी बन्द कर लेता है तथा दूध नहीं पीता है। उसके लिए बलि कहता हूँ, जिससे कल्याण होता है।

कुम्हार के चाक की मिट्टी लेकर मूर्ति (पुतली) बनाकर रोली चन्दन, पान, सफेद चावल का भात, सफेद फूल, पाँच ध्वजएँ, पाँच उर्द के वरे, सात दीपक; इन सबको एक सकोरे में रखकर ईशान दिशा में (चौराहे पर) बलि दे। पश्चात् शान्ति के जल से स्नान करावे और बिल्वपत्र, साँप की केंचुली, गूगुल, नीम के पत्ते, सुगन्धवाला और घृत मिलाकर धूप दे।

बलि का मन्त्र—"ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा।" इस प्रकार ३ दिन बलि दे। चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करावे तो बालक सुखी होता है ॥ ५ ॥

षष्ठे दिवसे मासि वर्षे वा गृह्णाति शकुनिका नाम मातृका। तया गृहीतमात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः। गात्रभेदं दर्शयति दिवारात्रौ उत्तानो भवति ऊर्ध्वं निरीक्षते। बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

पिष्टकेन पुत्तलिकां कृत्वा शुक्लौदनं रक्तपुष्पं पीतपुष्पं गन्धं ताम्बूलं दश प्रदीपाः दश पीतध्वजाः दश स्वस्तिकाः दश वटकाः क्षीरजम्बुडिका मत्स्यमांससुरा आग्नेय्यां दिशि निष्क्रान्ते मध्याह्ने बलिर्दातव्यः। शान्त्युदकेन स्नापयेत्। शिवनिर्माल्यरसोनगुग्गुलुसर्पनिर्मोकनिम्बपत्रघृतैर्धूपं दद्यात्।

"ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा।"

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ६ ॥

छठे दिन, छठे महीने अथवा छठे वर्ष में शकुनिका नाम मातृका बालक को पकड़ लेती है तब उसी समय बालक को पहले ज्वर हो जाता है, देह टूटने लग जाती है, दिन-रात चित्त पड़ा रहता है, ऊपर को देखा करता है। उसके लिए बलि कहता हूँ, जिससे कल्याण होता है।

पीठी का पुतला बनाकर सफेद चावलों के भात, लाल फूल, पीले फूल, रोली, चन्दन, पान, १० दीपक, १० पीली ध्वजाएँ, १० तिकोने, १० बरे (उड़द के बटे), दूध में

उबाले हुए उड़द, मछली, मांस और मदिरा; इनको सैनक (मिट्टी की तस्तरी) में रखकर अग्निकोण में, चौराहे पर, मध्याह्न के समय बलि दे। पश्चात् शान्तिजल से स्नान कराकर बिल्वपत्र, लहसुन, गूगुल, सर्प की केंचुल, नीम के पत्ते और घृत की धूप दें।

बलि का मन्त्र—"ॐनमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा।" इस प्रकार ३ दिन बलि देकर चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करावे तो बालक सुखी होता है। अमुकस्य के स्थान पर बालक का षष्ठ्यन्त नाम रखना चाहिए ॥ ६ ॥

सप्तमे दिवसे मासि वर्षे वा गृह्णाति शुष्करेवती नाम मातृका। तया गृहीतमात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः। गात्रमुद्वेजयति मुष्टिं बध्नाति रोदिति। बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

रक्तपुष्पं शुक्लपुष्पं गन्धं ताम्बूलं रक्तौदनं कृशराः त्रयोदश स्वस्तिकास्त्रयोदश शष्कुलिका जम्बुडिका मत्स्यमांससुराः त्रयोदश ध्वजाः पञ्च प्रदीपाः पश्चिमे दिग्भागे ग्रामनिष्क्रान्ते अपराह्णे वृक्षमाश्रित्य बलिं दद्यात् ततः शान्त्युदकेन स्नापयेत्। गुग्गुलुमेषशृङ्गसर्षपोशीरबालकघृतैर्धूपयेत्।

"ॐ नमो रावणाय दीप्तदेहाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा।"

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ७ ॥

सातवें दिन, सातवें महीने अथवा सातवें वर्ष में शुष्करेवती नाम मातृका बालक को पकड़ लेती है तब उसी समय बालक को पहले ज्वर हो जाता है, शरीर ऐंठता है और मूँठी बांधकर रोता है। उसके लिए बलि कहता हूँ, जिससे कल्याण होता है।

लाल फूल, सफेद फूल, रोली, चन्दन, पान, लाल भात, तिल और चावल की खिचड़ी, १३ तिकोने, १३ पूड़ियाँ, उबाले हुए उर्द, मछली, मांस, मदिरा, १३ ध्वजाएँ, ५ दीपक; इन सबको सकोरे में रखकर पश्चिम दिशा में गाँव के बाहर अपराह्न के समय वृक्ष की जड़ में बलि दे। फिर शान्तिजल से स्नान कराकर गूगुल, मेढ़ा की सींग, सरसों, खस, नेत्रबाला और घृत की धूप दे।

बलि का मन्त्र—"ॐनमो रावणाय दीप्तदेहाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा।" इस प्रकार ३ दिन करे, फिर चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करावे तो बालक सुखी होता है ॥ ७ ॥

अष्टमे दिवसे मासि वर्षे वा गृह्णाति अर्यमा नाम मातृका। तया गृहीतमात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः। गृध्रगन्धः पूतिगन्धं च जायते आहारं च न गृह्णाति उद्वेजयति गात्राणि। बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

रक्तपीतध्वजाश्चन्दनं पुष्पं शष्कुल्यः पर्पटिका मत्स्यमांससुरा जम्बुडिकाः मत्पूपे बलिर्दातव्यः तदेव मन्त्रः पाठ्यः।

ॐ नमो रावणाय त्रैलोक्यविद्रावणाय चतुर्दिशां मोक्षणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ज्वल ज्वल दह दह ॐ ह्रीं फट् स्वाहा।"

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ८ ॥

आठवें दिन, आठवें महीने अथवा आठवें वर्ष में अर्यमा नाम मातृका पकड़ लेती है तब उसी समय बालक को पहले ज्वर हो जाता है। बालक में गीध की-सी तथा सड़ी हुई गन्ध आने लगती है, कुछ खाता-पीता नहीं है तथा शरीर को ऐंठने लगता है। उसके लिए बलि कहता हूँ, जिससे कल्याण होता है।

लाल और पीली ध्वजाएँ, चन्दन, फूल, पूड़ियां, पापड़, मछली, मांस, मदिरा और उबाले हुए उर्द; इनको एक मिट्टी की तस्तरी में रखकर प्रातःकाल (उषः काल) चौराहे पर बलि दे और उसी समय यह मन्त्र पढ़े ।

"ॐ नमो रावणाय त्रैलोक्यविद्रावणाय चतुर्दिशां मोषणाय अमुकस्य व्याधि हन हन मुञ्च मुञ्च ज्वल ज्वल दह दह ॐ ह्रीं फट् स्वाहा ।" इस प्रकार तीन दिन बलि देकर चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन कराने से बालक सुखी होता है ॥ ८ ॥

नवमे दिवसे मासि वर्षे वा गृह्णाति सूतिका नाम मातृका । तया गृहीतमात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः । नित्यं छर्दिर्भवति गात्रभेदं दर्शयति मुष्टिं बध्नाति निद्रातितरा स्यात् । बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।

नद्युभयकूलमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा शुक्लवस्त्रेण वेष्टयेत् । शुक्लपुष्पं गन्धं ताम्बूलं शुक्लौदनं त्रयोदश ध्वजास्त्रयोदश प्रदीपास्त्रयोदश स्वस्तिकास्त्रयोदश पूपिका मत्स्यमांससुरा उत्तरस्यां ग्रामनिष्काशे बलिं दापयेत्ततः शान्त्युदकेन स्नापयेत् । गुग्गुलुनिम्बपत्र गोधूमगोशृङ्गश्वेतसर्षपघृतैर्धूपयेत् ।

"ॐ नमो रावणाय चतुर्विंशतिभुजाय अमुकस्य व्याधिं मुञ्च मुञ्च हन हन स्वाहा ।"

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत् । ततः स्वस्थो भवति बालकः ॥ ९ ॥

नवें दिन, नवें महीने अथवा नवें वर्ष में सूतिका नाम मातृका बालक को पकड़ लेती है तब उसी समय बालक का पहले ज्वर हो आता है, नित्य ही वमन होती है, अंग टूटा करते हैं, मुट्ठी बांध लेता है तथा सोया करता है । उसके लिए बलि कहता हूँ, जिससे कल्याण होता है ।

नदी के दोनों किनारों की मिट्टी लेकर मूर्ति (पुतली) बनाकर उसे सफेद वस्त्र से लपेट ले । सफेद फूल, रोली, चन्दन, पान, सफेद भात, १३ ध्वजाएँ, १३ दीपक, १३ तिकोने, १३ पुआ, मछली, और मदिरा; इन सबको सकोरे में रखकर उत्तर दिशा में गांव से निकलने के रास्ते पर बलि दे । फिर शान्तिजल से स्नान करावे और गूगुल, नीम के पत्ते, गेहूँ, गौ का सींग, सफेद सरसों और घृत की धूप दे । बलि का मन्त्र—

"ॐ नमो रावणाय चतुर्विंशतिभुजाय अमुकस्य व्याधि मुञ्च मुञ्च हन हन स्वाहा ।" इस प्रकार तीन दिन बलि देकर चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करावे तो बालक स्वस्थ (नीरोग) हो जाता है ॥ ९ ॥

दशमे दिवसे मासि वर्षे वा यदि गृह्णाति निर्ऋतिर्नाम मातृका तया गृहीतमात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः । गात्रमुद्वेजयति आत्कारं च करोति रोदिति मूत्रं पुरीषं च त्यजति । बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।

नद्युभयकूलमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा गन्धं ताम्बूलं रक्तपुष्पं रक्तचन्दनं पञ्चवर्णपञ्चध्वजाः पञ्च प्रदीपाः पञ्च स्वस्तिकाः पञ्च पूपलिका मत्स्यमांससुरा वायव्यां दिशि बलिं दद्यात् । काकविष्ठागोमयगोशृङ्गसोनमार्जाररोमनिम्बपत्रधूपैर्धूपयेत् ।

"ॐ नमो रावणाय चूर्णितहस्ताय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा ॥"

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः स्वस्थो भवति बालकः॥ १०॥

दसवें दिन, दसवें महीना अथवा दसवें वर्ष में निर्ऋति नाम मातृका बालक को पकड़ लेती है तब उसी समय बालक को पहले ज्वर हो आता है, शरीर ऐंठता है, चा-चा करता है, रोया करता है और मूत्र तथा मल कर देता है। उसके लिए बलि कहता हूँ, जिससे कल्याण होता है।

नदी के दोनों किनारों की मिट्टी लेकर मूर्ति (पुतली) बनाकर रोली, चन्दन, पान, लाल फूल, चन्दन, पांच वर्ण की पांच ध्वजाएँ, पांच दीपक, पाँच तिकोने, पाच पुत्रा, मछली, मास और मदिरा; इन सबको सकोरे में रखकर वायव्य दिशा में चौराहे पर बलि दे, फिर कौवा की बीट, गोबर, गौ का सींग, लहसुन, बिल्ली के बाल, नीम के पत्ते और घृत की धूप दे। बलि का मन्त्र—

"ॐ नमो रावणाय शूलितहस्ताय अमुकस्य व्याधि हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा।" इस प्रकार तीन दिन करके चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करावे तो बालक स्वस्थ हो जाता है॥ १०॥

एकादशे दिवसे मासे वर्षे वा यदि गृह्णाति पिलिपिञ्छिका नाम मातृका। तया गृहीतमात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः। आहारं न गृह्णाति ऊर्ध्वदृष्टिर्भवति। गात्रभङ्गमास्कारं च करोति। बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

पिष्टेन पुत्तलिकां कृत्वा रक्तचन्दनाक्तां तस्या मुखं दुग्धेन सेचयेत्। पीतपुष्पं गन्धं ताम्बूलं सप्त पीतध्वजाः सप्त प्रदीपाः अष्टौ वटकाः अष्टौ पूपलिका अष्टौ शष्कुलिका मत्स्यमांससुराः पूर्वस्यां दिशि बलिं दद्यात् शान्त्युदकेन स्नापयेत्। शिवनिर्माल्यगुग्गुलुगोशृङ्गसर्पनिर्मोकघृतैर्धूपयेत्।

ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं मुञ्च मुञ्च स्वाहा।"

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम्॥ ११॥

ग्यारहवें दिन, ग्यारहवें महीने अथवा ग्यारहवें वर्ष में पिलिपिञ्छिका नाम मातृका बालक को पकड़ लेती है तब उसी समय बालक को पहले ज्वर हो आता है, खाता-पीता नहीं है, ऊपर को देखा करता है, अङ्गों को तोड़ा करता है तथा खा खा किया करता है। उसके लिए बलि कहता हूँ, जिससे कल्याण होता है।

उड़द की पीठी की मूर्ति (पुतली) बनाकर उसके ऊपर लाल चन्दन लगावे और उसके मुँह को दूध से सींचे तथा पीला फूल, रोली, चन्दन, पान, ७ पीली ध्वजाएँ, ७ दीपक, ८ बरे, (उड़द के बड़े), ८ पुआ, ८ पूरियाँ, मछली, मास और मदिरा; इनको मिट्टी की तस्तरी में रखकर पूर्व दिशा में चौराहे पर बलि दे। फिर शान्ति जल से स्नान करावे और बिल्वपत्र, गुगुल, गौ का सींग, सॉप की केंचुल और घृत; इनकी धूप दे। बलि का मन्त्र—

"ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधि मुञ्च मुञ्च स्वाहा" इस प्रकार तीन दिन करके चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करावे तो बालक सुखी होता है॥ ११॥

द्वादशे दिवसे मासि वर्षे वा यदि गृह्णाति कालिका नाम मातृका। तया गृहीतमात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः। विहस्य वादयति करेण तर्जयति गृह्णाति क्रन्दति निःश्वसिति मुहुर्मुहुश्छर्दयति आहारं न करोति। बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

क्षीरेण पुत्तलिकां कृत्वा गन्धं ताम्बूलं शुक्लपुष्पं शुक्लसप्तध्वजाः सप्त प्रदीपाः सप्त शष्कुलिकाः करम्भकेण सर्वकर्मबलिं

दद्यात्। शान्त्युदकेन स्नापयेत्। शिवनिर्माल्यगुग्गुलुसर्षपघृतैर्धूपयेत्।

"ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं मुञ्च मुञ्च हन हन स्वाहा।"

चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः स्वस्थो भवति बालकः॥ १२॥

इति रावणकृतं कुमारतन्त्रं समाप्तम्।
इति भैषज्यरत्नावल्यां बालरोगाधिकारः समाप्तः।

बारहवें दिन, बारहवें महीने अथवा बारहवें वर्ष में कालिका नाम मातृका बालक को पकड़ लेती है तब उसी समय पहले ज्वर हो आता है, हँसकर हाथ से कुछ बजाने लगता है, झिड़कने लगता है, दूध नहीं पीता है, चिल्लाया करता है, बारबार जोर से श्वास लेता है, बार-बार वमन करता है और भोजन नहीं करता है। उसके लिए बलि कहता हूँ, जिससे कल्याण होता है।

खोये से मूर्ति (पुतली) बनाकर रोली, चन्दन, पान, सफेद फूल, सफेद ७ ध्वजाएँ, ७ दीपक, ७ पूरियाँ और दही में सना हुआ सत्तू; इन सबको मिट्टी की तश्तरी में रखकर चौराहे पर सब कामों के लिए बलि दे। फिर शान्ति-जल से स्नान करावे और बिल्वपत्र, गूगुल, सरसों और घृत की धूप दे। बलि का मन्त्र—

"ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं मुञ्च मुञ्च हन हन स्वाहा।" इस प्रकार तीन दिन करके चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करावे तो बालक नीरोग हो जाता है॥ १२॥

इति रावणकृत कुमारतन्त्रं समाप्तम्।
इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां बालरोगाधिकारः समाप्तः।

अथ विषाधिकारः।

सर्वैरेवादितः सर्पैः शाखादष्टस्य देहिनः। दंशस्योपरि बध्नीयादरिष्टाश्चतुरंगुले॥ १॥ न गच्छति विषं देहमरिष्टाभिर्निवारितम्। दहेद्दंशमथोत्कृत्य यत्र बन्धो न जायते॥ २॥

यदि हाथ, पैर आदि में किसी प्रकार का भी सर्प डँस ले तो उसी समय डँसे हुए स्थान से ४ अंगुल ऊपर रस्सी कसकर बाँध देनी चाहिए। इसके बाँधने से देह में विष नहीं फैलने पावेगा। जहाँ रस्सी न बाँधी जा सके वहाँ काटे हुए घाव को शस्त्र से काटकर दाग देना चाहिए॥ १-२॥

अरिष्टाबन्धनं मन्त्रप्रयोगश्च विषापहः। दंशनं दंशकस्याहेः फलस्य मृदुनोऽपि वा॥ ३॥

साँप के काटे हुए स्थान के ऊपर रस्सी अथवा पट्टी कसकर बाँध देनी चाहिए। अथवा विष नाश के लिए मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए। जिस साँप ने काटा हो उस साँप के मध्य देश का दंशन करने से अथवा किसी मृदुफल का दंशन करने से भी विष नष्ट होता है॥ ३॥

मूलं तण्डुलवारिणा पिबति यः प्रत्यङ्गिरासम्भवं निष्पिष्टं शुचि भद्रयोगदिवसे तस्याहिभीतिः कुतः। दर्पादेव फणी यदा दशति तं मोहान्वितो मूलपं स्थाने तत्र स एव याति नियतं वक्त्रं यमस्याचिरात्॥ ४॥

जो पुरुष ज्येष्ठ मास में शुभ नक्षत्र वारादि युक्त शुभयोग में श्वेत पुनर्नवा की जड़ को जल से पीसकर तण्डुलोदक के साथ पीता है उसको कहीं भी सर्प का भय नहीं होता है। यदि गर्व से साँप मोह के वशीभूत होकर उस जड़ पीने

वाले को काट लेता है तो उसी स्थान पर वह साँप शीघ्र ही काल के मुँह में चला जाता है॥ ४॥

मसूरं निम्बपत्राभ्यां योऽत्ति मेषगते रवौ। अब्दमेकं न भीतिः स्याद्विषार्त्तस्य न संशयः॥ ५॥

जो मसूर के एक दाने को नीम के दो पत्तों के साथ घोटकर मेष की संक्रान्ति में पीता है उसको एक वर्ष तक विषजन्य पीड़ा नहीं होती है॥ ५॥

धवलपुनर्नवजटया तण्डुलजलपीतया च पुष्यर्क्षे। अपसरति खलु विषधरोपद्रव आवत्सरं पुंसाम्॥ ६॥

जो पुष्य नक्षत्र में सफेद साँठी की जड़ को तण्डुलजल से पीता है उसको एक वर्ष तक साँप का उपद्रव नहीं होता है॥ ६॥

गृहधूमो हरिद्रे द्वे समूलं तण्डुलीयकम्। अपि वासुकिना दष्टः पिबेद्दधिघृताप्लुतम्॥ ७॥

गृहधूम, हल्दी, दारुहल्दी और चौलाई की जड़; इनके चूर्ण को दही और घृत में मिलाकर पीने से वासुकि सर्प का काटा हुआ भी बच जाता है॥ ७॥

कुलिकमूलनस्येन कालदष्टोपि जीवति। शिरीषपुष्पस्वरसे भावितं मरिचं सितम्। सप्ताहं सर्पदष्टानां नस्यपानाञ्जने हितम्॥ ८॥

परवल की जड़ को पीसकर नस्य लेने से कालरूपी सर्प का काटा हुआ भी जीवित रहता है।

सफेद मिर्चों में सिरस के फूलों के स्वरस की भावना देकर सर्प से काटे हुए पुरुषों को सात दिन तक नस्य, पान और अंजन में इसको प्रयुक्त करना चाहिए॥ ८॥

द्विपलं नतकुष्ठाभ्यां घृतक्षौद्रं चतुःपलम्। अपि तक्षकदष्टानां पानमेतत् सुखप्रदम्॥ ९॥

तगर और कूट (मिलित ८ तोले) घृत और शहद (मिलित १६ तोले) इन सबको मिलाकर यदि तक्षक सर्प के काटे हुए को भी पिला दे तो वह सुखी हो जाता है॥ ९॥

वन्यकर्कोटजं मूलं छागमूत्रेण भावितम्। नस्यं काञ्जिकसंपिष्टं दोषोपहतचेतसः॥ १०॥

जङ्गली ककोड़े की जड़ को बकरी के मूत्र में भावित करके काँजी से पीस ले और विष के वेग से अचेत हुए पुरुष को उसका नस्य दे॥ १०॥

पीते विषे स्याद्वमनं त्वक्स्थे प्रदेहसेकादिसुशीतलं च॥ ११॥

यदि किसी ने विष पी लिया हो तो उसी समय वमन कराना चाहिए। यदि विष त्वचा में व्याप्त हो गया हो तो शीतल लेप तथा प्रसेक (ठंडे जल से स्नान) कराना चाहिए॥ ११॥

आगारधूममञ्जिष्ठारजनीलवणोत्तमैः। लेपो जयत्याखुविषं शोणितस्रावणं तथा॥ १२॥

गृहधूम, मँजीठ, हल्दी और सेंधा नमक, इनका लेप करने से मूसा (चूहा) का विष नष्ट होता है तथा खून का बहना बन्द हो जाता है॥ १२॥

श्लेष्मणः कर्णगूथस्य वामानामिकया कृतः। लेपो हन्याद्विषं घोरं नृमूत्रसेचनं तथा॥ १३॥

बायें हाथ की अनामिका अँगुली से मुखस्थित श्लेष्मा का अथवा कान के मैल का दंशित स्थान पर नर-मूत्र का सेचन करने से विष नष्ट होता है॥ १३॥

सोमवल्कोऽश्वगन्धा च गोजिह्वा

हंसपाद्यपि। रजन्यौ गैरिकं लेपो नखदन्तविषापहः॥ १४॥

श्वेत खदिर (श्वेत खैर की छाल), असगन्ध, गोजी, हंसपदी (हंसराज), हल्दी, दारुहल्दी और गेरू; इनका लेप नखविष और दन्तविष को नष्ट करता है॥ १४॥

यः कासमर्दनेत्रं वदने निक्षिप्य कर्णे फूत्कारम्। मनुजो ददाति शीघ्रं जयति विषं वृश्चिकानां सः॥ १५॥

जो मनुष्य कसौंदी की जड़ को मुख में डालकर बिच्छू के काटे हुए प्राणी के कान में फूँक मारे तो उससे बिच्छू का विष दूर हो जाता है॥ १५॥

उष्णं गव्यघृतं चापि सैन्धवेन समन्वितम्। वृश्चिकस्य विषं हन्ति लेपनात् पर्वतात्मजे॥ १६॥

हे पार्वति! गौ के घृत में सेंधा नमक मिलाकर और गरम करके उसका लेप करने से बिच्छू का विष नष्ट हो जाता है॥ १६॥

जीरकस्य कृतः कल्को घृतसैन्धवसंयुतः। सुखोष्णो मधुना लेपो वृश्चिकस्य विषं हरेत्॥ १७॥

जीरे को भली प्रकार पीसकर घी तथा सेंधानमक मिलाकर किंचित् गरम करके उसमें शहद मिलाकर लेप लगाने से बिच्छू का विष नष्ट होता है॥ १७॥

नवसादरहरिताले पिष्टे तोयेन लेपनाद्दंशे। तत्क्षणमेव हि जयतो वृश्चिकविद्धस्य दुर्धरक्ष्वेडम्॥ १८॥

नौसादर, हरिताल को एकत्र जल में पीसकर दंशित स्थान पर लेप करने से उसी समय बिच्छू के विष की दारुण वेदना नष्ट हो जाती है॥ १८॥

कारस्करफलं सेव्यं क्रमवृद्धं दिने दिने। सारमेयविषं हन्ति मासेन नहि संशयः॥ १९॥

कुत्ते के विष को नष्ट करने के लिए कुचिले को ½ रत्ती से प्रारम्भ कर प्रतिदिन बढ़ाते हुए क्रमशः ३॥ रत्ती तक बढ़ावे। इस प्रकार एक मास तक सेवन कराने से कुत्ते का विष नष्ट होता है॥ १९॥

धत्तूरस्य शिफा पेया क्षीरेण परिपोषिता। अङ्कोटस्य शिफा चापि श्वविषघ्नीमकीर्तिता॥ २०॥

धतूरे की जड़ को पीसकर उचित मात्रा में दूध के साथ पीने से अथवा अङ्कोट की जड़ को पीस दूध के साथ पीने से कुत्ते का विष नष्ट होता है॥ २०॥

रजनीयुग्मपत्त्रङ्गमञ्जिष्ठानागकेशरैः। शीताम्बुपिष्टैरालेपः सद्यो लूताविषं हरेत्॥ २१॥

हल्दी, दारुहल्दी, लालचन्दन, मँजीठ, नागकेशर; इन्हें शीतल जल से पीसकर लेपन करने से लूताविष नष्ट होता है॥ २१॥

शिरीषस्य तु बीजं वै स्नुहीक्षीरेण घर्षितम्। तल्लेपेन महादेवि! नश्येत् कुक्कुरजं विषम्॥ २२॥

हे महादेवि; सिरस के बीज को सेहुँड़ के दूध में घिसकर लेप करने से कुत्ता का विष नष्ट होता है॥ २२॥

पिष्टतण्डुलमध्यस्थं भक्षितं मेषलोमकम्। कुक्कुरस्य विषं हन्ति नात्र कार्या विचारणा॥ २३॥

पानी के साथ चावलों को पीसकर उसके मध्य में भेड़ा का बाल रख गोली बनाकर खिला दे तो पगले कुत्ता का विष नष्ट हो जाता है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है॥ २३॥

विषहरी वर्त्ति।

जयपालस्य मज्जानं भावयेन्निम्बुक द्रवैः। एकविंशतिवारन्तु ततो वर्त्ति मकल्पयेत् ॥ २४ ॥ मनुष्यलालया घृष्ट्वा ततो नेत्रे प्रदापयेत्। सर्पदंष्ट्रविषं जित्वा सञ्जीवयति मानवम् ॥ २५ ॥

जयपाल के बीज की गुठली को नींबू के रस से २१ बार भावना देकर बत्ती बनावे। इस बत्ती को मनुष्य की लार में घिसकर नेत्रों में आँजने से साँप के काटे का विष नष्ट हो जाता है और मनुष्य मरने से बच जाता है ॥ २४—२५ ॥

दशाङ्ग अगद।

वचाहिङ्गुविडङ्गानि सैन्धवं गजपिप्पली। पाठा प्रतिविषा व्योषं काश्यपेन विनिर्मितम् ॥ दशाङ्गमगदं पीत्वा सर्वकीटविषं जयेत् ॥ २६ ॥

वच, हींग, विडंग, सेंधा नमक, गजपीपरि, पाढ़ी, अतीस, सोंठ, मिर्च और पीपल; इस दशाङ्ग ओषधि के पीने से सब प्रकार के कीटविष दूर होते हैं। यह काश्यपजी का कहा हुआ है। मात्रा—२ माशा ॥ २६ ॥

अजितागद।

विडङ्गपाठात्रिफलाजमोदाहिंगूनि वक्रं त्रिकटूनि चैव। तथैव वर्गो लवणस्य सूक्ष्मः सचित्रकः क्षौद्रयुतो निधेयः ॥ २७ ॥ शृङ्गे गवां शृङ्गमयेन चैव प्रच्छादितः पक्षमुपेक्षितश्च। एषोऽगदः स्थावरजङ्गमानां जेता विषाणामजितो हि नाम्ना ॥ २८ ॥

वायविडंग, पाढ़ी, त्रिफला, अजमोद हींग, तगर, सोंठ, मिर्च, पीपरि, सेंधा नमक, काला नमक, साँभर नमक, समुद्र नमक, खारी नमक, चीता की जड़; इनको सम भाग ले और इनके चूर्ण को शहद में सानकर गौ के सींग में भरकर उसका मुख गौ के सींग से ही ढक दे। इसको १५ दिन धरा रहने दे। सेवन करने से यह अजित नामक अगद स्थावर और जंगम विषों को जीत लेता है। मात्रा—६ माशे ॥ २७—२८ ॥

तार्क्ष्यागद।

प्रपौण्डरीकं सुरदारु मुस्ता कालानुसार्यास्त्वुरोहिणी च। स्थौणेयकध्यामकपद्मकानि पुन्नागतालीशसुवर्चिकाश्च ॥ २९ ॥ कुटन्नटैलासितसिन्धुवाराः शैलेयकुष्ठे तगरं प्रियंगु। लोध्रं जलं काञ्चनगैरिकं च समागधं चन्दनसैन्धवं च ॥ ३० ॥ सूक्ष्माणि चूर्णानि समानि कृत्वा शृङ्गे निदध्यान्मधुसंयुतानि। एषोऽगदस्तार्क्ष्य इति प्रदिष्टो विषं निहन्यादपि तक्षकस्य ॥ ३१ ॥

श्वेत कमल, देवदारु; मोथा, तगर, कुटकी, थुनेर, रोपित तृण, पद्माख, नागकेशर, तालीशपत्र, सज्जीखार, श्योनाक, इलायची, छोटी निर्गुण्डी (सफेद सँभालू), छारछरीला, कूट, तगर, प्रियंगु, लोध, सुगन्धवाला, सुनहला गेरू, जीरा, लाल चन्दन और सेंधा नमक; ये सब समान भाग ले चूर्ण करे और शहद मिलाकर गौ के सींग में भरकर रक्खे। इसका नाम तार्क्ष्यगद है। यह तक्षक नाग के भी विष को नष्ट कर देता है। मात्रा—१ माशे से १ तोला तक ॥ २९—३१ ॥

कुलिकादिवर्त्तिका।

कुलिकं सप्तपर्णं च कुष्ठं तोलकसम्मितम्। माषमानं तथा दारु मर्दयेदर्कवारिणा ॥ ३२ ॥ सर्पाभां वर्त्तीं कृत्वा योजयेत् पयसा सह। अपि तक्षकदष्टं च मृतकल्पं हतस्वरम् ॥ ३३ ॥ पुनः सञ्जीवयेदाशु सर्वक्ष्वेडविनाशिनी।

कुलिकादिवटी हन्ति ज्वरांश्च विषमां-स्तथा॥ ३४॥

परवल की जड़, सतौना, कूट; प्रत्येक एक-एक तोला, देवदारु १ माशा; इन सबको मदार के जल से घोटकर सरसों के बराबर गोलियाँ बना ले। दूध के साथ सेवन करने से यह कुलिकादिवटी तक्षक के काटे हुए मृत-तुल्य तथा नष्ट स्वरवाले मनुष्य को शीघ्र ही पुन: जीवित कर देती है एवं सब प्रकार के विषवेगों और विषमज्वरों को नष्ट कर देती है॥ ३२--३४॥

भीमरुद्र रस।

मनःशिलालमरिचैर्दारुणा दरदेन च। अपामार्गस्य हेम्नश्च हयमारशिरीषयोः॥ ३५॥ मूलै रुद्राक्षतोयेन विष्णुक्रान्ताम्बुना तथा। शतधा भावितैः कुर्याद् वटिका मुद्गसन्निभाः॥ ३६॥ व्यालदष्टं पीत-विषं निरिन्द्रियमचेतनम्। पुनः सञ्जीव-येदेष भीमरुद्राभिधो रसः॥ ३७॥

मैनशिल, हरताल, मिर्च, देवदारु, शुद्ध सिंगरफ, लटजीरा की जड़, धतूरा की जड़, कनेर की जड़ और सिरस की जड़; इनमें रुद्राक्ष और विष्णुकान्ता के रस की सौ-सौ भावनाएँ देकर मूँग के बराबर गोलियाँ बना ले। यह भीमरुद्र नामक रस साँप के काटने अथवा विष पी लेने से चेतनारहित तथा इन्द्रियों की चेष्टा से रहित प्राणी को पुन जीवित कर देता है॥ ३५-३७॥

द्वितीय भीमरुद्र रस।

सूतराजस्य तोलैकं गन्धकस्य तथैव च। अभ्रात् कर्षं ततो देयं तोलैकं कान्तलौह-कम्॥ ३८॥ परोक्तनौषधेनैव भावयेच्च पृथक् पृथक्। विशाला बृहती ब्राह्मी सौगन्धिकसुदाडिमैः॥३९॥ मर्कटयरचा-त्मगुप्तायाः स्वरसेन पृथक् पृथक्। एक-रक्तिकमानेन वटिकां कारयेद्भिषक्॥ ४०॥ वटीमेकां भक्षयित्वा पिबेच्छीतजलं ततः। भीमरुद्रो रसो नाम चासाध्यमपि साधयेत्॥ कुक्कुरस्य शृगालस्य विषं हन्ति सुदुस्तरम्॥ ४१॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, इन दोनों की कजली करके अभ्रक भस्म २ तोला तथा कान्त लौहभस्म १ तोला मिलावे। पश्चात् इन्द्रायण, बड़ी कटेरी, ब्राह्मी, नीलकमल, अनार, अपामार्ग, कौंच; इनके रस से पृथक्-पृथक् भावना देकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। इस गोली के सेवन के पश्चात् शीतल जल पीना चाहिए। इस गोली के सेवन से कुत्ते अथवा गीदड़ का विष नष्ट होता है॥ ३८-४१॥

विषवज्रपात रस।

निशां सटङ्कञ्च सजातिकोषं तुत्थं समांशं कुरु देवदाल्याः। रसेन पिष्ट्वा विषवज्रपातो रसो भवेत् सर्वविषापहन्ता॥ माषोऽस्य सञ्जीवयति प्रयुक्तो नृमूत्रयोगेन च कालदष्टम्॥ ४२॥

हल्दी, सुहागा, जावित्री, नीलाथोथा; इन्हें बराबर मात्रा में मिला देवदाली के रस से पीसकर गोली बनावे। मात्रा-१ माशा। अनुपान-नरमूत्र। इसके सेवन से वमन होकर सम्पूर्ण विष नष्ट होते हैं। यह रस कालदष्ट व्यक्ति को भी जीवित कर देता है॥ ४२॥

तण्डुलीयक घृत।

तण्डुलीयकमूलेन गृहधूमेन चैकतः। क्षीरेण च घृतं सिद्धं समस्तविषरोग-नुत्॥ ४३॥

घृत १ सेर, गाय का दूध ४ सेर। कल्क के लिये चौलाई की जड़ और गृहधूम पाव भर। विधि से सिद्ध कर पीने से यह घृत सब प्रकार के विष रोगों को नष्ट करता है॥ ४३॥

मृत्युपाशच्छेदि घृत।

अभयां रोचनां कुष्ठमर्कपत्रं तयो-

स्पलम्। नलवेतसमूलानि गरलं सुरसां तथा ॥ ४४ ॥ सकलिङ्गं समञ्जिष्ठामनन्तां च शतावरीम्। शृङ्गाटकं समङ्गा च पद्मकेशरमित्यपि ॥ ४५ ॥ कल्कीकृत्य पचेत्सर्पिः पयो दद्याच्चतुर्गुणम्। सम्यक्पक्वेऽवतीर्णे च शीते तस्मिन् विनिक्षिपेत् ॥ ४६ ॥ सर्पिस्तुल्यं भिषक् क्षौद्रं कृतरक्षं निधापयेत्। विषाणि हन्ति दुर्गाणि गरदोषकृतानि च ॥ ४७ ॥ स्पर्शोद्भन्ति विषं सर्वं गरैरुपहतां त्वचम्। योगजं तमकं कण्डूं मांससादं विसंज्ञताम्॥४८॥नाशयत्यञ्जनाभ्यङ्गपानवस्तिषु योजितम्। सर्पकीटाखुलूतादिदष्टानां विषहृत्परम् ॥ ४९ ॥

कल्क के लिए हड़, गोरोचन, कूट मदार के पत्ते, नीलकमल, नरकुल की जड़, बेंत की जड़, मीठा विष, तुलसी, इन्द्रजौ, मंजीठ, अनन्तमूल, शतावरी, सिंघाड़ा, छुईमुई और कमलकेशर; सब मिलाकर आध सेर। घृत २ सेर, दूध ८ सेर। विधि से पाक कर वस्त्र से छान ले। जब ठंढा हो जाय तब इसमें दो सेर शहद मिलाकर रक्षित स्थान में ढककर रख दे। मात्रा ६ माशे से १ तोला तक। यह घृत विष, गरदोष से उत्पन्न विकार तथा विष से नष्ट त्वचा और सब प्रकार के विष विकारों एवं योगजविष, तमक, कण्डू, मांससाद, बेहोशी आदि को नष्ट करता है। इसको (अञ्जन, मालिश, पान तथा वस्ति कर्म में प्रयोग करना चाहिए। यह सर्पविष, कीटविष, और मकड़ी का विष इत्यादि को नष्ट करता है ॥ ४४-४९ ॥

जीरकस्य कृतः कल्को घृतसैन्धवसंयुतः। सुखोष्णो मधुना लेपो वृश्चिकस्य विषं हरेत् ॥ ५० ॥

जीरा के कल्क में घृत और सेंधा नमक मिलाकर गरम करके गुनगुना लेप करें तो बिच्छू का विष शान्त हो जाता है ॥ ५० ॥

शिरीषादि घृत।

शिखरिस्वरसेनैव कल्कान् दत्त्वा च दाडिमम्। कुष्ठमेलाद्वयं शृङ्गीं शिरीषममृतं वचाम् ॥ ५१ ॥ परशू पारिभद्रं च चन्दनं तगरं मुराम्। पचेत्सर्पिस्त्वसलिलं मन्दमन्देन वह्निना ॥ ५२ ॥ घृतमेतन्निहन्त्याशु निखिलान् विषजान् गदान्। सन्निपातज्वरं घोरं ज्वरांश्च विषमांस्तथा ॥ ५३ ॥

अपामार्ग का रस ४ सेर, घृत १ सेर। कल्क के लिए अनार, कूट, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, काकड़ासिंगी, सिरस की छाल, मीठा विष, वच, दोनों परशु (कुदालिया कुडालिया), फरहद, चन्दन, तगर और मुरामांसी सब मिलित पाव भर। इन सबको एकत्र कर बिना जल के ही मन्द-मन्द अग्नि से पकाना चाहिए। यह घृत सर्व प्रकार के विषज रोगों तथा सन्निपातज्वर, घोर ज्वर तथा विषमज्वरों को शीघ्र नष्ट करता है ॥ ५१-५३ ॥

शिरीषारिष्ट।

पचेत्तुलार्द्धं द्विद्रोणे शिरीषस्य जले सुधीः ॥ पादशेषे कषायेऽस्मिन् क्षिपेद् गुडतुलाद्वयम् ॥ ५४ ॥ कृष्णा प्रियंगु कुष्ठैला नीलिनीं नागकेशरम्। रजन्यौ पलमानेन दद्यादत्र च नागरम् ॥ ५५ ॥ मासादूर्ध्वं जातरसं यथामात्रं प्रयोजयेत्। शिरीषारिष्टमित्येतद् विषव्यापद्विनाशनम् ॥ ५६ ॥

सिरस की छाल २॥ सेर, क्वाथार्थ जल १ मन ११ सेर १६ तोले। अवशिष्ट क्वाथ १२ सेर ६४ तोला। इसमें १० सेर गुड़ तथा

पीपरि, प्रियंगु के फूल, कूट, इलायची, नील की जड़, नागकेसर, हल्दी, दारुहल्दी और सोंठ प्रत्येक चार-चार तोले ले चूर्ण करके डाले। मिट्टी के घड़े में बन्द करके १ महीने तक जमीन में गड़ा रहने दे। पश्चात् छान कर सेवन करावे। यह शिरीषारिष्ट विष के विकारों को नष्ट करनेवाला है। मात्रा-१। तोला से २॥ तोले तक ॥ ५४-५६ ॥

विष रोगे पथ्यानि।

अरिष्टा बन्धनं मन्त्रक्रिया छर्दिविरेचनम्। कर्षणं शोणिता सृष्टिः परिषेकोऽवगाहनम् ॥ ५७ ॥ हृदयावरणं नस्यमञ्जनं प्रतिसारणम्। उद्वर्त्तनं प्रधमनं प्रलेपो वह्निकर्मच। उपधानं प्रति विषं धूपः संज्ञा प्रबोधनम् ॥ ५८ ॥ शालयः षष्टिकाश्चापि कोरदूषाः प्रियङ्गवः। मुद्गा हरेणवस्तैलं सर्पिर्जीर्णनवं तथा। शिखितित्तिर लावैण गोधाखुश्वाविधामिषम् ॥ ५९ ॥ वार्त्ताकुं कुलकं धात्री निष्पावं तण्डुलीयकम् ॥ ६० ॥ मण्डूकपर्णी जीवन्ती मुनिपर्ण्योऽच्युपोदिका। कालशाकं सलशुनं दाडिमं च विकङ्कतम् ॥ ६१ ॥ प्राचीनामलकं पथ्यकपित्थं नागकेशरम्। गोछागनरमूत्राणि तक्रं शीताम्बु शर्करा। ॥ ६२ ॥ अविदाहीनि चान्नानि सैन्धवं मधु कुमकुमम्। पश्चिमोत्तर वाताश्च हरिद्रासित चन्दनम् ॥ ६३ ॥ मुस्तंशिरीषः कस्तूरी तिक्तानि मधुराणि च। हेमचूर्णं च वर्गोऽयं यथाऽवस्थं यथा विषम् ॥ ६४ ॥ विष रोगेषु सर्वेषु प्रयोक्तव्यो विजानता ॥ ६५ ॥

अरिष्टा बन्धन (धमनी बन्धन) मन्त्र तन्त्र प्रयोग वमन विरेचन, दोषों का कर्षण विषैले रक्त का सींगी आदि से खींचना परिषेचन जलावगाहन हृदय को ढकना नस्य अञ्जन मञ्जन उबटना प्रधमन कर्म प्रलेप दाह कर्म तकिया के सहारे रहना विषघ्न दूसरा विष देना, धूपन, संज्ञा लाना शालि और चावल कोदों कांगुनी मूंग मटर तेल पुराना या नया घृत मोर तीतर बटेर हरिण गोह चूहा और सेह का मांस बैंगन परवल आंवला लोबिया चौलाई मण्डूकपर्णी जीवन्ती भिंरियाई पोई का शाक कालशाक (नाड़ी का शाक) लहसुन अनार कटाईजल आंवला हरड़ कैथ नागकेशर तथा गाय बकरी और मनुष्य का मूत्र ठण्ढा जल शक्कर जलन न करनेवाले अन्न सेंधानमक शहद केशर पश्चिम और उत्तर दिशा की वायु हल्दी सफेद चन्दन नागरमोथा सिरस कस्तूरी कड़वे मीठे पदार्थ सुवर्णभस्म ये सब अवस्था तथा विष के अनुसार विषरोगों में प्रयोग करना लाभदायक है ॥५७-६५॥

विष रोग में अपथ्य।

क्रोधं विरुद्धाध्यशनं व्यवायं ताम्बूलमायासमपि प्रवातम्। अम्लं च सर्वं लवणं च सर्वं, स्वेदं च नानाविधि मासुतानि ॥ ६६ ॥ निद्राभयं धूम विधिं क्षुधां च, विषातुरो नैव भजेत् कदाचित् ॥ ६७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां विषाधिकारः समाप्तः।

क्रोध, विरुद्ध भोजन, भोजन करने के तुरत बाद भोजन, मैथुन पान बीड़ा परिश्रम, तेज हवा सब तरह के खट्टे पदार्थ नमक के सब पदार्थ, स्वेदन सब तरह के अचार शयन (सर्पविष में) भय धूमपान, भूखा रहना, यह सब विष पीड़ित होने पर तथा अच्छा होने पर भी कुछ दिन तक सेवन नहीं करना चाहिए ॥ ६६-६७ ॥

इति श्रीमत्पूज्यपादश्रीप्रसादैविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां विषाधिकारः समाप्तः।

अथ वीर्यस्तम्भाधिकारः।

शरणं तुलसीमूलं ताम्बूलैः सह भक्षयेत्। न मुञ्चति नरो वीर्यमर्ककेन न संशयः॥ १॥

शमीकन्द अथवा तुलसी की जड़ को पान के साथ खाने से मनुष्य का वीर्य स्खलित नहीं होता है, इसमें संशय नहीं है॥ १॥

कृष्णमार्जारसव्यांघ्रिसम्भवास्थिरतोधमे। दक्षिणे ध्रियते येन तस्य वीर्यस्य न च्युतिः॥ २॥

काली बिल्ली के बाएँ पैर की हड्डी को दाहिने भाग में धारण करके मैथुन करने से वीर्य स्खलित नहीं होता है॥ २॥

चटकाण्डं तु संगृह्य नवनीतेन पेषयेत्। तेन लेपयतः पादौ शुक्रस्तम्भः प्रजायते॥ यावन्न स्पृशते भूमिं तावद्वीर्यं न मुञ्चति॥ ३॥

चिड़िया के अण्डे को मक्खन के साथ पीसकर पैरों में लेप करने से वीर्य का स्तम्भन होता है। जब तक पृथ्वी को नहीं छूता है तब तक वीर्य स्खलित नहीं होता है॥ ३॥

नीलोत्पलसितपङ्कजकेशरमधुशर्करावलिप्तेन। सुरते सुचिरं रमते दृढलिङ्गो नाभिविवरेण॥ ४॥

नीलकमल की केशर, सफेद कमल की केशर, शहद और शक्कर, इनका नाभि में लेप करने से लिङ्गेन्द्रिय दृढ होती है तथा बहुत देर तक रमण करता है॥ ४॥

सिद्धं कुसुम्भतैलं भूमिलताचूर्णमिश्रितं कुरुते। चरणाभ्यङ्गेन रते वीर्यस्तम्भाद् दृढं लिङ्गम्॥ ५॥

कुसुम का तेल १ सेर, कल्कार्थ केंचुआ का चूर्ण पाव भर, पाकार्थ जल ४ सेर। यथाविधि तैल सिद्ध करे। इस तैल का पैरों पर मर्दन करके मैथुन करने से वीर्यस्तम्भन तथा लिङ्ग दृढ होता है॥ ५॥

गोरेकोन्नतशृङ्गत्वग्भवचूर्णेन धूपितं वस्त्रम्। परिधाय भजति ललनां नैकाण्डो भवति हर्षार्त्तः॥ ६॥

जिस गौ का एक सींग ऊँचा हो उस सींग के छिलका की वस्त्र में धूनी देकर रतिकाल में पहिने तो शिश्नेन्द्रिय हर्षयुक्त होती है। एवम् एकाण्ड[1] नहीं रहता है॥ ६॥

योगजनराङ्गबन्धं मथितेन क्षालितं हन्ति। उन्मुखगोशृङ्गोद्भवलेपो योगजध्वजभङ्गहर॥ ७॥

औषध आदि के योग से यदि श्रेष्ठ अंग (लिङ्ग) उत्थानरहित हो गया हो तो छाछ से धोने से वह बन्धन नष्ट हो जाता है। अथवा गौ के ऊँचे सींग को जल में घिसकर लेप करने से योगज ध्वजभङ्ग नष्ट होता है॥ ७॥

कृकलासस्य पुच्छाग्रमुद्रिका श्वेततन्तुभिः। वेष्ट्य धार्या कनिष्ठायां नरो वीर्यं न मुञ्चति॥ ८॥

छिपकली के पूँछ के अग्रभाग की अँगूठी बना सफेद डोरा से लपेटकर कनिष्ठिका अंगुली में धारण करने से वीर्यस्तम्भन होता है॥ ८॥

वनक्रोडस्य दंष्ट्रा या दक्षिणा तां समाहरेत्। कट्यामुपरि सम्बद्धा शुक्रस्तम्भः प्रजायते॥ ९॥

जङ्गली शूकर की दाहनी दाढ़ को कमर में बाँधने से वीर्यस्तम्भ होता है॥ ९॥

डुण्डुभोनाम यः सर्पः कृष्णवर्णस्तमाहरेत्। तस्यास्थि धारयेत्कट्यां नरो वीर्यं

1—एकाण्ड वह रोग है जिसमें केवल एक ही स्त्री से सम्भोग करनेवाला व्यक्ति दूसरी स्त्री से सम्भोग करने पर उद्यत हो तो उसकी शिश्नेन्द्रिय शिथिल हो जाती है।

न मुञ्चति ॥ विमुञ्चिति विमुक्तेन सिद्धयोग उदाहृतः ॥ १० ॥

डुण्डुभनामक कृष्णवर्ण के सर्प की हड्डी को कटि में धारण करने से वीर्यस्तम्भ होता है । धारण की हुई हड्डी को कटि से अलग कर देने से वीर्यपात हो जाता है। यह सिद्ध योग है ॥ १० ॥

सप्ताहं छागभवसलिलसंस्थितं करभवारुणीमूलम् । गाढोद्वर्त्तनविधिना लिङ्गं स्तब्धं रते कुरुते ॥ ११ ॥

ऊँटकटारे की जड़ को एक सप्ताह तक बकरी के मूत्र में रख पश्चात् पीस ले। इसके द्वारा लिङ्ग पर मालिश करने से रमणकाल में लिङ्ग दृढ़ होता है ॥ ११ ॥

अर्जकादियवटिका ।

मूलमर्जकशङ्खिन्योर्निर्गुण्डीकेशराजयोः जातीफलं देवपुष्पं विडङ्गं गजपिप्पलीम् ॥ १२ ॥ चातुर्जातं तुगाक्षीरीमनन्तां मुशलीं वरीम् । विदारीं गोक्षुरं बीजं चाभातोयेन मर्दयेत् ॥ १३ ॥ माषमानां वटीं कृत्वा सुरामण्डेन योजयेत् । वीर्यस्तम्भकरी वृष्या वटिकेयं प्रकीर्त्तिता ॥ १४ ॥

तुलसी की जड़, शङ्खपुष्पी की जड़, सँभालू की जड़, भँगरा की जड़, जायफल, लौंग, बायबिडङ्ग, गजपीपल, चातुर्जात, (दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेशर), वंशलोचन, अनन्तमूल, मुसली, शतावरी, विदारीकन्द, और गोखरू के बीज;इन सबको बबूल की छाल के रस से घोटकर एक-एक माशे की गोलियाँ बना ले। अनुपान—सुरामण्ड । यह वटिका वीर्यस्तंभन करनेवाली तथा वृष्य है ॥ १२-१४ ॥

नागवल्याद्य चूर्ण ।

नागवल्ली बला मूर्वा जातीकोषफले मुरा। अपामार्गस्य बीजं च काकोलीयुगलं तथा ॥ १५ ॥ कक्कोलोशीरयष्ट्याह्ववचाश्चैतानि मर्दयेत् । वीर्यस्तम्भकरं वृष्यं चूर्णमेतद्रसायनम् ॥ १६ ॥

पान की जड़, खरैटी, मरोरफली, जायफल, जावित्री, मुरामांसी, लटजीरा के बीज, काकोली, क्षीरकाकोली, ककोल, खस, मुलेठी और बच, इनका चूर्ण वीर्यस्तम्भनकर्ता तथा वृष्य है १५-१६

शुक्रवल्लभ रस ।

रसगन्धकलौहाभ्ररौप्यहेमानि माक्षिकम् । शाणमानेन संगृह्य तुगाक्षीरीं च कार्षिकीम् ॥ १७ ॥ पलप्रमाणं विजयाबीजं चैकत्र मर्दयेत् । विजयावारिणा पश्चान्माषमानां वटीं चरेत् ॥ १८ ॥ एकैका भक्षणीयाथ पेयं चानुपयः पलम् । श्रीशक्रवल्लभो नाम रसो वाजीकरः परः ॥ १९ ॥ वीर्यस्तम्भकरोऽत्यर्थं प्रमदादर्पनाशनः । गतो ह्यप्सरसां शक्रो वाल्लभ्यं यत्प्रसादतः ॥ २० ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, चाँदी की भस्म, सोने की भस्म, सोनामाखी की भस्म ; प्रत्येक तीन-तीन माशे, वंशलोचन १ तोला तथा भाँग के बीज ४ तोले । इनको भाँग के जल से घोटकर उड़द के समान गोलियाँ बनावे । एक गोली खाकर ४ तोले दूध पीना चाहिए । यह श्रीशक्रवल्लभ रस परम वाजीकरण- वीर्यस्तंभनकर्ता तथा कामिनियों के मान को नष्ट करनेवाला है । इसी के प्रताप से इन्द्रदेव अप्सराओं के प्यारे हुए थे ॥ १७-२० ॥

कामिनीविद्रावण रस ।

आकारकरभं शुण्ठीं लवङ्गं कुंकुमं कणाम् । जातीफलं च तत्कोषं चन्दनं कार्षिकं पृथक् ॥ २१ ॥ हिंगुलं गन्धकं शाणं फणिफेनं पलोन्मितम् । गुञ्जात्रयमितां कुर्यात् संमर्द्य वटिकां भिषक् ॥

२२ ॥ पयसा परिपीतोऽयं शुक्रस्तम्भकरो रसः। विद्रावणः कामिनीनां वशीकरण एव च ॥ २३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वीर्यस्तम्भाधिकारः समाप्तः।

अकरकरा, सोंठ, लौंग, केशर, पीपरि, जायफल, जावित्री, लाल चन्दन, प्रत्येक एक-एक तोला। हिंगुल और गन्धक तीन-तीन माशे तथा अफीम चार तोले। इन सबको एकत्र घोटकर तीन-तीन रत्ती की गोलियाँ बनावे। अनुपान-दूध। यह रस वीर्यस्तंभनकर्ता, कामिनियों का दर्पनाशक तथा वशीकरण है। मात्रा—एक रत्ती से तीन रत्ती तक ॥ २१--२३ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां वीर्यस्तम्भाधिकारः समाप्तः।

अथ रसायनाधिकारः।

यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम्। पूर्वे वयसि मध्ये वा शुद्धकायः समाचरेत् ॥ १ ॥ नाविशुद्धशरीरस्य युक्तो रासायनो विधिः। न भाति वाससि क्लिष्टे रङ्गयोग इवार्पितः ॥ २ ॥

जो ओषधि जरा (बुढ़ापा) और व्याधि-नाशक हो उसको रसायन कहते हैं। अर्थात् जिस ओषधि के सेवन से बुढ़ापा और रोग न हों वह रसायन है। इसका सेवन युवावस्था अथवा मध्य अवस्था में करना चाहिए। परन्तु सेवन से पहले वमन-विरेचनादि से शरीर को शुद्ध कर लेना चाहिए; क्योंकि जैसे मलिन वस्त्र को रँगने से उस पर अच्छा रंग नहीं आता है, इसी प्रकार शरीर शुद्ध किए विना रसायन का सेवन हितकर नहीं होता है ॥ १--२ ॥

जरणान्तेऽभयामेकां प्राग्भक्ते द्वे विभीतके। भुक्त्वा तु मधुसर्पिर्भ्यां चत्वार्यामलकानि च ॥ ३ ॥ प्रयोजयेत्समामेकां त्रिफलाया रसायनम्। जीवेद्वर्षशतं पूर्णमजरोऽव्याधिरेव च ॥ ४ ॥

भोजन हजम होने पर एक हड़, भोजन करने से पहले दो बहेड़े और भोजन करने के पश्चात् चार आँवले घृत और शहद के साथ एक वर्ष तक सेवन करे तो यह त्रिफला-रसायन जरा और व्याधि को नष्ट करके सौ वर्ष की पूर्ण आयु तक जीवित रखता है ॥ ३--४ ॥

भृङ्गराज रसायन।

ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति दिने दिने भृङ्गरजः समुत्थम्। क्षीराशिनस्ते बलवर्णयुक्ताः समाः शतं जीवितमाप्नुवन्ति ॥ ५ ॥

जो मनुष्य प्रतिदिन भँगरा के रस को एक महीने तक पीते हैं और दूध का भोजन करते हैं वे बल और वर्ण से युक्त होकर १०० वर्ष तक जीवित रहते हैं ॥ ५ ॥

मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम्। रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्प्याः कल्कः प्रयोज्यः खलु शङ्खपुष्प्याः ॥ ६ ॥ आयुःप्रदान्यामयनाशनानि बलाग्निवर्णस्वरवर्द्धनानि। मेध्यानि चैतानि रसायनानि मेध्या विशेषेण तु शङ्खपुष्पी ॥ ७ ॥

मण्डूकपर्णी (ब्रह्मीभेद) का स्वरस, दूध के साथ मुलेठी का चूर्ण, गिलोय का रस और जड़ तथा फूलसहित शङ्खपुष्पी (शंखाहूली) का कल्क ये चारों योग आयुप्रद, रोगनाशक तथा बल, वर्ण और स्वरवृद्धिकर्ता, मेधाकर्ता तथा रसायन हैं। विशेष करके शङ्खाहूली मेधाजनक है ॥ ६--७ ॥

अश्वगन्धा रसायन

पीताश्वगन्धा पयसार्द्धमासं घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा । कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते वालस्य शस्यस्य यथाम्बुवृष्टिः ॥ ८ ॥

असगन्ध का चूर्ण दूध, घृत, तैल अथवा सुखोष्ण गर्म जल के साथ १५ दिन पीने से दुर्बल शरीर इस प्रकार पुष्ट होता है जैसे वर्षा से थोड़े दिन की खेती पुष्ट होती है ॥ ८ ॥

धात्रीतिलान् भृङ्गरजो विमिश्रान् ये भक्षयेयुर्मनुजाः क्रमेण । ते कृष्णकेशा विमलेन्द्रियाश्च निर्व्याधयो वर्षशतं भवेयुः ॥ ९ ॥

आँवला, तिल और भँगरा का चूर्ण; इनको मिलाकर जो मनुष्य खाते हैं उनके क्रमशः बाल काले हो जाते हैं, इन्द्रियाँ शुद्ध हो जाती हैं और वे रोगरहित होकर १०० वर्ष तक जीते हैं ॥ ९ ॥

वृद्धदारक रसायन ।

वृद्धदारकमूलानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । शतावर्या रसेनैव सप्तवारांश्च भावयेत् ॥ १० ॥ माषद्वयं तु तच्चूर्णं सर्पिषा सह योजयेत् । मासमात्रोपयोगेन मतिमान् जायते नरः ॥ मेधावी स्मृतिमांश्चैव वलीपलितवर्जितः ॥ ११ ॥

विधारा की जड़ को महीन पीसकर उसमें शतावरी के रस की ७ भावना देकर इसका २ माशे की मात्रा में घृत के साथ, एक महीना तक, सेवन करने से मनुष्य बुद्धिमान्, मेधावान्, स्मृतिमान् तथा वलीपलित से रहित हो जाता है ॥ १०--११ ॥

हस्तिकर्णरजः खादेत् प्रातरुत्थाय सर्पिषा । यथेष्टाहारचेष्टोऽपि सहस्रायुर्भवेन्नरः ॥ १२ ॥ मेधावी बलवान् कामी स्त्रीशतानि व्रजत्यसौ । मधुना त्वश्ववेगः स्याद् बलिष्ठः स्त्रीसहस्रगः ॥ १३ ॥ मन्त्रश्चासौ प्रयोक्तव्यो भिषजा चाभिमन्त्रणे ॥ १४ ॥

मन्त्रो यथा—ॐ नमो महाविनायकाय अमृतं रक्ष रक्ष मम फलसिद्धिं देहि रुद्रवचनेन स्वाहा ।

हस्तिकर्ण पलाश की छाल के चूर्ण को प्रातःकाल उठकर घृत के साथ सेवन करे और इच्छानुसार आहार-विहार करता रहे तो भी वह दीर्घायु, मेधावान्, बलयुक्त, कामी तथा हजार स्त्रियों का सेवन करनेवाला होता है । यदि इसको शहद के साथ सेवन करे तो अश्व का सा वेग, बलिष्ठ तथा हजार स्त्रियों का सेवनकर्ता होता है । वैद्य को चाहिए कि—"ॐ नमो महावि०" इत्यादि मंत्र से अभिमंत्रित करके औषधि का सेवन करावे ॥ १२--१४ ॥

धात्रीरसायन ।

धात्रीचूर्णस्य कंसं स्वरसपरिगतं क्षौद्रसर्पिः समांशं कृष्णामाणी सिताष्टप्रसृतयुतमिदं स्थापितं भस्मराशौ । वर्षान्ते तत्समश्नन् भवति विपलितो रूपवर्णादियुक्तः निर्व्याधिर्बुद्धिमेधास्मृतिवचनबलस्थैर्यसत्त्वैरुपेतः ॥ १५ ॥

आँवले का चूर्ण ३ सेर १६ तोले लेकर उसमें आँवले के रस की २१ भावनाएँ दे । शहद ३ सेर १६ तोले, घृत ३ सेर १६ तोले, पीपरि ३२ तोले और शक्कर ६४ तोले । इन सबको एक मिट्टी के पात्र में मुख बन्द कर राख के ढेर में गाड़ दे । एक वर्ष के बाद निकाल कर इसका सेवन करने से मनुष्य वलीपलित से रहित, रूपवान्, कान्तिमान्, व्याधिरहित तथा बुद्धि, मेधा, स्मरणशक्ति, सुन्दर वचन, बल, स्थिरता और सत्त्व से युक्त होता है ॥ १५ ॥

गुडूच्यपामार्गविडङ्गशङ्खिनी वचाभयाशुण्ठिशतावरी समा घृतेन लीढा प्रकरोति मानवं त्रिभिर्दिनैः श्लोकसहस्रधारिणम् ॥ १६ ॥

गिलोय, लटजीरा, वायविडङ्ग, शंखपुष्पी, बच, हड़, सोंठ और शतावरी; इन सबको समान भाग लेकर घृत के साथ सेवन करे तो मनुष्य ३ दिन में हजार श्लोक कण्ठस्थ करनेवाला हो जाता है ॥ १६ ॥

व्यङ्गवलीपलितघ्नं पीनसवैस्वर्यकासहरम् । रजनीक्षयेऽम्बुनस्यं रसायनं दृष्टिजननं च ॥ १७ ॥

रात्रि व्यतीत होने पर (प्रातःकाल) जल की नस्य लेना व्यङ्ग, झुर्री पड़ना, बाल सफेद होना, पीनस, स्वरविकार और खाँसी को नष्ट करता है एवं दृष्टि की शक्ति को बढ़ाता है। यह रसायन है ॥ १७ ॥

अम्भसः प्रसृतान्यष्टौ रवावनुदिते पिबन् । वातपित्तगदान् हत्वा जीवेद्वर्षशतं नरः ॥ १८ ॥

सूर्य उदय होने से पहले आठ प्रसृति (६४ तोले) जल पिया करे तो वातिक और पैत्तिक रोग नष्ट हो जाते हैं और १०० वर्ष की आयु होती है ॥ १८ ॥

ऋतुहरीतकी।

सिन्धूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात् । वर्षादिष्वभया सेव्या रसायनगुणैषिणा ॥ १६ ॥

रसायन गुण की इच्छा रखनेवाले को हड़ का सेवन वर्षा ऋतु में सेंधा नमक के साथ, शरद् ऋतु में शक्कर के साथ, हेमन्त ऋतु में सोंठ के साथ, शिशिर ऋतु में पीपरि के साथ, वसन्त ऋतु में मधु के साथ और ग्रीष्म ऋतु में गुड़ के साथ करना चाहिए ॥ १६ ॥

मधुहरीतकी।

दुर्नामश्वासकासज्वरवमथुतृषापाण्डुतानेत्ररोगान् हिक्काकुष्ठातिसारभ्रममदकसनाजीर्णशूलप्रमेहान् । तृष्णाशूलासृपित्तज्वरविततजरारोचकानाहदाहान् हन्यादेतानवश्यं मधुनि परिगता पूतना चाम्लपित्तम् ॥ २० ॥

अत्र मधुनि परिगतेत्यनेन मधुभाविता मधुपूर्णभाण्डे चिरावस्थिता हरीतकी ग्राह्या । व्यवहारस्तु मधुपिष्टा हरीतक्येव ।

हड़ों में मधु की भावना देकर अर्थात् मधु से भरे हुए पात्र में हड़ों को भर कर रख दे और कुछ दिन तक रक्खी रहने दे । पश्चात् मधु के साथ पीस कर हड़ का सेवन करे। यह मधुभावित हरीतकी बवासीर, श्वास, खाँसी, ज्वर, वमन, तृषा, पाण्डु, नेत्ररोग, हिचकी, कुष्ठ, अतीसार, भ्रम, मादकता, अजीर्ण, शूल, प्रमेह, तृष्णा, शूल, रक्तविकार, पित्तज्वर, बुढ़ापा, अरुचि, आनाह, दाह और अम्लपित्त को नष्ट करती है ॥ २० ॥

निर्गुण्डीकल्प।

ॐ सिद्धपिङ्गलायोगिनीकथितम् । निर्गुण्डीमूलचूर्णमष्टपलं गृहीत्वा षोडशपलं मधुमिश्रितं मर्दयित्वा घृतभाण्डे कृत्वा शरावेण आच्छाद्य निबिडलेपनं दत्त्वा मर्दयित्वा मासमेकं धान्यमध्ये स्थापयेत् । तन्मासमेकं भक्षितमात्रेण नरः कनकवर्णो गृध्रदृष्टिः सर्वरोगविवर्जितो वलीपलितहीनः । संवत्सरं खादिते चन्द्रार्कं यावत् जीवेत्, बद्धशुक्रः स्त्रीशतं कामयितुं क्षमो भवति। शाकाम्लं विहाय यथेच्छया भोज्यम् ।

तच्चूर्णं गोमूत्रेण सह यः पिबति हन्त्यष्टादश कुष्ठानि पामाविचर्चिकादीनि नाडीव्रणगुल्मशूलप्लीहोदराणि च ।

तच्चूर्णं तक्रेण यः पिबति स सर्वरोगविवर्जितो गृध्रदृष्टिर्वराहबलो भवति,

वलीपलितवर्जितः दिव्यवचा पवनवेगो दिव्यमूर्त्तिर्भवति। मासद्वयमयोगेण पण्डितश्च न संशयः ॥ २१ ॥

निर्गुण्डी (सँभालू) की जड़ का चूर्ण ३२ तोले और शहद ६४ तोले। दोनों को मिलाकर घी के चिकने मिट्टी के पात्र में भर दे और सकोरे से मुँह बन्द करके सन्धियों पर गहरा लेप कर दे और एक महीने तक उस पात्र को धान्यराशि (अनाज के ढेर) में रक्खे। पश्चात् बलानुसार मात्रा में एक महीने तक सेवन करे तो मनुष्य का वर्ण सोने के तुल्य हो जाता है, गीध की सी दृष्टि हो जाती है तथा सब रोगों से और वलीपलित से मुक्त हो जाता है। एक वर्ष तक इसका सेवन करने से दीर्घायु, वीर्यसपन्न तथा सैकड़ों स्त्रियों से गमन करने में समर्थ हो जाता है। इसके सेवन के समय में शाक और खट्टी वस्तुओं को छोड़कर इच्छित भोजन करना चाहिए।

सँभालू की जड़ के चूर्ण को गोमूत्र के साथ पीने से अठारह प्रकार के कोढ़, पामा, विचर्चिका, नाड़ीव्रण (नासूर), गुल्मशूल, प्लीहा और उदर विकार नष्ट होते हैं।

सँभालू की जड़ के चूर्ण को तक्र (छाछ) के साथ जो पीता है वह सब रोगों से रहित, गीध की सी दृष्टि, वराह का सा बल, वलीपलित से रहित, उत्तम वाणीवाला, वायु के तुल्य वेगवान् और सुन्दर शरीरवाला हो जाता है। दो महीने सेवन करने से निस्सन्देह पण्डित हो जाता है ॥ २१ ॥

भृङ्गराजादि चूर्ण।

श्लक्ष्णीकृतं भृङ्गरजस्य चूर्णं तिलार्द्धकं चामलकार्द्धकं च। सशर्करं भक्षयतो गुडेर्वा न तस्य रोगा न जरा न मृत्युः ॥ २२ ॥ अन्धः पश्येद्गमनरहितो मत्तमातङ्गगामी मूको वाग्मी श्रवणरहितो दूरशब्दानुसारी। नीरुङ् मर्त्यो भवति पलितो नीलजीमूतकेशो जीर्णा दन्ताः पुनरपि नवाः क्षीरगौरा भवन्ति ॥ २३ ॥

भँगरा का चूर्ण ४ तोले, तिल २ तोले और आँवला २ तोले, इन सबको एकत्र कर उचित मात्रा में शकर अथवा गुड़ के साथ सेवन करने से रोग, बुढ़ापा और मृत्यु का आक्रमण नहीं होता है। अन्धा देखने लगता है, पङ्गुला चलने लगता है, गूँगा वाचाल हो जाता है, बधिर दूर का भी शब्द सुनने लगता है, रोगी नीरोग हो जाता है, सफेद बाल काले हो जाते हैं तथा खराब हुए पुराने दांत फिर दूध से से सफेद एव नये हो जाते हैं ॥ २२-२३ ॥

श्रीमृत्युञ्जयतन्त्रोक्त अमृतवर्त्तिका।

त्रिफला त्रिकटु ब्राह्मी गुडूची रक्तचित्रकम्। नागकेशरचूर्णं च शृङ्गबेरं समार्कवम् ॥ २४ ॥ सिन्धुवारो हरिद्रे द्वे शक्राशनगुडत्वचौ। एला मधुकपर्णी च विडङ्गं चोग्रगन्धिका ॥ २५ ॥ चूर्णं प्रत्येकमेतेषां समादाय पलद्वयम्। कामरूपसमुद्भूतैर्गुडैः पञ्चाशतैः पलैः ॥ २६ ॥ सर्षपैस्त्रिशती कार्या वर्त्तिस्तेन समानतः। चन्द्रताराविशुद्धौ च पूजयित्वेष्टदेवताम् ॥ २७ ॥ सुकृती श्रद्धया प्रीतो वर्त्तिमेकां तु भक्षयेत्। ततोऽनुपानं पानीयं सलिलं च सुशीतलम् ॥ २८ ॥ कट्वम्लं लवणं चैव नातिमात्रं कदाचन। यः प्रत्यहमिदं खादेत् कर्षमानं निरन्तरम् ॥ २९ ॥ भोजनादौ प्रदोषे वा शृणु यादृक्फलं भवेत्। नष्टवह्निस्तु दीप्ताग्निर्वडवानलसन्निभः ॥ ३० ॥ इहापि भास्वती कान्तिश्चन्द्रिकेव निशामुखे। काशपुष्परुचः केशाः शिखिकण्ठमनोरमाः ॥ ३१ ॥ पटलावहतं चक्षुर्लक्षयोजनदर्शनम्। जरा-

विश्लथदेहोऽपि जायते सु महाबलः ३२॥ निर्व्याधिर्निर्जरः पंगुर्वेगेनोच्चैःश्रवा इव। दिनेश इव तेजस्वी कन्दर्प इव रूपवान् ॥ ३३ ॥ सहस्रायुर्महासत्त्वो गन्धर्व इव गायनः। स्त्रीशतं रमते नित्यं नावसादं प्रजत्यसौ ॥ ३४ ॥ न भजन्त्यापदः काश्चित् कामरूपी भवेदसौ। पद्मगन्धि वपुस्तस्य सुपुष्पमिव कोमलम् ॥ ३५ ॥ जराद्यैः सुजीर्णस्य नखकेशादयो यथा। प्रभवन्ति बलादुग्रादथ कन्दा इवाम्बुदात् ॥३६॥ हृष्टः पुष्टश्च पापघ्नः शान्तो भवति मानवः। श्रीअमृतवर्त्तिका नाम मृत्युञ्जयमुखोदिता। रसायनानां श्रेष्ठेयं सर्वव्याधिनिसूदनी ॥ ३७ ॥

त्रिफला, त्रिकटु (सौंठ, मिर्च, पीपरि), मही, गिलोय, लाल चित्रक, नागकेशर, सौंठ, भँगरा, भँभालू की जड़, हलदी, दारुहलदी, भांग, दालचीनी, छोटी इलायची, खंभारी, वायविडंग और वच, प्रत्येक का चूर्ण आठ-आठ तोले। कामरूप (आसाम देश) में उत्पन्न गुड़ २॥ सेर; इन सबको एकत्र कर घोट ले और ३६० बत्ती बना ले। जब सेवन करनेवाले के चन्द्रमा और तारा शुद्ध हों तब इष्टदेवता का पूजन कर प्रसन्नता के साथ एक एक बत्ती खावे। अनुपान—शीतल जल। कडुआ, खट्टा तथा नमक कम खाना चाहिए। जो मनुष्य प्रतिदिन लगातार भोजन के आदि में अथवा सायंकाल में इसका सेवन करता है उसकी मन्दाग्नि बड़वानल के तुल्य तेज हो जाती है चन्द्रमा के तुल्य कान्ति हो जाती है, कांस के फूल से सफेद बाल मोर की गर्दन के-से नीले हो जाते हैं, नेत्ररोगी दूर की वस्तु देखने लग जाता है बुढ़ापा से ग्रसित शरीर सबल, रोगरहित तथा जरारहित हो जाता है। पँगुला पुरुष इन्द्र के घोड़े के तुल्य वेगवान्, सूर्य-सा तेजस्वी, कामदेव का-सा रूपवाला, दीर्घायु, महाबली और गन्धर्व का-सा गानेवाला हो जाता है। सौ स्त्रियों से रमण करके भी नहीं थकता है, कोई व्याधि नहीं सताती है, कामरूपी हो जाता है, कमल की-सी सुगन्धि तथा पुष्प-सा कोमल शरीर हो जाता है। बुढ़ापे से जीर्ण हुए नख-केश आदि इस प्रकार फिर से उत्पन्न हो जाते हैं जैसे वर्षा से कन्द उत्पन्न हो जाते हैं। मनुष्य इससे हृष्ट-पुष्ट, पापघ्न और शान्त हो जाता है। यह मृत्युञ्जय के मुख से कही हुई अमृतवर्तिका रसायनों में श्रेष्ठ और सब व्याधियों को नष्ट करनेवाली है। मात्रा—आधी वर्ति प्रातःकाल भोजन से पहिले और आधी वर्ति शाम को सेवन करनी चाहिए ॥ ३४—३७ ॥

श्रीसिद्धमोदक।

त्रिकटोस्त्रिपलं चूर्णं त्रिफलायाः पलत्रयम्। गुडूच्याश्च विडङ्गानां ग्रन्थिकग्रन्थिपर्णयोः ॥३८॥ रक्तचित्राङ्घ्रिजं चूर्णं ग्राह्यं चापि पृथक् पृथक्। प्रत्येकं द्विपलं चैषां गृह्णीयान्मतिमान्नरः ॥ ३९ ॥ कामरूपोद्भवा ग्राह्या गुडस्यार्द्धतुला तथा। सर्वमेकत्र संमर्द्य सप्तत्रिंशतं शुभम् ॥ ४० ॥ मोदकं कारयेद्धीमान् समभागेन यत्नतः। प्रत्यहं भातरेवैतत्पानीयेनैव भक्षयेत् ॥ ४१ ॥ एवं निरन्तरं कार्यं संवत्सरमतन्द्रितः। प्रथमे मासि वाग्युक्तो द्वितीये बलवर्णवान् ॥ ४२ ॥ तृतीये नाशयेत् कुष्ठं श्वासकासौ तुरीयके। पञ्चमे स्त्रीप्रियत्वं च षष्ठे च पलितक्षयः ॥ ४३ ॥ सप्तमे कान्तियुक्तश्च अष्टमे बलवान् भवेत्। नवमे च शतायुः स्याद् दशमे च स्वरान्वितः ॥ ४४ ॥ महाबलस्त्वेकादशे अदृश्यो द्वादशे भवेत्। इच्छाहारविहारी स्यात्ततो दैत्यरिपोः समः ॥४५॥ षडूर्मिरहितो देही प्राप्नोति

कल्पजीवितम्। युवा निरन्तरं तिष्ठेद्यावत्कालं च जीवति ॥ ४६ ॥ भवन्ति सिद्धयोऽस्याष्टौ याश्चापि परिकीर्त्तिताः। श्रीसिद्धमोदको ह्येष सिद्धादिषु निषेवितः ॥ ४७ ॥

त्रिकटु का चूर्ण १२ तोले, त्रिफला का चूर्ण १२ तोले तथा गिलोय, वायविडंग, पिपरामूल, गठिवन और लाल चीता की जड, प्रत्येक औषधों का चूर्ण आठ-आठ तोले। कामरूप (आसाम) में बना हुआ गुड २॥ सेर। सबको एकत्र घोट कर २६० लड्डू बना ले। प्रातःकाल एक लड्डू जल के साथ खाना चाहिए। निरन्तर एक वर्ष तक सावधानी से इसका सेवन कराना चाहिए। इसके सेवन से पहले महीने में वाणीयुक्त, दूसरे में बल और वर्णयुक्त, तीसरे में कुष्ठनाश, चौथे में श्वास-कास का नाश, पाँचवें में स्त्रियों का प्यारा, छठे मे पलित का नाश, सातवें में कान्तियुक्त, आठवें में बलवान् नवें में शतायु, दशवें में स्वरयुक्त, ग्यारहवे में महाबली और बारहवें महीने में अदृश्य हो जाता है। एवं इच्छानुसार आहार-विहार करता हुआ इन्द्र के तुल्य हो जाता है और पझुर्मियों से रहित शरीर कल्पजीवी होकर जब तक जीवित रहता है तब तक निरन्तर युवा बना रहता है। आठों सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। यह श्रीसिद्धमोदक सिद्धों द्वारा सेवित किया गया था ॥ ३८--४७ ॥

श्रीनृपतिवल्लभ रस।

जातीफललवङ्गाब्दत्वगेलाटङ्करामठम्। जीरकं तेजपत्रञ्च यमानी विश्वसैन्धवाः ॥ ४८ ॥ लौहमभ्रं रसोगन्धस्ताम्रं प्रत्येकशः पलम्। मरिचं द्विपलं दत्त्वा छागीक्षीरेण पेषयेत् ॥ ४९ ॥ धात्रीरसेन वा पेष्यं वटिकाः कुरु यत्नतः। श्रीमद्गहननाथेन विचिन्त्य परिनिर्मितः॥५०॥ सूर्यतेजसा चायं रसो नृपतिवल्लभः। अष्टादशवटीं खादेत् पवित्रः सूर्यदर्शकः ॥ ५१ ॥ हन्ति मन्दानलं सर्वमांसदोषं विसूचिकाम्। प्लीहगुल्मोदराष्ठीलायकृत्पाण्डुककामलाम् ॥ ५२ ॥ हृच्छूलं पृष्ठशूलं च पार्श्वशूलं तथैव च। कटीशूलं कुक्षिशूलमानाहमष्टशूलकम् ॥५३॥ कासश्वासामवातांश्च श्लीपदं शोथमर्बुदम्। गलगण्डं गण्डमालामम्लपित्तञ्च गदभीम् ॥ ५४ ॥ कृमिकुष्ठानि दद्रूणि वातरक्तं भगन्दरम्। उपदंशमतीसारं ग्रहण्यर्शः प्रमेहकम् ॥ ५५ ॥ अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च मूत्राघातं सुदारुणम्। ज्वरं जीर्णं तथा कण्डूं तन्द्रालस्यं भ्रमं क्लमम् ॥५६॥ दाहञ्च विद्रधिं हिक्कां जडगद्गदमूकताम्। मूढञ्च स्वरभेदञ्च ब्रध्नवृद्धिविसर्पकान् ॥ ५७ ॥ उरुस्तम्भं रक्तपित्तं गुदभ्रंशारुचिं तृषाम्। कर्णनासामुखोत्थांश्च दन्तरोगांश्च पीनसान् ॥ ५८॥ स्थौल्यञ्च शीतपित्तञ्च स्थावरादिविषाणि च। वातपित्तकफोत्थांश्च द्वन्द्वजान् सान्निपातिकान् ॥ ५९ ॥ सर्वानेव गदान् हन्ति चण्डांशुरिव पापहा। बलवर्णकरो हृद्य आयुष्यो वीर्यवर्द्धनः ॥ ६० ॥ परं वाजीकरः श्रेष्ठः पुत्रदो मन्त्रसिद्धिदः। अरोगी दीर्घजीवी स्याद् रोगी रोगाद्विमुच्यते ॥ ६१ ॥ रसस्यास्य प्रसादेन बुद्धिमान् जायते नरः ॥ ६२ ॥

जायफल, लौंग, मोथा, दारचीनी, छोटी इलायची, सुहागा, हींग, सफेद जीरा, तेजपात, अजवाइन, सोंठ, सेंधानमक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, हरएक ४ तोले, कालीमिर्च ८ तोले; इनके चूर्णों को

एकत्र मिलाकर बकरी के दूध से अथवा आँवलों के रस से पीसकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। इसे दिन में दो बार सेवन करा सकते हैं। इस प्रकार नौ दिन तक सेवन कराने से अर्थात् १८ गोली खाने से मन्दाग्नि, सम्पूर्ण मांसदोष, विसूचिका, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, अष्ठीला, यकृद्वृद्धि, पाण्डुरोग, कामला, हृच्छूल, पृष्ठ शूल, पार्श्वशूल, कटीशूल, कुक्षिशूल, अफरा, आठों शूल, खाँसी, श्वास, आमवात, श्लीपद, सूजन, अर्बुद, गलगण्ड, गण्डमाला, अम्लपित्त, पाषाणगर्दभ, कृमि, कुष्ठ, दद्रु, वातरक्त, भगन्दर, उपदंश, अतीसार, संग्रहणी, बवासीर, प्रमेह, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, जीर्णज्वर, खुजली, तन्द्रा, आलस्य, भ्रम, क्लम, जलन, विद्रधि, हिक्का, जिह्वा की जड़ता, गद्गद, मूकता, मूढ़ता, स्वरभेद, मस्तरोग, अण्डवृद्धि, विसर्प, ऊरुस्तम्भ, रक्तपित्त, गुदभ्रंश, अरुचि, पिपासा, कर्णरोग, नासारोग, मुखरोग, दन्तरोग, पीनस, स्थूलता, शीतपित्त, स्थावर आदि विषदोष तथा अन्य सम्पूर्ण वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, द्वन्द्वज तथा सान्निपातिक रोग नष्ट होते हैं। यह बलकारक, वर्ण्य, हृद्य, आयुष्य, वीर्यवर्धक, वाजीकरण तथा सन्तानोत्पादक एवं मन्त्रसिद्धिकारक है। इस रस के प्रसाद से स्वस्थ पुरुष दीर्घायु तथा बुद्धिमान् होता है और रोगी रोग से मुक्त होता है॥ ४८-६२॥

सिद्ध लक्ष्मी विलास रस।

हेमभस्म च भागैकं रौप्यभस्म द्विभागिकम्। शुल्वभस्म त्रिभागश्च कान्त भस्म चतुर्गुणम्॥ ६३॥ पंच भागंच तीक्ष्णं स्यान्मण्डूरं षड्भागिकम्। निश्चन्द्रं व्योमकंचैव भस्म स्यात्सप्त भागिकम्॥ ६४॥ दशैकादशभागे च प्रवालं मौक्तिके मृते। खल्वमध्ये निधायाऽथ तत्तुल्यं सूत भस्मकम्॥ ६५॥ मर्दयेत्प्लावितं द्रव्यं भावयेज्जाति पत्रकैः। त्रिकटु त्रिफला चातुर्जात द्रावैश्च कौङ्कुमैः॥ ६६॥ मृगनाभिरसैश्चैव मुनिवारान् पृथक् पृथक्। गुञ्जामात्रं लिहेत्सम्यक् सिताऽऽज्यमधु संयुतम्॥६७॥ राजरोगं निहन्त्याशु पाण्डुरोग विनाशनम्। द्वन्द्वजं छर्दिरोगश्च श्वासं कासञ्च कामलाम्॥ ६८॥ दीर्घवातं पंचगुल्मान् सर्वशूलं विनाशयेत्। उन्मादं च मतिभ्रंशमष्टोदर महागदान्॥ ६९॥ मेहानां विंशतिञ्चैव षण्ढत्वंच क्षयंनयेत्। अरोचकमग्निमान्द्यं ग्रहणीदोषनाशनम्॥ ॥ ७०॥ वलीपलित विध्वंसि नाशयेत्कुम्भकामलाम्। दृष्टि पुष्टिकरं बल्यं कम्पवातश्च नाशयेत्॥ ७१॥ असाध्यरोग नाशाय साध्योलक्ष्मी विलासकः॥ ७२॥

सुवर्ण भस्म १ भाग, रजत भस्म २ भाग, ताम्रभस्म ३ भाग, कान्त भस्म ४ भाग, फौलाद भस्म ५ भाग, मण्डूर भस्म ६ भाग, निश्चन्द्र अभ्रक भस्म ७ भाग, वङ्गभस्म ८ भाग नागभस्म ९ भाग, प्रवाल १० भाग, और मोती ११ भाग लेकर सबके समान पारे की भस्म (रस सिन्दूर) मिलाकर जावित्री, त्रिकुटा, त्रिफला, चातुर्जात, केशर, कस्तूरी इन सबके द्रवों से ७-७ बार घोटकर १-१ रत्ती की गोली बना लेवे। इनमें से १ गोली से ३ गोली तक बलानुसार शक्कर, घी, और मधु के साथ देने से क्षय, पाण्डु, द्वन्द्वज, छर्दि रोग, श्वास, कास, कामला, दीर्घकालीन वातरोग, पाँचों प्रकार के गुल्म, सब तरह के दर्द, उन्माद, मतिभ्रंश (विक्षिप्तता), अष्टोदरीय महारोग, २० प्रकार के प्रमेह, नपुंसकता, अरुचि, मन्दाग्नि, ग्रहणी, वली पलित दृष्टि की कमजोरी, कम्पवात इन सबको नाश करता है, विशेष अनुभूत है॥ ६३-७२॥

मकरध्वज रसायन ।

स्वर्णस्य भागौ वङ्गश्च मौक्तिकं कान्तलौहकम् । जातीकोषफले रूप्यं रससिन्दूर कांस्यकम् ॥ ७३ ॥ कस्तूरी विद्रुमश्चन्द्रमभ्रकञ्चैकभागिकम् । स्वर्णसिन्दूरतो भागाश्चत्वारः कल्पयेद् बुधः ॥ ७४ ॥ नातः परतरः श्रेष्ठः सर्वरोगनिसूदनः । सर्वलोकहितार्थाय शिवेन परिकीर्त्तितः ॥ ७५ ॥

सुवर्णभस्म २ भाग, वङ्गभस्म, मुक्ताभस्म, कान्तलौहभस्म, जावित्री, जायफल चाँदीभस्म, रससिन्दूर, कांस्यभस्म, कस्तूरी, प्रवालभस्म, कपूर, अभ्रकभस्म, हरएक १ भाग; स्वर्णसिन्दूर ४ भाग, इन्हें एकत्र मिला जल से घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। यह रसायन सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करता है ॥ ७३-७५ ॥

अमृतार्णव रस ।

सूतभस्म चतुर्भागं लौहभस्म तथाष्टकम् । अभ्रभस्म च षड्भागं गन्धकस्य च पञ्चमम् ॥ ७६ ॥ भावयेत् त्रिफलाक्वाथैस्तत्सर्वं भृङ्गजैर्द्रवैः । शिग्रुवह्निकटुक्वाथैर्भावयेत् सप्तधा पृथक् ॥ ७७ ॥ सर्वं तुल्या कणा योज्या गुडैर्मिश्रं पुरातनैः । गुञ्जाषट्कमितं खादेज्जरामृत्युनिवारणम् ॥ ७८ ॥ ब्रह्मायुः स्याच्चतुर्मासे रसोऽयममृतार्णवः । कौरण्टकस्य पत्राणि गुडेन भक्षयेदनु ॥ ७९ ॥

पाराभस्म (अभाव में रससिन्दूर) ४ भाग, लौहभस्म ८ भाग, अभ्रक भस्म ६ भाग, गन्धक ५ भाग; इन्हें त्रिफला के क्वाथ, भाँगरे के रस तथा सहिजना, चित्रक एवं कुटकी के क्वाथ से अलग-अलग सात बार भावना देकर सम्पूर्ण चूर्ण के समान पीपल का चूर्ण तथा पुराना गुड़ मिलाकर छह-छह रत्ती की गोलियाँ बनावे । इस गोली के सेवन के पश्चात् पियाबाँसा के पत्रों को गुड़ के साथ खावे। इसके सेवन से जरा तथा मृत्यु दूर होती है । चार मास तक सेवन करने से मनुष्य ब्रह्मायु अर्थात् दीर्घायु होता है ॥ ७६-७९ ॥

श्रीनीलकण्ठ रस ।

रसस्य भागाश्चत्वारो हेम्नो भागचतुष्टयम् । अभ्रंलौहं तथा मुक्ता वैक्रान्तं युग्मभागिकम् ॥ ८० ॥ रौप्यं प्रवालं ताप्यञ्च वङ्गमेकैकभागिकम् । त्रिधा जीवन्ति लाक्षाग्निमूलक्वाथेन भावयेत् ॥ ८१ ॥ एरण्डपत्रैः संवेष्ट्य धान्यराशौ निधापयेत् । ततो दिनत्रयादूर्ध्वमुद्धृत्य रक्तिकामिताम् ॥ ८२ ॥ प्रयुञ्ज्याद्वटिकां धीमान् यथा व्याध्यनुपानतः । नीलकण्ठं समभ्यर्च्य शुचिः संयतमानसः ॥ ८३ ॥ रसायनवरः श्रीदो वातव्याधिविनाशनः । रसः श्रीनीलकण्ठाख्यो नीलकण्ठेन भाषितः ॥ ८४ ॥ कुष्ठमष्टादशविधं प्रमेहान् विंशतिं तथा । नेत्ररोगं तथा दोषान् रजःशुक्रसमुद्भवान् ॥ ८५ ॥ सन्निपातज्वरं घोरं हृन्नासामुखकर्णजान् । रोगान् बहुविधान् हन्ति भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ८६ ॥

रससिन्दूर ४ भाग, सुवर्णभस्म ४ भाग, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, मुक्ताभस्म, वैक्रान्तभस्म; हरएक २ भाग; चाँदी की भस्म, प्रवालभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, वङ्गभस्म, हरएक १ भाग; सबको एकत्र कर इनमें जीवन्ती, लाक्षा तथा चित्रकमूल के क्वाथ से तीन-तीन बार भावना दे । पश्चात् गोलाकार कर अरण्डी के पत्तों में लपेट धान्यराशि में दबा रखे। तदनन्तर तीन दिन के बाद निकालकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ

बनावे। पवित्र तथा संयमी रहकर शिव की पूजा करके १ गोली का सेवन करे। व्याधि के अनुसार अनुपान का प्रयोग करे। यह श्रीनीलकंठ का कहा हुआ रसायन कान्ति को बढ़ाता और वातव्याधि को नष्ट करता है। इसके सेवन से अठारह कुष्ठ, बीसों प्रमेह, नेत्ररोग, रजोदोष, शुक्रदोष, सन्निपात, ज्वर, विविध, हृद्रोग, नासारोग, मुखरोग और कर्णरोग तथा कई प्रकार के अन्य रोग ऐसे नष्ट होते हैं जैसे सूर्य से अन्धकार ॥ ८० ८१ ॥

शिवागुडिका।

काले तु रवितापाढ्ये कृष्णायसजं शिलाजतु प्रवरम्। त्रिफलारससंयुक्तं त्र्यहञ्च शुष्कं पुनः शुष्कम् ॥ ८७ ॥ दशमूलस्य गुडूच्या रसे बलायास्तथा पटोलस्य। मधुकरसैर्गोमूत्रे त्र्यहं त्र्यहं भावयेत्क्रमशः ॥ ८८ ॥ एकाहं क्षीरेण तु तत् पुनर्भावयेच्छुष्कम्। सप्ताहं भाव्यं स्यात् क्वाथैरेषां यथालाभम् ॥ ८९ ॥ काकोल्यौ द्वे मेदे विदारियुग्मं शतावरी द्राक्षा। ऋद्धियुगर्षभवीरा मुण्डितिकाजीरकेऽंशुमत्यौ च ॥ ९० ॥ रास्नापुष्करचित्रकदन्तीभकणाकलिङ्गवच्याब्दाः। कटुका भृङ्गी पाठा तानि पलांशिकानि भाव्यानि ॥ ९१ ॥ अब्द्रोणे साधितानां रसेन पादांशिकेन भाव्यानि। गिरिजस्यैवं भावितशुद्धस्य पलानि दशपट् च ॥ ९२ ॥ द्विपलञ्च विश्वामागधिका कटुकर्कटाख्यमरिचानाम्। चूर्णं पलं विदार्यास्तालीपलानि चत्वारि ॥ ९३ ॥ षोडशसितापलानि चत्वारि घृतस्य माक्षिकस्याष्टौ। तिलतैलस्य द्विपलं चूर्णार्द्धपलानि पञ्चानाम् ॥ ९४ ॥ त्वक्क्षीरिपत्रत्वङ्नागैलानां मिश्रयित्वा तु। गिरिजस्य षोडशपलैर्गुडिकाः कार्याः द्विमाषसमाः ॥ ९५ ॥ ताः शुष्का नवकुम्भे जातीपुष्पाधिवासिते स्थाप्याः ॥ तासामेका काले भक्षया पेयापि वा सततम् ॥ ९६ ॥ क्षीररसदाडिमरसाः सुरासवं मधु च शिशिरतोयानि। आलोडनानि तासामनुपाने वा प्रशस्यन्ते ॥ ९७ ॥ जीर्णे लघ्वन्नपयो जाङ्गलनिर्यूहयूषभोजी स्यात्। सप्ताहं यावदतः परं भवेत्सर्वसामान्यम् ॥ ९८ ॥ भुक्त्वापि भक्षितेयं यद्वाञ्छया नावहेद्भयं किञ्चित्। निरुपद्रवा प्रयुक्ता सुकुमारकैः कामिभिश्चैव ९९ संवत्सरं प्रयुक्ता हन्त्येषा वातशोणितं प्रबलम्। बहुवार्षिकमपि गाढं यक्ष्माणं चाढ्यवातञ्च ॥ १२० ॥ ज्वरयोनिशुक्रदोषप्लीहार्शःपाण्डुग्रहणीरोगान्। अश्मवमिगुल्मपीनसहिक्काकासारुचिश्वासान् ॥ १०१ ॥ जठरं श्वित्रं कुष्ठं पाण्ड्यं क्लैब्यं गरं क्षयं शोषम्। उन्मादापस्मारौ वदनाक्षिशिरोगदान् सर्वान् ॥ १०२ ॥ आनाहमतीसारं सासृग्दरं कामलाप्रमेहांश्च। यकृदर्बुदानि विद्रधिं भगन्दरं रक्तपित्तञ्च ॥ १०३ ॥ अतिकार्श्यमतिस्थौल्यं स्वेदमथ श्लीपदञ्च विनिहन्ति। दंष्ट्राविषं समौलं गराणि बहुप्रकाराणि ॥ १०४ ॥ मन्त्रौषधियोगान् विप्रयुक्तान् भौतिकांस्तथा भावान्। पापालक्ष्मीश्चेयं शमयेद् गुडिका शिवा नाम्ना ॥ १०५ ॥ बल्या वृष्या धन्या कान्तियशश्रीप्रजाकरी चेयम्। दद्यान्नृपवल्लभतां जयं विवादे

मुखरथा च ॥ १०६ ॥ श्रीमान् प्रकृष्टमेधाः स्मृतिबुद्धिबलान्वितोऽतुलशरीरः। पुष्टयोजोऽतिविमलेन्द्रियतेजोबलसम्पदुपेतः ॥ १०८ ॥ वलीपलितरोगरहितो जीवेच्छरदां शतद्वयं पुरुषः। संवत्सर प्रयोगात् द्वाभ्यां शतानि चत्वारि ॥ १०८ ॥ सर्वामयजित्कथितं मुनिगणभक्ष्यरसायनरहस्यम् । समुद्भवभूवामृतमन्थनोत्थस्वेदः शिलाभ्योऽप्यवान् गिरेः प्राक् ॥ १०९॥ यो मन्दरस्यात्मभुवा हिताय न्यस्तः स शैलेषु शिलाजरूपी । शिवागुडिकेति रसायनमुक्तं गिरीशेन गणपतये। शिववदनविनिर्गता यस्मान्नाम्ना तस्माच्छिवा गुडिका ॥ ११० ॥

ग्रीष्मकाल में काली लौहयुक्त चट्टान से निकलनेवाली उत्तम शिलाजीत ६४ तोला लेकर उसमें त्रिफला के क्वाथ से तीन-दिन भावना दे और सुखा ले। फिर दशमूल (मिलित), गिलोय, खरैटी परवल, मुलहठी, इनके यथा सम्भव रस अथवा क्वाथ से तथा गोमूत्र से क्रमशः अलग-अलग तीन तीन भावना दे। तदनन्तर गौ के दूध से एक भावना दे और सुखा ले। पश्चात् निम्नलिखित क्वाथ से सात भावना दे क्वाथ— काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, विदारी, क्षीरविदारी, शतावर, दाख, ऋद्धि, वृद्धि ऋषभक, जटामांसी, गोरखमुण्डी, सफ़ेद जीरा, काला जीरा, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, रास्ना, पोहकरमूल, चित्रक, दन्तीमूल, गजपीपल, इन्द्रयव, वच, मोथा, कुटकी, काकड़ासिंगी, पाठा: हर एक द्रव्य यथा लाभ (जो प्राप्त हो सके) ४-४ तोले ले और २५ सेर ४८ तोले जल में क्वाथ करे; जब ६ सेर ३२ तोले जल रह जाय तब उसकी भावना दे। पश्चात् सोंठ, पीपल, कुटकी, काकड़ासिंगी, कालीमिर्च; इनका चूर्ण अलग-अलग ८ तोले, विदारीकन्द का चूर्ण ४ तोले, तालीशपत्र १६ तोले, खाँड ६४ तोले, गोघृत १६ तोले, शहद ३२ तोले, तिल का तैल ८ तोले, तथा तवाशीर, तेजपात, दारचीनी, नागकेशर, छोटी इलायची, पाँचों मिलाकर २ तोले; इन्हें मिलाकर दो-दो माशे की गोलियाँ बना ले। जब ये गोलियाँ सूख जायँ तब चमेली के फूलों से सुगन्धित पात्र में इन्हें रख दें। इनमें से एक-एक गोली सेवन करनी चाहिए। अनुपान-दूध, मांसरस अनार का रस, सुरा, आसव, शहद अथवा शीतल जल। इन्हीं में घोलकर भी पिला सकते हैं। औषध के जीर्ण हो जाने पर इसका अन्न, दूध, जांगल पशु-पक्षियों का मांसरस, मूँग आदि का यूष खाना चाहिए। इस प्रकार सात दिन पथ्य रक्खे। पश्चात् साधारण नियमों पर चले। इस गोली को इच्छानुसार भोजन के बाद भी खाने से कोई नुकसान नहीं। इसे सुकुमार एवं कामी पुरुष सेवन कर सकते हैं। एक वर्ष तक निरन्तर इसके प्रयोग से प्रबल, बहुत वर्ष का तथा गम्भीर वातरक्त, यक्ष्मा, आढ्यवात, ज्वर, योनिदोष, वीर्यदोष, प्लीहा, बवासीर, पाण्डु, ग्रहणी, भ्रम, वमन, गुल्म, पीनस (प्रतिश्याय), हिचकी, खाँसी, अरुचि, श्वास उदररोग, श्वित्र कुष्ठ, पण्ढता, नपुंसकता, गरविष, क्षय, शोथरोग, उन्माद, अपस्मार तथा सम्पूर्ण मुख रोग, सम्पूर्ण नेत्ररोग, शिरो रोग, अफरा, अतीसार रक्तप्रदर, कामला, प्रमेह, यकृत, अर्बुद, विद्रधि भगन्दर, रक्तपित्त, अतिकृशता, अतिस्थूलता, पसीना आना, श्लीपद, दंष्ट्राविष, मूलविष, विविध गर (संयोगज) विष तथा मन्त्र एवं औषध के विपरीत प्रयोग से उत्पन्न दोष, भूतबाधा, पाप और अलक्ष्मी आदि शान्त होते हैं। यह शिवागुडिका बलकारक, वीर्यवर्द्धक, धनोत्पादक, कान्ति, यश, शोभा एवं सन्तान देनेवाली है। इसे मुख में रखने से पुरुष राजा का प्रिय हो जाता है और विवाद में जयलाभ करता है। इसका एक वर्ष तक सेवन करनेवाला व्यक्ति लक्ष्मीवान्, स्मृति, बुद्धि बल, अतुल शरीर, पुष्टि ओज, तेज आदि से युक्त वली पलित से रहित तथा निर्मलेन्द्रिय एवं जरारहित होकर २०० वर्ष तक जीता है। दो

वर्ष सेवन करनेवाला ४०० वर्ष तक जीता है। यह सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करनेवाला, मुनियों के लिये सेव्य रसायन है। प्राचीन काल में अमृत का मथन करते हुए मन्दर पर्वत की शिलाओं से अमृतयुक्त स्वेद निकला था। उस स्वेद को जगत् के कल्याण के लिये ब्रह्मा ने पर्वतों में शिलाजीत के रूप में रख दिया। शिवा गुडिका नामक रसायन का महादेवजी ने गणेशजी को उपदेश किया था। चूंकि यह रसायन शिवजी के मुख से प्रकट हुआ, अतएव इसका नाम शिवागुडिका हुआ। इस योग में, जिसमें काकोल्यादि क्वाथ से सात दिन भावना देने को कहा है, उसका निर्देश सात भावनाओं के लिये है, अतः ताजे क्वाथ की भावनार्थ प्रयोग के लिये सातवें भाग का क्वाथ करना चाहिए। इस प्रकार सात बार अलग-अलग क्वाथ तैयार करना चाहिए। ८७-११०।

वसन्तकुसुमाकर रस ।

प्रवालरसमौक्तिकाभ्ररमिदं चतुर्भाग-भाक् पृथक् पृथगथ स्मृते रजतहेमतो द्व्यंशके। अयोभुजरङ्गकं त्रिलवकं विम-र्द्याखिलम् ॥ शुभेऽहनि विभावयेद्भिषगिदं धिया सप्तशः ॥ १११ ॥ द्रवैर्वृषनिशे-क्षुजैः कमलमालतीपुष्पजैः पयः कदलि-कन्दजैर्मलयजैणनाभ्युद्भवैः । वसन्तकुसु-माकरो रसपतिर्द्विवल्लोऽशितः समस्तगद-हृद्भवेत् किल निजानुपानैरयम् ॥ ११२ ॥

मूँगाभस्म, रससिन्दूर, मोती की भस्म और अभ्रकभस्म, प्रत्येक ४ भाग, रजतभस्म २ भाग, स्वर्णभस्म २ भाग, लौहभस्म ३ भाग, सीसा की भस्म ३ भाग और राँगा की भस्म ३ भाग। इन सबको एकत्र घोट कर शुभ दिन में अडूसा, हल्दी, ईख, कमल, मालती के फूल, दूध, केला का कन्द चन्दन और कस्तूरी ; इनके स्वरस अथवा क्वाथ की अलग-अलग सात-सात भावनाएँ दें। इस वसन्तकुसुमाकर रस को चार-चार रत्ती की गोलियाँ बनाकर रोगानुसार अनुपान से आधी घटी से एक घटी तक सेवन करे तो सब प्रकार के रोग नष्ट होते हैं ॥ १११-११२ ॥

नागसिन्दूर ।

पारदात्कुडवं सार्धकुडवं शुद्धाश्मगन्धतः। सीसकादर्धकुडवं नवसारतोऽपि च ॥११३॥ कज्जली कारयेदेषां भावनादापयेदिमाः पलाशमूलं नार्स्यत्री तथा चाऽमरवल्लिका ॥ ११४ ॥ एतेषां स्वरसैर्भाव्यं काचकूप्यं ततः क्षिपेत् । मुखं सम्मुद्र्य सिकतायन्त्रे वह्निं ददीत च ॥ ११५ ॥ चतुर्विंशतिभि-र्यामैः क्रमवृद्ध्या च पाचयेत्। दीपाऽग्निघ्न-ष्टभिर्यामैर्मध्याग्नि षड्भिरेव च ॥११६॥ हठाग्निनैत्रयामैश्च स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत युक्त्याऽनुपानतो हन्यात्सर्वरोगान रसोत्तमः ॥ ११७ ॥

शुद्धपारा ४ पल शुद्ध गन्धक छहपल विष और नौसादर दो दो पल लेकर नाग को गला कर पारे को मिलाय गन्धक के साथ कज्जली कर नौसादर मिलाकर पलाश की जड नई (मामेजनी गु०) गिलोय इन सब के रसों से १-१ रोज घोट कर सुखाकर ६-७ कपड़मिट्टी की आतशी शीशी में रख कर उसका मुँह खड़िया मिट्टी की डाट से बन्द कर बालुका यन्त्र में रख कर १६ प्रहर दीपाग्नि ८प्रहर मन्दाग्नि और २ प्रहर हठाग्नि देकर शीतल होने पर निकाल रोगानुसार अनुपान के साथ देने से समस्त रोगों को दूर करता है ॥ ११३-११७ ॥

अष्टावक्ररस ।

रसराजस्य भागैकं द्विभागं गन्धकस्य च। भागमेकं सुवर्णस्य भागार्द्धं रजतस्य च ॥ ११८ ॥ नागं ताम्रं खर्परं च वङ्गं चैव समांशकम् । प्रत्येकं रजतार्द्धं च सर्व-मेकत्र मर्दयेत् ॥ ११९ ॥ वटाङ्कुररसै-

यामं यामं कन्यारसैः सह । कूप्यभ्यन्तरे संस्थाप्य त्रिदिनं पाचयेत् सुधीः १२० ॥ दाडिमीकुसुमप्रख्यं जायते ह्यविकल्पतः । वलीपलितविध्वंसि बलपुष्टिकरं महत् ॥ १२१ ॥ आरोग्यजननं मेधाकान्तिकृच्छुक्रवर्द्धनम् । महौषधवरं चैतदष्टावक्रेण निर्मितम् ॥ १२२ ॥

शुद्ध पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, सुवर्णभस्म १ भाग, चाँदी की भस्म आधा भाग तथा सीसा की भस्म, ताँबे की भस्म, खपरिया और वङ्गभस्म; प्रत्येक चाँदी से आधा भाग । इन सबको एकत्र कर बरगद के अकुर और घीकुवार के रस में एक-एक पहर घोटकर काँच की कुप्पी में बन्दकर तीन दिन तक पकावे। जब अनार के फूल के समान लाल हो जाय तब उसको निकाल ले। इसके सेवन करने से वलीपलित नष्ट होते हैं। यह प्रयोग बल, पुष्टि तथा आरोग्यजनक है। इसके प्रयोग से बुद्धि, कान्ति तथा वीर्य की वृद्धि होती है । यह अष्टावक्रजी द्वारा निर्मित रस है ॥ ११८–१२२ ॥

त्रैलोक्यचिन्तामणि ।

रसं वज्रं हेम तारं ताम्रं तीक्ष्ण मृताभ्रकम् । मौक्तिकं गन्धकं शङ्खं प्रवालं तालकं शिला ॥ १२३ ॥ शोधितं च समं सर्वं सप्ताहं मर्दयेद् दृढम् । वह्निमूलकषायेण भानुदुग्धे दिनत्रयम् ॥ १२४ ॥ निर्गुण्डीशूरणद्रावैर्वज्रीदुग्धैर्दिनत्रयम् । अनेन पूरयेद्गर्भं पीतवर्णवराटिकाम् ॥ १२५ ॥ टङ्कनं रविदुग्धेन पिष्ट्वा तस्य मुखं लिपेत् । रुद्ध्वा भाण्डपुटं पाच्यं स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत् ॥ १२६ ॥ चूर्णतुल्यं मृतं सूतं वैक्रान्तं सूतपादिकम् । शोभाञ्जनद्रवैः मर्द्यं सप्तवारान् विभावयेत् ॥ १२७ ॥ वह्निमूलकषायेण भावनाद्वयमीहते । एवं संशुद्धसूतेन्द्रः सर्वव्याधिकुलान्तकः ॥ मासार्द्धेन निहन्त्याशु जरामृत्यू न संशयः ॥ १२८ ॥ वातं विद्रधिशूलपाण्डुग्रहणीरक्तातिसारान् जयेत् मेहप्लीहजलोदराश्मरितृषाशोथं हलीमोदरम् । मूत्राघातभगन्दरज्वरगणान् सर्वाणि कुष्ठान्यपि साध्यासाध्यभवान् गदान् बहुतरान् संसाधयेद्योगतः ॥१२९॥

शुद्ध पारा, हीरा की भस्म, सुवर्णभस्म, रौप्यभस्म, ताम्रभस्म, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, मुक्ताभस्म, शुद्ध गन्धक, शंखभस्म, मूँगा की भस्म, शुद्ध हरताल और शुद्ध मैनशिल; इन सबको एकत्र कर चीता की जड़ के काढ़े से ७ दिन मदार (आक) के दूध से ३ दिन, सँभालू के रस से ३ दिन, जमीकन्द के रस से ३ दिन और सेहुँड के दूध से ३ दिन घोटकर पीली कौड़ियों के भीतर भर दे और सुहागा को आक के दूध से पीस कर कौड़ियों का मुख बन्द कर दे। फिर इन कौड़ियों को मिट्टी के पात्र में रखकर उसका मुख बन्दकर गजपुट में फूँक दे। स्वाङ्ग शीतल होने पर उसको पीसकर चूर्ण बना ले। चूर्ण के बराबर रससिन्दूर, रससिन्दूर की चौथाई भाग वैक्रान्तभस्म मिलाकर उसमें सहिंजन के रस की ७ और चीता की जड़ के काढ़े की २ भावनाएँ दे। इस प्रकार शुद्ध हुआ रस सब प्रकार के रोगों को समूल नष्ट करता है। १५ दिन के सेवन से जरा और मृत्यु को नष्ट करता है इसमें संशय नहीं है। यह वातरोग, विद्रधि, शूल, पाण्डु, संग्रहणी, रक्तातिसार, प्रमेह, प्लीहा, जलोदर, पथरी, तृषा, शोथ, हलीमक, उदरविकार, मूत्राघात, भगन्दर, सब प्रकार के ज्वर, सब प्रकार के कुष्ठ तथा अनेक प्रकार के साध्य-असाध्य रोगों को नष्ट करता है ॥ १२३–१२९ ॥

पूर्णचन्द्ररस।

द्विकर्षं शुद्धसूतं च गन्धकं च द्विकार्षिकम्। लौहभस्म पलं चैकं जारिताभ्रं पलांशिकम् ॥ १३० ॥ द्वितोलं रजतं चैव वङ्गभस्म द्विकार्षिकम्। सुवर्णं तोलकं चैव ताम्रं कांस्य च तत्समम्॥१३१॥ जातीफलं चेन्द्रपुष्पमेला भृङ्गं च जीरकम्। कर्पूरं वनितां मुस्तं कर्षं दद्यात् पृथक् पृथक् ॥ १३२ ॥ सर्वं खल्लतले क्षिप्त्वा कन्यारसविमर्दितम्। भावयित्वा वरातोयैरण्डकाणां रसैस्तथा ॥ १३३ ॥ एरण्डपत्रैः संवेष्ट्य धान्यराशौ दिनत्रयम्। उद्धृत्य मर्दयित्वा तु वटिकां वल्लसम्मिताम् ॥ १३४ ॥ खादेच्च वटिकामेकां पर्णखण्डेन संयुताम्। सर्वव्याधिविनाशाय काशिराजेन निर्मितः ॥१३५॥ बल्यो रसायनो वृष्यो वाजीकरण उत्तमः। अग्निमान्द्यमजीर्णं च ग्रहणीं चिरजामपि ॥ १३६॥ आमवातमम्लपित्तं जीर्णज्वरमरोचकम्। आमशूलं कटीशूलं हृच्छूलं पक्तिशूलकम् ॥ १३७ ॥ कामशोकोद्भवं रोगं प्रमेहं बहुमूत्रकम्। वायुं बहुविधं हन्ति ध्वजभङ्गं विशेषतः ॥ १३८ ॥ मेधां च लभते राशिं तुष्टिपुष्टिसमन्विताम्। वृद्धोऽपि तरुणस्पर्द्धी स्त्रीषु चापि वृषायते ॥ १३९ ॥ दृष्टः सिद्धफलो ह्येष रसायनवरः स्मृतः ॥ १४० ॥

शुद्ध पारा २ तोले, गन्धक २ तोले, लोहभस्म ४ तोले, अभ्रकभस्म ४ तोले, चाँदी की भस्म २ तोले, वङ्गभस्म २ तोले, सुवर्णभस्म १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला और कांस्यभस्म १ तोला। जायफल, लौंग, इलायची, भँगरा, जीरा कपूर, मालकाँगनी और नागरमोथा; प्रत्येक एक एक तोला। इन सबको खरल में डालकर घी कुवार के रस से घोटे। पश्चात् त्रिफला के काढा और एरण्ड की जड के रस की भावना देकर गोला बना ले और एरण्ड के पत्तों मे लपेटकर धान्यराशि में रख दे। तीन दिन के बाद धान्यराशि में से निकालकर घोट ले और दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना ले। पान में एक गोली रखकर खाने से सब रोग नष्ट होते हैं। यह काशिराज का बनाया हुआ रस बलप्रद, रसायन, वृष्य और उत्तम वाजीकरण है। तथा मन्दाग्नि, अजीर्ण, पुरानी सग्रहणी, आमवात, अम्लपित्त, जीर्णज्वर, अरुचि, आमशूल, कटिशूल, हृदयशूल, पक्तिशूल, काम और शोक से उत्पन्न रोग प्रमेह और बहुमूत्र, अनेक प्रकार का वायुरोग और ध्वजभग; इन रोगों को नष्ट करता है। बुद्धि, तुष्टि और पुष्टि को प्राप्त करता है। इसके प्रताप से वृद्ध भी तरुण पुरुष की बराबरी करने लगता है और स्त्रियों में वृष के तुल्य रमण करता है। यह अनुभूत श्रेष्ठ रसायन है ॥ १३०-१४० ॥

श्रीमहालक्ष्मीविलासरस।

पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य तदर्द्धौ गन्धपारदौ। तदर्द्धं वङ्गभस्मापि तदर्द्धं तारकं तथा ॥ १४१ ॥ तत्समं माक्षिकं चैव तदर्द्धं ताम्रभस्मकम्। रसतुल्यं च कर्पूरं जातीकोषफले तथा ॥ १४२ ॥ वृद्धदारकबीजं च बीजं स्वर्णफलस्य च। प्रत्येकं कार्षिकं भागं मृतं स्वर्णं द्विशाणकम् ॥ १४३ ॥ निष्पिष्य वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः। निहन्ति सन्निपातोत्थान् गदान् घोरान् सुदारुणान् ॥ १४४ ॥ गलोत्थानन्त्रवृद्धिं च तथातीसारमेव च। कुष्ठमष्टादशविधं प्रमेहान् विंशतिं तथा ॥ १४५ ॥ श्लीपदं कफवातोत्थं चिरजं कुलजं तथा। नाडीव्रणं व्रणं घोरं गुदा-

मयभगन्दरम् ॥ १४६ ॥ कासपीनसयक्ष्मघ्नः स्थौल्यदौर्गन्ध्यरक्तनुत्। आमवातं सर्वरूपं जिह्वास्तम्भं गलग्रहम् ॥ १४७ ॥ उदरं कर्णनासाक्षिमुखवैजात्यमेव च। सर्वशूलं शिरःशूलं गुदं स्त्रीणां हरेद्द्रुतम् ॥ १४८ ॥ वटिकां प्रातरेकैकां खादेन्नित्यं यथाबलम्। अनुपानमिह प्रोक्तं मांसपिष्टं पयोदधि ॥ १४९ ॥ वारिभक्तसुरासीधुसेवनात् कामरूपधृक्। वृद्धोऽपि तरुणस्पर्द्धी न च शुक्रक्षयो भवेत् ॥ १५० ॥ न च लिङ्गस्य शैथिल्यं न केशानां च पक्वता। नित्यं गच्छेत् शतं स्त्रीणां मत्तवारणविक्रमः ॥ १५१ ॥ द्विलक्षयोजनी दृष्टिर्जायते पौष्टिकस्तथा। प्रोक्तः प्रयोगराजोऽयं नारदेन महात्मना ॥ १५२ ॥ रसो लक्ष्मीविलासोऽयं वासुदेवे जगत्पतौ। अभ्यासादस्य भगवान् लक्षनारीषु वल्लभः ॥ १५३ ॥

काले अभ्रक की भस्म ४ तोले, गन्धक २ तोले, शुद्ध पारा २ तोले, बंगभस्म १ तोला चाँदी की भस्म ६ माशे, सोनामाखी की भस्म ६ माशे, ताम्रभस्म ३ माशे, कपूर २ तोले, जायफल २ तोले, जावित्री २ तोले तथा विधारा के बीज और धतूरा के बीज एक-एक तोला तथा स्वर्णभस्म ६ माशे; सबको घोटकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ ना ले। एक-एक गोली प्रातःकाल बलानुसार खाना चाहिए। अनुपान—मांसपिष्ट, दूध, दही, जल, भात, मदिरा और सीधु। यह लक्ष्मीविलास रस अत्यन्त कठिन सन्निपात रोग, गले के रोग, अन्त्रवृद्धि, अतीसार, अठारह कुष्ठ, बीस प्रकार के प्रमेह, कफवातजन्य, चिरकालोत्पन्न अथवा कुलक्रमागत श्लीपद और नासूर, कठिन व्रण, बवासीर, भगन्दर, खाँसी, पीनस, राजयक्ष्मा, स्थूलता, दुर्गन्ध, रक्त विकार, सब प्रकार का आमवात, जिह्वास्तम्भ, गलग्रह, उदररोग, कर्णरोग, नासारोग, नेत्ररोग, मुख की विरसता, सब प्रकार के शूल, शिर-शूल और सब प्रकार के स्त्रियों के रोगों को शीघ्र नष्ट करता है। तथा इसके सेवन से मनुष्य कामरूप तथा वृद्ध भी युवा हो जाता है। इसके सेवन से न तो वीर्यपात होता है, न इन्द्रिय शिथिल होती है और न बाल ही पकते हैं। नित्य १०० स्त्रियों से गमन कर सकता है, मत्त हाथी का-सा पराक्रम हो जाता है, दृष्टिशक्ति बढ़ जाती है और शरीर पुष्ट हो जाता है। इस प्रयोगराज लक्ष्मीविलासरस को महात्मा नारदजी ने जगत्पति भगवान् से कहा था। इसके सेवन से भगवान् लाखों स्त्रियों के प्यारे हुए हैं ॥ १४१-१५३ ॥

सारस्वतारिष्ट।

समूलपत्रशाखाया ब्राह्मया ब्राह्ममुहूर्त्तके। गृहीत्वा विंशतिपलं पुष्ययोगे शतावरी ॥ १५४ ॥ विदारिकाभयोशीराण्यार्द्रकं च तथा मिशिः। पञ्चपञ्चपलान्येषां जलद्रोणे पचेद्भिषक् ॥ १५५ ॥ पादावशेषे विस्राव्य रसं वस्त्रेण गालयेत्। माक्षिकस्यदशपलं सितायाः पञ्चविंशतिः ॥ १५६ ॥ धातकी पञ्चपलिका रेणुका त्रिवृता कणा। देवपुष्पं वचा कुष्ठं वाजिगन्धा विभीतकी ॥ १५७ ॥ अमृतेला विडङ्गं त्वक् प्रत्येकं कर्षसम्मितम्। क्वाथे तस्मिन् समस्तानि समाक्षिप्य प्रयत्नतः ॥ १५८ ॥ स्वर्णकुम्भे निदध्याद् वा नवे मृद्भाजनेऽपि वा। स्वर्णमत्तनुपत्रं च क्षिप्त्वास्मिन् कर्षसम्मितम् ॥ १५९ ॥ मासाज्जातरसं दृष्ट्वा हैमपात्रे स्वयं गते। वाससा च परिस्राव्य स्थापयेद् घृतभाजने ॥ १६० ॥ सारस्वताभिधोऽरिष्ट एषोऽमृत-

समः पुरा। शिष्याणामुपकारार्थं धन्वन्तरिविनिर्मितः ॥ १६१ ॥ आयुर्वीर्यं धृतिं मेधां बलं कान्तिं विवर्द्धयेत्। वाग्विशुद्धिकरो हृद्यो रसायनवरः स्मृतः ॥ १६२ ॥ बालकानां च यूनां च वृद्धानां च हितः सदा। नरनारीहितो नित्यं परमोजस्करो मतः ॥ १६३ ॥ वारयेत् स्वरकार्कश्यं तथा चास्पष्टभाषणम्। स्वरं परभृतस्येव जनयेत् सेवनात् सदा ॥ १६४ ॥ रजोदोषेण दुष्टानां योषितां शुक्रदोषिणाम्। पुंसां चापि शुभकरः सर्वदोषहरो मतः ॥ १६५ ॥ अत्यध्ययनगीतादिक्षीणस्मृतिबला नराः लभन्ते चित्तसन्तोषं स्मृतिं चास्य निषेवणात् ॥ १६६ ॥ पयसा सह पातव्योऽरिष्टोऽयं शाणमानतः। मासाभ्यां रोगहृच्चायं शरदा सर्वसिद्धिदः ॥ ६७ ॥ अकालमृत्योर्हरणे यदीच्छा नारीप्रियत्वं यदि वाञ्छितं स्यात्। वाक्शुद्धिधैर्यस्मृतिलब्धिरिष्टा निषेव्यतां तद्धमृतं भवद्भिः ॥ १६८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां रसायनाधिकारः समाप्तः।

पुष्य नक्षत्र और ब्राह्म मुहूर्त में मूल, पत्र और शाखा सहित लाई हुई ब्राह्मी ८० तोले; शतावरी, विदारीकन्द, हड़, खस, अदरख और सौंफ; बीस-बीस तोले। जल २५ सेर ४८ तोले, अवशिष्ट क्वाथ ६ सेर ३२ तोले। इसको कपड़े से छान ले और इसमें शहद ४० तोले, शक्कर १०० तोले, धाय के फूल २० तोले तथा रेणुका, निसोत, पीपरि, लौंग, वच, कूट, असगन्ध, बहेड़ा, गिलोय, छोटी इलायची, वायविडंग और दालचीनी; प्रत्येक एक-एक तोला छोड़कर सोने के कलश में अथवा मिट्टी के नये पात्र में भर दे और उसमें एक तोला सोना के वर्क भी डाल दे। एक महीने के बाद जब वह रसयुक्त हो जाय तो सोने के पात्र से छानकर घृत के चिकने मृत्पात्र में रख दे। यह अमृत तुल्य सारस्वतारिष्ट शिष्यों के उपकार के लिए धन्वन्तरिजी ने बनाया था। यह आयु, वीर्य, धारणाशक्ति, मेधा, बल और कान्ति को बढ़ाता है। वाणी को शुद्ध करता है, हृदय को बल देता है तथा रसायनों में श्रेष्ठ रसायन है। यह बालक, युवा और वृद्धों को सदा हितकर है। स्त्री और पुरुषों को नित्य ही हितकर एवं परम ओज का देनेवाला है। स्वर की कर्कशता और अस्पष्टभाषण को दूर कर कोयल का सा स्वर कर देता है। स्त्रियों के रजोदोष और पुरुषों के वीर्यदोष को दूर करता है। पढ़नेवालों, गानेवालों और क्षीणस्मृति (जिनकी याददाश्त कम हो गई है) तथा क्षीण बलवालों को संतोष देनेवाला है। तीन माशे (अधिक आधा तोला तक) अरिष्ट जल के साथ पीना चाहिए। यह एक महीने में सब रोगों को दूर करता है तथा एक वर्ष के सेवन से सब सिद्धियों को देता है। यदि आप लोग अकाल मृत्यु से बचने की और स्त्रियों के प्यारे होने की इच्छा करते हों तथा वाणी की शुद्धि, धैर्य और स्मरणशक्ति चाहते हों तो सारस्वतारिष्टसंज्ञक अमृत का सेवन करिए ॥ १५४-१६८ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायांरसायनाधिकारः समाप्तः।

---

१ शारदा वर्षेण।

अथवाजीकरणाधिकारः।

वृष्याधिकार।

चिन्तया जरया शुक्रं व्याधिभिः कर्मकर्षणात्। क्षयं गच्छत्यनशनात् स्त्रीणां चातिनिषेवणात् ॥ १ ॥

चिन्ता, बुढ़ापा और रोग से तथा वमन विरेचनादि द्वारा खिंच जाने से, अधिक उपवास करने से और अत्यधिक स्त्रीप्रसङ्ग से वीर्य क्षीण हो जाता है ॥ १ ॥

वाजं शुक्रं तदस्यास्तीति वाजी अवाजी वाजीक्रियते पुरुषोऽनेन इति वाजीकरणम्। अथवा वाजीव योगात् यदुक्तं चरके—

येन नारीषु सामर्थ्यं वाजिवल्लभते नरः। येन वाप्यधिकंवीर्यं वाजीकरणमेव तत् ॥ २ ॥

वाज नाम वीर्य का है वह जिसके हो उसको वाजी कहते हैं। जिस ओषधि आदि से वीर्यहीन पुरुष वीर्ययुक्त किया जाता है। उसको वाजीकरण कहते हैं। अथवा जिस ओषधि द्वारा मनुष्य स्त्रीप्रसंग में वाजी (घोड़े) के समान शक्ति प्राप्त कर ले उस ओषधि को भी वाजीकरण कहते हैं। जैसे चरक ने कहा है—

जिस प्रयोग (आहार-विहार आदि) के सेवन से पुरुष स्त्रीप्रसङ्ग में घोड़ा के समान सामर्थ्य प्राप्त करता है अथवा जिस प्रयोग के द्वारा वीर्य अधिक होता है उसको वाजीकरण[1] कहते हैं ॥ २ ॥

ऐसा न करने में दोष।

ग्लानिः कम्पोऽवसादस्तदनु च कृशता क्षीणता चेन्द्रियाणां शोषोच्छ्वासोपदंशज्वरगुदजगदाः क्षीणता सर्वधातौ। जायन्ते दुर्निवाराः पवनपरिभवाः क्लीबता लिङ्गभङ्गो वामावश्यातियोगाद्भजत इह सदा वाजिकर्मच्युतस्य ॥ ३ ॥

वाजीकर्म के विना जो अधिक स्त्रीप्रसङ्ग करता है उसके ग्लानि, कम्प, शरीर की शिथिलता, दुर्बलता, इन्द्रियों की क्षीणता, शोष, श्वास (दमा), उपदंश (गर्मी), ज्वर, बवासीर, सब धातुओं की क्षीणता, कठिनतर वायु के रोग, नपुंसकता और ध्वजभङ्ग आदि रोग होते हैं ॥ ३ ॥

यत्किञ्चिन्मधुरं स्निग्धं जीवनं बृंहणं गुरु। हर्षणं मनसश्चैव सर्वं तद्वृष्यमुच्यते ॥ ४ ॥

जो पदार्थ मधुर, चिकना, जीवनदाता, बृंहण, भारी और मन को प्रसन्न करनेवाले हैं, उन सब को वृष्य[1] कहते हैं ॥ ४ ॥

घृतभृष्टमाषद्विदलं दुग्धसिद्धं च शर्करामिश्रम्। भुक्त्वा सदैव कुरुते तरुणीशतमैथुनं पुरुषः ॥ ५ ॥

उड़द की दाल को घृत में भूनकर दूध में डालकर खीर बनावे और उसमें शक्कर डालकर खावे तो पुरुष १०० स्त्रियों से मैथुन कर सकता है ॥ ५ ॥

शतावरीशृतं क्षीरं भपिबेत् सितया युतम्। रममाणस्य विरतिं मृदुतां याति नेन्द्रियम् ॥ ६ ॥

शतावरी को दूध में क्षीरपाक की विधि से पकाकर और उसमें शक्कर डालकर पीने से रति-

[1] वाज नाम मैथुन का है। अथवा वाजीकरण का अर्थ मैथुन शक्ति की वृद्धि भी होना है। आचार्य हारीत ने कहा है—'वाजो नाम प्रकाशस्तथा मैथुनसंज्ञितम्। वाजीकरणसंज्ञभि पुंस्त्वमेव प्रचक्षते ॥'

[1] वृष्य पदार्थ तीन प्रकार के हैं—एक वीर्य को प्रवृत्त करनेवाले जैसे स्त्री का स्पर्श, दूसरे वीर्यवर्द्धक जैसे दूध, घृत आदि, तीसरे वीर्य को प्रवृत्त करनेवाले और बढ़ानेवाले जैसे उड़द आदि।

शक्ति बढ़ती है तथा इन्द्रिय शिथिल नहीं होती है॥ ६॥

वृद्धशाल्मलिमूलस्य रसं शर्करया समम्। प्रयोगादस्य सप्ताहाज्जायते रेतसोऽम्बुधिः॥ ७॥

पुराने सेमर की जड़ का रस और शक्कर सम भाग मिलाकर खाने से ७ दिन में अत्यन्त वीर्य बढ़ जाता है॥ ७॥

लघुशाल्मलिमूलेन तालमूलीं सुचूर्णिताम्। सर्पिषा पयसा पीत्वा रतौ चटकवद्भवेत्॥ ८॥

छोटे सेमर की जड़ और सफेद मूसली के चूर्ण में घृत और दूध डालकर पीने से चिड़ा के तुल्य रतिशक्ति हो जाती है॥ ८॥

विदारीकन्दचूर्णं च घृतेन पयसा पिबेत्। उदुम्बररसेनैव वृद्धोऽपि तरुणायते॥ ९॥

विदारीकन्द के चूर्ण को घृत, दूध और गूलर के रस के साथ पीने से वृद्ध पुरुष भी युवावस्थावाले के समान रतिशक्तियुक्त हो जाता है॥ ९॥

सप्तधामलकीचूर्णमामलस्याम्बुभावितम्। घृतेन मधुना लीढ्वा पिबेत् क्षीरपलं नरः॥ वाजीकरणयोगोऽयमुत्तमः परिकीर्तितः॥ १०॥

आँवलों के चूर्ण में आवलों के ही रस की ७ भावना देकर सुखा ले। इस चूर्ण को योग्यमात्रा में लेकर घृत और शहद के साथ चाट ले और ऊपर से चार तोले दूध पी ले। यह योग वाजीकरण में उत्तम कहा गया है॥ १०॥

वाजिकर्म में अपथ्य।

अत्यन्तमुष्णकटुतिक्तकषायमम्लं क्षारं च शाकमथवा लवणाधिकं च। कामी सदैव रतिमान् वनिताभिलाषी नो भक्षयेदिति समस्तजनप्रसिद्धिः॥ ११॥

जो कामी पुरुष स्त्रियों से सदा रमण की इच्छा रखता है उसको अधिक गर्म, कडुआ तीक्ष्ण, कसैला, खट्टा, खारी, साग और अधिक लवण; इनका सेवन न करना चाहिए। ऐसी सब लोगों में प्रसिद्धि है॥ ११॥

पिप्पलीलवणोपेतौ बस्ताण्डौ क्षीरसर्पिषा। साधितौ भक्षयेद्यस्तु स गच्छेत् प्रमदाशतम्॥ १२॥

बकरे के दोनों अण्डकोषों को दूध में पकाकर और घृत में भूनकर पीपरि और नमक मिलाकर जो खाता है वह १०० स्त्रियों के साथ गमन कर सकता है॥ १२॥

बस्ताण्डसिद्धे पयसि भावितांश्च सकृत्तिलान्। यः खादेत् स नरो गच्छेत् स्त्रीणां शतमपूर्ववत्॥ १३॥

बकरे के अण्डों से सिद्ध किये दूध में तिलों को भिगोकर जो मनुष्य खाता है वह १०० स्त्रियों से गमन करने की सामर्थ्य पाता है॥ १३॥

चूर्णं विदार्याः सुकृतं तद्रसेनैव भावितम्। सर्पिः क्षौद्रयुतं कृत्वा शतं गच्छेन्नरोऽङ्गनाः॥ १४॥

भली भाँति बनाये हुए विदारीकन्द के चूर्ण में विदारीकन्द के रस की ७ भावनाएं देकर घृत और शहद के साथ चाटने से १०० स्त्रियों से गमन करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है॥ १४॥

एवमामलकं चूर्णं स्वरसेनैव भावितम्। शर्करामधुसर्पिर्भिर्युक्तं लीढ्वा पयः पिबेत्॥ एतेनाशीतिवर्षोऽपि युवेव परिहृष्यति॥ १५॥

इसी प्रकार आँवले के चूर्ण में आँवले के रस की ७ भावनाएं देकर उसमें शक्कर, शहद तथा घृत मिलाकर चाटे और ऊपर से दूध पीवे तो अस्सी वर्ष का बूढ़ा भी

युवा अवस्थावाले के समान संभोग में प्रसन्न होता है ॥ १५ ॥

विदारीकन्दकल्कं तु घृतेन पयसा नरः । उदुम्बरसमं खादेद् वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ १६ ॥

एक तोले (या ६ माशे) की मात्रा में विदारीकन्द के कल्क को घृत और दूध के साथ खाने से वृद्ध भी तरुण के तुल्य हो जाता है ॥ १६ ॥

स्वयंगुप्तेक्षुरकयोर्बीजं समधुशर्करम् । धारोष्णेन नरः पीत्वा पयसा न क्षयं व्रजेत् ॥ १७ ॥

कौंच के बीज और तालमखाने के बीजों के चूर्ण में शहद और शक्कर मिलाकर धारोष्ण दूध के साथ सेवन करने से वीर्य क्षीण नहीं होता है । मात्रा २ माशे ॥ १७ ॥

उच्चटाचूर्णमप्येवं क्षीरेणोत्तममुच्यते । शतावर्युच्चटाचूर्णं पेयमेवं सुखार्थिना ॥ १८ ॥

श्वेत घुँघुची का चूर्ण दूध के साथ पीना उत्तम है अथवा शतावरी और श्वेत घुँघुची का चूर्ण दूध के साथ पीना सुखकर होता है । मात्रा—श्वेत घुँघुची का चूर्ण १ माशा, मिले हुए दो माशे ॥ १८ ॥

माषमधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमन्वितम् । पयोऽनुपानं यो लिह्यान्नित्यवेगः स ना भवेत् ॥ १९ ॥

मुलेठी के १ तोला चूर्ण में घृत और शहद मिलाकर चाटने और अनुपान में दूध पीने से मनुष्य सदा कामवेग से युक्त होता है ॥ १९ ॥

गोक्षुरकः क्षुरकः शतमूली वानरिनामबलातिबला च । चूर्णमिदं पयसा निशि पेयं यस्य गृहे प्रमदाशतमस्ति ॥ २० ॥

गोखरू, तालमखाने के बीज, शतावरी, कौंच के बीज, गुलसकरी और कंघी ; इनके चूर्ण को रात्रि के समय दूध के साथ वह पीवे जिसके घर में १०० स्त्रियाँ हों, अर्थात् अत्यन्त कामशक्तिवर्द्धक है ॥ २० ॥

घृतभृष्टो दुग्धमाषपायसो वृष्यउत्तमः । आर्द्राणि मत्स्यमांसानि शफरीर्वा सुभर्जिताः । तप्ते सर्पिषि यः खादेत् स गच्छेत् स्त्रीषु न क्षयम् ॥ २१ ॥

घृत में भूने हुए उड़दों की दूध में खीर बनाकर खाना उत्तम वृष्य है । मछली के ताजे मांस को, विशेषकर शफरी मछली के मांस को, गर्म घी में भूनकर जो पुरुष खाता है वह स्त्रियों से संभोग करता हुआ भी क्षीण नहीं होता है ॥ २१ ॥

तापीजधातुमधुपारदलौहचूर्णपथ्याशिलाजतुविडङ्गघृतानि लिह्यात् । एकाग्रविंशतिदिनानि गदार्दितोऽपि सोऽशीतिकोऽपि रमयेत् प्रमदां युवेव ॥ २२ ॥

स्वर्णमाक्षिकभस्म, पाराभस्म, लौहभस्म, हड़, शिलाजीत, वायविडङ्ग; इन्हें बराबर मात्रा में एकत्र कर दो रत्ती की मात्रा में घृत और शहद के साथ तीन सप्ताह तक सेवन करने से ८० वर्ष का वृद्ध भी युवा के समान ही स्त्रीरमण कर सकता है ॥ २२ ॥

नरसिंहचूर्ण ।

शतावरीरजः प्रस्थं प्रस्थं गोक्षुरकस्य च । वाराह्या विंशतिपलं गुडूच्याः पञ्चविंशतिः ॥ २३ ॥ भल्लातकानां द्वात्रिंशच्चित्रकस्य दशैव तु । तिलानां शोधितानां च प्रस्थं दद्यात् सुचूर्णितम् ॥ २४ ॥ त्र्यूषणस्य पलान्यष्टौ शर्करायाश्च सप्ततिः । माक्षिकं शर्करार्द्धेन माक्षिकार्द्धेन वै घृतम् ॥ २५ ॥ शतावरीसमं देयं विदारीकन्दजं रजः । एतदेकीकृतं चूर्णं

स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ २६ ॥ कर्षार्द्धमुपयुञ्जीत यथेष्टं चास्य भोजनम् । मासैकमुपयोगेन जरां हन्ति रुजामपि ॥ २७ ॥ वलीपलितखालित्यमेहपाण्ड्वाढ्य-पीनसान् । हन्त्यष्टादशकुष्ठानि तथाष्टा-वुदराणि च ॥ २८ ॥ भगन्दरं मूत्रकृच्छ्रं गृध्रसीं च हलीमकम् । क्षयं चैव महा-व्याधिं पञ्च कासान् सुदारुणान् ॥ २९ ॥ अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पै-त्तिकान् । विंशतिं श्लैष्मिकांश्चापि सं-सृष्टान् सान्निपातिकान् । सर्वानर्शोगदान् हन्ति वृत्तमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ३० ॥ स काञ्चनाभो मृगराजविक्रमस्तुरङ्गमं चाप्य-नुयाति वेगतः । स्त्रीणां शतं गच्छति सातिरेकं प्रकृष्टपुष्टश्च यथा विहङ्गः ॥ ३१ ॥ पुत्रान् सञ्जनयेद्वीरान् नरसिंहानि-भांस्तथा । नरसिंहमिदं चूर्णं सर्वरोगहरं नृणाम् ॥ ३२ ॥ वाराहीकन्दसंज्ञस्तु चर्मकारालुको मतः । पश्चिमे गृष्टिशब्दा-ख्यो वराह इव लोमवान् ॥ ३३ ॥

शतावरी का चूर्ण ६४ तोले, गोखरू का चूर्ण ६४ तोले, वाराहीकन्द का चूर्ण १ सेर, गिलोय[1] का चूर्ण १। सेर, शुद्ध भिलावाँ का चूर्ण १२८ तोला, चीता की जड़ का चूर्ण आध सेर, तुष (छिलका) रहित तिलों का चूर्ण ६४ तोले, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि) का मिलित चूर्ण ३२ तोले, शक्कर ३॥ सेर, शहद १ सेर १२ छटाँक, घृत १४ छटाँक और विदारीकन्द का चूर्ण ६४ तोले । सब को एकत्र कर चिकने बर्तन में रख दे । मात्रा ६ माशे से ८ माशे तक । इसके प्रयोग में इच्छानुसार भोजन करना चाहिए । एक महीना सेवन करने से बुढ़ापा, बलीपलित, गजापन, प्रमेह, पाण्डु, आढ्यवात, पीनस, १८ प्रकार के कुष्ठ, ८ प्रकार के उदर-विकार, भगन्दर, मूत्रकृच्छ्र, गृध्रसी, हली-मक, क्षय, राजयक्ष्मा, पाँच प्रकार की कठिन खाँसी, अस्सी प्रकार के वातरोग, चालीस प्रकार के पित्तरोग, बीस प्रकार के कफरोग, द्वन्द्वज और सन्निपातज रोग और सब प्रकार के बवासीर के रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है, जैसे वृक्षों को इन्द्र का वज्र । इसका सेवन करनेवाला काञ्चन वर्ण, सिंह का-सा पराक्रमी और घोड़ा के तुल्य वेगवान् होता है । पक्षी के समान सैकड़ों स्त्रियों से रति करने की सामर्थ्य होती है तथा हृष्ट-पुष्ट होता है । इसके सेवन से नरसिंह के बराबर शूरवीर पुत्र उत्पन्न होते हैं । यह नरसिंह चूर्ण मनुष्यों के सब रोगों को हरनेवाला है । चर्म-कारालुक की ही वाराहीकन्द संज्ञा है । पश्चिम (गढ़वाल जिले) में इसे गृष्टि (गैंठी) कहते हैं । इसके ऊपर शूकर के से बाल होते हैं ॥ २६-३३ ॥

1—वृद्ध वैद्य यहाँ गिलोय का चूर्ण नहीं डालते, किन्तु उसका सत्त्व डाला करते हैं ।

अश्वगंधादि चूर्ण ।

अश्वगन्धा दशपला तन्मात्रो वृद्ध-दारुकः चूर्णीकृत्योभयं विद्वान् घृतभाण्डे निधापयेत् ॥ ३४ ॥कर्षैकं पयसा पीत्वा नारीभिर्नैव तृप्यति । अगत्वा प्रमदां भूयाद्वलीपलितवर्जितः ॥ ३५ ॥

असगन्ध ४० तोले और विधारा ४० तोले इन दोनों का चूर्ण कर घी के साथ चिकने बर्तन में रख देवे । इसमें से १ तोला गौ दूध के साथ सेवन करने से बहुत सी स्त्रियों से संभोग करने पर भी पुरुष तृप्त नहीं होता है । यदि स्त्री का सेवन न करे और ब्रह्मचर्य से रहे तो अंग में गुलफट (झूर्री)

1—वास्तव में वाराहीकन्द और चर्मकारालुक पृथक्-पृथक् द्रव्य हैं, किन्तु अभाव में ले सकते हैं। चर्मकारालुक वाराहीकन्द की अपेक्षा हीन गुणवाला है, ऐसा कितने ही टीकाकारों का मत है ।

नहीं पड़ती हैं। और बाल सफेद नहीं होते हैं॥ ३४-३५॥

बृहच्छतावरीघृत।

शतावर्यास्तु मूलानां रसमस्थद्वयं मतम्। तत्समञ्च भवेत्क्षीरं घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ ३६॥ जीवकर्षभकौ मेदा महामेदा तथैव च। काकोली क्षीरकाकोली मृद्वीका मधुकं तथा॥ ३७॥ मुद्गपर्णी माषपर्णी विदारी रक्तचन्दनम्। शर्करामधुसंयुक्तं सिद्धं विस्रावयेद्भिषक्॥ ३८॥ रक्तपित्तविकारेषु वातरक्तगदेषु च। क्षीणशुक्रेषु दातव्यं वाजीकरणमुत्तमम्॥ ३९॥ अङ्गदाहं शिरोदाहं ज्वरं पित्तसमुद्भवम्। योनिशूलञ्च दाहञ्च मूत्रकृच्छ्रञ्च पैत्तिकम्॥४०॥ एतान् रोगान् निहन्त्याशु छिन्नाभ्राणीव मारुतः। शतावरीसर्पिरिदं बलवर्णाग्निवर्द्धनम्॥ ४१॥ स्नेहपादः स्मृतः कल्कः कल्कवन्मधुशर्करे। इति वाक्यबलात् स्नेहे मत्स्यं पादिकं भवेत्॥ ४२॥

गोघृत १२८ तोले, शतावर का रस २ सेर १६ तोले, दूध ६ सेर १६ तोले। कल्क के लिये—जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, दाख (मुनक्का), मुलैठी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, विदारीकन्द और लालचन्दन मिलाकर ३२ तोले ले विधिपूर्वक पकावे। पकाने के पश्चात् छान ले और शीतल होने पर शहद ३६ तोले तथा शक्कर ३२ तोले मिलावे। इस घृत के सेवन से रक्तपित्त, वातरक्त, अङ्गदाह, शिरोदाह, पैत्तिकज्वर, योनिशूल, दाह, पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र आदि रोग नष्ट होते हैं॥ क्षीणवीर्य पुरुषों के लिये यह घृत वाजीकरण है। यह बलकारक, वर्ण तथा जठराग्नि को बढ़ाता है॥ ३६-४२॥

कामदेवघृत।

अश्वगन्धापलशतं तदर्द्धं गोक्षुरस्य च। शतावरी विदारी च शालपर्णी बला तथा॥ ४३॥ अश्वत्थस्य च शुङ्गानि पद्मबीजं तथैव च। काश्मरीफलमेतच्च माषबीजं तथैव च॥ ४४ पृथग्दशपलान् भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत्। चतुर्भागावशेषन्तु कषायमवतारयेत्॥४५॥ मृद्वीका पद्मकं कुष्ठं पिप्पली रक्तचन्दनम्। बालकं नागपुष्पञ्च आत्मगुप्ताफलं तथा॥ ४६॥ नीलोत्पलं सारिवे द्वे जीवनीयं विशेषतः। पृथक् कर्षसमश्चैव शर्करायाः पलद्वयम्॥ ४७॥ रसस्य पौण्ड्रकेक्षूणामाढकं तत्र दापयेत्। रक्तपित्तं क्षतक्षीणं कामलां वातशोणितम्॥ ४८॥ हलीमकं तथा शोथं स्वरभेदं बलक्षयम्। अरोचकं मूत्रकृच्छ्रं पार्श्वशूलञ्च नाशयेत्॥ ४९॥ एतद्राज्ञां प्रयोक्तव्यं बह्वन्तःपुरचारिणाम्। स्त्रीणां चैवानपत्यानां दुर्बलानाञ्च देहिनाम्॥ ५०॥ क्लीबानामल्पशुक्राणां जीर्णानामल्परेतसाम्। श्रेष्ठं बलकरं हृद्यं वृष्यं पेयं रसायनम्॥ ५१॥ ओजस्तेजस्करञ्चैव आयुःप्राणविवर्द्धनम्। संवर्द्धयति शुक्रञ्च पुरुषं दुर्बलेन्द्रियम्॥ ५२॥ सर्वरोगविनिर्मुक्तस्तोयसिक्तो यथा द्रुमः। कामदेव इति ख्यातः मर्त्येषु च जायते॥ ५३॥

गोघृत १२८ तोले, क्वाथ के लिये—असगन्ध ३ सेर, गोखरू १॥ सेर, शतावर, विदारीकन्द, शालपर्णी, खरैटी, बड़ के अंकुर, कमलगट्टा, गम्भारीफल, उड़द; प्रत्येक ४० तोले, जल ३ मन ११ सेर १२ तोले, बचा हुआ क्वाथ १२ सेर ४८ तोले। पीछे इस

६ सेर ३२ तोले। कल्क के लिए—दाख, पद्माख, कूट, पीपल, लालचन्दन, गन्धबाला, नागकेशर, कौंच के बीज, नीलकमल, अनन्तमूल, श्यामालता, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलेठी; हरएक एक-एक तोले लेकर विधिपूर्वक पकावे। सिद्ध होने के पश्चात् छानकर ८ तोले खाँड मिलावे। इसके सेवन से रक्तपित्त, क्षतक्षीण, कामला, वातरक्त, हलीमक, सूजन, स्वरभेद, बलक्षय, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, पसवाड़े का दर्द आदि रोग नष्ट होते हैं। अनेक स्त्रियों में आसक्त राजाओं को, सन्तानरहित स्त्रियों को, दुर्बल, नपुंसक, क्षीणवीर्य तथा वृद्ध पुरुषों को यह घृत सेवन करना चाहिए। यह घृत बल्कारक, हृद्य, वीर्यवर्धक तथा रसायन है एवं ओज, तेज, आयु, जीवनीयशक्ति तथा वीर्य को बढ़ाता हैं। दुर्बलेन्द्रिय पुरुष को बलवान् करता है। यह घृत सम्पूर्ण ऋतुओं में सेवन किया जा सकता है॥ ४१-४३॥

कामेश्वरमोदक और श्रीकामश्वरमोदक।

संग्रहण्यधिकारे तु ग्रन्थस्यास्य पुरोदितौ। कामेश्वरो मोदकश्च श्रीकामेश्वरमोदकः॥ ५४॥ रतिशक्तिविहीनानां नराणां रतिवृद्धये। यथाबलं प्रयोक्तव्यौ पौनरुक्त्यान्न दर्शितौ॥ ५५॥

ग्रहणीरोग के अधिकार में कहे हुए कामेश्वरमोदक तथा श्रीकामेश्वरमोदक भी रतिशक्तिहीन पुरुषों को रतिशक्ति की वृद्धि के लिये सेवन कराने चाहिए॥ ५४-५५॥

वानरी वटिका।

बीजानि कपिकच्छूनां कुडवमितानि स्वेदयेच्छनकैः। प्रस्थे गोभवदुग्धे तावद्यावद् भवेद् गाढम्॥ ५६॥ त्वग्रहितानि च कृत्वा सूक्ष्मं सम्पेषयेत्तानि। पिष्टिकया लघुवटिकाः कृत्वा गव्ये पचेदाज्ये॥ ५७॥ द्विगुणितशर्करया ता वटिकाः कामं समालेप्याः। वटिका माक्षिकमध्ये मज्जनयोग्ये पृथक् स्थाप्याः॥ ५८॥ कोलकप्रमितास्तास्तु प्रातः सायञ्च भक्षयेत्। अनेन शीघ्रद्रावी यो यश्च स्यात्पतितध्वजः॥ ५९॥ सोऽपि प्राप्नोति सुरते सामर्थ्यमतिवाजिवत्। नानेन सदृशं किञ्चिद् द्रव्य वाजीकरं परम्॥ ६०॥

१६ तोला कौंच के बीजों को १२८ तोले गौ के दूध में डाल मन्द अग्नि द्वारा स्विन्न करे। जब दूध गाढ़ा हो जाय तो नीचे उतारकर बीजों का छिलका उतार दे। बाद में उन बीजों को शिला पर अतिमहीन पीस ले और खोया तथा बीजकल्क को मिला छोटी-छोटी गोलियाँ बनाकर गोघृत में भून ले। पश्चात् दूनी खाँड की गाढ़ी चाशनी बनाकर उनमें इन गोलियों को डुबोकर बाहर रख दे। इस प्रकार उन गोलियों पर खाँड चढ़ जायगी अथवा इलायचीदानों की विधि से खाँड चढ़ा ले। पश्चात् शहद में इन गोलियों को डुबोकर रख छोड़े। मात्रा—आधे तोला से एक तोले तक। इसे प्रातःकाल तथा सायंकाल सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से जो पुरुष शीघ्र वीर्यपात होनेवाला अथवा पतितध्वज हो वह भी अश्व के समान रमणक्रिया में समर्थ होता है। इस रस से बढ़कर वाजीकर अन्य कोई औषध नहीं है॥ ५६-६०॥

गोधूमाद्य घृत।

गोधूमात्तु पलशतं निष्क्वाथ्य सलिलाढके। पादशेषे च पूते च द्रव्याणीमानि दापयेत्॥ ६१॥ गोधूमं मुञ्जातफलं माषं द्राक्षापरूषके। काकोली क्षीरकाकोली जीवन्ती सशतावरी॥ ६२॥ अश्वगन्धा सखर्जूरा मधुकं त्र्यूषणं सिता।

भल्लातकमात्मगुप्ता समभागानि कारयेत् ॥ ६३ ॥ घृतप्रस्थं पचेदेवं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम्। मृद्वग्निना च सिद्धे तु द्रव्याण्येतानि निक्षिपेत् ॥६४॥ त्वगेला पिप्पली धान्यं कर्पूरं नागकेशरम्। यथालाभं विनिक्षिप्य सिताक्षौद्रं पलाष्टकम् ॥ ६५ ॥ दत्त्वेक्षुदण्डेनालोड्य विधिवद् विनियोजयेत्। शाल्योदनेन भुञ्जीत पिबेन्मांसरसेन च ॥६६॥ केवलस्य पिबेदस्य मात्रा कोलप्रमाणतः। न चास्य लिङ्गशैथिल्यं न च शुक्रक्षयो भवेत् ॥ ६७ ॥ बल्यं परं वातहरं शुक्रसंजननं परम्। मूत्रकृच्छ्रप्रशमनं वृद्धानां चापि शस्यते ॥ ६८ ॥ कोलैकं तु तदश्नीयाद् दशरात्रमतन्द्रितः। स्त्रीणां शतं च भजते पीत्वा चानुपिबेत्पयः॥ अश्विभ्यां निर्मितं चैव गोधूमाद्यं रसायनम् ॥ ६९ ॥

जलद्रोणेऽत्र गोधूमक्वाथस्तच्छेषं आढकम्। कल्कद्रव्यसमं मानं त्वगादेः साहचर्यतः ॥

२ सेर गेहूँ को २५ सेर ४८ तोले जल में औटावे जब ६ सेर ३२ तोले जल बाकी रहे तब छानकर उसमें इन द्रव्यों के कल्क को मिलावे। गेहूँ, मुञ्जातफल (अभाव में ताल की माली), उड़द, दाख, फालसे, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, शतावरी, असगन्ध, खजूर, मुलेठी, त्रिकटु, शाकर, शुद्ध भिलावाँ और कौंच के बीज समभाग सब मिलाकर ३२ तोले। घृत १२८ तोले। दूध ६ सेर ३२ तोले। विधिपूर्वक कोमल अग्नि से घृत सिद्ध कर इसमें दालचीनी, छोटी इलायची, पीपरि, धनियां, कपूर और नागकेशर; सब मिलाकर ३२ तोले डाले तथा शक्कर और शहद बत्तीस-बत्तीस तोले मिलाकर ईख के टुकड़े से मथकर रख दे।

इसको शालि चावलों के भात के साथ अथवा मांसरस के साथ सेवन करे। मात्रा १ तोला। इसके सेवन से लिङ्गेन्द्रिय शिथिल नहीं होती और वीर्य भी क्षीण नहीं होता। यह बलकारक, वातनाशक, वीर्यवर्द्धक, मूत्रकृच्छ्रनाशक तथा वृद्धों के लिए श्रेष्ठ है। १० दिन तक एक एक तोले खाकर पश्चात् दूध पीवे तो १०० स्त्रियों से रमण करने की शक्ति पैदा होती है। इस गोधूमाद्य रसायन को अश्विनीकुमारों ने बनाया था ॥ ६१--६९ ॥

यहाँ १ द्रोण जल में काढा कर १ आढक अवशिष्ट रक्खे। दालचीनी आदि सब कल्कद्रव्य के समान ले परन्तु कपूर अंदाज का डाले।

गुडकूष्माण्डक।

कूष्माण्डकात् पलशतं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम्। प्रस्थं च घृततैलस्य तस्मिंस्तप्ते निधापयेत् ॥ ७० ॥ त्वक्पत्रधान्यकव्योपजीरकैलाद्वयानलम्। ग्रन्थिकं चव्यमातङ्गपिप्पलीविश्वभेषजम् ॥७१॥ शृङ्गाटकं कशेरुं च प्रलम्बं तालमस्तकम्। चूर्णीकृतं पलांशं च गुडस्य तुलया पचेत् ॥ ७२ ॥ शीतीभूते पलान्यष्टौ मधुनः संप्रदापयेत्। कफपित्तानिलहरं मन्दाग्नीनां च शस्यते ॥ ७३ ॥ कृशानां बृंहणं श्रेष्ठं वाजीकरणमुत्तमम्। प्रमदासु प्रसक्तानां ये च स्युः क्षीणरेतसः ॥ ७४ ॥ क्षयेण तु गृहीतानां परमेतद्भिषग्जितम्। कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां हन्तिच्छर्दिमरोचकम्॥ ७५ ॥ गुडकूष्माण्डकं ख्यातमश्विभ्यां समुदाहृतम्। खण्डकूष्माण्डवत् पाच्यं स्विन्नकूष्माण्डकद्रवः ॥ ७६ ॥

बीज और छिलकों से रहित ५ सेर पेठे को बट्लस से घिसकर आग में सोता दे ले और निचोड़कर जल निकाल अलग रख दे और उस

निचुड़े हुए पेठे को ३२ तोले घृत और ३२ तोले तिल तैल में एक साथ भून ले। पश्चात् दालचीनी, तेजपत्र, धनियाँ, त्रिकटु, जीरा, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, चीता की जड़, पीपलामूल, चव्य, गजपीपरि, सोंठ, सिंघाड़ा, कसेरू, ताड़ के ऊपर के अंकुर प्रत्येक का चूर्ण चार-चार तोले लेकर चूर्ण करके रक्खे। पेठे के जल में गुड़ ५ सेर और भुना हुआ पेठा डालकर पकावे। जब पाक तैयार हो जाय तब सब ओषधियों का चूर्ण डालकर करछी से खूब मिला ले, फिर नीचे उतार ठंडा करके ३२ तोले शहद मिला ले। यह कफ, पित्त और वायु को नष्ट करनेवाला है तथा मन्दाग्निवालों के लिए उत्तम है। दुर्बलों को मोटा करनेवाला तथा उत्तम वाजीकरण है। स्त्रियों में आसक्त, क्षीणवीर्य और क्षयी रोगवालों के लिए यह उत्तम औषधि है। अश्विनीकुमारों का बनाया हुआ गुडकूष्माण्ड खांसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, वमन और अरुचि को नष्ट करता है। खण्डकूष्माण्ड के तुल्य कूष्माण्ड को पकाकर रस निकालना चाहिए ॥ ७०--७६ ॥

योगान् संसेव्य वृष्यानमितमथ पयः शीतलं चाम्बु पीत्वा गच्छेन्नारीं रसज्ञां स्मरशरतरणीं कामुकः काममाद्ये। यामेहृष्टः प्रहृष्टां व्यपगतसुरतस्तत्समुत्पाद्य सद्यः कान्तः कान्ताङ्गसङ्गादमहदपि न वै धातुवैषम्यमेति ॥ ७७ ॥

कामी पुरुष वृष्ययोगों का सेवन करने के पश्चात् मिश्री युक्त दूध अथवा ठंढा जल पीकर प्रसन्नचित्त हो कामबाण-पीड़ित, प्रसन्नचित्तवाली और रतिरस की जाननेवाली स्त्री के साथ रात के पहले पहर में रमण करे। इस प्रकार स्त्रीप्रसंग करने से कभी धातु की विषमता नहीं होती है ॥ ७७ ॥

वृष्यतमा स्त्री।

सुरूपा यौवनस्था च लक्षणैर्यदि भूषिता। वयस्था शिक्षिता या च सा स्त्री वृष्यतमा मता ॥ ७८ ॥

सुन्दर रूपवाली, यौवनवाली, सब लक्षणों से भूषित, अपनी उमर की और शिक्षित स्त्री वृष्यतम मानी गई है ॥ ७८ ॥

वाजीकरण के योग्य पुरुष।

स्त्रीष्वक्षयं मृगयतां वृद्धानां च रिरंसताम्। क्षीणानामल्पशुक्राणां स्त्रीषु क्षीणाश्च ये नराः ॥ ७९ ॥ विलासिनामर्थवतां रूपयौवनशालिनाम्। बह्वीपतीनां नृणां च योगा वाजीकरा हिताः ॥ ८० ॥

स्त्रीसंभोग में स्खलित न होने की इच्छा करने वाले वृद्ध, रमण करने के इच्छुक, स्त्री सम्भोग से क्षीण, अल्पवीर्य, विलासी, धनवान्, रूप-यौवन से युक्त तथा बहुत सी स्त्रियों के पति ऐसे मनुष्यों को वाजीकरण योगों का सेवन हितकर होता है ॥ ७९--८० ॥

बृहच्छतावरी मोदक।

शतावरी श्वदंष्ट्रा च बला चातिबला तथा। मर्कटीक्षुरबीजं च विदारीकन्दजं रजः ॥८१॥ एतानि समभागानि पलिकानि विचूर्णयेत्। तस्माच्चतुर्गुणं देयं त्रैलोक्यविजयारजः ॥ ८२ ॥ एतदेकीकृतं यावत्तदर्द्धं माहिषं पयः। तावन्मात्रेण दातव्यः शतावर्या रसस्तथा ॥ ८३ ॥ विदार्याः स्वरसमर्थं सितापलशतद्वयम्। गोलयित्वा सितां चैव पात्रे ताम्रमये दृढे ॥ ८४ ॥ पाचयेत् पाकविद्वैद्यो मोदकं परमं हितम्। त्र्यूषणं त्रिफला दन्ती त्रिजातं सैन्धवं शटी ॥ ८५ ॥ धान्याकं बालकं मुस्तं कस्तूरी गोस्तनी तुगा। जातकोपफलं मांसी पत्रं वारेन्द्रग्रन्थिकम् ॥ ८६ ॥ शतपुष्पा चवी दारु प्रियङ्गु सलवङ्गकम्।

सरलं शैलजं कुम्भं जातीपुष्पं यमानिका ॥ ८७ ॥ कटफलं केशरं मेथी मधुकं सुरदारु च। मिषी तालीशपत्रं च खर्जूरं रसगन्धकौ ॥ ८८ ॥ चन्दनं तगरं क्षारं प्रत्येकं कर्षसम्मितम्। आलोड्य त्रिसुगन्धेन कर्पूरेणाधिवासयेत् ॥ ८९ ॥ काञ्चने राजते पात्रे स्थाप्यमेतद् भिषग्वरैः। कर्षप्रमाणं कर्त्तव्यं क्षीरं चानुपिबेत् पलम् ॥ ९० ॥ प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेत्तु विचक्षणः। प्रमदाशतं च भजते न च शुक्रक्षयो भवेत् ॥ ९१ ॥ न तस्य लिङ्गशैथिल्यं शुक्रसंजननं परम्। क्षयं चैव महाव्याधिं पञ्चकासान् सुदुस्तरान् ॥ ९२ ॥ वातजान् पैत्तिकांश्चैव कफजान् सान्निपातिकान्। हन्त्यष्टादशकुष्ठानि वातरक्तादिकानि च ॥ ९३ ॥ प्रमेहं श्लीपदं शोथं लक्ष्मीकान्तिविवर्द्धनम्। सर्वार्शोगदान् हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथ। व्याधीन् कोष्ठगतानन्यान् जनार्दन इवासुरान् ॥ ९४ ॥ नातः परतरं श्रेष्ठं विद्यते वाजिकर्मसु। स्त्रीणां चैवानपत्यानां दुर्बलानां च देहिनाम् ॥ ९५ ॥ क्लीबानामल्पशुक्राणां जीर्णानामल्परेतसाम्। ओजस्तेजःस्वरं बुद्धिमायुः भार्गं निर्दयेत् ॥ ९६ ॥

शतावरी, गोखरू, खरेंटी (बरियारा), गुलसकरी (कघी), केवाँच के बीज, तालमखाना के बीज और विदारीकन्द; प्रत्येक का चूर्ण चार चार तोले। सबका चौगुना भाग का चूर्ण (११२ तोले), भैंस का दूध ७० तोले, शतावरी का रस ७० तोले, विदारीकन्द का रस १२८ तोले और शक्कर १० सेर। शक्कर को दूध और रसों में घोल दे और उपयुक्त ओषधियों का चूर्ण डालकर कलईदार ताँबे के पात्र में पकावे। जब पाक गाढ़ा होने लगे तब उसमें त्रिकटु, त्रिफला, दन्ती की जड़ (जमालगोटा की जड़), त्रिजात (छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात), सेंधा नमक, कचूर, ५ नियाँ, सुगन्धवाला, मोथा, कस्तूरी, मुनक्का, वंशलोचन, जावित्री, जायफल, जटामासी, तेजपात्र, सँभालू, पीपलामूल, सोये के बीज, चव्य, दारुहल्दी, प्रियगु, लौंग, चीड़ की लकड़ी, छारछरीला, गुग्गुल, चमेली के फूल, अजवाइन, कायफल, केशर, मेथी, मुलेठी, देवदारु, सौंफ, तालीश पत्र, खजूर, शुद्ध पारा, गन्धक (दोनों को मिलाकर कज्जली कर ले), लाल चन्दन तगर और जवाखार; प्रत्येक एक एक तोला लेकर मिलावे और करछी से चलाकर पाक तैयार कर ले। इसमें त्रिसुगन्ध (दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात) और कपूर डालकर सुगन्धित करे। इसको सुवर्ण अथवा चाँदी के पात्र में रक्खे। मात्रा १ तोला या आधा तोला। अनुपान--४ तोले दूध। प्रातःकाल अथवा भोजन के समय इसका सेवन करना चाहिए। इसके प्रयोग से सैकड़ों स्त्रियों के सेवन करने पर भी वीर्य क्षीण नहीं होता है और इन्द्रिय भी शिथिल नहीं होती है। इससे वीर्य की वृद्धि होती है। यह बृहच्छतावरी मोदक राजयक्ष्मा, कठिन पाँचों खाँसी, वातरोग, पित्तरोग, कफरोग, सन्निपातरोग १८ कोढ़, वातरक्त, प्रमेह, श्लीपद (फील पाँव) सूजन और सब प्रकार की बवासीरों को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे इन्द्र का वज्र वृक्षों को। यह लक्ष्मी और कान्ति को बढ़ानेवाला है तथा जैसे भगवान् असुरों को नष्ट करते हैं इसी प्रकार यह कोष्ठगत रोगों को नष्ट करता है। इससे उत्तम वाजीकरण के लिए अन्य ओषधि नहीं है। सन्तानरहित स्त्रियों तथा दुर्बल शरीर, नपुंसक, अल्पवीर्य और बूढ़े पुरुषों को इसका सेवन करना चाहिए। यह ओज, धातु, तेज, स्वर, बुद्धि, आयु और जीवनशक्ति को बढ़ाता है ॥ ८१-९६ ॥

रतिवल्लभ मोदक।

शमाशनस्य बीजानां चूर्णानि पल-

पञ्च च। हविषः कुडवं चैकं सितामस्थं मगृह्य च ॥ ९७ ॥ शतावरीरसमस्थं तथा शक्राशनस्य च। गव्यमाजं पयः मस्थं ततः मस्थद्वयं पचेत् ॥ ९८ ॥ धात्री द्विजीरकं मुस्तं त्वगेला पत्रकेशरम्। आत्मगुप्ता चातिबला तालाङ्कुरकशेरुकम् ॥ ९९ ॥ शृङ्गाटकं त्रिकटुकं धान्यमभ्रञ्च वङ्गकम्। पथ्या द्राक्षा च काकोल्यौ खर्जूरं त्रुरकं तथा ॥१००॥ कटुका मधुकं कुष्ठं लवङ्गं सारसैन्धवम्। यमानी चाजमोदा च जीवन्ती गजपिप्पली ॥१०१॥ प्रत्येकं कर्षमेकं तु चूर्णितानि शुभानि च। कुडवार्द्धं पाकशेषे मधुनः प्रक्षिपेत्ततः ॥ १०२ ॥ मृगाण्डजं सकर्पूरं यथालाभं विनिक्षिपेत्। रतिवल्लभनामायं सेव्यमानो महारसः ॥ १०३ ॥ परमोजस्करो बल्यो वातव्याधिविनाशनः। वातपित्तहरो वृष्यो दृष्टिसन्दीपनः परः। पित्तश्लेष्मास्रपित्तघ्नो विषगुल्मज्वरापहः ॥ १०४ ॥ पाययत्येष मन्दाग्निरोगाणां क्षयहेतुकः। न भवेल्लिङ्गशैथिल्यं वृद्धानां पुष्टिवर्द्धनम् ॥ १०५ ॥

यस्य गेहे सदा बह्व्यः पत्न्यः सुमनोहरः। रसः सेव्यः सदेवायं मोदको रतिवल्लभः ॥ १०६ ॥

भाँग के बीजों का चूर्ण २० तोले। घृत १६ तोले, शक्कर ६४ तोले, शतावरी का रस १२८ तोले भाँग का रस १२८ तोले, गौ का दूध १२८ तोले, और बकरी का दूध १२८ तोले, इन सबको एकत्र कर पाक करे। जब पाक तैयार होने पर हो तब आँवला, जीरा, कालाजीरा, मोथा, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेसर, कौंच के बीज, गुलशकरी, ताड़ के अंकुर, कसेरू, सिंघाड़ा, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि), धनियाँ, अभ्रकभस्म, वङ्गभस्म, हड़, मुनक्का, काकोली, क्षीरकाकोली, पिंड खजूर, गोखरू, कुटकी, मुलेठी, कूट, लौंग, सेंधा नमक, अजवायन, अजमोद, जीवन्ती और गजपीपरि; प्रत्येक एक एक तोला। इनका महीन चूर्ण कर उसमें मिला दे। जब पाक ठंढा हो जाय तो ८ तोले शहद मिलाकर थोड़ी-सी कस्तूरी और कपूर से सुगन्धित कर मोदक बाँध ले। यह रतिवल्लभ नामक मोदक सेवन करने से ओजधातु और बल का बढ़ानेवाला है। वातरोग तथा वातपित्त रोग को नष्ट करता है। वृष्य तथा दृष्टिशक्ति को बढ़ाता है। पित्त, कफ, रक्तपित्त, विषदोष, गुल्म, ज्वर, मन्दाग्नि और क्षयरोग को नष्ट करता है। इससे इन्द्रिय शिथिल नहीं होती है, वृद्धों को पुष्टि देनेवाला है। जिस पुरुष के घर में बहुत-सी सुन्दर रमणियाँ हों उसको यह रतिवल्लभ मोदक सदा खाना चाहिए ॥ ९७-१०६ ॥

ये केचिद् विजयायोगा लौहवङ्गाभ्रसंयुताः। युक्ताश्च रसगन्धाभ्यां रसायनवरा मताः ॥ १०७ ॥

जितने योग भाँग, लौह, वङ्ग, अभ्रक, पारा और गन्धक के सम्मिश्रण से बनते हैं; वे ही श्रेष्ठ रसायन माने गये हैं ॥ १०७ ॥

तन्त्रान्तर में कथित कामेश्वर मोदक।

चूर्णांशं गगनं घनार्द्धविमलं गन्धं च कुष्ठामृता मेथी मोचरसो विदारिमुशली गोक्षूरकं चेक्षुरः। भीरुश्चैव कशेरुकं यवनिका तालाङ्कुरं धान्यकं यष्टी नागबलातिला मधुरिका जातीफलं सैन्धवम्॥ १०८ ॥ भार्गी कर्कटशृङ्गकं त्रिकटुकं जीरद्वयं चित्रकं चातुर्जातपुनर्नवा करिकणा द्राक्षा शटी कट्फलम्। शाल्मल्य ष्टग्निफलत्रिकं कपिभवं बीजं समं चूर्णये-च्चूर्णार्द्धा विजया सिता द्विगुणिता

मध्वाज्यमिश्रं तु तत् ॥ १०९ ॥ कर्षार्द्धा गुटिकाथ कर्षमथवा सेव्या सतां सर्वदा। पेयं क्षीरमनु स्ववीर्यकरणे स्तम्भेऽप्ययं कामिनाम् ॥ ११० ॥

वामावश्यकर इत्यादिगुणाः सम्यङ्मारितमभ्रकमित्यादिनोक्तस्य कामेश्वरस्य समाः। अंशश्चतुर्थो भागः। कुष्ठादिकपिबीजपर्यन्तचूर्णानामंशमभ्रकम्। अभ्रार्द्धं गन्धकं विमलं निर्मलम्। चूर्णार्द्धा विजयेति अभ्रादिसर्वचूर्णानामर्द्धा। घृतमधुमोदककरणयोग्यम्।

कूट से लगाकर कौंच के बीज पर्यन्त चूर्णों का चौथा हिस्सा, अभ्रकभस्म और अभ्रकभस्म से आधा भाग शुद्ध गन्धक, कूट, गिलोय, मेथी, मोचरस, विदारीकन्द, मुसली, गोखरू, तालमखाना के बीज, शतावरी, कसेरू, अजवायन, ताड़ का अकुर, धनियाँ, मुलेठी, नागेरन की छाल, तिल, सौंफ, जायफल, सेंधा नमक, भारंगी, काकड़ासिंगी, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि) जीरा, कालाजीरा, चीता की जड़, चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, नागकेशर, तेजपात), गदापुरैना (सांठी), गजपीपरि, मुनक्का, कचूर, कायफल, सेमर की जड़, त्रिफला और केवाँच के बीज, इन सबको समभाग लेकर चूर्ण बनावे। अभ्रकादि सब चूर्ण से दुगुनी शक्कर। घृत और शहद अनुमान से डालकर (जितने में लड्डू बन सकें) छह-छह माशे अथवा तोले-तोले भर के लड्डू बना ले। इसको खाकर दूध पीना चाहिए। यह मोदक वीर्यवर्द्धन तथा स्तम्भन करता है। शेष गुण समग्रहणी अधिकार में कथित कामेश्वर मोदक के तुल्य जानना चाहिए ॥ १०८-११० ॥

कामाग्निसन्दीपन मोदक।

कर्षो रसो गन्धकमभ्रकं च द्विक्षारचित्रे लवणानि पञ्च। शटी यमानीद्वयकीटहारितालीशपत्राण्यपरं द्विकर्षम्। ॥ १११ ॥ जीरं चतुर्जातलवङ्गजातीफलं च कर्षत्रयमेवमन्यत्। सव्द्धदारं कटुकत्रयं च ततश्चतुःकर्षमितं निबोध ॥ ११२ ॥ धन्याकयष्टीमधुरीकशेरुकर्षाः पृथक् पञ्च वरी विदारी। वरेभकर्णोऽभ्रलात्मगुप्ताबीजं तथा गोक्षुरबीजयुक्तम् ॥ ११३ ॥ सबीजपत्रेन्द्ररजः समानं समा सिता क्षौद्रघृतं च तुल्यम्। कर्षैकमिन्दोरथमोदकं तत् कामाग्निसन्दीपनमेतदुक्तम् ॥ ११४ ॥ वृष्यं स्वतः परतरं सततं न दृष्टमेनं निषेव्य मनुजः प्रमदासहस्रम्। गच्छन्न लिङ्गशिथिलत्वमवाप्नुयाच्च नागाधिपं विजयते बलतः प्रमत्तम् ॥ ११५ ॥ कान्त्या हुताशनमपि स्वरतोमयूरान् वाहंजवेननयनेनमहाविहङ्गम्। वातानशीतिमथपित्तगदं समग्रं श्लेष्मोत्थविंशतिरुजः परमग्निमान्द्यम् ॥ ११६ ॥ दुर्नामकामलभगन्दरपाण्डुरोगमेहातिसारकृमि हृद्ग्रहणीप्रदोषान्। कासज्वरश्वसनपीनसपार्श्वशूलशूलाम्लपित्तसहितांश्चिरजान् समस्तान् ॥ ११७ ॥ हत्वा गदानपि च तत्पुमपत्यकारि सर्वर्तुपथ्यमथ सर्वसुखप्रदायि। वृष्यं वलीपलितहारि रसायनं स्यात् श्रीमूलदेवकथितं परमं प्रशस्यम् ॥ ११८ ॥

पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म, जवाखार, सज्जीखार, चीता की जड़, पाँचों नमक, कचूर, अजवायन, अजमोद वायविडंग और तालीशपत्र, प्रत्येक एक एक तोला। जीरा, चतुर्जात (छोटी इलायची, दालचीनी, नागकेशर, तेजपात), लौंग तथा जायफल, प्रत्येक दो-दो तोले। विधारा, सोंठ, मिर्च, पीपरि; प्रत्येक तीन तीन तोले। धनियाँ, मुलेठी, सौंफ और कसेरू, प्रत्येक चार-चार तोले। शतावरी

विदारीकन्द, त्रिफला, हस्तिकर्ण पलाश की छाल, खरेटी की जड, कौंच के बीज, गोखरू के बीज, प्रत्येक पांच-पाँच तोले लेकर चूर्ण करे। इस चूर्ण के समान भाग बीज पत्रों सहित भाँग का चूर्ण और सम्पूर्ण चूर्ण के समान शक्कर लेकर यथाविधि पाक करे। शीतल होने पर शक्कर के समान घृत और शहद मिलावे। फिर सुगन्धि के लिए कपूर १ तोला मिलाकर यथाविधि मोदक बना ले। यह मोदक कामाग्नि का बढ़ानेवाला है। इससे बढ़कर कोई अन्य वृष्य प्रयोग नहीं है। इसके सेवन से मनुष्य की लिङ्गेंद्रिय सैकड़ों स्त्रियों से गमन करके भी शिथिल नहीं होती है। तथा बल में गजेन्द्र को, कान्ति में अग्नि को, कण्ठस्वर में मयूरों को, वेग में घोड़े को और दृष्टिप्रसार में गरुड़जी को जीत लेता है। यह मोदक ८० प्रकार के वातरोग, सब पित्त-रोग, २० कफरोग, मन्दाग्नि, बवासीर, कामला (काँवर—पीलिया), भगन्दर पाण्डुरोग, प्रमेह, अतीसार, कृमिरोग, हृद्रोग, ग्रहणीरोग, कास ज्वर, श्वास, पीनस, पार्श्वशूल, शूल, अम्ल-पित्त और सब प्रकार के पुराने रोगों को नष्ट करता है। यह पुत्र का देनेवाला है, सब ऋतुओं में पथ्य और सबको सुखदायी है। श्रीमूलदेव का कहा हुआ यह कामाग्निसंदीपन मोदक परम श्रेष्ठ, वृष्य, वलीपलितनाशक तथा रसायन है। मात्रा-एक माशा से दो माशे तक ॥ १११-११६ ॥

खण्डाम्रक।

पक्वचूतरसद्रोणः पात्रं स्याच्छुद्धख-ण्डतः। घृतमर्द्धं ततो ग्राह्यं चतुर्थांशं च नागरम् ॥ ११९ ॥ तदर्द्धं मरिचं प्रोक्तं तदर्द्धा पिप्पली मता। तोयं खण्डसमं दद्यात् सर्वमेकत्र संस्थितम् ॥ १२० ॥ विपचेन्मृण्मये पात्रे यदा दार्वीप्रलेपनम्। चूर्णान्येषां ततो दद्यात् पत्र पलचतुष्-यम् ॥ १२१ ॥ ग्रन्थिकं चित्रकं मुस्तं धन्याकं जीरकद्वयम्। त्र्यूषणं जातिता-लीशं चूर्णमेषां पलं पलम् ॥ १२२ ॥ त्वगेला केशराणां च प्रत्येकं च पलं तथा। सिद्धशीते च मधुना प्रस्थं दत्त्वा विघट्टयेत् ॥ १२३ ॥ तत् सर्वमेकतः कृत्वा शुभे भाण्डे निधापयेत्। भोजना-दावतः खादेत्तोलकद्वयमानतः ॥ १२४ ॥ गच्छेत् कन्दर्पदर्पान्धो रागवेगाकुलेन्द्रियः शतं वापि तदर्द्धं वा रमेत् स्त्रीणां पुमान-यम् ॥ १२५ ॥ संसेव्य भेषजं ह्येतद्व-न्ध्यायां जनयेत्र सुतम्। वीरं सर्वगुणो-पेतं शतायुश्च भवेदयम् ॥ १२६ ॥ मृतवत्सा च या नारी या च गर्भोपघा-तिनी। सापि सूते सुतं सभ्यं नारायण-परायणम् ॥ १२७ ॥ वन्ध्यापि लभते पुत्रं वृद्धोऽपि तरुणायते। तुरङ्ग इव संहृष्टो मातङ्गइव विक्रमी ॥ १२८ ॥ सदा भेषजसंसेवी भवेन्मारुतवेगवान्। हन्ति सर्वामयं घोरं कासं श्वासं क्षयं तथा ॥ १२९ ॥ दुर्नामाजीर्णकं चैव अम्लपित्तं सुदारुणम्। तृष्णां छर्दिं च मूर्च्छां च शूलमष्टविधं जयेत् ॥ १३० ॥ खण्डाम्र-कमिदं प्रोक्तं भार्गवेण स्वयंभुवा। वयस्यं मेध्यमायुष्यं सर्वपापविनाशनम् ॥ १३१ ॥ ग्रहरक्षापिशाचघ्नमपस्मारविनाशनम्। पाण्डुरोगं प्रमेहं च मूत्रकृच्छ्रं च नाश-येत् ॥ १३२ ॥ वन्ध्या योषिद्भवेत् पुंसां पुमान् वश्यश्च योषिताम्। दृष्टं वारस-हस्रं च कथमत्र विचारणा ॥ १३३ ॥

पके हुये आमों का रस २५ सेर ४८ तोले, साफ शक्कर ३ सेर १६ तोले, घृत १२८ तोले, सोंठ ६४ तोले, कालीमिर्च ३२ तोले, पीपरि १६ तोले और जल ३ सेर १६ तोले। सबको एकत्रकर मिट्टी

के पात्र में पकावे । जब करछी में चिपकने लगे तब तेजपत्र १६ तोले, पिपरामूल, चीता, की जड़, मोथा, धनियाँ, जीरा कालाजीरा, सोंठ, मिर्च, पीपरि, जायफल, तालीशपत्र, दालचीनी, छोटी इलायची और नागकेशर, प्रत्येक चार-चार तोले। सबका चूर्ण कर उसमें मिला दे। जब ठंढा हो जाय तब शहद १२८ तोले डालकर खूब घोट ले और चीनी आदि के सुन्दर पात्र में भरकर रख ले। इसको भोजन के आदि में खाना चाहिए। मात्रा २ तोले से ४ तोले तक। इसके सेवन से पुरुष कामान्ध तथा स्मरवेग से व्याकुलेन्द्रिय होकर सौ या पचास स्त्रियों से रमण कर सकता है। यथा वन्ध्या (बाँझ) स्त्री में भी सबगुण युक्त पुत्र को पैदा करता है। १०० वर्ष की आयु होती है। जिस स्त्री के बालक होकर मर जाते हैं या गर्भ में ही नष्ट हो जाते हैं वह भी सम्य तथा भगवद्भक्त पुत्र को प्राप्त करती है। इसका सेवन कर वन्ध्या भी पुत्र पैदा कर सकती है। वृद्ध भी तरुण हो जाता है। इसका सदा सेवन करनेवाला घोड़े के तुल्य प्रसन्न, हाथी के समान पराक्रमी और वायु के समान वेगवान् होता है। यह सब प्रकार के कठिन रोग, कास, श्वास, क्षय, बवासीर, अजीर्ण, दारुण अम्लपित्त, तृषा वमन, मूर्च्छा और ८ प्रकार के शूलरोगों को नष्ट करता है। भार्गव ऋषि का कहा हुआ यह खण्डाभ्रक वयःस्थापक, मेधावर्द्धक, आयुःप्रद सब पापों का नाशक, तथा ग्रह, राक्षस, पिशाच, अपस्मार, पाण्डुरोग, प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है। इसके सेवन से पुरुष स्त्री के और स्त्री पुरुष के वश में हो जाती है। यह हजारों बार का आजमाया हुआ है। अतः विचारने की आवश्यकता नहीं ॥ ११६-१२३ ॥

पूर्णचन्द्र रस।

सूताभ्रलौहं सशिलाजतु स्याद्विडङ्ग-जाप्यं मधुना घृतेन। सम्मर्द्य सर्वं खलु पूर्णचन्द्रो द्विगुञ्जयुक्तोभवतीह वृष्यः १३४

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, शिलाजीत, वायविडङ्ग, स्वर्णमाक्षिकभस्म, इन्हें बराबर मात्रा में इकट्ठा कर मिला ले। इसे शहद एवं घृत में घोटकर सेवन करना चाहिए। मात्रा-२ रत्ती। यह वीर्यवर्द्धक है ॥ १३४ ॥

निद्रोदय रस।

रसभस्म तुगाक्षीरी नागफेनं पृथक्पृथक्। अर्धकर्षाणि सङ्ग्राह्य धातकी धात्रिका भवम् ॥ १३५ ॥ चूर्णकर्षद्वयं ग्राह्य-मातुलानी द्रवैस्त्रिधा। विभाव्य द्विगुणां द्राक्षां मेलयित्वाऽष्टगुञ्जिकम् ॥ १३६ ॥ भक्षयित्वा पिबेद्दुग्धं निद्राकारक मुत्तमम् रेतसस्तम्भने दक्षं बलवर्णौजः प्रवर्द्धनम् ॥ १३७ ॥

रससिन्दूर वंशलोचन अफीम ये सब ६-६ माशे धाय के फूल और आँवले २-२ तोले लेवे सब का महीन चूर्ण कर भाँगरे के रस में ३ बार घोटकर दूनी बीज निकाली हुई मुनक्का मिला १-१ माशे की गोलियाँ बना कर रख ले। इसमें से १-१ गोली गाय के दूध के साथ देने से अच्छी नींद आती है और शुक्र का स्तम्भन होता है तथा बल और रंग तेज की वृद्धि होती है ॥ १३५-१३७ ॥

श्रीकामदेव रस।

कामदेवमथो सूतं कामिनां कामदं सदा। यस्य प्रसादतो वल्यो रम्यश्च रमते स्त्रियम् ॥ १३८ ॥ पारदं पलमेकं स्याद् द्विपलं शुद्धगन्धकम्। रक्तकार्पासतोयेन घृष्ट्वा काचस्य कूप्यतः ॥ १३९ ॥ निक्षिप्य टङ्कणेनैन मुखं तस्य निरोधयेत्। वालुकायन्त्रमध्यस्थं कूप्यञ्च कुरुते दृढम् ॥ १४० ॥ दिनद्वयं पचेदग्नौशास्त्रवित्कुशलो भिषक्। शीते चादाय पात्रस्थं कूपिकान्तरलग्नितम् ॥ १४१ ॥ दरदेन समं रक्तं सोज्ज्वलं भस्म यद्भवेत्। भक्षयेद्रक्तिकैकं च घृतेन मधुना सह ॥ १४२ ॥ पश्चाद् दुग्धं गुड-

आज्यं कृष्णेक्षुमपि शर्कराम्। द्राक्षाखर्जूरमधुकप्रभृतीनथ भक्षयेत्॥ १४३॥ त्रिफला मधुना शान्तिं याति पित्तं चिरोद्भवम्। निर्गुण्डिकारसेनात्र दुर्वारवातवेदना॥ १४४॥ प्रशमं याति वेगेन नूतनश्च वपुर्भवेत्। अर्द्धावर्त्तितदुग्धेन गृह्यते यद्ययं रसः॥ वन्ध्यापि च भवत्येव जीवद्वत्सा सुपुत्रिका॥ १४५॥

इस कामदेव रस के सेवन से कामुक मनुष्यों की कामाग्नि बढ़ जाती है। इस रस के प्रभाव से सेवन करनेवाला व्यक्ति बलयुक्त एवं सौन्दर्यसम्पन्न होकर स्त्री से रमण करता है। पारा ४ तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले इन्हें एकत्र घोटकर कज्जली बनावे। इस कज्जली को लाल कपास के फूलों के रस से घोटकर आतसी शीशी में डाल दें और खड़िया के बने डाट (डाट) से मुख बन्द कर जोड़ों पर सुहागे का लेप कर दें। पश्चात् बालुकायन्त्र में रस दो दिन लगातार अन्तर्धूम में पकावे। स्वाङ्ग शीतल होने पर शीशी को तोड़कर शीशी के गले में लगे हुए हिंगुल के समान रक्तवर्ण औषध (रससिन्दूर) को निकाल ले। इसे आधी रत्ती से १ रत्ती की मात्रा में घी और शहद के साथ सेवन करे। औषध सेवन के पश्चात् दूध, गुड़, घी, काला गन्ना, खाँड़, दाख, खजूर तथा मुलेठी आदि का सेवन करना चाहिए। बहुत दिन से बढ़े पित्त के नाश के लिये इस रस को शहद तथा त्रिफला के साथ सेवन करना चाहिए। सम्भालू के रस के साथ इसका सेवन करने से कष्टसाध्य वातवेदना नष्ट होती है और शरीर स्वस्थ हो जाता है। अधौटा दूध (औटते-औटते जब आधा शेष रह जाय) के साथ इस गोली का सेवन करने से वन्ध्या स्त्री भी जीवितपुत्रयुक्त होती है॥१३८-१४५॥

मन्मथाभ्र रस।

रसगन्धकयोर्ग्राह्यं पलमेकं सुशोधितम्। अभ्रं निश्चन्द्रकं दद्यात् पलार्द्धं च विचक्षणः॥ १४६॥ कर्पूरं तोलकं दद्याद्वङ्गं च कोलसम्मितम्। ताम्रं तोलार्द्धकं तत्र निःशेषं मारितं पुनः॥ १४७॥ लौहकर्षमुजीर्णं च वृद्धदारकजीरकम्। विदारीं शतमूलीं च क्षुरबीजं बलां तथा॥ १४८॥ मर्कटचतिविषां चैव जातीकोषफले तथा। लवङ्गं विजयाबीजं श्वेतसर्जं यमानिकाम्॥ १४९॥ शाणभागान् गृहीत्वैतान् एकीकृत्यैव पेषयेत्। गुञ्जाद्वयं तु कर्त्तव्यं कोष्णं क्षीरं पिबेदनु॥ १५०॥ गृहे यस्य शतं नार्यो विद्यन्तेऽतिव्यवायिनः। न तस्य लिङ्गशैथिल्यमौषधस्यास्य सेवनात्॥ १५१॥ न च शुक्रक्षयं याति न बलं ह्रासतां व्रजेत्। कामरूपी भवेन्नित्यं वृद्धः षोडशवर्षवत्॥ १५२॥ रसः श्रीमन्मथाभ्रोऽयं महेशेन प्रकाशितः। अस्य भक्षणमात्रेण काष्ठं जीर्यति तत्क्षणात्॥ नाशयेद् ध्वजभङ्गादीन रोगान् योगकृतानपि॥ १५३॥

शुद्ध पारा ४ तोले, गन्धक ४ तोले, निश्चन्द्र अभ्रकभस्म २ तोले कपूर १ तोला, वङ्गभस्म ६ माशे, ताम्रभस्म आधा तोला, लौहभस्म १ तोला तथा विधारा, जीरा, विदारीकन्द, शतावरी, तालमखाना के बीज, खरेंटी, कौंच के बीज, अतीस, जावित्री, जायफल, लौंग, भांग के बीज, सफेद राल और अजवायन, प्रत्येक तीन-तीन माशे; इन सबको एकत्र कर महीन पीस ले और जल से दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनाकर खावे। अनुपान-गुनगुना दूध। इसके सेवन से सैकड़ों स्त्रियों से सहवास करने वाले की भी इन्द्रिय शिथिल नहीं होती है। और न वीर्य क्षीण होता है। तथा बल भी कम नहीं होता है। वृद्ध भी कामदेव के तुल्य रूपवाला और सोलह वर्ष का-सा हो जाता है। इस श्रीमन्मथाभ्र रस को शिवजी ने प्रकट किया था।

इसके भक्षण करने से काष्ट भी उसी क्षण भस्म हो जाता है। यह ध्वजभंग आदि रोगों को नष्ट करता है ॥ १४६-१५३ ॥

मकरध्वज रस ।

स्वर्णादष्टगुणं सूतं मर्दयेत् त्रिकगन्धकम् । रक्तकार्पासकुसुमैः कुमार्यद्भिर्विमर्दयेत् ॥ १५४ ॥ शुष्कं काचघटीं रुद्ध्वा बालुकायन्त्रगं हठात् । भस्म कुर्याद्रसेन्द्रस्य नवार्ककिरणोपमम् ॥ १५५ ॥ भागोऽस्य भागाश्चत्वारः कर्पूरस्य सुशोभनाः । लवंगं मरिचं जातीफलं कर्पूरमात्रया ॥ १५६ ॥ मेलयेन्मृगनाभिं च गद्याणकमितं ततः । श्लक्ष्णपिष्टोरसोनाम जायते मकरध्वजः ॥ १५७ ॥ वल्लं वल्लद्वयं वाथ ताम्बूलीदलसंयुतम् । भक्षयेन्मधुरं स्निग्धं मृदुमांसमवातलम् ॥ १५८ ॥ शृतशीतं सितायुक्तं दुग्धं गोभवमाज्यकम् । मध्वाद्यं पिष्टनपरं मद्यानि विविधानि च ॥१५९॥ करोत्यग्निबलं पुंसां वलीपलितनाशनः । मेधायुःकान्तिजननं कामोद्दीपनकृन्महान् ॥ १६० ॥ अभ्यासात् साधकः स्त्रीणां शतं जयति नित्यशः । रतिकाले रतावन्ते पुनः सेव्यो रसोत्तमः । मानहानिं करोत्यासां प्रमदानां सुनिश्चितम् ॥१६१॥ कृत्रिमं स्थावरविषं जंगमं विषवारि च । न विकाराय भवति साधकानां च वत्सरात् ॥ १६२ ॥ मृत्युञ्जयो यथाभ्यासान् मृत्युञ्जयति देहिनाम् । तथायं साधकेन्द्रस्य जरामरणनाशनः ॥ १६३ ॥

अत्र गद्याणं षण्मापकम् । वल्लं द्विगुञ्जकम् । अत्रर्थे परिभाषामाह ।

यवद्वयेन गुञ्जा स्याद् द्विगुञ्जो वल्ल उच्यते । धरणः स्याच्चतुर्माषैः षड्भिर्गद्यामुच्यते ॥ १६४ ॥

सुवर्ण के कण्टकवेधीपत्र या चूरा १ तोला, पारा ८ तोले और गन्धक २४ तोले । पहिले सोना को पारा में मिलाकर घोटे पश्चात् उसमें गन्धक डालकर कज्जली करे तत्पश्चात् लाल कपास के फूलों के रस से और घीकुवार के रस से घोटकर तथा सुखाकर काँच की कुप्पी (आतशी शीशी) में भर दे और उसका मुख बन्द करके बालुकायन्त्र में रस भस्म कर ले भस्म (करने की विधि षंडगुणबलिजारण के समान है) यह प्रातः काल के सूर्य के तुल्य तरुण रंग की भस्म हो जायेगी । यह भस्म १ तोला, कपूर ४ तोले और लवङ्ग ४ तोले, कालीमिर्च ४ तोले और जायफल ४ तोले ले । कस्तूरी ६ माशे । सबको खूब महीन पीसकर जल द्वारा गोलियाँ बना ले । मात्रा २ रत्ती से ४ रत्ती तक । इसको पान में रखकर खाना चाहिए । इसके सेवन करते हुए मधुर, चिकना कोमल मांस, औटाकर ठंडा किया हुआ खाँडयुक्त गौ का दूध मधु आदिक मीठे पदार्थ एवं अनेक प्रकार की मदिराएँ पथ्य कही हैं । यह जठराग्नि को बढ़ाता तथा वलीपलित को नष्ट करता है । मेधा, आयु और कान्ति को बढ़ानेवाला तथा कामाग्नि को उद्दीपन करनेवाला है । इसका सेवन करनेवाला सैकड़ों स्त्रियोंको विजयकर लेताहै । रतिकालमें तथा रतिकाल के अन्त में इस रसोत्तम का सेवन करना चाहिए । इसके प्रताप से कृत्रिम, स्थावर, जंगम विष तथा विष का जल विकार नहीं करता है । जैसे अभ्यास करने से मृत्युञ्जय रस प्राणियों की मृत्यु को जीत लेता है ऐसे ही यह सेवनकर्ता की जरा और मृत्यु का नाश करता है ॥ १५४-१६३ ॥

यहाँ गद्याणक ६ माशे का और वल्ल दो रत्ती का माना जाता है । इस विषय में प्रमाणरूप परिभाषा कहते हैं । दो जौ की एक रत्ती (घुँघुची), दो रत्ती का १ वल्ल, चार माशे का धरण और छः माशे का गद्याण होता है ॥ १६४ ॥

कामिनीमदभंजन ।

शुद्धसूतं समं गन्धं त्र्यहं कह्लारकद्रवैः । मर्दितं वालुकायन्त्रे यामं सम्पुटके पचेत् ॥ १६५ ॥ रक्ताङ्गस्य द्रवैर्भाव्यं दिनैकं तु सितायुतम् । यथेष्टं भक्षयेचानु कामयेत् कामिनीशतम् ॥ १६६ ॥

शुद्ध पारा और गन्धक बराबर भाग लेकर दोनों की कज्जली करे और लाल कमल के रस से ३ दिन घोटकर सुखा ले और काँच की कूपी में रखकर मुँह बन्दकर दे तथा वालुकायन्त्र में रखकर एक प्रहर तक पकावे। शीतल होने पर कूपी से निकालकर एक दिन केशर के जल की भावना दे। इस रस को मिश्री के साथ सेवन करके इच्छानुसार भोजन करना चाहिए। इससे रमण करने की सामर्थ्य बढ़ती है ॥ १६५-१६६ ॥

हरशशाङ्क ।

शाल्मल्यास्त्वचमादाय श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । शुद्धगन्धकचूर्णानि तद्रसेनैव भावयेत् ॥ १६७ ॥ मासमात्रप्रयोगेण शृणु वक्ष्यामि ये गुणाः । मकरध्वजरूऽपि स्त्रीशतानन्दवर्द्धनः ॥ १६८ ॥ शतायुश्च भवेद्देवि ! वलीपलितवर्जितः । तेजस्वी बलसम्पन्नो वेगेन तुरगोपमः ॥ सततं भक्षयेद्यस्तु तस्य मृत्युर्न जायते ॥ १६९ ॥

सेमर की छाल का चूर्ण और शुद्ध गंधक का चूर्ण समभाग लेकर उसमें सेमर की जड़ के रस की ७ भावनाएँ दे। शुभ दिन में इसका सेवन करे मात्रा १-२ माशा अनुपान गौ का दूध। इसको रात्रि में सेवन करना चाहिए। एक महीनेके सेवनसे कामदेव का-सा रूप तथा सौ स्त्रियों को आनन्दित करनेवाला हो जाता है। एवं सौ वर्ष की आयु, सिकुड़न और बालों की सफेदी से रहित, तेजस्वी, बलयुक्त तथा घोड़े की तुल्य वेगवाला होता है। जो इसे सदा खाया करता है उसकी मौत नहीं होती है ॥ १६७-१६९ ॥

१. शाल्मलीवल्कलचूर्णं शुद्धगन्धकचूर्णं च समं कृत्वा शाल्मलीमूलस्वरसेन सप्त भावना देयाःघृतमधुभ्यां लीढ्वा गोदुग्धमनुपिबेन्निशि ।

कामधेनु ।

गन्धमामलकं चूर्णं धात्रीरसविभावितम् । सप्तधा शाल्मलीतोयैः शर्करामधुयोजितम् ॥ १७० ॥ लीढ्वा चानुपयःपानं प्रत्यहं कुरुते तु यः । एतेनाशीतिवर्षोऽपि शतधा रमते स्त्रिया ॥ १७१ ॥

शुद्ध गन्धक और आँवले का चूर्ण समभाग लेकर उसमें आँवले के रस और सेमर की जड़ के रस से क्रमशः सात-सात भावनाएँ देकर उसको शक्कर और शहद के साथ चाटे। मात्रा १ माशा से २ माशे तक। अनुपान दूध। इसका प्रतिदिन सेवन करने से ८० वर्ष का बूढ़ा भी सौ स्त्रियों से रमण करने की सामर्थ्य पाता है ॥ १७०-१७१ ॥

लक्ष्मणालौह ।

लक्ष्मणाहस्तिकर्णाभ्यां त्रिकत्रयसमन्वयात् । अश्वगन्धासमायोगाल्लौहं पुंसवनं मतम् ॥ १७२ ॥ पुत्रोत्पत्तिकरं हृद्यं कन्यासूतिनिवर्त्तकम् । कृशस्य बलदं श्रेष्ठं सर्वामयहरं परम् १७३ ॥

लक्ष्मणा की जड़, हस्तिकर्ण पलास की छाल, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), त्रिफला, त्रिमद (वायविडंग, चीत की जड़, नागरमोथा) और असगन्ध; प्रत्येक औषधि समभाग और सबकी बराबर लौहभस्म ले सबको एकत्र पीसकर रख ले। इसके सेवन से पुत्र की उत्पत्ति होती है और कन्या होना बन्द हो जाता है। दुर्बल को बलवान् करनेवाला तथा सब रोगों को नष्ट करनेवाला यह लक्ष्मणालौह उत्तम होता है ॥ १७२-१७३ ॥

गन्धामृतरस ।

भस्मसूतं द्विधा गन्धं कन्यकाद्भिर्वि-

मर्दयेत्। रुद्धा लघुपुटे पच्यादुद्धृत्य मधुसर्पिषा ॥ १७४ ॥ वल्लं खादेज्जरां मृत्युं हन्ति गन्धामृतो रसः। समूलं भृङ्गराजं च छायाशुष्कं विचूर्णयेत् ॥ १७५ ॥ तत्समं त्रिफलाचूर्णं सर्वतुल्या सिता भवेत्। तोलैकं भक्षयेच्चानु सेवनाच्च जरापहः ॥ १७६ ॥

पारे की भस्म १ भाग और गन्धक दो भाग। दोनों को एकत्र कर घीकुवार के रस से घोट ले और सुखाकर लघुपुट में फूंक दे। शीतल होने पर दो रत्ती रस शहद और घृत के साथ खावे। यह गन्धामृत रस जरावस्था तथा मृत्यु को दूर करता है। इस गन्धामृत रस के खाने के पश्चात यह चूर्ण खाना चाहिए। सुखाये हुए जड़ सहित भाँगरे का चूर्ण और त्रिफला का चूर्ण समभाग और दोनों के बराबर शक्कर लेकर मिलावे। मात्रा-१ तोला से ४ तोले तक ॥ १७४-१७६ ॥

स्वर्णसिन्दूर।

पलं रसेन्द्रस्य च गन्धकस्य हेम्नोऽपि कर्षं परिगृह्य सम्यक्। वटप्ररोहस्य रसेन यामं यामं विमर्द्याथ कुमारिकायाः ॥ १७७ ॥ तत् काचकूप्यां निहितं प्रयत्नात् पचेद्विधिज्ञः सिकताख्ययन्त्रे। ततो रजस्वोर्ध्वगतं सुरम्यं प्रगृह्य पश्चादरुणप्रभं यत् ॥ १७८ ॥ तद्योजयेत् सर्वगदेषु वीक्ष्य धातुं बलं वह्निमथो वयश्च। रसायनं वृष्यतरं च बल्यं मेधाग्निकान्तिस्मरवर्द्धनं च ॥ १७९ ॥

शुद्ध पारा ४ तोले, गन्धक ४ तोले और सोना के कण्टकवेधी पत्र १ तोला। पहिले पारा में स्वर्णपत्र को मिलाकर घोटे पश्चात् उसमें गन्धक डालकर कज्जली करके बरगद (बड़) की जटा के तथा घीकुवार के रस से अलग-अलग एक-एक पहर घोटकर सुखा ले और काँच की शीशी में भरकर मुख बन्द कर दे तथा बालुकायन्त्र में रखकर विधि से पकावे। जब शीशी की नली में लाल-लाल रमणीय रस जम जाय तब उसको सावधानी से निकाल ले। धातु, बल, अग्नि और आयु का विचार कर सब रोगों में इसको देना चाहिए। यह स्वर्णसिन्दूर अत्यन्त वृष्य, बलप्रद एवं मेधा, अग्नि और कान्ति को बढ़ानेवाला है ॥ १७७-१७९ ॥

सुरसुन्दरी गुटिका।

अभ्रकं माणिकं वज्रं कान्तं हेम समं समम्। सर्वाणि समभागानि सूतयुक्तानि कारयेत् ॥ १८० ॥ गोलकं च ततः कृत्वा पक्वं निचुलवारिणा। ततस्तं पुटपाकेन स्तम्भयित्वा प्रयत्नतः ॥ १८१ ॥ बाह्ये चास्यापि लिप्त्वा च वक्त्रस्था गुटिकोत्तमा। स्तम्भयेच्छुक्रसंघातं विषरोगांश्च नाशयेत् ॥ १८२ ॥ अब्देनैकेन वक्त्रस्था वयःस्तम्भं करोति च। वलीपलितहन्त्रीयं गुटिका सुरसुन्दरी ॥ १८३ ॥

अभ्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, हीरे की भस्म, कान्तलौह की भस्म, सोने की भस्म और रससिन्दूर; सबको सम भाग लेकर बेंत की जड़ के रस से घोट गोला बना ले और बाहर कपड़मिट्टी करके लीप दे तथा पुटपाक की विधि से फूँक ले। पश्चात् जल के योग से इसकी गोलियाँ बना ले। मुख में धारण करने से यह गुटिका शुक्र के वेग को रोक देती है तथा विष के रोगों को नष्ट करती है। एक वर्ष तक मुख में धारण करने से आयु को स्थिर करती है। यह सुरसुन्दरी गुटिका वलीपलित को नष्ट करती है ॥ १८०-१८३ ॥

मोफरचा नाम से प्रसिद्ध यवनकृत औषध

जातीपल्लवनागकेशरकणा कक्कोलमज्जाफलं श्यामा कट्फलसारिवागुरुवचा मुस्तं शटी मस्तकी। मांसी शाल्मलिधातकी वटुलता गोक्षुरमेथी वरी बीजं वानरिकोकिलाक्षि च गुहा धूर्त्तः परं पङ्कजम्॥

१८४ ॥ कुष्ठं चोत्पलकेशरं च मधुकं श्रीखण्डजातीफलं चूर्णं कन्दविदारिमूपलियुतारम्भा प्रियङ्गोःफलम्। जीवद्वन्द्वसविश्वभूपणवरा एला त्वचो धान्यकं चीनीचोपसमुद्रशोपशिखरं चाकारकरभं कचम् ॥ १८५ ॥ इन्दुं कुङ्कुमनाभिजं सगगनं चूर्णं समं कारयेत् स्वर्णं तारभुजङ्गवङ्गमयसा वज्रं तथा ताम्रकम्। मुक्ता शाम्भवतालकानि विधिना शुद्धं मृतं योजयेत् तुर्यांशं विजयादलस्य विमलं चूर्णं ततो दापयेत् ॥ १८६ ॥ तेपामर्द्धांशयुक्ता विमलतरसिता क्षौद्रमेवं सितांशं तोयं स्वल्पं प्रदेयं मृदुतरदहनैर्लेहसिद्धिर्विधेया । शीते क्षिप्त्वा तु चूर्णं घृतपरिलुलितं घट्टयेत्तच्च दर्व्या म्लेच्छेनोक्तः सुलेहो मुफर इति मतः सेव्यतां सर्वकालम् ॥ काम्यं वामाप्रमोदं सकलगदहरं राजयोग्यं प्रदिष्टम् ॥१८७॥

अपरगुणा बृहत्कामेश्वरस्येव। मज्जाफलं माजुफलमिति प्रसिद्धं वणिग्द्रव्यम्। एवं मस्तकीति रुमिमस्तकी, धूर्तो धुस्तूरबीजं, चीनीचोपः चोपचीनीति प्रसिद्धं काष्ठवन्मूलं सिंहलादौ प्रसिद्धं, समुद्रशोपः हिज्जलबीजं, शिखरं लवङ्गं, आकारकरभं आकरकरा इति ख्यातं, कचं बालकम्, इन्दुः कर्पूरं, शाम्भवो रसः।

जावित्री, नागकेशर, पीपरि, कंकोल, माजूफल, काली सारिवा, कायफल, अनन्तमूल, अगर, बच, नागरमोथा, कचूर, रूमीमस्तगी, जटामासी, सेमर का मुसला, धाय के फूल, कुटकी, गोखरू, मेथी, शतावरी, कौंच के बीज, तालमखाना, शालपर्णी, धतूरे के बीज, सफेद कमल, कूट, कमल की केशर, मुलेठी, श्वेतचन्दन, जायफल, विदारीकन्द का चूर्ण, मूसली, केले के फूल, प्रियंगु के फल, जीवक, ऋषभक, सोंठ, कालीमिर्च, हड, बहेडा, आँवला, छोटी इलायची, दालचीनी, धनियाँ, चोबचीनी, समुद्रशोष, (हिज्जलबीज), लौंग, अकरकरा, सुगन्धवाला, कपूर, केशर, कस्तूरी और अभ्रकभस्म, सुवर्णभस्म, चाँदी की भस्म, सीसा की भस्म, रांगे की भस्म, लोहभस्म, हीरा की भस्म, ताम्रभस्म, मोती की भस्म, पारदभस्म और हरताल की भस्म ; सब सम भाग। सब ओषधियों का चतुर्थांश धोई हुई भांग का चूर्ण। सब चूर्णों का आधा भाग शक्कर और शक्कर के बराबर शहद। शक्कर में थोडा सा जल डालकर मन्द-मन्द अग्नि से पकावे। जब चाशनी तैयार हो जाय तब उसको ठंडी कर ले और उपर्युक्त ओषधियों के चूर्ण को घी में सानकर चाशनी में डाल दे तथा शहद डाल करछी से घोटकर चीनी या सीसे के बर्तन में रख दे। यह म्लेच्छों का कहा हुआ लेह मुफरया के नाम से प्रसिद्ध है। इसका सब समयों में सेवन करना चाहिए। यह स्त्रियों को आनन्द देनेवाला, सब रोगों का नाशक तथा राजाओं के योग्य है। इसके अन्य गुण कामेश्वर मोदक के समान समझिये ॥ १८४-१८७ ॥

पल्लवसारतैल।

त्रिफलाया रसप्रस्थं भृङ्गराजरसं तथा। शतावरीरस क्षीरं कूष्माण्डस्य रसं पृथक्॥ १८८ ॥ प्रस्थैकं तिलतैलस्य पचेन्मृद्वग्निना भिषक्। लाक्षारनालसिद्धाम्बु प्रस्थं प्रस्थं विपाचयेत् ॥ १८९ ॥ कल्कं कणा शिवा द्राक्षा त्रिफला नीलमुत्पलम्। मधुकं क्षीरकाकोली प्रत्येकं च पलं पलम् ॥ १९० ॥ कर्पूरं च नखं गन्धमण्डजं विरजा समम्। जातीकोपं लवङ्गं च प्रतिकर्षद्वयं पचेत् ॥

१९१ ॥ महावातहरं तैलं महापित्तविनाशनम्। नेत्ररोगेषु सर्वेषु अपस्मारेऽनिलामये ॥ १९२ ॥ विद्रधिव्रणशोथघ्नं मेहदोषहरं परम्। शूलरोगप्रशमनमानाहकृच्छ्रनाशनम् ॥ १९३ ॥ गुल्मघ्नं हृदि शूलघ्नं मूत्राघातविनाशनम्। प्रशस्तं ग्रहणीरोगे प्रमेहज्वरनाशनम् ॥ नाम्ना पल्लवसाराख्यं तैलं विधाद्भिषग्वरः ॥ १९४ ॥

त्रिफला का काढ़ा १२८ तोले, भँगरे का रस १२८ तोले, शतावरी का रस १२८ तोले, दूध १२८ तोले, पेठे का रस १२८ तोले, लाख का रस १२८ तोले और काँजी १२८ तोले। तिल का तेल १२८ तोले। कल्क के लिए पीपरि, हड़, मुनक्का, त्रिफला, नीलकमल, मुलेठी और क्षीरकाकोली; प्रत्येक चार-चार तोले। गन्धार्थ–कपूर, नखी, कस्तूरी, गंधाबिरोजा, जावित्री और लौंग; प्रत्येक दो-दो तोले। तैलपाकविधि से तेल सिद्ध करना चाहिए। यह तेल मालिश करने से महावातरोग तथा महापित्त रोगों को नष्ट करता है। नेत्ररोग, अपस्मार, वातव्याधि, विद्रधि, व्रण, शोथ, प्रमेह, शूलरोग, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, गुल्मरोग, हृदयशूल, मूत्राघात, संग्रहणी, प्रमेह और ज्वर आदि रोगों को नष्ट करता है। इस तैल का नाम पल्लवसार है ॥ १८८-१९४ ॥

श्रीगोपालतैल।

रसाढकं शतावर्याः कूष्माण्डामलयोस्तथा। वाजीगन्धासहचरबलानां च शतं पृथक् ॥ १९५ ॥ परिपच्याम्भसां द्रोणे पादशेषेऽवतारयेत् । पञ्चमूलं महद्व्याघ्री मूर्वाकेतकपूतिका ॥ पारिभद्रश्च सर्वेषां ग्राह्यं दशपलं शुभम् ॥ १९६ ॥ काथयित्वा जलद्रोणे तत्पादमवशेषयेत्। आढकं तिलतैलस्य कल्कैरेतैश्च संपचेत् ॥ १९७ ॥ अश्वगन्धा चोरपुष्पी पद्मकं कण्टकारिका। चलागुरुघनं पूतिशिह्लकागुरुचन्दनम् ॥ १९८ ॥ चन्दनं त्रिफला मूर्वा जीवनीयकटुत्रयम्। पूतिकुङ्कमकस्तूर्यश्चातुर्जातं च शैलजम् ॥ १९९ ॥ नखमुस्तमृणालानि नीलोत्पलमुशीरकम्। मांसीमुरासुरतरु वचादाडिमतुम्बुरु ॥ २०० ॥ ऋद्धिर्वृद्धिर्दमनकं चुद्रैलार्द्धपलं पृथक्। एतत्तैलवरं हन्ति वातपित्तकफोद्भवान् ॥ २०१ ॥ व्याधीनशेषान् जनयेत् स्मृतिं मेधां धृतिं धियम्। वातरोगान् विशेषेण प्रमेहान् हन्ति विंशतिम् ॥ २०२ ॥ गर्भं संस्थापयेत् स्त्रीणां सर्वं शूलं व्यपोहति। मूत्रकृच्छ्रमपस्मारमुन्मादान् निखिलानपि ॥ २०३ ॥ स्थविरोऽपि जराजीर्णतैलस्यास्य निषेवणात्। लीलया प्रमदानां च उन्मदानां शतं जयेत् ॥ २०४ ॥ तिष्ठत्यस्य गृहे तैलं श्रीगोपालाभिधं शुभम्। न तत्र भूताः सर्पन्ति न पिशाचा न राक्षसाः ॥ २०५ ॥ न दारिद्र्यं भवेत्तस्य विघ्नः कश्चिन्न जायते। अश्विभ्यां निर्मितं ह्येतद् विश्वकल्याणहेतवे ॥ २०६ ॥

शतावरी का रस ६ सेर ३२ तोले, पेठे का रस ६ सेर ३२ तोले, आँवले का रस ६ सेर ३२ तोले, असगन्ध ५ सेर, पीली कटसरैया (पियाबाँसा) की जड़ ५ सेर और बरियारा की जड़ ५ सेर। प्रत्येक को पृथक् पृथक् २५ तोले ४८ तोले जल में औटाकर प्रत्येक का ६ सेर ३२ तोले काथ शेष रक्खे। बड़ा पञ्चमूल, छोटी कटेरी, मूर्वा, केवड़ा की जड़, करञ्ज की जड़ और फरहद की छाल; प्रत्येक चालीस-चालीस तोले। काथ के लिए जल २५ सेर ४८ तोले लेकर अलग-

अलग सबका क्वाथकर प्रत्येक ३ सेर १६ तोले क्वाथ अवशिष्ट रक्खे। तिल तेल ६ सेर ३२ तोले। कल्क के लिए—असगन्ध, चोरपुष्पी, पद्माख, कटेरी, खरेटी, अगर, मोथा, खट्टाशी (मुश्कबिलाई), शिलारस, अगर, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, त्रिफला, मूर्वा, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलेठी, सोंठ, कालीमिर्च, पीपरि, खट्टाशी, केशर, कस्तूरी, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, प्रारदरीला, नखी, मोथा, कमल की डंडी, नीलकमल, खस, जटामासी, मुरामांसी, देवदारु, वच, अनारदाना, धनियाँ, ऋद्धि, वृद्धि, दौना और छोटी इलायची; प्रत्येक दो-दो तोले। विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर मर्दन करने से यह श्रेष्ठ तेल वात, पित्त और कफ के सब रोगों को नष्ट करता है तथा स्मृति, मेधा, धारणाशक्ति और बुद्धि को बढ़ाता है। विशेषकर वातरोग और २० प्रकार के प्रमेह रोगों को नष्ट करता है। एवं स्त्रियों के गर्भ स्थापन करता है। सब प्रकार के शूल, मूत्रकृच्छ्र, अपस्मार और उन्माद रोग नष्ट होते हैं, जरावस्था से थका हुआ बूढ़ा भी इस तेल के सेवन से लीलापूर्वक उन्मत्त स्त्रियों को परास्त कर देता है। जिसके घर में यह श्रीगोपाल नामक तेल रहता है वहाँ भूत, पिशाच, राक्षस और दारिद्रय नहीं जाता है तथा किसी प्रकार का विघ्न भी नहीं होता है। संसार के कल्याणार्थ अश्विनीकुमारों ने इसको बनाया है॥ १९९-२०६॥

मृतसञ्जीवनी सुरा।

नवं गुडं च संगृह्य शतमेकं पलं तथा। बावरीत्वचमादाय बदरीत्वचमेव च॥ २०७॥ प्रस्थं प्रस्थं प्रदातव्यं पूगं देयं यथोचितम्। लोध्रं च कुडवं दत्त्वा आर्द्रकस्य पलद्वयम्॥ २०८॥ तोयमष्टगुणं दत्त्वा गुडं सङ्घोलयेत् सुधीः। प्रथमे चार्द्रकं दद्यात् द्वितीये बावरीत्वचम्॥ २०९॥ तृतीये बदरीं दत्त्वा गोलयित्वा भिषग्वरः। मुखे शरावकं दत्त्वा यत्नात् कृत्वा च बन्धनम्॥२१०॥ मुखसंबन्धनं कृत्वा स्थापयेद्दिनविंशतिम्। मृण्मये मोचिकायन्त्रे मयूराख्येऽपि यन्त्रके॥ २११॥ यथाविधिप्रकारेण मन्दमन्देन वह्निना। चुल्लीमध्ये विधातव्यं मृत्तिकादृढभाजने॥ २१२॥ तदौषधं च तन्मध्ये समुद्धृत्य विनिक्षिपेत्। नलं च युगलं दत्त्वा कुम्भौ च गजकुम्भवत्॥ २१३॥ कुम्भमध्ये निधातव्यं पूगं च सैलबालुकम्। देवदारु लवङ्गं च पद्मकोशीरचन्दनम्॥ २१४॥ शतपुष्पा यमानी च मरिचं जीरकद्वयम्। शटी मांसी त्वगेला च जातीफलं समुस्तकम्॥ २१५॥ ग्रन्थिपर्णी तथा शुण्ठी मेथी मेषी च चन्दनम्॥ एषां चार्द्धपलान् भागान् कुट्टयित्वा विनिक्षिपेत्॥ २१६॥ यथाविधिप्रकारेण चालनं दापयेत् सुधीः। बुद्धिमान् सौजनं कृत्वा उद्धरेद्विधिवत् सुराम्॥ २१७॥ एतन्मद्यं पिबेन्नित्यं यथाधातुवयः क्रमम्। आरोग्यजननं देहदार्ढ्यकृद्बलवर्द्धनम्॥ २१८॥ धारवग्निस्मृतिकृद्वीर्यशुक्रकृद्वातनाशनम्। बलपुष्टिकरं चैव कामसन्दीपनं परम्॥२१९॥ दश स्त्रियो रमेन्नित्यमानन्द उपजायते। रणे तेजोमयः सद्यो यथा भीमपराक्रमः॥ २२०॥ नातः परतरं किञ्चिद् रणोत्साहप्रदं महत्। देवासुरैर्युद्धकाले शुक्रेण परिनिर्मितम्॥ २२१॥

नया गुड़ ५ सेर, बबूल की छाल ६४ तोले, बेरी (बेर) की छाल ६४ तोले। सुपारी ६४ तोले, लोध १६ तोले और अदरख ८ तोले। गुड़ को १ मन १० सेर पानी में घोल कर उसमें पहले अदरख, फिर बबूल की छाल का चूर्ण और इसके पश्चात् बेर की छाल का चूर्ण डाल कर लोध भी इसी में छोड़ दे और अच्छे प्रकार सबको घोलकर मिट्टी के पात्र में भर दे और सकोरे से उसके मुख और सन्धियों को बन्द कर दे और जमीन में गाड़ दे। २० दिन के बाद उसको निकालकर मिट्टी के मोचिकायन्त्र अथवा मयूरयन्त्र में डालकर चूल्हे पर चढ़ा दे और उसमें दो नल लगा दे और उनके नीचे एक-एक घड़ा रख दे। और मन्द-मन्द अग्नि दे। घड़ों में सुपारी, एलवालुक (सुगन्धद्रव्य), देवदारु, लौंग, पद्माक, खस, लाल चन्दन, सौंफ, अजवाइन, मिर्च, जीरा, कालाजीरा, कचूर, जटामासी, दालचीनी, छोटी इलायची, जायफल, मोथा, गठिवन, सोंठ, मेथी, काकड़ासिंगी और सफेद चन्दन, प्रत्येक दो-दो तोले कूट पीस कर छोड़े। अच्छे प्रकार चलाकर मिला ले। फिर बुद्धिमान् वैद्य मदिरा चुआ ले। बल और अवस्थानुसार इस मदिरा के नित्य पीने से आरोग्यता, देह की दृढ़ता और बल की वृद्धि होती है। धातु, अग्नि, स्मरणशक्ति, बल, पुष्टि और शुक्र को बढ़ाती है और कामदेव को दीपन करती है तथा वातरोग को नष्ट करती है। इसके प्रताप से दश स्त्रियों से रमण करने में आनन्द मिलता है। रण में भीम का सा पराक्रम होता है। इससे बढ़कर रण में उत्साह करनेवाला दूसरा प्रयोग नहीं है। देवासुरसंग्राम में शुक्राचार्य ने इसको बनाया था। मात्रा ३ ४ माशे ॥ २०७ २२१ ॥

दशमूलारिष्ट।

पर्ण्यौ बृहत्यौ गोकण्टो बिल्वोऽग्निमथनोऽरलुः। पाटला काश्मरी चेति दशमूलमिहोच्यते ॥ २२२ ॥ दशमूलानि कुर्वीत भागैः पञ्चपलैः पृथक्। पञ्चविंशत्पलं कुर्याद् चित्रकं पौष्करं तथा ॥२२३॥ कुर्यात् विंशपलं लोध्रं गुडूची तत्समा भवेत्। पलैः षोडशभिर्धात्री रविसंख्यैर्दुरालभा ॥ २२४ ॥ खदिरो बीजसारश्च पथ्या चेति पृथक्पलैः। अष्टाभिर्गुणितैः कुष्ठं मञ्जिष्ठा देवदारु च ॥ २२५ ॥ विडङ्ग मधुकं भार्गी कपित्थोऽक्षः पुनर्नवा। चव्यं मांसी प्रियङ्गुश्च सारिवा कृष्णजीरकम् ॥ २२६ ॥ त्रिवृता रेणुकं रास्ना पिप्पली क्रमुकः शटी। हरिद्रा शतपुष्पा चपद्मकं नागकेशरम् ॥ २२७ ॥ मुस्तमिन्द्रयवः शृङ्गी जीवकर्षभकौ तथा। मेदा चान्या महामेदा काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके ॥ २२८ ॥ कुर्यात् पृथक् द्विपलिकान् पचेदष्टगुणे जले। चतुर्थांशशृतं नीत्वा गृह्णाण्डे सन्निधापयेत् ॥ २२९ ॥ ततः षष्टिपलां द्राक्षां पचेन्नीरे चतुर्गुणे। त्रिपादशेषं शीतं च पूर्वक्वाथे शृतं क्षिपेत् ॥ २३० ॥ द्वात्रिंशत्पलिकं क्षौद्रं दद्याद् गुडचतुःशतम्। त्रिंशत्पलानि धातक्या कक्कोलं जलचन्दनम् ॥ २३१ ॥ जातीफलं लवङ्गं च त्वगेलापत्रकेशरम्। पिप्पली चेति संचूर्ण्य भागैर्द्विपलिकैः पृथक् ॥ २३२ ॥ शाणमात्रां च कस्तूरीं सर्वमेकत्र निक्षिपेत्। भूमौ निखनयेद्भाण्डं ततो जातरसं पिबेत् ॥ २३३ ॥ कतकस्य फलं क्षिप्त्वा रसं निर्मलतां नयेत्। ग्रहणीमरुचिं शूलं श्वासकासभगन्दरान् ॥ २३४ ॥ वातव्याधिं क्षयं छर्दिं पाण्डुरोगं च कामलाम्। कुष्ठान्यर्शांसि मेहांश्च मन्दाग्निमुदराणि च ॥

२३५ ॥ शर्करामश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं धातुक्षयं जयेत्। कृशानां पुष्टिजननो वन्ध्यानां पुत्रदः परम् ॥ अरिष्टो दशमूलाख्यस्तेजःशुक्रबलप्रदः ॥ २३६ ॥

शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरू, बिल्व के मूल की छाल, अरणी की छाल, श्योनाक की छाल; पाढ़रि की छाल और गंभारी की छाल; इसको दशमूल कहते हैं। दशमूल की प्रत्येक औषधि चार-चार पईसेर, चीता की जड़ सवासेर, पोहकरमूल सवा सेर, लोध एक सेर, गिलोय एक सेर आंवले १४ तोले, जवासा ४८ तोले। खैर (कत्था), विजयसार और हड़ ३२-३२ तोले। कूट, मँजीठ, देवदारु, वायविड़ंग, मुलेठी, भारंगी, कैथ, बहेड़ा, गदहपुर्ना (सांठी), चव्य, जटामांसी, प्रियंगु, अनन्तमूल, काला-जीरा, निसोत, सँभालू के बीज, रास्ना, पीपरि, सुपारी, कचूर, हल्दी, सोया के बीज, पद्माक, नागकेशर, मोथा, इन्द्रजौ, काकड़ासिंगी, जीवक ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर-काकोली, ऋद्धि और वृद्धि; प्रत्येक आठ-आठ तोले। इन संपूर्ण औषधियों को आठ गुने जल में पका कर चतुर्थांश क्वाथ शेष रक्खे। फिर इसको छान कर मिट्टी के पात्र में रक्खे। इसके परचात् ३ सेर मुनक्काओं को १२ सेर जल में पकावे, ६ सेर अवशेष रहने पर ठंढा कर छान ले और पहलेवाले काढ़े में मिला दे। परचात् शहद १२८ तोले, गुड़ २० सेर, धाय के फूल १॥ सेर तथा कंकोल, सुगन्धवाला, लालचन्दन, जायफल, लौंग, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात नागकेशर और पीपरि; प्रत्येक आठ-आठ तोले। कस्तूरी ३ माशे; इन सबको कूटकर क्वाथ में डाल दे और पात्र का मुख अच्छे प्रकार बन्द कर जमीन में गाड़ दे। जब अरिष्ट तैयार हो जाय तब जमीन से निकाल ले। इसमें चार तोले निर्मली के बीज डालकर निर्मल (साफ) कर ले। इसके पानी से ग्रहणी, अरुचि, शूल, श्वास, कास, भगन्दर, वातव्याधि, क्षय, वमन, पाण्डु, कामला (पीलिया), सब प्रकार के कोढ़, बवासीर, मन्दाग्नि, उदरविकार, शर्करा, पथरी, मूत्रकृच्छ्र और धातुक्षय रोग नष्ट होते हैं। यह दशमूलारिष्ट दुर्बलों को हृष्ट-पुष्ट और वन्ध्याओं को पुत्र देनेवाला एवम् तेज, शुक्र और बल को देनेवाला है ॥२२७-२३६॥

मदनमोदक।

त्रैलोक्यविजयापत्रं सबीजं घृतभर्जितम्। समे शिलातले पश्चाच्चूर्णयेदतिचिक्कणम् ॥ २३७ ॥ त्रिकटु त्रिफला शृङ्गी कुष्ठं सैन्धवधान्यकम्। शटी तालीशपत्रं च कट्फलं नागकेशरम् ॥ २३८ ॥ मेथी जीरकयुग्मं च गृहीत्वा स्वल्पभर्जितम्। यावन्त्येतानि चूर्णानि तावदेव तदौषधम् ॥ २३९ ॥ तावत्येव सिता देया यावत्या याति बन्धनम्। मधुना घृतेन मिश्रं मोदकं परिकल्पयेत् ॥ २४० ॥ त्रिसुगन्धिसमायुक्तं कर्पूरेणाधिवासयेत्। स्थापयेद् घृतभाण्डे च श्रीमन्मदनमोदकम् ॥ २४१ ॥ भक्षयेत् प्रातरुत्थाय वातश्लेष्मनिवारणम्। कासघ्नं सर्वशूलघ्नमामवातविनाशनम् २४२ सर्वरोगहरं चैतत् संग्रहग्रहणीहरम्। एतस्य सतताभ्यासाद् वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ २४३ ॥ ब्रह्मणः प्रमुखाच्छ्रुत्वा वासुदेवे जगत्पतौ। एतत् कामस्य वृद्ध्यर्थं नारदप्रतिपादितम् ॥ २४४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वाजीकरणाधिकारः समाप्तः।

बीज सहित भाँग की पत्तियों को घृत में भून कर समतल शिल पर खूब महीन पीस ले। सौंठ, मिर्च, पीपरि हड़, बहेड़ा, आंवला,

काकड़ासिंगी, कूट, सेंधानमक, धनिया, कचूर, तालीशपत्र, कायफल, नागकेशर, थोड़ी भूनी हुई मेथी, जीरा और कालाजीरा। प्रत्येक सम भाग। संपूर्ण औषधियों के चूर्ण के बराबर भांग का चूर्ण और जितनी से लड्डू बँध सकें उतनी शक्कर डाले। इसमें शहद और घृत मिलाकर लड्डू बना ले। सुगन्धित करने के लिए दालचीनी, इलायची और तेजपत्र भी छोड़ना चाहिए। घृत के चिकने बर्तन को कपूर से सुगन्धित करके उसमें मदनमोदक को रक्खे। मात्रा १ तोला। प्रातःकाल उठकर उसका सेवन करने से वातरोग, कफरोग, खाँसी, सब प्रकार के शूलरोग, आमवात, संग्रहणी और सब प्रकार के रोग नष्ट होते हैं। इसका प्रति दिन सेवन करने से वृद्ध भी तरुण (युवा) हो जाता है। नारदजी ने ब्रह्मा के मुख से सुनकर काम की वृद्धि के लिए जगत्पति भगवान् से कहा था ॥ २३७-२४४ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्य रत्नावल्या रसप्रभाभिधायां व्याख्यायां वाजीकरणाधिकारः समाप्तः।

अथ उरस्तोयाधिकारः।

उरस्तोय की संप्राप्ति।

उरस्येकतरे पार्श्वे पार्श्वयोर्वाप्यपां चयः। उरस्तोयगदो नाम प्रायशः प्राणनाशनः ॥ १ ॥ उरसि वक्षोयंत्रे। असौ गदः प्रायेण प्राणनाशनः।

वक्षस्थल के एक पसवाड़े में या दोनों पसवाड़ों में जलसंचय हो जाता है वही उरस्तोय नामक रोग है। यह प्रायः प्राणनाशक है ॥ १ ॥

उरस्तोय के लक्षण।

कृच्छ्राच्छ्वासः कफस्रावो नीलावोष्ठौ तथा मुखम्। शोथः पादे धरा क्षुद्रा विषमा वेगवाहिनी ॥ २ ॥ मूत्राल्पत्वं भवेच्चापि स ना न शयनक्षमः। स्वास्थ्यं किञ्चित् समासीनो लभतेऽस्मिन् महामते ॥ ३ ॥ धरा धमनी।

श्वास-प्रश्वास में कष्ट, कफस्राव, ओठों तथा मुख का रंग नीला हो जाना, पैरों पर सूजन, नाड़ी की गति क्षुद्र, विषम और तीव्र चलनेवाली हो; मूत्र की मात्रा कम हो सोने में कष्ट होता है तथा बैठने में कुछ सुख मिलता है ॥ २-३ ॥

भेषजं श्लेष्महरणं मूत्रस्यापि प्रवर्त्तनम्। उरस्तोये गदे योज्यं विविच्य भिषजा सदा ॥ ४ ॥

उरस्तोय रोग में कफनाशक और मूत्र साफ उतारनेवाली औषध विचारकर देनी चाहिए॥४॥

पिपासानिग्रहः कार्यः शीताम्भोऽनिलसेवनम्। यत्नतः परिहर्त्तव्यमभिष्यन्दि खिलं तथा ॥ ५ ॥

प्यास (तृषा) को रोकना चाहिए तथा ठंडा जल, वायुसेवन और सब प्रकार के दधि आदि अभिष्यन्दी पदार्थ त्याग देना चाहिए ॥ ५ ॥

पादावशिष्टं यत्तोयं तत्तृषायां पिबेन्मनाक्। पयसा वा शृतोष्णेन शान्तिं कुर्यात् सदा तृषः ॥ ६ ॥

प्यास लगने पर पादावशिष्ट (औटाते-औटाते जब चौथाई रह जाय वह) जल थोड़ा सा पीना चाहिए। पकाया हुआ किञ्चित् गर्म जल पीने से भी तृषा शान्त होती है ॥ ६ ॥

वर्षाभूस्वरसं वापि यवक्षारसमायुतम्। पिबेन्नित्यमुरस्तोयी सायं प्रातरतन्द्रितः ॥ ७ ॥

गदापुरैना (सांठी) के रस में जवाखार डालकर सायंकाल और प्रातःकाल नित्य सेवन करना उरस्तोय रोग में हितकर होता है ॥ ७ ॥

सुधानिधि रस।

पिष्टं पांशुपटुप्रगाढममलं वज्रयम्बुना

नेकशः सूतं धातुगतं खटीकवलितं तं सम्पुटे रोधयेत्। अन्तःस्थं लवणस्य तस्य च तले प्रज्वाल्य वह्निं दृढं घस्रं ग्राह्यमथेन्दुकुन्दधवलं भस्मोपरिस्थं शनैः ॥८॥ तद्वल्लमितं लवङ्गसहितं प्रातः प्रभुक्तं नृणामूर्ध्वं रेचयति द्वियाममसकृत् पेयं जलं शीतलम्। एतद्धन्ति च वत्सराधिकविषं पाण्मासिकं मासिकं, शैलोत्थं गरलं मृगेन्द्रकुटिलोद्भूतं च तात्कालिकम् ॥९॥ क्षीणेषु दुर्बलेष्वेवमविरेच्येषु रोगिषु। रक्तिदशांशविंशांशं यथाशक्ति प्रयोजयेत् ॥ १०॥ सितया मिश्रितां मात्रां जग्ध्वा शीतं पिबेज्जलम्। त्रिवारं वा चतुर्वारं दिने मात्रां प्रयोजयेत् ॥ ११ ॥ अनेन प्रशमं यान्ति वक्षस्तोयादिका गदाः। तथानुबन्धभूता ये विना शस्त्रावचारणैः ॥ १२ ॥

शुद्ध पारे को समान भाग कसीस तथा समान भाग सेंधा नमक के साथ मिलाकर घोटे। जब देखे कि पारा निश्चन्द्र हो गया है तब थूहर के रस में तीन बार घोटकर अच्छी प्रकार सुखा ले, जिससे जल का अंश न रहे तदनन्तर उसे दो लोहे के कटोरों में सम्पुट कर दें और संधि को खड़िया मिट्टी से बन्द कर दे। पश्चात् इस सम्पुट को सावधानी से लवण यन्त्र में रखकर दिन भर तीक्ष्ण अग्नि दे, जब स्वाङ्गशीतल हो जाय तब अत्यन्त सावधानी के साथ धीमे से लौहसम्पुट[1] को बाहर निकाल ले और सन्धि को खोल दे। जो ऊपरवाले लोहे के कटोरे में चन्द्रमा अथवा कुन्द के फूल के समान सफेद रंग की औषध लगी हो उसे उतार ले। यह सुधानिधि रस है। इसे दो या तीन रत्ती की मात्रा में लौंग के चूर्ण तथा शीतल जल के साथ प्रातःकाल सेवन कराने से दो प्रहर के बाद विरेचन होता है। इसके सेवन के पश्चात् बार-बार शीतल जल पीना चाहिए। इसके सेवन से वार्षिक, पाण्मासिक अथवा मासिक विष, पर्वत खनिजन्य अथवा स्थावर विष नष्ट होते हैं। यदि सिंह आदि ने दंष्ट्रा से काट लिया हो तो तत्काल इसके अन्त प्रवेश एवं मलहम आदि प्रयोग द्वारा वह विष भी नष्ट किया जा सकता है। क्षीण, दुर्बल एवं विरेचन के अयोग्य रोगियों में उरस्तोय आदि रोग के नाश के लिये $\frac{1}{10}$ से $\frac{1}{20}$ रत्ती की मात्रा में रोगी की शक्ति के अनुसार प्रयोग कराना चाहिए। एक मात्रा खाँड के साथ मिलाकर शीतल जल के साथ पिलाना चाहिए। इसे उरस्तोय तथा सुपुम्नतोय आदि रोगों में दिन में तीन या चार बार देना चाहिए। इसके प्रयोग से उरस्तोय आदि तथा अनुबन्धभूत रोग शस्त्र कर्म के बिना ही नष्ट हो जाते हैं, परन्तु यह बात याद रखनी चाहिए कि इस औषध के सेवन के समय भी उरस्तोय आदि रोग में बार-म्बार जलपान न करावे। विरेचनार्थ ही जलपान कराने के लिये कहा गया है ॥ ८-१२ ॥

श्वयथौ मूत्रकृच्छ्रे च कासे श्वासे हृदामये। क्षये च गदितं यद्यद् भेषजं तत्प्रयोजयेत् ॥ १३ ॥

श्वयथु (सूजन), मूत्रकृच्छ्र, खाँसी, श्वास, हृदयरोग और क्षयरोग में जो-जो औषधियाँ कही हैं वे ही उरस्तोय रोग में देना चाहिए ॥ १३ ॥

शस्त्रावचारण विधि।

नैवं व्याधिः शमं यायान्निखिलैर्यदि कर्मभिः। कुर्याच्छस्त्रक्रियां तर्हि लघुहस्तो भिषग्वरः ॥ १४ ॥

यदि उपर्युक्त सम्पूर्ण उपायों से भी रोग शान्त न हो तो हलके हाथवाले चतुर (शस्त्रक्रिया में निपुण) वैद्य को शस्त्रकर्म करना चाहिए ॥ १४ ॥

समुद्रवस्त्वोर्मध्ये वा महीध्रग्रहयोरथ। पर्शुकारथ्नोर्ग्र हृदिशोः शस्त्रं नाम त्रिकू-

र्चकम् ॥ १५ ॥ प्रवेश्यावहितो रक्षन् यकृत् प्लीहानमेव च । निःशेषं निर्हरेदम्बु व्याधिरेवं प्रशाम्यति ॥ १६ ॥

सप्तम और अष्टम, अष्टम और नवम, अथवा नवम और दशम पर्शु का अस्थियों के मध्य में त्रिकूर्चकनाम शस्त्र को प्रविष्ट करके उरस (फेफड़े) का सम्पूर्ण जल निकाल ले । शस्त्रप्रयोग के समय विशेष सावधानी से काम करना चाहिए । जिससे यकृत और प्लीहा पर आघात न लग जाय । इस प्रकार शस्त्रचिकित्सा करने से रोग शान्त हो जाता है ॥ १५-१६ ॥

उरस्तोय रोग में वर्जनीय ।

ततो व्यवायमध्वानं व्यायामं शिशिरं जलम् । अहःस्वापं शुचं क्रोधं त्यजेद्वर्षं गदोत्थितः ॥ १७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामुरस्तोयाधिकारः समाप्तः ।

रोग शान्त हो जाने पर मैथुन, मार्ग चलना, कसरत, ठंडा जल, दिन में सोना, शोक करना और क्रोध करना एक वर्ष तक त्याग देना चाहिए ॥ १७ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां उरस्तोयाधिकारः समाप्तः ।

अथ विसर्पाधिकारः ।

विरेकवमनालेपसेचनास्रविमोक्षणैः । उपाचरेद्यथादोषं विसर्पमविदाहिभिः ॥१॥

प्रारम्भिक अवस्था से ही विसर्प रोग में दोषानुसार विरेचन, वमन, प्रलेप, सेचन, रक्तमोक्षण तथा अविदाही भोजन का प्रयोग करना चाहिए ॥ १ ॥

वातज विसर्प पर लेप ।

रास्ना नीलोत्पलं दारु चन्दनं मधुकं बला । घृतक्षीरयुतो लेपो वातवीसर्पनाशनः ॥ २ ॥

रास्ना, नीलकमल, देवदारु, लालचन्दन, मुलेठी और खरेंटी, इनको महीन पीसकर घृत और दूध में मिलाकर लेप करने से वातज विसर्प नष्ट होता है ॥ २ ॥

पित्तज विसर्प पर लेप ।

कसेरुशृङ्गाटकपद्मगुन्द्रैः सशैवलैः सोत्पलकर्दमैश्च । वस्त्रान्तरैः पित्तकृते विसर्पे लेपो विधेयः सघृतः सुशीतः ॥३॥

कसेरु, सिंघाड़ा, कमल का मूल (भसींडा), शरपत की जड़, शैवार (जल की काई), नीलकमल और कमल की जड़ का कीचड़, इनको महीन पीस ले और घृत मिलाकर कपड़े पर लगाकर पित्तज विसर्प पर लेप करना चाहिए ॥ ३ ॥

प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठापद्मकोशीरचन्दनैः । सयष्टीन्दीवरैः पित्ते क्षीरपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ ४ ॥

पुण्डरिया, मँजीठ, पद्माख, खस, लाल चन्दन, मुलेठी और नीलकमल, इन्हें दूध से पीसकर लेप करने से पैत्तिक विसर्प शान्त होता है ॥ ४ ॥

पित्ते तु पद्मिनीपङ्कं पिष्टं वा शङ्खशैवलम् । गुन्द्रामूलन्तु शुक्तिर्वा गैरिकं च घृतान्वितम् ॥ ५ ॥

पैत्तिक विसर्प में पद्मिनी की जड़ की कीचड़ अथवा शङ्खचूर्ण और शैवाल, मिलोय तथा सीप का चूर्ण अथवा घृतयुक्त गेरू का लेप करना चाहिए ॥ ५ ॥

कफज विसर्प पर लेप ।

आरग्वधस्य पत्राणि त्वचः श्लेष्मविसर्पहा । शिरीषपुष्पकामाची हिता लेपावचूर्णनैः ॥ ६ ॥

अमलतास के पत्ते, लिसोड़े की छाल, सिरस

के फूल, मकोय; इनका लेप और अवचूर्णन करना कफज विसर्प रोग में हितकारी है ॥६॥

त्रिफला पद्मकोशीरसमङ्गाकरवीरकम्। नलमूलमनन्ता च लेपः श्लेष्मविसर्पके ॥ ७ ॥

त्रिफला, पद्माख, खस, लज्जालु (छुई-मुई), कनेर की जड़, नरसल की जड़ और अनन्तमूल; इनको पीसकर लेप देने से कफज विसर्प नष्ट होता है ॥ ७ ॥

दोषसम्मिलनाज्जाते परीसर्पे भिषक् क्रियाम्। तत्तद्दोषप्रशमनीं युक्त्या बुद्ध्वा- वचारयेत् ॥ ८ ॥

द्वन्द्वज तथा त्रिदोषज विसर्प रोग में युक्तिपूर्वक दोषों को जानकर उन उन दोषों को शान्त करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ८ ॥

परिषेकः प्रलेपश्च शस्यते पञ्चवल्कलैः। पद्मकोशीरमधुकैः सर्वत्रापि च चन्दनैः ॥ ९ ॥

बरगद, गूलर, पीपल, पकड़िया और बेत; इनकी छाल के काढ़े का अभिषेक और इनके कल्क का प्रलेप विसर्प में हितकर होता है तथा पद्माख, खस, मुलेठी और लाल चन्दन, इनका अभिषेक और प्रलेप सब प्रकार के विसर्प में हितकर होता है ॥ ९ ॥

दशाङ्ग लेप।

शिरीषयष्टीनतचन्दनैलामांसीहरिद्राद्वयकुष्ठवालैः। लेपो दशाङ्गः सघृतः प्रयोज्यो विसर्पकुष्ठज्वरशोथहारी ॥१०॥

सिरस की छाल, मुलेठी, तगर, लाल चन्दन, छोटी इलायची, जटामासी, हल्दी, दारुहल्दी, कूट, गन्धबाला, इन दस द्रव्यों को बराबर मात्रा में लेकर घृत के साथ मिलाकर लेप करने से विसर्प, कुष्ठ, ज्वर तथा सूजन रोग नष्ट होता है ॥ १० ॥

अमृतादि कषाय।

अमृतवृषपटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं खदिरमसितवेत्रं निम्बपत्रं हरिद्रे। विविधविषविसर्पान् कुष्ठविस्फोटकण्डूरपनयति मसूरीं शीतपित्तं ज्वरञ्च ॥ ११ ॥

गिलोय, अडूसा की छाल, पटोलपत्र, मोथा, सतौना की छाल, खैर की लकड़ी, काला बेत, नीम के पत्ते, हल्दी और दारुहल्दी इनका काढ़ा पीने से अनेक प्रकार के विष-दोष, विसर्प, कुष्ठ, विस्फोटक, खुजली, मसूरिका, शीतपित्त तथा ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

भूनिम्बवासाकटुकापटोलीफलत्रयैश्चन्दननिम्बकैश्च। विसर्पदाहज्वरशोथकण्डूविस्फोटतृष्णावमिनुत्कषायः ॥ १२ ॥

चिरायता, अडूसा की छाल, कुटकी, परवल के पत्ते त्रिफला लाल चन्दन और नीम की छाल का क्वाथ पीने से विसर्प, दाह, ज्वर, शोथ, खुजली, विस्फोटक, तृषा और वमन निवृत्त होते हैं ॥ १२ ॥

कुष्ठामयस्फोटमसूरिकोक्तचिकित्सयाप्याशु हरेद्विसर्पान्। सर्वान् विपक्वान् परिशोध्य धीमान् व्रणक्रमेणोपचरेद्यथोक्रम् ॥ १३ ॥

विसर्प रोग में कुष्ठ, विस्फोटक और मसूरिका रोग के समान चिकित्सा करके रोग को शीघ्र नष्ट करना चाहिए। सब प्रकार के विसर्प के पक जाने पर उसका संशोधन करके व्रण के समान चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १३ ॥

तिक्तवर्गोऽखिलश्चैव पानान्नमविदाहकम्। द्रव्यं शोणितसंशुद्धिकरं चन्दनलेपनम् ॥ १४ ॥ अनुद्वेगकरं कर्म विसर्पे परमं हितम्। विपरीतं विजानीयात् क्लेशदं गदवृद्धिकृत् ॥ १५ ॥

सम्पूर्ण तिक्तवर्ग, अविदाही अन्न पान, रक्तशुद्धिकारक द्रव्य, चन्दन का लेप और उद्वेग नहीं करनेवाले कर्म विसर्प रोग में हितकर होते हैं तथा इसके विपरीत कर्म क्लेश देनेवाले और रोग को बढ़ानेवाले होते हैं ॥ १४-१५ ॥

कालाग्निरुद्र रस ।

सूताभ्रकान्तलौहानां भस्मगन्धकमाक्षिकम् । वन्यकर्कोटिकाद्रावैस्तुल्यं मर्द्यं दिनावधि ॥ १६ ॥ वन्यकर्कोटिकाकन्दे क्षिप्त्वा लिप्त्वा मृदा बहिः । भूधराख्ये पुटे पश्चाद्दिनैकं तद्विपाचयेत् ॥१७॥ दशमांशं विषं योज्यं गुञ्जामात्रन्तु भक्षयेत् । रसः कालाग्निरुद्रोऽयं दशाहेन विसर्पनुत् ॥ पिप्पलीमधुसंयुक्तमनुपानं प्रकल्पयेत् ॥ १८ ॥

पारा, अभ्रकभस्म, कान्तलौहभस्म, गन्धक, स्वर्णमाक्षिक भस्म, इन्हें एकत्र मिला वन्यकर्कोटिका के रस से एक दिन घोटे । तत्पश्चात् वन्यकर्कोटिका के कन्द को खोखलाकर उपर्युक्त चूर्ण भर दे । पुन बाहर मिट्टी का लेप देकर भूधरपुट में एक दिन पकावे । शीतल होने पर औषध को बाहर निकालकर उसका दसवाँ भाग वत्सनाग मिलावे । मात्रा--१ रत्ती । यह रस दश दिन में अर्थात् शीघ्र ही विसर्प को नष्ट करता है । अनुपान--पीपल का चूर्ण आधी रत्ती और शहद ॥ १६- १८ ॥

विसर्प में पथ्य ।

मुद्गा मसूराश्चणकास्तुवर्यो जाङ्गला रसाः । नवनीतं घृतं द्राक्षा दाडिमं कारवेल्लकम् ॥ १६ ॥ वेत्राग्रं कुलकं धात्री खदिरो नागकेशरम् । लाक्षा शिरीषः कर्पूरं तिलचन्दनलेपनम् ॥ २० ॥ रक्तशुद्धिकरं तिक्तं पानान्नमविदाहि च । अनुद्वेगकरं यत्स्यात्तच्च सेव्यं विसर्पिभिः ॥ २१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां विसर्पाधिकारः समाप्तः ।

मूँग, मसूर, चने, अरहर, जाङ्गल पशुपक्षियों के मांस का रस, मक्खन, घी, अंगूर, अनार, करेला, बेत की कोंपल, पटोलफल, आँवला, खैर की लकड़ी अथवा कत्था, नागकेशर, लाख, सिरस, कपूर, तिल एवं चन्दन का लेप, रक्तशोधक द्रव्य, तिक्तद्रव्य, अविदाहि भोजन एवं पेय पदार्थ तथा जो द्रव्य उत्तेजक न हो उनका विसर्पपीड़ित को सेवन करना चाहिए ॥ १६--२१ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधाया व्याख्यायां विसर्पाधिकार समाप्त ।

अथ पारदविकाराधिकारः ।

पारदविकार ।

शुद्धसूतोऽमृतं साक्षादशुद्धस्तु रसो विषम् । अयुक्तियुक्तो रोगाय युक्तियुक्तो रसायनः ॥ १ ॥ विधिवत् सेव्यमानोऽयं निहन्ति सकलामयान् । तस्य मिश्रोपचारेण भवन्त्येते महागदाः ॥ २ ॥ पीनसो नासिकाभङ्गो दन्तपातः शिरोरुजा । भगन्दरो विसर्पश्च नेत्ररोगो मुखामयाः ॥ ३ ॥ कोठः कण्डूस्त्वग्वैवर्ण्यं क्षतञ्च नासिकादिषु । कुष्ठोपदंशकाठिन्यं सरुजं फलकोषयोः ॥४॥ पक्षाघातो ग्रन्थिवातः मदाहोऽस्थ्नांञ्च दारुणः । जाड्यं मनोविकारश्च सर्वे कृच्छ्रतमामयाः ॥ ५ ॥

शुद्ध पारद साक्षात् अमृत के समान है। अशुद्ध पारद विष के समान है, और विधिहीन सेवन करने से रोग उत्पन्न करनेवाला है । विधिपूर्वक सेवन करने से रसायन है । तथा सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करता है । पारद के मिश्रण का अनुचित उपयोग करने से इतने महान् रोग उत्पन्न होते हैं—पीनस, नासिकाभङ्ग (नाक का बैठ जाना), दाँतों का गिर जाना, शिर में शूल, भगन्दर, विसर्प, नेत्ररोग, मुखरोग (मुँह के मसूढ़े फूल

जाना), चकत्ते, खुजली, शरीर के रंग का विवर्ण हो जाना, नासिका आदि में घाव हो जाना, कोढ़, अण्डकोष और इन्द्रिय में कष्टयुक्त कठिन उपदंश, पक्षाघात, ग्रन्थिवात, अस्थियों में कठिन प्रदाह (हड्डियों में जलन), जड़ता और मानसिक विकार। ये सब कृच्छ्रसाध्य (कठिनता से आराम होनेवाले) विकार हैं ॥ १-५ ॥

अहन्यहनि सेवेत वल्लिं रक्तिचतुष्टयम् । शुद्धगन्धादृते नास्ति भेषजं किञ्चिदुत्तमम् ॥ ६ ॥

पारे के सेवन से उत्पन्न हुए रोग में शुद्ध गन्धक चार-चार रत्ती प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उत्तम ओषधि कोई नहीं है ॥ ६ ॥

त्रिफलादि क्वाथ।

त्रिफलाकटुकाभीरुपटोलामृतपर्पटम् । क्वाथं पीत्वा जयेज्जन्तुरोगं दुष्टरसोद्भवम् ॥ ७ ॥

त्रिफला, कुटकी, शतावरी, परवल, गिलोय और पित्तपापड़ा; इनका काढ़ा करके पीने से दुष्ट पारा से उत्पन्न हुए रोग नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

सारिवादि क्वाथ।

सारिवालम्बुषा श्यामा गुडूची च हरीतकी। कटुकी काकमाची च जीवन्ती सशतावरी ॥ ८ ॥ बृहतीफलश्चामलकं बिल्वं संक्वाथयेद्भिषक् । अस्य प्रयोगान्नश्यन्ति विकाराः पारदोत्थिताः ॥ ९ ॥

अनन्तमूल, गोरखमुण्डी, श्यामालता, गिलोय, हड़, कुटकी, मकोय, जीवन्ती, शतावर बड़ी कटेरी, आँवला, बेलगिरी, इनके क्वाथ के प्रयोग से पारदजन्य विकार नष्ट होते हैं ॥८-९॥

उद्गारो सति दध्यन्नं कृष्णमीनं सजीरकम् । अभ्यङ्गमनिलक्षोभे तैलैर्नारायणादिभिः ॥ १० ॥ अरतौ शीततोयेन मस्तकोपरिसेचनम् । तृष्णायां नारिकेलाम्बुमुद्गयूषं सशर्करम् ॥ ११ ॥

पारे के सेवन से यदि उद्गार हों तो दही, चावल और जीरकसंस्कृत कृष्णमत्स्य का सेवन करना चाहिए। यदि वात का क्षोभ हुआ हो तो नारायण तैल आदि की मालिश करनी चाहिए। यदि अरति हो तो मस्तक पर शीतल जल का परिषेक करना चाहिए। प्यास लगे तो नारियल का जल तथा शर्करायुक्त मूँग का यूष पीना चाहिए ॥ १०-११ ॥

सारिवाद्यवलेह।

सारिवायाः पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् । तस्मिन् पादावशेषे तु गुडूची शतमूलिका ॥ १२ ॥ विदारी जीवनी त्रिवृन्मुण्डी च त्रिफला तथा । क्षुद्रैला चोपचीनी च प्रत्येकार्द्धपलं मतम् ॥ १३ ॥ सुपिष्टं निक्षिपेत्तत्र शीते मधु पलाष्टकम् । क्षीरानुपानयोगेन पिबेत् तोलकसम्मितम् ॥ १४ ॥ प्रमेहारचोपदंशश्च मूत्रकृच्छ्रं च पीडकाः । नश्यन्ति त्वपरे रोगा रक्तदुष्ट्या भवन्ति ये ॥१५॥ सूतोत्थविकृतिश्चापि सन्देहो नात्र कश्चन। मुक्तश्च सर्वरोगेभ्यो बलवर्णाग्निसंयुतः ॥ १६ ॥ मानवः सिद्धकामोऽस्मात् शीघ्रं भवति निश्चितम् ॥ १७ ॥

५ सेर सारिवा को २५ सेर ४८ तोले जल में पकावे चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर मिट्टी के पात्र में डाल दे। फिर गिलोय, शतावर, विदारीकन्द, जीवन्ती, मुण्डी, त्रिफला, छोटी इलायची, चोपचीनी, प्रत्येक दो-दो तोले। बारीक तरह चूर्ण करके उसी में डाल दे। जब पककर लेह के समान हो जाय तब ३२ तोले शहद भी उसमें डाल दे। इसे एक तोला की मात्रा में दूध के साथ सेवन करना चाहिए। यह सारिवादि अवलेह प्रमेह, उपदंश, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेहपिडिका

और रुधिरविकार से उत्पन्न रोगों को शान्त करता तथा पारद सेवन से उत्पन्न विकारों को निस्सन्देह नष्ट करता है। यह अवलेह सब रोगों से स्वस्थ करके बल, वर्ण और अग्नियुक्त करता है। इस प्रयोग से मनुष्य सिद्ध काम हो जाता है॥ १२--१७॥

पारदविकृतिनाशक अन्य औषधि।

वातशोणितकुष्ठोक्तं क्वाथगुग्गुलुकादिकम्। सारिवाद्यवलेहं च वातरक्तान्तकं च यत्॥ १८॥ तत्सर्वं योजयेद्वैद्यो ज्ञात्वा व्याधेर्बलाबलम्। महारुद्रगुडूच्याख्यं कन्दर्पसारनामकम्॥ १९॥ व्रणराक्षसतैलं च नाडीव्रणनिसूदनम्। तैलं बृहन्मरीचाद्यं यथायोग्यं प्रकल्पयेत्॥ २०॥

वातरक्त एवम् कुष्ट रोग में वर्णन किये गए क्वाथ, गुग्गुल रस आदि एव सारिवादि अवलेह तथा वातरक्तान्तक का सेवन करना पारदविकार में लाभप्रद होता है। अथवा रोग का बलाबल देखकर महारुद्रगुडूची, कन्दर्पसार, नाडीव्रणनाशक व्रणराक्षस तैल और बृहन्मरीचाद्य तैल का यथायोग्य प्रयोग करना चाहिए॥१८-२०॥

पथ्यापथ्य।

वातरक्ते तथा कुष्ठे पथ्यानि यानि तानि च। शिवतेजोभवे रोगे निर्दिशेत् कुशलो भिषक्॥ २१॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां पारदविकाराधिकारः समाप्तः।

वातरक्त तथा कुष्टरोग में जो-जो पथ्य बताये गये हैं, वे-वे पथ्य पारा के विकार से उत्पन्न रोग में देने चाहिए॥ २१॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां पारदविकाराधिकारः समाप्त।

अथ विस्फोटाधिकारः।

विस्फोटक की सामान्य चिकित्सा।

विस्फोटे लङ्घनं कार्यं वमनं पथ्यभोजनम्। यथादोषबलं वीक्ष्य युक्तमुक्तं विरेचनम्॥ १॥

विस्फोटक रोग में दोष का बलाबल देखकर वमन, विरेचन और पथ्य भोजन देना चाहिए॥ १॥

गुडूचीनिम्बजक्वाथैः खदिरेन्द्रयवाम्बुना। कर्पूरत्रिसुगन्धिभ्यां युक्तं सूतं द्विगुञ्जकम्॥ विस्फोटं त्वरितं हन्याद् वायुर्जलधरानिव॥ २॥

रससिन्दूर, कपूर, त्रिसुगन्धि (दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात) इन सबको मिलाकर चूर्ण कर इस चूर्ण को गिलोय तथा नीम की छाल के क्वाथ से अथवा खैर की लकड़ी और इन्द्रजौ के क्वाथ से सेवन कराना चाहिए। मात्रा—२ रत्ती। इसके सेवन से विस्फोटक रोग शीघ्र शान्त होता है॥ २॥

वातज विस्फोटक की चिकित्सा।

द्वे पञ्चमूल्यौ रास्ना च दार्व्युशीरं दुरालभा। गुडूची धान्यकं मुस्तमेषां क्वाथं पिबेन्नरः॥ विस्फोटान् नाशयत्याशु समीरणनिमित्तकान्॥ ३॥

दशमूल, रास्ना, दारुहल्दी, खस, जवासा, गिलोय, धनियाँ और नागरमोथा, इनका काढ़ा वातज विस्फोटक रोग को शीघ्र ही नष्ट करता है॥ ३॥

पित्तज विस्फोटक की चिकित्सा।

द्राक्षाकाश्मर्यखर्जूरपटोलारिष्टवासकैः। कटुकालाजदुःस्पर्शैः सितायुक्तं तु पैत्तिके॥ ४॥

पैत्तिक विस्फोटक रोग में मुनक्का, गंभारी,

पित्तज्वर, परवल के पत्ते, नीम की छाल, अरूसा की छाल, कुटकी, धान की खीलें (लावा) और जवासा; इनके काढ़े में मिश्री डालकर पीना हितकर होता है ॥ ५ ॥

कफजविस्फोटक की चिकित्सा।

भूनिम्बसप्तवासात्रिफलेन्द्रजवत्सकैः। पिचुमर्दपटोलाभ्यां कफजे मधुयुक् मृतम् ॥ ५ ॥

चिरायता, वच, अरूसा की छाल, त्रिफला, इन्द्रजौ, कुड़ा की छाल, नीम की छाल और परवल के पत्तों का काढ़ा शहद डालकर पीने से कफज विस्फोटक रोग शान्त होता है ॥ २ ॥

सर्वविस्फोटनाशक द्वादशाङ्ग क्वाथ।

किराततिक्तकारिष्टयष्ट्याह्वाम्बुदवासकैः॥ ६ ॥ पटोलपर्पटोशीरत्रिफलाकौटजान्वितैः। कथितैर्द्वादशाङ्गं तु सर्वविस्फोटनाशनम् ॥ ७ ॥

चिरायता, कुटकी, नीम की छाल, मुलेठी, नागरमोथा, अरूसा की छाल, परवल के पत्ते, पित्तपापड़ा, खस, त्रिफला और इन्द्रजौ, इन बारह औषधों को समभाग लेकर २ तोले का काढ़ाकर पीने से सब प्रकार के विस्फोटक शान्त होते हैं ॥ ६-७ ॥

विस्फोटव्याधिनाशाय तण्डुलाम्बुप्रयोजितैः। बीजैः कुटजवृक्षस्य लेपः कार्यो विजानता ॥ ८ ॥

विस्फोटक रोग के नाश के लिए इन्द्रजौ को तण्डुलोदक में पीसकर लेप करना चाहिए ॥८॥

छिन्नापटोलभूनिम्बवासकारिष्टपर्पटैः। खदिराब्दयुतैः क्वाथो हन्ति विस्फोटकज्वरम् ॥ ९ ॥

गिलोय, परवल के पत्ते, चिरायता, अरूसा की छाल, नीम की छाल, पित्तपापड़ा, कत्था और मोथा इनका काढ़ा पीने से विस्फोटक और विस्फोटक से उत्पन्न ज्वर नष्ट होता है ॥ ९ ॥

चन्दनं नागपुष्पं च सारिवा तण्डुलीयकम्। शिरीषवल्कलं जाती लेपः स्याद्दाहनाशनः ॥ १० ॥

चन्दन, नागकेशर, अनन्तमूल, चौलाई, सिरस की छाल और चमेली के पत्ते; इनको पीसकर लेप करने से विस्फोटकदाह शान्त होता है ॥ १० ॥

उत्पलं चन्दनं लोध्रमुशीरं सारिवाद्वयम्। एतेषां लेपनादाशु स्फोटदाहः प्रशाम्यति ॥ ११ ॥

कमल, लाल चन्दन, लोध, खस, अनन्तमूल और काली सारिवा; इनका लेप करने से विस्फोटकदाह शीघ्र शान्त होता है ॥ ११ ॥

रक्तदोषहरं यद्यद् यच्च पित्तप्रणाशनम्। सर्वमत्र प्रयोक्तव्यं विविच्य भिषजा सदा ॥ १२ ॥

जो जो द्रव्य रक्तदोषनाशक तथा पित्तनाशक हो उसका विचारपूर्वक विस्फोटक रोग में प्रयोग करना चाहिए ॥ १२ ॥

पुत्रजीवस्य मज्जानं जले पिष्ट्वा प्रलेपयेत्। कालस्फोटं च विस्फोटं सद्यो हन्ति सवेदनम् ॥ कफग्रन्थिगलग्रन्थिकर्णग्रन्थींश्च नाशयेत् ॥ १३ ॥

जियापोता की मींगी को जल में पीसकर लेप करने से वेदनायुक्त काले फोड़े और विस्फोटक शीघ्र नष्ट होते हैं। यह लेप कफ की गाँठ, गले की गाँठ और कान की गाँठ को भी नष्ट करता है ॥ १३ ॥

शिरीषमूलमञ्जिष्ठाचव्यामलकयष्टिकाः। सजातीपल्लवक्षौद्रा विस्फोटे कवलग्रहाः ॥ १४ ॥

सिरस की जड़ की छाल, मँजीठ, चव्य, आँवला, मुलेठी और चमेली के पत्ते, इनको

पीसकर और शहद मिलाकर कवल धारण करने से मुँह के छाले नष्ट होते हैं ॥ १४ ॥

शिरीषोशीरनागाह्वहिंस्रातिलेपनाद्द्रुतम्। विसर्पविषविस्फोटाः प्रशाम्यन्ति न संशयः ॥ १५ ॥

सिरस की छाल, खस, नागकेशर और हींस इनका लेप करने से विसर्प रोग तथा विषविस्फोटक रोग अवश्य शान्त होता है ॥१५॥

विस्फोटक रोग में पथ्य।

विरेचनं छर्दनलेपलङ्घनं पुरातनाः षष्टिकशालयो यवाः। मुद्गा मसूराश्चणका मकुष्ठका धन्वामिषं गव्यघृतं कठिल्लकम् ॥ १६ ॥ वेत्राग्रमाषाढफलं पटोलकं ज्योतिष्मतीनिम्बदलानि चन्दनम्। तैलं सिताभ्रं तिललेपनं घनं वालं च विस्फोटगदं विनाशयेत् ॥ १७ ॥

विरेचन, वमन, लेप और उपवास आदि कर्म एवं पुराने साँठी के चावल, शालि चावल, जौ, मूँग, मसूर, चना, मोठ, मरुदेश के जीवों का मांस, गौ का घृत, करेला, बेत की कोंपल, पलाश का फल, परवल, मालकांगनी, नीम के पत्ते, लाल चन्दन, तिलतैल, कपूर, तिल का गहरा लेप और सुगन्धबाला; ये सब विस्फोटक रोग को नष्ट करते हैं ॥ १६--१७ ॥

विस्फोटक रोग में अपथ्य।

स्वेदं व्यवायं व्यायामं क्रोधं गुर्वन्नमातपम्। वमिवेगं पत्रशाकं प्रवातं स्वपनं दिवा ॥ १८ ॥ ग्राम्यौदकानूपमांसं विरुद्धान्यशनानि च। तिलान् माषान् कुलत्थांश्च लवणाम्लकटूनि च ॥ १९ ॥ विदाहि रूक्षमुष्णञ्च विस्फोटी परिवर्जयेत् ॥ २० ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां विस्फोटाधिकारः समाप्तः।

स्वेद, मैथुन, व्यायाम, क्रोध, भारी भोजन, धूप खाना, वमन का वेग, पत्रशाक, वायुसेवन, दिन में सोना, ग्राम्य, औदक एवं आनूप मांस विरुद्ध भोजन, तिल, उड़द, कुलथ, नमक, अम्ल एव कटुरस विदाही, रूक्ष तथा गरम भोजन विस्फोटक के रोगी को त्याग करना चाहिए ॥ १८--२० ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां विस्फोटाधिकारः समाप्त।

अथ स्मरोन्मादाधिकारः।

स्मरोन्माद का निदान।

उन्मादो दयिताप्राप्तेः शुक्रस्य विकृतेरपि। जननेन्द्रियदोषाच्च वैगुण्यादनिलस्य च ॥ पुरुषस्य तथा नार्याः स्मरोन्माद इतीरितः ॥ १ ॥

प्रिय के प्राप्त न होने पर, वीर्य के विकार से, जननेन्द्रिय के दोष से और वायु के विकार से पुरुष और स्त्री दोनों के जो उन्माद होता है उसे स्मरोन्माद कहते हैं ॥ १ ॥

स्मरोन्माद के लक्षण।

स्तब्धता वेपनं श्वासः प्रलापः पाण्डुता तथा। चिन्ता धैर्यं रोदनञ्च लक्षणं स्मरजे मदे ॥ २ ॥ चक्षुरागस्तदनु मनसः सङ्गतिर्भावना च व्यावृत्तिः स्यात्तदनु विषयग्रामतश्चेतसोऽपि। निद्राच्छेदस्तदनु तनुता निस्त्रपत्वं ततोऽनून्मादो मूर्च्छा तदनु मरणं स्युर्दशाः प्रक्रमेण ॥३॥

स्मरोन्माद में जकड़ जाना, काँपना, श्वास बढ़ जाना, प्रलाप, पाण्डुता (पीलापन), चिन्ता, अधैर्य (घबराना), रोना, आँखों का लाल हो जाना, मन का व्याकुल रहना, शरीर की क्रियाओं में कमी होना, मन का विषय-वासनाओं में दौड़ना, निद्रा की कमी,

शरीर का कृश हो जाना तथा मूर्च्छा आना आदि विकार होकर रोगी की मृत्यु भी हो जाती है ॥ २--३ ॥

प्रियाणामथ काम्यानां वस्तूनां सहसैव हि। असद्भावान्नराणां वासंक्रान्तानां स्मरेण च ॥ जायते हि स्मरोन्मादः प्रियस्याप्राप्तिहेतुतः ॥ ४ ॥

प्रिय एवं इच्छित वस्तुओं के सहसा अभाव से अथवा कामाक्रान्त पुरुषों को प्रिय या प्रिया की अप्राप्ति से स्मरोन्माद पैदा हो जाता है ॥४॥

प्रियमेलनमेवैकं स्मरोन्मादस्य भेषजम्। उन्मादो यत्कृते तत्र क्रोधोत्पादनमेव वा ॥ ५ ॥

स्मरोन्माद (कामोन्माद) की एक यही औषधि है कि प्रियजन से या प्रियतम से मिला दे। अथवा प्रिय वस्तु की प्राप्ति करा दे या जिसके कारण उन्माद पैदा हुआ हो उस पर किसी प्रकार क्रोध उत्पन्न करा दे ॥ ५ ॥

अभयादिचूर्ण

अभया त्रिवृता द्राक्षा कुटजस्य फलं वचा। इन्द्रवारुणिकामूलं पिप्पली गजपिप्पली ॥ ६ ॥ सुरभियं विषा वह्निः शशाङ्कः सूर्य एव च। एतच्चूर्णं पिबेन्नित्यं स्मरोन्मादनिवृत्तये ॥ ७ ॥

हड़, निसोत, मुनक्का, इन्द्रजौ, वच, इन्द्रायण की जड़, पीपरि, गजपीपरि, कबाबचीनी, अतीस, चीता की जड़, कपूर और आक की जड़, इनके सम भाग चूर्ण का नित्य सेवन करने से कामोन्माद शान्त होता है ॥ ६ ७ ॥

स्मरोन्मादापहा प्रोक्ता सेवितर्तुहरीतकी ॥ ८ ॥

ऋतुओं के अनुसार अनुपान-भेद से हड़ का (रसायनाधिकारोक्त ऋतुहरीतकी का) सेवन करने से कामोन्माद निवृत्त होता है ॥ ८ ॥

मेदोहृद्भेषजं यच्च यत् कफस्य निवारकम्। स्मरोन्मादे प्रयोक्तव्यं तत्तद्बुद्ध्वा भिषग्वरैः ॥ ९ ॥

मेद को हरण करनेवाली तथा कफनाशक औषधियाँ कामोन्माद में दोषानुसार विचारकर देना चाहिए ॥ ९ ॥

हितं प्रकीर्त्तितं चात्र शुक्रमेहघ्नमौषधम् ॥ १० ॥

शुक्रप्रमेहनाशक औषधियाँ भी कामोन्माद में हितकर कही हैं ॥ १० ॥

स्मरोन्माद में पथ्य।

वातानुलोमनं यच्च सुपाच्यं वह्निदीपनम्। अन्नान्नं योजयेत् प्राज्ञो विपरीतं विवर्जयेत् ॥ ११ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां स्मरोन्मादाधिकारः समाप्तः।

वातानुलोमनकारी तथा जल्दी पचनेवाला एवं अग्नि दीपन करनेवाला अन्न देना चाहिए तथा इसके विपरीत पदार्थों का त्याग करना चाहिए ॥ ११ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्याया स्मरोन्मादाधिकारः समाप्तः।

अथ गदोद्वेगाधिकारः।

गदोद्वेग की परिभाषा।

विना व्याधिं व्याधिशङ्का गदोद्वेग इतीरितः पदार्थत्वाभावचत्त्वादपदार्थगदश्च सः ॥ १ ॥

जिस प्रकार बिना पदार्थ की उपस्थिति के भी उस पदार्थ के अस्तित्व का अनुभव करना उसी प्रकार बिना रोग के रोग की शंका करना (रोगी समझता है मैं बीमार हूँ) इसी को गदोद्वेग रोग कहा है ॥ १ ॥

अपदार्थगद का निदान।

कायेन मनसा भूयान् श्रमः शोको बलक्षयः। नैराश्यं मानहानिश्च गदोद्वेगो महाभयम् ॥ २ ॥ दुरदृष्टं वीजदोषः सत्त्वस्याभाव एव च। अपदार्थगदस्यैते हेतवः कथिता बुधैः ॥ ३ ॥

शारीरिक या मानसिक श्रम, शोक, बलक्षय, निराशा, मानहानि (कहीं अपमान हुआ हो), दैवदोष, वीर्यविकार और ओज के अभाव से अपदार्थगद (गदोद्वेग) रोग उत्पन्न होता है ॥ २-३ ॥

गदोद्वेग के लक्षण।

अद्भुतस्य गदास्यास्य लक्षणान्यद्भुतानि च। कोऽप्येवं मन्यते नूनमुदरं भुजगोऽविशत् ॥ ४ ॥ कोष्ठे भ्रमत्यसौ नित्यं भुङ्क्ते यद्भुज्यते मया। निर्यास्यति पथा केन केनोपायेन नङ्क्ष्यति ॥ ५ ॥ किं विधास्यति ना जाने दश्येवाहं दुरात्मना। कोऽपि वा मनुते भेको ममैको मूर्ध्नि संस्थितः ॥६॥ विघट्टयति मस्तिष्कं मारयिष्यति मां ध्रुवम्। कोऽपीत्थं चिन्तयेच्चित्रं कायः काचमयो मम ॥ ७ ॥ सञ्जातोऽयमतो रक्ष्यः सदाघातात् प्रयत्नतः। इत्येवं बहुरूपाभिर्व्यर्थचिन्ताभिराकुलः ॥ ८॥ अपदार्थगदी शुष्येत् सदा भीतः सदा सुखी। बहुधा बोधितोऽप्येष सान्त्वितोऽपि पुनः पुनः ॥ ९ ॥ चित्ताद् भ्रमं दूरीकर्तुं न शक्नोति न साध्वसम्। यश्चास्य कथयेद्भ्रान्तिं तस्मै द्रुह्यात नित्यशः॥१०॥ प्रीयते च गदोद्वेगी व्याधेः सत्त्वात्त्ववादिनि। गदोद्वेगवता कोष्ठे कस्मिंश्चिदनुभूयते ॥ ११ ॥ सुतीव्रा वेदना प्रायः पाककोष्ठे विशेषतः। जिह्वा स्यात् कफलिप्तास्य पूतिः श्वासो निरेतिच ॥१२॥ उत्क्लेशश्च तथा वान्तिरित्थञ्च जीर्णलक्षणम्। मान्द्यं स्पर्शशक्तेश्च पाण्डुत्वमुदरामयः ॥१३॥ हृदि सांघातिको व्याधिः केन वाप्यनुभूयते। गदोद्वेगवतान्येन पुरुषत्वस्य संक्षयः ॥ १४ ॥ ज्वरः सततकोऽन्येन दुष्प्रतीकार्य एव च। किमाश्चर्यं वेपनाद्यं जायते च तदा तदा ॥ १५ ॥ इत्थं बहुविधाकारा व्याधयः कल्पनाकृताः। भ्रमरूपा प्रजायन्ते निःसत्त्वानाममेदसाम् ॥ १६ ॥ शक्यन्ते व्याधयो वक्तुं नैते निरवशेषतः। बुद्धिमद्भिर्लक्षणीया यथास्तं दोषलक्ष्म च ॥ १७ ॥ प्रायशः षोडशादर्वाक् च पञ्चाशतः परम्। व्याधिरेष भवत्येव हेतुस्तत्र मनोगतिः ॥ १८ ॥ मासि मासि रजःस्रावात् सर्वे शुध्यन्ति धातवः। अतः स्नायुगदः स्त्रीणामेष प्रायो न जायते ॥ १९ ॥

यह रोग अद्भुत है और इसके लक्षण भी अद्भुत हैं। कोई रोगी यह समझता है कि पेट में साँप बैठा है, जो कोष्ठ में घूमता है और जो कुछ मैं खाता हूँ उसे खा जाता है। यह किस रास्ते से निकलेगा और किस उपाय से मरेगा? क्या होगा? मुझे वह पापी काट तो न खायेगा! कोई समझता है कि मेरे सिर में मेंढक बैठा है जो मेरे मस्तिष्क को फोड़ता है, वह मुझे अवश्य मार डालेगा। कोई व्यक्ति इस प्रकार सोचता है कि मेरा शरीर काँच का बना हुआ है, इसलिए इसकी सदैव ही आघात (चोट-धक्का) से रक्षा करनी चाहिए। इस प्रकार अनेक प्रकार के रोगों की आशंका से व्यर्थ चिन्तित होता है और रोगी सदैव भयभीत और दुखी रहता हुआ सूखता चला जाता

है। बहुधा बार-बार सांत्वना देने पर रोगी को ज्ञान भी हो जाता है। चित्त से भ्रम दूर होने की कोशिश करने पर भी थोडी देर को भ्रम दूर होकर फिर हो जाता है । यदि उससे कहा जाय कि यह रोग तुम्हें नहीं है तो वह उस व्यक्ति से वैर करने लगता है । रोगी अपने अनुकूल कहनेवाले से ही प्रसन्न रहता है। गदोद्वेग का रोगी कभी कभी पेट में दर्द का अनुभव करता है। प्रायः आमाशय में तीव्र वेदना होती है। जीभ कफ से लिपी रहती है और श्वास में दुर्गन्ध भी आती है । उत्क्लेश (उपकाइयाँ) और वमन होना इस रोग के पुराने होने के लक्षण हैं । स्पर्शशक्ति में खरता, पीलापन और उदरामय भी हो जाता है। कोई २ रोगी हृदय में सांघातिक व्याधि का और कोई पुरुषत्व का क्षय तथा कोई रोगी तीव्र चढ़े हुए ज्वर का अनुभव करता है और बारबार कांपता है। ओज और बुद्धिहीन रोगियों के इसी प्रकार की बहुत सी भ्रमरूप कल्पना की हुई व्याधियाँ पैदा हो जाती हैं। सब व्याधियों का वर्णन करना कठिन है, अतः बुद्धिमान् दोषानुसार लक्षणों से जान सकता है। यह रोग प्रायः सोलह वर्ष से पहिले और पचास वर्ष के बाद नहीं होता है। इसका कारण मन की गति ही है। स्त्रियों की सब धातुएं प्रतिमास रजःस्राव होने के कारण शुद्ध हो जाती हैं, इसलिये स्त्रियों के यह रोग नहीं होता है ॥ ४-१९ ॥

गदोद्वेग की संप्राप्ति ।

मनसोऽत्यन्तदौर्बल्यान्मस्तिष्कस्यातिसम्भ्रमात् । स्त्रीणामतिप्रसङ्गाच्चध्वजभङ्गात्तथैव वा । मिथ्याकाल्पनिको व्याधिर्गदोद्वेग इति स्मृतः ॥ २० ॥

मन तथा मस्तिष्क की दुर्बलता के कारण अत्यन्त मैथुन और ध्वजभङ्ग से पैदा होनेवाली मिथ्या काल्पनिक व्याधि को गदोद्वेग कहते हैं। अर्थात् इसके रोगी को वस्तुतः कोई व्याधि नहीं होती, पर हृदय और मस्तिष्क आदि की दुर्बलता के कारण वह अपने को अनेक व्याधियों से ग्रस्त समझता है ॥ २० ॥

सान्त्वनाश्वासनस्नेहहर्षणैः परिचर्यया। अपदार्थगदाक्रान्तं चिकित्सेत् तर्पणेन च ॥ २१ ॥

अपदार्थ (गदोद्वेग) रोग से पीड़ित मनुष्य की सान्त्वना, आश्वासन प्यार, प्रसन्नता की बातें सेवा और तृप्त करनेवाले उपायों से चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २१ ॥

पाचनं वह्निकृद् यच्च यद् वातस्यानुलोमनम् । पित्तघ्नमातिकफकृत् तद् युञ्ज्याद्त्र भेषजम् ॥ २२ ॥

पाचक, जठराग्नि को तेज करनेवाली, वायु को अनुलोमन करनेवाली, पित्तनाशक और अधिक कफ न करनेवाली ओषधियाँ इस रोग में देनी चाहिए ॥ २२ ॥

वातव्याध्युदितान्यत्र तैलानि च घृतानि च । युक्त्या युञ्ज्याद्भिषक् प्राज्ञो भेषजं च रसायनम् ॥ २३ ॥

बुद्धिमान् को चाहिए कि वातरोग में कहे हुए तेल, घृत और रसायन इस रोग में युक्तिपूर्वक सेवन करावे ॥ २३ ॥

गदो मिथ्येति न वदेद्भिषगस्य कदाचन। स यद्ब्रवीति वृत्तान्तं शृणुयादरधानवान् ॥ २४ ॥ हृद्यं स्निग्धं च पानान्नमुपाच्यं देहपोषणम् । अपदार्थगदे भोज्यं शुभायान्यत्रशर्मणे ॥ २५ ॥

गदोद्वेगी को कभी यह न कहना चाहिए कि यह रोग मिथ्या (झूठा) है। जो कुछ रोगी कहे उसको सावधानी से सुनना चाहिए । हृदय को हितकारक, चिकने, अच्छे प्रकार पचनेवाले, तथा देह पुष्ट करनेवाले अन्नपान गदोद्वेग में कल्याणकारक कहे हैं। अन्य प्रयोग हितकर नहीं हैं ॥ ॥ २४-२५ ॥

यमान्यादिचूर्ण ।

यमानी पिप्पली शुण्ठी चातुर्जातं फलत्रयम् । मुशली चोरपुष्पी च वाजिगन्धा पुनर्नवा ॥ २६ ॥ अष्टवर्गस्तुगाक्षीरी मुरागुरुबलाबलाः । उशीरोत्पलमांस्यश्च विदारी चन्दनद्वयम् ॥ २७ ॥ शतपुष्पा मधुरिका सर्वाण्येतानि चूर्णयेत् । पाययेत् पयसालोड्य शर्करासलिलेन वा ॥ २८ ॥ गदोद्वेगं वह्निमान्द्यमुन्मादं वातजान् गदान् । पित्तोत्थितानपि क्लैब्यं चूर्णमेतद् विनाशयेत् ॥ २९ ॥

अजवायन, पीपरि, सोंठ इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, हड़, बहेड़ा, आँवला, मुसली, चोरपुष्पी, असगन्ध, गदापुरैना (सोंठी), अष्टवर्ग (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, काकोली, क्षीरकाकोली), वंशलोचन, मुरामासी, अगर, खरैटी, रास नील कमल, जटामांसी, विदारीकन्द, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, सोया के बीज और सौंफ इनको सम भाग लेकर चूर्ण बनावे। दूध में घोलकर अथवा शकर और जल में मिलाकर इसका सेवन करे। यह चूर्ण गदोद्वेग, अग्निमान्द्य, उन्माद, वात और पित्त के रोग तथा नपुंसकता को नष्ट करता है ॥ २६-२९ ॥

क्षीरोदधिरस।

रसं गन्धकमभ्रं च शिलाजत्वयसी शुभाम् । रसार्द्धमानं स्वर्णं च गृहकन्याम्बुना भिषक् ॥ ३० ॥ मर्दयित्वा वटीः कुर्यात् कलायपरिमाणतः । त्रिफलाजलयोगेन प्रातः सायं च पाययेत् ॥ ३१ ॥ गदोद्वेगं महाघोरं रक्तपित्तं क्षतं क्षयम् । प्रमेहं वातजान् रोगान् कामलां च हलीमकम् ॥ ३२ ॥ पाण्डुतां च ज्वरं जीर्णमर्शांसि निखिलानि च । रसः क्षीरोदधिर्नाम निहन्यान्नात्र संशयः ॥ ३३ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म, शिलाजीत, लोहभस्म और वंशलोचन सब सम भाग। पारा से आधी स्वर्णभस्म। सबको एकत्र कर घीकुवार के रस से घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना ले। त्रिफला के जल से प्रात और सायंकाल इसका सेवन करना चाहिए। यह क्षीरोदधि नाम का रस महाघोर गदोद्वेग, रक्तपित्त, क्षत, क्षयीरोग, प्रमेह, वातरोग कामला, हलीमक, पाण्डुरोग, जीर्णज्वर और सब प्रकार की बवासीरों को निःसन्देह नष्ट करता है ॥ ३०-३३ ॥

गन्धराजतैल।

मालती मल्लिका जाती केतकी यूथिका शमी । कदम्बः सहकारश्च चम्पकाशोकपाटलाः ॥ ३४ ॥ पुष्पाण्येषां यथालाभं तुलामानानि चाहरेत् । द्रोणाम्बुना विनिष्क्वाथ्य पादशिष्टेऽवतारयेत् ३५ क्वाथमेतं रसं चापि पुण्डरीकस्य तत्समम् । प्रस्थमानेन तैलेन पचेत् कल्कानिमांस्तथा ॥ ३६ ॥ वचा शैलेकुष्ठैला मुरामांसी शतावरी । देवदारु बला रास्ना शताह्वा चन्दनद्वयम् ॥ ३७ ॥ कुंकुमागुरुशट्यश्च कक्कोलोशीरमारिषाः । ग्रन्थिपर्ण्यम्बुभृच्छ्यामारचाम्पेयसहिताइति ३८ साधुसिद्धं परिज्ञाय तैलं समवतारयेत् । शीतीभूते क्षिपेत्पात्र शीतशिल्हकमोदिनी ॥ ३९ ॥ गन्धराजाभिधं तैलमेतद् व्याध्यभिशाङ्कनम् । वातामयान् घोररूपान् कार्श्यमग्निक्षयं तथा ॥ ४० ॥ क्लैब्यं च शुक्रमेहं च स्नायुरोगांश्च नाशयेत् । बालानां पुष्टिकृच्चेदं गर्भसंस्थापनं परम् ४१

इतिभैषज्यरत्नावल्यां गदोद्वेगाधिकारः समाप्तः ।

मालती, मोतिया (बेला), चमेली, केतकी, जूही, शमी, कदम्ब, आम, चम्पा, अशोक और पादर; इन सबके फूल समभाग मिलित २ सेर, क्वाथ के लिए जल २५ सेर ४८ तोले, अवशेष क्वाथ ६ सेर ३२ तोले। पुंडरिया का रस ६ सेर ३२ तोले। तिल तेल १२८ तोले। कल्क के लिये वच, छारछरीला, कूट, छोटी इलायची, मुरामांसी, शतावरी, देवदारु, बरियारा (खरेटी), रास्ना, सौंफ, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, केसर, अगर, बघूर, कंकोल, खस, अनन्तमूल, गठिवन, मोथा, काली सारिवा और चम्पा के फूल; सब मिलित ३२ तोले यथाविधि; सिद्ध कर नीचे उतार ले। शीतल हो जाने पर कपूर, छारछरीला और कस्तूरी अनुमान से छोड़कर मिला ले। व्याधियों को नष्ट करनेवाला यह गन्धराज तेल मालिश करने से प्रचण्ड वातरोग, कृशता, अग्निमान्द्य, नपुंसकता, शुक्रमेह और स्नायुरोगों का नष्ट करता है। बालकों को पुष्ट करनेवाला तथा स्त्रियों के गर्भ स्थापन करनेवाला है॥ ३४-४१॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां गदोद्वेगाधिकारः समाप्तः।

अथ तत्त्वोन्मादाधिकारः।

स्नायुस्थैर्यकरं यद्यत् तथा वातानुलोमनम्। भेषजं पानमन्नं च तत्तदत्र प्रयोजयेत्॥ १॥

स्नायुओं को स्थिर करनेवाले तथा वायु को अनुलोमन करनेवाले औषध और अन्न-पान तत्त्वोन्माद रोग में देना चाहिए॥ १॥

श्रीखण्डादिचूर्ण।

श्रीखण्डं सारिवां श्यामां मुशलीं मधुकं विडम्। फलत्रयं निशाद्वन्द्वमुत्पलं नागकेशरम्॥ २॥ मांसीमिन्दुरकं वालमुशीरं गिरिमृत्तिकाम्। बलां नागबलां चैव भिषगेकत्र चूर्णयेत्॥ ३॥ धारोष्णेनैव पयसा शाणमस्य प्रपाययेत्। अनेन नाशमायान्ति तत्त्वोन्मादादयो गदाः॥ ४॥

सफेद चन्दन, अनन्तमूल, काली सारिवा, मुशली, मुलेठी, बिड़ नमक, हड़, बहेड़ा, आँवला, हल्दी, दारुहल्दी, नील कमल, नागकेशर, जटामांसी, कांस की जड़, सुगन्धबाला, खस, गेरू, खरेटी और गंगेरन; इन सबको समभाग लेकर चूर्ण बनावे। ४ माशे चूर्ण धारोष्ण दूध के साथ पीना चाहिए। इससे तत्त्वोन्माद आदि रोग नष्ट होते हैं॥ २-४॥

चैतन्योदयरस।

हेमाभ्रं मौक्तिकं सूतं गन्धकं जतुकायसी। तुगाक्षीरीं शशाङ्कं च भावयित्वा वराम्भसा॥ ५॥ रक्तिमाना वटीः कृत्वा छायायां परिशोषयेत्। शतावर्यम्भसा शान्त्यै तत्त्वोन्मादस्य पाययेत्॥ ६॥

सुवर्णभस्म, अभ्रकभस्म, मोती की भस्म, पारा, गन्धक, लाख, लोहभस्म, वंशलोचन, और कपूर; इनको सम भाग लेकर त्रिफला के जल की भावना दे और एक-एक रत्ती की गोलियां बनाकर छाया में सुखा ले। सतावरी के रस के साथ इसका सेवन करने से तत्त्वोन्माद शान्त होता है॥ ५-६॥

शतधौतघृताभ्यङ्गोऽमृमं च मधुसर्पिषी। आज्यं सलिलमिश्रं च ब्रह्ममोहे परौपधम्॥ ७॥

ब्रह्ममोह (तत्त्वोन्माद) रोग में सौ बार के धोये हुए घृत की मालिश, असमान घृत और शहद का अथवा घृत और जल का सेवन करना उत्तम है॥ ७॥

कदाचित् ताडनाद्यैश्च ब्रह्ममोहः प्रशाम्यति। गदे त्वमकृते तस्मिन् प्रहार एव भेषजम्॥ ८॥

कभी-कभी ताडना करने से भी तत्त्वोन्माद

शान्त हो जाता है। तत्त्वोन्माद में ओषधियों से लाभ न होने पर मुष्टि आदि का प्रहार ही ओषधि है॥ ८॥

अपस्मारहरं यच्च वातव्याधिहरं तथा। घृततैलादिकं सर्वं ब्रह्ममोहे प्रशस्यते॥ ९॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां तत्त्वोन्मादाधिकारः समाप्तः।

ब्रह्ममोह (तत्त्वोन्माद) में अपस्मारनाशक तथा वायुरोगनाशक घृत और तेल आदिक सब श्रेष्ठ माने गये हैं॥ ९॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां तत्त्वोन्मादाधिकारः समाप्तः।

अथ अचलवाताधिकारः।

अचलवात रोग का स्वरूप।

यत्रैव संस्थया जन्तुर्मोहमाप्नोति चेत् ततः। परतोऽपि तथा तिष्ठेत् सापि चेत् क्लेशकृद् भृशम्॥ १॥ स गदोऽचलवाताख्योऽचलसंस्थानमेव च। तदवस्थ्यगदश्चापि तथैवापरिवर्त्तकः॥ २॥ वातागतेः समस्थानात् पूर्वभावस्थिनेस्तथा। तथैवापरिवृत्तेश्च मतं नाम चतुष्टयम्॥३॥

जिस अवयव की वायु स्थिर हो जाय वही स्थान मूढ़ (चेतनारहित सा) हो जाता है। जब तक वह वायु वहाँ ठहरता है रोगी परवश कष्ट पाता है। शरीर के अवयवों को अचल करनेवाला अचलवात नामक रोग है। इससे क्रिया रुक जाती है। वायु के समस्थान पर आने पर शरीर का अवयव फिर पूर्वस्थिति पर आ जाता है। अचलवात, अचलसंस्थान, अवस्थ्यगद और अपरिवर्त्तक इन चार नामों से प्रसिद्ध है॥ १-३॥

अचलवात का निदान।

चिन्तनात् क्षीणधातुत्वाद्भयात् सत्त्वस्य संक्षयात्। बीजदोषवशाच्चैव जायतेऽपरिवर्त्तकः॥ ४॥

अचलवात रोग चिन्ता करने से, धातु के क्षीण होने से भय से, सत्त्व (ओज) के क्षय से और वीर्यदोष से उत्पन्न होता है॥ ४॥

अचलवात के लक्षण।

स्पर्शहानिरचेष्टत्वं पेशीनां दृढता तथा। मूर्च्छनञ्च विनाक्षेपं चिह्नान्यपरिवर्त्तके॥ ५॥ असामान्यं गदस्यास्य लिङ्गं प्राक् संस्थया स्थितिः। कदाचिच्छ्वासमूयस्त्वं धमन्याः क्षुद्रता तथा॥ ६॥ पूर्व्वरूपं विना व्याधिः सहसैव प्रकाशते। ग्रीवादार्ढ्यं शिरःपीडा कदाचिच्चलचित्तता॥७॥

पूर्व्वरूपत्वेन प्रकाशते इति शेषः।

शरीर में स्पर्श का अनुभव न होना, क्रियानाश, मांसपेशियों की कठोरता, बिना आक्षेप के मूर्च्छा होना आदि असाधारण लक्षण अपरिवर्त्तक रोग की पहली स्थिति में होते हैं। कभी, श्वास-संख्या बढ़ जाना, नाड़ी की क्षुद्रता आदि लक्षण भी होते हैं। साधारणतया बिना किसी पूर्वरूप के अकस्मात् ही रोग प्रकट होता है। कभी-कभी पूर्वरूप में गर्दन की कठोरता, शिर में पीड़ा और चित्त की चंचलता आदि लक्षण भी होते हैं॥ ५-७॥

यथा गदवतश्चित्तं प्रसन्नमवतिष्ठते। सर्वथा तद्विधातव्यं तद्धि मुख्यं चिकित्सितम्॥ ८॥

अचलवात रोग में जिस प्रकार रोगी का चित्त प्रसन्न रहे वही विधान करना चाहिए। यही मुख्य चिकित्सा है॥ ८॥

शीर्ष्णि शीताम्बुसेकश्च चन्दनादिप्रलेपनम्। तथा मेषीपयःपानं विरेकं मृदुरेचनम्॥ ९॥

शिर पर ठंडा पानी का तरेड़ा देना, चन्दन का लेप करना, भेड़ का दूध पीना और कोमल जुलाब देना अचलवात में हितकारी है ॥ ६ ॥

हिंग्वाद्य चूर्ण ।

हिंगुचन्दनशीतांशुदारुदारुनिशानिशाः । फलत्रयमुशीरं च मधूकं मधुकं मुराम् ॥१०॥ सञ्चूर्ण्यैकत्र पयसा पिबेच्छीताम्बुना तथा । अनेनाचलवाताख्यो याति नाशं गदो ध्रुवम् ॥ ११ ॥

हींग, चन्दन, कपूर, देवदारु, दारुहल्दी, हल्दी, त्रिफला, खस, मुलैठी, महुआ और मुरामांसी; इनको सम भाग ले चूर्ण बनाकर ठंडे जल के साथ सेवन करे तो यह हिंग्वादि चूर्ण अचलवात को नष्ट करता है । मात्रा १ ॥ माशा ॥ १०-११ ॥

सिन्दूरं पयसा पीत्वा गदी स्वास्थ्यमवाप्नुयात् । वातामयहरं यच्च यद् यन्मूर्च्छाहरं तथा । तत्तद्विविच्य योक्तव्यं यथा दोषानुपानकम् ॥ १२ ॥

दूध के साथ रससिन्दूर सेवन करने से रोगी को स्वास्थ्य लाभ होता है । जो प्रयोग वातरोग तथा मूर्च्छारोग नाशक हों उनको दोषानुसार अनुपानभेद से सेवन कराना चाहिए ॥ १२ ॥

अपस्मारे च मूर्च्छायां तथा वातामयेऽपि च । यत् पथ्यं यदपथ्यं च तत्तदेवात्र सम्मतम् ॥ १३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामचलवाताधिकारः समाप्तः ।

अपस्मार, मूर्च्छा और वातरोग में जो पथ्य और अपथ्य वस्तु कही हैं वे ही यहाँ भी समझनी चाहिए ॥ १३ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां अचलवाताधिकारः समाप्तः ।

अथ खञ्जनिकाधिकारः ।

खञ्जनिका का निदान ।

खञ्जन्यदनसातत्यादनिलो विकृतंगतः। सक्थिखञ्जनयेद्व्याधिं घोरं खञ्जनिकाभिधम् ॥ १ ॥ खञ्जनीति द्विदलभेदः । तस्या निरन्तरभक्षणात् खञ्जनीरोगः ॥

खञ्जनी नाम की एक प्रकार की दाल होती है उसके अधिक खाने से वायु विकृत होकर ऊरुओं में खञ्जनिका नामक कष्टदायक रोग उत्पन्न करता है । ॥ १ ॥

खञ्जनी यामुने देशे बाहुल्येन प्रजायते । तस्याः समशनात् तत्र पीड्यन्ते व्याधिना जनाः ॥ २ ॥ वातामयाधिकारे या प्रोक्ता कलायखञ्जता । सैवायमिति केश्चिद्वा कैश्चिद्वान्योऽभिमन्यते ॥ ३ ॥

खंजनी यमुनाजी के किनारे के प्रदेशों में बहुत उत्पन्न होती है । उसके खाने से मनुष्य रोग से पीड़ित हो जाता है । वातव्याधिप्रकरण में जो कलायखञ्जता नामक रोग कहा है, उसी को खञ्जनिका कहते हैं । कुछ लोग इसको अन्यरोग मानते हैं ॥ २-३ ॥

इसका अनुपशय ।

शैत्येनार्द्रतया चापि व्याधिरेव विवर्द्धते । स्त्रीभ्यः पुंसामयं व्याधिर्बाहुल्येनाभिजायते ॥ ४ ॥

शीत और गीलापन (सील) में यह रोग बढ़ता है । स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों के ही अधिक होता है ॥ ४ ॥

खञ्जनिका के लक्षण ।

सुप्तोत्थितस्योषसि जानुसन्धौ रुजा च गुर्वी च दृढा च जङ्घा । ककुद्मती क्षीणबला ततो ना सोऽङ्गुष्ठमाकृष्य चलेत् मुकुन्दम् ॥ ५ ॥ चक्रत्वं जानुसन्धेश्च

जङ्घायाश्चापि शीर्णता । पादसंस्थानवैरूप्यमरतिश्चात्र संभवेत् ॥ ६ ॥

जानुओं की सन्धियाँ शून्य, भारी और दर्द युक्त रहती हैं । जाँघों में भी कठोरता, दर्द और भारीपन रहता है । मांस की गाँठ सी पड़ जाती है और बल चीण हो जता है, इसलिए अँगूठे को सिकोड़कर कठिनता से चला जाता है । जानुसन्धियों में तिरछापन, जाँघों में शिथिलता, पैरों में कुरूपता हो जाती है और बेचैनी रहती है ॥ ५-६ ॥

आरोग्यमिच्छता त्याज्यं खञ्जनीद्विदलाशनम् । निदानसेविनो यस्मान्न व्याधिर्विनिवर्त्तते ॥ ७ ॥

आरोग्य की इच्छा करनेवाले को खञ्जनी (लतरी) की दाल का भोजन त्याग देना चाहिए । क्योंकि निदान (रोगोत्पत्ति के कारणरूप अन्नपानादि) के सेवन करनेवाले के रोग निवृत्त नहीं होते हैं ॥ ७ ॥

वातघ्नं पोषणं यच्च पानमन्नं च भेषजम् । प्रयोज्यमिह तत् सर्वं विविच्य भिषजा सदा ॥ ८ ॥

खञ्जनी रोग की शान्ति के लिए वातनाशक तथा पुष्टिकारक अन्न-पान और ओषधि का विचारपूर्वक प्रयोग करना चाहिए ॥ ८ ॥

बलां गन्धतृणं माषां त्रिवृतां कटुरोहिणीम् । क्वाथयित्वा पिबेत्तोयं खञ्जन्यामयशान्तये ॥ वातामयहरं सर्पिस्तैलं चात्र प्रयोजयेत् ॥ ९ ॥

खरेटी, गन्धतृण, माषपर्णी, निसोत और कुटकी; इनका क्वाथ बनाकर पीने से खञ्जनी रोग शान्त होता है । वातनाशक घृत और तेल भी इस रोग में प्रयोग करने चाहिए ॥ ९ ॥

खञ्जनिकारिरस ।

कुपीलुरजतायांसि संभाव्यार्जुनवारिणा । मुद्गमात्रां वटीं कृत्वा शोषयेत् सूर्यरश्मिना ॥ १० ॥ पक्षाघातं घोरतरं गदं खञ्जनिकं तथा । रसः खञ्जनिकाख्यो हरेदाशु न संशयः ॥ ११ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां खञ्जनिकाधिकारः समाप्तः ।

शुद्ध कुचिला, चाँदी की भस्म और लोह की भस्म; इनको अर्जुन की छाल के जल से घोटकर मूँग के बराबर गोलियाँ बनावे और उन्हें धूप में सुखा ले । सेवन करने से यह खञ्जनारि रस पक्षाघात तथा खञ्जनिका रोग को शीघ्र हरण करता है, इसमें संशय नहीं है ॥ १०-११ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधाया व्याख्यायां खञ्जनिकाधिकारः समाप्तः ।

अथ ताण्डवरोगाधिकारः ।

ताण्डवरोग का निदान ।

अत्यातङ्कादतिक्रोधादतिहर्षाद्बलक्षयात् । कर्षघात् स्वप्नरोधाच्च विड्बन्धात् कृमिसञ्चयात् ॥ १ ॥ आशानाशादभिघातात् स्त्रीणामृतुविपर्ययात् । कशेरुकामज्जनश्चात्युग्रभावात् प्रजायते ॥ २ ॥ व्याधिस्ताण्डवनामा स प्राणिनां क्लेशकृत् परः । अङ्गानां ताण्डवादस्य ताण्डवाख्या बुधैः कृता ॥ ३ ॥ कैशोरे वयसि प्रायः स्त्रीणाञ्चापि विशेषतः । व्याधिरेषोऽभिजायेत वृद्धानाञ्च बलक्षयात् ॥ ४ ॥

अत्यन्त भय, क्रोध, हर्ष और बल के क्षय होने से तथा खींचने से, न सोने से, मलावरोध उदर में कृमि सञ्चय होने से, आशा नष्ट से, चोट से तथा स्त्रियों के मासिक स्राव के

गड़बड़ी से, कशेरुका अस्थि पर चोट लगने से तथा उग्रभाव से प्राणियों को कष्टदायक ताण्डव नाम की बीमारी उत्पन्न होती है। शरीर के अवयवों को नचाने से विद्वानों ने इसका ताण्डव नाम रक्खा है। विशेषतः स्त्रियों के किशोर अवस्था में और वृद्धों के बलक्षय होने पर यह बीमारी हो जाती है ॥ १-४ ॥

ताण्डवरोग का लक्षण।

वामबाहुं समारभ्य प्राय आदौ ततोऽपरम्। ततः पादौ ततोऽङ्गानि चालयेत् ताण्डवामयः ॥ ५ ॥ मुष्टिना किमपि द्रव्यं सम्यग्धारयितुं क्षमः। समर्पयितुमास्ये वाप्यदनीयं न ताण्डवी ॥ ६ ॥ नृत्यन्निव चलत्येष बीभत्सैर्मुखचेष्टितैः। अधीरः सततं तिष्ठेन्निद्रायां कम्पवर्जितः ॥ ७ ॥ बीभत्सैर्मुखचेष्टितैरुपलक्षितः ॥

ताण्डव रोगी के प्रारम्भ में बाँयें हाथ से प्रारम्भ करके बाद में अन्य स्थलों में, फिर पैरों में, बाद में अन्य अवयवों में चंचलता उत्पन्न होती है। किसी द्रव्य को मुष्टि में धारण नहीं कर सकता है और न अच्छी तरह मुँह में ही कोई चीज रख सकता है। नाचता हुआ सा चलता है। मुख की चेष्टा बीभत्स हो जाती है। सदैव धैर्यहीन रहता है। केवल सोते समय ही कम्प बन्द रहता है अन्यथा हर समय काँपता रहता है ॥ ५-७ ॥

बृंहणं रेचनं चैव वह्नेर्बलविवर्द्धनम्। औषधं पानमन्नं च प्रयोज्यं ताण्डवे गदे ॥ ८ ॥

ताण्डव रोग में बृंहण, रेचन और अग्नि के बल को बढ़ानेवाली औषधियों तथा अन्नपान का प्रयोग करना चाहिए ॥ ८ ॥

कृमिसञ्चयसम्भूते कार्यं कृमिविनाशनम्। रजोरोधभवे व्याधौ रजसस्तु प्रवर्त्तनम् ॥ ९ ॥

कृमियों के संचय होने से उत्पन्न ताण्डव रोग में कृमिनाशक उपाय करना चाहिए। रजोरोध के कारण हुई व्याधि में रजःप्रवर्तक औषधि देनी चाहिए ॥ ९ ॥

श्यामामनन्तां मधुकं त्रिवृतां चन्दनद्वयम्। एलाद्वयं तथा धात्रीं क्वाथयित्वा जलं पिबेत् ॥ अनेन प्रशमं याति ताण्डवाख्यो गदो ध्रुवम् ॥ १० ॥

कालीसारिवा, अनन्तमूल, मुलेठी, निसोत, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, छोटी इलायची, बड़ी इलायची तथा आँवला; इनका काढ़ा बनाकर पीने से ताण्डव रोग निश्चय शान्त होता है ॥ १० ॥

मल्लरामठकर्परयशदायो यथोत्तरम्। प्रगृह्य चतुराट्रूष्या विभाव्य विजयाम्बुना ॥ ११ ॥ कुपीलुजकषायेण पार्थस्य स्वरसेन च। त्रिगुञ्जां वटिकां कृत्वा युञ्ज्यात्ताण्डवशान्तये ॥ १२ ॥

सखिया एक भाग, हींग दो भाग, कपूर तीन भाग, जस्ते की भस्म चार भाग और लोहभस्म पाँच भाग; इनको क्रम से भाँग के और अर्जुनवृक्ष की छाल के रस की भावना देकर तीन-तीन रत्ती की गोलियाँ बना ले। ताण्डव रोग की शान्ति के लिए इसका सेवन कराना चाहिए ॥ ११-१२ ॥

बृंहणं पानमन्नं च स्नानं स्रोतस्वती जले। शयनं क्लेशशून्यं यत् कर्म तच्चेह शर्मणे ॥ कर्णाद्यखिलं मोक्षमशुभाय पुरातनैः ॥ १३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां ताण्डवरोगाधिकारः समाप्तः।

इस रोग में बृंहण अन्न-पान तथा नदी में स्नान करना चाहिए। क्लेशरहित शय्या तथा

अन्य कल्याणकारी उपाय होते हैं तथा कर्षण आदि सब कार्य हानिकारक होते हैं ॥ १३ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां ताण्डवरोगाधिकारः समाप्तः।

अथ स्नायुशूलाधिकारः।

स्नायुशूल का स्वरुप।

स्नायुष्वतीव या घोरा तच्छाखास्वपि वा पुनः। वेदना स्नायुशूलाख्या सा भवेत् प्राणपीडना ॥ १ ॥

शाखाओं की स्नायुओं (नाड़ियों Nerves) में प्राणों को पीडा पहुँचानेवाली घोर वेदना होती है, उसे स्नायुशूल कहते हैं ॥ १ ॥

रोग के स्थान।

बाह्वोःशीर्ष्णस्तथा सक्थ्नोरन्यस्याङ्गस्य वा पुनः। त्वचो निम्नस्थितास्वेव वस्नसासु गदो भवेत् ॥ २ ॥ शूलोऽयं निखिलाङ्गेषु भवेत् तीव्ररुजाकरः। विशिष्टाङ्गभवस्यास्य विशिष्टाख्या च वर्तते ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वभेदार्द्धभेदौ चाप्यधोभेदस्तथैव च। मुण्डमुण्डार्द्धकस्फिग्जगदानामभिधाः क्रमात् ॥ ४ ॥

वस्नसासु स्नायुषु

दोनों बाहु, शिर, टाँगें और दूसरे अवयवों में त्वचा के नीचे की सतह में स्थित स्नायुओं (Nerves) में शूल का रोग होता है। यह शूल सम्पूर्ण अवयवों में अत्यन्त कष्टदायक होता है। जिन-जिन अवयवों में होता है उन-उन अवयवों के नाम से कहा जाता है। ऊर्ध्वभेद, अर्द्धभेद, अधोभेद, मुण्डभेद, मुण्डार्द्धभेद और कटिदेशभेद से भिन्न-भिन्न नामों से प्रसिद्ध है ॥ २-४ ॥

ऊर्ध्वभेद का निदान।

बलरक्तक्षयाद्वापि वृक्कमस्तिष्कदोषतः। अजीर्णाद् दशनव्याधेरूर्ध्वभेदो गदो भवेत् ॥ ५ ॥

बल और रक्त के क्षय से, वृक्क और मस्तिष्क के दोष से, अजीर्ण से और दाँतों के दोष से ऊर्ध्वभेद रोग होता है ॥ ५ ॥

ऊर्ध्वभेद के लक्षण।

ललाटेऽक्षिपुटे निम्ने गण्डे नस्योष्ठ एव च। जिह्वापार्श्वेऽधरे दन्ते शूलवद्दाहवच्च या ॥ ६ ॥ एकस्मिन् प्रायशः पार्श्वे वेदनामुखमण्डले। ऊर्ध्वभेदाख्यया सोक्ता गदज्ञैः क्रमैधिनी ॥ ७ ॥

क्रमैधिनीक्रमशोवर्द्धिनी

ललाट में, अक्षिपुटों के नीचे, गण्डस्थल में, ओष्ठ में, जिह्वा में, पसवाड़े में और दाँत में शूल और दाह की तरह वेदना होती है। एक ही पसवाड़े में, एक ही ओर मुख-मण्डल के ऊपर-नीचे के भेद से वेदना होती है, जो क्रमशः बढ़ती है ॥ ६-७ ॥

ऊर्ध्वभेद की संप्राप्ति।

शीतानिलस्य संस्पर्शाद् देहकम्पाच्च वर्द्धते। स्नायुभेदस्य विकृतेरङ्गभेदे भवेद् गदः ॥ ८ ॥

शीतलवायु के स्पर्श से तथा देह में कँपकँपी होने से शरीर में कोप बढ़ता है। अतः स्नायुभेद के विकृत हो जाने से विभिन्न अंगों में यह रोग होता है ॥ ८ ॥

अर्द्धभेद का निदान।

आर्द्रस्थानस्थितेश्चापि शीतयोगाद् बलक्षयात्। अर्द्धभेदः प्रजायेत दुष्टवाताम्बुसेवनात् ॥ ९ ॥

गीले स्थान पर रहने से, शीत के योग से, बल के क्षय से और दूषित जलवायु के सेवन

से अर्द्धभेद (आधे अंश का शूल) हो जाता है ॥ ९ ॥

अर्द्धभेद के लक्षण।

यार्द्धं व्याप्य भवेत् तीव्रा वेदना मुखमण्डले। वामे च प्रायशः पार्श्वे सार्द्धभेदः प्रकीर्त्यते ॥ १० ॥ बाणेनेव शिरोविद्धं व्यथतेऽतिसुदारुणम्। कदाचित् क्रममालम्ब्य विरामश्चात्र वा महान् ॥ ११ ॥ बाहुल्येन च नारीणां व्याधिरेष प्रजायते। प्रादुर्भावो वयःस्थस्य यौवने ह्यधिको मतः ॥ १२ ॥

अर्द्धभेद रोग से मुखमण्डल में तीव्र वेदना होती है। प्रायः बाएँ पसवाड़े में ही दर्द होता है। बाण की नोक से शिर भिदने के समान ही अत्यन्त कष्टदायक वेदना होती है। क्रमशः यह रोग बढ़ जाता है और शान्त भी हो जाता है। विशेषरूप से यह बीमारी स्त्रियों को ही होती है। अधिकतर यौवनावस्था में ही इस रोग की उत्पत्ति होती है ॥ १०--१२ ॥

अधोभेद का निदान।

विड्विरोधाच्छ्रमाच्छीताद् दौर्बल्यादामवाततः। आर्द्रस्थानस्थितेर्गर्भदोषात् स्यान्निम्नभेदकः ॥ १३ ॥

निम्नभेदकः अधोभेदः।

मलावरोध से, थकावट से, शीत से, दुर्बलता से, आमवात से, आर्द्र (गीले, नमदार) स्थान में रहने से और गर्भ के दोष से अधोभेद रोग हो जाता है ॥ १३ ॥

अधोभेद के लक्षण।

स्फिच्यूरुजानुसन्ध्योश्च पश्चिमे च क्वचित् पदे। जङ्घायां वापि यच्छूलमधोभेदः स उच्यते ॥१४॥ एकस्मिन् प्रायशः सक्थ्नि शूलोऽयं स्यान्निशाबली। बाहुल्येनैव वयसि प्रौढ एव प्रजायते ॥ १५ ॥

कमर, ऊरु, जानुसन्धि के पीछे और किसी पैर में या जाँघ में जो शूल होता है उसे अधोभेद कहते हैं। एक ही टाँग में यह शूल होता है और रात्रि में बढ़ जाता है। यह अधिकतर प्रौढ़ावस्था में ही होता है ॥ १४--१५ ॥

यदग्नेर्दीपनं किञ्चिद्यद्वा स्याद्बलवर्द्धनम्। वातानुलोमनं यच्च स्नायुशूले तदौषधम् ॥ १६ ॥

स्नायुशूल[1] (Nerves Pain) रोग में अग्निदीपक, बलवर्द्धक और वातानुलोमक औषधियों का सेवन कराना चाहिए ॥ १६ ॥

स्नायुशूलहरचूर्ण।

एलाद्वयमुशीरं च चन्दनं सारिवाद्वयम्। मेदाद्वन्द्वं निशाद्वन्द्वं गुडूचीं विश्वभेषजम् ॥ १७ ॥ फलत्रयं यमानीं च रौप्यं सर्वसमं तथा। एकीकृत्य वल्लमानं पाययेद्गव्यसर्पिषा ॥ १८ ॥ स्नायुशूलहरं नाम चूर्णमेतद्धरेद्ध्रुवम्। निखिलं स्नायुशूलं च सर्वान् वातामयांस्तथा ॥१९॥

छोटी इलायची, बड़ी इलायची, खस, चन्दन, अनन्तमूल, कालीसारिवा, मेदा, महामेदा, हल्दी, दारुहल्दी, गिलोय, सोंठ, त्रिफला और अजवायन तथा चाँदी की भस्म, सबको समान भाग ले एकत्र कर चूर्ण बनावे। मात्रा २ रत्ती। गौ के घृत में मिलाकर सेवन करना चाहिए। यह स्नायुशूलहर नामक चूर्ण सब प्रकार के स्नायुशूल और वातरोगों को अवश्य नष्ट करता है ॥ १७--१९ ॥

मिहिरोदय रस

माक्षिकं रजतं लौहं सिन्दूरं वह्नि-

1—Nerves का वास्तविक पर्याय वातनाड़ी है, किन्तु गलती से बंगाल में तथा उसी के अनुसार अन्य प्रान्तों में भी स्नायु शब्द प्रयुक्त हो गया है। अतः यहाँ भी स्नायुशूल नाम रक्खा है। किन्तु इसका अर्थ वातनाड़ी का विकार (Nerves disease) ही है।

वारिणा । भावयित्वा विमर्द्याथ कृत्वा रक्तिमिता वटीः ॥ २० ॥ एकैकां खादयेदासां त्रिफलाद्भिरहर्मुखे । मिहिरोदयनामायं स्नायुशूलं रसो हरेत् ॥ २१ ॥

सुवर्णमाक्षिक की भस्म, चाँदी की भस्म, लोहभस्म और रससिन्दूर; इनको समभाग ले, चीता की रस की भावना देकर घोट ले और एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना ले। प्रातःकाल एक-एक गोली त्रिफला के जल से खावे। यह मिहिरोदय नाम रस स्नायुशूल को नष्ट करनेवाला है ॥ २०--२१ ॥

प्रयोज्यं दारुगरलमर्द्धभेदप्रशान्तये । विरतौ तत् प्रयोक्तव्यं न प्रकोपे कदाचन् ॥ २२ ॥

देवदारु और मीठा विष का लेप करने से अर्धावभेदक (आधाशीशी) शान्त होती है। किन्तु लेप ऐसे समय करना चाहिए जब कि पीड़ा शान्ति पर हो। प्रकोप के समय कभी भी लेप न करना चाहिए ॥ २२ ॥

मदिरामृतसाराख्यं लौहं क्षोदः कुपीलुजः । सेव्यान्येतानि विधिना स्नायुशूलस्य शान्तये ॥ २३ ॥

मदिरा, अमृतसार लोह और शुद्ध कुचिला का चूर्ण; इनका विधिपूर्वक सेवन करने से स्नायुशूल शान्त होता है ॥ २३ ॥

स्वेदसेकप्रलेपांश्च स्नायुशूलेषु योजयेत् । तीव्रं विरेचनं चात्र विदध्यान्मलसञ्चये ॥ २४ ॥ घृततैलादिकं योज्यमनिलामयनाशनम् । स्नायुशूलेषु सर्वेषु भेषजं च रसायनम् ॥ २५ ॥

स्नायुशूल रोग में स्वेद, सेक और लेप करना चाहिए तथा मलसंचय होने पर तीव्र विरेचन देना हितकर होता है एवं वातरोगनाशक घृत और तेल स्नायुशूलों में देना चाहिए। सब स्नायुशूलों में रसायन भी देना हितकर है ॥ २४-२५ ॥

स्नायुरोग में पथ्यापथ्य ।

यत् पथ्यं यदपथ्यं च वातव्याधौ प्रकीर्त्तितम् । तथैव स्नायुशूलेषु निर्णीतं विबुधैरिति ॥ २६ ॥

वातव्याधि में जो-जो पदार्थ पथ्य तथा अपथ्य कहे गये हैं, वे ही पदार्थ स्नायुशूल में भी विद्वानों ने पथ्य और अपथ्य निश्चय किये हैं ॥ २६ ॥

कुमारीवटी ।

कुमार्यद्भिर्हेम रौप्यं हरितालं च माक्षिकम् । शतशो भावयित्वाथो गुञ्जामात्रां वटीं चरेत् ॥ २७ ॥ धात्र्यम्भसा वटी सेयं कुमारी योजिता हरेत् । स्नायुजान्निखिलान् रोगानग्निमान्द्यमरोचकम् ॥२८॥

स्वर्णभस्म, रजतभस्म, हरतालभस्म और स्वर्णमाक्षिकभस्म; इनको समभाग ले फिर उसमें घीकुवार के रस की १०० भावना देकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। इसको आँवले के रस के साथ सेवन करना चाहिए। यह कुमारीवटी संपूर्ण स्नायु के रोग, अग्निमान्द्य और अरुचि को नष्ट करती है ॥२७-२८॥

महारजतवटी ।

कर्षप्रमाणं रजतं मौक्तिकं स्वर्णगैरिकम् । कोलमानं तु वैक्रान्तं सिन्दूरं सशिलाजतु ॥ २९ ॥ लौहमभ्रं प्रवालं च त्रिधा चित्रकवारिणा । काकमाचीरसेनापि सप्तधा च विभावयेत् ॥ ३० ॥ गुञ्जाद्वयमितां कृत्वा वटिकां पयसा सह । प्रातः प्रातः प्रयुञ्जीत स्नायुरोगनिवृत्तये ॥३१॥

चाँदी की भस्म, मोती की भस्म और सुनहला गेरू; प्रत्येक एक-एक तोला। वैक्रान्त भस्म, रससिन्दूर, शिलाजीत, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और मूँगा की भस्म, प्रत्येक एक-

छह माशे। सबको एकत्रकर चीता की जड के रस की ३ और मकोय के रस की ७ भावनाएँ देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। प्रातःकाल दूध के साथ प्रतिदिन सेवन करने से स्नायुरोग निवृत्त होता है ॥ २६-३१ ॥

स्वर्णसिन्दूर रस।

स्वर्णसिन्दूरमभ्रं च मौक्तिकं कर्षसम्मितम् । हेममाक्षिकवैक्रान्तवङ्गायांसि च पित्तलम् ॥ ३२ ॥ शिलाजतुप्रवालाब्धिफेनगुग्गुलुगन्धकान् । कोलमानेन संगृह्य भावयेद् वह्निवारिणा ॥३३॥ ततो गुञ्जाद्वयोन्मानां विधाय वटिकां भिषक् । देवदारुकषायेण प्रातः सायं च योजयेत् ॥ ३४ ॥ स्वर्णसिन्दूरसंज्ञोऽयं रसेषु प्रवरो रसः। स्नायुजानखिलान् रोगान् हन्ति नास्त्यत्र संशयः ॥ ३५ ॥

स्वर्णसिन्दूर, अभ्रक भस्म और मोती की भस्म एक-एक तोला, स्वर्णभस्म, स्वर्णमाक्षिक की भस्म, वैक्रान्तमणि की भस्म, वङ्गभस्म, लोहभस्म, पीतल की भस्म, शिलाजीत, प्रवालभस्म, समुद्रफेन, गूगुल और गन्धक प्रत्येक छह-छह माशे। सबको एकत्रकर चीता की जड़ से रस की भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना ले। अनुपान—देवदारु का काढ़ा। रसों में श्रेष्ठ इस स्वर्णसिन्दूर रस का प्रातः और सायंकाल सेवन करने से स्नायु के सपूर्ण रोग निःसन्देह नष्ट होते हैं ॥ ३२-३५ ॥

शतावरीघृत।

शतावर्या रसप्रस्थं छागीदुग्धस्य चाढकम् । घृतप्रस्थं तथैकत्र कल्कैरेभिः पचेद् भिषक् ॥ ३६ ॥ मुशली चोरपुष्पी च विदारी चन्दनद्वयम् । भृङ्गी तामलकी द्राक्षा श्यामानन्ता निशायुगम् ॥ ३७ ॥ बलेन्द्रवारुणी वासा नीलिनी नीलमुत्पलम् । अभयादाडिमौ दारुनिम्बौ नागबलेति च ॥ ३८ ॥ सिद्धमेतद् घृतं हन्ति स्नायुजानखिलान् गदान् । पुष्टिं वीर्यं बलं मेधां शुभां सञ्जनयेन्मतिम् ॥ ३९ ॥

शतावरी का रस १२८ तोले, बकरी का दूध ६ सेर ३२ तोले, घृत १२८ तोले। कल्क के लिए—मुसली, चोरपुष्पी, विदारीकन्द, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, काकड़ासिंगी, भुई आँवला, मुनक्का, कालीसारिवा, अनन्तमूल, हल्दी, दारुहल्दी, बरियारा (खरैटी), इन्द्रायण, अडूसा, नील की जड़, नील कमल, हड़, अनार, देवदारु, नीम की छाल और गंगेरन; सब मिलित ३२ तोले। विधिपूर्वक घृत सिद्धकर सेवन करे, तो यह घृत स्नायु के सपूर्ण रोगों को नष्ट कर पुष्टि, वीर्य, बल और शुभ बुद्धि को देनेवाला है। मात्रा—६ माशे से १ तोला तक ॥३६-३९॥

सुरवल्लभतैल।

दशमूलं कणा शुण्ठी शठी रास्ना त्रिवृत्बला । अश्वगन्धा तुगाक्षीरी त्रिफला बिल्ववासकौ ॥ ४० ॥ जयन्ती हस्तिशुण्डी च मूर्वा कुटजदाडिमौ। इत्येभिर्विपचेत् कल्कैस्तैलं तिलसमुद्भवम् ॥ ४१ ॥ अश्वगन्धाकषायेण छागेन पयसा तथा । गन्धद्रव्यैश्च निखिलैर्मन्दमन्देन वह्निना ॥ ४२ ॥ सुरवल्लभनामेदं तैलं स्नायविकान् गदान् । वातपित्तकफोत्थांश्च निहन्यान्नात्र संशयः ॥ ४३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां स्नायुरोगाधिकारः समाप्तः ।

दशमूल, पीपर, सोंठ, कचूर, रास्ना, निसोथ, खरैटी, असगन्ध, वंशलोचन, त्रिफला, बेलगिरी, अडूसा, जयन्ती, हस्तिशुंडा, मूर्वा, कुड़ा की छाल और अनार; सब मिलित आध सेर लेकर कल्क बनावे। तिल का तेल १२८

तोले, असगन्ध का काढा ६ सेर ३२ तोले; बकरी का दूध ६ सेर ३२ तोले। यथाविधि मन्दाग्नि से तेल का पाक करे और अनुमान से सब गन्ध द्रव्यों का प्रक्षेप देकर उतार ले और ठंढा करके छानकर रख ले। यह सुरवल्लभ नाम तैल मालिश करने से स्नायु के तथा वात, पित्त और कफ के रोगों को नष्ट करता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४०–४३॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां स्नायुशूलाधिकारः समाप्तः।

अथ खालित्याधिकारः।

खालित्य का निदान।

स्नायूनां बलनाशाच्च वातस्यातिप्रकोपणात्। कर्म्मणश्चातिसातत्यात् खालित्यं खनुजायते॥ १॥ स्त्रीभ्यः पुंसामयं व्याधिर्यौवनात् परतस्तथा। बाहुल्येनाभिजायेत सद्भिरेवं निरूपितम्॥ २॥

स्नायुओं (Nerves नाड़ियों) के बल नाश से, वायु के अति प्रकोप से तथा काम की अधिकता से खालित्य रोग उत्पन्न होता है। स्त्री और पुरुषों के यौवनावस्था के बीत जाने पर ही यह रोग विशेष रूप से होता है॥१-२॥

खालित्य के लक्षण।

शान्तिर्भारस्य हस्तस्य जायते तदनन्तरम्। अंगुल्याः स्खलनाद्धानिर्भवेदारब्धकर्म्मणः॥ ३॥ लेखनेऽक्षरदोषः स्यात् वाद्ये तालव्यतिक्रमः। प्रयत्नादपि दोग्धा गां दोग्धुं सम्यङ् न चार्हति॥४॥ खालित्यं सुचिरं यस्य विद्यते व्यवसायिनः। दृढं धारयितुं द्रव्यं न समर्थोति मुष्टिना॥ ५॥

इस रोग में हाथ का वजन शान्त नहीं रहता है। अँगुलियाँ हिलती हैं और कार्य करने की शक्ति क्षीण हो जाती है। लिखने में अक्षर दूषित (असुन्दर) आते हैं तथा बाजा बजाने में ताल उलटी हो जाती है। जिस व्यवसायी के खालित्य पुराना हो जाता है वह व्यक्ति वस्तु को दृढ़तापूर्वक मुट्ठी में धारण नहीं कर सकता है॥ ३–५॥

स्वकर्मणो निवृत्तिर्हि खालित्ये खलु भेषजम्। कटुतिक्तकषायैः किं किं पथ्यस्य च सेवया॥ ६॥

अपने कार्य से निवृत्त हो जाना ही खालित्य की ओषधि है। कटु, तीखे और कषैले पदार्थों से ही क्या है और पथ्य सेवन से ही क्या है। तात्पर्य यह कि यदि रोगी अपने कार्य से निवृत्त न होगा, तो अपथ्य के परित्याग और पथ्य वस्तु के सेवनमात्र से कोई लाभ नहीं हो सकता है॥ ६॥

तिमिङ्गिलगिलस्नेहः सप्ताहं परियोजितः। खालित्यं क्षपयेद् मक्षन् स्नेहः शौकर एव वा॥ ७॥

एक सप्ताह तिमिङ्गिलगिल नामक महामत्स्य की चर्बी के (आजकल Cod liver oil काड-लीवर आइल के) प्रयोग से अथवा सूकर की चर्बी के प्रयोग से खालित्य रोग दूर हो जाता है॥ ७॥

आदित्यपाक तैल।

बला रास्नाश्वगन्धा च जीवकर्षभकौ वरा। जयन्ती मधुयष्टिश्च त्रिफल्लवणपञ्चकम्॥ ८॥ एलाद्वयं मुरामांसी देवपुष्पं सरोरुहम्। केशरं नलिका कुष्ठं मुशली चन्दनद्वयम्॥ ९॥ प्रत्येकं कार्षिकं तैले निप्त्वा मस्थममाणके। मासान् षट् स्थापयेद् रुद्ध्वा सत्पात्रे सूर्यतेजसि॥ १०॥ ततः कल्कान् समुद्धृत्य तैलमेतत्

प्रयोजयेत् । अनेन प्रशमं यान्ति खालित्यप्रमुखा गदाः ॥ ११ ॥

खरेटी, रास्ना, असगन्ध, जीवक, ऋषभक, शतावरी, जयन्ती, मुलेठी, निसोत, पाँचों नमक, बड़ी इलायची, छोटी इलायची, मुरामांसी, लौंग, कमल, नागकेशर, नालिका (सुगन्धि द्रव्य मूँगा के आकार का), कूट, मुसली, सफेद चन्दन, लाल चन्दन ; प्रत्येक एक-एक तोला लेकर कल्क बनावे और १२८ तोले तिल के तेल में डालकर पात्र का मुख बन्द करके छह महीने तक सूर्य के धूप में धरा रक्खे। पश्चात् छानकर कल्क अलग कर दे और तेल को प्रयोग में लावे। इस तेल से खालित्य आदिक रोग शान्त हो जाते हैं ॥ ८--११ ॥

खालित्यारिरसः।

रौप्यमभ्रं तुत्थकं च मर्दयेत् कन्यकाम्भसा । मुद्गमात्रां वटीं कृत्वा पाययेत् सह सर्पिषा ॥ १२ ॥ खालित्यारी रसो नाम खालित्यं स्नायुजं गदम् । वातश्लेष्मोद्भवांश्चापि फिरङ्गं रोगमेवच। पेया दोषानुपानेन शीघ्रमेव निवारयेत् ॥ १३ ॥

चाँदी की भस्म, अभ्रकभस्म और तूतिया; इनको समभाग ले घीकुवार के रस में घोटकर मूँग के बराबर गोलियां बनावे और घृत के साथ इसका सेवन करावे। दोषानुसार अनुपान से यह खालित्यारि रस स्नायु से उत्पन्न खालित्य रोग, कफ वातजन्य रोग तथा फिरंग रोग को शीघ्र निवारण करता है ॥ १२--१३ ॥

खालित्य में पथ्य।

भेषजान्यत्र योज्यानि वातव्याधिहराणि च। पथ्यमत्र विजानीयाद् द्रव्यं पुष्टिबलप्रदम् ॥ १४ ॥

इतिभैषज्यरत्नावल्यां खालित्याधिकारः समाप्तः।

इस रोग में वातरोगनाशक औषधियों का प्रयोग करना चाहिए तथा पुष्टि और बलकारक द्रव्य पथ्य में देना चाहिए ॥ १४ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्या रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां खम्भाधिकारः समाप्तः।

अथ वृक्कामयाधिकारः।

वृक्कामय का पूर्वरूप।

त्वग्रुक्षोष्णा वेगवती धमनी कठिना तथा। निद्रानाशो वह्निमान्द्यं शोथोऽक्षिणि च मुखे पदे ॥ वृक्कामयस्य पूर्वाणि रूपाण्याहुर्भिषग्वरः ॥ १ ॥

वृक्करोग उत्पन्न होने से पहिले त्वचा में रूक्षता और उष्णता आ जाती है, नाड़ी वेगवती और कठोर हो जाती है। नींद नष्ट और अग्नि मन्द हो जाती है। आँख, मुख और पैरों में सूजन हो जाती है ॥ १ ॥

वृक्कामय का लक्षण।

रक्ताल्पत्वान्मुखस्य स्यात् पाण्डुत्वं कटिवेदना। त्वक् शुष्का स्वेदहीना च धमनी द्रुतगामिनी ॥२॥ वह्निमान्द्यमजीर्णञ्च भक्तद्वेषो व्यथोदरे। अम्लोद्गारस्तथा छर्दिर्हृद्वेषः श्वासकृच्छ्रता ॥ ३ ॥ मूत्राल्पत्वं सदा वेगो विशेषान्निशि जायते। मूत्रकाले च शिश्नाग्रे मनाग्दाहोऽनुभूयते ॥ ४ ॥ वृक्कयोर्विकृतिश्चास्मिन् विशेषाज्जायते गदे । यकृत्प्लीहहृदाश्चापि सा सदैव प्रजायते ॥ ५ ॥ कर्णनादो दृष्टिदोषः शिरोग्रीवांसवेदना । शाखासु गौरवं मूर्च्छा वृक्करोगस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥

रुधिर की कमी से मुख पर पीलापन, कमर में दर्द, त्वचा सूखी और पसीना रहित, नाड़ी की तीव्र गति, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, भोजन में अरुचि, पेट में दर्द, खट्टी-खट्टी डकारें आना,

वमन, हृत्कंप और श्वास लेने में कष्ट होता है। मूत्र कम होता है, किन्तु वेग सदैव बना रहता है। विशेषतः रात्रि के समय और पेशाब त्यागते समय शिश्नेन्द्रिय के अग्रभाग में किंचित् दाह होता है। इस रोग में अधिकतर गुर्दों में विकार हो जाता है तथा यकृत्, प्लीहा और हृदय में भी विकार हो जाता है। कर्णनाद (कान गूँजना), दृष्टि विकार, शिर, ग्रीवा और कंधों में वेदना, शाखाओं (हाथ-पैरों) में भारीपन और मूर्छा हो जाती है। ये सब वृक्करोग के लक्षण हैं ॥ २–६ ॥

यन्मूत्रलं शोणितशोधनं च यत्पोषणं वह्निविवर्द्धनं च। वृक्कस्य रोगे परियोजयेत्तद् व्याधिर्बलं वीक्ष्य भिषग् विधिज्ञः ॥ ७ ॥ रसो विवर्द्धयेत् व्याधिमततरं नेह योजयेत् ॥ ८ ॥

विधि का जाननेवाला वैद्य वृक्करोग में व्याधि के बल का विचार करके मूत्रकारक, रक्तशोधक, पुष्टिकारक और जठराग्नि को बढ़ानेवाली ओषधि की योजना करे। पारद व्याधि को बढ़ाता है, अतः वृक्करोग में इसका प्रयोग न करना चाहिए ॥ ७–८ ॥

सर्वतोभद्रवटी।

हेमरौप्याभ्रलौहानि जतु गन्धं च माक्षिकम्। वटीं रक्तिमितां कुर्याद्विमर्द्य वरुणाम्भसा ॥ ९ ॥ वटीयं सर्वतोभद्रा निखिलान् वृक्कजान् गदान्। हरेद्वस्तिभवांश्चापि बलं वीर्यं च वर्द्धयेत् ॥ १० ॥

स्वर्णभस्म, रजतभस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, लाख गन्धक और स्वर्णमाक्षिक भस्म, इनको समभाग एकत्र कर वरना की छाल के क्वाथ से घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। यह सर्वतोभद्रवटी वृक्क से उत्पन्न हुए संपूर्ण रोगों को तथा वस्ति के रोगों को नष्ट कर बल और वीर्य की वृद्धि करती है॥९--१० ॥

माहेश्वरवटी।

हेममुक्ताभ्रकांक्षीकक्षीरकाकोल्यांभिच। कान्तं महाबलामूलं गृहीत्वा समभागिकम् ॥ ११ ॥ शुष्कमूलकगोक्षुरौ तथा श्वेतपुनर्नवा। एषां क्वाथेन विधिवद् भावयेत् सप्तधा भिषक् ॥ १२ ॥ रक्तिद्वयमिता सेव्या वटी माहेश्वराभिधा। ज्ञेयं विशेषतश्चात्र शस्तं दुग्धान्नभोजनम् ॥ १३ ॥ पाण्डुं वृक्कामयं चैव शोथं सर्वाङ्गिकं तथा। जलोदरं तथा मोहं विषमज्वरमेव च ॥ अस्याः प्रयोगान्नश्यन्ति भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १४ ॥

स्वर्णभस्म, मुक्ताभस्म, अभ्रकभस्म, कांक्षीक (शुद्ध फिटकरी), क्षीरकाकोली, लौहभस्म, कान्तलौहभस्म और सहदेई की जड़; इनको समभाग लेकर सूखी मूली, गोखरू और सफेद साँठी के काढ़े की पृथक्-पृथक् सात भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना ले। इस माहेश्वरवटी का सेवन करते समय विशेषकर दुग्ध और चावल का भोजन कल्याणकारक होता है। इस माहेश्वरवटी के प्रयोग से पाण्डुरोग, वृक्करोग, सर्वांग शोथ, जलोदर, मोह और विषमज्वर इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे सूर्य से अन्धकार नष्ट होता है ॥ ११-१४ ॥

रसायनाधिकारोक्तान्यौषधान्यपि योजयेत्। न चास्ति शमने किञ्चिन्निर्दिष्टमस्य भेषजम् ॥ १५ ॥ पथ्यैर्बल्यैः सुपाच्यैश्च भिषगेनं प्रपाययेत् ॥ १६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वृक्कामयाधिकारः समाप्तः।

रसायन के अधिकार में कही गई ओषधियों का भी इस रोग में प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि इस रोग को शान्त करनेवाली कोई खास ओषधि नहीं है। बलकारक तथा अच्छे प्रकार पचनेवाले पथ्य वृक्करोगवाले को देना चाहिए ॥ १५-१६ ॥

इति श्रीसरयूप्रसादत्रिपाठिविरचितायां भैषज्यरत्नावल्यां रत्नप्रभाभिधायां व्याख्यायां वृक्कामयाधिकारः समाप्तः।

परिशिष्ट।

अण्डाधारगद का निदान।

रमणातिशयाच्छैत्यादभिघाताद्विषादपि। अण्डाधारगदः कृच्छ्रो जायते चाहिताशनात् ॥ १ ॥

अत्यंत सम्भोग करने से, शीत से, चोट लगने से, विष से और अपथ्य के सेवन से कष्टदायक अण्डाधारगद नामक रोग हो जाता है ॥ १ ॥

अण्डाधारगद के लक्षण।

उदरोरुव्यथा कृच्छ्रा मूत्रस्याल्पत्वरक्तते। ज्वरारोचकहृल्लासा अरतिर्बलसंक्षयः ॥ २ ॥ धमनी वेगिनी क्षुद्रा जिह्वा रक्तोज्ज्वला तथा। अण्डाधारगदस्यैताः प्रोक्ता आकृतयो बुधैः ॥ ३ ॥

उदर और ऊरुओं में दर्द, मूत्र का थोड़ा और कष्टसहित रुधिर मिला हुआ उतरना, ज्वर, अरुचि, हृल्लास, बेचैनी, बलक्षय, नाड़ी की गति कभी तीव्र और कभी मन्द्री तथा जीभ उज्ज्वल और लाल रंग की हो जाती है। ये अण्डाधार रोग के लक्षण बुद्धिमानों ने कहे हैं ॥ २-३ ॥

अण्डाधारगद की चिकित्सा।

यद्बलप्रवर्द्धकं यच्च पवनस्यानुलोमनम्। अण्डाधारगदे तत्तत् प्रयोक्तव्यं भिषग्वरैः ॥ ४ ॥

श्रेष्ठ वैद्यों को अण्डाधार रोग में वायु का अनुलोमन करने वाली तथा बलवर्द्धक चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ४ ॥

पटोलादि क्वाथ।

पटोलं मधुकं द्राक्षां धन्याकं विश्वभेषजम्। पीतमूलीं यलीं रास्नां मूर्वामिन्द्रयवं विडम् ॥ ५ ॥ कणाद्वन्द्वं निशाद्वन्द्वमिन्द्रपुष्पं त्रिजातकम्। क्वाथयित्वा पिबेत्तोयमण्डाधारगदे सदा ॥ ६ ॥ विषञ्च मधुना ज्ञेयमण्डाधारगदे हितम् ७

परवल, मुलेठी, दाख, धनियाँ, सोंठ, गाजर, खरैटी, रास्ना, मूर्वा, इन्द्रजौ, विडनमक, पीपल, गजपीपल, हल्दी, दारुहल्दी, लौंग, और त्रिजातक, इन सबको समान भाग लेकर क्वाथ लेकर पिलाने से अण्डाधारगद में लाभ होता है। विष (मीठा शुद्ध सिंगिया) को शहद के साथ चाटने से भी लाभ होता है ॥ ५-७ ॥

योषिद्वल्लभरस।

सिन्दूरमभ्रं रौप्यञ्च वैक्रान्तं हेमटङ्कनम्। वराम्भसा भावयित्वा वल्लमात्रा वटीश्चरेत् ॥ ८ ॥ योषिद्वल्लभनामायं रसोऽण्डाधारसम्भवान्। निहन्ति निखिलान् रोगान् हर्यक्षो हरिणानिव ९

रससिन्दूर, अभ्रक, चाँदी, वैक्रान्त और स्वर्ण की भस्म तथा सुहागा को समान भाग लेकर त्रिफला के क्वाथ से भावना देकर दो दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। यह योषिद्वल्लभ नामक रस अण्डाधारगद से उत्पन्न समस्त विकारों को नष्ट करता है ॥ ८-९ ॥

चन्दनाद्य चूर्ण।

चन्दनद्वितयं मूर्वां नीलिन्येलाद्वयं मुरा। कणाद्वयं त्रिवृद्द्राक्षा मांसी मधुकमुस्तकम् ॥ १० ॥ एतत् सर्वं चूर्णयित्वा डिम्बाधारगदापहम्। उष्णेन पयसा नारी पिबेन्नित्यं सुखार्थिनी ॥ ११ ॥

दोनों चन्दन, मूर्वा, नील की जड़, इलायची, मुरामांसी, पीपल, गजपीपल, निसोथ, दाख, जटामांसी, मुलेठी और मोथा सबको चूर्ण करके गरम दूध के साथ सेवन करने से स्त्रियों का

डिम्बाधारगद (पुरुष के अण्डाधार गद के समान ही) रोग अच्छा हो जाता है ॥ १०-११ ॥

पथ्यापथ्य।

पथ्यमत्र हविर्दुग्धं शालिः भत्नो यवस्तिलः। छागमांसरसश्चैव द्रव्यमुग्रं न शर्मणे ॥ १२ ॥

घी, दूध, शालि चावल, पुराने यव, तिल और बकरे के मांस का रस पथ्य है तथा उग्र और (उत्तेजक) द्रव्य सुखदायक नहीं है ॥ १२ ॥

मस्तिष्कचयापचयाधिकारे

मस्तिष्कचयापचय का निदान और लक्षण।

देहस्वभावाद् दिष्ट्या च वर्द्धते मस्तुलुङ्गकः। करोटिरपि बालानां यूनाञ्चापि कदाचन ॥ १ ॥ मस्तिष्कस्य करोटेश्च यदि वृद्धिर्द्वयोर्भवेत्। न चिह्नं दृश्यते किञ्चित् मायशः समवर्द्धनात् ॥ २ ॥ मस्तिष्कस्यैव चेद्वृद्धिर्न करोटेस्तथा भवेत्। तदा निपीडनात् तस्य जायन्ते विविधा रुजः ॥ २ ॥ शिरसोऽतिरुजा तीव्रा दौर्बल्यं भ्रममूर्च्छने। पक्षाघातस्तथाक्षेपस्ततो मरणमेव च ॥ ३ ॥ ह्रासमायाति मस्तिष्कं देहदोषाददृष्टयः। एकपार्श्वे ह्रसेत् तच्चेन्न शीघ्रं जीवनक्षयः॥ समन्ताद्ध्रसनात् तस्य प्राणान्तस्त्वरया भवेत् ॥ ५ ॥

शरीर के स्वभाव से ही मस्तिष्क का मस्तुलुङ्ग बढ़ता है इससे बच्चों की करोटियाँ (खोपड़ी की हड्डियाँ) भी बढ़ती हैं। कभी-कभी जवानों की भी बढ़ जाती हैं। मस्तिष्क और करोटि दोनों की वृद्धि साथ-साथ होती है तो समवर्द्धन के कारण किसी प्रकार के चिह्न मालूम नहीं देते हैं। यदि मस्तिष्क की वृद्धि न होकर करोटि (खोपड़ी की हड्डियों का ढाँचा) ही बढ़ती है तो उसके पीडन से अनेक रोग हो जाते हैं। शिर में अत्यन्त तीव्र शूल, दुर्बलता, भ्रम, मूर्च्छा, पक्षाघात तथा आक्षेप आदि उपद्रव होकर मृत्यु भी हो जाती है। भाग्यवश देह दोष से मस्तिष्क का नाश होने लगता है। जिसका मस्तिष्क एक तरफ से ही नष्ट होने लगता है उसका जीवनक्षय शीघ्र नहीं होता है। जिसका मस्तिष्क दोनों ओर से समान रूप से क्षय होने लगता है वह रोगी शीघ्र मर जाता है ॥ १-५ ॥

मस्तिष्क वृद्धि की चिकित्सा।

मस्तुलुङ्गस्य संवृद्धिर्जायते मरणाय हि ॥ ६ ॥ नौषधं तत्र चेत् सेव्यं तथापि च रसायनम्। पेयमत्र पञ्चगव्यं घृतं मधुयुतं तथा ॥ ७ ॥

मस्तुलुङ्ग की वृद्धि रोगी की मृत्यु के लिए ही होती है, उसकी कोई औषध नहीं है तो भी रसायन औषधों का सेवन करना चाहिए। इस रोग में पञ्चगव्य तथा घृत का शहद के साथ सेवन करना लाभदायक है ॥ ६-७ ॥

मस्तिष्क ह्रास की चिकित्सा।

मस्तिकष्कस्य यदि ह्रासो मरणायैव जायते। तथाप्यत्र सदा सेव्यं भेषजं परिबृंहणम् ॥ ८ ॥

मस्तिष्क का क्षय तो मृत्यु के लिए ही होता है तो भी सदैव रसरक्त आदि धातुओं की वृद्धि करनेवाली बृंहण औषधि का सेवन करना चाहिए ॥ ८ ॥

चन्दनादि क्वाथ।

चन्दनद्वितयं मूर्वा श्यामाद्वन्द्वं निशाद्वयम्। लाक्षा वांशी गैरिकञ्च जीवन्ती मधुकं वरी ॥ ९ ॥ वाजिगन्धा वचा कृष्णा काकोली जीवकर्षभौ। क्वाथमेषां पिबेत् प्रातर्मस्तिष्कह्रासशान्तये ॥ १० ॥ अत्र वातामयोक्तानि तैलानि च घृतानि

च। अपस्मारगदोक्तानि तथा सेव्यानि सर्व्वदा ॥ ११ ॥ मस्तिष्कस्य चये ह्रासे देहस्य पोषणं लघु। पानमन्नं सुखाय स्याद्विपरीतं न शर्म्मणे ॥ १२ ॥

दोनों प्रकार के चन्दन, मूर्वा दोनों प्रकार की शारिवा, दोनों हलदी (हल्दी, दारुहल्दी), लाख, वंशलोचन, गेरू, जीवन्ती, मुलेठी, शतावरी, असगन्ध, बच, पीपल, काकोली, जीवक और ऋषभक, इन सबका क्वाथ करके प्रातःकाल पीने से मस्तिष्क का ह्रास शान्त हो जाता है। यहाँ वातविकार को शान्त करनेवाले तैल और घृत तथा अपस्मारनाशक औषधियाँ प्रयुक्त करना चाहिए। मस्तिष्क की वृद्धि और ह्रास के लिए देह को पुष्ट करनेवाला, हलका आहार देना लाभदायक है। इसके विपरीत अपथ्य है ॥ १-१२ ॥

मस्तिष्कवेपनाधिकारे

मस्तिष्कवेपन का निदान और लक्षण।

शिरस्यभिहते तैस्तैर्मूर्च्छाहृल्लासवान्तयः। जडत्वं स्पन्दनह्रासो दौर्बल्यं चलचित्तता ॥ १ ॥ वेपथुः कर्णनादश्च मलिनत्वं मुखस्य च। पृथुत्वं तारकायाश्च धमनी बलवर्ज्जिता ॥ २ ॥ शीतलत्वं शरीरस्य वैकृत्यं वचनस्य च। तथा पक्षवधं स्याच्च गदोऽसौ शीर्षवेपनः ॥ ३ ॥

शिर पर चोट लगने से मूर्च्छा, उबकाई, वमन, जड़ता, स्पन्दन की कमी, दुर्बलता, चित्त की चंचलता, कम्प, कर्णनाद (कानों में शब्द गूँजना), मुख की मलिनता, आँख की पुतलियों का फैल जाना, नाड़ी का क्षीण होना, शरीर का शीतल होना, अच्छे प्रकार बोला न जाना, तथा पक्षाघात होना आदि लक्षण शीर्षवेपन रोग में होते हैं ॥ १-३ ॥

शिर काँपने की चिकित्सा।

मनःस्थैर्य्यकरं कर्म्म कार्यं मस्तिष्कवेपने। शिरस्युष्णेऽतिशीतेन तोयेन सेचनं हितम् ॥ ४ ॥ मस्तिष्कवेपनध्वंसि दन्तीस्नेहेन रेचनम्। सजला बललाभाय मृतसञ्जीवनीसुधा ॥ ५ ॥ प्रयोक्तव्या यथामात्रं बल्यमन्यच्च भेषजम्। वह्न्युष्मणा हरेच्छैत्यमङ्गानां कुशलो भिषक् ॥ ६ ॥ त्रिवृतां स्वर्णपत्रीञ्च मुस्तकं मधुकं बलाम्। हरिद्रे द्वे नागरञ्च त्रिफलां कटुरोहिणीम् ॥ ७ ॥ क्वाथयित्वा प्रयोक्तव्यं शीर्षवेपनशान्तये। बलाक्वाथेन सिन्दूरं शीर्षवेपथुनाशनम् ॥ ८ ॥ वातव्याधिहरं सर्व्वं भेषजं तस्य शान्तिकृत् ॥ ९ ॥

मस्तिष्कवेपन में मन को स्थिर करनेवाले कर्म करने चाहिए। शिर गर्म रहता हो तो शीतल जल शिर पर डालना चाहिए। मस्तिष्ककम्पन को दूर करने के लिए दन्तीस्नेह (जमालगोटा का तैल) से विरेचन करना चाहिए। बल देने के लिए जलयुक्त मृतसंजीवनी सुधा का सेवन कराना चाहिए। उचित मात्रा में अन्य बलदायक औषध भी देनी चाहिए। शरीर की शीतलता को दूर करने के लिए अग्नि की उष्मा से भी काम लेना चाहिए, अर्थात् सेंक देना चाहिए। निशोथ, सनाय, मोथा, मुलेठी, खरेटी, दोनों हल्दी, सोंठ, त्रिफला, कुटकी इन सबको समभाग मिलाकर क्वाथ करके सेवन करने से शीर्षकम्प शान्त हो जाता है। खरेटी के क्वाथ के साथ रससिन्दूर का सेवन करने से शिरःकम्प रोग नष्ट होता है। वातव्याधिनाशक सम्पूर्ण औषधियाँ भी इस रोग में लाभदायक हैं ॥ ४-९ ॥

पथ्यादि व्यवस्था।

पयोमांसरसाद्यञ्च स्नायूनां बलवर्द्धनम्। अन्नपानादिकं यच्च सुग्रं स्वादु सारकम् ॥ १० ॥ शीर्षवेपथुरोगिभ्यो

हितं तन्निखिलं मतम्। विपरीतं विजानीयात् कदाचन न शर्म्मदम् ॥ ११ ॥

दूध, मांसरस, स्नायुओं (Nerves) को बलदायक, अन्नपान तथा स्वादिष्ट, दस्तावर, पाचक आहार शीर्षकम्प के रोगी को लाभदायक हैं। इसके विपरीत आहार अपथ्य हैं ॥ १०-११ ॥

वेपथुवाताधिकारे

वेपथुवात का निदान।

वातप्रकोपिपानान्नैर्जरसा सुरयातथा। कशेरुमज्जरोगाच्च वेपथ्वनिलसम्भवः ॥१॥

वात को कुपित करनेवाले अन्नपान से, बुढ़ापे से, शराब से, वातजन्य और कशेरुमज्जा के रोग से वातजन्य वेपथु रोग उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

वेपथु वात के लक्षण।

आदौ हस्तं समारभ्य कदाचिद्वापि मस्तकम् भ्रमात् कृच्छ्रतरः सर्व्वं देहं व्याप्नोति वेपथुः ॥ २ ॥ स नाशक्नोति सम्यङ् न चलितुश्चामितः पतेत्। गच्छेद्यातिद्रुतमिव निद्रितोऽपि च वेपते ॥ ३ ॥ नाहारं भक्षयेत् सम्यग्वक्रकायोभवत्यपि। चिबुकञ्च समारोप्य वक्षोऽस्यन्यवतिष्ठते ॥ धृताङ्ग कम्पते चापि न शक्नोत्यपि भाषितुम्। ततो बहुप्रलापश्च चेतनापरिवर्जितः ॥ ५ ॥ स्वयं प्रवृत्तविण्मूत्रः श्वासी प्राणांस्त्यजत्यपि। अतोऽयं दारुणो व्याधिर्नोपेक्ष्यो जीवनैषिणा ॥ ६ ॥

प्रारम्भ में हाथ या मस्तक से शुरू होकर सम्पूर्ण देह में चक्कर-सा आकर कम्प शुरू होता है। इससे रोगी अच्छी तरह चल नहीं सकता है और गिर जाता है। चलता है तो तेज चलता, सोते समय भी कांपता रहता है। अच्छी तरह भोजन भी नहीं कर सकता, क्योंकि शरीर तिरछा हो जाता है। चिबुक छाती से टिक जाती है, सब शरीर काँपने लगता है जिससे अच्छी तरह बोल भी नहीं सकता। ज्ञानशक्ति लुप्त होने से बहुत प्रलाप करता है। मल-मूत्र की प्रवृत्ति स्वतः हो जाती है। श्वास होकर प्राणनाश हो जाता है। इसलिए जीवित रहने की इच्छा करनेवाले व्यक्ति को इस भयानक बीमारी की लापरवाही नहीं करनी चाहिए ॥ २-६ ॥

वेपथुवात की चिकित्सा।

बृंहणं भेषजं सर्व्वं ज्ञेयं वेपथुवातकृत्। वातव्याधिहरं तैलं घृतञ्च निखिलं हितम् ॥ ७ ॥ वातव्याधिषु यत्पथ्यं यदपथ्यञ्च कीर्तितम्। ज्ञेयं वेपथुवाते तत् पथ्यञ्चापथ्यमेव च ॥ ८ ॥

रसरक्तादि धातुवर्धक सब औषधें वेपथुवातनाशक हैं। सम्पूर्ण वातव्याधिनाशक तैल और घृत भी इसे नष्ट करते हैं। वातव्याधि में जो पथ्य कहा है वह तो इसके लिये पथ्य है और जो अपथ्य कहा है वह अपथ्य है ॥ ७-८ ॥

ओजोमेहाधिकारे

ओजोमेह रोग का निदान और लक्षण।

अभिघाताग्निमान्द्यामवाताजीर्णविसूचिका। विषमज्वरशोथार्थ्यर्दमकासादिभिस्तथा ॥ १ ॥ वृक्कयोः शोणितस्रोतो विकृतेरसदोषतः। लसिकाशुक्रपूयास्रं युक्ते मूत्रे तथा नृणाम् ॥ २ ॥ स्त्रीणां गर्भागमे चैव बहुक्षारवर्जितैः। मधुरोजस्करद्रव्यभक्षणैरतिमात्रतः ॥ ३ ॥ गुरुपर्युषितानाञ्च भोजनादतिभोजनात्। नवधान्यादिगोधूमहंसडिम्भातिसेवनात्॥

दूषिते शीतले तोये स्नानपानावगाहनात्। एभिर्निदानैरन्यैश्च दूषितादोजसो भवेत् ॥ ५ ॥ ओजोमेहः स विज्ञेय आयुर्बल-निकृन्तनः। शारीरिकश्रमवशात् तथान्येनैव हेतुना ॥ ६ ॥ द्रुतं शोणितसञ्चारात् प्रकृतेश्च विपर्ययात्। ओजोविकृतिमापन्नं हंसाण्डश्वेतभागवत् ॥ ७ ॥ पिष्टतण्डुलवद्वाथ सहमूत्रेण संस्रवेत्। मेदःक्षयो भवेत्तत्र ज्वरारोचकयोस्तथा ॥८ ॥ शोथेऽग्निमान्द्ये सञ्जाते गदोऽसाध्यो न संशयः। अन्यथा कृच्छ्रसाध्योऽसौ यत्नात् जीवति मानवः ॥ ९ ॥

चोट से मदाग्नि, आमवात, अजीर्ण, विसूचिका, विषमज्वर, शोथ, यक्ष्मा, खाँसी आदि रोगों के कारण दोनों गुर्दों के रक्तस्रोतों की विकृति से और रक्तदोष से मनुष्यों के लसिका, वीर्य पूय और रक्तयुक्त मूत्र उतरता है। स्त्रियों के गर्भावस्था में कडुए और क्षाररहित, मधुर और ओजकारक द्रव्यों के अत्यन्त सेवन से, भारी, बासी भोजन और अतिभोजन से यह रोग होता है। नवीन अन्न, गोधूम, हंस (बतक) के अण्डों के अधिक सेवन से, दूषित, शीतल जल के स्नान-पान आदि से; इन सब कारणों से ओज दूषित हो जाने से आयु और बल को नष्ट करनेवाला यह ओजोमेह रोग होता है। शारीरिक श्रम के कारण से या अन्य कारणों से, रक्तसंचार की शीघ्रता से तथा प्रकृति की विपरीतता से ओज विकृत होकर हंस के अण्डा के श्वेत भाग के समान अथवा पिसे हुए चावलों के समान पदार्थ मूत्र के साथ आने लगता है। जहाँ मेदा धातु के क्षय तथा ज्वर, अरोचक, शोथ और अग्निमान्द्य आदि उपद्रव होते हैं वहाँ पर यह रोग असाध्य हो जाता है अन्यथा कृच्छ्रसाध्य है। इस रोग में मनुष्य कठिनता से बच पाता है ॥ १-९ ॥

ओजोमेह की चिकित्सा।

विचार्य दोषदूष्यादीन् निदानं परिवर्ज्जयेत्। चिकित्सेत् गदाक्रान्तं दोषदूष्यानुसारतः ॥ १० ॥ अथ प्रधानमगदं हितमत्र विशेषतः। वर्ज्जनीयं रसोद्भूतमौषधं शिवमिच्छता ॥ ओजोह्रासजदौर्ब्बल्यं दूरीकुर्य्यात् प्रयत्नतः ॥ ११ ॥

दोष-दूष्य आदि का विचारकर रोग उत्पन्न करनेवाले कारणों को छोड़ देना चाहिए और दोषदूष्यानुसार चिकित्सा करनी चाहिए। छोड़-भस्म जिसमें प्रधान औषध हो वही औषध इस रोग में विशेषरूप से लाभदायक है। रसजन्य (पारद से बनी) औषध त्याज्य है। ओजक्षय से उत्पन्न दुर्बलता को यत्नपूर्वक दूर करना चाहिए ॥ १०-११ ॥

चन्दनादि क्वाथ।

चन्दनं नलदं द्राक्षा गुडूची मधुकं स्फटी। धात्री च क्वाथ एतेषां ओजोमेहोपशान्तिकृत् ॥ १२ ॥ तथा हारिद्रमाञ्जिष्ठमेहादीनां परमौषधम्। सोपद्रवाणां कथितः कृपार्द्रेणैव शम्भुना ॥ १३ ॥

सफेद चन्दन, लालचन्दन, खस, दाख, गिलोय, मुलेठी, फिटकरी और आँवला का क्वाथ ओजोमेहनाशक है। तथा उपद्रवयुक्त हारिद्र तथा मंजिष्ठामेह आदि प्रमेहों की भी यह उत्तम औषध है।। इसे दया से युक्त श्रीशङ्करजी ने कहा है ॥ १२ १३ ॥

अजमोदादि चूर्ण।

अजमोदामृता शुण्ठी गुडूची त्रिफला त्रिवृत्। बीजं गोक्षुरजं दारु निशा श्याम-नृसारकम् ॥ १४ ॥ चूर्णमेषां माषमितं सेवितं यत्नतो हरेत्। ओजपिष्टादिजान् मेहान् द्रुतं भास्करान् यथा तमः ॥ १५ ॥

अजमोद, गिलोय, सोंठ, त्रिफला, निशोथ, गोखरू के बीज, दारुहल्दी, सारिवा, नौसादर, इन सबका चूर्ण करके एक मासा की मात्रा में यत्नपूर्वक सेवन करने से ओज, पिष्ट आदि

प्रमेह इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे सूर्य से अन्धकार नष्ट होना है ॥ १४-१५ ॥

दाडिमाद्यं घृतं चन्द्रप्रभा नाम वटी तथा । मुक्तावङ्गेश्वरश्चैव वसन्तकुसुमाकरः ॥ १६ ॥ चन्दनाद्यासवोऽरिष्टो देवदारुसमुद्भवः । प्रमेहमिहिरं तैलं तथा मेहाधिकारिकम् ॥ अगदं चात्र युञ्जीत नित्यं कुशलमिच्छता ॥ १७ ॥

दाडिमाद्यघृत, चन्द्रप्रभावटी, मुक्तावंगेश्वर, वसन्तकुसुमाकर, चन्दनाद्य आसव, देवदार्वारिष्ट, प्रमेहमिहिर तैल तथा प्रमेहाधिकार में कहे हुए प्रयोग भी आवश्यकतानुसार इस रोग में प्रयुक्त करने चाहिए ॥ १६-१७ ॥

चन्दनासव ।

चन्दनं सरलं देवदारु दारुनिशा निशा । त्रिवृत् चित्रकमूलञ्चागुरु धात्री सुरभियम् ॥ १८ ॥ शतमूल्याश्मभिद् वासात्वचश्च सारिवाद्वयम् । लक्ष्मणायास्तथा मूलं वावरी वरुणत्वची ॥ १९ ॥ प्रत्येकं पलिकं ज्ञेयं द्राक्षायाः पलविंशकम् । धातकीषोडशपलां तुलामानां सितां तथा ॥ २० ॥ माक्षिकार्द्धपलं सर्व्वं जलद्रोणद्वये क्षिपेत् । मासमेकं भाण्डमध्ये सपिधाने निधापयेत् ॥ २१ ॥ चन्दनासव इत्येष रोगानीकनिकृन्तनः । शुक्रदोषं रजोदोषं मूत्रदोषं सुदारुणम् ॥ २२ ॥ निहन्ति त्रिविधान् मेहान् कृच्छ्रमष्टविधं तथा । चतस्रश्चाश्मरीस्तद्वन्मूत्राघातांस्त्रयोदश ॥ २३ ॥ अन्त्रवृद्धिं पाण्डुरोगं कामलाञ्च हलीमकम् । कासं श्वासं तथा कुष्ठमग्निमान्द्यमरोचकम् ॥ २४ ॥ औपसर्गिकमेहांश्चनाशयेदविकल्पतः । भाषितः श्रीमहेशेन लोकानां हितकारिणा ॥ २५ ॥

लालचन्दन, सफेद चन्दन, देवदारु, चीड़, दारुहल्दी, हल्दी, निशोथ, चित्रक की जड़, अगर, आँवला, कवावचीनी, शतावरी, पाषाणभेद, अडूसा की छाल, दोनों सारिवा, लक्ष्मणा की जड़, बबूल की छाल, बरना की छाल, प्रत्येक चार-चार तोले। दाख १ सेर, धाय के फूल ६४ तोले, खाँड ५ सेर, स्वर्णमाक्षिक की भस्म २ तोले, इन, सबको लेकर २५ सेर ४८ तोले जल में डालकर एक मिट्टी के पात्र में भरकर उसका मुख बन्द कर के एक महीने तक रखा रहने दे। आसव बनाने की विधि से आसव तैयार करके फिर छान ले। रोगसमूहों को नष्ट करनेवाला यह चन्दनासव वीर्यदोष, रजोदोष, कष्टदायक मूत्रदोष, अनेक प्रकार के प्रमेह, आठ प्रकार के मूत्रकृच्छ्र, चार प्रकार की अश्मरी, तेरह प्रकार के मूत्राघात, अंत्रवृद्धि, पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, खाँसी, श्वास, कुष्ट, अग्निमान्द्य, अरुचि और औपसर्गिकमेह (सूजाक) आदि को नष्ट करता है। श्रीमहेशजी ने मनुष्यों के हित के लिए यह चन्दनासव कहा है ॥ १८-२५ ॥

पथ्यापथ्य की व्यवस्था ।

लघु बल्यं पुराणञ्च धान्यमुद्गयवादिकम् । वार्त्ताकुञ्च पटोलञ्च काकोडुम्बरकं तथा ॥ २६ ॥ कारवेल्लादिकं शस्तं वर्ज्जयेन्मधुरं गुरु । मांसं मत्स्यान् तथाध्वानमातपाग्निनिषेवणम् ॥ २७ ॥ दूषितातिशीततोयस्नानपानावगाहनम् ॥ २८ ॥

इस रोग में बलकारक, हलका आहार, पुराने अन्न, चावल, मूँग, जौ आदि तथा बैंगन, परवल, कठगूलर करेला आदि साग श्रेष्ठ हैं। मधुर, भारी, खाद्य, मांस-मदिरा, मैथुन, धूप, अग्निसेवन तथा दूषित और अत्यन्त शीतल जल में स्नान-पान आदि त्याज्य हैं ॥ २६-२८ ॥

आगन्तुजपक्षाघाताधिकारे

आगन्तुज पक्षाघात का भेद ।

पक्षाघातो द्विधा ज्ञेयो दोषागन्तुज-

भेदतः। दोषजः कथितः पूर्वमधुनागन्तुजं शृणु ॥ १ ॥ आगन्तुजोऽपि द्विविधः पक्षाघातः प्रकीर्त्यते। आद्यः पारदसम्भूतो द्वितीयो नागजः स्मृतः ॥ २ ॥

नागजः सीसकजः।

पक्षाघात दो प्रकार का होता है। १ दोषज, २ आगन्तुज। दोषज तो पहिले कह दिया गया है, आगन्तुज अब कहते हैं। आगन्तुज भी दो प्रकार का होता है। १ पारदजन्य, २ नागज (शीशकाजन्य) ॥ १-२ ॥

पारदजन्य पक्षाघात का निदान

रससंस्पर्शसात्त्यात् तद्धूमस्य च सेवनात्। पक्षाघातो भवेद् यस्तु स ज्ञेयः पारदोद्भवः ॥ ३ ॥

पारदजन्य पक्षाघात—पारद के स्पर्श या उसके धुआँ [illegible] सेवन से एक अंग बेकार हो जाय, उसे पारदजन्य पक्षाघात कहते हैं ॥ ३ ॥

पारदजन्य पक्षाघात के लक्षण।

आदौ बाह्वोर्बलध्वंसस्ततः कम्पः प्रजायते। वेपने सक्थिनी चापि कायःसर्वस्ततः परम् ॥ ४ ॥ गदी चलति नृत्यन् वै दृढं द्रव्यं न धारयेत्। स्पष्टं प्रभाषितुञ्चापि चर्वितुञ्च न च क्षमः ॥ ५ ॥ ततस्तस्यापि निद्रा च प्रलापो बलसंक्षयः। हृल्लासो वह्निनाशश्च दन्तध्वंसः क्वचित् स्रुतिः ॥ ६ ॥ शान्तिर्भवति कम्पस्य विधृतेऽङ्गे रसामये। नागामयस्य लिङ्गानि शृणुतातः समासतः ॥ ७ ॥

अत्र वै शब्दस्य इवार्थे प्रयोगः। स्रुतिः लालास्रावः।

प्रारम्भ में बाहु का बल नष्ट होने से कम्प उत्पन्न होकर टाँगें काँपती हैं। बाद में सर्वांग भी काँपने लगता है। रोगी नाचता हुआ सा चलता है, किसी वस्तु को दृढ़ता से धारण नहीं कर सकता है। न तो स्पष्ट बोल ही सकता है और न अच्छी तरह चबा ही सकता है। नींद अधिक आती है; बकवाद करने लगता है और बल नाश हो जाता है। उबकाइयाँ, अग्निनाश, दाँत गिर जाना और कहीं-कहीं लालास्राव भी होता है। किसी-किसी अंग का कम्प शान्त भी हो जाता है। ये पारदजन्य पक्षाघात के लक्षण हैं। नागजन्यपक्षाघात के लक्षण आगे कहेंगे ॥ ४-७ ॥

पारदजन्य पक्षाघात की चिकित्सा।

मुख्यं चिकित्सितञ्चास्य निदानपरिवर्जनम्। निदानसेविनो व्याधिर्नौषधाद् विनिवर्त्तते ॥ ८ ॥ स्वेदसञ्जननं सर्वं मूत्रकृच्च विरेचनम्। रक्तदोषहरं चात्र शर्मदं भेषजं मतम् ॥ ९ ॥ गन्धकं परमं प्राहुर्भेषजं पारदामये। नेपालनिम्बतोयेन सेव्यो लोहोऽस्य शान्तये ॥ १० ॥

इसकी मुख्य चिकित्सा यही है कि जिन कारणों से उत्पन्न हुआ है उन-उन कारणों को छोड़ दिया जाय। यदि रोग-उत्पादक कारणों को सेवन करते ही रहे छोड़े नहीं, तो औषध सेवन से रोग नष्ट नहीं होता है। स्वेदज (पसीना लानेवाली), मूत्रकारक, दस्तावर, रुधिर-दोषनाशक औषध यहाँ लाभदायक होती है। पारदजन्य विकारों में गन्धक श्रेष्ठ औषध है। चिरायता और नीम के जल से लोह रसायन का सेवन करना भी इसको शान्त करता है ॥ ८--१० ॥

नागजपक्षाघात का निदान

चित्रकृत् प्रमुखा ये हि नागैः कर्म प्रकुर्वते। ये वा व्यवहरन्त्यस्य पात्रं तेषां ततो गदः ॥ ११ ॥

जो व्यक्ति चित्रकारी, प्रेस का काम या अन्य सीसा सम्बन्धी काम करता है उसको नागजन्य पक्षाघात होता है ॥ ११ ॥

नागजन्य पक्षाघात के लक्षण।

अङ्गुलीस्तु समारभ्य मणिबन्धं ततोऽखिलम्। व्याधिर्व्याप्नोति दौर्बल्यं सर्वकं

लक्षणं महत् ॥ १२ ॥ अंसे प्रकोष्ठे तोदश्च बाह्वोश्च परिशीर्णता । नीलिमा दन्तवेष्टे च शूलं चिह्नानि चास्य वै ॥१३॥

अँगुलियों से प्रारम्भ होकर कलाई तक या अधिक भी हाथ में रोग फैलता है और दुर्बलता उसका मुख्य लक्षण है। कंधा और प्रकोष्ठ में तोदने की पीड़ा, हाथ में शिथिलता, मसूढ़ों में नीलापन और शूल होना इसके लक्षण हैं ॥ १२–१३ ॥

नागजन्यपक्षाघात की चिकित्सा।

स्वेदनं भेदनं चापि कुष्ठघ्नं यच्च भेषजम् । तत्सर्वमिह संसेव्यं कृत्वा हेतुविवर्जनम् ॥ १४ ॥

स्वेदन, भेदन और कुष्ठनाशक औषध सेवन करने से लाभ होता है। रोग उत्पन्न करनेवाले कारणों का सेवन करना बन्द कर देने से भी लाभ होता है। १४ ॥

अंशुघाताधिकारे

अंशुघात का निदान और लक्षण।

चण्डांशोरंशुना शीर्ष्णि तप्ते चण्डेन जायते । अंशुघाताभिधो व्याधिः प्राणिनां प्राणपीडनः ॥ १ ॥ तृष्णातिघोरा त्वग्रुक्षा भ्रमो नेत्रस्य रक्तता । मूत्रवेगश्च मूर्च्छा च हृल्लासो विषमा धरा ॥ २ ॥ श्वासकृच्छ्रं स्पर्शहानिराक्षेपश्चात्र सम्भवेत् । प्रायः कारावरुद्धानां भटानां जायते च सः ॥३॥ स अंशुघातः सर्दीगर्मीति वङ्गभाषा ।

सूर्य की तेज किरणों से मस्तक गरम हो जाता है जिससे प्राणों को पीड़ित करनेवाली अंशुघात नामक व्याधि जीवों के उत्पन्न होती है। इससे अत्यन्त तीव्र प्यास लगती है, त्वचा रूक्ष हो जाती है, भ्रम और आँखों में लाली हो जाती है, मूत्र का वेग होता है। मूत्र की प्रवृत्ति न होकर मूत्राशय भरा हुआ सा मालूम देता है। मूर्च्छा, उबकाई, विषम स्थिति, श्वास में कष्ट, स्पर्श का अनुभव न होना एवम् आक्षेप (झटके) भी आने लगते हैं। प्राय कैदी वीरों के भी यह रोग हो जाता है। बँगला भाषा में अंशुघात को सर्दी-गर्मी कहते हैं १–३

अंशुघात के अरिष्ट और लक्षण।

नीलिमा हस्तपादस्य धमन्याः क्षणलुप्तता । विक्षेपणश्च गात्राणां मरणायांशुघातिनः ॥ ४ ॥

अंशुघातिनः अंशुघातरोगिणः ।

अंशुघातपीड़ित रोगी के हाथ-पैरों का नीला हो जाना, नाड़ी का क्षण में लुप्त होना, क्षण में प्रगट होना और शरीर के अवयवों का इधर-उधर फेंकना उसके मरण के चिह्न हैं ॥४॥

अंशुघात की चिकित्सा।

अङ्गावरणवासांसि दूरे निःक्षिप्य यत्नतः । प्रच्छाये प्रगहवाते गन्धाढ्ये मनसः प्रिये ॥ ५ ॥ विविक्ते व्यक्तनभसि विहङ्गगणनादिते । शाययेत् सुखशय्यायामंशुघातिनमञ्जसा ॥ ६ ॥ शीताम्बुशेकं कुर्याच्च चन्दनाम्बु च पाययेत् । नाधिकं पाययेदम्बु सहसा कुशलो भिषक् ॥ ७ ॥ आच्छादयेत्सर्वमङ्गं शीततोयार्द्रवाससा । सहस्रधारया स्नानमंशुघातगदापहम् ॥८॥ दन्त्युद्भवेन तैलेन रेचनं हितमुच्यते। अत्युष्णेनाम्भसा सिक्तं वस्त्रमूर्णामयं पृथु ॥ ६ ॥ ततो निहृत्य तोयश्च श्रीवासपृक्ताहृतम् । उष्णमेव च ग्राटायां निधायान्येन वाससा ॥ १० ॥ शुष्केण चापि कदलीदलैर्नातिदृढं ततः । बद्धातिदाहं यावच्च संरक्षेदिति यत्नतः ॥ ११ ॥ अनेन विधिना मूर्च्छा नश्यत्येव हि सत्वरम् ॥ अङ्गानामुष्मणो नाशे धमन्याश्च च्युतिभ्रमे

स्वेदो विधेयो योज्या च मृतसञ्जीवनी सुधा ॥ १२ ॥

रोगी के शरीर के वस्त्रों को दूर करके उसके हवा करनी चाहिए तथा छाया में हवादार स्थान में रखना चाहिए जहाँ मन को प्रिय सुगन्ध आती हो। एकान्त खुले हुए स्थान में जहाँ पक्षिगण बोलते हों सुखदायक शय्या पर अंशुघातपीड़ित रोगी को सुलाना चाहिए। रोगी का शीतल जल से सेक (ठंडे जल में कपड़ा भिगोकर सिर आँख आदि पर फेरना) करना चाहिए। चन्दन का जल (अर्कचन्दन) पिलाना चाहिए, पर एक साथ अधिक जल न पिलाना चाहिए। रोगी के सब शरीर को शीतल जल से भीगे हुए वस्त्र (भिगोकर निचोड़े हुए) से ढक देना चाहिए, तथा फुवारे के जल से स्नान भी कराना चाहिए। दन्ती (जमालगोटा की जड़) के तैल से विरेचन करा देना भी लाभदायक है। अत्यन्त गरम जल में ऊन के मोटे कपड़े को डुबोकर उसके जल को निचोड़ ले और उसमें चीड़ का गोंद मिलाकर गरम-गरम ही दूसरे कपड़े पर लगाकर गर्दन के पिछले हिस्से पर लगा दे। सूख जाने पर केला के पत्तों से ढककर बाँध दे, परन्तु बहुत कसकर न बाँधे। जब तक दाह हो तब तक इसकी यत्नपूर्वक रक्षा करता रहे। इस विधि से शीघ्र ही मूर्च्छा नष्ट हो जाती है। शरीर के अवयवों की ऊष्मा नष्ट होने पर (टेम्प्रेचर गिर जाने पर) और नाड़ी के उलटे क्रम से चलने पर पसीना दिलाना चाहिए और मृतसंजीवनी सुधा का प्रयोग करना चाहिए ८–१२

रत्नेश्वर रस।

वज्रं वैक्रान्तमभ्रञ्च सिन्दूरमपि माक्षिकम्। मौक्तिकं हेम रौप्यञ्च सममिक्षुजवारिणा ॥ १३ ॥ शतावरी रसेनापि विदार्य्याः स्वरसेन च। विभाव्य वटिका कुर्य्याद्रक्तिकामिता भिषक् ॥ त्रिफलाजलयोगेन रसो रत्नेश्वरो हरेत् ॥ १४ ॥ मस्तिष्कस्नायुजान् व्याधीनंशुघातं विशेषतः ॥ अंशुघाते प्रकर्त्तव्यो विधिर्मूर्च्छानिसूदनः ॥ १५ ॥

हीरा, वैक्रान्त, अभ्रक, रससिन्दूर, स्वर्णमाक्षिक, मोती, सोना और चाँदी सबकी भस्में समानभाग लेकर ईख के रस, शतावरी के रस और विदारीकन्द के स्वरस से घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना ले। त्रिफला के जल के साथ इस रत्नेश्वर रस का प्रयोग करने से यह मस्तिष्क और स्नायु (नाड़ी Nerves) जन्य विकारों को नष्ट करता है। विशेषतः अंशुघात के लिए अधिक लाभकारक है। अंशुघात रोग में मूर्च्छा नष्ट करनेवाले प्रयोग करना चाहिए ॥ १३–१५ ॥

महाशिशिरपानक।

शर्करा द्विपलोन्माना चन्दनञ्चार्द्धकार्षिकम्। जम्बीरजश्च पलिको रसो वच्याश्च तत्समः ॥ १६ ॥ शाणञ्चमधुरीतैलं प्रस्थार्द्धप्रमितेऽम्भसि। मिश्रयित्वा समालोड्य स्तोकं स्तोकं मुहुर्मुहुः ॥ १७ ॥ अंशुघातगदाक्रान्तं पाययेत् सुखदं हितम्। महाशिशिरनामेदं पानकं हरिणोदितम् ॥ १८ ॥ अंशुघाते निवृत्तेऽपि मिथ्याहारविहारिणः। अपस्मारादयः प्रायो जायन्ते बहवो गदाः ॥ १९ ॥ तन्मुक्तोऽतो हितं नित्यं सेवेताबललाभतः। मनःप्रीतिमदं कर्म्म विदधीत निरन्तरम् ॥ २० ॥

खाँड़ या चीनी ८ तोले, चन्दन ६ माशे, जबीरी नींबू का रस ४ तोले, शतावरी का रस ४ तोले, सौंफ का तैल ६ माशे और जल ३२ तोले, सबको मिलाकर मथा जाय, बाद में थोड़ा-थोड़ा बार-बार पिलाता रहे। महाशिशिर नामक पानक अंशुघात रोग से पीड़ित व्यक्ति को बहुत सुखदायक और हितकारी है। अंशुघात रोग के अच्छे होने पर भी मिथ्या आहार और विहार के सेवन से अपस्मार आदि बहुत से रोग हो जाते हैं, इसलिये अंशु-

घात रोग से अच्छा होने पर भी जब तक पूर्णतया बल न आ जाय इसे नित्य ही सेवन करता रहे । इसमें मन को प्रसन्न करनेवाला कार्य ही सदैव करना चाहिए ॥ १६-२० ॥

अंशुघात रोग में पथ्य और अपथ्य-व्यवस्था।

अन्नपानादिकं स्निग्धं बलपुष्टिमदं सरम् । हितं स्यादंशुघातिभ्यो विपरीतं न शर्म्मणे ॥ २१ ॥

अंशुघात के रोगी को अन्नपान आदि चिकने, बल और पुष्टिकारक, दस्तावर होने चाहिए। इससे विपरीत सुखदायक न होकर हानिकारक होते हैं २१

अपमृत्युर्धिकारे ।

श्वासरोधी मतो हेतुर्मरणे मज्जनादिना । अतःश्वासे समानीते प्राणी प्राणिति यत्नतः ॥ १ ॥ उष्णः कायोऽस्ति वै यावदङ्गानि शिथिलानि च । तावच्चिकित्सा कर्त्तव्या प्रायो दण्डान्ततो मृतिः ॥२॥

डूबने आदि से श्वास का रुक जाना मृत्यु का कारण है, अतः प्राणों की रक्षा करने के लिए यत्नपूर्वक श्वास को फिर वापिस लाना चाहिए। जब तक शरीर गरम और अङ्ग शिथिल रहें तब तक चिकित्सा करनी चाहिए । प्रायः एक घड़ी भर के बाद मर जाता है ॥ १-२ ॥

जलमग्न की चिकित्सा।

जलमग्नं समुत्थाप्य व्यवलम्ब्योर्द्ध्ववर्त्म च । मुखान्निःसारयेत्तोयं कफं लालाञ्च निर्हरेत् ॥ जनतां वारयेत् तत्र तथा वायुर्न दूष्यति ॥ ३ ॥

जल में डूबे हुए मनुष्य को उठाकर उसके शरीर को लिपटाकर पेट को दबाकर मुख से जल, कफ और लार आदि को निकाल देना चाहिए और वहाँ भीड़ को न आने देना चाहिए तथा वहाँ की वायु को दूषित न होने देना चाहिए ॥ ३ ॥

लुप्तश्वास की पुनरानयन विधि ।

शायितस्यास्य पार्श्वे तु तीव्रनस्यं नसि क्षिपेत् । अंगुल्या संस्पृशेत् कण्ठं श्लक्ष्णेन दारुणाथवा ॥ ४ ॥ अनेन विधिना वेगे क्षवस्य वमनस्य वा । जाते श्वासः समायाति विपन्नश्चापि जीवति ॥ ५ ॥ मुखं वक्षश्च संघृष्य तत्र शीताम्बुसेचनम् । कुर्य्यांच्छ्वासस्तथायाति विपन्नश्चापि जीवति ॥ ६ ॥ एवं श्वासो न चेदायाद्भिषक् कुर्य्यात् क्रियामिमाम् । श्वासक्रियामन्त्ररयर्थं जितहस्तः कृतक्रियः ॥ ७ ॥ कृत्वावाक्शायिनं वैद्यस्तथोपधानवक्षसम् । पार्श्वे ततः शाययित्वा तद्युग्मं परिपीडयेत् ॥ ८ ॥ षड्धा वा सप्तधा कुर्य्यात् पलमध्ये क्रियामिमाम् । यावच्छ्वासो न चायाति नाथवा मृत्युनिश्चयः ॥ ९ ॥ कृत्वोपधानपृष्ठं वा तामुत्तानं प्रशाययेत् । ततश्चाकर्षयेज्जिह्वां कर्षेद्बाहुः स्वयं तथा ॥ १० ॥ शीर्ष्णः समीप आसीनः कुर्य्याद्धस्तावुरोगतौ । षट्कृत्वः सप्तकृत्वो वा पले कुर्य्यात् क्रियामिमाम् ॥ ११ ॥ यावच्छ्वासो न चायाति नाथवा मृत्युनिश्चयः । श्वासो नायाति यद्येवं बाहुसक्थ्नी च यत्नतः ॥ १२ ॥ विमर्द्य निम्नतश्चोर्ध्वं रूक्षास्वेदश्च कारयेत् । निखिलैः कर्म्मभिश्वं श्वासे दृप्ते च जीवति ॥ १३ ॥ विपन्नं पाययेद्देनं सुरां सलिलसंयुताम् । निद्रावेगे स्वापयेच्च पथ्येनातश्च वर्त्तयेत् ॥ १४ ॥

रोगी को सीधा सुलाकर नाक में तीक्ष्ण नस्य फूंक देना चाहिए और कण्ठ को अंगुली से कोमलता से या लकड़ी से छूना चाहिए । इस प्रकार जोर से छींक आयेगी या वमन होगी और गया हुआ श्वास फिर वापिस आ जायगा

और रोगी जी जायगा। अथवा मुख और छाती को मसलकर शीतल जल सींचना चाहिए। कृत्रिम श्वासक्रिया करने से मरणासन्न भी जी जाता है,। यदि इस प्रकार भी श्वास न आए तो यह दूसरी क्रिया करनी चाहिए। क्रियाकुशल व्यक्ति बीमार को सीधा सुलाकर उसके दोनों पसवाड़ों को मसले। यह क्रिया एक पल में ६-७ बार करनी चाहिए। जब तक श्वास न चल निकले या उसकी मृत्यु का निश्चय न हो जाय तब तक यह क्रिया करते ही रहना चाहिए। एक विधि यह भी है। सीधा लिटाकर जीभ को बाहर निकालकर रोगी के सिर के पास बैठकर उसके हाथों को ऊपर नीचे करना चाहिए। यह क्रिया तब तक करनी चाहिए जब तक कि रोगी का श्वास-प्रश्वास जारी न होने लग जाय या रोगी की मृत्यु का निश्चय न हो जाय। यह क्रिया एक पल में ६-७ बार करनी चाहिए। यदि इस पर भी श्वास न आवे तो हाथ-पैरों को नीचे से ऊपर को मर्दन करना चाहिए और रूक्षस्वेद (बालुकास्वेद आदि) करना चाहिए। इस प्रकार की क्रियाओं से रोगी जी जाता है। रोगी को शराब (उत्तम मृतसंजीवनी सुरा आदि) को जल मिलाकर पिलाना चाहिए। नींद आने पर सुला देना चाहिए और रोगी को पथ्य सेवन करना चाहिए॥ ४—१४॥

द्वितीय परिशिष्ट

भैषज्यरत्नावली में जितने प्रयोगों का वर्णन है उन सबके बनाने के लिए उनके उपादान (वह द्रव्य जिनके योग से प्रयोग बनता है) तैयार रखना आवश्यक है जिनमें से कुछ द्रव्य केवल शुद्ध करने के बाद में व्यवहार योग्य होते हैं। कुछ भस्म करने के बाद व्यवहार योग्य होते हैं। अस्तु, यहाँ उन सबके शोधन और भस्मीकरण की विधियाँ लिखते हैं तथा तैल, घृत, आसव, अरिष्ट आदि की निर्माण-विधियाँ भी लिखते हैं, जिससे बिना किसी अन्य ग्रंथ का आश्रय लिये प्रत्येक चतुर व्यक्ति औषध-निर्माण कर सके।

हिंगुलु—

खनिज और कृत्रिम-भेद से दो प्रकार का होता है। जहाँ केवल शुद्ध हिंगुलु का प्रयोग हो वहाँ तो खनिज हिंगुलु ही ग्रहण करना चाहिये, अभाव में कृत्रिम भी लिया जा सकता है। और पारद निकालने के लिये कृत्रिम हिंगुलु का भी व्यवहार कर सकते हैं। कृत्रिम हिंगुलु भारी चमकदार जिसके दाने जल्दी ही बिखर जायँ वह अच्छा होता है। इसमें से पारद अधिक मात्रा में निकल सकता है।

हिंगुलशोधन—नींबू के रस में २-३ दिन घोटकर सुखा लेना चाहिये।

हिंगुलु से पारद निकालना—शुद्ध हिंगुलु की टिकिया या गोला के ऊपर कपड़े की चीर इस तरह लपेटें कि उसके चारों ओर कुछ-कुछ निकलते रहें, फिर उस गोला को मिट्टी के तेल से भिगोकर एक बड़ी परात में छोटी-छोटी चार कंकड़ियों पर उस गोले को रखकर आग से जला दे और ऊपर से एक मिट्टी की नाँद से इस तरह ढक दे कि थोड़ी सी हवा उसके अन्दर जाती रहे, जिससे वह बुझ न जाय। इस यंत्र को निर्वात स्थान पर रखना चाहिये और नाँद के ऊपर एक कपड़ा जल में भिगोकर रख दें। पारद हिंगुलु से निकलकर नाँद के पेंदे में जम जाता है तथा कुछ परात में फैल जाता है। स्वांग शीतल होने पर नाँद से खुरच कर पारे को निकाल ले तथा परात में फैले हुए और राख में मिले हुए पारे को जल से धो-धोकर निकाल ले। इस विधि से पारद जल्दी और अधिक मात्रा में निकलता है। पारद निकलने की मात्रा हिंगुलु की श्रेष्ठता पर निर्भर है।'

पारद—

भारी, चंचल, दर्पण की तरह स्वच्छ, चमकदार, बाहरी भाग में सफेद, भीतर श्यामाभा पारा अच्छा होता है। इसको शुद्ध करके व्यवहार में लाना चाहिये। हिंगुलु से निकाला हुआ पारद भी शुद्ध होता है, उसी को व्यवहार में लाते हैं, किन्तु गुणवृद्धि के लिये भी फिर शुद्ध कर लेना चाहिये।

साधारण शुद्धि—पारद आध सेर, अदरक का रस पाव सेर, पान का रस पाव सेर, सुहागा, सज्जीखार, जवाखार प्रत्येक दो-दो तोले लेकर खरल में तब तक घोटना चाहिये जब तक कि रसों का जलीय भाग सूख न जाय, फिर जल से धोकर अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिये और बाद में कपड़े की ३।३ तह करके उसमें छान लेना चाहिये।

विशेष शुद्धि—पारद आध सेर, छोटी कटेरी का क्वाथ, त्रिफला का क्वाथ, ग्वारपाठे का गूदा प्रत्येक पाव भर, चित्रक का चूर्ण, पीली सरसों का चूर्ण प्रत्येक आधा पाव सबको खरल में डालकर ३-४ दिन घोटकर क्वाथ को सुखा डाले। बाद में जल से धोकर मोटे कपड़े की तहों में ३-४ बार छान लेना चाहिये। यह पारद की विशेष शुद्धि है।

आठ संस्कार—

शुद्ध पारद को अधिक गुणकारी बनाने के लिये तथा रसायन-विधान के लिये संस्कार

करना आवश्यक है। यह संस्कार १८।१६।२५ प्रकार के बतलाए हैं, किन्तु उन सबका करना कठिन और अधिक परिश्रमसाध्य है। रसशास्त्र के आचार्यों ने आठ संस्कारों को ही मुख्य माना है, इनसे ही पारद तीव्र गुणों से युक्त हो जाता है। वैद्यवर्ग में इन आठ संस्कारों का ही अधिक प्रचार है।

१ स्वेदन संस्कार—एक मिट्टी के पात्र में २ सेर कांजी, आध सेर दही का तोड़, आध पाव नींबू का रस, जवाखार, सज्जीखार, सेंधा नमक प्रत्येक आधी-आधी छटांक तथा छोटी पीपल, काली मिर्च, चित्रक, सोंठ, त्रिफला, इलायची के फल का क्वाथ १ सेर (सब चीजें मिलाकर १ सेर लेकर १६ सेर जल में औटाकर १ सेर रहने पर छानले) डालकर चूल्हे पर चढ़ाकर उसमें कपड़े से बँधी पारे की पोटली को एक लकड़ी से बाँधकर उसमें लटका दे जिससे वह उस तरल में डूबी रहे, मगर पेंदे से न लगने पावे। अब मद्दी-मद्दी आंच देता रहे। जब हाँडी का द्रव जलकर पेंदे में जा लगे तब उसे खोलकर निकाल ले।

२ मर्दनसंस्कार—स्वेदन संस्कार किये हुए पारद को नीचे लिखी हुई औषधों के चूर्ण में तीन दिन घोटकर जल से धोकर कपड़ों की तह में छान लेना चाहिए। औषधों के चूर्ण—सेंधा नमक, राई, सोंठ, घर का धुआंसा, हल्दी त्रिफला, अदरख, पीली ईंट का चूर्ण।

३ मूर्च्छन संस्कार—मर्दन संस्कार किए हुए पारद को जवाखार, सज्जीखार, सुहागा प्रत्येक दो दो तोला, पाँचों नमक, नींबू का रस, इमली का पना प्रत्येक दस-दस तोला लेकर एक खरल में डालकर इतना घोटे कि पारद की पिट्ठी-सी हो जाय और दिखाई देने से बन्द हो जाय तब जल से धोकर पारद को निकाल ले और कपड़े की तहों में छान ले।

४ उत्थापन-संस्कार—मूर्च्छन संस्कार किए हुए पारद को सेंधा नमक और सुहागा ४।> तोले नींबू का रस और शहद दो-दो तोले खरल में डालकर घोटना और गोला बँध जाने पर उस गोले को कपड़े में बाँधकर स्वेदन-संस्कार की तरह मिट्टी के पात्र में दही का तोड़ या काँजी भरकर पकाना चाहिये; इस प्रकार दो तीन बार करना चाहिये। इसका नाम उत्थापन संस्कार है।

५ पातन संस्कार—इस संस्कार के तीन भाग हैं १ ऊर्ध्वपातन, २ अधःपातन ३ तिर्यक्-पातन।

ऊर्ध्वपातन—उत्थापन संस्कार किये हुए पारद को सज्जीखार २ तोले, जवाखार २ तोले, पाँचों नमक ४ तोले, हींग १ तोला के साथ घोटकर गोला-सा बना ले। इस गोले को एक ऐसे मिट्टी के पात्र में रखे, जिसमें ४ सेर जल आ सकता हो। इस पात्र के ऊपर दूसरा इतना ही बड़ा पात्र रखकर दोनों के मुँह अच्छी तरह मिलाकर मजबूत कपड़-मिट्टी (मुलतानी मिट्टी में सना हुआ कपड़ा लपेट) कर संधि बंद कर दे। इस यंत्र को (डमरू यंत्र कहते हैं) चूल्हे पर चढ़ा दे। ऊपर-वाले पात्र के पेंदे पर ४-५ तह किया हुआ मोटा-सा कपड़ा जल में भिगोकर रख दे और चूल्हे में आग जलावे। दिन भर अग्नि देता रहे (किन्तु अग्नि इतनी तेज न हो कि पात्र फूट जाय), शाम को अग्नि बुझा दे, सुबह शीतल होने पर खोलकर सावधानी से ऊपर के पात्र के तले में लगे हुए पारद को ग्रहण करना चाहिये। यदि नीचे के पात्र में जो पदार्थ रहता है उसमें पारद होने की सम्भावना हो तो फिर इसी तरह प्रयोग करना चाहिये।

अधःपातन—हड़, बहेड़ा, राई, सेंधा नमक, चित्रक सहजने के बीज प्रत्येक तीन-तीन तोले लेकर चूर्ण कर ले। उस चूर्ण में नींबू का रस डालकर पारद को इतना घोट डाले कि बारीक मिट्टी बन जाय तब ऊर्ध्वपातन की तरह दो मिट्टी के पात्र लेकर एक पात्र के पेंदे में उस मिट्टी को लेप दे और दूसरे पात्र के साथ मुँह को मिलाकर कपड़मिट्टी करके बन्द कर दे और कपड़मिट्टी के सूखने पर पारदवाले पात्र को ऊपर रखकर दूसरे पात्र को पृथ्वी में गाड़ दे

और इतना गाडे कि पारदवाले पात्र का पेंदामात्र ही बाहर रहे और सब भाग पृथ्वी के भीतर रहे। कोई-कोई वैद्य खाली पात्र में थोड़ा-सा जल भी भर देते हैं। पारदवाले पात्र के ऊपर १०-१० करडों की अग्नि २-२ बार जलानी चाहिये, फिर ठंढा होने पर राख हटाकर यंत्र खोलना चाहिये। पारद नीचे के पात्र में मिलेगा।

तिर्यकपातन—अधःपातन में कही हुई औषधों के साथ उसी विधि से घोटकर पिट्ठी करके एक ही मिट्टी के पात्र में उसी तरह रखे दूसरे पात्र को खाली रखे और दोनों पात्रों के मुँह तिरछे जोड दे। इनमें से औषधवाले पात्र को चूल्हे के ऊपर रखे और दूसरे पात्र को एक दूसरे जल से पूर्ण पात्र में रखे, फिर चूल्हे में अग्नि जलावे। मन्दी-मन्दी आग से दिन भर आग जलावे। शीतल होने पर दूसरे पात्र में लगे हुए पारद को ग्रहण कर ले। तीनों प्रकार के पारद को पात कर लेने से पातन संस्कार पूर्ण हो जाता है।

६ बोधन-संस्कार—पारद, पारद से चौगुना जल और चौथाई सेंधानमक एक शीशी में भरकर मजबूत डाट लगाकर पृथ्वी में गाड़ दे, तीन दिन बाद खोलकर कपड़े से छानकर व्यवहार में लावे। यह बोधनसंस्कार है।

नियमनसंस्कार—पुनर्नवा, सरफोंका, गोखरू महाबला, मकोय, ब्राह्मी, विष्णुक्रान्ता, चौलाई, तुलसी, गंगेरन, शतावर, गिलोय, सेंधानमक सब मिलाकर ।। सेर या जितनी मिल सके वह सब मिलाकर ।। सेर अठगुने पानी में औटाकर चौथाई भाग शेष रहने पर छान ले। इस क्वाथ में स्वेदन संस्कार की विधि से स्वेदन कर ले और बाद में छानकर पारद को ग्रहण कर ले।

दीपनसंस्कार—कसीस, कालीमिर्च, फिटकिरी, सहिजने के बीज, सुहागा, पाँचों नमक, राई, सज्जीखार प्रत्येक एक-एक छटांक लेकर चित्रक के क्वाथ से घोटकर पिट्ठी कर ले, पारद को चौथाई पिट्ठी में घोटकर पिट्ठी होने पर दोलायंत्र में स्वेदसंस्कार की विधि से स्वेदन करना चाहिये किन्तु मिट्टी के पात्र में कांजी और चित्रक का काढ़ा तथा शेष तीन चौथाई पिट्ठी को घोलकर रखे। बाद में पारद को कपड़े की तह में छानकर व्यवहार में लाना चाहिये। अब इस पारद को सर्वत्र व्यवहार में लाना चाहिये।

गंधकजारण—मकरध्वज बनाने के लिये इस अष्टसंस्कार किए हुए पारद को १-२,४-६ गुनी गन्धक के साथ घोटकर पात्र में अग्नि पर रख जला लेनी चाहिये। जितना अधिक गन्धक जारण किया जायगा उतना ही अधिक पारद उत्कृष्ट होगा और इसके बने मकरध्वज आदि रस अधिक गुणकारी होंगे।

कज्जली—पारद और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर खरल में डालकर इतना घोटना चाहिये कि काजल सा काला और मुलायम हो जाय। किसी भी रस में जहां पारद और गन्धक दोनों वस्तु हों पहिले इनको ही घोटकर तैयार कर लेना चाहिये।

आमलासार गन्धक जिसका रंग हरा और विशद पीला हो, टूटने में मुलायम हो तथा काँच के टुकडे की सी चमक हो वह अच्छा होता है। इसी को ग्रहण करना चाहिये।

शोधनविधि—लोहे के पात्र में गन्धक के बराबर ही घी डालकर तपा ले और बाद में उसमें गन्धक पीसकर डाल दे, जब दोनों पिघलकर एक हो जायें तो किसी गिलास आदि पात्र में ठंडा दूध भरकर उसमें डाल दे। नीचे पेंदी में गन्धक जम जायगा। इस प्रकार तीन बार करना चाहिये। अग्नि देते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि तेज अग्नि लगकर गन्धक जल न जाय और रंग न बदल जाय।

अभ्रक—काले रंग की भारी चमकदार परतवाली तोड़ने पर छोटे पत्र देकर टूट जाय, अग्नि पर तपाने से जैसी की तैसी रहे, मलने पर मुलायम चूर्ण सी हो जाय ऐसी कृष्णाभ्रक भस्म करने के लिये लेनी चाहिये।

शोधनविधि—अभ्रक के टुकड़ों को कोयले की तेज आग में तपा तपाकर ७ बार कांजी में,

७ बार बेरी की छाल के काढ़े में और ७ बार त्रिफला के काढ़े में बुझाना चाहिये।

भस्म करने की विधि—अभ्रक के टुकड़ों को कूटकर बारीक कर ले। अभ्रक से चौथाई धान मिलाकर सबको एक मज़बूत कंबल की थैली में भरकर उसका मुँह सीकर बन्द कर दे। इस थैली को १ दिन पानी में भिगो दे, दूसरे दिन एक बड़ी परात में, इस थैली को रखकर हाथ से खूब मलना चाहिये। धान की रगड़ से अभ्रक बालू की भाँति निकलकर पानी में चला जाता है। इस पानी को निथारकर नीचे से अभ्रक को ग्रहण कर लेना चाहिये। इस धान्याभ्रक को जलपानक, कुकरौंधा, पान या जलचौलाई के रस में घोटकर टिकिया बना ले और सुखाकर एक मिट्टी के पात्र में भरकर ऊपर से ढक्कन से लगा कपड़मिट्टी करके सुखा ले और गजपुट [एक-डेढ़ हाथ लम्बे चौड़े गहरे गड्ढे] में १ सेर अभ्रक के लिये ३०-४० कण्डों की आग देकर पुट दे देना चाहिये। इसी विधि से ७ पुट देनी चाहिये। फिर चौलाई के रस की ७, आक के दूध की ३, त्रिफला के क्वाथ की ४, बरगद की जटाओं की ३ पुट और देनी चाहिये। इस प्रकार २४-२५ पुट में अभ्रक निश्चन्द्र और अच्छी भस्म हो जाती है। व्यवहार योग्य अभ्रक में कम से कम १०० पुट लगा देने चाहिये, वैसे जितने पुट अधिक लगे उतना ही अच्छा है। हज़ार पुट तक का अभ्रक बनाया जाता है जो विशेष गुणकारी होता है। पुट देने में नीचे लिखी बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

१ घुटाई का साधन—औषध रस ताजा होना चाहिये। २ घुटाई अच्छी तरह होनी चाहिए। ३ टिकिया और पुटपात्र की कपड़मिट्टी अच्छी तरह सूख जानी चाहिये। ४ पुटपात्र खूब मज़बूत हो, कोई छिद्र आदि न हो, जिसमें से औषध का तेज बाहर न निकल जाय। कपड़मिट्टी भी अच्छी तरह कर दी जाय, जिससे कोई छिद्र आदि न रहे। ५ पुट में कण्डे सावधानी से पास-पास रखे जायँ पुटपात्र के नीचे ऊपर ठीक तरह से रखे जायँ, अग्नि नीचे से सुलगाई जाय। ६ बिलकुल शीतल होने पर ही पुटपात्र को निकालकर खोला जाय, बाद में अभ्रक को घोटकर उसका अमृतीकरण करना चाहिये।

अमृतीकरण—अभ्रकभस्म से चौथाई गौ का घी कड़ाई में डालकर एक प्रहर तक मन्दी-मन्दी आग से पकाकर घी को जलावे और बाद में अच्छी तरह घोटकर रख ले।

परीक्षा—रंग लाल गेरुआ हो, चुटकी में दाबने से मुलायम हो, अँगुली हटाने पर रेखाओं के निशान बन जाते हों, प्रकाश में कोई अंग नहीं चमकता हो।

लौह—रेती, चुम्बक, पुरानी तलवार और स्पात का लोहा अच्छा रहता है। जिस लोहे पर आमला और कसीस लगाकर कुछ देर बाद धो डालने से अनेक कौवा के दाग पड़ जाते हों वह लोहा श्रेष्ठ है।

शोधनविधि—लोहे के पतले पात्र या रेती से रेता हुआ चूर्ण (चूर्ण ही अच्छा है) लेकर आग में तपा-तपाकर त्रिफलाक्वाथ और गौमूत्र में ११-११ बार बुझा लेना चाहिये।

भस्म करने की विधि—लौह को भस्म करने के लिये भानुपाक, स्थालीपाक और पुटपाक करना चाहिये।

भानुपाक—त्रिफला का गाढ़ा-गाढ़ा क्वाथ और दही के तोड़ में लौहचूर्ण को मिलाकर सूर्य की तेज़ धूप में रखकर दिन में २-३ बार लकड़ी से चला देना चाहिये। इस प्रकार इस सूखे हुए लौहचूर्ण को ३ बार जल से धोकर निथारकर अलग निकाल लेना चाहिए।

स्थालीपाक—भानुपाक किए लौहचूर्ण को मिट्टी या लौहपात्र में रखकर उससे दूना त्रिफला-क्वाथ मिलाकर तीव्र अग्नि से पकाना चाहिए, जिससे सब क्वाथ जल जाय और लौहचूर्ण लाल हो जाय। इस चूर्ण को तीन बार शुद्ध कर ग्रहण कर लेना चाहिये।

पुटपाक—स्थालीपाक किए हुए लौहचूर्ण में ग्यारहवाँ भाग शुद्ध हिंगुलु मिलाकर त्रिफला के क्वाथ से घोटकर गजपुट में फूँक देना चाहिये।

इस प्रकार तीस पुट देने से भस्म हो जाती है। शास्त्रकारों ने लौह में कम से कम ६०, अधिक से अधिक १००-५०० और १००० पुट तक देने का विधान किया है, इससे गुण उत्कृष्ट हो जाते हैं। १०० पुट दिया हुआ लौह ही व्यवहार में अच्छा रहता है।

अधिक पुट देने के लिये अन्य रोग-दोष-नाशक औषधों के स्वरस या क्वाथ में घोटकर पुट देना चाहिये।

परीक्षा—हलकी सुरखी लिये, कालापन लिये हुए, जल पर तैरनेवाली भस्म अच्छी होती है।

मण्डूर—

४-५ सौ वर्ष पुराने किलों में पाये जाने-वाला, भारी काले रंग का कठिन, तोड़ने से मिट्टी की तरह टूटनेवाला किन्तु कड़े टुकड़ेवाला मण्डूर श्रेष्ठ है।

शोधनविधि—मण्डूर के टुकड़ों को बहेड़े की तीव्राग्नि में तपाकर ७ बार गोमूत्र में बुझाना चाहिये।

भस्म करने की विधि—शुद्ध मण्डूर के चूर्ण को त्रिफला के क्वाथ में घोटकर सपुट कर (मिट्टी के पात्र में रखकर मुँह बन्द करके कपड़मिट्टी कर) गजपुट में फूँक देना चाहिए। इस प्रकार ४०-२० पुट देने से उत्तम भस्म हो जाती है।

परीक्षा—कालापन लिये हुए लाल रंग, रूखी, लौहभस्म की अपेक्षा कुछ हलकी, थोड़े अंश में जल पर तैरनेवाली मंडूर की भस्म होती है।

नाग (सीसा)—

घिसने पर काला रंग देनेवाला, काटने पर नीला रंग देकर चमकनेवाला, जलाने पर जल्दी गलनेवाला, कूटने पर मुलायम, भारी सीसा अच्छा होता है।

शोधनविधि—एक गड्ढे में एक पात्र रख-कर उसके ऊपर एक चाली या तला का पाट (जिसमें एक मुँह हो और सब पात्र ढक जाय) रखकर पात्र में सँभालू का रस भरकर सीसा को लोहे की कलछी में तपाकर उस पात्र में डाल दे, इस प्रकार ७ बार बुझावे, फिर ३ बार आक के दूध में बुझाना चाहिये।

भस्म करने की विधि—सीसा को कड़ाई में गलाकर ऊपर से पीपल, इमली या अपामार्ग का चूर्ण डालकर करछुल से घोटता रहे, धीरे-धीरे इस प्रकार करने से भस्म हो जाती है (समय लगता है)। बाद में ठंडे होने पर कपड़े में छान ले और जो अंश कच्चा रह गया हो उसे इसी प्रकार फिर भस्म करना चाहिये। बाद में इस भस्म को लेकर समान भाग मैनसिल मिलाकर काँजी के साथ घोटकर शरावसंपुट में रख ३० कण्डों की आग देकर गजपुट में फूँक देना चाहिये। ३ पुट में भस्म हो जाती है। चिकने काले रंग की भारी और साफ होती है।

वंग (राँगा)—

चमकदार, सफेद, वजन में भारी, जल्दी गलने-वाला, गलने में शब्द न हो वह अच्छा है।

शोधनविधि—नाग की तरह यन्त्र बनाकर उसमें चूने का जल भरकर, वंग को आग पर तपाकर गलने पर इस चूने के जल में बुझावे, इस प्रकार ७ बार चूने के जल में बुझाना चाहिए।

भस्म करने की विधि—लौह के पात्र में राँगा को पिघलाकर उसके ऊपर थोड़ा अपा-मार्ग या पीपल के वृक्ष की छाल का चूर्ण डालता जाय और करछुली से चलाता जाय, औषधों का चूर्ण जलकर लाल हो जाता है और वंग थोड़ी-थोड़ी करके भस्म होती जाती है, यह धीरे-धीरे होती है। बाद में ठंडे होने पर छान ले, कुछ अंश कच्चा रह जाय उसको भी फिर इसी तरह दुबारा भस्म करने के बाद में कपड़छान कर आक के दूध में घोटकर १०-३० कण्डों के ३ पुट और दे देने चाहिए। चार चमकरहित आग में डालने से गाँठ न बँधनेवाली भस्म होती है।

यशद (जस्ता)—

काटने गलाने में वंग से कठिन, चमकदार, काटने में सफेद, चमकदार अच्छा होता है।

शोधनविधि—नाग वंग की तरह यंत्र बनाकर तपा-तपाकर गलने पर ७ बार गौ के दूध में या चूने के पानी में बुझाने से शुद्ध होता है।

भस्म करने की विधि—कढ़ाई में गलाकर अपामार्ग का चूर्ण थोड़ा-थोड़ा डालकर लोहे के करछुले से चलाता रहे जब चूर्ण की तरह हो जाय तब फिर वंग नाग की तरह तीन पुट और देने चाहिए।

ताम्र—

खूब चोट सहनेवाला, लाल रंग का स्वच्छ चमकदार तांबा अच्छा होता है।

शोधनविधि—तांबे के पत्र या रेती से रेते हुए चूर्ण को तपाकर २१ बार खट्टे तुलिया के पत्तों और निर्गुण्डी के पत्तों के रस में बुझाने से शुद्ध हो जाता है।

भस्म करने की विधि—तांबे के पत्रों के समान गंधक लेकर उसको नींबू के रस में घोटकर ताम्रपत्रों पर लेप कर दे और बाद में गजपुट में फूँक दे। ५ पुट देने के बाद दही के तोड़ में घोटकर १५ पुट और देने चाहिये। भस्म में चमक न रहे, स्वाद में तांबे का आभास न हो, दही के तोड़ में घोटने पर रंग न बदले यह अच्छी भस्म होती है।

अमृतीकरण—अच्छी ताम्रभस्म को उसका आधा भाग गंधक और पंचामृत (गौ का दूध, दही, घी, शहद, मिश्री) के साथ घोटकर ३ पुट दे देने चाहिए, इससे ८ दोषों की शान्ति हो जाती है। अमृतीकरण अवश्य करना चाहिए।

रजत (चाँदी)—

कसौटी पर घिसने पर, काटने में और देखने में, तपाने में चमकदार, सफेद, वजन में भारी हो वह चाँदी भस्म के योग्य होती है।

शोधनविधि—चाँदी के पत्र या रेती से रिते चूर्ण को तपा-तपाकर ५-७ बार अगस्त के पत्तों के रस में बुझाने से शुद्धि होती है।

भस्म करने की विधि—चाँदी के पत्रों के बराबर शुद्ध पारद और गंधक लेकर पत्रों से दूने ग्वारपाठे के गूदे में घोटकर शरावसम्पुट में रखकर २० कण्डों की आग से गजपुट में फूँक दे, इस प्रकार १५ पुट में भस्म हो जाती है, दाने और चमकरहित भस्म होती है।

स्वर्ण (सोना)—

हलकी लाली लिए पीले रंग का चमकदार, कसौटी पर केसरिया रंग की चमक देनेवाला भारी सोना उत्तम होता है।

शोधनविधि—सोने के पत्रों के बराबर तोल की ईंट का चूर्ण, चूना, बाँबी की मिट्टी, कंडे की राख और गेरू लेकर नींबू के रस में खूब अच्छी तरह घोटकर स्वर्णपत्रों पर लेपकर २–३ कण्डों की आग पर सुर्ख होने तक तपावे. और निकालकर ठंडा कर ले, इस प्रकार ७ बार तपाने से शुद्ध हो जाता है।

भस्म करने की विधि—शुद्ध स्वर्णपत्रों के समान शुद्ध पारद लेकर नींबू के रस के साथ घोट डाले, बाद में जल से धोकर खटाई निकाल दे, बाद में सूखने पर गंधक के साथ घोटकर सम्पुट कर गजपुट में फूँक दे, इस प्रकार १४ पुट देने से सोने की भस्म हो जाती है। प्रत्येक पुट में मिलानेवाले पारद की मात्रा १/१६ भाग कम कर देनी चाहिए। चमकरहित भस्म होनी चाहिये। यदि चमक रहे तो फिर पुट देने चाहिए।

पित्तल (पीतल)—

शोधनविधि—सँभालू के रस में उसका सोहलवाँ भाग हल्दी का चूर्ण मिला लेना चाहिए। पीतल के पत्रों को तपाकर इस रस में बुझाने से ७ बार में शुद्धि हो जाती है।

भस्म करने की विधि—आक के दूध में घुटी हुई गंधक का लेप पत्रों पर करके शरावसम्पुट में रख गजपुट में ११ पुट देने से भस्म हो जाती है: बाद में ताम्रभस्म की तरह इसकी भी अमृतीकरण कर लेना चाहिए।

कांस्य (काँसा)—

चोट लगाने पर अच्छी आवाज देनेवाला, मिट्टी की तरह टूटनेवाला सफेद चमकदार होता है।

शोधनविधि—काँसे के पत्रों को तपा-तपाकर

गोमूत्र में ७ बार बुझाने से शुद्ध होता है।

भस्म करने की विधि—काँसी के बराबर गंधक और मैनसिल समान भाग लेकर ग्वारपाठे के गूदे में घोटकर शरावसंपुट में रखकर गजपुट में फूँक दे, १० पुट में भस्म हो जाती है।

स्वर्णमाक्षिक (सोनामाखी)—

हलका नीलापन लिए हुए पीलापन हो। कसौटी पर घिसने से सोने के रंग की लकीर दे, टुकड़ा में बारीक कोण न हो चमकदार और भारी हो वह श्रेष्ठ है।

शोधनविधि—सोनामाखी को कूटकर पोटली में बाँध केले के कन्द के रस में पारद के शोधन संस्कार के समान ३ घंटे तक उसका स्वेदन करना चाहिए।

भस्म करने की विधि—शुद्ध सोनामाखी को नींबू के रस में घोटकर टिकिया बनाकर शरावसम्पुट में रख गजपुट में फूँकना चाहिए। ११ पुट देने से भस्म हो जाती है।

रौप्यमाक्षिक (रूपामाखी)—

हलकी नीलीझलकयुक्त, पीले रंग की-सी सफेद, कसौटी पर सफेद लकीर देनेवाली, चौकोर टुकड़ोंवाली भारी अच्छी होती है। शोधन और भस्म करने की विधि सब सोनामाखी के समान ही होती है।

हरिणशृंग (बारहसिंगा का सींग)—

तोड़ने से भीतर सफेद, वजन में भारी, बिना घुना, अनेक शाखाओंवाला अच्छा होता है।

शोधनविधि—छोटे-छोटे टुकड़े करके दूध में उबालने से शुद्ध होता है।

भस्म करने की विधि—आक के दूध और थूहर के दूध की भावना देकर शरावसंपुट में रखकर गजपुट में फूँकने से भस्म हो जाती है। त्रिफला के क्वाथ में घोटकर एक पुट और दे देना चाहिए।

ताल (हरताल)—

अच्छा चमकदार, पीले रंग का भारी, तोड़ने पर छोटे-छोटे पत्रोंवाला अच्छा होता है।

शोधनविधि—पेठे के रस, चूना का जल और त्रिफला के क्वाथ में पारद के सं- संस्कार की तरह २-३ घंटे स्वेदन क- चाहिए।

भस्म करने की विधि—मिट्टी के सकोरे सफेद अभ्रक के बड़े-बड़े टुकड़े जमाकर उ- से हरताल के टुकड़े रखकर फिर अभ्रक बड़े-बड़े टुकड़ों को जमाकर दूसरे सकोरे ढककर कपरमिट्टी कर दे, बाद में सबके उ- २-३ अंगुल मोटी मिट्टी का लेप कर दे। ... में १० १२ कण्डों की अग्नि रखकर साध- रण भूमि में ही फूँक दे। आग में डालने धुआँ न दे ऐसी भस्म होनी चाहिए।

श्वेत ताल (गोदन्ती हरताल)—

सफेद रंग की सफेद अभ्रक या सफेद सुर- के समान चमकदार टुकड़ेवाली होती है।

शोधनविधि—नींबू के रस में एक प्र- तक पारद के स्वेदन संस्कार की तरह स्वेद- करना चाहिए।

भस्म करने की विधि—गोदन्ती से आध- ग्वारपाठे का गूदा लेकर उसमें घोटकर टिकिय- बना ले, बाद में शरावसम्पुट में रखकर ... कण्डों की आग में गजपुट में फूँक दे। १ ... में ही भस्म हो जाती है।

मनःशिला (मैनशिल)—

नारंगी रंग की सुन्दर तोल में भारी हो व- अच्छी है।

शोधनविधि—बिजौरे नींबू के रस की ... भावना देने से शुद्ध हो जाती है।

भस्म करने की विधि—कोई-कोई वै- हरताल की तरह फूँकते हैं, किन्तु आवश्यक- नहीं, शुद्ध ही औषधोपयोग में लिया जाता है।

शंखविष (संखिया)—

लाल और सफेद दो तरह का होता है। सफेद ही अधिक मिलता है। यह भारी सफेद रंग का चमकदार पत्थर सा होता है।

शोधनविधि—१० तोले संखिया के टुकड़े को जवाखार, सज्जीखार, सुहागा २-२ तोले और काँजी का जल ७ सेर लेकर पारद के स्वेदन संस्कार की तरह ३ दिन स्वेदन करना चाहिए। ...

भस्म करने की विधि—अधिकांश वैद्य इसे द ही व्यवहार में लाते हैं, क्योंकि यह उदन- ल होता है। फिर भी भस्म करने की विधि खते हैं—

७ दिन चौलाई के रस में घोटकर टिकिया या एक बड़े गोल बैंगन के अन्दर रख उसको रावसम्पुट में रखकर गजपुट में फूँक लेना हिए। भस्म को आग में डालने पर धुआँ ी निकलता है।

शंख—

भारी, बीच में गोल सुन्दर सफेद चमकीला र अच्छा होता है।

शोधनविधि—पारद के स्वेदन संस्कार की ह काँजी में ३ घंटे तक स्वेदन करना चाहिए।

भस्म करने की विधि—टुकड़ों को ग्वारपाठे गूदे में रखकर सरावसम्पुट में बन्दकर पुट ना चाहिये। १-२ पुट में भस्म हो जाती । पानी में बुझाने पर चूने की तरह गलकर ल न जाय तो फिर दुबारा पुट देना चाहिए।

शुक्ति (सीपी)—

हलकी नीले और हरे रंग की चमकवाली, फेद मोती के निशानयुक्त अच्छी होती है।

शोधनविधि—नींबू के रस में १ प्रहर क स्वेदन करना चाहिए।

भस्म करने की विधि—शंख के समान।

वराटक (कौड़ी)—

सफेद हलके पीले रंग की चमकीली, गाठ- र और भारी अच्छी होती है।

शोधनविधि—काँजी में १ प्रहर तक स्वेदन ना चाहिए।

भस्म करने की विधि—शंख के समान।

प्रवाल (मूँगा)—

हलका लाल रंग का चिकना, बड़ा, तोड़ने कड़ा, गोलाकार, घुन रहित भारी अच्छा ा है।

शोधनविधि—गो दूध, चौलाई के रस में प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए।

भस्म करने की विधि—शंख के समान।

मुक्ता (मोती)—

खूब सफेद हलका पीलापन लिये, चमकदार, चिकना, मजबूत, गोल, सुडौल, नमक के संसर्ग से चमक कम न हो वह अच्छा होता है।

शोधनविधि—जैत की पत्तियों के रस में एक प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए।

भस्म करने की विधि—गुलाब के जल में घोटकर शरावसम्पुट में रखकर गजपुट में फूँकने से २-३ पुट में भस्म हो जाती है।

पुष्पराज (पुखराज)—

हलका सुनहला पीले रंग का पारदर्शी, स्वच्छ, गोल, चमकीला, चिकना, घिसने पर कसौटी पर पीली रेखा देनेवाला अच्छा होता है।

शोधनविधि—एक प्रहर तक दोलायन्त्र में स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है।

भस्म करने की विधि—शुद्ध पुखराज, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक और शुद्ध हरताल समान भाग लेकर नींबू के रस में घोटकर, सुखाकर, शरावसम्पुट में रखकर गजपुट में फूँक दें। ११-१२ पुट में भस्म हो जाती है।

नीलरत्न (नीलम)—

चमकदार, पारदर्शी, नीले रंग का चिकना और वजनदार अच्छा होता है।

शोधनविधि—अगस्त के पत्तों में एक प्रहर स्वेदन करने से शुद्ध होता है।

भस्म करने की विधि—शुद्ध नीलम, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध मैनसिल समान भाग लेकर जँभीरी नींबू के रस में घोटकर गजपुट में फूँक दें, १०-१२ पुट में भस्म हो जाती है।

मरकत (पन्ना)—

स्वच्छ, चमकदार, हरे रंग का, कोण- रहित, चिकना, भारी अच्छा होता है।

शोधनविधि—गौ के दूध में २ प्रहर तक स्वेदन करने से शुद्ध होता है।

भस्म करने की विधि—शुद्ध पन्ना, शुद्धगन्धक, हिंगुल, शुद्ध हरताल समान भाग लेकर नींबू के रस में घोटकर शरावसम्पुट में रख गजपुट में फूँक देना चाहिए। ८-१० पुट में भस्म हो जाती है।

वैदूर्य—

चमकदार, बिल्ली की आँखों के समान रेखावाला, कंजा, चक्करदार, जनेऊवाला, चिकना और भारी अच्छा होता है।

शोधनविधि—त्रिफला के काढे में २ प्रहर तक शोधन करना चाहिए।

भस्म करने की विधि—शुद्ध वैदूर्य, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध हरताल समान भाग लेकर नींबू के रस में ४ दिन तक घोट कर सूखने पर शरावसंपुट में रखकर गजपुट में फूँकना चाहिए, १० पुट में भस्म हो जायगी।

गोमेद—

लाल, पीला मिला गंदले से रंग का वजनी, चमकदार, चिकना और गोल अच्छा होता है।

शोधनविधि—२-३ प्रहर तक स्वेदन करने से शुद्ध होता है।

भस्म करने की विधि—शुद्ध गोमेद के बराबर शुद्ध मैनसिल लेकर नींबू के रस में २ दिन तक घोटकर शरावसंपुट में रखकर गजपुट में ४ पुट देने चाहिए। इसी तरह गंधक और हरताल के साथ घोटकर भी अलग-अलग १-२ पुट देने चाहिए।

माणिक्य (मानिक)—

लाल कमल के समान चमकदार, चिकना और गोल माणिक अच्छा होता है।

शोधनविधि—नींबू के रस में २ प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए।

भस्म करने की विधि—शुद्ध मानिक, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध गन्धक और शुद्ध हींगुल लेकर नींबू के रस में घोटकर टिकिया बना ले। शरावसंपुट में रखकर गजपुट में १०-१२ पुट देने से भस्म हो जाती है।

वज्र (हीरा)—

चिकना, चमकनेवाला, कसौटी पर घिसने से न घिसे, तोड़ने से न टूटे, तेज धारवाला, कड़ी चीज़ को काटनेवाला और कई (६-८) कोनोंवाला उत्तम होता है।

शोधनविधि—तीव्राग्नि में तपाकर १०० बार शुद्ध पारे में बुझाना चाहिए।

भस्म करने की विधि—कसौटी के खरल में शुद्ध हीरा, शुद्ध हरताल, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनशिल और स्वर्णमाक्षिक भस्म समान भाग लेकर थूहर के दूध के योग से घोटकर, शरावसंपुट में रख गजपुट में फूँक देना चाहिए। १५-२० पुट देने से भस्म हो जाती है।

वैक्रान्त—

हीरा के गुणों से हीन होता है और उसके प्रतिनिधि रूप में व्यवहार में आता है। यह केवल सफेद रंग का नहीं होता है। सफेद, नीला, पीला, कई रंग का होता है पर भस्म करने लिए सफेद ही श्रेष्ठ है।

शोधनविधि—४ प्रहर तक गोमूत्र या काँजी में स्वेदन करना चाहिए।

भस्म करने की विधि—शुद्ध वैक्रान्त, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद और शुद्ध हिंगुल नींबू के रस में एक दिन तक घोटकर टिकिया बना, शराव संपुट में रखकर गजपुट में फूँक देना चाहिए। १० पुट में भस्म हो जाती है।

विशेष वक्तव्य—

शोधन करने और भस्म करने की विधियों स्वेदन, शरावसंपुट और गजपुट का उल्लेख कई स्थलों पर हुआ है, अतः यहाँ स्पष्ट कर देना आवश्यक है।

स्वेदन—पारद के स्वेदन संस्कार में वर्णित की हुई विधि से ही जिन द्रव्यों में स्वेदन करना लिखा हो उन्हें पात्र में डाल, स्वेदन करने योग्य द्रव्य को कपड़े की पोटली में बाँध, उस पोटली को सुतली से एक ऐसी लकड़ी से बाँधना चाहिए जो पात्र के मुख पर आड़ा आ जाय और पोटली पात्र के द्रव पदार्थ में ऐसी लटकती रहे कि डूबी तो रहे, किन्तु पात्र के पेंदे से स्पर्श न करे।

शरावसंपुट—भस्म करनेवाले द्रव्य को एक मिट्टी के सकोरे में रख उसके ऊपर दूसरा सकोरा ढककर उसके मुख की संधि कपरमिट्टी से बन्द कर देने का नाम शरावसंपुट है।

गजपुट—१॥ हाथ लम्बा, चौड़ा, गहरा गड्ढा करके उसमें कण्डों को भरकर बीच में शरावसंपुट रखकर आग देने का नाम गजपुट है ।

पुट—औषध को शरावसंपुट में रखकर फूँकने का नाम पुट देना है ।

उपधातु आदि द्रव्यों का शोधन

तुत्थक (नीलाथोथा)—

मोर की गर्दन के समान नीले वर्णवाला, भारी, चिकना और चमकदार तुत्थ अच्छा होता है ।

शोधनविधि—नीलाथोथा को पीसकर उससे आधे गरम जल में घोल दे, घुल जाने पर कपड़े से छान ले और उस जल को काँच के पात्र में रख दे । जब उसके तले में नीलाथोथा के कण जम जायँ तब उनको निकालकर व्यवहार में लाना चाहिए ।

मृद्दारशृङ्ग (मुरदासंग)—

मुरदासंग को खरल में कूटकर इसमें से पत्थर आदि के अंश को हटाकर पीसकर कपड़े में छान ले, बाद में स्वच्छ जल से १२ दिन तक घोटकर धूप में सुखाकर व्यवहार में लाना चाहिए।

खर्पर (खपरिया)—

शोधनविधि—खपरिया को कूटकर उसमें से पत्थर का अंश निकालकर शेष भाग को ७ दिन तक नींबू के रस में घोट कर सुखा लेनी चाहिए, या तपा-तपाकर नींबू के रस में ७ बार बुझा देनी चाहिए ।

भस्म करने की विधि—शुद्ध खपरिया के बराबर शुद्ध हरताल पीसकर शरावसंपुट में रखकर ३ पुट देने से भस्म हो जाती है ।

कान्तपाषाण (चुम्बक)—

शोधनविधि—चुम्बक को नींबू के रस में घोटकर त्रिफला के क्वाथ में स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है ।

भस्म करने की विधि—शुद्ध चुम्बक को गोमूत्र और त्रिफला के क्वाथ में घोटकर टिकिया बनाकर गजपुट में फूँक देने से ७ पुट में भस्म हो जाता है ।

कासीस—

शोधनविधि—कासीस को भाँगरे के स्वरस में २ घंटे तक स्वेदन करना चाहिए ।

अञ्जन—

स्रोतोञ्जन और सौवीराञ्जन के शोधने की विधि—भाँगरे के रस में ७ दिन तक घोटने से दोनों प्रकार के सुरमा शुद्ध हो जाते हैं ।

शिलाजीत—

शिलाजीत में पत्थरों का चूर्ण आदि विजातीय अंश मिला रहता है, इसलिये इसका शोधन अच्छी तरह से करना चाहिए । गर्मी के दिनों में एक लोहे के पात्र में शिलाजीत से, दूना गर्म जल और आधा त्रिफला का क्वाथ डालकर दिन भर धूप में रहने दे । बाद कपड़े से छान ले, इस प्रकार फिर गर्म जल में घोल ले और छान ले, इसी प्रकार एक दूसरे और तीसरे चौथे पात्र में बराबर छानता रहे जब तक कि जिस जल में घोला जाय वह बिलकुल निर्मल न निकले । बाद में सुखाकर रख ले—शुद्ध शिलाजीत अग्नि पर डालने से धूआँ नहीं देता और लिङ्गाकार (स्तूपाकार) हो जाता है, जल में डालने से तन्तु छोड़ता हुआ जल में घुल जाता है, स्वाद में चरपरा और कडुवा होता है ।

गैरिक (गेरू)—

शोधनविधि—सोना गेरू को खरल में चूर्ण करके गोदुग्ध के साथ घोटकर सुखाने से शुद्ध होता है ।

स्फटिक (फिटकरी)—

शोधनविधि—गरम तवे पर तपाकर फुलाकर खील सी कर ले, यही इसकी शुद्धि है । सब प्रयोगों में इसी को व्यवहार में लाना चाहिए ।

टंकण (सुहागा)—

शोधनविधि—सुहागे को फिटकरी की तरह गर्म तवे पर फुलाकर खील-सा कर लेना

वैदूर्य—

चमकदार, बिल्ली की आँखों के समान नेत्रवाला, कंजा, चक्करदार, जनेऊवाला, चिकना और भारी अच्छा होता है।

शोधनविधि—त्रिफला के काढ़े में २ प्रहर तक शोधन करना चाहिए।

भस्म करने की विधि—शुद्ध वैदूर्य, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध हरताल समान भाग लेकर नींबू के रस में ४ दिन तक घोट कर सूखने पर शरावसंपुट में रखकर गजपुट में फूँकना चाहिए, १० पुट में भस्म हो जायगी।

गोमेद—

लाल, पीला मिला गंदले से रंग का वजनी, चमकदार, चिकना और गोल अच्छा होता है।

शोधनविधि—२-३ प्रहर तक स्वेदन करने से शुद्ध होता है।

भस्म करने की विधि—शुद्ध गोमेद के बराबर शुद्ध मैनसिल लेकर नींबू के रस में २ दिन तक घोटकर शरावसंपुट में रखकर गजपुट में २ पुट देने चाहिए। इसी तरह गंधक और हरताल के साथ घोटकर भी अलग-अलग २-३ पुट देने चाहिए।

माणिक्य (मानिक)—

लाल कमल के समान चमकदार, चिकना और गोल माणिक अच्छा होता है।

शोधनविधि—नींबू के रस में २ प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए।

भस्म करने की विधि—शुद्ध मानिक, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध गन्धक और शुद्ध हींगुल लेकर नींबू के रस में घोटकर टिकिया बना ले। शरावसंपुट में रखकर गजपुट में १०-१२ पुट देने से भस्म हो जाती है।

वज्र (हीरा)—

चिकना, चमकनेवाला, कसौटी पर घिसने से न घिसे, तोड़ने से न टूटे, तेज धारवाला, कची चीज को काटनेवाला और कई (६-८) कोनोंवाला उत्तम होता है।

शोधनविधि—तीव्राग्नि में तपाकर १० बार शुद्ध पारे में बुझाना चाहिए।

भस्म करने की विधि—कसौटी के खरल में शुद्ध हीरा, शुद्ध हरताल, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक शुद्ध मैनशिल और स्वर्णमाक्षिक भस्म समान भाग लेकर थूहर के दूध के योग से घोटकर शरावसंपुट में रख गजपुट में फूँक देना चाहिए। १५-२० पुट देने से भस्म हो जाती है।

वैक्रान्त—

हीरा के गुणों से हीन होता है और उसके प्रतिनिधि रूप में व्यवहार मे आता है। यह केवल सफेद रंग का नहीं होता है। सफेद, नीला, पीला, कई रंग का होता है पर भस्म करने लिए सफेद ही श्रेष्ठ है।

शोधनविधि—४ प्रहर तक गोमूत्र या काँजी में स्वेदन करना चाहिए।

भस्म करने की विधि—शुद्ध वैक्रान्त, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद और शुद्ध हिंगुल नींबू के रस में एक दिन तक घोटकर टिकिया बना, शराव संपुट में रखकर गजपुट मे फूँक देना चाहिए। १० पुट मे भस्म हो जाती है।

विशेष द्रष्टव्य—

शोधन करने और भस्म करने की विधियों में स्वेदन, शरावसंपुट और गजपुट का उल्लेख कई स्थलों पर हुआ है, अतः यहाँ स्पष्ट कर देना आवश्यक है।

स्वेदन—पारद के स्वेदन संस्कार में वर्णित की हुई विधि से ही जिन द्रव्यों में स्वेदन करना लिखा हो उन्हें पात्र में डाल, स्वेदन करने योग्य द्रव्य को कपड़े की पोटली में बाँध, उस पोटली को सुतली से एक ऐसी लकड़ी से बाँधना चाहिए जो पात्र के मुख पर आ जाय और पोटली पात्र के द्रव पदार्थ में ऐसी लटकती रहे कि डूबी तो रहे, किन्तु पात्र के पेंदे से स्पर्श न करे।

शरावसंपुट—भस्म करनेवाले द्रव्य को एक मिट्टी के सकोरे में रख उसके ऊपर दूसरा सकोरा रखकर उसके मुख की संधि कपरमिट्टी से बन्द कर देने का नाम शरावसंपुट है।

गजपुट—१॥ हाथ लम्बा, चौड़ा, गहरा गड्ढा करके उसमें कण्डों को भरकर बीच में रावसपुट रखकर आग देने का नाम गजपुट है।

पुट—औषध को शरावसपुट में रखकर फूँकने का नाम पुट देना है।

उपधातु आदि द्रव्यों का शोधन

तुत्थक (नीलाथोथा)—

मोर की गर्दन के समान नीले वर्णवाला, भारी, चिकना और चमकदार तुत्थ अच्छा होता है।

शोधनविधि—नीलाथोथा को पीसकर उससे आधे गरम जल में घोल दें, घुल जाने पर कपड़े से छान ले और उस जल को काँच के पात्र में रख दें। जब उसके तले में नीलाथोथा के कण जम जायँ तब उनको निकालकर व्यवहार में लाना चाहिए।

मृद्दारशृङ्ग (मुरदासंग)—

मुरदासंग को खरल में कूटकर इसमें से पत्थर आदि के अंश को हटाकर पीसकर कपड़े में छान ले, बाद में स्वच्छ जल से १२ दिन तक घोटकर धूप में सुखाकर व्यवहार में लाना चाहिए।

खर्पर (खपरिया)—

शोधनविधि—खपरिया को कूटकर उसमें से पत्थर का अंश निकालकर शेष भाग को ७ दिन तक नींबू के रस में घोट कर सुखा लेनी चाहिए, या तपा-तपाकर नींबू के रस में ७ बार बुझा देनी चाहिए।

भस्म करने की विधि—शुद्ध खपरिया के बराबर शुद्ध हरताल पीसकर शरावसपुट में रखकर ३ पुट देने से भस्म हो जाती है।

कान्तपाषाण (चुम्बक)—

शोधनविधि—चुम्बक को नींबू के रस में घोटकर त्रिफला के क्वाथ में स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है।

भस्म करने की विधि—शुद्ध चुम्बक को गोमूत्र और त्रिफला के क्वाथ में घोटकर टिकिया बनाकर गजपुट में फूँक देने से ७ पुट में भस्म हो जाता है।

कासीस—

शोधनविधि—कासीस को भाँगरे के स्वरस में २ घंटे तक स्वेदन करना चाहिए।

अंजन—

स्रोतोञ्जन और सौवीराञ्जन के शोधन की विधि—भाँगरे के रस में ७ दिन तक घोटने से दोनों प्रकार के सुरमा शुद्ध हो जाते हैं।

शिलाजीत—

शिलाजीत में पत्थरों का चूर्ण आदि विजातीय अंश मिला रहता है, इसलिये इसका शोधन अच्छी तरह से करना चाहिए। गर्मी के दिनों में एक लोहे के पात्र में शिलाजीत से दूना गर्म जल और आधा त्रिफला का क्वाथ डालकर दिन भर धूप में रहने दें। बाद कपड़े में छान ले, इस प्रकार फिर गर्म जल में घोल ले और छान ले, इसी प्रकार एक दूसरे और तीसरे चौथे पात्र में बराबर छानता रहे जब तक कि जिस जल में घोला जाय वह बिलकुल निर्मल न निकले। बाद में सुखाकर रख ले—शुद्ध शिलाजीत अग्नि पर डालने से धूआँ नहीं देता और लिङ्गाकार (स्तूपाकार) हो जाता है, जल में डालने से तन्तु छोड़ता हुआ जल में घुल जाता है, स्वाद में चरपरा और कडुवा होता है।

गैरिक (गेरू)—

शोधनविधि—सोना गेरू को खरल में चूर्ण करके गोदुग्ध के साथ घोटकर सुखाने से शुद्ध होता है।

स्फटिक (फिटकरी)—

शोधनविधि—गरम तवे पर तपाकर फुलाकर खील सी कर ले, यही इसकी शुद्धि है। सब प्रयोगों में इसी को व्यवहार में लाना चाहिए।

टंकण (सुहागा)—

शोधनविधि—सुहागे की फिटकरी की तरह गर्म तवे पर फुलाकर खील-सा कर लेना

चाहिए। यही सब प्रयोगों में व्यवहार में लाना चाहिए।

नवसार (नौसादर)—

शोधनविधि—नौसादर को तिगुने जल में भिगोकर कपडे से छानकर उस जल को तेज आग से पकावे, जब जलमात्र जल जाय तब तले में सूखे हुए चूर्ण रूप नौसादर को व्यवहार में लाना चाहिए।

खटिका (खडिया)—

शोधनविधि—खड़िया को साफ जल में घोलकर छानकर सुखाकर व्यवहार में लाना चाहिए।

यवक्षार (जवाखार)—

निर्माणविधि—जौ के शूकों की भस्म को आठगुने जल में किसी स्वच्छ पात्र में घोल दे जब भस्म नीचे बैठ जाय तो जल को नितार कर अलग कर ले। उसे लौहपात्र में डालकर अग्नि पर पकावे जब गाढ़ा हो जाय तो उसे निकालकर किसी दूसरे पात्र में रख उस पात्र को एक जल के पात्र में रखकर उसकी भाप से सुखावे या धूप में सुखाकर व्यवहार में लाना चाहिए।

इसी प्रकार सर्जीक्षार, उष्ट्रप्रिया (क्षुद्र दुरालभा) को जलाकर बनाया जाता है। अन्य क्षार भी इसी विधि से बनाए जाते हैं।

विष-उपविष।

वत्सनाभ (बच्छनाग तेलिया मीठा)—

शोधनविधि—मिट्टी या पत्थर के पात्र में बच्छनाग के चने के बराबर छोटे २ टुकडे करके गोमूत्र में भिगोकर (मूत्र ऊपर तैरता रहे) धूप में रख दे। इस प्रकार प्रति दिन मूत्र बदलते हुए तीन दिन करने से शुद्ध हो जाता है।

विषतिन्दुक (कुचला)—

शोधनविधि—कुचला के बीजों को मन्दी २ आग से घी में पकाने से (जब कि ऊपर का छिलका किंचित लाल, पीला सा हो जाय) शुद्ध हो जाता है।

अहिफेन (अफीम)—

शोधनविधि—अफीम को जल में घोलकर, कपडे में छानकर सुखा ले।

जयपाल (जमालगोटा)—

शोधनविधि—जयपाल के बीजों को छील कर (मोटा छिलका हटाकर) उनके दो दल करके बीच जीभ को भी हटाकर पोटली में बाँधकर पारद के स्वेदन संस्कार की तरह एक प्रहर भर गोदुग्ध में स्वेदन करना चाहिए। इस प्रकार तीन दिन स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है।

धत्तूर (धतूरे के बीज)—

शोधनविधि- धतूरे के बीजों को गोदुग्ध में जयपाल की तरह स्वेदन करना चाहिए।

भङ्गा (भाँग)—

शोधनविधि—भाँग को जल में भिगोकर अच्छी तरह भीजने के बाद मसल-मसल कर कई बार जल से धो डाले, बाद में सुखाकर गौ के घी में मन्दी २ आग में भूनकर काम में लाना चाहिए।

गुञ्जा (रत्ती)—

शोधनविधि—गुंजा को कांजी में एक दिन स्वेदन करने से शुद्ध हो जाती है।

भल्लातक (भिलावाँ)—

भिलावें के फलों को ईंट के चूर्ण के साथ तीन चार तह किए हुए कपडे में डालकर खूब रगडे (इससे तैल निकलकर ईंट के चूर्ण में लग जाता है), बाद में तैल और छिलके रहित हो जाने पर गर्म जल से धोकर व्यवहार में लाना चाहिए।

स्नुहीक्षीर (सेंहुड़ का दूध)—

शोधनविधि—८ तोले सेंहुड़ के दूध को दो तोले इमली के पत्तों के रस के साथ लगा कर धूप में सुखाकर व्यवहार में लाना चाहिए।

कृष्णसर्प विष (काले साँप का जहर)—

शोधनविधि—तैल से चिकनी सीपी (पात्रविशेष) में जहर का चौथाई भाग सरसों का तैल डालकर धूप में सुखाना

चाहिए, पीले रंग का हो जाने पर व्यवहार के योग्य शुद्ध हो जाता है।

रक्तचित्रक शोधनविधि—लाल चित्रक की जड़ के चूर्ण को चूने के नितरे हुए जल में डुबोकर और धूप में सुखाकर, व्यवहार में लाना चाहिए।

वृद्धदारक (विधारे के बीज) शोधन-विधि—एक प्रहर तक गोदुग्ध में स्वेदन करने से व्यवहार योग्य हो जाते हैं।

नींबू के बीजों का शोधन—अपामार्ग के क्वाथ में एक प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए।

हींग शोधनविधि—हींग के बराबर घी लेकर एक कलछी में पकावे, लाल हो जाने पर व्यवहार में लेना चाहिए।

गुग्गुल शोधनविधि—गुग्गुल से चौगुना गोदुग्ध लेकर उसमें विधिपूर्वक स्वेदन करना चाहिए और उसे दूध में ही छान लेना चाहिए। दूध के शीतल होने पर नीचे के गुग्गुलु को ग्रहण करना चाहिए और कपड़े में लगे हुए मलभाग को त्याग देना चाहिए।

समुद्रफेन शोधनविधि—समुद्रफेन को पीस कर एक दिन नींबू के रस में घोटने से व्यवहार में लाने योग्य होता है।

शम्बूक (घोंघा) शोधनविधि—किसी भी खट्टे पदार्थ के द्रव में उबालने से शुद्ध हो जाता है।

भस्म करने की विधि—शंख की तरह ही भस्म किया जाता है।

आसव, अरिष्ट निर्माण करने की विधि—

आसव और अरिष्टों के जितने प्रयोग इस ग्रन्थ में वर्णित हैं उन सबके साथ सामान्य विधि लिखी है, किन्तु निर्माण के भीतर की बातें जो अनुभाव से ही ज्ञात होती हैं यहाँ लिखी जाती हैं, इससे आसव और अरिष्ट बनाने में बहुत सुविधा रहेगी।

पात्र—आसव और अरिष्ट बनाने के लिए प्राचीन ग्रन्थों में मिट्टी के पात्र (जो चिकने और पुराने हों) ग्रहण किए हैं किन्तु उनके फटने फूटने के डर तथा रिसने (चूने) के भय से काँच या चीनी के बड़े-बड़े पात्रों का व्यवहार करना अच्छा मालूम देता है। लकड़ी के बड़े २ पीपे भी जिनमें शराब आती है इसके लिए व्यवहार में आ सकते हैं किन्तु इनकी सफाई बहुत अधिक सोडा और चूने के जल द्वारा होनी चाहिए।

औषध चूर्ण क्वाथ गुड़ आदि मिलाने की विधि—सबसे पहिले क्वाथ या जल में थोड़ा मधुर द्रव्य गुड़ खाँड आदि घोलकर कपड़े से ढककर और उसके ऊपर हलका सा ढक्कन इस तरह रख दे कि ज़रा सी हवा जाती रहे। इसी समय धाय के फूल आदि द्रव्य भी डाल देने चाहिए जो मद्यार्क (Alcohol) उत्पन्न करने का कार्य करते हैं। लेखक की सम्मति में तो सुराबीज (किण्व Yeast) ९-१० छोड़ देना चाहिए। यदि विलायती और शुद्ध रूप में हो तो १ तोला या ६ माशा ही काफी होता है। इसके बाद औषधों का चूर्ण कपड़छन करके डाल देना चाहिए और अच्छी तरह घोल देना चाहिए। पात्र को गर्मी के दिनों में शीतल स्थान में रखना चाहिए जहाँ हवा भी आती रहे और सर्दियों में पात्र को गर्दन तक भूसा, अनाज व पृथ्वी के भीतर रखना चाहिए, मधुर द्रव्य का शेष भाग २-३ बार में घोल देना चाहिए। पात्र आधा खाली रखना चाहिए और यदि बड़ा है तो ¼ भी खाली रख सकते हैं। किण्व डालकर बनाने से गर्मियों में २-३ दिन में और सर्दियों में ४-५ दिन में आसव बन जाता है, यदि सन्धान रुक जाय तो बात अलग है। सन्धान बनते समय उसमें एक हलका सा शब्द होता है। सन्धान बनने का कार्य मीठे की कमी या मौसम की गर्मी से रुकता है। उपाय—मीठे की कमी में मीठा डालना और गर्मी की अधिकता में उसको ठंडा कर देना या रबर की थैली में बर्फ भरकर पात्र में डाल देना आदि है।

छानने की विधि—आसव और अरिष्टों को पुरानी विधि से तो जल्दी ही छानना चाहिए

अन्यथा सिरका बनकर बिगडने का भय रहता है या विलायती फिल्टरों (बन्द मुँह के इटीदार चीनी के फिल्टरों) में छानना चाहिए और बाद में मीठा मिलाकर बोतलों में रख देना चाहिए। कार्क कसकर लगाना चाहिए ताकि वायु जाकर खराब न करे। सुगन्धित द्रव्य भी बाद में ही डालना चाहिए।

लौहचूर्ण डालने का विधान जहाँ है वहाँ वह चूर्ण त्रिफला के क्वाथ में काफी दिन डालकर घुलनशील करके फिर डालना चाहिए और स्वर्ण डालना हो तो स्वर्णभस्म (Gold Chloride) डालना चाहिए। अन्यथा चूर्ण या पत्र डालने पर बिना उनके घुले कुछ फल नहीं मिलता है।

समाप्तोऽयं ग्रन्थ



